पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित सर्वार्थसिद्धि भाषाटीकामें आये हुये संकेतोंकी सूची और अर्थ।

इस ग्रंथके प्रत्येक पृष्ठके उपरि भागमें इस मोक्षशास्त्रके सूत्र और संस्कृत वृत्ति रहैगी, मध्य भागके, बाईं ओर उपर्युक्त सूत्रका और वृत्तिका पदच्छेद, विभक्ति आदि सहित उतना ही लिखा जायगा जितनेका शब्दशः अर्थ दाहिनी ओरके भागमें आजाय और नीचेके भागमें नाना प्रकारकी टिप्पणियां लिखी जावेंगी ॥

संस्कृतमे कर्ता प्रायः प्रथमा विभक्ति, कर्म द्वितीया विभक्ति, करण तृतीया विभक्ति, सम्प्रदान चतुर्थी विभक्ति, अपादान पंचमी विभक्ति, संबंध षष्ठी विभक्ति, अधिकरण सप्तमी विभक्ति, और सम्बोधन प्रथमा विभक्ति होता है। इनमेंसे प्रथम छहको कारक भी कहते हैं॥ संबंध षष्ठी विभक्तिको कारक नहीं माना है क्योंकि संज्ञा और क्रियामें परस्पर यह किसी प्रकारके संबंधका प्रादुर्भाव नहीं करता है।

संस्कृतमे एकवचन द्विवचन और बहुवचन होते हैं तथा तीन स्त्री पुरुष नपुंसक लिंग होते हैं।

आडी (—) लकीरके ऊपरकी संख्या विभक्तिकी और नीचेकी संख्या १, २, ३, यथा क्रमसे एक वचन, द्विवचन, बहुवचनकी, और ऊपरकी संख्याके दाहिनीओर एक खडी लकीर पुलिंगकी दो खडी रेखा स्त्री लिंगकी और तीन खड़ी लकीरें नपुंसक लिंगकी, द्योतक हैं॥ जैसे- $\frac{१}{१}$I प्रथमा विभक्ति एक वचन पुल्लिगका संकेत है। $\frac{२}{२}$II—कर्म द्वितीया विभक्ति द्विवचन स्त्रीलिंगका संकेत है। $\frac{३}{३}$III करण तृतीया विभक्ति बहुवचन नपुंसक लिंगका द्योतक है। $\frac{४}{३}$II चतुर्थी विभक्ति बहुवचन स्त्रीलिंगका चिन्ह है। $\frac{५}{२}$I पंचमी विभक्ति द्विवचन पुल्लिगका द्योतक है। $\frac{६}{१}$III षष्ठी विभक्ति एकवचन नपुंसक लिंगका संकेत है। इत्यादि इसी प्रकार और भी जानना चाहिये॥ ⁸ सबोधनका संकेत है।

शब्दोंके पास निम्न लिखित संकेत नीचे लिखी हुई व्याकरण संबंधी संज्ञाओंके द्योतक हैं॥

* = अव्यय

T = क्रिया

× = भूतकृवन्त

– = संबंधसूचक भूतकृदन्त

॰ = हेत्वर्थ कृदन्त

॥ = वर्तमान कृदन्त

यहा पर अष्टाध्यायी व्याकरणके १४ सूत्र और उनसे उत्पन्न हुये प्रत्याहार अर्थसहित लिखते हैं—

(१) अइउण् । इसमें अन्त्य ण्की इत्संज्ञा होनेसे एक 'अण्' प्रत्याहार बनता है ।

(२) ऋलृक् । इसमे अन्त्य क् की इत्संज्ञा होनेसे तीन प्रत्याहार अक्–इक्–उक् बनते है ।

(३) एओङ् । इसमें अन्त्य ङ् की इत्संज्ञा होनेसे एक एङ् प्रत्याहार बनता है ।

(४) ऐऔच् । इसमे अन्त्य च् की इत्संज्ञा होनेसे अच्–इच्–एच्–ऐच् ये चार प्रत्याहार बनते हैं ।

(५) हयवरट् । इसमें अन्त्य ट् की इत्संज्ञा होनेसे अट् ऐसा एक प्रत्याहार बनता है ।

(६) लण् । इसमें अन्त्य ण् की इत्संज्ञा होनेसे तीन प्रत्याहार अण् इण् यण् बनते हैं ।

(७) ञमङणनम् । इसमें अन्त्य म् की इत्संज्ञा होनेसे अम् यम् ञम् ङम् ये चार प्रत्याहार बनते हैं ।

(८) झभञ् । इसमें अन्त्य ञ् की इत्संज्ञा होनेसे एक यञ् प्रत्याहार बनता है ।

(९) घढधष् । इसमे अन्त्य ष् की इत्संज्ञा होनेसे भष् झष् ये दो प्रत्याहार बनते हैं ।

(१०) जबगडदश् । इसमे अन्त्य श्की इत्संज्ञा होनेसे अश् -हश्–वश्–जश्–झश्–बश्–प्रत्याहार बनते हैं ।

(११) खफछठथचटतव् । इसमें अन्त्य व्की इत्संज्ञा होनेसे एक छव् प्रत्याहार बनता है ।

(१२) कपय् । इसमे अन्त्य य्की इत्संज्ञा होनेसे यय्–मय् -झय् -खय् ये चार प्रत्याहार बनते है ।

(१३) शषसर् । इसमे अन्त्य र्की इत्संज्ञा होनेसे यर् -झर् -खर्- चर्--शर् ये पांच प्रत्याहार बनते हैं ।

(१४) हल् । इसमें अन्त्य ल्की इत्संज्ञा होनेसे अल्–हल् -वल्--रल्–झल् -शल् ये छह प्रत्याहार बनते हैं

ये चौदह सूत्र अक्षर समाम्नाय कहाते हैं । काममें आनेवाले केवल ४२ प्रत्याहार हैं ॥

अनुस्वार--विसर्ग--जिह्वामूलीय -उपध्मानीय उपर्युक्त सूचीमे अन्तर्गत नहीं हैं ॥

ह–य- व इत्यादिमें अन्तका अकार उच्चारणकेलिये है और अन्तका अमिश्रित वा निरा वा शुद्ध व्यंजन (ण्–क्–ङ् इत्यादि)

प्रत्येक सूत्रमे इत् संज्ञक है-शक्तिहीन या फलदायक नहीं है। भावार्थ—व्याकरणसंबंधी रूप वाक्य इत्यादि बनानेमें कुछ कार्यकारी नहीं होते हैं ॥

प्रत्याहार एक व्याकरणसंबंधी संकेत है जो आदिवर्ण और अन्त्यवर्ण जो इत्संज्ञक है उसके साथ मिलके अपने स्वरूप और मध्यस्थों का द्योतक होता है जैसे हल् प्रत्याहारसे सर्वव्यंजनोंसे अभिप्राय है जो पांचवे सूत्रके ह से प्रारम्भ होते हैं और अंतके ल इत्संज्ञकके अनन्तर पूर्व तकमे है, अर्थात् आदिवर्ण ह अपनी और बीचके अक्षर (अंतके ल् इत्संज्ञक के पूर्व पूर्व) हयवर--ल--ञमङणन-झभ- घढध--जबगडद--खफछठथचटत-कप-शषस का द्योतक है। हल् प्रत्याहारसे १४वें सूत्रसे अभिप्राय नहीं हो सक्ता क्योंकि इस हल्मे ह आदिका वर्ण तो है, बीचका कोई भी अक्षर नहीं है ॥

ॐ

नमः परमात्मने वीतरागाय ।

पदच्छेदसहित भाषानुवाद ।

ॐ[1] नमः[2]※ परमात्मने[अ/1] वीतरागाय[अ/1]	=(१) आरम्भमें परमात्मा वीतरागकेलिये नमस्कार हो ।
	=(२) मंगलमय ईश्वर वीतरागके लिये प्रणाम हो ।
	=(३) ब्रह्म चिदात्मा वीतरागके लिये प्रणति हो ।
	=(४) पंचपरमेष्ठी परमब्रह्म रागरहितकेलिये नमस्कार हो ।
	(ओम् शब्दके बहुत अर्थ हैं उनमेंसे चार आरम्भ मंगलमय, ब्रह्म, पंचपरमेष्ठी अर्थोंको लेकर अनुवाद किया है)

१ । संस्कृत भाषाका नियम है कि ग्रंथकार तथा सूत्रकार भी अपने अपने ग्रंथकी आदिमें एक ऐसा मांगलिक शब्द लाते हैं जो शुभका याचक हो और उसका कुछ अर्थ और तात्पर्य भी निकलता हो जैसे यह ॐ दिया है ॥ पूज्यपाद स्वामीने "मोक्षमार्गस्य" दिया है । इसीप्रकार श्रीउमास्वामी सूरिने इस तत्त्वार्थमोक्षशास्त्रके प्रथम सूत्रका प्रारम्भ 'सम्यञ्च् शब्द (सम्यक् शब्द) लाकर किया है ॥ श्रीयुत पाणिनिने अष्टाध्यायीके प्रथम सूत्र "वृद्धिरादैच्" में (वृद्धिसंज्ञक आ ऐ औ हैं) वृद्धि पद दिया है । ॐ, मोक्ष, सम्यक्, वृद्धि ये चारों शब्द मंगलवाची हैं और जिस जिस शास्त्रमें आये हैं उसके प्रकरण और तात्पर्यसे भी संबंध रखते हैं जैसा कि आगे चलकर ज्ञात होगा । वृद्धिरादैच्का अर्थ ऊपर लिख ही दिया है ।

इस शब्दका रूप यथार्थमें ओम्-श्रोम्-ओम्-ॐ ऐसा है । यदि इसके पश्चात् कोई शब्द हो जिसका आरम्भ किसी व्यंजनसे हो तो निम्नलिखित व्याकरणोंके सूत्रानुसार म्का अनुस्वार हो जाता है जैसे ओं नमः । श्रो नमः । ओं नमः । ॐ नमः । श्रो तत्सत् । ओं तत्सत् । ओं तत्सत् । ॐ तत्सत् । अनुस्वार होनेका नियम इस प्रकार है-

(१) मोऽनुस्वारः । श्रीअभयनन्दिविरचित जैनेन्द्रव्याकरणकी महावृत्ति । ५ । ४ । ७ और अष्टाध्यायी ८ । ३ । २२ ।

इस सूत्रमें 'पदस्य' की अनुवृत्ति अष्टाध्यायी अध्याय ८ पाद १ सूत्र १६ वें (पदस्य) से है और 'हलि' शब्दकी अनुवृत्ति 'हलि सर्वेषाम्' । ८ । ३ । २२ । सूत्रसे ली गई है इसलिये 'मोऽनुस्वारः' (पदस्य ६ मः ६ अनुस्वारः १ हलि ७) का अर्थ, मकारान्त पदको अनुस्वार हो यदि कोई हल् अर्थात् व्यंजन पश्चात्में हो तो, यह होता है ॥

(२) नुगमो श्रं । ५ । ४ । ११ । श्रीगुणनंदिविरचित जैनेन्द्रप्रक्रिया पृष्ठ १९ तथा शब्दार्णवचंद्रिका श्रीसोमदेवसूरिविरचिता पृष्ठ २११

इस सूत्रमें 'हलि' ५ । ४ । १० वें सूत्रसे अनुवृत्ति आती है ॥ और सूत्रार्थ—

नुकः ६ = नुक् (= न्) जो सदैव अपदान्त हो जाता है और

मः ६ श्रं १ = पदान्त मकारको श्रं अनुस्वार होता है—

हलि ७ = व्यंजन यदि उक्त न् और म् के पश्चात् आवै तो और वह अनुस्वार एक विंदी है । अकार उच्चारण वा वोलनेके लिये है । जैसे-रन्रम्यते = रंरम्यते अतिशय रमता है । यन्—यम्यते = यंयम्यते = वहुत यम करता है । पापम् हंति = पापं हंति = पापको नाश करता है । व्रतम् रक्षति = व्रतं रक्षति = व्रतको पालता है । धर्मम् शृणोति = धर्मं शृणोति = धर्मको सुनता है ।

(३) मम्मो हलि तौ । १ । १ । १११ । शाकटायनव्याकरण ।

ममागमस्य ६	= मम् आगमको जो सदैव अपदान्त होता है
पदान्तस्य ६ च॰ मकारस्य ६	= और पदान्त मकारको
परस्वोऽनुनासिकोऽनुस्वारः १ पर्यायेण ३	= परसवर्ण अनुनासिक और अनुस्वार पर्याय अर्थात् विकल्पसे
भवति हलि ७ परे ७	= हो जाते हैं यदि मम् तथा मकारके कोई व्यंजन परे हो । जैसे क्रम धातुका

कर्मणिप्रधान चंक्रम्यते चङ्क्रम्यते रूप होते हैं इस शब्दमें च और क्र के मध्यका म आगम है । त्वम् करोषि = त्वङ्करोषि त्वं करोषि ।

इस शब्दको तथा अन्य शब्दोंको जिनके अंतमें पदान्त मकार होता है और जिनके पश्चात् किसी व्यंजनसे प्रारम्भ होनेवाले शब्दका प्रयोग नहीं किया जाता है जैसे केवल ओ-श्रो-ओं-ॐ-सम्यग्दर्शनं [सूत्र २ अध्याय १] मोक्षास्तत्त्वं (सूत्र ४ अ० १) ज्ञानं (सूत्र ६) ऐसा लिख

देते हैं वह उपर्युक्त वैयाकरणो द्वारा रचित सूत्र द्वारा अशुद्ध है ॥ इसमें संदेह नहीं है ऐसे रूप कलापव्याकरण अर्थात् कातंत्र रूप माला व्याकरणके निम्नलिखित सूत्रानुसार विकल्पसे शुद्ध समझे जा सक्ते हैं ।

मोऽनुस्वारं व्यंजने ॥

मः १ अनुस्वारं १ व्यंजने १ =	पदान्तके मकारको अनुस्वार होता है व्यंजनके परे रहते, अर्थात् यदि व्यंजन म् के पश्चात् आवे तो यथा त्वम् यासि = त्वं यासि । यहांतक तो कातन्त्ररूपमालाके रचयिताका मत उपर्युक्त तीन वैयाकरणोंसे मिलता है । परंतु

वा विरामे ॥

वा* मकारस्य १ पदान्तस्य १ = अनुस्वारं १ भवति T विरामे १ =	म् जो पदान्त हो उसको विकल्प करि अनुस्वार हो जाता है यदि म् के पश्चात्में विराम हो अर्थात् जो म् के पीछे कोई भी वर्ण वा अक्षर न आवे । जैसे देवानाम् = देवानां । रामाणाम् = रामाणां देवम् = देवं ।

हम (अनुवादक) ने विरामकी अवस्थामें सर्वत्र म् को लिखा है । म् को अनुस्वार उसी अवस्थामें किया है जहां मकारके पश्चात् कोई शब्द व्यंजनसे प्रारम्भ हुआ है ।

कहीं कहीं पर हमको जैसे पद्मचन्द्र कोषकी आदिमें तथा श्रीमत् श्रीशचन्द्र अनुवादित अष्टाध्यायीके आदिमें

" ॐम् चिदात्मने नमः " ' ओम् परमात्मने नमः ' वाक्य मिलते हैं अर्थात् आरम्भमें व्यंजनसे आनेवाले शब्दोंके लानेपर भी म् का अनुस्वार नही हुआ । इसका कारण यह है कि संस्कृतमें एक पदमें और धातु उपसर्गोंमें और समास इन तीनो स्थानोंमें सदा संधि होती है । परन्तु वाक्यमें वक्ता चाहै तो संधि करै, चाहै न करे । जब हमको संधि करनी होती है तभी पदांत मकारको अनुस्वारमें परिवर्तन करते है ॐम् चिदात्मने नमः । ओम् परमात्मने नमः इन दोनो वाक्योंमें हमने संधि नहीं की यदि हम संधि करना चाहैं तो ॐ चिदात्मने नमः और ओं परमात्मने नमः वाक्य होंगे ।

इस शब्दके ऊपर ˘ अर्द्ध चन्द्राकार चिन्हके लगानेसे यह अभिप्रायः है कि म् केवल नासिका द्वारा उच्चारण किया हुआ अक्षर नहीं है क्योंकि इसका उच्चारण नासिका ओष्ठ द्वारा होता है इसी प्रकार ङ् का उच्चारण कठ नासिका द्वारा, ञ् का तालु नासिका द्वारा, ण का मूर्धा नासिका द्वारा, न का दंत नासिका द्वारा होता है और उसके स्थानमें यह अनुस्वार हुआ है । शुद्ध वा स्वच्छ अर्थात् अमिश्रित वा निरानिरी नासिका द्वारा बोला जानेवाला अनुनासिक केवल अनुस्वार ही है ।

कहीं कहीं पर ओ और म् के मध्यमें ऐसा ३ तीनकासा चिन्ह कर देते हैं अर्थात् ओ३म्–ओ३म्–ओ३म्–ॐ३म् लिखते हैं। यह '३' चिन्ह प्रगट करता है कि ओ स्वर प्लुत संज्ञक है क्योंकि स्वर ह्रस्व दीर्घ और प्लुत संज्ञक होते हैं अर्थात् एकमात्रिक—द्विमात्रिक—त्रिमात्रिक—स्वर क्रमसे ह्रस्व, दीर्घ, और प्लुत संज्ञक है । भावार्थ—जिस स्वरके बोलनेमें उ के तुल्य काल लगे उसको ह्रस्व जिसके उच्चारणमें दीर्घ ऊ के समान काल लगे उसको दीर्घ और जिसके बोलनेमें बहुत बडे वा खिचे हुये ऊ के बराबर समय लगे उस स्वरको प्लुत कहते हैं जैसे मधु श्रूयते सोम३सुत । बहुधा कुक्कुट प्रात: कालमे बोलते हैं उनकी बोलीमे इस ह्रस्व दीर्घ प्लुतका एक अच्छा उदाहरण मिलता है जैसे कु–कू–कू ३ ॥ उपर्युक्त चिन्हके लिखनेसे प्रायः तीनकी गणनाका बहुधा पाठकोंको भ्रम हो जाता है इसलिये ओ३म्–ओ३म्–ओ३म्–ॐ ३ के स्थानमें कहीं कहीं पर ओम्–ओम्–ओम्–ॐम् लिख देते हैं इस ३ चिन्हकी धारणा उच्चारणके समय हृदयमें कर लेते हैं। प्लुत स्वर, गाने रोने चिल्लाने आदिकमे बोला जाता है। हमने कई स्थानोंमे देखा है कि लेखकोंने अज्ञानताके वशमें अथवा प्रमादके वशमें आकर प्लुत ३ चिन्हको उ समझ कर ओउम् ऐसा यहां तक अशुद्ध लिखा दिया है। ओउम् किसी प्रकारसे शुद्ध नहीं है।

इस शब्दको सर्व जैनमतावलम्बियोने आर्यसमाजियोंने धर्मसमाजियोने वेदान्तियो आदिकने मंगलीक माना है और ग्रंथकारोंने तथा शास्त्रकारोने अपनी २ रचनाकी आदिमे इस शब्दका प्रयोग बहुलतासे किया है ॥

"ओम्" अव्यय · ····प्रणव ! अ उ और म् इन तीनोसे बना हुआ एक अक्षर। आरम्भ स्वीकार–मानना–हटाना–मंगल–ब्रह्म–जानने योग्य निकालना (पद्म चन्द्रकोष पृष्ठ ८७)

" स्यादोमेवं परम मते " ओम्, एवं, परमं ये तीन नाम अंगीकारके हैं (अमरकोश वर्ग २४ श्लोक १२)

जैन सम्प्रदायमे यह शब्द पंचपरमेष्टीका वाचक निम्नलिखित आर्या छंद द्वारा है ॥

अरहंता ३। असरीरा ३। आइरिया ३। तह उवज्झया ३। मुणिणो ३। = अर्हत अशरीर (सिद्ध) आचार्य उपाध्याय व मुनिके

अर्हन्तः ३। अशरीराः ३। आचार्याः ३। तथा उपाध्यायाः ३। मुनयः ३।

पढमक्खर–णिप्पण्णो ३। ओंकारो ३। पचपरमेट्ठी ३। = प्रथम अक्षरसे निष्पन्न वा सिद्ध हुआ

प्रथम–अक्षर–निष्पन्नः ३। ओंकारः ३। पंचपरमेष्ठी ३। = ओकार वा ओम् सो पंचपरमेष्ठी (का वाचक) है। अर्थात् अर्हतका आदिका अक्षर 'अ' अशरीरी (सिद्ध) का आदिका अक्षर 'अ' आचार्यका आदिका अक्षर आ उपाध्यायका आदिका अक्षर उ मुनियो (साधुओं) का आदिका अक्षर 'म्' इस प्रकार

	अ+अ+आ+उ+म्+ये पांच अक्षरोंमें से आदिके अक्षर अ+अ = मिलकर 'आ' हो जाते हैं क्योंकि जब ए-ऐ-ओ औके अतिरिक्त किसी ह्रस्व वा दीर्घ स्वरके पश्चात् वही स्वर ह्रस्व वा दीर्घ आवे तो दोनों स्वरोंके स्थानमें वही स्वर दीर्घ 'अकः सवर्णे (अचि) दीर्घः। अष्टा० ६-१-१०१। सूत्रसे होजाता है। अ+अ+आ+उ+म्=आ+आ+उ+म् हो गये। अब आ+आ+ दोनों मिलकर पूर्वोक्त सूत्रसे ही एक आ हो गये। यदि अ-आके पश्चात् इ-उ-ऋ-ऌ (ह्रस्व वा दीर्घ) आवे तो दोनो स्वरोंके स्थानमे (एक अनुकूल) गुण हो जाता है॥ इसलिये—आ+उ+म्=मिला कर ओम्=हो गये इसलिये ओम् शब्द पांच परमेष्ठीका वाचक हुआ।
ओम् शब्द अव्यय है अर्थात्	
सदृशं त्रिषु लिंगेषु सर्वासु च विभक्तिषु =	तीनों लिंगोंमें और [च] सर्व विभक्तियोंमें समान रहे।
वचनेषु च सर्वेषु यन्न व्येति तदव्ययम् =	और समस्त वचनोंमें जो विकारको प्राप्त न हो वह अव्यय है।

स्मरण रहे कि ऽम् अव्यय [जिसका उच्चारण ओम् है] वही अव्यय नहीं है जो ऊम् है। ऊम् एक न्यारा और भिन्न अव्यय हैं जिसका अर्थ क्रोधसे बोलना और प्रश्न निंदा है"। देखो पद्मचंद कोष पृष्ठ ८१॥ इन तीनों अर्थोंमेंसे ओम् किसी भी एक अर्थमे नहीं आता है॥ ऊम् और ऽम् का उच्चारण भी भिन्न २ है।

२। नमः स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, अलम्, वषट्, हित, सुख इनके अर्थसे जिस शब्दका योग हो उससे चतुर्थी विभक्ति होती है।

(१) नमः जैसे ओं नमः परमात्मने ४। वीतरागाय ४। गुरवे ४। नमः। नमः श्रीवर्धमानाय (वर्द्धमानकेलिये नमस्कार है) यदि नमस् शब्दके साथ क्रियाका योग हो तो विकल्पसे चतुर्थी होती है जैसे गुरवे४। नमस्कृत्य = गुरुकेलिये प्रणाम करके अथवा गुरुं २ नमस्कृत्य = गुरुको प्रणाम करके।

(२) स्वस्ति, जैसे राज्ञे स्वस्ति = राजाके लिये मंगल वा कल्याण हो। तुभ्यं स्वस्ति =तुम्हारे लिये कल्याण वा मंगल हो—क्षेम हो।

(३) स्वाहा = जैसे अग्नये स्वाहा—आगके लिये अर्पण हो। अग्नये ४। वायवे ४। वरुणाय ४। इन्द्राय ४। प्रजापतये ४। सूर्याय ४। चन्द्रमसे ४।

अथ श्रीमत्पूज्यपादाचार्यविरचिता सर्वार्थसिद्धिः प्रारभ्यते ।

अथ श्रीमत्-पूज्यपाद-आचार्यविरचिता १।११	=अब (अथ) श्रीमान् पूज्यपाद आचार्यकृत
सर्वार्थसिद्धिः १।११	=सर्वार्थसिद्धि अर्थात् उमास्वामिविरचित तत्त्वार्थसूत्र पर संस्कृतवृत्ति
प्रारभ्यते T ॥ प्रथमः १।१ अध्यायः १।१	=प्रारम्भ की जाती है । पहिला वा आदि पर्व ॥

वा स्वाहा=आगकेलिये, पवनके लिये, वरुण देवताके लिये, इन्द्रके लिये, विश्वकर्माके (प्रजापति) के लिये भानुके लिये, मयंकके लिये, अर्पण हो ।

(४) स्वधा-जैसे-पित्रे ४।१ स्वधा=पिताकेलिये अर्पण हो-प्रदान हो । पितृभ्यः ४।३ स्वधा=पितरोंकेलिये अर्थात् बाप-दादा-परदादा इत्यादि बड़े पुरुषोके लिये अर्पण हो ।

(५) अलम्-जैसे अलं मल्लोऽयम् अपरमल्लाय ४।१ यह मल्ल दूसरे मल्लके लिये बहुत है । अलं अन्नम् इदम् क्षुधायै ४।११ =अन्न इस भूखके लिये बहुत है । अलं जल पिपासायै ४।११ =जल प्यासके लिये बस है, बहुत है । कृष्ण. दैत्येभ्यः ४।३ अलम्=कृष्णजी असुरोके लिये समर्थ है ।

(६) वषट्-जैसे इन्द्राय ४।१ वषट्=इन्द्रके लिये पूजा वा सत्कार हो । शिखायै ४।११ वषट्=आगकी ज्वालाकेलिये सत्कार वा सन्मान हो ॥

(७) हित—जैसे साधुभ्यः ४।३ हितम्=साधुओंके लिये हितकारी है ।

(८) सुख—जैसेः सद्भ्यः सुखम्=सज्जनोके लिये सुखकारी है ।

१ । श्रीमत् (शब्दार्थ शोभावाला) एक प्रकारकी उपाधि है जो प्रतिष्ठा आदर वा सम्मानके लिये व्यक्तिवाचक नामके प्रथम लाते हैं तथा बोलते हैं । २ । पूज्यपादः-' पूज्यपादस्वामी नन्दिसंघके आचार्य थे । देवनन्दि और जिनेन्द्रबुद्धि ये दो नाम भी इन्हींके है । गणरत्नमहोदधिके कर्त्ताने आपका नाम चन्द्रगोमि भी बतलाया है । विक्रम संवत् ३०८ जेठ सुदी १० को आपका जन्म हुआ था, ऐसा पट्टावलियोंसे प्रतीत होता है । जैनाभिषेक, समाधिशतक, चिकित्साशास्त्र और जैनेन्द्रव्याकरण आदि ग्रंथ भी आपके बनाये हुए हैं " ॥ सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम-सूत्रकी उत्थानिका पृष्ठ २ ।......सात सांपे अथवा " ये सद परवारोमे बहुत पुराने समयमे हुए जान पडते हैं । क्योकि विक्रम संवत् १४० मे

जगरूपसहायवकील कृत पदच्छेद विभक्त्यर्थसहित सर्वार्थसिद्धिका शब्दशः हिंदी अनुवाद ।

प्रथमोऽध्यायः ॥

मोक्षमार्गस्य नेतारं भेत्तारं कर्मभूभृताम् ।

जो नंदिसंघके पट्टपर जिनचन्द्र नामके आचार्य हुए हैं, वे चौसखा परवार थे और संवत् ३४८ मे जो पूज्यपाद आचाय हुए हैं, वे पद्मावतीपुरवार थे, ऐसा पट्टावलियोमे लिखा हुआ मिलता है ।" जैनहितैषी छठा भाग अंक ११--१२ पृष्ठ ४५ । ऐसा जान पडता है कि पूज्यपाद स्वामीका अस्तित्व ३४८ विक्रम संवत्मे था परंतु जन्म संवत् ३०८ जेष्ठ सुदी १० को हुआ था । "सिद्धिप्रिय, पचवास्तुक आदि कई ग्रंथ भी पूज्यपादके बनाये हुए प्रसिद्ध हैं परन्तु बहुत करके ये दूसरे पूज्यपाद भट्टारकके बनाये हुये हैं ।" जैनहितैषी छठा भाग पृष्ठ ४४ अंक ५-६ " पूज्यपाद द्वितीयकृत -पूजाकल्प, सिद्धप्रिय, पाणिनीयसूत्रवृत्ति काशिका (श्लो० ३००००), जैनेन्द्रपंचाध्यायीकी टीका, पचवास्तुक, श्रावकाचार, वैद्यक, जैनेन्द्र व्याकरणकी लघुटीका ॥ .इस बातको तो अन्य धर्मके विद्वान भी मानते हैं कि, काशिकाका कर्त्ता कोई जैनी है" जैनहितैषी (मासिक पत्र) भाग ६ अंक ५--६ वां पृष्ठ ४६ ॥

१ । जब ए अथवा ओ अक्षर पदके अन्तमे हों पश्चात् इस पदान्त ए अथवा ओके अकार (अ) आवे तो यह अ, ए अथवा ओमें समा जाता है वा अन्तर्गत हो जाता है अर्थात् न तो यह अकार बोला ही जाता है और न लिखा ही जाता है । इस अके स्थानमे बहुधा ऽ ऐसा चिन्ह कर दिया जाता है जैसे कि (१) मुने+अव मुनेव वा मुनेऽव (२) ते+अत्र = तेत्र वा तेऽत्र (३) प्रथमोऽध्यायः वाक्योंसे प्रगट है ॥ इस चिन्ह ऽ को अर्ध अकार कहते हैं ॥

२ यह श्लोक मंगलाचरणरूप श्रीमत्पूज्यपादकृत है ॥ श्रीउमास्वामिसूरि कृत तत्त्वार्थसूत्रका भाग नहीं है ॥ इसके संबंधमें पं० जयचदजीने लिखा है कि " तहां प्रथमही सर्वार्थसिद्धिटीकाकार मंगल अर्थि आप्तका असाधारण विशेषणरूप श्लोक रच्या है, सो लिखिये है ॥ "मोक्षमार्गस्य नेतारं इत्यादि" । अधिकतर प्रतियोंमे यह तत्त्वार्थसूत्र "सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः" । इस सूत्र ही करि प्रारम्भ किया है परंतु कुछ प्रतिया ऐसी हैं जिनसे यह झलकता है कि उपर्युक्त श्लोक भी सूत्रकारने रचा है सो यह भूल है क्योंकि भाष्यकारोकी यह प्रथा है कि प्रथम वे मंगलाचरण लिखते हैं जैसे कि श्रीमद्भट्टाकलंकदेवने तत्त्वार्थराजवार्त्तिककी आदिमें " प्रणम्य सर्वविज्ञान " इत्यादि और श्रीमद्विद्यानंदिस्वामीने तत्त्वार्थश्लोकवार्त्तिककी 'आदिमे, 'श्रीवर्धमानमाध्याय' इत्यादि ऐसे भिन्न भिन्न दो श्लोक मंगलाचरण रूप दिये हैं ॥ सभाष्य

ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां

मोक्षमार्गस्य ६। नेतारम् २।	= मोक्षपथके प्रवर्तावनवालेको वा चलानेहारेको
भेत्तारम् २। कर्मभूभृत म् ६।	= कर्मरूपी पर्वतोंके भेदनेवालेको अथवा विनाश करनेवालेको

तत्त्वार्थाधिगमसूत्रके रचयिताने भी ' सम्यग्दर्शनशुद्धं' इत्यादि आर्याछंद मंगल रूपमें दिया है ॥ इसही प्रकार पूज्यपाद स्वामीने भी 'मोक्षमार्गस्य नेतारं' इत्यादि दिया है ॥ यदि हम इसको उमास्वामिकृत श्लोक मान ले तो पूज्यपाद स्वामीका मंगलाचरण कहां है वह कौनसा श्लोक है? मूल सूत्रकार सूत्रसे ही ग्रन्थका आरंभ करते हैं और सूत्रकी आदिमें ही एक दो शब्दका ऐसा प्रयोग करते हैं कि वह शब्द मंगलाचरणको भी पूरा करता है और साथहीमें प्रकरण और विषयके अभिप्राय व अर्थसे भी संबंध रखता है जैसे कि हम इस ग्रन्थकी आदिमें लिख चुके हैं ॥

१। नेतारं--यह शब्द 'नी' भ्वादि प्रथमगणकी धातुमें तृच् प्रत्यय जोडनेसे और नी को गुण करदेनेसे बनता है जैसे नी+तृच्=ने+तृच् (नीको गुण करदेनेसे) इस रूपमें च् इत्संज्ञक है अर्थात् च् का लोप हो जाता है और नेतृ शेप रह जाता है। नेतृ=प्रवर्तावनवाला—चलानेवाला बतानेवाला।

२। भेत्तारं--यह शब्द भिद् भ्वादि प्रथमगण अथवा रुधादि सप्तमगणके उभयपदी धातु (परस्मैपदी तथा आत्मनेपदी) से सकर्मकमें तृच् प्रत्यय लगानेसे और भिद्की इकारको गुण (ए) करदेनेसे बना है। भिद् + तृच्, गुणसंज्ञा करनेसे = भेद्+तृच् हुआ। अष्टाध्यायीके ८। ५। ५५ खरि च (खरि झलां चरः स्युः = जब खर् पश्चात्में हो तब झलोंको चर् हो ।

(अर्थात् जब ख्-फ्-छ्-ठ्-थ्-च्-ट्-त्-क्-प्-श्-ष्-स् परे हो तब झ्-भ्-घ्-ढ्-ध्-ज्-ब्-ग्-ड्-द्-ख्-फ्-छ्-ठ्-थ्-च्-ट्-त्-क्-प्-श्-ष्-स्-ह्-को च्-ट्-त्-क्-प्-श्-ष्-स् हो) सूत्र द्वारा भेद्के द् का त् होकर भेत्तृच् रूप हुआ। च् का इत्संज्ञक होनेके हेतुसे लोप प्राप्त हुआ तब भेत्तृ ऐसा रूप भेदनेवालेके अर्थमें हुआ ॥

३। ज्ञातारं—यह शब्द ज्ञा (=जानना—समझना) क्र्यादि नवमगणके परस्मैपद सकर्मक धातुमें तृच् प्रत्यय लगानेसे ज्ञा+तृच् ऐसा रूप बना। च् इत्संज्ञक होनेसे लोपको प्राप्त हुआ इसलिये ज्ञातृ जाननेवालेके अर्थमें बन गया है ॥

नेतारं- भेत्तारं--ज्ञातारं—ये तीनो शब्द कर्म—द्वितीया विभक्ति एक वचन पुलिङ्गमें हैं। द्वितीया विभक्ति इसप्रकारसे बनती है कि ऋकारान्त

ज्ञातारं [2] विश्वतत्त्वानां [1] ॥ = संसार (विश्व) के अथवा समस्त (विश्व) तत्त्वोंके जाननेवाले को,

पुलिंग शब्दके ऋकी वृद्धि होजाती है अर्थात् ऋकार आर्में पलट जाता है। उसके पश्चात अम् द्वितीया विभक्तिका प्रत्यय जोडनेसे नेतार् + अम्। भेत्तार् + अम्। ज्ञातार + अम् रूप हुये = नेतारम्-भेत्तारम्--ज्ञातारम् = नेतारं--भेत्तारं ज्ञातारं क्योंकि इन प्रत्येकके पीछे व्यंजनसे आरम्भ होनेवाले शब्द (श्लोकमें) भेत्तारं, कर्म और विश्व क्रमसे हैं। केवल भेत्तारमें दुहरा तकार है इसलिये नेतारं वा ज्ञातारंमें दुहरा तकार बोलना अथवा लिखना अशुद्ध है।

१। तत्वाना-तत्त्वानां—ये दोनों प्रकारके पाठ प्राय मिलते हैं॥ तत्त्व और तत्वमें कुछ भेद नहीं है॥

(१) तत्त्व--तद्--" (त्रि०) तन्+अदि। पहिले कहा हुआ। बुद्धिमे ठहरा हुआ। दूरका विषय। ब्रह्म।" पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ १६५ तन् प्रथम भ्वादिगण अष्टम तनादिगण और दशम चुरादिगणका धातु श्रद्धा करना, उपकार करना, फैलाना इत्यादि अर्थोंमे आता है। तन्+अदि से व्याकरणके नियमानुसार तद् बन गया 'तद्' ऐसा सर्वनाम संज्ञा है (= तदिति सर्वनामपदम्)। और सर्वनाम संज्ञा समानता वा सदृशभावमें प्रवर्तती है (सर्वनाम च सामान्ये वर्तते) तिस (तद्) का भाव सो तत्त्व है (= तस्य भावः तत्त्वम्)" सर्वार्थसिद्धिवृत्ति पृष्ठ ५॥ तद्+त्व, उपर्युक्त 'खरि च' सूत्रद्वारा = तत्+त्व = तत्त्व होता है। इस तद्-तत् मे त्व प्रत्यय, भाव अर्थमें आया है॥ तत्त्व अमरकोषमे यथार्थ, सार, सचाई इत्यादि अर्थोंमे है॥

(२) "तत्व, (न०) तन्+क्विप्। ततो भाव। तस्य भावः। त्वथा तलोपः। सच्चाई-स्वरूप" पद्मचन्द्रकोष पृष्ठ १६५। अब श्रीपूज्यपादकृत जैनेन्द्र-व्याकरणके ४--३--६७ वे सूत्र [पिति कृति तुक् = प्रांतस्य तुगागमो भवति पिति कृति परतः अर्थात् ह्रस्व (अ) अंतमें जिसके हो उसको तुक् (= त्) का आगम हाता है यदि उस ह्रस्वांतके पश्चात् ऐसा कृत् प्रत्यय आवै जिस प्रत्ययके अंतमे प् हो। यहां पर क्विप् ऐसा कृत् प्रत्यय है जिसके अंतमें प् है। क्विप् प्रत्यय साराही उड़ जाता है॥] द्वारा तन्+क्विप् = तन्+तुक् = तत्पश्चात् पद्मचन्द्रकोषमें लिखा है ततो भावः। तस्य भावः। इसलिये त्व--ता दो प्रत्यय भाववाचीयोंमेंसे ता स्त्रीलिंग प्रत्ययको छोडकर त्व लगानेसे तत्त्व बना। पुनः उसी कोषमें लिखा है त्व वा तलोपः विकल्पकरि त्वके तका लोप हो गया और तत्व शब्द रह गया॥ हमारी समझमें नहीं आया कि किस नियमसे तका लोप हो गया॥ आंगल विद्वान् मानीयर विलियम महाशयने अपने संस्कृत कोष पृष्ठ २६५ में तत्त्व शब्द लिखनेके पश्चात् तत्व शब्द लिखा

वन्दे तद्गुणलब्धये ॥ १ ॥

वन्दे १ तद्गुणलब्धये २ = उन्हीं (मोक्षमार्गप्रणयन—कर्मभेदन—विश्वतत्त्वज्ञान) गुणोंकी प्राप्तिकेलिये प्रणाम करता हूं वा वंदना करता हूं अर्थात् मैं पूज्यपाद आचार्य इस सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका रचयिता उक्त तीनों गुणोंके उपार्जनके लिये उसको जो मोक्षमार्गका नेता है, जो कर्मोंका विनाशक है, जो जड चेतन सर्व वस्तुओंका युगपद् एक समयमें ज्ञाता है, नमस्कार करता हूं ॥ १ ॥

है और यह मत प्रगट किया है कि तत्त्व शब्दके स्थानमे तत्व शब्द अल्प ईषत् वा कुछेक शुद्ध रूप है, कुछ भी हो प्रमादवश वा असावधानीसे वा सुगमताके हेतुसे तत्व शब्द इस वृत्तिमें तथा अन्य अन्य कोश व शास्त्रोंमें पचासो स्थानो लिखा है ॥ इसलिये तत्व तत्त्व दोनो एक है ॥

१ । कहीं कहीं पर वंदे और कहीं कहीं वन्दे शब्द पुस्तकोमे आया है, उनमे वंदे अशुद्ध है । (देखो अष्टाध्यायी ८ । ३ । २४, ८ । ४ । ५८, और ८ । ४ । ५९ वें सूत्र ॥

२ । लब्धि शब्द स्त्रीलिङ्ग है । लब्धये चतुर्थी (सम्प्रदान) विभक्तिका एक वचन है इसका रूप एसे वना है कि ए चतुर्थीका चिन्ह है इ अथवा ई का गुण ए है, उ अथवा ऊ का गुण ओ है ऋ का = अर् है लृ का अल् है । स्त्रीलिंग संज्ञाके अंतके इ वा व चतुर्थी (सम्प्रदान) पंचमी (अपादान) और षष्ठी (संवंध) विभक्तियोके प्रत्ययोके पहिले अपनी अपनी गुण संज्ञामे पलट जाते हैं इसलिये लब्धिका लब्धे हो जाता है। ए चतुर्थीका चिन्ह जोड़नेसे लब्धे+ए हुआ । संस्कृतमें दो स्वर विना मिले हुये प्रायः नहीं रह सक्ते हैं । वर्तमान दशामे जो नियम लागू है वह यह है कि पहिले आये हुये ए ऐ ओ औ का यथासंख्य [=क्रमसे] परिवर्तन अय्, आय्, अव्, आव्मे हो जाता है तब पश्चात्का स्वर जोड़ देते हैं जैसे लब्धेकी ए का अय् होकर लब्धय् हो गया पश्चात् ए जोड़नेसे (जो चतुर्थीका चिन्ह है) लब्धय्+ए हुवा अर्थात् लब्धये हो गया ॥ संक्षेपत. ए ऐ ओ औ का क्रमसे अय् आय् अव् आव् हो जाता है, यदि इनके पीछे कोई स्वर आवै तौ, एचोऽयवायावः अष्टाध्यायी ६ । १ । ७८ वां सूत्र ॥

कश्चिद्भव्यः प्रत्यासन्ननिष्ठः प्रज्ञावान् स्वहितमुपलिप्सुर्विविक्ते परमरम्ये भव्यसत्त्वविश्रामास्पदे क्वचिदाश्रमपदे मुनिपरिषण्मध्ये सन्निषण्णं मूर्त्तमिव मोक्षमार्गमवाग्विसर्गं

कश्चित्* भव्यः १।१ प्रत्यासन्ननिष्ठः १।१	= कोई भव्य अत्यन्त निकट है सिद्धि जिसके
प्रज्ञावान् १।१ स्वहितम् २।१ उपलिप्सुः १।१ विविक्ते ७।१	= बुद्धिमान् अपने हितको इच्छुक निर्जन
परमरम्ये ७।१ भव्यसत्त्वविश्रामास्पदे ७।१ क्वचित्*	= अत्यन्त सुन्दर भले जीवोंके विराम (=विश्राम) स्थानमें (=आस्पदे) किसी (=क्वचित्)
आश्रमपदे ७।१ मुनिपरिषण्मध्ये ७।१ सन्निषण्णं २।१	= आश्रम स्थानमें (=पदे) मुनियोंकी सभामें बैठे हुये
अवाग्-विसर्गं २।१	= वचन (=वाग्) दान (=विसर्ग) रहित (=अ) अर्थात् विना ही वचनके

१ चित् अथवा अपि इन दो अव्ययोंको यदि किम्के सर्व लिंगोंके साथ जोड़ दे तो वह [अर्थात् जुड़ा हुआ] वाक्य अनिश्चित अर्थ का द्योतक होगा जैसे किंचित् = कुछ वस्तु अथवा कोई वस्तु ; कश्चित् [=कः १।१ चित्] कोई पुरुष अथवा कोई जन । देखो भाण्डारकर मार्गोपदेशिका पृष्ठ १२६ ॥

२ भव्यः—सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रपरिणामेन भविष्यति इति भव्यः=सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र भावकरि, जो होगा अथवा परिणमेगा सो भव्य है [राजवार्तिक पृष्ठ ७७]

३ क्वचित्—क्व—क्वचन—क्वचित्—ये तीनो अव्यय 'कहां' अर्थमें आते हैं (पद्मचन्द्रकोष पृष्ठ १२०)

४ यथार्थमें यह शब्द वाच् स्त्रीलिंगी वाक्य, वचन, वाणी, कहना आदि अर्थोंमें आता है और वाचा शब्द भी स्त्रीलिंगी है और इसी अर्थमें आता है [देखो पद्मचन्द्रकोष पृष्ठ ३४२]

वाच्का चकार ग् में कैसे पलट गया ? चोः कुः [झलि पदान्ते] अष्टा० ८-२-३० ॥ जैनेन्द्रव्याकरण ५ । ३ । ६५वा सूत्र । च्-छ्-ज्-झ्-ञ् (चु] के स्थानमें क्रमसे क्-ख्-ग्-घ्-ङ्-(=कु) हो यदि झल् प्रत्याहार पश्चात्में हो वा पदान्तमें च्-छ् ज्--झ्--ञ हो इसलिये वाच्के पदान्त चकारका क् होकर वाक् होगया ॥

वपुषा निरूपयन्तं युक्त्यागमकुशलं

वपुषा ३/१ [1]	=अच्छे स्वरूप [=वपुषा] वा प्रशस्ताकारकरि (=वपुषा।) अर्थात् अपने शरीरहीकी शांत मुद्राकरि
मूर्तम् २/१ इव* मोक्षमार्गम् २/१ निरूपयन्तं २/१ युक्ति—आगम—कुशलं २/१	=मानो मूर्त्तिक मोक्षमार्गको निरूपण करते, युक्ति तथा आगममें प्रवीण

क् का परिवर्तन ग्में हो जानेका यह नियम है कि जब किसी शब्दके अन्तका व्यंजन [ङ्-ञ्-ण्-न्-म् व्यंजनोको छोड़कर) दूसरे शब्दके प्रथम घोष व्यंजन (=ग्—घ्—ङ् । ज्—झ्—ञ् । ड्—ढ्—ण् । द्—ध्—न् । ब्—भ्—म् । य्—र्—ल् व्—ह्) वा प्रथम स्वरके साथ संधित वा संयोजित किया जावै तो यह अंतका व्यंजन अपने वर्गके तीसरे व्यंजनमें परिवर्त्तित हो जाता है अतः अवाक्+विसर्गका अवाग्+विसर्ग हो गया। क्रियाविशेषण सदा नपुंसकलिंग एवं एक वचन होता है इसलिये यहा अवाग्विसर्ग निरूपण क्रियाका विशेपण होनेसे नपुसक लिंग एव एक वचन होगया है।

इसी प्रकार नगरात्+आगच्छतिका नगराद्=आगच्छति=नगरादागच्छति होगया (भा० मार्गोपदेशिका पृष्ठ २८)।

१। वपुषा—वपुस् नपुसक लिंगी शब्द प्रशस्ताकार वा अच्छे स्वरूपके अर्थमें है। (पद्म० को० पृ० ३३६) यहां पर शांत मुद्रारूप शरीर इस तात्पर्यमें लिया है। वपुस्मे आट् (=आ) तृतीयाकरण विभक्तिका चिन्ह लगाकर और स् को निम्नलिखित नियमसे ष् में पलटकर वपुषा बना लिया है॥

जब स् जो कि अपदान्त हो और जो आदेश अथवा प्रत्ययका अंश वा टुकडा हो, अ—आको छोड़कर किसी स्वरके पीछे आवै, य्—र्—ल्—व् के पश्चात् आवै, क्—ख्—ग्—घ्-ङ् के परे आवै, अथवा ह् के पश्चात् आवै तो वह स् पलट कर ष् हो जाता है, अष्टाध्यायीके ८—३ के ५५—५७—५९ सूत्रोके अनुसार॥

जगरूपसहाय वकीलकृत पदच्छेदविभक्त्यर्थसहित सर्वार्थसिद्धिका शब्दशः हिंदी अनुवाद।

परहितप्रतिपादनैककार्यमार्यनिषेव्यं निर्ग्रंथाचार्यवर्यमुपसद्य सविनयं परिपृच्छति स्म । भगवन्

परहित–प्रतिपादन–एक–कार्यम् २।१	=दूसरेके हित कहनेका है केवल (एक) काम जिन (आचार्य) को
आर्य–निषेव्य २।१	=श्रेष्ठ पुरुषोंकरि सदा (= नि) सेवने योग्य
निर्ग्रंथ—आचार्य–वर्यम् २।१ उपसद्य-	=निर्ग्रन्थ अर्थात् परिग्रहरहित दिगम्बर आचार्योंमें मुख्य तिनकों प्राप्त होकर
स–विनयं १।१। परि–पृच्छति T स्मै * भगवन् २	=विनयसहित पूछता हुआ कि हे स्वामी !

१। निषेव्यं—नि (अव्यय) =सदा (देखो पद्मचन्द्रकोष पृष्ठ २११) भ्वादि प्रथम गणके सेव् आत्मनेपदी धातुमे ण्य प्रत्यय लगानेसे बना है। ण इत् सज्ञक होनेसे लोपको प्राप्त होता है और केवल य रह जाता है और इसलिये नि+सेव्+ण्य = नि+सेव्+य = नि+सेव्य, पूर्वोक्त नियमसे (देखो पृष्ठ १५) सकारका परिवर्तन षकारमे हो गया और निषेव्य रूप प्राप्त हुआ जो द्वितीया विभक्ति एक वचन पुल्लिंगमें है।

२ उपसद्य—यह शब्द संबंधकभूत कृदन्त है। इसके बनानेका यह नियम है कि धातुमें त्वा प्रत्यय जोडा जाता है जैसे श्रु (=सुनना) धातुमें त्वा प्रत्यय लगानेसे श्रुत्वा (=श्रवण करके) बनता है। यदि धातुसे पहिले उपसर्ग जोड़ा जाय तो त्वा प्रत्ययके स्थानमें य लगाते हैं जैसे भू धातुके पहिले अनु उपसर्ग लाकर अनुभू बनाया इसका संबंधकभूत कृदन्त अनुभूमे य जोडनेसे अनुभूय (=अनुभव करके) हुआ॥ इसी प्रकार प्रथम भ्वादि छठे तुदादि अथवा दशवें चुरादिगणके सद् धातुमें उप उपसर्ग लगानेसे उपसद् (=प्राप्त होना) शब्द बना पश्चात् य लगानेसे उपसद्य (=प्राप्त होकर) ऐसा शब्द बना॥ इसी सम्बन्धकभूत कृदन्तके बनानेमें अन्य विशेष यह है कि यदि धातुके अंतमे ह्रस्व स्वर हो तो इस य से पहिले त् जोड़ा जाता है जैसे अनुकृत्य = अक्षरशः लिपि करके। अतीत्य = उलंघन करके। यदि धातु सेट् हो तो त्वा के पहिले धातुमें इ लगाकर संबंधकभूत कृदन्त बनाते हैं जैसे जीव धातुमें इ जोड़नेसे जीव+इ हुआ पश्चात् त्वा लगाकर जीवित्वा बना (देखो भाण्डारकार मार्गोपदेशिका पृष्ठ ६१)

३ परि एक अव्यय है जो यहां पर वाक्यभूषणके लिये आया है।

४ स्म एक अव्यय है॥ "स्मि+उ। अतीत (वीतगया) पादको पूरा करना।" देखो पद्मचन्द्रकोष पृष्ठ २३० ॥

५ भगवन्—यह भगवन् पुल्लिग शब्दका सम्बोधन है॥

किं खलु आत्मने हितं स्यादिति [6] ॥ सँ [7] आह मोक्ष इति ॥ स एवँ [8] पुनः प्रत्याह [8] किंस्वरूपोऽसौ [9] मोक्षः कश्चास्य प्राप्त्युपाय [10] इति ॥

किं* खलु आत्मने $\frac{४}{१}^{1}$ हितं $_{१}^{111}$ स्यात् T इति सः $\frac{१}{१}^{1}$ आह T	=आत्माके लिये क्या हितकारी है ? आचार्य (=सः) कहते हैं
मोक्षः $\frac{१}{१}^{1}$ इति * । सः $\frac{१}{१}^{1}$ एव *	=मोक्ष (आत्माके लिये हितकारी) है वह (= स एव) ही
पुनः * प्रति+आह (= प्रत्याह)	=फिर (=पुनः) पलटकर (=प्रति) पूछता है (आह) कि
किंस्वरूपः $\frac{१}{१}^{1}$ असौ $\frac{१}{१}^{1}$ मोक्षः $\frac{१}{१}^{1}$ कः $\frac{१}{१}^{1}$ च	=वह (=असौ) मोक्ष किस (=किं) स्वरूप है और क्या
अस्य $\frac{६}{१}^{1}$ प्राप्ति–उपायः $\frac{१}{१}^{1}$ इति	=इस मोक्षकी प्राप्तिका साधन वा उपाय है ।

६ इति—बस अलम् यहां पर वाक्यकी समाप्तिके लिये है ।

७ स आह, स, एव विसर्जनीयके पहिले अकार (अ) हो, और उसके पश्चात्में अ स्वरके अतिरिक्त कोई, अन्य स्वर आवे तो विसर्गका लोप होजाता है। जैसे सः आह=स आह । सः एव=स एव । बुधः इच्छति=बुध इच्छति इत्यादि (देखो भाण्डारकार मार्गोपदेशिका पृष्ठ१५)

८ प्रत्याह--प्रति+आह उलट कर (=प्रति) अथवा फिर (=प्रति) पूछना है-प्रश्न करता है । प्रति=फिर-उलट कर (देखो पद्मचन्द्रकोष पृष्ठ २४६) इसलिये अनुवादमें पुनः के लिये फिर शब्द लाये हैं और प्रति शब्दके लिये लोटकर वा पलटकर शब्द अनुवादमें लाये है ।

आह–यह रूप ब्रू (=कहना–बोलना) द्वितीय अदादि गण उभय पद (परस्मै-पद, और आत्मने-पद) धातुसे बना है ॥ अन्यपुरुष एक वचन वर्तमान कालमें इस शब्द (ब्रू) का रूप आह बिना किसी व्याकरणके नियमसे बना है ॥ आह=बोलता है–कहता है । परन्तु श्रीआचार्यकेलिये सन्मान, आदर वा प्रतिष्ठा प्रगट करनेके लिये बहुवचन अन्य पुरुष वर्तमानकाल क्रियामें "कहते हैं" ऐसा अनुवाद किया है ।

९ असौ–यह शब्द कर्त्ता प्रथम कारक एक वचन पुलिंग अदस् शब्दका है अदस् शब्दका अर्थ वह अथवा यह दोनों है यहां पर 'असौ'का अर्थ 'यह' ऐसा किया है क्योंकि 'कश्चास्य प्राप्त्युपाय इति' इस वाक्यमें अस्य शब्द इदम् शब्दकी षष्ठी विभक्ति पुलिंग एक वचन है जिसका अर्थ है 'इस (मोक्ष) का ।'

१० प्राप्त्युपाय–जब इ, उ, ऋ, और लृ (ह्रस्व हो अथवा दीर्घ हो) असमान स्वरके पहिले हो तो यथाक्रम (क्रमसे) य् व् र् और ल् का

आचार्य आह–निरवशेषनिराकृतकर्ममकलङ्कस्याशरीरस्यात्मनोऽचिन्त्यस्वाभाविकज्ञानादिगुणमव्याबाधसुखमात्यन्तिकमवस्थान्तरं मोक्ष इति ॥

आचार्यः १।१ आह ፻	= आचार्य कहते हैं।
आत्मनः ६।१ निर् अवशेष–निराकृत कर्ममल–कलंकस्य ६।१	= आत्माके (=आत्मनः) समस्त कर्ममल कलंकरहित हो जानेको
अशरीरस्य ६।१।१	= (आत्माके) शरीररहित हो जानेको
अचिन्त्य–स्वाभाविक–ज्ञानादि–गुणम् १।१।।	= (आत्माके) स्वाभाविक अचिंत्य ज्ञानादिगुण प्रगट हो जाना।
अव्याबाध–सुखम् १।१।।	= (आत्माके) बाधारहित सुखकी प्राप्ति [और]
आत्यन्तिकम् १।१।। अवस्थान्तरं १।१।।	= (आत्माकी संसार अवस्थासे) अत्यन्त भिन्न दशाका हो जाना
मोक्षः १।१ इति ※	= ऐसी मोक्ष है ॥

प्रयोग उनके स्थानमें होता है। जैसे प्रा प् त् इ+उपाय=प्रा प् त् य्+उपाय=प्राप्त्युपाय।

तृणानि+अत्ति+अश्व.=तृणान् इ+अत्त् इ+अश्व =तृणान् य्+अत्त् य्+अश्वः (तृणान्यत्त्यश्वः—घोडा तिनके अर्थात् घास खाता है।) इस हो प्रकार कर्तर् इ+आत्मने=कर्तर्य्+आत्मने=कर्तर्यात्माने (सं. स वृत्ति १०८) मूर्तमिव मोक्षमार्गमवागविसर्गं वपुषा निरूपयन्त; युक्त्यागमकुशलं, परहितप्रतिपादनैककार्यम्, आर्यनिषेव्यं; निर्ग्रन्थाचार्यवर्यम् ये पांच विशेषण निर्ग्रन्थ आचार्य महाराजके हैं जिनके समीप भव्य बैठ कर प्रश्न करता है।

तस्यात्यन्तपरोक्षत्वाच्छद्मस्थाः प्रवादिनस्तीर्थकरम्मन्यास्तस्य स्वरूपमस्पृशन्तीभिर्वाग्भिर्युक्त्याभासनिबन्धनाभिरन्यथा परिकल्पयन्ति 'चैतन्यं पुरुषस्य स्वरूपं, तच्च ज्ञेयाकारपरिच्छेदपराङ्मुखमिति ॥ तत्सदप्यसदेव, निराकारत्वात् खरविषाणवत् ॥ बुद्ध्यादिवैशेषिक[1]गुणोच्छेदः पुरुषस्य मोक्ष इति च ।

तस्य ६/१ अत्यन्तपरोक्षत्वात् ५/१	=तिस मोक्षके अतिशय (बहुत) परोक्ष होनेसे
छद्मस्थाः १/३ प्रतिवादिनः १/३	=अल्पज्ञानी प्रतिवादी (प्रत्यर्थी)
तीर्थकरम्मन्याः १/३	=जो अपनेको धर्मका उत्पादक मानते हैं (वे)
तस्य ६/१ स्वरूपम् २/१ अस्पृशन्तीभिः ३/३	=उस (मोक्ष) के स्वरूपको स्पर्शतक न करनेवाले
युक्ति+आभासनिबन्धनाभिः ३/३ वाग्भिः ३/३	=युक्तिसहित सरीखे दीखनेवाले वचनोंकर
अन्यथा * परिकल्पयन्ति T	=और प्रकार (=उलटा) कल्पै हैं । जैसे—
चैतन्य १/१ पुरुषस्य ६/१ स्वरूपं १/१	=[सांख्यमती मानता है कि] आत्माका (पुरुषस्य) स्वरूप चैतन्य है
तत् १/१ च * ज्ञेयाकारपरिच्छेदपराङ्मुखम् १/१ इति	और वह [स्वरूप] ज्ञेयाकार [पदार्थों] को नहीं जानता है । (इसप्रकार मोक्षका स्वरूप कहता है)
तत् १/१ सत् १/१ अपि * असत् १/१ एव *	=सो [ऐसा मानना] ठीक है तो भी ठीक नहीं है
निराकारत्वात् ५/१ खरविषाणवत् *	=क्योंकि [वह] निराकार है गधाके सींगवत् मिथ्या [कल्पना] है
च पुरुषस्य ६/१ बुद्ध्यादिवैशेषिकगुण—उच्छेदः १/१ मोक्षः १/१ इति	=और आत्माके बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म आदि विशेष गुणोंका नाश होजाना सो मोक्ष है [ऐसा वैशेषिक मतवाले मानते हैं]

१ । "वैशेषिक"—कणाद मुनिका रचा हुआ एक शास्त्र, । कणादके शास्त्रका माननेवाला । पद्मचंद्रकोष पृष्ठ ३७० ।

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः ॥ १ ॥

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि १।३ = सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, और सम्यक्चारित्र (इन तीनोंका समुदाय अथवा संगम)

मोक्ष—मार्गः १।१ = मोक्षका मार्ग है अथवा मोक्षकी प्राप्तिका उपाय है अर्थात् पदार्थों के यथार्थ ज्ञानके विषयमें श्रद्धान व प्रतीति सो सम्यग्दर्शन है जिस जिस भांति जीवादिक पदार्थ तिष्ठे हैं तिस तिसप्रकार जानना सो सम्यग्ज्ञान है। संसारके हेतुओं (आस्रव-बन्ध) की निवृत्ति करनेके लिये उद्यमी सम्यग्ज्ञानी पुरुषके कर्मोंका ग्रहण करनेवाली क्रियाका त्याग सो सम्यक्चारित्र है। अनुभवसे यह बात प्रत्यक्ष है कि संसारके जितने कार्य हैं उन सबमें ही प्रथम ज्ञान, दूसरे श्रद्धान वा विश्वास तीसरे आचरणकी आवश्यक्ता होती है यदि इन तीनोंमेंसे एक भी घाटि हों तो कोई कार्य कदाचित् सिद्ध नहीं हो सक्ता है वैसे ही मोक्षकी प्राप्तिमें भी इन तीन हीकी आवश्यक्ता है। ध्यान रहे कि प्रथम ज्ञान होता है उसके पश्चात् सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति है उस सम्यक्त्वकी प्राप्ति होते ही वही ज्ञान जो सम्यग्दर्शनके पहिले कुज्ञान था सम्यग्ज्ञान हो जाता है (विशेष जाननेकेलिये नीचेका वृत्त्यर्थ देखो)

"१ इस तत्त्वार्थसूत्र ग्रन्थकी रचनाके विषयमें कर्णाटकभाषाकी तत्त्वार्थवृत्ति नामकटीकाकी प्रस्तावनामें एक बडो मनोरंजक कथा लिखी है, वह इस प्रकार है कि,—

सौराष्ट्र (गुजरात) देशके किसी नगरमें एक पवित्रान्तः करण और नित्यनैमित्तक क्रियाओंमें तत्पर श्रद्धावान् द्वैपायक नामक श्रावक रहता था। वह बडा विद्वान् था। और इसलिये चाहता था कि किसी उत्तम ग्रन्थकी रचना करूं, परन्तु गार्हस्थ्यजंजालके कारण अनवकाशवशतः कुछ कर नहीं सका था। निदान एकदिन उसने प्रतिज्ञा की कि, प्रतिदिन जब एक सूत्र बना लूंगा, तब ही भोजन करूंगा, अन्यथा उपवास करूंगा। और मोक्षशास्त्रके बनानेका निश्चय करके उसी दिन उसने "दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः" यह प्रथम सूत्र बनाया। तथा विसरण हो जानेके भयसे अपने घरके एक खम्भेपर उसे लिख दिया।

इसके पश्चात् दूसरे दिन वह श्रावक किसी कार्यके निमित्त कहीं अन्यत्र चला गया और उसके घर एक मुनिराज आहारके लिये आये। मुनिके दर्शनसे द्वैपायककी सुशीला गुणवती भार्याने अत्यन्त प्रसन्न होकर नवधाभक्तिपूर्वक उन्हें भोजन कराया। भोजनोपरान्त मुनिराजने खंभेपर लिखा हुआ वह सूत्र जो द्वैपायकने लिखा था, देखकर किंचित् विचार किया और तत्काल ही उसके पहिले सम्यक् विशेषण लिख कर वहांसे चल दिये। तदनन्तर जब द्वैपायक आया, तो उसे अपने लिखे हुए सूत्रमें सम्यक् विशेषण अधिक लिखा देखकर बडा आश्चर्य हुआ, और साथ ही सूत्रकी शुद्धता (निर्दोषता) से आनंद भी हुआ। भार्याके पूछनेसे विदित हुआ कि, मुनिराज आहारके निमित्त पधारे थे, कदाचित् वे लिख गये होंगे। तब श्रावक उसी समय बडी आतुरतासे उनके ढूंढनेको निकला। यत्र तत्र बहुत भटकनेके पश्चात् एक रमणीक वनमें उसे उक्त मुनिराजके दर्शन हुए। वे एक बड़े भारी मुनियोंके संघके नायक थे। उनकी मुद्राके दर्शनमात्रसे वह श्रावक जान गया कि इन्हीं महात्माने मेरे सूत्रको शुद्ध करनेकी कृपा की होगी और गद्गद होके उनके चरणोंपर पड गया। बोला, भगवन्! उस मोक्षशास्त्रको आप ही पूर्ण कीजिये। ऐसे महान् ग्रन्थके रचनेका सामर्थ्य मुझमें नहीं है। आपने बडा उपकार किया, जो मेरी वह बडी भारी भूल सुधार दी। सच है दर्शन, ज्ञान और चारित्र मोक्षका मार्ग नहीं है किन्तु सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र ही मोक्षमार्ग है। अतएव "सम्यग्दर्शनज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः" ही परिपूर्ण और विशुद्ध सूत्र है। श्रावकके उक्त आग्रह और प्रार्थनाको मुनिराज टाल नहीं सके, और निदान उन्होंने इस तत्त्वार्थसूत्र (मोक्षशास्त्र) को रचके पूर्ण किया। पाठक! वे मुनिराज और कोई नहीं, हमारे इस लेखके मुख्यनायक भगवान् उमास्वामी ही थे।"

भगवदुमास्वामि श्रीमत्कुन्द कुन्द आचार्य जिन्होंने अनेक ग्रन्थोंकी रचनाकी है उनके शिष्य थे। उमास्वामि सूरिका जन्म दिगम्बर सम्प्र-दायकी पट्टावलियोंके अनुसार विक्रमशक ५७ (=विक्रम सम्वत् १९२) में हुआ था १९ वर्षकी अल्प वयमे आपने जिन दीक्षा ग्रहणकी और

जगरूपसहायवकीलकृत पदच्छेद विभक्त्यर्थसहित सर्वार्थसिद्धिका शब्दशः हिंदी अनुवाद।

सम्यगित्यव्युत्पन्नः शब्दो व्युत्पन्नो वा। अञ्चतेः क्वौ समञ्चतीति सम्यगिति। अस्यार्थः प्रशंसा।

सम्यग्+इति अ+व्युत्पन्नः $\frac{1}{1}$	=सम्यग् ऐसा (पद) अव्युत्पत्ति पक्ष (व्याकरणकी रीति रहित) वाला
वा व्युत्पन्नः $\frac{1}{1}$ शब्दः $\frac{1}{1}$	=अथवा व्युत्पत्ति पक्ष (व्याकरणकी रीति) वाला शब्द हो सक्ता है अर्थात्। यह अव्युत्पत्ति पक्ष अपेक्षा तो रूढि संज्ञक है
अञ्चतेः $\frac{1}{1}$ क्वौ $\frac{11}{1}$ समञ्चति T इति सम्यक् $\frac{1}{1}$ इति*	= और व्युत्पत्तिपक्ष अपेक्षा सम् उपसर्ग पूर्वक अञ्च धातुसे पूजन वा प्रशंसार्थमें (अञ्च = पूजायाम् गतौ) क्विप् प्रत्यय करनेपर सम्यक् बनता है।
अस्य $\frac{1}{1}$ अर्थः $\frac{1}{1}$ प्रशंसा $\frac{1}{1}$ ॥	=इस (सम्यक् शब्द) का अर्थ (इस सूत्रविषै) प्रशंसा है। प्रशस्त=उत्तम = प्रशंसनीय

२९ वर्ष दीक्षित रहनेके पश्चात् कार्त्तिक शुक्ला ८ विक्रमशक १०१ में नंदिसंघके पट्ट पर विराजमान होकर आचार्य पद लाभ किया ॥ उन्हों ने ४० वर्ष ८ दिन आचार्य पद पर सुशोभित रहकर परम धर्मका उपदेश किया। इस सूत्रका पाठ और अर्थ श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों सम्प्रदायोमे एक है ॥ तत्त्वार्थ सूत्र दोनों संप्रदायोंमें माना जाता है। दिगम्बर सम्प्रदायका मत है कि वे दिगम्बर आचार्य थे और उनका नाम उमास्वामि है। श्वेताम्बर आम्नायवाले उनको उमास्वातिके नामसे श्वेताम्बर आचार्य मानते हैं। कुछ भी हो, इसमें संदेह नहीं है श्रीमदुमास्वामिने एक ही तत्त्वार्थ शास्त्र रचा था। पश्चात् अपने अपने माने हुये पदार्थोंके प्रतिपादनके लिये जहां तहां सूत्रोंमें पाठ भेद कर दिया गया है। प्रायः ऐसा होता है कि जो ग्रन्थ अति उत्तम होता है और जिसका रचयिता अत्यंत मान्य और प्रतिभाशाली प्रसिद्ध होता है उस ग्रन्थ तथा आचार्यको प्रत्येक शाखाकी जनता अपनाया करती है ॥ यही कारण है कि जहां तहां सूत्रोंमें भेद है ॥

१। सम्यग्ः—सम् उपसर्गमें अञ्च धातु पूजन वा प्रशंसा अर्थमें जोडकर तथा क्विप् प्रत्यय लगानेसे सम्+अञ्च+क्विप् ऐसा रूप हुआ। इस सम् उपसर्गके स्थानमे समिक आदेश अष्टाध्यायी ६-३-९३ सूत्रसे होकर समि+अञ्च+क्विप् बना। क्विप् प्रत्यय सारा ही उडजाता है और

स प्रत्येकं परिसमाप्यते। सम्यग्दर्शनं सम्यग्ज्ञानं सम्यक्चारित्रमिति। एतेषां स्वरूपं लक्षणतो विधानतश्च पुरस्ताद्विस्तरेण निर्देक्ष्यामः॥ उद्देशमात्रं त्विदमुच्यते। भावानां याथात्म्यप्रतिपत्तिविषयश्रद्धानसंग्रहार्थं दर्शनस्य सम्यग्विशेषणम्। येन येन प्रकारेण जीवादयः पदार्था व्यवस्थितास्तेन तेनावगमः सम्यग्ज्ञानम्।

सः १ प्रत्येकं १११ परिसमाप्यते T	=सम्यक् पद अलग अलग (तीनोंपर) लगाया जाता है
सम्यग्दर्शनं १११ सम्यग्ज्ञानं १११	=तब सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और
सम्यक्चारित्रं १११ इति*	=सम्यक्चारित्र इसप्रकार (तीनों पद) होते हैं।
एतेषां १११ स्वरूपं १११ लक्षणतः*	=इन (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र) के स्वरूपको लक्षण
च विधानतः* पुरस्तात् * विस्तरेण १११ निर्देक्ष्यामः T	=तथा भेदसे आगे विस्तारकरि कहेंगे।
उद्देशमात्रं १११ तु * इदं १११ उच्यते T	=परंतु संक्षेपमात्र यह (इस सूत्रमें) कहा जाता है
भावानां १ याथात्म्यप्रतिपत्तिविषयश्रद्धानसंग्रहार्थं १११	=पदार्थोंके यथार्थ ज्ञानके विषयमें श्रद्धानको ग्रहण करनेके लिये
दर्शनस्य १११ सम्यक् विशेषणम् १११	=दर्शनके सम्यक् (पद) विशेषण है
येन १ येन १ प्रकारेण १ जीवादयः १ पदार्थाः १	=जिस २ भांति जीवादिक पदार्थ
व्यवस्थिताः १ तेन १ तेन १ अवगमः १ सम्यग्ज्ञानम् १११	=तिष्ठे हैं तिस तिस प्रकार जानना (सो) सम्यग्ज्ञान है।

धातु प्रायः हलन्तही रहता है इसलिये समि+अञ्च् रूप हुआ। जब इ, उ, ऋ, और ऌ, (ह्रस्व अथवा दीर्घ हों) किसी असमान स्वरके प्रथम आवें तो यथाक्रमसे य्-व्-र्-ल् का प्रयोग उनके स्थानमें हो। इसलिये समि+अञ्च्=सम्यञ्च् हुआ। (देखो अष्टाध्यायी ६-१-७७ वां सूत्र) सम्यञ्च्के अ का लोप होकर सम्यच् सिद्ध हुआ। पद्मचन्द्रकोष पृष्ठ ४१४ में सम्यच् को अव्यय भी लिखा है॥ सम्यच् का च् घोष, अक्षरके पहिले ग् में पलट जाता है इसलिये सम्यग् दर्शन और सम्यग्ज्ञान रूप हुये और अघोष अक्षरके पहिले क् में इस च् का परिवर्तन हो जाता है इसलिये सम्यक्चारित्र हुआ॥ इस सूत्रके प्रत्येक शब्द दर्शन-ज्ञान और चारित्रके साथ सम्यग्-सम्यक् पद लगाना चाहिये।

(१) रूढि वह है जो प्रकृति और प्रत्ययके अर्थकी अपेक्षा किये बिना समुदाय शक्ति (सार शब्द सामर्थ्य) से "अर्थजतावे।" रूढि वह है जो

मोहसंशयविपर्ययनिवृत्त्यर्थं सम्यग्विशेषणम् । संसारकारणनिवृत्तिं प्रत्यागूर्णस्य ज्ञानवतः कर्मादाननिमित्तक्रियोपरमः सम्यक्चारित्रम् । अज्ञानपूर्वकाचरणनिवृत्त्यर्थं

मोह[1]-संशय-विपर्यय[3]-निवृत्ति-अर्थं ३।११	= अनध्यवसाय (मोह, विमोह,) संदेह, तथा विभ्रम वर्जनेके लिये
सम्यग्विशेषणम् १।११	= (ज्ञानके पहले) सम्यग् विशेषण (लगाया) है ।
संसारकारणनिवृत्तिं २।११ प्रत्यागूर्णस्य ६।१ ज्ञानवतः ६।१	= संसारके हेतुओं (आस्रव बन्ध) की निवृत्ति करनेको उद्यमी सम्यग्ज्ञानी पुरुषके
कर्मादाननिमित्तक्रियोपरमः १।१ सम्यक्चारित्रं १।११	= कर्मको ग्रहण करनेवाली क्रियाका त्याग (सो) सम्यक्चारित्र है ।
अज्ञानपूर्वक-आचरणनिवृत्ति-अर्थम् ३।११	= अज्ञानपूर्वक चारित्रको दूर करनेके अर्थ [चारित्र इस पदमें]

नाम किसीका हो परन्तु न आप किसी दूसरे शब्दसे निकला हो न उससे कोई दूसरा शब्द निकल सके, अर्थात् न किसी ठहराये हुये नियमके साथ किसी धातुसे बना हो और न वह आप धातु हो (हिन्दी व्याकरण पृष्ठ १७)

१ द्रव्य संग्रह (सम्यग्दर्शनके प्रकरण) गाथा ४२ में मोह-संशय-विपर्यय इन्हीं तीन विशेषणोंके लिये "संशय विमोह विब्भमविवज्जियं अप्पपरसरूवस्स" ऐसा वाक्य लाये हैं ॥ प० जयचंदजीने मोहका अनुवाद इसी सूत्रके अर्थ करनेमें "विमोह" किया है । "संशय विपर्यय और अनध्यवसाय रहित जीवादि पदार्थोंके जाननेको सम्यग्ज्ञान कहते हैं" पन्नालालजी कृत भाषाटीका पृष्ठ १ । "अध्यवसाय-यह ऐसा ही है इस प्रकार किसी विषयके विचारमें निश्चय करना" पद्मचन्द्रकोष पृष्ठ १७ । इसलिये मोह शब्दका अनुवाद अनध्यवसाय किया है ॥ "जाननेकी इच्छाके अभावमें अनिश्चितरूप तथा विकल्प रहित जो सूक्ष्म ज्ञान हो, उसे अनध्यवसाय कहते हैं । जैसे-मार्गमें चलते समय पांवसे छुए हुए अनेक धूलिकटक पाषाण बालू तृण आदिकोका स्पर्श होनेपर 'कुछ' है इसप्रकार विकल्परहित तथा अनिश्चितरूप (जिसमें अनेक कोटियोंका अवलंबन नहीं हो, ऐसा) ज्ञान होता है वह अनध्यवसाय है" पन्ना० तत्त्वार्थ पृष्ठ १ स स वृत्तिके दूसरे संस्करणमें मोहके स्थानमें अनध्यवसाय पाठ है

२ संशय—"अनिश्चितानेककोट्यवलम्बनं संशयः" । जिन जिन पदार्थोंके ज्ञानमें संशय हो उनमें समान रहनेवाले धर्मके दर्शनसे, तथा उनके विशेष धर्मके अदर्शनसे जो अनेक पदार्थोंका अवलम्बन करनेवाला ज्ञान होता है उसको संशय कहते हैं । जैसे यह पदार्थ स्थाणु (=शाखादि विहीन वृक्ष = ठूठ) है या पुरुष है ? सीप है वा चांदी है ।

३ "समान चिन्ह देखने पर अन्य पदार्थमें अन्य पदार्थके निश्चय होनेको विपर्यय कहते हैं-जैसे रस्सीमें सर्पका निश्चित-ज्ञान । विपर्यय शब्द के लिये उक्त द्रव्य संग्रहके आर्याछन्दमें 'विब्भम (= विभ्रम) शब्द लाये हैं इसलिये विपर्ययका अनुवाद हमने विभ्रम किया है ॥

सम्यग्विशेषणम् ॥ स्वयं पश्यति दृश्यतेऽनेनेति दृष्टिमात्रं वा दर्शनम् ॥ जानाति ज्ञायतेऽनेन ज्ञप्तिमात्रं वा ज्ञानम् । चरति चर्यतेऽनेन चरणमात्रं वा चारित्रम् । नन्वेवं स एव कर्त्ता स एव करणमित्यायातम् । तच्च विरुद्धं

सम्यग्विशेषणम् 1111	= सम्यग्विशेषण (लगाया) है।
स्वयं * पश्यति T इति दर्शनम् 1111	= आपही आप श्रद्धान करे सो दर्शन है [यहां कर्तृसाधन भया, करनेवाला आत्मा है सो ही दर्शन है]
दृश्यते T अनेन 1111 इति दर्शन 1111	= श्रद्धिये जिसकरि सो दर्शन है [यहां करण साधन भया]
वा दृष्टिमात्रं 1111 इति दर्शनम् 1111	= अथवा श्रद्धान सो दर्शन है [यहां भाव साधन हुआ, दर्शन क्रियाको ही दर्शन कहा]
जानाति ज्ञानम् ~~~11	= जो जाने सो ज्ञान है [यहां कर्तृसाधन हुआ, जाननेवाले आत्माहीको ज्ञान कहा]
ज्ञायते अनेन 1111 ज्ञानम् 1111	= जाकरि जानिये [सो] ज्ञान है [यहां करण साधन हुआ]
वा * ज्ञप्तिमात्रं 1111 ज्ञानम् 1111	= अथवा जानना सो ज्ञान है [यहां भाव साधन भया, जानना रूप क्रियाको ज्ञान कहा]
चरति चारित्रम् 1111	= आचरता है सो चारित्र है [यहां कर्तृसाधन हुआ क्योंकि आत्मा ही चारित्र है]
चर्यते अनेन 1111 चारित्रम् 1111	= जिसकरि आचरण किया जाय सो चारित्र है [इसप्रकार करण साधन भया]
वा * चरणमात्रं 1111 चारित्रम् 1111	= अथवा आचरण मात्र है सो चारित्र है [यहां भाव साधन भया] अर्थात् आचरनेहीको चारित्र कहा गया।
ननु * एवं * स 1 । एव कर्त्ता 11 स 11 एव * करणं 1111	= प्रश्न—इसप्रकार तो वही कर्ता वही करण [= साधन]
इति आयातम् 1111 तत् 1111 विरुद्धं 1111	= ऐसा प्राप्त हुआ सो विरुद्ध है।

सत्यं, स्वपरिणामपरिणामिनोर्भेदविवक्षायां तथा ऽभिधानात् । यथाऽग्निर्दहतीन्धनं दाहपरिणामेन ॥ उक्तः कर्त्रादिभिः साधनभावः पर्यायपर्यायिणोरेकत्वानेकत्वं प्रत्यनेकान्तोपपत्तौ स्वातन्त्र्यपारतन्त्र्यविवक्षोपपत्तेरेकस्मिन्नप्यर्थे न विरुध्यते । अग्नौ दहनादिक्रियायाः कर्त्रादिसाधनभाववत् ॥ ज्ञानग्रहणमादौ न्याय्यं, दर्शनस्य तत्पूर्वकत्वात् अल्पान्तरत्वाच्च ॥ नैतद्युक्तं,

सत्यं, स्वपरिणाम–	=[नहीं, वह] ठीक है क्योंकि अपने परिणाम
परिणामिनोः ६^{1} विवक्षायां ७^{11} तथा	=और परिणामी (दोनोंकी) भेद विवक्षामें वैसा
विधानात् ५^{111}	=विधान है। अर्थात् वही कर्ता वही कर्म वही करण हो सकता है
यथा अग्निः १^{1} दहति T इन्धनं २^{111} दाहपरिणमेन ३^{1}	=जैसे अग्नि अपने दाह परिणामसे लकडीको जलाती है।
उक्तः १^{1} कर्त्रादिभिः ३^{1}	=(भावार्थ) कहा गया जो कर्ता कर्म क्रियासे
साधनभावः १^{1}	=साधनभाव (कर्तादिको प्रधान मानकर कीहुई व्युत्पत्ति)
पर्यायपर्यायिणोः ६^{1} एकत्व–अनेकत्वं २^{111} प्रति अनेकान्त–	=वह पर्याय और पर्यायवालेके एकपना और अनेकपना अनेकांतसे
उपपत्तौ ७^{11} स्वातन्त्र्य–पारतन्त्र्य–	=स्वीकार कर लेनेपर स्वतंत्रता और परतंत्रताकी
विवक्षा–उपपत्तेः ५^{11} एकस्मिन् ७^{1} अपि न विरुद्ध्यते T	=विवक्षा होनेसे एक पदार्थमें भी विरुद्ध नहीं पडता है
अग्नौ ७^{11} दहनादिक्रियायाः ६^{11}	=जैसे–अग्निमें दहन आदि क्रियाकी
कर्त्रादि–साधनभाववत्॥	= [पृथक् और एक मान लेनेपर] कर्ता आदिमें सिद्धि हो जाती है।
ज्ञानग्रहणमादौ ७^{1} न्याय्य १^{111}	=(प्रश्न) सूत्रमें ज्ञानका लाना आदि विषै उचित था
दर्शनस्य ६^{111} तत्पूर्वकत्वात् ५^{111}	=क्योंकि दर्शनके उस ज्ञानका कारणपना है
अल्पान्तरत्वात् ५^{112} । च॥	=दर्शनसे ज्ञानके अल्प अक्षर होनेके कारण [क्योंकि व्याकरणमें द्वंद समासनिषै जिस शब्दमें अल्प अक्षर होते हैं वह प्रथम आता है] सेभी प्रथम लाना योग्य है।
न +एतद् १^{111} युक्त १^{111}	=उत्तर–यह तुम्हारा कहना या तर्क ठीक नहीं है

युगपदुत्पत्तेः ॥ यदाऽस्य दर्शनमोहस्योपशमात्क्षयात्क्षयोपशमाद्वा आत्मा सम्यग्दर्शनपर्यायेणाविर्भवति तदैव तस्य मत्यज्ञानश्रुताज्ञाननिवृत्तिपूर्वकं मतिज्ञानं श्रुतज्ञानं चाऽविर्भवति । घनपटलविगमे सवितुः प्रतापप्रकाशाभिव्यक्तिवत ॥ अल्पान्तरादभ्यर्हितं पूर्वं निपतति। कथमभ्यर्हितत्वं ? ज्ञानस्य सम्यग्व्यपदेशहेतुत्वात् ॥ चारित्रात्पूर्वं ज्ञानं प्रयुक्तं,

युगपत् + उत्पत्तेः [५।१]	= क्योंकि दर्शनज्ञानकी एक काल उत्पत्ति है
यदा ※ + अस्य [६।१] दर्शनमोहस्य [६।१]	= जब इस (आत्मा) का दर्शन मोहका
उपशमात् [५।१] क्षयात् [५।१] वा क्षयोपशमात् [५।१] वा	= उपशमसे क्षयसे, अथवा क्षयोपशमसे
आत्मा [१।१] सम्यग्दर्शनपर्यायेण [३।१] आविर्भवति T	= चेतन सम्यग्दर्शनकी पर्यायसहित प्रकाशित होता है। अर्थात चेतनके सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति होती है
तदा+एव तस्य [६।१] मति+अज्ञान श्रुत+अज्ञान निवृत्तिपूर्वकं [२।१।१]	= तबही तिस चेतनके कुमति कुश्रुतका अभाव होकर
मतिज्ञानं [१।१।१] च※ श्रुतज्ञानं [१।१।१] आविर्भवति	= मतिज्ञान और श्रुतज्ञान प्रकट होते हैं।
घनपटलविगमे [७।१] सवितुः [६।१]	= बादलोंकी ओटके दूर होनेपर सूर्यके
प्रतापप्रकाश–अभिव्यक्तिवत् ※	= तेज व धूप (= आतप) के (एक साथ) प्रगट होनेके सदृश दर्शन व ज्ञानकी उत्पत्ति एक साथ है।
अल्पान्तरात् [५।१।१।१] अभ्यर्हित [१।१।१।१] पूर्वं [२।१।१।१] निपतति T	= थोडे अक्षर वाले (अल्प※ अच् शब्द) से पूज्य (व्याकरणके अनुसार) पहले आता है।
कथम् ※ अभ्यर्हितत्वं [१।१।१।१]	= कैसे दर्शनको ज्ञानसे पूज्यपना है ?
ज्ञानस्य [६।१।१।१] सम्यग्व्यपदेशहेतुत्वात् [५।१।१।१]	= सम्यग्दर्शन ज्ञानको सम्यक् नाम देनेका हेतु है।
चारित्रात्पूर्वं [५।१।१।१] ज्ञानं [१।१।१] प्रयुक्तं [१।१।१।१]	= सूत्रमें चारित्रसे पहले ज्ञान कहा।

जगरूपसहायवकीलकृत पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित सर्वार्थसिद्धिका शब्दशः हिंदी अनुवाद।

तत्पूर्वकत्वाच्चारित्रस्य ॥ सर्वकर्मविप्रमोक्षो मोक्षः। तत्प्राप्त्युपायो मार्गः। मार्ग इति चैकवचननिर्देशः समस्तस्य मार्गभावज्ञापनार्थः। तेन व्यस्तस्य मार्गत्वनिवृत्तिःकृता भवति ॥ अतः सम्यग्दर्शनं सम्यग्ज्ञानं सम्यक्चारित्रमित्येतत्त्रितयं समुदितं मोक्षस्य साक्षान्मार्गो वेदितव्यः ॥ तत्रादावुद्दिष्टस्य सम्यग्दर्शनस्य लक्षणनिर्देशार्थमिदमुच्यते—

तत्पूर्वकत्वात् ५।१ चारित्रस्य ६।१	= क्योंकि चारित्रके पहिले वह ज्ञान होता है अर्थात् चारित्र तब ही सम्यक् होता है जिस समय सम्यग्ज्ञान हो लेता है।
सर्वकर्मविप्रमोक्षः १।१ मोक्षः १।१	= समस्त कर्मका अत्यन्त अभाव [सो] मोक्ष है।
तत्प्राप्ति + उपायः १।१ मार्गः १।१	= उस [मोक्ष] की प्राप्तिके लिये यत्न करना [सो] मार्ग है
मार्गः १।१ इति च एकवचननिर्देशः १।१	= और [सूत्रमें] मार्ग [शब्द] एकवचनमें कहा है
समस्तस्य ६।१ मार्गभावज्ञापनार्थः १।१	= सो समस्त सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रके [एक ही] मार्गभाव जनावनेके लिये है।
तेन ३।१ व्यस्तस्य ६।१ मार्गत्वनिवृत्तिः १।१ कृता १।१ भवति	= तिस [मार्ग शब्द एकवचन] करि जुदे जुदे [सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र] को मार्गपनाका वर्जना होता है।
अतः सम्यग्दर्शनं १।१ सम्यग्ज्ञानं १।१	= इसलिए सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान [भले प्रकारका ज्ञान]
सम्यक्चारित्रं १।१ +इति+एतत् १ त्रितयं १।१ समुदितं १।१	= भले प्रकारका आचरण ऐसे ये तीनों मिले हुए
मोक्षस्य ६।१ साक्षात्मार्गः १।१ वेदितव्यः १।१	= मोक्षका प्रत्यक्ष मार्ग जानना चाहिये।
तत्र+आदौ ७।१+ उद्दिष्टस्य ६।१	= तहां (सूत्रमें) आदिविषै उपदेशित
सम्यग्दर्शनस्य ६।१	= सम्यग्दर्शनका
लक्षणनिर्देशार्थम् १।१ इदम् १।१ उच्यते	= लक्षण कहनेकेलिए यह (अर्थात् आगेका सूत्र) कहा जाता है।

१ सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्रका एक देशपना परम्परा मोक्षका कारण है और समस्तता (=पूर्णता) साक्षात् मोक्षका कारण शाक्षात् है यहां ऐसा सब्दके जानेका भाव है।

जगरूपसहायवकीलकृत पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित सर्वार्थसिद्धिका अन्वयः हिंदी अनुवाद ।

॥ तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् ॥ २ ॥

तत्त्वशब्दो भावसामान्यवाची । कथम् ? तदिति सर्वनामपदम् । सर्वनाम च सामान्ये वर्तते । तस्य भावस्तत्त्वम् ॥ तस्य कस्य ?

(क) सूत्रार्थ—तत्त्वार्थ = तत्त्वेन + अर्थः = यथावस्थित रूप करि [तत्त्वेन] जो निश्चय किया जाय पदार्थ

श्रद्धानं [अर्थः] उसका जो श्रद्धान

सम्यग्दर्शनम् = सो सम्यग्दर्शन है—अथवा

[ख] तत्त्वार्थ = तत्त्वम् एव + अर्थः = यथावस्थित [= तत्त्वं] ही [= एव] वस्तु [= अर्थः] की

श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् प्रतीति सो सम्यग्दर्शन है ।

[ग] तत्त्वार्थ (= तत्त्वम् एव + अर्थः) = जो जिस प्रकार अवस्थित है [= तत्त्वं] उस ही [= एव] वस्तु

श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् = (अर्थः) की उस ही प्रकार प्रतीति सो सम्यग्दर्शन है ।

पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका भाषानुवाद ।

तत्त्वशब्दः भावसामान्यवाची = (इस सूत्रमें) तत्त्व शब्द (वस्तुके) भाव स्वरूप वा धर्मका वाचक है

कथम् । तद्-इति सर्वनाम-पदम् । = (तत्त्व) कैसे (भाव सामान्यवाची) है तद् ऐसा शब्द सर्वनाम पद है

सर्वनाम च सामान्ये वर्तते । = और सर्वनाम सादृश्य प्रयोजकधर्म [बराबरीको जतलानेवाले धर्म] में वर्तता है

तस्य भावः तत्त्वम् ॥ तस्य कस्य । = तिस (तद्) का भाव सो तत्त्व है ॥ वह (भाव) किसका है ?

---

(१) दोनों सम्प्रदायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एक है । (२) वाची—यह शब्द नकारान्त वाचिन् पुंलिंगका प्रथमा विभक्ति एक वचन है ॥ स् प्रथमा विभक्ति पुंलिंग एक वचनका चिन्ह है इस स् को वाचिन् में जोड़नेसे वाचिन्+स् हुआ ॥ जब पदान्तमें एक व्यंजनसे अधिक हों तो पहिला व्यंजन रह जाता है और अन्यका लोप हो जाता है (भाण्डारकर मार्गोपदेशिका पृष्ठ ६७) वाचिन्+स्, वाचिन् जिस पुंलिंग शब्दके अन्तमें इन् हो तो न् का प्रथमा विभक्ति एक वचनमें और विभक्तियोंके सर्व इन प्रत्ययोंके पहिले जो व्यंजनसे (प्रत्यय)

अर्थश्रद्धानमिति चेत्सर्वार्थग्रहणप्रसङ्गः । तत्त्वश्रद्धानमिति चेद्भावमात्रप्रसङ्गः। सत्ताद्रव्यत्वगुणत्वकर्मत्वादि तत्त्वमिति कैश्चित्कल्प्यत इति ॥ तत्त्वमेकत्वमिति वा सर्वैक्यग्रहणप्रसङ्गः ॥ पुरुष एवेदं सर्वमित्यादि कैश्चित्कल्प्यते इति तस्मादव्यभिचारार्थमुभयोरुपादानम् ॥

अर्थ–श्रद्धानम् १।१ इति चेत् * =अर्थ श्रद्धान इसप्रकार यदि (=चेत्, सूत्र) होता तो (उत्तर–अर्थ शब्दके)
सर्व–अर्थ–ग्रहण–प्रसंगः १।१ =समस्त अभिधेयोंके स्वीकार करनेका संयोग आता । भावार्थ–अर्थ नाम धनका भी है, अर्थ नाम प्रयोजन आदिका है, उनका भी श्रद्धान सम्यग्दर्शन ठहरता ।
तत्त्व–श्रद्धानम् १।१।१ इति चेत् =तत्त्वश्रद्धान ऐसा (सूत्र) यदि (=चेत्) होता तो
भावमात्र–प्रसंगः १।१ =(उत्तर) भाव वा वहपना मात्रका प्रसंग आता वा केवल (=मात्र) सत्ता होनापन–विद्यमानताका ही प्रसंग आता अर्थात इस भाव-होनापन, वहपना–विद्यमानता सत्ताहीका श्रद्धान सम्यग्दर्शन ठहरता
सत्ता–द्रव्यत्व–गुणत्व–कर्मत्वादि १।१।१ तत्वम् १।१।१ =सत्ता, द्रव्यत्व, गुणत्व, कर्मत्व, आदि तत्व है
इति * कैश्चित् * कल्प्यते T इति ॥ ऐसा कितनोंकरि (वैशेषिकोंसे) माना गया है वा कल्पना की गई है ॥
वा * तत्वं १।१ एकत्वं १।१।१ =एकपना तत्व है ऐसा (कितनोंसे अर्थात् वैयास वेदान्तियोंकरि कल्पना की जाती है
इति सर्व–ऐक्य–ग्रहण–प्रसंगः १। =(इसप्रकार) सब पदार्थोंकी एकताके ग्रहणका प्रसंग आता अर्थात् सब पदार्थ भेदरहित एकरूप हो जाते
पुरुषः १। एव * इद १।१। सर्वं १।१ इत्यादि १।१ =एक पुरुष ही यह सर्व वस्तु है इत्यादिक
कैश्चित् कल्प्यते T इति तस्मात् ५। अव्यभिचार–अर्थम् १। = कितनोंसे कल्पना की जाती है तिस कारणसे निर्दोषता दिखावनेके लिये
उभयोः ६। उपादानं १।१ =दोनों (तत्व और अर्थ) का ग्रहण (सूत्रमें) किया गया है

(१) तत्त्वमेकत्वमिति कैश्चित्कल्प्यते वा ऐसा पूर्ण वाक्य है ॥ (२) कल्प्-कृप् भ्वादि प्रथम गणके आत्मनेपदी धातु है जिनके रूप जब उनका प्रयोग किया जाता है, कल्प् होजाते हैं इस कल्प् मे य कर्मणि प्रयोगका प्रत्यय लगाकर कल्प्य हुआ पश्चात् ते आत्मनेपदी एक वचन अन्यपुरुष वर्तमान कालका प्रत्यय जोड़कर कल्प्यते बना लिया ।

तद्द्विविधम्, सरागवीतरागविषयभेदात् ॥ प्रशमसंवेगानुकम्पास्तिक्याद्यभिव्यक्तिलक्षणं प्रथमम् । आत्मविशुद्धिमात्रमितरत् ॥ अथैतत्सम्यग्दर्शनं जीवादिपदार्थविषयं कथमुत्पद्यत[2] इत्यत आह ॥

सरागवीतरागविषय–	=सराग विषय और वीतराग विषय (= निमित्त अथवा प्रकरण)
भेदात् ५।१ तत् १।१ द्विविध १।१	=भेदसे वह तत्त्वार्थ श्रद्धान स्वरूप सम्यग्दर्शन दो प्रकार है ॥
प्रशम–	=प्रशम=क्रोध, मान, माया, लोभ संबंधी रागद्वेषादिकका अभाव
संवेग–	=संवेग पांच परिवर्तनरूप संसारसे भय
अनुकम्पा—	=अनुकंपा त्रस स्थावर सर्व प्रणियोंपर दयाका प्रादुर्भाव
आस्तिक्यादि[1]—	=आस्तित्व आदिका [जीवादिक तत्वोंको युक्ति आगमकरि जैसाका तैसा
अभिव्यक्तिलक्षणं १।१ प्रथमम् १।१	= मानना] आविर्भाव [प्रगट] रूप सो पहला (सराग सम्यग्दर्शन) है अर्थात् ये चार चिन्ह जिसके प्रगट होवें उसके सराग सम्यग्दर्शन जानो।
आत्म–विशुद्धिमात्रम् १।१ इतरत् १।१	=केवल [मात्र] आत्माकी विशुद्धता ही दूसरा [वीतराग सम्यग्दर्शन] है
अथ एतत् १।१ सम्यग्दर्शनम् १।१	= अब [अथ] यह सम्यग्दर्शन
जीव–आदि–पदार्थविषयम् १।१	= जीव–अजीव–आस्रव–बन्ध–संवर–निर्जरा और मोक्ष हैं विषय जिसके
कथं* उत्पद्यते ?। इति अतः आह ?।	= कैसे उत्पन्न होता है इसलिये [आचार्य उत्तरसूत्र] कहते हैं कि—

(१) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य तत्त्वार्थाधिगम सूत्र पृष्ठ ७ में निर्वेद (=संसारके पदार्थोंमे घृणापूर्वक वैराग्य) यह पांचवा लक्षण भी कहा है ॥ हमारे यहांके "आदि" जो आस्तिक्यके साथ दिया है उसमे (रत्नकरण्ड श्रावकाचार श्लोक १३७) अन्तर्गत हो जावेगा ॥

(२) अर्यत इति—अर्यत शब्दमे ऋ भ्वादि प्रथम गणका धातु अनिट् परस्मै पद प्राप्त करना अर्थमें यहां पर आया है ॥ ऋ का गुणसंज्ञक अर् है ॥ अर्में य कर्मणि प्रधानका चिन्ह जोडनेसे अर्य ऐसा रूप हुआ पश्चात् वर्तमान क्रिया; अन्य-पुरुष एक वचन आत्मनेपदीका चिन्हते लगानेसे अर्यते (प्राप्त किया जाता है) ऐसा रूप बना क्योंकि कर्मणि प्रधानमें सदा आत्मनेपदी क्रियामे प्रत्यय लगाये जाते हैं ॥ अर्यते इति= अर्यत इति । क्योंकि यदि पदान्त व्–य् जिसके पहिले अ–आ हो और जिनके पश्चात् अश् प्रत्याहारका कोई अक्षर हो अर्थात् अ–इ–उ–ऋ–लृ–ए–ओ–ऐ–औ ह्–य्–व्–र्–ल्–ञ्–म्–ङ्–ण्–न्–झ्–भ्–घ्–ढ्–ध्–ज्–ब्–ग्–ड्–द् मेंसे कोई अक्षर हो तो उक्त व्–य्का शाकल्य मुनिके मतमें (अर्थात् विकल्पसे) लोप हो जाता है ॥ (व्योः पदस्य लोपः शाकल्यस्य (अष्टाध्यायी ८—३—१६) । उत्पद्यते इति=उत्पद्यत इति

तन्निसर्गादधिगमाद्वा ॥ ३ ॥

निसर्गः स्वभाव इत्यर्थः । अधिगमोऽर्थावबोधः । तयोर्हेतुत्वेन निर्देशः ॥

कस्याः क्रियायाः । का च क्रिया । उत्पद्यते इत्यध्याह्रियते ।

तद् १।१ निसर्गात् ५।१ अधिगमात् ५।१ वा उत्पद्यते T	=सूत्रार्थ—वह [सम्यग्दर्शन] स्वभावसे अथवा वा परोपदेशसे उत्पन्न होता है अर्थात् जो तत्वार्थ श्रद्धान विना किसी बाह्य उपदेशके अपने आप ही हो उसको निसर्गज सम्यग्दर्शन कहते हैं और जो जीवादिक तत्वोंका श्रद्धान परके उपदेशसे हो उसको अधिगमज सम्यग्दर्शन कहते हैं । सूत्रार्थ
निसर्गः १।१ स्वभावः १ इति अर्थः १।१ अधिगमः अर्थ-अवबोधः	= निसर्ग है सो स्वभाव है ऐसा अर्थ है । अधिगम है सो पदार्थका ज्ञान है
तयोः ६।२ हेतुत्वेन ३।१।१ निर्देशः १।१ कस्याः ६।१	= उन दोनों [निसर्ग और अधिगम] को [सम्यग्दर्शनकी उत्पत्तिका] साधनपना वा कारणपना करिकहा । किसका [साधनपना करि कहा]
क्रियायाः ६।१ । का १।१ च ※ क्रिया १।१—	= क्रियाका [तो वह] क्रिया कौनसी है ?
उत्पद्यते T इति ※ अध्याह्रियते T	= उत्पन्न होता है । ऐसा वाक्य अध्याहार किया गया है अर्थात् ऊपरके सूत्र को स्पष्ट करनेकेलिये उसमें " उत्पद्यते " वाक्य जोडा गया है ।

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायोंमें एक है । (२) निसर्ग-परिणाम-स्वभाव अपरोपदेश (=दूसरेके उपदेशादिका अभाव) ये सब एकार्थ वाचक अर्थात् पर्याय-शब्द हैं सभाष्य पृष्ठ ८ (३) "अधिगम, अभिगम, आगम, निमित्त, श्रवण, शिक्षा तथा उपदेश ये सब समानार्थक ही हैं" सभाष्य० पृष्ठ ८ ॥

(४) तन्निसर्ग तद्निसर्ग, (पदान्तस्य) "हलोऽनुनासिकेऽनुनासिकः स्वः (वा)" १ । १ । १०६ शाकटायनव्याकरण=जब अनुनासिक परे हो (= अनुनासिके) पदान्त व्यंजनके स्थानमें (=पदान्तस्य ६।१ हलः ६।१) सवर्ण (= स्वः १।१) अनुनासिक (= अनुनासिकः १) विकल्पसे हो (= वा) जैसे " तद् नयनं, तन्नयनम्" । पदान्तस्य "यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा" अष्टाध्यायी ८-४-४५ ॥ जैसे एतद् मुरारि वा एतन्मुरारिः । "यरो ङो वा ङे" ५ । ४ । १२५ जैनेन्द्रव्याकरणम् ॥ पदान्त व्यंजन (हको छोड़कर) के स्थानमें (=यर ६) विकल्पसे (वा) अनुनासिक हो । (= ङः १ ८) यदि अनुनासिक परे हो (= ङे०) ॥ इसलिये तद् निसर्ग और तन्निसर्ग दोनो पाठ ठीक है ॥

सोपस्कारत्वात् सूत्राणाम्। तदेतत्सम्यग्दर्शनं निसर्गादधिगमाद्वोत्पद्यत इति ॥ अत्राह। निसर्गजे सम्यग्दर्शनेऽर्थाधिगमः स्याद्वा न वा। यद्यस्ति, तदपि अधिगमजमेव, नार्थान्तरम्। अथ नास्ति, कथमनवबुद्ध-तत्त्वस्यार्थश्रद्धानमिति ॥ नैष दोषः। उभयत्र सम्यग्दर्शने

सोपस्कारत्वात् ५।१ सूत्राणाम् ६।३	=क्योंकि सूत्रोंको अध्याहारसहितपना होता है अर्थात् सूत्रोंमें उनके अर्थ स्पष्ट करनेके लिये क्रिया आदिका अध्याहार किया जाता है-क्रिया आदि जोड़ी जाती हैं, लगाई जाती हैं ।
तत् १।१ एतत् १।१ सम्यग्दर्शनं १।१ निसर्गात् ५।१ वा अधिगमात् ५।१ उत्पद्यते T इति	=सो [=तद्) यह (=एतद्) तत्त्वार्थश्रद्धान स्वभावसे अथवा परोपदेशसे उत्पन्न होता है
अत्र आह T निसर्गजे ७।१ सम्यग्दर्शने ७।१ अर्थ—आधिगमः १।१	=यहां प्रश्न करता है (=आह) कि स्वभावजनित तत्त्वार्थश्रद्धानमें पदार्थका ज्ञान
स्यात् T वा न * वा * । यदि * अस्ति T तद् १।१	=है। अथवा नहीं है यदि [पदार्थका ज्ञान] है [तो] वह
आपि अधिगमजम् १।१ एव	=भी अधिगमज ही हुआ
न * अर्थ—अंतरम् १।१	=और अर्थ विषैं कुछ भेद नहीं हुआ अर्थात् दोनों एक ही ठहरे
अथ न अस्ति T, कथम् * अनवबुद्धतत्त्वस्य ६।१	=यदि (निसर्गज सम्यग्दर्शनमें अर्थबोध) नहीं है (तब) कैसे विना जाने
अर्थ—श्रद्धानम् १।१ इति।	=तत्त्वार्थका श्रद्धान हुआ
न * एषः १।१ दोषः १।१। उभयत्र * सम्यग्दर्शने ७।१	=यह दूषण नहीं है। क्योंकि दोनों सम्यग्दर्शनोंमें

१ अध्याहार-"वाक्यको पूरा करनेकेलिये शब्दका" जोडना पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ १८ (२) क्षयोपशमोवा-जब विसर्गके पहिले अ हो और इसी विसर्गके परे अ हो अथवा ग्-घ्-ङ्। ज्-झ्-ञ्। ड्-ढ्-ण्। द्-ध्-न्। ब्-भ्-म् । य्-र्-ल्-व्-ह् । में से कोई अक्षर आवे तो यह विसर्ग उ मे परिवर्तन होजाता है॥ फिर यह उ जिसके पहिले अ है दोनों (अ+उ) मिलकर ओ हो जाते हैं जैसे क्षयोपशमः वाक्य क्षयोपशम उ वाक्य = क्षयोपशम+अ+उ वाक्य=क्षयोपशम+ओ वाक्य क्षयोपशमो वाक्य भण्डारकार मार्गo पृष्ठ १५।

अन्तरङ्गो हेतुस्तुल्यः । दर्शनमोहस्योपशमः क्षयः क्षयोपशमो वा । तस्मिन्सति यद्बाह्योपदेशादृते प्रादुर्भवति तन्नैसर्गिकम्, यत्परोपदेशपूर्वकं जीवाद्यधिगमनिमित्तं स्यात् तदुत्तरमित्यनयोरयं भेदः ॥

तद्ग्रहणं किमर्थम्। अनन्तरनिर्देशार्थम् । अनन्तरं सम्यग्दर्शनं तदित्यनेन प्रतिनिर्दिश्यते । इतरथा मोक्षमार्गोऽपि प्रकृतस्तस्याभिसम्बन्धः स्यात्। ननु च अनन्तरस्य विधिर्वा भवति प्रतिषेधो वेति

अन्तरङ्गः १।१ हेतुः १।१ तुल्यः १।१ = अन्तरङ्ग कारण समान है। और वह

दर्शनमोहस्य ६।१ उपशमः १।१ क्षयः १।१ क्षयोपशमः १।१ वा = दर्शनमोहनीय कर्मका उपशम क्षय अथवा क्षयोपशम है

तस्मिन् ७।१ सति ७।१ यद् १।१ बाह्य-उपदेशात् ५।१ = तिस अभ्यन्तर कारणके होनेपर (= सति) जो परोपदेश

ऋत * प्रादुर्भवति T = विना प्रगट होता है

तद् १।१ नैसर्गिकं १।१ यद् १।१ परोपदेशपूर्वकं १।१ = वह निसर्गज वा स्वभावजनित [सम्यग्दर्शन] है जो दूसरेके उपदेशपूर्वक

जीवादि— = जीवादि तत्त्वोंके

अधिगम-निमित्त १।१ स्यात् T तद् १।१ उत्तरम् १।१ = जाननेका कारण हो वह दूसरा अधिगमज सम्यग्दर्शन है

इति अनयोः ६।२ अयं १।१ भेदः १।१ = ऐसे इन दोनोंमें यह भेद है

तद्-ग्रहण १।१ किमर्थम् १।१ = सूत्रमें "तद्" शब्दका लाना किस लिये है

अनतर-निर्देश-अर्थम् १।१ = निकटस्थको जतलानेकेलिये (तद्)है

अनन्तरं १।१ सम्यग्दर्शन १।१ तद्-इति*अनेन ३।१ = लगता ही सम्यदर्शन (शब्द जो दूसरे सूत्रके अंतमें है) इस "तद्" शब्दसे

प्रतिनिर्दिश्यते T। इतरथा मोक्षमार्गः १।१ अपि*प्रकृतः १।१ = बतलाया गया है। अन्यथा (यदि तद् न लाते तो) मोक्षमार्ग भी वर्णनीय है

तस्य ६।१ अभिसम्बधः १।१ स्यात् T ननु च* = उसका [निसर्ग अधिगमके साथ] संबंध हो जाता [मोक्षके ये भेद हो जाते]

अनन्तरस्य ६।१ विधिः १।१ वा भवति प्रतिषेधः १।१ = प्रश्न—निकटस्थका विधान होता है अथवा [= वा] निषेध होता है

वा इति [अर्थात् तद् निकटताके लिये लाओ वा मत लाओ]

अनन्तरस्य सम्यग्दर्शनस्य ग्रहणं सिद्धमिति चेन्न, प्रत्यासत्तेः प्रधानं बलीय इति मोक्षमार्ग एव सम्बध्येत[1] तस्मात्तद्वचनं क्रियते। तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनमित्युक्तम्। अथ किं तत्त्वमित्यत इदमाह—

अनन्तरस्य ६।१ सम्यग्दर्शनस्य ६।१। ग्रहणं १।१ सिद्धम् १।१	=निकटका (दूसरे सूत्रके अन्तके) सम्यग्दर्शनका ग्रहण (विना तद् शब्द के सूत्रमें लाये हुये) सिद्ध है
इति चेत् * न *। प्रत्यासत्तेः ५।१ प्रधानं १।१ बलीयः १।१।[बलीयस्]	=ऐसी (इति) शंका [=चेत्] ठीक नहीं है। क्योंकि निकटस्थसे मुख्य बलवान् होता है
इति मोक्षमार्गः १।१ एव सम्बध्येत T	=इसप्रकार मोक्षमार्ग ही (जो दूसरे सूत्रमें आये हुये सम्यग्दर्शनसे दूर है किंतु उससे प्रधान होनेसे—निसर्ग और अधिगमके साथ) संबंधमें नियमानुसार आजाता।
तस्मात् * तद् १।१ वचनं १।१ क्रियते T।	=तिससे तद् लाया गया है।
तत्वार्थश्रद्धानं १।१ सम्यग्दर्शनम् १।१	=तत्वार्थका श्रद्धान सम्यग्दर्शन है
इति उक्तम् १।१। अथ * किं १।१ तत्त्वम् १।१ इति अतः * इदम् १।१ आह।	=ऐसा [दूसरा सूत्र] कहा गया है। अब तत्व क्या है यह इसलिये (निम्न सूत्र) कहते हैं

१ यह नियम है कि दो शब्द हों उनमेंसे एक शब्द निकट और दूसरा शब्द (किसी शब्द जिससे सम्बंध करना है वा मिलाना है) दूर हो परन्तु यह दूसरा शब्द प्रधान हो तौ इस प्रधान शब्दका सम्बंध मिलानेवाले शब्दके साथ समझा जावेगा। जैसे "निसर्गादधिगमाद्वा" यदि ऐसा सूत्र होता तो निसर्ग और अधिगमके साथ प्रथम सूत्रके मोक्षमार्ग शब्दका संवंध होता न कि दूसरे सूत्रके सम्यग्दर्शन शब्दका क्योंकि यद्यपि दर्शन शब्द निसर्ग और अधिगम शब्दोंके निकट है परन्तु मोक्षमार्ग शब्द जो दूर है प्रधान होनेसे निसर्ग और अधिगमके साथ सम्बंध कर जाता उस सम्बंधको दूर करनेके लिये सूत्रमें तद् शब्द दूसरे सूत्रके दर्शन शब्दको प्रगट करनेके लिये लाये हैं।

जीवाजीवास्रवबन्धसंवरनिर्जरामोक्षास्तत्त्वम् ॥ ४॥

तत्र चेतनालक्षणो जीवः । सा च ज्ञानादिभेदादनेकधा भिद्यते । तद्विपर्ययलक्षणोऽजीवः । शुभाशुभकर्मागमद्वाररूप आस्रवः । आत्मकर्मणोरन्योऽन्यप्रदेशानुप्रवेशात्मको बन्धः । आस्रवनिरोधलक्षणः संवरः । एकदेशकर्मसंक्षयलक्षणा निर्जरा । कृत्स्नकर्मविप्रयोगलक्षणो मोक्षः ॥ एषां प्रपञ्चः

जीव-अजीव-आस्रव-बन्धसंवरनिर्जरामोक्षाः १।१ तत्वम् १।।।	=जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये [सात] तत्व हैं अर्थात् चेतना लक्षण जीव है, चेतनारहित अजीव है; कर्मोंके आनेका द्वार आस्रव है; चेतन और कर्मोंके परस्पर प्रदेशोंका नीर क्षीरके सदृश एक क्षेत्रावगाह संबन्ध सो वन्ध है । शुभाशुभ कर्मोंके आगमन द्वारको रोकना सो संवर है; आत्माके प्रदेशोंसे कर्मोंका एक देश पृथक् होना सो निर्जरा है, समस्त कर्मोंका सर्वथा नाश सो मोक्ष है।
तत्र ॐ चेतनालक्षणः १।१ जीवः १।१ सा १।।। च	=तहां चेतना लक्षण जीव है और वह चेतना
ज्ञानादिभेदात् ५।१	ज्ञानादिके भेदसे
अनेकधा ॐ भिद्यते T ।	=(अर्थात् ज्ञान चेतना, कर्म चेतना, कर्मफलचेतना) नाना प्रकार भेदरूप है
तद्विपर्ययलक्षणः १।१ अजीवः १।१ ।	=उस (जीव) से विरुद्ध लक्षणवाला [अर्थात् चेतनारहित] अजीव है
शुभ-अशुभ-कर्म-आगमनद्वाररूपः १।१ आस्रवः १।१ ।	=भले बुरे कर्मोंके आनेका द्वार सो आस्रव है
आत्मकर्मणोः ६।।। अन्योऽन्यप्रदेश—	=चेतन और कर्मके परस्पर प्रदेशोंका
अनुप्रवेश-आत्मकः १।१ बन्धः १।१ ।	=(दूध पानीके समान एकमेक होकर एक-क्षेत्रावगाह] संबंधरूप बन्ध है
आस्रवनिरोध-लक्षणः १।१ संवरः १।१ ।	=शुभाशुभ कर्मोंके आगमनद्वारके रोकनेरूप संवर है
एकदेश-कर्म-सक्षयलक्षणा १।।। निर्जरा १।।।	=[आत्माके प्रदेशोंसे] कर्मोंका एकदेश पृथकरूप होना सो निर्जरा है
कृत्स्नकर्मविप्रयोग-लक्षणः १।१ मोक्षः १।१ एषां ६।।। प्रपञ्चः १।१	=समस्त कर्मोंका सर्वथा नाशरूप मोक्ष है । इनका विस्तार

(१) श्वेताम्बर और दिगंबर दोनो आम्नाओंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है।

उत्तरत्र वक्ष्यते। सर्वस्य फलस्यात्माधीनत्वादादौ जीवग्रहणम् । तदुपकारार्थत्वात्तदनन्तरमजीवाभि-
धानम् । तदुभयाविषयत्वात्तदनन्तरमास्रवग्रहणम् । तत्पूर्वकत्वात्तदनन्तरं बन्धाभिधानम् । संवृतस्य
बन्धाभावात्तत्प्रत्यनीकप्रतिपत्त्यर्थं तदनन्तरं संवरवचनम् । संवरे सति निर्जरोपपत्तेस्तदान्तिके निर्जरावच-
नम् । अन्ते प्राप्यत्वान्मोक्षस्यान्ते वचनम् ॥ इह पुण्यपापग्रहणं च कर्तव्यं नवपदार्था इत्यन्यैरप्युक्त-
त्वात् ॥ न कर्त्तव्यम् । तयोरास्रवबन्धे चान्तर्भावात् ॥ यद्येवम्

उत्तरत्र वक्ष्यते ॥ सर्वस्य ।। फलस्य ।। आत्म-	= आगे कहेंगे । समस्त फलको चेतनके
अधीनत्वात् ।। आदौ ।। जीवग्रहणम् ।। ।	आश्रय होनेसे आदिमें जीवका प्रतिपादन किया ।
तद् उपकार अर्थत्वात् ।। तद् अनन्तरम् ।।	= उस जीवका उपकारी होनेसे उसके समीप ही
अजीव अभिधानम् ।। । तद् उभयविषयत्वात् ।	= अजीव कहा गया है । उन (जीव अजीव) दोनोंके संबन्ध होनेसे
तद् अनन्तरम् ।। आस्रवग्रहणम् । ।	= उसके निकट आस्रवका उपादान किया गया है ।
तत्पूर्वकत्वात् ।। तद् अनन्तरम् ।।	= उस (आस्रव) जन्य होनेसे (आस्रवपूर्वक बंध होनेसे) फिर
बंधअभिधानम् ।। । संवृतस्य । बध अभावात् ।	= बन्ध कहा गया है । संवरके होनेसे बन्धका अभाव होता है अतः
तत्प्रत्यनीक प्रतिपत्ति अर्थम् ।।	= उस (बन्ध) के प्रतिपक्षीको जतावनेकेलिये
तद्-अनन्तरं ।। संवरवचनम् ।। । संवरे ।। सति ।।	= उस [बन्ध] के लगता ही संवर कहा है क्योंकि संवर होनेपर
निर्जरा—उपपत्तेः ।। तद् आन्तिके ।। निर्जरावचनम् ।।	= निर्जराकी प्राप्ति होती है [अतः] उसके निकटमें निर्जराका कथन है
अंते ।। प्राप्यत्वात् ।। मोक्षस्य ।। अंते ।। वचनम् ।।	= अंतमें प्राप्त होनेसे मोक्षका सबके पीछे कथन है ।
इह पुण्य-पाप-ग्रहणं ।। च कर्तव्य ।। नव-पदार्थाः ।। इति	= यहां पुण्य और पापका ग्रहण भी करना चाहिये । नो पदार्थ ऐसे
अन्यैः ।। अपि* उक्तत्वात् ।। । न कर्तव्यम् ।।	= और [आचार्यों] ने भी कहे है । [उत्तर] नहिं करना चाहिये ।
तयोः ।। आस्रवे ।। बंधे ।। च अंतर्भावात् ।। यदि एवम्	= क्योंकि दोनोंको आस्रव और बन्धमें गर्भित किया है । जो ऐसे है तो

१। वच्+स्यते (= भविष्यत् कालका प्रत्यय आत्मनेपदी एक वचन अन्यपुरुष) = वक्+ष्यते (टिप्पणी पृष्ठ १४—१५) =वक्ष्यते = कहैगा प्रतिष्ठार्थ=कहेंगे । २ संवृत शब्द तीनों लिंगमें आता है इससे लिंग नहीं लिखा है ।

—आस्रवादिग्रहणमनर्थकम्, जीवाजीवयोरन्तर्भावात् । नानर्थकम् । इह मोक्षः प्रकृतः सोऽवश्यं निर्देष्टव्यः । स च संसारपूर्वकः । संसारस्य प्रधानहेतुरास्रवो बन्धश्च । मोक्षस्य प्रधानहेतुः संवरो निर्जरा च । अतः प्रधानहेतुहेतुमत्फलनिदर्शनार्थत्वात्पृथगुपदेशः कृतः ॥

जीव-अजीवयोः अतर्भावात् आस्रव आदि	=जीव अजीवमें गर्भित होनेसे आस्रव बंध-संवर-निर्जरा तथा मोक्षका भी
ग्रहणम् अनर्थकम्	=ग्रहण व्यर्थ है । [तब जीव-अजीव दो तत्व कहने थे]
न अनर्थकम्	=[आचार्य कहते हैं]व्यर्थ नहीं है ।
इह मोक्षः प्रकृतः	=यहां मोक्ष अधिकृत है अर्थात् इस तत्त्वार्थ सूत्रमें मोक्षका प्रकरण है
सः[1] अवश्य निर्देष्टव्यः । सः च संसारपूर्वकः	=सो अवश्य कहना चाहिये और वह [मोक्ष] (संसारसे होती) है ।
संसारस्य प्रधानहेतुः आस्रवः बन्धः च	=संसारके मुख्य कारण आस्रव और बन्ध हैं।
मोक्षस्य प्रधानहेतुः संवरः निर्जरा च	=मोक्षका मुख्य कारण संवर और निर्जरा है ।
अतः ※ प्रधानहेतु—	=इसलिये मुख्य साधन [आस्रव और बन्ध, संवर और निर्जरा तथा]
हेतुमत्फल—निदर्शन—अर्थत्वात्	=साधनयुक्त [=साधन सहित] फल [मोक्ष] दिखलानेका अभिप्राय होनेसे
पृथक् ※ उपदेशः कृतः ॥	=भिन्न उपदेश [सातों तत्त्वोंका] किया है ॥

यहांपर भावार्थ ऐसा है कि प्रश्न कर्ता दो तत्व जीव और अजीवका वर्णन किया जाना स्वीकार करता है अन्य पांच तत्वों में तर्क है । उत्तरमें कहते हैं कि तत्त्वार्थसूत्रमें मोक्षमार्गका प्रकरण वा विषय है अतः मोक्षका निरूपण यहांपर करना अभीष्ट है और वह मोक्ष संसारपूर्वक [=से] होता है । संसारके प्रधान साधन आस्रव—बन्ध हैं और मोक्षके प्रधानहेतु संवर—निर्जरा हैं । एवं संसारके साधनभूत आस्रव—बन्धका निरूपण और मोक्षके साधन संवर—निर्जराका निर्देश और साध्यरूपफल [=हेतुमत्फल] मोक्षका निरूपण पृथक् पृथक् कहना आवश्यक समझा है ।

(१) स और एषः का अन्तका स् अथवा विसर्ग जब सः वा एषः के पश्चात् वाक्यमें कोई व्यंजन आवे तो गिरजाता है । सः पुरुषः = सपुरुषः

दृश्यते हि सामान्येऽन्तर्भूतस्यापि विशेषस्य यथोपयोगं पृथगुपादानं प्रयोजनार्थम् । क्षत्रिया आयाताः सुरवर्मापीति ॥ तत्त्वशब्दो भाववाचीत्युक्तः स कथं जीवादिभिर्द्रव्यवचनैः सामानाधिकरण्यं प्रतिपद्यते ? ॥ अव्यतिरेकात्तद्भावाध्यारोपाच्च सामानाधिकरण्यं भवति । यथा उपयोग एवात्मेति ॥ यद्येवं तत्तल्लिङ्गसंख्यानुवृत्तिः प्राप्नोति । विशेषणविशेष्यसम्बन्धे सत्यपि शब्दशक्ति–

दृश्यते T हि * सामान्ये ७ा अन्तर्भूतस्य ६ा अपि = क्योंकि (= हि) देखा जाता है कि सामान्यमें गर्भित हैं तो भी
विशेषस्य ६ा = मुख्यका
पृथक् * उपादानं १ प्रयोजनं-अर्थम् २ा यथोपयोगं * = न्यारा ग्रहण प्रयोजनकेलिये आवश्यकता अनुसार [यथा-उपयोग] किया जाता है
क्षत्रियाः १ा आयाताः १ा सुरवर्मा १ा अपि इति * = जैसे क्षत्री आगये (आयाता) सुरवर्मा (क्षत्री) भी [आगया] है
तत्त्वशब्दः १ा भाववाची १ा इति उक्तः १ा सः १ कथं * = तत्त्व शब्द (सूत्रमें) भाववाची है ऐसा कहा जाता है सो कैसे [तत्त्व शब्द]
जीवादिभिः ३ा द्रव्यवचनैः ३ा = जीव-अजीव-आश्रव-बन्ध-संवर-निर्जरा मोक्ष द्रव्यवाची शब्दोंके सा
सामानाधिकरण्यं २ा प्रतिपद्यते T अव्यतिरेकात् ५ा = समानाधिकरणताको प्राप्त होता है। (जीवादि और तत्त्व दोनों) अभेदरूप होनेसे
च तत्-भाव-अध्यारोपात् ५ा = और उस (तत्त्व) का भाव [जीवादिमें] लगानेसे [अध्यारोपात]
समानाधिकरण्यं १ा भवति T = समानाधिकरण (तत्त्वका जीवादिकके साथ) हो जाता है अर्थात् द्रव्य, और भाव दोनोंमें अभेदपना होनेसे समानाधिकरण बनता है
यथा* उपयोगः १ा एव आत्मा १ा इति । यदि एवं = जैसे उपयोग (ज्ञान-दर्शन) ही चेतना है ऐसा (कहना) है जो इसप्रकार है तो
तत्-तत्-लिंग-संख्या- = उन (तत्-जीवादि सातोंके उन) तत्त्वशब्द में लिङ्ग संख्याकी अनुवृत्ति
अनुवृत्तिः १ा आप्नोति । = प्राप्त होती है । अर्थात् मोक्षाः बहुवचन पुलिंग है वैसे ही तत्त्व भी बहुवचन
विशेषण-विशेष्य- = पुंलिंग चाहिये । (उत्तर) विशेषण (जीवादि) और विशेष्य [तत्त्व] के
संबंधे ७ा सति ७ा अपि शब्द-शक्ति = संबंध होनेपर भी शब्दकी शक्तिकी

व्यपेक्षया उपात्तलिङ्गसङ्ख्याव्यतिक्रमो न भवति ॥ अयं क्रम आदिसूत्रेऽपि योज्यः ॥ एवमेषामुद्दिष्टानां सम्यग्दर्शनादीनां जीवादीनां च संव्यवहारविशेषव्यभिचारनिवृत्त्यर्थमाह। नामस्थापनाद्रव्यभावतस्तन्न्यासः

व्यपेक्षया ३ उपात्त–लिङ्गसङ्ख्या— = अपेक्षासे पाईहुई (प्राप्त गृहीत) लिंग संख्याका

व्यति–क्रमः १ न भवति ॥ अयं १ क्रमः–आदि– = विपर्यय नहीं होता है। यह नियम प्रथम

सूत्रे ७ अपि* योज्यः १ = सूत्रमें भी योग्य लागू हुआ है अर्थात् पहिले सूत्रमें सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्राणि बहुवचन नपुंसक लिंग है और मोक्षमार्गः एकवचन पुलिंग है।

एवं एषाम् ६ उद्दिष्टानां ६ सम्यग्दर्शनादीनाम् ६ =इस प्रकार ये कथित सम्यग्दर्शन–सम्यग्ज्ञान–सम्यक्चारित्र।

च जीवादीना ६ संव्यवहार–विशेष =और (=च) जीवादि (सात तत्वों) का लोकव्यवहारमें [अनेकप्रकार] विशेष

व्यभिचार–निवृत्ति–अर्थम् १ =दोष (आता) है तिनके–निराकरण करनेके लिये (आचार्य उत्तर सूत्र)

आह T कहते हैं। अर्थात् भिन्न भिन्न मतवाले सम्यग्दर्शनादि तथा जीवादि सात तत्वोंका स्वरूप नानाप्रकारसे मानते हैं और उन सम्यग्दर्शनादि और जीवादिकका 'यथार्थ स्वरूप समझे विना अन्यथापन' आता है तिस विशेष व्यभिचार अथवा नानाप्रकारके दोषोंका निराकरण करनेके लिये "नामस्थापना" इत्यादि सूत्र कहा जाता है॥

नामस्थापनाद्रव्यभावतस्तन्न्यासः ॥ ५ ॥

नाम–स्थापना–द्रव्य–भावतः तद्– =नाम, स्थापना, द्रव्य, और भावसे उन [सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जीवादि

न्यासः १ =तत्वोंका] निक्षेप अथवा लोक व्यवहार [न्यास] होता है अर्थात्

[क] गुण जाति द्रव्य और क्रियाकी अपेक्षा विना ही अपनी इच्छानुसार लोकव्यवहारके लिये किसी पदार्थकी संज्ञा करनेको नाम निक्षेप कहते हैं। जैसे किसी पुरुषका नाम इन्द्रराज है परन्तु उसमें इन्द्रके समान गुण जाति द्रव्य किया कुछ भी

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों सम्प्रदायोंमें एकसा है सभाष्य० पृष्ठ ९, १० सूक्ष्मदृष्टिसे पढ़ो)

अतद्गुणे वस्तुनि संव्यवहारार्थं पुरुषाकारान्नियुज्यमानं संज्ञाकर्म नाम ।

नहीं है। उसके माता पिताने केवल व्यवहारार्थ नाम रख लिया है । लोकमें ब्रह्मदत्त, कृष्णचन्द्र, बलभद्र, जिनदत्त, हाथीसिंह, रत्नसिंह, मोतीसिंह, इत्यादि नाम रख लेते हैं । गुण जाति द्रव्य क्रियाकी अपेक्षासे ये नाम नहीं रक्खे जाते, इसीको नाम निक्षेप कहते हैं।

[ख] धातु, काष्ठ, पाषाण, मिट्टीके चित्रादिक तथा गोटोंके खेलमें घोड़ा हाथी-नृपति-मनुष्य-इत्यादिक तदाकाररूप अथवा अतदाकाररूप मान लेना वा कल्पना कर लेना सो स्थापना निक्षेप है। जो पदार्थ जिस आकारका हो उसको वैसा ही पत्थर काष्ठ मृत्तिकादिका बनाकर उसमें उसीकी स्थापना करनेको तदाकार स्थापना कहते हैं और जिसमें वस्तुका यथार्थ आकार न हो ऐसे किसी भी पदार्थमें किसीकी कल्पना वा स्थापना करनेको अतदाकार स्थापनाकहते हैं। जैसे महावीर स्वामीकी वीतरागरूप जैसीकी तैसी शान्तमुद्रायुक्त धातु पाषाणमय प्रतिमाकी प्रतिष्ठा करना यह तदाकार स्थापना है और किसी खेलमें गोटोंमें नृप-ऊंट-अश्व—हाथी इत्यादिकी कल्पना करना सो अतदाकार स्थापना है ॥ नाम निक्षेप और स्थापना निक्षेपमें यह भेद है कि पहिलेमें पूज्य अपूज्यका भाव नहीं है दूसरेमें प्रतिष्ठा-आदर और पूज्यबुद्धि होती है।

(ग) जो भूत भविष्यत् पर्यायकी मुख्यता लेकर वर्तमानमें कहना सो द्रव्य निक्षेप है जैसे भविष्यत्में होनेवाले राजपुत्र, अर्थात युवराजको राजा कहना अथवा कोई पुरुष जो पहले राजा वा मंत्री था अब मंत्री पदसे च्युत कर दिया गया हो उसको अब भी मंत्री महाशय कहके बात चीत करना।

(घ) जिस पदार्थकी वर्तमानमें जो पर्याय हो उसको उसी रूप कहना सो भाव निक्षेप है जैसे राज्य करता हो उसीको राजा कहना ।

पदच्छेद तथा विभक्त्यर्थसहित इस सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः भाषानुवाद ॥

अतद्गुणे ७।१ वस्तुनि ७।१ संव्यवहार-अर्थं १।१	= पदार्थमें वह गुण (क्रिया-जाति-द्रव्य) न होने पर लोक व्यवहारके लिये
पुरुषाआकारात् ५।१ नियुज्यमान १।१	= हठसे वा आग्रहसे नियत किया हुआ
संज्ञाकर्म १।१ नाम १।१	= नाम रखना सो नाम (निक्षेप) है

काष्ठपुस्तचित्रकर्माक्षनिक्षेपादिषु सोऽयमिति स्थाप्यमाना स्थापना । गुणैर्द्रोष्यते गुणान्द्रोष्यतीति वा द्रव्यम् । वर्तमान तत्पर्यायोपलक्षितं द्रव्यं भावः ॥ तद्यथा । नामजीवः, स्थापनाजीवः,

काष्ठ-पुस्त-चित्रकर्म-अक्ष-निक्षेपादिषु [७।१]	= काठ, पुस्तक, मूरत बनाने (= चित्रकर्म) और फासा फेंकने आदिमें
सः [१।१] अयम् [१।१] इति * स्थाप्यमाना [१।११]	= वह (= सः) यह है ऐसे संस्थापन, आरोपण वा कल्पना करना
स्थापना [१।११] (न्यासः [१।१]) गुणैः [३।१] द्रोष्यते T	= (सो) स्थापना (निक्षेप) है । गुणोंकरि (जो) परिणाया जायगा वा प्राप्त किया जायगा [ऐसा द्रव्य है
वा * गुणान् [२।१] द्रोष्यति T इति * द्रव्यम् [१।११]	= (सो द्रव्य है) अथवा [= वा] गुणोंको (जो) परिणवैगा प्राप्त होगा
वर्तमान-तत्-पर्याय-उपलक्षितं [१।११] द्रव्यं [१।११]	= उपस्थित वा विद्यमान वही (उसी ही) पर्यायसहित द्रव्य
भावः [१।१] तद्यथा * नामजीवः [१।१] स्थापनाजीवः [१।१]	= सो भाव (निक्षेप=न्यास) है । जैसे नाम जीव, स्थापना जीव,

(१) क—गुणपर्यायवद्द्रव्यम् (तत्त्वार्थसूत्र अध्याय ५ सूत्र ३८) गुण और पर्यायसंयुक्त द्रव्य है ॥ सूत्र ५ में गुणको प्रधानकरि द्रव्य की परिभाषा दी है और भविष्यत्काल (लृट्) के कर्मणि प्रधान और कर्तरि प्रधानमें है अर्थात् द्रु भ्वादि प्रथम गणका धातु है इसको गुण संज्ञक होनेसे द्रो हो जाता है, स्यते-भविष्यत्काल (लृट् लकार) का कर्मणि प्रधान प्रत्यय है और स्यति भविष्यत्काल (लृट् लकार) का कर्तरि प्रधान प्रत्यय है । द्रो+स्यते । द्रो+स्यति । स का परिवर्तन ष में टिप्पणी पृष्ठ १५ से लेकर द्रोष्यते (प्राप्त किया जायगा) द्रोष्यति (प्राप्त होगा) रूप हुए । (ख)—इस सूत्रकी टिप्पणी २ में भी गुणको मुख्य मानकरि द्रव्यकी परिभाषा भूतकृदन्तमें (जो धातुमें त निष्ठा प्रत्यय जोडनेसे बनता है) दी है हमारी समझमें यहांपर सामान्यभूतकालके अर्थमें भूतकृदन्तको लिया है ॥ गुणैर्गुणान्वा द्रुतं गतं प्राप्तमिति द्रव्यमित्यप्यधिकः पाठः पुस्तकान्तरे दृश्यते ॥

गुणैः [३।१] द्रुतं [१।१] । गतं प्राप्तम् [१।११] इति द्रव्यम्	= गुणोंकरि जो प्राप्त (=द्रुत-गतं) किया गया ऐसा द्रव्य है
वा गुणान् [२।११] द्रुतं [१।११] गतं [१।११] प्राप्तम् [१।११]	= अथवा गुणोंको जिसने प्राप्त किया (द्रुतं-गतं) ऐसा द्रव्य है ॥
अपि अधिकः [१।१] पाठः [१।१] पुस्तकान्तरे [७।११] दृश्यते इति	= इसप्रकार भी अधिक पाठ अन्य पुस्तकोंमें देखा गया है ॥

(ग)—अध्याय ५ सूत्र २ की वृत्तिमें "यथास्व पर्यायै द्रूयन्ते द्रवन्ति वा तानि द्रव्याणि" यहां पर्यायको मुख्य मानकर वर्तमान कालमें द्रव्य की परिभाषा है ॥ स्वरूपके अनुसार पर्यायोंकरि प्राप्त किये जाते हैं अथवा जो पर्यायोंको प्राप्त होते हैं वे द्रव्य हैं इस प्रकार द्रव्यकी परिभाषा गुणको मुख्य और पर्यायको प्रधान करि भूत भविष्यत् वर्तमान तीनों क्रियायोंमें कही है ॥

द्रव्य निक्षेपका मानचित्र जो सचारों औरोंको लागू होता है

- **आगम द्रव्य निक्षेप अर्थात्**
  आत्मा जो किसी वस्तुको जानता तो हो परन्तु उसका उपयोग ध्यान या चितवन उस समय उस ज्ञात वस्तुकी ओर न हो जैसे किसी ज्योतिषी- को जबकि वह स्नान कर रहा हो ज्योतिषी कह कर बुलाना
- **नो आगम द्रव्य निक्षेप अर्थात्**
  किसी वस्तु के जानने वाले के शरीर को ज्ञाता कहना, इसके तीन भेद हैं
  - **(१) ज्ञायक शरीरनो आगम द्रव्य निक्षेप**
    - अतीत ज्ञायक शरीर नो आगम द्रव्यनिक्षेप अर्थात् किसी पदार्थके कथनके ज्ञाता(पुरुष)का शरीर पूर्वमें उसकथनको जानताथा अवधि पूर्णहो- जानेपरवह ज्ञान जाता- रहा तबभी उसशरीरको भूतज्ञायकशरीर कहना
    - अनागत ज्ञायक शरीर नो आगम द्रव्यनिक्षेप अर्थात् किसी पदार्थके कथनकेज्ञाता(पुरुष)का शरीर उसकथनका जानकार नहीं है परन्तु आगामीकालमें उसकथनको जानेगा तब भीउसको इससमय जानकार कहनासोभविष्यत् ज्ञायकशरीरहै
    - वर्तमान ज्ञायक शरीर नोआगम द्रव्यनिक्षेप अर्थात् किसी पदार्थकेकथन केज्ञाता पुरुषका शरीर जान- कारतोहै परन्तु पूर्णरूपसे उसकथनका जानकारनहीं उसकोमातकररहाहैउसका यह शरीर वर्तमान ज्ञायक शरीर नोआगमद्रव्यहै
  - **(२) भाविनो आगम द्रव्य निक्षेप अर्थात्**
    किसी को जो मृत्युके पश्चात् अन्य भव पावेगा इसही भवमें उसको उस अन्यभव वाला कह देना। जैसे कोई पशुमृत्यु के पीछे मनुष्य होगा उसको इस पशु भवमें ही मनुष्य कहना
  - **(३) तद्व्यतिरिक्त नो आगम द्रव्य निक्षेप**
    - कर्म तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यनिक्षेप अर्थात् किसीके शरीरको अन्य कर्म वर्गणाओं रूप (जिनको वह अन्य भवमें पावेगा, कहना जैसेभाविनो आगम द्रव्यनिक्षेपके उक्त उदाहरणमें पशुके शरीरको मनुष्यनामक नाम कर्मके द्रव्यकर्म- वर्गणाओं रूप कहदेना
    - नो कर्म तद्व्यतिरिक्त नो आगम द्रव्यनिक्षेप अर्थात् किसीकेशरीरको नो कर्म वर्गणाओं रूप (जिनकोअन्यभवमेंपावेगा) कहना जैसे भाविनोआगम- द्रव्यनिक्षेपके दृष्टान्तमें पशु शरीरको द्रव्यनोकर्म- वर्गणा (आहारक आदिकनोकर्म वर्गणा जिनसे शरीरबनताहै) रूप कह देना.

द्रव्यजीवो भावजीव इति चतुर्धा जीवशब्दार्थो न्यस्यते ॥ जीवनगुणमनपेक्ष्य यस्य–कस्यचिन्नाम क्रियमाणं नामजीवः। अक्षनिक्षेपादिषु जीव इति वा मनुष्यजीव इति वा व्यवस्थाप्यमानः स्थापनाजीवः॥

द्रव्यजीवः १।१ भावजीवः १।१ इति चतुर्धा *	= द्रव्यजीव, भावजीव ऐसे चार प्रकार
जीव-शब्द अर्थः १।१ न्यस्यते T जीवनगुणम् २।१	= जीव शब्दका अर्थ स्थापित वा निक्षेप किया जाता है। जीवन गुणकी
अनपेक्ष्य। यस्य ६।१ कस्याचित्* नाम १।११	= अपेक्षा न करके जिस किसीका नाम
क्रियमाणं १।११ नामजीवः १।१	= रक्खा गया वा किया गया सो नाम जीव (निक्षेप) है जैसे—किसीने अपने कार्यालयका नाम जीव रख लिया इस अवस्थामें पत्र सूचना इत्यादि सर्व उसी 'जीव' कार्यालयमें आवैंगे यद्यपि उस कार्यालयमें जीवन गुण नहीं पाया जाता है) इस संज्ञाका नाम जीव कहैंगे ॥
वो* अक्षनिक्षेप-आदिषु ७।१ जीवः १।१ इति	= फांसाके फेंकने आदिमें जीव ऐसा
व्यवस्थाप्यमानः १।१ स्थापनाजीवः १।१	= आरोपण किया हुआ (= व्यवस्थाप्यमान) सो स्थापना जीव है (जैसे किसी गोटमें जो जड़ पदार्थ है यह स्थापना कर ली कि इसको प्रत्येक व्यवहारमें 'जीव' कहैंगे)
वा [अक्षनिक्षेपादिषु ७।३] मनुष्यजीवः १।१	= अथवा फांसाके फेंकने आदिमें (किसी गोटमें विशेष रूपसे) मनुष्य जीव
इति व्यवस्थाप्यमानः स्थापनाजीवः १।१	= ऐसी स्थापना करना सो स्थापना जीव निक्षेप है [जैसे किसी गोटको जब काममें लाया जावै तब कहा जावै कि यह मनुष्य जीव है यद्यपि वह गोट जड है]

(१) न्यस्यते –'यह शब्द = नि + अस् + य + ते—अस् = फेकना दिवादि चतुर्थ गणके सकर्मक परस्मैपद धातुमें कर्मणि प्रधान य प्रत्यय जोड़कर पीछे ते वर्तमानकाल अन्य पुरुष एक वचन आत्मनेपदी क्रियाका प्रत्यय लगा देनेसे बनता है ॥ अस् = होना अदादिगण अकर्मक भी धातु है इसमें य प्रत्यय यहां नहीं लगाया है ॥

द्रव्यजीवो द्विविधः। आगमद्रव्यजीवः। नोआगम द्रव्यजीवश्चेति ॥ तत्र जीवप्राभृतज्ञायी मनुष्य-जीवप्राभृतज्ञायी वा अनुपयुक्त आत्मा आगमद्रव्यजीवः ॥ नोआगमद्रव्यजीवस्त्रेधा व्यवतिष्ठते। ज्ञायकशरीर–भावि–तद्व्यतिरिक्तभेदात्।

द्रव्यजीवः $^{1}_{1}$। द्विविधः $^{1}_{1}$ आगमद्रव्यजीवः $^{1}_{1}$	=द्रव्य जीव दो प्रकार है आगम द्रव्यजीव
च * नोआगमद्रव्यजीवः $^{1}_{1}$ इति * तत्र *	=और (=च) नो आगम द्रव्यजीव इस प्रकार हैं। तहां
जीव–प्राभृत–ज्ञायी $^{1}_{1}$	=जीवके कथनके शास्त्रको (प्राभृत जैसे गोम्मट्टसारमें जीवकांडको) जाननेवाला
अनु उपयुक्तः $^{1}_{1}$। आत्मा $^{1}_{1}$ आगम द्रव्यजीवः $^{1}_{1}$।	=उपयोगरहित चेतन आगमद्रव्यजीव है अर्थात् जिस कालमें उस जीवके कथनके आगमको जाननेवाले आत्माका (उस शास्त्रमें) ध्यान वा चितवन हो उस कालमें उस आत्माको आगम द्रव्यजीव कहते हैं।
वा मनुष्य–जीव–प्राभृत–	=अथवा [विशेषरूपसे] वह आगम जिसमें मनुष्यके जीवका कथन हो
ज्ञायी $^{1}_{1}$	=उसका ज्ञाता [=ज्ञायिन्। इस मनुष्य जीव प्राभृतमें]
अनुपयुक्तः $^{1}_{1}$ आत्मा $^{1}_{1}$ आगम द्रव्यजीवः $^{1}_{1}$	=उपयोगरहित–लक्ष्यरहित [जिस समय हो] सो आगमद्रव्यजीव है
नोआगम द्रव्यजीवः $^{1}_{1}$ त्रेधा * ज्ञायकशरीर–	=नोआगमद्रव्य जीव तीन प्रकार ज्ञायक शरीर
भावि–तद्व्यतिरिक्त–भेदात् $^{5}_{1}$। व्यवतिष्ठते ^{T}	=भावि, तद्व्यतिरिक्त भेदसे व्यवस्थित हैं वा विशेषकरि विद्यमान हैं

(१) विसर्गके पीछे च अथवा छ आवे तो वह विसर्ग श् में पलट जाता है (जैसे जीवः चेति = जीवश्चेति) त् अथवा थ् आवे तो वह विसर्ग स् मे और ट् वा ठ् आवे तो ष् मे क्रमसे पलट जाता है जैसे जीवः त्रेधा = जीवस्त्रेधा। रामः टीकते = रामष्टीकते ॥ (२) व्यवतिष्ठते स्था भ्वादि प्रथम गणका परस्मैपद धातु है। इस धातुको जब प्रयोगमें आती है तो विना किसी व्याकरणके नियमके 'तिष्ठ' हो जाता है भ्वादि गणका अ विकरण है ति परस्मैपद, अन्यपुरुष एकवचन वर्तमान कालकी क्रियाका चिन्ह लगानेसे तिष्ठति = ठहरता है परन्तु अव उपसर्ग लगानेसे, अथवा वि+अव दोनों उपसर्ग लगानेसे यह आत्मनेपदी हो जाते है और अवतिष्ठते व्यवतिष्ठते रूप बन जाते है ते आत्मनेपद, अन्य पुरुष, एकवचन वर्तमान कालकी क्रियाका प्रत्यय है ॥

तत्र ज्ञातुर्यच्छरीरं[1] त्रिकालगोचरं तज्ज्ञायकशरीरम्। सामान्यापेक्षया नोआगमभाविजीवो नास्ति। जीवनसामान्यस्य सदापि विद्यमानत्वात्॥

=अर्थात् नो आगम द्रव्य जीवके ज्ञायक शरीर नोआगम द्रव्य जीव [२] भावी नोआगम द्रव्यजीव [३] तद्व्यतिरिक्त नोआगम द्रव्यजीव ये तीन भेद है ।

तत्र * ज्ञातुः ६। यत् १॥ शरीरं १॥ त्रि- काल-गोचरं १॥ तत् १॥ ज्ञायकशरीरम् १॥ =तहां ज्ञाताका जा [=यत्] शरीर तीन [भूत-भविष्यत्-वर्तमान] =कालसंबंधी [=कालगोचर] वह ज्ञायक शरीर [नोआगमद्रव्य जीव]है भावार्थःजीवके कथनके शास्त्रके ज्ञाता(पुरुष)का शरीर पूर्वमें जीवके कथनके शास्त्रको जानता था अवधि पूर्ण हो जानेपर वह ज्ञान जाता रहा तबभी उस शरीरको भूतज्ञायक शरीर नो आगम द्रव्य जीव कहते है॥ जो शरीर जीव के कथनके शास्त्रका जानकार नहीं परंतु आगामीकालमे उस कथनको जानेगा तबभी उसको इस समय जीवके कथनके शास्त्रका जानकार कहना सो भविष्यत्ज्ञायक शरीर नोआगमद्रव्य जीवहै॥ जो शरीर जीवके कथनके शास्त्रका जानकार तोहै परंतुपूर्ण रूपसे उस कथनको जानकार नहीं हुआ है उसको प्राप्त कर रहाहै उसका वहशरीर वर्तमान ज्ञायक शरीर नोआगम द्रव्य जीवहै ॥ स्मरण रहै कि भविष्यत् ज्ञायक शरीरमें जीवके शास्त्रका जानने वाला (ऐसा ज्ञायक) शरीरहै परन्तु भावीनो आगमद्रव्य में जो शरीर आगे जाकर मनुष्य आदि जीवन पर्याय प्राप्त करैगा उन्हें उनके शास्त्र जानने की अवश्यकता नहीं है। अज्ञायक होकर ही प्राप्तकर सकेगा ऐसे ज्ञायक पना और अज्ञायक पनाका दोनों में भेद वा अंतर है। आगम द्रव्य में आत्माका ग्रहण किया है नोआगम द्रव्य में उसके परिकर शरीर कर्म वर्गणा आदिका ग्रहण किया है ॥

सामान्यअपेक्षया ३॥ नोआगम भाविजीवः१। न*अस्ति I=सामान्य वा विशेष रहित अपेक्षासे नो आगम भावी द्रव्यजीव नहीं है अर्थात् सामान्य विधानसे शास्त्रका ज्ञाता भविष्यत् में होने वाला जीव नहीं हो सक्ता है

जीवनसामान्यस्य ६॥ सदापि* विद्यमानत्वात् ५॥ =क्योंकि जीवन-सामान्य सदा ही विद्यमानहै अर्थात् जीव जीवन भावकरिसदैवहैही

(१) तत्—त्के पश्चात् च्-छ्-ज्-झ्-ञ् मेसे कोई अक्षर आवै तो इसका परिवर्तन च् में होजाता है जैसे तत्+छद्मस्थेषु =तच्छद्मस्थेषु, यत्+छरीर=यच्छरीर। अष्टाध्यायी ८-४-४० । तत् ज्ञायक= तज् ज्ञायक, टिप्पणी पृष्ठ १५ देखो। ( ) जब किसी शब्द वा रूपके

विशेषापेक्षया त्वस्ति गत्यन्तरे जीवो व्यवस्थितो मनुष्यभवप्राप्तिं प्रत्यभिमुखो मनुष्यभाविजीवः[1]। तद्व्यतिरिक्तः कर्म नोकर्म विकल्पः॥

विशेष–अपेक्षया ३॥ तु* (नोआगमभाविजीवः १।)	=परंतु विशेष अपेक्षासे [नोआगम भावी द्रव्यजीव] होता है।
अस्ति I गति-अन्तरे ७॥। जीवः १।व्यवस्थितः १। मनुष्य-	=[जैसे कोई] जीव जो अन्यगति में विद्यमान है (और) नर
भवप्राप्तिं २॥ प्रति* अभिमुखः १।	=भव पानेको उपस्थित (सन्मुख) है (उसको उस ही अन्य गतिमेंही मनुष्य कहना सो)
मनुष्य–भावि–जीवः १।	=मनुष्यभावो [नो आगम द्रव्य] जीव है [इस भावी नो आगमद्रव्य जीव निक्षेपमें जीव तत्त्वके ज्ञानकी वा जीवतत्व के जाननेकी अपेक्षा नहीं है] अर्थात् जो शरीर आगे भव में जाकर मनुष्यादि जीवनेपर्याय प्राप्त करैगा उसको जीव तत्वके ज्ञान प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं है वह अज्ञायक हो करही मनुष्यादि भव प्राप्त करसकैगा
तद्—	=उन[ज्ञायक शरीर नो-आगम द्रव्य जीव निक्षेप, भावी नो आगम द्रव्य जीव निक्षेप]से
व्यतिरिक्तः १।	=भिन्न [नो आगमद्रव्य जीव निक्षेप] अर्थात् तद्व्यतिरिक्त नोआगम द्रव्यजीव निक्षेप ऐसो
कर्म–नोकर्म–विकल्पः १।	=कर्म, नोकर्म दो भेदरूप है भावार्थ सामान्य जीव अपेक्षासे तो किसी कर्म के उदयसे जीव नहीं होता है और विशेष जीव अपेक्षा मनुष्य नामा नामकर्म के द्रव्यरूपकर्म वर्गणाओंको मनुष्यनाम तद्व्यतिरिक्त नो आगम द्रव्य मनुष्य जीव कहते है और (२) मनुष्य आहारादिक

अन्तमें क्-ख्-ग्-घ्। च्-छ्-ज्-झ्। ट्-ठ्-ड्-ढ्। त्-थ्-द्-ध्। प्-फ्-ब्-भ् में से कोई एक अक्षर विद्यमान हो और श् इन बीस अक्षरों में से किसी के पश्चात् हो और इस श् के परे–पीछे कोई स्वर अथवा य्-र्-ल्-व्-ह्-ङ्-ञ्-ण्-न्-म् हो तो यह श् विकल्पकरिके छ् में पलट जाता है जैसे यत्+शरीर अथवा यच्+शरीर =यच्छरीर। (१) मनुष्यभावी=भविष्यत् समयमें होनेवाला मनुष्य। (२) प्रति अव्ययके पहिले जो संज्ञा आती है वह द्वितीया विभक्तिमें होती है जैसे प्राप्तिम्—प्रति।

भावजीवो द्विविधः । आगमभावजीवो नोआगम भावजीवश्चेति । तत्र जीवप्राभृतविषयोपयोगाविष्टो मनुष्यजीव प्राभृतविषयोपयोगयुक्तो वा आत्मा आगम भावजीवः । जीवनपर्यायेण मनुष्य जीवत्वपर्यायेण वा समाविष्ट आत्मा नोआगम भावजीवः ॥

	करता है जिससे शरीर वृद्धिको प्राप्त होता है यह नोकर्म है इसलिये आहारादिक तद्व्यतिरिक्तका दूसरा भेद नोकर्म द्रव्य जीव है
भावजीवः ${}^{1}_{1}$ द्विविधः ${}^{1}_{1}$ आगमभावजीवः ${}^{1}_{1}$	=भावजीव (निक्षेप) दो प्रकार है। आगमभावजीव (निक्षेप)
च नोआगम भावजीवः ${}^{1}_{1}$ इति तत्र	=और (=च) नोआगम भावजीव (निक्षेप) ऐसे हैं। तहां
जीव—प्राभृत—विषय—	=जीवके (कथनका) शास्त्रके अभिधेय (=विषय) वा वाच्य अर्थ [विषयके]
उपयोग—आविष्टः ${}^{1}_{1}$	=चिंतवन आदि व्यापारमें (=उपयोग) लगा हुआ अथवा लिप्त (आविष्ट)
आत्मा ${}^{1}_{1}$ आगम भावजीवः ${}_{1}$ ।	=आत्मा (सो) आगम भावजीव (निक्षेप) है
वा मनुष्य जीव—प्राभृत विषय—	=वा [विशेष अपेक्षासे] मनुष्य जीवके [कथनका] शास्त्रके अभिधेय
उपयोगयुक्तः ${}^{1}_{1}$ आत्मा ${}^{1}_{1}$ आगम भावजीवः ${}^{1}_{1}$	=उपयोगसहित चेतना सो मनुष्य आगम भाव जीव [निक्षेप] है
जीवन—पर्यायेण ${}^{1}_{3}$ समाविष्टः ${}^{1}_{1}$ आत्मा ${}^{1}_{1}$	=जीवन पर्यायकरि संयुक्त [=समाविष्ट] चेतना
नो आगमभाव जीवः ${}_{1}$ ।	=सो नोआगम भाव जीव [निक्षेप] हैं
वा मनुष्य जीवत्व—पर्यायेण ${}^{1}_{3}$ समाविष्टः ${}_{1}$ ।	=अथवा [विशेष अपेक्षाकरि] मनुष्य जीवन पर्यायकरि संयुक्त [आविष्ट]
आत्मा ${}^{1}_{1}$ नोआगम भावजीवः ${}_{1}$ ।	=चेतना सो मनुष्य नोआगम भाव जीव [निक्षेप] है ॥

१ औदारिक—वैक्रियिक—आहारक—शरीर	=औदारिक, वैक्रियिक, आहारक शरीर
त्रयस्य ${}^{111}_{6}$ च षट्पर्याप्तीनां ${}^{1}_{6}$	=तीनोंके और छह (आहार-शरीर-इन्द्रिय-श्वासोच्छ्वास भाषा मन) पर्याप्तियोंके
योग्य—पुद्गलानाम् ${}^{1}_{3}$ आदानं ${}^{111}_{1}$ नोकर्म ${}^{111}_{1}$	=योग्य पुद्गल परमाणुओंका ग्रहण करना नोकर्म है ॥

एवमितरेषामपि पदार्थानामजीवादीनां नामादिनिक्षेपविधिर्नियोज्यः। स किमर्थः[1] ? अप्रकृतनिराकरणाय प्रकृतनिरूपणाय च॥ निक्षेपविधिना नामशब्दार्थः प्रस्तीर्यते[2]॥

एवम् इतरेषाम् ६/३। अपि अजीवादीनाम् ६/३।	=इसप्रकार अन्य भी अजीवादिक
पदार्थानाम् ६/३ नाम–आदि–निक्षेप–विधिः १/१	=पदार्थोंके नामादि निक्षेप विधि
नियोज्यः १/१। सः १/१ किमर्थः १/१।	=लगालेनी चाहिये। वह [निक्षेप विधि] किस प्रयोजनके लिये है ?
अप्रकृत–निराकरणाय ४/१।	=[उत्तर] प्रकरणरहित [के कथन] को पृथक् करनेके लिये
च प्रकृत–निरूपणाय ४/१।	=और जिसका विषय है उसको कहनेके लिये [यह निक्षेपादि विधि] है [अर्थात् लोकव्यवहार अभिप्रायके अनुकूल, और उचित प्रकारसे चला करनेकेलिये जिस वस्तुका जो वाच्य [अर्थ] प्रकृतमें है जिस रूपमें उपयोगी है उसका वही अर्थ ग्राह्य हो, उसके विरुद्ध न हो यह निक्षेप विधि है]
निक्षेपविधिना ३/१। नामशब्दार्थः १/१। प्रस्तीर्यते ।	=निक्षेप विधि करि नाम वा संज्ञा शब्दोंका अर्थ विस्तृत किया गया है। अर्थात् इस निक्षेप विधिसे व्याकरणके अनुसार जो नाम अथवा संज्ञा शब्द हैं उनके अभिप्रायका वखान वा वर्णन किया गया है नाम शब्दार्थके अतिरिक्त अन्य शब्दोंके अर्थोंके विवरण वा प्रस्तारसे यह निक्षेप विधि लागू नहीं है॥

[१] किमर्थः ; किमर्थम् ये दोनो समासरूपमे॥ इनमें (किम् अर्थः और किम्–अर्थम्) ऐसे प्रत्येकके साथ दो २ विभक्ति नहीं हो सक्ती वरन एक एक अर्थात् किमर्थः प्रथमा विभक्ति एकवचन पुलिंग है और किमर्थम् प्रथमा विभक्ति एक वचन नपुंसक लिंग समझा जावैगा

(२) प्रस्तीर्यते—स्तृ–स्वादि–और क्र्यादि–उभयपदी–सकर्मक सेट धातु है ऋतः ६/१ इत् १/१ धातोः ६/१ (ऋतः इद्धातो अष्टाध्यायी ७-१-१००) ऋकारान्त धातु अङ्गको इकारादेश हो॥ इस इ के पश्चात् र् (उरण् रपरः १–१–५१) सूत्रसे आजाता है॥ अतः स्तृ=स्तिर्। हल् व्यंजन परे हो तो और र्–व् जिस धातुके अंतमें हो तो उस धातुका उपधा (=अंत अक्षरसे पहिलेका) इ-उ दीर्घ हो जाता है ८ २-७७। अतः स्तिर स्तीर् प्र उपसर्ग, य कर्मणि प्रत्यय, ते अन्य पुरुष, एक वचन, आत्मनेपदी, वर्तमान क्रियाका प्रत्यय लगाकर प्रस्तीर्यते बना॥

व न्यासेनाभिसम्बन्धः स्यात्। तद्विषयभावेनोपगृहीतानामप्रधानानां जीवादीनां न स्यात्। तच्छब्दग्रहणं किमर्थम्? सर्वसङ्ग्रहार्थम्। असति हि तच्छब्दे सम्यग्दर्शनादीनां प्रधानानामे-

निक्षेप-विधिना ३१ नामादिशब्द-	= निक्षेप विधिसे नाम-स्थापना-द्रव्य-भाव शब्दोंसे [परस्पर]
अर्थः ११ प्रस्तीर्यते T	= जो प्रयोजन-अभिप्राय है वह विस्तृत किया जाता है, विवरण किया जाता है अर्थात् ऐसा है कि लोकव्यवहारमें कोई मनुष्य नामको भाव समझ जाय तथा नामको स्थापना समझ जाय और स्थापनाको भावादिक जान जाय इत्यादि व्यभिचार दूर करनेके लिये और यथार्थ समझानेके लिये यह निक्षेप विधि है। द्रव्यार्थिक नयसे तो नाम निक्षेप, स्थापना निक्षेप, द्रव्य निक्षेप हैं। पर्यायार्थिक नयसे भाव निक्षेप है
तद्-शब्द-ग्रहणं ११ किमर्थम् ११। सर्व-	= [इस सूत्रमें] तद् शब्दका प्रयोग किस लिये है? सब = [सम्यग्दर्शना-
सङ्ग्रह-अर्थम् ११।	दिक तीन और जीवादि सात तत्त्वों] के समुच्चयके लिये [तद्] है
असति ७१। हि ※ तद्-शब्दे ७१ सम्यग्दर्शन-	= क्योंकि (हि-इस सूत्रमें) तद् शब्दके न होनेपर सम्यग्दर्शन
आदीनां ६। प्रधानानाम् ६१ एव ※ न्यासेन ३।	= आदि [तीन] मुख्योंका ही न्यास (= निक्षेप) शब्दसे
अभिसम्बन्धः १। स्यात् T	= संयोग वा ग्रहण होता [जीवादिक सात तत्त्वोंके ग्रहण करनेसे रहजाते]
तद्-विषयभावेन ३१ उपगृहीतानां ६।	= उन (सम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्र) के प्रकरण भावकरि स्वीकृत
अप्रधानानाम् ६१ जीवादीनाम् ६१	= गौण जीवादि सात तत्त्वोंका
न्यासेन ३। अभि सम्बन्धः ११ न स्यात् T	= (सूत्रमें तद् शब्द न लाते तो न्यास शब्दसे ग्रहण वा सम्बन्ध) न होता अर्थात् तद् शब्द सूत्रमें न लाते तो सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रका तो न्यास-निक्षेप-वा लोकव्यवहार ठहरता परन्तु जीवादि सात तत्त्वोंका निक्षेप न ठहरता

(१) कहीं कहीं पर "नाम शब्द, के स्थानमे नामादि शब्द ऐसा पाठ है॥ वहां पर कोई ऐसा अर्थ लेते है॥ हमने दो प्रकारके अर्थ लिख दिये हैं॥

तच्छब्दग्रहणे पुनः क्रियमाणे सति सामर्थ्यात्प्रधानानामप्रधानानां च ग्रहणं सिद्धं भवति ॥ एवं नामादिभिः प्रस्तीर्णानामधिकृतानां तत्त्वाधिगमः कुतः? इत्यत इदमुच्यते ।

पुनः तद्–शब्द–ग्रहणे ७/१ । क्रियमाणे ७/१ । सति ७/१	=और [=पुनः] तद् शब्दके ग्रहण किये जानेपर [उस तद् शब्दकी]
सामर्थ्यात् ५/१ । प्रधानानाम् ६/३ अप्रधानानां च	=शक्तिसे मुख्य [सम्यग्दर्शनादि] का और गौण (सप्त तत्त्वों) का
ग्रहणं १/१ सिद्धं १/१ भवति एवं नामादिभिः ३/३	=ग्रहण सिद्ध हो जाता है । इसप्रकार नामादि निक्षेप करि
प्रस्तीर्णानाम् ६/३ । अधिकृतानां ६/३ तत्त्व–	=प्रकरण वालोंके (विस्तारका सम्यग्दर्शनादि और सात तत्त्वोंका) यथार्थ
अधिगमः १/१ कुतः इति अतः इदम् १/१ । उच्यते	=ज्ञान (अधिगम) क्योंकर होता है इसलिये यह [सूत्र] कहा जाता है कि

प्रमाणनयैरधिगमः[2] ॥ ६ ॥

प्रमाण—नयैः ३/३	=सूत्रार्थ प्रत्यक्ष परोक्ष प्रमाणोंसे और द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक नयोंसे
अधिगमः १/१	=(उक्त सम्यग्दर्शनादि और जीवादि सात तत्त्वोंके स्वरूपका ज्ञान) होता है ।

पदच्छेद तथा विभक्त्यर्थसहित इस सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः भाषानुवाद ।

(१) इस सूत्रकी टिप्पणीमें प्रस्तीर्णको हम प्रमाणित कर चुके हैं ॥ भूत कृदन्तका त लगानेसे प्रस्तीर्त हुआ ॥ रेफ और दकारसे परे (रदाभ्याम् ५/२) निष्ठा (भूत कृदन्त) के त कारके स्थानमें (=निष्ठातः ६/१) न (= नः १/१) आदेश हो और पहिलेकी (=पूर्वस्य) दकारके स्थानमें (दः ६/१) भी (=च) (नकारका आदेश) हो इसलिये प्रस्तीर्न हुआ और भिद्+त=भिन्+न हुआ ॥ (देखो अध्यायी रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः ८।२।४२) यदि न् उसही शब्दमें ऋ—र्—ष् के पश्चात् आवे तो इस न्का ण् हो जाता है । यदि कोई स्वर और य्-र्-व्-ह् । क्-ख्-ग्-घ्-ङ् । प्-फ्-ब्-भ्-म् मेंसे कोई अक्षर इस न और ऋ-र्-अथवा ष् के मध्य आजावे तौ भी उक्त परिवर्तन हो जावैगा (जैसे शरीराणि—कार्माणि नारकाणाम् इत्यादि) परन्तु पदान्तमें न् होनेसे यह परिवर्तन न होगा जैसे नरान् ॥ इसलिये प्रस्तीर्ण हुआ प्रस्तीर्णानाम् षष्ठी बहुवचन नपुंसक लिंग है और प्रस्तीर्णम् नपुंसक लिंग है एकवचन है

(२) इस सूत्रका पाठ और अर्थ सामान्य अपेक्षासे एकसा है ।

नामादिनिक्षेपविधिनोपक्षिप्तानां जीवादीनां तत्त्वं प्रमाणाभ्यां नयैश्चाधिगम्यते । प्रमाणनया वक्ष्यमाणलक्षणविकल्पाः । तत्र प्रमाणं द्विविधम् । स्वार्थं परार्थं च । तत्र स्वार्थं प्रमाणं श्रुतवर्ज्यम् । श्रुतं पुनः स्वार्थं च भवति परार्थं च ।

नामादि-निक्षेप-विधिना ३।१ उपक्षिप्तानां ३।१११	=नाम–स्थापना द्रव्य भाव निक्षेप विधानसे अंगीकृत वा स्वीकृत
जीवादीनां ३।११ तत्त्वं १।११ प्रमाणाभ्यां ३।१११	=जीवादिकोंका यथार्थ स्वरूप (=तत्त्वं) प्रत्यक्ष परोक्ष प्रमाणोंसे
च* नयैः ३।१ अधिगम्यते T । प्रमाण–	=और (द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक) नयोंसे जाना जाता है । प्रमाण
नयाः ३।१ वक्ष्यमाणलक्षणविकल्पाः ३।१	=और नय आगे कहे जानेवाले लक्षण और भेदसंयुक्त हैं
तत्र प्रमाणं १।१११ द्विविधम् १।११ स्वार्थं १।१११ च	=तहां प्रमाण दो प्रकार हैं । स्वार्थ और
परार्थं १।१११ तत्र स्वार्थं प्रमाणं १।११ श्रुतवर्ज्यं १।११	=परार्थ । तहां स्वार्थ प्रमाण श्रुत (=वचन) रहित है अर्थात्
	=मतिज्ञान अवधिज्ञान मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान स्वार्थरूप ही हैं
पुनः श्रुतं १।१११ स्वार्थ १।१११ च*भवति T	=और (पुनः) श्रुतज्ञान स्वार्थ (=ज्ञानरूप) होता है (=भवति)
परार्थं १।१११ च भवति	=और (=च) परार्थ (अर्थात् वचनरूप) भी (=च) होता है [भवति]

(१) "जीवादीनां" शब्द लानेसे यह न समझलेना चाहिये कि प्रमाण और नयोंसे जीवादिक सात तत्वोंका ही ज्ञान होता है सम्यग्दर्शनादि तीनका ज्ञान नहीं होता है । हमारी समझमें जीवादीनां वाक्यके पहले सम्यग्दर्शनादीनां वाक्य रह गया है और पाठ "सम्यग्दर्शनादीनां जीवादीनां" होना चाहिये सम्यग्दर्शनादीनां प्रधान होनेसे जीवादीनां वाक्यसे प्रथम होना चाहिये अथवा यों समझ लो कि जीवादीनांमें सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र और सातो तत्व ऐसे दशों गर्भित हैं जैसा कि इसी सूत्रके नीचे दी हुई तत्वार्थराजवार्तिककी पंक्तिसे प्रगट है । "प्रमाणनयास्तैरधिगमो भवति सम्यग्दर्शनादीनां जीवादीनां=सम्यग्दर्शन आदिका (और) जीवादिका प्रमाण और नय तिनकरि ज्ञान होता है ।

(२) कहीं कहीं "प्रमाणेभ्यः" पाठ हैं वहां पांच ज्ञान लेने और यह पंचमी विभक्ति बहुवचन नपुंसक लिंग है ।

(३) गम् भ्वादि प्रथम गण–परस्मैपद धातु जाना अर्थमें है अधि उपसर्ग लगानेसे परस्मैपदी ही बना रहता है । अधिगम्=जानना । य कर्मणि प्रत्यय और ते वर्तमानकालकी क्रिया अन्यपुरुष-एकवचन-आत्मनेपदी लगानेसे अधि+गम्+य+ते=अधिगम्यते रूप (जाना गया है) इस अर्थमें बन जाता है ॥

ज्ञानात्मकं स्वार्थम् । वचनात्मकं परार्थम् ॥ तद्विकल्पा नयाः ॥ अत्राह । नयशब्दस्य अल्पाच्तरत्वात् पूर्वनिपातः प्राप्नोति । नैष दोषः । अभ्यर्हितत्वात्प्रमाणस्य तत्पूर्वनिपातः । अभ्यर्हितत्वं च सर्वतो वलीयः । कुतोऽभ्यर्हितत्वम् ? नयप्ररूपणप्रभवयोनित्वात् ॥

ज्ञान-आत्मकं १।१ स्वार्थम् १।१ वचन-आत्मक १।१	=स्वार्थ ज्ञान स्वरूप है । वचनरूप
परार्थम् १।१ । तद्-विकल्पाः १।३ नयाः १।३	=परार्थ है । उस (श्रुत प्रमाण) के भेद नय हैं
अत्र आह T नयशब्दस्य ६।१ । अल्प-अच्तरत्वात् ५।१	=यहां [शिष्य] पूछता है कि नय शब्दके थोडे अक्षर होनेसे [द्वंदसमासमें]
पूर्व-निपात १।१ प्राप्नोति T	=प्रथम पतन वा ग्रहण प्राप्त होता है अर्थात् द्वंद समासका नियम है कि जो शब्द मिलाये जांवे उनमेंसे थोडे अक्षरवाला शब्द पहिले लाना चाहिये पश्चात् वहुत अक्षरयुक्त शब्द । इसलिये प्रमाणनयैरधिगमः सूत्रके स्थानमें " नयप्रमाणैरधिगमः " सूत्र होना चाहिये
प्रमाणस्य ६।१ अभ्यर्हितत्वात् ५।१ न एषः १।१ दोषः १।१	=उत्तर-प्रमाणको [नयसे] पूज्यपना वा प्रधानपना होनेसे यह दोष नहीं है
तत्पूर्व-निपातः १।१ च अभ्यर्हितत्वं १।१	= (कि) उस (प्रमाण) का इस सूत्रमें प्रथम ग्रहण है और श्रेष्ठपना
सर्वतः ※ वलीयः १।१ कुतः अभ्यर्हितत्वम् १।१	=सबसे बलिष्ठ होता है । क्योंकर (नयोंसे प्रमाणोंमें) प्रधानपना है
नय-प्ररूपण-प्रभव-योनित्वात् ५।१	=क्योंकि नयके भेदोंकी उत्पत्तिका (=प्रभव) कारण [=योनि] प्रमाण है

(१) प्राप्नोति = प्र + आप् + नु + ति + आप् स्वादि पंचमगणका परस्मैपद धातु है । स्वादिगणका नु विकरण और प्र उपसर्ग तथा ति परस्मैपद एक वचन अन्य, पुरुष, वर्तमानकालका प्रत्ययसे प्र + आप् + नु + ति बनालिया । अङ्गके अंतका स्वर और अंगके उपांतक ह्रस्व स्वरके पित्संज्ञक (मि-सि-ति । अम्-स्-त । आनि- आव- आम-तु परस्मैपदी और ऐ-आवहै-आमहै । आत्मनेपदी) प्रत्ययके पहिले गुण आदेश हो जाता है प्राप्नो + ति = प्राप्नोति (२) जो समुच्चित और समुच्चय मिलकर बना हो उसको द्वन्द समास कहते हैं ॥ द्वन्द समासका चिन्ह 'और' (दो शब्दोके वीचमें) है ॥ और शब्द द्वन्द (समासका चिन्ह) से जो पहले (शब्द) हो वह समुच्चित और पीछेका शब्द समुच्चय कहलाता है जैसे प्रमाण और नय = प्रमाणनयौ इसमे प्रमाण शब्द समुच्चित है और नय समुच्चय है [३] वलीयस् शब्द त्रिलिंगी है यहांपर नपुंसक लिंग एक वचन प्रथमा विभक्तिमें है (देखो पद्मचन्द्रकोष पृष्ठ २६४)

एवं ह्युक्तं प्रगृह्य प्रमाणतः परिणतिविशेषादर्थावधारणं नय इति । सकलविषयत्वाच्च प्रमाणस्य । तथा चोक्तम् "सकलादेशः प्रमाणाधीनो विकलादेशो नयाधीन इति ॥" नयो द्विविधः । द्रव्यार्थिकः पर्यायार्थिकश्च । पर्यायार्थिकनयेन भावतत्त्वमधिगन्तव्यम् । इतरेषां त्रयाणां द्रव्यार्थिकनयेन सामान्यात्मकत्वात् ॥

एव * हि* उक्तम् १।१।१	= क्योंकि (= हि) इसप्रकार (नयका लक्षण आगम वा शास्त्रमें) कहा गया है कि
प्रमाणतः* प्रगृह्य परणति—	= प्रमाणसे ग्रहणकरि [सत्व-असत्व-नित्य-अनित्य इत्यादि]
विशेषाद् ५।१ अर्थ-अवधारणं १।१।१ नयः १।१ इति	= भेदसे पदार्थका [= अर्थ] निश्चय करना ऐसी नय है
च प्रमाणस्य ६।१।१ सकलविषयत्वात् ५।१।१	= और प्रमाणका संपुर्ण विषयभाव (धर्म और धर्मी) है
तथा च* उक्तम् १।१।१	= जैसा कि कहा गया है ॥
सकल आदेशः १।१ प्रमाण-आधीनः १।१	= सकलादेश प्रमाणके आश्रय है–पदार्थके सब देशोंको कहै सो प्रमाण है
विकल-आदेशः १।१ नय–आधीनः १।१ इति*	= विकलादेश नयके आधार है—पदार्थके एक देशको कहै सो नय है
नयः १।१ द्विविधः १।१ द्रव्यार्थिकः १।१	= नय दो प्रकार वा दो भांति है । द्रव्यार्थिक [नय]
च पर्यायार्थिकः १।१ । पर्यायार्थिकनयेन ३।१	= और पर्यायार्थिक [नय] । पर्यायार्थिक नयसे
भावतत्वम् १।१।२ अधिगन्तव्यम् १।१।१	= भावतत्व अथवा पर्यायतत्व अर्थात् भावनिक्षेपका स्वरूप जानना चाहिये
इतरेषा ६।१।१ त्रयाणा ६।३(नाम-स्थापना-द्रव्याणां)	= अन्य तीन (नाम-स्थापना-द्रव्य निक्षेप) का
सामान्य-आत्मकत्वात् ५।१।१ द्रव्यार्थिक–	= सामान्यस्वरूप होने (के हेतु) से द्रव्यार्थिक
नयेन ३।१ (अधिगन्तव्यम्)	= नयकरि जानना चाहिये (= शब्दार्थ ज्ञान किया जाना चाहिये क्योंकि द्रव्यार्थिक नय सामान्यको ग्रहण करती है)

१ प्रगृह्य संबन्धकभूतकृदन्त वा सम्बन्धकसूचक भूतकृदन्त है ॥ (२) भावतत्वके स्थानमें पर्यायतत्व पाठ अन्य पुस्तकमें है अर्थ दोनोंका एक ही है (३) त्रयाणांके स्थानमें 'नामस्थापनाद्रव्याणां' यह वाक्य अन्य प्रतिमें हैं, हमारी समझमें "त्रयाणां नामस्थापनाद्रव्याणां" समस्त वाक्य हो तो अर्थ स्पष्ट हो जाता है ॥

द्रव्यमर्थः प्रयोजनमस्येत्यसौ द्रव्यार्थिकः॥ पर्यायोऽर्थः प्रयोजनमस्येत्यसौ पर्यायार्थिकः॥ तत्सर्वं समुदितं प्रमाणेनाधिगन्तव्यम्॥ एवं प्रमाणनयैरधिगतानां जीवादीनां[2] पुनरप्यधिगमोपायान्तरप्रदर्शनार्थमाह—

द्रव्यम् १।१ अर्थः १।१ प्रयोजनम् १।१ अस्य ६।१	= द्रव्य है विषय प्रयोजन जिसका [अथवा इसका]
इति * असौ[1] १।१ द्रव्यार्थिकः १।१	= ऐसा यह द्रव्यार्थिक [नय] है
पर्यायः १।१ अर्थः १।१ प्रयोजनम् १।१ अस्य ६।१	= पर्याय है विषय [अर्थ] प्रयोजन जिसका [अथवा इसका]
इति असौ १।१ पर्यायार्थिकः १।१। तत्सर्वं १।१ समुदितं १।१	= ऐसा यह पर्यायार्थिक [नय] है। ये सब इकट्ठे
प्रमाणेन ३।१ अधिगन्तव्यम् १।१ एवं *	= प्रमाणकार जाने जाते हैं। इसप्रकार
प्रमाणनयैः ३।१ अधिगतानां ६।३ जीवादीनां ६।३	= प्रमाण और नयोंसे ज्ञात वा जाने गये (सम्यग्दर्शनादि और) जीवादि तत्त्वोंका
पुनः * अपि * अधिगम–उपाय अन्तर—	= फिर भी जाननेका अन्य उपाय
प्रदर्शनार्थम् १।१ आह T	= दिखावनेके लिये (आचार्य निम्न सूत्रको) कहते हैं कि—

निर्देशस्वामित्वसाधनाधिकरणस्थितिविधानतः[3] ॥ ७ ॥

निर्देश–स्वामित्व–साधन–अधिकरण–स्थिति–विधानतः * सम्यग्दर्शनादीनां जीवादीनां च अधिगमः भवति॥ ७ ॥

---

(१) अदस् सर्वनाम वह अथवा यह इन दो अर्थोंमें आता है। यहां पर यह ऐसा अर्थ है क्योंकि अस्य शब्दसे इसका संबंध है जो षष्ठी विभक्ति एक वचन पुल्लिंग इदम् (= यह) शब्दका है। असौ प्रथमा विभक्ति एकवचन पुल्लिंग यहां पर है।

(२) जीवादीनां–यहां पर भी छठवें सूत्रकी वृत्तिके आदिमें जो टिप्पणी दी है उसके अनुसार "सम्यग्दर्शनादीनां" के कथनको भी अग्रिम सातवें सूत्रमें गर्भित समझ लो क्योंकि तत्त्वार्थ राजवार्तिकमें इस सातवें सूत्रके नीचे ये वाक्य हैं " केषामधिगमः ? जीवादीनां सम्यग्दर्शनादीनां च " सातवें सूत्रमें किनका अधिगम है जीवादि सात तत्त्व और सम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्रोंका।

(३) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों श्वेताम्बर और दिगम्बर आम्नायोंमें एकसा है।

निर्देशः स्वरूपाभिधानम् । स्वामित्वमाधिपत्यम् । साधनमुत्पत्तिनिमित्तम् । अधिकरणमधिष्ठानम् । स्थितिः कालपरिच्छेदः । विधानं प्रकारः ॥

निर्देशतः स्वामित्वतः,	= सूत्रार्थ—वस्तुके नाम संकीर्तन वा स्वरूप कथनसे, अधिपतिपनासे,
साधनतः, अधिकरणतः	= उत्पत्तिके निमित्तसे (जैसे—निसर्गसे अधिगमसे) आधार वा अधिष्ठानसे
स्थितितः,	= कालकी मर्यादा—कालके प्रमाण—कालकी सीमा अथवा कालपरिच्छेदसे,
च विधानतः* सम्यग्दर्शनादीनां [६।३]	= भेदसंख्या वा भेद प्रभेदके कथनसे, सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रका
जीवादितत्त्वाना [६।३] अधिगमः [१।१] भवति	= तथा जीवादिक सात तत्वोंका ज्ञान [= अधिगमः] होता है ॥ 'ऐसा भावार्थ है कि इन निर्देशादिकका द्वंद्व समासकरि बहुवचनरूप करण अर्थ प्रमाण नयकी ज्यों जानना । संक्षेपतै तो अधिगमका उपाय प्रमाण नय कहे । बहुरि मध्यम स्थानतैं शिष्यके आशयके वशकरि इनि निर्देश आदि अनुयोग करि कहना । तहां कहा वस्तु है ? कौनके है ? काहेकरि है ? कौन विषै है ? कितेक काल है ? के प्रकार है ऐसे छह प्रश्न होय हैं, इनका उत्तर कहना ते निर्देशादिक हैं' सर्वार्थसिद्धि वचनिका मुद्रित पृष्ठ ५९ ।
स्वरूप-अभिधानं [१।१] निर्देशः [१।१] आधिपत्यं [१।१]	= (वस्तुके) स्वरूप (मात्र)का कथन सो निर्देश है । (वस्तुका) अधिपतिपना
स्वामित्वम् [१।१] उत्पत्तिनिमित्तं [१।१] साधनम् [१।१]	= सो स्वामित्व है । (वस्तुकी) उत्पत्तिका कारण सो साधन है
अधिष्ठानम् [१।१] अधिकरणम् [१।१] काल—	= (वस्तुका) आधार (सो) अधिकरण है । कालका
परिच्छेदः [१।१] स्थितिः [१।१] विधान [१।१] प्रकारः [१।१]	= प्रमाण वा मर्यादा (सो) स्थिति है । वस्तुका प्रकार वा भेद [सो] विधान है

(१) विधान शब्दमें तसिल् (= तस्) प्रत्यय लगानेसे विधानतः शब्द बना है ॥ अष्टाध्यायी ' तद्धिताश्चासर्वविभक्तिः १ । १ । ३८ वें सूत्र से यह अव्यय है पंचमी विभक्तिका हेतु अर्थ देता है ॥ द्वन्द समास तोड़नेसे प्रत्येक छहो शब्दमे यह तसिल् प्रत्यय लगेगा निर्देशतः आदि छह उक्त रूप हो जावैगे ॥ इल् इत् संज्ञक होनेसे लोपको प्राप्त होकर केवल तस् रह जाता है ।

जगरूपसहाय वकीलकृत पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित सर्वार्थसिद्धिका शब्दशः हिंदी अनुवाद। अध्याय १ सूत्र ७।

तत्र सम्यग्दर्शनं किमिति प्रश्ने तत्त्वार्थश्रद्धानमिति निर्देशः। नामादिर्वा ॥ सम्यग्दर्शनं कस्येत्युक्ते सामान्येन जीवस्य ॥ विशेषेण गत्यनुवादेन नरकगतौ सर्वासु पृथिवीषु नारकाणां पर्याप्तकानामौ-

तत्र * सम्यग्दर्शनं १।१ किम् १।१ इति प्रश्ने ७।१	=तहां सम्यग्दर्शन क्या है ऐसा प्रश्न होने पर
तत्त्वार्थ-श्रद्धानं १।१ इति निर्देशः १।१	=तत्त्वार्थका श्रद्धान यह (=इति) निर्देश (अनुयोग) है।
वा नामादिः १।१ सम्यग्दर्शनं १।१	=अथवा नाम स्थापना-द्रव्य-भाव सो निर्देश (अनुयोग) है तत्त्वार्थ श्रद्धान
कस्य ६।१ इति उक्ते ७।१ सामान्येन ३।१	=किसके होता है ऐसा प्रश्न होनेपर (कहते हैं कि) सामान्य अपेक्षाकरि
जीवस्य ६।१। विशेषेण ३।१ गति-अनुवादेन ३।१	=जीवकें होता है। विशेषकरि गतिके कथनानुसारसे
नरक-गतौ ७।१ सर्वासु ७।३ पृथिवीषु ७।३	=नरक गतिमें सब पृथिवीनमें (अर्थात् प्रथम नरकसे लेकर सातवे नरकतकके)
पर्याप्तकानां ६।३ नारकाणां ६।३	=पर्याप्त नारकियोंके

नरक गतिके सम्यक्त्वका मानचित्र

प्रथम नरकमें कौन कौन सम्यक्त्व

- पर्याप्तक नारकियोंके तीनों सम्यक्त्व
- अपर्याप्तक नारकियोंके क्षायोपशमिक और क्षायिक सम्यक्त्व

दूसरे नरकसे सातवेतक कौन २ सम्यक्त्व

- पर्याप्तक नारकियोंके उपशम और वेदक सम्यक्त्व
- अपर्याप्तक नारकियोंके कोई सम्यक्त्व नहीं

(श्लोक) प्रथमायां त्रितयं स्यात्पर्याप्तानां द्वयं तदितरेषाम्। अशमजमितरास्वपि वाऽक्षयजं पर्याप्तकानां तु ॥ १ ॥ सर्वार्थसिद्धि पृष्ठ १५ ॥

प्रथमायां ७।१ त्रितयं १।१ स्यात् पर्याप्तानां ६।३	=पहले (नरक) में पर्याप्तक (नारकियों) के तीनों सम्यक्त्व है
अशमजम् १।१ तद्	=उपशम (सम्यक्त्व) वर्जित (अ-शमजं) उन (=तद्-प्रथम नरकके पर्याप्तकों) से
इतरेषाम् ६।३ द्वयम् १।१	=भिन्न (इतरेषाम् अर्थात् पहले नरकके अपर्याप्तकों)के दो (वेदक क्षायिक सम्यक्त्व) है
इतरासु ७।३ अपि वा पर्याप्तकानां ६।३ तु *	=और (=तु) अन्य अवशेष (अर्थात् दूसरो पृथिवो वा नरकने सातवे) में पर्याप्तक नारकियोंके भी (दो)
अक्षयजं १।१	=क्षायिक सम्यक्त्वको छोडकर (अक्षयजं, औपशमिक और क्षायोपशमिक सम्यक्त्व) हैं।

औपशमिकं क्षायोपशमिकं चास्ति ॥ प्रथमायां पृथिव्यां पर्याप्तापर्याप्तकानां क्षायिकं क्षायोपशमिकं चास्ति।

औपशमिकं ꣳ च क्षायोपशमिकं ꣳ अस्ति	= औपशमिक और क्षायोपशमिक सम्यक्त्व है
प्रथमायां ꣳ पृथिव्यां ꣳ	= पहले नरकमें अर्थात् भूमिके अप्बहुलभागमें जहां प्रथम नरक है उसमें
पर्याप्त-अपर्याप्तकानाम् ꣳ क्षायिकं ꣳ	= पर्याप्तक और अपर्याप्तक (नारकियों) के क्षायिक (सम्यग्दर्शन)
च * क्षायोपशमिक ꣳ अस्ति T	= और (च) क्षायोपशमिक [सम्यग्दर्शन] होता है

(१) रत्नप्रभा नाम पृथ्वी है सो एक लाख अस्सी सहस्र (१८००००) योजनकी मोटी है । उसकी मोटाईके स्कन्धमें तीन विभाग हैं उन में सोलह सहस्र (१६०००) योजनका मोटा ऊपरका खर भाग है । तिस (खरभाग) मे चित्रावज्रा वैडूर्य इत्यादि एक २ सहस्र योजनकी मोटी सोलह पृथ्वीं है और तिस खर भागके नीचे पंक भाग है सो चौरासी सहस्र योजन मोटा है । इस पंक भागके नीचे अस्सी सहस योजन मोटा अब्बहुल भाग है उस अब्बहुल भागमे प्रथम नरक है उसमे सक्लेशित नारकी रहते हैं ॥ नारकियोके वसनेके लिये तीस लाख विले हैं और तेरह प्रस्तर (=पटल) हैं। इसलिये "भूमिके अब्बहुल भागमें जहां प्रथम नरक है उसमे" यह वाक्य अनुवादमे लाये है ॥

सामान्येन सम्यग्दर्शनस्य स्वामी जीवो भवतीति स्वामित्वमुच्यते ( ) विशेषेण तु चतुर्दशमार्गणानुवादेन स्वामित्वमुच्यते (संस्कृत सर्वार्थ॰)

(२) सामान्येन ꣳ सम्यग्दर्शनस्य ꣳ स्वामी ꣳ	= संक्षेप (अपेक्षा) से सम्यक्त्वका अधिपति
जीवः ꣳ भवति T इति स्वामित्वम् ꣳ उच्यते T	= चेतन होता है । ऐसा अधिपतिपन वर्णित है
(३) विशेषेण ꣳ तु * चतुर्दश-मार्गणा—	= और (= तु) विस्तारसे अथवा भेद प्रभेदसे चौदह मार्गणा (गति-इन्द्रिय— काय—योग-वेद-कषाय-ज्ञान संयम-दर्शन—लेश्या—भव्य—सम्यक्त्व—संज्ञा—वा सैनी और आहारक) की
अनुवादेन ꣳ स्वामित्वम् ꣳ उच्यते T	= अपेक्षासे अधिपतिपना कहा गया हैं

(४) वच् (= कहना) अदादि द्वितीय गणका द्विकर्मक परस्मैपद अनिट् धातु है ॥ व का परिवर्तन (नीचेके नियमसे) उ में होकर उच बना, य कर्मणि प्रत्यय और ते (अन्य पुरुष—एकवचन—आत्मनेपदी-वर्तमान कालकी क्रियाका चिन्ह) लगानेसे उच्यते वन गया । वच्-स्वप्-यज् वप् वह्-वस्-वद्-ग्रह-व्यध्-वश्-व्यच् व्रश्च-प्रच्छ्-भ्रस्ज-धातुके य्-र्-ल्-व् का परिवर्तन क्रमसे इ-उ-ऋ-ऌ में केवल परस्मैपदमें और कर्मणिप्रधान य प्रत्ययके पहिले हो जाता है ॥ देखो अष्टाध्यायी ६-१-१५ वचिस्वपियजादीनां किति' और १६ वां सूत्र ॥

जगरूपसहायवकीलकृत पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित सर्वार्थसिद्धिका शब्दशः हिंदी अनुवाद। अध्याय १ सूत्र ७।

तिर्यग्गतौ तिरश्चां पर्याप्तकानामौपशमिकमस्ति। क्षायिकं क्षायोपशमिकं च पर्याप्तापर्याप्तकानामस्ति॥ तिरश्चीनां क्षायिकं नास्ति।

तिर्यग्-गतौ ७।१ पर्याप्तकानाम् ६।३ तिरश्चां ६।३	= तिर्यंचगतिमें पर्याप्तक तिर्यंचोंके
औपशमिकम् १।१ अस्ति T क्षायिकं १।१	= उपशम सम्यक्त्व होता है॥ क्षायिक सम्यग्दर्शन
च क्षायोपशमिकं १।१ पर्याप्त-अपर्याप्तकानां ६।३	= और क्षायोपशमिक सम्यक्त्व पर्याप्तक और अपर्याप्तक तिर्यंचोंके
अस्ति तिरश्चीनाम् ६।३ क्षायिकं १।१ न* अस्ति	= होता है। तिर्यंचनियोंके क्षायिक सम्यग्दर्शन नहीं होता है

(१) पर्याप्तानां त्रितयं द्वय तिरश्चामशान्तमितरेषाम्। क्षायिकवर्ज्यं द्वितयं पर्याप्तास्वेव तत्स्त्रीषु। सर्वार्थ० पृ० १९।

पर्याप्तानां ६।३ त्रितयं १।१ अशान्तम् १।१	= पर्याप्तक (तिर्यंचों) के तीनो (सम्यक्त्व) होते हैं। उपशमवर्जित (अशान्तम्)
इतरेषाम् ६।३ तिरश्चाम् ६।३ द्वयं १।१॥	= अन्य वा अवशेष (= इतरेषाम्) अर्थात् अपर्याप्तक तिर्यंचोंके दो होते हैं
क्षायिक-वर्ज्यं १।१ द्वितयं १।१	= क्षायिक (सम्यक्त्व) छोड़कर दो (औपशमिक और क्षायोपशमिक सम्यक्त्व)
पर्याप्तासु ७।३ एव * तत्स्त्रीषु ७।३	= उन (तिर्यंचों) की (= तद्) पर्याप्तक ही (= एव) स्त्रियोंमें (न कि अपर्याप्तक तियचनियोंमे) होते हैं। भावार्थ ऐसा है कि भोगभूमिके पर्याप्तक तिर्यंचोंके तीनों सम्यक्त्व होते हैं और अपर्याप्तक तिर्यंचोके वेदक (= क्षायोपशमिक) और क्षायिक-सम्यक्त्व हैं कर्मभूमिके पर्याप्तक तिर्यंचोके उपशम और क्षायोपशमिक सम्यक्त्व होते हैं। कर्मभूमिकी पर्याप्तक तिर्यंचनियोके और भोगभूमिकी पर्याप्तक तिर्यंचनियोंके औपशमिक और क्षायोपशमिक सम्यक्त्व होते हैं॥ स्मरण रहे कि कर्मभूमिकी अपर्याप्तक तिर्यंचनीके और भोगभूमिकी अपर्याप्तक तिर्यंचनीके और कर्मभूमिके अपर्याप्तक तियचके भी कोई सम्यग्दर्शन नहीं है जैसा कि निम्न मानचित्रसे प्रगट है

भोगभूमिके पर्याप्तक तिर्यंचके तीनों सम्यक्त्व	भोगभूमिके अपर्याप्तक तिर्यंचके वेदकसम्यक्त्व और क्षायिकसम्यक्त्व	कर्मभूमिके पर्याप्तक तिर्यंचके उपशम और वेदकसम्यक्त्व	भोगभूमिके पर्याप्तक तिर्यंचनीके और कर्मभूमिके पर्याप्तक तिर्यंचनी के उपशम और वेदक सम्यक्त्व	कर्मभूमिके अपर्याप्तक तिर्यंच तिर्यंचिनीके भोगभूमिकी अपर्याप्तक तिर्यंचनीके सम्यक्त्व नहीं है

कुत इत्युक्ते

कुतः * इति उक्ते ७।१ =क्योंकर। (तिर्यंचनियोंके क्षायिक सम्यक्त्व नहीं होता) ऐसा पूछनेपर कहते हैं कि

(१) सर्वार्थसिद्धिसंस्कृतवृत्तिकी हमारे पास इस समय दो संस्करण वा आवृत्ति हैं। उनमें तिरश्चीनां क्षायिकं नास्ति वाक्यके पश्चात्–न-पर्याप्तकानाम् तक पाठभेद "भाव" के अतिरिक्त नहीं है किन्तु क्रममें अन्तर है जो निम्न लिखित शब्दशः दोनों पाठोंसे जान लो

प्रथम आवृत्तिका पाठ

नास्ति। औपशमिकं क्षायोपशमिकं च पर्याप्तिकानामेव ना पर्याप्तिकानाम्। मनुष्यगतौ मनुष्याणां पर्याप्तापर्याप्तकानां क्षायिकं क्षायोपशमिकं चास्ति। औपशमिक पर्याप्तकानामेव नापर्याप्तकानाम्। कुतः इत्युक्ते मनुष्यः कर्मभूमिज एव दर्शनमोहक्षपणप्रारम्भको भवति। क्षपणप्रारम्भकालात्पूर्वं तिर्यक्षु बद्धायुष्कोऽपि उत्कृष्टभोगभूमितिर्यक्पुरुषेष्वेवोत्पद्यते। न तिर्यक्स्त्रीषु भाववेद–स्त्रीणां तासां क्षायिकासम्भवात्। एवं तिरश्चामप्यपर्याप्तकानां क्षायोपशमिकं ज्ञेयम्। न पर्याप्तकानाम्। मानुषीणां इत्यादि

दूसरी आवृत्ति वा संस्करणका पाठ

नास्ति। कुत इत्युक्ते मनुष्यः कर्मभूमिज एव दर्शनमोहक्षपणप्रारम्भको भवति। क्षपणप्रारम्भकालात्पूर्वं तिर्यक्षु बद्धायुष्कोऽपि उत्कृष्टभोगभूमि तिर्यक्पुरुषेष्वेवोत्पद्यते। न तिर्यक्स्त्रीषु। द्रव्यवेदस्त्रीणां तासां क्षायिकासम्भावात्। एवं तिरश्चामप्यपर्याप्तकानां क्षायोपशमिकं ज्ञेयम्। न पर्याप्तकानाम्॥ औपशमिकं क्षायोपशमिकं च पर्याप्तिकानामेव नापर्याप्तिकानाम्। मनुष्यगतौ मनुष्याणां पर्याप्तापर्याप्तकानां क्षायिकं क्षायोपशमिकं चास्ति। औपशमिक पर्याप्तकानामेव ना पर्याप्तकानाम्। मानुषीणां इत्यादि

(क) प्रथम आवृत्ति सर्वार्थसिद्धिमें भाव शब्द अशुद्ध है दूसरी आवृत्तिमें इसके स्थानमें द्रव्य शब्द है सो ठीक है क्योंकि द्रव्यवेद स्त्रीके क्षायिक सम्यक्त्वका होना असम्भव है भाववेद स्त्रीके क्षायिक सम्यक्त्व हो सका है। हमने अपने पाठमें "द्रव्य" रक्खा है।

(ख) दूसरी आवृत्तिके पाठका क्रम ही ठीक है क्योंकि भाष्यकारके कथन करनेपर कि तिर्यंचिनियोंके क्षायिक सम्यक्त्व नहीं होता है शिष्यने तिर्यंच गतिके शेषभागको सम्यक्त्वके संबंधमें पूर्ण होनेके पहिले ही तत्काल प्रश्न कर दिया कि कुत इत्युक्ते। = क्योंकर। तब आचार्यने मनुष्यः कर्मभूमिज…तासां क्षायिकासम्भवात्। वाक्योंमें उत्तर देकर अवशेष भाग (तिर्यंचोंके सम्यक्त्व होनेके सम्बन्धमे) औपशमिकं क्षायोपशमिक च पर्याप्तिकानामेव नापर्याप्तकानाम्। पीछे कहा। पश्चात् 'मनुष्यगतौ' मनुष्यगतिमे सम्यक्त्व कहा

(ग) "एवं तिरश्चामप्यपर्याप्तकानां क्षायोपशमिकं ज्ञेयम्। न पर्याप्तकानाम्।" यह वाक्य दोनों प्रतियोंमें अशुद्ध और व्यर्थ है क्योंकि कोई सम्यक्त्व ऐसा नहीं कि जीवकी पर्याप्त अवस्थामें न हो परन्तु अपर्याप्तक अवस्थामें हो (२) क्षायोपशमिक पर्याप्तापर्याप्तकानामस्ति" वाक्य और उसके अर्थके विरुद्ध पड़ता है। हमने पाठमें इसको नहीं रक्खा है।

मनुष्यः कर्मभूमिज एव दर्शनमोहक्षपणप्रारम्भको भवति। क्षपणप्रारम्भकालात्पूर्वं तिर्यक्षु बद्धायुष्कोऽपि उत्कृष्टभोगभूमितिर्यक्पुरुषेष्वेवोत्पद्यते। न तिर्यक्स्त्रीषु। द्रव्यवेदस्त्रीणां तासां क्षायिकासंम्भवात्। औपशमिकं क्षायोपशमिकं च पर्याप्तिकानामेव नापर्याप्तिकानाम्॥

मनुष्यः १। कर्म–भूमिजः १। एव दर्शनमोह-	=कर्मभूमिका जन्मा ही (=एव) मनुष्य दर्शन मोहकी प्रकृतियोंको
क्षपण–प्रारम्भकः १। भवति।	=क्षपावनेका प्रारम्भ करनेवाला होता है (और वह दर्शनमोहका क्षपण केवली अथवा श्रुतकेवलीके निकट अविरत, देशविरत, प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत इन चार गुणस्थानोंमें होता है)
क्षपण–प्रारंभकालात् ५। पूर्वं १।। तिर्यक्षु ७।	=क्षपण करनेके प्रारंभ समयसे पहिले तिर्यंचों (=तिर्यंच गति) में
बद्ध-आयुष्कः १। अपि उत्कृष्टभोगभूमितिर्यक्-	=आयु बांधनेवाला भी उत्तम भोगभूमिके तिर्यंच
पुरुषेषु ७। एव * उत्पद्यते	=पुरुष (पुलिंग अर्थात् द्रव्य पुरुष) में ही जन्म लेता है वा उपजता है
न तिर्यक्स्त्रीषु ७।।	=न कि (उत्तम भोगभूमिकी) तिर्यंचनियोंमें [जन्म लेता है]
द्रव्यवेदस्त्रीणां ६।। तासां ६।। क्षायिक–असंभवात् ५।	=क्योंकि तिन द्रव्य वेद तिर्यंच स्त्रियोंके क्षायिक सम्यक्त्वका होना असंभव है
औपशमिकं १।। क्षायोपशमिकं १।। च पर्याप्ति–कानां ६।। [तिरश्चीनां ६।।] एव न, अपर्याप्तिकानां ६।।	=उपशम सम्यक्त्व और वेदकसम्यक्त्व पर्याप्तिक = [तिर्यंचनियों) के ही होता है न कि अपर्याप्तिकोंके

(१) पर्याप्तक किसी तिर्यंचके, देवके अथवा नारकीके क्षायिक सम्यक्त्वका प्रारम्भ नहीं होता है॥

(२) तिरस् (तिरः) अञ्चति गच्छति इति तिर्यङ्=वक्रगामी अर्थात् वक्र (=तिरः) गमन करता है (अञ्चति=गच्छति) ऐसा वक्रगामी तिर्यङ् है तिर्यञ्च पुलिंग है और पशु-पक्षी-टेढ़ा चलनेवाला—वक्रगामी अर्थमें है जहां व्याकरणके नियमसे ञ् का लोप होकर और च् का परिवर्तन क् में होकर तिर्यक् हो गया है वहां पश्चात् सु प्रत्यय सप्तमी वहुवचन लगानेसे तिर्यक्+सु हुआ=तिर्यक्+षु (देखो टिप्पणी पृष्ठ १५)=तिर्यक्षु॥ और जहांपर ञ् का लोप तो न हुआ परन्तु ञ् का परिवर्तन ङ् में और च् का परिवर्तन क् में हुआ और इसमें सु जोड़ा तब तिर्यङ्क्+सु=तिर्यङ्क्+षु (टिप्पणी पृष्ठ १५) तिर्यङ्क्षु रूप हुआ। क् को ख् में परिवर्तन करनेसे तिर्यङ्ख्षु भी रूप बनगया। ऐसे तिर्यञ्च शब्दकी सप्तमी विभक्ति वहुवचन पुलिंगके तिर्यक्षु—तिर्यङ्क्षु—तिर्यङ्ख्षु तीन रूप हुये॥

मनुष्यगतौ मनुष्याणां पर्याप्तापर्याप्तिकानां क्षायिकं क्षायोपशमिकं चास्ति । औपशमिकं पर्याप्तकानामेव नापर्याप्तकानाम् ॥ मानुषीणां त्रितयमप्यास्ति पर्याप्तिकानामेव नापर्याप्तिकानाम् । क्षायिकं पुनर्भाववेदेनैव ॥

मनुष्य-गतौ पर्याप्त-अपर्याप्तकानां	=नरगतिमें पर्याप्तक और अपर्याप्तक
मनुष्याणा क्षायिकं च क्षायोपशमिकं अस्ति	=मनुष्योंके क्षायिक और (=च) वेदक सम्यग्दर्शन है
औपशमिकं पर्याप्तकानां एव* न*	=औपशमिक सम्यक्त्व पर्याप्तक (मनुष्यों) के ही होता है न कि
अपर्याप्तकानाम् । पर्याप्तिकानां एव	=अपर्याप्तक (मनुष्यों) के ॥ पर्याप्तिक ही (=एव)
मानुषीणां त्रितयम् अपि अस्ति	=स्त्रियोंके तीनों (उपशम-वेदक-क्षायिक-सम्यक्त्व) ही होते हैं
न–अपर्याप्तिकानाम् क्षायिकं	=अपर्याप्तिक स्त्रियोंके (कोई भी सम्यग्दर्शन) नहीं होता है और क्षायिक
पुनः* भाव वेदेन एव*	= सम्यक्त्व भाववेदकर ही है अर्थात् भाव स्त्रीके है द्रव्य स्त्रीके नहीं है

(गाथा) नृणां पर्याप्ताना त्रयमितरेषाँ द्वयं तु शमवर्ज्यम् । त्रयमपि नारीषु स्यातपर्याप्तास्वेव नान्यासु ॥ ३ ॥

नृणां (नृणां) पर्याप्तानां त्रयम्	=पर्याप्तक मनुष्योंके तीनों (उपशम वेदक-क्षायिक सम्यक्त्व) होते हैं
इतरेषाम्	=और अन्य वा भिन्न (इतरेषाम्– मनुष्यों) के अर्थात् अपर्याप्तक मनुष्योंके
शमवर्ज्यम् द्वयं	=उपशम सम्यक्त्वरहित (शमवर्ज्यम्) दो (वेदक और क्षायिक सम्यक्त्व होते हैं)
त्रयं अपि नारीषु स्यात् पर्याप्तासु एव	=तीनो (सम्यक्त्व) ही पर्याप्तिक ही स्त्रियोंमें होते है (क्षायिक केवल भावस्त्रीके होता है)
न* अन्यासु (स्यात्)	=(कोई भी सम्यक्त्व) इतर (स्त्रियोमे अर्थात् अपर्याप्तिक स्त्रियोंमें) नहीं होता है

मनुष्यगतिमें सम्यक्त्वका मानचित्र ।

(क) पर्याप्तक मनुष्योंके तीनों (उपशम, वेदक और क्षायिक सम्यक्त्व, होते हैं
(ख) अपर्याप्तक मनुष्योंके क्षायोपशमिक और क्षायिक सम्यक्त्व होते हैं

(ग) पर्याप्तिक मनुष्यणीके (औपशमिक—क्षायोपशमिक-क्षायिक) तीनो होते हैं परन्तु क्षायिक सम्यक्त्व भाव-स्त्रीके होता है द्रव्यस्त्रीके नहीं । अपर्याप्तक स्त्रीके सम्यक्त्व नहीं होता है ।

देवगतौ सामान्येन देवानां पर्याप्तापर्याप्तकानां त्रितयमप्यस्ति । औपशमिकमपर्याप्तकानां कथमिति चेच्चारित्रमोहोपशमेन सह मृतान्प्रति ।

देवगतौ सामान्येन पर्याप्त-अपर्याप्तकानां	=देवगतिमें सामान्य (अपेक्षा) से पर्याप्तक और अपर्याप्तक
देवानां त्रितयम् अपि* अस्ति	=देवोंके तीनों (उपशम-वेदक-क्षायिक सम्यक्त्व) ही होते हैं
औपशमिकम् अपर्याप्तकानां कथम्*	=उपशम सम्यक्त्व अपर्याप्तक (देवों) के कैसा
इति चेत्* चारित्रमोह—उपशमेन	=ऐसे प्रश्न होनेपर [कहते हैं कि] चारित्रमोहनीय कर्मप्रकृतिके
सह* मृतान् प्रति*	=उपशमसहित मरण करनेवाले [जीवों] को [=प्रति] होता है भावार्थ—किसी जीवके चारित्रमोहनीय कर्मकी प्रकृतियोंका उपशम होय और वह जीव उपशमश्रेणीमें मरण करै तो उस जीवके अपर्याप्तक देव अवस्थामें द्वितीय उपशम सम्यक्त्व होता है प्रथम उपशम सम्यग्दर्शन अपर्याप्त अवस्थामें किसी भी जीवके नहीं होता है ।

[श्लोक] पर्याप्तापर्याप्तकदेवेषु त्रितयमस्ति सम्यक्त्वम् । देवेष्वकल्पजेषु पर्याप्तेष्वक्षयजमेव ॥

पर्याप्त—अपर्याप्तक देवेषु त्रितयम्	=पर्याप्तक और अपर्याप्तक देवोंमें तीनो (उपशम—वेदक—क्षायिक)
सम्यक्त्वम् अस्ति । अकल्पजेषु पर्याप्तेषु	=सम्यग्दर्शन है । कल्पवासियोंसे भिन्न पर्याप्तक
देवेषु	=देवोंमे अर्थात् भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें
अक्षयजम् एव *	=क्षायिक वर्जित वा रहित ही (दो उपशम और वेदक सम्यक्त्व) है

देवगतिमें सम्यग्दर्शनका मानचित्र ।

- (सामान्यकरि) पर्याप्त और अपर्याप्त देवोंके तीन सम्यग्दर्शन हैं ॥
- (विशेषकरि) भवनवासी—व्यन्तर और ज्योतिषी देव और उनकी देवियोंके सौधर्म और ऐशान स्वर्गमें उपजी देवियोंके (१) क्षायिक सम्यक्त्व नहीं (२) अपर्याप्त अवस्थामें कोई भी सम्यक्त्व नहीं, पर्याप्त अवस्थामें उपशम वेदक सम्यक्त्व है ।

विशेषेण भवनवासिव्यन्तरज्योतिष्काणां देवानां देवीनां च सौधर्मैशानकल्पवासिनीनां च क्षायिकं नास्ति। तेषां पर्याप्तकानामौपशमिकं क्षायोपशमिकं चास्ति ॥

विशेषेण ३। भवनवासिन्–व्यन्तर–ज्योतिष्काणां = विशेषकरि भवनवासी, व्यंतर और ज्योतिषी
देवाना ६। च देवीनां ६। सौधर्म–ऐशान– = देवोंके और [=च] इनकी देवियोंके और सौधर्म ऐशान स्वर्गोंके
कल्पवासिनीनां ६। क्षायिकं १।१। न * अस्ति T = कल्पवासिनी देवियोंके क्षायिक सम्यग्दर्शन नहीं होता है (सौधर्म, और ऐशान दो स्वर्गोंमेंही कल्पवासिनी देवी उत्पन्न होती हैं इनही दो स्वर्गोंसे सोलह स्वर्ग पर्यंत चली जाती हैं)

तेषां ६। = उन (भवनवासी, व्यन्तर, और ज्योतिषी देव और देवियां और सौधर्म ऐशान स्वर्गोंकी कल्पवासिनी देवी)
पर्याप्तकानाम् ६। औपशमिकं १।१। = पर्याप्तकोंके उपशम सम्यग्दर्शन
च क्षायोपशमिकं अस्ति T = और वेदक सम्यक्त्व [क्षायोपशमिक सम्यक्त्व] होता है अर्थात् इन सबोंके क्षायिक सम्यक्त्व नहीं होता और अपर्याप्तक अवस्थामें कोई भी सम्यक्त्व नहीं है

(१) आयुष्क–चतुष्क–ज्योतिष्क शब्द आयुस्–चतुस्–ज्योतिस् शब्दोंमें कन् (क) प्रत्यय अपने २ अर्थमें लगानेसे वने हैं अर्थात् क जोड़ देनेसे इनका वही अर्थ रहता है जो क जोड़नेसे पहिले था ॥ आयुष्क–चतुष्क ज्योतिष्कका वही अर्थ है जो आयुस्–चतुस् और ज्योतिस् शब्दों का है ॥ इनके स् की पलटन ष्में कैसे हो जाती हैं देखो टिप्पणी पृष्ठ १५ ॥

(श्लोक) क्षायिकमविरतदृष्टिप्रभृतिषु सम्भवति वेदकं तु पुनः ॥ अस्त्यप्रमादकान्तेष्वौपशमं चौपशान्तान्तम् ॥

क्षायिकम् १।१। अविरतदृष्टिप्रभृतिषु ७। = क्षायिक सम्यग्दर्शन चौथे गुणस्थान, आदिकोंमें
सम्भवति T = संभव है (=होसक्ता है) अर्थात् चौथे गुणस्थानसे चौदहवे तक है
पुनः * वेदकं १।१। तु * अस्ति = और (=पुनः) क्षायोपशमिक सम्यक्त्व तो (=तु) (चौथे अविरत गुणस्थानसे)
अप्रमादक—अन्तेषु ७।। च * औपशमम् १।१। = अप्रमत्त (सातवां गुणस्थान) के अंत तकमें है। और [=च] उपशम सम्यक्त्व
उपशान्तातम् १।१। =[चौथे गुणस्थानसे] उपशान्त कषाय ग्यारहवां गुणस्थान तक है

१ सामान्य अपेक्षासे सम्यग्दर्शन जीवके होता है विशेष अपेक्षासे गतिके अनुवादकरि नकगतिमें और तिर्यचगतिमें और मनुष्यगतिमें और देवगतिमें निम्नमान चित्रके अनुसार होता । है

- नकगतिमें
  - प्रथम नरक
    - पर्याप्तक नारकियोके तीनो सम्यक्त्व
    - अपर्याप्तक नारकियोंके वेदक सम्यक्त्व क्षायिक सम्यक्त्व
  - दूसरेसे सातवे नरकतक
    - पर्याप्तक नारकिनके वेदक सम्यक्त्व उपशम सम्यक्त्व
    - अपर्याप्तक नारकिनके कोई भी सम्यक्त्व नहीं
- तिर्यचगतिमें
  - कर्मभूमिके तिर्यंच और तिर्यंचनीके और भोगभूमिकी तिर्यंचनीके
    - पर्याप्तक अवस्थामें उपशम-सम्यक्त्व वेदकसम्यक्त्व हो
    - अपर्याप्तक अवस्थामे कोई भी सम्यक्त्व नहीं और क्षायिकसम्यक्त्व कभी न हो
  - भोगभूमिके पर्याप्तक तिर्यंचके तीनों सम्यक्त्व। अपर्याप्तक के वेदक क्षायिक सम्यक्त्व
- मनुष्यगतिमें
  - मनुष्य पर्याप्तक के तीनों सम्यक्त्व अपर्याप्तक के वेदक-सम्यक्त्व क्षायिक-सम्यक्त्व
  - मनुष्यणी पर्याप्तकके उपशम वेदक-सम्यक्त्व अपर्याप्तक के कोई भी सम्यक्त्व न हो भावस्त्रीके क्षायिक हो द्रव्यके नहीं
- देवगतिमें
  - देवकल्पवासी पर्याप्तक के और अपर्याप्तकके तीनो सम्यक्त्व हों
  - भवनवासी व्यंतर ज्योतिषी देव-देवांगनाओंके और कल्पदेवांगनाओंके पर्याप्त अवस्थामें उपशम सम्यक्त्व वेदकसम्यक्त्व हो अपर्याप्तके कोई भी सम्यक्त्व न हो क्षायिकसम्यक्त्व कभी न हो

इन्द्रियानुवादेन पञ्चेन्द्रियाणां संज्ञिनां त्रितयमप्यस्ति, नेतरेषाम् ॥ २ ॥ कायानुवादेन त्रसकायिकानां त्रितयमप्यस्ति, नेतरेषाम् ॥ ३ ॥ योगानुवादेन त्रयाणां योगिनां त्रितयमप्यस्ति । अयोगिनां क्षायिकमेव ॥ ४ ॥

इन्द्रिय-अनुवादेन ३। पंचेंद्रियाणां ६। संज्ञिनां ६।	=इन्द्रियके कथनानुसारकरि पंचेंद्रिय सैनीके
त्रितयम् १। अपि अस्ति न * इतरेषाम् ६।	=तीनों ही सम्यक्त्व हैं अन्य [असैनी और पांच इन्द्रियोंसे न्यून इन्द्रियवाले] के नहीं हैं
काय-अनुवादेन ३। त्रसकायिकानां ६। त्रितयम् १।	=कायकी अपेक्षासे त्रसकायजीवोंके तीनों [उपशम-वेदक-क्षायिक सम्यक्त्व]
अपि * अस्ति न * इतरेषाम् ६।	=ही [= अपि] हैं अन्योंके अर्थात् थावर जीवोंके [कोई भी सम्यक्त्व] नहीं है
योग-अनुवादेन ३। त्रयाणां ६। योगिनां ६। त्रितयं १।	= योगकी विवक्षाकरि तीनों [मन-वचन-काय] योगवालोंके तीनों
अपि अस्ति अयोगिनां ६। क्षायिकम् १। एव अस्ति	= ही [सम्यग्दर्शन] हैं योगरहित [अयोगिकेवली भगवान्] के क्षायिक है

(१) पचेंद्रियाणां— पांच है इन्द्रिय जिनके यहां पंचेन्द्रिय शब्द पुल्लिग है क्योंकि बहुव्रीहि समास है परन्तु पञ्चेन्द्रियाणि अध्याय २ सूत्र १५ में नपुसकलिंग है ।

[२] त्रितयम् अपि अस्ति वाक्यका शब्दार्थ अनुवाद तीनो ही है होना चाहिये—संस्कृतकी बोल चालमे त्रितयम् अस्ति ठीक हैं परन्तु भाषामें बुरा और हिंदीकी बोल चालकी प्रणालीके विरुद्ध है इसलिये तीनो ही है अनुवाद करना पड़ता है ॥ त्रितयम् । तीनोका भाग २ तीन भागवाला (३) तीनों-तीन तीन संख्यावाला (पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ ३७८) (४)

(तिहरा) ये चार अर्थमें आता है ॥ इन चारो अर्थोंमेंसे-तीनों तीन अर्थ लगता है अन्य अर्थ लेनेसे अनुवाद नहीं बनता है यदि ऐसा अनुवाद करें "तीनोंमेंसे एक सम्यक्त्व होता है" तौभी ठीक नहीं होता है क्यो कि यहां पर नाना जीवोंकी अपेक्षा कथन है और तीनों योग वाले जीवोके एक समयमें सर्व जीवोंकी अपेक्षासे तीनों ही प्रकारके सम्यक्त्व विद्यमान होते हैं और यही श्रीआचार्यका अभिप्राय है कि पृथक् पृथक् सम्यग्दर्शनके भेद लिये जावें जैसा कि इसी वाक्यके पिछले भाग "अयोगिनां क्षायिकम् एव अस्ति" (अयोगियोंके क्षायिक ही है) से प्रगट है । इस भागका अनुवाद शब्दशः ठीक बन जाता है । श्रीपूज्यपादसूरिने एक अस्तिके प्रयोगसे दोनों आशय बहुवचन और एकवचनके लिये हैं और संस्कृतके भी बोल चालके अनुसार शुद्ध है ॥ अन्यत्र भी हमने बहुवचनकी क्रियामें अनुवाद किया है जहां एकसे अधिक सम्यक्त्वके भेदोसे तात्पर्य्य हैं ॥

वेदानुवादेन त्रिवेदानां त्रितयमप्यस्ति । अपगतवेदानामौपशमिकं क्षायिकं चास्ति ॥ ५ ॥ कषायानुवादेन चतुष्कषायाणां त्रितयमप्यस्ति । अकषायाणामौपशमिकं क्षायिकं चास्ति ॥ ६ ॥ ज्ञानानुवादेन आभिनिबोधिकश्रुतावधिमनःपर्ययज्ञानिनां त्रितयमप्यस्ति । केवलज्ञानिनां क्षायिकमेव ॥ ७ ॥ संयमानुवादेन सामायिकच्छेदोपस्थापन–

वेद–अनुवादेन ३ त्रिवेदानां ३	=वेदकी अपेक्षाकरि तीनोंवेद (स्त्री–पुरुष–नपुंसक) वालोंके
त्रितयम् ३ अपि ※ अस्ति अपगत-वेदानाम् ३	=तीनोंही (औपशमिक-क्षायोपशमिक और क्षायिक सम्यक्त्व) हैं वेदरहितोंके
औपशमिकं ३ च क्षायिकं ३ अस्ति T	=उपशम और क्षायिक (सम्यग्दर्शन) हैं
कषाय–अनुवादेन ३ चतुष्कषायाणां ३	=कषायके कथनानुसारकरि चारो [क्रोध-मान-माया-लोभ] कषायवालोंके
त्रितयम् ३ अपि अस्ति । अकषायाणाम् ३	=तीनोंही (उपशम-वेदक-क्षायिक सम्यक्त्व) हैं और कषायरहितोंके
औपशमिकं ३ च क्षायिकं ३ अस्ति। ज्ञानअनुवादेन	=उपशम और क्षायिक (सम्यग्दर्शन) हैं । ज्ञानकी अपेक्षाकरि
आभिनिबोधिक–श्रुत–अवधि–मनः पर्यय—	=मति (=आभिनिबोधिक) श्रुत अवधि मनःपर्यय
ज्ञानिनां ३ त्रितयम् ३ अपि ※ अस्ति	=ज्ञानवालोंके तीनों (उपशम वेदक और क्षायिक सम्यक्त्व) ही हैं
केवल–ज्ञानिनां ३ क्षायिकम् ३ एव ※	=केवलज्ञानियोंके अर्थात् सयोग केवली और अयोगकेवली भगवान्‌के क्षायिक ही है
संयम–अनुवादेन ३ सामायिक-च्छेदोपस्थापन–	=संयमकी अपेक्षाकरि सामायिक और छेदोपस्थापन

(१) च्छेदोपस्थापन—यदि छ के पहिले कोई स्वर हो तो यह छ च्छ मे पलट जाता है । यह परिवर्तन करो अथवा मत करो यदि छ से पहिले आनेवाला स्वर दीर्घ और पदान्त हो तो । जैसे सामायिकच्छेदोपस्थापन वाक्यमें कमें जो अ है यह छ के प्रथम है, इसमें च्छ हो गया । इच्छति=चाहता है—शीर्षाणि अच्छिद्यन्त=मस्तक छेदे गये । गच्छति=जाता है । अपदान्त दीर्घस्वर छ से प्रथम आवे और म्लेच्छति [illegible] करता है । यदि छ से प्रथम दीर्घ पदान्त स्वर हो जैसे लक्ष्मीच्छाया—लक्ष्मीछाया=लक्ष्मीकी परछाई । यहाँ विकल्पसे दो रूप हुये ॥ विशेष यह है कि यदि छ से पहिले मा निषेध वाचक प्रत्यय हो अथवा आ उपसर्ग हो तो छ का परिवर्तन च्छ में अवश्य ही होगा जैसे आच्छाया=ईषच्छाया अर्थात् कुछ छाया । आच्छादयति=ढकता है । माच्छिदत्=नहीं छेदा । माच्छेत्सीत्=नहीं छेदा है । अष्टाध्यायी ६-१-७३-७४-७५-७६

संयतानां त्रितयमप्यस्ति । परिहारविशुद्धिसंयतानामौपशमिकं नास्ति । इतरत् द्वितयमप्यस्ति । सूक्ष्मसाम्परायथाख्यातसंयतानामौपशमिकं क्षायिकं चास्ति । संयतासंयतानां च त्रितयमप्यस्ति ॥८॥ दर्शनानुवादेन चक्षुर्दर्शनाचक्षुर्दर्शनावधिदर्शनिनां त्रितयमप्यस्ति । केवलदर्शनिनां क्षायिकमेव ॥ ९ ॥

संयतानां ३ त्रितयम् ४ अपि * अस्ति T	= संयमियोंके तीनों [उपशम–वेदक–क्षायिक सम्यक्त्व] हो हैं
परिहारविशुद्धिसंयतानां ३ औपशमिकं ४	= परिहार विशुद्धि संयमियोंके उपशम सम्यग्दर्शन
न अस्ति । इतरत् ४ द्वितयम् ४ अपि अस्ति	= नहीं है । अन्य दो [वेदक और क्षायिक सम्यक्त्व) ही हैं
सूक्ष्मसाम्पराय–यथाख्यात संयताना औपशमिकं ४	= सूक्ष्मसांपराय और यथाख्यात संयमवालोंके उपशम सम्यग्दर्शन
च क्षायिकं ४ अस्ति । च संयतासंयतानां ३	= और क्षायिक सम्यक्त्व है । और देशव्रतियोंके [पांचवा गुणस्थानवालोंके]
त्रितयम् ४ अपि अस्ति	= तीनों औपशमिक–क्षायोपशमिक–और क्षायिक सम्यक्त्व ही है
दर्शन–अनुवादेन ३ चक्षुर्दर्शन—अचक्षुर्दर्शन	= दर्शनके कथनानुसार चक्षुदर्शनवालोंके अचक्षुर्दर्शन वालोंके
अवधिदर्शनिनां ३ त्रितयम् ४ अपि अस्ति	= और अवधि दर्शनवालोंके तीनों (उपशम–वेदक– क्षायिक सम्यक्त्व) हैं ।
केवलदर्शनिनां ३ क्षायिकं ४ एव (अस्ति)	= केवल दर्शनियोंके सयोगकेवली अयोगकेवलीके क्षायिक ही (सम्यग्दर्शन) है

(१) इतरत्—कर्ता प्रथमा विभक्तिके सु प्रत्यय और कर्म द्वितीया विभक्तिके अम् प्रत्ययोंके स्थानमें अद्ड् आजाय यदि सु अम् पांच सर्वनाम कतर (दोनोंसे कोन) कतम (बहुतोंमेसे कई) इतर (दूसरा) अन्य (दूसरा) और अन्यतर (दो मेसे एक) के परे आवे तो (अष्टाध्यायी—अद्ड् डतरादिभ्य पञ्चभ्यः ७-१-२५) जैसे इतर+अद्ड् =इतरत् । इतरत् तिष्ठति=दुसरा ठहरता है—इतरत् पश्य=दुसरेको देख । इतरके अकाड् से लोप हो जाता है अर्थात् अद्ड् प्रत्ययमें इत्संज्ञक ड् का यह प्रभाव है कि वह अष्टाध्यायी ६-४-१४३ वें सूत्र टेः (डिति-भस्य) द्वारा इन पाचो शब्दोंके अन्तके अ का लोप कर देता है ॥ और इतरद्—इतरत् दो रूप हुये ॥

(२) सर्वार्थसिद्धिवचनिका मुद्रित पृष्ट ६१ मे "संयतासंयतके अरु असयतक तीन ही हैं" ऐसा वाक्य लाये हैं और इस सस्कृत वृत्तिमें असंयतानां वाक्य लाये नहीं है इसका कारण यह है कि यहां पर कथन संयमकी अपेक्षासे है न कि असंयमकी अपेक्षासे, श्री आचार्यने संयतासंयत तौ ले लिया क्योंकि संयम उस पांचवें गुणस्थानमे कुछ कुछ पाया जाता है ॥ यदि असंयताना शब्द लाते तो आचार्य विपर्यास्तर हो जाते क्योंकि विषय वा प्रकरण तो संयमका है । इसमें संदेह नहीं कि चौथे गुणस्थानवर्ती असंयतके तीनों हीं सम्यक्त्व होते हैं ॥ यदि यह विषय हाता कि किस किस स्थानमे कौन कौन सम्यक्त्व है तो असंयत लाते सो प्रकरण नहीं हैं अतः वृत्तिमें असंयतानां शब्द नहीं लाये ।

लेश्यानुवादेन षड्लेश्यानां त्रितयमप्यस्ति । अलेश्यानां क्षायिकमेव ॥१०॥ भव्यानुवादेन भव्यानां त्रितयमप्यस्ति, नाभव्यानाम् ॥ ११ ॥सम्यक्त्वानुवादेन यत्र यत्सम्यग्दर्शनं तत्र तदेव ज्ञेयम् ॥ १२ ॥ संज्ञानुवादेन संज्ञिनां त्रितयमप्यस्ति, नासंज्ञिनाम् । तदुभयव्यपदेशरहितानां क्षायिकमेव ॥ १३ ॥ आहारानुवादेन आहारकाणां त्रितयमप्यस्ति । अनाहारकाणां छद्मस्थानां त्रितयमप्यस्ति ॥ केवलिनां समुद्घातगतानां क्षायिकमेव ॥ १४ ॥

लेश्या अनुवादेन ३ा षड्लेश्यानां ३ा = लेश्याकी अपेक्षाकरि छह (कृष्ण नील-कापोत, पीत-पद्म-शुक्ल] लेश्यावालोंके
त्रितयम् ४ा। अपि * अस्ति T अलेश्यानां ३ा = तीनों ही [उपशम-वेदक-क्षायिक सम्यक्त्व] हैं लेश्यारहित [अयोग केवली]के
क्षायिकम् ४ा। एव * १० भव्य-अनुवादेन ३ा = क्षायिक ही [सम्यग्दर्शन] है । भव्यकी विवक्षा करि
भव्यानां ३ा त्रितयम् ४ा। अपि अस्ति । = भव्य जीवनके तीनोंही [सम्यक्त्व] हैं । अभव्य जीवोंके
अभव्यानाम् ३ा न * ॥ ११ ॥ सम्यक्त्व— = (कोई भी सम्यग्दर्शन) नहीं है । सम्यग्दर्शनके
अनुवादेन ३ा यत्र * यद् ४ा। सम्यग्दर्शनम् ४ा। = कथनानुसार करि जहां जो (= यद्) सम्यक्त्व है
तत्र * तद् ४ा। एव ज्ञेयम् ४ा। ॥ १२ ॥ = तहां वोही (= तद् सम्यक्त्व) जानना चाहिये अर्थात् उपशममें उपशमसम्यक्त्व, क्षायोपशममें क्षायोपशम सम्यक्त्व क्षायिकमें क्षायिक सम्यक्त्व जानना
संज्ञा-अनुवादेन ३ा संज्ञिनां ३ा त्रितयम् ४ा। अपि = संज्ञी (= सैनी) के अनुवादकरि सैनी जीवोंके तीनोंही
अस्ति । न-असंज्ञिनाम् ३ा । तद्—उभय— = (सम्यक्त्व हैं) असैनियोंके (कोई भी सम्यग्दर्शन) नहीं है । उन दोनों
व्यपदेश-रहितानां ३ा क्षायिकम् ४ा। एव * १३ = नामोंसे वर्जित (सयोगकेवली-अयोगकेवली भगवान) के क्षायिक ही है
आहार-अनुवादेन ३ा आहारकाणां ३ा त्रितयम् ४ा। = आहारकी अपेक्षासे आहारकनके तीनोंही
अपि अस्ति अनाहारकाणां छद्मस्थानां ३ा त्रितयं = सम्यग्दर्शन हैं आहारक वर्जित छद्मस्थोंके तीनोंही (उपशम वेदक—क्षायिक)
अपि अस्ति केवलिनां ३ा समुद्घातगतानां ३ा = ही हैं केवली समुद्घात करनेवाले (अनाहारक) अर्थात् सयोग केवली [जब समुद्घात करै तब अनाहारक हैं] और अयोग केवली [अनाहारक होते हैं]
क्षायिकम् ३ा एव * ॥ १४ ॥ = क्षायिक ही (सम्यक्त्व) है ।

२ । साधनं द्विविधम् । आभ्यन्तरं बाह्यं च ॥ आभ्यन्तरं दर्शनमोहस्योपशमः क्षयः क्षयोपशमो वा । बाह्यं नारकाणां प्राक्चतुर्थ्याः ॥ सम्यग्दर्शनस्य साधनं केषाञ्चिज्जातिस्मरणं केषाञ्चिद्धर्मश्रवणं केषाञ्चिद्वेदनाभिभवः ॥ चतुर्थीमारभ्य आसप्तम्या नारकाणां जातिस्मरणं वेदनाभिभवश्च ॥ तिरश्चां केषाञ्चिज्जातिस्मरणं केषाञ्चिद्धर्मश्रवणं केषाञ्चिज्जिनबिम्बदर्शनम् ॥

साधनं १।।। द्वि-विधम् १।।। =साधन अर्थात् सम्यक्त्वके होनेके कारण अथवा हेतु दो प्रकार है
आभ्यन्तरं १।।। बाह्यं १।।। च आभ्यन्तरं १।।। =अन्तरंग और बहिरंग [साधन] अन्तरंग [कारण तो]
दर्शनमोहस्य ६।। उपशमः १।। क्षयः १।। क्षयोपशमः १।। =दर्शन मोहनीय [कर्म] का उपशम, क्षय वा क्षयोपशम है । [नरक पर्यंत
वा बाह्यं १।।। प्राक्चतुर्थ्याः ५।। =बहिरंग [साधन] चौथे [नरक] से पहिले [अर्थात् पहिले-दूसरे तीसरे-
नारकाणां ६।।। सम्यग्दर्शनस्य ६।।। साधनं केषांचित् =नारक जीवोंके सम्यक्त्वका कारण कितनेके
जातिस्मरणं १।।। केषाञ्चित् धर्मश्रवणं १।।। =जातिस्मृति कितनेकके धर्मका सुनना (और)
केषाञ्चित् वेदना अभिभवः १।। चतुर्थी २।।। आरभ्य =कितनेकके दुःखका भोगना है चौथी पृथिवी (=नरक) से लेकर
आसप्तम्याः ५।। नारकाणां ६।। जातिस्मरणं १।।। =सातवीं पृथिवी (नरक) तक नारकी जीवोंके जातिका स्मरण
च वेदना-अभिभवः १।। तिरश्चां ६।। केषाञ्चित् =और (च) दुःखका भोगना (सम्यक्त्वके कारण) है । तिर्यंचोंके कितनेकके
जातिस्मरणं १।।। केषाञ्चित् धर्मश्रवणं १।।। =जातिस्मरण (अर्थात् पूर्व जन्मकी स्मृति) कितनेकके धर्मका सुनना
केषाञ्चित् * जिनबिम्बदर्शनं १।।। =कितनेकके भगवानका बिंब देखना (सम्यक्त्वके कारण) हैं

१ अभ्यन्तर 'बीच, बीचका स्थान पद्म० कोष पृष्ठ ३८ ॥ आभ्यन्तर=भीतर होनेवाला ॥ अतः आभ्यन्तर शब्द सर्वार्थसिद्धि द्वितीय आवृत्तिका ठीक है न कि अभ्यन्तर प्रथम आवृत्तिका (२) केषाम् चित्=म् का परिवर्तन (मोऽनुस्वारः उक्त सूत्रसे) अनुस्वारमें होगया ॥ इस अनुस्वारका परिवर्तन परसवर्ण चवर्गके ञ् मे (पदान्तस्यानुस्वारस्य ययि परे परसवर्णो वा अष्टाध्यायी ८-४-५९ सूत्रसे) होगया अतः केषाम् चित्=केषाञ्चित् । चित्+जाति=चिज्ज जाति (देखो टिप्पणी पृष्ठ ४९) चित् के त् का परिवर्तन ज्में हो जाता है (देखो टिप्पणी पृष्ठ १४-१५) (३) आरभ्य संबंध सूचक भूत कृदंत है ॥ (४) आ-सप्तम्याः आङ् मर्यादाभिविध्योः २। वा अष्टाध्यायी २।१।१३ सूत्र ॥ मर्यादा (अर्थात् जो सीमा कहैं उसके बाहर बाहर) और अभिविधि अर्थमे (अर्थात् जो सीमा कहैं उसको मिलाकर) वर्तमान जो आङ् (=आ) वह पंचमी अपादान विभक्तिके साथ विकल्पसे (=वा) समासको प्राप्त हो और वह समास।

मनुष्याणामपि तथैव ॥ देवानां केषाञ्चिज्जातिस्मरणं केषाञ्चिद्धर्मश्रवणं केषाञ्चिज्जिनमहिमदर्शनं केषाञ्चिद्देवर्द्धिदर्शनम् ॥ एवं प्रागानतात् ॥

मनुष्याणाम् ६।३ अपि * तथा * एव *	=मनुष्योंके भी वैसाही अर्थात् तिर्यंचोंके समान जातिस्मरण–धर्मश्रवण और जिनविम्ब दर्शन ये तीन ही सम्यग्दर्शन होनेके साधन वा कारण हैं
देवानां ६।३ केषांचित् * जातिस्मरणं १।१ केषांचित्	=देवोंके कितनेकके जातिका स्मरण आजाना कितनेकके
धर्मश्रवणं १।१ केषांचित् * जिनमहिमदर्शनं १।१	=धर्मका सुनना, कितनेकके भगवानके (पंचकल्याणकके) महत्वका देखना
केषांचित् * देव+ऋद्धि–दर्शनम् १।१ एव *	=कितनेकके देवनकी ऋद्धि देखना इसप्रकार
प्राग्–आनतात् ५।१	=आनत (तेरहवेंस्वर्ग) से पहिले पहिले अर्थात् सहश्रार बारहवें स्वर्ग तक सम्यग्दर्शनके उत्पन्न होनेके कारण वा साधन हैं

अव्ययी भाव संज्ञक हो पंचमी विभक्तिके साथ समास न करे तो द्वितीया विभक्तिके साथ अव्ययी भाव समास हो । मर्यादा अर्थमें जैसे आमुक्तेः संसारः मुक्तिकी सीमाके बाहर संसार है—एक मुक्तिकी सीमा मानलो और एक संसारकी, दोनों सीमां एक दूसरेसे चिपटी हुई हैं । यहां आङ् उपसर्गका यह प्रभाव है कि मुक्तिकी सीमासे संसारकी सीमाको बाहर बाहर रखता है । आमुक्ति २।१ संसारः १।१ का भी यही अर्थ है ॥ अभिविधि अर्थमें जैसे आ आकाशादेकद्रव्याणि=आकाश पर्यंत अथवा आकाशको सम्मिलित करते हुये एक एक द्रव्य हैं अध्याय ५ सूत्र ६ ॥ इसका यह अर्थ नहीं है कि आकाशके बाहर बाहर एक एक द्रव्य है क्योंकि जैनसिद्धांतके अनुसार काल जीव पुद्गल धर्म अधर्म आकाश छह द्रव्य हैं उनमें जीव अनन्तानन्त हैं । पुद्गल परमाणु जीवोंसे अनन्तगुणे हैं कालद्रव्यके अणु असंख्यात हैं । धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य आकाशद्रव्य एक एक हैं । आकुमारेभ्यो यशः सीतायाः अथवाआकुमारं यशः सीतायाः=सीताका यश लडको पर्यंत भी है अर्थात् सीताके यशके जाननेमे लडके भी सम्मिलित हैं । ऐसे ही आसप्तम्या नारकाणांमें नारकियोंके सातवां नरक पर्यंत अभिविधि अर्थमें आ ङ् उपसर्ग है अर्थात् आङ्के प्रभावसे सातवां नरक भी सम्मिलित है ॥ (१) ए–ऐ–ओ–औ स्वरोंको छोड कर यदि पहिले कोई स्वर आवे और उसके पश्चात् ह्रस्व ऋ हो तो इस ऋको स्वरके साथ मिलादो अथवा मत मिलावो जैसे देव+ऋद्धि=देव+अर्द्धि=देवर्द्धि, देवऋद्धि भी रूप ठीक है यदि पहिले आया हुआ स्वर दीर्घ हो तो इसको ह्रस्व कर देते हैं जैसे ब्रह्मा+ऋषिः=ब्रह्म ऋषिः, ब्रह्मर्षिः ।

आनतप्राणतारणाच्युतदेवानां देवर्द्धिदर्शनं मुक्त्वाऽन्यत्रितयमप्यस्ति । नवग्रैवेयकवासिनां केषांचिज्जातिस्मरणं केषांचिद्धर्मश्रवणम् ॥ अनुदिशानुत्तरविमानवासिनामियं कल्पना न सम्भवति । प्रागेव[2] गृहीतसम्यक्त्वानां तत्रोत्पत्तेः ॥

आनत–प्राणत–आरण—	= आनत [तेरहवें स्वर्ग] प्राणत (चौदहवें स्वर्ग) आरण [पंद्रहवें स्वर्ग]
अच्युतदेवानां ६। देव ऋद्धि दर्शनं २।१। मुक्त्वा	= अच्युत [सोलहवें स्वर्ग] के देवोंके देवोंकी ऋद्धि अवलोकन छोड़कर
अन्य–त्रितय १।१। अपि *	= अन्य तीनों (जातिस्मरण धर्मश्रवण जिनमहत्वदर्शन) ही
अस्ति।	= [सम्यग्दर्शनके उत्पन्न होनेके कारण] हैं।
नवग्रैवेयक–वासिनां ६।	= (सोलह स्वर्गके ऊपर) नवग्रैवेयकके [नव पटलोंमें] रहने वालोंके
केषांचित् * जातिस्मरणं १।१। केषांचित *	= कितनेकके जातिस्मरण कितनेकके
धर्मश्रवणं १।१।	= धर्मका सुनना (ये दोही सम्यक्त्वके उत्पन्न होनेके कारण) हैं
अनुदिश—	= [नव ग्रैवेयकोंके नो पटलोंके ऊपर) नव अनुदिशके एक पटलके विमानोंमें
अनुत्तर—	= और (उनके ऊपर) अनुत्तरके पाच [विजय-वैजयंत-जयंत–अपराजित
विमान-वासिनां ६। इयम् १।१। कल्पना १।१ न संभवति	= सर्वार्थसिद्धि] विमान वासियोंके यह साधन नहीं संभवै है
प्राग् एव * गृहीत सम्यक्त्वानां ६। तत्र उत्पत्तेः ५।१।	= क्योंकि पहले (जन्ममें] ही प्राप्त सम्यग्दर्शनवालोंकी वहां उत्पत्ति होती है

(१) धर्मश्रुति–जातिस्मृति–सुरर्द्धि–जिन— महिमदर्शनम् १।१। बाह्यम् १।१। =धर्म श्रवण करना, जातिस्मरण करना, देव ऋद्धि अवलोकन करना जिन भगवानके (गर्भादिक कल्याणके समयका) महत्व देखना (सम्यक्त्वके उत्पत्तिके) वाहिरी कारण है

(२) प्रागेव = प्राग्–एव। यह शब्द प्राय तीन अर्थोंमें आता है (१) प्रकर्षेण अंचति गच्छति इति प्राङ् सुगन्ता अर्थात् अतिशय करि वा बहुत अधिकतासे गमन करता है (अञ्चति = गच्छति) सो प्राङ् अथवा सुगन्ता है ॥ २ ॥ प्रकर्षेण अंच्यते पूज्यते इति प्राङ् पूज्यः अतिशयकरि पूजा जाता है ऐसा प्राङ् वा पूज्य है ॥ इन दोनों अर्थोंमें प्र उपसर्गमें अञ्च् धातु लगानेसे प्राञ्च् शब्द बना है । ॥ पद्मचन्द्र कोष पृष्ठ २५७ में " प्राञ्च् [त्रि) प्र – अच् + क्विन् पहिला समय और देश,' ऐसा अर्थ दिया है यहां पर पहिला देश अर्थात् पहिला स्थान इस अर्थमें आया है।

(४) अधिकरणं द्विविधम् । आभ्यन्तरं बाह्यं च ॥ आभ्यन्तरं स्वस्वामिसम्बन्धार्हो एव आत्मा विवक्षातः कारकप्रवृत्तेः ॥ बाह्यं लोकनाडी । सा कियती ? एकरज्जुविष्कम्भा चतुर्दशरज्ज्वायामा ॥ (५) स्थितिरौपशमिकस्य जघन्योत्कृष्टा चान्तर्मौहूर्तिकी । क्षायिकस्य संसारिणो जघन्यान्तर्मौहूर्तिकी । उत्कृष्टा त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि सान्तर्मुहूर्त्ताष्टवर्षहीनपूर्वकोटिद्वयाधिकानि । मुक्तस्य सादिरपर्यवसाना क्षायोपशमिकस्य जघन्यान्तर्मौहूर्तिकी । उत्कृष्टा षट्षष्टिसागरोपमाणि [६] विधानं सामान्यादेकं सम्यग्द-

अधिकरणं ।। द्विविधम् ।। आभ्यन्तरं ।। च =(४) आधार दो प्रकार है । अंतरंग और [च]
बाह्यं ।। आभ्यन्तरं ।। स्व-स्वामि— =बहिरंग [सम्यक्त्वका आधार] आभ्यन्तर अपना अधिपति [=स्वस्वामिन्]
सम्बन्ध-अर्हः ।। एव आत्मा ।। कारकप्रवृत्तेः ।। =सम्बन्धके योग्य आत्मा ही है । क्योंकि कारकन व्यवहारका
विवक्षातः * बाह्यं ।। लोकनाडी ।। । सा ।। =अपेक्षासे है । बाह्य [सम्यक्त्वका आधार] लोकनाड़ी है सो
कियती[1] ।। एक-रज्जु-विष्कम्भा ।। चतुर्दशरज्जु- =कितनी है ? एकराजू चौडी है (और) चौदहराजू
आयामा ।। औपशमिकस्य ।। स्थितिः ।। =ऊंची है [५] उपशम सम्यग्दर्शनकी स्थिति [ठहराव टिकाव] ठहरती है
जघन्या ।। च उत्कृष्टा ।। अन्तर्मौहूर्तिकी ।। =जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्तकी है ¾ घंटेसे न्यून समय तक उपशम सम्यक्त्व
संसारिणः ।। क्षायिकस्य ।। जघन्या अन्तर्मुहूर्तिकी ।। =संसारी जीवके क्षायिककी जघन्य (स्थिति) अन्तर्मुहूर्त्तकी है पीछे मुक्ति है
उत्कृष्टा ।। त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि ।। =(क्षायिक सम्यक्त्वकी) उत्कृष्ट (स्थिति] तेतीस सागर प्रमाण
स-अन्तर्मुहूर्त-अष्टवर्षहीन-पूर्वकोटिद्वय— =आठसाल अन्तर्मुहूर्तसहित न्यून दो करोड पूर्व
अधिकानि ।। =अधिक है [३३ सागर+२००००००० पूर्वमेंसे ८ बरस अंतर्मुहूर्त्त न्यून है]
मुक्तस्य ।। सआदिः ।। अपरि-अवसाना ।। =मोक्षजीवके [क्षायिक सम्यक्त्वकी स्थिति] आदि सहित और असमाप्ति है
क्षायोपशमिकस्य ।। जघन्या-अन्तर्मौहूर्तिकी ।। =वेदक सम्यक्त्वकी जघन्य (स्थिति) अन्तर्मुहूर्त है
उत्कृष्टा ।। षट्षष्टिसागरोपमाणि, =(६] उत्कृष्ट [स्थिति-वेदक सम्यक्त्वकी] छ्यासट सागर प्रमाण है ।
विधानं ।। सामान्यात् ।। एकं ।। सम्यग्दर्शनम् ।। = सामान्य [विवक्षा] से सम्यग्दर्शन एक प्रकार है.

[1] कियत् (त्रि०) (किम् परिमाणे वतुप्, किमः कादेशः वस्य यः कितना परिमाण कितना पद्म० १०८) शब्दसे कियती प्रथमा एक वचन स्त्रीलिंग है ॥

दर्शनम् । द्वितयं निसर्गजाधिगमजभेदात् । एवं संख्येया विकल्पाः शब्दतः ॥

निसर्गजअधिगमजभेदात् ।। द्वितयं ।।।	=स्वभाव जनित और परोपदेश जनित भेदसे [सम्यक्त्व] दो प्रकार है
एवं * शब्दतः * संख्येयाः ।। विकल्पाः ।।	=इसप्रकार शब्द (की अपेक्षा) से संख्यात भेद हैं

(१) आज्ञामार्गसमुद्भव मुपदेशात्सूत्रबीजसंक्षेपात् । विस्तारार्थाभ्यां भवमव परमावादिगाढं च ॥ १ ॥ इति दशविधम् ॥

आज्ञा-समुद्भवम् ।।। मार्ग-समुद्भवम् ।।। उपदेशात् ।।	=आज्ञासे उत्पन्न (सम्यग्दर्शन) मार्गसे उत्पन्न (सम्यक्त्व) उपदेशसे
भवम् ।।। सूत्रात् ।।। भवम् ।।। बीजात् ।।। भवम् ।।।	=उत्पन्न (सम्यग्दर्शन) सूत्रसे उत्पन्न, बीजसे उत्पन्न,
संक्षेपात् ।। भवम् ।।।विस्तारात् ।। भवम् ।।। अर्थात् ।।	=संक्षेपसे उत्पन्न (सम्यक्त्व) विस्तारसे उत्पन्न अर्थसे
भवम् ।।। अवगाढं ।।। च परम-अवगाढं ।।। इति	=उत्पन्न (सम्यग्दर्शन) अवगाढ़ और (च) परम अवगाढ़ (सम्यक्त्व) ऐसे
दश-विधम् ।।।	=(शब्दसे सम्यक्त्व) दश प्रकार हैं

इस आर्या छंदमें वर्णित दश विध सम्यग्दर्शनके अर्थ स्पष्ट करनेके लिये निम्न लिखित तीन स्रग्धरावृत्त (स्रग्धरा छंद) कहते हैं—

स्रग्धरा— आज्ञासम्यक्त्वमुक्तं यदुत विरुचितं वीतरागाज्ञयैव । त्यक्तग्रंथप्रपंचं शिवममृतपथं श्रद्दधन्मोहशान्ते: ।

मार्गश्रद्धानमाहुः पुरुषवरपुराणोपदेशोपयाता । या संज्ञानागमाब्धिप्रसृतिभिरुपदेशादिरादेशि दृष्टिः ॥ १ ॥

यद् ।।। उत + विरुचितं ।।। वीतराग-आज्ञया ।।	=और (=उत) जो (=यद्) वीतरागकी आज्ञाकरि ही (एव) श्रद्धान किया
एव आज्ञा-सम्यक्त्वं ।।।	=जाय (जो वीतरागके वचन पर ही विश्वास किया जाय) सो आज्ञा सम्यक्त्व
उक्त ।।। त्यक्तग्रंथप्रपञ्चं ।।	=कहाजाता है । शास्त्र विस्तारके (श्रवण) विना
शिवम् ।। अमृतपथं ।। मोहशान्तेः ।।।	=कल्याणरूप मोक्षमार्गमें (शब्दार्थ अमर मार्ग) मोहकी शांति होनेसे (अर्थात् दर्शन मोहनीय कर्मके उपशम, क्षयोपशम और क्षय होनेसे)
(२) श्रद्दधत् ।। मार्गश्रद्धानम् ।।। आहुः T	=श्रद्धान वा रुचि करनेको मार्गज सम्यग्दर्शन कहते हैं (आहुः)
पुरुष-वर-पुराण-उपदेश-उपयाता ।।। या ।।। संज्ञान	=श्रेष्ठ प्राचीन पुरुषों (तीर्थंकरादिक) के उपदेश जनित जो श्रेष्ठ ज्ञान (उस) से
आगम-अब्धि-प्रभृतिभिः ।।। उपदेशादिः ।।	=उत्पन्न हुआ आगमरूपी समुद्र (तिस) के विस्तारोंकरि (प्राप्ति) उपदेशादिक
आदेशदृष्टिः ।।	=(सो) आदेशदृष्टि है (उत्कृष्ट पुरुषोक्त शास्त्रादिकके पढ़नेसे सुननेसे जो श्रद्धान हो)

(१) ब्रू कहना अदादिगणके धातुसे अन्य पुरुष बहुबचन परस्मैपद बर्तमान काल आहुः विना नियमके बना है (२) श्रद्दधत् श्रद्दधन् क्योंकि

श्रद्धत् के त् का परिवर्तन न् में हो जाता है (देखो टिप्पणी पृष्ठ ३६) श्रत् (अव्य०) विश्वास पद्म पृष्ठ ३६० ॥ धा जुहोत्यादि तृतीय गणका उभय परस्मैपदी और आत्मनेपदी सकर्मक अनिट् धातु धारण वा पकड़ने अर्थमें है। इस गणके धातुओके रूप बनानेमें यदि धातुमें पहिले व्यंजन हो और पश्चात् एक स्वर हो तो धातुको दुहरा देते हैं अतः धाधा होगया और दुहराये हुये भागको व्याकरणमें अभ्यास कहते हैं यहां प्रथम धा अभ्यास है अभ्यासमें वर्गका दूसरा और चौथा अक्षर क्रमसे उसी वर्गके प्रथम और तीसरे अक्षरमें पलट जाता है इसलिये धाधा = दाधा अष्टाध्यायी ८-४-५४) और अभ्यासके दीर्घ स्वरका ह्रस्व हो जाता है (अ० ७-४-५६) अतः दाधा = दधा । धा का आ क्रिया के ङित् संज्ञक प्रत्ययके पहिले गिर जाता है। अति बहुवचन अन्य पुरुष परस्मैपद वर्तमान काल जुहोत्यादि गणका ङित् प्रत्यय है इसके पहिले धा का आ गिरकर केवल दध् रूप रह जाता है अब श्रत् दध् रूप हुआ ॥ श्रत्के त् का द्में परिवर्तन टिप्पणी पृष्ठ १५से हुआ ॥ श्रद्दध् ॥ श्रद्दधत् वर्तमान कृदन्त है और प्रपञ्चं शिवम्, अमृतपथं तीनों शब्द द्वितीया विभक्ति पुलिंग एकवचन श्रद्दधत् क्रियाके कर्म हैं। वर्तमान कृदन्त बनानेका प्रायः यह नियम है कि धातुका वह रूप लेलो जो अन्य पुरुष बहुवचन वर्तमान कालकी क्रिया बनानेसे पहिले कोई धातु ग्रहण करता है पश्चात् धातु आत्मनेपदी हो जिसका वर्तमान कृदन्त बनाना है तो आन प्रत्यय लगा दो (जैसे दध्+आन दधान वा श्रत्+दध्+आन श्रद्धान यदि धातुका परस्मेपदमें प्रयोग हो तो अत् प्रत्यय लगादो इसलिये श्रद्दध्+अत्=श्रद्दधत् - विश्वास (श्रद्) करते हुये दधत् = श्रद्दधान (स्रग्धरा) आकर्ण्याचारसूत्रंमुनिचरणविधेः सूचनं श्रद्दधानः । सूक्तोऽसौ सूत्रदृष्टिर्दुरधिगमगतेरर्थसार्थस्य बीजैः ।

केश्चिज्जातोपलब्धेरसमशमवशाद्बीजदृष्टिः पदार्थान् । संक्षेपेणैव बुध्वा रूचिमुपगतवान् साधु संक्षेपदृष्टिः । ४ से ६ तक भेद हैं

मुनिचरणविधेः ६। सूचनं २।। आचार सूत्रं ३।।	=मुनिके आचरणके विधानका जतलानेवाले आचार सूत्रको
आकर्ण्य श्रद्धानः ३। असौ १। सूत्रदृष्टिः १। सूक्तः १।	=सुनकर विश्वास (=श्रद्) करना वा धरना (=दधान) वह सूत्रदृष्टि भलेप्रकार कहा गया है अर्थात् मुनिका आचरण सुननेसे जो तत्वार्थ श्रद्धान हो सो सूत्र सम्यक्त्व है
दुर्-अधिगम-गतेः ६। अर्थसार्थस्य ६।	=कठिनाईसे (दुर्) ज्ञान (अधिगम) प्राप्त होनेवाले (गतेः) पदार्थोंके समूहका
केश्चित् ३ बीजैः ३।।	=कैइकके बीजाक्षर (जैसे ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः इत्यादि) करि
असम—शम—वशात् ५।	=असाधारण (असम) मोहनीय कर्मके उपशम (क्षय-क्षयोपशम) के वशसे

जात-उपलब्धेः ५। बीजदृष्टिः १।	=उत्पन्न हुआ [=जात] ज्ञान (=उपलब्धेः) सो बीजदृष्टि सम्यक्त्व है॥ (में है (वा "बीज सकल समय दल सूचना व्याजमें" ऐसा भी अनगारधर्मामृत अ०२ श्लो० ६२ ")
पदार्थान् २। संक्षेपण ३।१ एव बुध्वा — रुचिम् २।१	=पदार्थोंको सामान्यसे ही जानकर श्रद्धानको
उपगतवान् १। साधु-संक्षेपदृष्टि १।	=प्राप्त होनेवाला प्रशस्त वा भली [=साधु] संक्षेपदृष्टि (=सम्यक्त्व है) अर्थात् संक्षेप रूपसे पदार्थोंको जानकर जो श्रद्धान होय सो संक्षेप सम्यक्त्व है)

(श्लोक) यः श्रुत्वा द्वादशांगीं कृतरुचिरिह तं विद्धि विस्तारदृष्टिम् । सञ्जातार्थात्कुतश्चित्प्रवचनवचनान्यन्तरेणार्थदृष्टिः ॥
दृष्टिः साङ्गाङ्गवाह्यप्रवचनमवगाह्योत्थिता याऽववाढा । कैवल्यालोकितार्थे रुचिरिह परमावादिगाढेति रूढा ॥ ३ ॥

यः १। श्रुत्वा द्वादशांगीं २।१ कृतरुचिः १। इह * तं २।	=जो (भव्य) द्वादशांग वाणीको सुनकर इसलोकमें (=इह) श्रद्धानी हो तिसको
विद्धि T विस्तारदृष्टिम् २।	=विस्तारदृष्टि जानों (द्वादशांगको सुनकर जो रुचि हो वह विस्तार सम्यक्त्व है।
प्रवचन-- वचनानि २।१ अन्तरेण* कुतश्चित्*	=आगम वा शास्त्रके वाक्योंके विना (देखे वा सुने) किसी (=कुतश्चित्)
सञ्जातार्थात् ५। अर्थ-दृष्टिः १।१	=पदार्थ (के निमित्त) से उत्पन्न हुआ (जो श्रद्धान) सो अर्थदृष्टि (सम्यक्त्व) है अर्थात् दृष्टान्तादिक रूप पदार्थोंसे जो श्रद्धान हो सो अर्थ सम्यक्त्व है
स--अङ्ग--अङ्ग-वाह्यप्रवचनम् २।१ अवगाह्य--	=अङ्ग और अङ्गवाह्यसहित उत्तम (वा श्रेष्ठ) शास्त्रको जानकर (=अवगाह्य)
उत्थिता १।१ या १।१ दृष्टिः १।१ अवगाढा १।१ (दृष्टिः १।१)	=उत्पन्न हुई (=उत्थिता) जो (=या) रुचि (=दृष्टि) सो अवगाढ सम्यक्त्व है (जो श्रुतकेवलीके सम्यग्दर्शन हो सो अवगाढदृष्टि वा अवगाढ सम्क्त्व है)
कैवल्य--आलोकित- अर्थे ७।१ इह*	=केवलज्ञानकरि देखे गये पदार्थमें इसलोकमें (=इह, श्रद्धान)
परमावादिगाढा १।१ इति* रूढा १।१	=सो परम अवगाढ (दृष्टि=सम्यक्त्व) है ऐसा प्रसिद्ध है अर्थात् इसलोकमें जो =(वीतराग सर्वज्ञ) केवलीका श्रद्धान है सो परमावगाढ़ दृष्टि है ॥

* अर्थदृष्टि यहापर पुलिंग भी हो सक्ता है ॥ (२) सा अङ्ग भी हो सकता है फिर दृष्टिः शब्दका सांकेतिक होगा अर्थात् सा १।१ दृष्टिः १।१

(१) सम्यक्त्वके कहनेवाले शब्दोंकी संख्या होनेसे उपर्युक्त सम्यग्दर्शनके संख्यात भेद हुये ॥ आत्मानुशासनसे ।

असङ्ख्येया अनन्ताश्च भवन्ति श्रद्धातृश्रद्धातव्यभेदात् ॥ एवमयं निर्देशादि विधिर्ज्ञानचारित्रयो-र्जीवाजीवादिषु चागमानुसारेण योजयितव्यः ॥ किमेतैरेव जीवादीनामधिगमो भवति उत अन्योऽप्यधि-गमोपायोऽस्तीति परिपृष्टोऽस्तीत्याह—

श्रद्धातृ-श्रद्धातव्य-	= विश्वास करनेवाले और प्रतीत करने योग्य [वस्तु] के
भेदात् ।। असंख्येयाः ।। च अनन्ताः ।। भवन्ति T	= भेदसे असंख्यात और अनंत [भेद सम्यक्त्वके) होते हैं
एवम् अयम् ।। निर्देश-आदि-विधिः ।। ज्ञान-	= ऐसे यह निर्देशादिक क्रम (सम्यग्दर्शनकी भांति] ज्ञान
चारित्रयोः ।।। च जीवाजीवादिषु ।।।	= और चारित्रमें: तथा (=च] जीव-अजीव आदि (सात तत्त्वों] में
आगम-अनुसारेण ।।। योजयितव्यः ।।	= शास्त्रके अनुकूल लगाया जाना चाहिये ।
किम् ।।। एतैः ।।	= क्या इन [निर्देश, स्वामित्व, साधन, अधिकरण, स्थिति और
जीवादीनाम् ।।।	= विधान] अनुयोगों करि ही जीवादिक सात तत्त्वों (और सम्यग्दर्शनादिका
अधिगमः ।। भवति उत * अन्यः ।।। अपि अधिगम	= ज्ञान होता है अथवा भिन्न भी जाननेका
उपायः ।। अस्ति इति परिपृष्टः अस्ति इति आह T	= उपाय है ऐसा प्रश्न किया गया है (सो आचार्य) ऐसा कहते हैं कि

(१) विसर्गसे पहिले आ हो और उसके पश्चात् कोई स्वर वा घोष व्यंजन आवे तो यह विसर्ग गिर जाता है जैसे नराः इमे = नरा इमे। और यदि विसर्गके पहिले अ हो और उसके पश्चात् अ को छोडकर अन्य कोई स्वर हो तो भी इस विसर्गको गिरा देते हैं जैसे बुधः इच्छति = बुध इच्छति और दो स्वर जो विसर्गके गिरने पर रह जाते हैं एक दूसरेमे सम्मिलित नहीं होते है ॥ जैसे असंख्येयाः अनन्त = असङ्ख्येयाः अनन्त अव असङ्ख्यानन्त ऐसा वाक्य नहीं हो सक्ता है।' (२) एतैः पुलिंग और नपुंसकलिंग दोनोंमे है यहां अनुयोगैः शब्द जो पुलिंग होता है गुप्त है अतः इसको हमने पुलिंग माना है ॥ (३) जीवादीनां वाक्यके पहिले सम्यग्दर्शनादीनां वाक्य अधिक समझ लेना चाहिये जैसा कि हम टिप्पणी सूत्र ६ में लिख चुके हैं ॥

सूत्र—सत्संख्याक्षेत्रस्पर्शनकालान्तरभावाल्पबहुत्वैश्च ॥ ८ ॥

सदित्यस्तित्वनिर्देशः। प्रशंसादिषु वर्तमानो नेह गृह्यते। संख्या भेदगणना।

पदच्छेदः— सत्—संख्या—क्षेत्र—स्पर्शन—काल—अन्तर—भाव—अल्पबहुत्वैः ३।। च (सम्यग्दर्शनादीनां ३।। च जीवादीनां ३।। अधिगमः)

सत्—संख्या—	=सूत्रार्थ-(पदार्थकी) विद्यमानता अथवा अस्तित्व, (वस्तुके) परिणामोंकी वा भेदोंकी गणना
क्षेत्र—	=[वस्तुका वर्तमान कालमें] निवास अथवा [वस्तुका] वर्तमान स्थान वा आधार,
स्पर्शन—काल—	=[पदार्थका] त्रिकाल गोचर निवास, [वस्तुका] तीनों कालमें विचरनेका क्षेत्र; समयकी मर्यादा
अन्तर—	=विरहकाल, वियोग काल, विछोह काल, [अर्थात् जो एक परिणामोंसे दूसरे परिणाम जाय फिर तिसही परिणामको आवै तिसके बीच जितना काल लगे उसको वस्तुका विरहकाल कहते हैं]
भाव-(च)	=उपशम, क्षायोपशमिकादि परिणाम, (और)
अल्प-बहुत्वैः ३।।	=एक वस्तुको दूसरेकी अपेक्षा थोडी बहुत कहना, परस्परकी अपेक्षासे हीनपना अधिकपनाका होने
सम्यग्दर्शनादीनां ३।। च	=करि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रका और
जीवादीनां ३।। अधिगमः ३।	=जीव-अजीव-आस्रव-बन्ध-संवर-निर्जरा-मोक्षका अधिगम होता है।

पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित इस सूत्रपर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दशः हिंदी अनुवाद।

सत्-इति अस्तित्व-निर्देशः ३।	=(इस सूत्रमें) सत् ऐसा (शब्द पदार्थकी) विद्यमानताका जतलानेवाला है
प्रशंसादिषु ७। वर्तमानः ३।	=(सत् शब्द) प्रशंसादिक अर्थोंमें प्रवर्तता है
न * इह * गृह्यते	=[सो] इस स्थानमें [=इह] नहीं लिया गया है
संख्या ३।। भेदगणना ३।।	=संख्या (वस्तुके) भेदनकी गणना अथवा गिनती है

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों दिगम्बर और श्वेताम्बर आम्नायोंमें एकसा है॥ साध्वर्चित प्रशस्तेषु सत्येऽस्तित्वे च सम्मतः।

(२) साधु-अर्चित-प्रशस्तेषु ७। सत्ये ७।। =सदाचारी, पूज्य, बहुत उत्तम, यथार्थ वा ठीक

च * अस्तित्वे ७।। सम्मतः ३। =और विद्यमानता (अर्थों) मे (सत्शब्द) स्वीकृत है। (इस सूत्रमें अस्तित्व अर्थ लिया है)

स्थितिग्रहणात्कालसङ्ग्रहः । भावो नामादिषु सङ्गृहीत एव । पुनरेषां किमर्थं ग्रहणमिति ॥ सत्यं, सिद्धम् ॥ विनेयाशयवशात्तत्त्वदेशनाविकल्पः ॥ केचित्संक्षेपरुचयः । केचिद्विस्तररुचयः । अपरे नातिसङ्क्षेपेण[२] नातिविस्तरेण प्रतिपाद्याः ॥ सर्वसत्त्वानुग्रहार्थो हि सतां प्रयास इति अधिगमाभ्युपायभेदोद्देशः कृतः । इतरथा हि "प्रमाणनयैरधिगमः"

स्थिति-ग्रहणात् ५।१ काल-सङ्ग्रहः १।१	= स्थितिशब्दके लानेसे (इस सूत्रके) कालका ग्रहण होता है (और)
भावः १।१ नामादिषु ७।३ सङ्गृहीतः १।१ एव	= भाव शब्द नामादि निक्षेपमें गर्भित है ही (= एव-देखो पांचवासूत्र)
पुनर्* एषां ६।३ ग्रहणं १।१ किमर्थं १।१ इति	= फिर इन (सत्-संख्या-क्षेत्र-स्पर्शन-काल-भाव) का ग्रहण क्यों किया है
सत्यं* सिद्धम् १।१ विनेय-आशय-वशात् ५।१	= हां (पिछले सूत्र और नामादि निक्षेपसे) सिद्ध है शिष्यके अभिप्राय वशसे
तत्त्व-देशना-विकल्पः १।१	= तत्त्वके उपदेशका भेद किया है (अर्थात् जुदे २ प्रकारसे वर्णन किया है]
केचित्* संक्षेप-रुचयः १।३	= कोई (शिष्य) संक्षेप इच्छावाले हैं (थोडेसे कहनेमें वहुत समझ लेते हैं)
केचित् विस्तार-रुचयः १।३	= कितनेही विस्तार रुचिवाले हैं (वहुत कथन करनेसे समझ पाते हैं]
अपरे १।३ न* अतिसंक्षेपेण ३।१ न अति	= अन्य वा इतर (शिष्य) न वहुत संक्षेपकरि न वहुत
विस्तरेण ३।१ प्रतिपाद्याः १।३	= विस्तारसे समझाये जाते हैं (अर्थात् मध्यम कथन करनेसे समझते हैं)
सर्वसत्त्व-अनुग्रह-अर्थः १।१ हि सतां ६।३ प्रयासः १।१	= समस्त प्राणियोंके उपकारके लिये ही सत्पुरुषोंका परिश्रम होता है
इति अधिगम-अभ्युपाय-भेद-उद्देशः १।१ कृतः १।१	= ऐसे ज्ञान करनेके अच्छे उपायोंके भेदसे कथन किया है [भिन्नतासे कथन है]
इतरथा* हि* प्रमाणनयैरधिगमः १।१	= नहीं (=इतरथा) तो (हि) "प्रमाण और नयोंसे ज्ञान होता है" ऐसे

(१) नामादयस्त्रयः द्रव्यार्थिकनयविषयाः । भाव. पर्यायार्थिकनयविषयो यत ॥
नाम-आदयः १।३ त्रयः १।३ द्रव्यार्थिक नयविषयाः १।३ = नाम, स्थापना, द्रव्य, (निक्षेप) द्रव्यार्थिक नय (नैगम, संग्रह व्यवहार) के विषय है
यतः* भावः १।१ पर्यायार्थिक नय विषयः १।१ = क्यो कि भाव निक्षेप पर्यायार्थिक-नय (ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ, एवंभूत) का विषय है
(२) सङ्क्षेपेण शब्द क्रियाविशेषण है अतः नपुंसक लिंग है यद्यपि ये शब्द पुलिंग है ।

इत्यनेनैव सिद्धत्वादितरेषां ग्रहणमनर्थकं स्यात्॥ तत्र जीवद्रव्यमधिकृत्य सदाद्यनुयोगद्वारानिरूपणं क्रियते॥ जीवाश्चतुर्दशसु गुणस्थानेषु व्यवस्थिताः॥ १ मिथ्यादृष्टिः। २ सासादनसम्यग्दृष्टिः ३ सम्यङ्मिथ्यादृष्टिः ४ असंयतसम्यग्दृष्टिः। ५ संयतासंयतः। ६ प्रमत्तसंयतः। ७ अप्रमत्तसंयतः। ८ अपूर्वकरणस्थाने उपशमकः क्षपकः। ९ अनिवृत्तिबादरसाम्परायस्थाने उपशमकः क्षपकः।

अनेन [१]।। एव सिद्धत्वात् [५]।। इतरेषां [६]।। ग्रहणम् [१]।।	= इस (सूत्र) करि ही सिद्ध होनेसे अन्य (पांचवें-सातवें-आठवे सूत्रोंका) प्रयोग
अनर्थकं [१]।। स्यात् T तत्र * जीवद्रव्यम् [२]।।	= निःप्रयोजन वा व्यर्थ होता [अतः मेद्से कहना योग्य है] तहां चेतन द्रव्यको
अधिकृत्य—सत्-आदि-अनुयोगद्वार निरूपणं [१]।।	= आश्रयकर सत् आदि [आठ] प्रश्नोंद्वारा कथन वा उपदेश
क्रियते T जीवाः [१]। चतुर्दश—गुणस्थानेषु [७]।।	= किया है॥ और जीव चौदह गुणस्थानोंमें
व्यवस्थिताः [१]।	= व्यवस्थित हैं वा तिष्ठे हैं [और वे गुणस्थान निम्न लिखित हैं)
१ मिथ्यादृष्टिः [१]। २ सासादनसम्यग्दृष्टिः [१]।	= १ मिथ्यादृष्टि प्रथमगुणस्थानवर्ती। २ सासादन सम्यग्दृष्टि द्वितीयगुणस्थानवाले
३ सम्यङ्मिथ्यादृष्टिः [१]। ४ असंयतसम्यग्दृष्टिः [१]।	= ३ सम्यग्मिथ्यादृष्टि [मिश्रगुणस्थानवर्ती] ४ अविरत सम्यग्दृष्टि
५ संयतासंयतः [१] ६ प्रमत्तसंयतः [१] ७ अप्रमत्तसंयतः [१]	= ५ संयमासंयमी वा देशविरतसंयमी ६ प्रमत्तसंयमी, ७ अप्रमत्तसंयमी,
८ अपूर्वकरणस्थाने [७]।। उपशमकः [१]	= [८ क] अपूर्वकरण [गुण] स्थानमें उपशम करनेवाला [उपशमक]
(अपूर्वकरणस्थाने) क्षपकः [१]	= (८ ख) अपूर्वकरण (गुण) स्थानमें क्षय करनेवाला [क्षपक]
९ अनिवृत्तिबादरसाम्परायस्थाने [७]।। उपशमकः [१]	= [९ क] अनिवृत्तिबादरसाम्पराय (गुण) स्थानमें उपशम करनेवाला
[अनिवृत्तिबादरसाम्परायस्थाने] क्षपकः [१]	= [९ ख] अनिवृत्तिबादरसाम्पराय [गुण] स्थानमें क्षय करनेवाला क्षपक

---

(१) अनेन—इदम् शब्दकी तृतीया विभक्ति एक वचन पुलिंग और नपुंसक लिंग दोनोंमे हो सक्ती है यहां पर सूत्र शब्दसे सम्बन्ध रखता है अतः नपुंसक लिंगमे है इदमका अनया—तृतीया विभक्ति स्त्री लिंगका रूप है (२) इतरेषाम्—इतर शब्दकी षष्ठी नपुंसक लिंग वा पुलिंग हो सक्ती है यहां पर सूत्र शब्दसे संबंधित है अतः नपुंसक लिंगमें है। (३) क्रियते-कर्मणि प्रधानमें यदि धातुके अंतमें ऋ हो और इस ऋ के पहिले कोई संयोग सज्ञक व्यंजन न हो तो ऋ के स्थानमें रि लाते हैं पश्चात् य कर्मणि प्रत्यय और ते एक वचन अन्यपुरुष आत्मनेपदी वर्तमानकालकी क्रियाका चिन्ह लगानेसे क्रियते बन जाता है जैसे कृ = क्रि क्रिय + ते = क्रियते।

१० सूक्ष्मसाम्परायस्थाने उपशमकः क्षपकः। ११ उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थः। १२ क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थः। १३ सयोगकेवली। १४ अयोगकेवली चेति॥ एतेषामेव जीवसमासानां निरूपणार्थं चतुर्दशमार्गणास्थानानि ज्ञेयानि॥ गती-न्द्रिय-काय-योग-वेद-कषाय-ज्ञान-संयम-दर्शन-लेश्या-भव्य-सम्यक्त्व-संज्ञा-ऽऽहारका इति॥ तत्र सत्प्ररूपणा द्विविधा सामान्येन विशेषेण च॥ सामान्येन तावत् अस्ति मिथ्यादृष्टिः।

१० सूक्ष्मसाम्परायस्थाने ३।। उपशमकः २।	=१० क, सूक्ष्मसाम्पराय (गुण) स्थानमें उपशम करनेवाला उपशमक
[सूक्ष्मसाम्परायस्थाने] क्षपकः २।	=१० ख, [सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानमें] नाश करनेवाला क्षपक
११ उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थः१।	=११ उपशान्तकषाय वीतराग छद्मस्थ
१२ क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थः १।	=१२ कषायविनाशक वीतराग छद्मस्थ
१३ सयोगकेवली १। च अयोगकेवली १। इति	=१३ सयोगकेवली और १४ अयोगकेवली॥ ऐसे [१४ गुणस्थानवर्ती] हैं
एतेषाम् ६। एव जीवसमासानां ६। निरूपण-अर्थं ४।।।	=इनही गुणस्थानोंके [=जीवसमासानां] कथनके लिये
चतुर्दश-मार्गणा-स्थानानि १।।। ज्ञेयानि २।।।	=चौदह मार्गणास्थान जानने योग्य हैं (और वे)
गति-इन्द्रिय-काय-योग-वेद—	=गति [चार] इंद्रिय [पांच] काय [छह] योग [पन्द्रह] वेद [तीन]
कषाय-ज्ञान-संयम-दर्शन-लेश्या—	=कषाय (पचीस) ज्ञान (आठ) संयम (सात) दर्शन (चार) लेश्या [छह]
भव्य-सम्यक्त्व-संज्ञा-आहारकाः ३। इति॥	=भव्य (दो) सम्यक्त्व (तीन) संज्ञा (दो) आहारक (दो) ऐसे मार्गणा हैं
तत्र सत्प्ररूपणा १।। द्विविधा १।। सामान्येन ३।	=तहां सत्प्ररूपणा दो प्रकार है सामान्यकरि अथवा संक्षेपकरि
च विशेषेण ३। । सामान्येन ३।। तावत् *	=और (=च) विशेषकरि। संक्षेपकरि प्रथम (तावत्)
मिथ्यादृष्टिः १। अस्ति	=मिथ्यादृष्टि सत्‌रूप है अर्थात् मिथ्यादृष्टिका अस्तित्व होनापन [वर्तमान] है

(१) "ऐसे चौदह गुणस्थान जानने। बहुरि इनिकूं जीवसमास संज्ञा भी कही है" सर्वार्थसिद्धि वचनिका मुद्रित पृष्ठ ६७॥ इसलिये हमने यहां जीवसमासका अनुवाद गुणस्थान किया है॥ "जहां जीव पाइये सो जीवसमास कहिये" जीवसमास ५७ हैं और ९८ भी हैं जीवाः ३। सम्यग् १।। आसते T येषु इति जीवसमासाः ३।=जिन स्थानोंमें (=येषु) जीव अधिक (=सम्यग्) तिष्ठते हैं सो जीवसमास है॥

अस्ति सासादनसम्यग्दृष्टिरित्येवमादि ॥ विशेषेण—गत्यनुवादेन नरकगतौ सर्वासु पृथिवीषु आद्यानि चत्वारि गुणस्थानानि सन्ति । तिर्यग्गतौ तान्येव संयतासंयतस्थानाधिकानि सन्ति । मनुष्यगतौ चतुर्दशापि सन्ति । देवगतौ नारकवत् ॥ इन्द्रियानुवादेन एकेंद्रियादिषु चतुरिन्द्रियपर्यन्तेषु एकमेव मिथ्यादृष्टिस्थानम् । पंचेन्द्रियेषु चतुर्दशापि सन्ति ॥ कायानुवादेन पृथिवीकायादिषु वनस्पतिकायान्तेषु एकमेव मिथ्यादृष्टिस्थानम् ॥ त्रसकायेषु चतुर्दशापि सन्ति ॥

अस्ति सासादनसम्यग्दृष्टिः ।१। एवम् इत्यादि	= सासादन सम्यग्दृष्टि सत् स्वरूप है । ऐसे [= एवम्] इत्यादि अर्थात् तीसरे गुणस्थानसे लेकर चौदहवे गुणस्थान पर्यंत अस्तित्व जानो
विशेषेण ।१। गति अनुवादेन ।२। नरकगतौ ।३।	= भेद प्रभेद करि गतिके कथनानुसारसे नरकगतिमें
सर्वासु ।४। पृथिवीषु ।५। आद्यानि ।६। चत्वारि ।७।	= सब नरकोंमें पहले चार [मिथ्यात्व-सासादन-मिश्र-अव्रत]
गुणस्थानानि ।८। सन्ति । तिर्यग्गतौ ।९। तानि ।१०। एव	= गुणस्थान हैं । तिर्यंचगतिमें वे ही [अर्थात् आदिके चार गुणस्थान]
संयतासंयत-स्थान-अधिकानि ।११। सन्ति	संयतासंयत गुणस्थान अधिक सहित [अर्थात् आदिके पांच गुणस्थान] हैं
मनुष्यगतौ ।१२। चतुर्दश ।१३। सन्ति	= मनुष्यगतिमें चौदह ही [अपि] गुणस्थान हैं
देवगतौ ।१४। नारकवत्*	= देवगतिमें नारकियोंके सदृश (आदिके चार गुणस्थान) है
इन्द्रिय-अनुवादेन ।१। एकेन्द्रिय-आदिषु ।२। चतुर्	= इन्द्रियकी अपेक्षासे एकेन्द्रियसे चार
इन्द्रिय-पर्यन्तेषु ।३। एकम् ।४। एव मिथ्यादृष्टि-	= इन्द्रियतकमें एक ही मिथ्यादृष्टि
स्थानम् ।५। पञ्चेन्द्रियेषु ।६। चतुर्दश ।७। अपि सन्ति	= गुणस्थान है पंचेन्द्रियमें चौदह (गुणस्थान) भी हैं
कायअनुवादेन ।१। पृथिवीकाय आदिषु ।२। वनस्पति-	= कायकी अपेक्षाकरि पृथिवी कायसे लगाय वनस्पति
काय—	= काय (अर्थात् पृथिवीकाय, अप्काय, तेजःकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय)
अन्तेषु ।३। एकम् ।४। एव मिथ्यादृष्टि-स्थानम् ।५।	= पर्यन्तमें एकही मिथ्यादृष्टि गुणस्थान है
त्रसकायेषु ।६। चतुर्दश ।७। अपि सन्ति	= त्रसकायमें चौदह भी गुणस्थान हैं ॥

योगानुवादेन त्रिषु योगेषु त्रयोदशगुणस्थानानि भवन्ति । ततः परः अयोगकेवली ॥ वेदानुवादेन त्रिषु वेदेषु मिथ्यादृष्ट्याद्यनिवृत्तिबादरान्तानि सन्ति। अपगतवेदेषु अनिवृत्तिबादराद्ययोगकेवल्यन्तानि ॥ कषायानुवादेन क्रोधमानमायासु मिथ्यादृष्ट्यादीनि अनिवृत्तिबादरस्थानान्तानि संति। लोभकषाये तान्येव सूक्ष्मसाम्परायस्थानाधिकानि। अकषायः

योग-अनुवादेन ३।१ त्रिषु ७।३ योगेषु ७।३ त्रयोदश- =योगकी अपेक्षासे [मन वचन काय] तीनों योगनमें तेरह
गुणस्थानानि १।३ भवन्ति T ततः * परः १।१ =गुणस्थान (प्रथमसे तेरह तक) होते हैं। तहां [तेरह गुणस्थान] से आगे
अयोग-केवली १।१ =अयोग केवली है अर्थात् चौदहवे गुणस्थानमें कोई भी योग नहीं है
वेद-अनुवादेन ३।१ त्रिषु ७।३ वेदेषु ७।३ मिथ्यादृष्टि- =वेदके कथनानुसारकरि तीनों (स्त्री-पुरुष-नपुंसक) वेदोंमें मिथ्यादृष्टिके
आदि-अनिवृत्तिबादर-अंतानि १।३ सन्ति T =प्रारंभसे [आदि] अनिवृत्ति बादर [नववें) गुणस्थान पर्यंत हैं। अर्थात् मिथ्यात्व गुणस्थानसे नववें गुणस्थानके दो (तीन वेद और तीन अवेद) भागोंमेंसे वेदभाग तक है।

अपगतवेदेषु ७।३ अनिवृत्तिबादर-आदि— =वेदरहितमें अनिवृत्ति बादर (नवमे गुणस्थान के अंतके तीन भाग) से
अयोग-केवलि-अन्तानि १।३ =अयोगकेवली (चौदह गुणस्थानवर्ती) तक हैं यहां भावार्थ ऐसा है, कि अनिवृत्ति बादर साम्पराय नववें गुणस्थानके छह भाग किये हैं उनमें से पहिले तीन भागोंमें वेद है और अंतके तीन भाग वेदरहित हैं इस कारण यह गुणस्थान वेदरहित और वेदसहित दोनों गुणस्थानोंमें लिया गया है

कषाय-अनुवादेन ३।१ क्रोध-मान-मायासु ७।३ मिथ्यादृष्टि =कषायके कथनानुसार करि क्रोध मान मायामें मिथ्यादृष्टि प्रथमगुणस्थान
आदीनि १।३ अनिवृत्तिबादर-स्थान+अंतानि १।३ संति =से अनिवृत्ति बादर साम्पराय (नववें गुणस्थान) तक (नौ गुण स्थान) हैं
लोभकषाये ७।१ तानि १।३ एव सूक्ष्मसांपराय-- =लोभ कषायमें वेही [प्रथमसे नौतक गुणस्थान] और सूक्ष्मसांपराय
स्थान अधिकानि १।३ अकषायः १।१ =गुणस्थान अधिक [ऐसे दश] गुणस्थान हैं। कषायरहित

उपशान्तकषायः क्षीणकषायः सयोगकेवली अयोगकेवली च ॥ ज्ञानानुवादेन मत्यज्ञानश्रुताज्ञान-विभङ्गज्ञानेषु मिथ्यादृष्टिः सासादनसम्यग्दृष्टिश्चास्ति। (१) आभिनिबोधिकश्रुतावधिज्ञानेषु असंयत-सम्यग्दृष्ट्यादीनि क्षीणकषायान्तानि सन्ति।

उपशान्तकषायः क्षीणकषायः	= उपशान्तकषाय (ग्यारहवां गुणस्थानवर्ती) क्षीणकषाय (बारहवां गुणस्थानवर्ती)
सयोगकेवली च अयोगकेवली	= सयोगकेवली (तेरहवांगुणस्थानवर्ती) और अयोगकेवली (चौदहवां गुणस्थानवर्ती) हैं
ज्ञान अनुवादेन मति-अज्ञान-श्रुत-अज्ञान-	= ज्ञानकी विवक्षासे मतिअज्ञान श्रुतअज्ञान
विभङ्गज्ञानेषु मिथ्यादृष्टिः	= कुअवधिज्ञान [= विभङ्गज्ञान] में मिथ्यादृष्टि [प्रथम गुणस्थानवर्ती]
च सासादनसम्यग्दृष्टिः अस्ति।	= और [= च] सासादनसम्यग्दृष्टि [दूसरे गुणस्थानवर्ती] हैं
आभिनिबोधिक-श्रुत-अवधि-ज्ञानेषु असंयत	= मति श्रुत अवधि ज्ञानोंमें अविरत
सम्यग्दृष्टि आदीनि क्षीणकषाय-अन्तानि सन्ति	= सम्यग्दृष्टि प्रभृति क्षीणकषाय [बारहवां गुणस्थान] पर्यंत (नोगुणस्थान) हैं

(१) मतिज्ञान श्रुतज्ञान और अवधिज्ञानका प्रारम्भ असंयत चौथे गुणस्थानसे इसहेतुसे होता है कि—

सम्यङ्मिथ्यादृष्टेः ज्ञानमज्ञानं च केवलं न सम्भवति। तस्याज्ञानत्रयाधारत्वात्। उक्तं च 'मिस्से णाणत्तय (त्तिय) मिस्सं अण्णाणत्तये (त्तिये)णेति तेन ज्ञानानुवादे मिश्रस्यानभिधानम्। तस्याज्ञानप्ररूपणायामेवाभिधानं ज्ञातव्यम्। ज्ञानस्य यथार्थविषयत्वाभावात्॥ इति श्रुतसागरः॥

सम्यङ्मिथ्यादृष्टेः ज्ञानम् अज्ञानं च	= सम्यङ्मिथ्यादृष्टि (तीसरे गुणस्थानवर्ती) के ज्ञान और अज्ञान
केवलं न सम्भवति । तस्य अज्ञानत्रय-	= अकेला (= निरा) सम्भव नहीं है। क्योंकि (तिस मिश्रस्थान)के तीन अज्ञानका
आधारत्वात् उक्तं च मिस्से (मिश्रे)	= आश्रय वा सामीप्य है। कहा भी (= च) है। मिश्र (तीसरे) गुणस्थानमें
णाणत्तय (त्तिय) मिस्सं = ज्ञानत्रय-(त्रिक)मिश्रं	= तीन (मति-श्रुत-अवधि) ज्ञान मिश्रित हैं अथवा मिले हुये हैं
अण्णाणत्तये(त्तिये)ण इति	= तीन (मति-श्रुत-अवधि) अज्ञानकरि। (ज्ञान कुज्ञान नीर क्षीरके समान मिले हुये
अज्ञान त्रयेण (त्रिकेण) इति	हैं इससे न तो ज्ञानका ही मिश्रगुणस्थानमें अस्तित्व कह सकते हैं न कुज्ञानका)
तेन ज्ञान-अनुवादे	= तिस (मिश्रमे ज्ञान कुज्ञानको दूध पानीके सदृश मिले रहने) से ज्ञानके प्रकरणमें

मनःपर्ययज्ञाने प्रमत्तसंयतादयः क्षीणकषायान्ताः सन्ति । केवलज्ञाने सयोगोऽयोगश्च ॥ संयमानुवादेन संयताः प्रमत्तादयोऽयोगकेवल्यन्ताः । सामायिकच्छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयताः प्रमत्तादयोऽनिवृत्तिस्थानान्ताः । परिहारविशुद्धिसंयताः प्रमत्ताप्रमत्ताश्च । सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयता एकस्मिन्नेव सूक्ष्मसाम्परायस्थाने ।

मनःपर्ययज्ञाने ॥ प्रमत्तसंयत-आदयः ॥ क्षीण-कषाय-अन्ताः ॥ सन्ति । केवलज्ञाने ॥ सयोगः ॥ च अयोगः ॥ संयम-अनुवादेन ॥ संयताः ॥ प्रमत्त आदयः ॥ अयोग-केवलि-अन्ताः ॥ सामायिकच्छेदोपस्थापना-शुद्धि-संयताः ॥ प्रमत्त-आदयः ॥ अनिवृत्तिस्थान अन्ताः ॥ परिहारविशुद्धि-संयताः ॥ प्रमत्त-अप्रमत्ताः ॥ च सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयताः ॥ एकस्मिन् ॥ एव सूक्ष्मसाम्परायस्थाने ॥

= मनःपर्ययज्ञानमें प्रमत्तसंयमी [छठेगुणस्थान] से
= क्षीणकषाय (बारहवां गुणस्थान) तक हैं केवलज्ञानमें
= सयोगकेवली और (चौदहवें गुणस्थानमें) योगरहित (अयोगकेवली) हैं
= संयमके कथनानुसारसे सयमी प्रमत्त [छठे गुणस्थानवालों] से
= अयोगकेवली (चौदह गुणस्थानवर्ती) तक हैं । सामायिकच्छेदोपस्थापना
= शुद्धिसंयमी प्रमत्त (छठे गुणस्थान) के प्रारम्भसे अनिवृत्तिगुणस्थान
= पर्यंत हैं । परिहारविशुद्धि संयमी प्रमत्त (छठे गुणस्थानवर्ती)
= और अप्रमत्त [सातवें गुणस्थान वर्ती] हैं । सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयमी
= एक [= एकस्मिन्] ही सूक्ष्मसाम्पराय [दशवें] गुणस्थानमें हैं

मिश्रस्य ॥ अन्-अभिधानम् ॥ । तस्य ॥ अज्ञान प्ररूपणायाम् ॥ एव अभिधानं ॥ ज्ञातव्यम् ॥ ज्ञानस्य ॥ यथार्थ - विषयत्व—अभावात् ॥

= मिश्र (तीसरे गुणस्थान) का कथन नहीं है । तिस (मिश्रगुणस्थान) का
= अज्ञानप्ररूपणामें ही (= एव) कथन जानना योग्य है
= क्योंकि ज्ञानका ठीक ठीक विषय है उसका (अज्ञानमें) अभाव है अर्थात् ज्ञान अपने विषयोंसे पदार्थके स्वरूपको ज्योंका त्यों ग्रहण करता है उस प्रकारका विषय वा सामर्थ्य जो पदार्थके स्वरूपको यथार्थ ग्रहण करे वह अज्ञानमें नहीं पाई जाती है

इति श्रुतसागरः ॥
= ऐसा श्रुतसागर सूरिकी तत्त्वार्थसूत्रकी श्रुतसागरी टीकामें है ॥

(१) जब ङ्—ण्—न् शब्द अथवा पदके अन्तमें हो और उसके प्रथम कोई ह्रस्व स्वर हो और उक्त ङ्—ण्—न् के पीछे कोई स्वर हो तो ङ्—ण् अथवा न् दुहरा हो जाता है इसलिये एकस्मिन् पदमें न् दुहरा होकर एकस्मिन्नेव बन गया ।

यथाख्यातविहारशुद्धिसंयता उपशांतकषायादयोऽयोगकेवल्यन्ताः । संयतासंयता एकस्मिन्नेव संयतासंयतस्थाने । असंयता आद्येषु चतुर्षु गुणस्थानेषु ॥ दर्शनानुवादेन चक्षुर्दर्शनाचक्षुर्दर्शनयोर्मिथ्यादृष्ट्यादीनि क्षीणकषायान्तानि सन्ति । अवधिदर्शने असंयतसम्यग्दृष्ट्यादीनि क्षीणकषायान्तानि । केवलदर्शने सयोगकेवली अयोगकेवली च ॥ लेश्यानुवादेन कृष्णनीलकपोतलेश्यासु मिथ्यादृष्ट्यादीनि असंयतसम्यग्दृष्ट्यन्तानि सन्ति । तेजःपद्मलेश्ययोर्मिथ्यादृष्ट्यादीनि अप्रमत्तस्थानान्तानि । शुक्ललेश्यायां मिथ्यादृष्ट्यादीनि सयोगकेवल्यन्तानि ।

यथाख्यातविहारशुद्धिसंयताः ३। उपशांतकषाय- = यथाख्यातविहार शुद्धि संयमी उपशांतकषाय [ग्यारहवा गुणस्थानवर्ती]
आदयः ४। अयोगकेवलि-अन्ताः ५। संयतासंयताः ६। = से अयोगकेवली [चौदहवां गुणस्थानवर्ती] तक हैं। संयमासंयमी
एकस्मिन् ७।। एव संयतासंयतस्थाने ८।। = एक ही संयतासंयत [पाचवें] गुणस्थानमें हैं
असंयताः ९। आद्येषु १०।। चतुर्षु ११।। गुणस्थानेषु १२।। = असंयमी पहिले चार [मिथ्यात्व-सासादन-मिश्र-अविरत] गुणस्थानोंमें हैं
दर्शनानुवादेन १। चक्षुर्दर्शन-अचक्षुर्दर्शनयोः २।। = दर्शनके कथनानुसारसे चक्षुर्दर्शन, अचक्षुर्दर्शनमें
मिथ्यादृष्टि आदीनि ३।। क्षीणकषाय-अन्तानि ४।। = मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे क्षीणकषाय [बारहवें गुणस्थान] पर्यंत
सन्ति । अवधि-दर्शने ५।। असंयत-सम्यग्दृष्टि- = हैं। अवधिदर्शनमें असंयत सम्यग्दृष्टि [चौथे गुणस्थान]
आदीनि ६।। क्षीणकषाय-अन्तानि ७।। केवल- = सेलेकर क्षीणकषाय [बारहवें गुणस्थान] पर्यंत हैं। केवल
दर्शने ८।। सयोगकेवली ९। च अयोगकेवली १। = दर्शनमें सयोगकेवली [तेरहवें गुणस्थानवर्ती] और अयोगकेवली हैं
लेश्या-अनुवादेन १ कृष्ण-नील-कपोत = लेश्याके कथनानुसारसे कृष्ण-नील-कपोत
लेश्यासु २।। मिथ्यादृष्टि-आदीनि ३।। असंयत- = लेश्याओंमें मिथ्यादृष्टि (प्रथम गुणस्थान) से लेकर अविरत
सम्यग्दृष्टि अन्तानि ४।। सन्ति ५ = सम्यग्दृष्टि (चौथे गुणस्थान) पर्यंत (ऐसे चार गुणस्थान) हैं
तेजःपद्मलेश्ययोः ६।। मिथ्यादृष्टि-आदीनि ७।। = पीत पद्म दो लेश्याओंमें, मिथ्यादृष्टि (प्रथम गुणस्थान) से लेकर
अप्रमत्तस्थान-अन्तानि ८।।-शुक्ललेश्यायां ९।। = अप्रमत्त (सातवा गुणस्थान (तक है। शुक्ललेश्यामें [उपचारमात्र है]
मिथ्यादृष्टि-आदीनि १।। सयोगकेवलि-अन्तानि २।। = मिथ्यादृष्टि (से लेकर सयोगकेवली) तक हैं। तेरहवें गुणस्थानमें लेश्या

अलेश्या अयोगकेवलिनः ॥ भव्यानुवादेन भव्येषु चतुर्दशापि सन्ति । अभव्या आद्य एव स्थाने ॥ सम्यक्त्वानुवादेन क्षायिकसम्यक्त्वे असंयतसम्यग्दृष्ट्यादीनि अयोगकेवल्यन्तानि सन्ति । क्षायोपशमिकसम्यक्त्वे असंयतसम्यग्दृष्ट्यादीनि अप्रमत्तान्तानि । औपशमिकसम्यक्त्वे असंयतसम्यग्दृष्ट्यादीनि उपशान्तकषायान्तानि । सासादनसम्यग्दृष्टिः सम्यङ्मिथ्यादृष्टिर्मिथ्यादृष्टिश्च स्वे स्वे स्थाने ॥ संज्ञानुवादेन संज्ञिषु द्वादशगुणस्थानानि क्षीणकषायान्तानि । असंज्ञिषु एकमेव मिथ्यादृष्टिस्थानम् । तदुभयव्यपदेशरहितः सयोगकेवली अयोगकेवली च ॥

अलेश्याः अयोगकेवलिनः । भव्य-अनुवादेन	= लेश्यावर्जित अयोगकेवली हैं ॥ भव्यजीवोंकी अपेक्षासे
भव्येषु चतुर्दश अपि* सन्ति । अभव्याः	= भव्य जीवोंमें चौदह (सर्वगुणस्थान) ही हैं । अभव्य जीव
आद्ये एव स्थाने —सम्यक्त्व–अनुवादेन	= प्रथम (मिथ्यात्व) ही गुणस्थानमें हैं । सम्यग्दर्शनकी विवक्षासे
क्षायिकसम्यक्त्वे असंयतसम्यग्दृष्टि—	= क्षायिक सम्यग्दर्शनमें असंयत सम्यग्दृष्टि (चौथे गुणस्थानवर्ती)
आदीनि अयोगकेवलि अन्तानि सन्ति	= से लेकर अयोगकेवली तक (ग्यारह गुणस्थान वाले) हैं
क्षायोपशमिकसम्यक्त्वे असंयतसम्यग्दृष्टि	= क्षायोपशमिक सम्यक्त्वमें अविरत सम्यग्दृष्टि (चौथे गुणस्थानवर्ती)
आदीनि । अप्रमत्त-अन्तानि	= से लेकर अप्रमत्त [सातवां गुणस्थान ऐसे चार गुणस्थान] तक हैं
औपशमिक–सम्यक्त्वे असंयतसम्यग्दृष्टि–	= उपशम सम्यग्दर्शनमें असंयत सम्यग्दृष्टि [चौथे गुणस्थान]
आदीनि उपशांतकषाय–अन्तानि	= से लेकर उपशांत कषाय ग्यारहवां गुणस्थान पर्यंत हैं
सासादन सम्यग्दृष्टिः सम्यग्मिथ्यादृष्टिः	= सासादन सम्यग्दृष्टि [द्वितीयगुणस्थानवर्ती] मिश्र (तीसरे गुणस्थानवर्ती)
च मिथ्यादृष्टिः स्वे स्वे स्थाने	= और मिथ्यादृष्टि [प्रथम गुणस्थानवाले] अपने अपने गुणस्थानमें हैं
संज्ञा-अनुवादेन संज्ञिषु द्वादश गुणस्थानानि	= संज्ञाके कथनानुसारसे सैनीमें बारह गुणस्थान
क्षीणकषाय अन्तानि	क्षीणकषाय पर्यंत हैं अर्थात् सैनी प्रथम गुणस्थानसे बारहवें तक हैं
असंज्ञिषु एकम् एव मिथ्यादृष्टिस्थानम्	= असैनीयोंमें एक ही मिथ्यादृष्टि गुणस्थान है
तद् उभय-व्यपदेशरहितः सयोगकेवली	= उन (सैनी असैनी) दोनों नामोंसे वर्जित सयोगकेवली
च * अयोगकेवली	= और अयोगकेवली हैं

आहारानुवादेन आहारकेषु मिथ्यादृष्ट्यादीनि सयोगकेवल्यन्तानि। अनाहारकेषु विग्रहगत्यापन्नेषु त्रीणि गुणस्थानानि, मिथ्यादृष्टिः सासादनसम्यग्दृष्टिरसंयतसम्यग्दृष्टिश्च। समुद्घातगतः सयोगकेवली अयोगकेवली च। सिद्धाः परमेष्ठिनः अतीतगुणस्थानाः॥ उक्ता सत्प्ररूपणा॥

आहार-अनुवादेन आहारकेषु मिथ्यादृष्टि = आहारकी अपेक्षाकरि आहारकमें मिथ्यादृष्टि (प्रथम गुणस्थान)

आदीनि सयोग-केवलि-अन्तानि = से लेकर सयोग केवली (तेरहवें गुणस्थान) तक (तेरह) हैं

अन् आहारकेषु विग्रह-गति-आपन्नेषु त्रीणि = अनाहारकोंमें विग्रहगतिको प्राप्तोंमें तीन

गुणस्थानानि मिथ्यादृष्टिः सासादनसम्यग्दृष्टिः = गुणस्थान मिथ्यादृष्टि (प्रथम) सासादन सम्यग्दृष्टि (दूसरा)

च असंयतसम्यग्दृष्टिः समुद्घातगतः = और अविरत सम्यग्दृष्टि (चौथा) एवं समुद्घातको प्राप्त

सयोगकेवली च अयोगकेवली = सयोगकेवली (तेरहवें गुणस्थानवर्ती हैं और अयोगकेवली (चौदहवें गुणस्थानवर्ती अनाहारक) हैं॥ भावार्थ—यह जीव तीन अवस्थामें अनाहारक हो सक्ता है एक तो विग्रहगति करते समय दूसरे सयोगकेवलीका आत्मा समुद्घात करते समय, तीसरे अयोगकेवली हो जानेके समय॥ उसमें साधारण जीवके विग्रहगति (अर्थात् नवीन शरीर धारण करनेके लिये गमन) में प्रथम, द्वितीय और चतुर्थ गुणस्थानोंमेंसे कोई एक गुणस्थान होता है सयोगकेवलीके समुद्घात [अर्थात् मूलदेह न छोडकर जीवके प्रदेश बाहर जाकर पुनः उसी शरीरमें लोट आने] की अवस्थामें तेरहवां गुणस्थान रहता है और अयोगकेवली चौदहवें गुणस्थानवर्ती अनाहारक होते हैं और उनके समुद्घात नहीं होता है]

सिद्धाः परमेष्ठिनः अतीत-गुणस्थानाः = सिद्ध परमेष्ठी अर्थात् मुक्तजीव गुणस्थानरहित हैं।

उक्ता सत्प्ररूपणा = इस प्रकार सत् [प्रथम प्ररूपणा] कही गई॥

(१) औदारिक वैक्रियिक आहारक ये तीन शरीर और छह (आहार शरीर-इन्द्रिय-स्वासोच्छ्वास-भाषा और मन) पर्याप्तिके योग्य पुद्गल वर्गणाके ग्रहणको आहार कहते हैं। ऐसे आहारको ग्रहण नहीं करै तब तक उसको अनाहारक कहते हैं। जीव अधिकसे अधिक विग्रहगतिमे तीन समय तक अनाहारक रहता है। चौथे समयमे शरीर पर्याप्तिका ग्रहण करके आहारक हो जाता है।

एटानिवासी जगरूपसहाय वकीलकृत पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित सर्वार्थसिद्धिका शब्दशः हिंदी अनुवाद । अध्याय १ सूत्र ८

संख्या प्ररूपणा को आरम्भ करने से पहिले निम्न टिप्पणी को अवश्य ही पढ़ना चाहिये क्योंकि पूज्यपाद स्वामी और श्रुतसागर सूरि के उल्लेखों में द्वितीय सासादन गुणस्थान से पांचवां संयतासंयत गुणस्थान तक के जीवों की संख्या में बाह्यरूप से विरुद्धता जान पड़ती है जिसका समाधान नीचे की टिप्पणी से हो जाता है।

हमको इस टिप्पणी में यह बात सिद्ध करनी है कि संख्या प्ररूपणा में पूज्यपाद स्वामी ने सासादन गुणस्थानसे संयतासंयत तक प्रत्येक गुणस्थान में पल्य के असंख्यातवां भाग संख्या का निर्देश किया है वह (१) सब प्रकार के जीवों की है और (२) वे जीव प्रत्येक गुणस्थान में असंख्याते हैं श्रुतसागरसूरिने जो संख्या श्रुतसागरीटीका के सख्या प्ररूपणा में बावन करोड़, एकसो चार करोड़, सातसो करोड़, और तेरह करोड़ का क्रम से उल्लेख किया है वह केवल मनुष्यों की गणना का कथन है। और यह भी सिद्ध करना है कि अल्प बहुत्व प्ररूपणामें पूज्यपादस्वामीके निम्न उद्धृत लेख में तीन गुणस्थानों में असख्येय गुणा. शब्दका प्रयोग है परन्तु उक्त प्ररूपणामें ही श्रुतसागरसूरिने संख्येयगुणाः शब्दका उल्लेख किया है इस बाह्यरूप विरोधता वा प्रतिकूलता का कारण यह है कि सर्वार्थ सिद्धि वृत्ति में विशेष गुणस्थान सम्बन्धी सब प्रकार के जीव ग्रहण किये हैं परन्तु श्रुतसागरीटीका में अमुक गुणस्थानके केवल मनुष्योंकी गणनाका निरूपण है जैसा कि निम्न उद्धृत वाक्यों तथा टिप्पणी से प्रगट होता है॥

" सामान्येन तावत् जीवा मिथ्यादृष्टयो ऽनन्तानन्ता· सासादन सम्यग्दृष्टयः सम्यङ् मिथ्यादृष्टयोऽसंयतसम्यग्दृष्टयः संयतासंयताश्च पल्योपमासङ्ख्येयभाग प्रमिताः"	"सामान्येन मिथ्यादृष्टयो जीवा ऽ नन्तानन्तसंख्या सासादनसम्यग्दृष्टयः सम्यग्मिथ्यादृष्टयः असंयत सम्यग्दृष्टयः देशसंयताश्च पल्योपमाऽसंख्येयभागसंख्याः ॥ तथाहि । द्वितीय गुणस्थाने द्वापंचाशत्कोटयः ५२००००००० । (द्वापंचाशद्गुणकोट्यः) तृतीयगुणस्थाने चतुरधिकाः शतकोटयः (=शतकोट्यः) १०४००००००० ॥ चतुर्थगुणस्थाने सप्तशतकोटयः (=सप्तशतकोट्यः) ७००००००००० ॥ पंचमगुणस्थाने त्रयोदशकोटय (=त्रयोदशकोट्यः) १३००००००० उक्तंच ॥ तेरह कोडी देशे बावण्णा सासणा मुणेयव्वा ॥ मिसम्मि य तद्दूणा असंजया सत्तसयकोडी ॥ (असंजदा सत्तसप्प कोडीओ—असंजदा सत्तकोडिसयं)"
(सर्वार्थ सिद्धि वृत्ति की संख्या प्ररूपणासे उद्धृत)	(श्रुतसागरी टीका की संख्या प्ररूपणा से उपर्युक्त गाथा तक उद्धृत)
"संयतासंयता असंख्येयगुणा	"संयतासंयताः संख्येयगुणाः संयतासंयतानां नास्त्यल्पबहुत्व एक गुणस्थान वर्तित्वात् ॥ संयतासंयतानामिव गुणस्थानभेदाऽसंभवात् १३००१०००० (गुणस्थानभेदात १३०००००००) ॥
सासादन सम्यग्दृष्टयोऽसंख्येगुणाः	सासादन सम्यग्दृष्टय संख्येयगुणाः ५२०००००००
सम्यग्मिथ्यादृष्टयः संखेयगुणाः	सम्यग्मिथ्यादृष्टय. सखेयगुणाः १०४०००००००
असंयत सम्यग्दृष्टयोऽसंख्येय गुणाः । मिथ्यादृष्टयोऽनन्तगुणाः"	असंयतसम्यग्दृष्टय संखेयगुणाः ७००००००००० मिथ्यादृष्टयः अनन्तगुणाः" ॥
(सर्वार्थसिद्धि की अल्प बहुत्व रूपणासे उद्धृत)	(श्रुतसागर-टीका की 'अल्प बहुत्व' प्ररूपणासे उद्धृत)

संख्या प्ररूपणा से उद्धृत पाठों के अवलोकन से विदित है कि दोनों आचार्यों का लग भग एकसा पाठ है और शब्दार्थ भी दोनों का एकसा है प्रथम वाक्य में 'जीवा' शब्द भी दोनों पाठों में विद्यमान है। इस 'जीवा' शब्द की अनुवृत्तिभी अग्रिम दोनों पाठों के सर्व वाक्यों में है। श्रुतसागरीटीकामें विशेषरूपसे बावन करोड, एकसौ चार करोड, सात सौ करोड, और तेरह करोड, की संख्या का इयत्ता 'तेरह कोडी देशे' इत्यादि गोम्मटसारकी गाथा के आधार पर है अब हमको यह देखना है कि उक्त आर्या छन्द गोम्मटसारके किस प्रकरणमें है और दूसरे गुणस्थानसे पांचवां तक के सर्व प्रकारके जीवोंकी संख्या किस प्रकरणमें है और कितनी है ॥ गोम्मटसारमें ६४२वीं गाथा 'मनुष्यगतावाह' ऐसे सरनामा वा लाली के नीचे उपर्युक्त गाथा है अर्थात् 'मनुष्यगति में कहते हैं' 'गुणस्थानों की अपेक्षा से जीवोंका प्रमाण' ॥ इसलिये आर्या छन्द का यह अर्थ हुआ कि तेरह करोड मनुष्य देशसयतमें, बावन (करोड मनुष्य) सासादनमें और मिश्रगुणस्थानमें उस (सासादन)से दूने एकसौचार करोड मनुष्य, असयतमें सातसौ करोड़ मनुष्य है ॥ "चतुर्दश गुणस्थानेषु जीव संख्या" इस सरनामा के नीचे गोम्मटसार में ६२३वीं और ६२४ वीं निम्न लिखित गाथायें हैं ॥

( ) मिच्छाइट्ठी पावा णंताणंता य सासणगुणावि । पल्लासंखेज्जदिमा अणअण्णदरुदय मिच्छगुणा ॥६२३॥ संस्कृत छाया इस प्रकार है कि =

मिथ्यादृष्टय पापा अनन्तानन्ताश्च सासनगुणा अपि । पल्यासंख्येया अन्यान्यतरोदय मिथ्यात्वगुणा ॥ ६२३ ॥

अर्थ इस प्रकार है कि मिथ्यादृष्टि पापजीव हैं। ये अनन्तानन्त हैं तथा (=य=च) सासादन गुणस्थान वाले भी पापजीव हैं ये पल्यके असंख्यातवां भाग हैं क्योंकि अनन्तानुबन्धी चार कषायों में से किसी एक कषाय का इसके उदय होरहा है। इसलिये यह मिथ्यात्वगुण को प्राप्त है। इससे विदित है कि सासादन में पल्य के असंख्यातवां भाग जीव हैं ॥

( ) मिच्छा सावयसासण मिस्साविरदा दुवारणंता य। पल्लासंखेज्जदिममसंखगुणं संख(म)संखगुणं ॥ गोम्मटसार गाथा॥ ६२४॥पृष्ठ १०७६ मुद्रित ॥

संस्कृतच्छाया-मिथ्याः श्रावक सासन मिश्राविरता द्विवारानन्ताश्च पल्यासंख्येयमसंख्यगुणं संख्यासंख्यगुणन्॥ ६२४ ॥

अर्थ-मिथ्या दृष्टि अनन्तानन्त है। श्रावक पल्य के असंख्यात में भाग हैं सासादन गुणस्थान वाले श्रावकों से असंख्यात गुणे हैं। मिश्र सासादनवालों से संख्यात गुणे हैं। अव्रत सम्यग्दृष्टिमिश्रजीवोंसे असंख्यातगुणे हैं इनमें अन्तके चार स्थानों में कुछ कुछ अधिक समझना चाहिये । भावार्थ देशसंयम गुणस्थान मनुष्य तिर्यंच दो गतियों में ही होता है। इनमें तेरह करोड़ मनुष्य और पल्य का असंख्यातवां भाग तिर्यंच हैं। सासादन गुणस्थान चारों गतियोंमें होता है। इनमें बावन करोड मनुष्य और श्रावकों से असंख्यातगुणे इतर तीन गति के जीव हैं। मिश्रगुणस्थान भी चारों गतियों में होता है इनमें एकसौ चार करोड़ मनुष्य और सासादन वालों से संख्यात गुणे अन्य तीन गतिके जीव हैं। अव्रत गुणस्थान भी चारों गतियोंमें होता है इनमें सात सौ करोड मनुष्य हैं और मिश्रवालोंसे असंख्यात गुणे शेष तीन गतिके जीव हैं ॥ ( ) प्रमत्त गुणस्थान जिसमें "पांच करोड तिरानवे लाख हजार अट्ठानवे दोसौ छै आनो" जीव हैं उनसे संयतासयतमें असंख्यात गुणे हैं सासादन, मिश्र, असयत में सयतासयत से भी असंख्यात गुणे हैं। इसलिये 'पल्य का असंख्यातवां भाग' में असंख्याते जीव हुये और श्रुतसागरसूरिने चार सासादन-मिश्र-असयत-संयतासंयत-गुणस्थानों में मनुष्योंकी संख्या बताई है न कि सब जीवोंकी ॥ उक्त चारों गुणस्थानों की संख्या जो हमने भी ६७, ६८, १०१, १०२, १०४. १०५, १०६, १०८, १०६, ११०, ११२, ११३, ११४ पृष्ठों में बावन करोड, एक सौ चार करोड, सात सौ करोड़, और तेरह करोड बतलाई है वह मनुष्यों की समझना चाहिये न कि सब जीवों की ॥ पृष्ठ १०२ का भावार्थ का और पृष्ठ १०३ के अर्थात् का लेख छोड दीजिये वे अशुद्ध छपगये हैं ॥

सङ्ख्याप्ररूपणोच्यते—सा द्विविधा सामान्येन विशेषेण च ॥ सामान्येन तावत् जीवा मिथ्यादृष्टयोऽनन्तानन्ताः । सासादनसम्यग्दृष्टयः सम्यङ्मिथ्यादृष्टयोऽसंयतसम्यग्दृष्टयः संयतासंयताश्च पल्योपमासङ्ख्येयभागप्रमिताः ॥ प्रमत्तसंयताः कोटीपृथक्त्वसङ्ख्याः । पृथक्त्वमित्यागमसंज्ञा, तिसृणां कोटीनामुपरि

सङ्ख्याप्ररूपणा ।१। उच्यते ।२। सा ।३। द्विविधा ।४।	=(अब) सङ्ख्या वा भेद गणना प्ररूपणा कही जाती है वह दो प्रकार है
सामान्येन ।५। च विशेषेण ।६।	=संक्षेपकरि और विशेषकरि अर्थात् संक्षेपसे गुणस्थानमें और भेद प्रभेदकरि मार्गणामें संख्या प्ररूपणाका कथन है ।
सामान्येन ।१। तावत् मिथ्यादृष्टिजीवाः ।२।	=सामान्यसे प्रथम (= तावत्) मिथ्यादृष्टि जीव
अनन्तानन्ताः ।३। सासादनसम्यग्दृष्टयः ।४।	=अनन्तानन्त हैं । सासादनसम्यग्दृष्टि दूसरे गुणस्थानवर्ती
सम्यग्मिथ्यादृष्टयः ।५। असंयतसम्यग्दृष्टयः ।६।	=मिश्र तीसरे गुणस्थानवर्ती अविरतसम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थानवर्ती
च संयतासंयताः ।७। पल्योपम—	=और देशविरत संयमी पांचवां गुणस्थानवर्ती पल्योपमके
असंख्येयभागप्रमिताः ।८।	=असंख्यात भाग प्रमाण हैं
प्रमत्तसंयताः ।९। कोटीपृथक्त्वसंख्याः ।१०।	=प्रमत्तसंयमी (छठे गुणस्थानवर्ती) हैं जिनकी गणना पृथक्त्व करोड है
पृथक्त्वम् ।११। इति आगमसंज्ञा ।१२। तिसृणां ।१३।	=पृथक्त्व ऐसी आगममें गणना तीन
कोटीनाम् ।१४। उपरि नवानाम् ।१५। अधस् *	=करोडके ऊपर नौ (करोड) के नीचे है (अर्थात् ५९३९८२०६ जीव छठेगुणस्थानमें हैं

(१) तेरह कोडी देसे वावरणा भासणा मुणेयव्वा ॥ मिस्सम्मि य तद्दुणा असंजदा सत्त सप्प कोडीओ ।

तेरह कोडी ।१। देसे ।२। (त्रयोदश ।१। कोटयः ।१। देशे ।२।) = देशविरत (पांचवे गुणस्थान) मे तेरह करोड़ (जीव)

वावण्णा ।३। सासणे ।४। (द्वापञ्चाशत् ।३। सासादने ।४।) = वावन करोड़ (जीव) सासादन (दूसरे गुणस्थान) में

मुणेयव्वा ।५। मिस्सम्मि ।६। य(ज्ञातव्या : ।५। मिश्रे ।६। च) = जानना, और (= य) मिश्र (गुणस्थान) में

तद्दुणा ।७। असंजदा ।८। (तद्–द्विगुणाः ।७। असंयता. ।८।) = उस (वावन करोडके) दूने (एकसौ चार करोड़) हैं असंयत (चौथे गुणस्थान वर्ती)

सत्तसप्प कोडीओ ।९। (सप्तशतकोटयः ।९।) = सातसौ करोड हैं अर्थात् सात अरब हैं ।

नवानामग्रः ॥ अप्रमत्तसंयताः संख्येयाः । चत्वार उपशमकाः प्रवेशेन एको वा द्वौ वा त्रयो वा । उत्कर्षेण चतुःपञ्चाशत् स्वकालेन समुदिताः संख्येयाः ॥ चत्वारः क्षपका अयोगकेवलिनश्च प्रवेशेन एको वा

अप्रमत्तसंयताः सख्येयाः = अप्रमत्त संयमी (सातवें गुणस्थानवर्ती) संख्यात अर्थात् २९६९९१०२ हैं
चत्वारः उपशमकाः एकः वा द्वौ वा = चारो उपशम [श्रेणी] वाले एक अथवा दो अथवा
त्रयः वा उत्कर्षेण चतुःपंचाशत् प्रवेशेन = तीन [आदि उत्कृष्टकरि चौवन । संख्या तक] प्रवेश होनेसे
स्वकालेन समुदिताः सख्येयाः = अपने अपने कालकरि इकट्ठे हों (तब) संख्यात होते हैं भावार्थ—अपूर्व करण आठवां, अनिवृत्ति करण नवमां, सूक्ष्म सांपराय दशवां, उपशांतकषाय ग्यारहवां, गुणस्थान उपशम श्रेणीमें एक जीवसे लेकर उत्कृष्ट चौवन तक एक समयमें एक २ गुणस्थानमें प्रवेश कर सक्ते हैं, और चारो गुणस्थानकी समस्त उत्कर्ष संख्या ११९६ जीवोंकी होगी, एक एक गुणस्थानमें २९९,२९९ जीव उत्कृष्ट रह सक्ते हैं और इन गुणस्थानोंमेंसे अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसांपराय क्षपक श्रेणीमें भी होते हैं उन प्रत्येकमें उत्कर्ष जीव संख्या ५९८ है ॥
चत्वारः = चारो (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसांपराय और क्षीणकषाय)
क्षपकाः च अयोगकेवलिनः एक. वा * = क्षपक (श्रेणी गुणस्थान) वाले और अयोग केवली एक

* च-वा । इन अव्ययोंका प्रयोग संस्कृतमें वाक्यके प्रत्येक भागके साथ करते हैं अथवा केवल वाक्यके अंत भागके साथ करते हैं वाक्यके प्रत्येक भागके साथ च-वा का प्रयोग संस्कृतकी बोल चालके अनुकूल शुद्ध है परन्तु भाषामें वाक्यके प्रथम भागको छोड़कर शेष भागोंमें सर्व में लगा दो अथवा केवल अंत भागमें लगादो इसलिये भाषाके अनुवाद करनेमें संस्कृतके प्रथम च अथवा वा का अनुवाद छोड़ दिया जाता है । नहीं तो बोल चालके प्रतिकूल पडता है जैसे 'अथवा एक अथवा दो अथवा तीन उपशमक प्रवेश कर सक्ते हैं' बोलनेमें ठीक नहीं है 'एक अथवा दो अथवा तीन उपशमक प्रवेश कर सक्ते हैं' ठीक है । एको द्वौ त्रयो वा = एक दो अथवा तीन इसमें दोनों संस्कृत और हिंदीका प्रयोग ठीक होजाता है ॥ वैसे ही च का है जैसे रामश्च लक्ष्मणश्च भरतश्च शत्रुघ्नश्च जल्पन्ति = राम और लक्ष्मण और भरत और शत्रुघ्न तुतलाते हैं ॥ प्रथम चकारका अनुवाद छोड़ दिया गया अथवा रामो लक्ष्मणो भरतः शत्रुघ्नश्च जल्पन्ति = राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न तुतलाते हैं यहां दोनों भाषाओंकी बोलचाल मेलकर गई इसलिये ऊपरके प्रथम वाको अनुवाद करनेमें छोड दिया है ॥

द्वौ वा त्रयो वा । उत्कर्षेणाष्टोत्तरशतसंख्याः । स्वकालेन समुदिताः संख्येयाः ॥ सयोगकेवलिनः प्रवेशन एको वा द्वौ वा त्रयो वा । उत्कर्षेणाष्टोत्तरशतसंख्याः । स्वकालेन समुदिताः शतसहस्रपृथक्त्वसंख्याः ॥ विशेषेण गत्यानुवादेन (१) नरकगतौ प्रथमायां पृथिव्यां नारका मिथ्यादृष्टयोऽसंख्येयाः श्रेणयः

द्वौ वा * त्रयः वा उत्कर्षेण अष्टोत्तरशत	=अथवा दो अथवा तीन [आदिक] उत्कृष्टकरि एकसो आठकी
संख्याः प्रवेशेन स्वकालेन समुदिताः	=गिनती तक प्रवेश होनेसे अपने २ कालकरि इकट्ठे हों (तब) [१९८ हैं ।
संख्येयाः	=संख्यात होते हैं अर्थात् पांचों गुणस्थानोंमें ने प्रत्येक प्रत्येकमें उत्कृष्ट जीव
सयोगकेवलिनः प्रवेशेन एकः वा द्वौ	=सयोग केवली (तेरहवे गुणस्थानवर्ती) प्रवेशकरि एक अथवा दो
वा त्रयः वा उत्कर्षेण अष्टोत्तरशतसंख्याः स्व	=अथवा तीन [आदि] उत्कृष्ट करि एकसौ आठकी गणना तक हैं अपने २
कालेन समुदिताः शतसहस्रपृथक्त्वसंख्याः	=समयकरि समुच्चय होंय [तब] तीन शतहजारसे ऊपर नौशत हजारसे नीचे हैं (तीन लाखसे ऊपर और नोलाखसे न्यून) अर्थात् उत्कृष्ट ८९८५०२ जीव हो सक्ते हैं ऐसे प्रमत्त संयमीसे अयोग केवलीपर्यंत तीन न्यून नोकरोड संयमी हैं ।
विशेषेण गत्यनुवादेन	=विशेष रीतिसे गतिके अनुवादकरि
नरकगतौ प्रथमायां पृथिव्यां नारकाः	=नरक गतिमें पहली पृथिवी [के अब्बहुल भाग] में नारकी
मिथ्यादृष्टयः असंख्येयाः श्रेणयः	=मिथ्यादृष्टि (जीव) असंख्यात [जगत] श्रेणी हैं ।

(१) पृथक्त्व केवल तीनसे ऊपर और नौसे नीचले अर्थमें आता है और जिस संख्याके साथ आता है उसका विशेषण होता है जैसे कोटी पृथक्त्वसंख्या अर्थात् वह संख्या जो तीन करोड और नो करोडके बीचमें हो । शतपृथक्त्वसंख्या अर्थात् वह संख्या जो तीनसौ और नौसेके बीचमें हो । (२) यह श्रेणि क्या है ऐसा प्रश्न करने पर कहते हैं कि "सप्त रज्जुकमयी मुक्ताफलमालावदाकाशप्रदेशपंक्तिः श्रेणिरित्युच्यते ॥" मानविशेष इत्यर्थः ॥

सप्तरज्जुकमयी मुक्ताफलमालावत् * आकाश—	=सातराजूरूपवाली (=मयी) मोतियोंकी मालाके सदृश आकाशके
प्रदेशपंक्तिः श्रेणिः इति उच्यते । मानविशेषः	=प्रदेशोंकी पांती सो श्रेणी कही जाती है । (श्रेणि) परिमाण वा मापका भेद है
इति * अर्थः	=ऐसा अर्थ है ।

प्रतरासंख्येयभागप्रमिताः ॥ द्वितीयादिष्वा सप्तम्या मिथ्यादृष्टयः श्रेण्यसंख्येयभागप्रमिताः । स चासंख्येयभागः असंख्येया योजनकोटयः । सर्वासु पृथिवीषु सासादनसम्यग्दृष्टयः सम्यग्मिथ्यादृष्टयोऽसंयतसम्यग्दृष्टयश्च पल्योपमासंख्येयभागप्रमिताः ॥ तिर्यग्गतौ तिरश्चां मिथ्यादृष्टयोऽनन्तानन्ताः । सासादनसम्यग्दृष्ट्यादयः संयतासंयतान्ताः पल्योपमासंख्येयभागप्रमिताः ॥

प्रतर असंख्येयभाग-प्रमिताः	=(वे असंख्यात जगतश्रेणी जगत) प्रतरके असंख्यातवें भाग हैं
द्वितीय-आदिषु आ-सप्तम्याः	=दूसरी (पृथिवी वा नरक (से सातवी (पृथिवी वा नरक) तक [=आ]
मिथ्यादृष्टयः श्रेणी-असंख्येयभागप्रमिताः सः च	=मिथ्यादृष्टि श्रेणीके असंख्येय भाग परिमाण हैं और वह
असंख्येयभागः असंख्येयाः योजनकोटयः	=असंख्यातवां भाग असंख्यात करोड योजनके प्रदेशोंके समान है ।
सर्वासु पृथिवीषु सासादनसम्यग्दृष्टयः	=सब (महिलेसे सातवें) नरकमें सासादन सम्यग्दृष्टि [दूसरे गुणस्थानवर्ती]
सम्यङ्मिथ्यादृष्टयः च असंयतसम्यग्दृष्टयः	=सम्यङ्मिथ्यादृष्टी [तीसरे गुणस्थानवर्ती] और अविरत सम्यग्दृष्टि
पल्योपमाअसंख्येयभागप्रमिताः तिर्यग्गतौ	=पल्योपमके असंख्यातवां भाग परिमाण हैं तिर्यंचगतिमें [अनन्तानन्त हैं ॥
तिरश्चां मिथ्यादृष्टयः अनन्तानन्ताः	=मिथ्यादृष्टि तिर्यंचोंकी [संख्या] अनन्तानन्त हैं (तिर्यंचोंमें मिथ्यादृष्टि
सासादनसम्यग्दृष्टि आदयः संयतासंयत-अन्ताः	=सासादन सम्यग्दृष्टि [दूसरे गुणस्थानवर्ती] से संपपःसयमी तक
पल्योपम-असंख्येयभाग-प्रमिताः	=पल्योपमके असंख्यातवेंभाग परिमाण [तिर्यंच] हैं

(१) प्रतर-असंख्येय-भागप्रमिता इति यद् उक्तं =प्रतरके असंख्यातवें भाग परिमाण ऐसे जो (वाक्य) कहागया है
सः प्रतरः कियान् भवति । श्रेणि-गुणिता =वह प्रतर कितना (परिमाणमें) है । श्रेणीसे गुणी गई (प्रतर है)
श्रेणीः प्रतरः उच्यते । =श्रेणी प्रतर कही जाती है (श्रेणीको श्रेणीसे गुणा करनेसे जो गुणनफल हो सो
प्रतर-असंख्यातभागप्रमितानां असंख्यातानां = प्रतरके असंख्यातवें भाग परिमाण जो असंख्यात
श्रेणीनां यावन्तः प्रदेशाः तावन्तः तत्रनारकाः =श्रेणीयोंके जितने प्रदेश हों तितने तहां नारकी हैं
इति अर्थः =ऐसा आशय है अर्थात् असंख्यात जगत श्रेणियोंके (जो श्रेणियां जगत् प्रतरके असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं) जितने प्रदेश हैं उतने प्रथम नरकमें नारकी हैं

(२) देखो टिप्पणी पृष्ठ ७३-७४ । यहां षष्ठीके आगे संख्या शब्द लगानेसे अनुवाद बनता है वा सप्तमीके अर्थमें षष्ठी अष्टाध्यायी २-३-४ सूत्रसे है

मनुष्यगतौ मनुष्या मिथ्यादृष्टयः श्रेण्यसंख्येयभागप्रमिताः । स चासंख्येयभागः असंख्येया योजनकोट्यः । सासादनसम्यग्दृष्ट्यादयः संयतासंयतान्ताः संख्येयाः । प्रमत्तादीनां सामान्योक्ता संख्या ॥ देवगतौ देवा मिथ्यादृष्टयोऽसंख्येयाः श्रेणयः प्रतरासंख्येयभागप्रमिताः । सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्टयः पल्योपमासंख्येयभागप्रमिताः ॥

मनुष्यगतौ मिथ्यादृष्टयः मनुष्याः श्रेणि असंख्येयभागप्रमिताः च सः असंख्येयभाग असंख्येयाः योजनकोट्यः सासादनसम्यग्दृष्टि आदयः संयतासंयत—अन्ताः संख्येयाः =मनुष्यगतिमें मिथ्यादृष्टि मनुष्य श्रेणीके असंख्यातवें भाग परिमाण हैं ॥ और वह [श्रेणीका] असंख्यातवां भाग असंख्यात करोड योजन हैं । सासादन सम्यग्दृष्टिसे संयमासंयमी (या देशव्रती पांचवां गुणस्थानवर्ती) तक संख्यात हैं अर्थात् सासादन सम्यग्दृष्टि ५२ करोड हैं. मिश्र तीसरे गुणस्थानवर्ती एक अरब चार करोड़ हैं, असंयमी सात अरब हैं संयमासंयमी तेरह करोड हैं यह सबकी उत्कृष्ट संख्या है ॥

प्रमत्त-आदीनाम् सामान्या संख्या उक्ता =प्रमत्त आदि (शेष गुणस्थानवर्तियों) की (उत्कृष्ट) गणना संक्षेपसे कह दी है अर्थात् चार उपशम श्रेणीके प्रत्येक गुणस्थानमें २९९, चार क्षपक श्रेणीके प्रत्येक गुणस्थानमें, और चौदहवें गुणस्थानमें ५९८, और तेरहवें गुणस्थानमें ८९८५०२ जीव हैं । यह सर्वकी उत्कृष्ट संख्या है ॥

देवगतौ मिथ्यादृष्टयः देवाः असंख्येयाः श्रेणयः प्रतर-असंख्येयभागप्रमिताः सासादनसम्यग्दृष्टि-सम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयत सम्यग्दृष्टयः पल्योपम-असंख्येयभागप्रमिताः = देवगतिमें मिथ्यादृष्टि देव असंख्यात श्रेणी हैं (सो यह देवोंकी संख्या) प्रतरके असंख्यातवां भाग परिमाण है = सासादन सम्यग्दृष्टि [दूसरे गुणस्थानवर्ती] मिश्र गुणस्थानवर्ती, असंयमी सम्यग्दृष्टि पल्योपमके असंख्यातवां भाग प्रमाण हैं ॥

(१) श्रेणि—श्रेणी (स्त्री०) = छिद्ररहित पंक्ति । श्रेण्यसंख्येय = श्रेणि-असंख्येय अथवा श्रेणी असंख्येय (इको यणचि सूत्रसे टिप्पणी पृष्ठ १७) श्रेणि का बहुवचन = श्रेणयः है परन्तु श्रेणीका = श्रेण्यः है वृत्तिकारने श्रेणि शब्द लिखा है क्योंकि आगे चलकर श्रेणयः बहुवचन दिया है । अतः हमने श्रेणि—असंख्येय ऐसा ही पदच्छेद किया है ॥

[२] इन्द्रियानुवादेन—एकेन्द्रिया मिथ्यादृष्टयोऽनन्तानन्ताः ॥ द्वीन्द्रियास्त्रीन्द्रियाश्चतुरिन्द्रिया असंख्येयाः श्रेणयः प्रतरासंख्येयभागप्रमिताः ॥ पञ्चेन्द्रियेषु मिथ्यादृष्टयोऽसंख्येयाः श्रेणयः प्रतरासंख्येयभागप्रमिताः ॥ सासादनसम्यग्दृष्ट्यादयोऽयोगकेवल्यन्ताः सामान्योक्तसंख्याः ॥

इन्द्रिय—अनुवादेन ॥ एकेन्द्रियाः ॥ मिथ्यादृष्टयः ॥ =इन्द्रियके कथनानुसारसे एकेंद्रिय मिथ्यादृष्टि (जीव) अनन्तानन्ताः ॥ द्वीन्द्रियाः ॥ त्रीन्द्रियाः ॥ चतुरिन्द्रियाः =अनंतानंत हैं। दो इंद्रियवाले, तीन इन्द्रियवाले, चार इन्द्रियवाले [जीव] असंख्येयाः ॥ श्रेणयः ॥ प्रतर—असंख्येयभाग— =असंख्यात श्रेणि [परिमाण] हैं वे प्रतरके असंख्यातवें भाग प्रमिताः ॥ पंचेन्द्रियेषु ॥ मिथ्यादृष्टयः ॥ असंख्येयाः ॥ =परिमाण हैं। पांच इन्द्रियवालोंमें मिथ्यादृष्टि [जीव] असंख्यात श्रेणयः ॥ प्रतर—असंख्येयभाग-प्रमिताः ॥ =श्रेणी (परिमाण) हैं। (वे असंख्यात जगत् श्रेणी) प्रतरके असंख्यातवां भाग परिमाण हैं।

सासादनसम्यग्दृष्टि-आदयः ॥ अयोगकेवलि अन्ताः ॥ =सासादन सम्यग्दृष्टिसे अयोग केवली पर्यंत (इन १२ स्थानोंमें) सामान्य—उक्त—संख्याः[1] ॥ =संक्षेपसे [प्रथम] कही हुई संख्यावाले हैं अर्थात् दूसरे गुणस्थानमें बावन करोड ५२०००००००, तीसरेमें एकसौ चार करोड, चौथेमें सातसौ करोड (=सात अरब), पांचवेंमें १३ करोड, छठेमें पांचकरोड़ तिरानवे-लाख, अठानवें सहस्र दोसौछह (५९३९८२०६) सातवेंमें दो करोड़, छियानवैलाख, निन्यानवे सहस्र एकसौ तीन (२९६९९१०३) आठवें-नवमें-दशवें और ग्यारहवें उपशम श्रेणीके प्रत्येक गुणस्थानमें दोसौ निन्यानवे (२९९) और आठवें, नवमें, दशवें क्षपक श्रेणीके प्रत्येक गुणस्थानमें और क्षीण कषाय बारहवें गुणस्थानमें और अयोगकेवली चौदहवें गुणस्थानमें प्रत्येकमें ५९८ और सयोग तेरहवां गुणस्थानमें आठलाख अठानवै हजार पांचसौ दो (८९८५०२) दूसरेसे चौदह गुणस्थान तक सर्व जीवोंकी संख्या ८७७९९९९९७ हुई ॥

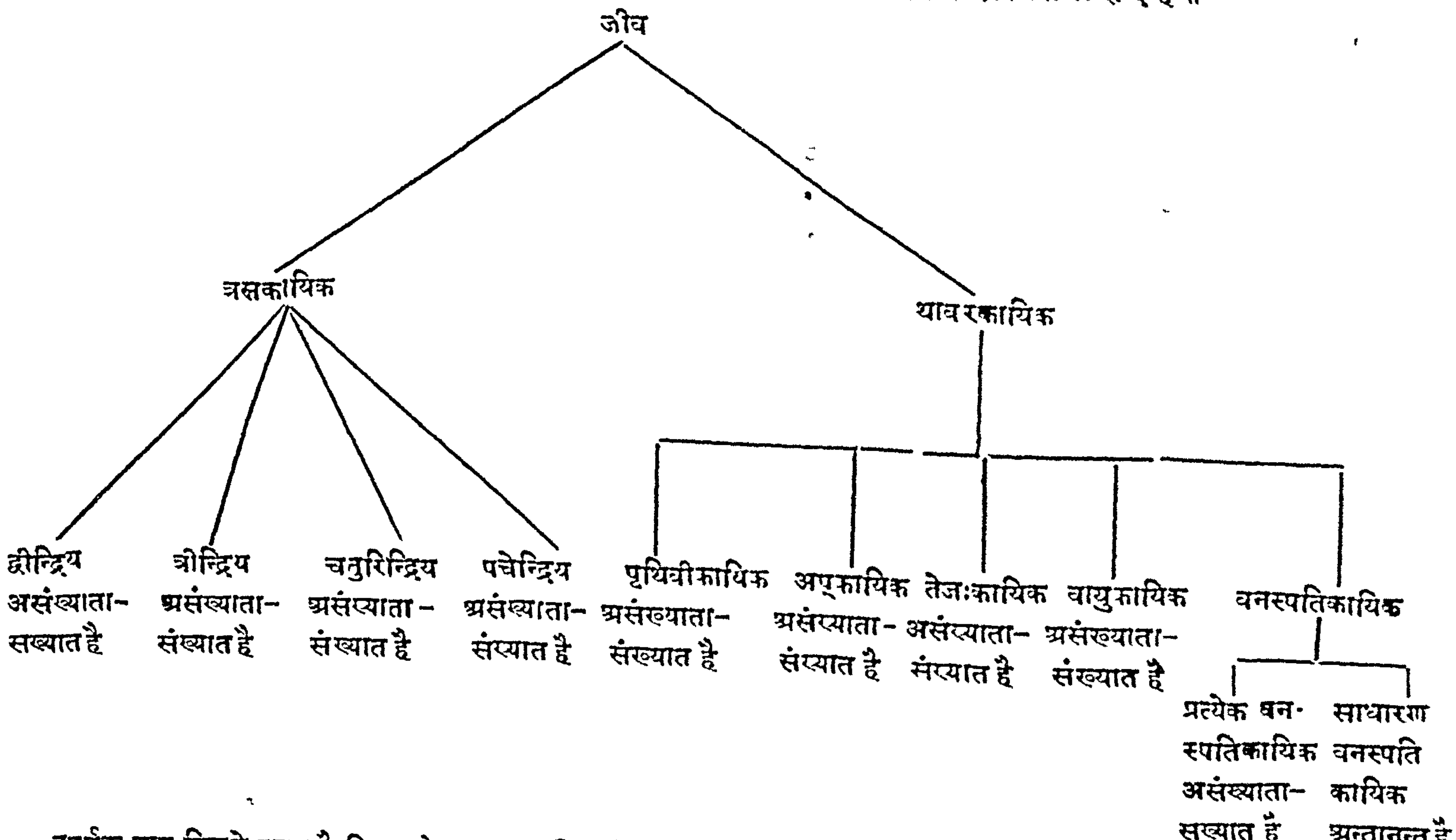
(१) सामान्योक्तसंख्या =संक्षेपसे वर्णित संख्यावाले, अतः यह वाक्य ('प्रथमा विभक्ति बहुवचन) पुलिंग है।

(३) कायानुवादेन–पृथिवीकायिका अप्कायिकास्तेजःकायिका वायुकायिका असंख्येयलोकाः । वनस्पतिकायिका अनन्तानन्ताः । त्रसकायिकसंख्या पंचेन्द्रियवत् ॥

काय-अनुवादेन पृथिवीकायिकाः अप्कायिकाः	=कायकी विवक्षासे पृथिवीकायिक, जलकायिक,
तेजःकायिकाः वायुकायिकाः असंख्येयलोकाः	= अग्निकायिक, पवनकायिक, असंख्यात लोक (परिमाण) हैं
वनस्पतिकायिका अनंतानन्ताः	= वनस्पतिकायिक अनन्तानन्त [प्रमाण] हैं [अवश्य पढो)
त्रसकायिकसंख्या पञ्चेन्द्रियवत्*	= त्रसकायिककी गणना पांचइन्द्रियवालोंके समान है (इसके नीचेकी टिप्पणी

(१) पांच इंद्रियवालोंके समान है अर्थात् पचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि जीवोंकी संख्या पृष्ठ ९८ में असंख्यात जगत् श्रेणी प्रमाण कह चुके हैं और
ये असंख्यात जगत श्रेणी जगत प्रतरके असंख्यातवां भाग वरावर है और यह भी पृष्ठ ९८ में लिख चुके हैं कि सासादन दूसरे गुणस्थानसे चौदह
गुणस्थान तक ८७७९९९९९९७ जीव है यह छोटी सी सख्या भी प्रथम संख्यामे अन्तर्गत होनेसे सामान्य रीतिसे कह सकते है कि पांच इन्द्रिय
वाले जीवोकी संख्या असंख्यात जगत श्रेणी है=जगत प्रतरके असंख्यातवें भागके=असंख्यातासंख्यात=असंख्येयलोक है क्योंकि लोका-
काशके असंख्यात प्रदेश हैं अतः असंख्येय लोक असंख्यात×असंख्यात=असंख्यातासंख्यात (देखो पं० खूबचंद्रजी अनुवादित गोमट्टसारजी
जीवकांडगाथा १७४) और सं-सर्वार्थवृत्ति पृष्ठ २९ (३) ॥ सं-सः वृत्ति पृष्ठ २८ मे यह भी कथन है कि दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय,चार इन्द्रियकी
संख्या असंख्यात श्रेणी है जो जगत प्रतरके असंख्यातवां भाग है और यह भी वात है कि वास्तवमें विशेषतासे पंचेंद्रिय जीवोसे चौइन्द्रिय
जीव अधिक हैं और चौइन्द्रिय जीवोसे तीन इन्द्रिय जीव अधिक है और त्रिइंद्रिय जीवोसे दोइन्द्रिय जीव अधिक है जव केवल पंचेन्द्रिय जीव
असख्यात जगत श्रेणी है तव प्रत्येक वर्गके जीव (दोइन्द्रिय-त्रिइन्द्रिय-चौइन्द्रिय और पंचेन्द्रिय) असंख्यात श्रेणी प्रमाण होना चाहिये और
इस प्रकार चार असख्यात श्रेणिया हुई ॥ फिर वृत्तिकारने पंचेन्द्रियवत् कैसे कहा और यह वात भी प्रत्यक्ष है कि सर्व त्रस जीवोकी संख्या
सूक्ष्मदृष्टिसे पंचेन्द्रियके वरावर नहीं हो सकती है क्योंकि त्रसजीवोमें दोइन्द्रियसे लेकर पांच इन्द्रिय तक सम्मिलित हैं। त्रस शब्द ऐसा
विस्तृत है कि पांच इन्द्रियवाले जीवोके अतिरिक्त तीन वर्गके जीव और भी उसीमे अन्तर्गत हैं॥ अव इसके दो उत्तर हो सकते हैं।
असख्येयाः श्रेणय =[असख्यात श्रेणीये) इसके छोटे वड़े रूपसे असख्यात ही भेद हो सकते हैं इसलिये दोइन्द्रियसे चारइन्द्रिय तक
असख्यात श्रेणी संख्या कही और फिर उसके अनन्तर पंचेन्द्रियकी संख्या असंख्यात श्रेणी कही, पश्चात् त्रसजीव जिसमें दो इन्द्रियसे
चौइंद्रिय तकके जीव और पचेंद्रिय जीव भी गर्भित हैं उनकी भी सख्या असख्यात श्रेणी प्रमाण कही ॥ यह पिछली असंख्यात श्रेणीकी गणना
न्यारी न्यारी दो वार कही हुई असंख्यात श्रेणियोकी सख्यासे वहुत वडी सख्या होगी क्योंकि असंख्यातके भी असंख्यात भेद हो सकते हैं ॥

(२) उत्तर देनेके प्रथम भांति भांतिके जीवोंका एक मानचित्र लिखते हैं जिससे उत्तर सरलतासे समझमें आ जावै और स्मरण रहे कि असंख्यात जगत श्रेणी, जगत प्रतरका असंख्यातवां भाग, असंख्येयलोक, असंख्यातासंख्यात एकार्थवाची शब्द हैं ॥



उपर्युक्त मान चित्रसे स्पष्ट है कि त्रसके अनुवादकरि द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय जीवमें प्रत्येक वर्गकी संख्या अस-

४ योगानुवादेन-मनोयोगिनो वाग्योगिनश्च मिथ्यादृष्टयोऽसंख्येयाः श्रेणयः प्रतरासंख्येयभागप्रमिताः । काययोगिषु मिथ्यादृष्टयोऽनन्तानन्ताः । त्रयाणामपि योगिनां सासादनसम्यग्दृष्ट्यादयः संयतासंयतान्ताः पल्योपमासंख्येयभागप्रमिताः । प्रमत्तसंयतादयः सयोगकेवल्यन्ताः संख्येयाः । अयोगकेवलिनः सामान्योक्तसङ्ख्याः ॥

योगानुवादेन $\frac{3}{1}$। मनःयोगिनः $\frac{1}{3}$। च वाग्योगिनः $\frac{1}{3}$।	= योगकी अपेक्षाकरि मन योगवाले और वचनयोगवाले
मिथ्यादृष्टयः $\frac{1}{3}$। असंख्येयाः $\frac{1}{3}$। श्रेणयः $\frac{1}{3}$।	= मिथ्यादृष्टि असंख्यात जगतश्रेणी (परिमाण संख्यामें) हैं। (ये असंख्यात
प्रतर-असंख्येयभागप्रमिताः $\frac{1}{3}$। काययोगिषु $\frac{7}{3}$।	= जगत श्रेणी) पतरके असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं। काययोगवालोंमें
मिथ्यादृष्टयः $\frac{1}{3}$। अनन्तानन्ताः $\frac{1}{3}$। त्रयाणाम् $\frac{6}{3}$। अपि	= मिथ्यादृष्टि अनन्तानन्त प्रमाण हैं। (मन वचन-काय) तीनोंही
योगिनां $\frac{6}{3}$। सासादनसम्यग्दृष्टि-आदयः $\frac{1}{3}$।	= योगवालोंमें सासादन सम्यग्दृष्टि [दूसरे गुणस्थानवर्ती] से
संयतासंयत-अन्ताः $\frac{1}{3}$। पल्योपम-असंख्येयभाग-	= संयमासंयमी पर्यंत पल्योपमके असंख्यातवें भाग
प्रमिताः $\frac{1}{3}$।	= प्रमाण हैं अर्थात् दूसरेमें ५२ करोड तीसरेमें एक अरब चार करोड, चौथेमें सात अरब, पांचवेंमें तेरह करोड़ (जीव) हैं
प्रमत्त संयत-आदयः $\frac{1}{3}$। सयोग केवलि अन्ताः $\frac{1}{3}$।	= प्रमत्तसयंमी [छठे गुणस्थानवर्ती] से लेकर सयोगकेवली पर्यंत
संख्येयाः $\frac{1}{3}$।	= संख्यात हैं अर्थात् ८९९९९३९९ हैं जिनका विशेप कथन कर चुके हैं
अयोगकेवलिनः $\frac{1}{3}$। सामान्य उक्तसंख्याः $\frac{1}{3}$।	= अयोग केवलज्ञानवाले संक्षेपसे [प्रथम] कही हुई संख्यावाले हैं ५९८ हैं

ख्यात जगतश्रेणी प्रमाण है। और यही पं० टोडरमलजीने 'थावर सख पिपीलिय' इत्यादि गाथाका अर्थ किया है वह शब्दशः इसप्रकार है कि "स्थावर जो पृथ्वी अप्, तेज वायु प्रत्येक वनस्पती ए पंच प्रकार तौ एकेंद्री बहुरि संख कौडी लट इत्यादि वेंद्री बहुरि कीडी मकोड़ा इत्यादि तेन्द्री बहुरि भ्रमर माखी पतग इत्यादि चोइन्द्रिय बहुरि मनुष्य देव नारकी अर जलचरादि तिर्यंच ते पंचेन्द्री ए जुदे जुदे एक एक असंख्यातासंख्यात प्रमाण हैं। बहुरि निगोदिया जो साधारण वनस्पति रूप एकेंद्री ते अनंतानंत हैं॥"

(५) वेदानुवादेन-स्त्रीवेदाः पुंवेदाश्च मिथ्यादृष्टयोऽसङ्ख्येयाः श्रेणयः प्रतरासंख्येयभागप्रमिताः। नपुंसकवेदा मिथ्यादृष्टयोऽनन्तानन्ताः । स्त्रीवेदा नपुंसकवेदाश्च सासादनसम्यग्दृष्ट्यादयः संयता-संयतान्ताः सामान्योक्तसंख्याः। प्रमत्तसंयतादयोऽनिवृत्तिबादरान्ताः संख्येयाः।

ऐसे प्रमत्तसंयमीसे सयोगी तक ८९९९९३९९+५९८ अयोगी तीन न्यून नौ करोड़ हुये

वेद-अनुवादेन ३।१ स्त्रीवेदाः १।३ पुंवेदाः १।३ च = वेदकी अपेक्षासे स्त्री वेदवाले और पुरुष वेदवाले

मिथ्यादृष्टयः १।३ असंख्येयाः १।३ श्रेणयः १।३ = मिथ्यादृष्टि असंख्यात [जगत] श्रेणी [प्रमाण] हैं। वे [असंख्यात श्रेणी]

प्रतर-असंख्येय भाग = प्रतरके असंख्यातवे भाग

प्रमिताः १।३। नपुंसकवेदाः १।३ मिथ्यादृष्टयः अनन्तानन्ताः १।३ = प्रमाण हैं । नपुंसकवेदवाले मिथ्यादृष्टि अनन्तानन्त हैं

स्त्रीवेदाः १।३ च नपुंसकवेदाः १।३ सासादनसम्यग्दृष्टि- = स्त्रीवेद और नपुंसक वेदवाले सासादनसम्यग्दृष्टि [दूसरे गुणस्थानवर्ती]

आदयः १।३ संयतासंयत-अन्ताः १।३ सामान्य-उक्त-संख्याः = से लेकर संयमासंयमी [पांचवे गुणस्थान वालों] तक संक्षेपसे [पहिले] कही संख्यावाले हैं अर्थात् "गुणस्थानवत् संख्या है" स० सिद्धि० वचनिका मुद्रित पृष्ठ ७४ ॥ भावार्थ—सासादनमें ५२ करोड हैं मिश्रमें १०४ करोड हैं असंयमी सात अरब हैं संयमासंयमी तेरह करोड हैं संभव है कि स्त्रीवेद और नपुंसक वेदियोंकी इतनी संख्या हो जाती हो ऐसी अवस्थामें पुरुष वेदी एक भी दूसरेसे पांचवे गुणस्थानमें न रहैगा क्योंकि तीनों वेदियोंकी संख्या कदापि अभी कही हुई संख्यासे अधिक किसी गुणस्थानमें नहीं हो सक्ती ॥

प्रमत्त संयत-आदयः १।३ अनिवृत्ति बादर अंताः १।३ = [स्त्रीवेद-नपुंसक वेदी] प्रमत्तसंयत आदि अनिवृत्ति बादर सांपराय ताईं

संख्येयाः १।३ = संख्यात हैं ॥ सर्वार्थसिद्धि वचनिका पृष्ठ मुद्रित ७४ । जयचन्द रायजीके

पुंवेदाः सासादनसम्यग्दृष्ट्यादयः संयतासंयतान्ताः सामान्योक्तसंख्याः। प्रमत्तसंयतादयोऽनिवृत्तिबादरान्ताः सामान्योक्तसंख्याः। अपगतवेदा अनिवृत्तिबादरादयोऽयोगकेवल्यन्ताः सामान्योक्तसङ्ख्याः॥

अनुवादसे यहां पर यह बात झलकती है कि इन गुणस्थानोंमें जीवोंकी संख्या तो नहीं बढ़ेगी परन्तु पुरुष वेदी भी रहेंगे, पर कह नहीं सकते कि कितने स्त्रीवेदी नपुंसकवेदी रहेंगे और कितने पुरुषवेदी रहेंगे तीनों वेदवाले यदि उत्कृष्ट होंगे तो पृष्ठ ९८ में उक्त संख्यासे अधिक न होंगे॥

पुंवेदाः १।३ सासादनसम्यग्दृष्टि-आदयः १।३ संयतासंयत = पुरुष वेदवाले सासादन सम्यग्दृष्टिसे लेकर संयमासंयमी (पांचवे गुणस्थानवालों) के

अन्ताः १।३ सामान्य—उक्त—संख्याः १।३ = अंत तक संक्षेपसे (प्रथम) कथित (गुणस्थानवत्) गिन्तीवाले हैं अर्थात् यहां पर वही अर्थ झलकता है कि सासादनसे संयतासंयत तक उक्त संख्यासे जीवोंकी वृद्धि नहीं होगी केवल पुरुषवेदियोंकी गुणस्थानवत् जभी संख्या हो सक्ती है कि स्त्रीवेदी नपुंसकवेदी एक भी किसी विशेष कालमें न रहे॥

प्रमत्तसंयत-आदयः १।३ अनिवृत्तिबादर-अन्ताः १।३ = (पुरुषवेदी) प्रमत्तसंयमीसे अनिवृत्तिबादरसाम्पराय (के आदिके तीन वेद सहित भागमें) तक

सामान्य-उक्त-संख्याः १।३ = संक्षेपसे [प्रथम] कही [गुणस्थानके सदृश] संख्यावाले हैं अर्थात् जब पुरुषवेदी संख्यामें उक्त गुणस्थानोंकी संख्याके बराबर उत्कृष्ट रनेसे किसी समयमें वा कालमें हो जावेंगे तब स्त्रीवेदी-नपुंसकवेदी कोई भी न रहेंगे क्योंकि जीवोंकी संख्या उत्कृष्ट नियत संख्यासे बढ नहीं सक्ती और पुरुषवेदी उक्त संख्याके बराबर जबतक स्त्री वेदी नपुंसकवेदी रहेंगे हो नहीं सक्ते॥

[६] कषायानुवादेन-क्रोधमानमायासु मिथ्यादृष्ट्यादयः संयतासंयतान्ताः सामान्योक्तसंख्याः । प्रमत्तसंयतादयोऽनिवृत्तिबादरान्ताः संख्येयाः । लोभकषायाणाम्

अपगतवेदाः १ अनिवृत्ति-वादर-आदयः १ = " वेदरहित अनिवृत्तिवादरसांपराय आदि
अयोग-केवलि-अन्ताः १ सामान्य-उक्त-संख्याः १ = अयोग केवली ताईं सामान्योक्त कहिये गुणस्थानवत् संख्या है" जय०७४ अर्थात् इस नववे गुणस्थानके छह भागोंमेंसे अन्तके तीन भाग वेदरहित हैं उपशम श्रेणीवालोंकी संख्या २९९ जीवोंकी है और क्षपक श्रेणीवालोंकी संख्या ५९८ है इन तीनों भागोंमें गुणस्थानवत् संख्या २९९ होनेसे और ५९८ होनेसे आदिके तीन वेद भागोंमें कोई भी जीव न रहैगा ॥ दशवेंसे चौदहवें गुणस्थानोंमें जीवोंकी संख्या वही है जो पृष्ठ ९८ में कह चुके हैं ॥ इस वेद अनुवादकी संख्यामें हमारी समझमें जो आया है वह लिख दिया है । हमको और जगह विशेष नहीं मिला, पाठकगण अन्य ग्रंथोंसे निश्चय करलें ॥

(६) कषाय-अनुवादेन १ क्रोध-मान-मायासु ३ = कषायके कथनानुसारकरि क्रोध-मान मायावालोंमें
मिथ्यादृष्टिआदयः १ संयतासंयत-अन्ताः १ सामान्य- = मिथ्यादृष्टिसे लेकर संयमासंयमी तक सामान्यकरि
उक्त संख्याः १ = कथित [गुणस्थानसदृश] गणनावाले हैं अर्थात् क्रमसे अनंतानंत, बावन करोड, एक अरब चार करोड, सात अरब और [संयमासंयमी] तेरह करोड हैं ।
प्रमत्तसंयत-आदयः १ अनिवृत्तिवादर-अन्ताः १ = प्रमत्त संयमीसे लेकर (= आदयः) अनिवृत्ति वादर साम्पराय तकके
संख्येयाः १ = सख्यात हैं (परिमित संख्याके लिये देखो पृ० ९८)
लोभकषायाणाम् ६ = लोभ कपायवालोंका [पहिले मिथ्यादृष्टिसे अनिवृत्ति वादर नववें गुण-स्थान तक]

उक्त एव क्रमः । अयं तु विशेषः सूक्ष्मसाम्परायसंयताः सामान्योक्तसंख्याः । अकाषाया उपशान्तकषायादयोऽयोगकेवल्यन्ताः सामान्योक्तसंख्याः ॥ (७) ज्ञानानुवादेन—मत्यज्ञानिनः श्रुताज्ञानिनश्च मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टयः सामान्योक्तसंख्याः ।

उक्तः १ एव* क्रमः १ [सर्वार्थसिद्धि पृष्ठ ३० की ३ पंक्तिसे ५ पंक्ति तक] वर्णित ही अनुक्रम है अर्थात् मिथ्यादृष्टि = अनन्तानन्त, सासादन = बावन करोड, मिश्रवाले = एक अरब चार करोड, असंयमी = सात अरब, संयमासंयमी = तेरह करोड, प्रमत्त संयमी = ५९३९८२०६, अप्रमत्तसंयमी = २९६९९-१०३ अपूर्वकरण उपशमक = २९९, अपूर्वकरण क्षपक = ५९८, अनिवृत्तिकरण उपशमक = २९९ अनिवृत्तिकरणक्षपक ५९८ हैं

तु* अयम् १ विशेषः १ सूक्ष्मसाम्परायसंयताः १ सामान्य = परंतु यह विशेष है कि सूक्ष्मसाम्पराय [दशवे गुणस्थानवर्ती] संक्षेपकरि

उक्तसंख्याः १ = पहले कही हुई [गुणस्थानवत्]संख्यावाले हैं अर्थात् उपशमक = २९९ क्षपक ५९८ हैं ।

अकषायाः १ उपशान्तकषाय-आदयः १ अयोगकेवलिअन्ताः = कषायवर्जित उपशांतकषायवर्तीसे लेकर अयोगकेवलीपर्यंत

सामान्य-उक्त-संख्याः १ = संक्षेपसे वर्णित (गुणस्थानवत्)संख्या वाले हैं, अर्थात् उपशांत कषाय वीतराग छद्मस्थ २९९ हैं क्षीणकषाय वीतराग छद्मस्थ ५९८ हैं, सयोग केवली वीतराग सर्वज्ञ ८९८५०२ हैं और अयोगकेवली सर्वज्ञ ५९८ हैं ।

[७] ज्ञान-अनुवादेन १ मतिअज्ञानिनः १ च श्रुत— = (७) ज्ञानकी विवक्षाकरि मति अज्ञानवाले और श्रुत

अज्ञानिनः १ मिथ्यादृष्टि-सासादनसम्यग्दृष्टयः १ = अज्ञानवाले मिथ्यादृष्टि सासादनसम्यग्दृष्टि (दूसरे गुणस्थानवर्ती)

सामान्य-उक्त-संख्याः १ = संक्षेपसे (पहले) कथित (गुणस्थानवत्) गिनतीवाले हैं । मिथ्यादृष्टि अनन्तानन्त, और सासादन = बावन करोड हैं ।

विभङ्गज्ञानिनो मिथ्यादृष्टयोऽसंख्येयाः श्रेणयः प्रतरासंख्येयभागप्रमिताः। सासादनसम्यग्दृष्टयः पल्योपमासंख्येयभागप्रमिताः। मतिश्रुतज्ञानिनोऽसंयतसम्यग्दृष्ट्यादयः क्षीणकषायान्ताः सामान्योक्तसंख्याः। अवधिज्ञानिनोऽसंयतसम्यग्दृष्टिसंयतासंयतान्ताः सामान्योक्तसंख्याः। प्रमत्तसंयतादयः क्षीणकषायान्ताः संख्येयाः। मनःपर्ययज्ञानिनः प्रमत्तसंयतादयः क्षीणकषायान्ताः संख्येयाः। केवलज्ञानिनः सयोगा अयोगाश्च सामान्योक्तसंख्याः॥

विभङ्गज्ञानिनः मिथ्यादृष्टयः असंख्येयाः श्रेणयः प्रतर-असंख्यातभाग-प्रमिताः सासादन सम्यग्दृष्टयः पल्योपम-असंख्येयभाग-प्रमिताः = विभंगज्ञानी (कुअवधिज्ञानवाले) मिथ्यादृष्टि असंख्यात [जगत] श्रेणी हैं [ये असंख्यात श्रेणी] प्रतरके असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं सासादन सम्यग्दृष्टि [विभंगज्ञानी] पल्यके असंख्यातवां भाग प्रमाण हैं [बावन करोड़ हैं]

मतिश्रुतज्ञानिनः असंयतसम्यग्दृष्टि-आदयः क्षीणकषाय-अन्ताः सामान्य-उक्त संख्याः = मतिज्ञानी श्रुतज्ञानी असंयमी सम्यग्दृष्टि (चतुर्थगुणस्थानवर्ती से) क्षीणकषाय वालोंतक संक्षेपसे (पूर्व) कथित (गुणस्थानवत्) गणना वाले हैं अर्थात् असंयमी सात अरब, संयासंयमी तेरह करोड, प्रमत्त संयमी ५९३९८२०६ इनसे आधे अप्रमत्तसंयमी चार उपशमक प्रत्येक २९९ चार क्षपक प्रत्येक ५९८ हैं।

अवधिज्ञानिनः असंयतसम्यग्दृष्टिसंयतासंयत-अन्ताः सामान्य-उक्त-संख्याः = अवधिज्ञानी असंयतसम्यग्दृष्टिसे संयमासंयमी वा देश विरत सम्यग्दृष्टि पर्यन्त संक्षेपकरि (पूर्व) कथित (गुणस्थानवत्) संख्यावाले हैं = अर्थात् असंयमी सम्यग्दृष्टि सात अरब हैं संयमासंयमी तेरह करोड हैं

प्रमत्त-संयत-आदयः क्षीणकषाय अन्ताः संख्येयाः = (अवधिज्ञानी) प्रमत्तसंयमीसे क्षीणकषाय (गुणस्थान) पर्यन्त = संख्यात हैं प्रमत्तसंयमी ५९३९८२०६ इनसे आधे अप्रमत्त संयमी चार उपशमक प्रत्येक २९९ चार क्षपक प्रत्येक ५९८ हैं।

मनःपर्ययज्ञानिनः प्रमत्तसंयत-आदयः क्षीणकषाय अन्ताः संख्येयाः = मनः पर्ययज्ञानी प्रमत्तसंयमी (छठे गुणस्थान) से लेकर क्षीणकषाय तक संख्यात हैं [यह संख्या ऊपर कह दी है]

केवलज्ञानिनः सयोगाः च अयोगाः सामान्य-उक्त-संख्याः = केवलज्ञानवाले सयोग और अयोगकेवली संक्षेपसे वर्णित गुणस्थानवत् संख्यावाले हैं।

[८] संयमानुवादेन–सामायिकच्छेदोपस्थापनशुद्धिसंयताः प्रमत्तादयोऽनिवृत्तिबादरान्ताः सामान्योक्तसंख्याः । परिहारविशुद्धिसंयताः प्रमत्ताश्चाप्रमत्ताश्च संख्येयाः । सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयता यथाख्यातविहारशुद्धिसंयताः संयतासंयताः (असंयताश्च) सामान्योक्तसंख्याः ॥

संयम-अनुवादेन ३। सामायिक-च्छेदोपस्थापनशुद्धि-संयताः १। प्रमत्त आदयः १। अनिवृत्तिबादर-अंताः १। सामान्य-उक्त-संख्याः १। = संयमकी विवक्षाकरि सामायिकच्छेदोपस्थापन शुद्धि = संयमी प्रमत्त गुणस्थानसे अनिवृत्ति बादर सांपराय (नववे) गुणस्थान तक = सामान्य (प्रकरणमें पृष्ठ २६ सर्वार्थसिद्धि वृत्तिमें) कथित संख्यावाले [गुणस्थानवत्] हैं अर्थात् प्रमत्तमें ५९३९८२०६, इनसे आधे अप्रमत्तमें, दो उपशमक प्रत्येकमें २९९ दो क्षपक प्रत्येकमें ५९८।

परिहारविशुद्धिसंयताः १। च प्रमत्ताः १। च अप्रमत्ताः १। = परिहार विशुद्धिसंयमी और [= च] प्रमत्त गुणस्थानवाले और [च] अप्रमत्त गुणस्थानवाले

संख्येयाः १। = संख्यात हैं [स्मरण रहे कि सामायिक च्छेदोपस्थापन–परिहार विशुद्धि-संयमी तीनोंकी संख्याका सर्वयोग ८९०९७३०९ से अधिक नहीं हो सक्ता है जो कि पूर्वोक्त प्रमत्त अप्रमत्त गुणस्थानोंके जीवोंकी उत्कृष्ट संख्या है

सूक्ष्मसांपरायशुद्धिसंयताः १। यथाख्यातविहार-शुद्धिसंयताः १। = सूक्ष्म सांपराय शुद्धि संयमी (दशवे गुणस्थानवर्ती) यथाख्यात विहार = शुद्धि संयमी (उपशान्तकषाय वीतराग छद्मस्थ–क्षीणकषाय वीतराग छद्मस्थ सयोगकेवली और अयोग केवली क्रमसे ११,१२,१३,१४ गुणस्थानवर्ती)

संयतासंयताः १। च सामान्य उक्त-संख्याः १। = और संयमासंयमी संक्षेप (प्रकरण सर्वार्थ सिद्धि पृष्ठ २६) से वर्णित (गुणस्थानवत्) संख्यावाले हैं अर्थात्

(१) 'संयतासंयता असंयताश्च' इस वाक्यमे "असंयताः" हमारी समझमे अधिक छप गया है क्योकि यहां पर जीवोंकी संख्या संयमके कथनानुसार है नकि असयमके फिर असंयमीयोकी संख्या क्यो गिनाई वृत्तिकार क्यो विषयान्तर हुये ॥ इसी अध्यायके सातवें सूत्रके दूसरे

[९] दर्शनानुवादेन—चक्षुर्दर्शनिनो मिथ्यादृष्टयोऽसंख्येयाः श्रेणयः प्रतरासंख्येयभागप्रमिताः । अचक्षुर्दर्शनिनो मिथ्यादृष्टयोऽनन्तानन्ताः । उभये च सासादनसम्यग्दृष्ट्यादयः

सूक्ष्म साम्पराय उपशमक २९९ सूक्ष्मसाम्पराय क्षपक ५९८, उपशान्तकषाय २९९ क्षीणकषाय ५९८ सयोगकेवली ८९८५०२ और अयोग केवली ५९८ हैं और संयमासंयमी तेरह करोड हैं ॥

दर्शन-अनुवादेन [१] चक्षुर्दर्शनिनः [२] मिथ्यादृष्टयः [३] = दर्शनकी अपेक्षासे चक्षुर्दर्शनवाले मिथ्यादृष्टि (प्रथम गुणस्थानवर्ती) असंख्येयाः [४] श्रेणयः [५] प्रतर-असंख्येयभागप्रमिताः [६] = असंख्यात श्रेणी [प्रमाण] हैं [ये श्रेणी जगत] प्रतरके असंख्यातवां भाग प्रमाण हैं

अचक्षुर्दर्शनिनः [१] मिथ्यादृष्टयः [२] अनंतानंताः [३] = अचक्षुर्दर्शनवाले मिथ्यादृष्टि अनन्तानन्त हैं [स्थानवालोंसे

च उभये [१] सासादन-सम्यग्दृष्टि-आदयः [२] = और दोनों [चक्षुर्दर्शनवाले-अचक्षुर्दर्शनवाले] सासादन सम्यग्दृष्टि गुण

अनुयोगमें कि सम्यक्त्वका स्वामी कौन है– संयमके अनुवादकरि इस प्रकरणमे वृत्तिकार असंयतानां शब्द नहीं लाये उसके सम्बन्धमे हमने पृष्ठ ७१ में यह टिप्पणी दी है कि "कथन संयमकी अपेक्षासे है नकि असंयमीकी इत्यादि" वही अवस्था यहां पर है हमने "असयताः" वाक्य पाठमें नहीं रक्खा है ॥ पाठकोके लिए विस्तारसे अर्थ 'असंयताश्च' वाक्यका लिखते हैं = और असयमी (मिथ्यादृष्टि-सासादन–सम्यङ् मिथ्या दृष्टि—असयतसम्यग्दृष्टि) संक्षेपसे कथित गुणस्थानवत् सख्यावाले हैं अर्थात् यथासंख्य, अनन्तानन्त, बावनकरोड, एकसौ चार करोड, सात सौ करोड है ॥ यदि यह पक्ष लिया जाय कि आचार्यको फिर असयतोके कथन करनेका कहां अवसर था और कथन करना अवश्य ही चाहिये तो पृष्ठ ७१ के वृत्ति पाठमे असंयतानाॅ शब्द रह गया है वहां पर लिखना चाहिये ॥ जयचंदजीने दोनों स्थानोंमें असंयतानां और असंयताः शब्द लिये हैं ॥ (१) उभ= दो । यह शब्द सदीव दो वचनमे आता है इसका एक वचन और वहुवचन नहीं होते हैं । उभय=दो वाला–यह शब्द तीनों वचनमें आता है ॥ सर्वादिगणमे आनेसे अर्थात् सर्वनाम संज्ञक होनेके हेतुसे इसके रूप भी सर्व शब्दके समान होते है यहां पर उभये प्रथमा विभक्ति बहुवचन पुल्लिग है जैसे कि सर्वे (शब्द) सर्व शब्दका प्रथमा विभक्ति वहुवचन पुंलिंग है। अर्थ यहा पर यह है कि चक्षुर्दर्शनवाले और अचक्षुर्दर्शनवाले ॥

क्षीणकषायान्ताः सामान्योक्तसंख्याः। अवधिदर्शनिनोऽवधिज्ञानिवत्। केवलदर्शनिनः केवलज्ञानिवत्॥ (१०) लेश्यानुवादेन—कृष्णनीलकपोतलेश्या मिथ्यादृष्ट्यादयोऽसंयतसम्यग्दृष्ट्यन्ताः सामान्योक्तसंख्याः। तेजःपद्मलेश्या मिथ्यादृष्ट्यादयः संयतासंयतान्ताः स्त्रीवेदवत्।

क्षीणकषाय-अन्ताः ३। सामान्य-उक्त-संख्याः ३।	=क्षीणकषाय गुणस्थानवर्ती तक संक्षेप (प्रकरण)में कही हुई संख्यावाले हैं
अवधिदर्शनिनः ३। अवधिज्ञानिवत् * । केवल-	=अवधि दर्शनवाले, अवधिज्ञानियोंके बराबर हैं। केवल [अयोगी ५९८ हैं।
दर्शनिनः ३। केवलज्ञानिवत् * ॥	=दर्शनवाले केवलज्ञानियोंके समान हैं अर्थात् सयोगकेवली ८९८५०२,
१० लेश्या अनुवादेन ३। कृष्णनीलकपोतलेश्याः ३।	= लेश्याकी अपेक्षाकरि कृष्ण-नील-कपोत लेश्यावाले
मिथ्यादृष्टि आदयः ३। असंयतसम्यग्दृष्टि-अन्ताः ३।	= मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान पर्यन्त
सामान्य—उक्त—संख्याः ३।	=संक्षेप (प्रकरणमें) कही हुई (गुणस्थानवत्) संख्यावाले हैं अर्थात् मिथ्यादृष्टि अनन्तानन्त सासादनवर्ती बावनकरोड, मिश्रवाले एकसौ चार करोड, असंयमी सात अरब हैं।
	=पीत पद्म लेश्यावाले मिथ्यादृष्टिसे संयमासंयमी
तेजःपद्मलेश्या मिथ्यादृष्टि—आदयः ३। संयतासंयत—	=पर्यन्त स्त्रीवेद सदृश हैं अर्थात् मिथ्यादृष्टि असंख्यात जगत श्रेणी परिमाण हैं॥ सर्वार्थसिद्धि वृत्ति पृष्ठ २९ "स्त्रीवेदाः पुंवेदाश्च मिथ्यादृष्टयोऽसङ्ख्येयाः श्रेणयः" इस वाक्यमें पुरुषवेदी भी संमिलित हैं और ऊपर संख्या केवल स्त्रीवेद सदृश कही है पुरुषवेद वालोंको असंख्यात श्रेणियोंमेंसे घटा दें जब भी कह सक्ते हैं कि स्त्रीवेदी असंख्यात श्रेणी रह गये क्योंकि असंख्यातके असंख्यात भेद हैं अतः हमने मिथ्यादृष्टियोंको स्त्रीवेदवत् असंख्यात श्रेणी प्रमाण लिख दिया है॥ अब सासादनसे संयमासंयमी तक स्त्रीवेद और नपुंसकवेदी दोनोंकी संख्या सर्वार्थसिद्धि पृष्ठ
अन्ताः ३। स्त्रीवेदवत् *	

प्रमत्ताप्रमत्तसंयताः संख्येयाः । शुक्ललेश्या मिथ्यादृष्ट्यादयः संयतासंयतान्ताः पल्योपमासंख्येयभागप्रमिताः । प्रमत्ताप्रमत्तसंयताः संख्येयाः । अपूर्वकरणादयः संयोगकेवल्यन्ता अलेश्याश्च सामान्योक्तसंख्याः ॥

२९में गुणस्थानवत् कही है हमने पृष्ठ १०२ में जो भाव दिया है उसमें लिख दिया है कि स्त्रीवेदी नपुंसकवेदियोंकी संख्या एक रीतिसे उक्त गुण स्थानोंकी संख्यावत् हो सकती है । परंतु यहांपर हम नहीं कह सकते कि पीत–पद्म–लेश्यावालोंकी संख्या कितनी होगी क्योंकि हमको नपुंसकवेदियोंकी संख्या नहीं ज्ञात है ताकि हम उसको घटाकर स्त्रीवेदियोंकी संख्या निकाल लें परंतु स्मरण रहे कि दूसरे गुणस्थानसे पांच तककी उत्कृष्ट संख्या यथासंख्य बावन करोड़, एकसौ चार करोड, सातसौ करोड़ और तेरह करोड है उससे अधिक कदापि नहीं हो सकती है न्यून संख्या ही होगी ॥

प्रमत्त–अप्रमत्तसंयताः १।३ संख्येयाः १।३ = (पीत पद्म लेश्यावाले) प्रमत्त–अप्रमत्त संयमी संख्यात हैं अर्थात् ५९३९८२०६ जीव प्रमत्तमें इनसे आधे २९६९९१०३ अप्रमत्तमें हो सक्ते हैं

शुक्ललेश्याः १।३ मिथ्यदृष्टि–आदयः १।३ संयतासंयत–अन्ताः १।३ पल्योपम–असंख्येयभागप्रमिताः १।३ = शुक्ल लेश्यावाले मिथ्यादृष्टिसे संयमासंयमी तक पल्यके असंख्यातवां भागके बराबर परिमाण हैं

प्रमत्त–अप्रमत्तसंयताः १।३ संख्येयाः १।३ = (शुक्ललेश्यावाले) प्रमत्तसंयमी अप्रमत्तसंयमी संख्यात हैं

अपूर्वकरण–आदयः १।३ सयोगकेवलि अन्ताः १।३ = (शुक्ललेश्यावाले) अपूर्वकरण गुणस्थानसे सयोगकेवली (८से १३वें गुणस्थान) [तक

अलेश्याः १।३ च सामान्य–उक्त संख्याः १।३ = और लेश्यरहित चौदहवा गुणस्थानवर्ती संक्षेपसे कही हुई [गुणस्थानवत्] संख्यावाले हैं अर्थात् चार उपशमक प्रत्येक गुणस्थानमें २९९ चार क्षपक प्रत्येक गुणस्थानमें ५९८ सयोगकेवली ८९८५०२ अयोगकेवली ५९८ हैं

(११) भव्यानुवादेन—भव्येषु मिथ्यादृष्ट्यादयोऽयोगकेवल्यन्ताः सामान्योक्तसंख्याः । अभव्या अनन्ताः ॥

(१२) सम्यक्त्वानुवादेन—क्षायिकसम्यग्दृष्टिषु असंयतसम्यग्दृष्टयः पल्योपमासंख्येयभागप्रमिताः । संयतासंयतादय उपशान्तकषायान्ताः संख्येयाः । चत्वारः क्षपकाः

भव्य—अनुवादेन ३। भव्येषु ३। मिथ्यादृष्टि आदयः ३। अयोगकेवली-अन्ताः ३। सामान्य-उक्त-संख्याः ३। = [११] भव्यमार्गणाकी, अपेक्षासे भव्योंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर अयोगकेवली तक संक्षेपप्रकरणमें [पहले] कथित [गुणस्थानवत्] संख्या वाले हैं

अभव्याः ३। अनन्ताः ३। = अभव्यजीव अनन्त हैं भावार्थ ऐसा है कि सामान्यसे कही हुई संख्या मिथ्यादृष्टि जीवोंकी अनन्तानन्त है (देखो सर्वार्थसिद्धि पृष्ठ २६) और अभव्य जीव अनन्त हैं इस अनन्तानन्तमेंसे अनन्त घटानेसे भव्य जीवों की संख्या निकलती है अतः भव्योंकी संख्या भी अनन्तानन्त हुई क्यों कि भव्य जीव बहुत अधिक हैं और अभव्य जीव बहुत थोडे हैं ॥ गोम्मटसार गाथा ५५९–५६० अवरो जुत्ताणतो इत्यादिमें कहा है। जघन्य-युक्तानन्त प्रमाण अभव्य राशि है। और सम्पूर्ण संसारी जीवराशिमेंसे अभव्य राशिका प्रमाण घटाने पर जो शेष रहै उतना ही भव्य राशिका प्रमाण है। भव्यराशि बहुत अधिक है और अभव्य राशि बहुत थोडी है ॥

सम्यक्त्व-अनुवादेन ३। क्षायिकसम्यग्दृष्टिषु ३। = सम्यग्दर्शनकी विवक्षाकरि क्षायिक सम्यग्दर्शनवालोंमें

असंयतसम्यग्दृष्टयः ३। पल्योपम-असंख्येयभाग-प्रमिताः ३। = असंयत सम्यग्दृष्टि पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं ।

संयतासंयत-आदयः ३। उपशान्तकषाय-अंताः ३। = संयमासंयमी गुणस्थानसे उपशांतकषाय गुणस्थानवालों तक

संख्येयाः ३। चत्वारः ३। क्षपकाः ३। च = संख्यात हैं। चार [अपूर्वकरण-गुणस्थान-अनिवृत्तिकरण-गुणस्थान-सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान, क्षीणकषाय गुणस्थानवर्ती] क्षपक श्रेणीवाले और

सयोगकेवलिनोऽयोगकेवलिनश्च सामान्योक्तसंख्याः । क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टिषु असंयतसम्यग्दृष्ट्याद्योऽप्रमत्तान्ताः सामान्योक्त संख्याः । औपशमिकसम्यग्दृष्टिषु असंयतसम्यग्दृष्टिसंयतासंयताः पल्योपमासंख्येयभागप्रमिताः । प्रमत्ता प्रमत्तसंयताः संख्येयाः ।

सयोगकेवलिनः ॥ = सयोग केवली
अयोगकेवलिनः ॥ सामान्य-उक्त— = अयोग केवली संक्षेप [प्रकरण] करि (पहले) कही हुई [गुणस्थानवत्]
संख्याः ॥ = संख्यावाले हैं अर्थात् सयोग केवली ८९८५०२ और अवशेष प्रत्येकमें ५९८ जीव हैं ।

क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टिषु ॥ असंयतसम्यग्दृष्टि— = वेदक सम्यक्त्ववालोंमें असंयत सम्यग्दृष्टि [चौथे गुणस्थानवर्ती]
आदयः ॥ अप्रमत्त-अन्ताः ॥ सामान्य—उक्त— = से अप्रमत्तसंयमी [सातवा गुणस्थान] तक संक्षेपसे कथित गुणस्थानवत्
संख्याः ॥ = संख्यावाले हैं अर्थात् क्षायोपशमिक सम्यक्त्व वालोंकी गुणस्थानवत् उसी समय संख्या हो सक्ती है जब क्षायिक सम्यक्त्ववाले और उपशम सम्यक्त्ववाले इन गुणस्थानोंमें कोई समय ऐसा आ जाय कि एक भी न रहै क्योंकि क्षायिक सम्यक्त्व असंयत गुणस्थानसे अयोग गुणस्थान तक है और उपशम सम्यक्त्व असंयत गुणस्थानसे उपशान्त कषाय गुणस्थान तक है और असंयत गुणस्थानमें सात अरब, संयतासंयतमें तेरह करोड, प्रमत्त में ५९३९८२०६, अप्रमत्तमें २९६९९१०३ उत्कृष्ट जीव हो सकते हैं

औपशमिकसम्यग्दृष्टिषु ॥ असंयतसम्यग्दृष्टि— = उपशम सम्यग्दृष्टियोंमें असंयमी सम्यग्दृष्टि [चतुर्थ गुणस्थानवर्ती]
संयतासंयताः ॥ पल्योपम—असंख्येय-भाग-प्रमिताः ॥ = संयमासंयमी पल्यके असंख्यातवें भागके समान [उपम] परिमाण हैं
प्रमत्त-अप्रमत्तसंयताः ॥ संख्येयाः ॥ = (उपशम सम्यक्त्ववालोंमें) प्रमत्त संयमी अप्रमत्तसंयमी संख्याते हैं

चत्वारः औपशमिकाः सामान्योक्तसंख्याः । सासादनसम्यग्दृष्टयः सम्यग्मिथ्यादृष्टयो मिथ्यादृष्टयश्च सामान्योक्तसंख्याः ॥ (१३) संज्ञानुवादेन–संज्ञिषु मिथ्यादृष्ट्यादयः क्षीणकषायान्ताश्चक्षुर्दर्शनिवत् । असंज्ञिनो मिथ्यादृष्टयोऽनन्तानन्ताः । तदुभयव्यपदेशरहिताः सामान्योक्तसंख्याः ॥

चत्वारः ॥ = चार (अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण सूक्ष्मसांपराय उपशांतकषाय)

औपशमिकाः ॥ सामान्य-उक्त-संख्याः ॥ = उपशम श्रेणीवाले संक्षेप [प्रकरण] करि कथित गुणस्थानवत् संख्यावाले हैं अर्थात् इन प्रत्येक आठवे–नववें–दशवें–ग्यारहवें गुणस्थानमें २९९ जीव हैं।

सासादन-सम्यग्दृष्टयः ॥ सम्यङ्मिथ्यादृष्टयः ॥ = सासादन सम्यग्दृष्टि, मिश्र [तीसरे] गुणस्थानवर्ती

च मिथ्यादृष्टयः ॥ सामान्य–उक्त–संख्याः ॥ = और मिथ्यादृष्टि संक्षेप [प्रकरणमें] कथित [गुणस्थानवत्] संख्यावाले हैं अर्थात् बावन करोड, एकसौ चार करोड और अनन्तानन्त क्रमसे हैं

संज्ञा–अनुवादेन ॥ संज्ञिषु ॥ मिथ्यादृष्टि आदयः ॥ = [१३] संज्ञाकी अपेक्षासे सैनियोंमें मिथ्यादृष्टियोंसे लेकर

च क्षीणकषाय–अंताः ॥ चक्षुःदर्शनिवत् ॥ = और क्षीणकषाय [बारहवें] गुणस्थानपर्यंत चक्षुर्दर्शनवालोंके समान संख्या है अर्थात् असंख्यात श्रेणी प्रमाण हैं

असंज्ञिनः ॥ मिथ्यादृष्टयः ॥ अनन्तानन्ताः ॥ = असैनी [मनरहित] मिथ्यादृष्टि अनन्तानन्त हैं।

तत्–उभय–व्यपदेश–रहिताः ॥ = उन (सैनी–असैनी) दोनों नामोंसे वर्जित [सयोग और अयोग केवली]

सामान्य–उक्त–संख्याः ॥ = संक्षेप [प्रकरणमें पहिले] कही हुई संख्यावाले हैं अर्थात् सयोगकेवली ८९८५०२ हैं और अयोगकेवली ५९८ हैं

(१४) आहारानुवादेन—आहारकेषु मिथ्यादृष्ट्यादयः सयोगकेवल्यन्ताः सामान्योक्तसंख्याः । अनाहारकेषु मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्टयः सामान्योक्तसंख्याः । सयोगकेवलिनः संख्येयाः । अयोगकेवलिनः सामान्योक्तसंख्याः । संख्या निर्णीता ॥

आहार—अनुवादेन १ आहारकेषु २ मिथ्यादृष्टि- आदयः ३ सयोगकेवलि—अन्ताः ४ सामान्य—उक्त संख्याः ५ अनाहारकेषु ६ मिथ्यादृष्टि सासादनसम्यग्दृष्टि असंयतसम्यग्दृष्टयः ७ सामान्य—उक्त-संख्याः ८ = [१४] आहारकी विवक्षासे आहारकनिविषैं मिथ्यादृष्टि से सयोगकेवली तक सामान्य (प्रसंगमें) कथित [गुणस्थानवत्] संख्यावाले हैं । आहारकरहितोंमें मिथ्यादृष्टि सासादन सम्यग्दृष्टि असंयमी सम्यग्दृष्टि संक्षेप (प्रकरणमें) कथित [गुणस्थानवत्] गिनती वाले हैं । भावार्थ—मिथ्यादृष्टि आहारक और अनाहारक अनन्तानन्त हैं । सासादन सम्यग्दृष्टि अनाहारक और आहारक बावन करोड हैं अविरत सम्यग्दृष्टि आहारक और अनाहारक सातसौ करोड़ हैं। सयोगकेवली अनाहारक (जो केवल समुद्घात अवस्थामें ही अनाहारक होते हैं) और आहारक ८९८५०२ तक हो सकते हैं।

सयोगकेवलिनः ९ संख्येयाः १० अयोगकेवलिनः ११ = [अनाहारक] सयोगकेवली संख्याते हैं । अयोगकेवली (जो सदैव अनाहारक होते हैं)

सामान्य—उक्त—संख्याः १२ = सामान्य (प्रकरणमें) कथित [गुणस्थानवत्) संख्यावाले हैं अर्थात् ५९८ हैं। (स्मरण रहै कि जीवकी आहारक अवस्था प्रथमसे तेरह गुणस्थानों तक है । अनाहारक प्रथम, दूसरे, चौथे, पांचवे, छठे, समुद्घात अवस्थाको प्राप्त तेरहवें और चौदहवें गुणस्थानोंमें है)

संख्या १३ निर्णीता १४ = (इसप्रकार) गणना (अनुयोग वा प्ररूपणा) निश्चित हुई [कह दी गई]

क्षेत्रमुच्यते ॥ तद् द्विविधम् । सामान्येन विशेषेण च ॥ सामान्येन तावत् मिथ्यादृष्टीनां सर्वलोकः ॥

क्षेत्रम् १।१ उच्यते T तत् १।१ द्वि-विधम् १।१	= (अब) क्षेत्र (अनुयोग) कहा जाता है । वह (प्ररूपणा) दो प्रकार है
सामान्येन ३।१ च विशेषेण ३।१	= संक्षेपसे और भेदसे (संक्षेपसे गुणस्थानोंका क्षेत्र विशेषसे मार्गणाओंका)
सामान्येन ३।१ तावत्* मिथ्यादृष्टीनां ६।३ सर्वलोकः १।१	= संक्षेपसे प्रथम (= तावत्) मिथ्यादृष्टियोंका समस्त लोक (क्षेत्र) है

(१) स्वस्थानस्वस्थाने वेदनाकषायमारणान्तिकसमुद्घातेषु उपपादे च एवं पञ्चसु पदेषु सर्वलोको मिथ्यादृष्टीनां क्षेत्रम् ॥

	स्वस्थानके दो भेदोंमेंसे (१) स्वस्थानस्वस्थान अर्थात् "जीव जिस नरक स्वर्ग नगर ग्रामादि क्षेत्रविषै उपजै" (२) विहारवत्-स्वस्थान अर्थात् जीवोंके विहार करने योग्य जो क्षेत्र हो]
स्वस्थानस्वस्थाने ७।१ वेदना-	= स्वस्थानस्वस्थान (पद) में, वेदना समुद्घातमें (= मूल देहका न छूटना और = आत्माके प्रदेशोंका बहुत पीडाके अनुभवसे बाहर निकलने) में
कषाय-	= कषायसमुद्घात (= मूल देहका न छूटना और जीवके प्रदेशोंका किसी तीव्र = कषायके उदयसे परके घातके लिये बाहर निकलने) में
मारणान्तिकसमुद्घातेषु ७।३	= मारणान्तिक समुद्घात (= मूल शरीरका न छूटना और मरते समय आत्मप्रदेशोंका शरीरसे बाहर निकलने) में
च उपपादे ७।१	= और (= च) उपपाद (= "पहले जो पर्याय धरना था ताको छोडि पहिले समय अन्य पर्याय रूप होइ अंतरालविषै जो प्रवर्तना") में
एवं	= इसप्रकार ("दश स्थानकनि" उपर्युक्त पांच और वैक्रियिक समुद्घात, तैजससमुद्घात, आहारकसमुद्घात, केवलिसमुद्घात, विहारवत्स्वस्थानमेंसे)
पञ्चसु ७।३ पदेषु ७।३ मिथ्यादृष्टीनां ६।३	= पांच "स्थानकनिविषै" मिथ्यादृष्टि (प्रथम गुणस्थानवर्ती) का
क्षेत्रम् १।१ सर्वलोकः १।१	= वर्तमानकालमें निवास वा वर्तमानस्थान वा आधार (= क्षेत्र) समस्त लोक है ॥

सासादनसम्यग्दृष्ट्यादीनामयोगकेवल्यन्तानां लोकस्यासंख्येयभागः

सासादनसम्यग्दृष्टि–आदीनाम् ६। अयोगकेवलि–	= सासादनसम्यग्दृष्टि आदि अयोगकेवली (चौदहवें गुणस्थान तक)
अन्तानाम् ६। लोकस्य ६। असंख्येय-भागः १।	= पर्यन्तोंका लोकके असंख्यातवां भाग (वर्तमान कालमें निवास वा क्षेत्र) है

मूलदेह छूटे नाहिं बाहिर प्रदेश जाहिं, कह्यो है समुद्घात सोई भेद सात है। क्रोधसेती सत्रुनिपै वेदनासौं औपधिपै, शुभाशुभ तैजसको पूतला विख्यात है ॥ मरणांत गतिमांहि वैक्री बहु जीव करै, आहारक साधूनिके संदेह विलात है ॥ केवल समुद्घात समैमाहिं चेतन ही काय सेती बाहिर निकल आप जात है ॥ ११ ॥ (द्यानतरातकृत द्रव्यसंग्रह भाषा)

सासादनस्य असंयतसम्यग्दृष्टेश्च स्वस्थानस्वस्थानविहारवत्स्वस्थानवेदनाकषायवैक्रियिकमारणान्तिकोपपादेषु लोकस्यासंख्येयभागः क्षेत्रम् ॥ मिश्रस्य तेष्विव मारणान्तिकोपपादरहितेषु। तद्रहितत्वं कुत इति चेत्तस्य मारणान्तिकमरणयोरभावात्। तदपि कुतः? मरणांतसमुग्घादो वि य ण मिस्सम्मि' इत्यनेन 'मिस्सा आहारस्स य खवगा' इत्यादिना च तयोः प्रतिषेधान्निश्चीयते ॥ एवं देशसंयतादिषु आगमानुसारेणाववोद्धव्यम् ॥

(१) सासादनस्य ६। असंयतसम्यग्दृष्टेः ६। च	= सासादन सम्यग्दृष्टिका और (= च) असंयमी सम्यग्दृष्टिका
स्वस्थानस्वस्थान—	= स्वस्थानस्वस्थान (= जीव जिस नरक स्वर्ग नगर ग्रामादि क्षेत्रमें उपजे उस) में
विहारवत्स्वस्थान—	= विहारवत्स्वस्थान (= जीवोंके विहार करने योग्य जो क्षेत्र हो उस) मे
वेदना-कषाय-वैक्रियिक	= वेदनासमुद्घातमें, कषायसमुद्घातमें, वैक्रियिकसमुद्घातमे (= विक्रिया अर्थात् छोटे बडे एक अनेक आदि नाना क्रियायोंके निमित्तसे मूल शरीरको न छोड़कर आत्माके प्रदेशोंका शरीरसे बाहर निकलने)में
मारणांतिक—	= मारणांतिक समुद्घात (मरण होनेसे प्रथम नवीन पर्यायके धरनेका क्षेत्र पर्यंत प्रदेशोंका मूल देहको न छोड़कर निकसने) में
उपपादेषु ७।३।	= उपपाद (प्रथम धारणकी हुई पर्यायको त्यागकर पहले समय अन्य पर्याय रूप हो अंतरालमें प्रवर्तनकी अवस्था) में
लोकस्य ६। असंख्येयभागः १। क्षेत्रम् १।१।	= लोकका असंख्यातवां भाग क्षेत्र है अर्थात् वर्तमानकालमें निवास (= क्षेत्र) है
मिश्रस्य ६। मारणांतिक—उपपाद—रहितेषु ७।३।	= सम्यग्मिथ्यादृष्टिका मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादरहित

तेषु ।	=तिन (स्वस्थान स्वस्थान—विहारवत्स्वस्थान—वेदनासमुद्घात—कषायसमुद्घात—वैक्रियिकसमुद्घात—) में
इव	=(पूर्वोक्त सासादन सम्यग्दृष्टिके और असंयतसम्यग्दृष्टिके) सदृश
(लोकस्यासंख्येयभागः क्षेत्रम्)	=(लोकका असंख्यातवां भाग क्षेत्र है)
तद्रहितत्वं । कुतः *	=उन (मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद) का रहितपना क्योंकर है
इति चेत् * तस्य ।	=ऐसा प्रश्न—संदेह वा तर्क होनेपर (= चेत्)—उत्तर है कि—तिस (मिश्र) के
मारणान्तिकमरणयोः । अभावात् ।	=मारणांतिक समुद्घात और मृत्यु दोनोंके न होने (के हेतु) से (मारणान्तिक समुद्घात और उपपादका वर्जितपना) है अर्थात् मिश्रगुणस्थानमें किसी जीवका मरण नहीं होता है इसलिये मारणान्तिक समुद्घात नहीं है मारणान्तिक समुद्घात जब ही होता है जब मृत्यु होती है
तद् * अपि कुतः *	=वह (मारणांतिक समुद्घात और मरणका अभाव मिश्रगुणस्थानमें) भी क्योंकर
य मरणांतसमुग्घादो । (=च मारणांतिकसमुद्घातः ।)	=(उत्तर) और (=य=च) मारणांतिक समुद्घात
वि * ण * मिस्सम्मि । (अपि * न * मिश्रे ।)	=भी (=वि अपि) मिश्रगुणस्थानमें नहीं होता है
इति—अनेन । च	=ऐसे इस (आगम वाक्य) से और
मिस्सा । (= मिश्राः ।)	=मिश्रगुणस्थानवर्तिन (=मिस्सा । = मिश्राः ।) वा मिश्रगुणस्थानवर्ती
आहारस्स । (आहारस्य । = आहारश्रयकाः ।)	आहारमिश्रकाययोगि वा निर्वृत्यपर्याप्त अवस्थारूप मिश्र काययोगी अर्थात् जो शरीर पर्याप्ति पूरी करनेवाला है उस शरीरपर्याप्तिके पहिले जैसे औदारिकमिश्र-वैक्रियिक मिश्र आहारक मिश्र
य (= च) खवगा । (क्षपकाः ।) इति आदिना ।	=और (=य =च) क्षपकश्रेणीवाले इत्यादिमे

संयोगकेवलिनां लोकस्यासंख्येयभागः

सयोगकेवलिनां लोकस्य असंख्येयभागः	=योगसहित केवलियोंका (क्षेत्र) लोकका असंख्यातवां भाग है
तयोः प्रतिषेधात्	=उन दोनो (मारणांतिक और मरण) के निषेध होनेसे [संयमी
निश्चीयते । एवं * देश—संयत—	=(मारणांतिक तथा मरणका अभाव मिश्रमें) निर्णय किया जाता है ऐसे संयमा-
आदिषु आगम—अनुसारेण अवबोद्धव्यम् ॥	=आदिमें शास्त्रके अनुसारसे जानना चाहिये ॥

(१) एकस्मिन्काले सम्भवतां पूर्वोक्तशतसहस्रपृथक्त्वसंख्यानां सयोगकेवलिनां स्वस्थानस्वस्थान-विहारवत्स्वस्थानापेक्षया च लोकस्यासंख्येयभागः क्षेत्रम् ॥ असंख्येयभागा इति वचनेन प्रतरसमुद्घाते लोकस्यासंख्यातबहुभागमात्र क्षेत्रमित्युक्तं ज्ञेयम् ॥ त्रिलोकसारे 'सत्तासीदी चदुस्सदेत्यादिना' कथितेन सर्ववातवलयावरुद्धक्षेत्रेण एतावता १०२३१९८७१४८७ सर्वलोकासंख्यातैकभागमात्रेण हीनस्य सर्वलोकस्य तत्क्षेत्रत्वात्। लोकपूरणापेक्षया सर्वलोकः क्षेत्रम् ॥

एकस्मिन् काले सम्भवतां पूर्व—उक्त—	=एक समयमें होनेवाले पहले कहे हुये
शतसहस्रपृथक्त्व—	=तीनसौहजार (तीनलाख) से अधिक नौसौहजार (नो लाख) से नीचे
संख्याना सयोगकेवलिनां	=(अर्थात् ८९८५०२) गिनती किये हुये सयोगकेवलियोका
स्वस्थानस्वस्थान—विहारवत्स्वस्थान-अपेक्षया	=स्वस्थानस्वस्थान और विहारवत् स्वस्थान की अपेक्षासे
लोकस्य असंख्येयभागः क्षेत्रम् ॥ "असंख्येय	=लोकका असंख्यातवाँ भाग निवासस्थान (=क्षेत्र) है "असंख्येय
भागाः" इति वचनेन प्रतर-समुद्घाते	=भागाः" ऐसे वाक्यसे (सयोगकेवलीके) प्रतर समुद्घातमें
लोकस्य असख्यातबहुभागमात्रं क्षेत्र	=लोकके असंख्यातभागोंमेंसे बहुत भागके परिमाण (=मात्र) क्षेत्र है
इति—उक्तं ज्ञेयम् त्रिलोकसारे	=ऐसा कथन वा अर्थ जानना चाहिये। त्रिलोकसार (ग्रन्थ गाथा १३९) में
सत्तासीदि चदुस्सद (सप्ताशीति चतुःशत—)	=सत्तासीदि चदुस्सद (= चारसौ सतासी) इत्यादि (निम्नलिखित) कथनसे

सर्व-वातवलय— =सब वात वलयोंसे (अर्थात् प्रथम घनोदधि वात वलय जो जल और पवन मिश्रित है दूसरा घनवातवलय जो स्थूल वायुका है तीसरा तनुवात वलय जो सूक्ष्म वायुका है ये तीनों लोकको उसी प्रकारसे वेढे हुये हैं जैसे छाल वृक्षको और चाम शरीरको सब ओरोंसे घेरे हुये हैं)

अवरुद्ध-क्षेत्रस्य ॥ =घिरा हुआ या आच्छादित क्षेत्र

(एतावता ॥ १०२४१९८३४८७) =(इतना (=एतावता) $\frac{१०२४१९८३४८७ \times \text{जगत्प्रतर}}{१०९७६० \; (=\text{भागहार})}$ होता है और लोकके असंख्यातवाँ भाग प्रमाण है (देखो त्रिलोकसारकी गाथा १३८, १३९, १४०,) (तीनों वात वलयोंकी फलावट उक्त ग्यारह अंक प्रमाण है)

हीनस्य ॥ सर्वलोक-असंख्यात-एकभागमात्रेण ॥ =उससे हीन जो (क्षेत्र) सब लोकके असंख्यात भागोंमेंसे एक भागमात्र है

सर्वलोकस्य ॥ तत्—क्षेत्रत्वात् ॥ =सब लोकके प्रमाण वस (प्रतर समुद्घात) का क्षेत्र होता है भावार्थ " प्रतर समुद्घात विषै तीन वात वलय विना सर्वलोक विषैं प्रदेश व्याप्त होहैं तातैं तीन वात वलयका क्षेत्रफल लोकके असंख्यातवे भाग प्रमाण है सो यह प्रमाण लोकका प्रमाण विषै घटाएं अवशेष रहे तितना एक जीव सम्बन्धी प्रतर समुद्घात विषैं क्षेत्र जानना " गोमट्टसार जीव काण्ड मुद्रित पृष्ठ ६६०

लोक-पूरण-अपेक्षया ॥ सर्वलोकः ॥ क्षेत्रम् ॥ =(समुद्घातमें) लोक पूरणकी अपेक्षासे समस्त लोक क्षेत्र है अर्थात् " लोक पूरण विषैं सर्वलोकाकाशविषै प्रदेश व्याप्त हो हैं तातैं लोक प्रमाण एक जीव सम्बन्धी लोक पूरणविषै क्षेत्र जानना । सो प्रतर और लोक पूरणके

समुद्घातेऽसंख्येया वा भागाः सर्वलोको वा

समुद्घाते ७। असंख्येयाः १।३ वा भागाः सर्वलोकः १।१ वा = समुद्घातमें असंख्याते भाग हैं वा असंख्यातवां भाग है वा सर्वलोक है

= (क) समुद्घाते ७।१ लोकस्य ६।१ असंख्येयाः १।३ भागाः १।३ = (क) समुद्घातमें लोकके असंख्याते भाग [सयोगकेवलीका क्षेत्र] है अर्थात् प्रतर समुद्घातमें तीनों वातवलयों के उक्त क्षेत्रको छोडकर सर्वलोक है जो लोकके असंख्याते भागोंके बराबर है

(ख) वा समुद्घाते ७।१ लोकस्य ६।१ असंख्येय-भागः १।१ = [ख] समुद्घातमें लोकका असंख्यातवां भाग [सयोगकेवलीका क्षेत्र] है अर्थात् दण्ड और कवाट समुद्घातमें लोकका असंख्यातवां भाग है

(ग) वा समुद्घाते ७।१ सर्व-लोकः १।१ = [ग] समुद्घात की चौथी समयों में [सयोगकेवलीका क्षेत्र] सर्वलोक है = अर्थात् समुद्घात करनेकी चौथी समयमें सयोगकेवलीके आत्माके प्रदेश सर्वलोकाकाशमें व्याप्त हो जाते हैं।

वीस जीव तौ करनेवाले, और वीस जीव समेटनेवाले ऐसें एक समयविषैं चालीस पाइए परंतु पूर्वोक्त क्षेत्र ही विषैं एक क्षेत्रावगाहरूप सर्व पाइए तातैं क्षेत्र तितना ही जानना। बहुरि दंड और कपाटविषैं भी वीस जीव करनेवाले वीस समेटनेवालेनिकी अपेक्षा चालीस जीव हैं सो ए जीव जुदे जुदे क्षेत्रको भी रोकै तातैं दण्ड और कपाट विषैं चालीसका गुणाकार कह्या, यह जीवनिका प्रमाण उत्कृष्टताकी अपेक्षा है। गोमट्टसार जीव काण्ड मुद्रित पृष्ठ ३६०

(४) असंख्येया वा भागा इति वा शब्देन समुद्घाते असंख्येयभागोऽपि परामृष्टः । तेन दण्डकवाटसमुद्घातयोर्लोकस्यासंख्येयभागः क्षेत्रमित्यवसेयम् ॥ तत्र आरोहणावरोहणापेक्षया उत्कर्षेण चत्वारिंशत्केवलिनः सम्भवन्ति । तथापि क्षेत्रं लोकस्यासङ्ख्येयभाग एव। उत्तरत्र सर्वत्र स्वस्थानादिपदानि यथासम्भवं योज्यानि ॥

विशेषेण— (१) गत्यनुवादेन नरकगतौ सर्वासु पृथिवीषु नारकाणां चतुर्षु गुणस्थानेषु लोकस्यासंख्येयभागः। तिर्यग्गतौ तिरश्चां मिथ्यादृष्ट्यादिसंयतासंयतान्तानां सामान्योक्तं क्षेत्रम्।

विशेषेण ॥ [१] गति-अनुवादेन ॥ नरकगतौ ॥ सर्वासु ॥ पृथिवीषु ॥ नारकाणां ॥ चतुर्षु ॥ गुणस्थानेषु ॥ लोकस्य ॥ असंख्येयभागः ॥	= भेदकरि गतिकी विवक्षासे नरकगतिमें = सब नरकोंमें नारकियोंका [क्षेत्र प्रथमसे] चारो = गुणस्थानोंमें लोकका असंख्यातवां भाग है (नारकियोंके चारगुणस्थानोंसे अधिक नहीं होसकते हैं)
तिर्यग्गतौ ॥ तिरश्चां ॥ मिथ्यादृष्टि-आदि-संयता-संयत-अन्तानां ॥ सामान्य-उक्तं ॥ क्षेत्रम् ॥	= तिर्यंचगतिमें तिर्यंचोंका मिथ्यादृष्टिसे संयमा— = संयमी पर्यन्त संक्षेप [सर्वार्थ० ३३, ३४] में कथित गुणस्थानवत् क्षेत्र है

असंख्येयाः ॥ वा भागाः ॥ इति वाशब्देन ॥ समुद्घाते ॥ = 'असंख्येयाः वा भागाः' ऐसे (वाक्य) में वा शब्दसे समुद्घातमें
असंख्येयभागः ॥ अपि परामृष्टः ॥ तेन ॥ दण्ड- = (लोकका) असंख्यातवां भाग भी उपदेश्या है तिस (वा शब्द) करि दण्ड
कवाट-समुद्घातयोः ॥ लोकस्य ॥ असंख्येय-भागः ॥ = और कवाट दोनों समुद्घातोंमें लोकका असंख्यातवां भाग
क्षेत्रम् ॥ इति—अवसेयम् ॥ तत्र ॥ आरोहण = क्षेत्र है ऐसा निश्चय करना चाहिये। तहां (आत्माके प्रदेशोंके) फैलाव और
अवरोहण—अपेक्षया ॥ उत्कर्षेण ॥ = संकोचकी विवक्षासे उत्कृष्टकरि
चत्वारिंशत् ॥ केवलिनः ॥ सम्भवन्ति ॥ = चालीस केवली सम्भवे हैं। (उत्कृष्ट चालीस केवली एक साथ समुद्घात करते हैं)
तथापि* क्षेत्रं ॥ लोकस्य ॥ असंख्येयभागः ॥ एव = तो भी क्षेत्र लोकका असंख्यातवां भाग ही है
उत्तरत्र * सर्वत्र ॥ स्वस्थान—आदि— = यहांसे आगे सब स्थानोंमें स्वस्थानस्वस्थान—विहारवत्स्वस्थान आदि
पदानि ॥ यथासम्भवं ॥ योज्यानि ॥ = पद जैसा योग्य अथवा यथा उचित हो लगा लेना चाहिये

(१) एकोनविंशति (उन्नीस) से नवनवति (निन्यानवे) तक अर्थात् अस्सी संस्कृतकी संख्याओंको संज्ञा मानते हैं वे सब अस्सी ॥ स्त्री लिंगी हैं। संज्ञा जिनके साथ वे लाई जाती हैं किसी भी लिंगकी क्यों न हो बहुवचन संज्ञाके साथ वे एक वचनमें लाई जा सकी हैं जैसे चत्वारिंशत् ॥ केवलिनः ॥ द्विचत्वारिंशत् ॥ अहानि = ब्यालीस दिवस। चतुर्विंशतिः ॥ स्मृतयः ॥

मनुष्यगतौ मनुष्याणां मिथ्यादृष्ट्याद्ययोगकेवल्यन्तानां लोकस्यासंख्येयभागः। सयोगकेवलिनां सामान्योक्तं क्षेत्रम्। देवगतौ देवानां सर्वेषां चतुर्षु गुणस्थानेषु लोकस्यासंख्येयभागः॥ (२) इन्द्रियानुवादेन—एकेन्द्रियाणां क्षेत्रं सर्वलोकः। विकलेन्द्रियाणां लोकस्यासंख्येयभागः।

अर्थात् तिर्यंचोंके प्रथमसे पांच तक गुणस्थान होसक्ते हैं। प्रथम गुणस्थानवर्तियोंका सब लोक क्षेत्र है शेषका लोकका असंख्यातवां भाग है [सर्वार्थसिद्धि ३३, ३४]

मनुष्यगतौ ७।१ मनुष्याणां ६।३ मिथ्यादृष्टि-आदि-अयोग केवलि-अन्तानां ६।३ लोकस्य ६।१ असंख्येय-भागः १।१	= मनुष्यगतिमें मनुष्योंका [क्षेत्र] मिथ्यादृष्टिसे अयोग केवली (चौदहवां गुणस्थानवर्ती) तक लोकका असंख्यातवां भाग है
सयोगकेवलिनां ६।३ सामान्य-उक्तं १।१ क्षेत्रम् १।१	= सयोगकेवलियोंका संक्षेप [प्रकरण] में कथित [गुणस्थानवत्] क्षेत्र है अर्थात् एक कालमें =९८५०२ इकट्ठे हों अथवा दण्ड और प्रतर समुद्घात करें तो लोकका असंख्यातवां भाग क्षेत्र है, प्रतर समुद्घातमें लोक के असंख्याते भाग हैं [=तीन वात वलयोंका क्षेत्र छोडकर सर्व लोक है] और लोक पूर्ण समुद्घातमें सर्व ही लोक है (देखो पृष्ठ ११६ से १२०तक)
देवगतौ ७।१ देवानां ६।३ सर्वेषां ६।३ चतुर्षु ७।३ गुणस्थानेषु ७।३ लोकस्य ६।१ असंख्येयभागः १।१	= देवगतिमें सब देवोंका क्षेत्र चार (मिथ्यात्व-सासादन-मिश्र असंयत) गुणस्थानोंमें लोकका असंख्यातवां भाग है। [देवोंके चार गुणस्थान हो सकते हैं]
इन्द्रिय-अनुवादेन ३।१ एकेन्द्रियाणां ६।३ क्षेत्रं १।१ सर्वलोकः १।१ विकल-इन्द्रियाणां ६।३ लोकस्य ६।१ असंख्येयभागः १।१	=[२] इन्द्रियोंकी विवक्षासे एकेन्द्रियवालोंका क्षेत्र सर्वलोक है। विकल अर्थात दो तीन चार इन्द्रियवालोंका (क्षेत्र) लोकका असंख्यातवां अंश वा भाग है॥

---

(१) केवल, एक स्पर्शन (त्वक्) इन्द्रिय सहित जीवोंको एकेन्द्रिय कहते हैं। (२) स्पर्शन—रसना दो इन्द्रियवाले जीवोंको द्वीन्द्रिय, स्पर्शन-रसना-नासिका तीन इन्द्रिय वाले जीवोंको त्रीन्द्रिय, स्पर्शन-रसना-नासिका-चक्षु चार इन्द्रियवाले जीवोंको चतुरिन्द्रिय कहते हैं॥

पञ्चेन्द्रियाणां मनुष्यवत् ॥ [३] कायानुवादेन–पृथिवीकायादिवनस्पतिकायिकान्तानां सर्वलोकः । त्रसकायिकानां पञ्चेन्द्रियवत् ॥

पञ्च–इन्द्रियाणां ६।३ मनुष्यवत् * = पांच इन्द्रियवाले जीवोंका [क्षेत्र] मनुष्य (के क्षेत्रके) सामान है अर्थात् लोकके असंख्यातवां भाग है [सं० सर्वा० पृष्ठ ३५ पंक्ति ३–४]

(३) काय–अनुवादेन ३।१–पृथिवीकायिक–आदि = [३] कायके कथनानुसारकरि–पृथिवीकायिकसे [लेकर]

वनस्पति–कायिक–अन्तानां ६।३ सर्वलोकः १।१ = वनस्पति कायिक पर्यंतोंका [क्षेत्र] समस्त लोक है ।

त्रसकायिकानां ६।३ पञ्च–इन्द्रियवत् * = त्रसकायिकोंका [क्षेत्र] पांच इंद्रियवाले जीवोंके सदृश है अर्थात् लोकके असंख्यातवां भाग है । भावार्थ यह स्पष्ट है कि लोकका यह असंख्यातवां भाग पंचेंद्रिय जीवोंके लोकके असंख्यातवां भागसे बडा होगा क्योंकि त्रस में पंचेंद्रिय जीव भी सम्मिलित हैं और द्वीन्द्रिय–त्रींद्रिय–चतुरिंद्रिय जीव भी अन्तर्गत हैं (देखो टिप्पणी पृष्ठ ९९–१००]

---

(१) स्पर्शन, रसना (=जीभ) नासिका (=नाक) चक्षु (=नेत्र आंख, नयन) और कान (कर्ण श्रवण) सहित जीवोको पंचेंद्रिय कहते हैं ।

(२) भागहारभूतासंख्यातस्यानेकविधित्वेन क्षेत्रस्य तारतम्यसद्भावेऽपि लोकस्यासंख्येयभागत्वाविशेषान्मनुष्यवदिति वचनम् ।

भागहारभूतासङ्ख्यातस्य ६।१ अनेकविधित्वेन ३।१ = क्योंकि असंख्यात (भाज्य) का बहुत प्रकारसे भागहार होते हैं वा विभाग किया जा सक्ता है

क्षेत्रस्य ६।१ = (इसलिये पंचेन्द्रियोंके) क्षेत्रका (मनुष्योंके क्षेत्रसे)

तारतम्यसद्भावे ७।१ अपि = भेद वा न्यूनाधिक (=तारतम्य) होनेपर भी

लोकस्य ६।१ असङ्ख्येयभागत्व + अविशेषात् ५।१ = संक्षेपसे लोकका असंख्यातवा भाग होता है (=भागत्व)

मनुष्यवत् * इति वचनम् १।१ = (इसकारण) मनुष्य सदृश ऐसा वाक्य है । भावार्थ यह है कि लोकके असंख्यात

(४) योगानुवादेन—वाङ्मानसयोगिनां मिथ्यादृष्ट्यादिसयोगकेवल्यन्तानां लोकस्यासंख्येयभागः । काययोगिनां मिथ्यादृष्ट्यादिसयोगकेवल्यन्तानामयोगकेवलिनां च सामान्योक्तं क्षेत्रम् ॥

(४) योग-अनुवादेन ३। वाङ् मानस-योगिनां ६।	=(४) योगकी अपेक्षाकरि वचनयोग मनो (=मानस) योगवाले
मिथ्यादृष्टि-आदि-सयोगकेवलि-अन्तानां ६।	= मिथ्यादृष्टि आदि सयोगकेवली (तेरहवें गुणस्थानवर्ती) तकका
लोकस्य ६। असंख्येयभागः १। । काययोगिनां ६।	= [क्षेत्र] लोकके असंख्यातवा भाग है । काय योगवालोंका
मिथ्यादृष्टि—आदि—सयोगकेवलि—अन्तानाम् ६। च	= मिथ्यादृष्टिसे सयोगकेवली तक और [= च] [अर्थात्
अयोगकेवलिनां सामान्य—उक्त १।। क्षेत्रम् १।।	= अयोग केवलियोंका संक्षेप (प्रकरण) में कथित (गुणस्थानवत्) क्षेत्र है

क्षेत्रको भाज्य, अंगीकार करके पचेन्द्रियोंके क्षेत्रका भाग दीजिये वा मनुष्योंके क्षेत्रका भाग दीजिये तो भजनफल वा लब्धि असंख्यात ही आवैगा इसकारण पचेन्द्रियोंका क्षेत्र सामान्य अपेक्षा लोकका असंख्यातवा भाग मनुष्यक्षेत्रवत् कहा है।

जिस संख्यामें भाग देना है वह भाज्य जिसका भाग देना है वह भाजक और जो फल आवेगा वह लब्धि कहलाती है जैसे ५६ और ८ ये दो संख्या हैं और ५६ मे ८ का भाग देना है (अर्थात् ५६ के आठ समान बिभाग करने हैं तो ५६ भाज्य कहलावेगा तथा ८ भाजक कहलावेगा और ७ भजन फल वा लब्धि कहलावेगी और इस भजन—फल वा लब्धिके जाननेके प्रकारको भागहार वा भजन कहते हैं।

(१) वाङ्मानसयोगविशिष्टे सयोगकेवलिनि समुद्घातासम्भवोऽवगन्तव्यः। ओरालं दण्डदुगे कवाडजुगले य तस्स मिस्सं तु (मिस्सो दु) पदरे य लोगपूरे कम्मेव य होदि णायव्वो (होइ कम्म इयम्) ॥ इत्यनेन तत्र काययोगस्यैव कथनात्। काययोगे तु स्वस्थानसमुद्घातसम्भवो भवति।

वाङ्—मानसयोग-विशिष्टे ७। सयोगकेवलिनि ७।	= वचन मनोयोग संयुक्त (=विशिष्ट) सयोग केवलियोंमें
समुद्घात-असम्भवः १। अवगन्तव्यः १।	= समुद्घात (का प्रारम्भ) असम्भव जानना चाहिये अर्थात्

केवल ज्ञान भये पीछे सयोगकेवली उत्कृष्ट करि आठ वर्ष और अन्तर्मुहूर्तहीन एक करोड पूर्व विहार कर सके हैं। जब अन्तर्मुहूर्त आयु अवशेष रहती है और वेदनीय, नाम, गोत्र कर्मोंकी स्थिति अधिक रहती है तब सयोगकेवली वचन और मनोयोगको निरोधकरि समुद्घात करते हैं इसलिये वचन और मनोयोग संयुक्त सयोगकेवलीके समुद्घात असम्भव है ॥

ओराल ।ा दंडदुगे ।ा (=औरालं ।ा दण्डद्विके ।ा)	=औदारिक (काययोग) दण्ड (समुद्घात) युगल (दुगे) में होता है
कवाडजुगले ।ा य * (=कपाट-युगले ।ा च)	=और (य=च) कपाट (समुद्घात) युगल (जुगले=युगले) में
तस्स ।ा मिस्सं ।ा तु,* (=तस्य ।ा मिश्र ।ा तु *)	=तिस (औदारिक—काययोग) का मिश्र है (=औदारिक काय मिश्रयोग है)
पदरे ।ा य लोगपूरे ।ा (=प्रतरे ।ा च लोकपूरे ।ा)	=और (=य) प्रतर (समुद्घात) मे और (=य) लोकपूर्ण (समुद्घात) में
कम्म ।ा एव * य * (कार्म्मणम् ।ा एव * च)	=कार्माण (योग) ही
होदि T णायव्वो ।ा (भवति T ज्ञातव्यः ।ा)	=होता है (ऐसा) जानना चाहिये ॥ तु पाद पूरणको हैं अतः अनुवाद नहीं

हो सका अर्थात् दण्ड समुद्घातके करने वा समेटने रूप युगलमें औदारिक शरीर पर्याप्ति काल है और कवाट समुद्घातके करने और संकोचनेरूप युगलमे औदारिक मिश्र शरीर काल है। प्रतर समुद्घातमे और लोक पूरण समुद्घातमे कार्माण काल है इस प्रकार आत्माके प्रदेशोको विस्तार करने पर तो तीन ही काल हैं और संकोचनेमें मूल शरीरमें प्रवेश करनेके पहिले समयसे लगाय संज्ञी पंचेन्द्रियवत् अनुक्रमसे पर्याप्ति पूर्ण करते हैं इसलिये पांचो काल संभवे है ॥ ऐसा भी मत है कि प्रतररूप समुद्घातमे जब सयोगकेवली आत्माके प्रदेशोको संकोचते हैं उस समय औदारिक मिश्रयोग होता है जैसा कि द्यानतरायजीके कवित्तसे प्रगट है "पहले समयमें करे दण्ड आठमें संवरे, परदेश आतमा औदारिक प्रवानिये ॥ दूजेमे कपाट होंय सातवे संवरे सोय सम्वरे प्रतर छठे मिश्र जोग जानिये। तीसरे प्रतर, चौथे पूरण सर्व लोक, संवरे पांचवे पूरण कारमान मानिये ॥ आठ समै माहि जात केवल समुद्घात निर्जरा असखगुनी देव सो वखानिये ॥"-अब इसका भाव सुगमतासे समझमें आजानेके लिये सरल और स्पष्ट शब्दोंमें लिखते हैं ।

[५] वेदानुवादेन-स्त्रीपुंवेदानां मिथ्यादृष्ट्याद्यनिवृत्तिवादरान्तानां लोकस्यासंख्येयभागः । नपुंसकवेदानां मिथ्यादृष्ट्याद्यानिवृत्तिवादरान्तानाम्

[५] वेदानुवादेन ३। स्त्रीपुंवेदानां ६। मिथ्यादृष्टि आदि-	= वेदकी विवक्षाकरि स्त्री तथा पुरुषवेदी मिथ्यादृष्टिसे
अनिवृत्तिवादर-अन्तानां ६।	= अनिवृत्तिवादर साम्पराय [गुणस्थानके पहले तीन वेदभागवालों] तकका
लोकस्य ६। असंख्येयभागः १।	= (क्षेत्र) लोकका असंख्यातवां भाग है
नपुंसकवेदानां ६। मिथ्यादृष्टि-आदि	= नपुंसकवेदवाले मिथ्यादृष्टिसे लेकर
अनिवृत्तिवादर-अन्तानाम् ६।	= अनिवृत्तिवादरसाम्पराय (गुणस्थानके प्रथम तीन वेदभागवर्तीयों) तक

वे मुनि जिनकी आयु छह माह अवशेष रही हो और इसके पश्चात् केवलज्ञान हो तो वह अवश्य ही समुद्घात करते हैं जिनकी आयु केवलज्ञान उत्पन्न होनेसे छहमाससे अधिक शेष रही हो तो वे समुद्घात करें और नहीं भी करें । आयुकर्मके समान शेष तीन गोत्र, वेदनीय नामकर्मकी स्थिति होनेके अर्थ केवली भगवान वचन और मनोयोगोंका निरोधकर समुद्घात (अर्थात् मूल शरीरको न छोड़ते हुये आत्माके प्रदेश वाहर निकलनेकी क्रिया) का प्रारंभ इसप्रकार करते हैं कि

(क) प्रथम समयमे शरीरसे प्रदेश दंडाकार निकलते हैं और ए प्रदेश आठवें समयमें संकोचे जाते हैं–सवरे हैं वा समटे हैं यहांपर औदारिक काय योग है ।

(ख) दूसरे समयमे प्रदेश कपाट रूप फैलते हैं और इनका संकोच वा समेटना सातवे समयमें होता है यहां औदारिक मिश्रयोग है

(ग) और यही औदारिक मिश्र योग छठवें समयमें होता है जब प्रतर समुद्घातमें आत्माके प्रदेश संकोचे जाते हैं । इस प्रतर समुद्घात का प्रारंभ तीसरे समयमें होता है इसमें प्रदेश विलोनी रईके फूल सम तीनों वात वलयके क्षेत्रको छोडकर सब लोकमें फैल जाते हैं इस तीसरे समयमें कार्माण योग होता है।

(घ) चौथे समयमें लोक पूरण समुद्घातका प्रारम्भ होता है आत्माके प्रदेश सर्वत्र सर्वलोकाकाशमें सर्वत व्याप्त हो जाते हैं और इन का सिमटना पांचवें समयमें होता है इस चौथे और पांचवे समयमें कार्माण योग है ॥ इस प्रकार सयोगकेवली भगवान आठ समयमें समुद्घात करके उक्त तीनों कर्मोंकी स्थिति आयुकर्मके बराबर करते हैं ॥

अपगतवेदानां च सामान्योक्तं क्षेत्रम् ॥ (६) काषायानुवादेन—क्रोधमानमायाकषायाणां लोभकषाया-णां च मिथ्यादृष्ट्याद्यनिवृत्तिवादरान्तानां सूक्ष्मसाम्परायाणामकषायाणां च सामान्योक्तं क्षेत्रम् ॥ (७) ज्ञानानुवादेन मत्यज्ञानिश्रुताज्ञानिनां मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टीनां सामान्योक्तं क्षेत्रम् । विभङ्ग-ज्ञानिनां मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टीनां लोकस्यासंख्येयभागः ।

अपगतवेदाना १। च = तथा वेदरहित [नवें गुणस्थानवालोंके अंतके तीन भागसे अयोगी तक] का

सामान्य-उक्तं २।। क्षेत्रम् ३।। = संक्षेप (प्रकरण) में (पहिले) कथित (गुणस्थानवत्) क्षेत्र है लोकका असंख्यातवा भाग है असंख्याते भाग है सर्वलोक भी है [देखो पृष्ठ ११५से१२०]

(६) कषाय अनुवादेन १। क्रोधमानमाया कषायाणां २। = कषायके कथनानुसारसे क्रोध मान माया कषाय वालेनिका

च लोभकषायाणा १। = तथा लोभकषायवालेनिका

मिथ्यादृष्टि-आदि-अनिवृत्तिवादर-अन्तानां १। = मिथ्यादृष्टिसे अनिवृत्तिवादरसाम्परायवालों तकका

सूक्ष्मसाम्परायाणाम् १। = सूक्ष्मसाम्परायवालोंका [जहा केवल सूक्ष्म वा संज्वलन लोभ है)

अकषायाणां १। च = और कपायवर्जित [ग्यारहवेंसे चौदहवें गुणस्थान] वालोंका

सामान्य-उक्तं २।। क्षेत्रम् ३।। = संक्षेप (सम्बन्ध) में पूर्व कहा हुआ (गुणस्थानवत्) क्षेत्र है (देखो पृष्ठ ११४ से १२० तक)

[७] ज्ञान-अनुवादेन १। मति-अज्ञानि श्रुत-अज्ञानिनां १। = ज्ञानकी विवक्षासे कुमति अज्ञान, कुश्रुत अज्ञानवाले

मिथ्यादृष्टि-सासादनसम्यग्दृष्टीनाम् १। = मिथ्यादृष्टि सासादन सम्यग्दृष्टी (दूसरे गुणस्थानवर्ती)योंका

सामान्य-उक्तं २।। क्षेत्रम् ३।। = संक्षेप (प्रसंग) में [पहिले] कहे हुये [गुणस्थानवत्] क्षेत्र है अर्थात्

= मिथ्यादृष्टियोंका सब लोक है। सासादनका लोकका असंख्यातवां भाग है

विभंगज्ञानिनां १। मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टीनां १। = विभंग ज्ञानवाले मिथ्यादृष्टी तथा सासादनसम्यग्दृष्टीनका (क्षेत्र)

लोकस्य १। असंख्येयभागः ३। = लोकका असंख्यातवां भाग है

आभिनिबोधिकश्रुतावधिज्ञानिनामसंयतसम्यग्दृष्टयादीनां क्षीणकषायान्तानां, मनःपर्ययज्ञानिनां च प्रमत्तादीनां क्षीणकषायान्तानां केवलज्ञानिनां सयोगानामयोगानां च सामान्योक्तं क्षेत्रम् (८) संयमानुवादेन—सामायिकच्छेदोपस्थानाशुद्धिसंयतानां चतुर्णां परिहारविशुद्धिसंयतानां प्रमत्ताप्रमत्तानां सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयतानां यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतानां चतुर्णां संयतासंयतानामसंयतानां च ।

आभिनिबोधिक-श्रुत+अवधिज्ञानिनां ६।३	= मति (= आभिनिबोधिक) श्रुत अवधि ज्ञानवाले
असंयतसम्यग्दृष्टि+आदीनां ६।३ क्षीणकषाय अंतानां ६।३	= असंयत सम्यग्दृष्टिसे लेकर क्षीणकषाय (बारहवां गुणस्थानवर्ती) तक
च मनःपर्ययज्ञानिनां ६।३ प्रमत्त+आदीनां ६।३	= तथा मनःपर्ययज्ञानवाले प्रमत्तसंयमी (छठे गुणस्थानवर्तिन) से
क्षीणकषाय+अंतानां ६।३ च केवलज्ञानिनां ६।३	= क्षीणकषाय [बारहवां गुणस्थानवर्ती] तक और (च) केवलज्ञानवाले
सयोगानाम् ६।३ अयोगानाम् ६।३	= योगसहित (तेरहवें गुणस्थानवर्ती) अयोगी (चौदहवें गुणस्थानवर्ती) का
सामान्य+उक्तं १।१	= संक्षेप [प्रकरण] में [पहिले] कहा हुआ [गुणस्थानवत्]
क्षेत्रम् १।१	= क्षेत्र है (देखो पृष्ठ ११५–१२० तक)
संयम+अनुवादेन ३।१ सामायिकच्छेदोपस्थान—	= संयमके कथनानुसार करि सामायिक और छेदोपस्थापन
शुद्धिसंयतानां ६।३ चतुर्णां ६।३	= शुद्धि संयमी चार [छठवें, सातवें, आठवें, नववें गुणस्थानवर्ती] तकका
परिहारविशुद्धिसंयतानां ६।३ प्रमत्त—	= परिहारविशुद्धि संयमी प्रमत्त [छठवां गुणस्थानवर्ती]
अप्रमत्तानां ६।३ सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयतानां ६।३	= अप्रमत्त (सातवां गुणस्थानवर्तीनका) सूक्ष्म साम्परायशुद्धिसंयमी
यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतानां ६।३	= यथाख्यातविहारशुद्धिसंयमी
चतुर्णां ६।३	= चार (ग्यारहवा बारहवां तेरहवां चौदहवां गुणस्थानवर्ती) नका
संयतासंयतानाम् ६।३ च असंयतानां ६।३	= संयमासंयमी (पांचवां गुणस्थानवर्ती)नका और असंयमी

चतुर्णां सामान्योक्तं क्षेत्रम् ॥ [९] दर्शनानुवादेन—चक्षुर्दर्शनिनां मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायान्तानां लोकस्यासंख्येयभागः । अचक्षुर्दर्शनिनां मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायान्तानां सामान्योक्तं क्षेत्रम् । अवधिदर्शनिनामवधिज्ञानिवत् । केवलदर्शनिनां केवलज्ञानिवत् ॥ [१०] लेश्यानुवादेन—कृष्णनीलकापोतलेश्यानां मिथ्यादृष्ट्याद्यसंयतसम्यग्दृष्ट्यन्तानां सामान्योक्तं क्षेत्रम् । तेजःपद्मलेश्यानां मिथ्यादृष्ट्याद्यप्रमत्तान्तानां लोकस्यासंख्येयभागः ।

चतुर्णां ३। = चार (पहले दूसरे तीसरे चौथे गुणस्थानवर्ती) तकका
सामान्य+उक्तं ३।। क्षेत्रम् ३।। = संक्षेप (प्रसंगमें) कथित (गुणस्थानवत्) क्षेत्र है अर्थात् मिथ्यादृष्टि का सर्वलोक सासादनसे अयोगी तक लोकका असंख्यातवां भाग वा असंख्याते भाग वा सर्वलोकतक क्षेत्र हो सक्ता है ।

(९) दर्शन+अनुवादेन ३। = दर्शनकी विवक्षाकरि
चक्षुर्दर्शनिनां ३। मिथ्यादृष्टि—आदि क्षीणकषाय— = चक्षुर्दर्शनवाले मिथ्यादृष्टिसे लेकर क्षीणकषाय [बारहवां गुणस्थानवर्ती]
अन्तानां ३। लोकस्य ३। असंख्येयभागः ३। = तकका क्षेत्र लोकका असंख्यातवां भाग है
अचक्षुर्दर्शनिनां ३। मिथ्यादृष्टि—आदि—क्षीणकषाय— = अचक्षुर्दर्शनवाले मिथ्यादृष्टिसे लेकर क्षीणकषाय
अंतानां ३। सामान्य+उक्तं ३।। क्षेत्रम् ३।। = पर्यंततकका संक्षेप [प्रसंग] में [पहिले] कथित [गुणस्थानवत्] क्षेत्र है
अवधिदर्शनिनां ३। अवधिज्ञानिन्+वत्* = अवधिदर्शनवालोंका (क्षेत्र) अवधि ज्ञानवालोंके क्षेत्रके तुल्य है
केवलदर्शनिनां ३। केवलज्ञानिन्+वत्* = केवल दर्शनवालोंका [क्षेत्र] केवल ज्ञानियोंके समान है
१०लेश्या+अनुवादेन ३। कृष्णनीलकापोतलेश्यानां ३। = लेश्याके कथनानुसारसे कृष्ण नील कपोत [तीन] लेश्यावाले
मिथ्यादृष्टि-आदि-असयतसम्यग्दृष्टि+अंताना ३। = मिथ्यादृष्टिसे लेकर असंयत [चौथे गुणस्थानवर्ती] तकनका
सामान्य+उक्तं ३।। क्षेत्रम् ३।। = संक्षेप [प्रकरण] में [पहिले] कहा हुआ क्षेत्र है ।
तेजस्+पद्मलेश्यानां ३। मिथ्यादृष्टि+आदि— = पीत पद्म [दो] लेश्यावाले मिथ्यादृष्टिसे लेकर
अप्रमत्त-अंतानां ३। लोकस्य ३। असंख्येयभागः ३। = अप्रमत्त [सातवें गुणस्थानवाले] तकका लोकका असंख्यातवां भाग है ।

शुक्ललेश्यानां मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायान्तानां लोकस्यासंख्येयभागः । सयोगकेवलिनामलेश्यानां च सामान्योक्तं क्षेत्रम् ॥ (११) भव्यानुवादेन—भव्यानां चतुर्दशानां सामान्योक्तं क्षेत्रम् । अभव्यानां सर्वलोकः ॥ (१२) सम्यक्त्वानुवादेन—क्षायिकसम्यग्दृष्टीनामसंयतसम्यग्दृष्ट्याद्ययोगकेवल्यन्तानां क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टीनामसंयतसम्यग्दृष्ट्याद्यप्रमत्तान्तानामौपशमिकसम्यग्दृष्टीनामसंयतसम्यग्दृष्ट्याद्युपशान्तकषायान्तानां सासादनसम्यग्दृष्टीनां सम्यग्मिथ्यादृष्टीनां च सामान्योक्तं क्षेत्रम् ।

शुक्ललेश्यानां ३ा मिथ्यादृष्टि+आदि क्षीणकषाय-	=शुक्ल लेश्यावाले मिथ्यादृष्टीसे क्षीणकषाय (बारहवां गुणस्थानवर्ती)
अन्तानां ३ा लोकस्य ३ा असंख्येयभागः १ा	=तकका (क्षेत्र) लोकका असंख्यातवां भाग है ।
सयोगकेवलिनां ३ा अलेश्यानां ३ा च	=सयोग केवलियोंका तथा लेश्यावर्जित (अयोग केवली)नका
सामान्य+उक्तं १ा। क्षेत्रम् १ा।	=संक्षेप [प्रसंग] में [पूर्व] कथित (गुणस्थान तुल्य) क्षेत्र है
भव्य-अनुवादेन ३ा भव्यानां ३ा चतुर्दशानां ३ा सामान्य	=[११] भव्यकी अपेक्षाकरि चौदह (गुणस्थानवर्ती) भव्यनका संक्षेप
उक्तं १ा। क्षेत्रम् १ा। अभव्यानां ३ा सर्वलोकः १ा	=[प्रकरण] में कथित [गुणस्थानसम] क्षेत्र है । अभव्यनका समस्त लोक है
[१२] सम्यक्त्व-अनुवादेन ३ा क्षायिकसम्यग्दृष्टीनां ३ा	=[१२] सम्यग्दर्शनकी विवक्षासे क्षायिक सम्यग्दर्शनवाले
असंयतसम्यग्दृष्टि+आदि—अयोगकेवलि-अन्तानाम् ३ा	=असंयतसम्यग्दृष्टीनसे अयोग केवली पर्यंतनका [क्षेत्र और]
क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टीनां ३ा असंयतसम्यग्दृष्टि—	=वेदक सम्यग्दर्शनवाले असंयत सम्यग्दृष्टियों
आदि-अप्रमत्त अन्तानाम् ३ा	=से अप्रमत्त [सातवां गुणस्थानवालों] तकका [क्षेत्र तथा]
औपशमिकसम्यग्दृष्टीनाम् ३ा	=उपशम सम्यग्दर्शनवाले
असंयतसम्यग्दृष्टि+आदि+उपशान्तकषाय—अन्तानां ३ा	=असंयत सम्यग्दृष्टीसे उपशांत कषाय तकनका (क्षेत्र और)
सासादनसम्यग्दृष्टीनां ३ा च	=सासादनसम्यग्दृष्टी (दूसरे गुणस्थानवर्ती) नका (क्षेत्र) और
सम्यङ्मिथ्यादृष्टीनां ३ा सामान्य-उक्तं-१ा। क्षेत्रम् १ा।	=मिश्र गुणस्थानवालोंका संक्षेपसे (पूर्व) कथित [गुणस्थानवत्] क्षेत्र है

(१३) संज्ञानुवादेन–संज्ञिनां चक्षुर्दर्शनिवत् । असंज्ञिनां सर्वलोकः । तदुभयव्यपदेशरहितानां सामान्योक्तं क्षेत्रम् ॥ [१४] आहारानुवादेन–आहारकाणां मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायान्तानां सामान्योक्तं क्षेत्रम् । सयोगकेवलिनां लोकस्यासंख्येयभागः । अनाहारकाणां मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्ट्ययोगकेवलिनां सामान्योक्तं क्षेत्रम् । सयोगकेवलिनां लोकस्यासंख्येयभागाः सर्वलोको वा ॥ क्षेत्रनिर्णयः कृतः ॥

(१३) संज्ञा-अनुवादेन ३। संज्ञिनां ६। चक्षुः- दर्शनिवत् * असंज्ञिनां ६। सर्वलोकः १। तद्-उभय व्यपदेशरहितानां ६। सामान्य–उक्तं १।। क्षेत्रम् १।। = सैनीके कथनानुसारकरि सैनियोंका (क्षेत्र) चक्षुः दर्शनवालोंके समान है असैनियोंका (क्षेत्र) समस्त लोक है उन दोनों नामोंसे वर्जितों अयोगियोंका संक्षेपमें कथित (गुणस्थानवत्) क्षेत्र है

(१४) आहार-अनुवादेन ३।–आहारकाणां ६। मिथ्यादृष्टि–आदि–क्षीणकषाय-अन्तानां ६। सामान्य उक्तं १।। क्षेत्रम् १।। सयोगकेवलिनां ६। लोकस्य ६। असंख्येयभागः १। अनाहारकाणां ६। मिथ्यादृष्टि-सासादनसम्यग्दृष्टि–असंयतसम्यग्दृष्टि अयोगकेवलिनां ६। सामान्य–उक्तं १।। क्षेत्रम् १।। सयोगकेवलिनां ६। लोकस्य ६। असंख्येयभागाः १। सर्वलोकः १। वा = [१४] आहारकी विवक्षाकरि आहारक मिथ्यादृष्टिसे क्षीणकषाय तकका संक्षेपसे (पहिले) कहा हुआ (क्षेत्र है) योगसहित केवलीनका (क्षेत्र) लोकका असंख्यातवां भाग है । आहारवर्जित मिथ्यादृष्टी सासादनसम्यग्दृष्टी असंयत सम्यग्दृष्टी (तथा) अयोकेवलिनका संक्षेपसे [पहिले] कहा हुआ (गुणस्थानवत्) क्षेत्र है सयोगकेवलियोंका [क्षेत्र] [प्रतर समुद्घातकी अपेक्षासे] लोकके असंख्यात भागोंमेंसे वहुत भाग हैं अथवा (लोक पूरण समुद्घातकी विवक्षासे) समस्त लोक है ॥ (देखो पृष्ठ ११५–१२० तक इस अनुवादका)

क्षेत्रनिर्णयः १। कृतः १। = (इसप्रकार) क्षेत्रका निर्धारण किया गया है

(१) ये न संज्ञिनो नाप्यसंज्ञिनस्तेषाम् (२) समुद्घातरहितत्वादित्यर्थः ॥

स्पर्शनमुच्यते-तद् द्विविधम्। सामान्येन विशेषेण च ॥ सामान्येन तावत्-मिथ्यादृष्टिभिः सर्वलोकः* स्पृष्टः।

स्पर्शनम् ।१। उच्यते T तद् ।१। = (अब स्पर्शन कहाजाता है) वह
द्विविधम् ।१। सामान्येन ।३। विशेषेण ।३। च । सामान्येन ।३। = दो प्रकारका है संक्षेपकरि तथा भेदकरि । संक्षेपसे
तावत् * मिथ्यादृष्टिभिः ।३। सर्वलोकः ।१। स्पृष्टः ।१। = प्रथम मिथ्यादृष्टियोंकरि समस्त लोक स्पर्शन किया जाता है

(१) ये ।१। न संज्ञिनः ।१। न अपि+असंज्ञिनः ।१। तेषाम् ।६। = जो न सैनी हैं न असैनी हैं तिन अयोगकेवलीनका (सामान्य उक्त क्षेत्र है)
(२) समुद्घातरहितत्वात् ।५। इति+अर्थः ।१। = समुद्घात वर्जितपनाकरि ऐसा अभिप्राय है अर्थात् समुद्घातरहित सयोगकेवलीनका लोकका असंख्यातवांभाग क्षेत्र है

* असंख्यातयोजनकोट्याकाशप्रदेशः परिमाणरज्जुस्तावदुच्यते । तल्लक्षणसमचतुरस्ररज्जुत्रिचत्वारिंशदधिकशतत्रयपरिमाणो लोक उच्यते । स लोको मिथ्यादृष्टिभि. सर्वः स्पृष्टः । इत्युक्तलक्षणे लोके स्वस्थानविहारः परस्थानविहारो मारणांतिकसमुद्घातश्च प्राणिभिर्विधीयते ॥

असंख्यातयोजनकोटि-आकाशप्रदेशः ।१। = असख्यात करोड योजन (ऊंचेमें जितने) आकाशके प्रदेश हैं तितने (तावत्)
परिमाणरज्जुः ।१। तावत्* उच्यते T = प्रमाणका राजू कहा जाता है अर्थात् असंख्यात करोड योजन ऊंची एक रेखा आकाशकी मान लो जितने इस रेखामें प्रदेश हैं उन आकाशके प्रदेशोको रेखा रूपमें राजू समझना चाहिये । जगत् श्रेणीके सातवां भागको राजू कहते हैं। अतः सात राजूकी एक जगत् श्रेणी होती है । जगत्श्रेणीके वर्गको जगत्प्रतर और जगत् श्रेणीके घनको लोक कहते हैं । यही तीन लोकके आकाश प्रदेशोंकी संख्या है ॥

तत् लक्षण— = उस चिन्हवाला (लक्षण अर्थात् एक राजू ऊंचा)
समचतरस्ररज्जु— = (और) समान चौकोर (राजूयुक्त अर्थात् एक राजू लम्बा एक राजू चौडा)
भावार्थ—घनाकार राजूवाला (तल्लक्षणसमचतुरस्ररज्जू)

त्रिचत्वारिंशत् ।१। अधिकशतत्रयपरिमाणः ।१। = तेतालीस अधिक तीनसौके प्रमाण
लोकः ।१। उच्यते T = लोक कहा गया है अर्थात् सब लोक तीनसौ तेतालीस घनाकार राजू है
सः ।१। लोकः ।१। मिथ्यादृष्टिभिः ।३। सर्वः ।१। स्पृष्टः ।१। = वह लोक मिथ्यादृष्टियोकरि समस्त स्पर्श किया जाता है।

सासादनसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः अष्टौ द्वादश वा चतुर्दशभागा देशोनाः(स्पृष्टाः)।

	= सासादनसम्यग्दृष्टियोंकरि [स्वस्थानविहार अपेक्षा]
सासादनसम्यग्दृष्टिभिः १।	= लोकका असंख्यातवां भाग [स्पर्शन किया जाता] है [तीनसौ तेतालीस
लोकस्य २। असंख्येयभागः ३।	घनाकार राजू लोकमें]
	= चौदह राजू [= भागा, त्रसनालि] है [सो सासादन सम्यग्दृष्टी करि]
चतुर्दश ४। भागाः ५।	= कुछ हीन आठ राजू (= भाग) अथवा कुछ हीन १२ राजू स्पर्शा जाय
अष्टौ ६। वा द्वादश ७। देशोनाः ८। स्पृष्टाः ९।	है। अर्थात् घनरूप तीनसौ तेतालीस

इति + उक्त लक्षणे १०। लोके ११। स्वस्थानविहारः १२।	= इसप्रकार कथित चिन्हवाले लोकविषै स्वस्थान विहार
परस्थान विहारः १३। मारणांतिक समुद्घात, १४। च	= परस्थान विहार और मारणांतिक समुद्घात
प्राणिभिः १५। विधीयते	= जीवोंकरि किया जाता है अर्थात् ३४३ राजू घनाकार लोकका जीव स्वस्थान विहार

अपेक्षा परस्थान विहार अपेक्षा तथा मारणांतिक समुद्घात अपेक्षा स्पर्शन करते हैं।

स्पृष्टः । एवमग्रेऽपि स्वस्थानविहारापेक्षया लोकस्यासंख्येयभागो

१ तत्र स्वस्थानविहारापेक्षया सासादनसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः स्पृष्टः । एवमग्रेऽपि स्वस्थानविहारापेक्षया लोकस्यासंख्येयभागो ज्ञातव्यः। परस्थानविहारापेक्षया तु सासादनदेवानां प्रथमपृथिवीत्रये विहारात् रज्जुद्वयम्। अच्युतान्तोपरिविहारात् षड्रज्जुवत् इत्यष्टौ द्वादश चतुर्दश वा भागा देशोनाः स्पृष्टाः ॥ द्वादशभागाः कथं स्पृष्टा इति चेदुच्यते–सप्तमपृथिव्या परित्यक्तः सासादनादिगुणस्थान एव मारणान्तिकं वि- दधातीति नियमात् ॥ षष्ठीतो मध्यलोके पञ्चरज्जवः सासादनो मारणान्तिकं करोति । मध्यलोकाच्च लोकाग्रे बादरपृथिवीकायिकबादराप्का- यिकबादरवनस्पतिकायिकेषु उत्पद्यते इति सप्तरज्जव एव द्वादशरज्जवो भवन्ति। सासादनसम्यग्दृष्टिर्हि वायुकायिकेषु तेजःकायिकेषु नरकेषु सर्वसूक्ष्मकायिकेषु चतुर्थस्थानकेषु नोत्पद्यत इति नियमः ॥ तथा चोक्तम् ॥ गाथा—(जो पृष्ठ १३६ में मुद्रित है)

	= तहां स्वस्थान विहारकी विवक्षाकरि सासादन—
तत्र* स्वस्थानविहार–अपेक्षया १। सासादन—	= सम्यग्दर्शनवालोंकरि लोकका असंख्यातवां अंश स्पर्शा जाता है
सम्यग्दृष्टिभिः २। लोकस्य ३। असंख्येयभागः ४। स्पृष्टः ५।	= इसीप्रकार अगले (गुणस्थानों विषे) भी स्वस्थान—
एवम्* अग्रे ६। अपि स्वस्थान—	= विहारकी विवक्षासे लोकका असंख्यातवां भाग (स्पर्श किया हुआ)
विहार–अपेक्षया ७। लोकस्य ८। असंख्येयभागः ९।	= जानना चाहिये वा जानना योग्य है
ज्ञातव्यः १०।	= परन्तु परस्थान विहारकी विवक्षासे तौ पहले नरकसे (पृथिवी) तीनों (तक)में
परस्थानविहार—अपेक्षया ११। तु प्रथमपृथिवीत्रये १२।	= सासादन (दूसरे गुणस्थानवाले) देवोंके विहार करनेसे
सासादनदेवानां १३। विहारात् १४।	= दो राजू (स्पर्शन किये जाय) हैं। अच्युत (सोलहवां स्वर्ग) पर्यन्त ऊपर
रज्जुद्वयम् १५। (स्पृष्टः १६।) अच्युत + अन्त उपरि *	= विहार करनेसे छः राजूके बराबरी (=वत्) स्पर्शन होय है
विहारात् १७। षड् रज्जुवत् (स्पृष्टः १८।)	

राजू सब लोक है उसमें चौदह राजू ऊंची एकराजू चौडी एक राजू लंबी नाल है उसमें ही त्रस जीव रहते हैं इसलिये इसको त्रसनाल कहते हैं इसके एकराजू ऊंचे एकराजू लंबे एकराजू चौडे भाग किये जावैं तो ऐसे चौदह भाग होंगे इस प्रत्येकको घनाकार रज्जूभाग कहते हैं संक्षेपसे इस प्रत्येक घनाकार राजूभागको श्रीपूज्य-पाद स्वामीने भाग माना है। इस त्रसनालके सबसे नीचले एक घनाकारराजूमें नित्यनिगोद पंचगोलक स्कंध अंडर इत्यादि हैं। इसके अनन्तर एक घनराजूमें माघवी सातवा नरक है, इसके लगता लगता ही एक एक घनाकार राजूमें मघवी छट्ठा, अरिष्टा पांचवां, अंजना चौथा, मेघा तीसरा नरक है इनके समीप ही एक घनाकार राजूमें वंशा दूसरा, धम्मा प्रथम नरक है फिर मध्यलोक है। मध्यलोकसे ऊपर तीनराजूमें प्रथम चार स्वर्ग हैं उनके अनन्तर एक घनाकार राजूमें ब्रह्म–ब्रह्मोत्तर–लातव–कापिष्ठ–चार स्वर्ग हैं, एकमें शुक्र, महाशुक्र, शतार, सहस्रार हैं, एकमें आनत–प्राणत–आरण–अच्युत स्वर्ग हैं, एकमें नव ग्रीवक नव अनुदिश पंच अनुत्तर हैं॥ परस्थान विहारकी अपेक्षा सासादनगुणस्थानवर्ती देव तीसरे नरक तक विहार करैं हैं सो मध्यलोकसे तीसरे नरक तक दो राजू हुये और ऊपर सोलह स्वर्गतक विहार करैं तब छह राजू ये हुये इसप्रकार आठराजू परस्थानविहार अपेक्षा स्पर्शनके हुये॥ मारणांतिक समुद्घातकी अपेक्षा सासादन गुणस्थानवर्ती जो केवल छठे नरक तकका मर सक्ता है यदि इस छठे नरकसे मारणातिक समुद्घात करै और बादर पृथिवीकायकादिमें लोकके अंत भागमें उत्पन्न हो तो छठे नरकसे मध्यलोक तक पांचराजू हुये और मध्यलोकसे लोकके अंततक स्पर्शनमें सात राजू ये हुये इसप्रकार मारणांतिक समुद्घातकी अपेक्षा सासादन गुणस्थानवर्ती त्रस नालके चौदह भागोंमेंसे बारह भाग स्पर्शे हैं॥

चतुर्दश ३।१ भागाः ३।१ =चौदहराजू (=भागाः) (त्रसनाल) है
इति+अष्टौ ३।१ द्वादश ३।१ देशोनाः ३।१ स्पृष्टाः ३।१ =(उसमेंसे) इसप्रकार कुछ हीन आठराजू अथवा कुछ हीन १२ राजू स्पर्शन किये [जाय हैं
द्वादशभागाः ३।१ कथ स्पृष्टाः ३।१ इति चेत् उच्यते =बारहराजू कैसे स्पर्शन किये जाय हैं ऐसे सदेह (=चेत्) होनेपर कहा जाता है
सप्तमपृथिव्या ३।१ परित्यक्तः ३।१ सासादनादिगुणस्थान ३।१ =सातवां नरक करि वर्जित सासादन आदि गुणस्थानमें
एव मारणांतिकं ३।१ विदधाति T इति नियमात् ३।१ =ही मारणांतिक समुद्घातको जीव करता है ऐसे नियमसे।

सम्यङ्मिथ्यादृष्टिचसंयतसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागाः अष्टौ वा चतुर्दशभागा देशोनाः ।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि—असंयतसम्यग्दृष्टिभिः	= सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयत सम्यग्दृष्टियों कर (स्वस्थान विहार अपेक्षासे)
लोकस्य असंख्येयभागः	= लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्शा जाता है
वा चतुर्दश भागाः	= अथवा [परस्थान विहार अपेक्षा] चौदहराजू [= चतुर्दशभागाः] है उनमेंसे
अष्टौ देशोनाः	= कुछहीन आठराजू (= भागाः) स्पर्शा जाय है अर्थात् मिश्र गुणस्थानवर्ती देव और असंयतगुणस्थानवर्ती देव अच्युत सोलहवां स्वर्गसे तीसरे नरक तक विहार करै तब कुछ न्यून आठ राजू स्पर्शते हैं ।

षष्ठीतः* मध्यलोके पञ्चरज्जवः	= छठवां (नरक) से मध्यलोक विर्षे पांच राजू
सासादनः मारणांतिक करोति	= सासादन (दूसरे गुणस्थान) वर्ती मरणांतिक समुद्घात करता है
च मध्यलोकात् लोक-अग्रे (सासादनः)	= बहुरि मध्यलोकसे लोकके ऊपरभागमें (अग्रे) (सासादनवाले)
वादरपृथिवीकायिक + वादरअप्कायिक वादर—	= वादरभू कायिक, वादरजलकायिक, व वादर-
वनस्पतिकायिकेषु उत्पद्यते इति सप्तरज्जवः	= वनस्पतिकायिक विर्षे उपजता है ऐसे सातराजू (और उपर्युक्त पांचराजू मिलकर)
एवं* द्वादशरज्जवः भवन्ति	= इसप्रकार बारह राजू होते हैं (सो सासादनवाला मारणांतिक अपेक्षा स्पर्शे है)
सासादनसम्यग्दृष्टिः हि* वायुकायिकेषु	= क्योंकि (= हि) सासादन सम्यग्दर्शनवाला पवनकायिकमें
तेजःकायिकेषु नरकेषु सर्वसूक्ष्मकायिकेषु	= अग्निकायिकमें (सर्व) नरकोंमें और समस्त (पृथिवी जल, अनल, पवन व वनस्पति) सूक्ष्मकायिकोंमें
चतुर्षु स्थानकेषु न उत्पद्यते इति नियमः	= (इन) चार स्थानकमें नहीं उपजता है ऐसा नियम है

अर्थात् थावरकायिकके (१) सूक्ष्मपृथिवीकायिक (२) वादरपृथिवीकायिक (३) सूक्ष्म अप्कायिक [४] वादर अप्कायिक (५) सूक्ष्म-तेजःकायिक (६) बादरतेजःकायिक (७) सूक्ष्मवायुकायिक (८)वादरवायुकायिक (९) सूक्ष्मवनस्पतिकायिक (१०) वादरवनस्पतिकायिक ये दश भेद है इनमेंसे सासादन गुणस्थानवर्ती केवल वादर पृथिवीकायिकमें वादरअप्कायिकमें और वादर वनस्पतिकायिकसे उपज सका है अवशेष सातमें नहीं और सातो नरकमें नहीं उपजता है ॥

संयतासंयतैर्लोकस्यासंख्येयभागः षट् चतुर्दशभागा वा देशोनाः। प्रमत्तसंयतादीनामयोगकेवल्यन्तानां क्षेत्रवत्स्पर्शनम् ॥

संयत असंयतैः ३।	= संयतासंयत (पांचवां गुणस्थान) वालोंकरि (स्वस्थान विहार अपेक्षासे)
लोकस्य ६। असंख्येयभागः ३।	= लोकका असंख्यातवां भाग (स्पर्शन किया जाता) है
वा चतुर्दश ३। भागाः ३।	= अथवा (= वा) [त्रसनाल] चौदहराजू है (सो मारणांतिक समुद्घात अपेक्षा अच्युत सोलहवां स्वर्ग पर्यन्तकी उत्पत्तिके कारणसे)
षट् ३। देशोनाः ३। [स्पृष्टा ३।]	= कुछ हीन छह [राजू = भागाः] स्पर्शे जाय हैं
प्रमत्तसंयत—आदीनाम् ६। अयोगकेवलि—अन्तानां ६। क्षेत्रवत् * स्पर्शनम् १।।	= प्रमत्तसंयत [छठवां गुणस्थान] वालोंसे लेकर अयोगकेवलियों तकका क्षेत्रतुल्य स्पर्शन है (देखो पृष्ठ ११५ से १२० तक)

तथा च* उक्तम् १।। गाथा १।। = जैसा कि (= तथा च) आर्या छंद (निम्नलिखितमें कहा गया) है

वज्जिअ ठाणचउक्क तेऊ वाऊ य णरयसुहुमं च। अण्णत्थ सव्वठाणे उववज्जदे सासणो जीवो ॥ १ ॥

ठाणचउक्क २।। तेऊ २।। य (स्थान-चतुष्कं२।। तेजः २।। च)	= चारस्थान (वादर) तेजकायिक और (= य)
वाऊ २। च णरयसुहुमं २। (वायुम् २। च नरक-सूक्ष्मं २।)	= (वादर) पवनकायिक और (= च) नरक, सूक्ष्म (पृथिवीकायिक जलकायिक अनलकायिक-पवनकायिक वनस्पतिकायिक)
वज्जिअ—अण्णत्थ (= वर्जयित्वा—अन्यत्र*)	= छोडकर और ठौर अथवा अन्य ठांव
सासणो १। जीवो १। (सासादनः १। जीवः १।)	= सासादन (दूसरे) गुणस्थानवर्ती जीव
सव्वठाणे ७।। उववज्जदे (सर्वस्थाने ७।। उत्पद्यते T)	= सब स्थानोंमें उपजता है वा जन्म लेता है
देशोनाः १। इति कथम् * केचित्-प्रदेशाः १। सासादन—	= कुछ हीन यह कैसे ? कितनेक प्रदेश सासादन
सम्यग्दर्शनयोग्याः १। न भवन्ति-इति देशोनाः १।	= सम्यग्दर्शनवालोके (स्पर्श) योग्य नहीं हैं इसलिये कितेक हीन हैं

एटानिवासी जगरूपसहायवकीलकृत पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित सर्वार्थसिद्धिका शब्दशः हिंदी अनुवाद। अध्याय १ सूत्र ८।

विशेषेण (१) गत्यनुवादेन—नरकगतौ प्रथमायां पृथिव्यां नारकैश्चतुर्गुणस्थानैर्लोकस्यासंख्येयभागः स्पृष्टः। द्वितीयादिषु प्राक्सप्तम्या मिथ्यादृष्टिभिः सासादनसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः एकः द्वौ त्रयः चत्वारः पञ्च चतुर्दशभागा वा देशोनाः। सम्यङ्मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः।

विशेषेण ३।१ (१) गति-अनुवादेन ३।१— = भेदकरि (१) गतिके कथनानुसारसे
नरकगतौ ७।१ प्रथमायां ७।१ पृथिव्यां ७।१ = नरकगतिविषै पहले नरकमें
नारकैः ३।३ चतुर्गुणस्थानैः ३।३ = चार (पहले दूसरे तीसरे चौथे) गुणस्थानवर्ती नारकियों करि
लोकस्य ६।१ असंख्येयभागः १।१ स्पृष्टः १।१ = लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्शन किया जाता है (नारकियोंके प्रथमसे चौथे तक चारही गुणस्थान हो सकते हैं)

द्वितीयादिषु ७।३ प्राक्सप्तम्याः ५।१ = दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवींसे पहिली (पृथिवी) नमें अर्थात् (दूसरे नरकसे छठे नरकतकनि विषै)

मिथ्यादृष्टिभिः ३।३ सासादनसम्यग्दृष्टिभिः ३।३ = मिथ्यादृष्टी [तथा] सासादनसम्यग्दृष्टी नारकियोंकरि
लोकस्य ६।१ असंख्येयभागः १।१ (स्पृष्टः १।१) = लोकका असंख्यातवां अंश [स्पर्शन किया जाता] है [अपेक्षा
वा चतुर्दश ६।१ भागाः १।३ = अथवा चौदह राजू [लोककी त्रसनालके] हैं (सो मारणान्तिक समुद्घात
एकः १।१ द्वौ १।२ त्रयः १।३ = [कुछहीन] एकराजू (कुछ घाटि) दो राजू (कुछ न्यून) तीनराजू
चत्वारः १।३ पञ्च १।३ देशोनाः १।३ = (कुछघाटि) चारराजू कुछ न्यून पांचराजू स्पर्शनहोय है क्योंकि दूसरे नरकसे मध्यलोक एक राजू है तीसरेसे दो राजू, चौथेसे तीन राजू पांचवेसे चार राजू और छठे नरकसे मध्यलोक पांच राजू हैं [सम्यग्दृष्टियोंसे

सम्यग्मिथ्यादृष्टि+असंयतसम्यग्दृष्टिभिः ३।३ = [दूसरे नरकसे छठे नरक तकके नारकी] मिश्रगुणस्थानवर्ती और असंयत
लोकस्य ६।१ असंख्येयभागः १।१ = (स्वस्थान विहार अपेक्षा) लोकका असंख्यातवां भाग (स्पर्शा जाता) है

सप्तम्यां पृथिव्यां मिथ्यादृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः षट् चतुर्दशभागा वा देशोनाः। शेषैस्त्रिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः॥ तिर्यग्गतौ तिरश्चां तिर्यङ्मिथ्यादृष्टिभिः सर्वलोकः स्पृष्टः। सासादनसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः। सप्त चतुर्दशभागा वा देशोनाः। सम्यङ्मिथ्यादृष्टि-

सप्तम्यां ७। पृथिव्यां ७। मिथ्यादृष्टिभिः ३।	= सातवीं पृथिवीविषै (स्वस्थान विहार अपेक्षा) मिथ्यादृष्टी [नारकी] यों करि
लोकस्य ६। असंख्येयभागः १। वा	= लोकका असंख्यातवां अंश [स्पर्शन किया जाता है] वा [मारणान्तिक समुद्घातसे]
चतुर्दश १। भागाः १।	= चौदहराजू [लोकत्रसनालके] हैं सो [राजू हैं
षट् १। देशोनाः १।	= कुछ हीन छः राजू स्पर्शे जाते हैं क्योंकि सातवें नरकसे मध्यलोक छह
शेषैः ३। त्रिभिः ३।	= [सातवें नरक विषैं] बाकी तीन [सासादन, मिश्र, असंयत गुणस्थानवाले नारकियों] करि
लोकस्य ६। असंख्येयभागः १।	= (स्वस्थान विहार अपेक्षा) लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्शा जाता है
तिर्यग्गतौ ७। तिरश्चां ६। तिर्यङ्मिथ्यादृष्टिभिः ३।	= तिर्यंचगतिमें तिर्यंचोंमेंसे मिथ्यादृष्टि तिर्यंचों करि
सर्वलोकः १। स्पृष्टः १। सासादनसम्यग्दृष्टिभिः ३।	= समस्त लोक स्पर्शा जाता है॥ सासादनसम्यग्दृष्टी [तिर्यंच] निकरि
लोकस्य ६। असंख्येयभागः १। [स्पृष्टः १।].	= लोकका असंख्यातवां अंश [स्पर्शा जाता] है।
वा चतुर्दश १। भागाः १।	= अथवा (लोककी त्रसनालके) चौदह राजू हैं (सो मारणान्तिक समुद्घात अपेक्षा सासादनसम्यग्दृष्टी तिर्यंचोंकरि)
सप्त १। देशोनाः १। (स्पृष्टाः १।) सम्यङ्मिथ्यादृष्टिभिः ३।	= कुछ हीन सात राजू स्पर्शे (जाते) हैं मिश्रगुणस्थानवर्ती (तिर्यंचोंसे)

(१) यहां पर षष्ठी निर्णय वा निर्धारण (=जाति, गुण, क्रिया और नामरूप समुदायसे एक देशको पृथक करना) अर्थमें है॥ इसी अर्थमें सप्तमी बहुवचन तिर्यक्षु (=तिर्यङ्क्षु = तिर्यङ्+सुप्) भीला सके हैं "क्योंकि यतश्च निर्धारणम्" = जिससे (=यतः) निर्णय वा निर्धारण है उससे भी (=च = षष्ठी और सप्तमी विभक्ति) हो। अष्टाध्यायी २-३-४१ जैसे मनुष्याणां क्षत्रियः शूरतमः अथवा मनुष्येषु क्षत्रियः शूरतमः =मनुष्योंमें क्षत्रिय जाति सबसे सूर है॥ ऐसे ही तिर्यंचोंमेंसे मिथ्यादृष्टि (गुणस्थानवाले) तिर्यंचोंकरि इत्यादि अर्थ किया है। तिरश्चाम् अथवा तिर्यंचाम् दोनों षष्ठी विभक्ति बहुवचन पुल्लिंगके रूप हैं॥

भिर्लोकस्यासंख्येयभागः। असंयतसम्यग्दृष्टिभिः संयतासंयतैर्लोकस्यासंख्येयभागः षट् चतुर्दशभागाः वा देशोनाः। मनुष्यगतौ मनुष्यैर्मिथ्यादृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः सर्वलोको वा स्पृष्टः। सासादनसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः सप्त चतुर्दशभागा वा देशोनाः। सम्यङ्मिथ्यादृष्ट्यादीनामयोगकेवल्यन्तानां क्षेत्रवत्स्पर्शनम्॥ देवगतौ देवैर्मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः अष्टौ

लोकस्य असंख्येयभागः (स्पृष्टः) = लोकका असंख्यातवां खंड (स्पर्शा जाता) है
असंयतसम्यग्दृष्टिभिः संयतासंयतैः = असंयतसम्यग्दृष्टी (तथा) संयमासंयमी तिर्यंचोंकरि
लोकस्य असंख्येयभागः (स्पृष्टः) = लोकका असंख्यातवां खंड (स्पर्शा जाता) है
वा चतुर्दश भागाः = अथवा (लोकत्रसनालके) चोदह राजू हैं
षट् देशोनाः (स्पृष्टाः) = (सो मारणांतिकसमुद्घात अपेक्षा) कुछ घाटि छह राजू स्पर्शे जाते हैं
मनुष्यगतौ मनुष्यैः मिथ्यादृष्टिभिः = नरगतिमें मिथ्यादृष्टी मनुष्योंकरि
लोकस्य असंख्येयभागः = लोकका असंख्यातवां अंश स्पर्शा जाता है
वा सर्वलोकः स्पृष्टः = अथवा [मारणान्तिक समुद्घात अपेक्षा] सब लोक स्पर्शा जाता है।
सासादनसम्यग्दृष्टिभिः लोकस्य असंख्येयभागः = सासादन सम्यग्दृष्टी (मनुष्य) नकरि लोकका असंख्यातवा अंश [स्पर्शा जाता] है
वा चतुर्दश भागाः = अथवा [लोक त्रसनालके] चौदहराजू हैं सो (मारणांतिक समुद्घात अपेक्षा)
सप्त देशोनाः (स्पृष्टाः) सम्यङ्मिथ्यादृष्टि- = कुछ हीन सातराजू (स्पर्शे जाते) हैं। मिश्रगुणस्थानवर्तीन
आदीनाम् अयोगकेवलि-अन्तानां क्षेत्रवत् स्पर्शनम् = से लेकर अयोगकेवली पर्यंतनका स्पर्शन क्षेत्रसदृश या तुल्य है
देवगतौ देवैः मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टिभिः = देवगतिविषें मिथ्यादृष्टि (और) सासादनसम्यग्दृष्टी देवोंकरि
लोकस्य असंख्येयभागः = लोकका असंख्यातवां अंश (स्पर्शा जाता) है
वा चतुर्दश भागाः अष्टौ = अथवा (लोकत्रसनालके) चौदहराजू हैं सो परस्थान विहार अपेक्षा कुछ

नव चतुर्दशभागा वा देशोनाः। सम्यङ्मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः अष्टौ चतुर्दशभागा वा देशोनाः॥ (२) इन्द्रियानुवादेन–एकेन्द्रियैः सर्वलोकः स्पृष्टः। विकलेन्द्रियैर्लोकस्यासंख्येयभागः सर्वलोको वा॥ पञ्चेन्द्रियेषु मिथ्यादृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः अष्टौ चतुर्दशभागा वा

हीन [आठराजू] अर्थात् दो राजू तीसरे नरक तक व छः राजू अच्युत सोलहवें स्वर्गतक स्पर्शे जाते हैं

नव देशोनाः = मरणांतिक समुद्घात अपेक्षा कुछ घाटि नौ [राजू तीसरे नरकसे लोकके ऊपर तकके मध्यका क्षेत्र नौराजू हुआ सो नौराज कुछ घाटि स्पर्शे जाते] हैं

सम्यङ्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टिभिः = मिश्रगुणास्थानवाले [तथा] असंयतसम्यग्दृष्टी (देव) नकरि

लोकस्य असंख्येयभागः [स्पृष्टः] = लोकका असंख्यातवां खंड [छुआ जाता] है

वा चतुर्दश भागाः = अथवा (लोकत्रसनालके) चौदहराजू हैं [सो परस्थान विहार अपेक्षा]

अष्टौ देशोनाः [स्पृष्टाः] = कुछ हीन आठभाग [स्पर्शन किये जाते] हैं अर्थात् नीचे जावे तो तीसरे नरक तक दो राजू ऊपर जावे तो अच्युत सोलहवें स्वर्गतक छः राजू ऐसे आठ राजू हुये

[२] इन्द्रिय–अनुवादेन एकेन्द्रियैः सर्वलोकः = इन्द्रियनके कथनानुसारसे एकेन्द्रियनकरि समस्त लोक

स्पृष्टः विकल-इन्द्रियैः लोकस्य असंख्येयभागः = स्पर्शा जाता है दो तीन चार (= विकल) इन्द्रियवाले जीवोंकरि लोकका असंख्यातवां भाग [स्पर्शा जाता] है

वा सर्वलोकः (स्पृष्टः) = अथवा [मारणान्तिक समुद्घात अपेक्षा] समस्त लोक [स्पर्शा जाता] है

पंचेन्द्रियेषु मिथ्यादृष्टिभिः लोकस्य असंख्येय = पांच इन्द्रियवालोंमें मिथ्यादृष्टियोंकरि लोकका असंख्यातवां

भागः वा चतुर्दश भागाः = अंश (स्पर्शा जाता) है [लोकत्रस नालके] चौदह राजू हैं [सो परस्थान विहार अपेक्षा]

देशोनाः सर्वलोको वा । शेषाणां सामान्योक्तं स्पर्शनम् ॥ (३) कायानुवादेन—स्थावरकायिकैः सर्वलोकः स्पृष्टः ॥ त्रसकायिकानां पञ्चेन्द्रियवत् स्पर्शनम् ॥ (४) योगानुवादेन—वाङ्मानसयोगिनांमिथ्यादृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागःअष्टौ चतुर्दशभागा वा देशोनाः सर्वलोको वा । सासादनसम्यग्दृष्ट्यादीनां क्षीणकषायान्तानां सामान्योक्तं स्पर्शनम् । सयोगकेवलिनां लोकस्यासंख्येयभागः ॥

अष्टौ । देशोनाः । (स्पृष्टाः ।) वा सर्वलोकः । = कुछ घाटि आठ राजू हैं अथवा (मारणांतिक अपेक्षा) सारा लोक स्पर्शै

शेषाणां । सामान्य+ = शेष (सासादन आदि समस्त गुणस्थानवर्तीन) के संक्षेप (प्रकरण) में

उक्तं । स्पर्शनम् ।। = [पहिले] कहा हुआ [गुणस्थानवत्] स्पर्शन है [देखो पृष्ठ १२२,१२६]

३ काय–अनुवादेन । स्थावरकायिकैः । सर्वलोकः । = कायके कथनानुसारकरि स्थावर कायिकनकरि समस्तलोक

स्पृष्टः । त्रसकायिकानां । पञ्चेन्द्रियवत् = स्पर्शा जाता है ॥ त्रसकायिकनका पंचइन्द्रिय जीवनके समान

स्पर्शनम् ।। = स्पर्शन है अर्थात् लोकका असंख्यातवां भाग है असंख्याते भाग है और सर्व लोक भी है ॥

[४] योग–अनुवादेन । वाङ्मानसयोगिनां । = (४) योगकी विवक्षासे वचन मन योगवाले

मिथ्यादृष्टिभिः । लोकस्य । असंख्येयभागः । = मिथ्यादृष्टियोंकरि लोकका असंख्यातवां अंश स्पर्शा जाता है

वा चतुर्दश । भागाः । = अथवा (लोक त्रसनालके) चौदह राजू हैं [सो]

अष्टौ । देशोनाः । (स्पृष्टाः ।) = कुछ हीन आठ राजू (स्पर्शे जाते) हैं

वा सर्वलोकः । (स्पृष्टः ।) सासादन सम्यग्दृष्टि = अथवा सारालोक (स्पर्शा जाता) है । सासादन सम्यग्दर्शन वालोंसे

आदीनां । क्षीणकषाय–अंतानाम् । स्पर्शनम् ।। = लेकर क्षीणकषाय वर्तियों तकका स्पर्शन

सामान्य उक्तं ।। = संक्षेप (प्रकरणमें) कथित (गुणस्थानवत्) स्पर्शन

लोकस्य । असंख्येयभागः । सयोगकेवलिनाम् । = लोकका असंख्यातवां खंड है ॥ योगसहित केवलीनका

काययोगिनां मिथ्यादृष्ट्यादीनां सयोगकेवल्यन्तानामयोगकेवलिनां च सामान्योक्तं स्पर्शनम् ॥
[५] वेदानुवादेन—स्त्रीपुंवेदैर्मिथ्यादृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः स्पृष्टः अष्टौ नव चतुर्दश भागा वा देशोनाः सर्वलोको वा । सासादनसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः अष्टौ नव चतुर्दशभागा वा देशोनाः सम्यग्मिथ्यादृष्ट्याद्यनिवृत्तिबादरान्तानां सामान्योक्तं स्पर्शनम् । नपुंसकवेदेषु मिथ्यादृष्टीनां सासादनसम्यग्दृष्टीनां च सामान्योक्तं स्पर्शनम् ॥

काययोगिनां ३। मिथ्यादृष्टि—आदीनां ३।सयोगकेवलि— = काययोगवाले मिथ्यादृष्टिसे लेकर सयोगकेवली
अन्तानाम् ३। च अयोगकेवलिनां ३। = पर्यंतनका तथा [= च] अयोगकेवलीयोंका
सामान्य—उक्तं ३।। स्पर्शनम् ३।। वेद—अनुवादेन—३। = स्पर्शन संक्षेपसे कहा हुआ (गुणस्थानवत्) स्पर्शन है। वेदकी अपेक्षाकरि
स्त्रीपुंवेदैः ३। मिथ्यादृष्टिभिः ३। लोकस्य ३। असंख्येय = स्त्री (और) पुरुष वेदी मिथ्यादृष्टियोंकरि लोकका असंख्यातवां
भागः ३। स्पृष्टः ३। वा चतुर्दश ३। भागाः ३। = भाग स्पर्शा जाता है अथवा [लोकत्रस नालके] चौदह राजू हैं
अष्टौ ३। नव ३। देशोनाः ३। [स्पृष्टाः ३] वा सर्वलोकः ३। = (सो] कुछ घाटि आठ कुछहीन नौ राजू (स्पर्शे जाते) हैं, वा समस्तलोक
(स्पृष्टः ३।) सासादनसम्यग्दृष्टिभिः ३। लोकस्य ३। = (स्पर्शा जाता) है। सासादन सम्यग्दर्शनवालोंकरि लोकका
असंख्येयभागः ३।(स्पृष्टाः) वा चतुर्दश ३। भागाः ३ = असंख्यातवां अंश स्पर्शा जाता है वा (लोकत्रस नाडीके) चौदह राजू हैं
अष्टौ ३। नव ३। देशोनाः ३। (स्पृष्टाः ३) = (सो) कुछ घाटि आठ राजू कुछ हीन नौ राजू (छुए जाते) हैं
सम्यङ्मिथ्यादृष्टि+आदि— = (स्त्री पुरुषवेदी) मिश्रगुणस्थानवर्तीनसे
अनिवृत्तिबादर+अन्तानां ३। = अनिवृत्तिबादर (नववां गुणस्थानके प्रथम तीन वेद भाग वालों) तकका
सामान्य+उक्तं ३।। स्पर्शनम् ३।। = संक्षेप [प्रकरण] में [पहिले] कथित [गुणस्थान सदृश] स्पर्शन है
देखो पृष्ठ १३६, ११५ से १२० तक।
नपुंसकवेदेषु ३। मिथ्यादृष्टीनां ३। च, सासादन— = नपुंसक वेदविषै मिथ्यादृष्टि तथा [= च] सासादन
सम्यग्दृष्टानां ३। सामान्य+उक्त ३।। स्पर्शनम् ३।। = सम्यग्दर्शनवालोंका संक्षेप (संबन्ध) में [पहिले] कहा हुआ (गुणस्थानवत्) स्पर्शन है। देखो इसी प्रतिका पृष्ठ १३२,१३३,१३४।

सम्यग्मिथ्यादृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः स्पृष्टः। असंयतसम्यग्दृष्टिभिः संयतासंयतैर्लोकस्यासंख्येयभागः षट् चतुर्दशभागा वा देशोनाः। प्रमत्ताद्यनिवृत्तिबादरान्तानामपगतवेदानां च सामान्योक्तं स्पर्शनम्॥ (६) कषायानुवादेन—चतुष्कषायाणामकषायाणां च सामान्योक्तं स्पर्शनम्॥ (७) ज्ञानानुवादेन—मत्यज्ञानिश्रुताज्ञानिनां मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टीनां

सम्यग्मिथ्यादृष्टिभिः लोकस्य असंख्येयभागः = मिश्र गुणस्थानवालोंकरि लोकका असंख्यातवां, अंश
स्पृष्टः असंयतसम्यग्दृष्टिभिः = छुआ जाता है असंयत सम्यग्दृष्टियोंकरि [तथा]
संयतासंयतैः लोकस्य असंख्येयभागः = संयमासंयमियोंकरि लोकका असंख्यातवां अंश [छुआ जाता] है
वा चतुर्दश भागाः षट् देशोनाः = वा (लोकत्रस नालके) चौदह राजू हैं (सो मारणांतिक समुद्घात अपेक्षासे) कुछ हीन छः राजू स्पर्शे जाते हैं।
प्रमत्त+आदि अनिवृत्तिबादर+अन्तानाम् = प्रमत्त संयमीनसे अनिवृत्तिबादर [नववां गुणस्थान वालोंनके प्रथम तीन वेद भागों] तक [गियों तकका
अपगतवेदानां च = तथा वेदरहित [नववां गुणस्थानके अंतके तीन वेदरहित भागोंसे अयो-
सामान्य+उक्तं स्पर्शनम्॥ = स्पर्शन संक्षेप (प्रकरण) में [पहिले] कहा हुआ (गुणस्थानवत्) है॥ (देखो पृष्ठ १३६, ११५, से १२० तक इस अनुवादका)
कषाय-अनुवादेन चतुष्कषायाणाम् = कषायके कथनानुसारकरि चार [क्रोध मान माया लोभ] कषाय वालेनके
अकषायाणाम् च = और कषायवर्जित [ग्यारहवां गुणस्थानवर्तीनसे चौदहवां गुणस्थानवाले तक] नका स्पर्शन
स्पर्शनम् = संक्षेपसे (प्रथम) कथित [गुणस्थान सदृश] है [देखो पृष्ठ १३६–११५–१२०
सामान्य+उक्तम्॥
ज्ञान-अनुवादेन मति-अज्ञानि श्रुत-अज्ञानिनाम् = ज्ञानकी विवक्षासे मतिअज्ञान, श्रुत अज्ञान,
मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टीनाम् = मिथ्यादृष्टि तथा सासादन सम्यग्दृष्टीयोंका

सामान्योक्तं स्पर्शनम् । विभंगज्ञानिनां मिथ्यादृष्टीनां लोकस्यासंख्येयभागः अष्टौ चतुर्दशभागा वा देशोनाः सर्वलोको वा । सासादनसम्यग्दृष्टीनां सामान्योक्तं स्पर्शनम् । आभिनिबोधिकश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलज्ञानिनां सामान्योक्तं स्पर्शनम् । (८) संयमानुवादेन—संयतानां सर्वेषां संयतासंयतानाम्

सामान्य उक्तं ॥ स्पर्शनम् ॥	=स्पर्शन संक्षेप प्रकरणमें [पहिले] कहा हुआ [गुणस्थानवत्] है [देखो पृष्ठ १३२–१३३–१३४]
विभंगज्ञानिनाम् ॥ मिथ्यादृष्टीनाम् ॥ लोकस्य ॥	=[विभंगज्ञानी] कुअवधिवाले मिथ्यादृष्टियोंका [स्पर्शन] लोकका
असंख्येयभागः ॥ वा चतुर्दश ॥ भागाः ॥	असंख्यातवांखंड है अथवा [लोकत्रसनालके) चौदहराजू हैं
अष्टौ ॥ देशोनाः ॥ वा सर्वलोकः ॥	=सो कुछ हीन आठ [राजू] हैं अथवा समस्त लोक है
सासादनसम्यग्दृष्टीनां ॥ समान्य–उक्तम् ॥	=सासादनसम्यग्दर्शनवालों [विभंगज्ञानी] नका संक्षेपसे [पहिले] कहा हुआ गुणस्थानवत् स्पर्शन है [देखो पृष्ठ १३३–१३४
स्पर्शनम् ॥ आभिनिवोधिक श्रुत-अवधिमनःपर्यय	= मतिज्ञानी श्रुतज्ञानी अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी
केवलज्ञानिनां ॥ सामान्य उक्तम् ॥ स्पर्शनम् ॥	=[तथा] केवलज्ञानीनका स्पर्शन संक्षेपसे कहा हुआ [गुणस्थानवत] है
	=[देखो टिप्पणी पृष्ठ ८८, ८९ और ११५ से १२० १३३–१३६ तक
८ । संयम–अनुवादेन ॥ संयतानां ॥ सर्वेषां ॥	=संयमकी विवक्षासे समस्त संयमी अर्थात् छठा गुणस्थानवर्तीनसे चौदहवा गुणस्थानवर्तीन तक का और
संयत असंयतानाम् ॥	=संयमासंयमी (पांचवा गुणस्थानवाले) नका

१ मनुष्यतिर्यग्विभङ्गज्ञानिभिः क्रियमाणमारणान्तिकापेक्षया सर्वलोकः इति वचनम् ॥ देवाना नव चतुर्दशभागा इति पूर्वमुक्तत्वात् ॥

मनुष्यतिर्यग्विभिङ्गज्ञानिभिः ॥ क्रियमाण–	=नर (और) तिर्यंचकुअवधिज्ञानवालोंकरि किये जानेवाले (= क्रियमाण)
मारणान्तिक+अपेक्षया ॥ सर्वलोकः ॥ इतिअ वचनं ॥	=मारणातिकसमुद्घात विवक्षामे समस्त लोक (स्पर्शजाता) है ऐसा वाक्य है
चतुर्दश ॥ भागाः ॥ देवानां ॥ नव ॥	=(लोकत्रसनालके) चौदहराजू हैं सो देवोंका (स्पर्शन) नौ (राजू) है
इति पूर्वम् ॥ उक्तत्वात् ॥	=क्योंकि इसप्रकार पहिले कथन हुआ है देखो इस अनुवादका पृष्ठ १४०

असंयतानां च सामान्योक्तं स्पर्शनम् ॥ [९] दर्शनानुवादेन—चक्षुर्दर्शनिनां मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीण-कषायान्तानां पञ्चेन्द्रियवत्। अचक्षुर्दर्शनिनां मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायान्तानामवधिकेवलदर्शनिनां च सामान्योक्तं स्पर्शनम् ॥ (१०) लेश्यानुवादेन-कृष्णनीलकापोतलेश्यैर्मिथ्यादृष्टिभिः सर्वलोकः स्पृष्टः। सासादनसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः।

असंयतानाम् च	= तथा [= च] असंयमी [पहिले दूसरे तीसरे चौथे गुणस्थानवाले] नका
सामान्य-उक्तम् स्पर्शनम्	= स्पर्शन संक्षेपसे कथित [गुणस्थानवत्] है देखो पृष्ठ १३२—१३५, ११५ से १२० [इसी अनुवादका]
। ९ । दर्शन-अनुवादेन चक्षुःदर्शनिनाम्	= [९] दर्शनके कथनानुसारकरि चक्षुः दर्शनवाले
मिथ्यादृष्टि-आदि-क्षीणकषाय-अन्तानाम्	= मिथ्यादृष्टीसे लेकर क्षीणकषाय [बारहवां गुणस्थान] वर्तीनका
पञ्च-इन्द्रियवत् *	= [स्पर्शन] पंचइन्द्रियजीवोंके सदृश है देखो पृष्ठ १३२ से १३६ तक और १४१
अचक्षुःदर्शनिनाम् मिथ्यादृष्टि-आदि-क्षीणकषाय	= अचक्षुः दर्शनवाले मिथ्यादृष्टीसे क्षीणकषाय [बारहवां गुणस्थानवाले]
अन्तानाम् अवधिकेवलदर्शनिनाम् च	= पर्यंतोंका अवधिदर्शनी और [= च] केवल दर्शनवालोंका
सामान्य-उक्तम् स्पर्शनम्	= स्पर्शन संक्षेपसे [पहिले] कहा हुआ [गुणस्थानवत] है [पृष्ठ १३२ से १३६—११५ से १२० देखो]
१० लेश्या-अनुवादेन कृष्णनील-कापोत-लेश्यैः	= १० लेश्याकी अपेक्षासे कृष्ण नील कापोत लेश्यावाले
मिथ्यादृष्टिभिः सर्वलोकः स्पृष्टः	= मिथ्यादृष्टी जीवोंकरि सारा लोक स्पर्शा जाता है
सासादनसम्यग्दृष्टिभिः	= [कृष्ण नील कापोत लेश्यावाले] सासादन सम्यग्दर्शनवालोंकरि
लोकस्य असंख्येयभागः	= लोकका असंख्यातवां अंश [छुआ जाता] है

(१) मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्ट्यन्तानाम्

मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टि-	= मिथ्यादृष्टिसे असंयत सम्यग्दृष्टी (पहले दूसरे तीसरे चौथे गुणस्थानवर्ती)
अन्तानाम्	= पर्यंतनके (स्पर्शनसे अभिप्राय है)

पंञ्च चत्वारो द्वौ चतुर्दशभागा वा देशोना: ।

वा चतुर्दशभागाः (१) पंञ्च (२) = वा [लोकत्रसनालके] चौदह राजू हैं। (सो मारणांतिक समुद्घात अपेक्षासे) कुछ घाटि पांच

चत्वारः (३) देशोनाः (४) द्वौ (५) = कुछ हीन चार कुछ न्यून दो राजू छुये जाते हैं अर्थात्

सासादन गुणस्थानवर्तीका सातवें नरकमें मरण नहीं होता है अतः मारणान्तिक समुद्घात भी उसके सातवें नरकमें नहीं हो सक्ता है मध्यम कृष्णलेश्यासे युक्त छठवां नरकमें मरण करे और मध्यलोकमें जन्म लेवै तब मारणान्तिक समुद्घात करै उस मारणांतिक समुद्घातकी अपेक्षासे कुछ हीन पांच राजू स्पर्शै है क्योंकि छठवां नरकसे मध्यलोक तक पांच राजूकी ऊंचाईमें है, इसीप्रकार पांचवां नरकसे उत्कृष्ट नील लेश्यावाला सासादन गुणस्थानवर्ती मरकर मारणांतिक समुद्घात करै और मध्यलोकमें जन्म लेवै तो मारणांतिक समुद्घातकी अपेक्षा कुछ न्यून चारराजू क्षेत्र छूता है क्योंकि पांचवा नरकसे मध्यलोक चार राजू ऊंचा है, वैसे ही तीसरे नरकसे मारणांतिक समुद्घातकी अपेक्षा उत्कृष्ट कापोतलेश्यावाले सासादन गुणस्थानवर्ती कुछ घाटि दो राजू छूते हैं क्योंकि तीसरे नरकसे मध्यलोक दो राजू ऊंचा है।

---

(१) एक द्वि त्रि चतुर पञ्चन् षष् सप्तन् अष्टन् नवन् दशन् एकादशन् द्वादशन् त्रयोदशन् चतुर्दशन् पञ्चदशन् षोडशन् सप्तदशन् अष्टादशन् नवदशन् तक विशेषण समझे जासक्ते हैं उनके वचन और विभक्ति वही होती हैं जो संज्ञाकी होती है जिनके साथ वे आती हैं और एक द्वि त्रि चतुर्का लिंग भी संज्ञाके समान होता है शेष संख्या तीनों लिंगोंमें मानी जा सक्ती हैं अतः पञ्च त्रिलिंगी भी हो सक्ता है।

(२) काऊ, काऊ, काऊ, णीला, णीला य, णील किएहा य। किण्हा य परमकिण्हा लेस्सा पढमादिपुढवीणं ॥ गोम्मटसारे कर्मकाण्डलेश्यामार्गणायामियं गाथा ५२६ दृश्यते ॥ अस्या गाथाया अर्थः कथ्यते—प्रथमायां पृथिव्यां नारकाणां जघन्या कपोतलेश्या भवति, द्वितीयायां मध्यमा। तृतीयायामधेन्द्रकेषु उत्कृष्टा। सैव चरमेन्द्रके उत्कृष्टा तत्रैव केषांचिन्नारकाणां जघन्या नीललेश्या भवति। चतुर्थ्यां तस्यां मध्यमा नीला। पञ्चम्यां पृथिव्यां उपरिमेषु चतुर्ध्विन्द्रकेषु उत्कृष्टा सैव। चरमेन्द्रकेषु उत्कृष्टा नीललेश्या जघन्या कृष्णलेश्या च भवति ॥ षष्ठ्यां मध्यमा कृष्णलेश्या। सप्तम्यां पृथिव्यां उत्कृष्टा कृष्णलेश्या। ततः षष्ठपृथिवीतः मारणान्तिकं कुर्वाणान् कृष्णलेश्या सासादनान्प्रति पञ्चचतुर्दशभागाः कथिताः ॥

काऊ॥ काऊ॥ (=कापोता॥ कापोता॥) = (यथासख्य वा अनुक्रमसे) कापोतलेश्या, कापोतलेश्या,

काऊ॥ णीला॥, णीला॥ य (=कापोता॥ नीला॥ नीला॥ च) =कापोत नीललेश्या और (=य=च) =नीललेश्या

णीलकिण्हा॥ य, किण्हा॥ य (=नीलकृष्णा॥ च, कृष्णा॥ च) =और (=य) नीलकृष्णलेश्या और (=य) कृष्णलेश्या

परम-किण्हा॥ लेस्सा॥ (=परमकृष्णा॥ लेश्या॥ =(तथा) उत्कृष्ट कृष्णलेश्या

पढमादि-पुढवीणं॥ (=प्रथमादि—पृथिवीनाम्॥) =पहिले, दूसरे, तीसरे, चौथे, पाँचवे, छठे, सातवें नरककी (पृथिवीना) हैं अर्थात् यहांपर नारकियोंके भाव लेश्याकी अपेक्षासे कथन है धम्मा प्रथम नरकमें कापोतलेश्या का जघन्य अंश है वंशा दूसरे नरकमें कापोतलेश्याका मध्यम अंश है । मेघा तीसरी पृथिवीमें कापोतलेश्याका उत्कृष्ट अंश और नीललेश्याका जघन्य अंश है, अंजना चौथे नरकमें नीलका मध्यम भाग है, पांचवी पृथिवी अरिष्टामें नीललेश्याका उत्कृष्ट अंश और कृष्णलेश्याका जघन्य अंश है। छठा नरक मघवीमें कृष्णलेश्याका मध्यम अंश है माघवी सातवें नरकमें कृष्णका उत्कृष्ट अंश है। प्राकृत भाषामें इकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दोंकी तृतीया विभक्तिसे लेकर सप्तमी विभक्ति तकके सर्वरूप रुचि शब्दके रूपोंके सदृश हैं और रुचि शब्दकी षष्ठी विभक्ति बहुवचन "रूईणं" है अतः पृथिवीणं षष्ठी बहुवचनमें लिखा गया है प्राकृत सुबन्तकौमुदी पृष्ठ १७७-१७८

गोमट्टसारे॥ कर्मकाण्डे॥ लेश्यामार्गणायाम्॥ =गोमट्टसार कर्मकांडमें लेश्यामार्गणा (प्रकरण) में

इयम्॥ गाथा॥ ५२६ दृश्यते =यह गाथा ५२६ वीं देखी जाती है ॥

अस्याः॥ गाथाया॥ अर्थः॥ कथ्यते प्रथमायां॥ =इस आर्या छंदका अर्थ कहा जाता है-पहिले

पृथिव्यां॥ नारकाणां॥ जघन्या॥ कापोतलेश्या॥ =नरक (=पृथिवी)में नारकियोंके जघन्य कापोत लेश्या होती है ॥

द्वितीयायां मध्यमा तृतीयायाम्	=दूसरे (नरक) में मध्यम कापोत लेश्या होती है तीसरे (नरक) में
अष्टेषु इन्द्रकेषु उत्कृष्टा	=आठ इन्द्रक विल (=पटलके मध्यके विलन) में उत्कृष्ट कापोत होती है
सा एव * चरम-इन्द्रके उत्कृष्टा	=वह (कापोत लेश्या) ही अंतके इन्द्रक विलमें उत्कृष्ट है
च तत्र एव केषांचित् * नारकाणां	=और वहां (तीसरे नरकमें) ही कितने नारकियोंके
जघन्या नीललेश्या भवति	=जघन्य नील लेश्या होती है ॥
चतुर्थ्याम् तस्याम् मध्यमा नीला	=तिस (=तस्याम्) चौथी (पृथिवी अथवा नरक) में मध्यम नील लेश्या है
पचम्याम् पृथिव्याम् उपरिमेषु चतुर्षु	=पांचवें नरकविषै ऊपरमें चार
इन्द्रकेषु उत्कृष्टा सा एव। चरम-इन्द्रकेषु	=इन्द्रक विलनमें उत्कृष्ट (वही नील) है अंतके इन्द्रक विलमें
उत्कृष्टा नीललेश्या जघन्या कृष्णलेश्या	=उत्कृष्ट नील लेश्या है तथा जघन्य कृष्णलेश्या
च भवति षष्ठ्यां मध्यमा कृष्णलेश्या	=होती है। छठवीं (पृथिवी) विषै मध्यम कृष्णलेश्या है
सप्तम्यां पृथिव्याम् उत्कृष्टा कृष्णलेश्या	=सातवी पृथिवीमें उत्कर्ष कृष्ण लेश्या है
चतुर्दश भागाः ततः षष्ठपृथिवीतः*	=(लोक त्रसनालके) चौदह राजू हैं (सो) तहा छठवां नरकसे
मारणान्तिकं कुर्वाणान्	=मारणान्तिक समुद्घात करते हुये
कृष्णलेश्यासासादनान् प्रति *	=कृष्णलेश्यावाले दूसरे गुणस्थानवर्तीनके (स्पर्शनके)
पंच कथिताः	=पांच (राजू) कहे गये हैं ॥ "मारणान्तिकोऽस्ति" वाक्यमें मारणांतिक शब्द पुलिंगमें है अतः हमने भी पुलिंग माना है

सप्तमपृथिवीपरित्यागः कुत इति चेत् "तमतमगुणपडिवणणा य ण मरंतीति" वचनेन तत्रत्यसासादनानां मरणाभावात्। मरणाभावेऽपि मारणान्तिकाभावप्रतीतिः कथमिति चेत्—कृष्णलेश्यापेक्षया पञ्चचतुर्दशभागा इति वचनान्यथानुपपत्तेः। पञ्चमपृथिवीचरमेंद्रकात् नीललेश्यो-

त्कृष्टस्थानात् मरणान्तिकं कुर्वद्भिः सासादनैश्चत्वारश्चतुर्दशभागा स्पृष्टाः । ४/१४ । तृतीयपृथ्वीचरमेंद्रकात्कपोतलेश्योत्कृष्टस्थानान्मारणान्तिकं कुर्वाणै द्वौं चतुर्दशभागौ स्पृष्टौ २/१४ । देशोनत्वं भोगभूमिषु प्रणिधावस्पर्शनात् ॥

सप्तमपृथिवीपरित्यागः १/१ कुतः *	=सातवां नरकका छोड़ना (सासादनोंकरि) क्योंकर हो
इति चेत् *	=ऐसे संदेह पर (कहते हैं)
य * तमतमगुणा (=च तमस्तमोगुण)	=और (=य) महातम प्रभा पृथिवी (=सातवें नरक) के (सम्यक्त्व) गुण
पडिवरणा (=प्रतिपन्नाः १/३)	=वाले "सासादन-मिश्र-असयत नारकी" (दुसरे-तीसरे-चौथे-गुणस्थानोंके)
ण * मरति T (=न म्रियन्ते T)	=नहीं मरते हैं सारांश कि सातवें नरकमें सम्यक्त्वसहित जीव मरता नहीं है
इति वचनेन ३/१ तत्रत्य*	=ऐसे (गोम्मट्टसार कर्मकाण्डके ५६० वे गाथाके अंत) वाक्यकरि वहांवाले
सासादनानाम् ६/३ मरण-अभावात् ५/१	=दुसरे गुणस्थानवर्तीनका मृत्युके न होनेसे (सातवां नरकका परित्याग किया है)
मरण-अभावे ७/१ अपि मारणान्तिक-अभावप्रतीतिः	=मौतके न होने पर भी मारणांतिक समुद्घातके न होनेका विश्वास वा समाधान
कथम् * इति* चेत् *	=कैसे ? इसप्रकार संदेह होनेपर (कहा जाता है)
चतुर्दश ७/१ भागा १/३ कृष्णलेश्या—अपेक्षया ३/१	= क्योंकि (लोक त्रसनालके) चौदह भाग है सो कृष्णलेश्याकी विवक्षाकरि
पञ्च १/३ इति-	=पाँच (राजू मारणान्तिक अपेक्षासे छूये जाते) हैं इस
वचन-अन्यथा-	=वाक्यकी दुसरे प्रकार (अर्थात् मरणके अभाव होनेपर मारणांतिकका अभाव न
अनुपपत्तेः ५/१	=होता तो) यथार्थता न वनती
पञ्चमपृथिवीचरम—इन्द्रकात् ५/१	=पांचवाँ नरकके अन्तके इन्द्रकविलेसे
नीललेश्या+उत्कृष्टस्थानात् ५/१ सासादनैः ३/३	=नीललेश्याके उत्कर्षस्थानसे दुसरे गुणस्थानवर्तीनसे
मारणांतिकं २/१ कुर्वद्भिः ३/३	=मारणांतिक समुद्घातकरनेकरि
चत्वारः १/३ चतुर्दश ६ भागाः १/३ स्पृष्टाः १/३	= (लोक त्रसनालके) चौदहराजू हैं सो चार राजू स्पर्शे जाते हैं

"द्वादशभागाः कुतो न लभ्यन्ते इति चेत् तत्रावस्थितलेश्यापेक्षया पञ्चैव। अथवा येषां मते सासादन एकेन्द्रियेषु नोत्पद्यते तन्मतापेक्षया द्वादशभागा न दत्ताः।"

द्वादशभागाः १।१ कुतः* न* लभ्यन्ते T इति चेत्*	=बारहराजू क्योंकर नहीं लिये गये हैं ऐसी तर्क [=चेत्] पर कहते हैं कि
तत्र * अवस्थित-लेश्या-अपेक्षया ३।१	=तहां [नरकमें] नियमित (=अवस्थित) लेश्या (होने) की विवक्षासे
पञ्च १।३ एव*	=(चौदहराजू त्रसनालमेंसे) पांच ही राजू [छठे नरकवाले सासादन गुणस्थानवर्ती जीव कृष्ण नील कापोत लेश्याओंके धारकोंसे] छुऐ जाते हैं॥
अथवा* येषाम् ६।३ मते ७।१ सासादनः १।१ एकेन्द्रियेषु ७।३	=वा जिनके मतमें सासादन गुणस्थानवर्ती एकेन्द्रिय (जीवों) में
न* उत्पद्यते T तद्-मत-अपेक्षया ३।१	=नहीं उपजता है उनकी सम्मतिकी विवक्षासे
द्वादशभागाः १।३ न दत्ताः १।३	=बारहराजू (=भागाः) नहीं दिये गये हैं अर्थात् जो आचार्य मानते हैं कि सासादन गुणस्थानवर्ती एकेन्द्रियोंमें जन्म लेता है उनकी अपेक्षासे कुछ हीन बारहराजू भी स्पर्श हो सकता है और जिनका मत है कि एकेन्द्रियमें जन्म नहिं लेता है उनके मतानुसार केवल कुछ न्यून पांचराजू स्पर्श हैं

$\frac{४}{३४३}$	=समस्त लोकके एकराजू लंबे, एकराजू चौडे एकराजू ऊंचे खंड किये जांय तो तीनसौ तेतालीस घनाकार भाग होंगे ऐसे चौदह घनाकार राजूओंकी त्रसनाल है उसके चार घनाकार राजू लिये हैं अत चार बटे हुये तीनसौ तैतालिस हैं।
तृतीयपृथ्वीचरम+इन्द्रकात् ५।१ कपोतलेश्या-	=तीसरे नरकके अन्तके इन्द्रकविलेसे कपोत लेश्याके
उत्कृष्टस्थानात् ५।१ मरणान्तिकम् २।१ कुर्वाणैः ३।३	=उत्कृष्ट स्थानसे (दुसरे गुणस्थानवर्तीनसे) मारणातिक समुद्घातकरनेवालोंकरि
द्वौ १।२ चतुर्दश ६।३ भागौ १।२ स्पृष्टौ १।२	=(लोकत्रसनालके) चौदहराजू है (सो) दो राजू स्पर्शे जाते हैं
$\frac{२}{३४३}$	=तीनसौ तेतालिस घनाकार राजूओंमेंसे (त्रसनालके) दो घनाकार राजू लिये हैं।
भोगभूमिषु ७।३ प्रणिधौ ७।१ अस्पर्शनात् ५।१	=भोगभूमियोंके प्रणिधि (कोने) में स्पर्शन न होनेसे
देश-ऊनत्वम् १।१	=कुछ न्यूनपना (पांच, चार तथा दो घनाकार राजू क्षेत्रमेसे) है

सम्यङ्मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः ।

सम्यङ्मिथ्यादृष्टि-	=(कृष्णनील–कपोतलेश्यावाले) मिश्रगुणस्थानवर्ती और
असंयतसम्यग्दृष्टिभिः ३। लोकस्य ६। असंख्येयभागः १।	=(कृष्ण–नील–कपोतलेश्याके धारक) असंयत सम्यग्दृष्टियोंकरि लोकका असंख्यातवा अंश [स्पर्श्या जाता है]

(१)षष्ठपृथ्वीपर्यन्तस्थितानामशुभलेश्यासंयतसम्यग्दृष्टीनां मरणमस्ति । अतो लोकस्यासंख्येयभागः कथमिति चेत्-तेषां मनुष्यक्षेत्रे एवोत्पत्ति सद्भावेन एकरज्जुविष्कंभे सर्वत्र स्पर्शाभावादिति ब्रूमः । श्रेणिवद्धप्रकीर्णकवर्तिनामपि स्वकीयस्वकीयपृथिव्यामेव इन्द्रकपर्यन्तं तिर्यगागत्य पुनरूर्ध्वागमनात्तावानेव । अन्यथा लोकासंख्येयकथनानुपपत्तेः ॥

(१) षष्ठपृथ्वीपर्यन्तस्थितानाम् ६। अशुभ-	=छठवां नरकतकके रहनेवाले कृष्ण–नील कपोत (=अशुभ)
लेश्याअसंयतसम्यग्दृष्टीनाम् ६। मरणम् १। अस्ति	=लेश्यामें चतुर्थगुणस्थानवर्तीनकी मृत्यु है।
अतः * लोकस्य ६। असंख्येयभागः १। कथम् *———	=इसलिये लोकका असंख्यातवां खंड कैसे (स्पर्शा जाता है)
इति * चेत्*	=ऐसे संदेहपर (कहते हैं कि)
तेषाम् ६। मनुष्यक्षेत्रे ७। एव + उत्पत्तिसद्भावेन ३।	=तिन (असंयतसम्यग्दृष्टियों) का ढाईद्वीपविषै (=मनुष्यक्षेत्र) ही जन्म होनेसे
एकरज्जुविष्कम्भे ७। सर्वत्र स्पर्श–अभावात् ५।	=एकराजू विस्तारमें सबजगह स्पर्शनके न होनेसे (असंख्यातवा भाग है)
इति ब्रूमः T	=इसप्रकार हम कहते हैं (वर्तमानकाल उत्तमपुरुष वहुवचन परस्मैपद अदादिगणमें ब्रू धातुका ब्रूमः होता है)
श्रेणीवद्धप्रकीर्णकवर्तिनाम् ६। अपि*	=श्रेणीवद्धबिलोंके रहनेवाले (तथा) प्रकीर्णक बिलोंके रहनेवालोंकेभी
स्वकीयस्वकीयपृथिव्याम् ७। एव इन्द्रकपर्यन्तं ३।	=अपनी अपनी (स्वकीय) पृथिवीविषै ही इन्द्रकबिल (=मध्यका बिल)-तक
तिर्यक् * आगत्य पुनः ऊर्ध्वागमनात् ५। तावान् १। एव*	=तिरछे आकर फिर ऊपरको गमन करनेसे उतना ही (असंख्यातवां भाग है)
अन्यथा * लोक + असंख्येयकथन + अनुपपत्तेः ५।	=दूसरे प्रकार असंख्यातका कहना सम्बन्ध (प्रसंग) रहित है अर्थात् दूसरे प्रकारसे असंख्यातवां भागका स्पर्श नहीं बन सक्ता है

तेजोलेश्यैर्मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः । अष्टौ नव चतुर्दशभागा वा देशोनाः । सम्यग्मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः अष्टौ चतुर्दशभागा वा देशोनाः ।

तेजोलेश्यैः [illegible] मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टिभिः [illegible]	= पीत लेश्यावाले मिथ्यादृष्टि (पीतलेश्यावाले) सासादन सम्यग्दृष्टियोंसे
लोकस्य [illegible] असंख्येयभागः [illegible] वा चतुर्दश [illegible] भागाः [illegible]	= लोकका असंख्यातवां अंश है वा [लोक त्रसनालके] चौदह राजू हैं (सो)
अष्टौ [illegible] नव [illegible] देशोनाः [illegible]	= कुछ घाटि आठ [वा] कुछ हीन नौ (राजू) छुए जाते हैं
सम्यग्मिथ्यादृष्टि—असंयतसम्यग्दृष्टिभिः [illegible]	= (पीत लेश्यावाले) मिश्र गुणस्थानवर्ती और असंयत गुणस्थानवर्तीनकरि
लोकस्य [illegible] असंख्येयभागः [illegible]	= लोकका असंख्यातवां अंश (छुआ जाता) है
वा चतुर्दश [illegible] भागाः [illegible]	= अथवा (लोक त्रसनालके) चौदह राजू हैं (सो)
अष्टौ [illegible] देशोनाः [illegible] (स्पृष्टाः [illegible])	= कुछ घाटि आठ राजू छुए जाते हैं

(१) विहारवत्स्वस्थानापेक्षया अष्टौ चतुर्दशभागाः । $\frac{8}{343}$ ॥ विहारवन्तस्तेजोलेश्यामिथ्यादृष्टिदेवास्तृतीयपृथिवीतोऽष्टमपृथिवीबादरपृथिवीकायिकत्वेनोत्पत्त्यर्थं मारणान्तिकं कुर्वन्ति तदपेक्षया नव चतुर्दशभागाः $\frac{9}{343}$ ॥

विहारवत् *	= (तेज लेश्यावाले मिथ्यादृष्टि और सासादन गुणस्थानवर्तीयो करि) विहारवत्
स्वस्थान + अपेक्षया [illegible] चतुर्दश [illegible] भागाः [illegible] अष्टौ [illegible]	= स्वस्थान अपेक्षासे (त्रसनालोके) चौदह राजू हैं उनमेंसे आठ राजू स्पर्शे जाते हैं
$\frac{8}{343}$	= तीनसौ तेतालीस राजू घनाकार सब लोक है तिसमें आठ राजू लिये हैं ॥
विहारवन्त, [illegible] तेजोलेश्यामिथ्यादृष्टिदेवाः [illegible]	= विहार करनेवाले तेज लेश्याके (धारक) मिथ्यात्व गुणस्थानवर्ती देव
तृतीयपृथ्वीतः * अष्टमपृथिवी—	= तीसरे नरकसे मोक्षस्थान वा लोक पर्यन्त (= अष्टम पृथिवी) में
बादरपृथिवीकायिकत्वेन [illegible] उत्पत्त्यर्थम् [illegible]	= बादर पृथिवी कायिकमें जन्मके लिये
मारणान्तिकम् [illegible] कुर्वन्ति तद् अपेक्षया [illegible]	= मारणांतिक समुद्घात करते हैं तिस (मारणांतिक समुद्घातकी) विवक्षासे
चतुर्दश [illegible] भागाः [illegible] नव [illegible]	= (लोकत्रस नालके) चौदह राजू हैं (सो) नौ (राजू स्पर्शे जाते) हैं
$\frac{9}{343}$	= तीनसौ तेतालीस घनाकार समस्त लोक है तिसमे नौ राजू ग्रहण किये हैं

(२) विहारवत्स्वस्थानापेक्षया $\frac{8}{343}$ = परस्थान विहार अपेक्षासे तीनसौ तेतालिस घनाकार राजू लोकमेंसे आठराजू त्रसनालके लिये हैं

संयतासंयतैर्लोकस्यासंख्येयभागः अध्यर्धचतुर्दशभागा वा देशोनाः ॥

संयतासंयतैः लोकस्य असंख्येयभागः	=(पीत लेश्यावाले) देश संयमियोंकरि लोकका असंख्यातवां खंड है
वा अधि-अर्ध चतुर्दशभागाः देशोनाः	= वा [त्रस नालके] चौदह राजू हैं (सो मारणांतिक समुद्घातकी अपेक्षा प्रथम स्वर्ग) कुछ घाटि डेढ राजू [छुआ जाता] है, [अध्यर्ध=अधि+अर्ध=अधिक अर्धं यस्य बहुव्रीहि समास है अर्थात् कोई वस्तु जो अपने आधेके साथ हो डेढसे अभिप्राय है)

विहारवत्स्वस्थानापेक्षया ॥ यह वही टिप्पणी है जो पृष्ठ १५२ में दोकी सख्या पर लिखी है ।

(तेजो लेश्यावाले मिश्र गुणस्थानवर्ती और तेजो लेश्यावाले असंयत सम्यग्दृष्टिके)

विहारवत्स्वस्थान-अपेक्षया	=विहार करने योग्य क्षेत्र लोकके तीनसौ तेतालीस घनाकार राजूमेंसे आठ राजू (प्रमाण) है ।

(१) तेजोलेश्या—देशसंयतैः क्रियमाणमारणान्तिकसमुद्घातापेक्षयाऽध्यर्धचतुर्दशभागः चतुर्दशभागैस्त्रिभिर्भवितव्यम् ॥ सनत्कुमार माहेन्द्रपर्यन्तं तेजोलेश्यासद्भावादिति चोदनायां परिहारो गोम्मटसारे जीवकाण्डे लेश्यामार्गणायां स्पर्शाधिकारे "एवं तु समुग्घादे णव चोद्दस भागयं च किंचूणम् । उववादे पढमपदं दिवड्ढ चोद्दस य किंचूणं ॥ १ ॥" इति गाथायास्तुरीयपादव्याख्यान दृष्ट्वा ज्ञातव्या कर्तव्यः ॥

तेजोलेश्यादेशसंयतैः	=पीतलेश्या (वाले) सयमासंयमियों करि
क्रियमाणमारणान्तिकसमुद्घात+अपेक्षया	=किये जानेवाले मारणांतिक समुद्घातकी विवक्षासे
अध्यर्धचतुर्दशभागः	=(लोक त्रसनालके) चौदह (राजू) हैं (सो) डेढ राजू (भागः) स्पर्शा जाता है
सनत्कुमारमाहेन्द्रपर्यन्तं	=(परन्तु वह) सनत्कुमार (तीसरे स्वर्ग) माहेन्द्र (चौथे स्वर्ग) तक
तेजस्+लेश्या सद्भावात्	=पीत लेश्याके विद्यमान होनेसे
	=तीनसौ तेतालीस घनाकार राजू सब लोकके क्षेत्र फलमेंसे तीन घनाकार राजू
चतुर्दशभागैः त्रिभिः भवितव्यम्	=(वा लोक त्रसनालके) चौदह राजुओंमेंसे तीन (राजू) होना चाहिये

प्रमत्ताप्रमत्तैर्लोकस्यासंख्येयभागः ॥

प्रमत्त-अप्रमत्तैः ३।३	=(पीतलेश्यावाले) प्रमत्त गुणस्थानवर्ती और अप्रमत्त गुणस्थानवर्तीनसे
लोकस्य ६।१ असंख्येयभागः १।१	=(स्वस्थान विहार अपेक्षासे) लोकका असंख्यातवांभाग छुआ जाता है

इति॰ चोदनायां ७।१ गोम्मटसारे ७।१ जीवकाण्डे ७।१ =ऐसी तर्कणापर (=चोदनायां) गोम्मटसार ग्रन्थमें जीवके कथनके अध्यायमें

लेश्यामार्गणायां ७।१ स्पर्श-अधिकारे ७।१ =लेश्यामार्गणा (के वर्णन) में स्पर्शनके प्रकरण विषै (नीचेके गाथामें)

परिहारः १।१—॥ "एवं॰ (=एवम्॰) =समाधान है कि-"इस प्रकार ही है (=एवं) अर्थात् तेज्योलेश्याके विहारवत् स्वस्थानकी भांति "वेदना समुद्घात अर कषायसमुद्घात अर वैक्रियिक समुद्घात विषै स्पर्श किछु घाटि चौदह भागोंमें आठ भाग प्रमाण है"

तु समुग्घादे ७।१ चोद्दस-(तु समुद्घाते ७।१ चतुर्दश-) =और (=तु) मारणांतिक समुद्घातमें (=समुद्घादे) चौदह

भागय १।११ णव १।११ किंचूण १।११ (भागाः१।१ नव १।१ किंचित्ऊनं) भाग (लोकत्रसनालके) हैं (सो) नौ राजू (=भागः) कुछ हीन हैं

य उववादे ७।११ (=च उपपादे ७।११) =और (=य-तेजो वा पद्मलेश्यावाले जीवके) उपपाद (अवस्था)में

पढ़म-पदं १।११ (=प्रथम-पदं १।११) =(स्पर्शन योग्य) उत्कृष्ट (=पढ़म=प्रथम) स्थान (=पदं=पद)

दिवड्ढचोद्दस १।१ च॰ (=द्व्यर्धचतुर्दश १।१ च॰ =(त्रसनालके राजू) चौदहमेंसे डेढ (राजू) भी (=च)

किंचूणं १।११ * (=किंचित् * उनम् १।११) ॥ १ ॥ =कुछ घाटि होता है ॥ १ ॥ यहां च इस वातके समुच्चयके लिये है कि कितेक आचार्योंके मतानुसार तेजोलेश्याका अस्तित्व सनत्कुमार माहेन्द्र स्वर्गोतक (जो मध्य लोकसे तीन राजू है) होनेके हेतुसे तेजोलेश्यावालोंका स्पर्शन कुछ न्यून तीन राजू उपपादकी अपेक्षासे है । गाथाकार अपने मतानुसार कहते हैं कि स्पर्शनयोग्य उत्कृष्ट स्पर्श स्थान (=पढ़मपदं) डेढ़राजूसे कुछ घाटि है उपर्युक्त अर्थके प्रमाणमें टोडरमलजीके अर्थका कुछ भाग शब्दशः इसप्रकार है—

"तेजोलेश्याका विहारवत्स्वस्थान अर वेदना समुद्घात अर कषाय समुद्घात अर वैक्रियिक समुद्घातविषै स्पर्श किछू घाटि चौदह भागमे आठ भाग प्रमाण है। काहेते ? सो कहिये है—

सो तहां चौदह राजूविषै सनत्कुमार माहेद्रकेवासी उत्कृष्ट तेजोलेश्या-
लोक चौदह राजू ऊचा है। त्रसनाली अपेक्षा एक राजू लंबा चौडा सो तहां चौदह राजूविषै सनत्कुमार माहेद्रकेवासी उत्कृष्ट तेजोलेश्या-
वाले देव ऊपरि अच्युत सोलह्वां स्वर्ग पर्यंत गमन करै है अर नीचै तीसरी नरक पृथ्वीपर्यंत गमन करै है सो अच्युत स्वर्गते तीसरा नरक
आठ राजू है तातै चौदह भागमें आठ भाग कहे अर तिसमें तिस तीसरा नरककी पृथिवीकी मोटाईविषै जहां पटल न पाइए असा हजार
योजन घटावने तातै किंचित् ऊन कहे है। इहां जो चौदह घनरूप राजूनिकी एक शलाका होइ तौ आठ घनरूप राजूनिकी केती शलाका होइ ?
असे त्रैराशिक कीयें आठ चौदह्वां भाग आवै है। अथवा भवनत्रिक देव ऊपरि वा नीचे स्वयमेव तौ सौधर्म ईशान स्वर्गपर्यंत वा तीसरा नरक
पर्यंत गमन करै है अर अन्य देवके लेगए सोलह्वां स्वर्गपर्यंत विहार करै हैं तातैं भी पूर्वोक्त प्रमाण स्पर्श संभवै है बहुरि तेजोलेश्याका मारणां-
तिकसमुद्घातविषै स्पर्श चौदह भागमै नव भाग किछू घाटि संभवै है । काहेतैं ? भवनत्रिक देव वा सौधर्मादिक च्यारि स्वर्गनिकेवासी देव
तीसरे नरक गए अर तहां ही मरण समुद्घात कीया बहुरि ते जीव आठवीं मुक्ति पृथ्वीविषै बादरपृथ्वीकायके जीव उपजते है तातै तहां
पर्यंत मरण समुद्घातरूप प्रदेशनिका विस्तारकरि दंड कीया । तिस आठईं पृथ्वीतै तीसरा नरक नव राजू है अर तहां पटलरहित पृथिवीकी
मोटाई घटावनी तातै किंचित् ऊन नव चौदह्वां भाग सभवै है। बहुरि तैजस समुद्घात अर आहारक समुद्घातविषै संख्यात घनांगुल प्रमाण
स्पर्श जानना जातै ए मनुष्य लोकविषै ही हो हैं बहुरि केवलिसमुद्घात इस लेश्यावालेके होना नाहीं । बहुरि उपपादविषै स्पर्श चौदह भागनि
विषै किछू घाटि डेढ़भागमात्र जानना सो मध्यलोकतै तेजोलेश्यानै मरिकरि सौधर्म ईशानका अंत पटलविषै उपजै तीहि अपेक्षा संभवै। इहां
कोऊ कहै कि तेजोलेश्याके उपपादविषै सनत्कुमार माहेद्रपर्यंत देवका स्पर्श पाइए है सो तीन राजू ऊचा तातै चौदह भागनिविषै किंचित् ऊन
तीन भाग क्यों न कहिए ? ताका समाधान—सौधर्म ईशानतै ऊपरि संख्यात योजन जाइ सनत्कुमार माहेन्द्रका प्रारंभ हो है तहां प्रथम पटल है
अर डेढ़ राजू जाइ अंतिम पटल है सो अन्त पटलविषै तेजोलेश्या नाहीं है ऐसा केई आचार्यनिका उपदेश है तातै अथवा चित्राभूमिविषैं तिष्ठ-
ता तिर्यच मनुष्यनिका उपपाद ईशान पर्यंत ही संभवै है तातैं किंचित् ऊन डेढ़ भागमात्र ही स्पर्श कह्या है। बहुरि गाथाविषै चकार कह्या है तातैं
तेजोलेश्याका उत्कृष्ट अशकरि मरैं तिनके सनत्कुमार माहेद्र स्वर्गका अंतका चक्र नामा इन्द्रकसबंधी श्रेणीबद्धविमाननिविषै उत्पत्ति केई आचार्य
कहे हैं तिनिका अभिप्रायकरि यथासंभवै तीन भागमात्र भी स्पर्श सभवै है किछू नियम नहीं। इस ही वास्ते सूत्रविषै चकार कह्या। गोमट्टसार
वडी टीका जीवकाण्ड मुद्रित पृष्ठ ६७६—६७७

पद्मलेश्यैर्मिथ्यादृष्ट्याद्यसंयतसम्यग्दृष्ट्यन्तैर्लोकस्यासंख्येयभागः अष्टौ चतुर्दशभागा वा देशोनाः संयतासंयतैर्लोकस्यासंख्येयभागः पञ्च चतुर्दशभागा वा देशोनाः ॥ प्रमत्ताप्रमत्तैर्लोकस्यासंख्येयभागः

पद्मलेश्यैः मिथ्यादृष्टि–आदि–असंयतसम्यग्दृष्टि-अन्तैः लोकस्य असंख्येयभागः	=पद्मलेश्यावाले मिथ्यादृष्टीसे असंयत चौथे गुणस्थानवर्तीयों =तक करि लोकका असंख्यातवा अंश (स्वस्थान अपेक्षासे) छुआ जाता है
वा चतुर्दश भागाः अष्टौ देशोनाः	=वा लोकत्रसनालके चौदहराजू हैं (सो) कुछ हीन आठ (राजू छुए जाते) हैं
संयतासंयतैः लोकस्य असंख्येयभागः	=(पद्मलेश्यावाले) संयमासंयमीयोंसे लोकका असंख्यातवा अंश (छुआ जाता) है
वा चतुर्दश भागाः पञ्च देशोनाः	=अथवा (लोकत्रसनालके) चौदहराजू हैं (सो) कुछ हीन पांच (राजू मारणांतिक समुद्घात और उपपादकी अपेक्षासे छुये जाते हैं) [जाता है)
प्रमत्त+अप्रमत्तैः लोकस्य असंख्येयभागः	=प्रमत्त अप्रमत्त गुणस्थानवालों करि लोकका असंख्यातवांभाग अंश (छुआ

(१) विहारवत्स्वस्थानवेदनाकषायवैक्रियिकसमुद्घातापेक्षया अष्टचतुर्दशभागाः ॥

विहारवत्स्वस्थान–वेदना–कषाय—	=परस्थान विहार (=विहारवत्स्वस्थान) वेदनासमुद्घात कषाय समुद्घात,
वैक्रियिक-समुद्घात-अपेक्षया अष्टचतुर्दश	=वैक्रियिक समुद्घात अपेक्षासे (लोकत्रसनालके) चौदह मेंसे आठ
भागाः ।	= राजू, (कुछ हीन, पद्मलेश्यावाले देवोका स्पर्शन हो सका है) अर्थात् प्रथम स्वर्गसे तीसरे नरक तक दो राजू हुये और पहिले स्वर्गसे अच्युत सोलहवां स्वर्गतक छहराजू ये हुये इसप्रकार आठ राजू भये ॥ " मारणांतिक समुद्घात विषैं भी तैसे ही किंचित् ऊन आठ चौदहवां भाग मात्र स्पर्श जानना जातैं पद्मलेश्यावाले भी देव पृथ्वी अप् वनस्पति विषैं उपजे है । गोम्मटसार पृष्ठ ६७७

(२) पद्मलेश्यादेशसंयतैः क्रियमाणमारणान्तिकापेक्षया पञ्चचतुर्दशभागाः सहस्रारकल्पादुपरि पद्मलेश्याभावात् ।

पद्मलेश्यादेशसंयतैः क्रियमाणमारणान्तिक+	=(पद्मलेश्यावाले) संयासंयमियोंके किये जानेवाले मारणांतिक समुद्घातकी
अपेक्षया चतुर्दश भागाः पञ्च	=विवक्षाकरि (लोकत्रसनाडीके) चौदहराजू हैं (सो) पांच (राजू कुछघाटि)

शुक्लेश्यैर्मिथ्यादृष्ट्यादिसंयतासंयतान्तैर्लोकस्यासंख्येयभागः षट् चतुर्दशभागा वा देशोनाः॥

शुक्ललेश्यैः ३ मिथ्यादृष्टि–आदि–संयतासंयत-अन्तैः ३ = शुक्ललेश्याके धारक मिथ्यादृष्टियोंसे संयमासंयमी पर्यंतोंकरि
लोकस्य ६ असंख्येय–भागः १ = लोकका असंख्यातवां अंश [स्पर्शा जाता] है अर्थात् "शुक्ललेश्यावाले
जीवनिके स्वस्थानस्वस्थानविषैं तेजोलेश्यावत् लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श है
वा * चतुर्दशभागाः १ षट् १ देश ऊनाः १ = वा [लोकत्रसनाडीके] चौदह [घन] राजू हैं सो कछु घाटि छः राजू स्पर्शे जाते हैं

सहस्रारकल्पात् ५ उपरि * पद्मलेश्या–अभावात् = सहस्रारकल्प (बारहवांस्वर्ग) से ऊपर पद्मलेश्याके न होनेके कारणसे स्पर्शे जाते हैं।

"उपपादविषे स्पर्श चौदह भागविषे पचभाग किछू घाटि जानना जातै पद्मलेश्या शतार सहश्रार पर्यंत संभवै हैं सो शतार सहस्रार मध्य-
लोकतै पांचराजू ऊची है।" गोम्मटसार मुद्रित पृष्ठ ९७८

(४) शुक्लेश्यादेशसंयतस्य मारणान्तिकापेक्षया षट्चतुर्दशभागकथनं सुगमम्। अच्युतकल्पादुपरि तस्योत्पत्त्यभावात्। इतरेषामपि मिथ्याद-
ष्ट्याद्यसंयतान्तानां षट्चतुर्दशभागा इति वचनात्, शुक्लेश्यादेवानां मध्यलोकादधो विहारो नास्तीति युक्त्याऽवगम्यते। अन्यथा अष्टौ चतुर्दश-
भागा इति कथयेरन् खलुशास्त्रकाराः। ननु तेषां मध्यलोकपर्यन्तमपि विहारो नास्ति। केवलं मारणान्तिकोपपादापेक्षया षट्चतुर्दशभागकथनमिति
च न मन्तव्यम्। सम्यङ्मिथ्यादृष्टेस्तद्भावात्॥ 'मिस्साहारस्सयया खवगा चडमाणपढमपुव्वा य। पढमुवसम्मा (पढमुवसमया) तमतमगुण-
पडिवण्णा य ण मरंति।" इति वचनेन, 'मरणंतसमुग्घादो वि य ण मिस्सम्हि' इति वचनेन च तदवगमः। लेखकदोषोऽयं षट्चतुर्दशभागा इति
न च शास्त्रकारवचनमिति च नाशङ्कनीयम्। नेमिचन्द्रसैद्धान्तिकचक्रवर्तिभिरपि लेश्याधिकारे तथैवोक्तत्वात्। "सुक्कस्स य तिट्ठाणे पढमो
छ च्चोद्दसा ६/१४ हीणा॥ णवरि समुग्घादम्मि य संखातीदा हवंति भागा वा '॥ १॥ सव्वो वा खलु लोगो ५ फासो होदित्ति णिद्दिट्ठो इति।
ननु पञ्चानुत्तरपर्यन्तं शुक्लेश्यासद्भावेन ततोऽधः शुक्लेश्याऽसंयतसम्यग्दृष्टिभिरुपपादपरिणतैः स्पृष्टत्वात् देशोनसप्तचतुर्दशभागा इति वचनं
युक्तं। न युक्त, मनुष्यक्षेत्रवर्तिमनुष्याणामेव तत्रोत्पत्तेः। ततः अच्युतानामपि मनुष्यक्षेत्रे एवोत्पत्तेर्लोकासंख्येयभागेऽन्तर्भावात्। एकरज्जुविष्कम्भे
सर्वत्र स्पर्शाभावात्। कल्पातीतानां विहाराभावाच्च। ननु "...सदर सहस्सारगो त्ति तिरियदुगं। तिरियाऊ उज्जोज अत्थि तदो णत्थि सदर-
चऊ" इति गोमट्टसारकर्मकाण्डबन्धोदयसत्वाधिकारगाथाया सहस्रारकल्पादुपरितनदेवानां तिर्यगायुष्यादिबन्धाभावकथनात्तेषां तिर्यक्षूत्पत्य-
भावोऽवगम्यते ? तथा च, मनुष्येष्वेवोत्पत्तावपि स्वयम्प्रभाचलबहिर्वर्तितिरश्चामच्युतपर्यन्तमुत्पत्तिसद्भावात्। अन्यथा सामान्यस्पर्शकथनावसरे
देशसंयतापेक्षया षट्चतुर्दशभागकथनानुपपत्तेर्लोकासंख्येयभागकथनप्रसङ्गात्, क्षायिकसम्यग्दृष्टिदेशसयतवत्, आनताद्यच्युतपर्यन्तदेवानां विहार
वत्त्वाच्च कल्पातीतानामेष क्रमो नास्तीति लोकासंख्येयभाग एवेत्यवगन्तव्यम्॥

अर्थात् उपपाद ('=पहले जो पर्याय धारता था ताको छांडि पहिले समय अन्य पर्यायरूप होइ अंतरालविषैं जो प्रवर्तना " उस अवस्था) में " बहुरि विहारवत्स्वस्थानविषैं अर वेदना कषाय वैक्रियिक मारणांतिक समुद्घातनिविषैं स्पर्श चौदह भागनिविषैं छह भाग किछू एक घाटि स्पर्श जानना। जातैं अच्युत स्वर्गके ऊपरि देवनिकै स्वस्थान छोडि अन्यत्र गमन नाहीं है तातैं अच्युत पर्यंत ही ग्रहण कीया " गोमट्टसार वृहत्टीका पृष्ठ मुद्रित ९७८, ९७९

शुक्ललेश्या —देशसयतस्य ३। मारणान्तिक—	=शुक्ल लेश्यावाले संयमासंयमियोंका (स्पर्शन) मारणांतिक समुद्घातकी
अपेक्षया ३। षट्—चतुर्दश-भाग —कथन ३।। सुगमं ३।।	=अपेक्षासे चौदह राजू (त्रसनाड़ी) मेंसे छह (राजू) का कथन स्पष्ट है
अच्युत—कल्पात् ५। उपरि * तस्य ६। उत्पत्ति-	=क्योंकि अच्युत सोलहवां स्वर्गसे ऊपर उस (देश संयमी) की उत्पत्ति
अभावात् ५।	=नही है अर्थात् मध्यलोकसे अच्युत सोलहवां स्वर्ग छह राजू है तहां तक ही पांचवा गुणस्थानवर्ती मरकर जन्म ले सकता है नव ग्रैवेयक और उनसे ऊपर नहीं ॥
इतरेषां ६। अपि मिथ्यादृष्टि-आदि-असंयत-अन्तानां ६।	=अन्य वा बचे हुये (शुक्ललेश्यावाले) मिथ्यादृष्टियोंसे असंयमी पर्यंतोंका भी (स्पर्शन)
षट्-चतुर्दशभागाः ३। इति वचनात् ५।।	=चौदह भागोंमेंसे छः भाग हैं इसी वाक्यसे
शुक्ललेश्यादेवानां ६। मध्यलोकात् ५। अधः * विहारः १।	=शुक्ललेश्याके धारक देवोंका मध्यलोकसे नीचे विहार वा गमन
न * अस्ति इति * युक्त्या ३।। अवगम्यते T अन्यथा *	=नहीं होता है ऐसा जुगत वा युक्तिसे जाना जाता है । नही तो (अर्थात् मध्यलोकसे नीचे शुक्ललेश्यावाले देवोंका गमन होता तो) स्पर्शनके
अष्टौ ३। चतुर्दशभागाः ३। इति	=आठ (राजू लोक त्रसनालके) चौदह राजुओंमेंसे होते हैं ऐसा
कथयेरन् T खलु * शास्त्रकाराः ३। ननु * तेषां ६।	=निश्चय वा अवश्य शास्त्रकार कहते। प्रश्न (= ननु) उन (शुक्ललेश्यावाले
मध्यलोक—पर्यन्तं ३।। अपि विहारः १। न * अस्ति T	=देवोंका मध्यलोक तक भी तो गमन नहीं है

केवलं ३।। मारणांतिक-उपपाद-अपेक्षया ३।। =(अतः) केवल मारणान्तिक समुद्घातकी और उपपाद (अवस्था) की अपेक्षासे

षट्-चतुर्दशभाग-कथनम् ३।। =चौदहभागोंमेंसे छहभागका कथन है

इति च न मन्तव्यम् ३।। सम्यङ्मिथ्यादृष्टेः ३। =यह मानने योग्य नहीं है क्योंकि मिश्र तीसरे गुणस्थानवर्तीके

तद्-अभावात् ३। =उन (मारणान्तिक समुद्घात और उपपाद समुद्घात) का अभाव है (जैसा कि निम्नलिखित आर्याछन्दोंसे प्रमाणित है)

मिस्साहारस्सयया खवगा चडमाणपढमपुव्वा य । पढमुवसम्मा (पढमुवसमया) तमतमगुणपडिवण्णा य ण मरंति ॥

मिश्राहाराश्रयकाः क्षपकाः चटमानप्रथमपूर्वाश्च । प्रथमोपशमसम्यक्त्वाः (प्रथमोपशमकाः) तमस्तमोगुणप्रतिपन्नाश्च न म्रियन्ते ॥

मिस्सा ३। (=मिश्राः ३।) =“मिश्रगुणस्थानवर्तिनः” (=मिस्सा ३।=मिश्राः ३।) वा मिश्रगुणस्थानवाले

आहारस्सयया ३। (=आहार-आश्रयकाः ३।) =आहारक मिश्रकाययोगी वा निवृत्यपर्याप्त अवस्थारूप मिश्रकाययोगी (अर्थात् जो शरीर पर्याप्ति पूरी करनेवाला है उस शरीर पर्याप्तिके पहिले जैसे औदारिक-मिश्र—वैक्रियिकमिश्र—आहारकमिश्र)

खवगा ३। (=क्षपकाः ३।) =क्षपकश्रेणिवाले (अर्थात् अपूर्वकरण आठवें गुणस्थानमें क्षपकश्रेणी चढ़नेवाले)

य* चडमाण—(=च चटमान-) =और (=य=च) (उपशमश्रेणी) चढे जानेमें (=चडमाण=आरूह्यमाण)

पढमपुव्वा ३। (प्रथमपूर्वाः ३।) =अपूर्वकरणका प्रथमभागवाले (=पढमपुव्वा ३।=प्रथमभाग-अपूर्वकरणाः) अर्थात् उपशमश्रेणी चढ़नेमें अपूर्वकरण नामा अठवें गुणस्थानके पहिले भागवाले

{ पढ़मुवसम्मा ३। (=प्रथमोपशमसम्यक्त्वा ३।) =प्रथम उपशम सम्यक्त्व संयुक्त वा प्रथम उपशमसम्यक्त्वके धारक,
{ पढ़मुवसमया ३। (=प्रथमोपशमकाः ३।) =अथवा पहिली वारके उपशम सम्यक्त्ववाले

य * तमतमगुण (=च तमोस्तमोगुण-) =और (=य) महातमप्रभा पृथिवी (=सातवें नरक) के (सम्यक्त्व) गुण

पडिवण्णा (=प्रतिपन्नाः ३।) =वाले “सासादन-मिश्र-असंयतनारकी (दूसरे-तीसरे चौथे गुणस्थानोंके)

ण * मरंति T (=न म्रियन्ते) =नहीं मरते है (सातवाँ नरकमें सम्यक्त्व सहित जीव मरता नहीं है)

इति * वचनेन ।। च	=इस वाक्य (गाथा) से और (=च)
य मरणंतसमुग्घादो । (=च मारणान्तिकसमुद्घातः ।	=पुन, (=य) मारणांतिक समुद्घात
वि * ण * मिस्सम्मि ।। (अपि * न * मिश्रे ।	=भी (=वि अपि) मिश्रगुणस्थानमें नहीं होता है
इति * वचनेन ।। तद्—अवगमः ।	=ऐसे वाक्यसे उनका ज्ञान (कि मिश्र तीसरे गुणस्थानमें मारणांतिक समुद्घात और उपपादका अभाव हैं) होता है
	(अपने उपर्युक्त प्रश्नको पुष्टि करते हुये कहता है कि तो)
लेखक—दोषः । अयम् ।	=लिपिकार वा लिखने वालेकी यह चूक या भूल है कि
	(संस्कृत सर्वार्थसिद्धि वृत्तिके लोकस्यासंख्येयभागः इस वाक्यके पश्चात्)
षट्चतुर्दशभागाः । इति न च शास्त्रकार-वचनं ।।	="षट् चतुर्दश भागाः ऐसा (वाक्य लिख दिया) है न कि शास्त्राकारका वचन
इति * च* न* आशङ्कनीयम् ।।	=ऐसा है (उत्तर) निश्चयसे (=च) यह बात आशंका योग्य नहीं है अर्थात् लेखककी भूल नहीं है
नेमिचन्द्रसैद्धान्तिकचक्रवर्तिभिः । अपि *	=क्योंकि नेमिचन्द्रसैद्धांतिक चक्रवर्ती द्वारा भी (गोम्मट्टसारके)
लेश्या—अधिकारे । तथा* एव* उक्तत्वात् ।।	=लेश्या अधिकारमे वैसा (=तथा) ही (निम्नआर्या छंदोमें) कहा गया है

सुक्कस्स य तिट्ठाणे छच्चोदसा हीणा ॥ णवरि समुग्घादम्मि य संखातीदा हवंति भागा वा । सव्वो वा खलु लोगो फासो होदित्ति णिद्दिट्ठो ५५०

शुक्लस्य च त्रिस्थाने प्रथमः षट्चतुर्दशहीनः ॥ नवरि समुद्घाते च संख्यातीता भवन्ति भागा वा । सर्वो वा खलु लोकः स्पर्शो भवतीति निर्दिष्टः

सुक्कस्स । य* (शुक्लस्य । च*)	=शुक्ल लेश्यावाले (जीव)न का भी (=च) है अर्थात् 'शुक्ल लेश्यावाले जीवनिके स्वस्थान स्वस्थानविषै तेजो लेश्यावत् लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श है"
	(और शुक्ल लेश्यावाले जीवोका) तीन
ति-(=त्रि)	=(१ विहारवत्स्थान २ वेदना-कषाय वैक्रियिक मारणाँतिक समुद्घात ३ उपपाद)
ट्ठाणे ।। पढमो । (स्थाने ।। प्रथमः ।)	=स्थानमें उत्कृष्ट (=पढमो प्रथम , स्पर्श)
छच्चोदसा । हीणा । (षट् चतुर्दशहीनाः ।)	=(लोक त्रसनालके) चौदह भागों (राजुओ) मेसे कुछ घाटि छह भाग है।

य * णवरि * समुग्घादम्मि ७।१ (च * केवलसमुद्घाते ७।१) =और केवल समुद्घातमें अर्थात् सयोग केवलीके प्रतर समुद्घातमें
संखातीदा १।३ भागा १।३ वा * (= संख—अतीताः १।३ भागाः १।३ वा *) =(लोकके) संख्यारहित भाग अर्थात् असंख्याते भाग (स्पर्शमें)
हवति T वा सव्वो १।१ खलु* (=भवन्ति वा सर्वः १।१ खलु) =होते हैं अथवा (= वा) नियमसे (=खलु) सब
लोगो १।१ फासो १।१ होदि T (लोकः १।१ स्पर्शः १।१ भवति T) =लोक (लोकपूरण समुद्घातमें) होना है
इत्ति (इदि) * णिदिट्ठो १।१ (इति* निर्दिष्टः १।१) =इसप्रकार कथन किया गया है ॥ (णवरि प्राकृतका अव्यय है अर्थ केवल है) प्रथम 'वा' पाद पूरणके लिये है। हमने आवश्यकता अनुसार शब्दशः स्पष्ट अर्थ किया है ॥ विशेष जानने लिये इसी अनुवादका पृष्ठ ११६ से १२१ तक देखो ।

मिथ्यादृष्टि प्रथम गुणस्थानसे संयतासंयत पांचवा गुणस्थान तकके शुक्लेश्यावाले जीवोंके (१) स्वस्थानस्वस्थानमें स्पर्श (=स्वस्थान विहार अपेक्षासे स्पर्श) (२) विहारवत्स्वस्थानमे स्पर्श (=परस्थान विहार अपेक्षासे स्पर्श (३) आहारक समुद्घातमें स्पर्श (४) तैजस समुद्घात में स्पर्श (५) केवल समुद्घातमें स्पर्श (६) उपपाद अवस्थामें स्पर्श (७) मारणांतिक समुद्घातमे स्पर्श (८) कषाय समुद्घातमें स्पर्श (९) वेदना समुद्घातमें स्पर्श (१०) वैक्रियिक समुद्घातमें स्पर्शमेंसे कौन कौन किस किस पांचों गुणस्थानवर्तियोंमेंसे होते हैं उसका मानचित्र नीचे देते है—

शुक्लेश्यावालके गुणस्थान	आहारक स० तैजस स० केवल समुद्घात	स्वस्थान-स्वस्थान	विहारवत्स्वस्थान, वेदना कषाय-वैक्रियिक समुद्घात	उपपाद मारणांतिक समुद्घात
मिथ्या० शुक्ल	कोई भी नहीं	लोकका असंख्यातवांभाग	उत्कृष्ट छह राजूसे कुछहीन	उत्कृष्ट छहराजूसे कुछ बाटि
सासा० शुक्ल०	,, ,,	,, ,,	,, ,,	,,
मिश्र० शुक्ल०	,, ,,	,, ,,	,, ,,	,,
असंयत शुक्ल०	,, ,,	,, ,,	,, ,,	,,
देशसंयत शुक्ल०	,, ,,	,, ,,	?	,,

हमने यह मानचित्र "सुक्कस्स य तिट्ठाणे इत्यादि गोमट्टसारकी ५४६ गाथाके अनुसार बनाया है। पाठकगण उक्त गाथाके अर्थसे मिलान करले" (देखो टोडरमलजीकृत गोमट्टसार मुद्रित पृष्ठ ६७८–६७६ और खूबचंद्रजी कृत गोम्मट्टसार गाथा ५४८ पृष्ठ १६७ ।

ननु * पञ्च-अनुत्तर-	= तर्क—पांच (विजय-वैजयन्त-जयंत-अपराजित-सर्वार्थसिद्धि) अनुत्तर
पर्यन्तं २/१।। शुक्ललेश्या-सद्भावेन ३/१। ततः * अधः*	= (विमान) तक शुक्ललेश्याके अस्तित्वसे तिन (पंचानुत्तर) से नीचे
शुक्ललेश्या असंयतसम्यग्दृष्टिभिः ३/१।	= शुक्ललेश्याके धारक असंयत सम्यग्दृष्टि (चौथेगुणस्थानवर्ती) करि
उपपादपरिणतैः ३/१। स्पृष्टत्वात् ५/१।। देशोन-	= उपपाद (अवस्था) के परिणमन द्वारा स्पर्शन करनेसे कुछ घाटि
सप्तचतुर्दशभागाः १/१। इति * वचनं १/१।।	= चौदहमेंसे सात राजू होते हैं ऐसा वाक्य (उनके स्पर्शके संबंधमें)
युक्तं १/१।। न युक्तं १/१।। मनुष्यक्षेत्र-	= होना चाहिये (= युक्त)। (उत्तर) न होना चाहिये। क्योंकि मनुष्यक्षेत्र(ढाईद्वीप)के
वर्तिमनुष्याणाम् ६/१। एव * तत्र * उत्पत्तेः ५/१।। ततः *	= रहनेवाले मनुष्यकी ही तहां (पांच विमानोमें) उत्पत्ति है। तहां (पंचानुत्तर)से
प्रच्युतानाम् ६/१। अपि* मनुष्य-क्षेत्रे ७/१।। एव उत्पत्तेः ५/१।।	= च्युत होनेवाले देवोंका भी ढाई द्वीपमें ही (मनुष्यका) जन्म होनेसे
लोक-असंख्येय-भागे ७/१। अन्तर्भावात् ५/१।	= लोकके असंख्यात भागमें (उनका स्पर्शन) गर्भित हो जाता है।
एकरज्जु-विष्कम्भे ७/१। सर्वत्र* स्पर्श अभावात् ५/१।	= इससे एकराजूके विस्तारमे सवस्थानमें स्पर्श नहीं होता है
कल्प-अतीतानां ६/१।	= कल्पसे ऊपर नवग्रैवेयक-नवअनुदिश पंचानुत्तरके (रहनेवालोंके)
विहार-अभावात् ५/१। च	= गमनका अभाव भी है (= च)। आनतसे सर्वार्थसिद्धितकका देव मनुष्य ही होता है। (नव अनुदिश और पांच अनुत्तरवासी देव सब असंयतसम्यग्दृष्टि होते हैं)

ननु—"कप्पत्थीसु ण तित्थ सदरसहस्सारगोत्ति तिरियदुगं। तिरियाऊ उज्जोवो अत्थि तदो णत्थि सदरचऊ ॥ ११२ ॥

प्रश्न—कल्पस्त्रीषु न तीर्थं शतारसहस्रारग इति तिर्यग्द्विकम्। तिर्यगायुः उद्योतः अस्ति ततो नास्ति शतारचतुष्कम् ॥ ११२ ॥

कप्पत्थीसु ७/१।। ण* तित्थ १/१।। (= कल्पस्त्रीषु ७/१।। न तीर्थं १/१।।)	= (प्रश्न) कल्प (वासिनी) स्त्रियोंमें तीर्थंकर (प्रकृतिका बंध) नहीं होता है
सदरसहस्सारगो १/१। (= शतारसहस्रारगः १/१।)	= शतार-सहस्रार (ग्यारहवां बारहवां स्वर्ग) के रहने वालों
इति * तिरिय-दुगं १/१।। (इति* तिर्यग्द्विकम् १/१।।)	= तक (= इति) तिर्यंच-युग्म वा तिर्यंचयुगल अर्थात् तिर्यंचगति तिर्यंचगत्यानुपूर्वी (= तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी—तिर्यंचकी आयु पूर्ण होनेपर आत्मा शरीरसे पृथक् हो कर किसी भव प्रति जानेको सन्मुख हो उस

समय मार्गमें जिसके उदयसे आत्माके प्रदेशोंका पहिले तिर्यंच शरीरके आकार रहना । इस कर्मका उदय विग्रह गतिमें ही होता है और जघन्य काल एक समय मध्यम दो समय और उत्कृष्ट तीन समयमात्र होता है) 'इति' तक-समाप्ति अर्थमें है

तिरयाऊ ॥ उज्जोवो ॥ (=तिर्यगायुः ॥ उद्योतः ॥ = तिर्यंच आयु (और) उद्योत (प्रकृतियोंका बन्ध)

अत्थि T तदो * सदर- (अस्ति ततः शतार-) = होता है । तिन (शतार-सहस्रार स्वर्गों)से (ऊपर) शतार

चऊ ॥ (=चतुष्कम् ॥) = चोकडी (अर्थात् शतार युगल तक बंधनेवाली चार तिर्यंचगति तिर्यंचगत्यानुपूर्वी तिर्यंच आयु और उद्योत नाम कर्मकी प्रकृतियें)

ण * अत्थि T (न * अस्ति T) = नहीं होती हैं इस (गोमटसारके कर्मकांडकी ११२ वीं गाथा) से

सहस्रारकल्पात् ॥ उपरितन—देवानां ॥ तिर्यग्- = सहस्रार (बारहवाँ) स्वर्गसे ऊपर रहनेवाले देवोंके तिर्यंच

आयुष्य—आदि—बन्ध—अभाव- = आयु तिर्यंचगति तिर्यंचगत्यानुपूर्वी और उद्योत (प्रकृतियोंके) बन्ध न होनेके

कथनात् ॥ तेषां ॥ तिर्यक्षु ॥ = उपदेशसे तिन (सहस्रार बारहवां स्वर्गसे ऊपरवालो) का तिर्यंचोंमें

उत्पत्ति—अभावः ॥ अवगम्यते T = उपजनेका अभाव जाना जाता है ॥ अर्थात् बारहवां स्वर्गसे ऊपरका देव ढाई द्वीपमें मनुष्य ही होता है । शिष्यके प्रश्न करने पर कि उपपादकरि पांच अनुत्तर तक कुछ घाटि सात राजू स्पर्शने योग्य कहना था उत्तर था कि-नहीं, क्योंकि अढ़ाई द्वीप (मनुष्य क्षेत्र)के मनुष्य ही सोलह स्वर्गसे ऊपर उत्पन्न होते हैं और सोलह स्वर्गसे ऊपरके देव मनुष्य क्षेत्र हीमें जन्म लेते हैं और भ्रमण भी वेकरते नहीं इससे उनका स्पर्शन असंख्यात भागमें गर्भित हो गया ॥ शिष्यने यह सुनकर कि सोलह स्वर्ग से ऊपरके देव मनुष्य क्षेत्रमें उत्पन्न होते है प्रश्न कर दिया कि बारह स्वर्गसे ऊपरके सर्व देव ही मनुष्य क्षेत्रमें जन्म लेते हैं तौ १३ स्वर्गसे सोलहवें स्वर्ग तकके उपपाद विवक्षासे चौदह भागोंमेंसे छह भाग न ठहरे ॥ अब उत्तरमें आचार्य कहते हैं कि—

तथा च *	=उसपर भी (=तथा च) अर्थात् (सहस्रारसे ऊपरके देवोंका मनुष्यक्षेत्रमें)
मनुष्येषु ७। एव * उत्पत्तौ ७।। अपि स्वयंप्रभाचल-	=मनुष्योंमें ही (=एव) जन्म होनेपर भी स्वयंप्रभाचलसे
बहिस् *	=बाहिर
वर्ति-तिरश्चाम् ६। अच्युत-पर्यन्तम् २।। उत्पत्तिसद्भावात्	=रहनेवाले तिर्यंचोंका अच्युत (सोलहवे स्वर्ग) तक जन्म होता है अर्थात् बारहवें स्वर्गसे ऊपर आनत स्वर्गके देवका मनुष्यमें ही जन्म लेनेसे यह न समझना चाहिये कि मध्यलोकका तिर्यंच भी बारहवां स्वर्गसे ऊपरका देव नहीं हो सक्ता है यहा मध्यलोकका तिर्यंच सोलहवां स्वर्ग तकका देव हो सक्ता है इस अपेक्षासे उपपाद अवस्थामें चोदहराजूमेसे छहराजू स्पर्शन बनता है ॥
अन्यथा *	=उलटा माननेमे (यदि बाह्यके तिर्यंचोंका जन्म १३ से १६ तक न हो तो)
सामान्य-स्पर्श-कथन-अवसरे ७।	=संक्षेपसे (गुणस्थान अपेक्षासे कथित) स्पर्शनके कथनके प्रसंगमें
देशसंयत-अपेक्षया ३।।	=(देखो इस प्रतिका पृष्ठ १३६ पंक्ति २ से ८ तक) संयतासंयतकी अपेक्षासे
षट्चतुर्दशभाग कथन-अनुपपत्तेः ५।।	=चौदहराजूमेंसे छह (राजूके स्पर्श) का उपदेश न बननेसे
क्षायिकसम्यग्दृष्टि-देशसंयतवत् *	=क्षायिक सम्यग्दृष्टि देशसंयमियोके सदृश (जो ढ़ाईद्वीप मनुष्य क्षेत्रमें हैं)
लोक-असंख्येयभाग-कथन-प्रसङ्गात् ५।	=(केवल) लोकके असंख्यातवे भाग के स्पर्शनके कथनका प्रसंग आता है (उपपाद और मारणांतिक समुद्घातकी अपेक्षासे छहराजूका स्पर्शन जो गुणस्थानके कथनमे सयतासयत गुणस्थानवर्तीका पृष्ठ १३६ में कहा है वह नहीं ठहरता है जो संयतासयत गुणस्थानवर्ती तिर्यंच स्वयम्भूरमण समुद्र तक न होते जिस स्वयंभूरमणका व्यास सुमेरुसे होता हुआ एकराजूसे कुछ न्यून लम्बाईमें है
च-आनत-आदि-	और (=च) आनत तेरहवां प्राणत चौदहवां आरण पन्द्रहवां स्वर्ग और
अच्युत-पर्यंत देवानां ६।	अच्युत सोलहवां स्वर्ग तकके शुक्ललेश्या धारक देवोके विहारवत् (स्पर्शन) ठहरता है (मध्यलोकसे १३वां १४वां १५वां १६वां स्वर्ग छठवें राजूमें है, शुक्ललेश्यावाले असंयत देव जो मध्यलोकसे नीचे नहीं जाते हैं परस्थान विहार अपेक्षा कुछ हीन छहराजू स्पर्शते हैं। देवोंके प्रथमसे चार तक गुणस्थान हो सके हैं)

प्रमत्तादिसयोगकेवल्यन्तानां अलेश्यानां च सामान्योक्तं स्पर्शनम् ॥ (११) भव्यानुवादेन-भव्यानां मिथ्यादृष्ट्याद्ययोगकेवल्यन्तानां समान्योक्तं स्पर्शनम्। अभव्यैः सर्वलोकः स्पृष्टः ॥ [१२] सम्यक्त्वानुवादेन-क्षायिकसम्यग्दृष्टीनामसंयतसम्यग्दृष्ट्याद्ययोगकेवल्यन्तानां सामान्योक्तम्।

प्रमत्त-आदि-सयोगकेवलि-अन्तानाम् ३।	= (शुक्ललेश्यावाले) प्रमत्त गुणस्थानवर्तीनिसे सयोगकेवली तकोंका
अलेश्यानाम् ३। च स्पर्शनम् १॥ सामान्य-	= और लेश्यारहित [= अयोगकेवलियों] का स्पर्शन सामान्य (प्रकरण)में
उक्तम् १॥	= कथित (गुणस्थानवत्) है [पृष्ठ १३६,११५ से १२० तक इसी पुस्तक का देखो)
भव्य-अनुवादेन ३। भव्यानाम् ३। मिथ्यादृष्टि-आदि-	= (११) भव्योंके कथनके अनुसारकरि भव्य मिथ्यादृष्टिसे लेकर
अयोगकेवलि-अन्तानां ३। मामान्य उक्तं १॥	= अयोगकेवली पर्यन्तोंका संक्षेप [प्रसंग] में कहा हुआ (गुणस्थानवत्)
स्पर्शनम् १॥	= स्पर्शन है। पृष्ठ ११५से १२० तक, पृष्ठ १३२ से १३६ तक इसी प्रतिका देखो।
अभव्यैः ३। सर्वलोकः १। स्पृष्टः १। सम्यक्त्व-अनुवादेन ३।	= अभव्य करि समस्तलोक छुआजाता है। [१२] सम्यग्दर्शनकी अपेक्षासे
क्षायिकसम्यग्दृष्टीनाम् ३। असंयतसम्यग्दृष्टि-आदि-	= क्षायिक सम्यग्दर्शनवाले असंयत सम्यग्दृष्टि [चौथे गुणस्थानवाले) निसे
अयोगकेवलि-अन्तानाम् ३। सामान्य-उक्तम् १॥	= अयोगकेवली तकोंका (स्पर्शन) संक्षेप (प्रकरण) में कहा हुआ (गुणस्थानवत्) है। पृष्ठ ११५ से १२० तक, पृष्ठ १३५, १३६ इसी पुस्तक का देखो।

कल्प अतीतानाम् ३। एप. ३। क्रमः ३। न ७अस्ति	= (सोलह) स्वर्ग (= कल्पाः) से ऊपरके रहनेवालोंके यह नियम (=क्रमः) नहीं है अर्थात् नवग्रैवेयकोंमें-नव अनुदिशोंमें-पांचअनुत्तरोंमें मनुष्यक्षेत्र (ढाई-द्वीप)से मनुष्य ही जन्म लेते हैं और वहांसे च्युत होकर अढाईद्वीपमें मनुष्य ही होते हैं ॥ उक्त स्थानोंसे विहारका अभाव है
इति लोक असंख्येय-भागः ३। एव इति अवगन्तव्यं १॥	= ऐसे लोकके असंख्यातवेंभाग (का स्पर्श) ही (इनके) जानना चाहिये

किंतु संयतासंयतानां लोकस्यासंख्येयभागः।

किंतु * संयतासंयतानां । लोकस्य ।	=परंतु (क्षायिक सम्यग्दृष्टि) देश संयमियोंका (स्पर्श) लोकका
असंख्येयभागः ।	= असंख्यातवां भाग है।

(१) प्राक्सामान्यकथनावसरे देशसयतस्य षट् चतुर्दशभागा इत्युक्तम्। इदानीं क्षायिकसम्यग्दृष्टिदेशसंयतापेक्षया लोकासंख्येयभाग इति कथ्यते। तत्कुत इति चेत्—मानुषोत्तरपर्वतवहिर्वर्तितिर्यक्षु सर्वत्र क्षायिकसम्यक्त्वाभावात्। तत्र तदभावश्च "दंसणमोहक्खवणापट्ठवगो कम्मभूमिजो मणुसो॥ तित्थयरपादमूले केवलिसुदकेवलीमूले॥" इत्यागमादवगम्यते। प्राग्बद्धतिर्यगायुषां पश्चाद्गृहीतक्षायिकसम्यक्त्वानामपि उत्तमभोगभूमितिर्यक्ष्वेवोत्पत्तेस्तत्र क्षायिकसम्यक्त्वाभाव एव " चत्तारि वि खेत्ताइं आउगबंधेण होइ सम्मत्तं। अणुवदमहव्वदाइं ण लहइ देवाउगमोत्तु॥ इति वचनात्तिर्यगायुर्बन्धेऽपि सम्यक्त्वग्रहणमस्तीत्यवगन्तव्यम्॥

प्राक्सामान्यकथन-अवसरे । देशसंयतस्य ।	=पहिले सक्षेप व्याख्यानके प्रसंगविषै संयमासंयमीयोंका (स्पर्शन)
षट् । चतुर्दश । भागाः । इति उक्तम् ।।	=(लोकत्रसनालके) चौदह राजू हैं (सो) छह (राजू) ऐसा कहा गया है
इदानीम् * क्षायिकसम्यग्दृष्टिदेशसंयत + अपेक्षया ।।	=अब क्षायिक सम्यग्दर्शनवाले संयमासयमीयोकी विवक्षासे
लोक-असंख्येयभागः । इति कथ्यते ।	=लोकका असंख्यातवां अश (का स्पर्शन है) ऐसा कहा गया है
तत् + कुत * इति* चेत्*	=सो (लोकका असंख्यातवांभाग) क्योंकर है ? ऐसे सदेह (=चेत्, होनेपर कहते हैं)
मानुषोत्तरपर्वत—	=मानुषोत्तर पहाडके (जो पुष्कर द्वीपके मध्य गोलाकार पड़कर उसके
वहिर्वर्तितिर्यक्षु । सर्वत्र *	=दो भाग करता है) वाहिर रहनेवाले तिर्यचनिविषे सब स्थानोंमे
क्षायिकसम्यक्त्व + अभावात् । तत्र*	=क्षायिक सम्यग्दर्शनके न होनेसे तहा (मानुषोत्तर पर्वतके वाह्य)
तद्-अ-भावः । च*	=उस (क्षायिक सम्यग्दृष्टी देशसयमी) का भी (=च) अभाव है।
	जैसा कि—नीचेकी गाथासे प्रगट है॥

दंसणमोहक्खवणापट्ठवगो कम्मभूमिजो मणुसो। तित्थयरपादमूले केवलिसुदकेवलीमूले॥ इसकी संस्कृत छाया नीचे लिखते हैं—

दर्शनमोहक्षपणाप्रस्थापकः कर्मभूमिजः मनुष्यः तीर्थकरपादमूले केवलि-श्रुतकेवलिमूले॥ इसका निम्न लिखित शब्दशः अनुवाद—

दंसणमोह- (=दर्शनमोह-)	=दर्शन मोह (की मिथ्यात्व प्रकृति- सम्यक्त्वप्रकृति-सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति) के

क्खवणा-पट्ठवगो १ा (क्षपणा-प्रस्थापकः १ा) =क्षपणका वा नाशका प्रारम्भ करनेवाला
कम्मभूमिजो १ा मणुसो १ा (=कर्मभूमिजः १ा मनुष्यः १ा)=कर्मभूमिका उत्पन्न हुवा मनुष्य वा पुरुष
तित्थयर पादमूले ७ाा (तीर्थकर—पादमूले ७ाा) =तीर्थकरके चरणोके समीपमें (=मूले ७ाा) और
केवलि सुदकेवली मूले ७ाा (केवलि-श्रुतकेवलिमूले ७ाा) =केवली (सयोग केवली) श्रुतकेवलीके निकटमें (=मूले ७ाा) होता है अर्थात् दर्शन मोहनीय कर्मके क्षय होनेका जो क्रम है उसका प्रारम्भ तीर्थकर, केवली अथवा श्रुतकेवलीके समीप ही होता है और उस दर्शन मोहका प्रारम्भक केवल कर्मभूमिका उत्पन्न हुआ मनुष्य ही होता है ॥ यदि पूर्ण क्षय होनेसे पहिले ही प्रारम्भक मृत्युको प्राप्त हो जाय तो उस क्षपणकी समाप्ति चारों गतिमेंसे किसी भी गतिमे हो सक्ती है ॥ गोम्मटसारजीमे यह गाथा ऐसे हैं कि—

(गाथा) दंसणमोहक्खवणापट्ठवगो कम्मभूमिजादो हु । मणुसो केवलिमूले णिट्ठवगो होदि सव्वत्थ ॥ ६४८ ॥

(छाया) दर्शनमोहक्षपणाप्रस्थापकः कर्मभूमिजातो हि मनुष्यः केवलिमूले निष्ठापको भवति सर्वत्र ॥ ६४८ ॥

(अर्थ) दर्शन मोहनीय कर्मके नाशका प्रारंभ करनेहारा कर्मभूमिका जन्मा पुरुष ही केवली वा श्रुतकेवलीके निकटमें होता है । (यदि क्षयकी समाप्तिके प्रथम वह मनुष्य मर जावै तो क्षयकी समाप्ति सर्व गतिमें हो सक्ती है) दर्शन मोहके क्षयका "विधान होतें होतै मरण हो जाय तौ जहां सपूर्ण दर्शन मोहके नाशका कार्य होइ निवरै तहां ताकौं निष्ठापक कहिये" सो निष्ठापक "च्यारो गतिविषै हो है" गोम्मटसारजी मुद्रित पृष्ठ १०९८—१०९९ जीवकांड ॥

इति * आगमात् ५ा अवगम्यते T प्राक् बद्ध— =ऐसा शास्त्रसे जाना जाता है (क्षायिक सम्यक्त्व प्रारंभ होनेसे) पहिले बांधी हुई
तिर्यग्-आयुषां ६ा पश्चात् * गृहीत—क्षायिक— =तिर्यंच आयुके पीछे प्राप्त हुये क्षायिक
सम्यक्त्वानाम् ६ा अपि उत्कृष्टभोगभूमि-तिर्यक्षु ७ा =सम्यक्त्ववालोके भी उत्कृष्ट भोगभूमिके तिर्यंचोमे
एव * उत्पत्ते ६ा तत्र * क्षायिक— =ही जन्म होने (के हेतु) से तहां (मानुषोत्तर पर्वतके बाहिर) क्षायिक
सम्यक्त्व-अभावः १ा एव * =सम्यग्दर्शनका अभाव ही है । किसी जीवने तिर्यंच आयु बांधी हो पश्चात् क्षायिक-सम्यक्त्व हो तो वह सम्यक्त्वके कारण उत्तम भोगभूमिमें (ढाई द्वीपमें ही) जन्म लेगा ।

आयुबंधने पीछे सम्यक्त्वका होना निम्न गोमटसारकी गाथासे ज्ञात होता है—

चत्तारि वि खेत्ताइं आउगवंधेण होइ सम्मत्त। अणुवदमहव्वदाइं ण लहइ देवाउगं मोत्तुं ॥ गोम्मटसारजी कर्मकांड ३३४, जीवकांड ६५६।

चत्वारि अपि क्षेत्राणि आयुष्कबन्धेन भवति सम्यक्त्वं। अणुव्रतमहाव्रतानि न लभते देवायुष्कं मुक्त्वा ॥

चत्तारि ३।११ खेत्ताइं ३।११ (=चत्वारि ३।११ क्षेत्राणि ३।१ =चारो गतियोंको (=क्षेत्राणि ३।११)

आयुगवंधेण ३।१ वि* (=आयुष्क-वन्धेन ३।१ अपि*) =आयुका वंध होकरि भी (=अपि)

होइ T सम्मत्तं १।११ अणुवद-(=भवति सम्यक्त्वं अणुव्रत)=सम्यक्त्व (जिसके पहले किसी आयुका बंध हो चुका है) हो सक्ता है। अणुव्रत

महव्वदाइं ३।११ लहइ T (=महाव्रतानि ३।११ लभते T) =और महाव्रतोंको प्राप्त वा धारण

देव-आउगं २।११ मोत्तुं-(=देव-आयुष्कं २।११ मुक्त्वा-) =देव आयुके बंधको छोडकर वा वर्जकर नहीं कर सक्ता है अर्थात् चारो गतिमेंसे किसी भी गतिमें रहनेवाले जीवके चार प्रकारकी आयुमेंसे किसी भी आयुका बंध होनेपर भी सम्यक्त्वकी उत्पत्ति हो सक्ती है किन्तु सम्यक्त्व ग्रहण होनेके अनन्तर यदि तिर्यंच हो तो अणुव्रत और मनुष्य हो तो अणुव्रत वा महाव्रत उसी जीवके हो सकते हैं जिसके चार आयुकर्मोंमेंसे केवल देवायुका बंध हुआ हो। नरकायु तिर्यगायु मनुष्य आयुका बंध करनेवाले सम्यग्दृष्टिके अणुव्रत वा महाव्रत नहीं होते क्योंकि वहाँ व्रतके कारण भूत विशुद्ध परिणाम नहीं होसक्ते हैं॥

इति * वचनात् ५।११ तिर्यक्-आयुस्-वन्धे ७।१ अपि * =(आगमके) ऐसे (उपर्युक्त) वाक्यसे तिर्यंचकी आयुके वंध जाने पर भी

सम्यक्त्व-ग्रहणम् १।११ अस्ति-इति--अवगन्तव्यम् १।११ =सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति होती है इसप्रकार जानना चाहिये॥

(१) चत्तारि—खत्ताइ। चतुर् शब्दकी द्वितीया वहुवचन चउरो, चत्तारो, चत्तारि है (प्रा० सु० पृ० १८०) क्षेत्रशब्दकी द्वितीया वहुवचन नपुसक लिंग खेत्ताइं है (प्रा० सु० पृ० १७८) गोम्मटसारकी तीन प्रतियोंमें इनकी संस्कृत छाया भी चत्वारि-क्षेत्राणि है। वेही हमने लिखी हैं अनुवाद भी शब्दशः द्वितीयामें किया है। किसी किसी प्रतिमें चतुर्णाम्, क्षेत्रणाम, षष्ठीविभक्ति-वहुवचन नपुंसक लिंगमें चत्तारि खेत्ताइंकी संस्कृत छाया लिखी है वह समझमें नहीं आई। अनुवाद षष्ठीविभक्तिमें भी बन जाता है क्योंकि हिंदी अनुवाद प्रायः षष्ठी-द्वितीया दोनोंमें लगभग एकसा होता है॥

क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टीनां सामान्योक्तम् ॥ औपशमिकसम्यक्त्वानामसंयतसम्यग्दृष्टीनां सामान्योक्तम्। शेषाणां

क्षायोपशमिक-सम्यग्दृष्टीनां ६। = वेदकसम्यग्दर्शनवालोंका (जो असंयतसे अप्रमत्त गुणस्थानतक हैं)

सामान्य-उक्तम् १।। = संक्षेप [प्रसंग] में कहा हुआ [गुणस्थानवत् स्पर्शन] है अर्थात् (१) असंयत क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टिका (स्वस्थान विहार अपेक्षासे) लोकका असंख्यातवां भाग है अथवा लोक त्रसनालके चौदहभागोंमेंसे आठ भाग कुछ हीन है जबकि असंयत गुणस्थानवर्ती वेदक सम्यक्त्वका धारक देव अच्युत सोलहवें स्वर्गसे तीसरे नरक तक विहार करता है ॥ अच्युतस्वर्गसे मध्यलोक छहराजू है मध्यलोकसे तीसरा नरक दो राजू है ऐसे आठ राजू हुये ॥ १३५ पृष्ठानुसार [२] संयतासंयत वेदक सम्यक्त्ववालोंसे स्वस्थान विहारकी अपेक्षासे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया जाता है अथवा चौदहराजू लोकत्रसनालमेंसे कुछ हीन छहराजू मारणांतिक समुद्घात अपेक्षासे स्वयंप्रभाचल पर्वतके बाहिरके तिर्यंचोंकी उत्पत्ति सोलहवें अच्युत स्वर्गतक होनेके कारणसे छुए जाते हैं (३) प्रमत्तसंयत वेदक सम्यक्त्ववालोंका और अप्रमत्त वेदक सम्यग्दर्शनवालोंका स्पर्शन पृष्ठ १३६ के अनुकूल क्षेत्रसदृश है जो पृष्ठ ११६ के अनुसार लोकका असंख्यातवा भाग [स्पर्शन] होता है ॥

औपशमिकसम्यक्त्वानां ६। = उपशम सम्यग्दर्शनवाले

असंयतसम्यग्दृष्टीनां ६। = असंयत सम्यग्दृष्टियोंका

सामान्य-उक्तम् १।। = संक्षेप प्रकरणमें कथित (गुणस्थानवत् स्पर्शन) है अर्थात् १३५ पृष्ठके अनुसार लोकके असंख्यातवां भाग स्वस्थान विहार अपेक्षासे है और परस्थान विहार अपेक्षासे कुछ हीन आठराजू (जबकि अच्युत सोलहवां स्वर्गका देव तीसरे नरक तक गमन करता है पृष्ठ १३५) स्पर्शन होता है ॥

शेषाणाम् ६। = (उपशम सम्यग्दर्शनके) शेष पांचवां से ग्यारहवां गुणस्थान तकका

(१) शेषेणां लोकासंखेयभाग इत्यनेन उपशमसम्यग्दृष्टिदेशसंयतापेक्षयाऽपि लोकासंख्येयभागकथनान्मनुष्यक्षेत्रबहिर्वर्त्युपशमसम्यग्दृष्टीनां

लोकस्यासंख्येयभागः ।

लोकस्य ६। असंख्येयभागः १।	=(स्पर्शन) लोकका असंख्यातवां अंश है

मरणरहितानां मारणान्तिकभावोऽप्यवगम्यते । अन्यथा तदपेक्षया षट् चतुर्दशभागा इति कथयन्ति । मनुष्यक्षेत्रवर्तिद्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टीनां मरणमस्ति । मारणान्तिकोऽस्ति नास्तीत्यत्र नास्माकं निश्चयः । उपदेशाभावात् । यद्यस्ति तदपिलोकासंख्येयभागेऽन्तर्भावः । मनुष्यक्षेत्राद्बहिरभावात् ॥

शेषाणाम् ६।	=(उपशम सम्यक्त्वके) बचे हुये (गुणस्थानवालेनि)का (स्पर्शन)
लोक असंख्येयभागः १। इति* अनेन ३।	=लोकका असंख्यातवां खंड है ऐसे इस (वाक्य) करि
उपशमसम्यग्दृष्टि-देशसंयत + अपेक्षया ३।। अपि*	=उपशम सम्यग्दर्शनवाले संयमासंयमीनकी विवक्षासे भी
लोक-असंख्येयभागकथनात् ५।	=लोकके असंख्यातवां भागके व्याख्यानसे
मनुष्यक्षेत्रबहिर् * वर्ति-उपशमसम्यग्दृष्टीनाम् ६।	=मनुष्य क्षेत्र (अढाई द्वीप) से बाह्य रहनेवाले उपशम सम्यग्दर्शनवाले
मरणरहितानाम् ६। मारणान्तिक-अभावः १। अपि *	=मृत्यु वर्जितनके मारणांतिक समुद्घातका न होना भी
अवगम्यते T अन्यथा *	=जाना जाता है । दूसरे प्रकार(यदि मारणांतिक समुद्घातका होना माना जाय तो)
तद्-अपेक्षया ३।	=उस (मारणांतिक समुद्घातकी) अपेक्षासे
षट् १। चतुर्दश १। भागा १। इति* कथयन्ति T	=(लोक त्रसनालके) चौदह राजू हैं (सो) छह (राजू छुये जाते) हैं ऐसा कहते हैं पृष्ठ १३६ इसी पुस्तकका देखो ।
मनुष्यक्षेत्रवर्तिन्-द्वितीय-उपशमसम्यग्दृष्टीनाम् ६।	=अढाई द्वीपमे रहनेवाले द्वितीय उपशम सम्यग्दर्शनके धारकोंकी
मरणम् १।। अस्ति । मारणान्तिकः १। अस्ति न अस्ति इति	= मृत्यु है । मारणांतिक समुद्घात है (अथवा) नहीं है ऐसे
अत्र* न अस्माकम् ६। निश्चयः १। उपदेश-अभावात् ५।	=इसमे (=अत्र) शिक्षा (=उपदेश) न होनेके कारणसे हमको निर्णय नहीं है ।
यदि अस्ति-तद् अपि लोक-असंख्येयभागे ७।	=जो (मारणांतिक समुद्घात) है तौ भी लोकके असंख्यात खंड (के स्पर्शन)में
मनुष्य-क्षेत्रात् ५।। बहिर् *	=अढाई द्वीपसे बाहर (द्वितीय उपशम सम्यक्त्व तथा उसमें मारणांतिक समु
अभावात् ५। अन्तर्भावः १।	=द्घात) न होनेके हेतुसे—गर्भित है । (टिप्पणी) मनुष्य और तिर्यंच अढाई द्वीप तक हैं और तिर्यंच अढाई द्वीपसे बाहिर भी हैं तिर्यंचोंके पांचवां गुणस्थान तक हो सक्ता है और द्वितीय उपशम आठवे गुणस्थानमें होता है इसलिये तिर्यंचनके नहीं हो सक्ता है इस कारणसे मनुष्य क्षेत्रसे बाहिर द्वितीय उपशम नहीं है

सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्टिमिथ्यादृष्टीनां सामान्योक्तम् ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि— = सासादन सम्यग्दर्शनवालेनिका,
सम्यग्मिथ्यादृष्टि— = मिश्र [तीसरे] गुणस्थानवर्तीनिका
मिथ्यादृष्टीनां ३ा = और मिथ्यादृष्टियोंका [स्पर्शन]
सामान्य-उक्तम् ४॥ = संक्षेपमें [पूर्व] कथित [गुणस्थानवत्] है अर्थात् सासादन सम्यग्दृष्टियोंकरि स्वस्थान विहार अपेक्षासे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्शन किया जाता है। तीनसौ तेतालीस घनाकार राजू लोकमें चौदह राजू लोकत्रसनाल है सो सासादन सम्यग्दृष्टियोंकरि कुछ हीन आठ राजू परस्थान विहार अपेक्षासे और मारणांतिक समुद्घातकी अपेक्षासे कुछ हीन बारह राजू छुए जाते हैं जैसे विहारवत् स्वस्थानकी अपेक्षासे सासादन गुणस्थानवर्ती देव तीसरे नरक तक विहार करते हैं सो मध्य लोकसे तीसरे नरक तक दो राजू हुए और ऊपर सोलह स्वर्ग तक विहार करते हैं तब छह राजू ये हुये इस प्रकार आठराजू परस्थान विहार अपेक्षासे स्पर्शन हुये। कुछ भाग छूट जाता है अतः कुछ हीन आठराजू हुये। मारणांतिक समुद्घातकी अपेक्षासे सासादन गुणस्थानवर्ती जो केवल छठे नरक तकसे मर सक्ता है [क्योंकि सम्यक्त्व गुण सहित किसी जीवका मरण सातवें नरकसे नहीं हो सक्ता है] यदि इस छठे नरकसे मारणांतिक समुद्घात करे और बादर पृथिवी कायादिक लोकके अंत भागमें उत्पन्न हो तो छठे नरकसे मध्य लोक तक पांच राज हुये और मध्यलोकसे अंत तक स्पर्शनमें सात राजू ये हुये कुछ [किंचित्] भाग छूनेसे रह जाता है अतः कुछ हीन बारह राजू हुये। पृष्ठ १३३, १३४ इसी अनुवादका (२) मिश्र गुणस्थानवर्ती स्वस्थान विहार अपेक्षासे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श करते हैं और परस्थान विहार अपेक्षासे लोक त्रसनालके चौदह राजुओंमेंसे कुछ हीन आठ राजू जैसे मिश्र गुणस्थानवर्ती देव अच्युत सोलहवां स्वर्गसे तीसरे नरक तक विहार करे तब कुछ न्यून आठराजू स्पर्शते हैं पृष्ठ १३५। (३) मिथ्यादृष्टियोंकरि सर्वलोक छुआ जाता है। पृष्ठ १३२ ॥

१२ संज्ञानुवादेन संज्ञिनां चक्षुर्दर्शनिवत्।

सञ्ज्ञा—अनुवादेन हा =सैनीके कथनानुसार करि अर्थात् मनसहित जीवोंकी अपेक्षासे

सञ्ज्ञिनां हा चक्षुर्दर्शनिवत् * =सैनी वा मनसहित जीवोंका [स्पर्शन] चक्षुर्दर्शनवालोंके समान है अर्थात् चक्षुर्दर्शनवाले मिथ्यादृष्टियोंसे लेकर क्षीणकषायवालोंका स्पर्शन पंच इन्द्रिय जीवोंके सदृश है [पृष्ठ १४५] और पंचेन्द्रिय जीवोंमें मिथ्यादृष्टियोंकरि लोकका असंख्यातवां अंश छुआ जाता है । लोकत्रसनालके चौदहराजूओंमेंसे परस्थान विहार अपेक्षासे कुछ घाटि आठ राजू हैं और मारणांतिक अपेक्षासे स्पर्शनका सर्व लोक है। [पृष्ठ १४०–१४१] सासादन गुणस्थानमें पंचेन्द्रिय जीवोंका स्पर्श स्वस्थान विहार अपेक्षासे लोकका असंख्यातवां भाग है। परस्थान विहार अपेक्षासे त्रसनालके चौदह राजूओंमेंसे आठ राजू कुछ हीन है और मारणांतिक समुद्घात अपेक्षासे चौदह राजूओंमेंसे कुछ न्यून बारह राजू है (विशेषके लिये पृष्ठ १३३, १३४) सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयत सम्यग्दृष्टि पंचेन्द्रियोंकरि स्वस्थानविहार अपेक्षासे लोकका असंख्यातवां भाग छुआ जाता है परस्थान विहार अपेक्षासे चौदह राजुओंमेंसे कुछ घाटि आठ राजू स्पर्शा जाता है [मिश्रगुणस्थानवर्ती देव और असंयत गुणस्थानवर्ती देव अच्युत सोलहवां स्वर्गसे तीसरे नरक तक विहार करें तव कुछ न्यून आठ राजू स्पर्शते हैं पृष्ठ १३५] संयतासंयत गुणस्थानमें पञ्चेन्द्रियोंकरि स्वस्थान विहार अपेक्षासे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया जाता है अथवा लोकत्रसनालके चौदह राजुओंमेंसे मारणांतिक समुद्घातकी अपेक्षासे अच्युत सोलहवां स्वर्गतक उत्पत्ति होनेके कारणसे कुछ हीन छह राजू स्पर्शा जाता है (पृष्ठ १३६) जैसे स्वयम्प्रभाचलके वाहिरका देशसंयमी तिर्यंच अच्युत सोलहवें स्वर्ग पर्यंत जन्म लेनेसे मारणांतिक समुद्घात अपेक्षासे कुछहीन छः राजू स्पर्श करता है [पृष्ठ १५७] प्रमत्त संयतसे क्षीणकषाय तक सर्व गुणस्थानोंमें पंचेन्द्रिय जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रवत् है (पृष्ठ १३६) क्षेत्रवत् स्पर्शन प्रमत्तसंयत छठे गुणस्थानसे वारह तक लोकका असंख्यातवां भाग है (पृष्ठ ११६)॥

असञ्ज्ञिभिः सर्वलोकः स्पृष्टः । तदुभयव्यपदेशरहितानां सामान्योक्तम् । [१४] आहारानुवादेन–आहारकाणां मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायान्तानां सामान्योक्तम् ॥

असञ्ज्ञिभिः ३। सर्वलोकः १। स्पृष्टः १। = असैनी (मनरहित)निकरि समस्तलोक स्पर्शा जाता है ॥

तदु–उभयव्यपदेश–रहितानां ६। = उन दोनो [मनसहित मनरहित] नामसे वर्जित अर्थात् सयोगकेवली अयोगकेवलीनिका स्पर्शन

सामान्य–उक्तम् १।। = संक्षेप [प्रकरण] में कथित गुणस्थानवत् है अर्थात एक समयमें होनेवाले उत्कृष्ट ८९८५०२ सयोगकेवलियोंका स्वस्थान स्वस्थान और विहारवत्स्वस्थानकी अपेक्षासे लोकका असंख्यातवांभाग स्पर्श है। दंडसमुद्घात और कपाट समुद्घातोंकी अपेक्षासे भी लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श है प्रतर समुद्घातमें लोकके असंख्याते भागोंमेंसे एक भाग हीन [वातवलयोंके क्षेत्रके प्रमाण घाटि] सर्वलोक है और लोक पूरण समुद्घातकी अपेक्षासे सर्व ही लोकमें सयोगकेवलीके प्रदेश व्याप्त हो जाते हैं। और अयोगकेवलीनिका स्पर्शन लोकका असंख्यातवांभाग स्वस्थान स्वस्थान अपेक्षासे है पृष्ठ १३६ पंक्ति २,३ पृष्ठ ११८ से १२०

आहार–अनुवादेन ३। आहारकाणां = [१४] आहारके कथनानुसारकरि आहारक

मिथ्यादृष्टि–आदि–क्षीणकषाय– = मिथ्यादृष्टियोंसे लेकर क्षीणकषाय (बारहवां) गुणस्थानवर्ती

अन्तानां ६। सामान्य–उक्तम् १।। = तकनिका (स्पर्शन) संक्षेप (प्रकरणमें) कथित (गुणस्थानवत्) है ॥ अर्थात् आहारक अवस्था जीवकी प्रथमसे तेरह गुणस्थान तक हो सक्ती है सो [१] मिथ्यादृष्टि प्रथम गुणस्थान–वर्ती आहारकोंकरि सब लोक छुआ जाता है (पृष्ठ १३२) (२) सासादन सम्यग्दृष्टि आहारक वाले स्वस्थान विहार अपेक्षासे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्शन करते हैं, परस्थानविहार, अपेक्षासे लोक त्रसनाडीके चौदह राजुओंमेंसे आठ राजू कुछ घाटि स्पर्शन करते हैं और मार–णांतिक समुद्घातकी अपेक्षासे लोक त्रसनालके चौदह राजुओंमेंसे बारह राजू कुछ न्यून छूते हैं (विशेष पृष्ठ १३३–१३४) ॥ [३–४] मिश्र गुणस्थानवर्ती आहारक और असंयत सम्य–ग्दृष्टि चौथे गुणस्थानवर्ती आहारक स्वस्थान विहार अपेक्षासे लोकका असंख्यातवां भाग छूते हैं

सयोगकेवलिनां लोकस्यासंख्येयभागः ॥ अनाहारकेषु मिथ्यादृष्टिभिः सर्वलोकः स्पृष्टः।

और परस्थान विहार अपेक्षासे लोक त्रसनाडीके चौदह भागोमेंसे कुछ घाटि आठ भाग छूते हैं (विशेष पृष्ठ १३५) ॥ [५] संयमासंयमी आहारक स्वस्थान स्वस्थान अपेक्षासे लोकका असख्यातवां भाग छूते हैं और परस्थान विहार अपेक्षासे लोक त्रसनाडीके चौदह राजुओंमेंसे कुछ न्युन छह राजू छूते हैं ॥ [६-१२] प्रमत्त संयमी छठे गुणस्थानवाले आहारकोंसे लेकर क्षीणकषाय बारहवां गुणस्थानवर्ती आहारकों तकका स्पर्शन क्षेत्रवत् है [पृष्ठ १३६] यह क्षेत्र सदृश स्पर्शन पृष्ठ ११६ के अनुकूल लोकका असंख्यातवां अंश होता है ॥

सयोग-केवलिनाम् ६।३ = योगसहित केवलीका (जो स्वस्थानविहार और परस्थानविहार दण्ड कपाट समुद्घातोंमें आहारक और प्रतर लोक पूर्ण समुद्घातोंमें अनाहारक होते हैं)

लोकस्य ६।१ असंख्येयभागः १।१ = लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्शन है अर्थात् सयोगकेवली आहारक और अनाहारक दोनों अवस्थाओंमें होते हैं इनका भी स्पर्शन क्षेत्रवत् है [पृष्ठ १३६] यह क्षेत्र समान स्पर्शन आहारक अवस्थामें स्वस्थान विहार अपेक्षासे और परस्थान विहार अपेक्षासे दंड-कपाट समुद्घातोंमें असंख्यातवा भाग है (विशेष पृष्ठ ११५ से १२०) और अनाहारक सयोग केवली हैं प्रतर समुद्घातमें लोकके असंख्यात भागोंमेंसे एक भाग न्यून (तीनोंवात वलयोंके क्षेत्रके बराबर न्यून) स्पर्शन करते हैं (एक भाग घाटि सर्वही लोक स्पर्शते हैं) और लोक पूर्ण समुद्घातमें अनाहारक सयोगकेवलीके आत्माके प्रदेश सर्वत्र लोकमें व्याप्त हो जाते हैं अतः सर्वलोक स्पर्शन है ॥

अन्+आहारकेषु ७।३ = अनाहारक (मिथ्यादृष्टि-सासादनसम्यग्दृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टि-सयोगकेवली-अयोग-केवलीनिमें)

मिथ्यादृष्टिभिः ३।३ सर्वलोकः १।१ स्पृष्टः = मिथ्यादृष्टियोंकरि समस्त लोक स्पर्श्या जाता है

सासादनसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः । एकादश चतुर्दशभागा वा देशोनाः ।

सासादन-सम्यग्दृष्टिभिः ३ = [अनाहारक वाले] सासादन सम्यग्दर्शनवाले (दूसरे गुणस्थानवर्ती)निकरि
लोकस्य २ असंख्येयभागः १ = लोकका असंख्यातवां अंश छुआ जाता है
एकादश ३ चतुर्दश ३ भागाः वा देशोनाः ३ = (लोकत्रसनालके) चौदहराजू हैं (सो) कुछ घाटि ११ स्पर्शे जाते हैं

(१) षष्ठपृथ्वीपर्यन्तवर्तिसासादनाना मध्यलोके उत्पत्तिरस्ति । मध्यलोकवर्तिनामच्युतकल्पपर्यन्तमुत्पत्तिरस्ति । तत उपपादपरिणतैस्तावत्क्षेत्रं स्पृष्टम् । तत एकादश चतुर्दशभागा अनाहारकसासादनापेक्षयेति सुगमम् । यदि ग्रैवेयकपर्यन्तं तेषामुत्पत्तिरस्ति तथापि लोकासंख्येयभागेऽन्तर्भावः । मनुष्याणामेव ग्रैवयकेषूत्पत्तिः ॥ ननु सामान्यकथनावसरे सासादनापेक्षया द्वादशचतुर्दशभागा इत्युक्तं तत्सम्भवः कथमिति चेत्– सासादनां अष्टमपृथिवीपर्यन्तं मारणान्तिकं कृत्वा मिथ्यात्वपरिणामेन म्रियन्ते । तत आहारकैः सासादनैरच्युतादुपरि अष्टमपृथ्वीपर्यन्तं क्षेत्र स्पृष्टम् । अच्युतादधः षष्ठपृथ्वीपर्यन्तमाहारकैरनाहारकैरपि तैः स्पृष्टम् । एतदपेक्षया तत्सम्भवो भवति ॥ अष्टमपृथिव्यामुत्पद्यमानसासादनः मिथ्यापरिणामेनैव म्रियत (इति) कुतो नियम इति चेत्—एतैराचार्यैरेकविकलेन्द्रियेषु सासादनानुत्पत्तिपक्षांगीकरणात् ॥ कथमेषा प्रतीतिरिति चेत्—पूर्वमेकविकलेन्द्रिये एकमेव मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमित्युक्तत्वात्पूर्वं तिर्यङ्मनुष्यसासादनापेक्षया सप्त चतुर्दशभागा इत्युक्तं तदप्यत्रोक्तमारणांतिकापेक्षयेत्यवगन्तव्यम् ॥

षष्ठपृथ्वीपर्यन्तवर्तिसासादनानाम् ३ = छठवांनरक तकके रहनेवाले सासादन गुणस्थानवर्ती (नारकिनिका)—
मध्यलोके २ उत्पत्तिः १ अस्ति T = मध्यलोकविषै जन्म है (सो छठवें नरकसे मध्यलोकतक कुछहीन पांच राजू हुये)
मध्यलोकवर्तिनाम् ३ अच्युतकल्पपर्यन्तम् १ = मध्यलोकके रहनेवाले दूसरे (गुणस्थानवर्ति)निके अच्युत (सोलहवां) स्वर्ग तक
उत्पत्तिः १ अस्ति ततः * उपपादपरिणतैः ३ = (कुछहीन छः राजू) जन्म है वहां (छठे नरक) से (उपपाद) में परिणत हुये
तैः ३ तावत् * = तिन (दुसरे गुणस्थानवर्तिनि) करि उतना (कुछहीन ग्यारहराजू = तावत्)
क्षेत्रम् १ स्पृष्टम् १ । ततः* एकादश ३ चतुर्दश ३ भागाः = क्षेत्र स्पर्शा जाता है । तिससे (लोकत्रसनालके) चौदहराजूमेंसे ग्यारहका स्पर्शन
अनाहारक-सासादन अपेक्षया ३ इति सुगमम् १ = अनाहारक दूसरे गुणस्थानवर्तिनिकी अपेक्षासे है इसप्रकार स्पष्ट वा व्यक्त है
यदि * ग्रैवेयकपर्यन्तम् १ तेषाम् ३ = जो (सोलह स्वर्गसे ऊपर) नवग्रैवेयक लग तिन अनाहारक सासादनवालोका

उत्पत्तिः १।। अस्ति तथापि * लोकासंख्येयभागे ७।।	=जन्म है तब भी लोकके असंख्यात अंश (के कथन) विषैं
अन्तर्भावः १।। मनुष्याणाम् ६।। एव ग्रैवेयकेषु ७।। उत्पत्तिः १	=गर्भित है (क्योंकि) नरोंका ही जन्म (नव) ग्रैवेयक विषैं हैं
ननु * सामान्यकथन-अवसरे ७ सासादन अपेक्षया ३।।	=प्रश्न-संक्षेप व्याख्यानके प्रसंगमें दूसरे गुणस्थानवर्तीनिकी विवक्षासे
द्वादश १।। चतुर्दश १।। भागाः १।। इति * उक्तम् १।।	(लोकत्रसनालके) चौदह राजू हैं (सो) वारह (राजूका स्पर्शन है) ऐसा कहा गया है
तत्सम्भवः १।। कथम् * इति * चेत् *	=तिस (चौदह राजूमें वारह राजूके स्पर्शन) का होना कैसे है ऐसे संशय (पर कहते हैं कि)
सासादनाः १।। अष्टमपृथिवीपर्यन्तम् २।।	=सासादनसम्यग्दृष्टी मोक्ष क्षेत्र लग (=अष्टमपृथिवीपर्यन्तम्)
मारणान्तिकम् २।। कृत्वा-मिथ्यत्वपरिणामेन ३।। म्रियन्ते	=मारणान्तिक समुद्घात करके मिथ्यात्व स्वभावसे मरते हैं
ततः * आहारकैः ३।। सासादनैः ३।। अच्युतात् ५।।	=इसकारणसे (=ततः) आहारक सासादन सम्यग्दृष्टियोंकरि सोलहवां स्वर्गसे
उपरि * अष्टमपृथिवीपर्यन्तम् २।। क्षेत्रम् १।। स्पृष्टम् १।।	=ऊपर मोक्षतक (=अष्टमपृथिवीपर्यन्तम्) क्षेत्र स्पर्शा जाता है अतः वारह हुये
अच्युतात् ५।। अधस् * षष्ठपृथिवीपर्यन्तम् २।।	=अच्युत (सोलहवां स्वर्ग) से नीचे छठवां नरक (=पृथिवी) लग
तैः ३।। आहारकैः ३।। अनाहारकैः ३।। अपि	=तिन (दूसरे गुणस्थानवर्ती) आहारकनिकरि (तथा) अनाहारकनसे भी
स्पृष्टम् १।।	=(कुछहीन ग्यारह राजू अर्थात् अच्युतसे छठवा नरक तक) छुआ जाता है
एतद् अपेक्षया ३।। तद्सम्भवः १।। भवति ॥	=इस (उत्पाद) अपेक्षासे वह (कुछ हीन ग्यारह राजूका स्पर्शन) संभव है।
अष्टमपृथिव्याम् ७।। उत्पद्यमानसासादनः १।।	=आठवी भूमिविषै उत्पन्न होनेवाले सासादन सम्यग्दृष्टी
मिथ्यापरिणामेन ३।। एव * (म्रियते इति)	=केवल (=एव) मिथ्यास्वभावकरि मरण करते हैं (ऐसा)
कुतस् * नियमः १।। इति * चेत् *—	=कहांसे नियम है इसप्रकार संदेह (=चेत्, होनेपर कहते हैं)
एतैः ३।। आचार्यैः ३।। एकविकल-इन्द्रियेषु ७।।	=इन (=एतैः) आचार्योंकरि एक इंद्रिय दोइन्द्रिय त्रीन्द्रिय चारइन्द्रियमें
सासादन-अन्-उत्पत्तिपक्ष अङ्गीकरणात् ५।।	=सासादन वालोंका जन्म न होनेकी पक्ष ग्रहण करनेसे (व्यक्त है कि आठवी पृथिवीमें पैदा होनेवाले सासादन सम्यग्दृष्टि मिथ्यापरिणामसे ही मरते हैं)
कथम् * एषा १।। प्रतीतिः १।।	=यह विश्वास (कि सासादन सम्यग्दृष्टी विकल इन्द्रियनविषै जन्म नहीं लेते) कैसे (हुआ)

असंयतसम्यग्दृष्टीनां लोकस्यासंख्येयभागः। षट् चतुर्दशभागावा देशोनाः॥

अर्थात् अनाहारक सासादन सम्यग्दृष्टि "छठा पृथिवीतैं मध्यलोकमें उपजै ताकै उत्पाद अपेक्षा तौ पाच राजू अर अच्युततैं मध्यलोकमें आय उपजै, ताके उत्पाद अपेक्षा छह ऐसैं ग्यारह राजू कहे। मारणांतिक अपेक्षा बारह राजू होय हैं। परन्तु मारणांतिकमें अनाहारक नाहीं। तातैं उत्पाद अपेक्षा ग्यारह हैं॥" सर्वार्थसिद्धि वचनिका मुद्रित पृष्ठ ८८॥

असंयतसम्यग्दृष्टीनां ६। लोकस्य ६। असंख्येयभागः १।	=(अनाहारक) अत्रत गुणस्थानवर्तीनिका (स्पर्शन) लोकका असंख्यातवां अंश है।
षट् १। चतुर्दशभागा १। वा देशोनाः १।	=वा (लोक त्रसनाडीके) चौदह राजू हैं (सो) कुछ हीन छह छुए जाते हैं
इति चेत्	=इसप्रकार संशय (=चेत्) (होनेपर कहते हैं)
पूर्वम् २॥ एकविकलइन्द्रिये ७॥ एकम् २॥ एव	=पहिले (देखो पृष्ठ १४० पंक्ति ३) एक इन्द्रिय विकल इन्द्रीमे एक ही
मिथ्यादृष्टिगुणस्थानम् १॥ इति उक्तत्वात् ५॥ पूर्वम् २॥	=मिथ्यात्व गुणस्थान है ऐसे कथन होनेसे प्रथम (देखो पृष्ठ १३८ पंक्ति ४)
तिर्यग्-मनुष्यसासादन-अपेक्षया ३॥	=(दूसरे गुणस्थानवर्ती) तिर्यंच तथा मनुष्यनकी अपेक्षासे
सप्त १। चतुर्दश ६। भागा १। इति उक्तम् १॥	=(लोक त्रसनालके) चौदह राजू हैं (सो) सात (राजू स्पर्शे जाते) हैं ऐसे कहा गया है
तद्+अपि	=पहिले कहा हुआ (=तद्) भी (चौदह राजूमेंसे बारह राजूका स्पर्शन तथा)
अत्र उक्तम् १॥	=यहां (=अत्र) कहा हुआ (चौदह राजूमेंसे सासादन तिर्यंच और नरनका सात राजू स्पर्शन)
मारणान्तिक-अपेक्षया ३॥ इति	=मारणांतिक समुद्घातकी विवक्षाकरि है ऐसें—
अवगन्तव्यम् १॥	=जानने योग्य है (चौदह राजूमें ग्यारह राजू उत्पाद अपेक्षासे हैं बारह राजू मारणांतिक अपेक्षासे हैं परन्तु मारणान्तिकमें अनाहारक नहीं है, आहारक ही हैं)

उत्पत्तिः ।। अस्ति तथापि * लोकासंख्येयभागे ।।	=जन्म है तब भी लोकके असख्यात अश (के कथन) विषैं
अन्तर्भावः ।। मनुष्याणाम् ।। एव ग्रैवेयकेषु ।। उत्पत्तिः ।।	=गर्भित है (क्योंकि) नरोंका ही जन्म (नव) ग्रैवेयक विषै हैं
ननु * सामान्यकथन-अवसरे ।। सासादन अपेक्षया ।।	=प्रश्न-संक्षेप व्याख्यानके प्रसंगमें दूसरे गुणस्थानवर्तीनिकी विवक्षासे
द्वादश ।। चतुर्दश ।। भागाः ।। इति * उक्तम् ।।	(लोकत्रसनालके) चौदह राजू हैं (सो) बारह (राजूका स्पर्शन है) ऐसा कहा गया है
तत्सम्भवः ।। कथम् * इति * चेत् *	=तिस (चौदह राजूमें बारह राजूके स्पर्शन) का होना कैसे है ऐसे संशय (पर कहते हैं कि)
सासादनाः ।। अष्टमपृथिवीपर्यन्तम् ।।	=सासादनसम्यग्दृष्टी मोक्ष क्षेत्र लग (=अष्टमपृथिवीपर्यन्तम्)
मारणान्तिकम् ।। कृत्वा-मिथ्यत्वपरिणामेन ।। म्रियन्ते	=मारणान्तिक समुद्घात करके मिथ्यात्व स्वभावसे मरते हैं
ततः * आहारकैः ।। सासादनैः ।। अच्युतात् ।।	=इसकारणसे (=ततः) आहारक सासादन सम्यग्दृष्टियोंकरि सोलहवां स्वर्गसे
उपरि * अष्टमपृथिवीपर्यन्तम् ।। क्षेत्रम् ।। स्पृष्टम् ।।	=ऊपर मोक्षतक (=अष्टमपृथिवीपर्यन्तम्) क्षेत्र स्पर्शा जाता है अतः बारह हुये
अच्युतात् ।। अधस् * षष्ठपृथिवीपर्यन्तम् ।।	=अच्युत (सोलहवां स्वर्ग) से नीचे छठवां नरक (=पृथिवी) लग
तैः ।। आहारकै ।। अनाहारकैः ।। अपि	=तिन (दूसरे गुणस्थानवर्ती) आहारकनिकरि (तथा) अनाहारकनसे भी
स्पृष्टम् ।।	=(कुछहीन ग्यारह राजू अर्थात् अच्युतसे छठवा नरक तक) छुआ जाता है
एतद् अपेक्षया ।। तद्सम्भवः ।। भवति ॥	=इस (उत्पाद) अपेक्षासे वह (कुछ हीन ग्यारह राजूका स्पर्शन) संभव है ।
अष्टमपृथिव्याम् ।। उत्पद्यमानसासादनः ।।	=आठवी भूमिविषै उत्पन्न होनेवाले सासादन सम्यग्दृष्टी
मिथ्यापरिणामेन ।। एव * (म्रियते इति)	=केवल (=एव) मिथ्यास्वभावकरि मरण करते हैं (ऐसा)
कुतस् * नियमः ।। इति * चेत् *—	=कहांसे नियम है इसप्रकार संदेह (=चेत्, होनेपर कहते हैं)
एतैः ।। आचार्यैः ।। एकविकल-इन्द्रियेषु ।।	=इन (=एतैः) आचार्योंकरि एक इंद्रिय दोइन्द्रिय त्रीन्द्रिय चारइन्द्रियमें
सासादन-अन्-उत्पत्तिपक्ष अङ्गीकरणात् ।।	=सासादन वालोका जन्म न होनेकी पक्ष ग्रहण करनेसे (व्यक्त है कि आठवी पृथिवीमे पैदा होनेवाले सासादन सम्यग्दृष्टि मिथ्यापरिणामसे ही मरते हैं)
कथम् * एषा ।। प्रतीतिः ।।	=यह विश्वास (कि सासादन सम्यग्दृष्टी विकल इन्द्रियनविषै जन्म नही लेते) कैसे (हुआ)

असंयतसम्यग्दृष्टीनां लोकस्यासंख्येयभागः। षट् चतुर्दशभागावा देशोनाः ॥

अर्थात् अनाहारक सासादन सम्यग्दृष्टि " छठा पृथिवीतैं मध्यलोकमें उपजै ताकै उत्पाद अपेक्षा तौ पाच राजू अर अन्युततैं मध्यलोकमें आय उपजै, ताके उत्पाद अपेक्षा छह ऐसैं ग्यारह राजू कहे। मारणांतिक अपेक्षा बारह राजू होय हैं। परन्तु मारणांतिकमें अनाहारक नाहीं। तातैं उत्पाद अपेक्षा ग्यारह हैं ॥" सर्वार्थसिद्धि वचनिका मुद्रित पृष्ठ ८८ ॥

असंयतसम्यग्दृष्टीनां ६।। लोकस्य ६।। असंख्येयभागः १।। =(अनाहारक) अव्रत गुणस्थानवर्तीनिका (स्पर्शन) लोकका असंख्यातवां अंश है।

षट् १।। चतुर्दशभागा १।। वा देशोनाः १।। = वा (लोक त्रसनाडीके) चौदह राजू हैं (सो) कुछ हीन छह हुए जाते हैं

इति चेत् =इसप्रकार संशय (=चेत्) (होनेपर कहते हैं)

पूर्वम् ३।। एकविकलइन्द्रिये ७।। एकम् १।। एव =पहिले (देखो पृष्ठ १४० पंक्ति ३) एक इन्द्रिय विकल इन्द्रीमें एक ही

मिथ्यादृष्टिगुणस्थानम् १।। इति उक्तत्वात् ५।। पूर्वम् ३।। =मिथ्यात्व गुणस्थान है ऐसे कथन होनेसे प्रथम (देखो पृष्ठ १३८ पंक्ति ४)

तिर्यग्–मनुष्यसासादन–अपेक्षया ३।। =(दूसरे गुणस्थानवर्ती) तिर्यंच तथा मनुष्यनकी अपेक्षासे

सप्त १।। चतुर्दश १।। भागा १।। इति उक्तम् १।। =(लोक त्रसनालके) चौदह राजू हैं (सो) सात (राजू स्पर्शे जाते) हैं ऐसे कहा गया है

तद्+अपि =पहिले कहा हुआ (=तद्) भी (चौदह राजूमेंसे बारह राजूका स्पर्शन तथा)

अत्र उक्तम् १।। =यहां (=अत्र) कहा हुआ (चौदह राजूमेंसे सासादन तिर्यंच और नरनका सात राजू स्पर्शन)

मारणान्तिक-अपेक्षया ३।। इति =मारणांतिक समुद्घातकी विवक्षाकरि है ऐसें—

अवगन्तव्यम् १।। =जानने योग्य है (चौदह राजूमें ग्यारह राजू उत्पाद अपेक्षासे हैं बारह राजू मारणाँतिक अपेक्षासे हैं परन्तु मारणान्तिकमें अनाहारक नहीं है, आहारक ही हैं)

सयोगकेवलिनां लोकस्यासंख्येयभागः सर्वलोको वा। अयोगकेवलिनां लोकस्यासंख्येयभागः ॥ स्पर्शनं व्याख्यातम्। कालः प्रस्तूयते।

सयोगकेवलिनां ६।३ लोकस्य ६।१ असंख्येयभागः १।१	= सयोग केवलियोंका [स्पर्शन] लोकका असंख्यातवां भाग (आहारक अवस्थामें स्वस्थान विहार अपेक्षासे परस्थान विहार अपेक्षासे दण्ड समुद्घात अपेक्षासे और कपाट समुद्घात अपेक्षासे) होता है
वा	= अथवा [अनाहारक अवस्थामें प्रतर समुद्घातमें एक भाग न्यून और]
सर्वलोकः १।१	= (लोक पूर्ण समुद्घातमें) समस्तलोक है [देखो पृष्ठ ११५ से १२० तक]
अयोग—केवलिनां ६।३ लोकस्य-असंख्येयभागः १।१	= अयोगकेवलियोंका [स्पर्शन] लोकका असंख्यातवां भाग है।
स्पर्शनं १।१ व्याख्यातम् १।१। कालः १।१ प्रस्तूयते।	= स्पर्शन [प्ररूपणाका] वर्णन किया गया। कालका वर्णन किया जाता है

(१) विग्गहगदिमावण्णा केवलिणो समुग्घदा अजोगी य। सिद्धा य अणाहारा सेसा आहारया जीवा ॥ गोम्मटसार जीवकांड गाथा ६६६

विग्रहगतिमापन्नाः केवलिनः समुद्घाताः अयोगिनः च। सिद्धा च अनाहाराः शेषाः आहारकाः जीवाः ॥ गाथाकी यह संस्कृत छाया है।

विग्गहगदिमावण्णा १।३ (=विग्रहगतिमापन्नाः १।३)	= विग्रहगति (=नवीन जन्म धारण करनेके लिये गमन) को प्राप्त हुये जीव
केवलिणो १।३ समुग्घदा १।३ (=केवलिनः १।३ समुद्घाता १।३)	= (प्रतर, और लोक पूरण) समुद्घात प्राप्त सयोगकेवली
अजोगी १।३ य* सिद्धा १।३ य*(अयोगिनः १।३ च सिद्धाः १।३ च)	= और (=य - च) अयोगी जिन और (=य=च) सिद्ध भगवान
अणाहारा १।३ सेसा १।३ (=अनाहाराः १।३ शेषाः १।३)	= अनाहारक (जीव) हैं अवशेष वा वचे हुये
आहरया १।३ जीवा १।३ (=आहारकाः १।३ जीवाः १।३)	= आहारक जीव हैं (देखो पृष्ठ ९२ आहार और आहारकके लिये)

(२) प्रस्तूयते-स्तु अदादि द्वितीयगणका परस्मैपद और आत्मनेपदी धातु प्रशंसा अर्थमें आता है ॥ कर्मणि प्रयोग बनानेमें यदि धातुके अंतमें इ अथवा उ होवे तो उसको दीर्घ करके य प्रत्यय लगा देते हैं पश्चात् आत्मनेपद प्रत्यय लगा देते हैं ॥ स्तु धातुमें उपसर्ग लगाकर स्तुके उ को दीर्घ करके य कर्मणि प्रत्यय जोड़कर प्रस्तूय बना लिया पश्चात् ते अन्यपुरुष एकवचन आत्मनेपदी वर्तमान कालका प्रत्यय जोड़ा तो प्रस्तूयते बन गया ॥

स द्विविधः । सामान्येन विशेषेण च ॥ सामान्येन तावत्-मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । एक-जीवापेक्षया त्रयो भङ्गाः । अनादिरपर्यवसानः अनादिसपर्यवसानः सादिसपर्यवसानश्चेति ॥

सः ¹। द्विविधः ²। सामान्येन ³।। विशेषेण ³। च	= वह [काल] दो प्रकारका है संक्षेपसे और भेदसे
सामान्येन ¹।। तावत् मिथ्यादृष्टेः ²।	= संक्षेपकरि प्रथम मिथ्यादृष्टिका
नानाजीव+अपेक्षया ³।। सर्वः ¹। कालः ¹।	= अनेक जीवोंकी अपेक्षासे समस्त काल है
एक-जीव+ अपेक्षया ³।। त्रयः ¹। भङ्गाः ¹।	= एक आत्माकी विवक्षाकरि तीन भंग हैं
अनादिः ¹। अपरि-अवसानः ¹।	= (अभव्यका) अनादि अन्त (= अवसान) रहित [= अपरि] अर्थात् अनादि अनन्त (काल) है
अनादिः ¹। सपरि+अवसानः ¹।	= (भव्यका) अनादि अन्त (= अवसान) सहित (= सपरि) अर्थात् अनादिसान्त (काल) है
स+आदिः ¹। सपरि+अवसानः ¹। च इति	= बहुरि [भव्यका] आदिसहित अन्त [= अवसान] सहित [= सपरि] सादिसान्त [काल] है ऐसे तीन भंग हैं,

(१) अनादिरपर्यवसानो मिथ्यात्वकालः अभव्येषु । अनादिमिथ्यादृष्टिर्यः कश्चन प्रथमोपशमसम्यक्त्वं गृहीष्यति तस्य प्राक्तनमिथ्यात्व-कालः अनादिः सपर्यवसानः कश्चित्तु गृहीतसम्यक्त्वो मिथ्यात्वं प्राप्नोति तस्य तन्मिथ्यात्वं सादिसपर्यवसानम् ।

अनादिः ¹। अपरिअवसानः ¹। मिथ्यात्वकालः ¹।	= अनादि अन्तरहित मिथ्यात्वकाल अभव्य विषे है अर्थात् अभव्य मिथ्यादृष्टियों का काल अनादि अनन्त है
अनादिमिथ्यादृष्टिः ¹। यः ¹। कश्चन ¹।	= अनादि मिथ्यादृष्टी जो (= यः) कोई (= कश्चन)
प्रथम+उपशमसम्यक्त्वम् ²।।। गृहीष्यति T	= प्रथम उपशम सम्यग्दर्शनको धारण करेगा
तस्य ⁶। प्राक्तन-	= तिस (प्रथम उपशम सम्यग्दर्शनवाले) का पहिलेका (= प्राक्तन)
मिथ्यात्वकालः ¹। अनादिः ¹। सपरि+अवसानः ¹।	= मिथ्यात्वका समय अनादि अन्त सहित (= सान्त) है

तत्र सादिः सपर्यवसानो जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तः । उत्कर्षेणार्धपुद्गलपरिवर्त्तो देशोनः ॥

तत्र स+आदिः ।१ सपरि+अवसानः ।१	= तहां आदिसहित अन्तसहित अर्थात् सादिसान्त
जघन्येन ।३ अन्तर्मुहूर्त्तः ।१	= जघन्य [अपेक्षा] करि अन्तर्मुहूर्त है
उत्कर्षेण ।३ अर्धपुद्गलपरिवर्तः ।१ देशोनः।१	= अतिशयकरि कुछ हीन अर्धपुद्गल परावर्तन है

कश्चित् + तु गृहीतसम्यक्त्व· ।१	= परतु (= तु) कोई (जीव) सम्यग्दर्शन प्राप्तकरि
मिथ्यात्वम् ।२।। प्राप्नोति T तस्य ।६ तद् + मिथ्यात्वम् ।१।।	= मिथ्यात्वको ग्रहण करता है (प्राप्नोति) = तिस (जीवकै) वह मिथ्यात्व
सादिः ।१ सपरि + अवसानम् ।१।।	= आदिसहित (तथा) अन्तसहित अर्थात् सादिसान्त है

(२) यः कश्चित् गृहीतवेदकोपशमसम्यक्त्वो मिथ्यात्व प्राप्य संसारे परिभ्रमति स नियमेनार्धपुद्गलपरिवर्तनकालपरिसमाप्तौ संसारे न तिष्ठति किंतु मुक्तो भवति तदुक्तम्-पुद्गलपरिवर्तार्धं परितो व्यालीढवेदकोपशमौ । वसतः संसाराब्धौ क्षायिकदृष्टिर्भवचतुष्कः ॥ इति सम्यक्त्व-ग्रहणम् । पुनः अर्धपुद्गलपरिवर्तनपरिसमाप्तेः प्रागेव भवति । अन्यथा तदा मुक्त्यनुपपत्तिस्ततः सादिपर्यवसानमिथ्यात्वकालस्योत्कृष्टस्य देशोनार्धपुद्गलपरिवर्तत्वं युक्तमेव ॥

यः ।१ कश्चित् *गृहीतवेदक+उपशमसम्यक्त्वः ।१	= जो कोई जीव क्षायोपशमिकसम्यग्दर्शन(= वेदक,तथा)उपशमसम्यग्दर्शन ग्रहणकरि
मिथ्यात्वम् ।२।। प्राप्य –	= (पश्चात्) मिथ्यात्वको प्राप्त होकर
संसारे ।७ परिभ्रमति सः ।१ नियमेन ।३	= जगतविषे परिभ्रमण करता है वह निश्चयसे
अर्धपुद्गलपरिवर्तनकालपरिसमाप्तौ ।७।। संसारे ।७	= आधापुद्गलपरिवर्तन समय परिपूर्ण होनेपर संसारमें
न तिष्ठति किंतु * मुक्तः ।१ भवति ।३	= नहीं रहता है परन्तु मुक्त हो जाता है
तद् + उक्तम् ।१।।	= सो (ही निम्न लिखित आर्याछंदमें) कहा गया है
व्यालीढवेदक + उपशमौ ।१	= क्षायोपशमिक (और) उपशम सम्यग्दर्शन प्राप्त करके
पुद्गलपरिवर्त + अर्धं ।२।। परित *वसतः Tसंसार + अब्धौ ।७	= अर्द्धपुद्गलपरावर्तन काल सर्वत्र ससाररूप समुद्रमें बसते हैं (और)
क्षायिकदृष्टि· ।१ भवचतुष्कः ।१	= क्षायिकसम्यग्दर्शनवालोंकरि चार जन्म (= भव) (धारण किये जाते) हैं

अर्थात् वेदक और उपशम सम्यक्त्व होनेके पश्चात् मिथ्यात्व ग्रहण होनेपर जीव उत्कृष्ट अर्द्धपुद्गल परावर्तन संसारमें भ्रमण करके पीछे मोक्ष प्राप्ति करता है और क्षायिक सम्यग्दृष्टी उत्कृष्ट चार भवको धारण करके मोक्ष प्राप्त करता है ।

सासादनसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः । उत्कर्षेण पल्योपमासंख्येयभागः ॥ एक-

सासादनसम्यग्दृष्टेः ६। नानाजीव+अपेक्षया ३।। = सासादन [दूसरे गुणस्थान]वाले१। अनेक जीवकी विवक्षासे
जघन्येन ३। एकः १। समयः १। = जघन्यकरि एक समय है
उत्कर्षेण ३। पल्य+उपम+असंख्येयभागः १। = उत्कृष्टकरि पल्यके असंख्यातवां अंश बराबर [= उपम] है
एकजीवम् ३। प्रति* = [सासादन सम्यग्दृष्टि] एक जीवकी अपेक्षासे [= प्रति]

इति सम्यक्त्वग्रहणम् १।। पुनः अर्धपुद्गल- = इस प्रकार सम्यग्दर्शनका ग्रहण है फिर आधा पुद्गल
परिवर्तनपरिसमाप्तः १।। प्राक् * एव भवति = परावर्तन परिपूर्ण होनेसे पहिले ही (जीवके सम्यक्त्व) हो जाता है
अन्यथा = दूसरे प्रकार यदि अर्ध पुद्गलपरावर्तनके पूरे होनेसे पहिले सम्यक्त्व न हो
तदा मुक्ति + अन् + उपपत्तिः १।। ततः * = तो (= तदा) मोक्षका (प्राप्तिका) प्रसंग नहीं बनता है तिससे
स+आदिपरि-अवसानमिथ्यात्वकालस्य ६। उत्कृष्टस्य ६। = आदि सहित अन्त (= अवसान) सहित (= परि) अर्थात् सादिसान्त उत्कृष्ट मिथ्यात्वका काल
देशोन+अर्धपुद्गल-परिवर्तत्वम् १।। युक्तम् १।। एव = कुछ हीन आधा पुद्गलपरिवर्तन समय परिपूर्ण होना ठीक ही है

आवलिका चासंख्यातसमयलक्षणा भवति । गोमट्टसारे जीवकाण्डे सम्यक्त्वमार्गणायां तथा चोक्तम् । आवलि असंखसमया संखेज्जावलिसमूह-उस्सासो । सत्तुस्सासा थोवो सत्तत्थोवा लवो भणियो ॥ ५७४ ॥ आवलिरसंख्यसमयाः संख्येयावलिसमूहः उच्छ्वासः । सप्तोच्छ्वासाः स्तोकः सप्त स्तोकाः लवो भणितः ।

च+असंख्यातसमयलक्षणा १।। आवलिका १।। भवति तथा च* = बहुरि (= च) असंख्यात समय लक्षणवाली एकआवली होती है ऐसा कि
गोमट्टसारे जीवकाण्डे सम्यक्त्वमार्गणायां ७।। उक्तम् = गोमट्टसार जीवकांड सम्यक्त्व मार्गणामें कहा गया है
आवलि १।। असंखसमयाः १। (= आवलिः १।। असंख्यसमया १।) = असंख्यात समयवाली (एक) आवली है
संखेज्जावलिसमूह १। (= संख्येय-आवलि-समूहः १।) = संख्यातआवलीके समूह रूप वा संख्यात आवलियोंका समुदाय
उस्सासो १। सत्तुस्सासा १। (उच्छ्वासः १। सप्तोच्छ्वासो १।) = (एक) उच्छ्वास होता है ॥ सात उच्छ्वासवाला
थोवो १। सत्तत्थोवा १। (= स्तोकः १। सप्तस्तोकाः १।) = (एक) स्तोक होता है ॥ सात है स्तोक जिसके ऐसा
लवो १। भणियो १। (लवः १। भणितः) = (एक) लव होता है

जीवं प्रति जघन्येनैकः समयः । उत्कर्षेण षडावलिकाः ॥ सम्यङ्मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तः । उत्कर्षेण पल्योपमासंख्येयभागः ॥ एकजीवं प्रति जघन्यः उत्कृष्टश्चान्तर्मुहूर्तः ॥ असंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तः "तिण्णि सहस्सा सत्त य सदाणि तेहत्तरि च उस्सासा ॥ एसो हवइ मुहुत्तो सव्वेसिं चेव मणुयाणं ॥ उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि सातिरेकाणि

जघन्येन ॥ एकः ॥ समयः ॥ उत्कर्षेण ॥ षट् ॥ आवलिकाः ॥ = जघन्यकरि एक समय है उत्कृष्टकरि छह आवली है
सम्यङ्मिथ्यादृष्टेः ॥ नानाजीव+अपेक्षया ॥ जघन्येन ॥ = मिश्रगुणस्थानवालेका अनेक जीवोंकी अपेक्षासे जघन्यकरि
अन्तर्मुहूर्तः ॥ उत्कर्षेण ॥ पल्य+उपम+असंख्येयभागः ॥ = अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्टकरि पल्यके असंख्यातवां अंशके बराबर है
एक-जीवम् ॥ प्रति * = (मिश्रगुणस्थानवर्तीका) एक एक (=प्रति) जीवका
जघन्यः ॥ च उत्कृष्टः ॥ अन्तर्मुहूर्तः ॥ = जघन्य तथा उत्कर्ष (काल) अन्तर्मुहूर्त है
असंयतसम्यग्दृष्टेः ॥ = असंयत सम्यग्दर्शन [चौथे गुणस्थान]वालेका
नानाजीव–अपेक्षयाया ॥ सर्वः ॥ = अनेक आत्माओंकी विवक्षाकरि सवरन
कालः ॥ एकजीवम् ॥ प्रति* जघन्येन ॥ अन्तर्मुहूर्तः ॥ = काल है प्रत्येक जीवके जघन्यकरि अंतर्मुहूर्त है
[जिस मुहूर्तका प्रमाण निम्नलिखित आर्या छंदमें कहते हैं]
सव्वेसिं ॥ चेव * मणुयाण ॥ (सर्वेषां ॥ च एव मानवानां ॥) = समस्त मनुष्योंके ही
तिण्णि ॥ सहस्सा ॥ सत्त ॥ य [त्रीणि ॥ सहस्राणि ॥ सप्त ॥ च] = तीन सहस्र और (=च) सात
सदाणि ॥ तेहत्तरिं ॥ च उस्सासा [॥ शतानि ॥ त्रिसप्ततिः ॥ च उच्छ्वासाः ॥] = सौ तथा तेहत्तरि उच्छ्वास होतो
एसो ॥ हवइ मुहुत्तो [= एषः मुहूर्तः भवति] ॥ = यह मुहूर्त होता है
उत्कर्षेण ॥ त्रयस्त्रिंशत् ॥ सागरोपमाणि ॥ = उत्कृष्टकरि तेतीस सागरके बराबर [= उपम]
स+अतिरेकाणि ॥ = [कुछ [1] अधिक सहित है अर्थात् तेतीस सागरसे अधिक है

---

१ त्रीणि सहस्राणि सप्तशतानि अधिक सप्ततिरुच्छ्वासा मुहूर्त्त' कथ्यते ३७७३ ॥ सैंतीससौ तेहत्तरि उच्छ्वासोंका एक मुहूर्त होता है

(२) त्रीणि १।।। सहस्राणि १।।। सप्त १।।। शतानि १।।। = तीन हजार सात सौ

त्रि+अधिकसप्ततिः १।। उच्छ्वासाः १।। मुहूर्त्तः १।। कथ्यते = तेहत्तरि उच्छ्वासें है (सो) मुहूर्त कही गई है ॥ ३७७३ ॥

(१) यः कश्चित्संयमी सम्प्राप्तमृतिः सर्वार्थसिद्धावुत्पन्नस्तत्र स्वस्थितिं जीवित्वा मृतो मनुष्यगतावुत्पन्नो यावद्देशसंयमं सकलसंयमं वा गृह्णाति तावत्साधिकं त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमकालोऽयमसंयतसम्यग्दृष्टेरुत्कृष्टकालोवेदितव्यः ॥ ननु ॥ "वेदगसम्मत्तट्ठिदिजहण्णमंतोमुहुत्तमुक्कस्स । छासट्ठिसायरुवमा णिद्दिट्ठा मणुवदेवहवे" ॥ इति गाथोदितप्रकारेण वेदकसम्यक्त्वस्य उत्कर्षेण षट्षष्टिसागरोपमपर्यंतं स्थितिसंभवेऽपि असंयमेन सह तावत्कालं तस्यावस्थानासम्भवात् । मध्ये देशसयमसकलसयमयोः प्राप्तिसम्भवादिह तस्योत्कृष्टत्वेनाग्रहणम् । इह खल्वसंयतसम्यग्दृष्टिकालः परीदितुमुपक्रान्तो न तु सम्यक्त्वकालः ॥

यः १।। कः+चित्*संयमी १।। सम्प्राप्तमृतिः १।।	= जो कोई संयम धारण करनेवाला मरण पाकर
सर्वार्थसिद्धौ ७।। उत्पन्नः १।।	= सर्वार्थसिद्धिविमानविषे जन्म धारण करता है (सो)
तत्र स्वस्थितिम् २।।	= वहांसे अपने कालकी मर्य्यादा भर (जो तेतीस सागर है क्योंकि सर्वार्थसिद्धिमें जघन्य आयु नहीं होती है)
जीवित्वा मृतः १।। मनुष्यगतौ ७।। उत्पन्नः १।।	= जीवित रहकर मरता है, मनुष्यगतिमें जन्म लेता है (और)
यावत् * देशसंयमं २।। वा सकलसंयमं २।। गृह्णाति T	= जब तक अणुव्रत वा महाव्रत धारण करता है
तावत् * स १।। अधिक-त्रयस्त्रिंशत्सागर+उपमकालः १।।	= तबतक कुछ अधिक तेतीस सागरके बराबर समय होता है
अयम् १।। असंयतसम्यग्दृष्टेः ६।। कालः १।।	= यह (= अयम् कालः) असंयत सम्यग्दर्शनवालेका
उत्कृष्टकालः १।। वेदितव्यः १।। ॥ ननु*	= उत्कर्ष समय जानना चाहिये (प्रश्न)

वेदगसम्मत्तट्ठिदिजहण्णं अंतोमुहुत्तमुक्कस्स । छासट्ठिसायरुवमा णिद्दिट्ठा मनुवदेव हवे ।

वेदकसम्यक्त्वस्थितिजघन्यं अन्तर्मुहूर्त्तः उत्कृष्टा । षट्षष्टिसागरोपमा निर्दिष्टा मानवदेव भवेत् ।

वेदगसम्मत्तट्ठिदि-(वेदकसम्यक्त्वस्थिति)	= वेदक या क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शनका ठहराव वा टिकाव
जहण्णं १।।। अंतोमुहुत्तं १।।। (जघन्यं १।।। अन्तर्मुहूर्तः १।।)	= जघन्य अन्तर्मुहूर्त है (१/२ घंटेके भीतर भीतर (= अंतर) होता है
उक्कस्स—छासट्ठि-(उत्कृष्ट—षट्षष्टि—)	= अधिकसे अधिक (= उत्कृष्ट) छासठ

सायर उवमा ॥१॥ णिद्दिट्ठा ॥१॥ (सागर-उपमा॥१॥निर्दिष्टा॥१॥)	=सागर प्रमाण (=उपमा) कहा गया है
मणुव-देवहवेT (=मानवः देवः-भवेत् T)	=(वेदक सम्यक्त्वकी अवस्थामें जीव) मनुष्य वा देव होता है
इति	=ऐसा (प्रश्न होनेपर) कि असंयत सम्यग्दृष्टीके (जिसका काल तेतीस सागरसे कुछ अधिक कहा है) वेदक सम्यक्त्व भी होता है उस वेदकका समय उत्कर्ष अपेक्षा छ्यासठि सागर है सो असंयत काकाल छ्यासठि सागर क्यों न कहा, उत्तर
गाथा+उदितप्रकारेण ॥३॥ वेदकसम्यक्त्वस्य ॥६॥	=आर्या छंदसे कहे हुये प्रकारसे क्षायोपशम सम्यग्दर्शनका
उत्कर्षेण ॥३॥ षट्षष्टिसागर+उपमपर्यन्तम् ॥२॥	=उत्कृष्टकारि छ्यासठि सागर तक
स्थितिसम्भवे ॥७॥ अपि* असयमेन ॥३॥ सह *तावत्*	=टिकाव होनेपर भी असंयम सहित इतने (छ्यासठि सागर)
कालम् ॥२॥ तस्य ॥६॥ अवस्थान—असम्भवात् ॥५॥	=समय तक तिस (असयतसम्यग्दृष्टी) की स्थिति अवस्थान असम्भव है क्योंकि
मध्ये ॥७॥ देशसयमसकलसयमयोः॥६॥	=(अन्तर्मुहूर्त और चौतीस सागरके) वीचमें (असंयतसम्यग्दृष्टीके) अणुव्रतवा महाव्रतकी
प्राप्तिसम्भवात् ॥५॥ इह * तस्य ॥६॥	=प्राप्ति हो जाती है। यहां (इस प्रकरणमें) तिस (असयत सम्यग्दृष्टिके)
उत्कृष्टत्वेन ॥३॥ अग्रहणम् ॥१॥ इह*	=उत्कर्षपने (छ्यासठि सागर कालका) ग्रहण नहीं है किंतु यहां नियमसे (=खलु)
असंयतसम्यग्दृष्टिकालः ॥१॥ खलु*	= असंयमीसम्यग्दर्शनवालेका समय कहा जा रहा है
न* तु* सम्यक्त्वकालः ॥१॥	=(=तु) न (कि) सम्यग्दर्शनका काल
परीक्षितुम्	=परीक्षा या निरूपण करनेके लिये (परीक्षुम, हेत्वर्थं कृदंत है)
उपक्रान्तः ॥१॥	=आरम्भ किया गया है। उत्तरका भावार्थ यह है कि वेदक सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थिति छ्यासठि सागर है और असंयत सम्यग्दृष्टिके वेदक सम्यक्त्व भी होता है परंतु असंयम अवस्थामे जीव केवल तेतीस सागरसे कुछ अधिक ही उत्कृष्टकारि रह सकता है पश्चात् वही जीव सयमी या सकल संयमी हो जाता है इस कारण प्रकरणके अनुसार असंयत सम्यग्दृष्टिका समय कुछ अधिक तेतीस सागर कहा है सम्यक्त्वका समय नहीं कहा, न ऐसा समझना चाहिये ॥

संयतासंयतस्य नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तः । उत्कर्षेण पूर्वकोटी देशोना । प्रमत्ताप्रमत्तयोर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । एकजीवं प्रति जघन्येनैकः समयः ॥ उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्त्तः । चतुर्णामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया

संयतासंयतस्य ६। नानाजीव-अपेक्षया ३। सर्वः १ = देशसंयमा (पांचवां गुणस्थानवर्तीनि) का अनेक जीवकी अपेक्षासे सब
कालः १। एकजीवं २। प्रति * जघन्येन ३।। = काल है एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य करके अन्तर्मुहूर्त है [पांचवांगुण-
अन्तर्मुहूर्त्तः १। उत्कर्षेण ३। पूर्वकोटी ४।। देशोना १।। = स्थानवर्तीका) उत्कृष्टकरि कुछ हीन करोड पूर्व है [एकपूर्व चौरासी लाख पूर्वांगका है और एक पूर्वांग चौरासी लाख वरसका होता है)
प्रमत्त-अप्रमत्तयोः ६। = प्रमत्तसंयमी (छठा गुणस्थानवर्ती) अप्रमत्त संयमी [सातवांगुणस्थानवर्ती]का
नानाजीव-अपेक्षया ३।। सर्वः १। कालः १। = अनेक जीवकी विवक्षाकरि समस्त काल है
एकजीवं २। प्रति जघन्येन ३।। एकः १। समयः १। = एक जीवकी अपेक्षा जघन्यकरि एक समय है
उत्कर्षेण ३। अन्तर्मुहूर्त्तः १। = (प्रमत्त तथा अप्रमत्तका समय) उत्कृष्टकरि अन्तर्मुहूर्त है ॥
चतुर्णाम् ६। = चार अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण सूक्ष्मसाम्पराय उपशांत मोह
उपशमकानाम् ६। नानाजीव-अपेक्षया ३।। = उपशम (गुणस्थान वर्तीनिका अनेक जीवोंकी विवक्षाकरि

---

(१) वर्षाष्टकं शैशवमतीत्य गृहीतदेशसंयम, पूर्वकोट्यायुर्यो जीवः आमरणाद्देशसंयमं पालयति तदपेक्षया देशोनपूर्वकोटी देशसंयतकालः ।
वर्ष-अष्टकम् २।। शैशवम् २।। अतीत्य— = आठ वरस बाल अवस्थाको प्राप्त करके वा पहुंच करके (अति इत्य)
गृहीतदेशसंयमः १। = अणुव्रत धारण करने वाला (इत्य = प्राप्य, अति = लांघना)
पूर्व + कोटी—आयुः १।। यः १। जीवः १। आमरणात् ५।। = एक करोड़ पूर्व आयुका धारक जो आत्मा मृत्यु होने तक (आ = तक)
देशसंयमम् २। पालयति T तद् अपेक्षया ३।। = अणुव्रतको पालन करता है उस (जीव) की विवक्षासे
देशोनपूर्वकोटी १।। देशसंयतकालः १। = कुछ हीन करोड पूर्व संयमासंयमी का काल (होता) है

एकजीवापेक्षया च जघन्येनैकः समयः उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्तः ॥

एकजीव-अपेक्षया च जघन्येन एकः समयः	=तथा (=च) एकजीवकी अपेक्षासे जघन्यकरि एक समय है
उत्कर्षेण अन्तर्मुहूर्तः	=उत्कृष्ट करके अंतर्मुहूर्त है

(१) नन्वेवं मिथ्यादृष्टेरप्येकसमयः कस्मान्न सम्भवतीत्यनुपपन्नम्। कोऽर्थः? मिथ्यादृष्टेरेकसमयः कालो न घटते इत्यर्थः। कस्मान्न? प्रतिपन्नमिथ्यात्वस्यान्तर्मुहूर्तमध्ये मरणासम्भवात्॥ तदुक्तम्—"मिथ्यात्व दर्शनात्प्राप्ते नास्त्यनन्तानुबन्धिनाम्। यावदाकालिका पाकान्तर्मुहूर्ते मृतिर्न च ॥१॥" सम्यङ्मिथ्यादृष्टेः परिमाणकाले तद्गुणस्थानत्यागान्नैकसमयः सम्भवतीति प्रतिपन्नासंयतसंयतासंयतगुणोऽप्यन्तर्मुहूर्तमध्ये न म्रियते। अतोऽसंयतसंयतासंयतयोरप्येकसमयो न भवति॥

एवम्* मिथ्यादृष्टेः अपि एकसमयः	=ऐसे ही मिथ्यादृष्टीका एक समय
कस्मात् न* सम्भवति इति ननु	=किस कारणसे नहीं सम्भवै है ऐसे प्रश्न (=ननु होनेपर कहते हैं कि)
अन्+उपपन्नम्	=(मिथ्यादृष्टीके जघन्य एक समयका काल) पाया नहीं जाता है (=अनुपपन्न—पद्मकोष पृष्ठ ७७)
कः अर्थः	=(अनुपपन्न अथवा पाया नहीं जाता है इस वाक्यका) क्या अभिप्राय है?
मिथ्यादृष्टेः एकसमयः कालः न घटते	=(उत्तर) मिथ्यादृष्टीका एक समय काल नहीं होता है (=घटते)
इति* अर्थः कस्मात् न	=ऐसा अभिप्राय है किस हेतुसे (एक समय) नहीं (होता है)? (क्योंकि सम्यक्त्वके पीछे)
प्रतिपन्नमिथ्यात्वस्य अन्तर्मुहूर्तमध्ये	=प्राप्त वा लब्ध मिथ्यात्ववाले वा मिथ्यादृष्टीका अन्तर्मुहूर्तके भीतर
मरण—असम्भवात्	=मृत्यु नहीं हो सक्ती है॥
तद् उक्तम् दर्शनात्	=सो (निम्नलिखित श्लोकमें) कहा गया है। सम्यक्त्वसे (सम्यग्दर्शनके पीछे)
मिथ्यात्वं प्राप्ते अनन्तानुबन्धिनाम्	=मिथ्यात्वको प्राप्त होने पर अनंतानुबंधी (क्रोध-मान-माया—लोभ) का
यावत्* अकालिका न अस्ति	=जब तक असमय वा उदयका अभाव (अकालिका) नहीं होता है
तावत् पाक-अन्तर्मुहूर्ते मृतिः न* च*	=(तब तक मिथ्यादृष्टिका उस) पाक वा उदयके अन्तर्मुहूर्तमें मरण भी (=च) नहीं

चतुर्णां क्षपकाणामयोगकेवलिनां च नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च जघन्यश्चोत्कृष्टश्चान्त-

चतुर्णाम् ६।	= चार (आठवां, नववां, दशवां तथा बारहवां) गुणस्थानवर्तीनिके
क्षपकाणाम् ६। अयोगकेवलिनाम् ६। च	= क्षपक श्रेणीवालोंका तथा [= च] अयोगकेवलियोंका [काल]
नानाजीव-अपेक्षया ३। एकजीवअपेक्षया ३। च-	= अनेक जीवकी विवक्षाकरि तथा एक जीवकी विवक्षासे
जघन्यः च उत्कृष्टः १। च अन्तर्मुहूर्तः १।	= जघन्य और [= च] उत्कर्ष भी (= च) अंतर्मुहूर्त है

है। भावार्थ-यह है कि यदि जीवके सम्यग्दर्शन छूट जाय और मिथ्यात्व हो जाय तो उस जीवके अनन्तानुबंधी (क्रोध मान माया लोभ)का पाक वा उदय अन्तर-मुहूर्त तक रहता है और उस अन्तरमुहूर्त तक मिथ्यात्वमें मरण नहीं होता है इसलिये मिथ्यादृष्टिका एक समय काल नहीं है

सम्यङ्मिथ्यादृष्टेः ६। परिमाणकाले ७।	= मिश्र गुणस्थानवर्तीनका नियमित या परिमित कालविषै
तद्गुणस्थानत्यागात् ५। एकसमयः १। सम्भवति	= उस गुणस्थानके छोडनेसे एक समय सम्भवै है
प्रतिपन्नअसंयत-सयतासयत-गुणाः	= असंयत तथा देशसयत प्राप्त (= प्रतिपन्न) गुणस्थानवाले
अपि अन्तर्मुहूर्त्तमध्ये ७। न म्रियते तद् अतः * असंयत-	= भी अन्तमुहूर्तके भीतर नहीं मरते हैं इसलिये (= अतः) असंयमी
संयतासंयतयोः ६। अपि एकसमयः १। न भवति	= (तथा) संयमासंयमियोंका भी एक समय (काल) नहीं है

(१) तत्कथम् चतुर्णां क्षपकाणामपूर्वकरणानिवृत्तिकरणसूक्ष्मसाम्परायक्षीणकषायाणामयोगकेवलिनां च मोक्षगामित्वेन चान्तरे मरणासं-भवात् १

तद् कथम् ?	= वह (= जघन्य उत्कृष्ट करके अन्तरमुहूर्त्त) कैसे है ?
चतुर्णाम् ६। क्षपकाणाम् ६। अपूर्वकरण-	= चार क्षपकश्रेणी अपूर्वकरण
अनिवृत्तिकरण—सूक्ष्मसाम्पराय-क्षीणकषायाणाम् ६।	= अनिवृत्तिकरण सूक्ष्मसाम्पराय क्षीणकषाय (वाले) निका
अयोगकेवलिनाम् ६। च मोक्षगामित्वेन ३।।।।	= तथा (= च) अयोगकेलीनिका (काल) (उसीभवसे) मुक्तगामी होनेसे

मुहूर्तः ॥ सयोगकेवलिनां नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण पूर्वकोटी देशोना ॥

सयोगकेवलिनाम् ।६। नानाजीव-अपेक्षया ।३। सर्वः	=योगसहित केवलीजिका अनेक जीवकी विवक्षासे समस्त
कालः ।१। एकजीवम् ।२। प्रति,	=काल है एक जीव [अर्थात् एक सयोगकेवली] की अपेक्षासे
जघन्येन ।३। अन्तर्मुहूर्तः ।१।	=जघन्यकरि अन्तर मुहूर्त है
उत्कर्षेण ।३। पूर्वकोटी ।१। देशोना ।१।	=उत्कर्षकरि कुछ हीन करोड पूर्व है [निम्नलिखित टिप्पणी अवश्य देखो]

च अन्तरे ।७। मरण असम्भवात् ।५। =निश्चय (=च)(आयुके) बीचमे वा भीतर मृत्युके सम्भव न होनेसे (जघन्य और उत्कर्षकरि अंतर्मुहूर्त है)

(१) सयोगकेवलिगुणस्थानानन्तरमन्तर्मुहूर्तमध्ये अयोगकेवलिगुणस्थानप्राप्तेः।

सयोगकेवलिगुणस्थान—अनन्तरम् ।१। =सयोगकेवलि (तेरहवां) गुणस्थानके अत्यन्त समीप वा लगतेही (अनन्तरम्)

अंतर्मुहूर्तमध्ये ।७। अयोगकेवलिगुणस्थानप्राप्तेः ।५। =अंतर्मुहूर्तमें (=मध्ये) अयोग केवली गुणस्थानकी प्राप्ति होनेसे (एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अंतर मुहूर्तकाल सयोगकेवलिका है) [भावार्थ-क्षीणकषाय गुणस्थानसे जीव तेरहवां गुणस्थानमे आकर एक अंतर्मुहूर्त रहकर उस मुहूर्तके भीतर ही भीतर चौदहवां गुणस्थानमें आनेकी अपेक्षासे तेरहवांका समय जघन्यपने एक अंतर्मुहूर्त है ॥

(२) अष्टवर्षानन्तरं तपो गृहीत्वा केवलमुत्पादयतीति कियद्वर्षहीनत्वात्पूर्वकोटी वेदितव्या

अष्टवर्ष-अनन्तर ।१। तपः ।२। गृहीत्वा— =(जन्मसे घाटिसे घाटि) आठ वरस पीछे (=अनन्तरं) तप धारण करके (जीव)

केवल ।२। उत्पादयति T इति =केवलज्ञानको प्राप्त करता है इसलिये

कियत् * वर्षहीनत्वात् ।५। पूर्वकोटी ।१। वेदितव्या ।१। =कुछ वर्ष हीनपनाकरि करोड़ पूर्व जानना चाहिये ।

"बारै मास वर्ष लाख चउरासी पूरवांग गुणा करो सो पूरव आगें भेदरास है ॥" द्यानत द्रव्य पचीसी १२ । बारह महीनेका एक वर्ष, चौरासी लाख वर्षका एक पूर्वांग, चौरासी लाख वर्षको चौरासी लाख वर्षसे गुणा करो सो पूरव है ॥ अतः ८४००००० × ८४००००० वर्ष अर्थात् सात नील छप्पन खर्व वर्षका ७०५६ ००००० ००००० का अथवा चौरासी लाख पूर्वांगका एक पूर्व होता है ॥

विशेषेण (१) गत्यनुवादेन—नरकगतौ नारकेषु सप्तसु पृथिवीषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेण यथासंख्यं एक—त्रि—सप्त—दश—सप्तदश—द्वाविंशति—त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि। सासादनसम्यग्दृष्टेः सम्यग्मिथ्यादृष्टेश्च सामान्योक्तः कालः।

विशेषेण ३।१ (१) गति+अनुवादेन ३।१ = भेदकरि (१) गतिके कथनानुसारसे
नरकगतौ ७।१ नारकेषु ७।३ = नरकगतिविषैं नारकिनमें
सप्तसु ७।३ पृथिवीषु ७।३ मिथ्यादृष्टेः ६।१ नानाजीवापेक्षया ३।१ = सातो भूमिमें (=नरकमें) मिथ्यादृष्टीका अनेक जीवकी अपेक्षासे
सर्वः १।१ कालः १।१ = समस्त काल है
एकजीवं २।१ प्रति जघन्येन ३।१ अन्तर्मुहूर्तः १।१ = एक जीवकी अपेक्षासे जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
उत्कर्षेण ३।१ यथासंख्यम् १।१ एक—त्रि—सप्त—दश = उत्कृष्टकरि यथाक्रम—एक—तीन—सात—दश
सप्तदश—द्वाविंशति—त्रयस्त्रिंशत्सागर-उपमाणि = सत्रह बाईस तेतीस सागरकी बराबर (उपमाणि) काल है
सासादनसम्यग्दृष्टेः ६।१ च * सम्यङ्मिथ्यादृष्टेः ६।१ = सासादन सम्यग्दर्शनवालेका और मिश्रगुणस्थानवर्ती (नारकिन) का
सामान्य+उक्तः १।१ कालः १।१ = संक्षेप (प्रकरण) में (पहिले) कहा हुआ (गुणस्थानवत्) काल है अर्थात् सासादन गुणस्थानवर्ती नारकियोंका नानाजीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है और उत्कृष्ट पल्यके असंख्यातवां भाग प्रमाण है। एक नारकीकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कर्ष अपेक्षासे छः आवली है॥ मिश्रगुण-

(१) पश्चान्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानत्यागसंभवात्॥

पश्चात्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानत्यागसंभवात् ५।१ = (अन्तर्मुहूर्त) पीछे मिथ्यादृष्टि गुणस्थानका छोडना सम्भव होनेसे जघन्यकाल एक जीव अपेक्षासे अन्तर्मुहूर्त कहा है।

एटानिवासी जगरूपसहायवकीलकृत पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित सर्वार्थसिद्धिका शब्दशः हिंदी अनुवाद। अध्याय १ सूत्र ८

असंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेण उक्त एवोत्कृष्टो देशोनः॥

(सम्यग्द)र्शनवाले नारकियोंका नानाजीव अपेक्षासे जघन्य अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट पल्योपमके असंख्यातवां भाग है। एक नारकीकी अपेक्षासे उत्कृष्ट और जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है॥

असंयतसम्यग्दृष्टेः ॥१॥ नानाजीव–अपेक्षया ॥२॥ सर्वः ॥३॥ कालः ॥४॥ एकजीवम् ॥५॥ प्रति जघन्येन ॥६॥ अन्तर्मुहूर्तः ॥७॥ उत्कर्षेण ॥८॥ उक्तः ॥९॥ एव उत्कृष्टः ॥१०॥ देशोनः ॥११॥ = असंयतसम्यग्दर्शनवाले [नारकिन] का अनेक जीवकी विवक्षासे सब काल है एक जीवके लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्टकरि कुछ घाट [पहिले] कही हुई ही उत्कर्ष (आयु प्रमाण) है॥ "उत्कृष्ट आयुः प्रमाण किछु घाटि" जयचन्द्रकृत वचनिका पृष्ठ मुद्रित ९०। (एक वा तीन वा सात वा दश वा सत्रह वा बाईस वा तेतीस सागरसे कुछ हीन क्रमसे पहले नरकसे सातवें लग है)

(१) प्रथमपृथिव्यामपि देशोनत्वकथनात्तत्र गृहीतवेदकक्षायिकसम्यक्त्वानामुत्कृष्टायुष्येणोत्पत्त्यभावोऽवगम्यते॥

प्रथमपृथिव्याम् ॥१॥ अपि देशोनत्व—कथनात् ॥२॥ गृहीतवेदकक्षायिक—सम्यक्त्वानाम् ॥३॥ उत्कृष्ट- आयुष्येण ॥४॥ तत्र उत्पत्ति + अभावः ॥५॥ अवगम्यते ॥६॥ = पहिले नरकविषै भी कुछ हीनपनाके व्याख्यान करनेसे (यह अभिप्राय है कि— = क्षयोपशम (तथा) क्षायिकसम्यग्दर्शनप्राप्त (गृहीत वेदक–क्षायिक) सम्यग्दृष्टियोंका = उत्कृष्ट आयु सहित (=आयुष्येण) तहां (पहिले नरकविषै भी) जन्म लेनेका अभाव जाना गया है। भावार्थ—दूसरे तीसरे नरकोंका तो कहना ही क्या है जिस जीवने वेदक वा क्षायिक सम्यग्दर्शनसहित मरण किया है और पहिले नरकमें गया है वह वहां भी आयु उत्कृष्ट नहीं पाता अर्थात् एक सागरसे कम आयुवाला नारकी होता है इसलिये देशोन है।

तिर्यग्गतौ तिरश्चां मिथ्यादृष्टीनां नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेणानन्तः कालोऽसंख्येयाः पुद्गलपरिवर्ताः॥ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्टिसंयतासंयतानां सामान्योक्तः कालः॥

तिर्यग्गतौ ७। तिरश्चाम् ६। मिथ्यादृष्टीनाम् ६।	= तिर्यंच गतिविषै तिर्यंच मिथ्यादृष्टियोंका
नानाजीव–अपेक्षया ३। सर्वः १। कालः एकजीवं २।	= अनेक जीवकी विवक्षासे समस्त काल है। एक जीव
प्रति* जघन्येन ३। अन्तर्मुहूर्तः १। उत्कर्षेण ३।	= केतिये जघन्यकरि अंतर मुहूर्त है। उत्कृष्टकरि
अनन्तकालः १। असंख्येयाः १। पुद्गलपरिवर्ताः १।	= अनन्त काल है सो (अनंतकाल) असंख्याते पुद्गलपरावर्तन है
सासादनसम्यग्दृष्टि–सम्यङ्मिथ्यादृष्टि–संयता– संयतानां ६। सामान्येन ३। उक्तः १। कालः १।	= सासादन सम्यग्दर्शनवाले मिश्रगुणस्थानवर्ती (तथा) संयमासंयमी [तिर्यंच]निका संक्षेप [प्रकरण] करि कथित [गुणस्थानवत्] काल है अर्थात् सासादन सम्यग्दृष्टि तिर्यंचोंका नाना तिर्यंचोंकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पल्योपमके असंख्यातवां भाग है ॥ एक तिर्यंच जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट छः आवली है॥ मिश्र गुणस्थानवर्ती नाना तिर्यंचोंकी अपेक्षासे जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्टतासे पल्योपमके असंख्यातवां भाग है ॥ एक तिर्यंच मिश्रगुणस्थानवर्तीकी अपेक्षासे जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ संयतासंयतगुणस्थानवर्ती भांति भांतिके तिर्यंचोंकी अपेक्षासे सब काल है एक तिर्यंच–संयमासंयमीके लिये जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और एक संयमासंयमी तिर्यंचके लिये उत्कृष्टकाल कुछ हीन एक करोड पूर्व है ॥

(१)यः कश्चिदनादिमिथ्यादृष्टिर्जीवो गत्यन्तरे स्थितः तिर्यग्गतिं प्रविष्टः स तिर्यग्गतावुत्कर्षेणानन्तकालमसंख्येयान्पुद्गलपरिवर्तान् तिष्ठति तत ऊर्ध्वं गत्यन्तरं प्राप्नोति ततस्तदपेक्षया तिर्यङ्मिथ्यादृष्टिकालः अनन्तः कालः असंख्येयाः पुद्गलपरिवर्ताः इत्युक्तम् ॥

१ यः १। कश्चित्* अनादिमिथ्यादृष्टिः १।	= जो कोई अनादि मिथ्यात्वसहित
जीवः १। गति-अंतरे ७। स्थितः १। तिर्यग्गतिम् २। प्रविष्टः१	= जीव अन्यगतिमें स्थित होकर तिर्यंचगतिमें प्रवेश करता है

असंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण त्रीणि पल्योपमानि ॥ मनुष्यगतौ मनुष्येषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण त्रीणि पल्योपमानि पूर्वकोटिपृथक्त्वैरभ्यधिकानि ॥ सासादनसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः । उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्तः ।

असंयतसम्यग्दृष्टेः नानाजीव-अपेक्षया सर्वः = असंयत सम्यग्दृष्टी तिर्यंचोंका अनेक जीवकी विवक्षासे सब
कालः एकजीवं प्रति जघन्येन अन्तर्मुहूर्तः = काल है एक जीव तिर्यंच असंयमीके लिये जघन्यकरि अंतर्मुहूर्त है
उत्कर्षेण त्रीणि पल्योपमानि मनुष्यगतौ = उत्कृष्टकरि तीन पल्यके बराबर है । मनुष्यगतिमें
मनुष्येषु मिथ्यादृष्टेः नानाजीवपेक्षया सर्वः = मनुष्यनिमें मिथ्यादृष्टीका अनेक जीवकी विवक्षासे समस्त
कालः एकजीवम् प्रति जघन्येन अंतर्मुहूर्तः = काल है एक जीवके लिये जघन्यकरि अंतर्मुहूर्त है
उत्कर्षेण त्रीणि पल्योपमानि = उत्कृष्टकरि तीन पल्यके बराबर (और)
पूर्वकोटिपृथक्त्वैः अभ्यधिकानि = पृथक्त्व (तीनसे ऊपर नवसे नीचे) करोड पूर्वकरि अधिक हैं
सासादनसम्यग्दृष्टेः नानाजीव-अपेक्षया = सासादन सम्यग्दृष्टीका अनेक जीवकी विवक्षासे
जघन्येन एकः समयः = जघन्यकरि एक समय (काल) है
उत्कर्षेण अन्तर्मुहूर्तः = उत्कृष्टकरि अन्तर्मुहूर्त है

सः तिर्यग्गतौ उत्कर्षेण = वह (जीव) तिर्यंच गतिविषै उत्कृष्टकरि
अनंतकालम् असंख्येयान् पुद्गलपरिवर्तान् = अनंतकाल वा असंख्याते पुद्गल परावर्तन
तिष्ठति ततः* ऊर्ध्वं* गति अंतरम् प्राप्नोति = ठहरता है वा रहता है (और) वहांसे आगे अन्यगतिको प्राप्त होता है
ततः* तद् अपेक्षया तिर्यङ्मिथ्यादृष्टिकालः = इसलिये (ततस्) उस (= तद्) अपेक्षासे तिर्यंच मिथ्यादृष्टी जीवका काल
अनंतः कालः असंख्येयाः पुद्गलपरिवर्ताः इति— = अनंतकाल (वा) असंख्याते पुद्गल परिवर्तन है ऐसा
उक्तम् = कहा गया है

एकजीवं प्रति जघन्येनैकः समयः । उत्कर्षेण षडावलिकाः ॥ सम्यग्मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च जघन्यश्चोत्कृष्टश्चान्तर्मुहूर्तः॥ असँयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । एकजीवं प्रतिजघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण त्रीणि पल्योपमानि सातिरेकाणि ॥

एकजीवम् २। प्रति* जघन्येन ३।। एकः ३। समयः १। =(सासादन सम्यग्दृष्टिका) एक जीवके लिये जघन्यकरि एक समय है
उत्कर्षेण ३। षट् आवलिकाः १। सम्यग्मिथ्यादृष्टेः ६। =उत्कृष्टकरि छह आवली हैं । मिश्रगुणस्थानवर्तीका
नानाजीव–अपेक्षया ३।। एकजीव–अपेक्षया ३।। च =अनेकजीवकी विवक्षासे तथा एकजीवकी अपेक्षासे
जघन्यः १। च उत्कृष्टः १। च अन्तर्मुहूर्तः १। =जघन्य और उत्कर्ष भी अन्तर्मुहूर्त (काल) है
असंयतसम्यग्दृष्टेः ६। नानाजीव–अपेक्षया ३।। सर्वः =असंयतसम्यग्दृष्टीका अनेक जीवकी विवक्षासे समस्त
कालः १। एकजीवम् २। प्रति* जघन्येन ३। अन्तर्मुहूर्तः १। =काल है एक जीवके लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त (काल) है
उत्कर्षेण ३। त्रीणि १।। पल्योपमानि म अतिरेकानि १।। =उत्कृष्टकरि तीन पल्योपम कुछ अधिक है

---

(१) यः कश्चिन्मनुष्यो बद्धमनुष्यायुष्कः पश्चात् गृहीतसम्यक्त्व उत्तमभोगभूमावुत्पद्यते तदपेक्षया सातिरेकाणि त्रिपल्योपमानि प्राक्तनमनुष्यभवसम्बन्धिना सम्यक्त्वग्रहणोत्तरकालवर्तिनायुषा अधिकानि यतो विग्रहगतावपि मनुष्यगतिनामकर्मोदयोपेतत्वेन मनुष्यत्वापरित्यागत्वात् ॥

यः १। कश्चित्* मनुष्यः १। बद्धमनुष्य–आयुष्कः १। =जो कोई मनुष्य नरआयु बांधकरि
पश्चात् * गृहीतसम्यक्त्वः १। उत्तमभोगभूमौ ७।। =पीछे सम्यग्दर्शन प्राप्तकरि उत्कृष्ट भोगभूमिविषै
उत्पद्यते T तद् अपेक्षया ३।। स– अतिरेकाणि १।। =जन्म लेता है उस विवक्षासे कुछ अधिक
त्रिपल्योपमानि १।। प्राक्तनमनुष्यभवसम्बन्धिना ३।। =तीनपल्यके बराबर (=उपम) (काल) है पहिले नर भवसम्बन्धी
सम्यक्त्वग्रहण–उत्तरकालवर्ति–आयुषा ३।। =सम्यग्दर्शनके प्राप्त करनेके पश्चात् समयवर्ती आयु
अधिकानि १।। =अधिक है अर्थात् तीनपल्य है और सम्यग्दर्शनके पश्चात्का काल और विग्रहगतिका काल अधिक है

शेषाणां सामान्योक्तः कालः ॥ देवगतौ देवेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेणैकत्रिंशत्सागरोपमाणि ॥ सासादनसम्यग्दृष्टेः सम्यग्मिथ्यादृष्टेश्च सामान्योक्तः कालः ॥

शेषाणाम् ॥ = (मनुष्यगतिविषैं मनुष्यनमें) अवशेष [पांचवासे चौदहवां गुणस्थानतकनिका]

सामान्य-उक्तः ॥ कालः ॥ = संक्षेपसे [पूर्वं] कथित [गुणस्थानवत्] काल है अर्थात्

संयमासंयमिनिका नानाजीव अपेक्षासे सर्वकाल है। एक जीवका जघन्य अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट कुछ न्यून एक करोड पूर्व है। प्रमत्त अप्रमत्त गुणस्थानोंमें नानाजीवकी अपेक्षासे सर्वकाल है । एक जीवका जघन्य एक समय है उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है ॥ चार (अपूर्वकरण, अनुवृत्तिकरण, सूक्ष्मसांपराय, उपशांत कषाय उपशम श्रेणीवालेका नानाजीव अपेक्षासे और एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय काल है उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त-काल है ॥ चार [आठवां-नववां-दशवां-बारहवां] क्षपकश्रेणी चढनेवालोंका और अयोगकेवलीनिका नानाजीवकी अपेक्षासे और एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। सयोग केवलीनिका नानाजीवकी अपेक्षासे सब काल है एक जीवके लिये जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टकरि कुछ घाटि एक करोड पूर्व है ॥

देवगतौ ॥ देवेषु ॥ मिथ्यादृष्टेः ॥ = सुरगतिविषैं सुरनमें मिथ्यादृष्टीका

नानाजीव-अपेक्षया ॥ सर्वः ॥ कालः ॥ = नानाजीवकी विवक्षासे समस्त काल है

एकजीवम् ॥ प्रति जघन्येन ॥ अन्तर्मुहूर्तः ॥ उत्कर्षेण ॥ = एक जीवके लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्टकरि

एकत्रिंशत्सागरोपमाणि ॥ सासादनसम्यग्दृष्टेः ॥ = इकतीस सागरके बराबर है सासादन सम्यग्दर्शनवाले देवका

सम्यग्मिथ्यादृष्टेः ॥ च सामान्य+उक्तः ॥ कालः ॥ = तथा मिश्रगुणस्थानवर्ती [देवका] संक्षेपसे कथित (गुणस्थानवत्) काल है अर्थात् सासादनसम्यग्दृष्टी देवका नाना जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक

यतः । विग्रहगतौ ॥ अपि । = क्योंकि (‒ यतः) विग्रहगति (या नयाशरीर धारण करनेके लिये गमनमें) भी

मनुष्यगतिनामकर्म-उदय-उपेतत्वेन ॥ = मनुष्यगति (नामा) नामकर्मके उदय होनेसे

मनुष्यत्व-अपरित्यागत्वात् ॥ = मनुष्यपनेका ' जीवके ' त्याग नहीं होता है

असंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः ॥ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि ॥ (२) इन्द्रियानुवादेन—एकेन्द्रियाणां नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। एकजीवं प्रति जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणम्।

समय है। उत्कृष्टकरि पल्योपमके असंख्यातवां भाग है। एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय उत्कृष्ट छह आवली है ॥ मिश्रगुणस्थानवर्ती देवोंका नानाजीव अपेक्षासे जघन्य अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्टकरि पल्यका असंख्यातवा भाग है। एक जीवका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥

असंयतसम्यग्दृष्टेः १। नानाजीव+अपेक्षया ३। सर्वः २। = असंयत [चौथेगुणस्थान] वर्ती [देव]का अनेक जीवकी विवक्षासे समस्त कालः १। एकजीवम् २। प्रति*जघन्येन ३। अन्तर्मुहूर्तः १। = काल है एक जीवके लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त [काल] है उत्कर्षेण ३। त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि १। = उत्कृष्टकरि तेतीस सागरके तुल्य [उत्तम] है [२] इन्द्रिय+अनुवादेन ३। एक+इन्द्रियाणाम् ६। नानाजीव = [२] इन्द्रियके कथनानुसारकरि एक इन्द्रियनकें अनेक जीवकी अपेक्षया ३। सर्वः १। कालः १। एकजीवम् २। प्रति*जघन्येन ३। = अपेक्षासे समस्त काल है एकजीवके लिये जघन्यकरि सूक्ष्मभवग्रहणम् १। = सूक्ष्मभवका (काल) लिया गया है

२ तत्कीदृशमिति चेत्—उच्छ्वासलक्षणमुहूर्तमध्ये तावदेकेन्द्रियो भूत्वा कश्चिज्जीवः षट्षष्टिसहस्रद्वात्रिंशदधिकशतपरिमाणानि जन्ममरणान्यनुभवति ६६१३२। तथा स एव जीवः तस्यैव मुहूर्तस्य मध्ये द्वित्रिचतुःपञ्चेन्द्रियो भूत्वा यथासंख्यमशीतिषष्टिचत्वारिंशच्चतुर्विंशतिजन्ममरणान्यनुभवति। सर्वेऽप्येते समुदिताः क्षुद्रभवा एतावन्त एव भवन्ति ६६३३६ ॥ गोमट्टसारे जीवकाण्डे पर्याप्त्यधिकारे गाथायां १२३-१२४ उक्तं च—

तिण्णिसया छत्तीसा छावट्ठिसहस्सगाणि मरणाणि। अंतोमुहुत्तकाले तावदिया चेव खुद्दभवा ॥ १२३ ॥

संस्कृत छाया, त्रीणि शतानि षट्त्रिंशत् षट्षष्टिसहस्रकाणि मरणानि अन्तर्मुहूर्तकाले तावन्तश्चैव क्षुद्रभवाः।

सीदी सट्ठी तालं वियले चउवीस होंति पंचक्खे। छावट्ठिं च सहस्सा सयं च बत्तीसमेयक्खे ॥ १२४ ॥

संस्कृत छाया-अशीतिः षष्टिः चत्वारिंशद्विकले चतुर्विंशतिर्भवन्ति पंचाक्षे। षट्षष्टिश्च सहस्राणि शतं च द्वात्रिंशदेकाक्षे ॥

यदा चैव मुहूर्तस्य मध्ये एतावन्ति जन्ममरणानि भवन्ति तदैकस्मिन्नुच्छ्वासे अष्टादश जन्ममरणानि लभ्यन्ते ॥ तत्रैकस्य क्षुद्रभवसंज्ञा ॥

तद् १॥ कीदृशम् १॥ इति*चेत्* = (वह क्षुद्रभव) कैसा है ऐसा (=इति) सदेह (=चेत्) (करनेपर कहते हैं)

उक्तलक्षणमुहूर्तमध्ये =कही हुई लक्षणवाली मुहूर्तके बीचमें या भीतर अर्थात् अन्तर्मुहूर्तमें
तावत् एक+इन्द्रियः भूत्वा कश्चित् जीवः =कोई चेतन प्रथम (=तावत्) एकेंद्रिय होकर
षट्षष्टिसहस्र-द्वात्रिंशत्+अधिकशतपरिणामानि सः =छ्यासठि हजार बत्तीस अधिक (और) एकसौके प्रमाण
६६१३२ जन्ममरणानि अनुभवति तथा सः =६६१३२ जन्म मरणोंको धारण करता है बहुरि (=तथा) वह (=स)
एव जीवः तस्य एव मुहूर्तस्य मध्ये =ही (=एव) चेतन्य उस ही मुहूर्तके बीचमें अर्थात् अन्तर्मुहूर्तमें
द्वि त्रि चतुस्-पञ्च+इन्द्रियः भूत्वा- =द्वींद्रिय त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय पचेन्द्रिय होकर
यथासंख्यम् अशीतिषष्टिचत्वारिंशत्— =यथाक्रम या क्रमानुसार अस्सी साठ चालीस
चतुर्विंशति-जन्ममरणानि अनुभवति =(और) चौवीस जन्म मरणोंको ग्रहण करता है

अर्थात् द्वीन्द्रिय अस्सीवार त्रींद्रिय साठवार चतुरिंद्रिय चालीस वार पंचेंद्रिय चौबीसवार होता है।

सर्वे अपि एते समुदिताः क्षुद्रभवाः =ये (=एते) सब ही (=अपि) सूक्ष्म भव मिले हुए (=समुदिताः)
एतावन्त एव भवंति ६६३३६ =इतने (=एतावन्तः) ही अर्थात् ६६३३६ होते हैं॥
गोम्मटसारे जीवकाण्डे पर्याप्ति-अधिकारे =गोम्मटसार ग्रन्थमें जीवकांडविषैं पर्याप्तिके प्रकरणमें
गाथयोः ॥ १२३—१२४ उक्त च =आर्याङ्क १२३—१२४ में कहा भी (=च) गया है कि
तिण्णि (तिण्णि) सया छत्तीसा (=त्रीणि शतानि षट्त्रिंशत्) =तीनसौ छत्तीस
छावट्ठिसहस्सगाणि मरणाणि (षट्षष्टिसहस्राणि मरणानि) =छयासठ हजार (वार) मरण
अन्तोमुहुत्तकाले तावदिया च (अन्तर्मुहूर्तकाले तावन्तः) =और (=च) अन्तर्मुहूर्तमें इतने
एव खुद्दभवा (एव क्षुद्रभवाः) =ही सूक्ष्म जन्म एक लब्ध्यपर्याप्तक जीवके होते हैं
सीदी सट्ठी तालं वियले (=अशीतिः षष्टिः चत्वारिंशत् विकले) =अस्सी, साठ, चालीस, विकल इन्द्रियवालों अर्थात् द्वीन्द्रिय त्रींद्रिय और चतुरिंद्रियवाले (लब्ध्यपर्याप्तकों) में (भव) होते हैं और
चउवीस होंति पंचक्खे (=चतुर्विंशतिः भवंति पञ्च-अक्षे) =चौवीस (जन्म) पंचेन्द्रियवाले (लब्ध्यपर्याप्तको) में होते हैं

उत्कर्षेणानन्तः कालोऽसंख्येयाः पुद्गलपरिवर्ताः ॥ विकलेन्द्रियाणां नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । एकजीवं प्रति जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणम् । उत्कर्षेण संख्येयानि वर्षसहस्राणि ॥ पञ्चेन्द्रियेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः ।

उत्कर्षेण अनन्तः कालः असख्येयाः = उत्कृष्टकरि (एकेन्द्रिय जीवका) अनंतकाल है (सो) असख्यात
पुद्गलपरावर्ताः विकल-इन्द्रियाणाम् नानाजीव- = पुद्गल परावर्तन है विकल (द्वि-त्रि-चतुः) इन्द्रिय जीवनका अनेक जीवकी
अपेक्षया सर्वः कालः एकजीवं प्रति * = विवक्षासे समस्त काल है एक जीवकेलिये
जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणम् = जघन्यकरि सूक्ष्म भव [का काल] लिया गया है।
उत्कर्षेण संख्येयानि वर्षसहस्राणि = उत्कृष्टकरि संख्यात हजार वरस हैं ॥
पञ्चेन्द्रियेषु मिथ्यादृष्टेः नानाजीव-अपेक्षया = पांच इन्द्रीवाले जीवनमें मिथ्यादृष्टीका अनेक जीवकी विवक्षासे
सर्वः कालः एकजीवम् प्रति* जघन्येन = सब काल है। एक जीवके लिये जघन्यकरि
अंतर्मुहूर्तः = अंतर्मुहूर्त है

च* छावट्ठि सहस्सा सयं (च*षट्षष्टिः सहस्राणि शतं) = और छयासठ सहस्र एकसौ और(= च)
च* बत्तीस पयक्खे —(= च*द्वात्रिंशत् एकाक्षे) = बत्तीस (सूक्ष्मभव)एकेंद्रियवाले (लब्ध्यपर्याप्तकों)में होते हैं।
च एव* यदा* मुहूर्तस्य मध्ये एतावन्ति = वहुरि जब ही मुहूर्तके बीचमें ही इतने अर्थात् अन्तर्मुहूर्तमें ही
जन्ममरणानि भवन्ति तदा एकस्मिन् उच्छ्वासे = जन्म मरण होते हैं तब एकही उच्छ्वासमें
अष्टादश जन्म मरणानि लभ्यन्ते = अठारह जन्म मरण प्राप्त किये जाते है (गणित करनेसे ६६३३६ जन्म मरण / ३६८५१ स्वास

अर्थात् यह अन्तर मुहूर्त ३६८५१ स्वासोंका है

तत्र एकस्य क्षुद्रभवसंज्ञा = वहां एक (जन्म मरण) की क्षुद्रभव संज्ञा है

(१) उत्कर्षेण अनन्तकालोऽसख्यातपुद्गलपरिवर्तनलक्षणो निरन्तरमेकेन्द्रियत्वेन मृत्वा पुनर्भवात्ततो विकलेन्द्रियः पञ्चेन्द्रियो वा भवति ॥

उत्कर्षेण अनन्तकालः असख्यातपुद्गल— = उत्कृष्टकरि अनन्तकाल जो असंख्यात पुद्गल

उत्कर्षेण सागरोपमसहस्रं पूर्वकोटीपृथक्त्वैरभ्यधिकम् ॥ शेषाणां सामान्योक्तः कालः ॥

उत्कर्षेण ३। सागरोपम–सहस्रम् १।१। = उत्कृष्टकरि हजार सागर प्रमाण और
पूर्वकोटीपृथक्त्वैः ३।३। अभ्यधिकम् १।१। = पृथक्त्व [तीनसे ऊपर नवसे नीचे] करोड पूर्व अधिक है
शेषाणाम् ६।३। = अवशिष्ट (सासादनगुणस्थानसे लेकर अयोगकेवलीतक)तका
सामान्य-उक्तः १।१ कालः १।१ = संक्षेपसे कहाहुआ [गुणस्थानवत्) काल है अर्थात् सासादन सम्यग्दृष्टीका नाना जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पल्यका असंख्यातवां भाग प्रमाण है । एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट छःआवली काल है ॥ मिश्रगुणस्थानवर्तीनिका नानाजीव अपेक्षासे जघन्य अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट पल्यके असंख्यातवां भाग है। एक जीवका जघन्य और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है ॥ असंयत सम्यग्दृष्टीनिका नानाजीव अपेक्षासे सर्वकाल है एक जीवका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है ॥ उत्कृष्टकाल तेतीस सागरसे कुछ अधिक है । संयमासंयमीनिका नानाजीव अपेक्षासे सर्वकाल है एक जीवका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकाल कुछ न्युन एक करोड पूर्व है ॥ प्रमत्तसंयमीनिका और अप्रमत्तसंयमीनिका नाना जीव अपेक्षासे सर्व काल है । एक जीवका काल जघन्य एक समय है उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है । आठवां गुणस्थानसे ग्यारहवें तकके उपशम श्रेणीवालोंका नानाजीव अपेक्षासे और एक जीव अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है ॥ चार क्षपक श्रेणी चढनेवालोंका और अयोगकेवलिनका नानाजीव अपेक्षासे और एक जीव अपेक्षासे जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है । सयोगकेवलीनिका नानाजीव अपेक्षासे सर्वकाल है एक जीवका जघन्य अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्ट कुछ घाटि करोड पूर्व है ॥

परावर्तनलक्षणः १।१ निरन्तरं १।१। एकेन्द्रियत्वेन ३।१। = परावर्तन लक्षणवाला है बराबर या लगातार एकेन्द्रिय होकरि (पश्चात्)
मृत्वा + ततः॥ पुनः॥ भवात् ५।१ = मरकरि वहां (एकेन्द्रिय) से फिर (= पुनः) जन्म लेकरि
विकलेन्द्रियः १।१ पंचेन्द्रियः १।१ वा भवति 1' = विकल (द्वि त्रि–चतुः) इन्द्रिय अथवा पंचेन्द्रिय होता है

(३) कायानुवादेन—पृथिव्यप्तेजोवायुकायिकानां नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। एकजीवं प्रति जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणम्। उत्कर्षेणासंख्येयः कालः॥ वनस्पतिकायिकानामेकेन्द्रियवत्॥ त्रसकायिकेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेण द्वे सागरोपमसहस्रे पूर्वकोटीपृथक्त्वैरभ्यधिके। शेषाणां पञ्चेन्द्रियवत्॥

काय-अनुवादेन ३। पृथिवी-अप्-तेज वायु- = कायके कथनानुसारकरि भूमि, जल, अग्नि पवन
कायिकानाम् ६। नानाजीव अपेक्षया ३। सर्वः १। कालः १। = कायिकनका अनेक जीवकी विवक्षासे समस्त काल है।
एकजीवम् २। प्रति* जघन्येन ३। क्षुद्रभवग्रहणम् १। = एक जीवके लिये जघन्यकरि सूक्ष्म भवका [काल] लिया गया है
उत्कर्षेण ३। असंख्येयः १। कालः १। = उत्कृष्टकरि असंख्यात [लोक परिमाण] काल है
वनस्पतिकायिकानाम् ६। एकेन्द्रियवत्* = वनस्पति कायिकनिका (काल) एकेन्द्रियके सदृश है अर्थात् एक जीव की अपेक्षासे जघन्यकरि क्षुद्र भवमें जितना काल लगे उतना (= श्वास के अठारहवां भाग) उत्कृष्टकरि अनंत काल है जो असंख्यात पुद्गल-परावर्तोंके तुल्य है॥
त्रसकायिकेषु ७। मिथ्यादृष्टेः ६। नानाजीव-अपेक्षया ३। = त्रसकायिकनिमें मिथ्यादृष्टियोंका अनेक जीवकी विवक्षासे
सर्वः १। कालः १। एकजीवम् २। प्रति जघन्येन ३। = सब काल है एक जीवके लिये जघन्यकरि
अंतर्मुहूर्तः १। उत्कर्षेण ३। द्वे १।। सागरोपमसहस्रे १।। = अंतर्मुहूर्त है। उत्कृष्टकरि दो हजार सागरके बराबर [और]
पूर्वकोटीपृथक्त्वैः ३।।। अभि-अधिके १।। = पृथक्त्व [तीनसे ऊपर नवसे नीचे] करोड पूर्वकरि अधिक है
शेषाणाम् ६। पञ्चेन्द्रियवत्* = बचे हुये [गुणस्थानोंके त्रसकायिकोंका] पंचेन्द्रियके सदृश (काल) है अर्थात् सासादन सम्यग्दृष्टोंकी नाना जीव अपेक्षासे जघन्य एक इत्यादि से कुछ घाटि करोड पूर्व है॥ यहां तक पृष्ठ १९२ का लेख देखो॥

(४) योगानुवादेन—वाङ्मानसयोगिषु मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्टिसंयतासंयतप्रमत्ताप्रमत्तसयोगकेवलिनां नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। एकजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्तः॥ सासादनसम्यग्दृष्टेः सामान्योक्तः कालः॥ सम्यग्मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेण पल्योपमासंख्येयभागः। एकजीवं प्रति जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्तः॥ चतुर्णामुपशमकानां क्षपकाणां च नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च।

(४) योग-अनुवादेन ॥	=योगकी विवक्षाकरि
वाङ्मानसयोगिषु ॥ मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टि-	=वचन मन योगनिविषैं मिथ्यादृष्टी असंयत सम्यग्दर्शनवालेनिका
संयतासंयत-प्रमत्त-अप्रमत्त—	=संयमासंयमी प्रमत्त [छठे गुणस्थानवर्ती] अप्रमत्त [गुणस्थानवर्ती]
सयोगकेवलिनां ॥ नानाजीव-अपेक्षया ॥ सर्वः ॥	=(तथा) योगसहित केवलिनका अनेक जीवकी विवक्षासे समस्त
कालः ॥ एकजीव अपेक्षया ॥ जघन्येन ॥ एकः ॥	=काल है। एक जीवकी अपेक्षासे जघन्यकरि एक
समयः ॥ उत्कर्षेण ॥ अन्तर्मुहूर्तः ॥ सासादन—	=समय है उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है सासादन सम्यग्दृष्टि (दूसरे गुणस्थानवर्ती)
सम्यग्दृष्टेः ॥ सामान्य उक्तः—	=का संक्षेपसे कहाहुआ (गुणस्थानवत्)
कालः ॥	=काल है अर्थात् सासादन सम्यग्दृष्टीका नानाजीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पल्योपमके असंख्यातवां भाग है। एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट छः आवली है
सम्यक्मिथ्यादृष्टेः नानाजीव-अपेक्षया ॥ जघन्येन ॥	=मिश्र गुणस्थानवालेका अनेक जीवकी विवक्षासे जघन्यकरि
एकः ॥ समयः ॥ उत्कर्षेण ॥ पल्योपम-असंख्येय-	=एक समय है उत्कृष्टकरि पल्योपमके असंख्यातवां
भागः ॥ एकजीवम् ॥ प्रति* जघन्येन ॥ एकः ॥	=अंश है। एक जीवके लिये (मिश्रगुणस्थानवर्तीका) जघन्यकरि एक
समयः ॥ उत्कर्षेण ॥ अन्तर्मुहूर्तः ॥ चतुर्णाम् ॥	=समय है उत्कृष्टकरि अन्तरमुहूर्त है। चार
उपशमकानाम् ॥	=उपशम श्रेणी (आठवां नववां दशवां ग्यारहवां गुणस्थान) वालेनिका
क्षपकाणाम् ॥ च	=तथा क्षपक श्रेणी (आठवां नववां दशवां और बारहवां गुणस्थान) वालेनका
नानाजीव-अपेक्षया ॥ एकजीव-अपेक्षया ॥ च*	=अनेक जीवकी विवक्षासे और [=च] एक जीवकी अपेक्षासे

जघन्येनैकः समयः । उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्तः ॥ काययोगिषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । एक-जीवं प्रति जघन्येनैकः समयः । उत्कर्षेणानन्तः कालोऽसंख्येयाः पुद्गलपरिवर्ताः ॥ शेषाणां मानसयोगि-वत् ॥ अयोगानां सामान्यवत् ॥ (५) वेदानुवादेन—स्त्रीवेदेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । एकजीवं प्रतिजघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण पल्योपमपृथक्त्वम् ॥

जघन्येन ३।१ एकः १।१ समयः १।१ उत्कर्षेण ३।१ अन्तर्मुहूर्तः १।१	= जघन्यकरि एक समय है उत्कृष्टकरि अन्तर्मुहूर्त है ।
काययोगिषु ७।३ मिथ्यादृष्टेः ६।१	= काययोगीनिमें मिथ्यादृष्टीका
नानाजीव+अपेक्षया ३।१ सर्वः १।१ कालः १।१	= अनेक जीवकी विवक्षासे समस्त काल है ।
एकजीवम् २।१ प्रति※जघन्येन ३।१ एकः १।१ समयः १।१	= एक जीवके लिये जघन्यकरि एक समय है ।
उत्कर्षेण ३।१ अनन्तः १।१ कालः १।१ असंख्येयाः १।३	= उत्कृष्टकरि अनन्त काल है (सो) असंख्यात
पुद्गलपरिवर्ताः १।३ शेषाणाम् ६।३	= पुद्गलपरिवर्तन हैं । अवशेष(दूसरेसे तेरहवां गुणस्थानवाले)निका काल
मानस+योगिवत्※	= मन योगीनके [कालके] सदृश है [देखो पृष्ठ २००)
अयोगानाम् ६।३ सामान्यवत्※	= अयोगकेवलीनिका संक्षेप [प्रकरणमें कथित गुणस्थान]वत् (काल) है अर्थात् अयोग केवलनिका नानाजीव अपेक्षासे और एक जीव अपेक्षासे जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल है (पृष्ठ १८७ देखो)
(५) वेद+अनुवादेन ३।१ स्त्रीवेदेषु ७।३ मिथ्यादृष्टेः ६।१	= वेदके कथनानुसारकरि स्त्री वेदविषैं मिथ्यादृष्टी (स्त्री) का
नानाजीव+अपेक्षया ३।१ सर्वः १।१ कालः १।१	= अनेक जीवकी विवक्षासे समस्त काल है
एकजीवम् २।१ प्रति ※ जघन्येन ३।१+अन्तर्मुहूर्तः १।१	= एक चैतन्यके लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है ।
उत्कर्षेण ३।१ पल्य+उपमपृथक्त्वम् १।१॥	= उत्कृष्टकरि पृथक्त्व (= तीनसे ऊपर नवसे नीचे) पल्यके बराबर है

सासादनसम्यग्दृष्ट्याद्यनिवृत्तिबादरान्तानां सामान्योक्तः कालः किं तु असंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः।

सासादनसम्यग्दृष्टि–आदि = सासादनसम्यक्त्ववाली [स्त्रीवेदी] से
अनिवृत्तिबादर–अन्तानां ६। = अनिवृत्ति बादर गुणस्थानवर्ती तकनिका
सामान्य–उक्तः १। कालः १। = संक्षेप [प्रकरण] में (पहिले) कथित [गुणस्थानवत्] काल है

अर्थात् सासादन सम्यग्दृष्टी स्त्रीवेदीनिका नानाजीव अपेक्षासे जघन्य एक समय है, उत्कृष्ट पल्यके असंख्यातवां भाग है। एक जीवका काल जघन्य एक समय है–उत्कृष्ट छः आवली है॥ मिश्रगुणस्थानवर्ती स्त्री-वेदियोंका नानाजीव अपेक्षासे जघन्य अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवां भाग है। एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है॥ असंयमी चौथे गुणस्थानवर्ती स्त्रीवेदियोंका इसके नीचे सर्वार्थसिद्धिमें न्यारा कहा है॥ संयमासंयमी स्त्रीवेदीनिका नानाजीव अपेक्षासे सर्वकाल है। एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य अन्तर्मुहूर्त है, उत्कृष्ट कुछ घाटि करोड पूर्व है। प्रमत्त छठे अप्रमत्त सातवें गुणस्थानवाले स्त्रीवेदियोंका नानाजीवकी अपेक्षासे सर्व काल है। एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है॥ अपूर्व करण उपशमश्रेणी स्त्री (भाव) वेदीका और अनिवृत्तिकरण उपशम श्रेणी स्त्री (भाव) वेदीका नानाजीव अपेक्षासे और एक जीव अपेक्षासे जघन्य एक समय उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। अपूर्व करण क्षपक श्रेणी स्त्री (भाव) वेदीका और अनिवृत्तकरण क्षपक-श्रेणी स्त्री [भाव] वेदीका नाना जीवोंकी अपेक्षासे और एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है।

किंतु असंयत सम्यग्दृष्टेः ६। = परंतु असंयत सम्यग्दृष्टी (स्त्री वेदियों) का
नानाजीव+अपेक्षया ३। = अनेक जीवकी अपेक्षासे
सर्वः १। कालः १। = समस्त काल है

एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण पञ्चपञ्चाशत्पल्योपमानि देशोनानि ॥ पुंवेदेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः ।

एकजीवं ।३। प्रति* जघन्येन ।३। अन्तर्मुहूर्तः ।१। = एक जीवकी जघन्यकरि अंतरमुहूर्त है ।

उत्कर्षेण ।३। पञ्चपञ्चाशत्पल्योपमानि ।१। देशोनानि ।१। = उत्कर्षकरि कुछ हीन पचपन पल्यके बराबर है ।

पुंवेदेषु ।७। मिथ्यादृष्टेः ।६। नानाजीव अपेक्षया ।३। सर्वः कालः = पुरुष वेदविषैं मिथ्यादृष्टीका अनेक जीवकी विवक्षासे सब काल है ।

---

(१) देशोनानि कथमिति चेत् स्त्रीवेदासंयतैकजीवं प्रति उत्कर्षेण पञ्चपञ्चाशत्पल्योपमानि गृहीतसम्यक्त्वस्य स्त्रीवेदोत्पदाभावात् पर्याप्तः सन्सम्यक्त्वं गृहीष्यतीति पर्याप्तिसमापकान्तर्मुहूर्तहीनत्वाद्देशोनानि तानि पञ्चपञ्चाशत्पल्योपमानि स्त्रीवेदे षोडशस्वर्गे सम्भवन्तीति वेदितव्यम्

देश-ऊनानि ।१। कथम्* इति* चेत्* = कुछ हीन कैसे ? इसप्रकार संदेह है ।

स्त्रीवेद-असंयत-एकजीवम् ।२। प्रति* = (उत्तर) स्त्रीवेदीमे चौथे गुणस्थानवर्ती एक जीवके लिये

उत्कर्षेण ।३। पञ्चपञ्चाशत्पल्योपमानि ।१। = उत्कृष्टकरि पचपन पल्यके तुल्य है

गृहीतसम्यक्त्वस्य ।६। स्त्रीवेद-उत्पाद— = सम्यग्दर्शनसहित (जीव) के स्त्रीवेदविषै उत्पन्न होनेका वा जन्म लेनेका

अभावात् ।५। = अभाव होनेसे

पर्याप्तः ।१। सन् सम्यक्त्वम् ।२। गृहिष्यति T इति* = पर्याप्त होनेपर (=सन्) सम्यग्दर्शन धारण करता है इसप्रकार

पर्याप्तिसमापक-अन्तर्मुहूर्तहीनत्वात् ।५। = पर्याप्ति अवस्थाको पूरण करनेवाले अंतरमुहूर्तके हीन होनेसे

देशोनानि ।१। तानि ।१। पञ्चपञ्चात् ।१। पल्योपमानि ।१। = कुछ हीन ते पचपन पल्योपम

स्त्रीवेदे ।७। षोडशस्वर्गे ।७। सम्भवन्ति T इति वेदितव्यम् ।१। = स्त्रीवेदमें सोलहवां स्वर्गविषै सम्भवै हैं इसप्रकार जानना योग्य है (सत् वर्तमान कृदन्त है) अर्थात् जो जीव सम्यग्दर्शनसहित मरता है वह स्त्री नहीं होता है इसलिये सोलह स्वर्गकी स्त्री भी कोई जीव हो जिसकी उत्कृष्ट आयु पचपन पल्यकी होतो वह स्त्री असंयत सम्यग्दृष्टी केवल अन्तर्मुहूर्त घाटि पचपन पल्य ही रहैगी क्योकि अंतर्मुहूर्तमे पर्याप्त होनेपर सम्यक्त्व धारण करेगी सो वही अन्तर्मुहूर्त न्यून हो जावैगी । इसके बाद मरकर तो वह पुरुषवेदी हो जायगी ।

एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेण सागरोपमशतपृथक्त्वम् ॥ सासादनसम्यग्दृष्ट्याद्यनिवृत्तिबादरान्तानां सामान्योक्तः कालः ॥ नपुंसकवेदेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेणानन्तः कालोऽसंख्येयाः पुद्गलपरिवर्ताः॥ सासादनसम्यग्दृष्ट्याद्यनिवृत्तिबादरान्तानां सामान्यवत्। किं त्वसंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः।

एकजीवम् ।२। प्रति* जघन्येन ।३। अन्तर्मुहूर्तः ।१। = एक जीवके लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है।

उत्कर्षेण ।३। सागर-उपम-शत पृथक्त्वम् ।१।। = उत्कृष्टकरि पृथक्त्व सौ सागरके तुल्य है अर्थात् तीनसौ सागरसे अधिक नवसौ सागरसे नीचे है ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि आदि अनिवृत्तिबादर-अन्तानां ।६। = [पुरुषवेदविषैं] सासादनसम्यग्दर्शनवालेसे लेकर अनिवृत्तिबादर तकनिका

सामान्य उक्तः ।१। कालः ।१। = संक्षेपसे कथित [गुणस्थानवत्] काल है। यह काल वही है जो २०२ पृष्ठका है परंतु असंयमीका एक जीवकी अपेक्षासे उत्कृष्टकरि तेतीस सागर से कुछ अधिक है ॥

नपुंसकवेदेषु ।७। मिथ्यादृष्टेः ।६। नानजीव अपेक्षया ।३। = नपुंसक वेदविषैं मिथ्यादृष्टीका अनेक जीवकी विवक्षासे

सर्वः ।१। कालः ।१। एकजीवं ।२। प्रति*जघन्येन ।३। = समस्त काल है एक जीवके लिये जघन्यकरि

अन्तर्मुहूर्तः ।१। उत्कर्षेण ।३। अनन्तः ।१। कालः ।१। = अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्टकरि अनन्त काल है [सो]

असंख्येयाः ।१। पुद्गलपरिवर्ताः ।१। = असंख्याते पुद्गल परावर्तन हैं

सासादनसम्यग्दृष्टि आदि— = [नपुंसक वेदविषैं] सासादन सम्यग्दर्शनवालेसे लेकर

अनिवृत्तिबादर-अन्तानां ।६। सामान्यवत् * = नवमां गुणस्थानवर्ती तकनिका संक्षेपसे (कथित गुणस्थानवत् काल) है ॥

किम्* तु* असंयतसम्यग्दृष्टेः ।६। = परंतु असंयत सम्यग्दर्शनवालेका

नानाजीव-अपेक्षया ।३। सर्वः ।१। कालः ।१। = नानाजीवकी विवक्षासे समस्त काल है

एकजीवम् ।२। प्रति जघन्येन ।३। अन्तर्मुहूर्तः ।१। = एक जीवके लिये जघन्यकरि अंतर्मुहूर्त है

उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि देशोनानि ॥ अपगतवेदानां सामान्यवत् ॥ (६) कषायानुवादेन चतुष्कषायाणां मिथ्यादृष्ट्याद्यप्रमत्तान्तानां मनोयोगिवत् द्वयोरुपशमकयोर्द्वयोः क्षपकयोः केवललोभस्य च अकषायाणां च

उत्कर्षेण ३ त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि ३ देशोनानि	= उत्कृष्टकरि कुछ हीन तेतीससागरके बराबर है
अपगतवेदानाम् ३	= वेदरहित [दशवां, ग्यारहवां, बारहवां तेरहवां चौदहवां गुणस्थानवर्तीनि) का
सामान्यवत् *	= (काल) संक्षेप [प्रकरणमें कहाहुआ गुणस्थानवत्) है अर्थात् सूक्ष्मसाम्पराय, उपशांतकषाय दोय उपशम श्रेणीवालोंके नानाजीव और एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्तकाल है। सूक्ष्मसाम्पराय क्षपक श्रेणीवालोंका और क्षीणकषाय अयोगकेवलियोंका नानाजीवकी अपेक्षा से और एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। सयोगकेवलियोंका नानाजीव अपेक्षासे सर्वकाल है एक सयोगकेवलीकी अपेक्षासे जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट काल कुछ घाटि एक करोड पूर्व है।
(६) कषाय अनुवादेन ३	= (६) कषायके कथनानुसार करि
चतुष्कषायाणां ३ मिथ्यादृष्टि-आदि-	= चार [क्रोध मान माया लोभ) कषाय वाले मिथ्यादृष्टिसे लेकर
अप्रमत्त-अन्तानां ३ मनस्-योगिवत् *	= अप्रमत्त तकोंका (काल) मनोयोगीके सदृश है [पृष्ठ २०० पंक्ति दूसरीसे १३ तक वही शब्दशः यहांका काल पढ़लो)
द्वयोः ३ उपशमकयोः ३ द्वयोः ३	= दो उपशमश्रेणी (आठवां नववां गुणस्थान वालेनिका) दो
क्षपकयोः ३ केवललोभस्य ६ च*	= क्षपकश्रेणीनवालेनिका और केवल लोभवालेका दशवें गुणस्थानवर्तीनका (जहां एक संज्वलन लोभ है अन्य कषाय कोई नहीं है)
अकषायाणाम् ३ च*	= तथा कषायरहित [ग्यारहवां बारहवां तेरहवां चौदहवां गुणस्थानवर्तिनि]का

सामान्योक्तः कालः ॥ (७) ज्ञानानुवादेन—मत्यज्ञानिश्रुताज्ञानिषु मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्ट्योः सामान्यवत् ॥

सामान्य-उक्तः ॥ कालः ॥ = संक्षेपसे कथित [गुणस्थानवत] काल है अर्थात् अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण उपशम श्रेणीवाले कषाय सहितोंका नानाजीव अपेक्षासे और एक जीव अपेक्षासे जघन्य एक समय काल है उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण क्षपकश्रेणीवाले कषायसहितोंका नानाजीव अपेक्षासे और एक जीव अपेक्षासे जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है॥ सूक्ष्मसाम्पराय उपशमश्रेणीवालोंका एक जीव और नानाजीव अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है॥ सूक्ष्मसाम्पराय क्षपकका एकजीवकी और अनेक जीवकी अपेक्षासे जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्तकाल है उपशांत कषायवालोंका नानाजीव और एकजीव अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है॥ क्षीणकषायवालोंका नानाजीव और एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य तथा उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है॥ सयोगकेवलियोंका नानाजीव अपेक्षासे समस्त काल है एकजीवका जघन्य काल अंतर्मुहूर्त है उत्कृष्ट काल कुछ घाटि एक करोड पूर्व है॥ अयोगकेवलियोंका नानाजीव अपेक्षासे और एक जीव अपेक्षासे उत्कृष्ट काल और जघन्यकाल अंतर्मुहूर्त है॥

७ ज्ञान+अनुवादेन ॥ = ७ ज्ञानके कथनानुसारकरि

मति। अज्ञानि+श्रुत+अज्ञानिषु ॥ = मतिअज्ञानी श्रुतअज्ञानियोंविषै

मिथ्यादृष्टि+सासादनसम्यग्दृष्ट्योः = मिथ्यादृष्टि [तथा] सासादन सम्यग्दर्शनवालेका (काल)

सामान्यवत्॥ = संक्षेप [प्रकरणमें पहिले कहा हुआ गुणस्थानवत] है अर्थात् मिथ्यादृष्टिका मतिअज्ञानी और श्रुतअज्ञानीका नाना जीव अपेक्षासे सर्व काल है। एक जीव अपेक्षासे तीन भेद हैं [१] अनादि अपर्यवसान [२] अनादि सपर्यवसान और सादिसपर्यवसान तहां सादिसपर्यवसान काल जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट कुछ हीन अर्धपुद्गल परावर्त है॥ मतिअज्ञानी और श्रुतअज्ञानी सासादन सम्यग्दृष्टियोंका नाना जीव अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पल्यके असंख्यातवां भाग है। एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्ट छह आवली है॥

विभङ्गज्ञानिषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि देशोनानि ॥ सासादनसम्यग्दृष्टेः सामन्योक्तः कालः ॥ आभिनिबोधिकश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलज्ञानिनां च सामान्योक्तः कालः ॥

विभङ्गज्ञानिषु ७। मिथ्यादृष्टेः ६। नानाजीव+अपेक्षया ३।	=कुअवधि ज्ञानियोंमें मिथ्यादृष्टीका अनेक आत्माकी विवक्षासे
सर्वः १। कालः १। एकजीवं २। प्रति जघन्येन ३। अन्तर्मुहूर्तः १।	=समस्त काल है एक आत्माके लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
उत्कर्षेण ३। त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि ३। देशोनानि ३।	=उत्कर्षकरि कुछ हीन तेतीस सागरके बराबर है (त्रयस्त्रिंशत्को सागरोपमके साथ समासमें अथवा भिन्न भी ला सक्ते हैं)
सासादनसम्यग्दृष्टेः ६।	=(कुअवधि ज्ञानियोंमें) सासादन सम्यग्दर्शन वालेका
सामान्य+उक्तः १। कालः १।	संक्षेप(प्रकरण)से कथित (गुणस्थानवत्) काल है अर्थात् नाना जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है, उत्कृष्ट पल्यके असंख्यातवां भाग है । एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय उत्कृष्ट छः आवली है॥
आभिनिबोधिकश्रुत+अवधिमनःपर्यय-	=मतिज्ञानी (=आभिनिबोधिक) श्रुतज्ञानी अवधिज्ञानी मनःपर्यय
केवलज्ञानिनाम् ६। च सामान्य+उक्तः १। कालः १।	=और केवल ज्ञानीनका संक्षेपकरि कथित (गुणस्थानवत्) काल है अर्थात् मति–श्रुत–अवधि ये तीन ज्ञान चारसे बारह गुणस्थान तक होते हैं, मनःपर्ययज्ञान छठेसे बारह तक होता है अतः कालका

(१) देशोनानीति कथम्—विभङ्गज्ञानिमिथ्यादृष्ट्येकजीवं प्रति उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि । पर्याप्तश्च विभङ्गज्ञानं प्रतिपद्यत इति पर्याप्तसमापकान्तर्मुहूर्तहीनत्वाद् देशोनानि ॥

देशोनानि १।। इति*कथम्*	=कुछ हीन (यह) कैसे
विभङ्गज्ञानिमिथ्यादृष्टि-एकजीवम् २। प्रति*	=कुअवधिज्ञानी मिथ्यादृष्टी एक चेतनके लिये
उत्कर्षेण ३। त्रयस्त्रिंशत् १।। सागर+उपमाणि१।।	=उत्कृष्टकरि तेतीस सागर (के) तुल्य (काल) है (टिप्पणी पृष्ठ १२१)
पर्याप्तः १। च विभङ्ग+ज्ञानम् २।। प्रतिपद्यते T इति *	=पर्याप्त जीव ही (=च) खोटी अवधिको प्रारम्भ करता है इस प्रकार
पर्याप्तिसमापक+अन्तर्मुहूर्तहीनत्वात् ५।। देश+ऊनानि १।।	=पर्याप्तको पूरण करनेवाला अन्तर्मुहूर्त हीन होनेसे कुछ हीन (तेतीस सागर) है

८ संयमानुवादेन–सामायिकच्छेदोपस्थापनपरिहारविशुद्धिसूक्ष्मसाम्परायथाख्यातशुद्धिसंयतानां सँयतासंयतानामसंयतानां च

प्रमाण इस भांति है कि असंयत सम्यग्दृष्टी मतिज्ञानियों श्रुतज्ञानियों और अवधिज्ञानियोंका नाना जीवकी अपेक्षासे सर्व काल है एक जीवका काल जघन्य अन्तर्मुहूर्त है, उत्कृष्ट तेतीस सागरसे कुछ अधिक है। संयमासंयमी मतिज्ञानियोंका श्रुतज्ञानियोंका अवधिज्ञानियोंका नानाजीव अपेक्षासे सर्व काल है एक जीवका जघन्य अंतर्मुहूर्त है उत्कृष्ट कुछ घाटि एक करोड पूरव है । प्रमत्त संयमी अप्रमत्तसंयमी मतिज्ञानियोंका श्रुतज्ञानियोंका अवधिज्ञानियोंका और मनःपर्ययज्ञानियोंका नानाजीवकी अपेक्षासे सर्व-काल है। एक जीवका जघन्य एक समय है उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है । चार उपशमश्रेणीवाले मति–श्रुत–अवधि–मनःपर्ययज्ञानियोंका नानाजीवकी अपेक्षासे और एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय काल है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। चार क्षपकश्रेणीवाले मति–श्रुत–अवधि मनःपर्यय ज्ञानियोंका और अयोग केवलियोंका नानाजीवकी अपेक्षासे और एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है सयोग केवलियोंका नानाजीवकी अपेक्षासे सब काल है एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट [काल] कुछ न्यून एक करोड पूर्व है ॥

[८]संयम+अनुवादेन३ = (८) संयमके कथनानुसारसे
सामायिकच्छेदोपस्थापन- = सामायिक और छेदोपस्थान संयमी (छठा सातवां आठवां नववां गुणस्थानवर्ती)निका
परिहारविशुद्धि- = परिहारविशुद्धि सयमी (छठे सातवें गुणस्थानवाले) निका
सूक्ष्मसाम्पराय- = सूक्ष्मसाम्पराय संयमी (दशवें गुणस्थानवर्ती)निका
यथाख्यातशुद्धिसंयतानां = यथाख्यात शुद्धिसंयमी [ग्यारहवां वारहवां तेरहवां चौदहवां गुणस्थानवाले] निका
संयतासंयतानाम् ६ा = संयमासंयमी (पांचवें गुणस्थानवर्ती)निका
असंयतानाम् ६ा च = तथा [=च] असंयमी (पहलेसे चौथे गुणस्थानवाले] निका

सामान्योक्तः कालः ॥ (९) दर्शनानुवादेन—चक्षुर्दर्शनिषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण द्वे सागरोपमसहस्रे ॥ सासादनसम्यग्दृष्ट्यादीनां क्षीणकषायान्तानां सामान्योक्तःकालः ॥ अचक्षुर्दर्शनिषु मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायान्तानां सामान्योक्तः कालः ॥

सामान्य-उक्तः ॥ कालः ॥ =संक्षेप (प्रकरण) द्वारा कथित (गुणस्थानवत्) काल है (देखो पृष्ठ १७९ से १८८)
(९) दर्शन-अनुवादेन ॥ चक्षुर्दर्शनिषु ॥ मिथ्यादृष्टेः ॥ =(९) दर्शनकी विवक्षा करि चक्षुर्दर्शनवालोंमें मिथ्यादृष्टीका
नाना-जीव-अपेक्षया ॥ सर्वः ॥ कालः ॥ एकजीवं ॥ प्रति =अनेक जीवकी विवक्षासे सब काल है। एक चेतनके लिये
जघन्येन ॥ अन्तर्मुहूर्तः ॥ उत्कर्षेण ॥ द्वे ॥ सागरोपम =जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्टकरि सागरोपम दो
सहस्रे ॥ सासादन-सम्यग्दृष्टि-आदीनां ॥ क्षीणकषाय =सहस्र है। सासादन सम्यग्दृष्टि आदिकोंका क्षीणकषाय (बारहां गुणस्थानवर्ती)
अन्तानां ॥ सामान्य-उक्तः ॥ कालः ॥ =पर्यंतोंका संक्षेप (प्रकरण) से कथित (गुणस्थानवत्) काल है अर्थात्

चक्षुर्दर्शनवाले सासादन सम्यग्दृष्टिनिका नाना जीव अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पल्यके असंख्यातवां अंश है। एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट छः आवली है। मिश्रगुणस्थानवर्ती चक्षुर्दर्शन वालेनिका नाना जीव अपेक्षासे जघन्य अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट पल्यका असंख्यातवां भाग है एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। असंयत सम्यग्दृष्टि चक्षुर्दर्शन वालेनिका नाना जीवकी अपेक्षासे सर्वकाल है। एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट तेतीस सागर से कुछ अधिक काल है। संयमासंयमी चक्षुर्दर्शन वालेनिका नाना जीवकी अपेक्षा से सर्वकाल है एक जीव की अपेक्षासे जघन्य अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट कुछ न्यून एक करोड़ पूर्व है। प्रमत्त छठे गुणस्थानवर्ती चक्षुर्दर्शन वालेनिका और अप्रमत्त सातवां गुणस्थानवर्ती चक्षुर्दर्शन वालेनिका नाना जीवकी अपेक्षासे सर्वकाल है एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। चार उपशमक चक्षुर्दर्शन वालेनिका नाना जीवकी अपेक्षासे और एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। चार क्षपकश्रेणीवाले चक्षुर्दर्शन वालेनिका नाना जीवकी अपेक्षासे और एक जीव की अपेक्षासे जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥

अचक्षुः दर्शनिषु ॥ मिथ्यादृष्टि-आदि-क्षीणकषाय— =अचक्षुर्दर्शनवालेनि में मिथ्यादृष्टिसे लेकर (=आदि) क्षीणकषाय
अन्तानां ॥ सामान्य-उक्तः ॥ कालः ॥ =पर्यन्तनिका संक्षेपसे कहा हुआ गुणस्थानवत् काल है अर्थात् मिथ्यादृष्टिका

अवधिकेवलदर्शनिनोरवधिकेवलज्ञानिवत् ॥ (१०) लेश्यानुवादेनकृष्णनीलकापोतलेश्यासु मिथ्यादृष्टेर्नाना-जीवापेक्षया सर्वः कालः । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः ।

नाना जीव की अपेक्षा से सर्वकाल है। एक जीवकी अपेक्षासे सादिसांत भंगका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्ट कुछ घाटि अर्द्ध पुद्गल परावर्त है सासादन से क्षीण कषाय तकके लिये वही काल है जो "चक्षुदर्शन से अन्त मुहूर्त तक" पूर्व पृष्ठ २०९ में लिखित है ॥ देखो पृष्ठ २०९ पंक्ति १० से २० तक

अवधिकेवलदर्शनिनोः ६। अवधि-केवल ज्ञानिवत् * =अवधि दर्शन वाले और केवल दर्शन वालों का काल अवधिज्ञानी केवल-ज्ञानियों के सदृश [क्रम से] है। अवधिज्ञान और अवधिदर्शन चार से बारह गुणस्थान तक है केवल ज्ञान केवल दर्शन तेरहवें और चौदहवें गुणस्थान में है)

(१०)लेश्या-अनुवादेन ३। कृष्ण-नील-कापोत लेश्यासु ७॥ =लेश्यायों की अपेक्षा से कृष्ण-नील कापोत लेश्याओंमें

मिथ्या दृष्टेः ६। नानाजीव-अपेक्षया ३॥ सर्वः १। कालः १। =मिथ्या दृष्टि का नाना जीव की अपेक्षा से समस्त काल है ॥

एक जीवं २। प्रति* जघन्येन ३॥ अन्तर्मुहूर्तः १। =एक जीव के लिये जघन्य करि अन्तर्मुहूर्त है ॥

" लेश्यासु का अर्थ जो "लेश्याओं में" ऐसा लियाजावे तो स्त्रीलिंग होगा (जैसा अनुवाद में है) "लेश्या वालों में" ऐसा अर्थ लें तो पुल्लिंग होगा ॥

* = तु कालः १। तिर्यङ्मनुष्यापेक्षया तेषामेव लेश्यापरावर्तसम्भवात् ॥ एव सर्वत्र च लेश्यायुक्तस्यान्तर्मुहूर्तस्तिर्यङ्मनुष्यापेक्षयावेदितव्यः

सः १। तु*कालः १। तिर्यङ्मनुष्य अपेक्षया ३॥ तेषां ६। एव* =किंतु सो अन्तर्मुहूर्तका काल तिर्यंच और नरकी अपेक्षा से तिनके ही लेश्या-परावर्त-सम्भवात् ५। =लेश्याओंकी फेरा फेरी के हो सकने से है अर्थात् (मनुष्य-तिर्यंचों के ही लेश्यायें पलटती रहती हैं अत जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल है।

च*एव*सर्वत्र*लेश्या-युक्तस्य ६। अन्तर्मुहूर्तः १। =और (=च) ऐसे सब स्थानों में लेश्या सहितका अन्तर्मुहूर्त (काल) है

तिर्यङ्-मनुष्य-अपेक्षया ३॥ वेदितव्यः १। =सो तिर्यंच और मनुष्यों की अपेक्षा से मानना चाहिये

उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सप्तदशसप्तसागरोपमाणि सातिरेकाणि ॥ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यङ्मिथ्यादृष्ट्योःसामान्योक्तः कालः ।

उत्कर्षेण ३। स- अतिरेकाणि ३॥। (१) त्रयस्त्रिंशत्- =उत्कृष्टकरि कुछ अधिक तेतीस (सागरोपम काल सातवां नरक में)
सप्तदश- =(कुछ अधिक) सत्रह (सागर प्रमाण कालपांचवां नरक में)
सप्त-सागरोपमाणि ३॥। सासादन- =सातसागर प्रमाण (कुछ अधिक तीजे नरकमें) है। (तीन अशुभलेश्या में) सासादन-
सम्यग्दृष्टि सम्यङ् मिथ्या दृष्ट्योः ६। सामान्य- उक्तः १। कालः १। =सम्यग्दृष्टि और मिश्र गुणस्थानवर्तियों का संक्षेप से कथित (गुणस्थानवत्) काल है
अर्थात् कृष्ण-नील-कापोत लेश्या के धारक सासादन सम्यग्दर्शन-वालेनिका नाना जीव की अपेक्षा से जघन्य एक समय काल है उत्कृष्टपल्यका असंख्यातवां भाग है। एक जीव की अपेक्षा से जघन्य एक समय उत्कृष्ट छह आवली काल होता है। मिश्रगुणस्थानवर्ती कृष्ण-नील-कापोत लेश्या-वालों का नाना जीवकी अपेक्षासे जघन्य अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट पल्यका असंख्यातवां भाग है एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है ॥

(१) तत्कथम्—नारकापेक्षया यथा सख्यं सप्तम पञ्चम तृतीय पृथिव्यां त्रयस्त्रिंशत्सप्तदशसप्तसागरोपमाणि देवनारकाणामवस्थितलेश्यत्वात् ॥ व्रजन्नियमेन तल्लेश्यायुक्तो भवति । आगच्छतो नियमो नास्तीति सातिरेकाणि ॥

तत्-कथम् * =सो (कुछ अधिक तेतीस, सत्रह, सात सागर, अशुभ लेश्या के नारकिनका काल) कैसे है
देव-नारकाणाम् ६। अवस्थित-लेश्यत्वात् ५॥। नारक- =देव और नारकियो के स्थिर वा निश्चल लेश्या होने से नारकी जीवो की
अपेक्षया३॥ यथासंख्यं १॥। सप्तम-पञ्चम-तृतीय- पृथिव्यां ७॥ =अपेक्षासे यथा क्रम वा क्रमानुसार सातवां पांचवां और तीसरे नरक में
त्रयस्त्रिंशत्-सप्तदश-सप्त-सागरोपमाणि ३॥। नियमेन ३। =तेतीस, सत्रह और सात सागर प्रमाण (काल) है निश्चय से
तत्-लेश्या-युक्तः १। व्रजन् भवति (व्रजन् वर्तमान कृदन्त है) =उस (अशुभ) लेश्या सहित जीव (पूर्व जन्म से) चलकर नारकी होता है
आगच्छतः ६। नियमः१। न अस्ति इति से-अतिरेकाणि ३॥। =(नरकसे) आनेवाले को (लेश्या का) नियम नहीं ऐसे कुछ अधिक सागर है अर्थात्
नारकियो की लेश्या पलटती नहीं है सो सातवां नरक में जहां उत्कृष्ट लेश्या है तेतीस सागर काल है और पांचवां नरक में जहां उत्कृष्ट नील लेश्या है सत्रह सागर काल है और तीसरे नरक में जहां उत्कृष्ट कापोत लेश्या है सात सागरकाल है ऐसे तेतीस सत्रह और सात सागर तो ये हुए और नरक में जाने वाले जीव के मरते समय कृष्ण-नील कापोत लेश्या होती है और उनही लेश्या सहित नरक में जन्म लेता है। ऐसे

असंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सप्तदशसप्तसागरोपमाणि देशोनानि ॥ तेजः पद्मलेश्ययोर्मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः ।

असंयत-सम्यग्दृष्टेः ६। नाना-जीव-अपेक्षया ३॥	=(कृष्ण नील कापोत लेश्यावाले) असंयत सम्यग्दृष्टिका नाना जीवकी अपेक्षासे
सर्वः १। कालः १। एकजीवं २। प्रति* जघन्येन ३॥	=सर्वकाल है। एक चेतनके लिये जघन्यकरि
अन्तर्मुहूर्तः १। उत्कर्षेण ३। देशोनानि १॥ त्रयस्त्रिंशत्-†	=अन्तर्मुहूर्त (काल) है। उत्कृष्टकरि कुछ हीन तेतीस
सप्तदश-सप्त-सागरोपमाणि १॥	=सत्रह सात सागर प्रमाण (काल) है।
तेजः—पद्मलेश्ययोः ७॥ मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्ट्योः ६।	=पीत-पद्म लेश्याओं में मिथ्यादृष्टि और असंयत सम्यग्दर्शनवाले का
नाना-जीव अपेक्षया ३॥ सर्वः १। कालः १।	=अनेक चेतनकी विवक्षासे समस्त काल है

दोनो कालोको जोडने से कुछ अधिक तेतीस, कुछ अधिक सत्रह, वा कुछ अधिक सात सागर काल उत्कृष्टकरि होता है यद्यपि यह नियम नहीं है कि नरक से जन्म लेने के पश्चात् उस जीवके कोनसी लेश्या होगी।

† उक्त लेश्यायुक्ता सयत सम्यग्दृष्ट्येकजीवं प्रति उत्कर्षेण नारकापेक्षया उक्तान्येव सागरोपमाणि। पर्याप्तिसमापकान्तर्मुहूर्ते सप्तम्यां मारणान्तिके च सम्यक्त्वाभावाद्देशोनानि ॥

उक्त-लेश्या-युक्त-असंयत-सम्यग्दृष्टि एकजीवं २।	=कथित (कृष्ण-नील-कापोत) लेश्याओं सहित असंयत सम्यग्दृष्टिका एकजीवके
प्रति* उत्कर्षेण ३। नारक अपेक्षया ३॥ उक्तानि १॥	=लिये उत्कृष्टकरि नरककी अपेक्षासे कहे हुये
एव* सागरोपमाणि १॥	=ही सागर प्रमाण काल है अर्थात् सातवां नरक मे तेतीस और पांचवां नरक में सत्रह और तीसरे नरक मे सात सागर काल है (परन्तु)
पर्याप्तिसमापक-अन्तर्मुहूर्ते	=पर्याप्ति अवस्थाको पूरी करने वाली अन्तर्मुहूर्त (तीसरे पांचवें सातवें नरक में)
च सप्तम्याम् ७॥ मारणान्तिके ७।	=और (=च) सातवां (नरक) में मृत्युके समीप में (भी) अर्थात् सातवां नरक में मरते समय अवश्य मिथ्यात्व आ जाता है।
सम्यक्त्व-अभावात् ५। देशोनानि १॥	=सम्यग्दर्शन के अभाव होने से कुछ हीन (तेतीस सागर सत्रह सागर सातसागर काल क्रमसे सातवां पांचवां तीसरे नरक में) है। तीसरे पांचवें सातवें नरको में पर्याप्ति पूरी करनेके पीछे सम्यक्त्व होता है।

एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेण द्वे सागरोपमे अष्टादश च सागरोपमाणि सातिरेकाणि ॥

एकजीवं ३। प्रति* जघन्येन ३॥। अन्तर्मुहूर्तः १।	=एक जीवके लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
उत्कर्षेण ३।	=उत्कृष्टकरि (सौधर्म ऐशान स्वर्गोंके पीत-पद्म लेश्यावाले देवोंका काल)
द्वे ३॥। सागरोपमे ३॥। स-अतिरेकाणि ३॥। च*	=कुछ अधिक दो सागर प्रमाण है और
अष्टादश ३॥ सागर-उपमाणि ३॥ (स-अतिरेकाणि)	=कुछ अधिक अठारह सागर प्रमाण (सतार और सहस्रार स्वर्गोंके पीत-पद्म लेश्याके धारक देवोका काल) है

(१) द्वे सागरोपमे =दो सागर प्रमाण (काल) है परंतु सम्यग्दृष्टि हो और घातायुष्क हो तो उस जीवकी आयु उत्कृष्ट आयुसे कुछ न्यून आधसागर अधिक होती है और जीव दो सागर आयु पावै तो घातायुष्क अन्तर्मुहूर्त न्यून अढ़ाई सागर आयु पावै घातायुष्क वालेका उत्पाद बारहवें स्वर्ग तक है उसके ऊपर नहीं है।

घातायुष्क =पूर्व भवमें किसी जीवने विशुद्ध परिणामोसे आयुका बंध अधिक किया था, पश्चात् संक्लेश परिणामो के वशसे आयु घटाय थोडी रक्खी तिस जीवको घातायुष्क कहिये। जैसे कोई मनुष्य ब्रह्मब्रह्मोत्तर स्वर्गका आयु दशसागर प्रमाण बंधकिया फिर उसही मनुष्य भवमें संक्लेश परिणामोके बधने से आयुकी स्थितिका घात करके सौधर्म ईशानमें जाय उपजा सो घातायुष्क है सो अन्य देवोंकी दो सागर प्रमाण आयु ते अन्तर्मुहूर्त न्यून आधा सागर अधिक आयु पावै है। आयुका घात दो प्रकार है। एक अपवर्त्तन घात दूजा कदली घात। तहां वध्यमान आयुका घटावना सो अपवर्त्तन घात है अरभुज्यमान आयुका घटावना कदलीघात है। देवोमे कदलीघात संभव नहीं है।

तत्-लेश्यायुक्तानां ६। मारणान्तिक- = उन (पीतलेश्या और पद्मलेश्या) सयुक्तोके मारणान्तिक समुद्घात और

उपपाद-सम्भवात् ५। सातिरेकतः ५च सागरोपम- = उपपाद अवस्थाके होनेसे कुछ आयु वढ़ाने (के हेतु)से और (क्रमसे दो और अठारह) सागरोपम

युक्तत्वात् ५॥। सातिरेकाणि ३॥। किंचित् अधिकानि इति अर्थ = सहित कुछ अधिक (सातिरेकाणि) हुई। कुछ अधिक है ऐसा अर्थ है। सो जिस पर्यायको छोडकर देव वा नारकी उत्पन्न हो उस पर्यायके अन्तके अन्तर्मुहूर्तमें तथा देव नारक पर्यायको छोडकर जिस पर्यायमे उत्पन्न हो उस पर्यायके आदिके अन्तर्मुहूर्तमे वही लेश्या होती है। प्रथमको पूर्वभव चरमांतर्मुहूर्त और द्वितीयको उत्तरभव प्रथमांतर्मुहूर्त कहते है। (छहों लेश्याओके उत्कृष्टकाल प्रमाणमे दो दो अन्तर्मुहूर्त का काल अधिक अधिक समझना) इसलिये पीत-पद्मलेश्यावाले एकजीव घातायुष्कवाले का सौधर्म ईशान स्वर्गोंमें उत्कृष्टकाल = दो सागर+अन्तर्मुहूर्त न्यून आध-सागर (घातआयुष्क)+पूर्वभव चरमांतर्मुहूर्त + उत्तरभव प्रथमांतर्मुहूर्त ॥ सतार सहस्रार स्वर्गोंके पीतपद्मलेश्यावाले घातायुष्क जीवका उत्कृष्टकाल = १२सागर + अन्तर्मुहूर्त घाटि आधसागर + मारणांतकअन्तर्मुहूर्त + उपपाद अन्तर्मुहूर्त।

सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यङ्मिथ्यादृष्ट्योः सामान्योक्तः कालः ॥ संयतासंयतप्रमत्ताप्रमत्तानां नानाजीवापेक्षया सर्वःकालः ॥ एकजीवं प्रति जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्तः ॥ शुक्ललेश्यानां मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेणैकत्रिंशत्सागरोपमाणि सातिरेकाणि ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि-सम्यङ्मिथ्यादृष्ट्योः ॥ =(पीतपद्मलेश्याओं में) सासादनसम्यग्दृष्टी और मिश्रगुणस्थानवालों का

सामान्य-उक्तः ॥ कालः ॥ =संक्षेपकरि (पहिले) कथित (गुणस्थानवत) काल है अर्थात सासादन सम्यग्दृष्टि पीत-पद्मलेश्या धारकों का नाना जीव अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पल्य का असंख्यातवा भाग है एक जीव प्रति जघन्य एक समय है। उत्कृष्ट छह आवली है ॥ पीत-पद्मलेश्या वाले मिश्रगुणस्थान वालों का नाना जीवका जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल है उत्कृष्ट पल्यका असंख्यातवा भाग है। एक जीव की अपेक्षा-में जघन्य औरउत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है ॥

संयतासंयत-प्रमत्त-अप्रमत्तानां ॥ नाना- =(पीत-पद्म-लेश्या वालों में) देशसंयत, प्रमत्त अप्रमत्त वालों का अनेक

जीव-अपेक्षया ॥ सर्वः ॥ कालः ॥ एकजीवं ॥ प्रति ॥ =जीवकी अपेक्षा सब काल है। एक जीव के लिये

जघन्येन ॥ एकः ॥ समयः ॥ उत्कर्षेण ॥ अन्तर्मुहूर्तः =जघन्यकरि एक समय है उत्कृष्टकरि अन्तर्मुहूर्त है

शुक्ललेश्यानां ॥ मिथ्यादृष्टेः ॥ नाना-जीव-अपेक्षया ॥ =शुक्ललेश्या वाले मिथ्यादृष्टि का अनेक जीवकी विवक्षा से

सर्वः ॥ कालः ॥ एकजीवं ॥ प्रति जघन्येन ॥ =सर्व काल है। एक जीव के लिये जघन्यकरि

अन्तर्मुहूर्तः ॥ उत्कर्षेण ॥ स-अतिरेकाणि ॥ =अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्टकरि कुछ अधिक

एकत्रिंशत् ॥ सागरोपमाणि ॥ =इकतीस सागर प्रमाण है अर्थात मिथ्यादृष्टि शुक्ल लेश्याका धारक

। ग्रैवेयकदेवापेक्षया तेषां नामा ने मारणान्तिकोपपादावस्थायामपि शुक्ललेश्यासम्भवात्सातिरेकाणि ।

ग्रैवेयक-देव अपेक्षया ॥ तेषां ॥ नामापि ॥ =(नवम) ग्रैवेयक (मिथ्यादृष्टि) देवों की अपेक्षासे तिनके नाम

मारणान्तिक =मारणान्तिक समुद्घात और [illegible]

उपपादअवस्थायाम ॥ अपि शुक्ललेश्या- =[illegible] शुक्ललेश्या

सम्भवात् ॥ स-अतिरेकाणि ॥ =[illegible] शुक्ल लेश्या वाले जीव का

सासादनसम्यग्दृष्ट्यादिसयोगकेवल्यन्तानामलेश्यानां च सामान्योक्तः कालः । किं तु सँयतासँयतस्य नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । एकजीवं प्रति जघन्येनैकःसमयः । उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्तः ॥

मरकर नव ग्रैवेयक तक उत्पन्न होसका है जहां उत्कृष्ट आयु इकतीस सागर है मारणान्तिक समुद्घातके अन्तर्मुहूर्त में और उपपाद अवस्था के अन्तर्मुहूर्त मे भी शुक्ल लेश्या रहती है अतः उत्कृष्टकाल इकतीस सागरसे पूर्वभवचरमान्र्मुहूर्त और उत्तरभवप्रथमान्र्मुहूर्त के बराबर अधिक है

सासदनसम्यग्दृष्टि-आदि-सयोग-केवलि-अन्तानाम्	=(शुक्ल लेश्या वाले) सासादन सम्यग्दृष्टिसे लेकर सयोग केवली तकनिका
च अलेश्यानां ३। सामान्य-	=और (च) लेश्या रहित (अयोगकेवलि) निका संक्षेप (प्रकरण) करि
उक्तः १। कालः १।	=(प्रथम) कथित (गुणस्थानवत्) काल है अर्थात्

वही काल है जो पृष्ठ १८१ से १८८ तक में लिखा है। इसमेंसे पृष्ठ १८५ मेंसे "संयतासंयतस्य नानाजीवापेक्षयासर्वः कालः । एक जीवं प्रति जघन्येन अन्तर्मुहूर्तः उत्कर्षेण पूर्वकोटीदेशोना" छोड़दो क्योंकि संयमासंयमियोंका काल नीचे लिखा जाता है

किन्तु* संयातासंयतस्य ६। नाना-जीव-अपेक्षया ३।	=परन्तु संयमासंयामियोंका अनेक जीवकी अपेक्षा से
सर्वः १। कालः १। एकजीवम् २। प्रति* जघन्येन३।।	=सब काल है । एक जीवके लिये जघन्यकारि
एकः १। समयः १। उत्कर्षेण ३। अन्तर्मुहूर्तः १।	=एक समय है । उत्कृष्टकरि अन्तर्मुहूर्त है

११ भव्यानुवादेन—भव्येषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः ॥ एक जीवापेक्षया द्वौ भङ्गौ । अनादिः सपर्यवसानः सादिः सपर्यवसानश्च । तत्र सादिः सपर्यवसानो जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेणार्द्धपुद्गलपरिवर्तो देशोनः ॥ सासादनसम्यग्दृष्ट्याद्ययोगकेवल्यन्तानां सामान्योक्तः कालः ॥

(११) भव्य अनुवादेन ॥ भव्येषु ॥ मिथ्यादृष्टेः ॥ नाना	=भव्यकी अनुवादकरि भव्यजीवों मे मिथ्यादृष्टिका अनेक
जीव-अपेक्षया॥ सर्वः ॥ कालः ॥ एकजीव-	=जीवकी अपेक्षामे सर्वकाल है । एक जीवकी
अपेक्षया ॥ द्वौ ॥ भङ्गौ ॥	=अपेक्षाने दो भेद हैं
अनादिः ॥ सपरि-अवसानः ॥	=आदिरहित (=अनादि) अन्त (=अवसान) सहित (=सपरि) अर्थात् अनादि सांत है
च*स-आदि ॥ सपरि-अवसानः ॥	=(और दूसरा) आदि सहित (=सादि) अन्त (=अवसान) सहित अर्थात् सादि सांत है
तत्र*सादिः ॥ सपरि-अवसानः ॥ जघन्येन ॥	=तहां सादिसांत (काल) जघन्यकरि
अन्तर्मुहूर्तः ॥ उत्कर्षेण ॥ देशोनः ॥	=अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकरि कुछहीन
अर्द्धपुद्गलपरिवर्तः ॥ सासादनसम्यग्दृष्टि-आदि	=अर्द्धपुद्गलपरिवर्तन (काल) है । सासादनसम्यग्दृष्टीसेलेकर
अयोगकेवलि-अन्तानाम् ॥	=अयोगकेवली (चौदहवें गुणस्थानवर्ती) पर्यन्तोंका
सामान्य-उक्तः ॥ कालः ॥	=संक्षेप (प्रकरण) करि कहाहुआ (गुणस्थानवत) काल है

(देखो पृष्ठ १८१ से १८८ तक इस मुद्रित पुस्तकका)

अभव्यानामनाद्यपर्यवसानः ॥ (१२) सम्यक्त्वानुवादेन—क्षायिकसम्यग्दृष्टीनामसँयतसम्यग्दृष्ट्याद्ययोगकेवल्यन्तानां सामान्योक्तः कालः ॥ क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टीनां चतुर्णां सामान्योक्तः कालः ॥ औपशमिकसम्यक्त्वेषु असँयतसम्यग्दृष्टिसंयतासंयतयोर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण पल्योपमासंख्येयभागः । एकजीवं प्रति जघन्यश्चोत्कृष्टश्चान्तर्मुहूर्तः ॥ प्रमत्ताप्रमत्तयोश्चतुर्णामुपशमकानां च नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च जघन्येनैकः समयः । उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्तः ॥ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यङ्मिथ्यादृष्टिमिथ्यादृष्टीनां सामान्योक्तः कालः ।

अभव्यानाम् ६। अनादि-अपरि* अवसानः १। =अभव्योंका अनादि अन्त (=अवसान) रहित (=अपरि) अर्थात् अनादि अंतकाल है

(११) सम्यक्त्व-अनुवादेन ३। क्षायिक-सम्यग्दृष्टीनां ६। =(१२)सम्यग्दर्शन के कथनानुसारकरि क्षायिकसम्पर्शनवालोंका

असंयतसम्यग्दृष्टि-आदि-अयोगकेवलि-अन्तानां ६। =असंयत (चौथे गुणस्थान) वर्ती से अयोगकेवली पर्यन्तनिका

सामान्य-उक्तः १। कालः १। =संक्षेपकरि (पहिले) कहा हुआ (गुणस्थानवत्) काल है (पृष्ठ १८२ से १८८ तक)

क्षायोपशमिक-सम्यग्दृष्टीनां ६। चतुर्णां ६। =वेदक सम्यग्दर्शनवाले चारों (चारसे सातवां गुणस्थानवर्ती) निका

सामान्य-उक्तः १। कालः १। =संक्षेपसे कथित (गुणस्थानवत्) काल है (पृष्ठ १८२ पंक्ति ३ से १८५ पंक्ति ३ तक)

औपशमिकसम्यक्त्वेषु ७॥ असंयतसम्यग्दृष्टि- =उपशमसम्यग्दर्शनमें असंयमसम्यग्दर्शन वाले और

संयतासंयतयोः ६। नाना-जीव-अपेक्षया ३। =देशसंयमीनिका अनेक चेतनकी अपेक्षासे

जघन्येन ३। अन्तर्मुहूर्तः १। उत्कर्षेण ३। पल्योपम- =जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त (काल) है उत्कृष्टकरि पल्योपमके

असंख्येयभागः १। एकजीवं २। प्रति* जघन्यः १। च =असंख्यातवांभाग है और एक जीव के लिये जघन्य

उत्कृष्टः १। च अन्तर्मुहूर्तः १। च प्रमत्त-अप्रमत्तयोः ६। =और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त (काल) है। और प्रमत्त (छठे) अप्रमत्त (सातवें) गुणस्थानोंका

च चतुर्णां ६। =और चार (अपूर्वकरण—अनिवृत्तिकरण—सूक्ष्मसांपराय—उपशांतकषाय गुणस्थानवर्ती)

उपशमकानां ६। नाना—जीव—अपेक्षया ३॥ च = उपशमश्रेणीवालों का नाना जीवकी अपेक्षासे और

एक-जीव-अपेक्षया ३॥ जघन्येन ३। एकः १। समयः १। =एक जीवकीविवक्षा से जघन्यकरि एक समय है

उत्कर्षेण ३। अन्तर्मुहूर्तः १। सासादनसम्यग्दृष्टि- =उत्कृष्टकरि अन्तर्मुहूर्त है। सासादन सम्यग्दृष्टि

सम्यङ्मिथ्यादृष्टि-मिथ्यादृष्टीनां ६। सामान्य-उक्तःकालः=मिश्र और मिथ्यादृष्टियों का संक्षेप में कथित (गुणस्थानवत्) काल* है अर्थात्

(१३) सञ्ज्ञानुवादेन – संज्ञिषु मिथ्यादृष्ट्याद्य निवृत्तिबादरान्तानां पुंवेदवत् ॥

सासादनसम्यग्दृष्टीका अनेक जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय काल है उत्कृष्ट पल्यके असंख्यातवां भाग है एक जीवकी अपेक्षा से जघन्य एक समय उत्कृष्ट छः आवली है। मिश्र गुणस्थानवालोंका नाना जीवो की पृति जघन्य अन्तर्मुहूर्त है। उत्कर्ष पल्यके असंख्यातवां भाग है। एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य और उत्कर्ष अन्तर्मुहूर्त है। मिथ्या दृष्टियोंका नाना जीव अपेक्षा से सर्व काल है। एक जीव पृति तीन भेद है (१) अनादि अनंत काल (२) अनादि सान्त काल (३) सादि सान्त काल। तहां सादि सान्त काल जघन्य अन्तर्मुहूर्त है। उत्कर्ष कुछ न्यून आध पुद्गल परावर्त है ॥

(१३) सञ्ज्ञा-अनुवादेन ३। =संज्ञी के कथनानुसार करि
संज्ञिषु ७। मिथ्यादृष्टि– =(पृथम गुणस्थानवर्ती, सैनियोमे मिथ्यादृष्टी–
आदि-अनिवृत्तिबादर– =से लेकर (= आदि) अनिवृत्तिबादरसाम्पराय नवमां गुणस्थानवर्ती
अन्तानां ६। पुंवेदवत् =पर्यन्तनिका पुरुषवेद समान (काल) है ॥ इसलिये पुरुष वेद के अनुकूल मिथ्या दृष्टि सैनियो का नानाजीव अपेक्षासे सब काल है। एक जीव की अपेक्षा से जघन्य अन्तर्मुहूर्त है उत्कर्ष तीन सौ सागर से ऊपर और नौ सौ सागर से नीचे काल है। सासादन सम्यग्दृष्टी सैनियों का नाना जीव अपेक्षा से जघन्य एक समय है। उत्कृष्ट पल्य के असंख्यातवां भाग है। एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट छः आवली है ॥ मिश्र गुणस्थानवर्ती सैनियोंका काल नाना जीव अपेक्षासे जघन्य अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट पल्य के असंख्यातवां भाग है एक जीव की अपेक्षा से जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है ॥ असंयत सम्यग्दृष्टी सैनियो का काल नाना जीव अपेक्षा से सब काल है एक जीव की अपेक्षा से जघन्य अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट तेतीस सागर से कुछ अधिक है ॥ संयमासंयमी सैनियो का काल नाना जीव अपेक्षासे सर्व है एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट कुछ घाटि एक करोड पूर्व है ॥ पूमत्तसंयमी सैनियो का और अप्रमत्त संयमी सैनियों का नाना जीव अपेक्षा से सर्व काल है एक जीव अपेक्षा से जघन्य एक समय उत्कर्ष अन्तर्मुहूर्त है ॥ अपूर्वकरण और अनिवृत्ति करण उपशमश्रेणीवाले संज्ञियो

शेषाणां सामान्योक्तः कालः ॥ असंज्ञिनां मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । एकजीवं प्रति जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणम् ॥ तिण्णिसया छत्तीसा छावट्ठी सहस्सगाणि मरणाणि । अंतोमुहुत्तमेत्ते तावदिया चेव होंति खुद्दभवा ॥ ६६३३६ ॥ उत्कर्षेणानन्तः कालोऽसंख्येयाः

का नाना जीव अपेक्षा से और एक जीव अपेक्षा से जघन्य एक समय है उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है । अपूर्व करण और अनिवृत्ति करण क्षपक श्रेणी वाले संज्ञियों का नाना जीवऔर एक जीव अपेक्षा से जघन्य और उत्कर्ष अन्तमुहूर्त काल है

शेषाणां ३। =बचेहुये (सैनी दशवां-ग्यारहवां-बारहवां गुण स्थानवर्ती) निका

सामान्य-उक्तः १। कालः १। =संक्षेप (प्रकरण) मे कहा हुआ (गुणस्थानवत्) काल है अर्थात् शेष उशम श्रेणीवाले दशवां-ग्यारहवां गुणस्थानवर्ती संज्ञियों का नाना जीवकी और एक जीवकी अपेक्षा से जघन्य एक समय है उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है और शेष क्षपक श्रेणीवाले दशवा बारहवां गुणस्थानवर्ती सैनियो का नाना जीव और एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ संज्ञी प्रथमसे बारह गुणस्थान तक होते हैं ॥ असंज्ञी केवल मिथ्यात्व गुणस्थानमें होते हैं ॥

असंज्ञिनां ३। मिथ्यादृष्टेः १। नानाजीव अपेक्षया २॥ =मन रहित (= असंज्ञिनां) मिथ्यादृष्टीका अनेक चेतनकी अपेक्षासे

सर्वः १। कालः १। एकजीवं १। प्रति जघन्येन १। =समस्त काल है एक जीव केलिये जघन्यकरि

क्षुद्रभव-ग्रहणम् १॥ =सूक्ष्मभव (का काल) लिया गया है [सो श्वांस के अठारहवां भाग होता है]

तिण्णि १॥ सया १॥ छत्तीसा १॥ (=त्रीणि शतानि षट् त्रिंशत्=तीन सौ छत्तीस

छावट्ठी १॥ सहस्सगाणि १॥ (=षटषष्टि १॥ सहस्रकाणि)=छासठ सहस्र

मरणाणि १॥ अंतोमुहुत्त-(=मरणानि १॥ अन्तर्मुहूर्त-)=मरण अन्तर्मुहूर्त

मेत्ते १। तावदिया १। च (मात्रे १। तावन्तः १। च) =मात्र मे और (= च)इतने (अर्थात् ६६३३६)

एव होंति T खुद्दभवा १। (=एव भवन्ति क्षुद्रभवाः) =ही सूक्ष्म भव (एक लब्ध्य पर्याप्तक जीव के) होते हैं ॥

उत्कर्षेण ३। अनन्तः १। कालः १। असंख्येयाः १। =(मन रहित मिथ्यादृष्टी का) उत्कृष्ट करि अनंत काल है । सो असंख्याते

पुद्गलपरिवर्ताः । तदुभयव्यपदेशरहितानां सामान्योक्तः कालः ॥ (१४) आहारानुवादेन -- आहारकेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेणांगुलासंख्येयभाग असंख्येयाः सख्येया उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः ।

पुद्गलपरिवर्ताः १। तद्-उभय-व्यपदेश-रहितानां ६।	=पुद्गल परावर्तन हैं । उन (सैनी असैनी) दोनों नामोंसे वर्जित
सामान्य- उक्तः १। कालः १।	=(सयोग-अयोग केवली) निका संक्षेप से कथित (गुणस्थानवत्) काल है अर्थात् सयोग केवलियोंका नाना जीवकी प्रति सब काल है एक जीव की अपेक्षा से जघन्य अन्तर्मुहूर्त हैं उत्कृष्ट कुछ घाटि करोड़ पूर्व है । अयोग केवलियों का काल नाना जीव की और एक जीवकी प्रति जघन्य-उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है
(१४) आहार-अनुवादेन १। आहारकेषु ३। मिथ्यादृष्टेः ६।	=आहार के कथनानुसार करि आहारकनि मे मिथ्यादृष्टी का
नाना जीव अपेक्षया ३॥ सर्वः १। कालः १। एकजीवं २।	=अनेक जीवकी अपेक्षासे सब काल है । एक जीव के
प्रति॰ जघन्येन ३। अन्तर्मुहूर्तः १। उत्कर्षेण ३।	=लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकरि
अंगुल-असंख्येय-भागः-१। असंख्येया संख्येयाः १।	=(सूची अंगुल के असंख्यातवां अंश है सो असंख्यातासंख्यरत
उत्सर्पिणि-अवसर्पिण्यः १।	=उत्सर्पिणी (काल) अवसर्पिणी काल (परिमाण) है अर्थात अंगुल के प्रदेश और इनके समय समान है ॥ भावार्थ सूच्यंगुलके असंख्यातवां भाग के प्रदेशोंकी संख्याके बराबर आहारक का समय है ।

(१) उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी रूप छह कालों से भरत और ऐरावत क्षेत्रों में मनुष्यों की आयु काय भोगोपभोग सम्पदा वीर्य वृद्धयादिक का बढ़ना और घटना होता है । उत्सर्पिणी के छह कालों में वृद्धि और अवसर्पिणी के छह कालोमें दिनों दिन ह्रास होता जाता है । अवसर्पिणी काल के (१) सुखमसुखमा (२) सुखमा (३) सुखमदुःखमा (४) दुःखमसुखमा (५) दुःखमा (६) अति दुःखमा ऐसे छह भाग है । इसी प्रकार उत्सर्पिणीके भी (१) अति दुःखमा (२) दुःखमा (३) दुःखमसुखमा (४) सुखमदु खमा (५) सुखमा (६) सुखमसुखमा ये छह है ॥ अवसर्पिणी काल दश कोडा कोडी सागर का है अर्थात् १००००००० × १००००००० = १००००००० ००००००० (दशनील सागर को) × १० (दशसे गुणा करो) तो १००००००० ००००००० ० सौ नीलसागर हुये । और उत्सर्पिणी काल भी दश कोडा कोडी सागर अर्थात् सौ नीलसागर का है । इन दोनो कालों को मिलाकर बीस कोडा कोडी सागर को एक कल्प कहते हैं ॥ (२) देखो टिप्पणी मुद्रित पृष्ठ २६९ से २७६ तक

शेषाणां सामान्योक्तः कालः ॥ अनाहारकेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । एकजीवं प्रति जघन्येनैकः समयः । उत्कर्षेण त्रयः समयाः ॥

शेषाणां ॥	=(आहारकनिमें) अवशिष्ट (दूसरेसे तेरहवें गुणस्थानवाले) निका
सामान्य-उक्तः ॥ कालः ॥	=संक्षेपमे कथित (गुणस्थानवत्) काल है अर्थात १८१ से १८८ पृष्ठ तक देखो और पृष्ठ १८७ मेंसे अयोगकेवलियो का काल जो नाना जीव की और एक जीवकी अपेक्षा से जघन्य-उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है मत पढ़ो ॥
अनाहारकेषु ॥ मिथ्यादृष्टेः ॥ नाना-जीव-अपेक्षया॥	=अनाहारकनिमें मिथ्यादृष्टीका अनेक चेतनकी अपेक्षा से
सर्वः ॥ कालः ॥ एकजीवं ॥ प्रति * जघन्येन ॥	=सब काल है । एक जीवके लिये जघन्यकरि
एकः॥ समयः॥ उत्कर्षेण ॥ त्रयः ॥ समयाः ॥	=एक समय (मात्र) है । उत्कृष्टकरि तीन समय (तक विग्रहगति में) है अनाहारक अवस्था जीव की पहले-दूसरे-चौथे-तेरहवें-चौदहवें गुणस्थानो में है

(२)अंगुल असंख्येय भागाः देखापृष्ट २२० यह वाक्य सर्वार्थ सिद्धि के दोनो संस्करणो में अशुद्ध (छप गया) है यह वाक्य इस प्रकार होना चाहिये कि अंगुल असंख्येय भागः इत्यादि और अंगुल से सूच्यंगुल समझना चाहिये क्योंकि पंडित टोडरमल जी कृत गोम्मटसार की गाथा ६७० इस प्रकार कि ' अंगुल असंख भागो कालो आहारयस्स उक्कस्सो (अंगुलासंख्यभाग: काल आहारकस्योत्कृष्ट) ॥ जीव तत्व प्रदीपिका टीका में इस का अर्थ ऐसे किया है कि ' आहार कालः उत्कृष्टः सूच्यंगुलासंख्यातैकभाग " भाषा टोडरमल जी आहार का काल उत्कृष्ट सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण है ॥ सूच्यंगुल का असंख्यातवाँ भाग के जेते प्रदेश होंहि तितने समय प्रमाण आहारक का काल है ॥ जयचन्द रायजी ने भी असंख्यातवां भाग अनुवाद किया है न कि असंख्यातेभाग "उत्कृष्ट अंगुल के असंख्यातवां भाग है सो असंख्यातासंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी परिमाण है । अंगुलि के प्रदेश और इन के समय समान हैं ।।"सर्वार्थ सिद्धि वचनिका पृष्ठ मुद्रित ९७ ॥ इस का सारांश यह है कि आहार की अपेक्षा से मिथ्यादृष्टी का एक जीव की विवक्षा से उत्कृष्ट काल सूच्यंगुल के असंख्यातवां भाग है इस सूच्यंगुल के असंख्यातवां भाग के प्रदेश संख्या व गणना में इतने हैं कि जितने पूर्वोक्त टिप्पणी में कथित उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल के समय गणना से होते हैं ॥ (सूच्यंगुल क्या है पृ० २६९ से २७६)

(१) एक द्वौ त्रीन्वाऽनाहारकः इति व क्ष्यमाणत्वात् ॥	(नया भव अथवा जन्म धारण करने के लिये गमन में जीव)
एकं ॥ द्वौ ॥ त्रीन ॥ वा*	=एक (समय तक) के लिये दो (समय तक) को अथवा तीन (समय तक) को
अन् आहारकः ॥	=अनाहारक है अर्थात् नो कर्म वर्गणा का आहार वा ग्रहण नहीं करता है
इति* वक्ष्यमाणत्वात् ॥॥	=क्योकि ऐसा (अध्याय २ सूत्र ३० में) कहा जायगा ।

जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेण पल्योपमासंख्येयभागः। एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येयभागः उत्कर्षेणार्द्धपुद्गलपरिवर्तो देशोनः॥ सम्यग्मिथ्यादृष्टेरन्तरं नानाजीवापेक्षया सासादनवत्। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेणार्द्धपुद्गलपरिवर्तो देशोनः॥ असंयतसम्यग्दृष्ट्याद्यप्रमत्तान्तानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम्। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेणार्द्धपुद्गलपरिवर्तो देशोनः॥ चतुर्णामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेण वर्षपृथक्त्वम्

जघन्येन ३।।। एकः १। समयः १। उत्कर्षेण ३। पल्योपम-	=जघन्यकरि एक समय है। उत्कृष्टकरि पल्योपमके
असंख्येय-भागः १। एकजीवं २। प्रति जघन्येन ३।।।	=असंख्यातवें भाग है। एक जीव के लिये जघन्यकरि
पल्योपम का असंख्येय-भागः १। उत्कर्षेण ३। देशोनः १।	=पल्योपम का असंख्यातवां खंड है। उत्कृष्ट करि कुछ न्यून
अर्ध-पुद्गल-परिवर्तः १।सम्यग्मिथ्यादृष्टेः ६।	=अर्ध पुद्गल परावर्तन है॥ मिश्रगुणस्थान वर्तीनिका
अन्तरं १।। नाना-जीव अपेक्षया ३।। सासादनवत्*	=विरह काल अनेक जीवकी विवक्षा से सासादन (दूसरे गुणस्थान)सम है अर्थात्‌जघन्य अतर एक समय है उत्कर्ष पल्य के असंख्यातवां भाग है
एकजीवं २। प्रति* जघन्येन ३ अन्तर्मुहूर्तः १। उत्कर्षेण ३।	=एक जीव के लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है। उत्कर्ष करि
अर्ध-पुद्गल परावर्तः १। देशोनः१। असंयत-	=कुछ घाटि आधे पुद्गल परावर्तन है। असंयमी
सम्यग्दृष्टि-आदि-अप्रमत्त-अन्तानां ६। नानाजीव-	=सम्यग्दर्शन वाले से अप्रमत्त गुणस्थानतकनिका अनेक जीव की
अपेक्षया ३। न* अस्ति T अन्तरम् १।।।	=विवक्षा से वियोग काल (कुछ) नही है॥ (चौथे से सातवें गुणस्थान वालोंका)
एकजीवं २। प्रति* जघन्येन ३।।। अन्तर्मुहूर्तः १। उत्कर्षेण ३।	=एक आत्मा के लिये जघन्य करि अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्ट करि
अर्ध-पुद्गल परिवर्तः १। देशोनः १।	=कुछ न्यून आधे पुद्गल परावर्तन (अन्तर) है
चतुर्णाम् ६। उपशमकानाम् ६।	=चार उपशम श्रेणी (आठवें से ग्यारहवां गुणस्थान) वालेनिका (अन्तर)
नाना-जीव-अपेक्षया ३।। जघन्येन ३। एकः १। समयः १।	=अनेक जीव की विवक्षा से जघन्यकरि एक समय है
उत्कर्षेण ३। वर्ष-पृथक्त्वम् १।।।	=उत्कृष्ट करि पृथक्त्व (तीन से ऊपर नौ से नीचे) वर्ष है

एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेणार्द्धपुद्गल परिवर्तो देशोनः ॥ चतुर्णां क्षपकाणामयोग केवलिनां च नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः । उत्कर्षेण षण्मासाः । एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम् ॥ सयोगकेवलीनां नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च नास्त्यन्तरम् ॥ विशेषेण (१) गत्यनुवादेन–नरकगतौ नारकाणां सप्तसु पृथ्वीषु मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण एक-त्रि-सप्त-दश-सप्तदश–

एकजीवं ॥ प्रति+जघन्येन ॥॥ अन्तर्मुहूर्तः ॥	=(चार उपशम श्रेणीवालेकानिका) एक जीवके लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
उत्कर्षेण ॥ देशोन ॥ अर्द्धपुद्गल–परिवर्तः ॥	= उत्कृष्टकरि कुछ घाटि अर्द्ध पुद्गल परावर्तन (विरह काल) है
चतुर्णाम् ॥ क्षपकाणाम् ॥	=चार(आठवें से दशवें तक–बारहवे गुणस्थानवर्ती)क्षपक श्रेणीवालेनिका
च*अयोगकेवलीनां ॥ नानाजीव-अपेक्षया ॥॥ जघन्येन ॥॥	=और(=च) अयोग केवली निका अनेक जीवकी विवक्षासे जघन्यकरि
एकः॥ समयः ॥ उत्कर्षेण ॥ षण्मासाः ॥	=एक समय(विरहकाल) है । उत्कृष्टकरि छह महीना अन्तर है
एकजीव ॥ प्रति * न* अस्ति T अन्तरम् ॥॥	=(उक्त क्षपक श्रेणियों का) एक जीव के लिये(कुछ) विरहकाल नहीं है
सयोगकेवलीनां ॥ नाना–जीव–अपेक्षया ॥॥ च *	=सयोगकेवलीनिका अनेक जीवो की विवक्षासे और(=च)
एक–जीव -अपेक्षया ॥॥ न * अस्ति अन्तरम् ॥॥	=एक जीव की अपेक्षासे (कुछभी) विरह काल नहीं है
विशेषेण ॥ [१] गति अनुवादेन ॥ नरक–गतौ ॥॥	=भेदकरि (१) गति के कथनानुसारकरि–नरक गति में
नारकाणां ॥ सप्तसु ॥॥ पृथ्वीषु ॥॥ मिथ्यादृष्टि-	=नारकिनका सातो नरकमें(=पृथ्वीषु ॥) मिथ्यादृष्टि और
असंयतसम्यग्दृष्टयोः ॥॥ नाना जीव अपेक्षया ॥॥	असंयत सम्यग्दर्शनवालेनिका नानाजीव की अपेक्षा से
न अस्ति अन्तरम् ॥॥–एकजीवं ॥ प्रति * जघन्येन	=(कुछ) विरह काल नहीं है । एकजीवके लिये जघन्यकरि
अन्तर्मुहूर्तः ॥ उत्कर्षेण ॥ एक–	=अन्तर्मुहूर्त (अन्तर) है । उत्कृष्ट करि (प्रथम नरक में कुछ हीन) एक-
त्रि–सप्त–	=(दूसरे नरकमें कुछ न्यून) तीन (तीसरे नरकमें कुछ न्यून) सात
दश–सप्तदश–	=(चौथे नरक में किंचित् घाटि) दश (पाचवां नरक में कुछ घाटि) सत्तह

द्वाविंशतित्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि देशोनानि ॥ सासादन सम्यग्दृष्टिसम्यङ्मिथ्यादृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः ।उत्कर्षेण पल्योपमासंख्येयभागः। एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येयभागोऽन्तर्मुहूर्तश्च। उत्कर्षेण एक-त्रि-सप्त- दश- सप्तदश-द्वाविंशति- त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि देशोनानि ॥ तिर्यग्गतौ तिरश्चां मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण त्रीणिपल्योपमानि देशोनानि ॥

द्वा-विंशति—त्रयस्त्रिंशत-सागरोपमाणि ॥ देशोनानि ॥	=(छठे नरकमें कुछ न्यून) बाईस (सातवां में) कुछ न्यून तेतीस सागर प्रमाण है
सासादन सम्यग्दृष्टि—सम्यङ्मिथ्यादृष्ट्योः ॥	=सासादन सम्यग्दर्शनवाले और मिश्र गुण स्थानवाले (नारकिनिका)
नानाजीव—अपेक्षया॥ जघन्येन एकः ॥ समयः ॥	=अनेक जीव की विवक्षा से जघन्यकरि एक समय (अन्तर है)
उत्कर्षेण ॥ पल्योपम—असंख्येय—भागः ॥ एकजीवं ॥	=उत्कृष्टकरि पल्यके असंख्यातवां भाग है। एक (नारक) जीवके
प्रति जघन्येन ॥ पल्योपम—असंख्येय—भागः ॥ च*	=लिये जघन्यकरि पल्यके असंख्यातवां भाग प्रमाण है ॥ और (च)
अन्तर्मुहूर्तः ॥ उत्कर्षेण ॥ एक—त्रि—	=अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्टकरि (प्रथम नरकमें कुछ घाटि) एक (दूसरे नरकमें कुछ न्यून) तीन
सप्त—दश—	=(तीसरे नरकमें कुछ हीन) सात (चौथे नरकमें कुछ न्यून) दश
सप्तदश—द्वाविंशति—	=(पांचवां नरकमें कुछ घाटि) सत्रह छठे (नरकमें कुछ न्यून) बाईस
त्रयस्त्रिंशत् सागर उपमाणि ॥ देशोनानि ॥	=[सातवां नरकमें] कुछ न्यून तेतीस सागर प्रमाण [विरह काल] है [नारकीयों के प्रथम मिथ्यात्व से असंयत चौथे गुणस्थान तक चारही हो सकते हैं]
तिर्यग्गतौ ॥ तिरश्चां ॥ मिथ्यादृष्टेः ॥ नानाजीव—	=तिर्यंच गति में तिर्यंच मिथ्यादृष्टियों का अनेक जीवों की
अपेक्षया ॥ न* अस्ति अन्तरम् एकजीवं ॥ प्रति जघन्येन	=अपेक्षा से विरहकाल नहीं है। एक (तिर्यंच) जीव के लिये जघन्यकरि
अन्तर्मुहूर्तः उत्कर्षेण त्रीणि पल्योपमानि ॥ देशोनानि ॥	=अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्टकरि कुछहीन तीन पल्य प्रमाणहै

(१) अधिकमपि कस्मान्नेति चेत् क्षपणारम्भकवेदकयुक्तस्य तिर्यक्षूत्पादाभावात्। तद्यु कोऽहि देवेष्वेवोत्पद्यते । अन्तो मिथ्यात्वयुक्तस्त्रिपल्यायुष्को भोगभूमिषूत्पद्यते। तत्र चोत्पन्नाना तिर्यङ्मनुष्याणां किंचिदभ्युधिकाष्टचत्वारिंशद्दिनेषु सम्यक्त्वग्रहणयोग्यता भवति। मिश्रमादेताषद्दिनेषु मिथ्यात्व परित्यागात् सम्यक्त्व गृह्णाति। त्रिपल्योपमायुः शेषे पुनर्मिथ्यात्वं प्रतिपद्यते। इति गर्भकाले किंचिदधिकाष्टचत्वारिंशद्दिनैरवसानकाले [illegible] हीनत्वाद्देशोनानि ज्ञातव्यानि ॥

अधिकम् ।। अपि ❀ कस्मात् ।। (कस्मात् ।।।।) ?

न * इति * चेत् * क्षपणा-आरम्भक-

वेदक युक्तस्य ।। तिर्यक्षु ।। उत्पाद -अभावात् ।।

तद्-युक्तः ।। हि* देवेषु ।। एव * उत्पद्यते T

अतः * मिथ्यात्वयुक्तः ।। त्रिपल्योपम-प्रायुक्तः ।।

भोगभूमिषु ।।। उत्पद्यते T तत्र * च * उत्पन्नानां ।।

तिर्यङ्-मनुष्याणां ।। किञ्चित् * अभ्यधिक - अष्ट-

चत्वारिंशत् ।।। दिनेषु ।।।। सम्यक्त्व ग्रहण-योग्यता ।।।

भवति नियमात् ।। एतावत् ❀ दिनेषु ।। मिथ्यात्व-

परित्यागात् ।। सम्यक्त्वं ।।।। गृह्णाति T त्रि-पल्योपम-

आयुः शेषे ।। पुनःमिथ्यात्व ।।।। प्रतिपद्यते T इति

गर्भकाले ।। किंचित् * अधिक अष्टचत्वारिंशत् ।।।

दिनैः ।।

= (मिथ्यादृष्टि तिर्यञ्चका उत्कर्ष अन्तर तीन पल्यसे) अधिक किस हेतु से

= नहीं है ऐसी शंकापर =चेत्-कहते हैं कि) क्षपणका प्रारम्भ करने वाले

अर्थात् दर्शनमोहनीयकर्मकी तीन मिथ्यात्व(= अतत्व श्रद्धान)सम्यक्त्व मिथ्यात्व (जिस कर्म प्रकृति के उदय से मिश्र परिणाम हों जिनको न तो सम्यक्त्वरूप ही और न मिथ्यात्वरूपही कह सकते हैं) और सम्यक्प्रकृतिमिथ्यात्व (जिसके उदय से सम्यक्त्व का मूलघात तो न हो परन्तु चल मलादि दोषहों) के क्षयका आरम्भ करने वाला

= क्षयोपशम सम्यक्त्व सहित (जीव) का तिर्यंचों में जन्मका अभाव होनेसे

= उस क्षपणप्रारम्भक वेदक सम्यक्त्व सहित जीव देवो में ही उपजता है

= इसलिये मिथ्यात्ववाला तीन पल्यप्रमाण आयुसहित

= भोगभूमियों में जन्म धारण करता है और (अत्र) वहाँ उपजने वाले

= तिर्यंच और मनुष्यों की कुछ अधिक अठ-

= चालीस दिवस में सम्यग्दर्शन प्राप्तिकी योग्यता वा सामर्थ्य

= होती है क्योंकि नियमसे इतने दिनों में मिथ्यात्व-

= छोड़देता है और सम्यग्दर्शनका ग्रहण करता है। तीन पल्य प्रमाण

= आयु के कुछ शेष रहने पर फिर मिथ्यात्वको ग्रहण करता है इस प्रकार

= गर्भ (के रहने के) कालमें, कुछ अधिक अड़तालीस दिनसहित (काल में)

= अर्थात् जब भोगभूमिका मनुष्य तिर्यंच बाल अवस्था से तरुणाई को पहुंच के सम्यक्त्व के प्राप्त करने के योग्य होजाता है वह समय

सासादनसम्यग्दृष्ट्यादीनां चतुर्णां सामान्येनोक्तमन्तरम् ॥

सासादन सम्यग्दृष्टि-आदिनाम् ६। चतुर्णाम् ६।	=सासादन सम्यग्दृष्टि आदिक चार (दूसरेसे पांचवां गुणस्थान वाले) निका
सामान्य-उक्तम् १॥ अन्तरम् १॥	=संक्षेप से कथित (गुणस्थानवत्) विरहकाल, अर्थात् सासादन गुणस्थान वाले तिर्यंचनिका (विरहकाल) अनेक जीवों की अपेक्षा से जघन्यकरि एक
च + अवसानकाले ७। शेषेण ३।	=और [=च] अंतिम [मरण] काल में [आयुका] बचाहुआ काल अर्थात् भोगभूमि के मनुष्य तिर्यंच के मरने से पहिले आयु के बचे हुए काल में सम्यक्त्व नहीं रहता
हीनत्वात् ५॥ देशोनानि १॥	=[उक्त तीन प्रकारके कालोंको उत्कृष्ट आयु तीनपल्य मे से] घटाने से कुछ हीन
ज्ञातव्यानि १॥	[तीनपल्यउत्कृष्ट अन्तरकाल मिथ्यात्व छोड़कर सम्यक्त्वको प्राप्तकर फिर मिथ्यात्व में आनेका] जानना चाहिये अथवा जानो

इस टिप्पणीका भावार्थ लिखनके प्रथम इस बातका लिखदेना उचित समझते हैं कि मिथ्यादृष्टी तिर्यंचोंका वही अन्तर है जो मिथ्यादृष्टी मनुष्यों का "मनुष्य गतौ मनुष्याणां मिथ्यादृष्टिस्तिर्यग्वत्" पृष्ठ २२९ के अनुकूल अब प्रश्न इसकममे होगया कि मिथ्यादृष्टि तिर्यंच वा मिथ्यादृष्टि मनुष्यके मिथ्यात्वका अन्तर क्या है अर्थात् पहिलेमनुष्य वा तिर्यंच मिथ्यात्व सहित था पश्चात् मिथ्यात्व छोड़कर सम्यक्त्व ग्रहण किया, और पुनः मिथ्यात्व में आगया तो पहिलीवार मिथ्यात्वसे दूसरीवार मिथ्यात्व ग्रहण करने मे कितना काल व्यतीत हुआ वही अन्तर वा विछोह काल मिथ्यात्व का है। उसमें कहते हैं कुछ न्यून तीन पल्य प्रमाण है सो कैसे ? (उत्तर) दर्शन मोहनीयकी जो तीन मिथ्यात्व, सम्यक्त्वमिथ्यात्व, सम्यक् प्रकृति मिथ्यात्व के क्षयका प्रारम्भक वेदकसम्यक्त्वसहित जीवका जन्म दोनों मे ही जाता है अतः मिथ्यात्ववाले जीवका जन्म भोगभूमिके तिर्यंच वा मनुष्य में हो सक्ता है। भोगभूमि मे उत्कृष्ट आयु तीन पल्यकी हो सकती है जिसमें मिथ्यात्वका अंत होता है-अर्थात् तीन पल्यतक सम्यक्त्व रहता परन्तु उन तीन पल्यों में से (१) गर्भमें रहने का काल (२) भोगभूमिके मनुष्य वा तिर्यंचमें जन्म होने से अड़तालीस दिनसे कुछ अधिक समय तक जिसमें उक्त मनुष्य वा तिर्यंचमें सम्यक्त्व ग्रहण करने की योग्यता नहीं होती है (३) मरणसे पहिले कुछ कालतक सम्यक्त्व नहीं रहता ऐसे ये तीन प्रकारका समय तीन पल्यसे घटाकर अन्तरकाल तीन पल्यसे कुछ घाटि ही रहता है इस लिये उक्त अन्तरकाल तीन पल्यसे कुछ न्यून ही कहा ॥

मनुष्यगतौ मनुष्याणां मिथ्यादृष्टेस्तिर्यग्वत् ॥ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् ॥

समय है ॥ उत्कृष्टकरि पल्य के असंख्यातवां भाग है । :एक जीवके लिये जघन्यकरि पल्यका असंख्यातवां भाग है उत्कृष्टकरि कुछ न्यून अर्द्ध पुद्गल परावर्तन है । मिश्र तीसरे गुणस्थान वर्तीय तिर्यचनिका विरहकाल अनेक जीवकी अपेक्षा से जघन्य एक समय है । उत्कर्ष पल्यके असंख्यातवां भाग है । एक जीव के लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्टकरि कुछ घाटि आधे पुद्गल परावर्तन है । असंयमी सम्यग्दर्शन वाले तिर्यंचों का और संयमा संयमी पांचवें गुणस्थानवर्ती तिर्यचोंका अनेक जीवकी विवक्षा से वियोगकाल (कुछ) नहीं हैं । एक जीव के लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकरि कुछ न्यून आधे पुद्गल परावर्तन (अंतर) है (तिर्यचों में पांच ही गुणस्थान होते हैं)

मनुष्यगतौ॥ मनुष्याणां॥ मिथ्यादृष्टेः॥ तिर्यग्वत्* =मनुष्यगति में मनुष्य मिथ्यादृष्टियोंका तिर्यंच सदृश (अन्तर) है अर्थात् मिथ्यादृष्टि मनुष्योंका नाना जीवकी अपेक्षा से कुछ भी अन्तर नहीं है एक जीवके लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकरि कुछ हीन तीन पल्य है (मनुष्य भोग भूमि में वैसे ही उत्पन्न होते हैं जैसे तिर्यंच टिप्पणी २२७-२२८)

सासादन-सम्यग्दृष्टि-सम्यग्मिथ्यादृष्ट्योः॥ =सासादन गुणस्थानवर्ती (मनुष्य) निका मिश्र गुणस्थानवर्ती (मनुष्य) निका

नानाजीव-अपेक्षया॥ सामान्यवत्* =अनेक जीवकी अपेक्षा से (अन्तर) संक्षेप (प्रकरण) में कथित (गुणस्थानवत्) है अर्थात् दूसरे गुणस्थान वालोंका जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पल्य का असंख्यातवां भाग है ॥ मिश्रका भी (सासादनवत्) जघन्य एक समय उत्कर्ष पल्यके असंख्यातवां भाग है ॥ (पृष्ठ २२३, २२४ देखो)

एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येयभागोऽन्तर्मुहूर्तश्च । उत्कर्षेण त्रीणि पल्योपमानि पूर्वकोटीपृथक्त्वैरभ्यधिकानि ॥ असंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवापेक्षया जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण त्रीणि पल्योपमानि पूर्वकोटीपृथक्त्वैरभ्यधिकानि ॥ संयतासंयतप्रमत्ताप्रमत्तानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण पूर्वकोटीपृथक्त्वानि ॥ चतुर्णामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः ।

एक-जीवं ३। प्रति*	=(सासादन और मिश्र तीसरे गुणस्थानवर्ती मनुष्यनिका) एकजीवके लिये
जघन्येन ३।।। पल्योपम-असंख्येयभागः अन्तर्मुहूर्तः १। च	=जघन्यकरि पल्योपम के असंख्यातवांभाग और अन्तर्मुहूर्त है ॥
उत्कर्षेण३ त्रीणि १।। पल्योपमानि १।।पूर्वकोटिपृथक्त्वैः३।।।	=उत्कृष्टकरि तीन पल्य प्रमाण पृथक्त्व (तीनसे ऊंचे नौसे नीचे) करोड़ पूर्वकरि
अभ्यधिकानि १।।। असंयतसम्यग्दृष्टेः ६ नानाजीव–	=अधिक है असंयमी सम्यग्दर्शनवाले (मनुष्य) निका अनेक जीवकी
अपेक्षया३।। न* अस्तिा अन्तरम्१।।। एक-जीव-अपेक्षया३।।	=अपेक्षा से विरह काल नहीं है एक जीव के कथनानुसार से
जघन्येन ३।।। अन्तर्मुहूर्तः १। उत्कर्षेण ३। त्रीणि १।।। पल्यो	=जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकरि तीन पल्य
पमानि १।।। पूर्वकोटीपृथक्त्वैः ३।।। अभ्यधिकानि १।।।	=प्रमाण और पृथक्त्व (तीन से ऊपर नौ से नीचे) करोड पूर्वकरि अधिक है ॥
संयतासंयत-प्रमत्त-अप्रमत्तानां ६। नानाजीव–	=संयमासंयमी, प्रमत्तसंयमी, अप्रमत्तसंयमी (मनुष्य) निका नानाजीव
अपेक्षया ३।।न अस्ति अन्तरम् १।।। एक-जीवं २। प्रति*	=अपेक्षा से अन्तर नहीं है । एक आत्मा के लिये
जघन्येन ३।।। अन्तर्मुहूर्तः १। उत्कर्षेण ३। पूर्वकोटी-	=जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकरि तीन करोड़ पूर्व के
पृथक्त्वानि १।।। चतुर्णाम् ६।	=ऊपर नव के नीचे (= पृथक्त्वानि) है । चार (आठ से ग्यारह गुणस्थानवर्ती तक)
उपशमकानां ६। नाना-जीव-अपेक्षया ३।।	=उपशम श्रेणी चढ़ने वालेनिका नाना जीवों के कथनानुसारकरि
सामान्यवत्*	=संक्षेप (प्रकरण में पूर्व कथित गुणस्थान) वत् (विरह काल) है अर्थात् नाना जीव अपेक्षा से जघन्य एक समय है । उत्कृष्ट तीन और नव वर्ष के मध्य है
एकजीवं २। प्रति* जघन्येन ३।।। अन्तर्मुहूर्तः १।	=(चार उपशम श्रेणी वालेनिका) एक जीव के लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है

उत्कर्षेण पूर्वकोटी पृथक्त्वानि । शेषाणां सामान्यवत् ॥ देवगतौ देवानां मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्ट्यो नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण एकत्रिंशत्सागरोपमाणि देशोनानि ॥ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येय भागोऽन्तर्मुहूर्तश्च । उत्कर्षेण

उत्कर्षेण ॥ पूर्वकोटी पृथक्त्वानि ॥॥—शेषाणां ॥ = उत्कृष्टकरि तीन से ऊपर नवसे नीचे (= पृथक्त्व) करोड पूर्व है अवशेष (चार अपूर्वकरण आठवां-अनिवृत्तिकरण नववां-सूक्ष्मसांपरायदशवां क्षीणकषाय बारहवें गुणस्थानवर्ती सयोग केवली और अयोग केवली) निका

सामान्यवत्॥ (विरह काल) संक्षेप [प्रकरण में पूर्व कथित गुणस्थान] सदृश है अर्थात् चार क्षपकश्रेणीवाले और अयोगकेवलियों का (अन्तर) नाना जीव की अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्टकरि छह मास है। एकजीव की अपेक्षा से अन्तर नहीं है। सयोगकेवलियों का नाना जीव अपेक्षा से और एक जीव अपेक्षा से अन्तर नहीं है [देखो पृष्ठ २२५]

देवगतौ ॥ देवानां ॥ मिथ्यादृष्टि-असंयत सम्यग्दृष्ट्योः॥ = देवगति में सुर मिथ्यादृष्टि और असंयमी सम्यग्दर्शनवाले (देव) निका

नानाजीव-अपेक्षया ॥ न अस्ति अंतरं ॥॥ एकजीवं ॥ = नानाजीव की अपेक्षा से विरह काल नहीं है। एक जीव के लिये

प्रति जघन्येन ॥॥अन्तर्मुहूर्तः ॥ उत्कर्षेण ॥ = जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्टकरि

एकत्रिंशत् ॥ सागरोपमाणि ॥॥ देशोनानि ॥॥ = कुछ हीन इकतीस सागर प्रमाण है

सासादन सम्यग्दृष्टि सम्यग्मिथ्यादृष्ट्योः ॥ नाना-जीव = सासादन [द्वितीय] गुणस्थानवर्ती [देव] मिश्र [तीसरे] गुणस्थानवाले [देव] निका

अपेक्षया ॥ सामान्यवत्॥ = (विरह काल) नानाजीव की अपेक्षा से संक्षेप [विषय में पूर्वकथित गुणस्थान] = सदृश है अर्थात् जघन्यकरि एक समय है। उत्कृष्टकरि पल्यके असंख्यातवां भाग है [देखो पृष्ठ २२३, २२४

एकजीवं ॥ प्रति॥जघन्येन ॥॥ पल्योपम- = [सासादन-मिश्रवर्तीदेवोंका] एकजीव की अपेक्षा से जघन्यकरि पल्योपम के

असंख्येय-भागः ॥ अन्तर्मुहूर्तः ॥ च—उत्कर्षेण ॥ = असंख्यातवां भाग है और अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्टकरि

एकत्रिंशत्सागरोपमाणि देशोनानि ॥ (२) इन्द्रियानुवादेनएकेन्द्रियाणां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवापेक्षया जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणम् । उत्कर्षेण द्वे सागरोपमसहस्रे पूर्वकोटीपृथक्त्वैरभ्यधिके ॥ विकलेन्द्रियाणां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवापेक्षया जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणम् । उत्कर्षेणानन्तः कालोऽसंख्येयाः पुद्गलपरिवर्ताः एवमिन्द्रियं प्रत्यन्तरमुक्तम् ।

देशोनानि।।। एकत्रिंशत्।। सागरोपमाणि।।। =कुछ हीन इकतीस सागर प्रमाण (अन्तर वा विरह काल) है

(२) इन्द्रिय–अनुवादेन । एक–इन्द्रियाणां । नानाजीव=(२)इन्द्रियों के कथनानुसारकरि एकेन्द्रियों के अनेक जीवकी

अपेक्षया ।.न अस्ति अन्तरम्।।। एक-जीव-अपेक्षया।।। =अपेक्षा से अन्तर नहीं है । एक आत्माकी अपेक्षा से

जघन्येन ।।। क्षुद्रभव-ग्रहणम् ।।। =जघन्यकरि सूक्ष्मभव (का काल-श्वासके अठारहवां भागके बराबर) लिया गया है

उत्कर्षेण । द्वे ।।। सागरोपमसहस्रे ।।। पृथक्त्वैः ।।। =उत्कृष्टकरि दो हज़ार सागर प्रमाण और पृथक्त्व (तीन से ऊपर नौ से नीचे)

पूर्व कोटी, अभ्यधिके ।।। =करोड पूर्व अधिक है (जैसे एकजीव एकेन्द्रिय था, एकेन्द्रिय की अवस्था को छोड़ कर अन्य इन्द्रिय धारण की तौ शीघ्र से शीघ्र वही जीव फिर एकेन्द्रिय हो तो श्वांस के अठारहवां भाग काल के पश्चात् एकेन्द्रिय होजावैगा और यदि देरी से देरी करे तौ वही जीव दो हजार सागर, तीनसे ऊपर और नौसे नीचे करोड़ पूर्व काल तक अन्य इन्द्रियों वाला होकर पश्चात् फिर एकेन्द्रियही हो जावैगा)

विकल-इन्द्रियाणां । नाना-जीव-अपेक्षया ।। अन्तरं ।।। =विकलत्रय (द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय) निका नाना जीव अपेक्षा से अंतर

न अस्ति एक-जीव-अपेक्षया ।। जघन्येन ।।। क्षुद्रभव- =नहीं है । एक जीव की अपेक्षा से जघन्यकरि सूक्ष्मभव (१/१८ श्वांसवत्काल)

ग्रहणम् ।।। उत्कर्षेण । अनन्तः । कालः । =लिया गया है । उत्कृष्टकरि अनन्तकाल है

असंख्येयाः । पुद्गलपरिवर्ताः ।।। एवम्* इन्द्रियं ।।। =[सो असंख्याते पुद्गलपरावर्तन [काल के तुल्य] है ऐसे इन्द्रियों की

प्रति* अन्तरम् ।।। उक्तम् ।।। =[अर्थात् एकेन्द्रिय और विकलत्रय की] अपेक्षा से विरहकाल कहा गया है

गुणं प्रत्युभयतोऽपि नास्त्यन्तरम् ॥

गुणं ॥ प्रति* उभयत*	=गुणस्थान की (=गुणं) अपेक्षा से (=प्रति) दोनो (एकेन्द्रिय-विकलत्रय) का
अपि* न* अस्ति T अन्तरम् ॥	=भी अंतर नहीं है (क्योकि दोनो के मिथ्यात्व ही गुणस्थान होता है)

(१) एकेन्द्रियविकलेन्द्रियताऽपीत्यर्थः। यतस्ते एकेन्द्रियविकलेन्द्रिया मिथ्यादृष्टय एव। एकेन्द्रियविकलेन्द्रियाणां चतुर्णां गुणस्थानान्तरासम्भवात्। पञ्चेन्द्रियाणां तु तत्सम्भवात्। मिथ्यात्वादेः सम्यक्त्वादिना अन्तरं द्रष्टव्यम् ॥

एकेन्द्रिय-विकलेन्द्रियतः* अपि* इति*	=(वृत्ति मे "उभयतोऽपि" वाक्यका) एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रियकर भी ऐसा
अर्थः ॥ यतः* ते ॥ एकेन्द्रिय विकल-	=अर्थ है। क्योंकि (=यतः) वे एकेन्द्रिय जीव और विकल (दो-तीन-चार)
इन्द्रियाः ॥ मिथ्यादृष्टयः ॥ एव* चतुर्णां ॥ एकेन्द्रिय-	=इन्द्रिय धारक जीव मिथ्यादृष्टी ही हैं। क्योकि चार एकेन्द्रिय जीव के और
विकलेन्द्रियाणां ॥ गुणस्थानान्तर-	=दो इन्द्रिय जीव त्रीन्द्रिय जीव-चतुरिन्द्रिय जीवो के अन्य गुणस्थान
असम्भवात् ॥ तु पंचेन्द्रियाणां ॥	=नहीं हो सकता है। परंतु (= तु) पंचेन्द्रिय जीवो के
तत्-सम्भवात् ॥ मिथ्यात्व-आदेः ॥	=व (द्वितीयादि गुणस्थानान्तर) संभव होने से मिथ्यात्व आदि (गुणस्थानों) का
सम्यक्त्व आदिना ॥ अन्तरम् ॥ द्रष्टव्यम् ॥	=सम्यक्त्व आदि (शेष गुणस्थानों) से (अग्रिम पृष्ठो मे) अन्तर देखना चाहिये। सारांश

यह है कि इन्द्रियो का गुणस्थानों से संबंधित करने पर अन्तर वा विरह काल ऐसे है कि एकेन्द्रिय वाले जीवो से चार इन्द्रिय धारक जीवो तक के सदैव मिथ्यात्व गुणस्थान ही रहता है अतः उन के नाना जीव की अपेक्षा से कभी विरह काल नहीं होता है। सदा उक्त चारों इन्द्रिय वाले जीव मिथ्यात्व गुणस्थान में बने ही रहते है। पंचेन्द्रिय जीवो मे मिथ्यात्व गुणस्थान भी होता है और सासादन आदि अयोगकेवली तक शेष तेरह गुणस्थान भी होते है। इन पंचेन्द्रिय जीवों में मिथ्यात्व गुणस्थान वर्ती जीवों के नाना जीव की अपेक्षा से कुछ विरह काल (= अन्तर) नहीं है क्योंकि पंचेन्द्रिय जीव भी सदा प्रथम मिथ्यात्व गुणस्थान में बने ही रहते हैं। पंचेन्द्रिय मिथ्यात्व वाले एक जीव की अपेक्षा से जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट कुछ घाटि एकसो बत्तीस सागर है। सासादन आदि शेष तेरह गुणस्थानो का अन्तर आगे कहते हैं ॥

एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण सागरोपमसहस्रं पूर्वकोटीपृथक्त्वैरभ्यधिकम् ॥ शेषाणां सामान्योक्तम् ॥ (३) कायानुवादेन-पृथिव्यप्तेजोवायुकायिकानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणम् ॥ उत्कर्षेणानन्तः कालोऽसंख्येयाः पुद्गलपरिवर्ताः ॥ वनस्पतिकायिकानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवापेक्षया

एक जीवं । प्रति* जघन्येन ॥ अन्तर्मुहूर्तः ।	=[चार उपशमश्रेणी वालोका] एक जीवकी अपेक्षासे जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
उत्कर्षेण। सागरोपम-सहस्रं ॥ पूर्वकोटी-	=उत्कर्षकरि हजार सागर प्रमाण और तीनकरोड़ पूर्व से ऊपर
पृथक्त्वैः ॥ अभ्यधिकम् ॥ शेषाणाम् ।	=नोकरोड़ [पूर्वसे] नीचे अधिक है । [पंचेन्द्रियो में] बचेहुये तिका अर्थात् अपूर्वकरण क्षपक अनिवृत्तिकरण क्षपक, सूक्ष्मसांपरायक्षपक, क्षीणकसायक्षपक अयोगकेवली और सयोगकेवलिनिका [विरहकाल]
सामान्य-उक्तम् ॥	=सामान्य [प्रकरणमे पहिले] कहा हुआ [गुणस्थान सदृश] है अर्थात् चार क्षपक श्रेणीवालोका और अयोगकेवलियो का नाना जीवकी अपेक्षा से जघन्यकरि एक समय है, उत्कृष्टकरि छह महीने है । एक जीवकी अपेक्षा से अंतर नहीं है । सयोग केवलियोका नानाजीव की अपेक्षा से और एक जीवकी अपेक्षा से विरहकाल नही है ॥ [पृष्ठ २२५]
[३] काय-अनुवादेन । पृथिवी-अप्-तेजः-	=(३) कायके कथनानुसारकरि भूमिकायिकके जलकायिकके, अग्निकायिकके
वायुकायिकानां । नानाजीव-अपेक्षया । अन्तरं ॥	=वायुकायिकके नानाजीवकी अपेक्षा से अन्तर
न-अस्ति T । एकजीवं । प्रति * जघन्येन ॥ क्षुद्रभव-	=नहीं है । एक जीवकी अपेक्षा से जघन्यकरि सूक्ष्मभव १/१८ स्वासका काल
ग्रहणं ॥ उत्कर्षेण । अनन्तकालः । असंख्येयाः ।	=ग्रहण कियागया है । उत्कृष्टकरि अनंतकाल है सो असंख्यात
पुद्गलपरिवर्ताः । वनस्पतिकायिकानां । नानाजीव-	=पुद्गल परिवर्तन ह । वनस्पति कायिकोके नानाजीवकी
अपेक्षया । अन्तरं ॥ न अस्ति एकजीवं । अपेक्षया॥	=अपेक्षा से अन्तर नहीं है । एकजीवकी अपेक्षा से

जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणम्। उत्कर्षेणासंख्येया लोकाः ॥ एवं कायं प्रत्यन्तरमुक्तम्। गुणं प्रत्युभयतोऽपि नास्त्यन्तरम् ॥ त्रसकायिकेषु मिथ्यादृष्टेः सामान्यवत् ॥

जघन्येन ;॥ क्षुद्रभव-ग्रहणम् ;॥	=जघन्यकरि सूक्ष्मभव (१/१८ श्वासके काल के बराबर अन्तर) लिया गया है।
उत्कर्षेण ;। असंख्येयाः ;। लोकाः ;।	=उत्कृष्टकरि असंख्याते लोक हैं अर्थात् "इहां असंख्यात लोक के प्रदेश हैं तेते कालके समय ग्रहण है" सर्वार्थ सिद्धि वचनिका मुद्रित पृष्ठ १०१
एवं* कायं;। प्रति* अन्तरम्;॥ उक्तम्;॥ गुणं;॥ प्रति * उभयतः * अपि *	=इस प्रकार कायकी अपेक्षा से अन्तर कहा गया। गुणस्थान की अपेक्षा से दोनों (पृथिवी-जल-अग्नि-पवन कायिको में और वनस्पतिकायिकानि) में भी
न * अस्ति T अन्तरम् ;॥	=अन्तर नहीं है (क्योंकि उनके मिथ्यात्व गुणस्थान नहीं है)
त्रस-कायिकेषु ;। मिथ्यादृष्टेः ;।	=त्रस (द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-पंचेन्द्रिय) कायिको में मिथ्यादृष्टी का
सामान्यवत् *	संक्षेप (प्रकरण में कथित गुणस्थान) सदृश्य (अन्तर) है (नाना जीवकी अपेक्षा) अन्तर नहीं है एक जीवके लिये जघन्य अन्तर मुहूर्त है उत्कृष्ट कुछ हीन१३२सागर है ॥

(१) गुण शब्द यथार्थ मे पुल्लिङ्ग है परन्तु यहाँ पर गुणस्थानके लिये वृत्तिकार लाये है अतः गुणस्थान के सदृश हमने नपुंसक माना है

(२) पृथिव्यादि चतुर्णां वनस्पतिकायिकानां चान्तरं नास्ति यतः पृथिव्यतेजोवायुकायिकास्तथा वनस्पतिकायिका उभयेऽपि मिथ्यादृष्टया वर्तन्ते ॥

पृथिवी आदि-चतुर्णां ;। वनस्पति कायिकानां ;। च * = पृथिवी जल-अग्नि-पवन (कायिकानि) चारोंका तथा वनस्पतिकायिकोंका अन्तरं ;॥ न अस्ति T * पृथिवी-अप् तेजः वायु = विरहकाल नहीं है क्योंकि भूमि (कायिक) जल (कायिक) अनल (कायिक) पवन कायिकाः। तथा* वनस्पतिकायिकाः;। उभये ;। अपि = कायिक और = तथा) वनस्पति कायिक, दोनो (पृथिव्यादि चार और वनस्पति) में ही मिथ्यादृष्टयः वर्तन्ते T

मिथ्यादर्शनवाले जीव होते हैं अर्थात् पृथिवीकायिक,जलकायिक,अग्नि कायिक, पवन कायिक और वनस्पतिकायिको मे गुणस्थानकी अपेक्षासे कुछ अन्तर नहीं है क्योंकि सदैव इनके मिथ्यात्व गुणस्थान ही वर्तता है अथवा होता है ॥

सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यङ्मिथ्यादृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येयभागोऽन्तर्मुहूर्तश्च । उत्कर्षेण द्वे सागरोपमसहस्रे पूर्वकोटीपृथक्त्वैरभ्यधिके ॥ असंयतसम्यग्दृष्ट्याद्यप्रमत्तान्तानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण द्वे सागरोपमसहस्रे पूर्वकोटीपृथक्त्वैरभ्यधिके ॥ चतुर्णामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण द्वे सागरोपमसहस्रे पूर्वकोटीपृथक्त्वैरभ्यधिके ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि-सम्यङ्मिथ्यादृष्ट्योः६। =(त्रस कायि की अपेक्षा से) सासादन सम्यग्दृष्टि का और मिश्र गुणस्थान वालोंका
नानाजीव-अपेक्षया ३।। सामान्यवत्* =अनेक जीवो की अपेक्षा से संक्षेप में (कथित गुणस्थान) सम (अन्तर) है दोनो गुणस्थानोका नानाजीव प्रति जवन्य एक समय उत्कृष्ट पल्यका असंख्यातवांभाग है)

एकजीवं २। प्रति* जघन्येन ३।।। पल्योपम-असंख्येय- =एक जीवकी अपेक्षा से जवन्यकरि पल्योपम के असंख्यातवें
भागः१। च अन्तर्मुहूर्तः१। उत्कर्षेण३। द्वे१।। सागरो- =भाग और (=च) अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्टकरि दो हजार सागर
पमसहस्रे१।। पूर्व कोटी-पृथक्त्वैः३।।। अभि-अधिके,।।।=प्रमाण (और) तीन से ऊपर नव से नीचे (=पृथक्त्व) करोड पूर्वकरि अधिक है ।
असंयत-सम्यग्दृष्टि-आदि-अप्रमत्त-अंतानां ६। =असंयमी सम्यग्दर्शनवालो से लेकर अप्रमत्तसंयमी तकनिका
नानाजीव-अपेक्षया३।। न अस्ति अन्तरं१।।। एकजीवं२। =अनेक जीव की अपेक्षा से (कुछ) अंतर नहीं है एक जीव के
प्रति जवन्येन३।।। अन्तर्मुहूर्तः उत्कर्षेण१। द्वे १।।। =लिये जवन्यकरि अंतर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकरि दो
सागरोपमसहस्रे१।।।पूर्वकोटी-पृथक्त्वैः३।।।अभि-अधिके१।। हजार सागर प्रमाण (और) तीन नौ के बीच (=पृथक्त्व) करोड पूर्व करि अधिक है
चतुर्णां ६। =चार (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसांपराय-उपशांतकषाय)
उपशमकानां६। नाना-जीव-अपेक्षया३।। सामान्यवत्*=उपशमश्रेणीवालों का नाना जीव की अपेक्षा से संक्षेप (से कथित अंतर) (वत) है
जघन्य एक समय नाना जीव प्रति है उत्कृष्ट तीन से ऊपर नौ वर्ष से नीचे है

एकजीवं२। प्रति* जवन्येन ३।।। अन्तर्मुहूर्तः १। =एक जीव की अपेक्षा से जवन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
उत्कर्षेण१। द्वे१।।। सागरोपमसहस्रे१।।। =उत्कृष्टकरि दो हजार सागर प्रमाण (और)
पूर्व-कोटी-पृथक्त्वैः ३।।। अभि-अधिके १।।। =पृथक्त्व (तीन से ऊपर नव से नीचे) करोड पूर्व अधिक है ॥

शेषाणां पञ्चेन्द्रियवत् ॥ (४) योगानुवादेन-कायवाङ्मानसयोगिनां मिथ्यादृष्टयसंयतसम्यग्दृष्टि-संयतासंयतप्रमत्ताप्रमत्तसयोगकेवलिनां नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च नास्त्यन्तरम् ॥ सासादन-सम्यग्दृष्टिसम्यङ्मिथ्यादृष्टयोर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् ।

शेषाणां। पञ्चेन्द्रियवत्॥ =[त्रसकायों में] बचे हुये [गुणस्थानवर्ती] निका अर्थात् चार क्षपक श्रेणीवालोंका, सयोगकेवलियोंका और अयोगकेवलियोंका [अन्तर] [पहिले कहा हुआ] पञ्चेन्द्रिय सदृश है अर्थात् पंचेन्द्रियोंका अंतर पृष्ट २३५ के अनुसार संक्षेप में कथित गुणस्थान सदृश है इसलिये शेष उपर्युक्त त्रसकायोंका अन्तर गुणस्थान सदृश है सो अंतर पृष्ट २२५ के अनुकूल चार क्षपक श्रेणीवालोंका और अयोगकेवलियोंका नानाजीवकी अपेक्षासे एक समय है उत्कृष्ट करि छः मास है। एकजीवकी अपेक्षासे अंतर नहीं है सयोग केवलियोंका नानाजीवकी अपेक्षासे और एक जीवकी अपेक्षा से अन्तर नहीं है ॥

[४] योग-अनुवादेन। काय-वाङ्-मानस योगिनां। मिथ्यादृष्टि-असंयत-सम्यग्दृष्टि संयतासंयत-प्रमत्त अप्रमत्त-सयोगकेवलिनां। नानाजीव-अपेक्षया। एकजीव अपेक्षया। च अंतरम्। न अस्ति। सासादन-सम्यग्दृष्टि-सम्यङ्मिथ्यादृष्ट्योः नानाजीव-अपेक्षया। सामान्यवत्॥

[४]योगकी अपेक्षा से काय-वचन-मनो योगी मिथ्यादर्शनवाले, असंयमी सम्यग्दर्शनवाले, देशसंयमी, प्रमत्तसंयमी, अप्रमत्तसंयमी, सयोगकेवलियोंका नानाजीवकी अपेक्षासे ओर [=च] एकजीवकी अपेक्षासे अंतर नहीं है। सासादन सम्यग्दृष्ट और मिश्रगुणस्थानवर्तीनिका अनेकजीवकी विवक्षासे संक्षेप (विषयमें कथित गुणस्थान) वत है अर्थात् जघन्य अन्तर एक समय है उत्कृष्ट पल्यके असंख्यातवां भाग है (पृ० २२३)

एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम्। चतुर्णामुपशमकाना नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम्। चतुर्णां क्षपकाणामयोगकेवलीनां च सामान्यवत् ॥ (५) वेदानुवादेन–स्त्रीवेदेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण पंचपञ्चाशत्पल्योपमानि देशोनानि ॥

	(सासदन सम्यग्दृष्टी और मिश्रगुणस्थान वाले मन-वचन-काय योगवाले की)
एक जीवं ;। प्रति* न अस्ति-अन्तरं ;॥। चतुर्णां ;।	=एक जीव की अपेक्षा से विरहकाल नहीं है ॥ चार (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्म साम्पराय-उपशांतकषाय)
उपशमकानां । नाना-जीव-अपेक्षया ;॥ सामान्यवत्*	=उपशम श्रेणीवालोंका नानाजीवकी अपेक्षासे संक्षेप (में पूर्वकथित गुणस्थान) सदृश (अन्तर) है अर्थात् जघन्य एक समय है उत्कृष्ट तीन वर्ष से ऊपर नौसे नीचे है (पृ०२२४)
एक जीवम् ;। प्रति* न* अस्ति T अन्तरम्;॥।	=एक जीवकी अपेक्षासे विरहकाल नहीं है
चतुर्णाम् ;।	=चार (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसांपराय-क्षीणकषाय)
क्षपकाणाम् ;। च* अयोगकेवलिनाम् ;।	=क्षपकश्रेणी वालों का और (=च) अयोगकेवलियों का (अन्तर)
सामान्य-वत्*	=संक्षेप (प्रकरण) में (पूर्व कथित गुणस्थान) तुल्य है अर्थात् नानाजीवकी अपेक्षा से जघन्य एक समय है उत्कृष्ट छह मास है एक जीवकी अपेक्षासे कुछ विरहकाल नहीं है [पृष्ठ २२५]
[५] वेद-अनुवादेन ;। स्त्री वेदेषु ;। मिथ्यादृष्टेः ;।	=[५] वेदकी अपेक्षा से स्त्री वेदमें मिथ्या दृष्टीका
नाना-जीव-अपेक्षया ;॥ न अस्तिअन्तरं ;॥। एक जीवं ;।	=अनेक जीवकी अपेक्षा से अंतर नहीं है । एक जीवकी
प्रति* जघन्येन ;। अन्तर्मुहूर्तः ;। उत्कर्षेण ।	=अपेक्षासे जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकरि
देशोनानि ;॥। पञ्चपञ्चाशत् ;॥ पल्योपमानि ;॥।	=कुछहीन पचपन पल्यके तुल्य है ॥

सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येयभागोऽन्तर्मुहूर्तश्च । उत्कर्षेण पल्योपमशतपृथक्त्वम् ॥ असंयतसम्यग्दृष्ट्याद्यप्रमत्तान्तानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण पल्योपमशतपृथक्त्वम् ॥ द्वयोरुपशमकयोर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण पल्योपमशतपृथक्त्वम् ॥ द्वयोः क्षपकयोर्नानाजीवापेक्षया

सासादन सम्यग्दृष्टि-सम्यग्मिथ्यादृष्ट्योः।	=(स्त्रीवेदी) सासादनसम्यग्दृष्टि और मिश्रगुणस्थानवालोंका (अन्तर)
नाना-जीव-अपेक्षया॥ सामान्यवत्*	=अनेक जीवकी अपेक्षासे संक्षेप में (कथित गुणस्थान) सम है अर्थात् जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पल्यके असंख्यातवां भाग है (पृष्ठ २२३)
एकजीवं। प्रति* जघन्येन। पल्योपम-असंख्येय-	=एकजीवकी अपेक्षासे जघन्यकरि पल्योपमके असंख्यातवां
भागः। च अन्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेण। पल्योपम-	=भाग और अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकरि पल्योपम
शत-पृथक्त्वम्॥ असंयत-सम्यग्दृष्टि-आदि-	=तीनसौ से ऊपर और नौसौ के भीतर है । असंयत सम्यग्दृष्टी से
अप्रमत्त अन्तानां। नाना-जीव-अपेक्षया अन्तरं॥	=अप्रमत्त संयमी तकनिका अनेक जीवकी अपेक्षासे अंतर
न-अस्ति एकजीवं। प्रति* जघन्येन। अन्तर्मुहूर्तः।	नहीं है । एकजीवके लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
उत्कर्षेण। पल्योपम-शत पृथक्त्वम्॥	उत्कृष्टकरि पृथक्त्व शत (तीनसौसे ऊपर नौसौसे न्यून) पल्योपम है
द्वयोः। उपशमकयोः। नानाजीव-अपेक्षया॥	दो (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण) उपशमश्रेणी वालोका नानाजीव प्रति
सामान्यवत्*	संक्षेप (प्रकरण में कथित गुणस्थान) तुल्य (अन्तर) है अर्थात् नानाजीव प्रति जघन्य एक समय, उत्कृष्ट तीन और नौ वर्ष के भीतर है
एकजीवम्। प्रति* जघन्येन। अन्तर्मुहूर्तः।	एकजीवकी अपेक्षासे जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
उत्कर्षेण। पल्योपम-शत-पृथक्त्वम्॥ द्वयोः।	उत्कृष्टकरि तीनसौ पल्यसे ऊपर नौसौसे नीचे है (स्त्रीवेदी) दो
क्षपकयोः। नाना-जीव-अपेक्षया॥	(अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण) क्षपकश्रेणीवालोका नानाजीव अपेक्षा से

जघन्येनैकः समयः । उत्कर्षेण वर्षपृथक्त्वम् ॥ एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम् ॥ पुंवेदेषु मिथ्यादृष्टेः सामान्यवत् ॥ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्टयोर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येयभागोऽन्तर्मुहूर्तश्च । उत्कर्षेण सागरोपमशतपृथक्त्वम् ॥ असंयतसम्यग्दृष्टयाद्यप्रमत्तान्तानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः ।

जघन्येन ३। एकः ३। समयः ३। उत्कर्षेण ३। वर्ष-	=जघन्यकरि एक समय है । उत्कर्षकरि वर्ष
पृथक्त्वम् ३।॥ एकजीवं ३। प्रति अन्तरम् ३।॥	=तीन से ऊपर नौ से हीन है । एक जीव की अपेक्षा से विरहकाल
न* अस्ति T पुंवेदेषु ३। मिथ्यादृष्टेः ३। सामान्य-वत्*	=नहीं है । पुरुषवेद में मिथ्यादृष्टी का संक्षेप (में पूर्व उक्त गुणस्थान) सम है अर्थात मिथ्यादृष्टी पुरुषवेदी का नाना जीव अपेक्षा से अन्तर नहीं है एक जीव के लिए जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकरि कुछ हीन एकसौ बत्तीस सागर प्रमाण है (देखो पृष्ठ २२२)
सासादनसम्यग्दृष्टि-सम्यग्मिथ्यादृष्टयोः ३।	=(पुरुषवेदमें) सासादन गुणस्थान और मिश्र गुणस्थान वालों का (अन्तर)
नाना-जीव-अपेक्षया३।॥ सामान्यवत्*	=अनेक जीव की अपेक्षा से संक्षेप (में कथित गुणस्थान) सम है अर्थात् जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पल्य का असंख्यातवां भाग है (पृ० २२२, २२३)
एकजीवं३। प्रति जघन्येन३। पल्योपम-	=(पुरुषवेदी सासादन मिश्रवाले का) एक जीव के लिये जघन्यकरि पल्योपम के
असंख्येय-भागः३। च अन्तर्मुहूर्तः३। उत्कर्षेण३।	=असंख्यातवां भाग और अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकरि (अन्तर)
सागरोपम-शतपृथक्त्वम् ३।॥	=तीन सौ सागर प्रमाण से अधिक और नौ सौ से नीचे (शतपृथक्त्व) है
असंयतसम्यग्दृष्टि-आदि-अप्रमत्त-अन्तानां३।	=(पुरुषवेदी) असंयमी सम्यग्दर्शनवाले से अप्रमत्त गुणस्थान तकनिका
नाना-जीव-अपेक्षया३।॥ न* अस्ति T अन्तरम् ३।॥	=अनेक जीव की विवक्षा से विरह काल नहीं है
एकजीवं३। प्रति* जघन्येन३। अन्तर्मुहूर्तः३।	=एकजीवकी अपेक्षा से जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है

उत्कर्षेण सागरोपमशतपृथक्त्वम् ॥द्वयोरुपशमकयोर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेण सागरोपमशतपृथक्त्वम्। द्वयोःक्षपकयोर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेण संवत्सरः सातिरेकः। एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम् ॥ नपुंसकवेदेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम्। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि देशोनानि ॥ सासादनसम्यग्दृष्ट्याद्यनिवृत्त्युपशमकान्तानां

उत्कर्षेण ;। सागरोपम-शतपृथक्त्वम् ;।।।	=उत्कृष्टकरि पृथक्त्व (बीच तीन और नौ) सौ सागरके तुल्य है
द्वयोः ;। उपशमकयोः ;।	=दो (अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण) उपशम श्रेणीवालेनिका (अन्तर)
नाना-जीव-अपेक्षया ;।। सामान्यवत् *	=अनेक जीवकी अपेक्षासे संक्षेप (प्रकरणमें पूर्व कथित गुणस्थान) वत् है अर्थात् जघन्य एक समय है उत्कृष्ट वर्ष तीनसे ऊपर नौ से नीचे है
एक-जीवम् ;। प्रति * जघन्येन ;। अंतर्मुहूर्तः ;।	=एक जीवके लिये जघन्यकरि (अन्तर) अंतर्मुहूर्त है
उत्कर्षेण ;। सागरोपमशत-पृथक्त्वम् ;।।।	=उत्कृष्टकरि पृथक्त्व (=तीनसे ऊपर नवसे नीचे) शतसागर तुल्य है
द्वयोः ;। क्षपकयोः ;।	=(पुरुषवेदमें) दो (अपूर्व करण—अनिवृत्तिकरण) क्षपकश्रेणीवालोंका
नाना-जीव-अपेक्षया ;।। जघन्येन ;। एकः ;। समयः ;।	=अनेक जीवकी अपेक्षासे जघन्यकरि एक समय है
उत्कर्षेण;। संवत्सरः ;। स-अतिरेकः;। एक जीवं ;।	=उत्कर्षकरि कुछ आधिक एक वर्ष अर्थात् अठारह महीना है एक जीवके
प्रति * न * अस्ति ÷ अन्तरम् ;।।। नपुंसकवेदेषु ;।	=लिये विरहकाल नहीं है ॥ नपुंसक वेदमें
मिथ्यादृष्टेः ;। नानाजीव अपेक्षया ;।। न अस्ति अंतरं ;।।	=मिथ्यादर्शनवाले का अनेक जीवकी विवक्षासे अन्तर नहीं है
एक जीवं ;। प्रति * जघन्येन ;। अंतर्मुहूर्तः ;।	=एक जीवके लिये जघन्यकरि अंतर्मुहूर्त है
उत्कर्षेण ;। त्रयस्त्रिंशत् ;।। सागरोपमाणि ;।।।	=उत्कृष्टिकरि तेतीस सागरोपम
देशोनानि ;।।। सासादन-सम्यग्दृष्टि-आदि	=कुछ घाटि है ॥ (नपुंसक वेदमें) सासादनसम्यग्दर्शनवालेसे
अनिवृत्ति-उपशमक-अन्तानां ;।	=अनिवृत्तिकरण (गुणस्थानवर्ती) उपशम श्रेणीवाले पर्यन्तनिका (अन्तर)

सामान्योक्तम् ॥ द्वयोः क्षपकयोः स्त्रीवेदवत् ॥ अपगतवेदेषु अनिवृत्तिबादरोपशमकसूक्ष्मसाम्परायोपशमकयोर्नानाजीवापेक्षया सामान्योक्तम् । एकजीवं प्रति जघन्यमुत्कृष्टश्चान्तर्मुहूर्तः ॥

सामान्य-उक्तम् ।॥	=संक्षेप (विषय) में कथित (गुणस्थानवत) है अर्थात् अनेक जीव की अपेक्षा से जघन्यकरि एक समय है उत्कृष्टकरि तीन वर्ष से अधिक नौ वर्ष से घाटि है। एक जीव के लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्टकरि कुछ घाटि अर्द्ध पुद्गल परिवर्तन है
द्वयोः। क्षपकयोः।	=(नपुंसक वेद में) दो (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण) क्षपकश्रेणीवालोंका
स्त्री-वेदवत्*	=स्त्रीवेद (में कथित क्षपक श्रेणी वालों के विरहकाल के) सदृश है अर्थात नानाजीव की अपेक्षा से जघन्यकरि एक समय है उत्कृष्टकरि पृथक्त्व (=तीन से ऊपर नौ से नीचे) वर्ष है एक जीवकी अपेक्षा से अन्तर नहीं है
अपगतवेदेषु। अनिवृत्तिबादर-उपशमक-	=वेदवर्जितनि में अनिवृत्तिबादर (नवम गुणस्थान) उपशम वाले
सूक्ष्मसाम्पराय-उपशमकयोः। नानाजीव-	=(तथा) सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान वालोंका (विरहकाल) अनेक जीवकी
अपेक्षया।॥ सामान्य-उक्तम् ।॥	=विवक्षा से संक्षेप से कथित (गुणस्थानवत) है अर्थात् जघन्यकरि एक समय है उत्कर्षकरि पृथक्त्व वर्ष है (पृष्ठ २२४) ॥ यहां पर नवमें गुणस्थान के अन्त के तीन वेदरहित भागों की अपेक्षा से है (देखो पृष्ठ ८७)
एकजीवं। प्रति जघन्यम् ।॥ उत्कृष्टः च। अन्तर्मुहूर्तः।	=एकजीव की अपेक्षा जघन्य और (=च) उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त (अन्तर) है

(१) जघन्य शब्द पृष्ठ २२१ में " जघन्य श्चोत्कृष्टश्च त्रयः समयाः वाक्यमे पुल्लिंग है इसमें नपुंसक अतः हमने कहीं नपुसकमे कहीं पुल्लिंगमें लिखा है

उपशान्तकषायस्य नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम् ॥ शेषाणां सामान्यवत् ॥
(६) कषायानुवादेन – क्रोधमानमायालोभकषायाणां मिथ्यादृष्ट्याद्यनिवृत्त्युपशमकान्तानां मनोयोगिवत् ॥

उपशान्तकषायस्य ; नानाजीव- अपेक्षया ;॥ सामान्यवत्* =(वेद वर्जितो में) उपशान्तकषाय (ग्यारहवां) गुणस्थानवालेका अनेक जीव की =अपेक्षासे (विरहकाल) संक्षेप (प्रकरण में कथित गुणस्थान) सदृश है अर्थात् जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पृथकत्ववर्ष है (देखो पृष्ट २२४)

एक जीवं ;। प्रति* न* अस्ति T अन्तरम् ;॥। =एक जीवके लिये विरहकाल अथवा अन्तर नहीं है

शेषाणां ;। =(वेदरहितोंमें) शेष वा बचेहुये (क्षपकश्रेणीके अनिवृत्ति नवम गुणस्थान के छहभागों में से अन्तके वा पिछले तीन वेदरहित भागवाले—सूक्ष्म साम्पराय क्षपक, क्षीणकषाय क्षपक, सयोगकेवलि और अयोगकेवलि) निका (विरहकाल)

सामान्यवत्* =संक्षेप (प्रसंग में पूर्वकथित गुणस्थान) सदृशहै अर्थात् चारक्षपक श्रेणीवालों- का और अयोगकेवलियों का नानाजीवकी अपेक्षा से जघन्य एक समय है उत्कृष्ट छहमास है एक जीवकी अपेक्षा से अन्तर नहीं है सयोगकेवलियों का नानाजीव अपेक्षा से और एक जीव प्रति अन्तर नहीं है

(६) कषाय-अनुवादेन ;। क्रोध-मान-माया लोभ- =(६) कषायके कथनानुसारकरि-क्रोध-मान-माया (=कपट) लोभ
कषायाणां ; मिथ्यादृष्टि-आदि-अनिवृत्ति-उपशमक- =कषायोंवालों का मिथ्यादर्शनवाले से अनिवृत्तिकरण उपशमवाले
अन्तानां ;। मनः (=मनस्) योगिवत्* =(नवमां गुणस्थान) तकनिका मनोयोगी सदृश है अर्थात

द्वयोः क्षपकयोर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः । उत्कर्षेण संवत्सरः सातिरेकः ॥ केवललोभस्य सूक्ष्मसाम्परायोपशमकस्य नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम् ॥ क्षपकस्य तस्य सामान्यवत् ॥

(क्रोध-मान-माया-लोभ कषायवाले) मिथ्यादृष्टि असंयत सम्यग्दृष्टि (चौथा) संयतासंयत (पांचवां) प्रमत्त (छठा) अप्रमत्त (सातवां) गुणस्थानवालोंका नानाजीव अपेक्षासे और एकजीव अपेक्षासे अन्तर नहीं है। (चार कषायवाले) सासादन-सम्यग्दृष्टि और मिश्रगुणस्थानवाले (दोनों) का अनेक जीवके लिये अघन्य एक समय है उत्कृष्ट पल्यके असंख्यातवां भाग है (पृष्ठ २२३) एक जीवकी अपेक्षासे (इन दोनों गुणस्थानोंमें) अन्तर नहीं है। (क्रोध-मान-माया-लोभ कषायवाले) अपूर्वकरण उपशमक और अनिवृत्तिकरण उपशमकका अन्तर अनेक जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट तीन वर्षसे ऊपर और नौ वर्षसे नीचे है (पृष्ठ २२४) एकजीवकी अपेक्षा से अन्तर नहीं है (पृष्ठ २३८,२३९)

द्वयोः ३। =(क्रोध-मान-माया-लोभ कषायवाले) दो (अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण)

क्षपकयोः ३। नाना-जीव-अपेक्षया ३॥ जघन्येन ३। =क्षपक श्रेणीवालोंका अनेकजीवकी अपेक्षासे जघन्यकरि

एकःसमयः उत्कर्षेण ३। संवत्सरः १। स-अतिरेकः १। =एक समय है। उत्कृष्टकरि कुछ अधिक एक वरस है

केवल-लोभस्य ६। सूक्ष्मसाम्पराय उपशमकस्य ६। =केवल (संज्वलन) लोभकपायधारी सूक्ष्मसाम्पराय उपशम श्रेणीवालेका

नाना-जीव-अपेक्षाया ३॥ सामान्यवत्* =अनेकजीवकी अपेक्षासे संक्षेप (प्रकरणमें कथित गुणस्थान) वत् है अर्थात् जघन्य एक समय है उत्कृष्ट तीनसे ऊपर नौसे नीचे वर्ष है (पृष्ठ २२४)

एकजीवं २। प्रति* न* अस्ति अन्तरम् १॥। तस्य ६।=एक जीवकी अपेक्षासे अन्तर नहीं है। तिम (सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान)

क्षपकस्य ६। सामान्यवत्* =क्षपक श्रेणीवालेका संक्षेप (प्रकरणमें कहा हुआ गुणस्थान) वत् है अर्थात्

अकषायेषु उपशान्तकषायस्य नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम्॥ शेषाणां त्रयाणां सामान्यवत्॥ [७] ज्ञानानुवादेन–मत्यज्ञानश्रुताज्ञानविभङ्गज्ञानिषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च नास्त्यन्तरम्॥ सासादनसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया

अकषायेषु ३। उपशान्तकषायस्य ६। नानाजीव-अपेक्षया ३। सामान्यवत् ❀

एक जीवं २। प्रति ❀ न अस्ति अन्तरम् १॥ शेषाणां ६। त्रयाणां ६।

सामान्य-वत् ❀

[७] ज्ञान-अनुवादेन ३। मत्यज्ञान-श्रुताज्ञान-विभंग-ज्ञानिषु ७। मिथ्यादृष्टेः ६। नाना जीव-अपेक्षया ३॥ च एक जीव-अपेक्षया ३॥ न ❀ अस्ति ❀ अन्तरम् १॥ सासादनसम्यग्दृष्टेः ६। नानाजीव-अपेक्षया ३॥

जघन्य एक समय उत्कृष्ट छेमास है। एक जीवकी अपेक्षामे अन्तर नहीं है।
=कषाय वर्जतनि में उपशांत कषायगुणस्थानवालेका अनेक जीवकी
=अपेक्षासे संक्षेप (प्रसंगमें पूर्वकथित गुणस्थान) सदृश (अन्तर) है
अर्थात् जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पृथक्त्व वर्ष है (देखो पृष्ठ २२४)
=एक जीवके लिये वियोगकाल नहीं है। बचे हुए अथवा अवशेष
=तीन (क्षीणकषाय बारहवां गुणस्थानवर्ती तेरहवां गुणस्थान में सयोग-केवली और चौदह गुणस्थानविषैं अयोग केवली) निका
=(विरहकाल) संक्षेप (प्रसंगमें पहले कथित गुणस्थान) वत् है
अर्थात् क्षीणकषाय (बारहवां) गुणस्थान वालोका और अयोग केवलियों का नाना जीव की अपेक्षा से जघन्य एक समय है। उत्कृष्ट छैमास है। इन्हीं गुणस्थानों में एक जीवकी अपेक्षा से अन्तर नहीं है। सयोग केवलियों का नानाजीवकी अपेक्षासे और एक जीवकी अपेक्षासे अन्तर नहीं है (पृ० २२५)
=[७] ज्ञानके अनुवादकरि मति-अज्ञान, श्रुतअज्ञान, कुअवधि—
=ज्ञानियोमें मिथ्यादृष्टीका नानाजीवकी अपेक्षासे और (=च)
=एक जीव की अपेक्षा से विरहकाल नहीं है
=(उक्ततीन कुज्ञानियोमें) सासादनसम्यग्दर्शनवालेका नानाजीव अपेक्षासे

सामान्यवत् ॥ एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम् ॥ आभिनिबोधिकश्रुतावधिज्ञानिषु असँयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण पूर्वकोटी देशोना ॥ सँयतासँयतस्य नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण षट्षष्टिसागरोपमाणि सातिरेकाणि॥ प्रमत्ताप्रमत्तयोर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि सातिरेकाणि ॥ चतुर्णाम्

सामान्य-वत् ❀	=संक्षेप (प्रसंगमें पूर्व कथित गुणस्थान) सदृश (अन्तर) है अर्थात् जघन्यकरि एक समय है उत्कर्षकरि पल्यका असंख्यातवांभाग है पृ० २२३
एक जीवं ₂। प्रति ❀ न ₒ अस्ति T अन्तरम् ₁॥	=एक जीवकी अपेक्षा (=प्रति) विरहकाल वा अन्तर नहीं है
आभिनिबोधिक-श्रुतअवधिज्ञानिषु ₇। असंयत-	=मतिज्ञानी श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानियों में अविरत
सम्यग्दृष्टेः ₆। नाना-जीव-अपेक्षया₃॥ न अस्ति अन्तरम् ₁॥	=सम्यग्दृष्टीका अनेक जीवकी विवक्षासे विरहकाल नहीं है
एकजीवं ₂। प्रति❀ जघन्येन ₃। अन्तर्मुहूर्तः ₁	=एक जीव की अपेक्षा से जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
उत्कर्षेण₃ पूर्वकोटी ₁। देशोना ₁॥ संयतासंयतस्य ₆।	उत्कर्षकरि कुछ हीन करोड़ पूर्व है। (उक्त तीनों ज्ञानियोमें) देश संयमीका
नाना जीव-अपेक्षया ₃॥ न अस्ति अन्तरम् ₁॥ एकजीवं ₂।	=अनेक जीव की अपेक्षा से अन्तर (विरहकाल) नहीं है। एक जीवकी
प्रति₀ जघन्येन ₃। अन्तर्मुहूर्तः ₁। उत्कर्षेण ₃।	=अपेक्षा से जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्टकरि
स-अतिरेकाणि₁॥ षट् षष्टि-सागरोपमाणि ₁॥ प्रमत्त-	=कुछ अधिक छासठि सागर प्रमाण है। (उक्त तीन ज्ञानियो में) प्रमत्त
अप्रमत्तयो : ₆। नाना-जीव-अपेक्षया₃॥ अन्तरम् ₁॥	=और अप्रमत्त गुणस्थानवालोंका नानाजीव की अपेक्षा से अन्तर
न अस्ति एकजीवं ₂। प्रति₀ जघन्येन ₃। अन्तर्मुहूर्तः ₁।	=नहीं है। एक जीवके लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
उत्कर्षेण ₃। सातिरेकाणि ₁॥ त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि ₁॥	=उत्कृष्टकरि कुछ अधिक तेतीस सागर प्रमाण है
चतुर्णाम् ₆।	=(मति-श्रुत-अवधि ज्ञानियों में) चार (आठवां अपूर्वकरण, नवमां
	=अनिवृत्तिकरण, दशवां सूक्ष्मसाम्पराय),(ग्यारहवां उपशांतकषाय गुणस्थान)

उपशमकानां नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण षट्षष्टिसागरोपमाणि सातिरेकाणि ॥ चतुर्णां क्षपकाणां सामान्यवत् । किं तु अवधिज्ञानिषु नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः । उत्कर्षेण वर्षपृथक्त्वम् । एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम् । मनःपर्ययज्ञानिषु प्रमत्ताप्रमत्तसंयतयोर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्यमुत्कृष्टं चान्तर्मुहूर्तः ॥

उपशमकानाम् ६। नाना-जीव अपेक्षया ३॥ सामान्यवत्* =उपशम श्रेणीवर्तीयो का नाना जीवकी अपेक्षा से संक्षेप (में उक्त) सम है अर्थात् जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पृथक्त्व वर्ष है (पृष्ट २२४)

एकजीवं २। प्रति* जघन्येन ३। अन्तर्मुहूर्तः १। उत्कर्षेण ३। =एक जीव के लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकरि

स-अतिरेकाणि १॥ षट्षष्टि-सागरोपमाणि १॥ =कुछ अधिक छयासठि सागर प्रमाण है

चतुर्णां ६। क्षपकाणां ६। =(मति श्रुतज्ञानियोसे) चार क्षपकश्रेणी (आठवां अपूर्वकरण नवमां अनिवृत्तिकरण, दशवां सूक्ष्मसाम्पराय, बारहवां क्षीणकषाय गुणस्थान) वालों का

सामान्यवत्* =(विरहकाल) संक्षेप (प्रकरण में पूर्व कथित गुणस्थान) सदृश है अर्थात् अनेक जीव कीअपेक्षा से जघन्य एक समय है उत्कृष्ट छह मास है एक जीव की अपेक्षा से कुछ विरह काल नहीं है (देखो पृष्ठ २२५)

किन्तु* अवधिज्ञानिषु ७। नाना-जीव- =परन्तु अवधिज्ञानियों में (क्षपक श्रेणियोंका विरह काल)अनेक जीवकी

अपेक्षया ३॥ जघन्येन ३। एकः १। समयः १। उत्कर्षेण ३। =अपेक्षा से जघन्यकरि एक समय है उत्कृष्टकरि

वर्ष-पृथक्त्वम् १॥ एकजीवं २। प्रति न अस्ति अन्तरम् =पृथक्त्व (मध्य तीन और नव) वर्ष है एक जीवकी अपेक्षासे अन्तर नहीं है

मनः पर्यय-ज्ञानिषु ७। प्रमत्त-अप्रमत्तसंयतयोः ६। =मनः पर्यय ज्ञानियों में प्रमत्तसंयमी और अप्रमत्तसंयमियों का

नानाजीव-अपेक्षया ३॥ न अस्ति अन्तरम् एकजीवं २। =अनेक जीवकी अपेक्षा से अन्तर नहीं है ॥ एक जीव की

प्रति* जघन्यम् १॥ उत्कृष्टः १। च अन्तर्मुहूर्तः १। =अपेक्षासे (= प्रति) जघन्य और (=च) उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है

चतुर्णामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण पूर्वकोटी देशोना ॥ चतुर्णां क्षपकाणामवधिज्ञानिवत् ॥ द्वयोः केवलज्ञानिनोः सामान्यवत् ॥ (८) संयमानुवादेन— सामायिकच्छेदोपस्थापन

चतुर्णाम् ६। उपशमकानां ६। नानाजीव-अपेक्षया ३॥ सामान्य-वत्*	=(मनः पर्यय ज्ञानियो में) चार उपशम श्रेणी (अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण =सूक्ष्मसाम्पराय-उपशांतकषाय गुणस्थान) वर्तियो का अनेक जीव की अपेक्षा से =संक्षेप (प्रकरण में पहिले कहा हुआ गुणस्थान) सदृश (विरहकाल) है अर्थात् जघन्य अन्तर एक समय है उत्कृष्ट पृथक्त्ववर्ष है (पृष्ठ २२४)
एकजीवं २। प्रति* जघन्येन ३। अन्तर्मुहूर्तः १। उत्कर्षेण ३। पूर्वकोटी १॥ देशोना १॥ चतुर्णां ६। क्षपकाणाम् ६ अवधिज्ञान-वत्*	=एक जीव के लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है =उत्कृष्टकरि कुछ हीन करोड़ पूर्व है। (मनः पर्यय ज्ञानियो मे) चार =क्षपकश्रेणी (अपूर्वकरणसे सूक्ष्मसाम्परायतक और क्षीणकषाय गुणस्थान) वालोका =(विरह काल) अवधिज्ञानियो के सदृश है अर्थात् अनेक जीव की अपेक्षा से जघन्यकरि एक समय है उत्कृष्टकरि पृथक्त्ववर्ष है एक जीव प्रति अन्तर नहीं है (देखो पृष्ठ २४८)
द्वयोः ६। केवलज्ञानिनोः ६। सामान्य-वत्*	=दो (सयोग और अयोग) केवलज्ञानियों का सामान्य (मे उक्त गुणस्थान) सम है अर्थात् अयोगकेवलियों का नाना जीव अपेक्षा से जघन्य एक समय है उत्कृष्ट छह मास है एक जीव प्रति कुछ विरह काल नहीं है। सयोग केवलियोंका नाना जीव और एक जीव अपेक्षा से कुछ भी अन्तर नहीं है (पृष्ठ २२५)
[८] संयम-अनुवादेन ३। सामायिक—च्छेदोपस्थापन-	=(८) संयम के कथनानुसारकरि सामायिक और च्छेदोपस्थापन

शुद्धिसंयतेषु प्रमत्ताप्रमत्तयोर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्यमुत्कृष्टं चान्तर्मुहूर्तः ॥ द्वयोरुपशमकयोर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण पूर्वकोटी देशोना द्वयोः क्षपकयोः सामान्यवत् ॥

(१) शुद्धिसंयतेषु ३। प्रमत्त-अप्रमत्तयोः ३। नाना-जीव-अपेक्षया ३॥ न*अस्ति अन्तरम् ३॥ एकजीवं ३। प्रति*जघन्यम् ३॥ उत्कृष्ट ३॥ च*अन्तर्मुहूर्तः ३। द्वयोः ३। उपशमकयोः ३।

नानाजीव ३॥ अपेक्षया३॥ सामान्यवत*

एक-जीवं ३। पति*जघन्येन ३। अन्तर्मुहूर्तः ३।
उत्कर्षेण ३। पूर्वकोटी ३॥ देशोना ३॥
द्वयोः ३। क्षपकयोः ३।
सामान्यवत्*

= शुद्धिसंयमियों में प्रमत्त (छठा) अप्रमत्त (सातवा) गुणस्थानवालोंका अनेक
= जीवकी अपेक्षा से विरहकाल (अन्तर) नहीं है एकजीव के
=लिये जघन्य और (= च) उकृष्ट अन्तर्मुहूर्त है
= (सामायिक और छेदोपस्थापना शुद्धिसंयमियों में) दो उपशमश्रेणी (अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण गुणस्थान) वालों का (विरहकाल)
=नाना जीव की विवक्षासे संक्षेप (विषय में उक्त गुणस्थान) सदृश है अर्थात जघन्य एक समय है उत्कृष्ट सप्ततीस और नो वर्ष के है (पृष्ठ २२४)
=एक जीव कीअपेक्षासे (= प्रति) जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
= उत्कृष्टकरि कुछहीन (एक) करोड पूर्व है । (उपर्युक्त दो शुद्धिसंयमियों में)
=दो क्षपक श्रेणि (अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण गुणस्थान) वर्तियों का
=(वियोगकाल) संक्षेप (प्रसंगमें पूर्व कथित गुणस्थान) सदृश है अर्थात् नानाजीव केलिये जघन्य एकसमय है उत्कृष्ट छै मास है । एकजीवके लिये अन्तर नहीं है

(१)सामायिक और छेदोपस्थापन संयम, प्रमत्त, अप्रमत्त, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, गुणस्थानों में पाते हैं । परिहार विशुद्धि संयम, प्रमत्त, अप्रमत्त गुणस्थानों में, सूक्ष्म साम्पराय संयम दशवां सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान में और यथाख्यात संयम उपशांतकषायसे अयोग केवलि तक चार गुणस्थानों में होता है ॥

परिहारशुद्धिसंयतेषु प्रमत्ताप्रमत्तयोर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्यमुत्कृष्टं चान्तर्मुहूर्तः ॥ सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयतेषूपशमकस्य नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम् ॥ तस्यैव क्षपकस्य सामान्यवत् ॥ यथाख्याते अकषायवत् ॥

परिहार विशुद्धिसंयतेषु₃। प्रमत्त-अप्रमत्तयोः₆।	=परिहारविशुद्धिसंयमियोंमें प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानवर्तियोंका
नाना-जीव-अपेक्षया₃॥ न* अस्तिअन्तरम्₁॥।	=अनेक जीवकी विवक्षासे विरहकाल वा अन्तर नहीं है ।
एकजीवं प्रति जघन्यम्₁॥। उत्कृष्टं ₁॥। अन्तर्मुहूर्तः	=एकजीवकी, अपेक्षा (=प्रति) जघन्य और उत्कर्ष अन्तर्मुहूर्त है
सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयतेषु₃। उपशमकस्य₆।	=सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयमियोंमें उपशमश्रेणीवालेका (विरहकाल)
नानाजीव-अपेक्षया₃॥ सामान्यवत्*	=अनेकजीव प्रति संक्षेप (विषयमें पूर्व कथित गुणस्थान) सदृश है अर्थात् जघन्य अन्तर एक समय है उत्कर्ष पृथक्त्ववर्ष है (देखो पृष्ठ २२४)
एकजीवं₂ प्रति* न* अस्तिT अन्तरम्₁॥।	=एकजीवकी अपेक्षा (=प्रति=अपेक्षासे) वियोगकाल नहीं है
तस्य₆। क्षपकस्य₆। एव*	=तिस (सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयमी) क्षपकश्रेणी वालेका ही (अन्तर)
सामान्य-वत्=	=संक्षेप (प्रकरणमें पहिले कहाहुआ गुणस्थान) सदृश है अर्थात् नानाजीव प्रति जघन्य एक समय है। उत्कृष्ट छै मास है एकजीव प्रति अन्तरनहीं है
यथाख्याते₃। अकषायवत्*	=यथाख्यातसंयममें (विरहकाल) कषाय (वर्जित) (उपशांतकषाय-क्षीणकषाय सयोगकेवली-अयोगकेवली) निके समान है अर्थात् कषाय रहितमें उपशांतकषायवालेका नानाजीव प्रति गुणस्थानवत् है (पृष्ठ २४६) (=जघन्य अन्तर एक समय है। उत्कृष्ट अन्तर पृथक्त्ववर्ष है (पृष्ठ २२४) एकजीवकी अपेक्षासे अन्तर नहीं है ॥

एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेण द्वे सागरोपमसहस्रे देशोने॥ चतुर्णामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेण द्वे सागरोपमसहस्रे देशोने॥ चतुर्णां क्षपकाणां सामान्योक्तम्॥ अचक्षुर्दर्शनिषु मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायान्तानां सामान्योक्तमन्तरम्॥

न अस्ति एकजीवं ॥ प्रति* जघन्येन ॥ अन्तर्मुहूर्तः ॥ =नहीं है एक जीव के लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त।

उत्कर्षेण ॥ देशोने ॥ द्वे ॥ सागरोपमसहस्रे ॥ =उत्कृष्टकरि कुछ न्यून दो हजार सागर प्रमाण है

चतुर्णाम् ॥ उपशमकाना ॥ =(चक्षुर्दर्शनवालों में) चार उपशमश्रेणी अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्पराय (उपशांतकषाय) वालो का

नाना-जीव-अपेक्षया ॥ सामान्यवत्* =(अन्तर) अनेक जीवकी अपेक्षासे संक्षेप (में पूर्व उक्त गुणस्थान) सम है अर्थात् जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पृथक्त्व (मध्य तीन और नौ) वर्ष है (पृ० २२४)

एकजीवं ॥ प्रति* जघन्येन ॥ अन्तर्मुहूर्तः ॥ =एक जीवके लिये (=प्रति) जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है

उत्कर्षेण ॥ देशोने ॥ द्वे ॥ सागरोपमसहस्रे ॥ =उत्कृष्टकरि कुछ हीन दो सहस्र सागर प्रमाण है

चतुर्णां ॥ क्षपकाणां ॥ =(चक्षुर्दर्शनवालों में) चार क्षपक श्रेणी अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्पराय-(क्षीणकषाय)वालोंका

सामान्य-उक्तम् ॥ =(अन्तर) संक्षेप (प्रकरण में) वर्णित (गुणस्थानवत्) है अर्थात् नाना जीव की अपेक्षा जघन्य एकसमय है। उत्कृष्ट छैमास है एकजीव प्रति अन्तरनहीं है (पृ०२२५)

अचक्षुर्दर्शनिषु[1]। मिथ्यादृष्टि-आदि-क्षीणकषाय-अन्तानां ॥ सामान्य-उक्तम् ॥ अन्तरम् ॥ =अचक्षुर्दर्शन वालों में मिथ्यादृष्टि से (=आदि) क्षीणकषाय गुणस्थानवाले पर्यन्तनिका संक्षेप (प्रसंग में पहिले) कहा हुआ (गुणस्थानवत्) अन्तर है अर्थात् मिथ्यादृष्टी अचक्षुर्दर्शनवालोंका अनेक जीवकी अपेक्षा से अन्तर नहीं है

---

(१) चक्षुर्दर्शन वाले जीव और अचक्षुर्दर्शन वाले जीव भी प्रथम मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से क्षीणकषाय तक बारह गुणस्थानों में होते हैं।

अवधिदर्शनिनोऽवधिज्ञानिवत् ॥

एक जीवके लिये जघन्य अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट कुछघाटि एकसौ बत्तीस सागर प्रमाण है। अचक्षुदर्शनवाले सासादन सम्यग्दृष्टिका अन्तर नानाजीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पल्यके असंख्यातवां भाग है। एक जीवका जघन्य पल्यके असंख्यातवां भाग है। उत्कृष्ट कुछ हीन अर्द्ध पुद्गलपरिवर्तन है। अचक्षुदर्शनवाले मिश्रगुण-स्थानवर्तियोंका नानाजीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है। उत्कृष्ट पल्यके असंख्यातवां भाग है। एक जीवका जघन्य अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट कुछ हीन अर्द्धपुद्गल परिवर्तन है॥ अचक्षुदर्शनवाले अविरत सम्यग्दृष्टिसे लेकर अप्रमत्त गुणस्थानतकनिका नानाजीवकी अपेक्षासे अन्तर नहीं है एक जीवके लिये जघन्य अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्ट कुछ हीन अर्द्धपुद्गल परिवर्तन है॥ अचक्षुर्दर्शनवाले चार उपशम श्रेणी (आठवां-नवमां-दशमां-ग्यारहवां–गुणस्थान) वालोंका अन्तर नानाजीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पृथक्त्व वर्ष है। एक जीवके लिये जघन्य अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्ट कुछ घाटि अर्द्धपुद्गल परिवर्तन है॥ चार क्षपक श्रेणी (अपूर्वकरण आठवां अनिवृत्तिकरण नवमां सूक्ष्मसाम्पराय दशमां क्षीणकषाय बारहवां गुणस्थान) वालोका नानाजीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है। उत्कृष्ट छह मास है एकजीवके लिये अन्तर नही है।

अवधि-दर्शनिनः[१]। =अवधि दर्शनवालोंका (विरहकाल अर्थात् अन्तर)

अवधि-ज्ञानिवत्* =अवधि-ज्ञानियोंके सदृश है अर्थात् अवधिदर्शन वाले (=अवधिज्ञानवाले) असंयत सम्यग्दृष्टीका नानाजीवकी अपेक्षासे अन्तर नहीं है। एकजीवके प्रति जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्टकरि कुछ घाटि एक करोड़ पूर्व है॥ अवधि दर्शनवाले संयमा संयमीका अनेक जीवकी अपेक्षासे अन्तर नही है। एकजीवके लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्टकरि

(१) मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान, कुअवधिज्ञान, मिथ्यात्वप्रथम, सासादन दूसरे गुणस्थानोमे होता है। मिश्रगुणस्थानमे तीन अज्ञान और तीनज्ञान नीरक्षीर सम मिले हुये है (पृष्ठ ८८, ८९ की टिप्पणी देखो) ॥ अवधिज्ञान और अवधिदर्शन चौथेसे बारहवां गुणस्थान तक हैं और मनःपर्ययज्ञान छठेसे बारहवां गुणस्थान तक है॥

केवलदर्शनिनः केवलज्ञानिवत् ॥ (१०) लेश्यानुवादेन–कृष्णनीलकापोतलेश्येषु मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् ।

कुछ अधिक छ्यासठि सागर प्रमाण है ॥ (अवधि दर्शनवाले) प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानवर्तियोका नाना जीव अपेक्षासे अन्तर नहीं है। एक जीवके लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्टकरि कुछ अधिक तेतीस सागर प्रमाण है। (अवधिदर्शनवाले वा अवधिज्ञानवाले) चार उपशम श्रेणीवालोका नानाजीव अपेक्षासे गुणस्थानवत् है (जो पृष्ठ २२४ के अनुकूल) जघन्य एक समय है उत्कृष्ट तीन वर्षसे ऊपर और नौ वर्षके नीचे (=पृथक्त्व वर्ष) है एक जीवकी अपेक्षासे जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्टकरि कुछ अधिक छयासठि सागर प्रमाण है (अवधिदर्शनवालोमें-अवधिज्ञानवालोमें) चार क्षपक श्रेणीवालोका अनेक जीवकी अपेक्षासे जघन्यकरि एक समय है उत्कृष्टकरि पृथक्त्व वर्ष है। एक जीवकी अपेक्षासे अन्तर नहीं है। (देखो पृष्ठ २४७-२४८)

केवलदर्शनिनः ॥। केवलज्ञानिवत्॥ =केवल दर्शनवालोका (वियोगकाल) केवलज्ञानी (सयोग केवली और अयोग केवली) वत् है अर्थात सयोगकेवलीका नानाजीव अपेक्षासे और एकजीव अपेक्षासे अन्तर नहीं है। अयोग केवलियोका नानाजीव अपेक्षासे जघन्यकरि एक समय है उत्कृष्टकरि छेमास है एक जीवकी अपेक्षासे कुछ भी अन्तर नही है ॥ (देखो पृष्ठ २२५)

[१०] लेश्या-अनुवादेन॥। कृष्ण-नील-कापोत-लेश्येषु ॥। मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्ट्योः ॥। नाना-जीव-अपेक्षया॥। न अस्ति अन्तरम् ॥॥ =लेश्याके कथनानुसारकरि कृष्ण-नील-कापोत लेश्याधारको मे मिथ्यादर्शन प्रथम गुणस्थानवाले और असंयमी वा अविरत चौथे गुणस्थानवालोके अनेक जीवकी अपेक्षासे अन्तर (अर्थात् विरहकाल-वियोगकाल-विछोहकाल) नही है

---

(१) कृष्ण नील कापोत लेश्यायें मिथ्यात्वसे असंयत तक, पीत-पद्म लेश्यायें मिथ्यात्वसे अप्रमत्त गुणस्थान तक, शुक्ल मिथ्यात्वसे सयोगी तक है।

एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सप्तदशसप्तसागरोपमाणि देशोनानि ॥ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येयभागोऽन्तर्मुहूर्तश्च । उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सप्तदशसप्तसागरोपमाणि देशोनानि ॥ तेजःपद्मलेश्ययोर्मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण द्वे सागरोपमे अष्टादश च सागरोपमाणि सातिरेकाणि ॥

एक-जीवं २। प्रति*जघन्येन ३। अन्तर्मुहूर्तः १। =एकजीवके लिये जघन्यकरि (अन्तर) अन्तर्मुहूर्त है
उत्कर्षेण ३। त्रयस्त्रिंशत् १॥ =उत्कृष्टकरि (सातवां नरककी अपेक्षासे कुछ न्यून) तेतीस (सागर प्रमाण)
सप्तदश १॥। (सप्तदश १॥-सप्तदश १।) =(और पांचवां नरककी अपेक्षासे कुछ हीन) सत्रह (सागर प्रमाण)
सप्त १॥। (सप्त १॥-सप्त १।) सागरोपमाणि १॥। देशोनानि =(और तीसरे नरककी विवक्षासे) कुछघाटि सात सागर के बराबर है
सासादनसम्यग्दृष्टि-सम्यग्मिथ्यादृष्ट्योः ६। =(कृष्ण नील कापोत लेश्यावर्तियोमें) सासादनसम्यग्दृष्टी, मिश्रगुणस्थान वालोंका
नाना-जीव-अपेक्षया ३॥ सामान्य-वत* =(विरहकाल) अनेक जीव प्रति संक्षेप (प्रसंगमें पूर्व उक्त गुणस्थान) तुल्य है अर्थात् जघन्य अन्तरकाल एक समय है उत्कृष्ट पल्यका असंख्यातवां भाग है
एकजीवं २। प्रति* जघन्येन ३। पल्योपम-असंख्येय- =एकजीवके लिये जघन्यकरि पल्यके असंख्यातवां
भागः १। च*अन्तर्मुहूर्तः १। उत्कर्षेण ३। =भाग और अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकरि (सातवां नरकमें कुछ हीन)
त्रयस्त्रिंशत्-सप्तदश- =तेतीस (सागर प्रमाण) और (पांचवां नरक प्रति कुछ न्यून) सत्रह (सागर)
सप्त-सागरोपमाणि १॥। देशोनानि १॥। =(तीसरे नरककी अपेक्षा से) कुछ घाटि सात सागर प्रमाण (विरहकाल) है
तेजःपद्मलेश्ययोः ६। मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्ट्योः ६। =पीत-पद्म-लेश्यावालो में मिथ्यादृष्टि और अविरतसम्यग्दृष्टियो में
नाना-जीव-अपेक्षया ३॥न*अस्ति T अन्तरम् १॥। =अनेक जीव की अपेक्षा से अन्तर काल नहीं है
एक-जीवं २। प्रति*जघन्येन ३। अन्तर्मुहूर्तः १। =एक जीव की अपेक्षा से जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
उत्कर्षेण ३। द्वे १॥। सागरोपमे १॥। च स-अतिरेकाणि १॥। =उत्कृष्टकरि दो सागर प्रमाण है । और (=च) कुछ अधिक
अष्टादश १॥। सागरोपमाणि १॥। =अठारह सागर प्रमाण है ॥

(१) टिप्पणि पृष्ठ १२१ पर देखो (२) टिप्पणि पृष्ठ १४६ पर देखो ॥ (३) इस सबे को समास मानकर अन्तमें समस्त वाक्य प्रथमा विभक्ति बहुवचन नपुंसक लिंग में है ॥

सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् ॥ एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येयभागोऽन्तर्मुहूर्तश्च । उत्कर्षेण द्वे सागरोपमे अष्टादश च सागरोपमाणि सातिरेकाणि ॥ संयतासंयतप्रमत्ताप्रमत्तसंयतानां नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च नास्त्यन्तरम् ॥ शुक्ललेश्येषु मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेणैकत्रिंशत्सागरोपमाणि देशोनानि ॥ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यङ्मिथ्यादृष्ट्यो-

---

सासादन-	=(पीत-पद्मलेश्यावर्तियो में) सासादन
सम्यग्दृष्टि-सम्यग्मिथ्यादृष्ट्योः ६।	=सम्यग्दृष्टीका और मिश्र (तीसरे) गुणस्थानवर्तियोंका (अन्तरकाल)
नाना-जीव-अपेक्षया ३।। सामान्य-वत्*	=अनेक जीवकी अपेक्षासे संक्षेप (प्रसगमें पूर्व कथित गुणस्थान) वत् है अर्थात् जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पल्यका असंख्यातवां भाग है (पृष्ठ २२३)
एक-जीवं २। प्रति* जघन्येन ३। पल्योपम-असंख्येय-	=एक जीवके लिये जघन्यकरि पल्योपमके असंख्यातवां
भागः १। च अन्तर्मुहूर्तः १। उत्कर्षेण ३। द्वे १।।।	=भाग और (=च) अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकरि (कुछ अधिक) दो सागर
सागरोपमे १।।। च सातिरेकाणि अष्टादश १।।। सागर	=प्रमाण और (कुछ अधिक) अठारह सागर
उपमाणि १।।। संयतासंतय-प्रमत्त-	=प्रमाण है । (पीत-पद्मलेश्यावालो में) देशसंयमी, प्रमत्तसंयमी और
अप्रमत्त संयतानां ६। नाना-जीव-अपेक्षया ३।।	=अप्रमत्तसंयमियोका नानाजीव अपेक्षासे
च एक-जीव-अपेक्षया ३।। न* अस्ति १ अन्तरम् १।।।	=और एकजीवकी विवक्षासे अन्तर नहीं है
शुक्ललेश्येषु ७। मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्ट्योः ६।	=शुक्ललेश्यावालोंमें मिथ्यादर्शनवाले और असंयमीसम्यग्दृष्टियोंका
नाना-जीव-अपेक्षया ३।। न अस्ति अन्तरम् १।।। एक-	=अनेकजीवकी विवक्षासे विरहकाल (=अन्तरकाल) नहीं है । एक
जीवं २। प्रति जघन्येन ३। अन्तर्मुहूर्तः १। उत्कर्षेण ३।	=जीवकी अपेक्षासे जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है उत्कर्षकरि
देशोनानि १।।। एकत्रिंशत् १।। सागर-उपमाणि १।।।	=कुछघाटि इकतीस सागर प्रमाण है
सासादनसम्यग्दृष्टि-सम्यङ्मिथ्यादृष्ट्योः ६।	=(शुक्ललेश्याके धारक) सासादन सम्यग्दृष्टि और मिश्रगुणस्थानवालोंका

नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येयभागोऽन्तमुहूर्तश्च । उत्कर्षेणैकत्रिंशत्सागरोपमाणि देशोनानि ॥ संयतासंयतप्रमत्तसंयतयोस्तेजोलेश्यावत् ॥ अप्रमत्तसंयतस्य नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्यमुत्कृष्टं चान्तर्मुहूर्तः ॥ अंयदोत्ति छलेस्साओ सुहतियलेस्सा हु देसविरदतिये ॥ तत्तो दु

नाना-जीव-अपेक्षया॥ सामान्य-वत्*	=नानाजीवकी विवक्षासे संक्षेप (प्रसंगमें पूर्व कथित गुणस्थान) सदृश है अर्थात् जघन्य अन्तर एक समय है उत्कृष्ट पल्य के असंख्यातवां भाग है
एक-जीवं । प्रति* जघन्येन । पल्योपम-असंख्येय-	=एक जीव के लिये जघन्यकरि पल्यके असंख्यातवां
भागः । च* अन्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण । देशोनानि॥	=भाग और (=च) अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकरि कुछ घाटि
एकत्रिंशत् ॥ सागरोपमाणि ॥ संयतासंयत-	=इकतीस सागर प्रमाण है । (शुक्लेश्यावाले) देशसंयमी और
प्रमत्तसंयतयोः । तेजः लेश्यावत्*	=पमत्तसंयमियों का (विरहकाल) पीतलेश्यावालों के सदृश है अर्थात् नाना जीव अपेक्षा से और एक जीव प्रति कुछ अन्तर नहीं है (पृष्ठ २५८)
अप्रमत्तसंयतस्य । नाना-जीव-	=(शुक्लेश्यावाले) अप्रमत्तसंयमी (सातवां गुणस्थानवर्तीका) अनेक जीवकी
अपेक्षया ॥ न* अस्ति । अन्तरम् ॥ एकजीवं ।	=अपेक्षा से अन्तर नहीं है । एक जीवके
प्रति* जघन्यम् ॥ उत्कृष्टं ॥ च अन्तर्मुहूर्तः ।	=लिये जघन्य और (=च) उत्कर्ष अन्तर्मुहूर्त है ॥
अयंदोत्ति (=अयदो । त्ति* =असंयतः । इति*)	=असंयत(मिथ्यात्व-सासादन-सम्यग्मिथ्यात्व-अविरत चार गुणस्थानों)तक (=इति)
छलेस्साओ (=छ-लेस्साओ ॥ =षड् ॥ लेश्याः ॥)	=छहो (कृष्ण-नील-कापोत-पीत-पद्म-शुक्ल) लेश्या है ॥
सुहतियलेस्सा (=सुहतियलेस्सा ॥ =शुभत्रयलेश्या॥)	=शुभ अथवा प्रशस्त तीन (पीत-पद्म-शुक्ल) लेश्या
हु देसविरद-(=हु* देसविरद- =हि* देशविरत-)	=ही (=हु =हि) देशविरत वा संयतासंयत (पांचवें)
तिये ॥ तत्तो दु(=तिये॥ तत्तो*दु* =त्रये॥ततः*तु)	=प्रमत्त विरत (छठे) अप्रमत्त विरत (सातवां इन) तीन गुणस्थानों में है । किन्तु (=दु =तु) तहां (अप्रमत्त) से (आगे अपूर्वकरण आदि असयोगकेवली तक

जैसे रमाओ रमा-रमाऊ प्रथमाविभक्ति बहुवचन स्त्रीलिंगमे रमा शब्दके रूप है वैसेही लेस्सा शब्द के लेस्साओ लेस्सा तथा लेस्साऊ रूप है ।

चतुर्णां क्षपकाणां सयोगकेवलिनामलेश्यानां च सामान्यवत् ॥ (११) भव्यानुवादेन—भव्येषु मिथ्यादृष्टय्-
द्ययोगकेवल्यन्तानां सामान्यवत् ॥

चतुर्णाम् ॥	=(शुक्ललेश्यामें) चार (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्पराय-क्षीणकषाय गुणस्थान)
क्षपकाणाम् ॥ सयोगकेवलिनाम् ॥ अलेश्यानाम् ॥ च ●	=क्षपकश्रेणीवालोका सयोगकेवलियोका और लेश्या रहित (अयोगी) निका
सामान्य-वत्*	=संक्षेप (प्रकरणमें पहिले कहा हुआ गुणस्थान) सदृश (अन्तर) है अर्थात् चार उपर्युक्त क्षपकश्रेणीवालोंका और अयोगकेवलियोंका नानाजीव अपेक्षासे जघन्य एक समय (अन्तर) है उत्कृष्ट छै मास है। एकजीवकी अपेक्षासे अन्तर नहीं है ॥ सयोगकेवलियोका अनेक जीवकी अपेक्षासे और एक जीवकी अपेक्षासे अन्तर नहीं है (देखो पृष्ठ २२५)
[११] भव्य-अनुवादेन ॥ भव्येषु ॥ मिथ्यादृष्टि-आदि-	=(११) भव्यजीवोके कथनानुसारकरि भव्यजीवोमें मिथ्यादर्शनवालेसे (आदि)
अयोगकेवलि-अन्तानाम् ॥ सामान्य-वत्*	=अयोगकेवली पर्यतोंका (अन्तर) संक्षेप (विषयमें पूर्व उक्त गुणस्थान) वत् है अर्थात् भव्यजीवोमें मिथ्यादृष्टिका नानाजीव अपेक्षासे अन्तर नहीं है। एक जीव प्रति जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्टकरि कुछ न्यून एकसौ बत्तीस सागर प्रमाण है। भव्यजीवोमें सासादन सम्यग्दृष्टिका अन्तर नानाजीव अपेक्षासे जघन्य एक समय है। उत्कृष्ट पल्यके असंख्यातवां भाग है। एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य पल्यके असंख्यातवां भाग है। उत्कृष्ट आधा पुद्गल परिवर्तनसे कुछ घाटि है ॥ भव्य जीवोमें मिश्रगुणस्थानवर्तीका अन्तर नानाजीव अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पल्यके असंख्यातवांभाग है। एक जीवके लिये जघन्य एक समय है उत्कृष्ट कुछ न्यून अर्द्धपुद्गल परिवर्तन है ॥

एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि सातिरेकाणि ॥ चतुर्णामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि सातिरेकाणि ॥ शेषाणां सामान्यवत् ।

एक-जीवम् २। प्रति*जघन्येन ३। अन्तर्मुहूर्तः ३।	=एक जीवकी अपेक्षासे (=प्रति) जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
उत्कर्षेण ३। स-अतिरेकाणि ३॥ त्रयस्त्रिं -सागर-	=उत्कृष्टकरि कुछ अधिक तेतीस सागर
उपमाणि ३॥ चतुर्णाम् ३।	=प्रमाण (=उपम) है ॥ (क्षायिक सम्यग्दर्शन में) चार (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्पराय-उपशांतकषाय गुणस्थान)
उपशमकानाम् ६। नाना-जीव-अपेक्षया ३॥	=उपशमश्रेणीवालोंका अनेक जीवकी अपेक्षासे
सामान्य-वत्*	=संक्षेप (प्रकरणमें पहिले कहा हुआ गुणस्थान)सदृश (अन्तर) है अर्थात् जघन्य एक समय है उत्कृष्ट तीन वर्षसे उपर नौ से नीचे(वर्ष) है (पृष्ठ २२४)
एक-जीवम् २। पृति*जघन्येन ३। अन्तर्मुहूर्तः ३।	=एक जीवके लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
उत्कर्षेण ३। स-अतिरेकाणि ३॥ त्रयस्त्रिंशत्सागर-	=उत्कृष्टकरि कुछ अधिक तेतीस सागर
उपमाणि ३॥ शेषाणाम् ६।	=पृमाण (=उपम) है ॥ अवशेष अथवा वचेहुये (चार क्षपकश्रेणी वाले सयोग केवली और अयोग केवली) निका
सामान्यवत् *	=संक्षेप (पृसंगमें पहिले कहा हुआ गुणस्थान) समान (अन्तर) है अर्थात् चार क्षपकश्रेणी वालोंका और अयोगकेवलियों का नाना जीव अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट छै मासहै । एक जीव पृति अन्तर नहीं है ॥ सयोग केवलियोंका नानाजीव और एक जीव पृति अन्तर नहीं है ॥

(१) उपशमसम्यक्त्व चार से ग्यारह गुणस्थान तक है । वेदक सम्यक्त्व चार से सात गुणस्थान तक है और क्षायिक चार से चौदह तक है ॥

क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टिष्वसंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् ॥ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण पूर्वकोटी देशोना ॥ संयतासंयतस्य नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण षट्षष्टिसागरोपमाणि देशोनानि ॥ प्रमत्ताप्रमत्तसंयतयोर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि सातिरेकाणि ॥ औपशमिकसम्यग्दृष्टिष्वसंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः । उत्कर्षेण सप्त रात्रिंदिनानि ॥ एकजीवं प्रति जघन्यम्

क्षायोपशमिक-सम्यग्दृष्टिषु ३। असंयतसम्यग्दृष्टेः ६।	=वेदक सम्यग्दर्शनवालों में अविरत सम्यग्दृष्टी का
नाना-जीव-अपेक्षया ३॥ न अस्ति अन्तरम् १॥	=अनेक जीवकी अपेक्षासे विरहकाल नहीं है
एकजीवम् २ प्रति* जघन्येन ३। अन्तर्मुहूर्तः १।	=एक जीवके लिये (=प्रति) जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त (विरहकाल) है
उत्कर्षेण ३। पूर्वकोटी १॥ देशोना १॥	=उत्कृष्टकरि कुछहीन एक करोड़ पूर्व है ॥
संयतासंयतस्य ६। नाना-जीव अपेक्षया ३॥	=(वेदकसम्यग्दृष्टियों में) देशसंयमी का अनेक जीव की अपेक्षा से
न अस्ति अन्तरम् १॥ एकजीवम् २। प्रति जघन्येन ३।	=विरहकाल नहीं है । एकजीव के लिये (=प्रति) जघन्यकरि
अन्तर्मुहूर्तः १। उत्कर्षेण ३ देशोनानि १॥ षट्षष्टि-	=अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकरि कुछहीन छयासठि
सागरोपमाणि १॥ प्रमत्त-	=सागर प्रमाण है ॥ (वेदक सम्यग्दर्शनवालों में) प्रमत्त और
अप्रमत्तसंयतयोः ६। नाना-जीव-अपेक्षया ३॥	=अप्रमत्त संयमियों का अनेक जीवकी अपेक्षा से
न अस्ति अन्तरम् १॥ एक-जीवम् प्रति* जघन्येन ३।	=विरहकाल नहीं है । एक जीवके लिये जघन्यकरि
अन्तर्मुहूर्तः १। उत्कर्षेण ३। स-अतिरेकाणि १॥	=अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकरि कुछ अधिक
त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि १॥ औपशमिकसम्यग्दृष्टिषु ७।	=तैतीस सागर के बराबर (अन्तर काल) है । उपशमसम्यग्दृष्टियों में
असंयत-सम्यग्दृष्टेः ६। नाना-जीव-अपेक्षया ३॥	=अविरत सम्यग्दृष्टी का (विछोहकाल) अनेक जीवकी अपेक्षा से
जघन्येन ३। एकः १। समयः १। उत्कर्षेण ३। सप्त १॥	=जघन्यकरि एक समय है । उत्कृष्टकरि सात
रात्रिंदिनानि १॥ एक-जीवम् प्रति* जघन्यम् १॥	=रात दिवस है । एक जीवके लिये जघन्य और (=च)

उत्कृष्टं चान्तर्मुहूर्तः॥ संयतासंयतस्य नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेण चतुर्दश रात्रिदिनानि। एकजीवं प्रति जघन्यमुत्कृष्टं चान्तर्मुहूर्तः॥ प्रमत्ताप्रमत्तसंयतयोर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेण पञ्चदश रात्रिदिनानि। एकजीवं प्रति जघन्यमुत्कृष्टंचान्तर्मुहूर्तः॥ त्रयाणामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेण वर्षपृथक्त्वम्। एकजीवं प्रति जघन्यमुत्कृष्टं चान्तर्मुहूर्तः॥ उपशान्तकषायस्य नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्।

उत्कृष्टम् ;॥ अन्तर्मुहूर्तः ;। संयतासंयतस्य ;।	=उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त (विरह काल) है। (उपशम सम्यग्दृष्टियोंमें) देश संयमीका
नाना-जीव-अपेक्षया ;॥ जघन्येन ;। एकः ;। समयः ;।	=अनेक जीवकी अपेक्षासे जघन्यकरि एक समय (अन्तरकाल) है
उत्कर्षेण ; चतुर्दश ;॥ रात्रिदिनानि ;॥ एकजीवम्	=उत्कृष्टकरि चौदह रात्रि दिवस है। एक जीवकी
प्रति* जघन्यम् ;॥ च उत्कृष्टम् ;॥ अन्तर्मुहूर्तः ;।	=अपेक्षासे जघन्य और (=च) उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है
प्रमत्त-अप्रमत्तसंयतयोः ;।	=(उपशम सम्यग्दृष्टियोंमें) प्रमत्त और अप्रमत्तसंयमियोंका (अन्तर)
नाना-जीव-अपेक्षया ;॥ जघन्येन ;। एकः ;। समयः ;।	=अनेक जीवकी अपेक्षासे जघन्यकरि एक समय है
उत्कर्षेण ;। पञ्चदश ;॥ रात्रि-दिनानि ;॥ एकजीवम्	=उत्कृष्टकरि पन्द्रह राति दिवस है। एक जीवकी
प्रति* जघन्यम् ;॥ च उत्कृष्टम् ;॥ अन्तर्मुहूर्तः ;।	=अपेक्षासे जघन्य और उत्कृष्ट विरहकाल अन्तर्मुहूर्त है।
त्रयाणाम ;।	=(उपशम सम्यग्दृष्टियों में) तीन (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसांपराय)
उपशमकानाम् ;। नाना-जीव-अपेक्षया ;। जघन्येन ;।	=उपशमश्रेणियोंका नानाजीवकी अपेक्षासे जघन्यकरि
एकः ;। समयः ;। उत्कर्षेण ;। वर्षपृथक्त्वम् ;॥	=एक समय है। उत्कृष्टकरि पृथक्त्व (तीन से ऊपर नौ से नीचे) वर्ष है
एकजीवम् ;। प्रति* जघन्यम् ;॥ च उत्कृष्टम् ;॥	=एक जीवकी अपेक्षा से (=प्रति) जघन्य और (=च) उत्कृष्ट
अन्तमुहूर्तः ;। उपशान्तकषायस्य ;।	=अन्तर्मुहूर्त है॥ (उपशम सम्यग्दर्शनवालोंमें) उपशान्तकषाय वालेका
नाना-जीव-अपेक्षया ;॥ सामान्य-वत्*	=(विरहकाल) अनेक जीवकी अपेक्षासे संक्षेप (में पूर्व उक्त गुणस्थान)सम है अर्थात्‌जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पृथक्त्व बरस है (पृष्ठ २२४)

एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम् ॥ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यङ्मिथ्यादृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः । उत्कर्षेण पल्योपमासंख्येयभागः । एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम् ॥ मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च नास्त्यन्तरम् ॥ (१३) सञ्ज्ञानुवादेन--संज्ञिषु मिथ्यादृष्टेः सामान्यवत् ॥ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यङ्मिथ्यादृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येयभागोऽन्तर्मुहूर्तश्च । उत्कर्षेण सागरोपमशतपृथक्त्वम् ॥

एक जीवम् ३। प्रति* न* अस्ति अन्तरम् १॥	=एक जीवके लिये वियोगकाल (=अन्तर) नही है ।
सासादनसम्यग्दृष्टि-सम्यङ्मिथ्यादृष्ट्योः ६।	=सासादनसम्यग्दर्शनवाले और मिश्रगुणस्थानवालेका (अन्तर)
नाना-जीव-अपेक्षया ३॥ जघन्येन ३। एकः १। समयः १।	=अनेक जीवकी अपेक्षासे जघन्यकरि एक समय है ॥
उत्कर्षेण ३। पल्योपम-असंख्येय-भागः १। एकजीवं २।	=उत्कृष्टकरि पल्यके असंख्यातवां अंश है । एक जीवकी
प्रति न अस्ति अन्तरम् १॥। मिथ्यादृष्टेः ६। नानाजीव-	=अपेक्षासे अन्तर नही है ॥ मिथ्यादर्शनवालेका अनेक जीवकी
अपेक्षया ३॥ च एक-जीव-अपेक्षया ३॥ न अस्ति अन्तरम्	=अपेक्षासे और (=च) एक जीवकी अपेक्षासे अन्तर (काल) नही है ।
[१३] सञ्ज्ञा-अनुवादेन ३। संज्ञिषु ७। मिथ्यादृष्टेः ६।	=(१३) सैनी (=मन सहित जीव) निकी अपेक्षासे सैनियोमें मिथ्यादृष्टिका
सामान्यवत् *	=संक्षेप (प्रकरणमें पहिले कहा हुआ गुणस्थान) सदृश (अन्तर) है अर्थात् सैनियोमें मिथ्यादृष्टीका नाना जीवकी अपेक्षासे अन्तर नहीं है । एक जीवके लिये जघन्य अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट कुछ न्यून एकसौ बत्तीस सागर प्रमाण है (पृष्ठ २२३ देखो)
सासादनसम्यग्दृष्टि-सम्यङ्मिथ्यादृष्ट्योः ६।	=(सैनी जीवोमें) सासादन सम्यग्दर्शनवालेका और मिश्रगुणस्थानवालेका ॥
नानाजीव-अपेक्षया ३॥ सामान्यवत् *	=(अन्तर) अनेक जीव प्रति संक्षेप (प्रसंगमे पूर्व उक्त गुणस्थान) सदृश है अर्थात् जघन्य एक समय है। उत्कृष्ट पल्यका असंख्यातवां भाग है (२२३-२२४)
एक जीवम् ३। प्रति* जघन्येन ३। पल्योपम-	=एक जीवके लिये जघन्यकरि पल्योपमके
असंख्येय-भागः १। च अन्तर्मुहूर्तः १। उत्कर्षेण ३।	=असंख्यातवां भाग और (=च) अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्टकरि
सागरोपम-शतपृथक्त्वम् १॥।	=तीनसौ सागरसे ऊपर नौसौ सागरके नीचे प्रमाण है ॥

असंयतसम्यग्दृष्ट्याद्यप्रमत्तान्तानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम्। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेण सागरोपमशतपृथक्त्वम्॥ चतुर्णामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेण सागरोपमशतपृथक्त्वम्। चतुर्णां क्षपकाणां सामान्यवत्। असंज्ञिनां नानाजीवापेक्षयैकजीवापेक्षया च नास्त्यन्तरम्॥ तदुभय-

---

असंयतसम्यग्दृष्टि-आदि-अप्रमत्त-अन्तानाम् ३।	=(सैनी में) असंयमी सम्यग्दर्शन वालेसे अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती तकनिका
नानाजीव-अपेक्षया ३॥ न* अस्ति T अन्तरम् १॥	=अनेक जीवकी विवक्षासे विरहकाल (= अन्तर) नहीं है
एक जीवम् २। प्रति* जघन्येन ३। अन्तर्मुहूर्तः १।	=एक जीव की अपेक्षा से जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
उत्कर्षेण ३। सागरोपम-शतपृथक्त्वम् १॥	=उत्कृष्टकरि तीनसौ सागरसे ऊपर और नौसौ सागर के नीचे प्रमाण है
चतुर्णाम् ६।	=(सैनियो में) चार (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मलोभ-उपशान्तकषाय)
उपशमकानाम् ६। नानाजीव-अपेक्षया ३॥ सामान्यवत्*	=उपशम श्रेणीवालोंका अनेक जीवकी अपेक्षासे संक्षेप (में गुणस्थान) वत् है अर्थात् जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पृथक्त्व वर्ष अन्तर है (२२४)
एक जीवम् २। प्रति* जघन्येन ३। अन्तर्मुहूर्तः १।	=एक जीवकी अपेक्षासे जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
उत्कर्षेण ३। सागरोपम-शत पृथक्त्वम् १॥	=उत्कृष्टकरि पृथक्त्व (= तीन से ऊपर नौसे नीचे) सौ सागर प्रमाण है
चतुर्णाम् ६।	=(सैनियोमें) चार (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मलोभ-क्षीणकषाय)
क्षपकाणाम् ६। सामान्यवत्*	=क्षपक श्रेणीवालों का अन्तर संक्षेप (विषयमें पूर्व उक्त गुणस्थान) सदृश है अर्थात् नानाजीव की अपेक्षा से जघन्य एक समय है उत्कृष्ट छै मास है एक जीव प्रति विरह काल नही है (पृष्ठ २२५ देखो)
असंज्ञिनाम् ६। नाना-जीव-अपेक्षया ३॥ च एकजीव-अपेक्षया ३॥ न * अस्ति अन्तरम् १॥ तद्-उभय-	= असंज्ञियोका (जो मिथ्यात्वगुणस्थानमें हैं) नाना जीवकी अपेक्षा से और एक जीवकी =विवक्षा से अन्तर नही है॥ उन (सैनीमनसहित असैनी मनरहित) दोनों

---

(१) सैनी अथवा मनसहित जीव मिथ्यात्व प्रथम गुणस्थान से क्षीणकषाय बारहवां गुणस्थानतक होते हैं असंज्ञी केवल मिथ्यात्व गुणस्थान में हैं॥

व्यपदेशरहितानां सामान्यवत् ॥ (१४) आहारानुवादेन-आहारकेषु मिथ्यादृष्टेः सामान्यवत्। सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यङ्मिथ्यादृष्टयोर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येयभागोऽन्तर्मुहूर्तश्च।

व्यपदेश-रहितानाम् ६।	=नामों से वर्जित (सयोगकेवली और अयोगकेवली) निका (विरहकाल)
सामान्य-वत्*	=संक्षेप (प्रकरणमें पहिले कहाहुआ गुणस्थान) समान है अर्थात् सयोगकेवलियों का नाना जीवकी अपेक्षासे और एक जीव की अपेक्षासे अन्तर नहीं है अयोग केवलियोका नाना जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट छै मास है एकजीव प्रति अन्तर नहीं है (पृष्ठ २२५)
(१४)आहार-अनुवादेन ३। आहारकेषु ७। मिथ्यादृष्टेः ६।	=आहारके कथनानुसारकरि आहारकोमें मिथ्यादृष्टीका (अन्तर)
सामान्यवत्*	=संक्षेप (प्रकरणमें पहिले कहा हुआ गुणस्थान) समान है अर्थात् आहारक मिथ्यादृष्टिका नाना जीवकी अपेक्षासे अन्तर नहीं है एक जीवके प्रति जघन्य अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्ट एकसौ बत्तीस सागर से कुछ न्यून है
सासादनसम्यग्दृष्टि-सम्यङ्मिथ्यादृष्टयोः ६।	=(आहारकों में) सासादनसम्यग्दृष्टि और मिश्रगुणस्थानवालोंका
नाना-जीव-अपेक्षया ३॥ सामान्यवत्*	=नाना जीवकी अपेक्षासे संक्षेप (प्रसंगमें पूर्व-उक्त गुणस्थान) वत् (अन्तर) है अर्थात् जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पल्यका असंख्यातवांभागहै (पृष्ठ २२३)
एकजीवम् २। प्रति, जघन्येन३। पल्योपम-असंख्येयभागः १। च अन्तर्मुहूर्तः १।	=एक जीव के लिये जघन्यकरि पल्योपमके =असंख्यातवां भाग और(=च) अन्तरमुहूर्त है ॥

(१) आहारक जीव मिथ्यात्व से सयोगकेवली गुणस्थान तक १३ स्थानों मे होते हैं अनाहारक जीव, मिथ्यात्व सासादन, असंयत सम्यग्दृष्टि, सयोगकेवली और अयोगकेवली इन पांच स्थानों में (और सर्वसिद्ध) होते है अर्थात् विग्रहगतिको प्राप्तहोनेवाले चारो गति संबंधी जीव, प्रतर और लोक पूर्ण समुद्घात करनेवाले सयोगकेवली, अयोगकेवली, सर्वसिद्ध (भगवान), इतने जीवतो अनाहारक होतेहैं। अन्य शेष जीव अहारक होते हैं ॥ गोम्मटसार जीव कांड गाथा ६६६ ॥

उत्कर्षेणाङ्गुलासंख्येयभाग असंख्येयासंख्येया उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः । असंयतसम्यग्दृष्ट्याद्यप्रमतान्ताना नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः ॥

उत्कर्षेण ¦। अंगुलं-असंख्येयभागः ¦।	=उत्कृष्टकरि (सूचीरूप) अंगुल के असंख्यातवां भाग है अर्थात् सूच्यंगुल के असंख्यातवां भाग के बराबर आकाश में वा आकाश के जितने प्रदेश गणना में हैं उतने समयों के बराबर विरह काल वा अंतरकाल है
असंख्येयासंख्येयाः ¦॥ उत्सर्पिणि-अवसर्पिण्यः ¦॥	=(वे पूर्वोक्त समय) असंख्यातासंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल हैं अर्थात् सूच्यंगुल के असंख्यातवां भाग में जितने अकाशके प्रदेश संख्या में हैं उतनी ही (गणना अन्तर काल) के समयों की है और ये समय गिनती में उन समयों के बराबर हैं जितने कि समय असंख्यातासंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी कालों (असंख्यातासंख्यात कल्प कालों) में है
असंयत-सम्यग्दृष्टि-आदि-अप्रमत्त-अन्तानां ¦।	=असंयतसम्यग्दृष्टी से अप्रमत्तसंयमी (सातवां गुणस्थान वर्ति) नि तक
नानाजीव-अपेक्षया ¦॥ न-अस्ति-अन्तरम् ¦॥।	=अनेक प्राणियों की अपेक्षा से अन्तर नहीं है
एकजीवं ¦। प्रति* जघन्येन ¦। अन्तर्मुहूर्तः ¦।	=एक जीव की अपेक्षा से जघन्य अन्तर्मुहूर्त है ॥

(१) "असंख्येया" पृष्ठ ८६ (द्वितोय संस्करण के पृष्ठ ४९) मे दो वार आया है ॥ यह छापे को अशुद्धि है । पृष्ठ ८७ (पृष्ठ ४९) मे असंख्येयासंख्येयाः आया है वह शुद्ध है क्योंकि जयचन्दजी की वचनिका मुद्रित पृष्ठ १११ और हस्तलिखित वचनिका में भी तोनो स्थानों मे असंख्यातासंख्यात वाक्य है और अर्थ भी यही है कि सूच्यंगुलके असंख्यातवा भागके आकाश प्रदेशोकी गणना असंख्यातासंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी (न कि असंख्याते उत्सर्पिणी अवसर्पिणी) कालों के समयों के बराबर है ॥

(२) पृष्ठ ८६, ८७ (द्वितोय संस्करण के पृष्ठ ४९) मे तीनो स्थानोंमे "असंख्येयभाग:" (= असंख्यातवाँभाग) के स्थान में 'असंख्येभागा.' असंख्यातेभाग अशुद्ध छप गया है क्योंकि सूच्यंगुल के असंख्यातवा भाग (न कि असंख्याते भाग) के आकाश के प्रदेशो की संख्या असंख्यातासंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी कालोके समयोंके बराबर गणनामें है । क्योंकि "अंगुल असंखभागो" इत्यादि गाथा तथा टिप्पणी (२) पृष्ठ२२१मे देखो ॥ 'सूच्यंगुलासंख्यतैकभागः

(३) "अंगुल" पृष्ठ ८६, ८७ व ६८ मे जहाँ जहाँ पर अंगुल शब्द लाये हैं वहा वहां सूच्यंगुलसे प्रयोजन है न कि प्रतर (वर्ग) अंगुलसे वा घनअंगुल से अर्थात् एक प्रमाण अंगुल (न कि उत्सेध अंगुल वा आत्मांगुल) लँबे और एकप्रदेश चोडे और ऊंचे आकाशमें जितने प्रदेश होते हैं उसे सूच्यंगुल कहते हैं सूच्यंगुल के कथन मे सूची, जघन्ययुक्ता संख्यात प्रमाण इत्यादि शब्द आये हैं अत. अलौकिक गणित के (१) संख्यामान और उपमामान दोनों भेद जो तत्वार्थ सूत्र के अगले अध्यायो के सूत्रो से भी सम्बन्ध रखते है नोचे के पृष्ठ २७० से २७६ तक लिखे जाते हैं ॥ अलौकिक गणित के मुख्य दो भेद है एक संख्यामान और दूसरा उपमामान । संख्यामान के मूल ३ भेद हैं; अर्थात् १ संख्यात-

(टिप्पणी) २ असंख्यात और ३ अनंत। असंख्यातके तीन भेद हैं १ परीतासंख्यात २ युक्तासंख्यात और ३ असंख्यातासंख्यात। अनंतके भी ३ भेद हैं —१ परीतानंत २ युक्तानंत ३ अनंतानंत। संख्यात का एक भेद ही है। ऐसे संख्यात का एक भेद, असंख्यात और अनंत के तीन तीन भेद सब मिल कर संख्यामान के ७ भेद हुए। इन सातों में से प्रत्येक के जघन्य (सब से छोटा) मध्यम (बीच के) और उत्कृष्ट (सबसे बड़ा) की अपेक्षा से तीन तीन भेद हैं इस प्रकार संख्यामान के २१ भेद हुए अर्थात् (1) जघन्य संख्यात, मध्यम संख्यात, उत्कृष्ट संख्यात

(2) जघन्य परीतासंख्यात, मध्यम परीतासंख्यात, उत्कृष्ट परीतासंख्यात, जघन्य युक्तासंख्यात, मध्यम युक्तासंख्यात, उत्कृष्ट युक्तासंख्यात जघन्य असंख्यातासंख्यात, मध्यम असंख्यातासंख्यात, उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात,

(3) जघन्य परीतानन्त, मध्यम परीतानन्त, उत्कृष्ट परीतानन्त ; जघन्य युक्तानन्त, मध्यम युक्तानन्त, उत्कृष्ट युक्तानन्त . जघन्य अनन्तानन्त, मध्यम अनन्तानन्त उत्कृष्ट अनन्तानन्त ॥

एकमें एकका भाग देने से अथवा एकको एकसे गुणाकारकरने से कुछभी हानि वृद्धि नहीं होती। अतः संख्याका आरम्भ दो के अङ्क से ग्रहण किया है। और एक को गणना (गिनती) शब्द का वाच्य (कहने वाला) माना है, इस लिये जघन्य संख्या का प्रमाण दो (२) हैं। तीन चार पांच इत्यादि एक हीन उत्कृष्ट संख्यात पर्यन्त मध्यम संख्यात के भेद हैं। एक न्यून जघन्य परीतासंख्यात को उत्कृष्ट संख्यात कहते हैं

अब आगे जघन्य परीत संख्यात का प्रमाण कितना है सो लिखते हैं। अलौकिक गणित का स्वरूप लौकिक गणित से कुछ विलक्षण है लौकिक गणित से स्थूल और स्वल्प (थोड़े) पदार्थों का परिमाण किया जाता है, किन्तु अलौकिक गणित से सूक्ष्म और अनन्त पदार्थों की हीनाधिकता का बोध कराया जाता है। जघन्य परीतासंख्यात का स्वरूप समझाने के लिये जो उपाय लिखा जाता है वह किसी ने किया नहीं था किन्तु बड़े गणित का परिमाण समझाने के लिये एक कल्पित उपाय मात्र है ॥

कल्पना कीजिये कि अनवस्था, शलाका, प्रति शलाका, और महा शलाका, नाम के चार गोल कुंड हैं। जिन में से प्रत्येक का व्यास (= गोल पदार्थ की एकतट से दूसरे तट तक की चौड़ाई) एक लक्ष योजन (योजन का प्रमाण यहां दो सहस्र कोस का समझना) और गहराई (ओंडाई) का प्रमाण एक सहस्र योजन है। इनमें से अनवस्था कुंडको गोल सरसों से शिखाऊ (पृथ्वी पर अन्नकी राशिके भांति) भरना। इस अनवस्था कुंड में १९९७११२९ ३८ ४५ १३१६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ सरसों छियालीस अंक प्रमाण गणित शास्त्रके अनुसार समाई। यहां अपूर्णांक का ग्रहण नहीं करना।

इस अनवस्था कुंडके भरनेपर दूसरी एक सरसो अनवस्था कुंडोंकी गिनती करने के लिये शलाका कुंडमें डालनी। मध्य लोक में असख्यात द्वीप समुद्र है। जिनमें सबके बीचमें जम्बूद्वीप है। इसका व्यास एक लक्षयोजन है उसके चारो ओर लवण समुद्र है। उसको चारों ओरसे घेरकर धातकीखंड है। इस प्रकार द्वीपके आगे समुद्र समुद्र; के आगे द्वीप क्रमसे असंख्यात द्वीप समुद्र हैं। चौडाई दूनी दूनी होती गई है। किसी द्वीप वा समुद्र की परिधि (गोलाई) के एक तट से दूसरे तट तक की चौडाई को सूची कहते हैं। जैसे लवण समुद्रकी सूची ५ लाख योजन है।

अब अनवस्था कुंड मे से समस्त सरसोंको निकालकर किसी देव के द्वारा एक सरसो द्वीपमें एक सरसों समुद्रमे अनुक्रम से डालते चलिये जिस द्वीप वा समुद्रमे सब सरसों पूर्ण कर अंतकी सरसौं डालो उसी द्वीप वा समुद्रकी सूची के समान सूची वाला और एक सहस्रयोजन गहराईवाला दूसरा अनवस्थाकुंड बनाइये और उसको भी सरसो से शिखाऊ भर एक दूसरी सरसो शलाका कुंडमें डालिये इस दूसरे अनवस्था कुंडकी सरसों को भी निकालकर जिस द्वीप वा समुद्र में पहिले समाप्ति हुई थी उसके आगे एक सरसो द्वीपमें और एक (सरसों) समुद्र में डालते चलिये जहां ये सरसों भी समाप्त हो जायें वहॉ उसी द्वीप वा समुद्र की सूची प्रमाण चौडी और एक सहस्र योजन गहरा तीसरा अनवस्था कुंड बनवाकर उसे सरसों से शिखाऊ भरिये और शलाका कुंड में तीसरी सरसो डालिये इस तीसरे कुंड की भी सरसों निकालकर आगेके द्वीप समुद्रो में एक एक सरसों डालते डालते जब सरसों समाप्त हो जाय तब पूर्वोक्तानुसार चौथा अनवस्था कुंड भरकर चौथी सरसो शलाका कुंडमें डालिये इसी प्रकार एक एक अनवस्था कुंड की एक एक सरसों शलाका कुंड में डालते डालते जब शलाका कुंड भी शिखाऊ भरजाय तब एक सरसो प्रति शलाका कुंड मे डालिये इसी प्रकार एक एक अनवस्था कुंड की एक एक सरसो शलाका कुंड में डालते डालते जब दूसरी बार भी शलाका कुंड (शिखाऊ) भर जाय तो दूसरी सरसो प्रतिशलाकाकुण्ड मे डालिये, एक एक अनवस्था कुण्ड की एक एक सरसो शलाकाकुंड मे और एक एक शलाकाकुंडकी एक एक सरसों प्रतिशलाकाकुंडमें डालते डालते जब प्रतिशलाकाकुण्डभी भर जाय तब एक सरसो महाशलाकाकुण्डमें डालिये, जिस क्रमसे एक बार प्रति शलाकाकुंड भरा है उसी क्रमसे दूसरी बार भरने पर दूसरी सरसों महाशलाका कुण्डमें डालिये। इसी प्रकार एक एक प्रतिशलाका कुंडकी सरसों महाशलाका कुंडमें डालते डालते जब महाशलाका कुंड भी भरजाय उस समय

सबसे बड़े अंतके अनवस्थाकुंडमें जितनी सरसों समाई उतनाही जघन्य परीतासंख्यातका प्रमाण है ।

संख्यामान के मूलभेद सात कहेथे इन सातोंके जघन्य मध्यम उत्कृष्टकी अपेक्षासे इकीस भेद कहे । यहांपर आगेके मूलभेद के जघन्य भेदमें से एक घटाने से पिछले मूल भेदका उत्कृष्ट भेद होता है, जैसे जघन्य परीतासंख्यात मे से एक घटाने से उत्कृष्ट संख्यात तथा जघन्य युक्तासंख्यात में से एक घटाने से उत्कृष्ट परीतासंख्यात होता है । इसी प्रकार अन्य स्थानोंमें भी जानना । जघन्य और उत्कृष्ट भेदो के बीचके सब भेद मध्यम भेद कहलाते हैं । इस प्रकार मध्यम और उत्कृष्ट केस्वरूप जघन्य के स्वरूप को जानने से ही ज्ञात होसक्ते हैं इसलिये अब आगे जघन्य भेदोंका ही स्वरूप लिखाजाता है । जघन्यसंख्यात और जघन्य परीतासंख्यात का स्वरूप ऊपर लिखा जाचुका है अब आगे जघन्य युक्तासंख्यात का प्रमाण लिखते हैं ।

जघन्य परीतासंख्यात प्रमाण दो राशि लिखना, एक विरलनराशि और दूसरी देयराशि, विरलनराशिका विरलन करना अर्थात् विरलनराशिका जितना प्रमाण है उतने एके लिखना और प्रत्येक एकेके ऊपर एक एक देयराशि रखकर समस्त देयराशियोंका परस्पर गुणन करने से जो गुणन फल हो उतना ही जघन्य युक्तासंख्यातका प्रमाण है भावार्थ यदि जघन्य परीतासंख्यातका प्रमाण चार मानाजाय तो चार का विरलनकर १,१,१,१, प्रत्येक एकके ऊपर देयराशि चार चार रखकर $\frac{४}{१}\frac{४}{१}\frac{४}{१}\frac{४}{१}$ चारों चौकोंका परस्पर गुणन करनेसे गुणनफल २५६ जघन्य युक्तासंख्यातका प्रमाण होगा । इसही जघन्य युक्तासंख्यातको आवलीभी कहते हैं क्योंकि एक आवली मे जघन्य युक्तासंख्यातका प्रमाण समय होते हैं । जघन्य युक्तासंख्यातके वर्ग (एक राशिको उसी से गुणा कार करने से जो गुणनफल होता है उसको वर्ग कहते हैं जैसे ५ का वर्ग २५) को जघन्य असंख्यातासंख्यात कहते हैं । अब आगे जघन्य परीतानंतका प्रमाण कहते हैं—

जघन्य असंख्यातासंख्यातप्रमाण तीनि राशि अर्थात् १ विरलनराशि २ देयराशि ३ शलाका लिखना । विरलनराशिका विरलनकर प्रत्येक एकके ऊपर देयराशि रखकर समस्त देयराशियोंका परस्पर गुणाकार करना, और शलाकाराशि मे से एक घटाना, इस पाये हुये गुणनफल प्रमाण

समस्त देयराशियोका परस्पर
एक विरलन और एक देय इस प्रकार दो राशिकरना। विरलनराशिका विरलनकर प्रत्येक एकके ऊपर देयराशि रखकर समस्त देयराशियोका परस्पर
गुणाकार करना और शलाकाराशिमेंसे एक और घटाना। इस दूसरीवार पाये हुये गुणनफल प्रमाण पुनः विरलन और देयराशि करना और पूर्वोक्तानुसार
समस्त देयराशियोका परस्पर गुणाकार करना तथा शलाकाराशियों मे से एक और घटाना इसही अनुक्रमसे नवीन नवीन गुणनफल प्रमाण विरलन
और देयके क्रमसे एक एक वार देयराशियो का गुणाकार होने पर शलाकाराशि मे से एक एक घटाते घटाते जब शलाकाराशि समाप्त होजाय उस
समय जो अन्तिम गुणनफलरूप महाराशि होय उस प्रमाण फिर विरलन-देय-शलाका ये तीनि राशि लिखनी। विरल राशिका विरलनकर प्रत्येक
एकके ऊपर देयराशि रख देयराशिका परस्पर गुणाकार करते करते पूर्वोक्तक्रमानुसार एक वार देयराशियोका गुणाकार होनेपर शलाकाराशिमे से
एक एक घटाते घटाते जब यह द्वितीयवार स्थापनकी हुई शलाकाराशिभी समाप्त होजाय उस समय इस अन्तकी गुणनफलरूप महाराशि प्रमाण पुनः
विरलन-देय शलाका, ये तीनिराशि लिखनी। पूर्वोक्त क्रमानुसार जब यह तीसरीवार स्थापना की हुई शलाकाराशि भी समाप्त होजाय उस समय
यह अन्तिम गुणनफलरूप जो महाराशि हुई वह असंख्यातासंख्यातका एक मध्यम भेद है।

कथित क्रमानुसार तीनिवार तीनितीनि राशियो के गुणन विधानको शलाकात्रयनिष्ठापन कहते हैं आगे भी जहां "शलाकात्रयनिष्ठापन" ऐसा
पद आवै वहां ऐसाही विधान समझ लेना। इस महा राशि मे लोक प्रमाण (जिसका कथन उपमामान के कथन में कहा जायगा) लोकप्रमाण धर्मद्रव्यके
प्रदेश, लोकके प्रमाण अधर्मद्रव्यके प्रदेश, लोक प्रमाण एक जीव के प्रदेश, लोक प्रमाणलोकाकाशके प्रदेश, लोकसे असंख्यात गुणा अप्रतिष्ठित प्रत्येक
वनस्पतिकायिक जीवो का प्रमाण और उसके भी असंख्यात लोक गुणा तथापि सामान्यपनेसे असंख्यात लोक प्रमाण प्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतिकायिक
जीवोंका प्रमाण-ये छह राशि मिलाना। इस योगफलप्रमाण विरलन-देय-शलाका ये तीनि राशि स्थापनकर पूर्वोक्तानुसार शलाकात्रय निष्ठापन करना।
इसप्रकार करने से जो महाराशि उत्पन हो उस में वीसकोडाकोडी सागर प्रमाण कल्पकालके समय, असंख्यात लोक प्रमाण स्थितिबन्धाध्यवसायस्थान
(स्थितिबंधको कारण भूतआत्मा के परिणाम) इनसे भी असंख्यात गुणे तथापि असंख्यात लोक प्रमाण अनुभागबंधाध्यवसाय स्थान और इनसे
भी असंख्यात गुणे तथापि असंख्यात लोक प्रमाण मन वचन काय योगो के अविभाग प्रतिच्छेद (गुणोके अंश) ये चार राशि मिलाना। इस दूसरे
योगफल प्रमाण फिर—

विरलन-देय-शलाका ये तीनिराशि स्थापन करना और पूर्वोक्त क्रमानुसार शलाकात्रय निष्ठापन करना। इस प्रकार शलाकात्रय-निष्ठापन करनेसे जो राशि उत्पन्न हो उसको जघन्य परीतानंत कहते हैं। जघन्य परीतानंतका विरलनकर प्रत्येक एकके ऊपर जघन्य परीतानंतरख सब जघन्य परीतानंतोंका परस्पर गुणाकार करनेसे जो राशि उत्पन्न हो उसको जघन्य युक्तानंत कहते हैं। अभव्य जीवोंका प्रमाण जघन्य युक्तानंत समान है। जघन्य युक्तानंतके वर्गको जघन्य अनंतानंत कहते हैं।

अब आगे केवल ज्ञानके अविभाग प्रतिच्छेदोंके प्रमाण स्वरूप उत्कृष्ट अनंतानंतका स्वरूप कहते हैं— जघन्य अनंतानंत प्रमाण विरलन देय शलाका ये तीनि राशि स्थापनकर शलाकात्रय निष्ठापन करना। इस प्रकार शलाकात्रय निष्ठापन करनेसे जो महाराशि उत्पन्न हो वह अनंतानंतका एक मध्यम भेद है। अनंतके दूसरे दो भेद हैं, एक सक्षय अनंत और दूसरा अक्षयअनंत। यहां तक जो सख्या हुई वह सक्षयअनंत है इससे आगे अक्षयअनंतके भेद हैं। क्योंकि, इस महाराशिमें आगे छह राशि अक्षय अनंत मिलाई जाती हैं। नवीन वृद्धि न होने पर भी व्यय करते करते जिस राशिका अंत नहीं आवै उसको अक्षयअनंत कहते हैं। इस महाराशिमें जीवराशिके अनंतवें भाग सिद्धराशि, सिद्धराशिसे अनंतगुणी निगोदराशि, वनस्पतिकायिकराशि, जीवराशिसे अनंतगुणी पुद्गलराशि, पुद्गलसे भी अनंतगुणे तीनिकालके समय और अलोकाकाशके प्रदेश ये छह राशि मिलानेसे जो योगफल हो उस प्रमाण विरलन देय शलाका ये तीनिराशि स्थापनकर शलाकात्रयनिष्ठापन करना। इस प्रकार शलाकात्रयनिष्ठापन करनेसे जो राशि उत्पन्न हो उसमें धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्यके अगुरुलघु गुणके अनंतानंत अविभागप्रतिच्छेद मिलाकर योगफल प्रमाण विरलन-देय-शलाका स्थापनकर फिर शलाकात्रयनिष्ठापन करना। इस प्रकार शलाकात्रयनिष्ठापन करनेसे मध्यम अनंतानंतका भेदरूप जो महाराशि उत्पन्न हुई उसको केवल ज्ञानके अविभागप्रतिच्छेदोंके समूहरूप राशिमेंसे घटाना और जो शेषबचे उसमें पुनः वही महाराशि मिलानेसे केवलज्ञानके अविभागप्रतिच्छेदोंका प्रमाणस्वरूप उत्कृष्ट अनंतानंत होता है। उक्त महाराशिको केवलज्ञानमेंसे घटाकर फिर मिलानेका अभिप्राय यह है कि, केवलज्ञानके अविभागप्रतिच्छेदोंका प्रमाण उक्त महाराशिसे बहुत बडा है। उस महाराशिको किसी दूसरी राशिसे गुणाकार करने पर भी केवल ज्ञानके प्रमाणसे बहुत न्यून रहता है इसलिये केवल ज्ञानके अविभागप्रतिच्छेदोंके प्रमाणका महत्व दिखलानेके लिये उपर्युक्त विधान किया है। इस प्रकार संख्या मानके इक्कीस भेदोंका कथन समाप्त हुआ।

अब आगे उपमामानके आठ भेदोंका स्वरूप लिखते है। जो प्रमाण किसी पदार्थको उपमा देकर कहा जाता है उसे उपमामान कहते हैं। उपमामानके ८ भेद हैं, १ पल्य (अर्थात् नाज भरनेको जो खत्ती उसकी उपमा है) २ सागर (यहां लवण समुद्रको उपमा है) ३ सूच्यंगुल ४ प्रतरांगुल ५ घनांगुल ६ जगच्छ्रेणी ७ जगत्प्रतर और ८ लोक। इनमेंसे पल्यके तीनि भेद है, १ व्यवहारपल्य, २ उद्धारपल्य और ३ अद्धा पल्य। व्यवहारपल्यका स्वरूप पूर्वाचार्योंने इसप्रकार कहा है कि पुद्गलद्रव्यके सबसे छोटे खंडको (टुकडेको) परमाणु कहते है। अनंतानंत परमाणुओंके स्कंधको (समूहरूप पिंडको) अवसन्नासन्न कहते है, ८ अवसन्नासन्नका एक सन्नासन्न, ८ सन्नासन्नका एक तृटरेणु ८ तृटरेणुका एक त्रसरेणु, ८ त्रसरेणुका एक रथरेणु, ८ रथरेणुका एक उत्तम भोग भूमिवालोंका वालाग्रभाग, ८ उत्तम भोग भूमिवालोंके वालाग्रका एक मध्यमभोग भूमिवालोंका वालाग्र, ८ मध्यमभोग भूमिवालोंके वालाग्रका एक जघन्यभोगभूमिवालोंका वालाग्र, ८ जघन्यभोगभूमिवालोके वालाग्रका एक कर्मभूमिवालोंका वालाग्र, ८ कर्मभूमिवालोंके वालाग्रकी एक लीख, ८ लीखोंका एक सरसों ८ सरसोंका एक जौ, और ८ जौका एक अंगुल होता है। इस अंगुलको 'उत्सेधांगुल' कहते है। चारों गतियोंके जीवोंके शरीर और देवोंके नगर तथा मन्दिरादिकका परिमाण इसी अंगुलसे वर्णन किया जाता है इस उत्सेधांगुलसे पाचसौ गुणा प्रमाणांगुल (भरत क्षेत्रके अवसर्पिणीकालके प्रथम चक्रवर्तिका अंगुल) है। इस प्रमाणांगुलसे महापर्वत, नदी, द्वीप, समुद्र इत्यादिकका परिमाण कहा जाता है। भरत ऐरावत क्षेत्रके मनुष्योंका अपने अपने कालमे जो अंगुल है उसे आत्मांगुल कहते हैं इससे झारी, कलस, धनुष, ढोल, हल, मूसल, छत्र, चमर इत्यादिकका प्रमाण वर्णन किया जाता है। छह अंगुलका एक पाद, दो पादका एक विलस्त, दो बिलस्तका एक हाथ, चार हाथका एक धनुष, दो सहस्र धनुषका एक कोस, चार कोसका एक योजन होता है। प्रमाणांगुलसे निष्पन्न एक योजन प्रमाण गहरा और एक योजन प्रमाण व्यासवाला एक गोलगर्त (गढा) बनाना उस गर्तको उत्तम भोगभूमिवाले मेढेके बालोंके अग्रभागोंसे भरना। गणित करनेसे उसगर्तके रोमको संख्या ४१३४५२६३०३०८२०३१७७७४९५१२१९२०००००००००००००००००० हुई (अध्याय ३ सूत्र ३८की टिप्पणी गणितके लिये देखो) इसगर्तके एक एक रोमको सौ सौ वरस पीछे निकालते निकालते जितने कालमे वे सब रोम समाप्त होजाय उतने काल को व्यवहार पल्यका काल कहते है। उपर्युक्त रोम सख्या को सौवरस के समयसमूह से गुणा करने पर व्यवहार पल्यके समयोका प्रमाण होता है।

[१ वर्षके २ अयन, १ अयनको तीन ऋतु, १ ऋतुके २ मास, १ मासके ३० अहोरात्रि, १ अहोरात्रिके ३० मुहूर्त, १ मुहूर्तकी संख्यात आवली और १ आवली के जघन्य युक्तासंख्यात प्रमाण समय होते है]। व्यवहार पल्यके एक एक रोम खंडके असंख्यात कोटि वर्षके समय समूह प्रमाण खंड करने से उद्धार पल्यके रोम खंडो का प्रमाण होता है जितने उद्धारपल्यके रोम खंड है उतने ही उद्धार पल्य के समय जानने। एक कोटीके वर्गको कोडाकोडी कहते है। द्वीप समुद्रो को सख्या उद्धारपल्य से है अर्थात् उद्धार पल्यके समयोको पच्चीस कोड़ाकोडीने गुणा करने से जो गुणनफल होता है उत्तनेही सब द्वीप समुद्र है। उद्धार पल्यके प्रत्येक रोमखंडके असख्यात वर्ष के समय समूह प्रमाण खंड करने से अद्धापल्यके रोम खंड होते है। जितने अद्धापल्यके रोमखंड है उतने ही अद्धापल्यके समय है।

उत्कर्षेणांगुलासंख्येयभागः असंख्येयासंख्येया उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः ॥ चतुर्णामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेणांगुलासंख्येयभागः असंख्येयासंख्येया उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः॥

उत्कर्षेण ३। अंगुल-असंख्येय-भागः १।	=उत्कृष्टकरि सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग है (इस भागके प्रदेशो के तुल्य है)
असंख्येयासंख्येयाः १॥ उत्सर्पिण्यसर्पिण्यः १।	=(येप्रदेश संख्यामें) असंख्यातासंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणीके समयोके तुल्य है
चतुर्णाम् ६। उपशमकानाम् ६।	=चार उपशमश्रेणी (आठवेंसे ग्यारहवां गुणस्थान) वालेनिका (अन्तर)
नाना-जीव-अपेक्षया ३॥ सामान्यवत्*	=अनेक जीव की विवक्षासे सामान्य (प्रकरण में कथित गुणस्थान) सम है अर्थात जघन्यकरि एक समय है उत्कृष्टकरि पृथक्त्व (तीनसे ऊपर नौसे नीचे) वर्ष है (पृष्ठ २२४)
एकजीवं २। प्रति* जघन्येन ३। अन्तर्मुहूर्तः १।	=(चार उपशम श्रेणी वालों का) एक जीव की अपेक्षा से जघन्य अन्तर्मुहूर्त है
उत्कर्षेण ३। अंगुल-असंख्येयभागः १।	=उत्कृष्टकरि सूच्यंगुल के असंख्यातवां भाग (के अकाश प्रदेशों के तुल्य) है
असंख्येयासंख्येयाः १॥ उत्सर्पिण्यसर्पिण्यः १॥	=(ये प्रदेश गिनतीमें) असंख्यातासंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणीके समयोके तुल्य है

कर्मोंकी स्थिति अद्धापल्यसे वर्णन की गई है पल्यको दश कोडाकोडी से गुणा करनेपर सागर होता है अर्थात् दशकोडाकोडी व्यवहार पल्यका एक व्यवहार सागर दश कोडाकोडी उद्धारपल्यका एक उद्धार सागर और दश कोडाकोडी अद्धापल्यका एक अद्धा सागर होता है किसी राशिको जितनी बार आधा आधा करने से एक शेष रहे उसको अर्धच्छेद कहते हैं जैसे ४ को दोबार आधा आधा करनेसे एक होता है अत चार के अर्धच्छेद २ हैं। आठ के तीन हैं। सोलह के अर्धच्छेद चार हैं इसही प्रकार सर्वत्र लगा लेना अद्धापल्यकी अर्द्धच्छेदराशिका विरलनकर प्रत्येक एकके ऊपर अद्धापल्य रखकर सब अद्धा पल्योंका परस्पर गुणाकार करनसे जो राशि उत्पन्न हो उसका सूच्यंगुल कहते हैं अर्थात् एक प्रमाणांगुल लंबे और एक प्रदेश चौड़े और ऊचे आकाशमे इतने प्रदेश है। सूच्यंगुलके वर्ग को प्रतरांगुल और घन (एक राशि का तीनबार परस्पर गुणा करने से जो गुणनफल हो उसे घन कहते हैं। जैसे दोका घन आठ और तीन का घन सत्ताइस है) को घनांगुल कहते हैं पल्यका अर्द्धच्छेद राशिके असंख्यातवा भागका विरलनकर प्रत्येक एक एकके ऊपर घनांगुल रख समस्त घनांगुलोंका परस्पर गुणाकार करनेसे जो गुणनफल हो उसको जगच्छ्रेणी कहते हैं जगच्छ्रेणीका सातवां भाग राजू कहा गया है अर्थात् सात राजूको एक जगच्छ्रेणी होती है। जगच्छ्रेणीके वर्गका जगत्प्रतर और जगच्छ्रेणीके घनको लोक कहते हैं। यही तीनों लोकके आकाश प्रदेशोकी संख्या है।

इस उपमामानके भेदोंसे द्रव्य क्षेत्र काल और भावका परिमाण दिया जाता है भावार्थ जहाँ द्रव्य का परिमाण कहाजाय वहाँ उतने पृथक २ पदार्थ जानना जहां क्षेत्रका परिमाण कहा जाय वहां उतने प्रदेश जानने, जहां कालका परिमाण कहाजाय वहाँ उतने समय जानने और जहां भाव का परिमाण कहाजाय वहां उतने अविभाग प्रतिच्छेद जानने॥

चतुर्णां क्षपकाणां सयोगकेवलिनां च सामान्यवत् । अनाहारकेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च नास्त्यन्तरम् ॥ सासादनसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः । उत्कर्षेण पल्योपमासंख्येयभागः । एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम् ॥ असंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः उत्कर्षेण मासपृथक्त्वम् । एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम् ॥ सयोगकेवलिनां

चतुर्णाम् ६।
क्षपकाणाम् ६। च*सयोगकेवलीनाम् ६।
सामान्यवत्*

=(आहारकों में) चार (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मलोभ-क्षीणकषाय)
=क्षपकश्रेणीवाले और सयोगकेवलियोंका (विरहकाल)
=संक्षेप (प्रकरणमे पहिले कहाहुआ गुणस्थान) सदृश है अर्थात् अहारकोमें चार क्षपकश्रेणीवालोका अन्तरकाल अनेक जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट छह मास है । एक जीवके लिये अन्तर नहीं है आहारकोमें सयोग-केवलियोका नानाजीव और एक जीवके प्रति अन्तर नहीं है

अनाहारकेषु ७। मिथ्यादृष्टेः ६। नाना-जीव-अपेक्षया ३॥
च*एक-जीव-अपेक्षया ३॥ न*अस्ति अन्तरम् १॥
सासादनसम्यग्दृष्टेः ६। नाना-जीव-अपेक्षया ३॥
जघन्येन ३। एकः १। समयः १। उत्कर्षेण ३। पल्य-
उपम-असंख्येयभागः १। एकजीवं २। प्रति*
न अस्ति अन्तरम् १॥ असंयतसम्यग्दृष्टेः ६।
नानाजीव-अपेक्षया ३॥ जघन्येन ३। एकः १। समयः १।
उत्कर्षेण ३। मास-पृथक्त्वं १॥ एकजीवं २।
प्रति*न अस्ति अन्तरम् १॥ सयोगकेवलीनाम् ६।

=(अनाहारकोमें) मिथ्यादर्शनवालेका अनेक जीवकी अपेक्षासे और एक जीवकी विवक्षासे अन्तर (काल) नहीं है
=(अनाहारकोमें) सासादनसम्यग्दर्शनवालेका अनेक जीवकी अपेक्षासे
=जघन्यकरि एक समय है । उत्कृष्टकरि पल्यके
=असंख्यातवां भाग प्रमाण (=उपम) है । एक जीवकी अपेक्षासे
=अन्तर नहीं है ॥ (अनाहारकोमें) असंयमी सम्यग्दृष्टीका (विरहकाल)
=अनेक जीवकी अपेक्षासे जघन्यकरि एक समय है
उत्कृष्टकरि तीन से ऊपर नौ से नीचे (=पृथक्त्व) मास है एक जीवकी
=अपेक्षासे (=प्रति) अन्तर नहीं है ॥(अनाहारक अवस्थामें) सयोगकेवलियोंका

नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः । उत्कर्षेण वर्षपृथक्त्वम् । एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम् ॥ अयोगकेवलिनां नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः । उत्कर्षेण षण्मासाः । एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम् ॥ अन्तरमवगतम् ॥ भावो विभाव्यते ॥ स द्विविधः । सामान्येन विशेषेण च ॥ सामान्येन तावत्- मिथ्यादृष्टिरित्यौदयिको भावः । सासादनसम्यग्दृष्टिरिति पारिणामिको भावः ॥ सम्यङ्मिथ्यादृष्टिरिति क्षायोपशमिकोभावः ॥

नानाजीव-अपेक्षया ॥ जघन्येन । एकः । समयः । =(अन्तर काल) अनेक जीव की अपेक्षासे जघन्यकरि एक समय है
उत्कर्षेण । वर्ष पृथक्त्वम् ॥ एकजीवम् । =उत्कृष्टकरि तीनमे ऊपर नोसे न्यून (=पृथक्त्व) वरस है ॥ एक जीव के
प्रति* न अस्ति अन्तम् ॥ अयोगकेवलिनाम् । =लिये विरह काल नहीं है । (अनाहारकों में) अयोगकेवलियो का
नानाजीव अपेक्षया ॥ जघन्येन । एकः । समयः । =(अन्तरकाल) अनेक जीव की अपेक्षा से जघन्यकरि एक समय है
उत्कर्षेण । षण्मासाः । एकजीवम् । प्रति अन्तरम् ॥ =उत्कृष्टकरि छह मास है । एक जीवकी अपेक्षा से अन्तर
न* अस्ति T अन्तरम् ॥ अवगतम् ॥ =नहीं है ॥ अन्तर (का कथन) जाना अथवा ज्ञात हुआ ॥
भावः । विभाव्यतेT सः । द्विविधः । सामान्येन ॥ =भाव (प्ररूपणा) प्रारंभ की जाती है । सो भाव दो प्रकार संक्षेप से
विशेषेण । च सामान्येन ॥ तावत्* =और (=च) विस्तारकरि है । संक्षेपसे प्रथम (तावत)
मिथ्यादृष्टिः । इति* औदयिकः । भावः । =" मिथ्यादृष्टि तो औदयिक भाव है " क्योंकि यहां मिथ्यात्व का उदय है
सासादनसम्यग्दृष्टिः । इति* पारिणामिकः । भावः । =सासादन सम्यग्दृष्टी पारिणामिक भाव है अर्थात् सासादन दूसरे गुणस्थान में दर्शनमोहका उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशम नहीं होती है
सम्यङ्मिथ्यादृष्टिः । इति* क्षायोपशमिकः । भावः । =सम्यग्मिथ्यादृष्टि यह क्षायोपशमिक भाव है (क्योंकि यहां दर्शनमोहकी सर्वघाती मिथ्यात्व प्रकृति का उदयाभावीक्षय और उपशम तथा सम्यक्त्व मिथ्यात्व का उदय रहता है ॥ देखो जी. कां. गाथा ११ की म. प्र. सं० टीका

(१) मिथ्यात्व गुणस्थान से अविरत सम्यक्त्व गुणस्थान तक दर्शन मोह की अपेक्षा से भावों का कथन जानना चाहिये ॥
(२) द्रव्यक्षेत्र काल भावके निमित्त से कर्म जब अपना रस (फल) देता है वो उदय है कर्मोंके उदय से जो आत्माके भाव होते हैं वे औदयिक भाव है

असंयतसम्यग्दृष्टिरिति औपशमिको वा क्षायिको वा क्षायोपशमिको वा भावः ॥ उक्तं च मिच्छे खलु आदइओ विदिए पुण परिणामिओ भावो । मिस्से खओवसमिओ अविरदसम्मम्मि तिण्णेव ॥१॥

असंयत-सम्यग्दृष्टिः ;। इति * औपशमिकः ;। वा *	=अविरत सम्यग्दृष्टी यह औपशमिकभाव सहित है अर्थात् दर्शनमोहके उपशम होनेसे (=उदयनहोनेसे) आत्माके दर्शन गुणकी विशुद्धता है
क्षायिकः ;। वा*	=अथवा क्षायिक भाव सहित है क्योंकि दर्शन मोहका सर्वथा नाश होने से आत्मा के दर्शनगुणकी अत्यन्त विशुद्धि होजाती है
क्षायोपशमिकः ;। वा भावः ;।	=वा क्षायोपशमिकभाव सहित है अर्थात् मिथ्यात्व सम्यक्त्वमिथ्यात्व और सर्वघाती प्रकृतियोंके उदयाभावी क्षय (=उदयमें आकर-फलनदेकर-खिरजाना)और उपशम होने से तथा देशघाति सम्यक्त्व के उदय होने से दर्शन मोह का क्षायोपशम है
उक्तम् ;॥ च*	=(जैसा कि निम्न लिखित गाथा में) कहा भी है
मिच्छे खलु (=मिच्छेः॥खलु*=मिथ्यात्वेः॥खलु*)	=मिथ्यात्व (पृथम गुणस्थान) में नियमसे (=खलु) वा " पृकटपनें " (=खलु)
ओदइओ (=ओदइओ ;। =औदायिकः ;।)	=औदयिक (=कर्मके उदयसे आत्माके जो परिणाम हों सो भाव) होता है
विदिए पुण (=विदिएः॥पुण*=द्वितीयेः॥ पुनः*)	=और (=पुण) दूसरें (सासादन गुणस्थान) में
पारिणामिओ (=परिणामिओ;। =परिमाणिकः ;।)	=पारिणामिक (=जिसमें कर्म के उदय उपशमादिक की कुछ भी अपेक्षा न हो सो।
भावो ॥ मिस्से (=भावो;।मिस्सेः॥ =भावः;।मिश्रेः॥	=भाव वा परिणाम होता है ॥ मिश्र अथवा सम्यग्मिथ्यात्व (तीसरे गुणस्थान) में
खओवसमिओ (=खओवसमिओ;। =क्षायोपशमिकः;)	=क्षायोपशमिक (सर्वघाति स्पर्धकों के वर्तमान निषेकों के बिना फल दियेही निर्जरा होनेपर और उनही सर्वघाति स्पर्धकों के आगामि निषेकोंके सदवस्था रूप उपशम होनेपर और देश घाति स्पर्धकोंके उदय पर आत्मा का) भाव होता है ॥
अविरद— (=अविरद— =अविरत—)	=अविरत अथवा असंगत
सम्मम्मि (=सम्मम्मिः॥ =सम्यक्त्वेः॥)	=सम्यग्दर्शन (चतुर्थ गुणस्थान) में
तिण्णेव (=तिण्ण+एव* =त्रयः ;। एव*)	=तीनों (औपशमिक भाव, क्षायिक भाव, क्षायोपशमिक भाव) ही होते हैं

(१) जैसे मलिन जल मे निर्मली वा फिटकडी डालने से कीचड नीचे बैठ जाती है और ऊपर से जल निर्मलहो जाता है उसही प्रकार कर्मोंके उपशम होने से (उदय न होने से) जीव के परिणाम जो विशुद्ध हो जाते हैं उनको औपशमिक भाव कहते है ॥

असंयतः पुनरौदयिकेन भावेन ॥ संयतासंयतः प्रमत्तसंयतोऽप्रमत्तसंयत इति च क्षायोपशमिको भावः ॥ चतुर्णामुपशमकानामित्यौपशमिको भावः ॥ चतुर्षु क्षपकेषु सयोगायोगकेवलिनोश्च क्षायिको भावः ॥ विशेषेण (१) गत्यनुवादेननरकगतौ प्रथमायां पृथिव्यां नारकाणां मिथ्यादृष्ट्याद्यसंयतसम्यग्दृष्ट्यन्तानां

असंयतः ;। पुनः*औदयिकेन ;। भावेन ;। =और (यहां चौथे गुणस्थानमें) असंयतपना है सो औदयिक भावसे है
संयतासंयतः ;। प्रमत्तसंयतः ;। च अप्रमत्त- =देश संयतगुणस्थान प्रमत्तसंयत गुणस्थान और अप्रमत्त-
संयतः ;। इति* क्षायोपशमिकः ;। भावः ;। =संयत गुणस्थान "वालोंके क्षायोपशमिक भाव है" चारित्र मोह विशेष का क्षयोपशम (होने से)
चतुर्णाम् ;। =चार (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसांपराय-उपशांतकषाय)
उपशमकानाम् ;। इति * औपशमिकः ;। भावः ;।=उपशमवालोंके औपशमिकभाव है (चारित्रमोहका उपशम होने से)
चतुर्षु ;। क्षपकेषु ;। =चार (अपूर्वकरण से क्षीणकषाय तक) क्षपक श्रेणी में (चरित्र मोह क्षयसे)
च सयोग अयोगकेवलिनोः ;। क्षायिकः ;। भावः ;।=और (=च) सयोग-अयोगकेवलियों में (भी) क्षायिक भाव है
विशेषेण ;।(१) गति-अनुवादेन ;। नरकगतौ ;। =विशेषकरि (१) गतिके कथनानुसार से नरक गति में
प्रथमायाम् ;। पृथिव्याम् ;। नारकाणाम् ;। मिथ्या-=पहिली भूमि (नरक) में नारकियोंके मिथ्या-
दृष्टि-आदि-असंयतसम्यग्दृष्टि-अन्तानाम् ;। =दर्शनवाले से असंयमी सम्यगदर्शन वाले पर्यंतोंका

---

(१) असंयतसम्यग्दृष्टौ सम्भवतो ऽसंयतत्वस्यौदयिकत्वं प्राहुः असंयतत्वस्य चारित्र मोहोदय हेतुत्वात् ॥
असंयत सम्यग्दृष्टौ ? असंयतत्वस्य ;।।। सम्भवतः * = असंयमी सम्यग्दर्शनवाले में असंयमपना के (सम्भव) होने से
औदयिकत्वम् ;।।। प्र-आहुः T असंयतत्वस्य ;।।। = औदयिकभावको (कारण) बतलाते हैं (क्योंकि) असंयम का होना
चारित्र-मोह-उदय-हेतुत्वात ;।।। = चारित्र मोहनीयकर्मके उदय होने (के हेतु) से है भावार्थ यह है कि चौथे गुणस्थान में औदयिक भावके कारण असंयम होता है क्योंकि वहां चारित्र मोहनीयकर्म अप्रत्याख्याना वरण का उदय है (२) यहां असंयत: असंयतत्व के अर्थ में है ॥
(३) पांचवां संयत गुणस्थानसे क्षीण कषाय बारहवां गुणस्थान तक चारित्र मोहनीयकर्म की अपेक्षा से यह कथन किया है ॥

सामान्यवत् ॥ द्वितीयादिष्वा सप्तम्या मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टिसम्यङ्मिथ्यादृष्टीनां सामान्यवत् ॥ असंयतसम्यग्दृष्टेरौपशमिको वा क्षायोपशमिको वा भावः । असंयतः पुनरौदयिकेन भावेन ॥

सामान्यवत्*	=संक्षेप (प्रकरणमें पहिले कहेहुये गुणस्थान) सदृश (भाव) हैं अर्थात् मिथ्यादृष्टि नारकियोंके औदयिक भाव है। सासादनसम्यग्दृष्टि नारकियोंके पारिणामिक भाव है। मिश्रगुणस्थानवर्ती नारकियोंके क्षायोपशमिक भाव है और असंयत सम्यग्दृष्टि चतुर्थ गुणस्थानवर्ती नारकियोंके औपशमिक वा क्षायिक अथवा क्षायोपशमिक भाव है
द्वितीय-आदिषु ।। आ-सप्तम्याः ।। मिथ्यादृष्टि-	दूसरी (भूमि) आदिमें सातवीं (भूमि) तक (=आ) (छैनरकोंमें) मिथ्यादर्शनवाले
सासादनसम्यग्दृष्टि-सम्यग्मिथ्यादृष्टीनाम् ।।	=सासादनसम्यग्दर्शनवाले और मिश्रगुणस्थानवर्ती (नारकि) निके
सामान्यवत्*	=संक्षेप (विषयमें पहिले कहेहुये गुणस्थान) सदृश (भाव) हैं अर्थात् दूसरे नरकसेलेकर सातवें नरक तकके मिथ्यादर्शनवाले नारकियोंके औदयिक भाव है उक्त छहों नरकोंमें सासादनसम्यग्दर्शनवाले नारकियोंके पारिणामिक भाव है और इनही छह नरकोंके मिश्रतीसरे गुणस्थानवर्ती नारकियोके क्षायोपशमिक भाव है (देखो पृष्ठ २७८)
असंयतसम्यग्दृष्टेः ।।	=(दूसरे नरकसे सातवां नरक तकके) असंयमी सम्यग्दृष्टि (नारकी) के
औपशमिकः ।। वा क्षायोपशमिकः ।। वा भावः ।।	=औपशमिक वा क्षायोपशमिक भाव है। (नारकियोंके प्रथमसे चौथेतक गुणस्थान है)
पुनः	=और (इन दूसरे नरकसे सातवां नरक तकके असंयमी सम्यग्दृष्टी चौथे गुणस्थानवर्तीनारकियोंके)
असंयतः ।। औदयिकेन ।। भावेन ।।	=असंयतपना औदयिक भावकरि है ॥

तिर्यग्गतौ तिरश्चां मिथ्यादृष्ट्यादिसँयतासंयतान्तानां सामान्यवत् ॥ मनुष्यगतौ मनुष्याणां मिथ्यादृष्ट्याद्ययोगकेवल्यन्तानां सामान्यवत् ॥

तिर्यग्गतौ ७।। तिरश्चाम् ६।। मिथ्यादृष्टि-आदि-संयतासंयत-अन्तानाम् ६।। सामान्यवत्*

=तिर्यंचगतिमें तिर्यंचों के मिथ्यादृष्टी से संयमा-
=संयमी तकनिर्के (भाव) संक्षेप (विषय में पूर्वोक्त गुणस्थान) सदृश है अर्थात् मिथ्यात्व गुणस्थानवाले तिर्यंचो के औदायिक भाव है ॥ सासादन गुणस्थानवर्ती तिर्यंचो के पारिणामिक भाव है। मिश्रगुणस्थानवर्ती तिर्यंचोकेक्षायोपशमिक भाव है। असंयत सम्यग्दृष्टि चतुर्थ गुणस्थानवर्ती तिर्यंचो के औपशमिक वा क्षायिक वा क्षायोपशमिक भाव है। संयमासयमी तिर्यंचो के क्षायोपशमिक भाव है (देखो पृष्ठ २७८ से २८०) तिर्यंच गतिमें मिथ्यात्व सेसयतासयत तक पांच ही गुणस्थान होते है

मनुष्यगतौ ७।। मनुष्याणाम् ६।। मिथ्यादृष्टि-आदि-अयोगकेवलि-अन्तानाम् ६।। सामान्यवत्*

=मनुष्यगति में मनुष्यों के (भाव) मिथ्यादृष्टीसे लेकर (=आदि)
=अयोगकेवलितकनिके संक्षेप (विषय मे पूर्वोक्त गुणस्थान) सदृश (भाव) हैं अर्थात् मिथ्यादृष्टी मनुष्यो के औदयिक भाव है। सासादन सम्यग्दर्शनवाले मनुष्यो के पारिणामिक भाव है। मिश्र गुणस्थानवर्ती मनुष्यो के क्षायोपशमिक भाव है। असंयमी सम्यग्दृष्टी मनुष्योके औपशमिक वा क्षायिक वा क्षायोपशमिक भाव है। संयमासंयमी से अप्रमत्त संयमी तक क्षायोपशमिक भाव है। चार उपशम श्रेणी वालो के औपशामिक भाव है। चार क्षपक श्रेणियो के और सयोग और अयोगकेवलियों के क्षायिक भाव है (देखो पृष्ठ २७८, २७९, २८०) ॥
मनुष्यो के सर्व चौदह गुणस्थान होते है ॥

देवगतौ देवानां मिथ्यादृष्ट्याद्यसंयतसम्यग्दृष्ट्यन्तानां सामान्यवत् ॥ (२) इन्द्रियानुवादेन--एकेन्द्रियविकलेन्द्रियाणामौदयिको भावः । पञ्चेन्द्रियेषु मिथ्यादृष्ट्याद्ययोगकेवल्यन्तानां सामान्यवत् ॥

देवगतौ ७। देवानाम् ६ मिथ्यादृष्टि-आदि— असंयत-सम्यग्दृष्टि-अन्तानाम् ६। सामान्यवत्*

=देवगतिमें देवोके मिथ्यादृष्टिसे असंयमी
= सम्यग्दर्शनवालेतकनिके संक्षेप (विषयमें पूर्वोक्त गुणस्थान) सम (भाव) हैं अर्थात् मिथ्यादृष्टि देवोके औदयिक भाव है । सासादन दूसरे गुणस्थानवर्ती देवोंके पारिणामिक भाव है । मिश्रगुणस्थानवर्ती देवोंके क्षायोपशमिक भाव है । असंयत सम्यग्दृष्टी देवोंके औपशमिक वा क्षायिक वा क्षायोपशमिक भाव हैं ॥ देवो के प्रथम से चौथे तक चारही गुणस्थान हैं ॥

इन्द्रिय-अनुवादेन ३। एकेन्द्रिय-विकल-इन्द्रियाणाम् ६। औदयिक-भावः १।

=(२) इन्द्रियके कथनानुसारकरि एकेन्द्रियवालेजीव और
=विकल (दो-तीन-चार) इन्द्रियधारक जीवोके औदयिक भाव हैं

पञ्चेन्द्रियेषु ७। मिथ्यादृष्टि-आदि— अयोगकेवलि-अन्तानाम् ६। सामान्य-वत्*..

=पांचइन्द्रियवाले जीवोंमें मिथ्यादृष्टिसे अयोगकेवली
=पर्यतोका संक्षेप (प्रकरणमें पूर्वोक्त गुणस्थान) सदृश (भाव) है अर्थात मिथ्यादृष्टि पंचेंद्रिय जीवोके औदयिक भाव है ॥ (सासादनसे अयोगीतक के पांचो इन्द्री होती है अतः इन्द्रिय शब्द लिखनेकी आवश्यकता नहीं है) सासादन सम्यग्दृष्टिके पारिणामिक भाव होताहै । मिश्रगुणस्थानवर्तीके क्षायोपशमिक भावहै । असंयत सम्यग्दृष्टीके औपशमिक वा क्षायिक वा क्षायोपशमिक भावहै । देशसंयतसे अप्रमत्तसंयततक क्षायोपशमिक भावहै । चार उपशमश्रेणीवालोके औपशमिक भावहै । चार क्षपकश्रेणीवालोमें और सयोगकेवली- अयोगकेवलियोके क्षायिक भाव है। (देखो पृष्ठ २७८से २८० तक)

[३] कायानुवादेन–स्थावरकायिकानामौदयिको भावः । त्रसकायिकानां सामान्यमेव ॥ [४] योगानुवादेन–कायवाङ्मानसयोगिनां मिथ्यादृष्ट्यादिसयोगकेवल्यन्तानामयोगकेवलिनां च सामान्यमेव ॥

[३[काय-अनुवादेन ¦। स्थावर-कायिकानाम् ¦। औदयिकः ¦। भावः ¦। त्रस—कायिकानाम् ¦। सामान्यम् ¦।। एव॥	=(३) कायके कथनानुसारकरि स्थावर (पृथिवी-अप्-तेजो-वायु-वनस्पति) =कायिकोंके औदयिक भाव है । त्रस (अर्थात् चलने फिरने वाले) =कायधारी (जीव · निके संक्षेप (विषय में पूर्वोक्त गुणस्थान) सदृश (=एव) है अर्थात् मिथ्यादृष्टी जीव स्थावर भी हैं और त्रस भी हैं उन दोनोंके औदयिक भाव है । दूसरे से चौदहवां गुणस्थान तक त्रस पञ्चेन्द्रिय जीव हैं ॥ उन में सासादन सम्यग्दृष्टीके पारिणामिक भाव है । मिश्रगुणस्थानवर्तीके क्षायोपशमिक भाव है । असंयत सम्यग्दृष्टीके औपशमिक क्षायिक वा क्षायोवशमिक भाव है ॥ संयतासंयत से अप्रमत्त संयत तक क्षायोपशमिक भाव है । चार उपशमश्रेणी वालोके औपशमिक भाव है । चार क्षपकश्रेणी वालो कें, सयोगकेवलियोंके और अयोगकेवलियो के क्षायिक भाव है (देखो पृष्ठ २७८ से २८० तक)
[४] योग-अनुवादेन ¦। काय-वाङ्-मानस-योगिनाम् ¦। मिथ्यादृष्टि-आदि— सयोगकेवलि-अन्तानाम् ¦। च अयोग-केवलिनाम् ¦। सामान्यम् ¦।। एव॥	=योग की अपेक्षा से काय-वचन-मनोयोगीनिकें =मिथ्यादर्शन वाले से सयोगकेवली पर्यंतों का और (=च) =अयोगकेवलियोका संक्षेप (प्रकरण मे पूर्वोक्त गुणस्थान) सदृश (एव) है अर्थात् मिथ्यात्वमें औदयिक भाव है । सासादनमें परिणामिक है । मिश्रमें क्षायोपशमिक है। असंयतमें औपशमिक, वा क्षायिक वा क्षायोपशमिक है ॥ देशव्रतीसे अप्रमत्त-तक क्षायोपशमिक है । चार उपशमकके औपशमिक है । चार क्षपकोंके, सयोग-अयोग केवलियोंके क्षायिक भाव है (पृष्ठ २७८–२८० तक देखो)

(५) वेदानुवादेन-- स्त्रीपुन्नपुंसकवेदाना मववेदानां च सामान्यवत् ॥ (६) कषायानुवादेन--क्रोधमानमाया-लोभकषायाणामकषायाणां च सामान्यवत् (७) ज्ञानानुवादेन-- मत्यज्ञानिश्रुताज्ञानिविभङ्गज्ञानिनां मतिश्रुतावधिमनः पर्ययकेवलज्ञानिनां च सामान्यवत् ॥

---

(५) वेद-अनुवादेन ।। स्त्री-पुम्-नपुंसक-वेदानाम् ।।	=(५) वेदके कथनानुसारसे स्त्री पुरुष नपुंसक वेद वाले (जीव) निके
च॥अवेदानाम् ।।	=और वेदरहित जीव (सूक्ष्मसांपरायसे अयोगकेवली गुणस्थान वर्ती) निके
सामान्यवत्॥	=संक्षेप (प्रकरणमें कहाहुआ गुणस्थान) सदृश (भाव) है अर्थात् मिथ्यात्वमें औदयिक भानहै। सासादनमें पारिणामिक। मिश्रमें क्षायोपशमिक। असंयतमें औपशमिक वा क्षायिक वा क्षायोपशमिक है। संयतासंयतसे अप्रमत्ततक क्षायोपशमिक भाव है। चार उपशमक के औपशमिक भाव और चार क्षपकके, सयोगकेवलि-अयोगकेवलियोंके क्षायिक भाव है। (२७८से२८०)
(६) कषाय-अनुवादेन ।। क्रोध-मान-माया-लोभ-कषायाणाम् ।।	=(६) कषायकी विवक्षा से क्रोध-मान-कपट (=माया) लोभ कषाय =वालोंके
च॥अकषायणाम् ।।	और (=च) कषायवर्जित (उपशांतकशायसे अयोगकेवली तक) निका
सामान्यवत्॥	=संक्षेप (प्रकरणमें पहिले कहाहुआ गुणस्थान) सदृशहै (पृष्ठ २७८ से २८०)
[७] ज्ञान-अनुवादेन- ।। मतिअज्ञानि-श्रुतअज्ञानि-विभङ्गज्ञानिनां ।।	=ज्ञानके कथनानुसारकरि कुमतिज्ञान कुश्रुतज्ञान =कुअवधिज्ञान [ये तीन कुज्ञान मिथ्यात्व, सासादन गुणस्थान वाले और तीन कुज्ञान तीन मति-श्रुत-अवधिज्ञान-मिश्रतसम्यग्मिथ्यात्व वाले] निके
च॥मति-श्रुत-अवधि-	=और [=च] मति-श्रुत-अवधि [असंयतसे क्षीण कषाय वर्ती]
मनःपर्यय-केवलज्ञानिनाम् ।।	=मनः पर्यय [प्रमत्त संयमीसे क्षीणकषाय वाले] और केवल ज्ञानि निकें
सामान्य-वत्॥	=संक्षेप [प्रकरणमें पूर्वकथित गुणस्थान] सदृश भाव हैं [देखो२८५ पंक्ति ७से१३]

(८) सँयमानुवादेन--सर्वेषां सँयतानां सँयतासँयतानामसँयतानां च सामान्यवत (९) दर्शनानुवादेन--चक्षुर्दर्शनाचक्षुर्दर्शनावधिदर्शनकेवलदर्शनिनां सामान्यवत् ॥

[८] संयम-अनुवादेन ॥ सर्वेषाम् ॥ संयतानाम् ॥ =(८) संयमके कथनानुसारकरि सब संयमी (प्रमत्तसे अयोग केवली) निका
संयतासंयतानाम् ॥ च१ असंयतानाम् ॥ =देशसंयमियोंका और असंयमी (मिथ्यात्वसे अविरत गुणस्थान तक) निका
सामान्यवत* =(भाव) संक्षेप (प्रसंगमें पहिले कहाहुआ गुणस्थान) सदृश है अर्थात् मिथ्यात्व गुणस्थानमें औदयिकभाव है। सासादनमें पारिणामिक भाव है। मिश्रमें क्षायोपशमिक है। असंयतमें औपशमिक वा क्षायिक वा क्षायोपशमिक है। संयतासंयतसे अप्रमत्ततक क्षायोपशमिक, चार उपशमकके औपशमिक, चार क्षपकके, सयोगकेवलि, अयोगकेवलियोंके क्षायिक भाव है ॥

[९] दर्शन-अनुवादेन ॥ चक्षुर्दर्शन-अचक्षुर्दर्शन- =(९) दर्शनकी अपेक्षासे चक्षुर्दर्शन और अचक्षुर्दर्शन वालोंके (ये दोनों मिथ्यात्व-प्रथम गुणस्थानसे क्षीणकषाय गुणस्थान तक १२ मेंहोवे हैं)
अवधिदर्शन- =अवधिदर्शन (असंयतसे क्षीणकषाय गुणस्थान तक) निके (भाव)
केवलदर्शनिनाम् ॥ =केवलदर्शनवाले (सयोगकेवली और अयोगकेवली) निके (भाव)
सामान्य-वत* =संक्षेप (प्रकरणमें पहिले कहेहुये गुणस्थान) सदृश हैं अर्थात शब्दशः वही भाव प्रत्येक गुणस्थानमें पढ़लो जो इस पृष्ठकी पंक्ति सातसे दशतक दिया है।

---

(१) सामायिक-छेदोपस्थापना दो संयम प्रमत्त, अप्रमत्त, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण गुणस्थानोंमें होते हैं। परिहार विशुद्धि संयम प्रमत्त, अप्रमत्त गुणस्थानोंमें होता है। सूक्ष्मसाम्पराय संयम सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थानमें होता है। यथाख्यात संयम उपशांतकषाय, क्षीणकषाय, सयोगकेवली, अयोगकेवली गुणस्थानोंमें होता है। संयमासंयम देशविरत गुणस्थानमें होता है और असंयम मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र और असंयत गुणस्थानोंमें होता है ॥

(१०) लेश्यानुवादेन–षड्लेश्यानामलेश्यानां च सामान्यवत् ॥ (११) भव्यानुवादेन--भव्याना मिथ्यादृष्ट्याद्ययोगकेवल्यन्तानां सामान्यवत् । अभव्यानां पारिणामिको भावः॥

(१०) लेश्या-अनुवादेन ३। षड्-	=(१०) लेश्याके कथनानुसारकरि छै (कृष्ण-नील-कपोत-पीत-पद्म-शुक्ल)
लेश्यानाम् ३। च॰ अलेश्यानाम्३।	=लेश्यावालोंके और लेश्यारहित (अयोगकेवलि)निकें (भाव)
सामान्य-वत॰	=संक्षेप (प्रकरणमे पहिले कहेहुये गुणस्थान) समान हैं अर्थात् छहोलेश्या मिथ्यात्व-सासादन-मिश्र-असंयत गुणस्थानोमें हैं वहां क्रमसे औदयिक-पारिणामिक-क्षायोपशमिक और औपशमिक-क्षायिक-क्षायोपशमिक भाव हैं । पीत-पद्म-शुक्ल लेश्यायें देशविरतसे अप्रमत्त तक हैं वह।क्षायोपशमिक भाव है । शुक्ललेश्या चार उपशमक में हैं वहां औपशमिक भावहै। शुक्ललेश्या चार क्षपक के और सयोगकेवली-अयोगकवेलीके हैं वहां क्षायिक भाव है ॥
(११)भव्य-अनुवादेन ३। भव्यानाम् ३। मिथ्यादृष्टि-आदि–	=(११)भव्य जीवोंकी अपेक्षासे भव्योंके मिथ्यादृष्टिसे
अयोगकेवलि-अन्तानाम् ३। सामान्यवत्॰	=अयोगकेवलीतकनिका संक्षेप (प्रसंगमे पूर्वोक्त गुणस्थान) सम भावहै अर्थात मिथ्यात्व गुणस्थानमें औदयिक भाव है । सासादनमें पारिणामिक है। मिश्रमें क्षायोपशमिक है असंयतमें औपशमिक, वा क्षायिक वा क्षायोपशमिक है संयतासंयतसे अप्रमत्ततक क्षायोपशमिक है चार उपशमकर्के औपशमिक है। चार क्षपक कें और सयोगकेवली–अयोगकेवलियों के क्षायिक भाव है ।
अभव्यानाम् ३। पारिणामिकः १। भावः १।	=अभव्योंके पारिणामिक भाव है (वो भाव जिसमें कर्मकी कुछभी अपेक्षा नहीं है) भावार्थ अभव्यत्व धर्मकी मुख्यतासे पारिणामिक है पर मिथ्यात्वकी मुख्यतासे औदयिकही है ॥

(१२) सम्यक्त्वानुवादेन–क्षायिकसम्यग्दृष्टिषु असँयतसम्यग्दृष्टेः क्षायिको भावः । क्षायिकं सम्यक्त्वम् । असंयतत्वमौदयिकेन भावेन ॥ संयतासंयतप्रमत्ताप्रमत्तसंयतानां क्षायोपशमिको भावः । क्षायिकं सम्यक्त्वं च ॥ चतुर्णामुपशमकानामौपशमिको भावः । क्षायिकं सम्यक्त्वम् ॥ शेषाणां सामान्यवत् ॥ क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टिषु असंयतसम्यग्दृष्टेः

[१२] सम्यक्त्व-अनुवादेन ३। क्षायिकसम्यग्दृष्टिषु ७।	=(१२) सम्यग्दर्शन के अनुवादकरि क्षायिक सम्यग्दर्शनवालों में
असंयतसम्यग्दृष्टेः ६। क्षायिकः १। भावः १।	=" असंयत सम्यग्दृष्टी के क्षायिक भाव तौ
क्षायिकम् १।। सम्यक्त्वम् १।। असंयतत्वम् १।।	=क्षायिक सम्यक्त्व है अर असंयतपणां है सो
औदयिकेन ३। भावेन ३।	=औदयिक भाव करि है " जयचंदजीकृत वचनिका मुद्रित पृष्ठ ११४।
संयतासंयत-प्रमत्त-अप्रमत्त-	=(क्षायिक सम्यग्दर्शन वालो में) देशसंयमी, प्रमत्तसंयमी, अप्रमत्त-
संयतानाम् ६। क्षायोपशमिकः १। भावः १। च*	=संयमियोंके क्षायोपशमिक भाव है और (=च)
क्षायिकम् १।। सम्यक्त्वम् १।।	="सम्यक्त्व क्षायिक है (सो क्षायिक भावकरिहै" जयचंदजी वचनिका ११४
चतुर्णाम् ६। उपशमकानाम् ६।	=(क्षायिक सम्यग्दृष्टियोंमें) चार उपशम श्रेणी (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्पराय-उपशांतकषाय) वालोंके
औपशमिकः १। भावः १। क्षायिकम् १।। सम्यक्त्वम् १।।	=औपशमिकभाव है। क्षायिक सम्यक्त्व (यहां) है (सो क्षायिक भाव करि है)।
शेषाणाम् ६।	=(क्षायिक सम्यग्दृष्टीयोंमें) अवशेष (चार क्षपक श्रेणीवाले-सयोगी-अयोगी)निका
सामान्य-वत्*	=संक्षेप (विषयमें पूर्वोक्त गुणस्थान समान भाव) हैं (इन सबकें क्षायिक भावहै)
क्षायोपशमिक-सम्यग्दृष्टिषु ७। असंयतसम्यग्दृष्टेः ६।	=वेदकसम्यग्दर्शनवालोंमें असंयमी सम्यग्दर्शवाले (चौथे गुणस्थानवर्ती) के

(१) क्षायिक सम्यक्त्व असंयत चौथे गुणस्थानसे अयोगकेवली चौदहवें गुणस्थान तक है। क्षायोपशमिक (वेदक) सम्यक्त्व असंयत चौथे गुणस्थान से अप्रमत्त संयत सातवें तक है। उपशमसम्यक्त्व असंयत चौथे गुणस्थान से उपशांतकषाय ग्यारहवां तक है॥

(२) क्षायिक सम्यग्दृष्टी जीव भी उपशम श्रेणी माड सकता है

क्षायोपशमिको भावः । क्षायोपशमिकं सम्यक्त्वम् । असंयतः पुनरौदयिकेन भावेन ॥ संयतासंयतप्रमत्ताप्रमत्तसंयतानां क्षायोपशमिको भावः । क्षायोपशमिकं सम्यक्त्वम् ॥ औपशमिकसम्यग्दृष्टिषु असंयतसम्यग्दृष्टेरौपशमिको भावः औपशमिकं सम्यक्त्वम् । असंयतः पुनरौदयिकेन भावेन ॥ संयतासंयतप्रमत्ताप्रमत्तसंयतानां क्षायोपशमिको भावः १ औपशमिकं सम्यक्त्वम् ॥

क्षायोपशमिकः ;। भावः ;। क्षायोपशमिकम् ;।।।	=क्षायोपशमिक भाव है (सो तौ) क्षायोपशमिक
सम्यक्त्वम् ;।।। असंयतः ;। पुनः*	=सम्यग्दर्शन है । और (=पुनः) असंयतपना (=असंयतः=असंयतत्वम्) है
औदयिकेन ;। भावेन ;। संयत-असंयत-	=(सो) औदयिक भावकरि है । (वेदक सम्यग्दर्शनवालों में) देशसंयमी,
प्रमत्त-अप्रमत्त-संयतानाम् ;। क्षायोपशमिकः ;।	=प्रमत्त और अप्रमत्त विरतियोंके क्षायोपशमिक
भावः ;। क्षायोपशमिकम् ;।।। सम्यक्त्वम् ;।।।	=भाव है सो वेदक सम्यग्दर्शन है ॥
औपशमिक-सम्यग्दृष्टिषु ;।	=उपशमसम्यग्दर्शनवालों मे
असंयत-सम्यग्दृष्टेः ;। औपशमिकभावः ;।	=असंयमी सम्यग्दर्शनवाले कैं औपशमिक भाव है
औपशमिकम् ;।।। सम्यक्त्वम् ;।।। पुनः* असंयतः ;।	=(सो) उपशम सम्यक्त्व है और असंयमपना है
औदयिकेन ;। भावेन ;।	=(सो) औदयिक भावकरि है ॥ (असंयतः=असंयमपना)
संयत-असंयत-प्रमत्त-अप्रमत्त-संयतानाम् ;।	=(उपशमसम्यग्दर्शनवालों में) देशसंयमी, प्रमत्त-अप्रमत्त संयमियों के
क्षायोपशमिकः;। भावः;। सम्यक्त्वम्;।।। औपशमिकम्;।।।	=क्षायोपशमिक भाव है । सम्यक्त्व औपशमिक है ॥

(१) अत्र औदयिको भावः इत्येकः पाठः । औपशमिको भावः इत्येकः पाठः ॥

अत्र*औदयिकः ;। भावः ;। इति*एकः ;। पाठः ;।	=यहां औदयिक भाव है ऐसा एक पाठ है अर्थात् किसी किसी पुस्तक के पाठानुसार देशसंयमी, प्रमत्तसयमी, और अप्रमत्तसंयमीनिकें औदयिक भाव है।
औपशमिकः ;। भावः ;। इति* एकः ;। पाठः ;।	=औपशमिक भाव है ऐसा और (=एक-पद्मचन्द्र कोश पृष्ठ ८४) पाठ है अर्थात इस पाठानुकूल औपशमिक भाव है भावार्थ ऐसा है कि भिन्न भिन्न पाठानुकूल

संयमासंयमियो के, प्रमत्तसंयमियो के, अप्रमत्तसयमियो के औदयिक, औपशमिक और क्षायोपशमिक तीनों ही भाव संभव हैं ॥

चतुर्णामुपशमकानामौपशमिको भावः औपशमिकं सम्यक्त्वम् ॥ सासादनसम्यग्दृष्टेः पारिणामिको भावः ॥ सम्यङ्मिथ्यादृष्टेः क्षायोपशमिको भावः ॥ मिथ्यादृष्टेरौदयिको भावः । (१३) संज्ञानुवादेनसंज्ञिनां सामान्यवत् । असंज्ञिनामौदयिको भावः ॥ तदुभयव्यपदेशरहितानां

चतुर्णाम् ॥ उपशमकानाम् ॥ =(उपशम सम्यग्दृष्टियोंमें) चार उपशमश्रेणीवाले (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्पराय-उपशांतकषाय) निके

औपशमिकः ॥ भावः ॥ औपशमिकम् ॥॥ सम्यक्त्वम् ॥॥ =औपशमिक भाव है । (सो) उपशम सम्यग्दर्शन है ॥

सासादन-सम्यग्दृष्टेः ॥ पारिणामिकः ॥ भावः ॥ =सासादन सम्यग्दर्शनवालेके पारिणामिक भाव है ।

सम्यङ्मिथ्यादृष्टेः ॥ क्षायोपशमिकः ॥ भावः ॥ =मिश्र (तीसरे गुणस्थान) वर्तिके क्षायोपशमिक भाव है ।

मिथ्यादृष्टेः॥ औदयिकः॥ भावः॥ [१३] सज्ञा-अनुवादेन =मिथ्यादृष्टि (प्रथम) गुणस्थानवर्तिके औदयिक भाव है (१३) सैनीकी अपेक्षासे

संज्ञिनाम् ॥ सामान्य-वत्॥ =सैनी (=मनसहितजीव) निके संक्षेप (विषयमें पूर्वोक्त गुणस्थान) सम है अर्थात् मिथ्यादृष्टी संज्ञियोंके औदयिक भाव है । सासादनसम्यग्दृष्टी संज्ञियोंके पारिणामिक भाव है । मिश्र गुणस्थनवर्तीसंज्ञियोंके क्षायोपशमिक भाव है । असंयतसम्यग्दृष्टी संज्ञियोंके औपशमिक वा क्षायिक वा क्षायोपशमिक भाव है । संयतासंयतसे अप्रमत्तवर्ती संज्ञियोंके क्षायोपशमिक भाव है । चार उपशमक संज्ञीयोंके औपशमिक भाव है । चार क्षपक श्रेणीवाले संज्ञियोके क्षायिक भाव है ।

असंज्ञिनाम् ॥ औदयिकः ॥ भावः ॥ =असंज्ञियोके (जो मिथ्यात्व प्रथम गुणस्थानमें ही है) औदयिक भाव है ।

तद्-उभय-व्यपदेशरहितानाम् ॥ =उन (सैनी-असैनी) दोनो नामोसे वर्जित (सयोगकेवली-अयोगकेवली) निका

(१) सञ्जीजीव मिथ्यात्व प्रथम गुणस्थानसे क्षीणकषाय बारहवें तक हैं । असंज्ञी मिथ्यात्वमे है । सञ्ज्ञी असञ्ज्ञीसे रहित सयोग अयोग केवली हैं ॥

सामान्यवत् ॥ (१४) आहारानुवादेन–आहारकाणामनाहारकाणां च सामान्यवत् ॥ भावः परिसमाप्तः ॥ अल्पबहुत्वमुपवर्ण्यते ॥

सामान्य-वत्॥	=संक्षेप (प्रसंगमें पूर्वोक्तगुणस्थान) सम है अर्थात् क्षायिक भाव केवलियोंके हैं
(१४) आहार–अनुवादेन ॥ आहारकाणाम् ॥	=(१४) आहारकोंकी विवक्षासे आहारक (जीव) निके(जो मिथ्यात्वसे सयोगी तकहैं)
च॥अन्-आहारकाणाम् ॥ सामान्य-वत्॥	=और अनाहारकोंके (भाव) संक्षेप (प्रसंगमें पूर्वोक्त गुणस्थान) समहै अर्थात् मिथ्यात्व गुणस्थानवर्ती आहारक जीवोंके औदयिक भाव है सासादनसम्यग्दर्शन-वाले आहारक जीवोंके पारिणामिक भाव है । मिश्र गुणस्थान— वाले आहारक जीवोंके क्षायोपशमिक भाव है । असंयत सम्यग्दृष्टि आहारकोंके औपशमिक, वा क्षायिक वा क्षायोपशमिक भावहै । संयतासंयतसे अप्रमत्त-गुणस्थानवर्त्ती आहारकों के क्षायोपशमिक भाव है ॥ चार उपशमश्रेणी वाले आहारकोंके औपशमिक भाव है । चार क्षपक श्रेणी-वाले आहारकोंके क्षायिक भाव है ॥ अनाहारक जीवोंमें जो पहिले दूसरे, चौथे, चौदवें गुणस्थानमें और सयोगकेवलीजो प्रतर समुद्घात और लोक पूर्णसमुद्घातमें अनाहारक, होते हैं, मिथ्यात्व मे औदयिक भाव, सासादन में पारिणामिक, असयतमें औपशमिक, क्षायिक वा क्षायोपशमिकभाव और सयोगी अयोगी के क्षायिक भाव होते हैं ॥
भावः ॥ परि-समाप्तः ॥	=भाव (प्ररूपणा) परिपूर्ण कीगई अर्थात् भावका निरूपण मोह कर्मकी अपेक्षा से उदाहरणरूप समाप्त कियागया
अल्प-बहुत्वम् ॥॥ उपवर्ण्यते ॥	=एक वस्तुको अन्य की अपेक्षासे थोड़े-बहुतके कथनका वर्णन किया जाताहै ।

तत् द्विविधं सामान्येन विशेषेण च ॥ सामान्येन तावत्-त्रय उपशमकाः सर्वतः स्तोकाः स्वगुणस्थान-कालेषु प्रवेशेन तुल्यसंख्याः ॥ उपशान्तकषायास्तावन्त एव ॥

तत् ॥ द्वि-विधम् ॥ सामान्येन ॥ विशेषेण । च	=वह (अल्प-बहुत्व प्ररूपणा) दो प्रकार संक्षेपकरि और विस्तारकरि है ।
सामान्येन ॥ तावत्* त्रयः ।	=प्रथम (=तावत) संक्षेपकरि तीन (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मलोभ)
उपशमकाः । सर्वतः । स्तोकाः । स्व-	=उपशमश्रेणीवाले सबसे थोड़े हैं । (वे तीन उपशम श्रेणी वाले) अपने २
गुणस्थान-कालेषु । प्रवेशेन । तुल्यसंख्याः ।	=गुणस्थान कालों में प्रवेशकरि समान वा बराबर संख्यावाले होवे हैं अर्थात् प्रत्येक उक्त तीन गुणस्थान में कोई आचार्य तीनसौ (३००) कहते हैं । कोई तीन सौ चार (३०४) कहते हैं । कोई दो सो निन्यानवे (२९९) कहते हैं ॥ (देखो गोम्मटसारगाथा ६२८ तिसयं भणंतिकेई इत्यादि)
उपशान्तकषायाः । तावन्तः । एव*	=उपशान्तकषाय ग्यारहवां गुणस्थानवर्ती उपशमश्रेणीवाले उतने ही हैं अर्थात उक्त गाथा के अनुकूल २९९, वा ३०० अथवा ३०४ उत्कृष्ट हैं

(१) अष्टसु समयेषु प्रवेशेन एको वा द्वौ वा त्रयो वा इत्यादि जघन्या ॥ उत्कृष्टाः तु १६ । २४ । ३० । ३६ । ४२ । ४८ । ५४ । ५४ । स्वगुणस्थान कालेषु प्रवेशेन तुल्यसंख्या ॥ संख्याकथनावसरे प्रोक्ताः ' तत्र द्रष्टव्यम् ॥ पृष्ठानि ९३, ९४, ९५, अयमनुवादस्य ॥

अष्टसु । समयेषु । प्रवेशेन । एकः । वा* द्वौ ।	=आठ समय में प्रवेश होकर एक अथवा दो
वा त्रयः । वा इत्यादि* जघन्याः ॥ उत्कृष्टाः ॥ तु	=अथवा तीन इत्यादि जघन्य (न्यून से न्यून) संख्या है । और (=तु) उत्कृष्ट (संख्या)
१६ । २४ । ३० । ३६ ।	=(प्रथम समय से आठ समय तक यथा संख्य) सोलह-चौबीस-तीस-छत्तीस-
४२ । ४८ । ५४ । ५४ । स्व गुणस्थान-	=बयालीस-अड़तालीस चौवन-चौवन अपने अपने गुणस्थान
कालेषु । प्रवेशेन ।	=समयों में प्रवेश होकरि (आठ से ग्यारह गुणस्थान उपशमश्रेणी) के
तुल्यसंख्या. ।	=समान संख्यावाले (प्रत्येक गुणस्थान में) हैं अर्थात् ३०४ मुनि प्रत्येक प्रत्येक उपशम श्रेणी वाले गुणस्थान में उत्कृष्टकरि हैं । (देखो पृष्ठ ९३, ९४)
संख्या-कथन-अवसरे । प्रोक्ताः ।	=संख्या (प्ररूपणा) का कथन (जो पहले कर चुके हैं उस के) प्रसंग में कह चुके हैं
तत्र* पृष्ठानि ॥ ९३, ९४, ९५ द्रष्टव्यम् ॥	=तहाँ पृष्ठ ९३, ९४, ९५ (इस अनुवादके देखना चाहिये)

त्रयः क्षपकाः संख्येयगुणाः ॥ क्षीणकषायवीतरागच्छद्मस्थास्तावन्त एव ॥ सयोगकेवलिनोऽयोगकेवलिनश्च प्रवेशेन तुल्यसंख्याः ॥

त्रयः ।। =तीन (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्पराय-)

क्षपकाः ।। संख्येयगुणाः ।। =क्षपकश्रेणीवाले (उक्त तीन उपशमश्रेणीवालोंसे) संख्याते गुणेहैं अर्थात् प्रत्येक गुणस्थानवर्ती क्षपकश्रेणी प्रत्येक गुणस्थानवर्ती उपशमश्रेणीवालोंसे दूने हैं (गोम्मटसार जीव कांड गाथा ६२६) ॥ प्रत्येक उपशमश्रेणी गुणस्थानमें कई आचार्योंके मतानुसार २९९ हैं केईके ३०० हैं केईके ३०४ हैं अतः प्रत्येक क्षपकश्रेणी गुणस्थानमें कई आचार्योंके मतानुसार ५९८ हुये, केईके ६०० हुये केईके ६०८ मुनिहुये ॥

क्षीणकपाय-वीतरागच्छद्मस्थाः ।। =क्षीणकपाय वीतरागच्छद्मस्थ बारहवांगुणस्थानवर्ती

तावन्तः ।। =उतने

एव* =ही (=एव) हैं अर्थात् ५९८ हैं अथवा ६०० अथवा ६०८ मुनिहैं

सयोगकेवलिनः ।। च अयोग-केवलिनः ।। =सयोगकेवली और (=च) अयोगकेवली (=चौदहवें गुणस्थानवर्ती)

प्रवेशेन ।। तुल्यसंख्याः ।। =प्रवेशहो (नेकी अपेक्षा) करि समानगणनावाले हैं अर्थात् सयोगकेवली, अयोगकेवली गुणस्थानोंमें जघन्यपनासे जीव प्रवेश करै तौ एक समयमें एक वा दो वा तीन इत्यादि जीव (पृथक् पृथक् गुणस्थान) में प्रवेश करैं और उत्कर्षकरि एकसो आठ जीव तक एक समयमें प्रवेश होसक्ते हैं(देखो इसके पृष्ठ९४, ९५)। स्मरण रहै कि यह तुल्य संख्या केवल तेरहवें गुणस्थानमें प्रवेश होनेवाले जीवों की, चौदहवे गुणस्थान में प्रवेश होनेवाले जीवोंके तुल्य प्रवेश होनेकी अपेक्षासे ही तुल्य है। तेरहवें गुणस्थानमें रहने वाले जीवोंकी संख्या चौदहवें गुणस्थान में रहने वाले जीवोंकी संख्याके कदापि तुल्य नहीं है क्योंकि

सयोगकेवलिनः स्वकालेन समुदिताः संख्येयगुणाः। =८९८५०२ ॥ अप्रमत्तसंयताः संख्येयगुणाः। २९६९९१०३। प्रमत्तसँयताः संख्येयगुणाः। ५९३९८२०६ ॥ सँयतासंयता असंख्येयगुणाः ॥

तेरहवें गुणस्थानमें ८९८५०२ जीव उत्कृष्टकरि होसकते हैं और चौदहवें गुणस्थानमें उत्कृष्टकरि ५९८ अथवा ६०० वा ६०८ जीव हो सकते हैं॥
देखो अवश्य इस अनुवादके पृष्ठ ३०८ की टिप्पणी संख्या (२)

सयोगकेवलिनः ॥ स्वकालेन ॥ समुदिताः ॥	=सयोगकेवली अपनेकालकरि समुच्चय अथवा इकट्ठे हो
संख्येयगुणाः ॥ ८९८५०२	=(उन अयोगकेवलियोंसे) संख्यातगुणे हैं। (सयोगकेवली) ८९८५०२ हैं अयोगकेवली ५९८ अथवा ६०० वा ६०८ तक भिन्न २ आचार्योंके मतानुसार उत्कृष्टकरि होसकते हैं (इसके पृष्ठ ३०८ की टिप्पणी (२) देखो)
अप्रमत्तसंयताः ॥	=अप्रमत्तसंयमी (सातवें गुणस्थानवर्ती-इन सयोगकेवलियोंसे)
संख्येयगुणाः ॥ २९६९९१०३	=संख्यातगुणे हैं। दो करोड छियानवेलाख निन्यानवे सहस्र एकसौ तीन हैं
प्रमत्त संयताः ॥	=प्रमत्त संयमी (छठवांगुणस्थानवर्ती-उन अप्रमत्त संयमियोंसे)
संख्येयगुणाः ॥ ५९३९८२०६	=संख्यातगुणे हैं। "पांच करोड़ तिरानवे लाख हज़ार अठानवे दोसौ छ जानो"
संयतासंयताः असंख्येयगुणाः ॥	=संयमासंयमी (प्रमत्तसंयमियोंसे) असंख्यातगुणे हैं " तेरह करोड़ मनुष्य हैं॥ और पल्यके असंख्यातवें भाग तिर्यंच हैं।

(१) संयतासंयताः संख्येयगुणाः। संयतासंयतानां नास्त्यल्पबहुत्वम्। एक गुणस्थानवर्तित्वात्। संयतासंयतानामेकगुणस्थानभेदात् १३००००००॥

संयतासंयताः ॥ संख्येयगुणाः ॥ एकगुणस्थान-वर्तित्वात् ॥॥ संयतासंयतानाम् ॥ अल्पबहुत्वम् ॥॥ न * अस्ति T	=देशसंयमी वा संयमासंयमी संख्यात गुणे हैं। एक गुणस्थान =वर्ती होने (के हेतु) से संयमासंयमियों के अल्प बहुत्व (का मिलान वा उपमा) =नहीं (हो सकी) है क्योंकि उस एक प्रकार की वस्तुयें दो स्थानों में विद्यमान हैं

सासादनसम्यग्दृष्टयोऽसंख्येयगुणाः ॥ सम्यग्मिथ्यादृष्टयः संख्येयगुणाः । असंयतसम्यग्दृष्टयोऽसंख्येयगुणाः ॥

सासादनसम्यग्दृष्टयः ॥ असंख्येयगुणाः ॥	=सासादनसम्यग्दृष्टि (देशसंयमियोसे) असंख्यात गुणेहै ।
सम्यग्मिथ्यादृष्टयः ॥ संख्येयगुणाः ॥	= मिश्रगुणस्थानवर्त्ती (सासादन सम्यग्दृष्टियोंसे) संख्यात गुणेहैं ।
असंयत - सम्यग्दृष्टयः ॥ असंख्येयंगुणाः ॥	=अविरतसम्यग्दृष्टी (सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे) असंख्यात गुणे हैं ।

तब कहते है कि अमुक प्रकारकी वस्तुयें अमुक जात की वस्तुओंसे थोड़ी या घनी हैं। संयमासंयमी एक ही गुणस्थानमें होते हैं। इससे अल्प बहुत्व नहीं है ॥ असंयमियोंमें अल्प बहुत्व है क्योंकि ये मिथ्यात्व सासादन-मिश्र और असंयत गुणस्थानोंमें हैं ऐसेही संयमियोंमें अल्प बहुत्व है क्योंकि ये छठेमे १४ गुणस्थान तक हैं

संयतासंयतानाम् ॥ गुणस्थान-भेदात् ॥ इव*	=संयमासंयमीकी (गणना) गुणस्थानभेदसे बराबर (=इव)
१३०००००००। इतिश्रुतसागरः ॥	=तेरह करोड़के है। ऐसे (श्री) श्रुतसागरसूरि (श्रुतसागरीटीकामें) कहते हैं
(१) सासादनसम्यग्दृष्टयः ॥ संख्येयगुणाः ॥	= सासादनसम्यग्दर्शनवाले (देशसंयमियोंसे) संख्यातगुणे हैं (अर्थात्)
५२००००००० ॥ (२) सम्यग्मिथ्यादृष्टयः ॥	=बावनकरोड हैं ॥ मिश्रतीसरेगुणस्थानवर्ती (सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे)
संख्येयगुणाः ॥ १०४०००००००	=संख्यातगुणे हैं (अर्थात्) एकसौचारकरोड है ॥ चार
(२) असंयतसम्यग्दृष्टयः ॥ संख्येयगुणा ॥	= अविरतसम्यग्दृष्टि (सम्यग्मिथ्यादृष्टि तीसरे गुणस्थानवालों से) संख्यातगुणे हैं
७००००००००। इति श्रुतसागर ॥	= सातअरब है ॥ ऐसे श्रुतसागरसूरि (का वचन श्रुतसागरीटीकामें है)

टिप्पणी १ पृष्ठ २९४ और टिप्पणी१,२ पृष्ठ २९५में श्रुतसागर सूरिने चार गुणस्थानोंमें जो गणना लिखी है वह केवल मनुष्योंकी समझना क्योंकि गोम्मटसार जीवकांड गाथा ६२३ (टोडरमल ६२४) में मिथ्यात्व गुणस्थानसे संयतासंयतकी सर्व संख्या ऐसे लिखी है कि

मिच्छा सावयसासणमिस्साविरदा दुवारणंता य। पल्लासंखेज्जदिममसंखगुणं संखसंखगुणं ॥६२४॥ मिथ्याः श्रावकसासनमिश्राविरता द्विवारानंताः च। पल्यासंख्येयमसंख्यगुणं संख्यासंख्यगुणम् ॥छाया॥

मिथ्यादृष्टयोऽनन्तगुणाः॥ विशेषेण (१) गत्यनुवादेन–नरकगतौ सर्वासु पृथिवीषु सर्वतः स्तोकाः सासादनसम्यग्दृष्टयः। सम्यग्मिथ्यादृष्टयः संख्येयगुणाः। असंयतसम्यग्दृष्टयोऽसंख्येयगुणाः। मिथ्यादृष्टयोऽसंख्येयगुणाः॥ तिर्यग्गतौ तिरश्चां सर्वतः स्तोकाः संयतासंयताः। इतरेषां सामान्यवत् ॥

मिथ्यादृष्टयः ॥ अनन्तगुणाः ॥ विशेषेण ॥ गति—	=मिथ्यादृष्टी (असंयत सम्यग्दृष्टियोंसे) अनन्तगुणे हैं ॥ विशेषकरि गतिके
अनुवादेन ॥ नरकगतौ ॥ सर्वासु ॥ पृथ्वीषु ॥	=कथनानुसारकरि नरकगतिमें सब भूमियों (नरकों) में
सर्वतः ॥ स्तोकाः ॥ सासादन–सम्यग्दृष्टयः ॥	=सबसे थोडे सासादनसम्यग्दर्शनवाले (दूसरे गुणस्थानवर्ती) हैं
सम्यग्मिथ्यादृष्टयः ॥	=(उन सासादनसम्यग्दृष्टी नारकियों से) मिश्रगुणस्थानवर्ती (नारकी)
संख्येयगुणाः ॥ असंयतसम्यग्दृष्टयः ॥	=संख्यातगुणा हैं। (मिश्रगुणस्थानवर्ती नारकियोंसे) असंयतसम्यग्दृष्टि(नारकी)
असंख्येयगुणाः ॥ मिथ्यादृष्टयः ॥	=असंख्यातगुणे हैं। (असंयमी सम्यग्दृष्टीनारकियोंसे) मिथ्यादृष्टी (नारकी)
असंख्येयगुणाः ॥ तिर्यग्गतौ ॥ तिरश्चाम् ॥ सर्वतः	=असंख्यातगुणे हैं ॥ तिर्यंचगतिमें तिर्यंचोंमें सबसे
स्तोकाः ॥ संयतासंयताः ॥	=अल्प संयमासंयमी(तिर्यंच)हैं अर्थात् पल्यके असंख्यातवां भागहैं (देखो टिप्पणी)
इतरेषाम् ॥	=अन्य (असंयतसे मिथ्यादृष्टी तक तिर्यंचों) का
सामान्यवत् *	=संक्षेप (विषयमें पूर्वोक्त गुणस्थान) सदृश (अल्पबहुत्व) है नीचेकी टिप्पणी देखो

अर्थ.—मिथ्यादृष्टि अनन्तानन्त हैं। श्रावक पल्यके असंख्यातमें भाग हैं सासादन गुणस्थानवर्ती श्रावकोंसे असंख्यात गुणे हैं। मिश्रसासादनवालोंसे संख्यातगुणे हैं असंयतसम्यग्दृष्टि मिश्रजीवोंसे असंख्यातगुणे हैं। इनमें सासादनसम्यक्त्वीमें, सासादनगुणस्थानमें, मिश्रमें असंयतगुणस्थानमें कुछ २ अधिक जानलो अर्थात् संयतासंयतगुणस्थान के धारक मनुष्य और तिर्यंच ही गति के जीव होते हैं सो इनमें तेरह करोड मनुष्य हैं पल्य के असंख्यातवां भाग तिर्यंच हैं। सासादनगुणस्थानमें चारों गति के जीव होते हैं। इनमें बावन करोड मनुष्य हैं और नारकी तिर्यंच और देव संयतासंयतसे असंख्यातगुणे हैं। सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव भी चारों गति में होते हैं सो एकसौवावन करोड मनुष्य हैं और सासादनवालोंसे असंख्यात गुणे शेष तीन नरक, तिर्यंच, देवगति के जीव हैं। असंयतगुणस्थानमें भी चारोंगति के जीव हैं उनमें सातसौ करोड मनुष्य हैं मिश्रवालोंसे संख्यातगुणे अवशेष तीनगतिके जीव हैं॥

मनुष्यगतौ मनुष्याणामुपशमकादिप्रमत्तसंयतान्तानां सामान्यवत् ॥ ततः संख्येयगुणाः संयतासँयताः ॥ सासादनसम्यग्दृष्टयः संख्येयगुणाः ॥ सम्यग्मिथ्यादृष्टयः संख्येयगुणाः ॥ असँयतसम्यग्दृष्टयः संख्येयगुणाः ॥ मिथ्यादृष्टयोऽसंख्येयगुणाः ॥ देवगतौ देवानां नारकवत् ॥

मनुष्यगतौ १॥ मनुष्याणाम् ३। उपशमक-आदि-प्रमत्तसंयत-अन्तानाम् ३। सामान्यवत्*

मनुष्यगतिमें मनुष्योंका (अल्प-बहुत्व) उपशम श्रेणीवालोंसे

=प्रमत्तसंयमीतकनिका संक्षेप (प्रसंगमें पूर्वोक्त गुणस्थान) सदृश है अर्थात् अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसांपराय-उपशांतकषाय इन उपशमश्रेणीवाले गुणस्थानोंमें प्रत्येकमें २९९, केई आचार्योंके मतमें ३०० अथवा केईकके मतमें ३०४ जीव हैं और अप्रमत्त गुणस्थानमें २९६९९१०३ जीव हैं इसलिये प्रत्येक उपशमश्रेणीवालेसे अप्रमत्तमें संख्यातगुणा जीवहुये और प्रमत्तगुणस्थानवर्ती ५९३९८२०६ जीव हैं इसलिये प्रत्येक उपशमश्रेणीवालेसे, और अप्रमत्तगुणस्थानवर्तीसे भी प्रमत्तगुणस्थानमें संख्यातगुणे जीव हैं॥

ततः* संख्येयगुणाः ३। संयतासंयताः ३।

=तिन (प्रमत्त संयमीयों) से संख्यातगुणे संयमासंयमी (मनुष्य तेरह कोटि) हैं

सासादन-सम्यग्दृष्टयः ३। संख्येयगुणाः ३।

=(उन देशव्रतियोंसे) सासादन सम्यग्दृष्टी (मनुष्य) संख्यातगुणे (बावन) करोड़ हैं

सम्यग्मिथ्यादृष्टयः ३। संख्येयगुणाः ३।

=(सासादनवालोसे) मिश्रगुणस्थानवर्ती (नर) संख्यातगुणे (एकसौचार कोटि) हैं

असंयत-सम्यग्दृष्टयः ३। संख्येयगुणाः ३।

=(मिश्रवालोंसे) असंयमी सम्यग्दृष्टी (मनुष्य) संख्यातगुणे (सातसौकरोड़) हैं।

मिथ्यादृष्टयः ३। असंख्येयगुणाः ३।

=(असंयमी सम्यग्दृष्टीयोंसे) मिथ्यादृष्टी (मनुष्य नकि सर्वजीव) असंख्यातगुणे हैं

देवगतौ १॥ देवानाम् ३। नारकवत्*

=देवगतिमें देवोंका (परस्पर अल्प बहुत्व) नारकियोंके तुल्य है अर्थात् सासादन सम्यग्दृष्टि देव सबसे थोड़े हैं। उनसे संख्यातगुणे मिश्रगुणस्थानवर्ती देव हैं। इन (मिश्रवालोसे) असंयमी सम्यग्दृष्टी देव असंख्यातगुणे हैं।

(२) इन्द्रियानुवादेन--एकेन्द्रियविकलेन्द्रियेषु गुणस्थानभेदो नास्तीत्यल्पबहुत्वाभावः ॥ इंद्रियं प्रत्युच्यते। पंचेंद्रियाद्येकेन्द्रियान्ता उत्तरोत्तरं बहवः ॥पंचेन्द्रियाणां सामान्यवत्।

(असंयत सम्यग्दृष्टीदेवोंसे) मिथ्यादृष्टी (देव) असंख्यातगुणे हैं।

(२) इन्द्रिय-अनुवादेन।। एकेन्द्रिय-विकल-इन्द्रियेषु ः। गुणस्थान-भेदः ;। न॥अस्ति T इति॥अल्प-बहुत्व-अभावः ;। इन्द्रियम्;।।। प्रति॥ उच्यते T पंचेन्द्रिय-आदि-एकेन्द्रिय-अन्ताः ;। उत्तरोत्तरम् ;।।। बहवः ;।

=(२) इंद्रियकी अपेक्षासे एकइन्द्रिय (जीव) और विकल (दो-तीन-चार) =इन्द्रियवाले (जीवों) में गुणस्थान विशेष नहीं है =(इनके मिथ्यात्व गुणस्थान ही होता है) ऐसे (गुणस्थान प्रति) अल्प बहुत्व नहीं है =इन्द्रियोंकी अपेक्षासे (=प्रति) (अल्प बहुत्व) कहा जाता है =पांच इन्द्रियवाले जीवोंसे (=आदि) एक इन्द्रियवाले जीवों तक आगे आगे =अधिक हैं अर्थात पांच इन्द्रियवालेजीवोंसे चार इन्द्रियवाले जीव अधिक हैं। चार इन्द्रियवालोंसे तीन इन्द्रियवाले बहुत हैं॥ तीन इन्द्रियवालोंसे दो इन्द्रियवाले अधिक हैं दो इंद्रियवालोंसे एक इंद्रियवाले जीव अधिक हैं ऐसे आगे आगे बहुलता है॥

पंचेन्द्रियाणाम् ;। सामान्य-वत्॥

=पांच इंद्रियवालोंका (परस्पर अल्प बहुत्व) संक्षेपमें (कथित गुणस्थान) =सदृश है। अर्थात् चार अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्पराय-उपशान्त-कषाय उपशमश्रेणीवाले प्रत्येक गुणस्थानमें २९९ वा (केईक आचार्योंके मतमें) ३०० अथवा (अन्य आचार्योंके मतमें)३०४ मुनि हैं और इन प्रत्येक प्रत्येक गुणस्थानकी संख्या शेष प्रत्येक गुणस्थानोके जीवोंकी अपेक्षा सबसे अल्प वा थोड़ीहै। और चार अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्पराय-क्षीणकषायक्षपकश्रेणीवाले प्रत्येक गुणस्थानमें ५९८ वा (केईकके मतमें)

अयं तु विशेषः-मिथ्यादृष्टयोऽसंख्येयगुणाः ॥ (३)

छसौ अथवा (केइक आचार्योंके मतानुसार) ६०८ मुनि हैं इसलिये प्रत्येक उपशमश्रेणीवाले गुणस्थान से प्रत्येक क्षपकश्रेणीवाले गुणस्थानके मुनियोंकी संख्या संख्यातगुणी है। अयोगकेवलीकी संख्या५९८ वा ६०० वा ६०८ है (जी.का. गाथा.६२६और इस अनुवादके पृष्ठ २०८की टिप्पणी संख्या २ देखो) सो भी प्रत्येक उपशमश्रेणी गुणस्थानवालोंसे एक प्रकारसे संख्यातगुणी हैं और प्रत्येक क्षपकश्रेणीवाले गुणस्थान वर्तियों के बराबर है॥ सयोगकेवलियोंकी संख्या आठ लाख अठानवै सहस्र पांचसौ दो (८९८५०२) है सो प्रत्येक उपशमश्रेणी गुणस्थानवालोंसे संख्यातगुणी है और प्रत्येक क्षपकश्रेणी गुणस्थानवालोंसे भी संख्यातगुणी है। इन सयोगकेवलियोंसे अप्रमत्त संयमी सातवां गुणस्थानवर्ती संख्येयगुणे हैं क्योंकि इनकी संख्या २९६९९१०३ है। और इन अप्रमत्तसंयमियो से प्रमत्त सयमी संख्यात गुणे हैं क्योंकि ये ५९३९८२०६ हैं॥ उक्त प्रमत्तसंयमियोसे संयमासंयमी असंख्यात गुणे हैं क्योंकि मनुष्य और तिर्यंच गतियों में ही यह देशसंयम गुणस्थान होता है इनमें तेरह करोड़ मनुष्य हैं और तिर्यंच पल्यके असंख्यातमें भाग हैं। इन संयमासंयमियोंसे सासादन सम्यग्दृष्टी असंख्यात गुणे हैं क्योंकि यह गुणस्थान चारो गतियों में होता है इन में बावन करोड़ मनुष्य हैं और श्रावकों से असंख्यात गुणे अन्य तीन गतिके जीव हैं। इन सासादन वालोंसे संख्यातं गुणे मिश्रगुणस्थानवर्ती हैं क्योंकि इनमें एकसौ चारकरोड़ मनुष्य हैं और संख्यात गुणे अन्य तीन गतिके जीव हैं। और असंयत गुणस्थान भी चारों गतिमे होता है इनमें सातसौ करोड़ मनुष्य है और मिश्रवालोसे असंख्यातगुणे शेष तीन गतिके जीव हैं (गोम्मटसार गाथा ६२४, ६२५, ६२६ और पृष्ठ २९२ से २९५ तक देखो) स्मरण रहे कि पंचेन्द्रिय जीव संज्ञीकेही दूसरेसे बारह गुणस्थान हो सक्ते हैं। असंज्ञी जीवके मिथ्यात्व गुणस्थान ही होता है॥

अयम् ॥ तु॰ विशेषः ॥ मिथ्या- =परन्तु (=तु) यह विशेष है कि पंचेन्द्रिय मिथ्या-
दृष्टयः ॥ असंख्येयगुणाः ॥ =दृष्टी जीव (अन्य किसी गुणस्थान के पंचेन्द्रिय जीवों से) असंख्यात गुणे हैं॥

कायानुवादेन---- स्थावरकायेषु गुणस्थानभेदाभावादल्पबहुत्वाभावः ॥ कायं प्रत्युच्यते। सर्वतस्तेजःकायिका अल्पाः। ततो बहवः पृथिवीकायिकाः। ततोऽप्कायिकाः ततो वातकायिकाः। सर्वतोऽनन्तगुणा वनस्पतयः ॥ त्रसकायिकानां पञ्चेन्द्रियवत् ॥ [४] योगानुवादेन---- वाङ्मानसयोगिनां पञ्चेन्द्रियवत्।

---

[३] काय-अनुवादेन ३। स्थावर-कायेषु ७।	=(३) कायके कथनसे स्थावर (पृथिवी अप्-तेजो-वायु-वनस्पति) कायोमे
गुणस्थानभेद-अभावात् ५ अल्प-बहुत्व-अभावः १।	=गुण स्थानमें भेद न होने (के हेतु) से थोड़े बहुतपनेका अभाव है (क्योंकि समस्त स्थावर कायोंके एक मिथ्यात्व प्रथम गुणस्थान ही होता है) (अतः गुणस्थानकी अपेक्षासे कुछभी अल्प बहुत्व नहीं हो सक्ता है)
कायम् २। प्रति* उच्यते१ सर्वतः* अल्पाः १।	=कायकी अपेक्षासे (अल्प बहुत्व) कहाजाता है। सबसे थोड़े
तेजःकायिकाः १। ततः* बहवः १ पृथिवी कायिकाः १।	=अनल कायिक है। तिन (अनल कायिक)से भूमिकायिक बहुत हैं
ततः* अप्कायिकाः १। ततः वातकायिकाः १।	=उन (भूमिकायिकोसे) जल कायिक (बहुत) हैं। तिन (जलकायिकसे) पवन कायिक (बहुत) हैं
सर्वतः* अनन्त-गुणाः १। वनस्पतयः १।	=सबसे अनन्तगुणे वनस्पति (कायिक) हैं
त्रसकायिकानाम् ६। पञ्चेन्द्रियवत्*	=त्रसकायिकोंका (अल्प-बहुत्व) पञ्चेन्द्रिय समान है अर्थात् पांचइन्द्रियवाले जीवोंसे चार इन्द्रियवाले जीव अधिक हैं। चारइन्द्रियवालेजीवोसे तीन इन्द्रियवाले जीव घने हैं। तीन इन्द्रियवाले जीवोंसे दो इन्द्रियवाले बहुत हैं ॥ पांच इन्द्रियवालोंका परस्पर अल्प बहुत्व गुणस्थानवत् है ॥ (देखो-चारअपूर्वकरण इत्यादि लेखसे पृष्ठ २९८में और २९९ के अन्ततक)
[४] योग अनुवादेन ३। वाङ्मानस-योगिनाम् ६।	=[४] योगके कथनानुसारसे वचन मन योगियोंका [अल्प-बहुत्व]
पंचेन्द्रियवत् *	=पांच इन्द्रियवाले जीवोके अल्प-बहुत्वके सदृश है ॥ अर्थात् पांच इन्द्रियवालोका अल्प-बहुत्व गुणस्थानवत् [पृष्ठ २९८से२९९ के अन्त तक] है

---

(१) वाच्=वाक् (चोः कु ८-२-३० से)=वाङ् (८-४-४५ से) ॥ देखो पृष्ठ १४ टिप्पणी ४ और पृष्ठ ३६ टिप्पणी ४ वास्ते व्युत्पत्ति के ॥

काययोगिनां सामान्यवत् ॥ [५] वेदानुवादेन--- स्त्रीपुंवेदानां पञ्चेन्द्रियवत् ।

काय-योगिनाम् ;। सामान्यवत *

=काययोगियोंका (अल्प-बहुत्व) संक्षेप (प्रकरणमें पूर्वोक्त गुणस्थान) वत है अर्थात् अयोगकेवलियोको छोड़कर पृष्ठ २९८, २९९ में चार अपूर्व .... पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टीजीव असंख्यात गुणे हैं (२९९ के अन्त तक पढ़लो)

[५] वेद-अनुवादेन ;। स्त्री-पुम्-वेदानाम् ;। पंचेन्द्रियवत् *

=[५] वेद(स्त्री-पुरुष-नपुंसक) की अपेक्षासे स्त्री–पुंवेद वालोंका =(अल्प-बहुत्व) पांचइन्द्रियवाले (जीव) निके समान है अर्थात् पृष्ठ २९८ में पंचेन्द्रियों का अल्प बहुत्व गुणस्थानवत है और "आगमविषें नवमा गुणस्थानका सवेद भाग पर्यंत भावतैं तीन वेद हैं और द्रव्यतैं एक पुरुष वेदही है" गोम्मटसार मुद्रित पृष्ठ ५९३ गाथा २७१ ॥ नवमां गुणस्थानके प्रथम तीनभाग भाववेदसहित हैं। अन्तके तीनभाग (जिनको अपगतभाववेद कहते है) भाववेद रहित है। इसलिये नवमां गुणस्थानसे मिथ्यात्व प्रथम गुणस्थान के जीवोंमें जो अल्प बहुत्व है वही स्त्री-पुरुष वेदीयोंका अल्पबहुत्व होगा ॥ वह ऐसे है कि अपूर्वकरण

(१) "चारित्र मोहनीयका भेद नोकषाय तीहरूप पुरुषवेद स्त्रीवेद नपुंसकवेद नामा प्रकृति तिनके उदयतें भाव जो चैतन्य उपयोग तीहि विषे पुरुष स्त्री नपुंसकरूप जीव हो हैं। बहुरि निर्माण नामा नाम कर्म के उदयकरि संयुक्त अंगोपांगका विशेषरूप नाम कर्मको प्रकृतिके उदयतें द्रव्य जो पुद्गलीकके पर्यायतीहि विषें पुरुष स्त्री नपुंसक हो है। सो ही कहिए है पुरुष वेदके उदयतें स्त्रीका अभिलाषरूप मैथुन संज्ञाका धारी जीव सो भाव पुरुष हो है। बहुरि स्त्रीवेद के उदयतें पुरुष का अभिलाषरूप मैथुन संज्ञाका धारक जीव भाव स्त्री हो है बहुरि नपुंसकवेद के उदयतें पुरुष अरु स्त्री दोउनका युगपत् अभिलाषरूप मैथुन संज्ञाका धारक जीव सो भाव नपुंसक हो है बहुरि निर्माण नाम कर्मका उदय संयुक्त पुरुष वेदरूप आकारका विशेष लिए अंगोपांग नामे नाम कर्मका उदयतें——— मूछ डाढ़ी लिंगादिक चिन्ह संयुक्त शरीरका धारक जीव सो पर्यायका प्रथम समयतें लगाय अन्त समय पर्यंत द्रव्य पुरुष हो है॥

और अनिवृत्ति करण उपशमश्रेणीवाले जीव भाव पुरुषवेदी और भाव स्त्रीवेदी सबसे थोड़े हैं २९९ वा ३०० वा ३०४ प्रत्येकगुणस्थानके मेंसे भाव नपुंसकवेदी घटादिये जावैं तो भाव पुरुषवेदी और भाव स्त्रीवेदी शेष रह जावैंगे। इनसे संख्यातगुणे प्रत्येक अपूर्वकरण क्षपकश्रेणी और अनिवृत्तिकरण क्षपकश्रेणी होगे क्योंकि इन प्रत्येक दोनों गुणस्थानोंमें ५९८ वा ६०० वा ६०८ जीव उत्कृष्टकरि तीनों वेदवाले हो सक्ते हैं। अप्रमत्त संयमी इनसे संख्यातगुणे हैं क्योंकि इनकी संख्या तीनों वेदवालोंकी २९६९९१०३ हो सक्ती है। इनसे अधिक प्रमत्तसंयमी हैं क्योंकि तीनों वेदवालोंकी संख्या ५९३९८२०६ जीव हैं॥ शेषके लिये देखो उक्त प्रमत्तसे' 'अन्त तक पृष्ठ २९९

बहुरि निर्माण नामका उदय संयुक्त स्त्रीवेदरूप आकारका विशेष लीए अंगोपांगनामा नामकर्मके उदयतै रोमरहित मुख स्तन योनि इत्यादि चिह्नसंयुक्त शरीरका धारक जीव सो पर्यायका प्रथम समयतै लगाइ अंतसमयपर्यंत द्रव्य स्त्री होइ है बहुरि निर्माण नामका उदयतै संयुक्तनपुंसकवेदरूप आकारका विशेष लिये अगोपांगनामा नामप्रकृतिके उदयतै मूछ डाढ़ी इत्यादि वा स्तन योनि इत्यादिक दोऊ चिन्ह रहित शरीरका धारक जीव सो पर्यायका प्रथम समयतै लगायू अंतसमयपर्यंत द्रव्य नपुंसक हो है। सो प्रायेण कहिए बहुलताकरि तौ समान वेद होहै जैसा द्रव्यवेद होइ तैसाही भाववेद होइ बहुरि कहीं समान वेद न हो है द्रव्यवेद अन्य होइ भाव वेद अन्य होइ। तहां देव अर नारकी अर भोगभूमियां तिर्यंच मनुष्य इनिके तौ जैसा द्रव्यवेद है तेसा ही भाववेद है बहुरिकर्म भूमियां तिर्यंच अर मनुष्यविषे कोई जीवनिकै तौ जैसा द्रव्यवेद हो है तैसाही भाव वेद हैं बहुरि केई जीवनिकैं द्रव्यवेद अन्य हो है अर भाववेद अन्य हो है द्रव्यतै पुरुष है अर भावतै पुरुषका अभिलाषरूप स्त्रीवेदी है वा स्त्री अर पुरुष दोऊनिका अभिलाषरूप न पुसकवेदी है। ऐसे ही द्रव्यतै स्त्री वेदो है भावतै स्त्रीका अभिलाषरूप पुरुषवेदी है वा दोऊनिका अभिलाषरूप नपुंसक वेदी है। बहुरि द्रव्यतै नपुंसक वेदी है भावतै स्त्रीका अभिलाषरूप पुरुषवेदी है वा पुरुषका अभिलाषरूप स्त्रीवेदी है। ऐसा विशेष जानना, जातै आगमविषे नवमा गुणस्थानका सवेद भाग पर्यंत भावतै तीन वेद हैं अर द्रव्यतै एक पुरुषवेद ही है ऐसा कथन कर्या है गोम्मट० जीव० मुद्रित पृष्ठ ५९२, ५९३॥

पुरुषवेदीका परिणाम तृणकी अग्नि समान है। स्त्री वेदीका परिणाम कारीषकी अग्नि समान है नपुसक वेदीका परिणाम पजावाकी अग्नि समान है ऐसे तीनोंही जातिके परिणामनिकी जो पीड़ा तोहिकरि जे रहित भए है ऐसे भाववेद अपेक्षा अनिवृत्तिकरणका अपगत वेद भागतै लगाय अयोगी पर्यंत अर द्रव्य भाववेद अपेक्षा गुणस्थानातीत सिद्ध भगवान जानने॥ गो०जीव० मुद्रित पृष्ठ ५९८

नपुंसकवेदानामवेदानां च सामान्यवत् ॥ (६) कषायानुवादेन–क्रोधमानमायाकषायाणां पुंवेदवत् । अयं तु विशेषः- मिथ्यादृष्टयोऽनन्तगुणाः ॥ लोभकषायाणां द्वयोरुपशमकयोस्तुल्या संख्या । क्षपकाः

नपुंसकवेदानाम् ६। अवेदानाम् ६। च	=नपुंसक वेद वालोंका तथा (=च) वेद (भाववेद) वर्जित (सूक्ष्मसाम्परायसे अयोगकेवली गुणस्थानवर्ति) निका (अल्पबहुत्व)
सामान्यवत्*	=संक्षेप (प्रसंगमे पहिले कथित गुणस्थान) समान है अर्थात् नपुंसक भाववेदी मिथ्यात्व प्रथम गुणस्थानसे अनिवृत्तिकरण नवमें गुणस्थान तक है । और भाववेद रहित दशवां गुणस्थानसे चौदहवां तक हैं ॥ देखो पृष्ठ २९८ चार अपूर्वकरण . मिश्रवालोसे असंख्यात गुणे शेप तीन गतिके जीव हैं । मिथ्यादृष्टीजीव नपुंसकलिंगी अंनतगुणे हैं क्योकि स्त्रीलिंग पुल्लिंगजीव पंचेन्द्रिय होते हैं । और सैनी (मनसहित) होते हैं (देखो चौवीसस्थाना ग्रंथ) परन्तु नपुंसक लिंगी जीव एकेन्द्रिय-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय सैंनी असैंनी दोनों होते हैं (देखो चौवीसस्थानाग्रन्थ)
कषाय-अनुवादेन-क्रोध-मान-माया-कषायाणाम् ६।	=(६) कपायके कथनानुसारसे क्रोध-मान-कपट कषायवालोंका (अल्प, बहुत्व)
पुंवेदवत्*	=पुरुप वेद समान है (और पुरुषवेदका अल्प बहुत्व पंचेन्द्रिय वत् है अतः क्रोध, मान-माया-कषाय वालोंका अल्प बहुत्व पंचेन्द्रियवत् है) पंचेन्द्रिय जीवोंके अल्प बहुत्व के लिये " चार अपूर्व ..२९८ से २९९ पृष्ट के अन्त)
अयम् १। तु* विशेषः १। मिथ्यादृष्टयः १। अनन्तगुणाः	=परन्तु भेद यह है कि मिथ्यादृष्टि (पूत्येक गुणस्थानवालोसे) अनन्त गुणे है
लोभकषायाणाम्६। द्वयोः ६। उपशमकयोः ६।	=लोभकषायवाले दो (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण) उपशमश्रेणीवालोंकी
तुल्या १॥ संख्या १॥ क्षपकाः १।	=समान गणना है । (उन दो उपशमश्रेणीवालों से) क्षपकश्रेणी

संख्येयगुणाः । सूक्ष्मसाम्पराय शुध्द्युपशमकसँयता विशेषाधिकाः। सूक्ष्मसाम्परायक्षपकाः संख्येयगुणाः। शेषाणां सामान्यवत् ॥

संख्येय-गुणाः ॥	=(अपूर्वकरण आठवां अनिवृत्तिकरण नवमां गुणस्थानवाले) संख्यातगुणे हैं अर्थात् प्रत्येक उपशमश्रेणीके आठवें-नवमें गुणस्थानमें२९९ मुनि हैं वा कैईक आचार्यों के मतमें ३०० अथवा अन्य के मतानुसार ३०४ है और प्रत्येक क्षपक श्रेणीके आठवे-नवमें गुणस्थानमे ५९८ मुनि हैं किसीके मत में प्रत्येकमें ६००, अन्यके मतमें प्रत्येक में ६०८ इसलिये प्रत्येक उपशमश्रेणीवाले से प्रत्येक क्षपक में संख्यात गुणे हुए
सूक्ष्मसाम्परायशुद्धि-उपशमक-संयताः ॥	=सूक्ष्मसांपराय शुद्धसंयत उपशमश्रेणीवाले दशवां गुणस्थानवर्ती
विशेप-अधिकाः ॥	=विशेपकरि अधिक हैं
सूक्ष्मसाम्पराय-क्षपकाः ॥	=(उन सूक्ष्मसांपराय उपशमकसे) सूक्ष्मसांपराय क्षपकश्रणीवाले
संख्येय-गुणाः ॥	संख्यातगुणे हैं क्योंकि उपशमक सूक्ष्मसांपराय २९९ वा ३०० वा ३०४ हैं और सूक्ष्मसांपराय क्षपक ५९८ वा ६०० वा ६०८ हैं
शेपाणाम् ॥	=बचे हुये (उपशान्तकपाय-क्षीणकपाय-सयोगकेवली-अयोगकेवली गुणस्थानवर्ती) निका (अल्प-बहुत्व परस्पर)
सामान्यवत्॥	=संक्षेप (प्रकरणमें पहिले कहा हुआ गुणस्थान) सदृश है अर्थात् उपशांतकषाय गुणस्थानमें भिन्न भिन्न मतानुसार २९९ वा ३०० वा ३०४ मुनि हैं। क्षीण-कपाय में इन से दूने है अतः उपशांतकपाय से क्षीणकषायमें संख्यात गुणे हैं ॥ सयोगकेवली ८९८५०२

[७] ज्ञानानुवादेन–मत्यज्ञानिश्रुताज्ञानिषुः सर्वतः स्तोकाः सासादनसम्यग्दृष्टयः । मिथ्यादृष्टयोऽनन्तगुणाः । विभङ्ज्ञानिषु सर्वतः स्तोकाः सासादनसम्यग्दृष्टयः । मिथ्यादृष्टयोऽसंख्येयगुणाः ॥

	ये उपशान्तकषायसे और क्षीणकषायसे संख्यात गुणे हैं अयोगकेवली भिन्न भिन्न मता-
	नुसार ५९८ वा ६०० वा ६०८ हैं
	(देखो अवश्य इस अनु वादके पृष्ठ३०८की टिप्पणी संख्या (२)
	ये उपशांतकषायवालोंमे तो संख्यात गुणे हैं ॥ क्षीणकषायवालोंके उपर्युक्त अयोगकेवली
	समान हैं । इनसे सयोगकेवली संख्यात गुणे हैं
ज्ञान-अनुवादेन ₁। मति-अज्ञानि-श्रुतअज्ञानिषु ₂।	=(७) ज्ञानके कथनमे कुमति और कुश्रुत ज्ञानियों में
सर्वतः* स्तोकाः ₃। सासदनसम्यग्दृष्टयः ₃।	=सबसे थोडे (=स्तोक) सासादनसम्यग्दर्शनवाले (दूसरे गुणस्थानवर्ती) हैं
	(उन कुमति-कुश्रुत ज्ञानी सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे)
मिथ्यादृष्टयः ₃। अनन्तगुणाः ₃।	=मिथ्यादृष्टी अनन्त गुणे हैं वा "तिनतैं अनंतगुणां मिथ्यादृष्टि है" जय० वच० ११७
विभङ्-ज्ञानिषु₃। सर्वतः* स्तोकाः सासादनसम्यग्-	=कुअवधिज्ञानियोमें सबसे थोडे सासादन सम्यग्-
दृष्टयः ₃।	=दर्शनवाले हैं (तिन कुअवधिज्ञानी सासादन सम्यग्दृष्टियोंसे)
मिथ्यादृष्टयः ₃। असंख्येयगुणाः ₃।	=(कु-अवधिज्ञानी) मिथ्यादृष्टी असंख्यात गुणे हैं

"सर्वतः स्तोकाः सासादनसम्यग्दृष्टय' । मिथ्यादृष्टयोऽनन्तगुणाः । सर्वतः स्तोकाः विभङ्ज्ञानिषु सासादनसम्यग्दृष्टयः । मिथ्यादृष्टयोऽसख्येयगुणाः" इस वाक्यके स्थान में संस्कृत सर्वार्थसिद्धि की दोनों आवृत्तियोंकी प्रतियोंमें सर्वतः स्तोकाः सासादनसम्यग्दृष्टयः । मिथ्यादृष्टयो ऽ सख्येयगुणाः ॥ भूलसे छपगया हे अर्थात् "मिथ्यादृष्टयोऽनन्तगुणाः । सर्वतः स्तोकाः विभङ ज्ञानिषु सासादनसम्यग्दृष्टयः ॥ वाक्य छूट गया है क्योंकि १)जयचंदजी की वचनिका हस्त लिखित और मुद्रित (पृष्ठ११७ में "सर्वतै स्तोक सासादनसम्यग्दृष्टि है । तीनितै अनंत गुणां मिथ्यादृष्टि है । विभग ज्ञानीनि विषै सर्वतै थोरा सासादन सम्यग्दृष्टि है । तिनितै असंख्यातगुणां मिथ्यादृष्टि है" ऐसी भाषा वचनिका है वह शब्दशः उपर्युक्त संस्कृतके प्रथम वाक्य का अनुवाद है ॥ (२) दूसरा हेतु यह है कि संसार में मिथ्यात्व गुणस्थानमे जितने भी जीव हैं सब इन्द्रियवालोंके, सर्वगतिमें, सर्व कायवालोंमें कुमति ज्ञान और कुश्रुत ज्ञान होते हैं और मिथ्यात्व सासादन दो ही गुणस्थान इन कुमति कुश्रुत ज्ञानियोंके

मतिश्रुतावधिज्ञानिषु सर्वतः स्तोकाश्चत्वार उपशमकाश्चत्वारः क्षपकाः संख्येयगुणाः । अप्रमत्तसंयताः संख्येयगुणाः । प्रमत्तसंयताः संख्येयगुणाः ।

मति-श्रुत-अवधिज्ञानिषु ।। सर्वतःस्तोकाः ।। चत्वारः ।। उपशमकाः ।। चत्वारः ।। =मति-श्रुत-अवधिज्ञानियोंमें सबसे अल्प चार (आठसे ग्यारह गुणस्थानतक) =उपशमश्रेणीवाले हैं । (उन चार उपशमश्रेणीवालोंसे) चार (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसापराय-क्षीणकषाय)

क्षपकाः ।। संख्येयगुणाः ।। =क्षपक श्रेणीवाले संख्यातगुणे हैं अर्थात् भिन्न भिन्न मतानुसार चार उपशम श्रेणीवाले ११९६ वा १२०० वा १२१६ हैं और चार क्षपकश्रेणीवाले इस प्रकार २३९२ वा २४०० वा २४३२ हैं अतः संख्यातगुणे हैं

अप्रमत्तसंयताः ।। =(मति-श्रुत-और अवधिज्ञानियोंमें क्षपक श्रेणीवालोंसे) अप्रमत्त संयमी

संख्येयगुणाः ।। =संख्याते गुणे हैं अर्थात् क्षपक श्रेणीवाले २३९२ वा २४०० वा २४३२ हैं परन्तु अप्रमत्त सातवां गुणस्थानवर्ती २९६९९१०३

प्रमत्तसंयताः ।। =(उन मति-श्रुत-अवधिज्ञानि अप्रमत्तसंयमियोंसे) प्रमत्त संयमी

संख्येयगुणाः ।। =संख्यातगुणे है अर्थात् अप्रमत्त संयमी २९६९९१०३ है और प्रमत्त

होते है ॥ (देखो चौवीस स्थान चरचा ग्रंथ) मिथ्यात्व गुणस्थान के जीवो की संख्या इसी ८ वें सूत्र की संख्या प्ररूपणामे अनंतानंत कही है (देखो पृष्ठ ९३) और गोम्मटसार जीवकांडकी गाथा ६२४ "मिथ्या.. दुवारणंताय" मे मिथ्यादृष्टि अनतानत है । और "इसी गाथामें सासादन गुणस्थान में बावन करोड मनुष्य और श्रावको से असंख्यातगुणे इतर तीन गतिके जीव है ऐसी गणना लिखी है ॥ इससे स्पष्ट है कि कुमति कुश्रुत ज्ञानियों सासादन गुणस्थानवर्तियों से मिथ्यादृष्टि कुमति कुश्रुतज्ञानी अनत गुणे ही हैं नकि असंख्यात गुणे ॥ (३) तीसरा हेतु यह भी है कि कुवधि ज्ञानी भी मिथ्यात्व और सासादन दो गुणस्थानोंमें होते हैं (देखो चौवीस स्थान चरचा) और यदि हम संस्कृत सर्वार्थसिद्धि का पाठ शुद्धमान लें तो मिथ्यात्व और सासादन गुणस्थानवर्तियों का प्रकरण कुवधिज्ञानियोंकी अपेक्षासे सर्वथा छूटजाता है ॥ अतः हमने जो उपर्युक्त पाठ लिखा है वह शुद्ध है ॥ मिथ्यादृष्टयः अनन्तगुणा अर्थात् असंयत सम्यग्दृष्टियो से मिथ्यादृष्टि अनन्त गुण है ॥ (पृष्ठ ३११) भी उपर्युक्त टिप्पणीका समर्थन करता है ॥

संयतासंयताः असंख्येयगुणाः । असंयतसम्यग्दृष्टयोऽसंख्येयगुणाः ॥ मनःपर्ययज्ञानिषु सर्वतः स्तोकाश्चत्वार उपशमकाः । चत्वारः क्षपकाः संख्येयगुणाः । अप्रमत्तसंयताः

संयमी ५९३९८२०६ है । अतः प्रमत्तसंयमी संख्यात गुणे हैं ॥

संयता संयताः ॥ =(उन मति-श्रुत-अवधिज्ञानवाले प्रमत्त संयमियो से) संयमा संयमी

असंख्येयगुणाः ॥ =असंख्यातगुणे हैं अर्थात् 'मनुष्य और तिर्यंच इन दो गतियो में ही देश संयम गुणस्थान होता है । इन मे तेरह करोड़ मनुष्य और पल्य के असंख्यातमे भाग तिर्यंच है ॥ गोम्मट० जीव० गाथा० ६२४ ॥' मतिज्ञान-श्रुतज्ञान-अवधिज्ञान चौथेसे बारह गुणस्थान तक ९ स्थानों मे है ॥ इन में मति-श्रुत-ज्ञान- चार से बारह गुणस्थान तक सब जीवो के होता है ॥ अवधिज्ञान यह आवश्यकता नहीं कि सबके हो किसीके होता है किसीके नहीं ।

असंयत सम्यग्दृष्टयः ॥ असंख्येयगुणाः ॥ =(देशसंयमियोसे) असंयत सम्यग्दृष्टि असंख्यात गुणे हैं अर्थात् इन में सात सौ करोड़ मनुष्य हैं और मिश्रवालोसे असंख्यात गुणे शेष तीन गति के जीव हैं

मनः पर्यय-ज्ञानिषु ॥ सर्वतः* स्तोकाः ॥ चत्वारः ॥ =मनः पर्यय ज्ञानियोंमें सबसे अल्प अथवा सबसे थोडे चार (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसांपराय-उपशांतकषाय)

उपशमकाः ॥ चत्वारः ॥ =उपशम श्रेणीवाले होते हैं (मनः पर्यय ज्ञानियों में) चार (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसापराय क्षीणकषाय)

क्षपकाः ॥ संख्येयगुणा ॥ =क्षपक श्रेणी वाले (उक्त चार उपशम श्रेणीवालोंसे) संख्यात गुणे हैं ॥

अप्रमत्त संयताः ॥ =(उक्त चार क्षपक श्रेणीवालो से) अप्रमत्त संयमी (मनः पर्यय ज्ञानी)

संख्येयगुणाः । प्रमत्तसंयताः संख्येयगुणाः ॥ केवलज्ञानिषु अयोगकेवलिभ्यः सयोगकेवलिनः संख्येयगुणाः ॥

संख्येय-गुणाः १।	=संख्यात गुणे हैं । (अप्रमत्तसंयमी मनः पर्ययज्ञानियोंसे)
प्रमत्तसंयताः १। संख्येयगुणाः १।	=प्रमत्तसंयमी (मनः पर्ययज्ञानी) संख्यात गुणे हैं । मनः पर्यय ६ से १२ तक है
केवल-ज्ञानिषु ७। अयोगकेवलिभ्यः ५। सयोग-	=केवल ज्ञानियोंमें अयोगकेवलियोंसे सयोग
केवलिनः १। संख्येयगुणाः १।	=केवली संख्यात गुणे हैं अर्थात् अयोगकेवली भिन्न भिन्न मतमें ५९८ वा ६०० वा ६०८ हैं और सयोगकेवली ८९८५०२ तक हो सक्ते हैं

(१) अयोगकेवलिनः एको वा द्वौ वा त्रयो वा उत्कर्षेणाष्टोत्तरशतसंख्याः स्वकालेन समुदितास्तेभ्यः संख्येयाः सयोगकेवलिनः ॥ ८९८५०२ । अयोग-

केवलिन १। एकः १। वा* द्वौ १ वा* त्रयः १।	= अयोगकेवली (जघन्यकरि) एक अथवा दो अथवा तीन (प्रवेशहोकरि)
वा* उत्कर्षेण १। अष्टोत्तरशतसंख्याः १। स्वकालेन ३।	= वा उत्कृष्टकरि एकसौआठकी संख्यामें (प्रवेशहोकरि) अपने अपने कालसे
समुदिताः १। तेभ्यः ५। संख्येयाः १: सयोगकेवलिनः १। ८९८५०२	= समुच्चयहोकर उन (अयोगकेवलीनि) से संख्याते (गुणे) सयोगकेवली है = (अर्थात् तेरहमें) आठ लाख हजार अठानवै पांचसौ दोय (बखाने)

(२) उपर्युक्त टिप्पणसे यह बात झलकती है कि चौदह गुणस्थानमे उत्कृष्ट संख्या ६० ८तकअयोगकेवलीकी हो सक्ती है । क्योंकि इस अनुवादके पृष्ठ ९४और९५के वाक्य कि 'चत्वारः क्षपका अयोगकेवलिनश्च प्रवेशेन एको वा द्वौ वा त्रयो वा । उत्कर्षेणाष्टोत्तरशतसंख्या । स्वकालेन समुदिताः संख्येयाः ॥ से प्रगट हैंकि क्षपकश्रेणी वालोके प्रवेश होनेके तुल्य अयोगकेवलियों का भी प्रवेश होना है और क्षपकश्रेणीवाले जीव (गोम्मटसार जीवकांड-गाथा ६२८ बत्तीसं अडदालं इत्यादि के अनुसार) अन्तराय रहित आठ समय पर्यंतोंमे से प्रथम समयमें ३२, दूसरे समयमें ४८ तीसरे समयमे ६०, चतुर्थ समयमे ७२, पांचमे समयमे ८४, छठे समयमे ९६, सातमे समयमें, १०८ आठमे समयमे १०८ होते है ॥ सर्वयोग ६०८ हुये ॥ किसी किसी आचार्यका मत है कि क्षपक श्रेणीवाले ५९८ प्रत्येक २ गुणस्थानमे उत्कृष्ट समुच्चय हो सक्ते हैं केईकके मतमे ६०० केईकके मतमे ६०८ होते हैं गोम्मसार०जीव० गाथा ६२३ अन्तादी अढंता इत्यादिमे जो क्षप कश्रेणी प्रत्येक गुणस्थानमे ५९८ माने है वे उन आचार्योंके मतानुसार है जो हैं कहते कि प्रत्येक उपशमक २९९ और प्रत्येक क्षपक ५९८ हो सक्ते है इस गाथामें तीन घाटि नो करोड मुनिकी संख्या का वर्णन है ॥

(क) अयोगकेवलिनः तावन्त एव पृष्ठ ३१०

(८) संयमानुवादेन–सामायिकच्छेदोपस्थापनशुद्धिसंयतेषु द्वयोरुपशमकयोस्तुल्यसंख्या। ततः संख्येयगुणौ क्षपकौ। अप्रमत्ताः संख्येयगुणाः। प्रमत्ताः संख्येयगुणाः॥ परिहारविशुद्धिसंयतेषु अप्रमत्तेभ्यः प्रमत्ताः संख्येयगुणाः। सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयतेषु उपशमकेभ्यः

[८] संयम-अनुवादेन। सामायिक-च्छेदोपस्थापन-	=(८) संयमके कथनानुसारकरि सामायिक च्छेदोपस्थापना-
शुद्धिसंयतेषु। द्वयोः।	=शुद्धिसंयमियो में दो (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण)
उपशमकयोः। तुल्य-संख्या॥ ततः*	=उपशमश्रेणीवालोकी समान गणना है। उन (दो उपशमश्रेणीवालों) से
संख्येय-गुणौ। क्षपकौ।	=संख्यात गुणे दो (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण) क्षपक श्रेणीवाले (सामायिक-च्छेदो-पस्थापना शुद्धि संयमी) है अर्थात् प्रत्येक उपशमश्रेणी वालो की संख्या २९९ वा ३०० वा ३०४ है और प्रत्येक क्षपकश्रेणीवालोंकी संख्या ५९८ वा ६०० वा ६०८ हैं
अप्रमत्ताः।	=अप्रमत्त संयमी (मामायिक और च्छेदोपस्थापन शुद्धि संयमी)
संख्येय-गुणाः।	=(उक्त दो क्षपक सामायिक और च्छेदोपस्थापन शुद्धि संयमियोंसे) संख्यातगुणे है अर्थात् क्षपक श्रेणी प्रत्येक गुणस्थानवर्ती ५९८ वा ६०० वा ६०८ है और अप्रमत्तसंयमी गणना में २९६९९१०३ है
प्रमत्ताः।	=प्रमत्तसंयमी (सामायिक और च्छेदोपस्थापना शुद्धिसंयमी) (उन अप्रमत्तसंयमी सामायिक-च्छेदोपस्थापना शुद्धिसंयमियों से)
संख्येय-गुणाः। परिहारविशुद्धि-संयतेषु।	=संख्यात गुणे हैं॥ परिहार विशुद्धिसंयमियों मे
अप्रमत्तेभ्यः। प्रमत्ताः। संख्येय-गुणाः।	=अप्रमत्तसंयमियोसे प्रमत्तसंयमी संख्यात गुणे हैं
सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयतेषु। उपशमकेभ्यः।	=सूक्ष्मसाम्पराय शुद्धिसंयमियों में उपशमश्रेणी वालोसे

क्षपकाः संख्येयगुणाः ॥ यथाख्यातविहारशुद्धिसँयतेषु उपशांतकषायेभ्यः क्षीणकषायाः संख्येयगुणाः ॥ अयोगकेवलिनस्तावन्त एव । सयोगकेवलिनः संख्येयगुणाः ॥ सँयतासँयतानां नास्त्यल्पबहुत्वम् । असँयतेषु सर्वतः स्तोकाः सासादनसम्यग्दृष्टयः । सम्यङ्मिथ्यादृष्टय संख्येयगुणाः ।

क्षपकाः ;। संख्येयगुणाः ;।	=क्षपक श्रेणीवाले (सूक्ष्मसाम्पराय शुद्धिसंयमी) संख्यातगुणे हैं
यथाख्यात-विहार शुद्धि-संयतेषु ७। उपशांत-	=यथाख्यात विहार शुद्धिसंयमियोंमे उपशांत
कपायेभ्यः ५। क्षीणकपायाः ;।	=कपाय ग्यारहवां गुणस्थानवालोंसे क्षीणकपाय (यथाख्यात संयमी)
संख्येय-गुणाः ;।	=संख्यातगुणे हैं अर्थात् ग्यारहवेंमें २९९ वा ३०० वा ३०४ मुनि हैं और क्षीणकपाय बारहवे गुणस्थानमें ५९८ वा ६०० वा ६०८ हैं
अयोगकेवलिनः ;। तावन्तः ;। एव*	=अयोगकेवली (जितने क्षीणकपाय गुणस्थानवर्ती हैं) उतने ही हैं अर्थात् ५९८ वा ६०० अथवा ६०८ हैं
सयोगकेवलिनः ;। संख्येय-गुणाः ;।	=सयोगकेवली (अयोगकेवलियोंसे) संख्यातगुणे हैं (८९८५०२ सयोगी हैं)
संयतासंयतानाम् ६। न अस्ति अल्प-बहुत्वम् ;।॥	=संयमासंयमी वा देशसंयमियोंका अल्पबहुत्व नहीं है क्योंकि गुणस्थान तीन भागोमें विभक्त हैं असंयत (प्रथमसे चार गुणस्थान तक), संयत छठेसे चौदह गुणस्थानतक और संयतासंयत एक ही है इससे अल्पबहुत्व नहीं है (देखो टिप्पणी (१) पृष्ठ २९४-२९५)
असंयतेषु ७।	=असंयमियोंमें अर्थात् प्रथमगुणस्थान वालोंसे चौथा गुणस्थानवालोंमें
सर्वतः* स्तोकाः ;। सासादन-सम्यग्दृष्टयः ;।	=सबसे थोड़े सासादन सम्यग्दृष्टी हैं । अर्थात् सासादनगुणस्थान चारों गतियोंमें होता है । इनमें बावन करोड़ मनुष्य और श्रावकोंसे असंख्यातगुणे इतरतीनिगति के जीव हैं ॥ गोमट्ट०जीव०गाथा ६२४
सम्यङ्मिथ्यादृष्टयः ;। संख्येय-गुणाः ;।	=(उन सासादन सम्यग्दृष्टियोंसे) मिश्रगुणस्थानवर्ती संख्यातगुणे हैं

असंयतसम्यग्दृष्टयोऽसंख्येयगुणाः । मिथ्यादृष्टयोऽनन्तगुणाः ॥ (९) दर्शनानुवादेन--चक्षुर्दर्शनिनां मनोयोगिवत् ॥ अचक्षुर्दर्शनिनां काययोगिवत् ॥

अर्थात् मिश्रगुणस्थान भी चारों गतियोंमें होता है इसमें एकसौ चार करोड़ मनुष्य और सासादनवालोसे संख्यात गुणे शेष तीन गतिके जीव हैं (गोम्मट० जीव० गाथा ६२४) संस्कृत सर्वार्थसिद्धि मुद्रित की दोनों आवृत्तियोंमें संख्येयके स्थानमें असंख्येय अशुद्ध छपगया है ॥

असंयत-सम्यग्दृष्टः ॥ असंख्येय-गुणाः ॥
=(उन मिश्रगुणस्थानवर्तियोंसे) असंयमी सम्यग्दर्शनवाले असंख्यात
=गुणे हैं अर्थात् अव्रत गुणस्थान चारो गतियोंमे होता है। इनमे सातसौ करोड़ मनुष्य हैं और मिश्रवालोसे असंख्यातगुणे शेष तीन गतिके जीव हैं (गोम्मट०जीव० गाथा ६२४ देखो)

मिथ्यादृष्टयः ॥ अनन्तगुणाः ॥
=मिथ्यादर्शनवाले (इन असंयमी सम्यग्दर्शनवलोंसे) अनन्तगुणे हैं ॥

(९) दर्शन-अनुवादेन ॥ चक्षुष्-दर्शनिनाम् ॥[1]
=(९) दर्शनकी विवक्षासे चक्षुर्दर्शनवालोका (अल्प-बहुत्व)

मनस्-योगिन्-वत्*
=मनयोगीवालोके सदृश है अर्थात् पञ्चेन्द्रियवत् है क्योंकि पृष्ठ ३०० के अनुकूल मनयोगियोका पञ्चेन्द्रियवत् है जिसके कथन के लिये पृष्ठ २९८ चार अपूर्वकरण.. पञ्चेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि जीव (अन्य किसी गुणस्थानके ? पञ्चेन्द्रिय जीवोसे) असंख्यात गुणे है पृष्ठ २९९ के अन्ततक शब्दशः पढ़लो

अचक्षुष्दर्शनिनाम् ॥ काययोगिवत्*
=अचक्षुर्दर्शनवालोंका (अल्प-बहुत्व) काययोगियोके सदृश है और काय योगियों का गुणस्थान तुल्य है (सयोगी अयोगीको छोड़कर पृष्ठ) २९८अपूर्व-२९९तक)

(१) यथार्थमे यह शब्द चक्षुष्दर्शन है इसका ष् का परिवर्तन र् मे होकर चक्षुर्दर्शन होगया। स् और विसर्ग (.) का परिवर्तन र् मे होनेके लिये पृष्ठ ३३ की टिप्पणी [१] देखो ॥

अवधिदर्शनिनामवधिज्ञानिवत् ॥ केवलदर्शनिनां केवलज्ञानिवत् ॥ (१०) लेश्यानुवादेन- कृष्णनील-कापोतलेश्यानां असंयतवत् ॥

	क्योकि चक्षुर्दर्शन, अचक्षुर्दर्शनवाले मिथ्यात्वसे क्षीणकषाय तक होते हैं ॥
अवधिदर्शनिनाम् ६। अवधिज्ञानिवत्१	=अवधि दर्शनवालो का (अल्प-बहुत्व) अवधि ज्ञानियो के सदृश है अर्थात पृष्ठ ३०६ अवधि ज्ञानियोमे असयत सम्यग्दृष्टि असंख्यात गुणे है । पृष्ठ ३०७ मे देखो ॥ अवधिज्ञान चौथेसे बारहवे गुणस्थानतक है ॥
केवल दर्शनिनाम ६। केवल ज्ञानिवत्१	केवल दर्शन (तेरहवे चौदहवें गुणस्थान) वालों का केवल ज्ञानियोवत् है । अर्थात् केवल ज्ञानियोमे सयोग केवली अयोग केवलियों से संख्यात गुणे हैं अयोग केवली ५९८ केडक के मत मे ६०० अथवा केडक के मतानुसार ६०८ है और सयोग केवली ८९८५०२ हो सक्ते हैं ॥
(१०) लेश्या-अनुवादेन-कृष्ण-नील-कापोतलेश्यानाम् ६। असंयतवत्१	=लेश्या के कथनानुसार से कृष्ण-नील-कापोत लेश्यावालो का (अल्प-बहुत्व) =असंयमी (मिथ्यात्व-सासादन-मिश्र-अविरत गुणस्थानवर्ती) नि मम है ॥ अर्थात् ये तीन अशुभ लेश्याये उक्त चार गुणस्थान तक ही है। भावार्थ सासादन गुणस्थान चारो गतियो मे होता है । इनमें बावन करोड़ मनुष्य और श्रावकोसे असंख्यात गुणे इतर तीन गतिके जीव हैं । ये इन चारों गुणस्थानोमें सबसे थोड़े हैं । मिश्रगुणस्थानमे १०४ करोड़ मनुष्य हैं। और सासादनवालोंसे संख्यातगुणे शेप तीन गतियोंके जीव हैं। अविरत गुणस्थान भी चारो गतियोंमें होता है इनमें सातसौ करोड़ मनुष्य हैं । और मिश्रवालोसे असंख्यातगुणे शेप तीन गतिके जीव हैं ॥ मिथ्यादृष्टि इन असंयत सम्यग्दृष्टियोंसे अनंतगुणे हैं (पृष्ठ ३११) वैसे अनंतानंत है ॥ (गाथा ६२४)

तेजःपद्मलेश्यानां सर्वतः स्तोका अप्रमत्ताः । प्रमत्ताः संख्येयगुणाः । एवमितरेषां पञ्चेन्द्रियवत् ॥

तेजः पद्म-लेश्यानाम् ६/३। सर्वतः स्तोकाः १/३। अप्रमत्ताः १/३। =पीत-पद्म लेश्यावालोमें सबसे थोड़े अप्रमत्त संयमी हैं
अर्थात् अप्रमत्त विरत २९६९९१०३ मुनि हैं (षष्ठी सप्तमी अर्थ में है)

प्रमत्ताः १/३। संख्येय-गुणाः १/३। =(इन अप्रमत्त संयमियों से) प्रमत्त संयमी संख्यात गुणे हैं
अर्थात् दूने (५९३९८२०६) मुनि हैं

एवम्* इतरेषाम् ६/३। =ऐसे अन्य (मिथ्यात्व गुणस्थान से संयतासंयत पीत-पद्म लेश्यावालों) का

पञ्चेन्द्रियवत्* =पंचेन्द्रिय जीवों के सदृश (अल्प-बहुत्व) है क्योंकि पीत-पद्मलेश्यावाले पंचेन्द्रिय ही होते हैं और मिथ्यात्वसे अप्रमत्त गुणस्थान तक हैं अर्थात् मनुष्य और तिर्यंच गतियों में ही देशसंयम गुणस्थान होता है इन में तेरह करोड़ मनुष्य और पल्यके असंख्यातवां भाग तिर्यंच हैं इस संख्यामें से शुक्लेश्यावाले संयमासंयमीको घटादेनेसे शेष पीत-पद्मलेश्यावाले रहजाते हैं सासादन गुणस्थानमें बावन करोड़ मनुष्य और श्रावकोंसे असंख्यातगुणे अन्य तीन गतिके जीव हैं इनमेंसे कृष्ण-नील-कापोत और शुक्लेश्यावालोंको घटादेनेपर शेष जीव पीत-पद्मलेश्यावाले रहजावेंगे। मिश्रगुणस्थानमें एक सौ चार करोड़ मनुष्य और सासादनवालोंसे संख्यातगुणे तीन गतिके जीव हैं। इनमें से कृष्णनील-कापोत और शुक्लेश्या वालोंको घटाने से शेष पीतपद्मलेश्या वाले जीव रहजाते हैं। अव्रत सम्यग्दृष्टीयोंमें सातसौ करोड़ मनुष्य हैं और मिश्रवालों से असंख्यातगुणे शेष तीन गतिके जीव हैं इनमें से कृष्ण-नील

शुक्ललेश्यानां सर्वतः स्तोका उपशमकाः । क्षपकाः सख्येयगुणाः । सयोगकेवलिनः संख्येयगुणाः । अप्रमत्तसँयताः संख्येयगुणाः । प्रमत्तसँयताः संख्येयगुणाः । सँयतासँयताः असंख्येयगुणाः । सासादनसम्यग्दृष्टयः असंख्येयगुणाः । सम्यग्मिथ्यादृष्टयः संख्येयगुणाः । मिथ्यादृष्टयोऽसंख्येयगुणाः । असँयतसम्यग्दृष्टयोऽसंख्येय गुणाः । (११) भव्यानुवादेन –

शुक्ललेश्यानाम् ।। सर्वतः स्तोकाः ।। उपशमकाः ।।
क्षपकाः ।। संख्येय–गुणाः* ।।

संयोगकेवलिनः ।। संख्येयगुणाः ।।
अप्रमत्तसँयताः ।। संख्येयगुणाः ।।
प्रमत्तसंयताः ।। संख्येयगुणाः ।।
संयता संयताः ।। असंख्येय–
गुणाः ।। सासादन–सम्यग्दृष्टयः ।।
असंख्येयगुणाः ।।
सम्यग्मिथ्यादृष्टयः ।। संख्येयगुणाः ।।
मिथ्यादृष्टयः ।।
असंख्येयगुणाः ।। असंयत–सम्यग्दृष्टयः ।।
असंख्येययगुणाः ।। [१२] भव्य अनुवादेन ।।

कापोत–शुक्ललेश्यावालों को घटाने से शेष* पीत-पद्म लेश्यावाले रह जाते हैं
=शुक्ललेश्यावालों में सबसे अल्प (चार) उपशम श्रेणी वाले हैं
=(चार उपशम श्रेणी वालोंसे) (चार) क्षपक श्रेणीवाले संख्यात गुणे हैं अर्थात् प्रत्येक उपशम श्रेणी वाले गुणस्थान में २९९ वा ३०० वा ३०८ हैं और प्रत्येक क्षपक श्रेणी वाले गुणस्थान में ५९८ वा ६०० वा ६०८ जीव हैं
=(उन चार क्षपक श्रेणी वालोंसे) संयोगकेवली संख्यात गुणे हैं । ८९८५०२ हैं ।।
=(सयोगकेवलियों से) अप्रमत्त संयमी संख्यात गुणे हैं । २९६९९१०३ हैं ।।
=(अप्रमत्त संयमियों से) प्रमत्त संयमी संख्यात गुणे हैं । ५९३९८२०६ हैं ।।
=(प्रमत्त संयमी शुक्ललेश्यावालों से) संयमासंयमी (शुक्ललेश्यावाले) असंख्यात
=गुणे हैं ।। (देशासंयमी शुक्ललेश्यावालों से) सासादनसम्यग्दृष्टि (शुक्ललेश्या) वाले
=असंख्यात गुणे हैं । (सासादन सम्यग्दृष्टि शुक्ललेश्यावालों से)
=मिश्रगुणस्थानवर्ती (शुक्ललेश्यावाले) संख्यात गुणे हैं
=(मिश्रगुणस्थानवर्ती शुक्ललेश्यावालों से) मिथ्या दृष्टि (शुक्ललेश्यावाले)
=असंख्यात गुणे हैं । मिथ्या दृष्टि शुक्लले श्यावालो से) असंयत सम्यग्दृष्टि
=(शुक्ललेश्यावाले) असंख्यात गुणे हैं । भव्य (जीवों) के कथन करि

---

*शुक्ललेश्यानाम शब्द में षष्ठी विभक्ति अष्टाध्यायी २, ३, ४१, सूत्रसे सप्तमी विभक्ति के अर्थ मे है । पृष्ठ १३८ मे यह टिप्पणी पूर्ण रूप से है ।।

भव्यानां सामान्यवत् । अभव्यानां नास्त्यल्पबहुत्वम् ॥ (१२) सम्यक्त्वानुवादेन--क्षायिकसम्यग्दृष्टिषु सर्वतः स्तोकाश्चत्वार उपशमकाः । इतरेषां प्रमत्तान्तानां सामान्यवत् ॥

भव्यानाम् ६। सामान्यवत् *	=भव्यजीवों का (अल्प-बहुत्व) संक्षेप (विपय में पूर्वोक्तगुणस्थान) सदृश है अर्थात् भव्यजीव मिथ्यात्वगुणस्थानसे अयोगकेवली गुणस्थानों तक सब चौदहों गुणस्थनों में हैं अतः पृष्ट २९२ "प्रथम से पृष्ट २९३, २९४, २९५ समस्त २९६ में मिथ्या दृष्टी असंख्यात गुणे हैं यहां तक शब्दशः पढ़लो ॥
अभव्यानाम् ६। न * अस्ति + अल्प-बहुत्वम् १॥।	=अभव्यों के (अल्प-बहुत्व) नहीं है क्योंकि अभव्यजीव केवल मिथ्यात्व पहिले गुणस्थान में ही हैं
(२१) सम्यक्त्व - अनुवादेन ३। क्षा यिक-सम्यग्दृष्टिषु ७।	=(१२) सम्यग्दर्शनके कथन करि क्षायिकसमयग्दर्शनवालों में
सर्वत :* स्तोकाः १। चत्वारः १। उपशमकाः १।	=सब से थोड़े चार उपशम श्रेणी [अपूर्वकरण--अनिवृत्तिकरण--सूक्ष्मसांपराय--उपशांतकपाय] वाले हैं
इतरेपाम् ६।	अवशेष [अपूर्वकरण--अनिवृत्तिकरण--सूक्ष्मसांपराय--क्षीणाकपाय गुणस्थानवर्ती क्षयकश्रेणी, सयोग केवली, अयोगकेवली अप्रमत्त संयमी येसर्व क्षायिक सम्यक्त्वधारक और]
प्रमत्त--अन्तानाम् ६। सामान्य--वत्त *	मत्तसंयमीयो तकनिका [अल्प बहुत्व [संक्षेप विपय मे पूर्वाक्त गुणस्थान ॥ दृश है अर्थात् चार क्षयक श्रेणी वाले चार उपदाम श्रेणी वालोसे संख्यात गुण हैं अयोग के वली क्षयक श्रेणी वालो के तुल्य हैं। सयोग केवली उक्त पांचो गुण स्थान वर्तियों से संख्यात गुणे हैं। इन से अप्रमत्त संयमी संख्यात गुणे हैं। अमत संयमियो से प्रमत्त संयमी संख्यात गुण हैं।

(१) क्षायिक सम्यक्त्व चौथे गुणस्थान से अयोग के वली तक, उपशमसम्यक्त्व चौथे से ग्यारहतक, [illegible] चौथे से साततक होता है।

ततः संयतासंयताः संख्येयगुणाः । असंयतसम्यग्दृष्टयोऽसंख्येयगुणाः ॥ क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टिषु सर्वतः स्तोकाः अप्रमत्ताः । प्रमत्ताः संख्येयगुणाः। संयतासंयताः असंख्येयगुणाः । असंयतसम्यग्दृष्टयोऽसंख्येयगुणाः ॥ औपशमिकसम्यग्दृष्टीनां सर्वतः स्तोकाश्चत्वारः उपशमकाः अप्रमत्ताः संख्येयगुणाः। प्रमत्ताः संख्येयगुणाः ॥ संयतासंयताः संख्येयगुणाः ॥

ततः संयता संयताः।	=उन (प्रमत्त संयमियों] से देश संयमी [क्षायिक सम्यग्दृष्टी]
संख्येय–गुणाः। असंयत–सम्यग्दृष्टयः।	=संख्यात गुणे हैं। [उन संयमासंयमियोंसे] असंयमी सम्यग्दृष्टी
असंख्येयगुणाः। क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टिषु।	=असंख्यातगुणे हैं। वेदक सम्यग्दर्शनवालोंमें
सर्वतः* स्तोकाः। अप्रमत्ताः।	=सबसे थोड़े अप्रमत्त संयमी [सातवांगुणस्थानवर्ती] हैं [उनसे]
प्रमत्ताः। संख्येयगुणाः।	=प्रमत्त संयमी [वेदक सम्यग्दर्शनवाले] संख्यातगुणे हैं
संयतासंयताः।	=[उन प्रमत्त संयमी वेदकसम्यग्दर्शनवालोंसे] संयमा संयमी
असंख्येयगुणाः।	=[वेदकसम्यग्दृष्टि] असंख्यातगुणे हैं। [देश संयमी वेदक सम्यग्दृष्टियोंसे]
असंयत–सम्यग्दृष्टयः। असंख्येयगुणाः।	=असंयत सम्यग्दृष्टी असंख्यात गुणे हैं।
औपशमिक-सम्यग्दृष्टी नाम्। सर्वतः स्तोकाः।	=उपशम सम्यग्दर्शन [१] वालों में सब से थोड़े
चत्वारः।	=चार [अपूर्व करण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्म सांपराय-उपशांतकषाय।
उपशमकाः। अप्रमत्ताः।	=उपशम श्रेणी वाले हैं। (चार उपशम श्रेणी वालों से] अप्रमत्त संयमी
संख्येयगुणाः।	=संख्यात गुणे हैं। [अप्रमत्त संयमी उपशम सम्यग्दृष्टियों से]
प्रमत्ता : । संख्येयगुणाः।	=प्रमत्त संयमी [उपशम सम्यग्दर्शन वाले] संख्यात गुणे हैं
संयतासंयताः। असंख्येयगुणाः।	=[प्रमत्त संयमी उपशम सम्यग्दर्शन वालों से] संयम संयमी असंख्यात गुणे हैं

* यहां षष्ठी विभक्ति सप्तमी विभक्ती के अर्थमें आई है अतः हिन्दी अनुवाद "वालोंके" स्थानमें "वालोंमें" किया है (देखो टिप्पणी पृष्ठ १३८॥

असँयतसम्यग्दृष्टयोऽसंख्येयगुणाः । शेषाणां नास्त्यल्पबहुत्वम् । विपक्षे एकैकगुणस्थानग्रहणात् ॥ (१३) सञ्ज्ञानुवादेन-संज्ञिनां चक्षुर्दर्शनिवत् ।

असंयत	=[देशसंयमी उपशम सम्यग्दर्शनवालोसे] असंयमी [उपशम]
सम्यग्दृष्टयः ;। असंख्येयगुणाः ;। विपक्षे ;।	=सम्यग्दर्शनवाले असंख्यात गुणे हैं । पक्षान्तरमें वा अन्य ओर में
एक-एक-गुणस्थान-ग्रहणात् ;। ॥	=एक एक गुणस्थान को (भिन्न भिन्न) मान लेनेसे वा विवक्षित एक एक गुणस्थान होने-से
शेषाणाम् ;।	=बचे हुये (मिथ्यात्व-सासादन-मिश्र-असंयत सम्यग्दृष्टिवालेनिके-
अल्प-बहुत्वम् ;।। न* अस्ति T	=थोडा और अधिकपना नहीं है (क्योंकि जब एक प्रकार की वस्तुयें कई स्थानों में हों तब कहते हैं कि अमुक स्थानकी वस्तुये इतर स्थान की वस्तुओं से अल्प बहुत्व है । मिथ्यादृष्टि एक प्रथम गुणस्थान मे ही है ॥ सासादन सम्यग्दृष्टि दूसरे मे ही हैं सम्यग्मिथ्यादृष्टी मिश्र तीसरे गुणस्थान मे ही हैं और असंयमी सम्यग्दृष्टी एक अविरत गुणस्थान मे ही हैं इसलिये इन चारों गुणस्थानों मे सम्यक्त्वकी अपेक्षा से अल्प बहुत्व नहीं है परन्तु असंयमकी अपेक्षा से प्रथम गुणस्थान से चतुर्थ तक (असंयम होने से) है और वह असंयमकी अपेक्षा से अल्प बहुत्व इस प्रकार है कि असंयमियोमे सबसे थोडे सासादन सम्यग्दृष्टी है । इनसे मिश्रगुणस्थानवर्ती संख्यात गुणे हैं । इनसे अविरत सम्यग्दर्शन वाले असंख्यात गुणे हैं । इनसे मिथ्यादर्शनवाले अनंत गुणे है । (विशेष जानने के लिये पृष्ठ ३१० ३११ देखो ।
(१३) संज्ञा अनुवादेन ;। संज्ञिनाम् ;। चक्षुर्दर्शनिवत्	=(१३) संज्ञा की अपेक्षासे सैनीनिका (अल्प बहुत्व) चक्षुदर्शनवालो के सम है और चक्षुदर्शनवालो का अल्प बहुत्व मन योगी के समान है और मनयोगियों का

असंज्ञिनां नास्त्यल्पबहुत्वम्। तदुभयव्यपदेशरहितानां केवलज्ञानिवत्॥ (१४) आहारानुवादेनआहारकाणां काययोगिवत्।

अल्पबहुत्व पंचन्द्रियवत् है (पृष्ट ३११ और पृष्ठ ३०१ - ३०२ को क्रम से देखो) इसलिये संज्ञियो का अल्प बहुत्व पंचेन्द्रियो के सदृश हुआ (संज्ञी मिथ्यात्व प्रथम गुणस्थान से क्षीणकपाय बारहवां गुणस्थान तक होते हैं) पंचेन्द्रियों का अल्पबहुत्व गुणस्थानसदृश है इसलिये अंतमें संज्ञियोंका अल्पबहुत्व मिथ्यात्व गुणस्थान से क्षीण कषाय गुणस्थानवर्ती जीवो के अल्प बहुत्व के सदृश हुआ॥ चार अपूर्व करण··· पृष्ठ २९८ से २९९ कोअंत तक॥

असंज्ञिनाम् ;। अल्प-बहुत्वम् न * अस्ति T =मन रहित जीवो के अल्प-बहुत्व नहीं है (क्योंकि ये सब मिथ्यादृष्टी हैं)

तद्-उभय-व्यपदेश-रहितानाम् ;। =उन (सैनी-असैनी) दोनो नामों से वर्जित (जीव) निके

केवलिज्ञानि- केवल ज्ञानियों के

वत् * =समान (अल्प-बहुत्व) है अर्थात् अयोगकेवलियां से सयोगकेवली संख्यातगुणे हैं अयोग केवली उत्कृष्टकरि ५९८ वा ६०० वा ६०८ हैं और सयोग केवली उत्कृष्ट करि आठलाख अठानवैहज़ार पांचसो दो हैं

(१४) आहारक-अनुवादेन ;। अहारकाणाम् ;। =(१४) आहारक की अपेक्षा से आहारकों का (अल्प-बहुत्व)

काय योगिवत् * =काय योगियों के सदृश है (और काययोगियों का अल्प-बहुत्व गुणस्थानवत्) है अतः आहारकों का अल्पबहुत्व गुण स्थान सदृश हुआ। काययोगी प्रथम मिथ्यात्व गुणस्थान से सयोग केवली तेरहवां गुणस्थान तक हैं अतः अयोग केवलियों को छोड़ कर पृष्ठ २९८ में चार अपूर्व करण से ···२९९ पृष्ठ के अंत तक शब्दशः पढ़लो तो वही आहारकों का अल्पबहुत्व होवेगा।

अनाहारकाणां सर्वतः स्तोकाः सयोगकेवलिनः । अयोगकेवलिनः संख्येयगुणाः । सासादनसम्यग्दृष्टयोऽसंख्येयगुणाः । असँयतसम्यग्दृष्टयोऽसंख्येयगुणाः मिथ्यादृष्टयोऽनन्तगुणाः ॥ एवं मिथ्यादृष्टियादीनाम् गत्यादिषु मार्गणा कृता सामान्येन ॥ तत्र सूक्ष्मभेद आगमाविरोधेनानुस्मर्तव्यः ॥

अनाहारकाणाम् ॥ सर्वतः * स्तोकाः ॥ सयोग-केवलिनः ॥	=अनाहारकों में सब से थोड़े सयोग- केवली हैं (अर्थात् यद्यपि सयोग केवलियों की संख्या ८९८५०२ तक उत्कर्षकरि होसक्ती है और अयोग केवलियो की संख्या ५९८ वा ६०० ६०८ तक हो सक्ती है परंतु सयोगकेवलियों की अनाहारक अवस्था पूतरसमुद्घात और लोकपूर्ण समुद्घात में ही होती है दंड समुद्घात और कवाटसमुद्घात मे आहारक ही अवस्था होती है इस अपेक्षा से सयोग केवली अनाहारकों की संख्या सर्व से अल्प है ॥ जीवों की अनाहारक अवस्था मिथ्यात्व-सासादन-असंयत और अयोग केवली गुणस्थानों में ही होती है । सयोग केवली उक्त समुद् घातो में ही अनाहारक होते हैं ।
अयोगकेवलिनः ॥ संख्येयगुणाः ॥	=(सयोग केवलि अनाहारकों से) अयोग केवली संख्यात गुणे हैं
सासादन-सम्यग्दृष्टयः ॥ असंख्येयगुणाः ॥	=(अनाहारक अयोगकेवलियों से) सासादन सम्यग्दृष्टी असंख्यात गुणे हैं
असंयत-सम्पग्दृष्टयः ॥ असंख्येय गुणा ॥	=(सासादन सम्पग्दृष्टियों से) असंयमी सम्पग्दृष्टि असंख्यात गुणे हैं
मिथ्यादृष्टयः ॥ अनन्त-गुणाः ॥	=(असंयमी सम्पग्दर्शन वालों से) मिथ्यादृष्टी अनन्तगुणे हैं
एवम् * मिथ्यादृष्टि-आदीनाम् ॥ गति-आदिषु ॥	=ऐसे मिथ्यादर्शन वाले आदिकनिकें गति आदिकों में
सामान्येन ॥ मार्गणा ॥ कृता तत्र * सूक्ष्म भेदः ॥	=संक्षेप कथन करि मार्गणा (निर्देश की गई । तहां (इनके) सूक्ष्मभेद
आगाम-अविरोधेन ॥ अनुस्मर्तव्यः ॥	=शास्त्र के अनुसार करि अंगीकारकरना वा अनुस्मरण करना योग्य है

एवं सम्यग्दर्शनस्यादावुद्दिष्टस्य लक्षणोत्पत्तिस्वामिविषयन्यासाधिगमोपाया निर्दिष्टाः। तत्सम्बन्धेन च जीवादीनां सञ्ज्ञापरिणामादि निर्दिष्टम्। तदनन्तरं सम्यग्ज्ञानं विचारार्हमित्याह-

एवम्* आदौ ॥ उद्दिष्टस्य ॥ सम्यग्दर्शनस्य ॥	=इसप्रकर प्रथममे उपदेश कियागया सम्यग्दर्शनका
लक्षण	=लक्षण (देखो सूत्र २ पृ० ३१)
उत्पत्ति	=(उस सम्यग्दर्शनके) उत्पन्न होनेका निमित्त (देखो सूत्र २ पृष्ठ ३६)
स्वामि-विषय	=(सम्यग्दर्शनका) अधिपति (जीव); (सम्यग्दर्शनका) विषय (सूत्र ४ पृष्ठ ४०)
न्यास	=(सम्यग्दर्शनका) न्यास वा निक्षेप वा लोकव्यवहार (सूत्र ५ पृष्ठ ४४ देखो)
अधिगम-उपायाः ॥	=(सम्यग्दर्शनके) ज्ञान वा स्वरूप (जानने) के उपाय
	(सूत्र ६ पृष्ठ ५४, सूत्र ७ पृष्ठ ५८, सूत्र ८ पृष्ठ ८१ को देखो)
निर्दिष्टाः ॥ च* तत् सम्बन्धेन ॥ जीवादीनाम् ॥	=कहे गये हैं। और (च) उस (सम्यग्दर्शन) के संबंधकरि जीवादिक (तत्त्वों) के
सञ्ज्ञा-परिणाम-आदि ॥	=नाम (देखो सूत्र ४) परिणामादिक अथवा भावादिक (देखो सूत्र ६, ७, ८)
निर्दिष्टम् ॥	=कहे गये है
तत् ॥ अनन्तरम् ॥ सम्यग्ज्ञानम् ॥ विचार	=तिस (सम्यग्दर्शन) के निकट वा समीप सम्यग्ज्ञान (है सो) विचारने
अर्हम् ॥ इति* आह॥	=योग्य है। सो (आचार्य] इसप्रकार कहते हैं कि

(*) व्यतिकीर्णवस्तुव्यावृत्ति हेतुर्लक्षणम्

व्यतिकीर्ण-वस्तु-	=परस्पर वा आपसमे मिलीहुई (व्यतिकीर्ण) वस्तुओमे
व्यावृत्ति-हेतुः ॥ लक्षणम् ॥	=जो उनके भेद करानेमे (व्यावृत्ति) हेतु है सो लक्षण है

॥ मतिश्रुतावधिमनः पर्ययकेवलानि ज्ञानम् ॥ ९ ॥

मति-श्रुत-अवधि-मनः पर्यय-केवलानि॥॥ ज्ञानम्॥॥ = मति-श्रुत-अवधि-मनः पर्यय और केवल ऐसे ज्ञान (पांच प्रकार) है अर्थात् (१) जो पांच इन्द्रियों से और मनसे पदार्थ को जाने सो मति ज्ञान है, (२) मति ज्ञानके द्वारा जाने हुये पदार्थ की सहायतासे उसी पदार्थ के भेदोंको वा अन्य पदार्थों को जाने सो श्रुतज्ञान है। इसका लक्षण अन्य प्रकारसे भी है ॥ (३) क्षेत्रकाल भाव तथा द्रव्यकी मर्यादालिये रूपी पदार्थ को प्रत्यक्ष रूपसे जाने सो अवधि ज्ञान है (४) अन्यके मनमें तिष्ठे हुए रूपी पदार्थोंको प्रत्यक्ष जाने सो मनःपर्यय ज्ञान है (५) समस्त द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावको प्रत्यक्ष रूप से जानै अर्थात् भूत-भविष्यत वर्तमानमे होनेवाली पदार्थोंकी समस्त पर्यायोंको एकही समयमें जाने सो केवल ज्ञान है ॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस सूत्र पर सर्वार्थ सिद्धि बृत्तिका शब्दशः हिंदी अनुवाद ।

(१) दिगंबर आम्नायमे किसी किसी पुस्तकमें "मनःपर्य्यय" पाठ है और किसी किसीमे "मनःपर्यय" है। श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमे "मनःपर्याय" मन पर्यय अथवा मनः पर्य्ययके स्थानमे है। शेष पाठ इस सूत्रका दोनो सम्प्रदायोंमें एक है। अर्थ भी दिगम्बर आम्नाय और श्वेताम्बर आम्नाय में एकसा है। मनः पर्याय और मन पर्यय दोनोका एक अर्थ है। मनः पर्यय और मनः पर्य्यय दोनो ठीक है क्योकि किसी शब्दमें र् अथवा ह् से प्रथम कोई स्वर आवै और (र् वा ह् के) पश्चात् ह् को छोडकर कोई व्यंजन आवे तो वह व्यंजन विकल्पकरि अर्थात् लेखक की इच्छानुसार अष्टाध्यायी अध्याय ८ पाद ४ सूत्र ४६ (अचो रहाभ्यां द्वे = अचो रहोभ्याँ द्वे वा) से द्वित्व होजाता है- चाहे उस व्यंजन को दुहरा करदो चाहै न दुहराओ। जैसे अर्क वा अर्क्क-मर्क वा मर्क्क-धर्म वा धर्म्म-कर्म वा कर्म्म ब्रहमा वा ब्रहम्मा-अपहनुते वा अपहन्नुते। ऐसेही सूर्य वा सूर्य्य-मनः पर्यय वा मनः पर्य्यय दोनो ही ठीक और शुद्ध है ॥ (२) यहां ज्ञान शब्द के साथ सम्यक् शब्दकी अनुवृत्ति है (पृष्ठ ३४२)

ज्ञानशब्दः प्रत्येकं परिसमाप्यते । मतिज्ञानं श्रुतज्ञानं अवधिज्ञानं मनःपर्ययज्ञानं केवलज्ञानमिति ॥ इन्द्रियैर्मनसा च यथास्वमर्थान्मन्यते अनया मनुते मननमात्रं वा मतिः ॥

ज्ञानशब्दः १। प्रत्येकम् १।।।	=ज्ञानशब्द प्रत्येक (मति-श्रुत-अवधि-मनःपर्यय-केवल) को
परिसमाप्यते T मतिज्ञानम् १।।। श्रुतज्ञानम् १।।।	=लगाया गया है। (तब) मतिज्ञान-श्रुतज्ञान
अवधिज्ञानम् १।।। मनः पर्ययज्ञानम् १।।।	=अवधिज्ञान-मनःपर्ययज्ञान-
केवलज्ञानम् १।।। इति*इन्द्रियैः ३।।। मनसा ३।।। च	=केवल ज्ञान ऐसे हैं। पांच इन्द्रियोंकरि और (=च) मनकरि
यथास्वम्*अर्थात् २। मन्यते T	=अपनी (शक्ति) के अनुकूल (=यथास्वम्) पदार्थोंको जानता है अर्थात् पांच इन्द्रियोकरि और मनकरि अपने योग्य देश में स्थित वर्तमान पदार्थ को जो पहचानता है वा जानता है सो मतिज्ञान है
अनया ३।। मनुते T	=(अथवा) जिसकरि जानता (है=मनुते)
वा*मननमात्रम् १।।। मतिः १।।	=(सो मतिज्ञान है) वा जानने मात्र मतिज्ञान है ॥

[१] परिसमाप्यते यह शब्द आप् (=प्राप्त होना) स्वादि पांचवें गणके परस्मैपद धातुमे परि और सम् उपसर्ग लगाने से और 'य'कर्मणि प्रधान प्रत्यय और ते अन्य पुरुष, वर्तमानकाल; आत्मनेपद-एकवचनके प्रत्ययको जोड़कर ऐसे वना लेते है कि परि+सम्-आप्+य+ते = परिसमाप्यते

(२) मन्यते-मन = जानना, दिवादि चतुर्थगणके आत्मनेपदी, सकर्मक, अनिट् धातुमे य चतुर्थगणका विकरण जोड़कर मन्य बना लिया पश्चात् ते वर्तमानकालका एकवचन अन्य पुरुष, आत्मनेपदी प्रत्यय जोड़नेसे (मन्य+ते) मन्यते (=जानता है) वनगया ॥

(३) मनुते-मन्= जानना, (यहाँपर) तनादि आठवें गणका आत्मनेपदी, सकर्मक सेट् धातुमें उ आठमें गणका विकरण जोड़नेसे (मन्+उ)=मनु वनगया पीछे, ते वर्तमान कालका एकवचन, अन्यपुरुष, आत्मनेपदी प्रत्यय, जोड़ने से मनुते (=जानता है) वनगया ॥ मानयते-मन्= अहंकार करना चुरादि दशवें गणका आत्मनेपदी अकर्मक सेट् धातु है। इस गणके अय विकरण धातुमें लगाने से पहिले अन्तके स्वर और उपान्त अ की वृद्धि सज्ञा होजाती है अत मान्+अय् प्राप्त हुआ, ते उक्त आत्मनेपदी वर्तमानकालकरि मानयते हुआ ॥ मनति-मन्भ्वादि प्रथमगणका धातुपूजा करने के अर्थ मे सकर्मक परस्मैपद है। और अहंकार करने के अर्थ में अकर्मक भ्वादिगण परस्मैपद है ॥

तदावरणक्षयोपशमे सति निरूप्यमाणं श्रुयते अनेनेति तत् श्रृणोति श्रवणमात्रं वा श्रुतम् ॥ अनयोः प्रत्यासन्ननिर्देशः कृतः कार्यकारणभावात् । तथा च वक्ष्यते "श्रुतं मतिपूर्वमिति" ॥

तद्-आवरण-क्षयोपशमे ७। सति ७।	=उस (श्रुत ज्ञान) आवरणीयकर्मके क्षयोपशम होने पर (=सति)
निरूप्यमाणम् १।। अनेन ३।। श्रुयते T इति※	=कथित वस्तु का नाम (=निरूप्यमाणं) जिससे सुनकरि जाना जाता है ऐसा (श्रुतज्ञान) है।
तत् २।। श्रृणोति T	=वा उस (निरूप्यमाण वस्तु) को (=तत) सुनकरि जानता है (वो श्रुतज्ञान है)
वा※ श्रवणमात्रं १।। श्रुतम् १।।	=अथवा (=वा) जो सुनकरि जानने मात्र (सो) श्रुतज्ञान है ॥
कार्य-कारण-भावात् ५।	=(दोनों मतिज्ञान-और श्रुतज्ञान का आपस में) कार्य-कारणभाव होने से
अनयोः ६।। प्रत्यासन्न-निर्देशः १। कृतः १।	=इन दोनों(मतिज्ञान और श्रुतज्ञानों) का अति निकट उपदेश किया गया है॥ अर्थात् मतिज्ञान कारणरूप है और श्रुतज्ञान कार्यरूप है।
तथा च※ वक्ष्यते T	=जैसा कि (=तथा च-आगे इसी अध्याय के बीसवां सूत्र में) कहेगे (टिप्पणी पृष्ठ ४१)
श्रुतम् १।। मतिपूर्वम् १।। इति※	=श्रुतज्ञान मतिज्ञान पूर्वक होता है-श्रुतज्ञान मतिज्ञान के पश्चात् होता है। अर्थात् श्रुत ज्ञान के उत्पन्न होने को मतिज्ञान कारण है। और श्रुतज्ञान कार्य है

(१) सति—यथार्थमें सत् शब्द त्रिलिंगी है। यहां पर क्षयोपशमे सप्तमी विभक्ति एक वचन पुल्लिंगमे है अतः सति शब्द भी सप्तमी एकवचन पुल्लिंगमें ही है। यहाँ पर विद्यमानता अर्थमे है। सदाचारी, पूज्य, बहुत उत्तम, यथार्थ, ठीक) सच इन अर्थोंमे भी आता है (देखो टिप्पणी पृष्ठ ८२) ब्रह्म (न०) पद्मचन्द्रकोष पृष्ठ ४०९ जैसे ओ३म् तत्सत् =मंगल मय (=ओ३म्) वह (=तत) ब्रह्म (=सत्)

(२) श्रु—भ्वादि प्रथम गणका परस्मैपदी जाना वा हिलना अर्थ मे आता है। इस गणके धातु का अंतिम स्वर और धातु का उपान्त ह्रस्व प्रथमगण के विकरण अके पहिले पहिले गुण संज्ञा को प्राप्त हो जाता है। अतः श्रु = श्रो, श्रो = श्रव्+अ (विकरण जोड़कर टिप्पणी पृष्ठ १३ द्वारा) =श्रवति, अन्य पुरुष एक वचन परस्मैपद वर्तमानकाल का ति प्रत्यय जोड़ने से श्रव+ति=श्रवति (जाताहै) वन गया॥ यदि श्नु =नु, विकरण स्वादि पांचवां गण का श्रु धातु में जोडा जावे तो यह धातु पॉचवा स्वादि गणका हो जाता है और श्रु का श्रृ हो जाता है। श्रृ+णु (=नु) देखो टिप्पणी पृष्ठ ५४॥ श्रृणु = श्रृणो (पृष्ठ ५६) उक्त, ति जोड़ो = श्रृणोति = सुनकरि जानता है। श्रुव.श्रृव ३ १-७४ यह सूत्र, ६७ व ६८ व ७३ सूत्रों से अनुवर्त्तियो द्वारा श्रुवः ६ श्रृ १ च (सार्वधातुके कर्त्तरि श्नुः) श्रुः के स्थान में श्रृ हो और उसके पश्चात् श्नु विकरण हो यदि कर्त्ता में सार्व धातुक प्रत्यय परे हो तो

अवाग्धानादवच्छिन्नविषयाद्वा अवधिः ॥

	(अवधिज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशमसे द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावकी मर्यादासे)
अवाग्-धानात् ५। वा* अवच्छिन्न-	=पुद्गलको (प्रत्यक्षपने करि) जाननेसे अथवा रूपी पदार्थ (=अवच्छिन)
विषयात् ५। अवधिः १।	=(जिसका) विषय होने (के हेतु) से अवधि (ज्ञान कहाता) है । अर्थात् मर्यादा लिये हुये रूपी पदार्थ को जो प्रत्यक्षपनेसे जाने सो अवधिज्ञान है ॥

(१)अवाग्-यथार्थमे वाच् शब्द है। अ जोडनेसे अ+वाच् (=अवाक्=अवाग् देखो टिप्पणी १४, १५) वचन वा बोल रहित अर्थात् जड़ पदार्थ वा पुद्गल है।
अवायन्ति व्रजन्तित्यवायाः पुद्गलाः । तान् दधातिजानातात्यवधिः अवाग्धाना,पुद्गल परिज्ञानादित्यर्थः ॥

अवायन्ति T व्रजन्ति T इति अवायाः १। पुद्गलाः १।	=नही वोलते है (वा नहीं) हिलते चलते हैं ऐसे वचन वर्जित जड वस्तु है ॥
तान् २। दधाति T जानाति T इ ति* अवधिः १।	= तिन (पुद्गलो) को ग्रहण करता है जानता है ऐसा अवधि (ज्ञान) है ॥
अवाग्धानात् ५। पुद्गल-परिज्ञानात् ५॥। इति अर्थः १।	=* वाग्धानात् (वाक्य)से जड पदार्थका विशेषरूप ज्ञानसे अभिप्राय है ॥

(२) द्रव्य क्षेत्रकाल भावै नियतत्वेनावधीयते नियम्यते प्रमीयते परिच्छिद्यत् (ते) इत्यर्थः ॥

द्रव्य-क्षेत्र-कालभावैः ३। नियत त्वेन ३॥। अवधीयते T	=द्रव्य-क्षेत्र-काल भावसे मर्यादाकरि सीमाकिया गया है
नियम्यते T प्रमीयते T परिच्छिद्यते T	= नियम किया गया है परिमित किया गया है विशेष रूप से सीमा किया गया है ॥
इति*अर्थः	= इस प्रकार अभिप्राय है

(३) अवधानं अवधिः। कोऽर्थः । अधस्ताद्बहुतर विषय ग्रहणादवधिरुच्यते । देवाः खलु अवधिज्ञानेन सप्तम नरक पर्यन्तं पश्यन्ति । उपरिस्तोक पश्यन्ति । निजविमानध्वजदण्डपर्यन्तमित्यर्थः ॥ अवच्छिन्न विषत्वादवधिः । कोऽर्थः रूपित लक्षणविषयत्वादवधि

अवधानम् १॥।	= अवधान अर्थात् प्राय नीचले वा पाताल का (=अव)(विषयोंका)ग्रहणं(= धान)है ।
अवधिः १। कः १। अर्थः १। अधस्तात्*बहुतर	= सो अवधि है । (इस वाक्य से) क्या अभिप्राय है । नीचले वा पाताल के अधिकतर
विषय-ग्रहणात् ५॥। अवधिः १। उच्यते T देवाः १।	=विषय ग्रहण करनेसे अवधि कहा गया है । देव
खलु*अवधिज्ञानेन ३॥। सप्तम-नरक-पर्यन्तम् २।	= निश्चयकरि (=खलु) अवधिज्ञान से सातवां नरक तक

स्वपरमनोभिर्व्यपदिश्यते । यथा अभ्रे चन्द्रमसं पश्येति ॥ बाह्येनाभ्यन्तरेण च तपसा यदर्थमर्थिनो मार्गं केवन्ते सेवन्ते तत्केवलम् । असहायमिति वा ॥

स्व-पर-मनोभिः ३।।। व्यपदिश्यते T =अपने और परके मनों (की अपेक्षा) करि निर्देश किया गया है । अर्थात् इसकी मनःपर्ययज्ञान संज्ञा इस हेतुसे रक्खी है कि इसमें अपने और परके मनकी अपेक्षा मात्र है नकि मतिज्ञानकी भांति इसमें (इन्द्रिय और) मनके द्वारा रूपीपदार्थका ज्ञान होता है ॥

यथा* अभ्रे ७। चन्द्रमसम् २। पश्यति T इति* =जैसे बादलमें चंद्रमाको देख अर्थात् जैसे इस वाक्यमें बादल शब्द केवल अपेक्षामात्र लाये हैं चंद्रमा बादलसे उत्पन्न नहीं हुआ है तैसे मनः पर्यय वाक्यमें मन शब्द अपेक्षामात्र है मनः पर्ययज्ञान मनद्वारा उत्पन्न नहीं हुआ है ॥

बाह्येन ३।।। अभ्यन्तरेण ३।।। च* तपसा ३।।। यद्-अर्थम् २। =बाह्य और (=च) अंतरंग तपकरि जिस वस्तुको (=यद् अर्थम्)

मार्गम २। अर्थिनः १। केवन्ते T सेवन्ते T =जिस पथको तपस्वी उपासना करते हैं (केवन्ते=सेवन्ते) सेवन करते हैं

तत् १।।। केवलम् १।। वा* असहायम् १।। इति* =सो (तत्) केवल (ज्ञान) है अथवा (यह केवल ज्ञान) असहाय ऐसा है बाह्य किसीका सहाय नहीं चाहता है अर्थात् जैसे मतिज्ञान और श्रुतज्ञान इन्द्रियों और प्रकाशादिककी सहायतासे पदार्थको जानते हैं तैसे यह ज्ञान नहीं है तथा अवधि ज्ञान और मनः पर्यय ज्ञान अपनी अपनी उत्पत्तिमें यथासंख्य अवधिज्ञानावरण और मनः पर्यय ज्ञानावरण कर्मकी अपेक्षा रखते हैं वैसे भी केवल ज्ञान नहीं है यह ज्ञान एकमात्र आत्मासे ही प्रवर्तता है इसीसे इसको केवल (ज्ञान) कहते हैं ॥

व्यपदिश्यते—यह शब्द दिश् तुदादि छठेगणके उभय परस्मैपद और आत्मनेपद सकर्मक अनिट् धातुसे वि और अप उपसर्ग जोड़नेसे वि+अप+दिश् रूप बना यत् कर्मणि प्रत्यय जोड़कर और ते अन्यपुरुष, एकवचन, वर्तमानकाल, आत्मनेपदी प्रत्ययको जोड़नेसे व्यपदिश्यते बनालिया ॥ केवृ धातु जिसका अर्थ सेवा करना है "केवल" शब्द निकला है ॥

तदन्ते प्राप्यते इति अन्ते क्रियते । तस्य प्रत्यासन्नत्वात्तत्समीपे मनः पर्ययग्रहणम् । कुतः प्रत्यासत्तिः ? । संयमैकाधिकरणत्वात । तस्य अवधिर्विप्रकृष्टः । कुतः ! विप्रकृष्टंतरत्वात ॥

तत् ;।।। अन्ते ;। प्राप्यतेT इति* अन्ते ;। क्रियतेT	=वो (केवलज्ञान) अन्तमें प्राप्त किया जाता है सो इस (सूत्रके) अन्तमें लाया गया है
तस्य ;।।। प्रत्यासन्नत्वात् ;।।। तत्-समीपे ;	=तिस (केवलज्ञान) के निकट उत्पन्न होनेसे उस (केवलज्ञान) के पास में
मनः पर्यय-ग्रहणम् ;।।। कुतः*	=मनः पर्यय (ज्ञान) का ग्रहण है । (प्रश्न) कहांसे (=कुतः) वा क्योंकर (कुतः)
प्रत्यासत्तिः ;।। एक -	=(मनः पर्यय ज्ञान केवल ज्ञानके) अति निकट है । केवल (=एक)
संयम-अधिकरणत्वात् ;।।।	=संयमके आश्रयपना से (मनः पर्ययज्ञान केवल ज्ञानके अति निकट) है अर्थात् मनः पर्ययज्ञान और केवलज्ञान ये दोनों संयमी मुनिके होते हैं अतः मनः पर्ययज्ञानको संयमकी अपेक्षा से केवल ज्ञानकी निकटता प्राप्त है
तस्य ;।।। अवधिः ;। विप्रकृष्टः ;।	=तिस (केवलज्ञान) के अवधिज्ञान दूर है (अतः इसको मनः पर्ययज्ञानके समीप कहा)
कुतः *	=(प्रश्न केवलज्ञान से अवधिज्ञान) क्योंकर (=कुतः) (दूर है — उत्तर)
विप्रकृष्टंतरत्वात् ;।।।	=क्योंकि (केवलज्ञानकी अपेक्षासे) दूरवर्ती (तीनज्ञानों)मेंसे (यह अवधिज्ञान) एक है

(१) केवलज्ञानापेक्षया विप्रकृष्टेषु मतिश्रुतावधिष्वन्यतमत्वात् ॥

केवलज्ञान-अपेक्षया ;।। विप्रकृष्टेषु ;। मति-श्रुत-	=क्योंकि केवलज्ञानकी अपेक्षा से दूरवर्ती मतिज्ञान श्रुतज्ञान
अवधिषु ;। अन्यतमत्वात ;।।।	=अवधिज्ञानों में से (यह अवधिज्ञान एक है)

(२) 'तस्य' = 'केवलज्ञानस्य' के लिये आया है क्योंकि यदि मनः पर्ययज्ञानके लिये आता तो वृत्तिकर्ता प्रत्यासत्ति वा इसी अर्थका कोई शब्द देते

(२) "समीपे" त्रिलिंगी शब्द है यहाँ पर इसको सप्तमी एक वचन पुल्लिंग में या सप्तमी एकवचन नपुंसक लिंग में मान सकते हैं ।

प्रत्यक्षात्परोक्षं पूर्वमुक्तं सुगमत्वात् । श्रुतपरिचितानुभूता हि मतिश्रुतपद्धतिः सर्वेण प्राणिगणेन प्रायः प्राप्यते यतः ॥ एवमेतत्पञ्चविधं ज्ञानम् ॥ तद्भेदादयश्च पुरस्ताद्वक्ष्यन्ते ॥ प्रमाणनयैरधिगम इत्युक्तम् । प्रमाणं च केषाञ्चित् ज्ञानमभितम् । केषाञ्चित् सन्निकर्षः ।

प्रत्यक्षात् ।।। परोक्षम् ।।।	=प्रत्यक्ष (अवधि-मनःपर्यय-केवलज्ञानों)से परोक्ष (मति-श्रुतज्ञान)
सुगमत्वात् ।।। पूर्वम् ।।। उक्तम् ।।।	=स्पष्ट वा सुगमहोने (के हेतु) से (इस नवमें सूत्रमें) प्रथम कहेगये हैं
यतः श्रुत-परिचिता-अनुभूता ।।। हि॰	=क्योंकि (=यतः) श्रुतकरि जानागया (=परिचिता) और अनुभवकियागया ही।
मति-श्रुतपद्धतिः ।।। सर्वेण ।। प्राणि-गणेन ।। प्रायस्॰ प्राप्यते T	=मतिज्ञान और श्रुतज्ञानका मार्ग (=पद्धति) सबजीवोंके समूहद्वारा बहुधा =प्राप्त किया जाता है। भावार्थ मति-श्रुतज्ञान परिचय किये जाते हैं, अनुभवमें आते हैं इसकी पद्धति सुनी जाती है समस्त प्राणियोंके बाहुल्यपनेकरि वा बहुतायतकरि पायेजाते हैं और (मतिज्ञान-श्रुतज्ञान) सुगम है अतः ये दोनों परोक्षज्ञान तीन प्रत्यक्ष ज्ञानोंसे पहिले कहे हैं
एवम् एतत् ।।। पञ्च-विधम् ।।। ज्ञानम् ।।। च तद्-भेद आदयः ।। पुरस्तात्॰वक्ष्यन्ते T	=इस प्रकार यह पांच भांति ज्ञान है। और उस (=तद्-ज्ञान) के =भेद आदिक आगे कहे जायंगे ॥
प्रमाण-नयैः ।।	=(सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र और जीव-अजीवादि सात तत्वों का) प्रमाण-नयोंसे
अधिगमः ।। इति॰उक्तम् ।।।	=ज्ञान होताहै ऐसा (सूत्र ६ में) कहागया है
प्रमाणम् ।।। च॰केषाञ्चित्॰ज्ञानम् ।।। अभिमतम् ।।।	=और(=च) कितेककरि प्रमाण ज्ञान माना गया है (अभिमतम्)
केषाञ्चित्॰सन्निकर्षः ।।	= कितेकके (प्रमाण) सन्निकर्ष (मानागया है) अर्थात् कितेक मताचार्य विषय और इन्द्रियका सम्बन्ध वा व्यापार को प्रमाण मानते हैं

(१) श्रुतपरिचितानुभूता = श्रुतेन परिचिता सा चानुभूता च = श्रुतेन परिचिता सा च अनुभूता च
श्रुतेन ।।। परिचिता ।।। सा ।।, च॰अनुभूता ।। च॰ =जो श्रुतकरि जानाजाता है,और अनुभव कियाजाता है सो श्रुतपरिचितानुभूत है
(२) सौगतानाम् =सुगत बुद्धदेवके मानने वालोंके (३) यौगानाम् = योगमतवालोंके

केषांञ्चिदिन्द्रियमिति । अतोऽधिकृतानामेव मत्यादीनां प्रमाणत्वख्यापनार्थमाह–

॥ तत्प्रमाणे ॥१०॥

तद्वचनं किमर्थं ? प्रमाणान्तरपरिकल्पनानिवृत्त्यर्थम् । सन्निकर्षः प्रमाणमिन्द्रियं प्रमाणमिति केचित्कल्पयन्ति

केषांञ्चित्* इन्द्रियम् ;॥ इति*	=केतेकके इन्द्रिय ऐसे (प्रमाण माना गया) है—इस सबका भावार्थ है कि सुगत (बुद्धदेव) के माननेवाले ज्ञानको प्रमाण मानते हैं और योग मत वाले इन्द्रिय और पदार्थका जोड़रूप संनिकर्षको प्रमाण मानते हैं और सांख्य मत वाले इन्द्रियोको प्रमाण मानते हैं । इत्यादि ज्ञानके संबन्धमें भिन्न भिन्न मतावलम्बियोंकी भिन्न भिन्न अनेक कल्पनायें हैं
अतः* अधिकृतानाम् ;।	=इस हेतुसे (=अतः) अधिकार कियेगये वा प्रकरणमें लायेगये
मति-आदीनाम् ;। एव*	=मति-श्रुत-अवधि-मनः पर्यय-केवलज्ञानोंके ही (=एव)
प्रमाणत्व-ख्यापन-अर्थम् ;॥ आह T	=प्रमाणताकीप्रसिद्धिके लिये कहते हैं कि
	॥ तत्प्रमाणे ॥१०॥
तत्-	=वे (मतिज्ञान श्रुतज्ञान-अवधिज्ञान-मनः पर्ययज्ञान और केवलज्ञान)
प्रमाणे ;॥	=दो (परोक्ष और प्रत्यक्ष) प्रमाण हैं । उन ज्ञानोंको ही प्रमाण संज्ञा है । अर्थात् उपर्युक्त पांच ज्ञान ही दो प्रत्यक्ष और परोक्ष प्रमाण है । अन्य प्रकार नहीं है ॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित इस सूत्रपर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दशः हिंदी अनुवाद ॥

तद्-वचनम् ;॥ किमर्थम् ;॥	=तद् पद (इस दशमें सूत्रमें) किस लिये है ? ॥
प्रमाणान्तर-परिकल्पना-निवृत्ति-अर्थम् ;॥	=(इस सूत्रमें तद् पद) दूसरे दूसरे प्रमाणोकी अनेक कल्पनाओंके निषेध करनेके लिये है
सन्निकर्षः ;। प्रमाणम् ;॥ इन्द्रियम् ;॥ प्रमाणम् ;॥	=सन्निकर्ष प्रमाण (अर्थात् इन्द्रिय और पदार्थोंका संबन्ध) और इन्द्रिय प्रमाण
इति* केचित्* कल्पयन्ति T	=ऐसे कितेक (मतधारी) कल्पना करते हैं

(१) दोनो श्वेताम्बर और दिगम्बर आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है ॥ (१) सांख्यानाम् = सांख्यमतवालोंके ॥

तन्निवृत्यर्थं तादित्युच्यते। तदेव मत्यादि प्रमाणं नान्यदिति ॥ अथ सन्निकर्षप्रमाणे सति इन्द्रिये वा को दोषः? यदि सन्निकर्षः प्रमाणं, सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टानामर्थानामग्रहणप्रसंगः। नहि ते इन्द्रियैः सन्निकृष्यन्ते। अतःसर्वज्ञत्वाभावः स्यात् ॥ इन्द्रियमपि यदि प्रमाणं, स एव दोषः। अल्पविषयत्वात् चक्षुरादीनां। ज्ञेयस्य चापरिमाणत्वात्। सर्वेन्द्रियसन्निकर्षाभावश्च चक्षुर्मनसोः प्राप्यकारित्वाभावात्।

तद्-निवृत्ति-अर्थम् ४।।। तद्-इति*	=उन (सन्निकर्ष प्रमाण और इन्द्रिय प्रमाणादि) के निषेध के लिये तद् ऐसा शब्द
उच्यते T तद् १।।। एव मति-आदि १।।। प्रमाणम् १।।।	=कहागया है। वोही (= एव) मतिज्ञान आदिक ज्ञान प्रमाण है।
न*अन्यत्*इति अथ*सन्निकर्ष-प्रमाणे ७।।। सति ७।।।	=दूसरा कोई प्रमाण नहीं है। अथ (- अथ) सन्निकर्ष के प्रमाण होने पर
वा*इन्द्रिये ७।।। कः १। दोषः १।? यदि*सन्निकर्ष १।	=अथवा इन्द्रिय (प्रमाण) मानने में क्या दूषण है? जो (=यदि) सन्निकर्ष
प्रमाणम् १।।। सूक्ष्म–	=प्रमाण हो तो सूक्ष्मपदार्थ (परमाणु आदिक) निका
व्यवहित--	=अन्तरित वा पहिले (=व्यवहित) पदार्थ (राम-रावणादिकों का)
विप्रकृष्टानाम् ६। अर्थानाम् ६।	= दूरवर्ती पदार्थ (मेरु-पर्वतादिक) निके (सन्निकर्षको प्रमाण माननेमें)
अग्रहण-प्रसङ्गः १।	=ग्रहण का अवसर नहीं आता है। क्योंकि
ते १। इन्द्रियैः ३।।। न*हि*	=वे (सूक्ष्म पदार्थ-अन्तरितपदार्थ-दूरवर्ती पदार्थ) इन्द्रियों द्वारा नहीं
सन्निकृष्यन्ते T अतः सर्वज्ञत्व-अभावः १। स्यात् T	=सन्निकर्ष वा स्पर्श किये जासकते हैं ॥ इसलिये सर्वज्ञपना का अभाव होगा (क्योंकि सन्निकर्ष जब प्रमाण होगा, वही प्रमाण सर्वज्ञके मानना पड़ैगा, सन्निकर्ष सूक्ष्म अन्तरित-दूरीवर्ती पदार्थों को जानता नहीं अतः सर्वज्ञभी न जान सकैगा अतः असर्वज्ञत्व हुआ)
इन्द्रियम् १।।। अपि* प्रमाणम् १।।।	=इन्द्रिय प्रमाण होतो भी (वही असर्वज्ञताका दूषण आता है)
चक्षुष्-आदीनां ६। अल्प-विषयत्वात् ५।।। च ज्ञेयस्य ६।।।	=क्योंकि नेत्र आदिका थोड़ा विषय होने (के हेतु)से व-ज्ञानके ग्रहण करने योग्य पदार्थोंका
अपरिमाणत्वात् ५।।। सः १। एव*दोषः १।	=अपरिमित होनेसे (वा अनन्त होनेसे) वो (=स) एव (=ही) दोष (असर्वज्ञत्वका) आता है (असर्वज्ञताका दोष होनेके अतिरिक्त यह बात भी कि)
चक्षुष्-मनसोः ६।।। प्राप्यकारित्व-अभावात् ५।	=नेत्र मनके पदार्थोंको प्राप्त होनेके अभावसे (=वस्तुओंके साथ भिड़न न होनेपरभी ग्रहण)
सर्व-इन्द्रिय-सन्निकर्ष-अभावः १। च*	=समस्त (ही) इन्द्रियों कें पदार्थसे स्पर्शन वा सन्निकर्ष भी (=च) नहीं है।

अप्राप्यकारित्वं च उत्तरत्र वक्ष्यते ॥ यदि ज्ञानं प्रमाणं, फलाभावः । अधिगमो हि फलमिष्टं न भावान्तरम् । स चेत्प्रमाणं, न तस्यान्यत्फलं भवितुमर्हति । फलवता च प्रमाणेन भवितव्यम् ॥

सारांशः—इन्द्रियको प्रमाण मानै तो (१) इंद्रियोंका विषय अल्प और परिमित है । ज्ञेय पदार्थ अनंत और अपरमित हैं अतः असर्वज्ञता दोप आता है (२) सन्निकर्षको प्रमाण मानैं तो अंतरित-सूक्ष्म-दूरवर्ती पदार्थोंका इन्द्रियद्वारा सन्निकर्ष न होनेसे असर्वज्ञता दोप आता है (३) नेत्र और मन (पदार्थके साथ) भिड़न न होने से नेत्र और मनके साथ सन्निकर्ष नहीं बनता ॥

अप्राप्यकारित्वं ;॥ च*	=और(नेत्र तथा मनको) अप्राप्यकारित्व (वस्तुओंके साथ भिड़न न होनेमें भी ग्रहण)
उत्तरत्र* वक्ष्यते T	=आगे (उन्नीसवां सूत्र " न चक्षुरनिन्द्रियाभ्याम्" में) कहा जायगा
यदि* ज्ञानं ;॥ प्रमाणं ;॥ फल-अभावः ;। हि*	=(प्रश्न) जो ज्ञान प्रमाण होगा तो फलका अस्तित्व नहीं होगा क्योंकि =हि)
अधिगमः ;। फलम् ;॥ इष्टं ;॥ न*	=ज्ञान वा अधिगम ही प्रमाणका फल है नकि
भावान्तरम् ;॥ सः ;। चेत्* प्रमाणं ;॥	=अन्यवस्तु भावान्तर (वांछित फल) है यदि (=चेत्) अधिगम (=सः) प्रमाण हो तो
तस्य ;। अन्यत्* फलम् ;॥ भवितुम्-न अर्हति T	=तिस (अधिगम) का दूसरा फल होनेको (=भवितुम्) समर्थ नहीं है
फलवता ;॥ च* प्रमाणेन ;॥ भवितव्यम् ;॥	=(अधिगमका अन्यफल नहीं हो सक्ता है) और प्रमाण फलसहित होना चाहिये

(१) न चक्षुर निन्द्रियाभ्यामिति सूत्र व्याख्यानावसरे ॥	=(व्यञ्जनस्य-अवग्रहः) न चक्षुस्-अनिन्द्रियाभ्याम् इति सूत्र-व्याख्यान-अवसरे
(व्यञ्जनस्य ;॥ अवग्रह ;।) चक्षुस्—	=(अप्रगटरूप शब्दादिक पदार्थोंका अवग्रहरूप ज्ञान) नेत्र और
अनिन्द्रियाभ्याम् ;॥ न*	=मनसे नहीं होता है । इसलिये उनका ईहा आवाय धारणारूप ज्ञान भी नहीं हो सक्ता है क्योंकि जिस पदार्थका अवग्रह नहीं होता है उसके ईहादि भी नहीं होते हैं
	अन्य (चार स्पर्शन-रसन-घ्राण श्रोत्र) इन्द्रियोसे व्यंजन (अप्रगटरूप वस्तुओं) का केवल मात्र अवग्रहरूप ज्ञान ही होता है । ईहा आवाय-धारणनहीं होता है ।
इति* सूत्र-व्याख्यान-अवसरे ;।	=इस प्रकार (उपर्युक्त) सूत्रके अवसर पर " अप्राप्यकारित्वे " कहा है ॥

सन्निकर्षे इन्द्रिये वा प्रमाणे सति, अधिगमः फलमर्थान्तरभूतं युज्यते इति तदयुक्तम् ॥ यदि सन्निकर्षः प्रमाणं, अर्थाधिगमः फलं, तस्य द्विष्ठत्वात्तत्फलेनाधिगमेनापि द्विष्ठेन भवितव्यमिति अर्थादीनामप्यधिगमः प्राप्नोति ।

भावार्थ यदि ज्ञानको प्रमाण मानोगे तो उस प्रमाणका कुछ फल नहीं होगा क्योंकि यदि अधिगम फल कहोगे तो ज्ञान-प्रमाण-अधिगम सब एकार्थवाची होनेसे कुछ फल वा लाभ नहीं है और प्रमाणका फल अवश्य होना ही चाहिये

सन्निकर्षे ७। इन्द्रिये ७॥। वा प्रमाणे ७॥। सति ७॥। अधिगमः १।	=सन्निकर्ष वा इन्द्रिय के प्रमाण होते संते अर्थका ज्ञान-वस्तु का ज्ञान
फलम् १॥। अर्थान्तर-	=(=अधिगम) (उस प्रमाण का फल है। जो (फल) पदार्थ वा द्रव्यसे भिन्नरूप (=अर्थान्तर)
भूतम् १॥। युज्यते T इति तद् १॥। अयुक्तम् १॥।	=हुआ (=भूतम्) ऐसा युक्त-उचित वा ठीक है। वो युक्त नहीं है ॥
यदि* सन्निकर्षः १। प्रमाणम् १॥। अर्थ-अधिगमः १।	=क्योंकि जो सन्निकर्ष प्रमाण हो (और) पदार्थ का ज्ञान (=अधिगम)-
फलम् १॥। तस्य ६।	=(उस सन्निकर्ष का वा ऐसे प्रमाण का) फल हो तो उस (सन्निकर्ष) के
द्विष्ठत्वात् ५॥।	=द्विष्ठपना से अर्थात् इन्द्रिय और स्पर्शे हुये पदार्थ दोनों में तिष्ठने से
तत्-फलेन ३॥। अधिगमेन ३। अपि*	=उस (सन्निकर्ष) का फल पदार्थ का ज्ञान भी
द्विष्ठेन ३। भवितव्यम् १॥।	=प्रमाता और प्रमेय (पदार्थ) दोनो को होना चाहिये (अर्थात् सन्निकर्ष द्विष्ठ होने के कारण प्रमेय को भी पदार्थ का ज्ञान होना चाहिये)
इति* अर्थादीनाम् ६। अपि* अधिगमः १।	=ऐसे पदार्थ आदिकों को भी (जो अचेतन हैं) अधिगम वा वस्तु का ज्ञान
प्राप्नोति T	=प्राप्त होता है। भावार्थ यह है कि सन्निकर्ष से पदार्थ का ज्ञान होता है और सन्निकर्ष इन्द्रिय और पदार्थ के जोड़ रूप है। तब उक्तपदार्थ का ज्ञान इस इन्द्रिय और पदार्थके जोड़रूपसे हुआ, इस प्रकार सन्निकर्ष वाले पदार्थ को भी अन्य पदार्थ का ज्ञान होना, यह दोषरूप है ॥ क्योंकि जड़ रूप पदार्थ को दूसरे पदार्थ का ज्ञान मानना दोषरूप है अतः सन्निकर्ष प्रमाण नहीं हो सक्ता ।

आत्मनश्चेतनत्वात्तत्रैव समवाय इति चेन्न । ज्ञस्वभावाभावे सर्वेषामचेतनत्वात् । ज्ञस्वभावाभ्युपगमे वा आत्मनः । स्वमतविरोधः स्यात् ॥

	(ऊपर यह सिद्ध किया है कि सन्निकर्षको प्रमाण माननेमें अन्य अचेतन पदार्थ के भी अर्थ का ज्ञान आता है इसके प्रत्युत्तरमें अन्यवादी कहता है कि)
आत्मनः ६। चेतनत्वात् ५। तत्र* एव* समवायः १।	=आत्माको चेतन होनेसे वहां (आत्मामें) ही (ज्ञानका) नित्यसंम्बन्ध (=समवाय) है (अन्य जड़ पदार्थ के वस्तुका ज्ञान नहीं होता है)
इति* चेत्* न*	=ऐसी युक्ति देने पर (=चेत्) (उत्तरमें कहते है कि यह तुम्हारी युक्ति ठीक) नहीं
ज्ञ-स्वभाव-अभावे ७। सर्वेषाम् ६।	=क्योंकि (आत्माके) ज्ञानस्वरूपताका अभाव होनेमें सब (आत्मा और अन्य पदार्थों) को
अचेतनत्वात् ५।। वा* आत्मनः ६। ज्ञस्वभाव-	=जड़ता (समानरूपसे आजाती) है। और (=वा) आत्माके ज्ञानस्वरूपत्व
अभ्युपगमे ७। स्व-	=मानने पर आप के (अर्थात् नैयायिकोंके)
मतविरधः १। स्यात् T	=सिद्धान्तका (कि गुण गुणीसे भिन्न है) विरोध हो जावैगा ॥

(१) नैयायिक लोग कहते है कि आत्मा चेतन होनेसे उसमें ज्ञानका नित्य संबंध वा समवाय रहता है इसलिये आत्माके अतिरिक्त जड़ पदार्थके ज्ञानका प्रसंग नहीं आसक्ता परंतु यह कथन उनका ठीक नहीं है क्योंकि उनके सिद्धान्त (मत)में किसी पदार्थको स्वय ज्ञानरूपता नहीं मानी है ऐसी अवस्थामें सर्व पदार्थ अचेतन ही ठहरते हैं तब आत्मामेंही ज्ञानका समवाय किस प्रकार कहा जा सक्ता है। यदि नैयायिक लोग आत्माको ज्ञानस्वरूप मानेंगे तो स्वयं उनके सिद्धान्त का (कि गुण सदैव गुणीसे भिन्न रहते है) व्याघात (नाश) हो जावेगा। क्योकि आत्माको यहांपर उन्होंने स्वयं ज्ञान गुणसे अभिन्न अङ्गीकार कर लिया है ॥ योग=सांख्य अर्थात् सांख्यमतवाले ॥ यौग=नैयायिक (मतवाले) ॥

ननु, चोक्तं, ज्ञाने प्रमाणे सति फलाभावः इति । नैष दोषः । अर्थाधिगमे प्रीतिदर्शनात् । ज्ञस्वभावस्यात्मनः कर्ममलीमसस्य करणालम्बनादार्थनिश्चये प्रीतिरुपजायते । सा फलमित्युच्यते । उपेक्षा अज्ञाननाशो वा फलम् ॥ रागद्वेषयोरप्रणिधानमुपेक्षा । अन्धकारकल्पाज्ञानाभावः अज्ञाननाशो वा फलमित्युच्यते ॥ प्रमिणोति प्रमीयतेऽनेन

ननु॰च॰उक्तम् ३॥	=पुनः प्रश्न कहा जाचुका है कि (अर्थात् शंकाकार कहता है कि मैं कहचुकाहूंकि)
ज्ञाने ७॥ प्रमाणे ७॥ सति ७॥ फल-अभावः १। इति॰	=ज्ञानको प्रमाण होने पर फलका अभाव होगा अर्थात् शंकाकार कहता है कि मैं पहले कह चुका हूं कि ज्ञान को प्रमाण मानने मे उसका कुछ भी फल न होगा (उत्तर)
एषः १ दोषः १। न॰अर्थ-अधिगमे ७। प्रीति-दर्शनात् ५॥	=यह दूषण नहीं है क्योकि पदार्थ के ज्ञानमें प्रीति उपजती है। (अर्थात्) पदार्थ का यथार्थ ज्ञान होने पर आनन्द(=प्रीति)और सन्तोष(=प्रीति)होता है यह आनन्द, संतोषही फलहै।
ज्ञ-स्वभावस्य ६। कर्ममलीमसस्य ६। आत्मनः ६। करण-	=ज्ञान स्वभाववाले कर्मकरि मलीन चेतनके इन्द्रियों के
आलम्बनात् ५। अर्थनिश्चये ७। प्रीतिः १॥ उपजायते T	=अवलम्बन वा आश्रयसे वस्तुके ज्ञानमें प्रीति उपजती है ॥
सा १॥ फल्यम् १॥ इति॰उच्यते T । उपेक्षा १॥	=सो (यह प्रीति उस प्रमाणका) फल है ऐसा कहा गया है । मध्यस्थ भाव (=उपेक्षा)
अज्ञान-नाशः १। वा ॰	=और (=वा) अज्ञानका लोप, अज्ञान का नाश (उस प्रमाणका क्रमसे दूसरा तीसरा)
फलम् १॥	=फल वा परिणाम है । (उपेक्षा और अज्ञाननाशका विवरण नीचेकी पंक्तियों में ऐसेहै)
राग-द्वेषयोः ७। अप्रणिधानम् १॥ उपेक्षा १॥	=रागद्वेष में प्रयत्न रहित मध्यस्थ स्वभावका वा उदासीन होना सो उपेक्षा है ।
अन्धकार-कल्पा १॥	=अन्धकार की प्रलय (=कल्पा अर्थात् अज्ञानका विलाना) अज्ञानका न होना
अज्ञान-अभावः १। अज्ञान नाशः १। वा॰	=अज्ञानका ध्वंस, अज्ञानका मिटजाना वा अज्ञानकी शून्यता
फलम् १॥ इति॰उच्यते T	=(प्रमाण का तीसरा) फल ऐसे कहागया है ।
	सारांश इस सबका यह है किप्रीति-उपेक्षा-अज्ञानका नाश ये तीन प्रमाण के फल हैं ।
प्रमिणोति T प्रमाणम् १॥	=(पदार्थ का) सच्चा ज्ञान करता है सो प्रमाण है (कर्तरि प्रयोग वा कर्तृ साधन है)
प्रमीयते T अनेन ३॥ प्रमाणम् १॥	=जिससे सच्चाज्ञान (वस्तुओं का) किया जाता है सो प्रमाण है । (यहां पर कर्मणि प्रयोग वा करण साधन हुआ)

प्रमितिमात्रं वा प्रमाणम् ॥ किमनेन प्रमीयते ? जीवादिरर्थः ॥ यदि जीवादेरधिगमे प्रमाणं, प्रमाणाधिगमे अन्यत्प्रमाणं परिकल्पयितव्यम्। तथा सत्यनवस्था। नानवस्था। प्रदीपवत् ॥ यथा घटादीना प्रकाशने प्रदीपो हेतुः, तत्स्वरूपप्रकाशनेऽपि स एव, न प्रकाशान्तरमस्य मृग्यं, तथा प्रमाणमपीति अवश्यं चैतदभ्युपगन्तव्यम् ॥ प्रमेयवत्प्रमाणस्य प्रमाणान्तरपरिकल्पनायां स्वाधिगमाभावात् स्मृत्यभावः।

वा* प्रमितिमात्रम् १।। प्रमाणम् १।।	=अथवा (पदार्थका) सच्चा ज्ञान मात्र ही प्रमाण है (यहां भावेप्रयोग वा भावसाधन वा क्रिया साधन हुआ)
किम् १।। अनेन ३।। प्रमीयते T जीव-आदिः १। अर्थः १।	=इस (प्रमाण) करि क्या ज्ञान कराया जाता है। (उत्तर) जीवादि पदार्थ (जाने जाते हैं)
यदि* जीव-आदेः६। अधिगमे७। प्रमाणम्१।। प्रमाण-	=यदि जीवादिक (पदार्थ) के ज्ञान (कराने) मे प्रमाण (हेतु) है तो प्रमाणके
अधिगमे७। अन्यत्१।। प्रमाणम्१।। परिकल्पयितव्यम्१।।	=ज्ञान (कराने) में भिन्न प्रमाण कल्पना करना चाहिये·
तथा* सति७। अनवस्था१।।	=तिस प्रकार (=तथा) होने पर अवस्थाका अभाव होगा (अर्थात् अनवस्था दोष आवेगा)
न* अनवस्था१।।	=(अथवा पूर्वोक्त तर्कका अन्त न होगा) (उत्तर) अनवस्था (दोष) न होगा
प्रदीपवत्* यथा* घट-आदीनाम्६।	=(क्योंकि) दीपक (के प्रकाश) के समान (अवस्था) है (अर्थात) जैसे घटादिकके
प्रकाशने ७। प्रदीपः १। हेतुः १। तत्-स्वरूप-प्रकाशने ७।	=प्रकाश करने मे दीपक (=प्रदीप) कारण है उस (दीपक) के रूप प्रकाशने मे
अपि* सः १। एव* अस्य ६।	=भी वह (दीपक) ही (कारण) है। इस (दीपक) के (=अस्य) (प्रकाशके लिये)
प्रकाशान्तरम् १।। न* मृग्यम् १।।	=अन्य प्रकाश (=प्रकाशान्तर) नही अन्वेषण किया जाता है (=न मग्यम्)
च* तथा* एतद् १।। प्रमाणम् १।। अपि अवश्यम् १।।	=और (=च) वैसेही (=तथा) यह (=एतद्) प्रमाण भी अवश्य
अभ्युपगन्तव्यम् १।। इति प्रमेय-	=(स्व परस्वरूपका प्रकाशक) मानना योग्य है। यदि प्रमेय(=सामान्य विशेषात्मकवस्तु)
वत* प्रमाणस्य ६।। प्रमाणान्तर-परिकल्पनायाम्७।।	=सदृश प्रमाण को अन्य प्रमाणकी (=प्रमाणान्तर) कल्पना करने पर
स्व-अधिगम-अभावात् ५। स्मृति-अभावः१।	=(प्रमाणके) अपना (स्वरूपके) जाननेके अभावसे स्मरणका अभाव होजावैगा।।३३५

तदभावादव्यवहारलोपः स्यात् ॥ वक्ष्यमाणभेदापेक्षया द्विवचननिर्देशः । वक्ष्यते हि "आद्ये परोक्षं प्रत्यक्षमन्यदिति" स च द्विवचननिर्देशः प्रमाणान्तरसंख्यानिवृत्त्यर्थः ॥

तद्-अभावात् ५।१ व्यवहारलोपः १।१	=उस (स्मृति) की शून्यतासे व्यवहार वा लोक की प्रवृत्ति वा लोकाचारका अभाव
स्यात् T	=होगा (अतः प्रमाणको अपना प्रकाशक और अन्यका प्रकाशक मानना योग्य है)
वक्ष्यमाण-भेद-अपेक्षया ३।१ द्वि-वचन-	=आगे कहेजाने वाले (प्रमाणके) भेदोंकी विवक्षासे ("प्रमाणे" ऐसा) दो वचनका
निर्देशः १।१ हि* वक्ष्यते T	=उच्चारण वा उपदेश है । क्योंकि (=हि) (अग्रिमसूत्र दशवें ग्यारहवेंमें) कहेंगे
आद्ये १।२ परोक्षम १।१ अन्यत् १।१ इति	=कि पहिले दो =आद्य-(मतिज्ञान श्रुतज्ञान) परोक्ष (प्रमाण) है । अन्य वा बचेहुये
प्रत्यक्षम् १।१	=प्रत्यक्ष प्रमाण (तीन अवधिज्ञान-मनः पर्ययज्ञान-केवलज्ञान) है ॥
सः १।१ च* द्वि-वचन-	=और (=च) वो (प्रमाणे शब्दका नवमें सूत्रमें प्रथमा विभक्ति) दो वचनमें
निर्देशः १।१ प्रमाणान्तर-	=उपदेश वा उच्चारण ज्ञानकी भिन्न (भिन्न) (=प्रमाणान्तर)
संख्या-	=गणना (एक-दो तीन-चार-छह आदि अन्य मतावलम्बियों स्वीकृत प्रमाणोंके)
निवृत्ति-अर्थः १।१	=निषेधके लिये भी है अर्थात् इस नवमें सूत्रमें " प्रमाणे " शब्द दोवचनमें
	(१) दशवांसूत्र आद्ये परोक्षमूके आद्ये (शब्द जो दो वचनमें है उस)के लिये है
	(२)अन्यवादियोंके कल्पेहुये वा मानेहुये एकदो तीन, चार, छह इत्यादिक प्रमाणों की संख्याके निराकरणके लिये है

(१) " चार्वाक तौ एक प्रत्यक्ष प्रमाण ही मानै है। बहुरि बौद्ध और वैशेषिक प्रत्यक्ष अनुमान ये दोय प्रमाण मानै है सांख्य प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम तीन मानते है बहुरि नैयायिक प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम, उपमान ऐसें च्यारि प्रमाण मानै है। बहुरि मीमांसक चारि तौए अरु अर्थापत्ति अभाव, ऐसै छह प्रमाण मानै है। सो प्रत्यक्ष परोक्ष ए दोय सङ्ख्या कहने तै सर्व प्रमाण इनिमें गर्भित होय है " पं० जयचंदजी वचनिका मुद्रित पृष्ठ १२८

उपमानार्थापत्यादीनामत्रैवान्तर्भावादुक्तस्य पञ्चविधस्य ज्ञानस्य प्रमाणद्वयान्तःपातित्वे प्रतिपादिते प्रत्यक्षानुमानादिप्रमाणद्वयकल्पनानिवृत्त्यर्थमाह—

उपमान-अर्थापति-	=क्योंकि उपमान (=सादृश्यज्ञान) अर्थापत्ति अर्थात् न कहे गये अर्थको समझना (जैसे देवदत्त जीता है पर घरमें नहीं, तो समझ सक्ते हैं बाहर अवश्य है)
आदीनाम् ।। अत्र * एव * अन्तरभावात् ।।	=आदिका यहां (अर्थात् तत्प्रमाणे—आद्येपरोक्षं प्रत्यक्षमन्यत्में) ही गर्भित हैं
उक्तस्य ।।। पञ्च-विधस्य ।।। ज्ञानस्य ।।। प्रमाणद्वय-	=कहे हुए पांच प्रकारके ज्ञानका दो प्रमाणमें
अन्तःपातित्वे ।।। प्रतिपादिते ।।। प्रत्यक्ष-अनुमानादि-	=गर्भित (=अन्तःपातित्वे) कहनेमें (=प्रतिपादिते) प्रत्यक्ष और अनुमानादि
प्रमाणद्वय-कल्पना-निवृत्ति-अर्थम् ।।।	=(अन्य प्रकारके) दो प्रमाणोंकी कल्पनाके निषेधके लिये

प्रत्यक्षं चानुमानं च शाब्द चोपमया सह । अर्थापत्तिरभावश्च षट् प्रमाणानि जैमिने. ॥ जैमिनेः षट् प्रमाणानि चत्वारिन्यायवादिनः । सांख्यस्य त्रीणि वाच्यानि द्वे वैशेषिक बौद्धयोः ॥ २ ॥ इत्यप्यधिकः पाठः तालपत्रपुस्तके वर्तते ॥ (=च

प्रत्यक्षम् ।। च अनुमानम् ।।। च शाब्दम् ।।। च	=प्रत्यक्षप्रमाण और (=च) अनुमानप्रमाण और (=च)आगम वा शाब्दप्रमाण और
उपमया ।।। सह *अर्थापत्तिः ।।।	=उपमान प्रमाण सहित, (और) अर्थापत्ति प्रमाण (=न कहे गये अर्थका समझने वाला)
च * अभावः ।। षट् ।।। प्रमाणानि ।।। जैमिनेः ।।	=और (=च) अभाव प्रमाण छह प्रमाण जैमिनी मुनि (पूर्वमीमांसा के रचक) के हैं
जैमिनेः ।। षट् ।।।	=जैमिनीमुनि के छह (प्रत्यक्ष-अनुमान-आगम-उपमान-अर्थापत्ति-अभाव)
प्रमाणानि ।।। चत्वारि ।।।	=प्रमाण हैं। चार (प्रत्यक्ष-अनुमान-आगम-उपमान) प्रमाण
न्यायवादिनः ।। सांख्यस्य ।।	=न्यायवादी (गौतममुनि के न्याय शास्त्रके मानने वाले) के हैं। सांख्य अर्थात्
त्रीणि ।।।	=(कपिलमुनि के दर्शनशास्त्रके मानने वालेके) तीन (प्रत्यक्ष-अनुमाम-आगम)
वाच्यानि ।।। द्वे ।।।	कहे हैं। दो (प्रत्यक्ष और अनुमान) दो (प्रत्यक्ष और अनुमान)
वैशेषिक-बौद्धयोः ।।	=वैशेषिक (कणादमुनि के बनाये हुये शास्त्रके मानने वाले) के और बौद्ध के हैं ॥

इति* अपि* अधिकः।। पाठ ।। तालपत्रपुस्तके ।। वर्तते = ऐसा भी अधिक पाठ ताड वृक्ष के पृष्ठों की (से बनी हुई) पुस्तक में वर्तता है ॥

अ|र्हं

॥ आद्ये परोक्षम् ॥ ११ ॥

आदिशब्दः प्राथम्य (प्रथम) वचनः । आदौ भवमाद्यम् ॥ कथं द्वयोः प्रथमत्वं ?

आह T — (अर्थात् बौद्ध और वैशेषिक प्रत्यक्ष तथा अनुमान ऐसे दो प्रमाण मानते हैं उनके निषेधार्थ तथा अपने माने हुये दो प्रमाण समर्थन करने के लिये) =कहते हैं कि

आद्ये परोक्षम् ॥ ११ ॥

आद्यम् च आद्यम् च आद्ये मतिश्रुते ज्ञाने परोक्षम् प्रमाणम् भवतः

आद्यम् १।।। च॰ आद्यम् १।।। च॰ =(पांच ज्ञानों में) आदि में जो हो तथा प्रारम्भ में जो हो वे

आद्ये १।।। मति-श्रुते १।।। ज्ञाने १।।। =दो आदि वाले (=आद्ये) अथवा पहिले दो (=आद्ये) मतिज्ञान श्रुतज्ञान

परोक्षम् १।।। प्रमाणम् १।।। भवतः T =परोक्ष (इन्द्रिय मन तथा परका उपदेश प्रकाशआदि जन्य) प्रमाण है अर्थात् वह मतिज्ञान नेत्र आदि इन्द्रिय और अनिन्द्रिय मन इनसे उत्पन्न होता है। वह आत्मा से भिन्न निमित्त की अपेक्षा रखता है अतः परोक्ष है और मति पूर्वक होनेसे तथा परोपदेश जन्य होनेसे श्रुतज्ञान भी परोक्ष ही है

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस सूत्र पर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दशः हिंदी अनुवाद

आदिशब्दः १। प्राथम्य-वचनः १। आदौ ७। =(इस सूत्र में) आदिशब्द पहिलेका (=प्राथम्य) वाचक है। आरम्भ में (=आदौ)

भवम् १।।। आद्यम् १।।। कथम्॰ द्वयोः ६।।। प्रथमत्वम् =हुआ है सो आद्य है। दोके आदिपना (=प्रथमत्व) कैसे है अर्थात् आदि प्रथम वा पहिला ये शब्द आरम्भ को प्रगट करते हैं और एकही वस्तु को (बहुतो में से) प्रथम वा पहिली कह सक्ते हैं यहां आद्ये दो वचन में लाये हैं तो दो वस्तुओं के प्रथमपना कैसे आसक्ता है। सारांश—पांच ज्ञान नवमें सूत्रमें कहे हैं आद्य वचन में मतिज्ञान आसक्ता है श्रुतज्ञान भी कैसे आगया ॥

(१) इस सूत्रका दिगम्बर और श्वेताम्बर सम्प्रदाय दोनो मे पाठ और अर्थ एक सा है ॥

मुख्योपचारपरिकल्पनया । मतिज्ञानं तावन्मुख्यकल्पनया प्रथमम् । श्रुतमपि तस्य प्रत्यासत्त्या प्रथममित्युपचर्यते । द्विवचननिर्देशसामर्थ्याद्गौणस्यापि ग्रहणम् । आद्यं च आद्यं च आद्ये मतिश्रुते इत्यर्थः । तदुभयमपि परोक्षं प्रमाणमित्यभिसम्बध्यते ॥ कुतोऽस्य परोक्षत्वं ? परायत्तत्वात् ॥

मुख्य-उपचार-परिकल्पनया ३। = मुख्य उपचार वा व्यवहारके मानलेनेसे (दोनों के आदिपना कहा है क्योंकि)
मतिज्ञानम् १।। तावत्*मुख्य-कल्पनया ३।। प्रथमम् १।। = मतिज्ञान तौ (=तावत) प्रधान माने जानेसे आदिमें व प्रथम है
श्रुतम् १।। अपि*तस्य ६।। प्रत्यासत्त्या ३।। प्रथमम् इति = श्रुतज्ञान भी उस (मति ज्ञान) के अतिनिकट होनेसे प्रथम ऐसा
उपचर्यते T = मानलियागया है । उपचार कियागया है अर्थात् उपचारसे प्रथम कहा है
द्वि-वचन-निर्देश-सामार्थ्यात् ५।। गौणस्य ६।। अपि = दो वचनके निरूपण वा उच्चारणकी शक्तिसे अप्रधान (श्रुतज्ञान) का भी
ग्रहणम् १।। = ग्रहण है । (सूत्रमें आद्ये वाक्यका समास यह है कि)
आद्यम् १।। च* आद्यम् १।। च* आद्ये १।। = आदि में जो हो और (=च) आरम्भ में जोहो सो दो आदिमें आनेवाले (-आद्ये)
मति-श्रुत १।। इति* अर्थः १। = मतिज्ञान-श्रुतज्ञान हैं ऐसा अभिप्राय है । (आद्यं च आद्यं च वाक्यमें पहिला च संस्कृतकी वोलचाल के लिये आया है । अतः इस च का अनुवाद नहीं हो सक्ता)
तद्-उभयम् १।। अपि*परोक्षम् १।। प्रमाणम् १।। = वे (मति-श्रुत) दोनो ही परोक्ष प्रमाण हैं
इति अभिसम्बध्यते T = ऐसा सम्बन्ध कियागया है (तत्र सूत्र मतिज्ञानं परोक्षं श्रुतज्ञानं परोक्षं च है)
कुतः*अस्य ६।। परोक्षत्वम् १।। = (प्रश्न) इस मतिज्ञान वा श्रुतज्ञान) के परोक्षपना क्योंकर (=कुतः) है
पर-आयत्तत्वात् ५।। = अन्यके आधीनपना वा वशीभूतपना से (मति श्रुतज्ञानों के परोक्षपना है)

(१) कैयट का मत है कि उभय का द्विवचन नहीं होता है किन्तु पं० हरदत्त और पूज्यपाद स्वामी के मत मे दो वचन होता है ।
(२) पर-अपेक्षत्वात् ५।। इति*अपि*पाठ-अन्तरम् १।। = पर अपेक्षत्वात् (= अन्यकी आवश्यकता से) ऐसा भी अन्य वा भिन्न पाठ है

मति ज्ञानमिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तमिति वक्ष्यते श्रुतमनिन्द्रियस्येति च । अतः पराणीन्द्रियाणि मनश्च प्रकाशोपदेशादि च बाह्यनिमित्तं प्रतीत्य तदावरणकर्मक्षयोपशमापेक्षस्यात्मन उत्पद्यमानं मतिश्रुतं परोक्षमित्याख्यायते । अत उपमानागमादीनामत्रैवान्तर्भावः ॥

मतिज्ञानम् ¹॥ इन्द्रिय-अनिन्द्रिय-निमित्तम् ¹॥	= मतिज्ञान (बाह्यमें पांच) इन्द्रिय (और) मन जन्य, निमित्तक वा कारणक है अर्थात मतिज्ञान पांच इन्द्रिय और अंतःकरण छह बाह्य निमितोसे उत्पन्न होता है
इति* वक्ष्यते T च* श्रुतम् ¹॥	= ऐसा (तदिन्द्रियानिन्द्रिय निमित्तम । चौदहवां सूत्रमें) कहेंगे । और श्रुतज्ञान
अनिन्द्रियस्य ¹॥ (अर्थः ¹)	= मनका विषय वा अर्थ है अर्थात श्रुतज्ञान मनसे उत्पन्न होता है
इति*	= ऐसा (दूसरे अध्यायके इक्कीसवांसूत्र "श्रुतमनिन्द्रियस्य" में कहेंगे)
अतः* पराणि ¹॥ इन्द्रियाणि ¹॥ च* मनस् ¹॥	= इस हेतुसे (=अतः) पर (जे पांचों) इन्द्रियें और (=च) मन (=अंतःकरण)
च* प्रकाश-उपदेशादि ¹॥ बाह्यनिमित्तम् ¹॥	= और (=च) प्रकाश उपदेशादिक बाहिरके कारणको
पूतीत्य – तद्-आवरण-कर्म-	= सहाय लेकर (=प्रतीत्य) उन (मतिज्ञान और श्रुतज्ञान) के ढकने वाले कर्मके
क्षयोपशम-अपेक्षस्य ¹। आत्मनः ¹ उत्पद्यमानम् ¹॥	= क्षयोपशम संयुक्त (=अपेक्षस्य) जीवके उत्पन्न हुये
मतिश्रुतम् ¹॥ परोक्षम् ¹॥ इति* आख्यायते T	= मतिश्रुतज्ञान परोक्ष हैं ऐसा कहा गया है अर्थात् जीवकें मतिज्ञान और श्रुतज्ञान उत्पन्न होनेकेलिये वहिरंग कारण इन्द्रियें-मन-प्रकाश और पर उपदेशादिक हैं इससे इन दोनों ज्ञानोंको परोक्ष कहते हैं और अंतरंग कारण इनदोनो ज्ञानोंके उत्पन्न होनेका आत्माकें मतिज्ञानावरणीय और श्रुतज्ञानावरणीय कर्मोका क्षयोपशम ही है ॥ (प्रतीत्य=सम्बन्ध सूचक भूतकृदन्त है) ।
अतः* उपमान-आगम-आदीनाम् ¹॥ अन्तर्भावः ¹।	= इसलिये उपमानप्रमाण, आगम (=शाब्द) प्रमाण आदिका गर्भित होना
अत्र* एव*	= इस(परोक्षज्ञान) में ही (=एव) है (अन्योंके मानेहुये प्रमाण इनमें गर्भित हैं) ॥

अभिहितलक्षणात्परोक्षादितरस्य सर्वस्य प्रत्यक्षत्वप्रतिपादनार्थमाह-

॥ प्रत्यक्षमन्यत् ॥ १२ ॥

अक्ष्णोति व्याप्नोति जानातीत्यक्ष आत्मा । तमेव प्राप्तक्षयोपशमं प्रक्षीणावरणं वा प्रतिनियतं प्रत्यक्षम् ॥

अभिहित-लक्षणात् ५।॥ परोक्षात् ५।॥ इतरस्य ६।॥ =कथित वा कहे हुये (=अभिहित) लक्षण सहित परोक्ष (ज्ञान) से अन्य

सर्वस्य ६।॥ प्रत्यक्षत्व-प्रतिपादन-अर्थम् १।॥ आह T =सब (ज्ञान) के प्रत्यक्षपना के कहने के लिये (आचार्य) कहते हैं कि

प्रत्यक्षमन्यत् ॥१२॥

पदच्छेद और सूत्रार्थः-अन्यत् १।॥ =(मतिज्ञान और श्रुतज्ञान से) भिन्न अथवा अवशेष (=अन्यत्)

प्रत्यक्षम् १।॥ =(अवधिज्ञान मनः पर्ययज्ञान और केवलज्ञान) प्रत्यक्ष प्रमाण है अर्थात् आत्मा के ही आश्रय से विन (=विना) मन और किसी इन्द्रिय की सहायता से उत्पन्न होते हैं। अतः ये तीनों ज्ञान अतीन्द्रिय हैं। उक्त तीनों ज्ञानोमें से अवधिज्ञान और मनः पर्ययज्ञान तो परिमित वस्तु विषय करने से विकल (=सीमावद्ध) पूत्यक्ष है और केवलज्ञान समस्त द्रव्य व पर्यायको ग्रहण करने से सकल (=सम्पूर्ण) पूत्यक्ष पूमाण है ॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस सूत्र पर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दशः हिन्दी अनुवाद ॥

अक्ष्णोति T व्याप्नोति T जानाति T =पहचानता है वा बोध करता है (अक्ष्णोति) व्याप्त होता है जानता है।

इति*अक्षः १।। आत्मा १।। प्राप्त-क्षयोपशमम् २।। वा =ऐसा अक्ष (अर्थात्) आत्मा है वा चेतन है। कर्मका क्षयोपशम प्राप्त अथवा

प्रक्षीण-आवरणम् २।। तम् २।। एव* =कर्मके आवरण के नाश प्राप्त तिस (आत्मा) के ही (=एव)

प्रतिनियतम् २।। प्रत्यक्षम् १।॥ =आश्रय से (विना किसी अन्य की सहायता लिये हुये) उत्पन्न हो सो प्रत्यक्ष है अर्थात् कर्मके क्षयोपशम और क्षय के अनुसार विना किसी इन्द्रिय, मन, प्रकाश, पर उपदेशादिक की सहायता लिये हुये आत्मा के आश्रय से ही उत्पन्न हो और विशेष रूप से पदार्थों को जाने वे प्रत्यक्ष (अवधि-मनः पर्यय-केवलज्ञान) हैं। उनमें

अवधिदर्शनं केवलदर्शनमपि अक्षमेव प्रतिनियतमतस्तस्यापि ग्रहणं प्राप्नोति । नैष दोषः । ज्ञानमित्यनुवर्तते, तेन दर्शनस्य व्युदासः । एवमपि विभंगज्ञानमपि प्रतिनियतमतोऽस्यापि ग्रहणं प्राप्नोति । सम्यगित्यधिकारात्। ततस्तन्निवृत्तिः ॥ सम्यगित्यनुवर्तते, तेन ज्ञानं विशिष्यते,

	अवधिज्ञान और मनः पर्यय ज्ञान तो विकल (=अधूरा-अपूरा) प्रत्यक्ष हैं और केवल ज्ञान सकल (सम्पूर्ण) प्रत्यक्ष है ॥
अवधिदर्शनम् ;॥ केवलदर्शनम् ;॥ अपि अक्षम् ;॥	=(प्रश्न) अवधिदर्शन (और) केवलदर्शन भी (=अपि) आत्मा (=अक्षम्)
एव* प्रतिनियतम् ;॥ अतः *	=ही जनित वा आश्रित (=प्रतिनियत) वा व्यवस्थित (=प्रतिनियत) है इसलिये
तस्य ;॥ अपि* ग्रहणम ;॥ प्राप्नोति T	=तिस (अवधिदर्शन-केवलदर्शन) का भी ग्रहण प्राप्त होता है (अर्थात् अवधिदर्शन और केवलदर्शन भी प्रमाण ठहरेंगे ऐसा प्रश्न है)
न* ए ;। दोषः ;। ज्ञानम् ;॥ इति अनुवर्तते T	=(उत्तर) यह दोष नहीं है । (क्योंकि इस सूत्र में) ज्ञान ऐसा अधिकार–प्रकरण है
तेन ;॥ दर्शनस्य ;॥ व्युदासः ;।	=तिस (ज्ञानके अनुवर्तनसे) दर्शन का निराकरण वा निवारण है अर्थात् यहां ज्ञान का प्रकरण होनेके हेतुसे ज्ञानका ग्रहण किया है दर्शन का निषेध है
एवम्* अपि विभङ्ग ज्ञानम् ;॥ अपि प्रतिनियतम् ;॥	=(प्रश्न) ऐसाही (=अपि) कुअवधिज्ञान भी (=अपि) व्यवस्थित वा (आत्माके) आश्रित है
अतः* अस्य ;॥ अपि* ग्रहणम् ;॥ प्राप्नोति T	=इस लिये इस (कुअवधिज्ञान) का भी प्रसंग वा ग्रहण प्राप्त होता है अर्थात् प्रश्न का आशय यह है कि यदि ज्ञान का प्रकरण है तो तो कुअवधिज्ञानको भी यहां ग्रहण करके प्रत्यक्ष प्रमाण कहना चाहिये क्योंकि कुअवधिज्ञान भी आत्मासे विना किसी इन्द्रिय-मन-प्रकाश और पर उपदेशादिक द्वारा उत्पन्न होता है
सम्यक् ;॥ इति* आधिकारात् ;॥ ततम्* तत्-निवृत्तिः ;॥ ।	=(उत्तर) सम्यक् (प्रशस्त) ऐसा प्रकरण होनेसे वहां (=ततः) उस (विभंगज्ञान) का =निषेध है ॥
सम्यक् ;॥ इति* अनुवर्तते T	सम्यक् ऐसा (पद) अनुवर्तता है उपस्थित है
तेन ;॥ ज्ञानम् ;॥ विशिष्यते T	=तिस (सम्यक् पदकी अनुवृत्ति) से ज्ञान विशेषित किया गया है

ततो विभङ्गज्ञानस्य निवृत्तिः कृता । तद्धि मिथ्यादर्शनोदयाद्विपरीतार्थविषयमिति न सम्यक् ॥ स्यान्मतमिन्द्रियव्यापारजनितं ज्ञानं प्रत्यक्षं, व्यतीतेन्द्रियविषयव्यापारं परोक्षमित्येतदविसंवादिलक्षणमभ्युपगन्तव्यमिति । तदयुक्तम् । आप्तस्य प्रत्यक्षज्ञानाभावप्रसङ्गात् ॥ यदि इन्द्रियनिमित्तमेव ज्ञानं प्रत्यक्षमिष्यते, एवं प्रसक्त्या-आप्तस्य प्रत्यक्षज्ञानं न स्यात् । नहि तस्येन्द्रियपूर्वोऽर्थाधिगमः ॥ अथ तस्यापि करणपूर्वकएवज्ञानं कल्पते तस्या सर्वज्ञत्वंस्यात् ॥ तस्य मानस प्रत्यक्षमिति चेत् मनः प्रणिधान पूर्वकत्वात्

ततः* विभङ्ग-ज्ञानस्य ६।।। निवृत्तिः १।। कृता १।। = तिससे कुअवधिज्ञानका (प्रत्यक्ष ज्ञानमें ग्रहण करनेका) निषेध किया गया ।

तद् १।।। हि* मिथ्यादर्शन-उदयात ५। विपरीत- = क्योंकि (= हि) वह (= तद्) मिथ्यादर्शनके उदयसे प्रतिकूल

अर्थ-विषयम् १।। इति* न* सम्यक्-१।।। = पदार्थका ग्रहण करता है । ऐसे (कुअवधिज्ञान) प्रशस्त (= ज्ञान) नहीं है

स्यात्T मतम् १।।। इन्द्रिय-व्यापार- = (वैशेषिकके मतानुसार-प्रश्न) मत है (= स्यात्) कि इन्द्रियोंके व्यवसायसे-उद्योगसे

जनितम् १।।। ज्ञानम् १।।। प्रत्यक्षम् १।।। = उत्पन्न हुआ ज्ञान प्रत्यक्ष है

व्यतीत-इन्द्रिय विषय-व्यापारम् १।।। परोक्षम् १।।। इति = इन्द्रियोंके विषयके उद्योग (=व्यापार) वर्जित (ज्ञान) परोक्ष है ऐसा

एतद् १।।। अविसंवादि-लक्षणं १।।। अभ्युपगन्तव्यं १।।। इति = यह बाधारहित स्वरूप मानना योग्य है

आप्तस्य ६। प्रत्यक्ष-ज्ञान-अभाव-प्रसङ्गात् ५। = (उत्तर) आप्तके प्रत्यक्ष ज्ञानके लोपका प्रसंग आने (के हेतु) से

तद् १।।। अयुक्तं १।।। । यदि इन्द्रिय-निमित्तम् १।।। एव* = वह (=इन्द्रियजनित ज्ञानको प्रत्यक्ष मानना) ठीक नहीं है । जो इन्द्रिय जनित ही

ज्ञानं १।।। प्रत्यक्षम् १।।। इष्यतेT एवं प्रसक्त्या ३।। = ज्ञान प्रत्यक्ष (प्रमाण) माना जाय तो ऐसे प्रसंगसे

आप्तस्य ६। प्रत्यक्ष ज्ञानं १।।। न स्यात् T = आप्तके प्रत्यक्षज्ञान नहीं होता (=होगा) ।

नहि* तस्य ६। इन्द्रिय-पूर्वः १। अर्थ अधिगमः १। = क्योंकि नहीं है तिस (आप्त) के इन्द्रिय पूर्वक वा इंद्रिय जनित वस्तुका ज्ञान

अथ* तस्य ६। अपि* करण-पूर्वकम् १।।। एव* = यदि (=अथ) तिस (आप्त)के भी इन्द्रिय पूर्वक वा इन्द्रिय निमित्तक ही

ज्ञानं कल्प्यते T तस्य ६। असर्वज्ञत्वम् १।।। स्यात् T = ज्ञान माना जाय तो तिस (आप्त)के असर्वज्ञता होगी ॥

तस्य ६। मानसम् १।।। प्रत्यक्षम् १।।। = तिस (आप्त) के मानसिक वा मनसा (=मानसम्) ज्ञान प्रत्यक्ष मानाजाय 'कल्प्यते'

इति* चेत्* मनस्-प्रणिधान-पूर्वकत्वात् ५।।। = ऐसी शंका होनेपर (उत्तर है कि) मनके चिंतवन वा उद्योग जनित होनेसे

ज्ञानस्य सर्वज्ञत्वाभावएव

ज्ञानस्य ।।। सर्वज्ञत्व-अभावः । एव *	=ज्ञानके सर्वज्ञपनाका लोप ही [=एव] आता है अर्थात् यदि मनजन्य ज्ञान प्रत्यक्ष माना जाय तौ भी सर्वज्ञपना नही बनता है [निम्नटिप्पणीमे विशेष है]

(१) युगपत् ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो लिङ्गमिति परैरभ्युपगमात्सर्ववस्तुषु युगपन्मनः प्रणिधान न घटते । ततः सर्वज्ञत्वाभावः । एकं ज्ञानमनेकार्थं न जानातीति । प्रतिज्ञासद्भावाच्च क्रमेण सर्ववस्तुज्ञान च न घटते । वस्तूनामानन्त्यादेकवस्तु परिज्ञानावसरे अन्यवस्तुपरिज्ञानाभावाच्च सर्वज्ञत्वाभावः सुघटः ॥

युगपत् * ज्ञान-अनुत्पत्तिः ।।	=एक वार ही व एक साथ (=युगपत्) ज्ञानका सम्बन्ध वा सङ्गत न होना
मनस ।।। लिङ्गम ।।। इति परैः । अभि उपगमात् ।	=मनका लक्षण ऐसा है । दूसरो करि मानने से
सर्व-वस्तुषु ।।। युगपत् * मनस्-प्रणिधानम् ।।।	=समस्त पदार्थों में एक साथ मनका चिंतवन वा उद्योग वा व्यापार
न घटते T	=नहीं बनता है अर्थात् अन्यमतके सिद्धान्त अनुसार भी मन सर्व पदार्थों को एक साथ ग्रहण नहीं कर सकता है ।
ततः सर्वज्ञत्व-अभावः । एकम् ।।। ज्ञानम् ।।। अनेक-	=तिससे सर्वज्ञपने का अभाव है । (और) एक ज्ञान अनेक वा नाना
अर्थम् । न जानाति T इति प्रतिज्ञा सद्भावात् ।	=पदार्थों को नहीं जानता है । ऐसी प्रतिज्ञा की विद्यमानता से अर्थात
क्रमेण सर्ववस्तुज्ञानम् । च न* घटते T	=अनुक्रमसे सब पदार्थों का ज्ञान होना भी नहीं वनता है
वस्तूनाम् । आनन्त्यात् एक वस्तु-परिज्ञान-अवसरे ।	=पदार्थों के अनन्त होने (के हेतु) से एक पदार्थ के ज्ञानके प्रसंग मे
च * अन्य वस्तु परिज्ञान-अभावात् ।	=और भिन्न पदार्थ के परिज्ञान की शून्यतासे सर्वज्ञता का अभाव
सर्वज्ञत्व-अभावः । सुघटः ।	=भले प्रकार घटता है वा बनता है भावार्थ यह है कि

आगमतस्तत्सिद्धिरिति चेन्न । तस्य आगमस्य प्रत्यक्षज्ञानपूर्वकत्वात् ॥ योगिप्रत्यक्षमन्यज्ज्ञानं दिव्यमप्यस्तीति चेत्,न तस्य प्रत्यक्षत्वं, इन्द्रियनिमित्ताभावात् । अक्षमक्षं प्रति यद्वर्तते तत्प्रत्यक्षमित्यभ्युपगमात ॥

आगमतः* तत्सिद्धिः ;॥ इति* चेत्* न*	=शास्त्रसे उस (सर्वज्ञपना) की सिद्धि है ऐसी शंका (=चेत्) है। (उत्तर) यह ठीक नहीं है।
तस्य ; आगमस्य ; प्रत्यक्षज्ञानपूर्वकत्वात् ;॥	=क्योंकि उस शास्त्र को प्रत्यक्ष ज्ञान निमित्त वा कारण है अर्थात् वही आगम माना जाता है जो प्रत्यक्षप्रमाण जन्य है भावार्थ यह है कि प्रत्यक्ष ज्ञानी ही प्रमाणभूत आगम कह सकता है परंतु इन्द्रिय जनित प्रत्यक्ष ज्ञान सब पदार्थोंको ग्रहण नहीं करसक्ता, नहीं जानसक्ता तब उससे बनाहुआ आगम भी सर्व पदार्थों का ज्ञान कैसे करा सक्ता है जिस (आगम) से आप्तके ज्ञानको सर्वज्ञता मानीजाय ॥
योगिन्-प्रत्यक्षम् ;॥ अन्यत् ;॥ ज्ञानम् ;॥	=(बौद्धमतवाले) योगियोंका प्रत्यक्ष एक जुदा ज्ञान (=अन्यत् ज्ञान)
दिव्यम ;॥ अपि* अस्ति T इति* चेत्*	=अलौकिक (=दिव्य) ही (=अपि) है यदि (=चेत्) ऐसा है ?
तस्य ;॥ प्रत्यक्षत्वम् ;॥ न*	(उत्तर) =(तौ) तिस (अलौकिक) ज्ञान को साक्षातपना नहीं हो सकैगा
इन्द्रिय-निमित्त-अभावात् ;॥ अक्षम ;॥ अक्षम् ;॥	=क्योंकि वह इन्द्रियोके निमित्तसे नही होता है । (और आपने) इन्द्रिय इन्द्रिय
प्रति* यद् ;॥ वर्तते T तत् ;॥ प्रत्यक्षम् ;॥	=प्रति जो प्रवर्तता है वो (ही) प्रत्यक्ष अथवा साक्षात् है
इति अभ्युपगमात् ;॥	=ऐसा माना है (अतः) अलौकिक ज्ञान प्रत्यक्ष नही हो सकता) भावार्थ अलौकिक ज्ञान वही है जिसका इन्द्रियों से कुछ किसी प्रकारका संबंध नहीं है और प्रत्यक्ष प्रमाण वही माना गया है जो इन्द्रिय जन्य है अतःदिव्यज्ञान प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं है॥

मन एक साथ सर्व पदार्थो का ग्रहण नहीं कर सक्ता है और क्रमकरि सर्व पदार्थोंका ज्ञान बनता नहीं । क्योंकि पदार्थ अनन्त है युगपत् जबतक अनन्त पदार्थों को न जाने तबतक सर्वज्ञ नहीं इसलिये मनद्वारा युगपत् सर्व पदार्थो के जाननेवाला प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं हो सक्ता इसलिये सर्वज्ञता का अभावही हुआ

(१) तस्य और आगमस्य शब्दो के पुल्लिङ्ग और नपुंसक लिंग दोनों हो सक्ते है ॥

किञ्च सर्वज्ञत्वाभावः प्रतिज्ञाहानिर्वा । तस्य योगिनो यज्ज्ञानं तत्प्रत्यर्थवशवर्ति स्यात ? अनेकार्थग्राहि वा ? यदि प्रत्यर्थवशवर्ति, सर्वज्ञत्वमस्य नास्ति योगिनः, ज्ञेयस्यानन्त्यात् ॥ अथानेकार्थग्राहि,या प्रतिज्ञा "विजानाति न विज्ञानमेकमर्थद्वयम् यथा । एकमर्थं विजानाति न विज्ञानद्वयं तथा" इति सा हीयते ॥ अथवा क्षणिकाः सर्वसंस्कारा इति प्रतिज्ञा हीयते । अनेकक्षणवर्त्येकविज्ञानाभ्युपगमात ॥

सर्वज्ञत्व-अभावः ;। किञ्च॰ =(अलौकिक ज्ञानको प्रत्यक्ष स्वीकार करनेमें) सर्वज्ञताका अभाव, भी(=किञ्च) है

वा॰ प्रतिज्ञाहानिः ;॥ तस्य ;। योगिनः ;। यत् ;॥ =अथवा प्रतिज्ञा भंग वा प्रणकी क्षति हो जायेगी क्योंकि तिस योगीके जो (=यत्)

ज्ञानम् ;॥ तत् ;॥ प्रति-अर्थ- वशवर्ति ;॥ स्यात् T =ज्ञान है सो एक पदार्थ के (=प्रत्यर्थ) वशीभूत है । अर्थात् योगीश्वर का यह ज्ञान एक एक पदार्थ अथवा एक एक वस्तुको क्रमानुसार ग्रहण करेगा

वा॰अनेक-अर्थग्राहि ;। यदि ॰ =अथवा बहुत पदार्थोंका ग्रहण करने वाला होगा । जो (योगीश्वर का ज्ञान)

प्रति-अर्थ-वशवर्ति ;। सर्वज्ञत्वम् ;॥ अस्य ;। =एक वस्तु का ग्रहण करने वाला हो तो सर्वज्ञपना उस

योगिनः ;। न अस्ति T ज्ञेयस्य ;। =योगीके नहीं (होसक्ता) है। क्योंकि ज्ञानमें ग्रहण होने योग्य पदार्थके (=ज्ञेयस्य)

अनन्त्यात् ;॥ =अनंतता है (और सर्वज्ञ तबहीं हो जब सब पदार्थों को एक कालमें जान सके)

अथ॰अनेक-अर्थ-ग्राहि ;। =जो (=अथ)(इस योगीश्वरका ज्ञान)अनेक पदार्थका जाननेवाला हो वा ग्राहीहो तो

या ;॥ प्रतिज्ञा ;॥ =(निम्नलिखित श्लोकमें) जो (=या) पण अथवा नियम है कि

विजानाति T न ॰ विज्ञानमेकमर्थद्वयम् ;॥ यथा॰ =जैसे (=यथा) एक विज्ञान दो पदार्थोंको नहीं जानता है (=विजानाति)

एकमर्थम् ;॥ विजानाति T न विज्ञानद्वयं ;॥ तथा॰ =तैसे (=तथा) दो विज्ञान एक अर्थ या वस्तुको नहीं जनाते हैं

इति॰ सा ;॥ हीयते T अथवा॰सर्वसंस्काराः ;। =ऐसी प्रतिज्ञा (=सा) क्षति की जाय है। अथवा सब संस्कार (=ज्ञानक्षण)

क्षणिकाः ;। इति॰प्रतिज्ञा ;॥ हीयते T अनेक- =एक समयवर्ती हैं ऐसा प्रण वा नियम क्षता जाय है क्योंकि अनेक

क्षणवर्ति-एक-विज्ञान अभ्युपगमात् ;। =क्षणवर्ती एक विज्ञान मानागया है वा स्वीकार कियागया है ।

अनेकार्थग्रहणं क्रमेणेति युगपदेवेति ॥ चेत्, योऽस्यजन्मक्षणः स आत्मलाभार्थ एव । लब्धात्मलाभं हि किञ्चित्स्वकार्यं प्रति व्याप्रियते,

अनेक-अर्थ-ग्रहणम् ;॥ क्रमेण ;। इति*	=(और) बहुत-पदार्थोंका ग्रहण अनुक्रमसे होता है भावार्थ बौद्धोंका सिद्धान्त है कि पदार्थको पहिले क्षणमें उत्पत्ति होती है उसी पदार्थका दूसरे क्षणमें नाश होजाता है और यह भी कहते हैं कि एक विज्ञान एकबार एकही पदार्थको जानता है तो अनेक पदार्थोंका ज्ञान क्रमसे हो सकनेके कारण एक विज्ञानको अनेक क्षणवर्ती होनेसे सब संस्कारोंके एक क्षणवर्ती होनेमें दूषण आगया।
युगपत्* एव*	=एकसाथ वा एककालमे (अनेक पदार्थोंका ग्रहण एक क्षणवर्ती विज्ञानकै ही है
इति* चेत्* यः ;। अस्य ;॥ जन्म-क्षणः ;।	=ऐसा यदि (चेत्) हो तो ? (उत्तर) जो (=यः) इस (ज्ञान)के उत्पन्न होनेका क्षण है
सः ;। आत्म-लाभार्थः ;। एव*	=वह क्षण (उस ज्ञानके) स्वरूपके उपार्जनके लिये (=अर्थ) ही है
लब्ध-आत्म-लाभम् ;। हि*	=क्योंकि (=हि) स्वरूपके लाभको प्राप्तकरि अर्थात् स्वरूपको प्राप्त करनेके पीछे
किञ्चित्* स्वकार्यम् ;॥ व्याप्रियते[१]	=कुछ अपने कार्य (=पदार्थोंके ग्रहण) की ओर प्रवृत्त होता है वा व्यापार करता है अर्थात् यदि बौद्ध कहैं कि नाना पदार्थोंका ग्रहण एक क्षणवर्ती विज्ञानके एक साथ होता है सो असम्भव है क्योंकि जिस क्षणमें विज्ञान उत्पन्न हुआ है वह क्षण उस विज्ञानके होनेमें लगगई। उसके पीछे वह विज्ञान पदार्थके ज्ञान वा ग्रहण करनेमें लगेगा।

(१) व्याप्रियते—यहांपर पृ तुदादि छठवां गणका आत्मनेपदी-अकर्मक अनिट् धातु व्यापार करना वा काम करनेके अर्थमे है। छठवां गणके धातुओं की अंत की ह्रस्व ऋ में रिङ् आदेश होता है पश्चात् रि को रिय् कर देते है और अ छठवां गण के विकरणको जोड़कर और वि आङ् उपसर्ग प्रथम लाकर वि+आङ्+प्रिय् =व्याप्रिय बना, पश्चात् ते, एक वचन, आत्मने पदी, अन्यपुरुष वर्तमान कालका प्रत्यय लगानेसे 'व्याप्रियते' बनगया॥

प्रदीपवदिति चेन्न। तस्याप्यनेकक्षणविषयतायां सत्यामेव प्रकाश्यप्रकाशनाभ्युपगमात् ॥ विकल्पातीतत्वात्तस्य शून्यताप्रसङ्गश्च ॥

प्रदीपवत् * =दीपक (के प्रकाश) सदृश (विज्ञान) है अर्थात् बौद्ध कहते हैं कि विज्ञानकी दीपकके समान उत्पत्ति तथा परपदार्थका प्रकाश वा बोध करा देंना दोनों बातें युगपत् एकही समयमें बन जावेगी

इति * चेत * न * =ऐसी (इति) शंका (होने) पर (=चेत) ; (उत्तर है कि उक्तशंका ठीक) नहीं है

तस्य ६। अपि अनेकक्षण-विषयतायां ७॥ सत्यां ७॥ एव =क्योंकि उस (दीपक) का भी अनेकक्षणवर्ती होने पर (=सत्याम्) ही (=एव)

प्रकाश्य-प्रकाशन-अभ्युपगमात् ५। =प्रकाश किये जाने योग्य (पदार्थ) का प्रकाशन कर दैना माना जाता है ॥ प्रश्नोत्तर का सारांश, दीपकके समान ज्ञानकी एक ही समयमे उत्पत्ति और विषय ग्राहकता मानना ठीक नही है दीपक भी स्वयम् अनेक समयवर्ती होकर पदार्थों का प्रकाश करता है अतः पूर्वोक्त नियममें (कि सब संस्कार क्षणिक हैं) भंग (दोष) वना रहता है

च * तस्य ६॥। विकल्प-अतीतत्वात् ५॥। =और (=च) तिस (विज्ञान) के निर्विकल्पता होनेके हेतुसे (=अनिश्चय आत्मक होनेसे)

शून्यता-प्रसङ्गः १। =अभावका प्रसंग (भी) आता है अर्थात् बौद्ध प्रत्यक्ष ज्ञानको

---

(१) स्वस्मिन्सकलविकल्पाभावात्सकलविकल्पाविषयत्वाच्च योगिप्रत्यक्षस्य शून्यताप्रसङ्गः ॥ तत्त्वं विशुद्धं सकलैर्विकल्पैः। विश्वाभिलाषास्पदतामतीतम् ॥ न स्वस्य वेद्यं न च तन्निगाद्यं। सुषुप्त्यवस्थं भवतु. खबाह्यम् ॥ १ ॥ इति वचनात् ॥

स्वस्मिन् ७॥। सकल-विकल्प-अभावात् ५। =(क्योकि बौद्धों के अनुसार-विज्ञान) अपने स्वरूप में सपूर्ण विकल्पो वा भेदो से रहित है

च सकलविकल्प-अविषयत्वात् ५॥। =और (=च) (दूसरे) सपूर्ण विकल्पों द्वारा (वह विज्ञान) विषय वा ग्रहण किये जाने योग्य नहीं है अर्थात् और विकल्प वा भेद उसका ग्रहण और निश्चय नहीं कर सक्ते

योगिप्रत्यक्षस्य ६॥। शून्यता-प्रसङ्गः १। =(अतएव) योगीके प्रत्यक्ष ज्ञानको शून्यता वा अविद्यमानता का प्रसंग आता है तात्पर्य यह है कि जब योगी का ज्ञान स्वय अपने स्वरूप मे निश्चय रहित है तथा

अभिहितोभयप्रकारस्य प्रमाणस्य आदिप्रकारविशेषप्रतिपत्यर्थमाह—

निर्विकल्प (=निश्चयरहित तथा भेद विवक्षारहित) मानते हैं। अतः उसके द्वारा किसी भी पदार्थका निश्चय नहीं होसक्ता तव स्वयम् उसयोगीके ज्ञानका भी निश्चय न होनेसे उस (विज्ञानकी) शून्यताका प्रसंग आता है। क्योंकि किसी भी पदार्थका अस्तित्व निश्चय आत्मक ज्ञानके विना सिद्ध नहीं हो सक्ता है॥

अभिहित-उभय-प्रकारस्य ६॥। प्रमाणस्य ६॥। =भापित वा कहे हुये दोनों (परोक्ष तथा प्रत्यक्ष) प्रकारके प्रमाणके

आदि-प्रकार-विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थम् १॥। आह T =प्रथम (परोक्ष ज्ञान) के भेदों के विशेष ज्ञानके लिये कहते हैं कि

दूसरे विकल्पो (=निश्चयात्मक ज्ञानो) से नहीं जाना जा सक्ता है तव उसका अस्तित्व कैसे माना जा सक्ता है अतः

विज्ञानाद्वैतवादी योगाचार बौद्धोंका मत शून्य ही है ॥ उपर्युक्त श्लोकका अनुवादः—

तत्वं १॥। विशुद्धं १॥। सकलैः ३। विकल्पैः ३। (अतीतम् १॥।)=(वह विज्ञान) तत्व संपूर्ण कल्पनाओ (भेदों)से रहित (=अतीतम्) विशुद्ध वा विशद है अर्थात् विज्ञानमे ग्राह्य ग्राहक, वाच्य वाचक, वेद्य वेदक और ज्ञेय ज्ञायक कल्पनायें नहीं होनेसे वह विशुद्ध है निर्मल है।

विश्व-अभिलापा-आस्पदताम् १॥ अतीतम् १॥। =सव (=विश्व) (वक्ताओंके बोलनेकी) इच्छाकी (=अभिलापा) योग्यतासे (=आस्पदताम्) रहित है अर्थात् विज्ञान तत्व संसार में अनिर्वचनीय है वा अवक्तव्य है

न* स्वस्य ६॥। वेद्यम् १॥। =(वह विज्ञान तत्व) अपने को नहीं जानता है (=वेद्यम) अर्थात् अपना भी ज्ञेय नहीं है।

न* च* तत् १॥। निगाद्यम् १॥। =और (=च) वह (=तत्=विज्ञानतत्व) (किसी शब्दद्वारा) कहे जाने योग्य (भी) नहीं है

सुपुप्ति-अवस्थ्यं १॥। =शयन (=सुपुप्ति) अवस्थावाला है (=अवस्थ्यम्) अर्थात् स्वप्नदशामें रहनेवाले चैतन्य के सदृश है

भवदुःख-वाह्यम् १॥। =संसारके दुःख (और विकल्पोंसे) रहित है (=वाह्यम्) ॥१॥ समस्त श्लोकका भावार्थ यह है कि वह विज्ञानतत्व संपूर्ण कल्पनाओंसे रहित होनेसे विशद है तथा विश्वका कोई भी वक्ता कथन करने को समर्थ नहीं है (=अनिर्वचनीय है) अपनेको नहीं जानता है अर्थात् स्वरूपमें ज्ञान ज्ञेय भाव रहित है औरन वह कथन कियेजाने योग्य है। स्वप्नदशामे रहनेवाले चैतन्यके सदृशहै। संसारसंवंधी सर्व क्लेशोंसे रहितहै वा वर्जितहै

इति वचनात् ५॥। =ऐसे (वचन)से विज्ञाना द्वैतवादी योगाचार बौद्धोंका विज्ञानतत्व शून्य ही सिद्ध हुआ

मतिः स्मृतिः संज्ञा चिन्ताऽभिनिबोध इत्यनर्थान्तरम् ॥१३॥

मतिः स्मृतिः संज्ञा चिन्ताऽभिनिबोध इत्यनर्थान्तरम् ॥१३॥

=मतिः १॥ स्मृतिः १॥ संज्ञा १॥ चिन्ता १॥ अभिनिबोधः १। इति-अन्-अर्थ-अन्तरम् १॥ ॥१३॥

सूत्रार्थः— मतिः =मति अर्थात् मन और इन्द्रियोसे वर्तमानकालवर्ती पदार्थको अवग्रहादि रूप साक्षात् जानना सो मति (ज्ञान) है ॥

स्मृतिः १॥ =स्मृतिज्ञान अर्थात् अनुभवित पदार्थोंका कालान्तरमें वा और समयमें स्मरण होना वा सुधि आना सो स्मृति (ज्ञान) है ॥

संज्ञा १॥ =संज्ञा ज्ञान अर्थात् वर्तमानमें किसी पदार्थको देखकर यह वही है जो पहिले देखा था इस प्रकार जोड़ रूपका ज्ञान होना सो संज्ञा–ज्ञान है वा प्रत्यभिज्ञान है उसके अनेक भेद है उनमेसे मुख्य चार हैं। अर्थात् (१) एकत्व प्रत्यभिज्ञान (२) सादृश प्रत्यभिज्ञान (३) तद्विलक्षण प्रत्यभिज्ञान (४) तत्प्रतियोगी प्रत्यभिज्ञान ॥ एकत्व प्रत्यभिज्ञान स्मृति और प्रत्यक्षके विषयभूत पदार्थमे एकता दिखाते हुये जोड़रूप ज्ञान जैसे किसी पुरुषको देखकर जानले कि-यह प्रथम देखा था सो ही पुरुष है ॥ सादृश प्रत्यभिज्ञान स्मृति और प्रत्यक्षके विषयभूत पदार्थों में सादृश्य दिखाते हुये जोड़रूपज्ञान जैसे किसीने वनमें गवयनामा तिर्यंच, नीलगाव, रोझ, देखकर जाना सो यह गौको देखा था तैसा है। तद्विलक्षण प्रत्यभिज्ञान-स्मृति और प्रत्यक्षके विषय भूत पदार्थों मे विलक्षणता दिखाते हुए जोड़रूपज्ञान—जैसे किसी भैंसेको देखकर जानना कि प्रथम जो बैल देखा था उससे विलक्षण ये भैंसा है ॥ तत्प्रतियोगि प्रत्यभिज्ञान किसी वस्तुको निकट देखकर अन्य किसी वस्तुको ऐसा जानना जो यह इससे दूर है ॥

चिन्ता १॥ =चिन्तवन ज्ञान अर्थात् किसी चिन्हको देखकर "वहांपर इस चिन्ह वाला अवश्य होगा" ऐसा विचार सो चिंतन ज्ञान है। इसको ऊह, ऊहा, तर्क वा व्याप्ति ज्ञान भी कहते हैं ॥ व्याप्तिके ज्ञानको—

(१) दिगम्बर जैन सम्प्रदाय तथा श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय दोनोमे इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है ॥

(२) ऽजिस शब्दके पीछे ऽ ऐसा चिन्ह आवे उस शब्दके अन्तमेसे एक अकार ली जाती है। जैसे ऊपर चिन्ता शब्दसे एक अकार ली जावेगी ऽऽऐसे दो चिन्ह हो तो ऐसे चिन्होके पहिले शब्दके अन्तसे दो अकार ली जावेगी ॥ जैसे शब्दबन्धसौक्ष्म्यस्थौल्यसंस्थानभेदतमच्छाया ऽऽतपौ द्योतवन्तश्च ॥ अध्याय ५ सूत्र २४ यहां आतप शब्द छायाके पश्चात् है ॥

तर्क कहते हैं, और अभिनाभाव सम्बन्ध को व्याप्ति कहते हैं ॥ जहां जहां साधन (=हेतु) होय, वहां वहां साध्य (=सिद्ध करने की इच्छा किया गया वा साधने योग्य वस्तु,) का होना, और जहां जहां साध्य नहीं होय, वहां वहां साधन के भी न होने को अविनाभाव सम्बन्ध कहते हैं। जैसे जहां जहां धूम है, वहां वहां अग्नि है और जहां जहां अग्नि नहीं है वहां वहां धूम भी नहीं है ॥ अथवा "व्याप्तिज्ञान को तर्क कहिए है। जहां अन्वय व्यतिरेककरि नियम होय सो व्याप्तिज्ञान है। यह याकूं होते संते होई यो तो अन्वय अर नहीं होतैं संते नहीं होय ऐसा व्यतिरेक ऐसैं दोऊनितैं व्याप्तिज्ञान होय है ॥ जैसैं अग्नि कैं होतैं संतैं ही धूम होय अर अग्नि का अभाव होतैं धूम नाहीं होय इत्यादि निश्चय करने का नाम तर्क है सो प्रमाण है" ॥ अर्थ प्रकाशिका में इसी सूत्र को देखो

अभिनिबोधः [१]। =आभिनिवोधिकज्ञान वा "स्वार्थानुमान" (ज्ञान) जय० वचनिका पान १४० वा "अनुमान" (ज्ञान-अर्थप्रकाशिका) अर्थात् सन्मुख लिंगादि (=चिन्हादिक) देखकर उस लिंगी वा चिन्हवाले आदिका निश्चय करना सो अभिनिवोध है ॥ जैसे धूम को देखकर अग्नि का निश्चय करना कांचली देखकर सर्पका वोध करना साधन कहिये लिंग-चिन्ह तातैं साध्य कहिये जानने योग्य वस्तु लिंगी-चिन्हवान् ताका निश्चय करना सो स्वार्थानुमान है। तहां साधन ताकूं कहिये, जाकी जहां साध्य वस्तु न हो तहां प्राप्ति न होय "जैसे जहां साध्य वस्तु (अग्नि न हो) तहां धूम (अग्निके साधनकी प्राप्ति न होगी "तथा जहां साधन होय तहां साध्य होयही होय" जैसे जहां जहां धूम (अग्निका साधन) होगा वहां २ अग्नि (धूमका साध्य) अवश्य ही होगा ॥ देखो सर्वार्थसिद्धि वचनिका पृष्ठ १४२-१४३ ॥

(१) अभिनिवोधिक—(संज्ञामे प्रत्यय मिलाकर अर्थ वदल देते है उसीको तद्धित कहते है) यहां सम्बन्धके अर्थमें अभिनिवोधमें ठक् (=अक्) प्रत्यय लाकर और उसे (इक) से वदलकर आदि में वृद्धि कर देते है जैसे अभिनिवोध-शब्द =अभिनिवोध+ठक् शब्द+ठक् =अभिनिवोध+इक -शाब्द+इक, वृद्धि करने से आभिनिवोधिक और शाब्दिक रूप बनाये।

अनुमानः– "साधनसे साध्यके ज्ञानको अनुमान कहते हैं" जैन सिद्धान्त प्रवेशिका पृष्ठ ८॥ "साधन कहिए हेतु तातैं साध्य कहिए साधने योग्य वस्तु ताका विज्ञान सो अनुमान प्रमाण है" साध्यके तीन विशेषण हैं (१) अबाधित वा शक्य—"तहां प्रमाणकरि अबाधित पणाकरि साधिवेकूं शक्य होय सोही साध्य होय है जामें साधने की योग्यता नहीं सो साध्य नाहीं। जैसे आकाशका फूल साधनेकू शक्य नाहीं ॥" अग्नि का ठंडापन प्रत्यक्ष प्रमाण से बाधित है इस कारण यह ठंडापन साध्य नहीं हो सक्ता है ॥ (२) अभिप्रेत वा इष्ट—वादी जिसको सिद्ध करना चाहै अथवा जिसको साधनेवाला पुरुष अभिप्रायमें ले, सो ही साध्य है तिस अभिप्रेत विना जगतमें अनेक वस्तु हैं वे साध्य नहीं हैं ॥ (३) असिद्ध–जो प्रतिवादीको दूसरे प्रमाणसे सिद्ध न हो अथवा जिसका निश्चय न हो अर्थात् जो पहिले सिद्ध नहीं हुवा है सो साध्य है जो प्रथमही सिद्ध होचुका है उसको क्या साधेगा? सिद्ध हुए को साधन निष्फल है जिसमें कुछ संदेहादिक हो सो असिद्ध है सो ही साधने योग्य है। इस प्रकार के विशेषण युक्त साध्य के सन्मुख जो पूर्वोक्त साधनकरि नियमरूप ज्ञान होय तातैं याकूं अभिनिबोध कहिये ॥ साधनके संक्षेपसे दो भेद हैं (१) उपलब्धि (२) अनुपलब्धि ॥ अभावके ग्रहणको अनुपलब्धि कहते हैं ॥ इन्द्रियमनकरि वस्तुके सद्भावका ग्रहण हो सो उपलब्धि है उसके तीन प्रभेद हैं कार्योपलब्धि जैसे इस पर्वतमें अग्नि है क्योंकि अग्निका कार्य धूम दीखै है। (२) "कारणोपलब्धि जैसे वर्षा होगी जातैं याका कारण बादल सघन दीखे है" ॥ (३) स्वभावोपलब्धि जैसे वस्तु उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य स्वरूप सहित है ॥ (अर्थात् वस्तु उत्पत्ति-विनाश अस्तित्व वा विद्यमानता स्वभाववाली है अध्याय ५ सूत्र ३०) क्योंकि सत्व स्वरूप है। सत्वका स्वभाव ऐसाही है। इत्यादिक साधनके अनेक भेद श्लोकवार्तिक में कहे हैं॥

इति-अन्-अर्थान्तरम् ॥ =इस प्रकार (इस मतिज्ञानके) अनर्थान्तर वा नामान्तर (मतिः स्मृतिः संज्ञा-चिंता-अभिनिबोध) हैं अर्थात् मति, स्मृति, संज्ञा, चिंता, अभिनिबोध, इनके शब्दभेद (के हेतु)से वा नामभेदसे अर्थभेद होते संते भी रूढिप्रसिद्धके बलसे मतिके नामान्तर ही हैं। भावार्थ जैसे इन्द्र (ऐश्वर्य क्रियावाला शचीपति) शक्र (शक्तिरूप क्रियावाला शचीपति) पुरन्दर (पुरका फाड़नेहारा शचीपति) ऐसे इन तीन शब्दोंमें ऐश्वर्य-शक्ति-फाडनेवाले क्रियायोंके भेद होने पर भी एक शचीभर्ताका नाम समभिरूढनय (=नाना अर्थको छोडकर एकही अर्थमें स्थापित करने वाली नीति वा रीति) की अपेक्षा (इन्द्र) ही है तैसे मति, स्मृति, संज्ञा, चिंता, अभिनिबोध, शब्दोंका भिन्न भिन्न अर्थ होने पर भी एक मतिज्ञानके नामान्तर ही माने गये हैं क्योंकि ये सर्व एक मतिज्ञानावर्णकर्मके क्षयोपशम से उत्पन्न होते है तिससे ये मतिज्ञानही हैं अन्य (पदार्थ) नहीं है ॥ सारांश यह है कि जैसे इन्द्र शक्र पुरन्दर न्यारी न्यारी क्रियायोंके करनेवाले को प्रकट करने परभी एक शचीपति काही नाम है तैसेही मति-स्मृति-संज्ञा-चिंता-अभिनिबोध अन्य अन्य अर्थबोधक होने परभी एक मतिज्ञान केही नाम हैं क्योंकि सब मतिज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशमसे उत्पन्न होते हैं ॥

(१) 'सूत्र विषै इति शब्द प्रकारवाची है, सो बुद्धि तौ मतिका प्रकार जानना । जातै पदार्थके ग्रहणके शक्ति स्वरूपकूं बुद्धि कहिये है । बहुरि मेधा स्मृतिका प्रकार है । जातै शब्दके स्मरणकी शक्ति कू मेधा कहिये है । बहुरि प्रज्ञा चिंताका प्रकार है । जातैं वितर्कणाका निषेध स्वरूप है । बहुरि प्रतिभा उपमा ये संज्ञाका प्रकार है । जातै सामान्य पदार्थ को सादृश्य दिखावने रूप है । बहुरि संभव अर्थापत्ति अभाव ए स्वार्थानुमानके प्रकार हैं जातै ये सर्व लिंगही तै जानिये हैं ।" जय० वचनिका मुद्रित पृष्ठ १४१ ॥

(२) कईएक मतावलम्बियोके अनुसार "ज्ञान दोप्रकारका है वस्तुमात्रको प्रकाश करनेहारा निर्विकल्पक, संज्ञा (नाम) आदिको प्रकाश करनेहारा सविकल्पक है । वह (सविकल्पक) संकल्प, संशय, भ्रान्ति, सहति, सादृश, निश्चय और अनुभव आदि भेदसे कई प्रकारका है" पद्म० कोष पृष्ठ१६१

आदौ यदुद्दिष्टं ज्ञानं तस्य पर्यायशब्दा एते वेदितव्याः । मतिज्ञानावरणक्षयोपशमान्तरङ्गनिमित्तजनितोपयोगविषयत्वात् । एतेषां श्रुतादिष्वप्रवृत्तेश्च ॥ मननं मतिः । स्मरणं स्मृतिः । सञ्ज्ञानं सञ्ज्ञा । चिन्तनं चिन्ता ।

"ऐसैं स्मृति आदिक च्यार कहे ते सर्व मतिज्ञान है सो परोक्ष प्रमाण है" बहुरि आगमनामा परोक्ष प्रमाण है सो श्रुतज्ञानरूप है॥ "बहुरि इहां अन्यवादी अर्थापत्यादिक प्रमाण न्यारा माने हैं ते सर्व इस मतिज्ञानमें अन्तर्भूत होय हैं" ॥ अर्थप्रकाशिका मुद्रित पृष्ठ ४३ ॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित इस (तेरहवें) सूत्रपर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दशः हिन्दीअनुवाद ॥

आदौ ७। यद् १।।। उद्दिष्टम् १।।। ज्ञानम् १।।।	=पहिले जो (इस तेरहवां सूत्र में) उपदेशकियागयाज्ञान (अर्थात् मतिज्ञान)
तस्य ६।।। पर्यायशब्दाः १।	=तिस (मतिज्ञान) के पर्यायशब्द-नामान्तर-अनर्थान्तर-वा अभिधेयार्थवाची
एते १। वेदितव्याः १। ; मतिज्ञान–	= ये (स्मृति-संज्ञा-चिंता-अभिनिबोध) जानने चाहिये । मतिज्ञान
आवरण–	=आवरणीय कर्मका
क्षयोपशम-अन्तरंगनिमित्त–	= क्षयोपशम अन्तरंग कारणसे
जनित-उपयोग-विषयत्वात् ५।।।	= जन्य वा उत्पन्न हुआ जो उपयोग तिस सम्बन्धी (ये मति-स्मृति-संज्ञा-चिंता-अभिनिबोध) हैं
च एतेषां ६। अप्रवृते : ५।। श्रुत–	= और (=च) क्योंकि इन (मति-स्मृति-सज्ञा-चिंता-अभिनिबोध) की अप्रवृत्ति श्रुतज्ञान
आदिषु ७।।। मननम् १।।।	= आदिकज्ञानोंमें है ॥ मानना (=मननं) अर्थात् मन, और इन्द्रियोंसे वर्तमानकालवर्ती पदार्थ के अवग्रहादिरूप साक्षात् जानना सो)
मतिः १।। स्मरणम् १।।। स्मृतिः १।।	=मतिज्ञान है। सुध (=स्मरण) (अर्थात् अनुभवित पदार्थोंका कालान्तरमें स्मरण होना) सो स्मृति है
सञ्ज्ञानम् १।।।	= जोड़रूपज्ञान वा प्रत्यभिज्ञान (स्मृति और प्रत्यक्षके विषयभूत पदार्थोंमें जोड़रूप ज्ञान) (अर्थात् वर्तमानमें किसी पदार्थको देखकर यह वही है जो पहिले देखा था ऐसाजोड़रूप ज्ञान)
सञ्ज्ञा १।। चिंतनम् १।।।	=सो सञ्ज्ञाज्ञान है॥ चिंतवन(=किसी चिन्हको देखके वहां इस चिन्हवाला अवश्य होगा ऐसा विचार)
चिंता १।।	=सो चिंता वा तर्क वा व्याप्तिज्ञान वा ऊहा वा ऊह ज्ञान है ॥

अभिनिबोधनमभिनिबोधः । इति यथासम्भवं विग्रहान्तरं विज्ञेयम् ॥ सत्यपि प्रकृतिभेदे रूढिबललाभात् पर्यायशब्दत्वम् । यथा—इंद्रः शक्रः पुरन्दरः इति, इन्दनादिक्रियाभेदेऽपि शचीपतेरेकस्यैव संज्ञाः । समभिरूढनयापेक्षया तेषामर्थान्तरकल्पनायां

अभिनिबोधनम् १।।। =साधन (=लिंग वा चिन्ह वा हेतु)से साध्य (सिद्ध करने योग्य वस्तु)का ज्ञान (अर्थात् सन्मुख चिन्हादिक देखकर उस चिन्हवालेका निश्चय करलेना सो)

अभिनिबोधः १। =अभिनिबोधज्ञान वा स्वार्थानुमान ज्ञान वा अनुमान ज्ञान है (यहां मति-स्मृति-संज्ञा-चिंता-अभिनिबोध शब्दोंका भाव साधनमें अर्थ किया है)

इति* यथासम्भवम् १।।। विग्रह-अन्तरम् १।।। =ऐसे योग्यता पूर्वक वा योग्यतानुसार (=यथासम्भव) अन्य विग्रह (समासके अर्थको जनानेवाले अन्यवाक्य जैसे इनके करण साधन कर्तृ साधन)

विज्ञेयम् १।।। प्रकृतिभेदे ७। =जानना योग्य है । (मति-स्मृति-संज्ञा-चिंता-अभिनिबोधके) अर्थ (=प्रकृति) भेद

सति ७। अपि* रूढि-बल-लाभात् ५। =होनेपर (=सति) भी (=अपि) रूढि (=प्रसिद्ध) की सामर्थ्य प्राप्तिसे

पर्याय-शब्दत्वम् १।।। यथा* इन्द्रः १। =(मतिके) पर्यायशब्द वा नामान्तर हैं । जैसे इन्द्र (=ऐश्वर्य क्रियावाला शचीपति)

शक्रः १। पुरन्दरः १। =शक्र (शक्तिरूप क्रियावाला शचीपति) पुरन्दर (=पुरके फाड़नेवाला शचीपति)

इति-इन्दन- =ऐसे (इन तीन इन्द्र-शक्र-पुरन्दर शब्दोंमें) ऐश्वर्य होनेरूप

आदि-क्रिया-भेदे ७। अपि* =शक्ति होनेरूप, फाड़ने (यथासंख्य) क्रियायोंके भेद होनेपर भी

एकस्य ६। शची-पतेः ६। एव संज्ञा १।। समभिरूढनय- =एक शची भर्ताके ही नाम समभिरूढनय (नाना अर्थको छोड़कर एक ही अर्थमें स्थापित करनेवाली नीति वा रीति)की

अपेक्षया ३।। तेषाम् ६। अर्थ-अन्तर-कल्पनायाम् ७।। =अपेक्षा . तिन (इन्द्र-शक्र-पुरन्दर)के भिन्न भिन्न अर्थ माननेमें

मत्यादिष्वपि स क्रमो विद्यत एव। किंतु मतिज्ञानावरणाक्षयोपशमनिमित्तोपयोगं नातिवर्तत इति अयमत्रार्थो विवक्षितः। इतिशब्दः प्रकारार्थः। एवंप्रकारा अस्य पर्यायशब्दा इति। अभिधेयार्थो वा। मतिः स्मृतिः संज्ञा चिन्ता अभिनिबोध इत्येतैर्योऽर्थोऽभिधीयते स एक एव इति ॥

मति-आदिषु ७/३। अपि॥ सः १/१। क्रमः १/१। विद्यते T	=मति आदिकमें भी वह नियम रीति-वानय (=क्रम) विद्यमान
एव॥ किंतु॥ मति-ज्ञान-आवरण—	=ही है क्योंकि (=किंतु) (मति-स्मृति संज्ञा-चिंता-अभिनिबोध) मतिज्ञानावरणकर्मके
क्षयोपशमनिमित्त-उपयोगम् २/१। न॥ अति-वर्तते T	=क्षयोपशम जनित उपयोगको उलंघकरि नही वर्तते हैं वा नहीं छोड़ते हैं अर्थात् इन पांचोंके अर्थ तौ भिन्न हैं परंतु मतिज्ञानावरणकर्मके क्षयोपमसे ये सब उपजते हैं। अतः सब मतिज्ञान के ही पर्याय वाची शब्द वा नामान्तर माने जाते हैं॥ सारांशः—जैसे इन्द्र-शक्र-पुरंदर न्यारी न्यारी क्रियाके करनेवालेको प्रगट करने पर भी समभिरूढनयकी अपेक्षा से शचीपति के ही नाम हैं तैसेही मति स्मृति संज्ञा चिंता अभिनिबोध अन्य अन्य अर्थोंके बोधक होनेपरभी एक मतिज्ञानकेही नाम उक्तनयसे हैं क्योंकि पांचों मतिज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशमसे उत्पन्न होते हैं॥
इति॥ अत्र॥ अयम् १/१। अर्थः १/१। विवक्षितः॥	=ऐसे यहां यह अर्थ अपेक्षा से किया गया है (विवक्षितः)
इतिशब्दः १/१। प्रकार-अर्थः १/१।	=(इस सूत्रमें) इति शब्द प्रकारके निमित्त (=अर्थ) है अर्थात् भेदोंका वाचक है
एवम्॥ अस्य ६/१। प्रकाराः १/३। पर्याय-शब्दाः १/३। इति॥	=ऐसे (=एवम्) इस (मतिज्ञान) के (=अस्य) भेद हैं (=प्रकाराः) नामान्तर हैं
वा॥ अभिधेय-अर्थः १/१।	=अथवा (=वा) (इति शब्द सूत्रमें) अभिधेय अर्थवाची है अर्थात्
मतिः १/१॥ स्मृतिः १/१॥ संज्ञा १/१॥ चिंता १/१॥ अभिनिबोधः १/१।	=मति स्मृति संज्ञा चिंता अभिनिबोध
इति॥ एतैः ३/३। यः १/१। अर्थः १/१। अभिधीयते T	=इस प्रकार इन (शब्दों) करि जो अर्थ कहा गया है (अभिधीयते)। सो (अर्थ)-
सः १/१। एकः १/१। एव॥ इति॥	=एक ही है अर्थात् मतिज्ञानकेही पर्याय शब्द वा नामान्तर हैं॥

विद्यत एव और नातिवर्तत इति = विद्यते एव और नातिवर्तते इति॥ लोपःशाकल्यस्य ८।३।१९ सूत्रसे इनदोनों वाक्योंके यूका लोप होगया है॥

अथास्यात्मलाभे किं निमित्तमित्याह ॥

तदिन्द्रियाऽनिन्द्रियनिमित्तम् ॥ १४ ॥ तदिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तम् ॥ १४ ॥

इन्दतीति इन्द्र आत्मा तस्य स्वभावस्य तदावरणक्षयोपशमे सति स्वयमर्थान् गृहीतुमसमर्थस्य यदर्थोपलब्धिनिमित्तं लिङ्गं तदिन्द्रस्य लिंगमिन्द्रियमित्युच्यते ॥

अथ* अस्य ६।१ आत्म-लाभे ७।१ किम् १।१ निमित्तम् १।१	=अब (=अथ) इस (मतिज्ञान) के स्वरूपके (=आत्म) उपार्जन में क्या हेतु है
इति* आह T	=ऐसा (प्रश्न होने पर) कहते हैं कि

तदिन्द्रियाऽनिन्द्रियनिमित्तम् ॥ १४ ॥ तदिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तम् ॥ १४ ॥

तद्-	=वह (पूर्वोक्त मति-स्मृति-संज्ञा-चिंता-अभिनिबोध इत्यादि शब्दरूप मतिज्ञान)
इन्द्रिय-अनिन्द्रिय-निमित्तम् १।१	=(वहिरंग मे) पांच इन्द्रिय और मननिमित्तक, वा मनजनित वा मनजन्य है अर्थात् उस मतिज्ञानके उत्पन्न होनेके लिये स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षुः श्रोत्र मन ये छै वाह्य कारण हैं पर अंतरंग मतिज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम है ॥ मनः, अंतःकरण, अनिन्द्रिय (=किंचित् वा ईषद् इन्द्रिय, न कि इन्द्रिय रहित) है ॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस (चौदहवें) सूत्रपर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दशः हिंदी अनुवाद ॥

इन्दति T इतिइन्द्रः १। आत्मा १।	=परम ऐश्वर्यरूप प्रवर्तता है (=इन्दति) ऐसा इन्द्र है वा (अर्थसे) चेतना है आत्मा है ॥
तस्य- ६। स्वभावस्य ६। तद्-आवरण-क्षयोपशमे ७।	=तिस (आत्मा) के (ज्ञान) स्वभाव को उस ज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशम
सति ७। स्वयम्* अर्थान् २। गृहीतुम्०	=होनेपर आपही आप (=स्वयम्) पदार्थों को ग्रहण (करने) के लिये
असमर्थस्य ६। यद्-अर्थ-उपलब्धि-निमित्तम् १।।	=असमर्थ (आत्मा) को जो पदार्थ को जनावने का कारण है
लिङ्गम् १।। तद्-इन्द्रस्य ६। लिङ्गम् १।। इन्द्रियम् १।।	=सो लिंग वा चिन्ह है। वह आत्मा का चिन्ह इन्द्रिय
इति* उच्यते T	=कहा जाता है ॥ भावार्थ यह है कि चेतनके अंतरंग मतिज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशम से पदार्थों के जाननेकी अंतरंग शक्ति तो

---

(१) दोनो सम्प्रदायोमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है। वाह्य कारणोसे स्पार्शन-रासन-घ्राणज-चाक्षुष-श्रावण-मानस छैभेद है(२)हेत्वर्थभूत कृदन्तहै

अथवा लीनमर्थं गमयतीति लिङ्गम् । आत्मनः सूक्ष्मस्यास्तित्वाधिगमे लिङ्गमिन्द्रियम् । यथा इह धूमोऽग्नेः ॥ एवमिदं स्पर्शनादिकरणं नासति कर्तर्यात्मनि भवितुमर्हतीति ज्ञातुरस्तित्वं गम्यते ॥ अथवा इन्द्र इति नामकर्मोच्यते । तेन सृष्टमिन्द्रियमिति । तत्स्पर्शनादि उत्तरत्र वक्ष्यते ॥ अनिन्द्रियं मनःअंतःकरणमित्यनर्थान्तरम् ॥

आत्मामें प्रगट हुई परन्तु वही आत्मा बाह्य उपकरण विना जाननेको समर्थ नहीं हो सक्ता है अतः पदार्थोंके जनावनेके लिये बाह्य कारणको इन्द्रिय कहते हैं ॥

अथवा* लीनम् ३। अर्थम् ३। गमयति T इति*	=अथवा गूढ़ वस्तुको जताता है (=गमयति-बोधयति) ऐसा
लिङ्गम् १॥। आत्मनः ६। सूक्ष्मस्य ६। अस्तित्व-अधिगमे ७।	=लिंग या चिन्ह है । चेतनकी गूढ़ या अदृष्ट विद्यमानता जाननेमें
लिङ्गम् १॥। इन्द्रियम् १॥। यथा* इह* धूमः १। अग्नेः ६।	=चिन्ह या लिंग है सो इन्द्रिय है । जैसे यहां (=इह) अनलका धूम (लिंग) है
एवं* इदम् १॥। स्पर्शन-आदि-करणम् १॥। आत्मनि ७।	=ऐसे यह स्पर्शन आदिक (पांच इन्द्रिय) करण या साधन है सो चेतन
असति ७। कर्तरि ७। भवितुम्-अर्हति T न*	=कर्ताके न होने पर अस्तित्व या होनेको (=भवितुम) समर्थ नहीं है (न-अर्हति)
इति* ज्ञातुः६। अस्तित्वम १॥। गम्यते T	=ऐसे ज्ञाता (जो आत्मा तिस) की विद्यमानता इन्द्रियों करि जानी जाती है अर्थात स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षुः श्रोत्र इन पांचों इन्द्रियोंका अस्तित्व यदि आत्मा न हो तो असम्भव है क्योंकि आत्मा कर्ता है और पांचों इन्द्रिय करण है कर्ता विना करण नहीं हो सक्ता है ॥ इस प्रकार ये पांचों इन्द्रिय ज्ञाता जो आत्मा है तिसका अस्तित्व प्रकट करती हैं
अथवा* इन्द्रः १। इति* नामकर्म १॥। उच्यते T	=अथवा इन्द्र ऐसा नामकर्म कहा गया है
तेन ३। सृष्टम् १॥। इन्द्रियम् १॥। इति* तत्-स्पर्शन-आदि १॥। उत्तरत्र * वक्ष्यते T	=तिस (नामकर्म) करि रचीगई है सो इन्द्रिय इसप्रकार है ॥ सो स्पर्शन =रसन-घ्राण-चक्षुः-श्रोत्र यहांसे आगे (अध्याय २ सूत्र १९में) कहेंगे
अनिन्द्रियम् १॥। मनस् १॥। अंतःकरणम् १॥। इति *	=अनिन्द्रिय-मन, अंतःकरण ये
अन्-अर्थ-अन्तरम् १॥	=अन्य पदार्थ नहीं हैं (पर्यायवाची शब्द हैं, एकार्थ वाची शब्द हैं, समानार्थक हैं)

कथं पुनरिन्द्रियप्रतिषेधेन इन्द्रलिङ्गे एव मनसि अनिन्द्रियशब्दस्य प्रवृत्तिः १। ईषदर्थस्य नञः प्रयोगात। ईषदिन्द्रियमनिन्द्रियमिति । यथा अनुदरा कन्या इति ॥ कथमीषदर्थः १। इमानीन्द्रियाणि प्रतिनियतदेश-विषयाणि कालान्तरावस्थायीनि च । न तथा मनः इन्द्रस्य लिङ्गमपिसत्प्रतिनियत-

पुनः * इन्द्रिय-प्रतिषेधेन ३।। अनिन्द्रिय-शब्दस्य ६।	=(प्रश्न) और (=पुनः) इन्द्रियका निषेध करनेसे अनिन्द्रियशब्दकी
प्रवृत्तिः १।। इन्द्र-लिङ्गे७।। एव* मनसि ७।। कथम् *	=प्रवृत्ति आत्माका चिन्ह मन (अर्थ) में ही कैसे है अर्थात् जो इन्द्रिय न हो सो अनिन्द्रिय है तौ मन अनिन्द्रिय कैसे हैं ।
ईषत् *	=(उत्तर) (इन्द्रिय रहित वा वर्जित अनिन्द्रिय नहीं है किन्तु) अल्प वा किञ्चित्
अर्थस्य ६। नञःप्रयोगात ५।	=अर्थमें (इन्द्रिय शब्दके) नञ् (=अन्) समासके प्रयोग से
ईषत् * इन्द्रियम् १।।। अनिन्द्रियम् १।।। इति* यथा *	=ईषत् इन्द्रिय सो अनिन्द्रिय है । जैसे
अन्- उदरा १।। कन्या १।। इति *	=अन्-पेट वाली कुमारी ऐसे (यहांपर-अन्-नञ्समास निषेध अर्थमें नहीं है किन्तु ईषद् वा किञ्चत् अर्थमें है अनुदरा उस कन्या को नहीं कहते हैं जिसके पेट न हो परन्तु उस कन्या को कहते हैं जिसका पेट पतलाहो, क्षीणहो, कृशहो और जो गर्भधारणमें असमर्थ हो)
कथम् * ईषत् * अर्थः १। इमानि १।।। इन्द्रियाणि १।।।	=(प्रश्न) किञ्चित् अर्थ कैसे है (उत्तर) ये (=इमानि) (पांचौ) इन्द्रियें
प्रति-नियत-देश-विषयाणि १।।। च*	=नियमित स्थान वाली (वस्तु को) विषय करती हैं और (=च)
कालान्तर-अवस्थायीनि १।।।	=कालान्तरमें (=अन्य २ कालमें) ठहरनेवाली हैं अर्थात् स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षुः श्रोत्र पांचो इन्द्रियोंके एक दूसरे से भिन्न भिन्न स्थान हैं और भिन्न भिन्न विषय हैं और जिसकालमें अपने अपने विषयों से उपयुक्त न हों उसकालमें भी अवस्थित रहती हैं
तथा * मनस् १।।। इन्द्रस्य ६।।। लिङ्गम् १। प्रतिनियत-	=तैसे मन आत्मा का (=इन्द्रस्य) लिंग होने पर भी (सत्-अपि) प्रतिनियत

देशविषयं कालान्तरावस्थायि च। तदन्तःकरणमिति चोच्यते। गुणदोषविचारस्मरणादिव्यापारेषु इन्द्रियानपेक्षत्वाच्चक्षुरादिवद् बहिरनुपलब्धेश्च अन्तर्गतं करणमित्युच्यते॥ तदिति किमर्थम्?। मतिज्ञाननिर्देशार्थम्॥ ननु च तदनन्तरं अनन्तरस्य विधिर्वा भवति प्रतिषेधो वेति, तस्यैव ग्रहणं भवति।

देशविषयं ।।। च कालान्तर-
अवस्थायि । न* तद् ।।।
अन्तःकरणम् ।।। इति* च* उच्यते T
गुण-दोष-विचार-स्मरण-आदि-व्यापारेषु । इन्द्रिय-
अन्-अपेक्षत्वात् ।।। च* चक्षुरादि-वत्*
बहिस्* अन्-उपलब्धेः । अन्तर्गतम् ।।। करणम् ।।।
अन्तःकरणम् ।।। इति उच्यते T
तद् ।।। इति* किमर्थम् ।।। मतिज्ञान-निर्देश-
अर्थम् ।।। ननु* च* तद्-अनन्तरम् ।।।
अनन्तरस्य ।।। विधिः । वा* भवति T प्रतिषेधः ।
तस्य ।।। एव* ग्रहणम् ।।।
भवति T

=स्थानवाला (और प्रतिनियत) विषयवाला और कालान्तरमें वा अन्य अन्य कालमें
=अवस्थित रहनेवाला नहीं है अर्थात् मन चंचल है। वह (=तद्=अनिंद्रिय=मन)
=अन्तःकरण वा अभ्यन्तर इन्द्रिय ऐसा भी (नाम) है।
=गुण-दोषके विचारण और स्मृति आदि व्यवसाय वा उद्योगमें इन्द्रियोंकी
=अपेक्षा न होनेसे तथा (=च) नेत्रादिकके सदृश (मन अन्य मनुष्यों द्वारा)
=बाह्यसे न देखे जानेसे (=अनुपलब्धेः) वा न जानेजानेसे अन्तर्गत इन्द्रिय
=(वा) अंतःकरण वा मन ऐसा कहा गया है (ऐसे ईषत् अर्थ अन्में सम्भव है)
=(इस सूत्रमे) तद् ऐसा शब्द किस लिये है। (तत् शब्द) मतिज्ञानके कथनके
=लिये है। और (=च) प्रश्न (=ननु)। वह (मतिज्ञान शब्द इस सूत्रके) लगता ही है (अर्थात् इस सूत्रके अत्यन्त समीप लगता ही मतिस्मृतिसञ्ज्ञाचिन्ताभिनिबोधः इत्यादि सूत्र कह चुके हैं तिस सूत्रका मति शब्द इस सूत्रके लगता ही है जब एक सूत्र के पीछे दूसरा सूत्र आवै तौ दूसरे सूत्रसे पहिले सूत्रकी)
=अत्यन्तसमीपवर्ती (वस्तु) का विधान होता है वा निषेध ऐसा (परिभाषा सूत्र) है
=(अतः इस सूत्रमें विना तत् शब्द लाये हुये) तिस (मतिज्ञान) का ही आदान
=होता है (इसलिये इस सूत्रमें तत् शब्द निर्थक ही है)

इहार्थमुत्तरार्थं च तदित्युच्यते ॥ यन्मत्यादिपर्यायशब्दवाच्यं ज्ञानं तदिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तं तदेवावग्रहेहावायधारणा इति । इतरथा हि प्रथमं मत्यादिशब्दवाच्यं ज्ञानमित्युक्त्वा इन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तं श्रुतम् । तदेवावग्रहेहावायधारणा इत्यनिष्टमभिसम्बध्येत ॥

इह * अर्थम १।। च * उत्तर-	=(उत्तर) यहांके लिये अर्थात् इस सूत्रके लिये और (=च) पश्चात् वा पिछले
अर्थम् १।। तद् १।। इति*	=(सूत्र) के लिये (अर्थात् कहे जाने वाले पंद्रहवां सूत्र के लिये) तद् (शब्द) है।। ऐसे
उच्यते T यद् १।। मति-आदि-पर्याय शब्द-	=कहा गया है (कि) जो मति स्मृति संज्ञा चिंता अभिनिबोध समानार्थक शब्दोंकरि
वाच्यम् १।। ज्ञानम् १।। तद् १।। इन्द्रिय-	=वाच्य (कहे जाने वाला) ज्ञान है सो (ज्ञान) इन्द्रिय
अनिन्द्रिय-निमित्तम् १।। तद् १।।	=तथा अन्तः करण जनित है (और) वो (मतिज्ञान)
एव * अवग्रह-ईहा-आवाय-धारणाः ३।। इति*	=ही अवग्रह-ईहा-आवाय-धारणा रूप (देखो सूत्र १५) है क्योंकि (=हि)
इतरथा * हि * प्रथमं १।। मति-आदि-	=अन्यथा (तत् शब्द न लाया जाय तो) पहिले मति-स्मृति-संज्ञा-चिंता-अभिनिबोध
शब्द-वाच्यम् १।। ज्ञानम् १।। इति* उक्त्वा–	=शब्दोंकरि वाच्य (=कहेजानेवाला) मतिज्ञानहै ऐसा कहकर वा कथन करि
इन्द्रिय-अनिन्द्रिय-निमित्तम् १।। श्रुतम् १।।	=इन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तं (=इन्द्रिय और मन जनित) श्रुत ज्ञान है ऐसा संबंध होजाता
तद-एव* अवग्रह-ईहा-आवाय-धारणाः ३।। इति*	=तोवह (श्रुतज्ञान) ही अवग्रह-ईहा-आवाय-धारणा (सूत्र १५) रूप है ऐसा
अनिष्टम् १।। अभिसम्बध्येत T	=विरुद्ध वा प्रतिकूल सम्बन्ध वा प्रसंग हो जाता यदि इस सूत्रमें तद् शब्द न लाते)

सारांशः—"इन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तं" ऐसा सूत्र होता तौ तद् शब्द का लाभ होजाता (उत्तर) आदिके दो मतिज्ञान और श्रुतज्ञान परोक्ष है (देखो सूत्र ११) मति-स्मृति-संज्ञा-चिंता अभिनिबोध ये मतिके पर्यायशब्द हैं (सूत्र १३) अत्र यदि तत् शब्द न लाते तो (यथा संख्य के नियम से) इन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तं का संबंध श्रुतज्ञान तो११वां सूत्रमें है) उससे होकर यह अर्थ होजाता कि इन्द्रिय और अनिन्द्रिय जन्य श्रुतज्ञान है पश्चात्

एवं निर्ज्ञातोत्पत्तिनिमित्तमनिर्णीतभेदमिति तद्भेदप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ अवग्रहेहावायधारणाः ॥ १५ ॥

इस श्रुतकी अनुवृत्ति १५वें सूत्रमें जाकर इस १५वें सूत्रका अर्थ होजाता कि अवग्रह ईहा-अवाय-धारणारूप श्रुतज्ञान है, ऐसा अर्थ सिद्ध हो जाता अतः नव शब्द लगे हैं ॥

एवम्‌% निर्ज्ञात-उत्पत्ति-निमित्तम् ;॥ =ऐसे (मतिज्ञानके) उत्पन्न होने का हेतु जानागया (परन्तु मतिज्ञानके)

अनिर्णीत-भेदम् ;॥ इति% तद्- =भेद या विधान नहीं जाने गये इस प्रकार (प्रश्न होने पर) उस (मतिज्ञान) के

भेद-प्रतिपत्ति-अर्थम् ;॥ आह T =भेदोंको जाननेके लिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्- अवग्रहेहावायधारणाः ॥ १५ ॥

सूत्रार्थः (पूर्वोक्त पांच इन्द्रिय और अनिन्द्रिय जनित मतिज्ञानके एक होने पर भी)

अवग्रह- =अवग्रह (पदार्थके सत्तामात्र जाननेके पीछे श्वेत कृष्णादि विशेष विकल्पस्प ज्ञान)

ईहा- =ईहा (अवग्रह से जाने हुये पदार्थके विशेष जाननेकी आकांक्षा रूप ज्ञान)

अवाय- =अवाय या अपाय (ईहासे जानी हुई वस्तुका अवधारणरूप या निश्चयरूप ज्ञान)

धारणाः ;॥ =धारणा (अवायसे जानेहुये पदार्थको अन्य कालमें न भूलना, सुरक्षित रखना (ये चार भेद) हैं

भावार्थः—जो इन्द्रिय और इन्द्रियके ग्रहण योग्य विषय के संयोग होते ही जो वस्तु के सत्तामात्र का ग्रहण सो दर्शन है जैसे चक्षुके पड़ते ही वस्तुका प्रकाश मात्र निर्विकल्प ग्रहणमें आया सो चक्षुदर्शन है। ऐसेही कर्णादिक चार इन्द्रियोंके द्वारा सामान्य विकल्प रहित ग्रहण होय सो अचक्षुदर्शन है। और तिस (दर्शन) के लगता ही जो देखेहुये पदार्थ का वर्णन संस्थानादिक विशेष ग्रहण में आवै सो अवग्रह नामा मतिज्ञान है ॥

(१) श्वेताम्बर आम्नायके "सभाष्य तत्त्वार्थाधिगम सूत्रमें 'अवाय और अपाय' दोनों पाठ हैं॥ शेष पाठ दोनों आम्नायोंमें एक [illegible] है।

(२) ईहादिक ज्ञान विना अवग्रह के नहीं हो सकते किंतु अवग्रह पूर्वकही होते हैं इसलिये अवग्रह आदि चारों भेदोंमें सबसे पहिले अवग्रह का उल्लेख है अवाय और धारणा ईहा पूर्वक होते हैं इस लिये अवग्रहके पश्चात् ईहाका कथन है धारणा ज्ञान [illegible] इस लिये ईहाके पीछे अवायका कथन है। धारणा ज्ञान सबसे अंतमें होता है इसलिये सबके अंतमें धारणा ज्ञान [illegible] इसप्रकार [illegible] से अवग्रह आदिका क्रमसे उल्लेख है ॥

विषयविषयिसन्निपातसमयानन्तरमाद्यग्रहणमवग्रहः। विषयविषयिसन्निपाते सति दर्शनं भवति तदनन्तरमर्थस्य ग्रहणमवग्रहः।

जैसे नेत्र इन्द्रियके ग्रहणमें आया जो ये श्वेत है ॥ (२) बहुरि श्वेत रूप जाने हुये पदार्थ में विशेष जाननेकी आकांक्षा जो यह श्वेत है सो बकपंक्ति होना चाहिये अथवा श्वेत धुजा होना चाहिये इस प्रकार इच्छा होना सो ईहा मतिज्ञान है। ऐसै ही शब्दादिकोंमें अन्य इन्द्रियों द्वारा ईहा होती है ॥ (३) ईहाकरि जाने हुये पदार्थका विशेष निर्णय होनेसे जैसा पदार्थ हो तिसमें तैसा ही निश्चय होना सो अवाय मतिज्ञान है ॥ जैसे बगुला (=बगला-बग-बक)की पंक्तिमें बगलोंकी पंक्तिहीकी जाननेरूप इच्छा थी परंतु ध्वजाका निषेध नहीं किया था ऐसा तौ ईहा ज्ञान था। अब ऊंचा नीचा आवना पंखोका हलावना इत्यादि क्रिया चिन्हकरि ऐसा निश्चय हुआ जो ये बक पंक्तिही है अन्य धुजादिक कुछ भी नहीं है ऐसा निश्चय ज्ञान अवाय है (४) अवायकरि निश्चय वा निर्णय किया जो वस्तु उसका ऐसा दृढ़ज्ञान होना जो भिन्न भिन्न कालमें वा कालान्तरमे भूलना नही सुधबनी रहै उसको धारण ज्ञान वा धारणा मतिज्ञान कहते हैं ॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस सूत्रपर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दशः हिंदी अनुवाद ॥

विषय-विषयिन्- =विषय (शब्दरूपादि) अथवा इन्द्रियार्थ और विषयी या विषयवाले (पांच इन्द्रिय और मन) निके
सन्निपात-समय-अनन्तरम् ११।। =संबंध होनेके समयसे लगताही (=अनन्तर)
आद्य-ग्रहणम् ११।। अवग्रहः ११। =प्रथम ग्रहण अथवा जो पहिलेही ग्रहणमें आवै (सो) अवग्रह है (अर्थात्)
विषय-विषयि- =(स्पर्श-रस-गंध-रूप-शब्द जे) विषय और विषयको ग्रहण करने वाले पांच इन्द्रिय और मन के
सन्निपाते ७।।। सति ७।। दर्शनम् ११।। =संबंध वा संयोग होने पर (=सति) (किसी वस्तुके) सत्ता वा होने मात्रका ग्रहण दर्शन
भवति T तद्-अन्तरम् ११।। =होता है। उस (दर्शन)के लगता ही अथवा अत्यंत निकट (अनन्तर)
अर्थस्य ६। ग्रहणम् ११।। अवग्रहः ११। =पदार्थका ग्रहण सो अवग्रह है ॥

यथा--चक्षुषा शुक्लं रूपमिति ग्रहणमवग्रहः ॥ अवगृहीतेऽर्थे तद्विशेषाकाङ्क्षणमीहा । यथा- शुक्लं रूपं किं बलाका पताकेति ॥

भावार्थः— किसी पदार्थका इन्द्रिय और मनके संबंध होने से उस वस्तुके होने वा सत्ता मात्रको जानना सो दर्शन है। दर्शनके पश्चात् ही वा लगता ही वस्तुका श्वेत अरुणादिरूप विशेषज्ञान सो अवग्रह नामा मतिज्ञान है

यथा ॐ चक्षुषा ३। शुक्लम् १॥। रूपम् १॥ इति ग्रहणम् =जैसे नेत्रकरि श्वेतरूप इसप्रकार आदान वा ग्रहण

अवग्रहः १। अवग्रह-गृहीते ७। अर्थे ७। तद्-विशेष-आकाङ्क्षणम् १॥। ईहा १॥ =सो अवग्रह है। अवग्रहकरि ग्रहण किये हुये पदार्थ में उस पदार्थ के =अधिक वा विशेष (जानने) की अभिलाषा वा वांछा रूप ज्ञान सो ईहा है

यथा ॐ शुक्लम् १॥। रूपम् किम् बलाका १॥ पताका १॥ इति =जैसे यह श्वेत रूप क्या बक श्रेणी होना चाहिये (अथवा) ध्वजा।

(१) ईहा और संशय ज्ञानमे यह अन्तर है कि संशय ज्ञान तो दोय पक्षमें अनिश्चित ज्ञान है अप्रमाण है बहुरि ईहा एकही पक्षमें वांछारूप ज्ञान है जो बक पंक्ति है तो उसहीकी जाननेकी इच्छा है जो पताका है तो उसहीकी जाननेकी अभिलाषा है। बहुरि संशय ज्ञानमें न जाने बगुलाकी पांती है अथवा न जाने पताका है ॥

१ ननु ईहा संशयज्ञानं भवितुमर्हति, किं बलाका पताकेति उभयकोटीपरामर्शप्रत्ययत्वात्, प्रसिद्धसंशयज्ञानवत् ॥ तथा च कथमस्याः प्रामाण्यमिति न शंकितव्यम्। हेतोरसिद्धेः। तस्या भवितव्यताप्रत्ययरूपत्वेन उभयकोटीपरामर्शिप्रत्ययरूपत्वाघटनात्। किं बलाका पताकेति वचनं तु निदर्शनद्वयोपदर्शनार्थमुक्तम्। तथा च किं बलाकेत्यत्र बलाकया भवितव्यमिति तात्पर्यम्। किं पताकेत्यत्र च पताकया भवितव्यमिति तात्पर्यम् ॥ कथमेषा प्रतीतिरिति चेत् प्ररूपणशास्त्रे ज्ञानमार्गणायां मतिज्ञानव्याख्यानावसरे श्रीमदभयसूरिवर्यैरित्थमेव निरूपितत्वात् ॥ यथाहि तद्ग्रन्थः- अवग्रहेण इदं श्वेतमिति ज्ञातेऽर्थे विशेषस्य बलाकारूपस्य पताकारूपस्य वा यथावस्थितस्य आकांक्षा, बलाकया भवितव्यमिति भवितव्यताप्रत्ययरूपा बलाकायामेव सजायमाना ईहाख्य द्वितीयं ज्ञानंभवेत् ॥ अथवा पताकारूपं विषयमालम्ब्य उत्पद्यमाना अनया पताकया भवितव्यमिति भवितव्यताप्रत्ययरूपा

आकाँक्षा ईहानाम द्वितीयं ज्ञानं भवेत् ॥ एवमिन्द्रियान्तर विषयेषु मनोविषये च अवग्रहगृहीते यथा वस्थितस्य विशेषस्य आकांक्षारूपा ईहेति निश्चेतव्यम् ॥ मतिज्ञानावरण क्षयोपशमस्य तारतम्यभेदेन अवग्रहेहाज्ञानयोर्भेद संभवात् ॥ अस्मिन् सम्यग्ज्ञानप्रकरणे वलाका वा पताका वा इति संशयस्य वलाकायां पताकया भवितव्यमिति विपर्यस्य च मिथ्याज्ञानस्यानवतारात् ॥

ननु॥ ईहा ॥ संशयज्ञानम् ॥। भवितुम्-अर्हति T = प्रश्न, ईहा संदेहज्ञान होना चाहिये वा होना योग्य है । (भवितुम् हेत्वर्थभूत कृदन्त हैं)

किम् ॥। वलाका ॥ पताका ॥ इति* उभयकोटीपरामर्शि- = क्योंकि, वक श्रेणी (वा) ध्वजा ऐसा दोनों पक्ष का अवलम्बन करने वाले

प्रत्ययत्वात् ॥। , प्रसिद्धसंशय-ज्ञानवत् * ॥ = ज्ञान होने वा प्रतीति होनेसे प्रगटकरि संशयज्ञान सदृश है ॥

तथा* च* कथम्* अस्याः ॥ प्रामाण्यम् ॥। = उसपरभी (=तथाच) अर्थात् दोनो पक्षमें होनेपरभी इस (ईहा) के प्रमाणका होना कैसे हैं

इति* न* शंकितव्यम् ॥। = ऐसा संदेह (आचार्य कहते हैं) न होना चाहिये । प्रश्नका भावार्थ यह है कि ईहाज्ञानको वक पंक्ति है वा ध्वजा है ऐसा विचार होनेसे संशयज्ञान कहना चाहिये, उत्तर यह है कि दोनों पक्षमें विचार होनेपर भी ईहाको संशयज्ञान न कहना चाहिये ।

हेतोः ॥ असिद्धेः ॥ = (क्योंकि) हेतु (=साधन) की सिद्धि नहीं होती सारांश यह है कि ईहाज्ञानको संशयज्ञान बनाने के लिये जो हेतु "दो कोटि परामर्शी ज्ञान होनेसे" दिया है वह असिद्ध है, हेत्वाभास है

तस्या ॥ भवितव्यता-प्रत्ययरूपत्वेन ॥। = क्योंकि तिस (ईहा) के होनेकी (भवितव्यता) प्रतीति रूपपना से

उभय-कोटी-परामर्शि-प्रत्ययरूपत्वअघटनात् ॥। = दोनों पक्ष अवलम्बी ज्ञानरूपका होना नहीं घटता है वा नहीं बनता है ॥

किम् ॥। वलाका ॥ पताका ॥ इति* वचनम् ॥। = क्या वगुलाकी पंक्ति है (वा) ध्वजा है ऐसा वाक्य तो (=तु)

निदर्शनद्वयउपदर्शन- अर्थम् ॥। उक्तम् ॥। = (ईहाके) दो उदाहरण (= निदर्शन) दिखलाने के लिये कहा गया है ॥

तथा * च * किम् ।। बलाका ।। इति * अत्र * बलाकया ।।	= जैसा कि (= तथा च) क्या बगुलों की पंक्ति ऐसा है यहां बकपंक्ति
भवितव्यम् ।। इति * तात्पर्यम् ।। च * किम् ।।	= अवश्य होनी चाहिये (= भवितव्य) ऐसा आशय है । और (= च) क्या
पताका ।। इति * अत्र * पताकया ।। भवितव्यम् ।।	= ध्वजा ऐसा है यहां पताका अवश्य होनी चाहिये ।
इति * तात्पर्यम् ।।	= ऐसा आशय है भावार्थ जो बगुलों की पंक्ति है तो उसहीकी जानने की इच्छा है जो पताका है तो उसहीकी जानने की इच्छा है ऐसा एकपक्ष ग्रहण ईहाज्ञानमें है ।
कथम् * एषा ।। प्रतीति ।। इति * चेत् *	= कैसे यह विश्वास हो (कि ईहा ज्ञान एकदेश ग्रहण करता है) ऐसा संदेह है ।।
प्ररूपणाशास्त्रे ।। ज्ञानमार्गणायाम् ।। मतिज्ञान-	= (उत्तर) प्ररूपणा ग्रथमें ज्ञान मार्गणा विषें मतिज्ञानके
व्याख्यान-अवसरे ।। श्रीमद्-अभयसूरिभिः ।।	= वर्णन के प्रसंग में श्रीमद् अभयसूरि श्री द्वारा
तथा * एव * निरूपितत्वात् ।। यथाहि * तद्-	= तैसा ही व्याख्यान वा वर्णन किये जाने से (प्रतीत होती है) जैसा कि वह
ग्रन्थः ।। अवग्रहेण ।। इदम् ।। श्वेतम् ।। इति *	= शास्त्र है । अवग्रहज्ञान करि यह शुक्ल है ऐसा
ज्ञाते ।। अर्थे ।। विशेषस्य ।। बलाकारूपस्य ।।	= विदित वा जानलेने पर अर्थमें वा स्वरूपमें विशेष बक श्रेणी रूपकी
वा * पताकारूपस्य ।। यथा-अवस्थितस्य ।। आकांक्षा ।।	= अथवा (विशेष) ध्वजा रूप की अवस्था के अनुसार (जानने की) इच्छा
बलाकया ।। भवितव्यम् ।। इति * भवितव्यता ।।	= सो बलाका होनी चाहिये । ऐसी (एक पक्ष) की संभावनात्मक
प्रत्ययरूपा ।। बलाकायाम् ।। एव * संजायमाना ।।	= प्रतीतिरूप है, बगुलों की पांती होने पर ही उत्पद्यमान (= संजायमाना) वा उपजने वाला
ईहा-आख्यम् ।। द्वितीयम् ।। ज्ञानम् ।। भवेत् ।	= ईहा नाम (= आख्या) दूसरा ज्ञान होना है ।।
अथवा * पताकारूपम् ।। विषयम् ।। आलम्ब्य-	= अथवा ध्वजारूप विषय को ग्रहण करि वा अवलम्ब करि
उत्पद्यमाना ।। अनया ।। पताकया ।। भवितव्यम् ।। इति *	= संजायमान यह पताका होनी चाहिये ऐसी
भवितव्यता-प्रत्ययरूपा ।। आकांक्षा ।।	= संभावना की प्रतीतिरूप अभिलाषा (= आकांक्षा) है
ईहानाम् ।। द्वितीयम् ।। ज्ञानम् ।। भवेत् ।	= सो ईहा नामक दूसरा ज्ञान है ।।

एवम्॰ इन्द्रियान्तरविषयेषु ३।	= इस प्रकार अन्य (स्पर्शन, रसन, घ्राण, श्रोत्र) इन्द्रियो के विषयोंमें
मनस् विषये ३। च॰	= और (=च) अनिन्द्रिय विषयमें वा अन्तः करण गोचर (वस्तु) में
अवग्रहगृहीते ७। यथावस्थितस्य ६।	= अवग्रह ज्ञानसे ग्रहण किये हुये वा जाने हुये (पदार्थ) में यथा अवस्थित (पदार्थ) के
विशेषस्य ६। आकांक्षारूपा १। ईहा १॥ इति॰ निश्चेतव्यम् १॥	= अधिक (जानने) की वाञ्छारूप ईहा ज्ञान है इस प्रकार निर्णय किया जाना चाहिये (वा)
मतिज्ञान-आवरणक्षयोपशमस्य ६। तारतम्यभेदेन ३।	= मतिज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशमके न्यूनाधिक्य भेदकरि
अवग्रह-ईहा-ज्ञानयोः ६॥ भेदसंभवात् ५। अस्मिन् ७।	= अवग्रह ईहा ज्ञानोके भेद सभव है इस
सम्यग्ज्ञानप्रकरणे ७। बलाका १॥ वा॰ पताका १॥	= सुज्ञानके अधिकार मे बगुलोंकी पांती है अथवा ध्वजा है
वा॰ इति॰ संशयस्य ६। च॰ बलाकायाम् ७॥	= ऐसे संदेह की तथा बक श्रेणी में
पताकया ३॥ भवितव्यम् १॥ इति विपर्ययस्य ६॥	= पताका होनी चाहिये ऐसे विपर्यय
मिथ्याज्ञानस्य ६॥ अन्+अवतरात् ५॥	= मिथ्या ज्ञानका अवतार (प्रसंग) नहीं होसक्ता ॥ प्रश्न और उत्तरका सारांश यह है कि ध्वजा है वा वक पंक्ति है यह तो संशय ज्ञान हुआ ॥ उत्तर मे कहते हैं

कि ईहा ज्ञान के दो उदाहरण दिये हैं ईहाज्ञानवाला उनको देखकर यह नहीं कहता है कि ध्वजा है वा वक पंक्ति है वह यह कहता है वा विचारता है कि यह श्वेत वस्तु ध्वजा होना चाहिये वक पंक्ति होना चाहिये ॥ उसका ज्ञान दो ओर नहीं जाता है कि न जाने ध्वजा है कि न जाने वक पंक्ति है उक्त दो ओर जाने वाले ज्ञानको संशय ज्ञान कहते हैं ध्वजा होना चाहिए, वक पंक्ति होना चाहिये ऐसी इच्छाको ईहा कहते हैं (२) दूसरी बात यह है कि यहां सम्यग्मतिज्ञान का प्रकरण है और ईहा सम्यग्ज्ञान का भेद है, संशय जो मिथ्याज्ञान है उसका अवतरण का प्रसंग नहीं आता ॥

(१) स्मरण रहै कि अग्रिम पृष्ठ ३६८ में अपाय और अवाय दोनों प्रकार के पाठोंके मानने मे कोई दोष नहीं क्योंकि 'यह पुरुष दक्षिणी नहीं है' जिस समय ऐसा अपाय निषेध किया जाता है उससमय 'उत्तरी है' इस अर्थसे अवाय ज्ञानसे ग्रहण होता है और जिस समय 'यह उत्तरी है' इस रूपसे पदार्थका ग्रहण होता है उस समय 'यह दक्षिणी नहीं है' इस पदार्थ का निषेध हो जाता है इस लिये अवाय और अपाय यह दोनों प्रकार का पाठ इष्ट है ॥ और यह भी स्मरण रहै कि जिस पदार्थ को जाना जाता है वह विषय है और जिसके द्वारा जाना जाता है वह विषयी कहा जाता है इन्द्रियोंके द्वारा पदार्थ जाने जाते हैं इस लिये यहां विषयी शब्दसे इन्द्रियों का ग्रहण है और विषय का अर्थ घट पट आदिक है ॥

विशेषनिर्ज्ञानाद्याथात्म्यावगमनमवायः उत्पतननिपतनपक्षविक्षेपादिभिर्बलाकैवेयं न पताकेति ॥ अथैतस्य कालान्तरेऽविस्मरणकारणं धारणा । यथा--सैवेय बलाका पूर्वाह्णे यामहमद्राक्षमिति ॥ एषामवग्रहादीनामुपन्यासक्रमः उत्पत्तिक्रमतः कृतः ॥

विशेष-निर्ज्ञानात् ५।।	=(ईहासे जाने हुये पदार्थका) अधिक निर्णय (होने) से
याथात्म्य-अवगमनम् १।। अवायः १।	=वास्तविक वा ज्योंका त्यों स्वरूपका (=याथात्म्य) निश्चित ज्ञान सो अवाय है ।
उत्पतन-निपतन-पक्षविक्षेप-आदिभिः ३।	=ऊंचा चढ़ना (=उत्पतन) नीचे आवना (=निपतन) पंख फैंकना हिलावना आदिसे
बलाका १।। एव* इयम् १।। न* पताका १।। इति*	=बगुलोंकी पांतीही (=एव) यह है पताका नही है ।।
अथ* एतस्य ६।। काल-अन्तरे* अविस्मरण-कारणम् १।। धारणा १।।	=उपरान्त, पश्चात् वा पीछे (=अथ) इस (अवाय ज्ञान) के अन्यकालमें न भूलनेका =कारण धारणा ज्ञान है अर्थात् अवाय ज्ञानकरि निश्चय की हुई वस्तुका ऐसा दृढ़ ज्ञान होय जो उस वस्तुको अन्य अन्य कालमें भूलने न देवै सो धारणा है
यथा* सा १।। एव* इयम् १।। बलाका १।। याम् २।।	=जैसे वो (=सा) ही (=एव) यह (=इयम्) बक पंक्ति है जिसको (=याम् २।।)
पूर्व-अह्ने ७।। अहम् १ अद्राक्षम् T इति*	=प्रातःकालमें वा प्रभातमें मैंने देखा था । (इसप्रत्यभिज्ञानका कारण धारणा है)।।
एषाम् ६। अवग्रह-आदीनाम् ६। उपन्यास-क्रमः १।	=इन अवग्रह आदिकोंका कहनेका (=उपन्यास) अनुक्रम (इनके)
उत्पत्ति-क्रमतः* कृतः १।	=उत्पत्तिके क्रमानुसार किया गया है अर्थात् जिस जिस क्रमसे ये सूत्रमें वर्णित हैं उसी उसी क्रमसे ये जीव कें उत्पन्न होते हैं ।। इस सबका भावार्थ यह है कि

जो वस्तु सामान्य विशेष स्वरूप है उस (वस्तु) के और इन्द्रियों कें संबंध होने पर प्रथम तो सामान्य अवलोकनरूप निराकार दर्शन होता है । पश्चात् उसी (वस्तु) का सामान्य विशेष रूप साकार ग्रहण होता है उस को अवग्रह कहते हैं । तिस के पीछे उक्त वस्तुमें विशेष बहुत हैं उन विशेषोंमें से किसी एक विशेषरूप जाननेकी अभिलाषारूप जो ज्ञान प्रवर्तता है जो यह अमुक विशेष होना चाहिये तिसको ईहा कहते हैं । पश्चात् उसी विशेषकी क्रिया चिन्ह देखकर यह निश्चय हुआ कि जो यह अभिलाषामें ग्रहण हुई थी सो ही है । सो अवाय है । पश्चात् उस विशेष में ऐसा ज्ञान दृढ़ हुआ जो अन्य काल में उसका नहीं भूले उस को धारणा कहिये ।। (१) अवाय वा अपायके संवन्ध में देखो टिप्पणी (१) पृष्ठ ३६७।।

उक्तानामवग्रहादीनां प्रभेदप्रतिपत्यर्थमाह ॥

बहुबहुविधक्षिप्राऽनिःसृताऽनुक्तध्रुवाणां सेतराणाम् ॥ १६ ॥

उक्तानाम् ६। अवग्रह-आदीनाम् ६। प्रभेद- =वर्णित अवग्रह, ईहा, अवाय धारणा के (आदीनाम्) विशेष भेदोंकी

प्रतिपत्ति-अर्थम् ४।। आह T =प्राप्ति (=प्रतिपत्ति-यह अर्थ पं॰जयचंदजीने किया है)के लिये (अगले सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्— बहु बहुविधं क्षिप्राऽनिःसृताऽनुक्तध्रुवाणां सेतराणाम् ॥ १६ ॥

पदच्छेदः— बहु-बहुविध-क्षिप्र-अनिःसृत-अनुक्त-ध्रुवाणाम् सेतराणाम्

(अवग्रह-ईहा-अवाय-धारणा भवन्ति एकशः एते इन्द्रिय-अनिन्द्रियैः प्रत्येकं प्रादुर्भाव्यन्ते) ॥

(१) इस सूत्र का दोनों श्वेताम्बर और दिगम्बर आम्नायों में एक अर्थ है। श्वेताम्बर सम्प्रदाय में इस सूत्रका पाठ ऐसे है कि "बहुबहुविधक्षिप्रानिश्रितानुक्तध्रुवाणां सेतराणाम् ॥ अर्थात् निसृत के स्थान में 'निश्रित' है ऽ ऐसे दो स्थानों में चिन्ह नहीं है शेष पाठ एक है।

(२) अधिकतम पाठों में हमारे यहाँ ऽ ऐसा चिन्ह नहीं है। यह चिन्ह इस बात का द्योतक है कि 'क्षिप्रा' और "अनिसृता" में से केवल लघु अकार ग्रहण किया है॥ (देखो पृष्ठ ३५०)

(३) विसर्ग के पश्चात् श-ष् अथवा स् आवै तो इस विसर्गका विसर्गही बना रहता है अथवा यह विसर्ग श-ष्-स् में यथासंख्य परिवर्तन होजाता है अतः हमारे यहां कहीं कहीं 'निः सृत' पाठ है और कहीं कहीं 'निस्सृत' भी पाठ है ॥ (इस अनुवाद के पृष्ठ ४८ में भी यही नियमदिया है)

(४) किसी किसी प्रति में हमारे यहां 'सेतराणां' भी पाठ है वह श्रीयुत पाणिनि-शाकटायन और जैनेन्द्र प्रक्रिया के रचयिता के मतानुसार अशुद्ध है परन्तु कातंत्ररूपमाला व्याकरण के अनुसार शुद्ध है जैसा कि हम इस पुस्तक के आरम्भ में सिद्ध कर चुके हैं॥ (देखो टिप्पणी पृष्ठ ५ और ६)

(५) यहां छहो बहु-बहुविध-क्षिप्र-अनिःसृत-अनुक्त-ध्रुव शब्दो में षष्ठी विभक्ति है सो द्वन्द समासके होनेसे अंतके शब्द ध्रुव मे और उनके प्रतिपक्षी इतर शब्द मे लगाई गई है अर्थात् बहुका, बहुविधिका, क्षिप्रका, अनिःसृतका, अनुक्तका, ध्रुवका (अवग्रह-ईहा-अवाय-और धारणा होता) है और इनके प्रतिपक्षीयों अल्पका अल्पविधका-अक्षिप्रका-निःसृतका-उक्तका-अध्रुवका (अवग्रह-ईहा-अवाय-धारणा होता है)॥ इस सूत्रमें 'बहु' शब्द (१) संख्या, गणना वा गिनती के अर्थ में है जैसे एक दो-तीन-चार-पांच-छह इत्यादि बहुत ये तो संख्या हुई दूसरे विपुल अथवा समूहपना के अर्थमें आया है जैसे भात बहुत है दाल बहुत है यहां विपुलताही कही। सूत्रमें बहु शब्द दोनों अर्थों में है॥

(६) बहुविधः=बहुत प्रकार (के पदार्थों) का, अनेक प्रकार (की वस्तुओं) का, नानाभांति (की द्रव्यों) का जैसे सैनामें हस्ती, घोड़े, ऊंट, बैल, भैंसा इत्यादिक अनेक जातिका ग्रहण करनेवाला बहुविध है॥

बहु-बहुविध- =(१) अनेक (पदार्थों) का अथवा ढेर (पदार्थ) का (२) अनेक प्रकार के वा नाना भांति के (पदार्थों) का,
क्षिप्र-अनिःसृत- =(३) शीघ्र गमन करते हुये (पदार्थ) का (=क्षिप्रस्य) (४) छिपे हुये (पदार्थ, का वा अल्पभाग दीखते हुये (पदार्थ) का
अनुक्त (=अन्-उक्त)- =(५) विना कहे हुये (अभिप्राय से ही) (पदार्थ) का वा वचनसे सुने विना (अभिप्राय में हो पदार्थ) का
ध्रुवाणाम् ;। =(६) स्थिर (पदार्थों) का, निश्चल (पदार्थों) का, अथवा बहुत काल तक जितनाका तितना निश्चलरूप (पदार्थों) का
स-इतराणाम् ;। =इन छहोसे विरुद्धोके प्रतिपक्षीयोके वा विपरीतों के सहित अर्थात् (७) एक पदार्थका वा अल्प (पदार्थ) का (८) एक प्रकार के (पदार्थों) का (९) अक्षिप्रका वा मंद गमन करते हुए (पदार्थ) का (१०) निःसृत का वा समस्त वाह्य निकले हुये (पदार्थ) का (११) उक्त पदार्थ का, कहे हुये (पदार्थ) का, वा शब्द सुनकरि के (पदार्थ) का (१२) अध्रुवका, अस्थिर (पदार्थ) का, चलायमान (पदार्थ) का, अथवा क्षणमात्र स्थिर रहने वाले (विजली सदृश) का-इन वारहो मे से—

एकशः॥अवग्रह-ईहा-अवाय-=प्रत्येकके वा भिन्न भिन्नके वा पृथक् पृथकके (उक्त वारह प्रकारके पदार्थोंके) अवग्रह और ईहा और आवाय (=अवाय)
धारणाः;॥ भवन्ति T एते;। =और धारण होते हैं और (इन अड़तालीस में से)
प्रत्येकं;।इन्द्रिय-अन्द्रियः;॥।=प्रत्येक स्पर्शन-रसन घ्राण-चक्षुः-श्रोत्र- और ईषद् इन्द्रिय (मन, अनिन्द्रिय) द्वारा
प्रादुर्भाव्यन्ते T =(समुच्चय होकर दोसो अठासी मति ज्ञानके भेद) प्रगट किये जाते हैं वा प्रकाश किये जाते हैं कि

(१) स्पार्शन (अथवा स्पर्शनइन्द्रियजन्य) बहु पदार्थ (=अर्थ) का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(२) स्पार्शन अल्पपदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (३) स्पार्शन बहुविध पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(४) स्पार्शन अल्पविध पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (५) स्पार्शन क्षिप्र पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(६) स्पार्शन अक्षिप्र पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (७) स्पार्शन अनिःसृत पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(८) स्पार्शन निःसृत पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (९ स्पार्शन अनुक्त पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(१०) स्पार्शन उक्त पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (११) स्पार्शन ध्रुव पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(१२) स्पार्शन अध्रुव पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान॥

(१३) रासन बहु पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(१४) रासन अल्प पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(१५) रासन बहुविध पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(१६) रासन अल्पविध पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(१७) रासन क्षिप्र पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(१८) रासन अक्षिप्र पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(१९) रासन अनिःसृत पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(२०) रासन निस्सृत पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(२१) रासन अनुक्त पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(२२) रासन उक्त पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(२३) रासन ध्रुव पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(२४) रासन अध्रुव पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(२५) घ्राणज बहु पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(२६) घ्राणज अल्प पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(२७) घ्राणज बहुविध पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(२८) घ्राणज अल्पविध पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(२९) घ्राणज क्षिप्र पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(३०) घ्राणज अक्षिप्र पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(३१) घ्राणज अनिस्सृत पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(३२) घ्राणज निस्सृत पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(३३) घ्राणज अनुक्त पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(३४) घ्राणज उक्त पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(३५) घ्राणज ध्रुव पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(३६) घ्राणज अध्रुव पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(३७) चाक्षुप बहु पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(३८) चाक्षुप अल्प पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(३९) चाक्षुप बहुविध पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(४०) चाक्षुप अल्पविध पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(४१) चाक्षुप क्षिप्र पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(४२) चाक्षुप अक्षिप्र पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(४३) चाक्षुप अनिस्सृत पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(४४) चाक्षुप निःसृत पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(४५) चाक्षुप अनुक्त पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(४६) चाक्षुप उक्त पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(४७) चाक्षुप ध्रुव पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(४८) चाक्षुप अध्रुव पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान

(१) तेरह भेदसे चौवीस भेद तक 'रासन' शब्दके स्थानमे 'रसनेन्द्रिय जन्य (बहु पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान) ऐसा भी वाक्य लासक्के हैं इसी प्रकार पच्चीस भेदसे छत्तीस तक और सेतीससे अड़ताळीस तक 'घ्राणज' के स्थानमें घ्राणेन्द्रियजन्य और 'चाक्षुप' के स्थानमे चक्षुइन्द्रियजन्य लासके हैं॥

(४९) श्रावण बहु पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (५०) श्रावण अल्प पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान।
(५१) श्रावण बहुविध पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (५२) श्रावण अल्पविध पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान।
(५३) श्रावण क्षिप्रपदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (५४) श्रावण अक्षिप्रपदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(५५) श्रावण अनिस्सृत पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (५६) श्रावण निःसृत पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(५७) श्रावण अनुक्त पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (५८) श्रावण उक्त पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(५९) श्रावण ध्रुव पदार्थका अवहग्रूप मतिज्ञान (६०) श्रावण अध्रुव पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(६१) मानस बहुपदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (६२) मानस अल्पपदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(६३) मानस बहुविधपदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (६४) मानस अल्पविध पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(६५) मानस क्षिप्रपदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (६६) मानस अक्षिप्रपदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(६७) मानस अनिस्सृतपदार्थका अवगूहरूप मतिज्ञान (६८) मानस निःसृत पदार्थका अवगूहरूप मतिज्ञान
(६९) मानस अनुक्त पदार्थका अवगूहरूपमतिज्ञान (७०) मानस उक्त पदार्थका अवगूहरूप मतिज्ञान
(७१) मानस ध्रुव पदार्थका अवगूहरूप मतिज्ञान (७२) मानस अध्रुव पदार्थका अवगूहरूप मतिज्ञान
(७३) स्पार्शन बहुपदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (७४) स्पार्शन अल्प पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(७५) स्पार्शन बहुविध पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (७६) स्पार्शन अल्पविध पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(७७) स्पार्शन क्षिप्रपदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (७८) स्पार्शन अक्षिप्रपदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(७९) स्पार्शन अनिस्सृत पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (८०) स्पार्शन निसृतपदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(८१) स्पार्शन अनुक्त पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (८२) स्पार्शन उक्त पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(८३) स्पार्शनध्रुव पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (८४) स्पार्शन अध्रुव पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान

(१) अवग्रह के ७२ भेदो में अर्थावग्रहसे तात्पर्य्य रक्खा है क्योंकि अवग्रह ज्ञान व्यक्त पदार्थ और वंजन (अव्यक्त) पदार्थ दोनोंका होता है। ईहा ज्ञान, अवायज्ञान, धारणा ज्ञान ये व्यक्त पदार्थके ही होते हैं व्यंजन पदार्थके नहीं होते हैं इसलिये अवगृह ज्ञानकेही अर्थावगृह और व्यंजनावगृह ऐसे दो भेद होते हैं अन्यके नहीं॥ तिसपर भी स्मरण रहे कि व्यंजनका अवगूह नेत्र और मनके पदार्थ से भिड़न न होनेके हेतु से केवलचार इन्द्रियो द्वारा होता है॥

(८५) रासन बहु पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (८६) रासन अल्प पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(८७) रासन बहुविध पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (८८) रासन अल्पविध पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(८९) रासन क्षिप्र पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (९०) रासन अक्षिप्र पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(९१) रासन अनिस्सृत पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (९२) रासन निस्सृत पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(९३) रासन अनुक्त पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (९४) रासन उक्त पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(९५) रासन ध्रुव पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (९६) रासन अध्रुव पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान

(९७) घ्राणज बहु पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (९८) घ्राणज अल्प पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(९९) घ्राणज बहुविध पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (१००) घ्राणज अल्पविध पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(१०१) घ्राणज क्षिप्र पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (१०२) घ्राणज अक्षिप्र पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(१०३) घ्राणज अनिस्सृत पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (१०४) घ्राणज निस्सृत पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(१०५) घ्राणज अनुक्त पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (१०६) घ्राणज उक्त पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(१०७) घ्राणज ध्रुव पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (१०८) घ्राणज अध्रुव पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान

(१०९) चाक्षुप बहु पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (११०) चाक्षुप अल्प पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(१११) चाक्षुप बहुविध पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (११२) चाक्षुप अल्पविध पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(११३) चाक्षुप क्षिप्र पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (११४) चाक्षुप अक्षिप्र पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(११५) चाक्षुप अनिस्सृत पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (११६) चाक्षुप निस्सृत पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(११७) चाक्षुप अनुक्त पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (११७) चाक्षुप उक्त पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(११९) चाक्षुप ध्रुव पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (१२०) चाक्षुप अध्रुव पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान

(१२१) श्रावण बहु पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (१२२) श्रावण अल्प पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान।
(१२३) श्रावण बहुविध पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (१२४) श्रावण अल्पविध पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान।
(१२५) श्रावण क्षिप्रपदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (१२६) श्रावण अक्षिप्रपदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(१२७) श्रावण अनिस्सृत पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (१२८) श्रावण निःसृत पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(१२९) श्रावण अनुक्त पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (१३०) श्रावण उक्त पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(१३१) श्रावण ध्रुव पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (१३२) श्रावण अध्रुव पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान

(१३३) मानस बहुपदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (१३४) मानस अल्पपदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(१३५) मानस बहुविध पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (१३६) मानस अल्पविध पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(१३७) मानस क्षिप्रपदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (१३८) मानस अक्षिप्रपदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(१३९) मानस अनिस्सृतपदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (१४०) मानस निःसृत पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(१४१) मानस अनुक्त पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (१४२) मानस उक्त पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(१४३) मानस ध्रुव पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (१४४) मानस अध्रुव पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान

(१४५) स्पार्शन बहुपदार्थका अवायरूप मतिज्ञान (१४६) स्पार्शन अल्प पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१४७) स्पार्शन बहुविध पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान (१४८) स्पार्शन अल्पविध पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१४९) स्पार्शन क्षिप्रपदार्थका अवायरूप मतिज्ञान (१५०) स्पार्शन अक्षिप्रपदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१५१) स्पार्शन अनिस्सृत पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान (१५२) स्पार्शन निस्सृतपदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१५३) स्पार्शन अनुक्त पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान (१५४) स्पार्शन उक्त पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१५५) स्पार्शनध्रुव पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान (१५६) स्पार्शन अध्रुव पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान

(१) "श्रावण" शब्द और मानस शब्दके स्थानमें श्रोतेन्द्रिय जन्य और मनोजन्य क्रमसे ऊपरके उदाहरणों में लासक्ते है॥

(१५७) रासन बहु पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान (१५८) रासन अल्प पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१५९) रासन बहुविध पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान (१६०) रासन अल्पविध पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१६१) रासन क्षिप्र पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान (१६२) रासन अक्षिप्र पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१६३) रासन अनिस्सृत पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान (१६४) रासन निःसृत पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१६५) रासन अनुक्त पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान (१६६) रासन उक्त पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१६७) रासन ध्रुव पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान (१६८) रासन अध्रुव पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान

(१६९) घ्राणज बहुपदार्थका अवायरूप मतिज्ञान (१७०) घ्राणज अल्प पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१७१) घ्राणज बहुविध पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान (१७२) घ्राणज अल्पविध पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१७३) घ्राणज क्षिप्र पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान (१७४) घ्राणज अक्षिप्र पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१७५) घ्राणज अनिस्सृत पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान (१७६) घ्राणज निस्सृत पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१७७) घ्राणज अनुक्त पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान (१७८) घ्राणज उक्त पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१७९) घ्राणज ध्रुवपदार्थका अवायरूप मतिज्ञान (१८०) घ्राणज अध्रुव पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान

(१८१) चाक्षुप बहुपदार्थका अवायरूप मतिज्ञान (१८२) चाक्षुप अल्प पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१८३) चाक्षुप बहुविध पदार्थका अवायरूप मतिज्ञात (१८४) चाक्षुप अल्पविध पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१८५) चाक्षुप क्षिप्रपदार्थका अवायरूप मतिज्ञान (१८६) चाक्षुपअक्षिप्र पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१८७) चाक्षुप अनिस्सृत पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान (१८८) चाक्षुप निस्सृत पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१८९) चाक्षुप अनुक्त पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान (१९०) चक्षुप उक्तपदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१९२) चाक्षुप ध्रुवपदार्थका अवायरूप मतिज्ञान (१९२) चाक्षुप अध्रुवपदार्थका अवायरूप मतिज्ञान

(१९३) श्रावणबहु पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१९४) श्रावणअल्प पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१९५) श्रावणबहुविध पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१९६) श्रावणअल्पविध पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१९७) श्रावणक्षिप्र पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१९८) श्रावणअक्षिप्र पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१९९) श्रावणअनिस्सृत पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(२००) श्रावणानिःसृत पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(२०१) श्रावणअनुक्त पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(२०२) श्रावणउक्त पदाथका अवायरूप मतिज्ञान
(२०३) श्रावणध्रुव पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(२०४) श्रावणअध्रुव पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान

---

(२०५) मानसबहु पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(२०६) मानसअल्प पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(२०७) मानसबहुविध पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(२०८) मानस अल्पविध पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(२०९) मानसक्षिप्र पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(२१०) मानसअक्षिप्र पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(२११) मानसअनिस्सृत पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(२१२) मानसनिःसृत पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(२१३) मानसअनुक्त पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(२१४) मानसउक्त पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(२१५) मानसध्रुव पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(२१६) मानसअध्रुव पदार्थका अव।यरूप मतिज्ञान

---

(२१७) स्पार्शनबहु पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२१८) स्पार्शनअल्प पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२१९) स्पार्शनबहुविध पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२२० स्पार्शनअल्पविध पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२२१) स्पार्शनक्षिप्र पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२२२) स्पार्शनअक्षिप्र पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२२३) स्पार्शन अनिस्सृत पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२२४) स्पार्शननिःसृत पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२२५) स्पार्शन अनुक्त पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२२६) स्पार्शनउक्त पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२२७) स्पार्शनध्रुव पदार्थका धारण।रूप मतिज्ञान
(२२८) स्पार्शनअध्रुव पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान

(२२९) रासन बहुपदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२३०) रासन अल्प पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२३१) रासन बहुविध पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२३२) रासन अल्पविध पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२३३) रासन क्षिप्र पदार्थकाधारणारूप मतिज्ञान (२३४) रासन अक्षिप्र पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२३५) रासन अनिस्सृत पदार्थकाधारणारूपमतिज्ञान (२३६) रासन निस्सृत पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२३७) रासन अनुक्त पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२३८) रासन उक्त पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२३९) रासन ध्रुव पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२४०) रासन अध्रुव पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान

(२४१) घ्राणज बहुपदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२४२) घ्राणज अल्प पदार्थका धारणारूपमतिज्ञान
(२४३) घ्राणज बहुविध पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२४४) घ्राणज अल्पविध पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२४५) घ्राणज क्षिप्र पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२४६) घ्राणज अक्षिप्र पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२४७) घ्राणज अनिस्सृतपदार्थका धारणारूपमतिज्ञान (२४८) घ्राणज निःसृत पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२४९) घ्राणज अनुक्त पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२५०) घ्राणज उक्त पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२५१) घ्राणज ध्रुवपदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२५२) घ्राणज अध्रुव पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान

(२५३) चाक्षुप बहुपदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२५४) चाक्षुप अल्प पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२५५) चाक्षुप बहुविध पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२५६) चाक्षुप अल्पविध पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२५७) चाक्षुप क्षिप्रपदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२५८) चाक्षुपअक्षिप्र पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२५९) चाक्षुप अनिस्सृत पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२६०) चाक्षुप निस्सृत पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२६१) चाक्षुप अनुक्त पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२६२) चाक्षुप उक्तपदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२६३) चाक्षुप ध्रुवपदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२६४) चाक्षुप अध्रुवपदार्थका धारणरूप मतिज्ञान

(२६५) श्रावणबहु पदार्थका धारणारूपमतिज्ञान (२६६) श्रावणअल्प पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२६७) श्रावणबहुविध पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२६८) श्रावणअल्पविध पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२६९) श्रावणक्षिप्र पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२७०) श्रावणअक्षिप्र पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२७१) श्रावणअनिस्सृत पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२७२) श्रावणनिःसृत पदार्थका धाराणारूप मतिज्ञान
(२७३) श्रावणअनुक्त पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२७४) श्रावणउक्त पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२७५) श्रावणध्रुव पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२७६) श्रावणअध्रुव पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२७७) मानसबहु पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२७८) मानसअल्प पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२७९) मानसबहुविध पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२८०) मानस अल्पविध पदार्थका धारणारूपमतिज्ञान
(२८१) मानसक्षिप्र पदार्थका धारणरूप मतिज्ञान (२८२) मानसअक्षिप्र पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२८३) मानसअनिस्सृत पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२८४) मानसनिःसृत पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२८५) मानसअनुक्त पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२८६) मानसउक्त पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२८७) मानसध्रुव पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२८८) मानसअध्रुव पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस (सोलहवां) सूत्रपर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दशः भाषानुवाद

प्रकृताः ३। अवग्रह- =अधिकृत वा अधिकार में लाये गये अथवा पूर्वकथित अवग्रह
आदयः ३। क्रिया-विशेषाः ३। =ईहा-अवाय तथा धारणा (जानना रूप अथवा ज्ञानरूप) क्रिया के विशेष वा भेद हैं।
तद्-अपेक्षः १। अयम् १। =उन (ज्ञानरूप क्रियायों) की अपेक्षारूप यहां (=अयम् वा इस सूत्र मे)
कर्म-निर्देशः १। बहु- =(षष्ठी विभक्तिकरि) कर्मका निर्देश अथवा उपदेश किया गया है (अर्थात्) बहु
आदीनां ६। स-इतराणां ६। =आदिकोका तथा इनसे उलटोंका (अवग्रहरूपजानना-ईहारूपजानना-अवायरूपजानना-धारणारूपजानना होता है
इति* =इस प्रकार (षष्ठी विभक्तिकरि कर्मका निर्देश वा उपदेश किया गया) है

(१) अयम् शब्द इदम्की प्रथमाविभक्ति एकवचन पुलिंग है। और इदम् शब्दके दो अर्थ "यह-यहां" पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ ९६मे किये है। हमने अयमको यहां के अर्थ मे लिया है

बहुशब्दस्य संख्यावैपुल्यवाचिनो ग्रहणमविशेषात् । संख्यावाची यथा--एकः द्वौ बहव इति । वैपुल्यवाची यथा--बहुरोदनो बहुः सूप इति । विधशब्दः प्रकारवाची । क्षिप्रग्रहणमचिरप्रतिपत्यर्थम् । अनिःसृतग्रहणं असकलपुद्गलोद्गमार्थम्

बहु शब्दस्य ६/१। संख्यावैपुल्य-वाचिनः ६/१। अविशेषात ५/१। ग्रहणम् १/१॥	=बहु शब्दका (जो) गणना वा गिनती तथा समूह का वाचक है (=वाचिन्) =अभेदपना से ग्रहण किया गया है अर्थात् दोनों गणना और ढेर (समूह) मे भेद नहीं माना है सामान्य रूप से संख्या तथा ढेर अर्थों में बहु शब्द को ग्रह्या है ।
संख्यावाची १/१। यथा॰ एकः १/१। द्वौ १/२। बहवः १/३। इति॰	=गणना वाचक जैसे एक दो बहुत इस प्रकार हैं
वैपुल्यवाची १/१। यथा॰ बहुः १/१। ओदनः १/१। बहुः १/१।	=समूह वाचक जैसे अधिक भात बहुत
सूपः १/१। इति॰ । विधशब्दः १/१। प्रकारवाची १/१।	=दाल (=सूप) ऐसे है ॥ विध शब्द प्रकार वाची है वा भेद वाचक है (जैसे हस्ती-ऊंट, घोडा, बैल, गाय, बकरी, बन्दर इत्यादि अनेक जाति का ग्रहण करने वाला बहुविध अवग्रह, बहुविध ईहा, बहुविध अवाय, बहुविध धारणा है)
क्षिप-ग्रहणम् १/१॥ अचिर-प्रतिपति-अर्थम् १/१॥	=(सूत्रमें) क्षिप्र (शब्द) का लाना शीघ्रता (=अचिर) के प्राप्ति के लिये है अर्थात् शीघ्रता से पदार्थका अवग्रहरूप ज्ञान होना, ईहारूप ज्ञान होना, अवायरूप ज्ञान होना, धारणारूप ज्ञान होना सो क्षिप्र ग्रहण है
अनिःसृत-ग्रहणम् १/१॥ असकल-पुद्गल-उद्गम-अर्थम् १/१॥	=(सूत्र मे) अनिस्सृत (शब्द) का ग्रहण असमस्त पुद्गल वा असमस्त शरीर के प्रगटके =लिये है अर्थात् समस्त वस्तु बाह्य प्रगट नहीं निकली हो जैसे जलमें डूबे हुये हस्ती मनुष्यादिक का एक देश जानने से संपूर्ण पदार्थका अवग्रह रूप ज्ञान होना, ईहारूप ज्ञान होना, अवायरूप ज्ञान होना, धारणारूप ज्ञान होना सो अनिःसृत ग्रहण है ॥

बहूनामनुक्तमभिप्रायेण ग्रहणम् । ध्रुवं निरन्तरं यथार्थग्रहणम् । सेतरग्रहणं प्रतिपक्षसंग्रहार्थं ।। बहूनामवग्रहः । अल्पस्यावग्रहः । बहुविधस्यावग्रहः । एकविधस्यावग्रहः

बहूनाम् ६। अभिप्रायेण ३। ग्रहणम् १।।।	=बहुतो का (विना कहे हुये) अभिप्राय अथवा प्रयोजन से ग्रहण सो
अन्-उक्तम् १।।।	=अनुक्त है अर्थात् वचन से सुने विनाही अभिप्राय से जान लैना अनुक्त (ग्रहण) है
निरन्तरम् १।।। यथार्थ* ग्रहणम् १।।। ध्रुवम् १।।।	=असीम वा लगातार जैसा का तैसा (=यथार्थ-ठीक ठीक पदार्थ का) ग्रहण ध्रुव है अर्थात् निरन्तर पदार्थ के सत्य स्वरूप का निश्चलरूप से ज्ञान होते रहना सो ध्रुव ग्रहण है
स-इतरग्रहणम् १।।।	=(इस सूत्रमें) सेतर (वाक्य) का ग्रहण (इन बहु-बहुविध आदिक के)
प्रतिपक्ष-संग्रह-अर्थम् १।।।	=प्रतिपक्षियों के वा विरुद्धो के संचये के लिये हैं (अर्थात्)
बहूनाम् ६। अवग्रहः १। अल्पस्य ६। अवग्रहः १	=बहुत (पदार्थ) निका अवग्रह और थोड़े (पदार्थ) निका अवग्रह
बहु-विधस्य ६। अवग्रहः १।	=बहुविध वा अनेक प्रकार के (पदार्थ) निका अवग्रह (और)
एक विधस्य ६। अवग्रहः १।	=एकविध अथवा एक भांति के (पदार्थ) निका अवग्रह

(*) बहु वेक विधयोरविशेष इति न मन्तव्यम् । बहूनामवग्रह इत्यत्र बहुत्व संख्याया मुख्यतया ग्रहेण एक विधस्यावग्रह इत्यर्थः ।

बहु एकविधयो ७। अविशेषः १। इति न मन्तव्यम् १।।।	=बहु विध (और) एक विध मे भेद नही है ऐसा न समझना चाहिये (दोनो मे भेद है)
बहूनाम् ६। अवग्रहः १। इति अत्र बहुत्व-संख्यायाः ६।।	=बहुतो का अवग्रह ऐसा यहां बहुत्व गणना की
मुख्यतया ३। ग्रहणेन ३। एक विधस्य ६। अवग्रहः १।	=प्रधानता से ग्रहणकरि एक प्रकार की (वस्तु का) अवग्रह है
इतिक्ष अर्थः १।	=ऐसा अर्थ है। जैसे पशुओ मे हाथी-घोडा-ऊट, बैल, भैसा इत्यादिक अनेक प्रकार के है इनका ग्रहण सो बहुविध वा अनेक प्रकार ग्रहण है और इनमेसे हाथी वा घोडा वा ऊट वा बैल वा भैसा एक जाति के पशुओं का ग्रहण सो एकविध अवग्रहादि है अथवा इस

क्षिप्रमवग्रहः । चिरेणावग्रहः । अनिःसृतस्यावग्रहः । निःसृतस्यावग्रहः । अनुक्तस्यावग्रहः । उक्तस्यावग्रहः । ध्रुवस्यावग्रहः । अध्रुवस्यावग्रहश्चेति अवग्रहो द्वादशविकल्पः ॥ एवमीहादयोऽपि । ते एते पञ्चभिरिन्द्रियाद्वारैर्मनसा च प्रत्येकं प्रादुर्भाव्यन्ते ॥

क्षिप्रम् २।१। अवग्रहः १।१।	=क्षिप्र अवग्रह अर्थात् शीघ्रता से पदार्थका अवग्रहरूप ज्ञान होजाना
चिरेण * अवग्रहः १।१।	=देरी से वा चिरकालकरि वा बहुत कालकरि अवग्रह अर्थात् वस्तुका धीरे धीरे बहुत कालमें जानना (सो चिर अवग्रह है)
अनिःसृतस्य६।१। अवग्रहः१।१। निःसृतस्य६।१। अवग्रहः१।१।	=सर्व प्रगट न हो ताका अवग्रह, बाह्य निकले हुये प्रगटरूप का अवग्रह
अन्-उक्तस्य६।१। अवग्रहः१।१। उक्तस्य६।१। अवग्रहः१।१।	=विना कहे हुये (पदार्थ) का अभिप्राय से अवग्रह, कही हुई वस्तुका अवग्रह
ध्रुवस्य६।१। अवग्रहः१।१। च* अध्रुवस्य६।१। अवग्रहः१।१।	=ध्रुवका अवग्रह और (=च) अध्रुवका अवग्रह वा अध्रुवका ग्रहण
इति* अवग्रहः १।१। द्वादशविकल्पः १।१। एवम्*	=इस प्रकार अवग्रह बारह प्रकार है। (और) इस भांति (=एवम्)
ईहा १।१। आदयः १।३। अपि*	=ईहा अवाय-धारणा (=आदयः) भी (अपि) (बारह बारह प्रकार) हैं अर्थात् सब मिलकर अड़तालीस भेद हुये
ते १।३। एते १।३।	=वे (अवग्रह बारह प्रकार और) ये (इहा, अवाय, धारणा छत्तीस प्रकार में से)
प्रत्येकम्२।१।पञ्चभिः३।३।इन्द्रियद्वारैः३।३।मनसा३।१। च*	=प्रत्येक पांच इन्द्रियो द्वाराकरि और (=च) मनसे
प्रादुर्भाव्यन्ते T	=आविर्भाव वा प्रगट वा प्रकाश किये जाते हैं अर्थात् अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा प्रत्येक के बारह बारह भेद हैं सो इन अड़तालीस भेदों को पांच और छठा मन पर लगाने से सब दोसों अठासी भेद हुये

दृष्टान्त वा उदाहरण को यों भी ले सके हैं कि बहुत गायों मे काली-श्वेत-कावरी-खांडी-मुंडी अनेक प्रकार की हैं बहुविध तो इन गायो मे से नाना प्रकारकी गायो का ग्राही है और एकविध केवल एक वर्णकी गायका ग्रहण करने वाला है ॥ एक विध और बहुविध में यही भेद वा अन्तर है ॥

तत्र बह्ववग्रहादयः मतिज्ञानावरणक्षयोपशमप्रकर्षात् प्रभवन्ति। नेतर इति। तेषामभ्यर्हितत्वादादौ ग्रहणं क्रियते॥ बहुबहुविधयोः कः प्रतिविशेषः ? । यावता बहुषु बहुविधेष्वपि बहुत्वमस्ति।

तत्र* बहु-अवग्रह-आदयः ;।	=वहां (सूत्रमें) बहु अवग्रह आदि (=बहु-विध, क्षिप्र, अनिःसृत, अनुक्त, ध्रुव)
मतिज्ञान आवरण-क्षयोपशम-प्रकर्षात् ;।	=मतिज्ञानावरणीयकर्मके क्षयोपशमकी अधिकतासे वा उत्कर्षतासे
प्रभवन्ति T इतरे ;।	=उपजें हैं। अन्य वा अवशेष अर्थात् अल्प, एकविध, चिर, निःसृत, उक्त, अध्रुव
न* इति*	=ऐसे नही हैं अर्थात् ये मतिज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशमकी उत्कर्षता से नहीं होते हैं वरन थोडे क्षयोपशमसे होते हैं अतः ये छै पीछे कहे गये हैं
तेषाम् ;, अभ्यर्हितत्वात् ;॥	=तिन (बहु, बहुविध, क्षिप्र, अनिस्सृत, अनुक्त, ध्रुव) का प्रधान होनेके हेतुसे
आदौ ;। ग्रहणम् ;॥ क्रियतेT बहु-बहुविधयोः ;।	=आदि में वा प्रारम्भ मे ग्रहण किया गया है। (प्रश्न) बहु और बहुविध मे
कः ;। प्रतिविशेषः ;। यावता ;। बहुषु ;।	=क्या भेद वा अन्तर है (क्योंकि) यथार्थ में (=यावता) बहु में और
बहुविधेषु ;। अपि* बहुत्वम् ;॥ अस्ति T	=बहुविध में भी (=अपि) बहुतपना है

(१) आदि शब्देन बहुविधावग्रहादयो गृह्यन्ते॥

आदि-शब्देन ;। बहुविध-अवग्रह-आदयः ;। गृह्यन्ते T =आदि शब्दसे बहुविध अवग्रह आदि अर्थात् क्षिप्रअवग्रह,अनिस्सृतअवग्रह, अनुक्तअवग्रह, ध्रुवअवग्रह =ग्रहण किये गये है

(२) सूत्रे इतरशब्दगृहीता ऽ बह्ववग्रहादयः॥

सूत्रे ;॥ इतरशब्द-गृहीताः ;। अबहु-अवग्रह-आदयः ;। =इस सोलहवां सूत्रमें इतर शब्दसे लिये गये हैं अबहु अवग्रह =आदिक अर्थात् अल्पअवग्रह (वा अबहुअवग्रह) अल्पविधअवग्रह, अक्षिप्रअवग्रह, निःसृतअवग्रह, उक्तअवग्रह, अध्रुवअवग्रह॥

एकप्रकारनानाप्रकारकृतो विशेषः ॥ उक्तनिःसृतयोः कः प्रतिविशेषः ? । यावता सकलनिःसरणान्निःसृतम् । उक्तमप्येवंविधमेव ॥ अयमस्ति विशेषः–अन्योपदेशपूर्वकं ग्रहणमुक्तम् । स्वत एव ग्रहणं निःसृतम् ॥ अपरेषां क्षिप्रनिःसृत इति पाठः ॥ त एवं वर्णयन्ति–श्रोत्रेन्द्रियेण शब्दमवगृह्यमाणं मयूरस्य वा कुररस्यवेति कश्चित्प्रतिपद्यते । अपरः स्वरूपमेवानिःसृत इति ।

एक प्रकार-नाना प्रकार कृतः ३। विशेषः १। =एक प्रकार अनेक पकार से किया हुआ भेद अथवा अंतर है

उक्त-निःसृतयोः ३। कः १। प्रतिविशेषः १। =उक्त और निःसृत में क्या भिन्नता (=प्रतिविशेष) है

यावता* सकलनिःसरणात् ५।।। निःसृतम् १।।। =ज्योंका त्यों समस्त प्रगट होनेसे निःसृत है अर्थात् पूरा व्यक्ति हो सो निःसृत है

उक्तम् १।।। अपि* एवम्* विधम् १।।। एव* =उक्त भी इसी (=एवम्) प्रकार ही है अर्थात् उक्तमें भी समस्त प्रगटता है

अयम् १। अस्ति T विशेषः १। अन्य-उपदेश- =(परंतु अनिःसृत और उक्त में) यह भेद है कि दूसरे के उपदेश

पूर्वकम् १।।। ग्रहणम् १।।। उक्तम् १।।। स्वतस्* एव* =निमित्तक ग्रहण सो उक्त है । अपनेआप (=स्वतस्) ही

ग्रहणम् १।।। निःसृतम् १।।। अपरेषाम् ६। क्षिप्र- =ग्रहण सो निःसृत है । अन्य वा दूसरे (आचार्य) निका क्षिप्र

निःसृतः १। इति* पाठः १। =निसृत पाठ है अर्थात् सोलहवां सूत्र बहु बहुविध इत्यादिमें "क्षिप्रानिःसृत" के स्थानमें क्षिप्रनिःसृत पढते हैं अतः निःसृत शब्द पहले छै शब्दों में आता है

ते १। एवम्* वर्णयन्ति T श्रोत्र-इन्द्रियेण ३।।। =वे (आचार्य) इस प्रकार कहते हैं कि कर्ण इन्द्रिय से

शब्दम् २। अवगृह्यमाणं २। मयूरस्य ६। वा कुररस्य ६। वा* =अवग्रह किया हुआ शब्द मोरका वा कुरचि (कुरूर-क्रूंज) पक्षीका (शब्द) है

इति* कश्चित्* प्रतिपद्यते T =ऐसा कोई प्रतिपादन करते हैं (=कश्चित प्रतिपद्यते) (सो निःसृत है)

अपरः १। स्वरूपम् १।।। एव* अनिःसृतः १। इति* =दूसरा रूपही अनिःसृत है अर्थात् सूत्रमें जब प्रथम छै शब्दोमें निःसृत माना तब उससे भिन्न अथवा उलटा शब्द अनिःसृत सोलहवां सूत्र बहुबहुविध इत्यादिमें ग्रहण होवेगा

ध्रुवावग्रहस्य धारणायाश्च कः प्रतिविशेषः ? उच्यते । क्षयोपशमप्राप्तिकाले विशुद्धपरिणामसन्तत्या प्राप्तात्क्षयोपशमात्प्रथमसमये यथावग्रहस्तथैव द्वितीयादिष्वपि समयेषु नोनाभ्याधिक इति ध्रुवावग्रह इत्युच्यते ॥ यदा पुनर्विशुद्धपरिणामस्य संक्लेशपरिणामस्य च मिश्रणात्क्षयोपशमो भवति तत उत्पद्यमानोऽवग्रहः कदाचिद्बहूनां कदाचिदल्पस्य कदाचिद्बहुविधस्य कदाचिदेकविधस्य वेति न्यूनाधिक भावात ध्रुवावग्रह इत्युच्यते ॥ धारणा पुनर्गृहीतार्थाविस्मरणकारणमिति महदनयोरन्तरम् ॥

ध्रुवअवग्रहस्य ६। च* धारणायाः ६।। कः १।	=ध्रुव अवग्रहके और (=च) धारणाके क्या
प्रतिविशेषः १। उच्यते T क्षयोपशम प्राप्तिकाले ७।	=भेद अथवा अन्तर कहा गया है। क्षयोपशमके लाभ कालमें
विशुद्धपरिणामसन्तत्या ३।। क्षयोपशमात् ५।	=विशुद्ध स्वभावके विस्तार वा सन्तानकरि क्षयोपशमकी
प्राप्तात् ५। प्रथमसमये ७। यथा* अवग्रहः १।	=लब्धि से पहिले समय में जैसा अवग्रह है
तथा* एव* द्वितीयादिषु ७। समयेषु ७। अपि*	=तैसा ही दूसरे आदिक समयों में भी (होय)
न* ऊनः १। न* अभ्यधिकः १। इति*	=न हीन (होय) न अधिक (होय)
ध्रुव-अवग्रहः १। इति* उच्यतेT यदा* पुनर्*	=ध्रुव अवग्रह ऐसा कहा गया है। और (=पुनः) जब
विशुद्धपरिणामस्य ६। च* संक्लेशपरिणामस्य ६।	=विशुद्ध परिमाणका और (=च) संक्लेश परिमाणका
मिश्रणात् ५। क्षयोपशमः १। भवति T ततः*	=मिलाप होने से वा संयोग से क्षयोपशम होता है। वहां से
उत्पद्यमानः १। अवग्रहः १। कदाचिद्* बहूनाम् ६।	=उत्पन्न होनेवाला अवग्रह कभी (=कदाचित्) बहुतों का
कदाचिद्* अल्पस्य ६। कदाचिद्* बहुविधस्य ६।	=कभी थोडों का कभी बहु प्रकार का
वा* कदाचिद्* एकविधस्य ६। इति* न्यून-	=अथवा (=वा) कभी एक प्रकार का ऐसे हीन
अधिकभावात् ५। अध्रुव-अवग्रहः १। इति* उच्यते T	=अधिकपना से (=अधिकभावात्) अध्रुवअवग्रह इस प्रकार कहा गया है
धारणा १। पुनः * गृहीत-अर्थ-अविस्मरण-कारणम्-	=पुनि धारणा ग्रहण किये हुये पदार्थका न भूलनेका हेतु (रूपज्ञान) है
इति* अनयोः ६। महत् १।।। अन्तरम् १।।।	=इस प्रकार इन दोनों (ध्रु। अवग्रह और धारणा) में बडा भेद है ॥

यद्यवग्रहादयो बह्वादीनां कर्मणामाक्षेप्तारः, बह्वादीनि पुनर्विशेषणानि कस्येत्यत आह--

॥ अर्थस्य ॥ १७ ॥

भावार्थ क्षयोपशमकी प्राप्तिके कालविषै शुद्ध परिमाणके संतानकरि पाया जो क्षयोपशम तातैं पहले समय जैसा अवग्रह भया तैसाही द्वितियादिक समयनिविषै होय है किछु कम भी नाहीं होय अरु अधिक भी नाहीं होय है वाकूं तौ ध्रुवावग्रह कहिये । बहुरि धारणा है जो जा पदार्थकूं ग्रह्या ताकूं नाहीं भूलनेका कारण रूपज्ञान है।" ऐसे ध्रुवावग्रह और धारणा में बड़ा अन्तर वा भेद है ॥ प० जय० वचनिका मुद्रित पृष्ठ १५१, १५२

यदि॰ अवग्रह-आदयः ;। बहु-आदीनाम् ;। =जो अवग्रह ईहा-अवाय-धारणा (=आदयः). बहु आदिक (बारह)
कर्मणाम् ;।।। आक्षेप्तारः;। पुनर्॰बहु-आदीनि ;।।। =कर्मोंके ग्रहण करने वाले हैं फिर (=पुनः) बहु आदिक (बारह)
कस्य ;। विशेषणानि ;।।। इति॰ अतः॰ आह T =किसके विशेषण हैं । ऐसा (प्रश्न होने पर) इस लिये कहते हैं कि

अर्थस्य ॥ १७ ॥ =अवग्रहादयो मतिज्ञान विकल्पाः अर्थस्य भवन्ति

अवग्रह-आदयः ;। मतिज्ञान- =अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा, (=आदयः) जो (पूर्वोक्त २८८) मतिज्ञान के
विकल्पाः ;। अर्थस्य ;। भवन्ति T =भेद हैं सो अर्थ, पदार्थ, द्रव्य वा वस्तु के होते है भावार्थ

ये बहु, अल्प, बहुविध, अल्पविध, क्षिप्र, अक्षिप्र, अनिःसृत, निःसृत, अनुक्त, उक्त, और ध्रुव-अध्रुव बारह हैं ते द्रव्य, वस्तु, अर्थ वा पदार्थके विशेपण है और अर्थ (पदार्थ-वस्तु-द्रव्य) इन बहु आदिकका विशेष्य है और अवग्रह, ईहा, अवाय-धारणा बहु आदिक (बारह) कर्मोके ग्रहण करने वाले हैं जैसे अल्प पदार्थका अवग्रह बहु-वस्तु वा पदार्थका अवग्रह इत्यादि अवग्रहके बारह; अल्प पदार्थ का ईहा, बहु पदार्थका ईहा इत्यादि ईहा के बारह; बहुद्रव्य वा अर्थका अवाय, अल्प अर्थ वा पदार्थका अवाय ऐसे अवायके बारह; इसी प्रकार बहुवस्तुका धारणा अल्प वस्तु वा अर्थ का धारणा इत्यादि बारह, ऐसे ४८ हुये पांच इन्द्रिय और छठे

दोनों सम्प्रदायो में इस सूत्र का पाठ और अर्थ एकसा है

चक्षुरादिविषयोऽर्थः। तस्य बह्वादिविशेषणविशिष्टस्य अवग्रहादयो भवन्तीत्यभिसम्बन्धः क्रियते ॥ किमर्थमिदमुच्यते यावता बह्वादिरर्थ एव? सत्यमेव किन्तु प्रवादिपरिकल्पनानिवृत्त्यर्थम्।

मनपर प्रत्येक ४८ भेदको लगाने से सर्व २८८ हुये (देखो पृष्ठ ३७०-३७८)

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस सत्रहवां सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिका शब्दशः भाषानुवाद

चक्षुः आदि-विषयः १। = नेत्रादिक इन्द्रियोंका विषय वा नेत्रादिक इन्द्रियोंसे ग्रहण होनेवाला (सो)
अर्थः १। तस्य ६। बहु-आदि-विशेषण-विशिष्टस्य ६। अवग्रह- = अर्थ है। तिस (अर्थ) के बहु आदिक (वारह) विशेषण हैं।
= (उपर्युक्त अर्थ) विशेष्य के (= विशिष्टस्य) अवग्रह
आदयः १। भवन्ति। इति* अभिसम्बन्धः १। = ईहा अवाय-धारणा (= आदयः) होते हैं। ऐसे संबंध (अर्थ और अवग्रह आदि में)
क्रियते। = किया गया है अर्थात् द्रव्य, वस्तु, अर्थ वा पदार्थ के अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा ज्ञान होते हैं। ऐसा अभिसंबंध 'अर्थ' और अवग्रह आदिका आपसमें है।
यावता ३। बहु-आदिः १। अर्थः १। = (प्रश्न) जब (= यावता) बहुआदि (वारह) अर्थ वा वस्तु
एव*किम् १॥ अर्थम् १॥ इदम् १॥ उच्यते। सत्यम्-१। = ही (= एव) हैं तो किसलिये यह (सूत्र) कहागया है। (उत्तर) सत्य वा ठीक
एव*किन्तु* प्रवादि-परिकल्पना-निवृत्ति-अर्थम् १॥ = ही (तुम्हारा कहना) है परन्तु अन्य वादियोंकी कल्पनाके निषेधके लिये

(१) तस्य बहादि विशेषण विशिष्टस्य = तस्य बहु-आदि-विशेषणेन विशिष्टस्य यहां ॥ विशेषण शब्द करण तृतीया विभक्तिमे है समासके कारण करण विभक्तिका लोप है। अत. वाक्य का क्रम ऐसे है कि 'तस्य विशिष्टस्य बहु आदि विशेषणेन अवग्रह आदय भवन्ति।
तस्य ६। विशिष्टस्य ६। बहु-आदि-विशेषणेन ३॥ अवग्रह-आदय-१। भवन्ति। = तिस विशेष्य (विशेषण वाले-विशेष युक्त अर्थ)के बहुआदिक (उक्त वारह) = विशेषणकरि वा गुणवाचककरि अवग्रह, ईहा, आवाय, धारणा (ज्ञान) होते हैं।

अर्थस्येत्युच्यते । केचित्प्रवादिनो मन्यन्ते रूपादयो गुणा एव इन्द्रियैः सन्निकृष्यन्ते तेषामेव ग्रहणमिति । तदयुक्तम् । नहि ते रूपादयो गुणा अमूर्ता इन्द्रियैः सन्निकर्षमापद्यन्ते । न तर्हि इदानीमिदं भवति रूपं मया दृष्टं, गन्धो वा घ्रात इति भवति कथम् ।

अर्थस्य ६/१। इति॰ उच्यतेT । केचित्॰ प्रवादिनः १/३।	='अर्थस्य' ऐसा (सूत्र) कहा गया है । (क्योंकि) केई (=केचित्) अन्यवादी
मन्यन्तेT रूप-आदयः १/३। गुणाः १/३। एव॰ इन्द्रियैः ३/३॥	=मानते हैं (कि) रूपादिक गुण ही इन्द्रियोंकरि
सन्निकृष्यन्तेT तेषाम् ६/३। एव॰	=स्पर्शे जाते हैं वा ग्रहण किये जाते हैं (=सन्निकृष्यन्ते)। तिन (रूपादिक गुणों)का ही
ग्रहणम् १/१॥	=अवग्रह होता है (ग्रहणम्) (नकि द्रव्योंका अवग्रह इन्द्रियों से होय है) ॥
इति॰ तद् १/१॥ अयुक्तम् १/१॥	=ऐसी (कल्पना) है यह ठीक नहीं है। अर्थात् ऐसा मानना कि इन्द्रियों द्वारा रूपादिक गुणोका ही ग्रहण होता है द्रव्यका ग्रहण नहीं होता है ठीक नहीं है। उक्त कल्पनाके निषेध के लिये यह सूत्र कहा है।
रूप-आदयः १/३। गुणाः १/३। अमूर्ताः १/३।	=(क्योंकि परमतकी अपेक्षासे) रूपादिक गुण अमूर्तिक (आकार रहित) हैं।
ते १/३। इन्द्रियैः ३/३॥ सन्निकर्षम् २/१। न॰ हि॰ आपद्यन्तेT	=वे (रूपादिक गुण जैन मतानुसार) इन्द्रियोंकरि सन्निकर्ष वा स्पर्शको नहीं प्राप्त होतेहैं ।
तर्हि॰ इदानीम्॰	=(अन्यवादी फिर प्रश्न करता है कि) तौ (=तर्हि) इस समय
इदम् १/१॥ न॰ भवतिT रूपम् १/१॥ मया ३/१। दृष्टम् १/१॥	=यह (कथन) नहीं बनता है कि रूप मुझसे देखा गया
गन्धः १/१। वा॰ घ्रातः १/१। इति॰ भवतिT कथम्॰	=वा गंध मुझसे सूंघा गया। ऐसा कैसे (प्रतीति) होगा [शब्दशः होता है] अर्थात् वादी कहता है कि यदि आप रूपादिक गुणका इन्द्रियोके साथ संबंध न मानेंगे ता (मैंनें रूप देखा और मैंनें गंध सूंघा यह प्रतीति न होगी ॥ (उत्तर)

(१) परमत-अपेक्षया ३/१॥ (परमतापेक्षया) =अन्यमतकी अपेक्षासे । संस्कृतवृत्ति पृष्ठ ११४ की टिप्पणीके आधारपर अनुवाद में 'परमतकी अपेक्षासे' ऐसा वाक्य कोष्ठकमें अधिक लिखदिया है ॥

इयर्तिपर्यायांस्तैर्वाऽर्यंत इत्यर्थो द्रव्यं ।

पर्यायान्, इयर्ति, वा, तैः, अर्यते	=जो पर्यायोंको प्राप्त होता है अथवा (=वा) तिन (पर्यायों) करि (=तैः) जो प्राप्त किया जाता है।
इति, अर्थः, द्रव्यम् ॥	=ऐसा अर्थ अर्थात् पदार्थ वा वस्तु है (सो गुण पर्यायोंका समुदाय) द्रव्य है।

(१) इयर्ति—यह शब्द जुहोत्यादि तीसरे गणके ऋ (=जाना, गमन करना) धातुके प्रथम (अन्य) पुरुष कर्त्तरि प्रधान परस्मैपद एक वचन वर्तमान कालकी क्रियाका रूप है। यह रूप इस प्रकार बना है कि तृतीयगणके धातुओंके अग बनानेमे धातु कुछ नियमोंके अनुकूल दोहराया जाता है। इस ऋ धातुमे "एकाचो द्वे प्रथमस्य" ६-१-१ अष्टाध्यायी ॥ (धातुके) प्रथम एकाच (अवयव) को द्वित्व हो अर्थात् वे धातु जिनमें एक स्वर हो तो उस स्वरको दुहरा देते हैं (जैसे ऋ धातु का स्वर दोहराने से ऋ ऋ ऐसा रूप बना) यदि धातुके प्रारभमें व्यजन हो तो प्रारभिक व्यजन सहित स्वरको दोहरा देते हैं (जैसे पुष्=पोषना का पुपुष् रूप हो जाता है) ॥ श्लु (जुहोत्यादि का विकरण) पर हो (पश्चात्मे आवै) तो अर्ति और पिपर्ति धातुओके अभ्यास को इ आदेश हो जाय अर्थात् ऋ ऋ रूपके प्रथम ऋ के स्थानमे इ होवे अतः ऋ ऋ=इ ऋ (७-४-७७ अष्टध्यायी)=इ य् ऋ (अभ्यासस्यासवर्णे=अभ्यासस्य-असवर्णे (य्वो इयङ् उवङौ)=असवर्ण अच् परे हो तो अभ्यासके इवर्ण और उवर्ण को इयङ् (=इय्) उवङ् (=उव्) आदेश हो ॥६-४-७८ टिप्पणी पृष्ठ ५६से इस ऋका गुण होकर इयर् ऐसा रूप हुआ इसमे प्रथम पुरुष कर्तरि प्रधान परस्मैपद एक वचन वर्तमान कालकी क्रियाका ति प्रत्यय जोडनेसे इयर ति हुआ=इयर्ति।

(२) अर्यते—धातु शी (अदादि द्वितीयगण आत्मने पदी)=सोना-शयन करना) के ई स्वरके स्थानमे डित् सज्ञक प्रत्ययके पहिले जिसके प्रारम्भमे य हो और धातु ऋ (प्रथम और तीसरे गणका धातु परस्मैपदी=प्राप्त करना, जाना) और जागृ (=जगना द्वितीयगण के) गुण होजाते हैं आत्मने पदका ते प्रत्यय कर्मणि प्रधानमे लगाया जाता है अत शी द्वितीय गण आत्मनेपदी=शय्यते सुलाया जाता है जागृ= द्वितीयगण परस्मैपदी जागर्यते=जगाया जाता है (देखो धातु रूप चंद्रिका पृष्ठ २६४) ऋ=अर् (गुण संज्ञा करनेसे) य कर्मणि प्रधान प्रत्यय लगानेसे अर्य हुआ। पश्चात् ते प्रथम पुरुष कर्मणि प्रधान आत्मनेपदी एक वचन वर्तमान कालकी क्रियाका लगाने से अर्य+ते अर्यते प्राप्तकिया जाता है॥

तस्मिन्निन्द्रियैः सन्निकृष्यमाणे तदव्यतिरेकाद्रूपादिष्वपि संव्यवहारो युज्यते ॥ किमिमे अवग्रहादयः सर्वस्येन्द्रियानिन्द्रियस्य भवन्ति उत कश्चिद्विषयविशेषोऽस्तीत्यत आह ॥

व्यञ्जनस्यावग्रहः ॥ १८ ॥

तस्मिन् ७।१ इन्द्रियैः ३।३ सन्निकृष्यमाणे ७।१ रूपादिषु ७।३	=तिस (द्रव्य) में इन्द्रियो से संबंध होने पर (= सन्निकृष्यमाणे) रूपादिकों में
अपि* तद्-अव्यतिरेकात् ५।१ संव्यवहारः १।१	=भी उस (द्रव्य) से (उन रूपादिकोके) अभिन्न होने (के निमित्त) से व्यवहार
युज्यते T	=प्रवर्तता है अर्थात् जब द्रव्य से और इन्द्रियों से संबंध होता है तब (क्योंकि रूपादिक गुण द्रव्य से सदा अभिन्न हैं) उन गुणों में ऐसा व्यवहार प्रवर्तता है कि रूप मैंने देखा वा गंध मैंने सूंघा इत्यादि
किम् १।३ इमे १।३ अवग्रह-आदयः १।३ सर्वस्य ६।१	=(प्रश्न) क्या ये अवग्रह ईहा अवाय धारणा (=आदय) सब
इन्द्रिय-अनिन्द्रियस्य ६।१ भवन्ति T उत* कश्चित् *	=इन्द्रियो (तथा) मनके होते हैं अथवा (=उत) कोई (=कश्चित्)
विषय-विशेषः १।१ अस्ति T इति* अतः* आह T	=विषयका भेद वा अन्तर है ? ऐसा (पूछने पर) इसलिये (आचार्य) कहते हैं कि

॥ व्यञ्जनस्यावग्रहः ॥ १८ ॥ =व्यञ्जनस्यावग्रहः (एव भवति नेहादयः)

व्यञ्जनस्य ६।१ अवग्रहः १।१	=अव्यक्त वा अप्रगट (जे शब्दादिक) पदार्थ है तिसका अवग्रहरूपज्ञान
एव* भवति T न ईहा-आदयः १।३	=ही (=एव) होता है न कि ईहा अवाय और धारणारूप ज्ञान होते हैं अर्थात् इस प्रकार अवग्रह ज्ञान दो प्रकार का होता है एक तो व्यक्त-प्रगट वस्तुओंके संबंध में दूसरा अव्यक्त वा अप्रगट वस्तुओंके संबंधमें परंतु ईहा-अवाय-धारणा ये तीन ज्ञान केवल प्रकट वा व्यक्त पदार्थोंके संयोगमें होते हैं क्योंकि जब पदार्थ अधिक जानने योग्य होजाता है अथवा यों कहिये कि जब पदार्थ व्यक्त होजाता है तब व्यञ्जनावग्रह नहीं रहता है

(१) दोनों आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है ॥ (२) व्यञ्जन =(i) चिन्ह (ii) दाढी (iii) चटणी-तेमन (iv) गुह्य अवयव (v) व्यञ्जन नाम ह-वर्ण। देखो अमर कोश २३ वर्ग श्लोक ११६

व्यञ्जनमव्यक्तं शब्दादिजातं तस्यावग्रहो भवति। किमर्थमिदं? नियमार्थं, अवग्रह एव नेहादय इति।

अर्थावग्रह हो जाता है जैसे माटीके डेल अथवा नवीन भोलुआ-मटकना वा और कोई मिट्टीका नवीन भाजन लीजिये और उसमें जलके कण-बूंदें डालिये तहां दो तीन आदि कण तक सींचा हुआ गीला वा आला नहीं होता है तब तक अव्यक्त है तिसको व्यंजन कहिये और वही उक्त भाजन जब धीरे धीरे (मंद मंद) गीला हो जाय तब व्यक्त होता है। तैसे ही कर्ण आदिक इन्द्रियोंके अवग्रह में शब्दादिरूप परिणमें पुद्गलके सकन्ध दो तीन आदि समयोंमें ग्रहण हुये प्रकट ग्रहण नहीं होते हैं व्यक्त ग्रहण में नहीं आते हैं तब तक व्यंजनावग्रह है॥ पुनि पुनि उन पुद्गल स्कन्धोंके ग्रहण होनेपर प्रगट होते हैं तब अर्थावग्रह है इस प्रकार व्यक्त ग्रहणसे पूर्व पूर्व तो व्यंजनावग्रह है व्यक्त ग्रहण होने पर वही अर्थावग्रह है इसलिये अप्रगट वा अव्यक्तके ग्रहणमें अवग्रह ही होता है ईहा अवाय धारणा इन तीनोंमेंसे कोई भी नहीं होता है॥

॥ पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित इस अठारहवां सूत्रपर संस्कृत सर्वार्थसिद्धिका शब्दशः हिंदी अनुवाद ॥

व्यञ्जनम् ।१। अव्यक्तम् ।१। शब्द-आदि-जातम् ।१। = व्यंजन अर्थात् अप्रगट शब्दादिकों का समूह है
तस्य ।६। अवग्रहः ।१। भवति = तिस (व्यंजन) का अवग्रहरूप (ज्ञान) होता है
किम् ।१। अर्थम् ।१। इदम् ।१। नियम-अर्थम् ।१। = (प्रश्न) यह (अठारहवां सूत्र) किस लिये (कहागया) है। निश्चय के लिये है
अवग्रहः ।१। एव॰ न॰ ईहा आदयः ।१। इति॰ = (अर्थात् व्यंजन का) अवग्रह (ज्ञान) ही होता है नकि ईहा अवाय धारणा॥

स तर्हि एवकारः कर्तव्यो न कर्तव्यः १ । सिद्धे विधिरारभ्यमाणो नियमार्थ इति अन्तरेणैवकारं नियमार्थो भविष्यति ॥ ननु अवग्रहग्रहणमुभयत्र तुल्यं तत्र किं कृतोऽयं विशेषः १ ॥

सः ११। तर्हि* एवकारः ११।	=(प्रश्न-यह सूत्र यदि) नियमार्थ (=सः) है तो (=तर्हि) एवकार
कर्तव्यः ११।	=(इस सूत्रमें) लाना चाहिये (कर्तव्यः)
	भावार्थ—जो यह सूत्र निश्चय वाचक है तो इसमें अवग्रह शब्दके पश्चात् "एव" शब्द लाते और सूत्र ऐसा होता "व्यंजनस्यावगृह एव" ॥
न* कर्तव्यः ११।	=(उत्तर—एव इस सूत्रमें) नही लाना चाहिये
सिद्धेः ५१। विधिः ११।	=(सत्रहवां सूत्रमें अवगृह शब्दका) विधान सिद्ध होने (के हेतु) से
आरभ्यमाणः ११। नियम-अर्थः ११। इति*	=(पुनि इस सूत्र में अवगृह शब्दका) आरम्भ किया जाना नियमके लिये है
अन्तरेण* एवकारम् २१।	=विना (=अन्तरेण) एवकार (अर्थात् इस सूत्रमें विना एव शब्द लाये हुये ही)
नियम-अर्थः ११। भविष्यतिT । ननु अवगृह-गृहणं ११॥	=नियमके लिये (यह सूत्र) होगा । प्रश्न (=ननु) अवगृहका लाना
उभयत्र* तुल्यम् १॥	=दोनों स्थानोंमें (अर्थात् अर्थमें तथा व्यंजनमें) समान है
तत्र* अयम् ११।	=उस स्थानमें (=तत्र-अर्थावगृह सूत्र १७ में और) यहां (=अयम्)
किं* कृतः ११। विशेषः ११। ॥	=अर्थात् (व्यंजनावगृह सूत्र १८में) क्या विशेष, भेद वा अन्तर कियागया है

(१) "इदम् (त्रि०) (अयं-पु०, इयं स्त्री०: इदं-न०) यह किसी ऐसी चीजको जतलाता है जो कहने हारेके ढिंग हो । यह । यहाँ" पद्म० पृष्ठ ७६ । यहांके अर्थमें लिया है ॥

(२) विशेषाभावे षट् त्रिंशत्त्रिंशत मतिज्ञान संख्या विघटनादित्यभिप्रायः पूर्वपक्षिणः ।

विशेष-अभावे ७१। षट्त्रिंशत्त्रिशत-मतिज्ञान-संख्या-विघटनात् ५१॥ इति अभिप्रायः ११। पूर्वपक्षिणः ६१।	=(अर्थावग्रह और व्यंजनावग्रहके भेद न होनेसे तीनसौ छत्तीस मतिज्ञानके भेदोंकी) गणनाके न्यून करने (के हेतु) से है-ऐसा अभिप्राय प्रश्नकर्ता का है

अर्थावग्रहव्यञ्जनावग्रहयोर्व्यक्ताव्यक्तकृतो विशेषः । कथम् । अभिनवशरावार्द्रीकरणवत् । यथा जलकणाद्वित्रिसिक्तः शरावोऽभिनवो नार्द्रीभवति, स एव पुनःपुनः सिच्यमानः शनैस्तिम्यते, एवं श्रोत्रादिष्विन्द्रियेषु शब्दादिपरिणताः पुद्गला द्वित्र्यादिषु समयेषु गृह्यमाणा न व्यक्तीभवन्ति, पुनःपुनरवग्रहे सति व्यक्तीभवन्ति ॥ अतो व्यक्तग्रहणात्प्राग्व्यञ्जनावग्रहः । व्यक्तग्रहणमर्थावग्रहः । ततोऽव्यक्तावग्रहणादीहादयो न भवन्ति

अर्थ-अवग्रह-व्यंजन-अवग्रहयोः ७।२ व्यक्त-अव्यक्त-	=अर्थावग्रह और व्यंजनावग्रहमें प्रगट और अप्रगट
कृतः १।१ विशेषः १।१	=कृत भेद वा अन्तर है अर्थात् प्रगट पदार्थोंका ग्रहण हो सो अर्थावग्रह है और अप्रगट वस्तुओंका ग्रहण हो सो व्यंजनावग्रह है
कथम्* अभिनव-	=(प्रश्न) किस प्रकार है (उत्तरमें कहते हैं कि) नवीन (माटीका)
शराव-आर्द्रीकरणवत्* यथा* जल-	=कटोरा वा सकोराके भिजोने (गीला करने)के सदृश है। जैसे जलके
कण-द्वि-त्रि-सिक्तः १।१ शरावः १।१ अभिनवः १।१ न*आर्द्री-	=दो तीन कणसे सींचा हुआ नवीन माटीका कटोरा गीला नही
भवति [सः १।१ एव*पुनः*पुनः* सिच्यमानः १।१	=होता है (तबतक अव्यक्त है) वो (=सः) ही (=एव) फिर फिर सींचा हुआ
शनैः* तिम्यते	=धीरे धीरे (=शनैः) गीला होजाता है (तब व्यक्त है)
एवं* श्रोत्र-आदिषु ७।३ इन्द्रियेषु ७।३ शब्दादि-परिणताः १।३	=ऐसे कर्ण आदिक इन्द्रियो (के अवग्रह)में शब्दादिक रूप परिणम्या
पुद्गलाः १।३ द्वि-त्रि-आदिषु ७।३ समयेषु ७।३ गृह्यमाणाः १।३	=पुद्गलके स्कन्ध (=पुद्गलाः) दो तीन आदिक समयोमें ग्रहण हुये (=गृह्यमाणाः)
न व्यक्तीभवन्ति पुनः* पुनः*	=प्रकट नहीं होते हैं (तबतक व्यंजनावग्रह है) वार वार
अवग्रहे ७।१ सति ७।१ व्यक्तीभवन्ति [	=(उन पुद्गलस्कन्धोके) ग्रहण (=अवग्रह) होनेपर प्रगट होते हैं (तब अर्थावग्रह होता है)॥
अतः* व्यक्त-ग्रहणात् ५।१ प्राग्-व्यंजन-अवग्रहः १।१	=इसलिये प्रगट ग्रहणसे पहिले पहिले व्यंजनावग्रह है
व्यक्त-ग्रहणम् १।१ अर्थ-अवग्रहः १।१ । ततः अव्यक्त-	=प्रगटका ग्रहण (है सो) अर्थावग्रह है। तिससे अप्रगटके
अवग्रहणात् ५।१ ईहा-आदयः १।३ न भवन्ति [	=ग्रहणसे ईहा-अवाय-धारणा नहीं होते हैं

(१) आर्द्रीकरणवत्-आर्द्रीभवति-व्यक्तीभवति—अनार्द्रः आर्द्रः सम्पद्यते = आर्द्रीकरोति-आर्द्रीभवति-व्यक्ती भवति = गीला करता है अगीला गीला होजाता है अव्यक्त व्यक्त हो जाता है ऐसे आर्द्री करोति-आर्द्री भवति-व्यक्ती भवति हैं अर्थात् जो पहले गीला न हो पश्चात् गीला हो जावे

सर्वेन्द्रियाणामविशेषेण व्यञ्जनावग्रहप्रसंगे यत्रासम्भवस्तदर्थप्रतिषेधमाह –

न चक्षुरनिन्द्रियाभ्याम् ॥ १९ ॥

सर्व–इन्द्रियाणाम् $\frac{6}{3}^{111}$ अविशेषेण $\frac{3}{1}^{1}$ व्यञ्जनावग्रह–	= (पूर्वोक्त कथन में) विशेष न होनेसे समस्त इन्द्रियों के व्यंजनावग्रहका
प्रसंगे $\frac{7}{1}^{1}$ यत्र*	= संयोग वा सम्बन्ध आनेपर जहां (जिस जिस इंद्रियमेंव्यंजनावग्रह)
असम्भवः $\frac{1}{1}^{1}$ तद्–अर्थम् $\frac{1}{1}^{111}$ प्रतिषेधम् $\frac{2}{1}^{1}$ आह T	= असम्भव है। तिस (व्यंजनावग्रह) के लिये निषेध (को) कहते हैं कि
सूत्रम्–न ^{1}चक्षुरनिन्द्रियाभ्याम् ॥ १९ ॥	**= (व्यंजनस्यावग्रहो) न(भवति) चक्षुरनिन्द्रियाभ्याम्**
सूत्रार्थ–चक्षुर्–अनिन्द्रियाभ्याम् $\frac{5}{2}^{111}$	= नेत्रइन्द्रिय और अनिन्द्रिय (मन,ईषत् इंद्रिय, नो इंद्रिय वा अन्तःकरण) से
व्यंजन–अवग्रहः $\frac{1}{1}^{1}$ न* भवति T	= अप्रगट पदार्थों का वा अव्यक्त वस्तुओं का अवग्रहरूप ज्ञान नहीं होता है। (किंतु स्पर्शन-रसन-घ्राण-श्रोत्र इनचार इन्द्रियों द्वारा व्यंजनावग्रह होता है)

व्याख्याः – उपर्युक्त अर्थ से पगट है कि 'न चक्षुरनिन्द्रियाभ्याम्" सूत्र में "व्यंजनस्यावग्रह" अठारहवाँ समस्त सूत्र की अनुवृत्ति आती है और उन्नीसवां सूत्र अठारहवां सूत्र का अपवाद है अर्थात् व्यंजनस्यावग्रह सूत्र से यह झलकता है कि पांच इन्द्रिय और छठवां मन इन छहो द्वारा अप्रगट पदार्थों का अवग्रहरूप ज्ञान होता है। यह सूत्र उपर्युक्त सूत्र का केवल इतना विरोधक है कि व्यजन (अप्रगट) पदार्थों का अवग्रहरूपज्ञान नेत्र और मन को छोड़कर अवशेष स्पर्शन-रसन-घ्राण-श्रोत्र चार इन्द्रियों द्वारा (अवग्रह रूप ज्ञान) होता है। ध्यान रहै कि व्यंजन पदार्थ के ईहा आवाय धारणा किसी भी इन्द्रिय से

व्यक्त हो जावे उसको आर्दी भवति और व्यक्ती भवति कहते हैं ॥ अष्टाध्यायी ५-४-५० सूत्र से अभूततद्भावे कृभ्वस्तियोगे संपद्यकर्तरिच्विः= अभूततद्भावे कृ-भू-अस्ति-योगे सम्पद्यकर्तरि च्विः= सम्पद्य कर्ता में (वर्तमान प्रातिपदिक से) कृ (=करना) भू (=होना) अस्ति (होना) के योग में च्वि (=इ) प्रत्यय हो जो अवस्था प्रथम न थी उसके हो जाने पर (च्वि प्रत्यय हो) इसलिये आर्द +इ भवति, आर्दइ करोति, व्यक्त इ भवति क्रम से हुये ॥ अस्य च्वौ सूत्र (७—४—३२) द्वारा = अस्य च्वौ (ई) ॥ च्विके पहिले अंग के अन्त अ के स्थान में ई हो, अतः आर्द्री भवति आर्द्री करोति, व्यक्ती भवति रूप हुये—(१) दोनों समाज में इस सूत्र का पाठ अर अर्थ एक है।

नहीं होते। क्योंकि व्यंजन पदार्थ का अवग्रहरूप ज्ञान ही होता है ईहा आवाय धारणा कदापि नहीं हो सकते। प्रश्न–नेत्र इन्द्रिय और मन अनिन्द्रिय द्वारा व्यंजन वा अव्यक्त पदार्थ का अवग्रहरूप ज्ञान क्यों नही होता है? उत्तरः— क्योंकि "नेत्र इन्द्रिय और मन ए दोऊ पदार्थनितैं भिडकरि नाहीं जानैं हैं अपने विषय कूं दूरि ही तैं जानैं हैं यातैं ए दोऊ इन्द्रिय अप्राप्यकारी हैं॥ जैसे नेत्र आपके मध्य तिष्ठता अञ्जनकूं नाहीं जानैं हैं दूरि ही तिष्ठता पदार्थ कूं जानैं हैं॥ अर मन है सोहू दूरि तिष्ठता पदार्थ कूं विचार में ले हैं। ऐसैं नेत्र अर मन ए दोऊ अप्राप्यकारी हैं" अर्थ प्रकाशिका पृष्ठ ४९॥ अप्राप्यकारा = पदार्थों से भिडकर स्पर्शनकरि नहीं जानते हैं दूरि ही ते जानते हैं॥ इन दोनों सूत्रों का सार यह है कि 'अव्यक्त पदार्थों का अवग्रहरूप ज्ञान भी केवल स्पर्शन, रसन, घ्राण और श्रोत्र द्वारा होता है और इनका फल यह हुआ कि स्पर्शन, रसन, घ्राण, और श्रोत्र इन चार ही इन्द्रियों से व्यंजनावग्रह वा अव्यक्त पदार्थों का अवग्रहरूप ज्ञान होता है और व्यंजन वा अप्रगट पदार्थों के ईहा, अवायरूप, और धारणारूप ज्ञान नहीं होते हैं इसलिये स्पर्शन, रसन, घ्राण, और श्रोत्र इन प्रत्येक इन्द्रियों से प्राप्त हुये व्यजनावग्रहरूप ज्ञान को बहु एक [अल्प] बहुविध, एकविध, क्षिप्र, अक्षिप्र, अनिःसृत, निःसृत, अनुक्त, उक्त ध्रुव, अध्रुव, में से पृथक २ पर लगावने से व्यजनावग्रह [अर्थात् अप्रगट पदार्थ के अवग्रहरूप ज्ञान] के निम्न लिखित अडतालीस भेद होते हैं :—

(१) स्पार्शन बहुव्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान।
(२) स्पार्शन अल्प व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान।
(३) स्पार्शन बहुविध व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान।
(४) स्पार्शन अल्पविध व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान।
(५) स्पार्शन क्षिप्र व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान।
(६) स्पार्शन अक्षिप्र व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान।
(७) स्पार्शन अनिस्सृत व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान।
(८) स्पार्शन निस्सृत व्यजन अवग्रहरूप मतिज्ञान।
(९) स्पार्शन अनुक्त व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान।
(१०) स्पार्शन उक्त व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान।
(११) स्पार्शन ध्रुव व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान।
(१२) स्पार्शन अध्रुव व्यजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान।

(१३) रासन बहु व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान ।
(१४) रासन अल्प व्यजन का अवग्रह रूप मतिज्ञान ।
(१५) रासन बहुविध व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान ।
(१६) रासन अल्पविध व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान ।
(१७) रासन क्षिप्र व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(१८) रासन अक्षिप्र व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान ।
(१९) रासन अनिस्सृत व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(२०) रासन निस्सृत व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(२१) रासन अनुक्त व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(२२) रासन उक्त व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(२३) रासन ध्रुव व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(२४) रासन अध्रुव व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(२५) घ्राणज बहु व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(२६) घ्राणज अल्प व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(२७) घ्राणज बहुविध व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(२८) घ्राणज अल्पविध व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(२९) घ्राणज क्षिप्र व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान ।
(३०) घ्राणज अक्षिप्र व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान ।
(३१) घ्राणज अनिस्सृत व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(३२) घ्राणज निस्सृत व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(३३) घ्राणज अनुक्त व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(३४) घ्राणज उक्त व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(३५) घ्राणज ध्रुव व्यजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(३६) घ्राणज अध्रुव व्यंजन की अवग्रहरूप मतिज्ञान
(३७) श्रावण बहु व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(३८) श्रावण अल्प व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(३९) श्रावण बहुविध व्यजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(४०) श्रावण अल्पविध व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(४१) श्रावण क्षिप्र व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(४२) श्रावण अक्षिप्र व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
४३) श्रावण अनिस्सृत व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(४४) श्रावण निस्सृत व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान ।
(४५) श्रावण अनुक्त व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(४६) श्रावण उक्त व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(४७) श्रावण ध्रुव व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(४८) श्रावण अध्रुव व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान ।

मतिज्ञान के २८८ भेद पृष्ठ ३७० से ३७८ तक लिखे ४८ भेद ये हुये ऐसे ३३६ भेद सर्व मिलकर हुये ।

पदच्छेद और विभक्तयर्थ सहित इस (उन्नीसवां) सूत्र पर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दशः भाषानुवाद ॥

चक्षुषा अनिन्द्रियेण च व्यंजनावग्रहो न भवति। कुतः?। अप्राप्यकारित्वात्॥ यतोऽप्राप्तमर्थमविदिक्कं युक्तसन्निकर्षविशेषेऽवस्थितं बाह्यप्रकाशाभिव्यक्तमुपलभते चक्षुः, मनश्चाप्राप्तमतो नानयोर्व्यंजनावग्रहोऽस्ति॥ चक्षुषोऽप्राप्यकारित्वं कथमध्यवसीयते?। आगमतो युक्तितश्च॥ आगमतस्तावत्—

चक्षुषा ३/III च* अनिन्द्रियेण ३/III व्यंजन-अवग्रह १/I = नेत्र से और (= च) अन्तः करण से अप्रगट वस्तु का अवग्रहरूप ज्ञान (भी)
न* भवति T कुतः* अप्राप्यकारित्वात् ५/III = नहीं होता है। (प्रश्न) क्योंकर? अस्पर्शक्रियापन से अर्थात् नेत्र और मन ये दोनों बिना स्पर्श किये हुये वा बिना भिड़े हुये [दूरही से] पदार्थ को ग्रहण करते हैं।
यतः* अप्राप्तम् २/I अर्थम् २/I अविदिक्कम् २/I = क्योंकि बिना स्पर्शे हुये (वस्तु) को (अप्राप्तम्) सन्मुख आये हुये को (अविदिक्कं)
युक्त-सन्निकर्ष—विशेषे ७/I अवस्थितम् २/I = उचित (= युक्त) निकटता के विशेष में (= सन्निकर्षविशेष) ठहरे हुये (अवस्थितं)
बाह्य-प्रकाश-अभिव्यक्तम् २/I चक्षुः १/III = [और] बाह्य उजालाकरि प्रगट किये गये को [= अभिव्यक्तं] नेत्र (इंद्रिय)
उपलभते T; च* मनस् १/III अप्राप्तम् २/I = जाने है (= उपलभते) और अन्तःकरण बिनास्पर्शे हुये को वा दूर तिष्ठ हुये को
(उपलभते) अतः* अनयोः ७/III = (विचार में लेता है) इसलिये इन (नेत्र और मन) दोनों में
व्यंजन-अवग्रहः १/I न* अस्ति T = व्यंजनावग्रह (= अव्यक्त पदार्थ का अवग्रहरूप ज्ञान) नहीं होता है
चक्षुषः ६/III अप्राप्यकारित्वम् १/III कथम् अध्यवसीयते T = (प्रश्न) नेत्र के अप्राप्यकारीपना कैसे निश्चय किया गया है ('अध्यवसीयते')
आगमतः* युक्तितः* च* आगमतः* ॥ तावत् = (उत्तर) शास्त्रसे और न्याय वा अनुमान से प्रथम (= तावत्) शास्त्रद्वारा ऐसे है कि

---

[१] अप्राप्य कारित्वात्—यह शब्द, अ+नहीं; प्राप्य = गम्य, पहुंचने योग्य, कारि (स्त्रीलिंग) + क्रिया; त्व+पन, ता जो भाववाची प्रत्यय है, बना है आत् पंचमी विभक्ति अपादानका चिन्ह जोडनेसे अ+प्राप्यकारि+त्व+आत् = अप्राप्यकारित्वात् = अगम्य क्रियापनसे अस्पर्श क्रियापन से

[२] अप्राप्तं—अविदिक्क—अवस्थितं—अभिव्यक्तं ये "अर्थम्" शब्दके विशेषण हैं इन सब के आगे अर्थम् शब्द का लोप जानना॥

पुट्ठं सुणेदि सद्दं अपुट्ठं चेव (१)पस्सदे रूवम् । फासं रसं च गन्धं वद्धं पुट्ठं च (२)जाणीहि

युक्तितश्च—अप्राप्य कारि चक्षुः स्पृष्टानवग्रहात् । यदि प्राप्यकारि स्यात् त्वगिन्द्रियवत्

पुट्ठं। सुणादि सद्दं।[=स्पृष्टं। शृणोति। शब्दं।] =स्पर्श हुये शब्द को सुनता है

{अपुट्ठ च एव (१)पस्सदे रूवम्।।। / अस्पृष्टं।।। च एव पश्यते रूपम्।।।} =और [=च] विना स्पर्श हुए ही [=एव] अर्थात् विना स्पर्श किये हुये ही रूपको देखता है

फासं। रसं। च गन्धं। [=स्पर्शं। रसं। च गन्धं।] =स्पर्शको रसको और गन्धको

वद्धं। पुट्ठं। च(२)जाणीहि [बद्धं। स्पृष्टं। च जानाति] =वन्ध [वन्धन] से और [=च] स्पर्श से जानता है

युक्तितः च स्पृष्ट अन्-अवग्रहात्। =और अनुमान से स्पर्श हुये वा भिड़े हुये [पदार्थ] को न जानने के हेतु से

अप्राप्यकरि।।। चक्षुः।।। =नेत्र [इन्द्रिय] अप्राप्यकारी है अर्थात् नेत्र विना स्पर्श किये हुये वा विना भिड़े हुये [दूर ही से] पदार्थ को ग्रहण करता है

यदि प्राप्यकारि।।। स्यात् त्वच्-इन्द्रियवत् =जो [नेत्र इन्द्रिय] प्राप्यकारी होती [तो] त्वचा वा स्पर्श इन्द्रिय के सदृश

(१) दृश् धातु भ्वादि प्रथम गणका है उसका रूप कर्तरि प्रयोगमें 'पश्य' होजाता है। अ विकरण वा चिन्ह भ्वादिगणका लगानेसे 'पश्य' हो जाता है यह धातु उभय आत्मनेपद और परस्मैपदी है। प्रथमपुरुष वा अन्यपुरुष, एकवचन आत्मनेपदी कर्तरिप्रधान वर्तमान क्रियाका ते प्रत्यय लगानेसे पश्य+ते=पश्यते (=देखता है) बनजाता है॥ इसी प्रकारसे प्रथमपुरुष, एक वचन परस्मैपद, कर्तरि प्रधान, वर्तमानक्रिया का ति प्रत्यय लगानेसे पश्य+ति=पश्यति बन जाता है परन्तु ध्यानरहे है कि कर्मणि प्रयोगमें दृश् इसी रूपमें यक् (=य) प्रत्यय लगानेसे दृश्य हो जाता है पुनः ते आत्मने पदी लगाकर दृश्य+ते=दृश्यते=देखाजाता है देखा गया है बनजाता है। (देखो धातुरूप चन्द्रिका पृष्ठ ५०१ जिसमे 'पश्यति' और पश्यते दोनो रूप दिये हैं) ॥

(२) जानाति—ज्ञा (=जानना) अर्थात् नवमा गणका धातु है प्रत्ययसे प्रथम इस गणके धातुओंमें ना जोड़ा जाता है। ज्ञा जनोर्जा (शिति ७-३ ७९ अष्टाध्यायी=शित् प्रत्यय परे हो तो ज्ञा और जन् धातुओंको जा आदेश हो (=शिति ७ ज्ञाजनः ६ जा १) ॥ परन्तु ना में जो आ है उसके स्थानमें ई लाते हैं यदि व्यञ्जनादि सार्वधातुक प्रत्यय ना के पश्चात् का हो ज्ञा+ना+ति=जा+नी+ति=जानीति वन गया ॥

स्पृष्टमञ्जनं गृह्णीयात्। न तु गृह्णात्यतो मनोवदप्राप्यकारीत्यवसेयम्। ततश्चक्षुर्मनसी वर्जयित्वा शेषाणामिन्द्रियाणां व्यञ्जनावग्रहः। सर्वेषामिन्द्रियानिन्द्रियाणामर्थावग्रह इति सिद्धम्॥

आह निर्दिष्टं मतिज्ञानं लक्षणतो विकल्पतश्च, तदनन्तरमुद्दिष्टं यत् श्रुतं तस्येदानीं लक्षणं विकल्पश्च वक्तव्य इत्यत आह॥

स्पृष्टम् ।।। अञ्जनम् ।।। [१]गृह्णीयात् ।' = स्पर्श हुये अर्थात् आँख में लगाये हुये अंजन को ग्रहण करती वा देखती
न तु गृह्णाति अतः ॐ = किन्तु [आँख] नहीं ग्रहण करती है अर्थात् नहीं देखती है। इसलिये
मनोवत् अप्राप्यकारि ।।। इति ॐ अवसेयम् ।।। = अन्तःकरण सदृश अप्राप्यकारी है इस प्रकार निश्चय वा प्रतीति करना चाहिये
ततः ॐ चक्षुर्मनसी ।।। वर्जयित्वा – शेषाणाम् ।।। = तिससे [= ततः] नेत्र [और] मन को छोड़कर अवशेष वा बची हुई
इन्द्रियाणाम् ।।। व्यञ्जन-अवग्रहः ।। = [चार स्पर्शन-रसन-घ्राण श्रोत्र] इन्द्रियों का व्यंजनरूप अवग्रह होता है
सर्वेषाम् ।।। इन्द्रिय-अनिन्द्रियाणाम् ।।। = सब [स्पर्शन-रसन-घ्राण-नेत्र-श्रोत्र] इन्द्रियों का और मन का
अर्थ-अवग्रहः ।। इति ॐ सिद्धम् ।।। = अर्थावग्रहरूप ज्ञान होता है ऐसा सिद्ध होगया है
आह ।' मतिज्ञानम् ।।। लक्षणतः ॐ च ॐ विकल्पतः ॐ = [शिष्य] पूछता है कि मतिज्ञान स्वरूपसे और [= च] भेद से
निर्दिष्टम् ।।। तद्-अनन्तरम् ।।। = कहा गया है उस मतिज्ञान के निकट [अर्थात् नवमां सूत्र में]
यत् ।।। श्रुतम् ।।। उद्दिष्टम् ।।। तस्य ।।। इदानीम् ॐ = जो [= यत्] श्रुतज्ञान उपदेश्या गया है तिस [श्रुतज्ञान] का अब [= इदानीम्]
लक्षणम् ।।। विकल्पः ।। च वक्तव्यः ।। इति ॐ अतः आह = स्वरूप और भेद कहना योग्य है। ऐसा [प्रश्न होने पर] इसलिये कहते हैं कि

(१) यह क्र्यादि नवमगणका आत्मनेपदी और परस्मैपदी धातु है॥ अष्टाध्याय अध्याय ६ पाद १ सू० १६। ग्रहिज्या, वय, व्यध वृश्चिचति वृश्चति पृच्छति भृज्जतीनां ङिति, च (= किति) से अर्थात् ङित् और कित् प्रत्यय परे हों तो ग्रहि-ज्या-वयि-व्यधि-वृष्टि वि चति-वृश्चति पृच्छति और भृज्जति धातुओंके य् व् र् ल् अनुक्रमसे इ उ ऋ लृ हो जावैं। इसलिये यहां पर ग्रह् का गृह् हो गया क्योंकि यात् प्रथमपुरुष (वा अन्य पुरुष) एक वचन, परस्मैपद, कर्तर प्रधान विधि लिङ् क्रियाका ङित प्रत्यय है। अतः गृह्। यात् ऐसा हुआ नवमे गणमें ना विकरण लगता है आ,ई में पलटजाता है (देखो पृष्ठ३६७) गृह्। ना। यात् (न् ण् में पलटता है-देखो पृष्ठ५४) गृह्णीयात् बना॥

श्रुतं मतिपूर्वं द्व्यनेकद्वादशभेदम् ॥ २० ॥

श्रुतशब्दोऽयं श्रवणमुपादाय व्युत्पादितोऽपि रूढिवशात्

श्रुतं मतिपूर्वं द्व्यनेकद्वादशभेदम् ॥ २० ॥

(१) श्रुतम् १॥ मति-पूर्वम् १॥ = श्रुतज्ञान मतिज्ञान पूर्वक (मतिज्ञान निमित्तक, मतिज्ञानकारणक, मतिज्ञानजन्यहैअर्थात् मतिज्ञान है निमित्त वा कारण अथवा उत्पन्न करनवाला जिसको सो श्रुतज्ञान है भावार्थ श्रुतज्ञान को मतिज्ञान उत्पन्न करता है और श्रुतज्ञान मतिज्ञान के पश्चात होताहै

द्वि-अनेक-द्वादशभेदम् १॥ = (वह श्रुतज्ञान) दो (अंग बाह्यरूप और अंगप्रविष्टरूप) है । बहुत और बारह प्रकार है अर्थात् अंगबाह्य और अंगप्रविष्टरूप जो श्रुतज्ञान हैं उनमें से अंगबाह्य अनेक प्रकार हैं । अंगबाह्य चौदह प्रकीर्णक हैं और आचारांग सूत्र कृतांगादि बारह अंग प्रविष्ट हैं

अयं १। श्रुतशब्दः १। श्रवणम् २। = यहां श्रुत शब्द सुनने को

उपादाय ❀ व्युत्पादितः १। अपि ❀ = ग्रहण करके उत्पन्न हुआ है तौ भी (= अपि)

रूढि-वशात् ५। = रूढ़ि वा प्रसिद्धि के वशसे अथवा बलसे

(१) दोनो दिगम्बर और श्वेताम्बर सम्प्रदायो मे इस सूत्रका पाठ और सामान्य अर्थ भी एक ही है परन्तु अंगबाह्यके जो अनेक भेद हैं उनमे भेद है

श्वे० स० के अंग बाह्यो के उदाहरण | दि० आ० के अंगबाह्योके उदाहरण

(१) सामायिक	प्रकीर्णक	(१) सामायिक	प्रकीर्णक
(२) चतुर्विंशतिस्तव	प्रकीर्णक	(२) सम्तव	प्रकीर्णक
(३) स्तोत्र वन्दन	प्रकीर्णक	(३) वन्दना	प्रकीर्णक
(४) प्रतिक्रमण	प्रकीर्णक	(४) प्रतिक्रमण	प्रकीर्णक

(५) कार्य व्युतसर्ग प्रकीर्णक अर्थात् ( ) .. . . किये हुये पापकी शुद्धता जहां शरीर के त्याग से वर्णन की गई है

(६) त्याख्यान दशवैकालिक प्रकीर्णक (६) दशवैकालिक]

जैसे श्वेता० अंग बाह्य के उदाहरण | दिग० अंग बाह्य के उदाहरण

(७) उत्तर अध्याय	(८) उत्तराध्ययन
(८) दशा	
(९) कल्प (१०) व्यवहार	(९) कल्प व्यवहार
(११) निशीथ इत्यादि	(१४) निषिधिका

ऋषियो से भाषित अनेक (विनय प्र०) कृतिकर्म प्र० प्रकारका अंग बाह्य है देखो कल्पाकल्प प्र० महाकल्प प्र० सभाष्यतत्वार्थाधिगमसूत्रपृष्ठ२० पुण्डरीक प्र० महापुण्डरीक प्र०के है

कस्मिंश्चिज्ज्ञान विशेष वर्तते ॥ यथा कुशलवनकर्म प्रतीत्या व्युत्पादितोऽपि कुशलशब्दो रूढिवशात्पर्यवदाते वर्तते ॥ कः पुनरसौ ज्ञानविशेष इति अत आह "श्रुतं मतिपूर्वमिति" श्रुतस्य प्रमाणत्व पूरयतीति पूर्वं निमित्तं कारणमित्यनर्थान्तरम् ॥

कस्मिन्-चित् ज्ञान विशेषे । वर्तते ।	= कोई एक (= कस्मिश्चित्) ज्ञानके विशेषमें प्रवर्तता है अर्थात् श्रुतशब्द सुननेके अर्थमें व्याकरणकी रीतिसे आता है तौभी रूढिवशसे एक ज्ञानका नाम है
यथा कुश-लवन कर्म-प्रतीत्या ॥ व्युत्पादितः ।	= जैसे कुशल द्राभ वा कोश(= कुश) काटनेकी क्रियामें निश्चय कर व्युत्पन्न हुआ है
अपि कुशलशब्दः । रूढि-वशात् । पर्यवदाते ।	= तौभी (= अपि) कुशलशब्द रूढिके बलसे बहुत, प्रवीण वा चतुर पुरुषकेअर्थ में
वर्तते ।	= प्रवर्तता है भावार्थ जैसे कुशलशब्द व्याकरण की रीतिसे दाभके काटनेके अर्थमें आता है तौभी रूढिके बलसे बहुत चतुर पुरुषके अर्थमें प्रयोग किया जाता है तैसें श्रुत शब्द यद्यपि सुनने के अर्थ व्याकरणानुकूल आता है तौभी रूढिकी सामर्थ्यसें एक ज्ञानका नाम है
पुनः कः । असौ । ज्ञान-विशेषः । इति अतः आह ।	= और यह श्रुत कौनसा (= कः) ज्ञानविशेष है ऐसा(प्रश्नहोने पर)अतः कहते हैं
श्रुतम् ॥ मतिपूर्वम् ॥ इति श्रुतस्य ॥ प्रमाणत्वम् ॥	= श्रुत है सो मतिपूर्वक है ऐसे श्रुतके प्रमाणरूप ज्ञानपना है ॥
पूरयति । इति पूर्वं ॥ निमित्तम् ॥ कारणम् ॥	= जो पूरै है उत्पत्ति करै है ऐसा पूर्व होता है निमित्त है कारण है
इति अन्-अर्थ-अन्तरम् ॥	= इसप्रकार (इन तीनों पूर्व-निमित्त-कारण शब्दोंमें) अर्थभेद नहीं है

(१ कस्मिश्चित्— अन्तका न् जब उसके पश्चात् च्, छ्, त्, थ्, और ट्, ठ्, आवे तो (यह न्) अनुस्वार और विसर्ग (दोमें) पलट जाता है इसलिये 'कस्मिन् + चित्' = कस्मिं : चित् यह विसर्ग वर्तमान दशामें व्याकरणके निम्नलिखित नियमानुसार 'श्' में परिवर्तित हो जाता है:— विसर्गके पश्चात् यदि च् छ् हों तो विसर्ग 'श्' में यदि त्, थ् हो तो 'स्' में और यदि ट्, ठ् हो तो 'ष्' में पलट जाता है जैसे हरिः चरति = हरिश्चरति (= हरि जाता है) । रामः तरति = रामस्तरति (राम तरता है पार होता है) । रामः टीकते = रामष्टीकते (राम टिकता है ।) इसलिये "कस्मिं चित्" शब्दका "कस्मिंश्चित्" हो गया ॥

(२), श्रुत, आप्तवचन, आगम, उपदेश, ऐतिह्य, आम्नाय, प्रवचन और जिनवचन ये [illegible] एकार्थवाची हैं (समाप्य तत्वा० सू० पृष्ठ १२)

मतिर्निर्दिष्टा। मतिः पूर्वमस्य मतिपूर्वं मतिकारणमित्यर्थः ॥ यदि मतिपूर्वं श्रुतं तदपि मत्यात्मकं प्राप्नोति कारणसदृशं हि लोके कार्यं दृष्टमिति। नैतदेकान्तिकम्। दण्डादिकारणोऽयं घटो न दण्डाद्यात्मकः। अपि च सति तस्मिन् तदभावात् सत्यपि मतिज्ञाने बाह्यश्रुतज्ञाननिमित्तसन्निधानेऽपि प्रबलश्रुतावरणोदयस्य श्रुताभावः

मतिः ३।। निर्दिष्टा ३।। मतिपूर्वम् ३।।। अस्य ३। मति-पूर्वम् ३।।। मति-कारणम् ३।।। इति ※ अर्थः ३।	= मतिज्ञान [पहिले] कहा गया है। मति है कारण जिसका [= अस्य] सो मति पूर्व है। मतिकारणक वा मतिनिमित्तक है ऐसा अर्थ वा अभिप्राय है।
यदि ※ मतिपूर्वम् ३।।। श्रुतम् ३।।। तद् ३।।। अपि ※ मति-आत्मकम् ३।।। प्राप्नोति T हि ※ लोके ३। कारण-सदृशम् ३।।। कार्यम् ३।।। दृष्टम् ३।।। इति ※	= [प्रश्न] जो [= यदि] मतिज्ञान निमित्तक वा जन्य श्रुतज्ञान है [तो] वह [श्रुतज्ञान] भी मतिस्वरूप को प्राप्त होता है। क्योंकि [= हि] जगत में कारण के समान कार्य ऐसा देखा जाता है।
एतद् ३।।। एकान्तिकम् ३।।। न ※	= [उत्तर] यह एकान्त वा अवश्य होनेवाला नियम नहीं है ॥ यह भावार्थ है कि यह नियम कि कारण के समान ही कार्य होता है सर्वत्र ठीक नहीं है कहीं कहीं पर कार्य कारण के सदृश नहीं भी होता है जैसे
अयम् ३। घटः ३। दण्ड आदि-कारणः ३। दण्ड-आदि-आत्मकः ३। न ※	= यह घट दण्ड [चाक] आदि निमितक है [परन्तु] दंड चाक आदिके स्वरूप [उक्त घट] नहीं है अर्थात् घड़ाके बनानेके लिये दंड चाक आदिक कारण हैं परन्तु यह उत्पन्न हुआ घट दंड चाक आदिके समान नहीं है भिन्नस्वरूप है
च ※ तस्मिन् ३।।। सति ३।।। अपि ※ तद्-अभावात् ३। सति ३।।। अपि ※ मतिज्ञाने ३।।। बाह्य-श्रुतज्ञान-निमित्त-सन्निधाने ३। अपि ※	= और क्योंकि उस [मतिज्ञान] के अस्तित्वमें वा विद्यमानता में भी उस श्रुतज्ञानका अभाव [रहता] है [अर्थात्] मतिज्ञान होने पर भी बाह्यमें श्रुतज्ञानके [अन्य अन्य] निमित्त निकट होने पर भी [जैसे गुरुउपदेशादि]
प्रबल-श्रुतावरण-उदयस्य ३। श्रुत-अभावः ३।	= श्रुतज्ञानावरण कर्मका प्रबल उदय वाले [जीव] के श्रुतज्ञान नहीं होता है

(१) सर्वार्थ सिद्धि सन्स्कृतवृत्ति प्रथम संस्करणमें 'तदभावात्' के स्थानमें 'तज्ञाना ?' अशुद्ध छप गया है॥

श्रुतावरणक्षयोपशमप्रकर्षे तु सति श्रुतज्ञानमुत्पद्यत इति मतिज्ञानं निमित्तमात्रं ज्ञेयम्॥ आह श्रुतमनादिनिधनमिष्यते। तस्य मतिपूर्वकत्वे तदभावः। आदिमतोऽन्तवत्त्वात्। ततश्च पुरुषकृतत्वादप्रामाण्यमिति, नैष दोषः॥

श्रुत- आवरण- क्षयोपशम- प्रकर्षे ७। तु ※ सति ७।	= परन्तु श्रुतज्ञानावरणीयकर्मके क्षयोपशम के प्रकर्ष होनेपर [= सति]
श्रुतज्ञानम् १॥। उत्पद्यते T इति※ मतिज्ञानम् १॥।	= श्रुतज्ञान उत्पन्न होता है। इस प्रकार मतिज्ञान
निमित्तमात्रम् १॥। ज्ञेयम् १॥।	= निमित्तमात्र (सहायक निमित्त) जानो॥ भावार्थ ऐसा है कि संभव है कि श्रुतज्ञानके उत्पन्न होने के लिये बाहिरी कारण मतिज्ञानादि वर्तमान भी हों तो भी श्रुतज्ञानावर्णीय कर्मका जीव के ऐसा प्रबल उदय हो कि श्रुतज्ञान न होने दे। जब श्रुतज्ञानावर्णीय कर्म का क्षयोपशम अन्तरंग कारण विद्यमान हो तबही जीव के श्रुतज्ञान होता है इसलिये मतिज्ञान केवल नाममात्र बाह्य कारण श्रुतज्ञान के उत्पन्न होने को हुआ॥ मुख्य और अंतरंग कारण श्रुतज्ञान के उत्पन्न होने के लिये श्रुतज्ञानावर्णीय कर्म का क्षयोपशम ही है॥
आह T श्रुतम् १॥।अनादि + अनिधनम् १॥।इष्यतेT	= पूंछता है [आह] कि श्रुत आदिरहित अन्तरहित [= अनिधन] माना गया है
तस्य ६॥। मतिपूर्वकत्वे७॥। तद्- अभावः१।	= तिस [श्रुतज्ञान] के मतिज्ञान कारण होने में नित्यपने का वा अनादि निधनताका [= तद्] अभाव आता है प्रश्न का सारांश यह है कि श्रुतज्ञान को अनादि निधन माना है और यदि श्रुतज्ञानको मतिज्ञान उत्पन्न करता है तो श्रुतज्ञान नित्यपने का अभाव प्राप्त हुआ[क्यों कि)
आदिमतः ६ अन्तवत्त्वात् ५॥।	= आदि वाले का अंन्त होने से अर्थात् जिसका आदि है उसका अंत भी हैं
अप्रामाण्यम् १॥। इति ※ न ※ एषः १। दोषः१।	= [पुरुषकृत होने से]अप्रमाण है ऐसा[प्रश्न होने पर उत्तर]है कि यह दोष नहीं है

अनादिनिधन = अनादि (= आदिरहित) + अनिधन = अन्तरहित॥ निधन = नाश अन्त (देखो पद्मचन्द्र कोश पृ० २१२)

द्रव्यादिसामान्यार्पणात् श्रुतमनादिनिधनमिष्यते ॥ नहि केनचित्पुरुषेण क्वचित्कदाचित्कथञ्चिदुत्प्रेक्षितमति । तेषामेव विशेषापेक्षया आदिरन्तश्च सम्भवतीति मतिपूर्वमित्युच्यते ॥ यथांकुरो बीजपूर्वकः स च सन्तानापेक्षया अनादिनिधन इति ॥ न च पौरुषेयत्वं प्रामाण्यकारणम् । चौर्याद्युपदेशस्यास्मर्यमाणकर्तृकस्य प्रामाण्यप्रसंगात् ॥ अनित्यस्य च प्रत्यक्षादेः प्रामाण्ये को विरोधः

द्रव्यादि-सामान्य-अर्पणात् ५। श्रुतम् अनादि निधनम् १।।। = द्रव्यादिक सामान्य की अपेक्षा से श्रुत आदि अंत रहित (= अनादिनिधन)
इष्यते T हि ❀ केनचित् ❀ पुरुषेण ३। क्वचित् ❀ = माना गया है । क्योंकि (यह श्रुतज्ञान) किसी मनुष्य करि कहीं वा किसी क्षेत्र में
कदाचित् ❀ कथञ्चित् ❀ = कभी वा किसी समय में (= कदाचित्) किसी प्रकार से (= कथञ्चित्)
न ❀ उत्प्रेक्षितम् १।।। इति। तेषाम् ३। एव विशेष-अपेक्षया ३।। = नवीन नहीं किया है उन (द्रव्य) क्षेत्र, काल, भाव, की ही भेद विवक्षा से
आदिः १। अन्तः १। च ❀ सम्भवति I इति ❀ मतिपूर्वम् = आदि अंत भी (= च) सम्भव है ॥ इस प्रकार मतिज्ञान जनित वा जन्य (श्रुतज्ञान है)
इति ❀ उच्यते T यथा ❀ अंकुरः १। बीजपूर्वकः १। = ऐसा कहा गया है । जैसे अंकुरा बीज जनित है
सः १। च ❀ सन्तान-अपेक्षया ३।।। अनादिनिधनः १। इति = सो [अंकुरा] ही [= च] सन्तान की अपेक्षा करि आदि अंतरहित ऐसे [चला आवै है]
न ❀ च ❀ अपौरुषयेत्वम् १।।। प्रामाण्यकारणम् १।।। = और [= च] अपौरुषेयपना प्रमाणता [सत्यता] होने को हेतु नहीं है अर्थात् प्रमाणता होने के लिये इस बात की अवश्यकता नहीं है कि वह पुरुषकृत न हो-कोई वस्तु मनुष्य कृत न होनें से ही प्रमाण रूप नहीं कही जा सक्ती है
चौर्य-आदि-उपदेशस्य ६। अस्मर्यमाण-कर्तृकस्य ६। = क्यों कि स्तेय वा चोरी आदिक के उपदेशों के जिनके करनेवाले को स्मरण नहीं [कि कब ऐसे उपदेश करनेवाला हुआ और कब ऐसे उपदेश दिये और किसने ऐसे उपदेश दिये]
प्रामाण्य-प्रसङ्गात् ५। अनित्यस्य ६।।। च ❀ = प्रमाण होने का [= प्रामाण्य] प्रसंग वा सम्बन्ध आता है॥ अनित्य के और [= च]
प्रत्यक्ष-आदेः ६।।प्रमाण्ये ७।।। कः १। विरोधः १। = प्रत्यक्ष आदि के प्रमाणता होने में क्या विरोध [आता] है अर्थात् संसार में अनित्य प्रत्यक्षादि प्रमाण हैं हीं कुछ विरोध नहीं है

(१) अर्पणात—पञ्चमी विभक्ति एक वचन पुल्लिंग और नपुंसक लिङ्ग है ॥ (२) द्रव्य, आदि (= क्षेत्र, काल, भाव) = द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव

आह, प्रथमसम्यक्त्वोत्पत्तौ युगपज्ज्ञानपरिणामान्मतिपूर्वकत्वं श्रुतस्य नोपपद्यत इति । तदयुक्तं सम्यक्त्वस्य तदपेक्षत्वात् । आत्मलाभस्तु क्रमवानिति मतिपूर्वकत्वव्याघाताभावः ॥ आह मतिपूर्वं श्रुतमित्येतल्लक्षणमव्यापि श्रुतपूर्वमपि श्रुतमिष्यते । तद्यथा

आह T प्रथमसम्यक्त्व-उत्पत्तौ ,॥ युगपद् ❀ ज्ञान- परिणामात् ; । श्रुतस्य ; ॥। मतिपूर्वकत्वम् ३॥। न ❀ उपपद्यते T इति ❀ तद् ३॥। अयुक्तम् ३॥। सम्यक्त्वस्य ,॥। तद्-अपेक्षत्वात् १॥।	= पूंछता है कि प्रथमसम्यग्दर्शन की उत्पत्ति में एकबार वा एक काल[= युगपत्] = [मतिश्रुत] ज्ञानके उत्पन्न होने से [= परिणामात्] श्रुतज्ञान के मतिनिमित्तपना = उत्पन्न नहीं होता है । [उत्तर] सो [= तद्] [तुम्हारा कथन] ठीक नही हैं = क्योंकि [ज्ञान के] सम्यक्पना उस [सम्यग्दर्शन] के प्रसंग से हैं अर्थात् सम्यक्त्व के उत्पन्न होते ही कुमतिज्ञान और कुश्रुतज्ञान का परिवर्तन मतिज्ञान और श्रुतज्ञान में हो जाता है ।
तु ❀ आत्मलाभः ३। क्रमवान् ३।	= परन्तु [पूर्वोक्त परिवर्तन होने पर भी] ज्ञान के स्वरूप की लब्धि क्रमवाली है अर्थात् प्रथम मतिज्ञान होता है इसके पश्चात् श्रुतज्ञान होता है
इति ❀ मति- पूर्वकत्व-व्याघात-अभावः ३ ।	= इस प्रकार मति निमित्तपने में विरोध नहीं है भावार्थ यह है कि मतिज्ञान प्रथम होता है पश्चात् श्रुतज्ञान होता है । यद्यपि इन मतिज्ञान और श्रुतज्ञान के सम्यक्पना सम्यक्त्व ही उत्पत्ति होते ही एकसाथ वा एक काल में ही होता है मतिज्ञान और श्रुतज्ञान के सम्यक्पना एक साथ होने के कारण से उन मतिज्ञान और श्रुतज्ञान की क्रमानुसार[एक दूसरे के पश्चात्]उत्पत्ति में कुछ अड़चन नहीहै ।
आह T मतिपूर्वम् ३॥। श्रुतम् ३॥।इति ❀ एतद् ३॥। लक्षणम् ३॥। अव्यापि ३॥।	= पूंछता है कि "मतिज्ञान जनित श्रुतज्ञान" ऐसा यह = लक्षण अव्यापक वा असर्वगत है अर्थात् सब श्रुतज्ञान में लागू नहीं हैं
श्रुतपूर्वम् ३॥। अपि ❀ श्रुतम् ३॥। इष्यते T तद्यथा ❀	= क्योंकि श्रुतज्ञान निमित्तक भी श्रुतज्ञान माना गया है । जैसे [= तद्यथा]

(१) प्रत्येक जीवके प्रारम्भ में उपशम सम्यक्त्व ही होताहै और प्रथम उपशम सम्यक्त्व होता है। द्वितीय उपशम सातवे गुण स्थानमें होताहै

शब्दपरिणतपुद्गलस्कन्धादाहितवर्णपदवाक्यादिभावाच्चक्षुरादिविषयाच्च आद्यश्रुतविषयभावमापन्ना— दव्यभिचारिणः कृतसंगीतिर्जनो घटाज्जलधारणादिकार्यसम्बन्ध्यन्तरं प्रतिपद्यते धूमादर्वाग्न्यादिद्रव्यं, तदा श्रुतात् श्रुतप्रतिपत्तिरिति । नैष दोषः । तस्यापि मतिपूर्वकत्वमुपचारतः ॥ श्रुतमपि क्वचिन्मतिपूर्वकत्वान्मतिरित्युपचर्यत इति ॥

शब्दपरिणत- पुद्गलस्कन्धात् ५। आहित-	= क्योंकि शब्दरूप परिणये वा शब्दरूप अवस्थाको पहुँचे पुद्गलों के स्कंध स्थापित निर्मित
वर्णपदवाक्यादि* भावात् ५। चक्षुः आदि-विषयात् ५।च	= अक्षर पद वचनादिक रूप) होने है और (=च)नेत्रादिक इन्द्रियों के विषय होते हैं
आद्यश्रुतविषयभाव ३ २। आपन्नात् ५।	= (उन अक्षर पदवाक्यों को) प्रथम वा पहिला श्रुतज्ञानके विषयभावको प्राप्तहोनेमें
अव्यभिचारिणः ५। कृतसंगीतिर्जनः १।	= (कुछ) व्यभिचार वा दोष नहीं है। उन (अक्षर पद वाक्यों) से संकेतित पुरुष
घटात् ५। जल-धारणादि—	= (घट शब्द से गोचर होनेवाला) घट (नामा पदार्थ) में पानी रखने आदिक
कार्यसम्बन्धअन्तरम् २।।। प्रतिपद्यते T तथा ❀ धूमात् ५।	= कार्य रूप अन्यसंयोग को प्राप्त होता है। वैसे ही (तथा) धुवाँ (पदार्थ) से
एव अग्नि- आदि- द्रव्यम् २।।। श्रुतात् ५।।। श्रुत—	= ही अनल आदिक वस्तुको (प्राप्त होता है जानता है)। श्रुत ज्ञानसे श्रुतज्ञानकी
प्रतिपत्ति १।। इति ❀ न ❀ एषः १। दोषः १।	= प्राप्ति (प्रति पत्ति) इस प्रकार है। (उत्तर) यह दूषण नहीं है
तस्य ६।।। अपि ❀ मति- पूर्वकत्वम् १।।।उपचारतः *	= तिस (श्रुतज्ञान) का भी मतिज्ञान पूर्वक होना उपचार से है वा मानलेने से है अर्थात् श्रुतज्ञान से जो श्रुतज्ञान उत्पन्न हुआ है उस श्रुत ज्ञान के उत्पन्न होने को भी उपचार से मतिज्ञान ही कारण है
श्रुतम् १।।। अपि * क्वचित् * मतिः १।। इति *	= श्रुतज्ञान के भी कहीं वा किसी स्थान में (=क्वचित्) मति ही का
उपचर्यते T इति * । मति पूर्वकत्वात् ५।।।	= उपचार कीजिये क्योंकि मति पूर्वकहो सोही पूर्वोक्त श्रुतज्ञान भया है सरांश है कि

श्रुतज्ञान को मति निमित्तक कहा है उसपर प्रश्न है कि जब श्रुतज्ञान से भी श्रुतज्ञान होता है तब मतिजन्य श्रुतज्ञान कैसे रहा जैसे पहिले घट शब्द को श्रोत्र इन्द्रिय जनित मतिज्ञान से सुनकर अथवा उसके रूप को नेत्र इन्द्रिय जनित मतिज्ञान से देख कर घट को जानता है यह प्रथम श्रुतज्ञान है फिर उस ही नियत संबंधवाले घट से दूसरे संबंधी जल धारण आदि का ज्ञान होता है सो श्रुतज्ञान पूर्वक ही श्रुतज्ञान हुआ—फिर मतिपूर्वक श्रुतज्ञान कैसे ? (उत्तर) उपयुक्त उदाहरण में प्रथम

एटा निवासी जगरूपसहाय वकीलकृत पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित सर्वार्थसिद्धिका शब्दशः हिंदी अनुवाद । अध्याय १ सूत्र २०

भेदशब्दः प्रत्येकं परिसमाप्यते द्विभेदमनेकभेदं द्वादशभेदमिति ॥ द्विभेदं तावत् अङ्गवाह्यमङ्ग प्रविष्टमिति । अङ्गवाह्यमनेकविधं दशवैकालिकोत्तराध्ययनादि ॥

श्रुतज्ञान मतिज्ञानजन्य है दूसरा श्रुतज्ञान प्रथम श्रुतज्ञान से हुआ है तौ भी मतिज्ञान पूर्वक उपचार से श्रुतज्ञान हुआ है ऐसा कहने में दोष नहीं क्योंकि श्रुतज्ञान कहीं साक्षात् मतिपूर्वक है कहीं परंपरा मतिपूर्वक है अतः "श्रुतं मति पूर्वं" ऐसा कहा है॥

भेदशब्दः १। प्रत्येकम् ३॥। परिसमाप्यते T द्वि-भेदम् १॥। = (इस सूत्र में) भेदशब्द प्रत्येक पर लगाया गया है । (श्रुतज्ञानके) दो भेद हैं
अनेक- भेदं १॥। द्वादश-भेदं १॥। इति ❋ । तावत् ❋ = अनेक भेद हैं । बारह भेद हैं । प्रथम
द्वि-भेदं १॥। अङ्ग-वाह्यम् १॥। अङ्गप्रविष्टम् १॥।इति ❋ = दो भेद अङ्गबाह्य (और) अङ्ग प्रविष्ट इस प्रकार हैं
अङ्ग-वाह्यं १॥। अनेक- विधम् १॥। दशवैकालिक- = अङ्गबाह्य अनेक प्रकार वा बहुतभेद रूप है । दशवैकालिक (सातवां प्रकीर्णक)
उत्तरा-ध्ययन-आदि १॥। = उत्तराध्ययन (आठवां प्रकीर्णक) (१) आदिक (बारह प्रकीर्णक और हैं) अर्थात् अक्षरात्मक श्रुतज्ञान में बारहअङ्ग और चौदह प्रकीर्णक संमिलित हैं ।

SS"आदि" शब्द में (१) सामायिक प्रकीर्णक (२) सस्तव प्र० (३) वन्दना प्र० (४) प्रतिक्रमण प्र० (५) विनय प्र० (६) कृतिकर्म प्र० (८) कल्पव्यवहार प्र० (१०) कल्पाकल्प प्र० (११) महाकल्प प्र० (१२) पुन्डरीक प्र० (१३) महापुन्डरीक प्र० (१४) निपिधिका प्रकीर्णक निवेशित हैं अर्थात् (क) सामायिक प्रकीर्णक = जिसमें नाम स्थापना द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकरि षट् प्रकार सामायिक का वर्णन हो ।

(ख) सस्तवननाम प्रकीर्णक वो है जिसमें तीर्थंकरों के पचकल्यान चौतिस अतिशय अष्ट प्रातिहार्य परमौदारिक दिव्यदेह समवसरण धर्मोपदेशादिक और तीर्थंकरों के महात्म्य का प्रकट करनेवाला स्तवन का वर्णन हो ॥

(ग) वदनानाम प्रकीर्णक वह है जिसमे एक ही तीर्थंकरके आश्रय के अर्थ प्रतिमा चैत्यालयादिके स्तवन का व्याख्यान हो ॥

(घ) प्रतिक्रमणनाम प्रकीर्णक वह है जिसमे एक दिन सम्बन्धी दोष के निराकरण के लिये दैवसिक प्रतिक्रमण तैसे ही रात्रिक पाक्षिक चतुर्मासिक सांवत्सरिक ऐर्यापथिक और सन्यास मरण के अवसर में सपूर्ण पर्यायों में उपजे दोषों के निराकरण के लिये प्रतिक्रमणका कथन हो

(ङ) विनयनाम प्रकीर्णक वह है जिसमे दर्शन ज्ञान चारित्र तप उपचार इन पञ्चप्रकार की विनय का कथन हो ॥

(च कृतिकर्मनाम प्रकीर्णक वो है जिसमें जिन पूजनादिक क्रिया के करने के विधान का वर्णन वा पञ्चपरमेष्ठी, जिनधर्म, जिनप्रतिमा, जिन वचन, जिनमंदिर के वन्दना के लिये तीन प्रदक्षिणा, तीन अवनति, चार शिरोशि बारह आवर्त इत्यादि और नित्यनैमित्तिक क्रिया का प्ररूपण हो

(छ) दशवैकालिकनाम प्रकीर्णक वो है जिस मे साधुओंके आचारके गोचर आहार की शुद्धि का व्याख्यान हो
(ज) उतराध्ययन प्रकीर्णक वह है जिसमें चार प्रकार के उपसर्ग और द्वाविंशति परिषह सहने के विधान तथा इनके फलका वर्णन हो ॥
(झ) कल्पव्यवहारनाम प्रकीर्णक वोहै जिसमे साधुओं के योग्य आचरण का विधान और अयोग्य सेवन होते प्रायश्चितका वर्णन हो
(ञ) कल्पाकल्पनाम प्रकीर्णक वो है जिसमे द्रव्य, क्षेत्र, काल,भाव को आश्रयकरि साधु के यह योग्य है यह अयोग्य हैऐसे द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव के अनुकूल कथन हो ॥
(ट) महाकल्पसंज्ञक प्रकीर्णक वह है जिसमे उत्कृष्ट संहननादि सहित जिन कल्पी साधुओं के द्रव्य क्षेत्र काल भाव के योग्य त्रिकाल योगादिकनि का आचरण का वर्णन और स्थाविर कल्पी साधुओं का दीक्षा शिक्षा गणपोषण आत्मसंस्कार सल्लेखना उत्तमार्थस्थानगत उत्कृष्ट आराधना का वर्णन हो ॥
(ठ) पुंडरीकनाम प्र० = जिसमे चार प्रकार के देवों के उपजने का कारण दान, पूजा, तपश्चरण अकाम निर्जरा सम्यक्त्व संजमादिक का, देवों के उपपादस्थान के विभवका कथन हो ॥
(ड) महा पुंडरीक संज्ञक प्रकीर्णक वह है जिसमे इन्द्र प्रतिइन्द्रादिकों में उत्पत्ति का कारण तपश्चरणादिक का वर्णन हो ॥
(ढ) निषिधिका नाम प्रकीर्णक वो है जिसमे प्रमाद जनितदोष दूर करने के लिये बहुत प्रकार प्रायश्चित्तादिक का कथन हो इनकी उत्पत्तिका का विशेष कथन ऐसे है कि संस्कृत वर्णमाला मे नीचे के ६३ वर्ण है परन्तु प्राकृति भाषा में और देशांतर भाषा मे ए, ऐ ओ औ ह्रस्व भी होते हैं और एक दीर्घ ऌकार संस्कृत मे नहीं है अनुकरण विदें देशांतर की भाषा मे दीर्घ ऌकार होता है ँ ह्रस्व ॅ दीर्घ ँ अनुनासिक चिन्ह, ळ् यह अक्षर ये चार यम नही है

ह्रस्व	दीर्घ	औरप्लुत स्वर हैं	व्यञ्जन	अयोग वाह रूप ये ६३ संस्कृत में हैं।		ह्रस्व स्वर	दीर्घ स्वर	प्लुत स्वर	व्यञ्जन ६४ मूल अक्षरहैं	सूचना
अ	आ	अ ३	कवर्ग-क्ख्ग्घ्ङ्	ः विसर्जनीय	ँ ह्रस्व	अ	आ	अ ३	कवर्ग-क् ख् ग् घ् ङ्	
इ	ई	इ ३	चवर्ग च्छ्ज्झ्ञ्	⌣ जिह्वामूलीय	ॅ दीर्घ	इ	ई	इ ३	चवर्ग-च् छ् ज् झ् ञ्	
उ	ऊ	उ ३	टवर्ग ट्ठ्ड्ढ्ण्	⌣ उपध्मानीय	ँ अनुनासिक चिन्ह	उ	ऊ	उ ३	टवर्ग ट् ठ् ड् ढ् ण्	
ऋ	ॠ	ऋ३	तवर्ग-त् थ्द्ध्न्	• अनुस्वार		ऋ	ॠ	ऋ ३	तवर्ग त् थ् द् ध् न्	
ऌ	०	ऌ ३	पवर्ग प् फ्ब्भ्म्		और ळ यह	ऌ	ॡ	ऌ ३	पवर्ग-प् फ् ब् भ् म्	
०	ए	ए ३	अन्तस्थ यर्ल्व्		अक्षर। इनको	ए १	ए २	ए ३	य् र् ल् व्	
०	ऐ	ऐ ३	उष्म श् ष् स् ह्		चार यम भी	ऐ १	ऐ २	ऐ ३	श् ष् स् ह्	
०	ओ	ओ ३			कहते हैं।	ओ १	ओ २	ओ ३	योगवाह अं अः ⌣क ⌣प अनुस्वार,विसर्ग जिह्वामूलीयउपध्मानीय	
०	औ	औ३				औ १	औ २	औ ३	चार हैं ।	

टिप्पणी—ये चौसठि मूल अक्षर अनादि निधन परमागम मे "सिद्धोवर्णः समाम्नायः" सूत्र से प्रसिद्ध है। आधी मात्रा जिसके बोलने के कालविषैं होय तिसको व्यजन कहते हैं। जिसको एक मात्रा हो उसको ह्रस्व दो मात्राहो उसको दीर्घ तीनमात्रा हो उसको प्लुत कहते हैं ह्रस्व- दीर्घ प्लुत स्वरही होते है। श्रुतज्ञान के दो भेद है (१) अक्षरात्मक वा शब्दज अथवा शब्दजन्य श्रुतज्ञान (२) अनक्षरात्मक, लिङ्गज वा लिंगजन्य श्रुतज्ञान।

(अ) अनन्तभागवृद्धि, असंख्यातभागवृद्धि संख्यातभागवृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणवृद्धि, अनन्तगुणवृद्धि, इन षट्स्थानपतित वृद्धिकी अपेक्षा से अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान के सब सेजघन्य स्थान से लेकर उत्कृष्ट स्थान पर्यंत असंख्यात लोक प्रमाण भेद होते हैं। अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान के असंख्यात भेद हैं। "लिंग जो चिन्ह तातैं उत्पन्न भया ऐसा अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान सो एकेन्द्रियतैं लगाइ पंचेन्द्रिय पर्यंत सर्व जीवनिके है तथापि यातैं किछू व्यवहार प्रवृत्ति नाही" तातैंप्रधान नाही गोम्मटसार मुद्रित पृष्ठ ६७५"जैसैं शीतल पवन का स्पर्श भया तहां शीतल पवन का जानना तौ मतिज्ञान है बहुरि तिसका ज्ञानकरि वायु की प्रकृति वाले कौं यह शीतल पवन अनिष्ट है ऐसा जानना सो श्रुतज्ञान है सो यह, अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान है। अक्षर के निमित्ततैं भया नाही। ऐसैं ही सर्व अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान का स्वरूप जानना" गोम्मटसार मुद्रित पृष्ठ ६७५॥

(क) "शब्दज कहिए अक्षरादि छदादिरूप शब्दतैं उत्पन्न भया जो अक्षरात्मक श्रुतज्ञान सो प्रमुख कहिए मुख्य है प्रधान है जातैं देना लेना शास्त्र पढना इत्यादिक सर्व व्यवहारनिका मूल अक्षरात्मक श्रुतज्ञान है" पृष्ठ ६७४॥

"तहां 'जीव. अस्ति' ऐसा शब्द कह्या तहां कर्णरूप इन्द्रिय मतिज्ञानकरि जीवः अस्ति ऐसे शब्दकौं ग्रह्या। बहुरि तीहिं ज्ञानकरि 'जीवनामा पदार्थ है' ऐसा जो ज्ञान भया सो श्रुतज्ञान है। शब्द और अर्थ के वाच्य वाचक संबंध है। अर्थ वाच्य है शब्द वाचक है, अर्थ है सो उस शब्दकरि कहने योग्य है शब्द उस अर्थ का कहन हारा है ऐसा जो ज्ञान भया सो श्रुतज्ञान है। सो इहां जीवः अस्ति' ऐसे शब्दका जानना तो मतिज्ञान है अर उसके निमित्ततैं जीवनामा पदार्थ का अस्तित्व जानना सो श्रुतज्ञान है। ऐसें ही सर्व अक्षरात्मक श्रुतज्ञान का स्वरूप जाना। अक्षरात्मक जो शब्द तातैं उत्पन्न भया जो ज्ञान ताकौं भी अक्षरात्मक कह्या। इहा कार्यविषै कारण का उपचार किया है परमार्थतैं ज्ञान कोई अक्षर रूप है नाहीं॥ पृष्ठ ६७५॥ अक्षरात्मक श्रुतज्ञान का एक और अच्छा उदाहरण जैसे जब कोई मनुष्य 'नौका' और

आत्मा शब्दो को कानो द्वारा सुनता है तौ इस प्रकार का सुनना मतिज्ञान है। सुनने के पश्चात् नौका औ, आत्मा के गुणों का हृदय में आना श्रुतज्ञान है इसको अक्षरात्मक इसलिये कहते हैं कि हमको इस का ज्ञान शब्द द्वारा होता है जो शब्द अक्षरों से बने अथवा रचे गये हैं॥ दूसरोभांति से अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान के दो भेद पर्यायज्ञान और पर्याय समास ज्ञान हैं। सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्य पर्यातक = लब्धि अपर्यातक) जोवके उत्पन्न होने के प्रथम समय मे सबसे जघन्य श्रुतज्ञान होता है उसको पर्यायज्ञान कहते हैं। इतना ज्ञान जीव के सदैव निरावरण तथा प्रकाशमान रहता है। इसमें विशेषता केवल यही है कि इस के आवरन करने वाले कर्म के उदय का फल इस पर्याय ज्ञान में नहींहोता किन्तु इसके अनन्तर ज्ञान (पर्याय समास) के प्रथम भेद मे होता है। भावार्थ अदि पर्यायावरण कर्म के उदयका फल पर्यायज्ञान में होजाय तो ज्ञानोपयोग का अभाव होने से जोवका भी अभाव होजाय इसलिये पर्यायवरण कर्मका फल उसके आगे के ज्ञानके प्रथम भेद में ही होता है। इसीलिये न्यून से न्यून पर्यायरूप ज्ञान जोवके अवश्य पाया जाता है॥ "असख्यात लोक प्रमाण पर्याय समास ज्ञानके भेद हैं" पृष्ठ ७२६

दूसरे प्रकार से अक्षरात्मक श्रुतज्ञान के अठारह भेद अर्थाक्षर, पद, संघात, प्रतिपत्तिक, अनुयोग प्राभृतप्राभृत, प्राभृत, वस्तु पूर्व ये नव भेद और क्रमसे एक एक अक्षर को वृद्धि के द्वारा उत्पन्न होनेवाले अक्षर समास आदि नव ऐसे सर्व मिल अठारह भेद अर्थाक्षर, अर्थाक्षरसमास, पद, पदसमास, सघात, सघात समास, प्रतिपत्तिक, प्रतिपत्तिकसमास, अनुयोग, अनुयोग समास, प्राभृतप्राभृत प्राभृतप्राभृत समास, प्राभृत, प्राभृत समास, वस्तु, वस्तु समास, पूर्व, पूर्वसमास। अक्षरात्मक द्रव्यश्रुत के है। और ज्ञानको अपेक्षा इनही द्रव्यश्रुतनिके सुनने से जो ज्ञान भया सो उस ज्ञानके भी अठारह भेद (भाव श्रुतज्ञान) कहिये। यदि ग्रन्थ (शास्त्र) रूपकी विवक्षा कोजाय तो " गथे बाररोय चोद्दसयं (= ग्रन्थे द्वादश च चतुर्दशक) (गोम्मट जी० का० गाथा ३४९ के अनुसार आचारांगादि द्वादशअङ्ग और उत्पाद पूर्व आदि चोदह पूर्व और चकार से सामायिकादि चतुर्दश प्रकोर्णकतिनि स्वरूप द्रव्यश्रुतज्ञान जानना तिनके सुनने से जो ज्ञान हुआ सो भाव श्रुतज्ञान जानना। पुद्गल द्रव्यस्वरूप अक्षर पदादिक मय तो द्रव्यश्रुत है तिसके सुनने से जो श्रुतज्ञान का पर्यायरूप ज्ञान हुआ है सो भाव श्रुत है और चल कर ज्ञान होगा कि चोदह पूर्व दृष्टिवाद बारहवे अङ्ग मे गर्भित हैं ऐसे द्वादश अङ्गको अगप्रविष्ट कहते हैं और चोदह प्रकार्णको अगबाह्य कहते है। आगे इस बातको दिखलाते हैं कि यह अगबाह्य और अग प्रविष्टरूप द्रव्य श्रुतज्ञानको

उत्पत्ति कैसे है और जिनवाणी कितने अक्षर प्रमाण है और क्योंकर इतने ही अक्षर होते हैं न्यूनाधिक क्यों नहीं होते और किस प्रकार होते हैं।

उक्त अनादिनिधन ये चौंसठि मूल अक्षर एक संयोगी द्विसंयोगी त्रिसंयोगी चतुःसंयोगी पंचसंयोगी आदि चौंसठि संयोगी पर्यन्त जानना उन संयोगियों या भङ्गों) की उत्पत्ति का अनुक्रम मूलवर्ण चौंसठि अक्षरों के सम्बन्ध में निम्नलिखित चित्रमें दिखाते हैं—।

क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ	६४ अक्षर पर्यन्त
१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	प्रत्येक भङ्ग॥
१ जोड	१	२	३	४	५	६	७	८	९	द्विसंयोगी भङ्ग
	२ जोड	१	३	६	१०	१५	२१	२८	३६	त्रि ,, ,,
		४ जोड	१	४	१०	२०	३५	५६	८४	चतुः ,, ,,
			८ जोड	१	५	१५	३५	७०	१२६	पच ,, ,,
				१६ जोड	१	६	२१	५६	१२६	षट् ,, ,,
					३२ जोड	१	७	२८	८४	सप्त ,, ,,
						६४ योग	१	८	३६	अष्ट ,, ,,
							१२८ योग	१	९	नव ,, ,,
								२५६ योग	१	दश ,, ,,
									५१२ योग	...

यहां केवल क वर्णमें तो एक प्रत्येक भग (क) ही है इस क वर्णमें द्विसंयोगी, त्रिसंयोगी आदिक भङ्ग नहीं है। ख वर्ण सहित विषै अर्थात् क् ख् की अपेक्षा से प्रत्येक भङ्ग ख् एक और द्विसंयोगी भंग क् ख् एक ऐसे दो भङ्ग हैं। और ग वर्ण सहित विषै अर्थात् क् ख् ग् की अपेक्षा से प्रत्येक भङ्ग ग् एक, द्विसंयोगी भङ्ग क् ग्-ख् ग् दो त्रिसंयोगी भङ्ग क् ख् ग एक ऐसे चार भङ्ग हैं। घ वर्ण सहित विषै अर्थात् क् ख् ग् घ की विवक्षा से प्रत्येक भग घ् एक है, द्विसंयोगी भङ्ग कघ्-खघ्-गघ् ये तीन त्रिसंयोगी तग क्खग्-क्गघ्-खगघ् ये तीन हैं, चतुःसंयोगी भङ्ग क् ख् ग् घ् एक है ऐसे आठ हैं और ङ वर्ण सहित विषै अर्थात् क ख ग् घ् ङ् का अपेक्षा से पूर्वोक्त रीति से भग निकालने पर प्रत्येक भग ङ् एक होगा, द्विसयोगी

भग चार त्रिसयोगी भग छह, चतुःसयोगी भग चार पचसयोगी भग (क् ख् ग् घ् ङ्) एक ऐसे सोलह भग हैं। च वर्ण सहित विषैं अर्थात् क वर्ण से च वर्ण को अपेक्षा से प्रत्येक भग (च्) एक है द्विसयोगी पांच भग हैं त्रिसंयोगी दश भग हैं, चतुःसयोगी दश भग हैं पच सयोगी भग पांच और षट्सयोगी भग (क् ख् ग् घ् ङ् च्) एक है। ऐसे भग वत्तीस हैं। छ वर्ण सहित विषैं अर्थात् क वर्ण से छ वर्ण तक इन सात अक्षरों को विवक्षा से प्रत्येक भग (छ) एक है द्विसयोगी भंग छह है। त्रिसयोगी भग पन्द्रह है चतुःसयोगी भंग बीस हैं पञ्चसयोगी भग पन्द्रह हैं षट् सयोगी भग छह है और सप्त सयोगी भग (क् ख् ग् घ् ङ् च् छ्) एक है इस प्रकार चौंसठि है। ज् वर्ण सहित विषैं अर्थात् कवर्ण से जवर्ण तक इन आठ अक्षरों को अपेक्षा से प्रत्येक भग (ज्) एक है द्विसयोगी भग सात हैं त्रिसयोगी भग इक्कीस हैं चतुःसयोगी भग पैंतीस हैं, पचसयोगी भंग पैंतीस हैं षट् संयोगी भंग इक्कीस हैं, सप्तसंयोगी भंग सात हैं अष्ट संयोगी भंग (क् ख् ग् घ् ङ् च् छ् ज्) एक है ऐसे एकसौ अट्ठाईस है। झ् वर्ण सहित विषैं अर्थात् कवर्ण से झ वर्ण तक मे प्रत्येक भंग एक (झ्) है, द्विसंयोगी भंग आठ है त्रिसयोगी भंग २८ अट्ठाईस है। चतुःसयोगी भग छप्पन हैं, पंच सयोगी भग सत्तर है। षट्संयोगी भग छप्पन हैं। सप्त सयोगी भग अट्ठाईस हैं। अष्टसयोगी भग आठ हैं नवसयोगी भग (क् ख् ग् घ् ङ् च् छ् ज् झ्) एक है ऐसे कवर्ण से झ तक दोसौछप्पन भग हैं। और कवर्ण से ञ वर्ण पर्यन्त इन दश अक्षरों को अपेक्षा से प्रत्येक भग (ञ्) एक है। द्विसंयोगी भग नौ हैं। त्रिसंयोगी भग छत्तीस हैं, चतुःसयोगी भग चौरासी है पँचसयोगी एकसौछब्बीस हैं। षट्सयोगी भग भी एकसौ छब्बीस हैं। सप्तसयोगी भग चौरासी हैं अष्टसयोगी भग छत्तीस है नव सयोगी भग नव हैं दश सयोगी भग (क् ख् ग् घ् ङ् च् छ् ज् झ् ञ) एक है ऐसे ये ५१२ भग हैं। ये सर्व भग एक सहस्र तेईस जोड़ने पर होते हैं ये सब पृथक् पृथक् लिखे जासकते हैं विस्तार भय से नहीं लिखे लिखने को रीति उपर बता चुके हैं। स्मरण रहै कि ये भंग अपुनरुक्त अक्षरों द्वारा बने हुये हैं अर्थात् एक भग मे उलटफेर कर वही अक्षर नहीं आसकते हैं जैसे क् ख् ग् और ख् ग् क् वा ग् ख् क् यह तीनों अपुनरुक्त भग को अपेक्षा से एक ह भग है। इस ही क्रम से चौंसठि स्थानों में प्रत्येक भग द्विसयोगी भग, त्रिसयोगी भग, चतुः संयोगी भग इत्यादिक भग पूर्व पूर्व स्थानों के भगों से उत्तर उत्तर अर्थात् अगले अगले स्थानो से दूने दूने होते जाते हैं। जैसे—

स्थान	सर्वप्रकार के भंगोंका योग	स्थान	सब भांतिके भंगोंका जोड़	स्थान	सबरीतिके भंगोंका जोड़	स्थान	सब भांति के भंगोंका जोड़
पहिला	१	सत्रहवां	६५५३६	तेतीसवां	४२९४९६७२९६	उनचासवा	२८१४७४९७६७१०६५६
दूसरा	२	अठारहवां	१३,०७२	चौंतीसवां	८५८९९३४५९२	पचासवां	५६२९४९९५३४२१३१२
तीसरा	४	उन्नीसवा	२६२,४४	पैंतीसवा	१७१७९८६९,८४	इक्यावनवां	११२५८९९९०६८४२६२४
चौथा	८	बीसवां	५२४२८८	छत्तीसवां	३४३५९७३८३६८	बावनवां	२२५१७९९८१३६८५२४८
पांचवां	१६	इक्कीसवां	१०४८५७६	सैंतीसवां	६८७१९४७६७३६	त्रेपनवां	४५०३५९९६२७३७०४९६
छठवां	३२	बाईसवां	२०९७१५२	अढतीसवां	१३७४३८९५३४७२	चोयनवां	९००७१९९२५४७४०९९२
सातवां	६४	तेईसवां	४१९४३०४	उन्तालीसवा	२७४८७७९०६९४४	पचपनवां	१८०१४३९८५०९४८१९८४
आठवां	१२८	चौबीसवां	८३८८६०८	चालीसवां	५४९७५५८१३८८८	छप्पनवा	३६०२८७९७०१८९६३९६८
नवां	२१६	पच्चीसवां	१६७७७२१६	इकतालीसवां	१०९९५११६२७७७६	सतावनवां	७२०५७५९४०३७९२७९३६
दशवां	५१२	छब्बीसवा	३३५५४४३२	वियालीसवां	२,९९०२३२५५५५२	अट्ठावनवा	१४४११५१८८०७५८५५८७२
ग्यारवां	१०२४	सत्ताईसवा	६७१०८८६४	तेतालीसवां	४३९८०४६५१११०४	उनसठवा	२८८२३०३७६१५१७११७४४
बारहवां	२०४८	अट्ठाईसवां	१३४२१७७२८	चवालीसवां	८७९६०९३०२२२०८	साठवां	५७६४६०७५२३०३४२३४८८
तेरहवां	४०९६	उन्तीसवा	२६८४३५४५६	पैतालीसवा	१७५९२१८६०४४४१६	इकसठवां	११५२९-१५०४६०६८४६९७६
चोदहवां	८१९२	तीसवां	५३६८७०९१२	छयालीसवां	३५१८४३७२०८८८३२	बासठवां	२३०५८४३००९२१३६९३९५२
पन्द्रहवां	१६३८४	इकतीसवां	१०७३७४१८२४	सैंतालीसवां	७०३६८७४४१७७६६४	त्रेसठवां	४६११६८६०१८४२७३८७९०४
सोलहवां	३२७६८	बत्तीसवां	२१४७४८३६४८	अडतालीसवां	१४०७३७४८८३५५३२८	चौंसठवा	९२२३३७२०३६८५४७७५८०८

इन सब प्रत्येक भगों को, द्विसयोगी भगों को, त्रिसयोगी इत्यादि चौसठि मूलवर्णों के भगों का योग १८४४६७४४०७३७०९५५१६१५ है येही सर्वद्रव्य श्रुतज्ञान के एकघाटि एकट्ठी प्रमाण अपुनरुक्त अक्षर हैं अर्थात् एक सौ चौरासी शख छयालीसपदम, चौहत्तरि नील चालीस खरब तेहत्तरि अरब सत्तरि करोड पचानवें लाख इक्यावन सहस्र छसौ पन्द्रह इतने अक्षर भिन्न भिन्न अर्थात् अपुनरुक्त अक्षर द्रव्य श्रुतज्ञान के हुये "जातैं जो वाक्य का अर्थ की प्रतोति के निमित्त उनही कहे अक्षरनिको वारवार कहे तो उनका किछू सख्या का नियम है नाही" गोम्मटसार पृष्ठ ७५१

( ) दूसरे प्रकार से उक्त बीस अक्षर प्रमाण द्रव्यश्रुतज्ञान ऐसे निकालते हैं कि उक्त चौसठ अक्षरों को विरलन करके अर्थात् बरोबरि पंकिरूप एक एक को पृथक् पृथक् चौंसठि स्थानों मे माडिए। प्रत्येक चौसठ अक्षरों के ऊपर दो दो का अङ्क देकर परस्पर सम्पूर्ण दो के अङ्को को निम्नरीति से गुणा करके जो लब्ध राशि आवे उसमे से एक घटा देने से जो प्रमाण रहता है उतने ही श्रुतज्ञान के अपुनरुक्त अक्षर रहते हैं क्^{२} — ख्^{२} — ग्^{२} — घ्^{२} — ङ्^{२} इत्यादि चौसठ स्थानो पर्यन्त रखिये क्यूंकि दोय दोय के अङ्कों का ही परस्पर गुणन करते हैं । दो के नीचले मूल चौसठ अक्षर विकार को प्राप्त नही होते हैं, अतः प्रत्येक चौसठ मूल अक्षर के स्थान मे एक का अङ्क लिखकर अथवा □ ऐसे चिन्ह चौसठ लिखकर उन प्रत्येक के ऊपर दो दो का अङ्क लिखदें पुन सब दो दो के अङ्कों को परस्पर गुणा करदें तो भी वही (परिणाम) होगा जैसे □²
□²
=२×
२×२
१६×१६×१६×१६×१६×१६×१६×१६×१६×१६×१६×१६×१६×१६×१६×१६ = २५६×२५६×२५६×२५६×२५६×२५६×
२५६×२५६ क्योंकि २५६ गुणा किये गये २५६ से बराबर हैं ६५५३६ के इस लिये समस्त सख्या = ६५५३६×६५५३६×६५५३६×६५५३६
= ६५५३६ | × ६५५३६
६५५३६ | × ६५५३६ इसपृष्ठ के पीछे ४१४ देखो

```
      ६५५३६                    ६५५३६
      ६५५३६                    ६५५३६
     -------                  -------
     ३९३२१६                   ३९३२१६
    १९६६०८                   १९६६०८
   ३२७६८०                   ३२७६८०
  ३२७६८०                   ३२७६८०
 ३९३२१६                   ३९३२१६
----------               ----------
४२९४९६७२९६              ४२९४९६७२९६
```

अब ४२९४९६७२९६ को मा ाम मे गुणा करने पर जो लब्ध राशि आवे उसमें से एक घटाने पर शेष इष्ट राशि है

अर्थात्

```
          ४२९४९६७२९६
          ४२९४९६७२९६
         ------------
         २५७६९८०३७७६
        ३८६५४७०५६६४
        ८५८९९३४५९२
      ३००६४७७१०७२
     २५७६९८०३७७६
    ३८६५४७०५६६४
   १७१७९८६९१८४
  ३८६५४७०५६६४
  ८५८९९३४५९२
१७१७९८६९१८४
------------------------
१८४४६७४४०७३७०९५५१६१६
                     १
------------------------
१८४४६७४४०७३७०९५५१६१५
```

ये एकट्टि एक ही प्रमाण द्रव्यश्रुतज्ञानके अपुनरुक्त अक्षर हैं इस भेद को इस रूप [२^६४ – १] में भी रख सकते हैं अर्थात् दो को चौंसठ स्थानों मे गुणा करके एक घटादो ॥

( ) इसी भेद को तीसरे प्रकार से ऐसे भी प्रकाश करमके है कि द्विरूपवर्गधाराका (अथवा दोके वर्ग धारा में)छठवां वर्गस्थान जिस को गणना एकट्ठी संख्याके बराबर है। इस एकट्ठी प्रमाण संख्यामे से एक घटानेसे जो अवशेष संख्या रहे उतने ही अपुनरुक्त अक्षर द्रव्य श्रुतज्ञानके हैं अर्थात् दोके ऊपरे २ वर्ग रखकर जब छठवां वर्गका स्थान आवे($2^{2^{2^{2^{2^{2^2}}}}}$)तब गुणनफलमे से एक घटादो येही द्रव्यश्रुतके अपुनरुक्त अक्षर हैं

जैसे दो का एक वर्गस्थान $२^२ = ४$ दोका दूसरा वर्गस्थान $(२^२)^२ = (४)^२ = १६$

दोका तीसरा वर्ग स्थान $((२^२)^२)^२ = (४^२)^२ = (१६)^२ = २५६$ दोका चौथावर्ग स्थान $= (((२^२)^२)^२)^२ = ((४^२)^२)^२ = (१६^२)^२ = (२५६)^२ = ६५५३६$

दोका पांचवां वर्गस्थान $((((२^२)^२)^२)^२)^२ = (((४^२)^२)^२)^२ = ((१६^२)^२)^२ = (२५६^२)^२ = (६५५३६)^२ = ४२९४९६७२९६$

दोका छटा वर्गस्थान $(((((२^२)^२)^२)^२)^२)^२ = ((((४^२)^२)^२)^२)^२ = (((१६^२)^२)^२)^२ = ((२५६^२)^२)^२ = (६५५३६^२)^२ = (४२९४९६७२९६)^२$

$= ४२९४९६७२९६ \times ४२९४९६७२९६$

$= १८४४६७४४०७३७०९५५१६१६$ इससे एक घटाने पर १८४४६७४४०७३७०९५५१६१५ शेष रहे येही अपुनरुक्त अक्ष द्रव्य श्रुतज्ञान के हैं

अब अंगप्रविष्ट और अंगबाह्य की उत्पत्ति लिखते हैं। एक अक्षर से उत्पन्न हुआ जो ज्ञान तिसके ऊपर क्रमसे एक एक अक्षर की वृद्धि होते होते जब संख्यात अक्षरों की वृद्धि होजाय तब पदनामक श्रुतज्ञान होता है। अक्षरज्ञान के ऊपर और पदज्ञान के पूर्व तक जितने ज्ञान के भेद हैं (वे ज्ञान के भेद संख्या में पद के अक्षरों से दो न्यून होते हैं)वे सब अक्षर समासज्ञान के भेद हैं। (जी० कां० गो० ३३५ गाथा) स्मरण रहे कि यहां पर पद से अभिप्राय मध्यमपद से है क्योंकि पद तीन प्रकार के हैं (प) अर्थपद (फ) प्रमाण पद (ब) मध्यम पद। तहां जितने अक्षरों के समूहद्वारा वांछित अर्थ जाना जाता है उसको 'अर्थपद' कहते हैं अर्थात् विवक्षित अर्थ के अर्थी, एक दो आदि अक्षरनिका समूह ताकों अर्थपद कहिये" जैसे 'गामभ्याज शुक्लां दंडेन' वाक्य में गाम अभ्याज शुक्लां दंडेन (= श्वेत गायको दंडेके बल) से बन्द करदो। गाम्-अभ्याज शुक्लां-दंडेन चार अर्थ पद हुये। ऐसे ही 'अग्निमानय, वाक्यमें अग्निम्- आनय (= आग को ला) दोअर्थ पद हुये। और दंडेन शालिभ्यो गां निवारय' वाक्य में दंडेन - शालिभ्यः -गां - निवारय(= दंडेसे गाय का धानों म से निकाल दो) ये चार अर्थ पद हुये। इन उदाहरणों से प्रकट है कि अर्थ पद में प्रत्येक पद के अक्षर बराबर नहीं होते न्यून हों अधिक हों कभी कभी बराबर भी हों प्रमाणेन अष्टाक्षरादि संख्या निष्पन्नः अक्षरसमूहः प्रमाण पद ॥ तद्यथा नमः श्री वर्द्धमानाय। नियमित संख्या को लिये हुये आठ अक्षर आदि गणना करि उत्पन्न हुआ अक्षरोंका समूह सो प्रमाण पद है जैसे श्री वर्द्धमान (भगवान्) कोनमस्कार हो अन्य उदाहरण प्रमाणपदके भक्तामरप्रणतमौलि मणि प्रभाणाम् त्रैकाल्यं द्रव्य षट्क नव पद सहित जीव षट्कायलेश्याः। इत्यादि इन तीन प्रमाणपद के उदाहरणों से प्रगट है इनके अक्षरों की संख्या हीन अधिक है परन्तु प्रत्येक छन्द अवशेष तीन प्रमाण पदों के अक्षरों का प्रमाण बराबर होगा। उक्त सब उदाहरणों के मिलाने से यह फल निकलता है कि अर्थपद और प्रमाणपद के अक्षरों की कोई गणना नियत नहीं है॥

अब और सोलासै चोंतीस कोडि तियासी लाख सात हजार आठसै अठ्यासी (१६३४८३०७८८८) गाथा विषै (= परमागम) कहै अपुनरुक्त अक्षर तिनिका समूह सो मध्यमपद कहिये। इनि विषै अर्थपद अर प्रमाणपद तौ हीन अधिक अक्षरनिका प्रमाणकौं लिए लोकव्यवहार करिग्रहण प्रमाणपद का कोई हैं तातें लोकोत्तर परमागमविषै गाथाविषै कहो जो संख्या तीहां विषै वर्तमान जो मध्यम पद ताही का ग्रहण जानना" सारांश, अर्थपद और में अक्षरों न्यूनाधिकप्रमाण होनेसे लोकव्यवहार म ग्रहण है तिससे लोकोत्तर गाथा विषै [= परमागम में] कहे हुये पदके अक्षरों का प्रमाण १६३४८३०७८८८ सर्वदा के लिये निश्चित है। इस ही को मध्यम पद कहते हैं॥

अंगप्रविष्टं द्वादशविधम् ॥ तद्यथा—

अङ्गप्रविष्टम् १।।। द्वादशविधम् १।।। तद्यथा ※ = अंगप्रविष्ट बारह प्रकार है जैसे (सो = तद्, ज्यों है = यथा ऐसा शब्दार्थ है)

हमको ज्ञान है कि समस्त जिनवाणी (अर्थात् द्रव्यश्रुतज्ञान) वास १८४४६७४४०७३७०९५५१६१५ अपुनरुक्त अक्षर प्रमाण है इन बीस अंकों में १६३४८३०७८८८ अंकों का भाग देने से द्रव्यश्रुतज्ञान के मध्यम पदों की संख्या इसभांति निकलती है कि

१६३४८३०७८८८) १८४४६७४४०७३७०९५५१६१५ (११२८३५८००५ ।
१६३४८३०७८८८
२०९८४३६१८५७
१६३४८३०७८८८
४६३६०५३९६९०
३२६९६६१५७७६
१३६६३९२३९१४६
१३०७८६४६३१०४
५८५२७७६०४२५
४९०४४९२३६६४
९४८२८३६७६१५
८१७४१५३९४४०
१३०८६८२८४७५१
१३०७८६४६३१०४
८१८२१६४७६१५
८१७४१५३९४४०
८०१०८१७५

इतने अंगप्रविष्ट श्रुतज्ञान के मध्यम पद हुये इतने पदों का तो द्वादशांग रूप द्रव्यश्रुत है और शेष अक्षर आठ करोड़ एक लाख आठ सहस्र एकसौ पचहत्तर ८०१०८१७५) रहे इनका पूराएक मध्यम पद नहीं होसका है इनसे अंगवाह्यको उत्पत्ति है अर्थात् इन अक्षरों से चौदह पूर्वोक्त प्रकीर्णको की उत्पत्ति हुई है।

आचारः। सूत्रकृतम्। स्थानम्। समवायः। व्याख्याप्रज्ञप्तिः। ज्ञातृधर्मकथा। उपासकाध्ययनम्

आचारः:। = आचारांग अर्थात् वह है जिसमें साधुओं के समस्त आचरणका वर्णन हो। अठारह सहस्र जिसके पद हैं।

सूत्रकृतम्:।। = सूत्रकृतांग अर्थात् वह है। जिसमें ज्ञानका विनयादिक तथा धर्मक्रियामें स्वमत परमतकी क्रियाका और निर्विघ्न अध्ययन क्रियाका विशेष निरूपण हो इस में छतीस सहस्र ३६००० पद हैं।

स्थानम्:।।। = स्थानाङ्ग अर्थात् जिसमें सम्पूर्ण द्रव्योंके एकसे लेकर कितने विकल्प होसकते है और उन विकल्पों का वर्णन किया है जैसे समान्यकी अपेक्षासे जीवद्रव्यका एक ही विकल्प वा भेद है, संसारी और मुक्त की अपेक्षा से दो भेद हैं, उत्पाद, व्यय ध्रौव्यकी अपेक्षा से तीन भेद हैं। चार गतियों की अपेक्षासे चार भेद हैं, इत्यादि। इसी प्रकार पुद्गल आदिक द्रव्यों के भी भेद समझना। इस में बियालीस सहस्र ४२००० पद हैं।

समवायः:। = समवायाङ्ग अर्थात् वह अङ्ग है जिसमें द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव की अपेक्षासे सामान्यताका वर्णन है। सारांश सम्पूर्ण द्रव्यों में परस्पर किस किस धर्म की अपेक्षा से सादृश्य है यह बताया है। जैसे द्रव्यकारि धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकाय समान है। क्षेत्रकरि मनुष्यक्षेत्र और प्रथम नरकका प्रथम इन्द्रकबिल, अर प्रथम स्वर्गका प्रथम इन्द्रक विमान समान है। कालकरि उत्सर्पिणी अवसर्पिणी समान हैं। भावकारि केवल ज्ञान केवल दर्शन समान हैं। इसके एक लाख चौसठ सहस्र १६४००० पद हैं।

व्याख्याप्रज्ञप्तिः:।। = व्याख्याप्रज्ञप्ति अङ्ग वह है जिसमें जीव के अस्तिनास्ति, वक्तव्य अवक्तव्य, नित्य अनित्य एक अनेक इत्यादि साठ सहस्र प्रश्न गणधर देवने तीर्थंकर भगवान के निकट किये सो कथन है। दोलाखअट्ठाईस सहस्र पद हैं।

ज्ञातृधर्मकथा:।। = ज्ञातृ धर्म कथांग वह है जिसमें जीवादि वस्तुओं का स्वभाव, तीर्थंकरोंका महात्मय, तीर्थंकरोंकी दिव्यध्वनिका समय तथा महात्म्य, उत्तम क्षमा आदि दशधर्म सम्यकदर्शनादि रत्नत्रयका स्वरूप तथा गणधर इन्द्र चक्रवर्ती आदिकी कथा उपकथाओं का वर्णन है पांचलाख छप्पनसहस्र पद हैं।

उपासकाध्ययनम्:।।। = उपासकाध्ययनाङ्ग वह है जिसमें उपासकोंकी (श्रावकोंकी) सम्यकदर्शनादि ग्यारह प्रतिमा संबंधी व्रत गुण शील आचार तथा दूसरे क्रिया कांड और उनके मंत्रादिकों का विस्तार वर्णन है। ग्यारहलाख सत्तर सहस्र पद हैं,

अन्तकृद्दशम् । अनुत्तरोपपादिकदशम् । प्रश्नव्याकरणम् । विपाकसूत्रम् । दृष्टिवाद इति ॥ दृष्टिवादः पञ्चविधः—

अन्तकृद्दशम् ;।॥ = अन्तकृद्दशांग जिसमें प्रत्येक तीर्थंकरके तीर्थमें (= एक तीर्थके पीछे जबतक दूसरा तीर्थंकर हो वो काल) जो दश दश मुनि घार प्रकार का तीव्र उपसर्ग सहन करके संसारके अन्त को प्राप्त हुए उनका वर्णन है इसके तेईस लाख अट्ठाईस सहस्र २३२८००० पद हैं

अनुत्तरोपपादिकदशम् ;।॥ = अनुत्तरोपपादिक दशांग वह है जिसमें एक एक तीर्थ करके तीर्थमें दश दश महामुनि घोर उपसर्ग सहकर अन्तमें समाधि के द्वारा अपने प्राणों को त्याग करके विजय आदिक पांच प्रकारके अनुत्तर विमानोंमें उत्पन्न हुए। इसमें बानवै लाख चवालीस सहस् ९२४४००० पद हैं।

प्रश्न व्याकरणम् ;।॥ = प्रश्न व्याकरणांग वो है जिसमें अतीत अनागत काल सम्बन्धी लाभ अलाभ सुख दुःख जीवित मरणादि शुभाशुभका कोई प्रश्न करै तिसके उत्तर यथार्थ कहनेका उपाय वर्णन है और आक्षेपिणी, विक्षेपिणी संवेजिनी निर्वेजनी इन घार प्रकारकी कथाओं का वर्णन है इसमें तिरानवै लाख सोलह सहस्र ९३१६००० पद हैं।

विपाकसूत्रम् ; ॥ = विपाकसूत्राङ्ग वह अङ्ग है जिसमें द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावके अनुसार शुभाशुभ कर्मों की तीव्र मन्द मध्यम आदि अनेक प्रकारकी अनुभाग-शक्तिके फल देने रूप विपाकका वर्णन है इसमें एककरोड़ चौरासीलाख पद हैं

दृष्टिवादः ;। = दृष्टिवादाङ्ग वह अङ्ग है जिसमें तीनसौ तिरेसठ मिथ्या मतों का वर्णन और उनका निराकरण है इसमें एकसौ आठ करोड अडसठलाख छप्पन सहस्र पांच १०८६८५६००५ पद हैं

दृष्टिवादः;। पञ्चविधः ;। = दृष्टिवादः (बारहवां अङ्ग) पांच प्रकार का है (इसी पुस्तक का पृष्ट ४२० देखो)

परिकर्म । सूत्रम् । प्रथमानुयोगः ।

(१) परिकर्म ।१।१।	= (प्रथम भेद दृष्टिवाद अंग का) परिकर्म(१) वह है जिसमें गणित के करण सूत्रों का वर्णन है
सूत्रम् ।१।१।	= (द्वितीय भेद दृष्टिवाद अंगका) सूत्र वह है जिसमें तीनसौत्रेसठ मिथ्यादृष्टियों का पूर्वपक्षपूर्वक निराकरण है अर्थात् जिसमें मिथ्यादर्शन सम्बन्धी तीनसौत्रेसठ कुवाद है तिनका पूर्वपक्ष लेकर जीवादिक पदार्थों ऊपर लगावनेका वर्णन है। तिन मिथ्यादृष्टियों के ग्रन्थों में जीव अबंधकही है, अकर्त्ता ही है निर्गुण ही है। अभोक्ता ही है। स्वप्रकाशक ही है। पर प्रकाशक ही है। अस्तिरूप ही है। नास्तिरूप ही है इत्यादि एकांत पक्षपात को दूर कर यथार्थस्वरूप का वर्णन है। इसमें अठासीलाख पद हैं।
प्रथमानुयोगः ।१।१।	(तृतीय भेद दृष्टिवाद अंगका) प्रथमानुयोग वह है जिसमें चतुर्विंशति तीर्थंकर, द्वादश चक्रवर्ती नव नारायण नव प्रतिनारायण और नव बलभद्र इन त्रेसठ शलाका (=उत्तम) पुरुषोंका वर्णन है। इसमें पांच सहस्र पद हैं।

(१) इस (परिकर्म) के पांच भेद (क) चन्द्र प्रज्ञप्ति (ख) सूर्य प्रज्ञप्ति (ग) जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति (घ) द्वीपसागर प्रज्ञप्ति (ङ) व्याख्या प्रज्ञप्ति

(क) चन्द्रप्रज्ञप्ति में चन्द्रमा सम्बन्धी विमान आयु परिवार ऋद्धि गमन हानि वृद्धि पूर्ण ग्रहण अर्धग्रहण चतुर्थांशग्रहण आदिका वर्णन है इसमें छत्तीसलाख पांच सहस्र (३६०५०००) पद है

(ख) सूर्यप्रज्ञप्ति में सूर्य सम्बन्धी आयु परिवार गमन प्रमाण ऋद्धि विषयका वर्णन है इसमें पांचलाख तीन सहस्र पद है। (५०३०००)

(ग) जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति में जम्बूद्वीप सम्बन्धी मेरू कुलाचल हृद (सरोवर) क्षेत्र कुंड वेदिका व व्यन्तरों के आवास महानदी आदिका वर्णन है इसमें तीन लाख पचीस सहस्र ३२५००० पद हैं

(घ) द्वीपसागर प्रज्ञप्ति में असंख्यात द्वीप और समुद्रों का स्वरूप तथा वहां तिष्ठने वाले भवन वासी व्यन्तर ज्योतिष्कनि के आवासका वर्णन और वहां पर होने वाले अकृत्रिम चैत्यालयों का वर्णन है इनमे बावन लाख छत्तीस सहस्र (५२३६००० पद) हैं

(ङ) व्याख्याप्रज्ञप्ति में जीव अजीव-भेद प्रमाण लक्षण रूपी अरूपी अजीव द्रव्यों का और अनन्तरसिद्ध परंपरा सिद्धोंका तथा दूसरी वस्तुओं का भी वर्णन है। इसमें चोरासी लाख छत्तीस सहस्र (८४३६०००) पद हैं

पूर्वगतम् । चूलिका चेति ॥ तत्र पूर्वगतं चतुर्दशविधम्—उत्पादपूर्वम् । अग्रायणीयम् ।

पूर्वगतम् १।।। =[चतुर्थ भेद दृष्टिवाद अङ्ग का] वह है जिसके चौदह प्रभेद हैं। जिसमें पचानवे करोड़ उनंचास लाख निन्यानवै सहस्र नौ सौ निन्यानवै [९५४९९९९९] पद हैं। (इनके विशेष के लिये देखो पृष्ठ ४२१, ४२२)

च* चूलिका(१) १।। इति ९ =और ' =च) चूलिका(१) (पञ्चम भेद दृष्टिवाद अंग का) है। (जिसके पांच प्रभेद हैं जिनका वर्णन निम्न टिप्पणी में है)

तत्र * पूर्वगतम् १।।। = तहां (=तत्र) पूर्वगत (दृष्टिवाद अंग का चौथा भेद) में निम्नलिखित चौदह पूर्वगर्भित है

चतुर्दशविधम् १।।। =चौदह प्रकार है अर्थात् दृष्टिवाद अङ्ग के चौथे भेद पूर्वगत में निम्नलिखित चौदह पूर्वगर्भित है

उत्पादपूर्वम् १।।। =वह है जिसमें प्रत्येक द्रव्य के उत्पाद व्यय ध्रौव्य और उनके संयोगी धर्मों का वर्णन है। इसके एक करोड़ पद हैं

अग्रायणीयम् १।।। =वह पूर्व है जिसमें द्वादशांग के प्रधानभूत सातसौ सुनय और दुर्नय पञ्चास्तिकाय षड्द्रव्य सप्ततत्त्व नव पदार्थ आदिका वर्णन है इसमें छियानवें लाख ९६००००० पद हैं

(१) [क] जलगता चूलिका [ख] स्थलगता चूलिका [ग] मायागता चूलिका [घ] रूपगता चूलिका [ङ] आकाशगता चूलिका ये पञ्च भेद हैं

[क] जलगता चूलिका वह है जिसमें जलगमन के, जलस्तम्भन के, अग्नि के आसन के, अग्नि के भक्षण के, अग्नि के प्रवेश के, अग्नि के स्तम्भन आदि के मन्त्र तन्त्र तपश्चर्णादिक का कथन है। इन प्रत्येक के दो करोड़ नौ लाख नवासी सहस्र दो सौ पद हैं।

[ख] स्थलगता चूलिका वह है जिसमें मेरूकुलाचल भूमि पर्वत आदि में प्रवेश करना शीघ्र गमन करना इत्यादिक क्रिया के कारणभूत मन्त्र तंत्रादिक का प्ररूपण है। इसके भी दो करोड नौ लाख नवासो सहस्र दो सौ पद हैं।

[ग] मायागता चूलिका वह है जिसमें मायामयी इन्द्रजालादि विक्रिया के कारण मन्त्र तंत्र आचरणादि का कथन है २०९८९२०० पद हैं।

[घ] रूपगता चूलिका वह है जिसमें सिंह हाथी घोड़ा बैल हिरण इत्यादिक रूपके पलटने के कारण मंत्र तंत्र तपश्चरणादिक का प्ररूपण है तथा चित्राय काष्ठलेपादिक का वर्णन है। तथा धातु रस रसायन का निरूपण है २०९८९२०० पद हैं

[ङ] आकाशगता चूलिका वह है जिसमें आकाश में गमनादिक के कारणभूत मन्त्र तन्त्र तपश्चरणादिक का वर्णन है। इसके भी दो करोड़ नव लक्ष नवासो सहस्र दो शत (२०९८९२००) पद हैं।

वीर्यानुप्रवादम्। अस्तिनास्तिप्रवादम् ॥ ज्ञानप्रवादम् । सत्यप्रवादम् । आत्मप्रवादम् । कर्मप्रवादम् प्रत्याख्याननामधेयम् ।

वीर्यानुवादम् ॥। =(३) वीर्यानुवाद पूर्व वह है जिसमें आत्मवीर्य परवीर्य उभयवीर्य कालवीर्य गुणवीर्य तपोवीर्य द्रव्यवीर्य पर्यायवीर्य क्षेत्रवीर्य भाववीर्य आदि अनेक प्रकार के वीर्य (सामर्थ्य) का वर्णन है। इसमें सत्तरलाख ७००००००पद हैं।

अस्तिनास्तिप्रवादम् ॥। =(४) अस्तिनास्तिप्रवाद पूर्व वो है जिसमें जीवादिक वस्तुओंके स्व पर द्रव्य क्षेत्र काल भाव की अपेक्षाकरि स्यादस्ति स्यान्नास्ति आदि अनेक धर्मों में विधि निषेधकरि सप्तभंगकरि मुख्य गौणकरि वर्णन है। इसमें साठ लाख (६००००००) पद हैं।

ज्ञानप्रवादम् ॥। =(५) ज्ञानप्रवाद पूर्व वह है जिसमें मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान मनः पर्ययज्ञान केवलज्ञान और कुमतिज्ञान कुश्रुतज्ञान कुअवधिज्ञान इन विभंगज्ञानों का स्वरूप संख्या विषय फलादिको का वर्णन है इसमें एक घाटि करोड़ (९९९९९९९) पद हैं।

सत्यप्रवादम् ॥। =(६) सत्यप्रवाद वह पूर्व है जिसमें आठ प्रकारके शब्दोच्चारण के स्थान, पांच प्रयत्न, वाक्यसंस्कारके कारण, शिष्ट दुष्ट शब्दों के प्रयोग, लक्षण, वचनके भेद बारह प्रकारकी भाषा अनेक प्रकार के असत्य वचन वाग्गुप्ति मौन आदि का वर्णन है। इसमें एक करोड़ छह (१००००००६) पद हैं।

आत्मप्रवादम् ॥। =(७) आत्मप्रवाद पूर्व वह है जिसमें आत्मा के कर्ता भोक्ता आदि अनेक धर्मों का निश्चयनय और व्यवहार नयकी अपेक्षा से विशेषरूपमें वर्णन है। इसमें छव्वीस करोड़ (२६०००००००) पद हैं।

कर्मप्रवादम् ॥। =(८) कर्मप्रवाद पूर्व वह है जिसमें ज्ञानावर्णादि कर्मों की मूल प्रकृति उत्तरप्रकृति उत्तरोत्तर प्रकृतियों के भेदलिये बंध सत्ता उदय उदीरणा उत्कर्षण अपकर्षण संक्रमण उपशम निधत्ति निःकांचित आदि अवस्थाओं का वर्णन है। इसमें एक करोड़ अस्सीलाख (१८०००००० पद हैं।

प्रत्याख्याननामधेयम् ॥। =(९) प्रत्याख्याननामधेय पूर्व वह है जिसमें नाम स्थापना द्रव्य क्षेत्रकाल भावकों आश्रयकरि पुरुषों के

विद्यानुप्रवादम् । कल्याणनामधेयम् । प्राणावायम् । क्रियाविशालम् । लोकविन्दुसारमिति ॥

संहनन बलादिक के अनुसारकरि प्रमाणीक काल पर्यन्त वा अप्रमाणीक कालकरि त्यागकरना तथा सावद्य वस्तुओं का त्याग और उपवास विधि और इनकी भावना और पञ्चसमिति और तीनि गुप्ति आदिका वर्णन है । इसमें चौरासी लाख (८४०००००) पद हैं ।

विद्यानुप्रवादम् ।। =(१०) विद्यानुप्रवाद पूर्व वह है जिसमें अंगुष्टप्रसेना आदि सातसौ अल्पविद्या तथा रोहिणी आदि पांचसौ महा विद्याओंका स्वरूप सामर्थ्य मंत्र तंत्र पूजा-विधानआदिका तथा सिद्ध भई विद्याओं का फल और अन्तरिक्ष भौम अङ्ग स्वर स्वप्न लक्षण व्यञ्जन छिन्न इन अष्टांग निमित्तों के ज्ञान का वर्णन है ॥ ११००००००० पद हैं ।

कल्याणनामधेयम् ।। =(११) कल्याणनामधेय पूर्व वह है जिसमें तीर्थंकर चक्रधर बलदेव वासुदेवादिकों के गर्भावतारण आदि कल्याणकोंके महोत्सव तथा उनके कारण (तीर्थंकरत्वादि पुन्य विशेषका हेतु) षोडशकारण भावनादि तपश्चरणादिकों का तथा चन्द्र सूर्यादि ग्रह नक्षत्रादिकों के गमन ग्रहण शकुनादिकों के फल वर्णन हैं इसके छब्बीस करोड २६०००००००० पद हैं ।

प्रणावायम् ।। =(१२) प्राणावाद पूर्व वह है जिसमें काय चिकित्सा आदि आठ प्रकार के आयुर्वेद का, इडा (=पृथिवी) पिङ्गला (=अग्नि) आदिका दशप्राणोंके उपकारक अपकारक द्रव्योंका गतियों के अनुसार वर्णन है ।
इस में तेरह करोड़ १३०००००००० पद हैं ।

क्रियाविशालम् ।। =(१३) क्रियाविशाल वह पूर्व है जिसमें संगीत छन्द अलङ्कार पुरुषोंकी बहत्तर कला स्त्रीके चौंसठ गुण तथा गर्भाधानादिकचौरासी क्रिया, शिल्पादि विज्ञान सम्यग्दर्शनादि एकसौ आठ क्रिया, देववन्दनादिक पच्चीस क्रिया और निमित्त नैमित्तिक क्रियाओं का वर्णन है । इसमें नौ करोड़ पद हैं ।

लोकविन्दुसारम्-इति ❀ =(१४)लोकविन्दुसार पूर्व वहहै जिसमें तीन लोकका स्वरूप छत्तीस परिकर्म आठ व्यवहार, चार बीजगणितादिक मोक्ष का स्वरूप ,उसके गमन का कारण, क्रिया ,मोक्षसुख के स्वरूप का वर्णन है । इसमें साढ़े बारह करोड़ पद हैं ।

तदेतत् श्रुतं द्विभेदमनेकभेदं द्वादशभेदमिति ॥

तद् ।।। एतद् ।।। श्रुतम् ।।। द्वि-भेदम् ।।।	=पूर्वोक्त (=तद्) यह (=एतद्) (श्रुतज्ञान अङ्गवाह्य और अङ्गप्रविष्ट) दो भेदरूप
अनेक भेदम् ।।। द्वादशभेदम् ।।। इति*	=(इनमें से अङ्गवाह्य) अनेक भेदरूप (अङ्गप्रविष्ट) बारह भेदरूप ऐसे हुआ

(१ मतिज्ञान-श्रुतज्ञानयोः ।। कः ।। प्रतिविशेषः ।। इति*	=मतिज्ञान और श्रुतज्ञान में क्या भेद(=प्रति विशेष)है ऐसा (प्रश्न होने पर)
अत्र-उच्यते ।। उत्पन्न -अविनष्ट - अर्थ-	=यहां कहा जाता है कि उत्पन्न होकर जो नष्ट नहीं हुवा है ऐसे पदार्थ (=अर्थ) के
साम्प्रतकाल - विषय ।।। ग्राहक ।।। मतिज्ञानम् ।।।	=वर्तमान (=साम्प्रतम्) काल के विषय को ग्रहण करने वाला मतिज्ञान है
श्रुतज्ञान ।।। तु ❀ त्रिकाल - विषय ।।। उत्पन्न-	=और (=तु) त्रिकाल विषयक श्रुतज्ञान है (अर्थात्) उत्पन्न पदार्थ का (और)
विनिष्ट - अनुत्पन्न-	=(उत्पन्न होकर) नष्ट भये पदार्थ का (और) अनुत्पन्न (जो भविष्यमें उत्पन्न होगा उस)
अर्थ-ग्राहकम् ।।।	=पदार्थ का (श्रुतज्ञान) ग्रहण करने वाला है (देखो सभाष्यतत्वार्थाधिगम सूत्र पृष्ट २०)
च * विशुद्धतरं ।।। इति *	=और(=च) अधिक विशुद्ध (मतिज्ञान से श्रुतज्ञान) है
किं ।।। च * अन्यत् * मतिज्ञानम् ।।। इन्द्रिय-	=कुछ और भी (मतिज्ञान से श्रुतज्ञान में विशेष) है। मतिज्ञान है सो इन्द्रिय और
अनिन्द्रिय-निमित्तम् ।।। आत्मनः ।। ज्ञ-स्वभावात् ।।	=अनिन्द्रिय जो मन (तिस) निमित्तक आत्माके ज्ञस्वभाव (=जाननेके स्वभाव)से होताहै
पारिणामिकम् ।।। श्रुतज्ञानं ।।। तु* तत्-	=(अतएव,पारिणामिक है। परन्तु (=तु) श्रुतज्ञान उस (मतिज्ञान)
पूर्वकम् ।।। आप्त-उपदेशात् ।। भवति । इति *	=जन्य(=पूर्वक) आप्तके उपदेशसे (उत्पन्न) होता है। ऐसा (प्रतिविशेष भी)है सभाष्य०२०

(२) श्रुतज्ञान और केवल ज्ञान में अन्तर वा भेद यह है कि श्रुतज्ञान परोक्ष है केवल ज्ञान प्रत्यक्ष है यद्यपि ज्ञान की अपेक्षा से श्रुतज्ञान तथा केवल ज्ञान दोनों ही सदृश हैं।भावार्थ- जिस प्रकार श्रुतज्ञान सम्पूर्ण द्रव्य और उनकी पर्यायों को जानता है उस ही प्रकार केवल ज्ञान भी सम्पूर्ण द्रव्य और पर्यायों को जानता है। विशेषता इतनी ही है कि श्रुतज्ञान इन्द्रिय और मनकी सहायता से होता है इसलिये इसकी अमूर्त पदार्थों में और उनकी अर्थ पर्याय तथा दूसरे सूक्ष्म अंशों में स्पष्टरूप से प्रवृत्ति नहीं होती। किन्तु केवल ज्ञान निरावरण होने के कारण समस्त पदार्थोंको स्पष्ट रूप से विषय करता है ॥

टिप्पणी —अंगप्रविष्ट श्रुतज्ञानके पदों की संख्या—

अंग		पद
(१) आचारांग	अठारहसहस्र	१८०००
(२) सूत्रकृतांग	छत्तीससहस्र	३६०००
(३) स्थानांग	बियालीससहस्र	४२०००
(४) समवायांग		१६४०००
(५) व्याख्या प्रज्ञप्तिअंग		२२८०००
(६) ज्ञातृधर्मकथांग		५५६०००
(७) उपासकाध्ययनांग		११७००००
(८) अन्तकृद्दशांग		२३२८०००
(९) अनुत्तरोपपादिकदशांग		९२४४०००
(१०) प्रश्नव्याकरणांग		९३१६०००
(११) विपाक सूत्रांग		१८४०००००
(१२) दृष्टिवादांग		१०८६८५६००५

द्वादशांग के सर्वपदोंका योग ११२८३५८००५

दृष्टिवाद अंग के पांच भेद हैं उनमें से प्रथम भेद परिकर्म के पांच प्रभेद हैं और चतुर्थभेद पूर्वगत के चौदह प्रभेद हैं और पांचवां भेद चूलिकाके भी पांच प्रभेद हैं "सूत्र" दूसरे भेद और 'प्रथमानुयोग' तीसरे भेद का कोई प्रभेद नहीं हैं इन सबके १०८६८५६००५ मध्यम पद हैं। इन प्रभेदों की पृथक २ संख्या और प्रत्येक प्रभेद के पदों की भी संख्या इस पृष्ठ के तीसरे स्तम्भ वा धारा में लिखते हैं।

भेद	पद
१-चन्द्रप्रज्ञप्ति (परिकर्म)	३६०५०००
२-सूर्यप्रज्ञप्ति ,,	५०३०००
३-जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति ,,	३२५०००
४-द्वीपसागरप्रज्ञप्ति ,,	५२३६०००
५-व्याख्याप्रज्ञप्ति ,,	८४३६०००
६-सूत्र (दूसरा भेद)	८८०००००
() प्रथमानुयोग (तीसरा भेद)	५०००
(क) उत्पादपूर्व (चौथाभेद)	१००००००००
(ख) अग्रायणीयपूर्व	९६०००००
(ग) वीर्यानुवादपूर्व	७००००००
(घ) आस्तिनास्तिप्रवादपू.	६००००००
(ङ) ज्ञानप्रवादपूर्व	९९९९९९९
(च) सत्यप्रवादपूर्व	१००००००६
(छ) आत्मप्रवादपूर्व	२६००००००
(ज) कर्मप्रवादपूर्व	१८००००००
(झ) प्रत्याख्याननामधेय पूर्व	८४०००००
(ञ) विद्यानुप्रवादपूर्व	११००००००
(ट) कल्याणनामधेय पूर्व	२६००००००
(ठ) प्राणावाद पूर्व	१३००००००
(ड) क्रियाविशालपूर्व	९००००००
(ढ) लोकविंदुसारपूर्व	१२५००००००
(१) जलगताचूलिका	२०९८९२००
(२) स्थलगताचूलिका	२०९८९२००
(३) रूपगताचूलिका	२०९८९२००
(४) मायागताचूलिका	२०९८९२००
(५) आकाशगता ,,	२०९८९२००
	१०८६८५६००५

दृष्टि वाद अंग के छब्बीस स्थानों के एक सौ आठ करोड़ अड़सठ लाख छप्पन सहस्र पांच पद हुये ॥

टिप्पणी :—

द्रव्य श्रुतज्ञानका मानचित्र

- अंगप्रविष्ट
  - (१) आचारांग
  - (२) सूत्रकृताङ्ग
  - (३) स्थानांग
  - (४) समवायांग
  - (५) व्याख्याप्रज्ञप्त्यंग
  - (६) ज्ञातृधर्मकथांग
  - (७) उपासकाध्ययनांग
  - (८) अन्तकृद्दशांग
  - (९) अनुत्तरोपपादिकदशांग
  - (१०) प्रश्नव्याकरणांग
  - (११) विपाकसूत्रांग
  - (१२) दृष्टिवादांग
    - परिकर्म (क)
      - १—चन्द्रप्रज्ञप्ति
      - २—सूर्यप्रज्ञप्ति
      - ३—जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति
      - ४—द्वीपसागर प्रज्ञप्ति
      - ५—व्याख्याप्रज्ञप्ति
    - सूत्र (ख)
    - प्रथमानुयोग (ग)
    - पूर्वगत (घ)
      - १—उत्पादपूर्व
      - २—अग्रायणीपूर्व
      - ३—वीर्यानुवादपूर्व
      - ४—अस्तिनास्तिप्रवादपूर्व
      - ५—ज्ञानप्रवादपूर्व
      - ६—सत्यप्रवादपूर्व
      - ७—आत्मप्रवादपूर्व
      - ८—कर्मप्रवादपूर्व
      - ९—प्रत्याख्यानानामधेयपूर्व
      - १०—विद्यानुवादपूर्व
      - ११—कल्याणनामधेयपूर्व
      - १२—प्राणावायु या प्राणावादपूर्व
      - १३—क्रियाविशालपूर्व
      - १४—लोकबिंदुसारपूर्व
    - चूलिका (ङ)
      - १—जलगता चूलिका
      - २—स्थलगता चूलिका
      - ३—मायागता चूलिका
      - ४—आकाशगता चूलिका
      - ५—रूपगता चूलिका
- अंगबाह्य (ये चौदह प्रकीर्णक हैं)
  - (१) सामायिक प्रकीर्णक
  - (२) चतुर्विंशतिस्तवप्रकीर्णक
  - (३) वंदनाप्रकीर्णक
  - (४) प्रतिक्रमण प्रकीर्णक
  - (५) वैनयिक प्रकीर्णक
  - (६) कृतिकर्म प्रकीर्णक
  - (७) दशवैकालिक प्रकीर्णक
  - (८) उत्तराध्ययन प्रकीर्णक
  - (९) कल्पव्यवहार प्रकीर्णक
  - (१०) कल्पाकल्प प्रकीर्णक
  - (११) महाकल्प प्रकीर्णक
  - (१२) पुण्डरीक प्रकीर्णक
  - (१३) महापुण्डरीक प्रकीर्णक
  - (१४) निषिधिका प्रकीर्णक

किंकृतोऽयं विशेषः ?। वक्तृविशेषकृतः ॥ त्रयो बक्तारः। सर्वज्ञतीर्थंकरः। इतरो वा श्रुतकेवली ॥

किम्* कृतः $\frac{9}{9}$ अयम् $\frac{9}{9}$ विशेषः $\frac{9}{9}$?	= यह पृभेद (= विशेष) क्योंकर किया गया है ? अर्थात् यह श्रुत ज्ञान दो भेदरूप, अनेक भेदरूप और बारह भेदरूप हैं सो क्योंकर हैं।
वक्तृविशेष-कृतः $\frac{9}{9}$	= (यह विशेष) वक्ता के विशेष वा भेद [होने के कारण] से किया गया है।
त्रयः $\frac{9}{3}$ वक्तार $\frac{9}{2}$	= तीन [प्रकार के] वक्ता हैं अर्थात् शास्त्र वा आगम के कहने वालों के तीन भेद हैं।
सर्वज्ञ-तीर्थंकरः $\frac{9}{9}$	= सर्वज्ञतीर्थंकर अर्थात् तीर्थंकर होकर पश्चात् सर्वज्ञता को प्राप्त करनेवाला
इतरः $\frac{9}{9}$ वा*	= अथवा (= वा) दूसरे [प्रकारके सर्वज्ञ] अर्थात् तीर्थंकर केवलीके अतिरिक्त भिन्न
	= श्रेष्ठ मनुष्य जिसने तपश्चरणके द्वारा सर्वज्ञता प्राप्त की है
श्रुतकेवली $\frac{9}{9}$	= श्रुतकेवली अर्थात् वह श्रेष्ठ पुरुष जो द्वादशांग और चौदह प्रकीर्णकों के ज्ञाता हैं)

१—(क) ग्यारह अङ्ग चौदह पूर्व के पाठी (ख) "द्वादशांगके पाठी" (ग) श्रुत केवली (घ) "पूर्वविदः" इन चारों वाक्यों के भावार्थ लिखते हैं

(क) मानचित्र पृष्ठ ४२६ से ज्ञात है कि दृष्टिवाद बारहवां अङ्ग का चौथा भेद 'पूर्वगत' है और जिस क्रम से हमने मान चित्रमें दृष्टिवाद अङ्ग के भेद दिये हैं उसही क्रमसे जीवकांड गोम्मटसारगाथा ३६१, अर्थप्रकाशिका पृष्ठ ५४, सर्वार्थसिद्धि वचनिका पृष्ठ १६० में इसी दृष्टिवाद अंग के भेद दिये गये हैं इससे यह बात झलकती है वह जो ग्यारह अंग और पूर्वगत के भेद तक का पाठी हो अर्थात् ग्यारह अङ्ग पांचपरिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग और चौदह पूर्वोंका ज्ञाता हो उसको ग्यारहअंग चौदह पूर्वका पाठी कहेंगे नकि उसको जो केवल ग्यारहअङ्ग और चौदह पूर्वका पाठी परिकर्म-सूत्र प्रथमानुयोग को छोडकर हो। बारह अङ्गोंके पठनमें से केवल चूलिका पांच रहजाती हैं।

(ख) "द्वादशांग के पाठी" उनको कहेंगे जो बारह अङ्ग के पाठी हो अर्थात् चौदह प्रकीर्णको को छोडकर शेष सब श्रुतज्ञान के पाठी हों॥

(ग) श्रुतकेवली वो है जो द्वादशांग और चौदह प्रकीर्णको के ज्ञाता हों। अर्थात् समस्त द्रव्य श्रुत ज्ञात को जानते हो॥

(घ) "पूर्वविदः" यह वाक्य नवमें अध्याय के सेंतीसवा सूत्र "शुक्लेचाद्ये पूर्वविदः" में आया है और इसका अर्थ सर्वार्थसिद्धि संस्कृतवृत्ति (पृष्ठ ४५२) तत्त्वार्थराजवार्तिक (पृष्ठ ३५४) और तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक (पृष्ठ ५०४) और जहांतक हमने अवलोकन किया है सब भाषा टीकाकारो ने जैसे पं० जयचन्द्राजी, सदासुखजी, पन्नालालजी, नाथूरामजी इत्यादिकोंने "श्रुतकेवली" किया है अब प्रश्न यह है कि "पूर्वविदः" वाक्य का अर्थ श्रुतकेवली कैसे हुआ क्योंकि प्रत्यक्ष में "पूर्वविदः" का अर्थ पूर्व के जानने वाले ऐसा ही होता है अर्थात् पूर्व तक जानने वाले भावार्थ उक्त "ग्यारहअङ्ग चौदह पूर्व तक के पाठी हों॥

आरातीयश्चेति ॥ तत्र सर्वज्ञेनपरमर्षिणा परमाचिन्त्यकेवलज्ञानविभूतिविशेषेण अर्थत आगम उद्दिष्टः ॥ तस्य

च* आरातीयः $\frac{3}{1}$ इति*	=इस दूसरी गणना में गणधर जो चार ज्ञान के धारक होते हैं सम्मिलित हैं और (=च) आरातीय अर्थात् केवलज्ञानियों, गणधरों और श्रुतकेवलियों को छोड़कर अन्य आचार्य, सूत्रकार टीकाकार और भाष्यकार ऐसे हैं।
तत्र* सर्वज्ञेन $\frac{3}{1}$ परमर्षिणा $\frac{3}{1}$ परम-अचिन्त्य-	=तहाँ सर्वज्ञकरि (जो) उत्कृष्ट ऋषि है (और) जो उत्कर्ष वा प्रधान अचिन्त्य
केवलज्ञान-विभूति-विशेषेण $\frac{3}{1}$।	=केवलज्ञान ऐश्वर्य के विशेष सहित है।
अर्थतः * आगमः $\frac{3}{1}$ उद्दिष्टः $\frac{3}{1}$	=अर्थतैं, आगम वा शास्त्र उपदेशागया है अर्थात् अर्थको आश्रयकरि अभिप्राय को प्रगट करते हुए वा तात्पर्य को लिये हुये उक्तसर्वज्ञने आगम को कहा है
तस्य $\frac{6}{1}$ प्रामाण्यम् $\frac{3}{111}$	=तिस (आगम) का प्रमाणपना वा विश्वसनीयता (=प्रामाण्यम्) विश्वास्यता

(उत्तर) टिप्पणी पृष्ठ ४०६ से विदित है कि अक्षरात्मक श्रुतज्ञानके अठारह भेद अर्थाक्षर, पद, सघात, प्रतिपत्तिक, अनुयोग, प्राभृतप्राभृत प्राभृत, वस्तु, पूर्व ये नव भेद और क्रम से एक एक अक्षर की वृद्धि के द्वारा उत्पन्न होनेवाले अक्षर समास आदि नव ऐसे सब मिलि अठारह भेद हुए अर्थात् सत्रहवां भेद "पूर्व" है और अठारहवां भेद "पूर्वसमास" है॥ "पूर्व" अन्तका भेद नौ भेदों में से उत्कृष्ट हैं। मेरी समझ में "पूर्वविदः" वाक्यसे "पूर्वसमासविदः" प्रयोजन है अर्थात् श्रुतज्ञान का यह सब से उत्कृष्ट भेद है कि जिसके ऊपर अब किसी अक्षर की क्रम से वृद्धि नहीं हो सकती है॥ द्रव्य श्रुतज्ञान के सबसे उत्कृष्ट भेद तक के जानने वाले सो पूर्वसमासविदः हैं बोलते बोलते व्यवहार में समास शब्दको छोड़ दिया और पूर्व समासविदः के स्थान में पूर्व विदः कहने लगे। जब श्रुतज्ञानके सबसे उत्कृष्ट भेद के ज्ञाता हुये और श्रुत ज्ञान का इस भेद से ऊपर कोई भेद है ही नहीं पूर्वसमास श्रुतज्ञान के ऊपर कोई अक्षर श्रुतज्ञान का अवशेष रहता ही नहीं कि कोई अन्य भेद किया जाय और श्रुतकेवली वही है जो समस्त द्रव्य श्रुतज्ञान को जानता है— इसलिय पूर्वविदः (=पूर्वसमासविदः) का अर्थ सर्व द्रव्य श्रुतज्ञानयुक्त बीस अक्षर के प्रमाण ज्ञाता हुआ अर्थात श्रुतकेवली हुआ। यह अर्थ समझ के अनुकूल लिखा, विशेष अर्थ पाठकगण विचार लें॥

(१) प्रामाण्य शब्द के दो अर्थ एक प्रमाणपना दूसरा विश्वसनीयता वा विश्वस्यता है (देखो जैन कोश पृष्ठ ४१० और आप्तेकोश पृष्ठ ७६)

प्रत्यक्षदर्शित्वात्प्रक्षीणदोषत्वाच्च प्रामाण्यम् । तस्य साक्षाच्छिष्यैर्बुद्ध्यतिशयर्द्धियुक्तैर्गणधरैः श्रुतकेवलिभिरनुस्मृतग्रन्थरचनमंगपूर्वलक्षणं तत्प्रमाणं, तत्प्रामाण्यात् ॥ आरातीयैः पुनराचार्यैः कालदोषात्संक्षिप्तायुर्मतिबलशिष्यानुग्रहार्थं दशवैकालिकाद्युपनिबद्धं, तत्प्रमाणमर्थतस्तदेवेदमिति क्षीरार्णवजलं घटगृहीतमिव।

प्रत्यक्षदर्शित्वात् १ ।।। प्रक्षीण—दोषत्वात् १ ।।। च* = (सर्वज्ञ के) प्रत्यक्ष देखने से और (= च) उत्कृष्ट निर्दोषपना से है

तस्य ६। साक्षात् * शिष्यैः ३। बुद्धि—अतिशय— = तिस (सर्वज्ञ) के निकटवर्ती (= साक्षात्) शिष्य बुद्धि के अतिशय और

ऋद्धियुक्तैः ३ । गणधरैः ३। श्रुतकेवलिभिः ३। = ऋद्धि करि सहित जे गणधरद्वारा और श्रुतकेवलियों करि

अनुस्मृत—ग्रन्थरचनम् १ ।।। = (उन गणधरों और श्रुतकेवलियों के) स्मरण के अनुसार ग्रन्थ रचना है

अङ्ग — पूर्व लक्षणम् १।।। = जो अंगों और पूर्वों का हेतु वा अवसर (= लक्षण—देखो वैद्यजी रचित कोष पृष्ठ ३१७)

तत्प्रमाणं १ ।।। तत्—प्रामाण्यात् ५ ।।। = उन [गणधर के वचन] का प्रमाण उन (सर्वज्ञ के वचन) के प्रमाण होने से है,

आरातीयैः ३। पुनर् * आचार्यैः ३ । = और आरातियों करि [अर्थात्] पिछले आचार्यों करि भावार्थ केवल ज्ञानियों, गणधरों और श्रुतकेवलियों के अतिरिक्त जे पिछले आचार्यों करि

कालदोषात् ५ । संक्षिप्त-आयुस्-मति-बल-शिष्यअनुग्रह- = कालके दोष से थोडी अथवा अल्प आयु बुद्धि सामर्थ्य के (धारक) शिष्यों के उपकारके

अर्थम् १।।। दशवैकालिक—आदि - उपनिबद्धम् १ ।।। = लिये दशवैकालिक आदिक (प्रकीर्णक) रचे गये हैं

तत् प्रमाणम्—१ ।।। अर्थतः * = उन (दशवैकालिक आदि प्रकीर्णकों) का प्रमाण अर्थ से, तात्पर्य से अथवा अभिप्राय से (जो सर्वज्ञ और गणधरों ने कहा) है।

तत् १।।। [तद् १।।।] एवं * इदम् १।।। इति * = सो (तद्) ही (एव) यह (= इदम्, ऐसे है (इति)

घट-ग्रहीतम् १।।। क्षीर-अर्णव-जलम् १ ।।। इव ❀ = मानो (= इव) घडा में ग्रहण किया गया वा भरा गया क्षीर समुद्र का जल है अर्थात् जैसे क्षीर समुद्र का थोडा सा जल घट में भरा हुआ यह प्रकट करता है कि वह का जल क्षीर समुद्र का जल ही है अन्य नहीं है तैसे ही ये दशवैकालिक सर्वज्ञ का परम्परायसे उसी अर्थ को लेकर आचार्यों ने अपनी अपनी बुद्धि अनुकूल कहे हैं वो ही है वास्तव में सर्वज्ञकथितपदार्थ ही इनमें कहा गया है अतः यह प्रमाणभूत है।

व्याख्यातं परोक्षम्। प्रत्यक्षमिदानीं वक्तव्यम्। तत् द्वेधा–देशप्रत्यक्षं सकलप्रत्यक्षं च॥ देशप्रत्यक्षमवधिमनःपर्ययज्ञाने। सर्वप्रत्यक्षं केवलम्॥ यद्येवमिदमेव तावदवधिज्ञानं त्रिप्रकारस्य प्रत्यक्षस्याद्यं व्याक्रियतामित्यत्रोच्यते॥ द्विविधोऽवधिः। भवप्रत्ययः क्षयोपशमनिमित्तश्चेति॥ तत्र भवप्रत्यय उच्यते-

परोक्षम् ।।। व्याख्यातम् ।।। प्रत्यक्षम् ।।।	= परोक्ष (प्रमाण मति-श्रुत) कहेगये हैं प्रत्यक्ष (प्रमाण अवधि, मनः पर्यय केवल ज्ञान
इदानीम् ।। वक्तव्यम् ।।। तत् ।।। द्वेधा ।। देश-प्रत्यक्षम् ।।।	= अव (= इदानीम्) कहने योग्य हैं। वह (प्रत्यक्ष ज्ञान) दो प्रकारहैं। देश प्रत्यक्ष
च ।। सकल-प्रत्यक्षम् ।।। देश-प्रत्यक्षम् ।।।	= और (= च) सकल प्रत्यक्ष। देश प्रत्यक्ष
अवधि-मनः पर्ययज्ञाने ।।। सर्व-प्रत्यक्षम् ।।। केवलम् ।।।	= अवधि मनः पर्यय ज्ञान हैं। सकल प्रत्यक्ष केवल ज्ञान है
यदि ।। एवम्; तावत् ।। इदम् ।।। एव ।।	= जो (= यदि) इस प्रकार (= एवम्) है तो (= तावत्) यहही
अवधिज्ञानम् ।।। त्रिप्रकारस्य ।।। प्रत्यक्षस्य ।।। आद्यम् ।।।	= अवधि ज्ञान जो तीन प्रकार के प्रत्यक्ष (ज्ञानों) के पहिले है
व्याक्रियताम् । इति ।। अत्र ।। उच्यते ।	= (वह अवधि ज्ञान) वर्णन किया जाय। ऐसा (पूंछने पर) यहां कहा जाय है
द्वि-विधः ।। अवधिः ।। भवप्रत्ययः ।।	= अवधि (ज्ञान) दो प्रकार है। भवप्रत्यय (जो पर्यायरूप कारण से उत्पन्न हो)
च ।। क्षयोपशम निमित्तः ।। इति ।।	= और (= च) क्षयोपशम निमित्तक वा क्षयोपशम जन्य वो गुण प्रत्यय अर्थात् अवधिज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से उत्पन्न होने वाला
तत्र ।। भवप्रत्ययः ।। उच्यते ।	= वहां भवप्रत्यय (अवधि ज्ञान निम्न लिखित इक्कीसवां सूत्र में] कहा जाता है

(१) "त्रि. प्रकारस्य" इस वाक्य में त्रि और प्रकारस्य शब्दों के मध्य में विसर्ग (:) भूल से मुद्रित होगये हैं क्योंकि त्रि शब्द के प्रथमा विभक्ति एक वचन पुल्लिंग-स्त्रीलिंग-नपुंसकलिंग यथाक्रम त्रयः तिस्रः त्रीणि हैं और क्योंकि त्रिः का अर्थ तीनवार का है जैसे त्रिःसप्तकृत्वः परशुरामः पृथिवीम् अक्षत्रियाम् अकरोत् = तीनवार (= त्रिः) गुणित सातवार (अर्थात् इक्कीसवार) परशुराम ने पृथिवी को क्षत्रियरहित किया यहां पर तीन वार का अर्थ लगता नहीं है (२) व्याक्रियताम् :- यह वाक्य "कृ" (= करना वर्णन करना अर्थ में) धातुमें वि और आ' उपसर्गों के लगाने से कर्मणि प्रधान में लोट् वा आज्ञार्थ क्रिया का प्रथम पुरुष ताम् प्रत्यय लगाने से निम्नलिखित नियमों से बना है। (क) धातु में 'य' लगा कर आत्मनेपद प्रत्यय जोड़ने से कर्मणि प्रधान प्रयोग बनजाता है। (ख) यदि धातुके अन्तमें ऋ हो और उसके पूर्व कोई संयोग अक्षर न हो तो कर्मणि प्रयोगके य के पहिले ऋ के स्थानमें रि कर देते हैं जैसे कृ का क्रि होगया। (ग) कर्मणि प्रयोगों में धातुओं के गणों के भेदों का विचार नहीं किया जाता है सबै प्रकार के धातुओं से वे एक ही प्रकार से बनाये जाते हैं॥ धातुओं के रूप में कहीं कहीं परिवर्तन होजाता है। यहांपर वि + आ + क्रि + य = व्याक्रिय हुआ ताम् प्रत्यय लगाने से व्याक्रियताम् होगया

॥ भवप्रत्ययोऽवधिर्देवनारकाणाम् ॥ २१ ॥

भव इत्युच्यते। को भवः ?। आयुर्नामकर्मोदयनिमित्त आत्मनः पर्यायो भवः । प्रत्ययः कारणं निमित्तमित्यनर्थांतरम् ॥ भवःप्रत्ययोऽस्य भवप्रत्ययोऽवधिः। देवनारकाणां वेदितव्यः ॥ यद्येवं

सूत्रम् [1]भवप्रत्ययोऽवधिर्देवनारकाणाम् ॥ २१ ॥

सूत्रार्थः—भव प्रत्ययः १। अवधिः १। देवनारकाणाम् ६। = देव और नारकी (जीव) नि के अवधिज्ञान जन्म निमित्तक है

अर्थात् नारकी जीव और देवों के अवधि ज्ञान होने में नरक योनि तथा देव योनि में उत्पत्ति होना एक मुख्य कारण है। भावार्थ जैसे पक्षियों में जन्म होना ही आकाश में गमन करने का निमित्त है न कि शिक्षा, जप, तप, आदिक वैसे ही नारकी और देवों की पर्यायों में उत्पत्ति मात्र से ही अवधिज्ञान प्राप्त होता है ॥

तीर्थंकरों के भी भवप्रत्ययः अवधिज्ञान होता है ॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस इक्कीसवां सूत्र पर संस्कृत सर्वार्थसिद्धि वृत्ति का शब्दशः हिन्दी अनुवाद

भवः १। इति ॐ उच्यते १। कः १। भवः १। आयुर्नाम- = भव ऐसा (इस सूत्र में) कहा गया है (सो) भव क्या है? आयुष्नामा

कर्म-उदय-निमित्तः १। आत्मनः ६। पर्यायः १। भवः १। = कर्म का उदय है कारण जिसको ऐसा आत्मा का पर्याय सो भव है।

प्रत्ययः १। कारणम् १॥। निमित्तम् १॥ इति अनर्थान्तरम् १॥। = प्रत्यय कारण निमित्त ऐसे (ये तीन शब्द) सामान्य अर्थ वाचक है

भवः १। प्रत्ययः १। अस्य ६। भवप्रत्ययः १। अवधिः १। = भव पर्याय वा जन्म है कारण जिसका (सो) भवप्रत्ययअवधिज्ञान

देवनारकाणाम् ६। वेदितव्यः १। यदि *एवम् * = देव और नारकी जीवों के जानना योग्य है। (प्रश्न) जो इस प्रकार है (तो)

(१) इस सूत्र का पाठ दिगम्बर आम्नायमें एक है। श्वेताम्बर आम्नाय के इस ग्रन्थ के प्रथम २१ वां सूत्र "द्वि विधोऽवधि." = दो प्रकार (भवप्रत्यय और क्षयोपशम निमित्त) अवधि (ज्ञान) है। द्विविधोऽवधि "के पीछे "भवप्रत्ययो नारक देवानाम्" बाईसवां सूत्र है जिसमे अवधि शब्द की अनुवृत्ति "द्विविधोऽवधि." से ली है तब बाईसवां सूत्र 'भवप्रत्ययोऽवधि नारक देवानाम्' ऐसा बन जाता है। अब हमारे यहांके इक्कीसवांसूत्र का पाठ यदि श्वे०के बाईसवांसूत्र की अनुवृत्ति सहित मिलाया जायतो दोनो एक होजाते। केवल इतना रहता है कि हमारे यहां केपाठमें देवशब्द प्रथम है उनके यहां नारकशब्द प्रथमहै, अर्थपैप्रभाव नहीं पडता

तत्र क्षयोपशम निमित्तत्वं न प्राप्नोति। नैष दोषः। तदाश्रयात्तत्सिद्धेः॥ भवं प्रतीत्य क्षयोपशमः सञ्जायत इति कृत्वा भवः प्रधानकारणमित्युपदिश्यते॥

तत्र क्षयोपशम-निमित्तत्वं॥ (१)प्राप्नोति, न एष दोषः = वहां क्षयोपशम का निमित्तपना नहीं प्राप्त होता है (उत्तर) यह दूषण नहीं है
तद्—आश्रयात् । = क्योंकि उस(देव-नारकियों के भव)के आश्रय से उस (क्षयोपशम निमित्त पना) की
तत्—सिद्धेः॥ ; भवम् । प्रतीत्य — = सिद्धि होती है। भव का समर्थन करि वा प्रतिपादनकरि वा निर्णीतकरि (= प्रतीत्य)
क्षयोपशमः । सञ्जायते(३) : इति कृत्वा = क्षयोपशम साथ साथ अवधिज्ञान के उत्पन्न होता है। ऐसा करके
भवः । प्रधान-कारणम्॥ = (देव नारकियों का) (भव) उक्त अवधिज्ञान का मुख्य निमित्त है
(और आवधि ज्ञानावरणकर्म का क्षयोपशम तो भव के हेतु से होता ही है)
इति उपदिश्यते । = ऐसा उपदेश किया गया है। इस प्रश्न और उत्तर का स्पष्ट साराश यह है कि सिद्धान्त के अनुकूल किसी प्रकार का अवधिज्ञान कहीं और कभी भी अवधिज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम के बिना नहीं होता है इसी आशय के सिद्धान्त को शिष्य ने चित्त में रखकर प्रश्न कर दिया कि यदि देव और नारकियों की पर्यायवा भव ही अवधिज्ञान को उत्पन्न करता है तो यह अवधिज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम की कुछ भी अपेक्षा न ठहरी (उत्तर) अवधिज्ञानावरण क्षयोपशम तो अतरंग कारण है ही। सो दोऊ प्रकार की अवधि में पाईये है या बिना तो अवधिज्ञान उपजै नाहीं। तातें यहां बाह्य निमित्त की अपेक्षासे कथन है। तब भव प्रत्ययअवधि का तौ प्रधान कारण भव ही है॥

(१) "प्राप्नोति" के लिये देखो पृष्ठ ४३१ (२) प्रतीत्य और कृत्वा दोनों त्वान्त अव्यय हैं।
(३) सम् + जायते = सञ् + जायते। किसी शब्द अथवा प्रत्यय के अन्त में म् हो, और उसके पश्चात् कोई व्यंजन आवै तो म् प्रायः इच्छानुसार अनुस्वार में परिवर्तित हो जाता है और उसके पश्चात् [illegible] अनुस्वार में पलट जाता है यदि म् के पीछे श्-ष्-स्-ह् अथवा ह् आवे। यदि हम पहिले नियम में अनुस्वार में म् को न पलटें तो म् उस वर्ग के पांचवें अक्षर में परिवर्तित हो जाता है जिस वर्ग का अक्षर उस म् के [illegible] होकर सञ्जायते होगया॥

यथा पतत्त्रिणो गमनमाकाशे भवनिमित्तं न शिक्षागुणविशेषः, तथा देवनारकाणां व्रतनियमाद्यभावेऽपि जायत इति भवप्रत्यय इत्युच्यते। इतरथा हि भवः साधारण इति कृत्वा सर्वेषामविशेषः स्यात् इष्यते च तत्रावधेः प्रकर्षाप्रकर्षवृत्तिः।

यथा* पतत्त्रिणः ६। गमनम् ३।। आकाशे ७। भव-निमित्तम् १।। न* शिक्षागुणविशेषः १। तथा*	= जैसे पक्षी का आकाश में गमन [करने को] भव वा पर्याय = कारण है न कि शिक्षा का गुण विशेष तैसे
देव-नारकाणाम् ६। व्रत-नियमादि-अभावे ७। अपि *	= देव और नारकियों के व्रत नियम आदि के न होने पर भी
जायते T इति * भव-प्रत्ययः १। इति * उच्यते T	= (अवधिज्ञान) उत्पन्न होता है इस प्रकार भव निमित्तक है ऐसे कहा गया है
इतरथा * हि*	= अन्याथा (= इतरथा) तो (= हि) अर्थात् यदि भवप्रत्यय अवधिज्ञान के होनेका कारण देव और नारकियोंका केवल भवही होतो
भवः १। साधारणः १। इति* कृत्वा* सर्वेषाम् ६	= भव (सब देवनारकियों को) समान है ऐसा मानकर समस्त (देवनारकियों) के
अविशेषः १। स्यात् T	= (भव प्रत्यय अवधिज्ञान) विशेष रहित वा एकसा होना चाहिये
च* तत्र * अवधेः ६ प्रकर्ष-अप्रकर्ष-वृत्तिः १।।	= और वहां (देवनारकियोंमें) अवधि कीप्रवृत्ति वा स्थिति (= वृत्तिः) हीनाधिक
इष्यते T	= मानी गई है अंगीकार कीगई है वहां क्षयोपशम का विशेष है।

यहां सार यह है कि सर्व प्रकार के अवधिज्ञानों में अवधिज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम तो अन्तरङ्गकारण जीवके अवश्य ही है विना इस अंतरङ्ग कारण के अवधिज्ञान कभी किसी भी जीव के नहीं होसकता है. देवनारकियोंमें भी अवधिज्ञान घाटि वाढि है सो हीनाधिक क्षयोपशमके हेतुसे है परन्तु क्षयोपशमका अस्तित्व सबके है।

(१) आकाश शब्द पुल्लिंग और नपुंसकलिंग दोनों है (२) जन् (= उत्पन्नहोना) दिवादि चतुर्थगण का आत्मनेपदी अकर्मक धातु है। प्रयोग अथवा व्यवहार में जन् का जा आदेश होजाता है। य चतुर्थगण का विकरण है। ते अन्यपुरुष (= प्रथमपुरुष) एक वचन वर्तमान कालका आत्मनेपद प्रत्ययहै ॥ अतः जन् + य + ते = जा + य + ते = जायते, उत्पन्न होता है ॥

देवनारकाणामित्यविशेषाभिधानेऽपि सम्यग्दृष्टीनामेव ग्रहणंकुतः ? अवधि ग्रहणात् मिथ्यादृष्टीनां च विभंग इत्युच्यते ॥ प्रकर्षाप्रकर्षवृत्तिश्च आगमतो विज्ञेया

देवनारकाणाम् ।। इति ॐ	=(भव प्रत्यय अवधिज्ञान का होना) " देवनारकाणाम् " ऐसा (इस सूत्र में)
अविशेष-अभिधाने ।। अपि ॐ	= विशेष रहित वा भेद रहित (= अविशेष) कहने पर भी (= अभिधाने अपि)
[सम्यग्दृष्टीनाम ।। एव ॐ ग्रहणम् ।।। कुतः ? *	= केवल (= एव)सम्यग्दर्शनधारकनि(देव नारकियों) का ग्रहण कैसे(कुतः) हुआ ? प्रश्न का तात्पर्य यह है कि अवधिज्ञान सदैव सम्यग्दृष्टियों के होताहै और चौथे गुणस्थान से बारह गुणस्थान तक इसका अस्तित्व है आपने 'देवनारकियों के' अभेदरूप से सूत्र में भवप्रत्ययअवधिज्ञान का होना कैसे कह दिया क्योंकि सब देवनारकी सम्योग्दृष्टी नहीं हैं इस सूत्र से अवधिज्ञानका होना केवल सम्याग्दृष्टी देवनारकियों के कैसे निकलता है सो कहिये
अवधि-ग्रहणात् ।।।	=(उत्तर) (सूत्र में) अवधि(शब्द)के लाने से (स्पष्ट है कि सम्याग्दृष्टी देवनारकियोंसे प्रयोजन है)
च ॐ मिथ्यादृष्टीनाम् ।। विभङ्गः ।।	= और(= च) मिथ्यादृष्टी (देव-नारकी-मनुष्य-तिर्यंच) निकेविभंग अवधिज्ञान है
इति ॐ उच्यते T	= ऐसा(इस अध्याय का इकतीसवां सूत्र) कहा गया है मतिश्रुतावधयो विपर्ययश्च =[मतिश्रुतअवधि- येतीन ज्ञान-विपर्य भी होतेहै अर्थात् मिथ्याज्ञान भीहैं]
च ॐ प्रकर्ष-अप्रकर्ष-वृत्तिः ।।	= और (देव नारकियोंके) हीनाधिक अवधिकी स्थिति (वृत्तिः)वा विद्यमानता (= वृत्तिः)
आगमतः ॐ विज्ञेया ।।	= (अन्य) शास्त्रते जानो वा जाननायोग्य है । [इस पृष्ठ, की पृष्ठ ४३९की टिप्पणी देखो]

(१) द्रव्य क्षेत्र काल भावकी अपेक्षा से जिसके विषय की सीमा हो उसको अवधिज्ञान अथवा सीमाज्ञान कहते हैं । देवके नारक के, और तीर्थंकर के भवों की अपेक्षा से अवधिज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम होकर जो अवधिज्ञान हो उसको भवप्रत्यय अवधि कहते हैं ।

यदि भवप्रत्ययोऽवधिर्देवनारकाणाम् ।

यदि॰ भव-प्रत्ययः[1]। अवधिः[1]। देवनारकाणाम्[3]। =जो भवनिमित्तक अवधिज्ञान देव और नारकियों के होता है तो

भवप्रत्यय अवधिज्ञान देव नारको तथा तीर्थंकरो के होता है और यह (भवप्रत्यय अवधिज्ञान) सपूर्ण अग से उत्पन्न होता है अर्थात् समस्त आत्मप्रदेशा से उत्पन्न होता है। और गुणप्रत्यय वा क्षयोपशम निमित्तक अवधिज्ञान नाभि के ऊपर शख पद्म वज्र स्वस्तिक कलश सांथिया, मछला आदिक शुभ चिन्हों से होता है। उक्त जगह के आत्म प्रदेशों मे होने वाले, अवधिज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से उक्त क्षयोपशम ज्ञान होता है।

भवप्रत्यय अवधिज्ञान नियम से देशावधि ह होता है। (गोम्मट०गाथा ३७०,३७१ ३७३ निरकगति में अवधिके विषय भूत क्षेत्र का प्रमाण यह है कि सातवीं भूमि मे अवधिज्ञान के विषयभूत क्षेत्रका प्रमाण एक कोस है। छठवीं भूमि में डेढ़कोस, पॉचवीं में दो कोस, चोथी में अढाई कोस, तीसरी मे तीन कोस, दूसरी में साढ़े तीन कोस, प्रथम पृथिवी में चार कोस (अवधि के विषय भूत क्षेत्र का प्रमाण) है॥

भवनवासी और व्यन्तरों को अवधि के क्षेत्र का जघन्य प्रमाण पच्चीस योजन और जघन्य काल कुछ हीन एक दिन है। और ज्योतिषी देवों को अवधि का (जघन्य) क्षेत्र इस (पच्चीस योजन) से सख्यात गुणा है और (जघन्य) काल इस (कुछ हीन एक दिन) से बहुत अधिक है

असुरकुमारोंको अवधिका उत्कृष्ट विषयक्षेत्र असंख्यात कोटि योजन है (=असुराणामसखेज्जा कोडीओ=असुराणाम् असख्येयाः कोटयः) गोम्मटसार जीवकांड गाथा ४२७ मुद्रित पृष्ठ ८५०॥ इसी पर जीवतत्व प्रदीपिका टीका "असुराणां उत्कृष्ट विषय क्षेत्र असख्यात कोटि योजन मात्र=असुरों का उत्कृष्ट (अवधिज्ञानका) विषय भूतक्षेत्र असख्यात करोड योजन मात्र है परतु तत्त्वार्थराजवार्तिक के कर्ता के मतानुसार अवधि "उत्कृष्टअधोभागमे तो असुरकुमार निमे असख्यात योजन कोटा कोटि पर्यंत है"(="उत्कृष्टोऽसुराणामसख्याता योजन कोटि कोटयोधः" पन्नालाल जी दूनी अनुवादित राजवार्तिक सूत्र २१ और सस्कृत तत्त्वार्थ राजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ २५॥ शेष नौ प्रकारके भवनवासी देव तथा व्यतर और ज्योतिषी देवोंको अवधिका उत्कृष्ट विषय क्षेत्र 'असख्यात सहस्र योजन है॥ देखो जी०कां गोम्मट०गाथा४२७॥ ज्योतिषियों देवों को अवधि "उर्ध्वभाग मे अपने विमान के उपरि भाग पर्यंत है अर तिर्यग् असख्यात कोटा कोटीयोजन प्रमाण है' पन्नालाल जी दूनी का अनुवाद सूत्र२१ "ज्योतिषां . . ऊर्ध्वम् आत्मीय विमानस्य उपरि पर्यंतः-तिर्यग्-असख्यता योजन कोटी कोटयः")

असुरकुमारों की अवधि के उत्कृष्ट काल का प्रमाण असख्यात वर्ष है और शेष नौ प्रकार के भवनवासी व्यतर ज्योतिषीयों की अवधिके उत्कृष्ट काल का प्रमाण असुरों की अवधि के उत्कृष्ट काल के प्रमाण से नियम से सख्यात में भागमात्र है॥

अथ क्षयोपशमहेतुः केषाम्

अथ ॐ क्षयोपशम-हेतुः। केषाम्।	=अब (अथ—अवधि ज्ञान के उत्पत्ति का) क्षयोपशमनिमित्त किनके हैं

भवनवासी व्यन्तर ज्योतिषी इनको अवधि का क्षेत्र नीचे नीचे न्यून होता है और तिर्यग्रूप से (अर्थात् इधर उधर तिरछे रूप से) अधिक होता है तथा भवनवासी देव अपने अवस्थित (वा नियत) स्थान से सुरगिर के (मेरु के) शिखर पर्यंत अवधि द्वारा देखते हैं

वैमानिक देवों में सौधर्म और ईशान स्वर्ग के देवों के जघन्य अवधिज्ञान ज्योतिषी देवों के उत्कृष्ट है सो है अर्थात् असंख्यात महस्र योजन है। और उत्कृष्ट रत्नप्रभा का वा प्रथम भूमि का अन्त पर्यंत है जो नीचेको सौधर्म ईशान स्वर्ग से डेढ़ राजू है। 'सनत्कुमार और माहेन्द्र स्वर्गों के देवों के अधोभाग में जघन्य अवधिज्ञान तो रत्नप्रभा (प्रथम भूमि) का अन्त तक है और उत्कृष्ट अधोभाग में शर्कराप्रभा (दूसरी पृथिवी) पर्यंत जो सनत्कुमार महेन्द्र स्वर्गों से नीचे को चार राजू है होता है ॥ ब्रह्म ब्रह्मोत्तर लांतव कापिष्ट स्वर्गों के देवों के अधोभाग में जघन्य अवधिज्ञान शर्कराप्रभा (दूसरी पृथिवी) के अन्त लग है। ब्रह्म ब्रह्मोत्तर स्वर्गों से शर्करा प्रभा नीचे को साढे चार राजू है और लांतव कापिष्ट स्वर्गों से शर्करा प्रभा [दूसरी पृथिवी] पांच राजू है ॥ और उक्त चार स्वर्ग निवासियों का उत्कृष्ट अवधिज्ञान अधोभाग में वालुकाप्रभा (तीसरी पृथिवी) के अंत पर्यंत है। ब्रह्म ब्रह्मोत्तर स्वर्गों से वालुका प्रभा अधोभाग में साढ़े पांच राजू है और लांतव कापिष्ट स्वर्गों से अधोभाग में उक्त तीसरी पृथिवी छह राजू है ॥

शुक्र महाशुक्र शतार सहस्रार स्वर्ग निवासी देवों के अधोभाग में जघन्य अवधिज्ञान वालुका प्रभा (तीसरी पृथिवी) के अंत लग है शुक्र महाशुक्र स्वर्गों से वालुका प्रभा साढे छह राजू नीचे को है और शतार सहस्रार स्वर्गों से उक्त तीसरी पृथिवी नीचे को सात राजू है उत्कृष्ट अवधिज्ञान शुक्र महाशुक्र शतार सहस्रार स्वर्गों के देवों के अधोभाग में पंकप्रभा (चौथी पृथिवी) का अंत पर्यंत है ॥ शुक्र महाशुक्र स्वर्गों से नीचे को पंकप्रभा साढे सात राजू है और शतार सहस्रार से उक्त चौथी पृथिवी अधोभाग में आठ राजू है ॥ आनत प्राणत आरण अच्युत स्वर्गों के देवों का जघन्य अवधिज्ञान अधोभाग में पंकप्रभा (चौथी भूमि) के अन्त पर्यंत है आनत प्राणत स्वर्गों से पंकप्रभा (चौथी पृथिवी) नीचे को साढे आठ राजू है और आरण अच्युत स्वर्गों से पंकप्रभा नौ राजू अधोभाग में है। और उत्कृष्ट अवधिज्ञान अधोभाग में आनत प्राणत आरण अच्युत स्वर्गों के देवों का धूमप्रभा (पांचवी पृथिवी) के अन्त तक है आनत प्राणत स्वर्गों से धूमप्रभा साढ़े नौ राजू नीचे को है और आरण अच्युत से धूमप्रभा पृथिवी दश राजू अधोभाग में है ॥

इत्यत आह ॥

इति ॐ अतः * आह T = ऐसा (प्रश्न होने पर) इसलिये (आचार्यअग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

नव ग्रैवेयिक निवासी देवों के अधोभाग मे जघन्य अवधिज्ञान धूम प्रभा (पांचवीं पृथिवी)के अन्त पर्यंत है। जो दश राजू से अधोभाग मे अधिक है और ग्यारह राजू से न्यून है। और इन ही देवों का उत्कृष्ट अवधिज्ञान अधोभाग मे तमप्रभा (छठवीं पृथिवी) के अन्त तक है सो माप मे अधोभाग की ओर ग्यारह राजू है॥ सौधर्मादिदेवा. उपरि स्वस्वस्वर्गविमानध्वजदण्ड शिखर पर्यन्त पश्यति गोम्मटसार पृष्ठ ८५३ =सौधर्मादिवासी (देवों से नवग्रैवेयिक तक) ऊपरि अपने अपने स्वर्गका विमान का ध्वजा दण्डका शिखर पर्यन्त देखे हैं।

"नव अनुदिशविमान अर पांच अनुत्तर विमान के वासी सर्वलोकनाली जो त्रसनाली ताको देखे हैं ... बहुरि नव अनुदिश पच अनुत्तर विमान के वासी देव ऊपरि अपने विमान का शिखर पर्यन्त अर नीचें को बाह्य तनुवात पर्यन्त सर्व त्रसनाली कौ देखे हैं सो अनुदिश विमानवाले तौ कछू एकअधिक तेरह राजू प्रमाण लम्बा अर अनुत्तर विमानवाले चारिसै पचीस धनुष घाटि इकवीस योजन करि हीन चौदह राजू प्रमाण लम्बा अर एक राजू चौडा अवधि का विषय भूत क्षेत्र कौं देखै है" ॥ चौदह राजू क्षेत्र में से इकवीस योजन और चारसौ पचीस धनुष घटाइये जो क्षेत्र शेष रहै सो अनुत्तर विमान वाले लम्बाई मे अर एक राजू चौडाई म अवधि द्वारा देखते हैं ऐसा अर्थ "पंचविंशति उत्तर चतुः शतधनुः ऊनएकविंशति योजनैः न्यून चतुर्दश रज्वायता च रज्जु विस्तारां सर्वलोकनालि पश्यन्ति" इस संस्कृत वाक्य का ज्ञात होता है ॥अनुदिश विमान वाले कुछ अधिक तेरह राजू प्रमाण लम्बा और एक राजू चौडा अवधिज्ञान द्वारा देखते हैं।

उपर्युक्त जो क्षेत्रो का "परिमाण कीया है सो स्थानकका नियमरूप जानना। क्षेत्रका परिमाण लोए नियम रूप न जानना। जातें अच्युत स्वर्ग पर्यंत के वासी विहार करि अन्य क्षेत्र को जांइ अर तहां अवधि होइ तौ पूर्वोक्त स्थानक पर्यन्त ही होइ ऐसा नाही जो प्रथम स्वर्गवाला पहिले नरक जाइ अर तहां सेती डेढ राजू नीचें और जाने। सौधर्म द्विक के प्रथम नरक पर्यंत अवधि क्षेत्र है सो तहां भी तिष्ठता तहां पर्यंत क्षेत्र ही को जानै ऐसे सर्वत्र जानना' ॥ जी० कां० गोम्मट मुद्रित पृ० ८५३, ८५४ ॥

भवनवासी व्यन्तर ज्योतिषी देवो की अवधिका क्षेत्र बराबर घनरूप नही है। कल्पवासी देवों को अवधिका क्षेत्र आयत चतुरस्र (चौकोर) किन्तु लम्बाई मे अधिक और चौडाई मे थोडा) है। शेष मनुष्य तिर्यंच नारकी इनकी अवधि का विषयभूत क्षेत्र बराबर घनरूप है।

सौधर्म - ईशान स्वर्गों के देवों की अवधि का काल असंख्यात कोटि वर्ष है। इसके ऊपर सनत्कुमार माहेन्द्र ब्रह्म ब्रह्मोत्तर कल्पवाले देवो की अवधि का काल यथायोग्य पल्य का असंख्यातवां भाग है। इसके ऊपर लांतव स्वर्ग से लेकर सर्वार्थसिद्धि पर्यंतवाले देवो को अवधिकाकाल कुछ घाटि पल्य प्रमाण है ॥

॥ क्षयोपशमनिमित्तः षड्विकल्पः शेषाणाम् ॥२२॥

क्षयोपशमनिमित्तः षड्विकल्पः शेषाणाम् ॥२२॥

= क्षयोपशमनिमित्तः (अवधिः) षड्विकल्पः शेषाणाम् (जीवानाम् भवति)

सूत्रार्थः—क्षयोपशमनिमित्तः१। = [अवधिज्ञानावरणीय कर्म के] क्षयोपशम निमित्त [से उत्पन्न होने] वाला

अवधिः १। = अवधि जिसके [अनुगामी, अननुगामी, वर्द्धमान, हीयमान, अवस्थित अनवस्थित]

षड्विकल्पः१। शेषाणाम्६। जीवानाम्६। भवति = छह भेद हैं सो शेष जीव [जे पर्याप्त सैनी सम्यग्दृष्टी मनुष्य तिर्यंच] तिनकें होता है सम्यग्दर्शनादि गुणोंसे क्षयोपशम होता है इससे इसको गुणप्रत्यय अवधिभी कहते हैं॥

(१) श्वेताम्बर आम्नाय में इस सूत्र की संख्या तेईसवी है "यथोक्त निमित्तः षड्विकल्पः शेषाणाम् ॥२३॥ ऐसा पाठ है सभाष्यतत्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ २२ में "यथोक्त निमित्तः क्षयोपशमनिमित्तः इत्यर्थ" अतः दोनों आम्नायों में इस सूत्र का अर्थ एकसा होजाता है ॥

(२) शेषाणाम्.—निम्नलिखित ग्यारह सूत्रों के पाठ इस अध्याय में इस प्रकार हैं कि तत्त्वार्थ श्रद्धान सम्यग्दर्शनम्—तत्त्वार्थ श्रद्धान सम्यग्दर्शनं ॥२॥ जीवाजीवास्रवबन्धसंवर निर्जरा मोक्षास्तत्वम् ॥ सूत्र ४॥ जीवाजीवा स्रवबन्धसंवर निर्जरामोक्षास्तत्व ॥सूत्र ४॥ मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानि ज्ञानम् ॥ सूत्र ९॥ मतिश्रुतावधि मनः पर्यय केवलानि ज्ञानम् ॥ सूत्र ९॥ आद्ये परोक्षम् ॥ ११॥ आद्ये परोक्ष ॥ ११॥ मतिः स्मृतिः संज्ञा चिन्ताभिनिबोधः इत्यनर्थान्तरम् ॥ १३॥ मतिः स्मृतिः संज्ञा चिन्ताभिनिबोधइत्यनर्थान्तर अध्याय १ सूत्र १३॥ तदिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तम् ॥ १४॥ तदिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्त ॥ अध्याय १ सूत्र १४॥ बहुबहुविधक्षिप्रानिःसृतानुक्तध्रुवाणां सेतराणाम् ॥ सूत्र १६॥ बहुबहुविधक्षिप्रानिःसृतानुक्तध्रुवाणांसेतराणाम् ॥ १६॥ न चक्षुरनिन्द्रियाभ्याम् ॥ १९॥ न चक्षुरनिन्द्रियाभ्यां ॥ १९॥ श्रुतमतिपूर्वं द्व्यनेकद्वादशभेदम् ॥ २०॥ श्रुतमतिपूर्वं द्व्यनेकद्वादश भेद ॥ भवप्रत्ययोऽवधिर्देवनारकाणाम् ॥ सूत्र २१॥ भवप्रत्ययोऽवधिर्देवनारकाणां ॥ अध्याय १ सूत्र २१॥ क्षयोपशम निमित्तः षड्विकल्पः शेषाणाम् ॥ सूत्र २२। क्षयोपशम निमित्त षड्विकल्प शेषाणाम् ॥ सूत्र २२॥

इन प्रत्येक सूत्र के प्रथम पाठ के अन्त में 'म्' है और प्रत्येक सूत्र के द्वितीय पाठ में अनुस्वार है ॥ 'म्' के स्थान में जो म् पद के अंतका हो अनुस्वार हो जाता है यदि उसके पीछे कोई व्यंजन आवे किसी भी पाठ के पश्चात् कोई व्यंजन नहीं आया इसलिये म्' के स्थान में अनुस्वार नहीं हो सकता है - अर्थात्

एटानिवासी जगरूपसहाय वकीलकृत पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित सर्वार्थसिद्धि का शब्दशः हिंदी, अनुवाद। अध्याय १ सूत्र २१

अवधिज्ञानावरणस्य देशघातिस्पर्द्धकानामुदये सति सर्वघातिस्पर्द्धकानमुदयाभावः क्षयः। तेषामेवानुदयप्राप्तानां सदवस्था उपशमः। तौ निमित्तमस्येति क्षायोपशमनिमित्तः। सः शेषाणां वेदितव्यः॥ के पुनः शेषाः?। मनुष्यास्तिर्यञ्चश्च। तेष्वपि यत्र सामर्थ्यमस्ति तत्रैव वेदितव्यः। नह्यसंज्ञिनामपर्याप्तकानां च तत्सामर्थ्यमस्ति॥ संज्ञिनां पर्याप्तकानां च न सर्वेषाम्॥ केषांतर्हि

अवधिज्ञान–आवरणस्य ६।॥देशघाति–स्पर्द्धकानाम् ६।३।	=अवधिज्ञानावरणीय कर्म्मके देश घाति स्पर्द्धकोंके (स्पर्द्धक पुलिंगन पुंसक दोनों है)
उदये ७।। सति ७। सर्वघातिस्पर्द्धकानाम् ६।३। उदय—	=उदयहोने पर (=सति) और सर्वघाति स्पर्द्धकों के उदय में (आकर फल न दें)
अभावः १। क्षयः १। तेषाम् ६।३। एव *	=अभाव रूप (सो)क्षय है (और) तिन (सर्वघाति स्पर्द्धकों) के ही जो आगे उदयमें आवेंगे वर्तमान में
अनु–उदयप्राप्तानाम् ६।३। सत्–अवस्था १।। उपशमः १।	=उदय रहित प्राप्त जो सत्ता रूप अवस्था सो उपशम है
तौ १।२ निमित्तम् १।॥ अस्य ६।१। इति * क्षयोपशमनिमित्तः १।	ते दोनों (उपर्युक्त क्षय और उपशम) हैं कारण जिसके ऐसा क्षयोपशमहेतु है
सः १। शेषाणाम् ६।३। वेदितव्यः १।के १। पुनर् शेषाः १।३। ?	=वह [क्षयोपशम निमित्त] शेष [जीव] तिनिकें जानौं। पुनि कौनअवशेष हैं ?
मनुष्याः १।३। तिर्यञ्च १।३। च *	=[उत्तर] मनुष्यऔरतिर्यंच हैं अर्थात् देव और नारकी पूर्व इक्कीसवें सूत्र में कहे अतः मनुष्य और तिर्यंच शेष रह गये सो इस सूत्र में कह दिये
तेषु ७।३। अपि * यत्र * सामर्थ्यम् १।॥ अस्ति T तत्र *	=तिन [मनुष्य और तिर्यंचों] में भी जहां योग्यता [=सामर्थ्य] है तहां
एव वेदितव्यः १।। नहि * अस्ति असंज्ञिनाम् ६।३। च *	=ही जानना योग्यहै॥ नहीं हैं असंज्ञियों के और [=च]
अपर्याप्तकानाम् ६।३। तत्सामर्थ्यम् १।॥	=अपर्याप्तकों के उस क्षयोपशम निमित्तक अवधिज्ञान होने की योग्यता
संज्ञिनाम् ६। पर्याप्तकानाम् ६।३। च * न * सर्वेषाम् ६।३।	=सैना पार्यप्तकों कें भी [=च] सर्वकें [अवधिज्ञान] नहीं होता है॥ [प्रश्न]
केषाम् ६।३। तर्हि *	=तौ [=तर्हि] किन [मनुष्य और तिर्यंचों] कें (अवधिज्ञान) होता है ?

प्रत्येक सूत्र का द्वितीय पाठ जिनमे अनुस्वार म् के स्थान मे पाया गया है जैनेन्द्र व्याकरण, जैनेन्द्रप्रक्रिया, शब्दार्णव चन्द्रिका, पाणिनि मुनि कृत अष्टाध्यायी, शाकटायन व्याकरण के अनुसार अशुद्ध है परन्तु कातन्त्र रूप माला के "विरामे वा" (=वामकारस्य पदान्तस्य अनुस्वार भवति विरामे) म् जो पदान्त हो उसको विकल्प करि (हमारी इच्छानुसार) अनुस्वार होजाता है यदि म् केपश्चात् मे विराम हो जो म् के पीछे कोई व्यञ्जन न आवे तौ भी इस बानवे सूत्र के अनुकूल शुद्ध हैं (अवश्य देखो टिप्पणी पृष्ठ ५, ६, ५४०, ५४१॥) सर्वार्थसिद्धि-श्लोक वार्तिक मुद्रित-इत्यादि मे म् है परन्तु राजवार्तिक मुद्रित में और किसी किसी अन्य पुस्तक के पाठ मे अनुस्वार भी है॥

यथोक्तसम्यग्दर्शनादिनिमित्तसान्निधाने सति शान्तक्षीणकर्मणां तस्योपलब्धिर्भवति। सर्वस्य क्षायोपशमनिमित्तत्वे क्षायोपशमग्रहणं नियमार्थं क्षायोपशम एव निमित्तं न भव इति ॥

यथोक्त सम्यग्दर्शनादि-निमित्त सन्निधाने ।।।	=जैसाकि ऊपर कहा गया है(=यथा उक्त)कि सम्यग्दर्शनादिक कारणों के निकट
सति।।। शान्तक्षीणकर्मणाम् ।।	=होने पर (=सति) कर्मों का उपशम(=शान्त) और अभाव(=क्षीण=क्षय) होनेवालेकेंअर्थात् अवधिज्ञाना वरणीय कर्मका क्षयोपशम हुआहै जिसकें उस(जीव)के
तस्य ।।। उपलब्धिः ।।भवति ।	=तिस (गुण प्रत्यय। अवधिज्ञान) की प्राप्ति होती है
	(जब सर्व प्रकार के अवधिज्ञान के उत्पन्न होने का हेतु किसी भी जीव के कोई भी अवधिज्ञान हो (अवधिज्ञानावरणीय कर्म का) क्षयोपशम निमित्त है तो इस सूत्र में 'क्षयोपशम निमित्तः'' वाक्य का व्यर्थ क्यों प्रयोग किया ?)
सर्वस्य।।क्षयोपशम-निमित्तत्वे ।।।	=(उत्तर) सब (जीवों) के अवधिज्ञानावरणीय कर्मका क्षयोपशमकारण होनेपर
क्षयोपशम-ग्रहण-।।। नियम-अर्थम्।।।	(अवधिज्ञान होता है तो भी सूत्र में) 'क्षयोपशम' का प्रयोग मर्यादाके लिये है
क्षयोपशमः ।। एव॥निमित्तम् ।।। न॥भवः।। इति॥	=(क्योंकि) क्षयोपशम ही (मनुष्य तिर्यचों के अवधि ज्ञान होने का) कारण होता है न कि भव

१) तीर्थंकराणां भवप्रत्ययोऽपि अवधिर्भवति = तीर्थंकरों के (तीर्थंकराणां।।) भव प्रत्यय भी (= भवप्रत्यय. ।। अपि) अवधि होती है।

(२) नारक देव तीर्थंकरों के भवों की अपेक्षा अवधिज्ञानावरणीय कर्मका क्षयोपशम होकर जो अवधि हो उसको भवप्रत्यय अवधि कहते हैं गुण जो सम्यग्दर्शनादि कारणों की अपेक्षा से अवधिज्ञानावरणीय कर्मका क्षयोपशम होकर अवधिज्ञान होना है उसको गुण प्रत्यय अवधिज्ञान अथवा क्षयोपशम निमित्त अवधिज्ञान कहते हैं॥ "भव प्रत्यय अवधिज्ञान में भी सम्यग्दर्शनादि गुणों का सद्भाव है तथापि उन गुणों की अपेक्षा न करते हुये भव प्रत्यय कहा"। भव प्रत्यय अवधिज्ञान देव नारकी और तीर्थंकर की पर्याय पाते ही उत्पन्न होता है और उक्त भवों के साथ ही साथ अवधिज्ञानावरणीय कर्मका क्षयोपशम भी हो ही जाता है अर्थात् जैसे दीपक की ज्योति, प्रकाश और अंधकार का नाश एक साथ ही होते हैं तैसे ही देव नारकी वा तीर्थंकर का भव, भव प्रत्यय अवधि, अवधिज्ञानावरणीय

स एषोऽवधिः षड्विकल्पः । कुतः ? अनुगाम्यननुगामिवर्द्धमानहीयमानावस्थितानवस्थितभेदात् ॥ कश्चिद्वधिर्भास्करप्रकाशवद्गच्छन्तमनुगच्छति ॥ कश्चिन्नानुगच्छति तत्रैवातिपतति उन्मुग्धप्रश्नादेशिपुरुषवचनवत् ॥

सः¹ । एषः¹ । अवधिः¹ ।	= सो यह (क्षयोपशमनिमित्तक, वा गुणनिमित्तक, गुणप्रत्ययक, गुणहेतुक) अवधिज्ञान
षड्विकल्पः¹ । कुतः ?* अनुगामिभेदात्¹ ।	= छह भेदरूप (छह भेदवाला) है। (प्रश्न) कैसे? (उत्तर) अनुगामि (आनुगामिक) भेदसे
अननुगामिभेदात्¹। वर्द्धमानभेदात्¹। हीयमानभेदात्¹।	= अननुगामि (अनानुगामिक) भेद से वर्द्धमान भेद से हीयमान भेद से
अवस्थितभेदात्¹ । अनवस्थितभेदात्¹ ।	= अवस्थित भेद से अनवस्थित भेद से (क्षयोपशमप्रत्यय-अवधिज्ञान) है
कश्चित्* अवधिः¹। भास्करप्रकाशवत्* गच्छन्तम्¹।	= जो कोई अवधिज्ञान सूर्यके उजाले सदृश गमन करनेवाले (जीव) को (गच्छन्तम्)
अनुगच्छति ¹'	= नहीं छोड़ता है अर्थात् जीवके साथ२ जाता है। (सो ¹अनुगामि वा अनुगामिक है)
कश्चित्* न* अनुगच्छति ¹' तत्र* एव*	= जो कोई (अवधि गमन करने वाले जीव को) छोड़ देता है (न-अनुगच्छति) तहांही
उन्मुग्धप्रश्न-आदेशिपुरुषवचनवत्* अतिपतति ¹'	= मूर्ख प्रश्न करनेवाले मनुष्य के वचन सदृश गिर जाता है (= रह जाता है)

कर्मका क्षयोपशम ये तीनो साथ साथही तत्क्षण ही उत्पन्न होते हैं ॥ और गुण प्रत्यय अवधि ज्ञानमें भी मनुष्य तिर्यंच भवोंका सद्भाव वा अस्तित्व है तथापि उन पर्यायों की अपेक्षा नहीं करने से गुण प्रत्यय कहा है ॥ 'जीव० गाम्मट ग्रुति पृष्ठ ७९८, ७९९ ॥

भवप्रत्यय अवधिज्ञान सम्पूर्ण अङ्ग से उत्पन्न होता है (= सम्पूर्ण आत्मप्रदेशों से होता है) ॥ नाभि के ऊपर शंख पद्म वज्र स्वस्तिककलश मत्स्य मछली आदि जो शुभ चिह्न होते हैं उन स्थानके आत्म प्रदेशोंमें होनेवाले अवधि ज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशम से गुणप्रत्यय अवधिज्ञान होता है

(१) अनुगामी अवधिज्ञान के तीन क्षेत्रानुगामी, भवानुगामी उभयानुगामी भेद हैं। जो दूसरे क्षेत्रमें अपने स्वामी के साथ जावे सो क्षेत्रानुगामी है। दूसरे भव में अपने स्वामी के साथ जाय सो भवानुगामी अवधिज्ञान है। जो दूसरे क्षेत्र और भव दोनों में अपने स्वामी के साथ जाय सो उभयानुगामी अवधिज्ञान है।

अननुगामी अवधिज्ञानके भी तीन क्षेत्राननुगामी, भवाननुगामी, उभयाननुगामी भेद हैं। जो अपने स्वामीके साथ दूसरे क्षेत्र में न जावे सो क्षेत्राननुगामी अवधिज्ञान है। जो अपने स्वामी के साथ दूसरे भवमें न जाय सो भवाननुगामी अवधिज्ञान है। जो दूसरे भव और क्षेत्र दोनों में साथ न जाय सो उभयाननुगामी अवधिज्ञान है ॥

अपरोऽवधिः अरणिनिमर्थनोत्पन्नशुष्कपत्रोपचीयमानेन्धननिचयसमिद्धपावकवत्सम्यग्दर्शनादिगुणविशुद्धिपरिणामसन्निधानाद्यत्परिमाण उत्पन्नस्ततो वर्द्धते असंख्येयलोकेभ्यः ॥ अपरोऽवधिः अन्तरितपरिच्छिन्नोपादानसन्तत्यग्निशिखावत्सम्यग्दर्शनादिगुणहानिसंक्लेशपरिणामविवृद्धियोगाद्यत्परिमाण उत्पन्नस्ततो हीयते । आ अंगुलस्यासंख्येयभागात् ॥ इतरोऽवधिः सम्यग्दर्शनादिगुणावस्थानाद्यत्परिमाण उत्पन्नस्तत्परिमाण एवावतिष्ठते न हीयते नापि वर्द्धते लिंगवत् । आ भवक्षयादा केवलज्ञानोत्पत्तेर्वा ॥

अपरः १। अवधिः १। अरणि-निर्मथन-उत्पन्न- = अन्य अवधि (अर्थात् वर्द्धमान अवधिज्ञान) वो है जो अरणि के मथन से उपजी
शुष्क पत्र-उपचीयमान-इन्धन निचय- समिद्ध- = तथा सूखे पत्तों के संचय हुये ईंधन के समूह पर (फेंकी हुई) वर्द्धमान = (समिद्ध)
पावकवत् ® सम्यग्दर्शन-आदिगुणविशुद्धपरिणाम- = अग्नि के सदृश सम्यग्दर्शनादि गुणों से निर्मल परिमाणों की
सन्निधानात् ५।। यत्परिमाणः १। उत्पन्नः १। ततः® = सामीपता से जो परिमाण व माप प्रमाण उत्पन्न हुआ था तिससे
वर्द्धते आ® असंख्यातलोकेभ्यः ५। = असंख्यात लोक पर्यंत (=आ) बढ़ता जाय है
अपरः १। अवधिः १। अन्तरित- = दूसरा अवधि (अर्थात् हीयमान अवधिज्ञान) वह है जो तिरस्कृत (=अन्तरित) और
परिच्छिन्न-उपादान-सन्तति- = परिमित (परिच्छिन्न) उपादान कारण वाले) (= उपादान सन्तति) अर्थात् इन्धनवाले
अग्निशिखावत्® सम्यग्दर्शनादि-गुणहानि-संक्लेश- = अग्नि शिखा के समान सम्यग्दर्शनादि गुणों की हानि रूप संक्लेश
परिणाम- विवृद्धि-योगात् ५। यत्परिमाणः १। उत्पन्नः १। = परिणामों के बहुत बढ़े योग से जो परिमाण उत्पन्न हुआ था
ततः® आ® अंगुलस्य ६। असंख्येयभागात् ५। हीयते। = तिस (परिमाण) से अंगुल के असंख्यातवां अंश तक (=आ) घटता जाय है
इतरः १। अवधिः १। सम्यग्दर्शन-आदि-गुण— = दूसरा अवधि (अर्थात् अवस्थित अवधिज्ञान) वह है जो सम्यग्दर्शनादि गुणों की
अवस्थानात् ५।।। यत्-परिमाणः १। उत्पन्नः १। = स्थिति से जो परिमाण (प्रमाण) उत्पन्न हुआ था
तत्-परिमाणः १। एव® अवतिष्ठते लिङ्गवत् ® न® हीयते। = वह परिमाण ही स्थिर रहता है (शरीर के तिल मस्सा आदि) चिह्न के सदृश न घटता है
न® अपि वर्द्धते। आ® भवक्षयात् ५ वा आ केवलज्ञान उत्पत्तेः ५।। = बढ़ताभी पर्यायकेक्षय वा भवकेक्षय (तक) वा केवल ज्ञान की प्राप्ति पर्यंत नहीं है

(१) अरणिः—काष्ठ रचित पात्र विशेष। यसमें आग निकालने को अथवा अग्नि को बढ़ाने को दो लकड़ी (यह महर्षि से आग निकालते थे)

अन्योऽवधिः सम्यग्दर्शनादिगुणहानिवृद्धियोगाद्यत्परिमाण उत्पन्नस्ततो वर्द्धते यावदनेन वर्धितव्यं, हीयते च यावदनेन हातव्यं वायुवेगप्रेरितजलोर्मिवत् ॥ एवं षड्विकल्पोऽवधिर्भवति ॥

एवं व्याख्यातमवधिज्ञानं तदनन्तरमिदानीं मनःपर्ययज्ञानं वक्तव्यं, तस्य भेदपुरःसरं लक्षणं व्याचिख्यासुरित्याह—

अन्यः १। अवधिः १। सम्यग्दर्शन-आदि—	= इतर अवधि अर्थात् अनवस्थित अवधिज्ञान वह है जो सम्यग्दर्शनादि
गुण-हानि-वृद्धि-योगात् ५। यत्-परिमाणः १। उत्पन्नः १।	= गुणों के घटने बढ़ने के संयोगसे जो परिमाण उत्पन्न हुआ था
ततः ५ वर्द्धते T यावत् ७ अनेन ३। वर्धितव्यम् १॥	= तिससे जहां तक (= यावत्) इसे बढ़ना चाहिये बढ़ता है
च * हीयते T यावत् * अनेन ३। हातव्यम् १॥	= और (= च) जहां तक इसे घटना चाहिये घटता है
वायुवेगप्रेरित जल-उर्मिवत् *	= जैसे पवन बल से प्रेरा हुआ जलकी लहर (घटती भी है और बढ़ती भी है)
एवम् १ षड्[1]विकल्पः १। अवधिः १। भवति T एवम् *	= इस प्रकार [1]छह भेद रूप अवधिज्ञान होता है। इस प्रकार
अवधिज्ञानम् १॥ व्याख्यातम् १॥ तद्-अनन्तरम् १॥	= अवधिज्ञान वर्णन किया गया है। उस 'अवधिज्ञान) के लगता ही
इदानीम् * मनः पर्यय ज्ञानम् १॥ वक्तव्यम् १॥ तस्य	= अब मनः पर्यय ज्ञान कहना योग्य है ॥ उस (मनः पर्यय ज्ञान) के
भेदपुरः सरं ३॥	= भेदों को (उसके लक्षणके कथनकी अपेक्षा) अग्रसर वा अग्रगामी कर (= पुरःसरं)
लक्षणं ३॥ व्याचिख्यासुः १। इति * आह T	= (और पीछे उसके) लक्षण को (भी) कहने का इच्छक (आचार्य) ऐसे कहता है अर्थात् मनः पर्ययज्ञानके भेद पूर्वक लक्षण को कहने के इच्छक (आचार्य) ऐसे कहते हैं भावार्थ मनःपर्यय ज्ञानके भेद" प्रथम (= अग्रसर) और पीछे उसके लक्षण को कहने के इच्छक (आचार्य) ऋजुमति और विपुलमति भेद तेईसवां सूत्र में और इन उक्त भेदों के लक्षण चौवीसवां सूत्र में ऐसे कहते हैं कि

(१) षड्विकल्पः—"आगम विषै सप्रति पात अप्रतिपात तथा देशावधि परमावधि सर्वावधि ए सर्वानुगामी आदि छह भेद कहे तिन ॥ अन्तर्भूत जानने" जयचदजी स० वचनिका मुद्रित पृष्ठ १७४ १७५ ॥ उक्त पण्डितजीने श्लोक वार्तिककी साक्षी दई है जिसके पृष्ठ२४५में लेख है कि

"अनुगाम्यननुगामी वर्द्धमानो हीयमानोऽवस्थितो	= अनुगामी अननुगामी वर्द्धमान हीयमान अवस्थित
ऽनवस्थित इति षड्विकल्पोऽवधिः सप्रतिपाता-	= अनवस्थित इस प्रकार छह भेदरूप अवधि (ज्ञान) है (क्योंकि) सप्रतिपात
प्रतिपातयोरत्रैवान्तर्भावात् ।	= और अप्रतिपात दोनों का यहाँ (या इस स्थानमें, अन्तर्भाव या समावेश है
देशावधिः परमावधिः सर्वावधिरिति च परमागम	= और (= च) क्योंकि देशावधि परमावधि सर्वावधि ऐसे शास्त्र में
प्रसिद्धानां पूर्वोक्तयुक्त्या सम्भावितानां मत्रोपसंग्रहात्"	= प्रसिद्ध वा सम्भावित (= प्रसिद्ध भये) (ज्ञान) पूर्वोक्त तर्कद्वारा यहाँ (इन्हीं छह ज्ञानों में) संग्रह हैं

परन्तु तत्त्वार्थ राजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ ५६ और गोम्मटसार जीवकांड गाथा ३७२ निम्नलिखित से प्रगट है कि

पुनरपरेऽवधेस्त्रयोभेदादेशावधिःपरमावधिःसर्वावधिश्चेति	= और अन्य अवधि के तीन भेद देशावधि परमावधि और सर्वावधि ऐसे हैं
गुणपच्चगो छद्धा अणुगावट्ठिदपवड्ढमाणिदरा । अणुगावस्थितप्रवर्धमानेतरे ॥	= गुणप्रत्यय (= क्षयोपशमनिमित्तक) अवधिज्ञान छह (भेदरूप) है अनुगामी अवस्थित प्रवर्द्धमान इतरथा (= इतर) अननुगामी अनवस्थित, हीयमान हैं
देसोही परमोही सव्वोहित्ति य तिधा ओही । देशावधिः परमावधिः सर्वावधिः इति च त्रिधा अवधिः	= देशावधि परमावधि सर्वावधि ऐसे भी (= य) तीन प्रकार अवधि है

इसके विषय को परिमित होने से इस ज्ञान को अवधिज्ञान अथवा सीमाज्ञान कहते हैं। यद्यपि दूसरे मतिज्ञानादिक के विषय की भी सामान्य से सीमा है, इसलिये दूसरे ज्ञानों को भी अवधिज्ञान कहना चाहिये, तथापि समभिरूढनयकी अपेक्षा से (अर्थात् वह नय जो नाना अर्थों को उल्लंघन करि के एक ही अर्थ में रूढ (= प्रसिद्ध) हो उसको जानै या कहै) ज्ञानविशेष को ही अवधिज्ञान कहते हैं।

भवप्रत्यय अवधि नियम से देशावधि ही होता है। और दर्शन विशुद्धि आदि गुणों के निमित्त से होनेवाला गुणप्रत्यय अवधिज्ञान देशावधि परमावधि सर्वावधि (ऐसे) तीनों प्रकार का होता है॥

देशावधि और परमावधि अवधिज्ञान के जघन्य मध्यम उत्कृष्ट तीन तीन भेद होते हैं। सर्वावधि अवधिज्ञान निर्विकल्पता से एक रूप ही है। सर्वावधि में जघन्य उत्कृष्ट आदि भेद नहीं है। सर्वावधि ज्ञान यह निर्विकल्प (= भेदरहित) है॥

जघन्य देशावधि जो है सो उत्सेधांगुल का असंख्यातवां भाग मात्र क्षेत्र पर्यन्त है और उत्कृष्ट देशावधि सर्वलोक पर्यन्त है और इन दोनों क्षेत्रों के मध्य मे प्रवर्तनेवाला अनेक विकल्परूप मध्यम देशावधि है ॥

जघन्य परमावधि एक प्रदेश अधिक लोकक्षेत्र प्रमाण है और उत्कृष्ट असंख्यात लोकक्षेत्र प्रमाण है और मध्यम का मध्यम क्षेत्र है न जघन्य है न उत्कृष्ट है ॥ सर्वावधि उत्कृष्ट परमावधि के क्षेत्र से बाह्य असंख्यात क्षेत्र प्रमाण है ॥

जैसा कि ऊपर कह चुके हैं कि प्रतिपाती और अप्रतिपाती दोनों अनुगामी, अननुगामी वर्द्धमान, हीयमान, अवस्थित अनवस्थित इन छहोंमे अन्तर्भूत है देशावधि इन आठ रूप होता है । परमावधि अनुगामी, अननुगामी, वर्धमान, अवस्थित अनवस्थित और अप्रतिपाती छह भेदरूप होता है । सर्वावधि अनुगामी, वर्धमान, अवस्थित और अप्रतिपाती होता है ॥ बिजली के प्रकाश के समान विनाशीक प्रतिपाती है और इससे विपरीत अविनाशी अप्रतिपाती है ।

जघन्य देशावधि ज्ञान संयत तथा असंयत मनुष्य तिर्यंचों में ही होता है देव नारकियों मे नही होता है । उत्कृष्ट देशावधि ज्ञान संयमी महाव्रती मनुष्यो में ही होता है क्योंकि अवशेष तीनि गतियों मे महाव्रत का होना सम्भव नहीं है। परमावधि और सर्वावधि चर्मशरीरी (उसी भव से मोक्षगामी) महाव्रती के ही होता है "अन्य तीर्थंकरादिक गृहस्थ मनुष्य तिर्यंच देव नारकीनि के नहीं होई ॥ इनिकै देशावधि ही की योग्यता है" अर्थ प्रकाशिका पृष्ठ ६७ देखो। परमावधि और सर्वावधि वाले जीव नियम से मिथ्यात्व और अव्रत अवस्था को प्राप्त नही होते । सम्यक्त्व और चारित्र से च्युत होकर मिथ्यात्व असंयमको प्राप्ति को प्रतिपात कहते हैं। यह प्रतिपात देशावधि वालेका ही होता है, परमावधि सर्वावधि वाले का नही होता है ॥

अवधिज्ञान के जघन्य भेद से लेकर उत्कृष्ट भेद पर्यंत असंख्यात लोक प्रमाण भेद हैं सो सर्व द्रव्य क्षेत्रकाल भाव की अपेक्षा से रूपी (पुद्गल) द्रव्य को ही तथा उस (पुद्गल) के संबध से संसारी जीव द्रव्य को भी प्रत्यक्ष जानते हैं। बहुरि सर्वावधि ज्ञान है सो जघन्य मध्यम उत्कृष्ट भेद रहित अवस्थित सर्वोत्कृष्टता को प्राप्त है जातैं अवधिज्ञानावरण का उत्कृष्ट क्षयोपशम तहां ही संभवै है तातैं देशावधि परमावधि के जघन्य मध्यम उत्कृष्ट भेद संभवै हैं ॥

ऋजुविपुलमती मनःपर्ययः ॥ २३ ॥

सूत्रम्—ऋजुविपुलमती मनःपर्ययः ॥ २३ ॥

= ऋजुविपुलमती मनः पर्ययः (द्विविकल्पः सन्तः) ॥ विकल्प शब्द की अनुवृत्ति २२वां सूत्रसे ली है
'ऋजुविपुलमती' । मनः पर्ययः । द्विविकल्पः । सन्त. ।' = मनः पर्यय ज्ञान ऋजुमति और विपुलमति दो भेद रूप है अर्थात्

मन वचन कायकी सरलता रूप पर के मन में तिष्ठे हुये रूपी पदार्थों को जाने वह ऋजुमति मनः पर्ययज्ञान है और जो मन वचन कायकी सरलता रूप और मन वचन कायकी वक्रता रूप वा कुटिलता रूप पर के मन में अवस्थित रूपी पदार्थों को जाने सो विपुलमति मनः पर्यय ज्ञान है ॥

(१) दिगम्बर आम्नायमें कहीं कहीं "मनः पर्यय" पाठ है। और कहीं कहीं "मनःपर्य्यय" पाठ है। "अचोरहाभ्यांद्वे '(= अच. रहाभ्यांद्वे)' [illegible] सूत्र से दोनों ही पाठ ठीक हैं' (देखो टिप्पणी पृष्ठ ३२१ पे) ॥ मनः पर्यय ही लिखना चाहिये क्योंकि यह सूत्र है और सूत्र [illegible] है कि "अल्पाक्षरमसन्दिग्धं सारवद्विश्वतो मुखम् अस्तोभमनवद्यं च सूत्रं सूत्रविदो विदुः" [illegible] सुत्रम् = थोड़े अक्षर हों जिनका अर्थ सन्देह रहित हो सार वा सत गर्भित हो सर्वतः श्रेष्ठ हो [illegible] विदुः ।' सूत्रम् = निरर्थक शब्द (= स्तोभ) से रहित (= अ) और दूषण वर्जित हो सूत्रज्ञाता उसको सूत्र समझते हैं [illegible] में मनः पर्यय के स्थान में "मनःपर्याय" है और पाठ एक है। अर्थ भी एक है, हमारा समझ में लघु पाठ ही लेना [illegible] इस सूत्र की संख्या [illegible] में २४ है क्योंकि [illegible] सूत्र बढ़ गया है

(२) [illegible] काल में चिन्तन किया हो अथवा जिसका अनागत (भविष्यत्) काल में चिन्तन किया जायगा अथवा [illegible] इत्यादि अनेक भेद लिये दूसरे के मनमें स्थित पदार्थ जिसके द्वारा जाना जाय उस ज्ञानको मनः पर्यय [illegible] "[illegible] मनः तत् पर्येति गच्छति जानातीति मनः पर्ययः" पर के मन में तिष्ठता जो पदार्थ सो मनः कहिये [illegible] (पदार्थ) को ग्रहण करता है (= पर्येति, जिसमें प्रवेश होता है (= गच्छति) जिसको जानता है (= जानाति) ऐसा मन पर्यय है। जो०[illegible] ४३८

ऋज्वी निर्वर्तिता प्रगुणा च। कस्मान्निर्वर्तिता? वाक्कायमनस्कृतार्थस्य परमनोगतस्य विज्ञानात्। ऋज्वी मतिर्यस्य सोऽयं ऋजुमतिः ॥

वृत्त्यनुवादः- निर्वर्तिता १॥	= उत्पन्न हुई है (= निर्वर्तिता) अथवा निष्पन्न भई है (= निर्वर्तिता)
ऋज्वी १॥ च ❀ प्रगुणा १॥	= सरल [= ऋज्वी = ऋजु) और (= च) सीधी (= प्रगुणा) (मति)
कस्मात् ५। निर्वर्तिता १॥	= किस हेतु से (= कस्मात्) उत्पन्न हुई वा निष्पन्न हुई है (= निर्वर्तिता) ?
वाच्-काय-मनस्-कृत परमनोगतस्य ६।	= (उत्तर) वचन-काय-मनकरि किये हुये अन्य (जीव) के मन में प्राप्त भये
अर्थस्य ६। विज्ञानात् ५।॥ , ऋज्वी १॥	= रूपी पदार्थ के (= अर्थस्य) जानने से (= विज्ञानात्)॥ —सरल (= ऋज्वी) है
मतिः १॥ यस्य ६। सः १। अयम् १। ऋजुमतिः १।	= मति (= ज्ञान वा बुद्धि) जिसकी सो यह ऋजुमति है॥ भावार्थ सरल मनसे, सरल वचनसे सरल कायसे किये हुये अन्य जीवके मन में प्राप्त हुये जो रूपी पदार्थ तिसके जानने से (= विज्ञानात्) उत्पन्न हुई (= निर्वर्तिता) जो सरल मति सो ऋजुमति[२] है

१) इस व्युत्पत्ति से प्रगट है कि ऋजुमति शब्द पुलिङ्ग है सामान्य की अपेक्षा से मनः पर्यय ज्ञान एक प्रकार का है और विशेष की विवक्षा से ऋजुमति मनः पर्ययज्ञान और विपुलमति मनः पर्ययज्ञान ऐसे दो भेद हैं॥ ऋजुमति मनः पर्यय ज्ञान के तीन भेद हैं अर्थात्
(क) ऋजुमनोगतार्थ विषयक (= ऋजुमनविषे प्राप्त भया अर्थ का जाननहारा) वा ऋजुमनस्कृतार्थज्ञ (= ऋजुमनकृत अर्थ का जाननेवाला)
(ख) ऋजुवचनगतार्थ विषयक (= ऋजुवचन विषे प्राप्त भया अर्थ का जाननहारा) वा ऋजुवाक्कृतार्थज्ञ (= ऋजुवचनकृत अर्थ को जाननेवाला)
(ग) ऋजुकायगतार्थ विषयक (= ऋजुकाय विषे प्राप्त भया अर्थ का जाननहारा) वा ऋजुकाय कृतार्थज्ञ (= ऋजुकाय कृत अर्थ को जाननेवारो)

(२) जैसे किसी मनुष्य ने मन से व्यक्त सरल वा प्रगटरूप पदार्थ का चिन्तवन किया। धार्मिक वा लौकिक वचनों को भी भिन्न भिन्न रूप से उच्चारण किया और दोनों लोक के फल की प्राप्ति के लिये अंग और उपांगो का पटकना सकोडना और फैलाना रूप कार्य की चेष्टा भी की किंतु उनके कुछ दिवस के पश्चात् अथवा बहुत काल पीछे उस मन से विचारे हुये वा वचन से कहे हुये अथवा शरीर से किये गये कार्य को भूलजाने के कारण कि मैंने मन वचन काय से क्या किया था इस बात के विचारने के लिये वह समर्थ न रहा उसके उस प्रकार के मन वचन द्वारा किये गये कार्य को चाहै ऋजुमतिमनः पर्यय ज्ञान वाले से पूछो चाहै मत पूछो वह अपने ऋजुमतिमनः पर्यय ज्ञान से स्पष्ट जान लेता है कि उक्त मनुष्य ने मन से वह पदार्थ इस रूप से विचारा था, वचन से इस प्रकार कहा था और शरीर से इस प्रकार किया था॥

अनिर्वर्तिता कुटिला च विपुला च । कस्मादनिर्वर्तिता ? वाक्कायमनस्कृतार्थस्य परकीयमनोगतस्य विज्ञानात् । विपुला मतिर्यस्य सोऽयं विपुलमतिः ॥

च । अनिर्वर्तिता ॥ कुटिला ॥ च ॥ = और(= च) नहीं निष्पन्न हुई अथवा नहीं उत्पन्न हुई वक्र (= कुटिला) और (= च,
विपुला ॥ = विस्तीर्ण (= विपुला), विशाल (= विपुला) वा नानार्थक (= विपुला)
कस्मात् ॥ अनिर्वर्तिता ॥ = किस कारण से नहीं निपजाई वा नहीं निष्पन्न भई (= अनिर्वर्तिता)
वाक्-काय मनः कृत-परकीय-मनः-गतस्य ॥ = (उत्तर) वचन कायमन करि किये हुये अन्य (जीव) के मन में प्राप्त भये
अर्थस्य ॥ विज्ञानात् ॥ विपुला ॥ = रूपी पदार्थ के (= अर्थस्य) जानने से ॥ विस्तीर्ण-विशाल-नानार्थक है
मतिः ॥ यस्य ॥ सः ॥ अयम् ॥ विपुलमतिः ॥ = मति (अर्थात् ज्ञान वा बुद्धि) जिसकी सो यह विपुलमति है ॥ भावार्थ

फिर किस हेतु से उत्पन्न हुई है? (उत्तर) "स्वयमेवही भई है" (जय० वचनिका मुद्रित पृष्ठ १७५)। कैसे ? भविष्यत काल में कोई जीव रूपी पदार्थ को चिंतवेगा अब तक उसके मनद्वारा वह रूपी पदार्थ विचारा नहीं गया है उसके मन में वह रूपी पदार्थ अब तक नहीं तिष्ठा है आने वाले काल में चिंतवन करेगा इसको भी विपुलमति मनः पर्यय ज्ञानी जानता है। इसलिये जो पदार्थ अब तक परमनोगत नहीं हुआ है और उसको विपुलमतिमनः पर्यय ज्ञानी ने जान लिया ही है तो ऐसी अवस्था में कह सकते हैं कि नहीं निष्पन्न हुई है परमनोगत पदार्थद्वारा मति जिसकी वरन स्वयमेव ही भई' क्योंकि उस समय दूसरे के मन में उस रूपी पदार्थ का अस्तित्व नहीं हुआ ॥ यथार्थ में विपुल शब्द का अर्थ विस्तीर्ण, विशाल, गंभीर है जिसमें कुटिल, असरल नानार्थक, विषम सरल इत्यादि गर्भित हैं।
और जिससे यह भाव झलकता है 'कि विपुलमति मनः पर्यय ज्ञान से पर के मन में रहने वाले ऋजु-वक्र सरल टेढ़े सर्वप्रकार के रूपी पदार्थों का

जानने से अपने आत्मा को जान कर आना और परका चिंतवन जीवित मरण सुख दुःख लाभ और अलाभ आदिको भी ऋजुमतिमनःपर्यय जानता है। किंतु यह नियम है कि जो मनुष्य व्यक्तमना है - भले प्रकार चिंतवन कर जिन्होंने प्रगट रूप से मन से पदार्थों का निश्चय कर लिया है उन्हीं के द्वारा विचारे गये पदार्थों को ऋजुमतिमनः पर्यय ज्ञानी जानता है। परन्तु जो अव्यक्त मना है भले प्रकार चिंतवन कर जिन्होंने व्यक्त रूप से पदार्थों का निश्चय नहीं किया है उनके द्वारा मन से विचारे हुये रूपी पदार्थों को ऋजुमति मनः पर्यय ज्ञानी नहीं जानता है। यह द्रव्य और भाव की अपेक्षा से ऋजुमति मनः पर्यय ज्ञान का विषय है। (देखो० राज० सूत्र २३ वार्तिक ८) ॥

ऋजुमतिश्च विपुलमतिश्च ऋजुविपुलमती॥ एकस्य मतिशब्दस्य गतार्थत्वादप्रयोगः। अथवा ऋजुश्च विपुला च ऋजुविपुले। ऋजुविपुले मती ययोस्तौ ऋजुविपुलमती। स एष मनः पर्ययो-

ज्ञान होता है। अपने और परके जीवित मरण सुख दुःख लाभ और अलाभका भी ज्ञान होता है तथा जिस पदार्थका व्यक्तमनकरि चितवन किया गया है वा अव्यक्तमनकरि चितवन कियागया है अथवा नहीं चिंतवन कियागया है आगे जाकर चिंतवन होगा उन सब प्रकारके पदार्थोंका विपुल मति मनः पर्यय ज्ञानी जानता है॥ (राज० वा० वार्तिक १०) यह द्रव्य और भावकी अपेक्षासे विपुलमति मनः पर्यय ज्ञानके विपयका निरूपण है।

(१) (१)

ऋजुमतिः १। च* विपुलमतिः१। च* ऋजुविपुलमती १। =तथा (=च) ऋजुमति और (=च) विपुलमति (मिलानेसे) ऋजुविपुलमतीहुआ अर्थात् ऋजुमतिका मतिशब्द लेकर और विपुलमतिका मतिशब्दलेकर दोनों मति शब्दोंको मिलानेसे "मती" ऐसा द्विवचन हुआ और ऋजुशब्दको विपुलशब्दके साथ मिलानेसे ऋजुविपुल हुआ अतः "ऋजुविपुलमती" द्वंद्व समास हुआ

एकस्य १। मतिशब्दस्य १। गतार्थत्वात् १॥। =एक मतिशब्दके अर्थकी प्राप्ति होनेसे (=गतार्थत्वात्) वा तात्पर्यकी लब्धि होनेसे

अ-प्रयोगः १। =(सूत्रमें-दूसरे मतिशब्दका) प्रयोग अथवा व्यवहार नहीं है अर्थात् एकही मतिशब्दको दोनों ऋजु और विपुलके साथ लगानेसे अर्थ वा अभिप्रायकीप्राप्ति होजातीहै अतः इस सूत्रमें दूसरा मतिशब्द नहीं लाये है।

(२)

अथवा * ऋजुः १॥ च* विपुला १॥ च* =अथवा (ऐसा भी समास होसक्ता है कि) ऋजु और (=च) विपुला (मिलकर)

ऋजुविपुले १॥; ऋजुविपुले १॥ मती १॥ ययोः ६॥ =ऋजुविपुले(वाक्य) हुआ। ऋजु और विपुलहै बुद्धी (=मती) जिनकी (=ययोः)

तौ १। ऋजुविपुलमती १। सः १। एपः १। मनःपर्ययः१। =ते ऋजुविपुलमती है॥ सो यह मनः पर्यय ज्ञान

(१) सरल वा ऋजु हैमति जिसकी सो ऋजुमतिहै इसलिये मतिशब्द स्त्री लिंग होने पर भी "ऋजुमति" शब्द पुलिङ्गहै इसलिये ऊपर पुलिङ्गही लिखाहै

(२) यह चकार वाक्य भूपण के लियेहै अर्थात् संस्कृतकी बोलचालमें लाया जाताहै परन्तु इसका अनुवाद हिंदीभापाकी बोलचालमें नहीं होसकता है॥

द्विविधः ऋजु मतिर्विपुलमतिरिति ॥

(१) (२)
द्वि-विधः १। ऋजुमतिः १। विपुलमतिः १। इति* =दो प्रकार ऋजुमति और विपुलमति इस भांति (=इति) हैं ॥

(१) ऋजुमतिमनः पर्यय ज्ञानके तीन भेद ऋजुमनस्कृतार्थज्ञ, ऋजुवाक्कृतार्थज्ञ, ऋजुकायकृतार्थज्ञ (इनके लक्षण के लिये देखो पृष्ठ ४४७)

(२) विपुलमतिमनः पर्ययज्ञान छह प्रकार है। (क) ऋजुमनोगतार्थविषय, ऋजुमनस्कृतार्थज्ञ अर्थात् ऋजुमनकों प्राप्त हुये अर्थ का जानने-वाला (ख) ऋजुवचनगतार्थ विषय, वा ऋजुवाक्कृतार्थज्ञ अर्थात् ऋजुवचन कों प्राप्त भया अर्थ का जाननहारा (ग) ऋजुकायगतार्थ विषय, ऋजुकायकृतार्थज्ञ अर्थात् ऋजुकाय कों प्राप्त हुये अर्थका (=रूपी पदार्थ का) जाननहारा (घ) अनृजुमनोगतार्थ विषय, वक्रमनस्कृतार्थज्ञ, अर्थात् वक्रमनको प्राप्त भया अर्था का जाननहारा (ङ) अनृजवचनगतार्थ विषय, वक्रवाक्कृतार्थज्ञ अर्थात् वक्रवचनको प्राप्त हुआ रूपी पदार्थका जानने वाला (च) अनृजुकाय गतार्थ विषय, वक्रकायकृतार्थज्ञ, अर्थात् वक्रकाय कौं प्राप्तभया रूपी पदार्थ का जाननेवाला ॥

ऋजुमति तथा विपुलमति मनः पर्यय ज्ञान के विषय शब्दगत और अर्थगत दोनों ही प्रकार के होते हैं॥ कैसे? सो कहते हैं "कोई भी सरल मन करि निष्पन्न होत संता त्रिकाल संबंधी पदार्थनिको चितवत भया वा सरल वचन करि निष्पन्न होत संता तिनकों कहत भया वा सरल काय करि निष्पन्न होत संता तिनको करत भया पीछें भूलि करि कालांतरविषैं स्मरण करनेकों समर्थ न हुवा अर आयकरि ऋजुमतिमनः पर्यय-ज्ञानीकों पूछत भया वा स्मरण करने का अभिप्राय को धारि मौन होत खड़ा रहा तहां ऋजुमतिमनः पर्ययज्ञान स्वयमेव सर्वकों जानै है। तैसे ही सरल वा वक्र मन वचन काय करि निष्पन्न होत संता त्रिकाल सम्बन्धी पदार्थनिकों चितवत भया वा कहत भया वा करत भया बहुरि भूलि करि केतेक काल पीछै स्मरण करने को समर्थ न हुवा आय करि विपुलमति मनः पर्ययज्ञानी के निकट पूछत भया वा मौन से खड़ा रहा तहां विपुल-मतिमनः पर्ययज्ञान सर्वकों जानै" ऐसे इनका स्वरूप जानना ॥

त्रिकाल सम्बन्धी पुद्गल द्रव्य कों वर्तमान काल विषै कोई जीव चितवन करै है तिस पुद्गल द्रव्य कों ऋजुमति मनः पर्ययज्ञान जानता है और त्रिकाल संबधी पुद्गल द्रव्य कों भूतकाल में चितवन किया हो अथवा जिसका भविष्यत् में चितवन किया जायगा यद्वा वर्तमानमें जिसका चितवन हो रहा है ऐसे तीनो ही प्रकार के पदार्थ को विपुलमति मनः पर्ययज्ञान जानता है ॥

आह उक्तो भेदः, लक्षणमिदानीं वक्तव्यमित्यत्रोच्यते । वीर्यान्तरायमनः पर्ययज्ञानावरण-क्षयोपशमांगोपांगनामलाभावष्टम्भादात्मनः परकीयमनः सम्बंधेनलब्ध वृत्तिरुपयोगो मनः पर्ययः॥ मतिज्ञानप्रसंग इति चेदुक्तोत्तरं पुरस्तात् । अपेक्षाकारणं मन इति

आह	=(शिष्य वा अन्यवादी आचार्यसे) प्रश्न करताहै (=आह)वा पूछताहै (=आह) कि (मनः पर्यय ज्ञान के ऋजुमति मनः पर्ययज्ञान और विपुलमति मनःपर्ययज्ञान)
उक्त भेदः ।।इदानीम्* लक्षणम् ।।।वक्तव्यम् ।।।	=भेद कहे गये अब (इनके) लक्षण वा स्वरूप कहनी चाहिये ।
इति* अत्र* उच्यते I वीर्यान्तराय-मनः पर्यय—	=ऐसे (प्रश्न करने पर) यहां कहाजाता है कि वीर्यान्तराय कर्मका और मनःपर्यय
ज्ञानावरण-क्षयोपशम-अङ्गोपाङ्गनाम-	=ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशमसे और अगोपांगनामा नामकर्म के (उदयके)
लाभ-अवष्टम्भात् ।। आत्मनः।। परकीय-	=लाभके अवलम्बनसे वा प्राप्त होनेसे (=अवष्टम्भात्) आत्माके परके (=पराये)
मनःसम्बन्धेन ।। लब्धवृत्तिः ।।। उपयोगः ।।	=मनके संयोग करि प्राप्ति हुई है (=लब्ध) जो प्रवृत्ति (ऐसा) ज्ञानोपयोग
मनः-पर्ययः ।।	=मनः पर्यय ज्ञान है अर्थात् उक्त कर्मों के क्षयोपशम से और उदय के लाभ की प्राप्ति होने से आत्मा ने द्रव्य-क्षेत्र-कालभावकी मर्यादा लिये हुये जो दूसरेके मनमें तिष्ठते हुये रूपी पदार्थ को स्पष्टरूप से जान लिया है सो मनःपर्यय ज्ञान है ॥
मतिज्ञान-प्रसङ्गः ।।	=(यदि मनः पर्ययज्ञान मन के सम्बन्ध से है तो) मतिज्ञान का प्रसंग हुआ ।
इति* चेत्* पुरस्तात्*	=ऐसा संदेह (करने) पर (उत्तर में कहते है) कि पहिले (=पुरस्तात्)
उक्त-उत्तरम् ।।।	=कहा हुआ उत्तरहै (जिसकेलिये देखो पृष्ठ ३२५, ३२६ जिसका संक्षेप नीचे भी है
अपेक्षाकारणम् ।।। मनः ।।। इति*	=(अर्थात् मनः पर्यय ज्ञानमें) मन अपेक्षामात्र कारणहै (न कि उत्पत्तिका कारण है)

(१) इसका सारांश वा तत्व यह है किइन्द्रियों और मन द्वारा मतिज्ञान उत्पन्न होता है । यह मतिज्ञान श्रुतज्ञानके होने के लिये कारण है विना मतिज्ञान के श्रुतज्ञान कभी भी नहीं होता, मतिज्ञान कारणरूप है और श्रुतज्ञान कार्यरूप है अत मतिज्ञान और श्रुतज्ञान का परस्पर कार्यकारण भाव है ॥ क्योंकि मतिज्ञान (इन्द्रियों और) मन के सबध विना नही होता है इसलिये शिष्यको यह प्रश्न करनेका अवसर मिला कि

परकीयमनसि व्यवस्थितोऽर्थः अनेन ज्ञायते इत्येतावदत्रापेक्ष्यते ।

परकीय–मनसि ।।। व्यवस्थितः ।। अर्थः ।। अनेन ।।।	=दूसरे के मन में तिष्ठता हुआ रूपी पदार्थ इस (मनः पर्यय ज्ञान) से
ज्ञायते । इति* एतावत्* अत्र अपेक्ष्यते ।	=जाना जाता है इस प्रकार इतनी ही (=एतावत्) यहां विवक्षा की गईहै ।

जब मनः पर्यय ज्ञान में भी मन का सम्बन्ध है और मतिज्ञान में मन का सबंध है तो मन पर्ययज्ञान में भी मतिज्ञान का प्रसग आया जैसे मन और स्पर्शन, रसन घ्राण, चक्षु, श्रोत्र इन्द्रियों के सबंध से स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु श्रोत्ररूप ज्ञान प्रगट होते हैं सो मतिज्ञान है तैसे ही मनः पर्यय ज्ञान भी मन सबंध से पाई है वृत्ति (प्रवृत्ति) जिसने ऐसा (मनः पर्यय ज्ञान) है इस लिये (मनः पर्यय ज्ञान भी) मतिज्ञान नाम को पाता है अर्थात् मन पर्ययज्ञान मन के निमित्तापने से मतिज्ञान को प्राप्त होता है (=मनः पर्यय ज्ञान मनो निमित्तत्वात् मतिज्ञान प्राप्तम्) भावार्थ मनःपर्यय ज्ञान भी मन द्वारा उत्पन्न होता है और मतिज्ञान भी मन द्वारा (और पांच इन्द्रियों द्वारा) उत्पन्न होता है इसलिये मनः पर्यय ज्ञानको मतिज्ञान कह सकते हैं क्योंकि ऐसी ही आर्ष वचनकी परिपाटी है (=एवम् हि आर्षी प्रक्रिया) कि अपने मनकरि पराया मनमें ठहरे हुये पदार्थ का चितवन करके इत्यादि (=मनसा मनः सपरिचिन्त्य+इति) ॥

(उत्तर) अपेक्षामात्रपना से (=अपेक्षामात्रत्वात्) तहां (=तत्र) मन पर्यय ज्ञान में अपना और पर के मन की अपेक्षा मात्र करिये है (मनः पर्यय ज्ञाने—तत्र स्वपरमनोपेक्षा मात्र क्रियते) ॥ जैसे (कोई कहै) बादल में (=अभ्रे) अथवा आकाश में (=अभ्रे) चंद्रमा को देखो (=यथा अभ्रे चन्द्रमसं पश्य+इति) यहां देखने रूप कार्य चन्द्रमा है और बादल वा आकाश शब्द अपेक्षा मात्र है। तैसे ही मनः पर्यय ज्ञान में तिष्ठे हुये वा अवस्थित रूपी पदार्थोंका जानना ही कार्य है और स्वपर मन अपेक्षा मात्र है और जैसे मनका कार्य मतिज्ञान है तैसे मन का कार्य मनः पर्यय ज्ञान नहीं है (न तत्कार्यं मतिज्ञानवत्) ॥

क्योंकि इस (मनःपर्यय ज्ञान) के आत्म शुद्धि का निमित्तापना है (=एतस्य आत्मशुद्धिनिमित्तत्वात् इति) देखो राजवार्तिक में वार्तिक ५ सूत्र ९ यह मन पर्यय ज्ञान तो वीर्यान्तराय कर्म और मन पर्ययज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम की शक्ति मात्र से और अंगोपांगनामा नामकर्म के उदय के लाभ से आत्मा के विकसित वा प्रकाशित हुआ है ॥ (देखो पृष्ठ ३२। और ३२६) ॥ जीवकांड गोम्मटसार में इस सबंध में लिखा है कि "जैसे पूर्व कहा था भवप्रत्यय अवधिज्ञान सर्व अगते उपजै है अर गुणप्रत्यय शखादिक चिन्हनितै उपजै है तैसे मनःपर्यय ज्ञान द्रव्य मनत उपजै है नियमतः और अगनिके प्रदेशनिविषै नाहीं उपजै है" गोम्मटसार गाथा ४४२ ॥

"सो द्रव्य मन हृदय स्थानविषै प्रफुलित आठ पाखुडी का कमल के आकार अंगोपांगनामक नामकर्म के उदय त तेईस जाति की पुद्गल वर्गणानि विषै मनोवर्गणा है तिनि स्कन्धनिकरि निपजै है ऐसा [illegible]

४३ ॥

तत्र ऋजुमतिर्मनः पर्ययः कालतो

तत्र॥ ऋजुमतिः ¹₁। मनः पर्ययः ¹। कालतः॥	= तहाँ ऋजुमति मनः पर्यय ज्ञान काल (की अपेक्षा) से

"तिस मनका नोइन्द्रिय ऐसा नाम है नो कहिये ईपत् किंचिन्मात्रइन्द्रिय है जैसे स्पर्शनादिक इन्द्रिय प्रकट हैं तैसे मनके प्रकटपना नाही तातैं मनका नोइन्द्रिय ऐसा नाम है सो तिस द्रव्य मनविषैं मतिज्ञानरूप भावमन भी उपजै है अर मनः पर्यय ज्ञान भी उपजै है ॥गाथा ४४४॥ बहुरि "ऋजुमति मनः पर्यय ज्ञान है सो अपने वा अन्य जीवके स्पर्शनादिक इन्द्री अर मन अर मन वचन काय योग तिनको सापेक्षतै उपजै है। "पर विपुलमतिमनः पर्यय है सो अवधि ज्ञानकी सी नाई तिनकी अपेक्षा विनाही निगमकरि जानै है" ॥ गाथा ४४६ ॥ जीवके मनविषै सरलपनै चितवनरूप तिष्ठता जो पदार्थ ताकों पहलै तौ ईहा नाम मतिज्ञानकरि प्राप्त होइ ऐसा विचारै कि याका मनविषै कहा है। पीछे रिजुमति मनः पर्ययज्ञानकरि तिस अर्थको प्रत्यक्ष पने करि रिजुमति मनः पर्यय ज्ञानी जानै है यह नियम है ॥ गाथा ४४८ ॥" द्रव्य प्रति वा क्षेत्र प्रति वा काल प्रति वा भाव प्रति जीवकरि लक्षित कहिए चितवन कीया हुवा जो रूपी पुद्गल द्रव्य वा पुद्गलके संबध धरै संसारी जीव द्रव्य ताकौं जघन मध्यम उत्कृष्ट भेदकरि ऋजुमति वा विपुलमति मनः पर्यय ज्ञान जानै है ॥ गाथा ४५० ॥

ऋजुमति मनः पर्यय ज्ञान उत्कृष्टपने करि औदारिक शरीर वा निर्जरारूप समय प्रवद्ध कौं जानै है। औदारिक शरीरविषैं समय समय निर्जरा हो है सो एक समय विषै औदारिक शरीर के जितने परमाणू निर्जरै तितने परमाणूनिका स्कधकों जघन्य रिजुमति मनः पर्यय ज्ञान जानै है। बहुरि उत्कृष्टपनैं नेत्र इन्द्रिय की निर्जरामात्र द्रव्य को जानै है। सो कितना है। औदारिक शरीर की अवगाहना संख्यात घनांगुल प्रमाण है तिस विषै विस्रसोपचयसहित औदारिक शरीर वा समय प्रवद्ध प्रमाण परमाणू निर्जरा रूप भये तौ नेत्र इन्द्रिय का अभ्यंतर निर्वृति अगुल के असंख्यातवे भाग प्रमाण है तिस विषै कितने परमाणू निर्जरा रूपभये ऐसा त्रैराशिक करि जितना परमाणू आया तितने परमाणू निका स्कधकों उत्कृष्ट ऋजुमति मनः पर्यय ज्ञान जानै है ॥ ४५१ ॥

मेरी समझ में मनः पर्यय ज्ञान मे मन का संबंध केवल अपेक्षा मात्र है। न कि शक्ति अपेक्षा से मतिज्ञान मे शक्ति अपेक्षा से है ॥ स्मरण रहै कि मतिज्ञान तो मन और इन्द्रिय दोनो की सहायता से ही होता है। और चतुर्थ गुणस्थान से बारह तक होता है। सज्ञी (= समनस्क) पचेन्द्रिय सम्यग्दृष्टी जीव के होता है परन्तु कुमति ज्ञान, सर्वगतियो में सर्व इन्द्रिय वाले जीवो के होता है सज्ञी (= समनस्क) असज्ञी अमनस्क) जीवो के भी होता है इसलिये केवल इन्द्रियो द्वारा मन की विना सहायता के भी हो सक्ता है और इन्द्रियो और मनकरि भी हो सक्ता है ॥ ४५१ ॥

जघन्येन जीवानात्मनश्च द्वित्रीणि भवग्रहणानि, उत्कर्षेण सप्ताष्टौ गत्यागत्यादिभिः प्ररूपयति ॥ क्षेत्रतो जघन्येन गव्यूतिपृथक्त्वं(१), उत्कर्षेण योजनपृथक्त्वस्याभ्यन्तरं न बहिः ॥ द्वितीयकालतो जघन्येन सप्ताष्टौ भवग्रहणानि, उत्कर्षेणासंख्येयानि गत्यागत्यादिभिः प्ररूपयति ॥ क्षेत्रतो जघन्येन योजन पृथक्त्वं, उत्कर्षेण

(१) जघन्येन। जीवानाम्। आत्मनः। च द्वि-त्रीणि॥	= जघन्य करि (अन्य) जीवों के और (= च) अपने आत्मा के दो तीन
भवग्रहणानि॥ उत्कर्षेण।	= भवका ग्रहण करनेवाला है ॥ उत्कृष्ट करि (अन्य के तथा अपने)
गति-आगति-आदिभिः। (२)सप्त-अष्टौ। प्ररूपयति	= पहले अगले आदि से सात आठ (भवों) को जानता है प्ररूपयति अर्थात् काल करि ऋजुमति मनः पर्यय ज्ञान का विषय जघन्यपनें अतीत अनागत रूप दोय तीन भव हैं उत्कृष्टपनें सात आठ भव हैं
क्षेत्रतः जघन्येन। (३)गव्यूति-पृथक्त्वं॥	= क्षेत्र (की अपेक्षा) से जघन्य करि तीन से ऊपर नौं से नीचे (= पृथक्त्व) कोश है
उत्कर्षेण। योजन-पृथक्त्वस्य। अभ्यन्तरम्॥	= उत्कृष्ट करि तीन से ऊपर नौ से नीचे (= पृथक्त्व) योजन के भीतर है
न वहिः द्वितीय-कालतः	= न कि वाहिर । दूसरा (विपुलमति मनः पर्यय ज्ञान) काल (की अपेक्षा) से
जघन्येन। सप्त-अष्टौ॥ भवग्रहणानि॥ उत्कर्षेण।	= जघन्य करि सात आठ भव का ग्रहण करनेवाला है । उत्कृष्टकरि
असंख्येयानि॥ गति-आगति-आदिभिः। प्ररूपयति	= असंख्याते (भव) पहले अगले आदिकरि कथन करता है
क्षेत्रतः जघन्येन।	= (विपुलमति मनः पर्यय ज्ञान का विषय) क्षेत्र (की अपेक्षा) से जघन्य करि
योजन-पृथक्त्वम्॥ उत्कर्षेण।	= तीन से ऊपर नव से न्यून (= पृथक्त्व) योजन (प्रमाण) है । उत्कृष्टकरि

(१) "जघन्येन" वाक्य पुल्लिग और नपुंसकलिंग है। हमने इन लिंगों का कोई संकेत नियत नहीं किया है। अतः कहीं पुल्लिंग कहीं नपुंसकलिंग लिखा है।
(२) अष्टौ शब्द पुल्लिंग बहु वचन है क्योंकि इसके आगेके शब्द "भव" का अध्याहार किया गया है ॥
(३) गव्यूति-गव्यूत-गव्यू एकार्थवाची है। इसके अर्थ (i) दो मीलकी लम्बाई वा एक कोसके हैं (ii) दो कोसको दूर। (iii) वह भूमि जहां हरी हरी घास होती है। (देखो आप्टे संस्कृत कोश पृष्ठ ४५६, वैद्यकृत कोश पृष्ठ २३९ ॥ गोम्मटसार (जी० कां गाथा ४५५) जयचन्दजी कृत वचनिका मुद्रित पृष्ठ १७६, पन्नालालजी दूनी इत्यादिने एक कोसके अर्थमें लिया है इससे हमने भी अनुवादमें एक कोस ही लिखा है ॥

मानुषोत्तरशैलास्याभ्यन्तरं न बहिः ॥ उक्तयोरनयोः पुनरपि विशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्यां तद्विशेषः ॥ २४ ॥

मानुषोत्तरशैलस्य।
= (विपुलमतिमनः पर्ययज्ञान का विषय क्षेत्र की अपेक्षा से) मानषोत्तर पर्वत के

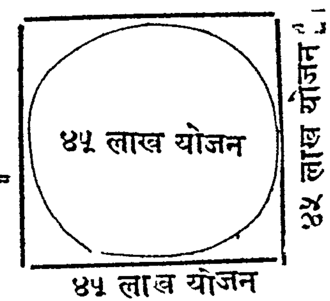
अभ्यन्तरम्।॥ न ✽(१)बहिः ✽उक्तयोः। अनयोः।
= भीतर (भीतर) है न कि बाहिर ॥ कहे हुये दोनों (भेद मनःपर्यय ज्ञान) में

पुनः ✽अपि ✽विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थम्।॥ आह।
= फिर भी विशेष की प्राप्ति के लिये (आचार्य अग्रिम सूत्र) कहते हैं कि

विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्यां तद्विशेषः ॥ २४ ॥

विशुद्धि-अप्रतिपाताभ्याम्।
= (भावों वा परिणामों की) विशुद्धि और अप्रतिपात (चारित्ररूपी पर्वतसे नहीं गिरने) हेतुओंसे

तद्-विशेषः।
= उन (ऋजुमति और विपुलमतिमनःपर्ययज्ञान) में भेद है अर्थात् ऋजुमतिमनःपर्यय ज्ञान से विपुलमतिमनःपर्ययज्ञान विशुद्धतर है वा अधिक विशुद्ध है और ऋजुमति मनः पर्ययज्ञान बीचमें छूट जाता है परन्तु विपुलमतिमनः पर्ययज्ञान केवल ज्ञानहोने तक रहता है यही परस्पर दोनों में अन्तर वा भेद है ॥



(१) यह बात प्र सद्ध है कि मानुषोत्तर पर्वतके बाहिर मनुष्य नही हैं इसलिये नरलोक अर्थात् वह स्थान जहा मनुष्य वास करते हैं उक्त मानुषोतर पर्वतके भीतर ही भीतर है ॥ गाम्मटसार जीवकांड गाथा ४५६ में क्षेत्रको अपेक्षा इस प्रकार कहा है "नरलोक ऐसा वचन ,कह्या है सो इहां मनुष्य लोकका विष्कंभका जेता परिमाण है सो लैना अर मनुष्य लोक तो गोल है अर यह विपुलमतिका विषयभूत क्षेत्र समचतुरस्र घन प्रतर कहिए। समान चौकोर घन रूप प्रतर क्षेत्र कह्या है सो पैंतालीस लाख योजन लम्बा तितना ही चौडा ऐसा परिमाण जानना। इहां ऊँचाई थोडी है तातैं घन प्रतर कह्या है जातैं मानुषोत्तर पर्वतके बाह्य च्यारो कोणनिविषे तिष्ठते देव तिर्यंच चितए हुए तिनकौं भी उत्कृष्ट विपुलमतिमनः पर्ययज्ञान जाने है "पृष्ठ ८७०"

(२) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दिगम्बर और श्वेतांबर दोनो आम्नायोंमें एकसा है। हमारे यहां भी जहां जहां शुद्ध लिपि है एकहीसा पाठ मिलता है। श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य तत्वार्थाधिगम सूत्र (इस ग्रन्थ) में यह २४वां सूत्र है क्योंकि वहां "द्विविधोऽवधि" सूत्र अधिक है ॥

(३) विशुद्धिश्च अप्रतिपातश्च विशुद्ध्यप्रतिपातौ ताभ्यां विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्यां तयोर्विशेषस्तद्विशेषः । सूत्रमें रहनेवाले सब पदोंकी यह व्युत्पत्ति है ॥

एटा निवासी जगरूपसहाय वकीलकृत पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित सर्वार्थसिद्धिका शब्दशः हिंदी अनुवाद । अध्याय १ सूत्र २४

तदावरण क्षयोपशमे सति आत्मनः प्रसादो विशुद्धिः । प्रतिपतनं प्रतिपातः न प्रतिपातः अप्रतिपातः । उपशान्तकषायस्य चारित्रमोहोद्रेकात्प्रच्युतसंयमशिखरस्य प्रतिपातो भवति । क्षीणकषायस्य प्रतिपातकारणाभावादप्रतिपातः ॥

(१)पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित इस सूत्र पर संस्कृत सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिंदी अनुवाद ।

तद्-आवरण-क्षयोपशमे७। सति७।	= उस (मनः पर्ययज्ञानावरणीयकर्म) के आवरण के क्षयोपशम होनेपर (= सति)
आत्मनः६। प्रसादः१। विशुद्धिः१॥ प्रतिपतनम्१॥	= आत्माकी उज्वलता (= प्रसाद) सो विशुद्धि है ॥ (संयमसे) गिरना वा च्युत होना
प्रतिपातः१। उपशान्तकषायस्य६।	= सो प्रतिपात है। उपशान्त मोहवाले (जीव) का अर्थात् ग्यारहवाँ गुणस्थानवर्तीका
चारित्रमोह-उद्रेकात्५। प्रच्युतसंयमसिखरस्य६।	= चारित्रमोहनीय कर्म की उत्कटतासे संयमरूपी शिखरका (से) प्रच्युत होना
(२)	गिर पड़ना, उलटा आय पड़ना, उलटा आना, भावार्थ संयमपरिणामकी घटवारी
प्रतिपातः१। भवति। क्षीणकषायस्य६।	= सो प्रतिपात है ॥ क्षीणकषायवाले के अर्थात् बारहवाँ गुणस्थानवर्तीके
प्रतिपात-कारण-अभावात्५। अप्रतिपातः१।	= (संयम से) गिर पड़ने के निमित्त के अभाव से अप्रतिपात है

(१) स्मरण रहे कि यहां पर भी (जैसा कि पृष्ठ ४५१ में है) वीर्यान्तराय कर्मका और मनः पर्यय ज्ञानावरणीय कर्मका क्षयोपशमसे और अंगोपांग नामानामकर्मके (उदयके) लाभकी प्राप्त होनेसे आत्माके परिणामोंकी उज्वलता सो विशुद्ध वा विशुद्धता है॥ यहां संक्षेपार्थ एक कर्मका नाम वृत्तिमें लिया है॥

(२) पहला ऋजुमति मनः पर्यय ज्ञान है सो प्रतिपाती है क्योंकि ऋजुमतिवाला उपशम तथा क्षपक दोनों श्रेणियों पर चढता है उसमें यद्यपि क्षपककी अपेक्षासे ऋजुमतिवालेका पतन नहीं होता तथापि उपशमश्रेणीकी अपेक्षासे पतन होता है और दूसरा विपुलमति मनः पर्ययज्ञानी केवल क्षपकश्रेणी ही माढता है और चढता है उसका पतन कदापि नही होता निश्चयसे केवल ज्ञान प्राप्ति करता है ॥ दूसरा विपुलमति मनः पर्ययज्ञान है सो अप्रतिपाती है ॥ जिसके विशुद्ध परिणामोंकी घटवारी वा न्यूनता हो सो प्रतिपाती कहलाता है जिसके विशुद्ध भावोंकी न्यूनता न हो उसको अप्रतिपाती कहते है। ऋजुमति मनः पर्यय ज्ञान तो विशुद्ध है क्यों कि प्रतिपक्षी कर्मके क्षयोपशमसे निर्मल भया है॥ बहुरि विपुलमति मनःपर्यय ज्ञान विशुद्धतर है। क्योंकि मनः पर्यय ज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशमसे अतिशयकरि निर्मल हुआ है ॥

विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्यां तद्विशेषः ॥ २४ ॥

विशुद्धिश्च अप्रतिपातश्च विशुद्ध्यप्रतिपातौ ताभ्याम् । तयोर्विशेषस्तद्विशेषः ॥

विशुद्धिः १।१ च* अप्रतिपातः १।१ च विशुद्धि-अप्रतिपातौ १।२	=बहुरि विशुद्धि और अप्रतिपात (मिलकर) विशुद्ध्यप्रतिपातौ (ऐसा वाक्य) हुआ
ताभ्याम् ३।२ (विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्याम् ३।२)	=ताभ्याम् (जोड़कर) विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्यां (यह वाक्य) हुआ
तयोः ६।२ विशेषः १।१ तद्विशेषः १।१	=तयोः (तिनमें) विशेष सो तद्विशेष है। यह व्युत्पत्ति इस " विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्यां तद्विशेष " सब सूत्रकी हुई ॥ जिसका अर्थ ऐसे है कि उज्वलता तथा न च्युत होना तिन दो हेतुओंसे तिन (ऋजुमतिमनः पर्ययज्ञान, विपुल मतिमनः पर्ययज्ञान)में विशेष अथवा भेद है।

(१) प्रश्न"ऋजुविपुलमती मनः पर्ययः"इस सूत्रसे ही ऋजुमतिमनः पर्ययज्ञान तथा विपुलमतिमनः पर्ययज्ञानमें अंतर वा भेद है सो स्पष्ट है फिर 'विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्यांतद्विशेषः' इस सूत्रका क्यो आरंभ किया गया है (उत्तर) तेईसवां सूत्रमे जो ऋजुमतिमनः पर्ययज्ञान और विपुलमतिमनः पर्ययज्ञानका आपसमे विशेष वतलाया गया है वह साधारण है ॥ सर्वमनुष्योंका उससे संतोष नहीं हो सक्ता है इसलिये विशेष रूपसे इन दोनो ज्ञानोमे भेद-अंतर वतलाने के लिये यह २४वां सूत्र कहा है।

(२) प्रश्नः— जिस प्रकार मनः पर्ययज्ञानके ऋजुमति और विपुलमति भेद है उसही भांति उसके ही विशुद्धि और अप्रतिपात भी भेद हैं। यदि यही अभिप्राय है तव तो इस सूत्रमे च शब्दका प्रयोग करना चाहिये ॥ (उत्तर) च शब्दका उल्लेख नहीं करना चाहिये क्योंकि जिस प्रकार मनः पर्ययज्ञानके ऋजुमति और विपुलमति भेद हैं उसी प्रकार यदि विशुद्धि और अप्रतिपात भी मनः पर्ययज्ञानके भेद होते तव तो सूत्रमें च शब्द कहना युक्त होता। सो तो है नहीं किंतु वे (विशुद्धि और अप्रतिपात) ऋजुमति और विपुलमतिके समान भेद नहीं हैं वरन विशुद्धि और अप्रतिपात ये दोऊ ऋजुमति विपुल मतिका स्वरूप विशेष है। तिससे च शब्दका अप्रयोग है ॥ सारांश इन दोनो ऋजुमति और विपुलमति मनः पर्ययज्ञानोंमे ऋजुमति विशुद्ध है और विपुलमतिमनः पर्ययज्ञान ऋजुमतिकी अपेक्षासे द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव के विशेष जाननेकरि विशुद्धतर है अथवा अधिक विशुद्ध है। ऋजुमति प्रतिपाती है विपुलमति अप्रतिपाती है इसलिये स्वरूप विशेष होने से च शब्द सूत्रमे नहीं लाये है ॥

तत्र विशुध्या तावत्--ऋजुमतेर्विपुलमतिर्द्रव्यक्षेत्रकालभावैर्विशुद्धतरः । कथमिह ? यः कार्मणद्रव्यानन्तभागोऽन्त्यः सर्वावधिना ज्ञातस्तस्य पुनरनन्तभागीकृतस्यान्त्यो भागः ऋजुमतेर्विषयः । तस्य ऋजुमतिविषयस्यानन्तभागीकृतस्यान्त्यो भागो विपुलमतेर्विषयः । अनन्तस्यानन्तभेदत्वात् ॥ द्रव्यक्षेत्रकालतो विशुद्धिरुक्ता ।

तत्र* विशुद्ध्या ;॥ तावत* ऋजुमतेः ५।	=तहां विशुद्धताकरि तौ (=तावत) ऋजुमति मनः पर्यय ज्ञानसे
विपुलमतिः ;। द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावैः ३।	=विपुलमतिमनः पर्यय ज्ञान द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव (के विशेष जानने) करि
विशुद्धतरः ;। कथम् ? * इह*	=अधिक वा अतिशय विशुद्ध है (=विशुद्धतरः) यह (=इह) कैसे (=कथम्) ?
यः ;। कार्मणद्रव्य-अनन्तभागः ;। अन्त्यः ;।	=जो कार्माण द्रव्य के अन्तिम (=अन्त्य) अनंतवां भाग
सर्वावधिना ३ ज्ञातः ;। तस्य ;। पुनः*	=सर्वावधिज्ञान द्वारा जाना गया है तिस (अंतिम अनंतवा भाग) के फिर (=पुनः)
अनन्तभागीकृतस्य ;। अन्त्यः ;। भागः ;।	=अनंत भाग किये जायँ (तौ यह) अंतिम भाग वा अन्त का अंश (=अन्त्यः भागः)
ऋजुमतेः ;। विषयः ;।	=ऋजुमतिमनः पर्यय ज्ञान का विषय है अर्थात् कार्माण द्रव्य के अनन्तवें भागके अनन्तवे भाग रूपी द्रव्य को ऋजुमति मनः पर्यय ज्ञान वाला जानता है
तस्य;। ऋजुमतिविषयस्य ;। अनन्तभागीकृतस्य ;।	=तिस ऋजुमतिमनः पर्यय ज्ञान के विषय के अनन्त भाग किये जायँ (तौ यह)
अन्त्यः ;। भागः ;। विपुलमतेः ;। विषयः ;।	=अंत का वा अंतिम भाग विपुलमति मनः पर्यय ज्ञानका विषय है अर्थात् जिस अनंतवें भागको ऋजुमति मनः पर्यय ज्ञानने विषय किया है उसका भी अनंतवां भाग जो कि दूर व्यवहित (=किया हुआ) और सूक्ष्म है विपुलमतिमनः पर्यय ज्ञानका विषय है
अनन्तस्य ;। अनन्त-भेदत्वात् ५॥	=क्योंकि अनन्त की (गिनती वा गणना के) अनंत भेद होते हैं (अतः अनन्त में और अनन्त के अनन्तवे भाग में अनन्त का भाग फिर फिर कहा है)
द्रव्य-क्षेत्र-कालतः* विशुद्धि-उक्ता ;॥	=द्रव्य, क्षेत्र, काल (की अपेक्षा) से विशुद्धता वा उज्ज्वलता कही गई अर्थात् द्रव्यकी अपेक्षासे तो विशुद्धता यहां कही; क्षेत्र और कालकी अपेक्षाके लिये देखो पृष्ठ४५३,४५४,४५५

भावतो विशुद्धिः सूक्ष्मतरद्रव्यविषयत्वादेव वेदितव्या, प्रकृष्टक्षयोपशमविशुद्धियोगात् ॥ अप्रतिपातेनापि विपुलमतिर्विशिष्टः। स्वामिना प्रवर्द्धमानचारित्रोदयत्वात् ॥ ऋजुमतिः पुनः प्रतिपाती, स्वामिनां कषायोद्रेकाद्धीयमानचारित्रोदयत्वात् ॥

यद्यस्य मनःपर्ययस्य प्रत्यात्ममयं विशेषः, अथानयोरवधिमनःपर्यययोः कुतो विशेष इत्यत आह---

भावतः *	=भाव (की अपेक्षा) से (ऋजुमतिमनः पर्ययज्ञानसे विपुलमति मनः पर्ययज्ञानमें)
विशुद्धिः ॥ सूक्ष्मतर-	=(परिणामों की) उज्ज्वलता वा विशुद्धता अधिक सूक्ष्म (सूक्ष्मतरः)
द्रव्य-विषयत्वात् ॥ एव* वेदितव्या ॥	=द्रव्यके जानपनेसे ही जानना योग्य है
प्रकृष्ट-	=क्योंकि (ऋजुमतिमनः पर्ययज्ञान से विपुलमति मनः पर्ययज्ञान में) उत्कर्ष
क्षयोपशम-विशुद्धि-योगात् ॥	=(मनः पर्ययज्ञानावरणीय कर्मके) क्षयोपशमकी उज्ज्वलताका प्रसग है अर्थात विपुलमति मनः पर्यय ज्ञान अत्यन्त सूक्ष्म द्रव्यको विषय करता है इसलिये उसका अत्यन्त सूक्ष्म रूपी पदार्थोंका विषय करनाही भावकी अपेक्षा विशुद्धि है॥
अप्रतिपातेन ; अपि *	=(संयमकी) घट वारी न होने की अपेक्षा से भी (ऋजुमति मनः पर्यय ज्ञानसे)
विपुलमतिः ; विशिष्टः ; स्वामिनाम् ;	=विपुलमतिमनः पर्ययज्ञान विशेषयुक्त वा श्रेष्ठ है क्योंकि (इसके) स्वामियों कें अर्थात् विपुलमतिमनः पर्ययज्ञानियोंके वा विपुल मतिज्ञान धारकोंकें
प्रवर्द्धमान-चारित्र-उदयत्वात् ॥	=बढ़ेहुये चारित्र का उदय होताहै (संयम बढ़ताई जाता है जबतक केवली न हो)
पुनः * ऋजुमतिः ; प्रतिपाती ;	=और (=पुनः) ऋजुमतिमनः पर्ययज्ञान प्रतिपाती है अर्थात् चारित्र छूटभी जाताहै
स्वामिनाम् ;	=क्योंकि (=इसके) अधिपतियों के अर्थात् ऋजुमतिमनः पर्ययज्ञानियोंकें
कषाय-उद्रेकात् ; हीयमानचारित्र उदयत्वात् ;	=कषायकी उत्कटतासे हीयमान (घटते हुए) चारित्रका उदय होता है
यदि * अस्य ; मनः पर्ययस्य ; प्रत्यात्मम् ; अयम्	=जो इस मनः पर्यय ज्ञानका अपना स्वरूप प्रति (प्रति-आत्मम्) यह
विशेष ; अथ * अनयोः ; अवधिमनः पर्ययोः ;	=विशेष है तो अब (अथ) इनदोनों अवधिज्ञान और मनः पर्ययज्ञानों में
कुतः * विशेषः ; इति* अतः * आह T	=क्योंकर भेदहै ऐसा (प्रश्न होने पर) इसलिये (आचार्य कहते हैं कि

विशुद्धिक्षेत्रस्वामिविषयेभ्योऽवधिमनः पर्यययोः ॥ सूत्र २५ ॥

विशुद्धिक्षेत्रस्वामिविषयेभ्योऽवधिमनःपर्यययोः २५

=विशुद्धिक्षेत्रस्वामिविषयेभ्योऽवधिमनः पर्यययोः (विशेषः भवति)

विशुद्धि-क्षेत्र- =विशुद्धता उज्ज्वलता वा निर्मलता, जहां तकके विद्यमान पदार्थोंके ज्ञानका होना

स्वामिन्-विषयेभ्यः ५। =स्वामी वा ज्ञानोंका प्रयोग करने वाला और ज्ञेय वस्तुओंके हेतुसे अर्थात् इन चारोंकी अपेक्षासे वा विलक्षणतासे

अवधिमनपर्यययोः ७। =अवधिज्ञान और मनः पर्यय ज्ञानोंमें

विशेषः १। भवति T =विशेष, भेद वा अंतर होता है भावार्थ अवधिज्ञानकी अपेक्षासे मनः पर्यय ज्ञान अधिकतर विशुद्ध है (जितने रूपी पदार्थोंको अवधिज्ञान वाला जानता है उनको मनः पर्ययज्ञानी मनोगत होंने पर भी अधिकतर शुद्धता से जान लेता है अवधिज्ञानीसे मनः पर्ययज्ञानीके परिणामोमें अधिकतर विशुद्धता है) ॥

( ) अवधिज्ञानसे मनः पर्ययज्ञान थोडे क्षेत्रवाला है । अवधिज्ञानके उत्पत्तिका क्षेत्र त्रसनाली पर्यंत है और विषयका क्षेत्र सर्व लोक है । मनः पर्ययज्ञान मनुष्य लोकमेंही उत्पन्न होता है और मनुष्य लोकका विष्कम्भ पैतालीस लाख योजन चौडा और पैतालीस लाख योजन लंबा समान चौकोर घनरूप प्रतर क्षेत्र (यहां ऊंचाई थोडी हैं इससे घन प्रतर कहा है) इसका विषय है क्योकि मानपोत्तर पर्वतके बाहिर चारो कोनों में तिष्ठते देव और तिर्यंच द्वारा चिंतित और स्थित पदार्थोंको भी विपुल मति मनः पर्यय ज्ञान जानता है ॥

( ) अवधिज्ञानसे मनः पर्ययज्ञानके स्वामी वा ज्ञानोंके प्रयोग करने वाले थोडे हैं संख्यामें न्यून हैं क्योंकि अवधिज्ञान चारो गतिके सैनी पंचेंद्रिय जीवोंके होता है और मनः पर्ययज्ञान गर्भज मनुष्य कर्मभूमिके पर्याप्तनिकेही प्रमत्त छठवें गुणस्थानसे क्षीणकपाय बारहवां गुणस्थान तक उपजे है इत्यादि देखो पृष्ठ ४६४ से ४६६ तक ॥

(१) इस सूत्रका हमारे यहां सर्वत्र एक पाठ है ॥ श्वेताम्बर आम्नायमे 'मन. पर्यय' शब्दके स्थानमे 'मनःपर्याय' है शेष पाठ दोनो संप्रदायोमे एक है । मन पर्यय और मनःपर्याय दोनो एकार्थवाची हैं । हमारी समझमे मन पर्यय लिखना ठीक है क्योंकि सूत्रका पाठ लघु होजाता है ॥ दोनों सम्प्रदायमें इस सूत्रका अर्थ भी एकसा है ॥ श्वेताम्बर आम्नायमे "द्विविधोऽवधिः" २१ सूत्रके अधिक होनेसे इस सूत्रकी गणना २६वी है हमारे यहा पच्चीसवीं है ॥

विशुद्धिः प्रसादः । क्षेत्रं यत्रस्थान्भावान्प्रतिपद्यते । स्वामी प्रयोक्ता । विषयो ज्ञेयः ॥ तत्रावधेः

(१) अवधिज्ञानसे मनः पर्यय ज्ञानका विषय सूक्ष्म है । कार्माण द्रव्य के जिस अंतिम अनंतवें भागको सर्वावधि ज्ञानने विषय कर रक्खा है उस अनतवें भागका भी अनंतवां भाग ऋजुमतिमनः पर्यय ज्ञानका विषय है और जिस अनंतवें भागको ऋजुमतिमनः पर्ययज्ञानने विषय किया है उसका भी अनंतवां भाग जोकि दूर व्यवहित और सूक्ष्म है वह विपुलमतिमनः पर्ययज्ञानका विषय है (देखो सूत्र२७,२८) क्योंकि अनंतके अनंतभेद माने हैं ॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित पच्चीसवां सूत्रपर संस्कृत सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दशः अनुवाद

विशुद्धिः १/१॥ प्रसादः १/१। क्षेत्रम् १/१॥ यत्र * =उज्ज्वलता, निर्मलता है वह विशुद्धि वा प्रसाद है ॥ क्षेत्र वह है जहां तकके
स्थान् ३। भावांन् ३। प्रतिपद्यते T =तिष्ठहुये भावनिकों वा रूपी पदार्थों को प्राप्त होता है अथवा जानता है
प्रयोक्ता १/१। स्वामी १। विषयः १/१। ज्ञेयः १/१। तत्र अवधेः ६।=(ज्ञानोंके) प्रयोग करनेवाला स्वामी है ॥ ज्ञेयवस्तु सो विषय है । तहां अवधि ज्ञानसे

[१] प्रश्नः—शास्त्रों में मनः पर्यय ज्ञान की अपेक्षा अवधिज्ञान का विषय अधिक द्रव्य बतलाया गया है और मनः पर्यय ज्ञानका विषय अल्प द्रव्य कहाहै क्योंकि सर्वावधिके विषयभूत रूपीद्रव्य का अनतवां भाग मनः पर्यय ज्ञानका द्रव्य वा विषय है (सूत्र२८) और यह बात प्रसिद्ध है कि जिसका विषय अधिक द्रव्य होता है वह अधिक विशुद्ध और जिसका विषय न्यून वा अल्प द्रव्य होता है वह अल्प विशुद्ध कहा जाता है अतः अधिक द्रव्यको विषय करने के हेतु मनः पर्ययज्ञान की अपेक्षासे अवधिज्ञान अधिक विशुद्ध है और अल्प द्रव्यको विषय करनेके कारण मनः पर्यय ज्ञान अल्प विशुद्ध है ॥ (उत्तर) संसारमें एक मनुष्य तो ऐसा है जो समस्त शास्त्रोंका व्याख्यान तो कररहा है परन्तु उनका एक देश रूपसेही व्याख्यान करता है, कहां क्या लिखा है, किस रूपसे लिखा है इस प्रकार समस्त रूपसे उनके अर्थका व्याख्यान नहीं करसकता-वैसा करनेमें असमर्थ है । दूसरा मनुष्य ऐसा है कि केवल एकही शास्त्रका व्याख्यान कररहा है परन्तु प्रत्येक अर्थ को भिन्न भिन्न दर्शा कर समस्त रूपसे अर्थ के कहनेमें समर्थ है । इन दोनों प्रकारके मनुष्योंमें पीछे का मनुष्य विशेष विशुद्ध ज्ञान का धारक समझा जाता है उसी प्रकार यद्यपि मनः पर्यय ज्ञानकी अपेक्षा अवधिज्ञान का विषय अधिक द्रव्य है परन्तु वह उसे एक देश स्थूल रूपसे जानता है और मनः पर्यय ज्ञानका विषय अवधिज्ञान के विषय का अनतवां भाग है तो भी वह बहुत से रूप आदि पर्यायों के साथ समस्त रूपसे जानता है इसलिये अवधिज्ञान की अपेक्षा मनः पर्ययज्ञान ही अधिक विशुद्ध है॥

मनःपर्ययो विशुद्धतरः । कुतः । सूक्ष्मविषयत्वात् ॥ क्षेत्रमुक्तं विशेषो वक्ष्यते ॥ स्वामित्वं प्रत्युच्यते ।

मनः पर्ययः ।। विशुद्धतरः ।। कुतः =मनः पर्ययज्ञान अतिशय या अधिकतर विशुद्ध है । क्योंकर (विशुद्धतर है)

सूक्ष्म-विषयत्वात् ।॥ =क्योंकि (मनः पर्ययज्ञानका अवधिज्ञानसे) विषय या जाननेका सूक्ष्म है

क्षेत्रम्-।॥ उक्तम् ।॥ =क्षेत्र (अवधिज्ञान और मनः पर्ययज्ञानका) (पहिले) कहा गया है अर्थात्

ऋजुमतिमनः पर्ययज्ञानका विषय क्षेत्रकी अपेक्षासे जघन्यकरि तीनसे ऊपर नौ से नीचे कोश है । उत्कृष्टकरि तीनसे ऊपर नौसे नीचे (=पृथक्त्व) योजनके भीतर है न कि बाहिर । (विपुलमतिमनः पर्यय ज्ञानका विषय) क्षेत्र (की अपेक्षा) से जघन्यकरि तीनसे ऊपर नौसे न्यून (=पृथक्त्व) योजन प्रमाण है । उत्कृष्टकरि (विपुलमति मनः पर्यय ज्ञानका विषय क्षेत्रकी अपेक्षासे) मानुषोत्तर पर्वतके भीतर भीतर है नकि बाहिर (देखो पृष्ठ ४५४–४५५–टिप्पणी (१) पृष्ठ ४५५की अवश्य देखो) बहुरि "अवधिज्ञानके उत्पत्तिका क्षेत्र त्रसनाली पर्यंत है अर विषयका क्षेत्र सर्वलोक है" अर्थप्रकाशिका सूत्र २५ चारों गतियोंकी अपेक्षासे अवधिज्ञानके क्षेत्रके संबन्धमें (पृष्ठ ४३५, ४३६, ४३७ अवश्य देखो)

विशेषः ।। =विशेष (अर्थात् अवधि मनः पर्ययज्ञानके जानपने का भेद सूत्र २७, २८ में)

वक्ष्यतेT =कहा जायगा भावार्थ अवधिज्ञान और मनः पर्ययज्ञान रूपी पदार्थों को विषय करते हैं सर्वावधि ज्ञानके विषयसे अनन्तवां भाग सूक्ष्म मनःपर्यय ज्ञानका विषय होता है (तदनन्तभागे मनःपर्ययस्य सूत्र २८) ॥

स्वामित्वम् ।॥ =(अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञानमें) स्वामीपन या अधिपतिपन (का भेद)

प्रत्युच्यतेT =कहा जाता है ।

प्रकृष्टचारित्रगुणोपेतेषु वर्तते ऽप्रमत्तादिक्षीणकषायान्तेषु । तत्र चोत्पद्यमानः प्रवर्द्धमानचारित्रेषु न हीयमानचारित्रेषु ।

प्रकृष्ट-चारित्रगुण-उपेतेषु ७। प्रमत्त-आदि- क्षीणकषाय-अन्तेषु ७। वर्तते T	=उत्तम चारित्र गुणको प्राप्त होने पर प्रमत्त (छठे गुणस्थान) से =क्षीणकषाय (बारहवां गुणस्थान) पर्यन्तमें (मनः पर्ययज्ञान) होता है अर्थात् प्रमत्तसंयमी मुनिसे लेकर क्षीणकषाय संयमी मुनियों तकके उक्त ज्ञान होता है
तत्र※ च※ उत्पद्यमानः १।	=तहां (छठे गुणस्थान से बारहवें तक) भी (=च) उपजने वाला वा उपजाऊ (मनः पर्यय)
प्रवर्द्धमान-चारित्रेषु७। न※ हीयमान-चारित्रेषु७।	=बढते हुये वा वृद्धिशील चारित्रों वालोंमें है न कि घटते हुये चारित्रों वालोंमें भावार्थ छठे गुणस्थान वर्तीनि से बारहवां गुणस्थान वर्तीनि में भी सब कें मनः पर्ययज्ञान नहीं होता है वरन कषायोंकी दिनोंदिन मंदतासे बढते हुये चारित्र के ही धारक मुनियोंकेही होता है और कषायोंकी उत्कटतासे घटते हुये चारित्रवाले मुनियोंकें कदापि उक्तज्ञान नहीं होता है

(१) अवधिज्ञान और मनः पर्ययज्ञानके स्वामित्वके अंतर दिखानेमें यह भेद लिख देना भी उचित है कि अवधिज्ञानका स्वामी अपर्याप्त अवस्था वाला जीव होसक्ता है परंतु अपर्याप्त अवस्था वाला जीव मनः पर्ययज्ञानका स्वामी नहीं होसक्ता अर्थात् जीवके अवधिज्ञान अपर्याप्त अवस्थामे हो सक्ता है मनःपर्ययज्ञान नहीं होसक्ता है (सामान्यसे अवधिज्ञानके देशावधि, परमावधि, सर्वावधि तीन भेद होते हैं। भवप्रत्ययअवधि नियमसे देशावधि ही होता है। और दर्शनविशुद्धि आदि गुणोके निमित्तसे होने वाला गुणप्रत्यय अवधिज्ञान देशावधि परमावधि सर्वावधि ऐसें तीनो प्रकारका होता है। जघन्य देशावधिज्ञान संयत तथा असंयत दोनोंही प्रकारके मनुष्य तथा तिर्यचोके होता है। उत्कृष्ट देशावधिज्ञान संयत जीवोंके ही होताहै किन्तु परमावधि और सर्वावधि चरमशरीरी और महाव्रतीकेही होता है। देशावधिज्ञान प्रतिपाती होता है (=सम्यक्त्व और चारित्रसे च्युत होकर मिथ्यात्व और असंयमकी प्राप्ति) और परमावधि तथा सर्वावधि अप्रतिपाती होते हैं। देशावधि परमावधिके जघन्य मध्यम उत्कृष्ट भेद सभवे हैं किन्तु सर्वावधिज्ञानमें जघन्य मध्यम उत्कृष्ट भेद नहीं हैं – वह निर्विकल्प है ॥

"भवानुगामी अवधिज्ञान अपर्याप्त अवस्थामे व्यक्तिरूपसे रहता है जैसेकि तीर्थकरोके पूर्ण श्रुतज्ञान जन्म समयमें भी होता है। किन्तु द्रव्य क्षेत्रकी सामग्रीके न मिलनेसे अपर्याप्त अवस्थामे स्फूर्ति अल्प होती है अविभाग प्रतिच्छेद भी श्रुतकेवलीके श्रुतज्ञानसे कम होते हैं तद्वत् सम्यग्दृष्टि देव नारकियों के अपर्याप्त अवस्थामें भी अवधिज्ञान होता है और वह व्यक्त है" विद्वद्वर्य पं० माणिकचंद मोरेना से प्राप्त ॥

प्रवर्द्धमानचारित्रेषु चोत्पद्यमानः सप्तविधान्यतमर्द्धिप्राप्तेषूपजायते नेतरेषु। ऋद्धिप्राप्तेषु केषुचिन्न सर्वेष्विति ॥

प्रवर्द्धमानचारित्रेषु ७। च॥ उत्पद्यमानः १।	=बढ़ते हुये चारित्र (वाले) निमें भी उपजने वाला वा उपजाऊ (मनः पर्ययज्ञान)
सप्तविध-अन्यतम-ऋद्धि-	=सात प्रकारकी (=विध) ऋद्धियोंमे से कोई एक (=अन्यतम ऋद्धि)
प्राप्तेषु ७। उपजायतेT न॥ इतरेषु ७।	=प्राप्त होने (वालों) मे उपजता है नकि अन्योंमे (=विना ऋद्धि प्राप्त वालोंमे)
ऋद्धि-प्राप्तेषु ७। केषुचित॥ न॥ सर्वेषु ७। इति॥	=ऋद्धप्राप्त वालोंमे केईकनि मे (मनः पर्ययज्ञान) होय नकि सबमे ॥

(२) अन्यतमर्द्धि=अन्यतम + ऋद्धि [देखो टिप्पणी (१) पृष्ठ ७४] (३) उपजायते·— इस शब्दमें 'जन्' चतर्थ दिवादि गणका आत्मक आत्मने पदी धातुहै चतर्थगणका 'य' विकरण (अर्थात वह अक्षर है जो रूप वनाने से प्रथम धातुमें जोडा जाता) है। 'जन्' का विना किसी नियमके रूपोंके वनानेमें 'जा' होजाता है इस जा में य लगानेसे 'जाय' होजाता है। पश्चात एक वचन अन्यपुरुष आत्मनेपदी वर्तमान कालका द्योतक 'ते' प्रत्यय लगानेसे जायते वनजाता है अर्थ "होता है" ऐसाहै (वेद्य संस्कृत कोश पृष्ठ २८३) 'उप' उपसर्गके जोडने से 'उपजायते' (=उपजताहै) वनता है ॥ स्मरण रहे कि 'जन' धातुके जन्यते, जायते दो रूप कर्मणि प्रयोगमें वनते हैं॥ ऐसेकि जन्-जा में कर्मणि प्रयोगका 'य' जोडने से और पश्चात् उक्त, 'ते' आतमनेपदी एक वचन वर्तमानकाल अन्य पुरुषका प्रत्यय लगाकर 'जा+य+ते' जायते जन्+य+ते=जन्यते वनजाते हैं॥ अर्थ उत्पन्न किया जाता है ऐसा है॥

(१) जहां पर विशिष्ट वा प्रवर्द्धमान संयम होगा वहीं मनःपर्ययज्ञान होगा अन्यत्र नहीं। इसकी विशेष व्याख्या इस प्रकार है कि मनः पर्यय ज्ञानकी उत्पत्ति मनुष्योंके ही होती है देव नारकी और तिर्यचोंमें नहीं होती। मनुष्योंमें भी गर्भज मनुष्योंमें ही होती है संमूर्छनज मनुष्यों मे नहीं होती। (राजवार्तिक पृष्ठ ५९)

गर्भज मनुष्योंमे भी कर्म भूमिके मनुष्योंके ही होती है भोगभूमिके मनुष्योंम नहीं हो सकती। कर्म भूमिके मनुष्योंमे भी छहौ पर्याप्ति पूर्ण होने से जो पर्याप्तक हैं उन्हींके होती है अपर्याप्तकों के नहीं। पर्याप्तकोंमे भी सम्यग्दृष्टियोंके ही वह उत्पन्न-होताहै, मिथ्यादृष्टि सासादनसम्यग्दृष्टि सम्यङ्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानवर्तियों के नहीं। सम्यग्दृष्टियों मे भी जो मनुष्य सयमी है उन्हीं के होता है असंयत सम्यग्दृष्टि चतुर्थ गुणस्थानवर्तियो और संयतासंयत पांचवें गुणस्थानवर्तियोके नही। संयमियों में भी छठे गुणस्थान प्रमत्तसे वारहवें क्षीणकषाय गुणस्थान पर्यंत सयमियोंके ही होता है। वारहवें गुणस्थानके आगेके गुणस्थानोंमें रहने वाले संयमियों के नहीं। छठे गुणस्थान से वारहवें गुणस्थानतक होनेपरभी जिनका चारित्र कषायोंकी दिनों दिन मंदतासे दिनोंदिन वर्धमान है उन्हींके होता है किन्तु कषायोंकी उत्कटतासे जिनका चारित्र हीयमान है मद होता चला जाता है।

अस्य स्वामिविशेषविशिष्टसंयमग्रहणं वाक्ये कृतम् ॥

अस्य ॥ स्वामिविशेष-विशिष्टसंयम-	=इस (मनः पर्यय) के (अवधि से) स्वामीके भेदमें विशिष्ट संयम (=विलक्षण चारित्र) का
ग्रहणं ॥ वाक्ये ॥ कृतम् ॥	=ग्रहण वाक्य ('प्रकृष्टचारित्रगुणोपेतेषु वर्तते' इस वाक्य) में किया है (नकि सूत्रमें)

भावार्थ मनः पर्ययज्ञान की उत्पत्तिमें विशिष्ट संयमका ग्रहण प्रधान हेतु है

उनके नहीं होता। प्रवर्धमान चारित्रवालोंमे भी सात प्रकारकी (बुद्धि-तप-वैक्रियिक-औषध-रस-बल-अक्षीण) की ऋद्धियोंमें जिनके कोई एक ऋद्धि होगी उन्हींके होता है किंतु जिनके कोई प्रकारकी ऋद्धि नहीं है उनके नहीं होता है। तथा ऋद्धि धारक पुरुषोंमें भी किन्हीं किन्हींके होता है सबोंके नहीं होता। इस प्रकार मनः पर्यय ज्ञानकी उत्पत्तिमें विशिष्ट संयमका ग्रहण प्रधान कारण बतलाया है। परंतु अवधिज्ञान देव मनुष्य तिर्यंच और नारकी चारों गतियोंके जीवोंके होता है इस रूपसे अवधि और मनः पर्ययके स्वामियोंका भेद होनेसे भी दोनों ज्ञानोंमें भेद है ॥

(१) अस्यायं स्वामिविशेषः विशिष्टं संयमग्रहणं वा प्राक्कृतम् ॥ इत्येकः पाठः ॥ अस्यायं स्वामिविशेषः विशिष्ट संयतग्रहणं वा कृतं न सूत्रे ॥ इत्यप्यन्यः पाठः पुस्तकान्तरे विद्यते ॥

अस्य ॥ अयम् ॥ स्वामी विशेषः ॥ विशिष्टं ॥ वा संयम	=इस (मनः पर्ययज्ञान) के यह स्वामीका विशेष अथवा विशिष्ट-संयमका
ग्रहणं ॥ प्राक्-कृतम् ॥	=ग्रहण पहिले (अर्थात् सर्वार्थ सिद्धिकी वृत्ति "प्रकृष्ट चारित्र गुणोपेतेषु" में) किया है
इति एकः ॥ पाठः ॥ अस्य ॥ अयम् ॥ स्वामिविशेषः ॥	=ऐसा एक पाठ है। इस मनः पर्ययज्ञानके यह स्वामीका विशेष वा भेद
वा विशिष्ट-संयतग्रहणं ॥ कृतम् ॥ न सूत्रे ॥	=वा विशिष्ट संयमका ग्रहण(तत्त्वार्थ)सूत्रमें नहीं किया है (वाक्य वा वृत्तिमे किया है)
इति अपि अन्यः ॥ पाठः ॥ पुस्तक-अन्तरे विद्यते ॥	=ऐसे भी दूसरा पाठ अन्य पुस्तक (सर्वार्थसिद्धिकी दूसरी प्रति) में विद्यमान है

इन तीनों वाक्योके हिंदी अनुवादसे प्रगट है कि संस्कृतके ऊपरके वाक्य और टिप्पणीके दो वाक्योंका आशय एकसा है ॥ तत्त्वार्थराजवार्तिकमें इस २५वां सू.की "विशिष्टसंयमगुणैकार्थसमवायी मन पर्ययः दूसरी वार्तिक है ॥ अर्थ—विशेष रूप संयम गुणकरि एकार्थ समवायी मनः पर्यय ज्ञान है अर्थात् मनःपर्ययज्ञानका अविनाभाव विशिष्ट संयम गुणके साथ है। इसकी वृत्ति 'विशिष्टः संयम गुणो यत्रविद्यते तत्रैव वर्तते मनः पर्ययः' है जहां विशुद्ध संयम हो तहां ही मनः पर्ययज्ञान प्रवर्ते है (अन्यत्र नहीं) ॥ इसी वृत्तिमे 'विशिष्टसंयमग्रहणं वाक्ये कृतम्' का अर्थ पन्नालाल दूनी जीने "यातै विशिष्ट संयम पदका ग्रहण वाक्यमें है" यहां वाक्यका अर्थ 'वार्तिकमें है' अथवा 'वृत्तिमें है' होगा क्योंकि विशिष्टसंयम पद वृत्ति वार्तिक दोनोमे आया है विशिष्टसंयम, प्रकृष्ट चारित्र, विशुद्धसंयम वा विशुद्ध चारित्र एकार्थवाची है ॥ हमारी समझमें जैसा अर्थ आया वही लिखा

अवधिः पुनश्चातुर्गतिकेष्विति स्वामिभेदादप्यनयोर्विशेषः ॥ इदानीं केवलज्ञानलक्षणाभिधानं प्राप्तकालं तदुल्लंघ्य ज्ञानानां विषयनिबन्धः परीक्ष्यते ॥ कुतः? । तस्य मोहक्षयात ज्ञानदर्शनावरणान्तरायक्षयाच्च केवलमित्यत्र वक्ष्यमाणत्वात् ॥ यद्येवमाद्ययोरेव तावन्मतिश्रुतयोर्विषयनिबन्ध उच्यतामित्यत आह-

पुनः॰ अवधिः १। चातुर्गतिकेषु ७। इति॰	=परंतु (=पुनः) अवधिज्ञान चारों गतिवालोंमें है इस प्रकार
स्वामिभेदात् ५। अपि॰ अनयोः ६॥ विशेषः १।	=स्वामी विशेषसे भी दोनो (अवधिज्ञान तथा मनः पर्ययज्ञान) में भेद है अर्थात् मनः पर्ययज्ञान तो केवल विशिष्ट संयम धारक मुनियों के ही होता है परंतु अवधिज्ञान देव मनुष्य तिर्यंच और नारकी चारों गतियों के जीवों के होता है इस प्रकार अवधि और मनः पर्ययके स्वामियोंका भेद होनेसे भी दोनों ज्ञानोंमें भेद है
इदानीं॰ केवलज्ञान-लक्षण-अभिधानं१॥ प्राप्तकालं१॥	=अत्र (=इदानीम्) केवलज्ञानके स्वरूपके कथनका अवसर प्राप्त है
तद्-उल्लंघ्य – ज्ञानानां६॥ विषयनिबन्धः१। परीक्ष्यते T	=उसको छोड़कर (=उल्लंघ्य) ज्ञानोके विषयोंकी सीमा वा नियम परखा जाय है
कुतः ॰	=(केवल ज्ञानके स्वरूपके कथनको छोडकर ज्ञानोंके विषय नियम) क्यों (कहते हैं)
तस्य ६॥ मोह-	=(उत्तर) क्योकि तिस (केवलज्ञान) के (लक्षण अभिधानको) मोहनीय कर्मके
क्षयात् ५। च॰ ज्ञानदर्शन-आवरण-	=नाश होने (के हेतु) से और (=च) उसके पश्चात् ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय
अन्तराय-क्षयात् ५। केवलम् १॥ इति॰	=अन्तराय कर्मोंके क्षय होने (के निमित्त) से केवलज्ञान होता है इस प्रकार
अत्र॰ वक्ष्यमाणत्वात् ५॥	=यहां (अर्थात् दशवां अध्यायके प्रथम सूत्रमें) कहा जायगा
यदि॰ एवम्॰ आद्ययोः ६॥ एव॰ तावत्॰	=जो ऐसे है तो (=तावत्) आदिके दोही (=एव)
मतिश्रुतयोः ६॥ विषय-निवन्धः १। उच्यताम् T इति	=मतिज्ञान, श्रुतज्ञानके विषयका नियम (=निबन्ध) कहा जाना चाहिये
अतः॰ आह T	=इस लिये (आचार्य) कहते हैं कि

(१) पुनः = परंतु – किंतु (" पुनरप्रथमे भेदे तथा पक्षांतरेऽपिच " इत्यमरः सार. ॥ पुनर् अप्रथमे भेदे पक्षांतरे अपि च ॥

मतिश्रुतयोर्निबन्धो द्रव्येष्वसर्वपर्यायेषु ॥ २६ ॥

सूत्रम्— मतिश्रुतयोर्निबन्धो द्रव्येष्वसर्वपर्यायेषु	=मतिश्रुतयोः विपयस्यनिवन्धः द्रव्येषु असर्व-पर्यायेषु भवति
सूत्रार्थः मतिश्रुतयोः ६॥ विपयस्य ६। निवन्धः १।	=मतिज्ञान और श्रुतज्ञानके विपयका सम्बन्ध वा नियम (=निवन्ध)
द्रव्येषु ७॥	=द्रव्य (जीव-अजीव-धर्म-अधर्म-आकाश-काल) निकेविपैं
असर्व-पर्यायेषु ७॥ भवति T	=कुछ एक, कतिपय, कितनेक, (न कि सव) पर्यायोंमें होता है अर्थात् मतिज्ञान और श्रुत ज्ञानके जानने (=विपय) का संवन्ध सव (छहो) द्रव्योंके कुछ पर्यायों में होता है—छहो द्रव्यों को तो जानते हैं परंतु उनकी थोडी सी पर्यायोंको ही जान सकते हैं ॥

(१) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य तत्त्वार्थाधिगमसूत्रम्में 'द्रव्येष्व' के स्थानमें 'सर्वद्रव्येष्व' है । शेप पाठ एक है अर्थ भी एकसा है क्योंकि हमारे यहां 'द्रव्येषु' का अर्थ सर्वद्रव्येषु लिया है ॥ उक्त सभाष्य०में इस सूत्रकी संख्या सत्ताईसवीं है क्योंकि हमारे यहांके इक्कीसवां सूत्रके सभाष्य०में दो सूत्र कर दिये हैं ॥

(२) हमारे यहांकी वहुधा पुस्तकोंमें 'निवन्ध' शव्दका उल्लेख है किसी किसी प्रतिमें 'निवंध' है । अष्टाध्यायीके निम्न सूत्रोंसे निवध भी ठीक है ॥ पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ२१४में "निवन्ध, (पु०) नि+वन्ध्+घञ्" ऐसा उल्लेख है अव प्रश्न यह है कि इस अपदान्त 'न्'का अनुस्वारमें कैसे परिवर्तन हुआ ॥

अपदान्त म्-न् ॥ "नश्चापदान्तस्य झलि" यह अष्टाध्यायीके आठवां अध्यायका तीसरे पादका चौवीसवां सूत्र है । इस सूत्रसे पहिलेका सूत्र "मोऽनुस्वारः" तेईसवां है । इससे अनुस्वारकी अनुवृत्ति चौवीसवां सूत्रमें आती है । तव चौवीसवां सूत्रका रूप इसप्रकार होजाता है कि "नः च अपादन्तस्य झलि (अनुस्वार) । च से तेईसवां सूत्रके मो (=मः) का आकर्षण होता है । इसलिये ऐसा रूप हुआ कि "नः१ मः १ अपादन्तस्य ६ झलि७ अनुस्वारः१) झलि प्रत्याहार है और उसमें झल्के मध्यके अक्षर झ सहित सर्व आजाते हैं । अर्थात् क् ख् ग् घ् । च् छ् ज् झ् । ट् ठ् ड् ढ् । त् थ् द् ध् । प् फ् व् भ् । श् प् स् ह्—झलिका अर्थ है इन चौवीस अक्षरोंके पहिले आने वाला । अपादन्त=विभक्ति वा कारक जिसके अंतमें नहो । सूत्रका अर्थ यह हुआ कि अपदान्त न् अथवा अपदान्त म् के स्थानमें अनुस्वार होवे यदि म् अथवा न् पूर्वोक्त चौवीस अक्षरोंमेंसे किसी अक्षरके पहिले हो । इसलिये निवन्धके न् का अनुस्वार होकर 'निवंध' होगया क्योंकि न् के पीछे ध् है ॥ अन्य उदाहरण, जैसे यशानस्+इ यशांसि, यह यशांसि, यश नपुंसक लिंगीका वहुवचन है यहां अपदान्त न् का अनुस्वार होगया, यशांसि का अर्थ है वहुत यश ॥ आ+क्रम्+स्यते, क्रम धातुके म् का अनुस्वार होकर आक्रंस्यते (=वह पकड़ैगा विजय, करेगा, जीतैगा) होगया ॥ देखो टिप्पणी पृष्ठ ५ और ६, पृष्ठ ५४०, ५४१)

निवन्धनं निबन्धः । कस्य विषयस्य । तद्विषयग्रहणं कर्तव्यम् । न कर्तव्यम् ॥ प्रकृतं विषयग्रहणं । क्व प्रकृतं ? विशुद्धिक्षेत्रस्वामिविषयेभ्य इत्यतस्तस्यार्थवशाद्विभक्तिपरिणामो भवतीति विषयस्येत्यभिसम्बध्यते ॥ द्रव्येष्विति बहुवचननिर्देशः सर्वेषां जीवधर्माधर्माकाशपुद्गलानां संग्रहार्थः । तद्विशेषणार्थमसर्वपर्याय—

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित छव्वीसवा सूत्रपर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दशः अनुवाद

निबन्धनम् १/१।। निबन्धः १/१।	=लगाव (=निबन्धन, जो) है सो निबन्ध है अर्थात् विषयभूत सम्बन्ध है भावार्थ सूत्रमें निबन्ध शब्द है उसका अर्थ संबन्ध है और 'निबन्धनं निबन्ध' उस निबन्ध शब्दकी व्युतपत्ति वा व्याकरण की रीति से उत्पत्ति है वा निकास है।
कस्य ६/१। विषयस्य ६/१।	=(प्रश्न) किसका (निबन्ध) (उत्तर) विषयका (निबन्ध) ॥ (प्रश्न) उस
विषय-ग्रहणं १/१।।। कर्तव्यम् १/१।।। तद्- न* कर्तव्यम् १/१।।।	=विषय (शब्द) का ग्रहण (इस सूत्रमें) करना योग्य था। (उत्तर) नहीं करना योग्य था
विषय-ग्रहणं १/१।। प्रकृतं १/१।।।	=विषय (शब्द) का ग्रहण (इस सूत्रमें) प्रकरण प्राप्त (=प्रकृतं) है
प्रकृतं १/१।।। क्व ? विशुद्धिक्षेत्रस्वामिविषयेभ्यः ५/३।	=(प्रश्न) प्रकरण प्राप्त कहां है। (उत्तर) 'विशुद्धिक्षेत्रस्वामिविषयेभ्यः'
इति* अतः* तस्य ६/१।	=ऐसा (वाक्य पचीसवां सूत्रमें) है। इस लिये तिस (विषय शब्द) के
अर्थ-वशात् ५/१।	=आशय वा तात्पर्य के आश्रय से (अर्थात् जहां जैसा अर्थ लिया जाता है वहां वैसाही)
विभक्तिपरिणामः १/१। भवति T इति*	=विभक्तिका परिवर्तन वा विपरिणाम वा परिणमन होजाता है। ऐसे
विषयस्य ६/१।	=(इस सूत्रके मतिश्रुतयोः और निबन्ध शब्दोके बीचमें) विषयस्य
इति* अभिसम्बध्यते T द्रव्येषु ७/३।।। इति*	=ऐसा (पद) लगाया गया है वा जोड़ा गया है। द्रव्येषु (=द्रव्योंके विषैं) ऐसा
बहुवचन-निर्देशः १/१। सर्वेषाम् ६/३।	=बहुवचनका जतलाने वाला वा बहुवचनका निर्देशक (वाक्य) सब
जीव-धर्म-अधर्म-आकाश-काल-पुद्गलानाम् ६/३। संग्रह-	=जीवद्रव्य, धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य, कालद्रव्य पुद्गलोंके समुच्चयके
अर्थः १/१। तद्-विशेषण-अर्थम् १/१।।। असर्वपर्याय—	=अर्थ है। उन (द्रव्यो) के विशेषणके लिये असर्वपर्याय (वाक्य) का

ग्रहणम् ॥ तानि द्रव्याणि मतिश्रुतयोर्विषयभावमापद्यमानानि कतिपयैरेव पर्यायैर्विषयभावमास्कन्दन्ति न सर्वपर्यायैरनन्तैरपीति ॥ अत्राह–धर्मास्तिकायादीन्यतीन्द्रियाणि तेषु मतिज्ञानं न प्रवर्तते। अतः सर्वद्रव्येषु मतिज्ञानं वर्तत इत्युक्तम् ॥ नैष दोषः। अनिन्द्रियाख्यं करणमस्ति तदालम्बनो नोइन्द्रियावरणक्षयोपशमलब्धिपूर्वक उपयोगोऽवग्रहादिरूपः प्रागेव–

	=ग्रहण है अर्थात् द्रव्येषु शब्द विशेष्य है और असर्वपर्यायेषु विशेषण है
ग्रहणम् १।।	
तानि १।।। द्रव्याणि १।।। मतिश्रुतयोः ६।। विषयभावम् २।	=ते द्रव्य मति श्रुतज्ञानके विषय भावको
आपद्यमानानि १।।। कतिपयैः ३। एव* पर्यायैः ३।	=प्राप्त हुये (अपने अपने) कितनेंकही पर्यायोंकरि
विषयभावम् २। आस्कन्दन्ति T न*	=विषयभावकों प्राप्त होते हैं न कि
सर्वपर्यायैः ३। अनन्तैः ३। अपि* इति*	=अनन्त सब पर्यायों सहित ही (=अपि) (मतिश्रुतज्ञानके विषय भावको प्राप्त होते हैं)
	सारांश–मतिज्ञान श्रुतज्ञान सब द्रव्यों की कुछ ही पर्यायोंको विषय करते हैं सर्व वा अनंत पर्यायोंको विषय नहीं करते हैं ॥
	=यहां प्रश्न करता है (=आह) कि धर्मास्तिकाय आदिक (अधर्म आकाश काल मोक्षजीव)
अत्र* आह T धर्मास्तिकायादीनि १।।।	
अतीन्द्रियाणि १।।।	=अतीन्द्रिय (पदार्थ) हैं अर्थात् इन पदार्थोंको इन्द्रियें ग्रहण नहीं कर सकती हैं
तेषु ७।।। मतिज्ञानम् १।। न* प्रवर्तते T	=तिन (धर्मास्तिकायादिक) में मतिज्ञान (जो इन्द्रियों द्वारा होता है) नहीं प्रवर्तता है
अतः* सर्वद्रव्येषु ७।।। मतिज्ञानम् १।। वर्तते T	=इसलिये सब (छहो) द्रव्योंमें मतिज्ञान प्रवर्तता है
इति* अयुक्तम् १।।। न* एषः १। दोषः १। अनिन्द्रिय-	=ऐसा (कथन) ठीक नहीं है। (उत्तर) यह दूषण नहीं है। (क्योंकि) मन (अनिन्द्रिय)
आख्यम् १।।। करणम् १।।। अस्ति T तद्-	=नामा (=आख्यं) (अंतरंग) करण वा इन्द्रिय है (द्रव्यमन है) उस (मन) के
आलम्बनः १।	=निमित्तक वा कारणक (तद्-आलम्बन अर्थात् मन है निमित्त वा हेतु जिसको ऐसा)
नो-इन्द्रिय-आवरण-क्षयोपशम-लब्धि-पूर्वकः १।	=श्रुत(नोइन्द्रिय)ज्ञानावरणकर्मके क्षयोपशमकी प्राप्तिपूर्वक(लब्धिहै निमित्त जिसको ऐसा)
उपयोगः १। अवग्रह-आदिरूपः १। प्राक्* एव*	=उपयोग (है सो) अवग्रह-ईहा-आवाय-धारणा (चतुष्टय) स्वरूप पहिले ही

उपजायते ततस्तत्पूर्वं श्रुतज्ञानं तद्विषयेषु स्वयोग्येषु व्याप्रियते ॥ अथ मतिश्रुतयोरनन्तरानिर्देशार्हस्यावधेः को विषयनिबन्ध इत्यत आह--

उपजायते T ततस॥ तत्- =उपजता है। पश्चात् (ततःदेखो वैद्य कोश पृष्ठ ३००) उम (अवग्रह आदिरूप उपयोग) के

पूर्वम् ꠰।॥ =निमित्तक (अर्थात अवग्रह-ईहा-अवाय-धारणारूप उपयोग है कारण जिसको ऐसा)

श्रुतज्ञानम् ꠰।॥ स्वयोग्येषु ꠰। तद्- =श्रुतज्ञान अपने योग्य उन धर्मास्तिकाय अतीन्द्रिय पदार्थों) के

विषयेषु ꠰। व्याप्रियते T =विषयोंमें (अर्थात ग्रहण करनेमें) प्रवर्तता है ॥ सारांश यहहै :— प्रश्न करनेपर कि धर्मास्तिकाय पदार्थ इन्द्रिय गोचर नहीं है इन्द्रयोंकी अपेक्षा रखने वाले मतिज्ञानकी, उनके जानने में प्रवृत्ति नहीं हो सकती इसलिये सब द्रव्यों को मतिज्ञान जानता है, यह कहना ठीक नहीं है उत्तरमें कहतेहैं कि. धर्मास्तिकाय आदि पदार्थोंके ज्ञानमें मन कारण है श्रुतज्ञानावरण (=नोइन्द्रियज्ञानावरण) कर्मकी क्षयोपशम लब्धिरूप विशुद्धिके रहनेपर उससे धर्मास्तिकाय आदि अतीन्द्रिय पदार्थों का अवग्रह ईहा अवाय धारणा स्वरूप उपयोग प्रथम ही होलेता है उसके पीछे श्रुतज्ञान की अपने योग्य धर्मास्तिकाय अतीन्द्रिय विषयोंमें प्रवृत्ति होती है इसलिये धर्मास्तिकाय आदि अतीन्द्रिय पदार्थोंका ज्ञान जब मनसे होता है तब यह मतिज्ञान नहीं है क्योंकि मनसे भी मतिज्ञान होता है ॥

अथ॥ मतिश्रुतयोः ꠰।॥ अनन्तर- =अब मतिज्ञान और श्रुतज्ञानके निकट अथवा लगताही

निर्देश-अर्हस्य ꠰। अवधेः ꠰। कः ꠰। =निरूपण वा कथन करने (=निर्देश) योग्य (=अर्हस्य) अवधिज्ञानके क्या-

विषयनिबन्धः ꠰। इति॥ अतः॥ आह T =विषयका नियम है ऐसा (प्रश्न) है ॥ इसलिये कहते हैं कि

---

(१) "तत्पूर्व" वाक्यमें 'पूर्व'शब्दका प्रयोग उसही भांति है जैसेकि 'श्रुतमति पूर्व द्व्यनेक द्वादश भेदम्' सूत्रमें अर्थात् पूर्वम् =पूर्वकम्

(२) व्याप्रियते– पृ तुदादि छठे गणका यहां पर अकर्मक आत्मने पदी धातु है इसके साथ बहुधा वि, आ (अर्थात् व्या) उपसर्ग आते हैं पृ का प्रिय् हो जाता है व्या और छठे गणका 'अ' विकरण जोडनेसे 'व्याप्रिय' होजाता है पश्चात् एकवचन अन्य पुरुष आत्मने पदी वर्तमान कालका 'ते' प्रत्यय लगाकर कर्तरिप्रयोगमें "व्याप्रियते" बनता है। कर्मणिप्रयोग मे 'पृ' का 'प्रि' होजाता है 'य' कर्मणिप्रयोगका प्रत्यय जोड़ो, व्या+प्रिय, पीछे उक्त 'ते' जोड़ो, व्याप्रियते हो जाता है ॥ यहां वृत्ति में कर्तरि प्रयोग मे इस शब्द को लाये हैं।

रूपिष्ववधेः ॥ २७ ॥

विषयनिबन्ध इत्यनुवर्तते ।

रूपिष्ववधेः	=रूपिषु (असर्व-पर्यायेषु) अवधेः (विषय-निबन्ध भवति)
रूपिषु ७। असर्व-पर्यायेषु ७।	=मूर्तीक (पदार्थ) निके (विषै) कितनेक वा थौड़े (नकि सब) पर्यायों में
अवधेः ६। विषय-निबन्धः १। भवति T	=अवधि ज्ञानके विषयका सम्बन्ध होता है - सारांश यहहै कि पुद्गल द्रव्यके अनंते पर्याय अवधिज्ञानके विषयभूत नहींहैं किन्तु उसके कतिपय पर्यायोंको और जीवके औदयिक औपशमिक क्षायोपशमिक परिणामोंको ही (अवधिज्ञान) विषय करताहै क्योंकि रूप रस गंध स्पर्श विशिष्टही पदार्थ अवधिज्ञानके विषय होते हैं अतः जीवके क्षायिक और पारिणामिक भाव तथा धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य, आकाशद्रव्य, कालद्रव्य अरूपीपदार्थ होनेके निमित्त अवधिज्ञान के विषयभूत नहीं होसकते

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित सत्ताईसवां सूत्र पर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दशः हिन्दी अनुवाद

विषयनिबन्धः १। इति* अनुवर्तते T	=विषयका निबन्ध ऐसी अनुवृत्ति (इस सूत्रमें) पच्चीसवां और छब्बीसवां सूत्रसे यथासंख्य आतीहै तबसूत्र "रूपिष्ववधेः विषयनिबन्धेः" ऐसा हुआ

---

(१) रूपमे रूप रस गंध स्पर्शका ग्रहण समझना चारोंही अविनाभावी हैं। अतः एकके ग्रहणसे चारोंका ग्रहण होता है। तत-वितत छै भांति शब्दहैं।

(२) इस सूत्रका का पाठ हमारे यहां सर्वत्र और श्वेताम्बर अम्नायके सभाष्य तत्त्वार्थअधिगमसूत्रमें एकहै और अर्थभी दोनों सम्प्रदायमे एकसा है।

(३) "रूपिष्ववधे": सूत्रमें रूपशब्द उपलक्षण है। इसलिये रूप शब्दके कहनेसे उसके अविनाभावी (=जुदे न रह सकने वाले) रस गंध स्पर्शका भी ग्रहण है ॥ "अजहत्स्वार्थलक्षणयाऽन्यग्राहकम्", उपलक्षणम्। अजहत्स्वार्थलक्षणया (=अपने अर्थको न छोडकर) जो दूसरे पदार्थोंका ग्रहण करनाहै उसका नाम उपलक्षणहै जिस प्रकार 'काकेभ्यो दधि रक्ष्यतां' कोओंसे दहीकी रक्षा करो। यहां पर काक शब्द उपलक्षण है इसलिये जितने भी जीव दहीके विघातक हैं उन सबका काक शब्दसे ग्रहण है उसी प्रकार प्रकृतमें रूप शब्दको उपलक्षण माननेसे जितने उस रूपके अविनाभावी रस गंध स्पर्श गुणहैं उन सबका रूप शब्दसे ग्रहण है ॥

रूपिष्वित्यनेन पुद्गलाः पुद्गलद्रव्यसम्बन्धाश्च जीवाः परिगृह्यन्ते । रूपिष्वेवावधेर्विषयनिबन्धो नारूपेष्विति नियमः क्रियते । रूपिष्वपि भवन्न सर्वपर्यायेषु स्वयोग्येष्वेवेत्यवधारणार्थमसर्वपर्यायेष्वित्यभिसम्बध्यते ॥ अथ तदनन्तरनिर्देशभाजो मनःपर्ययस्य को विषयनिबन्ध इत्यत आह—

रूपिषु ७। इति॰ अनेन ३। पुद्गलाः १। च॰ पुद्गलद्रव्य-सम्बन्धाः १। जीवाः १। परिगृह्यन्ते T रूपिषु ७। एव॰	=रूपी (पदार्थ) निमें ऐसे इस (शब्द) करि पुद्गल और पुद्गल द्रव्यके संयोगी जीव लिये गये हैं वा ग्रहण किये गये हैं। रूपी (पदार्थ) निमें ही
अवधेः ६। विषयनिबन्धः १। न॰ अरूपिषु ७।	=अवधिज्ञानके विषयका (सम्बन्ध) है न कि अमूर्तियों में
इति॰ नियमः १। क्रियते T रूपिषु ७। अपि॰ भवत्[1] १।	=ऐसा नियम कियागया है। रूपी (पदार्थ) निमेंभी (अवधिज्ञानका विषय) होता हुआ
न॰ सर्वपर्यायेषु ७। स्वयोग्येषु ७। एव॰	=असमस्त (कितनेक) पर्यायोंमें अपने योग्यही है अर्थात् पुद्गल द्रव्यके कतेकपर्यायों में और पुद्गल संयोगी जीवके औदयिक औपशमिक क्षायोपशमिक परिणामों को ही अवधिज्ञान को विषय करनेकी योग्यता है (देखो सूत्रार्थ पृष्ठ ४७१)
इति॰ अवधारण-अर्थम् १॥ असर्वपर्यायेषु ७।	=ऐसा निश्चय करने के लिये (=अवधारण-अर्थम्) असर्वपर्यायेषु
इति॰ अभिसम्बध्यते T	=ऐसा (वाक्य सूत्रमें) लगाया गया है अर्थात् विषय शब्दकी अनुवृत्ति पचीसवां और 'निबन्ध' शब्दकी और 'असर्वपर्यायेषु' वाक्यकी अनुवृत्ति छब्बीसवां सूत्रसे लीगई तब सूत्र ऐसा हुआ कि 'असर्वपर्यायेषुरूपिष्ववधेः विषयस्सनिबन्धः'
अथ॰ तद्-अनन्तर निर्देशभाजः ६।	=अब उस (अवधिज्ञान) के लगता ही (=अनन्तर) कहने योग्य (=निर्देशभाजः)
मनः पर्ययस्य ६। विषयनिबन्धः १। कः १। इति अतः आह	=मनः पर्यय (ज्ञान) के विषयका नियम क्या है इसलिये कहते हैं कि

(१) 'भवत्'-'भू' धातुका वर्तमान कृदन्त है। बहुधा वर्तमान कृदन्त ऐस बनाये जाते हैं कि धातुका वह रूप लेलो जो अन्यपुरुष बहुवचन वर्तमान कालके प्रत्यय लगाने से पहिले बन जाता है। इसके पश्चात् वर्तमान कृदन्तका अत् यदि धातु परस्मैपदमें हो और (वर्तमान कृदन्तका) मान प्रत्यय यदि धातु आत्मने पदमें हो, जोड़ा जाय। अब भू को गुणसंज्ञा भो हुआ, भव्...हुआ प्रथम गणका अ विकरण लगाने से भव हुआ, अत् जोड़ने से भव+अत् हुआ, यदि प्रत्यय के आरम्भमें अ हो तो उससे पहला 'अ' गिरा देते हैं अतः भवत् हुआ ॥

तदनन्तभागे मनः पर्ययस्य[1] ॥ २८ ॥

❀ यदेतद्रूपिद्रव्यं सर्वावधिज्ञानविषयत्वेन समर्थितं तस्यानन्तभागीकृतस्यैकस्मिन्भागे मनः पर्ययः प्रवर्तते ॥ ❀

अथान्ते यन्निर्दिष्टं केवलज्ञानं तस्य को विषयानिबन्ध इत्यत आह—

सूत्रम्–तदनन्तभागे मनः पर्ययस्य =तदनन्तभागे मनः पर्ययस्य (विषयस्य निबन्धः भवति)

तद्-अनन्तभागे ७। मनःपर्ययस्य ६। =उस (सर्वावधिज्ञेय) के अनंतवां अंश (सूक्ष्मतर) में मनः पर्यय ज्ञानके
विषयस्य ६। निबन्धः १। भवति T =विषयका सम्बन्ध है भावार्थ जो परमावधि ज्ञानके विषयभूत पुद्गल स्कन्धमें अनन्तका भाग दीजिये तो एक परमाणु मात्र सर्वावधिका विषय होय है बहुरि तिसमें अनन्तका भाग दीजिये तब ऋजुमति मनः पर्ययज्ञानका विषय होताहै तिसमेंभी अनन्तका भाग दें तब विपुलमतिमनःपर्ययज्ञानका विषय होता है (पं० जयचंद जी)

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित अट्ठाईसवा सूत्र पर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः अनुवाद

(२)यद् १।। एतद् १।। रूपि द्रव्यम् सर्वावधिज्ञानविषयत्वेन ३।।=जो यह रूपी पदार्थ सर्वावधिज्ञानका विषय होने से
समर्थितम् १।। तस्य ६।। =समर्थन किया है वा सिद्ध किया है। तिस (सर्वावधिके विषयभूतरूपी पदार्थ) के
अनन्तभागीकृतस्य ६।। एकस्मिन् ७। भागे ७। =अनन्त भाग किये जायं तो उसके एक अंश में
मनः पर्ययः १। प्रवर्तते T ॥ अथ❀ अन्ते ७। =मनः पर्यय (ज्ञान) प्रवर्तता है। अब अन्त में
यत् १।। निर्दिष्टम् १।। केवलज्ञानम् १।। तस्य ६।। =कथित (=निर्दिष्ट) जो (=यत्) केवलज्ञान है तिस (केवलज्ञान) के
विषय-निबन्धः १। कः १। इति❀ अतः❀ आह T =विषयका नियम क्या है। इस लिये (आचार्य) कहते हैं कि

(१) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य०मे 'मनःपर्ययस्य'के स्थानमे 'मन पर्यायस्य' है। शेष पाठ और अर्थभी दोनों आम्नायोंमे एकसा है ॥ मनःपर्ययस्य६।

(२) अवधेर्मनः पर्ययस्य सूक्ष्मविषयत्वदर्शनार्थं सूत्रमिदं न तु विषयनिबन्धनार्थम्। यतो मनः पर्ययस्यावधिविषयानन्तभागेऽन्यत्रापि दर्शितावृत्तिः प्रवर्तते इति पाठान्तरम् ॥ सर्वार्थसिद्धिकी द्वितीयावृत्तिमें "इति पाठान्तरम्" के स्थानमें "इत्यप्यधिकः पाठः" ऐसा वाक्य है ॥ ऐसा अधिक पाठ भी है ॥

अवधेः ५। मनः पर्ययस्य ६। सूक्ष्मविषयत्व दर्शन-अर्थम् १।। सूत्रम् १।। इदम् १।। न❀ तु❀ विषयनिबन्ध-अर्थम् १।। =अवधि (ज्ञान) से मनः पर्यय (ज्ञान) का सूक्ष्म विषयताके समझानेके वा बताने के लिये (अर्थम्) यह सूत्र है किन्तु (=तु) विषयकी इयत्ता वा सीमाके लिये नहीं है

सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य॥ २९॥

द्रव्याणि च पर्यायाश्च द्रव्यपर्याया इति इतरेतरयोगलक्षणो द्वन्द्वः॥ तद्विशेषणं सर्वग्रहणं प्रत्येकमभिसम्बध्यते

सूत्रम्—सर्वद्रव्यपर्यायेषुकेवलस्य	=सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य (विषयस्य निबन्धः भवति)
सर्वद्रव्यपर्यायेषु ७।३। केवलस्य ६।१। विषयस्य ६।१।	=सम्पूर्ण द्रव्योंकी सम्पूर्ण पर्यायोमें केवलज्ञानके विषयका
निबन्धः १।१। भवति T	=नियम है भावार्थ एक एक द्रव्यकी त्रिकालवर्ती अनन्तानंत पर्यायें हैं सो छहों द्रव्योकी समस्त अवस्थाओंको केवलज्ञान युगपत् एक साथ जानता है

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित उनतीसवां सूत्र पर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दशः अनुवाद

द्रव्याणि १।३। च* पर्यायाः १।३। च* द्रव्यपर्यायाः १।३। इति*	=द्रव्यें और पर्यायें (मिलकर) 'द्रव्य पर्यायाः' ऐसा वाक्य
इतरेतरयोगलक्षणः १।१। द्वन्द्वः १।१।	=परस्पर (इतरेतर) योगलक्षणवाला वा अन्योन्ययोग नामका द्वन्द्व समास है
तद्-विशेषणम् १।१। सर्वग्रहणम् १।१।	=उस (द्रव्यपर्याया द्वन्द्व समास) का विशेषण "सर्व" (ऐसे शब्द) का ग्रहण
प्रत्येकम्* अभिसम्बध्यते T	=प्रत्येक (द्रव्य शब्द और पर्याय शब्द) पर लगाया गया है (=अभिसम्बध्यते)

यतः* मनः पर्ययस्य ६।१। अवधि-विषय-अनन्त-भागे ७।१। अन्यत्र* अपि* दर्शिता १।१। वृत्तिः १।१। प्रवर्तते T इति* पाठ-अन्तरम् १।१। इत्यधिकः पाठः	=क्योंकि (=यत) मनः पर्यय ज्ञानका (विषय) अवधिके विषयसे अनन्तवां भागमे है। दूसरे स्थानमें भी (इस संस्कृत सर्वार्थसिद्धिकी) प्रकाशित वृत्ति में प्रवर्तता है वा विद्यमान है (देखो पृष्ठ४५८मे वृत्तिसूत्र२४की) ऐसा अन्य पाठ है ॥ (अन्य अर्थ) क्योंकि मनः पर्ययज्ञानकी प्रवृत्ति (=वृत्ति) अवधिज्ञानके ज्ञेयके अनंतवां भागमें तथा (=अपि) अवधिज्ञानके ज्ञेयसे भिन्न वस्तुओंमे भी (अन्यत्र) (आगम में) बताई गई है (=दर्शिता)। ऐसा अन्य पाठ है। ऐसा अधिक पाठ भी है

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों सम्प्रदायोमे एक है॥ (२) द्रव्यके अवस्था विशेष धर्मोंका नाम पर्याय है द्रव्यकी व्यवस्था विशेष जो हैं सो पर्याय है। स्वपर्यायान् द्रवति द्रूयते वा तैः इति द्रव्यम्=(जो) अपनी पर्यायोंको प्राप्त हो वा तिन (पर्यायों)करि (=तैः) प्राप्ति की जाय ऐसा द्रव्य है॥ द्रु धातुसे यत् प्रत्यय करनेपर (द्रु=द्रो=द्रव्) द्रव्य शब्दकी सिद्धि हुई है। (३) दो तीन आदि पद अपनी अपनी विभक्ति त्यागकर जो शब्द बनावें उस शब्दको समास कहते हैं। "और" से जो पहले हो वह समुच्चित तथा पीछेका शब्द समुच्चय कहाता है जो समुच्चित तथा समुच्चय मिलकर बना हो उसको द्वन्द्व समास कहते है॥

सर्वेषु द्रव्येषु सर्वेषु पर्यायेष्विति ॥ जीवद्रव्याणि तावदनन्तानन्तानि, पुद्गलद्रव्याणि च ततोऽप्यनन्तानन्तानि अणुस्कन्धभेदेन भिन्नानि, धर्माधर्माकाशानि त्रीणि, कालश्चासंख्येयः

इति* सर्वेषु ७॥। द्रव्येषु७॥। सर्वेषु ७। पर्यायेषु ७॥	=इस प्रकार समस्त द्रव्यों की ... पर्यायोंमें (केवलज्ञानके विषयका नियम) है
तावत्* जीव द्रव्याणि १॥। अनन्तानन्तानि १॥ च*	=प्रथम (=तावत्) जीवद्रव्य ... अनन्त हैं और (=च)
पुद्गलद्रव्याणि १॥। ततः * अपि * अनन्तानन्तानि१॥=पुद्गलद्रव्य उन (जीवों) से भी (=ततः अपि) अनन्तानन्तगुणे	
अणुस्कन्धभेदेन ३। भिन्नानि १॥; धर्म-अधर्म-	=अणु स्कन्धके भेदकरि जुदे जुदे वा पृथक् पृथक् हैं । धर्म द्रव्य, अधर्मद्रव्य
आकाशानि१॥। त्रीणि१॥। च* कालः१। असंख्येयः१।	=और आकाशद्रव्य तीन हैं अर्थात् ये तीन एक एक द्रव्य हैं और काल असंख्यात हैं अर्थात् "कालद्रव्यके कालाणु असंख्यात द्रव्य हैं" वे गिने जाने योग्य नहीं हैं

(१) लोगागासपदेसे एक्केक्के जे ट्ठिया हु एक्केक्का ॥ रयणाणं रासी इव ते कालाणू मुणेयव्वा ॥१॥ इति गाथोक्त प्रकारेण कालद्रव्यस्याणुरूपत्वान्नानात्वं धर्माधर्माकाशानामनेकप्रदेशत्वेऽपिखण्डात्मकत्वाभावादेकैकत्वमवबोद्धव्यम्

लोगागास-पदेसे ७। एक्केक्के ७। जे १।	(=लोकाकाश-प्रदेशे७। एकैकस्मिन्७। ये१।)	=लोकाकाशके एक एक प्रदेशमें जे
ट्ठिया १। हु* एक्केक्का १। रयणाण ६॥।	(स्थिताः १। हि* एकैकाः १। रत्नानाम् ६॥।)	=एक एक ही (हु=खलु) स्थित हैं । रत्नोंकी
रासी १। इव*	(राशिः १। इव*)	=राशि वा समूहके सदृश (परस्पर भिन्न भिन्न)
ते कालाणू मुणेयव्वा	(ते १। काल-अणवः १। मन्तव्याः १।)	=वे कालके अणू समझना चाहिये ॥ वे असंख्यद्रव्य हैं
इति* गाथा–उक्त-प्रकारेण ३। कालद्रव्यस्य ६॥। अणुरूपत्वात् ५॥।		=ऐसे गाथा में कहे हुये भेद करि कालद्रव्य के अणुरूप होने से
नानात्वम् १॥। धर्म-अधर्म-आकाशानाम् ६। अनेक-प्रदेशत्वे ७॥।		=अनेकता है । (परन्तु धर्म अधर्म आकाशद्रव्यों के बहुत प्रदेश होने पर
अपि खण्डात्मक-अभावात् ५। एकैकत्वम् १॥। अवबोद्धव्यम् १॥		=भी खडरूप नहोने (के हेतु) से पृथक् पृथक् पना जानना चाहिये ।

भावार्थः—जिस प्रकार रत्नोंका ढेर एकत्र होनेपर भी उसमें प्रत्येक रत्न जुदाहै वैसेही कालके अणु जुदे जुदे एकके पश्चात् एक लोकाकाशके के प्रत्येक प्रदेश पर एक एक कर क्रमसे तिष्ठे हुये परन्तु धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य और आकाशद्रव्य के असंख्यात असंख्यात प्रदेशहैं ये प्रदेश ऐसें मिले हुये है कि कभी जुदे जुदे नहीं होसकते है इससे ये तीनों एक एक द्रव्य ही है । धर्म द्रव्य अधर्म द्रव्य सम्पूर्ण लोकमें तिलमें तेल की भांति व्याप्तहैं और आकाशके जिन प्रदेशोंमें स्थित है उनहीं प्रदेशोंमें स्थितरहते है इनके प्रदेश अकम्प है ॥ देखो सर्वार्थसिद्धि वृत्तिः अध्याय ५ सूत्र ३९ पर

तेषां पर्यायाश्च त्रिकालभुवः प्रत्येकमनन्तानन्तास्तेषु द्रव्यं पर्यायजातं वा न किञ्चित्केवलज्ञानस्य विषयभावमतिक्रान्तमस्ति ॥ अपरिमितमहात्म्यं हि तदिति ज्ञापनार्थं सर्वद्रव्यपर्यायेष्वित्युच्यते ॥

आह विषयनिबन्धोऽवधृतो मत्यादीनां, इदं तु न निर्ज्ञातमेकस्मिन्नात्मनि स्वनिमित्तसन्निधानोपजनितवृत्तीनि ज्ञानानि यौगपद्येन कति भवन्तीत्यत उच्यते—

च तेषाम् ॥। त्रिकालभुवः ।	=और तिन (सर्वद्रव्यनि) के (अतीत अनागत वर्तमान) तीन कालमें होने वाले
प्रत्येकम्[1] अनन्तानन्ताः । पर्यायाः । तेषु ॥।	=प्रत्येकके अनन्तानन्त पर्याय हैं । उन (द्रव्यों) में
वा द्रव्यं पर्यायजातं ॥। केवल ज्ञानस्य ॥ विषय-भावम् ।	=वा द्रव्य पर्यायो का समूह केवल ज्ञान के विषय भाव को
अतिक्रान्तम् । न किञ्चित् अस्ति T हि तद् ॥।	=उल्लंघन करनेको किंचित भी समर्थ नहीं है क्योंकि (=हि) पूर्वोक्त (=तद्) केवलज्ञान
अपरिमित-माहात्म्यं ॥। इति ज्ञापन-अर्थम् ॥।	=अपरिच्छिन्न वा असीम महत्वरूप है । ऐसा (=इति) जनावने के लिये
सर्वद्रव्यपर्यायेषु । इति उच्यते T	=समस्तद्रव्योकी समस्तपर्यायो में (केवल ज्ञानके विषयका नियम) है ऐसा कहागया है
आह T विषयनिबंधः। अवधृतः[2]। मतिआदीनाम्[3] ॥।	=(शिष्य-अब) पूछता है कि मति (ज्ञान) आदिकनिके विषयोंके नियम कहेगये
इदम् ॥। तु न निर्ज्ञातम् ॥। एकस्मिन् ।	=परंतु यह (=इदम्) ज्ञात नहीं हुआ (कि) एक
आत्मनि । स्व-निमित्तसन्निधान-उपजनितवृत्तीनि ॥।	=जीवमें अपने अपने कारणो क निकट होते (=उपजनित) प्रवर्तनेवाले
ज्ञानानि ॥। यौगपद्येन[4] ॥। कति[5] । भवन्ति T इति	=ज्ञान एक काल अथवा एक वार करि कितने होते हैं ऐसे (प्रश्न पर)
अतः उच्यते T	=इसलिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहतेहैं कि

१ प्रत्येकम् - यह वैद्य संस्कृत-अङ्गलभाषा कोष पृष्ठ ४६२ में अव्यय लिखा है । इसलिये हमने भी इसको अव्यय लिखा है ॥

२ अवधृतः :— विवृतः । इति अपि पाठान्तरम् ॥। = विवृतः (=व्याख्यात) ऐसा भी अन्य पाठ है

३ मति + आदीनाम् = मत्यादीनाम्–आदि समासोंके अंतिम अवयववत् 'इस सदृश' 'और अन्य' 'और अन्य वैसे ही' इन अर्थोंमें आता है । भ्वादयः धातव. यहां पर आदयः शब्द बहुवचन पुल्लिंगमें है ऐसे ही मत्यादीनाम् को षष्ठी विभक्ति बहुवचन पुल्लिंगमे लिखा है (देखो उक्तकोश पृष्ठ ९९)

४ यौगपद्य वा यौगपद्-नपुसक लिंग हैं (वैद्य कोश पृष्ठ ६०१) दोनों समकालता, एककालता अर्थमें हैं अतः हमने नपुंसक लिखा है ।

५ कति-सर्वनाम सदा बहुवचनमे आता हैं और पुल्लिंगमें इसका यहां प्रयोग हुआ है ॥

एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः ॥३०॥

एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः =एकादीनि (ज्ञानानि) भाज्यानि युगपदेकस्मिन् (जीवे) आ चतुर्भ्य (ज्ञानेभ्यः) सम्भवन्ति

एकादीनि ;॥ ज्ञानानि ;॥ भाज्यानि ;॥ =एक ज्ञानकों आदि लेकर (=एकादीनि)भाज्यरूप वा विभाग किये (=भाज्यानि)

युगपद्* एकस्मिन् ;। जीवे ;। आ* चतुर्भ्यः ;॥ ज्ञानेभ्यः=एक साथ (=युगपद्) एक जीवमें चारज्ञान तक (=आ)

सम्भवन्ति T =सम्भवहैं, अर्थात् यदि एक ज्ञान होगा तो केवलज्ञान, दो होंगे तो मतिज्ञान श्रुतज्ञान, तीन होंगे तो मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान वा मतिज्ञान श्रुतज्ञान मनः पर्ययज्ञान होगे यदि चार होंगे तो मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान होंगे

---

१ इस सूत्रका पाठ दोनों सम्प्रदायों में एक है और अर्थ भी दोनों आम्नायोमें एक है जैसाकि अगली टिप्पणियोंसे प्रगट होगा।

२ वार्तिकः-संख्या वचनोवैकशब्दः =(वृत्ति) अथवा संख्या वचनोऽयमेकशब्दः = अथवा(सुत्रमें)यह एक शब्द संख्यावाचीहै ॥ एक =एकत्वसंख्या।

एकम् आदिः एषाम् तानि इमानि एकादीनि कथम् ?* =एक है आदि जिनके ते ये एकादि हैं। (प्रश्न) कैसे ?

एकस्मिन् ;। आत्मनि ;। मतिज्ञानम् ;॥ एकम् ;॥ =(उत्तर) एक आत्मामे एक (ज्ञान) मतिज्ञान होय है

(श्रुतज्ञान दो प्रकार है एक अक्षरात्मक श्रुतज्ञान दूसरा अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान)

यद् अक्षर श्रुतम् ;॥ द्वि+अनेक+द्वादशभेदम् ;॥ =जो अक्षरात्मक श्रुतज्ञान है सो दो अनेक द्वादश भेदरूप है

उपदेशपूर्वकम् ;॥ =(वह अक्षरात्मक श्रुतज्ञान) उपदेश द्वारा होता है (जैसाकि इस अध्यायका वीसवां सूत्र है)

तद् भजनीयम् ;॥ स्यात् T वा =वह (अक्षरात्मक श्रुतज्ञान) भजनीय है वा भाज्य रूप है किन्हीं जीवोके होता है

न * वा * इति * =किन्हींके नहीं(अक्षरात्मक श्रुतज्ञानकी अपेक्षा एक आत्मामें अकेला मतिज्ञान भी हो सका है)

इतरत् ;॥ पूर्ववत् * =अन्य पूर्व (पहिले) सदृश होय है अर्थात् दो ज्ञान हो तो मतिज्ञान श्रुतज्ञान हों तीन ज्ञान हों तो मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान हो अथवा मतिज्ञान, श्रुतज्ञान मनः पर्ययज्ञान हो, चार हो तो मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनः पर्ययज्ञान हों

परः ११। आह T असंख्यासहाय- = दूसरा कहता है (अर्थात् अन्य अन्य आचार्योंका मत है) कि असख्या असहाय

प्राधान्यवचने१। एकशब्दे७। सति७। एकादीनि१।।। = प्रधान अर्थका वाचक (इस सूत्रमें आये हुये) एक' शब्दके होते 'एकादीनि' है

केवलादीनि१।।। इति॥अर्थः।एकस्मिन्‌आत्मनिक्षायिकत्वात् = सो केवल (ज्ञान) आदीनि ऐसे अर्थमें है कि एक आत्मामें क्षायिकपनासे

एकम् ११।।। केवलज्ञानम् १।।। मतिश्रुते १।।। = एक केवल ज्ञान होता है। (दो होय हैं तहां) मतिज्ञान श्रुतज्ञान होते हैं

इत्यादिपूर्ववत् ॥ = इत्यादि पहिले (कथित) सदृश है भावार्थ ऐसा है कि और और आचार्य कहते हैं कि इस सूत्रमे 'एक' शब्दका असंख्या असहाय और प्रधान अर्थमें प्रयोग कियागया है अतः इस (एक शब्द) का अर्थ केवल ज्ञान है क्योंकि अन्य चार ज्ञान असहाय और प्रधान नहीं होसकते हैं ये चारो क्षायोपशमिक ज्ञान हैं इस रीतिसे एक जीवके एक साथ केवलज्ञानको आदि लेकर चार ज्ञान तक होना संभवहै यदि एक ज्ञान होगा तौ केवलज्ञान होगा (अथवा अक्षरात्मक श्रुतज्ञानकी अपेक्षासे एक आत्मामें अकेला मतिज्ञान भी हो सकता है)। यदि दो एक साथ होगे तो मतिज्ञान और श्रुतज्ञान होगे, यदि तीन एक कालमे होंगे तो मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान वा मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, मनः पर्ययज्ञान होंगे, यदि चार ज्ञान होगे तो मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनः पर्ययज्ञान होंगे ॥ (देखो तत्त्वार्थ-राजवार्तिक पृष्ठ ६३) ॥ श्वेताम्बर आम्नायमे भी यही है कि मतिज्ञान भी अकेला होसक्ता है और केवलज्ञान भी अकेला होसक्ता है जैसा कि निम्न लिखितसे प्रगट हे (देखो सभाष्य तत्वार्थाधिगम सूत्र पृष्ठ २८)

श्रुतज्ञानस्य६।।। तु॥ मतिज्ञानेन३।।। नियतः११। सहभावः११। = किन्तु (यह अवश्य जानना उचित है) श्रुतज्ञानका मतिज्ञानसे सहभाव अवश्य है (अर्थात् जहां जहां श्रुतज्ञान है वहां वहां मतिज्ञानका अस्तित्व अवश्य ही है)

तद् पूर्वकत्वात् ५।।। = क्योंकि उस (मतिज्ञान) द्वारा (श्रुतज्ञान) होता है श्रुतज्ञानके होनेको मतिज्ञान कारण है ॥

यस्य ६। तु मतिज्ञानं तस्य श्रुतज्ञानं स्यात् T वा न वा इति = परतु जिसके मतिज्ञान है तिसके अक्षरात्मक श्रुतज्ञान हो अथवा (=वा) न हो ऐसा है

अत॥ आह T केवलज्ञानस्य६।।। पूर्वैः३।।। मतिज्ञानादिभिः = यहां प्रश्न करता है कि केवलज्ञानके पहिले होने वाले मतिज्ञान आदिकसे

किम् ११।।। सहभावः ११। भवति T न इति॥ उच्यते T = क्या सहभाव होता है ? (उत्तर) नहीं ऐसा कहागया है अर्थात् जहां केवलज्ञान है वहां पर मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनः पर्ययज्ञानका अस्तित्व नहीं है

एकशब्दः संख्यावाची, आदिशब्दोऽवयववचनः

पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित तीसवां सूत्र पर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दशः हिंदी अनुवाद

एकशब्दः $\frac{1}{1}$। संख्यावाची $\frac{1}{1}$। आदिशब्दः $\frac{1}{1}$। अवयववचनः $\frac{1}{1}$। =(सूत्रमें) 'एक' शब्द गणनाका वाचक है आदि शब्द टुकड़ा (=टूंक) के अर्थमें है

[१] पृष्ठ ४७७ की दूसरी टिप्पणीमें हम दिखाचुके हैं कि तत्वार्थराजवार्तिक के कर्ता के मतानुसार एक शब्द सख्यावाचक भी है और अन्य आचार्योंके मतमें यहीं 'एक' शब्दअसंख्या असहाय प्रधान अर्थ का वाचक है अव तत्त्वार्थ राजवार्तिकके अनुकूल अनेक अर्थ संभव होने पर (भी) वक्ताकी इच्छासे (=विवक्षात) प्रथमकावाची 'एक' शब्दहै (=अनेकार्थ सम्भवे विवक्षातः प्राथम्यवचनः एकशब्दः) अनेकार्थ ये हैं कि कहीं संख्या (अर्थ) मे प्रवर्तता है जैसे 'एको द्वौ वहव.' एक दो वहुत ॥ कहीं अन्य (अर्थ) में जेसे 'एके आचार्याः = अन्ये आचार्याः=दूसरे आचार्याः कहीं असहाय (अर्थ) मे जैसे 'एकाकिनस्ते विचरन्ति वीराः' ते शूरवीर अकेले विचरतेहैं । कहीं प्रधान अर्थ में जैसे एकहर्ता सेनां करोमि = प्रधानहर्ता सेनां करोमि इति अर्थः =प्रधान द्वारा सैनाको नष्ट करता हूं ऐसा अर्थ है और कहीं पर प्रथम अर्थ में जैसेः-एकमागमन = प्रथमागमनम् इति = पहिला आना हुआ ॥ सूत्रमें 'प्रथम वा पहिले' के अर्थमे 'एक' शब्द लाये हैं और नवमां सूत्र 'मतिश्रुतावधिमन· पर्ययकेवलानिज्ञानम् " है तव एकादीनि" वाक्य का अर्थ 'प्रथम वा पहिले ज्ञानकों आदि लेकर" हुआ अर्थात् मतिज्ञान आदि लेकर विकल्परूपसे वा भाज्यरूप से एक आत्मा में एक साथ चार ज्ञान तक विवक्षित हैं ॥

[२] तत्त्वार्थराजवार्तिक के रचयिताने "आदि" शब्दके अनेक अर्थ होने पर भी'अवयव' और सामीप अर्थ में लियाहै "आदि शब्दश्चावयववचनः" "सामीप्यवचनो वा" = आदि शब्द (इस सूत्रमें) टुकडे का वाची है अथवा निकटता का वाचक है ॥ कहीं पर व्यवस्था (अर्थ) में (आदि शब्द) वर्तता है जैसे ब्राह्मणादयश्चत्वारो वर्णाः (=ब्राह्मणादिक चार वर्ण है) ब्राह्मणव्यवस्थाः (=कि ब्राह्मणतें व्यवस्था है) ब्राह्मणक्षत्रियविटशूद्राः इत्यर्थः ' कि ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र है ऐसा अर्थ है) अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र इन चारो वर्णोंकी ब्राह्मण वर्णके आधीन व्यवस्था वा रचना है । कहीं पर (आदि शब्द) प्रकार (अर्थ) में प्रवर्तता है जैसे भुजंगादयः परिहर्तव्या (भुजंगादिक परिहार करने योग्य हैं) भुजगप्रकाराः विषवंत इत्यर्थः (=भुजंगका प्रकार कहिये भुजंग सदश विषवान ,सर्वजोव त्यागने योग्य हैं) ऐसा अर्थ है भावार्थ सर्पआदि विषवाले (सर्व) जीवोंको दूरसे ही छोड़ देना चाहिये ॥ कहींपर (आदि शब्द) अवयव, टुकडा, टूक, वा भाग अर्थ में वर्तताहै जैसेकि ऋगादिमधीते ऋगवयवमधीते इति अर्थ =ऋग्वेदके (=ऋग्) कुछ भाग को (=अवयवम्) पढ़ता है (=अधीते) ऐसा अर्थ है ॥

एकआदिर्येषां तानि इमान्येकादीनि भाज्यानि विभक्तव्यानि यौगपद्येनैकस्मिन्नात्मनि ॥ आ कुतः ? आ चतुर्भ्यः ॥ तद्यथाएकं तावत्केवलज्ञानं न तेन सहान्यानि क्षायोपशमिकानि

एकः१। आदिः१। येषाम्६। तानि१।।। इमानि१।।। एकादीनि	=एक है आदि जिनकें (=येषाम्) ते (=तानि) इतने (=इमानि) एकादीनि हैं
भाज्यानि १।।। विभक्तव्यानि १।।।	=सो भाज्यानि (कहिये) है भेदरूप करने पर वा विकल्परूप करने पर(=विभक्तव्यानि) अर्थात् एक ज्ञानको आदिलेकर(=एकादीनि)भाज्यरूप वा विकल्परूप(=विभक्तव्यानि)
यौगपद्येन३।। एकस्मिन्७। आत्मनि७। आ* चतुर्भ्यः५।।।	=एक कालविषैं एक (=एकस्मिन्) आत्मामें चार (ज्ञान) तक हो (सक) ते हैं
आ* कुतः ? *	=(प्रश्न) (सूत्रमें) आ (अव्यय) क्योंकर (=कुतः) है (उत्तर-सीमा वा अभिविधिके लिये है कि एक साथ एक आत्मामें चार पर्यंत ही ज्ञान होसक्ते हैं सब पांचो नहीं होवे)
तद्यथा* एकं १।।। तावत्* केवलज्ञानं १।।। न तेन ३।।।	=जैसे (=तद्यथा) एक हो तो (=तावत्) केवलज्ञान हो । नहीं तिस (केवलज्ञान) करि
सह* अन्यानि १।।। क्षायोपशमिकानि १।।।	=सहित (=सह) अन्य (चार) क्षायोपशमिकज्ञान

अब 'एक' शब्दका प्रथम अर्थ और 'आदि' शब्दका अवयव अर्थ लेकर "प्रथमका अवयव" यह अर्थ "एकादि" वाक्यका हुआ ॥ (प्रश्न) किस (प्रथम) का (अवयव वा भाग) । (उत्तर) परोक्षज्ञानका (प्रथम अवयव) अर्थात् मतिज्ञान ॥ अतः एकादिका अर्थ मतिज्ञान हुआ यहां पर स्मरण रहै कि सूत्रमें 'एकादीनि' वाक्य है सो "एकादिरादीनि" (=एकादिको आदि लेकर जो ज्ञान हैं वे एकादीनि कहेजाते हैं) इस अर्थमें है क्योंकि – वार्तिक–"ततोन्यपदार्थे वृत्तावेकस्यादिशब्दस्य निवृत्तिरुष्ट्रमुखवत्=ततः अन्यपदार्थे वृत्तौ एकस्यादिशब्दस्य निवृत्तिःउष्ट्रमुखवत्" =अन्यपदार्थ वृत्तिमें (=समासमें) एक"आदि"शब्दकी निवृत्ति वा निषेध "उष्ट्रमुख" (बहुव्रीहि समासरूप वाक्यके) सदृश है अर्थात् जैसे जिसका मुख ऊंट सरीखा हो वह उष्ट्रमुख (पुरुष) कहा जाता है और जिसका मुख ऊटके मुख सदृश पुरुष सरीखा हो वहभी उष्ट्रमुखही कहा जाता है यहांपर जैसे उष्ट्रमुख शब्दका बहुव्रीहि समास करते समय दो मुखशब्दोंका उल्लेख रहताहै और समासमे एकही मुखशब्द रह जाताहै एक मुखशब्दकी निवृत्ति होजातीहै अर्थात् एक मुखशब्द न्यून हो जाता है वैसेही एकादीनि यहां परभी दो "आदि" शब्दोंमें एकही "आदि" शब्द रह जाता है एक 'आदि' शब्दका लोप होजाता है ॥ आदि शब्दका अर्थ समीप भी है मतिज्ञानके समीप श्रुतज्ञान है अतः 'एक' शब्द जो सूत्रमें है उससे मतिज्ञान और आदि शब्दके उल्लेखसे श्रुतज्ञानका ग्रहण हुआ ॥ मतिज्ञान श्रुतज्ञानको आदि लेकर ऐसा अर्थ "एकादीनि" वाक्यका हुआ ॥ एक+आदि+आदि=एकादि+आदीनि=एकादीनि

चत्वारि युगपदवतिष्ठन्ते । द्वे मतिश्रुते । त्रीणि मतिश्रुतावधिज्ञानानि, मतिश्रुतमनःपर्ययज्ञानानि वा । चत्वारि मतिश्रुतावधिमनःपर्ययज्ञानानि । न पञ्च सन्ति केवलस्यासहायत्वात् ॥

युगपद्* अवतिष्ठन्ते T द्वे ॥ मतिश्रुते ॥ त्रीणि॥ मतिश्रुत-अवधिज्ञानानि॥ वा* मति-श्रुत-मनःपर्ययज्ञानानि॥ चत्वारि ॥ मति-श्रुत-अवधि-मनःपर्ययज्ञानानि ॥ न* पञ्च ॥ सन्ति T केवलस्य ॥ असहायत्वात् ॥

=एक काल में तिष्ठते हैं। दो हो तो मतिज्ञान श्रुतज्ञान हो। =तीन हों तो मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान हों। अथवा (=वा) मतिज्ञान श्रुतज्ञान =मनःपर्ययज्ञान हो। चार हों तो मतिज्ञान-श्रुतज्ञान-अवधिज्ञान =मनःपर्ययज्ञान हो॥ नहीं होते हैं (एक काल में) पांच ज्ञान =क्योंकि केवल ज्ञान असहाय रूप है अर्थात् अन्य चार ज्ञान तो ज्ञानावरणीयकर्मके क्षयोपशम से होते हैं केवल ज्ञान उक्त कर्म के क्षय से ही होता है

(१) मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान क्षायोपशमिक ज्ञान है अर्थात् ये चारों ज्ञान ज्ञानावरणीय कर्मकी प्रकृतियों के क्षयोपशम से होते हैं। (प्रश्न) ये "क्षायोपशमिकज्ञान तौ एक काल एकही प्रवर्तता कहा है। इहाँ च्यारी कैसें कहे? ताका उत्तर जो ज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम होतें च्यारी ज्ञानकी जानन शक्तिरूप लब्धि एक काल होय है। बहुरि उपयोग इनिका एक काल एकही होय है। ताकी एक ज्ञेयतें उपयुक्त होनेकी अपेक्षा स्थितिभी अन्तर्मुहूर्त्तकी कही है। पीछे ज्ञेयांतर उपयुक्त होयजाय है क्षयोपशम जिनिका होयहै ते लब्धिरूप एककालही है। इहां कोई कहे उपयोग अपेक्षाभी सांकलीके (=वड़ीपुरी) भक्षण करतें रूपादिक पाचका ज्ञान एककालही दीखै है वर्णसांकलीका दीखे है स्वाद लेही है। गंध वाका आवै ही है॥ स्पर्श भी सचाकणा आदि जानै ही है। भक्षण करतै शब्द होय है ऐसें पांचका ज्ञान एक काल भी देखिये है। ताकूं कहिये, जो इहां उपयोगका फिरण की शीघ्रता होतें काल भेद न जान्या जाय है। जैसे कमलका पत्र दोय च्यारि मे सुईका प्रवेश होते काल भेद जान्या न जाय अरु काल भेद है ही। तैसे इहां भी जानना॥ पं० जयचंद्जी की वचनिका मुद्रित पृष्ठ १८५, १८६॥

(२) उक्त पांचों ज्ञानोमेसे केवलज्ञान असहायज्ञान है वह कर्मोंके क्षयोपशमकी अपेक्षा नहीं रखता है मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान और मनःपर्यय ज्ञानों को कर्मोंके क्षयोपशमकी अपेक्षा रहती है इस लिये ये चार ज्ञान असहाय नहीं हैं॥ इस भांति उक्त चार ज्ञानोमे और केवलज्ञान मे विरोध रहनेके हेतुसे पांचों ज्ञानोका एक साथ होना असम्भव है॥ (प्रश्न) जैसे जिस काल सूर्यका प्रकाश पृथ्वी मंडल पर पडता है उस समय नक्षत्रो का प्रकाश दब जाताहै। वहांपर यह नहीं कहा जासक्ता कि नक्षत्रोकी विद्यमानताही नहींहै वैसेही जिस समय आत्मामे अत्यन्त जाज्वल्यमान केवलज्ञानका प्रकाश होगा उस समय मति-श्रुत-अवधि-मनःपर्ययज्ञानका प्रभाव दब जायगा नकि उक्त चार ज्ञानोका अस्तित्वही नष्ट होजावेगा फिर यह कहना कि

और इसको कर्मोंके क्षयोपशमकी सहायताकी अपेक्षा नहीं रहती है अतः केवल ज्ञानीकें मति-श्रुत-अवधि-मनःपर्यय ज्ञान नहीं होते हैं

केवलज्ञान क्षायिकज्ञान है और असहायज्ञान है इससे पांचो ज्ञान नहीं होते हैं ठीक नहीं है ? ॥(उत्तर)जैसे जब कोई स्थान सर्वथा और सर्व प्रकारसे शुद्ध होचुका है कोई भागभी उस स्थानका अशुद्ध नहीं कहा जासकता हैं वैसेही जब सर्व ज्ञानावरणीयकर्मकी प्रकृतियोका सर्व प्रकार नाश होचुका है तब उन कर्मकी प्रकृतियोका क्षयोपशम कहना और अत्यन्त नाश होनाभी कहना ये एक दूसरेके विरुद्ध हैं और नहीं कहे जासकते हैं इसलिये एक साथ आत्मामे मतिज्ञानको आदि लेकर चार तक ज्ञानोका जो नियम है वह निर्बाध और निर्दोष है ॥

इस विषयमे अब हम श्वेताम्बर आम्नायका मत लिखते हैं ॥ (प्रश्न) केवलज्ञानका मतिज्ञान श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञानके साथ सहभाव है कि नहीं है ? (उत्तर) "केवलज्ञानके साथ मतिज्ञानादिका सद्भाव नहीं है । परंतु कोई कोई आचार्य कहते हैं कि केवलज्ञानकी सत्ता दशामें मतिज्ञानादि ज्ञानोका अभाव नहीं है किन्तु केवलज्ञानसे वे मत्यादिज्ञान अभिभूत (पराजित) होनेसे ऐसे अकिंचित्कर हैं जैसेकि नेत्रादि इन्द्रियां । केवलज्ञानकी दशामे मतिश्रुतादि अन्यज्ञान अभिभूत होकर ऐसे अकिंचित्कर हैं जैसे मेघरहित आकाशमें सूर्यके उदित होनेपर अधिक तेजके कारण सूर्यसे अभिभूत अग्नि मणि चन्द्रमा तथा नक्षत्रादिके तेज, प्रकाश करनेमे अकिंचित्कर हैं । और कोई ऐसा कहते हैं कि अपाय सद्द्रव्यता अर्थात् श्रोत्रादि इन्द्रियोसे उपलब्ध पदार्थके निश्चयार्थ मतिज्ञानकी प्रवृत्ति होती है ।, श्रुतज्ञान मतिज्ञान पूर्वक है । अवधिज्ञान तथा मनःपर्ययज्ञान भी रूपी द्रव्यके विषयमे अपाय सद्द्रव्यतासेही प्रवृत्त होता है अतः उनकी सत्ता में मतिज्ञान रह सकता है और केवलज्ञानी को इन्द्री द्वारा पदार्थोपलब्धि नहीं होती, इस कारणसे केवलज्ञानीको मतिज्ञानादि ज्ञान नहीं है ॥ किं चान्यत् । औरभी यह बात है कि मतिज्ञानादि चारो ज्ञानोमे पर्याय वा क्रमसे उपयोग होता है न कि एक ही कालमे और मिलित है ज्ञानदर्शन जिसका ऐसें भगवान केवली को तो एकही कालमे सर्वभावके ज्ञापक वा ग्राहक और अन्य ज्ञाननिरपेक्ष केवलज्ञान तथा केवलदर्शन होते है और प्रतिक्षण वा प्रति समय ज्ञानोपयोग तथा दर्शनोपयोग होता है । और यहभी है कि पूर्व मतिज्ञानादि चार ज्ञान तो ज्ञानावरणके क्षयोपशमसे उत्पन्न होते है । और केवलज्ञान क्षयसेही उत्पन्न होता है । इसलिये भी केवलज्ञानीको मतिज्ञानादि शेष चार ज्ञान नहीं होते ॥" सभाष्य॰ पृष्ठ २८, २९ ॥ हमारा हृदय भी इस बातको स्वीकार नहीं करता कि केवलज्ञान की विद्यमानतामें

यथोक्तानि मत्यादीनि ज्ञानव्यपदेशमेव लभन्ते, उतान्यथापीत्यत आह—

यथोक्तानि॥। मत्यादीनि॥। ज्ञानव्यपदेशम्॥। एव* लभन्ते T उत* अन्यथा* अपि*	=कथनानुसार (=यथोक्त) मति आदिक ज्ञान ज्ञान नामही =पाते हैं । अथवा (=उत) अन्यथा भी हैं अर्थात् मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनः पर्ययज्ञान ये ज्ञान संज्ञा से ही जाने जाते हैं कि ये किसी और
इति* अतः* आह T	=नाम से भी कहे जाते हैं ॥ ऐसा (प्रश्न होने पर) इस लिये कहते हैं कि

अन्य चार ज्ञानका अकिंचित्कर रूपमें भी अस्तित्व रहता है क्योंकि यदि हम ऐसा मानें तो इस सूत्रका "आचतुर्भ्यः" वाक्य व्यर्थ हुआ जाता है। और पांचो ज्ञानका अस्तित्व युगपद् हुआ जाता है ॥

(प्रश्न) असंज्ञी पंचेद्रियसे लेकर अयोगकेवली पर्यंत सब जीव पंचेन्द्रिय हैं। जिनके केवलज्ञान है वे भी जीव जन पंचेन्द्रिय हैं और पांचों इन्द्रियें उनकें विद्यमान हैं तव इन्द्रियोंके कार्य मतिज्ञान आदि क्षायोपशमिकज्ञान होने चाहिये क्योकि समर्थकारण इन्द्रियोंके रहते कार्य ज्ञान अवश्य भावी है। अतः यह कहना कि केवलज्ञानके अस्तित्व समयमे मतिज्ञान आदि नहीं होसकते यह कथन निर्मूल है (उत्तर) सयोगकेवली और अयोगकेवली को जो पंचेन्द्रिय वतलाया है वह द्रव्येन्द्रियकी अपेक्षासे है भावेंद्रियकी अपेक्षासे नहीं है क्योकि भावेन्द्रियकी विद्यमानता में समस्त ज्ञानावरणीय-कर्मका क्षय नहीं होसक्ता है और ज्ञानावरणकर्मके निर्मूल क्षयके विना सर्वज्ञपना भी नहीं होसक्ता है यदि सयोगकेवली और अयोगकेवलीके भावें-द्रियकी सत्ता मानी जायगी तो उनके ज्ञानावरणकर्मका क्षय निर्मूल न होसकेगा अतः वे सर्वज्ञ नहीं कहे जासकेंगे ॥ जहां पर भावेन्द्रिय है वहीं पर मतिज्ञानादिक क्षायोपशमिकज्ञानोंका आविर्भाव होता है केवल द्रव्येन्द्रियके अस्तित्व कालमें नहीं क्योंकि द्रव्येन्द्रियकी सत्ताको नि.शक्तिक माना है वह ज्ञानोंकी उत्पत्तिमें कारण नहीं है। इस लिये जव कवलज्ञानके उदय रहने पर भावेन्द्रियका अस्तित्व नहीं रहता तव केवलज्ञानके साथ, कारण भावेन्द्रियके अभावमें कार्य मतिज्ञानादि नहीं हो सकते। अतः एक आत्मामे भाज्य रूप मतिज्ञान से लेकर चार ज्ञान तक एक साथ हो सकते हैं यह वात निर्वाध है किन्तु पांचो ज्ञान एक साथ नहीं हो सकते हैं ॥

॥ मतिश्रुतावधयो विपर्ययश्च ॥३१॥

विपर्ययो मिथ्येत्यर्थः । कुतः ? । सम्यगधिकारात् ॥ चशब्दः समुच्चयार्थः । विपर्ययश्च सम्यक्चेति ॥

सूत्रम्--मतिश्रुतावधयो विपर्ययश्च =मतिश्रुतावधयो विपर्ययश्च (भवति ज्ञानम्)

मति-श्रुत-अवधयः १।। विपर्ययः १।। च भवतिT ज्ञानम् =मति-श्रुत-अवधि विपर्यय, उलटे वा मिथ्याज्ञान भी (=च) होते हैं ॥
अर्थात् मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान ये तीन ज्ञान विपरीत भी होते हैं मति आदि पांचों ज्ञानोको जिनको सम्यग् ज्ञान कह आये हैं उनमें आदि के तीन ज्ञान मिथ्या, वा विपरीत ज्ञान भी होते हैं और सम्यग् ज्ञान भी होते हैं ।

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इकतीसवां सूत्र पर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिंदी अनुवाद

विपर्ययः १।। मिथ्या* इति* अर्थः १।। =(इस सूत्रमें) विपर्यय (शब्द) अयथार्थ अन्यथा वा मिथ्या ऐसा अर्थ (मे) है

कुतः ?* सम्यग्-अधिकारात् ५।। =(प्रश्न) क्योंकर (विपर्यय शब्द मिथ्या अर्थ में है) (उत्तर) सम्यक् अधिकारसे
अर्थात् इस सूत्र में सम्यक् शब्दकी अनुवृत्ति "सम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्राणिसे आरही है"

चशब्दः १।। समुच्चय-अर्थः १।। =(सूत्र में) चशद वा अ० य समुच्चय के लिये अथवा समुदाय के लिये है

विपर्ययः १।। च* सम्यक्* च* इति* =अयथार्थ अन्यथा (विपर्यय) भी (=च) है यथार्थ (=सम्यक्) भी (=च) है

(१) इस सूत्रका श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों आम्नायोंमे पाठ और अर्थ एक है । ज्ञान शब्दकी अनुवृत्ति नवम सूत्रसे आतीहै ॥ (२)च अव्ययके बहुतसे अर्थ है उनने से यह समुच्चयके लिये ग्रहण किया है इसलिये मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान सम्यग् ज्ञान भी होते हैं और मिथ्याज्ञान भी होते हैं ऐसा अर्थ है। तत्त्वार्थ श्लोक वार्तिकमें 'चशब्द समुच्चयार्थ 'से यह अभिप्राय लिया है कि उससे सूत्रमे मुख्य और व्यवहार दोनों प्रकार के सम्यक्त्वोंका ग्रहण है यदि सूत्रमे च अव्यय न होता तो मतिश्रुतावधयो विपर्ययः' ऐसा सूत्र होता और उसका अर्थ यह होता कि मति-श्रुत-अवधि मिथ्या (ज्ञान) होते हैं ॥ (प्रश्न) 'मतिश्रुत अवधि मिथ्या ज्ञान होते हैं' इससे यह बात नहीं निकलती कि 'मतिश्रुतावधि' सम्यग्ज्ञान नहीं हो सकते हैं फिर चशब्द सूत्रमे व्यर्थ है । (उत्तर) श्लोक वार्तिक के रचयिता कहते हैं कि यदि सूत्रका अर्थ विना च अव्ययके यह मानलें कि उससे मिथ्याज्ञान और सम्यग्ज्ञान दोनों प्रगट होते हैं तब सूत्रमे विपर्ययका अर्थ मिथ्याज्ञान है चशब्दसे संशय और अनध्यवसायका ग्रहण है अर्थात्

कुतः पुनरेषांविपर्ययः ?

अर्थात् मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान मिथ्याज्ञान भी हैं और सम्यग्ज्ञान भी हैं

कुतः ❋ पुनः ❋ एषाम् ॥॥ विपर्ययः ;। ? =(प्रश्न) बहुरि इन (ज्ञानों) के विपरीतता (=विपर्यय) क्योंकर है ?

मतिज्ञानादि संशय अनध्यवसाय स्वरूप भी हैं इस अर्थके करनेमें 'च शब्द' का सूत्रमें लाना व्यर्थ नहीं है ॥ श्लोक वा० पृष्ठ २५५ श्लोक ९, १०, ११ देखो ॥ यहां पर स्मरण रहे कि मतिज्ञान इन्द्रिय और मनसे होता है अतः उसके विपरिणाम संशय विपर्यय और अनध्यवसाय तीनों मिथ्याज्ञान हैं और श्रुतज्ञान मनकी सहायतासे होता हैं इसलिये उस के भी विपरिणाम संशय विपर्यय और अनध्यवसाय तीनो मिथ्याज्ञान हैं किन्तु अवधिज्ञानके विपरिणाम विपर्यय और अनध्यवसाय ही है संशय नहीं क्योकि यह 'स्थाणु है वा पुरुष हे ?' ऐसे अनेक कोटियोंको स्पर्श करनेवाले ज्ञान का नाम संशय है और जहां पर अंधकार रहनेसे दूरमें स्थित पदार्थ स्थाणु है वा पुरुष हैं ऐसा स्पष्ट ज्ञान न होनेसे उन दोनोंमें रहने वाले ऊर्ध्वता सामान्यका प्रत्यक्ष है वक्र कोटर आदि स्थाणुके विशेष एव शिर हाथ आदि पुरुषके विशेषो का प्रत्यक्ष नहीं किन्तु पहले उनका ज्ञान हो चुका है इसलिये मनके द्वारा उनका स्मरण है इस रीतिसे सामान्यप्रत्यक्ष विशेषाप्रत्यक्ष और विशेष स्मरण है वहीं पर संशयज्ञान होनेके कारण इन्द्रियों के आधीन इसकी उत्पत्ति मानी है परतु अवधिज्ञानमें इन्द्रियोके व्यापारकी कोई अपेक्षा नहीं न मनके व्यापारकी कोई अपेक्षा है क्योंकि अवधिज्ञानको इन्द्रिय और मनसे अजन्य माना है किन्तु अवधिज्ञानावरणके क्षयोपशमको विशुद्धता रहने पर वह सामान्य विशेष स्वरूप अपने विषयभूत पदार्थोंको जानता है इसलिये अवधिज्ञानका विपरिणमन संशय स्वरूप नहीं होसकता लेकिन हां ! मिथ्यात्व नाम कर्मके विपरीत श्रद्धान स्वरूप मिथ्यादर्शनके साथ अवधिज्ञान रहता है इसलिये वह विपरीत स्वरूप है तथा जिस पदार्थकी ओर अवधिज्ञानका उपयोग लगा हुआ है कारण वश उसका पूरा ज्ञान नहोनेके पहिले ही दूसरे किसी ज्ञानके विषयभूत दूसरेही पदार्थकी ओर उपयोग लग जाय उस समय मार्गमे जाते हुये पुरुष को तृण स्पर्शके ज्ञानके समान अनिश्चयात्मक अवधिज्ञान होजाता है इसलिये अवधिज्ञानका विपरिणमन अनध्यवसाय स्वरूप भी है किंतु जिस समय जिस पदार्थ को अवधिज्ञान विषय कर रहा है उस समय यदि वह उपयोग दृढ़ होगा तो अवधि ज्ञानका अनध्यवसाय स्वरूप विपरिणमन नहीं हो सकता ॥ (देखो श्लोक वार्तिक श्लोक १२, और १३ पृष्ठ २५६)

(१) सामान्यरूपसे विपर्ययका अर्थ मिथ्याज्ञान है तो भी संशय विपर्यय और अनध्यवसाय इन तीनों प्रकारके ज्ञानोका यहां ग्रहण है परंतु स्मरण रहे कि मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, और अवधिज्ञान येही तीनों ज्ञान विपरीत वा मिथ्याज्ञान होसक्ते हैं न कि मनःपर्यय और केवलज्ञान (प्रश्न) क्यों ?

मिथ्यादर्शनेन सहैकार्थसमवायात सरजस्ककटुकालाबुगतदुग्धवत् ॥

मिथ्यादर्शनेन३।।। सह॥ =(उत्तर) मिथ्यात्व (के उदयकरि) सहित (=सह) (आत्मा और मतिज्ञानादिक का)
एकार्थ-समवायात् ५। =एकमेकतारूप (=एकार्थ) संबंध, सम्मेलन, वा संश्लेप (के हेतु) से (=समवायात)
(मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान के विपरीतता होजाती है)
सरजस्क-कटुक-आलाबु-गत-दुग्धवत्॥ =जैसेकि गिरी वा रज सहित कडुवी (=कटुक) तुम्बीमें (=अलाबु) क्षेपा हुआ (=गत) दूध

अर्थात् जैसे गिरी सहित वा रज सहित (=सरजस्क) कडुवी तुम्बीमें दूध रखनेसे कडवा होजाता है तैसेही दर्शन मोहनीय कर्म के उदयसे आत्माका जो मिथ्यादर्शन परिणाम होता है उसके साथ मति आदि ज्ञान भी एक स्थानमें रहते हैं — दोनों (मिथ्यादर्शन परिणाम और मति आदि ज्ञान) एक साथ आत्मामें रहते हैं इस लिये मिथ्यात्व के संबंधसे मति आदि ज्ञान मिथ्या ज्ञान कहे जाते हैं ॥

(उत्तर) क्योंकि दर्शन मोहनीय कर्मके उदयसे जो आत्माका मिथ्यादर्शन परिणाम होता है उसके साथ मतिज्ञान , श्रुतज्ञान , अवधिज्ञान भी एक स्थानमें रहते हैं । उक्त मतादिज्ञान और आत्माका मिथ्यादर्शन परिणाम दोनों एकसाथ आत्मामें रहते हैं इसलिये मिथ्यात्वके संबंधसे मतिज्ञान आदि मिथ्याज्ञान कहे जाते हैं । परंतु मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञानका आत्मामें मिथ्यादर्शनके कारणोंके सर्वथा नष्ट होजाने पर सम्यक्त्व गुणकी प्रगटता से जिस समय आत्मा विशुद्ध होजाता है उस समय उदय होता है । विना सम्यक्त्वगुणके उदय नहीं होसकता इस लिये मिथ्यात्वके संबंधसे सर्वथा दूर रहनेके कारण मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान कभी मिथ्या नहीं होसकते । उन दोनों ज्ञानोंमें जिस समय दर्शन मोहनीय कर्मका सर्वथा क्षय हो जाता है और चारित्र मोहनीय कर्मका उपशम (अर्थात् मन पर्ययज्ञान छठे गुणस्थानमें भी होजाता है अतः यह प्रत्याख्यानादिके उपशमकी अपेक्षा कथन है होजाता है उस समय आत्मामें मनःपर्ययज्ञानका उदय होता है इसलिये मिथ्यात्वके साथ संबंध न रहनेके कारण वह मिथ्याज्ञान नहीं होसक्ता तथा ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय मोहनीय और अन्तराय इन चार घातिया कर्मों के सर्वथा नष्ट होजाने पर आत्मामें केवलज्ञान का उदय होता है । उस समय परिपूर्ण विशुद्धता केवलज्ञानमें प्रगट होजाती है इसलिये वह भी मिथ्याज्ञान नहीं कहा जा सकता ॥

ननु च तत्राधारदोषात् दुग्धस्य रसविपर्ययो भवति; न च तथा मत्यज्ञानादीनां विषयग्रहणे विपर्ययः ॥ तथाहि, सम्यग्दृष्टिर्यथा चक्षुरादिभिः रूपादीनुपलभते, तथा मिथ्यादृष्टिरपि मत्यज्ञानेन ॥ यथा च सम्यग्दृष्टिः श्रुतेन रूपादीनि जानाति निरूपयति च तथा मिथ्यादृष्टिरपि श्रुताज्ञानेन ॥ यथा चावधिज्ञानेन सम्यग्दृष्टिः रूपिणोऽर्थानवगच्छति तथा मिथ्यादृष्टिर्विभङ्गज्ञानेनेति ॥ अत्रोच्यते—

ननु* च* तत्र* आधार-दोषात् ॥ दुग्धस्य ॥।
रस-विपर्ययः ॥ भवति। न* च* तथा*
मति-अज्ञान-आदीनां ॥। विषय-ग्रहणे ॥। विपर्ययः ॥

तथाहि* सम्यग्दृष्टिः ॥ यथा* चक्षुरादिभिः ॥।
रूपादीन्॥ उपलभते। तथा* मिथ्यादृष्टिः॥ अपि*
मति-अज्ञानेन॥। ; यथा* च* सम्यग्दृष्टिः॥ श्रुतेन॥।
रूपादीनि ॥ जानाति। निरूपयति। च* तथा*
मिथ्यादृष्टिः ॥ अपि* श्रुत-अज्ञानेन ॥। यथा* च*
अवधिज्ञानेन॥। सम्यग्दृष्टिः॥ रूपिणः॥ अर्थान्॥
अवगच्छति। तथा* मिथ्यादृष्टिः॥ विभंगज्ञानेन॥।
इति* अत्र* उच्यते।

=फिर (=च) प्रश्न (=ननु) वहां (तुंबीमें) आधारके दूषणसे दूधका
=स्वाद उलटा हो जाता है (अर्थात् कडुवा होजाता है) परंतु (=च) नहीं है तैसे
=मतिअज्ञानादिकोंके विषय ग्रहण (करने) में विपरीतता अर्थात् जाननेमें तो विषय
का ग्रहण सम्यक्त्वमें और मिथ्यात्वमें समान होता है
=उदाहरण (=तथाहि) सम्यग्दर्शनवाला जैसे नेत्र आदिक इन्द्रियोंसे
=रूपादिकों को जानता है (=उपलभते) तैसे मिथ्यादर्शनवाला भी
=कुमतिज्ञानकरि (जानता है) और (=च) जैसे सम्यग्दर्शनवाला श्रुतज्ञानकरि
=रूपादिकों को जानता है तथा (=च) कथन करता है तैसे
=मिथ्यादृष्टि भी कुश्रुतज्ञान द्वारा (जानता है और व्याख्यान करता है) और जैसे
=अवधिज्ञानकरि सम्यग्दर्शनवाला रूपी वा मूर्तीक वस्तुओं को
=जानता है (=अवगच्छति) तैसे मिथ्यादर्शनवाला कुअवधिज्ञानकरि (जानता है)
=ऐसा (प्रश्न होने पर) यहां कहते हैं कि

---

(१) जानाति। निरूपयति। इति* अपि* पाठान्तरम् ॥। =जानता है कथन करता। ऐसा भी अन्य पाठ है

सदसतोरविशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत् ॥ ३२ ॥

सद्विद्यमानमसदविद्यमानमित्यर्थः । तयोरविशेषेण यदृच्छया उपलब्धेर्विपर्ययो भवति ॥

सदसतोरविशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत् =सदसतोरविशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत् (विपर्ययो भवति ज्ञानम्)

सत्-असतोः ६। =विद्यमान और अविद्यमान (पदार्थो) का वा प्रशस्त (भले) अप्रशस्त (बुरे) का
अविशेषात् ५। =विशेषरूप वा प्रभेदरूप ज्ञान वा ज्योका त्यो विवेक न होने (के हेतु) से
यदृच्छ-उपलब्धेः ६॥। उन्मत्तवत्* =अपनी यद्वातद्वाइच्छा द्वारा ग्रहण करने से उन्मत्त (पुरुष) के समान
विपर्ययः १। भवतिT ज्ञानम् १॥। =विपरीत वा मिथ्याज्ञान होता है भावार्थ जिस प्रकार मदमाता वा उन्मत्त पुरुष भार्याको माता और माता को भार्या समझता है यह उसका ज्ञान मिथ्याज्ञान है परंतु किसी समय वह भार्याको भार्या और माताको माता कहता है तौ भी उसका यह जानना सम्यग्ज्ञान नहीं कहलाता क्योंकि उसको भार्या और माताके भेदका यथार्थ विवेक वा ज्योका त्यो ज्ञान और विचार नहीं उसी प्रकार मिथ्यात्वके उदयसे सत् और असत् पदार्थोंका यथार्थ ज्ञान न होनेके हेतु से कुमतिज्ञान कुश्रुतज्ञान कुअवधिज्ञान (विभङ्ग अवधिज्ञान) भी मिथ्या ज्ञान है ॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित बत्तीसवां सूत्र पर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिन्दी अनुवाद ॥

संत १॥। विद्यमानम्१॥। असत्१॥। अविद्यमानम्१॥। =सत् विद्यमान वा वर्तमान (वस्तु) है असत् अविद्यमान वा अनछती (वस्तु) है
इति* अर्थः १। तयोः[२] ६॥। अविशेषेण ३। =ऐसा तात्पर्य है इन दोनों (सत् असत्) का यथार्थ विवेक न होने से
यदृच्छया ३॥ उपलब्धेः ५॥ विपर्ययः १। भवति T =अपनी मनमानी इच्छाकरि (=यदृच्छया) ग्रहण करनेसे विपरीत वा मिथ्या (ज्ञान) है

(१) इस सूत्रका दोनो श्वेताम्बर और दिगम्बर सम्प्रदायोंमे पाठ और अर्थ एक है ॥ ज्ञान शब्दकी नोंवां और विपर्ययकी३१वां सूत्रसे अनुवृत्ति लीग. है
(२) तयोः शब्द सत् और असत् शब्दके लिये है और सत् असत् विद्यमान अविद्यमानके कारण नपुसकलिंगी हैं अतः तयोः नपुसकलिंगी है ॥
(३) सत्=प्रसशा=प्रशस्त तत्वज्ञान (ख) विद्यमान । असत्=अप्रशस्त अर्थात् अप्रशस्त तत्वज्ञान (ख) अविद्यमान (देखो तत्त्वार्थ राज वार्तिक पृष्ठ६४)

कदाचिद्रूपादि सदप्यसदिति प्रतिपद्यते, असदपि सदिति, कदाचित्सत्सदेव, असदप्यसदेवेति मिथ्यादर्शनोदयादध्यवस्यति ॥ यथा पित्तोदयाकुलितबुद्धिर्मातरं भार्येति, भार्यामपि मातेति मन्यते । यदृच्छया मातरं मातैवेति भार्यामपि भार्यैवेति च ॥ तदपि न तत्सम्यग्ज्ञानम् ॥ एवं मत्यादीनामपि रूपादिषु विपर्ययो वेदितव्यः ॥ तथा हि कश्चिन्मिथ्यादर्शनपरिणाम आत्मन्यवस्थितः रूपाद्युपलब्धौ सत्यामपि कारणविपर्यासं भेदाभेदविपर्यासं स्वरूपविपर्यासं च जनयति ।

कदाचित्* रूपादि ३॥ सत् ३॥ अपि* असत् १॥	=कभी (=कदाचित्) रूपादिक छती वा विद्यमान (वस्तु) को भी अविद्यमान है
इति* प्रतिपद्यते T असत् १॥	=ऐसा कहता है(=प्रतिपद्यते)वा अंगीकार करता है(=प्रतिपद्यते)अविद्यमान(वस्तु) को
अपि* सत्१॥ इति* कदाचित्* सत्१॥ सत्१॥ एव*	=भी विद्यमान है ऐसा (कहता है) कभी विद्यमान को विद्यमानही
असत्१॥ अपि* असत्१॥ एव* इति* मिथ्या-	=अविद्यमान को भी अविद्यमान ही ऐसा मिथ्या-
दर्शन-उदयात् ५। अध्यवसाति T यथा* पित्त-उदय-	=दर्शनके उद्रेकसे वा उदयसे निश्चय करता है(=अध्यवस्यति) जैसे पित्तके उदयसे
आकुलितबुद्धिः[1]१। मातरम्२॥ भार्या१॥ इति* भार्याम्२॥	=घबराई हुई है बुद्धि जिसकी (ऐसा पुरुष) जननीको भार्या वा पत्नी ऐसा पत्नीको
अपि* माता १॥ इति* मन्यते T यदृच्छया ३॥	=भी जननी ऐसा मानता वा जानता है अपनी मनमानी इच्छा स
मातरम् २॥ माता १॥ एव* इति च भार्याम् २॥ अपि*	=माताको माता ही ऐसा और (=च) भार्या को भी
भार्या१॥ एव*इति*तदपि*न* तत्सम्यग्ज्ञानं१॥ एवं*	=भार्याही (मानता है) वहभी (=तदपि) उसका (=तद्) सम्यग्ज्ञान नहीं है इस प्रकार
मति-आदीनां६॥अपि*रूपादिषु७॥विपर्ययः१।वेदितव्यः१।	=मतिज्ञान आदिकोंकी भी रूपादिकमें विपरीतता जानना योग्य है(सो ही कहते हैं कि)
तथाहि*कश्चित्*मिथ्यादर्शन-परिणामः१।आत्मनि७।अवस्थितः	=जैसे (=तथा हि) किसी आत्मामें ठहरा हुआ मिथ्यात्वपरिणाम
रूपादि-उपलब्धौ ७॥	=(नेत्रादि करि) रूपादिकों के जानने में (सम्यग्दृष्टि मिथ्यादृष्टि के)
सत्याम् ७॥ अपि*	=जैसाका तैसा(=सत्याम्)यथार्थ वा समान(=सत्याम्)(ज्ञान)होने परभी(=अपि)
कारणविपर्यासम् २। भेदाभेदविपर्यासम् २।	=कारण विपर्यास को भेदाभेद विपर्यासका
च* स्वरूप-विपर्यासम् २। जनयति T	=और (=च) स्वरूप विपर्यास को उपजाता है ।

(१) आकुलितबुद्धि (=घबराई हुई है बुद्धि जिस की) बहुव्रीहि समास होने के कारण पुल्लिंग में यह वाक्य लिखा गया है ॥

कारणविपर्यासस्तावत्- रूपादीनामेकं कारणममूर्त्तं नित्यमिति केचित्कल्पयन्ति ॥ अपरे पृथिव्यादिजातिभिन्नाः परमाणवश्चतुस्त्रिद्व्येकगुणास्तुल्यजातीयानां कार्याणामारम्भका इति ॥

तावत्॥ कारणविपर्यासः ।। रूपादीनाम् ।। एकम् ।।। =प्रथम कारण विपर्यास (कहा जाता) है। रूपादिकों का एक (ही)
कारणम्।।।अमूर्त्तम्।।।नित्यम्।।।इति केचित्॥कल्पयन्ति =कारण अमूर्तीक नित्य है ऐसा कितनेक (वादी) कल्पना करते हैं अर्थात् ब्रह्माद्वैतवादी मानते हैं कि रूपादिकोंका कारण एक अमूर्तीक नित्य ब्रह्मही है ब्रह्महीसे हुये हैं। सांख्यमती कहते हैं कि रूपादिकों का कारण अमूर्तीक नित्य प्रकृति है प्रकृतिसे ही ये रूपादिक उपजे हैं ॥ (यद्यपि नेत्रोंको ये जैसे हैं तैसे ही दीखे हैं)
अपरे ।। पृथिवी-आदि- =दूसरे अर्थात नैयायिक और वैशेषिक मानते हैं कि पृथिवी जलअग्निवायुकी (=आदि)
जातिभिन्नाः ।। परमाणवः ।। चतुर्- =जातिरूप जुदी जुदी (=भिन्नाः) परमाणुं (यथाक्रम वा क्रमसे) गंधरसरूपस्पर्श चार
त्रि-द्वि-एक-गुणाः।। =रस रूप स्पर्श तीन (गुणवाली) रूप स्पर्श (दो गुणवाली) स्पर्श एक गुणवाली हैं
तुल्य-जातीयानां।। कार्याणाम ।।। आरम्भकाः।। इति॥ =(सो अपने अपने)समान जातियोंके (स्कंधरूप) कार्योंको आरम्भ करनेवाली है अर्थात पृथवी आदि चारो अपनी अपनी जातिके भिन्न भिन्न स्कंधरूप कार्योंको उपजाते हैं

(१) पार्थिवपरमाणुषु गन्धरसरूपस्पर्शाः । आप्येषु रसरूपस्पर्शाः । तैजसेषु रूपस्पर्शौ । वायवीयेषु स्पर्शः ॥
पार्थिवपरमाणुषु ।। गन्धरसरूपस्पर्शाः ।। =पृथिवी से होने वाले परमाणुओं मे गन्ध-रस-वर्ण-स्पर्श (ये चार गुण) हैं
आप्येषु ।। रस-रूप स्पर्शाः ।। =जल से होने वाले (परमाणुं) नि में रस, वर्ण और स्पर्श (ये तीन गुण) होते हैं ॥
तैजसेषु ।।। रूप-स्पर्शाः ।। =अग्नि से होने वाले (परमाणु) नि में रूप और स्पर्श (ये दो गुण) होते हैं (।।-)
वायुवीयेषु ।। स्पर्शः ।। =पवन से होने वाले (परमाणुं) नि में स्पर्श (एक गुण) होता है ॥
आप्येषु और वायुवीयेषु पुल्लिंगी नपुंसकलिंगी दोनों हैं ॥

अन्ये वर्णयन्ति--पृथिव्यादीनि चत्वारि भूतानि, भौतिकधर्मा वर्णगन्धरसस्पर्शाः, एतेषां समुदायो रूपपरमाणुरष्टक इत्यादि॥ इतरे वर्णयन्ति--पृथिव्यप्तेजोवायवः काठिन्यादिद्रवत्वाद्युष्णत्वादीरणत्वादिगुणा जातिभिन्नाः परमाणवः कार्यस्यारंभकाः॥ भेदाभेदविपर्यासः कारणात्कार्यमर्थान्तरभूतमेवेति

अन्ये ;। वर्णयन्ति T पृथिवी-आदीनि ;॥।	=दूसरे (अर्थात् बौद्धमती) वर्णन करते हैं कि पृथिवी जल-तेज-वायु (=आदि)
चत्वारि ;॥ भूतानि ;॥। भौतिकधर्माः ;।	=चार विशेप गुणवाले द्रव्य हैं (=भूतानि) इन विशेप द्रव्योंके स्वभाव और धर्म
वर्णगन्धरसस्पर्शाः ;। एतेपाम् ;।	=रूप, गंध, रस, स्पर्श हैं इन (पृथिवी, जल, तेज, वायु, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श) का
समुदायः ;।रूपपरमाणुः ;। अष्टकः ;। इत्यादि ;॥।	=समूह रूप परमाणु अष्टक है एसें और (वातें भी मानते) हैं
इतरे ;। वर्णयन्तिT पृथिवी-अप्-तेजस्-वायवः ;।	=अन्य (अर्थात् चार्वाक मती) कहते हैं कि भूमि, जल, अग्नि. पवन, (क्रमसे)
काठिन्यादि-द्रवत्वादि-उष्णत्वादि-ईरणत्वादि-	=कठोरतादि, वहनापनादि, तप्तादि, प्रेरणत्वादि (=ईरणत्वादि)
गुणाः ;। जातिभिन्नाः ;। परमाणवः ;।	=गुण वाले भिन्न भिन्न जातिवाले परमाणुं हैं।
कार्यस्य ;॥ आरम्भकाः ;।	=(ते भिन्न भिन्न जाति वाले परमाणु पृथिवी आदिक स्कंध रूप) कार्य के
	=आरम्भ करने वाले हैं। (इस सबका भावार्थ यह है कि) भूमि के परमाणुं के

काठिन्यादिगुण और जलके परमाणुओंके द्रवत्वादिगुण और अग्निके परमाणुओंके ऊष्णत्वादिगुण और पवनके परमाणुओं के ईरणत्वादिगुण हैं ते भिन्न भिन्न परमाणुं पृथिवी आदिक भिन्न भिन्न स्कन्ध अपनी अपनी जातिरूप उत्पन्न करते हैं।
(इस प्रकार तौ पृथिवी आदिक पदार्थों के कारण में विपर्यय मानते हैं)

भेदाभेदविपर्यासः ;। कारणात् ;॥। कार्यम्;॥।	=भेदाभेद विपर्यासः जैसे कारणसे कार्य
अर्थान्तरभूतम् ;॥। एव* इति*	=भिन्न पदार्थ (=अर्थान्तर) ही होता है अर्थात् पृथिवी आदिक परमाणूं नित्य हैं तिन से स्कन्धरूप जो कार्य उत्पन्न होते हैं वे उन परमाणुंओंसे भिन्न हैं वा गुणसे गुणी भिन्न ही है वा द्रव्यसे गुण पृथक् ही है

अनर्थान्तरभूतमेवेति च परिकल्पना ॥ स्वरूपविपर्यासः रूपादयो निर्विकल्पाः सन्ति न सन्त्येव वा । तदाकारपरिणतं विज्ञानमेव । न तदालम्बनं वस्तु बाह्यमिति ॥ एवमन्यानपि परिकल्पनाभेदान् दृष्टेष्टविरुद्धान्मिथ्यादर्शनोदयात्कल्पयन्ति तत्र च श्रद्धानमुत्पादयन्ति । ततस्तन्मत्यज्ञानं श्रुताज्ञानं अवध्यज्ञानं च भवति ॥ सम्यग्दर्शनं पुनस्तत्त्वार्थाधिगमे श्रद्धानमुत्पादयति । ततस्तन्मतिज्ञानं श्रुतज्ञानमवधिज्ञानं भवति आह प्रमाणं

अनर्थान्तरम् भूतम् एव इति च परिकल्पना ॥	=और (=च)(कारणसे कार्य) अभिन्न पदार्थ ही होता है इस प्रकार (किसी किसीकी) कल्पना या मानना है। जैसे घट पटादिक और ग्राम वन पर्वतादिक ब्रह्मसे उत्पन्न भये हैं या ब्रह्मही हैं जुदे नहीं हैं ॥ (इत्यादि भेदाभेद विपर्यास है जहां भेद होय तहां अभेदकी कल्पना जहां अभेद होय तहां भेदकी कल्पना, ऐसे विपर्यय योगियोंकी है)
स्वरूपविपर्यासः। रूपादयः। निर्विकल्पाः। सन्ति	=स्वरूप विपर्यास जैसे रूपादिक निर्विकल्प हैं अर्थात् इनकी कल्पना नहीं होसक्तीहै (ऐसी वैभाषिक मतवालों की कल्पना है)
न सन्ति एव वा	=अथवा रूपादिक कोई पदार्थ नहीं हैं
तद्-आकार-परिणतम् । विज्ञानम् । एव	=उन (रूपादिक) के आकाररूप परिणया विज्ञान ही है
न तद्-आलम्बनम् । वस्तु । बाह्यम् । इति	=तिस (विज्ञान) के आश्रयभूत या आलम्बनरूप बाह्यद्रव्य (रूपादिक) नहीं हैं (विज्ञान अद्वैतवादियोंका जो बौद्धमत का एक भेद है ऐसी ऊपर कही हुई कल्पना है)
एवम् अन्यान् । अपि परिकल्पनाभेदान् ।	=इस प्रकार भिन्न भिन्न बहुत (=परि) कल्पना के भेदों को भी
दृष्टेष्टविरुद्धान् । मिथ्यादर्शनउदयात् ।	=जो प्रत्यक्ष अनुमान प्रमाण से विरुद्ध हैं मिथ्यात्व के उदय से
कल्पयन्ति तत्र च श्रद्धानम् । उत्पादयन्ति ।	=मानते हैं । और (=च) तहां प्रतीति या रुचि (=श्रद्धान) को उत्पन्न करते हैं
ततः तत् । मतिअज्ञानम् । श्रुत-अज्ञानम् ।	=जिससे वह (=तद्) कुमतिज्ञान (वह) कुश्रुतज्ञान
च अवधिअज्ञानम् । भवति । पुनः सम्यग्दर्शनम् ।	=और (वह) कुअवधिज्ञान या विभंग अवधिज्ञान होता है ॥ और सम्यक्त्व
तत्त्व-अर्थ-अधिगमे । श्रद्धानम् । उत्पादयति ।	=यथार्थ या यथावस्थित (=तत्त्व) वस्तु या पदार्थके (=अर्थ) जाननेपर प्रतीति उपजाता है
ततः तद् । मतिज्ञानम् । श्रुतज्ञानम् ।	=जिससे जो मतिज्ञान (वह) श्रुतज्ञान
अवधिज्ञानम् । भवति । आह । प्रमाणम् ।	=(वह) अवधिज्ञान होता है । पूछता है कि प्रमाण (प्रत्यक्ष और परोक्ष)

द्विप्रकारं वर्णितम्। प्रमाणैकदेशाश्च नयास्तदनन्तरोद्देशभाजो निर्देष्टव्या इत्यतआह ॥

नैगमसंग्रहव्यवहारर्जुसूत्र शब्दसमभिरूढैवम्भूता नयाः ॥३३॥

द्विप्रकारम्॥।वर्णितम्॥।प्रमाण-एक-देशाः।च नयाः। =दो प्रकार वर्णन किया गया है और (=च) प्रमाणके एकदेश (जे) नय (ते)
तद्-अनन्तर- =(प्रमाणनयैरधिगमः इस सूत्र मे) उस (प्रमाण) के अत्यन्तसमीप (=अनन्तर)
उद्देश-भाजः। निर्देष्टव्याः। इति॥ अतः॥ आह T =नाममात्र कहे (=उद्देशभाज) (अब) कथन किये जाने योग्यहैं। इसलिये कहतेहैं कि

नैगमसंग्रहव्यवहारर्जुसूत्रशब्द समभिरूढैवम्भूता नयाः ॥३३॥

=नैगमसग्रहव्यवहारर्जुसूत्रशब्दसमभिरूढैवम्भूता (ःसप्त) नया) : (भवन्ति) ॥३३॥

नैगम-सग्रह-व्यवहार-ऋजुसूत्र-शब्द- =नैगम संग्रह (=सङ्ग्रह), व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द,
समभिरूढ-एवम्भूताः। सप्त। नयाः। भवन्ति T =समभिरूढ, और एवम्भूत सात नय विद्यमान हैं (=भवन्ति) अर्थात

(१) व्यवहारर्जुसूत्र =व्यवहार+ऋजुसूत्र (दोनों वाक्य ठीक हैं देखो टिप्पणी पृष्ठ ७४)॥ (२) एवम्भूत = एवभूत (देखो टिप्पणी पृष्ठ ५ और नीचे की टि०)। म् पदान्त हो वा किसी प्रत्यय के अतमें हो और इस म् के पश्चात् कोई व्यजन आवे तो म् का विकल्पकरि अनुस्वारमें परिवर्तन होजाता है यदि इस म् के पश्चात् श्-ष्-स्-र्-ह् आवे तो म् अवश्य ही अनुस्वार में पलट जावेगा। यदि हम इस म् को अनुस्वार में न पलटें तो उस अनुनासिक 'ङ्-ञ्-ण् न्-म्' मे परिवर्तन होगा जिस वर्ग का व्यजन इस म् के पीछे आवे और यदि इस म् के पश्चात य्-व्-ल् म से कोई आवे तो म् अनुनासिक य्-व् ल् में क्रमानुसार वा यथायोग्य पलट जवैगा। अतः एवम्+भूतानयाः शब्द का म अनुस्वार में पलटकर एवं भूतानयाः ऐसा शब्द वना। इसलिये एवम्भूतानया और एवभूतानया दोनों वाक्य ठीक है॥ (भाण्डारकर मार्गोपदेशिका पृष्ठ १३) (३) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य में हमारे यहां के तेतीसवां सूत्रके स्थान में "नैगमसग्रहव्यवहारर्जुसूत्रशब्दा नयाः" चौंतीसवां सूत्र है। इस चौंतीसवां सूत्रके लगता ही "आद्यशब्दौ द्वित्रिभेदौ" (=आदिकी नैगमनय) के दो (भेद। शब्द (नय) के तीन भेद हैं) ऐसा सभाष्य० में पैंतीसवां सूत्र है॥ (देखो पृष्ठ ४९४)॥

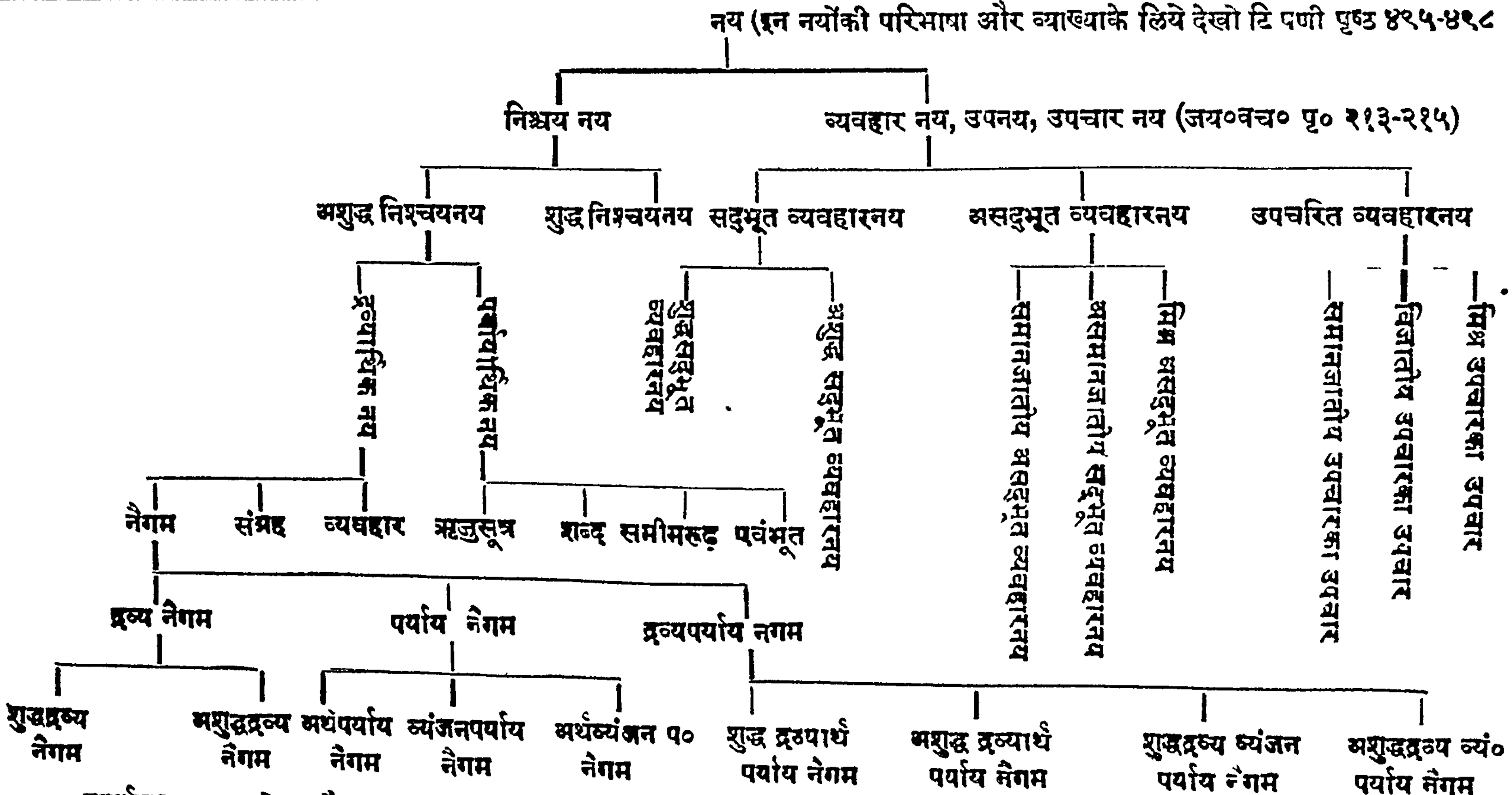
नय (देखो प० जयचद की वचनिका मुद्रित पृष्ठ १९५) दोनों आम्नायों की ये वंशावली मिलतीसी हैं।

नय
- अर्थ नय
  - नैगम
  - संग्रह
  - व्यवहार
  - ऋजुसूत्र
- शब्द नय
  - शब्द
  - समभिरूढ
  - एवभूत

नय (देखो सभाष्यतत्वार्थाधिगमसूत्रम् पृष्ठ २१)

नय
- नैगम
  - देश परिक्षेपी
  - सकल परिक्षेपी
- संग्रह
- व्यवहार
- ऋजुसूत्र
- शब्द
  - साम्प्रत
  - समभिरूढ
  - एवभूत

वस्तुमें अनेक धर्म (=स्वभाव) होते हैं उनमेंसे किसी एक धर्मकी मुख्यता लेकर



पदार्थका व्यवहार भेद और उपचार दोनोंका ग्रहण करने वाली उपनय वा उपचारनय है अर्थात् वह व्यवहार नय है जहां नयके 'निश्चय नय और व्यवहार नय' दो भेद किये हैं सूत्र (३३)मे वर्णित व्यवहारनय वह है जो संग्रह नयके द्वारा ग्रहणकिये हुये पदार्थके भेद प्रभेद करती है ॥

अविरोधरूप साध्य पदार्थ को जानै सो नय है । उसके उपर्युक्त सातभेद हैं ॥

(१) नय = वस्तुके एक देश को जानने वाले ज्ञान को नय कहते हैं ॥ (२) वस्तु के किसी सत्य या यथार्थ अंशके ग्रहण करने वाले ज्ञानको निश्चय नय कहते हैं । जैसे मिट्टीके घटको मिट्टीका घट कहना ॥ (३) किसी निमित्तके वशसे एक पदार्थको दूसरे पदार्थरूप जाननेवाले ज्ञानको व्यवहारनय कहते हैं । जैसे मिट्टी के घड़े को घीके रहने के निमित्तसे घी का घड़ा कहना ॥ (४) "भाव क्रोध आदिक रागादिक नय अशुद्ध निश्चै परवान" द्यानतरायजी अनुवादित द्रव्य संग्रह ॥ "तहां जीवकूं मतिज्ञानादिक का कर्त्ता कहिए सो अशुद्ध निश्चयनय है" अर्थ प्रकाशिका ॥ जीवको क्षयोपशमरूप मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान मनः पर्ययज्ञान चार ज्ञानों का कर्त्ता कहना सो तो अशुद्धनिश्चय नय है और (५) शुद्ध दर्शन ज्ञानका अर्थात् केवल दर्शन और केवलज्ञानका कर्ता कहना सो शुद्ध निश्चयनय है ॥ "निहचै (नयसे) शुद्ध बुद्ध निजगुनमें केवल दर्शन ज्ञान सरूप" ॥ द्रव्य संग्रह ॥ (६) जो द्रव्य अर्थात् सामान्य को ग्रहण करै सो द्रव्यार्थिक नयहै (७) जो विशेष अर्थात् गुण अथवा पर्याय का विषय करै सो पर्यायार्थिक नयहै(८) नैगम, संग्रह, व्यवहार, द्रव्यार्थिक नयहैं और ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ, एवंभूत ये पर्यायार्थिक नयहैं इनकी परिभाषा हमने सूत्रार्थ में दी हैं यहां पर केवल इतना दिखाना है कि व्यवहार शब्द जो इनसात नयके प्रसंगमें है उसका अर्थ "संग्रहनयसे ग्रहण किये हुये पदार्थोंको विधि पूर्वक भेद प्रभेद जहांतक करै" "फिर किसी प्रकारका विभाग न हो सकै" "सो जहां ऋजुसूत्रका विषयहै ताके पहले ताई संग्रह व्यवहार दोऊ नय चले जाय है" ऐसा है जय० पृष्ठ २०१ परन्तु नयवंशावलीमे (पृष्ठ ४९४) निश्चयनयके निकट जो व्यवहार नय दीहै जिसको उपनय और उपचार नय भी कहतेहैं और जिसके आठ भेद कहे हैं वह "किसी निमित्तके वशसे एक पदार्थको दूसरे पदार्थ रूप जाननेवाले ज्ञानका नाम है" जैसाकि इस पृष्ठकी संख्या (३)मे कहाहै इसका विशेष ऐसेहै कि "जहां अन्य पदार्थके भावको अन्य पदार्थविषै आरोपण करै तथा परनिमित्ततें भए जे नैमित्तिक भाव ताकूं ही वस्तु का निजभाव कहै । तथा आधार आधेयभाव आदि प्रयोजनके वशतै आरोपण कीजिए तथा एक देशमे सर्वदेश का उपचार करै तथा कारणविषैं कार्यका उपचार करै इत्यादि सर्वही व्यवहार (नय) कहावै है, अर्थ प्रकाशिका पृष्ठ ८६ । हमारी समझमे व्यवहारनय जो सातनयोंमे गर्भित है और उपचारनय, उपनय या व्यवहारनय जो निश्चय नयके निकट वंशावलीमे दी है इन दोनोंमे यही उपर्युक्त दिया हुआ अंतर है यदि हम विचारलै कि संग्रहनयसे ग्रहण किये हुये पदार्थ का भेद प्रभेद व्यवहारनयसे न करै तो व्यवहार नहीं चल सकताहै और उपचार नय उपनय (वा निश्चयनयके निकटस्थ वाली व्यवहारनय) से भी व्यवहार चलता है तो इस अवस्था मे दोनों नय व्यवहार को चलाने वाली सामान्यरूप से एकभी कही जा सकती हैं॥

(१) जितने द्रव्य हैं–वे अपनी भूत, भविष्यत, वर्त्तमान काल की समस्त पर्यायों से

( ) एक अखडद्रव्यको भेदरूप विषय करनेवाले ज्ञानको सद्भूत व्यवहार नय कहतेहैं। जैसे–जीवके केवलज्ञानादिक वा मतिज्ञानादिक गुण हैं॥ (जैन सिद्धान्त प्रवेशिका पृष्ठ २३) उक्तनयके शुद्धसद्भूत व्यवहार और अशुद्धसद्भूत व्यवहार ये दो भेद हैं॥

( ) शुद्धगुण और शुद्धगुणीका भेद कहना जिस प्रकार जीवके केवलज्ञानादि गुण हैं अथवा शुद्ध पर्याय और शुद्ध पर्यायीका भेद कहना जिस प्रकार सिद्ध जीवकी सिद्ध पर्याय है यह शुद्ध सद्भूत व्यवहार है॥ () अशुद्धगुण और अशुद्ध गुणीका भेद कहना जैसे जीवके मतिज्ञानादिक गुण हैं अथवा अशुद्ध पर्याय और अशुद्ध पर्यायीका भेद कहना जैसे संसारी जीवकी देव आदि पर्याय है यह अशुद्ध सद्भूत व्यवहारनय है॥

( ) "अन्य स्वतुका गुण अन्यके कहै सो असद्भूत व्यवहार है" जय० पृष्ठ २१४ जिसके द्वारा स्वजाति संबंधी असत् व्यवहार होता हो वह स्वजात्य सद्भूतव्यवहारनय है जैसे परमाणु बहु प्रदेशी हैं। यहां पर बहुप्रदेशी पुद्गल द्रव्य परमाणुका सजातीय है परंतु परमाणु बहु प्रदेशी नहीं वह एक प्रदेशीही है इसलिये एक प्रदेशीके स्थानमें बहु प्रदेशी कहनेसे 'परमाणुको बहु प्रदेशी कहना" समान जातीय असद्भूत व्यवहारनयका विषय है। ( ) जिस नयके द्वारा विजाति संबंधी असत् व्यवहार होता हो वह विजात्यसद्भूत व्यवहार है जैसे जहां एकेन्द्रियादिक देह सो पुद्गल स्कंध हैं तिनको जीव कहना सो असमान जातीय असद्भूत व्यवहारनयका विषय है॥

( ) जिस नयके द्वारा स्वजाति विजाति सबंधी असद् व्यवहार हो वह स्वजाति विजात्यसद्भूत व्यवहारनय हैं जैसे जहां मतिज्ञानको मूर्तीक कहना क्योंकि मूर्तीकसे उपजे है तथा रुकै है। तहां मतिज्ञान तो अमूर्तीक जीवका धर्म हैं और मूर्तीकपना पुद्गलका धर्म है यह मिश्र असद्भूत व्यवहार हुआ॥ (अन्य उदाहरण) जैसे ज्ञान ज्ञेयमें रहता है यहां पर ज्ञेयसे जीव अजीव दोनों प्रकारके ज्ञेय पदार्थोंका ग्रहण है उनमें जीव पदार्थ ज्ञानका सजातीय है और अजीव पदार्थ ज्ञानका विजातीय है दोनोंको ज्ञानका आधार कहना स्वजातिविजात्यसद्भूत व्यवहारनयको विषय है॥

( ) अत्यन्त भिन्न पदार्थोंको जो अभेदरूप ग्रहण करै उसको उपचरित व्यवहारनय अथवा उपचरित असद्भूत व्यवहारनय कहते हैं। जैसे हाथी घोड़ा, ग्रह मेरे हैं इत्यादि। इसके भी तीन भेद (१) स्वजात्युपचरितासद्भूत व्यवहार वा समान जातीय उपचारका उपचार (२) विजात्युपचरिता सद्भूत व्यवहार वा विजातीय उपचारका उपचार (३) स्वजाति विजात्युपचरितासद्भूत व्यवहार वा मिश्र उपचारका उपचार है॥ जिस नयके द्वारा स्वजाति संबंधी आरोपित असत् व्यवहार हैं जैसे स्त्री, पुत्र, पुत्री, माता, पिता आदि मेरे हैं यहां पर स्त्री पुत्र, पुत्री, माता, पिता आत्मा की

अन्वयरूप (=जोड़रूप) हैं अपनी किसी भी पर्याय से कोई द्रव्य भिन्न नहीं है। सो

अपेक्षा से स्वजातीय हैं। उनको मेरा कहना स्वजातीय आरोपित असत् है इसलिये वह स्वजात्युपचरितासद्भूत व्यवहार नयका विषय है अथवा समान जातीय उपचारका उपचारहै ॥ ( ) जिसके द्वारा विजाति संबंधी आरोपित असत् व्यवहार हो वह विजात्युपचरितासद्भूत व्यवहार नयहै। जैसे वस्त्र आभरण आदि मेरेहै। यहांपर वस्त्र आभरण आदि अचेतन पदार्थ आत्माके विजातीयहैं। उनको मेरा कहना विजातीय आरोपित असत् है इसलिये वह विजात्युपचरितासद्भूत व्यवहार नय का विषय है अथवा विजातीय उपचारका उपचार है ( ) जिस नयके द्वारा स्वजाति विजाति दोनो संवंधीआरोपति असत् व्यवहार हो वह स्वजाति विजात्युपचरितासद्भूत व्यवहार नयहै जैसे देश, राज्य, गढ आदि मेरे हैं यहां पर देश आदिके कहनेसे उनमे रहने वाले मनुष्य तिर्यंच आदि जीव और ग्रह, कूप आदि अजीव दोनों प्रकारके पदार्थों का ग्रहण है। उनमें मनुष्य आदि आत्माके स्वजातीय, और ग्रह, कूप आदि विजातीय हैं अतः राज्य, पुर, देश, गढ़ आदि मेरे हैं इस स्थान पर स्वजातीय विजातीय दोनों प्रकार के पदार्थो को मेरा कहना स्वजाति विजात्युपचरितासद्भूत व्यवहारनय का विषय है अथवा मिश्र उपचार का उपचार है। ऐसे व्यवहार नय अनेक प्रकार प्रवर्ते है ॥

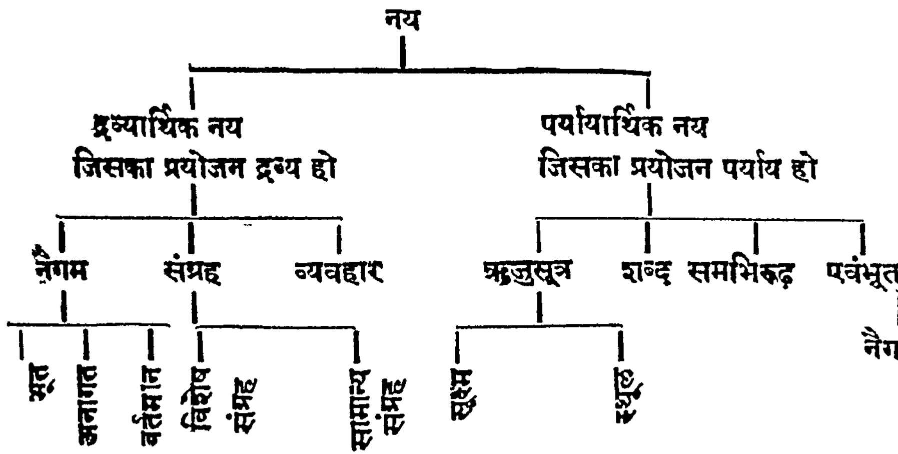
"या नेगमके भेद तीन है। द्रव्यनैगम, पर्यायनैगम, द्रव्यपर्यायनैगम। तहां द्रव्य नेगमके दोय भेद है। शुद्धद्रव्यनैगम, अशुद्धद्रव्यनैगम। वहुरि पर्यायनेगमके तीन भेद अर्थपर्यायनैगम, व्यंजनपर्यायनैगम, अर्थव्यंजनपर्यायनैगम। वहुरि द्रव्यपर्यायनेगमके च्यारि भेद शुद्धद्रव्यार्थपर्याय नेगम, अशुद्धद्रव्यार्थपर्यायनेगम, शुद्धद्रव्यव्यंजनपर्यायनैगम, अशुद्धद्रव्यव्यजनपर्यायनेगम ऐसे नेगमनयके नवभेद भये। तहां उदाहरण- जो, सग्रह नय का विषय सन्मात्र (= सत् मात्र) शुद्धद्रव्य है ताका यहु नेगमनय सकल्प करे है जो सन्मात्र द्रव्य समस्तवस्तु है, ऐसे कहै तहां सत् तौ विशेषण भया तातै गौणहै। वहुरि द्रव्य विशेष्य भया तातै मुख्य है यहु शुद्धद्रव्यनैगम है। वहुरि जो पर्यायवान् है सो द्रव्य है, तथा गुणवान् है सो द्रव्य है ऐसा व्यवहारनय भेद करि कहे है। ताका यहु नेगमनय सकल्प करे है। तहां पर्यायवान् तथा गुणवान् यहतौ विशेषण भया तातै गौण है वहुरि द्रव्य विशेष्य भया तातै मुख्य है। ऐसे अशुद्ध द्रव्य नेगमनय भया" ॥

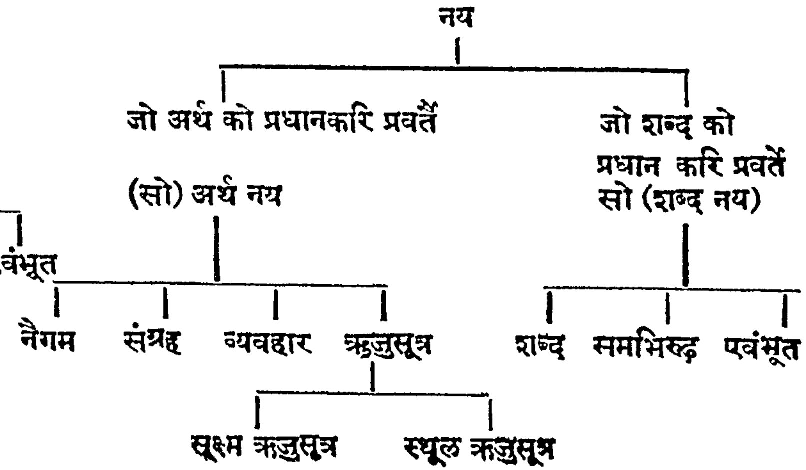
( ) वहुरि प्राणीके सुखसंवेदन है सो क्षण ध्वंसी है ऐसे क्षणध्वंसी ऐसा तौ सत्ताका अर्थ पर्याय है सो विशेषण है वहुरि सुख है सो संवेदनका अर्थपर्यायहै सो विशेष्य भया तातै मुख्य है। तातै यहु अर्थपर्याय नैगम भया ॥

अतीत पर्यायोंकों को, भविष्यत पर्यायोको तथा वर्तमान पर्यायों को वर्तमानकालमें संकल्प करै ऐसे ज्ञानको तथा वचनको नैगमनय कहते हैं। उसके तीनभेद हैं (१) भूत नैगमनय (२) भावी वा भविष्यत नैगमनय (३) वर्तमान नैगमनय। जहांपर अतीतकालमें वर्तमानका आरोपण किया जाता है उसको भूत नैगमनय कहते हैं। जैसे "अद्य दीपोत्सव दिने श्री वर्द्धमान स्वामी मोक्षं गतः"

( ) बहुरि पुरुषविषै चैतन्य है सो सत् है इहां सत् नामा व्यजन पर्याय है सो विशेषणहै बहुरि चैतन्य नामा व्यंजन पयाय है सो विशेष्यहै तातैं मुख्य है। यहु व्यंजन पर्याय नैगमहै॥ ( ) बहुरि धर्मात्माविषै सुख जीवीपणां है। इहां सुख तौ अर्थपर्याय है सो विशेषणहै। बहुरि जीवित व्यंजन पर्याय है सा विशेष्य है तातै मुख्य है। यहु अर्थव्यंजनपर्याय नैगम है॥

( ) बहुरि ससार विषै सत् विद्यमान सुख है सो क्षणमात्रहै। इहां सत् शुद्ध द्रव्य है सो विशेषण है। सुखहै सो अर्थ पर्याय हैं सो विशेष्य है, तातैं मुख्य है। यह शुद्धद्रव्य अर्थ पर्याय नैगम भया॥ ( ) बहुरि विषयी जीव है सो एक क्षण सुखीहै इहां जीव है सो अशुद्ध द्रव्य है सो विशेष्य है। सुख है सो अर्थ पर्याय हे सो विशेषण है तातैं गौण हैं यहु अशुद्धद्रव्य अर्थपर्यायनैगम भया॥ ( ) बहुरि चित् सामान्य है सो सत् है इहां सत् ऐसा शुद्धद्रव्य है सोतो विशेषण है तातैं गौण है। चित् है सो व्यंजन पर्याय है सो विशेष्य है तातै मुख्य है। ताका यहु शुद्धद्रव्य व्यंजन पर्याय नैगम भया ( ) बहुरि जीव है सो गुणी है इहां जीव है सो अशुद्धद्रव्य है, सो विशेष्य है सो मुख्य है। बहुरि गुण हैं सो व्यंजन पर्याय है सो विशेषण तातैं गौण है। यह अशुद्धद्रव्य व्यंजन पर्याय नैगम भया॥" उक्त सात नयोंके निम्न मान चित्र भी है





आज दिवालीके दिन श्री वर्द्धमान भगवान् मोक्षको गये। यहां पर यद्यपि भगवान् को मोक्ष गये सहस्रों वर्ष बीत गये परंतु संसारमें वैसा व्यवहार होता है अर्थात् उस सहस्रों वर्ष पहलेके दिनका संकल्प आजके दिनमें किया जाता है। भूत नैगम नयकी अपेक्षासे ही ऊपरका वाक्य ठीक समझा जाता है (२) जहां पर होने वाले पदार्थमें होचुकनेके समान संकल्प किया जाता है वा कथन किया जाता है उसको 'भावी वा भविष्यत् नैगम कहते हैं। जैसे अर्हन् सिद्ध एव अर्थात् अरहंत भगवान सिद्धही हैं। यद्यपि अरहंत आगे सिद्ध होंगे अभी सिद्ध हुये नहीं हैं होने वाले हैं तथापि होचुकनेके समान कथन किया गया है इसलिये इसको भावि नैगम कहते हैं॥ (३) जहांपर कोई काम करना आरंभ कर दिया हो चाहै वह थोडा बना हो चाहै थोडा भी न बना हो तथापि उसको बने हुयेके समान कहना यह वर्तमान नैगमनय है। जैसे कोई पुरुष रोटी बनानेकी सामग्री इकठी कर रहा है और उसे किसीने पूछा क्या करते हो ? वह उत्तर देता है कि रोटी बनाता हूं किन्तु यहां रोटी बनानेरूप पर्याय अभीतक प्रगट नही हुई केवलमात्र लकडियें जल और अन्य सामान रख रहा है तथापि वर्तमान नैगम नयसे ऐसा वचन कह सकता है कि 'रोटी बना रहा हूं।

(२) जो एक वस्तुकी समस्त जातिकी और उसकी सब पर्यायोको संग्रहरूप करके एक स्वरूप कहे, उसको संग्रहनय कहते हैं जैसे 'घट' कहनेसे सब घटोंको समझना अथवा द्रव्य कहनेसे जीव अजीवादि तथा उनके भेद प्रभेदादि सबका समझना सो है॥

(३) जो संग्रहनयसे ग्रहण किये पदार्थोंका विधि पूर्वक (व्यवहारके अनुकूल) व्यवहरण अर्थात् भेद प्रभेद कर सो व्यवहारनय है। जैसे संग्रहनयसे 'द्रव्य' कहनेसे समस्त भेद प्रभेदरूप द्रव्योका सामान्यतासे ग्रहण होता है। परन्तु द्रव्य दो प्रकारके हैं जीव और अजीव। जीव देव नारकी मनुष्य तिर्यंच चार प्रकारके हैं। अजीव पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल, आकाश ये पांच प्रकारके हैं। इस प्रकार व्यवहारके साधक जितने भेद प्रभेद होसकैं उनको जाने सो व्यवहारनय हैं। सारांश—संग्रहनयसे ग्रहण किये हुये पदार्थोंको लोकव्यवहारके अनुसार वा विधिसे भेद प्रभेद जहांतक करेकि फिर किसी प्रकारका विभाग न होसकै। सो जहां ऋजु सूत्रका विषय है तिसके पहलेतक संग्रह और व्यवहार दोनो नय चले जाय हैं॥

(४) अतीत अनागत दोनों पर्यायोको छोड़कर वर्तमान पर्याय मात्रको ग्रहण करे सो ऋजुसूत्रनय है॥ अर्थात् द्रव्यकी पर्याय समय समय (=कालका सबसे छोटे भाग) में परिणमती (पलटती) रहती है। सो एक समयवर्ती पर्याय को अर्थ पर्याय कहते है। अर्थ पर्याय ही ऋजुसूत्रनयका विषय है। ऋजुसूत्रनय वर्तमान एक समय मात्रकी पर्यायको कहता वा ग्रहण करता है। अतीत अनागत समयकी पर्यायको ग्रहण नहीं करता। जैसे कोई पुरुष कहींसे आकर बैठा है किसी दूसरे ने पूछा कहो भाई कहांसे आरहे हो ? उस समय उसका यह कहना कि कहींसे नहीं आरहा हूं क्योंकि उस समय गमन क्रियाका सर्वथा अभाव है अतः शुद्ध वर्तमानकी अपेक्षा 'इस समय कहींसे नही आरहा हूं' यह ऋजुसूत्रनय का विषय है और ठीक है।

(५) जो व्याकरण संबंधी लिंग, संख्या (वचन), साधन (पुरुष), काल, पुरुष, उपसर्ग, उपग्रह (=परस्मैपद, आत्मनेपद) आदिक के व्यभिचारोंको (=दोषोंको) दूर करके जाने वा कहै उसे शब्दनय कहते हैं (इसके उदाहरण वृत्तिके अनुवादमें बहुत दिये हैं)

(६) अनेक अर्थोंको छोडकर प्रधानतासे जो एकही अर्थमें रूढ (=प्रसिद्ध) हो उसी अर्थको विषय करने वाला हो अर्थात् उसी अर्थको जानै वा कहै सो समभिरूढनय है। जैसे—गो शब्दके वाणी पृथिवी गमन आदि अनेक अर्थ होते हैं तथापि मुख्यता से गो नाम गाय नामा पशुका ही ग्रहण किया जाता है। यहां पर यह अवश्य समझ लेना चाहिये कि सोती, उठती, बैठती, चलती, फिरती, किसी भी अवस्था में वह क्यों न हो सब लोग उसको गायही कहते हैं। सो यह समभिरूढनय है।

(७) जिस कालमें जो क्रिया करता हो उसको उस कालमें उसही नामसे जाने वा कहै उसको एवंभूत नय कहते हैं॥ जैसे देवों के पतिको परम ऐश्वर्य सहित हो, उसी अवस्थामें इंद्र कहना पूजन, अभिषेकादि करते हुये इन्द्र नहीं कहना तथा जिस कालमें वह शक्तिरूप क्रियाको करे उसी समय 'शक्र' कहना अन्य समयमें शक्र नहीं कहना॥ यहां पर "एवभूयत"=ऐसा होना इस एवंभूत नय के अर्थ की प्रतीति (=निश्चय) शब्द से होती है इस लिये शब्द ही एवभूत नय माना है कारणमें कार्य का उपचार है अर्थात् एवंभूत नय के अर्थकी प्रतीति में कारण शब्द है और कार्य एवंभूतनय है॥

(१) समभिरूढ और एवंभूत नयोंमें यह भेद वा अंतर है कि व्युत्पत्ति सिद्ध अर्थ क्या है (अर्थात् व्याकरणकी रीतिसे शब्दके साधनमें क्या अर्थ होता है) इस बातका कुछ भी विचार नकर प्रसिद्ध अर्थका जान लेना समभिरूढनयका विषय है 'गो' शब्दका व्युत्पत्तिसिद्ध अर्थ 'जो गमन करे सो गाय है यह है इसका तो विचार न करना किंतु उसके स्वर्ग, किरण,वज्र, जल,मयङ्क,वायु, सूर्य्य,दृष्टि, वाणी, दिशा,माता, वाणी, भूमि इत्यादि अनेक अर्थोंमें प्रसिद्ध अर्थ 'गाय' लेना और सब अर्थोंको छोड कर उस गायको सोती उठती, बैठती, चलती सब अवस्थाओंमें गाय कहना यह समभिरूढ नयका विषय है। ऐसेही इन्द्र शब्दका व्युत्पत्तिसिद्ध अर्थ परमैश्वर्यका भोगना है इसका तो विचार न करना किंतु शक्तिमान होना पुरोंका विदारण करना इत्यादि अनेक अर्थोंको छोडकर प्रसिद्ध अर्थ परमैश्वर्यका भोगनाही लेना, पर उस इन्द्रको परमैश्वर्यका भोग कर रहा हो, वा न कर रहा हो पूजा करते समय, अभिषेक करते समय इत्यादि सब अवस्थाओंमें इन्द्र कहना यह समभिरूढनयका विषय है। परंतु जहांपर केवल व्युत्पत्ति सिद्ध ही अर्थ विषय हो वा ग्रहण हो वह एवंभूत नय है जैसे गमन करने वालीको ही गाय कहना खडी रहने वाली वा सोने वालीको गाय न कहना वा जिस समय इन्द्र परमैश्वर्यका भोग कर रहा हो उसी समय इन्द्र कहना अन्य समय इन्द्र न कहना यह एवंभूत नयका विषय है॥

एतेषां सामान्यविशेषलक्षणं वक्तव्यम्। सामान्यलक्षणं तावद्वस्तुन्यनेकान्तात्मन्यविरोधेन हेत्वर्पणात्साध्यविशेषस्य याथात्म्यप्रापणप्रवणप्रयोगो नयः। स द्वेधा द्रव्यार्थिकः पर्यायार्थिकश्चेति

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित तेतीसवां सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिंदी अनुवाद ॥

एतेषाम् ६। सामान्य-विशेष-लक्षणम् १।१। वक्तव्यम् १।१। =इन (नयों) का संक्षेपस्वरूप और ब्यौरा वार (=विशेष) स्वरूप कहने योग्य है

तावत्* सामान्य-लक्षणम् १।१। अनेकान्त-आत्मनि ७। =प्रथम (=तावत्) सामान्य स्वरूप (यह है कि) अनेक धर्म स्वरूप वा स्वभाव वाला

वस्तुनि ७। अविरोधेन ३। हेतु-अर्पणात् ५।१। =वस्तुमें अविरोधकरि (=निर्दोषतासे) अविरुद्धतासे हेतुरूप समर्पण करनेसे

साध्य- =साध्य (पदार्थ) के (जिस पदार्थ को सिद्ध करना चाहते हैं उसका वा साधनीय वस्तुके) [१]

विशेषस्य ६। याथात्म्य-प्रापण- =विशेषका वा ब्यौरेवारका यथार्थ स्वरूप (=याथात्म्य) प्राप्त करने को

प्रवण-प्रयोगः १। नयः १। =व्यापाररूप प्रयोग सो नय है भावार्थ वस्तुमें अनेक धर्म वा स्वभाव होते हैं उनमेंसे किसी एक धर्मकी मुख्यताकरि अविरोधरूप (=विना किसी दोषके) जिसकरि साध्य (साधनीय वा सिद्ध किये जाने योग्य पदार्थ) जाना जाय सो नय है

सः १। द्वेधा* द्रव्यार्थिकः १। च पर्यायार्थिकः १। इति* =वह (नय) दो प्रकार द्रव्यार्थिक और (=च) पर्यायार्थिक ऐसे हैं

---

(१) नयकी परिभाषा भले प्रकार समझ मे आवें अतः तत्त्वार्थ राज वार्तिक मे लेते हैं "प्रमाण प्रकाशितार्थ विशेष प्ररूपको नयः" प्रमाणकरि प्रकाश रूप किये पदार्थका विशेष प्ररूपण करने वाला (=निर्दोष ब्यौरावार कथन करने वाला) जो ज्ञान है सो नय है भावार्थ प्रमाण के द्वारा प्रकाशित अस्तित्व, नास्तित्व, नित्यत्व, अनित्यत्व आदि अनंत धर्म स्वरूप वा अनंत स्वभाव वाले जीव अजीव आदि पदार्थों को एक देश रूप से निरूपण करने वाला है उसको नय कहते हैं ॥ व्याख्या ॥ प्रकृष्टमान वा प्रकृष्ट ज्ञानको प्रमाण कहते हैं। वह एक धर्म द्वारा पदार्थके सब धर्मोंको जान लेता है इसलिये सकलको जाननेके हेतुसे उसका अर्थ सकलादेश है ॥ "प्रमाण प्रकाशितार्थेत्यादि" नयके लक्षणमें जो 'प्रमाण प्रकाशित' पदका उल्लेख है उसका यह तात्पर्य है कि जो पदार्थ प्रमाण के द्वारा प्रकाशित है उसीके एकदेश को भेद प्रभेद रूपसे निर्दोष कथन करने वाला नय है किन्तु जिन पदार्थों का प्रकाश प्रमाणाभास से है (=सदोष ज्ञान द्वारा है) उनका प्रकाशक नय नहीं हैं मिथ्यानय (प्रकाशक) है तथा उक्त नयके लक्षण मे रूपक शब्दके स्थान में जो प्ररूपक शब्दका उल्लेख किया है उसका तात्पर्य यह है कि प्रमाण प्रकाशित अनंत धर्मस्वरूप

द्रव्यं सामान्यमुत्सर्गः अनुवृत्तिरित्यर्थः । तद्विषयो द्रव्यार्थिकः ॥ पर्यायो विशेषोऽपवादो व्यावृत्तिरित्यर्थः । तद्विषयः पर्यायार्थिकः ।

द्रव्यम् ।१।१। सामान्यम् ।१।१। उत्सर्गः ।१। अनुवृत्तिः ।१।१। इति* अर्थः ।१। =द्रव्य, सामान्य, उत्सर्ग, और अनुवृत्ति ये एकार्थ हैं (=अर्थ)

तद्विषयः ।१। द्रव्यार्थिकः ।१। =द्रव्य है विषय जिसका सो द्रव्यार्थिक है अर्थात् यह द्रव्यार्थिकनय केवल द्रव्यका ही विषय करती है । पदार्थोंके विकार (=पर्याय) और अभाव को विषय नहीं करती क्योकि द्रव्य से अन्य पर्याय और अभाव कोई पदार्थ नहीं

पर्यायः ।१। विशेषः ।१। अपवादः ।१। व्यावृत्तिः ।१।१। इति* अर्थः ।१। =पर्याय, विशेष, अपवाद और व्यावृत्ति ये एकार्थ हैं

तद्विषयः ।१। पर्यायार्थिकः ।१। =पर्याय है विषय जिसका सो पर्यायार्थिक है अर्थात् यह नय केवल जन्म मरण आदि पर्यायो को ही विषय करती है द्रव्यको विषय नहीं करती है क्योकि पर्यायों से भिन्न कोई द्रव्य पदार्थ नहीं ॥

पदार्थोंके एक देश का भेद प्रभेदरूप कथन है वह सशय आदि सब प्रकार के दोषों से रहित है ॥ इसरूप से नयका यह सामान्य लक्षण निर्दोष है ॥

(१) यह नयका प्रकरण बहुत महत्वका और कार्यकारी है, अतः उचित है कि तत्त्वार्थ राजवार्तिक से इनकी निरुक्ति भाषा अनुवाद सहित दी जावै ॥

द्रव्यम् अस्ति इति मतिः अस्य सः द्रव्यास्तिकः द्रव्य-भवनम्=द्रव्यहै ऐसी है बुद्धि(=मति) जाकी सो द्रव्यास्तिक है (अर्थात्)द्रव्यका होना एव* न* अतः * अन्ये।१। भावविकाराः।१। अपि* अभावः।१। =ही है इस (द्रव्य) से अन्य पदार्थके विकार (=भावविकार) कहिये पर्याय नहीं है और अभाव भी (कोई पदार्थ)

न*तद् व्यतिरेकण ।१। अनुपलब्धेः ।१।। इति* द्रव्यास्तिकः ।१। =नहीं है क्योंकि द्रव्य विना (=तद्-व्यतिरेकेण) पर्यायकी प्राप्ति नहीं है ऐसे द्रव्यास्तिकहै

पर्यायः एव अस्ति इति मतिः।१।। अस्य सः पर्यास्तिकः।१। जन्मादि- =पर्याय ही है ऐसी है मति जिसकी सो पर्यास्तिक है । जन्म मरण आदि भावविकारमात्रम् ।१।। एव भवनं।१।। न ततः अन्य द्रव्यम्।१।। =पर्यायमात्र (=भावविकारमात्र) ही होना (भवनं) है तिस (पर्यायमात्र) से अन्यद्रव्य नहीं अस्ति।तद्-व्यतिरेकेण।१। अनुपलब्धेः।१।। इति पर्यायास्तिकः।१। =है। क्योंकि उस (पर्याय) विना (=व्यतिरेकेण)(द्रव्यकी) अनुपलब्धिहै ऐसें पर्यास्तिकहै

तयोर्भेदा नैगमादयः ।

तयोः ६। भेदाः १। नैगम- =उन दोनों (द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नयो) के भेद नैगम
आदयः १। =संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ, एवंभूत हैं अर्थात्

अथवा* द्रव्यम् १॥ एव* अर्थः १। अस्य ६। न गुणकर्मणी १॥ तद् अवस्थारूपात् ५॥ इति* द्रव्यार्थिकः १। पर्याय· १। एव* अर्थः१। अस्य ६। (सः पर्यायार्थिकः) रूपादि-उत्क्षेपण-आदि-लक्षणः १। न* ततः* अन्यत्* द्रव्यम् १॥ इति* पर्यायार्थिकः १। अथवा* अर्थते T गम्यते T निष्पद्यते T इति* अर्थः १।, कार्यं १॥ द्रवति T गच्छंति T इति द्रव्यम् कारणम् १॥ द्रव्यम् एव अर्थः अस्य६। कारणम् एव कार्यम् न अर्थान्तरम् न च कार्य कारणयो ६॥ कश्चित् रूप भेदः

=वा द्रव्यही है प्रयोजन जिसका गुण कर्म जे हैं ते (प्रयोजन रूप) नहीं है
=क्योंकि वे (=तद् =गुण और कर्म) (द्रव्य की) अवस्थारूप हैं ऐसा द्रव्यार्थिक है
=पर्याय ही है प्रयोजन (=अर्थ) जिसका सो पर्यायार्थिक है क्योंकि रूपादिगुण
=और उत्क्षेपण वा ऊपर को फैकना आदि कर्मरूप (पर्याय ही हैं)
=तिन (पर्यायों) से (भिन्न) अन्य द्रव्य (कोई पदार्थ) नहीं है ऐसा पर्यायार्थिक है
=अथवा प्राप्त किया जाय (=अर्यते) जाना जाय (=गम्यते) वनाया जाय (निष्पद्यते)
=ऐसा अर्थ है ॥ कार्य को प्राप्त करै (=द्रवति), कार्यरूप परिणमै (=गच्छंति)
=एसा द्रव्यहै वही कारण है । द्रव्य ही है अर्थ जिसका (अर्थात्) कारण ही
=कार्यहै । कोइ दूसरी वस्तु नहीं है । और कार्य कारणमें कुछ स्वरूपभेद नहीं है
अर्थात् कार्य और कारण दोनो एक ही स्वरूप है भिन्न नहीं है

तद्-उभयम् १॥ एकाकारम् १॥ एव*पर्वांगुलि-द्रव्यवत्* इति* द्रव्यार्थिकः १। परि-समंतात्* आय· १। पर्यायः १, पर्यायः १। एव* अर्थः १। कार्यम् १॥ अस्य ६। न * द्रव्यम् १॥ अतीतानागतयोः ६। विनिष्टानुत्पन्नत्वेन ३॥ व्यवहार-अभावात् ५। सः १। एव* एकः १। कार्यकारणव्यपदेशभाग् १।

=वे दोनो (कार्य और कारण)एक आकार हीहैं जैसे अंगुली और उसकी गांठे(=पर्व)
=एकद्रव्य (=द्रव्य) है । ऐसा द्रव्यार्थिक (नय) है ॥(जिसकी)चारो ओर से (=परि)
=सब ओर से (=समतात् =परि) उत्पत्ति हो सो पर्याय है ॥ पर्याय ही है
=प्रयोजन (=अर्थ) कहिये कार्य जिसका न कि द्रव्य है (अर्थात् द्रव्य प्रयोजन नहीं है)
=क्योंकि अतीतकालका द्रव्यांशनष्ट हो चुका आगामी कालका द्रव्यांश अभी उत्पन्न नहीं
=(अतः) उसका व्यवहार नहीं होसकता ॥ सो ही एक (वर्तमानकाल [illegible] पर्याय)
=कार्यकारण (दोनो नामको) धारण करने वाली है अर्थात् कारण और कार्य दोनो नामोंको धारण करने वाली उस वर्तमान कालीन पर्याय हीको पर्यायार्थिकनय विषय करसकता है द्रव्यको नहीं ॥

तेषां विशेषलक्षणमुच्यते

नैगम, संग्रह, व्यवहार ये द्रव्यार्थिक नयके भेद हैं और ऋजुसूत्र शब्द समभिरूढ, एवंभूत ये पर्यायार्थिक नयके भेद हैं॥ नीचे की टिप्पणी देखो॥

तेषाम् ६। विशेष-लक्षणम् १।१। उच्यते T =उन (नैगमादि सातों नयों) का विस्तारसे (=विशेषण) लक्षण कहा जाता है

इति॰ पर्यायार्थिकः १। अथवा॰ अर्थनं १।१। अर्थः १। = ऐसा पर्यायार्थिक है। अथवा अर्थ शब्दका (=अर्थनम्) अभिप्राय (=अर्थ)
प्रयोजनम् १।१। द्रव्यम् १।१। एव॰ अर्थः १ अस्य ६। इति॰ द्रव्यार्थिकः १। = प्रयोजन है। द्रव्य ही है प्रयोजन जिस (नय) का यह द्रव्यार्थिक है
प्रत्यय अभिधान- = क्योंकि (द्रव्यकी) प्रतीति (=प्रत्यय=विश्वास, निश्चय ज्ञान,) नाम (=अभिधान)
अनुप्रवृत्ति-लिंग-दर्शनस्य- =(द्रव्य के अनुकूल) प्रवर्तन रूप (इन) चिन्होंमे (=लिंग) देखे जाने वाले (द्रव्य) के
निह्नोतुम्-अशक्यत्वात् ५।१। = छिपाने का असमर्थ है अर्थात् संसार में जो द्रव्यकी प्रतीति होती है, जो संज्ञा है। एव द्रव्यके अनुकूल प्रवृत्ति रूप चिन्ह हैं उनका लोप नहीं हो सकता—सारांश-द्रव्यका ज्ञान, द्रव्यका नाम, और द्रव्योंमें प्रवृत्ति इन चिन्होंसे देखे जाने वाले द्रव्य का अपलाप वा अभाव नहीं कहा जा सक्ता है॥

पर्यायः १। अर्थ १। प्रयोजनम् १।१। अस्य ६। इति॰पर्यायार्थिकः १। = पर्याय है अर्थ कहिये प्रयोजन जिस (नय) का ऐसी पर्यायार्थिक है
वाक् + = क्योंकि (यह नय केवल पर्याय को विषय करती है इस कारण से) शब्द (=वाक्)
विज्ञान-व्यावृत्ति- = और जानन भाव (=विज्ञान) वा ज्ञानकी निवृत्ति और प्रवृत्ति (=व्यावृत्ति) के
निबन्धव्यवहारप्रसिद्धेः ५।१। = आधीन (=निबन्ध) वा कारणभूत (=निबन्ध) जो व्यवहार हैं उसकी प्रसिद्धि हैं अर्थात् मृद् पिंडसे घट पर्यायकी उत्पत्ति होती हैं तहां मृद् शब्दकी और मृद्ज्ञान की निवृत्ति है और घट शब्दके और उसके ज्ञानकी प्रवृत्तिरूप जो व्यवहार है वह होता है। यदि पर्यायको विषय करने वाला पर्यायार्थिक नय न होता तो संसारसे घट, पट, मठ, पुत्र पिता आदि व्यवहारों का लोप ही होजाय॥

(१) अथवा अर्थनय और शब्दनय ऐसे भी दो भेद होते हैं अर्थात् नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र ये चार अर्थ वा प्रयोजनकों प्रधानकरि प्रवर्तती हैं इससे इनका अर्थनय कहते हैं और शब्द, समभिरूढ, एवंभूत शब्दको प्रधान करि प्रवर्तती हैं अतः इनको शब्दनय कहते हैं॥

अनभिनिवृत्तार्थसङ्कल्पमात्रग्राही नैगमः ॥

अन्-अभिनिर्वृत्त-अर्थ-संकल्पमात्र ग्राही १। =अनिष्पन्न वा अपूर्ण (=अन्-अभिनिर्वृत्त) पदार्थ को संकल्पमात्र ग्रहण करने वाली
नैगमः ११। =नैगमनय है अर्थात् संसार में जितने द्रव्यहैं वे अपनी भूतभविष्यत्

(१) गम् (भ्वादि प्रथमगणके) धातुमें 'नि' उपसर्ग और अच् (=अ) प्रत्यय लगाने पर निगम (शब्द) बनजाता है। यहां निगम (शब्द) का अर्थ संकल्प है जैसे-" संकल्पो निगमस्तत्र भवोऽयं तत्प्रयोजन" श्लोक वार्तिक श्लोक १८ पृष्ठ २६९, तत्र संकल्प मात्रस्य ग्राहको नैगमो नयः (=तहां पदार्थ का संकल्पमात्र का ग्रहण करने वाला नैगम नय है) तत्त्वार्थ श्लोक वार्तिक श्लोक १७ ॥ निगम शब्दसे कुशल अर्थमें अण् प्रत्यय करने पर अथवा निगम शब्द से भवअर्थ में अण् प्रत्यय करने पर नैगम शब्द की सिद्धि हुई है। "निगच्छन्त्यस्मिन्निति निगमनमात्रं वा निगमः" =निगच्छन्ति अस्मिन् इति वा निगमन मात्रं निगमः=(पदार्थ) जिसमें प्राप्त हों सो निगम है अथवा जो प्राप्त होना मात्र है सो निगम है॥ "निगमे कुशलो भवा वा नैगमः" (राज० वा०) निगमे कुशलो नैगम वा निगमे भवो नैगमः =निगम (संकल्प) में (जो) कुशल हो सो नैगम है वा निगम मे होय सो नैगम है अतः संकल्पमें जो कुशल हो अथवा जो संकल्प में होने वाला हो वह नैगम है॥ ऐसा नैगम शब्द का अर्थ है॥

"अर्थ संकल्प मात्रग्राही नैगमः" (=पदार्थ को संकल्पमात्र ग्रहण करने वाला वा विषय करने वाला है सो नैगम नय है) तत्त्वार्थ राज वार्तिकपृष्ठ ९५। "नैकं गच्छतीति निगमो विकल्पस्तत्र भवो नैगमः" =अनेक (=नैकं=न-एकं) (पदार्थ जिसमे) प्राप्त हों सो निगम अर्थात् विकल्प है तहां (विकल्प वा निगम में) प्राप्ति (=भव) सो नैगम है॥ (नयचक्र संग्रह में गर्भित आलाप पद्धति पृष्ठ १४६)। विकल्प =संकल्प के अर्थ में भी यहां हो सक्ता है। विकल्प =विविधकल्पना॥ देखो वैद्य कोष पृष्ठ ६६८, ७४५॥ उपर्युक्त नैगम की परिभाषायें जो राज वार्तिक श्लोक वार्तिक, आलापपद्धतिसे दी हैं वे एकार्थ वाचीहैं। पुज्यपाद स्वामीकी परिभाषामे "अनभिनिर्वृत्त" शब्द अधिक है शेष भाग, उक्त तीनों परिभाषाओं से लगभग मिलता हुआ है अव प्रश्न यह है कि 'अनभिनिर्वृत्त' का परिभाषा पर क्या प्रभाव है॥ (उत्तर) सीमा वद्ध होने से नैगमनयके वर्तमानकालनैगम और भविष्यत्कालनैगम दो भेदो को गर्भित करती है भूतकालनैगम का भेद छूटजाता है क्योंकि अर्थ प्रकाशिका और हिंदीअनुवाद तत्त्वार्थ राजवार्तिक और आलापपद्धति इत्यादि ग्रन्थोंमें नैगमनयके भूतकाल नैगम, वर्तमानकाल नैगम और भावीकाल नैगम तीन भेद कहे है अव इन तीनों भेदोंकी परिभाषा और उदाहरण देकर हमको यह दिखलाना है कि सर्वार्थसिद्धि में दीहुई परिभाषा नैगमनयकी ओरों की अपेक्षा सीमाबद्ध है।

वर्तमान काल की समस्त पर्यायों से अन्वय रूप (=जोड़रूप) है अपनी किसी भी

( ) जो अतीत पर्यायोंमे वर्तमानवत् आरोपण करै वा संकल्प करै सो भूतनैगमनय है जैसे "अद्य दीपोत्सवदिने श्रीवर्द्धमानस्वामी मोक्षं गतः" आज दिवालीके दिन पर श्री महावीर स्वामी मोक्ष पधारे हैं यहां पर यद्यपि भगवानको मोक्ष गये हुये सहस्रों वर्ष व्यतीत होगये अर्थात् २४५२ साल वीत गये परंतु संसारमें एसा व्यवहार होता है अतः नैगमनय की अपेक्षा ऐसा वचन वाधित नहीं वरन ठीकही समझा जाता है ॥
( ) जो आगामी पर्यायों को वर्तमानवत् संकल्प करै सो भविष्यत् नैगमनय है जैसे एक मनुष्य काठसे इन्द्रकी प्रतिमा वनाना चाहता है अभी वह केवल इन्द्रकी प्रतिमा वनानेकी योजना कर रहा है यदि उससे पूछा जाता है भाई क्या कर रहे हो ? तो उत्तर मिलता है कि मै इन्द्र वना रहा हुं यद्यपि अभी इन्द्रकी प्रतिमा उपस्थित नहीं है किंतु इन्द्रकी मूर्ति वनानेका संकल्पहै तौभी मैं इन्द्र वनारहा हुं यह वचन नैगमनयकी अपेक्षा ठीकहै ॥

( ) " कर्तुमाराब्धमीषन्निष्पन्नमनिष्पन्नं वा वस्तु निष्पन्नवत् कथ्यते " = कर्तुम् आराब्धम् ईषत् निष्पन्नं वा अनिष्पन्नं वस्तु निष्पन्नवत् कथ्यते = (वर्तमानमें पर्याय वा) वस्तु आरम्भ करने पर कुछ पूर्ण भया कुछ पूर्ण नहीं हुआ (लगभग परिपूर्ण होने परही है) उसको परिपूर्ण कहा जाय सो वर्तमान नैगमनय है (" जैसे ओदनः पच्यते " =भात पक गया है) देखो आलाप पद्धति ॥ अर्थात् वर्तमान मे जो कार्य करने के लिये हाथमें लिया है सो पूर्ण भया तथा परिपूर्ण नहीं हुआ अत्यन्त निकट समयमें परिसमाप्त होगा उसको परिपूर्ण रूप संकल्प कर लैना वर्तमान नैगमनय का विषय है अथवा यों भी कह सकते हैं कि जो कार्य वर्तमान कालमे हाथमे लेलिया है वह होते होते ऐसी अवस्था में पहुच गया है कि उसको व्यवहारमें कहते हैं कि वह पूर्ण है यद्यपि उसकी परिपूर्णतामें अत्यन्त न्यूनता अवशेष है जैसे एक समाज यात्राको गई हुई है सबकी संमिलित रसोई में दाल भात हो रहा है दाल भात ऐसे पक्क हैं कि केवल एक दो पलमें वह अग्निसे नीचे उतारे जाने को ही हैं रसोईया पुकारता है कि चलो भाइयो खालो दाल भात निष्पन्न हैं अब कुछ भी देरी वा विलम्ब नहीं है (वास्तविकमे केवल सड़सी वा कपड़ा द्वारा आग से पृथिवी पर उतारने की देरी है योंहीं कि रसोईया ने सड़सी लगा कर दाल वा भातको अग्निसे उचका दिया) वस इतनेही में दाल भात पूर्णतया परिपक्क होगये और नैगमनयका विषय जाता रहा ॥ हमारी समझमें वर्तमान नैगमनय भी सूक्ष्म दृष्टिसे भविष्यत नैगमनय में ही गर्भित हो जाती है यह दोनों भेद उक्त वृत्ति की परिभाषा में अन्तर्गत होजाते हैं केवल भूतनैगमनय अन्तर्गत नहीं होती अतः वृत्तिकार की परिभाषा सीमाबद्ध है जैसा हमारी समझ में आया है सो लिखा ।

कञ्चित्पुरुषं परिगृहीतपरशुं गच्छन्तमवलोक्य कश्चित्पृच्छति किमर्थं भवान्गच्छतीति। स आह प्रस्थमानेतुमिति। नासौ तदा प्रस्थपर्यायः सन्निहितः। तदभिनिर्वृत्तये संकल्पमात्रे प्रस्थव्यवहारः॥ तथा एधोदकाद्याहरणे व्याप्रियमाणं कञ्चित्पृच्छति किं करोति भवानिति। स आह ओदनं पचामीति। न तदौदनपर्यायः सन्निहितः। तदर्थे व्यापारे स प्रयुज्यते॥ एवम्प्रकारो लोकसंव्यवहारः अनभिनिर्वृत्तार्थ

पर्याय से कोई द्रव्य भिन्न नहीं है सो भविष्यत् पर्यायोंका, उन पर्यायों का जो अभी परिपूर्ण नहीं हुई हैं वर्तमानकालमें संकल्प करै ऐसा ज्ञान तथा वचन नैगमनयहै॥ इसमें भूतनैगम अन्तर्गत नहीं हुई। देखो टिप्पणी ५०६, ४९९। पृष्ठ

कञ्चित् * पुरुषम् ₂।₁ परिगृहीत परशुम् ₂।₁	=किसी मनुष्य को कुल्हाड़ा लिये हुये
गच्छन्तम् ₂।₁ अवलोक्य ÷ कश्चित्* पृच्छतिT किम् ₁।₁॥=जाते हुए देख कर कोई पूछता है किस-	
अर्थम् ₂।₁॥ भवान् ₁।₁ गच्छतिT इति*सः आह प्रस्थम् ₂।₁	=लिये आप जाते हो। वह कहताहै धान्यमापनेका लकड़ीका परिमाण (=प्रस्थ)
आनेतुम् इति * ; असौ ₁।₁ तदा * प्रस्थपर्यायः ₁।₁	=लेनेको (जाताहूं)। उस समय वह (=तदा) प्रस्थ पर्याय
सन्निहितः ₁।₁ न * ; तद्-अभि-	=निकटस्थ नहीं है। उस (प्रस्थ) को आगे वा भविष्यत् में (=अभि)
निर्वृत्तये ₄।₁॥ सङ्कल्पमात्रे ₇।₁॥	=निष्पन्न करनेके लिये अर्थात् लकड़ी काटकर बनानेके लिये केवलमनकी इच्छामें
प्रस्थव्यवहारः ₁।₁ तथा एधस्-उदक-आदि-	=प्रस्थका उद्योग वा व्यवहार है। वैसे ही (=तथा) लकड़ी जल आदिक
आहरणे ₇।₁॥ व्याप्रियमाणम् ₂।₁॥ कञ्चित्*पृच्छति T	=लाने में (=आहरण) लगेहुयेको कोई पूछता है
किम् ₂।₁॥ करोतिT भवान् ₁।₁ इति* सः ₁।₁ आहT ओदनम् ₂।₁॥	=आप क्या करते हो। वह कहताहै भातको
पचामि T इति तदा* ओदन पर्यायः ₁।₁ सन्निहितः ₁।₁ न*	=पकाताहूं। उस समय भातका पर्याय निकटस्थ नहीं है
तद्-अर्थे ₇।₁ व्यापारे ₇।₁ सः ₁।₁ प्रयुज्यते T एवम् *	=उस (भात) के लिये व्यवहार वा उद्योगमें वह (पुरुष) लगा हुआहै इसी (=एवम्)
प्रकारः ₁।₁ लोक संव्यवहारः ₁।₁ अभिनिवृत्त-अर्थ-	=प्रकार संसारका व्यवहार है। अनुपस्थित (=अनभिनिर्वृत्त) पदार्थ को

(१) अवलोक्य। सम्बन्ध सूचक भूतकृदन्त है (देखो पृष्ठ १६) (२) 'आनेतुम्' हेत्वर्थ भूतकृदन्त है।
(३) प्रयुज्यते-युज् यहां दिवादि चौथे गणका अकर्मक आत्मनेपदी धातु है। इसमें य विकरण और प्र उपसर्ग लगाने से प्रयुज्य हुआ, ते जोड़कर प्रयुज्यते बना लिया।

संकल्पमात्रविषयो नैगमस्य गोचरः ॥१॥ स्वजात्यविरोधेनैकध्यमुपनीय पर्यायानाक्रान्तभेदानविशेषेण समस्तग्रहणात्संग्रहः ॥

संकल्पमात्रविषयः १।१। नैगमस्य ६।१। गोचरः १।१।	=संकल्पमात्र ग्रहण करने वाला नैगम (नय) का विषय है
स्वजाति-अविरोधेन ३।१। एकध्यम् २।१॥ उपनीय—	=अपनी जातिके वस्तुओं को अविरोधकरि एक प्रकारपनाको प्राप्तकर
पर्यायान् २।३। आक्रान्तभेदान् २।३। अविशेषेण ३।१।	=पर्यायोंको वा प्राप्त होने वाले भेदोंको सामान्य रूपसे (=अविशेषेण)
समस्तग्रहणात् ५।१॥	=समस्तको ग्रहण करनेके हेतुसे वा समस्तको विषय करनेके कारणसे
संग्रहः १।१।	=संग्रह (नय कही जाती) है अर्थात् अपनी जातिके सब पदार्थोंको बिना किसी विरोधताके (एक जातिके कितने ही पदार्थोंमें भी विरोध नहीं होता परंतु उसका भिन्न जातिके पदार्थों से विरोध होता है)

(१) बुद्धि, नाम,अनुकूल प्रवृत्ति इन चिन्होंकी समानता रखने वाला जो सादृश्य है वही जाति है अर्थात् जिन पदार्थोंकी प्रतीति समान होगी, नाम भी समान होगा, अनुकूल प्रवृत्ति भी समान होगी ऐसे पदार्थोंके समूहका नाम जाति है अथवा जहां स्वरूपका अनुगम है (=ग्रहण) है जिस प्रकार गोत्व स्वरूप समस्त संसारकी गौओंमें रहता है इस लिये वह जाति है वह जाति चेतन अचेतन आदि पदार्थ स्वरूप है चेतन आदि पदार्थों से भिन्न नहीं। तथा उसकी प्रवृत्तिमें कारण गोत्व, घटत्व, द्रव्यत्व,सत्व आदि अनेक शब्द हैं इस लिये जहां जो शब्द होगा उसीके अनुसार उसका नाम भी भिन्न होगा तथा प्रवृत्ति भी उसी नियत शब्द के अनुसार होगी।

(२) उक्त संस्कृत वृत्तिमें जो अविरोध शब्दहै उसका अर्थ स्वरूपसे नचिगना है वा स्वरूपसे न प्रच्यवन होना है॥ अपनी जाति है सो स्वजाति है। नहीं चिगना है वा नहीं डिगना है सो अविरोध है, अपनी जातिसे नही चिगना (जो) है सो स्वजात्यविरोध है। अपनी जातिसे नहीं चिगने द्वारा एक प्रकारपनाको प्राप्त होना है सो "स्वजात्यविरोधेनैकध्यमुपनीय" है। ऐसे सर्वार्थसिद्धिवृत्तिमें आये हुये "स्वजात्यविरोधेनैकध्यमुपनीय" वाक्यकी निरुक्ति है। (=प्रकृति धातु प्रत्यय आदि अवयवोंके अर्थ को कह कर समास के अर्थ को जतलाना) सो निरुक्ति है।

(३) तत्वार्थ राजवार्तिकमें संग्रहनयका लक्षण ऐसें कहा है "स्वजात्यविरोधेनैकत्वोपनयात्समस्त ग्रहण संग्रहः" उपर्युक्त वृत्तिमे दी हुई संग्रह नयकी परिभाषा से जब इस परिभाषा की तुलना करते हैं तो "पर्यायान् आक्रान्तभेदान् अविशेषेण" वाक्य राजवार्तिक से अधिक पाते हैं शेष पाठ दोनोंका लगभग एकसा है परंतु तात्पर्य दोनों परिभाषाओं का एकसा है क्योंकि अधिक वाक्यका अर्थ "पर्यायोंको अविशेषकरि" ऐसा है॥

सत् द्रव्यं घट इत्यादि। सदित्युक्ते सदिति वाग्विज्ञानानुप्रवृत्तिलिङ्गानुमितसत्ताधारभूतानामविशेषेण सर्वेषां संग्रहः। द्रव्यमित्युक्तेऽपि द्रवति गच्छति तांस्तान्पर्यायानित्युपलक्षितानां जीवाजीवतद्भेदप्रभेदानां संग्रहः। तथा घट इत्युक्तेऽपि घटबुध्य-

एक रूपसे पर्यायोंके भेदोंको व्यक्तनकर समस्त भेदोंका ग्रहण करने वाला ऐसा संग्रहनय है। सारांश यह है कि अपनी जाति को प्रगट करके पर्यायका भेद न करके समस्तका समुदाय रूप ग्रहण करने वाला संग्रहनय है॥

सत् ¹।॥ द्रव्यम ¹।॥ घटः ¹। इत्यादि ¹।॥ =सत्, द्रव्य, घट इत्यादिक (संग्रहनयके उदाहरण) हैं॥

सत् ¹।॥ इति* उक्ते ⁷।॥ सत् ¹।॥ इति* वाग्-विज्ञान- =सत् ऐसा कहने में सत् ऐसा वचनकरि तथा ज्ञानकरि

अनुप्रवृत्तिलिङ्ग- =अन्वयरूप चिन्हसे (=अनुप्रवृत्तिलिंग) वा जोड़रूप चिन्हसे (=अनुप्रवृत्तिलिंग)

अनुमित-सत्ता-आधारभूतानाम् ⁶। सर्वेषाम् ⁶। =अनुमान किये हुये (=अनुमित) सत्ताको आश्रयभूत सब (वस्तु) निका

अविशेषेण ³। संग्रहः ¹। =सामान्य रूपसे (=अविशेषेण) संग्रह है अर्थात् ऐसे सब वस्तुयें सत्ता रूप हैं

तात्पर्यः—सत् ऐसा उच्चारण करने पर द्रव्य, पर्याय और उसके भेद प्रभेद सब सत्तासे अभिन्न हैं अतः एक सत्व धर्मसे उन सबका ग्रहण होजाता है

द्रव्यम् ¹।॥ इति उक्ते ⁷।॥ अपि तान् ²। तान् पर्यायान् ²। द्रवति T =द्रव्य ऐसा कहनेमें भी (जो) जिन जिन पर्यायोंको प्राप्त होता है (=द्रवति)

गच्छति T इति उपलक्षितानां ⁶। जीव-अजीव- =अथवा (जिन जिन पर्यायोंको) पावा है ऐसे उपलक्षित जीव और जड़

तद्-भेद-प्रभेदानाम् ⁶। संग्रहः ¹। =तथा उन (जीव अजीव) के भेद और प्रभेदोंका संग्रह है अर्थात् द्रव्य कहने में गुण पर्यायों सहित जीव अजीव उनके भेद प्रभेद सबको समझ लैना चाहिये

तथा* घटः ¹। इति* उक्ते ⁷।॥ अपि* घटबुद्धि- =वैसेही (=तथा) घट (=घड़ा) ऐसा उच्चारण करने में भी घड़ाका ज्ञान तथा

(१) द्रव्य ऐसा उच्चारण करने पर जीव अजीव और उनके भेद प्रभेद जितने भी द्रव्य कहे जाने वाले हैं उन सबमे द्रव्यत्व अभेदरूपसे रहता है-जीव आदि कोई भी द्रव्यत्वसे भिन्न नहीं अतः एक द्रव्यत्व धर्मसे सबका ग्रहण होजाता है॥

भिधानानुगमलिंगानुमितसकलार्थसंग्रहः । एवम्प्रकारोऽन्योऽपि संग्रहनयः ॥२॥ संग्रहनयाक्षिप्तानामर्थानां विधिपूर्वकमवहरणं व्यवहारः ॥ को विधिः ? । यः संग्रहगृहीतोऽर्थस्तदानुपूर्व्येणैव व्यवहारः प्रवर्तत इत्ययं विधिः ।

अभिधान-अनुगमलिंग-	=नामके अन्वयरूपचिन्हकरि (=अनुगमलिंग) वा जोड़रूप चिन्ह करि (=अनुप्रवृत्तिलिंग)
अनुमित-सकल-अर्थ-संग्रहः १/१।	=अनुमान कियेहुये (=अनुमित) सव घटरूप पदार्थका (=अर्थ) संग्रह होता है
एवम्* प्रकारः १/१। अन्यः १/१। अपि *	=इसप्रकार अन्य भी (अर्थात् उपर्युक्त कहे हुये उदाहरणोंके अतिरिक्त) और भी (जैसे मठ, पट, गृह, इत्यादि एक जातिकी सब वस्तुओं का कथन करने वाला)
संग्रहनयः १/१।	=संग्रह नय है ॥ (संग्रह नयके सामान्यसंग्रह-विशेषसंग्रह दो भेद हैं (देखो निम्नटिप्पणी)
(२) संग्रहनय-आक्षिप्तानाम् ६/३। अर्थानाम् ६/३।	=संग्रहनय से विषय कियेगये वा ग्रहण किये गये (=आक्षिप्तानाम्) पदार्थों का
विधिपूर्वकम् १/१॥। अवहरणम् १/१॥। व्यवहारः १/१।	=क्रमानुसार वा अनुक्रमसे वा विधिपूर्वक भेद करना सो व्यवहार (नय) है
कः १/१। विधिः १/१। यः १/१। संग्रह-गृहीतः १/१। अर्थः १/१। तद्-	=विधि क्या है ? जो संग्रह (नय) द्वारा ग्रहण किया हुआ पदार्थ है उसका (=तद्)
आनुपूर्व्येण ३/१॥। एव * व्यवहारः १/१। प्रवर्तते T	=मूलसे लेकर क्रम पूर्वक (=आनुपूर्व्येण) ही व्यवहरण होता है वा भेद किया जाता है
इति* अयम् १/१। विधिः १/१।	=ऐसी यह विधि (=संग्रहनयसे ग्रहे पदार्थको आदिसे लेकर भेद करै सो) है ॥

(१) संग्रहो द्विविधः १/१। सामान्य संग्रहो यथा सर्वाणि १/३॥। द्रव्याणि =संग्रह (नय) दो प्रकार है। सामान्यसंग्रह जैसे सब द्रव्यें परस्परमविरोधीनि। विशेष संग्रहो यथा =आपसमे (स्वरूपसे) चिगने वाली नहींहैं (=अविरोधीनि)। (और) विशेष संग्रह जैसे सर्वेजीवाः परस्परमविरोधिनः" आलाप पद्धतिसे लिया हैं। =समस्त जीव परस्पर अविरोधीहैं अर्थात् (अपने स्वरूपसे) प्रच्यवन होनेवाले नहींहैं

(२) "अतो विधिपूर्वकमवहरणं व्यवहारः" इस (संग्रहनय) से (ग्रहण किये हुये पदार्थका) अनुक्रमसे (=विधिपूर्वक) भेद करना (=अवहरण) सो व्यवहार है यह परिभाषा व्यवहारनयका तत्त्वार्थ राजवार्तिकमें से लियाहै और "उपर्युक्त संग्रहनयाक्षिप्तानामर्थानां" का यही तात्पर्यहै जो इसकाहै

(३) विधिपूर्वक=आनुपूर्वीकरि, आनुपूर्व्यकरि, आनुपूर्वकरि अर्थात् क्रमानुसार, क्रमानुकूल, अनुक्रमसे क्रमपूर्वक ॥ मूलसे लेकर क्रमपूर्वक =आनुपूर्व्येण) देखो पद्मचन्द्र कोश पृष्ठ५७) (४) अवहरण =व्यवहरण=भेद किया जाना, देखो पं०जयचंदजी कृत।सर्वार्थसिद्धि वचनिका पृष्ठ१०१

तद्यथा—सर्वसंग्रहेण यत्संगृहीतं तच्चानपेक्षितविशेषं नालं संव्यवहारायेति व्यवहारनय आश्रीयते । यत्सत्तत् द्रव्यं गुणो वेति । द्रव्येणापि संग्रहाक्षिप्तेन जीवाजीवविशेषानपेक्षेण न शक्यः संव्यवहार इति जीवद्रव्यमजीवद्रव्यमिति वा व्यवहार आश्रीयते ।

तद्यथा* सर्वसंग्रहेण ३। सत्संगृहीतम् १।।	=सो (=तद्) ऐसें हैं (=यथा) कि सर्वका संग्रहकरि सत् ग्रहण किया गया है
च* तत् १।। अन्-अपेक्षितविशेषम् १।।	=और (=च) वह (=तद्) अर्थात् सत् विशेषकी विवक्षा रहित है
संव्यवहाराय ४। न* अलम्*	=सो योग्य व्यवहार (प्रवर्तावने)के लिये समर्थ (=अलं) वा योग्य (=अलं) नहीं है
इति* व्यवहारनयः १। आश्रीयते T	=ऐसें व्यवहारनय अवलंबन कीगई है वा आश्रय कीजाती है (तब कहैं हैं कि)
यत् १।। सत् १।। तत् १।। द्रव्यम् १।। वा* गुणः १। इति*	=जो सार (=सत्) है सो द्रव्य है और गुण है भावार्थ यह है कि जैसे (=तद्यथा) संग्रहनयका विषय सत् पदार्थ है किंतु सत् शब्दसे संसारका व्यवहार हो नहीं सकता अतः जो सत् है वह द्रव्य और गुण है यह व्यवहार नयसे मानना पड़ता है ऐसे सत् विषैं भेद करैं तब संसार का व्यवहार चलता है ॥
द्रव्येण ३।। अपि* संग्रह-आक्षिप्तेन ३।। जीव-अजीव-विशेष-अन्-अपेक्षेण ३।। संव्यवहारः १। न* शक्यः १।	=(और यहां) द्रव्य (शब्द) करि भी संग्रहनयसे ग्रहण किये हुये जीव अजीव के भेदकी (=विशेष) अपेक्षा न होने से योग्य व्यवहार नहीं होसकता है
इति* जीवद्रव्यम् १।। वा* अजीवद्रव्यम् १।। इति*	=ऐसें जीव द्रव्य है और (=वा) अजीव द्रव्य है ऐसे
व्यवहारः १। आश्रीयते T	=व्यवहारनय आश्रय कीगई है अर्थात् जब हमने सत्के दो भेद किये तो यहां पर भी संग्रहनयका विषय द्रव्य हुआ उसके जीव और अजीव भेद माने विना संसारका व्यवहार नहीं होसकता है इसलिये वह द्रव्य जीव और अजीव है यह व्यवहारसे कहना पडता है

(१) सर्वार्थसिद्धि की दोनो आवृत्तियोमें 'यत्संग्रहीतम्' है अर्थ यह होगा कि सर्वका संग्रहकरि जो (सत्) ग्रहण किया गया है परंतु सत् तत्त्वार्थ राजवार्तिक में है तथा जयचंद रायजीने और अन्य भाषा अनुवादकों ने 'यत्' के स्थानमें सत् मानकरि अनुवाद किया है इस लिये हमने 'सत्संग्रहीतम्' पाठ दिया है यद्यपि 'यत्' से भी वही अर्थ निकल सकता है जो सत् से परंतु हमने वृत्तिमें 'यत्संगृहीतं' ही पाठ रक्खा है ॥

जीवाजीवावपि संग्रहाक्षिप्तौ नालं संव्यवहारायेति प्रत्येकं देवनारकादिर्घटादिश्च व्यवहारेणाश्रीयते। एवमयं नयस्तावद्वर्तते यावत्पुनर्नास्ति विभागः

जीव-अजीवौ ¹। अपि* =(और इस अवस्था में) जीव और अजीव भी
संग्रह-आक्षिप्तौ ¹। =जो संग्रहनयके विषयभूत हैं संग्रहनय गोचर हैं वा ग्रहण संग्रहनयसे कियेगये हैं
संव्यवहाराय ⁴। अलम्* न* इति* प्रत्येकम् ²।। =व्यवहार (प्रवर्तावने) के लिये समर्थ नहीं है। प्रत्येक (जीव और अजीव)
देवनारकादिः ¹। च* घटादिः ¹। व्यवहारेण ³। =(यथा संख्य वा क्रमसे) देवनारकादिक तथा घट आदिक व्यवहारनय करि
आश्रीयते T =आश्रय किये गये है अर्थात् यहां संग्रहनय का विषय जीव और अजीव माने गयेहैं परंतु जीवके देव, नारक, मनुष्य, तिर्यंच, सिद्ध भेद माने विना संसारका व्यवहार नहीं चल सकता इसलिये लोक व्यवहारकी सिद्धि के लिये जीव द्रव्यके देव नारक आदि भेद व्यवहार से मानने पड़ते हैं। और अजीव के घट, पट, मठ, गृह इत्यादि भेद मानैं विनाभी संसार का व्यवहार नहीं हो सक्ता है इसलिये अजीव के घट, पट, मठ, गृह आदि भेद व्यवहार नय से मानते हैं
एवम्* अयम् ¹। नयः ¹। तावत् * वर्तते T =इसप्रकार यह व्यवहार नय तबतक चला जाता है
यावत् * पुनः * न * अस्ति T विभागः ¹। ।।३।। =जबतक फिर विभाग नहीं हो (सक) ता है अर्थात् ऋजुसूत्र नय के विषयके

(१) "व्यवहारोऽपि द्वेधा। सामान्यसंग्रह भेदको व्यवहारो =व्यवहारनय भी दो प्रकार है - सामान्य संग्रहभेदक व्यवहार अर्थात् सामान्य संग्रह नय की भेद करने वाली व्यवहारनय
यथा-द्रव्याणि जीवाजीवाः। विशेषसंग्रह भेदको व्यवहारो =जैसे द्रव्यहैं सो जीवरूप और अजीवरूप हैं। विशेषसंग्रहभेदकव्यवहार अर्थात् विशेषरूप संग्रहनयके भेद करने वाली व्यवहारनय
यथा-जीवः संसारिणो मुक्ताश्च" =जैसे जीव है सो संसारी और मुक्तरूप हैं ॥ (आलापपद्धति से उद्धृत)

(२) नाम स्थापना द्रव्य ये तीन निक्षेप सग्रहात्मकहैं उनसे संग्रहआत्मक वस्तुका ग्रहण होताहै उनसे भिन्न भिन्न व्यवहार नहीं होसका क्योंकि वे तीनोंही जाति वाचक हैं व्यक्तिवाचक नहीं है। इसलिये व्यवहारके लिये वर्तमान पर्याय भाव निक्षेप ही समर्थ है उसीका यहां ग्रहण है। इस रीतिसे इस व्यवहार नयका वहींतक विषय समझना जहांतक फिर किसी प्रकार का भी विभाग नहोसके ॥

॥३॥ ऋजुं प्रगुणं सूत्रयति तन्त्रयत इति ऋजुसूत्रः । पूर्वान्परांस्त्रिकालविषयानतिशय्य वर्तमानकालविषयानादत्ते अतीतानागतयोर्विनष्टानुत्पन्नत्वेन व्यवहाराभावात् । तच्च वर्तमानं समयमात्रं तद्विषयपर्यायमात्रग्राह्योऽयमृजुसूत्रः ॥

पहिले पहिले संग्रहनय और व्यवहारनय दोनों चले जाते हैं

ऋजुम् १ प्रगुणम् १ सूत्रयति T	=सीधे (=ऋजु) और सरल (=प्रगुण) (विपय वा वस्तु) को सूचित करता है (सूत्रयति)
तन्त्रयते T इति* ऋजुसूत्रः १।	=फैलाता है (तन्त्रयते) ऐसा ऋजुसूत्रनयहै (तंत्रयति भी आता है. देखो राजवा० पृ० ६६)
त्रिकालविषयान् २। पूर्वान् २। परान् २।	=तीन कालके विषय (अर्थात् पर्याय वा भाव) निमें से अतीत-अनागत (विषयों) को
अतिशय्य ÷ वर्तमान-काल-विषयान् २।आदत्ते T	=उल्लंघकरि वा छोड़कर विद्यमानकालके विषयोंको (ऋजुसूत्रनय) ग्रहण करता है
अतीत-अनागतयोः ६। विनिष्ट-	=क्योकि भूत और भविष्यत् (विपयों) को (यथासंख्य) विनाश होनेसे और
अनुत्पन्नत्वेन ३॥। व्यवहार-अभावात् ५। तच्च*	=न उत्पन्न होनेसे व्यवहार नहीं होता है । तात्कालिक (=तच्च-वैद्यकोश पृ० २०१)
वर्तमानम् १॥। समयमात्रम् १॥। तद्-विषय-	=विद्यमान केवल एक समयवर्ती उस (ऋजुसूत्रनय) का विषय
पर्यायमात्र-ग्राह्यः १। अयम् १। ऋजुसूत्रः १।	=पर्यायमात्रका ग्रहण करनेवाला है सो यह ऋजुसूत्रनय है अर्थात् द्रव्यकी पर्याय समय समय में परिणमती (पलटती) रहती है

सो एक समयवर्ती पर्यायको अर्थपर्याय कहते हैं । अर्थपर्याय ही ऋजुसूत्रनयका विषय है । ऋजुसूत्रनय वर्तमान एक समयमात्र की पर्याय को कहता है वा ग्रहण करता हे अतीत अनागत समयकी पर्यायको ग्रहण नहीं करता है ॥

(१) ऋजुम् १ —यह ऋजुशब्द त्रिलिंगी है (ऋज्+कु) स्त्र लिंग मे विकल्प से ङीप् होता है जेसे ऋज्वी १॥ ऋजुः १॥ ॥ द्वितिया, पुल्लिंग नपुंसक लिंग मे यहां आया है

(२) प्रगुणम्-यह त्रिलिंगी है ॥ प्रगुणा१॥ रूपस्त्रीलिंगमे है ॥ यहांपर द्वितीया एकवचन पुल्लिंग अथवा नपुंसकलिंगमें ऋजु शब्दवत् जानना चाहिये

नन्‌ु संव्यवहारलोपप्रसंग इति चेन्नास्य नयस्य विषयमात्रप्रदर्शनं क्रियते । सर्वनयसमूहसाध्यो हि लोक-संव्यवहारः सर्वनयसमूहसाध्यः

ननु॰ संव्यवहारलोप-प्रसंगः १।	=प्रश्न (=ननु) लोकव्यवहार के अभावका प्रसंग आता है अर्थात् लोकमें अतीत अनागत का व्योपार भी प्रवर्तता है सो किस प्रकार चलैगा जो ऋजु सूत्रनय केवल वर्तमान पर्याय मात्र को ही ग्रहण करैगी
इति॰ चेत॰ न॰	=ऐसी शका (=चेत-होने पर उत्तर में कहते हैं कि) (यह बात) नही है
अस्य॰ नयस्य॰ विषयमात्र-प्रदर्शनम्॰ क्रियते	=इस (ऋजुसूत्रनय) का केवल विषय (=विषयमात्र) दिखाया गया है
हि॰ लोकसंव्यवहारः १। सर्वनयसमूहसाध्यः १।	=क्योकि (=हि) लोकका व्यवहार वा कार्य सबनयोंके समूह द्वारा साधने योग्य है अर्थात लोक व्यवहार मे जिस नयका जो कार्य है उसी नयको काममें लाना चाहिये

(१) ऋजुसूत्रो द्विविधः सूक्ष्मर्जुसूत्रो यथा एक समय-अवस्थायी पर्यायः स्थूलर्जुसूत्रो यथा मनुष्यादि पर्यायास्तदायुः प्रमाणकालं तिष्ठन्ति	=ऋजुसूत्र (नय) दो प्रकार है सूक्ष्म ऋजुसूत्रनय जैसे एक समय तक-ठहरने वाली पर्याय और स्थूलऋजुसूत्रनय जैसे मनुष्य आदि पर्याय है वे (=तद्) आयुपरिमाणकाल तक रहती हैं ॥

आलाप पद्धतिसे उद्धृत

( ) जिस प्रकार सूतका गिरना सरल होता है उसी प्रकार जो सरल विषयको सूचित करता है उसका नाम ऋजुसूत्रनय है ॥ यह नय त्रिकाल संबधी विषयोंमे से वर्तमान कालीन विषयोको ग्रहण करता है क्योकि जो पर्याय वीत चुकी अथवा जो पर्याय अभी उपस्थित नहीं हुई आगे जाकर उपस्थित होगी उन दोनो पर्यायोंसे व्यवहार नहीं चल सकता है इसलिये शुद्ध एक समय मात्र ही ऋजुसूत्र नयका विषय माना गया है ॥ ऋजुसूत्र नयके कुछ अच्छे अच्छे उदाहरण ऐसे है कि (क) 'कषायो भैषज्य' काढा औषध है यहां पर जिन पदार्थोका काढा है उन पदार्थोका रस निकाल कर जिस समय साक्षात् औषध स्वरूप काढा वन जाता है वही शुद्ध वर्तमान कालीन एक समयवर्ती ऋजुसूत्रनयका विषय है किन्तु पहिले ही पहिले जिसका रस अभी तक प्रगट नहीं हुआ आगे जाकर प्रगट होने वाला है अतः जो साक्षात् औषध नहीं है वह ऋजुसूत्रनयका विषय नहीं है क्योंकि वह वर्तमान एक समयवर्ती नहीं-भविष्यत् कालकी अपेक्षा रखता है ॥

(ख) ऋजुसूत्र नय का विषय प्रस्थ भी है परंतु जिस समय अन्न आदि पदार्थ सेर माप द्वारा तुल रहा है उसी समय प्रस्थ ऋजुसूत्र नय का विषय हो सकता है परन्तु जिस से धान्य तुलचुका अथवा आगे जाकर तुलेगा वह ऋजुसूत्र नय का विषय नहीं हो सकता क्योंकि जो तुल चुका वह भूतकाल का विषय है जो आगे तुलेगा वह भविष्यत् कालका विषय है भूतकाल की पर्याय और भविष्यत् कालकी पर्याय ऋजुसूत्र नयका विषय है नहीं किन्तु वर्तमानकाल की एक समय वर्ती पर्याय ही उसका विषय है इसलिये भूतकाल वा भविष्यत् काल की अपेक्षा होनेवाला प्रस्थरूप ऋजुसूत्र नयका विषय होना असंभव है ॥

(ग) कुंभकारका अभाव ऋजुसूत्र नयका विषय है क्योंकि कुंभको करने वाला कुंभकार कहा जाता है जिस समय कुंभकार पुरुष कुंभ-घडा न बनाकर उसकी शिविक छत्रक आदि पर्याय बना रहा है उस समय वह ऋजुसूत्र नयकी अपेक्षा घड़ेका बनाने वाला नहीं कहा जा सकता क्योंकि शिविक छत्रक आदि पर्यायोके आगे जाकर घट पर्याय बनने वाली है इसीलिये भविष्यत् कालका विषय है वर्तमान काल का नहीं एवं जिस समय वह घडा बना रहा है उस समय घट की उत्पत्ति उसके विशेष अवयवोसे हो रही है और वही शुद्ध वर्तमान काल ऋजुसूत्र नयका विषय है किन्तु उस समय कुभकार कुछ नहीं कर रहा है इसलिये ऋजुसूत्र नयका विषय कुभकार नहीं हो सक्ता किन्तु कुभकार का अभाव उसका विषय है । तथा —

(घ) कोइ पुरुष कहीं से आकर बेठा है किसी दूसरे ने पूछा — कहो भाई कहां से आ रहे हो ? उस समय उसका यह कहना कि कहींसे नहीं आरहा हूं क्योंकि उस समय सर्वथा गमन क्रिया का अभाव है इसलिये शुद्धवर्तमान की अपेक्षा 'इस समय कहींसे नहीं आ रहाहूं' यह ऋजुसूत्र नयका विषय है ॥

(ङ) किसी बैठे आदमी को देखकर यह पूछना कि भाई ! इस समय तुम किस स्थान पर हो ? उस समय वर्तमान में वह जितने जितने आकाशके प्रदेशो में विद्यमान है उतने ही प्रदेशोका नाम लेकर कहै कि मै यहां पर हूं, किसी पुरी, ग्राम, घर आदिका नाम नहीं ले, वह शुद्ध वर्तमान कालकी अपेक्षा कथन होनेसे ऋजुसूत्रनय का विषय है । अथवा उस समय जितने आत्मदेशोके आकारमें उसका रहना हो उतने ही प्रमाण आत्म प्रदेशो का उल्लेख कर वह यह कहे कि मैं यहा पर हू वह ऋजुसूत्र नयका विषय है क्योंकि उसकी स्थिति का शुद्ध वर्तमान समयमें वही आकार है, अन्य नहीं ॥

(च) पच्यमान— जो रंध रहा है और पक्व— जो रंधचुका है यह ऋजुसूत्र नय का विषयहै । यहां पच्यमान और पक्वका अर्थ कथंचित् पच्यमान और कथंचित् पक्व यह समझ लेना चाहिये । (प्रश्न) पच्यमान यह वर्तमान पर्याय और पक्व यह अतीत पर्याय है, इन दोनों का एक स्थान में कैसे समावेश होगा ? (उत्तर) पहिले ही पहिले जब समयका कोई विभाग नहीं है उस समय भातका कुछ अंश रंधाहै सीझा है, वा नहीं रधा है नहीं सीझा है यदि नहीं सीझा है तब द्वितीयादि समयोमे भी वह नहीं सीझ सकता इसलिये पाकका अभाव ही रहना होगा । परन्तु प्रति क्षण वह सीझता अवश्य है इसलिये बटलोई मे रक्खे हुये चांवलोमे सीझे और वे सीझे की अपेक्षा ऋजुसूत्र नयका कथंचित् पच्यमान और कथंचित् पक्व यह विषय बाधित नहीं यदि यहांपर यह अपेक्षा न मानी जायगी और पच्यमान अवस्था और पक्व अवस्था का सर्वथा विरोध माना जायगा तो पच्यमान (मिश्रित) कथचित् पच्यमान और पक्व इस प्रकारसे विषयोंके तीन भेद होजानेसे समय भी तीन प्रकार का मानना होगा परन्तु तीन भेदों को सर्वथा विरुद्ध मानने से एक समय मे वे तीनो भेद नहीं रहसके हैं इसलिये कथंचित् पच्यमान और कथचित् पक्वमे सर्वथा विरोध नहीं माना जासक्ता। इसलिये यहां यह बात समझलेनी चाहिये किसी रसोईयाका यह अभिप्राय हो कि जो चांवल भली प्रकार से सीझ गये हैं कोई भी कच्चा शेष नहीं रहा है उस (रसोईया) की अपेक्षा तो भलेप्रकार रंधे हुये चांवल ही पक्व हैं । और जिस रांधने वाले का यह अभिप्राय हो कि वह कुछ सीझे और कुछ वे सीझे कथंचित् पच्यमान और कथंचित् पक्व ऐसे पच्यमान चावलों को ही पक्व कहना चाहता है उसकी अपेक्षा पच्यमान ही पक्व है । क्योंकि वह पच्यमानों को ही पक्व मानना सुखप्रद समझता है इसलिये यह बात निश्चित हो चुकी कि ऋजुसूत्र नयका पच्यमान अर्थात् कथचित् पच्यमान कथचित् पक्व उदाहरण निर्दोष है तथा पक्व रंध चुकने के पश्चात् एक समय वर्ती पदार्थ भी ऋजुसूत्र नयका विषय है । ऐसेही क्रियमाण कृत (कथचित् क्रियमाण कथंचित् कृत), भुज्यमान भुक्त (कथंचित् भुज्यमान कथचित् भुक्त) वध्यमान बद्ध (कथंचित् वध्यमान कथंचित् बद्ध) और सिध्यत् सिद्ध (कथचित् सिध्यत् कथंचित् सिद्ध) आदि भी ऋजुसूत्र नयके उदाहरण समझलेने चाहियें । अर्थात् जो किया जारहा है और जो किया जा चुका है और जो भोगा जारहा है और जो भोगा जाचुका है जो सिद्ध किया जारहा है और जो सिद्ध किया जाचुका है ये सब ही ऋजुसूत्र नयके विषय पड़ते हैं, क्योंकि इन सबों में भी कुछ अंशोंमें वर्तमान पर्यायका ग्रहण होता है, जितने अंशों मे वर्तमान पर्यायका ग्रहण है उतने ही अंशों मे ऋजुसूत्र नयकी विषयताहै इसलिये कथंचित पदसे कहागया है । यहां पर विरोधादि बातो का विस्तार और समानधाव पच्यमान पक्वके समान है तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ ६७ से अनुवादित ॥

॥ ४ ॥ लिङ्गसंख्यासाधनादिव्यभिचारनिवृत्तिपरः शब्दनयः ॥ तत्र लिङ्गव्यभिचारः — पुष्यस्तारका नक्षत्रमिति ॥ संख्याव्यभिचारः — जलमापो वर्षा ऋतु

लिङ्ग-संख्या-साधन-आदि-व्यभिचार-निवृत्ति- =लिङ्ग, वचन (=संख्या) साधनादि अन्याय वा दोषोके (=व्यभिचार) दूर करनेमें (=निवृत्ति) परः ३। शब्दनयः ३। =लगा हुआ (=परः) वा तत्पर (=परः) है सो शब्दनय है अर्थात् लिग, वचन, साधन, कारक काल, उपग्रह 'आदि व्यवहारनयसे माना हुआ दोष है उसके दूर करनेको यह शब्दनय है' । पुल्लिग स्त्रीलिग और नपुंसक लिगके भेदसे लिग तीन प्रकार है ।एकवचन, द्विवचन और बहुवचनसे संख्या तीन प्रकार है ॥ साधनका अर्थ (पद्म चन्द्र कोश पृष्ठ ४१९ और वैद्य संस्कृतांगल कोष पृष्ठ ७७१ के अनुसार) करण तृतीया विभक्ति का है परंतु यहां पर (तत्त्वार्थ राजवार्तिक पृष्ठ ६७ और श्लोक वार्तिक पृष्ठ २७३ और सर्वार्थसिद्धि वृत्तिके अनुसार) प्रथम पुरुष, मध्यम पुरुष और उत्तम पुरुष अथवा युष्मद् और अस्मद् शब्द साधन माने गये हैं । साधन व्यभिचार को पुरुष व्यभिचार भी कहते हैं वा मानते है जैसा कि आगे जाकर (टिप्पणी संख्या दो पृष्ठ ५१८ से ५२१ तक में) सिद्ध करेंगे कारक संस्कृतमें कर्त्ता, कर्म, करण, संप्रदान, अपादान, अधिकरण माने हैं संबंधको कारक नहीं माना है क्योंकि संज्ञा और क्रियामे परस्पर यह किसी प्रकारके संबंधका प्रादुर्भाव नहीं करता है । भूतकाल, भविष्यतकाल, वर्तमानकाल ये तीन काल हैं "उपग्रह का अर्थ परस्मैपद वा आत्मनेपद है परस्मैपदके स्थानमें आत्मनेपद कह देना और आत्मनेपदके स्थानमें परस्मैपद कह देना उपग्रह व्यभिचार है "उपग्रह" व्यभिचार "कहिये उपसर्ग व्यभिचार है" पं० पन्नालालजी दूनी० अनुवादित तत्त्वार्थ राजवार्तिक पृष्ठ २६४ और पं० गजाधर लालजी अनुवादित तत्त्वार्थ राजवार्तिक मुद्रित पृष्ट ४८० की टिप्पणी देखो ।

तत्र* लिग व्यभिचारः ३। पुष्यः ३। तारका ३॥ =तहां लिगदूषणः—(जैसे) पुष्य पुल्लिग है उसको तारका स्त्रीलिग
नक्षत्रम् ३॥ इति*; संख्याव्यभिचारः ३। =(वा) नक्षत्र नपुंसकलिग ऐसा कहना । वचन दूषणः—(जैसे)
जलम् ३॥ आपस् ३॥ वर्षाः ३॥ ऋतुः ३। =जलम् एकवचन को आप् बहुवचन वर्षा बहुवचन को ऋतु एकवचन

(१) "स च लिगसंख्यासाधनादि व्यभिचार निवृत्त परः" तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ ६७ ॥ सः = शब्दनय । सर्वार्थसिद्धि की परिभाषा से यह परिभाषा शब्दशः मिलती है (२) वर्षाः' स्त्रीलिंग, नित्य बहुवचन है (३) आपस्—'आपस्' शब्द प्रथमा बहुवचन स्त्रीलिग अप् शब्दका है । 'अप्' शब्द भी सदा बहुवचन और स्त्रीलिग होता है (वैद्य संस्कृताङ्गल कोष पृष्ठ ३५, पद्मचन्द्रकोश पृ० २०) ॥ 'आपः स्त्री' इत्यमरः ॥ 'तत्र आपः'

आम्रा वनं वरणा नगरमिति ॥ कारकव्यभिचारः सेना पर्वतमधिवसति ॥ साधनव्यभिचारः पुरुषव्यभिचारः

आम्राः ;। वनम् ;॥	=आम्रा (=आमके वृक्ष) बहुवचनको वनम् एकवचन (कहना और)
वरणाः ;। नगरम् ;॥ इति*	=वरणा (प्राकार या कोट) बहुवचनको नगर एकवचन ऐसे (कहना)
कारकव्यभिचारः;। सेना;॥ पर्वतम्;। अधिवसतिT	=कारक व्यभिचारः—जैसे सेना पर्वतको (=पर्वतमें वा पर्वत पर) वसे है
साधनव्यभिचारः ;। पुरुषव्यभिचारः ;।	=“साधनव्यभिचार ताकूं पुरुषव्यभिचार भी कहिये” पं० जय० वचनिका पृष्ठ २०३

(=आपस) “स्त्रियाम् बहुत्वे च नित्यम्” तहां 'आपस' शब्द स्त्रीलिंगमें और बहुवचन में सदैव आता है ॥ इस अप् शब्द का एकवचन और द्विवचन नहीं होते हैं इसकी सब विभक्तियां बहुवचन में ऐसे हैं कि आपः (=आपस् प्रथमा विभक्ति); अपः (द्वितिया विभक्ति); अद्भिः (तृ०वि०); अद्भ्यः (च०वि०), अद्भ्यः (प० वि०); अपाम् (ष०वि०); अप्सु (स०वि०) ॥

(१) कारक व्यभिचारका अन्य उदाहरण तत्त्वार्थ श्लोक वार्तिक पृष्ठ २७३ में इस प्रकार दिया है “तथा करोति क्रियते इति कारकयोः कर्तृकर्मणोर्भेदेऽप्यभिन्नमर्थत एवाद्रियते । स एव करोति किंचित् स एव क्रियते केनचिदिति प्रतीतेरिति तदपि न श्रेयः परीक्षायां । देवदत्तः कटं करोतीत्यत्रापि कर्तृकर्मणोर्देवदत्त कटयोरभेद प्रसंगात् ॥”

तथा* करोतिT क्रियतेT इति* कारकयोः३॥ कर्तृकर्मणोः३॥	=और करोति (=करता है) क्रियते (=किया जाता है) ऐसे कर्ता और कर्म कारकोंमें
भेदे°। अपि* अभिन्नम् ;॥ अर्थतः* एव* आद्रियतेT	=भेद होनेपर भी अभिन्न अर्थसे ही (वैयाकरणों द्वारा) आदर किये जाते हैं अर्थात् करोति कर्तामें प्रत्यय है और क्रियते यह कर्ममें प्रत्यय है इस कर्ता और कर्म कारकोंमें भेद है तो भी व्याकरण वाले उनको एक मानकर कहते हैं कि
सः;।* एव* करोतिT किंचित्* सः एव* क्रियतेT केनचित्* इति	=जो ही कुछ करता है और वो ही किसीसे (=केनचित्) किया जाता है ऐसी ॥
प्रतीतेः ;॥ इति*	=क्योंकि (संसारमें) ऐसी प्रतीति है ॥ (इसलिये कर्ता कर्म दोनों एक ही हैं। परस्पर एक दूसरेकी पर्याय हो सकते हैं ऐसे कारक दोष जाता रहता है)
तद्;॥ अपि* न* श्रेयस् ;॥ परीक्षायाम् ;॥	=तो भी परीक्षा करने पर (यह) श्रेष्ठ नहीं है। (यदि कर्ता कर्मका अभेद माने तो)
देवदत्तः ;। कटं ;। करोतिT इति* अत्र* अपि*	='देवदत्त कटं करोति' देवदत्त चटाई बनाता है ऐसे यहां पर भी
कर्तृ-कर्मणोः ३॥ देवदत्त कटयोः ३। अभेद-प्रसंगात् ;।	=कर्ता देवदत्त और कर्म चटाई में अभेदता या एकताका सयोग आता है (अत कर्ता कर्मको एक मानकर कारक दोषको दूर करना बाधित और अयुक्त है)

(२) इस टिप्पणीसे हमको यह बात सिद्ध करनी है कि साधन व्यभिचारको और पुरुष व्यभिचारको एक ही माना है और तत्त्वार्थ राजवार्तिक

अर्थात पुरुष दूषण यह कि उत्तम पुरुष के स्थानमें मध्यम पुरुष लाना,

तथा तत्त्वार्थ श्लोक वार्तिक के कर्त्ताओं का मत पूज्यपाद स्वामीसे मिलता है न कि साधन व्यभिचार को कारक व्यभिचार माना है जैसाकि औरोंका भ्रम है ॥ इस सर्वार्थसिद्धिवृत्तिके दो संस्करण मुद्रित हुये हैं प्रथम आवृत्तिमें छापे की इतनी अशुद्धियां हैं कि दो बार शुद्धयशुद्धि पत्र देने पर भी बहुतसी अशुद्धियां रह गई हैं जिनको हमने शुद्ध करके अनुवाद शब्दशः किया है और स्थान स्थान पर उनका उल्लेख भी किया है ॥ दोनों आवृत्तियों का क्रमसे पाठ ऐसे हैं कि "सख्याव्यभिचारः—जलमापो वर्षा ऋतुराम्रा वनमिति ॥ वरणा नगरं साधन व्यभिचारः ॥ कारक व्यभिचारः—सेना पर्वतमधिवसति ॥ पुरुष व्यभिचारः—एहि......" इत्यादि पृष्ठ १३८ ॥ "संख्याव्यभिचारः—जलमापो वर्षा ऋतुराम्रा वन वरणा नगरमिति ॥ साधन व्यभिचारः— (कारक व्यभिचारः) सेना पर्वतमधिवसति ॥ पुरुष व्यभिचारः—एहि मन्ये रथेन यास्यसि, न हि यास्यसि, यातस्ते पितेति" ॥ उपर्युक्त दोनों पाठों की तुलना करने से ज्ञात होताहै कि प्रथम संस्करणमें "वनमिति ॥ वरणा नगर" अशुद्ध था उसको द्वितीय संस्करणमें "वनं वरणा नगरमिति" करके इतना पाठ शुद्ध कर दिया। परंतु पश्चात् 'साधन व्यभिचार' वाक्य लिख कर "(कारक व्यभिचारः)" उसके निकट कोष्टकमें कर दिया, यह ठीक नहीं किया, "सेना पर्वतमधिवसति" वचनके पश्चात् और "पुरुष व्यभिचारः" के प्रथम "साधन व्यभिचारः" लिखना ठीक होता जैसा कि हमने वृत्तिका पाठ पृष्ठ ५१८में लिखा है। क्योंकि ( ) पं० जयचंदजीने वचनिका पृष्ठ २०३ में यह उल्लेख किया है "बहुरि साधन व्यभिचार ताकूं पुरुष व्यभिचार भी कहिये—एहि मन्ये रथेन यास्यसि। नहि यास्यसि न यातस्ते पिता" ऐसा ही लेख हस्त लिखित वचनिका में है ॥ दूसरा हेतु यहहै कि 'साधन'का अर्थ तत्त्वार्थ राजवार्तिकके तथा तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक के कर्ताओंने अस्मद्-युष्मद्, प्रथम पुरुष, मध्यम पुरुष और उत्तम पुरुष ऐसा लिया है और 'अन्य' वैयाकरणों ने "साधन" का अर्थ करण कारक वा तृतीया विभक्ति लिया है (देखो वैद्यकोश पृष्ठ ७७१ प्रभा० कोश पृष्ठ ४१९) और कारक छह (कर्ता-कर्म-करण-संप्रदान-अपादान-अधिकरण) हैं इसलिए साधन कारक व्यभिचार, करण कारक व्यभिचार हो सकते हैं। परंतु "सेना पर्वतमधिवसति" (=सेना पर्वत को वसती है) इस उदाहरण में साधन कारक व्यभिचार नहीं है वरन अधिकरण कारक के स्थानमें कर्म कारक है ऐसा व्यभिचार है अर्थात् जहां छठा कारक (अधिकरण कारक) का प्रयोग होना था वहां द्वितीय कारक वा कर्मकारक का प्रयोग किया है भावार्थ ऐसा है कि "सेना पर्वतेऽधिवसति" (=सेना पर्वतमें वसती है के स्थान में "सेना पर्वतमधिवसति" ऐसा है ॥ यदि करण कारक व्यभिचार वा साधन कारक व्यभिचार का उपर्युक्त उदाहरण होता तो हम एक प्रकार से इस बात को मान लेते कि "साधन व्यभिचारः—(कारक व्यभिचारः)" एक है क्योंकि साधन व्यभिचार कारक व्यभिचारोंमें से एक है इस अवस्था में

और मध्यम पुरुष के स्थान में उत्तम पुरुष लाना, असमद् (=मे) के स्थान में युष्मद् लाना और युष्मद् (=तू) के स्थानमें असमद् लाना (जैसा कि नीचे के दृष्टान्तसे ज्ञात हैं)

साधनकारकव्यभिचारः—(साधनकारकव्यभिचार) ये दोनो वाक्य, वाक्यशेष पूरा कर देने से अर्थात् 'साधन व्यभिचारमें कारक शब्द जोड़ने से और कारक व्यभिचारमे साधन शब्द लगानेसे एक होजाते हैं ॥ परंतु उक्त उदाहरण (सेनापर्वत मधिवसति)मे तो साधनकारक व्यभिचारका कुछ भी अश नहीं है ॥ हमारी समझमे साधनकारक व्यभिचारके दो अर्थ है ( ) साधन (तृतीया करण) कारक द्वारा जो दोष उत्पन्न हो सो साधन व्यभिचार है अर्थात अन्य कारकका प्रयोग होना ठीक होता उसके स्थानमे करण कारक (=तृतीया विभक्तिका) प्रयोग पाया जाना। ( ) साधन कारकमे (का) दोष अर्थात् करण कारक (=तृतीया विभक्ति) के स्थानमें अन्य कारकका प्रयोग पाया जाना सो साधनकारक व्यभिचार वा करण कारक व्यभिचार हो सकता है ॥ इसलिए हमारी समझमे सस्था द्वारा प्रकाशित तत्त्वार्थराजवार्तिकके अनुवाद पृष्ठ ४७८ के नीचे जो निम्न टिप्पणी दी है वह असावधानीसे लिखी है "१ सर्वार्थसिद्धिमे साधनव्यभिचार. (कारकव्यभिचारः) सेनापर्वतमधिवसति। पुरुषव्यभिचारः एहि मन्ये रथेन यास्यसि नहि यास्यसि यातस्ते पिता. अर्थात् साधनका अर्थ कारक माना है और साधन व्यभिचार सेना पर्वत में रहती है यह उदाहरण दिया है। पुरुषव्यभिचार एक भिन्न व्यभिचार माना है और उसका एहि 'मन्ये रथेनत्यादि उदाहरण दिया है" ॥

सर्वार्थसिद्धिवृत्ति, तत्त्वार्थ राजवार्तिक, तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक, जयचदजी कृत वचनिका और अर्थ प्रकाशिका मे जिस क्रमसे उक्त व्यभिचारोके नाम दिये है उसी क्रमसे उनकी भिन्न भिन्न व्याख्या की है और क्रमानुसार ही उदाहरण दिये हैं इससे यह बात झलकती है कि "कारकव्यभिचारः सेनापर्वतमधिवसति ॥" इस वाक्यका स्थान "एहि मन्ये रथेन यास्यसि न हि यास्यसि यातस्ते पितेति" के पश्चात् होना चाहिये और "कालव्यभिचारः" इत्यादि वाक्यके पहिले होना चाहिये अर्थात् "कारक व्यभिचारः- सेना पर्वतमधिवसति ॥ साधनव्यभिचारः, पुरुषव्यभिचारः—एहि मन्ये रथेन यास्यसि न हि यास्यसि यातस्ते पितेति ॥ कालव्यभिचारः" इतने लेखके स्थानमे 'कारकव्यभिचारः- सेना पर्वतमधिवसति" इस इतने लेखके स्थानको परिवर्तन करते हुये ऐसा पाठ होना चाहिये "साधन व्यभिचारः पुरुषव्यभिचार-एहि मन्ये रथेन यास्यसि न हि यास्यसि यातस्ते पितेति ॥ कारकव्यभिचारः- सेना पर्वतमधिवसति ॥ कालव्यभिचारः इत्यादि" क्योंकि सर्वार्थसिद्धिमे "लिङ्गसंख्यासाधनादिव्यभिचार निवृत्तिपरः" ऐसी परिभाषा 'शब्दनय' की दी है। इसके 'आदि' शब्दमें कारकव्यभिचार कालव्यभिचार और उपग्रह व्यभिचार गर्भित हैं ॥

उक्त शब्दनय की परिभाषा के क्रमानुकूल प्रथम लिंगव्यभिचार को उदाहरण सहित कहा, पश्चात् संख्याव्यभिचार को दृष्टान्त सहित कहा तत्पश्चात् साधनव्यभिचार क्रमानुकूल अवश्य ही कहना चाहिये। यह बात कितनी क्रम विरुद्ध है कि लिंगव्यभिचार और संख्याव्यभिचार को कहकर और साधनव्यभिचार को छोड कर "आदि" शब्द में अन्तर्गत व्यभिचारोंमेंसे कारकव्यभिचार को ग्रहण करना, पश्चात् "आदि" शब्द में अन्तर्गत कालव्यभिचार और उपग्रहव्यभिचार को भी छोड कर फिर साधनव्यभिचार का कथन आरम्भ कर देना। "आदि" शब्द में अन्तर्गत व्यभिचारों को स्पष्ट कहे हुये व्यभिचारों से पीछे ही कहना पडता है क्योंकि संभव है कि आदि शब्द में कारक व्यभिचार कालव्यभिचार और उपग्रहव्यभिचार के अतिरिक्त अन्य अन्य व्यभिचार भी सम्मिलित हों जैसा कि तत्त्वार्थ राजवार्तिक पृष्ठ ६७, ६८ में "आदि" शब्द करि कालव्यभिचार और उपग्रहव्यभिचार को लेते हुए "एवमादयो. व्यभिचारा अयुक्ताः" (=ऐसे काल उपग्रह आदिक व्यभिचार अयुक्त है) कथन किया है। ( ) उपर्युक्त वार्तिक के पृष्ठ ६७, ६८ में लिंगसंख्या साधनादि" वाक्य के पीछे क्रमसे लिंगव्यभिचार, संख्याव्यभिचार, साधनव्यभिचार का कथन दृष्टान्तों सहित किया है और "आदि" शब्द में कालव्यभिचार और उपग्रहव्यभिचार को उदाहरणों सहित निर्देश कर प्रकट किया है कि ऐसे 'आदि' शब्द में और और व्यभिचार भी है वे सर्व अयुक्त है। तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक पृष्ठ २७२, २७३ में "कालकारक लिंगसंख्या-साधनोपग्रहभेदाद्भिन्नमर्थं शपतीति शब्दो नय" यह वाक्य देकर इसही क्रम से शब्द नय की अपेक्षा से इन सबका कथन उदाहरणों और तर्क वितर्क सहित दिया है। यही क्रम तत्त्वार्थराजवार्तिक के दोनों अनुवादकों ने ग्रहण किया है॥ पं० गजाधरजी ने २७२, २७३ उक्त पृष्ठों का अनुवाद दिया है उसमें भी यही क्रम रक्खा है (देखो पृष्ट ४८३ से ४८८ तक)॥ पं० जयचन्द जी ने वचनिका पृष्ठ २०२ से २०५ तक में लिंगव्यभिचार, संख्याव्यभिचार, "साधनव्यभिचार ताकू पुरुष व्यभिचार भी कहिये "कालव्यभिचार, उपग्रहव्यभिचार कारक व्यभिचार इस क्रम से उक्त व्यभिचार देकर उनकी व्याख्या उदाहरणों सहित अनुक्रम से की है॥ पं० सदासुख जी ने अर्थ प्रकाशिका पृष्ठ ८४, ८५ में पं० जयचन्द जी के सदृश उक्त व्यभिचारों का उदाहरण सहित उल्लेख किया है परन्तु उनने कारकव्यभिचारका कथन छोडदिया है। पृष्ठ ४८० से पं० पन्नालाल न्यायदिवाकर लिंग संख्या के व्यभिचारों के पीछे 'साधनव्यभिचार याकूं पुरुषव्यभिचार भी कहिये इसका कथन करते है फिर कालव्यभिचार इत्यादि का। हमने पाठ तौ सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शुद्ध कर दिया है परन्तु कारकव्यभिचार को संख्याव्यभिचार और साधनव्यभिचार के (=पुरुष व्यभिचार के) मध्य में ही रक्खा है क्योंकि हमारे निकट कोई ऐसी प्राचीन प्रति नहीं है जिसके आधार पर हम 'कारकव्यभिचार' को 'साधन व्यभिचार (=पुरुष व्यभिचार) के पश्चात् रक्खें॥ विचार में आया वही लिखा आगे पाठक महोदय भूल चूक सम्हार लेवैं॥

(२)एहि मन्ये रथेन यास्यसि, न हि यास्यसि, यातस्ते पितेति(१) ॥

एहि T मन्ये T रथेन ३। यास्यसि T = (तू) आउ, (मैं) मानता हूं वा समझता हूं, (तू) रथ (चढ़) करि जायगा, (सो)
न*हि * यास्यसि T यातः १। ते ६। पिता १। इति = (तू) नहीं जायगा, इस प्रकार (= इति) तेरा पिता (चला) गया ॥
(सभ्य शब्दों में उक्त वाक्य का अनुवाद ऐसे होगा कि) तुम आओ मैं मानता हूं वा समझता हूं तुम रथ चढ़ करि जावोगे सो नहीं जावोगे, इस प्रकार (तौ) तुम्हारे पिता चले गये ॥ उपर्युक्त संस्कृतवाक्य में और तदानुसार शब्दार्थ हिंदी अनुवाद में भी 'एमि' उत्तम पुरुष एक वचन के स्थान में "एहि" मध्यम पुरुष एकवचन लाया गया है। "मन्यसे" मध्यम पुरुष एक वचन के स्थान में "मन्ये" उत्तम पुरुष एकवचन लाया गया है और "यास्यामि" उत्तम पुरुष एकवचन के स्थान में "यास्यसि" मध्यम पुरुष एकवचन लाया गया है ॥ (मैं) के स्थान में "तू" और "तू" के स्थान में "मैं" फिर 'मैं' के स्थान में 'तू' लाया गया है हिन्दी अनुवाद में इन तीनों को मिलाके ऐसे साधन वा पुरुष व्यभिचार हुआ।

(१) इस वाक्य को पाठ सर्वार्थसिद्धि की दोनों आवृत्तियों में, तत्वार्थराजवार्तिक तथा राजवार्तिक दोनों अनुवादों में एकसा है ॥ श्लोकवार्तिक मे एक 'स' अधिक है और 'पितेति' वाक्य की सधि नहीं की 'पिता इति' ऐसे रूप में है अर्थात् "एहि मन्ये रथेन यास्यसि न हि यास्यसि स यातस्ते पिता इति" ऐसा पाठ है ॥ प० जयचन्द जी की वचनिकामें "न" अधिक है और 'इति' नहीं है, अर्थात् "एहि मन्ये रथेन यास्यसि, नहि यास्यसि, न यातस्ते पिता" है ॥

(२) "एहि" अदादि द्वितीय गण के इ वा ई गमन अर्थवाली धातु से लोट लकार वा आज्ञाद्योतक क्रिया के मध्यम पुरुषका एकवचन रूप है इसका अर्थ "एहि कहिये तू आइ" (= तू आउ) पञ्जा० दूनीवाले पृष्ट २६४ "एहि त्वमागच्छ" (= तू आउ) सर्वार्थ प्र० संस्करण पृ० १३८ टिप्पणी, द्वितीय आवृत्ति पृ० ८० टिप्पणी ॥ "एहि मन्ये रथेन यास्यसि न हि यास्यसि यातस्ते पिता। अर्थात् जाओ मैं ऐसा समझता हूं कि तुम रथसे जाओगे परन्तु अब न जाओगे तुम्हारा पिता चलागया। इस वाक्य के शब्दोंका अर्थ तो यह होता है। प०गजाधरलालजी अनुवादित तत्वार्थराजवार्तिक पृ० ४७८ ॥अब हमको यह बात निश्चय करनाहै कि "एहि"वाक्य का अर्थ कौनसा ठीक है अर्थात् 'तू आउ' अथवा तू 'जाओ' ॥

( ) इ भ्वादि प्रथम गण परस्मैपद और आत्मने पद का धातु 'जाना' अर्थ में आता है ॥ इ की गुणसंज्ञा ए है अ विकरण जोड़कर = अय् + अ बनता है पश्चात् ति-ते अन्य पुरुष, एकवचन, वर्तमान कालके परस्मैपद वा आत्मनेपदका प्रत्यय क्रमसे लगाकर अयति, अयते = जाताहै बने।

( ) इ और ई भ्वादि प्रथम, अदादि द्वितीय, दिवादि चतुर्थ गणों में भिन्न भिन्न अर्थ लिये हुये आते हैं उन सर्व को छोड़ कर यहां पर इ-ई अदादिगण के जाना वा गमन अर्थ में आये हैं (वैद्यकोश १५,१७ पृ०)अङ्ग के अन्त का स्वर और अङ्ग के उपातक ह्रस्व स्वरके पितसङ्क्

हिंदी अनुवाद मे यदि उक्त पुरुप दूपण हम दूर करदें तो भी हंसीका प्रसंग बना रहैगा जैसे मैं जाताहूं तू समझता है "मैंरथ चढ़ करि जाऊंगा" तू रथ चढ़ करि नही जावेगा, तेरा बाप (दादा भी कभी) ऐसे गया है? भावार्थ जो महत्व का कार्य तेरे बाप दादा से नहीं हुआ है तुझ से कैसे हो सकता है कदापि नही हो सक्ता है ॥ परन्तु संस्कृत में यदि हम शब्द नयके अनुकूल पुरुप दूपण दूर कर के "एमि मन्यसे रथेन यास्यामि नहि यास्यसि यातस्ते पितेति" करदें तौ प्रहास जाता रहेगा और सीधा साधारण संस्कृत वाक्य का यह अर्थ हो जावेगा ॥ जैसे किसी बहुत बूढ़ेमनुष्य कोकोई बच्चा मिला और दोनों को किसी बरात में जाना है तो उक्त वृद्ध पुरुप कहता है। (बच्चे तू मेरे साथ चलता है तो चल) 'मैं (तो) जाता हूं तू समझता है 'मैं रथ चढ़ करि जाऊंगा' (सो अब) तू (रथ चढ़ करि) नहीं जावेगा। (क्योंकि तू तौ अभी ग्राम से आया है, घर भी नही पहुंचा है इससे तुझको जानकारी नहीं है कि जो रथ वस्तुतः तेरे घरमें था उस पर तौ) तेरा पिता (चढ़ कर बरात को)

(मि-सि ति। अम्-स्-त्। आनि-आव-आम-तु परस्मैपदी और ऐ-आवहै-आम है। आत्मनेपदी) प्रत्यय के पहिले गुण सञ्ज्ञक आदेश हो जाता है परन्तु शेष ङित् सञ्ज्ञक प्रत्यय वस्-थस्-नस् हि-तम्-ताम्-त-अन्तु इत्यादि के पहिले गुण सञ्ज्ञा नहीं होती (धातुचन्द्रिका पृष्ठ७२)इसलिये इ—ई धातुओं का मि,पित् सञ्ज्ञक प्रत्यय के पहिले गुण सञ्ज्ञा होकर ए—ए ऐसा रूप बना। अदादि द्वितीय गण के धातु के साथ कोई विकरण नहीं लगता है इसलिये पुरुपगत प्रत्यय धातुओं के साथ तत्क्षण लगाये जाते है॥ एमि—इ धातु का और एमि (ही) ई धातु का उत्तम पुरुप एक वचन, परस्मैपद, वर्तमान काल को क्रिया का रूप हुआ, जिस 'एमि' का अर्थ है (मैं) जाता हूं जोकि जब हम एहि के स्थान में, एमि करेंगे तब यह अर्थ काम देगा ॥ हि प्रत्यय ङित् सञ्ज्ञक है और वह मध्यम पुरुप एक वचन परस्मैपद, लोट वा आज्ञा द्योतक क्रिया का है इसके पहिले अङ्ग के अंत के स्वर और अङ्ग के उपान्तक ह्रस्व स्वर का गुण संज्ञक आदेश नहीं होता है इसलिये इ + हि, ई + हि = इहि = तू आउ, ई + हि = तू आउ रूप बने और अर्थ हुआ ॥ (देखो धातु चन्द्रिका पृष्ठ ७६) ॥ अब प्रश्न यह है कि इन इहि-ईहि रूपो का एहि कैसे बना और क्या अर्थ होगा ॥ आङ् उपसर्ग के कई अर्थ होते हुये जब आङ् (=आ) उन क्रियाओं के पहिले आता है जो हलन-चलन-ग्रहण करने इत्यादि अर्थों की द्योतक होती है तो उनका अर्थ विपरीति हो जाता है जैसे गम् = जाना, आगम् = आना ॥ इसी प्रकार आ + इ, आ + ई का आद्गुण. सू० (६-१-८७) से ए-ए रूप बने क्योंकि इ-ई की गुण संज्ञा ए है इसमें उपर्युक्त ही प्रत्यय लगाने से एहि-एहि रूप बने। इसलिये 'तू आउ' यह अर्थ हुआ। इससे हमने अनुवाद में तू जाओ अर्थ न लिखकर एहि का अर्थ तू आउ अथवा तुम आओ ऐसा किया है ॥

चला गया है ॥ श्रीयुत श्रीश्चन्द्र अनुवादित अष्टाध्यायी पृष्ठ २११ देखो ॥ "एहि मन्ये (१) रथेन यास्यसि, न हि यास्यसि, यातस्ते पितेति" ॥ यह संस्कृत वाक्य हंसी में कहा गया है ॥ वह व्याकरण और व्यवहार नय दोनों के अनुकूल शुद्ध है और लोक व्यवहार में ऐसा प्रयोग होता है और वह ठीक समझा जाता है परन्तु शब्द नय की प्रधानता से उक्त संस्कृत वाक्य का प्रयोग ठीक नहीं है, अयुक्त है दूषित है व्यवहारनय और व्याकरण से वह भले ही ठीक हो। यहां पर तो शब्द नय का प्रकरण है इस से हम उसको दूषित मानते हैं।

(१) हमको इस टिप्पणी में इस बात को सिद्ध करना है कि पाणिनीयकृत अष्टाध्यायी और जैनेन्द्र व्याकरण के भी अनुसार और व्यवहार नय से भी "एहि मन्ये रथेन यास्यसि, न हि यास्यसि, यातस्ते पितेति" यह वाक्य ठीक है और यदि शब्द नय के अनुकूल "मन्ये" उत्तम पुरुष के स्थान में 'मन्यसे' मध्यम पुरुष कर दिया जावे और 'यास्यसि' मध्यम पुरुष के स्थान में 'यास्यामि' उत्तम पुरुष करदिया जावे तो उक्त वाक्य का सीधा सादा साधारण अर्थ होजावेगा और उपहास वा परिहास का प्रसंग जाता रहेगा, परन्तु शब्द नय से जिसको हम यहां पर प्रधान मानते हैं उक्त वाक्य ठीक नहीं है व्याकरण और व्यवहार नय कुछ भी सिद्ध क्यों न करता हो॥ प्रथम हम अष्टाध्यायी के सूत्र का उल्लेख करते हैं। "प्रहासे च मन्योपपदे मन्यते रुत्तमः एकवच्च" १।४।१०६ ॥ = प्रहासे ७।१ च* मन्य--उपपदे ७।१॥ धातोः ५।१ (सूत्र ८० से लिया है) मध्यमः १।१ (१०५ वां सूत्र से लिया है) (मन्यति की) मन्यतेः ५।१ उत्तमः १।१ एकवत्* च* ॥

प्रहासे ७।१ च *	= और (= च) प्रहास वा हसी (अर्थ) में अर्थात् जब किसी क्रिया के सम्बन्ध में किसी से प्रहास करने का अभिप्राय हो।
मन्योपपदे ७।१ धातो ५।१ मध्यम १।१	= मन्य--उपपद (मन्य धातु जिसके साथ हो ऐसे) धातु से (= धातोः = ऐसी धातु के पीछे) मध्यम पुरुष हो अर्थात् जिस धातु के साथ में मन्य (धातु) उपपद रूप में आई हो तो वह प्रकृतिभूत वा विषयभूत धातु अथवा वह क्रियाद्योतक धातु मध्यम पुरुष में लाई जाती है।
मन्यते ५।१ उत्तम १।१	= और मन्य धातु से (= मन्यतेः--यह मन्यति की पचमी अपादान विभक्ति एकवचन है) उत्तम पुरुष हो।
एकवत्* च*	= वह एकवचन भी (= च) हो ॥ सारांश यह है कि जब किसी प्राणी से किसी क्रिया जैसे खाना जाना चले जानाइत्यादि के सम्बन्धमें हसी करना हो और मन्य धातु उक्त विषयभूत क्रियाके पास आवे, वा पहिले आवे अथवा प्रथम बोला जाय तो इस क्रिया के पीछे मध्यम पुरुष का प्रत्यय लाया जायगा, और उक्तमन्य

धातु के पश्चात् प्रथम पुरुष का प्रत्यय लाया जायगा, वह प्रत्यय एक वचन भी (=च) होगा ॥ जैसेः— "एवं मन्ये ओदनं भोक्ष्यसे इति, नहि भोक्ष्यसे; भुक्तः सोऽतिथिभिः" इस वाक्यमें 'भुज्' धातु है जिसका अर्थ 'भक्षण करना' है इस 'खाना' क्रिया के संबन्ध में किसी प्राणीसे परिहास वा हंसी करना है और उक्त वाक्य में मन्य (मन्=समझना, दिवादिगणका य विकरण है) धातु विषयभूत वा प्रकरणमें लाई गई 'भुज्' धातुसे पहिले आई है, प्रथम बोली गई है, इसलिये इस 'भुज्' धातु के पश्चात् स्यसे (=भुज्+स्यसे=भोक्+स्यसे=भोक्+ष्यसे=भोक्ष्यसे) मध्यम पुरुषका प्रत्यय लाया गया है और 'मन्य' धातु जो वाक्यका उपपद (=अप्रधान, गौण, अनुगामी) है उसके पीछे इ (=मन्+य, विकरण+इ=मन्ये) उत्तम पुरुष एक वचन प्रत्यय लाया गया है। बस यही इस सूत्रका ज्योंका त्यों अथ और आशय है ॥ अब इसमें प्रहास यह हुआ मान लीजिये कि एक वृद्ध पुरुष के यहां भात अल्प भी नहीं बना है और एक न्यून व्यस्क की भात खाने की बहुतही इच्छा है परस्पर उनमें उपहास भी होता रहता है तो वह बुड्ढा पुरुष हंसी में कहता है तू ऐसा समझता है "मैं भात खाऊंगा" तू नहीं खायगा, वह भात तो महमानों द्वारा खा लिया गया" यहां भात खीर इत्यादि कुछ भी विद्यमान नहीं है न था केवल प्रहास और उपहास ही है ॥ ध्यान रहे कि यह हंसीरूप अर्थ जब तक ही संस्कृत वाक्य का रहैगा तब तक हम शब्दनयके प्रतिकूल 'मन्ये' धातुमे मध्यम पुरु के स्थानमें जो उत्तम पुरुष है और भोक्ष्यसे उत्तम पुरुषके स्थान में मध्यम पुरुष है बना रहने दें यदि शब्दनयके अनुसार हम उक्त उदाहरण को ऐसा करदे एवं मन्यसे ओदनं भोक्ष्ये इति, नहि भोक्ष्यसे, भुक्तः सोऽतिथिभिः अर्थात् मन्ये उत्तम पुरुषके स्थान में मन्यसे मध्यम पुरुष करदें और भोक्ष्यसे मध्यम पुरुष के स्थान मे भोक्ष्ये उत्तम पुरुष करदें तो हंसीका विषय जाता रहैगा और उक्त वाक्यका सीधा साधा साधारण अर्थ होजावेगा वह अर्थ यह होजावेगा कि उक्त उदाहरणमें जब उस पुरुषके यहां भात यथार्थमें हुआ था और महमान उस भातको सबका सब वास्तविकमें खागये तो यह सच्ची बात विना किसी हंसीके कह सक्ता है कि ऐसा तू मानता है 'मैं भात खाऊंगा; नहीं खायगा, वह (भात तो) महमान खागये ॥ उक्त सूत्र अन्य प्रकारसे ऐसे भी है "प्रहास मन्य वाचि युष्मन्मन्यतेरस्मदेकवच्च" अर्थात् प्रहास (अर्थ) में मन्यवाच (मन्य धातु जिसके वाचन वा पठनमें हो ऐसे) धातुसे युष्मद् (मध्यम पुरुष) हो और मन्य धातुसे अस्मद् (उत्तम पुरुष) हो और वह (अस्मद्) एक वचन भी हो ॥

कालव्यभिचारः-विश्वदृश्वाऽस्य पुत्रो जनिता । भावि कृत्यमासीदिति ॥

कालव्यभिचारः ।। विश्वदृश्वा ।।	=कालव्यभिचार (जैसे) समस्त लोक को जिसने देखलिया है वा जान लिया है ऐसा
पुत्रः ।। अस्य ।। जनिता	=पुत्र इसके उत्पन्न होगा (=जनिता) अर्थात् यहां समस्त ब्रह्मांडका देख लेना भविष्यत् कालका कार्य है उसका भूतकालमें होना मान लिया गया है अतः यहां भविष्यत्काल में होनेवाले कार्यके स्थानमें भूतकालमें हुआ कार्य कहदेना कालव्यभिचार है ॥
भावि-कृत्यम् ।।। आसीत् इति॥	=होनहार (=भाविन्) कार्य (कृत्यम्) हुआ ऐसें यहां होनहार कार्य इतनावाक्य आगामी कालका वाचक है और आसीत् (=हुआ) यह वाक्य अतीतकालका वाचक है इसलिये यहां अनागत कालमें वा आगे होनेवाले कालमें भूतकालकी (प्रकाशक) विभक्ति वा क्रियाका प्रत्यय लगाया है (=भविष्यत्कालेऽतीतकालविभक्तिः) ॥

क्योंकि संसारमें हम उक्त प्रहासका वाक्यों द्वारा प्रचार वा व्यवहार देखते हैं इसलिये व्यवहारनयसे भी 'एहि मन्ये रथेन' इत्यादि वाक्य ठीक है। अब हम शब्दनयकी प्रधानता मानकर और व्यवहारको गौण करके यह दिखाना चाहते हैं कि यदि युष्मद् मध्यम पुरुषके स्थानमें अस्मद् उत्तम पुरुष करदिया जावे और अस्मद् उत्तम पुरुषके स्थानमें युष्मद् मध्यम पुरुष करदिया जावे तो वह शब्दनयसे ठीक न होगा क्योंकि साधनका भेद रहते भी पदार्थोंको एक माना जावेगा तो 'अहं पचामि त्वं पचसि' (मैं रांधता हू, तू रांधता है) यहांपर भी युष्मद् अस्मद् रूप साधनोंका भेद है इसलिये यहांपर भी एक मानना पड़ैगा फिर भिन्न भिन्न रूपसे जो दो प्रयोग होते हैं वे न हो सकेंगे अतः साधन व्यभिचारके दूर करनेके लिये जो वैयाकरणोंने समाधान दिया है वह अयुक्त है ॥ (देखो तत्वार्थ श्लोक वार्तिक पृष्ठ २७३)

(१) इस वाक्यमें विश्वदृश्वा जो पुत्रका विशेषण है इसके द्वारा भूतकाल प्रगट किया है और द्वितीय वाक्यमें आसीत्, अनद्यतनभूत क्रिया द्वारा अतीतकाल प्रगट किया है ॥ दृश्वा शब्द दृश्वन्का प्रथमा विभक्ति एक वचन पुल्लिंग है ॥

(२)जनिता—जन्=उत्पन्न होना, दिवादिगण, आत्मनेपदी, अकर्मक, सेट् धातु है, जन+इ और ता लुट् भविष्यत् काल प्रथम पुरुष, एक वचन आत्मनेपदी क्रियाका प्रत्यय लगानेसे 'जनिता' (=उत्पन्न होगा) यह बना ॥ (३) आसीत्—अस् अदादि द्वितीयगण, अकर्मक, परस्मैपदी, सेट् धातु 'होना' अर्थ में यहां आया है अनद्यतनभूत कालकी क्रियामें 'अ' जोड़ा 'ई' आगम आया, फिर 'त्' प्रथम पुरुष, एक वचन, उक्त भूतकालका परस्मैपद प्रत्यय लगाने से (अ+अस्+ई+त्)=आसीत् (=हुआ) बना ॥

काल व्यभिचारके दोनों उदाहरण व्याकरण और व्यवहारनय से ठीकहैं परंतु शब्दनयमे दूषित हैं जसाकि तत्त्वार्थ श्लोक

ये ¦। हि॰ वैयाकरणाः व्यवहारनय-अनुरोधेन ¦।।। =ये व्याकरणवाले व्यवहारनयके अनुसरणमे '(पाणिनीय अष्टाध्यायी ३ ४-१)

'धातुसबन्धे ¦। प्रत्ययाः ¦।" इति सूत्रम् ¦।।। आरभ्य– =ऐसे सूत्रको कि "धात्वर्थ सबन्ध में अयथाकालोक्त भी प्रत्यय हों" आरम्भकरि अर्थात् धात्वर्थ सबन्धी प्रत्यय जिस कालमें कहे गये हैं उनसे भिन्न कालमें भी होते हैं ऐसे अर्थवाले सूत्रका निर्माण कर

विश्वदृश्वाअस्य¦।पुत्रः¦जनिताT भाविकृत्यम¦।।।आसीत्T =विश्वको जिसने देख लिया है ऐसा इसके पुत्र उत्पन्न होगा; होनहार कार्य हुआ

इति अत्र कालभेदे¦।अपि एकपदार्थम् ¦।आदृताः¦।।यो¦।।विश्वं¦।।। =इस प्रकार यहां काल भेद (होने) पर भी एक पदार्थ को मानतेहैं। जो विश्व को

द्रक्ष्यति¦ सः¦। अपि पुत्रः¦। जनिताT इति भविष्यत्कालेन =देखेगा सो ही (=अपि) पुत्र उत्पन्न होगा ऐसा अनागत कालकरि

अतीतकालस्य¦। अभेदः¦। अभिमतः¦। तथा॰ =अतीत कालका अभेद माना गया है और (=तथा)

व्यवहार-दर्शनात् ¦।।। इति॰ =लोक व्यवहारमे ऐसा देखना होता है अर्थात् संसारमे ऐसा देखा जाता है भावार्थ धात्वार्थ संबन्धी प्रत्यय जिस कालमें कहे गये हैं उनसे भिन्न कालमे भी होते हैं

ऐसे अर्थवाले सूत्रका निर्माण कर 'विश्वदृश्वास्य पुत्रो जनिता, भाविकृत्यमासीत' यहां पर जो भविष्यत् कालके कार्य को भूतकालमें मानने से कालका भेद रहने पर भी भविष्यत् और अतीतकाल को वैयाकरण एक मानते हैं और दोनो कालोंके अभेद मानने में यह हेतु देते हैं कि संसार में वैसा व्यवहार होता है। (परंतु)

तत् ¦।।। न॰ श्रेयम् ¦।।। (तन्न श्रेयः) =वह (व्यवहाराधीन भविष्यत् और अतीतकालोका अभेदरूप सिद्धांत) अच्छा नहीं है

(पाठान्तरम्-तत्र॰ यः ¦।) =[अन्य पाठ-तहां जो (व्यवहाराधीन भविष्यत और अतीतकालोंका अभेदरूप सिद्धांतहै सो,]

परीक्षायां ¦।। मूलक्षतेः ¦।। कालभेदे ¦। अपि अर्थस्य ¦। =परीक्षा (करने)मे जडमे जाता रहता है। क्योंकि कालभेद रहने पर भी (भिन्न २) पदार्थका

अभेदे ¦। अति प्रसंगात् ¦। =एक माननेमे नियमके अतिविरुद्ध होजाता है (=अतिप्रसंगात्-(देखो वैद्यकोश पृ० १०) कि

रावणशंखचक्रवर्तिनोः ¦। अपि॰ =रावण और शंखचक्रवर्तीके भी (जो यथा संख्य और अनुक्रम से)

अतीत-अनागतकालयोः ¦। एकत्व-आपत्तेः ¦।। =अतीत और भविष्यत् कालमें (हुआ और होने वाला है दोनोमे) एकता आपड़ती है अर्थात् दोनोंमें एकता हुई जाती है अथवा दोनों एक हुए जाते हैं

वार्तिक के पृष्ठ २७२, २७३ से सिद्ध है जिसका शब्दशः अनुवाद हम टिप्पणी में देते हैं

आसीतTरावणः॑।राजा॑।शंखचक्रवर्ती॑।भविष्यतिTइति*	=(प्रश्न) रावण राजा हो चुका शंखचक्रवर्ती भविष्यत् कालमें होगा ऐसे
शब्दयोः॑। भिन्नविषयत्वात्॑।।। एकार्थता॑।।	=दोनों (रावण और शंख) शब्दोंके भिन्न भिन्न विषय होने से एक पदार्थपनासे
न* इति* चेत्*	=रहित (=न) है ऐसा ही (=इति) यदि (=चेत्) माने तो अर्थात् रावण और शंखको भिन्न २ मानना चाहिये एक मानना बाधित है ॥
तत्॑।।। एव*	=(उत्तर) तैसेही (=तत् एव)
विश्वदृश्वा॑।। जनिता T इति*	=विश्वदृश्वा (जो होचुका) और जनिता (जो आगे होगा) ऐसें
अनयोः॑।	=दोनो (शब्द जो एक दूसरे से भिन्न भिन्न हैं एकार्थतारूप - एक अभिप्राय वाले)
अपि* मा* भूत् T	=भी (=अपि) नहीं (=मा) हो (सक) ते (=भूत्)
विश्वं॑।। दृष्टवान्॑।	=(विश्वदृश्वा वाक्यका अर्थ) विश्वको आगामी कालमे देखने वाला (=विश्वं दृष्टवान्)
इति* नहि*	=ऐसा (अर्थ) कदापि नहीं होसक्ता है(=नहि)वा किसी प्रकारसे नहीं होसक्ता है(=नहि)॥
विश्वदृशित्व॑–इति*शब्दस्य॑।यः॑।अर्थः॑।अतीतकालस्य॑।	=विश्वदृशित्व ऐसे शब्दका जो अर्थ है सो अतीतकालका वाचक है
जनिता॑।। इति* शब्दस्य॑। अनागतकालः॑।	=जनिता ऐसे शब्दका (अर्थ) अनागतकाल है (दानों शब्दोंका भिन्न भिन्न अर्थ है)
पुत्रस्य॑। भाविनः॑। अतीतत्व-विरोधात्॑।	=अतः भविष्यत्कालका होनेवाला (=भाविनः) पुत्र अतीतकालमें हुआ (यह) विरोध है
अतीतकालस्य॑। अपि* अनागतत्व आध्यरोपात्॑।	=(प्रश्न) भूतकालके भी भविष्यत्कालपना आरोप करनेसे (भविष्यत्कालमें होने वाला पुत्ररूप कार्य अतीतकालमें हुआ दोनोंके)
एकार्थता॑।। अभिप्रेता॑।। इति* चेत्*	=एक पदार्थपना है यदि (=चेत्) ऐसा मान लिया जाय (=अभिप्रेता) तो । (उत्तर)
तर्हि* न* परमार्थतः* कालभेदे॑। अपि*	=उस (उपचार की) अवस्था में (=तर्हि) कालभेद रहने पर भी यथार्थतः (=परमार्थतः)
अभिन्न-अर्थ-व्यवस्था॑।।	=एक पदार्थरूप (=अभिन्नार्थ) वा अभेदरूप व्यवस्था नहीं (मानी जा सकती) अर्थात् उपचारसे कालका अभेद मान कर भविष्यत् कालके कार्य का भूत कालका कार्य मान भी लिया जाय तब भी,वह पदार्थ रूपसे एक नहीं माना जासक्ता औपचारिक ही रहेगा॥

उपग्रहव्यभिचारः--सन्तिष्ठते प्रतिष्ठते

उपग्रह व्यभिचारः १/१	= उपग्रह दूषण अथवा उपसर्ग व्यभिचारः—(जैसे)
संन्तिष्ठते T	= संतिष्ठते (= वह अपनी प्रतिज्ञानुसार चलता है वा प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहता है)
प्रतिष्ठते T	= प्रतिष्ठते (= वह चल देता है अथवा वह गमन कर्ता है अर्थात् 'स्था'

(१) हमको इस टिप्पणी में यह दिखलाना है कि यहाँ पर 'उपग्रह' शब्द का अर्थ 'उपसर्ग' कैसे हुआ। उपग्रह शब्द के [illegible]त अर्थ हैं (क) कारागार, कारागृह, बन्धनागार, वन्दीगृह, बन्धनालय, (ख) बन्दीगृह में डालना (ग) बन्दीगृह में रहने वाला, बन्धुआ (घ) दया (ङ) धूमकेतुग्रह, राहुकेतुग्रह, (देखो पद्मचन्द्रकोश ७६, वैद्यकोश १३६ पृ०) (च) सहायता (छ) किसी वस्तु को किसी वस्तुके साथ जोडना वा लगाना (वैद्यकोश १३६ पृ०)उपग्रह शब्द इस अन्तके अर्थमें मेरी समझमें लिया गया है अर्थात् यहाँ एक वस्तु जो उपसर्ग है उसको दूसरी वस्तु जो'स्था' धातु है उसके साथ जोडना अथवा लगाना। क्योंकि निपातोंमेंसे प्र—परा—अप—सम्—अव—अनु—निस्—निर्—दुस्—दुर्—वि—आङ् नि--अधि—अपि—अति—सु—उत्—अभि—प्रति—परि—उप बाईस निपात उपसर्ग जब ही कहलाते हैं जब किसी क्रिया के साथ आवे नहीं तो इन निपातों को उपसर्ग कदापि नही कह सकते इसलिये इस समानता के हेतु से "उपग्रह" का अर्थ 'उपसर्ग' मान लिया है वा ले लिया है, यही अर्थ निम्न उल्लेखित वाक्यों से निकला है, "सो उपग्रह कहिये उपसर्ग (व्यभिचार) है "पं॰पन्नालाल दूनी वाले राजवार्तिक पृ० २६४॥ ऐसे उपसर्ग के बलते आत्मनेपदी धातु का परस्मैपद वचन भया। बहुरि परस्मैपदीका आत्मनेपदी भया। ऐसे उपग्रह व्यभिचार है' 'प० जय०वचनि० पृष्ठ २०४ "बहुरि आत्मनेपदीकूं परस्मैपद भया ऐसे ही उपसर्ग व्यभिचारकूं व्यवहारनय न्याय माने हैं तथापि शब्द नय का यही विषय है" अर्थ प्रकाशिका पृ० ८५ (भावार्थ दूसरे तीसरे वाक्य का यह है कि व्यवहार नय उपसर्ग व्यभिचार को न्याय मानती है परंतु शब्द नय उसको अन्याय ठहराता है परन्तु हमारी समझ में यह नहीं आया कि सस्थानुवादित राजवार्तिक पृष्ठ ४७६ में " उपग्रह का अर्थ परस्मैपद वा आत्मने पद है "ऐसा अर्थ उपग्रह शब्द का कहां से लिया है और कैसे हो गया॥

(२) स्थः (ष्ठा) गति निवृत्तौ इति अत्र परस्मैपदोपग्रहः। समवप्रविभ्यः स्थः अष्टाध्यायी १-३-२२। इति व्यभिचार सूत्रम्॥ संव्यवप्रात् स्थः। जैनेन्द्र व्याकरणम् १ अध्यायः २ पादः २१तम सूत्रम्॥ इति व्यभिचार सूत्रम्॥

स्थः ५/१ गतिनिवृत्तौ इति अत्र परस्मैपद-उपग्रहः = स्था धातु से गमन निवृत्ति(=ठहरना) अर्थ में परस्मैपदका लगाना होता है।

सम्--अव—प्र—विभ्यः ५/३ स्थः ५/१ (आत्मने पदम्) = (परन्तु)—सम्—अव—प्र—वि पूर्वक 'स्था' धातु से आत्मनेपद।

धातुभ्वादि प्रथमगण (यहां पर) परस्मैपदका है। इस धातुका रूप बहुधा प्रयोगोंमें प्रथमपुरुष, एकवचन, परस्मैपद, वर्तमानकालकी क्रिया का 'ति' प्रत्यय जोड़कर 'तिष्ठति' बन जाता है ॥

अष्टाध्यायी³॥ १-३-२२ इति⁴	=अष्टाध्यायी के अध्याय प्रथम, पादतीन, सूत्र बाईसवें से हो ऐसे (यह)
व्यभिचार-सूत्रम्³॥।	=व्यभिचाररूप सूत्र है अर्थात् एक नियत नियम को उलटने वाला सूत्र है भावार्थ 'स्था' धातु से नियमकरि परस्मैपदका प्रयोग होता है उस नियम को इस सूत्र ने उक्त धातु के प्रथम सम्—अव—प्र—वि उपसर्ग लाकर पलट दिया और आत्मने पद का प्रयोग नियुक्त किया ॥ (इसही प्रकार)
सम्—वि—अव—प्रात्⁵ स्थः⁵ (आत्मने पदम्)	=सम—वि—अव प्र पूर्वक 'स्था' धातुके परे आत्मने पद
जैनेन्द्र व्याकरणम् १—२—२१	=जैनेन्द्र व्याकरण के प्रथम अध्याय, द्वितीय पाद, इक्कीसवां सूत्र से हो
इति व्यभिचार-सूत्रम्॥	=ऐसे यह (भी) नियत नियम को पलटने वाला (=व्यभिचाररूप) सूत्र है

(१) "संतिष्ठते प्रतिष्ठते, विरमत्युपरमत्युपग्रह व्यभिचारः" (राजवार्तिक पृष्ठ ६८)=उपग्रह व्यभिचारः संतिष्ठते प्रतिष्ठते विरमति उपरमति बस यही पाठ सर्वार्थसिद्धिमें हैं केवल अन्तमें 'इति' अधिक है सो पाद पूरण के लिये है इसका कोई अर्थ विशेष रूप से नहीं है इसका अर्थ (प० पन्नालाल दूनी के अनुवाद पृष्ठ २६४ में ऐसे हैं कि 'अर संतिष्ठते की स्थान में प्रतिष्ठते कहै तथा विरमति के स्थान में उपरमति कहै सो उपग्रह कहिये उपसर्ग व्यभिचार है॥ इस अनुवाद से उनका यह अभिप्राय जान पड़ता है कि उपसर्ग जो क्रिया के साथ बोलने में कोई मनुष्य जोडता है वा लगाता है वो ठीक नहीं लगाता है अशुद्ध उपसर्ग लाता है अर्थात् जहां सम् उपसर्ग लाना चाहिये वहां प्र उपसर्ग लगाता है और रम् धातु के साथ भी जहाँ वि उपसर्ग लाना चाहिये वहा उप उपसर्ग लाता है ऐसे एक उपसर्ग के स्थान में दूसरा भिन्नार्थक उपसर्ग लाने के कारण उपसर्ग व्यभिचार हुआ वा उपसर्ग सम्बन्धीय दूषण हुआ, कोई किसी प्रकार का उल्लेख उक्त अनुवादक ने परस्मैपद और आत्मनेपद के सम्बन्ध में नहीं किया। आगे पाठकगण विचारलें॥

इसी प्रकार 'संतिष्ठते अवतिष्ठते इति' (तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक पृष्ठ २७३) वाक्य का अनुवाद पं० गजाधर जी ने पृष्ठ ४८७ में यह किया है कि "संतिष्ठते की जगह पर अवतिष्ठते कहना उपग्रह व्यभिचार है॥ 'संतिष्ठतोवतिष्ठतेत्याद्युपग्रहभेदने' तत्त्वार्थश्लोक वार्तिक २७२

एटा निवासी जगरूपसहाय वकील कृत पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित सर्वार्थसिद्धि का शब्दशः हिंदी अनुवाद अध्याय १ सूत्र १ से ८ तक

शुद्धाशुद्ध विवरण (स्वाध्याय से पहिले इन अशुद्धियों को शुद्ध कर लीजिये)

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५	१	ॐ	ॐम्
११	१३	५	४
१३	९	अशुद्ध	भी शुद्ध
१८	१३	० १०८ के पश्चात्	'मुनिपरिषण्णमध्ये सन्निषण्ण'
१८	१४	निर्ग्रन्थाचार्य्य वरम् ये पाँच	ये पांच
२०	६	विशेषण	विशेष लक्षण
२५	२०	तावै	बतावै
२७	८	श्रद्धान	श्रद्धान मात्र
२७	९	अनेन $\frac{१}{१}$।।	अनेन $\frac{३}{१}$।।।
२७	१२	चयते अनेन $\frac{१}{१}$।।।	चर्यते अनेन $\frac{३}{१}$।।।
२७	१५	तत्	तत् च
२८	७	विवक्षायां	भेद विवक्षायां
२८	१४	अपि	अपि अर्थे $\frac{७}{१}$।
२८	१५	अग्नौ $\frac{७}{१}$।।	अग्नौ $\frac{७}{१}$।
२९	४,८	व्यक्तिवत, वा	व्यक्तिवत्, —
३०	६	पूर्वकत्वात् $\frac{५}{१}$।	पूर्वकत्वात् $\frac{५}{१}$।।।
३१	८	अर्थाः $\frac{१}{१}$।।।, अवस्थित,	अर्थाः $\frac{१}{१}$।; अवस्थितरूप
३३	१७	पहिले	पश्चात्
३४	१४	=एकपना,	=वा एकपना
३४	१४	अर्थम् $\frac{१}{१}$।	अर्थाम् $\frac{१}{१}$।।।
३५	१२	सम्यग्दर्शनम् $\frac{१}{१}$।।	सम्यग्दर्शनम् $\frac{१}{१}$।।।
३८	१३	अयं $\frac{१}{१}$।।	अयम् $\frac{१}{१}$।
४४	५,२०	अयं $\frac{१}{१}$।।।, क्रिया	अयम् $\frac{१}{१}$।, क्रिया
५१	६	नो कर्म द्रव्य जीव है	नो कर्म नो आगम द्रव्य जीव है
५२	२१	स्तिर	स्तिर.

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५४	७	के (विस्तारकाइत्यादिं)	(सम्यग्दर्शनादि और सात तत्त्वों) के विस्तारों का,
५४	२०	अपेक्षा से	अपेक्षा से श्वे० दिग० सम्प्रदायों में
५५	१०,११,	श्रुतवर्ज्य, स्वाथ	श्रुतवर्ज्य, स्वार्थ
५७	६,१५	], इतरेषां $\frac{६}{३}$।।।	] परिणाम के, इतरेषां $\frac{६}{३}$।।।
६१	२, १९	औपशमिकं, उच	पशमिकं, उच्
७२	७, १७	अलेश्यानां $\frac{३}{३}$। आहारकनके	अलेश्यानां $\frac{६}{३}$।, आहारकों के
७७	२०	प्रभतिभिः	प्रभृतिभिः
८३	१७,१९	।, नयविपयाः $\frac{१}{१}$।	। इति *, नयविषयाः $\frac{१}{३}$
९१	१३	आदीनि $\frac{१}{३}$।।	आदीनि $\frac{१}{३}$।।।
९३	५,	विशेषेण $\frac{३}{१}$,	विशेषेण $\frac{३}{१}$।
९३	७	मिथ्यादृष्टि जीवाः $\frac{१}{१}$।	जीवाः $\frac{१}{३}$। मिथ्यादृष्टय $\frac{१}{३}$।
९३	१७,१८	(जीव) (जीव)	(मनुष्य) (मनुष्य)
९८	२१	जीवों की	मनुष्यों की
९९	६	जीव हैं	मनुष्य है
१०१	२,१३	वग्-(जीव)	वाग्--(मनुष्य)
१०२	१४	भावार्थ—नहीं होसकी	इसको मत पढो क्योंकि भ्रमरूप है
१०३	१०	अर्थात्—कालमें न रहै	इसको न पढ़िये -क्योंकि भ्रमरूप है
१०४	१५	बावन...तेरह करोड़है	[और दूसरेसे पांचवां तक प्रत्येक
१०५	६से ८	बावन...तेरह करोड़	[में पल्यका असंख्यातवां भाग है
१०५	२१	बावन करोड़ हैं	पल्य का असंख्यातवां भाग है
१०६	८	बावन करोड हैं	इसको न पढिये
१०६	११,१६,	सात अरवहैं, तेरहकरोड़	प्रत्येकपल्यके असंख्यातवां भागहैं
१०८	६	तेरह करोड़ हैं	पल्यके असंख्या तवां भाग हैं
१०८	१५	बावनकरोड़, एकसौचार करोड़, बातसौ करोड़	और प्रत्येक गुणस्थान में पल्य का असंख्यातवां भाग है

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१०६	११	बावन करोड	पल्यके असंख्या तवा भाग हैं
१०४	१२	एकसै चार करोड	पल्यके असख्यातवाँ भाग हैं
१०४	१२	सातअरब हैं	पल्यके असख्यातवां भाग हैं
११०	११	यथा संख्य बावन,करोड एकसै चार करोड़, सात सैकरोड, तेरह करोड़	इन प्रत्येकगुणस्थानोंकी जीवों की संख्या पल्यके असख्यावाँ भाग है
११२	१६	सातअरब, तेरहकरोड	प्रत्येक में पल्यके असंख्यातवेंभाग
११३	११	बावन करोड,	पल्यके असंख्यातवां भाग
११३	११	एक सौ चार करोड़	पल्यके असख्यातवा भाग,
११४	१०	बावन करोड़	पल्यके असंख्यातवां भाग
११४	११	सातसै करोड	पल्यके असख्यातवा भाग
१३३	२१	अपेक्षया $\frac{3}{9}$॥।	अपेक्षया $\frac{3}{9}$॥
१३७	२०	असयत	असयत कर,
१५८	११	अभावात् $\frac{6}{9}$।	अभावात् $\frac{5}{9}$।
१५६	३	काथनम् $\frac{3}{9}$॥।	कथनम् $\frac{9}{9}$॥।
१६०	१५,१६	तिष्ठाणे,षट्चतुर्दशहीनः	तिष्ठाणे पढमो, षट् चतुर्दशहीनाः
१६३	६,१२	[कथनात् $\frac{9}{9}$॥।	] इति, कथनात् $\frac{5}{9}$॥।
१६४	२१	देवाना $\frac{6}{3}$।	देवानां $\frac{6}{3}$। विहारवत्
१७५	६	परिणतै स्तावत्	परिणतैस्तैस्तावत्
१७६	१६	मिथ्यात्वकाल $\frac{9}{9}$।	मिथ्यात्वकालः $\frac{9}{9}$। अभव्येषु $\frac{7}{3}$।
१८१	११	उत्कृष्टस्य $\frac{3}{9}$।	उत्कृष्टस्य $\frac{3}{9}$।
१८२	२१	त्रीणि, अधिक सप्तति	त्रीणि, त्र्यधिकसप्तति,
१८३	५,१६,	वेदगसम्यक्त, अथम $\frac{9}{2}$।	वेदगसम्यक्त, अयम् $\frac{9}{9}$।
१८६	६,२०,	मिथ्यात्वं, मिथ्यात्वं,	मिथ्यात्वे, मिथ्यात्वे
१८७	१२,१४,	गणु,सम्भवति,तद्अतः	गुण, सम्भवति इति*, अतः

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१८८	५	एकजीवम् $\frac{9}{9}$। प्रति	एकजीवम् $\frac{2}{9}$। प्रति*
१८८	६	एक जीवम् $\frac{9}{9}$। प्रति	एकजीवम् $\frac{2}{9}$। प्रति*
१६१	५	तियग्गतौ $\frac{7}{9}$।	तिर्यग्गतौ $\frac{7}{9}$॥
१६४	१४,१५,	देवगतौ $\frac{7}{9}$,सर्वः $\frac{9}{3}$॥।	देवगतौ $\frac{9}{9}$॥ (सर्वः $\frac{2}{3}$।
१६६	४	परिणामानि $\frac{9}{3}$॥।सः	परिणामानि $\frac{2}{9}$॥।
१६७	१४	पयक्खे $\frac{9}{9}$। एकादे $\frac{9}{9}$	पयक्खे $\frac{9}{9}$। एकादे $\frac{7}{9}$।
२०१	५	पल्योपमपृथक्त्वम्	पल्योपमशतपृथक्त्वम्
२०१	२०	पल्य + उपम पृथक्त्वम्	पल्य + उपमशतपृथक्त्वम्
२०१	२०	पल्य के बराबर है	सौ पल्य के बराबर है
२०३,	७,२२,	वेदोत्पद, बाद	वेदोत्पाद, पीछे
२०६	१६	मातिज्ञानी	मतिअज्ञानी
२११	१६	से, कुज	स, कुछ
२१२	१६	अपेक्षया $\frac{9}{3}$॥	अपेक्षया $\frac{2}{9}$॥
२१६	२	नोजीवापेक्षया	नानाजीवापेक्षया
२२०	३	असंख्येयाः संख्येया	असंख्येयासंख्येया
२२१	४	शेषाणां $\frac{6}{9}$।	शेषाणा $\frac{6}{3}$।
२२२	६	समया: $\frac{9}{3}$।	समयः $\frac{2}{9}$।
२२३	१०,१६	अपेक्षया $\frac{3}{9}$॥। जाती हैं	अपेक्षया $\frac{2}{9}$॥ जाती हैं किसी लिंगकी हो
२२३	१७	विंसति ब्राह्मणा $\frac{9}{3}$।	विंसतिंब्राह्मणाः $\frac{2}{3}$।
२२४	६,१५,	पल्योपमका,अन्ताना $\frac{6}{9}$।	पल्यो पम, अन्तानां $\frac{6}{9}$॥
२२४	१६,	अपक्षया $\frac{3}{9}$।	अपेक्षया $\frac{2}{9}$॥
२२५	१७	असंयतसम्यग्दृष्ट्यो $\frac{6}{2}$॥	असंयत सम्यग्दृष्ट्योः $\frac{6}{2}$।
२२६	१७,२०,	तिर × चां, अन्तो	तिरश्चाँ, अतो
२२७	११,१२	प्रायुक्तः $\frac{9}{9}$।, (=व)	आयुष्कः $\frac{9}{9}$।, (=च)
२२६	२,१०	मानुषाणां, मिथ्यादृष्टेः $\frac{6}{3}$।	मनुष्याणा, मिथ्या दृष्टेः $\frac{6}{9}$।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२३०	६	त्रीणि $\frac{3}{1}$॥, पल्योपमानि $\frac{3}{1}$॥	त्रीणि $\frac{3}{1}$॥, पल्योपमानि $\frac{3}{1}$॥
२३०	६	कोटि	कोटी
२३१	१६	मिथ्यादृष्टयोः $\frac{3}{2}$। नानाजीव	मिथ्यादृष्टयोः $\frac{6}{3}$। नानाजीव-अपेक्षया $\frac{3}{1}$॥ सामान्य
२३१	१७	अपेक्षया $\frac{3}{1}$॥सामान्यवत् *	वत् *
२३४	१४	सागरोपमसहस्र,	सागरोपमसहस्रं $\frac{1}{1}$॥
२३४	१५	पूर्वकोटि	पूर्वकोटी
२३६	८,१५	नहीं, कायिकाना $\frac{6}{3}$	ही, कायिकानां $\frac{6}{3}$।
२३८	२	मानसयागिनो,	मानसयोगिनो,
२३८	१४	नानाजीव $\frac{3}{1}$॥	नानाजीव—
२५०	९	नानाजीव $\frac{3}{1}$॥	नानाजीव
२५१	७	जघन्यम् $\frac{1}{1}$॥।	जघन्यम् $\frac{1}{1}$॥।च
२६४	२१	जघन्यम् $\frac{1}{1}$॥।	जघन्यम् $\frac{1}{1}$॥।च *
२७५	१६	४१३४५२६३०३०८०	४१३४५२६३०३०८२०
२७६	२३	भावाका, दिया जाता है	भावका, किया जाता है
२७८	२	केवलिना, आदइओ	केवलिनां, ओदइओ
२८०	१६,२०	गुणस्थान,मोहनीयकर्म	गुणस्थान में, मोहनीय कर्मका
२८३	११,१३	औदयिक-भावः $\frac{1}{1}$, वत	औदयिकः $\frac{1}{1}$ भावः $\frac{1}{1}$, वत्
२९२	२३	द्रष्टव्यम् $\frac{1}{1}$॥।	अयम् $\frac{1}{1}$॥।अनुवादस्य $\frac{6}{1}$ द्रष्टव्यम् $\frac{1}{1}$॥।
२९५	१४,२०	॥ चार, मिस्साविर ।	॥, मिस्साविरदा
२९६	१६	असंख्यातगुणे	संख्यातगुणे
२९६	२०	संख्यातगुणे	असंख्यातगुणे
२९९	८,१०	,, नवर्ता	गुणस्थानवर्ती, से प्रमत्तसायमी
३०८	८,९,२०	। अयोग,केवलिनः,हैंकहते	।, योगके वलिनः, कहते है
३१५	१७	वत्व, क्ष्यक, उपदाम	वत्, क्षपक, उपशम,

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३१५	१८	क्षयक	क्षपक
३१५	२०	अमत, सयप्रेमियो,	अप्रमत्त, संयमियों,
३१६	४	औपदायिक सम्प्रग्दृष्टिनाँ	औपशमिक सम्यग्दृष्टीनां
३१६	१३	सम्पादृष्टयः	सम्यग्दृष्टय
३२२	४,११	श्रुत, जानता (है=मनुते)	श्रुत, जानता है(=मनुते)
३२३	२,५	श्रुयते, श्रुयते	श्रूयते, श्रूयते
३३०	८	अथ (=अथ)	अत्र (=अथ)
३३१	११	फलम् $\frac{1}{1}$॥ इष्टं $\frac{1}{1}$॥	फलम् $\frac{1}{1}$॥। इष्टं $\frac{1}{1}$॥।
३३१	११	प्रमाणकाफलहै	(प्रमाणका) फल इष्ट है
३३२	७	वस्तुकाज्ञान	वस्तुक, ज्ञान (=अधिगम),
३३७	२,४	उपमानार्थापत्या, अर्थापति	उपमानार्थापत्त्या, अर्थापत्ति
३३७	६,१२	अन्तरभावात् $\frac{5}{1}$,प्रत्यक्षम $\frac{1}{1}$॥	अन्तर्भावात् $\frac{5}{1}$। प्रत्यक्षम् $\frac{1}{1}$॥।
३३८	१८	द्वयोः $\frac{6}{2}$॥।	द्वयोः $\frac{6}{2}$॥
३४१	६,२०	प्रत्यक्षम् $\frac{1}{1}$॥, उत्पन्न ही	प्रत्यक्षम् $\frac{1}{1}$॥।, उत्पन्न हो
३४२	११,१४	ष $\frac{1}{1}$, प्राप्नोत्तिT	पषः। प्राप्नोतिT
३४३	५	पूर्वकपेवज्ञानं करपते,	पूर्वक मेवज्ञानं कल्प्यते
३४३	८	उदयात	उदयात्
३४५	११,२३	दिव्यम $\frac{1}{1}$॥, स्यात?	दिव्यम् $\frac{1}{1}$॥ स्यात् ?
३५३	४,१८	भावार्थ, सहति	भावार्थ, स्मृति
३५८	१६,२०	तत्, स्पर्शन—आदि $\frac{3}{1}$॥	तत्–स्पर्शन-,आदि $\frac{3}{1}$॥।
३५६	६,२१	(=अत्), तथा,	(=अन्) न तथा
३५६	२१	लिङ्गम् $\frac{1}{1}$, तैसे,	लिगम् $\frac{1}{1}$॥ अपि*सन् $\frac{3}{1}$॥।,नहींहैतैसे
३६०	६,१७	न*, नहीं है, अतिषेध $\frac{1}{1}$।	(न), (नहीं है) प्रतिषेधः $\frac{1}{1}$। वा इति
३६०	११	अन्तः करणम् $\frac{1}{1}$॥।	(अन्तकरणम् $\frac{1}{1}$॥।)
३६०	११	वा अंतःकरण वा मन,	(वा अन्तः करण वा मन)
३६१	५,१४,२०	अर्थम, तद, तो	अर्थम्, तद्, जो
३६२	१६	आपाय,	अपाय

(घ)

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३६४	२,१५	अवगृहीते, ग्रामाण्य	अवगृहगृहीते, प्रामाण्य
३६५	१६	वचनम् ३/१॥	वचनम् १॥ तु*
३६८	२,३	विक्षपादि, सैवेय,	विक्षेपादि, सैवेयं
३७८	२,	(जो छूट गई है,वहऐसे है)	अवग्रहादयः क्रिया विशेषाः प्रकृताः। तदपेक्षोऽयं कर्म निर्देशः। ग्रहादीनां सेतराणामिति।
३८०	४,१४	बहनाम्, ग्रहेण	बहूनाम्, ग्रहणेन
३८१	३,१४	ध्रवस्य, इहा	ध्रुवस्य, ईहा
३८२	१०	आदौ ६/१।	आदौ ७/१।
३८६	१३-१५	सत्यम् ३/१। विशिष्टस्य यहां॥	सत्यम् ३/१, विशिष्टस्य ॥ यहां
३६१	१५,१८,१६	विशेयः, त्रिशत्रिशात	विशेषः,त्रिशत्त्रिशत, त्रिशत्त्रिशत
३६२	२०	ईहा-आदय ३/१, इहा,	ईहा–आदयः ३/१, ईहा
३६४	१०,१३,१७	ईहा, नम्न, व्यंजन,	ईहारूप, निम्न, व्यञ्जनका
३६६	४,१६,	कथमप्य, त्व+पन	कथमप्य, त्व=पन,
३६६	१६	(स्त्रांलिग)+क्रिया,	(स्त्रीलिंग)=क्रिया,
३६७	१३,१६,	'पश्य' जनोती	'पश्य' जनोर्जा
३६८	२,३,	बसेयम्,वजयित्वा,निादष्ट	वसेयम्, वर्जयित्वा, निर्दिष्ट,
३६८	८,१६	मनावत्, वक्तव्यः ३/१।	मनोवत्, वक्तव्यः ३/१।
३६८	१६	श्रतज्ञान	श्रुतज्ञान
३६८	१७,१८.	वार्य, व्याधि, घृष्टि,	वर्षि, व्याधि, वष्टि,
३६८	१८	विरति	विचति
३६८	२१	गृह्+ना यात, गृहणायात्,	गृह+नी=यात्, गृहणीयात्
३६६	५,६,१०	श्रतम्, श्रतज्ञान,अंगबाह्य	श्रुतम्, श्रुतज्ञान, वे अङ्गबाह्य,
३६६	१४,२१,	रूडि, कार्यं,	रूढ़ि, कार्य
३६६	२३	त्याख्यान, दशव,	प्रत्याख्यान दशवै
४००	२,४	कस्मि ५, ताति.	कस्मिं शिच, तीति,

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४००	७	कुश-लवन, द्राम,काश	कुशल-वन, द्राम, कांश
४०१	६,८	मतिपूवंम, आत्मकम् ३/१॥	मतिः ३/१॥ पूर्वम, आत्मकम् ३/१॥
४०२	२०	अप्रामाण्यम ३/१॥	रुपकृतत्वात् ३/१॥,अप्रामाण्यम् ३/१॥
४०३	३,१२	मति, अपेक्षया ३/१॥	मिति, स्वपेक्षया ३/१॥
४०३	१७,२२	करतेवाला, अर्पणात	करनेवाला, अर्पणात्
४०४	४,८	श्रतमिष्यते,सम्यक्त्वस्य	श्रुतमिष्यते, सम्यक्त्वस्य ३/१॥
४०५	११	सम्बन्ध अन्तरम्	सम्बन्धि-अन्तरम्
४०५	६	पुदगल्प,	पुद्गल
४०५	७ ;	वाक्यादि* भावात् ५/१।	वाक्यादि-भावात् ५/१।
४०५	११	अन्यसंयोग	अन्यसंयोग,
४०८	२,२,४	समम्नाय, त्र,प्लत,	समाम्नाय, सूत्र, प्लुत,
४०६	७,८,१३,	अदि,पयोयवरण,आभृत,	यदि, पर्यायावरण, प्राभृत,
४११	१२,१६	त्रिसंतोगी, पद्ध	त्रिसंयोगी, एक
४१४	२५,२६	एकहो, २^६४	एकट्ठी २^६४
४१६	८,१०	दडन शालिभ्यां, संख्या	दण्डेन शालिभ्योगाम्, संख्यया
४१६	१८	प्रमाण पद्काकीर्ण हैं,	कीर्ण हैं,
४१६	१६	और में, अक्षरें,	और प्रमाणपद में, अक्षरों का,
४१७	८	२०६४३६१८५७,	२०६८४३६१८५७
४१७	१२	१२६६३४२३६१४६	१३६६३१२३६१४६
४१८	६,१७	पुद्गल,ज्ञातृधर्मकथा ३/१॥	पुद्गल, ज्ञातृधर्म कथा ३/१॥
४२०	१३,१६	(क) चन्द्र प्रज्ञप्ति, म्बूद्वीप	(क) चन्द्रप्रज्ञप्ति, जम्बूद्वीप
४२१	४	पृष्ठ ४२१,४२२	पृष्ठ ४२१, ४२२, ४२३,
४२६		चूलिका	चूलिका
		(३)	(उ)
४२७	६	=श्रेष्ठ	श्रेष्ठ,
४२८	३	च*आरातीयः ?। इति*=	(इतनेको)चोथी पंक्तिके बाईंमें लिखो,
४२८	७	विशेपेण ?।	विशेषण ?।

(घ)

एटानिवासी जगरूपसहाय वकीलकृत पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित सर्वार्थसिद्धिका शब्दशः हिंदी अनुवाद । अध्याय १

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४३०	२०, २१	धातु मेंर, अक्त	धातुमें, अक्षर
४३२	२,४	निमित्तत्वं, निमितत्वम्	निमित्तत्व न, निमित्तत्वम् न
४३५	८,१५	निरक गति, कराड़	नरकगति, करोड
४३८	१३,१८	ज्ञानम्, शेषाणाम्	ज्ञानं, शेषाणां
४३९	१३,१८	तिर्यञ्च, त, सैना,	तिर्यञ्चः, न, सैनी,
४४२	३,१६	असख्येय,असख्येयभणात्	आसख्येय, असख्येयभागात्
४५०	९,११	अनृजकाय, ह्रातसता	अनृजुकाय, होतसता,
४५१	३,७	लब्ध वृत्ति, उक्तभेद	लब्धवृत्ति, उक्त ½। भेद
४५३	१२,१८	शरीर वा, शक्तिअपेक्षा	शरीरका मनका सम्बन्ध
४५४	८,१५	आदिभिः, ३/१। आदिभिः ३/१।	आदिभि ३/१।, आदिभिः ३/१।
४५५	४,७	मानपात्तर, विशुद्ध,	मानपोत्तर, विशुद्धय,
४५८	५,	विशुद्ध्या ३/१॥, तावत	विशुद्धवा ३/१।, तावत्
४५९	३,८	स्वामिना, विषयत्वान	स्वामिनां, विषयत्वात्
४५९	१०	प्रसग, अर्थात	प्रसग, अर्थात्
४५९	१३,	अप्रतिपातेन ३/१, स्वामिनाम	अप्रतिपातेन ३/१। स्वामिनाम्
४६१	९,२२	भावान्, विशुद्ध हैः॥	भावान्, विशुद्ध है,
४६२	२,४	विशेषो, विषयत्वात,	विषयो, विषयत्वात,
४६४	४,६,२२	अन्यतम्, केषुचित,लचा	अन्यतम, केषुचित् चला,
४६५	१३,	स्वामी विशेष, सयम ग्रहण	स्वामी-विशेष, सयम-ग्रहण,
४६५	१४,	"प्रकृष्ट चारित्र गुणोपेतेषु'	"प्रकृष्टचारित्रगुणोपेतेषु 'वाक्य
४६७	३,१४	निवन्धो,भ्काल,	निर्वन्धो, भ्कलि,
४६७	२०	यशानस्+इ, यशासि	यशान्स्+इ, यशांसि,

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४६९	२०,२१	श्रुत (नो इन्द्रिय), आवाय	(श्रुत) नो इन्द्रिय, अवाय
४७०	४,१३	ततस, नहीं है	ततस्, ही है
४७०	१७	श्रुनमति पूर्वं द्व्यनेकद्वादशभेद	श्रुतं मतिपूर्वं द्व्यनेक द्वादशभेदम्
४७१	४,१७	अवध. "रूपिष्ववधे":	अवधेः 'रूपिष्ववधे.'
४७३	९, ०	विपुल, बिभक्त्यर्थ	विपुल, विभक्त्यर्थ,
४७४	१६	(अन्यअर्थ)	(अन्यअर्थ)
४७५	४,५	सव, ननतजन्त,	सव, अनन्तानन्त,
४७५	१०,१३	ट्ठियाहु, ट्ठिया	ठ्ठिया हु, ठ्ठिया
४७५	१७,१८	(परन्तु, खण्डात्मक	(परन्तु), खण्डात्मकत्व
४७६	९,१४	भी, केवल ज्ञान, क	(भी), (केवल ज्ञान), के
४७८	९,	(अथवा,	(अथवा यदि सूत्र में 'एक' शब्द को असंख्या असहाय प्रधानअर्थों में न लें तौ
४७९	६,७,१४	यहीं,अनेकार्थ ये हैं, अर्थमें	यही।अनेकार्थ नीचे लिखतेहैं,अर्थोंमे,
४८०	१३,१४,	यहां पर, अर्थ में है	यहां पर, अर्थ में भी हो सक्ता है
४८१,	१७,२१,१८५,१८१,	वह	१८५, १८६, यह
३८३	३, १७,	ज्ञानव्यपदेशम् १॥।,य	१ज्ञानव्यपदेशम् १/१॥।, यह
४८४	१३,१९	च शद, अव्य, अव्य के	च शब्द, अव्यय, अव्ययके
४८६	९,	सवध में, कथन है	सम्बन्ध से, कथन है
४८८	१८	विपर्ययकी, लीग है,	विपर्यय की, ली गई है
४८९	७,११	क ी, अध्यवसति	कभी, अध्यवस्यति
४८९	१३,१५	जनना एसा, स, उसक	जननी, ऐसा, से, उसके

(च)

एटानिवासी जगरूपसहाय वकील कृत पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित सर्वार्थसिद्धिका शब्दशः हिंदी अनुवाद । अध्याय १

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४६०	१७, १८	(तोर) पुल्लिंगी,	(और) पुल्लिंगी,
४६१	१२, १३	कार्यस्य॥ आरम्भका ॥१०	कार्यस्य॥ आरम्भका ॥१
४६३	३, ८	द्वैवम्भूतां, (मम)नया)	द्वैवम्भूता, (मम) नया
४६३	१५, २२	एव भूतानया, परिज्ञेयौ,	एवभूता नया, परिज्ञेयौ,
४६४		असमानजातीय सद्भूत,	असमानजातीय असद्भूत,
४६४		समीभरूढ	समभिरूढ
४६५	१०, १६	पारभाषा, आधेकभाव	परिभाषा, आधेयभाव,
४६६	८, १०	स्वतुका, बहप्रदेशी,	वस्तुका, बहुप्रदेशी,
४६६	४, ४	होचुकनक, भावा,	होचुकनेके, भावी,
४६६	१६, २०	पयाय, अतात, पयायका,	पर्याय, अतीत, पर्यायका,
५००	१५, २१	वाणी, परमैश्वर्यका,	वाण, परमैश्वर्यका
५०१	५,८,६	न (रयों), पदा, यथर्थ	इन (नयों), पदार्थ, यथार्थ
५०३	१०, १७	अर्थते, पार,	अर्यते, परि
५०४	६, ७	अर्थनत, द्रव्यर्थिक,	अर्थनम् द्रव्यार्थिक
५०५	१०	कुशलो	कुशलो,
५०६	६, १८	आराब्धम्, मविष्यत	आरारब्धम्, भविष्यत्,
५०७	८, २१	भूतनेगम, भूतर्धदन्त,	भूतनैगमनय, भूतप्रदन्त,
५१०	२०	=आनुपूर्वण) देखो	=आनुपूर्व्येण (देखो
५१२	२१	नाय स्थापना	नाम, स्थापना
५१३	३, १३	र्तिनष्टान् ऋजुसूत्र	र्तिनष्टान्, ऋजुसूत्र
५१४	३,	सव्यवहार· सर्वनयसमूह साध्य, चेत,	सव्यवहार, चेत्
५१६	२, १०	आर, कथचित समानधार,	और कथचित्, समाधान,
५१७	३, १७	ऋतु, लिग व्यभिचार	ऋतु, लिंग व्यभिचार

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५१८	१२, २२	कर्मोरभेद, कर्तृ-कर्मणो	कर्मयोर्भेद, कर्तृ-कर्मणो
५१६	१८, १६	वन, प्रथम जमती है	वन प्रथम, जमती है।
५२३	१२	धातुओंका ऐसा रूप बना	धातुओंके, ऐसे रूप बने
५२४	१८	मन्य-उपपद॥	मन्योपपदे॥
५२१	६,१३,१७	व्याक, मादरे, मोदय, प्रहास	व्यापक, मादरे, मोदये, प्रहासे
५२१	१३	मन्यत्राच्युपन्नमन्यतरस्मद्देकवच	मन्यत्राचि युगमन्यतरस्मदेकवच
५३१	१४, २१	कहा, आउ-परिभ्य	कहीं आउ-परिभ्य.
५३०	५,१७,१८	अभन उपरमति,	अयेन, उपरमयति,
५३४	६,१६,२१	तो=यथार्थ, लाक, लाक	तो यथार्थ, लोक, लोक
५३५	३, ४	अनुवादि, व्यवहारनय,	अनुवादिन, व्यवहारनय,
५३६	५, ६	(पु०) ३, ६, ७	(पु०), ३२६, हुआ
५३७	७	शब्दक, अनक, अर्थोमेंस	शब्दके अनेक अर्थोंमेंसे
५३७	१०, १४	पशुक, चलत, गतार्थत्वात्	पशुके, चलने, गतार्थत्वात्
५३६	३, १६	नृत्यभावात्, यत्	नृत्यभावात्, पित्
५४२	२, ८	परगुणितगे, परिगमे ।	परगुणितगुण, परिगमें
५४३	८,१७,२०	पहिले, रूप, परिणामा	पहिले पृष्ठ५३६में। रूप, परिणमनत्वात्
५४४	६, १०	धारपना, प्रति	स्थापना, प्रतिके
५४६	१६, ३७	ग्रामे, रौति, इत्यर्थ	(गत्वा) ग्रामे, रौति, इत्यर्थः ।
५४८	२०, २१	तन्त, देवागम १०८)	तन्तु, (देवागम १०८)
५४६	२२	अत द्वितीया प्रति में अशुद्ध छपगया है	लिखित प्रतिसे मिला, अतः दोनों पाठ लिये गये है
५५०	३, १८	कार्य, अपि	कार्ये, नयेषु। अपि
५५१	१०,१३,१५	सकते ह दाष्टांत, अत	सकते है, दार्ष्टान्त, अत
५५१	१८,१६,२१	पर्यायगिक, अतीत, भृजु	पर्यायार्थिक, अतीत, ऋजु

विरमत्युपरमतीति ॥

'स्था धातु के ग्यारहअर्थों में से यहां हम 'तिष्ठति' के अर्थ वह ठहरता है वा वह रहता है केवल दो लेते हैं । सम् और प्र उपसर्गोंके बलसे उस 'तिष्ठति' परस्मैपदका (अष्टाध्यायी १-३-२२ वां सूत्र से) आत्मने पद होकर सम्—तिष्ठते और प्र—तिष्ठते, सन्तिष्ठते और प्रतिष्ठते दोनों रूप क्रम से बन गये । ऐसे सम् और प्र दो उपसर्गों द्वारा परस्मैपद 'स्था' धातु का आत्मने पदी होकर उक्त धातु व्यभिचरित (= नियत नियमसे भ्रष्ट) हो गया । अतः इस को उपसर्ग व्यभिचार कहते हैं । ऐसे ही

विरमति T उपरमति T इति * = वह ठहरता है (वा विश्राम करता है) ॥ वह (इंद्रियों के विषयों से) हटाता है अर्थात् रम् प्रथम गण का आत्मने पदी धातु है उसमें अ विकरण और ते आत्मनेपदी वर्तमान काल का प्रत्यय लगाने से रमते (= वह रमता है) बनता है परन्तु वि और उप लगाने से परस्मैपद हो जाता है।

संतिष्ठेत अवतिष्ठेत इत्यादि = संतिष्ठेत (= वचन के अनुसार चले) अवतिष्ठेत (= वह दृढ़ रहे) इत्यादिक

उपग्रह भेदने ॥ = उपग्रह (व्यभिचार) के भेद हैं । अतः एक उपसर्ग के स्थान में दूसरा भिन्नार्थक उपसर्ग लाना भी उपसर्ग व्यभिचार है ऐसे दो अर्थ उपग्रह व्यभिचार के हुए ।

(१) विरमति उपरमति के अनुवाद के सम्बन्ध में और अन्य अन्य बातो के सम्बन्ध में भी हमारी वही समालोचना है जिसको कि हमने संतिष्ठते प्रतिष्ठते के सम्बन्ध में पृष्ठ ५२६, ५३० में दी है ॥ विरमति उपरमति वाक्य श्लोक वार्तिक में हमको कहा पर नहीं मिले अतः "श्लोक वार्तिक कार भी 'प्रतिष्ठते स्थान पर 'अवतिष्ठते कहना और विरमति जगह पर उपरमति, कहना उपग्रह व्यभिचार मानते हैं" संस्था के राज० पृष्ठ ४८० की यह टिप्पणी ठीक नहीं है (देखो श्लोक वा० पृष्ठ २७३) जहां 'तथा संतिष्ठते अवतिष्ठते इति" यह उल्लेख है जिसका अनुवाद अनुवादक महाशय ने स्वय पृष्ठ ४८७ पर "तथा सतिष्ठते की जगह पर अवतिष्ठते कहना उपग्रह व्यभिचार है" ऐसा किया है ॥

(२) रमुक्रीडायामित्यत्रात्मनेपदोपग्रहः ॥ व्याङ्परिभ्यो रम । उपाच्च ॥ अष्टाध्यायी प्रथमाध्याये तृतीयःपादे ८३।८४ सूत्रे इति व्याभिचारसूत्रे ॥ व्याङ्श्च रमः ।१।२।१५॥ उपात् ।१।२।१६ जैनेन्द्र व्याकरणम् इति व्यभिचारसूत्रेऽपि ॥ देवदत्तमुपरमति ॥

रमु-क्रीडायाम् इति अत्र आत्मनेपद-उपग्रहः = रम् (भ्वादि प्रथमगण के) धातु से क्रीड़ा (अर्थ) में यहां आत्मनेपद का जोड़ना होता है

वि—आङ—परिभ्यः च उपात् रमः = (परन्तु) वि—आङ्—परि और (= च) उप (उपसर्गों) के आगे रम् धातु रहने पर

एवम्प्रकारं व्यवहारनयमन्याय्यं मन्यते । अन्यार्थस्यार्थेन सम्बन्धाभावात् ।

एवम्‌-प्रकारम् $\frac{2}{9}^1$ = इसप्रकार (शब्द नय वा शब्द नय का अनुयायी वा शब्द नयका मानने वाला,)
व्यवहार नयम् $\frac{2}{9}^1$ अन्यायम् $\frac{2}{9}^1$ मन्यते T = व्यवहारनयको अन्याय वा अनुचित वा न्यायवहिर्भूत मानता है
अन्य-अर्थस्य $\frac{6}{9}^1$ अन्य-अथन $\frac{3}{9}^1$सम्बध-अभावात् $\frac{5}{9}^1$ = क्योंकि भिन्न पदार्थ का भिन्न पदार्थ से संयोग वा मेल नहीं हो सकता है [यह सिद्धांत सिद्धि बात है] ॥ भावार्थ उक्त छहो व्यभिचार और इस प्रकार के और भी व्यभिचारों को व्यवहारनयतौ ठीक समझता है उस नय की अपेक्षा से वैसे प्रयोग किये जा सकते हैं व्याकरण भी उन्हीं प्रयोगों के अनुसार सिद्धि करता है परंतु शब्द नय की प्रधानता से वे प्रयोग ठीक नहीं हैं शब्द नय उनको अन्याय वा अयुक्तरूप मानता है ॥ क्योंकि यदि अन्य पदार्थ का अन्य पदार्थ के साथ सम्बंध हो जाय तो घट का पट हो जाय पट का गृह हो जाय वा मठ हो जाय इत्यादि ।

[परस्मैपदम्] = परस्मैपद हो [८३, ८४ सूत्रों में ७८ वां सूत्र से परस्मैपदम् अनुवर्तता है]
अष्टाध्यायी प्रथम—अध्याये तृतीय पादे ८३।८४ = अष्टाध्यायी के पहिले अध्याय में तीसरे पाद में ८३ वां ८४ वां सूत्र है
इति व्यभिचार सूत्रे = ऐसे दोनों सूत्र [=सूत्रे] व्यभिचार रूप हैं [=नियत नियम के विरोधक हैं]
वि-आङः च रम. । उपात् (रमः परस्मैपदम्) = वि—आङ्—परि (=च) उप (उपसर्गों) पूर्वक रम् धातु से परस्मैपद हो
जैनेन्द्र व्याकरण प्रथमाध्याये तृतीय पादे । ६५ = जैनेन्द्रव्याकरण के पहिले अध्यायके तीसरे पाद में ६५ वां
६६ । इति व्यभिचार सूत्रेऽपि = ६६ वां (सूत्र) हैं। ऐसे दोनों सूत्र भी (=सूत्रेऽपि) व्यभिचार रूप हैं ॥
देवदत्तम् उपरमति = देवदत्त को हटाता है अर्थात् देवदत्त को (विषयों से वा किसी ऐसी ही वस्तु से) रोकता है ॥ यहां परस्मैपद क्रिया हेतु अर्थ में है । उपरमति के सदृश अर्थ देती है। यह एक प्रकार का क्रिया का उदाहरण है जिसमें हेतुद्योतक प्रत्ययणिच् (इ का प्रभाव सम्मिलित हो ॥

(१) इस "एवम्प्रकारं व्यवहारनयम् अन्याय्यं मन्यते" वाक्य का अर्थ स्पष्ट है परन्तु हमको यह टिप्पणी इस लिये लिखनी पड़ती है कि सर्वार्थ सिद्धि के द्वितीय संस्करण के एवम्प्रकारं व्यवहारनयं न्यायं मन्यते' पाठ पर समालोचना करें, यद्यपि प्रथमावृत्ति में 'एवम्प्रकारं व्यवहार नयमन्याय्यं मन्यते' ऐसा पाठ वर्तमान है ॥ प० जयचन्दजी ने पृष्ठ २०५ में इस वाक्य की यह वचनिका की है कि "या प्रकार व्यवहार नय है ताहि अन्याय माने हैं"=या प्रकार व्यवहारनय है (तिस (व्यवहारनय) को =ताहि) अन्याय माने है (प्रश्न) कौन अन्याय माने है ? (उत्तर) शब्दनय वा शब्दनय का अनुयायी प्राणी ।

अतः समान लिंग समान वचन समान साधनादि शब्दों का ही आपस में संबंध होता है। इस बातका ज्ञापक शब्दनय है

इस संबंधमे पं० जयचंद जी की वचनिका मुद्रित पृष्ठ २०५, हस्तलिखित पृष्ठ ८५ का पूर्ण लेख शब्दशः ऐसे हैं "बहुरि कारकव्यभिचार 'सेनापर्वतमधिवसति' इहां सैना पर्वतके समीप वसै है ऐसा आधार है, सो सप्तमी विभक्ति चाहिये, तहां द्वितीया कही। तातैं कारकव्यभिचार भया। या प्रकार व्यवहारनय है ताहि अन्याय माने है। जातैं अन्य अर्थ का अन्य अर्थकरि संबंध होय नाहीं। जो अन्य अर्थका अन्यतैं संबंध होय, तौ घटका पट होय जाय पटका महल होय जाय। तातैं जैसा लिंग आदि होय तैसाही न्याय है। इहां कोई कहै। लोक विषै तथा शास्त्र विषैं विरोध आवैगा। ताकूं कहिये, विरोध आवै तौ आवौ, इहां तो यथार्थस्वरूप विचारिये है। औषधी रोगीके इच्छा कै अनुसार तौ है नां ही॥

ऊपर के लेख मे वाह्यरूपसे 'ताहि' शब्द कारकव्यभिचार की ओर संकेत करने वाला मानकर कह सक्ते हैं कि ताहि अर्थात् तिस कारक व्यभिचार को तव अर्थ हुआ कि या प्रकार व्यवहारनय है तिस (कारकव्यभिचार) को अन्याय मानै है" इस अर्थके समर्थनमें हमारे एक मित्र अर्थप्रकाशिका पृष्ठ ८५ के इस वाक्य को कि "ऐसेही उपसर्ग व्यभिचारकूं व्यवहारनय अन्याय माने हैं" हमारे समक्ष रखते हैं; और कहते हैं कि पं० जयचदजीने कारकव्यभिचार अंतमें कहा है और पं० सदासुखजीने 'उपसर्गव्यभिचारका वर्णन अतमें किया है इसलिये पं० जयचंद जी ने ताहि (=तिसको) का अर्थ कारकव्यभिचार लिया है और अर्थप्रकाशिका में उपसर्गव्यभिचार लिया है इससे कोई अंतर नहीं पड़ता है॥ और यह भी कहते हैं कि भाव भी ठीक है इस हेतु से कि 'कारक व्यभिचार को ओर उपसर्ग व्यभिचार को' अर्थात् "सेना पर्वतमधिवसति' 'सन्तिष्टते प्रतिष्टते' विरमति उपरमति इन वाक्यो को दोषरूप कहना, व्यभिचार इनका नाम रखना व्यवहारनयके अनुकूल वा अपेक्षासे अन्याय है अयुक्त है और ऐसे प्रयोग व्यवहार मे तो आते ही हैं॥

(उत्तर) अर्थप्रकाशिकाके पृष्ठ ८५ में न्याय शब्दके स्थानमें अन्याय शब्द अशुद्ध मुद्रित होगया है। सदासुखजी का शुद्ध पाठ ऐसे है कि "बहुरि आत्मने पदीकूं परस्मैपद भया ऐसेही उपसर्गव्यभिचारकूं व्यवहार नय न्याय माने है तथापि शब्दनयका यही विषय है।" इसका तात्पर्य यह है कि आत्मने पद धातु में उपसर्ग लग जाने से प्रयोगमें परस्मैपद धातु होजाती है और परस्मैपद धातुमे उपसर्ग लग जाने से आत्मने पदी (धातु) हो जाती है इसको व्याकरण, लोक प्रयोग, व्यवहारनय न्याय मानते हैं तौ भी शब्दनयका यही विषय है कि इन सब प्रयोगोको जो व्यवहार मे प्रचलित हैं व्यभिचरित वा दूषित माने॥ अतः आपका कथन ठीक नहीं है॥ उपर्युक्त कारकव्यभिचार और उपसर्गव्यभिचार व्यवहारनय की अपेक्षासे अयुक्त है अन्याय रूप है, आपकी यह धारणा ठीक नहीं है वरन ये व्यभिचार व्याकरणके अनुकूल और व्यवहार नयके अनुकूल हैं इनसे व्यवहार चलता है परन्तु शब्दनय इनको दूषित मानती है॥"

लोकसमयविरोध इति चेत । विरुध्यताम् । तत्वमिह मीमांस्यते न भैषज्यमातुरेच्छानुवर्ति ।

लोक-समय-विरोधः ;। इति* चेत्*	=जगत् वा संसार और शास्त्रमें यदि (=चेत) ऐसा है तो विराध आवैगा ? अर्थात् जो प्रयोग व्यवहारनय और व्याकरणके अनुकूल हैं परंतु शब्दनयसे वे दूपित हैं उनको यदि दोपरूप मानोगे तो ऐसा मानना संसार और शास्त्रके विरुद्ध होगा । उत्तरमें कहतेहैं कि:—
विरुध्यताम्T तत्वम् ;।। इह* मीमांस्यतेT	=विरोध किया जाउ । इहां तो=यथार्थस्वरूप (तत्त्वम्) विचारा गयाहै परीक्षा किया गयाहै
न* भैपज्यम् ;।। आतुर-इच्छा-अनुवर्ति ;।।	=क्योंकि औपधि रोगी की इच्छा के अनुसार नहीं होती है

कई कोशोमे हमको 'प्रकार' 'व्यवहारनय' 'न्याय' (नकि न्याय्य जो त्रिलिगो है) पुल्लिग ही मिले बहुत सी टटोल की परतु नपुमक लिगी नहीं मिले (देखो·—प्रकारः अमर कोप वर्ग २३ श्लोक १६२: आते आङ्गल संस्कृत कोप पृष्ठ २२८, पद्मचन्द्र कोप पृष्ठ २४८, वेद्यसस्कृताङ्गल कोप ५५६; नीति=(नाय) नयः अमरकोप वर्ग २२ श्लोक ९, इसी सूत्रमे सात आठ स्थानो पर नय शब्द आया, पद्म० पृष्ठ २०८: वैद्य० पृष्ठ ३७०) उक्त वाक्यमें 'प्रकारम' व्यवहारनयम (=व्यवहारनयको) दोनो शब्द द्वितीया विभक्ति वा कर्मकारकमें है ॥ मन् दिवादि चतुर्थ गणका धातु आत्मने पदी है य् इस गणका विकरण है 'ते' अन्य पुरुप एक वचन आत्मने पदी वर्तमान क्रियाका द्योतक प्रत्यय है अत मन्यते वना अर्थ मानता है यहां पर कर्तरि प्रयोग है । वस यही तीन विशेप शब्द हैं जिससे वाक्यका अर्थ निकलता है अत शब्दशः अर्थ हुआ कि "इस प्रकार (वह) व्यवहारनयको अन्याय मानती है ॥ प्रथम इसके कि हम द्वितीय आवृत्ति के पाठ पर कुछ समालोचना करें इस वातको दिखाना चाहते हैं कि सर्वार्थसिद्धि वृत्तिके नीचेके चार वाक्योके अर्थका कैसा घनिष्ट सवन्ध वा प्रसंग मिलता है "इस प्रकार (शब्दनय) व्यवहारनयको अन्याय मानता है" इसके लगता ही वाक्यमें इस प्रथम वाक्यका हेतु दिया है कि अन्य पदार्थका अन्य पदार्थकरि सवन्ध नहीं होसक्ता है ॥ तीसरे वाक्य मे इस हेतु पर प्रश्न करदिया कि यदि शब्दनय व्यवहारनयको अन्याय मानैगो तो लोक (व्यवहार)के विरोध और शास्त्र (=समय अर्थात् व्याकरण) के विरोध होगा क्योकि उक्तलिग, सख्या, साधन, कारक, काल और उपसर्गके संवन्धमे जो उदाहरण दिये है और उनको शब्दनयकी अपेक्षासे व्यभिचार माना है वे समस्त ही लोक व्यवहारकी अपेक्षास ठीक हैं उन सवका लोकमें व्यवहार होता है प्रयोग होता है वोलचालमें आते हैं और व्याकरणके नियमोके अनुकूल है ॥ इसके उत्तरमे चौथा वाक्य दिया कि "विरुध्यताम" लोक और शास्त्रके विरुद्ध होने दो कुछ चिंता नहीं । फिर इस कहनेका भी हेतु दिया कि इस स्थानमे तत्व (पदार्थके यथार्थ स्वरूप) का निर्णय है लोक विरुद्ध और व्याकरणशास्त्र वा अन्य शास्त्रके विरुद्ध हुआ करो क्योंकि औपधि चाहे खट्टी हो-मीठी हो-कडवी हो-कपेली इत्यादि हो रोग को दूर करने वाली गुण की

दी जावैगी न कि रोगीकी इच्छाके अनुकूल इसके समर्थनमे देखो प०जयचंदजीका लेख पिछला पृष्ठ५२३, राजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ६८, सस्था द्वारा प्रकाशित राजवार्तिक पृष्ठ ४८०,४८१, प०पन्नालालदूनी वाले अनुवादि राजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ २६४, अत यह समझमे नहीं आता कि "एवम्प्रकारं व्यवहारनय न्याय्य मन्यते" इस वाक्यका ऐसा किस प्रकारका अनुवाद करे कि जो शब्दार्थ हो और विभक्त्यर्थ सहित हो और वृत्तिके उपर्युक्त चार वाक्योसे सबंध भी कर जाय और साथ ही साथ द्वितीयावृत्तिके सपादक की "जलं पततीति वक्तव्ये आपः पतन्तीति व्यवहारो जायते·· इत्यादि" टिप्पणीके भी अनुकूल होजाय यद्यपि यह टिप्पणी सर्वार्थसिद्धिके प्रथम सस्करण मे नहीं है और वृत्ति पाठमे भी "न्याय्य" के स्थानमे प्रथम आवृत्तिमे "अन्याय्य" है ॥

उपर्युक्त वाक्यका शब्दार्थ और विभक्त्यर्थ अनुवाद यह है कि 'इस प्रकार (वह) व्यवहारनयको न्याय वा उचित मानता है" कौन और किस प्रकार व्यवहारनयको न्याय मानता है । वैयाकरण 'सन्तिष्ठते, प्रतिष्ठते, विरमति उपरमति, ऐसे प्रयोगो को जो लोक व्यवहार मे भी आते हैं व्याकरण और व्यवहारनयकी अपेक्षा न्याय मानता है यदि यह अर्थ लिया जावे तो सर्वार्थसिद्धि वृत्तिके नीचेके दो से पांच संख्या तकके वाक्योका संबंध उपर्युक्त अनुवादसे मेल नहीं खाता है ॥ इस लिये हमारी समझ मे प्रथमावृत्तिका पाठ ठीक और शुद्ध है द्वितीय संस्करणमें व्यर्थ 'अन्याय्यम्' शब्दके स्थानमे 'न्याय्यम्' कर दिया है ॥ उपर्युक्त पूर्ण टिप्पणी का अनुवाद यह है कि·—

() जल पततीति वक्तव्ये आपः पतन्तीति व्यवहारो जायते अत्राप्शब्दोत्तरं बहुत्वाभिधायक प्रत्ययोपनिवन्धनं वस्तुतो निरर्थकमेव, बहुत्वस्य जले अन्वयायोगात् । तथापि शब्दानुशासनं शास्त्रमहिम्ना बहुत्ववाचकप्रत्ययसमभिव्याहारः कर्तव्यएवभवति,

जलम् १॥ पततिT इतिॐ वक्तव्ये ७॥ आप. १॥ पतन्तिT इति॰	=पानी गिरता है इस प्रकार कहने पर आपः (बहुत से जल) गिरते है ऐसा
व्यवहारः १। जायतेT अत्र॰ अप् शब्दोत्तरं बहुत्वाभिधायक-	=व्यवहार होता है । यहां अप् शब्द के आगे बहुततावाचक
प्रत्यय-उपनिवन्धन १॥ वस्तुतः॰ निरर्थकम् १॥ एव॰ जले ७॥	=प्रत्यय का लगाना यथार्थतः वा यथार्थरूपसे अर्थरहित ही है क्योंकि जलविषै
बहुत्वस्य ६॥ अन्वय-अयोगात् ५। तथापि॰ शब्दानुशासनं-	=बहुत्वका सवन्ध वा जोड अयुक्त है । तौ भी व्याकरण (=शब्द अनुशासन)
शास्त्रमहिम्ना ३। बहुत्ववाचक-प्रत्ययसमभिव्यवहारः १।	=शास्त्र के प्रभावसे बहुवचन वाची प्रत्ययका संवन्ध (अर्थात् प्रयोग)
कर्तव्यः १। एव॰ भवति T	=करना ही होता है

एटानिवासी जगरूपसहाय वकीलकृत पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित सर्वार्थसिद्धिका शब्दशः हिंदी अनुवाद। अध्याय १ सूत्र ३३,

नानार्थसमभिरोहणात् समभिरूढः ।

नाना-अर्थ-समभिरोहणात् ५।१। समभिरूढः १।१।	=बहुत अर्थोंमेंसे एक अर्थको प्राप्त होनेसे (=समभिरोहणात्) समभिरूढ है

(१) समभिरूढनयकी उपर्युक्त परिभाषा तथा तत्त्वार्थ राजवार्तिकमें दी हुई परिभाषा दोनोंका पाठ शब्दशः एक है ॥
सम-अभि-रोहणात्-रोहण (पु०एक पर्वत-पहाड़ (न०) चढ़ना, उगना (पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ३८६, वैद्यकोश पृष्ठ६१६)मे है,यहांपर नपुंसक लिंगमें आया है ॥

(२) अर्थसमभिरोहणात्— "नानार्थसमभिरोहणात्" इस वाक्य का अनुवाद "नानाअर्थान्समतीत्यैकमर्थम् रूढः" ऐसा वाक्य है। (प्रश्न) 'समतीत्य=छोड़करि, उल्लंघकरि' ऐसा अनुवाद समभिरोहणात् वाक्यका कैसे हुआ ? (उत्तर) पाणिनीय अष्टाध्यायीके प्रथम अध्याय चतुर्थपादके इकतीसवां सूत्र "भुवः प्रभवः" =भुवः कर्तुः प्रभवः अपादानम्-अपादानकी अनुवृत्ति चोवीसवां और कर्तुः की तीसवांसूत्रसे ली है

=भू=होना, धातुके कर्ताका जो प्रभव (=उत्पत्तिस्थान) वह कारक अपादान संज्ञक हो। जैसे हिमवतः गङ्गा प्रभवति=हिमालय (पर्वत,से गंगाजी निकलती है। के नीचे निम्न उल्लेखित वार्तिक दी हुई है उसके निमित्तसे 'उल्लंघकरि' ऐसा अनुवाद हुआ ॥ "ल्यब्लोपे कर्मण्यधिकरणे च" =ल्यब्लोपे कर्मणि अधिकरणे च पञ्चमी विभक्तिर्भवति=पांचवीं विभक्ति (का प्रत्यय) कर्म (कारक) और (=च) अधिकरण कारकके सूचित करनेमे वा निर्देश करनेमें आता है जबकि ल्यपन्त (ल्यप्=य, अन्त) संबन्धक सूचक भूतकृदन्त का (देखो पृष्ठ १६) अर्थात् वह संबन्धसूचक भूतकृदन्त का जिसके अन्तमे य हो (जैसे अनुभूय) लोप किया जावे जैसे प्रासादम् आरुह्य प्रेक्षते (राजभवनको (पै) चढ़कर देखता है)=प्रासादात् प्रेक्षते=राजभवनसे देखता है॥ अधिकरणका हदाहरण, आसने उपविश्य प्रेक्षते (आसनपर प्रवेश होकर देखता है)=आसनात् प्रेक्षते=आसनसे देखता है॥

(प्रश्न) ऊपरके प्रथम उदाहरणमे 'प्रासादम्' कर्मकारकके सूचित करनेमे उसी शब्द प्रासाद को अपादान कारकमे लाये हैं तैसे "नानार्थान्समतीत्यैकमर्थमाभिमुख्येन रूढः समभिरूढः" विग्रह वाक्यमे समभिरोहण शब्दको कर्मकारकमे नहीं लाये इसलिये अष्टाध्यायीका वार्तिक लागू नहीं है॥ (उत्तर; पूज्यपाद स्वामीने 'नानार्थसमभिरोहणात्'का इसके लगता ही वाक्यमे तात्पर्य दे दिया है। उपर्युक्त वार्तिकके अनुकूल विग्रह इस प्रकार हो सक्ता है 'नानार्थसमभिरोहणम् समतीत्य समभिरूढः'=नानार्थसमभिरोहणात् समभिरूढः" अर्थात् नाना अर्थकी प्राप्तिको (=समभिरोहणम्) था ग्रहणको (=समभिरोहणम्) उल्लंघनकर (=समतीत्य) वा छोड़कर (=समतीत्य) एक ही अर्थमें रूढ हो (=समभिरूढ) एक ही अर्थमे प्रसिद्ध हो (=समभिरूढ) सो नानार्थसमभिरोहणात् समभिरूढ है॥ इसलिये 'प्रासादम् आरुह्य प्रेक्षते=प्रासादात् प्रेक्षते' है अर्थात् प्रासादम् आरुह्यके स्थानमे 'प्रासादात्' पंचमी विभक्ति हो गई इसी प्रकार 'नानार्थसमभिरोहणम् समतीत्य समभिरूढः' वाक्यके 'नानार्थसमभिरोहणम् समतीत्य' के स्थानमें 'नानार्थसमभिरोहणात्' पंचमी विभक्ति होगई अतः उक्तवार्तिक और उसका कर्मकारक का उदाहरण सर्व प्रकारसे लागू होगया॥

यतो नानार्थान्समतीत्यैकमर्थमाभिमुख्येन रूढः समभिरूढः ॥ गौरित्ययं शब्दो वागादिषु अर्थेषु वर्तमानः पशावभिरूढः । अथवा अर्थगत्यर्थः शब्दप्रयोगः । तत्रैकस्यार्थस्यैकेन गतार्थत्वात्पर्यायशब्दप्रयोगोऽनर्थकः ॥ शब्द-भेदश्चेदस्ति अर्थभेदेनाप्यवश्यं भवितव्यम्

यतः* नानार्थान्३। सम्-अतीत्य-एकम्२। अर्थम्२।	=(अर्थात्) जहां (=यतः) अनेक अर्थों को उल्लंघन करि एक अर्थ को (अर्थ में)
अभिमुख्येन ३। रूढः १। समभिरूढः १।	=प्रधानता से (=अभिमुख्येन) रूढ हो - प्रसिद्ध हो सो समभिरूढ है ॥
	(इसलिये शब्दक अनेक अर्थोंमेंस एकही अर्थको जो जाने वा कहे सो समभिरूढनय है)
गौः१। इति* अयम्१। शब्दः१। वाग्-आदिषु७।	=गो ऐसा यह शब्द वचन (पृथिवी, वाणी, गमन, तारे, आकाश, हीरा, किरण) आदि
अर्थेषु ७। वर्तमानः १। पशौ ७। अभिरूढः १।	=अर्थोंमे विद्यमान हे (तोभी) चोपाये (अर्थ) में अति प्रसिद्ध (=अभि-रूढ) है अर्थात् गो बैलनामा पशुक अर्थ में चलते फिरते सोवते बैठते उठते खाते पीते, अकडते, जगते इत्यादि सब अवस्थाओंमें ग्रहण किया जाता है ॥
अथवा* शब्दप्रयोगः १। अर्थगति-	=वा शब्दोका प्रयोग (किया जाता) है सो अर्थज्ञान (=अर्थगति)के वा अर्थप्राप्ति (=अर्थगति)के
अर्थः १।; तत्र* एकस्य ६। अर्थस्य ६। एकेन ३।	=लिये (=अर्थ) है । तहां एक अर्थका एक (शब्दके प्रयोग) से
गतार्थत्वात् ५॥ पर्याय-	=अभिप्राय सिद्ध होजानेसे (=गतार्थत्वात्-गतार्थपणासे) (दूसरे) समानार्थ बोधक
शब्दप्रयोगः १। अनर्थकः १।	=शब्दका अनुष्ठान, वा काममे लाना निष्प्रयोजन है भावार्थ शब्दोका जो प्रयोग किया जाता है वह अर्थज्ञानके लिये किया जाता है यदि वह अर्थज्ञान एकही शब्दके प्रयोगसे सिद्ध हो जाय तो फिर दूसरे पर्याय शब्दका कहना व्यर्थ है
शब्दभेदः१। चेत्* अस्ति अर्थभेदेन३। अपि*	=(प्रश्न) जो (=चेत्) शब्द भेद है तो ? (उत्तर) अर्थभेद (सहित) भी
अवश्यम् १॥ भवितव्यम् १॥	=अवश्य होना चाहिये । उपर्युक्त प्रश्नोत्तरका तात्पर्य यह है कि यदि यह

(१) समतीत्यः-यह संबंधसूचक भूतकृदन्त है (२) अभिमुख्येन-यह पुल्लिंग और नपुंसकलिंग दोनो मे होसकता है ॥

इति नानार्थमभिरोहणात्समभिरूढः ॥ इन्दनादिन्द्रः शकनाच्छक्रः पूर्दारणात्पुरन्दर इत्येवं सर्वत्र ॥

कहा जाय कि एक अर्थ के प्रतिपादन करने वाले अनेक शब्द भी होते हैं इसलिये अर्थ एक ही रहता है परंतु शब्द भेद वहां रहता है उसका उत्तर यह है कि यदि शब्द भेद होगा तो अर्थ भेद भी नियम से होगा क्योंकि जितने शब्द भेद हैं उतने ही उनके अर्थ हैं यह नियम है। उक्तंचः—"जित्तिय मित्ता सद्दा तित्तिय मित्ताणि होंति परमत्था" यावन्मात्राः शब्दाः तावन्मात्राः परमार्था भवन्ति जितने शब्द होते हैं उतने ही उनके उचित (=परम) अर्थ होते हैं ॥

इति नाना-अर्थ-समभिरोहणात् ५।१ समभिरूढः १।१ =ऐसे नाना अर्थोंमें से एक अर्थ को प्राप्त होने से (=समभिरोहणात्) समभिरूढ़ है (और अनेक अर्थोंमें से एक विशेष गृहीत अर्थ को कहने वाला अथवा जानने वाला है सो समभिरूढ़नय है ॥ जैसे

इन्दनात् ५।१॥ इन्द्रः १।१ =परम ऐश्वर्यरूप क्रिया करने (के हेतु) से इन्द्र है अर्थात् जब परमैश्वर्यरूप क्रिया करै तब इन्द्र है।

शकनात् ५।१॥ शक्रः १।१ पूर्-दारणात् ५।१॥ =समर्थरूप प्रवर्तने से शक्र है, पुर (नगरादि) के भेदन करने से

पुरन्दरः १।१ इत्येवम्‌※ सर्वत्र※ =पुरन्दर है ॥ इस प्रकार ही सब स्थानोंमें (जाना जाता) है
(ऐसे समभिरूढनय इन अर्थोंमेंसे एक ही अर्थ को ग्रहण करि प्रवर्तती है)

भावार्थः— यद्यपि इन्द्र शक्र पुरंदर आदि शब्द एक ही शचीपति-इन्द्र अर्थके कहने वाले हैं तथापि परमैश्वर्यका भोक्ता होनेसे इन्द्र सामर्थ्यवान् होनेसे शक्र और पुर नगरादिका विदारण करनेसे पुरंदर इस प्रकार इन भिन्न भिन्न शब्दोंके भिन्न भिन्न अर्थ हैं। इस रीतिसे पर्यायोंके अनुसार इन्द्र शब्दके अनेक अर्थ रहते भी वह रूढ इन्द्र (शचीपति) अर्थ में ही है और इस रूढ़ अर्थ को ही समभिरूढ नय विषय करता है यहां पर यह बात समझलेनी चाहिये कि चाहै इन्द्र परमैश्वर्यका भोग करै वा न करै किसी भी अवस्थामें हो तब भी वह समभिरूढ नयका विषय है।

(१) दारण शब्द वैद्यकोश पृष्ठ ३३० में नपुंसकलिंगमें दिया है इससे इन्दन, शकन भी भाव द्योतक होने से नपुंसक लिंगमें हैं।

अथवा यो यत्राभिरूढः स तत्र समेत्याभिमुख्येनारोहणात्समभिरूढः। यथा क्व भवानास्ते। आत्मनीति। कुतः। वस्त्वन्तरे वृत्यभावात् ॥ यद्यन्यस्यान्यत्र वृत्ति स्यात्, ज्ञानादीनां रूपादीनां चाकाशे वृत्तिःस्यात्॥६॥ येनात्मना भूतस्तेनैवाध्यवसाययतीति एवम्भूतः ॥

अथवा॰ यः१। यत्र अभिरूढः१।सः१ तत्र अभिमुख्येन३।	=अथवा जो जहां (=यत्र) अभिरूढ है वा प्राप्त है सो तहां प्रधानतासे
आरोहणात् ५।। समेति। (सम-एति)	=प्राप्तहोकरि (=आरोहणात्) वसता है (=समेति) वर्तता है (=समेति) रहता है
समभिरूढः१। यथा॰क्व॰ भवान्१। आस्ते१T आत्मनि७।	=(तिससे) समभिरूढ है ॥ जैसे कहां आप तिष्ठते हैं ? आत्मामें (तिष्ठता हूं)
इति॰ कुतस् ?॰	=ऐसे (समभिरूढ) है। (प्रश्न) क्योंकर (आत्मामें वा निजरूपमें तिष्टते हो)
वस्तु-अन्तरे॰ वृत्ति-अभावात् ५।	=(उत्तर) अन्य वस्तुमें प्रवृत्तिका वा स्थितिका अभावसे अर्थात् भिन्न वस्तुका भिन्न वस्तुमें ठहरना नहीं होसकता है। प्रधानतासे आत्माका रहना आत्मामें ही है दूसरे पदार्थोंमें उसका रहना नहीं हो सकता है (और)
यदि॰ अन्यस्य ६।। अन्यत्र॰ वृत्तिः १।। स्यात्T	=जो (=यदि) अन्य (पदार्थ) का अन्य स्थानविषैं स्थिति वा प्रवृत्ति वा रहना हो
ज्ञानादीनाम् ६। रूपादीनाम् ६। च॰	=तो ज्ञानादिकोंका (जो आत्मगुण हैं) और रूपादिकोंका (जो पुद्गलके गुण हैं)
आकाशे ७। वृत्तिः १॥ स्यात् T	=आकाशमें प्रवृत्ति वा स्थिति वा प्रवर्तना वा रहना होजाय(सो आकाशमें है नहीं)
( ) येन ३। आत्मना ३। भूतः १।	=जिस स्वरूपकरि (अर्थात् अर्थ क्रियासे कोई पदार्थ परिणत) हो
तेन ३। एव॰ अध्यवसाययतिT	=उस ही (स्वरूप अर्थ क्रिया परिणाम) से निश्चय कराता है वा प्रतीति कराता है
इति॰ एवम्भूतः १।	=ऐसा एवम्भूत (नय) है॥ (एवंभूतः भी ठीक है देखो टिप्पणी पृष्ठ ५४०,५४१)

(इसी एवंभूत की परिभाषाका भाव इसके लगता ही वाक्यमें दिया है (देखो पृष्ठ ५४२)

(१) समेति=सम्+एति 'इ' अदादि दूसरेगण परस्मैपदका धातु यहां जाना अर्थमें आया है। 'ति' पत् संज्ञक प्रत्ययके (देखो पृष्ठ ५२२, ५२३) पहिले 'इ' धातुकी गुणसंज्ञा होकर 'ए' हो जाताहै। 'ए'में'ति' प्रथम पुरुष एक वचन परस्मैपद वर्तमान कालका प्रत्यय जोडनेसे एति=बन जाताहै उसमें 'सम्' उपसर्ग लगाने से (सम्+एति) समेति बन जाताहै ॥ समेति=वह साथ साथ रहताहै अर्थात् आत्मा आत्मामें रहता है वसताहै तिष्ठताहै

(२) पूज्यपाद स्वामी की इसी एवंभूतनयकी परिभाषाको शब्दशः तत्वार्थ राजवार्तिकके रचयिताने ग्रहण कीहै (देखो त०राज० मुद्रित पृष्ठ ६८)

इस बात पर हम एक पूर्ण टिप्पणी लिखते हैं कि पदान्त म्-न् और अपदान्त म् न् की अवस्था मे क्या क्या परिवर्तन होते हैं और दोनों प्रकार के अनुस्वार पदान्त और अपदान्त मे क्या क्या परिवर्तन होते हैं

(१) पदान्त म्—मोऽनुस्वारः (अष्टाध्यायी ८ । ३ । २३) इस सूत्रमें 'पदस्य' की अनुवृत्ति अष्टाध्यायी अध्याय ८ पाद १ सूत्र १६ वें (पदस्य) से है और हलि शब्दकी अनुवृत्ति 'हलि सर्वेषाम्' ८ । ३ । २२सूत्रसे लीगई है इसलिये 'मोऽनुस्वारः' (=पदस्य ; मः ; अनुस्वार ; हलि ;) का अर्थ मकारान्त पदको अनुस्वार हो यदि कोई हल् (अर्थात् व्यजन) पश्चात् मे हो तो (ऐसा होता है)॥ जैसे हरिम् वन्दे मे म् पदान्त है और व्यंजन पश्चात् मे है इसलिये हरिं वन्दे हुआ ऐसेही एवम्भूत· मे म् पदान्त है भ् उसके पीछे व्यजन है अतः एवंभूतः होगया इसलिये एवम्भूत और एवंभूत दोनों रूप ठीक है (इस सूत्रकी विशेष व्याख्या के लिये देखो पृष्ट ५, ६)॥ 'गम्यते' (=वह गया है) यहां म् अपदान्त है इस से अनुस्वार न हुआ ॥

(२) पदान्त न्—अन्तका न् जब उसके पश्चात् च्-छ्-त्-थ् ट् ठ् आवे तो (यह न्) अनुस्वार और विसर्ग में पलट जाता है जैसे विडालान् ताडयति पुरुषः (=वह मनुष्य विल्लियों को मारता है) =विडालां· ताडयति पुरुषः अब यह विसर्ग निम्न उल्लेखित नियमसे स् में परिवर्तित होजाता है अतः विडालांस्ताडयति पुरुषः ऐसा हुआ (नियमः—विसर्ग के पश्चात् यदि च्-छ् हो तो श् मे यदि त्-थ् हो तो स् में यदि ट्-ठ् हो तो ष् में यह विसर्ग पलट जाता है)

(३) अपदान्त म्-न्॥ "नश्चापदान्तस्य झलि" यह अष्टाध्यायी के आठवां अध्याय का तीसरे पादका चौवीसवां सूत्र है ८-३-२४। इस सूत्रसे पहिले का सूत्र 'मोऽनुस्वार" उपर्युक्त तेईसवां है इससे अनुस्वार की अनुवृत्ति चौवीसवां सूत्र मे आती है तब चौवीसवां सूत्रका रूप इस प्रकार होजाता है कि " नः च अपदान्तस्य झलि (अनुसारः) ' च से तेईसवां सूत्र के मो (=म·) का आकर्षण होता है इसलिये ऐसा रूप हुआ कि "नः मः अपदान्तस्य झलि अनुस्वारः" झलि प्रत्याहारहै और उसमें झल्के मध्यके अक्षर झ सहित सब आजातेहैं अर्थात् क् ख्-ग्-घ् च् छ्-ज्-झ्। ट्-ठ्-ड्-ढ् । त् थ्-द्-ध्- । प्-फ्-ब्-भ् । ष्-श् स् ह् । 'झलि' का अर्थ है इन चौवीस अक्षरोके पहिले आने वाला । अपदान्त = विभक्ति वा कारक जिसके अतमें न हो । सूत्र का अर्थ यह हुआ अपदान्त न् अथवा अपदान्त म् के स्थान मे अनुस्वार होवै' यदि म् अथवा न् पुर्वोक्त चौवीस अक्षरों में से किसी अक्षर के पहिले हो इसलिये 'अन्तराय' के न् का अनुस्वार होकर अंतराय होगया और 'वन्दे' का 'वंदे' होगया क्योंकि दोनों के न् के पश्चात् क्रमसे त्-द् है ॥

जैसे यशान्स्+इ = यशांसि, यह यशांसि यश् नपुंसकलिंगीका बहुवचन है यहां पर अपदान्त न्का अनुस्वार होगया ॥ बहुत यश = यशांसि
आक्रंस्यते = आ+क्रम्+स्यते, क्रम् धातुके म्का अनुस्वार होगया ॥ आक्रंस्यते = वह पकडेगा, (वह) विजयकरैगा, जीतैगा ॥

(४) अपदान्त अनुस्वार.—अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः ।८।४।५८ = अनुस्वारस्य परसवर्णः. ययि=अनुस्वार के स्थान में परसवर्ण हो यदि (उक्त अनुस्वार के) परे में यय् प्रत्याहार के अक्षरों में से कोई भी आवे अर्थात् अनुस्वार के पश्चात् में क्-ख्-ग्-घ्-ङ्। च्-छ्-ज्-झ्-ञ्। ट्-ठ्-ड्-ढ्-ण्। त्-थ्-द्-ध्-न्। प्-फ्-ब्-भ्-म्। य्-र्-ल्-व् अक्षरों में से कोई भी एक अक्षर आवे तो उक्त अनुस्वार के स्थान में परसवर्ण (= ङ्-ञ्-ण्-न्-म्-य-व-ल) हो जावे जैसे शाम्त. यहां "नश्चापदान्तस्य झलि" उपर्युक्त सूत्र से म्का अनुस्वार होकर शांत ऐसा हुआ फिर इस सूत्र से परअक्षर त उस तकार का सवर्णीय न् होकर शान्त रूप बना ॥ ऐसैही अङ्कितः = चुभगया, गड़गया, ॥ अञ्चितः = पूजाकिया गया आदर किया गया, सिकोड लिया गया। कुण्ठितः = प्रतिवात किया गया, गुम्फितः = गूथागया, रचागया, गांठागया, रूपवनगये ॥ शान्तः का अर्थ शामयुक्त वा शान्त वाला है कुर्वन्ति = वे करते हैं। कृपन्ति – वे उत्पन्न करने के योग्य है, वे सोचते है ॥ इन दोनों शब्दों के न् पहिले नश्चापदान्तस्यझलि उक्त सूत्र से अनुस्वार में परिवर्तित हो जाते हैं पश्चात् इस सूत्र से उन के पश्चात् त् होने के कारण न् परसवर्ण त्के में पलट जाते है ॥

(५) पदान्त अनुस्वारः— 'वा पदान्तस्य" ८।४।५९ =(पदान्तस्य अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः) वा इस सूत्र में अट्ठावनवां सूत्रकी अनुवृत्ति आती है ॥ पदान्तस्य अनुस्वारस्य परसवर्णः वा ययि = पदान्त अनुस्वारका परसवर्ण विकल्पसे हो (चाहे परसवर्ण करो मनन चाहे मतकरो) यदि (उक्त पदान्त अनुस्वारके) पश्चात् ऊपर कहे हुये २९ व्यजनों में से कोई एक व्यजन आवे तो ॥जैसे त्वम् करोषि, यहां "मोऽनुस्वार" सूत्र से म् को अनुस्वार किया तो त्वं करोषि बना, फिर जब सवर्ण हुआ तो त्वङ्करोषि, तू करता है। ऐसा रूप बना नहीं तो त्वं करोषि रूपही बना ॥ ऐसेही त्वम् चिनोषि से त्वंचिनोषि रूप हुआ, फिर त्वञ्चिनोषि रूप बना, नहीं त्वं चिनोषि रहा तू चुनता है ॥ ( ) त्वम् डीयसे = तू उडताहै, = त्वं डीयसे, फिर वा पदान्तस्य से त्वण्डीयसे रूप बना। डी चौथेगणका आत्मने पदी, अकर्मक धातु है॥त्वम् पण्डितः (तू पडित है) त्वं पडितः 'मोऽनुस्वार से हुआ, फिर "वा पदान्तस्य" से त्वम्पण्डितः रूप बना, नहीं तो त्वं पण्डितः ही, रूप रहा ॥ ( ) त्वम् धनाढ्यः (तू धनवान् है) 'मोऽनुस्वारः सूत्र से त्वं धनाढ्यः रूप हुआ, अब "वा पदान्तस्य" द्वारा त्वन्धनाढ्यः रूप बना, नहीं त्वं धनाढ्यः ॥ ( ) तं कथं चित्रपक्षं डयमानं नभःस्थं पुरुषोऽवधीत् = तङ्कथञ्चित्रपक्षण्डयमानन्नभःस्थम्पुरुषोऽवधीत्। आकाश में (= नभःस्थं) उड़ते हुये (= डयमानं) उस (= तं) चित्र विचित्र पर वाले पखेरु को (चित्र पक्षं) पुरुष ने कैसे मारा (= अवधीत्) ८॥

स्वाभिधेयक्रियापरिणतिक्षणे एव स शब्दो युक्तो नान्यदेति । यदैवेन्दति तदैवेन्द्रो नाभिषेचको न पूजक इति । यदैव गच्छति तदैव गौः ।

स्व–अभिधेय–क्रिया परणतिक्षणः एव * =(जो शब्द) अपने अर्थ (=अभिधेय) क्रियासे जिस समय ही (=एव) परिणत हो
सः शब्दः युक्तः न * अन्यदा * इति * =वह शब्द (प्रयोग उस ही समय) उचित है न कि और समय (=अन्यदा)
भावार्थ जिस वस्तुको जिस नामकरि कहै उसही अर्थ की क्रियारूप वह वस्तु परिणमती हो तो तिसही काल उस वस्तुको उस नाम से कहै अन्य काल वही वस्तु अन्य परिणतिरूप परिणमै तौ पूर्व उक्त नाम से उस वस्तुको न कहै
यदा एव * इन्दति T तदा एव * इन्द्रः । =जैसे जब ही परमैश्वर्यरूप क्रिया करता है तब ही इन्द्र है ।
न * अभिषेचकः । न * पूजकः इति * । =न कि (वह ही प्राणी) अभिषेक करने वाला न पूजा करने वाला ऐसा (इन्द्र) है
अर्थात् इन्द्र शब्द का अर्थ परमेश्वर है जिस समय वह परमैश्वर्य का भोग कर रहा हो उसी समय उसको इन्द्र कहना यह एवं भूतनयका विषय है किंतु जिसका केवल नाम मात्र इन्द्र है (नाम निक्षेप) वा जहां पर किसी पदार्थमें इन्द्रकी स्थापना है (स्थापना निक्षेप) वा जो इस समय इन्द्र नहीं आगे जाकर इन्द्र होने वालाहै(=द्रव्य निक्षेप)वह एवं भूतनयका विषय नहीं क्योंकि उपर्युक्ततीनों अवस्थाओंमेंपरमैश्वर्यका भोग नहीं हो रहा है । इसी प्रकार गो इत्यादि अन्य शब्दों में भी जिस जिस क्षणमें उनकी जिस जिस अर्थ क्रियाका परिणमन हो रहा है उस उस क्षणके उस उस परिणमनकी अपेक्षा से एवं भूतनयकी योजना कर लेनी चाहिये यदि अर्थ क्रियाकी परणतिका दूसरा दूसरा काल होगा तौ वे एवंभूतनयके विषय नहीं हो सक्ते(देखोनीचे गोकादृष्टान्त)
यदा एव * गच्छति तदा एव * गौः =जब(=यदा) ही (=एव) गमन करता है तब ही गो है (बैल है)

(१) गो–इस शब्द के वीस अर्थ से भी अधिक हैं यह पुल्लिंग और स्त्रीलिंग में आता है (वैद्यकोश पृष्ठ २५० देखो) गो पुल्लिंग मे बैल–वृषभ (पशु) के अर्थमें यहां लिया गयाहै और उस की प्रथमा विभक्ति एक वचन पुलिंग गौः है और गो जब गऊ–गाय के अर्थ में स्त्रीलिंग है तब भी उसका प्रथमा विभक्ति एक वचन स्त्रीलिंगकारूपपुरुष लिंगकेसदृश गौः' (ही) होताहै इस लिये प्रश्न यह उठताहै कि वृत्ति मे दियेहुयेगो'

न स्थितो न शयित इति ॥ अथवा येनात्मनायेन ज्ञानेन भूतः परिणतस्तेनैवाध्यवसाययति । यथेन्द्राग्निज्ञानपरिणत आत्मैवेन्द्रोऽग्निश्चेति ॥

न * स्थितः न * शयितः इति *	=न बैठा हुआ वा न ठहरा हुआ गो (बैल) है (और) न शयन करता हुआ गो (बैल) है
अथवा *	=अथवा (एवम्भूतनयकी उक्त परिभाषा में आये हुये शब्द)
येन आत्मना येन ज्ञानेन भूतः।	="येनात्मना भूतः" (कहिये किसी पदार्थके) ज्ञानयुक्त (=ज्ञानेन) हुआ
परिणतः तेन एव * अध्यवसाययति T	=परिणया (आत्माको) तिस (ज्ञान) युक्त ही निश्चय कराता है वा प्रतीतिकराता है (=ऐसा एवम्भूत–नयहै) अर्थात् उक्त परिभाषा में 'आत्मन्' शब्दका अर्थ पहिले 'अभिधेय क्रिया लिया' अब 'ज्ञान' अर्थ लिया (आत्मना =ज्ञानेन) इसलिये आत्मा जिस क्षण में जिस पदार्थ के ज्ञान से युक्त हो उसे वही कहना एवम्भूतनयका विषय है ॥
यथा*इन्द्रज्ञानपरिणतः अग्निज्ञानपरिणतः	=जैसे इन्द्र(का आकाररूप) ज्ञान और अग्नि(का आकाररूप) ज्ञान परिणाया
आत्मा एव * इन्द्रः च * अग्निः इति *	=आत्माही इन्द्र और अग्नि एसे (क्रमसे)है अर्थात् जैसे जिस क्षणमें आत्मा इन्द्र पदार्थके ज्ञान से परिणत हो रहा है उसे इन्द्र कहदेना वा जिस समय अग्नि पदार्थ के ज्ञान से परिणत हो रहा है उसे अग्नि कह दैना एवं भूत नयका विषय है ॥

ऐसे व्याकरणके रूपका अनुवाद बैल होना चाहिये वा गऊ होना चाहिये 'न स्थितो न शयित' इस वाक्य में स्थितः शब्द और शयितः शब्द पुलिंग मे लाये है इस से स्पष्ट है कि बैल से तात्पर्य है अतः "गौः" का अनुवाद गौ (बैल) किया है यदि स्थितः के स्थान मे 'स्थिता' होता जो स्त्रीलिंग है और शयितः के स्थान में 'शयिता' स्त्री लिंग होता तो अनुवाद गौः रुप का गाय (गऊ) होता।

(१) इन्द्र ज्ञान परिणत आत्मा इन्द्र उच्यते। अग्नि ज्ञान परिणत स्यादात्मा अग्नि श्चेति एवम्भूतनयलक्षणम् ॥

इन्द्र ज्ञान परिणतः आत्मा इन्द्रः उच्यते T	= इन्द्रका (आकार रुप) ज्ञान परिणया आत्मा इन्द्र कहा जाता है
च*अग्निज्ञान परिणत त्वात् आत्मा अग्निः	=और अग्निके ज्ञान परिणमन से आत्मा अग्नि (कहलाता) है
इति * एवम्भूतनयलक्षणम्	=ऐसा एवम्भूतनयका विषय (=लक्षण) है ॥ अब शका यह है कि

उक्ता नैगमादयो नयाः । T उत्तरोत्तरसूक्ष्मविषयत्वात्

नैगम – आदयः नयाः ।	=नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजु सूत्र, शब्द, समभिरूढ़, (१) एवंभूत (ये सात) नय
उक्ताः । उत्तरोत्तर–सूक्ष्मविषयत्वात् ।	=कहेगये है ॥ आगे आगेकी (नय एक दूसरेसे) अल्प विषय (वाली) होने से

टिप्पणी–यदि अग्नि ज्ञानसे परिणत आत्माको एवंभूतनयकी अपेक्षासे अग्नि कहा जायगा तो जलाना, रान्धना, पकाना आदि जितने धर्म अग्नि में हैं वे सब आत्मा में भी मानने पड़ेंगे इस लिये आत्मा अग्नि नहीं कहा जा सकता १ (उत्तर) नाम या स्पना आदि जिस स्वरूप से कहे जाते है वे उस से अभिन्न रहते है और जिस पदार्थ के जो जो धर्म होते हैं वे नियमित रूप से उसी में रहते है। आत्मा का जो अग्नि नाम है उसका आत्मा के साथ अभेद है परंतु अग्निके जो जलाना पकाना आदि धर्म हैं वे अग्निमें ही रहतेहैं आत्मा में नहीं हो सकते इस लिये नो आगम भाव अर्थात् साक्षात् अग्नि में रहने वाला दाहकपन। आगमभाव अर्थात् औपचारिक अग्नि में नहीं हो सकता। इस रीतिसे यदि आतमा का नाम अग्नि माना जायगा तो अग्नि दाहकत्व आदि धर्म आत्मा में मानने पड़ेंगे यह जो ऊपर शंका की गई थी वह निर्मूल सिद्ध हो चुकी।

(१) यहां पर 'एवंभूयत इति' 'ऐसा होना' इस एवभूतनय के अर्थकी प्रतीति या निश्चय शब्द से होती है इसलिये शब्द ही एवभूतनय माना है कारणमें कार्यका उपचार हैं अर्थात् एवंभूतनयके अर्थकी प्रतीति में कारण शब्दहै और कार्य एवं भूतनय है

(T नैगमात्संग्रहोऽल्पविषयः तन्मात्रग्राहित्वात् । नैगमस्तु भावाभावविषयाद्बहुविषयः । यथैव हि भावे सङ्कल्पस्तथाऽभावे नैगमस्य सङ्कल्पः । एवमुत्तरत्रापि योज्यम् ॥

नैगमात् संग्रहः अल्पविषयः ।	=नैगम नयसे संग्रहनय थोड़ी विषय वाली है
तन्मात्र (= तद – मात्र) ग्राहित्वात् ।	=क्योंकि केवल उतने विषयकी अर्थात् केवल स्वल्पविषयकी (= तन्मात्र) ग्राही है
नैगमः तु * भाव - अभाव विषयात् ।	=और (=तु) नैगमनय सत् (रूप) और असत् (रूप) ग्रहण करने (केहेतु) से
बहु विषयः	=महाविषय वाली वा बहुत विषयक है। (बहुविषय=बहुत है विषय जिसका)
यथा * एव * हि * भावे सङ्कल्पः ।	=क्योंकि (=हि) जैसा ही सत् (रुप) में सङ्कल्प है अर्थात् सत् रूप में मानना है
तथा * अभावे नैगमस्य सङ्कल्पः ।	=वैसा असत् (रूप) में नैगमनयका सङ्कल्प वा मानना है भावार्थ।

नैगमनयके पीछे सग्रहनय कही गई है सो इसका विषय सद् द्रव्यत्व आदिही है इसके परस्पर निषेधरूपअसत्आदि यह विषय नहीहै इसलिये नैगमनयसे सग्रहनय अल्प विषयक वा थोड़ी विषय वाली है

एवम्*उत्तरत्र*अपि*योज्यम्

=इस प्रकार यहां से आगे (=उत्तरत्र) भी लगाओ वा लगाने योग्य है अर्थात् सग्रहनयके पश्चात् व्यवहार नय है सो इसका विषय सग्रहनयके विषयका भेद है तहाँ अभेद विषय रहगये अत. सग्रहनयसे व्यवहारनय अल्प विषय वाली है

व्यवहारनय के पश्चात् ऋजुसूत्रहै सो इसका विषय वस्तुका वर्तमान पर्याय मात्रहै अतीत अनागत पर्यायें रहगई अतः व्यवहारनयसे ऋजुसूत्रनयका थोड़ा विषय है ॥

ऋजुसूत्रनय लिंग सख्या साधन कारक उपग्रह आदिका भेद नकरके केवल वर्तमान पर्यायको विषय करता है परन्तु शब्दनय उस एक पर्यायमे भी लिग सख्या साधन कारक उपग्रह काल आदिके भेदसे अर्थका भेद प्रकाशन करता है इसलिये ऋजुसूत्रनयकी अपेक्षासे शब्दनयका अल्प विषय है अर्थात् ऋजुसूत्रनय अर्थ पर्याय और शब्दपर्याय सबको ही विषय करता है परन्तु शब्दनय केवल शब्द पर्याय को ही विषय करता है इसलिये ऋजुसूत्रनयका विषय शब्दनयसे अधिकतर है ॥

इसके पश्चात् समभिरूढ नय कहागया है सो एक वस्तु के अनेक नाम है तिनको पर्यायशब्द कहते है जिन पर्याय शब्दोका एकही अर्थ मानने वाली तो शब्द नय है परन्तु समभिरूढनय जिस शब्दको ग्रहण करता है तिसही अर्थरूपको कहता है क्योंकि उन पर्याय शब्दोंके जुदे जुदे अर्थ भी हैं ॥ जैसे इन्द्र, शक्र, पुरन्दर आदि ये तीन शब्द एक ही शचीपति अर्थके कहने वाले है तथापि परमैश्वर्यता का भोग होने से इन्द्र सामर्थ्यवान् होनेसे शक्र और पुर-नगर विदारण करने से पुरदर इस प्रकार इन भिन्न भिन्न शब्दों के भिन्न भिन्नअर्थ है इस रीतिसे पर्यायों के अनुसार इन्द्र शब्दके अनेक अर्थ रहते भी वह रूढ इन्द्र (शचीपति) अर्थ में ही है और इस रूढ अर्थको ही

एषा क्रमः पूर्व पूर्वो हेतुकत्वाच्च ।

च*पूर्व पूर्वहेतुकत्वात्	=और (=च) पहिली पहिली (नय अगली अगली नयका) कारणरूप होने से
एषाम् क्रमः	=इन (सातों नयनि) कें (पठनका नैगम संग्रहादि सूत्रमें) अनुक्रम है अर्थात्

समभिरूढनय विषय करता है। समभिरूढनय किसी नियत अर्थको ही द्योतन करता है। अतः शब्दनयसे समभिरूढ अल्प विषयी है एकही पदार्थ अनेक क्रियारूप जुदे जुदे कालमें प्रवर्तता है सो जो वस्तु जिसनामकरि कही गई है तिस ही अर्थकी क्रियारूप परिणमती होय तो उसही काल उस वस्तुको उसनामकरि ग्रहण करनेवाला एवम्भूतनय है अन्यकाल में अन्य परिणतरूप परिणमें तौ तिसको उसनामकरि न कहै जैसे गो को समभिरूढनयकी अपेक्षासे बैठते, उठते, सोवते, चलते, फिरते, अकड़ते इत्यादि सवही अवस्था में गऊ-गाय कहते हैं परन्तु एवम्भूतनयकी अपेक्षासे उक्त गो जिस समय गमन करती हो उसी समय गो-गऊ गाय कहै यदि वह बैठो हो सोती हो लेटी हो पडी हो तो उसको गो न कहे। अतः समभिरूढनयसे एवम्भूतनय अल्प विषयी है यहां प०जयचद जी की वचनिकासे एक उदाहरण उद्धृत करते हैं जिससे पूर्वपूर्व नयका विषय उत्तरोत्तर नय से अल्प है स्पष्ट हो जाता है (१) एक मनुष्य ने कहा नगरमें पक्षी वोल रहा है नैगम (२) दूसरे ने कहा कि इस नगरमें एक वृक्ष है उसपे पक्षी वोल रहा है-संग्रह (३) तीसरे ने कहा इस वृक्ष की एक वडी डाली पे पक्षी वोल रहा है-व्यवहार (४) चौथेने कहा इस डालीमें एक छोटी डाली है तापे वोल रहा है-ऋजुसूत्र (५) पांचवें ने कहा छोटी डाली के एक भागपर वोल रहा है-शब्द नय (६) छठेने कहा पक्षी अपने शरीरमें वोल रहा है-समभिरूढ (७) सातवे ने कहा कि पक्षी के शरीर में कठ है सो कठमें पक्षी वोल रहा है-एवम्भूतनय-ऐसे उत्तरोत्तर विषय छूटता गया। ग्रामे वृक्षे विटपे शाखायां तत्प्रदेशेके काये कठे च रौति शकुनिः यथा तथा नैगमादीनाम्। अन्य दृष्टान्त -नैगमनयने वस्तुके सत्-असत् दोनों ग्रहण किये, संग्रह ने सत् ही लिया, व्यवहारनयने सत्का एक भेद लिया, ऋजुसूत्र ने वर्तमान सत् ही को लिया शब्दनयने वर्तमान सत्में भी भेदकरि एक कार्य पकड़ा, समभिरूढनेउस कार्यके अनेक नामथे उनमेंसे एक नामको ग्रहण किया, एवम्भूत-नयने उपर्युक्त एक नामको भी जिस क्रियारुप जिसकालमें परिणमें तिसको ग्रहण किया। ऐसे ही जिस पदार्थ को साधनाहै उस पदार्थ पे इन सातों नयोंको लगालेना योग्य है॥

(१) नैगमः संग्रहस्य हेतुः। संग्रहो व्यवहारस्य हेतुः। व्यवहारः ऋजुसूत्रस्य हेतुः। ऋजुसूत्रः शब्दस्यः हेतुः।

एवमेते नयाः पूर्वपूर्वविरुद्धमहाविषया उत्तरोत्तरानुकूलाल्पविषयाः । द्रव्यस्यानन्तशक्तेः प्रतिशक्तिभिद्यमाना बहुविकल्पा जायन्ते ॥

यथाक्रम एक नय दूसरी नयसे अल्प विषय वाली है और पहिली पहिली नय कारण रूप है अगली अगली नय कार्यरूप है सो सूत्रमें इन सातों नयों का इसही क्रमसे पाठ है वा उल्लेख है

एवम् एते नयाः पूर्वपूर्वविरुद्ध-महाविषयाः	=ऐसे ये (सात) नय पहिले पहिले विरुद्धरूप महाविषय वाले है
उत्तर-उत्तर-अनुकूल-अल्पविषयाः	=(और) आगे आगेकी (नय) अनुकूल रूप अल्प विषय वाली है; अर्थात् पहिले नयने जितने पदार्थको विषयकररक्खा है उसको आगेका नय विषय नहीं करता इसलिये पहिला नय विरुद्ध महाविषयवाला है तथा आगेके नयका जो विषय है वह पहिलेके नयमें गर्भित है इसलिये आगेका नय पहिले नयके अनुकूल अल्पविषयवाला है। (ऐसे नयके भेद क्यों होतेहैं सो कहतेहैं)
द्रव्यस्य अनन्तशक्तेः प्रतिशक्ति भिद्यमानाः	—क्योंकि द्रव्यकी अनन्त शक्ति है,(इससे)शक्ति शक्तिप्रति भेदको प्राप्त भये(नय)
वहु विकल्पाः जायन्ते [१]	=वहु विकल्परूप उत्पन्न होते हैं अर्थात् उक्त नय अनन्त शक्तिरूप द्रव्यकी प्रतिशक्तिकी अपेक्षा भिन्न भिन्न होते जाते हैं अतः नयोंके वहुसे भेद है

शब्द समभिरुढ़स्य हेतुः । समभिरुढः एवम्भूतस्य हेतु । ईत्यर्थ

संग्रहस्य हेतुः नैगमः । व्यवहारस्य हेतुः संग्रहः ।	= संग्रहनयका हेतुः नैगमनय है व्यवहारनय का हेतु संग्रहनय है
ऋजुसूत्रस्य हेतु व्यवहारः। शब्दस्य हेतुः ऋजुसूत्रः ।	= ऋजुसूत्रनयका हेतु व्यवहारनय है। शब्दनयका हेतु ऋजुसूत्रनय है
समभिरुढस्य हेतुः शब्दः । एवम्भूतस्यहेतुः समभिरुढ-	= समभिरुढ़नयका हेतु शब्दनय है। एवम्भूतनयका हेतु समभिरुढ है
इति अर्थः	= ऐसा अर्थ "उत्तरोत्तर सूक्ष्म विषयत्वादेषां क्रमः पूर्वपूर्व हेतुकत्वाच्च" का है

(१) जन् दिवादि चौथेगण आत्मनेपदी अकर्मक धातु उत्पन्न होना अर्थ मे है सार्वधातुक प्रत्यय इ,से,ते इत्यादिकेपहिले इसका रुप जा हो जाता है य विकरणहै अन्ते प्रथमपुरुष वहुवचन आत्मनेपदी वर्तमान काल क्रिया का प्रत्यय है जा+य+न्ते हुआ प्रथम अ उस प्रत्यय के पहिले गिरजाता है जिस प्रत्यय के अ आरम्भमें हो इसलिये जा+अन्ते=जायन्ते ॥ जन्यते कर्मणि रुप है ॥ जायते प्रथमपुरुष एकवचन वर्तमानकाल आत्मनेपदी है ॥

न एते गुणप्रधानतया परस्परतन्त्राः सम्यग्दर्शनहेतवः पुरुषार्थक्रियासाधनसामर्थ्यात्तन्त्वादय इव यथोपायं विनिवेश्यमानाः पटादिसंज्ञाः स्वतन्त्राश्चासमर्थाः ॥

पुरुषार्थ क्रिया-साधनसामर्थ्यात् इव *	=पुरुषार्थरूप क्रियाके साधनरूप शक्तिसे जैसे
तन्तु आदयः यथा-उपायम् *विनिवेश्यमानाः	=सूतके तारआदिक यथायोग्य उपायद्वारा नियतकिये हुये वा पारेहुये
पटादि संज्ञाः च*	=वस्त्रादिक नाम पानेवाले होते हैं और (=च)
स्वतन्त्राः	=(सूतके) स्वतन्त्रतार अर्थात् परस्पर अपेक्षारहित न्यारे न्यारे तार
असमर्थाः न एते	=(वस्त्रादि नाम पानेवाले) नहीं होसक्ते हैं। (तैसे) न इतने (नय)
गुण प्रधानतया	=गौण मुख्यपनाकरि वा प्रधान अप्रधानरूपसे
परस्परतन्त्राः	=आपसमें सापेक्षरूप हुये वा परस्पर एकदूसरेके आधीन ना हुये (आश्रय)
सम्यग्दर्शन-हेतवः	=सम्यग्दर्शन [के उत्पन्न होने] का कारण होते हैं

[और यदि ये उक्त नय परस्पर अपेक्षारहित हों तो सम्यक्त्वके उत्पत्तिका कारण कदापि नहीं होसक्ते भिन्नभिन्नसूतके तारोंके सदृश कार्यकारी नहीं होते]

भावार्थ जिसप्रकार आपसमें एक दूसरेकी अपेक्षा रखनेवाले सूतकेतार जिस समय बुनजाते हैं उस समय उनकी पटादि संज्ञा हो जाती है और प्राणियोंके शीत निवारण उष्णनिवारण आदि प्रयोजनीय कार्योंके सिद्ध करने में समर्थ होजाते हैं किन्तु वेही तार जब भिन्न भिन्न रहते हैं तब किसी भी प्रयोजनीय कार्यको सिद्ध नहीं करसक्ते उसी प्रकार परस्पर सापेक्ष-आपसमें एक दूसरेकी अपेक्षा रखनेवाले और कहीं गौण तो कहीं प्रधानरूपसे विवक्षित हो नय सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके कारण हैं। यदि वे [नय] परस्पर सापेक्ष न होंगे तो भिन्न भिन्न वा न्यारे न्यारे सूतके तारोंके समान कभी भी कार्यकारी न होंगे और सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके कारण भी नहीं होंगे ॥

(१ गुण.- ज्ञान विनय आदि गुण तत्त्व आदि न करें प्र. शंसे अधिक अर्थोंमें य . शब्द आता है य. [illegible] ... (अध्याय १ सूत्र ३३)

(२ निरपेक्षा नया मिथ्या सापेक्षा वस्तु तेऽर्थकृत् देवागम १०८) परस्पर निरपेक्षनय मिथ्या व परस्पर सापेक्ष नय कार्यकारी हैं ॥

"तन्त्वादय इवेति विषम उपन्यासः । तन्त्वादयो निरपेक्षा अपि काञ्चिदर्थमात्रां जनयन्ति । भवति हि कश्चित्प्रत्येकं तन्तुस्त्वक्त्राणे समर्थः । एकश्च वल्वजो बन्धने समर्थः । इमे पुनर्नया निरपेक्षाः सन्तो न काञ्चिदपि सम्यग्दर्शनमात्रां प्रादुर्भावयन्तीति ॥" नैष दोषः । अभिहितानवबोधात् । अभिहितमर्थमनवबुध्य परेणेदमुपालभ्यते ।

"तन्त्वादय इव ··" इति* विषमः[१/१]। उपन्यासः[१/१]।	=(प्रश्न) "तन्त्वादय इव ··" ऐसा (उपर्युक्त) उदाहरण अनमेल है
तन्त्वादयः [१/३]। निरपेक्षाः [१/३]। अपि *	=(क्योंकि) तारादिक (एक दूसरेकी) अपेक्षारहित भी (एक तार दूसरे से भिन्न
काञ्चित्* (=कान्+चित्) अर्थ-मात्राम् [२/३]॥	=भिन्न रहने परभी) कोई एक (= काञ्चित्) प्रयोजनमात्राओंका (=अर्थमात्रान्)
जनयन्ति T कश्चित्* प्रत्येकम्* तन्तुः [१/१]।	=उत्पन्नकरतेहै । कोई एक (= कश्चित्) पृथक् पृथक् (=प्रत्येकम्) तार
त्वच् – त्राणे [७/१]॥ समर्थः [१/१]। भवति T हि*	=त्वचाके रक्षा करने में (अर्थात् सीवनें इत्यादि में) समर्थ होता ही (=हि) है
एकः [१/१]। च * वल्कजः [१/१]।	=और (=च) कोई एक (तार) जो वकलसे उपजाहै वा जन्माहै अर्थात् वकलका तार
बन्धने [७/१]॥ समर्थः [१/१]।	=(भार-मनुष्य आदिक के) बांधने में समर्थ है
पुनः * इमे [१/३]। नयाः [१/३]। निरपेक्षाः [१/३]। सन्तः [१/३]।	=बहुरि (=पुनः) ये (=इमे-परस्पर) अपेक्षारहित विद्यमान (=सन्तः) नय
काश्चित् * अपि * सम्यग्दर्शनमात्राम् [२/३]॥	=किन्हीं भी (=अपि) सम्यक्त्वकी मात्राओंको वा सम्यग्दर्शन के अंशोंको
न*प्रादुर्भावयन्ति । इति* । न * एषः [१/१]। दोषः [१/१]।	=प्रकाश वा प्रगट नहीं करती है ऐसी (शंकापर कहतेहै कि) यह दूषण नहीं है।
अभिहित–अनवबोधात् [५/१]। अभिहितम् [२/१]।	=कथितका बोध न होने (के हेतु) से (अर्थात्) कहे हुये के (=अभिहितम्)
अर्थम् [२/१]।अनवबुध्य—परेण [३/१]।इदम्* उपालभ्यते T	=तात्पर्य को न समझ करि प्रत्यर्थीसे (=परेण) यह उलहना दिया गया है

(१) भवति हि कश्चित्प्रत्येक तन्तुस्त्वक्त्राणे समर्थः = होता ही है कोई एक भिन्न भिन्न तन्तु त्वचाके रक्षाकरने (सीवने आदि) में समर्थ॥ प्रश्नकर्ता अपने प्रश्नकी दृढ़ता में पूर्णतया विश्वास करके शब्दों पर अत्यन्त बल देकर उपर्युक्त वाक्यको कहता है और इस गौरव उच्चारण में 'भवति हि' को प्रथम लाकर 'समर्थः' अन्त में लाता है अतः इस वाक्य का शब्दशः अनुवाद जो टिप्पणी में दिया है वही होगा।

(२) वल्क, वल्कल (पु०न०) वल्कुट (न०) = छाल, वल्कज, वल्कलज, वल्कुटज = छाल से उपजा, छालका, वल्व वा वल्वजकोशमें नहीं मिला अतः द्वितीया वृत्तिमें अशुद्ध छपगयाहै॥ (३) अन्-अवबुध्य, सवन्ध सूचक भूतकृदन्तहै। पर (पु०) शत्रुके अर्थमें है परतु यहां 'वादी'के अर्थमे आयाहै॥

एतदुक्तं निरपेक्षेषु तन्त्वादिषु पटादिकार्यं नास्तीति ॥ यत्तु तेनोपदर्शितं न तत्पटादिकार्यं, किं तर्हि केवलं तन्त्वादिकार्यं; तन्त्वादिकार्यमपि तन्त्वाद्यवयवेषु निरपेक्षेषु नास्त्येवेत्यस्मत्पक्षसिद्धिरेव ॥ अथ तन्त्वादिषु पटादिकार्यशक्त्यपेक्षया अस्तीत्युच्यते । नयेष्वपि निरपेक्षेषु बुध्यभिधानरूपेषु कारणवशात्सम्यग्दर्शन-

एतद् १ ॥। उक्तम् १ ॥। निरपेक्षेषु ७ ॥। तन्त्वादिषु ७ =यह कहा है (कि) परस्पर अपेक्षा रहित तारादिकों में
पट—आदिकार्यम् १ ॥। न* अस्ति I इति * =वस्त्रादिक कारज (अर्थात् वस्त्र—निवाड़—इत्यादि बुनने रूप कार्य) नहीं होता है
यत् १ ॥। (=यद् १ ॥।) तु* तेन ३ । उपदर्शितम् १ ॥। =और (=तु) जो (कार्य) तिस (तार) करि (वादीद्वारा) बतलाया गया है
न* तत् १ ॥। पटादिकार्यम् १ ॥। किंतर्हि* =वह वस्त्रादि कार्य नहीं है परन्तु (=किं तर्हि) वा किन्तु (=किं तर्हि)
केवलम् १ ॥। तन्त्वादिकार्यम् १ ॥।; तन्त्वादिकार्यम् १ ॥। =केवल तारा दिकोंको (न्याराही) कार्य है। तारादिकोंका (वादीद्वारा उपदर्शित) कार्य
अपि तन्त्वादि—अवयवेषु ७ । निरपेक्षेषु न अस्ति एव =भी तारादिकोंके अंशोमें परस्पर अपेक्षारहित ही (=एव) नहीं है
अर्थात् तारादिकोंका (वस्त्रादिक बुननेके कार्यसे न्यारा वादीद्वारा वर्णित) कार्य भी कितने ही धागे वा तार परस्पर यथा योग्य मिलतेहैं तभी होताहै अन्यथा नहीं ॥
इति* अस्मद्—पक्ष (=अस्मत्पक्ष)—सिद्धिः १॥ एव* =इस प्रकार हमारा (=अस्मद्) पक्ष (कि सापेक्ष ही कार्य उत्पन्न करते हैं परस्पर निरपेक्ष रहने पर कोई भी कार्य नहीं हो सक्ता) सिद्धि ही (=एव) है
अथ* तन्त्वादिषु ७ । पटादि— =प्रश्न (=अथ) (निरपेक्ष) तन्तु आदिक (के अवयवनि)में वस्त्रादिक (बुनेजाने) का
कार्यम् १ ॥। शक्ति-अपेक्षया ३ ॥ अस्ति I इति उच्यते I=कार्य शक्तिकी विवक्षा से है ऐसें कहिये है
निरपेक्षेषु ७ । अपि* बुद्धि— =(उत्तर) परस्पर अपेक्षारहित नयों में भी (उनके भिन्न भिन्न) ज्ञान और
अभिधान रूपेषु ७ । कारणवशात् ५ । सम्यग्दर्शन- =(उन के न्यारे न्यारे) नाम के कारण वशसे सम्यगदर्शन के

हेतुत्वपरिणतिसद्भावात् शक्त्याऽऽत्मनाऽस्तित्वमिति साम्यमेवोपन्यासस्य ॥

हेतुत्व–परिणति–सद्भावात् ५ । =कारणपनका विशेष रूप परिणमनके सद्भाव से
=शक्ति(=शक्त्या) रूप (=आत्मना) करि अस्तित्वहै-सर्वांश-निरपेक्ष नयों में भी उन के

शक्त्या ३ ॥ आत्मना ३ । अस्तित्वम् १ ॥। नाम और ज्ञान के कारण से सम्यक्त्व के कारण पनेको शक्तिरूप से अस्तित्व है

इति॥ उपन्यासस्य ६। =ऐसे दृष्टान्तकी (कि जैसे पुरुषके उद्योगसे तन्तु आदि परस्पर मिलने पर पटादि
वस्तुओंको उपजाते है वैसे ही उक्त सात नय परस्पर सापेक्ष होकर
=सम्यक्त्व को उपजातीहै। समानताही है (विषमता वा अनमेलता नहीं है) ॥

साम्यम् १ ॥। एव ॥ "अथ तन्त्वादिषु " न्यासस्य" वाक्य का तात्पर्यः—वादीको इस शंकापर

कि निरपेक्ष तंतुओं मे शक्तिकी अपेक्षा पटादि कार्य करनेकी सामर्थ्य है इस लिये निरपेक्षतंतु वस्त्रादि कार्य स्वरूप कहे जा सकतेह (तैसे नयों की निरपेक्ष रूप में शक्ति नहीं है) इस के समाधानमें कहते हैं कि निरपेक्ष नयोंका भिन्न भिन्न नाम और उन का न्यारा न्यारा ज्ञान भी सम्यग्दर्शकी प्राप्ति में कारण रूप शक्ति रखता ही है॥ इस लिये निरपेक्ष नय भी सम्यक्त्वके कारण बन सकते है इस रीति से दृष्टांत और दार्ष्टांत दोनों में समानता रहने से तंतुओंके उक्त उदाहरणको विषम वा अनमेल उदाहरण बतलाना असंगत है ॥

ध्यान रहै कि यथार्थ में किसी अभिप्राय विशेपको नय कहते है जितने अभिप्राय हो सकतेहैं उतने ही नय कहे जा सक्ते है अंतः अभिप्रायो के भेद अनंत होने से नयवाद भी अनंत हैं। वे स्थूल रूपसे परिगणत किये जाते हैं इसलिये संख्याते नय है ॥

(१) जिस पदार्थको जाना जाताहै वह विषयहै और जिसके द्वारा जाना जाताहै वह विषयीहै। निक्षेप विषय है नय विषयी है। नाम स्थापना–द्रव्य निक्षेप द्रव्यार्थिक नयके विषय भूतहैं अर्थात् ग्रहण किये जातेहैं और भाव निक्षेप पर्यायार्थिक नयका विषय भूत है॥ समभिरूढ नय और एवभूतके अन्तर वा भेदकेलिये देखो पृष्ठ५००॥अतीत अनागत दोनो पर्यायोंको छोड़कर वर्तमान पर्यायोंको ग्रहणकरै सो ऋजु सूत्रनयहै। वह सूक्ष्म ऋजुसूत्र-और स्थूलऋजु सूत्रसे दो भेद रूपहै॥ एक समय वर्ती पर्याय जो अवाच्यहै और जिसको अर्थ पर्याय कहतेहैं (क्योंकि वस्तु समय समय परिणमैहै)सूक्ष्म ऋजुसूत्र नयका विषयहै॥और एक पर्यायके आरम्भसेअंत तक ग्रहण करै सो स्थूल ऋजुसूत्रहै जैसे मनुष्यादि पर्यायहैसो अपने अपने आयु परिमाण रहती है॥ ऋजुसूत्र नय और समभिरूढनय मे भेद यह है कि ऋजुसूत्रनय वर्तमान उक्त पर्यायोंको ही ग्रहण करता है॥

ज्ञानदर्शनयोस्तत्त्वं । नयानां चैव लक्षणम् ॥ ज्ञानस्य च प्रमाणत्व- । मध्यायेऽस्मिन्निरूपितम् ॥ १ ॥ ॥ इति तत्त्वार्थवृतौ सर्वार्थसिद्धिसञ्ज्ञायां प्रथमोऽध्यायः ॥

ज्ञानदर्शनयोः ६॥ तत्त्वम् १॥ नयानाम् ६। च *	=ज्ञान और दर्शनका यथार्थ स्वरूप वा ज्योंकात्यों स्वरूप और(=च) नयोंका
एव * लक्षणम् १॥ ज्ञानस्य ६॥ च *प्रमाणत्वम् १॥	=ही (=एव) लक्षण, और (=च) (पांच) ज्ञानके प्रमाणता (ज्ञान को ही प्रमाणता सिद्ध करना)
अध्याये ७। अस्मिन् ७। निरूपितम् १॥ ॥१॥	=इस (प्रथम) अध्याय में वर्णन कियेगये है ॥ दोहा, "दर्शन बोध यथार्थता नयलक्षण वरणाय ॥ ज्ञान पंचके मानता। कही आदि अध्याय" जय०२२१
इति * सर्वार्थसिद्धिसञ्ज्ञायाम् ७॥	=इस प्रकार सर्वार्थ सिद्धिनाम (ग्रन्थ) में
तत्वार्थ-वृतौ ७॥ प्रथमः १। अध्यायः १।	=तत्त्वार्थके विवरण में पहिला अध्याय (समाप्त वा पूर्ण) हुआ

परन्तु समभिरूढनय उस शब्द से प्रगट होने वाले अर्थको ही ग्रहण करताहै जैसे ऋजुसूत्रनय उत्पन्न होने से मरण पर्यन्त इन्द्र पद धारण करने वाले शची पतीको इन्द्र कहताहै परन्तु समभिरूढनय इन्दन शील ऐश्वर्यवान होनेहुये कोही इन्द्र कहताहै इन्द्र जिस समय पूजा करता है उस समय ऋजसूत्रनय से इन्द्र है परन्तु समभिरूढ नय से इन्द्र नहीं है ॥

ऋजु सूत्र और एवम्भूतनया में यह अन्तरहै कि ऋजु सूत्र नय वस्तुकी वर्तमान कालकी पर्याय को ग्रहण करताहै परन्तु एवम्भूतनय जिस कालमें जो क्रिया करता हो वा क्रिया कर रहा हो उसको उस काल में उसी नाम से प्रगट करताहै वा कहताहै जैसे ऋजु सूत्र नय उत्पन्न होने से मरण पर्यंत इन्द्र पद धारण करने वाले शची पतिको इन्द्र कहताहै चाहे वह किसी समय कोई भी कार्य कर रहा हो परन्तु एवम्भूतनय देवों के पतिको परम ऐश्वर्य सहित हो उसी अवस्था में इन्द्र कहताहै पूजन, अभिषेकादि करते हुये को इन्द्र नहीं कहेगा इसी प्रकार जिस समय वह शक्तिरूप क्रिया को करे उसी समय शक्र कहेगा अन्य समय में शक्र नहीं कहेगा। न इन्द्र कहेगा जब कि वह शक्ति रूप क्रिया कर रहा हो ॥

( ) ऋजसूत्र–समभिरूढ और एवम्भूत नयों में यह अन्तरहै कि ऋजु सूत्रनय वस्तुकी एक समय मात्र पर्यायको अथवा आरम्भसे अन्त तक एक पर्यायका ग्राही है, सम्भिरूढनय नाना अर्थको उलंघन करके जो एक ही अर्थ में रूढ (प्रसिद्ध) हो उसका ग्राही है परन्तु एवम्भूतनय जो जिस समय जो क्रिया कर रहा हो उसको उस कालमें उस क्रिया ही के सवध वा सयोग से प्रगट करता है जैसे गाय पर्याय लीजिये तो ऋजुसूत्रनय जन्म से लेकर मरण पर्यंत उसको गाय समझताहै। सम्भिरूढनय गाय शब्दके पृथिवी माता वचन इत्यादि अनेक अर्थोंको छोडकर जिसमें चलने को शक्ति हो ऐसे गाय (पशु) को लेताहै वह चलती हो बैठी हो सोती हो खारही हो सब अवस्था में सम्भिरुढनयकी अपेक्षा से वह गाय (पशु)ही है परन्तु एवम्भूतनय जिस समय वह चले फिरै उस समय गाय कहैगी सोते बैठी हुई को गाय न कहैगी चाहे उसमें चलने फिरनेकी शक्ति हो परन्तु उस समय चलती फिरती नहो तो एवम्भूत उसका गाय नहीं कहैगा ॥

श्री मत्पूज्यपादाचार्य विरचिता

सर्वार्थसिद्धवृत्तिः

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित शब्दशः हिन्दीअनुवाद समेत

द्वितीय अध्याय से पंचम अध्याय पर्यंत

अनुवादक और संपादक— जगरूप सहाय एल० एल० बी० वकील हाईकोर्ट

भूतपूर्व मुंसिफ (यू०पी०) डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट एन्ड सबोर्डीनेट जज (सी०पी०)

प्रकाशक—लाला महेशचन्द्र जैन, श्री उमास्वामी आफिस, मैनगंज, एटा (संयुक्त प्रांत)

मिती मगसिरशुक्ला अष्टमी, वीर संवत् २४५४, विक्रम संवत् १९८४ न्योछावर रुपये ८)

प्रथमवार १०००



जगरूपसहाय जैन एल. एल. बी.
अनुवादक और संपादक,
सर्वार्थसिद्धिवृत्तिः॥ वीर संवत् २४५४

इस ग्रन्थको

स्वर्गीया पूज्य माताजी,

श्रीमती डालकुंवर बाई

—अवतरण १९०२ उत्तरण विक्रम सम्वत् १९३३—

की,

आत्मशान्त्यर्थ स्मारकरूपमें

नतमस्तक जगरूपसहायने

समर्पण किया ॥ वीर सम्वत् २४५४ ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः॥ आह सम्यग्दर्शनस्य विषयभावेनोपदिष्टेषु जीवादिष्वादावुपन्यस्तस्य जीवस्य किं स्वतत्त्वमित्युच्यते—

॥ औपशमिकक्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्त्वमौदयिकपारिणामिकौ च ॥ १ ॥

अथ * द्वितीयः१ अध्यायः१ आह I सम्यग् दर्शनस्य६	=दूसरा अध्याय प्रारम्भ (अथ) है। (शिष्य) पूछता है कि सम्यग् दर्शनका
विषयभावेन ३ उपदिष्टेषु ७ जीवादिषु ७	=विषयभावकरि उपदेश किये गए जीवादिक तत्त्वों के
आदौ ७ उपन्यस्तस्य ६ जीवस्य ६ स्वतत्त्वम् १	=आदि में कहेगये (उपन्यस्तस्य) जीवका निजभाव (स्वतत्व)
किम् * इति * उच्यते I	=क्या है ऐसा (अग्रिमसूत्रमें) कहा जाता है कि,

औपशमिकक्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्त्वमौदयिकपारिणामिकौ च ॥ १ ॥

औपशमिकक्षायिकौ १ भावौ १ मिश्रः १ च *	=औपशमिकभाव, और क्षायिक भाव और क्षायोपशमिक (भाव)
जीवस्य६ स्वतत्वम्१ औदयिक पारिणामिकौ१ च *	=जीव के निज भाव वा निज स्वभाव हैं औदयिक तथा पारिणामिक भी है

अर्थात् जीव के औपशमिक और क्षायिक और मिश्र तथा औदयिक और पारिणामिक ये पांच भाव है। और ये पांचौ ही भाव जीव के निजतत्व निजभाव है क्यों कि ये जीव में ही होते है? जैसे मलिन जल में निर्मली वा फिटकड़ी डालने से कीचड़ नीचे बैठ जाती है और ऊपर से जल निर्मल हो जाता है उसी प्रकार कर्मों के उपशम होने से (उदय न होने से) जीव के परिणाम जो शुद्ध हो जाते हैं उनको औपशमिक भाव कहते है। कर्मोंके सर्वथा नाश होने से जो आत्मा के शुद्धभाव होते हैं। उनको क्षायिक भाव कहते है। सर्वघाती कर्मों के उदयाभावीक्षय और उन्ही सर्वघातीस्पर्द्धकोंका सत्तामें उपशम होने तथा देशघाती कर्मोंके उदय होने से जो भाव होते हैं उनको मिश्र भाव अथवा क्षायोपशमिक भाव कहते हैं। द्रव्यक्षेत्र काल भाव रूप निमित्तसे कर्म जो अपना रस (फल) देता है उसको उदय कहते हैं। उन कर्मों के उदय से जो आत्माकेभाव होते हैं उनको औदयिक भाव कहते हैं। और जिन भावो में कर्मों की उदय उपशम क्षयोपशम कुछ भी अपेक्षा नहीं है उन भावोंको पारिणामिक भाव कहते हैं

आत्मनि कर्मणः स्वशक्तेः कारणवशादनुद्भूतिरुपशमः। यथा कतकादिद्रव्यसम्बन्धादम्भसि पङ्कस्य उपशमः॥ क्षयः आत्यन्तिकी निवृत्तिः॥ यथातस्मिन्नेवाम्भसि शुचिभाजनान्तरसंक्रान्ते पङ्कस्यात्यन्ताभावः॥ उभयात्मको मिश्रः। यथा तस्मिन्नेवाम्भसि कतकादिद्रव्यसम्बधात्पङ्कस्य क्षीणाक्षीणवृत्तिः॥ द्रव्यादिनिमित्तवशात्कर्मणां फलप्राप्तिरुदयः॥ द्रव्यात्मलाभमात्रहेतुकःपरिणामः॥

पदच्छेद और विभकत्यर्थ सहित प्रथम सूत्रपर संस्कृत सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिंदी अनुवाद॥

आत्मनि ७।१ कर्मणः ६।१ स्वशक्तेः ६।१ कारणवशात् ५।१ =आत्मा में कर्म की निज सामर्थ्य के निमित्त के वश से वा आश्रय से
अनुद्भूतिः १।१ उपशमः १।१ यथा * कतकादिद्रव्यसम्बन्धात् ५।१ =उदय न होना(सो)उपशम है। जैसे निर्मली आदिक वस्तु के संयोग से
अम्भसि ७।१ पङ्कस्य ६।१ उपशमः१।१ =जलमें कीचका शान्ति वा समता होना अर्थात् कीचड़ का नीचे बैठ जाना ऊपर से जल का निर्मल होना सो उपशम है

क्षयः १।१ आत्यन्तिकी १।१ निवृत्तिः १।१॥ =कर्मोंका अन्यंत नाश सो क्षय है (कर्मका सत्ता से उठजाना सो क्षय है)
यथा*तस्मिन् ७।१ एव*अम्भसि ७।१ शुचिभाजनान्तरसंक्रान्ते ७।१ =जैसे उसी जल को निर्मल अन्य पात्र में लेनेपर
पङ्कस्य ६।१ अत्यन्तअभावः१।१ उभयआत्मकः१।१ मिश्रः १।१ =कीचड़ का अत्यन्त अभावहोजाताहै। उपशम क्षयका मिलाहुआस्वरूप मिश्रहै
यथा* तस्मिन् ७।१ अम्भसि ७।१ कतकादिद्रव्यसंबन्धात् ५।१ =जैसे उसी जल में निर्मली आदि वस्तु के सयोग से
पङ्कस्य ६।१ क्षीण–अक्षीण वृत्तिः १।१॥ =कर्दम की क्षीण अक्षीण स्थिति होजाती है अर्थात् कुछ कीचड़ पैंदे में बैठ जातीहै कुछ गदली रह जाती है। कुछ बाहर निकल जाती है

(तैसे क्षयोपशम है) भावार्थ कोदों एक जाति का धान्य विशेष है वह मादक पदार्थ है। जिस समय उसे जल से धो दिया जाता है उस समय धोने से कुछ मादकशक्तिके क्षीण हो जाने पर और कुछ के तदवस्थ रहने पर जिस प्रकार कोदो पदार्थ मिश्र मादक शक्ति का धारक कहा जाता है। उसी प्रकार कर्मो के क्षय करने वाले कारणों के उपस्थित होने पर कर्म की कुछ शक्ति के नष्ट हो जाने पर और कुछ के सत्ता में मौजूद रहने पर एव कुछ के उदय रहने पर जो आत्मा की (दही गुड़ के समान) मिली हुई भावों की अवस्था होती है उस अवस्था का नाम मिश्र है॥

द्रव्यआदिनिमित्तवशात् ५।१ कर्मणाम् ६।३ फल प्राप्तिः १।१ =द्रव्य क्षेत्र काल भाव के कारण वश से कर्मो के रसका लाभ
उदयः१।१ द्रव्यात्म लाभमात्र-हेतुकः१।१ परिणामः १।१ =सोउदय है वस्तुकेनिजस्वरूप(आत्म)की प्राप्तिमात्रमेंनिमित्तकसोपरिणामहै

उपशमः प्रयोजनमस्येत्यौपशमिकः । एवं क्षायिकः, क्षायोपशमिकः, औदयिकः, पारिणामिकश्च ॥ त एते पञ्च भावा असाधारणा जीवस्य स्वतत्त्वमित्युच्यन्ते ॥ सम्यग्दर्शनस्य प्रकृतत्वात्तस्य त्रिषु विकल्पेषु औपशमिकमादौ लभ्यत इति तस्यादौ ग्रहणं क्रियते । तदनन्तरं क्षायिकग्रहणं तस्य प्रतियोगित्वात्

अर्थात् जिससे द्रव्य के निज का पावना होय सो पारिणामिक है।

उपशमः१ प्रयोजनम् १।।। अस्य६। इति*औपशमिकः१।=उपशम है प्रयोजन जिसका ऐसा औपशमिक है।

एवम्*क्षायिकः१। क्षायोपशमिकः१। औदयिकः१। =उसी प्रकार क्षायिक, क्षायोपशमिक औदयिक

परिणामिकः१।च* =और पारिणामिक है अर्थात् इन सब में प्रयोजन अर्थ में इक् प्रत्यय है।

ते १। एते १। पञ्च १। भावाः१। असाधारणाः१।जीवस्य६। =ये पांचों भावअसाधारण जीवके अर्थात् जीव हीमें होतेहैं अन्यकिसीमेंनहींहोतेहैं

स्वतत्त्वम् १।।। इति * उच्यन्ते T =निज भाव है ऐसे कहेगये हैं।

सम्यग्दर्शनस्य ६।।। प्रकृतत्वात् ५।।। तस्य ६।।। त्रिषु ७। =सम्यग्दर्शन का प्रकरण वा अधिकार होने से तिससम्यग्दर्शन के तीन

विकल्पेषु ७। औपशमिकम् १।।। आदौ ७। लभ्यते T =भेदोंमें औपशमिक आदि में वा पहिले प्राप्त किया जाता है

इति तस्य ६।।। आदौ ७। ग्रहणम् १।।। क्रियते T =इस प्रकार तिस (औपशमिक) का सूत्र में प्रथम आदान(ग्रहण) किया गया है

अर्थात् अनादि मिथ्यादृष्टि जीव के प्रथम ही उपशम सम्यक्त्व होता है इस लिए सूत्र में पहिले वही कहा गया है

तदनन्तरम् १।।। क्षायिक ग्रहणम् १।।। तस्य ६।।। =तिस(औपशमिक)के अत्यन्त समीप क्षायिकका ग्रहणहै क्योंकि तिसऔपशमिककी

प्रतियोगित्वात् ५।।। =(निर्मल ताई में)प्रतियोगी है बराबरी होड़ वा स्पर्द्धा करने वाला क्षायिक है

भावार्थ मिथ्यात्व,सम्यङ् मिथ्यात्व और सम्यक प्रकृति मिथ्यात्व ये सम्यग्दर्शन की विरोधी प्रकृतिये हैं इन तीनों के सर्वथा नाश होने पर क्षायिक सम्यक्त्व होता है अतः क्षायिक सम्यक्त्व की विशुद्धता उपशम सम्यक्त्व की विशुद्धता से अधिक है इस लिए सूत्रमें औपशमिक के पश्चात् क्षायिक का ग्रहण किया है।

---

(१) लभ् –इह भ्वादि प्रथम गण का सकर्मक आत्मने पदी धातु है कर्मणि प्रधान प्रयोग में यक् (=य) प्रत्यय जोड़ कर ते अन्य पुरुष एकवचन आत्म० वर्तमान काल के प्रत्यय ने से लभ्यतेबना है।

संसार्यपेक्षया द्रव्यतस्ततोऽसंख्येयगुणत्वाच्च । तत उत्तरं मिश्रग्रहणं तदुभयात्मकत्वात्ततोऽसंख्येय गुणत्वाच्च । तेषां सर्वेषामनन्तगुणत्वादौदयिकपारिणामिकग्रहणमन्तेक्रियते ।

संसार्यपेक्षया ।" द्रव्यतः * ततः* असंख्येय गुणत्वात्;" च	=और संसारी जीव की विवक्षाकरि द्रव्य अपेक्षासे तिस औपशमिक-वाले जीव से (क्षायिक वालेजीव) असंख्यात गुणेभी हैं
ततः* उत्तरम् ।" मिश्र ग्रहणम् ।" तदुभयात्मकत्वात् ।"	=तिस(क्षायिक)सेपीछे (=उत्तरम्)मिश्रका ग्रहणहैवोक्षायोपशमिकाग्रहणहै क्योंकि उस (मिश्र) के दोनों (क्षायिक और उपशम) स्वरूप हैं
ततः * असंख्येयगुणत्वात् ।" च *	=और उस (क्षायिक) से असंख्यात गुणे जीव भी हैं।
तेषां ।' सर्वेषाम् ।' अनन्तगुणत्वात् ।"	=तिन सब(औपशमिक क्षायिक, मिश्र) के अनन्त गुण (जीव) होने से
औदयिक-पारिणामिक-ग्रहणम् ।" अन्ते।' क्रियते ।	=औदयिक पारिणामिक का ग्रहण अन्त में किया गया है

(१) उपशम सम्यक्त्व का काल अन्तर मुहूर्त मात्र है तिस में जीव अल्प ही इकट्ठे होने पाते हैं और क्षायिक सम्यक्त्व का काल तेतीस सागर से कुछ अधिक है अर्थात् उपशम से क्षायिक काल असंख्यात गुणा है। तिस से उस में जीवों की संख्या भी असंख्यात गुणी हुई। क्षायोपशमिक का काल छयासठ सागर है तिस से क्षायिक सम्यग् दृष्टियों से द्रव्य अपेक्षा से क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि असंख्यात गुणे हैं। स्मरण रहे कि क्षायिक सम्यग्दृष्टियों से क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि द्रव्य की अपेक्षा असंख्येय गुणे हैं भाव की अपेक्षा नहीं क्योंकि विशुद्धि की अधिकता से क्षायोपशमिक सम्यक्त्व की अपेक्षा क्षायिक सम्यक्त्व अनन्त गुणा माना है इस लिए भाव की अपेक्षा क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि क्षायिक सम्यग्दृष्टियों से असंख्यात गुणे नहीं माने जा सकते। तथा क्षायोपशमिक सम्यक्त्व का संचय काल छयासठ सागर प्रमाण है और उस में प्रथम समय से आदि लेकर समय समय काल की समाप्ति पर्यंत इकट्ठे होने वाले बहुत से क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि होते रहते हैं इस लिए यहां पर भी आवली के असंख्यातवें भाग प्रमाण गुणा कार मानने से क्षायिक सम्यग्दृष्टियों की अपेक्षा क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि उस गुणकार प्रमाण हैं। इस प्रकार क्षायिक की अपेक्षा क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टियों के अधिक होने से सूत्र में क्षायिक के पीछे मिश्र शब्द का उल्लेख है। (प० जयचन्द वचनिका२२४)

अत द्वन्द्वनिर्देशः कर्तव्यः । औपशमिकक्षायिकमिश्रौदयिकपारिणामिका इति। तथा सति द्विश्चशब्दो न कर्तव्यो भवति ॥ नैवं शंक्यम् । अन्यगुणापेक्षया मिश्र इति प्रतीयेत । वाक्ये पुनः सति चशब्देन प्रकृतोभयानुकर्षः कृतो भवति ॥

अतः ※ द्वन्द्व निर्देशः १। कर्तव्यः १। औपशमिक-	=(प्रश्न) अतः द्वन्द्व समासका उच्चारण(=निर्देश)करना चाहिये। औपशमिक
क्षायिकमिश्रऔदयिकपारिणामिकाः १॥ इति ※	=क्षायिकमिश्रऔदयिकपारिणामिका ऐसा (सूत्र) होता
तथा ※ सति १। द्विः १। च शब्दः १। न कर्तव्यः १। भवति T	=ऐसा होने पर दो 'च' शब्द न करने होते अर्थात् सूत्र मे दो चकार न्यूनहोजाते
न एवं शंक्यम् १॥ — अन्य गुण-	=(उत्तर) एसी शंका न करो (औपशमिक और क्षायिकसे)अन्य (दो)भावोंकी
अपेक्षया ३॥ मिश्रः१। इति प्रतीयेत I	=अपेक्षासे मिश्र ऐसा निर्णय वा प्रतीति कियाजाय
	(यदि मिश्र शब्द के पश्चात् सूत्र में च शब्द न होता तो)
वाक्ये ७॥ पुन ※ सति ७॥ च ※ शब्देन ३।	=और "चशब्द" सहित सूत्र (=वाक्ये) होने पर (=सति)
प्रकृतः१। उभयानुकर्पः १। कृतः १। भवति T	=अधिकार किये गये वा विषयभूत दोनों(औपशमिक क्षायिक)का ग्रहणकियाहै

इस समस्तप्रश्नोत्तरकाभाव यहहै(प्रश्न)सूत्रकारने'औपशमिक क्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वातत्वमौदयिक पारिणामिकौ च' ऐसा पढा है परन्तु उतने लम्बे चोड़े सूत्रके स्थान पर 'औपशमिक क्षायिक मिश्रौदयिक पारिणामिकाः' ऐसा सूत्र वनाना ठीक था। ऐसे सूत्र के वनाने में दो जगह दो च शब्द कहने पड़े हैं वे भी न कहने पड़ते वड़ा भारी लाघव होता जोकि सूत्र कारो के मत में महान लाभ माना गया है इसलिए वैसा लम्बा चौड़ा सूत्र नही वनाना चाहिए (उत्तर) औपशमिक क्षायिकौ भावौ मिश्रश्चेत्यादि जैसा सूत्र कार ने सूत्र पढ़ा है उस में च शब्द से पहिले कहे गये औपशमिक और क्षायिक भावों का अनुकर्षण होता है और उस से औपशमिक और क्षायिक भावों की मिली हुई अवस्था मिश्रभाव लिया जाता है किंतु अब वैसा सूत्र न कह कर यदि औपशमिक क्षायिक मिश्रेत्यादि द्वंद्वगर्भित सूत्र किया जायगा तो च शब्द के अभाव में औपशमिक और क्षायिक का अनुकर्षण न होने पर औपशमिक और क्षायिक की मिली हुई अवस्था तो मिश्र भाव कही नहीं जायगी ॥

प्रतीयेत। प्रति उपसर्ग है। इ=अदादिगणका धातु जाना अर्थ में है प्रति+इ=प्रती, कर्मणि प्रधानका य जोड़ कर और विधिलिङ्ग अन्य पुरुष एक वचन आत्मने पदी ईत प्रत्यय जोड़ कर प्रती+य+ईत=प्रतीयेत रूप वना जिस का अर्थ " जानाजाय " है

नहिं क्षायोपशमिकग्रहणमेव कर्तव्यमिति चेन्न। गौरवात्॥मिश्रग्रहणं मध्ये क्रियते उभयापेक्षार्थम्। भव्यस्य औपशमिकक्षायिकौ भावौ। मिश्रः पुनरभव्यस्यापि भवति औदयिकपारिणामिकाभ्यां सह भव्यस्यापीति ॥

किंतु उनसे भिन्न अन्य ही दो भावों की मिली हुई अवस्था मिश्र कही जायगी जोकि विरुद्ध है इसलिए द्वंद्वगर्भित सूत्र न कहकर जैसा सूत्रकार ने सूत्र बनाया है वही ठीक है और उसमें च शब्दसे औपशमिक और क्षायिक भावों की मिली हुई अवस्था ही से मिश्रभाव का अर्थ लिया जासकता है अन्य का नहीं।

तर्हिक्षायोपशमिकग्रहणम् ।॥एव कर्तव्यम् ।॥इति चेत्	=(प्रश्न)तो(सूत्र में) क्षयोपशमिक (शब्द)का ग्रहण ही करना चाहिए ऐसी शंका है
न *	=(उत्तर)(मिश्र शब्द के स्थान में क्षायोपशमिक शब्द का ग्रहण)(नहीं करना चाहिए)
गौरवात् ।॥ मिश्रग्रहणम् ।॥ मध्ये ।	=क्योंकि (सूत्र) गौरव होजाता या बढ़जाता। मिश्र(शब्द) का आदान बीचमें
उभयापेक्षार्थम् ।॥ क्रियते भव्यस्य ।	=दोनों (पहिले पिछले) की विवक्षाके लिए कियागया है। भव्य(जीव) के
औपशमिकक्षायिकौ । भावौ ।	=औपशमिक क्षायिक (दोनों) भाव हैं
मिश्रः । पुनः*अभव्यस्य । अपि भवति	=बहुरि मिश्र(भाव) अभव्य के भी होता है
औदयिकपारिणामिकाभ्याम् ।सह*भव्यस्य ।	=औदयिक पारिणामिक(भावों) सहित भव्य(जीव)
अपि इति	=भी है(अभव्य भी है)

तीनों वाक्यों की व्याख्या ऐसे है कि औपशमिक और क्षायिक यह युग्म और औदयिक एवं पारिणामिक यह युगल,इन दोनों युगलोंके बीचमें मिश्र भाव पाठ रक्खा है ऐसा करनेसे इतना ही प्रयोजन समझ लेना चाहिए कि भव्यके औपशमिक आदि पांचों भाव होते हैं अर्थात्(१)औपशमिक सम्यक्त्व औपशमिक चारित्र (२)क्षायिक सम्यक्त्व और क्षायिक चारित्र(३)क्षायोपशमिक सम्यक्त्व और ज्ञान एवं क्षायोपशमिक चारित्र(४)औदयिक और(५) पारिणामिक ये पांचों भाव भव्यकेही होते हैं और अभव्यों के क्षायोपशमिक औदयिक और पारिणामिक ये तीन ही भाव होते है। औपशमिक और क्षायिक ये दो भाव अभव्यके नहीं होते हैं

भावापेक्षया तल्लिङ्गसंख्याप्रसङ्गः स्वतत्त्वस्येति चेन्न । उपात्तलिङ्गसंख्यात्वात् ॥ तद्भावस्तत्त्वम् । स्वं तत्त्वं स्वतत्त्वमिति ॥ अत्राह तस्यैकस्यात्मनो ये भावा औपशमिकादयस्ते किं भेदवन्त उताभेदा इति । अत्रोच्यते भेदवन्तः । यद्येवं, भेदा उच्यन्तामित्यत आह—

क्षायोपशमिक भावों में भी ज्ञान और दर्शन दो ही भाव होसकते हैं ज्ञान दर्शन से मिथ्या ज्ञान और मिथ्या दर्शन समझना चाहिये क्योंकि सम्यग्दर्शन के बिना सम्यग्ज्ञान आदि नहीं होते ॥

भावापेक्षया॥ तत् ॥ लिङ्ग संख्या–प्रसङ्गः । =(प्रश्न)भाव(शब्द)की अपेक्षासे उस(भावशब्दके लिङ्ग और संख्या का संयोग

स्वतत्वस्य ॥ इति चेत्* =स्वतत्व (शब्द) के होता है ऐसी शंका है (=चेत्)

प्रश्न का भावार्थ यह है कि भावशब्द पुल्लिङ्ग है इसलिए स्वतत्व शब्द भी पुल्लिङ्ग चाहिए और भावों की गणना बहुत है इसलिए स्वतत्व शब्द के भी बहु वचन चाहिए, स्वतत्व शब्द नपुंसकलिङ्ग और एक वचन है सो न चाहिए

न*उपात्तलिङ्ग संख्यात्वात् ॥ =(उत्तर)नहीं होता॥क्योंकि (स्वतत्व शब्द के) गृहीतलिङ्ग संख्या है अर्थात् स्वतत्व शब्द की लिङ्ग और संख्या पलटती नहींहै यह भाववाची होनेसे एक वचन और नपुंसकलिङ्ग होता है ॥

तद्भावः॥तत्वम् ॥ स्वम् ॥ तत्वम्॥स्वतत्त्वम् ॥इति=जिसका भाव सोतत्वहै । निजभाव(सो)स्वतत्व ऐसे (स्वतत्व शब्दकी व्युत्पत्तिहै)

अत्र*आह।तस्य। एकस्य। आत्मनः । =यहां (शिष्य)पूछता है (कि)उस एक चेतन के

ये । भावाः॥औपशमिक आदयः॥ते किम् भेदवन्तः=ये (पांच)भाव औपशमिक आदिक हैं ते भेद सहित हैं

उत॥*अभेदाः॥इति*अत्र*उच्यते।भेदवन्तः॥ =अथवा (=उत) भेद रहित हैं(उत्तर) यहां कहा जाता है कि भेद सहित हैं

यदि*एवम् भेदाः॥उच्यताम्।इति॥अतः* आह । =(प्रश्न) जो ऐसे हैं (तो उनके) भेद कहा जाना चाहिये। अतः कहते हैं कि

॥ द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदा यथाक्रमम् ॥२॥

द्वयादीनां संख्याशब्दानां कृतद्वन्द्वानां भेदशब्देन सह स्वपदार्थेऽन्यपदार्थे वा वृत्तिर्वेदितव्या ॥

द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदा यथाक्रमम् ॥२॥

=औपशमिकादीनां भावानां द्विनवाष्टादशैक विंशति त्रिभेदा यथाक्रमम् भवन्ति ॥२॥

पदच्छेद =औपशमिकादीनां भावानां द्वि–नव–अष्टादश–एकविंशति – त्रिभेदाः यथाक्रमम् भवन्ति

सूत्रार्थ =औपशमिकादीनाम् ६। भावानाम् ६। =औपशमिक क्षायिक मिश्र औदयिक पारिणामिक भावों के

द्विनव–अष्टादश–एकविंशति–त्रिभेदाः १। =दो, नव, अठारह इक्कीस और तीन भेद

यथाक्रमम् * भवन्ति T =अनुक्रम से होते हैं अर्थात् औपशमिक भाव दो प्रकार का है क्षायिक भाव नव प्रकार का है मिश्र भाव अठारह प्रकार का है औदयिक भाव इक्कीस प्रकार का है और पारिणामिक भाव तीन प्रकार का है

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित द्वितीय सूत्र पर संस्कृत सर्वार्थसिद्धिवृत्ति का शब्दशः हिन्दी अनुवाद

द्वयादीनाम् ६। संख्याशब्दानाम् ६। कृतद्वन्द्वानाम् ६। =दो आदिक गिनती शब्दों का बनाहुआ द्वन्द्व समास (कृतद्वन्द्वानांवृत्ति) भेदशब्देन ३। सह * स्वपदार्थे ७। अन्यपदार्थे ७। वा * =और भेद शब्द के सहित (=सह) स्वपदार्थ में अथवा अन्य पदार्थ में वृत्तिः १। वेदितव्या १॥ =वृत्ति जानना योग्य है भावार्थ दो नव अठारह आदि संख्याओं का द्वन्द्व =समास और सूत्रमेंभेदशब्दके स्वपदार्थ वृत्ति वा अन्यपदार्थवृत्ति जानना

इस सूत्र का दोनों श्वेताम्बर आम्नाय और दिगम्बर आम्नाय में पाठ और अर्थ एकसा है।

द्वौ च नव च अष्टादश च एकविंशतिश्च त्रयश्च द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रयस्त एव भेदा येषामिति वा वृत्तिर्द्वि नवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदा इति ॥ यदा स्वपदार्थे वृत्तिस्तदा औपशमिकादीनां द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रयो भेदा इत्यभिसम्बन्धः क्रियते अर्थवशाद्विभक्तिपरिणाम इति ॥ यदाऽन्यपदार्थे वृत्तिस्तदा निर्दिष्टविभक्त्यन्ता एवाभिसम्बध्यन्ते । औपशमिकादयो भावा द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदा इति ॥ यथाक्रमवचनं यथासंख्यप्रतिपत्त्यर्थम् ॥ औपशमिको द्विभेदः। क्षायिको नवभेदः मिश्रोऽष्टादशभेदः। औदयिक एकविंशतिभेदः। पारिणामिकस्त्रिभेदः

द्वौ। च*नव। च*अष्टादश। च*एकविंशतिः॥ च	=बहुरि दो और नव तथा अठारह और इक्कीस
त्रयः।च*द्विनवअष्टादशैकविंशतित्रयः।	=और तीन दो–नव–अठारह इक्कीस और तीन(ये द्वन्द्ववृत्तिवा द्वन्द्वसमासहुआ)
ते। एवभेदाः। येषाम्। इति*वा*वृत्तिः॥	=तेही हैं भेद जिनके ऐसी (अन्यपदार्थवृत्ति हुई) अथवा
द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदाः। इति*	=दो–नव–अठारह-इक्कीस तीन भेद ऐसे हैं (येस्वपदार्थवृत्ति हुई)
यदा*स्वपदार्थे।वृत्तिः॥तदा*औपशमिकआदीनाम्।	=जब स्वपदार्थमें वृत्ति है तब औपशमिक आदिकों के
द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रयः।भेदाः।	=दो–नव–अठारह इक्कीस–तीन भेद हैं
इति अभिसम्बन्धः। क्रियते ।	=ऐसा सम्बन्ध किया गया है (अर्थात् भेद शब्द संख्याही का सम्बन्धी हुआ और पांचों भावों का बहुवचन षष्ठीविभक्ति करि कहना जो ये भेद पांच भावों के हैं
अर्थवशात्। विभक्ति परिणामः। इति*	=अर्थ के आधारसे वा प्रयोजन के आश्रय से विभक्ति का भिन्नपनावा परिणमन है
यदा*अन्यपदार्थे। वृत्तिः॥ तदा*निर्दिष्ट	=जब अन्यपदार्थ में वृत्ति है(जैसे ते ही हैं भेद जिनके)तब(सूत्रमें) कही हुई
विभक्त्यन्ताः। एवाभिसम्बध्यन्ते ।	=अन्तवाली विभक्तिसमझीजाय है अर्थात्भावोंके वही विभक्तिरहीजोसूत्रमेंकही
औपशमिकादयः। भावाः। द्विनवाष्टादश–	=औपशमिक आदि भाव हैं दो–नव–अठारह
एकविंशतित्रिभेदाः। इति*यथाक्रमवचनम्॥	=इक्कीस तीन ऐसे(=इति)भेद हैं॥ (सूत्रमें)यथाक्रम वाक्य
यथासंख्यप्रतिपत्त्यर्थम्॥ औपशमिकः।	=संख्यानुसारकी प्राप्ति (=प्रतिपत्ति) के लिए है अर्थात् औपशमिक
द्विभेदः।क्षायिकः। नवभेदः।मिश्रः। अष्टादशभेदः।	=दो भेद रूप है क्षायिक नो भेद रूप है क्षायोपशमिक अठारह भेद रूप है
औदयिकः। एकविंशतिभेदः। पारिणामिकः। त्रिभेदः।	=औदयिक इक्कीस भेद रूप है पारिणामिक तीन भेद रूप है

इति ॥ यद्येवमौपशमिकस्य कौ द्वौ भेदावित्यत आह—

॥ सम्यक्त्वचारित्रे ॥३॥

व्याख्यातलक्षणे सम्यक्त्वचारित्रे ॥ औपशमिकत्वं कथमिति चेदुच्यते। चारित्रमोहो द्विविधः कषायवेदनीयो नोकषायवेदनीयश्चेति ॥ तत्र कषायवेदनीयस्य भेदा अनन्तानुबन्धिनः क्रोधमान-मायालोभाश्चत्वारः,

इति *	=ऐसे (यथासंख्य वा क्रमसे दो नव अठारह आदिक संख्यायें औपशमिक क्षायिक मिश्र आदिकों पर लगाये जाते हैं)
यदि * एवम् * औपशमिकस्य ६। कौ १। द्वौ १। भेदौ १।	=(प्रश्न) जो इस प्रकार है (तो) औपशमिकके कौनसे दो भेद हैं
इति * अतः * आह T	=इसलिये कहते हैं कि

(१) सम्यक्त्वचारित्रे ॥ ३ ॥

=सम्यक्त्व चारित्रे द्वावौपशमिकौ भावौ भवतः ॥३॥

सम्यक्त्वचारित्रे १॥ द्वौ औपशमिकौ १। भावौ १। भवतः T	=सम्यक्त्व तथा चारित्र दो औपशमिक भावहैं-औपशमिक सम्यक्त्व औपशमिकचारित्रहैं

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित तृतीय सूत्रपर संस्कृत सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिन्दी अनुवाद

व्याख्यातलक्षणे १॥ सम्यक्त्वचारित्रे १॥	=पूर्व जिन के स्वरूपकहे हैं वे सम्यक्त्व और चारित्र हैं
औपशमिकत्वम् १॥ कथम् * इति * चेत् * उच्यते T	=औपशमिकपना कैसे है ऐसा(=इति) संदेह(=चेत्)होनेपर कहागयाहै(=उच्यते) कि
चारित्रमोहः १। द्विविधः १। कषायवेदनीयः १।	=चारित्रमोह दो प्रकारका है कषायवेदनीय
नोकषायवेदनीयः १। च * इति *	=और नोकषायवेदनीय इस प्रकार है। (किंचित् कषाय=ईषत्कषाय)
तत्रकषायवेदनीयस्य ६। भेदाः१। अनन्तानुवन्धिनः १।	=तहां कषायवेदनीयके भेद अनन्तानुबन्धी
क्रोध मान-माया—लोभाः १। चत्वारः १।	=क्रोध—मान—माया—लोभ चार हैं ॥

(१) इस सूत्र का दोनो दिगम्बर और श्वताम्बर आम्नाया में पाठ और अर्थ एकसा है (२) आत्माको कषै वा क्लेशितरूप करे उसे कषाय कहते हैं (३) आत्मामें पहिले सम्यक्त्व पर्याय की प्रकटता होती है पीछे चारित्र पर्याय का उदय होता है इस लिए सम्यक्त्वकी प्रकटता चारित्र से पहिले होने के कारण सम्यक्त्व चारित्रे इस सूत्र में सम्यक्त्व शब्द का पहिले प्रयोग किया गया है ॥

दर्शनमोहस्य त्रयोभेदाः सम्यक्त्वं, मिथ्यात्वं, सम्यग्मिथ्यात्वमिति, आसां सप्तानां प्रकृतीनामुपशमा-दौपशमिकं सम्यक्त्वम् ॥ अनादिमिथ्यादृष्टेर्भव्यस्य कर्मोदयापादितकालुष्ये सति कुतस्तदुपशमः। काललब्ध्यादिनिमित्तत्वात् ॥ तत्र काललब्धिस्तावत् कर्माविष्ट आत्मा भव्यकालेऽर्द्धपुद्गलपरिवर्त्तना-ख्येऽवशिष्टे प्रथमसम्यक्त्वग्रहणस्य योग्यो भवति,

दर्शनमोहस्य ६। त्रयः १। भेदाः १। सम्यक्त्वम् १॥।	=दर्शनमोहनीयके तीन भेद सम्यग्दर्शन
मिथ्यात्वम् १॥। सम्यक् मिथ्यात्वम् (१) १॥। इति *	=मिथ्यादर्शन और सम्यङ्मिथ्यादर्शन ऐसे
आसाम् ६॥। सप्तानाम् ६॥। प्रकृतीनाम् ६॥। उपशमात् ५।	=इन सातप्रकृतियों के उपशम से
औपशमिकम् १॥। सम्यक्त्वम् १॥। अनादि मिथ्यादृष्टेः ६।	=औपशमिक सम्यग्दर्शन होता है (प्रश्न) अनादिमिथ्यादृष्टि
भव्यस्य ६। कर्म + उदय + आपादित + कालुष्ये ७॥। सति ७॥।	=भव्यजीवके कर्मके उद्रेककरि कलुषताहोतेसंते
कुतः * तद् + उपशमः १।	=क्यों कर (पूर्वोक्त सात प्रकृतियोंका) उसके उपशम होता है
काललब्धि—आदि निमित्तत्वात् ५॥।	=(उत्तर) काललब्धि आदिके कारण से
तत्र काललब्धिः १॥। तावत् *	=तहां प्रथम (=तावत्) काललब्धि
कर्म + आविष्टः १। आत्मा १। भव्यः १।	=कर्मकरि दवायागया भव्यजीव (=आत्मा) अर्थात् कर्मसहित भव्यजीव
काले ७। अर्द्धपुद्गलपरिवर्तनाख्ये ७। अवशिष्टे ७।	=संसारकालमें अर्द्धपुद्गल परिवर्तननाम (काल) अवशेष रहने पर
प्रथमसम्यक्त्वग्रहणस्य ६॥। योग्यः १। भवति T	=पहिले उपशम सम्यग्दर्शन के ग्रहणकरने योग्य होता है

(१) जिस कर्मके उदय से सम्यक्त्वगुणका मूल घात तो हो नहीं परन्तु चल मल अगाढ़ ये दोष उत्पन्न हो जाय वह सम्यक्प्रकृति है। जिस कर्मके उदयसे सम्यग्दर्शनका सर्वथा घात स्वरूप जीव के अतत्त्वश्रद्धान हो वह मिथ्यात्व प्रकृति है। और जिस कर्म के उदय से सम्यग्दर्शन के सर्वथा घात स्वरूप मिले हुए परिणाम हों जिनको कि न सम्यक्त्वरूप कहसके और न मिथ्यात्वरूप कहसकें वह सम्यक्मिथ्यात्व प्रकृति है यह मिश्र परिणाम भी वैभाविक भाव ही है ॥

नाधिके इति इयमेका काललब्धिः॥ अपरा कर्मस्थितिकाललब्धिः। उत्कृष्टस्थितिकेषु कर्मसु जघन्यस्थितिकेषु च प्रथमसम्यक्त्वलाभो न भवति॥ क्व तर्हि भवति ?। अन्तः कोटीकोटी सागरोपमस्थितिकेषु कर्मसु बन्धमापद्यमानेषु विशुद्धपरिणामवशात्सत्कर्मसु च ततः संख्येयसागरोपमसहस्रोनायामन्तः कोटीकोटीसागरोपमस्थितौ स्थापितेषु प्रथमसम्यक्त्वयोग्यो भवति ॥

न*अधिके ७। इति* इयम् १॥ एका १॥ काललब्धिः १॥ =न कि अधिक (संसार काल के अवशेष रहने) पर इस प्रकार एक काल लब्धि है

अपरा १॥कर्मस्थितिकाललब्धिः १॥ =दूसरी कर्मस्थिति काललब्धि अर्थात् वह काल लब्धि जिसका लाभ कर्मोंकी विशेषस्थिति पर निर्भर है वह कर्म स्थिति आगे कहते हैं

उत्कृष्टस्थितिकेषु७॥ कर्मसु७॥ जघन्यस्थितिकेषु७॥च* =उत्कर्षस्थितिवाले कर्मों में तथा (=च) जघन्यस्थिति वाले कर्मों में

प्रथमसम्यक्त्वलाभः १। न* भवति । =प्रथम उपशम सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नहीं होती है अर्थात् उत्कृष्ट स्थितिवाले वा जघन्य स्थितिवाले कर्मोंके विद्यमान रहते प्रथम सम्यक्त्वके ग्रहण की योग्यता नहीं होती ।

क्व*तर्हि*भवति । अन्तःकोटीकोटीसागरोपमस्थितिकेषु७॥ =(प्रश्न) तो (प्रथम सम्यक्त्व की लब्धि, कहां होती है (एक) कोड़ी कोड़ी सागरोपमके भीतर २ (=अन्त) स्थितिलिये

कर्मसु ७॥ बन्धम् २। आपद्यमानेषु ७॥ =कर्मोंके बन्धभाव को प्राप्त होने पर (आपद्यमानेषु)

विशुद्धपरिणामवशात् ६। सत्कर्मसु ७॥च*ततः* =और (वहां) निर्मल परिणाम के आश्रय से सत्तामें संचित कर्मोंकी स्थिति

संख्येयसागरोपमसहस्र+ऊनायाम् ७॥ =संख्यातेहजारसागरोपमहीन

अन्तः कोटीकोटीसागरोपमस्थितौ ७॥ स्थापितेषु ७॥ =अन्तः कोड़ाकोड़ी सागरोपमस्थितिमेंसे) रह जानेपर (स्थापितेषु)

प्रथमसम्यक्त्वयोग्यः १। भवति । =प्रथम सम्यक्त्व के (ग्रहण) योग्य (जीव) होता है

(भावार्थ) आयुकर्मके विना घुणाक्षरन्यायसे अंतः कोटिकोटिसागरप्रमाणकर्म

पूर्वोक्तानां सप्तानां प्रकृतीनामत्यन्तक्षयात्क्षायिकं सम्यक्त्वम् ॥ चारित्रमपि तथा ॥ यदि क्षायिकदानादिभावकृतमभयदानादि, सिद्धेष्वपि तत्प्रसङ्गः । नैष दोषः । शरीरनामतीर्थकरनामकर्मोदयाद्यपेक्षत्वात्तेषां तदभावे तदप्रसङ्गः ॥ कथं तर्हि तेषां सिद्धेषु वृत्तिः? । परमानन्तवीर्याव्याबाधसुखरूपेणैव तेषां तत्र वृत्तिः । केवलज्ञानरूपेणानन्तवीर्यवृत्तिवत् ॥

य उक्तः क्षायोपशमिको भावोऽष्टादशविकल्पस्तद्भेदनिरूपणार्थमाह—

पूर्वोक्तानाम् ६॥ सप्तानाम् ६॥ प्रकृतीनाम् ६॥ अत्यन्तक्षयात् ५।	= पहिले कही हुई(मोहनीयकर्म की) सातप्रकृतियोंका अशेष नाशसे
क्षायिकम् १॥ सम्यक्त्वम् १॥ चारित्रम् १॥ अपि*तथा*	=क्षायिकसम्यग्दर्शनहोताहै तैसेही(चारित्रमोहकेअभावसे)क्षायिकचारित्रभीहै
यदि*क्षायिकदानादिभावकृतम् १॥ अभयदानादि १॥	=(प्रश्न)जो क्षायिक दानादिकभावकरि कियेहुए अभयदानादिक हैं।,
सिद्धेषु ७। अपि-तत्-प्रसङ्गः१। न एषः१। दोषः१।	=तो सिद्धोंमें भी उन(अभयदानादिक)का संयोग है (उत्तर)यह दूषण नही है
शरीरनामतीर्थंकरनामकर्म उदयादिअपेक्षत्वात् ५।	=(अरहतनिके)शरीरनामानामकर्म तीर्थकरनामकर्म के उद्रेकविवक्षा से है
तेषाम् ६। तद्*अभावे ७। तत्-अप्रसङ्गः १।	=तिन(सिद्धनि)के उन(कर्मो)के अभावहोनेपर उन(अभयदानादिक)काप्रसङ्गनहीं
कथम्*तर्हि*तेषाम् ६। सिद्धेषु ७। वृत्तिः १॥	=(प्रश्न)तो(=तर्हि)कैसे तिन(अभयदानादिक भावों की)सिद्धोंमें प्रवृत्तिवास्थितिहै
परम*अनन्तवीर्य-अव्याबाध-सुखरूपेण ३॥	=(उत्तर)उत्कृष्ट अनन्तवीर्य्य अव्याबाध आनंदस्वरूपसे
एव*तेषाम् ६। तत्र*वृत्तिः १॥	=तिन(अभयदानादिक भावों की)तहां(सिद्धो में) प्रवृत्ति है ।
केवलज्ञानरूपेण ३॥ अनन्तवीर्य्य वृत्तिवत्*	=केवलज्ञानरूपकरि अनन्तवीर्य्य प्रवृतिके सदृश(सिद्धनिके अभयदानादिकभावहैं
य:१।उक्तः१।क्षायोपशमिकः१। भावः१।अष्टादशविकल्पः१।	=जो कहा क्षायोपशमिक भाव अठारह प्रकार
तद्*भेद-निरूपणार्थम् १। आह १	=तिसके भेद कहने के लिए(आचार्य अग्रिमसूत्रमें)कहते है कि

कवलाहारक्रियाणां केवलिनां यतःशरीरबलाधानहेतवोऽन्यमनुजासाधारणाः परमशुभाःसूक्ष्मा अनन्ताः प्रतिसमयं पुद्गलाः सम्बन्धमुपयान्ति स क्षायिको लाभः॥ कृत्स्नस्य भोगान्तरायस्यात्यन्ताभावादाविर्भूतोऽतिशयवाननन्तो भोगः क्षायिकः । यतः कुसुमवृष्ट्यादयो विशेषाःप्रादुर्भवन्ति ॥ निरवशेषस्योपभोगान्तरायस्य प्रलयात्प्रादुर्भूतोऽनन्त उपभोगः क्षायिकः। यतः सिंहासनचामरच्छत्रत्रयादयः विभूतयः ॥ वीर्यान्तरायस्य कर्मणोऽत्यन्तक्षयादाविर्भूतमनन्तवीर्यं क्षायिकम् ॥

कवल+आहारक्रियाणाम् ६। केवलिनाम् ६।	=कवला हार की क्रिया जिनके ऐसे केवली भगवानके (=केवलिनाम्)
यतः शरीरबलाधानहेतवः १। अन्य मनुज+असाधारणाः१।	=जिससे (यतः) शरीर केवलाधानके कारण अन्य मनुष्योंमें न रहने वाली
परमशुभाः १। सूक्ष्माः १। अनन्ताः १। प्रतिसमय ॐ	=अत्यन्त शुभ सूक्ष्म समय समय प्रति अनन्ते
पुद्गलाः १। सम्बन्धम् २। उपयान्ति T	=पुद्गल के परमाणु (पुद्गलाः) सम्बन्ध को प्राप्त होते हैं
सः१।क्षायिकः१। लाभः१।कृत्स्नस्य ६। भोगान्तरास्य ६।	=सो क्षायिक लाभ है । समस्त भोगान्तराय नामा कर्म के
अत्यन्त–अभावात् ५।आविर्भूतः१।अतिशयवान्१। अनन्त–	=अशेपक्षय से प्रगटरूप अतिशयवान अनन्त
भोगः १। क्षायिकः १। यतः–कुसुमवृष्टि–आदयः १।	=क्षायिक भोग है अर्थात् जिससे (=यतः)पुष्प वृष्टि आदिक
विशेषाः१।प्रादुर्भवन्ति T निरवशेपस्य ६। उपभोग–	=विशेप प्रगट होते हैं वेसमस्त उपभोग
अन्तरायस्य६।प्रलयात् ५। प्रादुर्भूतः१। अनन्तः१।	=अन्तराय नामा कर्म के नाशसे प्रकाशरूप अनन्त
उपभोगः१। क्षायिकः१।यतः॰ सिंहासन–चामर–	=क्षायिक उपभोग है अर्थात् जिससे सिंहासन चामर
छत्रत्रय–आदयः१।विभूतयः१।वीर्यान्तरायस्य६।।।कर्मणः६।।।	=छत्रत्रय आदिक विभूतियें (प्रगट)होती हैं। (और)वीर्यान्तराय नामा कर्मके
अत्यन्त क्षयात्५।आविर्भूतम्१।।।अनन्तवीर्यम्१।।।क्षायिकम्१।।।	=अत्यन्त नाशसे क्षायिक अनन्त वीर्य प्रगट हुआ है ।

॥ ज्ञानदर्शनदानलाभभोगोपभोगवीर्याणि च ॥ ४ ॥[1]

चशब्दः सम्यक्त्वचारित्रानुकर्षणार्थः॥ ज्ञानावरणस्यात्यन्तक्षयात्केवलज्ञानंक्षायिकं तथा केवलदर्शनम् दानान्तरायस्यात्यन्तक्षयादनन्तप्राणिगणानुग्रहकरं क्षायिकमभयदानम्॥ लाभान्तरायस्याशेषस्य निरासात्परित्यक्त—

ज्ञानदर्शनदानलाभभोगोपभोगवीर्याणि च ॥ ४॥

=ज्ञानदर्शनदानलाभभोगोपभोगवीर्याणि सम्यक्त्वचारित्रे च

=ज्ञान–दर्शन–दान–लाभ–भोग–उपभोग–वीर्याणि, सम्यक्त्व–चारित्रे च ते एते क्षायिकभावस्य नव भेदाः भवन्ति

ज्ञान–दर्शन— =क्षायिक ज्ञान अर्थात् केवलज्ञान, क्षायिकदर्शन अर्थात् केवलदर्शन,

दान–लाभ–भोग–उपभोग–वीर्याणि १॥ च =क्षायिकदान, क्षायिकलाभ, क्षायिकभोग, क्षायिकउपभोग, क्षायिकवीर्य और

सम्यक्त्व–चारित्रे१॥ ते१ एते१ क्षायिकभावस्य १। =क्षायिक सम्यक्त्व, क्षायिक चारित्र, ये क्षायिकभावके

नव भेदाः१। भवन्ति । =नव भेद होते हैं। ये ही नव जीवके निज क्षायिक भाव हैं।

चशब्दः१। सम्यक्त्वचारित्र–अनुकर्षण–अर्थः१। =(सूत्रमें) चशब्द सम्यग्दर्शन तथा (सम्यक्) चारित्र के ग्रहणके लिये है॥

ज्ञान–आवरणस्य६॥ अत्यन्त–क्षयात्५। केवलज्ञानम् १॥ =ज्ञानावरणीयकर्म के अतिशय नाशसे केवलज्ञान

क्षायिकम् १॥ तथा केवलदर्शनम् १॥ =क्षायिक होता है दर्शनावरणीयकर्मके (अत्यन्तनाशसे) केवलदर्शन (क्षायिक होता है)

दान+अंतरायस्य६। अत्यन्त–क्षयात्५। अनन्तप्राणिगण=दान अन्तराय के अतिशय नाश (होने) से अनन्तजीवोंका

अनुग्रहकरम् १॥ क्षायिकम् १॥ अभयदानम् १॥ =उपकार करनेवाला क्षायिक अभयदान होता है।

लाभ+अन्तरायस्य६। अवशेषस्य६। निरासात्५। परित्यक्त=लाभ अंतराय नामा कर्मके सम्पूर्ण अभावसे किसी प्रकार से नहीं है (परित्यक्त)

(१) श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों सम्प्रदायों में इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है॥

पूर्वोक्तानां सप्तानां प्रकृतीनामत्यन्तक्षयात्क्षायिकं सम्यक्त्वम् ॥ चारित्रमपि तथा ॥ यदि क्षायिकदानादिभावकृतमभयदानादि, सिद्धेष्वपि तत्प्रसङ्गः । नैष दोषः । शरीरनामतीर्थकरनामकर्मोदयाद्यपेक्षत्वात्तेषां तदभावे तदप्रसङ्गः ॥ कथं तर्हि तेषां सिद्धेषु वृत्तिः? । परमानन्तवीर्याव्याबाधसुखरूपेणैव तेषां तत्र वृत्तिः । केवलज्ञानरूपेणानन्तवीर्यवृत्तिवत् ॥

य उक्तः क्षायोपशमिको भावोऽष्टादशविकल्पस्तद्भेदनिरूपणार्थमाह—

पूर्वोक्तानाम् ६॥ सप्तानाम् ६॥ प्रकृतीनाम् ६॥ अत्यन्तक्षयात् ५=	पहिले कही हुई(मोहनीयकर्म की) सातप्रकृतियोंका अशेष नाशसे
क्षायिकम् १॥ सम्यक्त्वम् १॥ चारित्रम् १॥ अपि*तथा*	=क्षायिकसम्यग्दर्शनहोताहै तैसेही(चारित्रमोहकेअभावसे)क्षायिकचारित्रभीहै
यदि*क्षायिकदानादिभावकृतम् १॥ अभयदानादि १॥	=(प्रश्न)जो क्षायिक दानादिकभावकरि कियेहुए अभयदानादिक है।,
सिद्धेषु ७। अपि-तत्-प्रसङ्गः१। न एषः१। दोषः१।	=तो सिद्धोंमें भी उन(अभयदानादिक)का संयोग है (उत्तर)यह दूषण नहीं है
शरीरनामतीर्थंकरनामकर्म उदयादिअपेक्षत्वात् ५।	=(अरहतनिके)शरीरनामानामकर्म तीर्थंकरनामकर्म के उद्रेकविवक्षा से है
तेषाम् ६। तद्*अभावे ७। तत्-अप्रसङ्गः १।	=तिन(सिद्धनि)के उन(कर्मों)के अभावहोनेपर उन(अभयदानादिक)काप्रसङ्गनहीं
कथम्*तर्हि*तेषाम् ६। सिद्धेषु ७। वृत्तिः १॥	=(प्रश्न)तो(=तर्हि)कैसे तिन(अभयदानादिक भावोंकी)सिद्धोंमें प्रवृत्तिवास्थितिहै
परम*अनन्तवीर्य-अव्याबाध-सुखरूपेण ३॥	=(उत्तर)उत्कृष्ट अनन्तवीर्य अव्याबाध आनंदस्वरूपसे
एव*तेषाम् ६। तत्र*वृत्तिः १॥	=तिन(अभयदानादिक भावों की)तहां (सिद्धो में) प्रवृत्ति है ।
केवलज्ञानरूपेण ३॥ अनन्तवीर्य्य वृत्तिवत्*	=केवलज्ञानरूपकरिअनन्तवीर्य्य प्रवृत्तिके सदृश(सिद्धनिके अभयदानादिकभावहै
यः१।उक्तः१।क्षायोपशमिकः१। भावः१।अष्टादशविकल्पः१।	=जो कहा क्षायोपशमिक भाव अठारह प्रकार
तद्*भेद-निरूपणार्थम् १। आह	=तिसके भेद कहने के लिए(आचार्य अग्रिमसूत्रमें)कहते हैं कि

ज्ञानाज्ञानदर्शनलब्धयश्चतुस्त्रित्रिपञ्चभेदाः सम्यक्त्वचारित्रसंयमासंयमाश्च ॥ ५ ॥

ज्ञानाज्ञानदर्शनलब्धयश्चतुस्त्रित्रिपंचभेदाःसम्यक्त्वचारित्रसंयमासंयमाश्च ॥५॥

ज्ञानाज्ञानदर्शनलब्धयश्चतुस्त्रित्रिपंचभेदाःयथाक्रमम् सम्यक्त्वचारित्र संयमासंयमाः(इत्येतेऽष्टादश क्षायोपशमिक भावाःचभवन्ति)॥५॥

=ज्ञा॰ ज्ञा॰ द॰ ल॰ब्धयश्चतुस्त्रित्रिपंचभेदाःयथाक्रमम् सम्यक्त्वचारित्र संयमासंयमाः(इत्येतेऽष्टादश क्षायोपशमिक भावाःचभवन्ति)॥५॥

पदच्छेदः–ज्ञान–अज्ञान–दर्शन–लब्धयःचतुःत्रि–त्रि–पच भेदाः(यथाक्रमम्–इसअध्यायकेदूसरेसूत्रसे लियागयाहै)सम्यक्त्व–चारित्र–संयमा-संयमाः इति एते अष्टादश क्षायोपशमिकाः भावाः भवन्ति च ॥५॥

ज्ञान–अज्ञान–दर्शन–लब्धयः॥चतुर्–त्रि–त्रि–पञ्च–भेदाः॥ =ज्ञान, कुज्ञान, दर्शन, लब्धि, चार,तीन,तीन और पांच प्रकार

यथाक्रमम्॥सम्यक्त्व,–चारित्र– =अनुक्रमसे हैं क्षायोपशमिक सम्यक्त्व, क्षायोपशमिक चारित्र (सराग चारित्र)

संयमासंयमाः॥इति॥एते॥अष्टादश॥च॥ =संयमासंयम (देशव्रत) ऐसे ये अठारह भी (=च–जीवके)

क्षायोपशमिकाः ॥भावाः॥भवन्ति ॥ =क्षायोपशमिक भाव हैं अर्थात् मतिज्ञान,श्रुतज्ञान,अवधिज्ञान,

मनः पर्यय ज्ञान ये चार ज्ञान कुमति कुश्रुत,कुअवधि ये तीन कुज्ञान,चक्षुः दर्शन,अचक्षुः दर्शन, अवधिदर्शन ये तीन दर्शन, और क्षायोपशमिकदान,क्षायोपशमिकलाभ,क्षायोपशमिकभोग,क्षायोपशमिकउपभोग,क्षायोपशमिक–वीर्य ये पांचप्रकार लब्धि, क्षायोपशमिक सम्यक्त्व, क्षायोपशमिकचारित्र, क्षायोपशमिक संयमासंयम ये सर्व अठारह भाव भी आत्मा में कर्मों के क्षयोपशम से होते हैं ॥ स्मरण रहै कि सूत्रमें च शब्द समुचयके लिये है इस लिये जितने क्षायोपशमिक भावों का सूत्र में उल्लेखनहीं किया गया है इस च शब्दसे उनका समुचय करलेना चाहिये ॥ अतः हमने च शब्द का अनुवाद'भी' ऐसा किया है ॥

(१) श्वेताम्बर सम्प्रदायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें क्षायोपशमिक भावोंके विषयमें जो यह पांचवा सूत्र है उसमें हमारे यहां के पांचवां सूत्रसे 'ज्ञानाज्ञान दर्शन' वाक्य के लगता ही "दानादि" वाक्य अधिक है शेष पाठ सूत्रका दोनों आम्नायोंमें एक है। 'दानादि' शब्द के अधिक होने पर भी अर्थ भेद दोनों सम्प्रदायो में नहीं है क्योंकि हमारे यहां "लब्धयः" शब्दका अर्थ क्षायोपशमिकदानलब्धि, क्षायोपशमिक लाभलब्धि क्षायोपशमिक भोगलब्धि, क्षायोपशमिक उपभोगलब्धि, क्षायोपशमिक वीर्यलब्धि किया है और श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य० में दानादि लब्धयः वाक्यका यही तात्पर्य लिया है जो हमारे यहां लब्धयः शब्दका। अतः दोनों में अर्थ भेद कुछ भी नहीं रहा। दानादि शब्द के न होने से सूत्र लघु हो जाता है ॥

चत्वारश्च त्रयश्च त्रयश्च पञ्च च चतुस्त्रित्रिपञ्चभेदा यासां ताश्चतुस्त्रित्रिपञ्चभेदाः ॥ यथाक्रममित्यनुवर्तते । तेनाभिसम्बन्धाच्चतुरादिभिर्ज्ञानादीन्यभिसम्बन्ध्यन्ते । चत्वारि ज्ञानानि, त्रीण्यज्ञानानि, त्रीणि दर्शनानि, पञ्च लब्धय इति ॥ सर्वघातिस्पर्द्धकानामुदयक्षयात्तेषामेव सदुपशमाद्देशघातिस्पर्द्धकानामुदये क्षायोपशमिको भावो भवति ॥ तत्र ज्ञानादीनां वृत्तिःस्वावरणान्तरायक्षयोपशमाद्व्याख्यातव्या ॥ सम्यक्त्वग्रहणेन वेदकसम्यक्त्वं गृह्यते । अनन्तानुबन्धिकषायचतुष्टयस्य

चत्वारः 1। च त्रयः 1। च त्रयः 1। च पञ्च 1। च चतुः-त्रि =चार तथा तीन और तीन बहुरि पांचका द्वन्द्व समास चार तीन
त्रि-पञ्चभेदाः 1। यासाम् 6।।ताः 1।। चतुः त्रि-त्रि-पञ्चभेदाः=तीन पांच हुआ। ये हैं भेद जिनके ते चार तीन तीन पांच भेद हुये ॥
यथाक्रमम्*इति* अनुवर्तते । तेन 3। =यथाक्रमम् ऐसी अनुवृत्ति (दूसरे सूत्रसे)निकलती है तिस(यथाक्रमअनुवृत्ति)के
अभिसम्बन्धात् 5। चतुरादिभिः 3। =संयोग से चार तीन तीन पाँच(ये सख्याओं के साथ)
ज्ञानादीनि 1।।। अभिसम्बन्ध्यन्ते । =ज्ञान अज्ञान दर्शन लब्धि यथासंख्य लगाई जाती हैं
चत्वारि 1।।। ज्ञानानि 1।।। =अर्थात् चार ज्ञान हैं(मति-श्रुत-अवधि-मनःपर्यय)
त्रीणि 1।।। अज्ञानानि 1।।। त्रीणि 1।।। दर्शनानि 1।।। =तीन अज्ञान(कुमति,कुश्रुति,कुअवधि) हैं तीन (चक्षुः,अचक्षुः, अवधि) दर्शन हैं,
पञ्च 1। लब्धयः 1।।। इति* =पाँच (दान, लाभ, भोग, उपभोग वीर्य)लब्धि (ऐसे सब पन्द्रह हैं)
सर्वघाति स्पर्द्धकानाम् 6।उदयक्षयात् 5। तेषाम् 6। एव* =सर्वघाति स्पर्द्धकनि के उदयाभावी क्षयसे(=बिना रसदीये खिरजाना)औरतिनकेही
सत्*उपशमात् 5। देशघाति-स्पर्द्धकानाम् 6। उदये 7। =सत्तारूप उपशमसे और देशघाति स्पर्द्धकनि के उदय होने पर
क्षायोपशमिकः 1। भावः 1। भवति । तत्र* =क्षायोपशमिक भाव होता है तहां
ज्ञानादीनाम् 6।वृत्तिः 1।। स्व-आवरण-अन्तराय- =ज्ञानादिक की प्रवृत्ति अपने अपने आवरण तथा अन्तराय-
क्षायोपशमात् 5। व्याख्यातव्या 1।।सम्यक्त्व ग्रहणेन 3।।।=क्षायोपशमसे वर्णन की गई है वा कही गई है(सूत्रमें) सम्यक्त्व लानेसे
वेदकसम्यक्त्वम् 1।।।गृह्यते। =वेदकसम्यक्त्व(=क्षायोपशमिकसम्यक्त्व)ग्रहण किया गया है
अनन्तानुबन्धिकषायचतुष्टयस्य 6। =अनन्तानुबन्धी कषायके चतुष्क (क्रोध-मान-माया-लोभ) का

मिथ्यात्वसम्यङ्मिथ्यात्वयोश्चौदयक्षयात्सदुपशमाच्च सम्यक्त्वस्य देशघातिस्पर्द्धकस्योदये तत्त्वार्थश्रद्धानं क्षायोपशमिकं सम्यक्त्वम् ॥ अनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानद्वादशकषायोदयक्षयात्सदुपशमाच्च सञ्ज्वलनकषायचतुष्टयान्यतमदेशघातिस्पर्द्धकोदये नोकषायनवकस्य यथासम्भवोदये च निवृत्तिपरिणामः आत्मनः क्षायोपशमिकं चारित्रम् ॥ अनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यानकषायाष्टकोदयक्षयात्सदुपशमाच्च प्रत्याख्यानकषायोदये सञ्ज्वलनकषायदेशघातिस्पर्द्धकोदयेनोकषायनवकस्य यथासम्भवोदये च विरताविरतपरिणामःक्षायोपशमिकः सँयमासँयम इत्याख्यायते ॥

मिथ्यात्वसम्यङ्मिथ्यात्वयोः६।।।च* उदयक्षयात् ५। =और मिथ्यात्व सम्यग्मिथ्यात्वोंके उदयक्षयसे

सत्*उपशमात् ५। च* सम्यक्त्वस्य ६।।। =तथा सत्तारूप उपशमसे और सम्यक्त्व प्रकृतिके

देशघातिस्पर्द्धकस्य ६। उदये ७। तत्त्वार्थश्रद्धानम् १।।। =देशघाति स्पर्द्धकका उदय होनेपर (जो)तत्वार्थ श्रद्धान (होता है)

क्षायोपशमिकं१।।।सम्यक्त्वम्१।।।अनन्तानुबन्धि—अप्रत्याख्यान=(वो)क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन है।। बहुरिअनन्तानुबन्धी अप्रत्याख्यान

प्रत्याख्यानद्वादशकषाय—उदयक्षयात् ५। =प्रत्याख्यान बारह कषायोंका उदयाभावी क्षयसे'औरइनही बारह कषायोंका

सत्*उपशमात् ५। च*संज्वलन कषायचतुष्टयअन्यतम— =सत्तारूप उपशमसे और संज्वलन कषायके चतुष्क में से किसी एक कषायके

देशघाति-स्पर्द्धक उदये ७। च*नो कषाय नवकस्य ६।।। =देशघाति स्पर्द्धनिका उदय होने पर बहुरि नवईषत्कषायोंके

यथासम्भव—उदये ७। च* निवृत्तिपरिणामः१। आत्मनः६। =यथासम्भव उदय होनेपर(जो)आत्मा का त्यागरूप परिणाम(है सो)

क्षायोपशमिकं१।।। चारित्रम् १।।। अनन्तानुबन्धि- =क्षायोपशमिक चारित्र है (और) अनन्तानुबंधी

अप्रत्याख्यानकषाय—अष्टक—उदयक्षयात् ५। =अप्रत्याख्यान कषायोंके अष्टकके उदयाभावीक्षयसे(=विना रस दिये खिरना)

सत्*उपशमात् ५। च*प्रत्याख्यानकषाय—उदये ७। =सत्तारूप उपशमसे और प्रत्याख्यान कषायके उदय होने पर

संज्वलनकषाय देशघातिस्पर्द्धक उदये१।नोकषायनवकस्य६।=(और)संज्वलन कषायके देशघातिस्पर्द्धकके उदय होनेपर व नोकषायकेनवकको

यथा सम्भव उदये ७। च*विरत—अविरत—परिणामः१। =यथासम्भव उदय होने पर (आत्मा के) विरता विरत परिणाम (होय है सो)

क्षायोपशमिकः१। संयमासयमः१। इति*आख्यायते । =क्षायोपशमिक संयमासंयम है ऐसा वर्णन किया गया है

य एकविंशतिविकल्प औदयिको भाव उद्दिष्टस्तस्य भेदसंज्ञासङ्कीर्तनार्थमिदमुच्यते ॥
गतिकषायलिङ्गमिथ्यादर्शनाज्ञानासंयतासिद्धलेश्याश्चतुश्चतुस्त्र्येकैकैकैकषड्भेदाः ॥ ६ ॥

यः (एकविंशतिविकल्पः) (औदयिकः) (भावः) (उद्दिष्टः) =जो इकीस भेदरूप औदयिक भाव कहा है
तस्य (भेदसंज्ञासङ्कीर्तन–अर्थम्) (इदम्) (उच्यते) =तिसके भेद और नाम कहनेके लिए यह कहा जाता है कि

गतिकषायलिङ्गमिथ्यादर्शनाज्ञानासंयतासिद्धलेश्याश्चतुश्चतुस्त्र्येकैकैकैकषड्भेदाः ॥ ६ ॥

=गति कषायलिङ्गमिथ्यादर्शनाज्ञानासंयतासिद्धलेश्याश्चतुश्चतुस्त्र्येकैकैकैकषड्भेदाः(यथाक्रमम्) एते एकविंशति औदयिक भावाः भवन्ति ॥

सूत्रार्थः–गति–कषाय–लिङ्ग–मिथ्यादर्शन–अज्ञान–असंयत–असिद्ध–लेश्याः (:) चतुः–चतुः–त्रि–एक–एक–एक–एक–षट्–भेदाः (:) यथाक्रमम् एते (एताः) एकविंशतिः (:) औदयिक भावाः (:) भवन्ति

=गति, कषाय, आर्वलिङ्ग (अर्थात वेद), मिथ्या दर्शन, अज्ञान, असंयम असिद्धत्व तथा लेश्या चार, चार, तीन तथा एक एक, एक, एक और छः प्रकार (–भेदाः) क्रमसे इस प्रकार ये –इकीस औदयिक भाव होते हैं अर्थात् मनुष्यगति, देवगति नरकगति, और तिर्यंचगति ये चार गति, क्रोध, मान, माया, लोभ, ये चार कषाय, स्त्रीवेद पुवेद, नपुंसक वेद, ये तीन लिङ्ग, मिथ्यादर्शन, अज्ञान, असंयम, असिद्धत्व, कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म, शुक्ल ये छः लेश्या। असिद्धत्व ये भाव समस्त आठों कर्मोंके उदय से होते हैं ॥

(१) श्वेताम्बर आम्नाय में [illegible] हमारे यहां पाठ में [illegible] है और पाठ एक है। हमारे यहां असिद्ध का अर्थ असिद्धत्व लिया है अतः अर्थ एक है (२) आत्मा को [illegible] (३) कषायोदयसे [illegible] योगों की प्रवृत्तिका नाम लेश्या है॥ (४) स्त्री आदि वेदों के उदयमें स्त्रीको पुरुषके साथ पुरुषको स्त्रीके साथ और नपुंसक को स्त्री और पुरुष दोनों के साथ रमण करनेकी जो इच्छा हो उसका नाम लिंग है। यह लिंग दो प्रकारका है एक द्रव्यलिंग दूसरा भाव लिंग। नाम कर्म के उदयसे होनेवाले [illegible] विशेषका नाम द्रव्य लिंग है वह पुद्गलका परिणाम है और यहां पर आत्माके परिणामों का प्रकरण चल रहा है इसलिये जो सूत्रमें लिंग शब्दका उल्लेख किया गया है उसका अर्थ द्रव्य लिंग नहीं लिया जा सकता किंतु आत्मा का परिणाम स्वरूप [illegible] है। यह भाव लिंग स्त्री पुरुष और नपुंसक तीनों का आपसमें रमण करनेकी इच्छा रूप है और जो कषायरूप चारित्र मोह [illegible] उदयमें [illegible] स्त्रीवेद पुरुषवेद और नपुंसक वेदके उदयसे उसकी प्रकटता होती है इसलिए [illegible] औदयिक भाव है

यथाक्रममित्यनुवर्तते, तेनाभिसम्बन्धात् । गतिश्चतुर्भेदा नरकगतिस्तिर्यग्गतिर्मनुष्यगतिर्देवगतिरिति ॥ तत्र नरकगतिनामकर्मोदयान्नारको भावो भवतीति नरकगतिरौदयिकी । एवमितरत्रापि ॥ कषायश्चतुर्भेदः, क्रोधो मानो माया लोभइति ॥ तत्र क्रोधनिर्वर्तनस्य कर्मण उदयात्क्रोध औदयिकः । एवमितरत्रापि ॥ लिङ्गं त्रिभेदं, स्त्रीवेदः पुंवेदो नपुंसकवेद इति ॥ स्त्रीवेदकर्मण उदयात्स्त्रीवेद औदयिकः । एवमितरत्रापि ॥ मिथ्यादर्शनमेकभेदं,

---

वृत्त्यनुवादः—यथाक्रमम् १॥इति* अनुवर्तते १ =(यथाक्रमम्)ऐसी अनुवृत्ति(इस अध्यायके दूसरे सूत्रसे)आती है ॥

तेन३। अभिसम्बन्धात् ५। गतिः१॥ चतुर्*भेदाः१। =तिस(अनुवृत्ति)द्वारा संयोगसे गति चार प्रकार है ॥

नरकगतिः१॥तिर्यग्गतिः१॥मनुष्यगतिः१॥देवगतिः१॥=नरकगति—तिर्यंचगति—नरगति—देवगति

इति*तत्र नरकगतिनामकर्म उदयात् ५नारकः१। =एसे है तहां नरकगतिनामा नामकर्मके उदयसे नरकका

भावः१भवति Iइति नरकगति—औदयिकी १॥एवम्*= भाव होता है ऐसे नरकगति नाम औदयिक भाव है

इतरत्र*अपि*कषायः१।चतुर्—भेदः१। =ऐसे अन्यत्रभी हैं (तिर्यंचगति इत्यादि) । कषाय चार भेद रूप है

क्रोधः१। मानः१। माया१। लोभः१। इति* =क्रोध—मान—माया—लोभ—इस प्रकार हैं

तत्र*क्रोधनिर्वर्तनस्य ६॥कर्मणः६॥ उदयात्५। =तहां क्रोध सम्पादन कर्मके उदयसे

क्रोधः१। औदयिकः१।एवम्*इतरत्र*अपि* =क्रोध औदयिक भाव है इस प्रकार अन्यत्र भी है(अर्थात् मान माया लोभ)

लिङ्गम्त्रिभेदम्१॥स्त्रीवेदः१।पुंवेदः१।नपुंसकवेदः१इति=लिङ्ग तीनभेद स्त्रीवेद पुंवेद नपुंसकवेद इस प्रकार हैं

स्त्रीवेदकर्मणः६॥ उदयात् ५।स्त्रीवेदः१। औदयिकः१।=स्त्रीवेद कर्मके उद्रेक से नारीवेद औदयिक भाव है

एवम्*इतरत्र*अपि* =ऐसे अन्यत्र भी हैं (अर्थात् पुरुषवेद और नपुंसक वेद कर्मों के उदयसे क्रमानुसार पुरुष वेद और नपुंसक वेद औदयिक भाव हैं)

मिथ्यादर्शनम् १॥एकभेदम् १॥ =मिथ्यादर्शन एक प्रकार है ॥

मिथ्यादर्शनकर्मण उदयात्तत्त्वार्थाश्रद्धानपरिणामो मिथ्यादर्शनमौदयिकम् ॥ ज्ञानावरणकर्मण- उदयात्पदार्थानवबोधो भवति तदज्ञानमौदयिकम् ॥ चारित्रमोहस्य सर्वघातिस्पर्द्धकस्योदयादसंयत औदयिकः ॥ कर्मोदयसामान्यापेक्षोऽसिद्ध औदयिकः ॥ लेश्या द्विविधा, द्रव्यलेश्या भावलेश्या चेति ॥ जीवभावाधिकाराद्द्रव्यलेश्या नाधिकृता । भावलेश्या कषायोदयरञ्जिता योगप्रवृत्तिरिति कृत्वा औदयिकीत्युच्यते ॥ सा षड्विधा कृष्णलेश्या, नीललेश्या कापोतलेश्या, तेजोलेश्या पद्मलेश्या, शुक्ललेश्या चेति ॥ ननुच उपशान्तकषाये क्षीणकषाये

मिथ्यादर्शनकर्मणः॥ उदयात् । =मिथ्यादर्शन कर्मके उदयसे (अर्थात् मिथ्यात्वनामा मोहनीयकी प्रकृति उदयसे
तत्त्वार्थ—अश्रद्धान—परिणामः॥मिथ्यादर्शनम् ॥ =तत्त्वोंके स्वरूपका श्रद्धानरूप परिणाम न होना सो मिथ्यादर्शन
औदयिकम्॥ ज्ञानावरणकर्मणः उदयात्॥पदार्थानाम्॥=औदयिक भाव है। ज्ञानावरणनामा कर्मके उद्रेकसे पदार्थका
अनवबोधः॥ भवति । तद्॥अज्ञानम्॥औदयिकः॥=ज्ञान नहीं होने पाता है वह अज्ञाननामा औदयिक भाव है
चारित्रमोहस्य॥ सर्वघाति—स्पर्द्धकस्य॥ उदयात् । =चारित्रमोहके सर्वघातिक स्पर्द्धकनिके उद्रेकसे
असंयतः॥ औदयिकः॥कर्म—उदय—सामान्य— =असंयम(होय है वह)औदयिक भाव है(बहुरि) सामान्य कर्मनिके उदयकी
अपेक्षः॥असिद्धः॥ औदयिकः॥ =अपेक्षारूप असिद्धत्व औदयिक भाव है
लेश्या॥द्विविधा॥द्रव्यलेश्या॥भावलेश्या॥चइति॥=लेश्या दो प्रकार है द्रव्यलेश्या और भाव लेश्या
जीवभाव॥अधिकारात्,।द्रव्यलेश्या॥न॥अधिकृता॥=जीवके भावके प्रकरण(होने)से द्रव्यलेश्या अधिकृत नहीं है वा विषयभूत नहीं है
अर्थात् द्रव्यलेश्याका अधिकार वा प्रकरण नहीं है इसकारण भाव लेश्याग्रहणकी
भावलेश्या॥कषायउदयरञ्जिता॥योगप्रवृत्तिः॥इतिकृत्वा=भावलेश्या कषायके उदयकरि रञ्जित योगनिकी प्रवृत्ति है इस प्रकार(प्रवृत्ति)करके
औदयिकी॥इति॥उच्यते। सा षड्विधा॥ कृष्णलेश्या॥=औदयिकी कहलाती है सो छःप्रकार की है(अर्थात्)कृष्णलेश्या
नीललेश्या॥कापोतलेश्या॥तेजोलेश्या॥पद्मलेश्या,॥=नीललेश्या—कापोतलेश्या—पीतलेश्या—पद्मलेश्या
शुक्ललेश्या॥चइति ननु च उपशान्तकषाये॥ क्षीणकषाये॥ =और शुक्ललेश्या॥(प्रश्न)॥उपशान्तकषाय और क्षीणकषाय गुणस्थानोंमें

सयोगकेवलिनि च शुक्ललेश्या(१)ऽस्तीत्यागमः तत्र कषायानुरञ्जनाभावादौदयिकत्वं नोपपद्यते॥ नैषदोषः। पूर्वभावप्रज्ञापननयापेक्षया(२) याऽसौ योगप्रवृत्तिः कषायानुरञ्जिता सैवेत्युपचारादौदयिकीत्युच्यते ।

सयोग केवलिनि ३। च*शुक्ललेश्या १।। अस्ति T इति* =और सयोग केवली (तेरहवां गुणस्थानवर्ती) में शुक्ललेश्याहै । ऐसा

(२)
आगमः १। तत्र* कषाय–अनुरजन—अभावात् ५। =शास्त्रका वचन है। (उपरोक्त गुणस्थान मे) कषायमें लिप्तपनाके न होनेसे

औदयिकत्वम् १।। न*उपपद्यते T न*एषः १। दोषः १। =औदयिकपना नहीं पाया जाता है (=उत्तर) यह दूषण नहीं है

(३)
पूर्वभावप्रज्ञापननयापेक्षया ३।। या असौ १।। योगप्रवृत्तिः १।।=(यहां) पहिले भाव जतावने की विवक्षाकरि जो यह योगप्रवृत्ति

कषाय अनुरञ्जिता १।। सा १।। एव* इति* =कषायों करि अनुरञ्जित (पहिले वा पूर्व) थी वो(=सा) ही(=एव)इसप्रकार(इति)

उपचारात् ५। औदयिकी १।। इति उच्यते T =उपचार से औदयिक (लेश्या) कही जाती है यहां ऐसा भावार्थ जानना

कि उपरोक्त गुणस्थानोंमें कषायनिका अभाव होते भी शुक्ल लेश्या कही है वह पूर्व भावों की अपेक्षा से कही है पहिले कषायनकरि संयुक्त योग थे तहां समस्त कषायनिकातो इन तीनो गुणस्थानों में अभाव हुआ परन्तु योग ग्यारहवां और बारहवां गुण स्थान में वही रहे और तेरवें मे ७ योग रहे इसलिए उपचार करि औदयिक लेश्या कही है जैसे कसूम करि रंगा हुआ वस्त्र धोने पर भी कसम्मल कहलाता है तैसे ही कषायों के दूर होने पर भी लेश्या कहलाती है ॥

(१) जोगपउत्ती लेस्सा कसाय उदयाणु रंजिया होइ =योगप्रवृत्तिलेश्या कषायोदयानुरंजिता भवति
कसाय–उदयाणु–रंजिया १।। जोग पउत्ती १।। लेस्सा १।। होइ =कषायके उदयसे अनुरक्त जो योग प्रवृत्ति सो लेश्या है।
(२) अयदोत्ति छ लेस्साओ सुहतियलेस्साहु देसविरदतिये। तत्तो सुक्का लेस्सा अजोगिठाण अलेस्स तु ॥
असयत * इति षड् १।। लेश्याः १।। शुभत्रयलेश्या १।। हि* देशविरत त्रये ७। । ततः शुक्ला १।। लेश्या १।। अयोगिस्थानम् १।।। अलेश्य १।।। तु* ॥
=असयत चौथे गुण स्थान तक छहले श्याहै। पीत–पद्म–शुक्ल ये शुभ लेश्या देशविरत, प्रमत्तविरत, अप्रमत्त विरत, तीन गुण स्थानोंमे हैं अप्रमत्त से तेरह सयोगी तक शुक्ला है अयोगी लेश्या रहितहै (३) नैगमनयका एक पूर्वभाव प्रज्ञापन भेद माना है और जो बात पहिले थी किंतु वर्तमान मे नहीं है उस का वर्तमान मे होना मान लेना यह उस नयका विषय है। यद्यपि उपर्युक्त तीनो गुण स्थानोंमें योगो की प्रवृति कषायोंसे अनुरजित नहीं है तथापि पूर्व भाव प्रज्ञापननयकीअपेक्षा जो पहिले योगो की प्रवृत्ति कषायों से अनुरजित थी वह अब भी है ऐसा उपचार से मान लिया जाताहै इस रीति से उपशान्त कषाय, क्षीण कषाय, और सयोग केवली गुण स्थानों में होने वाली शुक्ल लेश्यामे भी जब लेश्या का लक्षण घटजाता है तब कोई दोष नहीं। चौदहवे अयोग केवली गुण स्थान में लेश्या का अभाव है क्योंकि वहां पर योगो की प्रवृत्ति नही है ॥

तदभावादयोगकेवल्यलेश्य इति निश्चीयते ॥ यः पारिणामिको भावस्त्रिभेद उक्तस्तद्भेदस्वरूपप्रतिपादनार्थमाह—

॥ जीवभव्याभव्यत्वानि च ॥ ७ ॥

जीवत्वं भव्यत्वमभव्यत्वमिति त्रयो भावाः परिणामिका

तद्-अभावात्॥ अयोगकेवली॥	=(और)उस (योग)के न होने से अयोग केवली (चौदहवां गुणस्थानवर्त्ती)
अलेश्यः॥इति॥निश्चीयते यः॥पारिणामिकः भावः	=लेश्या रहित है निश्चयकीजिए है जो पारिणामिक भाव
त्रिभेदः॥उक्त॥ तद्-भेदस्वरूपप्रतिपादनअर्थम्॥आह	=तीन प्रकार कहा है उसके भेद और स्वरूप के लाभके अर्थ कहते है कि

॥ जीवभव्याभव्यत्वानि च ॥ ७ ॥

सूत्रार्थः—जीवभव्याभव्यत्वानि॥ च॥	=जीवत्व भव्यत्व अभव्यत्व भी(च) पारिणामिक भाव जीवके हैं अर्थात्, ये तीन भाव भी अन्य द्रव्यसे असाधारण जीवके पारिणामिक भावहैं जहा कर्म की अपेक्षा नहीं द्रव्य का आत्म स्वरूप ही, आत्म परिणाम ही जिसको निमित्त हो सो पारिणामिक भाव है
जीवत्वम्॥ भव्यत्वम्॥ अभव्यत्वम्॥	=जीवपना वा चेतनपना भव्यपना अभव्यपना
इति॥त्रयः॥ भावाः॥ पारिणामिकाः॥	=इस प्रकार तीन भाव पारिणामिक है

जीवभव्याभव्यत्वादीनिच (सभाष्य० अध्याय २ सूत्र, ७) दोनो पाठाके मिलानेसे जान पडता है कि इस सातवा सूत्रमें हमारे यहांके सूत्रसे "आदि" शब्द अधिक है परंतु इस पर भी दोनों आम्नायों में अर्थ भेद नहीं है क्योंकि सभाष्य० के पाठ में आदि शब्दकरि जीवके सामान्य वा साधारण पारिणामिक भावोंका जसे अस्तित्व-वस्तुत्व-द्रव्यत्व-प्रमेयत्व आदि (देखो टिपणी अध्याय १० सूत्र ३) का ग्रहण किया है हमारे यहां जीवके साधारण पारिणामिक भावोंका ग्रहण च शब्द करि किया है ॥ असाधारण पारिणामिक भाव वा असामान्य पारिणामिक भाव अथवा विशेष पारिणामिक भाव जीव के वे हैं जो केवल जीव में हीं पाए जावें अन्य किसी द्रव्य में न पाये जावें और वे केवल तीन ही जीवत्व, भव्यत्व, अभव्यत्व है अधिक नहीं हैं। ये तीनों भाव अनादिकाल सिद्ध हैं और साधारण पारिणामिकभाव वा सामान्य पारिणामिक भाव अथवा विशेष रहित पारिणामिक भाव वो हैं जो जीव में होते हैं और अचेतन अन्यद्रव्य जैसे धर्म द्रव्य अधर्म द्रव्य इत्यादिक में भी होते हैं ये समस्त पारिणामिक गुण अनेक हैं और अनादिकाल सिद्ध हैं ॥

अन्यद्रव्यासाधारणा आत्मनो वेदितव्याः ॥ कुतः पुनरेषां पारिणामिकत्वम्। कर्मोदयोपशमक्षयक्षयोपशमानपेक्षित्वात् ॥ जीवत्वं चैतन्यमित्यर्थः । सम्यग्दर्शनादिभावेन भविष्यतीति भव्यः । तद्विपरीतोऽभव्यः । त एते त्रयो भावा जीवस्य पारिणामिकाः ॥ ननु चास्तित्वनित्यत्वप्रदेशत्वादयोऽपि भावाः पारिणामिकाः सन्ति तेषामिह ग्रहणं कर्तव्यम् । न कर्तव्यम् । कृतमेव । कथं चेच्चशब्देन समुच्चितत्वात् ॥ यद्येवं, त्रय इति संख्या विरुध्यते । न विरुध्यते ।

अन्यद्रव्य–असाधारणा[2]।आत्मनः[1]।वेदितव्याः[3]। =अन्यद्रव्यसे असाधारण वा भिन्नद्रव्यसे असमान आत्माको जाननाचाहिए

कुतः*पुनः*एषाम्[2]। पारिणामिकत्वम् [1]॥ =बहुरि इन(तीनों भावों)के कहांसे पारिणामिकपना है(इन तीनों भावोंमें)

कर्मोदय–उपशम–क्षय–क्षयोपशम–अपेक्षित्वात्[1]॥ =कर्मका उदय उपशम क्षय क्षयोपशम की विवक्षा नहीं है

जीवत्वं[1]॥चैतन्य[2]॥इति अर्थः।सम्यग्दर्शनादि–भावेन[1]। =(तहां)जीवत्व चैतन्य है ऐसा आशय है। सम्यग्दर्शनादिक भावकरि

भविष्यति।इति*भव्यः[1]।तद्–विपरीतः[2]।अभव्यः[1]। =होयगा अर्थात् परिणमेगा ऐसा भव्य है उसके विरुद्ध अभव्य है
अर्थात् सम्यग्दर्शनादिक जिसके न होवेंगे वो अभव्य है

ते[1]। एते[2]।त्रयः[3]।भावाः[3]।जीवस्य[1]।पारिणामिकाः[2]। =ते इतने तीन भाव जीवके पारिणामिक हैं

ननु*च*अस्तित्वनित्यत्वप्रदेशत्वादयः[3]। अपि * =(प्रश्न)अस्तित्व नित्यत्व प्रदेशत्व आदिक भी

भावाः[3]।पारिणामिकाः[3]।सन्ति। तेषाम्[1]। इह -- =भाव पारिणामिक हैं तिनका इस जगह में(=इह) अर्थात् इस सूत्रमें

ग्रहणम् [1]॥कर्तव्यम् [1]॥ न * कर्तव्यम् [1]॥ =ग्रहण करना योग्य है। (तिन दशभावोंकाइससूत्रमें) ग्रहण करना योग्यनहीं

कृतम् [1]॥ एव * =(इससूत्रमें अस्तित्व नित्यत्व आदिक दशभावोंका ग्रहण) किया भी=(एव)है

कथम्*चेत् *च*शब्देन [3]। =सो(चेत्)कैसे वा किसप्रकार(=कथम्) किया है। (सूत्रमे) चशब्दके

समुच्चितत्वात्[1]॥यदि*एवम्*त्रयः[1]।इति*संख्या[1]॥ =समुच्चितहोनेसे (लानेसे) ।(प्रश्न) यदि ऐसा है तो तीन ऐसी गिन्ती

विरुद्ध्यते । न * विरुद्ध्यते । =विरोधी जाय है (उत्तर) (उपरोक्त तीनकी संख्या) नहीं विरोधी जाय है

---

(१) अत्रासाधारणवचन–वक्ष्यमाणास्तित्वादि साधारणपारिणामिकभावापेक्षम्

अत्र * असाधारण–वचनम् [1]॥ वक्ष्यमाण– =यहां (सस्कृत सर्वार्थसिद्धि वृत्तिमें) असाधारण वाक्य (=शब्द) कहेजानेवाले
अस्तित्व–आदि–साधारण––पारिणामिक––भाव–अपेक्षम् =अस्तित्व आदिक (दश) साधारण वा समान पारिणामिक भावों की अपेक्षा है ॥

असाधारणा जीवस्य भावाः पारिणामिकास्त्रय एव ॥ अस्तित्वादयः पुनर्जीवाजीवविषयत्वात्साधारणा इति चशब्देन पृथग्गृह्यन्ते ॥ आह औपशमिकादिभावानुपपत्तिरमूर्तत्वादात्मनः। कर्मबन्धापेक्षा हि ते भावाः। न चामूर्तेः कर्मणां बन्धो युज्यत इति ॥ तन्न, अनेकान्तात् ॥

असाधारणाः ॥ जीवस्य ॥ भावाः ॥	=(क्योंकि) असमान, वा जो औरमेंनपाएजावें सो जीवके भाव
पारिणामिकाः ॥ त्रय ॥ एव*अस्तित्वादयः ॥ पुनर्*	=पारिणामिक तीन ही हैं। वहुरि (=पुनर्) अस्तित्व, आदिक (दशभाव)
जीव—अजीव-विषयत्वात् ॥ साधारणाः ॥	=चेतन और जड़ विषैं होनेसे साधारण हैं (अर्थात्जीवमेंऔर अजीवमेंभीपाएजाते हैं)
इति*चशब्देन ॥ पृथक्*गृह्यन्ते। आह।	=इसप्रकार चशब्दकरि न्यारे ग्रहणकियेगये हैं (शिष्य)प्रश्नकरता है कि
औपशमिकआदिभावअनुपपत्तिः ॥ अमूर्तत्वात्आत्मनः	=औपशमिक आदिभावोंकी चेतनके अमूर्तीक होने(के कारण)सेसिद्धिनहींहोतीहै
कर्मबन्ध—अपेक्षा ॥ हि*	=क्योंकि(=हि) कर्मबन्धकी अपेक्षारूप
ते ॥ भावाः ॥ न*च*अमूर्तेः ॥	=ते(औपशमिक आदि)भाव हैं। वहुरि(=च) नहीं है अमूर्तीकके
कर्मणाम् ॥ बन्धः ॥ युज्यते। इति*तद्	=कर्मोंका बन्धन युक्त वा उचित (उत्तर) वह(आत्मा)
न*अनेकान्तात् ॥	=अनेकान्त(नयकी अपेक्षा) से(प्रत्येक अवस्थामें)अमूर्तीक नहीं हैं

अस्तित्व वस्तुत्व द्रव्यत्व प्रमेयत्वमगुरुलघुत्व नित्यप्रदेशत्व मूर्तत्वममूर्तत्व चेतनत्वमचेतनत्व चैते दशभावाः ॥

(१) जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यका कभी नाश न हो, उसको अस्तित्व गुण कहते हैं ॥२॥ जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यमें अर्थक्रिया हो उस को वस्तुत्व गुण कहते हैं जैसे—घडेकी अर्थक्रिया जल धारण है ॥३॥ जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्य सर्वदा एकसा न रहे और जिसकी पर्यायें (अवस्थाय) सदा पलटती रहेंसो द्रव्यत्व है ॥४॥ जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्य किसी न किसी के ज्ञानका विषय हो उसको-प्रमेयत्व गुण कहते हैं ॥५॥ जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यकी द्रव्यता थिर रहे अर्थात् एक द्रव्य दूसरे द्रव्यरूप न परिणमें और एक गुण दूसरे गुणरूप न परिणमें तथा एक द्रव्यके अनेक वा अनन्त गुण विखर कर जुदे २ न हो जावें उसको अगुरुलघु गुण कहते हैं। ॥६॥ जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यका कुछ न कुछ आकार अवश्य हो उस को प्रदेशत्व गुण कहते हैं ॥

(७) मूर्तत्व = आकारता (८) अमूर्तत्व = निराकारता वा अमूर्तपना—(९) चेतनत्वम् = चेतनता = (१०) अचेतनत्वम् = अचेतनता अथवा जडता ॥

नायमेकान्तःअमूर्तिरेवात्मेति। कर्मबन्धपर्यायापेक्षया तदावेशात्स्यान्मूर्तः। शुद्धस्वरूपापेक्षया स्यादमूर्तः॥ यद्येवं कर्मबन्धावेशादस्यैकत्वे सत्यविवेकःप्राप्नोति। नैष दोषः। बन्धं प्रत्येकत्वे(ऽविवेके) सत्यपि लक्षणभेदादस्य नानात्वमवसीयते॥ उक्तं च-बन्धपडि एयत्तं लक्खणदो हवइ तस्स णाणत्तं। तह्मा अमुत्तिभावोऽणेयंतो होइ जीवस्स॥ १॥ इति॥ यद्येवं तदेव लक्षणमुच्यतां, येन नानात्वमवसीयत। इत्यत आह—

न*अयम् ।एकान्तः।अमूर्तिः।एव*आत्मा।इति*	=यह(=अयम्)एकान्त नहीं है कि चेतन अमूर्तीक ही (=एव) है
कर्म-बन्धपर्याय-अपेक्षया।तद्-आवेशात्।	=कर्म बन्धनरूप पर्यायकी विवक्षाकरि उस (कर्म बन्धन) के प्रवेशहोनेसे
स्यात् मूर्तः।शुद्ध स्वरूप-अपेक्षया।स्यात्। अमूर्तः।	=कथंचित् मूर्तीक है (और) शुद्ध स्वरुपकी विवक्षाकरि कथंचित् (स्यात्)अमूर्तीक है
यदि*एवम्*कर्म बन्ध-आवेशात्।अस्य।	=(प्रश्न)जो इस प्रकार है तो कर्मबन्धनके बन्धनसे उस (आत्मा)के
एकत्वे।सति।अविवेकः।प्राप्नोति।न एषः।दोषः।	=एकपना होनेपर अज्ञानपना प्राप्ति होता है (उत्तर) यह दूषण नहीं है
बन्धम्।प्रति*एकत्वे।(अविवेके।)सति।अपि*	=कर्मबन्धन पर्यायज्ञान अपेक्षासे एकपना(=एकत्वे)अर्थात् अविवेकपना होनेपर भी
लक्षण-भेदात्।अस्य।नानात्वम्।अवसीयते।	=लक्षण भेदसे उस(चेतन)के अनेकपना निश्चय किया जाता है
उक्तम्।च*बन्धं।पडि*(-बन्ध।प्रति*)	=और कहा भी है। बन्धकी अपेक्षासे
एयत्तं।लक्खणदो। (एकत्वम्।लक्षणतः*)	=(जीव और कर्मके) एकत्व वा एकता है और लक्षण (भेद) से
हवइ।तस्स।णाणत्तम्।(भवति तस्य नानात्वम्)	=तिस(जीव)के अनेकपना है
तह्मा*अमुत्तिभावो।(तस्मात्*अमूर्तिभावः।)	=तिस कारणसे (तस्यात्-तह्मा)अमूर्तीकभाव
अणेयंतो।होइ।जीवस्स।(अनेकान्तः भवति जीवस्य)	=अनेकान्त (नय)से जीवके होय है अर्थात् जीवके अमूर्तीक भाव सिद्ध होता है
इति*	=इस प्रकारसे सात सूत्रोंकरि जीवके पांच भाव वर्णन किये।
यदि*एवम्*	=(प्रश्न)जो इसप्रकार है अर्थात् बन्धप्रति (जीव और कर्मके)एकत्वपना है तो
तद्।एव*लक्षणम्।उच्यताम्।येन।नानात्वम्।	=वही(-तद्एव) लक्षण कहेजाने योग्य है किजिस(लक्षण)द्वारा अनेकपना
अवसीयते। इति*अतः*आह।	=निश्चय किया जाता है इसलिए(आचार्यनिम्न सूत्रमें) कहते हैं कि

॥ उपयोगो लक्षणम् ॥ ८ ॥

उभयनिमित्तवशादुत्पद्यमानश्चैतन्यानुविधायी परिणाम उपयोगः ॥ तेन बन्धं प्रत्येकत्वे सत्यप्यात्मा लक्ष्यते । सुवर्णरजतयोर्बन्धं प्रत्येकत्वे सत्यपि वर्णादिभेदवत् ॥ तद्भेददर्शनार्थमाह

सूत्रम् - उपयोगो(4) लक्षणम्(5) ॥ ८ ॥ =उपयोगः (जीवस्य) लक्षणम् (भवति)

सूत्रार्थः— उपयोगः। =चैतन्यकेसाथ रहने वाले आत्माके परिणाम का नाम उपयोग है। (वहउपयोग)
जीवस्य।लक्षणम्।भवति। =जीवका लक्षण है अर्थात् बाह्य अभ्यंतर दोनों प्रकारके कारणोंका यथासंभव सन्निधान रहनेपर चैतन्यगुणके साथरहनेवाला जोकोई आत्माका परिणाम है उसका नाम उपयोग है

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस आठवें सूत्रपर संस्कृत सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिन्दी अनुवाद

उभय–निमित्तवशात्। उत्पद्यमानः।	=दोनों(बाह्य आभ्यन्तर) कारणोंके आश्रयसे (चैतन्यके) उपजा
चैतन्य–अनुविधायी।परिणामः। उपयोगः।	=जुड़ाहुआ चैतन्य(ही)का परिणाम(सो) उपयोग है
तेन।बन्धम्।प्रति*एकत्वे।। सति।।अपि*आत्मा।	=तिस(लक्षण)करि बन्ध अपेक्षा(जीवऔर कर्ममें) एकताहोनेपर भी चैतन्य
लक्ष्यते।सुवर्णरजतयोः।बन्धम्।प्रति एकत्वे।।सति।।	=जुदालखाजाता है॥ जैसे सोना चांदीके पिंड(बन्ध)से(=प्रति)एकपन होनेपर
अपि*वर्णादिभेदवत्*तद्भेददर्शन–अर्थम्।आह।	=भी(पीत–शुक्ल)रूपादिक भेदवत् है॥ उसके भेद दिखानेके लिये कहते हैं कि

(१) इस सूत्रमें इस दूसरे अध्यायके प्रथम सूत्रसे जीवस्य शब्दकी अनुवृत्ति आती है। (२) व्यतिकीर्णवस्तुव्यावृत्तिहेतुर्लक्षणमुच्यते
व्यतिकीर्णवस्तु–व्यावृत्तिहेतु। =परस्पर मिलेहुये पदार्थोंमें जो उनमें भेद-ज्ञान करानेमें हेतु है वा पहचान करानेवाला कारण है
लक्षणम्।उच्यते। =सोलक्षण कहा जाताहै भावार्थ परस्पर मिली हुई वस्तुओंमेंसे किसीएकवस्तुको
भिन्न करनेमें जो कारण हो उसका नाम लक्षण है। जिस प्रकार अग्नि उष्ण है यहां पर पदार्थ समूहसे अग्निको जुदा करनेवाला उष्णत्वहै
अत वह लक्षण है (३) इस सूत्रका पाठ और अर्थ श्वेताम्बर और दिगम्बर आम्नायोंमें एकसा है
(४) उपयोग=आत्माका चैतन्यस्वभाव, आत्माका परिणाम, आत्माकी परिणति, आत्माका परिणमन॥

॥ स द्विविधोऽष्टचतुर्भेदः ॥ ९ ॥

स उपयोगो द्विविधः । ज्ञानोपयोगो दर्शनोपयोगश्चेति ॥ ज्ञानोपयोगोऽष्टभेदः । मतिज्ञानं, श्रुतज्ञानं, अवधिज्ञानं, मनःपर्ययज्ञानं, केवलज्ञानं, मत्यज्ञानं, श्रुताज्ञानं, विभङ्गज्ञानं चेति ॥ दर्शनोपयोगश्चतुर्विधः । चक्षुर्दर्शनं, अचक्षुर्दर्शनं, अवधिदर्शनं, केवलदर्शनं चेति ॥ तयोः कथं भेदः? । साकारानाकारभेदात् । साकारं ज्ञानमनाकारं दर्शनमिति ॥ तच्छद्मस्थेषु क्रमेण वर्तते ।

॥ स द्विविधोऽष्टचतुर्भेदः ॥ ९ ॥

सूत्रार्थः—सः१।द्विविधः१।अष्टचतुर्भेदः१।	=वह (उपयोग) दो प्रकार है(उनमेंसे) एक आठप्रकारहै दूसरा चारप्रकार है
वृत्त्यनुवादः—सः१।उपयोगः१।द्विविधः१।ज्ञान—उपयोगः१।	=वह चैतन्यस्वभाव दो प्रकार है ज्ञान उपयोग
दर्शन—उपयोगः १। च*इति*ज्ञान—उपयोगः १।	=और (=च) दर्शन उपयोग इस प्रकार हैं ज्ञान उपयोग
अष्टभेदः१। मतिज्ञानम् १।।श्रुतज्ञानम् १।।	=आठ प्रकार है (अर्थात्) मतिज्ञान, श्रुतज्ञान,
अवधिज्ञानम् १।।मनःपर्ययज्ञानम्१।। केवलज्ञानम् १।।	=अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, केवलज्ञान, (तथा)
मतिअज्ञानम् १।।श्रुतअज्ञानम् १।।विभङ्गज्ञानं१।। च*इति*	=मतिअज्ञान वा कुमति,श्रुतअज्ञान वा कुश्रुतऔर विभंगज्ञान वाकुअवधि इसप्रकारहैं
दर्शन—उपयोगः१।चतुर्विधः१।चक्षुर्दर्शनम् १।।	=दर्शन उपयोग चार है (अर्थात्) चक्षुर्दर्शन
अचक्षुर्दर्शनम् १।।अवधिदर्शनं१।।केवलदर्शनम् १। च*	=अचक्षुर्दर्शन, अवधिदर्शन,और केवलदर्शन
इति तयोः६।। कथम्*भेदः१। ?	=इस प्रकार हैं इन दोनों (ज्ञान तथा दर्शनउपयोग) में कैसे भेद है
साकार—अनाकार भेदात् ५।साकारम् १।। ज्ञानम् १।।	=(उत्तर) साकार और निराकार के भेदसे(अर्थात्)आकार सहित ज्ञान है
अनाकारम्१।।दर्शनम् १।। इति*	=निराकारदर्शन है इसप्रकारहैं(अर्थात्) दर्शनसत्तामात्रआकाररहितका ग्रहणहै
तद् १।।छद्मस्थेषु ७।।क्रमेण३। वर्तते T	=वे(ज्ञान दर्शन)छद्मस्थ असर्वज्ञजीवोंमें क्रम(प्रथमदर्शनपीछे ज्ञान) से वर्तते हैं

निरावरणेषु युगपत्। पूर्वकालभाविनोऽपि दर्शनात् ॥ ज्ञानस्य प्रागुपन्यासोऽभ्यर्हितत्वात् ॥ सम्यग्ज्ञानप्रकरणात्पूर्वं पंचविधो ज्ञानोपयोगो व्याख्यातः॥ इह पुनरुपयोगग्रहणाद्विपर्ययोऽपि गृह्यते इत्यष्टविध उच्यते ॥ यथोक्तेनानेनाभिहितपरिणामेन सर्वात्मसाधारणेनोपयोगेन ये उपलक्षिता योगिनस्ते द्विविधाः— ॥ संसारिणो मुक्ताश्च ॥ १० ॥

निरावरणेषु ७।	=कर्मरूपआवरण रहित सर्वज्ञजीवोंमें अर्थात् केवलज्ञानियोंमें
युगपत्॥पूर्वकालभाविनः१।अपि॥दर्शनात्५॥	=(ज्ञान-दर्शन)एककालमें होते हैं ॥ प्रथम होनेवाले दर्शनोपयोगसे भी
ज्ञानस्य६॥प्राक्॥उपन्यासः१।अभ्यर्हितत्वात् ५॥	=(सूत्रमें) ज्ञानका पहिले कहना प्रधानपना अथवा श्रेष्ठताके कारणसे है अर्थात् ज्ञान प्रधान है इससे इस सूत्रमें दर्शनसे पहिले ज्ञानको कहा है
सम्यग्ज्ञान-प्रकरणात् ५॥	=सम्यग्ज्ञानकेविषय में वा सम्यग्ज्ञानकेप्रकरणमें
पूर्वम् १॥ पचविधः१। ज्ञानउपयोगः१। व्याख्यातः१।	=पहिले(प्रथम अध्याय सूत्र ९में) पाच प्रकार ज्ञान उपयोग कहागया है
इह॥पुनः॥उपयोगग्रहणात् ५॥ विपर्ययः१। अपि॥	=बहुरि यहां(=इह)उपयोग शब्द लानेसे विपर्ययज्ञान भी
गृह्यते।इति॥अष्टविधः१। उच्यते।	=ग्रहणकियागया है इस प्रकार (ज्ञानोपयोग) आठ प्रकार कहागया है।
अनेन३। अभिहित-परिणामेन ३।	=(अब दशवांसूत्रकी उत्थानिका कहते हैं कि)ग्रहणकिया है परिणाम इसने
सर्वात्मसाधारणेन३।यथोक्तेन३।उपयोगेन३।	=(और) सर्वआत्मामें साधारण (समान) यथोक्त जो उपयोग है ताकरि
ये १। उपलक्षिताः१। योगिनः१।ते १। द्विविधाः१।	=उपलक्षित ये योगी(=उपयोगी जो आत्मा है)ते दो प्रकार हैं अर्थात् आठवां नवमां दो सूत्रोंमें कथित यह परिणाम वा उपयोग जो समस्तजीवोंमें साधारणतः दिखाया गया है ते जीव निम्नकथित सूत्रानुसार दो प्रकार हैं

॥ (१)संसारिणो मुक्ताश्च(२) ॥ १०॥=ते जीवाःससारिणो मुक्ताश्च द्विविधाः भवन्ति

ते १।जीवाः१।संसारिणः१।मुक्ताः१।च द्विविधाःभवन्ति=तेजीवसंसारीऔर(=च)मुक्त दोप्रकारहोते हैं। अर्थात्जोजीवकर्मसहितहैं

(१) श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों सम्प्रदायों में इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है ॥ (२)चशब्द -(प्रश्न) 'ससारिणो मुक्ताश्च' यहांपर

संसरणं संसारः परिवर्तनमित्यर्थः।

कर्मों की पराधीनताके कारण अनेक जन्म मरणोंको करते हुए संसारमें भ्रमण करते रहते हैं वे संसारी कहे जाते हैं और जो समस्त कर्मोंको काटकर मुक्त होगये हैं उनको मुक्त जीव वा सिद्धजीव कहते हैं

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस आठवे सूत्रपर संस्कृत सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिंन्दीअनुवाद

वृत्त्यर्थः—संसरणम् १॥संसारः१।परिवर्तनम् १॥ इति*अर्थः१। =परिभ्रमणरूप संसारहै वही परिवर्तनहै ऐसाअर्थहै अर्थात्अपनेभावकरिवांधे

वाक्यरूपसे सूत्रका उल्लेख न कर ससारिणश्च मुक्ताश्च 'ससारिमुक्ता.' ऐसा द्वन्द्व समास मानना चाहिये लाभ यह है कि चशब्द कहना न पड़ैगा

इसलिये लाघव होगा तथा सूत्रका जो अर्थ है उसअर्थमें किसी प्रकारकी वाधा भी न होगी (उत्तर) ससारी और मुक्त दोनों शब्दोंमें मुक्त

शब्द पूज्य और अल्पाक्षर है इसलिए द्वन्द्वसमास करने पर मुक्तशब्दका ही पूर्व निपात होनेसे मुक्तससारिणःऐसा सूत्रकरना पड़ेगा तथा "मुक्तः

ससारो येन भावेन स मुक्तससार तद्वतो मुक्तससारिणः" अर्थात् जिस स्वरूपसे ससारकाछूट जाना हो वह मुक्तससार और उससे विशिष्ट वा सहित

मुक्त ससारी है यह मुक्तससारी शब्दका अर्थ होगा एव उससे ज्ञानदर्शनस्वरुप उपयोगवान मुक्तससारी अर्थात् सिद्धजीव ही कहे जांयगे

ससारी जीव न कहे जांयगे उस रीतिसे द्वन्द्व समास मानने पर इस दूसरे अर्थकी प्रतीतिसे विपरीत अर्थ होगा अतः द्वन्द्वसमास न मानकर

"ससारिणो मुक्ताश्च" यह वाक्यार्थ ही उपयुक्त है॥ यदि यहां पर फिर ये शकाकी जाय कि ससारिणो मुक्ताश्च यहां पर च शब्द का अर्थ

समुच्चय माना है तथा "आपस में विशेषणविशेष्य रूपकी अपेक्षा न कर अनेक शब्दोंका वाक्य में भिन्न भिन्न रूपसे रहना" यह समुच्चय शब्दका

अर्थ है यहां पर भी ससारी और मुक्त दोनों शब्द भिन्न भिन्न हैं यह बात वतलाने के लिये सूत्रमें 'च' शब्दका उल्लेख किया है परन्तु जिस

प्रकार 'पृथिव्यप्तेजोवायु:' इस वाक्यमें पृथिवी आदि शब्दों में आपसमें विशेषणविशेष्य भाव नहीं है तथा अर्थ भी भिन्न भिन्न है इस लिये वे भिन्न

भिन्न माने जाते हैं उसी प्रकार 'ससारिणोमुक्ता' यहां पर भी आपस में विशेषण विशेष्य भाव नहीं तथा अर्थ भी भिन्न है इसलिये ससारी और मुक्त

दोनों शब्द भिन्न भिन्न है अतः उनमें भेद प्रकट करनेके लिये समुच्चयार्थक चशब्द का उल्लेख करना व्यर्थ है (उत्तर) च शब्दके समुच्चय और

अन्वाचय ये दोनों अर्थ हैं तथा एकको प्रधान और दूसरी को गौण वतलाना यह अन्वाचय शब्द का अर्थ है सूत्रमें जो चशब्द है उसका अर्थ

यहा अन्वाचय है और एकस्थान में उपयोग गौणरूप से रहता है और दूसरे स्थान में मुख्यरूपसे रहता है यह वहांपर चशब्द द्योतन करता है

इसरीतिसे "भैक्ष्य चर देवदत्त चानय" अर्थात् भिक्षा का आचरण करो और देवदत्त को लेआओ इस अन्वाचय के प्रसिद्ध उदाहरण में जिस प्रकार

भिक्षाका आचरण करना प्रधान है और देवदत्तका लाना गौण है उसी प्रकार ससारी और मुक्तजीवों मे ससारीजीव प्रधानतासे उपयोगवान

हैं और मुक्तजीव गौणरूप से उपयोगवान है यह चशब्दसे प्रदर्शित अर्थ है। इस लिये सूत्रमें 'चशब्द' व्यर्थ नहीं है॥

स एषामस्ति ते संसारिणः॥ तत्परिवर्तनं पञ्चविधं द्रव्यपरिवर्तनं, क्षेत्रपरिवर्तनं,कालपरिवर्तनं,भवपरिवर्तनं,भावपरिवर्तनं चेति ॥ तत्र द्रव्यपरिवर्तनं द्विविध नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनं कर्मद्रव्यपरिवर्तनं चेति ॥ तत्र नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनं नाम,त्रयाणां शरीराणां षण्णां पर्याप्तीनां योग्या ये पुद्गला एकेन जीवेन एकस्मिन्समये गृहीताः स्निग्धरूक्षवर्णगन्धादिभिस्तीव्रमन्दमध्यमभावेन च यथावस्थिता द्वितीयादिषु समयेषु निर्जीर्णा अगृहीताननन्तवारानतीत्य मिश्रकांश्चानन्तवारानतीत्य मध्ये गृहीतांश्च

	जे कर्म तिनके वशहोकरि भवसे भवांतरकी प्राप्तिको संसार कहते हैं
सः१। एषाम्६। अस्ति।ते१। संसारिणः१। तत् परिवर्तनम्१॥	=वह(संसार)जिनकेहै.ते संसारी हैं। वह परिवर्तन संसरण वा परिभ्रमण
पंचविधं १॥ द्रव्यपरिवर्तनं १॥ क्षेत्रपरिवर्तनं १॥	=पाँच प्रकार है द्रव्यसंसरण, क्षेत्रसंसरण
कालपरिवर्तनम् १॥ भवपरिवर्तनम् १॥ च *	=कालसंसरण, भवसंसरण और
भावपरिवर्तनम् १॥ इति* तत्र*द्रव्यपरिवर्तनम् १॥	=भावसंसरण इस प्रकार हैं तहाँ द्रव्यपरिभ्रमण
द्विविध १॥ नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनं१॥ कर्मद्रव्यपरिवर्तनं१ च इति	=दो प्रकार(द्विविधम्) है नोकर्मद्रव्यसंसरण और कर्मद्रव्यसंसरण इसप्रकार हैं
तत्र नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनम् १॥ नाम १॥	=तहाँ नोकर्मद्रव्यपरिवर्तन नाम(इसप्रकार है कि) [श्वासोश्वास—भाषा—मन
त्रयाणाम् ६॥ शरीराणाम् ६॥ षण्णाम् ६॥	=तीन(औदारिकवैक्रियकआहारक)शरीर और छह (आहार-शरीर-इन्द्रिय-
पर्याप्तीनाम् ६॥ योग्याः १।ये १। पुद्गला १। एकेन ३।जीवेन ३।	=पर्याप्तिके योग्य जे पुद्गल परमाणुके स्कंध एक चेतन करि
एकस्मिन् ७। समये ७। गृहीताः १। स्निग्धरूक्षवर्णगन्धादिभिः ३।	=एक समयमें ग्रहणकिये (ते) स्निग्धरूक्षवर्णगंध आदिकरि
तीव्रमन्दमध्यमभावेन ३। च यथावस्थिताः१।द्वितीयादिषु ७।	=और तीव्र मन्द मध्यम भावकरि जैसे तिष्ठते द्वितीयादिक
समयेषु७। निर्जीर्णाः १। अगृहीतान् २।	=समय में खिरे (बहुरिद्वितीयादिक समयमें) बिनाग्रहे (परमाणु)
अनन्तवारान् २। अतीत्य—मिश्रकान् २। च*	=अनन्तवार ग्रहणकियेका उलंघकरि और मिश्रपरमाणुओंको
	अर्थात् पहिले ग्रहेथे तिनमेंके ग्रहीत भी बहुरि नये ग्रहणकिये तेभी
अनन्तवारान् २।अतीत्य—मध्ये७। गृहीतान् २।च*	=अनन्तवार(ग्रहणमेंआएहुओंको)उल्लंघ करि और बीचमेंग्रहीतपरमाणु

अनन्तवारानतीत्य त एव तेनैव प्रकारेण तस्यैव जीवस्य नोकर्मभावमापद्यन्ते यावत्तावत्समुदितं नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनम् ॥ कर्मद्रव्यपरिवर्तनमुच्यते--एकस्मिन्समये एकेन जीवेनाष्टविधकर्मभावेन पुद्गला ये गृहीताः समयाधिकामावलिकामतीत्य द्वितीयादिषु समयेषु निर्जीर्णाः पूर्वोक्तेनैव क्रमेण त एव तेनैव प्रकारेण तस्य जीवस्य कर्मभावमापद्यन्ते यावत्तावत्कर्मद्रव्यपरिवर्तनम् ॥ उक्तं च

अनन्तवारान् अतीत्य—ते एव तेन एव	=अनन्तवार ग्रहणमें आयेहुओंको उल्लंघिकरि (जब) तेही तिसही
प्रकारेण तस्य एव जीवस्य नोकर्मभावम् आपद्यन्ते ।	=प्रकारकरि तिसही जीवकै नोकर्मभावको प्राप्त होते है अर्थात् वही जीव जिसने पहिले समयमें परमाणु ग्रहे थे तेही तैसे स्पर्शादिकके अविभागप्रतिच्छेदनिकी संख्या लिये तथा तितने ही परमाणुको लिये समयप्रबद्ध ग्रहण करै।
यावत् तावत् समुदितम् नोकर्म द्रव्य-	=सारा(=यावत्) इतना(=तावत्)(काल)इकट्ठा होय है(तब)नोकर्म द्रव्य-
परिवर्तनम् । कर्मद्रव्यपरिवर्तनम् उच्यते ।	=परिवर्तन होता है। (अब) कर्मद्रव्यपरिवर्तन कहा जाता है
एकस्मिन् समये एकेन जीवेन अष्टविधकर्म-	=(तहां) एक समयमें एकजीवकरि आठप्रकार कर्म-
भावेन पुद्गलाः ये गृहीताः	=स्वभावकरि जे पुद्गल ग्रहणकिये (ते)
समय-अधिकाम् आवलिकाम् अतीत्य	=समय अधिक आवलीकालको उल्लंघकर
द्वितीयादिषु समयेषु निर्जीर्णाः पूर्वोक्तेन	=द्वितीयादिक समयोंमें निर्जीर्ण भये (फिर) पहिले कथित
एव क्रमेण	=(नोकर्मद्रव्यपरिवर्तकीज्यों)हीक्रमकरि(अर्थात् अगृहीतऔरमिश्रगृहीत और मध्यगृहीतपरमाणुओंका ग्रहण करते करते जब कोई समय ऐसाहोय जिसमें)
ते एव तेन एव प्रकारेण तस्य जीवस्य	=तेही(कर्मयोग्य पुद्गल) तिस ही प्रकारकरि तिस जीवके (जब)
कर्मभावम् आपद्यन्ते । यावत् तावत्	=कर्मभावको प्राप्तहोते हैं(तब)सारा(यावत्)इतना(=तावत्)
कर्मपरिवर्तनम् उक्तम् च	=(काल)कर्मपरिवर्तन है ॥ कहा गया भी (च) है

(२) नोकर्मद्रव्य परिवर्तनका और कर्म द्रव्यपरिवर्तनका समान ही काल है और कर्मद्रव्यपरिवर्तन मे समस्त विधि नोकर्मद्रव्य परिवतन कीभांति है॥ केवल अन्तर इतना है कि नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनमे नोकर्मवर्गणाओंका ग्रहण है और कर्मद्रव्यपरिवर्तनमे कर्म वर्गणाओंका ग्रहण है ॥

सव्वेऽवि पुग्गला खलु कमसो भुत्तुज्झिया य जीवेण। असइ अणंतखुत्तो पुग्गलपरियट्टसंसारे ॥१॥ क्षेत्रपरिवर्तनमुच्यते-- सूक्ष्मनिगोदजीवोऽपर्याप्तकः सर्वजघन्यप्रदेशशरीरो लोकस्याष्टमध्यप्रदेशान्स्वशरीर-मध्यप्रदेशान् कृत्वोत्पन्नः क्षुद्रभवग्रहणं जीवित्वा मृतः स एव पुनस्तेनैवावगाहेन द्विरुत्पन्नस्तथा त्रिस्तथा चतुरित्येवं यावद्घनांगुलस्यासंख्येयभागप्रमिताकाशप्रदेशास्तावत्कृत्वस्तत्रैव ॥

सव्वेऽवि पुग्गला खलु कमसो भुत्तुज्झिया य जीवेण। असइ अणंतखुत्तो पुग्गलपरियट्टसंसारे ॥ १ ॥

=पुग्गलपरियट्टसंसारे असइ अणंतखुत्तो सव्वेऽवि पुग्गला खलु कमसो भुत्तुज्झिया य जीवेण ॥ १ ॥

पुग्गलपरियट्टसंसारे ७।(पुद्गलपरिवर्तनसंसारे ७।)असइ ७। =इस (=असइ=अस्मिन्) पुद्गलपरिवर्तनरूप संसारमें

अणंतखुत्तो * (अनंतकृत्वः*) =अनंत (=अणंत) कृत्वः (=बार)

सव्वे १। अवि* पुग्गला १। (सर्वे १। अपि* पुद्गलाः १।) =सबही पुद्गल

खलु* कमसो* (खलु* क्रमशः*) =निश्चयकरि अनुक्रमसे

भुत्तुज्झिया १।य*जीवेण ३। (भुक्तोज्झिता १।च जीवेन ३।) =जीवद्वारा ग्रहण किये जाकर छोड़ दिये गये हैं अर्थात् "इस पुद्गलपरिवर्तन रूप संसार विषै इस जीवनैं सर्व ही पुद्गल निश्चयकरि अनंतवार अनुक्रमसे ग्रहण करि करि छोड़े हैं' जयचंद वचनिका पृष्ठ २४६

क्षेत्रपरिवर्तनम् १।। उच्यते T सूक्ष्मनिगोदजीवः १। =क्षेत्र परिवर्तन कहा जाता है (जब) कोईजीव सूक्ष्मनिगोदिया

अपर्याप्तकः १। सर्वजघन्यप्रदेशशरीरः १। लोकस्य ६। =अपर्याप्तक समस्त जघन्य (अवगाहनारूप) शरीरवाला लोकके

अष्टमध्यप्रदेशान् २।स्वशरीरमध्यप्रदेशान् २।कृत्वा—उत्पन्नः १। =आठ मध्यके प्रदेशोंको अपने शरीरके मध्य प्रदेश करि उपजा अर्थात् लोकके अष्टमध्यप्रदेशोंको अपने शरीरका अष्टमध्यप्रदेश बनाकर उत्पन्न हुआ और

क्षुद्रभवग्रहणम् २। जीवित्वा—मृतः १। =क्षुद्रभव (स्वासके अठारहवां भागस्थिति रहने वाला) पाय जीकर मरा

सः १। एव*पुनर्*तेन ३।एव*अवगाहेन ३। द्विः =बहुरि वो(जीव)ही तिस ही अवगाहनकरि दूसरी बार

उत्पन्नः १।तथा*त्रिः तथा*चतुर् इति* =तथा तीसरीबार तथा चौथीवार जन्मा (और मरा इस प्रकार)

एव*यावत्*घनांगुलस्य ६।। असंख्येयभागप्रमिता— =ही जितना घनांगुलके असंख्यातवां भाग प्रमाणित(=प्रमिता)

आकाश—प्रदेशाः १। तावत्*कृत्वः*तत्र*एव* =आकाश प्रदेश हैं तितने वार (=कृत्वः) तहांही वा उस स्थानमें ही

(३) क्रिया विशेषण वार वार के अर्थ प्रकाशक द्वि, त्रि, और चतुर् अंकों में स् लगादेनेसे और शेषमें कृत्वस् लगादेनेसे बनते हैं और कृत्वस्

जनित्वा पुनरेकैकप्रदेशाधिकभावेन सर्वो लोक आत्मनो जन्मक्षेत्रभावमुपनीतो भवति याव-त्तावत्क्षेत्रपरिवर्तनम् ॥ उक्तं च— सव्वं हि लोयखेत्ते कमसो तं णत्थि जं ण उप्पण्णं । ओगाहणेण बहुसो परिभमिदो खेत्तसंसारे ॥ १ ॥

अर्थात् बीच में अनंतवार अन्य अवगाहना तथा अन्य क्षेत्र में उपजा वह इस परिवर्तन के प्रमाण रहित

जनित्वा —पुनः* एक–एक प्रदेश–अधिकभावेन ३/३ =उपजकर बहुरि(पश्चात्उसक्षेत्रसे लोकके)एक एक प्रदेश अधिकमें(क्रमसेजन्मलेकर)

सर्वः १/१ लोकः १/१ आत्मनः ६/१ =समस्त लोक (तीनसेतैंतालीस घनराजू प्रमाण)आत्मा वा अपने (=आत्मनः)

जन्मक्षेत्रभावम् २/१ उपनीतः १/१ भवति I =जन्म क्षेत्रपनको वा जन्मक्षेत्ररूप को प्राप्त किया हुआ (=उपनीतः) होता है

अर्थात् वही जीव उस क्षेत्रसे पश्चात् लोकके एक एक प्रदेश अधिकमें जन्म लेकर समस्त लोकके सब प्रदेशोंको क्रमानुसार ही (अनुक्रम विना जन्मले वहन गिनियें) स्पर्शकरि अपना जन्म क्षेत्र करता है वा बना लेता है ॥

यावत्*तावत्*क्षेत्रपरिवर्तनम् १/१॥ उक्त १/१॥ च* =(तब) सारा (=यावत्)इतना(=तावत्)क्षेत्रपरिवर्तन है ।बहुरि कहा गया हैकि,

सव्वंहि लोयखेत्त कमसो तं णत्थि जं ण उप्पण्णं। ओगाहणेण बहुसो परिभमिदो खेत्तसंसारे॥१॥

सव्वंहि लोयखेत्ते कमसो तं णत्थि जं ण उप्पण्णं =ओगाहणेण बहुसो परिभमिदो खेत्तसंसारे । सव्वंहि लोयखेत्ते कमसो तं णत्थि जं ण उप्पण्णं

ओगाहणेण ३/१॥बहुसो*(अवगाहनेन ३/१॥बहुशः*) =अनेक(=बहुश)अवगाहना(रूपशरीर को प्राप्तकरि

परिभमिदो१/१॥खेत्तसंसारे७/१॥(परिभ्रमतः१/१॥ क्षेत्रसंसारे७/१॥) =चारों ओरसे(=परि)भ्रमताहुआ (इस) क्षेत्र संसारमें

सव्वम्हि ७/१॥लोयखेत्ते७/१॥(=सर्वस्मिन्७/१॥लोकक्षेत्रे ७/१॥) =सर्वलोक क्षेत्रमें

कमसो*तं १/१॥ण*त्थि I (क्रमशः*तत्१/१॥ न*अस्ति) =अनुक्रमसे वहां ऐसा स्थान नहीं है

जं१/१॥ण*उप्पण्णं१/१॥(यत्१/१॥न*उत्पन्नम् १/१॥) =जहां(यहजीव)नहीं जन्मा है अर्थात् इसक्षेत्र संसार विषै भ्रमता यहजीव सोअनेक

अवगाहनरूपशरीरकूंपायइस सर्वलोकका क्षेत्रविषै अनुक्रमतेउपजा तहांऐसाक्षेत्र न रहा जहां न उपजा ।

लगाने पर अ तका न् गिर जाता है जैसे द्विः, त्रि. चतुः और पञ्चन् से पचकृत्वः तावत् से तावत्कृत्व अर्थात् तितनी वार ॥

कालपरिवर्तनमुच्यते–उत्सर्पिण्याः प्रथम समये जातः कश्चिज्जीवः स्वायुषः परिसमाप्तौ मृतः स एव पुनर्द्वितीयाया उत्सर्पिण्या द्वितीयसमये जातः स्वायुषः क्षयान्मृतः स एव पुनस्तृतीयाया उत्सर्पिण्यास्तृतीयसमये जात एवमनेन क्रमेणोत्सर्पिणी परिसमाप्ता, तथा अवसर्पिणी च। एवं जन्मनैरन्तर्यमुक्तं मरणस्यापि नैरन्तर्यं तथैव ग्राह्यम्

कालपरिवर्तनं॥उच्यते॥उत्सर्पिण्याः॥प्रथमसमये॥जातः॥ =कालपरिवर्तन कहा जाता है उत्सर्पिणीकालके पहिले समयमें उपजा
कश्चित्*जीवः॥स्व–आयुषः॥ परिसमाप्तौ॥ मृतः॥ =कोई जीव अपनी आयुके परिपूर्णहोनेपर मरा।
सः॥एवपुनः द्वितीयायाः॥उत्सर्पिण्याः॥द्वितीयसमये॥जातः॥ =बहुरिवोही(जीव)दूसरे उत्सर्पिणीकालकेदूसरेसमयमेंउत्पन्नहुआ(और)
स्व–आयुषः॥क्षयात्॥मृतः॥सः॥एव*पुनः*तृतीयायाः॥ =अपनी आयु पूर्णकरि (=क्षयात्) मरा। बहुरि वोही (जीव) तीसरे
उत्सर्पिण्याः॥तृतीयसमये॥ जातः॥एवम्* अनेन॥ =उत्सर्पिणी(काल)के तीसरे समयमें उत्पन्न हुआ इसप्रकार इस
क्रमेण॥ उत्सर्पिणी॥ परिसमाप्ताः॥ =क्रमसे (दसकोड़ाकोड़ी सागरका) उत्सर्पिणी काल परिपूर्ण किया

अर्थात् उत्सर्पिणी कालके दश कोड़ा कोड़ी सागर के जितने समय हैं उन समस्त समयोंमें क्रमानुसार उसी जीवने जन्म लिया क्रमको छोड़कर और समयोंमें जन्म लिया सो गिनतीमें नहीं आवे हैं ॥

तथा*अवसर्पिणी॥ च*एवम्* =बहुरि(तथा)अवसर्पिणी (काल) भी (=च) इसीप्रकार(एवम्)
जन्म–नैरन्तर्यम्॥ उक्तम्॥ =लगातार वा अविच्छेद (=नैरन्तर्यम्) जनमलेनेमें कहागया है

अर्थात् अवसर्पिणी काल के दश कोड़ा कोड़ी सागरके जितनेसमय हैं उन समस्तसमयोंमें क्रमानुसार उसी जीव ने जन्म लिया क्रमको छोड़कर और समयोंमेंजन्म लिया सोगणनामेंनहींआवैहै

मरणस्य॥अपि*नैरन्तर्यं॥तथा*एव*ग्राह्यम्॥ =तैसेही(उसीजीवका)मरणभी अविच्छेद वा लगातार ग्रहणयोग्यहैअर्थात्बीस कोड़ा कोड़ी सागरके उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी कालके जितने समय हैं उन समस्त समयोंमें वही जीव जिसने अनुक्रमसे बीसकोड़ाकोड़ी सागरके उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी कालके सर्वसमयोंमें जन्म लिया है क्रमनुसार ही मरण करता है क्रमको छोड़करऔर और समयोंका मरण गणनामें नहीं लिया जाता है।

ततःप्रच्युत्य तिर्यग्गतावन्तर्मुहूर्तायुःसमुत्पन्नः पूर्वोक्तेनैव क्रमेण त्रीणि पल्योपमानि तेन परिसमापितानि,एवं मनुष्यगतौ च तिर्यञ्चवत्, देवगतौ नारकवत्,अयं तु विशेषः—एकत्रिंशत्सागरोपमाणि परिसमापितानि यावत्तावद्भवपरिवर्तनम् ॥ उक्तं च—

अन्यगत्यादि विषैं भ्रमण करते करते फिर कोई काल विषैं तिस ही आयु को पाय तिस पाथड़े में उपजा ऐसे ही दशसहस्र वरस के जितने समय होय तितनीवार तो तिस ही आयुसहित तहां ही उत्पन्न होतारहा बीचमें अन्य स्थानमें उत्पन्न हुआ सो गणना मे नही आता है ॥ पीछे एक समय अधिक दशसहस्र वर्षकी आयु पाय उपजा ॥ पश्चात् दश हजार वरस दो समय अधिककी आयु पाय उपजा इसही अनुक्रमसे जितने तेतीस सागरके समय है तितने जन्मसे तथा मरणसे पूर्ण करता है क्रम रहित बीच बीच अन्यगति तथा अन्य आयुकरि उपजै सातिस गिनती में नही आते है॥

ततः॥प्रच्युत्य—तिर्यग्गतौ७॥अन्तर्मुहूर्तआयुः१॥ =वहाँ (नरक) से निकलकरि तिर्यचगतिमें अन्तर्मुहूर्तआयुवाला।

समुत्पन्नः १॥ पूर्वोक्तेन ३॥ एव ॥ क्रमेण ३॥ =उत्पन्न होता है पहिले कहे हुए ही क्रमकरि

त्रीणि १॥। पल्योपमानि १॥। तेन ३॥ परिसमापितानि १॥। =तीन पल्य प्रमाण तिस(जीव) करि परिपूर्ण होते है अर्थात् वही जीव तिर्यचगतिमें जघन्य आयुअन्तर्मुहूर्तकी पाय फिर समाप्तकरि अंतर्मुहूर्तके जितने समय होय तितनीवार जघन्य आयुधारि पीछे एक एक समय अधिक अनुक्रमकरि तीन पल्य पर्यंत समस्त स्थितिविषै जन्मधारिपरिपूर्ण करै है

एवम्॥मनुष्यगतौ ७॥च॥तिर्यञ्चवत्॥ =इस प्रकार नरगति में भी(=च)तिर्यंच सदृश है

देवगतौ ७॥ नारकवत्॥अयम् १॥ तु॥विशेषः१॥ =देवगतिविषै नरकके सदृश है परतु(=तु) भेद यह है (कि)

एकत्रिंशत्सागरोपमाणि१॥। परिसमापितानि १॥।(करोति)=इकतीस सागर प्रमाण(पूर्वोक्तक्रमसे) परिपूर्ण करता है(अर्थात्) इकतीस सागरसे अधिक आयुके धारक नौ अनुदिश पांच अनुत्तर ऐसे चौदह विमानों मे उपजे देवोंके परिवर्तन नही होता है क्योंकि वे सम्यग्दृष्टी है

यावत्॥तावत्॥भवपरिवर्तनम् १। उक्तम् १॥। च ॥ =सारा (=यावत्) इतना(=तावत्) भवपरिवर्तन है । कहा भी है

णिरयादिजहण्णादिसु जावदु उवरिल्लिया दु गेवेज्जा । मिच्छत्तसंसिदेण हु बहुसो वि भव-ट्ठिदी भमिदो ॥१॥ भावपरिवर्तनमुच्यते—पञ्चेन्द्रियः सञ्ज्ञी पर्याप्तको मिथ्यादृष्टिः कश्चिज्जीवः सर्वजघन्यां स्वयोग्यां ज्ञानावरणप्रकृतेः स्थितिमन्तःकोटीकोटीसंज्ञिकामापद्यते, तस्य कषायाध्यवसायस्थानान्यसंख्येयलोकप्रमितानि षट्स्थानपतितानि तत्स्थितियोग्यानि भवन्ति,

णिरयादिजहण्णादिसु (नरकादिजघन्यादिषु) =नरककी जघन्यसे लगाय
उवरिल्लिया * दु* (उपरिम् * तु *) =उपरिम् वा उत्कृष्ट तो (=दु=तु)
जावदु * गेवेज्जा (यावत् * ग्रैवेयकाः) =ग्रैवेयक तक
मिच्छत्तसंसिदेण हु * (मिथ्यात्वसंसर्गेण तु*) =मिथ्यात्वके संसर्ग सहित (यह जीव)
बहुसो वि भवट्ठिदी भमिदो (बहुशः अपि भवस्थिति भ्रमितः)=भवों की स्थिति वा आयु पाय पायकर अनेकवार भ्रम्या है
भावपरिवर्तनम् ॥ उच्यते । पञ्चेन्द्रियः सञ्ज्ञी =भवपरिवर्तन कहा जाता है । पंचेन्द्रिय संज्ञक
पर्याप्तकः मिथ्यादृष्टिः कश्चित्* जीवः =पर्याप्तक मिथ्यादृष्टि कोई जीव
सर्वजघन्याम् ॥ स्वयोग्याम् ॥ ज्ञानावरणप्रकृतेः ॥ =अपने उचित सबसे जघन्य ज्ञानावरण कर्मकी प्रकृतिकी
स्थितिम् ॥ अन्तःकोटीकोटीसञ्ज्ञिकाम् । आपद्यते । =कोड़ा कोड़ी सागरके नीचे और कोड़िके ऊपर संज्ञावाली स्थितिकोप्राप्तहोय है
तस्य ॥ कषाय-अध्यवसायस्थानानि ॥ =तिस(जीव)के कषायभावस्थान
असंख्येयलोकप्रमितानि ॥ षट्स्थानपतितानि ॥ =असख्यात लोक प्रमाण छहस्थान प्रति (अर्थात् हानिवृद्धिरूप) सहित
तत्स्थितियोग्यानि ॥ भवन्ति । =उस स्थितिके योग्य होते हैं अर्थात् उस अन्तःकोड़ा कोड़ी सागर की जघन्य

स्थिति बंधनेका कारण कषाय भावके स्थान हैं और वे गणनामें असंख्यात लोकके जितने प्रदेश होते हैं तितने हैं ॥ तिस एक एक स्थान विषै अनंतानंत अविभाग प्रतिच्छेद हैं जिनमें अनन्तभागहानि असंख्यातभागहानि संख्यातभागहानि संख्यातगुणहानि असंख्यातगुणहानि अनंतगुणहानि औरअनंतभागवृद्धि असंख्यातभागवृद्धि संख्यातभागवृद्धि संख्यात-गुणवृद्धि असंख्यातगुणवृद्धि अनंतगुणवृद्धि इसप्रकार छह स्थान प्रति हानि वृद्धि संभवे है ॥

तत्र सर्वजघन्यकषायाध्यवसायस्थाननिमित्तान्यनुभागाध्यवसायस्थानान्यसंख्येयलोकप्रमितानि भवन्ति, एवं सर्वजघन्यां स्थितिं सर्वजघन्यं च कषायाध्यवसायस्थानं सर्वजघन्यमेवानुभागबन्धस्थानमास्कन्दतस्तद्योग्यं(एकं)सर्वजघन्यं योगस्थानं भवति, तेषामेव स्थितिकषायानुभागस्थानानां द्वितीयमसंख्येयभागवृद्धिसंयुक्तं योगस्थानं भवति, एवं च तृतीयादिषु योगस्थानेषु

तत्र*सर्वजघन्यकषाय-अध्यवसायस्थाननिमित्तानि ३॥१ =तहां समस्त जघन्यकषायभावस्थान है कारण जिनको ऐसे
अनुभागअध्यवसायस्थानानि ३॥१ असंख्येयलोक- =अनुभागवंध अध्यवसाय स्थान असंख्यात लोक
प्रमितानि ३॥१ भवन्ति। =परिमाण हैं अर्थात् इनसर्वजघन्यकषाय अध्यवसाय स्थानके एक एक विषै अनुभाग वंधको कारण जे परिणाम(=अनुभागवंधअध्यवसायस्थान) ते असंख्यात लोकके जितने प्रदेश हैं तितने गणनामें है

एवम्*सर्वजघन्याम् २॥१ स्थितिम् २॥१ सर्वजघन्यम् २॥१ च =इस प्रकार सर्वजघन्यस्थितिको और सर्वजघन्य
कषायअध्यवसायस्थानम् २॥१ सर्वजघन्यम् २॥१ एव* =कषायभावस्थानको सर्वजघन्य ही
अनुभागवंधस्थानम् २॥१ आस्कन्दतः ६॥१ =अनुभागस्थानकोप्राप्तहोनेवाले
तद्*योग्यम् १॥१ (एकम् १॥१) सर्वजघन्यं १॥१ योगस्थानम् १॥१ =तिसके योग्य एक सर्वजघन्य योगस्थान
भवति। तेषाम् ६॥३ एव*स्थिति-कषाय- =होता है तिनही(अर्थात् विनापलटे हुए सर्वजघन्य ही)स्थिति कषाय
अनुभागस्थानानाम् ६॥३ द्वितीयम् १॥१ =अध्यवसाय और अनुभाग वंध अध्यवसाय स्थानों के दूसरा
असख्येयभागवृद्धिसयुक्तम् १॥१ योगस्थानम् १॥१ भवति। =असंख्यातभागवृद्धिसहित योगस्थान होता है अर्थात् अनुभाग कषाय स्थिति ये तीनों तो जघन्यही वंधे परन्तु योगस्थान पलटि दूसरा होय है और ये जघन्य योगस्थान जो श्रेणीके असख्यातवांभाग परिमाण है गणना में असंख्यात हैं और ये योगस्थान अविभाग प्रतिच्छेदनि करि असंख्यातभागवृद्धि संख्यातभागवृद्धि सख्यातगुणवृद्धि असंख्यातगुणवृद्धि सहित चतुस्थान रूप ही हैं ॥

एवम्*च*तृतीयादिषु ७॥३ योगस्थानेषु ७॥३ =बहुरि इस प्रकार तीन आदिक योगस्थानोंमें

चतुःस्थानपतितानि श्रेण्यसंख्येयभागप्रमितानि योगस्थानानि भवन्ति। तथा तामेवस्थितिं तदेव कषायाध्यवसायस्थानं च प्रतिपद्यमानस्य द्वितीयमनुभवाध्यवसायस्थानं भवति, तस्य च योगस्थानानि पूर्ववद्वेदितव्यानि। एवं तृतीयादिष्वपि अनुभवाध्यवसायस्थानेषु आ असंख्येयलोकपरिसमाप्तेः। एवं तामेव स्थितिमापद्यमानस्य द्वितीयं कषायाध्यवसायस्थानं भवति, तस्यापि

चतुःस्थानपतितानि[1/3] श्रेण्यसंख्येयभागप्रमितानि [1/3] =चार स्थानप्रति हानि सहित श्रेणीका असंख्यातवांभागप्रमाण

योगस्थानानि [1/3] भवन्ति। =योगस्थान(अनुक्रमसे होते हैं)अर्थात् दूसरे जघन्य योगस्थान के पश्चात् तीसरा योगस्थान होय परन्तु अनुभागस्थान, कषायस्थान, स्थितिस्थान, येतीनों जघन्य ही बंधते हैं॥ पीछे चौथा पांचवां छठवां सातवां आठवॉ इत्यादिक योगस्थान होते हैं.ते श्रेणीके असंख्यातवांभागतक असंख्यात प्रमाणगणनामें अनुक्रमसे पलटिजाय परन्तु अनुभाग कषाय स्थिति ये तीनों जघन्य ही रहें और कोई दो जघन्य योगस्थानके बीचमें अन्य कषायस्थान अन्य अनुभागस्थान अन्ययोग स्थान होते जांय ते गणना में न आवें हैं

तथा*ताम्[2/1]एव*स्थितिम्[2/1]तद्[2/1]एव* च* =तथा वो ही स्थिति और(=च) वोही

कषायाध्यवसायस्थानम्[2/1]प्रतिपद्यमानस्य[6/1] =कषायभावस्थानको प्राप्तकरनेवाले (जीव) में

द्वितीयम्[1/1]अनुभव–अध्यवसायस्थानम्[1/1]भवति। =दूसरा अनुभाग अध्यवसाय स्थान होता है

तस्य[6/1]च*योगस्थानानि[1/3] पूर्ववत्* =और तिस(दूसरे अनुभागभावस्थान)के योगस्थान पहिलेकी भांति (श्रेणीके असंख्यातवांभाग प्रमाण–असंख्यात प्रमाणगणनामें अनुक्रमसेहोना)

वेदितव्यानि[1/3]एवम्*तृतीयादिषु[7/3]अपि* =जानना चाहिए इस प्रकार तीन आदिक भी

अनुभवअध्यवसायस्थानेषु [7/3] आ* =अनुभागवंध अध्यवसाय स्थान(अनुक्रमसे) होते होते

असंख्येयलोक–परिसमाप्तेः[5/1] एवम्*ताम्[2/1] एव* =असंख्यात लोक परिपूर्ण तक होते हैं (तव) वास्तविक (=एवम्) वोही

स्थितिम्[2/1] आपद्यमानस्य [6/1]द्वितीयम्[1/1] =स्थितिस्थान को प्राप्त करनेवाले जीव के (=आपद्यमान) दूसरा

कषाय–अध्यवसायस्थानम्[1/1]भवति तस्य[6/1]अपि* =कषाय अध्यवसाय स्थान होताहै तिस(द्वितीय कषायाध्यवसाय भावस्थानके) भी

अनुभवाध्यवसायस्थानानि योगस्थानानि च पूर्ववद्वेदितव्यानि। एवं तृतीयादिष्वपि कषायाध्यवसायस्थानेषु आ असंख्येयलोकपरिसमाप्तेर्वृद्धिक्रमो वेदितव्यः। उक्ताया जघन्यायाः स्थितेः समयाधिकायाःकषायादिस्थानानि पूर्ववदेकसमयाधिकक्रमेण आ उत्कृष्टस्थितेस्त्रिंशत्सागरोपम कोटीकोटीपरिमितायाःकषायादिस्थानानि (पूर्ववत्) वेदितव्यानि॥

अनुभव–अध्यवसायस्थानानि॥।योगस्थानानि॥।च॥ =अनुभाग अध्यवसाय स्थान और योग स्थान
पूर्ववत्॥वेदितव्यानि॥। =पहिलेकी भांति जानना योग्य है।

भावार्थ ऐसे असंख्यात लोक प्रमाण अनुभाग स्थाननिविषै एक एकनिर्विषै योगस्थान श्रेणीके असंख्यातवां–भाग असंख्यातप्रमाण गणनामें अनुक्रमसे होते जांय और अनुभागस्थान असंख्यात लोकप्रमाण अनुक्रमसे होयचुकें तब एक कषाय स्थान पलटना है (दूसरा कषाय स्थान होना है)

एवम्॥तृतीयादिषु॥। अपि॥कषायअध्यवसायस्थानेषु॥ =इस भांति तीन आदिक भी कषायअध्यवसायस्थान होते होते
आ॥असंख्येयलोकपरिसमाप्तेः॥ वृद्धिक्रमः॥ वेदितव्यः॥ =असंख्यात लोकपरिपूर्णतक (=पर्यन्त) क्रमानुसार वृद्धि जानना योग्य है

अर्थात् तीसरे कषायस्थानविषै असंख्यात लोक प्रमाण अनुभाग स्थान अनुक्रमसे होय और अनुभाग स्थाननि एक एक विषै श्रेणीके असंख्यातवां भाग प्रमाण अनुक्रमसे योग स्थान होते जांय है इसी प्रकार चौथा कषाय स्थान पलटै और पांच आदिक कषाय स्थान क्रमानुसार होते होते असंख्यात लोक प्रमाण होजाय तबपूर्वकथितअतःकोडा कोड़ी सागर स्थितिसे एक समय अधिक ज्ञानावरणीयकर्मकी स्थिति बंधे है॥

उक्तायाः॥जघन्यायाः॥स्थितेः॥समयअधिकायाः॥ =कही हुई जघन्य स्थितिसे समय अधिकके
कषाय–आदिस्थानानि॥।पूर्ववत्॥ =कषायभावस्थान,अनुभागअध्यवसायस्थान,योगस्थान,क्रमानुसारपहिलेकी भांति होते
एकसमयअधिकक्रमेण॥।आ॥उत्कृष्टस्थितेः॥ =(होते) एक(एक)समय अधिक क्रमसे उत्कृष्ट स्थिति पर्यन्त
त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोटीपरिमितायाः॥ =तीस कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण (=प्रमितायाः) तक (अनुक्रमसे)
कषायआदिस्थानानि॥।(पूर्ववत्)वेदितव्यानि॥ =कषायभावस्थान,अनुभागअध्यवसायस्थान,योगस्थान पहिले की भांति जानो

अनन्तभागवृद्धिः असंख्येयभागवृद्धिः संख्येयभागवृद्धिः संख्येयगुणवृद्धिः असंख्येयगुणवृद्धिः अनन्तगुणवृद्धिः इमानि षट्स्थानानि, वृद्धिर्हानिरपि तथैव। अनन्तभागवृद्धिः अनन्तगुणवृद्धिरहितानि चत्वारि स्थानानि ज्ञातव्यानि। एवं सर्वेषां कर्मणां मूलप्रकृतीनामुत्तरप्रकृतीनां च परिवर्तनक्रमो वेदितव्यः। तदेतत्सर्वं समुदितं भावपरिवर्तनम्॥ उक्तं च—

अर्थात् श्रेणीके असंख्यातवांभाग प्रमाण असंख्यातगणनामे जब योगस्थान क्रमसे पलटि जांय तब एकअनुभाग स्थानपलटे और असंख्यात लोकप्रमाण जब अनुभागस्थान एक एक करि क्रमानुसार पलटि जाय तब ऐक कषायस्थानपलटे और जब असंख्यात लोक प्रमाण (कषायस्थानों विषैं एक एक विषैं असंख्यातलोक प्रमाणअनुभागस्थान क्रमानुसार होवे होते ये समस्त असंख्यातलोक प्रमाण) कषायस्थान क्रमानुसार पलटि जांय तब एक समय अधिक होकरि स्थिति पलटै॥

अनन्तभागवृद्धिः[१/१]॥ असंख्येयभागवृद्धिः[१/१]॥	=(यद्यपि) अनन्त भागवृद्धि असंख्येयभागवृद्धि
संख्येयभागवृद्धिः[१/१]॥ संख्येयगुणवृद्धिः[१/१]॥	=संख्येयभागवृद्धि संख्येयगुणवृद्धि
असंख्येयगुणवृद्धिः[१/१]॥अनन्तगुणवृद्धिः[१/१]॥इमानि[१/३]॥षट्स्थानानि वृद्धिः	=असंख्येयगुणवृद्धिअनन्तगुणवृद्धि ये छहस्थानप्रतिवृद्धि (औरअनन्तभाग असंख्येयभाग, संख्येयभाग,संख्येयगुण असंख्येयगुण,अनन्तगुण)
हानिः[१/१]॥अपि*तथा*एव*अनन्तभागवृद्धिः[१/१]॥	=हानिभी हैं तो भी अनन्तभागवृद्धि
अनन्तगुणवृद्धिः[१/१]॥	=अनन्तगुणवृद्धि (और,अनन्तभागहानि अनन्तगुणहानि)[प्रतिच्छेदोंमें
रहितानि[१/३]॥चत्वारि[१/३]॥स्थानानि[१/३]॥	=वर्जित शेषचारस्थानप्रति(वृद्धिहानिइनजघन्ययोगस्थानोकेअविभाग
ज्ञातव्यानि[१/३]॥एवम्*सर्वेषाम्[६/३]॥ कर्मणाम्[६/३]॥	=जानना चाहिये इस प्रकार समस्त कर्मों की
मूलप्रकृतीनाम्[६/३]॥उत्तरप्रकृतीनाम्[६/३]॥परिवर्तनक्रमः[१/१]॥	=मूलप्रकृतियोंका बहुरि उत्तरप्रकृतियोंकी पलटनक्रम
वेदितव्यः[१/१]॥तद्[१/१]॥एतद्[१/१]॥सर्वम्[१/१]॥समुदितम्[१/१]॥	=जानना चाहिये(=तद्)यह(=एतद्)समस्त इकट्ठा होय तब
भावपरिवर्तनम्[१/१]॥ उक्तं[१/१]॥ च*	=भावपरिवर्तन होता है। कहा भी है

सव्वा पयडिट्ठिदिओ अणुभागपदेसबंधठाणाणि। मिच्छत्तसंसिदेण य भमिदा पुण भावसंसारे ॥ १ ॥ उक्तात्पञ्चविधात्संसारान्निवृत्ता ये ते मुक्ताः। संसारिणां प्रागुपादानं तत्पूर्वकत्वान्मुक्तव्यपदेशस्य ॥ य एते संसारिणस्ते द्विविधाः—

सव्वा [१।३।] पयडि–ठ्ठिदिओ [१।३।] (सर्वाः[१।३।] प्रकृति–स्थितयः [१।३।]) =समस्त प्रकृति बंध(और) स्थितिबंध
अणुभाग–पदेस–बंध-(=अनुभाग–प्रदेशबन्ध-) =अनुभाग बन्ध(और) प्रदेश बन्धके
ठाणाणि[१।३।] मिच्छत्तसंसिदेण[३।१।] (स्थानानि मिथ्यात्वसंसर्गेण) =स्थान मिथ्यात्वके संसर्गकरि
य *भमिदा[१।३।]पुण*भावसंसारे[७।१।](च भ्रमिताः[१।३।]पुनःभावसंसारे[७।१।])=ही(=य=च)निश्चय(=पुनः)भाव संसार में
=भ्रमेजाते है भावार्थ इस जीवने भाव संसार विषै भ्रमण करि करि प्रकृति–बंध,स्थितिबन्ध,अनुभागबन्ध और प्रदेश बंधके समस्त स्थानोंको निश्चय करके प्राप्त किया है ॥

उक्तात्[५।१।] पञ्चविधात्[५।१।] संसारात्[५।१।] निवृत्ताः [१।३।] =कथित (वा उपर्युक्त) पांच प्रकारके संसारसे रहितहुये
ये[१।३।] ते[१।३।] मुक्ताः[१।३।] संसारिणाम्[६।३।] प्राक्[(१)] *उपादानम्[१।१।] =जे (जीव) ते मुक्त (=सिद्ध है)संसारियोंका (इस सूत्र में) पहिले ग्रहणहै
तत्पूर्वकत्वात्[५।१।] मुक्तव्यपदेशस्य[६।१।] =क्योंकि मोक्षका कथन वा उपदेश उस (संसार)पूर्वक वा संसार निमित्तक है अर्थात् मोक्षके व्यपदेशका संसार कारण है ॥

यदि संसार न होता तो मोक्षभी न होती क्योंकि मोक्ष संसारी जीवोंकी होती है जव वेही नहीं तो मोक्ष किसकी होती और जव मोक्ष गमन न होता अथवा मोक्षका अस्तित्व न होता तो फिर व्यपदेश मोक्षका कैसे संम्भव होता)
ये[१।३।] एते[१।३।] संसारिणः[१।३।] ते[१।३।] द्विविधाः[१।३।] =जो ये संसारी (जीव) हैं वे दो प्रकार(निम्नलिखित सूत्रानुसार)हैं

संसारियोंके भेद वहुत है और मोक्ष जीवोंके कोई भेद नहीं है तथा संसारी जीव अनुभव गोचर हैं और मोक्ष जीव अत्यन्त परोक्ष है इन दो कारणोंसे भी संसारियोंका प्रथम ग्रहण है ॥ पश्चात् मोक्ष जीवोंका ग्रहण है ॥

॥ समनस्कामनस्काः ॥ ११ ॥

मनो द्विविधं, द्रव्यमनो भावमनश्चेति ॥ तत्र पुद्गलविपाकिकर्मोदयापेक्षं द्रव्यमनः ॥ वीर्यान्तरायनोइन्द्रियावरणक्षयोपशमापेक्षया आत्मनो विशुद्धिर्भावमनः ॥ तेन मनसा सह वर्तन्त इति समनस्काः । न विद्यते मनो येषां त इमे अमनस्काः ॥

समनस्का(१)ऽमनस्काः(२) ॥ ११ ॥

संसारिणः समनस्काः अमनस्काः च *	=संसारी(जीव)संज्ञीवासैनी(=समनस्क) और(=च) असंज्ञीवाअसैनीअमनस्कहैं अर्थात् जो मनसहित हैं वे समनस्क संज्ञी वा सैनी हैं और जो मनरहित हैं वे अमनस्क असंज्ञी असैनी हैं भावार्थ जो हितमें प्रवर्तने और अहितसे दूर रहनेकी शिक्षाग्रहण करता है वहसंज्ञी है और जो शिक्षा क्रिया उपदेश इत्यादिकाग्रहण नहीं करता है वह असंज्ञी है ॥
मनस् द्विविधम् द्रव्यमनः भावमनः च * इति *	=मन दो प्रकार है द्रव्यमन और भावमन
तत्र * पुद्गल–विपाकिकर्म उदय–अपेक्षम् द्रव्यमनः	=तहां पुद्गल विपाकीकर्मप्रकृतिके उदयकी अपेक्षा जिसको सो द्रव्यमन है अर्थात् जो हृदयस्थानविषैं अष्ट पांखुड़ीका फूलकमलके आकार सूक्ष्मपुद्गलका प्रचयरूप तिष्ठता है सो द्रव्यमन है
वीर्यान्तरायनोइन्द्रिय–आवरणक्षयोपशम–	=वीर्यांतराय तथा नोइन्द्रियावरणनामा (ज्ञानावरणीयकर्मके)क्षयोपशमके
अपेक्षया आत्मनः विशुद्धिः भावमनः तेन	=कारणसे आत्माकी विशुद्धि सो भावमन है । उस
मनसा सह * वर्तन्त I (=वर्तन्ते I) इति * समनस्काः	=मनकर सहित हैं(=वर्तन्ते) इस प्रकार (=इति)समनस्क हैं
न * विद्यते I मनः येषाम् तइ (=ते) इमे अमनस्काः	=नहीं है विद्यमान वा वर्तमान(=विद्यते)मन जिनकें ते इतने अमनस्का हैं

(१) समनस्काऽमनस्काः यह वाक्य द्वंद्व समास है इसमें समुच्चाई उपसर्ग 'और' दूर कर दियाजाता है समासको खोलदेनेसे ऐसा वाक्य हो जाताहै (समनस्काः च अमनस्काः च)इसी कारणसे भाषा अनुवादमें 'और' शब्द लाये हैं (२) इस सूत्रका पाठ तथा अर्थ दोनों सम्प्रदायोंमें एकहै।

एवं मनसो भावाभावाभ्यां संसारिणो द्विविधा विभज्यन्ते । समनस्काश्चामनस्काश्च समनस्कामनस्का इति ॥ अभ्यर्हितत्वात्समनस्कशब्दस्य पूर्वनिपातः॥कथमभ्यर्हितत्वं ? । गुणदोषविचारकत्वात् ॥ पुनरपि संसारिणां भेदप्रतिपत्त्यर्थमाह—

संसारिणस्त्रसस्थावराः ॥१२॥

एवम्*मनसः६॥भाव–अभावाभ्याम्३॥	=इस प्रकार मनकी विद्यमानता अविद्यमानता करि वा सद्भाव अभाव करि
संसारिणः१॥द्विविधाः१॥ विभज्यन्ते।समनस्काः१॥च*	=संसारी(जीव) दो प्रकारमें विभाजित है वा विकल्पनीय हैं और (च)समनस्का
अमनस्काः १॥ च* समनस्कामनस्काः १॥ इति*	=और (=च) अमनस्का पदोंका द्वंद्वसमासमें समनस्कामनस्का ऐसा(वाक्य)हुआ
अभ्यर्हितत्वात् ५॥	=पूज्यपनासे वा श्रेष्ठपनासे वा प्रधानपन (केहेतु) से (अभ्यर्हित्वात्)(सूत्र मे)
समनस्कशब्दस्य६॥पूर्वनिपातः१॥कथम्*अभ्यर्हितत्वम्१॥	=समनस्क शब्दका पहिले ग्रहणहै (प्रश्न)कैसे,श्रेष्ठपना वा पूज्यपना (समनस्कशब्दके)है
गुणदोषविचारकत्वात् ५॥	=(उत्तर) समनस्क गुण दोष का विचारवाला होनेसे अमनस्कसे श्रेष्ठ वा पूज्य है
पुनः*अपि*संसारिणाम् ६॥ भेदप्रतिपत्त्यर्थम्१॥आह।	=फिर भी संसारी जीवोंके भेद जाननेके लिये कहते हैं कि

संसारिणस्त्रसस्थावराः ॥१२॥[2]

संसारिणः १॥ त्रसस्थावराः १॥ भवन्ति ।	=संसारी (जीव) त्रस और स्थावर हैं अर्थात् द्वीन्द्रिय (स्पर्शन और रसना सहित) त्रीन्द्रिय (स्पर्शन, रसना और नासिका सहित) चतुरिन्द्रिय (स्पर्शन,रसना,नासिका, चक्षुःसहित)और पंचेन्द्रिय(स्पर्शन,रसना,नासिका, चक्षु,और कान सहित),जीवोंको त्रस कहते हैं और एकेन्द्रिय (त्वक्मात्र सहित) जीवोंको स्थावर कहते है ॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस बारहवां सूत्रपर सर्वार्थ सिद्धि वृत्तिकाः शब्दशः हिन्दीअनुवाद

(१) इस सूत्रका पाठ दोनों श्वेताम्बर और दिगम्बर सम्प्रदायोंमें एक है और अर्थ भी एक है(२)संसारिणस्त्रसस्थावरा अर्थात् संसारी जीव त्रस तथास्थावर हैं ऐसा कहने से यह फलित हुआ कि मुक्त जीव नतो त्रस हैं और न स्थावर है देखो 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ४२ ॥

संसारिग्रहणमनर्थकं,प्रकृतत्वात् ॥ क प्रकृतं?। संसारिणो मुक्ताश्चेति । नानर्थकम्। पूर्वापेक्षार्थं,ये उक्ताः समनस्कामनस्काश्चेति संसारिण इति ॥ यदि हि पूर्वस्य विशेषणं न स्यात् समनस्कामनस्कग्रहणं संसारिणो मुक्ताश्चेत्यनेन यथासंख्यमभिसंबंध्येत । एवं च कृत्वा संसारिग्रहणमादौ क्रियमाणमुपपन्नं भवति। तत्पूर्वापेक्षं सदुत्तरार्थमपि भवति ॥

प्रकृतत्वात् ५।१। =(आचार्यसे शिष्यका प्रश्न) प्रकरण वा प्रसंग वा प्रबंधके कारण से (इस सूत्र में)

संसारिग्रहणम् १।१। अनर्थकम् १।१। क ? प्रकृतम् १।१। =संसारीका उपादान (=ग्रहण) निरर्थक है (शिष्यके प्रश्नपर आचार्य) कहां प्रकरण है ?

संसारिणः १।३। मुक्ताः १।३। च* इति* =(शिष्यका उत्तर) ससारिणो मुक्ताश्च ऐसा दशवें सूत्रमें प्रकरण है (आचार्यकाउत्तर)

न*अनर्थकम् १।१। पूर्व–अपेक्षा–अर्थम् १।१। =(इस सूत्रमे ससारीका ग्रहण)निरर्थक नहींहै(इससे)पहिले(सूत्रके)सम्बन्धकेलियेग्रहणहै

ये १।३।उक्ताः १।३।समनस्कामनस्काः १।३।च*इतिसंसारिण १।३।इति*= कि ये कथित समनस्क और अमनस्क सँसारी (जीव) है

यदि*हि*पूर्वस्य ६।१। विशेषणम् १।१। न स्यात् ।समनस्क=क्योंकि (=हि) जो (यदि) पहिले ११ वें सूत्रका विशेषण न होता तो समनस्क

अमनस्कग्रहणम् १।१।संसारिणः १।३।मुक्ताः १।३।चइतिअनेन ३।१।=अमनस्का (इससूत्र) के ग्रहणको संसारिणो मुक्ताश्च इस (सूत्र) से (=अनेन)

यथासंख्यम् १।१।अभिसम्बन्ध्येत । =यथासंख्य सम्बन्ध होजाता (भावार्थ) यदि इसबारहवां सूत्रसे ग्यारहवां सूत्रकाविशेषण संसारी शब्द लाकर नकिया जाता तो दशमें सूत्रके संसारी शब्दका ग्यारहवां सूत्रके समनस्का शब्द से और मुक्त शब्दका अमनस्का शब्द से सम्बन्ध होकर ऐसा अनिष्ट अर्थ होजाता है कि संसारी जीव है वे मनस्का वा मन सहित हैं और मुक्त जीव हैं ते अमनस्का व मन रहित हैं ॥

एवम्*च*कृत्वा संसारिग्रहणम् १।१।आदौक्रियमाणम् १।१।=ऐसे करके(इससूत्रमें)संसारीका उपादान वा ग्रहण आदिविषैकरना (क्रियमाणं)

उपपन्नम् १।१।भवति । =युक्ति युक्त वा प्रमाणसे भरा हुआ (=उत्पन्न) होता है

तत्-पूर्व–अपेक्षम् १।१। सत् । =उस(संसारी शब्द) का (ग्रहण) प्रथम (ग्यारहवां सूत्रके) अपेक्षा होकर

उत्तर–अर्थम् १।१। अपि* भवति । =अगले (बारहवां सूत्र) के लिये भी होता है कि

संसारिणो द्विविधाः(१)। त्रसाः स्थावरा इति ॥ त्रसनामकर्मोदयवशीकृतास्त्रसाः। स्थावरनामकर्मोदयवशवर्तिनः स्थावराः॥ त्रस्यन्तीति त्रसाः स्थानशीलाः स्थावरा इति चेन्न। आगमविरोधात् ॥ आगमे हि कायानुवादेन त्रसा द्वीन्द्रियादारभ्य आ अयोगकेवलिन इति। तस्मान्न चलनाचलनापेक्षं त्रसस्थावरत्वम्। कर्मोदयापेक्षमेव ॥ त्रसग्रहणमादौ क्रियते। अल्पान्तरत्वादभ्यर्हितत्वाच्च। सर्वोपयोगसम्भवादभ्यर्हितत्वम् ॥ एकेन्द्रियाणामपिबहुवक्तव्याभावात्

संसारिणः द्विविधाः त्रसाः स्थावराः इति	=संसारी जीव दो प्रकार हैं त्रस हैं स्थावर हैं
त्रसनामकर्मोदय–वशीकृताः त्रसाः स्थावरनामकर्म–	=त्रसनामकर्मकी प्रकृतिके उदयके वशसे हुए त्रस हैं स्थावरनामानामकर्मकी प्रकृतिके
उदयवशवर्तिनः स्थावराः त्रस्य–अन्ति(त्रस्यन्ति) इति	=उदयके वशमें हुए स्थावर हैं(प्रश्न)डरते हैं वा भयभीत होते हैं ऐसे(=इति)
त्रसाः स्थानशीलाः स्थावराः इति चेत्	=त्रस(और) ठिहरनेका है स्वभाव जिनका (ऐसे)स्थावर हैं ऐसी शंका(=चेत्) है
न आगमविरोधात् आगमे हि काय–अनुवादेन	=(उत्तर)शास्त्रके विपरीत होनेसे ऐसा नहीं है क्योंकि(=हि)शास्त्रमें कायकी अपेक्षासे
त्रसाः द्वि–इन्द्रियात् आरभ्य आ अयोगकेवलिनः इति	=त्रस जीव दो इन्द्रियसे प्रारम्भ कर अयोगकेवलीपर्यंत (=आ) हैं
तस्मात् न चलनाचलन–अपेक्षं त्रसस्थावरत्वम् ॥	=तिससे चलने न चलनेकी अपेक्षासे त्रस स्थावरपना नहीं है
कर्मउदय–अपेक्षम् एव त्रसग्रहणम्	=कर्मउदयकी अपेक्षासे ही(त्रसस्थावरपना)है(इससूत्रमें)त्रसका उपादान
आदौ क्रियते अल्पान्तरत्वात् अभ्यर्हितत्वात् च	=पूर्वमें कियाहै क्योंकि(त्रसशब्दके स्थावरशब्दसे) स्वर थोड़े हैं और प्रधानपना है
सर्व–उपयोगसम्भवात् अभ्यर्हितत्वम्	=क्योंकि(त्रसके)समस्त उपयोग सम्भव होनेसे पूज्यपना है अर्थात् त्रसके प्रधानपना सर्व उपयोग संभव हैं इस उपयोगकी अपेक्षासे है
एकइन्द्रियाणाम् अपि बहुवक्तव्य–अभावात्	=एकेइन्द्रियोंके भी बहुत कथन वा भेद(वक्तव्य)नहोनेके कारणसे

(१) द्विशब्दके साथ विधा स्त्रीलिंग बहुवचन इस कारण लाए हैं कि स्थावरों को भी बहुत जाने हैं और त्रस भी अनेक प्रकार के हैं

(२) त्रस् धातु दिवादि चतुर्थ गणका धातु है य विकरण वर्तमानकालके चिन्हके प्रथम आता है इस प्रकार 'त्रस्'का 'त्रस्य' हुआ इसके पहिले 'अन्ति' प्रत्यय लगानेसे त्रस्य–अन्ति होता है परन्तु अन्ति के 'अ'के पहिले 'अ' का लोप होजाता है अर्थात् गिरजाता है इसलिये त्रस्यन्ति वर्तमान काल परस्मैपद बहुवचन इस सूत्रमें है अर्थ डरते हैं वा भयभीत होते हैं। आरभ्य समस्तगमनक भूतकृदन्त है ॥

उल्लंघ्यानुपूर्वी स्थावरभेदप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः स्थावराः ॥१३॥

स्थावरनामकर्मभेदाः पृथिवीकायिकादयः सन्ति,

उल्लंघ्य—आनुपूर्वीं॥स्थावर—भेद—प्रतिपत्ति—अर्थम्॥आह=(कथनकरनेका)क्रम(=आनुपूर्वी)छोड़करस्थावरके भेद कहनेके लिये कहते हैं कि

पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः स्थावराः ॥ १३ ॥

पृथिवी—अप्—तेजस्—वायु—वनस्पतयः॥स्थावराः॥=पृथिवी कायिक,अप्कायिक,तेजःकायिक,वायुकायिक और वनस्पतिकायिक स्थावर(जीव)है

वृत्त्यनुवाद:—स्थावरनामकर्मभेदाः॥पृथिवीकायिक—=स्थावरनामा नामकर्मकी प्रकृतिके भेद पृथिवीकायिक

आदयः॥ सन्ति T =अप्कायिक, तेजः कायिक, वायुकायिक, वनस्पति कायिक (=आदयः) हैं

(१) दोनो आम्नायोके १३, १४ सूत्रका पाठ भेद और अर्थ भेद एकसाथ लिखनेसे सुगम होगा। इसलिये नीचे दोनो आम्नायोके चारो सूत्र लिखते है पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयःस्थावरा ॥१३॥ अर्थ ऊपर देखो ॥ द्वीन्द्रियादयस्त्रसा ॥१४॥ दोइन्द्रिय,तीनइन्द्रिय चारइन्द्रिय पांचइन्द्रियवाले त्रस है पृथिव्यब्वनस्पतयः स्थावराः॥१३॥ सभाष्यतत्त्वार्थ.धिगमसूत्र पष्ठ ॥ ४१ ॥ तेजोवायू द्वीन्द्रियादयाश्च त्रसाः सभाष्य० मे १४ वां सूत्र पृष्ठ ४२ पृथिवीकायिक, अप्कायिक, वनस्पतिकायिक (ये)स्थावर जीव है॥ तेजः कायिक,वायुकायिक और =च, दो इन्द्रियवाले, तीन इन्द्रियवाले चारइन्द्रियवाले पांच इन्द्रियवाले त्रस जीव हैं ॥ दोनो आम्नायोके १३ वा और १४वां सूत्रोंके मिलानसे प्रगट है कि तेजस्—वायु दो शब्द हमारे यहांके १३ वां सूत्रके श्वेताम्बर आम्नाय के १४वां सूत्र में अन्तर्गत हैं यह तो दोनोके१३वां सूत्रमेंपाठभेद हुआ। सभाष्य० के १४ वां सूत्रमें हमारे यहा के १४ सूत्रसे 'तेजो-वायु' च' अधिक है शेष पाठ एकसा है। हमारे यहां तेजकायिक और वायुकायिक दोनों को स्थावर जीव माना है परन्तु श्वेताम्बर आम्नायमे इनको त्रस जीव माना है जैसा कि सभाष्य० के १४ वॉ सूत्र और हमारे यहॉ के १३ वां सूत्र से प्रकट है। अवशेष तात्पर्य दोनो आम्नायके दोनो दोनों सूत्रो का एक है अर्थात् पृथिवी कायिक, अप् (जल)कायिक,वनस्पति कायिक को स्थावर दोनोंमें माना है और दो इन्द्रियवालेजीव,तीन इन्द्रियवाले जीव,चार इन्द्रियवाले जीव पांच इन्द्रियवाले जीवोको दोनोंमें त्रस माना है। -

(२) 'कायादय.' सर्वार्थसिद्धिकी एकप्रति हस्त लिखितमें, दोनो मुद्रित आवृत्तियोमें, तथा राजवार्तिकमे पाते हैं। जिसका 'जीव' निकलगयाहो सो काय है। जीव सहित हो सो कायिकहै। यहां पर जीव सहित से अभिप्रायहै। तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक पृष्ठ ३२५ के निम्न वाक्यमें 'कायिक' शब्द लाये हैं। "पृथिवी कायिकादि नामकर्मोदयवशात्पृथिव्यादयो जीवाःपृथिवी कायिकादय. स्थावराः प्रत्येतव्या न पुनर जीवास्तेषामप्रस्तुतत्वात् "॥

तदुदय निमित्ता अमी इति जीवेषु पृथिव्यादयः संज्ञा वेदितव्याः ॥ प्रथनादिप्रकृति निष्पन्ना अपि रूढिवशात्प्रथनाद्यनपेक्षा वर्तन्ते ॥ एषां पृथिव्यादीनामार्षे चातुर्विध्यमुक्तम् । प्रत्येकं तत्कथमिति चेदुच्यते ॥ पृथिवी । पृथिवीकायः । पृथिवीकायिकः । पृथिवीजीव इत्यादि ॥ तत्र अचेतनावैश्रसिकपरिणामनिर्वृत्ता काठिन्यगुणात्मिका पृथिवी । अचेतनत्वादसत्यपि पृथिवीकाय-नामकर्मोदये प्रथनक्रियोपलक्षितैवेयम् । अथवा पृथिवी सामान्यम्—

तद्—उदय—निमित्ताः। अमी। इति *जीवेषु।	=उस (स्थावरनामा नामप्रकृति) के उदयके कारण इनजीवोंमें
पृथिवी—आदयः।	=पृथिवीकायिक,अप्कायिक,तेजःकायिक,वायुकायिक,वनस्पतिकायिक (=आदयः)
सञ्ज्ञाः।वेदितव्याः। प्रथन—	=सञ्ज्ञा वा नाम जानो(पृथिवी,अप्,तेजः,वायु,वनस्पति ये पांचौ शब्द) प्रथन
आदि—प्रकृति—निष्पन्नाः।अपि*रूढिवशात्।	=आदिक(भिन्नभिन्न)धातुओंसे(=प्रकृति)निकले हैं। फिरभी(=अपि)रूढिके आश्रयसे
प्रथन—आदि—अनपेक्षाः।वर्तन्ते।	=(इनपांचौ शब्दोंकी)प्रथनादिक अर्थात् विस्तारादिक (अर्थ)की विवक्षा नहीं है
एषाम्।पृथिवी—आदीनाम्। आर्षे।चातुर्विध्यम्।।	=इन पृथिवी आदिकोंके ऋषियों रचित धर्मशास्त्रमें (=आर्षे) चार चार भेद
उक्तम्।प्रत्येकम्।।तत्।।कथं*इति*चेत्*उच्यते।	=कहेगये हैं वह(=तत्)प्रत्येक कैसे हैं? ऐसी शंका होने पर कहाजाता है कि
पृथिवी।पृथिवीकायः।पृथिवीकायिकः।पृथिवीजीवःइति	=पृथिवी, पृथिवीकाय, पृथिवीकायिक, पृथिवीजीव ऐसें
आदि।।	=और भी है अर्थात् अप्—अप्काय, अप्कायिक, अप्जीव; तेजः,तेजःकाय, तेजःकायिक,तेजोजीव; वायु—वायुकाय—वायुकायिक—वायुजीव; वनस्पति—वनस्पतिकाय-वनस्पतिकायिक-वनस्पतिजीव हैं
तत्र*अचेतना-वैश्रसिक-परिणाम-निर्वृत्ता।	=तहां अचेतन स्वभावसिद्ध (=वैश्रसिक) परिणामसे रचित
काठिन्यगुण—आत्मिका।पृथिवी।अचेतनत्वात्।।	=अपने(=आत्मिक) कठिनतागुणकरि सहित पृथिवी है। जड़पनासे
असति अपि,पृथिवीकायनामकर्मउदये।प्रथन—क्रिया—	=पृथिवीकायनामा नामकर्मकी प्रकृतिके उदय न होनेपरभी प्रथन वा फैलावक्रिया
उपलक्षिता—एव*इयम्।। अथवा*पृथिवी।सामान्यम्=	=आदिसे युक्त (=उपलक्षित)यह(पृथिवी)है ही ॥ वा पृथिवी सामान्य(शब्द) है

उत्तरत्रयेऽपि सद्भावात्। कायः शरीरं पृथिवीकायिकजीवपरित्यक्तः पृथिवीकायः। मृतमनुष्यादिकायवत्। पृथिवीकायः अस्यास्तीति पृथिवीकायिकः। तत्कायसम्बन्धवशीकृत आत्मा समवाप्तपृथिवीकायनामकर्मोदयः कार्मणकाययोगस्थो यो न तावत्पृथिवीं कायत्वेन गृह्णाति स पृथिवीजीवः

उत्तरत्रये अपि * =क्योंकि अगले तीनों भेद (पृथिवीकाय, पृथिवीकायिक, पृथिवीजीव)मे भी (यहशब्द)

सद्भावात् कायः शरीरम् पृथिवीकायिकजीव- =विद्यमान है। काय वा शरीर जो पृथिवी कायिक जीवकरि

परित्यक्तः =त्यागित होगया है अर्थात् जिसमेसे पृथिवी कायिक जीव मरकर निकल गया है

पृथिवीकायः मृत—मनुष्यादिकायवत् * =सो पृथिवी काय है। मरेहुये मनुष्यादिकके शरीर सदृश (पृथिवी काय) है

पृथिवीकायः अस्य अस्ति इति पृथिवी कायिकः =पृथिवीकाय जिस (जीव)के है ऐसा (जीव) पृथिवी कायिक है॥ "सो यहु" जीव "पृथिवी शरीरके संबध सहित है" जय०वचनिका पृष्ठ २५६. अर्थात् जिस जीवका उस पृथिवी कायसे संवध है वह पृथिवी कायिक है॥

तत्काय—सम्बन्धवशीकृतः आत्मा =उस (पृथिवी) शरीरके संबंध वशीभूत आत्मा (अन्य कायके शरीरसे छूटकर)

समवाप्त(सम्-अव-आप्त) पृथिवीकायनामकर्मोदयः =पृथिवीकाय नामा नामकर्मकी प्रकृतिका उदय प्राप्त हुआ जिसको

कार्मणकाययोगस्थः यः =(जितने अंतरालमें) कार्माण काययोगमें तिष्ठा हुआ जो (जीव जब तक)

नतावत्पृथिवीम्॥कायत्वेन॥गृह्णातिसःपृथिवीजीवः=पृथिवीको कायपनाकरि ग्रहण नहीं करता तब तक (=तावत्) वह पृथिवी जीव है अर्थात् जिस जीवकें पृथिवी कायिक नामकर्मका उदय है परंतु पृथिवीको काय—स्वरूपसे ग्रहण न कर वह कार्माणकाययोगमें ही विद्यमानहै वह पृथिवी जीव है

भावार्थ कोई जीव किसी शरीर मे था उसने अपनी आयु पूर्ण करने पर उस शरीर को त्यागकर पृथवी काय नामा नामकर्मकी प्रकृतिके उदयसे पृथिवी कायिक होने वाला है तौ उस जीवको विग्रहगति (=नया शरीर धारण करने के लिये गमन अवस्था)में कार्माण योगहै जितने काल तक विग्रहगति है तब तक वह जीव पृथिवी काय वा शरीरको ग्रहणकरनेमे असमर्थ है उस काल तक उसको पृथिवी जीव कहेंगे। उक्त विग्रह काल किसी जीवका एक समय, किसीजीवका दो समय, किसी जीवका तीन समय तक होता है तीन समय से अधिक नहीं हो सक्ता है॥ और विग्रह गति में (जीवकें) कार्मण योग रहता है॥

उक्तं च—पुढवी पुढवीकायो पुढवीकाइय पुढविजीवो य । साहारणोपमुक्को सरीरगहिदो भवंतरिदो ॥ १ ॥ एवमबादिष्वपि योज्यम् ॥ एते पञ्चविधाः प्राणिनःस्थावराः । कति पुनरेषां प्राणाः? । चत्वारः। स्पर्शनेन्द्रियप्राणःकायबलप्राणःउच्छ्वासनिःश्वासप्राणःआयुःप्राणश्चेति ॥ अथ त्रसाः के ते?इत्यत्रोच्यते ॥

उक्तं च । पुढवी१/१ पुढवीकायो१/१ (पृथिवी१/१ पृथिवीकायः१/१) =बहुरि कहागया है कि पृथिवी, पृथिवीकाय,

पुढवीकाइय१/१ पुढविजीवो१/१ य (पृथिवीकायिकः१/१ पृथिवीजीवःच) =पृथिवीकायिक और (=य=च) पृथिवीजीव है [पृथिवी काय है

साहारणोपमुक्को१/१ (साधारण—उपमुक्त:१/१) =(सो यह पृथिवी)साधारण है । जिससे जीव अभी निकला है (सो

सरीरगहिदो१/१ (शरीरगृहीतः१/१) =शरीरग्रसित वा शरीर सहित जीव है (सो पृथिवी कायिक है)

भवंतरिदो १/१ (भवान्तरितः१/१) =भवान्तर अवस्थावाला वा विग्रहगतिसहितजीवहै(सो पृथिवी जीव है)

भावार्थ पृथिवी,पृथिवीकाय, पृथिवीकायिक और पृथिवीजीव ये चार भेद पृथिवीके है। उनमेंसे अचेतन स्वभावसिद्ध परिणामसे रचित और कठिनता आदिगुण स्वरूप पृथिवी कहीजाती है इसलिये पृथिवी यह एक साधारण और सामान्यनाम ही है ॥ (२) कायका अर्थ शरीर है पृथिवीकायिक जीवने जिस शरीर को छोड दिया है वह पृथिवीकाय कहाजाता है यह मरे हुये मनुष्यादिक कीकाय(काया)के समान है, (३) शरीर गृहीत वा शरीर ग्रसित जीव अर्थात् वह पृथिवी जिसमें इस समय जीव विद्यमान है वह पृथिवीकायिक है ॥ (४) जिस जीवके पृथिवीकायिक नामकर्मकाउदय है परतु पृथिवीको काय स्वरूपसे ग्रहण न कर वह कार्माणकाय योगमेंही विद्यमान है अर्थात् विग्रहगति अवस्था में है वहपृथिवीजीव है ॥

एवम्*अप्—आदिषु७/३ अपि*योज्यम् १/१॥ =ऐसे अप् आदिकमेंभी(चार चार भेद) लगाना योग्य है

एते१/३ पञ्चविधाः१/३ प्राणिनः१/३ स्थावराः कति१/३ पुनः एषां६/३ प्राणाः? =ये पांच प्रकार प्राणवाले स्थावर हैं । पुनि इनके कितने प्राण हैं ?

चत्वारः१/३ स्पर्शनेन्द्रियप्राणः१/१ कायबलप्राणः१/१ =(उत्तर)चार प्राण हैं(अर्थात्)स्पर्शन इन्द्रियप्राण, कायबलप्राण,

उच्छ्वासनिःश्वासप्राणः१/१ आयुःप्राणः१/१ च*इति* =उच्छ्वासनिःश्वासप्राण, और आयुप्राण

अथ*त्रसाः१/३ के१/३ ते१/३? इति*अत्र*उच्यते T =अब त्रसजीव है ते कोन हैं ऐसा प्रश्न होनेपर यहां कहाजाता है कि

॥ द्वीन्द्रियादयस्त्रसाः ॥ १४ ॥

द्वे इन्द्रिये यस्य सोऽयं द्वीन्द्रियः, द्वीन्द्रियः आदिर्येषां ते द्वीन्द्रियादयः ॥ आदिशब्दो व्यवस्थावाची। क्व व्यवस्थिताः। आगमे। कथम्। द्वीन्द्रियस्त्रीन्द्रियश्चतुरिन्द्रियःपञ्चेन्द्रियश्चेति॥ तद्गुणसंविज्ञानवृत्तिग्रहणात् द्वीन्द्रियस्याप्यन्तर्भावः ॥

सूत्रम्[1]— द्वीन्द्रियादयस्त्रसाः[2][3] ॥ १४ ॥

सूत्रार्थः—द्वि-इन्द्रिय-आदयः त्रसाः =दो इन्द्रियोंको आदिलेकर(पंचेन्द्रियतक)त्रस (जीव) हैं अर्थात् दोइन्द्रिय तीनइन्द्रिय,चारइन्द्रिय,पंचेइन्द्रिय जीव आगममें त्रसनामसे व्यवस्थित हैं ॥

वृत्त्यनुवादः—द्वे इन्द्रिये यस्य सः अयम् द्वीन्द्रियः =दो है इन्द्रिय जिसके सो यह दो इन्द्रिय है (और)

द्वीन्द्रियः आदिः येषां ते द्वीन्द्रिय-आदयः =दो इन्द्रिय हैं आदिमें जिनके ते द्वीन्द्रिय आदि हैं

आदिशब्दः व्यवस्थावाची =(सूत्रमें)आदिशब्द मर्यादावाची है अर्थात् इन्द्रियोंकी गणनाको परमितकरताहै।

क्व*व्यवस्थिताः आगमे कथम्* =(प्रश्न)कहां व्यवस्था वा मर्यादा है। (उत्तर)शास्त्रोंमें है (प्रश्न) कैसे है

द्वीन्द्रियः त्रीन्द्रियः चतुरिन्द्रियः च*पंचेन्द्रियः इति* =(उत्तर)दो इन्द्रिय,तीन इन्द्रिय,चार इन्द्रिय,और पांच इन्द्रिय,वाले जीव हैं

तद्गुणसंविज्ञानवृत्तिग्रहणात् =तदगुणसविज्ञानबहुव्रीहिसमासके उपादानके निमित्तसे है

द्वीन्द्रियस्य अपि*अन्तर्भावः =दो इन्द्रियवालेका भी(आदिशब्दविषैं)ग्रहण(=अन्तर्भाव)हैअर्थात् इस समास में जिस पदार्थके पीछे आदिशब्द आता है तो वह अपने पहलेके पदार्थको ग्रहण करते हुये दूसरी शेष वस्तुओंको भी गिना देता है जैसे इस सूत्रमें आदि शब्दने अपने पहिलेकी संख्या द्विइन्द्रियकी गणना करतेहुये

---

(१) दोनों आम्नायोंमे इस सूत्रके पाठ और अर्थमें जो भेद है वह इस अनुवादके तेरहवां सूत्रमे दियागया है ॥ (२) मर्यादावाची,तेन पञ्चेन्द्रियादूर्ध्वं षडिन्द्रियादिजीवो न भवतीत्यभिप्रायः ॥ (३) तद्गुणसविज्ञानबहुव्रीहिसमासे उदाहरण लम्बकर्णः। अतद्गुणसविज्ञाने बहुधनः ॥

कति पुनरेषां प्राणाः?। द्वीन्द्रियस्य तावत् षट् प्राणा पूर्वोक्ता एव रसनवाक्प्राणाधिकाः ।त्रीन्द्रियस्य सप्त त एव घ्राणप्राणाधिकाः । चतुरिन्द्रियस्याष्टौ त एव चक्षुः प्राणाधिकाः । पंचेन्द्रियस्य तिरश्चोऽसंज्ञिनो नव त एव श्रोत्रप्राणाधिकाः ।सञ्ज्ञिनो दश त एव मनोबलप्राणाधिकाः ॥ आदिशब्देन निर्दिष्टानामनिर्ज्ञातसंख्यानामियत्तावधारणं कर्तव्यमित्यत आह

त्रिइन्द्रिय, चतुः इन्द्रिय पंचेन्द्रिय, को भी त्रस जीवोंके भेदोंमें गिना दिया ॥

कति पुनः एषाम् प्राणाः ?	=(प्रश्न)पुनि कितने इन(प्रत्येक द्वीन्द्रिय–त्रीन्द्रिय–चतुरिन्द्रिय–पंचेन्द्रिय)के प्राणहैं
द्वि–इन्द्रियस्य तावत् षट् प्राणाः पूर्वोक्ताः एव	=प्रथम(=तावत्)द्वीन्द्रियजीवकें छैप्राण हैं । प्रथम कथित ही(चार स्पर्शनेन्द्रियप्राण, कायबलप्राण,उच्छ्वासनिःश्वासप्राण,औरआयुप्राणजोएकेन्द्रियजीव कैहोते हैं) हैं
रसन–वाक्प्राण–अधिकाः	=रसनाइन्द्रिय,बचनबल प्राण, अधिक हैं
त्रीन्द्रियस्य सप्त ते एव घ्राणप्राण–अधिकाः	=तीनेन्द्रियजीवके सात(प्राण)हैं। वे ही(छहऔर) नासिका इन्द्रियजिनकें अधिकहैं
चतुरिन्द्रियस्य अष्टौ ते एव चक्षुप्राण–	=चतुरिन्द्रियजीवके,आठ (प्राण) हैं वे(=ते)ही(=एव–सात) (और)चक्षुप्राणजिनकें
अधिकाः पञ्चेन्द्रियस्य तिरश्चः असञ्ज्ञिनः नव	=अधिक हैं। पंचेंद्रिय तिर्यंच असैनीकें नो (प्राण) हैं
ते एव श्रोत्रप्राण–अधिकाः सञ्ज्ञिनः दश	=वेही(आठ)(और)कर्ण इन्द्रियप्राण जिनकें अधिक हैं।(पंचेद्रिय)सैनीके दस(प्राण)हैं
ते एव मनोबलप्राण–अधिकाः आदिशब्देन	=वेही(नौऔर)मनबलप्राण जिनकें अधिक है ।(इससूत्रमें) आदि शब्दकरि
निर्दिष्टानाम् निर्ज्ञातसंख्यानाम् इयत्ता—	=उपदेशकीहुई(=निर्दिष्टानाम्) (परतु) विनाजानी हुई गणनाओंकी मर्यादा
अवधारणम् कर्तव्यम् इति अतः आह	=निश्चय करना(=अवधारणम्)कर्तव्य है वा निश्चकरना चाहिये अतः कहते हैं कि

(२) मर्यादावाची । तेन । पञ्चेन्द्रियात् । ऊर्ध्वम् पञ्चइन्द्रियादिजीवः । न भवति । इति अभिप्रायः । =मर्यादावाचक(=व्यवस्थावाची)है तिस(आदि शब्द)करि पञ्चे इन्द्रियसेऊपर =छेइन्द्रियादिजीव नहीं होतेहै । ऐसाआशयसूत्रमें आदिशब्दकाजोव्यवस्थावाचीहै, है

(३) तद्गुणसंविज्ञानबहुव्रीहिसमासे । उदाहरणम् । लम्बकर्णः । अतद्गुणसंविज्ञाने बहुधन । =वहीगुणज्ञापकबहुव्रीहि समासमें दृष्टान्त, लम्बकर्ण है वा लम्बेकानवाला है =(और)अतद्गुणसंविज्ञान(बहुव्रीहिसमासमें)बहुतहैधनजिसकेंऐसा(उदाहरण) है।

[छ]द्वीन्द्रियस्य से पंचेन्द्रियस्य तक एकएकवचनमें है अतःअनुवाद एकवचनमेंहैऔरपांचस्थानोंमें 'अधिकाः' शब्दबहुवचनमें है इससेअनुवादबहुवचनमेंहै ॥

॥ पंचेन्द्रियाणि ॥ १५ ॥

इन्द्रियशब्दो व्याख्यातार्थः। पञ्चग्रहणमवधारणार्थं, पञ्चैव नाधिकसंख्यानीति ॥ कर्मेन्द्रियाणां वागादीनामिह ग्रहणं कर्तव्यम्। न कर्तव्यम्। उपयोगप्रकरणात् ॥ उपयोगसाधनानामिह ग्रहणं कृतं, न क्रियासाधनानामनवस्थानाच्च ॥ क्रियासाधनानामङ्गोपाङ्गनामकर्मनिर्वर्तितानां सर्वेषामपि क्रियासाधनत्वमस्तीति न पंचैव कर्मेन्द्रियाणि ॥

सूत्रम्— पंचेन्द्रियाणि=पंचेन्द्रियाणि (नाधिकानि) भवन्ति

सूत्रार्थः—पंचेन्द्रियाणि॥न-अधिकानि॥भवन्ति=इन्द्रियें(सब)पांच हैं अधिक नहीं होती है अर्थात् इससूत्रका आरम्भनियमकेलियेहै, औरछह आदिकी संख्याकेनिषेधके लिये है। जो"इन्द्रकहिये आत्मा(=संसारीजीव)ताकालिंगकहिये जनावनेका चिन्हतथा इन्द्रजोनामकर्म ताकरि रचे जेआकार ते इन्द्रिय है"पं० जय० वचनिकापृष्ठ२५८।

वृत्त्यर्थः—इन्द्रियशब्दः॥व्याख्यातअर्थः॥पञ्चग्रहणम्॥=इन्द्रिय शब्दका अर्थ पहिले विवरण कियागया है। पंचशब्दका उपादान अवधारणअर्थं॥पञ्च॥एव न-अधिक-संख्यानि॥इति=निश्चयके लिये है। पांचही(इन्द्रियां) हैं अधिक संख्या वा गणना नहीं है

कर्म-इन्द्रियाणाम्॥वाग्-आदीनाम्॥इह*ग्रहणम्॥ =कर्मइन्द्रियें वचन,हाथ-पांव-गुदा-लिंग(=आदीनाम्)का यहां ग्रहण

कर्तव्यम्॥न*कर्तव्यम्॥उपयोग-प्रकरणात्॥ =करना चाहिये। (कर्मइन्द्रियोंकाग्रहण)नहीं चाहिये। क्योंकि(यहां)उपयोगकाविषयहै

उपयोग-साधनानाम्॥इह*ग्रहणं॥ कृतम्॥ =(अतः) उपयोगके कारणोंका यहां ग्रहण किया गया है [वस्याप्रसंग आताहै

च*न*क्रियासाधनानाम्॥अनवस्थानात्॥ =औरनकिक्रियाकेसाधनोंका क्योंकि(यदि क्रियाकेसाधनोंको इन्द्रियकहैं तो)अन-

क्रियासाधनानाम्॥अङ्गोपाङ्गनामकर्मनिर्वर्तितानाम्॥ =क्योंकि क्रियाकेसाधन अंगोपांगनामा नामकर्म करिरचित हैं

सर्वेषाम्॥ अपि*क्रियासाधनत्वम्॥अस्ति। इति* =इसलिये(=अपि-देखो वैद्यकोशपृष्ठ४१)समस्तके क्रियाका साधनपना है

न*पञ्च॥एव*कर्मइन्द्रियाणि॥ =नकि पांचोंही कर्मइन्द्रियोंके (क्रिया साधनपना है) भावार्थ ऐसा है कि

(१) दोनों आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है ॥(२)साख्यमती चक्षु-श्रोत्र-घ्राण-रसना-त्वक् ये पांच बुद्धीन्द्रियां;वचन,हाथ,पांव, गुदा,लिंग येपांच कर्मेन्द्रियां,और मन ऐसे ग्यारह इन्द्रियां मानतेहैं। कोईछै इन्द्रियांमानते हैं उनकेखंडनार्थ औरसंख्याकी इयत्ता के नियम ह सूत्रहै

तेषामन्तर्भेदप्रदर्शनार्थमाह

द्विविधानि ॥ १६ ॥

विधशब्दः प्रकारवाची, द्वौ विधौ येषां तानि द्विविधानि, द्विप्रकाराणीत्यर्थः ॥ कौ पुनस्तौ द्वौ प्रकारौ? । द्रव्येन्द्रियं भावेन्द्रियमिति ॥

जो पदार्थ ज्ञान और दर्शन स्वरूप उपयोगमें कारणहों उसीकानाम इन्द्रिय माना है । स्पर्शनआदि पांच इन्द्रियां उपयोगमें कारण है इसलिये उन्हे इन्द्रिय मानना युक्त है । वाक् पाणि पांव गुदा और लिंग उपयोगमें कारणनहीं,इसलिये उन्हें इन्द्रिय नहीं कहाजासकता यदि यहांपर जो क्रियाके साधनहों वे भी इन्द्रिय हैं यह इन्द्रिय सामान्यका लक्षण किया जायगा तो यद्यपि बोलना आदि क्रियाओंके कारणहोनेसे वाक् आदिइन्द्रियां कहीजावेंगीं परंतु क्रियाके साधन तो मस्तक आदि सबही अंग उपांग हैं । सवोंको इन्द्रिय कहना पड़ेगाफिर किसको इन्द्रिय कहना किसको न कहना अथवा वाक् पाणि आदिपांचको कर्मेन्द्रिय कहना औरोंको न कहना यह अवस्थाही न बन सकैगी इस लिये जो क्रियाके साधन हों वे इन्द्रियहै यह इन्द्रिय सामान्यका लक्षण न मानकर'जो उपयोगमें कारण हों वे इन्द्रियहै'यही इन्द्रियका लक्षण मानना चाहिये॥अतःजो सूत्रमें कहीहै वे उपयोगमें कारण हैं और वे हीइन्द्रियें हैं॥

तेषाम्[६]अन्तर्भेद–प्रदर्शन–अर्थम्[२]॥आहT =उन(इन्द्रियों) के प्रभेद दिखानेके लिये (निम्नलिखित सूत्रमें आचार्य)कहते हैं कि

सूत्रम्—द्विविधानि=द्विविधानीन्द्रियाणिभवन्ति॥१६॥('इन्द्रिय'शब्दकीअनुवृत्तिपंद्रहवांसूत्रसेली

सूत्रार्थः–इन्द्रियाणि[१]॥द्विविधानि[१]॥भवन्तिT =इन्द्रियेंदोभेदरूपहैंअर्थात्पांचोंइन्द्रियोंमेंसेप्रत्येकइन्द्रियकेदोद्रव्येन्द्रियऔरभावेन्द्रियभेदहैं

वृत्त्यर्थः–विधशब्दः[१]प्रकारवाची[१]द्वौ[१]विधौ[१]येषाम्[६](=इससूत्रमें)'विध'शब्द प्रकारअर्थ में है । दो है भेदजिनके तानि[१]॥द्विविधानि[१]॥द्विप्रकाराणि[१]॥इति*अर्थः[१] =वे द्विविधानि हैं अर्थात् दोदो प्रकार सब इन्द्रियें हैं । ऐसाआशय है

कौ[१]पुनः*द्वौ[१]प्रकारौ[१]द्रव्येन्द्रियं[१]॥भावेन्द्रियम्*इति =फिर कौन दो प्रकार हैं द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय ऐसे है

तत्र द्रव्येन्द्रियस्वरूपप्रतिपत्त्यर्थ (निर्ज्ञापनार्थ) माह—

॥ निर्वृत्त्युपकरणे द्रव्येन्द्रियम् ॥ १७ ॥

निर्वर्त्यते निष्पाद्यते इति निर्वृतिः ॥ केन निर्वर्त्यते? कर्मणा ॥ सा द्विविधा बाह्याभ्यन्तर-भेदात् । उत्सेधांगुलासंख्येयभाग[1] प्रमितानां

तत्र द्रव्येन्द्रियस्वरूपप्रतिपत्तिअर्थ (निर्ज्ञापन–अर्थ)म् ॥ आह=तहां द्रव्येन्द्रियकेस्वरूपके निर्णय वा जाननेके लिये कहते है कि

सूत्रम्— [1] निर्वृत्त्युपकरणे द्रव्येन्द्रियम् ॥ १७ ॥

=निर्वृत्त्युपकरणे (इन्द्रिये–द्विविधे)द्रव्येन्द्रियम् =निर्वृत्ति–इन्द्रियम्–उपकरणेन्द्रियम् च द्विविधं द्रव्येन्द्रियम् भवति ॥ १७ ॥

सूत्रार्थः—निर्वृत्ति–इन्द्रियम् ॥ च*उपकरणेन्द्रियम् ॥ =निर्वृत्ति–इन्द्रिय और उपकरणेन्द्रिय

द्विविधम् ॥ द्रव्येन्द्रियम् ॥ भवति I =दोप्रकार द्रव्येन्द्रिय है अर्थात् निर्वृत्तिऔरउपकरणके भेदसे द्रव्येन्द्रिय दो प्रकार है ॥

वृत्त्यनुवादः–निर्वर्त्यते I निष्पाद्यते I इति*निर्वृत्तिः ॥ =रचागया है बनायागया है यह निर्वृत्ति है

केन ॥ निर्वर्त्यते I कर्मणा ॥ =(प्रश्न)किससे रचगया है । (उत्तर) कर्म करि [विशेषहो सो निर्वृत्ति है)

सा ॥ द्वि–विधा ॥ बाह्य–अभ्यन्तर–भेदात् ॥ =वह(निर्वृत्ति)बाह्यअभ्यन्तर भेदसे दो प्रकार है(नामकर्मके उदयसे जोरचना–

उत्सेध–अंगुल–असंख्येयभागप्रमितानाम् ॥ =उत्सेध अंगुलके असंख्यातवांभागप्रमाण

---

(१) सूत्र १६,१७ का पाठ और अर्थ दोनों आम्नायोंमे एक है ॥'इन्द्रिय'और 'विधि'शब्दोंकी अनुवृत्ति क्रमसे १५,१६ सूत्रोंसे इस सूत्रमेंलीगई है ॥

(२)उत्सेधांगुलमिति व्यवहारांगुल घनरूप तदेवात्र गृह्यते । परमागमे देहगेहग्रामनरकादिप्रमाणमुत्सेधांगुलेनैवेति नियमितत्वात् ॥

उत्सेध–अगुलम् ॥ इति व्यवहार–अगुलम् ॥ घनरूप = उत्सेधअंगुल(=आठआडेजोप्रमाण)हैसोव्यवहारअंगुलहै। घनरूप(लंबाई–चौडाईउंचाईमेंसम)

तद्*एव*अत्र*गृह्यते I परमागमे ॥ देह–गेह–ग्राम–=वही (उत्सेधअंगुल)यहां लियागया है । शास्त्रमें शरीर,गृह ग्राम,

नरक–आदि–प्रमाणम् ॥ उत्सेध–अगुलेन ॥ एव* =नरकादिकका प्रमाण उत्सेध अंगुलसे ही है ॥

इति*नियमितत्वात् ॥ =क्योंकि ऐसा नियमित वा विधित है ॥ इस उत्सेधअंगुलसे पांच सौ गुणा प्रमाणांगुलहै इससे महापर्वत,नदी,समुद्रादिकका परिमाण कहाजाता है । भरत ऐरावत क्षेत्रके मनुष्योंका अपने २ कालमे जो अंगुल है उसे आत्मांगुल कहते है इससे झारी कलश,धनुपादिका प्रमाण होता है ॥

शुद्धानामात्मप्रदेशानां प्रतिनियतचक्षुरादीन्द्रियसंस्थानेनावस्थितानां वृत्तिरभ्यन्तरा निर्वृत्तिः। तेष्वात्मप्रदेशेष्विन्द्रियव्यपदेशभाक्षु यः प्रतिनियतसंस्थानो नामकर्मोदयापादितावस्थाविशेषः पुद्गलप्रचयः सा बाह्या निर्वृतिः। येन निर्वृते रूपकारःक्रियते तदुपकरणम्॥ पूर्ववत्तदपि द्विविधम् तत्राभ्यन्तरं कृष्णशुक्लमण्डलम् बाह्यमक्षिपत्रपक्ष्मद्वयादि ॥ एवं शेषेष्विन्द्रियेषुज्ञेयम्॥

शुद्धानाम्[६/३] आत्मप्रदेशानाम्[६/३] प्रति- नियतचक्षुःआदिइन्द्रियसंस्थानेन[३/१] अवस्थितानां[६/३] वृत्तिः =शुद्धचेतना वा आत्माके प्रदेशोंकी(=केवल आत्माके प्रदेशोंकी)न्यारे न्यारे(=प्रति) =निश्चितनेत्रआदिकइन्द्रियोंके आकारकरिअवस्थितवृत्ति(अर्थात्तिष्ठनेकीदशा)

अभ्यन्तरा[१/१] निर्वृत्तिः[१/१] =सो अभ्यन्तर निर्वृत्ति है । अर्थात् उत्सेधअंगुलके असंख्यातवांभागप्रमाण विशुद्धआत्मप्रदेशोंका जो भिन्न भिन्न रूपसे नेत्र इन्द्रियकेमसूरकेआकार, कर्ण इन्द्रियके जवकी मध्यनालीके आकार सदृश, नासिका इन्द्रियके तिल पुष्प आकार समान, रसना इन्द्रियके अर्द्ध चन्द्रके आकारसम, स्पर्शन इन्द्रियके अनेक प्रकारके भिन्न भिन्न आकारके समान, और इन सबका प्रमाण स्वरूप परिणत होना है वह अंतरंग निर्वृत्ति है॥

तेषु[७/३] आत्मप्रदेशेषु[७/३] इन्द्रियव्यपदेशभाक्षु[७/३] =तिन आत्माके(विशुद्ध) प्रदेशनिमें इन्द्रियनामके दियेजानेपर वा धारनेपर

यः[१/१] प्रतिनियत-संस्थानः[१/१] नामकर्म-उदय-आपादित- =जो प्रतिनियत(=न्यारे न्यारे वा विधित)आकार सहित नामकर्मकेउदयजनित

अवस्थाविशेषः[१/१] पुद्गलप्रचयः[१/१] सा[१/१] बाह्या[१/१] निर्वृत्तिः[१/१] =विशेष दशा वा अवस्थासहित पुद्गलके समूह सो बहिरंग निर्वृत्ति है। अर्थात् उन्हीं आत्माके विशुद्ध प्रदेशोंमें इन्द्रियोंके नामसे कहेजानेवाले भिन्नभिन्न आकारोंके धारक संस्थान नामकर्मकेउदयसे होनेवाले अवस्था विशेषसे युक्त जो पुद्गलपिंड है वह बाह्य-निर्वृत्ति है॥

येन[३/१] निर्वृतेः[६/१] उपकारः[१/१] क्रियते । तद्[१/१] =जिससे निर्वृत्तिका उपकार कियाजाता है वा सहायता कीजाती है वह

उपकरणम्[१/१] पूर्ववत् * तद्[१/१] अपि * द्विविधम्[१/१] =उपकरण है। पहलेकी भांति(अर्थात्जैसे निर्वृत्ति दो प्रकारहै)वहभीदोप्रकार है

तत्र * अभ्यन्तरम्[१/१] कृष्ण-शुक्ल-मण्डलम्[१/१] बाह्यम्[१/१] =तहां(नेत्रविषैं)अतरंग(उपकरण)काला शुक्ल(वर्ण)मंडल है। बाह्य (उपकरण)

अक्षिपत्र-पक्ष्म- द्वय-आदि[१/१] एवम् * शेषेषु[७/३] इन्द्रियेषु[७/३] ज्ञेयम्[१/१] =वाफनी(=भावणी)वा विन्नी(=अक्षिपत्र)और आँखके पलक (=अक्षि-पक्ष्मना) =दो आदिक हैं । ऐसे शेष(स्पर्शन-घ्राण-रसना-श्रोत्र)इन्द्रियोंमें जानना चाहिये॥

भावेन्द्रियमुच्यते—

॥ लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियम् ॥ १८ ॥

लम्भनं लब्धिः। का पुनरसौ?। ज्ञानावरणक्षयोपशमविशेषः॥ यत्सन्निधानादात्मा द्रव्येन्द्रियनिर्वृतिंप्रति व्याप्रियते तन्निमित्त आत्मनः परिणाम उपयोगस्तदुभयं भावेन्द्रियमिन्द्रियफलम्

भावेन्द्रियम् १॥। उच्यते T = भावइन्द्रिय कहीजाती है कि

लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियम् ॥ १८ ॥

सूत्रार्थः—लब्धि–उपयोगौ१॥भाव–इन्द्रियम् १॥। =लब्धि और उपयोग (ये दो) भाव इन्द्रिय हैं

वृत्त्यनुवादः—लम्भनम्१॥।लब्धिः१॥का१॥पुनः॥असौ१॥=लाभ है(वही) लब्धि है ।(प्रश्न)फिर वह(लब्धि) क्या (=का) है

ज्ञानावरण–क्षयोपशम–विशेषः१॥ =(उत्तर)ज्ञानावरणीय कर्मका क्षयोपशमरूप व्यक्ति वा प्रकाश है (सोलब्धि)है। अर्थात्ज्ञानावरणीयकर्मकेविशेषक्षयोपशमसेआत्माकेजोविशुद्धतारूपीशक्तिहैसोलब्धिहै

यत्सन्निधानात्५॥।आत्मा१॥द्रव्येन्द्रियनिर्वृत्तिम्२॥प्रति॥=जिस(लब्धि)केनिकटहोकरिआत्माद्रव्येन्द्रियरूप निर्वृत्ति प्रति

व्याप्रियते तत्–निमित्तः१॥आत्मनः६॥परिणामः उपयोगः=व्यापारकरताहै,प्रवर्तताहै उस लब्धिनिमित्तक आत्माका(विषयप्रति)परिणमन उपयोगहै अर्थात् जो ज्ञेयके आकार परिणमनरूप ज्ञानहो सो उपयोग है

तद्१॥।उभयम्१॥।भावेन्द्रियम्१॥।इन्द्रिय–फलम्१॥। =यह दोनों भाव इन्द्रिय हैं। इन्द्रियका फल वा कार्य जो

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों सम्प्रदायोंमें एक है। इस १८ वां सूत्र और स्पर्शन–रसन–घ्राण–चक्षु–श्रोत्राणि उन्नीसवां सूत्रके मध्यमें श्वेताम्बरआम्नायके 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र 'पृष्ठ ४४ में "उपयोगः स्पर्शादिषु" ऐसा सूत्र अधिक है॥ स्पर्शादिषु मतिज्ञानोपयोग. इत्यर्थः। स्पर्श–रस–गन्ध–वर्ण–शब्द(इन्द्रियोंके विषयमें)मतिज्ञानका उपयोग होताहै। ऐसा अर्थ इस सूत्रका है। हमारे यहां इसको मूलसूत्र नहीं माना है। सभाष्य०के अनुवादकने यह टिप्पणी इस सूत्रमें दी है कि किसी किसीके मतमें यह मूलसूत्र नहीं है कोई कोई कहते हैं,यह मूल सूत्र हा हैभाष्यनहीं॥

(२)जैसे किसी जीवकी सुननेकी शक्ति है परतु उपयोग जो चैतन्यका परिणमन है सो अन्यत्रहो,अन्य वस्तुओंमें लगरहा हो तोसुनतानहीं। और कोई जाननाचाहताहै और क्षयोपशम शक्ति नहीं है तो जान नहीं सकता इसलिये लब्धि और उपयोग जब दोनों हीं मिलें तब ज्ञानकीसिद्धि होती है॥

उपयोगः तस्य कथमिन्द्रियत्वम्? कारणधर्मस्य कार्ये दर्शनात्। यथा घटाकारपरिणतं विज्ञानं घट इति ॥ स्वार्थस्य तत्र मुख्यत्वाच्च। इन्द्रस्य लिङ्गमिन्द्रियमिति यः स्वार्थः स उपयोगो मुख्यः। उपयोगलक्षणो जीव इति वचनात्। अत उपयोगस्येन्द्रियत्वं न्याय्यम् ॥

उक्तानामिन्द्रियाणां संज्ञानुपूर्वीप्रतिपादनार्थमाहः—

उपयोगः[1/1] तस्य[6/1] कथम्* इन्द्रियत्वम्[1/1] ॥ =उपयोग है। तिस (उपयोग)के इन्द्रियपना कैसे है

कारणधर्मस्य[6/1] कार्ये[7/1] ॥ दर्शनात्[5/1] ॥ =(उपयोगको इन्द्रियका कार्य होतेसंते) कार्यमें कारणधर्मके देखनेसे वा व्यवहारसे (उपयोगके इन्द्रियपनेका उपचार किया गया) है अर्थात् जो कारणका धर्म हो तिसको कार्य विषैं भी देखिये है

यथा* घटाकारपरिणतं[1/1] ॥ विज्ञानं[1/1] ॥ घटः[1/1] इति* =जैसे घड़ाके आकार परिणम्याज्ञान घट ऐसा (कहा जाता) है

स्व-अर्थस्य[6/1] तत्र* मुख्यत्वात्[5/1] ॥ च* =और क्योंकि तहां स्वअर्थके प्रधानपना है अर्थात् कार्यभी लोकमें कारण मानागया है जिस प्रकार घटाकार परिणत ज्ञान घटसे जो समान होनेसे घटका कार्य है तथापि उस विज्ञानको घठ कहदिया जाता है उसी प्रकार उपयोग यद्यपि इंद्रियोसे जायमान होनेसे उनका फल है तथापि वह(उपयोग)इन्द्रिय कहाजासकता है इसलिये उपयोगको भावेन्द्रिय मानने में कोई आपत्ति नहीं

इन्द्रस्य[6/1] लिङ्गम्[1/1] ॥ इन्द्रियम्[1/1] ॥ इति* यः[1/1] स्वार्थः[1/1] =आत्मा(=इन्द्र)का लिंग इन्द्रिय है। ऐसा जो स्व-अर्थ है

सः[1/1] उपयोगः[1/1] मुख्यः[1/1] उपयोगलक्षणः[1/1] जीवः =सो उपयोग मुख्य है। उपयोग है लक्षण जिसका वह जीव है

इति* वचनात्[5/1] ॥ अतः* उपयोगस्य[6/1] इन्द्रियत्वम् =क्योंकि ऐसा वचन है ॥ इसलिये उपयोगकें इन्द्रियपना

न्याय्यम्[1/1] ॥ उक्तानाम्[6/3] ॥ इन्द्रियाणाम्[6/3] ॥ सञ्ज्ञा- =यथार्थ वा ठीक है। कथित इन्द्रियोंके नाम (और उनका)

आनुपूर्वी(-अनुपूर्वी-)प्रतिपादनअर्थम्[1/1] ॥ आह =क्रम(अनुपूर्वी वा आनुपूर्वी)कहने के लिये कहते हैं कि

॥ स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राणि ॥१९॥

लोके इन्द्रियाणां पारतन्त्र्यविवक्षा दृश्यते । अनेनाक्ष्णा सुष्ठु पश्यामि, अनेन कर्णेन सुष्ठु शृणोमीति। ततः पारतन्त्र्यात्स्पर्शनादीनां करणत्वं । वीर्यान्तरायमतिज्ञानावरणक्षयोपशमा-

स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुः श्रोत्राणि ॥ १९ ॥

सूत्रार्थः—स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षुःश्रोत्राणि॥ (एतानि पञ्चेन्द्रियाणि भवन्ति) । (पंद्रहवां सूत्र अनुवृत्ति रूपमें इस सूत्र मे आता है)

=स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राणि॥ =त्वचा(त्वक्) जीभ, नाक(नासिका), नेत्र और कान ये
एतानि॥ =पांच इन्द्रियां है अर्थात् ज्ञानकरानेमें सहायक होनेसे इनको इन्द्रिय कहते हैं
पञ्चेन्द्रियाणि॥ भवन्ति।

वृत्त्यनुवादः—लोके॥ इन्द्रियाणाम्॥ पारतन्त्र्या-विवक्षा॥ =लोक वा संसारमें इन्द्रियोंके पराधीन विवक्षा वा अपेक्षा
दृश्यते। =देखीजाती है। इसनेत्रसे भलेप्रकार देखताहूं॥ (अक्ष्णा॥ 'अक्षि' शब्दका है)
अनेन॥ अक्ष्णा॥ सुष्ठु पश्यामि।
अनेन॥ कर्णेन॥ सुष्ठु शृणोमि। इति ततः पारतन्त्र्यात्॥ =इस कानसे नीके सुनताहूं । तहां पराधीनतासे
स्पर्शनादीनां॥ करणत्वम्॥ =त्वचा(इन्द्रिय)आदिकै करणपना है अर्थात् लोकमें इन्द्रियोंके स्वकार्य करनेमें परतंत्रता अनुभवमें आती है इसलिये

स्पर्शन आदि करणसाधन हैं क्योंकि जिस समय इन्द्रियोंकी परतंत्ररूपसे विवक्षाकी जाती है और आत्माको स्वातंत्र्य मानाजाता है उस समय 'मैं इस आंखद्वारा भले प्रकार देखता हूं'। 'मैं इस कान द्वारा भले प्रकार सुनताहूं'। 'मैं इस नासिका द्वारा भले प्रकार सूंघताहूं'। 'मै इस जीभ द्वारा भले प्रकार चखताहूं'। मैं 'इस हाथ द्वारा वा शरीर के किसी अन्य अवयव द्वारा भले प्रकार स्पर्शनकरताहूं' ऐसा व्यवहार होता है । यदि इन्द्रियोंको करणसाधन न माना जावै तौ संसारमें व्यवहार नहीं होसकता ॥ (आचार्य करण साधनको नीचे विशेषरूपसे समझाते हैं)

वीर्यान्तरायमतिज्ञानावरणक्षयोपशम— =वीर्यान्तरायनामा मतिज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम और

(१) श्वेताम्बर आम्नायके 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र' मे यह सूत्र शब्दशः वही है जो हमारे यहां है अर्थभी एक है परन्तु सभाष्य०मे इस सूत्रकी संख्या वीसवीहै क्योंकि अठारहवा सूत्रकेपीछे सभाष्य०मे "उपयोग. स्पर्शादिषु" ऐसा उन्नीसवां सूत्रहै । और हमारे यहां ऐसा उन्नीसवां सूत्र नहीं है ॥

(अ)ङ्गोपाङ्गनामलाभावष्टम्भात् आत्मना स्पृश्यतेऽनेनेति स्पर्शनम् । रस्यतेऽनेनेति रसनम् । घ्रायतेऽनेनेति घ्राणम् । चक्षेऽनेकार्थत्वाद्दर्शनार्थविवक्षायां चष्टे अर्थान्पश्यत्यनेनेति चक्षुः । श्रूयतेऽनेनेति श्रोत्रम् ॥ स्वातन्त्र्यविवक्षायां च दृश्यते । इदं मे अक्षि सुष्ठु पश्यति । अयं मे कर्णः सुष्ठु शृणोति । ततः स्पर्शनादीनां कर्तरि निष्पत्तिः । स्पृशतीति स्पर्शनम् । रसतीति रसनम् । जिघ्रतीति घ्राणम् । चष्टे इति चक्षुः ।

अङ्गोपाङ्गनामलाभअवष्टम्भात् आत्मना	=अंगोपांग नामा नामकर्मके (उदयके) लाभके आलम्बनकरि आत्मासे
स्पृश्यते अनेन इति स्पर्शनम् ॥	=जिस (इन्द्रिय) करि स्पर्श्याजाय है ऐसी स्पर्शन (इन्द्रिय) है ।
रस्यते अनेन इति रसनम् ॥ घ्रायते अनेन ॥	=जिसद्वारा रसलिया जायहै ऐसी रसना(इन्द्रिय)है । जिससे सूंघाजाय है
इति घ्राणम् ॥ चष्टे	=ऐसी घ्राण(इन्द्रिय)है । चक्ष्(धातु)के(कहना-छोड़ना-समझाना-देखनाइत्यादि)
अनेक-अर्थत्वात् ॥ दर्शन-अर्थ-विवक्षायाम् ॥	=बहुत अर्थहोनेसे(इससूत्रमें) अवलोकन अर्थकी अपेक्षामें (=आया है) कि
चष्टे अर्थान् पश्यति अनेन ॥ इति चक्षुः ॥	=पदार्थोंको देखता है (=चष्टे) । जिसकरि(=आत्मा)देखता है ऐसा चक्षुः है
श्रूयते अनेन ॥ इति श्रोत्रम् ॥	=जिसकरि(आत्मा)सुनता है ऐसा श्रोत्र है॥ (इन्द्रियोंकीकरणसाधनव्युतपत्तिहुई)
च स्वातन्त्र्यविवक्षायाम् ॥ दृश्यते इदं ॥ मे ॥ अक्षि ॥	=और(=च)(इन्द्रियोंकी)स्वतन्त्रयतारूप अपेक्षामें देखा जाताहै कि यह मेरी आंख
सुष्ठु पश्यति अयं ॥ मे ॥ कर्णः ॥ सुष्ठु शृणोति ।	=भले प्रकार देखती है । यह मेरा कान भले प्रकार सुनता है।
ततः स्पर्शनादीनां ॥ कर्तरि ॥ निष्पत्तिः ॥	=तहां त्वचा आदिक(इन्द्रियों)कीकर्ताप्रयोगमें सिद्धिहै।(इन्द्रिय कर्तृ साधनभी हैजैसे)
स्पृशति इति स्पर्शनम् ॥ रसति इति रसनम् ॥	=छूता है-स्पर्शन करता है ऐसा स्पर्शन है, चखता है ऐसा रसन है ।
जिघ्रति इति घ्राणम् ॥ चष्टे इति चक्षुः ॥	=सूंघता है ऐसी घ्राण वा नासिका है देखता है ऐसा नेत्र है

(१) 'चक्ष् ' अदादि द्वितीयगणका आत्मने पदी (यहां) सकर्मक धातु है । इसमें क्रियाके प्रत्यय विना किसी विकरणके लगाये जाते है ॥ 'चक्ष्'=चकूष् 'क्' 'स्कोः संयोगाद्योरन्ते च(झलि)' अष्टाध्यायी ८-२-२९ वां सूत्र से गिरजाता है और'चष्'में'त' अन्य पुरुष एकवचन आत्मनेपदी वर्तमान कालकी क्रियाका प्रत्यय लगानेसे =चष्+ते हुआ । 'ते'का'(स्तो) ष्टुना ष्टु ८।४।४१ वां सूत्रसे टे में परिवर्तनहोकर 'चष्टे'बनगया ॥

श्रृणोतीति श्रोत्रम्। एषां निर्देशक्रमःएकैकवृद्धिक्रमप्रज्ञापनार्थः। तेषामिन्द्रियाणांविषयप्रदर्शनार्थमाह

शृणोति। इति*श्रोत्रम्॥ =सुनता है ऐसा कान है,कर्ण है। 'श्रणोति' अशुद्ध है (देखोटिप्पणी अध्याय१पृष्ठ२२३)

भावार्थ संसारमें इद्रियोंकी स्वकार्यके प्रति स्वतन्त्रता रूपसेभी विवक्षा है अतःवे कर्तृ साधन भी है क्योंकि यह नाक मेरी भलेप्रकार पदार्थोंको सूंघतीहै,यह जीभ मेरी भलेप्रकार चखतीहै इत्यादि ऐसेही अन्य इन्द्रियों के संबंध में व्यवहार होता है। इन्द्रियावर्णक्रम के क्षयोपशमसे एवं अंगोपांग नामक नामकर्मके बलसे जो स्वयं पदार्थोंको स्पर्श करै वह स्पर्शन है, स्वयं रसोंको चखै वह रसना,स्वयं पदार्थोंको सूंघे वह घ्राण, स्वयं पदार्थोंको देखे वह चक्षु और स्वयं शब्दोंको सुने वह श्रोत्र है।ऐसे पांचों इन्द्रियोंकी यह कर्तृ साधन व्युत्पत्तिहै

एषाम्॥ निर्देशक्रमः॥ =इन(इन्द्रियों)का(इस सूत्रमें)कथन वा उपदेशका क्रम (एक इन्द्रियादिक जीवोंके)

एक–एक–वृद्धिक्रम–प्रज्ञापन– अर्थः॥ =एक एक(इन्द्रियके)बढ़नेके अनुक्रम वा आनुपूर्वी जनावने के लिये है।

भावार्थः–एक इन्द्रिय जीवके एक स्पर्शन इन्द्रिय होती है इससे सूत्रमें स्पर्शन प्रथम कही क्योंकि इसी अध्यायके बाईसवां सूत्रमें कहा है कि 'वनस्पत्यंतानामेकम्' अर्थात् पृथिवीको लेकर वनस्पतिपर्यंत समस्त जीवोंके एकही स्पर्शन इन्द्रिय होती है। समस्त संसारी जीवों के स्पर्शन इन्द्रिय होती है इससे सूत्रमें स्पर्शन पहिले कहा गया, दो इन्द्रिय जीवके केवल रसना और होती है इससे सूत्रमें स्पर्शनके लगताई रसना कही। इसी प्रकार तीन इन्द्रियवाले जीवके स्पर्शन,रसन,घ्राण इसी क्रमसे होयं अन्य एर फेर नहीं होता है इसकारण सूत्रमें रसनके अनन्तर घ्राण कही, चौ इन्द्रिय जीवके स्पर्शन–रसन–घ्राण-चक्षुः इन चारही इन्द्रियोंका ग्रहण होय अन्य नहीं होय इस हेतुसे सूत्रमें घ्राण के निकटही चक्षुः कही। श्रोत्र इन्द्रिय पंचेन्द्रिय जीवके होती है अन्य किसी जीवके नहीं होती और श्रोत्र इन्द्रिय उसी जीवके होगी जिसके स्पर्शन रसन घ्राण और चक्षु ये चारो इन्द्रिय पहिलेसे ही विद्यमानहै इससे सूत्रमें चक्षुके लगताही श्रोत्र इन्द्रिय कही इस वृत्तिक्रमको जनावनेके लिये सूत्रमें स्पर्शन–रसन–घ्राण-चक्षुः-श्रोत्र ऐसा क्रम है॥

तेषाम्॥ इन्द्रियाणां॥ विषय–प्रदर्शन-अर्थम्॥ आह=उन(स्पर्शन–रसन–घ्राण-चक्षुः–श्रोत्र)इन्द्रियोंके विषय दिखानेकेलियेकहतेहै कि

स्पर्शरसगन्धवर्णशब्दास्तदर्थाः ॥ २० ॥

द्रव्यपर्याययोःप्राधान्यविवक्षायां कर्मभावसाधनत्वं स्पर्शादिशब्दानां वेदितव्यम् ॥ द्रव्यप्राधान्यविवक्षायां कर्मनिर्देशः । स्पृश्यत इति स्पर्शः । रस्यत इति रसः । गन्ध्यत इति गन्धः । वर्ण्यत इति वर्णः । शब्द्यत इति शब्द ॥ पर्यायप्राधान्यविवक्षायां

सूत्रम्— स्पर्शरसगन्धवर्णशब्दास्तदर्थाः[1] ॥ २० ॥

=स्पर्शरसगन्धवर्णशब्दाःतद्-अर्थाः(यथाक्रमम्[2]) ॥२०॥

सूत्रार्थः—स्पर्श–रस–गन्ध–वर्ण–शब्दाः१।३ यथाक्रमम्*=स्पर्श,रस,गंध,वर्ण,और शब्द (ये पांच) क्रमसे

तद्–अर्थाः१।३ =उन(पाचो इन्द्रियों)के विषय है अर्थात् इनमे स्पर्शन इन्द्रियका विषय स्पर्श वा छूना है,रसना इन्द्रियका विषय स्वाद लेना है,घ्राणइन्द्रियका विषय सुगंध और दुर्गंध सूंघना है । नेत्र इन्द्रियका विषय वर्ण अर्थात् रंग है और श्रोत्र इन्द्रियका विषय शब्दोंका सुनना है ॥

टृस्यनुवादः–द्रव्यपर्याययोः६।२प्रधान्यविवक्षायाम्७।१कर्म–=द्रव्य और पर्यायकी मुख्य अपेक्षामे कर्म (साधनपना और)

भाव–साधनत्वम्१।१स्पर्शादिशब्दानाम्६।३वेदितव्यम्१।१ =भाव साधनपना(यथासख्य)स्पर्शादिक शब्दोंके जानना चाहिये ।

द्रव्य–प्राधान्यविवक्षायाम्७।१कर्म–निर्देशः१।१ ।स्पृश्यते T =द्रव्यप्रधान विवक्षाविषै कर्मणि प्रयोग है । जो स्पर्श्या जाता है

इति*स्पर्शः१।१ रस्यते T इति*रसः१।१ =ऐसा स्पर्श है । जो आस्वादा जाता है ऐसा रस है

गन्ध्यते T इति*गन्धः१।१वर्ण्यते T इति*वर्णः१।१ =जो सूंघाजाता है ऐसागंध है । जो देखा जाता है ऐसा वर्ण है

शब्द्यते T इति*शब्दः१।१पर्याय-प्राधान्यविवक्षायाम्७।१ =जो सुनाजाता है ऐसा शब्द है । पर्यायकी मुख्य अपेक्षासे

---

(१) "तदर्था "वाक्यके स्थानमे श्वेताम्बरआम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र'में'तेषामर्थाः"वाक्य आया है । इससे अर्थमे कुछ भेद नहीं पडता क्योंकि'तदर्था 'का तात्पर्य'तिनकेविषय' है, ऐसा है । यही अर्थ "तेषाम् अर्था " वाक्यका है । अर्थात् क्रमसे तिन पाच इन्द्रियोंके विषय है ॥

(२) इस सूत्रमें'यथाक्रमम्' शब्दकी अनुवृत्ति इसी अध्यायके द्वितीय अथवा दूसरे सूत्रसे लीगई है ॥

भावनिर्देशः स्पर्शनं स्पर्शः रसनं रसः। गन्धनं गन्धः। वर्णनं वर्णः शब्दनं शब्दः एषां क्रम इन्द्रियक्रमेणैव व्याख्यातः अत्राह यत्तावन्मनोऽनवस्थानादिन्द्रियं न भवतीति प्रत्याख्यातं तत्किमुपयोगस्योपकारी उत नेति? तदप्युपकार्येव तेन विनेन्द्रियाणां विषयेषु स्वप्रयोजनवृत्त्यभावात् किमस्यैषां सहकारित्वमात्रमेव प्रयोजनमुतान्यदपीत्यत आह—

भावनिर्देशः १/१ =भावे प्रयोग है अर्थात् व्याकरणमें कर्मवाच्य, कर्तृवाच्य और भाववाच्य तीनप्रकारके धातुओंके प्रयोग है। सूत्र उन्नीसवांमें बहुत विशेषरूपसे कर्मवचनका अनुवाद पृष्ठ ६१ के पंक्ति ९से १८ तक और पृष्ठ ६२ के पंक्ति ७ से १३ तक और कर्तृवचनका पृष्ठ ६२ के पंक्ति १४से १८तक और पृष्ठ ६३ के पंक्ति ३ से ८ तक उल्लेख किया है ॥ भावसाधन, भाववचन, अथवा भावप्रयोग अर्थात् क्रियाको इसप्रकारसे वाक्यमें लाना कि जिससे उसकी भावरूपी अवस्था वा दशा प्रगट होजावै, इस पृष्ठ ६५ की पंक्ति ११, १२ नीचे में कहते हैं कि

स्पर्शनं १/१ स्पर्शः १/१ रसनं १/१ रसः १/१ =स्पर्शना वा छूना सो स्पर्श है। रसना सो रस है

गन्धनं १/१ गन्धः १/१ वर्णनं १/१ वर्णः १/१ शब्दनम् १/१ शब्दः १/१ =सूंघना सो गंध है। देखना सो वर्ण है। शब्दहोना सो शब्द है

एषाम् ६/३ क्रमः १/१ इन्द्रियक्रमेण ३/१ एव* व्याख्यातः १/१ =इन(विषयों)का अनुक्रम इन्द्रियोंके क्रमकरिही कहा गया है

अत्र* आह I यत् १/१ तावत्* मनोऽवस्थानात् ५/१ इन्द्रियं १/१ =यहां पूंछता है कि जो मन तो (=तावत्) अनवस्थित होनेसे इन्द्रिय

न* भवति I =नहीं है अर्थात् मनके अवस्थान वा स्थिति नहीं है इससे इन्द्रिय नहीं है

इतिप्रत्याख्यातं १/१ तद् १/१ किम् १/१ उपयोगस्य ६/१ उपकारी १/१ =ऐसे(मनके इन्द्रियपना) निषेध्या है। क्या (वह मन) उपयोगका उपकारी है

उत* न* इति* तद् १/१ अपि* उपकारी १/१ एव* तेन ३/१ विना* =वा नहीं। (जोकहोकि)तबभी(=तद् अपि)(वहमन)उपकारीही है क्योंकि तिस(मन)विना

इन्द्रियाणां ६/३ विषयेषु ७/३ स्वप्रयोजनवृत्ति–अभावात् ५/१ =इन्द्रियोंके विषयोंमें अपने अपने प्रयोजनरूप प्रवृत्तिका अभाव है

किम्* अस्य ६/१ एषाम् ६/३ सहकारित्वमात्रम् १/१ =क्या इन(इन्द्रियों)के इस(मन)का सहकारिपन मात्र

एव* प्रयोजनम् १/१ उत* अन्यत्* अपि* अतः* आह I =ही प्रयोजन है, अथवा और भी (कुछ प्रयोजन) है ॥ इसलिये कहते हैं भावार्थ स्पर्शन आदि इन्द्रियोंके समान मनका कोई निश्चित स्थाननहीं इसलियेवह इंद्रिय नहीं कहा जासकता इसरूपसे ऊपरके लेखमें मनके इन्द्रियपनेका निषेध किया गया है

॥ श्रुतमानिन्द्रियस्य ॥ २१ ॥

श्रुतज्ञानविषयोऽर्थः श्रुतम्। स विषयोऽनिन्द्रियस्य। परिप्राप्तश्रुतज्ञानावरणक्षयोपशमस्यात्मनः श्रुतस्यार्थे

वहां पर यह शंका उठती है कि वह अनिन्द्रिय स्वरूप मन ज्ञान दर्शन स्वरूप उपयोगका उपकारक है अथवा नहीं? यदि यह कहा जायगा कि मनका सहारा विना लिये इन्द्रियोंकी अपने २ विषयमें प्रयोजनीय प्रवृत्ति नहीं हो सक्ती इसलिये मन उपयोगमें अवश्यही उपकारी है तब वहां यह कहना है कि अपने २ विषयोंमें इन्द्रियोंकी सहायता मात्र करना ही मनका कार्य है वा और कुछभी उसका कार्य है? उत्तरमें(इन्द्रियोंके उपकारके अतिरिक्त अन्य भी मनका कार्य है) मनके अन्य कार्य को कहते है कि—

सूत्रम्[1]—श्रुतमनिन्द्रियस्य ॥ २१ ॥ =श्रुतमनिन्द्रियस्य (अर्थः[2]भवति)

सूत्रार्थः—श्रुतम्[1]॥ अनिन्द्रियस्य[6]॥ अर्थः[1]॥ भवति I =श्रुतज्ञान (=श्रुतम्) मनका विषय है अर्थात् श्रुतज्ञानका विषय पदार्थ हैं वा श्रुतज्ञान गोचर पदार्थ हैं सो मनका (=अनिन्द्रियस्य) विषय (अर्थ) हैं ॥

वृत्त्यनुवादः—श्रुतज्ञानविषयः[1]॥ अर्थः[1]॥ श्रुतम्[1]॥ =श्रुतज्ञानका विषयभूत जो पदार्थ (=अर्थ) सो श्रुत है अर्थात् श्रुतज्ञानगोचर पदार्थ है वह श्रुत है। (यहां श्रुत, अनिन्द्रिय, नोइन्द्रिय एकार्थ वाची हैं)

सः[1]॥ विषयः[1]॥ अनिन्द्रियस्य[6]॥ परिप्राप्तश्रुतज्ञान- =सो श्रुत अनिंद्रिय वा मनका विषय है(क्योंकि) प्राप्तहुआ है श्रुतज्ञान आवरण—क्षयोपशमस्य[6]॥ आत्मनः[6]॥ श्रुतस्य[6]॥ अर्थे[7]॥ =आवरण कर्मका क्षयोपशम जिसके ऐसा आत्माके श्रवनकिये पदार्थ(केविचारने)में

(१) श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों सम्प्रदायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है॥ हमारे यहां कही पर 'मनिन्द्रियस्य' है कहीं पर मनिन्द्रियस्य पाठ है दोनों पाठ ठीकहै। सूत्रमें जो श्रुत शब्द है उससे श्रुत ज्ञानके विषय भूत पदार्थकाज्ञानहै। उसको मन विषय करता है क्योंकि जिसने श्रुत ज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम प्राप्त कर लिया है ऐसे आत्माके मनके आश्रयसे जायमान ज्ञानकी श्रुतज्ञानके विषयभूत पदार्थमे प्रवृत्ति होती है अथवा श्रुतशब्दका अर्थ श्रुतज्ञान है वह मनसे होता है इसलिये मनपूर्वक होनेसे वह श्रुत ज्ञानही मनका कार्य है ऐसे इन्द्रियोंके व्यापारकी अपेक्षा नकर श्रुतज्ञानका उत्पन्न करना मनका स्वतत्र प्रयोजन वा कार्य है अर्थात् श्रुतज्ञानमन पूर्वकही होता है॥

(२)इस सूत्रमें 'अर्थ' शब्दको अनुवृत्ति इस अध्यायके २०बीसवां सूत्र से आती है॥ श्रुत, अनिद्रिय, नोइन्द्रिय एकार्थ वाची शब्द हैं॥

ऽनिन्द्रियालम्बनज्ञानप्रवृत्तेः॥ अथवा श्रुतज्ञानं श्रुतं तदनिन्द्रियस्यार्थः प्रयोजनमिति यावत्। स्वातन्त्र्यसाध्यमिदं प्रयोजनमनिन्द्रियस्य ॥ उक्तानामिन्द्रियाणां प्रतिनियतविषयाणां स्वामित्व-निर्देशे कर्तव्ये यत्प्रथमं गृहीतं स्पर्शनं तस्य तावत्स्वामित्वावधारणार्थमाह—

॥ वनस्पत्यन्तानामेकम् ॥ २२ ॥

अनिन्द्रिय-आलम्बन-ज्ञान-प्रवृत्तेः॥	=मनके आलम्बन स्वरूप ज्ञानकी प्रवृत्ति है भावार्थ ऐसा है कि कर्ण इन्द्रियसे श्रवणमात्र किया सो तो मतिज्ञान है परंतु तिस पूर्वक पदार्थका विचार सो श्रुतज्ञान है
अथवा श्रुतज्ञानम्॥ श्रुतम्॥ तद्॥ यावत्*	=अथवा श्रुतज्ञान श्रुत है वह(श्रुतज्ञान) निश्चय(=यावत्) मनका अर्थ
अनिन्द्रियस्य॥ अर्थः॥ प्रयोजनम्॥ इति*इदम्॥	=वा प्रयोजन है यह मनका (=अनिन्द्रियस्य) प्रयोजन स्वाधीन ही साध्यरूप है
अनिन्द्रियस्य॥ प्रयोजनम्॥ स्वातन्त्र्यसाध्यम्॥	=अर्थात् यह मनका प्रयोजन किसीभी अन्य इन्द्रियके आधीन नहीं है स्वतंत्र है।
उक्तानाम्॥ इन्द्रियाणाम्॥ प्रतिनियतविषयाणाम्॥	=कथित इन्द्रियोंके नियमित (अर्थात् न्यारे न्यारे) विषयोंका
स्वामित्व-निर्देशे॥ कर्तव्ये॥ यत्॥ प्रथमम्॥	=स्वामीपना वा अधिपतिपना निर्देशकरनेमें जो पहिले
गृहीतम्॥ स्पर्शनम्॥ तस्य॥ तावत्*	=ग्रहणकिया स्पर्शन इन्द्रिय तिस (स्पर्शन इन्द्रिय) का प्रथम (=तावत्)
स्वामित्व-अवधारण-अर्थम्॥ आह।	=स्वामीपना-अधिपतिपनाके नियमके अर्थ कहते हैं कि

वनस्पत्यन्तानामेकम् ॥ २२ ॥ =वनस्पत्यन्तानामेकम् (इन्द्रिय भवति)

सूत्रार्थः-वनस्पति-अन्तानाम्॥	=(तेरहवां सूत्रमें) वनस्पति है अन्त में जिन (जीवों)के उनके, अर्थात्
	=पृथिवी कायिक,जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, और वनस्पतिकायिको के
एकम्॥ इन्द्रियम्॥ भवति।	=पहिली(स्पर्शन)इन्द्रिय है। ये पांच स्थावर जीव हैं एकमात्र स्पर्शन इन्द्रियके धारक

श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य०में इस सूत्रका पाठ 'वाय्वन्तानामेकम्'' = वायु अन्तानाम्-एकम् ॥ २३ ॥ सभाष्य०का १३ वां १४ वां सूत्र 'पृथिव्यब्वनस्पतयः स्थावराः ॥ १३ ॥ तेजो वायु द्वीन्द्रियादयश्च त्रसाः' ॥ १४ ॥ तेरहवें चौदहवें सूत्रको २३ वां सूत्रके साथ मिलाने से २३ वां सूत्रका अर्थ यह होता है कि वायु है अन्तमें जिनके (अर्थात् पृथिवीकायिक-अप् वा जलकायिक-वनस्पतिकायिक-तेजोकायिक वा अग्निकायिक-वायुकायिकके) प्रथम स्पर्शन इन्द्रिय है। ऊपरके अर्थसे प्रगट है कि दोनों आम्नायमें इस सूत्रके पाठ भेद होनेपर भी अर्थ एक है ॥ सूक्ष्मदृष्टिसे देखनेपर ज्ञातहोता है कि श्वेताम्बर आम्नायमें 'पृथिवीकायिक-अप्कायिक-वनस्पतिकायिक इनतीनको थावर मानकर और अग्निकायिक (=तेजोकायिक) वायुकायिक इन दोको त्रस मानकर पांचोंके स्पर्शन इन्द्रिय मानी है। हमारे यहां पांचोंको थावर मानकर स्पर्शन इन्द्रिय मानी है ॥

एकैकमिति वीप्सायां द्वित्वम्। एकैकेन वृद्धानि एकैकवृद्धानि ॥ कृमिमादिं कृत्वा, स्पर्शनाधिकारात् स्पर्शनमादिं कृत्वा एकैकवृद्धानीत्यभिसम्बन्धः क्रियते ॥ आदिशब्दः प्रत्येकं परिसमाप्यते। कृम्यादीनां स्पर्शनं रसनाधिकम्। पिपीलिकादीनां स्पर्शनरसने घ्राणाधिके।

एक–एकम्[१]॥ वृद्धानि[३]॥ =(स्पर्शन इन्द्रिय पश्चात्) एक एक(इन्द्रिय)बढ़ती है अर्थात् लट इत्यादिकोंके स्पर्शन और रसना दो इन्द्रिय है। चिउटी इत्यादिकोंके स्पर्शन, रसन, घ्राण ये तीन इन्द्रियें है भौंरा, मक्खिका, टीडी, इत्यादिकोंके स्पर्शन-रसन-घ्राण–चक्षुः ये चार इन्द्रिये है और, मनुष्य, मत्स्य गौ, सर्प इत्यादिकोंके स्पर्शन–रसन–घ्राण–चक्षुः श्रोत्र ये पांचों ही इन्द्रियां है

वृत्त्यनुवादः—एकैकम्[१]॥ इति*वीप्सायां[७]॥द्वित्वम्[१]॥=एक-एक ऐसा बारबारकेअर्थमें (=वीप्सायाम्) दो वार (सूत्रमें) है

एक–एकेन[३]॥वृद्धानि[१]॥ =एकएक(क्रमानुसार दो इन्द्रियसे पांच इन्द्रियतक)बढ़तीहै वा अधिक होती जातीहै

एकैकवृद्धानि[१]॥ स्पर्शन–अधिकारात्[५]॥ =सो"एकैकवृद्धानि"है।(बाईसवांसूत्रमें) स्पर्शनइन्द्रियका प्रकरणहोनेसे वा विषयहोनेसे

कृमिम्[२]॥आदिम्[२]॥कृत्वा – स्पर्शनम्[२]॥आदिम्[२]॥कृत्वा=(इससूत्रमें) कृमिको आदिकर और (इन्द्रियनिमें)स्पर्शन को आदिकर (क्रमसे)

एक–एक-वृद्धानि[१]॥इति*अभिसम्बन्धः[१]॥क्रियते। =एक एक (इन्द्रिय) बढ़ती है। इसप्रकार सम्बन्ध (इस सूत्रमें) किया है

आदिशब्दः[१]॥ प्रत्येकम्*परिसमाप्यते। =आदिशब्द(कृमि–पिपीलिका–भ्रमर–मनुष्य)प्रत्येकको लगाया गया है वा जोड़ागयाहै

इस समस्त उपर्युक्तका सरांश यह है'कि वनस्पत्यन्तानामेकम्'सूत्रमे स्पर्शन(=एकम्)कीअनुवृत्ति इस सूत्रमें लेकर इन्द्रियोंकी अपेक्षासे स्पर्शन इन्द्रियको प्रथम ग्रहणकरि पश्चात्'स्पर्शन–रसन–घ्राण–चक्षुः-श्रोत्राणि' इस सूत्रसे क्रमानुसार एक एक इन्द्रियकी वृद्धि रसना से श्रोत्र पर्यंत प्रत्येक कृमिआदिकके, प्रत्येक पिपिलिका आदिकके, प्रत्येक भ्रमर आदिकके और प्रत्येक मनुष्य आदिकके यथासंख्य होतीजाती है जैसाकि वृत्तिमें निम्न लिखित उदाहरणों से प्रगट है ॥

कृमिआदीनाम्[६]॥स्पर्शनम्[१]॥रसना(रसन)अधिकम्[१]॥=कृमि आदिकें रसनाकरि अधिक स्पर्शन इन्द्रियहै।अर्थात्कृमिआदिकें स्पर्शन-रसन है

पिपीलिका–आदीनाम् घ्राण अधिके[१]॥स्पर्शन-रसने[१]॥=चिउटीआदिकोंकेनासिकाकरि, अधिकत्वचा, रसनाहै।अर्थात्त्वचा, रसन, औरघ्राणहैं

इन्द्रियभेदात्पंचविधेषु ये पञ्चेन्द्रियास्तद्भेदस्यानुक्तस्य प्रतिपादनार्थमाह—

॥ सञ्ज्ञिनःसमनस्काः ॥ २४ ॥

मनो व्याख्यातम् । सह तेन ये वर्तन्ते ते समनस्काः । सञ्ज्ञिन इत्युच्यन्ते । पारिशेष्यादितरे संसारिणः प्राणिनोऽसञ्ज्ञिन इति सिध्दम् ॥ ननु च सञ्ज्ञिन इत्यनेनैव गतार्थत्वात्समनस्का इति विशेषणमनर्थकम् । यतो मनोव्यापारो हिताहितप्राप्तिपरिहारपरीक्षा । सञ्ज्ञाऽपि सैवेति ॥ नैतद्युक्तम् । सञ्ज्ञाशब्दार्थव्यभिचारात् ।

इन्द्रिय–भेदात् पंचविधेषु ये पञ्चेन्द्रियाः =(और) इन्द्रिय भेदसे पांच भेदों (२२, २३ सूत्र) में है ॥ ये पंचेन्द्रियजीव
तद्–भेदस्य अनुक्तस्य प्रतिपादन–अर्थम् आह =तिनके (=तद्) अकथित भेद के कहने के लिये उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्— संज्ञिनः समनस्काः ॥२४॥ (दोनों आम्नायों में इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है)

सूत्रार्थः–संज्ञिनः समनस्काः =जो जीव मनकरि सहित हैं(=समनस्काः)वेसंज्ञी है,सैनी हैं अर्थात् जिन्हें अपने हित अहितका वा गुण दोपादिका विचार हो तथा शिक्षा क्रिया आलापके ग्रहण करनेरूप संज्ञा हो उनको संज्ञी पंचेन्द्रिय कहते हैं ॥

वृत्त्यनुवादः–मनः व्याख्यातम् सह*तेन ये =मन (इसीअध्यायके११वांसूत्रमें) वर्णन किया गया है । तिस(मन) सहित, जो
वर्तन्ते ते समनस्काः सञ्ज्ञिनः इति*उच्यन्ते =प्रवर्तते हैं वे समनस्क हैं । सैनी इसप्रकार कहेगये हैं
पारिशेष्यात् इतरे =इन(मनसहित सैनी जीवों) से अवशेप अर्थात् संज्ञी समनस्कको छोड़कर अन्यशेप
ससारिणः प्राणिनः असंज्ञिनः इति*सिद्धम् =संसारीजीव असैनी है ऐसा सिद्धहुआ
ननु*च*सञ्ज्ञिनः इति*अनेन एव*गत-अर्थत्वात् =बहुरि प्रश्न संज्ञी (सैनी) इस (शब्द) द्वाराही (सूत्रमें) अर्थ प्राप्तहोने (केहेतु) से
समनस्काः इति*विशेषणम् अनर्थकम् ='समनस्काः'(संज्ञीका) ऐसा विशेपण निष्प्रयोजन है
यतः*मनस्-व्यापारः हितप्राप्तिपरीक्षा =क्योंकि(यतः) मनका व्यापार हितके प्राप्तिकी परीक्षा और
अहितपरिहार-परीक्षा संज्ञा अपि*सः एव*इति =अहितकेपरिहारकी परीक्षा(करना)हैसंज्ञीभी सोहीहैअर्थात्संगीकेमनःऔरबुद्धिअर्थ हैं
न*एतद् युक्तम् संज्ञाशब्द-अर्थ-व्यभिचारात् =(उत्तर)यह ठीक नहीं है क्योंकि संज्ञा शब्दके अनेक अर्थ होनेसे दोप आता है।

संज्ञा नामेत्युच्यते । तद्वन्तः सञ्ज्ञिन इति सर्वेषामतिप्रसङ्गः ॥ सञ्ज्ञानं सञ्ज्ञा ज्ञानमिति चेत् सर्वेषां प्राणिनां ज्ञानात्मकत्वादतिप्रसङ्गः ॥ आहारादिविषयाभिलाषः सञ्ज्ञेति चेत्तुल्यम् तस्मात्समनस्का इत्युच्यते ॥ एवं च कृत्वा गर्भाण्डजमूर्च्छितसुषुप्त्याद्यवस्थासु

सञ्ज्ञा[१]।नाम[१]।इति*उच्यते । तद्वन्तः[१]।सञ्ज्ञिनः[१]। =(जैसे) संज्ञा नाम है ऐसा कहागया है। उस (नाम) वाले संज्ञी हैं

इति*सर्वेषाम्[६]। अतिप्रसगः[१]। =ऐसे समस्त(जीवों)के अति प्रसंगहुआ अर्थात् सञ्ज्ञाका अर्थ नाम है किसीका। नामरूप संज्ञा जिसकै हो सो संज्ञी ऐसे कहनेसे सवही प्राणी नाम सहित हैं अतःमनसहित प्राणी भी संज्ञीहुये और मनरहितभी संज्ञीहुये अतःअतिप्रसंगहुआ

संञ्ज्ञानम्[१]।संज्ञा[१]।ज्ञानम्[१]।इति*चेत्* =यदि(=चेत्)संज्ञान(=भलाज्ञान)संज्ञा ज्ञान हो तो

सर्वेषाम्[६]।प्राणिनाम्[६]।ज्ञान-आत्मकत्वात्[५]।अतिप्रसङ्गः[१]। =समस्तजीवोंके ज्ञानस्वरूप होनेसे अतिप्रसंग (आता) है

आहार-आदि-विषय-अभिलाषः[१]।सञ्ज्ञा[१]। इति*चेत्* =यदि(=चेत्)आहार आदिक भोगोंकी(=विषय) कामना (=अभिलाष) सञ्ज्ञा है

तुल्यम्[१]।। =(तौभी)तुल्यहै वा समान है अर्थात् तौभी वहीवात है भावार्थ तौभी अतिप्रसंग आता है क्योंकि भोगोंकी अभिलाषा तौ सैनी असैनी सवही जीवोंके होती है।तीनोंकाभावार्थ ऐसाहै कि(१)यदि सञ्ज्ञा शब्दका अर्थ रूढि'नाम'माना जायगा तौ वह सैनी असैनी समस्त प्राणियोंमें पाया जाता है क्योंकि नाम विना कोई भी प्राणी नहींहै। तौ असैनी जीवोंको भी संज्ञी कहना पड़ेगा(२) 'सञ्ज्ञानं संज्ञा' भलाज्ञानही संज्ञाहै तौ वह ज्ञानभी सैनी असैनी सब प्रकारके जीवोंमें विद्यमान है इसलिये असैनी जीवोंकोभी सञ्ज्ञी मानना पड़ैगा (३) यदि आहार, भय, मैथुन और परिग्रह संज्ञी शब्दका अर्थ माना जाय तो ये चारो आहार-भय-मैथुन-परिग्रह संज्ञाये भी समस्त संसारी जीवोंके विद्यमान हैं इसलिये संज्ञा शब्दका आहार आदि अर्थ माननेे परभी असैनी जीवोंकी व्यावृत्ति नहीं होसक्ती इसलिये असैनी जीवोंकी व्यावृत्तिके लिये सूत्रमें'समनस्का'पदका उल्लेख सार्थक है

तस्मात्*समनस्काः[१]।इति*उच्यते । एवम्* च* =तिससे (सूत्रमें) समनस्काःऐसा(पद) कहा गया है। और (=च) इस प्रकार

कृत्वा—गर्भ-अण्डज-मूर्च्छित-सुषुप्तिआदिअवस्थासु[७]।=(सूत्रमेंसमनस्काःविशेषणकाग्रहण)करकेगर्भ,अंडज,मूर्च्छित,शयन,आदिकदशाओंमें

(१)अतिप्रसग=प्रसंगको छोडकर जिसका सवन्ध दूसरेकेसाथ रहै।लक्ष्यमेंजोलक्षणका सवन्धहोताहै उसे प्रसगकहतेहैंजोइसके विपरीत वहअतिप्रसगहै॥

हिताहितपरीक्षाभावेऽपि मनः सन्निधानात्सञ्ज्ञित्वमुपपन्नं भवति ॥ यदि हिताहितादिविषयपरिस्पन्दः प्राणिनां मनःप्रणिधानपूर्वकः अथाभिनवशरीरग्रहणं प्रत्यागूर्णस्य विशीर्णपूर्वमूर्तेर्निर्मनस्कस्य यत्कर्म, तत्कुत इत्युच्यते—

॥ विग्रहगतौ कर्मयोगः ॥ २५ ॥

हित–अहित–परीक्षा–अभावे[७] अपि* =(जीवोंकी) हित अहितकी परीक्षाके अभाव होनेपर भी

मनः–सन्निधानात्[५]॥ सञ्ज्ञित्वम्[१]॥ उपपन्नम्[१]॥ भवति । =मनके सद्भावसे सैनीपन सिद्ध (=उपपन्न)होता है अर्थात् सूत्रमें यदि समनस्क शब्द न लाया जाता केवल संज्ञी शब्दका ही उल्लेख होता और संज्ञी शब्दका अर्थ हित-अहितकी परीक्षा करनेवाला माना जायगा तो जो जीव गर्भ वा अंडेके भीतर हैं वा मूर्च्छित वा सोये हुये हैं वेभी यद्यपि मन उनके विद्यमान हैं हित अहित की परीक्षासे शून्य हैं इसलिये वेभी संज्ञी न कहेजावेंगे इसलिये सूत्रमें समनस्क शब्दका उल्लेख सार्थक है ॥

यदि*हित–अहित–आदि–विषय–परिस्पन्दः[१] =(प्रश्न) जो हित अहित आदिक विषयोंकी रचना वा हिलन (=परिस्पन्दः)

प्राणिनाम्[६]॥ मनः–प्रणिधान–पूर्वकः[१]॥ अथ* =जीवोंके मनके प्रयत्न (=प्रणिधान) निमित्तक है तौ अब (=अथ)

अभिनव–शरीर–ग्रहणम्[२]॥ प्रति*आगूर्णस्य[६]॥ =नया शरीर ग्रहण(करने)को (=प्रति) उद्यमी

विशीर्णपूर्व मूर्तेः[६]॥ निर्मनस्कस्य[६]॥ =और प्रथम शरीरके छूटजानेसे वा अभावहोजाने से(=विशीर्ण)मनरहित(आत्माके)

यत्[१]॥ कर्म[१]॥ तत्[१]॥ कुतः*इति*उच्यते । =जोकर्म(कार्माण)हैवह कहांसे(=कुतः)वा क्योंकर(=कुतः)हैऐसेप्रश्नपरकहागयाहैकि

विग्रहगतौ[1] कर्मयोगः[2] ॥ २५ ॥

सूत्रार्थः–विग्रह–गतौ[७]॥ =नवीन शरीर (ग्रहण वा धारण करने) के लिये गमन करनेमें (=गतौ)

कर्मयोगः[१]॥ =कार्मण(शरीर ही)योग है अर्थात् कार्मण शरीर द्वारा आत्माके प्रदेश सकंप होतेहैं।यहकार्मण शरीर समस्तकर्म ग्रहणकरनेका बीजहैऔर विग्रहगतिसेअन्यत्रतौकाय,वाग्औरमनोयोगहोताहै॥

(१) श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों आम्नायोंमे इस सूत्रका पाठ और अर्थ एक साहै ॥ (२)कर्मयोग=कार्मणि शरीरयोग

विग्रहो देहः । विग्रहार्था गतिर्विग्रहगतिः ॥ अथवा विरुद्धो ग्रहो विग्रहः व्याघातःकर्मादानेऽपि नोकर्मपुद्गलादाननिरोध इत्यर्थः। विग्रहेण गतिः विग्रहगतिः॥ सर्वशरीरप्ररोहणबीजभूतं कार्मणं शरीरं कर्मेत्युच्यते । योगो वाङ्मानसकायवर्गणानिमित्त आत्मप्रदेशपरिस्पन्दः। कर्मणा कृतो योगःकर्मयोगः। विग्रहगतौ भवतीत्यर्थः ॥ तेन कर्मादानं देशान्तरसंक्रमश्च भवति ॥ आह जीवपुद्गलानां गतिमास्कन्दतां

वृत्त्यनुवादः—विग्रहः१।१ देहः१।१ विग्रह–अर्था१।१ गतिः१।१ =विग्रहका अर्थ शरीर है । नवीन शरीरके लिये गमन(वह)

विग्रहगतिः१।१ अथवा* विरुद्धः१।१ ग्रहः १।१ विग्रहः१।१ =विग्रहगति है अथवा विरुद्ध ग्रहण है सो विग्रह है अर्थात्

व्याघातः१।१ कर्म-आदाने७।१ अपि* नोकर्म–पुद्गल– =व्याघात वा रोकना है । कर्मका आस्रव होनेपरभी नोकर्म पुद्गलके

आदान-निरोधः१।१ इति* अर्थः१।१ विग्रहेण३।१ गतिः१।१ =आस्रव वा ग्रहणकी रोक ऐसा आशय वा अभिप्राय है । विग्रहकरि गमन

विग्रहगतिः१।१ सर्वशरीरप्ररोहणबीजभूतम्१।१ =सो विग्रहगति है । समस्त शरीरोंका उत्पन्नकरने वाला बीजभूत

कार्मणम्१।१ शरीरम्१।१ कर्म१।१ इति* उच्यते । योगः१।१ =कार्मण शरीर है सो (सूत्रमें) कर्म ऐसा कहागया है ॥ योग (वह है कि)

वाङ्मानसकायवर्गणानिमित्तः१।१ =वचन मन कायके पुद्गल वर्गणा है निमित्त जिसको (इनवर्गणाओंके द्वारा)

आत्म–प्रदेश-परिस्पन्दः१।१ =ऐसै आत्माके प्रदेशोंका चलाचलहोना है अर्थात् कायवर्गणा भाषाऔरमनो वर्गणा आदिके निमित्तसे आत्माके प्रदेशोंके अंदर जो हलनचलन होना सो योग है ॥

कर्मणा३।१ कृतः१।१ योगः१।१ कर्मयोगः१।१ विग्रहगतौ७।१ =कार्मण शरीरसे कियायोग कर्मयोग है । नवीन शरीरके लिये गमनकरनेमें

भवति । इति* अर्थः१।१ तेन३।१ कर्म –आदानम् १।१ =(कार्मण शरीर होयोग)होता है ऐसा अभिप्राय है । तिस (योग) से कर्मका ग्रहण

देशान्तर–सक्रमः१।१ च* भवति । =और देशांतरका जाना वा संक्रमण होता है अर्थात् आत्माके प्रदेशोंके भीतर हलनचलनरूप योग विग्रहगतिमें कार्मण शरीरके द्वारा होता है उसीयोगके द्वारा विग्रहगतिमें आत्माके कर्मोंका आदान तथा मनसे रहितभी उस आत्माकी नवीन शरीर धारण करनेके लिये गति ये दोनों कार्य होते है ॥

आह । जीव-पुद्गलानाम्६।३ गतिम्२।१ आस्कन्दताम्६।३ =(शिष्य) पूंछता है कि जीव पुद्गल गतिको प्राप्त–होनेवालोंके

देशान्तरसंक्रमः किमाकाशप्रदेशक्रमवृत्त्या भवति, उताविशेषेणेत्यत आह—

॥ अनुश्रेणिगतिः ॥ २६ ॥

लोकमध्यादारभ्य ऊर्ध्वमधस्तिर्यक् च आकाशप्रदेशानां क्रमसन्निविष्टानां पंक्तिः श्रेणिरित्युच्यते । अनुशब्दस्यानुपूर्व्येण वृत्तिः ।

देशान्तरसंक्रमः१। किम्१।।आकाश-प्रदेश-क्रम- =देशान्तर–गमन (गति) क्या आकाशके प्रदेशोंकेक्रम–
वृत्त्या ३। भवति। =वर्तनकरि होता है अर्थात् आकाशके प्रदेशोंके अनुसार श्रेणीबद्ध होता है
उत* अविशेषेण३।इति*अतः*आह । =अथवा अविशेषकरि होता है इसलिये कहते हैं कि

अनुश्रेणिगति =(आकाशप्रदेशानाम्)अनुश्रेणिः (जीवानाम् पुद्गलानाम् च)गतिः(भवति)

सूत्रार्थः–आकाशप्रदेश-अनुश्रेणिः१। =आकाशके प्रदेशोंके श्रेणीरूप वा सीधी पंक्तिमें
जीवानाम्६। च* =(मृत्युहोनेपर नवीन शरीर धारण करनेके लिये) जीवोंका तथा
पुद्गलानाम्६। =(जब चौदहराजू शुद्ध परमाणू एक समयमें गमन करै तब ऐसे) पुद्गलोंका
गतिः१। भवति । =गमन होता है ॥ (आकाशप्रदेशानुश्रेणि जीवानां पुद्गलानां च गतिर्भवति)

वृत्त्यनुवादः–लोकमध्यात्५।आरभ्य – ऊर्ध्वम्*अधः*तिर्यक्*च*=लोकके बीचसे लगाय ऊपर नीचे और तिर्यक् (इधर उधर)
आकाशप्रदेशानाम्६।क्रमसन्निविष्टानाम्६। पंक्तिः१। =आकाशके प्रदेशोंका अनुक्रमसे पंक्तिरूप अवस्थान
श्रेणिः१।इति*उच्यते । अनुशब्दस्य६।अनुपूर्वेण३।वृत्तिः१। =ऐसी श्रेणी कहीगई है । अनुशब्दका अर्थ (=वृत्ति) यथा क्रमकरि है

(१) विग्रहका अर्थ शरीरहै। उस शरीरके लिये जो गमन कियाजाताहै वह विग्रहगति कही जाती है। जीव जिस समय दूसरा नवीन शरीर धारण करनेके लिये प्रवृत्त होता है उस समय पहिले शरीरका परित्याग करिही प्रवृत्तहोता है॥ तत्त्वार्थसार श्लोक९८। योगोंकी चचलता हुयेविना शरीर सबधी कुछभी हीनाधिकता नही होनेपाती इसलिये विग्रहगतिमेंभी कोई योग होना चाहिये। विग्रहगतिमें कर्मादान अर्थात्कर्मबंधकाकार्य और नवीन शरीर धारणकरनेकाकार्य ये दोकार्य होतेहैंजोकि किसीयोगकीअपेक्षा रखतेहैं। दूसरा कोईयोग वहांहो नही सकता इसलिये उक्त दोनों कार्योंका साधक कार्मण योगहीहै ऐसा भगवान जिनेस्वरने कहा है कर्मोंकेपिंडकानाम कार्मण शरीहै उसका अवलंबनलेकर आत्मा वहां उक्त दोनों कार्य करता है श्लोक ९७ ॥ (२) दोनों आम्नायोंमें इससूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है ॥ यहांश्रेणि से आकाशके प्रदेशोंकी पंक्ति लीगई है इससे इससूत्रमें "आकाशप्रदेशा" वाक्यका अध्याहार किया है ॥ जीवानाम् की अनुवृत्ति प्रथम सूत्रसे है। गतिः शब्द सूत्रमे आया है इससे पुद्गलानाम् का अध्याहार किया है जीवानाम् और पुद्गलानाम् को मिलानेके लिये च समुच्चायी उपसर्गका अध्याहार किया है ॥

श्रेणेरानुपूर्व्येणानुश्रेणीति जीवानां पुद्गलानां च गतिर्भवतीत्यर्थः॥ अनधिकृतानां पुद्गलानां कथं ग्रहणमिति चेत्गतिग्रहणात्। यदि जीवानामेव गतिरिष्टा स्यात् गतिग्रहणमनर्थकमधिकारात्तत्सिद्धेः। उत्तरत्र जीवग्रहणाच्च पुद्गलसम्प्रत्ययः॥

श्रेणेः॥आनुपूर्व्येण॥अनुश्रेणिः॥इति*जीवानाम्॥ =श्रेणीके अनुकूल सो अनुश्रेणि है। ऐसे जीवोंका

च*पुद्गलानाम्॥गतिः॥भवति।इति*अर्थः॥ =और पुद्गलोंका गमन(श्रेणिके अनुकूल) होता है ऐसा आशय है अर्थात् जीवोंकीमृत्युहोनेपर नवीनशरीर धारणकरनेकेलिये गमन,मुक्तजीवोंकाऊर्ध्वगमन, जीवोंका ऊर्ध्वलोकसे अधोलोकजाना, अधोलोकसे ऊर्ध्वलोकजाना, तिर्यग्लोकसे अधोलोकगमन वा ऊर्ध्वलोक गमन श्रेणीके अनुकूल होगा, पुद्गलके शुद्ध परमाणुका एक समयमें चौदह राजूगमन आकाशके श्रेणिके अनुकूलही होगा अन्य अवस्थाओंमें जीव और पुद्गलोंका गमन भजनीय है श्रेणिके अनुकूल भी गमन करसक्ते हैं। प्रतिकूल भी, कोई नियम नहीं है॥

अनधिकृतानाम्॥पुद्गलानाम्॥कथम्*ग्रहणम्॥ =प्रकरण रहित पुद्गलोंका(यहां) कैसे ग्रहण है॥

इति*चेत्*गतिग्रहणात्॥यदि*जीवानाम्॥एव* =ऐसी शंकाहोनेपर (उत्तरमें कहते हैं किसूत्रमें) गतिके आदानसेजो प्राणियोंकाही

गतिः॥इष्टा॥स्यात्।गतिग्रहणम्॥अनर्थकम्॥ =गमन इच्छितहोता तो(इससूत्रमें)'गतिः'शब्दका लाना निष्प्रयोजन होजाता

अधिकारात्॥ तत्॥ सिद्धेः॥ =क्योंकि (विग्रहगतौकर्मयोगःसूत्रमें गमनकरनेके) प्रकरणसेउस('गतिः') कीसिद्धिहै (फिरइससूत्र'अनुश्रेणिःगतिः'मेंगतिशब्दनहींलाते यदिपुद्गलगमनकाआशयनहोतातो)

च*उत्तरत्र*जीवग्रहणात्॥ और(=च)क्योंकिइससूत्रसे(=अत्र) अगलेसूत्र'अविग्रहा जीवस्य'मेंजीवकेग्रहणकरनेसे

पुद्गलसम्प्रत्ययः॥ =(इससूत्रमें)पुद्गलका ग्रहण(भी) प्रतीति वा प्रत्यय होताहै इससबका भावार्थयहहैकि

किसीकेतर्क करनेपर कि यहां तो जीवका प्रकरण वा विषय है पुद्गलका गमन 'अनुश्रेणिः गतिः' सूत्रमें कैसे आसकता है उनके उत्तरमें कहते हैं कि'विग्रहगतौ कर्मयोगः''सूत्रसे प्रगटहैकि यहांपर गतिका अधिकार है क्योंकि गतिका विषयहै और गति जीव तथा पुद्गल दोनोंके होती है इसी कारण इस''अनुश्रेणिःगतिः''में गतिःशब्द लाये है यदि केवल जीवकी गति सेही सूत्रका अभिप्राय होता हैतो यहसूत्र''अनुश्रेणिः''इतनाहीहोता। क्योंकि गति शब्द'विग्रहगतौ कर्मयोगः' सूत्रमें विद्यमान है उसकी अनुवृत्ति इस सूत्रमें आजाती॥

ननु चन्द्रादीनां ज्योतिष्काणां मेरुप्रदक्षिणाकाले विद्याधरादीनां च विश्रेणिगतिरपि दृश्यते तत्र किमुच्यते अनुश्रेणिगतिरिति? कालदेशनियमोऽत्र वेदितव्यः ॥ तत्रकालनियमस्तावज्जीवानां मरणकाले भावान्तरसंक्रमे मुक्तानां चोर्ध्वगमनकाले अनुश्रेण्येव गतिः॥देशनियमोऽपि ऊर्ध्वलोकादधोगतिः॥अधोलोकादूर्ध्वगतिः। तिर्यग्लोकादधोगतिः।ऊर्ध्वा वा। तत्रानुश्रेण्येव ॥ पुद्गलानां च या लोकान्तप्रापिणी सा नियमादनुश्रेण्येव।

और "अविग्रहा जीवस्य" सूत्रभी यदि इस छब्बीसवां सूत्रमें केवल जीवकी गतिसे अभिप्राय होतातो 'अविग्रहाः' ऐसे होता जीवस्य शब्द न होता अतःइनतीनों सूत्रोंको मिलाकर पढ़ने और विचार करनेसे यह फल हुआकि 'विग्रहगतौ कर्मयोगः' में केवल जीवकीगतिहै 'अनुश्रेणिःगतिः' में गति शब्दलायागयाहैइससे जीव और पुद्गल दोनोंकीगतिलीगईहै पश्चात् 'जीवस्य' वाक्यका प्रयोग २७वां सूत्रमें होनेसे केवल शुद्ध अर्थात् मुक्तजीवकी ही गति वा गमनसे अभिप्राय है ॥

ननु चन्द्रादीनाम् ज्योतिष्काणाम् मेरु-प्रदक्षिणा-	=प्रश्न(=ननु)शशि आदिक ज्योतिषी (देव) निका मेरुपर्वतकी प्रदक्षिणाके
काले विद्याधरादीनाम् च विश्रेणि-	=समयमें और (=च) विद्याधर आदिकोंका आकाशके प्रदेशोंकी पंक्तिके विरुद्ध
गतिः अपि दृश्यते । तत्र किम् अनुश्रेणि-	=गमन भी देखागया है वहां(अर्थात्२६वां सूत्रमें) क्योंकर श्रेणीके क्रमानुसार
गतिः इति उच्यते । कालदेशनियमः अत्र वेदितव्यः	=गमन ऐसा कहागया है॥(उत्तर)यहां(इससूत्रमें)कालनियम तथा देशनियम जानो ॥
तत्र कालनियमः तावत् जीवानाम् मरणकाले	=तहां कालनियम है कि समस्त (=तावत्) संसारी प्राणियोंका मृत्युसमयमें
भवान्तर-संक्रमे च मुक्तानाम् ऊर्ध्वगमनकाले	=अन्यभवको जानेपर और मुक्तजीवोंका ऊर्ध्वगतिकालमें
अनुश्रेणी एव गतिः । देशनियमः अपि	=(आकाशके प्रदेशोंकी) पंक्तिरूपही गमन है। क्षेत्र नियम भी है कि
ऊर्ध्वलोकात् अधोगतिः अधोलोकात् ऊर्ध्व-	=ऊर्ध्वलोकसे अधोलोक गमन, अधोलोकसे ऊर्ध्वलोक
गतिः तिर्यग्लोकात् अधोगतिः ऊर्ध्वा वा	=गमन(और)तिर्यग्लोकसे अधोलोक गमन अथवा ऊर्ध्व (गमन)
तत्र अनुश्रेणी एव च पुद्गलानाम् या	=तहां श्रेणीके अनुसारही है तथा(=च) पुद्गलोंकी जो
लोकअन्त-प्रापिणी सा नियमात् अनुश्रेणी एव	=लोकका अन्त प्राप्तकरनेवाली (शुद्धपरमाणु) है सो नियमसे श्रेणीके अनुकूल है

अर्थात् जब पुद्गलकी शुद्ध परमाणु एक समयमें चौदह राजू गमन करती है तब वह आकाशके प्रदेशोंके पंक्ति रूपही सीधी गमन करती है अन्यथा श्रेणीरूप गमनका नियम नहीं है ॥

इतरा गतिर्भजनीया ॥ पुनरपि गतिविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ अविग्रहा जीवस्य ॥ २७ ॥

विग्रहो व्याघातः कौटिल्यमित्यर्थः। स यस्यां न विद्यतेऽसावविग्रहा गतिः ॥ कस्य?। जीवस्य ॥ कीदृशस्य?। मुक्तस्य ॥ कथं गम्यते मुक्तस्येति?। उत्तरसूत्रे संसारिग्रहणादिह मुक्तस्येति विज्ञायते ॥ ननु च अनुश्रेणि गतिरित्यनेनैव श्रेण्यन्तरसंक्रमाभावो व्याख्यातः। नार्थोऽनेन।

इतरी१।१गतिः१।१भजनीया१।१ =अन्य गमन नियम रहित है अर्थात् सीधागमन भी होता है वक्र भी होता है

पुनः*अपि*गति–विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थम्२।१आह I=फिरभी गमनके प्रभेद कथनके लिये कहते हैं कि

सूत्रम्--अविग्रहा जीवस्य ॥२७॥ =अविग्रहा(गतिः) मुक्तजीवस्य (भवति)

सूत्रार्थः–अविग्रहा१।१गतिः१।१मुक्तजीवस्य६।१भवति I=वक्रतारहित,मोड़ारहित गमन मुक्त आत्माकाहोताहैअर्थात् मुक्त जीव एक समयमें सीधासात राजू गमन करता हुआ सिद्ध क्षेत्रमें चला जाता है इधर उधर मुड़ता नहीं है

वृत्त्यनुवादः-विग्रहः१।१व्याघातः१।१कौटिल्यम्१।१इति*=विग्रह है सो व्याघात, वक्रता वा कुटिलता ऐसा

अर्थः१।१सः१।१यस्यां७।१न*विद्यते Iअसौ१।१अविग्रहा१।१=अर्थमें है। वह (विग्रह वा वक्रता)जिसमें विद्यमान नहीं है सो अविग्रह

गतिः१।१कस्य६।१ ? जीवस्य ६।१ =गमन है। (वह मोड़ारहित गति) किसकी है?।(वह वक्रतारहित गति) चेतनकी है

कीदृशस्य६।१मुक्तस्य६।१ कथं*गम्यते Iमुक्तस्य६।१इति* =किस प्रकारके(जीव)की है। मोक्षजीवकी है। मुक्तजीवका नाम कैसे जानाजाय?

उत्तरसूत्रे७।१संसारिन् ग्रहणात्५।१ इह* =अग्रिम(२८वां)सूत्रमें संसारी शब्दके ग्रहणकरनेसे यहां (इस सूत्रमें)

मुक्तस्य६।१इति*विज्ञायते Iननु*च*अनुश्रेणिः१।१गतिः=मोक्षजीवका (ग्रहण) ऐसा जानाजाता है ॥ अन्य प्रश्न'अनुश्रेणिगतिः'

इति*अनेन३।१एव*श्रेणि–अन्तर-संक्रम-अभावः१।१ =इस (सूत्र)करिही श्रेणीसे विरुद्धगमनका अभाव

व्याख्यातः१।१न*अर्थः१।१ अनेन३।१ =वर्णित है(इसलिये) इस (सूत्र) से(=अनेन) प्रयोजन नहीं है अर्थात् इस सत्ताईसवां सूत्रका बनाना निष्फल वा अभिप्राय रहित है क्योंकि 'अनुश्रेणिगतिः'इस छब्बीसवां सूत्रमेंही श्रेणीके अनुकूल मुक्तजीवका गमनसिद्ध है।

पूर्वसूत्रे विश्रेणिगतिरपि क्वचिदस्तीति ज्ञापनार्थमिदं वचनम् ॥ ननु तत्रैव देशकालनियम उक्त किं न? अतस्तत्सिद्धेः ॥ यद्यसङ्गस्यात्मनोऽप्रतिबन्धेन गतिरालोकान्तादवधृतकाला प्रतिज्ञायते, सदेहस्य पुनर्गतिः किं प्रतिबन्धिनी, उत मुक्तात्मवदित्यत आह—

पूर्व-सूत्रे[७]॥ क्वचित्* विश्रेणि- =(उत्तर) पहिले(छव्वीसवां)सूत्रमें(अनुश्रेणिगतिः) है परंतु कहीं श्रेणीके विरुद्ध
गतिः[१]॥अपि अस्ति इति ज्ञापनअर्थइदम्[१]॥वचनं=(जीवऔर पुद्गलोंका)गमन भी है। ऐसा सूचितकरनेके लिये यह सूत्र है
ननु*तत्र*एव*देशकालनियमः[१]उक्तः[१] =प्रश्न वहां (अनुश्रेणिगतिःसूत्रमें) ही क्षेत्र तथा कालका नियम कहा गया है
अर्थात्'अनुश्रेणिगतिः'सूत्रमें काल और देशके नियमको ग्रहण कियाहै और उसकाल नियममें मुक्तजीवोंके ऊर्ध्व गमन करतेसमय श्रेणिके अनुकूल गति बतलाई है इसलिये मुक्तजीवोंकी मौड़ारहित गति'अनुश्रेणिगतिः'सूत्रसे सिद्ध होनेपर पुनः'अविग्रहाजीवस्य' इस सूत्रका निर्माण वा प्रतिपादन निरर्थक ही है ॥

किम् [१]॥ न* ? =(उत्तर)क्या ? (पिछले सूत्रमें देश,कालका नियम कहां कहागयाअर्थात्) नहीं (कहागया)
अतः*तत्-सिद्धेः[५]॥ =इसलिये उस(देश,कालके नियम)की सिद्धिका (यहसूत्र)है अर्थात् आचार्य उत्तरमें कहते हैं कि काल और देशका नियम"अनुश्रेणिगतिः"सूत्रमें तो कहा नहीं गया किंतु' अविग्रहा जीवस्य ' इसी सूत्रके द्वारा वहांपर काल,देशके नियमकी सिद्धिहै॥, "किम् " निंदा वा तिरस्कारके अर्थमें आया जान पड़ता है

यदि*असङ्गस्य[६]॥आत्मनः[६]॥अप्रतिबन्धेन[३]॥गतिः[१]॥=यदिकर्म रहित(=असंगस्य)आत्माका बन्धकरि रहित गमन
आ-लोकान्तात्[५]॥ अवधृतकाला[१]॥प्रतिज्ञायते I =लोकके अंत तक(=आ) एकसमयमात्र कालवान्गति प्रतिज्ञारूप करिये है वा लोकके अंततक एकसमय मात्र कालकेनियम रूप विदित (=प्रतिज्ञायते) है तौ

पुनः*सदेहस्य[६]॥गतिः[१]॥किम्[१]॥ प्रतिबन्धिनी[१]॥=फिर(=पुनः) शरीरसहित (आत्मा)का गमन क्या अटकाव सहित वा मौड़ासहित है
उत*मुक्त-आत्मवत्*इति*अतः*आह I =वा (=उत) मुक्तआत्मा सदृश है इसलिये (अग्रिमसूत्रमें) कहते हैं कि

॥ विग्रहवती च संसारिणः प्राक्चतुर्भ्यः ॥ २८॥

विग्रह[1]वती[2] च[3] संसारिणः प्राक्चतुर्भ्यः ॥ २८ ॥

=विग्रहवती(गतिः) अविग्रहा गतिः(=च) संसारिणः प्राक्-चतुर्भ्यः ॥ २८ ॥

सूत्रार्थः—विग्रहवती॥गतिः॥अविग्रहा॥गतिः॥च॥ =मोड़ेरूपगति वा विग्रहसहित गमन और विग्रहरहित गमन भी (=च) संसारिणः॥ प्राक्॥चतुर्भ्यः॥ =संसारी जीवका चार समयसे पहिले २ होता है भावार्थ विग्रहगतिमें सीधीगति, एक मोड़ावालीगति दो मोड़ावालीगति, तीन मोड़ावालीगति ऐसे ये चारगतियां होती हैं। आगममें क्रमसे इन गतियोंकी इषुगति, पाणिमुक्तागति, लांगलिकागति, और गोमूत्रिका गति इसप्रकार चार संज्ञामानी हैं। चारोंगतियोंमें इषुगति मोड़ारहित है और शेष गतियां मोड़ासहित है॥ इन चारो गतियोंका स्पष्ट अर्थ ऐसे है कि जिस प्रकार अपने लक्ष्य स्थानतक वाणकी गति सीधी होती है उसी प्रकार संसारी और सिद्ध जीवोंकी जो मोड़ारहित सीधीगति होती है उसको इषुगति कहते है। इस इषुगति विषैं एक समय लगता है अर्थात् एकही समयमें शरीर छोड़ना और दूसरा शरीर ग्रहण करना ये सब कार्य होजाते हैं॥ इसलिये इषुगतिमें ससारी जीव अनाहारक नहीं होताहै।जिस प्रकार हाथसे तिरछी ओर फेंके हुये पदार्थकीगति एक मोड़ालेकर होती है। उसी प्रकार संसारी जीवकी जो गति एक मोड़ालेकर हो वह पाणिमुक्तागति कहलाती है और उसगतिमें दो समय लगते हैं। ( )जिस प्रकार लांगल हलमें दो जगह मोड़रहती है उसी प्रकार जिस गतिमें दो मोड़ेलेनेपड़े उसे लांगलिकागति कहते है। और उसके होनेमें तीन समय लगते है॥ ( ) तथा जिस प्रकार गौके मूत्रमें वहुत मोड़रहते है

(१)विग्रहवती=मोडेरूप, मोडेवाली, मोडेसहित,वक्रतासहित. विग्रहसहित कुटिलगति (२) दोनों आम्नायोंमें इससूत्रका पाठ औरअर्थएकसाहै (३) सूत्रमे जो'च'शब्द है वह उपपादक्षेत्रमें जानेके लिये ससारी जीवों की सीधी भी गति होती है और मोडेवाली कुटिलगति भी होती है इस प्रकार दोनो भांतिकी गतियाके समुच्चयके लिये है अर्थात् ससारी जीवकी अविग्रहगति भी होती है और विग्रहगति भी होतीहैपरतु मुक्तजीवकी केवल अविग्रहगति होती है और 'एक समयाविग्रहा' सूत्रके अनुकूल इस अविग्रहगतिका काल एक समय है मुक्तजीवका भी और ससारी जीवकाभी। ससारी जीव अविग्रह गति में (ऋजुगति,सीधीगति, इषुगतिमें)एकही समयमें शरीर त्यागकर जन्म लेलेताहैऔर ऐसी अवस्था मे अनाहारक नही होता आहारक वना रहता है॥ वहुतसे महाशयोकी जैसा कि हमको अनुभव है यह धारणा है कि ससारीजीव जन्म लेनेमे अवश्यही एक वा दो वा तीनसमय तक अनाहारक'एकं द्वौ त्रीन्वाऽनाहारकः' सूत्रके अनुकूल रहता ही है कोई ससारी जीव उनकी धारणाके अनुसार ऐसा नहीहैजो अनाहारक न होताहो विग्रहगतिमें आहारकही वना रहताहो,उनके इस भ्रमको दूरकरनेके लिये यह टिप्पणी विशेष रुप सेपृष्ठ८१में लिखतेहैं॥

उसी प्रकार जिसगतिमें तीन मोड़ेलेनेपड़े वह गो मूत्रिकागति है, और उसके होनेमें चार समय लगते है। चारोंगतियोंमें पहिली

और सिद्धकरते हैं कि ऋजुगतिमे ससारी जीव आहारक बना रह सकता है ॥ टोड़लमलजीकृत गोम्मटसार गाथा ६७० के नीचे निम्न लेख है ॥
"आहारका काल उत्कृष्ट सूच्यगुलके असख्यातवे भाग प्रमाण है। सूच्यगुलका असख्यातवां भागके जेते प्रदेश होंहि तितने समय प्रमाण आहारकका काल है। इहां प्रश्न जो मरण तो आयु पूरी भए पीछें होइ ही होइ तहां अनाहार होइ इहां आहारका काल इतना कैसे कह्या ? ताका समाधान-जो मरण भए जिस जीवके वक्ररुप विग्रहगति न होइ सूधी एक समयरूप गति होइ ताके अनाहारकपणा न होहै आहारकपणा ही रहैहै तातै आहारकका पूर्वोक्त काल उत्कृष्टपनैकरि कह्या है। वहुरि आहारकका जघन्यकाल तीन समय घाटि सांसका अठारहवां भाग जानना जातै क्षुद्रभव विषै विग्रहगतिके समय घटाय इतना काल हो है वहुरि अनाहारकका काल कार्मण शरीर विषै उत्कृष्ट तीन समय जघन्य एक समय जानना जातै विग्रहगति विषै इतने काल पर्यंतही नो कर्म वर्गणानिका ग्रहण न हो है ॥टोड़लमलजी अनुवादित गोम्मटसार गाथा ६७० ॥"
( )इस अट्ठाईसवांसूत्रमे"च शब्दःसमुच्चयार्थः। विग्रहवती चाविग्रहवती चेति" (सर्वार्थसिद्धिवृत्ति इसी सूत्रके नीचे देखो)=चशब्द समुदय वा समूहके लिये है।(ससारी जीवकीगति क्योकि यह अट्ठाईसवां सूत्रकेवल ससारी जीवोसे सवन्ध रखताहै)विग्रहसहित भी(=च)और विग्रहरहितभी(=च है॥
( )' तहा इषुगति तौ विग्रहरहितहै। ताकादृष्टांत जंसे इषु कहिये तीर चालै सो सूधा ठिकाणै पहुचै तैसे इषुगतिहै॥ याका काल एक समय ही है सोससारीनिकै भी होहै वहुरि मुक्तजीवकै भी हो है। वहुरि पाणिमुक्ताविषै एक मोड़ा होहै।याका काल दोय समयहै, . जयचद्जीकृता वचनिकापृष्ठ२७२
( )"चशब्दःसमुच्चयार्थः-॥ २ ॥ चशब्द उपपाद क्षेत्रं प्रति ऋज्वी गतिरविग्रहा, कुटिला विग्रहवती" तत्त्वार्थ राजवार्तिक पृष्ठ ९७ ॥ इस अट्ठाईसवां सूत्रमे चशब्द समुदयके लिये है अर्थात् चकार उपपाद क्षेत्र प्रति ऋज्वीगति कहिये अविग्रहागति और कुटिलागति कहिये विग्रहवतीगति जे हैं तिनके समुच्चयके लियेहै भावार्थ इस अट्ठाईसवा सूत्रमे जो केवल ससारी जीवोंके कथनमेहैसर्वगति(विग्रहागति औरअविग्रहगति)काग्रहणके अर्थ"च"है॥
( )"आसां चतसृणा गतीनामार्षोक्ताःसज्ञाः इषुगतिःपाणिमुक्ता लागलिका,गोमूत्रिका,च इति। तत्राविग्रहा प्राथमिकी, =ये आर्योक्त चारगतियोंके नाम हैं कि इषुगति, पाणिमुक्तागति, =लांगलिकागति,और गोमूत्रिकागति ऐसेहै।तहांप्रथमकीइषुगति जोहैसोतौअविग्रहागतिहै अर्थात् मोड़ारहितगति इषु जो वाण तिसके समान सरलहैसीधीगति है ऋजुगतिहैऔर
शेषा विग्रहवत्यः =अवशेष तीन(पाणिमुक्तागति,लांगलिकागति,गोमूत्रिकागति)विग्रहवानहैमोड़ासहितहैं
इषुगतिरिवेषुगतिः (=इषुगतिःइव इषुगतिः) क उपमार्थः? =तिनमें इषुगतिके समान जो है सो इषुगतिहै। यहां उपमाअर्थ क्या है ॥
यथेषोर्गतिरालक्ष्यदेशादृज्वी,तथाससारिणांसिध्यतांचजीवानां=जैसे वाणकीगति लक्ष्यस्थानपर्यंत सरल है तैसे संसारिनिके तथा सिद्धहुये जीवनिकें ऋज्वीगतिरेकसमयिकी" तत्त्वार्थराजवार्तिकम् पृष्ठम् ९७ =सरलगतिहै सो एक समयकीहै भावार्थ जिस प्रकार अपने लक्ष्यस्थानतक वाणकीगति

कालावधारणार्थं प्राक्चतुर्भ्य इत्युच्यते। प्रागितिवचनं मर्यादार्थं, चतुर्थात्समयात्प्राग्विग्रहवती गतिर्भवति न चतुर्थे इति ॥ कुत इति चेत्--सर्वोत्कृष्टविग्रहनिमित्तनिष्कुटक्षेत्रे उत्पित्सुः प्राणी निष्कुटक्षेत्रानुपूर्व्यनुश्रेण्यभावादिषुगत्यभावे निष्कुटक्षेत्रप्रापणनिमित्तां त्रिविग्रहां गतिमारभते नोर्ध्वाम्। तथाविधोपपादक्षेत्राभावात् ॥

इपुगति संसारी और मुक्त दोनों प्रकारके जीवोंके होती है परंतु शेष गतियां केवल संसारी जीवोंके होती हैं ॥

वृत्त्यनुवादः-काल-अवधारण-अर्थं॥ प्राक्-चतुर्भ्यः॥ इति*=कालके निश्चय करने के लिये चार (समय) से पहिले ऐसा (वाक्य सूत्रमें)

उच्यते। प्राक्* इति* वचनम्॥ मर्यादा-अर्थम्॥ =कहा गया है। प्राक् ऐसा वाक्य सीमा के लिये है

चतुर्थात्॥ समयात्॥ प्राक्* विग्रहवती॥ गतिः॥ भवति। =चौथे समयसे पहिले विग्रह गति होती है

न* चतुर्थे॥ इति*। कुतः* इति* चेत्* =चौथे (समय) विषें (विग्रह कहिये मोंड़ा) नहीं है। ऐसा क्योंकर होता है?

सर्वोत्कृष्ट-विग्रह-निमित्त-निष्कुट-क्षेत्रे॥ उत्पित्सुः॥ =(उत्तर) सर्वोत्कृष्ट विग्रह है कारण जिसको ऐसे निष्कुट क्षेत्रमें उपजनेवाला

प्राणी॥ निष्कुट-क्षेत्र-आनुपूर्वी-अनुश्रेणि-अभावात्॥ =जीव निष्कुट क्षेत्र (=लोकका अग्रकोण) आनुपूर्वी सहित अनुश्रेणीके नहोनेसे

इपुगति-अभावे॥ निष्कुटक्षेत्र-प्रापण-निमित्ताम्॥ =वाणगति वा सीधीगतिके अभाव होने पर निष्कुट क्षेत्र में पहुंचनेके लिये

त्रि-विग्रहाम्॥ गतिम्॥ आरभते। न* ऊर्ध्वाम्* =तीन मोड़ेवाली गतिको प्रारम्भेहै न कि अधिक (मोड़ेवाली गति)को (आरम्भेहै)

तथाविध-उपपादक्षेत्र-अभावात्॥ =क्योंकि इसप्रकारसे(=तथाविध)उपजनेका अन्यक्षेत्र विद्यमान नहीं है अर्थात् निष्कुट क्षेत्रके उपरांत कोई ऐसा क्षेत्र नहीं है जिसमें जीव तीन मोड़ेसे अधिकलेके उपजे

स धीं होती है उसी प्रकार संसारी और सिद्ध जीवोंकी जो मोडा रहित सीधी गति है होती है उसे इपुगति वा वाणगति कहते हैं इस इपुगतिमे एक समय लगता है अर्थात् एक ही समय में शरीर छोडना और दूसरा शरीर ग्रहण करना ये सब कार्य हो जाते हैं। इसीलिये इपु गतिमें संसारी जीव अनाहारक नहीं है आहारक ही रहता है उक्त चारों गतियों में पहिली इपुगति संसारी और मुक्त दोनों प्रकारके जीवोंके होती है परंतु अवशेष तीन गतियां केवल संसारी जीवोंके होती है ॥

( ) यही बात कि संसारी जीव और मुक्त जीव दोनों के अविग्रह गति होती है और अविग्रह गतिका एक समय है। अविग्रह गतिमें संसारी जीव अनाहारक नहीं रहता है श्लोकवार्तिकके पृष्ठ ३३३,३३४से,और सर्वार्थसिद्धिवृत्तिके ३०वां सूत्रके इनवाक्योंसे['कर्मादानहि निरन्तर, कार्मणशरीर सद्भावे उपपाद क्षेत्रं प्रति ऋज्व्यां गतौ आहारकः। इतरेषु त्रिषु समयेषु अनाहारक'' = कर्म वर्गणाओंका ग्रहण लगातार ही है, कार्मण शरीरकी विद्यमानतामें उपजनेके क्षेत्रकी ओर मोडारहितगमन (=ऋजुगति) में जीव आहारक है अन्य तीन समयोंमें (जिनमें एक मोड़ा, दो मोडा वा तीन मोड़े लिये जाते हैं) जीव अनाहारक है] स्पष्ट है कि ऋजुगति वाला संसारी जीव विग्रहगति में भी आहारक है ॥

चशब्दः समुच्चयार्थः । विग्रहवती चाविग्रहवती चेति ॥ विग्रहवत्या गतेः कालोऽवधृतः । अविग्रहायाः कियान् काल इत्युच्यते—

॥ एकसमयाऽविग्रहा ॥ २९ ॥

एकः समयो यस्याः सा एकसमया । न विद्यते विग्रहो यस्याः सा अविग्रहा ॥ गतिमतां हि जीवपुद्गलानामव्याघातेनैकसमयिकी गतिरालोकान्तादपीति ॥

च*शब्दः १/१ समुच्चय-अर्थः १/१	=(इस सूत्रमें) चकार समुदय (=समुच्चय) के लिये है अर्थात् संसारी जीवकी (गति)
विग्रहवती १/१ च*अविग्रहवती १/१ च* इति*	=विग्रह सहित भी (=च) है विग्रह रहित भी इस प्रकार है
विग्रहवत्याः ६/१ गतेः ६/१ कालः १/१ अवधृतः १/१	=विग्रहवाले (जीव) निका गमनका काल निश्चय वा निर्णीत किया
अविग्रहायाः ६/१	=विग्रहरहित(जीव) निका(अर्थात् उन संसारी जीवोंका जो विग्रहगतिमे ऋजुगति धारण करते हैंएक ही समयमें शरीर छोड़कर उसी समय में जन्म धारण करलेते हैंऔरविग्रहगतिमें भी अनाहारक नहीं होते आहारक ही बने रहतेहैंऔर मुक्तजीवोंकाजो सीधेमोक्षकोपधारतेह
कियान् १/१ कालः १/१ इति * उच्यते ॥	=क्या काल है इस प्रकार(प्रश्न होने पर)कहा जाता है कि

एक(१)समयाऽविग्रहा(२) ॥ २९ ॥ =एक समयाऽविग्रहा (गतिः भवति) ॥ २९ ॥

सूत्रार्थः—एकसमया १/१ अविग्रहा १/१ गतिः १/१ भवति ॥	=एक समय है काल जिसका एसी मोड़ारहित गति,ऋजुगति वा इषुगति है अर्थात् मोड़ा रहित गति एक समय मात्र ही होती है । गतिवान जीव और पुद्गल की मोड़ा रहित गति लोक के अग्रभाग पर्यंत भी एक ही समय मे निष्पन्न हो जाती है ।
वृ.त्यर्थः—एकः १/१ समयः १/१ यस्याः ६/१ सा १/१ एकसमया १/१ न=	एक है समय जिसका सो एक समया है । नहीं है
विद्यते विग्रहः १/१ यस्याः ६/१ सा १/१ अविग्रहा १/१	=विद्यमान वा वर्तमान विग्रह जिसके सो अविग्रह है
गतिमताम् ६/३ हि *जीव—पुद्गलानाम् ६/३ अव्याघातेन ३/१	=गतिवान (=गतिसहित) ही जीव और पुद्गलोंको विग्रह शून्य वा अविग्रहकरि
एकसमयिकी १/१ गतिः १/१ आ-लोकअन्तात् ५/१ अपि*इति	=एक समय मात्र गमन क्षेत्रकी अपेक्षा से लोक पर्यंत भी हैं

१ श्वेताम्बरआम्नायके'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्र'में "एक समयोऽविग्रहः" = विग्रह रहित गति एक ही समयमें होती है । दोनो आम्नायोंमें एकअर्थहै

अनादिकर्मबन्धसन्ततौ मिथ्यादर्शनादिप्रत्ययवशात्कर्माण्यादानो विग्रहगतावप्याहारकः प्रसक्तस्ततो नियमार्थमिदमुच्यते—

॥एकं द्वौ त्रीन्वाऽनाहारकः॥ ३० ॥

अनादिकर्मबन्धसन्ततौ मिथ्यादर्शनादि-प्रत्यय-वशात् कर्माणि आदानः विग्रहगतौ अपि आहारकः प्रसक्तः ततः नियमार्थं इदम् उच्यते । =अनादिकर्मबन्धकी संतानविषैं मिथ्यादर्शनादिकके कारण (=प्रत्यय) =वशसे (यह जीव) कर्मोंको ग्रहण करता है। विग्रहगतिमें भी =आहारक(का)प्रसंग आता है तिस(हेतु)से नियमके अर्थ यह कहा जाता है कि

एकं[(१)] द्वौ त्रीन्वाऽनाहारकः[(२)] =जीवो विग्रहगतौ एकं द्वौ त्रीन् वा समयाननाहारकःभवति

सूत्रार्थः—जीवः विग्रहगतौ एकम् द्वौ त्रीन् वा समयान् अनाहारकः भवति । =जीव नवीन शरीर धारण करनेके लिये गमन करनेमें एक समय =दो समय अथवा तीन समयतक अनाहारक(=नोकर्मवर्गणाके ग्रहणरहित)है।

भावार्थ जो जीव सीधा जाय उपजै है आहारक है। यह जीव उसी समय शरीर त्याग करताहैऔर उसी समयमें ऋजुगति द्वारा जन्म लेलेताहैअनाहारक नहीं होता है आहारकही बना रहता है और जो एक मोड़ालेकर उपजता है सो एक समय अनाहारक है दूजेसमय आहारक है जो दोय मोड़ालेकर उपजता है सो दोय समय अनाहारक है तीजे समय आहार ग्रहण करता है और जो तीन मोड़ालेकर उत्पन्न होता है सो तीन समय तक अनाहारक है चौथे समय आहारक है अर्थात् चौथे समयमें शरीर प्राप्तिको ग्रहण करके आहारक होजाता है ॥

(१) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य० में "एक द्वौ वानाहारकः" ऐसा पाठ इस सूत्रका है। हमारे यहां के पाठसे "त्रीन्" शब्द न्यून है। इस पाठके ही अनुकूल उनके यहां —एक वा दो समय तक जीव अनाहारक रहता है" ऐसा अर्थ किया है हमारे यहांके अनुसार 'एकसमय दोसमय वा तीनसमयतक जीव विग्रहगति में अनाहारक रहता है यही अर्थभेद है। जब दोनों सम्प्रदाय.का ' विग्रहवती च संसारिणः प्राक् चतुर्भ्यः" इस सूत्रका पाठ और अर्थ एक है तब श्वेताम्बरोंके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें इससूत्रके पाठमें त्रीन् शब्द होना चाहिये नहीं तो'विग्रहवती च संसारिणः प्राक् चतुर्भ्यः 'और इससूत्रका अर्थ आपसमें मेल नहीं खाता संभव है कि त्रीन् शब्द रहगया हो ॥

(२) 'प्रश्न-एक दो तीन समय तक जीव अनाहारक रहता है' यहां पर आहार क्रियाका अधिकरण काल है। जहां अधिकरण अर्थ होता है वहा पर सप्तमी विभक्ति होती है इसलिये 'एक द्वौ त्रीन्' यहांपर 'एकस्मिन् द्वयोः त्रिषु ' यह सप्तमी विभक्ति होनी चाहिये ? (देखो सप्तम्यधिकरणेच २।३।३६ अष्टाध्यायी=अधिकरण अर्थमें सप्तमी विभक्ति होतीहै। आधारो अधिकरणम् ।१। ४। ४५। अधिकरणका अर्थ आधारहै॥(उत्तर)यहांपरकालकृत

अधिकारात्समयाभिसम्बन्धः। वाशब्दो विकल्पार्थः। विकल्पश्च यथेच्छातिसर्गः॥ एकं वा द्वौ वा त्रीन्वा समयाननाहारको भवतीत्यर्थः॥ त्रयाणां शरीराणां षण्णां पर्याप्तीनां योग्यपुद्गलग्रहणमाहारः। तदभावादनाहारकः॥ कर्मादानं हि निरन्तरं, कार्मणशरीरसद्भावे॥ उपपादक्षेत्रं प्रति ऋज्व्यां गतौ आहारकः। इतरेषु त्रिषु समयेषु अनाहारकः॥ एवं गच्छतो

वृत्त्यनुवादः-अधिकारात्[5/1] समय-अभिसम्बन्धः[1/1] वाशब्दः[1/1] =प्रकरण(वश)से (इससूत्रमें) समयका संबन्ध है। (सूत्रमें) वा शब्द
विकल्प-अर्थः[1/1] विकल्पः[1/1] च* यथा-इच्छा- =विकल्पके लिये है। और(=च) विकल्प है सो इच्छानुकूल (चलना) है
अतिसर्गः[1/1] =(उक्त विकल्प है सोही) अतिसर्ग है (=जो चाहो सो करो)
एकम्[2/1] वा* द्वौ[2/2] वा त्रीन्[2/3] वा समयान्[2/3] =एकको अथवा दोको अथवा तीन समयको (जीव)
अनाहारकः[1/1] भवति। इति* अर्थः[1/1] त्रयाणाम्[6/3] =अनाहारक होता है ऐसा आशय है। तीन (औदारिक-वैक्रियिक-आहारक)
शरीराणाम्[6/3] षण्णाम्[6/3] पर्याप्तीनाम्[6/3] =शरीर, छह(आहार-शरीर-इन्द्रियश्वासोच्छ्वास-भाषा-मन)पर्याप्तोंके
योग्य-पुद्गल-ग्रहणम्[1/1] आहारः[1/1] तद्-अभावात्[5/1] =योग्य पुद्गल(वर्गणाओं) का आदान सो आहार है उसके विद्यमान न होनेसे
अनाहारकः[1/1] कर्म-आदानम्[1/1] हि* निरन्तरम्[1/1]। =अनाहारक है। कर्मवर्गणाओंका ग्रहण लगातार ही है।
कार्मणशरीरसद्भावे[7/1] उपपादक्षेत्रम्[2/1] प्रति* =कार्मणशरीरके रहनेपर उपजनेके क्षेत्रकी ओर
ऋज्व्याम्[7/1] गतौ[7/1] आहारकः[1/1] इतरेषु[7/3] त्रिषु[7/3] =मोड़ारहितगमन(=ऋजुगति)में(जीव)आहारक है। अन्य तीन
समयेषु[7/3] =समयोंमें(जीव) अर्थात् एक विग्रहागतिमें, दो विग्रहागतिमें, तीन विग्रहागतिमें
अनाहारकः[1/1]। एवम्* गच्छतः[6/1] =(नोकर्मकी अपेक्षा) अनाहारक है। ऐसे (भवान्तरप्रति) गमन करतेहुये जीवको

अत्यन्त सयोगकी विवक्षा है अर्थात् एक समय दो समय तीन समयोंमे अखडरूपसे अनाहारक रहता है किसी एक खडमें नहीं यह यहां पर विवक्षा है तथा तह नियम है कि जहांपर कालकृत अत्यन्त सयोग रहता है वहांपर अधिकरण अर्थके विद्यमान होते सतेभी सप्तमी विभक्तिकी बाधक द्वितीया विभक्तिही होती है इसलिये सूत्रमे'एक द्वौ त्रीन्'द्वितीया विभक्तियोंका प्रयोग ही ठीक है॥ द्वितीया विभक्तिका प्रमाण यह है कि अष्टाध्यायी२-३-५ कालाध्वनोरत्यन्त सयोगे(द्वितीया,अत्यन्त सयोग गम्यमानहो तौ काल और अध्ववाची(मार्गवाची) शब्दोंमे द्वितीया विभक्ति हो॥ मासमधीते(=मासम् अधीते)=अखडरूपसे मासभर पढ़ता है। यहां मासेके स्थानमे मासम् द्वितीया विभक्ति लाये हैं। मासस्य द्विरधीते=मासमें दोवार पढता है क्रोशस्यैकदेशे पर्वत.=कोशके एक भागमे पर्वत है यहां दोनोउदाहरणोंमे अत्यन्त सयोग नहीं है अतः द्वितीया विभक्ति नहीं है॥

ऽभिनवमूर्त्यन्तरनिर्वृत्तिजन्मप्रकारप्रतिपादनार्थमाह—

॥ सम्मूर्च्छनगर्भोपपादाज्जन्म ॥ ३१ ॥

त्रिषु लोकषूर्ध्वमधस्तिर्यक् च देहस्य समन्ततो मूर्च्छनं सम्मूर्च्छनमवयवप्रकल्पनम् । स्त्रिया उदरे शुक्रशोणितयोर्गरणं

अभिनवमूर्ति-अन्तर-निर्वृत्ति-जन्म- =नवीन अन्य शरीरकी रचना(=निर्वृत्ति) को और जन्मके

प्रकार-प्रतिपादन-अर्थम्[१]॥आह T =भेद जनावनेके लिये वा कहनेके लिये कहते हैं कि

(१) सम्मूर्च्छनगर्भोपपादाज्जन्म॥३१॥=सम्मूर्च्छनात्-गर्भात्-उपपादात्(२)-जन्म ॥ ३१ ॥

सूत्रार्थः-सम्मूर्च्छनात्[५]॥ =सम्मूर्च्छन(अर्थात् तीनलोकमें जहां तहां अवयव सहित शरीरके बनने) से

गर्भात्[५] =गर्भ (अर्थात् माताकेरज और पिताके वीर्यके संयोग वा संबन्ध) से

उपपादात्[५] =उपपाद (अर्थात् जिस स्थानमें आकार उत्पन्नहों वहां) से-उपपादशय्यासे अथवा उपपाद स्थानसे। (उपपाद=देवऔरनारकियोंके उत्पन्न होनेके स्थान)

जन्म[१]॥ =(जीवके) नवीन शरीरका धारण(=जन्म) है ॥ इस सूत्रका सारांश यह है कि सम्मूर्छनजन्म,गर्भजन्म,उपपादजन्म ये ही तीन भेद जन्मके हैं ॥

सूत्रकाअन्यपाठः--सम्मूर्च्छनगर्भोपपादा जन्म ॥ ३१ ॥

सूत्रार्थः-सम्मूर्च्छन-गर्भ-उपपादाः[१]जन्म[१]॥ =सम्मूर्च्छन,गर्भ और उपपादशय्यारूप (जीवकेये) तीन जन्म हैं

वृत्त्यनुवादः-त्रिषु[७]लोकेषु[७]ऊर्ध्वम्*अधस्*तिर्यक्*च=तीनलोकमें ऊपर नीचे और (=च) तिर्यक्

देहस्य[६]॥ समन्ततः*मूर्च्छनम्[१]॥सम्मूर्च्छनम्[१]॥=चारों ओर वा जहां तहां (=समन्ततः) शरीरका बनजाना (=मूर्च्छनं)सो सम्मूर्च्छन है

अवयव-प्रकल्पनम्[१]॥ =(अर्थात् देहके)अवयवकी (सर्वत्र) रचना वा उत्पत्ति(प्रकल्प) है सो सम्मूर्च्छन है ॥

स्त्रियाः[६]॥उदरे[७]॥शुक्र-शोणितयोः[६]॥गरणम्[१]॥=नारीके उदरमें वीर्य (=शुक्र) और लोहू (=शोणित) मिलना (=गरणं)

१ श्वेताम्बरस०के सभाष्य०में''उपपादा''वाक्यके स्थानमें'उपपाता'लाये हैं अर्थात् 'सम्मूर्च्छनगर्भोपपाता जन्म''ऐसा पाठ है अर्थदोनोंकाएकहै॥

(२) यहांपर जैसेकि' उपपादा ' बहुवचनमें है'उपपाद+प' पचमी बहुवचनमें यह शब्द क्योंनहीं है॥हमारे यहां पूर्वोक्त दोनों पाठ विद्यमान हैं ॥

मिश्रणंगर्भः । मातोपभुक्ताहारगरणाद्वा गर्भः। उपैत्युपपद्यतेऽस्मिन्निति उपपादः । देवनारकोत्पत्तिस्थानविशेषसञ्ज्ञा ॥ एते त्रयः संसारिणां जीवानां जन्मप्रकाराः शुभाशुभपरिणामनिमित्तकर्मभेदविपाककृताः ॥

अथाधिकृतस्यसंसारिविषयोपभोगोपलब्ध्याधिष्ठानप्रवणस्यजन्मनोयोनिविकल्पावक्तव्याइत्यतआह

मिश्रणम् गर्भः वा॰मात-उपभुक्त-आहार- =मिश्रित होना(=मिश्रणं) सोगर्भ है । अथवा मातासे खायेहुये (उपभुक्त) आहारके
गरणात् गर्भः =निगलनेसे होना सोगर्भहै अर्थात् माताके आहारको अपना आहार बनाया जाय
उपैति I उपपद्यते I अस्मिन् इति॰उपपादः =जिसमें पहुंचता है(=उपैति)वा जिसमें उपजता है (=उपपद्यते) ऐसा उपपाद है
अर्थात् जिसमें पहुंचकरि वा जिसको प्राप्तहोकर उपजता है सो उपपाद है
देव-नारक-उत्पत्ति-स्थान विशेष-सञ्ज्ञा =देव और नारकियोंके उपजनेके स्थानका(उपपाद यह) विशेष नाम है
एते त्रयः संसारिणां जीवानां जन्म-प्रकाराः =ये तीन भेद संसारी प्राणियोंके जन्मके हैं वा भवधारण करनेके है ।
शुभ-अशुभ-परिणाम-निमित्त-कर्मभेद- =(येतीनों जन्म)अच्छे बुरे भावोंके कारणसे कर्मोंके भेदोंके
विपाककृताः =उदयसे किये जाते हैं अर्थात् परिणामोंके कार्य कर्म बन्धके भेद हैं और कर्म बन्धोंके फल जन्म भेद हैं क्योंकि कारणके अनुकूलही लोकमें कार्य दीख पड़ताहै । शुभअशुभ जिसप्रकारका कर्म होता है उसीके अनुकूल जन्मोंकी उत्पत्ति होती है ।
अथ॰अधिकृतस्य =अब जिस(जन्मका)ऊपरसे अधिकार वा प्रकरण चलाआरहाहै और
संसारि-विषय—उपभोग—उपलब्धि— =जो संसारीजीवोंको विषयभोगोंकी (संसारि-विषयोपभोग) प्राप्ति(=उपलब्धि) के
अधिष्ठान—प्रवणस्य जन्मनः =आधारभूत शरीरकी उत्पत्तिमें(=अधिष्ठान)कारण है वा प्रवीणहै (=प्रवणस्य) उसजन्मके
योनिविकल्पाः वक्तव्याः इति॰अतः॰आह I =योनियोंके भेद(=विकल्पाः)कहना चाहिये । इस लिये कहते हैं कि

(१)उपैति – उप उपसर्ग समीपके अर्थमें है एति में ए गुण ईका है । ई अदादि द्वितीय गणका धातु परस्मैपद"जाना"के अर्थमेंहै अध्याय१पृष्ठ ५६ के अनुसार ई का गुण ए हो कर ति अन्य पुरुष एक वचन,परस्मैपद, वर्तमान कालमें जोड़ो एति बना उप॰एति=उपैति=समीप (=उप) जाता है=एति,शब्दार्थ समीप जाताहै अर्थात् पहुचता है ॥(२)उपपद्यते=उप-पद्-य-ते ॥ उप=आरम्भ(पद्मचन्द्र॰कोशपृष्ठ७५) पद् दिवादि चतुर्थ गणका आत्मने पदी धातु जिसका अर्थ प्राप्ति होना—है । य विकरण है जो चतुर्थ गणकी धातुओं के पीछे और ए-से-ते इत्यादि प्रत्ययों के पहिले जोड़ा जाताहै और ते आत्मनेपद एक वचन अन्य पुरुष वर्तमान कालका प्रत्ययहै ॥ उपपद्का शब्दार्थ आरम्भता को (ससारसे)

॥ सचित्तशीतसंवृताःसेतरा मिश्राश्चैकशस्तद्योनयः ॥३२॥

(१)सचित्तशीतसंवृताः सेतरा मिश्राश्चैकशस्तद्योनयः ॥ ३२ ॥

सूत्रार्थः—सचित्त—शीत—संवृताः॥ =सचित्त,शीत,संवृत(और सचित्त—शीत—संवृत्त इन एक एकके)

सा—इतराः॥ =प्रतिपत्ती,विपत्ती वा उलटे(जो अचित्त—उष्ण—विवृत) सहित (=सा)

च॥एकशः॥मिश्राः॥ =और(सचित्त—शीत—संवृत)एकएकके मिश्र (जैसेसचित्ताचित्त,शीतोष्ण,संवृतविवृत)सहित

तद्—योनयः॥ =उन(सम्मूर्च्छनादि जन्मों)की योनियें वा उत्पत्तिस्थान हैं(=योनयः) अर्थात्

(१) सचित्तयोनि जीवका वह उत्पत्तिस्थान है जो चेतना सहित हो जैसे असाधारण शरीर वाले जीवोंके एकही शरीरमें बहुत जीव हैं तिससे परस्पर आश्रयसे सचित्त हैं

(२) अचित्त योनि-जीवका वह उत्पत्तिस्थान है जहांपुद्गलस्कन्धवापुद्गलप्रचय अचित्त हों जैसेदेवनारिकीयोंके उपजनेकेस्थानअचित्त हैं

(३) सचित्ताचित्त--जीवका वह उत्पत्तिस्थान है जहां चेतना और अचेतन पुद्गलके स्कंन्धहों जैसे जो जीव गर्भसे जायमान हैं गर्भज हैं वे सचित्ताचित्तस्वरूप मिश्रयोनिके धारक हैं क्योंकि उनके उत्पत्तिके स्थानस्वरूप माताके उदरमें वीर्य, और रज(लोहू) अचित्त पदार्थ है उनका संबन्ध सचेतन माताके आत्माके साथ है ॥

(४) शीतयोनि—जीवका वह उत्पत्तिस्थान है जहां शीत स्पर्शरूप पुद्गलहों जैसे किसी किसी देव और नारिकियोंके शीतरूप पुद्गलकेस्कन्धही उत्पत्तिकास्थान है (किसी किसी देव नारकियोंके उष्णरूपही पुद्गलके स्कन्ध उत्पत्तिका स्थान है) देवनारकियोंकेबहुतोंकेउपपादस्थान उष्णहोते हैंबहुतोंकेशीतरहते हैंअतःवेशीतयोनिवालेभीहोते हैंऔरउष्ण योनिवालेभीहोते है

(५) उष्णयोनि-जीवकावहउत्पत्तिस्थानहैजहांउष्णस्पर्शरूपपुद्गलहोंजैसेअग्निकायिकवात्रतैजसकायिकोंकेउत्पत्तिस्थानउष्णरूप ही है

(६) शीतोष्णयोनि—जीवका वह उत्पत्तिस्थान है जहां शीतोष्णके मिश्ररूप पुद्गलहों अर्थात् देव और नारकी और अग्निकाय जीवोंसे भिन्न जो जीव हैं उनमें बहुतसे शीत योनिवाले होतेहैं बहुतसे उष्णयोनिवाले होते हैंऔर बहुतसे शीतोष्णस्वरूप मिश्रयोनिवाले होते है इसप्रकार उनमें शीत,उष्ण,और शीतोष्णतीनों प्रकारकी योनियोंका होना संभव है ॥

(१) हमारे यहां की बहुधा पुस्तकोंमें 'सवृता' पाठ है कहीं कहीं पर (सवृत्ता) पाठ है जहां हमारे यहां (सवृत्ता) पाठ है उसके अनुकूल दोनों आम्नायोंका पाठ एक है अर्थ भी एक है सवृत=ढका हुआ छिपाहुआ, । सवृता और सवृत्ता दोनों पाठ ठीक हैं ॥

आत्मनश्चैतन्यविशेषपरिणामश्चित्तम्। सह चित्तेन वर्तत इति सचित्तः॥शीत इति स्पर्शविशेषः। शुक्लादिवदुभयवचनत्वात्तद्युक्तं द्रव्यमप्याह॥ सम्यग्वृतः संवृतः। संवृत इति दुरुपलक्ष्यःप्रदेश उच्यते॥ सह इतरैर्वर्तन्त इति सेतराः। सप्रतिपक्षा इत्यर्थः॥के पुनरितरे?। अचित्तोष्णविवृताः॥

---

(७) संवृतयोनि–जीवका वह उत्पत्ति स्थान है जिसके पुद्गल आच्छादित वा ढके हों जैसे देव, नारकी और एकेन्द्रियजीव संवृत योनि वाले है–जिस स्थान पर इनकी उत्पत्ति होती है वह स्थान ढका हुआ रहताहै उघड़ा हुआ नहीं रहता है।

(८) विवृत वा निवृतियोनि } जीवका वह उत्पत्तिस्थान है जिसके पुद्गलरूप स्कन्ध प्रगट दीखें—जैसे जो जीव दो इन्द्रिय तीन इन्द्रिय और चौ इन्द्रिय है वे विवृत योनि वाले हैं—उनकी उत्पत्ति का स्थान उघड़ाहुआ वा खुलाहुआ रहता है॥

(९) संवृतविवृतयोनि—जीवका वह उत्पत्ति स्थानहै जिसके पुद्गलके स्कंध कितने ही गूढ़ हो कितने ही उघड़े रूप हों जैसे जो जीव गर्भजहैंवे सवृतविवृतरूप मिश्रयोनि वाले हैं।उनकी उत्पत्तिका स्थान कुछ ढकाहुआ तो कुछ उघड़ा हुआ रहताहै॥

वृत्त्यनुवादः आत्मनः ६।१ चैतन्य-विशेष–परिणामः १।१ चित्तं १।१ =आत्माका चैतन्यका विशेषरूप परिणाम सो चित्तहै

सह*चित्तेन ३।१ वर्तते । इति*सचित्तः १।१ =चित्तकरि सहित(=सह)होता है ऐसा सचित्त है

शीतः १।१ इति*स्पर्शविशेषः १।१ शुक्ला दिवत्*उभय- =शीत ऐसा स्पर्शका भेदहै। श्वेतादिक(वर्णकेभेद)सदृश दोनों(द्रव्यऔरगुण)का

वचनत्वात् ५।१ तद्-युक्तम् २।१ द्रव्यम् २।१ =वाचक होनेसे उस(शीत)मिलित(=युक्त)द्रव्य (अर्थात् शीतलद्रव्य) को

अपि*आह । =भी(शीत)कहते हैं अर्थात् शीतगुणवचन और द्रव्यवचन दोनों हैं इसलिये शीत शीतलद्रव्यको भी कहते है॥

सम्यग्वृतः १।१ संवृतः १।१ =भले प्रकार घिराहुआ आच्छादित वा आवृत है सो संवृत है

दुर्–उपलक्ष्यः १।१ प्रदेशः १।१ इति*संवृतः १।१ उच्यते । =नहीदेख्याऔरनहीलख्यागयाहै जिसका(=दुरुपलक्ष्यः)प्रदेशऐसासंवृतकहाजाताहै

सह* इतरैः ३।३ वर्तन्ते ।इति* सेतराः १।३ =उलटा करि सहित प्रवर्तता है ऐसा सेतरा(शब्दका अर्थ) है

स–प्रतिपक्षाः १।३ इति*अर्थः १।१ के १।३ पुनः*इतरे १।३ ? =विपक्षी वा विरोधवालीपक्षि का है ऐसा अभिप्राय है। और इतर कोन हैं

अचित्त–उष्ण–विवृताः १।३ (=उत्तर)अचित्त और उष्ण और विवृत(यथासंख्य सचित्त-शीत-संवृत से उलटे) हैं

उभयात्मको मिश्रः। सचित्ताचित्तः शीतोष्णःसंवृतविवृत इति ॥ चशब्दः समुच्चयार्थ । मिश्राश्च योनयो भवन्तीति॥ इतरथा हि पूर्वोक्तानामेव विशेषणं स्यात् ॥ एकश इति वीप्सार्थः॥ तस्य ग्रहणं क्रममिश्रप्रतिपत्त्यर्थम्॥यथैवं विज्ञायेत। सचित्तश्च अचित्तश्च शीतश्च उष्णश्च संवृतश्च विवृतश्चेति।मैवं विज्ञायि सचितश्च शीतश्चेत्यादि। तद्ग्रहणं जन्मप्रकारप्रतिनिर्देशार्थम्।तेषां सम्मूर्च्छनादीनां जन्मनां योनय इति त एते नव योनयो वेदितव्याः॥योनिजन्मनोरविशेष इति चेत्

	(सचित्त–शीत–संवृत को यथासंख्य अचित्त–उष्ण–विवृतसे मिलाओ तो)
उभय-आत्मकः १/१। मिश्रः १/१। सचित्ताचित्तः १/१। शीतोष्णः१/१	=दोनों रूप मिश्र हैं ॥ (वे) सचित्ताचित्त, शीतोष्ण, और
संवृतविवृतः१/१। इति*चशब्दः १/१। समुच्चय-अर्थः १/१।	=संवृतविवृत इस प्रकार(मिश्र)हैं । चकार समुच्चय केलिये है
मिश्राः १/३। च* योनयः १/३। भवन्ति T इति*इतरथा * हि*	=(अर्थात्) मिश्र भी (=च) योनिये होती है क्योंकि (=हि)अन्यथा होतो अर्थात्
	(यदि च शब्द समुच्चय वा समाहारके लिये न हो तोऔर मिश्रयोनियेंनहोंतो)
पूर्व- उक्तानाम् ६/३। एव*विशेषणम् १/१॥ स्यात् T	=पहिले कहे हुये (सचित्त–शीत-संवृत) का ही (मिश्रशब्द) विशेषण हो जाय॥
एकशः*इति*वीप्सा –अर्थः १/१।तस्य ६/१। ग्रहणम् १/१॥	=एकएक(=एकशः)ऐसा(शब्द)वारवारकेलियेहै। तिस(एकशःशब्द)काआदान
क्रम–मिश्र –	=क्रमसे(सचित्त-शीत-संवृतका यथासंख्य अचित्त-उष्ण-विवृतके साथ) मिश्रकी
प्रतिपत्ति-अर्थम्१/१॥यथा*एवम्*विज्ञायेत T	=प्राप्ति वा प्रवृत्तिके लिये है । जैसे इसप्रकार जानो कि
सचित्तः१/१। च*अचित्त.१/१। च*शीतः१/१। च*उष्णः१/१। च*	=सचित्त और अचित्त और (=च) शीत और (=च)उष्ण
संवृतः१/१। च*विवृत १/१। च*इति*मा*एवम्* विज्ञायि T	=और(=च)संवृत और(=च)विवृत ऐसे(इनकामिश्र)है। ऐसे मतिजानो कि
सचितः१/१। च*शीतः१/१। च*इत्यादि१/१॥तद्-ग्रहणम्१/१॥	=सचित्त और शीत इत्यादिका(मिश्र) है । (इससूत्रमें)तद्(शब्द) का आदान
जन्म-प्रकार-प्रति-निर्देश-अर्थम्१/१॥ तेषाम् ६/३।	=जन्मके भेदोंके जनावनेके लिये है । तिन
सम्मूर्च्छनादीनाम् ६/३। जन्मनाम् ६/३॥ योनयः१/३। इति*	=सम्मूर्च्छन आदिक जन्मकी(येनव)योनियें वा उत्पत्तिस्थान हैं
ते १/३। एते१/३। नव १/३ योनयः१/३। वेदितव्याः१/३।	=ते इतनी नव योनियें जानना चाहिये
योनि-जन्मनोः६/२॥ अविशेषः१/१इति*चेत्*	=योनि और जन्ममें भेदनही(=अविशेष) ऐसी शंकाहोनेपर (उत्तरमें कहते है कि)

न आधाराधेयभेदात्तद्भेदः ॥ त एते सचित्तादयो योनयः आधारा । आधेया जन्मप्रकाराः ॥ यतः सचित्तादियोन्यधिष्ठाने आत्मा सम्मूर्च्छनादिना जन्मना शरीराहारेन्द्रियादियोग्यान्पुद्गलानुपादत्ते ॥ देवनारका अचित्तयोनयः । तेषां हि योनिरुपपाददेशपुद्गलप्रचयोऽचित्तः ॥ गर्भजा मिश्रयोनयः । तेषां हि मातुरुदरे । शुक्रशोणितमचित्तं, तदात्मना चितवता मिश्रणान्मिश्रयोनिः॥सम्मूर्च्छनजास्त्रिविकल्पयोनयः । केचित्सचित्तयोनयः।अन्ये अचित्तयोनयः।अपरे मिश्रयोनयः ॥ सचित्तयोनयःसाधारणशरीराः । कुतः । परस्पराश्रयत्वात् ॥इतरे अचित्तयोनयो-

न*आधार–आधेय–भेदात्	=नहीं, (योनि और जन्ममें भेदहै)। आधार और आधेय के भेद से
तद्-भेदः ते एते सचित्त-आदयः योनयः	=उन(योनि और जन्म)में भेद है । वे इतनी(=एते)सचित्त आदिक (योनियें)
अधाराः । आधेयाः जन्म–प्रकाराः यतः सचित्त-	=आधार वा आश्रय हैं। जन्मके भेद हैं वे आधेय वा आश्रितहैं। क्योंकि सचित्त
आदि-योनि-अधिष्ठाने आत्मा सम्मूर्च्छनआदिना	=आदिक योनियोंके आधारविषैं चैतन्य (आत्मा) सम्मूर्च्छन आदिक
जन्मना शरीर–आहार–इन्द्रिय–आदि योग्यान्	=जन्मकरि शरीर आहार इन्द्रिय आदिक योग्य
पुद्गलान् उपादत्ते। देव–नारकाः अचित्त-योनयः	=पुद्गलोंको ग्रहण करता है । देव और नारिकी अचित्त योनिवाले हैं
तेषाम् हि*योनि–उपपाददेश–पुद्गल–प्रचयः	=क्योंकि तिन(देव-नारकियों)कीयोनि उपजनेकास्थान(=उपपाददेश)पुद्गलकास्कंध
अचित्तः गर्भजाः मिश्रयोनयः तेषाम् हि*मातुः	=अचित्तहै।गर्भसेउत्पन्नहुयेजीवमिश्र(अचित्ताचित्त)योनिवाले हैंक्योंकितिनकीमाताके
उदरे शुक्र-शोणितम् अचित्तम् तद्–चितवता	=उदरमें वीर्य और लोहू(रज)अचित्त है । उस(माता)का चितवान्
आत्मना मिश्रणात् मिश्रयोनिः सम्मूर्च्छनजाः	=आत्मासे(शुक्र-शोणितअचित्तके) मिलापसे मिश्रयोनिहै । सम्मूर्च्छनजन्मवाले
त्रि–विकल्पयोनयः केचित्*सचित्त–योनयः अन्ये	=तीन प्रकारके योनिवाले हैं । कितने सचित्त योनिवाले हैं । दूसरे
अचित्त-योनयः अपरे मिश्र-योनयः	=अचित्तयोनिज है। (इनतें)भिन्न मिश्रयोनिवाले अर्थात् सचित्ताचित्त योनिवाले हैं
सचित्त-योनयः साधारणशरीराः	=सचित्तयोनिज साधारणशरीरवाले हैंअर्थात् जिनकेंएकहीशरीरमेंवहुतजीवहोतेहैं
कुतः*परस्पर-	=क्योंकर(साधारणशरीरवाले सचित्तयोनिज हैं)क्योंकि आपसमें(एकजीवदूसरेके)
आश्रयत्वात् इतरे अचित्त-	=आश्रयसे वा आधारसे है।(साधारण शरीरसे) भिन्न(सम्मूर्च्छनजीव)अचित्त
योनयः	=योनिवाले हैं अर्थात् उनके उपजनेका स्थान अचेतन पुद्गलके स्कन्धही हैं ॥

मिश्रयोनयश्च ॥ शीतोष्णयोनयो देवनारकाः तेषां हि उपपादस्थानानि कानिचिच्छीतानि, कानिचिदुष्णानीति ॥ उष्णयोनयस्तेजस्कायिकाः ॥ इतरे त्रिविकल्पयोनयः केचिच्छीतयोनयः केचिदुष्णयोनयः अपरे मिश्रयोनय इति ॥ देवनारकैकेन्द्रियाः संवृतयोनयः॥ विकलेन्द्रिया विवृतयोनयः ॥ गर्भजा मिश्रयोनयः ॥ तद्भेदाश्चतुरशीतिशतसहस्रसंख्या आगमतो वेदितव्या ॥ उक्तं च ।

णिचिदरधादु सत्त य तरुदस वियलिंदिएसु छच्चेव। सुरणिरयतिरिय चउरो चोद्दस मणुए सदसहस्सा।

मिश्रयोनयः च* शीत–उष्ण–योनयः देवनारकाः =और(=च) सचित्ताचित्त योनिज हैं । देव और नारकी शीतोष्ण योनिज है

तेषाम् हि* उपपादस्थानानि कानिचित्* =क्योंकि(=हि) तिन (देव–नारकिन) के उपजनेके ठिकाने कितन

शीतानि कानिचित्* उष्णानि इति तैजः कायिकाः =शीत हैं कितने उष्ण हैं । तैजसकायके जीव

उष्ण-योनयः इतरे त्रिविकल्प-योनयः केचित्* =उष्णयोनिवाले है। भिन्न प्राणी तीन प्रकारके योनिवाले हैं । केई

शीतयोनयः केचित्* उष्णयोनयः अपरे =शीत योनिज हैं । केई उष्ण योनिज है । अन्य

मिश्रयोनयः इति* देव–नारकएकेन्द्रियाः =मिश्र(शीतोष्ण) योनिवाले है। देव और नारकी और एकेन्द्रिय जीव

संवृतयोनयः विकल–इन्द्रियाः =संवृतयोनिवाले हैं । विकलइन्द्रिय जीव अर्थात् द्विइन्द्रियसे चौइन्द्रियतक

विवृतयोनयः गर्भजाः मिश्रयोनयः =विवृत वा निवृत योनिज है । गर्भज मिश्रयोनिज हैं अर्थात् गर्भसे उत्पन्न हुये जीवोंकी सवृत विवृत योनि है भावार्थ योनिके केते प्रदेशगूढ़ है केतेप्रदेश उघड़े है

तद्भेदाः चतुरशीतिशतसहस्रसख्या =तिन(नवयोनियों)के भेद चौरासीसो सहस्र गणना अर्थात् चौरासीलाख गिनती

आगमतः* वेदितव्याः उक्तम् च* =शास्त्रसे जानना चाहिये । कहाभी है

णिचिदरधादु(=नित्य–इतर–धातु) =नित्यनिगोद, इतरनिगोद, धातु(पृथिवीकायिक, अप्कायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक)की

सत्त य* तरुदस च(=सप्त च तरुदश च) =सात सात और (=य=च) वनस्पतिकायिककी, दश और (=च)

वियलिंदिएसु छच्चे एव(विकलेन्द्रियेषु षट् एव)=विकलेन्द्रिय जीवविषैं छह ही अर्थात् द्वीन्द्रियमें दो, त्रीन्द्रियमें दो, चतुरिन्द्रियमें दो

सुर-णिरिय-तिरिय-चउरो(सुर-निरय-तिर्यक्-चतस्रः)=सुर–नारक और तिर्यंचोंकी चार चार(और)

चोद्दसमणुए सदसहस्सा(चतुर्दश मनुष्ये शतसहस्राणि)=चोदहलाख मनुष्यविषैं है(अर्थात् ४२+१०+६+१२+१४ सब चौरासीलाख हैं)

एवमेतस्मिन्नवयोनिभेदसङ्कटे त्रिविधजन्मनि सर्वप्राणभृतामनियमेन प्रसक्ते तदवधारणार्थमाह—

॥ जरायुजाण्डजपोताना गर्भः ॥३३॥

भावार्थः–नित्यनिगोद,इतरनिगोद, पृथिवीकायिक,जलकायिक, अग्निकायिक, और वायुकायिक, इन छहकी सात सात लाख योनियें(१)ऐसे४२लाखहुई;वनस्पतिकायिकी दशलाख योनियें,दोइन्द्रियवाले जीवोंकी दोलाख, तीनइन्द्रियवाले जीवोंकी दोलाख,चारइन्द्रियवाले जीवोंकी दोलाख ऐसे इनविकलेन्द्रियोंकी छहलाख योनियें हुई। देवोंकी चारलाख नारकियोंकी चारलाख पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंकी चारलाख ऐसे ये बारहलाखयोनियें हुईं मनुष्योंकी चोदहलाख योनियें मिलकर ऐसर्व (४२+१०+६+१२+१४) चौरासीलाख हुई

एवम्-एतस्मिन् ७। नवयोनि-भेदसङ्कटे ७। =ऐसें तिस नवभेदरूपयोनि संकट विषैं

त्रिविधजन्मनि ७।।सर्वप्राणभृताम् ६। अनियमेन ३।=तीन प्रकार जन्म समस्त संसारी जीवोंकें नियमकरिरहित

प्रसक्ते ७।।तद्–अवधारण-अर्थम् १।। आह । =प्राप्तहोनेपर उस(नियम)के निश्चय करणके लिये अर्थात् निश्चये करनेके लिये कहते हैं कि

(२) सूत्रम्-जरायुजाण्ड जपोतानां गर्भः=जरायुजाण्डजपोतानां गर्भः (जन्म) ॥ ३३ ॥

सूत्रार्थः–जरायुज–अण्डज =जरायुमें उत्पन्नहोनेवाले(जीव)निका,और अंडेमें उपजनेवाले (जीव) निका, और

पोतानाम् ६। गर्भः१। जन्मः१।। =पोत(जीव) निकागर्भजन्महै अर्थात् जोजीव जालके समान मांस और रुधिर से व्याप्त एक प्रकारकी थैलियोंसे लिपटेहुए पैदा होते हैं उनको जरायुज कहते हैं जैसे मनुष्य

(क) माताकेरुधिर पिताकेवीर्यसे नखकी त्वचाकेसमान कठिनसेगोल २ आवरणको अंडा कहते हैं और जो अंडेसे जो उत्पन्नहोंउन्हें अंडजकहते हैं जैसे कुक्कट (ख)जिसकेऊपरजरा वा अंडा कुछभी आवरण नहीं होता, माताके उदरसे निकलतेही चलने फिरने लगताहै वह पोतज है जैसे हाथी, बिल्ली,सिंह,बंदर इत्यादि

(१) आकार योनि और गुण योनिके भेदसे योनि दो प्रकारकी है यहापर ये भेद गुण योनिकी अपेक्षासे कहे हैं आकार योनिके तीन भेद हैं शखावर्त कूर्मोन्नत और वंशपत्र। शखावर्त योनिमें गर्भ नही ठहरता। कूर्मोन्नत योनिमें तीर्थंकर,चक्रवर्ती, बलभद्र और उनके भाईयोके अतिरिक्त कोई उत्पन्न नही होता और वंशपत्र योनिमे शेषगर्भ जन्मवाले सर्व जीव उत्पन्न होते हैं।

(२)हमारे यहां कही कही पर जरायुजाण्डज और कहीं कहीं पर जरायुजांडज पाठ हैं दोनों पाठ ठीकहैं॥ देखो अध्याय१ पृष्ठ ५४०,५४१की टिप्पणी॥ इस सूत्रमें 'जन्म'शब्दकी अनुवृत्ति सूत्र ३१ वांसे आती है॥ श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य०का पाठ"जराय्वण्ड पोतजानां गर्भः"ऐसा है॥हमारे यहांके पाठमे जकार जरायु और अड के साथ है सभाष्य तत्त्वार्थाधिगमसूत्र के पाठमें 'पोत' के साथ है जो तीनों जरायु–अड–पोत पर लागू है अर्थात् जरायुजस्यगर्भः जन्म, अ डजस्य गर्भः जन्म, पोतजस्य गर्भः जन्म, ऐसे रूप होजाते है जिससे प्रगट है कि दोनों आम्नायोंमें अर्थ एकसा है॥

यज्जालवत्प्राणिपरिवरणं विततमांसशोणितं तज्जरायुः। यन्नखत्वक्सदृशमुपात्तकाठिन्यं शुक्रशोणितपरिवरणं परिमण्डलं तदण्डम्। किञ्चित्परिवरणमन्तरेण परिपूर्णावयवो योनिनिर्गतमात्र एव परिस्पन्दादि सामर्थ्योपपेतः पोतः॥ जरायौ जाता जरायुजाः। अण्डे जाता अण्डजाः। जरायुजाश्च अण्डजाश्च पोताश्च जरायुजाण्डजपोताः गर्भयोनयः॥ यद्यमीषां जरायुजाण्डजपोतानां गर्भोऽवध्रियते, अथोपपादः केषां भवतीत्यत आह—

वृत्त्यनुवादः—यद् [1/1] जालवत्*प्राणि-परिवरणं [1/1] =जो जालके सदृश जीवका आच्छादन (=परिवरण)
वितत-मांस-शोणितम् [1/1] तद्- जरायुः [1/1] यद् [1/1] नख- =जो मांस और रुधिर(=शोणित)करि व्याप्तहो सो जरायु है। जो नों (=नख) के
त्वक्-सदृशम् [1/1] उपात्त-काठिन्यम् [1/1] =त्वचा वा छिलकेकेसमान कठोरता वा कड़ापन गृहीत (=उपात्त) हो
शुक्र-शोणित-परिवरणम् [1/1] परिमण्डलम् [1/1] =जिस (त्वचा)में वीर्य लोहू वेष्टित हो गोलाकारसा हो
तद् [1/1] अण्डम् [1/1] =सो अंड है अर्थात् जो नखकी छालके समान कठिनहो, वीर्य और रजसे आच्छादितहो और गोलाकारहो उसको अंडकहते हैं
किञ्चित्-परिवरणम् [2/1] अन्तरेण*परिपूर्ण-अवयवः [1/1] =कोई वस्तु (=किञ्चित्) आवरण विना (=अन्तरेण) संपूर्ण अवयव सहित
योनि-निर्गतमात्रः [1/1] एव*परिस्पन्द-आदि-सामर्थ्य- =योनिसे निकलने परही हलन चलन आदि सामर्थ्य
उपपेतः [1/1] पोतः [1/1] =सहितहो सो पोत है अर्थात् जिसके ऊपर जरा वा अंड कुछभी आवरण नही होता है माताके उदरसे निकलतेही चलने फिरने लगताहै उसे पोत कहते है
जरायौ [7/1] जाताः [1/3] जरायुजाः [1/3] अण्डे [7/1] जाताः अण्डजाः [1/3] =जरायुमें उत्पन्नहुये जरायुज हैं। अंडेविषै उपजैं सो अंडज है
जरायुजाः [1/3] च*अण्डजाः [1/3] च*पोताः [1/3] च* =और जरायुसे उपजनेवाले और अंडेसे उत्पन्न होनेवाले और पोत
जरायुज-अण्डज-पोताः [1/3] गर्भ-योनयः [1/3] =(यथासंख्य) जरायुज-अंडज-पोत है (और ये सव) गर्भयोनिवाले हैं
यदि*अमीषाम् [6/3] जरायुज-अंडज-पोतानाम् [6/3] =जो इन (=अमीषाम्) जरायुज-अंडज-पोतोंका (उपजनेका स्थान)
गर्भः [1/1] अवध्रियते T अथ*उपपादः [1/1] केषाम् [6/3] =गर्भ निश्चयकियागया है तो अव उपपाद (जन्म) किन(जीवों) के
भवति T इति* अतः*आह T =होताहै इसलिये (आचार्य अगले सूत्रमें) कहते है कि

॥ देवनारकाणामुपपादः ॥ ३४ ॥

देवानां नारकाणां च उपपादो जन्म वेदितव्यम् ॥ अथान्येषां किं जन्मेत्यत आह–

॥ शेषाणां सम्मूर्च्छनम् ॥ ३५ ॥

गर्भजेभ्यःऔपपादिकेभ्यश्चान्ये शेषाः। तेषां सम्मूर्छनंजन्मेति॥एते त्रयोऽपि योगा नियमार्थाः।

सूत्रम्—[१]देवनारकाणामुपपादः =देवनारकाणामुपपादः (जन्म भवति) ॥३४॥

सूत्रार्थः–देव–नारकाणाम्[६/३] =(भवनवासी आदि चारों प्रकारके)देव और नारकियोंके

उपपादः[१/१] जन्मः[१/१] भवति T =उपपाद जन्म होता है। (जन्म शब्दकी अनुवृत्ति इकतीसवां सूत्रसे इसमें आती है)

वृत्त्यनुवादः-देवानाम्[६/३]नारकाणाम्[६/३] च =देव और (=च) नारकियोंके

उपपादः[१/१]जन्म[१/१]वेदितव्यम्[१/१]अथ-अन्येषाम्[६/३] =उपपाद जन्म जानना चाहिये। अब दूसरे(जीव)निके अर्थात् जरायुज अंडज और पोतोंको और देवनारिकियोंको छोड़कर अवशेष जीवोंका

किम्*जन्म[१/१] इति* अतः* आह T =कौन जन्म है इस लिये(अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्—[२]शेषाणां सम्मूर्च्छनम् =शेषाणां सम्मूर्च्छनम् (जन्म भवति) ॥ ३५ ॥

सूत्रार्थः–शेषाणाम्[६/३] अवशेष(जीव)निकें अर्थात् गर्भज और उपपाद जन्मोंके अतिरिक्त

सम्मूर्च्छनम्[१/१] जन्म[१/१] भवति T =सम्मूर्च्छन जन्म होताहै।(जन्म शब्दकी अनुवृत्ति इकतीसवां सूत्रसे इससूत्रमें आतीहै)

वृत्त्यर्थःगर्भजेभ्यः[५/३]औपपादिकेभ्यः[५/३]चअन्ये[१/३]शेषाः[१/३] =गर्भजजीवोंसे उपपाद जन्मवाले(देव नारकियो) से भिन्न शेष (जीव रहते) हैं

तेषाम्[६/३] सम्मूर्च्छनम्[१/१] जन्म [१/१] इति* =तिन (गर्भज और औपपादिकों से अतिरिक्तजीवोंकें) सम्मूर्च्छन जन्म होता है

एते [१/३] त्रयः[१/३] अपि* योगाः[१/३] नियमार्थाः[१/३] =ये तीनो ही युक्तियें अर्थात् तेतीसवां,चौतीसवां,पैतीसवां सूत्र) नियमके लिये हैं

(१) हमारे यहां इस सूत्र का शुद्ध पाठ सर्वत्र एक है।"नारकदेवानामुपपात."ऐसा पाठ सभाष्य० का है दोनों आम्नायो में अर्थ एक सा है॥

(२) दोनों आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसाहै। तत्त्वार्थसूत्रकी प्रतियोंमें सम्मूर्च्छन, समूर्च्छन, सम्मूर्छन, समूर्छन, ये चार पाठ प्राप्त हैं चारो ठीक हैं (अध्याय १ पृष्ठ ५४०, ५४१,७०,) सूत्रके अतमे जहां"समूर्च्छन"हैवह पाणिनि और शाकटायनकेमतमे अशुद्ध है॥सम्मूर्च्छनम् चाहिये ॥

उभयतो नियमश्चद्रष्टव्यः॥जरायुजाण्डजपोतानामेव गर्भः । गर्भ एव च जरायुजाण्डजपोतानाम्॥ देवनारकाणामेवोपपादः । उपपाद एव देवनारकाणाम् ॥ शेषाणामेव सम्मूर्च्छनम्। सम्मूर्च्छनमेव शेषाणामिति ॥ तेषां पुनः संसारिणां त्रिविधजन्मनामाहितबहुविकल्पनवयोनिभेदानां शुभाशुभनामकर्मविपाकनिर्वर्तितानि बन्धफलानुभवनाधिष्ठानानि शरीराणिकानीत्यत आह—

च * उभयतः * नियमः $\frac{1}{1}$ द्रष्टव्यः $\frac{1}{1}$ =और (=च) (इन गर्भज, औपपादिक और सम्मूर्च्छनोंकें) दोनों ओर नियम जानो

जरायुज–अण्डज–पोतानाम् $\frac{6}{3}$ एव* गर्भः $\frac{1}{1}$ =(सो उपर्युक्त नियम दोनों लग एसे है कि) जरायुज, अंडज, पोतनिकें ही गर्भ है

च* गर्भः $\frac{1}{1}$ एव* जरायुज–अण्डज–पोतानाम् $\frac{6}{3}$ =और (च) गर्भ ही है(जन्म) जरायुज, अंडज, पोतनिके भावार्थ दोनों वाक्योंका यहहै कि जरायुज, अडज और पोतनिकें ही गर्भ जन्म है दूसरे प्रकारके जीवोंकें गर्भ जन्म नहीं है वा गर्भ जन्म ही न कि और कोई जन्म है जिनकें ऐसे जरायुज-अंडज पोतज हैं।

देव–नारकाणाम् $\frac{6}{3}$ एव* उपपादः $\frac{1}{1}$ =देव और नारकियोंके ही उपपाद (जन्म) है (नकि किसी और जीवोंकें)

उपपादः $\frac{1}{1}$ एव* देवनारकाणाम् $\frac{6}{3}$ =उपपाद ही है (जन्म न कि कोई और जन्म) जिनके ऐसे देव नारकी हैं

शेषाणाम् $\frac{6}{3}$ एव* सम्मूर्च्छनम् $\frac{1}{1}$ =बचे हुये (जीव) निकें ही सम्मूर्च्छन (जन्म) है (न कि किसी और जीवोंकें)

सम्मूर्च्छनम् $\frac{1}{1}$ एव* शेषाणाम् $\frac{6}{3}$ इति* =सम्मूर्च्छन जन्म (नकि कोई अन्य जन्म) है बचे हुये जीवोंकें ॥

पुनः त्रिविध-जन्मनाम् $\frac{6}{3}$ तेषाम् $\frac{6}{3}$ आहित-बहु-विकल्प- =और तीन प्रकारके हैं जन्म जिनकें और ग्रहण किये हैं (=आहित) बहुत विकल्प रूप

नवयोनिभेदानाम् $\frac{6}{3}$ संसारिणाम् $\frac{6}{3}$ शुभ-अशुभ- =नव योनिके भेद जिनने ऐसे संसारी जे हैं तिनकें शुभ, अशुभ

नामकर्म-विपाक-निर्वर्तितानि $\frac{1}{3}$ बन्ध-फल-अनुभव =नाम कर्म करिरचे और बंधको जो फल है तिसके अनुभव करने के

अधिष्ठानानि $\frac{1}{3}$ शरीराणि $\frac{1}{3}$ कानि $\frac{1}{3}$ इतिअतः* आह =स्थान वा आधार शरीर (ते) कितने हैं। इस लिये कहते हैं कि अर्थात् गर्भ आदि तीन प्रकारके जन्म और अनेक भेदोंसे युक्त नौ प्रकारकी योनियोके धारक संसारीजीवोंकेशुभ-अशुभ नाम कर्मों से रचित और कर्म बन्धके फलके अनुभव के स्थान शरीर कितने है सूत्रकार उन्हें गिनाते है कि

॥ औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्मणानिशरीराणि ॥३६॥

औदारिकादिप्रकृतिविशेषदयप्राप्त-विशिष्टनामकर्मोदयापादितवृत्तीनि शीर्यन्त इति शरीराणि ॥ औदारिकादीनि ॥ उदारं स्थूलम् । उदारे भवमौदारम् । औदारं प्रयोजनमस्येति औदारिकम् ॥ अष्टगुणैश्वर्ययोगादेकानेकाणु-

सूत्रम्— [1]औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्मणानिशरीराणि ॥ ३६ ॥ [योग्यताहो;

सूत्रार्थः-औदारिक- वैक्रियिक— =इन्द्रियोंसेदेखनेयोग्यस्थूलशरीर, जिसमेंएकअनेकस्थूलसूक्ष्महलकाभारीइत्यादिविकारहोनेकी-

आहारक- =जोसूक्ष्मपदार्थकेनिर्णयकेलिये वा ऋद्धिविशेषका सद्भाव जाननेकेलिये वा असंयमके' दूरकरनेके लिये प्रमत्त ही गुणस्थानवर्ती मुनियोंके प्रगटहो [वा उन कर्मोंका समूहहो

तैजस–कार्मणानि[1/3] =जो तेजका कारणहो वा जिसमें तेज रहता हो,ज्ञानावरणादि आठकर्मोंका जो कार्य हो

शरीराणि [1/3] =(संसारी जीवोंके ये औदारिक, वैक्रियिक, आहारक,तैजस,कार्मणि,क्रमसे पाच)शरीर हैं॥

वृत्त्यर्थः-विशिष्ट-नामकर्म-उदय-आपादित-वृत्तीनि[1/3]=शरीर नामा नामकर्मके (=विशिष्टनामकर्म) उदयसेजो प्राप्त हुये (=वृत्तीनि)

शीर्यन्ते । इति*शरीराणि[1/3] औदारिक— =सो गलते हैं-सड़ते हैं वा झड़ते हैं (शीर्यन्ते) ऐसे शरीर है जो औदारिक

आदि–प्रकृति— =वैक्रियिक, आहारक, तैजस, कार्मण, (शरीरनामा नामकर्मकी) प्रकृतियोंके

विशेष–उदय–प्राप्त–वृत्तीनि[1/3] =विशेषरूप उदयकरि(=उदय प्राप्त)प्रवर्तते है (=वृत्तीनि) ते(क्रमानुसार)

औदारिक-आदीनि[1/3] उदारम्[1/1] स्थूलम्[1/1] =औदारिक,वैक्रियिक,आहारक,तैजस,कार्मण है (=आदीनि)। उदार है सो स्थूल है

उदारे[7/1] भवम्[1/1] औदारम्[1/1] औदारम्[1/1] =स्थूलविषें हो सो औदार है। स्थूलहोना व स्थूलपना है

प्रयोजनम्[1/1] अस्य[6/1] इति*औदारिकम्[1/1] =प्रयोजनजिसका ऐसा औदारिक है

अष्टगुण-ऐश्वर्य-योगात्[5/1] एक–अनेक–अणु- =[2]आठगुण वा विभूतियोंके ईश्वरपनेके संयोगसे वा सम्बन्धसे एक अनेक छोटा

(१) हमारेयहां जहां शुद्ध लेख है वहा सर्वत्र इस सूत्रका एक ही पाठ है। सभाष्य० में "वैक्रियिक" शब्दके स्थान में "वैक्रिय" शब्द है। दोनो आम्नायोंमें शेष पाठ और अर्थ एक है।(२)आठ प्रकारकी सिद्धियां और विभूतियोंके नाम अमरकोश स्वर्गवर्ग श्लोक४०में ऐसे है कि "अणिमा महिमा चैव गरिमा लघिमा तथा। प्राप्तिःप्राकाम्यमीशित्व। वशीत्व चाष्टसिद्धयः (य) अणिमन् (पु०) छोटापन अर्थात् जिससे जीव छोटासा रूपधर सब स्थानोमें

महच्छरीरविविधकरणं विक्रिया,सा प्रयोजनमस्येति वैक्रियिकम् ॥ सूक्ष्मपदार्थनिर्ज्ञानार्थमसँयमपरिजिहीर्षया वा प्रमत्तसँयतेनाह्रियते निर्वर्त्यतेतदित्याहारकम् ॥ यत्तेजोनिमित्तं तेजसि वा भवं तत्तैजसम् ॥ कर्मणां कार्यं कार्मणम् ॥ सर्वेषां कर्मनिमित्तत्वेऽपि

महत्–शरीर–विविधकरणम्¹।¹। विक्रिया¹।¹। =बड़ा शरीर अनेक प्रकार(=विविध) करना सो विक्रया है

सा¹।¹ प्रयोजनम्¹।¹। अस्या¹।¹। इति॰वैक्रियिकम्¹।¹। =विक्रिया (=सा) है प्रयोजन जिसका ऐसा वैक्रियिक है

सूक्ष्म–पदार्थ–निर्ज्ञान–अर्थम्¹।¹। वा असंयम– =सूक्ष्म पदार्थोंके निर्णयके लिये अथवा असंयमके

परिजिहीर्षया³।¹। प्रमत्तसंयतेन³।¹। =दूरकरनेकी इच्छासे प्रमत्तविरत छठवां गुणस्थानवर्ती मुनिकरि

आह्रियते T निर्वर्त्यते T =रचाजाता वा प्रगट किया जाता है परिपूर्ण किया जाता है वा सिद्धि किया जाताहै

तद्¹।¹। इति॰ आहारकम्¹।¹। =सो ऐसा आहारक(शरीर)है।सारांशयहहैकि छठवें गुणस्थानवर्ती ही मुनिकेंतत्त्वोंमेंकोई शंका होनेपर केवली वा श्रुतकेवलीके निकट जानेके लियेमुनिके मस्तकमेंसे जो एक हाथका पुतला निकलता है उसको आहारक शरीर कहते हैं ॥

यद्¹।¹।तेजस्–निमित्तम्¹।¹।वातेजसि⁷।¹।भवम्¹।¹। =जो तेजका कारण अर्थात् देहको दीप्ति रूप करनेको निमित्त अथवा तेजकेविषैंभया

तद्¹।¹।तैजसम्¹।¹।कर्मणाम्⁶।³।कार्यम्¹।¹।कार्मणम्¹।¹। =सो तैजस है। कर्मोका कार्य सो कार्मण है

सर्वेषाम्⁶।³।कर्मनिमित्तत्वे⁷।¹।अपि॰ =सर्व (शरीरों) का कर्म कारण होनेपर भी अर्थात् कर्मके कारण सर्व शरीर हैं तौभी

जासकै वा गमन करसकै (र) महिमन् (पुल्लिग) महत्व, बडापन, जिससे जीव बड़ी मूतिवन स्थानोंमे जासकै (ल) गरिमन् (पुल्लिग) भारीपन (व)लघिमन=लघुत्व,हलकापन(श) प्राप्ति. (स्त्री०)=जिससे मन मांगी वस्तु मिलती है (व) प्राकाम्य (न०) प्राकाम, इच्छानभिधात रूप ऐश्वर्य, ॥ (स) ईशित्वं (न०) ईशिता, अणमादि आठ ऐश्वर्यों मेसे सवपर मालिक पना (ह) वशित्व (न०) = वशिता, स्वाधीनता अर्थात् जितेन्द्रिय स्वातन्त्र्य,जिसनें इन्द्रियजीतली है दूसरा श्लोक पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ ६ में यह है"अणिमा लघिमा प्राप्तिः। प्राकाम्य महिमा तथा। ईशित्वच वशित्वच तथा कामा वसायिता ॥ दोनों श्लोकोंके मिलानेसे प्रगट होता है कि इस श्लोकमे गरिमन् के स्थानमें "कामवाशा (सा) यता"है ॥ कामावशायिता = (स्त्री०) अणमादि आठ प्रकारके ऐश्वर्थमें सत्य सत्पता (जो इच्छा करै सो पूरी हो जाय) रूप ऐश्वर्य ॥ पद्मचन्द्र कोश पृष्ठ १०५ ॥

(१) धातुमें य जोडकर आत्मनेपद प्रत्यय" लगाने से कर्मणि प्रयोग और भावे प्रयोग वनाये जाते हैं" यदि धातुके अतका अक्षर ऐसा ऋ हो जिसके पहिले सयोग व्यजन नहीं हो तो ऋके स्थानमें "रि होताहै जैसे=हृ=हि अत आ+हि+य+ते=आह्रियते॥निर्+वर्त्+य+ते=निर्वर्त्यते॥

रूढिवशाद्विशिष्टविषये वृत्तिरवसेया ॥ यथौदारिकस्येन्द्रियैरुपलब्धिस्तथेतरेषां कस्मान्न भवतीत्यत आह—

॥ परम्परं सूक्ष्मम्॥३७॥

परशब्दस्यानेकार्थवृत्तित्वेऽपि विवक्षातो व्यवस्थार्थगतिः ॥

रूढिवशात्[५।१] विशिष्ट-विषये[७।१] =रूढ़िके वशसे विशेषपनामें([१]कार्मणशरीर ही को कर्मका कार्यरूप)

वृत्ति[१।१] अवसेया[१।१] यथा*औदारिकस्य[६।१] इन्द्रियैः[३।३] =निरुक्ति बतलाई गई है। जैसे औदारिक (शरीर) का इन्द्रियोंकरि

उपलब्धिः[१।१] तथा*इतरेषाम्[६।३] =ग्रहण है (=उपलब्धिः) तैसेअन्य(वैक्रियिक-आहारक-तैजस-कार्मण शरीर) निका

कस्मात्[५।१] न*भवति T इति*अतः*आह T =क्योंकर वा किसलिये(इन्द्रियोंद्वारा ग्रहण)नहीं होता है। इसलिये कहते हैं कि

सूत्रम्-परम्परंसूक्ष्मम्[२] =(तेषाम् औदारिकादिशरीराणाम् परंपरंसूक्ष्मम्(भवन्ति)।३७

सूत्रार्थः–[३]तेषाम्[६।३] परम्[१।१] परम्[१।१] =उन(औदारिक,वैक्रियिक,आहारक,तैजस,कार्मण)मेंसे अगले अगले

सूक्ष्मम्[१।१] भवन्ति T =(पूर्वपूर्वकी अपेक्षासे)सूक्ष्म वा अस्थूलहैं अर्थात् औदारिककीअपेक्षासेवैक्रियिकसूक्ष्महै, वैक्रियिककीअपेक्षासेआहारकसूक्ष्महै,आहारकसेतैजससूक्ष्महै, तैजससेकार्मणसूक्ष्महै,॥

वृत्त्यनुवादः-परशब्दस्य[६।१] अनेक-अर्थ-वृत्तित्वे[७।१] अपि=परशब्दके बहुतसे अर्थ होनेपर (=वृत्तित्वे) भी

विवक्षातः*व्यवस्था[४]–अर्थ–गतिः[१।१] =विवक्षासे(यहां पर) व्यवस्था (अर्थात् विशेष अवस्था)के अर्थमें प्राप्तिहै वा प्रवर्ते है ॥

(१)अन्य शरीरको कार्मण निमित्त है तौ कार्मणको क्या निमित्त है?कार्मणको कार्मणही निमित्तहै वा जीवके परिणाम मिथ्यादर्शनादिकनिमित्तहैं॥

(२)श्वेताम्बर सम्प्रदायके सभाष्य०मे तेषाम्'शब्द हमारे यहांके पाठसे अधिकहै॥ शेषपाठ एकहै और अर्थभी एकहै॥हमारे यहां बहुतसी पुस्तकोंमे पर पर सूक्ष्मम् ऐसा पाठ है कहीं कहीं पर' पर पर सूक्ष्म' पाठ है ॥ कातन्त्ररूपमालाव्याकरणके अनूकूल यह पाठ भी शुद्ध है परतु पाणिनिमुनि तथा शाकटायनमुनि इत्यादिके मतमेंअशुद्धहै॥(देखोटिप्पणीअध्याय१ पृष्ठ८६)(३)यहांषष्ठीविभक्ति सप्तमीकेअर्थमेआईहै(देखोटिप्पणीअध्याय१ पृष्ठ१३८)

(४)पूर्वापेक्षया परत्वमिति परशब्दो व्यवस्थार्थः ॥

पूर्व-अपेक्षया[३।१] परत्वम्[१।१] =पहिले (शरीर) की विवक्षाकरि अगले (शरीर) का (सूक्ष्म) होना (=परत्वम्)

इति*परशब्दः[१।१] व्यवस्था-अर्थः[१।१] =ऐसे(सूत्रमें) पर शब्द विशेष अवस्थाके अर्थ है (व्यवस्थाके अर्थमें आया है)

पृथग्भूतानां शरीराणां सूक्ष्मगुणेन वीप्सानिर्देशः क्रियते परम्परमिति ॥ औदारिकं स्थूलं, ततः सूक्ष्मं वैक्रियिकं, ततः सूक्ष्ममाहारकं, ततः सूक्ष्मं तैजसं, तैजसात्कार्मणं सूक्ष्ममिति ॥ यदि परम्परं सूक्ष्मं, प्रदेशतोऽपि नूनं परम्परं हीनमितिविपरीतप्रतिपत्तिनिवृत्त्यर्थमाह—

॥ प्रदेशतोऽसंख्येयगुणं प्राक्तैजसात् ॥ ३८ ॥

पृथक्* भूतानाम् ६।।	= { संज्ञा(नाम)लक्षण(स्वरूप) प्रयोजन आदिके भेदसे } पृथग् भूत
शरीराणाम् ६।। सूक्ष्मगुणेन३। वीप्सानिर्देशः१।	=(औदारिक आदिक) शरीरजे है तिनको सूक्ष्मगुणकरि वीप्सारूपनिर्देश
क्रियते । परम्परम्१।।	=कियागया है कि परैं परैं सूक्ष्म हैं अर्थात् नाम स्वरूप प्रयोजन आदिके भेदसे भिन्न जो औदारिकआदिक शरीर हैं उनका यहां सूक्ष्मगुणके साथ वीप्साका निर्देश है कि आगे आगे के शरीर सूक्ष्म सूक्ष्म है
इति*औदारिकं१।।स्थूलं१।।ततःसूक्ष्मं१।।वैक्रियिकम्१।।	=इसप्रकारकि औदारिक शरीर स्थूल है। तिस (औदारिक)से सूक्ष्म वैक्रियिक है
ततःसूक्ष्मम्१।। आहारकम्१।। ततः*सूक्ष्मम्१।।	=तिस (वैक्रियिक शरीर)से सूक्ष्म आहारक (शरीर)है। तिस(आहारक)से सूक्ष्म
तैजसम्१।। तैजसात्५।। कार्मणं१।। सूक्ष्मम्१।। इति*	=तैजसशरीर है। तिस तैजस(शरीर) से सूक्ष्म कार्मण (शरीर) है
यदि*परम्परं१।। सूक्ष्मम्१।। प्रदेशतः*	=जो अगले अगले(शरीरपूर्वपूर्वकी अपेक्षासे) सूक्ष्म है तौ परमाणुओंकी अपेक्षासे
अपि*नूनम्*परम्परम्१।। हीनम् १।।	=भी निस्सदेहकरि (=नूनं)उत्तर उत्तर शरीर हीनहोंगे अर्थात् प्रत्येक अग्रिमअग्रिम शरीरमें पहिले पहिले शरीर से थोड़े थोड़े प्रदेश होंगे
इति*विपरीत–प्रतिपत्ति–निवृत्ति अर्थम्१।। आह ।	=ऐसी विरुद्ध प्रवृत्तिके दूर करनेके लिये कहते है कि

(१) **प्रदेशतोऽसंख्येयगुणं प्राक्तैजसात्=परंपरं प्रदेशतः असंख्येयगुणं प्राक्तैजसात्॥३८॥**

सूत्रार्थः–परं१।। परं१।।प्रदेशतः*प्राक्*तैजसात्५।।	=अग्रिम अग्रिम (शरीर) प्रदेशोंकी अपेक्षासे, तैजससे पहिलेके (शरीर)
असंख्येयगुणम्१।।	=असंख्यात गुणेहै अर्थात् औदारिक शरीरमें जितने परमाणु हैं उनसे सख्यातगुणे

(१)दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायोंमे इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसाहै॥ पर पर' वाक्य की अनुवृत्ति सैतीसवा सूत्रसे इससूत्रमे आतीहै॥

(२)पाठक यह न समझो कि यहापर न्यूनम् शब्दहै क्योंकि न्यूनके अर्थमे हीनम् शब्द आगे है नूनम् का अर्थ निसदेह है देखो वैद्यकोश पृष्ठ३९७

प्रदिश्यन्त इति प्रदेशाः परमाणवः । संख्यामतीतोऽसंख्येयः । असंख्येयो गुणोऽस्य तदिदमसंख्येयगुणम्॥ कुतः?प्रदेशतः। नावगाहतः । परम्परमित्यनुवृत्तेराकार्मणात्प्रसङ्गे तन्निवृत्त्यर्थमाह प्राक्तैजसादिति ।

वृत्त्यनुवादः-प्रदिश्यन्ते I इति*प्रदेशाः[१।३]परमाणवः[१।३] =जो अविभाज्यहोकर प्ररूपण कियेगये हैं ऐसे प्रदेश है वा परमाणु हैं ॥ वा जिनकरि प्रमाणकरिये है ऐसे प्रदेश है अर्थात् जिनके द्वारा भिन्न भिन्न अंशकिये जायं सो प्रदेश हैं ॥

संख्याम्[२।१]अतीतः[१।१]असंख्येयः[१।१]असंख्येयः[१।१]गुणः[१।१] =जो गणनासे बाहिरहों वे असंख्यात हैं असंख्यात हैं गुणाकार(१)वा(१) गुणक है

अस्य[६।१] तद्[१।१] इदम्[१।१]असंख्येयगुणम् [१।१] कुतः*?=जिसका सो यह असंख्येयगुणा है क्योंकर वा कहांसे (असंख्येयगुणा) है

प्रदेशतः * अवगाहतः * =परमाणुओं (की अपेक्षा)से (असंख्येयगुणा) है अवगाहना (की विवक्षा) से

न* =(असंख्येयगुणा) नहीं है अर्थात् औदारिकसे वैक्रियिक शरीर असंख्यातगुण है और वैक्रियिकसे आहारक असंख्यातगुण है सो औदारिकसे गणनामें वैक्रियिककी परमाणुओंकी गणना असंख्यातगुणा) है नकि उसकी अवगाहना असंख्यातगुणी अधिक है इसी प्रकार वैक्रियिकसे आहारकके परमाणुओंकी गिनती वा संख्या असंख्यातगुणी है नकि आहारक शरीरकी अवगाहना वैक्रियिक शरीरसे असंख्यातगुणी अधिक है

परम्[१।१]परम्[१।१]इति*अनुवृत्तेः[५।१] =(पूर्व सैंतीसवां सूत्रसे इससूत्रमें)"परं परं" ऐसी अनुवृत्ति(के कारण) से

आ*कार्मणात्[५।१] प्रसङ्गे[७।१] =कार्मण (शरीर) पर्यन्त(=आ) (इस परं परं की अनुवृत्तिका) संबंधहोनेपर

तद्-निवृत्ति-अर्थम् [१।१] =तिस (प्रसंग) के निषेधके लिये वा निवारणके लिये (इससूत्रमें)

प्राक्*तैजसात् [५।१] इति*आह T =तैजस शरीरसे पहिले पहिले (=प्राक् तैजसात्) ऐसा वाक्य कहा है

(१) गुण्य=जिसअंकको गुणिये जैसे यदि १६ को ९ से गुणाकरना होतो १६ गुण्य है ॥ गुणक वा गुणाकार जिसअंकसे गुणाकरो यहां ९ गुणक वा गुणाकार है १६×९=१४४ को गुणनफल कहते है। गुणाकरनेकी क्रियाको गुणन कहते हैं ॥

औदारिकादसंख्येयगुणप्रदेशं वैक्रियिकम् ॥ वैक्रियिकादसंख्येयगुणप्रदेशमाहारकमिति ॥ कोगुणाकारः? पल्योपमासंख्येयभागः ॥ यद्येवं परम्परं महापरिमाणं प्राप्नोति । नैवम् । बन्धविशेषात्परिमाणभेदाभावः। तूलनिचयायःपिण्डवत्॥ अथोत्तरयोःकिं समप्रदेशत्वमुतास्ति कश्चिद्विशेष इत्यत आह—

औदारिकात्॥ असंख्येयगुण-प्रदेशं॥ वैक्रियिकं॥	=(इसलिये) औदारिकशरीरसे असंख्यातगुणे प्रदेशवाला वैक्रियिक शरीर है
वैक्रियिकात्॥ असंख्येयगुणप्रदेशम्॥ इति*	=वैक्रियिक शरीरसे असंख्यातगुणे हैं परमाणुं जिसके ऐसा
आहारकम्॥ कः॥ गुणाकारः॥ ?	=आहारक शरीर है। (प्रश्न) क्या गुणक है अर्थात् जब असंख्यातके असंख्याते भेद है फिर किस प्रकारके असंख्यातको गुणाकार वा गुणक यहां पर मानैं
पल्योपम-असंख्येय--भागः॥ यदि*एवम्॰	=पल्योपमके असंख्यातवां भागजो है (सो गुणक यहां लेना) यदि ऐसा है अर्थात् एकएक अग्रिम अग्रिम शरीरके परमाणु उसके पूर्व पूर्व शरीरसे असंख्यात गुणे हैंतो
परम्॥ परम्॥ महान्-(१)परिमाणम्॥ प्राप्नोति।	=अग्रिम अग्रिम(=परंपरं)शरीर महान् आकार वा स्थूलताको प्राप्तहोता है
न* एवम्*	=(उत्तर) ऐसा नहीं है (कि अगले अगले शरीरके परमाणुं असंख्यात गुणे पूर्व पूर्व शरीरसे होनेसे उन अग्रिम अग्रिम शरीरमें स्थूलपनाका प्रसंग आवैं)
बन्ध-विशेषात्॥ परिमाण-भेद–अभावः॥	=क्योंकि बन्धके विशेपतासे वा बन्धकेढंगसे डीलडौलके भेदका अभाव होजाता है
तूल-निचय-अयस्–पिण्डवत्॰	=रुईका समूह और लोहेके पिंडके सदृश अर्थात् रुईके समूहमें परमाणुं थोड़े हैं परंतु परिमाणमें बड़ा है उसलोहेके पिंडसे जिसमें परमाणुं उस रुईके गठेसे बहुत अधिक हैं परंतु डीलडौलमें छोटा है
अथ॰ उत्तरयोः॥ किम्॥ समप्रदेशत्वम्॥ अस्ति।	=अब(=अथ)अगले दो (तैजसशरीरऔर कार्मणशरीर) में क्या समान प्रदेशता है?
उत॰ कश्चित्*विशेषः॥ इति*अतः*आह।	=अथवा(=उत)कुछ(=कश्चित्)भेद है। इसलिये (अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

(१) संस्कृतसर्वार्थसिद्धिकी प्रथमावृत्तिमें 'महागुणाकार' शब्द है, परन्तु उसके द्वितीयसंस्करणमें, और हस्तलिखित सर्वार्थसिद्धिवृत्तिमें 'महापरिमाण' शब्द है। तत्त्वार्थ राजवार्तिकमें कईस्थानोंसे 'परिमाण' शब्द आया है इसलिये 'परिमाण' शब्द हमनेभी पाठमें लिया है।

॥ अनन्तगुणे परे ॥ ३९ ॥

प्रदेशत इत्यनुवर्तते, तेनैवमभिसम्बन्धः क्रियते-आहारकात्तैजसं प्रदेशतोऽनन्तगुणं, तैजसात्कार्मणं प्रदेशतोऽनन्तगुणमिति ॥ को गुणाकारः? अभव्यानामनन्तगुणः । सिद्धानामनन्तोभागः॥ तत्रैतत्स्याच्छल्यकवत् । मूर्तिमद्द्रव्योपचितत्वात्संसारिणोजीवस्याभिप्रेतगति-

सूत्रम्— [1]अनन्तगुणे परे	=(प्रदेशतः परं परं) अनन्तगुणे परे (भवतः) ॥ ३९ ॥
सूत्रार्थ :- परम् १।।। परम् १।।। परे ३।।।	=अग्रिम अग्रिम (=परं परं) अवशेष वा अन्य दो (तैजस और कार्मण शरीर)
प्रदेशतः ＊ अनन्तगुणे ३।।। भवतः T	=प्रदेशोंकी अपेक्षासे (पूर्व पूर्व शरीरोंसे) अनन्तगुणे हैं अर्थात् आहारक शरीरसे तैजसशरीरमें अनन्तगुणे प्रदेश अधिक हैं और तैजस शरीरसे कार्मण शरीरमें अनन्त गुणे प्रदेश अधिक हैं ॥
वृत्त्यनुवादः—प्रदेशतः ＊ इति ＊	=(अड़तीसवां सूत्रसे इससूत्रमें) प्रदेशतः (=प्रदेशोंकी अपेक्षासे) ऐसा (वाक्य)
अनुवर्तते T तेन ३।।। एवम् ＊	=अनुवर्ताई वा आकर्षित होता है । तिस (प्रदेशतः वाक्य) करि इस प्रकार
अभिसम्बन्धः १। क्रियते T आहारकात् ५।।। तैजसम् १।।।	=संयोग कियागया है कि आहारकशरीरसे तैजसशरीर
प्रदेशतः＊ अनन्तगुणम् १।।। तैजसात् ५।।। कार्मणम् १।।।	=परमाणुओंकी अपेक्षासे अनन्तगुण है तैजसशरीरसे कार्मणशरीर
प्रदेशतः ＊ अनन्तगुणम् १।।। इति ＊	=प्रदेशोंकी विवक्षासे अनन्तगुण है ॥
कः १। गुणाकारः १।	=गुणाकार वा गुणक कौन अनन्त है (क्योंकि अनन्तके अनन्त भेद हैं)
अभव्यानाम् ६।। अनन्तगुणः १। सिद्धानाम् ६।।। अनन्तः १।	=(उत्तर) अभव्य राशिका अनन्तगुणा है सिद्धराशिका अनंतवां-
भागः १। शल्यकवत् ＊	=भाग है (सो अनन्त गुणक है) (प्रश्न) भाल वा तीरके फाल (=शल्यक) के सदृश
तत्र＊एतत् १।।। स्यात् T॥ मूर्तिवत्＊द्रव्यउपचितत्वात् ५।।।	=तहां यह होता होगा कि मूर्तिमान् वस्तुके संचय होनेसे
संसारिणः ६। जीवस्य ६। अभिप्रेत-गति-	=(तैजस और कार्मण शरीर सहित) संसारी जीवके जानेयोग्य (=अभिप्रेत) गमनमें

(१) श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसाहे ॥ हमारे यहा कहीं कहीं पर "अनन्तगुणे परे" पाठ है और कहीं कहीं पर "अनतगणे परे" पाठ है दोनों पाठ ठीकहैं(अध्याय १ टिप्पणी पृष्ठ ५४०, ५४१,)॥ पर पर की अनुवृत्ति ३७ वां सूत्र से और प्रदेशत.की ३८ वांसेआतीहै

निरोधप्रसङ्ग इति । तन्न । किं कारणम् । यस्मादुभेऽप्येते—

अप्रतीघाते ॥ ४० ॥

निरोध–प्रसङ्गः [1] इति * =रुकावटका प्रसंग होता होगा ॥ अर्थात् वाण मूर्तिमान द्रव्योंका पिंडस्वरूपहै इसलिये जिस प्रकार पर्वत आदि से उसकी गतिका निरोध हो जाताहै–वह आगे नहीं जा सकता है उसी प्रकार तैजस शरीर और कार्मण शरीर भी अनते अनते मूर्तिमान परमाणुओंके पिंड हैं और संसारी जीवके सदाकाल उनका संबंध रहता है (यह संवध आगे सूत्र ४१ मे कहा जायगा) इसलिये उनके संबंधसे संसारी जीवोंकें भी जाने योग्य गतिका निरोध होगा ॥

तद्–न* =उस (अभिप्रेत गति) मे (रुकावट) नहीं होती है।(प्रश्न)क्या कारणहै (किरुकावट नहीं होती)

किम्*कारणम्[1]॥यस्मात्[4]॥उभे[1]॥अपि*एते[1]॥=(उत्तर) इस कारणसे कि (तैजस और कार्मण शरीर) ये दोनो ही (अप्रतीघात हैं) .

सूत्रम्-[(1)] अप्रतीघाते ॥४० ॥=अप्रतीघाते (परे) भवतः

सूत्रार्थः– परे [1]॥ अप्रतीघाते [1]॥ भवतः I=(तैजस शरीर और कार्मण शरीरये)शेपदो वा अंतिम दो अप्रतिघात हैं अरोक हैं अर्थात्‌बलवान भी मूर्तिमान पदार्थोंसे इनका रुकना नहीं होता भावार्थ मूर्तीक पदार्थसे मूर्तीक पदार्थका रुकजाना प्रतीघात है । अग्निका परिणमन सूक्ष्म है इसलिये कठिन भी लोहेके पिंडमें सूक्ष्म परिणमनके कारण जिस प्रकार अग्निका प्रवेश नहीं रुकता उसी प्रकार तैजस और कार्मण शरीरका परिणमन भी सूक्ष्म है इसलिये वज्र पटल आदि कैसे भी कठिन पदार्थ क्योंन पड़े दोनों शरीरोंका रुकना नहीं होता वे निरवच्छिन्न रूपसे प्रवेशकरजाते हैं इसलिये वे तैजस और कार्मण दोनों शरीर अप्रतिघात कहेजाते है ॥

(१) दोनो आम्नायोंमे इस सूत्र का पाठ एक है ॥ 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र'मे अप्रतिघात शब्दका अर्थ न रोकना और नरुकना ऐसा कियाहै जैसाकि निम्न वाक्यसे प्रगट है ॥ तैजस और कार्मण ''ये अन्तिम दो शरीर अप्रतिघात अर्थात् प्रतिघात शून्य हैं । तात्पर्य यह है कि ये दो तैजस और कार्मण कही किसीसे नही रुकते, और न ये किसीको रोकतेहैं पृष्ठ ५२॥' प्रतिघात (दूसरेसे रुकनेवाला वा दूसरोंको रोकनेवाला) होकर अप्रतिघाति हो, तथा अप्रतिघाति होकर प्रतिघाति हो ॥ यह वैक्रियक शरीरके सवन्धमे लेखहै ॥ सभाष्य० पृष्ठ ५७ उक्त शरीर न किसीको रोकतेहैं ऐसा अर्थ इससूत्रका इस सर्वार्थसिद्धि वृत्तिमें, तत्त्वार्थ राजवार्तिक, जयचदजी कृतावचनिका अर्थ प्रकाशिका, सदासुखजीकृत तत्त्वार्थलघु टीका मे नही कियाहै और न तत्त्वार्थ राजवार्तिकके दो अनुवादो मे से किसी मे ऐसा अर्थहै ॥ प० पन्नालाल जी अनुवादित मोक्षशास्त्र का अर्थ सभाष्य०केअर्थसे मिलताहै जैसे उक्त मोक्षशास्त्रके पृष्ठ१८ में तैजस और कार्मण शरीर भी वज्रमय पटलोंसे नही रुकतेहैं और न किसी अन्य पदार्थको रोक सकते हैं '' संस्कृत कोशोसे भी यह आशय निकलताहै, हमारी समझमे ठीक है क्योकि दूसरेके रोकनेके समय भर वह स्वयम् भी रुका रहैगा नही तो रोकैगा कैसे ॥

मूर्तिमतो मूर्त्यन्तरेण व्याघातः प्रतीघातः । स नास्त्यनयोरित्यप्रतीघाते ॥ सूक्ष्मपरिणामा-दयःपिण्डे तेजोऽनुप्रवेशवत्तैजसकार्मणयोर्नास्ति वज्रपटलादिषु व्याघातः ॥ ननु च वैक्रियि-काहारकयोरपि नास्ति प्रतीघातः । सर्वत्राप्रतीघातोऽत्र विवक्षितः । यथा तैजसकार्मणयोरा-लोकान्तात् सर्वत्र नास्ति प्रतीघातः । न तथा वैक्रियिकाहारकयोः ॥

वृत्त्यनुवादः—मूर्तिमतः मूर्ति—अन्तरेण व्याघातः =मूर्तिमानका (=मूर्तिमतः) अन्य मूर्तिमानकरि रुकावट (=व्याघात) है सो

प्रतीघातः सः न अस्ति अनयोः =प्रतिघात है । सो (प्रतिघात=प्रतीघात) दोनों (तैजस और कार्मण शरीरोंके नहीं) हैं

इतिअप्रतीघाते सूक्ष्मपरिणामात् अयस्-पिण्डे तेजस्-=ऐसें दोनों प्रतिघात रहित हैं । सूक्ष्मपरिणमन(केकारण) से लोहेके पिंडमें अग्निका

अनुप्रवेशवत् तैजस-कार्मणयोः =क्रमसेप्रवेश(=अनुप्रवेश) के समान तैजस और कार्मण(शरीरों)का (प्रवेश)है ॥

नअस्ति वज्रपटलादिषु व्याघातः =नहीं है (इन दोनों शरीरोंका)प्रतिघात वा रुकावट वज्रपटलादिकोंमें अर्थात् अग्निका परिणमन सूक्ष्म है ॥ इसलिये कठिन भी लोहेके पिंडमें सूक्ष्म परिणमनके कारण जिसप्रकार अग्निका प्रवेश नहीं रुकता उसी प्रकार तैजस और कार्मण शरीरोंका परिणमन भी सूक्ष्महै इसलिये वज्रपटल आदि कैसेभी कठिन पदार्थ क्यों न बीचमें आपड़ैं दोनोंशरीरोंका रुकना नहीं होता वे निरवच्छिन्नरूपसे प्रवेश करजाते हैं

ननुचवैक्रियिकआहारकयोः अपिनअस्तिप्रतीघातः =बहुरि प्रश्न वैक्रियिक और आहारक(शरीर) निकैं भी व्याघात वा रुकावट नहीं है

सर्वत्रअप्रतीघातः अत्रविवक्षतः =(उत्तर) सब स्थानोंका अव्याघात यहां (इससूत्रमें) अपेक्षित है अर्थात् इससूत्रमें इस अप्रतिघातका कथन है जो सब स्थानोंमें संबंध रखताहो

यथा-तैजस-कार्मणयोः आ-लोकान्तात् सर्वत्र =जैसे तैजस और कार्मण(शरीरों)का लोकके अन्ततक(=आ-लोकान्तात्)सब स्थानोंमें

नअस्तिप्रतीघातः नतथावैक्रियिक-आहारकयोः =व्याघात नहीं है ॥ तैसे नहीं है वैक्रियिक और आहारक (शरीरों) का (व्याघात) अर्थात् लोकके अन्त पर्यंत तैजस और कार्मणशरीरोंका कहीं भी प्रतिघात नहीं होता वैक्रियिक और आहारक शरीरोंका वैसा अप्रतिघात नहीं किंतु उनका प्रतिघात ऐसे होजाता है कि केवली और श्रुत केवलीके विना जिसका समाधान न हो सकै ऐसी तत्त्वविषयक गूढ शंका हो जानेपर उसकी निवृत्तिके लिये प्रमत्त गुणस्थान वर्ती संयमी

आह किमेतावानेव विशेष उत कश्चिदन्योऽप्यस्तीत्याह—

॥ अनादिसम्बन्धे च ॥ ४१ ॥

चशब्दो विकल्पार्थः । अनादिसम्बन्धे सादिसम्बन्धे चेति ॥

मुनिके आहारक शरीरकी प्रकटता होती है और जहां केवली वा श्रुतकेवली विराजते है वहांतक जाकर फिर आहारक शरीर लौट आता है । केवलियोंकी स्थिति ढाई द्वीपसे वाहिर नहीं होती इसलिये आहारक शरीरका गमन अधिकसे अधिक ढाई द्वीप पर्यंत ही है । मनुष्योंका वैक्रियिक शरीर मनुष्यलोक(=ढाईद्वीप) पर्यंत ही गमन करता है तथा देवोंका वैक्रियिक शरीर त्रसनाली पर्यंत गमन करता है अधिक नहीं इसलिये ये दोनो शरीर तैजस और कार्मण शरीरोंके समान सर्वत्र अप्रतिघात नहीं हैं ॥ अतः इस सर्वत्र गमनकी विशेष अपेक्षासे तैजस और कार्मण शरीरोंको इससूत्रमें अप्रतिघात कहा है ॥

आह T किम्*एतावान्[1/1] एव*विशेषः[1/1] =पूछता है कि क्या(इन तैजस और कार्मण शरीरोंके विषयमें)इतना ही विशेष है

उत*कश्चित्*अन्यः[1/1] अपि*अस्ति T इति*आह T=अथवा(=उत) कुछ और (=अन्य) भी है । (निम्नसूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्— [(१)] अनादिसम्बन्धे च॥४१॥=(परे जीवस्य) अनादि सम्बन्धे च भवतः ॥ ४१ ॥

सूत्रार्थः-परे[1/2]॥। जीवस्य [6/1] =अन्य दो (=परे=तैजस और कार्मण शरीर) जीवके

अनादि-सम्बन्धे [1/2]॥। च*भवतः T =अनादिकालसे भी(और मोक्ष होनेतक)संबंध रखनेवाले हैं अर्थात् तैजस औरकार्मण ये दो शरीर जीवकेसाथ अनादिकालसे भी संबंधवाले हैं सादिकालसे भी संबन्धवाले है

वृत्त्यनुवादः-चशब्दः[1/1] विकल्प अर्थः[1/1] अनादिसंबंधे[1/2]॥।=(इससूत्रमें) चशब्द विविध कल्पनकेलिये है (अर्थात्) अनादि संवन्धवाले

च*सादिसम्बन्धे[1/2]॥। इति* =भी(=च)हैं और सादिसम्बन्ध वालेहै भावार्थ सूत्रमें चशब्द है उसका अर्थ विकल्प है और तैजस और कार्मण इनदोनों शरीरोंका आत्माके साथ अनादिऔर

(१) श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनो आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है ॥ हमारे यहां कहीं कहीं पर 'सबन्धे'पाठ है और कहीं कहीं पर 'सम्बन्धे' पाठ है दोनों पाठ ठीक है(देखो अध्याय प्रथम टिप्पणी पृष्ठ ५४०,५४१ और टिप्पणी पृष्ठ ५, ६,) ॥

कार्यकारणभावसन्तत्या अनादिसम्बन्धे, विशेषापेक्षया सादिसम्बन्धेऽपि च वीजवृक्षवत् ॥
यथौदारिकवैक्रियिकाहारकाणि जीवस्य कादाचित्कानि, न तथा तैजसकार्मणे ।

सादिकालसे दोनो प्रकारका संबन्धहै यह उस चशब्दका प्रयोजनहै । चशब्दका ऐसा अर्थ प्रश्नोत्तर रूपमें उसका शब्दशःअनुवादलेनेमें यों निकल आताहै कि अनादिसम्बन्धवाले भी(=च)है तो प्रश्नउठता है कि कोई और प्रकारका संबंधवालेभी तैजसऔर कार्मण शरीरहैंवह संबन्धक्याहै?वोसादि संबंधहै।चशब्दकायह प्रभावहै॥

कार्य-कारणभाव-सन्तत्याः[३]॥अनादि-सम्बन्धे[३]॥=कार्यकारणके होनेरूप(=भाव)संतान (कीअपेक्षा) से अनादि सम्बन्धवाले हैं
च*विशेष-अपेक्षया[३]॥सादिसम्बन्धे[३]॥ अपि* =और(=च) विशेष विवक्षासे सादि संबंधवाले भी
वीजवृक्षवत्' =वीज और वृक्षके सदृश हैं अर्थात् जिस समय वीजसे वृक्ष,वृक्षसेवीज,वीजसेवृक्ष,वृक्षसे वीज, इस प्रकार सामान्यरूपसे कार्यकारणरूप संबंधकी विवक्षाकी जाती है उस समय वीज और वृक्षका कार्यकारणरूप अनादि संबंध माना जाताहै और जिस समय अमुक वीजसे अमुकवृक्ष,अमुकवृक्षसे,अमुकवीज इसप्रकार विशेषरूपसे कार्यकारणकी विवक्षा मानी जाती है उस समय वीज और वृक्षका यह सम्बन्ध सादि माना जाता है उसी प्रकार जिस समय आत्माके साथ तैजस कार्मण शरीरके निमित्त नैमित्तक सम्बन्धकी समान्यरूपसे विवक्षा कीजाती है उस समय आत्मा और तैजस,कार्मण शरीरोंका अनादि संबन्धहै क्योंकि अनादिकालसे ऐसा कोई भी समय नहीं वीता जिसमे तैजस कार्मणकी आत्मासे पृथक्ता हुई हो और जिस समय अमुक तैजस कार्मणका अमुक अवस्थापन्न आत्माके साथ संबन्ध है पुरातन अनंत परमाणु दोनों शरीरोंकी समय समय निर्जरै हैऔर नवीन नवीन अनत परमाणु संचयरूप होतीहैइस विशेपकी अपेक्षासे ये तैजस और कार्मण दोनों शरीर सादि संबन्धवाले हैं । इसप्रकार विशेप विवक्षा है उस समय उनकी आपसमे निमित्तनैमित्तक सम्बन्ध सादि है । इस प्रकार सामान्य और विशेपकी अपेक्षा आत्मा और तैजस कार्मणका अनादि सादि दोनों प्रकारका संबंध सिद्ध है ॥

यथा*औदारिकवैक्रियिकआहारकाणि[३]॥जीवस्य[६]=जैसे औदारिक,वैक्रियिक और आहारक शरीर जीवकें
कादाचित्कानि[३]॥न*तथा*तैजस-कार्मणे[३]॥ =कभी कभी होनेवाले होते हैं नहीं है तैसे(कभी कभी होनेवाले) तैजस कार्मण शरीर

(१) कादाचितक पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ१०३ में त्रिलिंगी है इसका अन्यपुरुष (=प्रथम पुरुष,) वहुवचन,नपुसकलिंग'कादाचित्कानि है ।

नित्यसम्बन्धिनी हि तेआसंसारक्षयात्। नएते तैजसकार्मणे किंकस्यचिदेव भवतउताविशेषेणेत्यतआह

॥ सर्वस्य ॥ ४२ ॥

सर्वशब्दो निरवशेषवाची। निरवशेषस्य संसारिणोजीवस्य ते द्वे अपि शरीरे भवत इत्यर्थः॥ अविशेषाभिधानात्तैरौदारिकादिभिः सर्वस्य संसारिणो यौगपद्येन सम्बन्धप्रसङ्गे

[1] नित्यसम्बन्धिनी॥ हि॥ते॥ आ॥संसारक्षयात्॥	=क्योंकि(=हि)वेदोनों(=ते)नित्य संबंधवाले(जीवकें)संसारकेनाश होनेतक(=आ) है॥
ते॥ एते॥ तैजस-कार्मणे॥ किम्॥कस्यचित्॥	=वे (ये) तैजस और कार्मण शरीर क्या किसी (जीव) कें
एव॥भवतः[2]॥उत॥अविशेषेण॥इति॥अतः॥आह॥	=ही होते हैं(=भवतः)अथवा(=उत)विशेषरहित(सबजीवोंकें)। इसलिये कहते हैं कि
सूत्रम्- सर्वस्य[3]	**=सर्वस्य(संसारिणो जीवस्य)(परे-तैजसकार्मणेशरीरेभवतः)**
सूत्रार्थः-सर्वस्य॥संसारिणः॥ जीवस्य॥परे॥	=समस्त संसारी जीवकें परेकें दो
तैजस-कार्मणे॥ शरीरे॥ भवतः॥	=तैजस और कार्मण शरीर होते हैं अर्थात् तैजस और कार्मण ये दोनों शरीर सामान्यरूपसे सब संसारी जीवोंकें होते है यदि किसीकें वे दोनों शरीर न होंगे तो वह जीव संसारीही नहीं कहा जा सकता ॥
सर्व-शब्दः॥निर्-अवशेष-वाची॥निरवशेषस्य॥	=(इससूत्रमें)सर्वशब्द निर्विशेष वा निःशेषका वाचक है। निखिल वा समस्त
संसारिणः॥जीवस्य॥ ते॥द्वे॥अपिशरीरे॥भवतः	=संसारी जीवके(=अपि)ही वे दो(तैजस और कार्मण)शरीर होते हैं
इति॥अर्थ॥ अविशेष-अभिधानात्॥	=ऐसा आशय वा अभिप्राय है। सामान्यरूप (=अविशेष) कहनेसे (=अभिधानात्)
तैः॥ औदारिक-आदिभिः॥ सर्वस्य॥	=उन औदारिक वैक्रियिक आहारक तैजस कार्मण शरीरोंके साथ, सब
संसारिणः॥[4]यौगपद्येनसम्बन्ध-प्रसङ्गे॥	=संसारी(जीव)कें एककालमें (समकालमें=यौगपद्येन) संबंधका प्रसंग आनेपर

(१)सम्बन्धिन् शब्द त्रिलिंगीहै पुल्लिङ्ग में प्रथमा विभक्ति एक वचन सम्बन्धिनीहै यहां ते शब्द नपुंसकलिंग द्विवचन तद् शब्दकाहै और तैजस कार्मण दोनों शरीरोंके लियेआयाहैअत.यहांपर सम्बन्धिनी प्रथमाद्विवचन नपुंसक लिंगहै क्योंकि सम्बन्धिन्का प्रथमाविभक्ति द्विवचननपुंसक सम्बन्धिनीहै (२)भवत (भू=होना) धातुका अन्यपुरुष द्विवचन वर्तमान कालकी क्रिया है॥भवतः=दोनों होतेहैं॥(३) इससूत्रका पाठ और अर्थ दोनों आम्नायोंमेंएकहै (४)यौगपद्येन,युगपत् क्रियाविशेषण है। एककालमें,ऐसा अर्थहै॥ यौगपद्य,यौगपद्=समकालता,एककालता ॥ यौगपद्यिक=एककालिक,(यहां विशेषणहै)

सम्भविशरीरप्रदर्शनार्थमिदमुच्यत—

तदादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः ॥४३॥

तच्छब्दः प्रकृततैजसकार्मणप्रतिनिर्देशार्थः । ते तैजसकार्मणे आदिर्येषां

सम्भवि शरीर-प्रदर्शन-अर्थम् ॥ इदम् ॥ उच्यते ।=(एक जीवमें)एकसाथहोनेवाले(=सम्भविन्)शरीरोंके दिखावनेकेलिये यह कहा जाताहै कि

तदादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः=[1] तद्-आदीनि भाज्यानि युगपद् एकस्मिन्ना-चतुर्भ्यः

सूत्रार्थः—तद्-आदीनि ॥ भाज्यानि ॥ =इन(तैजस,कार्मण)को आदिलेकर विभाजितकिये हुये वा विकल्परूप कियेहुये

युगपद्(युगपत्) एकस्मिन् आ-चतुर्भ्यः भवन्ति । =एककालमें एक(जीवों)मे चार(शरीर)तक होते हैं अर्थात् दो शरीर होंतौ तैजस और कार्मण होते है। तीन हों तौ औदारिक तैजस और कार्मण होते हैं वा वैक्रियिक,तैजस और कार्मण ये तीन भी होते है परन्तु ये देव तथा नरक गतियोंमें हीहोते हैं। यदि किसीकें एक साथ चार शरीर हों तौ औदारिक, आहारिक, तैजस, और कार्मण अथवा औदारिक, वैक्रियिक,तैजस और कार्मण होते है। यह नियम है कि जिसके वैक्रियिक होता है उसकें आहारक नहीं होता और जिसके आहारक होता है उसके वैक्रियिक नहीं होता है॥ एक शरीर वाला कोई भी जीव संसारमे नही है॥

वृत्त्यनुवादः-तद्-शब्दः प्रकृत-तैजस-कार्मण-प्रति =(इससूत्रमें)तद् शब्दहै सो प्रकरण कियेहुये वा विषयभूत तैजस और कार्मणको

निर्देश-अर्थः ॥ ते ॥ तैजस-कार्मणे ॥ आदिः येषाम् ॥ =प्रगट करनेके लिये है। वे तैजस और कार्मण शरीर है आदि जिनकें

(१) हमारे यहां बहुधा पुस्तको में उपर्युक्त पाठ है किसी किसी पुस्तक मे(जैसे प० पन्नालालजी वाकलीवाल अनुवादित मोक्ष शास्त्र पृष्ठ १६ में) एकस्मिन् शब्दके स्थानमे "एकस्य" शब्द है परतु इस पाठ से अर्थ भेद नही हुआ। क्योंकि एकस्मिन्+आ-चतुर्भ्यः=एक (जीव) मे चार तक होते है वही तात्पर्य रखता है जो एकस्य-आ-चतुर्भ्यः=एक (जीव) कें चार तक होते है रखता है॥ श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य तत्त्वार्थाधिगम सूत्र में "एकस्याऽऽचतुर्भ्यः" पाठहै सो हमारे यहा के एक पाठ से मिलताहै। अर्थ भी जब उनके यहां तैजसको अनादि मानाहै तव एक है। परतु सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ ५३मे यह भी लेखहै कि "तैजसके अनादि सम्बन्धताके खडन पक्षमे, एक ही शरीर का जब अनादि सबध है तव केवल कार्मण ही एक हो सकता है। दो की सत्तामें कार्मण और औदारिक होसकते हैं अथवा कार्मण और वैक्रियिक हो सकते हैं। तथा तीनकी योग्यता मे कार्मण औदारिक और वैक्रियिक हो सकते हैं वा कार्मण, औदारिक और आहारक हो सकते हैं और चारकी योग्यता में कार्मण तैजसऔदारिक और वैक्रियिक होसकतेहैं वा कार्मण,तैजस,औदारिक और आहारक होसकतेहैं। परतु कदाचित् भी एक कालमेएककें पांचोनहीहोते।

तानि तदादीनि। भाज्यानि विकल्पानि आ कुतः। आ चतुर्भ्यः। युगपदेकस्यात्मनः॥ कस्यचित् द्वे तैजसकार्मणे। अपरस्य त्रीणि औदारिकतैजसकार्मणानि, वैक्रियिकतैजसकार्मणानि वा। अन्यस्य चत्वारि औदारिकाहारकतैजसकार्मणानीति विभागः क्रियते॥ पुनरपि तेषां विशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ निरुपभोगमन्त्यम् ॥४४॥

तानि[३]॥ तदादीनि[३]॥ =ते(=तानि) तदादीनि अर्थात् तिन (तैजस-कार्मण शरीरों) को आदिमें लेकर है

भाज्यानि[३]॥ विकल्पानि[३]॥ आ*कुतः* =भाज्य है सो विकल्पतारूप वा विभागरूप करना है।(विभागरूप) कहां तक (=आ) है

[२] आ-चतुर्भ्यः[३]॥ युगपत्*एकस्य[६]॥ आत्मनः[६]॥ =चार पर्यन्त एककालमें एक जीवकें हैं।

कस्यचित्*द्वे[३]॥ तैजस-कार्मणे[३]॥ अपरस्य[६]॥ =किसी (जीव) कें दो तैजस और कार्मण (जो विग्रहगतिमेंहोते) हैं। दूसरे (जीव) कें

त्रीणि[३]॥ औदारिक-तैजस-कार्मणानि[३]॥ =तीन(अर्थात्प्रायःमनुष्य-तिर्यचोंकें) औदारिक, तैजस और कार्मण शरीर हैं

वा*वैक्रियिक-तैजस-कार्मणानि[३]॥ =अथवा(देव-नारकियोंकें) वैक्रियिक, तैजस, कार्मण (ये तीन शरीर) होते हैं

अन्यस्य[६]॥ चत्वारि[३]॥ =अन्य(जीव-अर्थात् प्रमत्त संयमी छठवां गुणस्थानवर्ती किसीकिसीमुनि) कें चार

औदारिक-आहारक-तैजसकार्मणानि[३]॥ इतिविभागः =औदारिक, आहारक, तैजस, कार्मण हैं इसप्रकार विभाग वा बांट

क्रियते। पुनः*अपि*तेषाम्[६]॥ =कियाजाता है। फिरभी उन(औदारिक-वैक्रियक-आहारक-तैजस-कार्मण शरीरों)कें

विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थम्[१]॥ आह। =विशेष जाननेकेलिये (अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्[१]-निरुपभोगमन्त्यम्॥४४॥ =अन्त्यम् कार्मणम् निरुपभोगम् भवति॥४४॥

सूत्रार्थः- (औदारिक-वैक्रियिक-आहारक-तैजस, कार्मण छत्तीसवांसूत्रमें कहेहुये शरीरों में)

अन्त्यम्[१]॥ निर्-उपभोगम्[१]॥ =अन्तिम कार्मण शरीर (मन और इन्द्रियो द्वारा शब्दादिके) उपभोगसे रहित है। अर्थात् जैसे औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, शरीर आत्माको मन और पांच इन्द्रियोद्वारा उपभोगकाकारण होतेहैंतैसे कार्मण शरीर पांच इन्द्रियऔर मनकीसहायता से जीवको उपभोगकाकारण नहीं है

जीवकें पांचौ शरीर नहीं होते है॥ और वैक्रियिक तथा आहारक भी एककालमे नही होते क्योंकि वैक्रियिक तथा आहारकके स्वामीमे विशेषभेदहै

(१)दोनोंआम्नायोंमें इससूत्रकापाठ, अर्थ एकहै॥ हमारे यहांकहीं कहींपर'मन्त्यम्'केस्थानमे मन्त्य'है सोकातन्त्ररुपमाला व्याकरणकेमतकेअतिरिक्तअशुद्ध हैं

(२)यहांआङ्(=आ)काअर्थअभिविधिहैअत चारतक शरीर होसकने है। यदिमर्यादा अर्थ मानाजातातौ चारसेभीतरकेशरीरअर्थात्तीनतकहोते जोअनिष्टहै॥

अन्ते भवमन्त्यम् । किं तत्? । कार्मणम् ॥ इन्द्रियप्रणालिकया शब्दादीनामुपलब्धिरुपभोगः । तदभावान्निरुपभोगम् ॥ विग्रहगतौ सत्यामपि इन्द्रियलब्धौ द्रव्येन्द्रियनिर्वृत्त्यभावाच्छब्दाद्युपभोगाभाव इति ॥ ननु तैजसमपि निरुपभोगम् । तत्र किमुच्यते निरुपभोगमन्त्यमिति ॥

वृत्त्यनुवादः—अन्ते[७]। भवम्[१]॥	=(छत्तीसवां सूत्रमें औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस, के)अन्तमें जो है
अन्त्यम्[१]॥ किम्[१]॥ तत्[१]॥ कार्मणम्[१]॥	=सो अंतिम वा अंतका(=अन्त्यम्) है। वह क्या है? (वह) कार्मण (शरीर) है।
इन्द्रिय-प्रणालिकया[३]॥शब्द-आदीनाम्[६]॥उपलब्धिः[१]॥	=इन्द्रियोंके द्वारकरि(=प्रणालिकया)शब्द,स्पर्श,रस,गन्ध,वर्णोंका(=आदीनाम्)ग्रहण है
उपभोगः[१]। तत्-अभावात्[५]। निर्-उपभोगम्[१]॥	=सो उपभोग है। उस(उपभोग)की अविद्यमानतासे 'निरुपभोग' है ॥
विग्रह-गतौ[७]। इन्द्रिय-	=नवीन शरीर(ग्रहण वा धारणकरने)के लिये गमनमें(जीवके)इन्द्रियोंकी
लब्धौ[७]। सत्याम्[७]। अपि*	=(क्षयोपशमरूप)लब्धि होनेपर भी अर्थात् क्षयोपशमरूप लब्धिके निमित्तसे भावस्वरूप इन्द्रियोंकी रचना और उनके विद्यमान रहनेपर भी
द्रव्य-इन्द्रिय-निर्वृत्ति-अभावात्[५]॥शब्द आदि-उपभोग-	=द्रव्यइन्द्रियोंकी रचनाके(=निर्वृत्ति) न होने (केहेतु) से शब्दादिक उपभोगका
अभावः[१]॥इति*	=अभाव है अर्थात् विग्रहगतिमें भावस्वरूप इन्द्रियोंके रहतेभी(देखो सूत्र १८) द्रव्यस्वरूप इन्द्रियोंकी रचना (देखो सूत्र १७) का अभाव है इसलिये शब्दादिका अनुभव न होनेसे कार्मणशरीर निरुपभोग ही है(सोपभोग नहीं है=स-उपभोगनहींहै)
ननु*तैजसम्[१]॥अपि*निर्-उपभोगम्[१]॥तत्र*	=प्रश्नः-तैजस(शरीर)भी उपभोगसे रहित है। तहां (विग्रहगतिमें भावस्वरूप इन्द्रियोंके रहनेपर और द्रव्यस्वरूप इन्द्रियोंके रचनाके अभावमें)
किम्[१]॥उच्यते I निर् उपभोगम्[१]॥अन्त्यम्[१]॥इति*	=अन्तका(कार्मण शरीर)उपभोगरहित ऐसा क्यों कहागयाहै?प्रश्नका आशय यह है

. कि विग्रहगतिमें जैसे इन्द्रियोंद्वारा शब्दादिके ग्रहणरूप उपभोगसे कार्मण शरीर भावइन्द्रियों के रहनेपर भी निरुपभोग है वैसेही तैजस शरीर भी विग्रहगतिमें भावइन्द्रियोंके होनेपर भी इन्द्रियोंद्वारा शब्दादिके ग्रहणरूप उपभोगसे रहित है। जब दोनोंकी अवस्था एकसी है फिर कार्मण शरीर ही निरुपभोग क्यों कहागया, तैजसभी उसके साथ साथ क्यों न निरुभोग कहागया ॥

तैजसं शरीरं योगनिमित्तमपि न भवति, ततोऽस्योपभोगविचारेऽनधिकारः ॥
एवं तत्रोक्तलक्षणेषु जन्मसु अमूनि शरीराणि प्रादुर्भावमापद्यमानानि किमविशेषेण भवन्ति, उत कश्चिदस्ति प्रतिविशेष इत्यत आह—

तैजसं॥ शरीरं॥ योगनिमित्तम्॥ अपि॥ न॥ भवति। =(उत्तर)[1] तैजस शरीर (मनःवचन कायके) योगका कारण भी नहीं होता है
ततः॥ अस्य॥ उपभोग-विचारे॥ अनधिकारः॥ तिससे,(ततः) इस(तैजस)का उपभोगके निर्णयमें प्रकरण वा अधिकार नहीं है

भावार्थ योगके पन्द्रह भेदहैं उनमें औदारिक,औदारिकमिश्र,वैक्रियिक,वैक्रियिकमिश्र आहारक,आहारकमिश्र और कार्मण ये सात भेद काययोगके मानेगये हैं इनमें तैजस योग नामका कोई भी भेद नहीं है इसलिये तैजस शरीर योगका कारण नहीं मानागया है और यहां पर उपभोगके विचारमें केवल वे शरीर प्रकरणमें लियेगये है वा वे शरीर विषयभूत हैं जो योगका कारण हैं अतः तैजस शरीर उपभोगके विचारमें अधिकृत वा प्रकरणभूत नहींहै। इसीहेतुसे औदारिक वैक्रियिक आहारक और कार्मण योगनिमित्त शरीरोंमें से अन्तमें रहनेवाला कार्मण शरीरको निरुपभोग कहा है। ऐसाअर्थ यहांविवक्षित है॥

एवम्॥ तत्र॥ उक्त-लक्षणेषु॥ जन्मसु॥ अमूनि॥ =इसप्रकार तहां कहेगये है लक्षण जिनके ऐसे जन्मजे है तिनमें ये (=अमूनि)
शरीराणि॥ किम्॥ अविशेषेण॥ प्रादुर्भावम्॥ =शरीर क्या विशेषकरिरहित प्रगटपना को
आपद्यमानानि॥ भवन्ति। उत॥ कश्चित्॥ अस्ति प्रतिविशेषः॥ =प्राप्त होते है (अर्थात् उत्पन्न होते है) अथवा (=उत) कुछ विशेष है ॥ उत्तर
इति॥ अतः॥ आह। =(तीनों प्रकारके जन्मोंमें इन पाचों शरीरोंकी उत्पत्तिमेंविशेषहै)अतःऐसे कहतेहैंकि

(१) निरुपभोगमिति वचनात् अर्थादापन्नमेतदितराणि सोपभोगानीति = निरुपभोगम् इति वचनात्, अर्थादापन्नम् एतद् इतराणि स-उपभोगानि इति ॥ तत्त्वार्थ राज वार्तिक पृष्ठ १०६ = निरुपभोगम् ऐसे वचनसे अर्थापत्ति प्रमाणसे यह सिद्ध होता है कि और शरीर उपभोग सहित है ॥ सामर्थ्यादन्यत्सोपभोग गम्यते = सामर्थ्यात् अन्यत् स-उपभोग गम्यते = सगतअर्थतासे अन्य शरीर उपभोग सहित जानेजाते हैं तत्त्वार्थ श्लोक-वार्तिक पृष्ठ ३४० में और अन्य अनुवादकोंने भी यही लिखा है कि अन्य शरीर उपभोग सहित हैं ॥ मेरी समझमें इन सबका यह अभिप्राय है कि योगोंके कारणकी विवक्षासे तीन औदारिक, वैक्रियिक आहारक शरीर उपभोग सहित है (= सोपभोग है)और कार्मण शरीर उपभोगरहित है अब रहा तैजस सो योगका कारण नहीं है इससे सूत्रमें उसको विषय प्रकरण वा अधिकारसे बाहर समझकर उसका विशेषरूपसे कथन नहीं किया है॥ सदासुखजीकृत 'अर्थप्रकाशिकामें' तैजस शरीर के सम्बन्धमें लिखा है "तैजस शरीर योगका निमित्त भी नाहीं है याते तैजस शरीर निरुपभोग है ही याते याकू सूत्रमें नहीं कहा याती विना कछाही निरुपभोग है ॥ तैजस कार्मण शरीरकें अगोपांग भी नाहीं है याते वचनका बोलना सुनना इत्यादिक नहीं ॥ ताते ए दोऊही शरीर निरुपभोग है। परन्तु सभाष्यपृष्ठ१४० में चत्वारि "शेषाणि तु सोउपभोगानि" ऐसालेख है

॥ गर्भसम्मूर्च्छनजमाद्यम् ॥४५॥

सूत्रक्रमापेक्षया आदौ भवमाद्यम्। औदारिकमित्यर्थः॥ यद्गर्भजं यच्च सम्मूर्च्छनजं तत्सर्वमौदारिकं द्रष्टव्यम्॥ तदनन्तरं यन्निर्दिष्टं, तत्कस्मिन् जन्मनीत्यत आह—

॥ औपपादिकं वैक्रियिकम् ॥४६॥

उपपादे भवमौपपादिकम्। तद्-

सूत्रम्—[1]गर्भसम्मूर्च्छनजमाद्यम् =गर्भजम् सम्मूर्च्छजम् च आद्यम् भवति ॥ ४५॥

सूत्रार्थः—गर्भजम् १॥। सम्मूर्च्छजम् १॥। =जो गर्भसे उत्पन्न होता है और सम्मूर्च्छनसे उत्पन्न होता है

आद्यम् १॥। भवति T =सो(छत्तीसवां सूत्रमें वर्णित)आदिका वा पहिला(औदारिक शरीर)है अर्थात् वह आदिका औदारिक शरीर गर्भरूप और सम्मूर्च्छनरूप जन्ममें उत्पन्न होता है अथवा जिसकी उत्पत्ति गर्भ और सम्मूर्च्छन जन्मसे है वह औदारिक शरीर है

वृत्त्यनुवादः—सूत्र-क्रम-अपेक्षया आदौ ७॥। भवम् १॥। आद्यम्=(औदारिक,वैक्रियिक आदि छत्तीसवां)सूत्रकीक्रम विवक्षासे आदिमें हो सो आद्य है

औदारिकम् १॥। इति अर्थः १॥ यद् १॥। गर्भजम् १॥। =औदारिक(शरीर)है ऐसा अभिप्राय है। जो गर्भ से उत्पन्न होता है

यद् १॥। च सम्मूर्च्छनजम् १॥। तत्-सर्वम् १ औदारिकं द्रष्टव्यम् =और जो सम्मूर्च्छनसे उपजता है सो सब औदारिक (शरीर) समझना चाहिये

तद्—अनन्तरम् १॥। यद् १॥। निर्दिष्टम् १॥। =(उस औदारिक शरीर)के अत्यन्त समीप जो वर्णन कियागया(वैक्रियिक शरीर)

तद् १॥। कस्मिन् ७॥। जन्मनि ७॥। इति अतः आह T =सो किस जन्म में है। इस लिये (अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्—औप[2]पादिकं वैक्रियकम्॥४६॥=औपपादिकं वैक्रियिकम् भवति ॥ ४६ ॥

सूत्रार्थः—औपपादिकम् १॥। वैक्रियिकम् १॥। भवति T =उपपाद जन्ममें हो सो वैक्रियिक (शरीर) होता है॥

वृत्त्यनुवादः-उपपादे ७॥। भवम् १॥। औपपादिकम् १॥। तद् =उपपाद (जन्म) विषैं हो सो औपपादिक है। सो (उपपाद जन्म में)

---

(१) इस सूत्रका दोनों सम्प्रदायोंमें पाठ और अर्थ एक है। आद्यम् के स्थानमें जहां'आद्य'है वह कातन्त्र रूपमाला व्याकरणमतके अतिरिक्त अशुद्ध है (अध्याय १ टिप्पणी पृष्ठ ५ देखो)(२)श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यमें"वैक्रिय मौपपातिकम्"पाठ है॥पाठ भिन्न होने पर भी दोनो का अर्थ एकसा है॥

सर्वं वैक्रियिकं वेदितव्यम् ॥ यद्यौपपादिकं वैक्रियिकं, अनौपपादिकस्य वैक्रियिकत्वाभाव इत्यत आह-

॥ लब्धिप्रत्ययं च ॥४७॥

चशब्देन वैक्रियिकमभिसम्बध्यते। तपोविशेषादृद्धिप्राप्तिर्लब्धिः। लब्धिः प्रत्ययः कारणमस्य लब्धिप्रत्ययम्। वैक्रियिकं लब्धिप्रत्ययं च भवतीत्यभिसम्बध्यते ॥ किमेतदेव लब्ध्यपेक्षमुतान्यदप्यस्तीत्यत आह-

॥ तैजसमपि ॥ ४८ ॥

सर्वम्॥ वैक्रियिकम्॥ वेदितव्यम्॥;यदि* =समस्त वैक्रियिक(शरीर)ज्ञात कियेजाना चाहिये। जो
औपपादिकं॥ वैक्रियिकम्॥ अन्-औपपादिकस्य॥ =उपपादजन्म वैक्रियिक (शरीर) होता है तौ उपपादजन्म न होनेवालेकें
वैक्रियिकत्व-अभावः॥ इति*अतः*आह T =वैक्रियिकपना का अभाव होगा। इसलिये (अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्-[1]लब्धिप्रत्ययं च ॥ ४७॥ =लब्धिप्रत्ययं च(वैक्रियिकं भवति)॥ ४७ ॥

सूत्रार्थः-लब्धि-प्रत्ययम्॥ च*वैक्रियिकम्॥ भवति T=तपोविशेषरूपऋद्धिकी प्राप्ति(=लब्धि)हैकारणजिसको ऐसाभीवैक्रियिक(शरीर)होताहै
अर्थात् तपकेद्वाराउत्पन्नहुई ऋद्धिके निमित्तसेभी वैक्रियिक शरीर मनुष्य, तिर्यचकें होताहै
वृत्त्यनुवादः-च-शब्देन॥ वैक्रियिकम्॥ अभिसंबध्यते T=(इससूत्रमें)च शब्दकरि वैक्रियिक शरीर संबंधित है वा लियागया है
तपस्-विशेषात्॥ ऋद्धिप्राप्तिः॥ लब्धिः॥ ॥ लब्धिः॥=तपके विशेषसे ऋद्धिकी प्राप्ति सो लब्धि है। लब्धि है
प्रत्ययः॥ कारणम्॥ अस्य॥ लब्धि-प्रत्ययम्॥ =निमित्त कारण जिसका सो लब्धिप्रत्यय है
वैक्रियिकम्॥ लब्धिप्रत्ययम्॥ च*भवति T इति*=वैक्रियिक (शरीर) लब्धि निमित्तक भी (=च) होता है ऐसा
अभिसम्बध्यते। किं॥ एतद्॥ एव*लब्धि-अपेक्षम्=सम्बंध कियागया है। क्या वह(वैक्रियिक शरीर) ही लब्धिके निमित्तसे है
उत*अन्यत्*अपि*अस्ति I इति*अतः*आह T =वा और भी(कोई शरीर लब्धिप्रत्यय)है इसलिये(अग्रिम सूत्रमें)कहते है कि

सूत्रम्-तैजसमपि[2] ॥ ४८ ॥ =तैजसमपि (शरीरं लब्धिप्रत्ययं भवति) ॥ ४८ ॥

(१)इस सूत्रका श्वेताम्बर और दिगम्बर दोना आम्नायोंमें पाठ और अर्थ एकसाहै॥ इससूत्रमें 'वैक्रियिक'शब्दकी अनुवृत्ति छयालीसवांसूत्रसेलीगईहै॥
(२)सभाष्यमें यहसूत्र, सूत्ररूपमें नहीं दियाहै॥ शुभविशुद्धम् इत्यादि सूत्रकी व्याख्यामें "तैजसमपि शरीर लब्धिप्रत्यय भवति" ऐसावाक्यपायाजाताहै

अपिशब्देन लब्धिप्रत्ययमभिसम्बध्यते । तैजसमपि लब्धिप्रत्ययं भवतीति ॥

वैक्रियिकानन्तर यदुपदिष्टं तस्य स्वरुपनिर्द्धारणार्थं स्वामिनिर्देशार्थं चाह—

॥ शुभं विशुद्धमव्याघाति चाहारकं प्रमत्तसंयतस्यैव ॥४९॥

सूत्रार्थः-(१)तैजसं१।१ अपि शरीरं१।१ लब्धिप्रत्ययम्१।१ भवति T =तैजस शरीर भी (=अपि) तपोविशेषरूपऋद्धि प्राप्तिके निमित्तसे =होताहै अर्थात् तैजस शरीर भी ऋद्धिहोनेसे प्राप्तहोताहैअतः वहभी(२)लब्धिकारणक है

वृत्त्यनुवादः—अपिशब्देन३।१लब्धिप्रत्ययं२।१अभिसंबध्यते=(इससूत्रमें)अपि शब्दकरि"लब्धिप्रत्यय" वाक्य (इसीसूत्रमें) लगाया जाता है तैजसं१।१ अपि॰लब्धिप्रत्ययं१।१ भवति T इति* =तैजस(शरीर)भी ऋद्धिकेप्राप्ति—निमित्तक—(वा ऋद्धिकी प्राप्तिके कारणसे) होताहै वैक्रियिक—अनन्तरम्१।१यद्१।१उपदिष्टम्१।१तस्य६।१=वैक्रियिक (शरीर)के अत्यन्त समीप निर्देश कियागया (आहारकशरीर) तिसके स्वरूप—निर्धारणार्थं१।१चस्वामिन्—निर्देशार्थं१।१आह=स्वभाव निर्णय वा निश्चकेलिये और(तिसके)अधिपति के निरूपणके लिये कहते हैं कि

सूत्रम्— शुभं विशुद्धमव्याघाति चाहारकं प्रमत्तसंयतस्यैव ॥ ४९ ॥

=शुभं विशुद्धमव्याघाति चाहारकं प्रमत्तसंयतस्यैव(३)मुनेर्भवति

सूत्रार्थः-आहारकम्१।१शुभम्१।१ =आहारक शुभहै—शुभकर्मका कारण है—इसकेहोतें शुभ प्रकृतिहीका बन्ध होता है

(१) "तैजसके दोय भेद हैं । एक निः सरण स्वरूप । दूसरा अनिः सरण स्वरूप ॥ तहां निःसरण तैजस शुभाशुभ भेदकरि दोय प्रकार है । तिनमें जो तपश्चरणके धारक मुनिके कोऊ क्षेत्रमे रोग मारी दुर्भिक्षादिकरि लोकनिके दुःखी देखि जो करुणा अत्यन्त उपजिआवे तदि दक्षिणस्कंधमे तैं तैजसपिंड निकलिकरि द्वादश योजन प्रमाण क्षेत्रके जीवनिका दुःख मेटि आत्मा मे प्रवेश करै सो शुभ तैजस है ॥ अर कोऊ क्षेत्रके लोकनि ऊपर अत्यत क्रोधित होय तदि ऋद्धिके प्रभावतैं वामस्कन्धतें सिंदूर समान रक्तवर्ण अग्निरूप आत्माके प्रदेश निकलें सो आदि मे तो सूच्यंगुलके असंख्यातवांभाग प्रमाण अर अत पर्यंत क्रमतें वधता काहलके (=विलावके) आकार निकसि द्वादश योजन प्रमाण समस्त जीव पुद्गलनिकूं भस्मकरि उलटा शरीरमें प्रवेश करि मुनिकूं दग्ध करै है सो मुनि तो नरककूं प्राप्त होय है" ॥ ऐसा शुभ अशुभ निः सरण स्वरूप तैजस शरीर है ॥ अर अनि सरण स्वरूप तैजस समस्त ससारी जीवनिकें देहकी दीप्तिका कारण है सो लब्धि प्रत्यय नहीं है॥"देखो अर्थप्रकाशिकामें सूत्र४९ ॥
(२ छत्तीसवां सूत्रके क्रमसे तैजसके कथन से पहिले आहारकका कथन होना चाहिये,परतु लब्धिप्रत्ययकी अनुवृत्ति लेनेके लिये"तैजसमपि"प्रथम कहा पीछे आहारक (३) हमारे पाठ सर्वत्र एक है ॥ सभाष्य० में "प्रमत्त सयतस्यैव" के स्थान में "चतुर्दशपूर्वधरस्यैव"वाक्य है । शेप पाठ एक है ।

शुभकारणत्वाच्छुभव्यपदेशः । शुभकर्मणः आहारककाययोगस्य कारणत्वाच्छुभमित्युच्यते । अन्नस्य प्राणव्यपदेशवत् ॥ विशुद्धकार्यत्वाद्विशुद्धव्यपदेशः । विशुद्धस्य पुण्यस्य कर्मणः अशबलस्य निरवद्यस्य कार्यत्वाद्विशुद्धमित्युच्यते ।

च॰ विशुद्धम् १	=विशुद्ध है अर्थात् विशुद्ध वा निर्दोष कर्मका कार्य है और (=च)
अव्याघाति १	=किसीदूसरेद्वारा रुकनेवाला नहीं है अन्यकिसी दूसरेको रोकनेवाला भी नहीं है (और)
प्रमत्तसंयतस्य६ मुनेः६ एव॰भवति T	=प्रमत्तसंयमी छठवां गुणस्थानवर्ती मुनिकेही (=एव) होता है। अन्य किसी दूसरे गुणस्थानवर्ती मुनिके नहीं होता है। उक्तमुनिके औदारिक, तैजस और कार्मण शरीर तो होते ही हैं। परतु सब प्रमत्तसंयमी मुनियोंके आहारक नहीं होता है
वृत्त्यनुवादः—शुभ-कारणत्वात्५ शुभ-व्यपदेशः१	=शुभका कारण होनेसे (आहारक-शरीर इससूत्रमें) शुभ-ऐसा नाम है (अर्थात्)
शुभ-कर्मणः६ आहारककाययोगस्य६ कारणत्वात्५	=आहारककाययोगके शुभकर्मका निमित्त होनेसे
शुभम्१ इति॰उच्यते T	=(इसके होते) शुभ प्रकृतिहीका बन्ध होता है (तिससे) शुभ ऐसा कहागया है
अन्नस्य६ प्राण-व्यपदेशवत्॰	=अन्नको प्राण कहनेके समान है अर्थात् जैसे अन्न है सो प्राण यथार्थमें नहीं है वरन प्राणके रखनेका कारण है तैसेही आहारक शरीर वास्तविकमें शुभ नहीं है शुभका कारण है अन्नको प्राण कहना और आहारक को शुभ कहना दोनों स्थानोंमें कारणमें कार्यका उपचार वा व्यवहार किया है
विशुद्ध-कार्यत्वात्५ विशुद्ध-व्यपदेशः १	=निर्दोष(=विशुद्ध)कार्यहोनेसे (इससूत्रमें) विशुद्धऐसा नाम (आहारक शरीरका) है।
विशुद्धस्य६ अशबलस्य६ निरवद्यस्य६	=विशुद्ध, विशदवा निर्मल (=अशबलस्य) दोष रहित (निरवद्यस्य)
पुण्यस्य६ कर्मणः६ कार्यत्वात्५ विशुद्धम् इति उच्यते	=पुन्यकर्मका (आहारक काययोगके) कार्यहोनेसे विशुद्ध ऐसा कहा जाता है

उक्त सभाष्य तत्त्वार्थाधिगम सूत्र में जहां आहारक शरीर के स्वामी का कथन किया है वहा "आहारक के स्वामी चोदह पूर्वके धारक सयत मनुष्य है" ऐसा वाक्य पृष्ठ ५८ में लाये है इस से प्रगट है कि श्वेताम्बर समाज में प्रमत्त सयमी और अप्रमत सयमी दोनों गुण स्थान वर्तियों मुनियोंके आहारक शरीर होता है हमारे यहा केवल प्रमत्त सयमी छठवें गुण स्थानवर्ती मुनिके ही मस्तक से उत्पन्न होता है ॥

तन्तूनां कार्पासव्यपदेशवत् ॥ उभयतो व्याघाताभावादव्याघाति ॥ न ह्याहारकशरीरेणान्यस्य व्याघातः। नाप्यन्येनाहारकस्येति । तस्य प्रयोजनसमुच्चयार्थःचशब्दःक्रियते ॥ तद्यथा कदाचिल्लब्धिविशेषसद्भावज्ञापनार्थं,कदाचित्सूक्ष्मपदार्थ,निर्द्धारणार्थं संयमपरिपालनार्थं च ।

तन्तूनाम्[६]कार्पास–व्यपदेशवत्* =(कपासके) धागे वा डोरोंको कपास कहनेके सदृशहै भावार्थ जैसे तंतु कपासके कार्य हैं और कपास कारण है तथापि उपचारसे कार्यको कारणमानकर तंतुओंको कपास कहदिया जाता है और'कार्पासाःतांतवः'तंतु कपासहैं ऐसा संसारमें व्यवहार होनाहै वैसेही आहारक शरीर भी विशुद्ध निर्मल वा स्वच्छ(=अशवलस्य)निर्दोप(=निरवद्यस्य)पुन्यकर्मका कार्य है इसलिये वह आहारक शरीरभी उपचारसे विशुद्ध कहदिया गया है ॥

उभयतः*व्याघात-अभावात्[५] अव्याघाति [१]॥ =दोनों रीतिसे रुकनेके अभावसे (आहारक शरीर) अव्याघाति है

न*हि*आहारक–शरीरेण[३]॥अन्यस्य[६]व्याघातः[१] =क्योंकि (=हि) नहीं है आहारक शरीरसे दूसरेका रुकाव

न*अपि*अन्येन[३]आहारकस्य[६]॥ इति* =(और)न दूसरेकरि आहारक शरीरकाभी (रुकावट वा प्रतिघात)होता है

तस्य[६]॥प्रयोजन-समुच्चय-अर्थः[१]चशब्दः[१]क्रियते । =तिस (आहारक)के प्रयोजनोंके समुदायके लिये (सूत्रमें) चकार लायागया है

तद्यथा*कदाचित्*लब्धि-विशेप–सद्भाव-ज्ञापन-अर्थम्[१]॥कदाचित्*सूक्ष्म–पदार्थ-निर्द्धारण-अर्थम्[१]॥ =जैसे कभी ऋद्धि(=लब्धि) विशेपकी विद्यमानता (=सद्भाव) जाननेके लिये । कभी सूक्ष्म वस्तुके निर्णय वा निश्चयकरनेके लिये

च*संयम-परिपालन-अर्थम् [१]॥ =और(=च) (कभी) समयकी रक्षाकेलिये अर्थात् किसी समय कोई विशेप लब्धि प्राप्त होजाय उस समय उसकी सत्ता जाननेके लिये आहारक शरीर प्रयोजनीय होताहै।किसी समय सूक्ष्म-पदार्थके निर्धारणके लिये आहारक शरीरका प्रयोजन पड़ताहै, असंयम दूर करनेके लिये अथवा संयमको पालनेके लियेभी उसका प्रयोजनहै ॥ संयमकी रक्षाके लिये आहारक शरीर इस भांति प्रयोजनीय होता है कि जिस समय भरत और ऐरावत क्षेत्रोंमें तीर्थकरोंकी विद्यमानता न हो और प्रमत्त संयमी मुनिको ऐसी तत्त्व विपयक शंकाहो जाय कि जिसका समाधान केवली वा श्रुतकेवलीके विना न होसके इसलिये महाविदेह क्षेत्रोंमें जहांकि केवली विराजमान हों

आहारकमिति प्रागुक्तस्य प्रत्याम्नायः॥यदाऽऽहारकशरीरं निर्वर्तयितुमारभते,तदा प्रमत्तोभवतीति प्रमत्तसंयतस्येत्युच्यते ॥इष्टतोऽवधारणार्थमेवकारोपादानम्।यथैवं विज्ञायेत प्रमत्तसंयतस्यैवाहारकं नान्यस्येति।मैवं विज्ञायि,प्रमत्तसंयतस्याहारकमेवेति।माभूदौदारिकादिनिवृत्तिरिति॥एवं विभक्तानि शरीराणि बिभ्रतां संसारिणां प्रतिगति किं त्रिलिङ्ग-

वहां उनके जानेकी इच्छा होजाय और यदि मैं औदारिक शरीरसे जाऊंगा तो जीवोंका विघातरूप महा-असंयम होगा ऐसा विचारकर वह मुनि औदारिक शरीरसे जाना उचित न समझे उस समय वह संयमकी रक्षाके लिये आहारक शरीरका निर्माण करते है,इसलिये संयमकी रक्षाभी आहारक शरीरका प्रयोजन है ॥

प्राग्–उक्तस्य६॥आहारकम्१॥इतिप्रत्याम्नायः१ =पहिले वा उपर्युक्त कहेहुये(शुभ-विशुद्ध-अव्याघाति)को(केलिये सूत्रमे)आहारकऐसापाठहै अर्थात् आहारकशरीर शुभ,विशुद्ध,अव्याघाति है यह वतानेको सूत्रमें 'आहारक'काग्रहण है

यदा*आहारकशरीरम्२॥ निर्वर्तयितुम्२॥ =जिस समय (मुनि) आहारक शरीर रचनेको (=निर्वर्तयितुम्–हेत्वर्थकृदन्त है)

आरभतेTतदा*प्रमत्तः१भवति Tइति* =आरम्भ करता है। तव (वह मुनि) प्रमादसहित वा प्रमादयुक्त होता है ॥

(क्रियारूप प्रवर्तनेको यहां प्रमादकहा है नकि अविरतकीज्यों प्रमादहोता है तिसकोकहा)

प्रमत्तसंयतस्य ६इति*उच्यते T =(इसलिये) प्रमत्तसंयमीमुनिके (=प्रमत्तसंयतस्य)ऐसा (वाक्य सूत्रमें) कहा गया है

इष्टतः*अवधारण-अर्थम्१॥एवकारःउपादानम्१॥ =वाञ्छित नियमकेलिये (सूत्रमे) 'एव'शब्दका ग्रहण है

यथा*एवम्*विज्ञायेतTप्रमत्तसंयतस्य ६। =क्योंकि (=यथा) ऐसा जानो (विज्ञायेत) कि प्रमत्तसंयमी(मुनि) के

एव*आहारकम्१॥न*अन्यस्य६इति* =ही आहारक शरीर होता है नकि और किसी (गुणस्थानवर्ती) मुनिके

मा*एवम्*विज्ञायिTप्रमत्तसंयतस्य ६। =इस प्रकार न जानो कि प्रमत्तसंयमी(छठवांगुणस्थानवर्ती) मुनिके

आहारकम्१॥एव*इति*(१)माभूत्T =केवलएक(=एव) आहारक शरीर है। (क्योंकि उक्तमुनिके) नहीं होगया है (माभूत्)

औदारिक-आदि-निवृत्तिः१॥ इति* =औदारिक शरीर,तैजस कार्मण शरीरोंका (=आदि) निषेध ॥

एवम्*विभक्तानि२॥शरीराणि२॥बिभ्रताम्६। =इसप्रकार भिन्न भिन्न वा पृथक् पृथक् शरीर धारणकरनेवाले(=बिभ्रताम्)

संसारिणाम्६। प्रतिगति*(२)किम्*त्रिलिङ्ग– =संसारी (जीव) निकी प्रत्येकगतिमें क्या तीनोंवेद (स्त्री–पुरुष-नपुंसक) के

(१)'मा'निषेध वाची अव्ययहै,लुङ्(अद्यतनीभूत क्रिया)केसाथ आनेपर लुङ् के'अट्(अ,कोलोप होताहै'भू'का लुङ् एकवचन अभूत् है।उसका'अ'जातारहा।
(२)'प्रतिगति'अव्ययीभाव समास है। अकारांत शब्दोंमें अम्(=म्)का आदेश होताहै। इकारान्त,उकारान्त हलन्त शब्दोंकी विभक्तियोंका लोप होजाताहै

सन्निधानं, उत लिङ्गनियमःकश्चिदस्तीत्यत आह—

॥ नारकसम्मूर्च्छिनो नपुंसकानि ॥ ५० ॥

नरकाणि वक्ष्यन्ते, नरकेषु भवा नारकाः। सम्मूर्च्छनं सम्मूर्च्छः स येषामस्तीति सम्मूर्च्छिनः। नारकाश्च सम्मूर्च्छिनश्च नारकसम्मूर्च्छिनः ॥ चारित्रमोहविकल्पनोकषायभेदस्य नपुंसकवेदस्याशुभनाम्नश्चोदयान्न स्त्रियो न पुमांस इति नपुंसकानि भवन्ति ॥

सन्निधानम् ॥	=संन्निकर्षण वा निकट है अर्थात् प्रत्येक गतिमें तीनों तीनों लिंग होते है
उत*लिङ्गनियमः।कश्चित्*अस्तिइति*अतः आह।	=अथवा कोई और लिङ्गोंका नियम है इसलिये (अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि
सूत्रम्-नारकसम्मूर्च्छिनो नपुंसकानि	**=नारकाश्च सम्मूर्च्छिनश्च नपुंसकानि भवन्ति ॥ ५० ॥**
सूत्रार्थः—नारकाः।च*सम्मूर्च्छिनः। च*	=नारकी जीव और सम्मूर्च्छन जीव भी
नपुंसकानि॥भवन्ति।	=नपुंसक होते है। (उनमें कोईभीजीव स्त्रीलिंग और पुल्लिग नहीं होता है)
वृत्त्यनुवादः-नरकाणि॥वक्ष्यन्ते। नरकेषु॥	=नरक(तीसरे अध्यायके प्रथमसूत्रमें)कहेजावेंगे। नरकविषैं
भवाः। नारकाः।	=जन्में वा उपजें वा होवें(=भवाः)वे नारक हैं॥
सम्मूर्च्छनम्॥ सम्मूर्च्छः।	=अवयवसहितशरीरका जहांतहां वा सर्वत्र बनजाना (=संमूर्च्छन) सम्मूर्च्छ है
सः।येषाम्।अस्ति।इति*सम्मूर्च्छिनः।	=सो(सम्मूर्च्छ=अवयवसहित सर्वत्र रचाहुआ शरीर) जिनकेंहो ऐसे सम्मूर्च्छिन हैं
नारकाः।च*सम्मूर्च्छिनः।च*नारकसम्मूर्च्छिनः।	=तथा नारकी और सम्मूर्च्छिन हैं सो नारकसम्मूर्च्छिनः (द्वंद्वसमास पद सूत्रमें) है
चारित्रमोह—विकल्प—(२)नोकषाय-भेदस्य।	=चारित्र मोहनीय कर्मकाभेद (=विकल्प) जो नो कषाय तिस (नोकषाय) का भेद
नपुंसकवेदस्य।च*अशुभनाम्नः॥उदयात्।	=नपुंसकवेद जो है तिसके और (=च) अशुभनामक नामकर्मके उदयसे
न*स्त्रियः।न*(४)पुमांसः।इतिनपुंसकानि॥भवन्ति	=न स्त्रियां हैं नपुरुष हैं ऐसे नपुंसक होते हैं भावार्थ मोहनीयकर्म

(१) दोनो सम्प्रदायों में इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है ॥ (२)नोकषाय वेदनीय=ईषत्कषाय वेदनीय=अकषाय वेदनीय एकार्थवाची वाक्यहैं
(३) स्त्री शब्दका बहुवचन, स्त्रीलिंग स्त्रिय है ॥ (४) पुस् (मनुष्य) शब्दका पुल्लिग बहुवचन पुमांस. है ॥

नारकसम्मूर्च्छिनो नपुंसकान्येवेति नियमः ॥ तत्र हि स्त्रीपुंसविषयमनोज्ञशब्दगन्धरूपरसस्पर्शसम्बन्धनिमित्ता स्वल्पाऽपिसुखमात्रा नास्ति ॥ यद्येवमवध्रियते, अर्थादापन्नमेतदुक्तेभ्योऽन्ये संसारिणस्त्रिलिङ्गा इति॥ यत्रात्यन्तं नपुंसकलिङ्गस्याभावस्तत्प्रतिपादनार्थमाह-

दो प्रकारका है एक दर्शन मोहनीय दूसरा चारित्रमोहनीय । दर्शन मोहनीयके मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृतिमिथ्यात्व तीन भेद हैं और चारित्र मोहनीयके भी कषाय वेदनीय और नो कषायवेदनीय दो भेद हैं। नोकषाय वेदनीयके हास्य रति अरति शोक भय जुगुप्सा स्त्रीवेद पुंवेद और नपुंसक वेद ये नौभेद हैं उन में नपुंसक वेद और अशुभनामा नामकर्म (इन दोनों) के उदय से जो जीव न स्त्री हों और न पुरुष हों वे नपुंसक होते हैं

नारक–सम्मूर्च्छिनः।१।३।नपुंसकानि।१।३।।।एव*इति*नियमः।१।१। =नारकजीव और सम्मूर्च्छिन जीव नपुंसकही हैं ऐसा नियम (स्वरूप कथन) है

तत्र * हि *स्त्री–पुंसविषय– =क्योंकि(=हि)उस अवसर में(=तत्र)अर्थात् नपुंसक भवमें,स्त्रीपुरुषसंबंधी(=विषय)

मनोज्ञ–शब्द–गन्ध–रूप– =मनोज्ञशब्द(कासुनना)मनोज्ञगन्ध(कासूंघना)मनोहर(=मनोज्ञ) रूप (कादेखना)

रस–स्पर्श–सम्बन्ध– =इष्ट (=मनोज्ञ) रस(काचाखना) और इष्ट(=मनोज्ञ)स्पर्श(कास्पर्शनकरना)रूप(संबंध)

निमित्ता।१।१।स्वल्प*अपि*सुखमात्रा।१।१।।न*अस्ति* =कारणोंसे होनेवाला थोड़ा भीसुख(नारकी और सम्मूर्च्छिन जीवोंको) नहीं है

यदि*एवम्* अवध्रियते T =जो इसप्रकार निश्चय कियागया है(किनारक और सम्मूर्च्छिन नपुंसक हैं तो)

अर्थात्।१।आपन्नम् ।१।।। एतद्।१।।। =अर्थसे यह(=एतद्)प्राप्तहोता है(=आपन्नं)कि भावार्थ अर्थापत्तिप्रमाणसे (नकहेगये अभिप्रायको समझनेवाले ज्ञानसे)यह निकलता है कि

उक्तेभ्यो ।५।३।अन्ये ।१।३। =कहेहुये(नारक और सम्मूर्च्छिन जीवों)सिे अवशेष वा वचेहुये (=अन्य)

संसारिणः।१।३।त्रि-लिङ्गाः।१।३।इति*;यत्र*अत्यन्तं ।१।।। =संसारीजीव तीन लिंगवाले हैं। जहां (जिसजन्ममें) अत्यन्त वा अतिशय

नपुंसकलिंगस्य ।६।१। अभावः ।१।१। तत्– =नपुंसकलिंगका अस्तित्व नहीं है। तिस (अत्यन्त नपुंसक लिंगके अभाव)के

प्रतिपादन–अर्थम् ।१।।। आह T =समर्थनके लिये वा स्पष्टीकरनेके लिये(अग्रिम सूत्रमें) कहते है कि

॥ न देवाः ॥ ५१ ॥

स्त्रैणं पौंस्नं च यन्निरतिशय सुखं सुर(शुभ)गतिनामोदयापेक्षं,तद्देवा अनुभवन्तीति न तेषु नपुंसकलिङ्गानि सन्ति ॥ अथेतरे कियल्लिङ्गा इत्यत आह—

॥ शेषास्त्रिवेदाः ॥ ५२ ॥

सूत्रम्—[1]नदेवाः ॥ ५१ ॥	=न देवाः (नपुंसकानि भवन्ति) ॥५१॥
सूत्रार्थः-न*देवाः[1/3] नपुंसकानि[1/3] भवन्ति T	=(भवनवासी, व्यन्तर,ज्योतिषी,और कल्पवासी) देव नपुंसक लिंगी नहीं होते हैं अर्थात् सब प्रकारके देवोंमें स्त्रीवेद और पुरुषवेद केवल दोही वेद होते हैं
वृत्त्यनुवादः-स्त्रैणं[1/1] पौंस्नं[1/1] च यत् निरतिशयं[1/1] सुखम्[1/1]	=स्त्री संबंधी तथा पुरुष संबंधी जो परमोत्कृष्ट(=निरतिशय पञ्चकोश२१५)सुख है और
सुर(शुभ)[2]गतिनाम-उदय-अपेक्षम्[1/1]	=जो(भली वा अच्छी)सुरगति नामक (नामकर्मकी प्रकृतिके) उदयकी विवक्षासे है
तद्[2/1] देवाः[1/3] अनुभवन्ति T इति*तेषु[7/3]	=तिस (सुख)को देव भोगते है वा अनुभव करते हैं। उन (देवों) में
नपुंसकलिङ्गानि[1/3] न*सन्ति T	=नपुंसकलिङ्ग नही है (केवल स्त्रीवेद और पुरुषवेद दोही वेद होते हैं)
अथ*इतरे[1/3] (3) कियत्-लिङ्गाः[1/3] इति*अतः*आह T	=अब अन्य(नारक,सम्मूर्च्छिन,देवोंके अतिरिक्त)कितने लिङ्गवाले हैं।इसलिये कहते हैंकि
सूत्रम्-शेषास्त्रिवेदाः[4] ॥ ५२ ॥	=शेषाः जीवाः त्रिवेदाः भवन्ति ॥ ५२ ॥
सूत्रार्थः-शेषाः[1/3] जीवाः[1/3]	=बचेहुये जीव (अर्थात् नारक, सम्मूर्च्छिन और चारों प्रकारके देवोंके अतिरिक्त जे कर्मभूमिके गर्भज मनुष्य,गर्भज तिर्यंच ते स्त्री-पुरुष-नपुंसक)

(१) दोनों आम्नायोंमे इस सूत्रका पाठ और अर्थ एक है (२) तत्त्वार्थराजवार्तिकमें तथा हस्त लिखित सर्वार्थसिद्धिमे "शुभगतिनामोदयापेक्ष" इत्यादि पाठ है'सुर'शब्द नही है प० पन्नालाल दूनीवालोंने 'शुभगतिका अर शुभनामकर्मका उदयकी है अपेक्षा जाविषै"इत्यादि अनुवाद किया है अर्थात् शुभगति और शुभनाम कर्म दोंके उदय की अपेक्षा मानीहै॥'सुर'शब्द होनेसे हमने केवल सुरगति जो शुभ होती है उसके उदयकी अपेक्षा मानी है मुद्रित वृत्तिके द्वितीय सस्करणमे"गति नामोदयपेक्ष"पाठ है॥ (३) कियत् त्रिलिगी शब्द है कियान् प्रथमाविभक्ति पुल्लिग एक वचन है कियती प्रथमा एक वचन स्त्रीलिग है और कियत् प्रथमा एक वचन नपुसक लिग है यहां पर बहुवचन में प्रयोग है अर्थात् "कियल्लिङ्गाः"कितने लिङ्गवान हैं इसलिये हमने इस'कियल्लिङ्गा'को समास मानकर अनुवाद किया है॥ (४) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य०में यह सूत्र नहीं है॥ भाष्यकारने भाषा में इस सूत्रका आशय देदिया है॥ 'शेषस्त्रिवेदः'ऐसासूत्र प० सदासुखजी कृत सूत्रभाषा में अशुद्ध है॥

त्रयो वेदा येषां ते त्रिवेदाः॥ के पुनस्ते वेदाः। स्त्रीत्वं, पुंस्त्वं नपुंसकत्वमिति॥ कथं तेषां सिद्धिः! वेद्यत इति वेदः। लिङ्गमित्यर्थः॥ तद् द्विविधं द्रव्यलिङ्गं भावलिङ्गंचेति॥ द्रव्यलिङ्गं योनिमेहनादिनामकर्मोदयनिर्वर्तितम्॥ नोकषायोदयापादितवृत्ति भावलिंगम्॥ स्त्रीवेदोदयात् स्त्यायत्यस्यां गर्भ इति स्त्री। पुंवेदोदयात् सूते

त्रि–वेदाः[१।३] भवन्ति T =तीनों लिंगवाले वा तीनों लिंगवान होते हैं

(परन्तु भोगभूमिके उपजे मनुष्य और तिर्यंचोंके और मलेच्छखंडके स्त्रीपुरुषोंके पुरुषलिंग और स्त्रीलिंग ये दो वेदही होते हैं। देखो अर्थप्रकाशिकासूत्र५१)

वृत्त्यनुवादः-त्रयः[१।३]वेदाः[१।३]येषाम्[६।३] ते[१।३]त्रिवेदाः[१।३]=तीनहैंलिंग वा वेद जिनके वे त्रिवेदहैं।(यह त्रिवेदापदकाविग्रह वा समासकेअर्थकाद्योतकवाक्यहै)

के[१।३]पुनः*ते[१।३]वेदाः[१।३]स्त्रीत्वम्[१।१]। पुंस्त्वम्[१।१]। =पुनि वे लिंग कौन हैं, स्त्रीपन अर्थात् स्त्रीलिंग, पुरुषपन अर्थात् पुल्लिंग

नपुंसकत्वम्[१।१]।इति*कथम्*तेषाम्[६।३]सिद्धिः[१।१]। =नपुंसकपन वा क्लीवत्व ऐसे हैं। उन (वेदों) की कैसे निष्पत्ति वा व्युतपत्ति है

वेद्यते T इति* वेदः[१।१] =जो"वेदिये"ऐसा वेद है अथवा "जो अनुभवकियाजाय"(=वेद्यते) ऐसा वेद है

लिङ्गम्[१।१]।इति*अर्थः[१।१]तत्[१।१]।द्विविधम्[१।१]। =लिंङ्ग ऐसा अर्थ वा अभिप्राय है। वह लिंग दो प्रकार है

द्रव्यलिङ्गं[१।१]।भावलिङ्गं[१।१]।चइति*द्रव्यलिंगम्[१।१]=द्रव्यलिंग और(=च)भावलिंग ऐसा है। द्रव्यलिंग वह है

योनि– =जो(तिर्यचनी वा स्त्रीके) भग और [रचित हैं

मेहन–आदि–नामकर्म–उदय–निर्वर्तितम्[१।१]। =(मनुष्य वा तिर्यंचके)लिंग(=मेहन)आदि (शरीरके आकार) नामकर्मके उदयसे निष्पादित वा अर्थात् नामकर्मके उदयसे योनि, लिंग रज, वीर्य, आदिका रचना द्रव्यलिंग है

नोकषाय–उदय–आपादित– =(स्त्रीवेद-पुरुषवेद–नपुंसकवेद)नो कषाय(चारित्र मोहनीयकर्म)के उदयसे प्राप्तहुआ(=आपादित)

वृत्तिः[१।१] भावलिंगम्[१।१]। =आत्माके अंतःकरण परिणामकी प्रवृत्ति (=वृत्तिः) सो भावलिंग है अर्थात् नोकषाय कर्मके उदयसे स्त्री आदि लिंगोंके अनुकूल इच्छाका होना सो भावलिंग है

स्त्रीवेद-उदयात्[५।१]स्त्यायति Tयस्याम्[७।१]गर्भः[१।१] =स्त्रीवेदके उदयसे इकट्ठाहोता है तिष्ठता है वा ठहरता है (=स्त्यायति)गर्भ जिसमें

इति*स्त्री[१।१];पुंवेद-उदयात्[५।१]सूते[१।१] =ऐसी स्त्री है। पुरुषवेदके उदयसे उदरमें (=सूते)

जनयत्यपत्यमिति पुमान् । नपुंसकवेदोदयात्तदुभयशक्तिविकलं नपुंसकम् ॥ रूढिशब्दाश्चैते । रूढिषु च क्रिया व्युत्पत्त्यर्थैव। यथा गच्छतीति गौरिति ॥ इतरथा हि गर्भधारणादिक्रियाप्राधान्ये, बालवृद्धानां तिर्यङ्मनुष्याणां देवानां कार्मणकाययोगस्थानां च

जनयति I अपत्यम्[२]॥इति*पुमान्[१] । नपुंसक- वेद-उदयात्[५]। तद्-उभय- शक्ति-विकलम्[१]॥नपुंसकम्[१]॥रूढि-शब्दाः[१]चएते[१]	=संतानको (=अपत्यम्) उत्पन्न करता है (=जनयति) ऐसा पुरुष है । नपुंसक =वेदके उदयसे जो दोनों (उदरमें गर्भकीस्थिति और संतान उत्पन्नकरनेकी) =शक्तिसे रहित,वा शक्तिसे विहीन नपुंसक है और ये (स्त्री–पुंस्–नपुंसक) रूढि शब्द हैं
(१)रूढिषु[७]च*क्रिया[१]॥व्युत्पत्ति–अर्थ–एव*	=और(=च)रूढि(शब्दों)में क्रिया (अर्थात् धातुका अर्थ) है सो निरुक्तिमात्र (-एव)के लिये है
यथा*गच्छति I इति*गौः[१]॥ इति*	=जैसे गमन करतीहै ऐसी गायहै भावार्थ यदि'गो' शब्दकी निरुक्ति पूर्णतासे ग्रहणकी जावै तो गाय(पशु)जिससमय चलै फिरै उसकाल ही गौ कहना चाहिये और वही(पशु) जिस काल सोता हो, खड़ाहो, लेटाहो, बैठाहो, उस समय वुत्पत्तिके अनुसार गौ नहीं कहना चाहिये परन्तु ऐसा लोक व्यवहारमें नहीं होता सर्वकालमें रूढ़ि वा प्रसिद्धके वशसे उस पशुको गौ कहते है अतः क्रियाका अर्थ शब्दोंमें केवल व्युतपत्ति मात्र ही है ॥
इतरथा*हि*	=क्योंकि अन्यथा अर्थात् यदि नामोंमें रूढिकी प्रधानता न मानी जावैं तो
गर्भ-धारण-आदि–क्रिया-प्रधान्ये [७]॥	=गर्भधारणक्रियाको तथा सन्तान उत्पादन क्रियाको (=आदि) मुख्यमाननेमें (अर्थात् यही बातमानें कि जब गर्भधारणकी सामर्थ्य है तब स्त्री है चलते-फिरते-बैठते-उठते-रसोई बनाने इत्यादि क्रियामें स्त्री नहीं हैं और जब संतान उत्पादनकी सामर्थ्य है तबहीपुंस् वेदीहै अन्य अवस्थाओंमें वा अन्यक्रिया जैसे व्यौपार इत्यादिकमें पुरुषवेदी नहींहैतो
बालवृद्धानाम्[६]।(२)तिर्यङ्मनुष्याणाम् देवानाम्[६]।च*	=बाल-वृद्ध तिर्यंचोंकें और बालवृद्ध मनुष्योंके और देवोंकें और (=च)
कार्मणकाययोगस्थानाम् [६]।	=कार्मणकाययोगमें स्थिति जीवोंकें अर्थात् विग्रहगतिमें विद्यमान जीवोंकें

(१) रूढि शब्द स्त्रीलिग है परतु यहां पर "शब्दो" ऐसा इसके आगे छिपा हुआ है ॥ अर्थ है'रूढि शब्दों' मे इसलिये हमने पुलिग में रक्खा है ॥

(२)'तिर्यङ्मनुष्याणां देवानां'ये शब्द हमारी समझमेयहां पर उपलक्षणरूपमे प्रयोग किये गयेहै ॥ उपलक्षण = पास रहनेहारे और अपनेसे सम्बन्ध-

तदभावात्स्त्रीत्वादिव्यपदेशो नस्यात्

तद्-अभावात् ५।१ =उस (गर्भधारण और सन्तान उपपादन क्रिया) के अभावसे वा सामर्थ्य न होनेसे

स्त्रीत्व-आदि-व्यपदेशः१।१ =स्त्रीपणा और पुंसपनाका नाम वा कथन (स्त्री-पुंस्की व्युत्पत्ति पृष्ट १२२, १२३ में देखो)

न* स्यात् T =नहोसकैगा भावार्थ इसका यह है स्त्यायति यस्यां गर्भःइति स्त्री=स्थितिहोता है गर्भ जिसमें वह स्त्री है और सूते जनयति अपत्यम् इति पुमान्= उदरमें संतानको उपजावै सो पुमान् है (पुंस् का प्रथमा विभक्ति एकवचन पुल्लिग पुमान् है (=पुरुष, मनुष्य) उक्त अर्थ केवल व्युत्पत्तिके लिये है प्रधानतासे नहीं है, यदि उन्हें मुख्यतासे माना जायगा तौ जिस समय गर्भधारण क्रिया और संतान-उत्पादन क्रिया आदि होंगी उसी समय स्त्री पुस् आदि उनको कह सकते हैं किन्तु बालक, बालिकायें, वृद्ध पुरुष, वृद्ध तिर्यंच, वृद्ध तिर्यंचनी, तिर्यंच तिर्यंचनियोके बच्चे और देवी देवताओको और विग्रहगतिमें विद्यमान जीवोंको जिनमें कि गर्भधारण संतान उत्पादन आदिकी सामर्थ्य नहीं स्त्रीवेदी वा पुरुषवेदी आदि नहीं कहसकते इसलिये स्त्री, पुरुष, गौआदिक शब्द रूढि हैं '१' यौगिक(=व्युत्पन्न व्युत्पत्तिसहित सामासिक) शब्द नहीं हैं ॥ और इन तीनो स्त्री पुरुष और नपुंसक वेदोमें स्त्रीवेदको अगर समान माना है। पुरुषवेदको फूंसकी अग्नि सदृश माना है और

रखने वालेका ज्ञान जिससे हो। जैसे "कौओंसे दही बचाया जाय" यहां कौआ पद अपने और अपने से भिन्न कुत्ते, बिल्ली आदिका भी बोधक है॥ "कौओं से दही बचाया जाये" इसका यह सारांश है कि दही की रक्षा केवल कौओं से ही न कीजाय वरन् जितने भी कुत्ते–बिल्ली–बन्दर और इतर जीव जो दही को विना किसी स्वत्वके खाजाय सब से उसको बचाया जाय॥ इसी प्रकार उक्त वाक्य में तिर्यंच, तिर्यंचनी उनके बच्चे, मनुष्य, मनुष्यणी, उनके बच्चे, देवी, देव, इत्यादि और अन्य जितने शब्द व्युत्पत्ति को ध्यानमें न रखकर रूढि में बोले जाते हैं और उक्त सूत्र से सबधित हैं सर्व आजाते हैं॥ जयचंदराय जीने "रूढि शब्दाश्चैते" से व्यपदेशो न स्यात्" तक की (इस अनुवाद के देखो पृष्ट १२३ १२४) वचनिका में मनुष्य और तिर्यंच और देव शब्दोको ध्यान मे न रखकर उनकी स्त्रियों पर वाक्यों को ऐसें सबध किया है कि स्त्री, पुरुष, नपुसक "इनिकी सज्ञा है सो रूढि शब्द रूप है। रूढि शब्द की व्युत्पत्ति कीजिये है सो तिस व्युत्पत्तिमात्र प्रयोजनके अर्थि ही है। जैसे गऊ शब्द की निरुक्ति करिये, जो चालै ताकू गऊ कहिये। सो यहां निरुक्ति रूढिहीतें जाननी। जातें बैठा सोवता गऊको भी गऊही कहिये। ऐसै रूढि जाननी। जो ऐसे न मानिये तो गर्भ धारण क्रियाहीकू प्रधान मानिये तो बाल स्त्री तथा वृद्धस्त्री तिर्यंचनी मनुष्यणी तथा देवांगना तथा कार्मण काययोग विषै अंतरालमें तिष्ठती स्त्रीनिकै गर्भ धारण नाही, तब स्त्री पणाका नाम न ठहरै। तथा पुत्रादिक उपजाये विना इनिका पुरुष पणाका नाम न ठहरै। तातें उहां नाम विषै रूढी ही प्रधान है॥ वचनिका पृष्ठ २६४ (१) यौगिक–धातु और प्रत्यय से समझ पडने योग्य अर्थको बतलाने हारा शब्द अर्थात् जो दो वा अधिक शब्दों से मिलकर बना हो जैसे शिवालय,जीवधारी, जलचारी, दयासागर, उसके तद्धित, कृदन्त, समास तीन भेद हैं

त एते त्रयो वेदाः शेषाणां गर्भजानां भवन्ति ॥ य इमे जन्मयोनिशरीरलिंगसम्बन्धाहित-विशेषाः प्राणिनो निर्दिश्यन्ते देवादयो विचित्रधर्माधर्मवशीकृताश्चतसृषु गतिषु शरीराणि धारयन्तस्ते किं यथाकालमुपभुक्तायुषो मूर्त्यन्तराण्यास्कन्दन्ति, उतायथाकालमपीत्यत आह-

नपुंसक वेदको ईटकी अग्निके अर्थात् अवेकी अग्निके समान मानाहै सारांश यहहैकि पुरुषकी कामाग्नि फूंसकी अग्निके समान जल्दी शांत होजाती है। अंगारकी अग्नि गुप्त और कुछ ठहरनेवाली होती है। इसलिये स्त्रीकी कामाग्नि कुछ कालतक ठहरनेवाली होती है। जहां पर ईंट पकाई जाती है उस भट्टेकी आग वहुत कालतक रहती है और सर्वदा धधकती रहती है इसलिये नपुंसककी कामाग्नि अधिक कालतक रहती है।

ते१।एते१।त्रयः१।वेदाः१।शेषाणाम्६।गर्भजानाम्६।	=सो ये तीन (स्त्री–पुरुष-नपुंसक) लिंग अवशेष जे गर्भज उनके
भवन्ति। ये१।इमे१।जन्म–योनि–शरीर–लिंग-सम्बन्ध-	=होते हैं ॥ जो ये जन्म, उत्पत्तिस्थान (=योनि), शरीर और वेदोंका सम्बन्धकरि
आहित-विशेषाः१। प्राणिनः१। देव-आदयः१।	=ग्रहणकिये है (=आहित)भेद प्रभेद (=विशेष) जिननें ऐसे प्राणी देवादिक
निर्दिश्यन्ते। विचित्र-धर्म–अधर्म–वशीकृताः१।	=दिखाये गये है वा उल्लेख किये गये हैं ते नानाप्रकारके पुन्य और पापोंके वशीभूत
चतसृषु७।गतिषु७।शरीराणि२।धारयन्तः१।	=चारोगतिमें शरीर धारणकरनेवाले
ते१।किम्१।उपभुक्त–आयुषः१।यथाकालम्*	=क्या वे पूर्ण भुज्यमान आयुवाले होते है और ठीक समयपर (=यथाकालम्)
मूर्त्यन्तराणि२।आस्कन्दन्ति।	=अन्य वा दूसरे शरीरोंको धारणकरते है अथवा ग्रहणकरते हैं अर्थात् वे देव, मनुष्य, तिर्यंच नारकी,आदि जितनी आयु वांध चुके हैं उतनी आयुके पूर्णहोजानेपर वर्तमान शरीरको छोड़कर-मृत्युपानेपर दूसरे शरीरोंको धारण करते हैं
उत*अयथाकालम्*अपि*इति*अतः*आह।	=वा विना आयु पूर्णकिये भी(अन्य शरीरोंको धारण करते हैं) इसलिये(१)कहते हैं कि

(१) स्मरण रहै कि त्रेपनवां सूत्र का अर्थ कठिन है वड़े ही परिश्रम और अन्वेषण से लिखा गया है उस को बहुत ध्यान पूर्वक पाठकों को पढ़ना चाहिये नही तो कुछ इच्छित परिणाम न होगा॥ कोई पाठक यदि इसपर भिन्न प्रकाश डाले तो वे मुझको कृपया सूचितकरें॥

औपपादिकचरमोत्तमदेहाऽसंख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः॥५३॥

सूत्रम्—औपपादिकचरमोत्तमदेहाऽसंख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः ॥ ५३ ॥

(द्वितीयपाठ(१))औपपादिकचरमदेहाऽसंख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः ॥ ५३ ॥

(१) सर्वार्थ सिद्धिवृत्ति प्रथम सस्करण पृष्ठ १६३, १६४ और द्वितीय आवृत्ति पृष्ठ११३ में" चरमदेहा इति वा पाठः"अर्थात् "चरमोत्तम देहाः" के स्थानमें विकल्पकरिके " चरमदेहाः" ऐसा पाठ है। शेषपाठ एक है। तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ १११ में " चरमदेहा इति केषांचित् पाठः" अर्थात् "चरमदेहाः"ऐसा पाठ कितनोंका है। 'चरमोत्तमदेहेति अस्मिन् स्थाने चरमदेहेति केचित् पठतीति' ='चरमोत्तमदेहा 'ऐसे इस स्थानमें चरमदेहा ऐसा कोईएक पाठ मानते हैं। श्रुतसागरीटीका ॥ भावार्थ"चरमोत्तमदेहाः"के स्थानमें "चरमदेहा"उपर्युक्त सूत्रमें पढा जावेगा इसलिये शेषपाठ एक ही रहा ॥ द्वितीय पाठ वही हुआ जो हमने ऊपर लिखा है।

(२) सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें ' औपपातिकचरमदेहोत्तमपुरुषासख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुष " ॥ ५३ ॥ ऐसा पाठ है। सूत्र सख्या ५२वी है॥ औपपादिक' के स्थानमें 'औपपातिक' है। चरमोत्तमदेहा' वा 'चरमदेहा.' के स्थानमें 'चरमदेहोत्तमपुरुषाः' है। शेषपाठ एकसा है ॥ इससूत्रके तीन पाठ होनेपर भी अर्थ अन्तमें सबका एकसा है पाठ भेद होनेसे अर्थ भेद नहीं हुआ क्योंकि उपर्युक्त दो पाठोंमें"चरमदेहा." और ' चरमोत्तमदेहा " मेंसे "चरमदेहा " का अर्थ,चरमशरीरी,अन्तिमशरीरवाले, उसीदेहसे मोक्षजानेवाले, तद्भवमोक्षगामी. जो वर्तमान शरीर है वह ससारमें रहनेका चरम (=अन्तिम) शरीर है अर्थात् इसी देह वा शरीरसे मोक्षकोजावेंगे, इसी शरीरसे सिद्ध होजावेंगे ऐसा है ॥ तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक पृष्ठ३४३ में"उत्तमग्रहण चरमस्यानुत्तमत्वव्युदासार्थं,, =सूत्रमें उत्तम (शब्द) का ग्रहण है सो चरमी की अश्रेष्ठताके निवृत्तिके लिये है अर्थात् जो चरमी होगा वह उत्तम शरीरका धारी अवश्यहोगा भावार्थ चरमीके वा तद्भवमोक्षगामीके सदैव उत्तम (वज्रवृषभनाराचसहनन और समचतुरस्र सस्थानयुक्त)शरीर अवश्यहोगा इससे यह परिणाम निकला कि चरमदेहधारी(=चरमदेहाः)सदैव उत्तम शरीरका धारक होगा। प०गजाधरलालजी पृष्ठ ७६५ तत्त्वार्थराजवार्तिक सस्थाद्वारा प्रकाशितमें लिखते हैं कि"वास्तवमें चरम शरीरका अर्थ यही है कि अब दूसरा शरीर धारण नहीं करना होगा उसी शरीरसे मोक्ष प्राप्तहोजायगी इसीलिये जो शरीर मोक्षका साक्षात कारण है वह स्वय उत्तम है उसकी उत्तमता प्रगट करनेके लिये किसी भी शब्दकी आवश्यकता नहीं इसलिये वार्तिककारने चरमदेहा. इति केषांचित् पाठ ऐसाभी कहा है ॥ इसलिये सूत्रमें जो 'उत्तम' शब्दका उल्लेख कियागया है वह केवल चरम शरीरके स्वरूप प्रगट करनेके लिये है" ॥ 'चरमोत्तमदेहा' वाक्यमें उत्तम शब्द उसी प्रकारसे अधिक है जैसे कि प्रकाश्यमान' शब्द 'प्रकाश्यमान सूर्य' में व्यर्थ है क्योंकि सूर्य तो स्वयम् ही सप्रकाशहै उसी प्रकार चरमदेह तो स्वयम् ही उत्तमहै ऐसा कोई चरम देह है ही नहीं जो अनुत्तम होता हो ॥ इसलिये हमने अनेकतर विद्वानोंके मतानुकूल 'उत्तम' शब्दको अनावश्यकीय माना है ॥

"एभ्य औपपातिकचरमदेहासख्येयवर्षायुर्भ्य शेषा मनुष्यास्तिर्यग्योनिजाः सोपक्रमा निरुपक्रमाश्चापवर्त्यायुषोऽनपवर्त्यायुषश्च भवन्ति" =इनऔपपातिक,चरमदेह,और असख्येयवर्ष आयुष्वालोंसे शेष मनुष्य तथा तिर्यग्योनिज जो उपक्रमसहित तथा उपक्रमरहितहैं वे अपवर्त्य आयुष्वाले और अनपवर्त्य आयुष्वाले भी होते ह ॥ सभाष्य०पृष्ठ ६१ ॥ इससे ये फलनिकला कि जैसे हमारे यहां देवनारकी,चरमशरीरी,भोगभूमिके मनुष्य तिर्यंच और कुभोगभूमियां ये अकाल मृत्युवाले नहीं होते आयुको परिपूर्णकरके ही वर्तमान शरीरका त्यागन करतेहैं उसीप्रकार श्वेताम्बर आम्नायके

सूत्रार्थः–औपपादिक– =उपपाद जन्मसे उत्पन्न होनेवाले अर्थात् चारों प्रकारके देव और समस्त नारकी

चरम-उत्तम १-देहाः[३]– =अन्तिम उत्कृष्ट शरीर वाले,अन्तिम श्रेष्ठशरीरकेधारक,अंतकी पर्यायवाला उत्तम शरीर वा देह अर्थात् चरमोत्तम शरीरी,तद्भवमोक्षगामी,पूर्ण होगा संसार जन्म जिनका उसी उत्तम देहसे उसी जन्ममें,चरमोत्तम शरीरी,

असंख्येय–वर्ष–आयुषः[३]=असख्यात वर्षकी आयुवाले, अर्थात् उत्तम,मध्यम,और जघन्य भोग भूमिके मनुष्य तिर्यंच और कुभोग भूमियां

अन्–अपवर्ति–आयुषः[३]=परिपूर्ण आयुवाले होते है अर्थात् देवनारकी,चरमोत्तम शरीरी, भोगभूमियां कुभोगभूमियां इन सबकी आयु विष,शस्त्र, कंटक,अग्नि,जल,सर्प,अजीर्ण भोजन,वज्रपात,शूली,हिंसक जीव और वज्रादिके अभिघात आदिसे तथा द्वन्द्वसे (=उपद्रवसे) आरम्भहोनेवाले क्षुत् पिपासा और शीतोष्णसे भी न्यून नहीं होती है अकाल मृत्यु इनकी नहीं होती है ॥

द्वितीयपाठः–औपपादिक– =उपपाद संज्ञक जन्ममें उत्पन्न होनेवाले अर्थात् समस्त देव और समस्त नारकी

चरमदेहाः[३] (इत्यादि) =अन्तिम शरीर वाले,उसीभवसे मोक्ष जानेवाले (जिस देहसे सिद्ध होते हैं वह चरम देह वा शरीर कहलाताहै) (उपर्युक्त अर्थोंसे प्रगट है कि "चरमदेहा" का वही अर्थ है जो "चरमोत्तमदेहा" का है क्योंकि उत्तम शरीर वाले ही तद्भव मोक्षगामी हो सक्ते हैं अन्य नहा और चरमदेहवाले कर्मभूमिके मनुष्य ही होते हैं अन्य देवादिक नही हो सक्ते हैं । शेष दोनों पाठ एक हैं अतः उनका अर्थ भी एक है ॥ चरम=अंतकी पर्याय, चरमदेह=अंतिम पर्याय वाला शरीर वा देह ।

सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रके अनुकूल येही अनपवर्त्य आयुष्वाले होते हैं॥ इसमें सदेहनहो कि इसी भाष्यमें 'औपपातिक, चरमदेह अर्थात् अन्तिम शरीरवाले उत्तमपुरुष और असख्येयवर्ष आयुष्वाले ये चारों अनपवर्त्य (अपवर्तन न करने योग्य) आयुष्वाले होते हैं ॥ ऐसा उल्लेख है परन्तु इस वाक्यके नीचे उपर्युक्तभाष्य दिया है उससे इसका निषेध होता है क्योंकि जो पश्चात् कहा जाता है वही ठीक समझाजाता है और यह भी है कि सुभौमचक्रवर्ति और अंतिम ब्रह्मदत्त-चक्रवर्ति और वासुदेव अंतिम अर्द्धचक्री तीनोंकी आयु अपवर्त्यहोकर अर्थात् घटकर न्यूनहोकर अकाल मृत्यु हुई थी और ये तीनों उत्तमपुरुष थे ॥

(१) हम अभी लिखचुके हैं कि 'उत्तम' शब्द सूत्रमें लानेसे वही अर्थ होता है जो न लानेसे इसलिये 'उत्तम' शब्दकी सूत्रमें आवश्यकता नहीं हैं इस'उत्तम' शब्दके कारण भाष्यकारोंको, अनुवादकोंको तथा टीकाकारोंको बहुतकुछ अपने अपने भाष्य टीका और अनुवादोंमें इस 'उत्तम' शब्दके सबधमें लिखना पडा है। प्रथम इसके कि हम इसपर अपने स्वतत्र विचार तथा शास्त्रानुकूल कुछ उल्लेख कर इसवातको लिखदें कि किन किन महानुभावों ने इसको किस किस शब्दका विशेषण और विशेष्यमाना है ॥

(क) चरम–उत्तम विशेषण हैं देह शब्द विशेष्य है (ख) में उत्तम शब्द विशेषण है चरमदेह विशेष्य है ॥ (ग) मे चरम शब्द विशेषणहै उत्तम शब्द विशेष्य है (घ) मे उत्तम शब्द विशेषण है चरम शब्द विशेष्य है ॥

(क) "चरम उत्तमो देहो येषां ते चरमोत्तमदेहाः" सर्वार्थसिद्धिः पृष्ठ१६३, तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक पृष्ठ ३४३, तत्त्वार्थराजवार्तिकम् पृष्ठ १११ वार्तिक ७	"ऐसा चरम उत्ताम देह जिनकै होय ते चरमोत्ताम देह कहिये" जयचदजी वचनिका पृष्ठ २६४ चरमोत्ताम है शरीर जिनका वे चरमोत्ताम देह वाले हैं। (चरमोत्ताम ये देहके विशेषण हैं अकेला उत्ताम शब्द देह का विशेषण नहीं है क्योंकि यदि उत्ताम शरीर वाले अनपवर्त्य आयुवाले होते तो ब्रह्मदत्त चक्रवर्ति और वासदेव अर्द्धचक्रीकी अकाल मृत्यु न होती
(ख) चरमस्य देहस्योत्कृष्टत्वप्रदर्शनार्थमुत्तम-ग्रहण नार्थान्तरविशेषोऽस्ति ॥ सर्वार्थसिद्धि पृष्ठ१६३ तस्य (=चरमस्य-देहस्य) उत्तमत्वप्रतिपादनर्थत्वात् (उत्तमग्रहणम्) राजवार्तिकम्पृष्ठ०१११वार्तिक ६ देखो	"इहां चरमदेहका उत्तम विशेषणहै सो उत्कृष्टपनाके अर्थि है, अन्य अर्थ नाही है" जय०वच०२६५ अन्तके शरीरकी श्रेष्ठताके प्रतिपादनके लिये उत्तम (शब्दकासूत्रमें) ग्रहण है अन्यअर्थविशेषके लिये नहीहे, "उस चरमदेहके उत्तम पणांको प्रतिपादनार्थ पनाहैयातें", सूत्रमें उत्तमशब्दकाग्रहणहै अर्थात् वो चरम देह ही सबमें उत्तिम है सो अर्थ कहिये है ॥ भावार्थ चरम देह समस्त देहोंमें उत्तम देह है इस तात्पर्यके प्रगट करनेके लिये सूत्रमें उत्तम शब्दका ग्रहणकियागयाहै ॥
उत्तमग्रहण चरमस्य-अनुत्तमत्व-व्युदासार्थम् (तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकम् पृष्ठ ३४३)	=(सूत्रमें) उत्तम(शब्द)का ग्रहण है सो चरमीकें अश्रेष्ठताके निवृत्तिके लिये है अर्थात् जो चरम-शरीरीहोगा वह उत्तम शरीरका धारी अवश्यहोगा, चरमीकें वा तद्भव मोक्ष गामीकें उत्तम शरीर अवश्य होगा भावार्थ चरम देहधारीके अनुत्तमपना होताही नहीं इसलिये उत्तम शब्द सूत्रमें लाये हैं। इसलिये यहा 'उत्ताम' शब्द विशेषणहै 'चरमदेह' विशेष्यहै।
(ग) चरमविशेषणमुत्तमस्याचरमस्य निवृत्त्यर्थ चरमविशेषणम्-उत्तमस्य-अचरमस्य-निवृत्ति-अर्थम्। तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिकम् पृष्ठ ३४३	चरम विशेषण उत्तम शब्दका है सो अचरम के निवारण के लिये है अर्थात् उत्तम देहधारी हो =और चरम देहधारी न हो तो वह अनपवर्त्य आयुवाला न होगा जैसे सुभोमचक्रवर्ति और अन्तका ब्रह्मदत्त चक्रवर्ति और अन्तके अर्द्धचक्री वासदेव (कृष्णजी) तथा इनके समान और भी जिनका उत्ताम शरीर तो था परतु चरम शरीर नथा उनकी बाह्य कारणोंसे अकाल मृत्यु हुई आयुका अपवर्तन होगया ॥ यहा 'चरम' शब्द विशेषणहै 'उत्ताम' शब्द विशेष्य है
(घ) अन्त्यचक्रधरवासुदेवादीनामायुषोऽपवर्तदर्शनादव्याप्ति (तत्त्वार्थराजवार्तिकम् सूत्र५३ वार्तिक, ६ पृष्ठ १११)	('उत्तम देहधारी अनपवर्त्य आयुवाले होते हैं' इसपर प्रश्न करताहै कि यह ब्रह्मदत्त अंतिम चक्रवर्ति और कृष्ण अर्द्धचक्रवर्ति सुभोमचक्रवर्तिइत्यादिमें नहीं घटताहै नहीं लागूहोताहै क्योंकि तीनों उत्तम देहके धारी होने पर भी अकाल मृत्युको प्राप्तहुये उत्तरमें कहते हैं कि
नवा चरमशब्दस्योत्तमविशेषणत्वात् ॥७॥ (देखो तत्त्वार्थराजवार्तिकम् सूत्र ५३, वार्तिक ७ पृष्ठ१११)	=यह दोष नहीं क्योंकि चरम शब्दका उत्ताम शब्द विशेषण है। इसलिये जो चरम और उत्ताम देहका धारक होगा वही अनपवर्त्य आयुवाला हो सकताहै किंतु जो केवल उत्ताम देहका धारक होगा वह अनपवर्त्य आयुवाला नहीं हो सकता सुभौमचक्रवर्ति, ब्रह्मदत्त-चक्रवर्ति कृष्णजी आदि उत्ताम देहके धारी थे चरम शरीरी नहीं थे इससे तीनोंकी अकालमृत्यु हुई ॥

प्रथम इसके कि हम इस वातपर विचार करें कि सूत्रका यथार्थ पाठ क्या है विद्वद्वर्य प० भूदरदासजीने इससूत्रका अर्थ अपने रचित 'चर्चा
समाधान में 'कियाहैउसपर कुछ समालोचना करें।शब्दश उनका लेख उसप्रकार है कि"औपपादिक चरमोत्तमदेहा असख्येयवर्षायुपोऽनपवर्त्यायुप.'
अर्थ-एते अनपवर्त्यायुषा भवन्ति । इतने अनपवर्त्यायुवाले जानना । जिनकी आयुका अपवर्तन कहिये फेरफार न होय समय समयजो पूरी होइ ।
विष शस्त्रादिके योगकरि उपक्रमसौ पूरी न होइ ते अनपवर्त्यायुवाले जानना । ते कौन हैं? औपपादिक चरमोत्तमदेहा असख्येय वर्षायुपः-औपपादिक
कहिये देव नारकी चरमोत्तमदेह कहिये तीर्थंकर असख्येयवर्षायुप कहिये भोग भूमिके तथा कुभोगभूमिके जीव। भावार्थ चरमोत्तमदेहवाले तीर्थंकर
यातें कहे कि चरमदेहवाले गुरदत्त पाडवादिक उपसर्गकरि मुक्त हुये। उत्तमदेहवाले सुभौमचक्री तथा ब्रह्मदत्तचक्रीकी अकाल मृत्यु हुई। जरत्कुमारके
वाणसू कृष्णजी की अपमृत्यु हुई । इत्यादि सकल चक्री अर्धचक्रीनिके भी अनपवर्त्यायुका नियम नाही। यह कथन न्याय कुमुद चन्द्रोदय नाम शास्त्रहै
तथा राजवार्तिकालकार शास्त्र है तहां कहा है। यातें चरमोत्तमदेह तीर्थकरकी ही है । इस सूत्रविषे यह सिद्धान्त हुआ - देव नारकी तीर्थंकर
भोगभूमिके जीव इनके विष शस्त्रादिक योग से आत्रफलके पाकवन् आयुकी उदीरणा न होइ । इन विना कर्मभूमिके मनुष्य तिर्यचनिविषे
होइ । जैसे प्रदीप तेलसे भरा होइ पवनके जोगसे बुझ जाय तैसे पूर्ण आयुकी स्थितिका च्छेद निमित्तान्तरसे होइ जाय" ॥ राजवार्तिकमें
यह लेख हमको नही मिला है ॥
'चरमोत्तमदेह' से तीर्थकर लिये गये हैं
उपर्युक्त लेखसे तथा हमसे अन्य अन्य विद्वानोंसे जो वार्तालाप हुआ उससे यह परिणाम अथवा फल निकलताहै कि'चरमदेह'के अर्थके सबधमें
विद्वानोके दो मत हैकुछ कहते हैं कि चरमदेह वाले तद्भव मोक्ष गामी तो होते हैं परतु उनकी अकाल मृत्यु हो जाती है जैसे अर्जुन,भीम,युधिष्ठर,
इससे इस सूत्रमें'उत्तम'विशेषण'चरम'का है कि'चरमोत्ताम'देह वालोंकी अकाल मृत्यु नही होतीहै,परतु'चरमदेह' वालो की अकाल मृत्यु हो जाती
है ॥ अन्य विद्वज्जनों का मत है कि जब सर्वार्थसिद्धि पृष्ठ १६४ और तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ १११ 'चरमदेहा इति वा पाठ.' 'चरमदेहा इति
केषाचित्पाठः' इस सूत्रके अन्य पाठ क्रमसे दिये हैं तव यदि हम 'चरमदेह' वालोंकी अकाल मृत्यु मानलें तो उपर्युक्त पाठ व्यर्थ हुये जाते हैं
और कहते हैं कि यदि चरमदेहवालोंकी अकाल मृत्यु मानें तो समुद्घात तो वह कर नहीं सकते, हैं क्योंकि एक साथ वा तत्कालही उपसर्ग
उपद्रव इत्यादिसे अकाल मृत्यु हो जाती है और यह नियम है कि 'आयुके छह मास शेष पीछे केवल ज्ञान उपजे तेते मुनी नियमथकी समुद्घात
करें हैं और जिनके छह मास पूर्व केवल ज्ञान उपजा हो ते समुद्घात करैं भी और नहीं भी करैं करनेको सर्वथा नियम नाही" और बलदेकर
कहते हैं कि जब समुद्घातनकरेंगे तो क्या विना वेदनीय, गोत्र और नामकर्मके खिपायेहुये मोक्षपदको प्राप्त होंगे (उत्तर में कहते हैं कि) उपसर्गमें
केवल ज्ञानके पश्चात् केवलि समुद्घातके लिये कोई वात वाधक नहीं जान पड़ती है ॥ उक्त समुद्घातमें आठ ही समय लगतेहैं जो बहुत थोड़ा,
काल है क्योकि "असख्यात समय एक आवली वखानी ज्ञानी सख्य आवली मिलें तें होत एक स्वांस है" ॥ यदि 'चरमदेहा इति वा पाठः
(='चरमोत्तमदेहा.'के स्थानमें चरमदेहा ऐसा पाठ विकल्पसेहै) भाष्यकारोंके मतमें न होता तो"प०भूदरदासजीका समाधान हृदयको बहुत चुवता
हुआ होता क्योंकि 'चरमदेहवालोंमें उक्ततीन पांडवोंकी उपसर्गसहनकर मोक्षहुई अकाल मृत्युहुई यद्यपि वे चरम शरीरीथे और उत्तमदेहधारीयोंमे
श्रीकृष्ण ब्रह्मदत्तचक्रवर्ति सुभोमचक्रवर्ति इत्यादिकी अकाल मृत्युहुई इससे न तो केवल चरमदेहवाले और न केवल उत्तमदेहधारी अनपवर्त्य आयु
वाले होसके है केवल वेही अनपवर्त्य आयुवाले होसकते है जिनमें दोनों गुणका (चरमदेहत्व और उत्तामदेहत्वका) समावेश हो ऐसे तीर्थंकर
और अन्य भी जीव तीर्थंकरोंके अतिरिक्त होसके है क्योंकर यदि तीर्थंकरोंसेही उमास्वामीका अभिप्राय होता तो सूत्र ऐसाहोता और साथही
लघु और स्पष्टता लिये हुये भी होजाता कि" औपपादिक तीर्थंकराऽसख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः" ॥ इसलिये यहांपर अव प्रश्नयह है कि तीनो

(चरमदेहाः, चरमोत्तमदेहाः, चरमदेहोत्तमपुरुषा')पाठों में से कौनसा पाठ उमास्वामी कृत है। वास्तवमें हम इस प्रश्नका उत्तर देनेमें असमर्थ हैं क्योंकि इसके ढूढनेके लिये हमारे पास न तो साधन ही हैं और न समय ही है परतु निम्न लिखित हेतुओंसे यह जान पड़ताहै कि दोनों आम्नायोंमें "चरमदेहाः"सव पाठोंसे उत्तम और सूत्रके वनानेकी विधिके अनुकूल है और यही पाठ उमास्वामी कृत होना चाहिये—क्योंकर
(च)'चरमदेहा'इस पाठ का हमारे यहां सर्वार्थसिद्धिवृत्ति, तत्त्वार्थराजवार्तिक, श्रुतसागरीटीका तथा जयचद्जीकृता वचनिकामें भी उल्लेख है और हम सिद्ध करचुके हैं कि"चरमदेहाः' का वही अर्थ है जो"चरमोत्तमदेहा"का श्वेताम्वर आम्नायकी नीनेकी टिप्पणीसे प्रतिभास होताहै कि उनके यहां भी यथार्थमें'चरमदेहाः' पाठ था नकि 'चरमदेहोत्तमपुरुषा " जव'चरमदेहा': का वही अर्थ है जो 'चरमोत्तमदेहा ' का तव आचार्य 'उत्तम'शब्दका प्रयोग निष्कारण क्यों करते ॥इस औपपातिक इत्यादि सूत्रमें(श्वेताम्वरीय टिप्पणी यहहैकि)"उत्तम पुरुषसे यहां तीर्थंकर चक्रवर्ती वलदेव, तथा वासुदेव आदिकका ग्रहण है। कोई कहते हैं कि सूत्रमें उत्तमपुरुषका ग्रहण नहीं है तो तीर्थंकरादिकका ग्रहण कैसे होगा ? इसपर कहते हैं कि चरमदेह ग्रहणसे तीर्थंकरादिकका ग्रहण होगा। क्योंकि चरमशरीरी उत्तमपुरुष अवश्य होते हैं और उत्तम पुरुषोंको चरमदेह प्राप्य है। इस हेतुसे उत्तम पुरुष ग्रहण अनार्ष है। दोनों प्रकारके भाष्य है। अनिन्दित होनेसे प्रथम उत्तम पुरुष ग्रहण किया और तीर्थंकरादि उसका विवर्णकिया और पुन उत्तर कालमें उत्तम पुरुषका ग्रहण किया, परन्तु निरुपक्रम सोपक्रम कथनसे यह सदेह भाष्यसे होता है, अतएव उसी भाष्यकारके श्रावक प्रज्ञप्तिमें उत्तम पुरुष ग्रहण किया है। यहा भी यही समझना चाहिये "
(छ)श्वेताम्वर और दिगम्वर सम्प्रदायोंका चरमदेहा'पाठ मिलता है,और"चरमोत्तमदेहाः"और"चरमदेहोत्तमपुरुषाः" पाठ मिलान नहीं करते ॥
(ज) 'उत्तम' शब्दके लानेसे अर्थमें वहुत कठिनता होजाती है और अभिप्राय या परिणाम कुछ भी नहीं निकलता क्योंकि कोई ( )'चरम उत्तम' शब्दोंको देहका विशेषण करते हैं, ( ) केई उत्तम शब्दको 'चरम देह'शब्दोंका विशेषण कहते हैं ( ) केई चरम शब्दको उत्तम शब्दका विशेषण वतलाते हैं ( ) केई उत्तम शब्दको चरम शब्दका विशेषण कहते हैं (देखो पृष्ठ १२८)इतनी कठिनाईयां उमास्वामी'उत्तम' शब्दलाकर क्योंउपजाते
(झ) असंख्येयसमायुष्काश्चरमोत्तममूर्त्तयः। देवाश्च नारकाश्चैषामपमृत्युर्न विद्यते॥ श्री अमृतचन्द्रसूरिकृत तत्त्वार्थसारकाश्लोक ॥ १३५ वां ॥
प० वशीधर शास्त्रीजीने उपर्युक्त श्लोकका अनुवाद करनेमें हमारी समतिके अनुकूलकि 'चरमदेह वाले' सव अनपवर्त्यआयुवाले होते हैं इस प्रकार अनुवाद किया है कि 'असख्यात वर्षके आयुवाले भोगभूमिज मनुष्य व तिर्यंच, कर्म भूमिके उसी जन्मसे मुक्त होनेवाले मनुष्य तथा, देव,नारकी,–इतने जीवोंकाजो आयु नियत हुआ हो उसका शस्त्रादि निमित्तों से अपघात नहीं हो सकता है। यद्यपि अन्तकृत केवली आदि कुछ ऐसे हुए हैं कि जिनका शरीर उपसर्गों से विदीर्ण किया गया था परन्तु उन्हें हम अनपवर्त्यायुवाले ही मानतेहै। सूत्रकारने तथा इस ग्रंथके कर्ताने भी उन चरमशरीरी जीवों के आयुको अनपवर्त्य लिखा है कि जो उत्तम हों। परन्तु उत्तमका अर्थ चरमशरीरी की केवल प्रशसा है। अधिक कुछ भी नियम नहीं समझना चाहिये मोक्षगामी जीव सव ही अनपवर्त्यायुवाले मानने चाहिये ॥ शेषजीवों का घात हो सकता है ॥ जो लोग उत्तमका अर्थ मोक्षगामियोंमेंसे त्रिषष्टिशलाकावाले अथवा कामदेवादि पदवी युक्त ऐसा करते हैं वह ठीक नहींहै क्योंकि "चरमांगधरावेतौ नानयोः काचन क्षति "यह वचन श्री जिनसेनाचार्यके महापुराण पर्व ३६ में लिखाहै। इसका अर्थ यह है कि भरत और वाहुवली ये दोनो मोक्षगामी जीव है। इनका कुछ नहीं विगड सकता है। केवल चरमशरीरी होनेका कारण दिखाकर अक्षय वतानेसे भी यही वात सिद्ध होती है कि यावत् चरमशरीरी जीव कीअनपवर्त्यायुही होनी चाहिये। विष,वेदना, रक्तक्षय,भय,शस्त्रघात,श्वासावरोध,तथा आहार निषेध ये असमय मरनेके कारण हैं (प०)वशीधर अनुवादित तत्त्वार्थसार मुद्रित पृष्ठ ३२ ९३ ॥'उत्तम' शब्द के सबन्ध में विद्वज्जन विशेष खोज करके कृपया मुझे सुचित करें। औरभी

औपपादिका व्याख्याताः देवनारका इति ॥ चरमशब्दोऽन्त्यवाची । उत्तम उत्कृष्टः । चरम उत्तमो देहो येषां ते चरमोत्तमदेहाः। विपरीतसंसारास्तज्जन्मनिर्वाणार्हा इत्यर्थः॥ असंख्येयमतीतसंख्यानमुपमाप्रमाणेन पल्यादिना गम्यम्

वृत्त्यनुवादः	
औपपादिकाः $\frac{1}{3}$ व्याख्याताः $\frac{1}{3}$ देव-नारकाः $\frac{1}{3}$ इति*	=उपपाद जन्मसे उत्पन्नहोनेवाले(४६वांसूत्रमें)कहेगये हैं (वे) देव नारकी हैं
	=(सूत्रमें)चरम शब्द अन्तका(=अन्त्य) बोधक है उत्तम है सो उत्कृष्ट है, श्रेष्ठ है
चरमशब्दः $\frac{1}{1}$ अन्त्यवाची $\frac{1}{1}$, उत्तमः $\frac{1}{1}$ उत्कृष्टः $\frac{1}{1}$	=अन्तिम श्रेष्ठ है शरीर जिनका वे चरमोत्तम देहवाले हैं अर्थात् चरमोत्तम है
चरमः $\frac{1}{1}$ उत्तमः $\frac{1}{1}$ देहः $\frac{1}{1}$ येषाम् $\frac{6}{3}$ ते चरमोत्तम-देहाः $\frac{1}{3}$	शरीर जिनका वे चरमोत्तम देहके धारी हैं।देहके विशेषण'चरमउत्तम'शब्द हैं॥
	=छूटनेवाला है संसार जिनका उसीजन्ममेंवाभवमें मोक्षहोने योग्य हैं(=अर्हाः $\frac{1}{3}$)जे
विपरीत-संसाराः $\frac{1}{3}$ तत्-जन्म-निर्वाण-अर्हाः $\frac{1}{3}$	=ऐसा अभिप्राय है । गणनासे रहित है सो असंख्यात है
इति*अर्थः $\frac{1}{1}$;अतीत-संख्यानम् $\frac{1}{1}$॥असंख्येयम् $\frac{1}{1}$॥	=उपमाप्रमाण(=उत्कृष्टप्रमाणित)पल्यआदिसेअर्थात्अद्धापल्यादिकसेजानीजाय है
उपमा-प्रमाणेन $\frac{3}{1}$॥ पल्यादिना $\frac{3}{1}$॥ गम्यम् $\frac{1}{1}$॥	

(ज)जिसमे थोड़े अक्षर हो जो सदेहरहित अर्थवाला हो सारगर्भित और वृथा शब्दसे रहित हो उसको सूत्र कहतेहैंजैसाकि निम्न लिखित श्लोकसे विदित है और वैयाकरणको यदि सूत्रके रचनेमें आधा वा एक मात्राका भी लाभ होजावै तो उसको पुत्रके जन्म सदृश हर्ष होता है अब जैसाकि निम्न सूत्र उल्लेख करता है जितने उपर्युक्त गुण सूत्रमे होना चाहिये वे समस्त सूक्ष्मदृष्टिसे देखनेपर "चरमदेहा" पाठमे गर्भित हैं क्योंकि 'उत्तम' शब्दके नलानेसे सूत्रका प्रथम गुण"थोड़े अक्षर" की निष्पत्ति होजाती है ॥ इसी शब्दको पाठमे न लानेसे सूत्रका अर्थ सर्वथा सदेहरहित, सीधा साधा,स्पष्ट और सरल होजाता हैअर्थ करनेमे दूसरोंको समझानेमें कुछ भी सदेह नहीं रहता । एसें 'चरमदेहाः'पाठ सूत्रका द्वितीय गुण कि सदेहरहित अर्थ वाला हो पूर्ण करता है । उत्तम शब्दके निकालदेनेसे सार-सत गर्भित सूत्ररहजाता है इसप्रकार सूत्रका तीसरा गुण पूर्ण हुआ जब उत्तमशब्द पाठसे पृथक् करदिया तब व्यर्थ और निष्प्रयोजनीय भाग निकल जाताहै और सूत्रके चौथेगुणकी कि सूत्रव्यर्थ शब्दोंसे रहितहो पूर्णता हो जाती है ॥

श्लोक ॥ १ ॥ अल्पाक्षरमसदिग्ध	(=अल्पअक्षरम् $\frac{1}{1}$॥ असदिग्धम् $\frac{1}{1}$॥)	=थोड़े अक्षरहों- सदेहरहित (अर्थयुक्त) हों
सारवाद्विश्वतो मुख	(=सारवान् $\frac{1}{1}$ विश्वतः*मुखम् $\frac{1}{1}$॥)	=सत वा सार गर्भितहो सर्वतः(=विश्वतः)श्रेष्ठ (=मुख्य) हो
अस्तोभमनवद्य च	(=अ-स्तोभ $\frac{1}{1}$॥ अनवद्यम् $\frac{1}{1}$॥ च*)	=निरर्थक शब्द(=स्तोभ)रहित [=अ] और[=च]दूषण वर्जितहो
सूत्रं सूत्रविदो विदुः	[=सूत्रं $\frac{2}{1}$॥ सूत्रविदः $\frac{1}{3}$। विदुःT]	=सूत्रज्ञाता [उसको] सूत्रकहते हैं ॥ १ ॥
श्लोक ॥ २ ॥ एको वाऽर्द्धमात्रायाः	[=एकः $\frac{1}{1}$ वा अर्द्धमात्रायाः $\frac{6}{1}$॥]	=एक अथवा आधी मात्राका
सूत्रस्य कृतिलाघवे	[=सूत्रस्य $\frac{6}{1}$॥कृति $\frac{6}{1}$॥लाघवे $\frac{9}{1}$॥]	=सूत्रकी रचनामें लाभहोनेपर वा न्यूनहोनेपर
पुत्रजन्मोत्समस्तुल्यो	[=पुत्र-जन्म-उत्सव $\frac{1}{1}$। तुल्यः $\frac{1}{1}$]	=पुत्रके जन्मके हर्षसमान वा पुत्रके जन्ममें हर्षहोनेके सदृश
वैयाकरणो मन्यते	[=वैयाकरणः $\frac{1}{1}$। मन्यते T]	=व्याकरणज्ञाता वा व्याकरण को जाननेवाला मानता है ॥ २ ॥

आयुर्येषां त इमे असंख्येयवर्षायुषस्तिर्यङ्मनुष्या उत्तरकुर्वादिषु प्रसूताः ॥ औपपादिकाश्च चरमोत्तमदेहाश्च असंख्येयवर्षायुषश्च औपपादिकचरमोत्तमदेहासंख्येयवर्षायुषः॥ बाह्यस्योपघातनिमित्तस्य विषशस्त्रादेः सति सन्निधाने ह्रस्वं भवतीत्यपवर्त्यम्। अपवर्त्यमायुर्येषां ते इमे अपवर्त्यायुषः । न अपवर्त्यायुषःअनपवर्त्यायुषः॥ न ह्येषामौपपादिकादीनां बाह्यनिमित्तवशादायुरपवर्त्यते इत्ययं नियमः। इतरेषामनियमः॥ चरमस्य देहस्योत्कृष्टत्वप्रदर्शनार्थमुत्तमग्रहणं नार्थान्तरविशेषोऽस्ति ॥

आयुः। येषाम्। ते। इमे। असंख्येय–वर्ष–आयुषः। =आयु जिनकी ते ये असंख्यात वर्षकी आयुवाले

तिर्यङ्–मनुष्याः। उत्तर–कुरु–आदिषु। प्रसूताः। =तिर्यंच और मनुष्य उत्तर कुरु आदि (भोगभूमि)विषैं उत्पन्न होते हैं (=प्रसूताः)

च। औपपादिकाः। च। चरमोत्तमदेहाः। च। असंख्येय- =और औपपादिक और चरमोत्तमदेहाः और असंख्येय

वर्षायुषः। औपपादिकचरमोत्तमदेहा- =वर्षायुष है। सो (सूत्रमें) औपपादिकचरमोत्तमदेह-

असंख्येयवर्षायुषः। बाह्यस्य। उपघात- =असंख्येयवर्षायुषः(इनका ऐसा द्वन्द्वसमास) हुआ। बाहिरके अभिघात (घातक)

निमित्तस्य। विषशस्त्रादेः। सति। सन्निधाने। ह्रस्वम्। =निमित्तजे माहुर और शस्त्रादिकके वशमेंहोनेपर घटजाती

भवति। इति। अपवर्त्यम्। अपवर्त्यम्। आयुः- =है। ऐसा अपवर्त्य है। न्यून होजाती है आयु

येषां। ते। इमे। अपवर्त्य–आयुषः। =जिनकी ते इतने अपवर्त्य आयुवाले हैं

न। अपवर्ति-आयुषः। अन्-अपवर्तिआयुषः। =न्यून आयुके धारी नहीं हैं सो अनपवर्त्य आयुवाले हैं

न। हि। येषाम्। औपपादिक-आदीनाम्। =निश्चयसे(=हि)नहीं इन औपपादिक,चरमोत्तमदेहधारी,भोगभूमियोंकी,कुभोगभूमियोंकी

बाह्य-निमित्त-वशात्। आयुः। अपवर्त्यते। इति। =बहिरंग कारणोंके वशसे आयु न्यून होती है ऐसा

अयम्। नियमः। इतरेषाम्। अनियमः। =यह नियमहै। अन्य(जीवोंकी आयु)का नियम नहींहैअर्थात् देवनारकी,चरमोत्तमदेहधारी भोगभूमियोंके,कुभोगभूमियोंके अतिरिक्त अन्य जीवोंकीसमयपर मृत्युहो वा अकालमृत्युहोजावै कोई नियम नहींहै॥

चरमस्य। देहस्य। उत्कृष्टत्व–प्रदर्शन–अर्थम्। =अन्तके शरीरकी श्रेष्ठताके प्रतिपादनके लिये

उत्तम-ग्रहणम्। न। अर्थान्तर-विशेषः। अस्ति। =उत्तम(शब्द)का(इससूत्रमें)उपादान है,अन्य(किसी) विशेष प्रयोजनके लिये नहीं है

चरमदेहा इति वा पाठः ॥ २ ॥

जीव(२)स्वभावलक्षणसाधनाविषयस्वरू(२)पभेदाश्च

=अथवा('चरमोत्तमदेहाः'केस्थानमें)'चरमदेहाः'ऐसा(भीसूत्रका अन्य प्रकारका)पाठ है

चरम-देहाः१/३ इति*वा*पाठः१/१	=चेतनके निजभाव वा स्वतत्वभाव (सूत्र१) चेतनके निजभावकेभेद (दूसरे से सातवां सूत्र तक)
जीवस्वभावः१/१ जीवस्वभावभेदाः१/३	=जीवका लक्षण अर्थात् वह चिन्ह जो जीवका भेदज्ञान अन्य पदार्थोंसे करासके(देखो आठवां सूत्र)
जीवलक्षणम् १/१	=जीवका उपयोगरूप लक्षणके प्रभेद अर्थात् ज्ञानके आठ भेद और दर्शनके चार भेद(देखो सूत्र ९)
जीवलक्षणभेदाः१/३	=जीवोंकी मर्यादा अथवा प्रमाण अर्थात् जीवोंकी संसाररूप और मोक्षरूप मर्यादा करना(देखोसूत्र१०)
जीवसाधनम् १/१	=जीवके साधन वा उपकरणकेभेद अर्थात् दो मर्यादा जो ऊपर कहीगई हैं तिनके भेद
जीवसाधनभेदाः१/३	(देखो सूत्र ११, २४, १२, १३, १४, १५, १६, १७, १८,१९, २२, २३)
	=जीव (की इन्द्रियों) के विषय (देखो सूत्र २० और २१)
जीवविषयः१/१	=जीव(की इन्द्रियों)के विषयभेद अर्थात्(।) शीत,उष्ण;रूक्ष, सचिक्कन; कठोर, कोमल; हलका, भारी;
जीव-विषय-भेदाः१/३	ये स्पर्शविषयके आठ भेद हैं। (॥)तिक्त,कटु,कषायला, खट्टा और मीठा ये पांच रस विषयकेभेद हैं (॥।)सुगंध,दुर्गंध दो गंधविषयके भेद हैं(।v)स्वेत,पीत,नील,अरुण,और कृष्ण वर्णविषयके पांच भेद हैं (v)अच्छी-बुरी-प्रिय-अप्रिय इत्यादिध्वनिऔरनादादिकयेशब्दविषयकेभेद हैं येसबसूत्र२०,२१मेंगर्भित हैं
जीवस्वरूप(२)१/१ च*जीवस्वरूप(२)भेदाः१/३	=चेतनके निजभाव वा स्वतत्वभाव(सूत्र१)और(=च)चेतनके निजभावके भेद (दूसरेसे सातवां सूत्र तक)

(१) "जीवस्वभावलक्षणसाधनविषयस्वरूपभेदाश्च गतिजन्मयोनिदेहलिङ्गानपवर्तितायुष्कभेदाश्चाध्यायेऽस्मिन्निरूपिता भवन्ति इति सम्बन्धः" ये दोनो वाक्य कठिन और गभीररूपमें हैं इससे इनके पृथक् पृथक् पदच्छेद करके अर्थ किये गये हैं ॥ (२) हमारी समझमें स्वरूप'शब्द इस वाक्यमें व्यर्थ और अधिक भूलसे छपगयाहै क्योंकि "स्वरूप च स्वभावश्च निसर्गश्चाथ वेपथु" अमरकोश वर्ग ८ श्लोक ३८ वां के प्रथमपादसे प्रगट है कि स्वभाव, स्वरूप और निसर्ग तीनों शब्द समानार्थक है और वेपथु' का अर्थ थरथराना वा कापनेका है। हस्त लिखित प्रतिमें भी यही पाठहै,उक्त 'जीवस्वरूप,जीवस्वरूपभेद'के वेही अर्थहैं जो इस जीवस्वभाव और जीवस्वभावभेद'के अर्थहैं जैसाकिअनुवादसे प्रगट है।यदि पूज्यपादस्वामी ने ही ऐसी रचना की है तो जब'स्वभाव'शब्द आरम्भमेंही ग्रहण कियाहै तो फिर स्वरूप शब्द क्यों लाये और किस अर्थ में लाये?॥पाठक निर्णयकरें

गतिजन्मयोनिदेहलिङ्गानपवर्तितायुष्कभेदाश्चाध्यायेऽस्मिन्निरूपिता भवन्तीति सम्बन्धः॥इति तत्त्वार्थवृत्तौ सर्वार्थसिद्धि-सञ्ज्ञिकायां द्वितीयोऽध्यायः॥

च*गतिभेदाः [1/3]	=(=च) और (जीव पुद्गलके) गमनके भेद (२५ से ३० सूत्र पर्यंत)
जन्मभेदाः [1/3]	=(जीवके) नया शरीर धारण करनेके भेद (३१, ३३, ३४, ३५ सूत्र)
योनिभेदाः [1/3] देहभेदाः [1/3]	=(जीवके) उत्पत्तिके स्थान(नौभेद)बत्तीसवांसूत्र । शरीरोंकेभेद (३६से ४९सूत्र पर्यंत)
लिङ्गभेदाः [1/3]	=लिङ्ग वा वेदोंके भेद (५०, ५१, ५२, सूत्र)
अनपवर्तित-आयुष्कभेदाः [1/3]	=नहीं घटनेयोग्य वा न्यून होनेयोग्य आयुवालोंके भेद(देखो सूत्र५३)
अध्याये[7/1]अस्मिन्[7/1]निरूपिताः[1/3]	=इस (=अस्मिन्) (दूसरे) अध्यायमें वर्णित वा कहेगये
भवन्ति T इति*सम्बन्धः [1/1]	=हैं (=भवन्ति) ऐसा संबंध अथवा संयोग है अर्थात् इस दूसरे अध्यायमें उपर्युक्त वस्तुओं वा विषयोंका कथन है॥

इतितत्त्वार्थ-वृत्तौ[7/1] =इसप्रकारतत्त्वोंकेस्वरूप(=अर्थ)विवरणमें[=वृत्तौ]

सर्वार्थसिद्धि- =सर्वार्थसिद्धि

संज्ञिकायाम्[7/1] =नामक(ग्रन्थ)में

द्वितीयः[1/1] अध्यायः[1/1] =दूसरा अध्याय(समाप्त)हुआ॥ * मंगलहो *

॥ अथ तृतीयोऽध्यायः ॥

भवप्रत्ययोऽवधिर्देवनारकाणामित्येवमादिषु नारकाः श्रुतास्ततः पृच्छति के ते नारका इति ।
तत्प्रतिपादनार्थं तदधिकरणनिर्देशः क्रियते ॥

॥ रत्नशर्करावालुकापङ्कधूमतमोमहातमः प्रभा भूमयो घनाम्बुवाताकाशप्रतिष्ठाः सप्ताधोऽधः ॥ १ ॥

अथ * तृतीयः[3] अध्यायः[1]	=(मोक्ष शास्त्र वा तत्वार्थ सूत्र का) तीसरा अध्याय प्रारम्भ(=अथ) है
भवप्रत्ययः[1] अवधिः[1] देवनारकाणां[6] इति एवम्	=जन्मनिमित्तक अवधिज्ञान देव और नारकियों के होता है ऐसेही (=एवम्)
आदिषु[7] नारकाः[1] श्रुताः[1],	=प्रथम (अध्याय १ सूत्र २१, अध्याय २ सूत्र ३१,३४,४६,५०,५३) में नारकी सुनेगये है
ततः * पृच्छति[T] के[1] ते[1] नारका[1] इति * तत्-	=उस कारण से (=ततः) पूछता है कि वे नारकी कौन हैं। उन (नारकियों) के
प्रतिपादन-अर्थं[1]॥ तत्-अधिकरण-निर्देशः[1] क्रियते[T]	=जनावने वा बतला देने के लिये, उनके आधार(=निवासस्थान) का कथन किया जाता है

सूत्रम्—रत्नशर्करावालुकापङ्कधूमतमोमहातमः प्रभा भूमयो घनाम्बुवाताकाश प्रतिष्ठाः सप्ताधोऽधः ।

पदच्छेदः—रत्नप्रभा—शर्कराप्रभा—वालुकाप्रभा—पङ्कप्रभा—धूमप्रभा—तमःप्रभा—महातमःप्रभा—भूमयः घनवात—अम्बुवात—(तनु)वात—आकाश—प्रतिष्ठाः(भवन्ति) सप्त अधस् अधस् ॥ १॥

सूत्रार्थः—रत्नप्रभा-शर्कराप्रभा-वालुकाप्रभा	=रत्न के समान दीप्ति, शर्करा के सदृश चमक, वालू के सम झलक,
पङ्कप्रभा धूमप्रभा-तमः प्रभा-	=कीचड़ के सदृश झलक, धूमवत् प्रभा, अंधकार के समान आकृति,
महातम-प्रभाः[1]॥ भूमयः[1]॥	=महा अंधकार के समान झलक (यथा गुण तथा नाम की) भूमियें (नारकस्थान)
	(जिनके रूढिनाम धम्मा, वंशा, मेघा, अंजना, अरिष्टा, मघवी और पाघवी है)

(१) सर्वार्थसिद्धिमें 'पृथुतरा' अन्त में अधिक है जिसका अर्थ हुआ अतिच्छत्रवत् अधिक २ विशाल होती गई है अर्थात् ऊपर ऊपर छोटी छोटी तनी

रत्नं च शर्करा च वालुका च पङ्कश्च धूमश्च तमश्च महातमश्च रत्नशर्करावालुकापङ्कधूम-तमोमहातमांसि। प्रभाशब्दः प्रत्येकं परिसमाप्यते।

घनाम्बुवात-(१) = घन (= स्थूल) उदधि (= अम्बु, जल) वात (= पवन) अर्थात् घनोदधि वातवलय।
घनवात— = घन (सघन, स्थूल) वात (= पवन, बयार) अर्थात् घनवतवलय।
(तनु) वात–आकाश–प्रतिष्ठाः १। भवन्ति T = तनुपवन वा सूक्ष्मवायु अर्थात् सूक्ष्मवातवलय, और आकाश के आधार वा आश्रय हैं।

भावार्थ ये भूमियें घनोदधिवातवलय जो सघन पवन और जलमिश्रित है, आधार है, घनोदधिवातवलय घनवातवलय के जो स्थूल–सघन वायुका है आश्रय है, घनवातवलय तनुवातवलय के जो सूक्ष्मवायुका है आधार है और तनुवातवलय आकाश के आधार है और आकाश अपने आधार है और स्वयं आधेय है उसका कोई अन्य आधार नहीं इसलिये वह अपने आप आधार है।

सप्त १॥ अधः * अधः * = (ये भूमियें सब) सात (ही) हैं (और क्रम से एक दूसरे के) नीचे नीचे ही है।
वृत्त्यनुवादः—रत्नं १॥। च शर्करा १॥ च वालुका १॥ च = और रत्न और शर्करा (कंकरीली) तथा वालुका
पङ्कः १। च धूमः १। च तमः १॥। च महातमः १॥। च = बहुरि पंक अर धूम और तम तथा महातम (शब्द आपस में)
रत्न–शर्करा–वालुका–पङ्क–धूम–तमः–महातमांसि १॥। ; = रत्नशर्करावालुकापंकधूमतमोमहातमांसि रूप में इतरेइतर योगद्वंद समास हैं।
प्रभाशब्दः १। प्रत्येकं १॥। परिसमाप्यते T = प्रभा शब्द पृथक् पृथक् रत्न, शर्करा, वालुका इत्यादि पर जोड़ा जाता है।

हुई छतरी उसके नीचे की विशाल विशाल छतरी के सम है। तत्त्वार्थ राजवार्तिक पृष्ठ ११३ वार्तिक ११ के अनुकूल हमारे यहा भी किसी किसी आचार्य के मत में "पृथुतरा." पाठ भी है अत दोनों आम्नायों में पाठ और अर्थ एकसा हुआ॥ परन्तु वार्तिकार का मत है कि रत्नप्रभा भूमिमें तरप् प्रत्यय का अर्थ लागू नहीं होसकता उसका पृथुतर नाम नहीं बन सकता क्योंकि उससे अन्य कोई नरक भूमि विस्तार वेदना वा आयु की अपेक्षा न्यून हो तब तो रत्न प्रभा से पृथुतर कहा जासकता है किन्तु सो तो है नहीं इसलिये "पृथुतरा" शब्द के उल्लेख की कोई आवश्यकता नहीं।

(१) वातश्च वातश्च वातौ यह यहां पर एकशेष समास माना है। एकशेष समास का यह नियम है कि समान अनेक शब्दों में एक ही शब्द अवशिष्ट रह जाता है अन्य का लोप हो जाता है इसलिये यहां पर एक वात शब्द का लोप होगया है इसलिये घनाम्बुवात शब्द से यहां पर घनोदधि वात और घनवात समझना चाहिये तथा घन शब्द सामान्य है वह तनुरूप विशेष की आकांक्षा रखता है इसलिये वात शब्द से यहां तनुवात का भी ग्रहण है इसप्रकार घनाम्बुवात शब्द घनोदधिवात, घनवात और तनुवात इन तीन वातवलयों का द्योतक है।

साहचर्यात्ताच्छब्द्यम् ॥ चित्रादिरत्नप्रभासहचरिता भूमिः रत्नप्रभा, शर्कराप्रभासहचरिता भूमिः शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभासहचरिता भूमिः वालुकाप्रभा, पङ्कप्रभासहचरिता भूमिःपंकप्रभा,धूमप्रभासहचरिता भूमिः धूमप्रभा, तमःप्रभासहचरिता भूमिः तमःप्रभा, महातमः प्रभासहचरिता भूमिः महातमःप्रभा इति ॥ एताः सञ्ज्ञा अनेनोपायेन व्युत्पाद्यन्ते॥ भूमिग्रहणमधिकरणविशेषप्रतिपत्त्यर्थम् ॥ यथा स्वर्गपटलानि भूमिमनाश्रित्य व्यवस्थितानि, न तथानारकावासाः। किं तर्हि, भूमिमाश्रिता इति॥

साहचर्यात् ५/१॥	=(रत्न–शर्करा–वालुका आदिकी प्रभा के) सदृश होनेसे वा सहचारी होने से
तात्–शब्द्यम् १/१॥ ;	= उन (भूमियों) के (रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा आदि) नाम धरेगये हैं
चित्र–आदि–रत्नप्रभा–सहचरिता १/१॥ भूमिः १/१॥ रत्नप्रभा१/१॥	= चित्रादिक रत्नों की दीप्ति सदृश पृथिवी सो रत्नप्रभा है।
शर्करा–प्रभा–सहचरिता १/१॥ भूमिः १/१॥ शर्कराप्रभा १/१॥	= कंकरकी दीप्ति सदृश पृथिवी सो शर्कराप्रभा है।
वालुकाप्रभा–सहचरिता १/१॥ भूमिः १/१॥ वालुकाप्रभा १/१॥	= वालुका की चमक सम पृथिवी सो वालुका प्रभा है।
पङ्कप्रभा १/१॥ सहचरिता १/१॥ भूमिः १/१॥ पङ्कप्रभा१/१॥	= कीचड़ अथवा कर्दम की झलक सम पृथिवी सो पंकप्रभा है।
धूमप्रभा १/१॥ सहचरिता १/१॥ भूमिः १/१॥ धूमप्रभा१/१॥	= धूंवां की दीप्ति तुल्य पृथिवी स्रो धूमप्रभा है।
तमःप्रभा १/१॥ सहचरिता १/१॥ भूमिः १/१। तमःप्रभा १/१॥	= अन्धकार की झलक सम पृथिवी सो तमःप्रभा है।
महातमःप्रभा १/१॥ सहचरिता १/१। भूमिः १/१॥	= अत्यन्त अन्धकार की प्रभा तुल्य पृथिवी
महातमः प्रभा १/१॥ इति T एताः १/३॥ संज्ञाः १/३॥ अनेन ३/१।	= सो महातमः प्रभा है। (ये रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा आदि) नाम। इस (= अनेन)
उपायेन ३/१। व्युत्पाद्यन्ते T	= साधनकरि निरुक्ति कियेगयेहैं अर्थात् व्याकरणकी रीतिसे सिद्ध कियेगयेहैं।
भूमि–ग्रहणं १/१॥ अधिकरण–विशेष–प्रतिपत्ति–अर्थम् १/१॥	= (इस सूत्र में) भूमि (शब्द) का आदान आधार विशेषके जतलाने के लिये है।
यथा स्वर्ग पटलानि १/३॥ भूमिम् २/१॥ अनाश्रित्य॥व्यवस्थितानि १/३॥	= जैसे स्वर्गपटल भूमि को आधार न कर के पृथक् २ व्यवस्थित बाठहरे हुएहैं
न* तथा * नारक–आवासाः १/३।	= तैसें नारकियोंके वासस्थान नहीं हैं अर्थात् उनके वासस्थान भूमिके आधार हैं
किम् * तर्हि * भूमिम् २/१॥ आश्रिताः १/३। इति *	= तो (= तर्हि) भूमिको क्या आधार–अधिकरण है अर्थात् किसपर तिष्ठी है

तासां भूमीनामालम्बननिर्ज्ञानार्थं घनाम्बुवातादिग्रहणं क्रियते ॥ घनाम्बु च वातश्च आकाशं च घनाम्बुवाताकाशानि । तानि प्रतिष्ठा आश्रयो यासां ता घनाम्बुवाताकाशप्रतिष्ठाः ॥ ❀ घनं च घनो मन्दो महान् आयतः इत्यर्थः । अम्बु च जलं उदकमित्यर्थः । वातशब्दोऽन्त्यदीपकः । ततः एवं सम्बन्धनीयः । घनो घनवातः ।

तासां ६।। भूमीनां ६।। अवलम्बन–निर्ज्ञान–अर्थम् १।।।	=तिन भूमियों के अवलम्बन के निर्णय के लिये अर्थात् जो भूमि नरकोंका अवलम्बन बतलाई गई हैं उन का अवलम्बन क्या है। यह प्रगट करने के लिये
घन–अम्बु–वात आदि ग्रहणं १।।। क्रियते T	=(सूत्र में) घन–अम्बु–वातादि (वाक्य) का आदान किया गया है।
घन– अम्बु, १ ।।। च * वातः १। च * आकाशं १ च *	=वहुरि घन–अम्बु(=महान् उदक,और वात और आकाश शब्दोंका द्वंद समास
घनअम्बुवातआकाशानि १।।। ; तानि १।।।	=घनाम्बु–वात–आकाशानि है। ते (घनाम्बुवात–आकाश)
प्रतिष्ठाः १।। आश्रयः १। यासां ६।। ताः १।। घनाम्बु-	=आधार वा आश्रय जिन (भूमियों) को है ते घनाम्बुवाताकाश
वाताकाशप्रतिष्ठाः १।।	=प्रतिष्ठा(कहलाती)हैं अर्थात् सात नरकोंकी भूमियें महान्‌जलपवनआकाशकेआश्रयहैं
घनं* १।।। च * घनः १। मन्दः १। महान् १। आयतः १।	=वहुरि घन है सो गाढ़ा(=घन) मोटा(=मन्द) वड़ा (महान्) लम्बाचौडा आयत है
इति–अर्थः १। ;	=ऐसा आशय है, अर्थात् घन, मन्द, महान् और आयत समानार्थकवाची शब्द हैं ॥
अम्बु १।।। च * जलं १।।। उदकम् १।।। इति* अर्थः १।	=और अम्बु है सो पानी, नीर ऐसा अभिप्राय है(अम्बु–जल–उदक एकार्थी है)
वात–शब्दः १। अन्त्य–दीपकः १।	=(सूत्र में) वात शब्द (घन–अम्बु के) अन्त का प्रकाशक है अर्थात् घन और अम्बु प्रत्येक शब्दके अन्तमे रहनेवाला है उसको प्रत्येकके साथजोड़दो।
ततः* एव* सम्बन्धनीयः १। घनः १। घनवातः १।	=तिस से ऐसे सम्बन्ध होना चाहिये, कि (घनाम्बुवात वाक्यमें) घन है सो घन वातहै अर्थात् घनवात(वलय) है सो गाढ़ेवा स्थूलवा सघन पवनका है।

* चतुष्कोणकसस्थ. पाठ. तालपत्र पुस्तके एव वर्तते=चौकोन रूप में स्थित वा निविष्ट ऐसा पाठ ताडपत्र पर लिखित पुस्तकमें विद्यमान है।

अम्बु अम्बुवातः[१]। वातस्तनुवातः । इति महदपेक्षया तनुरिति सामर्थ्यगम्यः । अन्य पाठः ॥ सिद्धान्तपाठस्तु घनाम्बु च वातं चेति वातशब्दः सोपस्क्रियते । वातस्तनुवात इति वा ॥]

अम्बु॥। अम्बुवातः।

= अम्बु है सो अम्बुवात है अर्थात् सूत्र मे "घनाम्बुवात" वाक्य में जो अम्बु शब्द है उसको अम्बुवातके समान वातशब्द के अन्त्यदीपक होनेसे समझना चाहिये यह वायुमंडल जल मिश्रित है अतः इसको घनोदधि वातवलय कहते हैं ॥

वातः। तनुवातः। इति * महत्–अपेक्षया॥
तनुः॥ इति * सामर्थ्यगम्यः।

= वात है सो तनुवात है ऐसे (सूत्र मे घन–सघन की (= महत्) अपेक्षा से
= सूक्ष्म (= तनु) संगत अर्थता से प्राप्य है अर्थात् 'तनु' शब्दकी प्राप्ति यहां आशय के प्रसंग से हुई है क्योंकि जब सूत्र मे घन (सघन) वर्तता है तो घन तो जबही विद्यमान होसकता है और उसी समय सूत्र मे लासकते हैं जब उसका विरोधक सूक्ष्मता तनु हो ॥ तनुवात सूक्ष्म वा पतले वायुमंडल को कहते हैं ॥

अन्यः। पाठः।;
सिद्धान्त–पाठः। तु * घन–अम्बु॥। च वातं॥। च इति
वातशब्दः। सोपक्रियतेT
वा * वातः। तनुवातः। इति * ॥]

= (घनं च घनो इत्यादि सामर्थ्यगम्यः पर्यन्त) दूसरा वा भिन्न पाठ हुआ
= परन्तु (= तु) सिद्धान्त का पाठ घनाम्बु और (= च) वात ऐसा है
= (घनाम्बुमे) वात शब्द ऊपर से जोड़ागया है (तब) घनाम्बुवात, घनवात हुए
= और (= वा) वात है सो तनु (सूक्ष्म) वात है ये सब मिलकर घनाम्बुवात घनवात तनुवात हुये । 'घनाम्बुवात' वाक्यका यही विग्रह है जो सिद्धान्तके पाठ के अनुकूल लेकर सूत्र का अर्थ किया गया है (देखो ३ अध्याय पृष्ठ २)

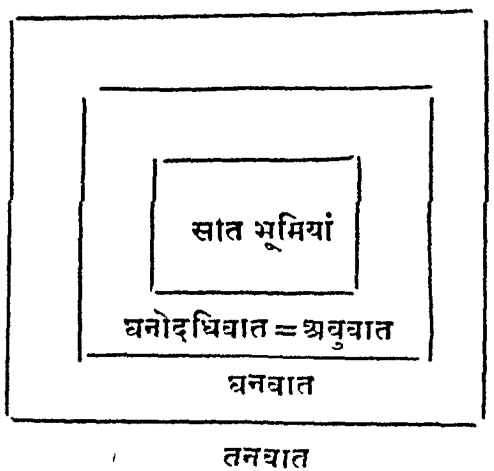
सर्वा एता भूमयो घनोदधिवलयप्रतिष्ठाः । घनोदधिवलयं घनवातवलयप्रतिष्ठम् । घनवातवलयं तनुवातवलयप्रतिष्ठम् । तनुवातवलयमाकाशप्रतिष्ठम् । आकाशमात्मप्रतिष्ठं, तस्यैवाधाराधेयत्वात् ॥ त्रीण्यप्येतानि वलयानि प्रत्येकं विंशतियोजनसहस्रबाहुल्यानि ॥ सप्तग्रहणं संख्यान्तरनिवृत्त्यर्थम् । सप्त भूमयो नाष्टौ न नव चेति ॥ अधोऽधोवचनं

सर्वाः१।। एताः१।। भूमयः१।। घनोदधिवलय-	= समस्त ये पृथिवी घनोदधिवलय के (जो जल और पवन मिश्रत है) अर्थात् घनोदधिवात जिसको गीली वा आर्द्रवायु है।
प्रतिष्ठाः१।। घनोदधिवलयम् १।।। घनवातवलय-	= आधार है (= प्रतिष्ठा) घनोदधिवलय घनवातवलयके (जो सघन पवनका है)
प्रतिष्ठम्१।।। घनवातवलयं१।।। तनुवातवलय-	= आश्रय है ॥ घनवातवलय तनुवातवलयके (जो सूक्ष्म, पतली वायुका है)
प्रतिष्ठं१।।। ; तनुवातवलयं१।।। आकाश-प्रतिष्ठं१।।।	= आधार है ॥ तनुवातवलय आकाशके आधार है
आकाशं१।।। आत्म-प्रतिष्ठं१।।। तस्य६।।। एव* आधार-	= आकाश अपने (= आत्मन्) आधार है क्योंकि तिस (आकाश) के ही आधार
आधेयत्वात्५।।।	= और आधेयभाव है अर्थात् वह स्वयं ही आधार और स्वयं ही आधेय है
त्रीणि१।।। अपि*एतानि१।।। वलयानि१।।।प्रत्येकम् १।।।	= ये तीनों ही वातवलय पृथक् पृथक्
विंशति-योजन सहस्र-बाहुल्यानि१।।। सप्तग्रहणम् १।।।	= बीस हजार योजन मोटे हैं। सूत्र में 'सप्त' शब्द का उपादान
संख्या-अंतर-निवृत्ति-अर्थम्-१।।। सप्त१।। भूमयः१।।	= अन्य संख्या के निराकरण के लिए है ॥ सात ही पृथिवी है
न-अष्टौ१।। न नव१।। च*इति-अधः* अधः*वचनं१।।।	= न आठ और न नौ। सूत्र में अधो अधो (नीचे नीचे) वाक्य है सो

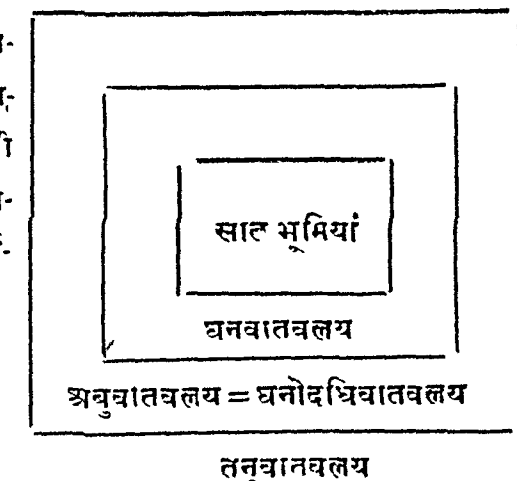
"भूमय घनोदधिवलय प्रतिष्ठा" तत्वार्थश्लोक वार्तिकके रचयिता और श्रुतसागरि सूरिके मतमें 'ये भूमियां घनवातवलयके आधार हैं और घनवातवलय अम्बुवातवलय (अर्थात् घनोदधिवातवलय) के आधार है और अम्बुवातवलय तनुवातवलय के आधार है भावार्थ तत्त्वार्थराजवार्तिककारके, सर्वार्थसिद्धिकेकर्त्ताके, श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रके अनुसार तथा प० जयचन्दराय जी, सदासुख जी इत्यादिके अनुसार तो ये समस्त पृथिवी घनोदधिवातवलय के आधार है और घनोदधिवातवलय घनवातवलय के आधार है, और घनवातवलय तनुवातवलयके आधार है तनुवातवलय आकाशके आधार है परन्तु श्लो० वा० और श्रुतसागरीटीकाके अनुसार भूमिया घनवातवलयके आधार है और घनवातवलय घनोदधिवातवलयके आधार है जैसा निम्नलिखित वाक्यों से प्रगट है ॥ (क) "स च तनुवात प्रतिष्ठोम्बुवातो घनवातस्य स्थितिहेतु सोपि भूमेर्नकूर्मादि"

अर्थः—अम्बुवातवलय (=घनोदधिवातवलय) वह तनुवातवलय के आधार है (कैसा है अम्बुवातवलय कि) घनवातवलय की स्थिति का कारण है और वह घनवात (वलय) भूमिकी स्थिति का हेतु है। भूमि की स्थिति का हेतु कछुवा इत्यादि नहीं हैं ॥ तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक पृष्ठ ३४५ ॥

(ख) सर्वा. सप्त भूमयः घनवात प्रतिष्ठा वर्तन्ते स च घनवात अम्बुवातप्रतिष्ठाऽस्ति। स च अम्बुवात तनुवातप्रतिष्ठो वर्तते। सच तनुवात आकाशप्रतिष्ठो वर्तते इत्यादि इसी सूत्र के नीचे श्रुतिसागरि टीका पृष्ठ ८६ से उद्धृत॥ सर्वार्थ सिद्धिवृत्तिकारका मत पृष्ठ ६ में उल्लेख करदियाहै ॥



सर्वाएता भूमयः घनोदधिवलयप्रतिष्ठाः, घनोदधिवलय घनवातवलयप्रतिष्ठ, 'घनवातवलय तनुवातवलयप्रतिष्ठ, तनुवातवलयमाकाशप्रतिष्ठम्" राजवार्तिकपृष्ठ १९२ ॥ " तद्देव खरपृथिवी पङ्कप्रतिष्ठा पङ्को घनोदधिवलयप्रतिष्ठो, घनोदधिवलय घनवातवलयप्रतिष्ठ ॥ तता महातमो भूतमाकाशम् ॥ सभाष्यतत्त्वार्थाधिमसूत्र पृष्ठ ६४ ॥



"तीनसौ तेताल राजु घनाकार सब लोक घनोदधि, घन(वात) तनुवात के आधार है। कविवर द्यानतरायके चरचाशतकसे उद्धृत। कैसा है ? सर्वलोक घनोदधिवातवलय (जो जल और पवन मिश्रित है) ताके आधार है और घनोदधिवातवलय घनवातवलयके आधार है और घनवातवलय तनुवातवलयके आधारहै" ॥

"ए भूमि तो घनोदधिवातवलय के आधार है। बहुरि घनोदधिवातवलय घनवातवलय के आधार है बहुरि घनवातवलय तनुवातवलयके आधार है। तनुवातवलय आकाशके आधारहै ॥ प० जयचन्द्रायजी कृता वचनिका पृष्ठ मुद्रित २६६ ॥

"तहां ते समस्त पृथिवी तो घनोदधिवातवलयके आधार है। और घनोदधिवातवलय है सो घनवातवलयके आधारहै। अर घनवातवलय है सो तनुवातवलय के आधारहै' सदासुखजी कृता अर्थप्रकाशिका पृष्ठ १४३ ॥

तिर्यक्प्रचयनिवृत्त्यर्थम् ॥

किं ता भूमयो नारकाणां सर्वत्रावासा आहोस्वित्क्वचित्क्वचिदिति तन्निर्धारणार्थमाह—

॥ तासु त्रिंशत्पञ्चविंशतिपंचदशदशत्रिपंचोनैकनरकशतसहस्राणि पंच चैव यथाक्रमम् ॥ २ ॥

तिर्यक् * प्रचय-निवृत्ति-अर्थम् ४।।। = चौरस (तिर्यक्) वा तिरछा (तिर्यक्) फैलाव (= प्रचय) के निषेध के लिये अर्थात् ये पृथिवी एक दूसरेके नीचे २ अवस्थित हैं तिरछे, चौरस, फैलाव वा ऊर्ध्व में नहीं है

किम् * ताः १।। भूमयः १।। नारकाणाम् ६। सर्वत्र * आवासाः १। = (प्रश्न) क्या ते भूमियें नारकियोंके सर्वत्र वासस्थान हैं

आहोस्वित् * क्वचित् * क्वचित् * इति * तद्- = अथवा (= आहोस्वित्) कहीं कहीं पर हैं। इस (बात) के

निर्धारण-अर्थम् ४।।। आह। = निर्णयके लिये (अग्रिम सूत्र में) कहते हैं कि—

तासु त्रिंशत्पंचविंशतिपंचदशदशत्रिपंचोनैकनरकशतसहस्राणि पंच चैव यथाक्रमम् ॥ २ ॥

= तासु त्रिंशत्नरकशतसहस्राणि पंचविंशतिनरकशतसहस्राणि, पंचदशनरकशतसहस्राणि, दशनरकशतसहस्राणि, त्रिनरकशतसहस्राणि, पंचोनएकनरकशतसहस्राणि, च, पंच एव यथाक्रमम् ॥ २ ॥

सूत्रार्थः—तासु ७।। त्रिंशत्नरकशतसहस्राणि १।।। = उन (भूमियों) में तीस लाख बिल (= नरक)

पञ्चविंशतिनरकशतसहस्राणि १।।। पंचदश- = पच्चीस लाख बिले, पंद्रह

नरकशतसहस्राणि १।।। दशनरकशतसहस्राणि १।।। = लाख बिले (= आवास) दश लाख बिले (= निवासस्थान)

श्वेताम्बर आम्नायके 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र' में इस सूत्रके स्थानमें "तासु नारका" केवल इतना सूत्र है इसका अर्थ है कि उन (रत्नप्रभादि भूमियों) में नरक हैं और उक्तसभाष्य०के भाष्यकारने इस कथनका कि प्रथम भूमिमें तीसलाख बिले हैं दूसरीमें पच्चीसलाख तीसरीमें पद्रह लाख चौथीमें दशलाख, पांचवीमें तीनलाख छठीमें पांचघाटि एकलाख और सातवीं भूमिमें केवल पांच नरक बिले वा निवासस्थान हैं भाष्यमें अन्तर्गत करदिया है और इसी सूत्रके भाष्यमें यह कथन कि पहिले नरकभूमिमें तरह, दूजीमें ग्यारह, तीसरीमें नव चौथीमें सात, पांचवींमें पांच, छठवींमें तीन, सातवींमें एकही प्रतर हैं गर्भित है। पूज्यपाद स्वामीने प्रतरकी गणनाका कथन इसी सूत्रकी वृत्तिमें करदिया है यथार्थमें हमारे

एटानिवासी जगरूपसहाय वकील कृत पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित सर्वार्थसिद्धिका शब्दशः हिन्दी अनुवाद अध्याय ३ सूत्र २

तासु रत्नप्रभादिषु भूमिषु नरकाण्यनेन संख्यायन्ते यथाक्रमम् ॥ रत्नप्रभायां त्रिंशन्नरकशत-
सहस्राणि, शर्कराप्रभायां पञ्चविंशतिर्नरकशतसहस्राणि, वालुकाप्रभायां पञ्चदश नरकशतसहस्राणि,
पङ्कप्रभायां दश नरकशतसहस्राणि, धूमप्रभायां त्रीणि नरकशतसहस्राणि, तमःप्रभायां पञ्चोनमेकं
नरकशतसहस्रं, महातमःप्रभायां पञ्च नरकाणि ॥ रत्नप्रभायां नरकप्रस्तारास्त्रयोदश ।

त्रि-नरकशतसहस्राणि॥ पंचोनं-एकनरक-शतसहस्रं॥ पंच॥ च॥ एव॥ यथाक्रमम्॥ = तीन लाख (विले), पांच घाटि एक लाख और (= च) पांच ही (= एव) क्रमानुसार (नारकियोंके आवास-निवासस्थान हैं) अर्थात् प्रथम पृथिवीके अब्बहुल भागविषैं तीसलाख, दूसरीमें पच्चीस लाख, तीसरीमें पन्द्रह लाख, चौथीमें दश लाख, पांचवीमें तीन लाख, छठवीमें ९९९९५ विले हैं सातवी भूमिमें केवल पांच विले हैं ॥

वृत्त्यर्थः— तासु॥ रत्न-प्रभादिषु॥ भूमिषु॥ = उन रत्नप्रभादिक भूमियों में

नरकाणि॥ अनेन॥ संख्यायन्ते॥ यथाक्रमम्॥ = विले वा नाकियोंके निवासस्थान इस अनुक्रमसे गणना किये जाते हैं कि

रत्नप्रभायाम्॥ त्रिंशत्॥ नरकशतसहस्राणि॥ = रत्नप्रभा (प्रथमभूमि) विषैं (अर्थात् उसके अब्बहुल भागमें) तीसलाख विले हैं

शर्कराप्रभायां॥ पञ्चविंशति॥ नरकशतसहस्राणि॥ = शर्कराप्रभा (दूसरी पृथिवी) में पच्चीस लाख विले हैं

वालुकाप्रभायां॥ पञ्चदश॥ नरकशतसहस्राणि॥ = वालुकाप्रभा (तीसरी भूमि) में पन्द्रह लाख नरक विले हैं

पङ्कप्रभायां॥ दशनरकशतसहस्राणि॥ = पंकप्रभा (चौथी पृथिवी) में दश लाख विले हैं

धूमप्रभायां॥ त्रीणि॥ नरकशतसहस्राणि॥ = धूमप्रभा (पांचवी भूमि) में तीन लाख नरक विले हैं

तमःप्रभायां-पञ्च-ऊनं॥ एकं-नरक-शतसहस्रं॥ = तमःप्रभा (छठवी पृथिवी) में पांच घाटि एक लाख विले हैं

महातमःप्रभायां॥ पञ्च॥ नरकाणि॥ = महातमः प्रभा (सातवी भूमि) मे पांच नरक विले हैं

रत्नप्रभायां॥ नरकप्रस्ताराः॥ त्रयोदश॥ = रत्नप्रभा (भूमि) में नरक पटल तेरह हैं (पटल = पाथड़ा)

यहांका सूत्र और वृत्तिका कथन सभाष्य० के सूत्र और उसके भाष्यसे मिलजाता है इसलिये कह सकते हैं कि दोनों आम्नायका तात्पर्य जहांतक इन सूत्रोंसे सम्बंध रखता है एक है ।

ततोऽधः आसप्तम्या द्वौ द्वौ नरकप्रस्तारौ हीनौ ॥ इतरो विशेषो लोकानुयोगतो वेदितव्यः ॥

अथ तासु भूमिषु नारकाणां कः प्रतिविशेष इत्यत आह—

॥ नारका नित्याशुभतरलेश्यापरिणामदेहवेदनाविक्रियाः ॥ ३ ॥

ततः ＊ अधः ＊ आसप्तम्याः[5]। द्वौ[1]। द्वौ[1]। नरक-प्रस्तारौ[1]। हीनौ[1]। = तिस (प्रथम भूमि) से नीचे सातवीं (भूमि) तक दो दो नरक पटल = न्यून है अर्थात् सातवीं भूमि में एक, छठी में तीन, पांचवीं में पांच, चौथी में सात, तीसरी में नौ, दूसरी में ग्यारह, पहली में तेरह पटल वा पाथड़े हैं

इतरः[1]। विशेषः[1]। लोक-अनुयोगतः ＊ वेदितव्यः[1]। = (सात नरकोंके) अन्य भेद (विशेष) लोक नियुक्त वा नियोजित शास्त्रसे जानना चाहिये

अथ ＊ तासु[7]।। भूमिषु[7]।। नारकाणां[6]। कः[1]। = आगे (= अथ) उन भूमियों में नारकियोंके क्या

प्रति-विशेषः[1]। इति ＊ अतः ＊ आह[1] = अन्य भेद प्रभेद (= प्रतिविशेष) है। इसलिए (अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्—नारका नित्याशुभतरलेश्यापरिणामदेहवेदनाविक्रियाः ॥ ३ ॥

= नारकाः नित्य अशुभतरलेश्याः, नारकाः नित्य अशुभतर परिणामाः; नारकाः नित्य अशुभतर देहाः; नारकाः नित्य अशुभतरवेदनाः, नारकाः नित्य अशुभतर विक्रियाः ॥

(१) हमारे पास तत्त्वार्थ सूत्रकी बहुतसी प्रतियोंके अतिरिक्त एक प्रति तत्त्वार्थ सूत्रकी ज्ञानचन्द्रजी वैद्य द्वारा मुद्रित तथा प्रकाशित है इस पुस्तक में दूसरे सूत्रके पीछे "प्रथमायाम्प्रतरात्त्रयोदशाधाधो द्विहीना" ऐसा सूत्र अधिक है इसके पश्चात् 'नारका नित्या इत्यादि' सूत्र है इसका अर्थ यह है कि पहली भूमि में तेरह प्रतर है और नीचे २ की भूमियोंमें दो दो घाटि है अर्थात् प्रथम नरक भूमि में तेरह प्रतर हैं दूसरी में ग्यारह, तीसरी में नौ, चौथी में सात, पांचवीं में पांच, छठीमें तीन, और सातवीमें एक प्रतर है। अन्य ग्रथोंमें इसे सूत्र नहीं माना है परन्तु सर्वार्थसिद्धि वृत्ति, तत्वार्थराजवार्तिक, प० जयचन्द्रजीकी वचनिका तथा अर्थप्रकाशिका इत्यादि ग्रथों में इसी सूत्रकी वृत्तिमें अथवा टीकामें उक्त सूत्रका आशय गर्भित कर दिया है देखो सर्वार्थसिद्धि पृष्ठ १६८, राजवार्तिक पृष्ठ ११४, सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ ६१, ६६, वचनिका पृष्ठ ३०२, ३०३, अर्थप्रकाशिका पृष्ठ १८७, इन सबमें उक्त तेरह पटलोंका कथन है ॥

हमारे यहां इस सूत्र का पाठ और अर्थ एक है ॥ श्वेताम्बर आम्नाय के सभाष्य० में नारका शब्द नहीं है शेष पाठ दोनों आम्नायोंमें एकसा है ॥ उक्त सभाष्य० के 'तासु नरका' इस दूसरे सूत्रसे तीसरे सूत्रमें अनुवृत्ति आती है तब नरका' शब्द जोड़ने से पाठ लगभग एकसा होजाता है, तात्पर्य दोनोंका एक है ॥

सूत्रार्थः——नारकाः१।३। नित्य-अशुभतर-लेश्याः१।३। = नारकी जीव है वे निरन्तर अशुभतर लेश्याओं सहित अर्थात् अशुभतर कापोत नील और कृष्ण लेश्याओं सहित

नित्य-अशुभतर-परिणामाः१।३। नित्य-अशुभतर देहाः१।३। = निरन्तर अशुभतर परणतियुक्त, सदा अशुभतर शरीरवाले

नित्य-अशुभतर-वेदनाः१।३। नित्य-अशुभतर विक्रियाः१।३। = सदैव अशुभतर पीड़ा सहित, सदा अशुभतर विक्रिया करने वाले होते हैं क्योंकि उनके सदा अशुभ कर्मका उदय है इस कारण निरन्तर उनके लेश्या परिणाम, देह और वेदना और विक्रिया अशुभ ही होते हैं॥ इस सूत्र का

भावार्थ यह है कि तिर्यंच गतिसे अशुभतर लेश्याओंकी अपेक्षासे रत्नप्रभा प्रथम भूमिमें अशुभतर लेश्या है। रत्नप्रभासे शर्कराप्रभा में अशुभतर लेश्या, परिणाम, देहवेदना, विक्रिया है, शर्कराप्रभा से वालुकाप्रभा मे अशुभतर लेश्या, परिणाम, देह, वेदना विक्रिया है वालुकाप्रभासे पङ्कप्रभामें अशुभतर लेश्या, परिणाम, देह, वेदना, विक्रिया है; पंकप्रभामे धूमप्रभामें अशुभतरलेश्या, परिणाम, देहवेदना,

---

(१) "अशुभतर" तर = कुछ अधिक, तम = बहुत अधिक। यदि दो वस्तुओंमेंसे एकके शुभ गुण अथवा अशुभ गुणकी अधिकता प्रगट करनी हो तो उस शब्द के अन्त में 'तर' प्रत्यय लाते है जैसे इस सूत्र म "अशुभतर लेश्या"। और यदि बहुतसी (दो से अधिक) वस्तुओंमेंसे एकके शुभ गुण अथवा अशुभ गुणकी अधिकता उन सबके ऊपर प्रगट करनी हो तो 'तम' प्रत्यय लाते हैं "जैसे अशुभतम लेश्या" इत्यादिसे जानना।

(२) लेश्या शब्दका एकवचन स्त्रीलिंग 'लेश्या' शब्द है, उसका बहुवचन स्त्रीलिंग 'लेश्या.' ऐसा है। परन्तु समासमें "नित्याशुभतर लेश्या" आया है जिसका अर्थ यह है कि निरन्तर अशुभतर है लेश्या जिनके (ऐसे नारकी है) अर्थात् 'नारका' शब्द का विशेषण है, अतः पुलिङ्ग बहुवचनमें रक्खा है।

(३) वेदना और विक्रिया शब्दों का क्रम से एक वचन स्त्रीलिङ्ग वेदना और विक्रिया है उनके बहुवचन स्त्रीलिङ्ग क्रमसे 'वेदनाः, विक्रियाः' होते हैं परन्तु समास में 'नित्यअशुभतरवेदना' 'नित्यअशुभतरविक्रिया' आये हैं जिनके क्रम से अर्थ हैं 'निरन्तर अशुभतर है वेदना जिनके,' और 'निरन्तर अशुभतर है विक्रिया जिनके' 'अर्थात, नारका' शब्दका गुणवाचक है अत. 'वेदना' 'विक्रिया' शब्दों को बहुवचन पुलिङ्ग में रक्खा है॥

लेश्यादयो व्याख्यातार्थाः ॥ अशुभतरा इति प्रकर्षनिर्देशः । तिर्यग्गतिविषयाशुभलेश्याद्यपेक्षया, अधोऽधः स्वगत्यपेक्षया च वेदितव्यः ॥ नित्यशब्द आभीक्ष्ण्यवचनः ॥ नित्यमशुभतरा लेश्यादयो येषां ते नित्याशुभतरलेश्यापरिणामदेहवेदनाविक्रिया नारकाः ॥

विक्रिया है; धूमप्रभा से तमः प्रभामे अशुभतर लेश्या, परिणाम, देह, वेदना, विक्रिया हैं; और तमःप्रभासे महातमः प्रभामे (सातवी भूमिमें) अशुभतरलेश्या, परिणाम, देह, वेदना, विक्रिया है ॥

वृत्त्यर्थः—लेश्या-आदयः।१।३ = लेश्या, परिणाम-देह-वेदना-विक्रियां (आदयः) हैं

व्याख्यात-अर्थाः।१।३ = उनके अर्थ (दूसरे अध्याय के ६, ८, ३६ सूत्रों की वृत्तिमें क्रमसे) कहेगये है

अशुभतराः।१।३। इति *प्रकर्ष-निर्देशः।१।१; तिर्यंच- = (इस सूत्र में) अशुभतर ऐसा (विशेषण) अधिकपनाके अर्थ है। तिर्यंच-

गतिविषय-अशुभलेश्या-आदि-अपेक्षया।३।१॥ च अधः *अधः = गतिविषय, अशुभलेश्यादिकोंकी अपेक्षासे तथा (= च) नीचे २ (नरकों में)

स्वगति-अपेक्षया।३।१॥ = अपनी गति (अर्थात् नरकगति) की अपेक्षासे (अशुभतर लेश्याओं की प्रधानता)

वेदितव्यः।१।१। = जाननी चाहिये भावार्थ जैसे तिर्यंचोंके अशुभलेश्यादि है उनकी अपेक्षासे नरकगति में अशुभतर लेश्या हैं और नारकियों के परस्पर की अपेक्षासे ऊपर के नारकियोंसे नीचे नीचेके नारकियोंके अशुभतरलेश्या, अशुभतरपरिणाम, अशुभतरदेह, अशुभतरवेदना, अशुभतर विक्रियां है

नित्य-शब्दः।१।१। आभीक्ष्ण्य-वचनः।१।१। नित्यम्।१।१॥ = (इस सूत्र में) नित्य शब्द बारबार अथवा निरन्तर होनेका वाचक है निरन्तर

अशुभतराः।१।३। लेश्या-आदयः।१।३। येषाम्।६।३। = अशुभतर है लेश्या, परणति, शरीर, पीडा, और विक्रिया (= आदयः) जिनके

ते।१।३। नित्य-अशुभतर-लेश्या-परिणाम- = ते नित्य अशुभतर लेश्या वाले तथा निरन्तर अशुभतर परणतियुक्त और

देह-वेदना- = सदा अशुभतर शरीर सहित तथा निरतर अशुभतर वेदना वा पीड़ा सहित

विक्रियाः।१।३। नारकाः।१।३। = और सर्वकाल अशुभतर विक्रियासहित नारकी जीव है ॥

प्रथमाद्वितीययोः कापोती लेश्या, तृतीयायामुपरिष्टात्कापोती अधो नीला, चतुर्थ्यां नीला, पञ्चम्यामुपरि नीला अधःकृष्णा, षष्ठ्यां कृष्णा, सप्तम्यां परमकृष्णा । स्वायुषः प्रमाणावधृता द्रव्यलेश्या उक्ताः ॥ भावलेश्यास्तु अन्तर्मुहूर्तपरिवर्तिन्यः ॥ परिणामाः स्पर्शरसगन्धवर्णशब्दाः क्षेत्रविशेषनिमित्तवशादति-दुःखहेतवोऽशुभतराः ॥ देहाश्च तेषामशुभनामकर्मोदयादत्यन्ताशुभतरा विकृताकृतयो हुण्डसंस्थाना दुर्दर्शनाः ॥ तेषामुत्सेधः ॥ प्रथमायासप्त धनूषि, त्रयो हस्ताः षडंगुलयः ।

प्रथमा-द्वितीययोः॥ कापोती॥ लेश्या॥ तृतीयां॥ उपरिष्टात्* कापोती॥ अधः* नीला॥ चतुर्थ्याम्॥ नीला॥; पञ्चम्याम्॥ उपरि* नीला॥ ; अधः* कृष्णा॥ षष्ठ्याम्॥ कृष्णा॥ सप्तम्याम्॥ परम कृष्णा॥ स्व-आयुषः। प्रमाण-अवधृता॥ द्रव्य लेश्या॥ उक्ताः॥

= पहिली (रत्नप्रभा) तथा दूसरी (शर्कराप्रभा) मे कापोतलेश्या है । तीसरी (वालुकाप्रभा) में ऊपर (के बिलोंके रहनेवाले नारकियोंके) कापोत लेश्या है । (इस तीसरी वालुकाप्रभा भूमिके) नीचे नील लेश्या है । चौथी (पंकप्रभा भूमि) में नील लेश्या है । पांचवी (धूमप्रभा भूमि) में ऊपर (बिलोंमें रहनेवाले नारकियोंके) नीललेश्या है । (इसके) नीचे (के बिलोंमें रहनेवाले नारकियोंके) कृष्णलेश्या है छठी (तमःप्रभाभूमि) में कृष्ण लेश्या है; सातवी (महातमःभूमि) मे उत्कर्ष कृष्णलेश्या है = अपनी २ आयुके परिमाण द्वारा निश्चित कीगई द्रव्य लेश्यायें कही गई है अर्थात् नारकियोंके उपर्युक्त क्रमसे कही गई द्रव्य लेश्याये आयुतक एकसी रहतीहैं।

भावलेश्याः॥ तु* अन्तर्मुहूर्त-परिवर्तिन्यः॥ परिणामाः। स्पर्श रस-गन्ध-वर्ण-शब्दाः॥; क्षेत्र-विशेष निमित्त-वशात्। अतिदुःखहेतवः। अशुभतराः। देहाः। च* तेषां। अशुभ-नामकर्म-उदयात्। अत्यन्त-अशुभतराः। विकृत-आकृतयः। हुंड— संस्थानाः। दुर्दर्शनाः॥; तेषां। उत्सेधः। प्रथमायां॥ सप्त॥ धनूंषि॥ त्रयः। हस्ताः। षड्। अंगुलयः।

= परन्तु भावलेश्या अन्तर्मुहूर्त में पलटती रहती है । = परिणाम-स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण-और शब्द है । स्थानभेदके = निमित्तके वशसे (वे परिणाम) अति दुःखके कारण अशुभतर है । = और (= च) उन (नारकी जीवों)के शरीर अशुभ नामकर्मके उदयसे = अतिशय अशुभतर है (और) बुरी आकृतिवाले, हुंडक— = संस्थानरूप कुदर्शनीय (= देखनेमे बुरे) है उन (नारकियों)की ऊंचाई प्रथम भूमिमें = सात चाप तीन हाथ छै अंगुल है । अर्थात् सवा इकतीस हाथ है

अधोऽधो द्विगुणाद्विगुणा उत्सेधः ॥ अभ्यन्तरासद्वेद्योदये सति अनादिपारिणामिकशीतोष्णबाह्यनिमित्तजनिताः सुतीव्रा वेदना भवन्ति नारकाणाम् ॥ प्रथमाद्वितीयातृतीयाचतुर्थीषु उष्णवेदनान्येव नरकाणि पंचम्यामुपरि उष्णवेदने द्वे नरकशतसहस्रे । अधः शीतवेदनमेकं शतसहस्रम् । षष्ठीसप्तम्योःशीतवेदनान्येव ॥ शुभं करिष्याम इति अशुभतरमेव विकुर्वन्ति, सुखहेतूनुत्पादयाम इति दुःखहेतूनेवोत्पादयन्ति । त एते भावा अधोऽधोऽशुभतरा वेदितव्याः ॥

किमेतेषां नारकाणां शीतोष्णजनितमेव दुःखमुतान्यथापि भवतीत्यत आह—

अधस् अधः* द्विगुण-द्विगुणाः। उत्सेधः। अभ्यन्तर- = नीचे २ (ऊपरके नरकसे प्रत्येक नरकमें) दूनी २ ऊंचाई है। अन्तरंग
असत्-वेद्य-उदये।सति।अनादि-पारिणामिक- = असाता वेदनीय कर्मके उदय होनेपर अनादिकाल परिणमनरूप (भूमिका)
शीत-उष्ण-बाह्य-निमित्त-जनिताः।।सुतीव्राः।।वेदना।। = बाह्यनिमित्तरूप-शीत-उष्णकरि (नारकियोंके) तीव्र पीड़ा
भवन्ति T नारकाणां। ;प्रथमा-द्वितीया-तृतीया- = होती है। नारकियोंके पहिली (भूमि)में दूसरी (शर्कराप्रभा)में तीसरी (वालुकाप्रभा)में
चतुर्थीषु।।उष्णवेदनानि।।।एव*नरकाणि।।। = चौथी (पङ्कप्रभा पृथिवी)में उष्ण वेदना रूप ही बिल है
पंचम्याम्।।उपरि*उष्णवेदने।।।द्वे।।। = पांचवी (धूमप्रभाभूमि)में ऊपरके उष्णवेदनारूप दो
नरकशत-सहस्रे।।।अधः* शीतवेदनम्।।। = लाख बिले है। (पांचवीं भूमिके शेष) नीचेके शीतवेदनारूप
एकम्।।। शत-सहस्रम्।।। षष्ठी-सप्तम्योः।। = एक लाख (बिले) है। छठी (तमःप्रभा भूमि) में और सातवीं (महातमःप्रभा भूमि)में
शीत-वेदनानि।।। एव*;शुभम्।।। करिष्यामः इति* = शीतवेदना ही है। अच्छी (विक्रिया) हम करेंगे ऐसे (नारकी विचारे हैं)
अशुभतरम्।।। विकुर्वन्ति T सुखहेतून्। उत्पादयामः T = परन्तु अशुभतर ही करते है। सुख के कारण हम पैदा करेंगे।
इति* दुःखहेतून्। उत्पादयन्ति T = इस प्रकार (नारकी जीव विचार करते है परन्तु) दुःखके कारणही उपजाते है
ते। एते। भावाः। अधः* अधः* अशुभतराः। = ते ये परिणाम (एक नरककी अपेक्षासे दूसरेमे) नीचे नीचे अशुभतर
वेदितव्याः। किम्*एतेषाम्। नारकाणाम्। = जानना चाहिये ॥ (प्रश्न) क्या इन नारकियोंके
शीत-उष्ण-जनितम्।।। एव* दुःखम्।।। उत* = शीत और उष्णसे उत्पन्न हुआ ही दुःख है अथवा
अन्यथा * अपि * भवति T इति * आह T = अन्य प्रकार भी (नारकी जीवोंको दुःख) होता है अतः (अग्रिम सूत्र मे) कहते है कि

॥ परस्परोदीरितदुःखाः[1] ॥ ४ ॥

कथं परस्परोदीरितदुःखत्वं नारकाणाम् । भवप्रत्ययेनावधिना मिथ्यादर्शनोदयाद्विभङ्गव्यपदेशभाजा च दूरादेव दुःखहेतूनवगम्योत्पन्नदुःखाः प्रत्यासत्तौ परस्परालोकनाच्च प्रज्वलितकोपाग्नयः पूर्वभवानुस्मरणाच्चातितीव्रानुबद्धवैराश्च श्वगालादिवत्स्वाभिघाते प्रवर्तमानाः

सूत्रम्—परस्परोदीरितदुःखाः ॥ ४ ॥ = (नारकाः) परस्पर-उदीरित-दुःखाः (भवन्ति) ॥ ४ ॥

सूत्रार्थ—नारकाः[1]। परस्पर-उदीरित-दुःखाः[1]। भवन्ति	= नारकीजीव परस्पर उत्पन्नकियाहुआ दुःख (एक दूसरेको) देनेवाले होते हैं। अर्थात् कुत्तोंकी भांति निरन्तर एक दूसरेके साथ लड़ते झगड़ते रहते हैं।
वृत्त्यनुवादः—कथं*परस्पर-उदीरित—	= (प्रश्न) कैसे आपसमें (एक दूसरे को) कियाहुआ अथवा उपजायाहुआ
दुःखत्वं[1]। नारकाणाम्[6]। मिथ्या-दर्शन-उदयात्[5]।	= नारकीजीवोंके दुख होता (= दुखत्व) है। मिथ्या दर्शनके उदय होनेसे
विभंग-व्यपदेश-भाजा[3]। भवप्रत्ययेन[3]। अवधिना[3]। च*(४)	= विभगनामक वा विभंग नामकाधारक भवनिमित्तक अवधिज्ञानकरि
दूरात्[5]। एव* दुःखहेतून्[2]। अवगम्य—	= दूरसे ही (नारकी जीव) दुःखके कारणोंको जानकर
उत्पन्न-दुःखाः[1]। च*प्रति-आसत्तौ[7]। परस्पर-	= पीड़ा उपजावे हैं और (= च) अति निकट होनेपर आपसमें (एक दूसरे को)
आलोकनात्[5]। प्रज्वलित-कोप-अग्नयः[1]। च*	= देखनेमे कोपरूपी अग्नि प्रज्वले है जिनके अर्थात् तीव्रक्रोधयुक्त होजाते है॥ तथा
पूर्व-भव-अनुस्मरणात्[5]॥ अतितीव्र-	= पहिले जन्मके बुरे वा निकृष्ट (= अनु) स्मरणसे अतितीव्र और
अनुबद्धवैराः[1]। च* शृगाल-आदिवत्*	= दृढ़ (= अनुबद्ध) वैररूप होय हैं और (= च) सियार अथवा गीदड़ आदिके सदृश
स्व-अभिघाते[7]। प्रवर्तमानाः[1]।	= अपने घात (करने) में प्रवर्तते हैं अर्थात् जैसे गीदड कुत्ते आदि अन्य गीदड़-कुत्ते आदिको देख कर निर्दयता पूर्वक क्रोध करते हैं तथा परस्पर दांतोंका प्रहार करते हैं तैसेही नारकी-जीव एक दूसरेके और अपने घात करनेमे प्रवर्तते हैं।

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों सम्प्रदायोंमें एक है। (२) दूरात् शब्द त्रिलिंगी है। (३) अवगम्य शब्द सम्बन्धक भूत कृदंत है। (४) च वाक्य भूषणके लिये है। (५) अनु शब्दका अर्थ पद्मचन्द्रकोशमें निकृष्ट दिया है 'निकृष्ट स्मरणसे' अभिप्राय है कि नारकी जीवोंको कुअवधिसे पूर्व भवकी बुरी बातोंको सुधि आती है भली बातों की नहीं।

स्वविक्रियाकृतासिवासिपरशुभिण्डिमालशक्तितोमरकुन्तायोघनादिभिरायुधैः स्वकरचरणदशनैश्च छेदनभेदनतक्षणदंशनादिभिः परस्परस्यातितीव्रंदुःखमुत्पादयन्ति ॥

किमेतावानेव दुःखोत्पत्तिकारणप्रकारः उतान्योपि कश्चिदस्तीत्यत आह—

॥ संक्लिष्टासुरोदीरितदुःखाश्च प्राक्चतुर्थ्याः ॥ ५ ॥

स्व-विक्रिया-कृत-असि-वासि-परशु- भिण्डि-माल-शक्ति-तोमर-कुन्त- अयस्घन-आदिभि-॥॥आयुधैः॥॥च*स्व-कर- चरण-दशनैः। छेदन-भेदन-तक्षण-दशन- आदिभिः। परस्परस्य। अतितीव्रं॥दुःखम्॥ उत्पादयन्ति T किम्* एतावान्। एव दुःख-उत्पत्ति- कारण-प्रकारः। उत*अन्य। अपि*कश्चित्* अस्ति इति* अतः आह T

= अपनी कीहुई विक्रियासे तरवार(= असि, कुल्हाड़ा(= वासि) फरसा (परशु) = बन्दूक(= भिण्डि) चक्र(= माल) शक्ति बर्छी लोहेके डंडे(तोमर) भाला सेल(= कुन्त) = लोहेके घन आदिक अस्त्र शस्त्र द्वारा(= आयुधैः) और (= च) अपने हाथ = पग दांतोंकरि छेदना भेदना छीलना(= तक्षण) काटना (दंशन) = आदिक (क्रिया) से आपसकी अतितीव्र पीड़ाको = उत्पन्न करते हैं। क्या इतने ही दुःख उत्पन्नहोनेके = हेतु अन्यभेद हैं अथवा कुछ दूसरा (= अन्य) भी है = इस लिये (अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि—

सूत्रम्—संक्लिष्टासुरोदीरितदुःखाश्चप्राक्चतुर्थ्याः = नारकाःसंक्लिष्टा-असुर-उदीरित-दुःखाश्चप्राक्-चतुर्थ्याः

सूत्रार्थः— नारकाः। प्राक्*चतुर्थ्याः॥ संक्लिष्ट—असुर- उदीरित—दुःखाः। च*

= नारकीजीव चौथी (पंकप्रभा भूमिसे पहिले) तीसरी भूमि पर्यंत = क्लेश (परिणामोंकरि) युक्त असुरोंद्वारा वा क्लेश भावोंके धारक असुरोंकरि = उत्पादित (= उदीरित) दुःख भी सहते हैं

(१) दोनों सम्प्रदायोंमें इस सूत्रका अर्थ और पाठ एकसा है। (२) अनुवादक के पास इस समय मूल सूत्रों की बहुत सी प्रतियें हैं। उनमेंसे सदासुखजीकी दो प्रतियोंमें और ज्ञानचन्द्रजी लाहोरकी एक प्रतिमें "प्राक् चतुर्थ्य" ऐसा पाठ है और शेष प्रतियोंमें "प्राक् चतुर्थ्याः" ऐसा पाठ है। इन तीन प्रतियोंका पाठ अनुचित जान पड़ता है क्योंकि एक, द्वि, त्रि, चतुर् से नवन् दशन् इत्यादि उन्नीस पर्यन्त ए संख्यायें जिस संख्यासे सम्बन्ध रखती हैं उस संज्ञा का विशेषण कहलाती हैं। एक द्वि, त्रि, चतुर् तक संख्याओंका वही विभक्ति वही बचन और वही लिङ्ग संस्कृतभाषाके

व्याकरणोंके सूत्रोंके अनुसार होता है जो सम्बन्धित संख्याका होता है जैसे त्रीणि वलयानि इस वाक्य में वलयानि शब्द प्रथमा विभक्ति बहुवचन नपुंसक लिङ्गमें है। त्रीणि शब्द भी जो वलियानि शब्द का विशेषण है प्रथमा विभक्ति बहुवचन नपुंसक लिंगमें है परन्तु पञ्चन् से नवदशन् (उन्नीस) तक की विभक्ति और वचन वही होता है जो संज्ञा का, लिङ्ग वही होने की आवश्यकता नहीं है जैसे "सप्त भूमयो न अष्टौ न नव चेति" (संस्कृत पृष्ठ १६०) यहां पर सप्त अष्टौ नव तीनों शब्दों का बहुवचन प्रथमा विभक्ति (कारक) ही है जो भूमि शब्दका है परन्तु भूमि शब्द का बहुवचन स्त्रीलिङ्ग भूमयः है, लिंग सप्त-अष्टौ नव-शब्दों का कोई भी समझलो क्योंकि ये तीनों शब्द बहुवचन ही होते हैं और तीनों लिंगों में एकसे ही रूप धरते हैं चतुर्थ शब्द भूमि के लिये सूत्र में आया है न कि नरक शब्द के लिये। अब प्राक् शब्द के साथ पञ्चमी विभक्ति है सो चतुर्थ्याः पञ्चमी विभक्ति एकवचन स्त्रीलिंग चतुर्थी शब्द का है परन्तु चतुर्भ्यः पञ्चमी विभक्ति बहुवचन और पुल्लिंग अथवा नपुंसक लिंग है। नरक शब्द पुल्लिंग है इस अध्यायके किसी सूत्रमें दूसरे सूत्रको छोडकर नरक शब्द नहीं लाये हैं नरक शब्द दूसरे सूत्रमें बिलोंके अर्थमें है रत्नप्रभा शर्कराप्रभा वालुकाप्रभा पंक-प्रभा धूमप्रभा तम प्रभा महातमःप्रभाके अर्थ में नहीं है। नारका शब्द तीसरे सूत्र में लाये हैं उसका अर्थ नरकके दुःख सहन करनेवाले नारकी जीवोंके है। इससे नरक शब्दकी अनुवृत्ति इस सूत्रमें लेना अयुक्त है पहिले सूत्रमें भूमि शब्द लाये हैं इससे भूमि शब्द की अनुवृत्ति पांचवां सूत्रमें आती है न कि नरक शब्दकी।

यदि हम चतुर्भ्यः ऐसा पाठ पढें तो अर्थमें भिन्नता होगी अर्थात् भूमिके स्थानमें नरक(=नारकियोंके रहनेकाबिल) ऐसा अर्थ होजावेगा जो आगम विरुद्ध है, सूत्र व्याकरणके अनुसार अशुद्ध भी होजायगा। प्राक् चतुर्थ्याः =चौथी पंकप्रभा भूमिसे पहिले अर्थात् तीसरी दूसरी और पहिली भूमि तक

प्राक् चतुर्भ्यः =चार(नरकों)से पहिले अर्थात् तीन चार बिलोंके पहले पहले ॥

चतुर्भ्यः यह वाक्य पहिले अध्याय के तीसवा सूत्र में "एकस्मिन् आ चतुर्भ्यः" दूसरे अध्याय के अट्ठाईसवां सूत्रमें "संसारिणः प्राक् चतुर्भ्यः." और ४३वां सूत्रमें "आ चतुर्भ्यः." लाये हैं आङ् (=आ)का अर्थ तक या पर्यन्त है और प्राक् का अर्थ पहिले पहिले है आ चतुर्भ्यः, पहिला "ज्ञान शब्द का विशेषण है जो नपुंसकलिंग है। दूसरा 'आ चतुर्भ्यः' शरीरोंका विशेषण है जो नपुंसकलिंग है। तीसरा 'प्राक चतुर्भ्यः' समय शब्दका गुणवाचक है समय शब्द पुल्लिंगहै। स्मरण रहे कि चतुर्भ्यः चतुर् शब्दकी पञ्चमी विभक्ति बहुवचन नपुंसकलिंग और पुल्लिंग है अर्थात् चतुर् शब्दकी पञ्चमीविभक्ति नपुंसक और पुल्लिंगमें एकही रूप "चतुर्भ्यः"धारण करती है॥अत "प्राक्चतुर्भ्यः" स्त्रीलिंग नहीं होसकता है इसलिये यह अशुद्धहै।

देवगतिनामकर्मविकल्पस्यासुरत्वसंवर्तनस्य कर्मण उदयादस्यन्ति परानित्यसुराः। पूर्वजन्मनि सम्भावितेनातितीव्रेण संक्लेशपरिणामेन यदुपार्जितं पापकर्म तस्योदयात्सततं क्लिष्टाः संक्लिष्टाः। संक्लिष्टा असुराः संक्लिष्टासुराः। संक्लिष्टा इति विशेषणान्न सर्वे असुरा नारकाणां दुःखमुत्पादयन्ति। किं तर्हि, अम्बावरीषादय एव केचनेति ॥

देवगति-नामकर्म-विकल्पस्य॥ असुरत्व-संवर्तनस्य॥	= देवगति नामक नामकर्मका भेद जो असुरत्वसंवर्तन तिस
कर्मणः॥ उदयात्। अस्यन्ति परान्। इति असुराः।	= कर्मके उदयसे दूसरोंको फैंकते हैं अर्थात् दुख देते है ऐसे असुर हैं
पूर्व-जन्मनि॥ सम्भावितेन। अतितीव्रेण।	= पहिले भवमें होसकने योग्य बहुत तीव्र
संक्लेशपरिणामेन। यत्॥ उपार्जितं॥ पापकर्म॥	= संक्लेश भावकरि जो पापकर्म उपार्जन किया है
तस्य॥ उदयात्। सततं॥ क्लिष्टाः। संक्लिष्टाः।	= तिसके उदय से निरन्तर क्लेशयुक्त वा क्लिशित (= क्लिष्ट) ते संक्लिष्टा हैं
संक्लिष्टाः। असुराः। संक्लिष्टा-असुराः।	= निरन्तर क्लेशयुक्त परिणामवाले (= संक्लिष्टाः) असुर (है वे) संक्लिष्टा असुर हैं
संक्लिष्टा इति * विशेषणात्॥	= संक्लिष्टा ऐसे विशेषण से अर्थात् असुरा शब्दके पहिले जो 'संक्लिष्टा' विशेषण है उससे (अभिप्राय है कि)
सर्वे। असुराः। नारकाणां। दुखम्। न*उत्पादयन्ति	= सब असुरकुमार नारकियोंकी पीड़ा नहीं उत्पन्न करते है
किम् * तर्हि *	= तो (नारकियोंको) कौन (असुर कुमार पीड़ा देते) है
अम्ब-अवरीप-आदयः। एव * केचन * इति *	= अम्ब, अवरीप (= अम्बरीप) आदि (जातिके असुर) ही कोई ऐसें पीड़ा देतेहैं

(१) "अम्बावरीषादय" के स्थान में सभाष्यतत्वार्थाधिगमसूत्रमें अम्बाबरीषादय है।

अम्ब अम्बरीष श्याम शबल रुद्र-उपरुद्र काल-महाकालस्य असिपत्रवन	= अम्ब, अम्बरीष, श्याम, शबल, रुद्र, उपरुद्र, काल, महाकालस्य, असिपत्रवन,
कुम्भी वालुका-वैतरणी खर-स्वर महाघोषा	= कुम्भी, वालुका, वैतरणी, खर, स्वर और महाघोष
पचदश। एते सक्लिष्टा। असुरा।	= ये पन्द्रह जाति के क्लेश परिणाम के धारक असुर,
नारकीणाम्। वेदना। समुदीरयन्ति	= नारकियोंको वेदना (पीडा) उत्पन्न करतेहैं (सभाष्यतत्वार्थाधिगमसूत्रपृ०७१,७२)

अवधिप्रदर्शनार्थं प्राक्चतुर्थ्या इति विशेषणम् ॥ उपरि तिसृषु पृथ्वीषु संक्लिष्टासुरा बाधाहेतवो नातःपरमिति प्रदर्शनार्थम् ॥ चशब्दः पूर्वोक्तदुःखहेतुसमुच्चयार्थः ॥ सुतप्तायोरसपायननिष्टप्ताय-स्तम्भालिङ्गनकूटशाल्मल्यारोहणावतरणायोधनाभिघातवासीक्षुरतक्षणक्षारतप्ततैल-

अवधि-प्रदर्शन-अर्थम्-[1]॥। प्राक्चतुर्थ्याः[1]॥	= मर्यादा दिखावनेके लिये (इस सूत्रमें) प्राक् चतुर्थ्याः (अर्थात्-चौथी पंकप्रभाभूमिसे पहिले पहिले तीसरी वालुकाप्रभा पृथिवी पर्यंत)
इति*विशेषणम्[1]॥। उपरि*तिसृषु[3]॥	= ऐसा गुणवाचक (वाक्य) है। ऊपरकी तीन (रत्नप्रभा,शर्कराप्रभा,वालुकाप्रभा)
पृथ्वीषु[3]॥ संक्लिष्टा-असुराः[1]। बाधा-हेतवः[1]।	= भूमियोमे संक्लिष्ट परिणामवाले असुर (नारकियोंको) पीड़ा (उपजाने) के कारण हैं
न*अतः* परम्*	= नहीं है इस (तीसरी वालुकाप्रभाभूमि)से आगेके(पंकप्रभा,धूमप्रभा, तमःप्रभा महातमः प्रभा भूमियोमें इन असुरों द्वारा पीड़ा उपजावनेका हेतु)
इति*प्रदर्शन—अर्थम्[1]॥।	= ऐसा दिखावने के लिये (प्राक्-चतुर्थ्याः वाक्य सूत्रमे) है।
च-शब्दः[1]। पूर्व-उक्त-	= (इस सूत्रमें) चशब्द पहिले कहेगये (= तीसरे और चौथे सूत्रोंमें कि अशुभतर— लेश्या परिणामादिसे उत्पन्न तथा परस्पर कारणसे उत्पन्न)
दुःख-हेतु-समुच्चय-अर्थः[1]।	= दुखोंके कारणोंके संचयके लिये है तात्पर्य यह है कि अशुभतर लेश्या परिणामादिकसे उत्पन्न वेदना तथा परस्पर कारणसे उत्पन्न पीड़ा और असुरोंके द्वारा (तीसरे नरक तक) उत्पन्न बाधा इसप्रकार नारकी जीवोंको तीन प्रकारके दुःख होते है।
सुतप्त-अयस्-रस-पायन-निष्टप्त-अयस्—	= अति संतप्त लोहे (अयस्)के रसके पिलानेसे, अति संतप्त लोहेके
स्तम्भ-आलिंगन-कूट-	= खम्भसे आलिंगन करानेसे, माया रचित अथवा मिथ्याभूत
शाल्मलि (शाल्मली)-आरोहण-अवतरण-	= संभलके वृक्ष अर्थात् शूलीपर चढ़ानेसे, और उतारनेसे,
अयस्-घन-अभिघात-वासी—	= लोहेके (अयस्)घनसे ताड़नादि करि(अभिघात),कुल्हाड़ा(वासी) वसूला(वासी) तथा
क्षुर-तक्षण-क्षार-तप्ततैल-	= छुराद्वारा काटने(= तक्षण)छोलना(तक्षण)से, खारेपानी(= क्षार)तथा अतिउष्णतेलसे

ऽवसेचनायःकुम्भीपाकाम्बरीषभर्जनवैतरणीमज्जनयन्त्रनिष्पीडनादिभिर्नारकाणां दुःखमुत्पादयन्ति ॥ एवं छेदनभेदनादिभिः शकलीकृतमूर्तीनामपि तेषां न मरणमकाले भवति। कुतः? अनपवर्त्यायुष्कत्वात् ॥ यद्येवं, तदेव तावदुच्यतां नारकाणामायुःपरिमाणमित्यत आह—

तेष्वेकत्रिसप्तदशसप्तदशद्वाविंशतित्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा सत्त्वानां परा स्थितिः ॥ ६ ॥

अवसेचन-अयस्-कुम्भी-पाक-अम्बरीष-भर्जन-	= सींचनेकरि लोहेके घड़ोंमें पकानेसे भूभलमें भूजनेसे
वैतरणी-मज्जन-यन्त्र-निष्पीडन-आदिभिः३।	= वैतरणीनदीमें डुबानेसे, (कोल्हू आदि) कलों (यन्त्र)में पेलनादि करि
नारकाणाम् दुःखं१।।।उत्पादयन्ति;एवंछेदन-भेदनादिभिः	= नारकीनकें वेदना उपजाते है। इस प्रकार छेदन भेदनादिक करि
शकलीकृत-मूर्तीनाम्६।।अपि*तेषाम्६।	= शरीरके खंडखंड कियेजानेपर (= कृत) भी तिन (नारकियों) की (विना आयु पूर्णकिये)
न*मरणम्१।।। अकाले७। भवति।कुतः*?	= अकालमें वा अपवरमे मृत्यु नही होतीहै। (प्रश्न) क्योंकर (नारकियोंकीअकाल मृत्यु नही) (उत्तर) क्योंकि (दूसरे अध्यायके त्रेपनवां सूत्रके अनुसार नारकीजीव)
अन-अपवर्त्य-आयुष्कत्वात्५।।।	= परिपूर्ण आयुवाले होतेहैं अर्थात् नारकीजीव अपनी आयु परिपूर्ण किये विना मृत्युको प्राप्त नहीं होते है
यदि*एवम्*तद्व-एव-तावत्-नारकाणाम्६।आयुष्—	= जो ऐसे है (नारकी पूर्णआयुवालेहैं) तो (= तावत्) वो (तद्व) ही (एव) नारकियोंकी आयुकी
परिमाणं१।।। उच्यताम् ।' इति अतः*आह	= मर्यादा कहीजाय (= उच्यताम्) इसलिये (आचार्य उत्तरसूत्रमें) कहते है कि .

सूत्रम्—तेष्वेकत्रिसप्तदशसप्तदशद्वाविंशतित्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा सत्त्वानां परा स्थितिः ॥ ६ ॥

= तेषु-एकसागरोपमा-त्रिसागरोपमा-सप्तसागरोपमा-दशसागरोपमा-सप्तदशसागरोपमा-द्वाविंशतिसागरोपमा-त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा-सत्त्वानां परा स्थितिः (यथाक्रमम्) ॥ ६ ॥

(१) दोनों आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एक है। 'यथाक्रमम्'की अनुवृत्ति इस अध्यायके दूसरे सूत्रसे लीगई है देखो टिप्पणी पृष्ठ २१

इस सूत्रमें नरक शब्दकी अनुवृत्ति सप्तमी विभक्ति बहुवचन पुलिंगमें ली है और सत्त्वानां शब्द षष्ठी विभक्ति बहुवचन पुलिंग वा नपुसकलिंगमें लाये हैं जिसका अर्थ जीवोंकी है और पूज्यपादस्वामीकृत संस्कृतवृत्तिमें सत्त्वानां शब्दको सूत्रमें लानेका यह कारण बताया है कि "एक तीन सप्त इत्यादिक" सागरोंकी स्थिति "भूमयः" शब्दसे सम्बन्ध न करजाय अर्थात् ऐसा अर्थ रोकनेके लिए लाये हैं कि एक तीन सप्त इत्यादिक सागरोंकी स्थिति भूमियों वा पृथ्वीयोंकीहै । इसका यह आशय निकला कि एक-तीन सप्त इत्यादि सागरोंकी स्थिती जीवोंकी है 'पृथिवी अथवा भूमि'की नहींहै । (क) स्थितिका सम्बन्ध भूमि शब्दके साथ न होजावे (ख) तेषु (ग) सत्त्वानां इनके संबधमें जो विचार और भाव मेरे हृदयमें उत्पन्न हुए हैं उनका उल्लेख पाठकोंकी सेवामें नम्रतापूर्वक इस प्रकार है कि—

(क) 'व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिर्नहि सन्देहादलक्षणम्' = (वाक्यका) यथार्थ आशय(= विशेषप्रतिपत्तिः) व्याख्यानसे (अर्थात् परस्पर शब्दोंका सबंध वा अन्वय करनेसे) निकलता है क्योंकि (वाक्योंमें) संदेहरूप वा संदिग्धार्थ शब्दसे (= सन्देहात्) अलक्षणता अर्थात् अनिश्चितभाव वा अर्थ (= अलक्षणम्) नहीं (नहि) होती है इस परिभाषाके अनुसार नारकियोंसे स्थिति शब्दका सबंध होजाता है नकि भूमि शब्दसे ।

(ख) तेषु (= तिनमें, उनमें) = नरकेषु (= नरकोंमें) ॥ पूज्यपाद स्वामीने 'तेषु'का यही अर्थ लिया है । नरक शब्द उमास्वामी दूसरे सूत्रमें 'बिलों'के अर्थमें अर्थात् नरक (= निवासस्थान) के अर्थमें लाये हैं प्रथम रत्नप्रभा भूमिमें ऐसे तीसलाख बिलें वा निवासस्थान हैं । और इस अध्यायके किसी सूत्रमें नरक शब्द नहीं आया है पश्चात् पूज्यपाद स्वामीने 'भूमि'का अर्थ लेलियाहै जैसाकि "तेषु नरकेषु भूमिक्रमेण यथासंख्यमेकादयःस्थितयो ऽभि सम्बन्ध्यन्ते॥ रत्नप्रभायामुत्कृष्टा स्थितिरेक सागरोपमा" इत्यादि सात वाक्योंसे संस्कृतवृत्तिमे प्रगट है ॥ स्मरण रहे कि प्रथम भूमिमें तीसलाख, दूसरीमें पचीसलाख इत्यादि नरक हैं । तब अर्थ यह हुआ कि तीसलाख नरकोंमें एकसागरकी उत्कृष्ट स्थिति नारकजीवोंकी है । पचीसलाख नरकोंमें नारकीजीवोंकी उत्कृष्ट स्थिति तीनसागरकी है इत्यादि । 'तास्वेक' (= तासुएक = तिन भूमियोंमें एकसागर इत्यादि) पाठसे सब क्लिष्टता जाती रहती है और पूज्यपाद स्वामीके अनुकूल सीधासाधा अर्थ निकल आता है कि तिन भूमियोंमें क्रमसे उत्कृष्ट स्थिति एक तीन इत्यादि सागरों की है ॥ तासु = तासु भूमिषु ॥ तासु शब्द दूसरे सूत्रमें भी आया है । 'तासु' शब्दको अनुवृत्तिभी इस सूत्रमे लेसकते हैं परन्तु तेषु(= तासु) स्पष्टताके लिये है ।

(ग) सत्त्वाना = जीवोंकी, तीसरे नरकतक असुरकुमारदेव, स्वर्गके देव इत्यादि भी जाते हैं। इसलिये 'सत्त्वानां'से आशय 'नारकाणांसत्त्वानां' वाक्यसे है अर्थात् नारकी जीवोंकी भावार्थ 'नारकाः' शब्द इस अध्यायके तीसरे सूत्रमें आया है और उसकी अनुवृत्ति चौथे और पांचवें सूत्रमें लीहै। इस सूत्रमें भी षष्ठी विभक्ति बहुवचनके रूपमें ('नारकाः' शब्दकी अनुवृत्ति) आती है । 'नारकाणां' की अनुवृत्तिसे भी विना 'सत्त्वाना' शब्दके लायेहुये काम चल सकता था परन्तु उमा स्वामीने 'सत्त्वानां' शब्दका प्रयोग इसकारणसे किया है कि सूत्र स्पष्ट होजावे और सत्त्वानां शब्दको देखकर पाठक सरलतासे समझलें कि इसमें 'नारकाणां' की अनुवृत्ति अवश्य आती है 'सत्त्वानां' से केवल काम नहीं चल सकता क्योंकि भ्रम उत्पन्न होता है कि 'जीवोंकी' उत्कृष्ट स्थिति है कि नारकी जीवोंकी(उत्कृष्ट स्थिति है)॥ हमारे कई मित्रोंका विचार है कि यदि 'सत्त्वानां' शब्द न लाते तौभी ज्ञापकरूपसे और उपर्युक्त परिभाषासे पाठक समझ लेते कि नारकियोंकी स्थितिसे प्रयोजन है ।

यथाक्रममित्यनुवर्तते । तेषु नरकेषु भूमिक्रमेण यथासंख्यमेकादयः स्थितयोऽभिसम्बन्ध्यन्ते ॥ रत्नप्रभायामुत्कृष्टा स्थितिरेकसागरोपमा । शर्कराप्रभायां त्रिसागरोपमा । वालुकाप्रभायां सप्तसागरोपमा । पङ्कप्रभायां दशसागरोपमा । धूमप्रभायां सप्तदशसागरोपमा ।

सूत्रार्थः—तेषु३॥ एकसागरोपमा१॥ त्रिसागरोपमा१॥ = तिन (नरकों) मे एकसागर प्रमाण तीनसागर प्रमाण

सप्तसागरोपमा१॥ दशसागरोपमा१॥ सप्तदशसागरोपमा१॥ = सात सागर प्रमाण, दश सागर प्रमाण, सत्रह सागर प्रमाण

द्वाविंशतिसागरोपमा१॥ त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा१॥ = बाईस सागर प्रमाण और तेतीस सागर प्रमाण

नारकाणां६॥ सत्त्वानां६॥ परा१॥ स्थितिः१॥ यथाक्रमम्* = नारकी जीवोंकी उत्कृष्ट आयु यथासंख्य अथवा क्रमानुसार है अर्थात् पहिली रत्नप्रभा भूमिमें एकसागरकी उत्कृष्ट (नारकीजीवों)की आयु है।

दूसरी शर्करापभा पृथिवीमें तीन सागरकी उत्कृष्ट स्थिति है तीसरी वालुकापभा भूमिमें सातसागरकी उत्कृष्ट स्थिति है। चौथी पङ्कप्रभा भूमिमें दश सागरकी उत्कृष्ट स्थिति है, पांचवी धूमप्रभा पृथिवीमें सत्रह सागरकी उत्कृष्ट आयु है, छठवीं तमःप्रभा भूमिमें बाईस सागरकी उत्कृष्ट स्थिति है और सातवीं महातमः पृथिवी विषै तेतीस सागरकी उत्कृष्ट स्थिति है ॥

वृत्त्यानुवादः—यथाक्रमम्* इति-अनुवर्ततेT = (इस सूत्रमें दूसरे सूत्रसे) 'यथाक्रमं' ऐसा अनुकर्षण है अथवा अनुवृत्ति आती है अर्थात् दूसरे सूत्रसे इस सूत्रमें यथाक्रम शब्द लियागया है

तेषु३॥ नरकेषु३॥ भूमि-क्रमेण३॥ = तिन नरकोंमें (रत्नप्रभा, शर्करापभा, इत्यादिक) पृथिवीयोंके क्रमसे

यथासंख्यम्* एकादयः१॥ स्थितयः१॥ = एक आदिक (सागरोपमा) स्थिति यथासंख्य अर्थात् संख्याके अनुसार

अभिसम्बन्ध्यन्ते T रत्नप्रभायाम्७॥ उत्कृष्टा१॥ = लगाईजाती है जोडीजाती है (इसलिये) रत्नप्रभा पहिली पृथिवीमें उत्कर्ष

स्थितिः१॥ एकसागरोपमा१॥ शर्कराप्रभायाम्७॥ = आयु एक सागरोपमा है। शर्करापभा (दूसरी भूमि) में (उत्कृष्ट स्थिति)

त्रिसागरोपमा१॥ वालुकाप्रभायाम्७॥ = तीन सागरोपमा है। वालुकापभा (तीसरी पृथिवी) में (उत्कृष्ट स्थिति)

सप्तसागरोपमा१॥ पङ्कप्रभायाम्७॥ दशसागरोपमा१॥ = सातसागरोपमा है। पंकप्रभा (चौथी भूमि)में (उत्कर्ष आयु) दशसागरोपमा है

धूमप्रभायाम्७॥ सप्तदश-सागरोपमा१॥ = धूमप्रभा (पांचवी भूमि) मे (उत्कृष्ट आयु) सत्रह सागरोपम है।

तमःप्रभायां द्वाविंशतिसागरोपमा। महातमःप्रभायां त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा इति॥ परा उत्कृष्टेत्यर्थः॥ सत्त्वानामिति वचनं भूमिनिवृत्त्यर्थम्॥ भूमिषु सत्त्वानामियं स्थितिः। न भूमीनामिति॥

उक्तः सप्तभूमिविस्तीर्णोऽधोलोकः॥ इदानीं तिर्यग्लोको वक्तव्यः। कथं पुनस्तिर्यग्लोकः। यतोऽसंख्येयाः स्वयम्भूरमणपर्यन्तास्तिर्यक्प्रचयविशेषेणावस्थिता द्वीपसमुद्रास्ततस्तिर्यग्लोक इति॥ के पुनस्तिर्यग्व्यवस्थिता इत्यत आह—

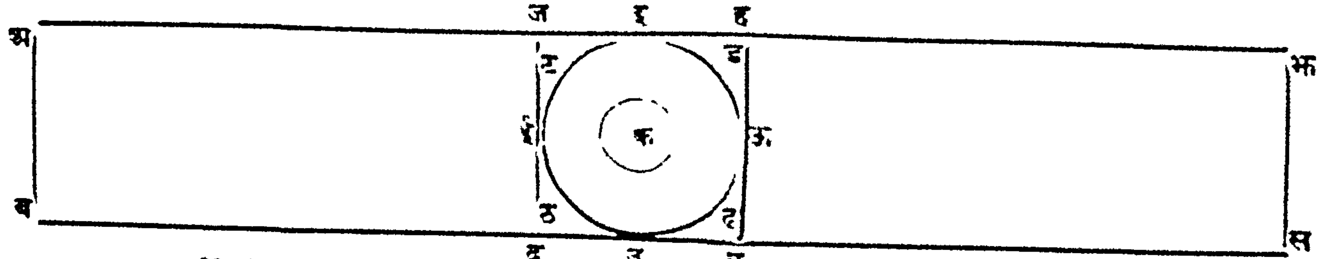
तमःप्रभायां॥ द्वाविंशति-सागरोपमा॥	= तमःप्रभा (छठवीं पृथिवी) में उत्कृष्ट स्थिति बाईस सागर प्रमाण है॥
महातमःप्रभायां॥ त्रयस्त्रिंशत्-सागरोपमा॥ इति*	= महातमःप्रभा (सातवीं भूमि) में उत्कृष्ट आयुः तेतीस सागरप्रमाण है
परा॥ उत्कृष्टा॥ इति*अर्थः। सत्त्वानां इति*वचनं॥	= (इस सूत्रमें) परा (शब्द) उत्कृष्ट ऐसे अर्थमें है। सत्त्वानां ऐसा वाक्य
भूमि-निवृत्ति-अर्थम्॥	= भूमिका (स्थितिके साथ सम्बन्ध हो इस) निषेधके लिये है
भूमिषु॥ सत्त्वानां॥ इयम्॥ स्थितिः। न भूमीनां॥ इति*	= भूमियों विषे जीवोंकी यह आयु है न कि (रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा इत्यादि) भूमियोंकी एक तीन इत्यादिक सागरोंकी स्थिति है
सप्त-भूमि-विस्तीर्णः। अधस्*	= सात (रत्नप्रभा शर्कराप्रभा इत्यादिक) भूमिरूप है विस्तार जिसका ऐसा अधो-
लोकः।उक्तः।इदानीं*तिर्यग्लोकः वक्तव्यः। कथं*पुनः*	= लोक कहागया है अब तिर्यग्लोक कहना चाहिये। बहुरि कैसा
तिर्यग्लोकः। यतः * स्वयम्भूरमणपर्यन्ताः।	= तिर्यग्लोक है अर्थात् तिर्यग्लोक ऐसा नाम कैसे हुआ। क्योंकि स्वयम्भूरमणसमुद्र तक
असंख्येयाः। तिर्यक्-प्रचय-विशेषेण। अवस्थिताः।	= असंख्याते तिर्यक् प्रचयरूप विशेषकार (गोल वृत्ताकारमें फैलेहुए) स्थापित
द्वीप-समुद्राः। ततः।* तिर्यग्लोकः। इति*के। पुनः *	= द्वीप और समुद्र हैं तिससे तिर्यग्लोक ऐसा (नाम) है। बहुरि कौन
तिर्यग्व्यवस्थिताः। इति * अतः * आह।	= तिर्यग् रूप अवस्थित (द्वीप तथा समुद्र) हैं। इसलिये (अग्रिमसूत्रमें) कहते हैं कि

तिर्यञ्चलोक, मध्यलोक, तिर्यग्लोक मनुष्यलोक किसको कहते हैं? तिर्यग्लोक और मध्यलोकमें क्या अन्तर है? प्रथम परिभाषा दीगई है पश्चात् शास्त्र द्वारा प्रमाण दिया गया है।

(उत्तर) तीनसौतेतीस घनाकर राजू क्षेत्र को अर्थात् एक राजु लम्बे एक राजू चौड़े एक राजू ऊंचे ऐसे तीनसौतेतालीस भागवाले क्षेत्रको

जिसको घनोदधिवातवलय घनवातवलय और तनुवातवलय घेरे हुए हैं लोक कहते हैं। इसही क्षेत्रको तिर्यंचलोक कहते हैं क्योंकि तिर्यंचलोक वह है जिसमें तिर्यंच रहते हों। अब लोककी त्रसनाडीमें जो एकराजू लम्बी है और एकही राजू चौडी है और चौदहराजू ऊंची है त्रस और स्थावरोंके रहने का स्थान है और शेष भाग लोकमें तीनसौउनतीस घनाकार राजुओंमें स्थावर रहते हैं स्थावर भी तिर्यंच संज्ञामें अन्तर्गत हैं अतः लोक, सामान्यलोक और तिर्यंचलोक (क्योंकि लोकमें लगभग सब स्थानोंमें तिर्यंच रहते हैं) ये तीनों समानार्थ वाचक कहे जासकते हैं। त्रसनाडीमें स्थावर भी हैं तौ भी क्योंकि प्रधानता से इसमें त्रस पायेजाते हैं इससे त्रसनाडी कहते हैं। "सर्वलोकव्यापित्वाच्चेषां क्षेत्रविभागोनोक्त" सर्वार्थसिद्धि पृष्ठ २५२, राजवार्तिक सूत्र २७, वार्तिक ४, ५, और श्लोकवार्तिक सूत्र २७ देखो॥ सर्व लोकमें फैले हुए होनेसे तिर्यंचोंका क्षेत्र विभाग नहीं कहागया है।

पूरब पश्चिम एक राजू चौडा और उत्तर दक्षिण ७ राजू लम्बे और मेरुकी जडसे एक लाख चालीस योजन (चूलिका तक) ऊंचे क्षेत्रको मध्यलोक कहते हैं॥ जम्बूद्वीपसे लेकर स्वयम्भूरमण समुद्रतक तिर्यक् प्रचयरूपकरि अर्थात् गोल वृत्ताकार रूपमें फैले हुए असंख्याते द्वीप समुद्रोंको अन्तर्गत करनेवाला क्षेत्र एकराजू है व्यास जिसका सो तिर्यग्लोक (सर्वार्थसिद्धिवृत्ति पृष्ठ २०२ के अनुसार द्वितीय संस्करण पृष्ठ ११७के अनुसार) है॥ ढाई द्वीपके क्षेत्रको मनुष्यलोक कहते हैं॥ उपर्युक्त परिभाषाओं का प्रमाण इस प्रकार है कि



पुनः समान्याध ऊर्ध्वतिर्यग्मनुष्यलोकान् पचसस्थाप्यालाप क्रियते——=पुनः सामान्य अध ऊर्ध्व तिर्यग्-मनुष्यलोकान् पंचसंस्थाप्य-आलापः क्रियते (गोम्मटसार जीव काण्ड सठ्ठाण समुद्घादे इत्यादि ५४३ गाथा पृष्ठ ६४०) =पुनि सामान्यलोकको, अधोलोकको, ऊर्ध्वलोकको, तिर्यग्लोकको, मनुष्यलोकको, (ये) पांच स्थापनकर सम्भाषण वा कथन कियागया है॥ "समस्त जो लोक सामान्य लोक है। मध्यलोक तें नीचे सो अधोलोक है। मध्यलोकके उपरि ऊर्ध्वलोक है। मध्यलोक विषैं एकराजू चौडा लाख योजन ऊचा तिर्यक्लोक है। पैंतालीस लाख योजन चौडा लाख योजन ऊचा मनुष्यलोक हैं" गोम्मटसार जीवकाण्ड पृष्ठ ६२५॥ प० टोडरमलजीके ये शब्द कि "मध्यलोकविषै"(मध्यलोकमें)तिर्यक्लोक है प्रगट करते हैं कि तिर्यग्लोक छोटीवस्तु है जो मध्यलाकमें है। बस यह वही तिर्यक्लोक है जिसका व्यास एकराजू है। चौडा एकराजू परिधिके किसी बिन्दुसे सामनेके ठीक दूसरे बिन्दु तक है और एक लाख योजन मेरुकी जडसे मेरु की ऊंचाई तक है। शिष्यके प्रश्न करनेपर (सर्वार्थसिद्धि पृष्ठ २०२ द्वितीयसंस्करण पृष्ठ ११७) कि "कथ पुनस्तिर्यग्लोक" उत्तरमें पूज्यपादस्वामी कहते हैं कि "यतोऽसंख्ययाः स्वयम्भूरमणपर्यन्तास्तिर्यक्प्रचय विशेषेणावस्थिता द्वीप-

समुद्रास्ततः स्तिर्यग्लोक इति ॥ अर्थात् (जम्बूद्वीपसे) स्वयम्भूरमण समुद्र पर्यंत गोल वृत्ताकारमें फैले हुए स्थापित असंख्याते द्वीप तथा समुद्र हैं तिससे तिर्यग्लोक ऐसा है ॥ तिर्यंचइस शब्दका अर्थ देव-नारकी-मनुष्योंको छोडकर अवशेष जीवोंका है और 'तिर्यग्लोक' इस शब्दका अर्थ गोल-वलयाकार-वृत्ताकार ऐसा लिया गया है ॥ पृष्ठ २५ के चित्रमें झसको पूरबमें एकराजू माना है अय को पश्चिममें एकराजू माना है। अझ को उत्तरमें सात राजू माना है दक्खिनमें सात राजू बसको माना है तो "अयसझ" समस्त चित्र मध्यलोक होगा जिसमें जदवह क्षेत्रभी सम्मिलित है। और उसके कोन ट-ठ-ड-ढ (देखो पृष्ठ २४) जो स्वयम्भूरमण समुद्रके बाहर हैं सम्मिलित हैं ("अंतिम स्वयम्भूरमण द्वीपके उत्तरार्द्धमें तथा समस्त स्वयम्भूरमण समुद्रमें और चारों कोनोंकी पृथिवियोंमें कर्मभूमिकी सी रचना है देखो श्रीमाघनन्दिकृत श्रावकाचार तथा जैनसिद्धान्तप्रवेशिका पृष्ठ१३४) परन्तु तिर्यग्लोकमें केवल इईउऊ वृत्त ही सम्मिलित होगा जिसमें "क" जम्बूद्वीप और उसको वलयाकार घेरे हुए लवनोदधि-धातुकीखंड, कालोदधि और पुष्करार्द्ध आदि असख्यात द्वीप समुद्र स्वयम्भूरमण समुद्र तक (घेरे हुए) सम्मिलित हैं ॥

कितने ही महाशयोंने मध्यलोक और तिर्यक्लोकको उचाई मेरुकी जडसे एक लाख योजनकी लिखी है कितने ही महाशयों ने एक लाख चालीस सहस्रका उल्लेख किया है। जिन्होंने मेरुपर्वतकी चूलिकाकी उचाई ग्रहण की है उनकी अपेक्षासे एकलाख मय जडके सुमेरुपर्वतकी उचाई होती है और चालीस सहस्र चूलिकाकी उचाई होजाती है। इसमें कोई बात सन्देह या शकाकी नहीं उत्पन्न होतीहै ॥ समस्तलोकको उचाई चौदह राजू है ॥ सुमेरुकी जडसे ऊपर सात राजू है मध्यलोककी उचाई निकालनेसे चूलिकासे लोक अंत पर्यंत सात राजूसे कुछ न्यून हो जाता है परन्तु एक राजूकी लम्बाई इतनी अधिक है कि एक लाख चालीस योजन उसके समीप कुछ भी नहीं होते इसलिए सामान्यरूपसे स्वर्गके प्रथम पटलसे उचाई लोक पर्यंत सातराजू ही कही है। मेरुकी जडसे नीचे सातराजू अधोलोक है जिसका क्षेत्रफल १९६ धनरूप राजू है अर्थात् एकराजू लंबे एकराजू चौडे एकराजू ऊंचे ऐसे १९६राजुओंके टुकडे है॥ मेरुकी जडसे सिद्धालय पर्यंत १४७घनाकार राजू है अर्थात् मेरुकी जड़से ब्रह्मब्रह्मोत्तर स्वर्गतक७३½ घनाकारराजू है और ब्रह्मब्रह्मोत्तरसे ऊपर सिद्धालय पर्यंत ७३½ घनाकारराजू और है १९६ + ७३½ + ७३½ सर्वयोग ३४३ राजूका हुआ॥ बहुतसे साधारण भोले भाले महाशय "तिर्यंच लोक" क्या है। कहते है मध्यलोक है इसका कारण यह है कि यथार्थमें "तिर्यग्लोक" का अपभ्रंश करते करते तिर्यंच-लोक कहने लगे और तिर्यग्लोकको मध्यलोकके अर्थमें समझने लगे। 'तिर्यग्लोक' जैसा कि हम सिद्ध कर चुके है मध्यलोकका भाग है॥ वास्तविक तिर्यंचलोक वही है जिसका उल्लेख कर चुके है ॥

पुष्करवरः समुद्रः । ४ वारुणीवरो द्वीपः । वारुणीवरः समुद्रः । ५ क्षीरवरो द्वीपः । क्षीरवरः समुद्रः । ६ घृतवरो द्वीपः । घृतवरः समुद्रः । ७ इक्षुवरो द्वीपः । इक्षुवरः समुद्रः । ८ नन्दीश्वरो द्वीपः । नन्दीश्वरवरः समुद्रः । ९ अरुणवरो द्वीपः । अरुणवरः समुद्रः । इत्येवमसंख्येया द्वीपसमुद्राः स्वयम्भूरमणपर्यंता वेदितव्याः । अमीषां विष्कम्भसन्निवेशसंस्थानविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ द्विर्द्विर्विष्कम्भाः पूर्वपूर्वपरिक्षेपिणो वलयाकृतयः ॥ ८ ॥

पुष्करवरः १/१। समुद्रः १/१। वारुणीवरः १/१ द्वीपः १/१। = पुष्कर वर समुद्र है। वारुणीवर द्वीप है

वारुणीवरः १/१ समुद्रः १/१। क्षीरवरः १/१। द्वीपः १/१। = वारुणीवर समुद्र है। क्षीरवर द्वीप है

क्षीरवरः १/१। समुद्रः १/१, घृतवरः १/१। द्वीपः १/१। = क्षीरवर समुद्र है। घृतवर द्वीप है

घृतवरः १/१। समुद्रः १/१ इक्षुवरः १/१। द्वीपः १/१। = घृतवर समुद्र है। इक्षुवर द्वीप है

इक्षुवरः १/१। समुद्रः १/१। नन्दीश्वरः १/१। द्वीपः १/१। = इक्षुवर समुद्र है। नन्दीश्वर द्वीप है

नन्दीश्वरवरः १/१। समुद्रः १/१। अरुणवरः १/१। द्वीपः १/१। = नन्दीश्वर समुद्र है। अरुणवरद्वीप है

अरुणवरः १/१। समुद्रः १/१। इति*एवम्* = अरुणवर समुद्र है। इसप्रकार निश्चयसे (=एवम्)

असंख्येयाः १/३। द्वीपसमुद्राः १/३। स्वयम्भूरमण- = असंख्यात द्वीप तथा समुद्र स्वयम्भूरमण (समुद्र)

पर्यंताः १/३। वेदितव्याः १/३। अमीषां ६/३। विष्कम्भ- = तक जानना चाहिये। इन (द्वीप तथा समुद्रों) की चौड़ाई

सन्निवेश-संस्थान-विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थं १/१।। आह = अवस्थान (=सन्निवेश) और आकार(=संस्थान)के विशेष जाननेकेलिये कहतेहै कि

द्विर्द्विर्विष्कम्भाःपूर्वपूर्वपरिक्षेपिणोवलयाकृतयः=(जम्बूद्वीप लवणोदादयः)द्विःद्विःविष्कम्भाःपूर्वपूर्वपरिक्षेपिणः वलय-आकृतयः१/३।

सूत्रार्थः—जम्बूद्वीप-आदयः१/३। लवणोद-आदयः१/३।च = जम्बूद्वीप, आदिक और लवण समुद्र आदिक (प्रत्येक समुद्र तथा द्वीप एक दूसरेसे)

द्विः द्विः विष्कम्भाः १/३। पूर्वपूर्व- = दुगने दुगने विष्कम्भ वाले है और पहिले पहिले (द्वीप और समुद्र अग्रिमअग्रिमसे)

परिक्षेपिणः १/३। = चारों ओरसे घिरे हुए वा लिपटे हुए है (बहुरि सबही द्वीप तथा समुद्र)

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों सम्प्रदायोंमें एक है (२)वलयाकृति = वलयाकार = वृत्ताकार = वलयरूप = वृत्तरूप (लपेटे हुए) य सब एकार्थक है।

द्विर्द्विरिति वीप्सायां वृत्तिवचनं विष्कम्भद्विगुणत्वव्याप्त्यर्थम् ॥ आद्यस्य द्वीपस्य यो विष्कम्भः तद्द्विगुणविष्कम्भो लवणजलधिः । तद्द्विगुणविष्कम्भो द्वितीयो द्वीपः ।

वलय-आकृतयः[1,3] =वलयाकार अथवा वृत्ताकार हैं अर्थात् लवण समुद्रके एक ओरके व्यासखंड जम्बूद्वीपके व्याससे दुगणे है और जम्बूद्वीपको चारों ओरसे वेढेहुए है ऐसेही धातुकीखंडके एक ओरके व्यासखंडका प्रमाण लवणसमुद्रके व्याससे दुगना है और सर्वतः लवणसमुद्रको लपेटेहुए हैं ऐसेही कालोदधि पुष्करवर इत्यादि असंख्यातद्वीपसमुद्रोंको स्वयम्भूरमण समुद्रपर्यंत जानना

(१)द्विः*द्विः*इति*वीप्सायां[1,7]॥ वृत्ति- वचनम्[1,1]॥ =द्विः द्विः (दुगुण दुगुण) ऐसा वार वारके अर्थमे समासरूपमे द्विः द्विः वाक्य है
=सो विस्तार अर्थात् व्यास एक ओरके खंडके प्रमाणका (=विष्कम्भ) दूनापनाके फैलानेके

विष्कम्भ-द्विगुणत्व-
व्याप्ति-अर्थम्[1,1]॥ =लिये है

आद्यस्य[6,1]॥द्वीपस्य[6,1]॥यः॥विष्कम्भः(२ =प्रथम द्वीपका जो व्यास प्रमाण है

तद्-द्विगुण-विष्कम्भः[1,1]॥ लवणजलधिः[1,1]॥ =उससे दुगुण व्यासभागप्रमाण वाला लवण समुद्र है अर्थात् जम्बूद्वीपकी परिधि पर एक विन्दु लेकर उसीकी सीधमे दूसरा विन्दु लवण समुद्र की परिधि पर लेकर यदि दोनों विन्दुओंको मिलाकर सीधी रेखा खींच दे तो इस रेखाकी लम्बाई दो लाख योजनकी होगी

तद्-द्विगुण-विष्कम्भः[1,1]॥ द्वितीयः[1,1]॥ द्वीपः[1,1]॥ =उस (लवनोदधि) से दूने व्यास भागवाला (=विष्कम्भ)दूसरा (धातुकी खंड) द्वीप है

(१) यह बहुव्रीहि समास है। बहुव्रीहिसमास तीन प्रकारका है (क) उत्तर पदार्थ प्रधान (ख) उभय पदार्थ प्रधान (ग) अन्यपदार्थ प्रधान यहाँ पर प्रथमभेद उत्तर पदार्थ प्रधान है। जैसे द्विदशा.। द्वौवारौ दश इति विग्रह्य दो वार दश जिसमें हो ऐसा विग्रह है जिसका अर्थ वीस है। उभय पदार्थ प्रधान वह है जिसमें दोनों ही पद प्रधान हों जैसे द्वित्रा द्वौ वा त्रयो वा इति विग्रह्य भावार्थ दो वा तीन। अन्य पदार्थ प्रधान वह है जिसमें अन्य अर्थात् अन्तिम पद प्रधान हो जैसे उपविंशा· उपसमीपम् गता विंशतिर्येषामिति विग्रह्य = समीपको प्राप्त होगयेहैं वीस जिन्होंके लगभग वीस अर्थ है।

(२) विष्कम्भ -इसका अर्थ पद्मचन्द्र कोषके पृष्ठ ३६१ में "विस्तार फैलाव"का है विस्तार वा फैलावका अर्थ क्षेत्रफल भी समझा जासके है परन्तु यहाँपर यह आशय नहीं है क्योंकि जम्बूद्वीपसे लवणोदधि का क्षेत्रफल लगभग चौबीस गुणा अधिक होता है यहां पर विष्कम्भ का आशय वह एक ओरका व्यासखड है जो जम्बूद्वीपकी परिधिपर एक विन्दु लेकर उसकी सीधमें दूसरा विन्दु लवणोदधिकी परिधि परसे लेकर दोनों विन्दुओंको मिलानेसे बनता है॥ जम्बूद्वीपसे लवणोदधि लगभग चौबीस गुणा है और धातुकी खड जम्बूद्वीपसे लगभग एकसौ चवालीस गुणा है जैसा कि

तद्द्विगुणविष्कम्भो द्वितीयो जलधिरिति॥ द्विर्द्विर्विष्कम्भो येषां ते द्विर्द्विर्विष्कम्भाः॥ पूर्वपूर्वपरिक्षेपिवचनं ग्रामनगरादिवद्विनिवेशो मा विज्ञायीति॥ वलयाकृतिवचनं चतुरस्रादिसंस्थानान्तरनिवृत्त्यर्थम्॥

तद्-द्विगुण-विष्कम्भः[1/1] द्वितीयः[1/1] जलधिः[1/1] इति*	=तिस (धातु की खंड द्वीप) से दुगना व्यास खंडका धारक दूसरा समुद्र (कालोदधि) है
द्विः द्विः विष्कम्भः[1/1] येषां[6/3] ते द्विः द्विः विष्कम्भाः[1/3]	=दूना दूना विष्कम्भ है जिनका ते दूने दूने विष्कम्भ वाले हैं
पूर्व-पूर्व—	=(इस सूत्रमें) पहिले पहिले (द्वीप तथा समुद्र एक दूसरे को)
परिक्षेपिन्-वचनम्[1/1]॥	=चारों ओर से अथवा सर्वतः वेढे हुए इस वाक्य(=वचन) से प्रगट है कि
ग्राम-नगर-आदिवत्*विनिवेशः[1/1]मा*विज्ञायि[T]इति*	=ग्राम तथा नगरादिकके सदृश अवस्थान (इन द्वीप तथा समुद्रोंको) मत जानो
वलय-आकृति-वचनं[1/1]॥ चतुरस्र-आदि-संस्थान-	=वृत्ताकार वा वलयाकार वाक्य चौकोर आदिक आकार (=संस्थान) की
अन्तर-निवृत्ति-अर्थम्[1/1]॥	=अवधिके निषेधके लिये है

द्यानतराय आगरा निवासीके जिन्होंने धर्मविलासग्रन्थ सवत् १७८०में पूर्ण किया उसके प्रकरण "द्रव्यादि पचीसी"के निम्नलिखित सवैया इकतीसासे प्रगट है। जम्बू एक लाख दो दो दोनों ओर लौनोदधि, सब पाच सूची गुनी पचीस फलाइये। द्वीप एक लौनिकार चौबीस समुद्रधार, जम्बू सौं चौबीस गुणो उदधि बताइये॥ धात खड चार चार सब सूची तेरह की, गुनौ सौ उनहत्तरि पच्चीस घटाइये। जम्बू सेती एकसौ चवाल गुनौ धात खड आगैं दधि दीप यों ही जिनवानी गाइये॥ १०॥ एक समुद्र वा द्वीपके सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक की रेखाके प्रमाणको जो कि केन्द्रमें होकर जाती है सूची कहते हैं। इस प्रकार १ लाख जम्बूद्वीप दोनों ओर दो दो लाख लवण समुद्र सब मिलकर पांच लाख इसको इसीसे गुणनेसे पच्चीस हुए इसमें जम्बूद्वीप एक लाख को घटाने पर जम्बूद्वीप से लवण समुद्र चौबीस गुणा भया। इसी प्रकार लवण समुद्र क दोनों ओर चार चार धात, की खड है सब मिल कर १३ हुए। इसको इसीसे गुणनेसे १६९ हुए इसमें से पच्चीस घटाने से १४४ गुना जम्बूद्वीप से धातकी खड भया इसी प्रकार सर्वत्र जानना॥

द्विर्द्विर्विष्कम्भा — पूर्वोक्त वर्णित "एक ओर का व्यास खंड" की लम्बाई दूनी दूनी एक द्वीप से उसके निकटके समुद्र की है उसके पश्चात्के द्वीप की वैसा ही व्यास खड उस समुद्रके व्यास खड से दूना है जैसे जम्बूद्वीप पटल रूप अथवा प्रस्तर रूप वृत्त है और उसका पूर्ण व्यास एक लाख योजन का है लवण समुद्रका एक ओरका व्यासखड दो लाख योजन लम्बा है॥ इसी प्रकार धातुकी खड द्वीपका एकओरका व्यास-खड जो लवणोदधि और धातुकी खड की परिधियों पर एक सीधमें दो बिन्दुओं के मिलने से बनता है, चार लाख योजन है और कालोदधिका एक ओरका व्यासखड जो धातुकी खड और कालोदधिकी परिधियों पर एक दूसरे के सीधमें दो बिन्दु लेकर मिलानेसे बनता है आठलाख योजन का है इसी प्रकार अन्तके स्वयम्भूरमणसमद्र पर्यंत जानना॥ ऐसा अभिप्राय द्विर्द्विर्विष्कम्भ' वाक्य का है॥

अत्राह, जम्बूद्वीपस्य प्रदेशसंस्थानविष्कम्भा वक्तव्यास्तन्मूलत्वादितरविष्कम्भादिविज्ञानस्येत्युच्यते

तन्मध्ये मेरुनाभिर्वृत्तो योजनशतसहस्रविष्कम्भो जम्बूद्वीपः ॥९॥

अत्र॰आह, जम्बूद्वीपस्य, प्रदेशसंस्थान-विष्कम्भाः[1/3] वक्तव्याः	=यहाँ प्रश्न है कि जम्बूद्वीपका ठिकाना (=प्रदेश) आकार, व्यासप्रमाण कहना चाहिए
तद्मूलत्वात्[5/1]॥	=उस (जम्बूद्वीप के) स्थित आदिक होने से अर्थात् निर्णय आदिक होने से
इतर-विष्कम्भादि-विज्ञानस्य[6/1]॥ इति॰उच्यते[T]	=दूसरे (द्वीप तथा समुद्र) के विस्तारादिक जाननेको इसप्रकार (अग्रिमसूत्रमें) कहाजाताहै कि

[1]सूत्रम्—तन्मध्ये[2] मेरुनाभिर्वृत्तो योजनशतसहस्रविष्कम्भो जम्बूद्वीपः ॥ ९ ॥

सूत्रार्थः—तद्मध्ये[7/1] मेरुनाभिः[1/1]	=उन (सर्वद्वीप समुद्रों) के बीचाबीचमें मेरुपर्वत है नाभि जिसकी अथवा मेरु पर्वत जिसकी नाभि (=मध्य) में है ऐसा
[3]वृत्तः[1/1]	=वलयाकार (सूर्य के मंडल सदृश वा कुलाल के चक्र सदृश आकारवान्)
[4]योजन-शतसहस्र-विष्कम्भः[1/1] [5] जम्बूद्वीपः[1/1]	=एकलक्ष योजन व्यासधारक जम्बूद्वीप है अर्थात् जम्बूद्वीप प्रतर पटल वृत्त है शेष समुद्र और द्वीप स्वयम्भूरमण समुद्र तक वलयाकार चूड़ी, चक्र, अथवा कड़े के आकारवत् है सो इस जम्बूद्वीपके प्रत्येक व्यासकी लम्बाई एक लाख योजन है और उस जम्बूद्वीप की परिधि तीन लाख सोलह हजार दोसौ सत्ताइस योजन तीन कोश एक सौ अट्ठाइस चाप साढे तेरह अंगुल से कुछ अधिक है (योजन २००० कोशका है)

(१) श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों आम्नायों में इस सूत्र का पाठ और अर्थ एकसा है ॥ कहीं कहीं पर हमारे यहां जम्बूद्वीप भी पाठ ठीक है ॥

(२) मेरुनाभिः-इस वाक्य के दो प्रकार के समास हैं (१) मेरुपर्वत है नाभि जिसकी (२) मेरु पर्वत जिसकी नाभिमें है दोनों रीतिके समासों का यह आशय है कि मेरु जिस (जम्बूद्वीप) के बीच में है ॥

(३) वृत्त = कुलालके चक्र सदृश वृत्त होता है, उसके बीचाबीच में एक विन्दु कल्पित करें तो उस विन्दुको केन्द्र कहेंगे ॥ इस वृत्तकी किनारेका चौगिरदा गोल रेखाको परिधि कहतेहैं इस परिधि पर दो विंदु एकदूसरेके सामने लेकर केन्द्रमें होकर जो रेखा जाती है उसको व्यास वा सूची कहते है ॥ (४) यहां योजन दो सहस्र कोशका जानना चाहिये (५) व्यासका अर्थ (क) विस्तार (ख) फैलाव (ग) सूचीके है इसलिए यह शब्द विष्कम्भ शब्दके अनुवाद के लिए बहुत योग्य है ॥

ऽकृत्रिमः सपरिवारस्तदुपलक्षितोऽयं द्वीपः ॥

तत्र जम्बूद्वीपे षड्भिः कुलपर्वतैर्विभक्तानि सप्त क्षेत्राणि कानि तानीत्यत आह ॥

॥ भरतहैमवतहरिविदेहरम्यकहैरण्यवतैरावतवर्षाः क्षेत्राणि ॥१०॥

भरतादयः सञ्ज्ञा अनादिकालप्रवृत्ता अनिमित्ताः॥ तत्र १ भरतवर्षः क्वसन्निविष्टः? । दक्षिणदिग्भागे

अकृत्रिमः१।१ स-परिवारः१।१ =अकृत्रिम परिवार (अर्थात् अपने चारों ओर आधे आधे प्रमाण लिये एक सौ आठ छोटे जम्बूवृक्षो सहित

तद्-उपलक्षितः॥अयं१।१ द्वीपः१।१ =उस (प्रधान वृक्ष)के योगसे (=उपलक्षितः) यह द्वीप है

तत्र॥जम्बूद्वीपे७।१ षड्भिः३।३ कुलपर्वतैः३।३ विभक्तानि१।३ =तहां जम्बूद्वीप विषैं छह कुलाचलनिकरि (=कुल पर्वतैः) विभाग कियेगये

सप्त१।३ क्षेत्राणि१।३ कानि१।३ तानि१।३ इति॥अतः॥आह=सात क्षेत्र है ते कौन है इसलिये (उत्तर सूत्र मे) कहते हैं कि

(१)सूत्रम्—भरतहैमवतहरिविदेहरम्यकहैरण्यवतैरावतवर्षाः क्षेत्राणि ॥ १० ॥

=(जम्बूद्वीपे)भरतवर्षः, हैमवतवर्षः, हरिवर्षः, विदेहवर्षः, रम्यकवर्षः, हैरण्यवतवर्षः, ऐरावतवर्षः, क्षेत्राणि भवन्ति॥ १० ॥

सूत्रार्थः—(जम्बूद्वीपे७।१)भरतवर्षः१।१ हैमवतवर्षः१।१ =(जम्बूद्वीप विषैं) भारतवर्ष, हैमवतवर्ष,

हरिवर्षः१।१ विदेहवर्षः१।१ रम्यकवर्षः१।१ =हरिवर्ष, विदेहवर्ष, रम्यकवर्ष,

हैरण्यवतवर्षः१।१ ऐरावतवर्षः१।१ क्षेत्राणि१।३ भवन्ति [=हैरण्यवतवर्ष, ऐरावतवर्ष(ये सात) क्षेत्र हैं

वृत्त्यनुवादः-भरत-आदयः१।३ सञ्ज्ञा१।३ अनादिकालप्रवृत्ताः१।३ =भरतादिक नाम अनादिकालसे प्रवर्तते हैं

अनिमित्ताः१।३ तत्र॥भरतवर्षः१।१ =निमित्तरहित अर्थात् स्वयम् (प्रश्न) तहाँ (जम्बूद्वीपमें) पहिला भारतवर्ष (=भरतवर्ष)

क्व सन्निविष्टः१।१? दक्षिण-दिग्भागे७।१ =कहां स्थिति है (उत्तर)जम्बूद्वीपके दक्षिण दिशाके विभागमे

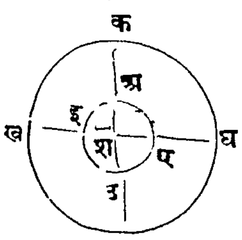
(१) हमारे यहां इस सूत्रका पाठ और अर्थ सर्वत्र एक है ॥ श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रमें भरत, हैमवत, इत्यादि के पहिले 'तत्र' शब्द अधिक है जिस 'तत्र' शब्द का अर्थ है "तहाँ" अर्थात् जम्बूद्वीपलवणोदादय इत्यादि" इस सातवां सूत्र से "जम्बद्वीप" ऐसी अनुवृत्ति इस सूत्रमें लीगई है। दोनों सम्प्रदायों में इस सत्रका अर्थ एक है ॥

एटानिवासी जगरूपसहाय वकील कृत पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित सर्वार्थसिद्धिका शब्दशः हिन्दीअनुवाद। अध्याय ३ सूत्र १०

हिमवतोऽद्रेस्त्रयाणां च समुद्राणां मध्ये आरोपितचापाकारो भरतवर्षः। विजयार्द्धेन गङ्गासिन्धुभ्यांच विभक्तः षट्खण्डः ॥ क्षुद्रहिमवन्तमुत्तरेण दक्षिणेन, महाहिमवन्तं पूर्वापरसमुद्रयोर्मध्ये २ हैमवत-वर्षः ॥ निषधस्य दक्षिणतो महाहिमवत उत्तरतः पूर्वापरसमुद्रयोरन्तराले ३ हरिवर्षः॥ निषधस्यो-त्तरान्नीलतो दक्षिणतः

हिमवतः अद्रेः त्रयाणाम् च*समुद्राणाम्	=हिमवान्-पर्वतके (अद्रेः) और (=च) तीन ओर (लवण) समुद्रके
मध्ये आरोपित-चाप-आकारः भरतवर्षः	=मध्यमें चढ़ायेहुये धनुषके आकार भारतवर्ष है
विजयार्द्धेन गङ्गासिन्धुभ्याम् च*विभक्तः	=वैताड्यपर्वतसे तथा गंगा और सिधु नदियो से पृथक् किये हुये (=विभक्तः)
षट्खण्डः क्षुद्रहिमवन्तं उत्तरेण	=छह खंड है छोटे हिमवान् कुलाचलकी उत्तर दिशासे (और)
दक्षिणेन महाहिमवन्तं पूर्व-अपर-	=महाहिमवान् कुलाचलकी दक्षिण दिशासे पूर्व पश्चिमके दोनो ओर
समुद्रयोः मध्ये २ हैमवत वर्षः	=लवण समुद्रके बीचमें दूसरा हेमवत वर्षधर क्षेत्र है
निषधस्य दक्षिणतः*महाहिमवतः उत्तरतः*	=निषध कुलाचलकी दक्षिण दिशासे और महाहिमवान् कुलाचलकी उत्तर दिशासे
पूर्व-अपर-समुद्रयोः अन्तराले ३ हरिवर्षः	=पूर्व पश्चिम दोनों ओरके लवण समुद्रके बीचमें (अन्तराले) तीसरा हरि वर्ष है ॥
निषधस्य उत्तरात् नीलतः*दक्षिणतः*	=निषध कुलाचलकी उत्तर दिशासे (और) नील कुलाचलकी दक्षिण दिशासे

जम्बूद्वीप तथा लवण समुद्र आदि द्वीप और समुद्रोंका क्षेत्रफल निम्न लिखित गणितके नियमानुसार निकल आता है ॥



अइउए एक वृत्त है जिसके बीचोबीच श एक बिंदु है इस बिंदुको उक्त वृत्तका केन्द्र कहते हैं अउ रेखा और इए रेखाको व्यास कहते हैं। शअ,शउ,शइ,शए इन प्रत्येक बराबरकी रेखाको त्रिज्या, जीवा, वा व्यासार्ध कहते हैं अइउए गोल रेखाकोवृत्तकी परिधि कहते हैं। इस अइउए क्षेत्रको हमने जम्बूद्वीप माना है जिसका व्यास एक लाख योजन लम्बाईमें है और अइउए और कखगघके बीचके क्षेत्रको लवण समुद्र माना है। व्यासार्ध वा जीवाके वर्गको $\frac{२२}{७}$ से गुणा करनेसे जो गुणनफल हो वही क्षेत्र होता है। जैसे जम्बूद्वीपकी जीवा पचास सहस्र योजन लम्बी है $(५००००)^२ \times \frac{२२}{७} = २५००००००००० \times \frac{२२}{७} = \frac{५५००००००००००}{७} = ७८५७१४२८५७\frac{१}{७}$ अर्थात् जम्बूद्वीपका क्षेत्रफल सातअरब पचासीकरोड इकहत्तरलाख ब्यालीससहस्र आठसौसत्तावन एकबटाहुये सात वर्गयोजन हुआ ऐसेही कखगघ वृत्तका क्षेत्र फल निकाल कर उसमेंसे जम्बूद्वीपका क्षेत्र घटानेसे लवण समुद्रका क्षेत्रफल निकल आवैगा ॥

पूर्वापरसमुद्रयोरन्तरे ४ विदेहस्य सन्निवेशो द्रष्टव्यः ॥ नीलत उत्तरो रुक्मिणो दक्षिणः पूर्वापरसमुद्रयोर्मध्ये ५ रम्यकवर्षः ॥ रुक्मिण उत्तराच्छिखरिणो दक्षिणात्पूर्वापरसमुद्रयोर्मध्ये सन्निवेशे ६ हैरण्यवतवर्षः॥शिखरिण उत्तरतस्त्रयाणां समुद्राणां मध्ये ७ ऐरावतवर्षः । स विजयार्द्धेन रक्तारक्तोदाभ्यां च विभक्तः षट्खण्डः॥षट्कुलपर्वता इत्युक्तं, के पुनस्ते, कथं वा व्यवस्थिता इत्यत आह—

पूर्व-(१)अपर-समुद्रयोः[६।२] अन्तरे[७।१] ४ विदेहस्य[६।१]	=पूर्व पश्चिम (लवण) समुद्रके भागोंके मध्यमें चौथा विदेह क्षेत्रकी
सन्निवेशः[१।१] द्रष्टव्यः[१।१],नीलतः*उत्तरः[१।१]	=सम्यक् स्थिति जानना योग्य है अथवा देखने योग्य है ॥ नील कुलाचलसे उत्तर
रुक्मिणः(२ ५।१) दक्षिणः[१।१] पूर्व-अपर-समुद्रयोः[६।२]	=रुक्मी वा रूपीकुलाचलसे दक्षिण (और) पूर्व और पश्चिम दोनो ओरके लवण समुद्रके
मध्ये[७।१] ५ रम्यक-वर्षः[१।१], रुक्मिणः [६।१] उत्तरात्[५।१]	=बीचमें पांचवां रम्यक वर्ष है ॥ रुक्मि कुलाचलके उत्तर दिशासे और
शिखरणः[६।१] दक्षिणात्[५।१] पूर्व-अपर-समुद्रयोः[६।२]	=शिखरी कुलाचलके दक्षिण दिशासे पूर्व और पश्चिम दोनो ओरके लवण समुद्रके
मध्ये[७।१] सन्निवेशे[७।१] ६ हैरण्यवतवर्षः[१।१] ।	=अन्तराल स्थितिमें छठवां हैरण्यवत वर्षः है ॥
शिखरिणः[६।१] उत्तरतः*त्रयाणाम्[६।३] समुद्राणां[६।३]	=शिखिरी कुलाचलकी उत्तर दिशासे (और) तीन ओर लवण समुद्रके
मध्ये[७।१] ७ ऐरावतवर्षः[१।१],सः[१।१] विजयार्द्धेन[३।१]	=बीचमें सातवां ऐरावत वर्ष है ॥ वह (ऐरावत क्षेत्र) वैताड्य पर्वतकरि
रक्तारक्तोदाभ्याम्[३।२]च*विभक्तः[१।१] षट्खण्ड [१।१]	=तथा (च) रक्ता रक्तोदा दोनो नदियोकरि छह खंडरूपमें बटा हुआ है ॥
षट्-कुलपर्वताः[१।३] इति*उक्तं[१।१]।के [१।३] पुनः*ते[१।३]	=छह कुलाचल पर्वत ऐसा कहा गया है अथवा वर्णित है । वहुरि(=पुनः)ते कोन हैं ॥
कथं*वा*व्यवस्थिताः[१।३] इति*अतः*आह	=अथवा किस प्रकार व्यवस्थित हैं । इसलिये (आचार्य अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

(१) लवण समुद्र वलयाकार सर्वत. जम्बूद्वीपको घेरे हुए एक ही है "समुद्राणाम्" वहुवचन और "समुद्रयो." द्विवचन इस कारणसे लाये हैं कि "समुद्राणाम्" शब्दसे लवण समुद्रके तीन ओरके भागोंसे आशय है और समुद्रयो शब्दसे लवणोदधिके पूर्व और पश्चिमकी सीमाओंके भागोंसे अभिप्राय है इसीलिए अनुवादमें भाग शब्द लाए है ॥ (२) रुक्मिणः[५।१] अथवा [६।१]। दोनों हो सकते है पचमी विभक्तिमें अर्थ रुक्मी कुलाचलसे दक्षिण ऐसा होगा और षष्ठी विभक्तिमें (रुक्मी कुलाचलके) दक्षिण ऐसा अर्थ है ॥

॥ तद्विभाजिनः पूर्वापरायता हिमवन्महाहिमवन्निषधनीलरुक्मि-शिखरिणो वर्षधरपर्वताः ॥ ११ ॥

तानि क्षेत्राणि विभजन्त इत्येवंशीलास्तद्विभाजिनः ॥ पूर्वापरायता इति पूर्वापरकोटिभ्यां लवण-जलधिस्पर्शिन इत्यर्थः ॥ हिमवदादयोऽनादिकालप्रवृत्ता अनिमित्तसञ्ज्ञाः वर्षविभागहेतुत्वाद्वर्षधर-पर्वता इत्युच्यन्ते ॥ तत्र क्व हिमवान् ? । भरतस्य हैमवतस्य च सीमनि व्यवस्थितः॥ क्षुद्रहिम-वान् योजनशतोच्छ्रायः॥हैमवतस्य हरिवर्षस्य च विभागकरो महाहिमवान् द्वियोजनशतोच्छ्रायः ॥

सूत्रम्—तद्विभाजिनः पूर्वापरायता हिमवन्महाहिमवन्निषधनीलरुक्मिशिखरिणो वर्षधरपर्वताः ११

सूत्रार्थः—तद्-विभाजिनः[१/३] पूर्व-	=तिन (भरत, हैमवत, इत्यादिक सात क्षेत्रों) को पृथक् करनेवाले पूर्व
अपर-आयताः[१/३] हिमवत्-महाहिमवत्-निषध-	=पश्चिम लवणोदधितक लम्बे हिमवान्-, महाहिमवान्, निषिध,
नील-रुक्मि-शिखरिणः[१/३] वर्षधरपर्वताः[१/३]	=नील, रुक्मि (रुक्मी वा रूपी) शिखिरी (छह)वर्षधर पर्वत, कुलपर्वतवा कुलाचल हैं
वृत्त्यर्थः-तानि[२/३] क्षेत्राणि[२/३] विभजन्ते इति एवं शीलाः[१/३]	=तिन (भरत हैमवत इत्यादि) क्षेत्रोंको पृथक् करते हैं ऐसे स्वभाव वा प्रकृति वाले है॥
तद्विभाजिनः[१/३] पूर्व-अपर-आयताः[१/३] इति *	=ते तद्विभाजन है (वा विभाग करने वाले है) (सूत्रमें) पूर्व पश्चिम लम्बे है ऐसे
पूर्व-अपर-कोटिभ्याम्[३/३] लवण-जलधि-स्पर्शिनः[१/३]	=पूर्व पश्चिमकी अटनीयों करि (=कोटिभ्यां) लवणोदधिको छूने वाले छै कुलाचल हैं॥
इति*अर्थः[१/१] । हिमवत्-आदयः[१/३] अनादिकालप्रवृत्ताः[१/३]	=ऐसा अभिप्राय है ॥ हिमवान आदिक (षट्कुलाचल) अनादिकालसे प्रवर्ती
अनिमित्तसञ्ज्ञाः[१/३] वर्षविभागहेतुत्वात्[५/१]	=निमित्तरहित नाम वाले वा स्वयं नाम धारक क्षेत्रोंको पृथक् २ करनेके कारणसे
वर्षधर-पर्वताः[१/३] इतिउच्यन्ते,तत्र*क्व*हिमवान्[१/१]?	=वर्षधर पर्वत ऐसे कहे जाय हैं । (प्रश्न) तहां हिमवान् (पर्वत) कहां है ।
भरतस्य[६/१] हैमवतस्य[६/१] च—सीमनि[७/१] व्यवस्थितः[१/१]	=(उत्तर) भरत क्षेत्रकी बहुरि हेमवत वर्षकी सीमामें अवस्थित हैं
क्षुद्र-हिमवान्[१/१] योजन-शत-उच्छ्रायः[१/१],	=क्षुद्र हिमवान् है (क्षुद्र=छोटा) जिसकी योजन सौ उचाई (=उच्छ्राय) है ॥
हैमवतस्य[६/१] हरिवर्षस्य[६/१] च*विभागकरः[१/१]	=हैमवत क्षेत्रका तथा हरिवर्षका विभाग करने वाला
महाहिमवान्[१/१] द्वि-योजन-शत-उच्छ्रायः[१/१]	=महाहिमवान् है जिसकी योजन दो सौ की ऊंचाई है ॥

विदेहस्य दक्षिणतो हरिवर्षस्योत्तरतो निषधो नाम पर्वतश्चतुर्योजनशतोच्छ्रायः ॥ उत्तरे त्रयोऽपि पर्वताः स्ववर्षविभाजिनो व्याख्याताः ॥ उच्छ्रायश्च तेषां चत्वारि द्वे एकं च योजनशतं वेदितव्यम् ॥ सर्वेषां पर्वतानामुच्छ्रायस्य चतुर्भागोऽवगाहः॥ तेषां वर्णविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ हेमार्जुनतपनीयवैडूर्यरजतहेममयाः ॥ १२ ॥

विदेहस्य दक्षिणतः*हरिवर्षस्य उत्तरतः* =विदेह क्षेत्रकी दक्षिणदिशासे हरिवर्षक्षेत्रके उत्तरदिशासे

निषधः नाम पर्वतः चतुर्योजन-शत-उच्छ्रायः =निषधनाम पर्वत है जिसकी चारसौ योजन ऊंचाई है ॥

उत्तरे त्रयः अपि*पर्वताः स्व-वर्ष — =उत्तरदिशामें तीनोंही (नील, रुक्मि, शिखरी, पर्वत अपने(अपने) क्षेत्रोंके

विभाजिनः व्याख्याताः उच्छ्रायः च*तेषां चत्वारि =विभाग करने वाले कहे गये है बहुरि तिनकी ऊंचाई चार

द्वे एकं च*योजन-शतं वेदितव्यम् =दो तथा एक सौ, योजन (क्रमसे) जानना चाहिए अर्थात् नील पर्वतकी चारसौ योजन ऊंचाई है रुक्मि पर्वतकी दोसौ योजन है व शिखरी पर्वतकी सौ योजनहै

सर्वेषां पर्वतानाम् उच्छ्रायस्य चतुर्भागः =समस्त पर्वतोंकी ऊंचाईका चौथाई भाग (क्रमानुसार) पृथिवीमें

अवगाहः प्रविष्ट है वा भूमिमें अवगाह है। (तातपर्य्य यह है कि हिमवान् पर्वतकी नीवपचीस योजनकी है और सौ योजन भूमिके ऊपर है। महाहिमवान् ५० योजन पृथिवीमें प्रविष्ट है २०० योजन धरासे ऊंचाहै। निषध पर्वतकी १०० योजन नीव है। और ४०० योजन धरातलके ऊपर है। इसीप्रकार नील पर्वतकी पृथिवीमे १०० योजन नीव है। ४०० योजन भूमिके ऊपर है रुक्मी पर्वत ५० योजन पृथिवीमे अवगाढ है २०० योजन पृथिवीके है ऊपर और शिखरी पर्वत २५ योजन पृथिवीमे है १०० योजन भूमिसे ऊंचाई है ॥

तेषां वर्ण-विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थम् आह =तिन (षट् कुलाचलों) के, रंगोंके प्रभेद कहनेके लिए (उत्तर सूत्रमें) कहते है कि

(१)सूत्रम्—हेमार्जुनतपनीयवैडूर्यरजतहेममयाः। १२। हेमार्ज्जुन वैडूर्य्य पाठ भी "अचोरहाभ्याम् द्वे वा" सूत्रसे शुद्ध है

=(वर्षधर पर्वताः) हेममयः, अर्जुनमयः, तपनीयमयः, वैडूर्यमयः, रजतमयः हेममयः, च (यथाक्रमम्) ॥ १२ ॥

(१)इस बारहवा १२ सूत्रसे 'भरतस्य आदि" ३२ वां सूत्रतक २१ सूत्र श्वेताम्बर आम्नायक सभाष्यतत्वार्थाधिगम सूत्रमें नहीं है ॥ सभाष्य०क पृष्ठ= ३में

॥ पद्ममहापद्मतिगिंछकेसरिमहापुण्डरीकपुण्डरीका ह्रदास्तेषामुपरि ॥ १४

पद्मः महापद्मः तिगिञ्छः केसरी महापुण्डरीकः पुण्डरीक इति तेषां हिमवदादीनामुपरि यथाक्रममेते ह्रदा वेदितव्याः ॥ तत्राद्यस्य संस्थानविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ प्रथमो योजनसहस्रायामस्तदर्द्धविष्कम्भो ह्रदः ॥ १५ ॥

सूत्रम्—(१)पद्ममहापद्मतिगिंछकेसरिमहापुण्डरीकपुण्डरीका ह्रदास्तेषामुपरि ॥ १४ ॥

सूत्रार्थः—पद्म-महापद्म-तिगिंछ-केसरि-महापुण्डरीक- =पद्म, महापद्म, तिगिंछ, केसरी, महापुण्डरीक, और
पुण्डरीकाः।१।३। ह्रदाः।१।३। तेषाम्।६।३। उपरि*यथाक्रमम्* =पुण्डरीक (ये छह) द्रह उन(छह कुलाचलों)के ऊपर अनुक्रमसे हैं

वृत्त्यानुवादः—पद्मः।१।१।महापद्मः।१।१।तिगिञ्छः।१।१।केसरी।१।१। =पद्म, महापद्म, तिगिञ्छ, केसरी,
महापुण्डरीकः।१।१।पुण्डरीकः।१।१।इति*तेषां।६।३।हिमवत्- =महापुण्डरीक, पुण्डरीक इसप्रकार तिन हिमवान्
आदीनां।६।३।उपरि* यथाक्रमं*एते।१।३।ह्रदाः।१।३।वेदितव्याः।१।३।=आदिक (छह कुलाचलों) के ऊपर क्रमानुसार ये द्रह जानना चाहिये ॥

अर्थात् हिमवान पर्वतपर पद्मसरोवर है महाहिमवान् पर्वतपर महापद्म सरोवर है निपधपर्वतपर तिगिंछ ह्रद है नीलपर्वतपर केसरी द्रह है रुक्मिपर्वतपर महापुण्डरीक सरोवर है और शिखिरी पर्वतपरपुण्डरीकद्रह है

तत्र*आद्यस्य।६।१।संस्थान-विशेष प्रतिपत्ति-अर्थं।२।१।।आह॥ =तहाँ प्रथम (सरोवर पद्म) के आकार विशेषके कहनेके लिये कहते है कि

सूत्रम्—(१)प्रथमो योजनसहस्रायामस्तदर्द्ध[२] विष्कम्भो ह्रदः ॥ १५ ॥

सूत्रार्थः—प्रथमः।१।१।योजन-सहस्र-आयामः।१।१। =पहिला (पूर्व पश्चिम एक)हजार योजन लम्बा (और)
तद्-अर्द्ध-विष्कम्भः।१।१।ह्रदः।१।१। =उससे आधा (अर्थात् पांचसो योजन उत्तर दक्षिण) चौड़ा सरोवर है

(१) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें ये दोनों सूत्र नहीं हैं (२) हमारे यहां कहीं कहीं पर अर्ध पाठ है कही २ पर अर्द्ध पाठ है दोनों पाठ ठीक हैं अर्ध का धकार "अचोरहाभ्याम् द्वे वा" पूर्वोक्त सूत्रसे दोहरा होगया तब अ र् ध् ध ऐसा रूप बना, यह प्रथम ध् 'झलांजश्झशि'

प्राक्प्रत्यक् योजनसहस्रायामः उदगवाक् पञ्चयोजनशतविस्तारो वज्रमयतलोविविधमणिकनकविचित्रततटः पद्मनामा ह्रदः ॥ तस्यावगाहप्रकृत्यर्थमिदमुच्यते—

॥ दशयोजनावगाहः ॥ १६ ॥

अवगाहोऽधःप्रवेशो निम्नता । दशयोजनान्यवगाहोऽस्य दशयोजनावगाहः ॥ तन्मध्ये किम् ?

वृत्त्यर्थः प्राक्। प्रत्यक्। योजन-सहस्र-आयामः। उदक्। = पूर्वदिशा(=प्राक् और)पश्चिम दिशा(=प्रत्यक्)हजार योजन लम्बा उत्तरदिशा(=उदक्)
अवाक्। पञ्चयोजनशत-विस्तारः। वज्र-मय-तलः। =(तथा) दक्षिण दिशा (=अवाक्)पांचसौ योजन चौड़ा वज्र सम जिसका तल
विविध-मणि-कनक-विचित्रत-तटः। = नाना प्रकार के (=विविध)मणियों और सुवर्णकरि जिसका किनारा विचित्रित ऐसा
पद्मनामा। ह्रदः। तस्य। अवगाह-प्रकृति- = पद्मनामा सरोवर है। तिस(पद्मनामाद्रह)की गहराई के स्वरूप(=प्रकृति)के
अर्थम्।। इदम्।। उच्यते = लिये यह(उत्तर सूत्र में)कहा जाता है कि

(१)**सूत्रम्–दशयोजनावगाहः॥ १६ ॥** = (प्रथमो ह्रदः)दश-योजन-अवगाहः ॥१६॥

सूत्रार्थः—प्रथमः। ह्रदः। दश-योजन-अवगाहः। = पहिला(पद्मनामा)द्रह है जिसकी गहराई दश योजन है॥
वृत्त्यनुवादः—अवगाहः। अधः*प्रवेशः। निम्नता।। = अवगाह है सो नीचेको गमन अर्थात् गहराई वा गहरापनहै (=निम्नता)
दश-योजनानि।। अवगाहः। अस्य। = दशयोजन है गहराई जिसकी सो
दश-योजन-अवगाहः। तद्-मध्ये। किम्* = दशयोजन अवगाह है तिस(पहिले पद्मद्रह)के बीच में क्या है?

सूत्र द्वारा द् में पलट गया है॥ यहसूत्र पाणिनिकृत अष्टाध्यायीके अध्याय ८ पाद ४ का ५३वां(सूत्र)है॥ अष्टाध्यायीके प्रारम्भमें १४ सूत्र दिये हैं (देखो प्रथम अध्याय पृष्ठ २)पूर्वोक्त सूत्र झलां जश् झशि से बना है झल्(अक्षरों)के स्थान में जश् अक्षर आते है यदि झश् अक्षर(परिवर्तनीय अक्षरके) पश्चात् आवें॥ क्योंकि झल्=झ्-भ्-घ्-ढ्-ध्-ज्-ब्-ग्-ड्-द्-ख्-फ्-छ्-ठ्-थ्-च्-ट्-त्-क्-प्-श्-ष्-स्-ह् इन चौबीस अक्षरोंमें से जो कोई अक्षर हो उसके स्थान मेंजश् (=ज्-ब्-ग्-ड्-द्)अक्षरों में से अपने अपने वर्ग के अनुसार हो जाते है यदि झश्=झ्-भ्-घ्-ढ्-ध्-ज्-ब्-ग्-ड्-द्)में से कोई अक्षर उसके पश्चात् आवे यहां पर अर्ध्ध अथवा अर्ध (अचोरहाभ्यां द्वे) सूत्र से दोनों शुद्ध हैं प्रथम ध् अर्ध्ध का झल् प्रत्याहार के चौबीस अक्षरोंमेंसे एक अक्षर है और उसके पश्चात् झश् प्रत्याहार के दश अक्षरों में से एक ध् अक्षर आया है इसलिये प्रथम ध् (अर्ध्धका)जश् प्रत्याहार के ज्-ब्-ग्-ड्-द् अक्षरों में से द् में जा उसके वर्ग में से है पलट जाता है अर्द्ध । अर्द्ध॥

(१) यह सूत्र श्वेताम्बर आम्नाय के सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें नहीं है । हमारे यहां इस सूत्र का पाठ और अर्थ एक है ॥

॥ तन्मध्ये योजनं पुष्करम् ॥ १७ ॥

योजनप्रमाणं योजनं, क्रोशायामपत्रत्वात्क्रोशद्वयविष्कम्भकर्णिकत्वाच्च योजनायामविष्कम्भम् ॥ जलतलात्क्रोशद्वयोच्छ्रायनालं तावद्बहुलपत्रप्रचयं पुष्करमवगन्तव्यम् ॥
इतरेषां ह्रदानां पुष्कराणां चायामादिनिर्ज्ञानार्थमाह—

सूत्रम्—तन्मध्ये योजनं पुष्करम् ॥१७॥

सूत्रार्थः—तद्-मध्ये[७।१] योजनं[१।१]। पुष्करं[१।१]। = उस(पद्मनामाद्रह)के बीच में एक योजन(लंबा चौडा रत्नमयी)कमल है
वृत्त्यनुवादः—योजन-प्रमाणं-[१।१]। योजनं[१।१]। क्रोश- = योजन भर माप है सो योजन है। (एक एक)कोशकी(दोनों ओर आमने सामनेके)
आयाम-पत्रत्वात्-क्रोश-द्वय-विष्कम्भ-कर्णिकत्वात् च = लम्बाई पत्तोंकी होनेसे और दो कोशकी चौडाईकी कर्णिका अर्थात् (कमलके बीचका) कुंडल होने से
योजन-आयाम-विष्कम्भम्[१।१]। = ऐसे एक योजन लम्बाई(=आयाम) चौड़ाई(=विष्कम्भ)है अर्थात् कमलके एकओर के कमल के पत्ते की लम्बाई एक कोश और उसके सामने के पत्ते की लंबाई एक कोश और इन दोनो पातोंके बीच के कुंडल(कमल की कर्णिका) की लंबाई चौडाई दो कोश ऐसे चार कोश अथवा एक योजन का व्यास होगा इस प्रकार सर्व आमने सामने के पत्ते और बीच की कर्णिका को मिलाकर एक वृत्ताकार बनता है जिसका प्रत्येक व्यास चार कोश वा एक योजन का होगा। एकयोजन लम्बा, एक ही योजन चौड़ा सूर्यके मंडलके सदृश वलयाकार प्रतर वृत्तरूप पद्मद्रहके मध्यमें कमल है
जल-तलात्[५।१]। क्रोश-द्वय-उच्छ्रायनालं[१।१]। = नीरके तल दो कोशकी ऊंचाईकी(उच्छ्रास) (कमल की)नाल अथवा नली है
तावत्*बहुल-पत्र-प्रचयं[१।१]। = इतनी(अर्थात् दो कोश की) मोटाई (के बहुल,बहुल)पत्तोंका समूह(=प्रचय) वाला
पुष्करम्[१।१]। अवगन्तव्यम्[१।१]। इतरेषां[६।३] ह्रदानां[६।३] = कमल जानना चाहिये अन्य(शेष बचे हुये पांच)सरोवरों की
पुष्कराणां[६।३]। च*आयाम-आदि-निर्ज्ञान-अर्थं[१।१]। आह = तथा(=च)कमलों की लंबाई आदिक निर्णयके लिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते है कि

*श्वेताम्बर आम्नायकसभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें यह सूत्र नहीं है॥ (देखो इस अध्यायकी टिप्पणी पृष्ठ ३७, ३८ पर)

तद्द्विगुणद्विगुणा ह्रदाः पुष्कराणि च ॥ १८ ॥

स च तच्च ते, तयोर्द्विगुणा द्विगुणास्तद्द्विगुणद्विगुणा इति द्वित्वं व्याप्तिज्ञानार्थम्॥केन द्विगुणाः? आयामादिना॥ पद्मह्रदस्य द्विगुणायामविष्कम्भावगाहो महापद्मह्रदः। तस्य द्विगुणायामविष्कम्भावगाहस्तिगिञ्छह्रदः। पुष्कराणि च किं? द्विगुणानि द्विगुणानीत्यभिसम्बन्ध्यन्ते ॥

(१)सूत्रम्—तद्द्विगुणद्विगुणाह्रदाः पुष्कराणि च ॥ १८ ॥

सूत्रार्थः—तद्-द्विगुण-द्विगुणाः१।३।	= उन (प्रथमपद्मद्रह और कमल)से दुगने दुगने(लम्बाई, चौड़ाई तथा गहराई में अगले दो महापद्म और तिगिंछ)
ह्रदाः१।३। पुष्कराणि१।३।। च*	= सरोवर है और (दुगने दुगने अग्रिम दो)कमल हैं भावार्थ पद्मनामाद्रहसे दुगुण-महापद्मद्रह है ॥ और महापद्म से दूना तिगिंछ सरोवर हैं इन तीनो द्रहों के वरावर ही उत्तरओरके तीनों पर्वतों के तीनो द्रह है तथा ह्रदों के कमलों के वरावर कमल हैं
वृत्यनुवादः—सः१।१। च*तद्१।१।।। च*ते१।३।।।	= बहुरि वह(पद्मद्रह)तथा(=च)वुह(=तद्)(पुष्कर)वे दोनों(=ते)(सूत्रमें तद् शब्दकरिगृहणकिये है)
तयोः६।२। द्विगुणाः द्विगुणाःतद् द्विगुणद्विगुणाः१।३।	= उन(पद्मद्रह और पुष्कर)का दुगुना दुगुना है सो तद्द्विगुणद्विगुणा(सूत्रमें)
इति*द्वित्वम्१।१।। व्याप्ति-ज्ञान-अर्थम्१।१।।।	= ऐसा द्वित्व अथवा दूना २ पना व्याप्ति वोधक के है अर्थात् सूत्र में दो वार द्विगुण द्विगुण ह्रदों और कमलों का विस्तार जनावने के लिये ग्रहण किया है
केन३।१।द्विगुणाः१।३।आयामआदिना३।१। पद्मह्रदस्य६।१।	= किस से दो गुना है। लम्बाई आदिक से पद्मद्रह की
द्विगुण-आयाम-विष्कम्भ-अवगाहः१।१।महापद्मह्रदः१।१।	= दुगुणी लम्बाई(=आयाम)चौडाई(=विष्कम्भ)गहराई (=अवगाह)का महापद्म सरोवर है
तस्य६।१।द्विगुण-आयाम-विष्कम्भ-अवगाहः१।१।	= तिस(महापद्मद्रह)की दूनी लम्बाई चौड़ाई गहराई का
तिगिंछह्रदः१।१।पुष्कराणि१।१।।च*किम्*द्विगुणानि	= तिगिंछ द्रह है (प्रश्न)"पुष्कराणि च" ऐसा वाक्य सूत्र मे क्यों दुगुने
द्विगुणानि१।३।।। इति* अभिसम्बन्ध्यन्ते T	= दुगुने ऐसा(पुष्करों के साथ) लगाया जाय अथवा जोड़ा जाय है अर्थात्

(१) इस सूत्रका हमारे यहां एकसा पाठ है ॥ श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्वार्थाधिगमसूत्रमें यह सूत्र नहीं है(इस अध्यायकी टिप्पणी पृष्ठ ३७,३८)

तन्निवासिनीनां देवीनां सञ्ज्ञाजीवितपरिवारप्रतिपादनार्थमाह–

॥तन्निवासिन्यो देव्यः श्रीह्रीधृतिकीर्तिबुद्धिलक्ष्म्यः पल्योपमस्थितयः ससामानिकपरिषत्काः ॥ १९ ॥

तेषु पुष्करेषु कर्णिकामध्यदेशनिवेशिनः शरद्विमलपूर्णचन्द्रद्युतिहराः क्रोशायामा क्रोशार्द्धविष्कम्भा देशोनक्रोशोत्सेधाः प्रासादास्तेषु निवसन्तीत्येवंशीलास्तन्निवासिन्यो देव्यः श्री-ह्रीधृतिकीर्तिबुद्धिलक्ष्मी-

पद्मद्रहके कमलसे दूनी लम्बाई चौड़ाई और मोटाई आदिका महापद्म द्रहका कमल है और महा पद्मद्रहके पुष्करसे दूनी लम्बाई चौड़ाई मोटाई आदिका तिगिञ्छद्रहका कमल है ॥ इन तीनो ह्रदोंके बराबर ही उत्तर ओरके तीनों पर्वतोंके तीनों ह्रद है और तीनो ह्रदोंके कमलोंके बराबर कमलहै ॥

तद्-निवासिनीनां[६]।देवीनां[६]।संज्ञा-जीवित-परिवार- =तिन (कमलोंमे)निवासकरनेवाली देवियोंके नाम आयु और परिवार
प्रति-पादन-अर्थम्[४]।।आह =कहनेके लिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते है कि

सूत्रम्—तन्निवासिन्योदेव्यः श्रीह्रीधृतिकीर्तिबुद्धिलक्ष्म्यः पल्योपमस्थितयः ससामानिकपरिषत्काः १९

सूत्रार्थः-तद्-निवासिन्यः[१]।देव्यः[१]।। =तिन(पद्‌रत्नमयी पुष्करोंके प्रसादों)मे(क्रमसे) निवास करनेवाली(छह)देवियां
श्री-ह्री-धृति-कीर्ति-बुद्धि-लक्ष्म्यः[१]।पल्योपम-स्थितयः[१]।। =श्री,ह्री,धृति,कीर्ति,बुद्धि,लक्ष्मी,(प्रत्येक)पल्योपम आयुकी धारक है (और)
स-सामानिक-परिषत्काः[१]।। =सामानिक जातिके देव और पारिषद जातिके देवों सहित वर्ते हैं अर्थात् रहती हैं
वृत्त्यनुवादः-तेषु[७]।।पुष्करेषु[७]।। कर्णिका-मध्यदेश निवेशिनः[१]। =तिन कमलोंमे कर्णिकाके मध्य भागमे (=देश)स्थिति(निवेशिनः)
शरत् विमल-पूर्ण-चन्द्र द्युति-हराः[१]। =शरत् ऋतुके अथवा कुंवार कार्तिकके निर्मल पूर्ण शशिकी कान्ति जीतनेवाले
क्रोश आयामाः[१]।क्रोशअर्द्ध-विष्कम्भाः[१]।देश-ऊन-क्रोश- =(एक) कोशकी लम्बाईके आधे कोशकी चौड़ाईके कुछ हीन कोशकी
उत्सेधाः[१]।प्रसादाः[१]।तेषु[७]।निवसन्ति।इति*एवम् =ऊंचाईके श्रेष्टगृह तिनमें रहती है ॥ इस प्रकार
शीलाः[१]।तद्-निवासिन्यः[१]।।श्री-ह्री-धृति-कीर्ति-बुद्धि-लक्ष्मी— =अच्छे स्वभाववाली तिनमे निवास करनेवाली श्री ह्री धृति कीर्ति बुद्धि लक्ष्मीहै

*श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य तत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें यह सूत्र नहीं है अर्थात् इसको सूत्र नहीं माना है। (देखो टिप्पणी पृष्ठ ३७, ३८ पर)

संज्ञिकास्तेषु पद्मादिषु यथाक्रमं वेदितव्याः॥ पल्योपमस्थितय इत्यनेनायुषः प्रमाणमुक्तम् ॥ समाने स्थाने भवाः सामानिकाः। सामानिकाश्च परिषदश्च सामानिकपरिषदः। सह सामानिकपरिषद्भिर्वर्तन्त इति ससामानिकपरिषत्काः ॥ तस्य पद्मस्य परिवारपद्मेषु प्रासादानामुपरि सामानिकाः परिषदश्च वसन्ति॥ यकाभिः सरिद्भिस्तानि क्षेत्राणि प्रविभक्तानि, ता उच्यन्ते—

संज्ञिकाः।³। तेषु।⁷। पद्मादिषु।⁷। यथाक्रमं॥वेदितव्याः।³। =नाम है जिनके तिन पद्मादिक(द्रहों)में क्रमानुसार जानना चाहिये(अर्थात् पद्मद्रह कमलके श्रेष्ठ गृहमें श्री देवी महापद्मह्रद पुष्करके उत्तम गेह (प्रासाद)में ह्री देवी, तिगिंछ सरोवर कमलके प्रासादमें धृति देवी और केसरि द्रह कमलके उत्तम घरमें कीर्ति देवी महापुंडरीक ह्रद पुष्करके भवनमें बुद्धि देवी और पुंडरीकद्रह कमलके प्रासादमें लक्ष्मी देवी रहती है ॥

पल्योपम-स्थितयः।³।।इति॥अनेन।³।।। आयुषः।⁶। = पल्योपम स्थितिवाली इस(वाक्य) करि(=अनेन) आयुकी
प्रमाणम्।¹।।उक्तम्।¹।।।समाने।⁷।।।स्थाने।⁷।।।भवाः।³। = मर्यादा वा परिमाण कहा गया है समान स्थानमें होनेवाले अर्थात् ऐश्वर्य में बराबर हो
सामानिकाः।³। सामानिकाः।³।च परिषदः।³।च = सो सामानिक है और सामानिका बहुरि परिषदका द्वंद्व समास
सामानिक-परिषदः।³।सह॥ सामानिक- = सामानिक परिषद् है सामानिक जाति के देव(अथवा समान ऐश्वर्य वाले देव) तथा
परिषद्भिः।³।वर्तन्ते = पारिषद जाति के देवों(अर्थात् सभा में प्रधान वा सभासद) करि सहित वर्ते है
इति॥ससामानिक- परिषत्काः।³।तस्य।⁶।।पद्मस्य।⁶।।। = ऐसे(सूत्र में) ससामानिक परिषत्का(देवियां) है ॥ तिस कमल के
परिवार-पद्मेषु।⁷।।।प्रसादानाम्।⁶।उपरि-सामानिकाः।³।= परिवार कमलों विषैं भवनों के ऊपर सामानिक
परिषदः।³।च वसन्ति यकाभिः।³।।सरिद्भिः।³।। = जाति के देव तथा परिषद् जाति के देव वसते हैं जिन नदियों करि
तानि।³।।।क्षेत्राणि।³।।।प्रविभक्तानि।³।।।ता।³।।उच्यन्ते = ते(सात) क्षेत्र विभाजित है ते(नदियां आगे के सूत्र मे)कही जाती हैं कि

(१) या स्त्रीलिंग यद् शब्द में क न् (=क) प्रत्यय उसी अर्थ में लगाया है अर्थात् क न् (=क) लगभी जाता है अर्थ भी शब्द का नहीं पलटता है ॥

॥ गङ्गासिन्धुरोहिद्रोहितास्याहरिद्धरिकान्तासीतासीतोदानारीनरकान्तासुवर्णरूप्यकूलारक्तारक्तोदा सरितस्तन्मध्यगा ॥ २० ॥

सरितो न वाप्यः । ताः किमन्तरा उत समीपाः ? इत्यत आह तन्मध्यगाः । तेषां क्षेत्राणां मध्यं, तन्मध्यं तन्मध्येन वा गच्छन्तीति तन्मध्यगाः॥ एकत्र सर्वासां प्रसङ्गनिवृत्त्यर्थं दिग्विशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह-

॥ द्वयोर्द्वयोः पूर्वाः पूर्वगाः ॥ २१ ॥

सूत्रम्—[1]गंगासिन्धुरोहिद्रोहितास्याहरिद्धरिकांतासीतासीतोदानारीनरकान्तासुवर्णरूप्यकूलारक्तारक्तोदाः सरितस्तन्मध्यगाः ॥ २० ॥

सूत्रार्थः—गंगा-सिन्धु-रोहित्-रोहितास्या-हरित्-हरिकान्ता-सीता-- =गंगा, सिंधु, रोहित्-रोहितास्या, हरित्, हरिकान्ता, सीता

सीतोदा--नारी-नरकान्ता-सुवर्णकूला-रूप्यकूला-रक्ता-- =सीतोदा, नारी, नरकान्ता, सुवर्णकूला, रूप्यकूला, रक्ता

रक्तोदा१।३।।सरितः१।३।।तद्-मध्यगाः१।३।। =और रक्तोदा नदियें उन सातों क्षेत्रों)के बीचमें गमनकरनेवालीवा बहनेवालीहैं

वृत्त्यनुवादः—सरितः१।३।।न*वाप्यः१।३।। =(सूत्रमें,सरितः शब्द लानेसे यह अभिप्राय है कि चौदह नदिये हैं नकि बावड़ियें

ताः१।३।।किम्*अन्तरा*उत*समीपाः१।३।।इति*अतः* =ते(नदियें)क्या अन्तराल-दूर दूर है(अन्तरा) वा पास २(इनक्षेत्रोंके,है इसीलिए

आह T तेषां६।३।।क्षेत्राणां६।३।।मध्यं१।१।।तन्मध्यं१।१।।तन्मध्येन३।१।।। =कहते हैं कि तिन क्षेत्रोंके बीच सो तन्मध्य है ॥ (तिन क्षेत्रो)के मध्यमेंसे है

वा*गच्छन्तिT इति* तन्मध्यगाः १।३।।एकत्र*सर्वासां६।३।। =अथवा गमन करती है ऐसी तन्मध्यगा है । एक ठौर सब (नदियों) के

प्रसंग-निवृत्ति-अर्थम्१।१।।, दिग्विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थम्१।१।।आहT =संयोगके निषेधके लिये और दिशाके भेद कहनेके लिये(अग्रिमसूत्रमें,कहतेहैं कि

सूत्रम्—द्वयोर्द्वयो पूर्वाः पूर्वगाः ॥२१॥ =द्वयोः द्वयोः सरितोः पूर्वाः कथिताः (सूत्रे) पूर्वगाः गच्छन्ति

सूत्रार्थः—द्वयोः६।२।।द्वयोः६।२।।सरितोः६।२।।सूत्रे =(नदियोंके प्रत्येक युगल युगलमेंसे वा युग्म-युग्म-मेंसे [बीसवां] सूत्रमें

पूर्वाः१।३।।कथिताः१।३।।पूर्वगाः१।३।।गच्छन्ति =पहिली पहिली वर्णित नदी) पूर्व समुद्रको जाती हैं अर्थात् गंगा, रोहित,

हरित्-सीता नारी-सुवर्णकूला और रक्ता ये सातनदियें पूर्वकी ओर बहकर लवण समुद्रमे मिलती है ॥

(१) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्वार्थाधिगमसूत्रमें यह सूत्र नहीं है ॥ कहीं कहीं पर "सिन्धू" शब्द भी सूत्रमें लाये है दोनों ठीक हैं ॥

द्वयोर्द्वयोः सरितोरेकैकं क्षेत्रं विषय इति वाक्यविशेषाभिसम्बन्धादेकत्र सर्वासां प्रसंगनिवृत्तिः कृता॥ पूर्वाः पूर्वगा इति वचनं दिग्विशेषप्रतिपत्त्यर्थम्॥ तत्र पूर्वा याः सरितस्ताः पूर्वगाः। पूर्वं जलधिं गच्छन्तीति पूर्वगाः॥ किमपेक्षं पूर्वत्वं? सूत्रनिर्देशापेक्षम्॥ यद्येवं गंगासिन्ध्वादयः सप्त पूर्वगा इति प्राप्तम्। नैष दोषः। द्वयोर्द्वयोरित्यभिसम्बन्धात्॥ द्वयोर्द्वयोः पूर्वाः पूर्वगा इति वेदितव्याः॥

इतरासां दिग्विभागप्रतिपत्त्यर्थमाह—

द्वयोः॥द्वयोः॥सरितोः॥एक-एकं॥क्षेत्रं॥विषये॥
इति॥वाक्यविशेष-अभिसम्बन्धात्॥एकत्र॥सर्वासां॥
प्रसंग-निवृत्तिः॥कृता॥पूर्वाः॥पूर्वगाः॥
इति॥वचनं॥दिक्-विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थम्॥
तत्र॥पूर्वाः॥याः॥सरितः॥ताः॥पूर्वगाः॥
पूर्व-जलधिं॥गच्छन्ति॥इति॥ पूर्वगाः॥पूर्वत्वं॥
किम्॥अपेक्षं॥पूर्वत्वम्॥सूत्र-निर्देश-
अपेक्षम्॥
यदि॥ एवम्॥
गंगा-सिन्धु-आदयः॥सप्त॥पूर्वगाः॥इति॥प्राप्तम्॥
न॥एषः॥ दोषः॥
द्वयोः॥द्वयोः॥इति॥सम्बन्धात्॥
द्वयोः॥द्वयोः॥पूर्वाः॥पूर्वगाः॥इति॥वेदितव्याः॥
इतरेसां॥दिक्-विभाग-प्रतिपत्ति-अर्थम्॥आह॥

= (सात युगल) नदियोंमें से दोदो एकएक क्षेत्र विषै (क्रमसे) है
= ऐसा वचन विशेष जोड़नेसे एक स्थानमें सबके
= संयोगका निराकरण किया जाय है(सूत्रमें) पहिली पहिली गमन करनेवाली
= ऐसा वाक्य दिशाके विशेषके कहनेके लिये है॥
= तहां(सूत्रमें) पहिलीपहिली जो नदियां है ते पूर्व दिशाको जानेवाली है
= पूर्व समुद्रको गमन करती है ऐसी पूर्वगा(नदिये)है(प्रश्न) पूर्वपन
= क्या अपेक्षा है अर्थात् किसकी अपेक्षानुसार पहिली है(इस) सूत्रके कथनकी
= विवक्षा है अर्थात् सूत्रके पाठमें जो पहिले कही तिसकी विवक्षा से पहिली है॥
= जो ऐसे है (अर्थात् जो नदियां सूत्रपाठ में पहिले कथित है सो पहिली हैं) तो
= गंगासिन्धु रोहित-रोहितास्या आदि सातपूर्वदिशाको वहनेवाली ऐसा अर्थ प्राप्त हुआ
= यह पदूण नहीं है अर्थात् सूत्रमे पूर्वा शब्द लानेसे गंगा-सिन्धु-रोहित्-रोहितास्या हरित्-हरिकान्ता-सीता-ये समझी जा सकती हैं॥
= क्योंकि युगल-युगलमेंसे ऐसा(पूर्व शब्दके साथ) जोड़नेसे वा सम्बन्धकरनेसे
= युग्म-युग्ममेसे पहिली पहिली पूर्व समुद्रको जानेवाली है इसप्रकार जानना चाहिये
= अन्य(नदियों)के दिशा विभक्तिके कहनेके लिये(आचार्य अगले सूत्र में) कहते है कि

किमर्थं गङ्गासिन्ध्वादिग्रहणं क्रियते ? नदीग्रहणार्थम् । प्रकृतास्ता अभिसम्बन्ध्यन्ते, नैवं शङ्क्यम् । अनन्तरस्य विधिर्वा भवति प्रतिषेधो वेति अपरगाणामेव ग्रहणं स्यात् ॥ गङ्गादिग्रहणमेवास्तीति चेत्पूर्वगाणामेव ग्रहणं स्यात् । अतः

भिन्न भिन्न एक एक लाख वारह वारह सहस्र हैं इनसे उत्तरकी तीन नदियोंकी क्रमसे दक्षिणके तीन क्षेत्रोंके समान परिवारकी नदियें हैं अर्थात् नारीनरकान्ताकी छप्पन छप्पन सहस्र नदियें, सुवर्णकूला और रूप्यकूलाकी अट्ठाईस २ सहस्र तथा रक्ता रक्तोदा की चौदह चौदह सहस्र परिवारि की नदियें है ॥

वृत्त्यर्थः—किम्*अर्थम् ¹॥गङ्गा-सिन्धु-आदि-ग्रहणं¹॥क्रियते T = प्रश्न (इससूत्रमें) किसलिये गङ्गासिन्धु आदिकका आदान(ग्रहण) कियागयाहै

नदी-ग्रहण-अर्थम्-¹॥प्रकृताः³॥ =(उत्तर) नदियो के ग्रहण के लिये (प्रश्न) अधिकृत अथवा प्रकरणकीहुई

ताः³॥अभि-सम्बन्ध्यन्ते T =ते (नदियें) (अत्यन्तसमीप अर्थात् २२वां सूत्र से) अध्याहारित वा अनुकर्षित हैं

न*एवम्*शंक्यम् ¹॥ =(अर्थात् २२वां सूत्र से लेकर समभी जासकी हैं)(उत्तर) ऐसी शंका न करनी चाहिये

अनन्तरस्य⁶॥ =(क्योंकि व्याकरणकी परिभाषानुसार) अत्यंत समीपकी

विधिः¹॥वा*भवति T प्रतिषेधः¹॥वा*इति* =विधि होती है अथवा निषेध (होता है) इस प्रकार (यदि पहिले सूत्रमें कथित नदियों के साथ सम्बन्ध इस सूत्र में करलेते तो)

अपरगाणाम् ³॥एव*ग्रहणं¹॥स्यात् T =पश्चिमको बहने वाली नदियोंका ही ग्रहण होता भावार्थ-२२वां सूत्रमें नदियोंका कथन है वहां से नदियों का इस सूत्रके लिये सम्बन्ध करलेतेगंगा सिन्ध्वादि क्यों लाये (उत्तर) यदि पूर्वोक्त सम्बन्ध करलेते तो केवल पश्चिम की वहने वाली नदियें समभी जाती पूर्वकी ओर जाने वाली नदियें छुट जाती इसलिये गंगासिन्धु आदिक से पूर्वगा और अपरगा समस्त दोनों ओरकीनदियें ग्रहणहोगई

गंगादि-ग्रहणं¹॥एव*अस्ति T इति*चेत्* =(प्रश्न)"गंगादिक"का आदानही यदि =चेत्) ऐसा (है=इति)(अस्ति)तो(उत्तर)

पूर्वगाणां³॥एव*ग्रहणम् ¹॥स्यात् T अतः* =पूर्व दिशामें जानेवाली नदियोंका ही ग्रहण होगा ॥ इसलिये

उभयीनां ग्रहणार्थं गङ्गासिन्ध्वादिग्रहणं क्रियते ॥ नदीग्रहणं द्विगुणा द्विगुणा इत्यभिसम्बन्धार्थम् ॥ गंगा चतुर्दशनदीसहस्रपरिवृता । सिन्धुरपि ॥ एवमुत्तरा अपि नद्यः(१) प्रतिक्षेत्रं द्विगुणा द्विगुणा भवन्ति, आविदेहात्॥तत उत्तरा अर्द्धार्द्धहीनाः॥ उक्तानांक्षेत्राणांविष्कम्भप्रतिपत्त्यर्थमाह—

भरतःषड्विंशपञ्चयोजनशतविस्तारः षट्चैकोनविंशतिभागा योजनस्य

उभयीनां॥ग्रहण-अर्थम्॥(-उभयस्यस्त्रीलिंगम्‘उभयी’) =दोनों(पूर्व तथा पश्चिम को वहने वाली नदियों)केउपलब्धिके लिये (सूत्रमें)
गंगा-सिंध्वादि-ग्रहणं॥क्रियते नदी-ग्रहणं॥ =गंगा सिन्ध्वादिका उपादान किया गया है (सूत्रमें)नदी शब्दका ग्रहण
द्विगुणाः॥द्विगुणाः॥इति*अभिसम्बन्ध-अर्थम्॥ =दुगुना दुगुना ऐसे सम्बन्धके लिये है ॥
गङ्गा॥चतुर्दश-नदी-सहस्र-परिवृता॥ =गंगा चौदह सहस्र नदियोंकरि परिवारित है
सिन्धुः॥अपि*एवं*उत्तराः॥अपि* =सिन्धु भी (चौदह सहस्र नदियोंकरि परिवारित) है ऐसे अगली भी (परिवारिक)
नद्यः॥प्रति-क्षेत्रं॥द्विगुणाः॥द्विगुणाः॥आ-विदेहात्॥=नदियें प्रत्येक क्षेत्रको दूनी दूनी विदेह पर्यंत (=आ)
भवन्ति =होती है अर्थात् रोहित् रोहितास्याकी परिवारकी नदियें अट्ठाईस अट्ठाईस सहस्र है॥ हरित् तथा हरिकान्ताकी छप्पन छप्पन सहस्र परिवारकी नदियें है सीताकी एकलाख वारहसहस्र है ऐसे सीतोदाकीभी इतनीहीहै
ततः*उत्तराः॥अर्द्ध-अर्द्ध-हीनाः॥ =उस(विदेह)से अग्रिम आधी आधी घटती है(अर्थात् नारी तथा नरकान्ताकी छप्पन२ हजार परिवारकी नदिये है सुवर्णकूला और रूप्यकूलाकी अट्ठाईस २ सहस्र छोटी २ नदिये है और रक्ता व रक्तोदाकी चौदह २ सहस्र पारिवारिक नदिये है)
उक्तानां॥क्षेत्राणां॥विष्कम्भ-प्रतिपत्ति-अर्थम्॥आह=कथित क्षेत्रोंकी चौड़ाई जाननेके लिये(आचार्य अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्—(१)भरतःषड्विंशपञ्चयोजनशतविस्तारःषट्चैकोनविंशतिभागायोजनस्य ॥ २४ ॥

(१) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें यह सूत्र नहीं है ॥ हमारे यहां इस सूत्रके प्रथम भागके तीन पाठ पाये जाते हैं और द्वितीयके दो "भरत षड्विंशतिःपञ्चयोजनशत विस्तार "(देखो ज्ञानचन्द्रजी मुद्रित तत्त्वार्थसूत्र पृष्ट ११)इसमें "षड्विंशतिः" "पञ्चयोजनशतविस्तार " दो समास है पाठ ठीक नहीं है॥"बहुधा पुस्तकोंमें भरत षड्विंशतिपञ्चयोजनशतविस्तार " है यह पाठ ठीक है क्योंकि संस्कृतकी बोलचालमें ऐसा वाक्य लाते हैं ।

षडधिका विंशतिः षड्विंशतिः । षड्विंशतिरधिकानि येषु तानि षड्विंशानि । षड्विंशानिपञ्चयोजनशतानि विस्तारो यस्य षड्विंशपञ्चयोजनशतविस्तारः ॥ भरतः किमेतावानेव, नेत्याह । षट्चैकोनविंशतिभागा योजनस्यविस्तारोऽस्येत्यभिसम्बध्यते ॥

सूत्रार्थः—भरतः पड्विंशपञ्चयोजनशतविस्तारः	=भारतवर्ष (दक्षिण उत्तर मे) पांचसौ छब्वीस योजन विस्तारवाला वाचौड़ाईरूप
पट् च*एक-ऊन विशति-भागाः योजनस्य	=और छहभाग योजनके उन्नीस भागों में से औरहैं अर्थात् भारत क्षेत्रकी दक्षिण उत्तरकी चौड़ाई ५२६$\frac{6}{19}$ है
वृत्त्यनुवादः—षड्-अधिका विंशतिः षड्विंशतिः	=छह ऊपर वीस सो छब्वीस (=षड्विंशतिः) हैं ॥
षड्विंशतिः अधिकानि येषु तानि षड्विशानि	=छब्वीस वढती वा अधिक है जिनमे ते षड्विंश (=षड्विंशानि) हैं
षड्विंशानि पञ्चयोजनशतानि विस्तारः यस्य	=छब्वीस और पांचसो योजन है विस्तार वा चौड़ाई जिसकी
षडविंशपञ्चयोजनशतविस्तारः भरतः	=सो पांचसौं छब्वीस योजन चौड़ाईवाला वा विष्कम्भरूप है (प्रश्न) भरतक्षेत्र
किम्*एतावान् एव*न*इति*आह पट् च*	=क्या इतनाही है ॥ (उत्तर) ऐसा नही है कहते हैं कि और छह भाग
एक-ऊन-विशतिभागाः योजनस्य अभिसम्बध्यते	=योजनके उन्नीसभागोंमेंसे मिलायेजाय है अथवा जोड़ेजाय हैं ॥

"भरतः षड्विंशपञ्चयोजनशतविस्तार" यह पाठ सर्वार्थसिद्धिकी दोनों आवृत्तियों में है और मुद्रित तत्त्वार्थराजवातिकमें है । 'ति' अधिक छपगया है क्योंकि जो 'वृत्ति' इसके नीचे दी हुई है वह 'विंश' शब्द की है और शब्दश वही है जो सर्वार्थसिद्धिमें दीहै'षड्विंशानि'एक शब्द घाटि है और 'यस्य' के स्थान में 'अस्य' है उससे विग्रह में और अर्थ में कोई भेद नहीं होता । हमारी समझ में यही पाठ उमा स्वामी कृत होना चाहिये क्योंकि (१) इस पाठमें "त्" एक अक्षर और इकार का लाभ है । और पूज्यपाद स्वामीकी कृति अनुपलब्ध'गन्धहस्त महाभाष्य'के अतिरिक्त सबसे प्राचीन है उनका जन्म सवत् ३०८ में हुआ था जैसा उल्लेख कर चुके हैं उनने जिस प्रति से पाठ लिया होगा वह बहुत ही प्राचीन प्रति होगी ॥

बहुधा पुस्तकों में "षट्चैकोनविंशतिभागा योजनस्य" यह पाठ है तत्त्वार्थवार्तिक में "षट्चैकान्नविंशतिभागा योजनस्य" भी पाठ है अर्थात् दोनों पाठ हैं ॥ ये दोनों ही पाठ ठीक हैं क्योंकि "एकान्नविंशति (स्त्री०) एकेन न विंशति एक न-आदुक् दस्य वा न उन्नीस की संख्या" एक न्यूनवीस (पद्मचन्द्रकोश प्रष्ठ ८५) में 'एकान्नविंशति' का ऐसा विग्रह और व्युत्पत्ति की है परन्तु स्मरण रहे कि "एकान्न" का अर्थ (जो त्रिलिंगी है) एककालमेवान्न भक्ष्य यत्र जहां एकबारही भोजन कियाजाता है । इकट्ठा खानेवाला एकभक्तव्रत । एकबार खाने का व्रत ऐसा अर्थ है इस सूत्रके होते हुवे बत्तीसवें सूत्रकि जबूद्वीपका १९० हिस्सा भरतहै आवश्यकता नहीं ५२६$\frac{10000}{19} = \frac{100000}{190}$ अथवा इस २४ वां सूत्रको निकाल कर ३२ वां सूत्र इसके स्थानमें करदेतेतो वह बहुतबड़ा सूत्र बचजाता और ५२६$\frac{6}{19}$यों निकलआनेकि$100000 \div 190 = \frac{10000}{19} = 526\frac{6}{19}$

विस्तारोऽस्येति इतरेषां विष्कम्भविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ तद्द्विगुणद्विगुणविस्तारा वर्षधरवर्षा विदेहान्ताः ॥ २५ ॥

ततो भरतात् द्विगुणो द्विगुणो विस्तारो येषां त इमे तद्द्विगुणद्विगुणविस्ताराः ॥ के ते ? वर्षधर-वर्षाः ॥ किं सर्वे ?

विस्तारः अस्य इति* =ऐसा इस(भरतक्षेत्र) का विस्तार है अर्थात् भरतक्षेत्रका दक्षिण उत्तर विस्तार ५२६ $\frac{6}{19}$ योजन है

इतरेषाम् विष्कम्भ-विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थं आह =अन्य (क्षेत्रों तथा कुलाचलों) के विस्तारके भेद जनावनेके लिये (अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्—तद्द्विगुणद्विगुणविस्तारा वर्षधरवर्षा विदेहान्ताः ॥ २५ ॥

तद्-द्विगुण-द्विगुण-विस्ताराः =उस (भरत क्षेत्र) से दुगुनी दुगुनी (दक्षिणमें) चौड़ाई वाले

वर्षधर-वर्षाः विदेह-अन्ताः =क्षेत्र तथा पर्वत विदेह क्षेत्र पर्यंत है अर्थात् भरतक्षेत्र ५२६ $\frac{6}{19}$ योजन चौड़ा है ॥ हिमवत् कुलाचल एक सहस्र बावन योजन बारहकला ($\frac{12}{19}$) है। हैमवत क्षेत्र दो सहस्र एकसौ पांच योजन और पांचकला है। महा हिमवान कुलाचल चार सहस्र दोसोदश योजन दशकला है। हरिक्षेत्र आठ सहस्र चारसौ इक्कीस योजन एक कला है ८४२१ $\frac{1}{19}$ योजन है। निषध कुलाचल सोलह सहस्र आठसौ बयालीस योजन दो कला है १६८४२ $\frac{2}{19}$ है, विदेहक्षेत्र तेतीस सहस्र छसौ चौरासी योजन चारकला है (३३६८४ $\frac{4}{19}$ योजन)

ततः* भरतात् द्विगुणः द्विगुणः =तिस भरतक्षेत्र से दुगुनी दुगुनी है (दक्षिण उत्तर में)

विस्तारः येषां ते इमे तद्द्विगुण-द्विगुण- =चौड़ाई जिनकी ते ये (सूत्रमें) तद्द्विगुण-द्विगुण

विस्ताराः के ते =विस्तार वाले हैं (अर्थात् भरत क्षेत्र से दूने २ चौड़ाई वाले हैं (प्रश्न) ते कौन है ?

वर्षधर-पर्वताः किं* सर्वे =(उत्तर)पर्वत और क्षेत्र है। क्या सब(शेषके पर्वत और क्षेत्र भारतवर्षसे दूने२ चौड़ाईमें)हैं ॥

नेत्याह, विदेहान्ता इति ॥ अथोत्तरेषां कथमित्यत आह—

॥ उत्तरा दक्षिणतुल्याः ॥ २६ ॥

न॰इति॰आह।विदेह-अन्ताः॥इति॰ =ऐसा नहीं है-कहते है कि (आठ) विदेह क्षेत्रतक (भारतवर्षसे पर्वत और क्षेत्र एक दूसरे से उत्तरोत्तर दुगने दुगने) हैं अर्थात् भरत क्षेत्र ५२६$\frac{6}{19}$ योजन चौड़ा है (१) हिमवान् कुलाचल=१०५२$\frac{12}{19}$ योजन चौड़ा है ॥ (२) हैमवत् क्षेत्र=२१०५$\frac{5}{19}$ योजन चौड़ा है ॥ (३) महाहिमवान् कुलाचल=४२१०$\frac{10}{19}$ योजन चौड़ा है ॥ (४) हरिक्षेत्र=८४२१$\frac{1}{19}$ योजन चौड़ा है ॥ (५) निषध-कुलाचल=१६८४२$\frac{2}{19}$ योजन चौड़ा है ॥ (६) विदेहक्षेत्र=३३६८४$\frac{4}{19}$ योजन चौड़ा है ॥

अथ॰उत्तरेषां॥कथं॰इति॰अतः॰आह। =अब (विदेहक्षेत्र से) उत्तर दिशाओं का (विस्तार) कैसे है इसलिये (अगला सूत्र में)कहते हैं कि

(१)सूत्रम्—

उत्तरा दक्षिणतुल्याः ॥ २६ ॥

इस सूत्र में यदि २५वां सूत्रसे "वर्षधर वर्षा" और "विदेह" वाक्योंका अनुकर्षण करें तो पाठ और अर्थ निम्नलिखित (१)के अनुकूल होता है और यदि केवल "विदेह" शब्दकी अनुवृत्ति लें तो पाठ और अर्थ (२) के अनुसार होता है पिछला अर्थ पूज्यपाद स्वामीकी सर्वार्थसिद्धिवृत्ति के अनुसार है और पहिला अर्थ बहुत विस्तृत भी है जैसा कि दोनों भांति के अर्थ जो नीचे लिखे जाते हैं उनसे प्रगट है ॥

(१) वर्षधरवर्षा विदेहोत्तरा दक्षिणतुल्याः ।

वर्षधरवर्षाः॥विदेह-उत्तरा॰दक्षिण-तुल्याः॥ =पर्वत और क्षेत्र विदेह से उत्तर दिशा के दक्षिण दिशाके (पर्वत और क्षेत्रों के) =समान हैं अर्थात् विदेह क्षेत्रसे उत्तरदिशाके तीन नील रुक्मी और शिखरी पर्वत और तीन रम्यक, हैरण्य और ऐरावत क्षेत्र विदेहसे दक्षिणदिशाके तीन निषिध, महा-हेमवत् हेमवत् पर्वत और तीन हरिहैमवत् भरतक्षेत्रोंके बराबर विस्तारवाले है ।

(१) हमारे यहां इस सूत्र का पाठ एक है । उत्तरा दक्षिणतुल्यः कहींकहीं पर पाठ है वह अशुद्ध है । श्वेताम्बर आम्नायमें इसको सूत्र नहीं माना है ।

उत्तरा ऐरावतादयो नीलान्ता भरतादिभिर्दक्षिणैस्तुल्या द्रष्टव्याः । अतीतस्य सर्वस्यायं विशेषो वेदितव्यः ।

पहले पच्चीसवां सूत्रमें दक्षिणके पर्वत तथा क्षेत्रोंका पृथक् पृथक् विस्तार कहा है सो ही उत्तरके पर्वत तथा क्षेत्रोंका समझना चाहिये ॥

(२) विदेह--उत्तरा दक्षिण--तुल्याः ॥

विदेह--उत्तरा*	=विदेहक्षेत्रसे उत्तरदिशाके (३ पर्वत, ३ क्षेत्र ३ द्रह ३कमल छह नदियें और पारिवारिक नदियें आदि)
दक्षिण-	=दक्षिण दिशाके (३ पर्वत ३ क्षेत्र ३ द्रह ३ पुष्कर छः नदियें और पारिवारिक नदियें आदिके)
तुल्याः[१ ३]	=समान है अर्थात् बराबर विस्तारवाले और बराबर गणना वाले है ॥

चतुर्दश नदियोंमेंसे सीतानदी केसरी द्रहसे निकलकर पूर्वी विदेहोंके विभाग करती हुई लवणसमुद्रमें पूर्वकी ओर जाकर मिलतीहै और सीतोदा नदी तिगिंछद्रहसे निकलकर पश्चिमी विदेहोंके विभाग करती हुई लवणोदधिमें पश्चिमकी ओर जाकर मिलती है ॥ पर्वत, क्षेत्र, ह्रदों, पुष्करों आदिका विस्तार और गणना प्रथम कह चुके है वही जानना ॥

वृत्त्यनुवादः--उत्तरा*ऐरावत-आदयः[१ ३]	=(विदेह क्षेत्रसे) उत्तरदिशाके ऐरावत आदि (३पर्वत,३क्षेत्र,३द्रह, ३ पुष्कर, छः नदियें और इनकी परिवारकी नदियें आदि)
नील-अन्ताः[१ ३] भरतादिभिः[३ ३]	=नीलकुलाचल तक भरतादिक(तीन क्षेत्र, तीन कुलाचल, तीन द्रह, तीन कमल, छः नदियों और इन नदियोंकी परिवारकी नदियें आदि)
दक्षिणैः[३ ३] तुल्याः[१ ३] द्रष्टव्याः[१ ३] अतीतस्य[६ १]	=दक्षिण दिशासे समान जानना चाहिये ॥ अतीत अर्थात् प्रथम वर्णित
सर्वस्य[६ १] अयम्[१ १] विशेषः[१ १] वेदितव्यः[१ १]	=सब(वस्तुओं)केयह विशेष(कि उत्तर दिशाके पर्वतादिक दक्षिण दिशाके तुल्यहै) जानना चाहिये

(१) पद्मचन्द्र कोश पृष्ठ ७१में 'उत्तरा' शब्दका अर्थ अक्षरश ऐसे है"(स्त्री०)प्रेतकी पितृत्वप्राप्ति होनेपर सपिण्डीकरणके अनन्तर जो पितृसम्बन्धी क्रिया की जाती है, सपिण्डीकरणके पीछेकी श्राद्धक्रियायें । उत्तर दिशा, काल, दश(अव्य०)"इसलिये अनुवादमें उत्तर दिशाके अर्थमें अव्यय माना है ॥

तेन ह्रदपुष्करादीनां तुल्यता योज्या ॥ अत्राह, उक्तेषु भरतादिषु क्षेत्रेषु मनुष्याणां किं तुल्योऽनुभवादिः। आहोस्वित्कश्चिदस्ति प्रतिविशेष इत्यत्रोच्यते—

भरतैरावतयोर्वृद्धिह्रासौ षट्समयाभ्यामुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्याम्॥ २७॥

वृद्धिश्च ह्रासश्च वृद्धिह्रासौ । काभ्यां ? षट्समयाभ्याम् । कयोः ? भरतैरावतयोः ।

तेन३।	=तिस (विशेष अर्थात् उत्तरा दक्षिण तुल्या) करि
ह्रद-पुष्कर-	=द्रह, कमल (पर्वत, क्षेत्र, नदियें, परिवारकी नदियें)
आदीनाम्६। तुल्यता१। योज्या१। । अत्र*आह	=आदिकोंकी समानता लगाई जाय है । यहाँ (शिष्य) पूछता है कि
उक्तेषु७। भरतादिषु७। क्षेत्रेषु७। मनुष्याणां६। किं*	=कथित भरतादिक क्षेत्रोंमें मनुष्योंका क्या
तुल्य-अनुभव-आदिः१। आहोस्वित्*कश्चित्*	=तुल्य अनुभव आदिक है अथवा कुछ
अस्ति प्रतिविशेषः१। इति*अत्र*उच्यते	=भिन्नता (=प्रतिविशेष है) इसलिये (=इति) यहां (अग्रिमसूत्रमें) कहा जाय है कि ॥

सूत्रम्—(१)भरतैरावतयोर्वृद्धिह्रासौ षट्समयाभ्यामुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्याम्(२)॥ २७ ॥

सूत्रार्थः—भरत-ऐरावतयोः७।	=भारतवर्ष और ऐरावतवर्षमें
	(निवास करनेवाले मनुष्य और तिर्यंचोंकी आयु, काय, अनुभव, संपदा, वीर्य, बुद्ध्यादिका)
वृद्धि-ह्रासौ१। उत्सर्पिणी-अवसर्पिणीभ्याम्३।	=बढ़ना घटना उत्सर्पिणीरूप अवसर्पिणीरूप
षट्-समयाभ्याम्३।	=छै छै कालोंके हेतुसे (यथासंख्य) होता है ॥
वृत्त्यनुवादः। वृद्धिः१। चह्रासः१। चवृद्धि-ह्रासौ१। काभ्यां३।	=और बढ़ना तथा घटना है सो वृद्धि ह्रासौ है (प्रश्न) किन दो हेतुसे बढ़ना घटना है ।
षट्-समयाभ्याम्३।	=(उत्तर—उत्सर्पिणी तथा अवसर्पिणीके)युगल छः कालोसे(बढ़ना तथा घटना)है ॥
कयोः७। भरत-ऐरावतयोः७।	=(प्रश्न)किन दोका [बढ़ना घटना है] (उत्तर)भारत ऐरावतका ॥

(१) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें यह सूत्र नहीं है ॥ इस अध्यायके पृष्ठ ३७, ३८की टिप्पणी देखो ॥

(२) सर्पिणीभ्याम्के स्थानमेंजहां(सर्पिणीभ्यां)वाक्य है वह एक प्रकारसे अशुद्ध है(देखो टिप्पणी अध्याय प्रथमपृष्ठ५,६)शेष पाठ हमारे यहां एकहै॥

न तयोः क्षेत्रयोर्वृद्धिह्रासौ स्तः । असम्भवात् । तत्स्थानां मनुष्याणां वृद्धिह्रासौ भवतः ॥ अथवा अधिकरणनिर्देशः भरते ऐरावते च मनुष्याणां वृद्धिह्रासाविति ॥ किंकृतौ वृद्धिह्रासौ ? अनुभवायुःप्रमाणादिकृतौ ॥ अनुभवः उपभोगः, आयुः

न*तयोः६।।।क्षेत्रयोः६।।।वृद्धिह्रासौ१।स्तः। =न उन (भरत, ऐरावत) के क्षेत्रफल अथवा विस्तार की बढ़ती घटती है ॥
असम्भवात्५।तत्- =क्योंकि (विस्तारका बढना घटना) असम्भव है। तिन (भरत ऐरावत) मे
स्थानाम्६।मनुष्याणां६।वृद्धि-ह्रासौ१।भवतः।अथवा =ठहरनेवाले मनुष्योंकी बढ़ती घटती होती है ॥ अथवा (षष्ठी निर्देश छोड़कर)
अधिकरणनिर्देशः१।भरते७।ऐरावते७।च* =सप्तमी विभक्तिके निरूपनमें भरतमें तथा ऐरावतमें (रहने वाले)
मनुष्याणां६।वृद्धि-ह्रासौ१।इति* =मनुष्योंकी बढती घटती है ऐसा है "भावार्थ ऐसा है कि" सूत्र में "भरतैरावतयोः"

यह वाक्य षष्ठी वा सप्तमी विभक्ति में एक ही रूप धारण करता है इस वाक्य के साथ वृद्धिह्रासौ वाक्य के जोड़देने से षष्ठी मे यह अर्थ होता है कि भरत तथा ऐरावत की वृद्धि और ह्रास अर्थात् एक प्रकारसे ऐसा आशय समझा जासका है कि भरत और ऐरावत के विस्तारकी बढ़ती तथा घटती उत्सर्पिणीकाल तथा अवसर्पिणीकालमें होती है इस पूर्वोक्त संदेहको दूर करनेके लिये आचार्य "भरतैरावतयोः" वाक्यको सप्तमीमें लेकर ऐसा कथन करते हैं कि भरत तथा ऐरावतमें (निवास करने वाले मनुष्यों की) बढ़ती और घटती होती है न कि भारतवर्ष तथा ऐरावतवर्षके विस्तार अथवा क्षेत्रफलकी बढती तथा घटती होती है ॥

किम्*कृतौ१।वृद्धि-ह्रासौ१। =(प्रश्न) वृद्धि-ह्रास कौन कृत वा जनित हैं। अर्थात् बढना घटना किसके किये हुये हैं
अनुभव-आयुस-प्रमाण-आदि-कृतौ१। =(उत्तर) अनुभव जीवनकालका परिमाण आदिकी की हुई (बढ़ती घटती) हैं
अनुभवः१।उपभोगः१।आयुः१।।। =अनुभव अर्थात् उपभोग वा विषयों का सुखास्वादन आयु अर्थात्

(१) यह 'आयु' शब्द अमरकोश वर्ग १८ श्लोक १२० में "आयुस्" इस रूपमें नपुंसक लिंगमें पाया जाता है इसकी प्रथमा विभक्ति एक वचन "आयु" नपुंसक लिंगमें पयस् शब्द के सदृश बनेगी ॥

जीवितपरिमाणं, शरीरोत्सेध इत्येवमादिभिर्वृद्धिह्रासौ मनुष्याणां भवतः ॥ किंहेतुकौ पुनस्तौ ? कालहेतुकौ ॥ स च कालो द्विविधः । उत्सर्पिणी अवसर्पिणी चेति ॥ तद्भेदाः षट् ॥ अन्वर्थसञ्ज्ञे चैते ॥ अनुभवादिभिरुत्सर्पणशीला उत्सर्पिणी । तैरेवावसर्पणशीला अवसर्पिणी ॥ तत्रावसर्पिणी षड्विधा—सुषमसुषमा । सुषमा । सुषमदुष्षमा । दुष्षमसुषमा । दुष्षमा । अतिदुष्षमा । उत्सर्पिण्यपि अतिदुष्षमाद्या सुषमसुषमान्ता

जीवितपरिमाणं।।शरीर-उत्सेधः	=जीवनकालका परिमाण (और) शरीरकी ऊंचाई
इत्येवम्*आदिभिः।वृद्धिह्रासौ।मनुष्याणां।भवतः	=इत्यादिक करिही (=इत्येवमादिभिः) उन्नती और घटती मनुष्योंकी होती है ॥
पुनः*तौ।किम्*हेतुकौ ?	=(प्रश्न) बहुरि वे (वृद्धिह्रास) कौन निमित्तक अथवा जनित हैं ।
काल-हेतुकौ।सः।च*कालः।	=(उत्तर) समयकारणक हैं अर्थात् समृद्धि और क्षतिका हेतुकाल है । वहऔर[=च]काल
द्विविधः।उत्सर्पिणी।अवसर्पिणी।च*इति*।	=दो प्रकार है । उत्सर्पिणी और (=च) अवसर्पिणी ऐसे है ।
तद्-भेदाः।प्रत्येकं।।षट्।	=उन (उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी) के भेद पृथक् पृथक् (प्रत्येक) छह हैं
अन्वर्थ-सञ्ज्ञे।च*एते।। ।	=बहुरि(=च)ये(उत्सर्पिणी तथा अवसर्पिणी)जैसा अर्थ वैसा (=अन्वर्थ) नामधारक हैं
अनुभव-आदिभिः।उत्सर्पण-शीला।	=(पूर्वोक्त) अनुभव आदिक सहित आगेबढनेका (=उत्सर्पण) है स्वभाव जिसका अर्थात् वृद्धि करनेकी है प्रकृति जिसकी सो
उत्सर्पिणी।।तैः।एव*अवसर्पण-शीला।	=उत्सर्पिणी है तिन (अनुभव, आदि) से ही (=एव) पीछेहटनेका (=अवसर्पण) है स्वभाव जिसका अर्थात् ह्रास करने की है प्रकृति जिसकी सो
अवसर्पिणी।तत्रअवसर्पिणी।।षड्विधा।।सुषमसुषमा।।	=अवसर्पिणी है तहां अवसर्पिणी छह प्रकार है सुखमसुखमा
सुषमा।।सुषमदुष्षमा।।दुष्षमसुषमा।।	=सुखमा, सुखमदुःखमा, दुःखमसुखमा
दुष्षमा।।अतिदुष्षमा।। । उत्सर्पिणी।।अपि*	=दुःखमा अतिदुःखमा उत्सर्पिणी [काल] भी है
अतिदुष्षमा।।आद्या।।सुषमसुषमा।।अन्ता।।	=जिसका अति दुःखमा(काल)पहिला है और सुखमसुखमा(काल,सबसेपिछला(अन्ता) है

षड्विधैव भवति ॥ अवसर्पिण्याः परिमाणं दशसागरकोटीकोट्यः । उत्सर्पिण्या अपि तावतेव ॥ याऽसौ उभयी (सोभयी) कल्प इत्याख्यायते ॥ तत्र सुषमसुषमा चतस्रः सागरोपमकोटीकोट्यः । तदादौ मनुष्या उत्तरकुरुमनुष्यतुल्याः ॥ ततः क्रमेण हानौ सत्यां सुषमा भवति तिस्रः सागरोपम-कोटीकोट्यः । तदादौ मनुष्या हरिवर्षमनुष्यसमाः

षड्विधा[1/1] एव*भवति T =छह प्रकारकी ही होती है अर्थात् अतिदुःखमा, दुःखमा, दुःखमासुखमा, सुखमा दुःखमा, सुखमा, सुखमासुखमा ऐसे छह काल हैं ॥

अवसर्पिण्याः[6/1] परिमाणं[1/1] दशसागरकोटीकोट्यः[1/3] =अवसर्पिणीकालकी मर्यादा दश कोड़ाकोड़ी सागर अथवा १०००००००० गुणित १००००००००=१०००००००००००००००० है अर्थात् एक पद्म सागर है ॥

उत्सर्पिण्याः[6/1] अपि*तावत्*एव* =उत्सर्पिणी (काल) का भी तितना ही (एक पद्मसागर मर्यादा) है ॥

या[1/1] असौ[1/1] उभयी[1/1] (सा[1/1]-उभयी[1/1]) कल्पः[1/1] =जो (=या) वह (=असौ) दोनों (उभयी[1/1]) कल्प काल है ॥

इति*आख्यायते T तत्र*सुषमसुषमा[1/1] चतस्रः[1/3] =ऐसा कहा गया है । तहां सुखमसुखमा चार

सागरोपमकोटीकोट्यः[1/3] =कोड़ा कोड़ीसागर प्रमाण अर्थात् ४००००००००×१००००००००= ४०००००००००००००००० चालीस लाख नील सागर का है ॥

तद्-आदौ[7/1] मनुष्याः[1/3] उत्तरकुरु-मनुष्य-तुल्याः[1/3] =तिस (काल) की आदिमें मनुष्य उत्तरकुरुभोगभूमिके मनुष्योंके समान हैं ॥ अर्थात् इस (काल) की आदिमें मनुष्योंकी आयु तीन पल्यकी होती है । अनुक्रम से घटती है अन्त में दो पल्य की रहती है (२) शरीर की ऊंचाई आदि में तीन कोस अनुक्रम से अन्त में २ कोस (३) तीन दिन पश्चात् चौथे दिन बदरीफल सम आहार इत्यादि घटता घटता जाता है

ततः*क्रमेण[3/1] हानौ[7/1] सत्याम्[7/1] सुषमा[1/1] =तहांसे अनुक्रमसे हानि होनेपर सुखमा काल

भवति तिस्रः[1/3] सागरोपम-कोटीकोट्यः[1/3] तद्-आदौमनुष्याः =तीन कोड़ा कोड़ी सागर प्रमाण होताहै । तिस (सुखमाकाल) की आदि विषैं मनुष्य

हरिवर्ष-मनुष्य-समाः[1/3] =हरिवर्ष मध्यम भोगभूमिके मनुष्योंके तुल्य हैं (२ कोश शरीर २ पल्य आयु इत्यादि)

ततः क्रमेण हानौ सत्यां सुषमदुष्षमा भवति द्वे सागरोपमकोटीकोट्यौ । तदादौ मनुष्या हैमवतकमनुष्यसमाः ॥ ततः क्रमेण हानौ सत्यां दुष्षमसुषमा भवति एकसागरोपमकोटीकोटीद्विचत्वारिंशद्वर्षसहस्रोना । तदादौ मनुष्या विदेहजनतुल्या भवन्ति ॥ ततः क्रमेण हानौ सत्यां दुष्षमा भवति एकविंशतिवर्षसहस्राणि ॥ ततः क्रमेण हानौ सत्यां अतिदुष्षमा भवति एकविंशतिवर्षसहस्राणि ॥ एवमुत्सर्पिण्यपि विपरीतक्रमा वेदितव्या ॥ अथेतरासु भूमिषु काऽवस्थेत्यत आह—

ततः॥क्रमेण[३।१]॥हानौ[७।१]॥सत्याम्[७।१]॥सुषमदुष्षमा[१।१]॥	=तहां से क्रमसे हानि होनेपर सुखमदुःखमाकाल
भवतिT॥द्वे[१।२]॥सागरोपमकोटीकोट्यौ[१।२]॥तद्-(१)आदौ[७।१]॥	=दो कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण होता है। तिस (सुखम दुःखम) की आदिमें
मनुष्याः[१।३]॥हैमवतक-मनुष्य-समाः[१।३]॥	=मनुष्य हैमवतक जघन्य भोगभूमिके मनुष्योंके सारिखे है (अर्थात् एककोश शरीर, एकपल्य आयु, एकदिन पीछे आहार इत्यादि)
ततः॥क्रमेण[३।१]॥हानौ[७।१]॥सत्याम्[७।१]॥	=तहांसे क्रमकरि हानि होनेपर
दुष्षमसुषमा[१।१]॥एकसागरोपमकोटी-कोटी-	=दुःखमसुखमा एक कोडा कोडी सागर प्रमाण से
द्विचत्वारिंशद्वर्षसहस्रोना[१।१]॥भवतिT	=वियालीस सहस्रवर्ष न्यून वा हीन होता है
तद्-आदौ[७।१]॥मनुष्याः[१।३]॥विदेह-जन-तुल्याः[१।३]॥भवन्तिT	=तिस (दुःखमसुखमा) की आदि में मनुष्य विदेहक्षेत्र के मनुष्योंके समान होते है ॥
ततः॥क्रमेण[३।१]॥हानौ[७।१]॥सत्याम्[७।१]॥दुष्षमा[१।१]॥	=तहांसे यथाक्रम हानि होने पर दुःखमाकाल
भवतिTएकविंशति-वर्षसहस्राणि[१।३]॥ततः॥क्रमेण[३।१]॥	=इकीसो सहस्र वर्षका होता है। तहांसे क्रमानुसार
हानौ[७।१]॥सत्याम्[७।१]॥अतिदुष्षमा[१।१]॥एकविंशति-	=हानि होनेपर अति दुःखमकाल इकीस
वर्ष-सहस्राणि[१।३]॥भवतिTएवम्॥उत्सर्पिणी[१।१]॥अपि॥	=सहस्र वर्षका होता है। इस प्रकार उत्सर्पिणीकाल भी
विपरीतक्रमा[१।१]॥वेदितव्या[१।१]॥	=उलटा अनुक्रमरूप जानना चाहिये

अथ॥इतरासु[७।३]॥भूमिषु[७।३]॥का[१।१]॥अवस्था[१।१]॥इति॥अतः॥आहT=आगै (=अथ) अन्य (भूमियों) विषैं क्या दशा (=अवस्था) है इसलिये कहते हैं कि

(१) 'आदि' त्रिलिंगी है, यहां "सुषमदुष्षमा" वाक्य के लिये आया है अतः स्त्रीलिंगमें रक्खा है यदि काल के लिये लेवें तो पुल्लिंग में होसक्ता है ॥

॥ ताभ्यामपरा भूमयोऽवस्थिताः ॥ २८ ॥

ताभ्यां भरतैरावताभ्यामपरा भूमयोऽवस्थिता भवन्ति, न हि तत्रोत्सर्पिण्यवसर्पिण्यौ स्तः ॥

किं तासु भूमिषु मनुष्यास्तुल्यायुष आहोस्वित्कश्चिदस्ति प्रतिविशेष इत्यत आह—

॥ एकद्वित्रिपल्योपमस्थितयो हैमवतकहारिवर्षकदैवकुरवकाः ॥२९॥

सूत्रम्–(१)ताभ्यामपरा भूमयोऽवस्थिताः ॥ २८ ॥

सूत्रार्थः—ताभ्याम्५।३ अपराः१।३ भूमयः१।३ अवस्थिताः१।३ =तिन(भरत तथा ऐरावतवर्षो)से अन्य (हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत) पृथिवीयें ज्योंकीत्योंनित्य है अर्थात् इनके क्षेत्रोंमें वृद्धि ह्रास नहीं होता है ॥

वृत्त्यनुवादः—ताभ्याम्५।३ भरत-ऐरावताभ्याम्५।३ अपराः१।३ =उन भरत तथा ऐरावत वर्षोंसे अन्य (हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत)

भूमयः१।३ अवस्थिताः१।३ भवन्ति। =पृथिवीयें ज्योंकीत्योंनित्यविद्यमान (=अवस्थिताः) हैं (=भवन्ति)

न*हि*तत्र*स्तः। =क्योंकि (=हि) नहीं है तहां (पूर्वोक्त पांच क्षेत्रोंमें)

उत्सर्पिणी-अवसर्पिण्यौ१।२। किम्१।१ तासु७।३ भूमिषु७।३ =उत्सर्पिणी तथा अवसर्पिणीकाल (प्रश्न) क्या तिन (पांच) भूमियोंविषैं

तुल्य-आयुषः१।३ मनुष्याः१।३ आहोस्वित्*कश्चित्* =समान अवस्था वाले मनुष्य हैं ॥ अथवा (=आहोस्वित्) कुछ

अस्ति।प्रतिविशेषः१।१ इति*अतः*आह। =भिन्नता वा पृथक्ता (=प्रतिविशेष) है इसलिये (अग्रिम सूत्रमें) कहते है कि

सूत्रम्–(१)एकद्वित्रिपल्योपमस्थितयो हैमवतकहारिवर्षकदैवकुरवकाः ॥ २९ ॥

सूत्रार्थः—एक-द्वि-त्रि-पल्योपम-स्थितयः१।३ हैमवतकाः१।३ =एक दो और तीन पल्य प्रमाण आयुवाले (क्रमसे) हैमवत क्षेत्रके रहनेवाले

हारिवर्षकाः१।३ दैवकुरवकाः१।३ ॥२९॥ =हरिवर्षके निवासकरनेवाले मनुष्य और दैवकुरु(भोगभूमि)के वसनेवाले मनुष्यहै अर्थात् हैमवत क्षेत्र जो जघन्य भोग भूमि का क्षेत्र है यहांके उपजे मनुष्योंकी

(१) हमारे यहा इन सूत्रोंका पाठ एकसा है श्वेताम्बर आम्नायके 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र'में इन सूत्रोंका सूत्र नहीं मानेहै (टिप्पणी पृष्ठ३७, ३८ देखो)

हैमवते भवा हैमवतका इत्येवं वुञि सति मनुष्यसम्प्रत्ययो भवति । एवमुत्तरयोरपि ॥ हैमवतकादयस्त्रयः । एकादयस्त्रयः । तत्र यथासंख्यमभिसम्बन्धः क्रियते । एकपल्योपमस्थितयो हैमवतकाः । द्विपल्योपमस्थितयो हारिवर्षकाः । त्रिपल्योपमस्थितयो दैवकुरवका इति ॥ तत्र पञ्चसु हैमवतेषु सुषमदुष्षमा सदाऽवस्थिता ।

एक पल्यकी अवस्था होती है । हरिवर्ष जहां मध्यमभोग भूमिहै यहांके निवासी मनुष्योंकी आयु दो पल्य की होती है । और देवकुरु उत्तम भोगभूमिके निवासकरनेवाले नरोंका तीन पल्योपम जीवन काल है ।

(१)हैमवते॥भवाः॥हैमवतकाः॥इत्येवं*	=हैमवतवर्षमें होनेवाले अर्थात् उपजने वाले वे हैमवतका हैं इस प्रकार
वुञि॥सति॥	=वुञ् प्रत्यय (हैमवत शब्द के साथ) होनेमें (=सति) (उसक्षेत्रमे होनेवाले)
मनुष्य-सम्प्रत्ययः॥भवतिTएवं*उत्तरयोः॥अपि*	=मनुष्योंका ज्ञान वा बोध होता है ऐसे अग्रिम दोमे (=उत्तरयोः) भी है ॥ अर्थात् हारिवर्ष और दैवकुरु शब्दों के साथ वुञ् प्रत्यय लाने पर उन दोनों क्षेत्रों में उत्पन्न होनेवाले नरोंका बोध होताहै और हारिवर्षक, दैवकुरुवकरूप होजाते हैं॥
हैमवतक-आदयः॥त्रयः॥एक-आदयः॥त्रयः॥	=(इस सूत्र में) हैमवतक आदिक तीन है ॥ एक आदिक तीन (संख्या) हैं ॥
तत्र*	=तहां (हैमवतक-हारिवर्षक और दैवकुरुवक का एक दो तीन गणनाओंके साथ)
यथासंख्यम्॥॥	=संख्याके अनुसार वा अनुसरण (=यथासंख्यम् अर्थात् पहिले को पहिली दूसरे को दूसरी तीसरे को तीसरी इस क्रमसे)
अभिसम्बन्धः॥क्रियतेTएक-पल्योपम-स्थितयः॥	=सम्बन्ध वा संयोग किया जाय है (जैसे) एक पल्योपमकी आयुधारक
हैमवतकाः॥	=हैमवत क्षेत्र (जघन्य भोगभूमि) के उपजे मनुष्य हैं ॥
द्वि-पल्योपम-स्थितयः॥हारिवर्षकाः॥	=दो पल्योपम के जीवनकालवाले हरिवर्ष (मध्यम भोग भूमि)के निवासी मनुष्य हैं
त्रि-पल्योपम-स्थितयः॥दैवकुरुवकाः॥इति*	=तीन पल्योपमकी अवस्थावाले देवकुरु (उत्तम भोगभूमि के) रहने वाले नर है
तत्र*पञ्चसु॥हैमवतेषु॥सुषमदुःष्षमा॥।सदा*अवस्थिता॥	=तहां पांच हैमवत देशोंमें सुखमदुःखम (काल) सर्वदाविद्यमान है ।

(१) 'हिमवत' शब्दमें 'अण' (=अ)प्रत्यय जोडनेसे, हिमवत् की 'इ'की वृद्धि होकर हैमवत्+अण बना=हैमवत, इसमें 'वुञ्' प्रत्यय जोडो, वुञ् का उ, ञ् इत् संज्ञिक होने से लोप हुआ और व् के स्थान में 'अक' का आदेश हुआ अत हैमवत+अक, तके अकार का लोप होकर हैमवतक बना

तत्र मनुष्या एकपल्योपमायुषो द्विधनुःसहस्रोच्छ्रिताः चतुर्थभक्ताहारा नीलोत्पलवर्णाः ॥ पञ्चसु हरिवर्षेषु सुखमा सदाऽवस्थिता । तत्र मनुष्या द्विपल्योपमायुषश्चतुश्चापसहस्रोत्सेधाः षष्ठभक्ताहाराः शंखवर्णाः ॥ पञ्चसु देवकुरुषु सुषमसुषमा सदाऽवस्थिता । तत्र मनुष्यास्त्रिपल्योपमायुषः

तत्र॰एकपल्योपमआयुषः३।मनुष्याः३।	=तहां मनुष्य एक पल्योपम आयुवाले
द्वि-धनुष्-सहस्र-उच्छ्रिताः३।	=दो सहस्र चाप ऊंचे (=उच्छ्रित)
चतुर्थ-भक्त-आहाराः३।	=चौथा(=चतुर्थ)भोजन वा अन्नके(=भक्त) खानेवाले (=आहार) अर्थात् तीनवारके भोजन(के समय)को त्यागकर चोथीवारका भोजन करनेवाले तात्पर्य्य एकदिनको वीचमें छोड़कर भोजनकरनेवाले
नील-उत्पल-वर्णाः३। पञ्चसु३।हरिवर्षेषु३।	=और नीले कमल सम रूपकेधारक हैं । पांच हरि क्षेत्रोंमें
सुखमा१।सदा॰अवस्थिता१।। तत्र॰मनुष्याः३। दो-पल्योपम	=सुखमाकाल सर्वकालमे वर्तमान है । तहां मनुष्य दोपल्यप्रमाण
आयुषः३। चतुर्-चाप-सहस्र-उत्सेधाः३।	=अवस्थाके धारक चार सहस्र धनुप ऊंचे, लम्बे अथवा ऊंचाईवाले
षष्ठ-भक्त-आहाराः३।	=छठवां भोजन ग्रहण करनेहारे अर्थात् दो दिनका वीचमें अवकाश देकर तीसरे दिन उसी समय भोजन करनेवाले है
शंख-वर्णाः३।पञ्चसु३।देवकुरुषु३।सुषमसुषमा१।।	=धवल अथवा श्वेत शरीर धारक है । पांच देवकुरु क्षेत्रोंविषैं सुखमसुखमा
सदा॰अवस्थिता१।।तत्रमनुष्याः३।त्रिपल्योपमआयुषः३।	=सर्व कालमे अवस्थित है ॥ तहां मनुष्य तीन पल्य प्रमाण स्थिति वाले हैं

चौथे दुःखमसुखमाकालमें एक वार भोजन साधारणत प्रत्येक दिन मनुष्य करता था और पचमकालमें बहुधा दो वार भोजन प्रत्येक पुरुष करता है । क्योंकि सर्वार्थसिद्धिकी संस्कृतवृत्ति पूज्यपाद स्वामीने जिनका जन्म विक्रम सवत् ३०८ ज्येष्ठ सुदी दशमीको हुआ था पचमकालमें रची है । इसकारण चतुर्थ भोजन करनेवालेका तात्पर्य्य यह है कि 'एक दिनका अन्तर देकर भाजन करनेवाला' 'एक दिनके अवकाश से भोजन करने वाला' 'एकदिन वीचमें भोजन न करके भोजन करनेवाला' जैसे मानलो कि पचमकालके एक मनुष्यने और जघन्य भोग भूमिके एक मनुष्यने साथसाथ रविवार को भोजन सायकाल किया तो पचमकालका पुरुष सोमवारकी प्रात कालमें एक भाजन और दूसरा उसी दिवसको सायकालको करैगा और वही मनुष्य एक भोजन मंगलवारके प्रात कालमें करैगा तवलग जघन्य भोग भूमिका मनुष्य कोई भोजन न करैगा जब पचमकालका मनुष्य मंगलकी सायकालको चौथा भोजन करैगा तव भोग भूमिका पूर्वोक्त मनुष्य फिर भोजन करैगा इसलिये कहा है कि चौथा भाजन करनेवाले अर्थात् तीनवार का भोजन त्यागकर वा एक दिवसका अन्तर देकर दूसरे दिन भोजन करनेवाला ॥

षड्धनुःसहस्रोच्छ्राया अष्टमभक्ताहाराः कनकवर्णाः ॥ अथोत्तरेषु काऽवस्थेत्यत आह—

॥ तथोत्तराः ॥ ३० ॥

यथा दक्षिणा व्याख्यातास्तथैवोत्तरा वेदितव्याः। हैरण्यवतका हैमवतकैस्तुल्याः। राम्यका हारिवर्षकैस्तुल्याः

षड्-धनुष्-सहस्र-उच्छ्रायाः[1/3] अष्टमभक्त-आहाराः[1/3]	=छह सहस्र चाप ऊंचाईवाले आठवां भोजन ग्रहण करने वाले हैं अर्थात् तीन दिन का बीच में अन्तर देकर चौथे दिन उसी समय भोजन ग्रहण करनेवाले
कनकवर्णाः[1/3] अथ*उत्तरेषु[7/3]	=स्वर्ण वा कंचनरूप हैं (प्रश्न) अब उत्तर दिशाओंविषैं
का[1/1] अवस्था[1/1] इति*अत*आह	=क्या अवस्था है इसलिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि
सूत्रम्— (१)तथोत्तरा ॥ ३० ॥	=(यथा दक्षिणाः व्याख्याताः) तथा (एव) उत्तराः (वेदितव्याः)
सूत्रार्थः—यथा*दक्षिणाः[1/3] व्याख्याताः[1/3] तथा*(एव*)	=जैसे दक्षिण वाले वर्णन किये गये है तैसे (ही)
उत्तराः[1/3] वेदितव्याः[1/3]	=उत्तरदिशाके (तीन क्षेत्र हैरण्यवत रम्यक और उत्तरकुरु के) निवासकरनेवाले (मनुष्योंको) समझना चाहिये अर्थात् हैरण्यवतक्षेत्र जो जघन्य भोगभूमिका क्षेत्र है

यहांके उपजे मनुष्योंकी एक पल्य की आयु होती है। रम्यक क्षेत्र जहां मध्यम भोग भूमि है यहां के निवासी मनुष्योंकी आयु दोपल्यकी होती है ॥ और उत्तरकुरु जो उत्तम भोग भूमिका क्षेत्र है यहाके निवासकरने वाले नरोंका तीन पल्योपमाका जीवनकाल है इसप्रकार पांचमेरु सम्बन्धी दक्षिण और उत्तरदिशाओंकी सर्व तीसभोगभूमि हैं

वृत्त्यनुवादः-यथा*दक्षिणाः[1/3] व्याख्याताः[1/3] तथा*एव*उत्तराः=जैसे दक्षिणदिशाके(क्षेत्रों)वाले वर्णन कियेगयेहै तैसेही उत्तरदिशाके(क्षेत्रों)वालोंको

वेदितव्याः[1/3]-हैरण्यवतकाः[1/3]	=जानना चाहिये अर्थात् हैरण्यवत क्षेत्रकेनिवासीमनुष्य
(२)हैमवतकैः[3/3] तुल्याः[1/3] राम्यकाः[1/3]	=हैमवत क्षेत्रके रहनेवाले मनुष्योंसे समान है। रम्यक क्षेत्रकेनिवासकरनेवाले मनुष्य
हारिवर्षकैः[3/3] तुल्याः[1/3]	=हरिवर्षके रहनेवाले मनुष्योंसे तुल्य हैं

(१) हमारे यहा इस सूत्रका पाठ सर्वत्र एक है ॥ श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें इसको सूत्र नहीं मानाहै (पृष्ट ३७, ३८की टिप्पणी)

(२) क्योंकि यहांपर संस्कृत वृत्तिमें त्रितीया कारक है इस हेतु से अनुवादमें 'मनुष्योंसे' ऐसा लाये हैं जिसका वही अभिप्राय है जो मनुष्योंके वाक्यके लानेपर होता है अर्थात् हैमवत क्षेत्रके रहनेवाले मनुष्योंके समान हैं ॥

दैवकुरवकैरौत्तरकुरवकाः समाख्याताः ॥ अथ विदेहेष्ववस्थितेषु का स्थितिरित्यत्रोच्यते—

॥ विदेहेषु संख्येयकालाः ॥ ३१ ॥

सर्वेषु पञ्चसु महाविदेहेषु

दैवकुरुवकैः[३/३] औत्तरकुरुवकाः[१/३]	=देवकुरु क्षेत्रके उपजे मनुष्योंसे उत्तर कुरुक्षेत्रके उत्पन्न हुये मनुष्य
सम-आख्याताः[१/३] । अथ*विदेहेषु[७/३]	=समान (=सम) वर्णित कियेगये हैं ॥ (प्रश्न) अब विदेहक्षेत्रोंमें
अवस्थितेषु[७/३] का[१/१] स्थितिः[१/१] इति*अत्र*उच्यते	=रहनेवाले, वा निवासकरनेवालोंकी क्या आयु है ऐसे (प्रश्नपर) यहां कहा जाता कि

[१]सूत्रम्— विदेहेषु संख्येयकालाः ॥ ३१ ॥

सूत्रार्थ—विदेहेषु[७/३] संख्येय-कालाः[१/३]	=विदेहक्षेत्रोंकेविषैं संख्यातवर्षकी अवस्था वा आयुवाले होते हैं अर्थात् पांच मेरु सम्बन्धी पांचों विदेह क्षेत्रोंमें मनुष्य संख्यात वरसकी आयुवाले होते हैं
वृत्त्यनुवादः—सर्वेषु[७/३] पञ्चसु[७/३] [२]महाविदेहेषु[७/३]	=(पांच मेरु सम्बन्धी) समस्त पांच महाविदेहोंमें

---

(१) हमारेयहां कहीं संख्येय, कहीं सङ्ख्येय पाठ है दोनों पाठ ठीक हैं (अ०१पृष्ठ५४०,५४१) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य०में इसको सूत्र नहींमाना है

(२) विगतो विनष्टो देहः शरीर मुनीनां येषु ते विदेहा । प्रायेण मुक्तिपदप्राप्तिहेतुत्वात् । तषु विदेहेषु पञ्चानां मेरूणां सम्बन्धिन पञ्चपूर्वविदेहाः पञ्च अपरविदेहा उभये मिलित्वा पञ्चमहाविदेहा कथ्यन्ते ॥

विगत[१]। विनष्टः[१/१]। देह[१/१]। शरीर[१/१]॥। मुनीनां[६/३]	=विनशन हुआ है (=विगत,) ध्वस हुआ है (=विनिष्टः) गात्र(देह)काय (शरीर) ऋषियोंका
येषु[७/३]। ते[१/३]। विदेहाः[१/३]। प्रायेण*मुक्ति-पद-प्राप्ति-	=जिन (देशोंमें) वे विदेह है । प्रायश वा बहुधा (=प्रायेण) मोक्षपदकी लब्धिके
हेतुत्वात्[५]॥। तेषु[७/३]। विदेहेषु[७/३]। पञ्चानां[६/३]। मेरूणां[६/३]।	=कारणपनासे (इन देशोंके नाम विदेह) हैं । तिन विदेहोंमें पांच मेरु
सम्बन्धिनः[१/३]। पञ्च[१/३]। पूर्व विदेहा[१/३] पञ्च[१/३]अपर विदेहाः[१/३]।	=सम्बन्धी पाच पूर्व दिशाके विदेह, पाच पश्चिम दिशाके विदेह
उभये[१/३]॥। मिलित्वा – पञ्चमहाविदेहाः[१/३]।कथ्यन्ते	=दोनों मिलकर पाच महाविदेह (ऊपरकी वृत्तिमें) कहेगये है वा वर्णन कियेगये हैं ॥

संख्येयकाला मनुष्याः ॥ तत्र कालः सुषमदुःषमान्तोपमः सदाऽवस्थितः । मनुष्याश्च पञ्चधनुः शतोत्सेधाः । नित्याहाराः । उत्कर्षेणैकपूर्वकोटीस्थितिकाः ।

(१)संख्येय-कालाः[1/3]मनुष्याः[1/3]तत्र*कालः[1/1] =संख्यात काल आयुके धारक मनुष्य होते है। तहां (विदेह क्षेत्रों में) काल
(२)सुषम-दुःषम-अन्त-उपमः[1/1]सदा*अवस्थितः[1/1] =सुखमदुःखमा (तीसरे काल के) अन्तके सरीखा (=उपम) सर्वदा विद्यमान (अवस्थित)है
मनुष्याः[1/3]च*पञ्च-धनुःशत-उत्सेधाः[1/3] =बहुरि मनुष्य पांचसौ धनुष ऊंचे वा लम्बे है अर्थात् पांचसौ धनुष उचाईमें होते हैं
नित्य-आहाराः[1/3] =प्रति दिन (=नित्य-पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ २१३) आहार वा भोजन करने वाले हैं ॥
उत्कर्षेण[3/1]एक-पूर्व(३)-कोटी-स्थितिकाः[1/3] =उत्कृष्टकरि एक करोड़ पूर्वकी आयुके धारक हैं

(१) सख्यायते गणयितु शक्यते इति संख्येय । सख्येय कालो जीवित येषां ते सख्येयकालः ॥
सख्यायतेTगणयितुम्[1/1]॥शक्यतेTइति*संख्येय[1/1] =गणना के योग्य है (=सख्यायते) गिनाजासक्ता है ऐसा संख्येय है ॥
सख्येय[1/1]काल[1/1]जीवित[1/1]॥येषां[6/3]ते[1/3]संख्येय-काला[1/3] =गिनेके योग्य है जीवन काल जिनका वे संख्येयकाल (आयु) वाले हैं ॥

(२) सुषमदुःषमाकालान्तकालसदृशइत्यर्थ ॥ अत्र "दुःषमसुषमादि" इति पाठभेदस्तालपत्रपुस्तके वर्तते ॥
सुषम दुःषमा-काल-अन्त-काल-सदृश इति-अर्थ.[1/1] =सुखमदुःखमा (तीसरे) कालके अन्त समयके समान ऐसा अर्थ वा आशय है ॥
अत्र*दुःषम सुषम-आदिः[1/1]इति*पाठ-भेद.[1/1] =यहां दुःखमसुखम (चौथे) काल की आदि वा प्रारम्भ (सदृश) ऐसा पठन विशेष
ताल-पत्र-पुस्तके[7/1]॥वर्ततेT =ताडवृक्ष (=ताल) के पत्तों पर लिखित पुस्तकमें है (पुरातन वा प्राचीन समय में जब कागद् के परत न थे तब ताडवृक्षके पत्तोंपर वा भोजपत्र इत्यादि पर लिखाई होती थी)

(३) पूर्वाङ्ग वर्षलक्षाणामशीतिश्चतुरुत्तरा । ८४०००० ॥ तद्वर्गित भवेत्पूर्वं ७०५६००००००००० तत्कोटी पूर्वकोट्यसौ ॥ ७०५६०००००००००००००००००॥
पूर्व अङ्गं[1/1]॥वर्ष-लक्षाणां[6/3]॥अशीति.[1/1]॥चतुर् उत्तरा[1/1]॥ =पूर्वांग है (वह)बरस लाख अस्सी ऊपर(=उत्तर)चार है-अर्थात् चौरासीलाख वर्षका है ॥
८४०००० ॥ तद् =चोरासीलाख संख्या है। उन (चौरासीलाख बरसों) को
वर्गितं[1/1]॥भवेत्Tपूर्वं[1/1]॥७०५६०००००००००० =आपस में गुणित (=वर्गित) हो (भवेत्) सो पूर्व है अर्थात् चौरासी लाख को चोरासी लाखसे गुणा करनेसे जो गुणनफलहो उतने वर्षोंका एकपर्व होताहै =८४०००० × =८४०००० ७०५६००००००००००भावार्थ सातनील, पांच खर्व साठ अरब बरसोंका एक पूर्वहोता है ॥

जघन्येनान्तर्मुहूर्तायुषः ॥ तस्याश्च सम्बन्धे गाथां पठन्ति ॥ [1]पुव्वस्स दु परिमाणं सदरिं खलु कोडिसदसहस्साइम् । छप्पण्णं च सहस्सा बोद्धव्वा वा सकोडीणम् ॥ १ ॥ ७०५६०००००००००० उक्तो भरतस्य विष्कम्भः । पुनः प्रकारान्तरेण तत्प्रतिपत्त्यर्थमाह—

जघन्येन३।१ अन्तर्मुहूर्त-आयुषः६।३	=जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त आयुवाले है ॥
तस्याः६।१ च*सम्बन्धे७।१ गाथां२।१ पठन्ति	=बहुरि तिस (स्थिति)के संयोगमें गाथा बांचते वा पठन करते है ॥
(१)पुव्वस्स६।१ दु*परिमाणं१।१ (पूर्वस्य६।१ तु*परिमाणं१।१)	=और (=दु=तु) पूर्वका प्रमाण
सदरिं१।१ खलु*कोडि-सद-सहस्साइम्१।१ (खलु*सप्तति-(२)कोटि-शत-सहस्राणि१।३)	=निश्चयसे (=खलु) सत्तर लाख करोड़
छप्पण्णं१।१ च सहस्सा१।३ (च षट्-पञ्चाशत्-सहस्राणि१।३)	=और (=च) छप्पन सहस्र
बोद्धव्वा१।३ वा*स-कोडीणम्६।३ (१) बोद्धव्याः१।३ वा*स-कोटयः१।३ (=स-कोट्यः) (१)	=करोड़ (३)(वरस) सहित जानना चाहिये (सातनील पांचखर्व साठसहस्र अर्व)
७०५६००००००००००	=(एक पूर्वके) सातनील पांचखर्व साठ सहस्र अर्व हुये
उक्तः१।१ भरतस्य६।१ विष्कम्भः१।१ पुनः*प्रकार-अन्तरेण*	=भरतक्षेत्र की कही हुई (दक्षिण-उत्तर) चौड़ाई है सो पुनि अन्य प्रकारकरि
तत्-प्रतिपत्ति-अर्थम्१।१ आह	=उस (चौड़ाई)के जतलानेकेलिये (अग्रिमसूत्रमें) कहते हैं कि

तत् कोटी१।१ पूर्व-कोटि (कोटी) असौ१।१	=वे करोड़ (पूर्व है) सो पूर्वकोटी है (जिसके)
७०५६००००००००००००००००००	='७०५६०००००००००००००००००० अर्थात् सातसहस्र छप्पन शंख वरस होते हैं

(१) अस्यायमर्थः—सप्ततिलक्षकोटिवर्षाणि षट्पञ्चाशत्सहस्रकोटिवर्षाणि यदा भवन्ति तदैकं पूर्वमुच्यते

अस्य ६।१ अयम् १।१ अर्थ १।१ सप्ततिलक्षकोटि वर्षाणि१।३	=इसका यह अभिप्राय है कि सत्तर लाख करोड़ वरस (और)
षट्-पञ्चाशत्सहस्रकोटि १।१ वर्षाणि १।३ यदा* भवन्ति	=छप्पन सहस्र करोड वरस जब होते हैं
तदा* एकं१।१ पूर्वम्१।१ उच्यते	=तब एक पूर्व कहा जाता है (संख्यामें ७०५६०००००००००० ऐसे रखते है)

(२) कोटि कोटी । दोनों शब्द करोड़के बोधक है ।'कोटि'शब्दका बहुवचन मति शब्दके सदृश'कोटयः' है और'कोटी'शब्दका 'दासी' शब्द के समान 'कोट्य 'प्रथमाविभक्ति बहुवचन स्त्रीलिंग है ॥ (३) वरस—ऐसा जान पडता है कि जहां से यह आर्या छंद लिया गया है, उस छंद से 'वर्ष' शब्द की अनुवृत्ति इसमें वर्तती है अतः इसमें 'वर्ष' शब्द नहीं लाये । अनुवादमें 'वर्ष' शब्द लाना अति आवश्यक है ॥

॥ भरतस्य विष्कम्भो जम्बूद्वीपस्य नवतिशतभागः ॥ ३२ ॥

जम्बूद्वीपविष्कम्भस्य योजनशतसहस्रस्य नवतिशतभागीकृतस्यैको भागो भरतस्य विष्कम्भः स पूर्वोक्त एव॥ उक्तं जम्बूद्वीपं परिवृत्य वेदिका स्थिता, ततः परो लवणोदः समुद्रो द्वियोजनशतसहस्रवलयविष्कम्भः।

(१)सूत्रम्—भरतस्य विष्कम्भो जम्बूदीपस्य नवतिशतभागः ॥ ३२ ॥

सूत्रार्थः—भरतस्य। विष्कम्भः। जम्बूद्वीपस्य।	=भारतवर्षकी (दक्षिण-उत्तर) चौड़ाई जम्बूद्वीपके (जिसका व्यास एकलक्षयोजन है)
नवतिशत-भागः।	=एकसौ नव्वै भागोंमें से (एक भाग) है अर्थात् ($\frac{100000}{190}=526\frac{6}{19}$ योजन है)
वृत्त्यनुवादः—जम्बूद्वीप-विष्कम्भस्य। योजन-शतसहस्रस्य।	=जम्बूद्वीपके विस्तारके लाख योजनके
नवतिशत-भागीकृतस्य। एकः। भागः। भरतस्य।	=एकसौ नव्वे भाग किये हुओंमें से, एकभाग भरतक्षेत्रकी (दक्षिण-उत्तर)
विष्कम्भः। सः। पूर्व-उक्तः। एव; उक्तं। जम्बूद्वीपं।	=चौड़ाई है सो पहिले वर्णितही है। वर्णित जम्बूद्वीपको
परिवृत्य(२) वेदिका।। स्थिता।।	=वेढ़कर वेदी तिष्ठी है अर्थात् जम्बूद्वीपके चारो ओर वेदिका है उसकेपीछे लवणोदधि है
ततः*परः। लवणोदः। समुद्रः। द्वियोजनशतसहस्र-	=तिस (वेदिका) से आगे लवणोदधि समुद्र दोलाख योजन
वलय-विष्कम्भः।	=वलयाकार कड़के आकार विस्ताररूप है अर्थात् लवणोदधि की परिधिपर

एकविंदु लेकर उसकी सीधमें जंबूद्वीपकी परिधिपर दूसरा विंदुलेकर दोनोंविंदुओंके मिलानेवाली रेखा दोलाखयोजन लम्बी होगी।

(१) हमारे यहां इस सूत्रका पाठ एक है। श्वेताम्बर आम्नायके 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र'में इसको सूत्र नहीं माना है (इस अध्यायके पृष्ठ ३७, ३८ की टिप्पणी देखो)। (२) सवधसूचक भूतकृदन्त है॥ (३) एक भागमें भरतक्षेत्र, दो भागोंमें हिमवान् पर्वत चार भागोंमें हैमवतक्षेत्र, आठ भागोंमें महाहिमवान् पर्वत, सोलह भागोंमें हरिक्षेत्र, बत्तीस भागोंमें निषिध पर्वत, और चोसठि भागोंमें विदेह क्षेत्रका विस्तार है। जम्बूद्वीपके एकसौ सत्ताइस (१२७) भाग तो दक्षिण सम्बन्धी हैं और नील पर्वत बत्तीस भागोंमें, रम्यकक्षेत्र सोलह भागोंमें, रुक्मी पर्वत आठ भागोंमें, हैरण्यवत् क्षेत्र चार भागोंमें, शिखरी पर्वत दो भागोंमें तथा ऐरावत क्षेत्र एक भागमें विभक्त हैं। ऐसे उत्तर सम्बन्धी ये त्रेसठ भाग, दोनों मिलानेसे (१२७+६३)=१९० भाग जम्बूद्वीप के हैं। २४ वां सूत्र के होते हुये कि भरतक्षेत्र $526\frac{6}{19}$ है इसकी आवश्यकता नहीं क्योंकि एक साधारण पाठक $526\frac{6}{19}=\frac{10000}{19}=\frac{100000}{190}$ निकालसक्ता है कि १९० वां भाग भरत है॥ अथवा इस सूत्रको २४ वां सूत्र करदेते तो विद्यमान चौवीसवां सूत्र जो इससे बड़ा सूत्र है न बनाना होता और $\frac{100000}{190}=\frac{10000}{19}=526\frac{6}{19}$ भरतक्षेत्रकी उत्तर दक्षिण की सूची भी निकल आती॥

ततः परो धातकीखण्डो द्वीपश्चतुर्योजनशतसहस्रवलयविष्कम्भः ॥

तत्र वर्षादीनां संख्याविधिप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ द्विर्धातकीखण्डे ॥ ३३ ॥

भरतादीनां द्रव्याणामिहाभ्यावृत्तिर्विवक्षिता । तत्र कथं सुच् ? । अध्याह्रियमाणक्रियाभ्यावृत्तिद्योतनार्थः

ततः॥परः॥धातकीखण्डः॥द्वीपः॥चतुर्-	=उस (लवण समुद्र) से आगे धातकीखंड द्वीप चार
योजन-शतसहस्र-वलय-विष्कम्भः॥तत्र॥	=लाख योजन वलयाकार वा कड़ेकेआकार विस्तारवाला है । तहां
वर्षादीनाम्॥संख्या-विधि-प्रतिपत्ति-अर्थम्॥आह	=क्षेत्रादिकोंकी गणनाके क्रम (=विधि) के ज्ञानके लिये (अग्रिमसूत्रमे)कहते हैं कि
[1]सूत्रम्—द्विर्धातकीखण्डे ॥ ३३ ॥	=धातकीखण्डे द्वीपे भरतादयो द्विः॥संख्यायन्ते ॥३३॥
सूत्रार्थः-धातकीखण्डे॥द्वीपे॥भरत-आदयः॥	=धातकीखंड द्वीपमें भारतवर्ष, कुलाचल, पर्वत, द्रह कमल आदि (जम्बूद्वीपसे)
द्विः॥संख्यायन्ते	=दूने दूने गिनेजाते है ।
वृत्त्यनुवादः-भरत-आदीनां॥[2]द्रव्याणाम्॥इह॥अभ्यावृत्तिः॥	=भारतवर्ष(कुलाचल,द्रह,कमल)आदि द्रव्यवाची शब्दोंका यह(=इह)दुवाराकथन
विवक्षिता॥	=(धातकीखंडद्वीपादिककी)विवक्षासे कियागयाहै अर्थात् सूत्रग्रन्थोंमे वा सूत्रशास्त्रोंमें

सूत्रकार दुवारा कभी किसी वस्तुका कथन नही करते, जब एकबार भरत,कुलाचल,आदिका कथन आचार्य करचुके तब दुवारा कथन नही करना चाहियेथा, उसके उत्तरमें कहतेहै कि धातकीखण्ड और पुष्कार्ध आदिका कथनअवश्यही करनाथा उनका कथन भरतादिकके विवरण किये विना होनहीं सकता है अगर ऐसा न करते तो धातकी खण्ड और पुष्करार्द्ध आदिका कथनरहजाता, तत्त्वार्थसूत्र अधूरा होजाता सो ठीक नहीथा इसअपेक्षाको लियेहुये दुवाराभरतादिकका कथन करना पड़ा ॥

तत्र॥कथम्॥सुच्॥ ?	=तहां(सूत्रमें द्वि शब्दको)कैसे सुच्प्रत्यय(जो रूपान्तर होकरसुच्=सु=स्=ः)होताहै
अध्याह्रियमाण-क्रिया-अभ्यावृत्ति-द्योतन-अर्थः॥	=(इससूत्रमें) क्रियाके कल्पना द्वारा विवरणकी स्पष्टताके जनावनेके लिये

(१) इस सूत्रका दानो आम्नायों में पाठ और अर्थ एकसा है ॥ (२)यहा पर भरतआदि द्रव्य हैं । व्याकरणमें प्रकृति प्रत्यय लिंग संख्या विशिष्टको द्रव्य कहा जाता है भरतादि शब्द लिंग संख्या विशिष्ट होनेसे द्रव्यवाचक शब्द है ॥(व्याकरणमें)वह पदार्थ कि जिसका लिङ्ग और संख्या से अन्वय हो द्रव्यहै । पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ१८६ ॥ अतएव द्रव्य शब्दका अर्थयहापर जीव,अजीव,धर्म, अधर्म, आकाश, काल द्रव्योंमेंसे कोईभी अपेक्षित नहीं है ॥

सुच् ॥ यथा द्विस्तावानयं प्रासादो मीयत इति ॥ एवं द्विर्धातकीखण्डे भरतादयो मीयन्ते इति ॥ तद्यथा—द्वाभ्यामिष्वाकारपर्वताभ्यां दक्षिणोत्तरायताभ्यां लवणोदकालोदवेदिकास्पृष्टकोटिभ्यां विभक्तो धातकीखण्डः पूर्वापर इति ॥ तत्र पूर्वस्य चापरस्य मध्ये द्वौ मन्दरौ । तयोरुभयतो भरतादीनि क्षेत्राणि हिमवदादयश्च

सुच् १/१। =(द्विशब्द पर) सुच् है अर्थात् स् (कर्ताका चिन्ह जो सूत्रमें 'र्' में पलट जाता है लगाया) है भावार्थ इस सूत्रके 'द्वि' शब्द पर स् (=र्) कर्ता कारकका प्रत्यय (मापना) क्रिया के (१)अध्याहार वा सूत्रके अन्तमें (मापना) क्रिया की विद्यमानताकी कल्पनाके लिये लाये हैं ॥

यथा॰द्विः॰तावान् १/१। अयं १/१। प्रासादः १/१। मीयते। इति॰ =जैसे दोगुणा (=द्विः) माप (=तावान्) यह राजभवन नापाजाय है वा परिमाण कियाजाय है

एवम्॰द्विः॰धातकीखण्डे ७/१। भरत-आदयः १/३। =इस प्रकार (जम्बूद्वीपसे) द्विगुने (=द्विः) धातकीखंड द्वीपमें भरतक्षेत्रादिक

मीयन्ते। इति॰ =नापे जाते है अथवा गणना किये जाते है भावार्थ-इस सूत्र के द्विशब्द पर स्(=र्) कर्त्ता का प्रत्यय लानेसे और सूत्रके अंतमें मापना क्रियाका अध्याहार करके यह फलनिकाला हैकि जम्बूद्वीपमें जो भरतक्षेत्र, कुलाचल, द्रह पुष्करादिक है उनकी अपेक्षा धातकीखंडमें दुगुणे है

तद्यथा॰द्वाभ्याम् ३/२। इष्वाकारपर्वताभ्याम् ३/२। =जैसे दो इष्वाकार पर्वतोंकरि (जो चारसौ योजन ऊंचे और सौ योजन पृथिवीमें प्रविष्ट है)

लवणोद-कालोद-वेदिका-स्पृष्टकोटिभ्याम् ३/२। =लवण समुद्र और कालोदधिकी वेदियों को छूनेवाले दोनों अटनियों वा सिरों तक

दक्षिण-उत्तर-आयताभ्याम् ३/२। विभक्तः १/१। धातकीखंड १/१। =दक्षिण-उत्तर दिशामें (चार लाख योजन) लम्बे है । धातकी खंड

पूर्व-अपरः १/१। इति। तत्र॰पूर्वस्य ६/१। च॰अपरस्य ६/१। मध्ये ७/१। =पूर्व पश्चिम (दो भागों में) बटा हुआ है तहा पूर्व और पश्चिमके (भागों के) बीच में

द्वौ १/२। मन्दरौ १/२। तयोः ६/२। उभयतः॰भरत- =दो मेरु पर्वत है । तिन (दोनों मेरु पर्वतों) के दोनोंओर भरत-

आदीनि १/३। क्षेत्राणि १/३। च॰हिमवत्-आदयः १/३। =आदिक क्षेत्र है और (=च) हिमवाम् आदिक

'अध्याहार'–वह वाक्य जो स्पष्टता से समझमें नहीं आसका उसे किसी दूसरे शब्दकी कल्पना करि स्पष्ट करदेना। अनुवृत्ति और अध्याहार में यह भेद है कि अनुवृत्ति में जो शब्द वा वाक्य किसी पहिले सूत्र वा वाक्य में आया है उसे उत्तर सूत्र वा वाक्य में खोच लेना, अनुकर्षण करना और आशय अभिप्राय को समझलेना है परन्तु अध्याहार में जो शब्द वा वाक्य पहिले सूत्र में तो आया नहीं है परन्तु किसी भी वाक्यको स्पष्ट करनेकी आवश्यकता है तो उस वाक्यको स्पष्ट करनेके लिये किसी शब्द वा वचनकी कल्पना करलेते हैं जिससे कि सूत्र इत्यादिकका अर्थ समझमें आजावे ॥

वर्षधरपर्वताः । एवं द्वौ भरतौ द्वौ हिमवन्तौ इत्यवमादिसंख्यानं द्विगुणं वेदितव्यम् ॥ जम्बूद्वीप हिमवदादीनां वर्षधराणां यो विष्कम्भस्तद्द्विगुणो धातकीखण्डे हिमवदादीनां वर्षधराणाम् ॥ वर्षधराश्चक्रारवदवस्थिताः ॥ अरविवरसंस्थानानि क्षेत्राणि ॥ जम्बूद्वीपे यत्र जम्बूवृक्षः स्थितः । तत्र धातकीखण्डे धातकीवृक्षः सपरिवारः । तद्योगाद्धातकीखण्ड इति द्वीपस्य नाम प्रतीतम् ॥ तत्परिक्षेपी कालोदः समुद्रः टङ्कच्छिन्नतीर्थः अष्टयोजनशतसहस्र–

वर्षधरपर्वताः३।१ एवम्*द्वौ३।१ भरतौ३।१ द्वौ३।१	=कुलाचल है इस प्रकार दो भारतवर्ष दो
हिमवन्तौ३।१ इत्येवम्*आदि-संख्यानम्१।१ द्विगुणम्१।१	=हिमवान्पर्वत इत्येवं आदिक गणना (जम्बूद्वीपसे धातुकीखंडमें) दूनी
वेदितव्यम्१।१ जम्बूद्वीप-हिमवत्-आदीनाम्६।३	=जाननी चाहिये । जम्बूद्वीपके हिमवान् आदिक
वर्षधराणाम्६।३ यः१।१ विष्कम्भः१।१ तद्-द्वि-गुणः१।१	=पर्वतोंका जो विस्तार है तिससे दुगुणा
धातकीखंडे७।१ हिमवत्-आदीनां६।३ वर्षधराणाम्६।३	=धातकीखंडमे, हिमवान् आदिक कुलाचलोंका है
वर्षधराः१।३ चक्र(१)-अरवत्*अवस्थिताः१।३ अर-	=कुलाचल पहियेकी आरक आर वा अरा (=अरा)के सदृश तिष्ठे हुए हैं । अरोंके
विवर-संस्थानानि१।३ क्षेत्राणि१।३	=छिद्रोंके आकार (=संस्थान) (वत्) (भरतादिक) क्षेत्र है । अर्थात् पहियेको पृथ्वीपर
	इसप्रकार धरिये कि उसका समस्त घेरा पृथ्वीको छूजाय तो उस पहियेकी नाभि (धुरी)और घेरेके वीचमेंडंडारूप लकड़ियें है तैसे पर्वत तिष्ठे है और पूर्वोक्त लकड़ियोके मध्यका शून्य (खाली) स्थान रहता है तैसे क्षेत्र तिष्ठे हैं
जम्बूद्वीपे७।१ यत्र*जम्बूवृक्षः१।१स्थितः१।१ तत्र*	=जम्बूद्वीपमे जहां जम्बूवृक्ष अवस्थित है वहां
धातकीखंडे७।१ धातकीवृक्षः१।१ सपरिवारः१।१ तद्-	=धातकीखंडमें धातकीवृक्ष छोटे छोटे परिवार (के वृक्षो) सहित (स्थित) है तिसके
योगात्५।१ धातकीखंडः१।१इति*द्वीपस्य६।१ नाम१।१	=संयोगसे वा उपलक्षणसे धातकीखंड ऐसी द्वीपकी संज्ञा
प्रतीतम्१।१ तद्-परिक्षेपी१।१ कालोदः१।१	=प्रसिद्ध वा ज्ञात है । तिस (धातकीखंड द्वीप) को समस्त ओरसे घेरे हुए कालोदः
समुद्रः१।१ टङ्कच्छिन्न-तीर्थः१।१ अष्टयोजन-शतसहस्र-	=समुद्र टांकीस छेदे काटे वा उकेले हुए जलकेस्थान समान(=तीर्थ)आठलाख योजन

(१) पहियेका नाभि अथवा धुरी वा बीचके गोलेके छेदोंमेंसे जो लकड़िया पहियेके घेरके छेदोंमें लगाई जाती हैं उनमेंसे प्रत्येक लकड़ी डंडेरूपको आरक, आर, अरा अथवा अर कहते है ॥

वलयविष्कम्भः ॥ कालोदपरिक्षेपी पुष्करद्वीपः षोडशयोजनशतसहस्रवलयविष्कम्भः ॥

तत्र द्वीपाम्भोनिधिविष्कम्भद्विगुणपरिक्लृप्तिवद्धातकीखण्डवर्षादिद्विगुणवृद्धिप्रसङ्गे विशेषावधारणार्थमाह

॥ पुष्करार्द्धे च ॥ ३४ ॥

(किं)द्विरित्यनुवर्तते।किमपेक्षा द्विरावृत्तिः?जम्बूद्वीपेभरतहिमवदाद्यपेक्षयैव।जम्बूद्वीपात्पुष्करार्धेद्वौ भरतौ द्वौ

वलय-विष्कम्भः[६]कालोदपरिक्षेपी[६]पुष्करद्वीपः[६] =वलयाकार (अर्थात् कड़ेके आकार) विस्ताररूप है। कालोदधि को वेढ़ेहुए पुष्करद्वीप
षोडशयोजन-शतसहस्र-वलय विष्कम्भः[१] =सोलहलाखयोजन वलयाकार(अर्थात् कड़ेके आकार)चौड़ाईका धारक है।
तत्रद्वीप-अम्भोनिधि विष्कम्भ-द्विगुण-परिक्लृप्तिवत् =तहां (पुष्करद्वीपसेपूर्व)द्वीप और समुद्रों की द्विगुणी द्विगुणी रचनाके सदृश (परिक्लृप्तिवत्)
धातकीखण्ड-वर्ष-आदि द्विगुण- =धातकी खंडके क्षेत्र (तथा पर्वतों) आदिक से दुगुन (दुगुन आगेके क्षेत्र तथा पर्वतोंकी)
वृद्धि-प्रसंगे[१] विशेष-अवधारण-अर्थम्[१]॥ =बढ़तीके अवसर(आजाने) पर पृथक् अथवा भिन्न =विशेष) नियमके लिये
आह T ='आचार्य्य,अग्रिम सूत्रमे) कहते है। भावार्थ-जम्बूद्वीपसे अगलेके समुद्र तथा द्वीपोंका विष्कम्भ दूना है और जम्बूद्वीपसे धातकी खंडकी रचना दूनी है तो इस प्रसंगके निषेधके लिये अर्थात् ऐसा न समझ लियाजावै कि धा की खंड़से पुष्करद्वीपकी रचना दूनीहै। उत्तर सूत्र कहते है कि"पुष्करार्द्धे च"॥

सूत्रम्—[१]पुष्करार्द्धे च ॥ ३४ ॥ (= भरतादय. द्विः संख्यायन्ते) पुष्करार्द्धे च

सूत्रार्थ—च*भरत-आदयः[३]द्विः* =और =च) भारतवर्ष (कुलाचल-द्रह-कमल) आदिक (जम्बूद्वीपसे) दूने दूने
पुष्कर-अर्द्धे[१]॥संख्यायन्ते T =पुष्करद्वीपके आधेभागमें गिनाये गये है
वृत्त्यनुवादः-(किम्[१]॥)द्विः*इति*अनुवर्तते T =प्रश्न (क्या द्वि(शब्द) ऐसा (पहिले सूत्र से इससूत्रमें अनुवर्तता है वा लाया गया है)
किम्[१]॥अपेक्षा[१]॥द्विः आवृत्तिः[१]॥ जंबूद्वी [१]भरत- =किस विवक्षा द्विगुणना (=आवृत्ति) है (उत्तर) जम्बूद्वीपमें भरतक्षेत्र तथा
हिमवत्-आदि-अपेक्षया[३]॥एव* =हिमवान्पर्वत आदिककी अपेक्षा ने ही(पुष्करार्द्धमे दूनेक्षेत्र तथा दूने कुलाचल)हैं
जंबूद्वीपात्[५]पुष्करार्द्धे[१]॥द्वौ[३]भरतौ[१]द्वौ[१] =(प्रश्न)जंबूद्वीपसे पुष्करार्द्धविषैं दो भरतक्षेत्र दो

(१) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें "पुष्करार्धे च" ऐसा पाठ है हमारे यहां भी जैसे तत्त्वार्थ राज-पृ०१३८,श्लोक वार्तिकमेंभी यही पाठ "पुष्करार्धे च" है इसलिये दोनों आम्नाओंमें पाठभेद नहीं है। अर्थ भी दोनों सम्प्रदाओंमें एक है ॥ अर्ध और अर्द्ध दोनों शब्द ठीक है ॥

हिमवन्तौ इत्यादि । कुतः ? । व्याख्यानतः ॥ यथा धातकीखण्डे हिमवदादीनां विष्कम्भस्तथा पुष्करार्धे हिमवदादीनां विष्कम्भो द्विगुण इति व्याख्यायते ॥ नामानि तान्येव, इष्वाकारौ मन्दरौ च पूर्ववत् । यत्र जम्बूद्वीपे जम्बूवृक्षस्तत्र पुष्करं सपरिवारम् । तत एव तस्य द्वीपस्यानुरूढं पुष्करद्वीप इति नाम ॥ अथ कथं पुष्करार्द्धसञ्ज्ञा? मानुषोत्तरशैलेन विभक्तार्धत्वात्पुष्करार्धसञ्ज्ञा॥ अत्राह किमर्थं जम्बूद्वीप-हिमवदादिसंख्या द्विरावृत्ता पुष्करार्धे कथ्यते? न पुनः कृत्स्न एव पुष्करद्वीपे ? इत्यत्रोच्यते—

हिमवन्तौ इत्यादि ।। कुतः* व्याख्यानतः* =हिपवान् कुलाचल इत्यादिक क्योंकर है (इससूत्रके) व्याख्यानसे (जंबूद्वीपसे पुष्करार्द्ध विपैं दोदोभरत दोदोहिमवान् कुलाचल इत्यादिक) है

यथा* धातकीखण्डे हिमवत्-आदीनाम् विष्कम्भः =जैसे धातकीखंडमें हिमवान् आदिक (कुलाचलों)का विस्तार है

तथा* पुष्करार्धे ।। हिमवत्-आदीनाम् =तैसे पुष्करार्धविपैं हिमवान् आदिक (कुलाचल) निका

विष्कम्भः द्विगुणः इति* व्याख्यायते । नामानि ।। =(विस्तार) दुगुना है इसप्रकार विवरण कियागया है । नाम

तानि ।। एव* इष्वाकारौ मन्दिरौ च* =तेही है दो इष्वाकारपर्वत और दो (पूर्वमें मन्दिर नामा और पश्चिममें विद्युन्माली)मेरु

पूर्ववत्* यत्र* जम्बूद्वीपे जम्बूवृक्षः तत्र* =पहिले (धातकीखंडद्वीप) के समान है । यहां जम्बूद्वीपमे जंबूवृक्ष है । वहां(पुष्करद्वीपमें)

पुष्करम् ।। सपरिवारम् ।। ततः* एव* तस्य =पुष्करवृक्ष (चारोंओर अपने छोटे२) परिवार(के वृक्षों) सहित है । वहांसे ही तिस

द्वीपस्य अनुरूढम् ।। पुष्करद्वीपः इति* नाम ।। =द्वीपकी सार्थकसंज्ञा (=अनुरूढ)पुष्करद्वीप ऐसानाम वा संज्ञा है

अथ* कथम्* पुष्कर-अर्द्ध-संज्ञा ।। ? मानुषोत्तर- =आगे (=अथ) किसप्रकार (इसद्वीपका) पुष्करार्द्ध नाम है (उत्तर) मानुषोत्तर-

शैलेन विभक्त-अर्द्धत्वात् ।। पुष्करार्द्ध- =पर्वतकरि विभाग आधे आधे होनेसे पुष्करार्द्ध

संज्ञा ।। =नाम है अर्थात् मानुषोत्तरपर्वत ने इसद्वीपके मध्यमें पतनकरि अथवा अवस्थित होकर दोभाग करदिये हैं इससे पुष्करार्द्ध ऐसा नाम है

अत्र* आह किम्-अर्थम् ।। जम्बूद्वीप-हिमवत्- =(प्रश्न) यहां पूछता है कि किसलिये जंबूद्वीपके हिमवान्

आदिसंख्या ।। द्विः* आवृत्ता ।। पुष्करार्द्धे ।। कथ्यते =आदिककी गणना दुगुणीवार (=द्विःआवृत्ता) पुष्करार्द्धद्वीपविषैंवर्णित है

न* पुनः* कृत्स्ने ।। एव* पुष्करद्वीपे ।। =बहुरि समस्त (=कृत्स्ने)ही पुष्करद्वीपमे (भरतादिकक्षेत्र) क्यो नही कहेगये हैं । आधेमें क्यो कहेगये हैं ? (कृत्स्ने और द्वीपे पुलिंग नपुंसकलिंग दोनों लिंगोंमें आते हैं)

इति* अत्र* उच्यते =ऐसा (प्रश्न होने पर) यहां (इसअवसर पर) (उत्तर सूत्रमें) कहाजाता है कि

॥ प्राङ्मानुषोत्तरान्मनुष्याः ॥ ३५ ॥

पुष्करद्वीपबहुमध्यदेशभागी वलयवृत्तो मानुषोत्तरो नामशैलः। तस्मात्प्रागेव मनुष्या न बहिरिति। ततो न बहिः पूर्वोक्तक्षेत्रविभागोऽस्ति। नास्मादुत्तरं कदाचिदपि विद्याधरा ऋद्धिप्राप्ता अपि मनुष्या गच्छन्ति अन्यत्रोपपादसमुद्घाताभ्यां। ततोऽस्यान्वर्थसञ्ज्ञा॥ एवंजम्बूद्वीपादिष्वर्धतृतीयेषुद्वयोश्चसमुद्रयोर्मनुष्या-

(१)सूत्रम्—प्राङ्मानुषोत्तरान्मनुष्याः। (अन्यपाठ) प्राग्मानुषोत्तरान्मनुष्याः ॥ ३५ ॥

सूत्रार्थः—प्राग्-मानुषोत्तरात्[५।१] मनुष्याः[१।३] =मानुषोत्तर पर्वतसे पहिले पहिले देश वा स्थानमें मनुष्य है अर्थात् जम्बूद्वीप, धातकीखंड और पुष्करद्वीपके उरेके आधेभागमें ऐसे अढ़ाई द्वीपमें मनुष्य है

वृत्त्यनुवादः—पुष्करद्वीप-बहु-मध्य-देश-भागी[१।१] =पुष्करद्वीपके बहुतबीच (=बीचाबीचही) का स्थान(=देश) भागमें

वलय-वृत्तः[१।१] मानुषोत्तरः[१।१] नामशैलः[१।१] =वलयाकार वृत्तरूप मानुषोत्तर नामक पर्वत है

तस्मात्[५।१] प्राक्*एव*मनुष्याः[१।३] न*(२)बहिस्*इति* =तिस (मानुषोत्तर पर्वत) से पहिलेही मनुष्य है बाहिर नही है

ततः*न*बहिस्*पूर्वोक्त-क्षेत्र-विभागः[१।१] अस्तिT =तिस(मानुषोत्तर पर्वत) से बाहिर (बहिस्) प्रथमवर्णित क्षेत्रों का विभाग नहीं है।

न*अस्मात्[५।१] उत्तरम्[१।१]।।कदाचित्*अपि*विद्याधराः[१।३] =न इस (मानुषोत्तर) से आगे कभी भी विद्याधर (और)

ऋद्धिप्राप्ताः[१।३] अपि*(३)मनुष्याः[१।३] गच्छन्तिT अन्यत्र❀ उपपाद-समुद्घाताभ्याम्[५।३] =ऋद्धिधारी भी मनुष्य, उपपाद और समुद्घातोसे अतिरिक्त, गमन करते हैं (भावार्थ-मूलदेहको न छोड़कर उपपादसे और समुद्घातसे आत्माके प्रदेश अढ़ाई द्वीपसे बाहिर जाते है विना उपपाद और समुद्घातके आत्माके प्रदेश बाहिर नही जाते है)

ततः*अस्य[६।१] अन्वर्थ-संज्ञा[१।१]।एवम्❀जंबूद्वीपादिषु[७।३] =तिससे इस (मानुषोत्तर पर्वत) का सार्थक नाम है। इसप्रकार जम्बूद्वीप आदिक

अर्द्धतृतीयेषु[७।३] द्वयोः[७।२] च समुद्रयोः[७।२] मनुष्याः[१।३] =अढ़ाई (द्वीपों) और दो (लवणोद और कालोद) समुद्रोमें मनुष्य

(१) दोनों आम्नाओंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है ॥ समुद्घात सात प्रकार है, इसके विशेषके लिये देखो अध्याय प्रथम पृष्ठ ११६ से १२१ तक ॥ (२) बहिस् अथवा वहिस् (पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ ३४१) दोनों ठीक हैं ॥ वहिस् केलिये देखो अमरकोश २४ अव्ययवर्ग श्लो०१७ 'सनानित्ये-बहिर्वा हो' (३) "बहुरि जलचर जीव तथा विकलत्रयत्रस भी नहीं जाय हैं। तहां उपजे भी नहीं है" देखो इससूत्रपर जयचन्द्ररायकृता वचनिका

वेदितव्याः ॥ ते द्विविधाः ॥

॥ आर्या म्लेच्छाश्च ॥ ३६ ॥

गुणैर्गुणवद्भिर्वा अर्यन्त इत्यार्याः । ते द्विविधाः । ऋद्धिप्राप्तार्या अनृद्धिप्राप्तार्याश्चेति ॥ अनृद्धिप्राप्तार्याः पञ्चविधाः । क्षेत्रार्या जात्यार्याः कर्मार्याश्चरित्रार्या दर्शनार्याश्चेति ॥ ऋद्धिप्राप्तार्याः सप्तविधाः । बुद्धिविक्रियातपोबलौषधरसाक्षीणभेदात् ॥ म्लेच्छा द्विविधाः । अन्तर्द्वीपजाः कर्मभूमिजाश्चेति ॥ तत्रान्तर्द्वीपा लवणोदधेरभ्यन्तरेऽष्टासु दिक्ष्वष्टौ । तदन्तरेषु चाष्टौ, हिमवच्छिखरिणो-

---

वेदितव्याः। ते। द्विविधाः। =जानना चाहिये ते (मनुष्य) दो प्रकार हैं ॥

सूत्रम्–'आर्या म्लेच्छाश्च ॥३६॥=(मनुष्याः) आर्या म्लेच्छाश्च भवन्ति ॥३६॥

सूत्रार्थः–मनुष्याः। आर्याः। म्लेच्छाः। च*भवन्ति =मनुष्य आर्य और (=च) म्लेच्छ होते हैं

वृत्त्यर्थः–गुणैः। गुणवद्भिः। वा*अर्यन्ते इति*आर्याः। =गुणों करि अथवा गुणवान पुरुषोंकरि सेवेजाय हैं ऐसे आर्या हैं

ते। द्विविधाः। ऋद्धिप्राप्त-आर्याः। च*अन्-ऋद्धिप्राप्त- =ते (आर्या) दो प्रकार हैं । ऋद्धि प्राप्त आर्या और अनऋद्धिप्राप्त

आर्याः। इति*अनृद्धिप्राप्तार्याः। पञ्चविधाः। =आर्या । अनृद्धिप्राप्त आर्य पांच प्रकार हैं ।

क्षेत्र-आर्याः। जाति-आर्याः। कर्म-आर्याः। चारित्रआर्याः। =क्षेत्र-आर्य, जाति आर्य, कर्म आर्य, चारित्र आर्य,

दर्शन-आर्याः। च*इति* । ऋद्धि-प्राप्त-आर्याः। =और (=च) दर्शन आर्य ऐसे हैं । ऋद्धि प्राप्त आर्य

सप्त-विधाः। बुद्धि-विक्रिया-तपस्-बल-औषध-रस- =सात प्रकार, बुद्धिऋद्धि, विक्रियाऋद्धि, तपोऋद्धि, बलऋद्धि, औषधऋद्धि, रसऋद्धि

अक्षीण-भेदात्। =अक्षीणऋद्धि भेदोंकरि, है(इनके भेद, प्रभेदके वास्तेदेखो प०जय०वच० ३३१से३४०)

म्लेच्छाः। द्वि-विधाः। अन्तर्द्वीपजाः। कर्मभूमिजाः। चइति=म्लेच्छ (म्लेच्छ, म्लिश) दो प्रकार है अन्तर्द्वीपमें उत्पन्नहुये, और कर्मभूमिमें उत्पन्नहुये

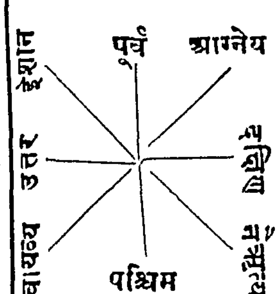
तत्र*अन्तर्द्वीपजाः। लवणोदधेः। =तहां अंतर्द्वीपज लवणसमुद्र के

अभ्यन्तरे। अष्टासु। दिक्षु। अष्टौ। =भीतर (=अभ्यन्तरे) आठ (पूर्व, ईशान्य वा ईशान, उत्तर, वायव्य, पश्चिम, नैऋत्य वा नैऋत, दक्षिण, आग्नेय वा अग्नि) दिशामें (दिक्षु) आठ (अन्तर्द्वीप)

तदन्तरेषु। च*अष्टौ। हिमवत्-शिखरिणोः। =तथा तिन(दिशाओं)के अंतराल वा मध्यमें आठ (अंतर्द्वीप)और हिमवत् शिखिरीपर्वत

रुभयोश्च विजयार्द्धयोरन्तेष्वष्टौ । तत्र दिक्षु द्वीपा वेदिकायास्तिर्यक्पञ्चयोजनशतानि प्रविश्य भवन्ति । विदिक्ष्वन्तरेषु च द्वीपाः पञ्चाशत्पञ्चयोजनशतेषु गतेषु भवन्ति । शैलान्तेषु द्वीपाः षट्सु योजनशतेषु गतेषु भवन्ति । दिक्षु द्वीपाः शतयोजनविस्ताराः । विदिक्ष्वन्तरेषु च द्वीपास्तदर्धविष्कम्भाः ।

उभयोः च विजयार्द्धयोः अन्तेषु	=दोनोंके (पूर्व और पश्चिम) और दोनों वैताढ्यों के(पूर्व और पश्चिम के)अन्तविषैं
अष्टौ	=आठ है (अर्थात् सब मिलकर चौवीस अंतर्द्वीपहैं)
तत्र दिक्षु द्वीपाः वेदिकायाः तिर्यक्	=तहां (आठ) दिशाविषैं अन्तर्द्वीप (=जम्बूदीपकी) वेदिकाके तिर्यक्
पञ्चयोजनशतानि प्रविश्य - भवन्ति विदिक्षु च	=पांचसौ योजन (समुद्र में) प्रवेश होते हैं और (=च)विदिशा
अन्तरेषु द्वीपाः पञ्चाशत्पञ्चयोजनशतेषु	=अन्तराल मे (आठ) अन्तर्द्वीप (जम्बूद्वीप की वेदिका से) पांचसो पचास योजन
गतेषु भवन्ति । शैल-अन्तेषु द्वीपाः	=परे (समुद्रमें) है । पर्वतों के अन्त में (आठ) अन्तर्द्वीप (जम्बूद्वीपकी वेदीसे)
षट्सु योजनशतेषु गतेषु भवन्ति । दिक्षु	=छहसौ योजन परै (=गतेषु) (समुद्र में) है । (आठ) दिशाओंमें
द्वीपाः शतयोजन-विस्ताराः; विदिक्षु अन्तरेषु च	=अन्तर्द्वीप सौ सौ योजन विस्तार वाले है । वहुरि (=च)(आठ)विदिशाअंतरालमें
द्वीपाः तद्-अर्ध-विष्कम्भाः	=अन्तर्द्वीप उन (आठ आठ दिशा वाले अन्तर्द्वीपों से) आधे आधे अर्थात् पचास पचास योजन विस्तार वाले है



(१) ज्योतिष विषयमें आठ दिशा मानी गई है और यहा पर पूज्यपाद स्वामी ने अन्तर्द्वीपोंके विस्तारके सम्बन्धमें सामान्य कथन किया है इसलिये आठ दिशाके अन्तर्द्वीपोंका जो जम्बूद्वीपकी वेदिकासे पांचसौ योजन समुद्र में परे हैं सौ सौ योजन विस्तार कहा है परन्तु बहुधा करि ससारमें चारदिशा पूर्व, उत्तर, पश्चिम और दक्षिण प्रसिद्ध हैं और चारही विदिशा ईशान, वायव्य, नैऋत्य, आग्नेय प्रसिद्ध हैं इसलिये प० जयचन्द्ररायजी ने सर्वार्थसिद्धिकी वचनिकामें पूर्व, उत्तर, पश्चिम, दक्षिण, चार ही दिशा मान कर और ईशान वायव्य, नैऋत, आग्नेयको विदिशा मानकर विशेषत यह कथन किया है कि "तहां दिशानि के (चार) द्वीप तौ जम्बूद्वीप की वेदी तें पांचसौ योजन परें समुद्र में हैं तिनका सौ सौ योजन विस्तार है । बहुरि विदिशानि के (चार) द्वीप वेदीनितैं पांचसो योजन परे हे तिनका विस्तार पचावन पचावन (५५) योजन का है बहुरि दिशा विदिशानिके अन्तरालके(आठ)द्वीप वेदी तें पांच से पचास योजन परें हैं । तिनिका विस्तार पचास पचासयोजनका है" ॥

शैलान्तेषु पञ्चविंशतियोजनविस्ताराः। तत्र पूर्वस्यां दिश्येकोरुकाः। अपरस्यां दिशि लांगूलिनः उत्तरस्यां दिश्यभाषकाः। दक्षिणस्यां दिशि विषाणिनः। विदिक्षु शशकर्णशष्कुलीकर्ण कर्णप्रावरण लम्बकर्णाः

शैल—अन्तेषु३।	=(हिमवान्-शिखिरी औरदोविजयार्द्ध)पर्वतोंके(आठ)छोरोंमें वा आठ प्रान्तोंमें(आठद्वीप)
पञ्चविंशतियोजन-विस्ताराः१।३।	=पच्चीस पच्चीस योजन विष्कम्भ के धारक है
तत्र*पूर्वस्याम्७।१।दिशि७।१।एक-ऊरुकाः१।३।	=वहां पूर्वदिशामें (जो अन्तर्द्वीप है उसमें रहने वाले) एक जांघ के (ऊरुका) धारक है अर्थात् एक टांगवाले मनुष्य पूर्वी अन्तर्द्वीपमें निवास करते है
अपरस्याम्७।१।दिशि७।१।लांगूलिनः१।३।	=पश्चिम दिशा में (जो अन्तर्द्वीप है उसमें रहने वाले मनुष्य) पूंछ वाले हैं
उत्तरस्याम्७।१।दिशि७।१।अभाषकाः१।३।	=उत्तर दिशा में (जो अन्तर्द्वीप है उसमें रहने वाले मनुष्य) वचन रहित गूंगे हैं
दक्षिणस्याम्७।१।दिशि७।१।विषाणिनः१।३।	=दक्षिण दिशा में (जो अतर्द्वीप है उसमें रहने वाले मनुष्य) सींग वाले हैं
(१)विदिक्षु ७।३ ॥	=(चार) विदिशाओं (ईशान-वायव्य-नैर्ऋत्यु-आग्नेय) मे (जो अंतर्द्वीप हैं उनके मनुष्य)
शशकर्ण—	=खरहा के सदृश कानवाले (=शशकर्ण) मनुष्य है (शशक-खरहा-ससा एकार्थी है)
शष्कुलीकर्ण —	=साकल वा शाकली कहिये यवकी नालीके समानहैं कान जिनके ऐसे मनुष्य अर्थात् एक प्रकार के मच्छ सदृश है कान जिनके ऐसे मनुष्य होते है
(२)कर्ण-प्रावरण—	=कान ही है ओढने और ढकने का दुपट्टा वा उपकरण जिनके अर्थात् अंतर्द्वीप के रहने वाले वे मनुष्य जिनके चादरा वा उससे और बड़े बड़े कान हैं जिनमेंसे एक कान वह बिछा सकते है दूसरे को ओढ सकते है
लम्बकर्णाः१।३।	=(भिन्न भिन्न) लम्बाई के कानों सहित अन्तर्द्वीप वासी मनुष्य हैं ॥

(१) विदिक्षु—इस शब्द को मुद्रणयत्र वालों ने तथा लेखकोंने असावधानीसे किसी किसी हस्त लिखित लिपिमें उत्तर वाक्य 'अश्व-सिंहश्वमहिश इत्यादि में मिलाकर" "विदिक्ष्वश्वसिंहश्वमहिश इत्यादि" लिखदिया है तथा छापदिया है। किसी किसी प्रतिमें इस शब्दके आगे पीछे एक एक विराम का चिह्न देकर "।विदिक्षु।" ऐसा लिखा है। कहीं पर दोनों वाक्यों को एक कर दिया है जिससे यह नहीं जान पड़ता है कि यह शब्द विदिशाओं से सबन्ध रखता है अथवा विदिशाओं के बीच २ में जो दिशायें है उनसे सम्बन्ध रखता है हमने इसको सबसे प्रथममें लिखा है इससे स्पष्ट होजाय कि यह प्रथम वाक्य से सम्बन्ध रखता है। और ईशान-वायव्य नैर्ऋत्य-आग्नेय विदिशाओं का द्योतक है

(२) 'कर्ण-प्रावरण' के स्थान में 'प्रावरण' ऐसा सर्वार्थसिद्धिकी दोनों आवृत्तियोंमें अशुद्ध छप गया है। क्योंकि हमने हस्तलिखित तीन प्रतियोंसे मिलाया तो सबमें 'कर्ण-प्रावरण' निकला दूसरे यह कि मुद्रित राजवार्तिक, तथा पं०पन्नालालजी न्यायदिवाकर अनुवादित राजवार्तिक

अन्तरेषु अश्वसिंहश्वमहिषवराहव्याघ्रकाककपिमुखाः ॥ मेघविद्युन्मुखाःशिखरिण उभयोरन्तयोः

	पूर्व-उत्तर-पश्चिम-दक्षिण चार दिशाओं तथा ईशान-वायव्य-नैऋत्य-आग्नेय चार विदिशाओंके
(१)अन्तरेषु॥(दिक्षु॥)	=अंतरालोंमें-अन्तर्दिशाओंमें अर्थात् चारदिशा चार विदिशाओंके बीच बीच की(आठ)दिशाओंमें जो अंतर्द्वीप हैं उनमें रहनेवाले मनुष्य
अश्व-मुखाः॥सिंह-मुखाः,श्व-मुखाः॥	=घोड़ा के सदृश मुखवाले, सिंह सरीखे मुखवाले, कुत्ता सम मुखवाले,
महिप-मुखाः॥वराह-मुखाः॥,व्याघ्र-मुखाः॥	=भैंसा समान मुखवाले, सूकर सम मुखधारक, बघेराके सदृश मुखधारक
(२)काक-मुखाः॥कपि-मुखाः॥ ॥	=काक समान मुखवाले वा कऊआ सदृश मुखके धारक, वंदरके समान मुखवाले, होते है ॥
मेघ-मुखाः॥विद्युन्मुखाः॥शिखिरिणः॥	=मेघ मुखवाले और विजलीके सदृश मुखवाले (मनुष्य) शिखिरी पर्वतके
उभयोः॥अन्तयोः॥	=दोनों (पूर्व-पश्चिमके) अंतोंमें-छोरोंमें (दो अंतर्दीपों में वसने वाले) हैं

तथा दो हस्त लिखित अन्य प्रतियें जो हमको इन्द्रप्रस्थके मन्दिरोंसे प्राप्त हुई हैं सबमें ही 'कर्णप्रावरण' पाठ है। इसके उल्लेखकी आवश्यकता नहीं है कि 'म्लेच्छा द्विविधा वेदितव्या इत्यादि से सर्वे ते पल्योपमायुष. पर्यन्त सर्वार्थसिद्धिवृत्ति और राजवार्तिकका लेख लगभग एकही है ॥ तीसरे यह कि 'प्रावरण' का अर्थ दुपट्टा है केवल'प्रावरण'का विना कर्ण शब्द लाये हुये कुछभी अर्थ नहीं होसकता है अत पाठ शुद्ध करके लिखा है ॥

(१) 'अन्तरेषु' शब्द के सम्बन्ध में हमारी वही टिप्पणी है जो हमने पृष्ठ ७७ में 'विदिक्षु' शब्द के सम्बन्ध में दी है।

(२) 'काक' शब्दके पश्चात् 'घूक' शब्द दो हस्तलिखित सर्वार्थसिद्धि वृत्तियोंसे मिलाया गया उनमें किसीमें नहीं है। 'घूक' का अर्थ घुग्घू वा उल्लू है। प० जयचन्द्रायजीने 'श्वान के सदृश मुखवाले' वा श्वानमुखा अपनी वचनिकामें नहीं लिखा है परन्तु 'उलूकमुखा' 'काक मुखा' लिखा है सम्भव है कि जिस प्रतिसे उनने वचनिका की हो उसमें "श्वमुखा" नहो और'काकघूकमुखा 'हो जैसा कि सर्वार्थसिद्धि की दोनों मुद्रित आवृत्तियों से प्रगट है ॥ राजवार्तिककी मुद्रित तथा हस्तलिखित दोनों प्रकारकी प्रतियों में "अश्व सिंह-श्व-महिष-वराह-व्याघ्र उलूक-कपिमुखा " ऐसा पाठ है अर्थात् "काकघूकमुखा." के स्थान में 'उलूकमुखाः' शब्द है यदि हम यह मानलें कि शुद्धपाठ वाली सर्वार्थसिद्धिमें 'घूक' शब्द नहीं है तो 'काकमुखाः' के स्थान में'उलूक मुखाः'रहजाता है ॥ हमने एक बहुत प्राचीन हस्त लिखित सर्वार्थसिद्धिसे ऊपर का पाठ उद्धृत किया है उसमें 'घूक' शब्द नहीं है अत. घूक शब्द छोडदिया है हमारे विचारमें उपर्युक्त आठ अन्तर्दिशाओंमें नो प्रकारके मुखवाले नहीं होसक्तेहैं। भूल होतो पाठक कृपया सूचित करें ॥

मत्स्यमुखकालमुखाः हिमवत उभयोरन्तयोः। हस्तिमुखा आदर्शमुखाः उत्तरविजयार्द्धस्योभयो-रन्तयोः। गोमुखमेषमुखाः दक्षिणदिग्विजयार्धस्योभयोरन्तयोः। एकोरुका मृदाहारा गुहावासिनः शेषाः पुष्पफलाहारा वृक्षवासिनः सर्वे ते पल्योपमायुषः॥ ते चतुर्विंशतिरपि द्वीपा जलतलादेक-योजनोत्सेधाः॥ लवणोदधेर्बाह्यपार्श्वेऽप्येवं चतुर्विंशतिर्द्वीपा विज्ञातव्याः॥ तथा कालोदेऽपि वेदितव्याः॥

मत्स्य-मुखाः¹₃।काल-मुखाः¹₃। (१) =मच्छ वा मच्छलीके समान मुखवाले और काले वा कालेनीले (=काल) मुखवाले

हिमवतः⁶₁।उभयोः⁷₂।अन्तयोः⁷₂। =हिमवान् कुलाचलके दोनों (पूर्व-पश्चिम) छोरोंमें (दो अन्तर्द्वीपोंके रहनेवाले) है

हस्ति-मुखाः¹₃।आदर्श-मुखाः¹₃। =हस्ती समान मुखवाले (मनुष्य) और दर्पन समान मुखवाले (मनुष्य)

उत्तरविजयार्द्धस्य⁶₁। उभयोः⁷₂।अन्तयोः⁷₂। =उत्तर वैताड्य पर्वतके दोनों (पूर्व-पश्चिम) छोरोंमें (अन्तर्द्वीपोंमें) है

गो-मुखाः¹₃।मेष-मुखाः¹₃। =गो सदृश मुख धारक (मनुष्य) और मेडा वा भेड़ समान मुखवाले (मनुष्य)

दक्षिणदिग्विजयार्धस्य⁶₁।उभयोः⁷₂।अन्तयोः⁷₂। =दक्षिण दिशिके वैताड्य पर्वतके दोनों (पूर्व-पश्चिम) अन्तोंमें (अन्तर्द्वीपोंमें) है

एक-(२)ऊरुकाः¹₃।मृद्-आहाराः¹₃।गुह-आवासिनः¹₃। =एक जांघवाले मनुष्य मिट्टीका आहार करनेवाले है (और) गुफाओंमें रहनेवाले है

शेषाः¹₃।पुष्प-फल-आहाराः¹₃।वृक्ष-वासिनः¹₃। =अवशेष मनुष्य (जो अंतर्द्वीपों में रहते हैं) फूल फलके आहारी है पेड़ोंके वासी है

सर्वे¹₃।ते¹₃।पल्योपम-आयुषः¹₃। । ते चतुर्विंशतिः¹₁। =वे समस्त पल्य प्रमाण आयुके वा स्थितिके धारक है। वे चौवीसों

अपि*द्वीपाः¹₃।जल-तलात्⁵₁।।एक-योजन-उत्सेधाः¹₃। =ही (अन्तर) द्वीप जलके तलसे एक योजन ऊंचे है वा जोजनके उंचाई वाले है

लवण-उदधेः⁶₁।बाह्य-पार्श्वे⁷₁।अपि*एवम्* =लवण समुद्रके बाहिरी चक्र वा बाहिरी परिधिमें (=बाह्य-पार्श्व) भी ऐसे

चतुर्विंशतिः¹₁।द्वीपाः¹₃।विज्ञातव्याः¹₃। =चौवीस (अन्तर) द्वीप जानना चाहिये अर्थात् चौवीस अन्तरद्वीप जो ऊपर कहे और जो लवण समुद्रकी भीतरी परिधिमें है वे और चौवीस ये बाहिरी परिधिके सब ४८ भये॥

तथा*कालोदे⁷₁।अपि*वेदितव्याः¹₃। =वैसे ही (जैसा कि ऊपर कहचुके है) कालोदधि समुद्रमें भी (४८ अन्तर्द्वीप) हैं अर्थात् चौवीस अन्तर्द्वीप कालोदधिकी भीतरी परिधि सम्बन्धी और चौवीस ही

(१) काल = काला, कालानीलामिश्रित (देखो पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ १०६ वैद्यमहाशयका कोशपृष्ठ १८५)॥ (२) ऊरु = जाघ, ऊरुक = जांघवाला, जांघधारक

बाहिरीपरिधि सम्बन्धी ऐसे सब कालोदधि सम्बन्धी अड़तालीस अन्तर्द्वीप हुये । अतः लवणोदधि और कालोदधिके सब छयानवे अन्तर्द्वीप हुये॥

(?) हमारे यहां आचार्योंने पूज्यपाद स्वामीके मतमें तथा श्रीमद्विद्यानन्दिके मतमें दिखाते हैं (अड़तालीस लवणोदधि सम्बन्धी और अड़तालीस कालोदधि सम्बन्धी) अन्तर्द्वीप हैं राजवार्तिकके रचयिता श्रीमद्भट्ट अकलंकदेवके मतमें अड़तालीस (चौबीस लवणोदधि सम्बन्धी और चौबीस कालोदधि सम्बन्धी) ऐसे केवल अड़तालीस अन्तर्द्वीप हैं। "जयचन्द्रराय जी ने अड़तालीसका उल्लेख किया है। पं० सदासुखजीने, पं० गोपालदासजी इत्यादि ने दिखाने का ॥ श्वेताम्बर आम्नाय के 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र'ने हिमवान् पर्वतके सम्बन्धी छप्पन अन्तर्द्वीप माने हैं और "इसी प्रकार छप्पन अन्तरद्वीप शिखरी पर्वत सम्बंधी भी' माने हैं ॥ 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र' के पृष्ठ ८७ को देखो ॥

"ते चतुर्विंशतिरपि द्वीपा जलतलादेक योजनोत्सेधाः ॥ लवणोदस्याभ्यन्तरपार्श्वे चतुर्विंशतिर्द्वीपा विज्ञातव्याः ॥ तथा कालोदेऽपि" वेदितव्याः ॥ सर्वार्थसिद्धि वृत्ति प्रथम संस्करण पृष्ठ २४५ और तिलोयपण्णत्ति. पृष्ठ १२१ ॥ इसके अनुवाद के वास्ते देखो पृष्ठ ७६ ॥ हस्त लिखित सर्वार्थसिद्धि का आशय यही है परन्तु पाठ तनिक भिन्न है ॥ वह इस प्रकार है कि "ते चतुर्विंशति द्वीपा अपि अभ्यन्तरबाह्यपार्श्वयोर्द्वीपा जलतलादेक योजनो त्सेधा ॥ तथा कालोदेऽपि वेदितव्या." = वे चौबीस अन्तर्द्वीप पक्षान्तरमें (अर्थात् दूसरी कल्पनामें और दूसरे मतमें) भी लवणोदधिके दोनों भीतरी बाहिरी तटोंमें चौबीस चौबीस अन्तर्द्वीप जलके तलसे एक योजन ऊंचे हैं। कालोदधिमें भी इतनेही जानना चाहिये।

"तथाऽऽस्तावल्लवणोदस्योभयोरष्टचत्वारिंशत् तथा कालोदस्य इति वाक्यपत्रिः" = यहां प्रथम कहे हुये सो लवण समुद्रके दोनों तटोंके अड़तालीस (अन्तरद्वीप) हैं। और कालोदधिके इसप्रकार दिखाये हैं ॥ राजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ १३७ ॥ जैसे लवण समुद्रमें अन्तरद्वीप अड़तालीस हैं दोऊ तट सम्बन्धी, तैसेही कालोदधि समुद्रमें अड़तालीस जानना ऐसे समस्त छियाणवें अन्तरद्वीपनिमें कुभोग भूमिया मनुष्य हैं ॥ अर्थ प्रकाशिका पृष्ठ २०८ ॥ लवण समुद्र और कालोदधि समुद्रमें ९६ अन्तरद्वीप हैं जिनमें कुभोग भूमिकी रचना है। यहां मनुष्यही रहते हैं उनमें मनुष्योंकी आकृति नाना प्रकारकी कुत्सित है ॥ सिद्धान्तप्रवेशिका पृष्ठ १३४ ॥ ते चतुर्विंशतिरपि द्वीपाः जलतलादेकयोजनोत्सेधाः. तथा कालोदेऽपि परिरङ्ग्याः. ॥ मुद्रित तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ १४५ ॥ यही पाठ हस्तलिखितमें है = 'बहुरि ये चौबीसहू अन्तरद्वीप हैं ते जलके तलतें एक एक योजन ऊंचे हैं ॥ जैसे लवणोदधिके विषे अन्तरद्वीपनिका कथन है तैसेही कालोदधिके विषैभी जानना" ॥ पं० पन्नालाल दूनीकृत भाषा पृष्ठ ८८६ ॥

"बहुरि ए चौबीसही द्वीपजलके तलतें एकएक योजन ऊंचे हैं। ऐसेही कालोद समुद्र विषै जानना" पं० जयचन्द्रजीकृत वचनिका मुद्रित पृष्ठ ३४२ हिमवान् पर्वत सम्बन्धी छप्पन अन्तर्द्वीप सभाष्य० (पृष्ठ ८६ ८७) में कहने के पश्चात् उल्लेख किया है कि 'इसी प्रकार छप्पन अन्तर्द्वीप शिखरी पर्वत सम्बन्धी भी जानना चाहिये" 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र' पृष्ठ ८७ ॥ इसके पश्चात् चरणटिप्पणी ऐसे ही है। श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य०की चरणटिप्पणी:- "यह अन्तरद्वीपका भाष्य प्रायः नष्ट होगया है, कई दुर्विदग्ध लुपानें अन्तरद्वीप भाष्यमें लिखदेते किन्तु यह अनार्ष है, क्योंकि आगे जीवाभिगमादि में ५६ही मिलता है। वाचक परंपरासे यह भेद नहीं है क्योंकि सूत्रका उल्लेख नहीं होता। इसलिये इसलिये हमने सिद्धान्त भाष्यको नष्ट किया है" ॥

त एतेऽन्तर्द्वीपजा म्लेच्छाः कर्मभूमिजाश्चशकयवनशबरपुलिन्दादयः॥ काःपुनः कर्मभूमय इत्यत आह—

॥ भरतैरावतविदेहाः कर्मभूमयोऽन्यत्र देवकुरूत्तरकुरुभ्यः ॥३७॥

ते एते अन्तर्द्वीपजाः म्लेच्छाः कर्म-भूमिजाः च	=ते इतने अन्तरद्वीपोंमें उत्पन्नहुये म्लेच्छ हैं। और (=च) कर्मभूमिमें उत्पन्नहुये
शक-यवन-शबर-पुलिन्द-आदयः पुनः कर्म-	=शक-यवन-शबर-पुलिन्द आदि (म्लेच्छ) हैं। (प्रश्न) पुनि कर्म-
भूमयः काः इति अतः आह।	=भूमियें क्या हैं। ऐसा (प्रश्न होने पर) इसलिये (अग्रिम सूत्रमें) कहते है कि
(१)सूत्रम्—	=भरतैरावतविदेहाः कर्मभूमयोऽन्यत्र देवकुरूत्तरकुरुभ्यः(२)।
	=भरतैरावत विदेहाः(पञ्च, पञ्च, पञ्च, एताः) कर्मभूमयः भवन्ति,अन्यत्र(पञ्च)देवकुरुभ्यः,(पञ्च)उत्तरकुरुभ्यः।३७।
सूत्रार्थः—पञ्चदेवकुरुभ्यः	=(पांच मेरु सम्बन्धी)पांच देवकुरु(३) (जहां उत्तम भोग भूमि प्रवर्तती है और)
पञ्चउत्तरकुरुभ्यः अन्यत्र	=(पांचमेरु सम्बन्धी पांच उत्तर कुरु(३)(जहांभी उत्तम भोग भूमि वर्ते है)कोछोड़कर
पञ्च भरताः पञ्च ऐरावताः	=(पांच मेरु सम्बन्धी) पांच भरत क्षेत्र (पांच मेरु सम्बन्धी) पांच ऐरावत क्षेत्र
पञ्च विदेहाः	=(पांच मेरु सम्बन्धी सामान्यरूपसे) पांच (महा(४)) विदेह क्षेत्र (विशेषतासे प्रत्येक मेरुसम्बंधी बत्तीस बत्तीस विदेह ऐसे एकसौ साठ विदेह)
एताः कर्मभूमयः भवन्ति।	=ये कर्म भूमिये(४) हैं॥ (इसकी विशेष टिप्पणी संख्या चारमें नीचे देखो)

(१) दोनों सम्प्रदायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है॥ (२) पांच देवकुरु और पांच उत्तरकुरुक्षेत्र ऐसे दश क्षेत्र हुये इसलिये सूत्रमें "देवकुरूत्तरकुरुभ्य" पञ्चमी बहुवचन लाये हैं यदि एक एक क्षेत्र होता तो पञ्चमी द्विवचन 'देवकुरूत्तरकुरुभ्याम्' ऐसा वाक्य लाते।

(३) पांच मेरुसम्बन्धी पांच हरिवर्ष और पांच रम्यक क्षेत्र ये दश मध्यम भोगभूमियें, और पांच मेरुसम्बन्धी पांच हैमवत और पांच हैरण्यवत ये दश जघन्य भोगभूमियें, अडतालीस अन्तर्द्वीप लवण समुद्र सम्बन्धी और अडतालीस कालोदधि सम्बन्धी ये छियानवे जघन्य भोगभूमियें हुईं इस प्रकार देवकुरु उत्तरकुरु दश उत्कृष्ट, दश मध्यम और दश जघन्य भोग भूमिये सर्व मिलकर एकसौ छब्बीस हुईं

(४) पांच विदेह पांच मेरु सम्बन्धी कहे हैं वास्तविक में पांच विदेह विशेषरूपसे एकसो साठ हैं। और प्रत्येक विदेहमें पांच म्लेच्छ खड हैं, और एक आर्य खण्ड है। और पांच मेरुसम्बन्धी पांच भरतक्षेत्र हैं। और पांच ही ऐरावत क्षेत्र हैं। और प्रत्येक भरत क्षेत्र और ऐरावत क्षेत्रमें पांच पांच म्लेच्छ खड हैं और एक एक आर्य खड है। इस प्रकार विदेह और भरत और ऐरावत समस्त क्षेत्रों में १७० आर्य खण्ड हैं। और ८५० म्लेच्छ खण्ड हैं विशेषरूपसे १७० कर्मभूमियें हैं। सामान्यरूप से १५ हैं अर्थात् १६० विदेहों को पांच महाविदेह पांच मेरु सम्बन्धी कहते हैं॥

भरतैरावतविदेहाश्च पञ्च पञ्च, एताः कर्मभूमय इति व्यपदिश्यन्ते ॥ तत्र विदेहग्रहणाद्देवकुरूत्तरकुरुग्रहणे प्रसक्ते तत्प्रतिषेधार्थमाह "अन्यत्र देवकुरूत्तरकुरुभ्यः" इति ॥ अन्यत्र शब्दो वर्जनार्थः । देवकुरव उत्तरकुरवो हैमवतो हरिवर्षो रम्यको हैरण्यवतोऽन्तर्द्वीपाश्च भोगभूमय इति व्यपदिश्यन्ते ॥ अथ कथं कर्मभूमित्वं ? शुभाशुभलक्षणस्य कर्मणोऽधिष्ठानत्वात् ॥ ननु सर्वं लोकत्रितयं कर्मणोऽधिष्ठानमेव,

---

वृत्त्यनुवादः—भरत-ऐरावत-विदेहाः❀च❀पञ्च	=भरत, ऐरावत और विदेहक्षेत्र पांच,
पञ्च❀एताः❀कर्मभूमयः❀इति❀व्यपदिश्यन्ते	=पांच हैं । इतनी कर्म भूमियें इसप्रकार विवरण कीगई हैं ।
तत्र❀विदेह-ग्रहणात्❀देवकुरु-उत्तरकुरु-ग्रहणे❀प्रसक्ते❀तत्-प्रतिषेध-	=तहां(सूत्रमें)विदेहके ग्रहणसे देवकुरु और उत्तर कुरुके(जोजम्बूद्वीपकेविदेहवालेभागमेंहैं) =आदान अथवा उपलब्धिका प्रसंग होनेपर तिस(ग्रहण) के निराकरणके
अर्थम्❀आह❀अन्यत्र❀देवकुरु-उत्तरकुरुभ्यः❀इति❀	=लिये कहते हैं कि देवकुरु और उत्तरकुरु को छोड़कर (पंद्रह कर्म भूमियें हैं)
अन्यत्र❀शब्दः❀वर्जन-अर्थः❀देवकुरवः	=(सूत्रमें) अन्यत्र शब्द निषेध के लिये है ॥ देवकुरुयें,
उत्तरकुरवः❀हैमवतः❀हरिवर्षः❀रम्यकः❀हैरण्यवतः	=उत्तरकुरुयें, हैमवत, हरिवर्ष, रम्यक, हैरण्यवत, और
अन्तर्द्वीपाः❀भोगभूमयः❀इति❀व्यपदिश्यन्ते	=अन्तर्द्वीप, भोग भूमियें इस प्रकार व्याख्यानकीगई हैं ॥ भावार्थ यह है कि

पांच विदेह सम्बन्धी पांच देवकुरु (उत्तम भोग भूमियें) और पांच उत्तरकुरु (उत्तम भोग भूमियें) पांच मेरु सम्बन्धी पांच हरिवर्ष और पांच रम्यक ये दश मध्यम भोग भूमियें, और पांच मेरु सम्बन्धी पांच हैमवत और पांच हैरण्यवत ये दश जघन्य भोग भूमियें और अड़तालीस अन्तर्द्वीप लवणोदधि समुद्र सम्बन्धी और अड़तालीस ही कालोद समुद्र सम्बन्धी ऐसे छयानवे ये जघन्य कुभोग भूमियें, सर्व मिलकर एकसौ छव्वीस हैं । तिन सबको सर्वार्थसिद्धि वृत्तिमें भोगभूमियें कही हैं ॥

अथ❀कथं❀कर्म-भूमित्वं ?	=आगे (=अथ) (पूर्वोक्त पंद्रह क्षेत्रोंके) कर्मभूमिपना कैसे है ॥
शुभ-अशुभ-लक्षणस्य❀कर्मणः❀अधिष्ठानत्वात्	=(उत्तर)शुभ और अशुभ लक्षणरूप कर्मके आश्रयतासे(पूर्वोक्तपंद्रहक्षेत्रोंमेंकर्मभूमिपनाहै)
ननु❀सर्वम्❀लोक-त्रितयम्❀कर्मणः❀अधिष्ठानम्❀एव	=प्रश्न (=ननु) सबतीनों (=त्रितय) लोक (क्या) कर्मके आधारही है ॥

तत एवं प्रकर्षगतिर्विज्ञायते प्रकर्षेण यत्कर्मणोऽधिष्ठानमिति ॥ तत्राशुभकर्मणस्तावत्सप्तमनरक-प्रापणस्य भरतादिष्वेवार्जनं, शुभस्य सर्वार्थसिध्यादिस्थानविशेषप्रापणस्य पुण्यकर्मण उपार्जनं, तत्रैव कृष्यादिलक्षणस्य षड्विधस्य कर्मणः

ततः❀एवम्❀प्रकर्ष-गतिः१॥ विज्ञायते। (१)प्रकर्षेण❀यत् १॥कर्मणः६॥ अधिष्ठनम्१॥ इति❀	=वहां (कर्मभूमिमें कर्मका आधारपना) वास्तविक (=एवं) उत्कर्ष =दशा (=गति) में जाना जाता है (अर्थात्) उत्कृष्टपनासे जो कर्मका =आश्रय है ऐसा भावार्थ है कि आचार्यके इस उत्तर पर कि कर्मके आश्रयपनासे इन पन्द्रह क्षेत्रोंके कर्म भूमिपना है शिष्यने फिर तर्क की कि कर्मके आधार तौ तीन लोकही हैं तौ तीनों लोक कर्मभूमि क्यों न कहेगये इसपर कहते हैं कि कर्मका आधार तौ तीनोंलोकमें अवश्य है। परन्तु जिन स्थानोंमें कर्मका आश्रय अतिशयकरि अथवा उत्कृष्टपनासे पायाजाता है। उन पन्द्रह भूमियोंको कर्मभूमि कहा है। (आगे इस उत्कृष्ट कर्मपनाके दो दृष्टान्त देते हैं)
तत्र❀अशुभ-कर्मणः६॥तावत्❀सप्तम-नरक-प्रापणस्य६॥ भरतादिषु७॥ एव❀अर्जनम्१॥	=तहां अशुभरूपकर्मसे सातवां नर्क तक (=तावत्) =पानेकी(=प्रापणस्य)भरतादिक(पन्द्रहकर्मभूमियों)में ही सिद्धिवा प्राप्ति(=अर्जन)होती है।
शुभस्य६॥ सर्वार्थसिद्धि-स्थान-विशेष-प्रापणस्य६॥ पुन्य-कर्मणः६॥ उपार्जनम्१॥,तत्र❀एव❀	=(और) शुभरूप (कर्मसे) सर्वार्थसिद्धि (आदिक) विशेष स्थानोके पानेके =पुण्यकर्मका उपार्जन है। तहां (कर्मभूमियोमे) ही
(२)कृषि-आदि-लक्षणस्य६॥षड्-विधस्य६॥ कर्मणः६॥	=खेती करना आदिक लक्षणरूप छः प्रकारके कर्मका

(१) 'प्रकर्ष' शब्द पुल्लिंग है। जब 'प्रकर्षेण' और 'प्रकर्षात्' करण कारक और अपादान कारकोंके एकवचन उत्कृष्टता वा प्रधानताके अर्थमें आते हैं तब उनका प्रयोग अव्ययकी भांति होता है। इसलिये 'उत्कर्षेण' शब्दको पदच्छेदमें अव्यय लिखा है। देखो वैद्यकोश पृष्ठ ४५६ ॥

(२) (क) असिर्मषिः कृषिर्विद्या वाणिज्यं शिल्पमित्यपि। कर्माणि षड्विधानिस्यु प्रजाजीवनहेतवः ॥ १ ॥ (ख) अत्रासिकर्म सेवायां मषिर्लिपि-विधौ स्मृता। कृषिर्भूकर्षणे प्रोक्ता विद्या शास्त्रोपजीवने॥ग॥ वाणिज्य वणिजां कर्म शिल्प स्यात्करकौशलम्। तच्च चित्रकलापत्रच्छेदादिबहुधा स्मृतम् ॥३

पात्रदानादिसहितस्य तत्रैवारम्भात्कर्मभूमिव्यपदेशो वेदितव्यः ॥ इतरासु दशविधकल्पवृक्ष-कल्पितभोगानुभवनविषयत्वाद्भोगभूमय इति व्यपदिश्यन्ते॥उक्तासु भूमिषु स्थितिपरिच्छेदार्थमाह—

पात्र-दान-आदि-सहितस्य६।। तत्र-एव॰आरम्भात्५।	=प्रशस्त दानादिक (छहकर्मों) सहित तहांही प्रारम्भ होने (के निमित्त) से
कर्म-भूमि-व्यपदेशः१।वेदितव्यः१। इतरासु७।।	=(तिन पन्द्रहक्षेत्रोंका) कर्मभूमि नाम जानना चाहिये। अन्य वा दूसरो (क्षेत्र अर्थात् उपर्युक्त छयानवैं कुभोगभूमियोमें और पूर्वोक्त तीस उत्तम,मध्यम जघन्यभोगभूमियों)में
दश-विध-कल्प-वृक्ष-कल्पित-भोग-अनुभवन-	=दश भांतिके कल्पवृक्षोंसे इच्छित वा वांछित भोगोंका अनुभवन
विषयत्वात्५।।भोगभूमयः१।इति॰व्यपदिश्यन्ते।	=विषय होनेसे भोगभूमियें ऐसे नाम कहेजाते हैं (=व्यपदिश्यन्ते)
उक्तासु७।।भूमिषु७।।स्थिति-परिच्छेद-अर्थम्२।।आह।	=कथित (समस्त) भूमियोंमे आयुके अवधिके(=परिच्छेद) लिये कहते है कि

असि १।मषि १।।कृषि १।।विद्या१।।वाणिज्य१।।शिल्प१ ॥इति॰ अपि॰	=असि, मशि, खेती, विद्या, वाणिज्य और शिल्प ऐसे भी
कर्माणि१।। षड्विधानि१।। स्युः। प्रजा जीवनहेतवः१ ॥ १ ॥	=छह प्रकार कर्म प्रजाके जीविका (=जीवन) के कारण होते हैं॥ १ ॥
अत्र॰असि कर्म १।। सेवायाम् ७।। मषि १।।लिपि-विधौ७।।	=यहां (कर्मभूमिमें) असिकर्म सेनाविषै (और) मसी (कर्म) लेखनकार्यमें
स्मृता१।। । कृषि १।।	=स्मरण किया जाता है। (खेती)कृषि
भू-कर्षणे७।।प्रोक्ता१।।विद्या१।। शास्त्र उपजीवने७।। ॥२॥	=भूमिके जोतनेमें विवर्णितहै (और)विद्या(कर्म) शास्त्रकी जीवकामें वा धधेमें है
वाणिज्य१।। वणिजा६। कर्म१।। शिल्प१।।स्यात्।कर-	=वाणिज्यकर्म वनियों अथवा व्यापारियों का काम है। शिल्प (कर्म) हाथकी
कौशलम् १।।	=निपुणता, चतुरता वा प्रवीणताहै अर्थात् हस्तसे नानाप्रकारके काममेंचतुराईहै
तत्१।। च॰चित्र-	=और(=च)वह(शिल्पकर्म)चित्र विचित्र अर्थात् चहुरङ्गी मूर्तियांबनाना(चित्र)
कला-पत्र-	=चौसठ प्रकारका गाना बजाना आदि (=कला),पर्ण अथवा कागदका
च्छेदादि१।। बहुधा॰स्मृतम् १।।	=छेदना, काटना, बनाना, इत्यादि बहुप्रकार(की निपुणता) स्मरण कीजातीहै(२)

(१) देवपूजा गुरुपास्ति स्वाध्याय संयमस्तप.। दान चेति गृहस्थाना षट्कर्माणि दिने दिने ॥ १ ॥

देवपूजा१।। गुरु-उपास्ति १।।स्वाध्याय १। संयमः१। तप १।।	=देवकी पूजा, गुरुकी उपासना,अर्थात् सेवा(उपास्ति) शास्त्रकाअध्ययन,संयम, तप,
दान१।। च॰इति॰गृहस्थानाम् ६। षट्-कर्माणि१।।दिने७। दिने७।	=बहुरि दान इस प्रकार गृहस्थोंके छह कर्म प्रत्येक दिनमें(दिनेदिने) होते है।

॥ नृस्थिती परापरे त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते ॥ ३८ ॥

त्रीणि पल्योपमानि यस्याः सा त्रिपल्योपमा। अन्तर्गतो मुहूर्तो यस्याः सा अन्तर्मुहूर्ता ॥ यथासंख्येन सम्बन्धः ॥ मनुष्याणां परा उत्कृष्टा स्थितिः त्रिपल्योपमा ॥ अपरा जघन्या अन्तर्मुहूर्ता । मध्ये अनेकविकल्पा ॥ तत्र पल्यं त्रिविधं व्यवहारपल्यमुद्धारपल्यमद्धापल्यमिति ।

सूत्रम्—नृस्थिती परापरे[१]त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते=नृ-स्थिती-परापरे-त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते-(यथासंख्यम्)

सूत्रार्थ—नृ-स्थिती[१/२]॥परा-अपरे[१/२]॥त्रि-पल्योपम-अन्तर्मुहूर्ते[१/२]॥	=मनुष्योंकी आयु उत्कृष्ट और जघन्य तीन पल्यप्रमाण और अन्तर्मुहूर्त
यथासंख्यम्[१/१]॥	=अनुक्रमसे है अर्थात् मनुष्योंकी आयु उत्कृष्ट (=परा) तीन पल्य प्रमाण और जघन्य (=अपरा) अन्तर्मुहूर्त है। और मध्य आयुके अनेक भेद है।
वृत्त्यनुवादः—त्रीणि[१/३]॥पल्योपमानि[१/३]॥यस्याः[६/१]॥सा[१/१]॥	=तीन पल्य प्रमाण है जिसकी सो
त्रि-पल्योपमा[१/१]॥अन्तर्गतः[१/१]मुहूर्तः[१/१]यस्याः[६/१]॥	=त्रिपल्योपमा है। भीतर वा अभ्यन्तर मुहूर्त जिसकी अर्थात् मुहूर्त वा दो घड़ी के भीतर भीतर जिसकी
सा[१/१]॥अन्तर्मुहूर्ता[१/१]॥यथासंख्येन[३/१]॥	=सो अन्तर्मुहूर्ता है। यथासंख्यकरि अथवा संख्याके क्रमसे (इन-परा-अपरा-त्रिपल्योपमा अन्तर्मुहूर्ता शब्दोंका परस्पर)
सम्वन्धः[१/१]	=सम्वन्धहै(अर्थात् परा शब्दके साथ त्रिपल्योपमा का सम्वन्ध किया जाताहै और अपराके साथ अंतर्मुहूर्ताका तव निम्नलिखित इसप्रकार अर्थ होगा कि)
मनुष्याणाम्[६/३]परा[१/१]॥उत्कृष्टा[१/१]॥स्थितिः[१/१]॥त्रि-पल्योपमा[१/१]॥	=मनुष्योंका सवसे अधिक जीवनकाल तीनपल्य प्रमाण है ॥
अपरा[१/१]॥जघन्या[१/१]॥अन्तर्मुहूर्ता[१/१]॥मध्ये[७/१]अनेक-विकल्पा[१/१]॥	=सवसेघाटि(आयुवा)जघन्य(आयु)अन्तर्मुहूर्त है। और मध्यविषैं अनेक भेद हैं
तत्र❀पल्यम्[१/१]॥त्रिविधम्[१/१]॥व्यवहारपल्यम्[१/१]॥	=तहां पल्य तीन प्रकार है। व्यवहारपल्य,
उद्धारपल्यम्[१/१]॥अद्धापल्यम्[१/१]॥इति❀	=उद्धारपल्य और अद्धापल्य ऐसें

(१) परापरे, परावरे, पराऽपरे, अथवा पराऽवरे सब वाक्य ठीक है ॥ कोई भी वाक्य नृस्थिती वाक्य के पश्चात् लिखा जासक्ता है ॥

एटानिवासी जगरूपसहाय वकील कृत पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित सर्वार्थसिद्धिका शब्दशः हिन्दीअनुवाद। अध्याय ३ सूत्र ३८

अन्वर्थसञ्ज्ञा एताः ॥ आद्यं व्यवहारपल्यमित्युच्यते उत्तरपल्यद्वयस्य व्यवहारबीजत्वात् नानेन किञ्चित्परिच्छेद्यमस्तीति। द्वितीयमुद्धारपल्यं। तत उध्दृतैर्लोमकच्छेदैर्द्वीपसमुद्राः संख्यायन्त इति। तृतीयमद्धापल्यमद्धाकालस्थितिरित्यर्थः॥ तत्राद्यस्य प्रमाणं कथ्यते। तद्यथा—प्रमाणांगुल

अन्वर्थ-संज्ञाः[1/3] एताः[1/3]	=ये (तीनों पल्य) सार्थक नामवाले हैं अर्थात् जैसाजैसा जिसजिस पल्यका नाम है वैसा वैसा उस पल्य का अर्थ है।
आद्यम्[1/1] व्यवहारपल्यम्[1/1] इति❀उच्यते[T] उत्तर-	=प्रथम व्यवहार पल्य (नाम) कहाजाता है क्योंकि (वह व्यवहारपल्य) अग्रिम
पल्य-द्वयस्य[6/1] व्यवहार-बीजत्वात्[5/1]	=दो पल्य (उद्धार तथा अद्धा)के व्यवहार अथवा वर्तनेका कारण (=बीजत्वात्) है अर्थात् उद्धार और अद्धापल्यकी उत्पत्ति जाननेके लिये व्यवहारपल्य है।
न❀अनेन[3/1] किञ्चित्❀परिच्छेद्यम्[1/1] अस्ति इति❀	=न इस (व्यवहार पल्य) करि कोई वस्तु (किञ्चत्) प्रमाण कियेजाने योग्य वा विचारनीय है अर्थात् व्यवहार पल्य किसी वस्तुके नापनेके काममें नहीं आती है। केवल उसमें रोमोंकी गणना ४५ अंक प्रमाण होती है "प्रथम रोम गिनिदेय"
द्वितीयम्[1/1] उद्धारपल्यम्[1/1] तत❀उध्दृतैः[3/3] लोमकच्छेदैः[3/3]	=दूसरी उद्धारपल्य है वहांसे लोमकखंड निकालकरि वा उद्धारकरि (उध्दृतैः)
द्वीप-समुद्राः[1/3] संख्यायन्ते[T] इति❀तृतीयम्[1/1] अद्धापल्यम्[1/1]	=द्वीप और समुद्र गिने जाते है "दूसरि द्वीप समुद्र गिनै"। तीसरी अद्धापल्य
अद्धा-काल-स्थितिः[1/1] इति❀अर्थः[1/1]	=बहुत वा उत्कृष्ट (=अद्धा) कालकी स्थितिवाली है ऐसा आशय है।
तत्र❀आद्यस्य[6/1] प्रमाणम्[1/1] कथ्यते[T] तद्यथा❀	=तहां प्रथम (पल्य) का प्रमाण कहाजाता है। जैसे-
प्रमाण-अंगुल	=प्रमाण अंगुल अर्थात् वह अंगुल जो उत्सेधअंगुल व्यवहारअंगुल, प्रचलित-अंगुल अथवा आठ जोंके मध्यभागोंके प्रमाणसे पांचसौगुणा है तिसके

(१) तहां आदि मध्य अन्तकरि रहित जिसका दूसरा विभाग न हो ऐसा अविभागी पुद्गल का परमाणु है। सो इन्द्रियकरि ग्रह्या नहीं जाता है। जिसमें एक रस, एक वर्ण, एक गन्ध, दो स्पर्श यह पांच गुण हैं। ऐसा अनन्तानन्त परमाणुओंके समूहोंको अवसन्नासन्न कहते हैं। अवसन्नासन्न आठ मिले तब एक सन्नासन्न(वा सन्नासन्न)होताहै॥ आठ सन्नासन्न मिले तब एक तृटरेणु होता है। आठ तृटरेणुका एक त्रसरेणु (त्रसरैन) और आठ त्रसरैन का एक रथरैन (रथरेणु) होय, आठ रथरेणुका एक उत्तम भोग भूमिके मनुष्यके बालका अग्रभाग है। आठ उत्तमभोग भूमिके मनुष्यके बालके अग्रभाग मिलें तब एक मध्यमभोग भूमिके मनुष्यके बालका अग्रभाग होय। आठ मध्यमभोग भूमिके मनुष्य के बालके अग्र भाग मिलें

परिमितयोजनविष्कम्भायामावगाहानि त्रीणि पल्यानि कुसूला इत्यर्थः । एकादिसप्तान्ताहोरात्र-जाताविवालाग्राणि तावच्छिन्नानि यावद्द्वितीयं कर्तरिच्छेदं नाप्नुवन्ति,

परिमित-योजन-विष्कम्भ-आयाम =प्रमाण करि अथवा नापे हुये योजन(योजन) भर चौड़ाई (=विष्कम्भ) लम्बाई (=आयाम) और
अवगाहानि$^{1}_{3}$॥ त्रीणि$^{1}_{3}$॥ पल्यानि$^{1}_{3}$॥ =गहराईवाले (गोल ढोलके आकार) तीनि खाडे वा गढ़े (=पल्यानि)
कुसूलाः$^{1}_{3}$। इति❀अर्थः$^{1}_{1}$ =भड़ोले वा खत्ते (कुसूला=कुशूला) है ऐसा अभिप्राय अथवा आशय है।
एक-आदि-सप्त-अन्त-अहोरात्र-जात-अवि- =एक से सात तक दिन रातके जन्मे हुये (उत्तम भोगभूमिके) मेढ़ा वा भेड़ (=अवि)के
वाल-अग्राणि$^{1}_{3}$॥ तावत्❀छिन्नानि$^{1}_{3}$॥ यावत्❀ =केशका(वाल=वाल) अग्रभाग तब तक छेदकर काटकर जब तक (यावत्)
द्वितीयं$^{1}_{3}$॥ कर्तरि-च्छेदं$^{1}_{1}$॥ न-आप्नुवन्ति =दूसरे (लघु) खंड कतनी (=कर्तरि,कर्तरी)से प्राप्ति नहीं होसकते हैं (पूर्वोक्त गडाहा)

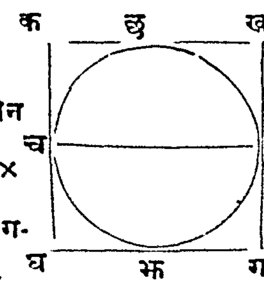
तब एक जघन्य भोग भूमिके मनुष्यके बालका अग्रभाग होता है। जघन्य भोगभूमिके मनुष्यके बालके अग्रभाग आठ मिलें तब एक कर्म भूमि के मनुष्यके बालका अग्रभाग होता है॥ आठ कर्म भूमिके नरके बालके अग्रभाग मिलें तब एक लीष(=लीख)हो, आठ लीख मिलें तब एक यूका (=जूं) अथवा तिलहो। आठ तिल मिलें तब एक यवमध्य अथवा जौ का मध्यभाग के प्रमाण हो। आठ यवमध्य का एक उत्सेध अंगुल होता है। इस अंगुल-करि नारकी तिर्यंच मनुष्य देवोंका शरीर तथा अकृत्रिम प्रतिमाका देह मापिये है। बहुरि पांचसे पूर्वोक्त उत्सेध अगुलका एक प्रमाण अगुल होताहै॥ सो यह प्रमाण अगुल अवसर्पिणी कालके पहिले चक्रवर्तीके हाथके अगुलके बराबर होता है। तिस समय तिस अगुलकरि गांव नगरादिकका प्रमाण होता है। अन्य काल में मनुष्यों का अपना अपना अगुल का प्रमाण होता है। अर्थात् जिस काल में जैसा मनुष्य हो उसका अगुल, इसको आत्म अगुल कहते हैं। इससे भिन्न भिन्न समय के अनुसार गांव, नगर, भवन, घट, रथ, छत्र, आसन, धुजा, आदि का प्रमाण होता है॥ प्रमाण अंगुलसे द्वीप समुद्र तथा उनकी वेदी, नदी, पर्वत, विमान, नरकके प्रस्तार, जैनधाम, आदि अकृत्रिम वस्तुका विस्तार-आयाम-आदि नापे जाते हैं। छह अंगुल का एक पाद, बारह अगुल का एक वितस्ति (विलाद, विलस्ति) दो विलांद का एक हाथ, दो हाथ का एक इषु अथवा गज, दो गजका एक धनुष दो सहस्र चापका एक कोश, चार कोशका एक योजन इस लिये पांचसौ व्यवहार योजनका एक प्रमाण योजन होय है। अर्थात् उत्सेध अंगुल के कोश दो सहस्र हों तब एक प्रमाण योजन होता है॥

तादृशैर्लोमच्छेदैः परिपूर्णं घनीभूतं व्यवहारपल्यमित्युच्यते ॥

तादृशैः ३ । ३ लोमच्छेदैः ३ । ३ परिपूर्णम् १ । १ =वैसे ही (=तादृशैः) रोमखंडकरि सम्पूर्ण (=परिपूर्ण)

घनीभूतम् १ । १ व्यवहार-पल्यम् १ । १ इति उच्यते । =ठोसरूप भराजाता है (=घनीभूतं) सो व्यवहारपल्य इस प्रकार वर्णित की गई है ॥

(१) प्रथम एक महा योजन अथवा प्रमाण योजन लम्बे चौडे और गहरे इस प्रकार घनाकार रूप महा योजनके गड्हाके लोमच्छेदोंकी संख्या सुगम और विस्तार रूपसे कहते हैं॥ उतनाही लम्बा उतनाही चौडा उतनाही गहरा अथवा ऊंचेको घनाकार कहतेहैं। इस टिप्पणीको प्रमाणअंगुलकी टिप्पणी पढकर और समझ कर पढना चाहिये ॥ एक घनाकार प्रमाण योजन का गढा एक व्यवहार योजन के घनाकार गढ़ेसे पांचसौ गुना लम्बा पांचसौ गुना चौडा और पांचसौ गुणा गहरा होता है। और एक व्यवहार योजन चारकोश का होना है। इसलिये प्रमाण योजनका गढ़हा दो सहस्र योजन लम्बा दो सहस्र योजन चौडा और दो सहस्र योजन गहरा हुआ। यह प्रकरण कुछ क्लिष्ट है इसलिये निम्नक्षेत्र पाठकोंकी सुगमताके लिये है॥



कखगघ क्षेत्रकी प्रत्येक भुजा कख, खग, गघ, घक। दो दो सहस्र कोस की मानी गई है। एक कोसके २००० चाप ८००० हाथ, ८००० × २४ = १९२००० उत्सेध अगुल हुये, इसलिये एक महायोजन अथवा दोसहस्रकोसके १९२००० × २००० = ३८४०००००० उत्सेध अगुल हुये = कख = खग = गघ = घक = चज व्यासके ३८४०००००० × ८ = ३०७२०००००० आडे जौकेसमान हुये ३०७२००० ००० × ८ = २४५७६०००००० तिल हुये २४५७६००० ००० × ८ = १९६६०८००० ००० लीख, १९६६०८००० ००० × ८ = १५७२८६४०००००० कर्मभूमिके मनुष्यके वालके अग्रभाग हुये। १५७२८६४०००००० × ८ = १२५८२९१२००००० जघन्यभोगभूमि के मनुष्य के वाल के अग्रभाग १२५८२९१२००० ००० × ८ = १००६६३२९६००० ००० मध्यम भोगभूमिके मनुष्यके वालके अग्रभाग। १००६६३२९६००० ००० × ८ = ८०५३०६३६८००० ००० उत्तम भोगभूमिके मनुष्यके वालके अग्रभाग इस (८०५३०६३६८०००००) संख्यासे एक प्रमाण योजन अथवा एक महायोजनकी लम्बाई, कख रेखाके लोमच्छेद हुये इस संख्या को इसी संख्यासे गुणा करनेसे (क्योंकि कख रेखा खग रेखा के बराबर है) सर्व कखगघ क्षेत्रके, क्षेत्रफलके, रोम छेद आते हैं। अर्थात् वर्ग प्रमाण योजनके लोमच्छेद निकलते है ॥

ततः॥वर्ष-शते॥। =वहां (उस कूप से) सौ (सौ) वरसमें

८ ० ५ ३ ० ६ ३ ६ ८ ० ० ० ० ० ०
८ ० ५ ३ ० ६ ३ ६ ८ ० ० ० ० ० ०

० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ०
० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ०
० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ०
० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ०
० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ०
० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ०
६ ४ ४ २ ४ ५ ० ९ ४ ४ ० ० ० ० ० ० ०
४ ८ ३ १ ८ ३ ८ २ ० ८ ० ० ० ० ० ०
२ ४ १ ५ ९ १ ९ १ ० ४ ० ० ० ० ० ०
४ ८ ३ १ ८ ३ ८ २ ० ८ ० ० ० ० ० ०
० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ०
२ ४ १ ५ ९ १ ९ १ ० ४ ० ० ० ० ० ०
४ ० २ ६ ५ ३ १ ८ ४ ० ० ० ० ० ० ०
० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ०
६ ४ ४ २ ४ ५ ० ९ ४ ४ ० ० ० ० ० ०

६ ४ ८ ५ १ ८ ३ ४ ६ ३ ४ १ ३ ५ १ ४ २ ४ ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ०

इन वर्ग प्रमाण योजन क्षेत्रके लोमच्छेदोंको गहराई(के लोमच्छेदों)से गुणा करदिया जावे तो घनाकार महा योजन वा घनाकार प्रमाण योजनके रोमच्छेद पैतालीस अंक प्रमाण निम्न लिखित विधि से आते हैं ॥ क्योंकि पूर्वोक्त गढ़ा अथवा खंडर की गहराई दो सहस्र कोश है और हम जानते हैं कि दो सहस्र कोशके लोमच्छेद ८०५३०६३६८०००००० हैं ॥ गुणन का एक नियम यह भी है कि गुण्य और गुणक अथवा दोनोंमेंसे किसीके अंतमें

जो शून्य हों उनको शेष अंकोंके साथ गुणा करनेके पश्चात् गुणनफलके अंतमें उतनेही शून्य लगादो तो ठीक गुणनफल वैसाहो निकलआता है जैसा ऊपर की क्रिया से निकला है ॥ जैसे ५० गुण्य है और ३० गुणक है तो ५ और ३ के गुणनफल १५ के अन्त में दो शून्य रखने से भी १५०० हो जाते हैं और

```
  ५०
  ३०
  ००
 १५०
१५००
```

इस रीति से भी १५०० आते है सुगमता के लिये हमने नीचे यही विधि ग्रहण की है ॥

६ ४ ८ ५ १ ८ ३ ४ ६ ३ ४ १ ३ ५ १ ४ २ ४ ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० को

८ ० ५ ३ ० ६ ३ ६ ८ ० ० ० ० ० ० से गुणा करना है ॥

तो निम्न लिखित अंकोंको गुणाकरके गुणनफलके अन्तमें १८ शून्य रखदो।

```
                                   ६ ४ ८ ५ १ ८ ३ ४ ६ ३ ४ १ ३ ५ १ ४ २ ४
                                                     ८ ० ५ ३ ० ६ ३ ६ ८
                             ~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~
                                 ५ १ ८ ८ १ ४ ६ ७ ७ ० ७ ३ ० ८ १ १ ३ ९ २
                               ३ ८ ९ १ १ १ ० ० ७ ८ ० ४ ८ १ ० ८ ५ ४ ४
                             १ ९ ४ ५ ५ ५ ५ ० ३ ९ ० २ ४ ० ५ ४ २ ७ २
                           ३ ८ ९ १ १ १ ० ० ७ ८ ० ४ ८ १ ० ८ ५ ४ ४
                         ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ०
                       १ ९ ४ ५ ५ ५ ५ ० ३ ९ ० २ ४ ० ५ ४ २ ७ २
                     ३ २ ४ २ ५ ९ १ ७ ३ १ ७ ० ६ ७ ५ ७ १ २ ०
                   ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ०
                 ५ १ ८ ८ १ ४ ६ ७ ७ ० ७ ३ ० ८ १ १ ३ ९ २
             ~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~
                 ५ २ २ २ ५ ५ ९ ५ ४ ० ७ ३ ५ १ ९ ८ ० ३ ४ ७ ३ ० ६ ८ ० ३ २००००००००००००००००००
```

हमारा गढा व्यवहार पल्यका गोलकूपके आकार है। जैसाकि वृत्ताकार जो वर्गाकार क्षेत्रके भीतर पृष्ठ ८८में है उससे प्रगट है॥चूंकि चौडाई क्षेत्रकी एक(योजन)मानी है। तिसका वर्ग १ हुआ तिसको दशसे गुणाकरि वर्गमूल निकालनेसे कूपकी परिधि आतीहै अर्थात् १×१×१० = १० = १०(वर्गमूल) बहुरि विष्कम्भके चौथाईसे गुणा करनेसे अर्थात् $\frac{१}{४}$ से वृत्तका क्षेत्रफल $\frac{१९}{६} \times \frac{१}{४} = \frac{१९}{२४}$ भया। आजकल पाठशालाओंमें मापप्रकाशक पुस्तकें जो पढ़ाई

जाती हैं उनमें वृत्तका क्षेत्रफल मोटे रूपसे गणितके इस नियमसे सिखाया जाता है कि विवक्षित वृत्तके आधे व्यासके वर्गको $\frac{२२}{७}$ से गुणा करदो गुणनफल ही उस वृत्तके क्षेत्रका प्रमाण होगा। वस्तुत लगभग एक ही प्रमाण होगा क्योंकि यहांपर एक व्यास माना है आधेका वर्ग $\frac{१}{४}$ होगा और $\frac{१९}{६}$ मोटे रूपमें १०के वर्गमूलका परिणामहै। और $\frac{२२}{७}$ कुछ सूक्ष्म रूपमें परिणाम है इसमें $३\frac{१}{७}$से आधे व्यासको गुणा करना पडताहै उसमें $३\frac{१}{६}$से गुणा करना पडता है $\frac{२२}{७}$सेभी अधिक सूक्ष्मरूपमें १०को मापके उच्चकोटाके ग्रन्थोंमें समझायाहै(इसी अध्यायकी टिप्पणी पृष्ठ३४ पर देखो)गहराई एकयोजन प्रमाण है इसलिये इस घनरूपक्षेत्र अथवा एक योजन कूपका घनरूप क्षेत्रफल गहराईसे गुणा करनेसे निकलता है अर्थात् $\frac{१९}{२४}\times १=\frac{१९}{२४}$ घन रूप है॥ अब ऊपरके पैतालीस अक्षरकी सख्याको सुगमताकेलिये घनसख्या मानो और वाञ्छित निकलनेवाली सख्याको फल मानो तो इसप्रकार त्रैराशिक हुई कि १ को $\frac{१९}{२४}$ से वही सम्बन्ध है जो घनसख्याको फलसख्यासे है अर्थात् १:$\frac{१९}{२४}$::घनसख्या फलसख्या. इसलिये फलसख्या = फलसख्या $\times १=\frac{१९}{२४}\times$ घनसख्या$=\frac{१९}{२४}\times$ घन सख्या॥ प्रथम १९ से गुणाकरके पश्चात् भाग २४ का घन सख्यामें दंगे अर्थात् $=\frac{१९}{२४}\times$ घन सख्या॥

५२२२५५९५४०७३५१९८०.४७३०६८०३२००००००००००००००००००० मानी हुई घन सख्या। इसको उन्नीस से गुणा किया तो गुणनफल

=९९२२८६३१२७३९६८७६२६५९८८२९२६०८०००००००००००००००००००

भाग

२४)९९२२८६३१२७३९६८७६२६५९८८२९२६०८०००००००००००००००००००(४१३४५२६३०३०८२०३१७७७४९५,२१९२००००००००००००००००००

९६	७३	१७९	२२०
३२	७२	१६८	२१६
२४	१९६	११८	४८
८२	१९२	९६	४८
७२	४८	२२८	
१०८	४८	२१६	
९६	७६	१२२	
१२६	७२	१२०	
१२०	४२	२६	
६३	२४	२४	
४८	१८६	५२	
१५१	१६८	४८	
१४४	१८५	४६	
७२	१६८	२४	
७२			

इस प्रकार व्यवहार पल्यके समस्त रोम छेदोंकी सख्या निम्न ४५ अक्षर प्रमाण हुई

४१३४५२६३०३०८२०३१७७७४९५१२१९२०००००००००००००००००००

अंकनाम, अडिल्ल	अडिल्लका अभिप्राय। इस छंदके सब अक और शून्य क्रमसे एक दूसरेके ऊपर होंगे
चौ इक तिय चउ पांच दोय षट् तीन है	= चार(ऊपर)एक(ऐसेही)तीन,चार,पाच,दो,छह,तीन
नभ तिय नभ वसु दो नभ तिय इक कीन है	= शून्य(= नभ) तीन, बिंदु, आठ, दो, बिंदु, तीन, एक
सत सत सत चौ नौ पन इक दो इक कहे	= सात, सात, सात, चार, नौ, पांच, एक, दो, एक
नौ दौ आगे ठारै सुन्न सरब लहे (कवि द्यानतराय)	= नव,दोय,(फिर एकदूसरेके ऊपर)सब अठारह शून्य देदो तो पल्यके पैतालीस अक निकल आते हैं॥

एकैकलोमापकर्षणविधिना यावता कालेन तद्रिक्तं भवेत्तावान्कालो व्यवहारपल्योपमाख्यः ॥ तैरेव लोमच्छेदैः प्रत्येकमसंख्येयवर्षकोटीसमयमात्रच्छिन्नैस्ततपूर्णमुद्धारपल्यम् ॥ ततः समये समये एकैकस्मिन्रोमच्छेदेऽपकृष्यमाणे यावता कालेन तद्रिक्तं भवति तावान्काल उद्धारपल्योपमाख्यः॥ तेषामुद्धारपल्यानां दशकोटीकोट्य एकमुद्धारसागरोपमम् ॥ अर्धतृतीयोद्धारसागरोपमानां यावन्तो रोमच्छेदास्तावन्तो द्वीपसमुद्राः ॥ पुनरुद्धारपल्यरोमच्छेदैर्वर्षशतसमयमात्रच्छिन्नैः

एक-एक-लोम अपकर्षण-विधिना[३।१] यावता[३।१] =एक एक रोम निकालकरि (=अपकर्षणविधिना) जिस
कालेन[३।१] तद्-रिक्तम्[१।१] भवेत्। तावान्[१।१] कालः[१।१] =कालकरि वह (कूप) खाली होवे उतना काल
व्यवहार-पल्योपम-आख्यः[१।१] तैः[३।३] एव लोमच्छेदैः[३।३] =व्यवहार पल्य (के नामसे) प्रसिद्ध है। तिनही लोमच्छेदोंसे
प्रत्येकम् असंख्येय-वर्ष-कोटी-समय- =एक एकके असंख्यात करोड़ वरसोंके समयके
मात्र-च्छिन्नैः[३।३] तत्[१।१] पूर्णम्[१।१] उद्धार-पल्यम्[१।१] ॥ =समान अथवा वरावर (=मात्र) खंडोंसे वह पूर्ण उद्धारपल्य होती है। अर्थात् पूर्वोक्त पैंतालीस अंक प्रमाण व्यवहारपल्यके पृथक् पृथक् रोमके इतने इतने खंड किये जांय कि जितने जितने असंख्यात करोड़ वरसके समय होते हैं तब उद्धारपल्यके रोमोंका प्रमाण होता है और
ततः समये[७।१] समये[७।१] एक-एकस्मिन्[७।१] रोमच्छेदे[७।१] =वहांसे समय समयमें अर्थात् प्रत्येक प्रत्येक समयमें एक एक(पूर्वविभाजित)लोमछेद
अपकृष्यमाणे[७।१] यावता[३।१] कालेन[३।१] तद्-रिक्तम्[१।१] भवति =निकालनेमें जिस कालकरि वह रीता होजाता है ॥
तावान्[१।१] कालः[१।१] उद्धार-पल्योपम-आख्यः[१।१] =वह काल उद्धारपल्योपम(केनाम)से प्रसिद्ध है। उतना समस्तकाल उद्धारपल्यका है।
तेषाम्[६।३] उद्धार-पल्यानां[६।३] दश-कोटीकोट्यः[१।३] एकम्[१।१] =दश कोड़ाकोड़ी तिन उद्धारपल्योंका एक
उद्धारसागरोपमम्[१।१] अर्धतृतीया- =उद्धारसागरोपम है। अढाई उद्धार
उद्धारसागरोपमानाम्[६।३] यावन्तः[१।३] रोमच्छेदाः[१।३] =सागर प्रमाणके जितने लोमच्छेद हैं
तावन्तः[१।३] द्वीप-समुद्राः[१।३] पुनर् उद्धार- =तितने द्वीप तथा समुद्र (इस एक राजूवाले तिर्यग्लोकमें) हैं वहुरि उद्धार-
पल्य-रोमच्छेदैः[३।३] वर्ष-शत-समय-मात्र-च्छिन्नैः[३।३] =पल्यके रोमच्छेदोंसे (एक एकके) सौवरसके समयोंके वरावर (मात्र)खंडोसे

(१) अर्धतृतीया = शब्दश वह संख्या है जिसमें अर्धभाग तीसरी संख्या हो अर्थात् दो और तीसरी संख्याका आधा अतः अढाई ऐसा अर्थ हुआ ॥

पूर्णमद्धापल्यम् ॥ ततः समये समये एकैकस्मिन्रोमच्छेदेऽपकृष्यमाणे यावता कालेन तद्रिक्तं भवति तावान्कालोऽद्धापल्योपमाख्यः ॥ एषामद्धापल्यानां दशकोटीकोटय एकमद्धासागरोपमम् ॥ दशाद्धासागरोपमकोटीकोटय एकावसर्पिणी ॥ तावत्यैवोत्सर्पिणी ॥ अनेनाद्धापल्येन नारकतैर्यग्योनीनां देवमनुष्याणां च कर्मस्थितिर्भवस्थितिरायुः स्थितिः कायस्थितिश्च परिच्छेत्तव्या ॥

पूर्णम्[१/१]।।अद्धापल्यम्[१/१]।।। =पूर्ण अद्धापल्य होती है अर्थात् उपर्युक्त उद्धारपल्यके एक एक रोम के इतने इतने खंड किये जांय कि जितने जितने सौ वरसके समय होते है तव अद्धापल्यके रोमोंका प्रमाण होता है ॥

ततः*समये[७/१]। समये[७/१]। एक-एकस्मिन्[७/१]। =वहांसे समय समयमें अर्थात् प्रत्येक समयमें एक एक (पूर्वोक्त खंड किये हुये)

रोमच्छेदे[७/१]। अपकृष्यमाणे[७/१]। यावता[३/१]। कालेन[३/१]। =लोमच्छेद निकालनेमे जिस कालकरि

तद्-रिक्तं[१/१]।।भवतिTतावान्[१/१]। कालः[१/१]। अद्धा-पल्योपम- =वह खाली होजाता है। उतना काल अद्धापल्योपम (के नाम) से

आख्यः[१/१]। दशकोटीकोटयः[१/३]।।एषां[६/३]।।।अद्धा-पल्यानां[६/३]।।। =प्रसिद्ध है। दश कोड़ा कोड़ी इन अद्धापल्योका

एकं अद्धासागरोपमम्[१/१]।।।दश-अद्धासागरोपम-कोटी-कोटयः[१/३]।।=एक अद्धासागरोपम है। दश कोड़ा कोड़ी अद्धा-सागरोपमका

एक-अव-सर्पिणी[१/१]।।।तावत्*एव* =एक अवसर्पिणीकाल है ॥ तितनाही (दश कोड़ा कोड़ी अद्धापल्योपमका)

उत्सर्पिणी[१/१]।। । अनेन[३/१]।।।अद्धा-पल्येन[३/१]।।। =उत्सर्पिणी काल है। इस अद्धापल्यकरि

नारक-तैर्यग्योनीनाम्[६/३]। देव-मनुष्याणाम्[६/३]। च* =नारकियों और तिर्यचोंकी और (=च) देव मनुष्योंकी

कर्मस्थितिः[१/१]।। भवस्थितिः[१/१]।। =कर्मस्थितिः[१/१]।। भवस्थितिः[१/१]।। अर्थात् एक भवकी स्थिति

आयुःस्थितिः[१/१]।। कायस्थितिः[१/१]।।च*परिच्छेत्तव्या[१/१]।। =आयु स्थिति और (=च) कायस्थिति जानना चाहिये।

(१) एक कायमें अनेक भव धारण करै तिसको कायस्थिति कहते हैं। जैसे पृथिवी अप् तेज वायुकायिक जीवोंके कायस्थिति असख्यात लोक प्रमाण है। तिनहींमें उपजवे करें तो एताकालताईं उपजवो करे। बहुरि वनस्पतिकायका अनन्तकाल है सो असख्यात पुद्गल परिवर्तनमात्र है। बहुरि विकलत्रयका असख्यात सहस्र बरस है। पंचेंद्रिनिकी, तिर्यंच मनुष्यनिकी पृथकत्व कोटि पूर्व अधिक तीनि पल्य है। बहुरि जघन्य कायस्थिति इन सर्वोंकी अन्तर्मुहूर्तमात्र है। बहुरि देवनारकीनिकी भवस्थिति है सोही काय स्थित है। दवसे देव नहीं होतो नारकीसे नारकी नहीं होता यह नियमहै॥

उक्ता च संग्रहगाथा—ववहारुद्धारद्धापल्ला तिएणेव होंति बोद्धव्वा। संखादीव सम्मुदा कम्मट्ठिदि वरिणदा तदिये ॥ १॥ यथैवेते उत्कृष्टजघन्ये स्थिती नृणां तथैव—

॥ तिर्यग्योनिजानां च ॥ ३९ ॥

उक्ता॥ च❀संग्रह-गाथा॥ =बहुरि (पल्यकी कथनकी) संचयकी हुई।

अथवा एकत्र कीहुई आर्या छंदोंमेंसे एक (गाथा) कहीजाती है

ववहारु-द्धार-द्धा-पल्ला॥(व्यवहार-उद्धार-अद्धा-पल्यानि॥) =व्यवहार उद्धार अद्धा पल्यें

तिएण-एव❀होंति-बोद्धव्वा॥(=त्रीणि॥एव❀भवन्तिTबोद्धव्या॥) =तीनही है सो जानना

संखा-दीव-समुद्दा॥ (=संख्या द्वीप-समुद्रा॥) =संख्या द्वीप समुद्र

कम्म-ट्ठिदि-वरिणदा-तदिये (=कर्म्म-स्थिति वर्णिता॥ तदिके) =(और)कर्म्मस्थिति तिन (पल्यों) करि वर्णित है। भावार्थ

पहिली व्यवहारपल्यसे रोमोंकी संख्या वर्णन कीगई है अर्थात् वह संख्याकी उत्पत्ति जाननेके लिये है। उद्धारपल्यकरि द्वीप और समुद्र गिने जाते हैं और अद्धापल्य द्वारा कर्मस्थिति (भवस्थिति, आयुस्थिति, कायस्थिति) का कथन होता है।

यथा❀एव❀एते॥ उत्कृष्टजघन्ये॥ स्थिती॥ नृणां॥ तथा*एव* =जैसे ही ये उत्कृष्ट और जघन्य आयु मनुष्योंकी है तैसेही

(१)**सूत्रम्—तिर्यग्योनिजानां च॥ ३९॥ =तिर्यग्योनिजानां च स्थिति परापरे त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते भवतः**

सूत्रार्थः—तिर्यक्-योनिजानाम्॥ च❀ =तिर्यंच योनिसे उत्पन्न होनेवालोंकी भी अर्थात् तिर्यंचोंकी भी (=च)

परा॥ स्थितिः॥ त्रि-पल्योपमा॥भवतिT =उत्कृष्ट (=परा) आयु तीन पल्य प्रमाण

अपरा॥ स्थितिः॥ अन्तर्मुहूर्ता॥भवतिT =(और) जघन्य आयु अन्तर्मुहूर्त है।

(१) सभाष्य०में 'तिर्यग्योनीना च' ऐसा पाठ है। उसमें "तिर्यग्योनिजानां चेत्यपि पाठ" (=तिर्यग्योनिजानां च ऐसा भी पाठ है) यह चरण-टिप्पणी पृष्ठ ८८ में दी है "तिर्यग्योनिज" शब्दकी षष्ठी बहुवचन नपुसकलिंग 'तिर्यग्योनिजाना" वाक्य है और तिर्यग्योनि (=तिर्यंचयोनीवाले) की षष्ठी बहुवचन स्त्रीलिंग "तिर्यग्योनीना" है॥

तिरश्चां योनिस्तिर्यग्योनिः । तिर्यग्गतिनामकर्मोदयापादितं जन्मेत्यर्थः । तिर्यग्योनौ जातास्तिर्यग्योनिजाः । तेषां तिर्यग्योनिजानामुत्कृष्टा भवस्थितिस्त्रिपल्योपमा ॥ जघन्या अन्तर्मुहूर्ता ॥ मध्येऽनेकविकल्पा ॥ ॐ ॥ भूबिललेश्याद्यायुर्द्वीपोदधिवास्यगिरि-

---

वृत्त्यनुवादः-तिरश्चाम्[६/३]।योनिः[१/१]॥तिर्यग्योनिः[१/१]॥ =तिर्यंचों का उत्पत्ति स्थान सो तिर्यग्योनि है

तिर्यग-गति-नामकर्म-उदय-आपादितम्[१/१]॥ =तिर्यंचगतिनामा नामकर्मके उदयकरि गृहीत अथवा प्राप्त (आपादित)

जन्म[१/१]॥इति❀अर्थः[१/१]।तिर्यग्योनौ[७/१]॥जाताः[१/३]। =जन्म (=नवीन शरीर धरना) ऐसा अर्थ है। तिर्यंच योनि में उत्पन्न हुये

तिर्यग्योनिजाः[१/३]।तेषाम्[६/३]।तिर्यग्योनिजानाम्[६/३]। =वे तिर्यंच योनिज हैं। तिन तिर्यंच योनिमें उत्पन्न हुओंकी

उत्कृष्टा[१/१]॥भवस्थितिः[१/१]॥त्रिपल्योपमा[१/१]॥जघन्या[१/१]॥ =उत्कृष्ट भवकी आयु तीन पल्य प्रमाण है जघन्य

अन्तर्मुहूर्ता[१/१]॥मध्ये[७/१]।अनेक-विकल्पा[१/१]॥ =अंतर्मुहूर्त है मध्यविषैं नानाभेद हैं।

भूबिललेश्याद्यायुर्द्वीपोदधिवास्यगिरिसरः सरिताम्॥ मानंनृणांचभेदःस्थितिस्तिरश्चामपितृतीयाध्याये

भू-बिल- =(सात) भूमियें (इन सात भूमियों में चौरासी लाख) बिले (देखो सूत्र १, २)

लेश्या-आदि- =(कापोत, नील-कृष्ण) लेश्यादिक अर्थात् (अशुभतरलेश्यावाले, अशुभतरपरिणामवाले अशुभतरदेहके धारक, अशुभतर वेदना वाले, अशुभतर विक्रिया करनेवाले, परस्पर दुःख उत्पन्न करनेवाले नारकी जीव) (देखो सूत्र ३, ४, ५)

आयुस्- =(नारियों की उत्कृष्ट तथा जघन्य) आयु (देखो सूत्र ६)

द्वीप-उदधि- =द्वीप तथा समुद्र अर्थात् जम्बूद्वीपसे स्वयम्भूरमणद्वीपतक असंख्याते द्वीप और लवणोदधिसे स्वयम्भूरमण समुद्र पर्यंत असंख्याते समुद्र, उनके विस्तार और आकार (देखो सूत्र ७, ८, ९)

वास्य- =(जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रसे ऐरावतक्षेत्र लग सात) क्षेत्र (देखो सूत्र १०)

गिरि- =(हिमवान् से शिखिरी लग छह) पर्वत(वर्ण विस्तार सहित)(देखो सूत्र ११, १२, १३,)

एटानिवासी जगरूपसहाय वकीलकृत पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित सर्वार्थसिद्धिका शब्दशः हिन्दीअनुवाद अध्याय ३ समाप्त

सरःसरिताम् ॥ मानं नृणां च भेदः स्थितिस्तिरश्चामपि तृतीयाध्याये ॥ १ ॥

॥ इति तत्त्वार्थवृत्तौ सर्वार्थसिद्धिसञ्ज्ञिकायां तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

सरस्- =(पद्ममें पुंडरीकलों उन ह्रदपर्वतोंके ह्रद) सरोवर, उन सरोवरोंके पुष्कर, माप, परिवारसहित देवियां) (सूत्र १४, १५, १६, १७, १८, १९

सरिताम्॥ =चौदह नदियें (उनके वहनेकी दिशायें, और उनकी परिवारकी नदियें छोटीछोटी) (देखो सूत्र २०, २१, २२, २३)

मानं =(क्षेत्र तथा पर्वतोंके) माप, वा नाप (देखो सूत्र २४, २५, २६, ३२)

मानं =समयकी क्रिया(समन्तभद्रकोष पृष्ठ २६५) अर्थात् उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी रूप छह समय अथवा कालोंकी वृद्धि ह्रासरूप क्रिया (देखो सूत्र २७, २८)

मानं =परिमाण अर्थात् भरतक्षेत्र, कुलाचल, पर्वत, द्रह, आदि(देखो सूत्र ३३, ३४, ३५)कोंका जम्बूद्वीपमें धातकीखंड और पुष्करार्धमें दूना दूना परिमाण है। और मनुष्योंका परिमाणकि वे पुष्करद्वीपके आधे भागके इधर हैं(देखो सूत्र ३५)

नृणाम्॥ च॥ भेदः॥ =बहुरि (=च) मनुष्योंका भेद (देखो सूत्र ३६)

(नृणाम्) स्थितिः॥ =मनुष्यों की स्थिति अर्थात जीवन काल (देखो सूत्र २९, ३०, ३१, ३८)

तिरश्चाम्-अपि-(स्थितिः॥) =तिर्यचोंकी स्थिति वा आयु (देखो सूत्र ३९) (ये सब ही)

तृतीय-अध्याये॥ =तीसरे अध्याय में (वर्णन किये गये) हैं

इतितत्त्वार्थ-वृत्तौसर्वार्थसिद्धि-=ऐसे तत्त्वार्थकी व्याख्यामें सर्वार्थसिद्धि संज्ञिकायां तृतीयःअध्यायः॥ =नामाग्रंथमें तीसरा अध्याय(पूर्ण)हुआ॥

॥ अथ चतुर्थोऽध्यायः ॥

भवप्रत्ययोऽवधिर्देवनारकाणामित्येवमादिष्वसकृद्देवशब्द उक्तस्तत्र न ज्ञायते के देवाः कतिविधा इति वा तन्निर्णयार्थमाह—

॥ देवाश्चतुर्णिकायाः ॥१॥

देवगतिनामकर्मोदये सत्यभ्यन्तरे हेतौ बाह्यविभूति—

अथ* चतुर्थः। अध्यायः।	=चौथा अध्याय प्रारम्भ (=अथ) है।
भव-प्रत्ययः। अवधिः। देव-नारकाणाम्।	=भव अथवा जन्म निमित्तक अवधिज्ञान देव तथा नारिकियों के होता है।
इति* एवम्* आदिषु। असकृत्-	=इस प्रकार (=एवं) इत्यादि (सूत्रों) में अनेक बार अथवा बार बार (असकृत्)
देव-शब्दः। उक्तः। तत्र* न ज्ञायते।	=देव शब्द कहा गया है। वहां (ऐसा) नहीं बताया गया है कि
के। देवाः। कति। विधाः। इति वा तद्-	=देव कौन हैं अथवा (=वा) कितने प्रकार हैं। तिन (देवों) के
निर्णय-अर्थम्॥ आह।	=निश्चय के लिये (आचार्य उत्तर सूत्र में) कहते हैं कि
सूत्रम्—	**देवाश्चतुर्णिकायाः ॥ १ ॥**
सूत्रार्थः—देवाः। चतुर्-निकायाः।	=देवता चार समूह (=निकाय) संयुक्त हैं अथवा देव चार समूह वा संघवाले हैं। अर्थात् देवों के चार, भवनवासी, व्यंतर, जोतिष्क, वैमानिक समूह हैं।
वृत्त्यनुवादः—देवगति-नामकर्मउदये।	=देव गति नामक नामकर्मका उदय
सति। अभ्यन्तरे। हेतौ। बाह्य-विभूति-	=अंतरंगकारण होने पर (=सति) (और) बहिरंग ऐश्वर्य अथवा विभवके

(१) आदि शब्देन, देवनारकाणामुपपादः। न देवाः। इति सूत्रद्वयं ग्राह्यम्॥

आदि-शब्देन। । देव-नारकाणां। उपपादः। =(उपर्युक्त वृत्ति में) आदि शब्द से 'देवनारकाणां-उपपाद' अध्याय २ सूत्र ३४

न* देवाः। । इति सूत्र द्वयं॥ ग्राह्यम्॥ =(और) न देवाः (अध्याय २ सूत्र ५१) ऐसे दो सूत्र लिये गये हैं

(२) यह शब्द सकृत् अव्यय है जिसका अर्थ 'एक बार' है इसलिये अ सकृत =अन्-एक बार अर्थात् अनेक बार बारबार

(३) 'इति वा' ऐसा जान पड़ता है कि मुद्रणयंत्र की अशुद्धतासे, 'वा इति' अथवा (संधि करने से) वेति (वा-इति) के स्थान में 'इति वा' छप गया है। इसी सूत्र के संबन्धमें 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्र' मे 'तत्र के देवाः। कति विधा वेति' ऐसा पाठ है॥

विशेषैर्द्वीपादिसमुद्रादिषु प्रदेशेषु यथेष्टं दीव्यन्ति क्रीडन्ति ते देवाः ॥ इहैकवचननिर्देशो युक्तः "देवश्चतुर्णिकायः" इति, जात्यभिधानाद्बहूनां प्रतिपादको भवति ॥ बहुत्वनिर्देशस्तदन्तर्गतभेदप्रतिपत्त्यर्थः। इन्द्रसामानिकादयो बहवो भेदाः सन्ति स्थित्यादिकृताश्च तत्सूचनार्थः ॥ देवगतिनामकर्मोदयस्य स्वधर्म—

विशेषः ₃। द्वीपादि—समुद्रादिषु₂। प्रदेशेषु₂।	=विशेषकरि द्वीपादिक समुद्रादिक स्थानो में (=प्रदेशेषु)
यथा-इष्टम्* दीव्यन्ति-क्रीडन्ति ते₁। देवाः ₁।	=इच्छानुसार खेलतेहैं (=दिव्यन्ति) क्रीड़ा करते हैं वे देवता हैं
इह एक-वचन-निर्देशः₁। युक्तः₁।	=(प्रश्न) यह (सूत्र) एक वचनमें निरूपण वा वर्णन होना उचित (युक्त) था
देवः₁। चतुर-निकायः₁। इति* जाति-अभिधानात्₅॥।	=देवः चतुर्णिकायाः इस प्रकार क्योंकि समान जाति के कहने से
बहूनां₆॥। प्रतिपादकः₁। भवति	=बहुतकी प्रतिपत्ति वा ज्ञान होता है अर्थात इस सूत्र का प्रत्येक पद देवाः और चतुर्णिकायाः बहुवचन में हैं सो शिष्य प्रश्न करता है कि समान जाति के कथन करने में यदि ये पद "देवः चतुर्णिकायः" इस प्रकार एक वचन में होते तो भी बहुत के वाचक होते, तो ये दोनों पद बहुवचनान्त क्यों हैं। एक वचन में ही इन का निर्देश क्यों नहीं किया है।
बहुत्व-निर्देशः₁। तद्-अन्तर्गत-भेद-प्रतिपत्ति-अर्थः₁। इन्द्र-सामानिक-	=(उत्तर) बहुतता अर्थात बहुवचन का कथन (=निर्देश) उन (चार प्रकारके देवों) के अन्तर्भेद जानने के लिये (=प्रतिपत्ति) है (जैसे) इन्द्र-सामानिक (सूत्र ४)
आदयः₁। बहवः₁। भेदाः₁। स्थिति-आदि-कृताः₁। च* सन्ति	=आदिक बहुत भेद हैं और आयु आदिक
तद्-सूचन-अर्थः₁।	=तिन (इन्द्र सामानिक, आदि, तथा स्थिति, आदिक) के ज्ञापन वा जतलाने के लिये (देवाः चतुर्णिकायाः दोनों वाक्य बहुवचन में इस सूत्र में लाये) हैं
देवगति-नामकर्म-उदयस्य₆। स्वधर्म-	=देवगति नामा नामकर्म के उदय (और) अपने धर्म वा स्वभाव (=स्वधर्म) की अर्थात् देवगति में गमन करने वाले जीवों की।

विशेषापादितभेदस्य सामर्थ्यान्निचीयन्त इति निकायाः संघाता इत्यर्थः। चत्वारो निकाया येषां ते चतुर्णिकायाः॥ के पुनस्ते ? भवनवासिनो, व्यन्तरा, ज्योतिष्का, वैमानिकाश्चेति॥ तेषां लेश्यावधारणार्थमुच्यते—

॥ आदितस्त्रिषु पीतान्तलेश्याः ॥२॥

आदित इत्युच्यते अन्ते मध्ये वा ग्रहणं मा विज्ञायीति।

विशेष–आपादित–भेदस्य ६।१ सामर्थ्यात् ५।१॥ निचीयन्ते T	=विशेष प्राप्त भेदकी सामर्थ्य वा शक्तिसे भेदरूप समूह है।
इति* निकायाः १।३ संघाताः १।३ इति * अर्थ १।१	=ऐसे निकाय हैं समुदाय अथवा समूह इस प्रकार अर्थ है।
चत्वारः १।३ निकायाः १।३ येषां ६।३ ते १।३ चतुर्–निकायाः १।३	=चार समुदाय जिनके हैं। वे चतुर्णिकायाः हैं॥
के १।३ पुनः * ते १।३, भवन–वासिनः १।३ व्यन्तराः १।३	=बहुरि ते (चतुर्णिकाय) कोन हैं। (उत्तर) भवनवासी, व्यन्तर,
ज्योतिष्काः १।३ वैमानिकाः १।३ च इति तेषां ६।३ लेश्या–	=ज्योतिष्क बहुरि (=च) वैमानिका ऐसे हैं। उन (चार समुदाय)की लेश्याके–
अवधारण- अर्थम् १।१॥ उच्यते T	=नियम (=अवधारण) के लिये (अग्रिम सूत्रमें) कहा जाय है कि

सूत्रम् आदितस्त्रिषु पीतान्तलेश्याः ॥ २ ॥

सूत्रार्थः—आदितः * त्रिषु ७।३	=आरम्भसे (लेकर) तीन (समुदायके भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क देवों) में
पीत-अन्त–लेश्याः १।३	=पीत पर्यन्त (अर्थात् कृष्ण, नील, कापोत पीत. ये चार ही) लेश्या हैं॥
वृत्त्यनुवाद—आदितः * इति * उच्यते T अन्ते ७।१	=(इस सूत्रमें) आरम्भ से ऐसा वर्णित है। सो अन्त में
मध्ये ७।१ वा * ग्रहणं १।१॥ मा * विज्ञायि–इति *	=अथवा बीचमें ग्रहण मति (=मा) जानो अर्थात् आदिसे भवनवासी देवों के

(१) कहीं पर 'पीतान्त' पाठ है कहीं पर पीतान्त है दोनों ठीक हैं (देखो टिप्पणी पृष्ठ ५४०, ५४१)। श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य-तत्त्वार्थाधिगमसूत्र में "तृतीयः पीत लेश्याः २॥=तीसरा (निकाय वा समुदाय ज्योतिष्क देवों का) पीत लेश्या वाला है ऐसा दूसरा सूत्र है। 'पीतान्त लेश्या' ॥ ७॥ इस सूत्र में भाष्यकार ने सभाष्य ० के छठवां सूत्र "पूर्वयोर्द्वीन्द्राः" से 'पूर्वयोः' शब्दकी अनुवृत्ति लेकर ऐसा अर्थ किया है (पूर्वयोर्निकायोर्देवानां पीतान्ताश्चतस्रो लेश्या भवन्ति) =पहिले दो (भवनवासी और व्यन्तर) देवों के समुदाय के (आरंभ से लेकर) पीत पर्यंत चार (कृष्णा-नीला-कापोता पीता) लेश्या होती हैं॥ दिगंबरों का दूसरा, श्वेताम्बरोंका दूसरा और सातवां सूत्रोंको पढ़नेसे अर्थ भेद ऐसा हुआ कि दोनों के अनुकूल भवनवासी और व्यंतरों में उक्त चार लेश्या होती है। ज्योतिष्कोंमें हमारे यहां चार लेश्या मानी हैं उनके यहां पीत मानी है॥

आदौ आदितः ॥ द्वयोरेकस्य च निवृत्यर्थं त्रिग्रहणं क्रियते ॥ अथ चतुर्णां निवृत्यर्थं कस्मान्न भवति ? । आदित इति वचनात् ॥ षड्लेश्या उक्तास्तत्र चतसृणां लेश्यानां ग्रहणार्थं पीतान्तग्रहणं क्रियते ॥ पीतं तेज इत्यर्थः । पीता अन्ते यासां ताः पीतान्ताः लेश्या येषां ते पीतान्तलेश्याः ॥ एतदुक्तं भवति— आदितस्त्रिषु निकायेषु भवनवासिव्यन्तर—

समुदायसे पहिले तीन ग्रहण करना चाहिये न कि मध्यसे व्यन्तर ज्योतिष्कके समुदायोंसे अथवा अन्तसे वैमानिक समुदायसे (ग्रहण करो)

आदौ ७। आदितः * द्वयोः ६। एकस्य ६। च * =जो आदि विषें हो वा आदि पर हो सो आरम्भसे है (=आदित) दोयके और (=च) एकके

निवृत्ति— अर्थं ४॥ त्रि- ग्रहणं १॥। क्रियते T =निषेधके लिये (इस सूत्रमें) तीन (शब्द)का ग्रहण किया गया है ॥

अथ * चतुर्णां ६। निवृत्ति-अर्थं ४॥। कस्मात् ५। =(प्रश्न)आगे(=अथ)चारके निराकरणका अभिप्राय अथवा प्रयोजन किसी(शब्द)से

न * भवति T आदितः * इति * वचनात् ५॥। =(सूत्रमें)नहीं होता है (उत्तर) "आदितः" ऐसे वाक्यसे (देवोंके चौथे समुदायके ग्रहण का निषेध) होता है (क्योंकि "आदितः त्रिषु" अर्थात् आरम्भ से लेकर तीन भवनवासी व्यन्तर और ज्योतिष्क देवोंके समूह तो इससे ग्रहण होवे हैं और चौथा वैमानिकोंका निकायका प्रतिषेध वा निषेध हो जाता है ॥

षड् १॥ लेश्या १॥ उक्ताः १॥ तत्र* चतसृणां ६॥ लेश्याना ६॥ =छह लेश्यायें वर्णित हैं वहां चार लेश्याओं के

ग्रहण-अर्थं ४॥ पीत-अन्त-ग्रहणं १॥। क्रियते T =उपलब्धि वा ग्रहणके लिये(सूत्रमें)पीत तक(ऐसा वचन)ग्रहण किया गया है

पीतं १॥। तेजः १॥। इति अर्थः १। पीता १॥ अन्ते ७। यासां ६॥ =पीत है सो ही तेज है ऐसा अर्थ है। पीत (लेश्या) है अन्तमें जिन(लेश्याओं) के

ताः १॥ पीत-अन्त-लेश्याः १॥ =वे पीत पर्यन्त, लेश्या हैं

(पीतान्तलेश्याः १॥) येषां ६। ते १। पीतान्तलेश्याः १। =(पीतान्त लेश्या है) जिन्होंके वे पीतान्तलेश्या वाले देव हैं

एतद् १॥। (वा एतत् १॥।) उक्तं १॥। भवति— T =(तब इस समस्त सूत्रका)यह(=एतद्)कथन अर्थात् अर्थ होता है कि

आदितः * त्रिषु ७। निकायेषु ७। भवनवासिन्—व्यन्तर— =आरम्भसे तीन समुदाय भवनवासी—व्यन्तर—

ज्योतिष्कनामसु देवानां कृष्णा नीला कापोता पीतेति चतस्रो लेश्या भवन्ति ॥ तेषां निकायानामन्तर्विकल्प-प्रतिपादनार्थमाह—

॥ दशाष्टपञ्चद्वादशविकल्पाः कल्पोपपन्नपर्यन्ताः ॥३॥

ज्योतिष्क—नामसु ₍₁₎॥ देवानां ₍₂₎॥ कृष्णा ₍₃₎॥ नीला ₍₄₎॥ =ज्योतिष्क नामवालेदेवताओ के कृष्ण नील
कापोता ₍₅₎॥ पीता ₍₆₎॥ इति * चतस्रः ₍₇₎॥ लेश्याः ₍₈₎॥ भवन्ति T =कापोत पीत ऐसे चार लेश्यायें होती हैं।
तेषां ₍₁₎। निकायानां ₍₂₎। अन्तर्विकल्प– प्रतिपादन– अर्थम् ₍₃₎॥, आह =तिन समुदायोके अन्तर्भेद कहनेके लिये वा ज्ञान कराने के लिये =कहते हैं कि

सूत्रम्— दशाष्टपञ्चद्वादशविकल्पाः कल्पोपपन्नपर्यन्ताः ॥३॥

=(देवाश्चतुर्णिकायाः) दशाष्टपञ्चद्वादश विकल्पाः कल्पोपपन्नपर्यन्ताः ॥३॥

सूत्रार्थः—देवा ₍₁₎। चतुः-निकायाः ₍₂₎। दश-अष्ट-पञ्च =चार समुदाय वाले देव (यथासंख्य) दश, आठ, पांच,
द्वादश-विकल्पाः ₍₃₎। कल्प- उपपन्न- पर्यन्ताः ₍₄₎। =और बारह भेदों के धारक स्वर्ग में उत्पन्न होने वालों तक अर्थात् स्वर्ग-वासी देवों पर्यन्त (=कल्पोपपन्न पर्यंत) हैं। भावार्थ यह है कि दशप्रकार के भवन वासी देव हैं, आठ भेद व्यन्तर देवोंके हैं, पांच विकल्प ज्योतिषी देवोंके हैं। और बारह प्रकार के सोलह स्वर्ग पर्यन्त कल्पवासी देव हैं।

(.) दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नाओमें इस सूत्र का पाठ और अर्थ एकसा है। (२) ऊर्ध्व लोक के दो भेद हैं कल्प और कल्पातीत। और जिन में वैमानिक देव निवास करते हैं वे भी स्थान भेद से दो प्रकार हैं। एक कल्पोपपन्न अर्थात् प्रथम स्वर्ग मे सोलह स्वर्ग तक उत्पन्न हो कर उन स्वर्गों मे निवास करने वाले। इन देवों के ही बारह भेद इस सूत्र मे कहे हैं। दूसरे कल्पातीतोपपन्न अर्थात् सोलहवां स्वर्ग से ऊपर नव ग्रैवेयक, नव अनुदिश और पंचानुत्तर इन तेईस स्थानो मे उपजकर सोलहवां स्वर्ग से ऊपर बसते हैं। यह इन बारह भेदो में अन्तर्गत नहीं है।

चतुर्णां देवनिकायानां दशादिभिः संख्याशब्दैर्यथासंख्यमभिसम्बन्धो वेदितव्यः ॥ दशविकल्पा भवनवासिनः । अष्टविकल्पा व्यन्तराः । पञ्चविकल्पा ज्योतिष्काः । द्वादशविकल्पा वैमानिका इति ॥ सर्ववैमानिकानां द्वादशविकल्पान्तः पातित्वे प्रसक्ते ग्रैवेयकादिनिवृत्त्यर्थं विशेषणमुपादीयते कल्पोपपन्नपर्यन्ता इति ॥ अथ कथं कल्पसञ्ज्ञा ? इन्द्रादयः प्रकारा दश एतेषु कल्प्यन्त इति कल्पाः ॥ भवनवासिषु तत्कल्पना

शब्दानुवाद—चतुर्णाम् ;। देव-निकायानाम् ;।	=चार (भवनवासी,व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक) देवोंके समूह या समुदायोंका
दश– आदिभिः ;। संख्या-शब्दैः ;। यथासंख्यम् *	=दश, आठ, पांच और बारह गणना शब्दों में संख्या के क्रम से
अभिसम्बन्धः ;। वेदितव्यः ;।	=सम्बन्ध जानना चाहिये (इस प्रकार यथासंख्य सम्बन्ध करने से)
दश-विकल्पाः ;। भवनवासिनः ;। अष्ट-विकल्पाः ;।	=दश भेदरूप भवनवासी (देव) हैं। आठ भेदों के धारक
व्यन्तराः ;। पञ्च-विकल्पाः ;। ज्योतिष्काः ;। द्वादशविकल्पा ;।	=व्यन्तर हैं। पांच भेद वाले ज्योतिषी देव हैं। बारह भेदरूप
वैमानिकाः ;। इति *	=वैमानिक हैं अर्थात् प्रथम स्वर्ग से सोलह स्वर्ग पर्यंत उत्पन्न होने वाले देव हैं
सर्व-वैमानिकानाम् ;। द्वादश-विकल्प-अन्तः	=सब वैमानिक देवों का बारह भेदों के भीतर (=अन्तः)
पातित्वे ;।। प्रसक्ते ;।। ग्रैवेयक-आदि-निवृत्ति-अर्थम् ;।।।	=आजाने के (=पातित्वे) प्रसंग होने पर ग्रैवेयक आदि के निषेध के लिये
कल्पोपपन्न-पर्यन्ताः ;। इति * विशेषणम् ;।।	=कल्पोपपन्न पर्यन्ता ऐसा (इस सूत्र में) विशेषण
उपादीयते T, अथ * कथं * कल्प-संज्ञा ;।।	=लाया गया है (=उपादीयते)।प्रश्न (अथ) (इन वैमानिक देवों की) कल्पसंज्ञा कैसे है
इन्द्रादयः ;। प्रकाराः ;। दश ;। एतेषु ;।	=(उत्तर) इन्द्रादिक (देखिये सूत्र चौथा) दश भेद इन (वैमानिक देवों)में
कल्प्यन्ते T इति कल्पाः ;।	=कल्पना किये हैं या माने गये हैं इस प्रकार कल्पा है। अर्थात् कल्पसंज्ञा इन देवों की इस हेतु से है कि इन के दश भेदों की कल्पना की गई है।
भवनवासिषु T, ;। तत्कल्पना	=(प्रश्न) भवनवासि देवों में वही कल्पना है (उत्तर) (ऐसी कल्पना)

सम्भवेऽपि रूढिवशाद्वैमानिकेष्वेव वर्तते कल्पशब्दः ॥ कल्पषूपपन्नाः कल्पोपपन्नाः । कल्पोपपन्नाः पर्यन्ता येषां ते कल्पोपपन्नपर्यन्ताः ॥ पुनरपि तद्विशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

इन्द्रसामानिकत्रायस्त्रिंशपारिषदात्मरक्षलोकपालानीकप्रकीर्णकाभियोग्यकिल्विषिकाश्चैकशः ॥४॥

सम्भवे₇ अपि* रूढि-वशात्₅ वैमानिकेषु₇ एव*	=सम्भव होने पर भी प्रसिद्धता के वशसे वैमानिक देवो में ही
वर्तते T कल्प-शब्दः₁। कल्पेषु₇ उपपन्नाः₁।	=कल्पशब्द प्रवर्तता है। कल्पो अथवा स्वर्गों में उत्पन्न होने वाले हैं
कल्प-उपपन्नाः₁; कल्प-उपपन्नाः₁।	=वे कल्पोपन्न हैं अर्थात् स्वर्गवासी देव है। कल्पोमें उत्पन्न होनेवाले
पर्यन्ताः₁। येषाम्₆। ते₁। कल्पोपन्न-पर्यन्ताः₁।	=तक जिनके (बारह भेद) हैं वे कल्पोपन्न पर्यन्त हैं।
पुनः-अपि* तद्-विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थम्₂॥ आह T	=फिर भी उन (देवो) का विशेष जाननेके लिये (आचार्य अग्रिम सूत्रमें) कहतेहैं कि

सूत्रम्— इन्द्रसामानिकत्रायस्त्रिंशपारिषदात्मरक्षलोकपालानीकप्रकीर्णकाभियोग्य किल्विषिकाश्चैकशः ॥ ४॥

पदच्छेदः— इन्द्र-सामानिक-त्रायस्त्रिंश-पारिषद-आत्मरक्ष-लोकपाल-अनीक-प्रकीर्णक-आभियोग्य-किल्विषिकाः₁। च* एकशः* (देवनिकायेषु देवाः दशविधा भवन्ति)

(१) इस सूत्र का पाठ हमारे यहां एक सा है किसी २ प्रति में 'किल्विषिका' है किसी २ मे 'किल्विषिका' है कोषो मे 'किल्विष' शब्द पाप और अपराध के अर्थ मे मिलता है॥ श्वेताम्बर आम्नाय के संभाष्यतत्त्वार्थधिगमसूत्र में 'पारिषद' शब्दके स्थान में 'परिषद्य' है शेष पाठ दोनों आम्नायो में एक सा है अर्थ भी एक है। भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थ टीका (श्री सिद्धसेन सूरे रचित) में 'किल्विषिका' पाठ है। शेष पाठ उनके यहां भी एक है॥

(२) त्रयस्त्रिंशत्=तेतीस; त्रयस्त्रिंश वा त्रयस्त्रिंशत्तम (=त्रयस्त्रिंशत्तम) =तेतीसवां; त्रायस्त्रिंशताः वा त्रायस्त्रिंशाः=एक प्रकार के नियमित तेतीस देवो का समूह अर्थात् इन्द्रके मंत्री, पुरोहित के समान वा उनके स्थापन्न हैं वे त्रायस्त्रिंश हैं और इस जातिके ये तेतीस ही देव होते हैं॥ त्रायस्त्रिंशः=उन(३३) देवों मे से एक। उक्त छहो शब्द ठीक है परन्तु हमको चौथे और पांचवे सूत्र के पाठ में 'त्रायस्त्रिंशत्' शब्द पांच स्थानों में

अर्थ प्रकाशिकामें और पांच स्थानों में पं० सदासुखजी कृत लघुटीकामें, पांचवें सूत्रमें सर्वार्थसिद्धिकी दोनों आवृत्तियोमे और निर्णयसागर मुद्रणयंत्र के सोलह पाठ के गुटका में भी एक स्थान मे और चौथा पांचवां सूत्र हस्त लिखित वहुत सी प्रतियोमे देखे गये उनमें भी किसी २ स्थान में त्रायस्त्रिशत् मिलता है। साधारण पाठक प्रायः भ्रम में पड जाते हैं कि यह क्या बात है इससे हम इस लिखने को बाध्य हुये कि व्याकरण के अनुसार 'त्रायस्त्रिशत्' चौथे सूत्र में तथा 'त्रायस्त्रिशल्लोक' पांचवां सूत्र में सर्वथा अशुद्ध हैं।

पं० जयचन्द जी की वचनिका मुद्रित मे, तत्त्वार्थ राजवार्तिक मुद्रित में, तत्त्वार्थ श्लोक वार्तिक मुद्रित में, सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र मुद्रितमें, पं पन्नालाल जी मोक्षशास्त्र मुद्रित मे, जैनी जी अङ्गल भाषा में अनुवादित तत्त्वार्थाधिम सूत्र मे 'चौथे सूत्र' तथा 'त्रायस्त्रिशलोकपाल'... पांचवां सूत्र मे त्रायस्त्रिंश शुद्ध हैं वहुत से अन्य भाष्य और भाषा की टीकाएं देखी गई उनमे किसी किसी मे शुद्ध पाठ है अधिकतर में अशुद्ध पाठ हैं परन्तु श्वेताम्बरआम्नाय की भाषानुसारिणी तत्त्वार्थटीका (श्री सिद्धसेन सूरिरचित) हस्त लिखितमे उक्त पाठ दोनों सूत्रो का पृष्ठ ३१८ और ३१९ पर शुद्ध पाया गया है यह प्रति हस्तलिखित वहुकालीन है। और इसमें बाईस सहस्रश्लोक से अधिक हैं॥ परंतु स्मरण रहे कि त्रायस्त्रिशाँल्लोकपालांश्च' (=त्रायस्त्रिशान् लोकपालान् च) यह वाक्य ठीक है क्योंकि 'त्रायस्त्रिंश' शब्द की द्वितीया विभक्ति वहुवचन पुलिङ्गरूप 'रामान्' शब्द के सदृश वनता है॥ उक्त छहों शब्द 'त्रयास्त्रिशत्', 'त्रयस्त्रिंश' त्रयस्त्रिशत्तम' त्रायस्त्रिशत, 'त्रायस्त्रिंशाः' 'त्रायस्त्रिंश' क्यों शुद्ध और ठीक हैं तथा 'त्रायस्त्रिंशत' क्यों अशुद्ध है इन सबो के लिये निम्न लिखित हेतु क्रम से देते है॥ विंशति, त्रिंशत्, वीस, तीस हैं इनको प्रायः सवही जानते हैं। विंशति और त्रिंशत् शब्दो के पहले एक-द्वि-त्रि-चतुर्-पञ्चन्-षष्-सप्तन्-अष्टन्-नवन् जोडकर उनतीस और उनतालीस तकको संख्यायें बना लेते हैं परन्तु इनके वनाने में न् गिर जाता है, द्वि का द्वा, त्रि का त्रयः और अष्टन् का अष्टा हो जाता है हम केवल इकत्तीस से उनतालीस तक की संख्या लेते हैं एकत्रिंशत्=इकतीस, द्वात्रिंशत्=वत्तीस, त्रयस्त्रिंशत्=तेतीस, चतुस्त्रिंशत्=चौंतीस, पञ्चत्रिंशत्=पैंतीस, षट्त्रिंशत्=छत्तीस, सप्तत्रिंशत्=सैंतीस, अष्टात्रिंशत्=अड़तीस, नवत्रिंशत्=उनतालीस, (=एकोन चत्वारिंशत्)॥ त्रि+त्रिंशत्=त्रयः+त्रिंशत्=त्रयस्त्रिंशत् (तकारके हेतु से विसर्गका परिवर्तन स् में हो गया) इसलिये तीन+तीस=तेतीस त्रयस्त्रिंशत् शब्द बन गया ( ) विंशति और त्रिंशत् इत्यादि संख्याओं से क्रमिक संख्या के बनाने में, विंशति का ति और एकत्रिंशत्, द्वात्रिंशत्, त्रयस्त्रिंशत् आदिका व्यंजन गिरा देनेसे बन जाती है जैसे विंशति=बीस से विंश (=बीसवां) और त्रिंशत् (=तीस) से त्रिंश (=तीसवां) बन गया इस प्रकार एकत्रिंश=इकतीसवां, द्वात्रिंश=बतीसवां त्रयस्त्रिंश=तेतीसवां बनगया॥ ( ) क्रमिक संख्याके बनानेका दूसरा नियम यह है कि सख्याके अन्तमे 'तम' प्रत्यय लगाडेते है जैसे विंशति=बीस विंशतितम=बीसवां एक विंशति=इक्कीस, एकविंशतितम=इक्कीसवां, इत्यादि। त्रिंशत्=तीस, त्रिंशत्तम (=त्रिंशत्तमः) तीसवां॥ एकत्रिंशत्=इकतीस, एकत्रिंशत्तमः (=एकत्रिंशत्तमः)=इकतीसवां, द्वात्रिंशत्=बत्तीस, द्वात्रिंशत्तम (=द्वात्रिंशत्तमः) =बत्तीसवां॥ त्रयस्त्रिंशत्=तेतीस, त्रयस्त्रिंशत्तमः (=त्रयस्त्रिंशत्तमः) तेतीसवां॥ ( ) 'त्रायस्त्रिंशाः' यह नाम इन देवो का सार्थक है क्योकि ये तेतीसही होते हैं जैसा कि 'त्रयस्त्रिंशत्एव त्रायस्त्रिंशाः': (=तेतीस ही त्रायस्त्रिंश हैं—सर्वार्थसिद्धि वृत्ति पृष्ठ २३२ प्रथम संस्करण, और 'त्रयस्त्रिंशत् देवाः ते एव त्रायस्त्रिंशाः (=तेतीस देव हैं ते ही त्रायस्त्रिंश हैं—

तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक मुद्रित पृष्ठ ३७२, हस्तलिखित पृष्ठ २९६, वाक्योंसे प्रगट है। यह शब्द ऐसे बना है कि

(क) 'त्रयस्त्रिंशति जाताः त्रायस्त्रिंशाः'=त्रयस्त्रिंशति ७।। जाताः १। त्रायस्त्रिंशाः १। =तेतीसमें (जो) उत्पन्न हों (वे) त्रायस्त्रिंश (देव) हैं ॥

" त्रयस्त्रिंशति कहिये तेतीस संख्याके आधाररूप जे होंय ते त्रायस्त्रिंशाः तेतीस देव है " श्रीमान् विद्वद्रूप स्वर्गीय पं० पन्नोलाल जी न्यायदिवाकर अनुवादित तत्त्वार्थराजवार्तिक अर्थात् तत्त्वार्थरत्नमालानामाग्रन्थ के हस्तलिखित पृष्ठ ९०८ से उद्धृत ॥ आधाररूप=आश्रयरूप, अधिकरणरूप ॥

तत्र जातः । अष्टाध्यायी,अध्याय चौथा पाद तीन सूत्र पच्चीसवां और जैनेन्द्र व्याकरण ३-३-१ दोनों व्याकरणोंमेंशब्दशः एक पाठ है ॥

=तत्र*जातः १। (समर्थात् ५। अण्-आदयः १। घ-आदय१। प्रत्ययाः १।)॥समर्थात्की अनुवृत्ति इसीअध्यायके पादप्रथम सूत्र ८२ वां(समर्थानांप्रथमाद्वा) से लीगई है। 'अण्-आदय'और'घ-आदय'की अनुवृत्तिये,इसी अध्यायके पाद प्रथम सूत्र ८३ वां (पाद दो सूत्र २९ वां इत्यादि) (क्रमसे प्राग्दीव्यतोऽण्, महेन्द्राद् घणौ च इत्यादि) से अवसर आवश्यकता, और अर्थके अनुकूल ली गई है ॥ प्रत्ययाःकी अनुवृत्ति अष्टाध्यायी, अध्याय तीसरा पाद प्रथम सूत्र पहले से ली गई है ॥ तत्र= वहांपर, तहांपर अर्थात् एक शब्द जो सप्तमी विभक्तिमें हो, और जो तात्पर्य वा अर्थमें वाक्यके अवशेष शब्द वा पदोंसे सम्बन्ध रखता हो।

'समर्थ' का यहां पर यह आशय है कि ' वाक्यमें वह शब्द वा पद जो वाक्यके अन्य पदों के साथ मिलकर तात्पर्य वा अर्थ से सम्बन्ध रखता हो ' अर्थात् वाक्यके विग्रह करने पर उस (वाक्य) के तात्पर्य को प्रगट कर सके ॥

इस लिये "तत्र जातः" सूत्रका संस्कृत अर्थ ऐसा हुआ कि "सप्तमी समर्थाज्जात इत्यर्थेऽणादयो घादयश्च प्रत्ययाः स्युः" भावार्थ ऐसा है कि

तत्र* जातः १। इति * अर्थे ७। सप्तमी (विभक्ति अन्त) १।। =तहां उत्पन्न हुवा ऐसे अर्थमें सप्तमी है विभक्ति अन्त में (जिसके ऐसे)

समर्थात् ५। =समर्थपद (=वाक्यमें अन्य पद वा पदोंके साथ मिलकर तात्पर्य प्रकाशक शब्द वा पद) से अर्थात् ऐसे समर्थ पदके पश्चात्

अण्-आदयः १। च * घ-आदयः १। प्रत्ययाः १। स्युः T =अण् आदिक और घ आदिक प्रत्यय हों (अन्य प्रत्ययों को छोड कर केवल अण् को लेते हैं। अण् प्रत्यका ण् इत्संज्ञक है इस लिये अण्=अ 'त्रयस्त्रिंशति' में अण् जोडने से त्रयस्त्रिंशति+अ ऐसा रूप बना

त्रयस्त्रिंशति ७।। जातः=त्रयस्त्रिंशत्+अ

अष्टाध्यायी ७-२-११७ (तद्धितेष्वचामादे =तद्धितेषु, अचाम्, आदेः('ञ्णिति णिति' सूत्र ११५से और 'वृद्धिः' सूत्र ११४ से अनुवर्तता है)

=ञ्णिति. णिति तद्धतेषु अचाम् आदेः वृद्धिः=ञ्णिति तद्धित (संज्ञक)प्रत्यय हो तो (अङ्ग शब्द के स्वरोंमें से प्रथम स्वरको वृद्धि हो)

इसलिये ' त्रयस्त्रिंशत्+अ ' =त्रायस्त्रिंशत्+अ ॥ अब यहाँ पर अष्टाध्यायी , अध्याय चार पाद दूसरा सूत्र सातवां दृष्टं सामके नीचे यह वार्तिक है

कि "जाते चार्थेयोऽन्येन बाधितः पुनरण् विधीयते स वा डित्वद्भवतीति वक्तव्यम्'

च जाते अर्थे यः अण् अन्येन बाधितः पुनः विधीयते =और(च) जात अर्थमें जो अण् अन्य (सूत्र से बाधित होकर फिर विहित हो या लगाया जावे

सः डित्वत् वा =वह (अण्) डित्वत् (ङ है इत् संज्ञक जिसका ऐसे प्रत्ययके सदृश) विकल्पसे

भवति इति वक्तव्यम् =होता है (अर्थात् जो चाहे अण्को डित्वत् मानो या न मानो यह कहना चाहिये

भावार्थ चौथे अध्यायके प्रथम पादके तिरासीवां सूत्रके कथनसे, "अण्" प्रत्ययका अधिकार या प्रकरण 'तेन दीव्यति' इस (चौथे पाद के) सूत्रके पहिले पहिले है परन्तु 'अण्' इसी अध्यायके तीसरे पादके ग्यारहवां सूत्रमें बाधित हुआ है पश्चात् इसी पादके सोलहवां सूत्रमें विहित हुआ है या फिर लगाया गया है, फिर लागू किया गया है इस लिये इस अण् को डित्वत् विकल्पसे मान सकते हैं।

अब प्रश्न यह है कि 'डित्वत् विकल्पसे मानने में क्या लाभ है (उत्तर) अष्टाध्यायीके छठे अध्यायके चौथे पादके एकसौ तेतालीसवां सूत्र (टेः डिति लोप') से यदि किसी शब्द के पश्चात् डित् प्रत्यय आवे तो उस शब्द के टि (भाग) का अर्थात् उस शब्द के अंत के स्वरका मय उसके पश्चात् के व्यंजन का (यदि कोई हो तो) लोप हो जाता है। जैनेन्द्र व्याकरणकी शब्दार्णव चन्द्रिका नामक लघुवृत्तिके चौथे अध्यायके चौथे पादके १४०वां सूत्र, डिति टेः(ङ्टे डिति ख)=(टि संज्ञस्य ख (=लोप)भवतिडिति (र =टि संज्ञाका डित् परे लोप हो जाता है शतभिषज्(जहां से कड़ा तारा वैद्यों के समान है अश्विना से चोवीसवां नक्षत्र जिसके सो तारे हैं और त्रयस्त्रिंशत् तेतीस इन दोनों शब्दों के उपर्युक्त नियम से दो दो रूप जात अर्थ में इस प्रकार बन जाते हैं कि शातभिषजि जात (जो वहां शतभिषज में उत्पन्न हो) सो शतभिषज+अण् शातभिषज (यदि अण् को डित्वत् न मानें तो रूप होगा) और (यदि अण् को डित्वत् माने तो अज् का लोप हो कर शातभिष, जिनके प्रथमाविभक्ति एकवचन पुल्लिंग रूप 'शातभिषजः और शातभिष होंगे (देखो सिद्धान्त कौमुदीपर तत्वबोधिनी व्याख्या के तद्धित के रक्ताद्यर्थका प्रकरणका जहां शातभिषः और शातभिषज दोनों शब्द सिद्ध किये हैं त्रयस्त्रिंशति जातः =जो तेतीस में उत्पन्न हो सो त्रयस्त्रिंशत्+अण् त्रायस्त्रिंशत (यदि अण् को डित्वत् न मानें तो) और त्रायस्त्रिंश (यदि अण् को डित्वत् माने तो अत् का लोप होने पर) रूप होंगे जिनके प्रथमाविभक्ति एकवचन और प्रथमाविभक्ति बहुवचन क्रम से त्रायस्त्रिंशतः त्रायस्त्रिंशताः त्रायस्त्रिंशः 'त्रायस्त्रिंशाः' होंगे इस लिये त्रायस्त्रिंशत, और त्रायस्त्रिंशाः रूप शुद्ध हैं। और त्रायस्त्रिंशत् संख्या अशुद्ध है। पं० पन्नालाल जी न्यायदिवाकार अनुवादित तत्वार्थ राजवार्तिक लिखित पृष्ठ ९०८ में 'त्रायस्त्रिंशत शब्द तैंतीस रूपमें इन्द्रनिके मंत्री और पुरोहित के स्थानीय 'त्रायस्त्रिंशत' कहिये तेतीस देव होय हैं। इस वाक्य में आया है।

इत. ३।१।८२ यहा पर 'इत्' ऐसा एक वचनांत शब्द का ही उल्लेख उपर्युक्त था अथवा तद्धिता॰ अष्टाध्यायी अध्याय चार पादएक सूत्र ७६ के तद्धित

शब्द का ही प्रयोग उचित था फिर हृतः (वा तद्धिताः) इस वहुवचनांत शब्द का जो उल्लेख किया गया है उसकी सामर्थ्य से स्वार्थ मे भी अण् आदि प्रत्ययोंका विधान माना गया है। हमारे यहां के व्याकरणों मे 'स्वार्थके ऽण्' वचन प्रसिद्ध है और अन्य व्याकरणों में 'स्वार्थेऽण्' ऐसा वाक्य प्रसिद्ध हैं त्रायस्त्रिंश तेतीस देवता (जो देव शब्द के विना अर्थ के परिवर्तनके निकला है स्त्रीलिंग है) ओंमे से एक देवता ऐसा अर्थ है। और यह देवता शब्द प्रज्ञादि गण का है इसीलिये यहां पर 'प्रज्ञादिभ्योऽण्' = प्रज्ञादिक छत्तीस शब्दों के पश्चात् अपने अर्थ में अण् प्रत्यय हो। शाकटायन शब्दानुशासन ३।४।१३२ सूत्र लगा है अथवा प्रज्ञादिभ्य (जैनिन्द्र व्याकरण ४-२-५२ सूत्र) =प्रज्ञादिभ्यः (अण्), इस अण् की अनुवृत्ति पचासवां सूत्र 'कर्मणो अण्' से आती है। पभ्योऽण स्पाद्वा स्वार्थे =स्वार्थ में इन प्रज्ञादि शब्दों से परे विकल्पकरि अण् प्रत्यय हो। अथवा "प्रज्ञादिभ्यश्च" (प्रज्ञ इत्येवमादिभ्यः प्रातिपादिकेभ्यः स्वार्थेण् प्रत्ययोभवति =प्रज्ञ इत्यादिक प्रातिपदको से परेस्वार्थ में अण् प्रत्यय हो। अष्टाध्यायी ५।४।३८ सूत्र लगता है। प्रज्ञ-आदिभ्यः च (अण्),इस सूत्रमें "अण् की अनुवृत्ति तद्युक्तात्कर्मणोऽण्" छतीसवां सूत्र से आती है। स्वार्थ की अनुवृत्ति तीसरे सूत्र "स्थूलादिभ्य प्रकार वचनेकन्" से ज्ञापकरूपमें निकलती है। यह अण् किसी दुसरे प्रत्यय से वाधित नहीं हुआ है। क्योंकि इस छत्तीवें सूत्र के "अण्" की अनुवृत्ति सेतीसवां और अड़तीसवां दोनों सूत्रो में है इसलिये यह अण् विकल्पकरि 'डित्वत्' हमारी समझ में है और डित्वत् होने मे पूर्वोक्त कथनानुसार त्रायस्त्रिंशः और त्रायास्त्रशतः दो रूप वनेगे और त्रायस्त्रित् अर्थात् हलन्तत काररूप वाला शब्द कदापि नहीं वनेगा। वह अशुद्ध सर्वप्रकार से है। इसका विग्रह तत्वार्थ राजवार्तिक पृष्ठ १५१ और सर्वार्थसिद्धि वृत्ति पृष्ठ २३२ (द्वितीय संस्करण पृष्ट १३६) में जहां स्वार्थमें "अण्" प्रत्यय किया है ऐसा है त्रयस्त्रिंशदेव त्रायस्त्रिंशाः = त्रयस्त्रिंशत् एव त्रायस्त्रिंशाः =तेतीस ही त्रायस्त्रिंश है अर्थात् "त्रयस्त्रिंशत् एव कहिय तेतीसही त्रायस्त्रिंश हैं" पं० पन्नालाल न्यायदिवाकर और श्लोकवार्तिक मुद्रित पृष्ठ ३७२ मे इसका विग्रह ऐसा है कि "त्रयस्त्रिंशद्देवा एव त्रायस्त्रिंशा" 'स्वार्थिकोऽपिहृत्' इति वहुत्व निर्देशात् त्रयस्त्रिंशत् देवा एव कहिये तेतीस देव ही त्रायस्त्रिंश है। ऐसे हृत. वहुवचनांत निर्देश वा उपदेशसे स्वार्थ में भी (अण् तद्धित प्रत्यय आता) है इस समस्त उपर्युक्त व्याख्या का सारांश यह निकला कि त्रयस्त्रिंशत् (-तेतीस) (२) त्रयस्त्रिंश =तेतीसवां (३) त्रयस्त्रिंशत्तम =तेतीसवां (४) त्रायस्त्रिंशः तेतीस नियत देवों में से एक (५) त्रायस्त्रिंशाः तेतीस नियमित देव (६) त्रायस्त्रिंशतः तेतीस नियत देवों में से एक (७) त्रायास्त्रशता. तेतीस नियमित देव ये सातों शब्द ठीक और शुद्ध है परन्तु त्रायस्त्रिंशत् शब्द सर्वथा अशुद्ध है।

(१) त्रयस्त्रिंशदेव त्रायस्त्रिंशाः (=त्रयस्त्रिंशत् एव त्रायस्त्रिंशाः)॥ तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ १५१ में इस वाक्य के संबंध में ऐसा उल्लेख है कि "स्वार्थ के ऽण्, त्रयस्त्रिंशदेव त्रायस्त्रिंशा इति हृत इति बहुत्व निर्देशादंतमाश्वित्" अपने अर्थ को द्योतक करते हुये (शब्दमे) अण् (=अ) प्रत्यय आता है और तेतीस ही त्रायस्त्रिंश हैं ऐसा वना अर्थात् त्रयस्त्रिंशत् शब्द में अपने अर्थ मे अण् लगाने से 'त्रायस्त्रिंश' वना॥ (शंका) त्रयस्त्रिंशत्+अण्=त्रायस्त्रिंशत वनना चाहिये क्योंकि अण् डित् वत् हुआ नहीं फिर 'अत्' का लोप न हुआ॥ अत् को 'टि' कहते है (६-४-१४३, १-१-६४) (देखो उपर्युक्त टिप्पणी पृष्ठ ८-११ तक)

अन्यदेवासाधारणाणिमादिगुणयोगादिन्दन्तीति १ इन्द्राः ॥ आज्ञैश्वर्यवर्जितं यत्समानायुर्वीर्यपरिवार-भोगोपभोग तत्समानं, तस्मिन्समाने भवाः २ सामानिकाः । महत्तराः पितृगुरूपाध्यायतुल्या ॥ मन्त्रिपुरोहित-स्थानीयाः ३ त्रायस्त्रिंशाः त्रयस्त्रिंशदेवत्रायस्त्रिंशाः

सूत्रार्थ—इन्द्र-सामानिक-त्रायस्त्रिंश-पारिषद्- =इन्द्र, सामानिक, त्रायस्त्रिंश, पारिषद,
आत्मरक्ष-लोकपाल-अनीक-प्रकीर्णक-आभियोग्य =आत्मरक्ष, लोकपाल, अनीक, प्रकीर्णक, आभियोग
किल्विषिकाः;। च* एकशः* देवनिकायेषु;। =और किल्विषिक एक एक देवों के समूह में
(देवाःदशविधा* भवन्तिT) =दश दश प्रकार के देव होते हैं अर्थात् (१) देवों का राजा (२) आज्ञा और ऐश्वर्य रहित अन्य बातों में इन्द्र के समान हों (३) मंत्री और पुरोहित के समान तेतीस देव (४) सभासद (५) शरीर रक्षक (६) कोटपाल वा गढ़पाल (७) पियादे आदिक सात प्रकार की सैना (८) प्रजाके सदृश देव (९) सेवकों के स्थानापन्न वा ठौर (१०) नीच अधम चांडालों के सदृश देव ये एक एक देवों के समूह में दश दश प्रकार के देव होवे हैं।

वृत्त्यनुवादः—अन्य-देव-असाधारण-अणिमादि-गुण- =अन्य देवों से असमान्य वा विशेष अणिमादिक ऋद्धिरूप गुणों के
योगात्;। इन्दन्तिT =संयोग से जो ऐश्वर्य करिवते हैं तथा ऐश्वर्य को प्राप्त हुये हैं
इति(१) इन्द्राः;। आज्ञा-ऐश्वर्य-वर्जितं;॥ यत्;॥ समान- =ऐसे (१) इन्द्र हैं ॥ आज्ञा और ऐश्वर्य रहित जो तुल्य वा बराबर
आयुर्-वीर्य- परिवार-भोग-उपभोगादि- =जीवनकाल, बल, परिवारभोग और उपभोगादिक हैं।
तत्;॥ समानं;॥ तस्मिन्;॥ =वह समान हैं, तिस (आयु, बल, परिवार, भोग, उपभोगादिक) में
समाने;॥ भवाः (२) सामानिकाः;। महत्तराः;। =समान (इन्द्रके) हैं (२) वे सामानिक हैं(वे सामानिक) बड़े वा महत्वमहिमावाले हैं
पितृ-गुरु-उपाध्याय-तुल्याः;। ॥ मन्त्रि-पुरोहित- =(और इन्द्र के) पिता, गुरु, उपाध्याय के सदृश हैं॥ (इन्द्रके) मन्त्री पुरोहित के
स्थानीयाः;। (३)त्रायस्त्रिंशाः;। त्रयस्त्रिंशत्;। एव त्रायस्त्रिंशाः =स्थानापन्न है। वे त्रायस्त्रिंश है, तेतीस ही त्रायस्त्रिंश हैं॥

वयस्यपीठमर्दसदृशाः परिषदि भवाः ४ पारिषदाः ॥ ५ आत्मरक्षाः शिरोरक्षोपमानाः ॥ अर्थचरा-रक्षकसमानाः ६ लोकपालाः । लोकं पालयन्तीति लोकपालाः ॥ पदात्यादीनि सप्त ७ अनीकानि दण्डस्थानीयानि ॥ ८ प्रकीर्णकाः पौरजानपदकल्पाः ॥

वयस्य-पीठमर्द- =मित्र (=वयस्य) और संधानकारी अथवा पिछाड़ी दाव बैठने वालोंके

सदृशाः₃। परिषदि₇॥ भवाः₁। (४) पारिषदाः₁। ॥ =सरीखे सभा में हो (४) वे पारिषद हैं ॥

(५) शिरस्-रक्षा-उपमानाः₁। आत्मरक्षाः ₁। ॥ =शिरकी रक्षा करने वालो के समान वा सदृश (५) आत्मरक्षक हैं । अर्थात् इन्द्र के शुभ शस्त्र धारी अंग की रक्षा करने वालों के सदृश हैं ॥

अर्थ-चर- =(किसी) वस्तु-बात-विषय अथवा प्रयोजनके सन्धानी, खोजिया वा खोजी (=चर)

आ-रक्षक-समानाः₁। (६) लोकपालाः₁। =और सर्वतः रक्षा करने वालो के (आ-रक्षक) सदृश (६) लोकपाल हैं

लोकं ₂। पालयन्ति इति लोकपालाः₁। ॥ पदाति- =लोक को पालते हैं अथवा रक्षा करते हैं ऐसे लोकपाल हैं ॥ पियादे (=पदाति)

आदीनि₁॥ सप्त₁॥ दण्ड-स्थानीयानि₁॥ ॥ ७ अनीकानि₁॥ =आदिक सात (प्रकार की) सैना (=दण्ड) के स्थानापन्न (७) अनीक हैं । अर्थात् पियादे, अश्व, वृषभ, रथ, हस्ती, गंधर्व और नर्त्तगी इन सात प्रकार की सैनाओं के रूप धारण करने वाले देव हैं वे अनीक वा सैना के ठौर हैं ॥

(८) प्रकीर्णकाः₁। पौर-जानपद-कल्पाः₁। ॥ =(८) प्रकीर्णक नगरवासी (=और) तथा देश से आये हुओं के (=जानपद) समान हैं अर्थात् प्रकीर्णक देव, इन्द्रके पुरवासी तथा राज्यकी प्रजाके सदृश हैं ॥

---

(१) परिषद् स्त्रीलिंग है अर्थ सभा वा धर्म सभा है परन्तु पारिषद और परिषद और परिषद्य का अर्थ सभासद के है ।

(२) अङ्ग-रक्षा-उपमाना ₁। =शरीर की रक्षा करने वालों के समान है । यद्यपि देवोंमें घातादिक नहीं है तथापि ऋद्धि विभवकी महिमा के लिये इस प्रकार के भेद हैं ॥

अर्थ-उत्पादक-कोट-पाल-सदृशाः₁। =प्रयोजन के निकालने वाले और गढ़ की रक्षा करनेवालो के समान है

सादृश्य अर्थ मे यहां "कल्पप्" प्रत्यय है जैसे "पितृ कल्प" पिता के समान "गुरु कल्प" गुरु के समान इसी प्रकार "पौर जानपदकल्पाः" नगरवासी और देशसे आये हुओं के समान ॥ "कल्प" शब्द के अर्थ नीचे लिखते हैं ॥

(१) "संवर्त्तः प्रलयः कल्पः क्षयः कल्पान्त इत्यपि" अमर कोश काल वर्ग श्लोक २२ संवर्त्त, प्रलय, कल्प, क्षय, कल्पांत, ये पांच (पु०) नाम प्रलयके हैं ॥

(२) "कल्पे विधि क्रमौ" कल्पं, विधि क्रम ये तीन (पु०)नाम नियोग शास्त्र के हैं अमरकोषब्रह्मवर्ग ३९ के श्लोक का अंत भाग ॥

(३) अभ्रेष न्याय कल्पास्तु देशरूप समञ्जसम्" अभ्रेष (पु०) न्याय (पु०) कल्प (पु०) देशरूप (न०) समंजस (न०) ये नाम नीतिके हैं क्षत्रिय वर्ग २४ ॥

अन्यदेवासाधारणाणिमादिगुणयोगादिन्दन्तीति १ इन्द्राः ॥ आज्ञाश्चैर्यवर्जितं यत्समानायुर्वीर्यपरिवार-भोगोपभोग तत्समानं, तस्मिन्समाने भवाः २ सामानिकाः । महत्तराः पितृगुरूपाध्यायतुल्या ॥ मन्त्रिपुरोहित-स्थानीयाः ३ त्रायस्त्रिंशाः त्रयस्त्रिंशदेवत्रायस्त्रिंशाः

सूत्रार्थ—इन्द्र-सामानिक-त्रायस्त्रिंश-पारिषद्-	=इन्द्र, सामानिक, त्रायस्त्रिंश, पारिषद,
आत्मरक्ष-लोकपाल-अनीक-प्रकीर्णक-आभियोग्य	=आत्मरक्ष, लोकपाल, अनीक, प्रकीर्णक, आभियोग
किल्विषिकाः१। च* ऐकशः* देवनिकायेषु२।	=और किल्विषिक एक एक देवों के समूह में
(देवाःदशविधा* भवन्तिT)	=दश दश प्रकार के देव होते हैं अर्थात् (१) देवों का राजा (२) आज्ञा और ऐश्वर्य रहित अन्य वातों में इन्द्र के समान हों (३) मंत्री और पिरोहित के समान तेतीस देव (४) सभासद (५) शरीर रक्षक (६) कोटपाल वा गढ़पाल (७) पियादे आदिक सात प्रकार की सैना (८) प्रजाके सदृश देव (९) सेवकों के स्थानापन्न वा ठौर (१०) नीच अधम चांडालों के सदृश देव ये एक एक देवों के समूह में दश दश प्रकार के देव होते हैं।
वृत्त्यनुवादः—अन्य-देव-असाधारण-अणिमादि-गुण-	=अन्य देवों से असमान्य वा विशेष अणिमादिक ऋद्धिरूप गुणों के
योगात्५। इन्दन्तिT	=संयोग से जो ऐश्वर्य करिवर्ते हैं तथा ऐश्वर्य को प्राप्त हुये हैं
इति(१) इन्द्राः१। आज्ञा-ऐश्वर्य-वर्जितं१॥ यत्१॥ समान-	=ऐसे (१) इन्द्र हैं ॥ आज्ञा और ऐश्वर्य रहित जो तुल्य वा बराबर
आयुर्-वीर्य- परिवार-भोग-उपभोगादि-	=जीवनकाल, वल, परिवारभोग और उपभोगादिक हैं।
तत्१॥ समानं१॥ तस्मिन्७॥	=वह समान हैं, तिस (आयु, वल, परिवार, भोग, उपभोगादिक) में
समाने७॥ भवाः (२) सामानिकाः१। महत्तराः१।	=समान (इन्द्रके) हैं (२) वे सामानिक हैं(वे सामानिक) वड़े वा महत्वमहिमावाले हैं
पितृ-गुरू-उपाध्याय-तुल्याः१। ॥ मन्त्रि-पुरोहित-	=(और इन्द्र के) पिता, गुरु, उपाध्याय के सदृश हैं॥ (इन्द्रके) मन्त्री पुरोहित के
स्थानीयाः१। (३)त्रायस्त्रिंशाः१। त्रयस्त्रिंशत्१। एव त्रायस्त्रिंशाः	=स्थानापन्न हैं। वे त्रायस्त्रिंश हैं, तेतीस ही त्रायस्त्रिंश हैं॥

वयस्यपीठमर्दसदृशाः परिषदि भवाः ४ पारिषदाः ॥ ५ आत्मरक्षाः शिरोरक्षोपमानाः ॥ अर्थचरा-रक्षकसमानाः ६ लोकपालाः। लोकं पालयन्तीति लोकपालाः ॥ पदात्यादीनि सप्त ७ अनीकानि दण्डस्थानीयानि ॥ ८ प्रकीर्णकाः पौरजानपदकल्पाः ॥

वयस्य-पीठमर्द-	=मित्र (=वयस्य) और संधानकारी अथवा पिछाड़ी दाव बैठने वालोके
सदृशाः। परिषदि॥ भवाः। (२) पारिषदाः। ॥	=सरीखे सभा में हो (४) वे पारिषद हैं ॥
(५) शिरस्-रक्षा-उपमानाः। आत्मरक्षाः ।॥	=शिरकी रक्षा करने वालों के समान वा सदृश (५) आत्मरक्षक हैं। अर्थात् इन्द्र के शुभ शस्त्र धारी अंग की रक्षा करने वालो के सदृश हैं ॥
अर्थ-चर-	=(किसी) वस्तु-बात-विषय अथवा प्रयोजनके सन्धानी, खोजिया वा खोजी (=चर)
आ-रक्षक-समानाः। (६) लोकपालाः।	=और सर्वतः रक्षा करने वालों के (आ-रक्षक) सदृश (६) लोकपाल हैं
लोकं। पालयन्तिT इति लोकपालाः। ॥ पदाति-	=लोक को पालते हैं अथवा रक्षा करते है ऐसे लोकपाल हैं ॥ पियादे (=पदाति)
आदीनि॥ सप्त॥ दण्ड-स्थानीयानि॥ ॥ ७ अनीकानि॥	=आदिक सात (प्रकार की) सैना (=दण्ड) के स्थानापन्न (७) अनीक हैं। अर्थात् पियादे, अश्व, वृषभ, रथ, हस्ती, गंधर्व और नर्त्तगी इन सात प्रकार की सैनाओ के रूप धारण करने वाले देव हैं वे अनीक वा सैना के ठौर हैं ॥
(८) प्रकीर्णकाः। पौर-जानपद-	=(८) प्रकीर्णक नगरवासी (=और) तथा देश से आये हुओं के (=जानपद)
कल्पाः। ॥	=समान हैं अर्थात् प्रकीर्णक देव, इन्द्रके पुरवासी तथा राज्यकी प्रजाके सदृश हैं ॥

(१) परिषद् स्त्रीलिंग है अर्थ सभा वा धर्म सभा है परन्तु पारिषद और परिषद और परिषद्य का अर्थ सभासद के है।

(२) अङ्ग-रक्षा-उपमाना। =शरीर की रक्षा करने वालों के समान है। यद्यपि देवोंमें घातादिक नहीं है तथापि ऋद्धि विभवकी महिमा के लिये इस प्रकार के भेद हैं ॥

अर्थ-उत्पादक-कोट-पाल-सदृशाः। =प्रयोजन के निकालने वाले और गढ़ की रक्षा करनेवालोके समान है

सादृश्य अर्थ मे यहां "कल्पप्" प्रत्यय है जैसे "पितृ कल्प" पिता के समान "गुरु कल्प" गुरु के समान इसी प्रकार "पौर जानपदकल्पाः" नगरवासी और देशसे आये हुओं के समान ॥ "कल्प" शब्द के अर्थ नीचे लिखते हैं ॥

(१) "संवर्त्तः प्रलयः कल्पः क्षयः कल्पान्त इत्यपि" अमर कोश काल वर्ग श्लोक २२ संवर्त्त, प्रलय, कल्प, क्षय, कल्पांत, ये पांच (पु०) नाम प्रलयके हैं ॥

(२) "कल्पे विधि क्रमौ" कल्पं, विधि क्रम ये तीन (पु०)नाम नियोग शास्त्र के है अमरकोश ब्रह्मवर्ग ३९वें श्लोक का अंत भाग ॥

(३) अभ्रेष न्याय कल्पास्तु देशरूप समञ्जसम्" अभ्रेष (पु०) न्याय (पु०) कल्प (पु०) देशरूप (न०) समंजस (न०) ये नाम नीतिके हैं क्षत्रिय वर्ग २४ ॥

९ आभियोग्या दाससमाना वाहनादिकर्माणि प्रवृत्ता अन्तेवासिस्थानीयाः ॥ किल्बिषं पापं येषामस्ति ते १० किल्बिषिकाः ॥ एकैकस्य निकायस्य एकश एते इन्द्रादयो दश विकल्पाश्चतुर्षु निकायेषूत्सर्गेण प्रसक्तास्ततोऽपवादार्थमाह—

॥ त्रायस्त्रिंशलोकपालवर्ज्या व्यन्तरज्योतिष्काः ॥५॥

(९) आभियोग्याः ३। दास-समानाः ३।	=(९) आभियोग्य (वे देव हैं जो) सेवकों और किंकरों के तुल्य
वाहन-आदि कर्मणि ७॥ प्रवृत्ताः १। अन्ते-	=(हस्ति घोड़े इत्यादि) वाहनादिक कार्य में प्रवर्तनेवाले हैं।(नगरके) अन्तमें
वासि-स्थानीयाः ३॥ किल्बिषं १॥ पापं १॥	=रहनेवालों को स्थानापन्न (और) अपराध (=किल्बिष) पातक (=पापं)
येषाम् ६। अस्ति ते ३। १० किल्बिषिकाः ३।	=जिनके (उदय) है ते १० किल्बिष हैं अर्थात् पापकर्म के उदय सहित नीच जाति के देव चंडालों के समान नगर से बाहर रहने वाले और दूर ही खड़े होने वाले ऐसे किल्बिष्क देव हैं ॥ और जिनकी गणना क्रममें दशवीं है
एक-एकस्य ६। निकायस्य ६। एकशः ※	=एक एक समुदाय के क्रम से (=एकशः)
एते ३। इन्द्रादयः ३। दश ३ विकल्पा ३। चतुर्षु ७।	= ये इन्द्रादिक दश भेद चारों
निकायेषु ७। उत्सर्गेण ३। प्रसक्ताः ३।	=समूहों में सामान्यपने से (इस सूत्र के अनुसार) प्राप्त हैं (प्रसक्ता)
ततः ※ अपवाद-अर्थं २॥ आह T	=इस कारण (=ततस्)अपवाद के लिये (आचार्य अगला सूत्रमें)कहते हैं कि

(१) सूत्रम्— त्रायस्त्रिंशलोकपालवर्ज्या व्यन्तरज्योतिष्काः ॥५॥

=त्रायस्त्रिंशलोकपालवर्ज्या व्यन्तरज्योतिष्काः (इतरे अष्टौ विकल्पा भवन्ति) ॥८॥

सूत्रार्थः—त्रायस्त्रिंश-लोकपाल-वर्ज्याः ३। व्यन्तर-	=त्रायस्त्रिंशनामक तेतीस देव और लोकपाल को छोड़ कर व्यन्तर देवों के
ज्योतिष्काः ३। इतरे ३। अष्टौ ३। विकल्पा ३। भवन्ति T	=तथा ज्योतिष्क देवों के अन्य आठ भेद होते हैं अर्थात् चार निकायोंमेंसे व्यन्तर तथा ज्योतिष्क इन दो निकायों में इंद्र, सामानिक पारिषद, आत्मरक्ष, अनीक प्रकीर्णक, आभियोग्य और किल्बिषिक ये आठ ही भेद होते हैं।

(१) इस सूत्र का श्वेताम्बर आम्नाय के सभाष्य में तथा भाष्यानुसारिणितत्वार्थटीका (सिद्धसेन सूरि रचित) में और हमारे यहाँ पाठ अर्थ एक है।

अथ तेषु निकायेषु व्यन्तरेषु ज्योतिष्केषु च त्रायस्त्रिंशलोकपालांश्च वर्जयित्वा इतरेअष्टौ विकल्पा द्रष्टव्या ः॥ अथ तेषु निकायेषु किमेकैक इन्द्र उतान्यः प्रतिनियमः कश्चिदस्तीत्यत आह–

॥ पूर्वयोर्द्वीन्द्राः ।६।

वृत्यनुवाद– व्यन्तरेषु ९। ज्योतिष्केषु ७। च ❀ =व्यंन्तरों और (=च) ज्योतिष्कविषै

आयस्त्रिंशान् २। लोक-पालान् २। च ❀ वर्जयित्वा÷इतरे १। =त्रायत्रिंशों को और लोकपालों को छोड़कर अन्य

अष्टौ १। =आठ(इन्द्र-सामानिक-पारिषद, आत्मरक्ष-अनीक-प्रकीर्णक-आभियोग्य, किल्विषिक,

विकल्पाः १। द्रष्टव्याः १। अथ ❀ तेषु ७। निकायेषु ७। किम् ❀ =भेद जानना चाहिये । आगे (=अथ) तिन समूहों में क्या

एक-एकः १। इन्द्रः १। उत ❀ अन्य १। एक एक इन्द्र है ।अथवा(=उत)दूसरा

प्रतिनियमः १। कश्चित् ❀ अस्ति T इति ❀ अतः ❀ आह T=कोई नियम है इसलिये (आचार्य अगले सूत्रमें) कहते है कि

सूत्रम्– पूर्वयोर्द्वीन्द्रा ॥६॥

पूर्वयोनिकायाद्वीन्द्रा ॥६॥

सूत्रार्थः– पूर्वयोः ७। निकायोः ७। द्वी-इन्द्राः १। =पहिले दो समुदाय (भवनवासी और व्यन्तरों) मेंप्रत्येक भेद के दो दो इन्द्र हैं अर्थात् पूर्वोक्त देवों के चार समुदायों में से पहिले दो भवनवासी देवों के प्रत्येक भेद में (देखो सूत्र १०) दो २ इन्द्र हैं और व्यन्तर देवों के प्रत्येक भेद में

(२) जब तवर्ग से ल पश्चात् आवे तो तवर्ग को ल् ही हो जैसे तत्+लय = तल्+लय = तल्लय परन्तु नकार को अनुनासिक ही लकार हो जैसे त्रायस्त्रिंशान्+लोकपालान्=त्रायस्त्रिंशांल्लोकपालान् । (२) जब अंतिम न् के उत्तर में च् छ् ' त्-थ् । और ट् ठ् में से कोई आवे तो वह न् अनुस्वार और विसर्ग में पलट जाता है । जैसे लोकपालन् च = लोकपालांः च यदि विसर्ग के पश्चात् च् अथवा छ् आवे तो वह विसर्ग श् में पलट जाता है इस कारण लोकपालान् = लोकपालांश्च हुआ जैसे कि वृत्ति में है ।

(३) श्वेताम्बर आम्नाय के सभाष्यतत्वार्थाधिगमसूत्र ' का तथा श्री सिद्धसेन रचित भाष्यानुसारिणितत्वार्थटीका का और अधिकतम हमारे यहाँ की पुस्तको का पाठ इस सूत्र का एक है अर्थ सर्वत्र एक है । ज्ञानचन्द्र जी मुद्रित तत्वार्थ सूत्र में "पूर्वयोर्द्वीन्द्राः" ऐसा पाठ है यह भी पाठ "अचोरहाभ्याम् द्वेवा" सूत्र से ठीक है । (४) पूर्वयोः निकायोः प्रत्येक शब्द षष्ठी दो वचन में भी हो सका है उस समय अर्थ ऐसा होगा कि पहिले दो समुदाय (भवनवासी और व्यन्तरों) के इत्यादि ' (५) द्वी-इन्द्रा = प्रत्येक भेद के दो दो इन्द्र हैं (यह अर्थ कैसे हुआ देखो वृत्ति में यह वाक्य अन्तर्नीत वीप्सा है)।

पूर्वयोर्निकाययोर्भवनवासिव्यन्तरनिकाययोः ॥ कथं द्वितीयस्य पूर्वत्वम् ? सामीप्यात्पूर्वत्वमुपचर्योक्तम् ॥ द्वीन्द्रा इति अन्तर्नीतवीप्सार्थः । द्वौ द्वौ इन्द्रौ येषां ते द्वीन्द्रा इति । यथा सप्तपर्णोऽष्टापद इति ॥ तद्यथा— भवनवासिषु तावदसुरकुमाराणां द्वाविन्द्रौ चमरो

(देखो सूत्र ११) दो दो इन्द्र हैं इस प्रकार भवनवासी देवोंमें बास इन्द्र हैं और व्यन्तर देवोके आठ भेदोंमें सोलह इन्द्र हैं सर्व छत्तीस इन्द्र हैं ॥

वृत्यनुवाद— पूर्वयोः ७। निकाययोः ७। भवनवासि— =पहिले दो निकायोमें भवनवासी

व्यन्तर-निकाययोः ७। =और व्यन्तरोके निकायों विषैं (प्रत्येक भेदके दो दो इन्द्र) हैं

कथं * द्वितीयस्य ६। पूर्वत्वम् १।। =(प्रश्न) दूसरे (व्यन्तरनिकाय) के कैसे प्रथमपना अथवा पूर्वपना है ॥

सामीप्यात् ५।। पूर्वत्वम् १।। उपचर्य-उक्तम् १।। =निकटता (के कारण)से पूर्वपना उपचारकरि अथवा कल्पनाकरि कहा गया है ॥

द्वि-इन्द्राः १। इति * अन्तर्नीत-वीप्सा- =''द्वि-इन्द्रा''ऐसा(वाक्य)अन्तप्राप्त वा अन्तरगर्भित क्रमसे प्रत्येक(=वीप्सा) भेदके

अर्थः १। =लिये(=अर्थ)है अर्थात् दश भेद(देखो सूत्र १०)भवनवासी निकायके हैं सो क्रमसे प्रत्येक भेदके दो दो इन्द्र हैं और व्यन्तरनिकायके आठ भेद (देखो सूत्र ११) हैं सो प्रत्येक भेदके दो दो इन्द्र हैं इस प्रकार अभ्यन्तरगत वीप्सा के अर्थ सूत्रमें ''द्वि-इन्द्रा'' लाये हैं ॥

द्वौ १। द्वौ १। इन्द्रौ १। येषां ६। ते १। द्वि-इन्द्रा १। इति *=दो दो इन्द्र जिन (असुरों) के हैं ते ''द्वि इन्द्रा'' है

यथा सप्तपर्णः १। =जैसे सतौनेका वृक्ष अर्थात् जिस (वृक्ष) के प्रति पत्ते के साथ सात सात पत्ते हो।

अष्टापदः १। इति * तद्यथा-भवनवासिषु ७। =और अष्टापद अर्थात् प्रयेक के आठ आठ पद हो हैं ॥ जैसे भवनवासियो मे

तावत् * असुरकुमाराणां ६। दौ १। इन्द्रौ १। चमरः १। =तो (=तावत्) असुर कुमारो के दो इन्द्र चमर

१—वीप्सा शब्द स्त्रीलिंग है अमरकोश का संक्षेप गोले महाशय ने श्लोक बद्ध किया है जो अमरसार के नाम से प्रसिद्ध है जिसकी आवृत्ति १८८८ के पृष्ठ ३७१ मे वीप्सा=क्रमसे प्रत्येक,ऐसा अर्थ लिखा है ॥ वीप्सा=वार वार उसी अर्थ में शब्दोंका दुहराना ॥ देखो वैद्य कोश पृष्ठ ६८४ ॥

वैरोचनश्च । नागकुमाराणां धरणो भूतानन्दश्च । विद्युत्कुमाराणां हरिसिंहो हरिकान्तश्च । सुपर्णकुमाराणां वेणुदेवो वेणुधारी च । अग्निकुमाराणां अग्निशिखोऽग्निमाणवश्च । वातकुमाराणां वैलम्बः प्रभञ्जनश्च । स्तनितकुमाराणां सुघोषो महाघोषश्च । उदधिकुमाराणां जलकान्तो जलप्रभश्च । द्वीपकुमाराणां पूर्णो विशिष्टश्च । दिक्कुमाराणां अमितगतिरमितवाहनश्चेति ॥ व्यन्तरेष्वपि किन्नराणां द्वाविन्द्रौ किन्नरः किम्पुरुषश्च । किम्पुरुषाणां सत्पुरुषो महापुरुषश्चेति । महोरगाणां अतिकायो महाकायश्च ।

वैरोचनः १/१। च *। नागकुमाराणां ६/३। धरणः १/१।	=और (च) वैरोचन हैं नागकुमारोंके धरण
भूतानन्दः १/१। च *। विद्युतकुमाराणां ६/३। हरिसिंहः १/१।	=और भूतानन्द (दो इन्द्र) हैं। विद्युतकुमारोंके हरिसिंह
हरिकान्तः १/१। च *। सुपर्णकुमाराणां ६/३। वेणुदेवः १/१।	=और हरिकान्त (दो इन्द्र) हैं। सुपर्णकुमारोंके वेणुदेव
वेणुधारी १/१। च *। अग्निकुमाराणां ६/३। अग्निशिखः १/१।	=और वेणुधारी (दो इन्द्र) हैं। अग्निकुमारोंके अग्निशिख
अग्निमाणवः १/१। च *। वातकुमाराणां ६/३। वैलम्बः १/१।	=और (=च) अग्निमाण (ये दो इन्द्र) हैं। वातकुमारोंके वैलम्ब
प्रभञ्जनः १/१। च *। स्तनित-कुमाराणां ६/३। सुघोषः १/१।	=और (=च) प्रभञ्जन (ये दो इन्द्र) हैं। स्तनित कुमारोंके सुघोष
महाघोषः १/१। च *। उदधिकुमाराणां ६/३। जलकान्तः १/१।	=और (=च) महाघोष (ये दो इन्द्र) हैं। उदधि कुमारोंके जलकान्त
जलप्रभः १/१। च *। द्वीपकुमाराणां ६/३। पूर्णः १/१।	=और (=च) जलप्रभः (ये दो इन्द्र) हैं। द्वीपकुमारोंके पूर्ण
वशिष्ठः १/१। च *। दिक्कुमाराणां ६/३। अमितगतिः १/१।	=और (=च) वशिष्ठ (ये दो इन्द्र) हैं। दिक्कुमारोंके अमितगति
अमितवाहनः १/१। च * इति *। व्यन्तरेषु ७/३। अपि *	=और (=च) अमितवाहन (ये दो इन्द्र) हैं। व्यन्तरोंमें भी
किन्नराणां ६/३। द्वौ १/२। इन्द्रौ १/२। किन्नरः १/१। किम्पुरुषः १/१। च *।	=किन्नरोंके दो इन्द्र किन्नर और (=च) किम्पुरुष हैं ॥
किम्पुरुषाणां ६/३। सत्पुरुषः १/१। महापुरुषः १/१। च * इति *।	=किम्पुरुषों के सत्पुरुष और महापुरुष (ये दो इन्द्र) हैं।
महोरगाणां ६/३। अतिकायः १/१। महाकायः १/१। च *।	=महोरगों के अतिकाय और (=च) महाकाय (ये दो इन्द्र) हैं।

गन्धर्वाणां गीतरतिर्गीतयशाश्च । यक्षाणां पूर्णभद्रो माणिभद्रश्च । राक्षसानां भीमो महाभीमश्च । भूतानां प्रतिरूपोऽप्रतिरूपश्च पिशाचानां कालो महाकालश्च ॥ अथैषां देवानां सुखं कीदृशमित्युक्ते सुखावबोधनार्थमाह—

॥ कायप्रवीचारा आ ऐशानात् ॥७॥

गन्धर्वाणां₆ गीतरतिः₁ गीतयशाः₁ च* ।	=गन्धर्वोंके गीतरति और गीतयशाः (ये दो इन्द्र) हैं ।
यक्षाणां₆ पूर्णभद्रः₁ माणिभद्रः₁ च* । राक्षसानां₆	=यक्षोंके पूर्णभद्र और माणिभद्र (ये दो इन्द्र) हैं राक्षसोंके
भीमः₁ महाभीमः₁ च* । भूतानां₆ प्रतिरूपः₁	=भीम और महाभीम (ये दो इन्द्र) हैं । भूतोंके प्रतिरूप
अप्रतिरूपः₁ च* । पिशाचानां₆ कालः₁ महाकालः₁ च*	=और(=च) अप्रतिरूप (ये दो इन्द्र) हैं । पिशाचोंके काल और महाकाल (दो इन्द्र) हैं ।
अथ* एषां₆	=आगे (=अथ) इन (भवनवासी, व्यन्तर ज्योतिषी तथा स्वर्गमें उत्पन्न होनेवाले)
देवानां₆ सुखं₁ कीदृशम्₁ इति* उक्ते₇ सुख-	=देवोंके सुख किसप्रकार है, ऐसे पूंछने पर सुखके
अवबोधन-अर्थम्₁ आह॥	=जाननेके लिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्— कायप्रविचारा आ ऐशानात् ॥७॥ = भवनवास्यादयो देवा आ ऐशानात् कायप्रवीचारा भवन्ति

काय-प्रवीचाराः₁	=शरीरसे मैथुन विषयका उपसेवनवाले वा कामसेवनहारे (भवनवासी देवोंसे)
आ ऐशानात्₅	=ऐशान (दूसरे) स्वर्ग पर्यन्त (=आ) हैं अर्थात् भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी और सौधर्म (पहिलास्वर्ग) तथा ऐशान (दूसरे) स्वर्ग तकके देव, मनुष्यो के समान अपनी अपनी देवांगनाओंके साथ कामसेवन करते हैं ॥

(१) गीत यशाः शब्द के रूप विश्वपाके (=सूर्य-चन्द्र-अग्नि-विश्वम्भर) जो पुल्लिंग है सदृश है जैसे विश्वपा का पुल्लिंग एक वचन प्रथमा विभक्ति "विश्वपाः" है । वैसे ही गीतयशाः है कई महाशयोंने हिन्दीमे इस गीतयशाः" शब्दका अनुवाद 'गीतयश' ऐसा किया है चूंकि 'गीतयशा' एक इन्द्रका नाम है वह निश्चय से एक वचन मे हैं । हमको एक हस्त लिखित संस्कृत सर्वार्थसिद्धि मे "गन्धर्वाणां गीतरतिः । गीतयशश्च ॥ ऐसा पाठ पृष्ठ ९४ पर प्राप्त हुआ है और पं० पन्नालाल जी दूनी ने "अर गंधर्वनि के विषै गीतरति अर गीतयशा नामा दोय इन्द्र हैं" ऐसा अनुवाद किया है ॥ हमने भी क्योंकि एक इन्द्र का नाम है बिना परिवर्तनकिये हुए गीतयशा अनुवाद किया है ॥

(२) दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायों में इस सूत्रका पाठ और अर्थ एक सा है । कहीं प्रविचार, कहीं प्रवीचार शब्द है, दोनों ठीक हैं ॥

प्रविचारो मैथुनोपसेवनम् । कायेन प्रविचारो येषां ते कायप्रविचाराः ॥ आङ् अभिविध्यर्थः । असंहितया निर्देशः असंदेहार्थः ॥ एते भवनवास्यादय ऐशानान्ताः संक्लिष्टकर्मत्वान्मनुष्यवत्स्त्रीविषयसुखमनुभवन्तीत्यर्थः ॥ अवधिग्रहणादितरेषां सुखविभागेऽनिर्ज्ञाते तत्प्रतिपादनार्थमाह—

शब्दानुवाद—प्रविचारः १। मैथुन-उपसेवनम् १॥।	=प्रविचार है सो कामसेवन अथवा मैथुन विषयका उपभोग है।
कायेन ३। प्रविचारः १। येषां ६। ते १। कायप्रविचारः १।	=शरीरसे कामसेवन जिनके हैं ते काय प्रविचारा हैं।
आङ् १। अभिविधः १। अर्थः १।	=(सूत्रमें) आङ् उपसर्ग सीमाके लिये अर्थात् सूत्रमें आ शब्द लग, तक वा पर्यन्त अर्थमें है जो सीमा बतलाता है
असंहितया ३॥ निर्देशः १।	=(उस आ का) संधिसे रहित वा विनासंधि उच्चारण वा कहना (निर्देश)
असन्देह -अर्थः १।	=सन्देहके निवारणके लिये हैं अर्थात् 'आऐशानात्' ऐसा सूत्रमें वाक्य है

इस आ तथा ऐशानात् की संधि करदेवें मिलादेवें तो व्याकरण की रीतिसे ऐशानात् होजावेगा फिर स्पष्ट रीतिसे यह न जान पडेगा कि ऐशानात् में आ उपसर्ग मिलाहुआ है अथवा नहीं इस सन्देह के दूर करने के लिये संधि न करके उमास्वामी ने आ ,ऐशानात् ऐसा उच्चारण किया है।

एते १। भवन-वासी-आदयः १। ऐशान-अन्ताः १।	=ये सब भवनवासी व्यन्तर, ज्योतिषी सौधर्म (आदय) ऐशान तक
संक्लिष्ट-कर्मत्वात् ५॥। मनुष्यवत् * स्त्री-विषय-सुखम् २॥।	=संक्लिष्ट कर्मके (उदय) होनेसे मनुष्यके समान स्त्रीके विषय सुखको
अनु-भवन्ति T इति * अर्थः १।	=अनुभवन करते हैं अथवा भोगते हैं ऐसा अभिप्राय है।
अवधि-ग्रहणात् ५॥। इतरेषां६। सुख-विभागे७।	=(इस सूत्रमें) मर्यादा ग्रहण करनेसे अन्य (देवो) के सुखका विभाग
अनिर्ज्ञाते७। तत्-प्रतिपादन-अर्थम्१॥। आहT	=न जानने पर उस (विभाग) के ज्ञानके लिये (आचार्य अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

(१) यदि अ अथवा आ से परे ए ऐ ओ औ इन स्वरोंमेंसे कोई स्वर आवे तो (अ+ए) (अ+ए) (आ+ए) (आ+ऐ) ,मिलकर ऐ होजायगा और (अ+ओ) (अ+औ) (आ+ओ) (आ+औ मिलकर औ हो जावेगा इस कारण ऊपर के वाक्य में काय प्रविचारा आ ऐशानात् मे- आ+ऐशानात् मिलकर 'ऐशानात्' होजायगा और फिर समस्त सूत्र 'कायप्रविचारा ऐशानात्' ही होजायगा। अब 'ऐशानात्' वाक्य से यह संदेह हो सका है कि "ऐशानात्" बिना आ के मिलाये हुये आचार्य ने उच्चारण किया है अथवा आ को मिलाकर "ऐशानात्" किया है। इस सन्देह के निराकरण करनेके लिये स्पष्टतया "कायप्रविचारा आ ऐशानात्" ऐसा सूत्र कथित है।

॥ शेषाः स्पर्शरूपशब्दमनःप्रवीचाराः ॥८॥

सूत्रम्— शेषाः स्पर्शरूपशब्दमनः प्रविचाराः ॥८॥

=(ऐशानादूर्ध्वं) शेषाः (कल्पोपपन्नाः देवाः) स्पर्शरूपशब्दमनः प्रवीचाराः (यथासंख्यम् भवन्ति)

(८) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य० में तथा श्री सिद्धसेन सूरि रचित 'भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थ टीकामे' हमारे यहांके पाठसे "द्वयोर्द्वयोः" वाक्य अधिक है। शेषपाठ हमारे यहांके सूत्र पाठसे मिलता है। सभाष्य० में इस सूत्रका अर्थ ऐसे लिखा है कि "ऐशानादूर्ध्वं शेषाः कल्पोपपन्ना देवा द्वयोर्द्वयोः कल्पयोः स्पर्शरूपशब्दमनः प्रवीचारा भवन्ति यथासङ्ख्यम्"=ऐशानात् ऊर्ध्वं शेषा कल्पोपपन्नाः देवाः द्वयोर्द्वयोः कल्पयोः स्पर्श-रूप-शब्द-मनः-प्रवीचाराः भवन्ति यथासङ्ख्यम्="ऊपर कहे हुये ईशान स्वर्गसे ऊपर शेष जो कल्पोपन्न देव हैं। वे दो दो कल्पोंके क्रमसे स्पर्श, रूप, शब्द तथा मनसे मैथुन सेवन करने वाले हैं" "द्वयोर्द्वयोः"=द्वयोर्द्वयोः कल्पयोः अर्थात् दो दो कल्पोंमे। दोनों आम्नायके इन सूत्रोंके अर्थभेद समझनेमें स्मरण रहै कि श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य० मे दश कल्प माने हैं जैसा कि पृष्ठ ९३ के "शेष आठ कल्पोंके देवोंमे से दो दो कल्पोंके देव यथासंख्य करके क्रमसे स्पर्श रूप शब्द तथा मनसे प्रवीचार करने वाले हैं" सूत्रानुवाद से प्रगट है। परन्तु श्री सिद्धसेन सूरि रचित "भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीका" में बारह कल्प माने हैं। "कल्पः समुदाय सन्निवेशो विमानमात्रपृथिवीप्रस्तारसनिमित्तभेदा द्वादशधा" "सूत्र २० 'सौधर्मादि' पृष्ठ ३३५।"... ..आरणाच्युतावित्येव द्वादश कल्पाः तद् उपरिग्रैवेयकानिनवोपर्युपरित पंच महा विमानानि इति" पृष्ठ ३३६॥ इस भाष्य मे बाईस सहस्र श्लोक से अधिक हैं श्वेताम्बरों मे सबसे महत्व का ग्रन्थ है। हमने इसके अनुसार बारह कल्प नीचे के लेखमे मानकर अन्तर दोनों सम्प्रदायों का प्रगट किया है॥ हमारे यहां सोलह कल्प माने हैं॥ बांयें ओर दिगम्बर आम्नाय का लेख है और दाहिने हाथ की ओर श्वेताम्बर आम्नायका—

दिगम्बर				श्वेताम्बर		
सौधर्म कल्प	ईशान कल्प	यहां काय द्वारा काम सेवन है	—एक एक इन्द्र है	सौधर्म कल्प	ईशान कल्प	यहां काय द्वारा काम सेवन है
सनत्कुमारकल्प	माहेन्द्रकल्प	यहां स्पर्शन द्वारा काम सेवन है	—एक एक इन्द्र है	सनत्कुमारकल्प	माहेन्द्र कल्प	यहां स्पर्शन द्वारा कामसेवन है
ब्रह्मकल्प	ब्रह्मोत्तरकल्प	यहां रूपदर्शनद्वारा कामसेवन है	—एक ही इन्द्र है	ब्रह्मलोक कल्प		यहां रूपदर्शन द्वारा काम सेवन है
लांतवकल्प	कापिष्टकल्प		—एक ही इन्द्र है	लान्तक कल्प		
शुक्रकल्प	महाशुक्र कल्प	" शब्दश्रवण द्वारा कामसेवन है	—एक ही इन्द्र है		महाशुक्र कल्प	यहां शब्दश्रवण द्वारा काम सेवन है
सतारकल्प	सहस्रार कल्प		—एक ही इन्द्र है		सहस्रार कल्प	
आनतकल्प	प्राणत कल्प	" मनोविकल्प से काम सेवन है	—एक एक इन्द्र है	आनतकल्प	प्राणत कल्प	यहां मनो विकल्प से काम सेवन है
आरणकल्प	अच्युत कल्प		—एक एक इन्द्र है	आरणकल्प	अच्युत कल्प	

उक्तावशिष्टग्रहणार्थं शेषग्रहणम् ॥ के पुनरुक्तावशिष्टाः ? कल्पवासिनः ॥ स्पर्शश्च रूपं च शब्दश्च मनश्च स्पर्शरूपशब्दमनांसि, तेषु प्रविचारो येषां ते स्पर्शरूपशब्दमनःप्रवीचाराः ॥

=(ऐशानादूर्ध्वं) शेषाः (कल्पोपपन्नाःदेवाः) स्पर्शरूपशब्दमनः प्रवीचाराः (यथासंख्यम् भवन्ति)

ऐशानात् ५।१। ऊर्ध्वम् ※ शेषाः १।३। कल्पोपपन्नाः १।३। देवाः १।३।	=ईशान स्वर्गसे ऊपर अवशेष वा बचे हुये कल्पोपपन्न देव हैं (अर्थात् तीसरे स्वर्गसे सोलहवां स्वर्ग तक के देव देवांगनाओं के)
स्पर्श-रूप-शब्द-मनस्—	=स्पर्श करनेमें, रूप देखनेमें, शब्द सुननेमें तथा मनके विचारनेमें
प्रविचाराः १।३। यथासंख्यम् १।१।। भवन्ति T	=काम सेवनेवाले अनुक्रमसे हैं ॥
वृत्त्यनुवाद—उक्त—अवशिष्ट—	=(तीसरे सूत्रमें) कहे हुये (देवों)मेंसे अवशेष अथवा बचे हुये (देवों) के
ग्रहण—अर्थं १।१।। शेष—ग्रहणम् १।१।। पुनर्—उक्त—	=आदानके लिये (इस सूत्रमें) शेष शब्दका ग्रहण है[प्रश्न] वहुरि कथित (देवों) मेंसे
अवशिष्टाः १।३। के १।३। कल्प—वासिनः १।३।	=शेष कौन हैं [उत्तर, ऐशान स्वर्गसे ऊपर] स्वर्गवासी [देव शेष] हैं ॥
स्पर्शः १।१। च ※ रूपं १।१।। च शब्दः १।१। च मनः १।१।।	=और स्पर्श वहुरि रूप तथा शब्द और मन [ये शब्द द्वन्द्वसमासमें]
स्पर्श—रूप—शब्द—मनांसि १।३।। तेषु ७।३।।	=स्पर्श-रूप-शब्द-मनांसि (रूपमें) हो जाते हैं । तिन [स्पर्श-रूप-शब्द-मन]विषैं
प्रविचारः १।१। येषां ६।३। ते १।३। स्पर्श-रूप-शब्द-मनस्-प्रविचाराः१।३।	=काम सेवन हैं जिनके ते स्पर्श-रूप-शब्द-मनः प्रविचारा हैं

इस सर्वके मिलाने से दोनो सम्प्रदायों के अर्थ भेदका सारांश यह निकलता है कि भवनवासी देवोंसे लेकर माहेन्द्र कल्प तक दोनों मे एक है अर्थात् काय द्वारा और स्पर्शन द्वारा काम सेवन होता है ॥ आनत कल्प, प्राणत कल्प, आरण कल्प, अच्युत कल्प इनमें भी काम सेवन एकसा है परन्तु चार कल्प मानने में "द्वयोर्द्वयोः" वाक्य लागू नहीं होता है ॥ रहा ब्रह्मकल्पका, ब्रह्मोत्तरकल्पका लांतवकल्पका, कापिष्टकल्पका सो दोनों आम्नायों में काम सेवन रूप दर्शन से होता है परन्तु उन्होंने ब्रह्मोत्तर कल्प और कापिष्टकल्पको नहीं माना है। इसी प्रकार शुक्रकल्प, महाशुक्रकल्प, शतारकल्प, सहस्रारकल्प इनमे श्रवण द्वारा काम सेवन होता है परन्तु उनके यहां शुक्रकल्प और सतारकल्प को नहीं माना है ॥

(१)— इन शब्दों को तृतीया कारक अथवा करण कारकमें मानकरि इस प्रकार भी अनुवाद कर सकते हैं कि स्पर्शकरि, रूप के देखने से, शब्दके सुननेसे, मनके विचारनेसे, काम सेवने वाले हैं ॥

कथमभिसम्बन्धः ? आर्षाविरोधेन । कुतः पुनः प्रवीचारग्रहणं ? इष्टसम्प्रत्ययार्थमिति ॥ कः पुनरिष्टोऽभिसम्बन्ध आर्षाविरोधी ? । सानत्कुमारमाहेन्द्रयोर्देवा देवाङ्गनास्पर्शमात्रादेव परां प्रीतिमुपलभन्ते तथा देव्योऽपि । ब्रह्मब्रह्मोत्तरलान्तवकापिष्ठेपु देवा दिव्याङ्गनानां

अर्थात् स्पर्श करनेमें, रूप देखनेमें, शब्द सुननेमें और मनके विचारनेमें कामसेवनेवाले हैं

कथम् * अभिसम्बन्धः ।१। =(इन देव और मैथुनके भेदोंमें) कैसे अभिसम्बन्ध है अर्थात् प्रश्न यह है कि इन शेष चौदह स्वर्गोंके देवोंका स्पर्शप्रविचार, रूपप्रविचार, शब्दप्रविचार, मनःप्रविचारोंमें से किस किस प्रकार वा भांतिके प्रविचारसे सम्बन्ध है ॥

आर्ष-अविरोधेन ३। =(उत्तर) आगम अथवा धर्मशास्त्रकी विरुद्धता (=विरोध) से रहित (अभिसम्बन्ध) है

कुतः * पुनः * प्रविचार— =(प्रश्न) क्यों फिर (जब पूर्व सूत्रमें प्रविचार शब्द विद्यमान है) प्रविचारका (इस सूत्रमें)

ग्रहणं १।॥ इष्ट-सम्प्रत्यय-अर्थम् १॥ इति * ॥ =उपादान है । (उत्तर) अभिलषित अभिसम्बन्धके लिये है अर्थात् शिष्यके पूछने पर कि जब सातवां सूत्रमें प्रविचार शब्द विद्यमान है तब फिर इस सूत्रमें क्यों लाये हो उत्तरमें कहते हैं कि वांछित अभिसम्बन्धके (जो चौदह स्वर्गके देवोंको जिस जिस भांति के प्रविचार है) प्रगट करने के लिये लाये हैं ।

कः १। पुनः-इष्टः१। अभिसम्बन्धः१। =(प्रश्न) बहुरि क्या वांछित अभिसम्बन्ध (कथित देवों और उक्त प्रविचारोंमें) है

आर्ष-अविरोधी१। सानत्कुमार-माहेन्द्रयोः ७। देवाः१।=(उत्तर) आगमसे अविरोधरूप (सम्बन्ध) है । (अर्थात्) सनत्कुमार, महेन्द्र स्वर्गमें देव

देव-अङ्गना-स्पर्श-मात्रात् ५।॥ एव परां २। प्रीतिम् २।=देवियोंके स्पर्श करने मात्रसे ही परम प्रीतिको

उपलभन्ते T तथा * देव्यः १। अपि * । =प्राप्त होते हैं । तैसे देवाङ्गना भी (परमप्रीति को प्राप्त होती हैं) ॥

ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर-लान्तव— =ब्रह्म [पांचवां स्वर्ग] ब्रह्मोत्तर [छठवां स्वर्ग] लान्तव [सातवां स्वर्ग]

कापिष्ठेषु ७।॥ देवाः १। दिव्य-अङ्गनानाम् ६।॥ =कापिष्ठ [आठवां स्वर्ग] में, देव स्वर्गकी [= दिव्य] स्त्रियोंके अर्थात् देवियोंके

शृङ्गाराकारविलासचतुरमनोज्ञवेषरूपावलोकनमात्रादेव परमसुखमाप्नुवन्ति । शुक्रमहाशुक्रशतारसहस्रारेषु देवा देववनितानां मधुरसङ्गीतमृदुहसितललितकथितभूषणरवश्रवणमात्रादेव परां प्रीतिमास्कन्दन्ति । आनतप्राणतारणाच्युतकल्पेषु देवाः स्वाङ्गनामनःसङ्कल्पमात्रादेव परं सुखमाप्नुवन्ति ॥

अथोत्तरेषां किंप्रकारं सुखमित्युक्ते तन्निश्चयार्थमाह—

शृङ्गार-आकार-विलास-चतुर-मनोज्ञ-वेष-रूप-	=शृङ्गार, आकार, हर्ष (=विलास) चतुर, सुंदर (=मनोज्ञ) वेष और रूपके
अवलोकन-मात्रात् ॥ एव* परम् सुखम् ॥ आप्नुवन्तिT ॥	=केवलमात्र देखनेसे ही उत्कृष्ट सुखको प्राप्त होते हैं ॥
शुक्र-महाशुक्र-शतार-	=शुक्र (नवमां स्वर्ग) महाशुक्र (दशवां स्वर्ग) शतार (ग्यारहवां स्वर्ग)
सहस्रारेषु॥ देवाः। देव-वनितानाम्॥ मधुर-	=सहस्रसार (बारहवां स्वर्ग) में देव और देवियोंके प्रिय (=मधुर)
सङ्गीत-मृदु-	=नाचना-गाना-बजाना (=संगीत) अथवा गान (=संगीत) कोमल (=मृदु)
हसित-ललित-कथित-भूषण-रव-	=हास्य, मनोहर (=ललित) बोलना (=कथित) और आभूषण के शब्द (=रव)के
श्रवण-मात्रात्॥ एव* परां॥ प्रीतिं॥ आस्कन्दन्तिT	=केवल (=मात्र) सुननेसे ही अतिशय प्रीतिको प्राप्त होते हैं ॥
आनत-प्राणत-आरण-अच्युत-	=आनत (तेरहवां) प्राणत (चौदहवां) आरण (पंद्रहवां) और अच्युत (सोलहवां)
कल्पेषु। देवाः। स्व-अङ्गना-	=स्वर्गोंमें (=कल्पेषु) देव अपनी २ (=स्व) सुंदरीयोंकी (=अङ्गना) अर्थात् देवियोंका
मनः-सङ्कल्प-मात्रात्॥ एव* परं॥ सुखम्॥	=मनमें विचार अथवा चिंतवन मात्रसे ही उत्कृष्ट सुखको
आप्नुवन्तिT अथ-उत्तरेषाम्।	=पाते हैं । अब अग्रिम (अहमिन्द्र अथवा कल्पातीत देव) निकें
किम्* प्रकारं॥ सुखम्॥ इति* उक्ते। तत्-	=सुख कौन प्रकार है ऐसा पूंछने पर उस (सुख) के
निश्चय-अर्थम्॥ आहT	=निर्धारणके लिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

(१) परम् (अव्य०)=केवल, अनन्तर ॥ परम (त्रि०)=उत्कृष्ट, प्रधान, बड़ा, पहिला ॥ परमम् (अव्य०)=हां, स्वीकार, अनुज्ञा ॥ पर=का अर्थ सबसे अच्छे का भी है। (देखो परां प्रीतिं आस्कन्दन्ति पृ० २३६ वृत्ति०)

(२) 'कल्प' यह शब्द "सभाष्यतत्वार्थाधिगमसूत्रम्" में निम्न वाक्योंमें पुल्लिंगमें आया है। सौधर्मस्य कल्पस्योपर्यैशानः कल्पः। सा (=सभा) तस्मिन्नस्तीति सौधर्मः कल्पः। सर्वेकल्पाः (देखो पृष्ठ १०६ चौथा अध्याय सूत्र २० का)

। परेऽप्रवीचाराः ॥९॥

परग्रहणमितराशेषसंग्रहार्थम् । अप्रवीचारग्रहणं परमसुखप्रतिपत्त्यर्थम् ॥ प्रवीचारो हि वेदनाप्रतिकारः । तदभावे तेषा परमसुखमनवरतं भवति ॥ उक्ता ये आदिनिकायदेवा—

सूत्रम्— परेऽप्रवीचाराः	=(कल्पोपपन्नेभ्यः)[तीसरे सूत्रसे लिया]परे देवाः अप्रवीचाराः भवन्ति
सूत्रार्थ—कल्प-उपपन्नेभ्यः ५। परे १। देवाः १।	=स्वर्ग में उत्पन्न होनेवाले देवोंसे परे वा अन्य अवशेष देव अर्थात् कल्पातीत देव वा अहमिन्द्र
अप्रविचाराः १।	=काम सेवन सेरहित हैं।
वृत्यर्थ-पर-ग्रहणम् १॥। इतर-अशेष—	=(इस सूत्र में) पर शब्दका ग्रहण अन्य समस्त (अशेष) (देवों) के
संग्रह-अर्थम् १॥। अप्रविचार-ग्रहणम् १॥। परम—	=संग्रह के लिये है। अप्रविचारका ग्रहण उत्कर्ष
सुख-प्रतिपत्ति-अर्थम् १॥। प्रविचारः १॥। हि वेदना—	=सुख के जनावने के लिये है काम सेवन ही (=हि) (मैथुन) वेदना वा पीड़ाका
प्रतिकार १। तद्-अभावे ७।	= उपाय वा चिकित्सा (प्रतिकार = प्रतीकार) है तिस (मैथुनरूपी वेदना) के न होने पर
तेषाम्६। परम-सुखं १॥। अनवरतम् १॥। भवति T	=तिन (कल्पातीत देवों) के उत्कृष्ट (=परम) निरंतर वा लगातार (=अनवरत) सुख होता है
उक्ता १। ये १। आदि-निकाया-देवाः १।	=कहे जे प्रथम समुदाय के देव (अर्थात् भवनवासी)

(१) इस सूत्रका पाठ दोनों सम्प्रदायों में एक है सामान्य रूप से अर्थ भी एक है क्योंकि श्वेताम्बर सम्प्रदाय में "नवअनुदिश" नहीं माने है तब भी विमानों की संख्या जो सोलहवा स्वर्ग से ऊपर हैं दोनों आम्नाओमें ३२३ (तीन सौ तेईस) ऐसे हैं कि 'और ग्रैवेयकोंके अधोभागमें एक सौ ग्यारह (१११) विमान हैं। मध्य भाग मे एकसौ सात (१०७) और ऊपर केवल शत (१००) विमान है। और अनुत्तरदेवोंके केवल पांच है सभाष्य० पृष्ठ१०९। तीन अधोग्रैवेयक विषै एकसौ ग्यारह विमान हैं। और तीन मध्यम ग्रैवेयक विषै एकसौ सात विमान हैं। और तीन ऊर्ध्व ग्रैवेयकनि विषैं इक्याणवे विमान है बहुरि 'नव अनुदिश विषे नव विमान है और अनुत्तर विषे पांच विमान है अर्थ प्रकाशिका सूत्र १९ पृष्ठ २६४ अतः ३२३ हुये

(२) पं० जयचन्द रायजीकी वचनिकामें इस वाक्यसे कि 'यहां पर शब्द का ग्रहण अवशेष रहे जे अहमिन्द्र तिन के ग्रहण के अर्थि है'। जान पड़ता है कि जिस संस्कृत वृत्ति से उन्हों ने वचनिका की है उसमें ऐसा पाठ होगा कि 'परग्रहणमितरावशेषसंग्रहार्थम्' अर्थात् अशेष शब्द के स्थान मे अवशेष शब्द होगा। परन्तु सदासुख जी की अर्थप्रकाशिकाके इस वाक्यसे कि यहां 'पर' शब्दके कहने करि कल्पातीत समस्त देवनिका संग्रह भया जान पड़ता है कि जिस प्रति से उन्हों ने भाव लिया है उसमें 'अशेष' शब्द था जैसा कि ऊपर पाठ है। दोनो पाठोंका एकही आशय है। हस्तलिखित एक प्रतिमें हमको 'अशेष' शब्द मिला है।

दशविकल्पा इति तेषां सामान्यविशेषसञ्ज्ञाविज्ञापनार्थमिदमुच्यते—

भवनवासिनोऽसुरनागविद्युत्सुपर्णाग्निवातस्तनितोदधिद्वीपदिक्कुमाराः ।१०।

भवनेषु वसन्तीत्येवंशीला भवनवासिनः ।[१] आदिनिकायस्येयम्

दश-विकल्पाः ३। इति ❀ तेषां ६। सामान्य-विशेष- =दश भेदरूप तिन (भवनवासी देवों) के सामान्य और विशेष

सञ्ज्ञा-विज्ञापन-अर्थम् २॥। इदम् १॥। उच्यते T =संज्ञाओंके जतावनेके लिये यह (अग्रिमसूत्रमें) कहा जाय है कि

सूत्रम्— भवनवासिनोऽसुरनागविद्युत्सुपर्णाग्निवातस्तनितोदधिद्वीपदिक्कुमाराः ॥१०॥

= भवनवासिनः असुरकुमाराः नागकुमाराः विद्युत्कुमाराः सुपर्णकुमाराः अग्निकुमाराः वातकुमाराः स्तनितकुमाराः उदधिकुमाराः द्वीपकुमाराः दिक्कुमाराः च दशविकल्पाः भवन्ति ॥

सूत्रार्थः— भवनवासिनः १। असुरकुमाराः १। नागकुमाराः १। =भवनवासी देव, असुरकुमार, नागकुमार,

विद्युत्कुमाराः १। सुपर्णकुमाराः १। अग्निकुमाराः १। =विद्युत्कुमार, सुपर्णकुमार, अग्निकुमार,

वातकुमाराः १। स्तनितकुमाराः १। उदधिकुमाराः १। =वातकुमार, स्तनितकुमार, उदधिकुमार,

द्वीपकुमाराः १। दिक्कुमाराः, १। च ❀ दश-विकल्पाः १। भवन्ति=द्वीपकुमार, और (=च) दिक्कुमार, दशभेदरूप हैं

वृत्त्यनुवादः—भवनेषु ७। वसन्ति T इति ❀ एवं शीलाः १। =भवनोंमें वसते हैं ऐसे स्वभाव वाले (=शीलाः)

भवनवासिनः १। आदिनिकायस्य ६। इयम् १॥ =भवनवासी देव है (चार समूहके देवोंमेंसे) प्रथमसमुदायकी यह

(१) दोनों सम्प्रदायों म इस सूत्र का अर्थ और पाठ एक है। हमारे यहा यह दशवा सूत्र है श्वेताम्बर आम्नाय मे यह ग्यारहवां सूत्र है।

(२) द्वंद्व समासमे जितने शब्द जोड़े जावें उन प्रत्येकके अन्तका एक चकार गुप्त समझ लिया जावे अथवा प्रत्येक शब्द के साथ जितने शब्द जोड़े जावें उतने ही चकार समझ लिये जावें इसलिये ऊपरके दशदेवोंके भेदोंमें इस प्रकार दश चकार होंगे कि असुरकुमाराः च, नागकुमाराः च, विद्युत्कुमाराः च, सुपर्णकुमाराः च, अग्निकुमाराः च, वातकुमाराः च, स्तनितकुमाराः च, उदधिकुमाराः च, द्वीपकुमाराः च, दिक्कुमाराः च, इस अवस्थामें अनुवादमें भी दशवार 'और' शब्द आवेगा परन्तु अनुवादक ने केवल एक चकार लेकर ऊपरका अनुवाद किया है।

सामान्यसञ्ज्ञा । असुरादयो विशेषसञ्ज्ञा विशिष्टनामकर्मोदयापादितवृत्तयः । सर्वेषां देवानामवस्थितवयः स्वभावत्वेऽपि वेषभूषायुधयानवाहनक्रीडनादिकुमारवदेषामाभासन्त इति भवनवासिषु कुमारव्यपदेशो रूढः । स प्रत्येकं परिसमाप्यते असुरकुमारा इत्येवमादि ॥ क्व तेषां भवनानीति चेदुच्यते– रत्नप्रभायाः पङ्कबहुलभागेऽसुर

सामान्य-सञ्ज्ञा १॥ असुर-आदयः १। =सामान्य सज्ञा है असुर, नाग, विद्युत्, सुपर्ण, अग्नि,वात, स्तनित, उदधि, द्वीप, दिक्

विशेष-संज्ञा १॥ विशिष्ट-नामकर्म-उदय-आपादित– =विशेपसंज्ञा है। विशेप नाम कर्मके उदयके प्राप्तसे (=आपादित)

वृत्तयः १॥ सर्वेषाम् ६। देवानाम् ६। =(ये दश विशेपसंज्ञा) प्रवर्तें हैं। समस्त (भवनवासी) देवों के

अवस्थितवयः १॥ =स्थिर अथवा एकरूप (=अवस्थिति) (बालपन योवनादिक) अवस्था

स्वभात्वे ७॥ अपि * वेष-भूषा-आयुध– =स्वभावसे होनेपर भी वेष सजावट (=भूषा) अस्त्र (=आयुध)

यान-वाहन– =लेजानेके साधन रथ, गाड़ी आदिक (=यान) सवारी (=वाहन)

क्रीडन-आदि-कुमार-वत् * ऐषाम् ६। आभासते T इति =परिहास वा कौतुक आदिक कुमारके सदृश इन (भवनवासी देवों)के शोभे हैं अर्थात् यद्यपि समस्त भवनवासी देवोंके जन्म समयसे मरण पर्यन्त एकसी दशा अथवा अवस्था रहती है। बाल, यौवन, जरा आदिक अवस्था पलटती नहीं है तो भी इनकी कुमार संज्ञा पूर्वोक्त निमित्तसे नहीं हैं वरण इस कारणसे है कि वे वेष, आभूषण, यान, वाहन, क्रीडनकरि कुमारके समान प्रवर्तें हैं।

भवनवासिषु ७। कुमार-व्यपदेशः १। रूढः १। =भवनवासी (देवों) विषैं कुमारनाम प्रसिद्ध (=रूढ) है

सः १। प्रत्येकं * परिसमाप्यते T =वह कुमार व्यपदेश वा संज्ञा प्रत्येक (दश विशेष संज्ञाओं पर) जोड़ा जाता है।

असुर-कुमाराः १। इति * एवम् * आदि १॥ =(तव) असुरकुमार एवं आदिक (पूर्वोक्त दश संज्ञा) हैं।

क्व * तेषाम् ६। भवनानि १॥ इति * चेत् * उच्यते T =कहां तिनके निवासस्थान हैं? इस प्रकार शंका होनेपर (=चेत्) कहा जाय है कि

रत्नप्रभायाः ६॥ पङ्कबहुल-भागे ७। असुर– =रत्नप्रभा (पृथिवी) के पङ्कबहुल भागमें अर्थात् दूसरे भागमें असुर

(१) यह शब्द भूष् धातु जिसका अर्थ सजाना है आ लगाने अर्थात् भूष्+आ =भूषा (स्त्रीलिंगमें) होता है जिसका अर्थ भूषण, आभूषण, सजावट, मण्डनक्रिया, अलंकार, आभरण है। देखो पद्मचन्द्रकोष पृष्ठ २७६

कुमाराणां भवनानि । खरपृथिवीभागे उपर्यधश्च एकैकयोजनसहस्रं वर्जयित्वा शेषनवानां कुमाराणामावासाः ॥

द्वितीयनिकायस्य सामान्यविशेषसञ्ज्ञावधारणार्थमाह—

कुमाराणाम्₆। भवनानि₁॥ खर-पृथिवी-भागे₇। =कुमारोंके भवन हैं (रत्नप्रभाके तीन भागोंमेंसे ऊपरके) खर पृथिवी भागमें

उपरि॰ अधस्॰ च॰ एक-एक-योजनसहस्रं₂॥ वर्जयित्वा[1] =ऊपर और नीचे एक एक सहस्र योजन छोड़कर

शेष-नवानाम्₆। =अवशेष (भागमें) नो (नाग, विद्युत्, सुपर्ण, अग्नि, वात, स्तनित, उदधि, द्वीप, दिक्)

कुमाराणाम्₆। आवासाः₁। =कुमारोंके निवास स्थान हैं अर्थात् रत्नप्रभा नामकी पृथिवी एक लाख अस्सी सहस्र योजनकी मोटी है। उसके तीन विभाग हैं, उन तीन भागोंमें से ऊपरका खरभाग १६००० योजन मोटा है। उसमें चित्रा, व्रजा, वैडूर्य इत्यादि एक एक सहस्र योजनकी मोटी १६ पृथिवी हैं ॥ इनमेंसे ऊपर और नीचे की एक एक सहस्र योजनकी दो पृथिवी छोड़कर बीचकी चौदह सहस्र योजन मोटी और एक राजू लम्बी चौड़ी पृथिवीमें नागकुमार, विद्युत्कुमार, सुपर्णकुमार, अग्निकुमार वातकुमार, स्तनितकुमार, उदधिकुमार, द्वीपकुमार, दिक्कुमार, इन नव प्रकारके भवनवासी देवोंके निवास स्थान हैं ॥ इस खर भागके नीचे दूसरा पङ्कबहुल भाग है जो चौरासी सहस्र योजन मोटा है। उसमें असुरकुमार रहते हैं और पङ्क भागके नीचे अस्सी सहस्र वा ८००००×२०००=१६०००००० सोलह करोड़ कोस मोटा अब्बहुल भाग है उसमें प्रथम नरक है।

द्वितीय-निकायस्य₆। सामन्य-विशेष सञ्ज्ञा- अवधारण-अर्थम्₂॥ आह =दूसरे समुदायके सामान्य और विशेष संज्ञाओंके निश्चय करने के लिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

(१) वर्जयित्वा संबंधकसूचक भूत कृदन्त है।

॥व्यन्तराः किन्नरकिम्पुरुषमहोरगगन्धर्वयक्षराक्षसभूतपिशाचाः ॥११॥

विविधदेशान्तराणि येषां निवासास्ते व्यन्तरा इत्यन्वर्था सामान्यसञ्ज्ञेयमष्टानामपि विकल्पानाम् ॥ तेषां व्यन्तराणामष्टौ विकल्पाः किन्नरादयो वेदितव्या नामकर्मोदयविशेषापादिताः ॥ क्व पुनस्तेषामावासा इति चेदुच्यते—अस्माज्जम्बूद्वीपादसंख्येयान्द्वीपसमुद्रानतीत्य उपरिष्टे खरपृथिवीभागे सप्तानां व्यन्तराणाम्

सूत्रम्— व्यन्तराः किन्नरकिम्पुरुषमहोरगगन्धर्वयक्षराक्षसभूतपिशाचाः ॥११॥

=व्यन्तराः किन्नर-किम्पुरुष-महोरग-गन्धर्व-यक्ष-राक्षस-भूत-पिशाचाः (अष्ट-विकल्पाः) भवन्ति

सूत्रार्थ—व्यन्तराः₁। किन्नर-किम्पुरुष-महोरग- =व्यन्तर, किन्नर, किम्पुरुष, महोरग,
गन्धर्व-यक्ष-राक्षस-भूत-पिशाचाः₁। अष्ट₁। विकल्पाः₁। भवन्ति =गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, भूत, पिशाच, आठ प्रकारके हैं।

वृत्यनुवाद—विविध-देश-अन्तराणि₁॥। येषाम्₆। =नाना प्रकारके अन्य देश हैं, जिनके
निवासाः₁। ते₁। व्यन्तराः₁। इति* =वासस्थान ते व्यन्तर हैं इस प्रकार
अन्वार्था₁॥ सामान्य-सञ्ज्ञा₁॥ इयम्₁॥ अष्टानाम्₆। अपि* =सार्थक अथवा यथा नाम तथा गुणरूप सामान्य संज्ञा यह आठों ही
विकल्पानाम्₆। तेषां₆। व्यन्तराणां₆। अष्टौ₁। =भेदों की है। तिन व्यन्तरोंके आठ
विकल्पाः₁। किन्नर-आदयः₁॥ =भेद किन्नर, किम्पुरुष, महोरग, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, भूत, पिशाच, आदिक
विशेष-सञ्ज्ञाः₁॥ वेदितव्याः₁॥ नाम-कर्म- =विशेष संज्ञायें जानना चाहिये। (ये आठ विशेष संज्ञा) नाम कर्मके
उदय-विशेष-आपादिताः₁॥ क्व* पुनः* तेषां₆। आवासाः₁। =उदयकी विशेषतासे प्राप्त(आपादित)हैं। बहुरि तिन (व्यन्तरों)के वासस्थान कहां हैं
इति* चेत्-उच्यते।[1] अस्मात्₅। जम्बूद्वीपात्₅। =इसप्रकार प्रश्न या शंका (=चेत्) होने पर कहाजाय है कि इस जम्बूद्वीपसे
असंख्येयान्₂। द्वीप-समुद्रान्₂। अतीत्य÷ =असंख्यात द्वीप और समुद्रोंको उल्लंघकरि (=अतीत्य) (इस रत्नप्रभाके)
उपरिष्टे* खर-पृथिवीभागे₇। सप्तानाम्₆। व्यन्तराणाम्₆। =ऊपरले अर्थात् पहिले खर पृथिवी भागमें सात व्यन्तरोंके (अर्थात् किन्नर किम्पुरुष, महोरग, गन्धर्व, यक्ष, भूत, पिशाचोंके)

---

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायोंमें एकसा है॥ सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें इस सूत्रको बारहवां लिखा है॥

आवासाः ॥ राक्षसानां पङ्कबहुलभागे ॥ तृतीयस्य निकायस्य सामान्यविशेषसञ्ज्ञासंकीर्तनार्थमाह—

॥ ज्योतिष्काःसूर्याचन्द्रमसौ ग्रहनक्षत्रप्रकीर्णकतारकाश्च ॥१२॥

आवासाः १। राक्षसानाम् ६। पङ्कबहुलभागे ७।	= निवासस्थान है। राक्षसोंके (निवासस्थान) पङ्कबहुलभागमें हैं।
तृतीयस्य ६। निकायस्य ६। सामान्य—	= तीसरे निकायके (देवोंकी) सामान्य और
विशेष-सञ्ज्ञा-संकीर्तन-अर्थम् ४। आह T	= विशेष संज्ञाके कहनेके लिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्— ज्योतिष्काः सूर्याचन्द्रमसौ ग्रहनक्षत्रप्रकीर्णकतारकाश्च ॥१२॥

= ज्योतिष्काः सूर्या चन्द्रमसौ ग्रह-नक्षत्र-प्रकीर्णकतारकाः च (पंचविकल्पा भवन्ति

(१) सूर्य अथवा सूर्य्य यह शब्द दोनोंभांति शुद्ध हैं क्योंकि संस्कृतके व्याकरणसे यदि किसी शब्दमें पहिले स्वर आवै र् अथवा ह् पीछेसे आवै और पश्चात् कोई व्यंजन ह् को छोड़कर आवै तो वह व्यंजन इच्छानुसार द्वित्व होजाता है अर्थात् चाहो तो उस व्यंजनको दोहरा करदो चाहो न करो जैसे अर्क वा अर्क्क, मर्क वा मर्क्क, धर्म वा धर्म्म, कर्म वा कर्म्म, ब्रह्मा वा ब्रह्म्मा, अपह्नुते वा अपह्न्नुते इसी प्रकार सूर्य वा सूर्य्य दोनोंही ठीक हैं

(२) इससूत्र का पाठ हमारे यहां की बहुधा पुस्तकोंमे "सूर्याचन्द्रमसौ" है कहीं कहीं पर 'सूर्याचन्द्रमसो' भी है ऊपरकी टिप्पणीसे यह प्रगट है कि दोनो पाठ ठीक हैं शेष पाठ हमारे यहां सर्वत्र एकसा है। अब प्रश्न यह है कि सूर्य और चन्द्रमा दोनों शब्दोंका समास "सूर्यचन्द्रमसौ" क्या नहीं हुआ 'सूर्याचन्द्रमसौ' कैसे हुआ। (उत्तर, यहांपर सूर्याचन्द्रमसौ वाक्य देवता द्वन्द्वसमास है अर्थात् देवताओंके नामोंके द्वन्द्वसमास बनाने मे पहिले अवयवके अन्तको 'आनङ् (=आ=) आदेश हो। जैसे इन्द्रावरुणौ, इन्द्रासोमौ, मित्रावरुणौ, इन्द्राबृहस्पती, अतः सूर्याचन्द्रमसौ हुआ, अष्टाध्यायी अध्याय ६ पाद ३ सूत्र २५,२६ देखो।

(३) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्वार्थाधिगमसूत्रमें हमारे यहांके "सूर्याचन्द्रमसौ" वाक्यके स्थानमें "सूर्याचन्द्रमसो" वाक्य है अर्थात् सूर्याः (बहुत दोसे अधिक सूर्य) चन्द्रमसः १। (बहुत वा दो से अधिक चन्द्रमा) हमारे यहां अर्थ सूर्याचन्द्रमसौ वाक्यका = एक सूर्य और एक चन्द्रमा किया है परन्तु सभाष्य०के 'सूर्याश्चन्द्रमसो' वाक्य का अर्थ = बहुत सूर्य बहुत चन्द्रमा किया है सभाष्य० मे सूर्य-चन्द्रमाको समासमे न करने का हेतु ऐसाहै कि इस सूत्रमे समास न करनेका और आर्षप्रमाणसे सूर्य तथा चन्द्रमा का क्रमभेद करनेका कारण यह है कि जिससे यह सूचित होजाय कि इनकी यथा क्रम ऊर्ध्व स्थिति है अर्थात् आर्ष ग्रन्थोंमे चन्द्रमा पूर्व पठित है। और सूर्य पश्चात् वह यहां पर इष्ट नहीं है। यहां पर सूर्यका ही प्रथम कहना है क्योंकि पाठ के क्रमानुसार ऊपर इन सूर्योंकी स्थिति नहीं है। किन्तु इनकी एकके पश्चात् दूसरको ऊपर ऊपर स्थिति है। जैसे सबके नीचे प्रथम सूर्य है। चन्द्रमाओंके ऊपर ग्रह हैं, उनके ऊपर नक्षत्र हैं। और नक्षत्रोंके ऊपर प्रकीर्णक तारका हैं। और तारा, ग्रह तो अनियत चारी अर्थात्

ज्योतिस्स्वभावत्वादेषां पञ्चानामपि ज्योतिष्का इति सामान्यसञ्ज्ञा अन्वर्था ॥ सूर्यादयस्तद्विशेषसंञ्ज्ञा नामकर्मोदयप्रत्ययाः ॥ सूर्याचन्द्रमसाविति पृथग्ग्रहणं प्राधान्यख्यापनार्थम् ॥

सूत्रार्थ—ज्योतिष्का:₁। सूर्य-चन्द्रमसौ₁ ग्रह-नक्षत्र च* प्रकीर्णकतारका:₁। पञ्च₁। विकल्पा:₁। भवन्ति	=ज्योतिष्कदेव सूर्य चन्द्रमा और (=च) ग्रह, नक्षत्र =प्रकीर्णक तारे पांच प्रकार हैं
वृत्त्यर्थ— ज्योतिः-स्वभावत्वात्₅।। एषां₆। पञ्चानाम्₆। अपि* ज्योतिष्का:₁। इति* सामान्य-सञ्ज्ञा₁।। अन्वर्था₁।।	=ज्योतिरूप स्वभाव होनेसे इन पांचों (सूर्य-चन्द्र-ग्रह-नक्षत्र-प्रकीर्णक तारों) की =ही ज्योतिष्का ऐसी सामान्य संज्ञा सार्थक अर्थात यथा नाम तथा गुणरूप है।
सूर्य-आदय:₁।	=सूर्यादिक अर्थात सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र, प्रकीर्णक, तारका,
तद्-विशेष-संज्ञा₁। नाम-कर्म-उदय-प्रत्यया:₁।	=उन (ज्योतिषी देवों)की विशेष संज्ञायें (विशेष) नाम कर्मके उदयके निमित्तसे हैं
सूर्या-चन्द्रमसौ₁ इति* पृथक्* ग्रहणं₁।।	=सूर्याचन्द्रमसौ ऐसे (इन दोनोंके द्वंद्व समासमें) अलग (विभक्ति) ग्रहण
प्राधान्य-ख्यापन-अर्थम्₁।।	=(उन दोनों सूर्य चन्द्रकी)मुख्यता वा श्रेष्ठता(ग्रह नक्षत्र तारकोंपर) जतानेके लिये है

अर्थात प्रश्न यह है कि जैसे दशवां सूत्रमें भवनवासी देवोंके दश भेद मिलाकर कहे और अन्तमें प्रथमा विभक्ति बहुवचन दे दी और व्यन्तरोंके आठ भेद मिलाकर अन्तमें प्रथमा विभक्ति बहुवचन देदी।

जिनकी गति नियत नहीं ऐसे होनेसे सूर्य तथा चन्द्रमाके ऊपर तथा नीचे भी भ्रमण करते हैं और सूर्यसे दश योजन अन्तराल होते हैं अर्थात सूर्यसे दश योजन दूर रहते हैं ॥ ( ) सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र० में हमारे यहांके 'प्रकीर्णक' शब्दके स्थानमें 'प्रकीर्ण' शब्द है। शेषपाठ एक है दोनों सम्प्रदायोंमें अर्थ लगभग एक सा है।

( ) श्वेताम्बर आम्नायके 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्र'का पाठ "ज्योतिष्काः सूर्याश्चन्द्रमसो ग्रहनक्षत्रप्रकीर्णतारकाश्च॥१३॥" श्वेताम्बर समाजके 'भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीका'–सिद्धसेनसूरि रचितका पाठ "ज्योतिष्काः सूर्याः चन्द्रमसो ग्रहा नक्षत्राणि प्रकीर्ण तारकाश्च"

(१) इस "पञ्चविकल्पा" वाक्यको तीसरे सूत्रसे इस सूत्रमें लिया है अथवा अनुवर्तन किया है ( ) (शंका) 'चन्द्रमस्' शब्द सूत्रमें क्यों लाये? जब पुल्लिङ्गमें ही 'चन्द्र'शब्द उसी अर्थमें छोटा शब्द है। अथवा इन्दु, विधु, अब्ज, सोम, इन छोटे शब्दोंमेंसे कोई शब्द लाते। अमरकोश ३ वर्ग १३ श्लोक (उत्तर)चन्द्र और शब्दोंसे प्रसिद्ध है परन्तु चन्द्रमा सब से प्रसिद्ध है सभी तक चन्द्रमा कहते हैं इससे सूत्रमें 'चन्द्रमस' शब्द लाये हैं॥

किं कृतं पुनः प्राधान्यं ? प्रभावादिकृतम् ॥ क्व पुनस्तेषामावासाः ? इत्यत्रोच्यते अस्मात्समानभूमिभागादूर्ध्वं सप्तयोजनशतानि नवत्युत्तराणि ७९० उत्पत्य सर्वज्योतिषामधोभागविन्यस्तास्तारकाश्चरन्ति । ततो दशयोजनान्युत्पत्य सूर्याश्चरन्ति । ततोऽशीतियोजनान्युत्पत्य चन्द्रमसो भ्रमन्ति । ततश्चत्वारि योजनान्युत्पत्य नक्षत्राणि । ततश्चत्वारि योजनान्युत्पत्य बुधाः । ततस्त्रीणि

उसी प्रकार इन पांचों भेदोंको मिलाकर इमप्रकार सूत्र करदेते कि " सूर्य-चन्द्रमः-ग्रह-नक्षत्र-प्रकीर्ण- कतारकाश्च" सो ऐसा सूत्र म करके "सूर्यचन्द्रमसौ" इन दो शब्दोंकी प्रथमा विभक्ति दो वचन न्यारीकी और शेष सूत्र " ग्रह-नक्षत्र प्रकीर्णकतारकाश्च" इन तीन शब्दोंकी न्यारी विभक्तिकी सो ऐसा क्यों किया । उत्तरमें कहते हैं कि सूर्य और चन्द्रकी शेष तीन प्रकारके ज्योतिषी देवोंपर प्रधानता (=प्राधान्य)जतानेके लिये सूर्य-चन्द्रमाकी विभक्ति अथवा कारक न्यारा किया और शेष तीन ग्रह नक्षत्र प्रकीर्णक तारका का न्यारा कारक किया ॥

किं।।। कृतम्।।। पुनः* प्राधान्यम्।।।	=(प्रश्न) बहुरि क्या प्रधानपना वा श्रेष्ठता (इन सूर्य चन्द्रकी अन्य ज्योतिषियोंपर) है
प्रभाव-आदि-कृतम्।।। । क्व* पुनः* तेषाम्।	=(उत्तर) प्रताप आदिक करि (प्रधानपना) किया है । (प्रश्न) बहुरि तिनके कहां
आवासाः। इति* । अत्र* उच्यते	=निवास स्थान हैं (उत्तर) यहां कहा जाय है कि
अस्मात्। समान-भूमि-भागात्। ऊर्ध्वम्*	=इस (मध्यलोकके) समान भूमिभागसे अर्थात् चित्राभूमिसे ऊपरकी ओर(=ऊर्ध्वम्)
सप्त-योजन-शतानि।।। नवति-उत्तराणि।।। उत्पत्य	=सात सौ योजन नब्बे अधिक ७९० ऊंचा (=उत्पत्य)
सर्व-ज्योतिषाम्। अधस्* भाग-विन्यस्ताः।	=समस्त ज्योतिषियोंके नीचे भागमें फैले हुये (=विन्यस्त)
तारकाः। चरन्ति ततः* दशयोजनानि।।।	=तारे विचरते हैं वहांसे अर्थात तिन तारकाओंसे दशयोजन
उत्पत्य* सूर्याः। चरन्ति-ततः* अशीति-योजनानि।।।	=ऊपर सूर्य भ्रमण करते हैं । वहांसे अस्सीयोजन
उत्पत्य* चन्द्रमसः। भ्रमन्ति ततः* चत्वारि।।।	=ऊपर चन्द्रमा विचरे हैं । वहांसे चार
योजनानि।।। उत्पत्य* नक्षत्राणि।।। ततः* चत्वारि।।।	=योजन ऊपर नक्षत्र (२८) हैं । वहांसे चार
योजनानि।।। उत्पत्य* बुधाः। ततः* त्रीणि।।।	=योजन ऊंचे बुद्ध हैं । वहांसे तीन

योजनान्युत्पत्य शुक्राः। ततस्त्रीणि योजनान्युत्पत्य बृहस्पतयः। ततस्त्रीणि योजनान्युत्पत्याङ्गारकाः। ततस्त्रीणि योजनान्युत्पत्य शनैश्चराश्चरन्ति। स एष ज्योतिर्गणगोचरो नभोऽवकाशो दशाधिकयोजनशतबहलस्तिर्यगसंख्यातद्वीपसमुद्रप्रमाणो घनोदधिपर्यन्तः॥ उक्तं च-णउदुत्तरसत्तसया—

योजनानि ।॥ उत्पत्य * शुक्राः ।।; ततः * त्रीणि ।॥ = योजन ऊंचे शुक्र हैं। वहां से तीन

योजनानि ।॥ उत्पत्य * बृहस्पतयः ।।; ततः * त्रीणि ।॥ = योजन ऊंचे बृहस्पति हैं। वहां से तीन

योजनानि ।॥ उत्पत्य * अङ्गारकाः ।।; ततः * त्रीणि ।॥ = योजन ऊपर मंगल हैं। वहां से तीन

योजनानि ।॥ उत्पत्य * शनैश्चराः ।। चरन्ति T = योजन ऊपर शनैश्चर भ्रमण करते हैं।

सः ।। एषः ।। ज्योतिर्गण-गोचरः ।। नभस्-अवकाशः ।। = सो यह ज्योतिष्क मंडल (= गण) को विषयरूप (= गोचर) आकाशका स्थानदेना (अवकाश)

दश-अधिक-योजन-शत-बहलः ।। = दश ऊपर सौ योजन मोटा (= बहलः) है अर्थात् इस समतल भूमिसे अर्थात् चित्रा पृथिवीमें सातसौनब्बे योजनके ऊपर नौसौ योजन पर्यन्त एकसौदश योजन मोटा ज्योतिषी देवोंका पटल है

तिर्यग् * = और तिर्यग् विस्तार अर्थात् तिरछा या दायें बायें या इधर उधर फैलाव

असंख्यात-द्वीप-समुद्र-प्रमाण ।। घनोदधिपर्यन्तः ।। = असंख्यात द्वीप समुद्र प्रमाण (लम्बा चौड़ा) घनोदधि वातवलय पर्यन्त है

अर्थात् घनोदधिवातवलय (जो घनवातवलयके आधार है और घनवातवलय जो तनुवातवलयके आधार है तनुवातवलय आकाश के आधार है और आकाश अपने ही आधार है) गोलो पवनका है उसके भीतर इनका तिर्यग् विस्तार नहीं है वरन जहां यह घनोदधिवातवलय आरम्भ हुआ है वहां इन ज्योतिष्क देवोंके विस्तारका अंत है (घनोदधि पर्यन्त वाक्य का आशय और भावार्थ मेरी समझमें ऐसाही आया है वह स्पष्ट करदिया, शेष पाठकगण निर्णय करें)

उक्तम् ।॥ च * णउदु-उत्तर-सत्तसया(नवति-उत्तर-सप्तशतानि ।॥) = कहा गया भी है कि नब्बे ऊपर सातसौ योजन अर्थात् सातसौ नब्बे योजन

* यह गाथा जिस स्थानसे लीगई है उसमें पाठकोंको आगामी 'योजन' शब्द का जो प्रकरण वश इस गाथामें नहीं है अनुवर्तन यहां करना चाहिये।

दस सीदी चदुदुगातियचउक्कम् तारारविससिरिक्खा बुहभग्गवगुरुअंगिरारसणी ॥१॥

ज्योतिष्काणां गतिविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

दस:॥ सीदी:॥ चदुदुग-तियचउक्कं :॥ (दश:॥ अशीति:॥ चतुर्द्विक-त्रयचतुष्कम्:॥) =दशयोजन-अस्सीयोजन-चारयोजन दो वार अर्थात् चारयोजन चारयोजन तीनयोजन चारवार अर्थात् तीनयोजन, तीनयोजन, तीनयोजन, तीनयोजन,

तारा-रवि-ससि-रिक्खा:। (तारा-रवि-शशि-रिक्षाः:।) =तारे, भान, चन्द्रमा, नक्षत्र (अठाईस)

बुह-भग्गव-गुरु-अंगिरा-रसणी:। बुद्ध-भार्गव-गुरु-अंगारका-शनयः:। =बुद्ध-शुक्र-बृहस्पति-मंगल (और) शनैश्चर (यथासंख्य सम भूमिसे विचरें) हैं

भावार्थ सम भूमि चित्रा पृथिवीसे सातसौ नव्वै योजन ऊंचे तारे हैं। तिन तारों से दश योजन ऊपर सूर्य हैं। तिन से ८० योजन ऊपर चन्द्रमा हैं। तिनसे चारयोजन ऊपर नक्षत्र हैं। तिनसे चारयोजन ऊपर बुद्ध हैं। तिनसे तीनयोजन उर्ध्व शुक्र हैं। तिनसे तीनयोजन ऊपर बृहस्पति है। तिनसे तीनयोजन ऊंचे मंगल हैं और मंगलसे तीनयोजन ऊपर शनिश्चर हैं।

ज्योतिष्काणां:॥ विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थं:॥ आह- =ज्योतिषी देवोके गमन विशेषके ज्ञानके लिये (उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

❋ पूज्यपाद स्वामीके मतमें चन्द्रमासे चारयोजन ऊपर नक्षत्र हैं और नक्षत्रोंसे चारयोजन ऊपर बुद्ध (देव) हैं परन्तु तत्त्वार्थराजवार्तिकके रचयिता श्री अकलंक स्वामी तथा श्लोकवार्तिकके रचयिता श्रीमद् विद्यानंदि स्वामीके मतमें चन्द्रमासे तीन योजन ऊपर नक्षत्र हैं और नक्षत्रोंसे तीन ही योजनपर बुद्ध है इन आचार्योंके मतानुसार बृहस्पति देवोंसे चारयोजनकी उंचाईपर मंगल हैं और मंगलसे चार योजनकी उंचाईपर शनैश्चर नामके ज्योतिषीदेव भ्रमण करतेहैं अर्थात् सर्व आचार्य (।) ज्योतिष्क समस्तदेवोंके क्रमानुसार अवस्थित (।।) तथा क्रमानुसार एक दूसरेके ऊपर ऊपर होनेमें सहमत हैं (।।।) इस वातमें भी सहमत हैं कि ज्योतिष्क पटल एकसौ दशयोजन उंचाईमें गगनमें फैल रहा है। केवल मतभेद इतना है कि एकके मतमें नक्षत्र और बुद्ध चार चार योजन ऊंचे हैं और मंगल शनिश्चर तीन तीन योजन ऊंचे हैं अन्य आचार्योंके मतमें मंगल शनिश्चर प्रत्येक गण चार चार योजन ऊंचे हैं और नक्षत्र, बुद्ध (देव) तीन तीन योजन ऊपर हैं॥ श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य० में तथा भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीका (श्री सिद्धसेनसूरि रचित) में ऐसा आशय दिया है कि 'समान भूमिभागसे आठसौ (८००) योजनपर सूर्य है, सूर्यसे अस्सी (८०) योजनपर चन्द्रमा है और चन्द्रमासे बीस (२०) योजनपर तारा है' श्वेताम्बर आम्नायके दिगम्बर तत्त्वार्थाधिगम सूत्रके पृष्ठ १०० "जहां सम तल-भूमि भागसे ऊपर सातसौ (७००) योजन अधिक नव्वै (९०) योजन, प्रथम ज्योतिष्क विमानोंका प्रस्तार है,

उसके दश योजन ऊपर भान वा सूर्य विमानका प्रस्तार या पटल है। उसके ऊपर अस्सी योजन चन्द्रमाके विमानका प्रस्तार है। तिस (चन्द्र-विमान) के ऊपर बीस योजन तारा ग्रहोंके विमानका विस्तार है। इस प्रकार ज्योतिष्कलोक एकसौ दश योजन मोटा है। देखो भाष्यानुसारिणी तत्वार्थटीका इसी सूत्रपर पृष्ठ ३२४ जहांपे उपर्युक्त भाष्यका शब्दशः अनुवाद किया है। संस्कृतभाष्य विस्तारभयसे नहीं लिखा है। ऊपरसे प्रगट है कि उनके यहां उक्त दो भाष्योंमे विशेषरूपसे नहीं दर्शाया है कि जिससे हमको निर्णय करनेमें सहायता मिले। एक बातको आचार्योंके मतमें पढ़कर बहुत अचम्भित और विस्मय हुआ कि उसी एक गाथासे पूज्यपाद स्वामीने अपना मत पोषण किया है और उसी आर्या छन्दसे कुछ एक शब्दकी हेराफेरी सहित अकलंक स्वामीने अपना मत पोषण किया है। अब हम उक्त तीनों आचार्योंका मत शब्दशः लिखते हैं। पूज्यपाद स्वामीका मत शब्दशः हम पृष्ठ ३१, ३२, ३३ में लिख चुके हैं विस्तारभयसे दुहरानेकी आवश्यकता नहीं।

(१) अकलंक स्वामीका मत ऐसे है कि:—

अस्मात् समात् भूमिभागात् ऊर्ध्वं सप्तयोजनशतानि =इस समतल (चित्रा पृथिवीके) भूमिभागसे ऊपर सातसौ योजन (और)

नवत्युत्तराणि उत्प्लुत्य =नब्बे सहित ऊंचाईपर (=उत्प्लुत्य) अर्थात् सातसौ नब्बे योजनकी ऊंचाईपर

सर्व ज्योतिषां अधोभाविन्यः तारका चरन्ति =समस्त ज्योतिषीदेवोंमें नीचे रहने वाले (=अधोभाविन्य) तारे भ्रमण करते हैं।

ततःदशयोजनानि उत्प्लुत्य सूर्याः चरन्ति =उन (तारों) से दशयोजन ऊंचाई पर (=उत्प्लुत्य) सूर्य भ्रमण करते हैं।

ततः अशीति योजनानि उत्प्लुत्य चन्द्रमसः भ्रमंति =उन (सूर्यों) से अस्सी योजन ऊंचाईपर वा उलंघनकर चन्द्रमा भ्रमण करते हैं।

ततः त्रीणि योजनानि उत्प्लुत्य नक्षत्राणि =उन (चन्द्रमाओं) से तीन योजन ऊंचाईपर नक्षत्र (भ्रमण करते हैं)

ततः त्रीणि योजनानि उत्प्लुत्य बुधाः =उन (नक्षत्रों) से तीन योजन ऊंचाईपर बुद्ध (देव भ्रमण करते) हैं

ततः त्रीणि योजनानि उत्प्लुत्य शुक्राः =उन (बुद्धदेवों) से तीन योजन ऊपर शुक्र (देव भ्रमण करते) हैं

ततः त्रीणि योजनानि उत्प्लुत्य बृहस्पतयः =उन शुक्र (देवोंसे) तीन योजन ऊपर बृहस्पति (देव) हैं

ततः चत्वारि योजनानि उत्प्लुत्य अंगारकाः =उन बृहस्पति (देवों) से चार योजन ऊचे मंगल (=अंगारका) भ्रमण करते) हैं

ततः चत्वारि योजनानि उत्क्रम्य शनैश्चराः चरन्ति =उन (मंगल देवो)से चार योजन ऊचे (=उत्क्रम्य) शनिश्चर (भ्रमण करते) हैं

सः एषः ज्योतिर्गणगोचरः नभ अवकाशः दशाधिक— योजनशतबहुलः =सो यह ज्योतिषियोंका समूहके गोचर आकाशका अवकाश वा आकाशदेश दशऊपर =सौ योजन मोटा है (=बहुलः =बहुत्वः) अर्थात् एक सौ दश योजन गगनमे फैलि रहो परमाणिए

तिर्यग्-असंख्यात-द्वीप-समुद्रप्रमाणः घनोदधिपर्यंत	=(और) तिरछा विस्तार असंख्याते द्वीप समुद्र प्रमाण घनोदधि वातवलय तक है।
उक्तं च-णवदुत्तरसत्तसया (नवति-उत्तर-सप्तशतानि)	=कहा जाता भी है कि नव्वै ऊपर सातसौ (योजन) अर्थात् सातसौ नव्वै योजन
दस-सीदि-चदु तिगं च दुगचदुक्कं दश-अशीति-चतुःत्रिक-च द्विक चतुष्कम्	=दशयोजन, अस्सीयोजन, चारबार तीनयोजन, और (=च) दोवार चार योजन अर्थात् तीनयोजन, तीनयोजन, तीनयोजन, तीनयोजन और चारयोजन चारयोजन (चित्रा भूमिके समतलसे उंचाईपर-क्रमसे)
तारा-रवि-ससि-रिक्खा (तारा-रवि-शशि-रिक्षाः)	=तारे, सूर्य, चन्द्रमें, नक्षत्र
बुह-भग्गव-गुरु-अंगिरा-रसणी बुद्ध-भार्गव-गुरु-अंगारका-शनयः	=बुद्ध-शुक्र-वृहस्पति-मंगल-शनिश्चर (देव) (विद्यमान) हैं

यह आर्या छदके सर्वार्थसिद्धि वृत्तिमें (और एक हस्त लिखित प्रतिमें भी) और राजवार्तिक की दो मुद्रित प्रतियोंमें, पन्नालाल दुनीकी हस्तलिखित प्रतिमें तथा पन्नालाल न्यायदिवाकर हस्तलिखित और अनुवादित एक प्रतिमे भी, प्रथम, तृतीय और चतुर्थ पाद शब्दशः एक ही है केवल द्वितीय पादके अंत भागके पाठमे सर्वार्थसिद्धिका पाठ "चदुदुग तियचउक्कं" (चार दोवार, तीन चारवार) के स्थानमें तत्त्वार्थराजवार्तिक में "चदु तिगं" च "दुग चदुक्क" पाया जाता है इसीसे अर्थमें भेद है जिसको हम ऊपर लिख चुके हैं और दोनों पाठोंमे जो अन्तर है उस तृतीय पादका भी अर्थ दोनों मतानुसार ऊपर लिख चुके हैं विद्यानंदि स्वामीने 'मेरुप्रदिक्षणा नित्यगतयो नृलोके' ॥१३॥ इससूत्रके नीचे अकलंक स्वामी से सहमत होते हुये निम्न श्लोक दिये हैं :—

योजनानां शतान्यष्टौ (=शतानि अष्टौ) हीनानि दश योजनैः। उत्पत्य तारकास्तावच्चरंत्यध (तारकाः तावत् चरंति अधस्) इति श्रुतिः =आठसौ योजनमेंसे दशयोजन कम घाटि, सातसौ नव्वै योजन तो (चित्रा भूमिके समतलसे) ऊपर (=उत्पत्य) तारे (सब ज्योतिष्कोंमे) नीचे विचरते हैं ऐसा शास्त्र है ॥ ततः सूर्या दशोत्पत्य (=दश-उत्पत्य) योजनानि महाप्रभाः। ततश्चंद्रमसो शीति (ततः चन्द्रमसोऽशीति) भानि त्रीणि ततस्त्रयः (ततः त्रय) ॥४॥ उन (ताराकाओं)से दशयोजन ऊपर महाप्रभावाले सूर्य भ्रमते हैं। उन (सूर्योंसे) अस्सीयोजन (ऊपर) चन्द्रमें हैं। इन तीनोसे (ऊपर) तीन (त्रीणि) योजन नक्षत्र हैं ॥४॥ त्रीणि त्रीणि बुधाः शुक्रा गुरवश्चोपरि (=गुरवः च उपरि) क्रमात। चत्वार्यंगारका स्तद्वच्चत्वारि (=चत्वारि अंगारकाः तद्वत् चत्वारि) च शनैश्चराः ॥३॥ तीन तीन (योजन) बुद्ध शुक्र वृहस्पति क्रमसे (एक दूसरेके) ऊपर हैं। वैसे ही (=तद्वत) चारयोजन ऊपर मंगल हैं और (=च) चारयोजन ऊपर शनीश्चर हैं ॥५॥ भाषाके टीकाकार पं० सदासुख जी और पं० जयचंद राय जी ने अकलंकदेव स्वामी और विद्यानन्दि स्वामीके मतानुसार अर्थ प्रकाशिका और सर्वार्थसिद्धि वचनिकामें उल्लेख किया है परन्तु कविवर धानतराय जीने चरचा शतकमें (संवत् १७८०) पूज्यपाद स्वामीके मतानुसार ऐसा छप्पयछंद बनाया है कि "सात सतक अरु नव्वै तासपर तारे राजैं। ता ऊपर दशभान असीपर चन्द्र विराजैं। चार नखत बुधचार तीनपर शुक्र बतायो। तीन गुरू कुज तीन तीन पर शनि (=शनिश्चर) ठहरायो

॥ मेरुप्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोके ॥१३॥

मेरोः प्रदक्षिणाः मेरुप्रदक्षिणाः। मेरुप्रदक्षिणा इति वचनं गतिविशेषप्रतिपत्त्यर्थं विपरीतगतिर्मा विज्ञायीति॥ नित्यगतय इति विशेषणमनुपरतक्रियाप्रतिपादनार्थम्। नृलोकग्रहणं विषयार्थम्। अर्धतृतीयेषु द्वीपेषु द्वयोश्च समुद्रयोर्ज्योतिष्का नित्यगतयो नान्यत्रेति॥

सूत्रम्— मेरुप्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोके ॥ =(ज्योतिष्काः) मेरु प्रदक्षिणाः नित्यगतयः नृलोके ॥१३

सूत्रार्थ— ज्योतिष्काः १। =(ये पाच प्रकारके) ज्योतिषीदेव
मेरु-प्रदक्षिणाः १॥ =सुमेरुकी प्रदक्षिणा देते हुये अथवा मडलाकार फिरते हुये
नृ-लोके ७। नित्य-गतयः १॥ =मनुष्य लोकमें अर्थात् अढाई द्वीप और दो समुद्रोमें निरन्तर गमन करनेवाले हैं
वृत्त्यनुवाद— मेरोः ६। प्रदक्षिणा १॥ मेरु-प्रदक्षिणा १॥ =सुमेरुके मडलाकार फिरना सो मेरुप्रदक्षिणा है।
मेरु-प्रदक्षिणा १॥ इति * वचनं १॥ गति-विशेष— =मेरुप्रदक्षिणा ऐसा वाक्य गमनविशेष
प्रतिपत्ति-अर्थम् १॥ विपरीतगतिः १॥ मा * विज्ञायि-इति =जाननेके लिये है अन्य प्रकार गमन न जानो अर्थात् पूर्वोक्त ज्योतिषी देवोंका गमन सुमेरु पर्वतके मंडलाकार ही जानो भिन्न प्रकारसे न जानना
नित्य-गतयः १॥ इति * विशेषणं १॥ अनु-उपरत— =(सूत्रमें) 'नित्यगतय' ऐसा गुणवाचक शब्द निरन्तर अथवा लगातार
क्रिया-प्रदिपादन-अर्थम् १॥ नृ-लोक— =(गमनरूप) क्रियाके जनावनेके लिये है। मनुष्य लोकका
ग्रहणं १॥ विषय-अर्थम् १॥ =ग्रहण देश (=विषय) के लिये है। अर्थात् ज्योतिषी देवोंके गमनकी मर्यादा अथवा सीमाके लिये है।
अर्ध-तृतीयेषु ७। द्वीपेषु ७। द्वयोः ७। च समुद्रयोः ७। =अढाई (=अर्धतृतीयेषु) द्वीपमें और (=च) दो समुद्रोंमें
ज्योतिष्काः १। नित्यगतयः १॥ न-अन्यत्र * इति * =ज्योतिषीदेव नित्यगमन (करने) वाले हैं न दूसरे स्थानमें।

* श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्वार्थाधिगम सूत्रका पाठ और हमारे यहाँ का पाठ और अर्थ एक है परन्तु उनके यहांके 'भाष्यानुसारिणी-तत्त्वार्थटीका हस्तलिखितमे (श्री सिद्धसेनसूरि रचित) में 'मेरु प्रदक्षिणा नित्यगतयः' ऐसा पाठ है॥

ज्योतिष्कविमानानां गतिहेत्वभावात्तद्वृत्त्यभाव इति चेन्न, असिद्धत्वात् ॥ गतिरताभियोग्यदेवप्रेरितगतिपरिणामात्कर्मविपाकस्य वैचित्र्यात्तेषां हि गतिमुखेनैव कर्म विपच्यत इति ॥ एकादशभिर्योजनशतैरेकविंशैर्मेरुमप्राप्य ज्योतिष्काः प्रदक्षिणाश्चरन्ति ॥ गतिमज्ज्योतिस्सम्बन्धेन व्यवहारकालप्रतिपत्त्यर्थमाह

॥ तत्कृतः कालविभागः ॥ १४ ॥

ज्योतिष्क-विमानानाम् गति-हेतु अभावात् तद्-वृत्ति-अभावः इति *चेत्* न* =(प्रश्न) ज्योतिषी देवोंके विमानोंके गमनका कारण न होनेसे =उस (गति)का प्रवर्तन नहीं (=अभाव) है। ऐसा संदेह होना चाहिये (उत्तर) (शंका) नहीं (क्योंकि यह कहना कि ज्योतिषीदेवोंके विमान स्थिर हैं इससे गमन नहीं करते हैं)

असिद्धत्वात् गति-रत-आभियोग्य-देव-प्रेरित-गति-परिणामात् =असिद्ध होता है। क्योंकि गमन विषैं लीन ऐसे आभियोग्य जातिके =देवोंकरि किया (=प्रेरित) गमन परिणाम है। अर्थात् गतिरूप अवस्थामें परिवर्तन अथवा पलटाव है ॥

कर्म-विपाकस्य वैचित्र्यात् तेषाम् हि गति मुखेन एव कर्म विपच्यते इति =सो कर्मकी उदयकी विलक्षणतासे तिन (आभियोग्य जातिके देवों) के ही =गमन रूप प्रधानतासे ही कर्म पकाया जाता है अर्थात् उदय होता है।

एकादशभिः योजन-शतैः एकविंशैः मेरुम् अप्राप्य =ग्यारह सौ इक्कीस योजन मेरु को छोड़कर (उसे)

ज्योतिष्काः प्रदक्षिणाः चरन्ति । गतिमत्-ज्योतिस्-सम्बन्धेन व्यवहार-काल-प्रतिपत्ति-अर्थम् आह =ज्योतिषी देव प्रदक्षिणा करते हैं। गमन करने वाले अथवा गतिमानज्योतिषीयोंके =सम्बन्धसे व्यवहार कालके जाननेके लिये (अग्रिम सूत्र में) कहते हैं कि

[1]सूत्रम्—

तत्कृतः कालविभागः ॥ १४ ॥

सूत्रार्थः—तत्कृतः (=तत्-कृतः) काल विभागः

तिन गतिमान ज्योतिषियों से (कृत) किया [illegible] काल का [illegible] विभाग है अर्थात् गमन करनेहारे [illegible] द्वारा व्यवहार कालके भाग जैसे समय, आवली, पल, घड़ी, पहर, दिन, रात, पक्ष, मास, [illegible], अयन, वर्ष, युग, इत्यादि [illegible] है

(१) [illegible]

तद्ग्रहणं गतिमज्ज्योतिःप्रतिनिर्देशार्थम्। न केवलया गत्या नापि केवलैर्ज्योतिर्भिः कालः परिच्छिद्यते, अनुपलब्धेरपरिवर्तनाच्च ॥

वृत्त्यनुवादः—तद्-ग्रहणम्[१।१] गतिमत्-ज्योतिस्-प्रति*निर्देश-अर्थम्[१।१] न*केवलया[३।१] गत्या[३।१]	=(सूत्रमें) तत् शब्दका आदान गमन सहित ज्योतिषी देवों =के (=प्रति) कथनके लिये है न अकेले गमनसे (और)
न*अपि*केवलैः[३।३] ज्योतिर्भिः[३।३] कालः[१।१] परिच्छिद्यते	=न केवल ज्योतिपी देवों करि ही (=अपि) (यह व्यवहार) काल जानाजाता है (गमन करतेहुये ज्योतिषी देवोंकरि ही उक्त व्यवहारकाल समय आवलीआदि ज्ञात हैं)
अनुपलब्धेः[५।१] च*	=क्योंकि (व्यवहार काल) प्रत्यक्ष नेत्रों द्वारा नहीं देखाजासक्ता है और (=च)
अपरिवर्तनात्[५।१]॥	=न (उस व्यवहार काल का) पलटना (भी दीखे है)

(१) अनुपलब्धेः और अपरिवर्तनात् ये दो शब्द व्यवहार काल से सम्बन्ध रखते हैं अथवा ज्योतिष्क देवों से अर्थात् व्यवहार काल प्रत्यक्ष नेत्रों द्वारा और उस व्यवहारकालका परिवर्तन और पलटन नहीं दीखते हैं अथवा ज्योतिषी देवोंकी गति, गमन नहीं देखा जासका है और वे परिवर्तन रहितहैं अर्थात् अवस्थित हैं॥ इस 'तत्' शब्दके सम्बन्धमें हमको श्लोकवार्तिकमें, अर्थप्रकाशिकामें, पं०सदासुखजीकी लघुटीकामें, श्वेताम्बरसम्प्रदायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें तथा उनकी भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकामें तथा दो चार अन्य भाषाओंकी टीका में कुछ भी नहीं मिलता है॥ तत्त्वार्थ राजवार्तिकमें ठीक उसी आशय का लेख है जो सर्वार्थसिद्धि में है जैसे

संस्कृत सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका पाठ	तत्त्वार्थ राजवार्तिकालंकार का पाठ
तद् ग्रहणं गतिमज्ज्योतिः प्रतिनिर्देशार्थम्	तद्वचन गतिमज्ज्योति प्रति निर्देशार्थम् ॥१॥ गतिमतां ज्योतिषां प्रतिनिर्देशार्थं तदित्युच्यते
नकेवलया गत्यानापिकेवलैर्ज्योतिर्भिःकालःपरिच्छिद्यते, अनुपलब्धेरपरिवर्तनाच्च॥	नहि केवलगत्या नापि केवलैर्ज्योतिर्भिः काल परिच्छिद्यते, अनुपलब्धेरपरिवर्तनाच्च ज्योति परिवर्तनलभ्यो हि कालपरिच्छेदः।
"इहां तत्शब्दका ग्रहण गतिसहित ज्योतिष्क देवनिके कहनेके अर्थ है। सो यह व्यवहार काल केवल गतिही करि तथा केवल ज्योतिषीहीनिकरि नाहीं जान्या जायहै जातैं गमनतौ इनिका काहू कू दीषै नाहीं। बहुरि गमन न होयतौ ये थिरही रहैं। तातैं दोनों सम्बन्ध लैना" पं० जयचन्दजी कृता वचनिका मुद्रित पृष्ट ३७४, हस्तलिखित पृष्ठ १४७ वा १४८	"सूत्रमें जो तत् शब्दका उल्लेख किया गया है वह गतिमान ज्योतिषियोंके ग्रहणार्थ हैं ॥१॥ केवल गति क्रियाके आधीन कालका निर्णय नहीं हो सकता क्योंकि गतिकी अनुपलब्धि है नेत्र से नहीं दीखपडती॥ केवल ज्योतिषियों सेभी काल का निश्चय नहीं होसका क्योंकि

गति क्रिया रहित केवल ज्योतिषियोंको परिवर्तन रहित स्थिर माना जायगा।
स्थितिशील ज्योतिषियोंसे कालका निर्णय नहीं हो सकता। इसलिये कालके निश्चयमें गतिमान ज्योतिषी ही असाधारण कारण हैं। उन्हींसे कालका निर्णय होता है "राजवार्तिक अनुवादित पं० गजाधरलाल शास्त्री, पं० मक्खनलाल न्यायालंकारद्वारा ससोधित पृष्ठ१०३५॥
"अर्थ—सूत्रके विषै तत् शब्दका ग्रहण है सो गतिसहित ज्योतिष्क देवनिके कहनेके अर्थ है"
अर्थ टीकाका—गतिरूप परिणये जे ज्योतिषी ऐसे गति विशिष्ट ज्योतिषीनिके कहने के अर्थ सूत्र के विषै तत् शब्द कहा है॥
तहां यह व्यवहारकाल है सो केवल गतिही करि तथा ज्योतिषीनिकरि नाहीं जान्या जायहै॥ जातैं गमनतौ इनका काहू कूं दीखै नाहीं और गमन न होय तौ ज्योतिषीनिका परिवर्तनका अभाव होय तौ ये थिरही रहैं॥ ऐसे गमनकी अनुपलब्धितैं तथा ज्योतिषीनिके अपरिवर्तनतैं व्यवहार काल नहीं जाना जाय है॥
तातैं निश्चयकरि (=हि) ज्योतिषिनिके परिवर्तनतैं व्यवहारकाल जाना जाय है" प० पन्ना-लाल न्याय दिवाकर अनुवादित तत्त्वार्थ राजवार्तिक अर्थात् तत्त्वार्थ रत्नमाला पृष्ठ ६३३
"गतिमान ज्योतिषीनिका किया काल विभागकूं जनावने के अर्थ तत् ऐसोशब्द कहिये है। अर निश्चयकरि केवल गति करि भी काल नहीं जानिये है अर केवल ज्योतिषीनिकरि भी काल नहीं जानिये है क्योंकि अनुपलब्धितैं कि प्रत्यक्ष नहीं दीखनेतैं। अर अपरिवर्तनतैं कालकी सत्ता नहीं ज्ञात होय है अर्थात् काल प्रत्यक्ष भी नहीं दीखे है अर कालका पलटना भी नहीं दीखे है। यातैं ज्योतिषीनिका परिवर्तन करिही कालका जानपन है"॥ पं०पन्नालाल जी दूनीवाले अनुवादित राजवार्तिक पृष्ठ २१॥

मैंने पं० पन्नालालजी दूनीवाले के साथ सहमत होकर ऊपर अनुवाद किया है॥ मुझको लगभग दशवर्ष प्रथम भी सदेह हुआ था कि "अनुपलब्धेरपरिवर्तनाच्च" वाक्यका अनुवाद ठीक नहीं है उस समय मैंने उसे छोड़ दिया था अब इन्द्रप्रस्थमें नाना प्रकार के साधन प्राप्त होने पर लिखा है॥ कारण यह है कि ज्योतिषियों का गमन अनुपलब्ध नहीं है क्योंकि हम सर्व उनका गमन प्रत्यक्ष आंखों से देखते हैं निस्संदेह काल प्रत्यक्ष नहींदीखता है और कालका पलटना भी नहीं दीखता है॥ स्मरण रहै कि कितने ही ज्योतिषीदेव थिर हैं उनका गमन नहीं होता अतः नहीं देखा जासकता है॥

कालो द्विविधो व्यावहारिको मुख्यश्च ॥ व्यावहारिकः कालविभागस्तत्कृतः समयावलिकादिः क्रियाविशेषपरिच्छिन्नोऽन्यस्यापरिच्छिन्नस्य परिच्छेदहेतुः ॥ मुख्योऽन्यो वक्ष्यमाणलक्षणः ॥ इतरत्र ज्योतिषामवस्थानप्रतिपादनार्थमाह—

॥ बहिरवस्थिताः ॥ १५ ॥

बहिरित्युच्यते, कुतो बहिः ? नृलोकात् ॥ कथमवगम्यते ?

कालः द्वि-विधः व्यावहारिकः मुख्यः च*	=काल दो प्रकार है व्यवहार और निश्चय (=परमार्थकाल) अर्थात् कालके अणु ॥
व्यावहारिकः काल-विभागः तत्-कृतः	=व्यवहार कालका विभाग तिन(गमन करते हुयेज्योतिषी देवो)से सूचितक्रियाहुआ
समय-आवलिक-आदिः क्रिया-विशेष-परिच्छिन्नः	=समय, आवली आदिक क्रिया विशेपकरि जाना गया है ।
अन्यस्य अपरिच्छिन्नस्य परिच्छेद-हेतुः	=(सो) दूसरे विना जाने हुयेके जनावनेका कारण है । अर्थात् उसव्यवहारकालके विभाग समय आवली घटिका, दिन, मास, वर्प, इत्यादि दूसरे निश्चयकाल जो जाननेमे नहीं आसक्ता है । उसके सूचित करने वा जनावने का कारण है।
मुख्यः अन्यः वक्ष्यमाण लक्षणः ॥	=दूसरा परमार्थ काल वा निश्चयकालका स्वरूप (अ०पांच २२,३९,४०सूत्रोंमें है)
इतरत्र*ज्योतिपाम् अवस्थान-प्रतिपादन-अर्थम् आह ।	=यहां (मनुप्यलोक)से भिन्न ज्योतिपी देवोके अवस्थितहोनेके कथनको कहते है कि
[1]**सूत्रम्—बहिरवस्थिताः ॥ १५ ॥**	=(**[2]ज्योतिष्काः [3]नृलोकात्)बहिर्-अवस्थिताः(भवन्ति)।१५।**
सूत्रार्थ— ज्योतिष्काः नृ-लोकात्	=ज्योतिपी देव मनुष्य लोक से अर्थात् जम्बूद्वीप धातकी खंड, पुष्करार्ध और लवनोदधि और कालोदधि दो समुद्रोसे
वहिर्*अवस्थिताः भवन्ति ।	=बाहिर गमन रहित हैं (जहां के तहां स्थिर रहते हैं)
वृत्त्यनुवादः—वहिर्*इति*उच्यते । कुतः*वहिः*	=बाहिर ऐसा (सूत्रमें) कहा गया है । (प्रश्न) कहां से बाहिर
नृ-लोकात् कथम्*अवगम्यते ।	=(उत्तर) मनुष्यलोकसे (बाहिर) (प्रश्न) (मनुष्यलोकसे बाहिर यह) कैसे जानागया

(१) 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र'में तथा 'भाषानुसारिणी' तत्त्वार्थबोधिनी टीकामें और हमारे यहां सर्वत्र इस सूत्रका पाठ तथा अर्थ एक है ॥
(२) (३) 'ज्योतिष्का' बारहवां और 'नृलोकात्' तेरहवां सूत्रसेक्रमसे लियेगयेहैं । सबकीसन्धिकरनेसे 'ज्योतिष्का नृलोकाद्बहिरवस्थिता "ऐसासूत्रहोगा ॥

अर्थवशाद्विभक्तिपरिणामो भवति ॥ ननु च नृलोके नित्यगतिवचनादन्यत्रावस्थानं ज्योतिष्काणां सिद्धं । अतो बहिरवस्थिता इति वचनमनर्थकमिति । तन्न । किं कारणम् ? नृलोकादन्यत्र बहिर्ज्योतिषामस्तित्वमवस्थानं चासिद्धम् । अतस्तदुभयसिध्यर्थं बहिरवस्थिता इत्युच्यते ॥ विपरीतगतिनिवृत्त्यर्थं कादाचित्कगतिनिवृत्त्यर्थं च सूत्रमारब्धम् ॥

तुरीयस्य निकायस्य सामान्यसञ्ज्ञासङ्कीर्तनार्थमाह—

अर्थवशात्॥ विभक्ति-परिणामः॥ भवति। =(उत्तर)अभिप्रायकेवलसे वा सामर्थ्यसे विभक्तिका पलटाउ,वा परिणमनहोजाताहै अर्थात् १३ वां सूत्रमें कहा है कि "नित्यगतयो नृलोके" (=नरलोकमे नित्यगमनकरनेवाले है) इस वाक्यसे स्वाभाविक प्रश्न आता है कि नरलोकमें तो नित्यगमनकरनेवाले है। फिर नरलोकके वाहिर क्या है यहां पर सप्तमी विभक्ति "नरलोकमे" अभिप्रायवश पंचमी विभक्ति "नरलोकसे" मे परिणमन होजाती है अथवा परिवर्तन करली जाती है

ननु*च*नृलोके॥ नित्य-गति-वचनात्॥ अन्यत्र* =बहुरिप्रश्न मनुष्यलोकमे नित्यगमन(ऐसे)वाक्यसेयहां(मनुष्यलोक)सेअन्यस्थानमें

अवस्थानम्॥ ज्योतिष्काणाम्॥ सिद्धम्॥ =ज्योतिषी देवोंका अवस्थान सिद्ध वा निष्पन्न है।

अतः*बहिर्*अवस्थिताः॥ इति*वचनम्॥ =इस लिये "बहिर् अवस्थिताः" ऐसा वचन अर्थात् यह पंद्रहवां समस्त सूत्रही

अन्-अर्थकम्॥ इति* । तद्॥ न* =निष्प्रयोजन है (उत्तर) सो (=तद्) नहीं है

किम्॥ कारणम्॥ नृ लोकात्॥ अन्यत्र* =क्या कारण कि मनुष्य लोकसे अन्यत्र

बहिर्*ज्योतिषाम्॥ अस्तित्वम्॥ अवस्थानम्॥ चअसिद्धम्॥ =वाहिर ज्योतिषी देवोंकी विद्यमानता औरगमनका अभाव(१५सूत्रसे सिद्ध है)

अतः*तद्-उभय-सिद्धि-अर्थम्॥ =इसलिये उन(=तद) दोनो (अस्तित्व सत्ता और अवस्थान स्थिरता)प्राप्तिकेलिये

"बहिरवस्थिताः"॥ इति*उच्यते। ॥ विपरीत गति- ="बहिरवस्थिता"ऐसा(सूत्र)कहागया है। उलटागमन अर्थात् अप्रदक्षिणारूपगतिके

निवृत्ति अर्थम्॥ कादाचित्क-गति-निवृत्ति-अर्थम्॥ च* =निषेधके लिये और (=च) कभी कभी होने वाले गमन के निराकरणकेलिये

सूत्रम्॥ आरब्धम्॥ ;तुरीयस्य॥ निकायस्य॥ =(यह पन्द्रहवां) सूत्र प्रारम्भ कियागया है ॥ (देवोंकी) चौथे समुदायकी

सामान्य-सञ्ज्ञा-सङ्कीर्तन-अर्थम्॥ आह। =सामान्य संज्ञा कहनेके लिये (आचार्य अग्रिमसूत्रमें) कहते है कि

॥ वैमानिकाः ॥ १६ ॥

वैमानिकग्रहणमधिकारार्थम् । इत उत्तरं ये वक्ष्यन्ते तेषां वैमानिकसम्प्रत्ययो यथा स्यादिति अधिकारः क्रियते ॥ विशेषेणात्मस्थान् सुकृतिनो मानयन्तीति विमानानि । विमानेषु भवा वैमानिकाः ॥ तानि विमानानि त्रिविधानि । इन्द्रकश्रेणिपुष्पप्रकीर्णकभेदेन ॥ तत्र इन्द्रकविमानानि इन्द्रवन्मध्ये व्यवस्थितानि ।

[1]सूत्रम्—वैमानिकाः ॥ १६ ॥ =([2]चतुर्थः [3]देवनिकायः) वैमानिकाः (सामान्यसञ्ज्ञा भवति)

सूत्रार्थः—चतुर्थः देवनिकायः वैमानिकाः सामान्यसंज्ञा भवति	=चौथा देवोंका समुदाय वैमानिक ऐसी (उन देवों की) सामान्य सज्ञा है
वृत्त्यनुवादः—वैमानिक-ग्रहणम् अधिकार-अर्थम्	=वैमानिक शब्दका ग्रहण अधिकार वा प्रकरण के लिये है
इतस् *उत्तरम् वक्ष्यन्ते तेषाम्	=यहांसे आगे जो कहे जांयगे तिनकी
वैमानिक-सम्प्रत्ययः [4] यथा *स्यात्	=यथायोग्य वैमानिक संज्ञा जानना चाहिये वा समझना चाहिये(=सम्प्रत्ययःस्यात्)
इति *अधिकारः क्रियते ॥ विशेषेण आत्मस्थान्	=(यहां) ऐसा प्रकरण किया गया है ॥ जिनमें रहनेवाले जीवोंको विशेषकरि
सुकृतिनः मानयन्ति इति *विमानानि	=पुन्यवंत (अन्यजीव) मानते है । ऐसे विमान है ॥
विमानेषु भवाः वैमानिकाः । तानि विमानानि	=विमानोंमें (उत्पन्न) होनेवाले वैमानिक है । ते विमान
त्रिविधानि इन्द्रक-श्रेणि-पुष्पप्रकीर्णक-भेदेन	=तीन प्रकार इन्द्रक, श्रेणीवद्ध, और पुष्पप्रकीर्णक भेदसे है ।
तत्र *इन्द्रक विमानानि इन्द्रवत् *मध्ये व्यवस्थितानि	=तहां इन्द्रक विमान इन्द्रके समान बीचा बीचमें (=मध्ये) तिष्ठते हैं

(१) दोनों सम्प्रदायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एक है ॥ (२) इस वाक्यकी अनुवृत्ति इस अध्यायके पहिले सूत्रसे लीगई है ।

(३) क्योंकि इस अध्यायके प्रथम सूत्रमें देवोंके चार निकाय वा समुदाय कहे हैं और १०वां ११वां १२वांसूत्रामें भवनवासी व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंकी सामान्य और विशेषसज्ञायें यथासख्य कही हैं । तब केवल चौथासमुदाय अवशेष रहता है इसलिये चतुर्थशब्दका अध्याहार(=वह वाक्य जो स्पष्ट समझमें न आसके उसे किसी दूसरे शब्दकी कल्पना करि स्पष्ट करदेना) 'इस सोलवा सूत्र में किया है ॥

(४) यहां 'यथा' शब्द यथायोग्यके अर्थ में लाया गया जान पड़ता है अर्थात् जिस जिस प्रकारके वैमानिक देव है जैसे कल्पोपपन्न उनमें भी लौकांतिक जातिके देव और कल्पातीत वैमानिका इत्यादि हों तैसे तैसे यथायोग्य जानों ॥ यथायोग्य, यथोचित, यथाविधि विधिपूर्वक ये चारों समान अर्थ वाचक हैं ॥ सस्कृत वृत्तिहस्तलिखित दो प्रतियोंसे मिलान किया तो यथा शब्द ही पाठ प्राप्त हुआ परन्तु राजवार्तिक मुद्रित तथा दो हस्त लिखित प्रतियों में "वैमानिक सप्रत्ययः कथ स्यादित्यधिकार क्रियते" अर्थात् 'यथा' शब्दके स्थान में कथम् शब्द है ॥ "पन्नालाल दूनीजीने "वैमानिकपणा की भले प्रकार प्रतीति कैसे होय यातै अधिकाररूप सूत्र करिये हैं ऐसा अनुवाद किया है ॥

तेषां चतसृषु दिक्षु आकाशप्रदेशश्रेणिवदवस्थानात् श्रेणिविमानानि । विदिक्षु प्रकीर्णपुष्पवद-वस्थानात्पुष्पप्रकीर्णकानि ॥ तेषां वैमानिकानां भेदाववोधनार्थमाह—

॥ कल्पोपपन्नाः कल्पातीताश्च ॥ १७ ॥

कल्पेषूपपन्नाः कल्पोपपन्नाः कल्पानतीताः कल्पातीताश्चेति द्विविधा वैमानिकाः ॥

तेषामवस्थानविशेषनिर्ज्ञापनार्थमाह—

तेषाम्॥ चतसृषु॥ दिक्षु॥	=तिन (इन्द्र विमानों) की चारों दिशाओंमें
आकाश-प्रदेश-श्रेणिवत्*अवस्थानात्॥	=आकाशके प्रदेशकी श्रेणीके सदृश तिष्ठनेसे
श्रेणि-विमानानि॥ विदिक्षु॥ प्रकीर्ण-पुष्पवत्*	=श्रेणीवद्ध विमान हैं ॥ विदिशाओंमें बिखरे फूलोंके समान
अवस्थानात्॥ पुष्पप्रकीर्णकानि॥	=स्थिति होनेसे वा तिष्ठनेसे पुष्प प्रकीर्णक है ।
तेषाम्॥ वैमानिकानाम्॥ भेद-अवबोधन-अर्थम्॥ आह	=तिन वैमानिकदेवोंके भेद जाननेके लिये (आचार्य अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

(१) **सूत्रम्—कल्पोपपन्नाःकल्पातीताश्च॥ १७॥ =(वैमानिकाः)कल्पोपपन्नाः कल्पातीताःच (द्विविधाभवन्ति)**

सूत्रार्थः—वैमानिकाः॥ कल्प-उपपन्नाः॥	=वैमानिक देव कल्प (अर्थात् स्वर्गो) मे उत्पन्नहोनेवाले
कल्प-अतीताः॥ च*	=तथा(=च)कल्पातीत अर्थात् स्वर्गोसे ऊपर उत्पन्नहोनेवाले भावार्थ स्वर्गों को उलंघकरि (ऊपर ऊपर) नवग्रैवेयक, नवअनुदिश, पांचअनुत्तरोंमेंउपजनेवालेऐसें
द्वि-विधा*भवन्ति	=दो प्रकार होते है
वृत्यनुवादः—कल्पेषु॥ उपपन्नाः॥	=स्वर्गोंमे (=कल्पेषु)उपजने वाले हैं
कल्पोपपनाः॥ कल्पान्॥ अतीताः॥ च*	=(वे) कल्पोपपन्न है और (=च) स्वर्गोंको लांघने वाले (अर्थात् स्वर्गोंमें न उपज-करि उनके ऊपर नवग्रैवेयक नव अनुदिश, पांच अनुत्तर इन तेईस स्थानोंमें उत्पन्न होने वाले)
कल्प अतीताः॥ इति*द्वि-विधा*वैमानिकाः॥	=कल्पातीत है। ऐसे दो प्रकार वैमानिक देव है ।
तेषाम्॥ अवस्थान-विशेष-निर्ज्ञापन-अर्थम्॥ आह	=तिनके निवासस्थानका विशेप जाननेके(=निर्ज्ञापन) लिये कहते हैं कि

(१) दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एक है ॥

॥ उपर्युपरि ॥ १८ ॥

(१)सूत्रम्—उपर्युपरि (उपर्य्युपरि) =(वैमानिकाः) उपर्युपरि (अवस्थितयः भवन्ति) ॥१८॥

सूत्रार्थः—वैमानिकाः{१}उपरि*उपरि* =वैमानिक देवोंके निवासस्थान (एक दूसरेसे) ऊपर ऊपर

अवस्थितयः{१}भवन्ति =अवस्थित है वा विद्यमान हैं अर्थात् कल्पोंके युगल तथा उनके पटल तथा नवग्रैवेयक नव अनुदिश और पांच अनुत्तर ये सब विमान क्रमसे ऊपर ऊपर अवस्थित है

(१) हमारे यहां 'उपर्युपरि' और कहीं कहीं 'उपर्य्युपरि' पाठ है 'अचोरहाभ्यां द्वे वा' व्याकरणके सूत्रसे दूसरा पाठ भी ठीकहै ॥ श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य०में'उपर्युपरि'पाठहै परन्तु भाष्यानुसारिणी तत्वार्थटीका श्रीसिद्धसेन सूरिरचितमें 'उपर्युपरि च' ऐसा पाठहै अर्थ सर्वत्र एक है ॥

(२) इससूत्रमें अनुवृत्ति किसकिस वाक्यकी है इसमें चार मतभेद हैं(क)पूज्यपाद स्वामीके मतमें "कल्पा"शब्द अनुवर्तताहै(सर्वार्थसिद्धिपृष्ठ२४३)

(ख) श्वेताम्बर आम्नायकी भाष्यानुसारिणी तत्वार्थटीका जिसमें बाईस सहस्र श्लोकों से अधिक हैं उसके अनुकूल 'कल्पा' शब्दअनुवर्तताहै। न तो 'देवा' न 'विमानानि' शब्द अनुवर्तन हैं। देखो भाष्यानुसारिणी तत्वार्थ टीका पृष्ठ ३३५

(ग) तत्वार्थराजवार्तिकके अनुसार 'कल्पा' शब्द की अनुवृत्ति सोलह स्वर्ग तकके लिये और 'विमाना' शब्दकी कल्पोंसे(स्वर्गोंसे)ऊपरके लियेहै अर्थात् 'कल्पा' और 'विमाना' दो शब्द अनुवर्तते हे ॥ (घ)तत्वार्थ श्लोकवार्तिकके अनुसार "वैमानिका." शब्दकी अनुवृत्ति इसहेतुसे होना चाहियेकि "वैमानिका." ऐसा अधिकार सूत्र सोलहवां जब कह चुके हैं तब उसके अनुकूल किसी अन्य शब्द वा वाक्य का अनुवर्तन नहीं होना चाहिये। श्लोकवार्तिक पृष्ठ ३८१ देखो ॥ रहा आशयके सम्बन्धमें सो "व्याख्यानतो विशेष प्रतिपत्ति नहि सदेहादलक्षणम्" (=सदेहात्मक वाक्यका यथार्थ तात्पर्य उसकी व्याख्यासे निर्णय किया जाता है क्योंकि नियम लक्षण रहित नहीं होता है) व्याकरण के इस सिद्धान्तसे स्पष्ट होसक्ता है ॥ सब आचार्यों के वाक्य अथवा वाक्योंके अनुवादका उल्लेख नीचे क्रमसे किया है ॥

() "उपर्युपरीत्युच्यन्ते"(सूत्रमें)ऊपर ऊपर ऐसे वर्णितहै(प्रश्न)के ते ? ते(ऊपर ऊपर वर्णित)कौनहैं ॥ (उत्तर)कल्पा.= कल्पहै (सर्वार्थ०पृष्ठ २४३

() 'कल्पा सम्बन्ध्यते। न देवा विमानानि वा यो य निर्देश. करिष्यते" भष्यानुसारिणीतत्वार्थ टीका पृष्ठ ३३५ देखो ॥

=इस उपर्युपरि सूत्रमें कल्पाः शब्द मिलायाजाता है न कि 'देवा' या 'विमानानि' शब्द जो यह कथन किया गया है ॥ (ऊपरके वाक्य का यह शब्दश. अनुवाद है)

() "इद विचार्यते-किमत्रादेयत्वेन कल्प्यमानाः देवा उत विमानानि आहोस्वित् कल्प इति किं वा कामचार"। तत्वार्थ राजवार्तिक पृष्ठ१५६

=यह विचार उत्पन्न होता है कि यहा (उपरि उपरि इस वचनसे) उपादेयपणांकरि (आदेयपनाकरि) अर्थात् ग्रहण करने योग्य कल्पना कियेगये (=कल्प्यमाना) देव (ऊपर ऊपर) हैं वा विमान (ऊपर ऊपर) है अथवा स्वर्ग (=कल्प)(ऊपर ऊपर) हैं अथवा वक्ताकी इच्छाका विषय स्वतन्त्र कोई पदार्थ है (=कामचार.) अर्थात् वक्ताकी इच्छानुसार कहीं देवोंका ग्रहणहै कहीं विमानोंका तो कहीं स्वर्गों का ग्रहण है ॥

भावार्थ प्रथम युगल पहले सौधर्म दूसरे ईशान स्वर्गके जो मध्य लोकसे

() देवा इतिचेन्नाऽनिष्टत्वात् ॥२॥ यदि देवा उपर्युपरीत्यनेनाभिसम्बन्ध्यन्ते। तन्न, किं कारण, अनिष्टत्वात् देवानां हि उपर्युपरि अवस्थानमनिष्टम् ॥
=जो 'देवा' उपरि उपरि के साथ सम्बन्ध कियेजाय सो हो नहीं सकते, किस कारण कि आगमके विरुद्ध हान से अनिष्ट है अतः देवोंका ऊपर ऊपर अवस्थान नहीं माना जासक्ता है ॥ तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ १५६

() विमानानि इति चेन्न श्रेणि प्रकीर्णकानां तिर्यगवस्थानात् ॥३॥ संस्कृतअर्थ। अथ विमानान्युपर्युपरीति कल्प्यते तदपिनोपपद्यते। श्रेणिप्रकीर्णकानां तिर्यगवस्थानात्। श्रेणिविमानानि पुष्प प्रकीर्णक विमानानि च प्रतींद्रक तिर्यगवस्थितानि इति इष्यते ॥ राजवार्तिक पृष्ठ १५६=विमान ऊपर ऊपर है यदि (= अथ) ऐसो कल्पनाकी जाय सो अर्थ भी उत्पन्न नही होय है क्योंकि श्रेणीवद्ध विमानोंका अर प्रकीर्णक विमानोंका तिर्यग् तिरछा अवस्थान है। (अर्थात्) श्रेणीवद्ध विमान, पुष्पप्रकीर्ण विमान और प्रतीन्द्रक विमान (ये) तिर्यग् अवस्थित हैं ऐसा आगममें इष्ट करये है

() कल्पा इति चेददोष ॥४॥ संस्कृत अर्थ। यदि कल्पा न दोषो भवति 'यथा न दोष तथास्तु' कल्पाहि उपर्युपरि स्थिता इति॥ राजवार्तिक १५६
=जो (ऊपर ऊपर) कल्प (स्वर्ग) अवस्थित (हैं) तव (कुछ) दोष नही है। जैसे दोष न होय तैसे ही ठीक है। निश्चयकरि (=हि) कल्प ऊपर ऊपर अवस्थित है भावार्थ यदि कहा जायगा कि कल्प ऊपर ऊपर अवस्थित है तव कुछ दोष नही। तथा जिस वातके मानने में किसी प्रकारका दोष नहीं वही वात मानना ठीक है। स्वर्गों का ऊपर ऊपर अवस्थान मानने में कोई दोष नहीं इसरीति से देव और विमानोंका ऊपर ऊपर अवस्थान वाधित होनेसे स्वर्गोंका ही ऊपर ऊपर अवस्थान सुनिश्चित है।

() कल्पातीतेषु किमभिसम्बन्ध्यते ? विमानानि। तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ट १५६

(प्रश्न) कल्पातीतनिमें क्या सम्बन्ध किया जाय अर्थात् प्रश्न का सरांश यह है 'उपर्युपरि' में यदि हम केवल 'कल्पा' शब्दकी अनुवृति लेतेहैं तो यह अर्थ होता है कि स्वर्ग वा कल्प ऊपर ऊपर है स्वर्ग से परे नवग्रैवेयक विमान, नव अनुदिश विमान, पांच अनुत्तर विमानों के अवस्थानके सम्बन्धमें कुछ न जाना तो इनके अवस्थान जानने के लिये 'उपर्युपरि' वाक्य के साथ कौन शब्द अनुवर्तता है सो कहिदीजिये।

(उत्तर) "उपर्युपरि के साथ' विमानानि (का सम्बन्ध करना चाहिये) इस सबका सारांश यहहै कि जहां हमें कल्पोपपन्न देवोंका'अवस्थान जाननाहै वहां 'उपर्युपरि' के साथ 'कल्पा' शब्द लगाना चाहिये कि स्वर्ग और उनके पटल ऊपर ऊपर है और जहां अहमिन्द्रों को अवस्थान विवक्षित हैं वहां 'उपर्युपरि' के साथ 'विमानों' इस शब्द को जोडलो और कल्पातीत विमान ऊपर ऊपर है यह अर्थ समझलैना चाहिये ॥

दो राजू तक हैं इकतीस पटल, दूसरे युगल (तीसरे चौथे स्वर्ग सानत माहेंन्द्र जो मध्यलोकसे तीसरे राजूमें है) के सातपटल तीसरे युगल (ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर पांचवां छठवां स्वर्ग जो मध्यलोकसे साड़े तीसरे राजूमें है) के चार पटल, चौथा युगल (लांतव सातवां स्वर्ग कापिष्ट आठवां स्वर्ग जो तीसरे युगलसे आधे राजू ऊपर में है) के दो पटल, पांचवे युगल (शुक्र नवमां स्वर्ग महाशुक्र दशवां स्वर्ग जो मध्यलोक से साड़े चौथे राजू में है) का एक पटल, छठवां युगल (शतार ग्यारहवां स्वर्ग सहस्त्रार बारहवां स्वर्ग जो पांचवां युगलसे ऊपर आधे राजूमें है)का एक पटल, सातवां युगल(आनत तेरहवां स्वर्ग प्राणत चौदहवां स्वर्ग जो मध्यलोकसे साड़े पांचवां राजूमें है)के तीनपटल, आठवां युगल(आरण पंद्रहवां स्वर्ग अच्युत सोलहवां स्वर्ग जो सातवां युगलसे ऊपर आधे राजू में है) के तीन पटल इसप्रकार बावन पटलतो सोलह स्वर्गोंके और तीन तिकड़ी ग्रैवेयक(अधोतिकड़ी, मध्यकी

() कल्पा इत्येके = कल्पाः इति एके (मुद्रित श्लोकवार्तिक पृष्ठ ३८१) = (उपर्युपरि के साथ अनुवृत्ति) 'कल्पाः' शब्दकी होना ऐसा कितनोंका मत हैं श्लोकवार्तिकका शब्दश: संस्कृत पाठ विस्तारभयसे न लिखकर पं० गजाधरलाल शास्त्रीको टिप्पणी जो पृष्ठ १०४५ (राजवार्तिकके अनुवाद) में दी है ऐसे है कि "उपर्युपरि" यहांपर कल्प शब्दका सम्बन्ध मानना सर्वसम्मत नहीं है क्योंकि 'वैमानिकाः' इस सूत्रको अधिकारसूत्र कहआये हैं। इसलिये इस सूत्रमें उसीका सम्बन्ध मानना ठीक होगा इस रीतिसे जिस प्रकार वैमानिकदेव कल्पोपपन्न और कल्पातीतहैं(इस प्रकार 'कल्पोपपन्ना 'कल्पातीनाश्च' इस सूत्रमें वैमानिकोंका सम्बन्ध है उसी प्रकार वैमानिकदेव ऊपरऊपर है, इस रूपसे 'उपर्युपरि' इस सूत्रमें भी वैमानिक देवोंका ही सबंध है। यदि यहांपर यह कहाजाय कि पहिले देवोंका ऊपरऊपर अवस्थान अनिष्ट कह आये हैं। यदि 'उपर्युपरि' यहांपर वैमानिकदेवोंका सम्बन्ध कर उनका ऊपर अवस्थान माना जायगा तो अनिष्ट होगा। सो ठीक नही। विशेषण रहित केवल देवोंका यदि ऊपर ऊपर अवस्थान मानाजाय तब अनिष्ट कहा जा सकता है किन्तु वहांनो मध्य में स्थित इन्द्रक विमान, तिर्यग् अवस्थित श्रेणीवद्ध और प्रकीर्णक विमानरूप कल्पोपन्नत्व विशेषण विशिष्ट देवों का तथा कल्पातीतत्व (नवग्रैवेयकत्व) आदि विशिष्ट देवोंका ग्रहण है। इस प्रकारके विशेषण विशिष्ट देवोंका ऊपर ऊपर रहना शास्त्र सम्मत है। अतएव इष्ट है। इसलिये कल्पोपपन्न और कल्पातीत दोनों की अपेक्षा 'उपर्युपरि' यहां पर 'वैमानिक' शब्द का ही सम्बन्ध ठीक है॥

() श्लोकवार्तिकका यह कथन यद्यपि स्थूल दृष्टि से विरुद्धसा मालूम होता है कि राजवार्तिक कारने विमानों को ऊपर ऊपर कहा है और श्लोक वार्तिक कारने देवों को ऊपर ऊपर कहा है, तथापि सूक्ष्म दृष्टिसे दोनों एक रूप ही में पडते है, श्लोक वार्तिक कारने केवल देवों को ऊपर २ नहीं कहा है किन्तु विमानोंसे विशिष्ट देवोंको कहा है, विमान सहित देव कहा जाय वा विमान कहाजाय दोनों का एक ही अर्थ है॥ "ते कल्प उपरि उपरि हैं" प० जयचन्द्रकृता वचनिका मुद्रित पृष्ठ ३७६॥

हम स्वामी विद्यानन्दिके सहमत हैं कि उक्त सूत्रमें 'वैमानिका' की अनुवृत्ति आती है क्योंकि यह अधिकार सूत्रहै। इसीलिये अधिकार सूत्र होताहै कि उसकी अनुवृत्ति बराबर अगले अगले सूत्रोंमें चलीजावै॥ रहा सूत्रोंका आशय सो प्रकरणके प्रसगवश द्वारा निकल आता है॥

किमर्थमिदमुच्यते? तिर्यगवस्थितिप्रतिषेधार्थमुच्यते॥ न ज्योतिष्कवत्तिर्यगवस्थिताः। न व्यन्तरवदसमावस्थितयः। उपर्युपरीत्युच्यन्ते॥ के ते? कल्पाः॥ यद्येवं, कियत्सु कल्पविमानेषु ते देवा भवन्तीत्यत आह—

॥ सौधर्मैशानसानत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मब्रह्मोत्तरलान्तवकापिष्ठशुक्रमहाशुक्रशतारसहस्रारेष्वानतप्राणतयोरारणाच्युतयोर्नवसु ग्रैवेयकेषु विजयवैजयन्तजयन्तापराजितेषु सर्वार्थसिद्धौ च ॥ १९ ॥

तिकड़ी ऊर्ध्व तिकड़ी) के नौ पटल जो मध्यलोकसे सांतवां राजूसे आरम्भ होकर चौड़ाई राजूके भीतर है । एक पटल नव अनुदिशका जो मध्यलोकसे साड़े छठवां राजूसे आरम्भ होता है और उसही के भीतर है और एक पटल पांचअनुत्तरका जो मध्यलोकसे पोने सातवॉ राजूसे आरम्भ होता है और उसके भीतर ही है ये सब तेरह (=आठ युगलोंके, तीन तिकड़ी ग्रैवेयकोंके, एक अनुदिशका, एक पांच अनुत्तरका) स्थानों में त्रेसठ (६३) पटल एक दूसरेके ऊपर ऊपर अवस्थित है ॥

वृत्त्यनुवादः—किम्॥ अर्थम्॥ इदम्॥ उच्यते	=किसलिये यह (सूत्र) कहागया है ।
तिर्यग्-अवस्थिति-प्रतिषेध-अर्थम्॥ उच्यते	=(उत्तर) (वैमानिकदेवोंकी) तिर्यग् अवस्थानके निषेधकेलिये (यहसूत्र) कहागया है
न*ज्योतिष्कवत्*तिर्यग्-अवस्थिताः।	=न (वे वैमानिक देव) ज्योतिषी देवोंके सदृश तिर्यग् अवस्थित है ।
न*व्यन्तरवत्*असम-अवस्थितयः।	=न व्यन्तरों के समान विषम (अर्थात् जहां तहां) अवस्थित है ॥
उपरि*उपरि*इति*उच्यन्ते । के। ते। कल्पाः।	=(इसलिये) ऊपरऊपर ऐसे वर्णित है । ते कल्प कौन है? अर्थात् वे स्वर्ग क्या हैं?
यदि*एवम्*कियत्सु॥ कल्पविमानेषु॥	=जो इस प्रकार है अर्थात् ऊपर उपर है तो कितने कल्प विमानोंमें
ते। देवाः। भवन्ति इति*अतः*आह	=वे देव है? इसलिये (आचार्य अग्रिमसूत्रमे) कहते है कि

सूत्रम्— सौधर्मैशानसानत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मब्रह्मोत्तरलान्तवकापिष्ठशुक्रमहाशुक्रशतारसहस्रारेष्वानतप्राणतयोरारणाच्युतयोर्नवसु ग्रैवेयकेषु विजय वैजयन्तजयन्ता पराजितेषु सर्वार्थसिद्धौच ॥ १९॥

पदच्छेदः (वैमानिकाः) सौधर्म-ऐशान, सानत्कुमार-माहेन्द्र, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर, लान्तव-कापिष्ठ,शुक्र-महाशुक्र,शतार-सहस्रारेषु, आनत-प्राणतयोः, आरण-अच्युतयोः, ग्रैवेयकेषु, नवसु, विजय-वैजयन्त-जयन्त-अपराजितेषु-सर्वार्थसिद्धौ च भवन्ति ॥ १९ ॥

सूत्रार्थः—वैमानिकाः[१] सौधर्म-ऐशान,	=वैमानिकदेव सौधर्म और ऐशानमें (प्रथमस्वर्ग और द्वितीयस्वर्गमें)
सानत्कुमार-माहेन्द्र, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर, लान्तव-कापिष्ठ,	=सानत्कुमार और माहेन्द्रमें, ब्रह्म और ब्रह्मोत्तरमें, लान्तव और कापिष्ठमें,

(१) हमारे यहांके सूत्रके 'ब्रह्म' शब्दके स्थानमें श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्वार्थाधिगमसूत्रमें 'ब्रह्मलोक' शब्द है और 'ग्रैवेयेकेषु' शब्दके स्थानमें उक्त सभाष्य में 'ग्रैवेयेषु' शब्द है परन्तु उनके यहांकी श्रीसिद्धसेनसूरि रचित भाष्यानुसारिणी तत्वार्थटीकामें "ग्रैवेयेकेषु" ही है और "सर्वार्थसिद्धौ" शब्दके स्थानमें उक्त समाजके दोनों भाष्योंमें, 'सर्वार्थसिद्धे' शब्द है। इन चारों शब्दोंमें अर्थभेद नहीं है ॥ उनके दोनों ही भाष्योंमें ब्रह्मोत्तर-कापिष्ठ शुक्र शतार शब्द नहीं है अर्थात् उनके यहां केवल बारह ही स्वर्ग माने हैं, लान्तवके स्थाममें लांतक है शेष पाठ दोनों सम्प्रदायोंमें एक है ॥ इस सूत्रकी सख्याभी उनके यहां वीसवीं है ॥ हमारे यहां भी इन्द्रोंकी अपेक्षासे बारह कल्पही माने हैं ॥ देखो तत्वार्थराजवार्तिक वार्तिक४ ॥

दिगम्बर आम्नायके उन्नीसवां सूत्रका पाठ	श्वेताम्बर सम्प्रदायके सभाष्यतत्वार्थाधिगमसूत्रके बीसवां सूत्रका पाठ
सौधर्मैशानसानत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मब्रह्मोत्तरलान्तवकापिष्ठ-	सौधर्मैशानसानत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मलोक———लान्तक———
शुक्रमहाशुक्रशतारसहस्रारेष्वानतप्राणतयोरारणच्युतयो,	———महाशुक्र——सहस्रारेष्वानतप्राणतयोरारणाच्युतयो-
र्नवसु ग्रैवेयकेषु विजयवैजयन्तजयन्तापराजितेषुसर्वार्थसिद्धौ च	र्नवसु ग्रैवयेषु विजयवैजयन्तजयन्तापराजितेषु सर्वार्थसिद्धे च
	(यदि ग्रैवेयेषुके स्थानमें 'ग्रैवेयकेषु' लिखदें तो भाष्यानुसारिणी का पाठ है)

अर्थभेद—सभाष्य० और भाष्यानुसारिणी तत्वार्थ टीकाके अनुकूल बारह स्वर्ग हैं हमारे यहां सोलह स्वर्ग हैं। ब्रह्मात्तर कापिष्ठ शुक्र-शतारको स्वर्ग नहींमानेहैं। उक्त आम्नायके दोनों भाष्योंमें 'नवसुग्रैवेयेषु' वा 'नवसुग्रैवेयकेषु' वाक्य केवल नौग्रैवेयकोंका द्योतक है नकि नव अनुदिशविमानोंका भी। हमारे यहां सर्वभाष्योंमें तथा हिन्दीअनुवाद और टीकाओंमें, उक्त वाक्यसे 'नौग्रैवेयक, और नौ ही अनुदिश ग्रहण किये हैं जिन अनुदिशोंका केवल एकही पटलहै। क्योंकि यदि उमास्वामी नो ग्रैवेयक ही ग्रहणकरते तो 'नव' शब्दको और ग्रैवेयक शब्दको भिन्नभिन्नसप्तमीविभक्तियोंमेंनहींलाते।

शुक्र-महाशुक्र- =शुक्र नवमे और महाशुक्र दशवें स्वर्गों में

एक विभक्ति 'नवग्रैवेयकेषु' ऐसी करते। सारांश हमारे यहां 'नवअनुदिश' सज्ञक विमानोंको माना है। श्वेताम्बर समाजने नहीं माना है। अर्थात् उनके यहां नव अनुदिशके नामसे कोई विमान नहीं स्वीकार किये हैं यद्यपि दोनों आम्नायोंमें प्रथम स्वर्ग सौधर्मसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तक विमानोंकी सख्या चौरासीलाख सतानवै सहस्र तेईस (८४९७०२३) एकसी मानी है जैसाकि निम्न लिखित लेखसे ज्ञात हाता है

दिगम्बर तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ १०७, अर्थ प्रकाशिका पृष्ठ२६४	श्वेताम्बर आम्नायमें देखो सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ १०९
प्रथम सौधर्म स्वर्गमें वत्तीस लाख (३२०००००) विमान है	प्रथम सौधर्म कल्पमें वत्तीसलाख (३२०००००) विमान है
द्वितीय ईशान स्वर्गमें अट्ठाईस लाख (२८०००००) विमान है	द्वितीय ऐशान कल्पमें अट्ठाईस लाख (२८०००००) विमान हैं
तीसरे सनत्कुमार स्वर्गमें बारह लाख (१२०००००) विमान हैं	तीसरे सानत्कुमार कल्पमें बारहलाख (१२०००००) विमान हैं
चौथे माहेन्द्र स्वर्गमें आठलाख (८०००००) विमान हैं	चौथे माहेन्द्र कल्पमें आठलाख (८०००००) विमान हैं
पांचवां ब्रह्म ब्रह्मोत्तर युगलमें चारलाख (४०००००) विमान हैं	पांचवां ब्रह्मलोक कल्पमें चारलाख (४०००००) विमान हैं
छठवां लांतवकापिष्ठ युगलमें पचाससहस्र (५००००) विमान हैं	छठवां लान्तक कल्पमें पचाससहस्र (५००००) विमान हैं
सातवां शुक्र महाशुक्र युगलमें चालीससहस्र (४००००) विमान हैं	सातवां महाशुक्र कल्पमें चालीससहस्र (४००००) विमान हैं
आठवां शतार सहस्रार युगलमें छहसहस्र (६०००) विमान है	आठवें सहस्रार कल्पमें छहसहस्र (६०००) विमान है
आनत-प्राणत आरण-अच्युत स्वर्गोंमें सातसौ (७००) विमान हैं	आनत-प्राणत आरण अच्युत कल्पोंमें सातसौ (७००) विमान हैं
नवम तीनअधो ग्रैवेयकनि विषैं एकसौग्यारह (१११) विमान हैं	नवम तीन अधो ग्रैवेयकनिमें एकसौ ग्यारह (१११) विमान हैं
दशम तीन मध्यकी ग्रैवेयकनिमें एकसौसात (१०७) विमान हैं	दशम तीन बीचकी ग्रैवेयकनि में एकसौसात (१०७) विमान हैं
ग्यारहवें तीन ऊपरकी ग्रैवेयकनिमें इक्यानवै (९१) विमान हैं	ग्यारम तीन ऊपरकी ग्रैवेयकनि में एक शत (१००) विमान हैं
बारहवें नव अनुदिशके वा नवनवोत्तर के नौ (९) विमान हैं	(नवअनुदिश नाम न देतेहुये उन्होंने इसनौकी संख्याको ऊपर सौमें गर्भितकियाहै)
तेरहवें अनुत्तरक पांच (५) विमान हैं सर्वयोग(८४९७०२३) हुआ	अनुत्तर (बारहवीं सख्या पर) पांच विमान हैं॥ सर्वयोग (८४९७०२३) हुआ ॥

¹शतार-सहस्रारेषु॥	=शतार और सहस्रार ग्यारहवें और बारहमें स्वर्गोंमें (इन छह युगलों में)
आनत-¹प्राणतयोः॥आरण-¹अच्युतयोः॥	=आनत और प्राणत तेरहवां और चौदहवां स्वर्गोंमें, आरण और अच्युत स्वर्गोंमें

(१) यहां प्रश्न यह है कि कल्पोपन्नादेव और कल्पातीतदेव जब सब वैमानिक हैं और विमानोंके रहनेवाले है तो उमास्वामीने सूत्रके अंतमें ही एकबार सप्तमी विभक्ति बहुवचनमें क्यों नहीं की सातवार सप्तमी विभक्ति क्योंकी, एक विभक्ति करनेमें छह अक्षर और च और कईएक मात्राओंका लाभ होजाता अर्थात् जिसरूपमें सूत्रहै उस रूपमें न करके ऐसा सूत्र रचते 'सौधर्मैशानसानत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मब्रह्मोत्तरलान्तवकापिष्ठशुक्रमहाशुक्रशतार-सहस्रारानतप्राणतारणाच्युतनवग्रैवेयकविजयवैजयन्तजयन्तापराजितसर्वार्थसिद्धिषु' ॥ १९ ॥

(उत्तर) आनत प्राणतयो । आरण-अच्युतयो इन दो युगलोंकी जुदी जुदी विभक्तियां करनेसे यह जानना चाहिये कि सोलह स्वर्गोंके आठ युगल हैं सो प्रत्येक युगल एक दूसरेके ऊपर है न कि एक स्वर्ग दूसरेके ऊपर है जैसे सौधर्म स्वर्गके ऊपर ऐशान स्वर्ग नहीं है वरन सौधर्म ऐशान युगलके ऊपर सानत्कुमार-माहेन्द्र युगल है इसी प्रकार और भी शेष सात युगलोंको एकसे दूसरेको ऊपर ऊपर जानो जैसाकि हम भावार्थ पृष्ठ ४५, ४६, और ४७ में लिखचुके हैं ॥ प० जयचन्द्रायजी इस सम्बन्धमें लिखते हैं कि "इहां कल्पका युगलका उपरि उपरि दोयदोय कहना अतके दोय युगलनिके जुदी विभक्ती करी समास न किया, तातैं जाना जायहै ॥ इस सम्बन्धमें अपर वा अधिकतर प्रश्न यहहै कि श्री उमास्वामीने 'सौधर्मैशानयो ' 'सानत्कुमार माहेन्द्रयो ' 'ब्रह्मब्रह्मोत्तरयो.' 'लांतवकापिष्ठयोः' 'शुक्रमहाशुक्रयोः' 'शतारसहस्रारयो' 'आनतप्राणतयो ' 'आरणच्युतयोः' ऐसेआठविभक्तियां क्योंन की, प्रथम बारह स्वर्गोंकी एक विभक्ति क्योंकी, फिर आनत प्राणतकी एक विभक्ति क्योंकी अन्तमें आरण-अच्युतकी एक विभक्ति क्यों की ? यदि आठ विभक्तियां करदेते तो स्पष्ट होजाताकि स्वर्गोंके आठ युगलहैं सो एकयुगलसे दूसरा युगल ऊपर है दूसरे से तीसरा ऐसेही सबसे ऊपर आठवां युगल 'कल्पोपन्ना' देवोंमेंहै ।

(उत्तर) आनतप्राणतद्वद्वमारणाच्युतयोरिति । सूचनादतश सा चकल्पेष्वेवैकशस्ततः" तत्वार्थश्लोकवार्तिक श्लोक ३ पृष्ठ ३८२
= आनतस्वर्गप्राणतस्वर्गका द्वन्द्व समास है,आरण अच्युतमें (द्वद्वसमास)है ऐसी सूचना है कि द्वन्द्ववृत्ति(=सा)का अत कल्पोंमें ही(कल्पोंतक ही) है यहां से(अर्थात् पन्द्रहवां सोलहवां आरण अच्युत कल्पों वा स्वर्गोंसे ऊपर) एकएककी(विभक्ति) है ॥ अर्थात् आनत प्राणत और आरणअच्युतमें पृथक् पृथक् द्वन्द्व समास और विभक्तियोंसे प्रगट है कि सोलह स्वर्गतकही एक युगल दूसरे युगलसे ऊपर ऊपर है उसके ऊपर फिर एक एक है ॥ आठ युगलोंकी आठ विभक्तियां जुदी जुदी इससे नहीं की कि सूत्र बहुत बढजाता । अथवा योंभी कहसकतेहैं कि आनत प्राणतकी विभक्तिसे यह भासहोताहै कि एक एक युगल दूसरे दूसरे से ऊपर ऊपर है और आरणअच्युतकी विभक्तिसे यह बातभी झलकती है कि युगलोंका अन्त सोलह स्वर्ग तक है और द्वन्द्व समास भी सोलह स्वर्ग तक ही है ॥

() बहुतसे विद्वानोंका मतहै कि उमास्वामीने बारहस्वर्गोंकी एक विभक्ति और आनत प्राणत की दूसरी विभक्ति और आरण अच्युत की तीसरी विभक्ति इसहेतुसे भी की है कि सौधर्म ऐशान युगलमें दो सागरसे कुछ अधिक उत्कृष्ट आयु है । सानत्कुमार माहेन्द्र युगलमें सात सागरसे कुछ अधिक उत्कृष्ट स्थिति है । ब्रह्म ब्रह्मोत्तर कल्पमें दशसागरसे कुछ अधिक उत्कृष्ट अवस्थाहै । लांतवकापिष्ठ युगलमें चौदह सागरसे कुछअधिक उत्कृष्ट जीवन काल है । शुक्र महाशुक्र युगलमें सोलह सागरसे कुछ अधिक उत्कृष्ट आयुहै । सतार सहस्रार युगलमें अठारह सागरसे कुछ अधिक उत्कृष्ट स्थिति है ॥ परन्तु आनत प्राणत युगलमें उत्कृष्ट स्थिति ठीक बीस सागरकी और आरण अच्युत युगलमें भी उत्कृष्ट स्थिति ठीक बाईस सागरकी क्रमसे है । छह युगलोंमें जहां पूरेसागरोंसे कुछ अधिक स्थिति थी वहां विभक्ति जुदी की और एकही द्वन्द्वसमासमें लेआये और जहां पूरी पूरी स्थिति थी वहां वहां प्रथम छह युगलोंसे पृथक् पृथक् विभक्तिकी ॥ (इसी अध्याय के देखो सूत्र २९, ३०, ३१,)

तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ १६१ में छह युगलोंकी एक विभक्ति करना और आनतप्राणतकी भिन्न विभक्ति करना और आरणअच्युत को एक पृथक् विभक्तिमें लानेका यह हेतु दिया है कि बारह स्वर्गोंमें प्रत्येक में एक एक इन्द्र और आनतप्राणत दो स्वर्गों में एक इन्द्र और आरण अच्युत में एक इन्द्र ऐसे लोक अनुयोगके उपदेशसे इन्द्र चौदह भी कहेहैं ॥ इससे तीन विभक्ति जुदी जुदीदीहैं सम्भवहै कि उमास्वामी के मतानुसार चौदह इन्द्रहों । वार्तिक सात पृष्ठ१६१में और पृष्ठ १६६ में इन्द्र बारहभी कहे हैं । राजवार्तिकका लेख ऐसेहै कि "तथाचोत्तरयो पृथग्वचनमर्थवत्" ॥ वार्तिक८ ॥ संस्कृतअर्थ ॥ एवंकृत्वा उत्तरयो पृथग्वचनमर्थवत् भवति, आनत प्राणत योरारणाऽच्युतयोरिति । इतरथाहि लघ्वर्थं एव एकद्वन्द्व क्रियते । तद्यथा ते एते लोकानुयोगोपदेशेन चतुर्दशेन्द्रा उक्ता. । इह द्वादश इष्यते ।

तथा*च*उत्तरयो॰२।पृथग्वचनम्१॥।अर्थवत्* =तौभी अगलेदो(युगलो) में जुदी जुदी विभक्ति है सो सार्थक है वा अर्थवत् है ॥ ८ ॥

एवम्*कृत्वा – =ऐसे करके अर्थात् सातवीं वार्तिक [प्रत्येकम्इन्द्रसम्बन्धः मध्ये प्रतिष्ठय] में बारह इन्द्र (सौधर्म ऐशान दो स्वर्गोंमें दोइन्द्र,सानत्कुमार माहेन्द्र स्वर्गोंमें दोइन्द्र,ब्रह्मलोक,ब्रह्मोत्तरदोमें एक ब्रह्मनाम इन्द्र, लांतव कापिष्ठ दोमें एक लांतवनामक इन्द्र, शुक्रमहाशुक्र दोमें शुक्र नामक एक इन्द्र शतारसहस्रार दोमें एकइन्द्र आनत-प्राणत दोमें एक एक ऐसे दो इन्द्र आरण अच्युत में एक एक ऐसे दो इन्द्र) कहकर (तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ १६१

उत्तरयो ३।आनत-प्राणतयो३।आरण अच्युतयोः७।इति* =(सौधर्म ऐशान से) अगले (=उत्तरयो॰) आनत प्राणतमें आरण अच्युतमें ऐसी

पृथग्*वचनम्१॥।अर्थवत्*भवतिT =भिन्न भिन्न विभक्ति है सो प्रयोजनको लिये हुये है (व्यर्थ नहीं है)

इतरथा*हि* =अन्यथाही अर्थात जो प्रयोजनीय भिन्न भिन्न विभक्ति न लाते तो निश्चयकरि (=हि)

लघ्वर्थः१।एकः१।एव*द्वन्द्व॰१।क्रियतेT =लघुताकेलिये एक(आनतप्राणतारणाच्युतयोःऐसा)ही द्वन्द्वसमास करते सोठीक वा इष्ट नहींथा

प० पन्नालालजी न्यायदिवाकर ने "एवकृत्वा इत्यादि वाक्यका निम्न लिखित अर्थ पृष्ठ ६४२में किया है "औसे किये अगिले दोय युगल आनत प्राणत आरण अच्युत इनके विषै भिन्न भिन्न विभक्तिकरि निर्देश है सो सार्थिक होय है ॥ आनत प्राणतयो आरणअच्युतयोः ऐसे भिन्नविभक्तिरूप निर्देश करा है॥सो एकएक कल्पमें एकएक इन्द्रहै ॥ ऐसे चारिहैं" ॥ पिछला वाक्य मेरी समझमें ठीक नहीं है अशुद्ध है क्योंकि यहां कथन चौदह इन्द्रोंके सम्बन्धमें है (नकि बारह इन्द्रोंकी अपेक्षासे है जो उक्त वाक्य ठीक होता) यदि हम इन आनत प्राणत आरण अच्युत स्वर्गोंमें भी चार इन्द्र मानलें और बारह इंद्र सौधर्मसे सहस्रार स्वर्गतक मानलें तो इंद्र सोलह हुये जाते हैं ॥ पश्चात् पृष्ठ ६६३ में और पृष्ठ ६६४में स्वयम् न्यायदिवाकरजी लिखते हैं कि आनतप्राणत आरण अच्युत स्वर्गो में "आरणनामादेवराज है———अच्युतनामा देवराजहै" इसी बातका समर्थन कि इन चारों स्वर्गोंमें आरण नामक और अच्युत नामक (चौदह इद्रोंकी अपेक्षासे) दोही इन्द्र हैं पं० पन्नालाल दूनीवालोंने अपनी तत्त्वकौमदीमें और प० गजाधर शास्त्रीने पृष्ठ १०७८ और १०७६ (सस्थाद्वारा अनुवादित और प्रकाशित तत्त्वार्थ राजवार्तिक) में किया है ॥

तद्यथा*·········· ·· ··

=जैसे सौधर्म इन्द्र, ऐशान इन्द्र, सानत्कुमारइन्द्र, माहेन्द्र इन्द्र, ब्रह्मनामक इन्द्र, ब्रह्मोत्तरनामकइन्द्र, लांतव नामक इद्र, कापिष्ठ नामक इद्र, शुक्र नामक इद्र, शतार नामक इन्द्र, सहस्रार नामक इन्द्र, आरण नामक इन्द्र, अच्युत नामक इन्द्र, (आनत प्राणत नामक कोई इद्र नहीं हैं) ते इतने लोक नियोगके उपदेशकरि चौदह इन्द्र कहेगये हैं (राजवार्तिक पृष्ठ १६१ से १६६ तक)

इह*द्वादश॥इष्यन्ते

=यहां(=इह) (सूत्र सिद्धान्तकी अपेक्षासे) बारह(इन्द्र कहना) इष्ट है ॥ इसका देखो पृष्ठ ५१ ॥

इस समस्त टिप्पणीका आरम्भसे अततक सारांश यह है कि(क)प्रथम छहयुगलों बारह स्वर्गोंकी विभक्तियां इससे नहीं की कि सूत्र बहुत बढजाता (ख) 'आनत प्राणतयोः' 'आरणाच्युतयो.' की दो विभक्तियोंसे प्रगट है कि एकएक युगल एक दूसरेके ऊपर है नकि एक स्वर्ग एक दूसरेके ऊपर है (ग) आरणाच्युतयो विभक्तिसे यह भी झलकता है कि युगल युगल की विभक्ति केवल सोलह स्वर्गों तकही है (घ) उक्त तीन विभक्तियोंसे यहभी झलकताहै कि सागरोंसे कुछ अधिक देवोंकी उत्कृष्ट स्थिति है सो केवल प्रथम छह युगल बारह स्वर्ग तक ही है और आनत प्राणतकी उत्कृष्टस्थित बीस ही सागर की है अधिक नहीं है और आरण अच्युतकी भो बाईस सागर पूरे की उत्कृष्टस्थिति है अधिक कुछ भी नहीं है (च) ये तीन विभक्तियां इस बातकीभी द्योतक हैं कि प्रथम बारह स्वर्गमें एक एक इद्र है ऐसे बारह ये हुये और आनत प्राणत जहां दूसरी विभक्ति की है एक इन्द्र है और आरण अच्युत जहां दूसरी विभक्ति कीहै वहांभी एक इद्र है ऐसे तत्त्वार्थराजवार्तिकके अनुसार लोक अनुयोगउपदेशसे चौदह इन्द्रभी मानेहैं परन्तु प्रसिद्ध बारहही इद्र हैं ॥ श्वेताम्बरआम्नायमें १०ही मानेहैं।

ग्रैवेयकेषु नवसु विजय वैजयन्त-जयन्त-अपराजितेषु च सर्वार्थसिद्धौ॥	=(नौ) ग्रैवेयकोंमें, नव अनुदिशोंमें, विजय वैजयन्त जयन्त-अपराजित विमानोंमें और (=च) सर्वार्थसिद्धिमें (रहते) हैं

(१) सौधर्म स्वर्गसे आदि लेकर अच्युत पर्यंत बारह कल्प हैं अर्थात् इन्द्रोंकी अपेक्षासे श्वेताम्बर आम्नायके सदृश यहां बारह ही कल्प माने हैं (क्योंकि इन्द्रआदिकी कल्पना केवल बारहही स्वर्गोंमें है ब्रह्मोत्तर कापिष्ठ महाशुक्र सहस्रार स्वर्गोंके तो इन्द्र ब्रह्म लांतव शुक्र शतार दक्षिण इन्द्रोंके आधीन क्रमसे हैं) अथवा सोलह स्वर्ग हैं उनके ऊपर कल्पातीत हैं इसबातके स्पष्ट करनेके लिये सौधर्म आदिसे ग्रैवेयकोंका भिन्न विभक्तिद्वारा पृथग् ग्रहण किया है।

(२) इस समस्त सूत्रको विचार पूर्वक पढ़नेसे जान पड़ता है कि जो जो विमान पहिले पहिले कहेगये हैं वे उत्तर उत्तर विमानोंसे नीचे नीचे हैं नवसु शब्दसे 'अनुदिश' दर्शाये गये हैं (=निर्दिष्ट हैं) मुद्रित सर्वार्थसिद्धि पृष्ठ २४१, द्वितीया वृत्ति पृष्ठ १४३ देखो। 'नवसु' शब्द यदि 'ग्रैवेयकेषु' के पहिले मानाजावे तो 'नवअनुदिश' ग्रैवेयकोंसे नीचे हुये जाते हैं। यदि कहाजावे कि 'नवसु' शब्द नवग्रैवेयकोंकी संख्या जतलानेके लिये है तो फिर 'नवअनुदिश' छूटेजाते हैं इसलिये मैंने 'नवसु' शब्दको 'ग्रैवेयकेषु' के पश्चात् रखकर 'नवअनुदिशोंमें' ऐसा अनुवाद किया है॥ यदि यह कहाजावे कि 'नवसु' को पश्चात् लानेसे ग्रैवेयकोंकी संख्या प्रगट नहीं होती है सो हो नहीं सकता क्योंकि 'नवसु' शब्द को उप पूर्वको आकर्षण करते हैं नव ग्रैवेयकोंकी संख्या प्रगट होजाती है जब ऊपर को ग्रहण करते हैं नव अनुदिशोंका द्योतक 'नवसु' शब्द होजाता है॥ यदि 'नवसु' शब्द से नव अनुदिशका अभिप्राय श्री उमास्वामीका न होता तो 'नवसु' शब्दकी जुदी विभक्ति नहीं करते, नवसु शब्दका 'ग्रैवेयक' के साथ समास ऐसे करदेते कि 'नवग्रैवेयकेषु' और एक अक्षरका लाभ होजाता। हमारे कथनका समर्थन श्लोकवार्तिकके श्लोक चार से (देखो मुद्रित पृष्ठ ३८२) ऐसे होता है कि "ग्रैवेयकेषु नवसु नवस्वनुदिशेष्विय" = ग्रैवेयकेषु नवसु, नवसु अनुदिशेषु इयम् = ग्रैवेयक नोंमें, नो अनुदिशोंमें, यह (वृत्ति = विभक्ति भिन्नभिन्न) है

ग्रैव ग्रीव्य ग्रैवेय तथा ग्रैवेयक सब एकार्थवाचक हैं॥ अनुदिशका अर्थ यहां प्रतिदिश है अर्थात् जो प्रत्येक दिशामें हो वह अनुदिश कहाजाता है॥ 'दिशा' शब्द जिसके अन्तमें 'आ' है उसका समास 'अनु' अव्ययके साथ करने पर 'अनुदिश' शब्दकी सिद्धि होती है॥

(३) (प्रश्न) विजय,वैजयन्त,जयन्त,और अपराजितविमानोंसे सर्वार्थसिद्धिका विमान ऊंचा नहीं है फिर भिन्नविभक्तिद्वारा सूत्रमें क्यों निर्देश किया' (उत्तर)(क) उक्तचार विमानोंमें जघन्य स्थिति कुछ अधिक बत्तीस सागर है। उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागर प्रमाण है परन्तु सर्वार्थसिद्धिके रहनेवाले देवोंकी उत्कृष्ट और जघन्य दोनों प्रकारकी स्थिति तेतीस सागर प्रमाण है।

(ख) सर्वार्थसिद्धि वाला देव एक भव धारण कर मोक्ष को जाता है उक्त चार विमानोंके देव प्रायः दो भव धारण कर मोक्षको जाते हैं।

(ग) सर्वार्थसिद्धि वाले देवका जितना प्रभाव और प्रताप है उतना सर्व विजय आदि विमानके रहने वाले सब देवोंका भी नहीं है।

(घ) सर्वार्थसिद्धिवासी देव निरंतर श्रुतभावनामें लीन रहते हैं और उपशांतश्रेणीकेविषे अत्यन्त मंदकषायरूप विशुद्धपरिणामोंकी उत्कृष्टताको प्राप्त होचुके हैं इत्यादि विशेषता प्रतिपादनके लिये वा जतलानेके लिये "सर्वार्थसिद्धौ" ऐसी भिन्न विभक्ति "विजय वैजयन्त जयन्तापराजितेषु"से की।

कथमेषां सौधर्मादिशब्दानां कल्पाभिधानं ? चातुरर्थिकेनाणा, स्वभावतो वा कल्पस्याभिधानं भवति ॥ अथ कथमिन्द्राभिधानं ? स्वभावतः साहचर्याद्वा ॥ तत्-

वृत्त्यनुवादः—कथम्॥एषाम्[६।३]॥सौधर्म-आदि-शब्दानाम्[६।३]। =कैसे इन सौधर्म आदिक (सोलह) शब्दोंका (अर्थात् सोलह स्वर्गोंका)

कल्प-अभिधानम्[१।१]॥चातुरर्थिकेन[३।१]॥अणा[३।१]। =कल्प नाम हुआ ? (उत्तर) चातुरर्थिक अण्(=अ-प्रत्यय)करि अर्थात् व्याकरणके तद्धितप्रकरणमें (=संज्ञामें प्रत्यय मिलाकर अर्थ बदलने रूप प्रकरणमें)

चातुरर्थिक प्रकरणके (=वह अधिकार जिसमें अण्-अञ्-ठक्-[१]वुञ्-छण् इत्यादि बहुतसे प्रत्ययोंमेंसे प्रत्येकप्रत्यय चारचार (क) [२]वह जिसमें हो (ख) [३] बनायागया (ग) [४] उसका निवास (घ) [५]अदूर अर्थोंमें विधान कियाजाता है उन प्रत्ययोंमेंसे इस) अण् (प्रत्यय) द्वारा (वह जिसमें हो-उसका निवास-इन अर्थोंमें लेकर वा ग्रहणकरि)

वा॥स्वभावतः॥कल्पस्य[६।१]॥अभिधानम्[१।१]॥भवति। =अथवा (=वा) स्वभावसे, कल्पकी संज्ञा वा नाम (अभिधान) होता है भावार्थ सौधर्म आदिकी कल्पसंज्ञा चाहे अण् प्रत्यय 'वह जिसमें हो' 'उसका निवास' अर्थोंमें लेकर सुधर्मा, ईशान, सनत्कुमार, महेन्द्र आदि शब्दोंमें यथायोग्य लगाकर करलेनी चाहिये अथवा सौधर्म, ऐशान, सानत्कुमार, माहेन्द्र आदि स्वभाविक नाम हैं यों समझलेना चाहिये

अथ॥कथम्॥इन्द्र-अभिधानम्[१।१]॥स्वभावतः॥ =प्रश्न (=अथ) इन्द्रका नाम कैसे है ? (उत्तर) स्वभावसे, प्रकृतिसे,

साहचर्यात्[५।१]॥वा॥ =अथवा संसर्गतासे, सहचरितासे, उसमें रहनसहनसे (अर्थात् जैसा अमुक कल्प वा स्वर्ग का नाम है वैसा उस स्वर्ग वा कल्प के इन्द्रका नाम है)

तत्[१।१]॥ =सो (अर्थात् कल्पका अभिधान, नाम अण् प्रत्यय करि अथवा स्वभावसे और इन्द्रकी संज्ञा वा नाम स्वभावसे अथवा साहचर्यसे)

---

[१] वुञ् छण्क इत्यादि ४-२-८० । [२] तदस्मिन्नस्तीति देशे तन्नाम्नि ॥ ४-२-६७ ॥ [३] तेन निर्वृत्तम् ॥ ४-२-६८ ॥ [४] तस्य निवास ॥ ४-२-६९ ॥ [५] अदूरभवश्च ॥ ४ २ ७० ॥ उक्त पांच सूत्रोंको अष्टाध्यायी पाणिनिमुनिकृतमें देखो ॥ इन्हीं सूत्रोंके समानअर्थक निम्नलिखित सूत्र जैनेन्द्रव्याकरण में देखना चाहिये ॥ वे सूत्र इस प्रकार हैं कि

[१] वुञछण्क इत्यादि । ३ २-६१ । [२] तदस्मिन्नस्तीति देश खो ॥ ३-२-५८ ॥ (३) तेन निर्वृत्त । ३।२।५९ (४) (५) तस्यनिवासादूरभवौ। ३-२-६०

कथमिति चेदुच्यते—सधर्मा नाम सभा, साऽस्मिन्नस्तीति सौधर्मः कल्पः। तदस्मिन्नस्तीत्यण् तत्कल्पसाहचर्यादिन्द्रोऽपि सौधर्मः॥ ईशानो नाम इन्द्रः स्वभावतः। ईशानस्य निवासः कल्प ऐशानस्तस्य निवास इत्यण्। तत्साहचर्यादिन्द्रोऽपि ऐशानः॥

कथम्*इति*चेत्*उच्यते सुधर्मा॥नाम॥ =कैसे है? ऐसे प्रश्न (करने) पर कहा जाता है कि सुधर्मा नाम

सभा॥सा॥अस्मिन्॥अस्ति।इति*सौधर्मः॥कल्पः॥ =सभा है। वह (सभा) जिसमें है ऐसा सौधर्म कल्प है

"तदस्मिन्नस्तीत्यण्"(=तत्॥अस्मिन्॥अस्ति।इति*अण्॥)='तदस्मिन्नस्ति' ऐसे (अष्टाध्यायीके चौथे अध्याय पाद दो सूत्र ६७ से और जैनेन्द्रव्याकरण के तीसरा अध्याय पाद दो सूत्र ५८ से)

अण् (प्रत्ययको 'वह जिसमें हो' इस अर्थमें प्रयोग करके सौधर्म शब्द सिद्धि किया) है। भावार्थ सुधर्मा शब्दमें अण् प्रत्ययका यह प्रभाव है कि सुधर्मा शब्दके 'उ'की वृद्धिसंज्ञा होजातीहै और अण्प्रत्ययका अ जोड़ाजाता है तब सौधर्मा+अ ऐसा रूप हुआ क्योंकि 'अण्' के 'ण्' का इत् संज्ञक होनेसे लोप होजाता है शेष 'अ' रहता है अण् प्रत्ययका यहभी प्रभाव है कि शब्दके स्वरोंमेंसे अंतिम स्वरवालेभाग या खंडको मय उस भागके व्यंजनको यदि कोई व्यंजन उस भागमें होतो गिरादेताहै और अण् प्रत्ययका अ उस शब्दके शेषभागमें जुड़जाताहै इसलिये सौधर्मा शब्दका 'आ' गिरकर और अण्का अ मिलनेसे सौधर्म शब्द ऐसे सिद्ध हुआ कि सौधर्म् + अ = सौधर्म

तत्-कल्प-साहचर्यात्॥ =उस (सौधर्म) कल्पमें रहन सहन से अथवा सौधर्म कल्पकी सहचरितासे

इन्द्रः॥अपि*सौधर्मः॥ =इन्द्र भी (=अपि) सौधर्म है ॥

ईशानः॥नामः॥इन्द्रः॥स्वभावतः*। ईशानस्य॥निवासः॥ =ईशान नामा इन्द्र है सो स्वभावसे है। ईशान इन्द्रका निवास

कल्पः॥ऐशानः॥"तस्य निवासः" =सो स्वर्ग(=कल्प)ऐशान है॥ 'तस्य निवास' जैनेन्द्र-व्याकरण और अष्टाध्यायीके इसी सूत्रसे

इति*अण्॥ =ऐसे अण्(=अ)प्रत्यय(निवास अर्थमें)है कि ईशान + अण्=ऐशान् + अ=ऐशान बना

तत्-साहचर्यात्॥इन्द्रः॥अपि*ऐशानः॥ =उस (ऐशान कल्प, स्वर्ग) में रहनसहनसे अथवा सहचरितासे इन्द्र भी ऐशान है।

सनत्कुमारो नाम इन्द्रः स्वभावतः । तस्य निवास इत्यण् । सानत्कुमारः कल्पः । तत्साहचर्यादिन्द्रोऽपि सानत्कुमारः ॥ महेन्द्रो नामेन्द्रः स्वभावतस्तस्य निवासः कल्पो माहेन्द्रः । तत्साहचर्यादिन्द्रोऽपि माहेन्द्रः । एवमुत्तरत्रापि योज्यम् ॥ आगमापेक्षया व्यवस्था भवतीति, उपर्युपरीत्यनेन द्वयोर्द्वयोरभिसम्बन्धो वेदितव्यः ॥ प्रथमौ सौधर्मैशानकल्पौ, तयोरुपरि सानत्कुमारमाहेन्द्रौ तयोरुपरि ब्रह्मलोकब्रह्मोत्तरौ, तयोरुपरि लान्तवकापिष्ठौ, तयोरुपरि

सनत्कुमारः[1/1] नाम[1/1] ॥ इन्द्रः[1/1] स्वभावतः* । 'तस्यनिवासः'	=सनत्कुमार नाम इन्द्र(है सो) स्वभावसे है । 'तस्य निवासः' उक्तसूत्र द्वारा
इति*अण्[1/1]	=ऐसे अण्(=अ)प्रत्यय (निवास अर्थमे) होकर (सनत्कुमार से,सानत्कुमारवनकर)
सानत्कुमारः[1/1] कल्पः[1/1]; तत्साहचर्यात्[5/1] ॥	=सानत्कुमार स्वर्ग हुआ । उस (सानत्कुमार कल्प) में रहनेसे वा रहनसहनसे
इन्द्रः[1/1] अपि*सानत्कुमारः[1/1] । महेन्द्रः[1/1] नाम[1/1] ॥ इन्द्रः[1/1]	=इन्द्रभी सानत्कुमार है । महेन्द्र नाम इन्द्र है
स्वभावतः*तस्य[6/1] निवासः[1/1] कल्पः[1/1] माहेन्द्रः[1/1]	=सो स्वभावसे है उसका निवासस्थान स्वर्ग माहेन्द्र है (''तस्य निवासः'' इस सूत्र द्वारा ऐसे अण् प्रत्यय निवास अर्थमे होकर महेन्द्र से माहेन्द्र शब्द वनाया)
तत्-साहचर्यात्[5/1] ॥ इन्द्रः[1/1] अपि*माहेन्द्रः[1/1] ॥	=उस (माहेन्द्र कल्प)के साहचर्यासे इन्द्र भी माहेन्द्र है।
एवम्*उत्तरत्र*अपि*	=इस प्रकार यहां (माहेन्द्र कल्प) से आगे (उत्तरत्र) भी
योज्यम्[1/1] ॥	=(ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर इत्यादि सोलह स्वर्ग पर्यंत इन्द्र तथा कल्पकानाम)जोड़नाचाहिये
आगम-अपेक्षया[3/1] ॥ व्यवस्था[1/1] ॥ भवति[T] इति*	=शास्त्रकी अपेक्षासे ऐसे निर्णय (=व्यवस्था) होता है कि
उपरि*उपरि*इति*अनेन[3/1] ॥ द्वयोः[6/2] द्वयोः[6/2]	=ऊपर ऊपर इस (वाक्य) करि दो दो (स्वर्गों) का
अभिसम्बन्धः[1/1] वेदितव्यः[1/1] । प्रथमौ[1/2] सौधर्म-ऐशानकल्पौ[1/2]	=सम्बंध जानना योग्य है । पहिले दो सौधर्म और ऐशान कल्प हैं ।
तयोः[6/2] उपरि*सानत्कुमार-माहेन्द्रौ[1/2]	=उनके ऊपर सानत्कुमार और माहेन्द्र है।
तयोः[6/2] उपरि*ब्रह्मलोक-ब्रह्मोत्तरौ[1/2]	=तिनके ऊपर ब्रह्मलोक और ब्रह्मोत्तर हैं।
तयोः[6/2] उपरि*लान्तव-कापिष्ठौ[1/2] तयोः[6/2] उपरि*	=उनके ऊपर लान्तव और कापिष्ठ है । तिनके ऊपर

शुक्रमहाशुक्रौ, तयोरुपरि शतारसहस्रारौ, तयोरुपरि आनतप्राणतौ, तयोरुपरि आरणाच्युतौ ॥ अध उपरि च प्रत्येकमिन्द्रसम्बन्धो वेदितव्यः । मध्ये तु प्रतिद्वयमेकः ॥ सौधर्मैशानसानत्कुमारमाहेन्द्राणां चतुर्णां चत्वार इन्द्राः । ब्रह्मलोकब्रह्मोत्तरयोरेको ब्रह्मेन्द्रो नाम । लान्तवकापिष्ठयोरेको लान्तवाख्यः । शुक्रमहाशुक्रयोरेकः शुक्रसञ्ज्ञः । शतारसहस्रारयोरेकः शतारनामा । आनतप्राणतारणाच्युतानां चतुर्णां चत्वारः । एवं कल्पवासिनां द्वादश इन्द्रा भवन्ति ॥ जम्बूद्वीपे महामन्दरो

शुक्र-महाशुक्रौ1/2 तयोः6/2 उपरि*शतार-	=शुक्र और महाशुक्र हैं ॥ तिनके ऊपर शतार
सहस्रारौ1/2 तयोः6/2 उपरि*आनत-प्राणतौ1/2	=और सहस्रार हैं । उनके ऊपर आनत और प्राणत (कल्प) हैं
तयोः6/2 उपरि*आरण-अच्युतौ1/2 ॥ अधः*	=तिनके ऊपर आरण और अच्युत हैं । नीचे (चार स्वर्गों में)
उपरि*च*प्रत्येकम्1/1 इन्द्रसम्बन्धः1/1 वेदितव्यः1/1	=और ऊपर(चार स्वर्गोंमे) एकएक (=प्रत्येकम्) इन्द्रका सम्बन्ध जानना चाहिये अर्थात् सौधर्म, ऐशान, सानत्कुमार, माहेन्द्र, इन प्रत्येक प्रत्येकमें एकएक इन्द्र ऐसेचार और आनत,प्राणत,आरण,अच्युत प्रत्येकप्रत्येकमें एकएक ऐसे आठइन्द्रहैं
मध्ये7/1 तु*प्रति-द्वयम्1/1 एकः1/1 ॥ सौधर्म-ऐशान-	=और (=तु) मध्य (आठ स्वर्गों) में प्रति युगल एक (एक) इन्द्र है सौधर्मऐशान
सानत्कुमार-माहेन्द्राणाम्6/3 चतुर्णाम्6/3 चत्वारः1/3	=सानत्कुमार और माहेन्द्र चार (स्वर्गों) के चार
इन्द्राः1/3 (१)ब्रह्मलोकब्रह्मोत्तरयोः6/2 एकः1/1 ब्रह्म-	=इन्द्र है, ब्रह्मलोक और ब्रह्मोत्तर का एक ब्रह्म
इन्द्रः1/1 (२)नाम*(१)लान्तवकापिष्ठयोः6/2 एकः1/1	=नाम इन्द्र है, लान्तव कापिष्ठ (कल्प) का एक
लान्तव-आख्यः1/1 (१)शुक्र-महाशुक्रयो6/2 एकः1/1	=लान्तव नाम (इन्द्र) है, शुक्र और महाशुक्र (स्वर्गों) का एक
शुक्र-सञ्ज्ञः1/1 (१)शतार-सहस्रारयो6/2 एकः1/1	=शुक्र नामा (इन्द्र) है, शतार सहस्रार का एक
शतारनामा1/1 आनत-प्राणत-आरण-अच्युतानाम्6/3	=शतार नामा (इन्द्र) है, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत
चतुर्णाम्6/3 चत्वारः1/3 एवम्*कल्प-वासिनाम्6/3	=चार (स्वर्गों) के चार (इन्द्र) है, इस प्रकार स्वर्गो मे निवास करनेवाले(देव)निके
द्वादश1/3 इन्द्राः1/3 भवन्ति1 जम्बूद्वीपे7/1 महामन्दरः1/1	=बारह इन्द्र होते हैं ॥ जम्बूद्वीपमे सुमेरुपर्वत

(१) इन चारो वाक्योका पृथक् पृथक् सप्तमी दो बचन मानकर 'का' के स्थानमें "में" ऐसा अनुवाद भी होसक्ता है जैसे ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर में एक ब्रह्म नाम इन्द्र है इत्यादि ॥ (२) 'नाम' यहां पर अव्यय है जैसे 'हिमालयो नाम, नगाधिराजः' कुम्हारसंभवसे (वैद्यकोश पृष्ठ ३७४ देखो)

योजनसहस्रावगाहो भवति नवनवतियोजनसहस्राच्छ्रायः । तस्याधस्तादधोलोकः । बाहुल्येन तत्प्रमाण-(मेरुप्रमाण) स्तिर्यक्प्रसृतस्तिर्यग्लोकः । तस्योपरिष्टादूर्ध्वलोकः । मेरुचूलिका चत्वारिंशद्योजनोच्छ्राया । तस्या उपरि केशान्तरमात्रे व्यवस्थितमृजुविमानमिन्द्रकं सौधर्मस्य ॥ सर्वमन्यल्लोकानुयोगाद्वेदितव्यम् ॥ नवसु ग्रैवेयकेष्विति नवशब्दस्य पृथग्वचनं किमर्थम् ? । अन्यान्यपि नवविमानानि अनुदिशसञ्ज्ञकानि सन्तीति ज्ञापनार्थम् ।

योजन-सहस्र अवगाहः 1/1 भवति T नव-नवति-	=सहस्र योजन पृथिवीमे प्रविष्ट होता है (और) निन्यानवे
योजन-सहस्र-उच्छ्रायः 1/1 तस्य 6/1 अधस्तात्*	=सहस्र योजन की ऊचाई है । तिस (सुमेरु पर्वत की जड़) के नीचे
अधोलोकः 1/1 बाहुल्येन 3/1	=अधोलोक है बहुतायतसे अथवा प्रचुरतासे वा बहुलतासे
तत्प्रमाणः 1/1 (मेरुप्रमाणः 1/1) तिर्यक्-प्रसृतः 1/1 तिर्यग्लोकः 1/1	=उसके परिमाण (सुमेरुके बराबर मौटाई) तिर्यक् फैलवां तिर्यग्लोक है
तस्य 6/1 (१) उपरिष्टात्* (२) ऊर्ध्व लोकः 1/1 मेरु-चूलिका 1/1	=उस (सुमेरु)के ऊपर ऊर्ध्व लोक है । मेरु पर्वतकी चूलिका
चत्वारिंशत् योजन-उच्छ्राया 1/1 तस्याः 6/1 उपरि*	=चालीस योजन ऊचाई वाली है तिस (चूलिका) के ऊपर
केशान्तरमात्रे 7/1 व्यवस्थितं 1/1 ऋजुविमानं इन्द्रकं 1/1 सौधर्मस्य 6/1	=बालके अन्तरमात्र तिष्ठा हुआ ऋजुनामा इन्द्रक विमान सौधर्म(स्वर्ग)का है
सर्वम् 1/1 अन्यत्* लोक-अनुयोगात् 5/1 वेदितव्यम् 1/1	=अन्य(=अन्यत्)समस्त वर्णन लोकनियोग(=लोकमें प्रचलित)ग्रंथसे जाननाचाहिये
नवसु 7/3 ग्रैवेयकेषु 7/3 इति* । नव-शब्दस्य 6/1	=(प्रश्न) "नवसु ग्रैवेयकेषु" इस प्रकार नव शब्दके (ग्रैवेयक शब्दसे)
पृथग्*वचनम् 1/1 किम् 1/1 अर्थम् 1/1 ?	=न्यारी विभक्ति किस लिये है अर्थात् प्रश्न यह है कि जब नवग्रैवेयक हैं तौ "नवग्रैवेयकेषु" ऐसा मिलाकर एकही बहुवचन कारक वा विभक्ति क्यों न की नवसु को सप्तमी बहुवचन में भिन्न कारक किया और 'ग्रैवेयकेषु' को सप्तमी बहुवचन न्यारा कारक किया यदि एकही में दोनों को मिलाकर एकही विभक्ति करदेते तो "सु" अक्षर न्यून होजाता ।
अन्यानि 1/3 अपि* नव-विमानानि 1/3	=(उत्तर) (इन नवग्रैवेयकोंसे ऊपर) इतर वा दूसरे भी नौ विमान
अनुदिशसञ्ज्ञकानि 1/3 सन्ति T इति* ज्ञापन-अर्थम् 1/1	=अनुदिशनामक हैं ऐसा जनावनेको(नवसु ग्रैवेयकेषुसे न्यारीन्यारी विभक्ति की) है॥

---

(१) उपरिष्टात् और उपरि दोनों अव्यय हैं इनके साथ (जैसे यहां) द्वितीया और षष्ठी विभक्तियां मिलती हैं ॥ (२) सुमेरु के ऊपर चालीस योजन की चूलिका है सो तिर्यग्लोक का भाग है ॥

तेनानुदिशानां ग्रहणं वेदितव्यम् ॥ एषामधिकृतानां वैमानिकानां परस्परतो विशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

स्थितिप्रभावसुखद्युतिलेश्याविशुद्धीन्द्रियावधिविषयतोऽधिकाः ॥२०॥

स्वोपात्तस्यायुष उदयात्तस्मिन्भवे शरीरेण सहावस्थानं स्थितिः । शापानुग्रहशक्तिः प्रभावः । सुखमिन्द्रियार्थानुभवः ।

तेन[३/१] अनुदिशानाम्[६/३] ग्रहणम्[१/१] वेदितव्य[१/१]	=तिस ('नवसु'कारक) से अनुदिश विमानों का ग्रहण जानना चाहिए ॥
एषाम्[६/३] अधिकृतानाम्[६/३] वैमानिकानाम्[६/३]	=इन प्रकरणकियेहुये वैमानिकदेवोंके
परस्परतः*विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थम्[१/१] आह	=आपसमें विशेष जाननेकेलिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

(१)सूत्रम्— स्थितिप्रभावसुखद्युतिलेश्याविशुद्धीन्द्रियावधिविषयतोऽधिकाः ॥ २० ॥

(=वैमानिकाःउपर्युपरि) स्थिति-प्रभाव-सुख-द्युति-लेश्याविशुद्धि-इन्द्रियविषयतः-अवधिविषयतः अधिकाः

सूत्रार्थः—वैमानिकाः[१/३] उपरि*उपरि*	=वैमानिकदेव है वे ऊपर ऊपर अर्थात् स्वर्ग स्वर्ग प्रति तथा पटल पटल प्रति
स्थिति-प्रभाव-सुख-द्युति-	=आयु, प्रताप वा महिमा, सुख, दीप्ति (शरीरादि की कान्ति वा प्रकाश)
लेश्याविशुद्धि-इन्द्रियविषयतः*	=लेश्याकी विशुद्धता अथवा उज्ज्वलता, इन्द्रियोंके विषयकरि
अवधि-विषयतः*अधिकाः[१/३]	=और अवधि ज्ञानके विषयकरि (अर्थात् इन सातो बातोंमे) अधिक अधिक हैं
वृत्त्यनुवादः—स्व-उपात्तस्य[६/१] आयुषः[६/१] उदयात्[५/१]	=स्वप्राप्त आयुके उदयसे
तस्मिन्[७/१] भवे[७/१] शरीरेण[३/१] सह*	=तिस भवमें वा जन्ममें शरीर सहित
अवस्थानम्[१/१] स्थितिः[१/१] शाप-	=टिकाव वा ठहराव सो स्थिति है (परका) अपकार वा विग्रह (वशमें लाकर दंडदेने) की
(शक्तिः)-अनुग्रहशक्तिः[१/१] प्रभावः[१/१]	=(सामर्थ्य और) उपकार करनेकी सामर्थ्य सो प्रभाव है
इन्द्रिय-अर्थ-अनुभवः[१/१] सुखम्[१/१]	=(सातावेदनीय के उदयसे) इन्द्रिय विषय (=अर्थ) का भोगना सो सुख हैं

(१) हमारे यहांकी पुस्तकोंमें कहीं पर "विशुद्धीन्द्रिया" पाठ है कहीं पर "विशुद्धोंद्रिया" पाठ है दोनोंपाठ ठीक है । शेषपाठ हमारे यहां सर्वत्र एक है ॥ श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रमें तथा 'भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकामें और दिगम्बरआम्नायके भाष्योंमें पाठ तथा अर्थ एकसा है ॥

शरीरवसनाभरणादिदीप्तिर्द्युतिः। लेश्या उक्ता। लेश्याया विशुद्धिर्लेश्याविशुद्धिः। इन्द्रियाणामवधेश्च विषय इंद्रियावधिविषयः। तेभ्यस्तैर्वाऽधिका इति॥ तस्मिन्नुपर्युपरि प्रतिकल्पं प्रतिप्रस्तारं च वैमानिकाः स्थित्यादिभिरधिका इत्यर्थः॥ यथा स्थित्यादिभिरुपर्युपर्यधिका एवं गत्यादिभिरपीत्यतिप्रसङ्गे तन्निवृत्त्यर्थमाह—

॥ गतिशरीरपरिग्रहाभिमानतो हीनाः ॥ २१ ॥

शरीर-वसन-आभरण-आदि-दीप्तिः। द्युतिः,	=शरीर वस्त्र तथा भूषण अथवा गहना आदिक का प्रकाश सो द्युति है
लेश्या।	=लेश्या अर्थात् कषायके उदयकरि रंजित योगों की प्रवृत्ति
उक्ता। लेश्यायाः। विशुद्धिः।	=(दूसरे अध्यायके छठवां सूत्रमे) वर्णित है। लेश्याकी उज्ज्वलता वा विशुद्धता
लेश्या-विशुद्धिः। इन्द्रियाणाम्। अवधेः। च*विषयः। इन्द्रिय-	=सो लेश्या विशुद्धि है। इन्द्रियोंका और अवधिज्ञानका विषय हैं सो इन्द्रिय
अवधि-विषयः। तेभ्यः।	=अवधिविषयहै। तिन(स्थिति,प्रभाव,सुख,द्युति,लेश्याविशुद्धि,इन्द्रिय,अवधि विषय)से
वा*तैः।	=अथवा तिन(स्थिति,प्रभाव,सुख,द्युति,लेश्याविशुद्धि,इन्द्रियविषय,अवधिविषय)करि
अधिकाः। इति*तस्मिन्। उपरि*उपरि*	=अधिक अधिक हैं ऐसें तिस (ऊर्ध्वलोक) में ऊपर ऊपर
प्रति*कल्पम्। प्रति*प्रस्तारम्। च*वैमानिकाः। स्थिति-	=स्वर्गस्वर्ग प्रति और पटल प्रति वैमानिक देव स्थिति
आदिभिः। अधिकाः। इति*अर्थः। यथा*स्थिति-	=आदि करि अधिक अधिक हैं ऐसा आशय है जैसे स्थिति
आदिभिः। उपरि*उपरि*अधिकाः। एवम्*गति-	=आदि करि ऊपर ऊपर अधिक अधिक हैं ऐसे गमन
आदिभिः। अपि*इति*अतिप्रसंगे।	=आदिकरि भी इस प्रकार अति प्रसक्ति अर्थात् विपरीत सम्बन्ध आने पर
तत्-निवृत्ति-अर्थम्। आह	=उस (विपरीत प्रसक्ति) के निषेध के लिये (आचार्य अग्रिम सूत्रमें) कहतेहैंकि

सूत्रम्— गतिशरीरपरिग्रहाभिमानतो हीनाः ॥ २१ ॥

(वैमानिकाः उपर्युपरि) गति-शरीर-परिग्रह-अभिमानतः हीना भवन्ति ॥

सूत्रार्थः—वैमानिकाः। उपरि*उपरि*	=वैमानिक देव हैं वे ऊपर ऊपर अर्थात् स्वर्ग स्वर्ग प्रति पटल पटल प्रति
गति-शरीर-परिग्रह अभिमानतः*हीनाः।	=गमन, शरीर की उच्चता, परिग्रह और अहंकार करि घटते घटते है

देशाद्देशान्तरप्राप्तिहेतुर्गतिः । शरीरं वैक्रियिकमुक्तम् । लोभकषायोदयाद्विषयेषु सङ्गः परिग्रहः । मानकषायादुत्पन्नोऽहङ्कारोऽभिमानः । एतैर्गत्यादिभिरुपर्युपरि हीनाः ॥ देशान्तरविषयक्रीडारतिप्रकर्षाभावादुपर्युपरि गतिर्हीनाः ॥ शरीरं सौधर्मैशानयोर्देवानां सप्तारत्निप्रमाणम् ॥ सानत्कुमारमाहेन्द्रयोः षडरत्निप्रमाणम् ॥ ब्रह्मलोकब्रह्मोत्तरलान्तवकापिष्ठेषु पञ्चारत्निप्रमाणम् ॥ शुक्रमहाशुक्रशतारसहस्रारेषु चतुररत्निप्रमाणम् ॥ आनत प्राणतयोरर्द्धचतुर्थारत्निप्रमाणम् ॥ आरणाच्युतयोस्त्र्यरत्निप्रमाणम् ॥ अधोग्रैवेयकेषु

वृत्त्यनुवादः—देशात्[५/१]-देश-अन्तर-प्राप्ति-हेतुः[१/१]	=एक क्षेत्रसे अन्य क्षेत्रके प्राप्तिका कारण
गतिः[१/१]।शरीरम्[१/१]।।वैक्रियकम्[१/१]।।	=सो गति अथवा गमन है ॥ (देवों का) शरीर वैक्रियक है
उक्तम्[१/१]।।लोभ-कषाय-उदयात्[५/१]	=जो (दूसरे अध्याय के ४६ वां सूत्रमें) कथित है । लोभ तथा कषायके उदयसे
विषयेषु[७/३]संगः[१/१]परिग्रहः[१/१]मान-कषायात्[५/१]	=विषयोमें सम्बन्ध सो परिग्रह है । मान और कषायके उदयसे
उत्पन्नः[१/१]अहङ्कारः[१/१]अभिमानः[१/१]एतैः[३/३]गति-	=उत्पन्न हुआ गर्व सो अभिमान है । इन गति
आदिभिः[३/३]उपरि*उपरि*	=शरीर, परिग्रह, अभिमानकरि, ऊपर ऊपर अर्थात् स्वर्ग स्वर्गप्रति पटल२ प्रति
हीनाः[१/३]देशान्तर-विषय-क्रीडा-रति-	=घटते घटते है । अन्य क्षेत्र-विषय-क्रीड़न-प्रीति की
प्रकर्ष-अभावात्[५/१]उपरि*ऊपरि*गति-हीनाः[१/३]	=बहुलताके न होनेसे ऊपर ऊपर गमन हीन है ।
शरीरम्[१/१]।।सौधर्म-ऐशानयोः[७/२]देवानाम्[६/३]सप्त-अरत्नि-	=शरीर सौधर्म ऐशान स्वर्गोमें देवोंका सात हाथ
प्रमाणम्[१/१]।।सानत्कुमार-माहेन्द्रयोः[७/२]षड्-अरत्नि-प्रमाणम्[१/१]।।	=प्रमाण है । सानत्कुमार माहेन्द्र स्वर्गोमें छह हाथ प्रमाण (शरीर) है ।
ब्रह्मलोक-ब्रह्मोत्तर-लान्तव-कापिष्ठेषु[७/३]	=ब्रह्मलोक तथा ब्रह्मोत्तर, लान्तव तथा कापिष्ठ (स्वर्गों) में
पञ्च-अरत्नि-प्रमाणम्[१/१]।।शुक्र-महाशुक्र-शतार-	=पांच हस्त परिमाण (शरीर) है । शुक्र तथा महाशुक्र शतार तथा
सहस्रारेषु[७/३]चतुर्-अरत्नि-प्रमाणम्[१/१]।।आनत-प्राणतयोः[७/२]	=सहस्रार स्वर्गोमें चार हस्त प्रमाण (शरीर) है । आनत प्राणत स्वर्गोमें
अर्द्ध चतुर्थ-अरत्नि प्रमाणम्[१/१]।।आरण-अच्युतयोः[७/२]	=साढ़े तीन हाथ परिमाण (शरीर) है । आरण-अच्युत स्वर्गोमें
त्ररत्नि-प्रमाणम्[१/१]।।अधः*ग्रैवेयकेषु[७/३]	=तीन हाथ माप (शरीर) है । नीचली ग्रैवेयक (तिकड़ी) में

अर्द्धतृतीयारत्निप्रमाणम् ॥ मध्यग्रैवेयकेष्वरत्निद्वयप्रमाणम् ॥ उपरिमग्रैवेयकेषु अनुदिशविमानेषु च अध्यर्द्धारत्निप्रमाणम् ॥ अनुत्तरेष्वरत्निप्रमाणम्॥ परिग्रहश्च विमानपरिच्छदादिरुपर्युपरि हीनः॥ अभिमानश्चोपर्युपरि तनुकषायत्वाद्धीनः ॥ पुरस्तात्त्रिषु निकायेषु देवानां लेश्याविधिरुक्तः

अर्द्ध-तृतीया-(१)अरत्नि-प्रमाणम् १।१।। मध्य-ग्रैवेयकेपु ७।३।	=अढ़ाई हाथ परिमाण (शरीर) है। मध्य ग्रैवेयक (तिकड़ी) में
अरत्निद्वय-प्रमाणम् १।१।। । उपरिम-ग्रैवेयकेपु ७।३।	=दो हाथ माप (शरीर) है। उपरिम ग्रैवेयक (तिकड़ी) में
अनुदिश-(३)विमानेपु ७।३। च*अध्यर्द्ध-अरत्नि-प्रमाणम् १।१।। ॥	=और अनुदिश (नव) विमानोंविषैं डेढ़ हस्त प्रमाण(शरीर) है।
अनुत्तरेपु ७।३।	=अनुत्तर (विजय, वैजयन्त,जयन्त,अपराजित और सर्वार्थसिद्धि) विषैं
अरत्नि-प्रमाणम् १।१।। । परिग्रहः १।१ च*विमान-(२)परिच्छद-	=एक हाथ प्रमाण (शरीर) है। वहुरि परिग्रह विमान परिवार (=परिच्छद)
आदिः १।१ ऊपरि*ऊपरि*हीनः १।१ अभिमानः १।१ चउपरि*उपरि*	=आदिक ऊपर ऊपर घाटि घाटि है। वहुरि अभिमान वा अहंकार ऊपर ऊपर
तनु-कषायत्वात् ५।१।।हीनः १।१ पुरुस्तात् *त्रिपु ७।३।	=थोड़ी वा मंद कषाय होने से हीन है। पहिले तीन
निकायेपु ७।३।देवानाम् ६।३।लेश्या-विधिः १।१।उक्तः १।१।	=समुदायके देवोंके लेश्याका नियम कहा गया।

(१) अरत्नि—(पु०)(क)कुहनी(ख)मुट्ठी(ग)-पु०स्त्री कोहनीसे लेकर कनिष्टका पर्यंत हाथकी लबाई(वैद्यकोशपृष्ठ ६२) (कनिष्ठा छिमुनीको कहते है) अरत्नि—(पु०) "चीची अगुलीको फैलाकर मुट्ठी बांधा हुआ हाथ" पद्मचन्द्रकोष पृष्ठ ४१ ॥ चीची अगुली, कनिष्ठा वा छिमुनीको कहते है॥ रत्नि—(पु०स्त्री) बधीहुई मुट्ठी वाले हाथ का माप (पद्मचन्द्रकोष पृष्ठ ३१६ ॥ अमरकोश, १६ वर्ग, श्लोक ८६ में बधीहुई मुट्ठी सहित हाथ ॥ उपर्युक्त लेखसे विदित है कि अरत्नि एक छमुनी (एक कनिष्ठा अगुली) के बराबर रत्नि से बडी है और एक इञ्छ हाथ से न्यून है जैसाकि हलायुध ग्रन्थकारके निम्न लिखित श्लोक से प्रगट है

मध्यांगुली कुर्पयोर्मध्ये प्रामाणिक करः। (मध्य-अगुली-कुर्परयो) =बीचकी अगुली और कुहनी(=कुर्पर)के बीचमें जो मापागया है वह हाथहै ॥

बद्धमुष्टि करो रत्निररत्नि सकनिष्टक ॥ (बद्धमुष्टिकर रत्निः अरत्नि) =बधी हुई मुट्ठी सहित हाथ है सो रत्नि है और बधीहुई मुट्ठी सहित हाथ मय फैली हुई छमुनी के अरत्नि है अर्थात् कोहनी से लेकर कनिष्ठका तक लबाई को अरत्नि कहते है जो हाथ भरसे एक इंछ हीन होती है ॥

(२) परिच्छेद—(पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ २३० में) विशेष रूप से इयत्ताकरण, सर्ग, अध्याय, सीमा, विचार अर्थों में है परन्तु परिच्छद का अर्थ (पृष्ठ २३०) में उपकरण, सामान, कपडा, गहना-परिवार के हैं यहांपर परिवार के अर्थ में है ॥ परिच्छद के स्थानमें परिच्छेद अशुद्ध छपगया है। हस्त लिखित प्रति पृष्ठ ६६ पर 'परिग्रहश्च विमान परिच्छदादि' ऐसा पाठ है ॥ (३) 'विमान' शब्द पुल्लिंग और नपुसक लिंग दोनोंमें आता है ॥

इदानीं वैमानिकेषु लेश्याविधिप्रतिप्रत्त्यर्थमाह—

पीतपद्मशुक्ललेश्या द्वित्रिशेषेषु ॥ २२ ॥

इदानीं॥वैमानिकेषु॥लेश्या-विधि-प्रतिपत्ति-अर्थम्॥आह=अब वैमानिक देवोंमें लेश्याके नियमके प्राप्तिके लिये (अग्रिमसूत्रमें) कहते है कि

(१)सूत्रम्— पीतपद्मशुक्ललेश्या द्वित्रिशेषेषु ॥ २२ ॥

(१) हमारे यहां इस सूत्रका पाठ सर्वत्र एक है। सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रका पाठ "पीतपद्मशुक्ललेश्याहि विशेषेषु" ऐसा है श्वेताम्बर आम्नायकी भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीका और हमारे यहांका पाठ एकहै। हमारे यहां इस सूत्रका अर्थ सामान्यरूपसे और विशेषरूपसे ऐसे दोप्रकारसे किया है। एकसा पाठ होने पर भी अर्थ भेद है जिसको सविस्तार निम्नलेख में दिखलाते हैं॥

श्वेताम्बर आम्नायकी 'भाष्यानुसारिणीतत्त्वार्थटीका' सिद्धसेनसूरि रचितका पाठ "पीतपद्मशुक्ललेश्या द्वित्रिशेषेषु"

'पूर्वत्र बहुव्रीहिरुत्तरत्र द्वन्द्वः। यथासंख्यं चाभि सम्बन्धः कार्यः। उपर्युपरि वैमानिका इत्यादि भाष्यम् पृष्ठ ३४०=इस सूत्रके पहले पीतपद्मशुक्ललेश्या तक बहुव्रीहि समास है आगे 'द्वित्रिशेषेषु' तक द्वन्द्व समासहै। 'यथासख्य' शब्द इस सूत्रमें लगाना चाहिये। उपर्युपरि वैमानिका इत्यादिक भाष्य वा व्याख्या है॥ स्मरण रहै कि सौधर्मैशान इत्यादि सूत्र २० में ब्रह्मोत्तर, कापिष्ट, शुक्र, शतार ये चार स्वर्ग नहीं माने हैं इसलिये उनके यहां दोनों भाष्योंके अनुकूल बारहस्वर्गहैं "समानत्वेसत्यप्युपर्युपरिविशुद्धिप्रकर्ष सौधर्मैशानयोः कनकत्वचयसुराः" सानत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मलोकेषु पद्मदलत्विषगलांतकादिषु धवलरुचः" पृष्ठ ३४० =(लेश्याओंमें) समानता होनेपर भी(=सति अपि)ऊपर ऊपरके देवोंकी लेश्या अधिक विशुद्ध है। सौधर्म ऐशान स्वर्गोंमें पीतलेश्याके धारक देव है। सानत्-कुमार-माहेन्द्र और ब्रह्मलोक (स्वर्गो)में पद्मलेश्या वाले देव हैं। लांतकसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तक शुक्ललेश्या के प्रेमी देव हैं।

श्वेताम्बरस० "सभाष्यतत्त्वार्थाधिमसूत्र" तथा भेदप्रदर्शककोष्टकका पाठ "पीतपद्मशुक्ललेश्या हि विशेषेषु" ॥ २३ ॥

भाष्यम्—उपर्युपरि वैमानिका सौधर्मादिषु द्वयोस्त्रिषु शेषेषु च पीतपद्मशुक्ललेश्या, भवन्ति यथासख्यम् ॥ द्वयो पीतलेश्या सौधर्मैशानयोः। त्रिषु पद्मलेश्या सानत्कुमार माहेन्द्रब्रह्मलोकेषु। शेषेषु लान्तकादिष्वासर्वार्थसिद्धाच्छुक्ललेश्या।उपर्युपरितु विशुद्धतरेत्युक्तम् =ऊपरऊपर वैमानिकसौधर्मादिक दो(स्वर्ग वा कल्प)में,तीनस्वर्गोंमें और (=च) बचेहुये (लातस्वर्ग-नवग्रैवेयक पंचोत्तर,निमेंपीत-पद्म-शुक्ललेश्या क्रम से हैं॥

दो सौधर्म ऐशान स्वर्गोंमें पीतलेश्या है। तीन सानत्कुमार माहेन्द्र-ब्रह्मलोकमें पद्मलेश्याहै।बचेहुये लांतकआदिमें अर्थात्महाशुक्रसहस्रार आनत प्राणत आरण अच्युत, नवग्रैवेयक, पांच विजय वैजयंत जयंत अपराजित (=आदिषु)निमें,सर्वार्थसिद्धि, पर्यंतमें(आ-सर्वार्थसिद्धौ) शुक्ललेश्या है (और समान लेश्याओं में भी) ऊपर ऊपर के देवों की लेश्या अधिक विशुद्ध है ऐसा कहचुके हैं (सभाष्य० पृष्ठ ११२)

श्वेताम्बर आम्नायके उक्त दोनों भाष्योंके अर्थ करने पर एक ही भाव वा अभिप्राय प्रगट होता है यद्यपि सूत्र पाठमें भेद है सम्भव है कि सभाष्य०के पाठमें 'हि वि' 'द्वि त्रि'के स्थानमें अशुद्ध छपगया हो वा अशुद्ध लिखगया हो क्योंकि शब्दशः उक्त सूत्रका कोई अनुवाद समाधान योग्य नही होसका है

(उपर्युपरि वैमानिकाः) पीत-पद्म-शुक्ललेश्याःद्वि-त्रि-शेषेषु (यथासंख्यम्) (भवन्ति)

उपरि*उपरि*वैमानिकाः[1]पीत-पद्म-शुक्ल-लेश्याः[1] =ऊपर ऊपर रहनेवाले वैमानिक देव पीत पद्म और शुक्ललेश्याओं के धारक
यथासंख्यम्*द्वि- =क्रमसे (सामान्यपनेसे) दो (युगल सौधर्मैशान और सानत्कुमार माहेन्द्र) में
त्रि- =तथा तीन (युगल ब्रह्मलोक-ब्रह्मोत्तर और लांतव-कापिष्ठ और शुक्र महाशुक्र) में
शेषेषु[7] =बचेहुये (शतार-सहस्रार और आनत-प्राणत और आरण अच्युत तथा नवग्रैवेयक और नव अनुदिशों और पांच अनुत्तर)निमें हैं परन्तु विशेष रीति से

केवल शब्दश यह अनुवाद होसकता है कि पीत पद्म और शुक्ल लेश्यायें ही प्रकार प्रकार (भिन्न भिन्न-स्वर्गों) में होती हैं यह तुष्टिप्रद नहीं है न किसी तात्पर्य को स्पष्ट रूपसे प्रगट करता है। पंडित ठाकुर प्रसादजी ने "सौधर्मादि कल्पोंमें प्रथक् दो कल्पोंमें तो पीत लेश्या है, और उसके आगे तीन कल्पोंके देवोंमें पद्मलेश्या है, और आगे शेष देवोंमें शुक्ललेश्या है" अर्थ किया है सो 'भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीका'के अनुकूल है इस सूत्रके पाठानुसार नहीं है॥ जो समझमें आया है वही लिखा है विशेष रूपसे पाठकगण अन्वेषण करलें॥

दोनों समाजोंमें सूत्रका अर्थ भेद उपर्युक्त टिप्पणीसे और हमारे यहां के सूत्र अर्थ से (जो विशेषरूप से किया है) इस प्रकार प्रगट होता है कि

() श्वेताम्बर आम्नायमें सौधर्म-ऐशान स्वर्गोंमें पीत लेश्या है वही पीतलेश्या दिगम्बर आम्नायके अनुकूल सौधर्म-ऐशान कल्पोंमें है

() श्वेताम्बरीय भाष्योंमें सानत्कुमार-माहेन्द्र कल्पोंमें पद्मलेश्या है। पीतलेश्या और पद्मलेश्या दिगम्बर समाजके अनुसार सानत्कुमार माहेन्द्रमें हैं

() श्वेताम्बर सम्प्रदायमें ब्रह्मलोक स्वर्गमें पद्मलेश्या है वही पद्मलेश्या दिगम्बर आचार्यों के अनुकूल ब्रह्मलोक स्वर्ग वा कल्पमें है

() श्वेताम्बर आचार्योंमें लान्तक कल्पमें शुक्ललेश्या है परन्तु पद्मलेश्या दिगम्बर आम्नायके अनुकूल लान्तव (=लान्तक) स्वर्गमें है

() श्वेताम्बर समाजमें महाशुक्र सहस्रार कल्पोंमें शुक्ललेश्या है परन्तु पद्म शुक्ललेश्यायें दिगम्बर सिद्धान्तके अनुसार महाशुक्र सहस्रारस्वर्गों में हैं

() श्वेताम्बर भाष्योंमें आनत-प्राणत-आरण अच्युत-नवग्रैवेयक-पांच अनुत्तरोंमें शुक्ललेश्या है वही शुक्ललेश्या दिगम्बरआचार्योंमें नवअनुदिश सहितमें है ब्रह्मोत्तर कापिष्ठ शुक्र-शतार स्वर्गोंको श्वेताम्बरोंने नहीं माना है इससे मिलान नहीं होसकता है हमारे यहां ब्रह्मोत्तर कापिष्ठमें पद्म, शुक्र-शतारमें पद्मशुक्ल लेश्यायें मानी हैं

(१) 'वैमानिका' सोलहवांसूत्रसे और(२)उपर्युपरि अठारहवां सूत्र से अनुवर्ततेहैं(३)'यथासंख्यम्' शब्दका अध्याहार सूत्रार्थ स्पष्टकेलिये कियागयाहै

(४) तेषाम्[6]इव*लेश्या[1]॥येषां[6]। =तिन पीत पद्म शुक्ल रंगवाले पदार्थों के सदृश हैं लेश्यायें जिन (देवों) कें
ते[1]।पीत-पद्म-शुक्ललेश्या[1]। =ते पीत पद्म और शुक्ल लेश्यावाले (देव) हैं।

पीता च पद्मा च शुक्ला च ताः पीतपद्मशुक्लाः। पीतपद्मशुक्ला लेश्या येषां ते पीतपद्मशुक्ललेश्याः॥ कथं ह्रस्वत्वम् ?।

सौधर्म ऐशानमें पीतलेश्यावाले देव और सानत्कुमार माहेन्द्रमें पीत पद्म दोनों लेश्यावाले देव और ब्रह्मलोक ब्रह्मोत्तर और लान्तव कापिष्ठमें पद्मलेश्यावाले देव, शुक्र महाशुक्र और शतार सहस्रारमें पद्म शुक्ल दोनोंलेश्यावाले देव आनत प्राणत और आरण अच्युत और नव ग्रैवेयकोंमें शुक्ललेश्यावाले देव और नव अनुदिशमें और पांच अनुत्तरोंमे देव परम शुक्ल लेश्या वाले है ॥

वृत्त्यनुवादः—पीता१॥च॥पद्मा१॥च॥शुक्ला१॥च॥ =और पीता और पद्मा तथा शुक्ला हैं

ताः३॥पीत-पद्म-शुक्लाः३॥पीत-पद्म-शुक्लाः३॥लेश्याः३॥येषाम्६॥ =ते पीतपद्मशुक्लाः (द्वंद्व समास रूपमें)है। पीत पद्म और शुक्ल हैं लेश्यायें जिनके

ते३॥पीत-पद्म-शुक्ल-लेश्याः३॥ =वे पीत-पद्म-शुक्ल लेश्यावाले(देव)है (यह वाक्य द्वन्द्वगर्भित बहुव्रीहि समासमें है) अर्थात् 'पीतपद्मशुक्लाः३॥' यह वाक्य स्त्रीलिंग द्वन्द्व समासमें है और 'पीतपद्मशुक्ल-लेश्याः३॥' यह वाक्य पुरुषलिंग द्वंद्व समास गर्भित बहुव्रीहिसमासमें है। सारांश पीत, पद्म, शुक्ललेश्या जिनके है वे पीत-पद्म-शुक्ल लेश्या सहित देव है ॥

कथं॥ह्रस्वत्वम्१॥ ? =(प्रश्न) ह्रस्वपना वा लघुपना (पीता, पद्मा और शुक्ला शब्दों के) कैसे हुआ ? इस प्रश्न का दोहरा तात्पर्य है प्रथम यह कि पीता-पद्मा-शुक्ला तीनों शब्दोंका द्वंद्वसमास किया है तो 'पीतापद्माशुक्लाः३॥' ऐसा रूप होना चाहिये क्योंकि द्वन्द्वसमासमें जो शब्द समुच्चय किये जाते है वे ह्रस्व हों तो ह्रस्व बने रहते है और दीर्घ हों तो दीर्घ बने रहते है द्वंद्वसमासमें पूर्व पदका कभी ह्रस्व नहीं होता है। जैसे हरिश्च हरश्च=हरिहरौ(विष्णु और महादेव)ईशश्च कृष्णश्च ईशकृष्णौ(शिव औरकृष्ण) माता च पितरा च=माता पितरौ (मा और बाप) इसलिये 'पीतापद्माशुक्लाः३॥' रूप होना चाहिये। दूसरा तात्पर्य है कि यदि हम 'पीतापद्माशुक्लाः३॥' द्वंद्व समासमें 'लेश्या' शब्द मिलाकर द्वन्द्व गर्भित बहुव्रीहि समास करदें तो 'पीतापद्माशुक्लालेश्याः३॥' ऐसा रूप होना चाहिये 'शुक्ला' शब्दका 'शुक्ल' ह्रस्व कैसे हुआ ॥ (उत्तर)

औत्तरपदिकम् ।

औत्तरपदिकम् =अग्रिम पद (दीर्घ) रहनेसे पूर्व पदको ह्रस्व हुआ है अर्थात् 'पीतापद्मा' द्वंद्वसमासमें 'पद्मा' अग्रिम पद स्त्रीलिंग दीर्घ होनेसे 'पीता' का तकार ह्रस्व होकर 'पीतपद्मा' हुआ पश्चात् 'पीतपद्माशुक्लाः $\frac{1}{3}$।।' वाक्य में 'शुक्ला' शब्द स्त्रीलिंग दीर्घ पद होने से 'पद्मा' का ह्रस्व हुआ, अतः 'पीतपद्मशुक्लाः' ऐसा वाक्य द्वन्द्वसमास स्त्रीलिंग प्रथमा विभक्ति वहुवचनमें वनगया। स्मरण रहै कि यहांपर 'पीतापद्मा' शब्दोंको पुंवद्भाव (=पुरुषलिंगी शब्दकेसदृश तात्पर्यको प्रगट करनेवाला) नही हुआ, केवल पीता पद्मा ह्रस्व होगये हैं।। 'पीतपद्मशुक्लाः $\frac{1}{3}$।।' वाक्य का अर्थ 'पीत और पद्म और शुक्ल' हैं ऐसा है। ऐसा रूप वनजानेके लिये कोई व्याकरणका नियम और वार्तिक इस विषयपर नही है। श्री पतञ्जलिमुनिने जिनका अस्तित्व खृष्टीयशतकसे लगभग १५० वर्ष पहिले निर्णय कियागया है और जिनने पाणिनिमुनिकृता अष्टाध्यायी पर लगभग एकलाख श्लोकका महाभाष्य रचा है उनने अध्याय १ पाद १ सूत्र ७० 'तपरस्तत्कालस्य' पर 'द्रुतायां तपर करणे मध्यमविलम्बितयोरुपसंख्यानम्' यह वार्तिक उक्तमहाभाष्यमें दी है इसमें 'मध्यमविलम्बितयोः' ='मध्यमा च विलम्बिता च मध्यमविलम्बित तयोः' का प्रयोग किया है इस द्वंद्वसमास युक्त पदमें 'विलम्बिता' उत्तर पद दीर्घ रहनेसे 'मध्यमा' शब्दको ह्रस्वकर निर्देश किया है। जैसे इस द्वंद्वसमास युक्तपद में 'विलंबिता' उत्तर दीर्घ पद रहनेसे 'मध्यमा' शब्दको ह्रस्वकर निर्देश किया है उसी प्रकार यहांपर 'पद्मा' अग्रिम पद रहते 'पीता' को ह्रस्व किया और 'शुक्ला' को उत्तरपद रहते 'पद्मा' को ह्रस्व किया। यह एक वात प्रसिद्ध है कि यदि किसी रूपकी सिद्धिके लिये व्याकरणमें किसी सूत्र, वार्तिक वा अन्य नियमका अभाव हो और किसी शब्दको किसी रूपमें (चाहें वह व्याकरणके विरुद्धही क्योंन हो) पाणिनि, कात्यायन, पतञ्जलि योगी और श्रीकुन्दकुन्द, उमास्वामी, भद्रवाहु स्वामी इत्यादि आचार्य प्रयोग करदें वह शुद्ध मानलिया जाताहै और उसको आर्ष प्रयोग भी कहतेहैं यही दशा हमारे 'पीतापद्मा'वाक्यकी है। उक्त वार्तिकके अनुवादमें हम इसकी पूरी व्याख्या देंगे।।'ह्रस्व'के लिये उत्तरपद दीर्घ और स्त्रीलिंगमें होना चाहिये।।

दूसरी शंका (कि 'पीतपद्मशुक्लालेश्याः' वाक्यमे शुक्ल शब्दका ह्रस्वहोकर 'पीतपद्मशुक्ललेश्याः $\frac{1}{3}$।' वाक्य कैसे होगया) का उत्तर पीत और पद्म और शुक्ल है लेश्या जिनके वे पीत और पद्म और शुक्ल लेश्यावाले (देव) है। ऐसा अर्थ 'पीतपद्मशुक्ललेश्याः $\frac{1}{3}$।' इस द्वंद्व गर्भित वहुव्रीहि समास वाले वाक्य का हुआ।। 'शुक्ला' शब्दका

अष्टाध्यायी अध्याय छह पाद तीन सूत्र (१) चौतीसवें अथवा जैनेन्द्र व्याकरण अध्याय चार पाद तीन सूत्र एकसौ छयालीसवें से (देखो निम्नलिखित टिप्पणी) पुंवद्भाव होकर (अर्थात् शुक्ला के आकारका अकार होकर पुरुष लिंगी शब्दके सदृश तात्पर्यको प्रगट करते हुये) 'शुक्ल' शब्द होगया अतः 'पीतपद्मशुक्ललेश्याः' ऐसा वाक्य होगया भावार्थ 'पीतपद्मशुक्लाः॥लेश्याः॥येपाम्(=पीतपद्मशुक्ललेश्याः।) यहांपर शुक्लाशब्द स्त्रीलिंग है उसके समान आकृति (=रूपवाला) और समान भावका (=आयाम) द्योतक पुल्लिंग शब्द 'शुक्ल' है । इस स्त्रीलिंग शब्द 'शुक्ला'के अन्तमें'ऊङ्' प्रत्यय नही है वरन अंतमें 'आ' प्रत्यय है इस (शुक्ला शब्द)के परचात् वा उत्तरमें 'लेश्या' स्त्रीलिंग शब्द है यह'लेश्या' शब्द शुक्ला शब्दके साथ समानाधिकरणमें है और यह लेश्या शब्द क्रमिक संख्या (जैसे पहला दूसरा-तीसरा-चौथा इत्यादि) नहीं है और न प्रियादि गणके शब्दोंमें से एक शब्द है इसलिये यह शब्द 'शुक्ला'जो स्त्रीलिंग है अपने अनुरूप वाले 'शुक्ल' पुलिंग शब्दमें पलट जाता है इसलिये 'पीतपद्मशुक्लालेश्याः' वाक्यके स्थानमें उक्त सूत्र द्वारा 'पीतपद्मशुक्ल-लेश्याः' ऐसा वाक्य बनगया । इस 'शुक्ला' शब्दका उसीप्रकार से पुंवद्भाव हुआ है जिस प्रकारसे 'दर्शनीया' शब्दका पुंवद्भाव होकर 'दर्शनीय' शब्द दर्शनीय भार्यः (=दर्शनीया भार्या यस्य) वाक्यमें बन जाता है ॥ अर्थात् दर्शनीयाभार्या यस्य स दर्शनीयभार्यः हुआ ।

पूज्यपाद स्वामीने 'द्रुतायां तपरकरणे मध्यमविलम्बितयोरुपसंख्यानम्' पतञ्जलि वार्तिकको प्रमाणरूपमें केवल इसीलिये दियाहै कि जैसे पतंजलिने मध्यमाका मध्यम विलंबिता अगलेपद होतेसंते करदिया उसीप्रकार उमास्वामीने 'पीता पद्मा' को शुक्ला परे होते संते क्रमसे पीत पद्म करदिया ॥ उनको इस वार्तिक के वस्तुतः अर्थसे कुछ प्रयोजन नही और यथार्थ अर्थ इस वार्तिकका सूत्रके अर्थ वा भावसे कुछ सम्बन्ध नही रखता वार्तिकका अर्थ पृष्ठ६८–७४ तकहै ।

---

(१)स्त्रिया पुंवद्भाषित पुंस्कादनूङ् समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणीप्रियादिषु ॥६।३।३४ ॥ स्त्र्युक्तपुंस्कादनूरेकार्थेऽङ्ङ् प्रियादौ स्त्रियां पुवत् ॥ ४।३।१४६
=स्त्रियाः॥ पुवत्॥भाषितपुंस्कात्॥अनूङ्॥समानाधिकरणे॥स्त्रियाम्॥अपूरणीप्रियादिषु॥ ॥(अपूरणी–अप्रियादिषु)

स्त्रियाः॥पुंवत्॥समानाधिकरणे॥	=स्त्रीलिंग शब्दका पुवाचक समान रूप हो जब (समास में) समानाधिकरण में अथवा एकान्वय में
स्त्रियाम्॥अपूरणी-	=ऐसा स्त्रीलिंग(शब्द) उत्तरपद हो जो क्रमिक संख्या(प्रथम दूसरा-तीसरा-चौथा-पांचवा इत्यादि)न हो और
प्रियादिषु॥	=न प्रियादिगण के शब्दोंमेंसे कोई शब्द हो । (और इस उत्तर पदवाले स्त्रीलिंग शब्दका)
भाषितपुंस्कात्॥अनूङ्॥	=पूर्वपद भाषितपुंस्क स्त्रीलिंग ऐसा हो कि जिसके अन्तमें (स्त्रीलिंग) ऊङ् प्रत्यय न हो । जैसे दर्शनीय भार्य (=दर्शनीया भार्या यस्य) । यहां 'दर्शनीया' स्त्रीलिंग शब्द है जिसका अनुरूप पुलिंग शब्द उसी आकृति और उसी अर्थवाला दर्शनीय शब्द है । इस 'दर्शनीया' शब्द के अन्तमें ऊङ् प्रत्यय नहीं है वरन 'आ' है इस 'दर्शनीया' शब्द के पश्चात् स्त्रीलिंगी शब्द भार्या है जो दर्शनीया शब्द के साथ एकान्वयमें है ॥

यथाहुः द्रुतायां तपरकरणे

यथा॥आहु[१]तपरकरणे[२]॥ =जैसा कि वे कहते है कि 'तपर' करनेपर अर्थात् तकार जिससे परै करना हो, जिसके पश्चात् तकार जोड़ना हो वा लगाना हो अथवा तकार से जिसको परै करना हो, तकार से जिसको पश्चात् लाना हो तो (ऐसे प्रयोग में)

द्रुतायाम्[२]। =द्रुता वृत्तिमें अर्थात् शीघ्र उच्चारण की चाल, ढव, क्रिया अथवा रीतिमें; शब्द के जल्दी बोलनेमें

वा सामानाधिकरणमें है और यह भार्या शब्द क्रमिक संख्या वाला नहीं है और न प्रियादिगणके शब्दोंमेंसे कोई शब्द है अत 'दर्शनीया' शब्द अपने अनुरूपक पुलिंगशब्द 'दर्शनीय'में पलट जाता है ॥ ऐसेही दीर्घजङ्घः =दीर्घा जङ्घा यस्य दीर्घजङ्घ जिसकी जांघ बडी है और रूपवती भार्या यस्य=रूपवद्भार्यः॥

स्त्री[१]॥पुवत्॥एकार्थे[२]। =(जैनेन्द्र व्याकरणके अध्याय ४ पाद ३ सूत्र १४६ का अनुवाद) स्त्रीलिंग शब्द पुलिंग सदृश हो जब (समासमें) एक अर्थमें

स्त्रियाम्[३]॥यअडट्प्रियादौ[१]। =ऐसा स्त्रीलिंग (शब्द) उत्तर पद हो जो सख्या न हो (=अडट् अष्टाध्यायी १-१-२३) न प्रियादि गण में (से) हो

उक्त पुस्कात्[४]। =(और इस उत्तर पदवाले स्त्रीलिंग शब्द का) पूर्व पद भाषित पुस्क स्त्रीलिंग ऐसा हो कि

अन् ऊः[१]। =जिसके अन्त में ऊ प्रत्यय न (=अन्) हो ॥ ऊङ् प्रत्ययके ङ् का इत् सज्ञक होनेसे लोप होजाता है ऊ शेष रहजाता है प्रियादि शब्द ये हैं (१) प्रिया (२) मनोज्ञा (३) कल्याणी (४) सुभगा (५) दुर्भगा (६] भक्ति [७] सचिवा(८)स्वा (स्वसा) (९)कान्ता (१०) क्षान्ता (११) समा (१२) चपला (१३) दुहिता (१४)वामना (वामा) (१५)तनया [१६] अम्बा॥इन शब्दोंमें 'दृढभक्तिः' समास नियम विरुद्ध है ॥

(१) आहु-यह शब्द हस्त लिखित सर्वार्थसिद्धिवृत्ति पृष्ठ ६९ पर नहीं है न राजवार्तिकमें है जिसका लेख लगभग वही है जो सर्वार्थसिद्धिमें है हस्तलिखित प्रति में 'यथा द्रुतायां तपरकरणे मध्यमविलबितयोरुपसख्यानमिति द्रुतमध्यमविलबिता इति" ॥ ऐसा पाठ है अर्थात् 'आहु 'शब्द नहीं है और 'द्रुतमध्यमविलविता इति यह वाक्य अधिक है। हमने यह पाठ नहीं लियाहै क्योंकि श्रीपतञ्जलिकी वार्तिक केवल 'उपसख्यानम्' तक है ॥

[२) द्रु-यह शब्द सकर्मक अकर्मक परस्मैपद भ्वादि प्रथम गणका धातु है यह () बहना, दौडना, उडना, दौडपडना, आक्रमणकरना ()गलजाना पतला होजाना इत्यादि अर्थोंमें आता है। जब 'द्रु' (पु०। न०) में सज्ञा होता है तो काठ, काठ का बनाहुआ लोखर, इन दो अर्थों में आता है ॥ 'द्रु' में त जोडदें तो 'द्रुत' त्रिलिंगी होजाता है और ता जोडने पर द्रुता केवल पुलिगमें आता है तो वृक्ष उसकी डाली इन दो अर्थों में आता है जब स्त्रीलिंग होजाता है जल्दी, पिघला हुआ, भागा हुआ अर्थोंमें प्रयोग कियाजाताहै। द्रुत पुलिंगमें वृक्ष,बिल्ली,बीछूके अर्थोंमें आता है ॥द्रुतम् अव्यय है॥ जल्दी, शीघ्र अर्थोंमें आता है ॥ द्रुता यहांपर स्त्रीलिंग एक वचन सप्तमी विभक्तिमें "द्रुतायाम्" ऐसे रूपमें शीघ्रता के अर्थमें आया है॥ श्लोकवार्तिक हस्त लिखित में "द्रुतायाम्" सप्तमी एक बचन स्त्रीलिंगमें है परन्तु मुद्रित श्लोक वार्तिक पृष्ठ २८४ पर द्रुतापात् पचमी विभक्ति एक वचन नपुंसक लिंग 'तपरकरणात्' शब्द से प्रथम आया है ॥ द्रुतापात्=यहां पर 'शीघ्रतासे' इस अर्थमें आया है ॥

मध्यमविलम्बितयोरुपसंख्यानमिति ॥

मध्यम-	=मध्यमा वृत्तिका अर्थात् मध्यमकालिक उचारणका और
विलम्बितयोः[६/२]।उपसंख्यानम्[१/१]।।इति॥	=विलम्बिता वृत्ति अर्थात् विलम्ब वा देरीकालिक उचारणका समावेश वा अन्तर्गतहोना चाहिये (इस वार्तिक सम्बन्धीय, इतिहास, व्याख्या, श्री पतञ्जलिका भाष्य अनुवाद सहित नीचे टिप्पणी में देते हैं)

खृष्ट शतकसे लगभग ६५० वर्ष पूर्व श्री पाणिनिजी ने जो दाक्षीके पुत्र शालातुरीय नामक ग्राममें उत्पन्न हुये थे अष्टाध्यायीरूप व्याकरण जिसमें ३९७५ सूत्र है बनाया तत्पश्चात् खृष्टीय शतकसे ३५० वर्ष पहिले कात्यायन मुनिने पाणिनि मुनिके सूत्रोंमें जो त्रुटि थी उसको दूर करनेके लिये लगभग एक सहस्र अस्सी वार्तिक रचे। तत्पश्चात् पतंजलि मुनिने खृष्टीय शतकसे १५०वर्ष पूर्व अष्टाध्यायीके सूत्रों पर महाभाष्य रचा जिसमें लगभग एक लाख श्लोक हैं इससे बडा कोई भाष्य वा वृत्ति उक्त व्याकरण पर नहीं है। खृष्टीय शतक ६२५में भर्तृ रचित भागवृत्ति इसी अष्टाध्यायी पर रचीगई। इसके कुछ समय पश्चात् लगभग ६५० खृस्ताब्दीमें वामन जी और जयादित्यजीने 'काशिकावृत्ति' लगभग दशसहस्र श्लोक के रची। इसी अष्टाध्यायी की इसी काशिका वृत्तिके ऊपर जिनेन्द्रबुद्धि (द्वितीय पूज्यपाद स्वामी) ने खृष्टीय ७०० से ७५० तक 'काशिकाविवर्ण पञ्चिका' इस काशिका पर बनाई जिसकी श्लोक संख्या ३०००० सहस्र से अधिक है। इसका सम्पादन श्रीमान् शतीशचन्द्र चक्रवर्तिने कियाहै और वारिन्द्रअन्वेषण सभा,राजशाही प्रान्त से प्रकाशित हुई है। स्मरण रहै कि प्रथम पूज्यपाद स्वामी सर्वार्थसिद्धि वृत्ति के कर्ता ने विक्रम सम्वत् ५४० के लगभग जैनेन्द्र व्याकरण रचा॥ इसके पश्चात् अष्टाध्यायी पर भाषावृत्तिअर्थात् वैदिक सूत्रोंको छोडकर संस्कृतमें ही लघुभाष्य रचा इसके रचयिता पुरुषोत्तमदेव हुये। पश्चात् भट्टोजी दीक्षितने खृष्टीय बारहवी शतकमें 'सिद्धान्त कौमदी' रची॥ इसमें पाणिनि मुनिके समस्त सूत्र हैं परन्तु सूत्रोंका क्रम भट्टोजी दीक्षितने परिवर्तन करदियाहै॥ इसकेपीछे मध्यकौमुदी रचीगई, फिर श्रीयुत् वरदराजने लघुकौमदी रची जिसमें अष्टाध्यायीके १२००सूत्रसे अधिकहैं॥

इस महाभाष्यके रचनेके सम्बन्धमें एक मनोरञ्जक दन्त कथा इस प्रकार है कि एक वार पतजलिकी माता सूर्य्यको अर्घ देरहीं थीं कि अर्घ देते समय लोटेमेंसे एक सांपका बच्चा भूमिपर गिरपडा श्रीमतीकी जिभ्यासे घबराहटमें 'को भवान्' (=आप कौन हैं) के स्थान में 'कोर्भवान्' निकलगया, तब ('सर्पोऽहम्' के स्थानमें) उत्तर मिला कि 'सपोऽहम्' (=मैं सांप हूं)। तब माताजीने सावधानीमें आकर प्रश्न किया कि 'रेफकुतः गतः' अर्थात् सांप के बच्चे से पूंछा कि तुमने अशुद्ध उच्चारण 'सर्पोऽहम्' के स्थानमें 'सपोऽहम्' क्यों किया फिर उत्तर मिलाकि 'त्वयाऽपहृत' अर्थात् रेफ तुमने हरलिया भावार्थ 'को भवान्' के स्थानमें तुम 'कोर्भवान्' वाक्यका उच्चारण करगईं फिर मैंने 'सपोऽहम्' कहदिया। 'कोर्भवान्' का रेफ यदि 'सपोऽहम्' वाक्य में मिलादियाजावे तो दोनों वाक्य 'को भवान्' (=आप कौन हैं) और 'सर्पोऽहम्' (मैं सांप हूं) ठीक होजावेंगे। पश्चात् ऐसा

प्रसिद्ध है कि विक्रिया ऋद्धिद्वारा सांपके बच्चेने ऋषिका रूप धारण करके इस 'महाभाष्य' को लिखा और महादेवजी इसको एक कोठरीमें से बोलते गये। पतजलि ऋषि के लगभग एक सहस्र शिष्य थे। इस भाष्यके लेख को रोककर उक्त ऋषि कहीं आवश्यकीय कार्यको गये और शिष्योंको उपदेश करगये कि कोठरीका आवरणपट न उठाना, परन्तु आपको अनुभव होगाकि जिस कामकी लडकोंसे कहो कि मत करना, बस उसको अवश्यही करैं आवरणपट खोलदिया तो ऐसा कहाजाता है कि उष्णताके कारण समस्त शिष्य भस्म होगये केवल दो चार शिष्य जो कार्यवश बाहर चलेगये थे जीवित रहे। अष्टाध्यायीके आठ भागहैं यह महाभाष्य भी आठ खडोंमें काशी, बबई इत्यादि देशोंमें मुद्रित हुआहै। कहतेहैंकि कुछेक भाग इस भाष्यको जहांकहीं प्रकरण ठीकठीक नहीं मिलता है नष्ट होगया है अर्थात् उपहासमें प्रसिद्ध है कि ऋषिके अनुपस्थितिमें बकरी कुछ पत्र महाभाष्यके चरगई॥

इस बातके लिखनेकी आवश्यकता नहीं है कि पूज्यपादस्वामीने जैनेन्द्र व्याकरण रचा और बड़े प्रकर्ष वैयाकरण थे उन्होंने कहीं पर भी इस समस्त सर्वार्थसिद्धिवृत्तिमें अन्य मतके किसी शास्त्रका प्रमाण नहीं दिया है जैनमतके ही शास्त्रोंका प्रमाण दिया है। इस वार्तिकका प्रमाण देनेके दो कारण सम्भव हैं प्रथम यह कि प्रश्न करनेवाला कोई अन्य मतका विद्वान् हो और वह जैनमतके शास्त्रोंके प्रमाणसे इस वैयाकरणीय प्रश्नके उत्तरसे सन्तुष्ट न हुआ हो तब उक्त स्वामीजीने उसको इस महाभाष्यकी पंक्तिसे सतुष्ट किया हो जो अन्यमतमें सबसे प्राचीन, महत्वका और प्रभावशाली महाभाष्य है। दूसरे यहकि उनको श्री उमास्वामीसे पूर्वका कोई प्राचीन प्रमाण जैनमतके ग्रन्थोंसे प्राप्त न होसका हो और उमास्वामी जिन्होंने सम्वत् १०१ में तत्वार्थसूत्र की रचना कीथी उनके पश्चात् के ग्रथों द्वारा इस व्याकरणके प्रश्नका समाधान नहीं होसका है। इसीकारण से हमने उक्त इतिहास दिया है कि कोई अन्यमतका विद्वज्जन 'पीत पद्म शुक्ललेश्याः' वाक्यकी रचना पर सदेह और तर्क न कर सकै।

प्रथम इसके कि हम श्री पतजलिकी वार्तिक और उसकी सस्कृत व्याख्याका शब्दश अनुवाद और भावार्थ लिखें 'अ' स्वरके अठारहरूप और अष्टाध्यायीके 'अणुदित्सवर्णस्य चा प्रत्यय' सूत्र ६९॥ 'तपरस्तत्कालस्य' ॥ सूत्र७० । और विप्रतिषेधे पर कार्यम्। अध्यायप्रथम पादचौथा सूत्र दूसरे को समझादेवें कि उक्त वार्तिकका अनुवाद भले प्रकार और सरलता से पाठकोंकी समझ मे आजावे।

'अ' स्वर के अठारह रूप हैं। उदात्त 'अ' जिसका उच्चारण तालु आदि स्थानोंके ऊपरके भागसे होता है। अनुदात्त 'अ' जिसका उच्चारण तालु आदि स्थानों के निचले भाग से होता है और स्वरित 'अ' जिसके उच्चारणमें उदात्त और अनुदात्त दोनों वर्णधर्म समान हों अर्थात् दोनों उदात्त अनुदात्त वर्णधर्म मिले हों। इन प्रत्येक तीन के अनुनासिक उच्चारण और निरनुनासिक उच्चारण से दोदो भेद होकर छह भेद 'अ' स्वर के हुये, पश्चात् प्रत्येक छह भेद ह्रस्व (एक मात्रिक उच्चारण) दीर्घ (दो मात्रिक उच्चारण) प्लुत (तीन मात्रिक उच्चारण)से अठारह भेद इस प्रकार होजातेहैं अ-अ॒-अ॑ अँ-अँ॒-अँ॑ । आ-आ॒-आ॑ आँ-आँ॒-आँ॑ । अ३-अ॒३-अ३॑ अँ३-अँ॒३-अँ३॑ । इनमें उदात्त पर कोई चिन्ह नहीं है, अनुदात्त 'अ' के नीचे ऐसी—लकीर है और स्वरित 'अ' के ऊपर ऐसी । खड़ी लकीर है॥

प्रथम 'उदात्त ह्रस्व निरनुनासिक' अ है। दूसरा 'अनुदात्त ह्रस्व निरनुनासिक' अ॒ है। तीसरा 'स्वरित ह्रस्व निरनुनासिक' अ॑ है। (विना नाक बोलो)
चौथा 'उदात्त ह्रस्व अनुनासिक' अँ है। पांचवां 'अनुदात्त ह्रस्व अनुनासिक' अँ॒ है। छठवां 'स्वरित ह्रस्व अनुनासिक' अँ॑ है। (नाकसे बोलो)
सातवां'उदात्तदीर्घ निरनुनासिक'आ है। आठवां'अनुदात्त दीर्घनिरनुनासिक' आ॒ है। नवचां 'स्वरित दीर्घ निरनुनासिक आ॑' है। (विना नाक बोलो)
दशवां 'उदात्तदीर्घ अनुनासिक' आं है। ग्यारहवां 'अनुदात्त दीर्घअनुनासिक' आँ॒ है। बारहवां स्वरित दीर्घ अनुनासिक आँ॑ है। (नासिकासे बोलो)
तेरहवां'उदात्त प्लुत निरनुनासिक'अ३ है। चौदहवां'अनुदात्त प्लुत निरनुनासिक'अ॒३ है। पद्रहवां'स्वरित प्लुत निरनुनासिक'अ॑ ३ है। (विनानाक बोलो)
सोलहवां'उदात्त प्लुतअनुनासिक'अँ३ है। सत्रहवां 'अनुदात्त प्लुत अनुनासिक' अँ॒३। अठारहवां'स्वरित प्लुत अनुनासिक' अँ॑ ३ है। (नाकसे बोलो)

() अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः =अण्[१],उदित्[१],सवर्णस्य[६]॥।, च॥अप्रत्यय [१]। स्वम्[१]रूपम्[१]॥। ॥ अष्टाध्यायी प्रथम अध्याय प्रथमपादका ६९ वां सूत्र

अण्[१]। =प्रत्याहार अण् के अक्षर अर्थात् अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ, ह, य, व, र, ल, जिनमें अ, इ, उ प्रत्येक के अठारह 'ऋ' के अठारह और बारह 'लृ' के रूप मिलने से ऋकार के तीस रूप, ऐसे ही लृ के बारह रूप और ऋ से अठारह रूप मिलने से ऐसे लृ कारके भी तीस रूपहैं(क्योंकि ऋ, और लृ की आपस में सवर्ण संज्ञा मानी गई है) ए, ओ, ऐ, औ, में से प्रत्येक के बारह बारह रूप,हैं। अनुनासिक औरअननुनासिक भेदों से य, व, ल प्रत्येकके दोदो रूपहैं अर्थात् साधारण य, व, ल में अनुनासिक यँ वँ लँ का भी समावेश होजाता है। र, ह यद्यपि 'अण्' प्रत्याहारमें अन्तर्गत हैं तौभी अपने एक एक रूपको ही प्रगट करते हैं क्योंकि उनका कोई सवर्णीय अक्षर नहीं है

उदित्[१]। =कु चु टु तु पु ये उदित् हैं अर्थात् कु=कवर्ग (=क, ख, ग, घ, ङ) चु=चवर्ग (च, छ, ज, झ, ञ) टु=टवर्ग (= ट, ठ, ड, ढ, ण), तु=तवर्ग(=त, थ, द, ध, न) पु=पवर्ग (=प, फ, ब, भ, म,) [समावेशहैं]

स्वम्[१]रूपम्[१]॥।च सवर्णस्य[६]॥।रूपम्[१]॥। =अपनेअर्थव रूपको तथासवर्णके अर्थवरूप को ग्रहणकरतेहैं(जैसे'अमें अठारा प्रकारके'अ'और'कु'मेंक-ख-ग घ ङ इस सूत्रमें 'स्वरूपम्' वाक्यकी अनुवृत्ति 'स्व रूपं शब्दस्या शब्द संज्ञा' इस ६८ वां सूत्रसे आती है। स्वम्का अर्थ अपनाहीहै अर्थात् अर्थको प्रगटकरताहै और 'रूपम्' शब्दके व्यक्तिगतआकारको प्रगट करताहै ॥ स्वम्रूपम्का अतः यह भाव है कि किसी शब्दके अर्थ और उसके आकार का द्योतक हो। जैसे कोई नियम जो अग्नि पर लागू होता है उस शब्द पर जो अ, ग्, न्, इ से बना हो लागू होगा नकि अग्नि शब्द के समानार्थक वाची शब्दों पर जैसे कि पावक, ज्वलन इत्यादि ॥ जैसे सूत्र आद्गुण (६-१-८७] का अर्थ है कि 'जब एक स्वर अ के पश्चात् आवे तो दोनों स्वरोंके स्थानमें गुण संज्ञाका आदेश हो, यहांपर सूत्र में केवल ह्रस्व अ का निर्देश है परन्तु इस सूत्रसे दीर्घ 'आ' भी आजाता है जैसे केवल नर+ईश =नरेश नहीं है परन्तु महा+ईश भी महेश है ॥ अन्य उदाहरणों के लियेदेखो ७४३२' ५४-५०, ६-४-१४८ सूत्र ॥

अप्रत्यय[१]। =यदि उक्त सर्व अक्षर प्रत्ययकी भांति वा प्रत्ययकी रीतिपर प्रयोगमें न लाये जावेंतो (अपने रूप और सवर्ण के रूपों

के ग्राही होतेहैं) जैसे 'सनाशसभिक्ष उः । ३ । २ । १६८ उन धातुओंके (जिनके अन्तमें सन् प्रत्ययहो) और 'आशस्' (=चाहना) और भिक्ष् (=मांगना) धातुओंके पश्चात् उनस्वभाववाले कर्ताओंके अर्थमें 'उ' प्रत्यहो जैसे भिक्ष् मांगनासे भिक्षु भीख मांगनेवाला बना । यहांपर केवलहस्व उका ग्रहणहै, दीर्घ ऊ और प्लुत'उ३'का ग्रहणनहीं हुआ ॥

() तपरस्तत्कालस्य ॥ ७० ॥ =त-परः१। तत्कालस्य६। (स्वम्१ रूपम्१) =तकार जिससे परे हो वा तकारसे जो परे हो वह उतनेकी संबन्धीय सवर्ण को अपने अर्थ और का ग्राहक हो ॥

तपर १।तत्कालस्य६। =(अर्थात्) तकार (=त्) जिस अक्षर से पीछे आवे अथवा तकार (=त) से कोई अक्षर परेमें होतो वह अक्षर

स्वम्१॥रूपम्१॥ =अपने अर्थ रूप और अपने उन सवर्णीय अक्षरोंका रूप वअर्थका ग्राहक है जिनके उच्चारणमें वही काल लगे, उतनाही समयलगे जितना कि पूर्वोक्त अक्षर के उच्चारणमें लगता है सूत्र ६९ में यह कथन कियागया है कि व्यक्तिगत स्वरमें उसके सर्व सवर्णीय अक्षर समावेश होजावेंगे इस प्रकारकि 'अ' में आ भी अन्तर्गत होगा और इ में ई इत्यादि । यहसूत्र निर्देश करता है कि अक्षर का वही रूप ग्रहण किया जावेगा न कि उसके जाति के सर्व अक्षर ग्रहण किये जावेंगे यह कार्य अक्षर के पश्चात् अथवा प्रथम त् लाने से होता है जैसे अत् का आशय केवल 'अ' अक्षर ग्रहण करना है न कि उसके सर्व सवर्णीय अक्षर। इसी प्रकार उत् का अभिप्राय केवल हस्व'उ' ग्रहण करने का है न कि दीर्घ और प्लुत उ । इस सूत्रमें तपरः और तत्कालस्य दोपद है । तपरःका अर्थ जो तकार के परे हो अथवा तकार जिसके पीछे हो, 'तत्काल' का अर्थ है उतनाही काल ॥ समय की अपेक्षासे स्वरोंकेहस्व दीर्घ, और प्लुत तीन भेद हैं 'हस्व' स्वर में एक मात्रा होती है, दीर्घ स्वर दो मात्रिक होते हैं और प्लुत स्वर तीन मात्रा वालेहोते हैं। व्यंजन के उच्चारण में हस्व स्वर से आधा समय लगता है इसलिये एक अक्षर त् जिसके पश्चात् हो औरजो त्'केपश्चात् हो अपने अर्थ वरूपका ग्राहक है और केवल उन सवर्णीय अक्षरोंके अर्थवरूपोंका ग्राहक है जिनके उच्चारणमें उतनाहीवासमान काल लगताहोजैसे अक्षर'अत्'में उदात्त,अनुदात्त,स्वरित अनुनासिकओरअननुनासिक'अ'अर्थात्छह हस्वरूप'अ'केगर्भितहोंगे,दीर्घऔर प्लुत रूप अकारका एकभी समावेश न होगा ॥ यहसूत्र आज्ञा ज्ञापकहै। इस सूत्रमें 'अण्' शब्दकी अनुवृत्ति पूर्व सूत्रसे नहींआती है। अण् प्रत्याहार के चौदह अक्षरों के अतिरिक्त किसी भी अक्षर के पश्चात् तकार आवे, तब उसपर भी यह सूत्र लागू होगा। यह सूत्र पूर्व सूत्रको परिमित और समर्यादा करता है अतः इससे पूर्व सूत्रका अर्थ होगाकि 'अणप्रत्याहारके अक्षर यदि उनमेंसे किसी भी अक्षर के प्रथम वा पश्चात् में 'त्' न हो तो वे अपने अर्थ व रूपके और अपने सवर्णीय अक्षरों के अर्थ व रूपों के क्रमसे ग्राहक होंगे ॥ इसप्रकार कि सूत्र ७ १-९ 'अतोभिस ऐस्' शब्द जिनके अन्तमें अत् (अर्थात् हस्व अकार) हो, तो भिस्के स्थानमें ऐस् हो जैसे वृक्ष+भिस् के स्थानमें वृक्ष+ऐस् होकर वृक्षैः बना परन्तु खट्वा जिसके अन्तमें दीर्घ 'आ'है और जिसका उच्चारण काल अकारके उच्चारण कालसे भिन्नहै, उक्तसूत्र लागू न होगा और खट्वाभिः रूप बनेगा अर्थात् भिस् का ऐस् नहोगा ॥

() विप्रतिषेधे७। =(परस्पर) तुल्यबल विरोधमें (=विप्रतिषेधे) अर्थात् तुल्य वा समान बलवाले आपसमें विरोधी

परम्१॥ कार्यम्१॥ =नियम वा सूत्र किसी स्थानमें (किसी कृतिमें)एक साथ लगते हों तो (अष्टाध्यायीके) पिछले दिये नियम वा सूत्रके अनुसार कार्य हो भावार्थ अष्टाध्यायीमें दिया हुआ पिछला सूत्र लागू हो इससे पूर्वका सूत्र न लगेगा ॥ श्री पतञ्जलिभाष्य ऐसे है कि

तपरस्तत्कालस्येत्येतद्भवति विप्रतिषेधेन। यद्येव द्रुतायां तपरकरणे मध्यमविलम्बितयोरुपसंख्यानं कालभेदात्। द्रुतायां तपर-करणे मध्यम-विलम्बितयोरुपसंख्यानं कर्तव्यम्। तथा मध्यमायां द्रुतविलम्बितयो। तथा विलम्बितयां द्रुतमध्यमयोः। किं पुनः कारण न सिद्ध्यतिकालभेदात्। ये हिद्रुतायां वृत्तौ वर्णास्त्रिभागाधिकास्ते मध्यमायां ये च मध्यमायां वर्णास्त्रिभागाधिकास्ते तु विलम्बितायाम्॥ सिद्धं त्ववस्थितावर्णा। वक्तुश्चिराचिर वचनाद् वृत्तयो विशिष्यन्ते। सिद्धमेतत्। कथम्। अवस्थिता वर्णा द्रुतमध्यमविलम्बितासु किं कुतस्तर्हि वृत्ति विशेषः। वक्तुश्चिराचिर वचनाद् वृत्तयो विशिष्यन्ते। वक्ता कश्चिदाशुअभिधायी भवति। आशु वर्णानभिधत्ते। कश्चिच्चिरेण, कश्चिच्चिरतरेण॥ कश्चिच्चिरतमेन॥ पतञ्जलि महाभाष्य, प्रथमपाद 'तपरस्तत्कालस्य' सूत्र की व्याख्यासे उद्धृत है॥

विप्रतिषेधेन[३]॥तपरस्तत्कालस्य[६]॥इति*=	='विप्रतिषेधेन पर कार्यम्' सूत्र द्वारा 'तपरस्तत्कालस्य' ऐसे (सूत्रकी)
एतद्*भवतिT	=इस समय (=एतद्-वैद्यकोश पृष्ठ १५३ में अव्यय माना है) प्राप्ति होतीहै अर्थात् 'अणुदित्स-वर्णस्यचाप्रत्ययः' सूत्रकी निवृत्ति और 'तपरस्तत्कालस्य' सूत्रकी प्रवृत्ति 'विप्रतिषेधेन परंकार्यम्' सूत्रसे होती है॥
यदि*एवम्*	=(प्रश्न) जो ऐसेहैं अर्थात् तत्काल(=उतनाकाल)कीप्रवृत्ति करताहै और भिन्नकालकी निवृत्ति
द्रुतायाम्[७/१]॥तपरकरणे[७/१]॥मध्यम-	=तो शीघ्र कालिक उच्चारणकी वृत्तिमें 'तपर' करनेमें मध्यमकालीन उच्चारणका
विलम्बितयो[६/२]॥उपसंख्यानम्[१/१]॥कालभेदात्[५/१]।	=और विलम्बित वा देरी कालीन उच्चारणका समावेश है (उसमें) काल भेद पडजाता है (क्योंकि उतनेही कालमें शीघ्रतावृत्ति, मध्यमावृत्ति और विलम्बिता वृत्ति नहीं होसक्ती)
द्रुतायाम्[७/१]॥तपरकरणे[७/१]॥	=(अर्थात् शिष्यके प्रश्न वा शंकाका आशय यहहै कि) शीघ्र कालिक उच्चारणमें तपरकरणमें
मध्यम-विलम्बितयो[६/२]॥उपसंख्यानम्[१/१]॥कर्तव्यम्[१/१]॥	=मध्यमा कालीन उच्चारण और विलम्बिता कालीन उच्चारणका समावेश करनाचाहिये
तथा*मध्यमायाम्[७/१]॥(तपर करणे[७/१]॥)द्रुत-	=और मध्यमा कालीन उच्चारणमें (तपर करणमें) द्रुताकालीन उच्चारणका
विलम्बितयोः[६/२]॥(उपसंख्यानम्[१/१]॥)	=और विलम्बिता कालीन उच्चारण का (समावेश करना चाहिये)
तथा*विलम्बितायाम्[७/१]॥(तपरकरणे) द्रुत-	=और विलम्बित कालीन उच्चारणमें (तपर करणमें) द्रुता कालीन उच्चारण का
मध्यमयो[६/२]॥(उपसंख्यानम्[१/१]॥)	=और मध्यमा कालीन उच्चारण का (समावेश करना चाहिये)
किम्[१/१]॥पुन*कारणम्[१/१]॥	=(शिष्य वल देकर कहता है कि गुरूजी समझे) फिर क्या कारण है कि
न*सिद्ध्यतिTकालभेदात्[५/१]।	=(ऊपर के तीनो उच्चारणोंकी) सिद्धि नहीं होती है। क्योंकि (उतनाहीकाल नहींलगता है) काल भेद पड़जाता है॥

ये १/३। हि*द्रुतायाम् १/१।। वृत्तौ १/१।
वर्णाः १/३। त्रिभाग अधिकाः १/३। मध्यमायाम् १/१।।

ते १/३।

ये १/३ च*मध्यमायाम् १/१।। वर्णा १/३। त्रिभाग-
अधिका १/३। ते १/३। तु*विलम्बितायाम् १/१।।

सिद्धम् १/१।। तु*अवस्थिताः १/३। वर्णाः १/३।

वक्तु १/१। चिर-अचिर-वचनात् ५/१।। वृत्तय १/३।। विशिष्यन्तेT
सिद्धम् १/१।। एतत् १/१।। कथम्* ?
अवस्थिता १/३। वर्णा १/३।
द्रुता-मध्यमा विलम्बितासु ७/३।
किम् १/१।। कुतः*तर्हि*वृत्ति-विशेष १/१।
वक्तु १/१। चिर-अचिर-वचनात् ५/१।। वृत्तय १/३।। विशिष्यन्तेT
वक्ता १/१। कश्चित्*आशु*अभिधायी १/१। भवतिT
आशु*वर्णान् २/३। अभिधत्तेT कश्चित्*चिरेण*
कश्चित्*चिरतरेण ३/१। कश्चित्*चिरतमेन ३/१।

=(शिष्य कथन करता है कि कितना काल भेद पडता है) जो ही द्रुतावृत्तिमें
=बोलनेके क्रम (=वर्णाः--देखो पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ ३३७) है (समयका) तीन भाग
अधिक मध्यमा वृत्तिमें
=वे (बोलनेके क्रम=वर्णाः) हैं अर्थात् जो ही कालद्रुतावृत्तिमें वर्णोंके उच्चारणमें
लगताहै उससे तीसराभाग अधिक(काल)मध्यमा वृत्तिके उच्चारणमें लगता है
=और (=च) जे मध्यमा (वृत्ति) में बोलनेके क्रम (=वर्णाः) है। तीन भाग
=अधिक(मध्यमा वृत्तिसे)वे(बोलनेकेक्रम)विलम्बिता वृत्तिमेंभी(=तु-पद्म०कोश१७३)हैं
अर्थात् जो (काल) मध्यमा वृत्तिके उच्चारणमें लगता है उससे तीसरा भाग
अधिक विलम्बिता वृत्तिके उच्चारणमें लगता है जैसे यदि नौ पल काल द्रुता
उच्चारणमें लगै तो मध्यमामें बारह पल और विलम्बितामें सोलह पल लगेंगे ॥
=(उत्तर) वर्ण वा अक्षर तोअवस्थितहैं इससे(गुरुजी कहते हैं हमारा कथन)बनजाताहै
अर्थात् काल भेद होने पर भी तीनों वृत्तियोंमेंवर्ण ज्योंकेत्यों रहतेहैंइससेबनजातीहैं
=क्योंकि वक्ताके देर और शीघ्र उच्चारण सेही द्रुताआदि वृत्तियोंमें भेदपडता है
=(गुरुजी कहते हैं कि) यह सिद्ध होजाता है। [प्रश्न] कैसे सिद्ध होजाता है
=(उत्तर) क्योंकि वर्ण (प्रत्येक वृत्तिमें जैसे के तैसे] अवस्थित वा स्थिर
=द्रुता-मध्यमा विलम्बिता कालके उच्चारणों में (रहते) हैं
=(प्रश्न (यदि वर्ण अवस्थित है)तो वृत्ति भेद कहांसे हुये(तीनों वृत्तियें कहांसे हुई)
=(उत्तर) वक्ताके देर और शीघ्र बोलने के कारण से वृत्तियोंमें भेद होगये ॥
=कोई वक्ता झट (=आशु) बोलता है (अर्थात्)
=शीघ्रता से वर्णोंका उच्चारण करता है। कोई वक्ता विलम्बसे बोलताहै
=कोई वक्ता और देरसे बोलता है कोई और भी देरसे बोलता है (जैसे रथिक से
घोडा धीरे चलता है। घोडा से मनुष्य धीरे चलता है और मनुष्यसे बच्चाधीरे
चलता है ॥ सारांश यह है कि इनतीनों शीघ्र उच्चारण रूप वृत्तिमें मध्यम कालीन उच्चारणमें और विलम्बित कालके उच्चारण
में काल भेद रहने पर भी वर्णों के अवस्थित (ज्यों के त्यों) रहने से काल भेद नहीं माना जाता है क्योंकि काल भेदमें वक्ताका
जल्दी और देरसे कहना अथवा बोलना ही कारण है क्योंकि शब्द का रूप प्रत्येक अवस्थामें एकसा रहता है ॥ 'किं कुत' के
स्थानमें किसी किसी मुद्रित भाष्यमें'किं कृतः' पाठहै अर्थ दोनों पाठोंका एकसा है ॥ पृष्ठ ७५ में भिन्नभिन्न अनुवादकोंके अनुवाद
शब्दश दिये हैं जिनसे पाठक कुछ लाभ उठासकें हमारी समझमें उनके अनुवाद नहीं आये हैं अगले एक पृष्ठ ७६ में भिन्न भिन्न
पाठ इस वार्तिकके जो हमारे यहां के ग्रन्थोंमें पाये जाते हैं वे दियेगये हैं ॥ इस समस्तको पाठक बहुत ध्यानसे पढ़ें ॥

प० जयचद्रायजी की वचनिकासे उद्धृत	पं० पन्नालाल दूनी के अनुवादसे उद्धृत	प० पन्नालालजी न्यायदिवाकरके अनुवाद से उद्धृत	पं० गजाधरलाल शास्त्रीके अनुवादसे उद्धृत
"इहां प्रश्न,जो, इहां समास विषैं पीत पद्म शुक्ल इनके ह्रस्व अकार कैसे भया ? शब्द तो पीता पद्मा शुक्ला ऐसा चाहिये। तहां कहिये है,जो व्याकरण विषै उत्तर पदसे ह्रस्व होना भी कहा है। जैसे द्रुता (द्रुती ?) ऐसा शब्द क्रातपरकरणविषै है। तहां'मध्याविलबिता का उपसख्यान है ऐसे इहां भी जाननाजय०वचनिकामुद्रित पृष्ठ ३८२ (यह पाठ दोहस्तलिखित पाठोंसेभीमिलाकर लिखाहै जिनमें 'मध्याविलविका उपसख्यानहै। मुद्रित में 'मध्याविलबिता का उपसख्यान है ऐसा पाठ है ॥	पीतापद्मामें इहांउत्तर पद सबंधी ह्रस्वपणो है। सो यथा कार्यका विपरिणामतैं सिद्धभयो है। अर द्रुतायां या सूत्रमें तपर करण है। तामें मध्यविलवितयो-रुपसख्यानंअै सो व्याकरण का वार्तिक है। तहा मध्याविलविता शब्दमें उत्तर पद सबंधी ह्रस्वपणौ भयोहै, तैसेही इहां भी उत्तर पद सबधी ह्रस्वपणौ जानने योग्य है ॥ प० पन्नालाल दूनी पृष्ठ५४ अध्याय चौथेसे उद्धृत	(प्रश्न) 'पीतपद्मशुक्ल इन शब्दनिकें ह्रस्व अकार है यातैं पुरुषलिंग है ॥ तातैं लेश्या का विशेपणकरि पीतादिकशब्दनिका निर्देश करना युक्तनाहीं होय है। किंतु पीता पद्माशुक्ला ऐसाकहना चाहिये। यातैंलेश्या शब्द स्त्रीलिंग है ताके विशेपण भी ताही लिंग का होना चाहिये। ऐसा शब्द शास्त्र का न्यायहै॥समाधान। व्याकरणविषैउत्तर पदतैं ह्रस्व होना भी कह्या है। सो यथा कार्यके विपरणमनतैं सिद्ध हे ॥ जैसे द्रुतायां या सूत्रमें तपर करण है ताके विषै मध्याविलवित का उपसंख्यान है। यह व्याकरण सूत्र है। यहां उत्तर पदका ह्रस्व होने तं मध्यविलवित ऐसा सिद्ध होय है। तैसे यहां भी पीतादिक शब्दनिके ह्रस्वपना करि निर्देश जाननी" पं० पन्नालाल न्यायदिवाकर अनुवादित तत्वार्थराजवार्तिक हस्तलिखित पृष्ठ ६७४	"पीता च पद्मा च शुक्ला च पीतपद्मशुक्लाः पीतपद्मशुक्लालेश्या येषां ते पीतपद्मशुक्ललेश्याः। यह यहां पर द्वन्द्व गर्भित बहुव्रीहि समास है। यदि यहां पर कहाजाय कि-'पीतपद्मशुक्ललेश्याः' यहांपर द्वन्द्व समास किया जायगा तो द्वन्द्वमें पुंवद्भाव तो होगा नहीं इसलिए 'पीतपद्मशुक्ललेश्या' यह जो पुंवद्भावविशिष्ट निर्देश कियागया है अर्थात् आकार का अकार करदियागया है वह अयुक्तहै किन्तु यहां पर'पीतापद्माशुक्लालेश्या.'ऐसानिर्देश करनाचाहिए। सो ठीक नहीं। यहां पुंवद्भाव नहीं हुआ है किंतु उत्तर पद रहने से पूर्वपद को ह्रस्व हुआ है जैसे "द्रुतायां तपरकरणे मध्यमविलंबितयोरुपसंख्यानम्" इस व्याकरण शास्त्रकी वार्तिकमेंमध्यमा च विलविता च 'मध्यमविलवितातयो' इसद्वंद्व समासयुक्त पदमें 'विलंविता' उत्तर पद रहने से 'मध्यमा' शब्दको ह्रस्व करि निर्देश कियागयाहै उसी प्रकार 'पीतपद्मशुक्ला लेश्या' यहांपर भी 'शुक्ला' उत्तरपद के रहते पीता और पद्मा इन दोनों पदों में ह्रस्व निर्देश न्याय्य है" ॥

'द्रुतायाम्' जहांतक हमने ८, १० व्याकरण देखे हमको नहीं मिला और अन्य विद्वानभी कहते हैं कि 'द्रुतायाम्' ऐसा कोई सूत्र नहीं है ॥ जो महोदय इसेपढ़ें उनको विद्यार्थियों के लाभार्थ उचित है कि यदि 'द्रुतायाम्' कोई सूत्र है तो कृपया मुझे सूचनादें कि अनुवादमें मुद्रित कियाजावे।

अथवा पीतश्च पद्मश्च शुक्लश्च पीतपद्मशुक्ला वर्णवन्तोऽर्थाः । तेषामिव लेश्या येषां ते पीतपद्म-शुक्ललेश्याः ॥

अथवा*	=वा (यदि उपर्युक्त उत्तरसे अधिकतम संशयशील प्रश्न कर्ताओंका समाधान न हो तो)
पीतः[1/1] च* पद्मः[1/1] च* शुक्लः[1/1] च* पीतपद्मशुक्लाः[1/3]	=पीत और पद्म और शुक्ल है वे पीत पद्म शुक्ल
वर्णवन्तः[1/3] अर्थाः[1/3]	=रूपवाले पदार्थ हैं अर्थात् पीत पद्म शक्ल ये तीनों सूत्रित शब्द पीत पद्म शुक्ल रंगवाले वस्तुओंके शब्दार्थहैं औरउन्ही रंगवाले पदार्थोंके वाचकहैं और येतीनों शब्दपुरुषलिंगीहैं॥
तेषाम्[6/3] इव* लेश्याः[1/3] येषाम्[6/3] ते[1/3]	=तिन (पीत पद्म शुक्ल रंगवाले पदार्थों) के सदृश हैं लेश्यायें जिन (देवों) की ते
पीत-पद्म-शुक्ल-लेश्याः[1/3] ॥	=पीत पद्म शुक्ल लेश्या वालेहै(यहां उक्त रंगीन वस्तुओंकी उपमा भी इन लेश्याओं को दी गईहै और उपमित समासमें ह्रस्व होता ही है अतः पीतपद्मशुक्ल उपमितसमास ह्रस्वरूपमें है ॥

() यथाहु (यथा-आहु.) द्रुतायां तपरकरणे मध्यमविलम्बितयोरुपसंख्यानमिति ॥ सर्वार्थसिद्धि प्रथम संस्करण पृष्ठ २४७, द्वितीयावृत्ति पृष्ठ१४५
"यथा द्रुतायां तपरकरणे मध्यमविलंबितयोरुपसंख्यानमिति द्रुतमध्यमविलंबिता इति" ॥ हस्तलिखित सर्वार्थसिद्धि पृष्ठ ६६

() "द्रुतायां तपरकरणे मध्यमविलंबितयोरुपसंख्यानमित्यत्रौत्तरपदिक ह्रस्वत्वमेवमिहापि वेदितव्य" तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ १७०

() "द्रुतायां तपरकरणे मध्यविलंबितयोरुपसंख्यानमित्यत्र औत्तरपदिकं ह्रस्वत्वमेवमिहापिवेदितव्यं" यह पाठ प० पन्नालालजी न्यायदिवाकर की हस्त लिखिततत्त्वार्थ राजवार्तिक पृष्ठ ६७४ परसे तथा प०पन्नालालदूनीजीकी हस्तलिखित राजवार्तिक पृष्ठ ५४ अध्याय ४ परसे लिया है इनदोनों प्रतियों के पाठमें 'मध्यम' शब्दके स्थानमें'मध्य'शब्द मिलता है। प०जय०वचनिकाकी एक मुद्रित दोहस्तलिखित प्रतियोंमें'मध्या मिलताहै॥ 'मध्यम'चाहिये

() पीतपद्मशुक्लानां द्वन्द्वे पीतपद्मयोरुत्तरपदिक ह्रस्वत्व 'द्रुतायात्तपरकरणान्मध्यमविडवितयोरुपसंख्यानमित्याचार्यवचनदर्शनात मध्यमाशब्दस्य विडवितोत्तरपदे द्वन्द्वेपि ह्रस्वत्वसिद्धेः.'। यह पाठ मुद्रित तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक पृष्ठ ३८४ और दो हस्त लिखित प्रतियोंके क्रमसे पृष्ठ ३०५ और३२१ पर है ॥ यहीपाठहै इसकोहमने वहुतसावधानीसे तीनोंप्रतियोंको मिलाकर लिखाहै इसमें'विलंबिता'के स्थानमें विद्यानदिस्वामी'विडबिता' लायेहैं और सप्तमी विभक्तियोंके स्थानमें पचमी विभक्तियां लाये है। हमारी ठीक ठीक समझमें यह नहीं आया है कि'इति आचार्य वचन दर्शनात्' वाक्य में 'आचार्य' से श्लोक वार्तिकके कर्ताका पूज्यपाद स्वामी, श्रीमदकलंक भट्ट जिन्होंने यह वार्तिक शब्दशः पतंजलि मुनिके महाभाष्यसे उद्धृत की है इनमेंसे किसी से अभिप्राय है अथवा श्रीमान् पतजलिसे तात्पर्य है अथवा किसी अन्य आचार्य से प्रयोजन है। विद्वज्जन इसका अन्वेषण करके कृपया मुझको सूचित करें ॥

तत्र कस्य का लेश्येत्यत्रोच्यते—सौधर्मैशानयोः पीतलेश्या। सानत्कुमारमाहेन्द्रयोः पीतपद्मलेश्ये ब्रह्मलोकब्रह्मोत्तरलान्तवकापिष्ठेषु पद्मलेश्या। शुक्रमहाशुक्रशतारसहस्रारेषु पद्मशुक्ललेश्ये। आनतादिषु शुक्ललेश्या। तत्राप्यनुदिशानुत्तरेषु परमशुक्ललेश्या। सूत्रेऽनभिहितं कथं मिश्रग्रहणं? साहचर्याल्लोकवत्॥

तत्र*कस्य६।का१।लेश्या१।इति*अत्र*उच्यते = तहां किस (देव) के कौन लेश्या है (ऐसे) यहां (=अत्र) कहा जाता है कि

सौधर्म-ऐशानयोः७।पीतलेश्या१।सानत्कुमार- = सौधर्म ऐशान में (देवनिके) पीत लेश्या है। सानत्कुमार

माहेन्द्रयोः७।पीत-पद्म-लेश्ये१।ब्रह्मलोक-ब्रह्मोत्तर- = माहेन्द्र में (देवों के) पीतपद्मलेश्या हैं। ब्रह्मलोक और ब्रह्मोत्तर

लान्तव-कापिष्ठेषु७।पद्म-लेश्या१।शुक्र-महाशुक्र- = लान्तव और कापिष्ठ में (देवों के) पद्मलेश्या है। शुक्र और महाशुक्र

शतार-सहस्रारेषु७।पद्म-शुक्ल-लेश्ये१।आनत- = शतार और सहस्रार में (देवों के) पद्म-शुक्ल दो लेश्या हैं। आनत

आदिषु७। = और प्राणत, आरण और अच्युत इन दो युगलोंमे और नवग्रैवेयकोंमें और नव अनुदिशों में और पांच अनुत्तरोंमें (देवोंके)

शुक्ल-लेश्या१।तत्र*अपि*अनुदिश-अनुत्तरेषु७। = शुक्ललेश्या है। तहां भी (नव) अनुदिशोंमें और (पांच) अन्तरोंमें (देवोंकें)

परम-शुक्ल-लेश्या१।सूत्रे७।अन्-अभिहितम्१।। = उत्कृष्ट शुक्ल लेश्या है (प्रश्न) सूत्रमें अकथित

कथम्*मिश्र-ग्रहणम्१।। ? = मिश्र (लेश्या) का ग्रहण (यहां) कैसे है? अर्थात् इस बाईसवां सूत्रमें तो किसी युगलके देवोंके दो लेश्या वर्णन नहीं की है इस सूत्रकी वृत्तिमें आपने कैसे कहा कि सानत्कुमार माहेन्द्र युगलमें पीत-पद्म दो लेश्या है सूत्रमें तो इस युगलमें केवल पीतलेश्या कही है और शुक्र महाशुक्रके युगलमें सूत्रमें तो पद्मलेश्या कही वृत्तिमें आपने पद्मशुक्ल दोनों लेश्यायें कैसे कही और शतार सहस्रार युगलमें सूत्रानुसार केवल शुक्ल लेश्या है आपने वृत्तिमें पद्म शुक्ल दो लेश्यायें कैसे कहीं।

साहचर्यात्५।। = (उत्तर) एक ही आश्रय होनेसे अथवा साथ साथ रहनेसे

लोकवत्* = लोक (व्यवस्था वा रीति) सदृश (मिश्र लेश्याओंका ग्रहण है) अर्थात् मुख्यता करि जो जो लेश्या जिन जिन युगलोंमें है वहतो सूत्र विषैं कही उसके साथ लोक रीतिके समान गौण लेश्याका भी ग्रहण करना योग्य है॥

तद्यथा–छत्रिणो गच्छन्ति इति अछत्रिषु छत्रिव्यवहारः । एवमिहापि मिश्रयोरन्यतरग्रहणंभवति॥ अयमर्थः सूत्रतः कथं गम्यते ? इति चेदुच्यते—एवमभिसम्बन्धः क्रियते, द्वयोः कल्पयुगलयोः पीतलेश्या । सानत्कुमारमाहेन्द्रयोः पद्मलेश्यायाः

तद्यथा*छत्रिण:[1]गच्छन्ति। इति* =जैसे (लोक विदित वा प्रसिद्धमें राजादिक) छत्रधारी जाते हैं इस प्रकार

अछत्रिपु[7]छत्रिन्-व्यवहार:[1] =विना छत्रवाले (साथियों) विषैं छत्रधारीका व्यवहार होता है अर्थात् राजादिक छत्रधारी और उनके साथीगण सव साथ साथ जाते हैं परन्तु पूंछनेपर लोक प्रसिद्धमें यह कहा जाता है कि अमुक छत्रधारी राजा जाते हैं भावार्थ मुख्य अथवा प्रधानका तो नाम लेते हैं उसमें गौणभी गर्भित होजाते है ॥

एवम्*इह*अपि* =इस प्रकार यहां (लेश्याओंके कथनमें) भी

अन्यतर-ग्रहणम्[1]।। =दोनों (पृथक् और मिश्र लेश्यायों)मे से एकके(सूत्रमें) ग्रहणसे

मिश्रयो:[6]भवति। =मिश्र (पीतपद्म, पद्मशुक्ल वा शुक्लपद्म लेश्याओं) का (ग्रहण) होजाताहै भावार्थ ऐसाहैकि पीत पद्म-शुक्ल-तीन लेश्यायें पृथक् पृथक्है और पीतपद्म तथा पद्मशुक्ल (जोशतारसहस्रारमें भीहैं) ये दो मिश्र है। सूत्रमें पीत,पद्म,शुक्ल व्यक्तिगत लेश्याओं का ग्रहण है इन व्यक्तिगत लेश्याओंके ग्रहणसे पीतपद्म, पद्मशुक्ल इन दो मिश्र लेश्याओंका ग्रहण उसी प्रकारसे होजाताहै कि जिस प्रकार किसीसड़कपर छत्री और विनाछत्री वाले दोनों प्रकारके मनुष्य जातेहों। उनमें छत्रीवाले अधिक होंतो वहांपर 'छत्रिणोगच्छंति' अर्थात् छत्रीवाले जारहे हैं ऐसा व्यवहार होताहै और वहां पर 'छत्रीवाले' कहनेसे छत्री और विनाछत्रीवाले दोनों प्रकारके पुरुषोंका ग्रहण होजाताहै तैसेही इस सूत्रमें पीत,पद्म,शुक्ल लेश्याओंसे मिश्रका भी है

अयम्[1]अर्थ:[1]सूत्रत:*कथम्*गम्यते। =यहअर्थ सूत्रसे कैसे जानाजाताहै अर्थात् पीतपद्म पद्मशुक्लका ग्रहणसूत्रमेंकैसेहुआ

इति*चेत्*उच्यते।एवम्*अभि-सम्बन्ध:[1] क्रियते। =ऐसा संदेह होने पर कहाजाता है कि इस प्रकार सम्बन्ध किया जाता है कि

द्वयो:[7] कल्प-युगलयो[7] =दो स्वर्ग-युगलों (सौधर्म और ऐशान सानत्कुमार और माहेन्द्र) में

पीतलेश्या[1]।सानत्कुमार-माहेन्द्रयो:[7]पद्मलेश्याया:[6]।। =पीत लेश्या है सानत्कुमार माहेंद्र में पद्मलेश्या का (अस्तित्व)

अविवक्षात: ॥ ब्रह्मलोकादिषु त्रिषु कल्पयुगलेषु पद्मलेश्या । शुक्रमहाशुक्रयोः शुक्ललेश्याया अविवक्षातः ॥ शेषेषु शतारादिषु शुक्ललेश्या । पद्मलेश्याया अविवक्षातइति नास्ति दोषः ॥ आह कल्पोपपन्ना इत्युक्तं तत्रेदं न ज्ञायते के कल्पा इत्यत्रोच्यते—

॥प्राग्ग्रैवेयकेभ्यः कल्पाः॥ २३॥

अविवक्षातः* =अपेक्षा रहित है अर्थात् पद्मलेश्या इस सूत्रमें गौण है इसलिये सूत्रमें कहनेकी इच्छा नही है भावार्थ सूत्रमे गौण लेश्याका कथन कहनेका अभिप्राय, वांछा, वा प्रयोजन नही है। इससे पद्मलेश्याका निर्देश इस सूत्रमें नहीं किया गया है ॥

ब्रह्मलोक-आदिषु[७।३] त्रिषु[७।३] कल्पयुगलेषु[७।३] =ब्रह्मलोक, ब्रह्मोत्तर, लान्तव कापिष्ठ, शुक्र महाशुक्र तीन कल्प युगलोमें

पद्मलेश्या[१।१]; शुक्र-महाशुक्रयोः[७।२] शुक्ललेश्यायाः[६।१] =पद्मलेश्या है। शुक्र और महाशुक्रमें शुक्ललेश्याका (अस्तित्व)

अविवक्षातः* =विवक्षा से रहित है अर्थात् इस युगलमे शुक्ललेश्या गौण है इससे कहने की सूत्रमें इच्छा नही है

शेषेषु[७।३] शतार-आदिषु[७।३] शुक्ललेश्या[१।१] =शेष शतार-सहस्रार, आनत प्राणत, आरण अच्युत मे शुक्ललेश्या है।

पद्मलेश्यायाः[६।१] अविवक्षातः* =(शतार सहस्रार विषैं) पद्मलेश्या का (अस्तित्व) विवक्षा से रहित है अर्थात् इस युगलके देवोंके पद्मलेश्या गौण है इससे सूत्र में कहने की इच्छा नहीं है

इति* =इस प्रकार (कथनसे कि मुख्यताकरि दो युगलोमें पीतलेश्या, तीन युगलोंमें पद्मलेश्या शेष तीन युगलों मे शुक्ललेश्या है)

न*अस्ति T दोषः[१।१] =दूषण नहीहै (क्योंकि मुख्य लेश्या तो सूत्रद्वारा कही गौण लोक रीतिसे जानना चाहिये)।

आह T 'कल्प-उपपन्नाः[१।३]' इति*उक्तम्[१।१] =शिष्य प्रश्न करता है कि "कल्पोपपन्ना" ऐसा वाक्य सत्रहवां सूत्र में कहा गया है।

तत्र*इदम्[१।१] न*ज्ञायते T =तहां यह ज्ञान नही कराया गया है अथवा वहां यह नहीं जतलाया गया है कि

के[१।३] कल्पाः[१।३] इति*अत्र* उच्यते T =कल्प कौन हैं यहां (उत्तर सूत्रमें) कहा जाता है कि

[१]सूत्रम्-प्राग्ग्रैवेयकेभ्यःकल्पाः॥ २३॥ = (सौधर्म-आदयः) प्राग्ग्रैवेयकेभ्यः कल्पाः भवन्ति ॥ २३॥

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों सम्प्रदायोंमें एकसा है। स्मरण रहे कि श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें तथा भाष्यानुसारिणी तत्वार्थ टीका (श्री सिद्धसैन सूरि रचित) में केवल बारह स्वर्ग माने हैं हमारे यहां सोलह स्वर्ग मानेहैं ॥ हमारे यहां किसी २ पुस्तक में

इदं न ज्ञायते इत आरम्भ कल्पा भवन्तीति सौधर्मादिग्रहणमनुवर्तते । तेनायमर्थो लभ्यते-सौधर्मादयः प्राग्ग्रैवेयकेभ्यः कल्पा इति पारिशेष्यादितरे कल्पातीता इति ॥

लौकान्तिका देवा वैमानिकाः सन्तः क्व गृह्यन्ते? कल्पोपपन्नेषु । कथमिति चेदुच्यते—

॥ ब्रह्मलोकालया लौकान्तिकाः ॥ २४ ॥

सूत्रार्थः—सौधर्म-आदयः[१/३] प्राग्*ग्रैवेयकेभ्यः[५/३] कल्पाः[१/३]	=सौधर्मसे लगाय ग्रैवेयकोंसे पूर्व (पूर्व) कल्प हैं अर्थात् सौधर्म पहिले स्वर्गसे लेकर अच्युत सोलहवां स्वर्ग पर्यन्त 'कल्प' कहेजाते है
वृत्त्यनुवादः—इदम्[१/१] न* ज्ञायतेT	=(सूत्रमें) यह नहीं वोध करायागया है अथवा जतायागया है कि
इतः* आरम्भ-कल्पाः[१/३] भवन्तिT इति* सौधर्म-आदि-ग्रहणम्[१/१] अनुवर्त्ततेT	=यहांसे (=इतः) कल्प आरम्भ होतेहैं (उन्नीसवां सूत्रसे) 'सौधर्म आदिका' =(इससूत्रमें)ग्रहण प्रवर्तता है अर्थात् उन्नीसवां सूत्रसे सौधर्म आदि शब्दलियेगये हैं
तेन[३/१] अयम्[१/१] अर्थः[१/१] लभ्यतेT	=तिस (सौधर्म आदिके ग्रहण)से यह अर्थ प्राप्त कियागया है कि
सौधर्म-आदयः[१/३] प्राग्*ग्रैवेयकेभ्यः[५/३] कल्पाः[१/३]	=सौधर्मसे लगाय ग्रैवेयकोंसे पूर्व २ वा पहिले २ कल्प हैं, स्वर्ग हैं।
इति* पारिशेष्यात्[५/१] इतरे[१/३] कल्प-अतीताः[१/३] इति*	=ऐसे इन (कल्पों) से अवशेष (=पारिशेष्यात्) अन्य (=इतरे) कल्पातीत हैं, अर्थात् प्रथम सौधर्म स्वर्गसे अच्युत सोलह स्वर्ग तक कल्प कहलातेहैं। सोलह स्वर्गों से भिन्न जे नव ग्रैवेयक, नव अनुदिश और पांच अनुत्तर पर्यन्त कल्पातीत कहेजाते हैं॥
लौकान्तिकाः[१/३] देवाः[१/३] वैमानिकाः[१/३] सन्तः[१/३] क्व* गृह्यन्तेT	=लौकान्तिकदेव वैमानिक है। कहां मानेगये है वा ग्रहण किये गये हैं?
कल्प-उपपन्नेषु[७/३] कथम्* इति* चेत्* उच्यतेT	=(उत्तर) कल्प वासियोंमे (प्रश्न) कैसे ऐसा संदेह होनेपर कहाजाता है कि
(१)सूत्रम्—ब्रह्मलोकालयाल्लौकान्तिकाः	= ब्रह्मलोकालयाः लौकान्तिकाः (भवन्ति) ॥२४॥

जैसे ज्ञानचन्द जी (लाहौर) मुद्रित तत्त्वार्थसूत्र में तथा प० सदा सुखजी कृत लघुटीकामें 'कल्पा.' शब्दके स्थानमें 'कल्प' शब्द है वह अशुद्ध है क्योंकि कल्प सोलह हैं और कल्प शब्द प्रथमा विभक्ति एक बचन पुल्लिंग है केवल एक स्वर्गका द्योतक है। अत 'कल्पाः' बहुबचन होना चाहिये ॥

(१) हमारे यहां कहीं कहीं पर 'लौकांतिका' पाठ भी है। सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रमें, भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीका (श्वेताम्बरीयभाष्य) में "लौकान्तिका" पाठ है दोनों पाठ शुद्ध हैं (देखो टिप्पणी अध्याय १ पृष्ठ ५,६, टिप्पणी पृष्ठ ५४०, ५४१)॥ दोनों सम्प्रदायोंमें पाठ और अर्थ एकसा है॥

एत्य तस्मिन् लीयन्त इति आलयः आवासः । ब्रह्मलोक आलयो येषां ते ब्रह्मलोकालया लौकान्तिका देवा वेदितव्याः । यद्येवं सर्वेषां ब्रह्मलोकालयानां देवानां लौकान्तिकत्वं प्रसक्तं? । अन्वर्थ सञ्ज्ञाग्रहणाददोषः ॥ ब्रह्मलोको लोकः तस्यान्तो लोकान्तः तस्मिन्भवा लौकान्तिका इति न सर्वेषां ग्रहणम् ।

सूत्रार्थः—ब्रह्मलोक-आलयाः$^{1}_{3}$ लौकान्तिकाः$^{1}_{3}$ भवन्तिT =ब्रह्मलोक पांचवां स्वर्ग है निवासस्थान जिनका ते लौकान्तिक देव है अर्थात् ब्रह्मलोकालय इस शब्दके साथ लौकान्तिक शब्दका सम्बंध है। ब्रह्मलोकके अंतका नाम लोकांत है और वहां पर रहनेवाले लौकान्तिक कहेजाते है॥ इस रीति से ब्रह्मलोकके अन्तमें रहनेवाले ही देव लौकान्तिक होसकते है सब ब्रह्मलोक निवासी नहीं अथवा जन्म जरा और मरण से व्याप्त स्थानका नाम लोक है ; उसका अन्त लोकान्त है जिन्हे उस लोकांतका प्रयोजन होवे, वे लौकांतिक कहेजाते हैं। ये लौकांतिक देव परीतसंसार है। ब्रह्मलोकसे च्युत होकर एक गर्भवास अर्थात् नर भव पाकर नियमसे मोक्ष प्राप्त करलेते है ऐसे दोनो प्रकारसे सार्थक नाम वाले लौकान्तिक देव हैं ॥

वृत्त्यनुवादः—एत्य* तस्मिन्$^{7}_{1}$ लीयन्तेT इति* आलयः$^{1}_{1}$	=आनकरि जिसमे मिलते है, छिपते हैं, वा रहते है ऐसा आलय
आवासः$^{1}_{1}$ ब्रह्मलोकः$^{1}_{1}$ आलयः$^{1}_{1}$ येषाम्$^{6}_{3}$ ते$^{1}_{3}$	=निवास स्थान है। ब्रह्मलोक (पांचवां स्वर्ग) है निवासस्थान जिनका ते
ब्रह्मलोक-आलयाः$^{1}_{3}$ लौकान्तिकाः$^{1}_{3}$ देवाः$^{1}_{3}$ वेदितव्याः$^{1}_{3}$	=ब्रह्मलोक आलयवाले(पांचवां स्वर्गमें रहनेवाले) लौकांतिक देव जानने चाहिये
यदि* एवम्* सर्वेषाम्$^{6}_{3}$	=(प्रश्न)जो ऐसे हैं अर्थात् पांचवां स्वर्गमें रहनेवाले लौकान्तिक देव हैं तो समस्त
ब्रह्मलोक-आलयानाम्$^{6}_{3}$ देवानां$^{6}_{3}$ लौकान्तिकत्वं$^{1}_{1}$॥ प्रसक्तं$^{1}_{1}$॥?=ब्रह्मलोकमें रहनेवाले देवोंके लौकान्तिक होना पाया जाता है	
अन्वर्थ-सञ्ज्ञा-	=(उत्तर) (इन देवोंका) सार्थक नाम (अर्थात् जैसा नाम है वैसाही अर्थ
ग्रहणात्$^{5}_{1}$॥ अदोषः$^{1}_{1}$ ब्रह्मलोकः$^{1}_{1}$ लोकः$^{1}_{1}$	=ग्रहण करनेसे दूषण नहीं है। ब्रह्मलोक (पांचवां स्वर्ग) सो लोक है
तस्य$^{6}_{1}$ अन्तः$^{1}_{1}$ लोक-अन्तः$^{1}_{1}$ तस्मिन्$^{7}_{1}$ भवाः$^{1}_{3}$ लौकान्तिकाः$^{1}_{3}$	=तिसका छोर सो लोकांत है तिस (पांचवां स्वर्गके अन्त)में (उत्पन्न)होनेवाले वे लौकांतिक हैं
इति* न* सर्वेषाम्$^{6}_{3}$ ग्रहणम्$^{1}_{1}$॥	=ऐसे समस्त (पांचवां स्वर्गके देवोंका) ग्रहण नहीं होता है ॥

तेषां हि विमानानि ब्रह्मलोकस्यान्तेषु स्थितानि ॥ अथवा जन्मजरामरणाकीर्णो लोकः संसारःतस्यान्तो लोकान्तः। लोकान्तेभवा लौकान्तिकाः ते सर्वे परीतसंसाराः । ततश्च्युता एकं गर्भावासं प्राप्य परिनिर्वास्यन्ति ॥ तेषां सामान्येनोपदिष्टानां भेदप्रदर्शनार्थमाह—

॥ सारस्वतादित्यवह्न्यरुणगर्दतोयतुषिताव्याबाधारिष्टाश्च ॥ २५॥

तेषाम्[6/3]। हि* विमानानि[1/3]। ब्रह्म-लोकस्य[6/1]। अन्तेषु[7/3]।	=तिन (लौकान्तिक देवों)केही विमान ब्रह्मलोक (पांचवां स्वर्ग) के अन्तमें
स्थितानि[1/3]।। अथवा* जन्म-जरा-मरण-आकीर्णः[1/1]। लोकः[1/1]।	=स्थित है अथवा जन्म जरा और मृत्युकरि व्याप्त =आकीर्ण)जो भुवन (=लोक)
संसारः[1/1]। तस्य[6/1]। अन्तः[1/1]। लोक-अन्तः[1/1]।	=जो जगत (=संसार) तिस (संसार)का अन्त वा छोर सो लोकान्त है
लोक-अन्ते[7/1]। भवाः[1/3]। लौकान्तिकाः[1/3]। ते[1/3]। सर्वे[1/3]।	=संसारके अन्तमें हों वे लौकान्तिक है । वे समस्त (लौकान्तिकदेव)
परीत-संसाराः[1/3]। ततस्*	=संसारसे विरक्त वा उदासीन(=परीत)है वहां(ब्रह्मलोकके अंत अपने निवासस्थान)से
च्युताः[1/3]। एकम्[2/1]। गर्भ-आवासम्[2/1]। प्राप्य – परिनिर्वास्यन्ति(१)	=पतित होकर एक गर्भवासस्थानको प्राप्त कर कर्मों के विरुद्ध अर्थात् कर्मोंकोजीतकर निर्वाण जाते हैं
तेषाम्[6/3]।सामान्येन[3/1]।।।उपदिष्टानाम्[6/3]।भेद-प्रदर्शनअर्थम्[1/1]।।।आह1	=सामान्यकरि कहेहुये तिन (लौकान्तिकदेवों)के भेद दिखावनेके लिये कहते है कि

(३)सूत्रम्—सारस्वतादित्यवह्न्यरुणगर्दतोयतुषिताव्याबाधारिष्टाश्च ॥ २५ ॥

= सारस्वतादित्यवह्न्यरुणगर्दतोयतुषिताव्याबाधारिष्टाश्च + (लौकान्तिका)(२) भवन्ति

सूत्रार्थः—सारस्वत आदित्य-वह्नि-अरुण-गर्दतोय- तुषित-	=सारस्वत, आदित्य वह्नि, अरुण, गर्दतोय, तुषित
अव्याबाध-अरिष्टाः[1/3]। च* लौकान्तिकाः[1/3]। भवन्ति1	=अव्याबाध, अरिष्ट भी (= च)लौकान्तिकदेव है अर्थात् अन्य लौकान्तिकदेव

(१) 'परि' अव्यय जब क्रियाके साथ लातेहैं तब उसको उपसर्ग कहते हैं । इसके क्रियाके साथमें चारोंओर, अधिक,विरुद्ध प्रतिकूल,विपरीत, अतिशय अत्यन्त, इन चार अर्थोंमें आताहै यहां विरुद्ध' 'प्रतिकूल' अर्थमेंहै अतः कर्मोंके विरुद्ध प्रतिकूल ऐसाअनुवादकियाहै पृष्ठ ८६में'निर्वास्यन्ति'है।

(२) 'लौकान्तिका.' वाक्यकी अनुवृत्ति चौबीसवां,सूत्रसे है ॥ सूत्रमें 'च' शब्द अन्य सौलह प्रकारके लौकान्तिक देवोंके समुच्चय के लिये हैं ॥

(३) हमारे यहां सर्वत्र एक पाठ है ॥ श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रका और भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकाका पाठ और हमारे यहां का पाठ 'सारस्वादित्यवह्न्यरुणगर्दतोयतुषिताव्याबाध'तक एक है हमारे यहां अव्याबाधके पश्चात्"अरिष्टाश्च"पाठ औरहै । भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकामें 'अव्याबाध'के पीछे 'मरुतः' शब्द अधिक है। सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमें सूत्रमें 'अव्याबाध'के पश्चात् 'मरुतः' (अरिष्टाश्च)वाक्य अधिक है ॥

क्व इमे सारस्वतादयः । अष्टास्वपि पूर्वोत्तरादिषु दिक्षु यथाक्रममेते सारस्वतादयो देवगणा वेदितव्याः । तद्यथा-

है और सारस्वत भीआठ प्रकारके लौकान्तिक देवहै भावार्थ अग्न्याभ, सूर्याभ, चन्द्राभ, सत्याभ, श्रेयस्-कर, क्षेमंकर, वृषभेष्ट, कामचर, निर्माणरज, दिगन्तरक्षित, आत्मरक्षित, सर्वरक्षित, मरुत्, वसु, अश्व, विश्व, ये सोलह प्रकारके लौकान्तिक देव हैं और सारस्वत, आदित्य, वह्नि, अरुण, गर्दतोय, तुषित, अव्याबाध, अरिष्ट भी आठ प्रकारके लौकान्तिक देव ऐसे सर्व लौकान्तिक चोवीस प्रकारके है।

वृत्त्यनुवादः-क्व॥इमे[1/3]।सारस्वत-आदयः[1/3],अष्टासु[7/3] =(प्रश्न) कहां है ये सारस्वतादिक (लौकान्तिक देव), आठौ
अपि॥पूर्व-उत्तर-आदिषु[7/3]। =ही पूर्व ईशान-उत्तर,वायव्य-पश्चिम-नैऋत्य (नैऋत)-दक्षिण-आग्नेय (=आदिषु)
दिक्षु[7/3]।यथाक्रमम्॥एते[1/3]।सारस्वत-आदयः[1/3]। =दिशाओंमें अनुक्रमसे ये सारस्वत आदिक (निम्न लिखित चौवीस प्रकारके)
देवगणाः[1/3]।वेदितव्याः[1/3]।तद्यथा॥ =देवोंके समूह जानने चाहिये-जैसे

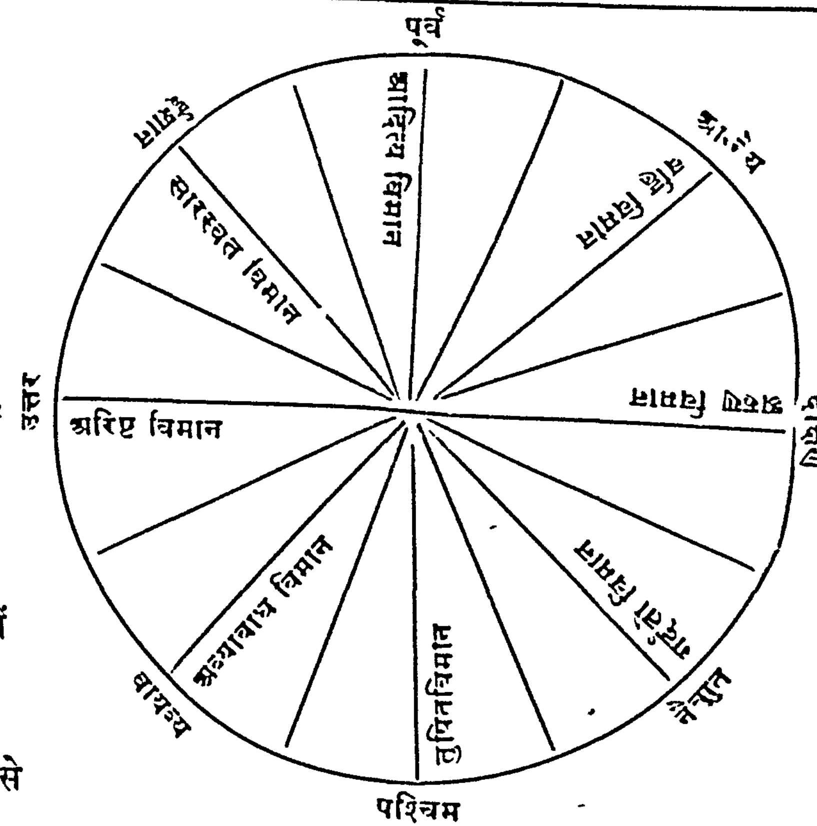
और 'मरुत. (अरिष्ट श्च)'का अनुवाद यह कियाहै कि 'उत्तरमें मरुत् अथवा अरिष्टदेव रहते हैं। सभाष्य०में केवल आठ प्रकारके लौकान्तिक देवोंका कथन है इससे प्रगट है कि 'मरुत्' और 'अरिष्ट' एक ही प्रकार है॥ आठ दिशाओंमें रहनेकी अपेक्षासे हमारे यहांके लेखसे श्वेताम्बरसमाजका लेख मिलता है केवल इतना भेद है कि उत्तर दिशा में हमारे यहां 'अरिष्ट' देवोंका निवास है उनके यहां मरुत् देवों का, यदि मरुत् और अरिष्ट देवोंको अभेद रूपसे मानलें तो कुछभी अन्तर दोनोंमें नहीं रहता है जैसाकि निम्न लेखसे जो सभाष्य० के पृष्ठ ११३ और ११४ से लिया है विदित है

"जैसे पूर्वोत्तर दिशामें सारस्वत देव रहते हैं, अर्थात् पूर्व और उत्तर दिशा के कोण (ऐशानकोण) में सारस्वत रहते हैं। पूर्व दिशामें आदित्य सज्ञक देव रहते हैं। इसी प्रकार अन्य देवोंके विषयमें भी जानलेना चाहिये अर्थात् पूर्व दक्षिण (आग्नेय कोण) में वह्नि, दक्षिणमें अरुण, दक्षिणपश्चिम (नैऋत्यकोण) में गर्दतोय, पश्चिम में तुषित, पश्चिमोत्तर(वायव्यकोण)में अव्याबाध और उत्तरमें मरुत् अथवा अरिष्टदेव" रहते हैं। सभाष्य०में'च' शब्द का कोई अर्थ नहीं किया है हमारे यहां चकार से सोलह प्रकार के अन्य लौकान्तिक देव लिये हैं। आठ प्रकार के देवोंमें 'अरिष्ट देव' उत्तर दिशामें रहने वाले हैं और सोलहप्रकार के देवोंमेंसे मरुत् देव है जो 'वायव्य और उत्तर दिशाओं के' मध्यमें रहते हैं (देखो वृत्ताकार पृष्ठ ८५ में)।

श्वेताम्बर समाजके भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीका के निम्नलेखसे प्रगट है कि कोई आठप्रकारके लौकान्तिक देव मानते हैं कोई कोई नव प्रकारके "न त्वेवमनेव नवभेदा भवति। भाष्यकृतावाष्टविधा इति मुद्रिता उच्यते। लौकांत वर्तिन एतेऽष्टभेदा । सूरिणोपात्ता । अरिष्ट विमान प्रस्तार वर्त्तिभिं नवधा भवतीत्यदोषः" पृष्ठ ३४२॥

पूर्वोत्तरकोणे सारस्वतविमानं, पूर्वस्यां दिशि आदित्यविमानं, पूर्वदक्षिणस्यां दिशि वह्नि विमानं, दक्षिणस्यां दिशि अरुणविमानं, दक्षिणापरकोणे गर्दतोयविमानं, अपरस्यां दिशि तुषितविमानं, उत्तरापरस्यां दिशि अव्याबाधविमानं, उत्तरस्यां दिशि अरिष्टविमानम्॥ चशब्दसमुच्चिताःतेषामन्तरे द्वौ द्वौ देवगणौ॥

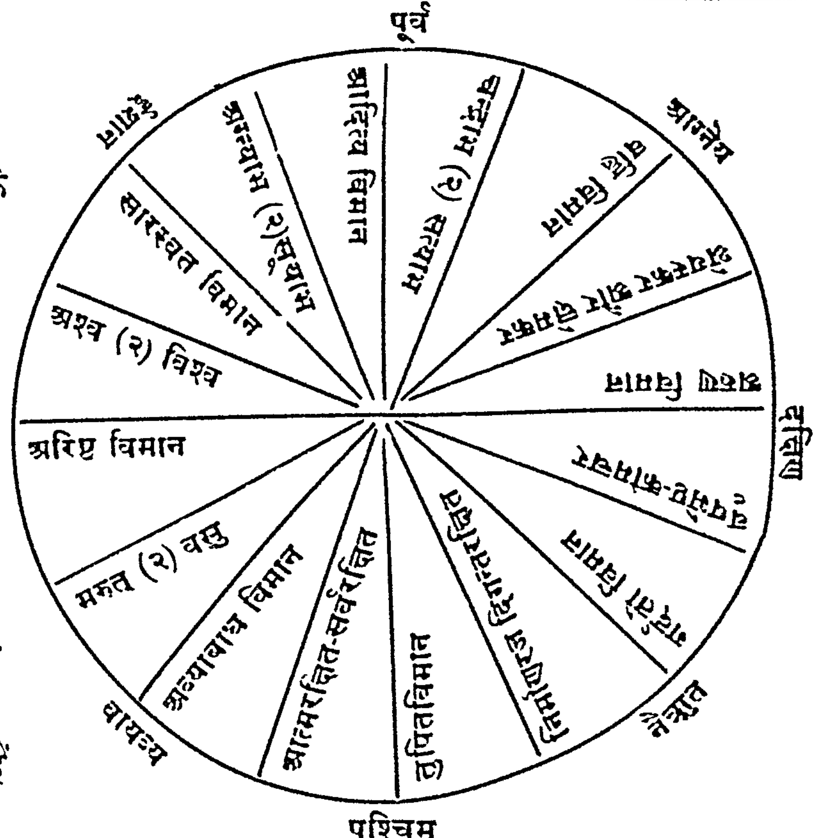
पूर्व-उत्तर-कोणे। =पूर्व-उत्तरके कोनमे अर्थात् ईशान दिशामें
सारस्वत-विमानम्।।। =सारस्वत (देवोंका) विमान है
पूर्वास्यां।।दिशि।। =पूर्व दिशामें
आदित्य-विमानम्।।। =आदित्य (देवोंका) विमान है
पूर्व-दक्षिणस्याम्।।दिशि।।=पूर्व-दक्षिणदिशामें अर्थात् आग्नेय दिशामें
वह्नि-विमानम्।।। =वह्नि (देवोंका) विमान है
दक्षिणस्याम्।।दिशि।।=दक्षिण दिशामें
अरुण-विमानम्।।। =अरुण (देवोंका) विमान है
दक्षिण-अपर-कोणे। =दक्षिण पश्चिम कोनमे अर्थात् नैऋत्य दिशामें
गर्दतोय-विमानम्।।। =गर्दतोय (देवोंका) विमान है
अपरस्याम्।।दिशि।। =पश्चिम दिशामें
तुषित-विमानम्।।। =तुषित (देवों का) विमान है
उत्तर-अपरस्याम् दिशि।।=उत्तर पश्चिम दिशा में अर्थात् वायव्यदिशा में
अव्याबाध-विमानम्।। =अव्याबाध (देवोंका) विमान है
उत्तरस्याम्।।दिशि।। =उत्तरदिशामें
अरिष्ट-विमानम्।।।चशब्द-=अरिष्ट (देवोंका) विमान है (सूत्रमें) च शब्दसे
समुच्चिताः। =अन्यलौकान्तिक मिलायेगये हैं
तेषाम्।अन्तरे।। =तिन (सारस्वतादि आठ प्रकारके लौकान्तिक देवों) के मध्य में (क्रमसे)
द्वौ।द्वौ।देवगणौ। =दो दो (प्रकार के) देवों के समुदाय हैं अर्थात् सोलह प्रकार के अन्य लौकान्तिक देवोंके समूहऔर है।



तद्यथा सारस्वतादित्यान्तरे अग्न्याभसूर्याभाः। आदित्यस्य च वह्नेश्चान्तरे चन्द्राभसत्याभाः। वह्न्यरुणान्तराले श्रेयस्करक्षेमकराः। अरुणगर्दतोयान्तराले वृषभेष्टकामचराः। गर्दतोयतुषितमध्ये निर्माणरजोदिगन्तरक्षिताः। तुषिताव्याबाधमध्ये आत्मरक्षितसर्वरक्षिताः। अव्याबाधारिष्टान्तराले मरुद्वसवः। अरिष्टसारस्वतान्तराले अश्वविश्वाः॥ सर्वे एते स्वतन्त्रा हीनाधिकत्वाभावात्॥

तद्यथा सारस्वत-आदित्य-	=जैसे सारस्वत आदित्य के
अन्तरे अग्न्याभ-सूर्याभाः	=अन्तराल में अग्न्याभसूर्याभ हैं।
आदित्यस्य च वह्नेः च अन्तरे	=बहुरि आदित्य के और वह्निके बीच में
चन्द्राभ-सत्याभाः वह्नि-अरुण-	=चन्द्राभ सत्याभ हैं। वह्नि और अरुण के
अन्तराले श्रेयस्कर-क्षेमकराः	=मध्यमें श्रेयस्कर क्षेमकर हैं।
अरुण-गर्दतोय-अन्तराले	=अरुण गर्दतोय के अन्तर वा मध्य में
वृषभेष्ट-कामचराः	=वृषभेष्ट और कामचर हैं।
गर्दतोय-तुषित-मध्ये निर्माणरजो	=गर्दतोय और तुषितके बीचमें निर्माणरज
दिगन्तरक्षिताः तुषित-	=और दिगन्तर रक्षित हैं। तुषित और
अव्याबाध-मध्ये	=अव्याबाधके बीचमें
आत्मरक्षित-सर्वरक्षिताः	=आत्मरक्षित और सर्वरक्षित हैं।
अव्याबाध-अरिष्ट-अन्तराले	=अव्याबाध और अरिष्ट के अन्तरालमें
मरुद्-वसवः अरिष्ट-सारस्वत-	=मरुत् और वसु हैं। अरिष्ट और सारस्वतके
अन्तराले अश्व-विश्वाः सर्वे	=बीचमें अश्व और विश्व हैं। समस्त
एते स्वतन्त्राः	=ये (चौबीस प्रकारके लौकान्तिक) स्वाधीन हैं
हीन-अधिकत्व-अभावात्	=क्योंकि (इनके) हीनता, अधिकताका एक

दूसरेसे अभाव है अर्थात् इन चौबीस प्रकारके देवोंमें कोई देव अन्य देवसे हीन अधिक नहीं है वरन् सब समान हैं।



(१) हस्तलिखित सर्वार्थसिद्धिके पृष्ठ १०१में तथा तत्त्वार्थराजवार्तिकके मुद्रित पृष्ठ १७४में 'अरिष्टसारस्वतांतरे अश्वविश्वाः' ऐसा पाठ है दोनों पाठ ठीक हैं॥

विषयरतिविरहाद्देवर्षयः इतरेषां देवानामर्च्चनीयाः, चतुर्दशपूर्वधराः, तीर्थंकरनिष्क्रमणप्रतिबोधनपरा वेदितव्याः ॥ आह उक्ता लौकान्तिकास्ततश्च्युता एकं गर्भवासमवाप्य निर्वास्यन्तीत्युक्ताः। किमेवमन्येष्वपि निर्वाणप्राप्तिकालविभागो विद्यते? इत्यत आह—

विषयरतिविरहात् ५।१ (१)देव-ऋषयः १।३ =विषयोंमें रागसे रहित होने (के कारण)से देवऋषि अर्थात् देवोंमे ऋषि हैं
इतरेषाम् ६।३ देवानाम् ६।३ अर्चनीयाः १।३ चतुर्दशपूर्वधराः १।३ =अन्य देवोंके पूजनीय अथवा पूज्य हैं ये समस्त देव चौदह पूर्वके धारक हैं अर्थात् अंग और दृष्टिवाद बारहवां अंगमें 'परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग और पूर्वगत (चौदह पूर्व) के ज्ञानी है देखो प्रथम अध्याय पृष्ठ ४२७ की टिप्पणी
(२)तीर्थंकरनिःक्रमण-प्रतिबोधनपराः १।३ वेदितव्याः १।३ =तीर्थंकरके तप कल्याण विषें समझानेमें तत्पर (लवलीन वा निपुण) जानने चाहिये
आह १।१ उक्ताः १।३ लौकान्तिकाः १।३ ततस् * (३)च्युताः १।३ =(शिष्य) पूछता है कि लौकांतिकदेव कहेगये। वहां (ब्रह्मलोक पांचवां स्वर्ग) से चयकर
एकम् २।१ गर्भवासम् २।१ अवाप्य - निर्वास्यन्ति इति उक्ताः १।३ =एक गर्भवास अर्थात् मनुष्य भवको धारण करके मोक्ष जाते है ऐसे कहेगये हैं
किम् * एवम् * अन्येषु ७।३ अपि * निर्वाणप्राप्तिकालविभागः १।१ =क्या इसप्रकार अन्य देवोंमें भी मोक्षके पावनेके कालका विभाग अथवा पृथकता
(४)विद्यते इति * अतः * आह =वर्तमान है(=विद्यते) इसलिये (आचार्य्य अग्रिम सूत्रमें) कहते है कि

(१) यदि कोई स्वर ए, ऐ ओ औ को छोड़कर आवे उसके पश्चात् ह्रस्व ऋकार हो तो ऐसा ऋ स्वरके साथ नहीं मिलता है और मिलता भी है अर्थात् चाहे उसको स्वरके साथ मिलादो चाहें न मिलादो जैसे देव ऋषि. =देवऋषि अथवा देव-ऋषि=देवर्षि। 'देवर्षयः' बहुवचन 'देवर्षि'का है।
(२) तीर्थंकर-तीर्थ (हितशासन,-हितको करनेहारा,आगम-शास्त्रउपदेशक) कराति तीर्थंकर. तीर्थङ्कर, तीर्थ कर इसी अर्थमें होताहै (पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ१७३)
(३) 'च्युता'—सर्वार्थसिद्धिके दोनों संस्करणोंमें 'च्युत्वा' पाठ है परन्तु उनके सूत्र २४, २६ में तीन स्थानोंमें और हस्तलिखित तीन प्रति में, इस सूत्रमें) तथा तीन स्थानोंमें सूत्र २४, २६ में और राजवार्तिकके सूत्र २४ में एक स्थानमें सूत्र २६ के पांच स्थानोंमें (च्युता) शब्द है हमने हस्तलिखित तथा तत्त्वार्थराजवार्तिक पाठके अनुकूल 'च्युता' शब्द लिया है॥ 'च्यु' प्रथम भ्वादि 'पतन होना' अर्थमें है 'च्युत्वा' शब्द भी ठीक है (देखो प्रथम अध्याय पृष्ठ १६की टिप्पणी दो)॥ तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकमें २४ सूत्रकी व्याख्यामें 'च्युत्वा' शब्दका प्रयोग है। (४) विद् यहांपर दिवादि चतुर्थगणका धातु है इस गणमें क्रियाका प्रत्यय जोड़नेके पहिले 'य' विकरण जोड़ाजाता है। अर्थ विद् धातुका होना' ऐसा है जैसे विद् य ते=विद्यते=वर्तमान है)

॥ विजयादिषु द्विचरमाः ॥ २६ ॥

आदिशब्दः प्रकारार्थे वर्तते, तेन विजयवैजयन्तजयन्तापराजितानुदिशविमानानामिष्टानां ग्रहणं सिद्धं भवति ॥ कः पुनरत्र प्रकारः ? अहमिन्द्रत्वे सति सम्यग्दृष्ट्युपपादः ।

(१)सूत्रम्—विजयादिषु द्विचरमाः ॥ २६ ॥ = (वैमानिकाः(२)) विजयादिषु(३) द्विचरमा भवन्ति ॥

विजय-आदिषु ॥ वैमानिकाः ॥	=विजय-वैजयन्त-जयन्त-अपराजित, नव अनुदिश विमानोंमें वैमानिक देव
द्विचरमाः ॥ भवन्ति	=दो अन्तिम देह धरनेवाले होते हैं वा इनके दो जन्म अन्तके रहजाते हैं ॥

अर्थात् येदेव मनुष्यके दोभव धारणकर मोक्षजातेहै वा इनके दो मनुष्यभव सिद्धावस्था प्राप्त होनेमें शेष रहजातेहै भावार्थ ऐसाहै कि नोअनुदिश और विजय-वैजयन्त-जयन्त-अराजित इन तेरह विमानोंसे चयकर मनुष्य होय बहुरि संयम आराध कर फिर विजयादिक विमानों उपजैं वहांसे चयकर मनुष्य जन्म पाकर मोक्ष पाते हैं ।

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित छब्बीसवां सूत्र पर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिन्दी अनुवाद

आदिशब्दः ॥ प्रकार-अर्थे ॥ वर्तते तेन ॥	=सूत्रमें आदिशब्द सादृश्य (जनावने) के अर्थमें है । तिस (आदि शब्द)से
विजय-वैजयन्त-जयन्त-अपराजित-अनुदिश-विमानानाम् ॥	=विजय-वैजयन्त-जयन्त-अपराजित और नव अनुदिश विमानोंका
इष्टानाम् ॥ ग्रहणम् ॥ सिद्धम् ॥ भवति	=जो वांछित अथवा मानित हैं ग्रहण सिद्ध होता है
कः ॥ पुनः अत्र प्रकारः ॥ अहमिन्द्रत्वे ॥ सति ॥ सम्यग्दृष्टि-उत्पादः	=पुनि यहां क्या सदृशता हुई (उत्तर) अहमिन्द्र होनेमें सम्यग्दृष्टिका उत्पाद है

(१) इस सूत्रका पाठ श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायोंमें एकसा है ॥ परन्तु उनके यहां नवअनुदिशके नामसे कोई विमान नहींहै इसलिये हमारे यहां तेरह विमानोंके वासीदेव द्विचरमा हैं उनके यहां केवल विजय-वैजयन्त-जयन्त-अपराजितवासी द्विचरमा है देखो सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ ११४ ।
(२) सोलहवां सूत्रसे 'वैमानिकाः' शब्दकी अनुवृत्ति इससूत्रमें लीगई है (३) "अर विजयादिकनितें, आयजीव एक जन्मभी लेवें अरदो जन्मभी मनुष्यके लेवेंहैं तातें ऐसो अर्थ है जो विजयादिकनितें चयकर मनुष्य होय, बहुरि संयम आराधि फेर विजयादिकनिमें उपजें तहांते चय मनुष्य होय मोक्ष जायहैं ऐसे द्विचरम देहपना है । ऐसे अनुदिश अर चार अनुत्तरके देव तो दोय भवभी धारें एक भी धारें । स्वर्गके आठ युगल हैं तिनमें बारह इन्द्र हैं छह इंद्र दक्षिणके और छह इंद्र उत्तरके इनमें उत्तरके छ इंद्रोंको छोड़कर दक्षिणके जो छह इंद्र (१ सौधर्म २ सानत्कुमार ३ ब्रह्म ४शुक्र ५ आनत ६ आरण) और

सर्वार्थसिद्धिप्रसंग इति चेन्न तेषां परमोत्कृष्टत्वात्। अन्वर्थसञ्ज्ञातः एकचरमत्वसिद्धेः ॥

सर्वार्थसिद्धि-प्रसंगः॥१॥ इति॥ चेत्॥ =सर्वार्थसिद्धि (विमानकाभी) ग्रहण हुआ ऐसा सन्देह (शिष्यकी ओरसे) है अर्थात् आचार्यके उत्तर देने पर कि विजय आदिक तेरह विमानोंमें सम्यग् दृष्टिके अतिरिक्त कोई जीव जन्म धारण नहीं करता है शिष्यने यह संदेह किया कि ऐसा करनेमें सर्वार्थसिद्धि का विमान भी ग्रहण होजाता है क्योंकि सर्वार्थसिद्धि विमानमें वसनेवाले देव भी तौ अहमिन्द्र ही है और सम्यग् दृष्टि ही हैं (उत्तर)

न॥तेपाम्॥३॥परम-उत्कृष्टत्वात्॥५॥ =नहीं तिन)सर्वार्थसिद्धिवासी देवो,का(ग्रहण)परम उत्कृष्ट होने(के कारण)से (यहांपर) हुआ (क्योकि सर्वार्थसिद्धि अर्थात् जहां सम्पूर्ण अभ्युदयके अर्थ सिद्धि होगये है ऐसी)

अन्वर्थ-सञ्ज्ञातः॥ =सार्थक संज्ञा वा जैसा नाम है वैसा अर्थ वाली संज्ञा होनेसे

एकचरमत्वसिद्धेः॥५॥॥ =एक (मनुष्य)देहके अन्तपनेसे (चरमत्व) सिद्ध होवे है अर्थात् सर्वार्थसिद्धिसे च्युत होकर मनुष्यका एक शरीर धारणकर मोक्ष पावे है। इस समस्त प्रश्न और उत्तरका भावार्थ यह है कि शंका करनेपर कि अहमिन्द्र और सम्यग्दृष्टी तो सर्वार्थसिद्धि विमानवासी भी देव हैं। यदि यहाँ पर प्रकारका अर्थ यह कियाजायगा कि जो वैमानिकदेव अहमिद्र और सम्यग्दृष्टि हों वे द्विचरम (=दो भव धारणकर मोक्ष जाते)हैं तबतो सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देवोंको भी दो मनुष्य भव धारण करके पीछे मोक्ष माननी पड़ेगी क्योंकि अहमिद्र और सम्यग्दृष्टी वे भी हैं। परन्तु उ हें शास्त्रमें एक चरमी (=एक भव धारणकर मोक्ष जानेवाला माना) है इसलिये प्रकार शब्दका जो अहमिद्र और सम्यग्दृष्टि अर्थ माना है वह अयुक्त है)। उत्तरमें कहते है कि सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देव परमोत्कृष्ट है। जहां पर सर्व प्रयोजनोंकी सिद्धि हो वह सर्वार्थसिद्धि है। यह सर्वार्थ-सिद्धि शब्दका अन्वर्थरूपसे अभिप्राय है। सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देवोंके किसी प्रयोजनीय कार्य सम्पादन करनेवाला कर्म शेप नहीं रहता जिससे वे दो मनुष्य भव धारणकर मोक्ष जायं अतः मोक्षार्थ वे एकही मनुष्य भव धारण करते हैं और वहांसे मोक्ष चले जाते हैं अतः उनके एक चरमपनाही है द्विचरमपना नहीं है ॥

सौधर्म इन्द्रकी इन्द्राणी (जो तीर्थंकरको जन्म समय प्रसूत गृहमेंसे लाय इन्द्रको सौंपे सो सची) सौधर्म स्वर्गके चारो लोकपाल(१ सोम २ यम ३ वरुण ४ कुवेर) और सब लौकान्तिक देव अर सर्वार्थसिद्धिविमानके सब अहमिन्द्रदेव एक भव अवतारी हैं" ॥

चरमत्वं देहस्य । मनुष्यभवापेक्षया द्वौ चरमौ देहौ येषां ते द्विचरमाः । विजयादिभ्यश्च्युता अप्रतिपतितसम्यक्त्वा मनुष्येषूत्पद्य संयममाराध्य पुनर्विजयादिषूत्पद्य ततश्च्युताः पुनर्मनुष्यभवमवाप्य सिद्ध्यन्तीति द्विचरमदेहत्वम्॥ आह जीवस्यौदयिकेषु भावेषु तिर्यग्योनिगतिरौदयिकीत्युक्तं, पुनश्चस्थितौ

चरमत्वम्[1]।।। (१,देहस्य[6]।	=(यहां एक चरमत्वसिद्धेः इस वाक्यमें) चरमत्व शब्द है सो देहका चरमत्व है अर्थात् देहका अवसानपना वा अन्तपना ऐसा चरमत्व शब्दसे अभिप्राय है
मनुष्यभव-अपेक्षया[3]।। द्वौ[1]। चरमौ[1]। देहौ[1]। येषाम्[6]।	=मनुष्य जन्मकी विवक्षासे दो अन्तिम शरीर जिनके हैं
ते[1]। द्विचरमाः[1]।	=वे द्विचरमा हैं अर्थात् मनुष्यभवमें संयमको आराधनकर पुनः विजयादि विमानोंमें उत्पन्न होता है। वहांसे च्युत होकर पुनः मनुष्य होता है और वहांसे फिर मोक्ष चला जाता है किन्तु भव सामान्यकी अपेक्षा यहां पर द्विचरमपना नहीं है अन्यथा दो मनुष्यभव और एक देवभव इस प्रकार तीन चरम देहपना सिद्ध होगा दो चरम देहपना सिद्ध न होसकेगा।
विजयादिभ्यः[5]। च्युताः[1]। (२)अप्रतिपतितसम्यक्त्वाः[1]।	=विजयादिक (तेरह) विमानोंसे चयकर (निकलकर) अप्रतिपतित सम्यग्दर्शनवाले अर्थात् क्षायिकसम्यग्दर्शन सहित
मनुष्येषु[7]। उत्पद्य – संयमम्[2]। आराध्य[3] —पुनः* विजय-	=मनुष्योंमे उत्पन्न होकर संयमको धारणकर फिर विजय
आदिषु[7]। उत्पद्य[3] – ततः* च्युताः[1]। पुनः* मनुष्यभवम्[2]।	=आदिक (विमानोंमें) उत्पन्न होकर वहांसे च्युत होते हैं। फिर मनुष्यजन्मको
(३)अवाप्य – सिद्ध्यन्ति[T] इति* द्विचरमदेहत्वम्[1]।।।	=प्राप्त होकर मोक्ष जाते है। इस प्रकार दो चरम अर्थात् दो अन्तिम देहपना है
आह[T] जीवस्य[6]। औदयिकेषु[7]। भावेषु[7]। तिर्यग्योनिगतिः[1]।।	=(शिष्य) पूछता है कि जीवके औदयिक भावोंमें तिर्यञ्चगति
औदयिकी[1]।। इति* उक्तम्[1]।।। पुनः* च* स्थितौ[7]।।	=औदयिकी ऐसे(दूसरा अध्याय सूत्र ६मे) कथित वा वर्णित है बहुरि स्थितिमेंभी(=च)

(१) देहस्य षष्ठी विभक्तिका एक वचन पुल्लिंग वा नपुंसकलिंग दोनों होसकते हैं। (२) सर्वार्थसिद्धि हस्तलिखित तथा द्वितीयावृत्तिमें, तत्त्वार्थ-राजवार्तिकमें 'अप्रतिपतित' शब्द है, प्रथमावृत्तिमें 'अप्रतिपातित' शब्द है, ज्ञात होता है कि भूलसे छपगया है (३) उत्पद्य (=उत्पन्न होकर) आराध्य (=आराधनकर) और अवाप्य(=प्राप्त होकर) ये सम्बन्धसूचक भूत कृदन्त है। [४]'योनि' शब्द स्त्रीलिंग, पुल्लिंग दोनोंमें अमरकोश वर्ग १६में आया है।

तिर्यग्योनिजानां चेति। तत्र न ज्ञायते के [१]तिर्यग्योनयः? इत्यत्रोच्यते—

औपपादिकमनुष्येभ्यः शेषास्तिर्यग्योनयः ॥ २७ ॥

औपपादिका उक्ता देवनारकाः। मनुष्याश्च निर्दिष्टाः। प्राङ्मानुषोत्तरान्मनुष्या इति। एभ्योऽन्ये संसारिणो जीवाः शेषास्तिर्यग्योनयो वेदितव्याः ॥

तिर्यग्योनिजानाम् [६।३] च* इति* तत्र* न* ज्ञायते [T] ='तिर्यग्योनिजानां च' ऐसे (अध्याय ३ सूत्र ३९ वांहै) वहां नहीं बतलायागया है कि

के [१।३] तिर्यग्योनयः [१।३] इति* अत्र* उच्यते [T] =तिर्यग्योनिवाले कौन हैं इसलिये यहां (अग्रिम सूत्रमें) कहाजाता है कि

सूत्रम्— (१)औपपादिकमनुष्येभ्यः शेषास्तिर्यग्योनयः ॥ २७ ॥

= औपपादिकमनुष्येभ्यः शेषास्तिर्यग्योनयः (भवन्ति) ॥२७॥

सूत्रार्थः—औपपादिकमनुष्येभ्यः [५।३] शेषाः [१।३] =उपपादरूप जन्मसे उत्पन्न होनेवाले अर्थात् अध्याय २ सूत्र ३४वां में उक्त देव तथा नारकीजीव और तीसराअध्यायके ३५वां सूत्रमें वर्णितमनुष्योंसेभिन्न अवशेष

तिर्यग्योनयः [१।३] भवन्ति [T] =तिर्यञ्च योनिज होते हैं ॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इससत्ताईसवां सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिन्दी अनुवाद

औप-पादिकाः [१।३] उक्ताः [१।३] देवनारकाः [१।३] =उत्पादरूप जन्मसे उत्पन्न होनेवाले देव, व नारकी अध्यायदो सूत्र ३४में कहेगये हैं

मनुष्याः [१।३] च* निर्दिष्टाः [१।३] प्राङ्-मानुषोत्तरात् [५।१] मनुष्याः [१।३] इति =और मनुष्य भी कहेगये है कि मानुषोत्तर पर्वतसे पहिले पहिले मनुष्य हैं (अध्याय तीसरेका सूत्र ३५ वां देखो)

एभ्यः [५।३] अन्ये [१।३] संसारिणः [१।३] जीवाः [१।३] शेषाः [१।३] =इन (देव नारकी तथा मनुष्यो) से भिन्न संसारी जीव शेष

तिर्यग्योनयः [१।३] वेदितव्याः [१।३] =तिर्यञ्चयोनिवाले जानने चाहिये। (एभ्यः पंचमी वहु वचन पुल्लिंग इदम्का है)

---

[१] 'योनि' शब्द स्त्रीलिंग और पुल्लिंग दोनोंमें "अमरकोश" वर्ग १६ श्लोक ७८ में है परन्तु 'के' बहुवचन पुल्लिंग में है अतः "योनय." भी बहुवचन पुल्लिंगमें है। [२]श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य०में "औपपादिक" शब्दके स्थानमें 'औपपातिक' है। शेषपाठ दोनों आम्नायोंमें एकहै अर्थभीएकसाहै।

तेषां तिरश्चां देवादीनामिव क्षेत्रविभागः पुनर्निर्देष्टव्यः । सर्वलोकव्यापित्वात्तेषां क्षेत्रविभागो नोक्तः ॥ आह स्थितिरुक्ता नारकाणां, मनुष्याणां तिरश्चां च। देवानां नोक्ता । तस्यां वक्तव्यायामादावुद्दिष्टानां भवनवासिनां स्थितिप्रतिपादनार्थमाह—

स्थितिरसुरनागसुपर्णद्वीपशेषाणां सागरोपमत्रिपल्योपमार्द्धहीनमिता॥

पुनः*तेषाम्[६/३]तिरश्चाम्[६/३]देव-आदीनाम्[६/३]इव* =और उन तिर्यञ्चोंका देवादिकों के समान (=इव)

क्षेत्रविभागः[१/१]निर्देष्टव्यः[१/१] =क्षेत्रविभाग अर्थात् जिस क्षेत्रमें तिर्यञ्च पाये जावें सो कहना चाहिये

सर्वलोक-व्यापित्वात्[५/१]तेषाम्[६/३]क्षेत्रविभागः[१/१]न*उक्तः[१/१] =(परन्तु) सर्वलोकमें पायेजानेसे उन (तिर्यञ्चों) का क्षेत्रविभागनहीं कहागया

आहT स्थितिः[१/१]उक्ता[१/१]नारकाणाम्[६/३]मनुष्याणाम्[६/३] =(शिष्य) पूछता है कि आयु नारकोंकी कही गई, मनुष्योंकी

तिरश्चाम्[६/३]च*देवानाम्[६/३]न*उक्ता[१/१]तस्याम्[७/१] =तिर्यञ्चोंकी भी (=च, कहीगई) देवोंकी नहीं कहीगई उसके

वक्तव्यायाम्[७/१]आदौ[७/१]उद्दिष्टानाम्[६/३]भवनवासिनाम्[६/३] =कहनेकेआदिमें(इसअध्यायकासूत्र२,३,१०में)उपदेशकियेगयेभवनवासीदेवोंकी

स्थिति प्रतिपादन-अर्थम्[२/१]आहT =आयुके कहनेके लिये (आचार्य उत्तर सूत्रमे) कहते हैं कि

सूत्रम्[१]—स्थितिरसुरनागसुपर्णद्वीपशेषाणां सागरोपमत्रिपल्योपमार्द्धहीनमिता ॥ २८ ॥

=(परा[२])स्थितिः—असुर-नाग-सुपर्ण-द्वीप-शेषाणाम्-सागरोपम-त्रिपल्योपम-अर्द्धहीनं[३] इता भवति [३])

परा[१/१]स्थितिः[१/१]असुर-नाग-सुपर्ण-द्वीप- =उत्कृष्टआयु असुर कुमार, नाग कुमार, सुपर्ण कुमार, द्वीपकुमार, और

शेषाणाम्[६/३] =वचे हुए (छह विद्युत कुमार-अग्नि कुमार-वातकुमार-स्तनितकुमार-उदधि-कुमार-दिक्कुमारो) की (यथासंख्य वा अनुक्रमसे)

(१) हमारे यहांके इससूत्रके स्थानमें श्वेताम्बर आम्नायके'सभाष्य में २९,३०,३१,३२ सूत्र दियेहैं । उनमें 'स्थितिः' यह २९ वां सूत्र अधिकारसूत्रहै

(२) तेतीसवां सूत्रके 'अपरा' शब्दको देखनेसे जिस सूत्रमे अडतीसवां सूत्रतक जघन्य स्थितिका कथनहै और विशेषत ३७वां सूत्रपर दृष्टिकरनेसे जिसमें भवनवासी देवोंकी जघन्य स्थिति दश सहस्र वर्षकी वर्णित है यह आशय झलकता है कि इस २८ वां सूत्रमें भवनवासी देवोंकी उत्कृष्ट स्थितिका वर्णन है अतः मैंने इस सूत्रमें 'परा' (=उत्कृष्ट) शब्दको जोडकर अर्थ किया है 'अपरा' का प्रतिकूल परा है ॥

(३) हीनमिता-स्मरण रहै कि 'इता' शब्द का अर्थ प्राप्त ऐसा है और 'मिता' शब्दका अर्थ 'परिमित' मापा हुआ (पद्मचन्द्रकोश पृ ९६] है ॥ यहां पर'हीनमिता' =हीनम्-इता ऐसा पदच्छेदहै नकि हीन-मिता क्योंकि इताजो प्रथमा विभक्ति एकवचन स्त्रीलिंगहै उसका अन्वय'स्थिति'शब्दके साथहै ।

असुरादीनां सागरोपमादिभिर्यथाक्रममत्राभिसम्बन्धो वेदितव्यः ॥ इयं स्थितिरुत्कृष्टा । जघन्याऽप्युत्तरत्र वक्ष्यते ॥ तद्यथा-असुराणां सागरोपमा स्थितिः । नागानां त्रिपल्योपमा स्थितिः सुपर्णानामर्द्धतृतीयानि । द्वीपानां द्वे ।

२

सागरोपम-त्रिपल्योपम-अर्धहीनम्[१।१]॥	=एक सागर प्रमाण-तीन पल्यप्रमाण उससे आधी आधी पल्य प्रमाण घाटि तीनस्थानमें
इता[१।१]॥	=प्राप्त है (हीनम्-इता[१।१]॥भवति) अर्थात् उत्कृष्ट आयु असुर कुमारों की एक सागर है, नाग कुमारोंकी उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्यहै, सुपर्ण कुमारोंकी उत्कृष्ट आयु ढाई पल्य है, और द्वीप कुमारोंकीउत्कृष्ट आयु दो पल्यहै, शेष छह विद्युत्कुमारोंकी-अग्निकुमारोंकी-वात कुमारोंकी-स्तनित कुमारोंकी, उदधिकुमारोंकी, दिक्कुमारोंकी-उत्कृष्ट स्थिति डेढ़ डेढ़पल्य है॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित अट्ठाईसवां[१] सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिन्दी अनुवाद

असुरादीनाम्[६।३]॥सागरोपमादिभिः[३।३]॥यथाक्रमम्*अत्र*	=असुरादिकोंका सागर प्रमाणादिक गणनाकरि क्रमसे यहां
अभिसम्बन्धः[१।१]॥वेदितव्यः[१।१]॥इयम्[१।१]॥स्थितिः[१।१]॥उत्कृष्टा[१।१]॥	=सम्बन्ध जानना चाहिये । यह आयु उत्कर्ष है
जघन्या[१।१]॥अपि*उत्तरत्र*वक्ष्यते . तद्यथा*असुराणाम्[६।३]॥	=जघन्य (स्थिति) भी यहांसे आगे (सेतीसवांसूत्रमें) कहेंगे । जैसे असुर कुमारोंकी
सागरोपमा[१।१]॥स्थितिः[१।१]॥नागानाम्[६।३]॥त्रिपल्योपमा[१।१]॥स्थितिः[१।१]॥	=सागर प्रमाण आयु है । नाग कुमारोंकी तीन पल्य प्रमाण आयु है
सुपर्णानाम्[६।३]॥अर्द्धतृतीयानि[१।३]॥द्वीपानाम्[६।३]॥द्वे[१।२]॥	=सुपर्ण कुमारोंकी ढाई (पल्यप्रमाण आयु)है द्वीप कुमारों की दो(पल्योपम) आयु है

(१)हमारे यहांके इस अट्ठाईस[२८]वां सूत्रमें स्थिति शब्द जो आदिमें आयाहै उसको श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें उन्तीसवांसूत्र माना है और उसका तात्पर्य यह है कि इस सूत्रसे अध्याय के अन्त तक देवोंकी स्थिति का कथन करेंगे अर्थात् उनके यहां यह अधिकार सूत्र है और प्रयोजन यह है कि अग्रिमके सर्व सूत्रोंमें अध्यायके अन्ततक 'स्थिति' शब्दको प्रत्येक सूत्रमें लगालो । मेरी समझमें यह विधान ठीक है क्योंकि ऐसा माननेमें कोई अक्षर और शब्द अधिक नहीं होता और दो बातें प्रगट होजाती हैं प्रथम यह कि यहांसे इस अध्यायके अन्ततक सब आयुका ही प्रकरण है और दूसरी बात यह कि इस 'स्थिति' शब्दकी अनुवृत्ति सर्व सूत्रोंमें इस सूत्रसे अध्याय पर्यंत लेलीजाती है ॥ दिगम्बर आम्नायके इस अट्ठाईसवां सूत्रमें दश भवनवासी देवोंकी आयु वर्णित है, वेही स्थितियें कुछ भेदके साथ श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रके निम्न लिखित तीन सूत्रोंमें उन्हीं दश भवन वासी देवोंको आयुका कथन किया गया है ॥

शेषाणां षण्णामध्यर्द्धपल्योपमम् ॥

आद्यदेवनिकायस्थित्यभिधानादनन्तरं व्यन्तरज्योतिष्कस्थितिवचने क्रमप्राप्ते सति तदुल्लंघ्य वैमानिकानां स्थितिरुच्यते। कुतः ?तयोरुत्तरत्र लघुनोपायेन स्थितिवचनात् ॥ तेषु चादावुद्दिष्टयोः कल्पयोः स्थितिविधानार्थमाह—

शेषाणाम्[६।३] षण्णाम्[६।३]	=बचे हुए छह (विद्युत कुमार-अग्नि कुमार-वात कुमार-स्तनितकुमार-उदधिकुमार दिक्कुमारों) की (स्थिति)
अध्यर्द्धपल्योपमम्[१।१]॥	=आधी अधिक सहित एक पल्य प्रमाण अर्थात् डेढ़ पल्य प्रमाण है
आद्य-देव-निकाय-स्थिति-अभिधानात्[५।१]॥अनन्तरम्[१।१]॥	=प्रथम अर्थात् भवन वासी देवोके समुदायकी स्थितिके कहनेसे अत्यन्त समीप
व्यन्तर-ज्योतिष्क-स्थिति-वचने[७।१]॥क्रमप्राप्ते[७।१]॥सति[७।१]॥	=व्यन्तर तथा ज्योतिषी देवोकी आयुके कथन (वचन) विषैं क्रम प्राप्त होने पर
तत्*उल्लङ्घ्य - वैमानिकानाम्[६।३]स्थितिः[१।१]॥उच्यते॥	=उस (क्रम)को छोड़कर वा त्यागकर वैमानिक देवोकी आयु कही जाती है
कुतः ?*तयोः[६।२]उत्तरत्र*	=(प्रश्न)क्योंकरउन(व्यन्तर तथा ज्योतिषी देवों)की(स्थिति)यहांसेआगे(कहीजायगी)
लघुना[३।१]-उपायेन[३।१]	=(उत्तर) लघुकरणद्वारा वा लघुसाधनद्वारा (उन व्यन्तर तथा ज्योतिषी देवोंकी)
स्थिति-वचनात्[५।१]॥	=स्थितिका कथन होगा अर्थात् अग्रिमसूत्रोंमें वर्णन करेंगे जो सूत्र उनसे पहिले सूत्रोसे अनुवृत्ति लेनेके निमित्तसे लघुहोंगेदेखो ३८-३९-४०-४१सूत्र जो कितने लघु है और जिनसे स्पष्ट है कि यदि व्यन्तर ज्योतिषियोकी स्थिति २८वांसूत्र के अनन्तर कहते तो इन सूत्रोकी इतनी लघु रचना कदापि नहीं होसकती थी
तेषु[७।३]च*आदौ[७।१]उद्दिष्टयोः[७।२]कल्पयोः[७।२]	=और तिन (वैमानिक देवो) विषैं आदिमें कहे हुए (सौधर्म और ऐशान) स्वर्गोमें
स्थिति-विधान-अर्थम्[१।१]॥आह॥	=आयुके नियम के लिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

भवनेषु दक्षिणाधाधिपतीना पल्योपममध्यर्धम् ॥ ३० सूत्र ॥ (सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रके पृष्ट११५ से उद्धृत)

भवदेषु[७।३]दक्षिणार्धाधिपतीनाम्[६।३]।	=भवनवासी (देवों) में दक्षिणार्धाधिपति (देव) निका अर्थात् विद्युत अग्नि स्तनित और द्वीप कुमारों की
पल्योपमम्[१।१]॥अध्यर्धम्[१।१]॥	=अर्ध अधिक (सार्द्ध) एक पल्य प्रमाण अर्थात् डेढ़पल्य प्रमाण[परा स्थिति-उत्कृष्ट स्थिति]है ॥३०सूत्र॥

सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रके ११ वां सूत्रमें (=हमारे यहांके दश १० वां सूत्रके) कथित दो दो भवनवासी इन्द्रोंमेंसे पूर्व पूर्वका इन्द्र दक्षिणार्धाधिपति कहालाताहै और दूसरा उत्तरार्धाधिपतिहै [सभाष्य० पृष्ठ११५ सेउद्धृत]॥ तात्पर्य ऐसा है कि दश भवनवासियोंमेंसे सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रके निम्न लिखित ३२ वां सूत्रमें वर्णित असुर कुमारेंद्र और नाग कुमारेंद्रको निकालकर जिनकी उत्कृष्टस्थिति अनुक्रमसे सागरोपम और कुछ अधिक सागरोपम है॥ सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रके तीसवां सूत्रके अनुकूल शेष चार विद्युत कुमार दक्षिणार्धाधिपति की डेढ पल्योपम परास्थिति है। अग्निकुमार दक्षिणार्धाधिपतिकी डेढ पल्योपम परास्थिति है, स्तनितकुमार दक्षिणार्धाधिपतिकी डेढ़ पल्योपम परास्थिति है, द्वीपकुमार दक्षिणार्धाधिपतिकी डेढ पल्योपम परास्थिति है॥

शेषाणां पादोने ॥ ३१ वां सूत्र ॥ (सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रके पृष्ठ ११५ से उद्धृत)

शेषाणां[६]।पाद-ऊने[३]॥। =(भवनवासियोंमेंसे) बचे हुए उत्तरार्धाधिपतिनिकी एक पाद से हीन दो अर्थात् पौने दो (पल्योपम परास्थिति है) भावार्थ ऐसा है कि चार सुपर्ण कुमार उत्तरार्धाधिपतिकी पौने दो पल्योपम उत्कृष्ट स्थिति है, वात कुमार उत्तरार्धाधिपतिकी पौने दो पल्योपम उत्कृष्ट आयु है, उदधिकुमार उत्तरार्धाधिपतिकी पौने दोपल्योपम उत्कृष्ट अवस्था है, दिक्कुमार उत्तरार्धाधिपतिकी पौनेदोपल्योपम अधिकसे अधिक स्थिति है॥

असुरेन्द्रयोः सागरोपममधिकं च ॥३२ वां सूत्र सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रके पृष्ठ ११५सेउद्धृत

=असुरेन्द्रयोस्तु दक्षिणार्धाधिपत्युत्तरार्धाधिपत्योः सागरोपममधिकं च यथासंख्यं परास्थितिभवति

तु*दक्षिणार्धाधिपति उत्तरार्धाधिपत्यो[६]।असुरेन्द्रयोः[६]। =और दक्षिणार्धाधिपति उत्तरार्धाधिपति दोनों असुरेन्द्रों की

सागरोपमम्[१]॥अधिकं[१]॥च*यथासंख्यम्*परा[१]॥स्थिति[१]॥ =एक सागर प्रमाण और [=च] कुछ अधिक सागर प्रमाण क्रम से उत्कृष्ट आयु

भवतिT =होती है अर्थात् असुर कुमार दक्षिणार्धाधिपतिकी उत्कृष्ट आयु एक सागर प्रमाण है औरनागकुमार उत्तरार्धाधिपतिकी अधिकसे अधिकस्थिति कुछअधिक एकसागर है॥

ये सब दशों "कुमारोंके समान रमणीय दर्शन, सुकुमार, मृदु, मधुर तथा ललित गतिवाले, श्रृंगार सहित सुन्दर रूप विक्रिया युक्त होते हैं॥ और कुमारोंके तुल्य उद्धतरूप, वेष, भाषा, आभरण, अस्त्रशस्त्रादि प्रहरण, वस्त्र तथा यान वाहनादि युक्त होते हैं। और कुमारोंके ही समान इनका व्यक्त अर्थात् स्पष्टराग क्रीडामें तत्पर रहता है, अतएव इन्हें कुमार कहते हैं। इनमें असुर कुमार असुर कुमारके आवासमें रहते हैं और शेष भवनोंमें निवास करते हैं। महामन्दरके दक्षिण और उत्तर दिग्विभागोंमें अनेक लाख योजन कोटी कोटीयोंमें असुर कुमारोंके आवास हैं और भवनभी दक्षिणार्धाधिपतियोंके और उत्तरार्धाधिपतियोंके यथास्व हैं। वहां रत्नप्रभामें बहल भागके अर्ध मध्यमें प्रवेश करके मध्यमें भवन है॥ भवनोंमें जो रहते हैं उन्हें भवनवासी कहते हैं॥ सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्र के पृष्ठ ८६ से उद्धृत॥

सौधर्मैशानयोः सागरोपमे [1]अधिके ॥ २९ ॥

सूत्रम्—सौधर्मैशानयोः सागरोपमे अधिके ॥ २९ ॥

= (परा-स्थितिः सूत्र २८वां से) सौधर्म-ऐशानयोः सागरोपमे अधिके (भवति)

श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रके २९-३० ३१-३२ और हमारे यहाके २८ वा सूत्रका मिलाकर विचार पूर्वक पढ़नेसे भवनवासी देवोंकी उत्कृष्ट स्थितिका भेद दोनों सम्प्रदायोंमें निम्न सूचीसे भले प्रकार विदित होता है ॥ जैसे

भवन वासी देवका नाम ॥	श्वेताम्बरआम्नायके अनुसार उत्कृष्टस्थिति	दिगम्बरआम्नायके अनुकूलउत्कृष्ट आयु		सूचना
(१) असुर कुमार	एक सागर प्रमाण } सभाष्य०	एक सागर प्रमाण	(सूत्र २८ देखो)	दोनों सम्प्रदायोंमें असुरकुमारकी आयु एक सागर प्रमाण है और विद्युत्कुमार अग्निकुमार स्तनितकुमार की आयु डेढ़ डेढ पल्यकी है अवशेष छह कुमारोंकी उत्कृष्ट स्थितिमें दोनोंसम्प्रदायोंमेंभेदहै जैसाकि सूची से प्रगट है ॥
(२) नाग कुमार	एकसागरप्रमाणसेकुछअधिक } सूत्र३२देखो	तीन पल्य प्रमाण	(सूत्र २८ देखो)	
(३) विद्युत्कुमार	डेढ पल्य प्रमाण सभाष्य० सूत्र ३० देखो	डेढ पल्य प्रमाण	(सूत्र २८ देखो)	
(४) सुपर्ण कुमार	पोने दोपल्य प्रमाण सभाष्य०सूत्र३१देखो	ढाई पल्य प्रमाण	(सूत्र २८ देखो)	
(५) अग्नि कुमार	डेढ़ पल्य प्रमाण सभाष्य० सूत्र ३० देखो	डेढ पल्य प्रमाण	(सूत्र २८ देखो)	
(६) वात कुमार	पोने दोपल्य प्रमाणसभाष्य० सूत्र३१देखो	डेढ पल्य प्रमाण	(सूत्र २८ देखो)	
(७) स्तनित कुमार	डेढ़ पल्य प्रमाण सभाष्य० सूत्र ३० देखो	डेढ़ पल्य प्रमाण	(सूत्र २८ देखो)	
(८) उदधि कुमार	पोने दोपल्य प्रमाण सभाष्य०सूत्र३१ देखो	डेढ पल्य प्रमाण	(सूत्र २८ देखो)	
(९) द्वीप कुमार	डेढ पल्य प्रमाण सभाष्य०, सूत्र ३० देखो	दो पल्य प्रमाण	(सूत्र २८ देखो)	
(१०) दिक्कुमार	पोने दोपल्य प्रमाण सभाष्य०सूत्र३१देखो	डेढ़ पल्य प्रमाण	(सूत्र २८ देखो)	

(१) दिगम्बर आम्नायमेंसर्वार्थसिद्धि वृत्तिके दोनों सस्करणोंमें 'अधिके' पाठ है, हस्त लिखित प्रतिमें 'ऽधिके' पाठ है अन्य अन्य पुस्तकोंमें कहीं कहीं पर अधिके' पाठ है और कहीं कही पर 'ऽधिके' पाठ भी है दोनों पाठ ठीक है देखो इस अनुवाद का अध्याय १ पृष्ट १० की टिप्पणी (२)तेतीसवां सूत्रमें सौधर्म ऐशान स्वर्गोंकी जघन्य स्थिति कही है और इस तेतीसवांसूत्रकी आदिमें 'अपरा' शब्द लाये है इससे स्पष्ट है कि इस सूत्र में उपर्युक्त दोनों स्वर्गोंकी ही उत्कृष्ट स्थिति कही है और परा शब्द का आवश्यकता से अध्याहार करना योग्य है ॥ अतः हमने 'परा' शब्द जोड़ा है ।

सागरोपमे इति द्विवचननिर्देशाद् द्वित्वगतिः । अधिके इत्ययमधिकारः । आ कुतः ? आ सहस्रारात्

सूत्रार्थः-परा[1] स्थितिः[1] (सूत्र २८ वां से उद्धृत)	=उत्कृष्ट स्थिति अथवा आयु
सौधर्म-ऐशानयोः[2] सागरोपमे[3] अधिके[3] ॥२६॥	=सौधर्म ऐशान (स्वर्गों) में दो सागर प्रमाण और कुछ अधिक है ॥२६॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित उनतीसवां सूत्र पर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिन्दी अनुवाद

सागरोपमे[2] इति*द्वि-वचन-निर्देशात्[5] द्वित्व-गतिः[1]	=(इस २६ वां सूत्र मे) 'सागरोपमे' ऐसे दो वचनके कथनसे दोकी प्राप्ति(=गति) है
अधिके[2] इति*अयम्[1] अधिकारः[1] आ*कुतः* ?	=(सूत्रमें) 'अधिके' ऐसे यह प्रकरण है ॥ कहां तक (=आ) ('अधिके' शब्दकाविषयहै)
आ*(२)सहस्रारात्[5]	=(उत्तर) सहस्रार (बारहवां स्वर्ग) तक (=आ) ('अधिके' शब्द का अधिकार है)

(१) श्वेताम्बर आम्नायके 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र' में इस सूत्रका लगभग तात्पर्य नीचे के तीन सूत्रमें ऐसे दिया है कि सौधर्मादिषु यथा-क्रमम् ॥३३॥ अर्थात् सौधर्मादिक (कल्पोंमें) क्रमानुसार परा (उत्कृष्ट) स्थिति कहेंगे ॥ सागरोपमे ॥३४॥ अर्थात सौधर्म कल्पके देवोंकी उत्कृष्ट स्थिति दो सागर प्रमाण है ॥ अधिके च ॥३५॥ अर्थात् और (=च) कुछ अधिक दो सागर प्रमाण ऐशान कल्पके देवोंकी स्थिति है। हमारे यहांके इस सूत्रके अर्थमें और श्वेताम्वर आम्नायके उक्त तीन सूत्रोंके तात्पर्यमें यह भेद हुआकि हमारे यहां सौधर्म स्वर्गके देवोंकी आयु कुछ अधिक दो सागर प्रमाण मानी है परन्तु श्वेताम्बर आम्नायमें केवल दो सागर है ऐशान स्वर्गके देवोंकी स्थिति दोनों आम्नायों में एकसी है अर्थात् दो सागरसे कुछ अधिकहै
(२) आङ् (=आ) अव्यय जब 'प्रगृह्य' (=व्याकरणमें स्वरसन्धि न होने योग्य पद जैसे आ एवं मन्यसे ओह तुम ऐसा मानते हो) नहो तब चार अर्थोंमें आता है (i) थोडा जैसे-आ+उष्णम्=ओष्णम्=थोडा तप्त (ii) जब क्रिया के प्रथम आता है तब निकटके अर्थमें और चलना, लैना, दैना इत्यादि क्रियापदोंके साथमें उक्त क्रियाओंके प्रतिकूल अर्थों का द्योतक होताहै जैसे गच्छति वह जाता है, आगच्छति वह=आता है दत्ते=वह देता है, आदत्ते वह लेता है ॥ (iii) मर्यादा (जो सीमा कहीजाय उसके बाहर बाहर) (iv) अभिविधि अर्थमें (जो सामा कही जाय उसको मिलाकर देखो प्रथम अध्याय पृष्ठ ७३ की टिप्पणी चार) जहां तक मेरा ज्ञान है उमास्वामीने इस चोथे अर्थमें सर्वत्र प्रयोग किया है देखो अध्याय १, सूत्र ३०, अध्याय २ सूत्र ४३, अध्याय ४ सूत्र ७, अध्याय ५ सूत्र ६, अध्याय ६ सूत्र १७, अध्याय ६ सूत्र २७, अध्याय १० सूत्र ५, इसी अर्थमें यहा 'आ सहस्रारात्' वाक्यमें पूज्यपाद स्वामीने प्रयोग किया है अर्थात् सागरो से 'कुछ अधिक' आयुका सम्बन्ध 'सहस्रार स्वर्गको समावेश, वा अन्तर्गत करते हुये है ॥

घातायुष्कसम्यग्दृष्ट्यपेक्षया किञ्चिदूनार्द्धसागरोपममधिकभवति सौधर्मकल्पात्सहस्रारपर्यन्तम् ॥ सम्मेघादेऊणसायरदलमहियमासहस्सारा इति वचनात् ॥

घात-आयुष्क सम्यग्दृष्टि-अपेक्षया[3]	=सम्यग्दृष्टि जीवकी विवक्षासे घातायुष्क अर्थात् पूर्व भवमें विशुद्ध परिणामोंसे बधीहुई आयुका पश्चात् संक्लेश परिणामोंसे घटिजाना अथवा न्यून होजाना
किञ्चित् ऊन अर्द्ध सागरोपमम्[1] अधिकम्[1]	=कुछन्यून (अर्थात् अन्तर्मुहूर्त बाकि) आधे सागर प्रमाण अधिक
सौधर्म कल्पात्[5] सहस्रारपर्यन्तम्[1] भवति	=सौधर्मस्वर्गसे सहस्रार तक (की पृथक् पृथक् नियमित स्थितिसे) होय है—(क्योंकि)

। इदं तु कुतोज्ञायते ? उत्तरत्र तुशब्दग्रहणात् । तेन सौधर्मैशानयोर्देवानां द्वे सागरोपमे सातिरेके प्रत्येतव्ये ॥ उत्तरयोः स्थितिविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

(१)आ*इदम्॥ तु*	=(प्रश्न) तौ (=तु) यह 'आ' अर्थात् 'आ' सहस्रारात् भावार्थ सहस्रार तक 'अधिके' का अधिकार है ॥
कुतः*ज्ञायते। उत्तरत्र*तुशब्दग्रहणात्॥	=क्योंकर जानाजाता है(उत्तर)यहांसे आगे (इकतीसवां सूत्रमें) 'तु' शब्दकेलानेसे
तेन॥सौधर्म-ऐशानयोः॥देवानाम्॥द्वे॥सागरोपमे॥	=तिससे सौधर्म ऐशान स्वर्गोमे देवोंके दो सागर प्रमाण
सातिरेके॥प्रत्येतव्ये॥	=अधिक सहित जानना चाहिये अर्थात् 'सौधर्मैशान'में दो सागरसे कुछअधिकहै
उत्तरयोः॥स्थिति-विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थम्॥आह।	=(सौधर्म-ऐशानसे)अगले दो (स्वर्गो)मे आयुका विशेष जाननेके लिये कहतेहैंकि

सम्मे॥घादे॥ऊण॥(=सम्यक्त्वे॥घाते॥ऊनम्॥)	=सम्यक्त्व (अवस्था) में घातायुष्क विषै (अन्तर्मुहूर्त)न्यून
सायर-दलम्॥अहियम्॥(=सागर दलम्॥अधिकम्॥)	=आधे (=दल) सागर (आयु प्रथम युगल से) अधिक
आ*सहस्सारा॥[आ*सहस्रारात्॥]इति*वचनात्॥	=सहस्रार तक(कीपृथक् पृथक् नियमित स्थितिसे) होतीहै। ऐसा(वाक्यउपर्युक्तआया)है

इस सबका भावार्थ यह है कि पूर्व भवमें किसी जीवने विशुद्ध परिणामोंसे आयु का वंध अधिक किया था, पश्चात् संक्लेश परिणामोंके वशसे आयु घटाय थोडी रक्खी तिस जीवको घातायुष्क कहिये। जैसे कोई मनुष्य ब्रह्म ब्रह्मोत्तर स्वर्गका आयु दश सागर प्रमाण वंध किया। फिर उसही मनुष्यभवमें सङ्क्लेश परिणामोंके वधनेसे आयुकी स्थितिका घात करके सौधर्म ऐशानमें जाय उपजा सो घातायुष्क है। सो अन्य देवोंकी अपेक्षा दो सागर प्रमाण आयुते अतर्मुहूर्त न्यून आधा सागर अधिक आयु पावै है ॥ आयु का घात दो प्रकार है एक अपवर्तन घात दूजा कदली घात तहां वध्यमान आयु का घटावना सो अपवर्तन घात है अर भुज्यमान आयुका घटावना कदली घात है। देवोंमें कदली घात संभव नहीं है ॥

[१] सर्वार्थसिद्धि वृत्तिकीद्वितीयावृत्तिमें और हस्तलिखित पुस्तकमें'आ'नहीं है, प्रथमावृत्तिमें'आ'है दोनों ही पाठ ठीक हैं क्योंकि इदम् आ और इदम् का वोही अर्थ है ॥ कैई सख्याओं (जैसे विंशति-त्रिंशत् चत्वारिंशत् इत्यादि) के अतिरिक्त विशेष्य और विशेषणके कारक, वचन, लिंग एकहीहोते है इसलिये 'इदम्' के साथ 'आ' की विभक्ति लिंग और वचन भी वही होना चाहिये। 'आ' अव्यय है और अव्यय वह शब्द है जो तीनों लिंग सातों विभक्ति और सब वचनोंमें विकार वा रूप की पलटन को प्राप्त न हो ॥ जैसा कि कहागया है कि 'सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु। वचनेषु च सर्वेषु यन्नव्येति तदव्ययम्'=जो[शब्द] समान तीन लिंगोंमें, और (=च) सब [सातों] विभक्तियोंमें और (=च) सब [तीनों) वचनोंमें विकारको प्राप्त नहीं होता है वह अव्यय है ॥

॥ सानत्कुमारमाहेन्द्रयोः सप्त ॥ ३० ॥

अनयोः कल्पयोर्देवानां सप्तसागरोपमाणि साधिकानि उत्कृष्टा स्थितिः ॥

ब्रह्मलोकादिष्वच्युतावसानेषु स्थितिविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ त्रिसप्तनवैकादशत्रयोदशपञ्चदशाभिरधिकानि तु ॥ ३१ ॥

सूत्रम्—सानत्कुमार माहेन्द्रयोः सप्त ॥३०॥ = सानत्कुमार-माहेन्द्रयोः सप्त-सागरोपमाणि (४ अध्याय-सूत्र २९ से)अधिकानि(४ अध्याय सूत्र-२९ से)परास्थितिः(४ अध्याय सूत्र२८से)भवति

(१)सानत्कुमार-माहेन्द्रयोः[३]।।सप्त[१]।।सागरोपमाणि[३]।।अधिकानि[१]।। परा[१]।।स्थितिः[१]।। =सानत्कुमार (तीसरे) और (माहेन्द्र (चौथे स्वर्गो) में सात सागर प्रमाण =और कुछ अधिक उत्कृष्ट आयु है ॥

वृत्त्यनुवादः—अनयोः[२]कल्पयोः[२]देवानाम्[३] =इन दो (सानत्कुमार और माहेन्द्र) स्वर्गों में देवों की

सप्त-सागरोपमाणि[३]।।साधिकानि[३]।।उत्कृष्टा[१]।।स्थितिः[१]।। =सात सागर प्रमाण अधिक सहित उत्कृष्ट आयु है(=सातसागरसेअधिकहै)

ब्रह्म-लोकादिपु[३]अच्युत-अवसानेपु[३]स्थिति-विशेप- =ब्रह्मलोकादिकमे (और)अच्युत (सोलहवां स्वर्ग)पर्यन्तविपै आयुकाविपेष

प्रतिपत्ति-अर्थम्[१]।।आह =जानने के लिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते है कि

(२)सूत्रम्—त्रिसप्तनवैकादशत्रयोदशपञ्चदशभिरधिकानि तु ॥ ३१ ॥

(यह सूत्र इतना सार गर्भित है कि बहुत सी अनुवृत्तियों अथवा अध्याहार द्वारा इसका अर्थ पूरा करनेके लिये पहिले पहिले इससूत्र के दो भाग करके अनुवाद शब्दशः करना पड़ा है, दूसरे यह कि भले प्रकार समझाने के लिये इस सूत्रकी (में) पूर्ण रूप से अनुवृत्तियों को लाकर और शब्दोंका अध्याहार करके छह सूत्रोंमे इस सूत्रको ढाल दिया है)

(२) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्र में "सप्तसानत्कुमारे" ॥३६॥ यह सूत्र है = सानत्कुमार कल्पके देवोंकी सात सागरप्रमाण उत्कृष्ट स्थिति है-हमारे यहां इस तीसवा सूत्रमें सानत्कुमार स्वर्गमें उत्कृष्ट आयु सात सागरसे कुछ अधिक है ॥ माहेन्द्र कल्पमें भी हमारे यहां उत्कृष्ट आयु सात सागर प्रमाणसे कुछ अधिक है। इतनी ही स्थिति माहेन्द्र स्वर्गमें श्वेताम्बरआम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रके ३७ वां

त्रि-सप्त-नव-एकादशभिः[3/3]।।।अधिकानि[1/3]।।। (३१ सूत्रसे[1])=तीन-सात-नौ-ग्यारह अधिक सहित (=अधिकानि इस ३१ वां सूत्र से)

सप्त[1/3]सागरोपमाणि[1/3](३०वांसूत्रसे)अधिकानि(२९वांसूत्रसे) =सात सागर प्रमाण और कुछ अधिक

परा[1/6]।।स्थितिः[1/6]'' (२८ वां सूत्रसे) [2]ब्रह्मब्रह्मोत्तर- =उत्कृष्ट स्थिति (यथासंख्य वा अनुक्रमसे) ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर

लान्तवकापिष्ठ-शुक्रमहाशुक्र-शतारसहस्रारेषु[3]। =लान्तव-कापिष्ठ, शुक्र महाशुक्र, शतार सहस्रार (स्वर्गों) मे है अर्थात् ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर पांचवें और छठवां स्वर्गोमे उत्कृष्टआयु कुछ अधिक (सात+तीन) दश सागर प्रमाण (प्रत्येकमें) है। लान्तव सातवां स्वर्ग कापिष्ठ आठवां कल्पमे उत्कर्ष आयु कुछ अधिक (सात+सात) चोदह सागर (प्रत्येकमे) है। शुक्र नववां स्वर्ग, महाशुक्र दशवां स्वर्गमें उत्कृष्ट स्थिति कुछ अधिक (नव+सात) सोलह सागर (प्रत्येकमे) है। शतार ग्यारहवां स्वर्ग सहस्रार वारहवां स्वर्गमें उत्कर्ष स्थिति कुछ अधिक (ग्यारह+सात) अठारह सागर प्रमाण प्रत्येक मे है। स्मरण रहे कि श्वेताम्बर आम्नायमें ब्रह्मोत्तर-कापिष्ठ-शुक्र और शतार ये चार स्वर्ग नहीं है उनके यहां केवल १२ स्वर्ग माने है हमारे यहां सोलह कल्प माने है ॥

[3]तु*त्रयोदश-पञ्चदशभिः[3/3]अधिकानि[1/3]।।।(३१वांसूत्रसे) =परन्तु(=तु)अर्थात् कुछअधिक स्थितिको छोड़कर तेरह पंद्रहकरि अधिक सहित

सप्त-सागरोपमाणि(३०वांसूत्रसे)परा[1/6]।।स्थितिः[1/6]।।(२८वांसूत्रसे)=सात सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति (यथासंख्य वा अनुक्रमसे)

सूत्रसे विदित है ॥ माहेन्द्र कल्पमें दोनों आम्नायके अनुकूल एकसी स्थिति उत्कृष्ट है अर्थात् सात सागरसे उत्कृष्ट स्थिति कुछ अधिक है ॥

(१) श्वेताम्बर आम्नायके 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र' में इससूत्रके स्थानमें ऐसा सूत्रहै''विशेषत्रिसप्तदशैकादशत्रयोदशपञ्चदशभिरधिकानिच''३७ हमारे यहांके इकतीसवा सूत्रसे इस सैंतीसवां सूत्रमे विशेष शब्द अधिक है नव के स्थान में दश है 'तु' के स्थानमें 'च' है। शेष पाठ दोनों सम्प्रदायों में एक है ॥ दोनों आम्नायोंके पूर्व सूत्रसे इस सूत्रमें 'सप्त' शब्द की अनुवृत्ति आती है। इसलिये 'विशेष' =विशेष+अधिकानि इसमें सप्त अनुवर्तं मानाको जोड़कर विशेष+अधिक+सप्त इतनी आयु अर्थात् सात सागरसे कुछ अधिक माहेन्द्र स्वर्गके देवोंकी है सो हमारेयहांकी आयुसेमिलती है॥

(२) ब्रह्मब्रह्मोत्तर-लान्तव-कापिष्ट-शुक्रमहाशुक्र शतार सहस्रारेषु ये शब्द (यह देखकर कि २९ वा सूत्रमें सौधर्मैशानयोः तथा ३० वां सूत्रमें सानत्कुमार माहेन्द्रयो इन स्वर्गोंके आचार्य ने नाम लिये हैं) अध्याहार किये गये हैं अथवा यों समझलाकि इस अध्यायके १९ वां सूत्र से 'ब्रह्म ब्रह्मोत्तर-लान्तव कापिष्ट-शुक्र महाशुक्र शतार सहस्रारेषु अनुवर्तत है ॥

(३) 'तु' शब्द अव्यय है, यहांपर परन्तु, किन्तु के अर्थात् भेद के अर्थमें प्रवर्तना है कभी वाक्यके पहिले नहीं आता है जिस अथवा जिन शब्दोंसे सम्बन्ध रखता है उसके अथवा उनके पश्चात् आता है जैसे यहा पर इस सूत्रके स्पष्टताके लिय मैंने 'तु' का उन शब्दोंसे (के) प्रथम रखदिया है जिनसे उसका सम्बन्ध है अर्थात् ऐसा अर्थ होता है कि सौधर्म स्वर्गसे सहस्रार तक उत्कृष्ट आयुसे कुछ अधिक आयु है आगे भेद (=तु) यह है कि पूरे पूरे सागरों की उत्कृष्ट स्थिति है 'स+अधिक' नहीं है ॥

आनत-प्राणत-आरण-अच्युतेषु॥ =आनत, प्राणत, आरण, अच्युत (स्वर्गों) में है अर्थात् आनत तेरहवांस्वर्ग, प्राणत चौदहवां स्वर्ग (प्रत्येक) में उत्कर्ष आयु(तेरह + सात)पूरे वीस सागरकी है और आरण पन्द्रहवां स्वर्ग अच्युत सोलहवां स्वर्ग (प्रत्येक) में उत्कृष्ट स्थिति (पंद्रह + सात) पूरे वाईस सागरकी है ॥ उपर्युक्तचारों स्वर्गोंमें पूरे पूरे सागरोंकी ही आयु है कुछ कुछ अधिक नहीं है इससे इस सूत्रमें 'तु' शब्द लाये हैं ॥

(अ) (ii) इस सूत्रको छह सूत्रोंमें विभाग करके अनुवृत्तियों और अध्याहारों द्वारा निम्न लेखसे अर्थको स्पष्ट करदिया है ॥

(१)त्रिभिः॥ अधिकानि॥ (इसी सूत्रसे) (२)सप्त॥ सागरोपमाणि॥ (२९और३०सूत्रोंसे)=तीनकरिअधिक सातसागर प्रमाणअर्थात्दशसागरप्रमाण स-[३]अधिकानि॥ (=सातिरेकानि सूत्र २९और वृत्ति सूत्र २९ से) परा॥ स्थितिः॥ =और कुछ अधिक (कुछ अतिरेक) उत्कृष्ट आयु ब्रह्म-ब्रह्मोत्तरयोः॥ कल्पयोः॥ भवति। =ब्रह्मलोक पांचवां स्वर्गमें औरब्रह्मोत्तर छठास्वर्गमेंहोतीहै सारांश ब्रह्मलोक और ब्रह्मोत्तर स्वर्गोंमें कुछ अधिक दश सागर उत्कृष्ट स्थिति है

(इ) सप्तभिः॥ अधिकानि॥ (इसी सूत्रसे) सप्त॥ सागरोपमाणि॥ (३०,२९सूत्रोंसे) =सातकरि अधिक सात सागर प्रमाण अर्थात्१४सागर स-अधिकानि॥ (=सातिरेकानि-सूत्र२९ और वृत्ति सूत्र २९ से) परा॥ स्थितिः॥ =औरकुछअधिकअर्थात्१४सागरसेभीकुछअधिकउत्कृष्टआयु लान्तव-कापिष्ठयोः॥ कल्पयोः॥ भवति। =लान्तवस्वर्ग और कापिष्ठ (प्रत्येक) कल्पमें होती है

(उ) नवभिः॥ अधिकानि॥ (इसीसूत्रसे) सप्त॥ सागरोपमाणि॥ (२९और३०सूत्रोंसे) =नौ करि अधिक सात सागर प्रमाण अर्थात्सोलहसागर स-अधिकानि॥ (=सातिरेकानि सूत्र२९औरवृत्ति सूत्र२९से) परा॥ स्थितिः॥ =कुछ अधिक (=स-अधिकानि) उत्कर्ष स्थिति शुक्र-महाशुक्रयोः॥ कल्पयोः॥ भवति। =शुक्र नौवां में और महाशुक्र दशवां स्वर्गमे है भावार्थ नवमा स्वर्गमें और दशवां स्वर्ग प्रत्येक मे सोलह सागर से कुछ अधिक स्थिति हैं॥

(१) त्रिभि॥ =त्रि-सागरोपमै॥ क्योंकि सागरोपम शब्द नपुंसक लिंगी है और संख्याओंमें चारतक गणनाओंका लिंगभी वही होता है जो उसके सम्बन्धवाली संज्ञा का होता है अतः 'त्रिभि.' को नपुंसक लिंगमें रक्खा है (२) सप्तभिः इत्यादि का त्रिलिंगी इस हेतुसे रक्खा है कि पांचसे उन्नीस तक संख्यायें विशेषण मानी जासकती हैं इन संख्याओंका वचन और कारक वही होताहै जो संज्ञाका परन्तु येसंख्यायें केवल बहुवचनमेंआती हैं और तीनों लिंगों में वही अर्थात् एकही रूप होता है ॥

(३) सर्वार्थसिद्धि वृत्तिके पृष्ठ,२५४में 'अधिके' शब्दजो सूत्रमें आयाहै उसकी वृत्ति पूज्यपादस्वामीने 'स अतिरेके' की है अतिरेकका अर्थ अधिकहै इसलिये सूत्र में अधिके=स-अधिके ॥

(ऋ) एकादशभिः[3] अधिकानि[1] ।।(इसीसूत्रसे) सप्त[1] सागरोपमाणि[1] ।।(२९,३०सूत्रोंसे) =ग्यारहकरिअधिक सातसागर प्रमाणअर्थात्अठारहसागर

स-अधिकानि[1] ।।(सातिरेकानि २९सूत्रऔर वृत्तिसूत्र २९से) परा[1] ।।स्थितिः[1] ।। =(और) कुछ अधिक (स-अधिकानि) उत्कृष्ट आयु

शतार-सहस्रारयोः[7] कल्पयोः[7] =शतार स्वर्गमें और सहस्रार (प्रत्येक) स्वर्गमें है

(ॠ) तु*त्रयोदशभिः[3] अधिकानि[1] ।। (इसी सूत्रसे) =किन्तु(पर)अर्थात्कुछअधिकस्थितिकेविनातेरहकरिअधिक

सप्त[1] सागरोपमाणि[1] ।। (२९ और३०सूत्रोंसे)परा[1] ।।स्थितिः[1] ।।(२८सूत्रदेखो) =सात सागर प्रमाण अर्थात् पूरे बीस सागर उत्कृष्ट आयु

आनत-प्राणतयोः[7] कल्पयोः[7] =आनत स्वर्ग और प्राणत (प्रत्येक) स्वर्गमें है

(ए) तु*पञ्चदशभिः[3] ।।अधिकानि[1] ।।(इसी सूत्रसे) =परन्तु(=तु)अर्थात्कुछअधिकस्थितिकेविनापंद्रहकरिअधिक

सप्त[1] सागरोपमाणि[1] ।। (३०और२९सूत्रोंसे)परा[1] ।।स्थितिः[1] ।।(टिप्पणीसूत्र२८) =सातसागर प्रमाण अर्थात् पूरे बाईस सागर,उत्कर्षस्थिति

आरण-अच्युतयोः[7] कल्पयोः[7] =आरण स्वर्ग और अच्युत स्वर्ग (प्रत्येक) मे है

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इकतीसवां सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिंदी अनुवाद

सौधर्म स्वर्गसे अच्युत स्वर्ग तक श्वेताम्बर और दिगम्बर आम्नायोंके देवोंकी समानता और अन्तरकी सूची निम्न प्रकार है ॥ देखो सभाष्य०

दिगम्बर आम्नायके स्वर्गोंके नाम और उनकी उत्कृष्ट स्थिति सहित ॥	श्वेताम्बर आम्नायके स्वर्गोंके नाम उन स्वर्गों की उत्कृष्ट आयुसहित
() दो सागर प्रमाणसे कुछअधिक उत्कृष्टआयु सौधर्मस्वर्गके देवोंकी है (सूत्र२९)	() सौधर्म कल्पके देवोंकी उत्कृष्ट आयु दो सागर प्रमाण है (सूत्र३४)
() कुछ अधिकदो सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति ऐशान स्वर्गके देवोंकी है (सूत्र२९)	() ऐशानस्वर्गके देवोंकी उत्कर्षस्थिति कुछअधिक दोसागरहै(सूत्र३५)
() कुछ अधिकसातसागर प्रमाणउत्कर्षआयु सानत्कुमारकल्पकेदेवोंकी है (सूत्र३०)	() सानत्कुमार स्वर्गके देवोंकी उत्कर्षआयु सात सागर है (सूत्र३६)
() कुछ अधिक सातसागर प्रमाण उत्कर्षआयु माहेन्द्र कल्पके देवोंकी है (सूत्र३०)	() माहेन्द्र कल्पकेदेवोंकी परास्थितिकुछअधिक सातसागरहै(सूत्र३७)
() कुछअधिकदशसागरोपमउत्कृष्टस्थितिब्रह्मलोकब्रह्मोत्तरस्वर्गकेदेवोंकीहै(सूत्र३१	() ब्रह्मलोक स्वर्गके देवोंकीउत्कृष्ट स्थिति दशसागरप्रमाणहै(सूत्र३७)
() कुछ अधिकचौदहसागरप्रमाण उत्कृष्टस्थितिलान्तव कापिष्ठ स्वर्गोंके देवोंकीहै	() लान्तक स्वर्गके देवोंकी उत्कर्षआयु चौदह सागरप्रमाणहै(सूत्र३७)
() कुछ अधिक सोलहसागर प्रमाण उत्कर्षआयु शुक्र महाशुक्रस्वर्गके देवोंकीहै ,,	() महाशुक्र कल्पके देवोंकी उत्कर्षआयु सत्रहसागर प्रमाणहै (सूत्र३७)
() कुछ अधिक अठारहसागरोपम उत्कृष्टस्थिति सतारसहस्रार स्वर्गोंकेदेवोंकीहै,,	() सहस्रार स्वर्गकेदेवोंकी परास्थिति अठारह सागरप्रमाणहै(सूत्र३७)
() आनत प्राणत कल्पोंके देवोंकी उत्कृष्ट आयु पूरेबीस सागर प्रमाण है (सूत्र३१)	() आनतप्राणतस्वर्गोंकेदेवोंकीउत्कृष्टआयुबीससागरप्रमाणहै(सूत्र३७)
() आरण अच्युतस्वर्गोंके देवोंकी उत्कर्षआयु पूरेबाईस सागर प्रमाण है (सूत्र३१)	()आरणअच्युतस्वर्गोंकेदेवोंकीपरास्थितिबाईससागरप्रमाणहै(सूत्र३७)

सप्तग्रहणं प्रकृतम् ।तस्येह त्र्यादिभिर्निर्दिष्टैरभिसम्बन्धो वेदितव्यः॥ सप्त त्रिभिरधिकानि, सप्त सप्तभिरधिकानीत्यादिद्वयोर्द्वयोरभिसम्बन्धो वेदितव्यः॥ तुशब्दो विशेषणार्थः॥ किं विशिनष्टि? अधिकशब्दोऽनुवर्तमानश्चतुर्भिरभिसम्बध्यते नोत्तराभ्यामित्ययमर्थो विशिष्यते॥ तेनायमर्थो भवति—ब्रह्मलोकब्रह्मोत्तरयोर्दशसागरोपमाणि साधिकानि॥ लान्तवकापिष्ठयोश्चतुर्दशसागरोपमाणि साधिकानि॥ शुक्रमहाशुक्रयोः षोडशसागरोपमाणि साधिकानि ॥ शतारसहस्रारयोरष्टादशसागरोपमाणि

सप्त-ग्रहणम्[1/1]। प्रकृतम्[1/1]।।	=(इस सूत्रमें पूर्व सूत्रसे) सात शब्दका ग्रहण अधिकृत अथवा प्रकरण रूप है
तस्य[6/1]। इह*त्रि-आदिभिः[3/3]। निर्दिष्टैः[3/3]। अभिसम्बन्धः[1/1]।	=तिस सप्तका यहां तीन आदिक कहीहुई संख्याओंसे सम्बन्ध
वेदितव्यः[1/1]। सप्त[1/3]।।। त्रिभिः[3/3]।।। अधिकानि[1/3]।।।	=जानना चाहिये । तीन करि अधिक सात अर्थात् दश,
सप्त[1/3]।।। सप्तभिः[3/3]।।। अधिकानि[1/3]।।।	=सातकरि-अधिक सात अर्थात् चौदह
इत्यादि[1/1]।।। द्वयोः[6/2]। द्वयोः[6/2]। अभिसम्बन्धः[1/1]। वेदितव्यः[1/1]।	=इत्यादिक, दो दो संख्याओं का मिलाउ वा जोड़ जानना योग्य है
तुशब्दः[1/1]। विशेषण-अर्थः[1/1]। किम्[1/1]।।। विशिनष्टि[1/1]।।। ?	=(इस सूत्रमें) तु शब्द भेदके (जनावनेके) लिये है प्रश्न क्या विशेषण है
अधिकशब्दः[1/1]। अनुवर्तमानः[1/1]।	=अधिक शब्द (विशेषण) है जिसकी अनुवृत्ति (२९वांसूत्रसेइससूत्रमेंभी) विद्यमानहै
चतुर्भिः[3/3]। अभिसम्बध्यते।	=(इस सूत्रकी) चार (संख्या त्रि-सप्त-नव-एकादश) से सम्बन्धकीजाती वा जोड़ीजातीहै
न-उत्तराभ्याम्[3/2]। इति*	=न अग्रिम दो (गणना वा संख्या त्रयोदश-पंचदश) से इस प्रकार
अयम्[1/1]। अर्थः[1/1]। विशिष्यते। तेन[3/1]। अयम्[1/1]। अर्थः[1/1]। भवति।	=यह अभिप्राय व्यक्त वा प्रगटकियाजाता है । तिस(अधिक शब्द)से यह अर्थहोताहैकि
ब्रह्मलोक-ब्रह्मोत्तरयोः[7/2]। दशसागरोपमाणि[1/3]।।।	=ब्रह्मलोक (पांचवा) ब्रह्मोत्तर (छठवां) स्वर्गोंमें दश सागर प्रमाण
स-अधिकानि[1/3]।।। लान्तव-कापिष्ठयोः[7/2]।	=कुछ अधिक (उत्कृष्ट स्थिति) है-लान्तव (सातवां) कापिष्ठ (आठवां) स्वर्गोंमें
चतुर्दश[1/3]।।। सागरोपमाणि[1/3]।।। स-अधिकानि[1/3]।।। शुक्र-	=चौदह सागर प्रमाण कुछ अधिक (उत्कर्ष आयु है) शुक्र (नवमां)
महाशुक्रयोः[7/2]। षोडश-सागरोपमाणि[1/3]।।। स-अधिकानि[1/3]।।।	=महाशुक्र (दशवां स्वर्गों) में सोलह सागर प्रमाण कुछ अधिक(उत्कृष्ट आयु) है
शतार-सहस्रारयोः[7/2]। अष्टादश-सागरोपमाणि[1/3]।।।	=शतार (ग्यारहवां) सहस्रार (बारहवां स्वर्ग मे) अठारह सागर प्रमाण

साधिकानि ॥ आनतप्राणतयोर्विंशतिसागरोपमाणि ॥ आरणाच्युतयोर्द्वाविंशतिसागरोपमाणि ॥

तत उर्ध्वं स्थितिविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ आरणाच्युतादूर्ध्वमेकैकेन नवसु ग्रैवेयकेषु विजयादिषु सर्वार्थसिद्धौ च ॥

स-अधिकानि॥ आनत-प्राणतयोः॥ =कुछ अधिक (उत्कृष्टआयु है) आनत (तेरहवां) प्राणत (चौदहवां स्वर्ग) में

विंशति-सागरोपमाणि॥ =वीस सागर प्रमाण अर्थात् कुछ अधिक विना, पूरे वीस सागर ही की (उत्कृष्ट आयु) है

आरण-अच्युतयोः द्वा-विंशति-सागरोपमाणि॥ =आरण (पन्द्रहवां) अच्युत (सोलहवां स्वर्ग) में बाईस सागर प्रमाण अर्थात् कुछ अधिक स्थितिके अतिरिक्त, पूरे बाईस सागर की उत्कृष्ट आयु है

ततः ऊर्ध्वम् स्थिति-विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थम्॥ आह =तिस (आठवां युगल) से ऊपर स्थिति विशेष जाननेके लिये (अगलेसूत्रमें) कहतेहैं कि

सूत्रम्[1] **आरणाच्युतादूर्ध्वमेकैकेन नवसु ग्रैवेयकेषु विजयादिषु सर्वार्थसिद्धौ**[3] **च ॥३२॥**

= आरणाच्युतादूर्ध्वमेकैकेन सागरोपमाणि (२९ वां सूत्रसे) अधिकानि (३१वां सूत्रसे) परा स्थितिः (२८वांसूत्रसे) ग्रैवेयकेषु नवसु[2] **अनुदिशेषु विजय-वैजयन्त-जयन्त-अपराजितेषु सर्वार्थसिद्धौ च**

(१) चूंकि तेतीसवा सूत्रमें 'अपरा' शब्द जघन्यके अर्थमें लाये हैं इसलिये यहां 'परा' शब्द का अध्याहार भी उत्कृष्ट अर्थमें होसकता है॥

(२) हमने इस बात पर कि 'ग्रैवेयकेषु' शब्दके पश्चात् 'नवसु' शब्द को क्यों रक्खा है पृष्ट ५३ में एक पूर्ण टिप्पणी देदी है क्योंकि उन्नीसवां सूत्रमें भी 'नवसु' शब्द इसी प्रकरणमें आया है यहां पर अधिक तर्क यह होसकता है कि इस सूत्रका रूप 'ग्रैवेयकेषु नवसु विजयादिषु' होजाता है और फिर बाह्य रूप से अर्थ यह होजाता है कि नव ग्रैवेयक है और नव विजयादिषु है इसका उत्तर यह है कि उन्नीसवां सूत्रमें 'विजयादिषु' शब्द न लाकर 'विजय वैजयन्त जयन्त अपरोजितेषु' वाक्य लाये हैं जिससे प्रगट होता है कि विजयादिषु नौ विमान नहीं हैं वरन् चार ही विजय-वैजयन्त जयन्त और अपराजित है॥

(३) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र में 'सवार्थसिद्धौ' के स्थानमें 'सर्वार्थसिद्धे' ऐसा पाठ है शेष पाठ एकसा है। अर्थ नवसु 'ग्रैवेयकेषु' तकएकसाहै हमारे यहांनव अनुदिशोंमें बत्तीससागरकी उत्कृष्ट आयु और विजयवैजयन्त, जयन्त और अपराजित प्रत्येकमें उत्कृष्ट आयुतेतीस तेतीस सागरकी है श्वेताम्बर आम्नायमें नवअनुदिश नहीं माने हैं वरन् तीन ऊपर की ग्रैवेयकनि में इक्यानवे विमान हमारे माने हैं और नौ अनुदिश पृथक माने हैं उनके यहां ग्रैवेयकनिके ९१ विमान न मानकर सौ विमान माने है अर्थात् नव अनुदिशोंको भी इन्ही विमानोंमें समावेश करदिया है इसलिये यहां विजय वैजयन्त जयन्त और अपराजित प्रत्येक विमानमें उत्कृष्ट आयु बत्तीस सागर मानी है और सर्वार्थसिद्धि में हमारे यहां और उनके यहां तेतीस सागर की आयु उत्कृष्ट मानी है सर्वार्थसिद्धमें दोनों आम्नायके अनुकूल जघन्य स्थिति नहीं है॥ देखो सभाष्य० पृष्ट ११८ सूत्र ४२)

सूत्रार्थः–आरण-अच्युतात्[५] ऊर्ध्वम्*एकैकेन[३]॥।	=आरण-अच्युत (युगल) से ऊपर एक एक करि
(सागरोपमाणि[१]॥) अधिकानि[१]॥ परा[१]॥ स्थितिः[१]॥	=(सागर प्रमाण) बढ़ती हुई उत्कृष्ट आयु
ग्रैवेयकेषु[७] नवसु[७] अनुदिशेषु[७]	=(क्रमसे प्रत्येक) नौग्रैवेयकविषैं और नौ अनुदिशोंमें
विजय-वैजयन्त-जयन्त-अपराजितेषु[७] सर्वार्थसिद्धौ[७]॥च*	=विजय-वैजयन्त-जयन्त-अपराजितमें है सर्वार्थसिद्धि में स्थिति उत्कृष्ट ही (=च) है जघन्य नहीं होती है अर्थात् नीचेके ग्रैवेयकत्रिकमें प्रथम ग्रैवेयकमें

सूत्रमें 'च' शब्द निश्चयके अर्थमें है अर्थात् च = ही ॥ आशय यह है कि जो नीचे नीचे में उत्कृष्ट स्थिति है वह ऊपर ऊपर में जघन्य जघन्य है जैसे नौ अनुदिशमें बत्तीस सागर की उत्कृष्ट स्थिति है वही विजयादिकमें जघन्य है परन्तु सर्वार्थसिद्धिमें एक उत्कृष्ट स्थिति ३३ सागरसे अधिक आयु नहीं होसकती जघन्यस्थिति दोनों आम्नायमें सर्वार्थसिद्धिमें नहीं हैं॥ विजय, वैजयन्त, जयत, अपराजित विमानोंमें भी उत्कृष्टआयु तेतीससागरहै

दिगम्बर आम्नायके कल्पातीतों के नाम स्थिति सहित	श्वेताम्बर आम्नायके कल्पातीतोंके नाम स्थिति सहित
() प्रत्येक नवग्रैवेयकमें क्रमसे अहमिंद्रोंकी उत्कृष्ट आयु २३, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ सागर प्रमाण है ॥आनत तेरहवां स्वर्गसे नवग्रैवेयक पर्यन्त दोनों आम्नायकी स्थितिमें भेदनहींहै	() प्रत्येक नवग्रैवेयकमें क्रमसे अहमिंद्रोंकी उत्कृष्ट आयु २३, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१, सागर प्रमाण है । आनत तेरहवां स्वर्गसे नवग्रैवेयक तक दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायोंकी उत्कृष्ट स्थिति वा जघन्य स्थितिमें अन्तर नहीं है
() नौ अनुदिशोंके प्रत्येक अहमिंद्रकी उत्कृष्ट स्थिति ३२ सागर है हमारे यहां ऊर्ध्वग्रैवेयकत्रिकमें ९१ विमान माने हैं और नौ अनुदिश ऐसे १०० विमान माने हैं	() श्वेताम्बर आम्नायमें नवअनुदिश नामसे विमान नहीं माने हैं पर तीन ऊपर की ग्रैवेयकत्रिकमें १०० विमानोंमें हमारे यहांके नौ अनुदिशोंको भी समावेश करलिया है (देखो अध्याय ४ पृष्ठ ४६)
() विजय वैजयन्त जयन्त-अपराजित चार विमानोंके अहमिंद्रोंमें से प्रत्येककी उत्कृष्ट आयु तेतीस सागर प्रमाण है	() विजय वैजयन्त जयन्त अपराजित चार विमानोंके अहमिंद्रोंमेंसे प्रत्येककी उत्कृष्ट आयु बत्तीस सागरोपम है (सभाष्यतत्त्वार्थाधिम सूत्र ३८ पृष्ट ११७)
() सर्वार्थसिद्धिके अहमिंद्रोंमें से प्रत्येककी उत्कृष्ट तथा जघन्यआयु तेतीस ही सागर प्रमाण है ॥	() सर्वार्थसिद्धिके अहमिंद्रोंमेंसे प्रत्येककी उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागर प्रमाण है (देखो सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्र' ३८, ४२ पृष्ठ ११७, ११८)

इस टिप्पणी से प्रगट है कि श्वेताम्बर आम्नायमें नव अनुदिश नहीं माने है परन्तु 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र' में 'परत: परत:' पूर्वापूर्वाऽनतरा जो ४२ वां सूत्रहै (हमारे यहां ३४वां है) वह इस बातका ज्ञापक है कि नवग्रैवेयकोंके और विजय वैजयन्त-जयन्त अपराजित विमानोंके मध्यमें कोई

तेईस सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति दूसरेमें चौबीस सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु, तीसरेमे पच्चीस सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु, वहुरि मध्य ग्रैवेयकत्रिकमे प्रथममें छव्वीस सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु, दूसरेमे सत्ताईस सागर प्रमाण परा स्थिति, तीसरेमे अट्ठाईस सागर प्रमाण परा स्थिति है और ऊपरके ग्रैवेयकत्रिकमें प्रथममें उनतीस सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति, दूसरेमे तीससागर प्रमाण परास्थिति, तीसरेमें इकतीस सागरप्रमाण परास्थितिहै

और विमानवासी है जिनकी उत्कृष्ट आयु बत्तीस सागर होसक्ती है। हम उसको यहांपर सस्कृत भाष्य, हिंदी अनुवाद और चरण टिप्पणी सहित सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र के पृष्ठ ११८ से शब्दशः उद्धृत करते है

॥ परत परतः पूर्वापूर्वाऽनन्तरा ॥ ४२ ॥

सूत्रार्थ —"माहेन्द्र कल्पके परे पूर्व अर्थात् पूर्व २ स्वर्गोंमें जो परास्थिति है वह पर २ में जघन्या अर्थात् अपरा स्थिति होती है ॥"

भाष्यम्—"माहेन्द्रात्परतः पूर्वा परानन्तरा जघन्यास्थितिर्भवति। तद्यथा-माहेन्द्रे परा स्थितिर्विशेषाधिकानि सप्त सागरोपमाणि सा ब्रह्मलोके जघन्या भवति। ब्रह्मलोके दश सागरोपमाणि परास्थिति. सा लान्तके जघन्या। एवमासर्वार्थसिद्धादिति। (विजयादिषु चतुर्षु परा स्थितिस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि सा त्वजघन्योत्कृष्टा सर्वार्थसिद्ध इति)"

विशेष व्याख्या—माहेन्द्र कल्पसे आगे पूर्व २ की जो परास्थिति है वह पर २ अर्थात् आगे २ के कल्पोंमें अपरा स्थिति होजाती है। जैसे माहेन्द्र कल्पमें परास्थिति विशेष अधिक सप्त सागरोपम है, वह ब्रह्मलोकमें अपरा अर्थात् जघन्या है। ऐसेही ब्रह्मलोकमे परा स्थिति दश सागरोपम है वह लान्तकमें जघन्या वा अपरा स्थिति है। इसी प्रकार पूर्व २ की परा स्थिति पर २ की जघन्या स्थिति सर्वार्थसिद्धि (१) पर्यन्त जाननी चाहिये। (२) (विजयआदि चार विमानों में परा स्थिति तेंतीस सागरोपम है, वह सर्वार्थसिद्धमें अजघन्योत्कृष्टा है।) ॥" चरणटिप्पणी (१) (२) सभाष्य०में ऐसेहैं कि "(१) यहां पर यह जानना उचित है कि विजय आदि चार विमानोंमें परास्थिति बत्तीस सागरोपम है और सर्वार्थसिद्धमें तेंतीस सागरोपम अजघन्योत्कृष्टा है, अर्थात् वहां एकही स्थिति है, परा अपरा भेद नहीं है। और भाष्यकार सर्वार्थसिद्धिमें भी जघन्या बत्तीस सागरोपम है ऐसा जो कहते हैं आसर्वार्थसिद्धात्-उसका अभिप्राय नहीं ज्ञात होता है। कदाचित् यहां आङ् (आ) मर्यादाबोधक हो अर्थात् सर्वार्थसिद्ध को छोडके "तेन विना मर्यादा तत्सहितोऽभिविधिः ॥"

"॥२॥ विजयादिककी परास्थिति तो बत्तीस की (३२) कही है यहां ३३ किस अभिप्राय से कहे यह नहीं जाना जाता। और कहीं २ कोष्ठका पाठ नहीं है क्योंकि अर्थ संगत नहीं है" आङ् मर्य्यादाभिविध्यो. अष्टाध्यायी २ । १ । १३ ॥ आङ् (=आ) जिसके प्रथम आवे तिसको छोड कर (तेनविना) मर्यादा अर्थमें आता है जैसे आपाटलिपुत्रात् वृष्टोः देव=पटना को छोड़कर मेह वरषा ॥ तिस सहित (=तत्सहित) अभिविध अर्थमें आता है=आ आकाशादेकद्रव्याणि=आकाशको लेते हुये वा आकाश को समावेश करते हुये एक एक द्रव्यें हैं ॥ अर्थात् धर्मद्रव्य,अधर्मद्रव्य औरआकाश ये एकर हैं।

अधिकग्रहणमनुवर्तते। तेनेहाभिसम्बन्धो वेदितव्यः। एकैकेनाधिकानीति ॥ नवग्रहणं किमर्थम्? प्रत्येकमेकैकमधिकमिति ज्ञापनार्थम् ॥ इतरथा हि ग्रैवेयकेष्वेकमेवाधिकं स्यात् ॥ विजयादिष्विति आदिशब्दस्य प्रकारार्थत्वादनुदिशानामपि ग्रहणम्॥ सर्वार्थसिद्धेःपृथग्ग्रहणं जघन्याभावप्रतिपादनार्थम्

तथा अनुदिश विमानविषैं बत्तीस सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु है विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित प्रत्येक विमान में उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागर है सर्वार्थसिद्धि विषैं तेतीस सागर ही स्थितिहै (-यहांजघन्य स्थितिनहींहैएक हीआयु है)

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित बत्तीसवां सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिंदी अनुवाद

अधिक-ग्रहणम्॥ अनुवर्तते। =(इस सूत्रमें) अधिक शब्दका उपादान (पिछले ३१ वां सूत्रसे) प्रवर्तता है

तेन॥ इह*अभिसम्बन्धः॥ वेदितव्यः॥ एक-एकेन॥ =तिस (अधिक शब्दके ग्रहण) से इह सम्बन्ध जानना चाहिये (कि) एक एक

अधिकानि॥ इति*नव-ग्रहणम्॥ किम्॥ अर्थम्॥ =(सागर प्रमाण)करि अधिक है(प्रश्न)(इस सूत्रमें) नौ(शब्द)काग्रहणकिसलियेहै

प्रत्येकम्॥ एकैकम्॥ अधिकम्॥ इति ज्ञापन-अर्थम्॥ =(उत्तर) पृथक् पृथक् (ग्रैवेयकमे) एकएक सागर बढ़ती(आयु)ऐसाजाननेकेलियेहै

इतरथा*हि*ग्रैवेयकेषु॥ एकम्॥ एव* =क्योंकि (=हि) अन्यथा (सर्व) ग्रैवेयकोमें एक (सागर प्रमाण) ही (स्थिति)

अधिकम्॥ स्यात्। =अधिक होती अर्थात् सब नव ग्रैवेयको की स्थिति तेईस सागर होती किसी की भी अधिक नही होती इसलिये इससूत्रमें नव शब्दका ग्रहण है

विजय-आदिषु॥ इति*आदिशब्दस्य॥ प्रकार-अर्थत्वात्॥ =विजय-आदिकमें ऐसे आदि शब्दके प्रकारार्थ होनेसे

अनुदिशानाम्॥ अपि*ग्रहणम्॥ सर्वार्थसिद्धेः॥ =अनुदिशोंका भी ग्रहण हुआ। सर्वार्थसिद्धि का (इस सूत्रमें)

पृथग्-गृहणम्॥ जघन्य-अभाव-प्रतिपादन-अर्थम्॥ =भिन्न ग्रहण (वहां) जघन्य (स्थिति) का न होना जनावनेके लियेहै अर्थात् विजय-वैजयन्त-जयन्त-अपराजित-और सर्वार्थसिद्धि इन पांचो विमानों का

जब एकही पटल है और सर्वमें उत्कृष्ट आयु तेतीस सागर प्रमाण है तौसूत्रमें 'सर्वार्थसिद्धौ' ऐसा पृथक् वाक्य क्योंलाये औरभिन्न विभक्ति क्योंकी "विजयादिषु" इसमें गर्भित क्यों न रक्खा इसका कारण यह है कि अन्य चार विमानोंमें तो जघन्य स्थिति बत्तीस सागर प्रमाण है और उत्कृष्ट तेतीस सागर प्रमाण है परन्तु सर्वार्थसिद्धिमेकेवल उत्कृष्टही स्थितिहैजघन्य नहीइससे इसको पृथक् लायेऔरसप्तमीविभक्तिमें लायेहैं ॥

तेनायमर्थः, अधोग्रैवेयकेषु प्रथमे त्रयोविंशतिः । द्वितीये चतुर्विंशतिः ॥ तृतीये पञ्चविंशतिः ॥ मध्यमग्रैवेयकेषु प्रथमे षड्विंशतिः ॥ द्वितीये सप्तविंसतिः ॥ तृतीयेऽष्टाविंशतिः ॥ उपरिमग्रैवेयकेषु प्रथमे एकोनत्रिंशत् ॥ द्वितीये त्रिंशत् ॥ तृतीये एकत्रिंशत् ॥ अनुदिशविमानेषु द्वात्रिंशत् ॥ विजयादिषु त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाण्युत्कृष्टा स्थितिः । सर्वार्थसिद्धेस्त्रयस्त्रिंशदेवेति ॥ निर्दिष्टोत्कृष्ट-स्थितिकेषु देवेषु जघन्यस्थितिप्रतिपादनार्थमाह—

तेन ।। अयम् ।। अर्थः ।। अध*(१)ग्रैवेयकेषु ।	=तिस (नवशब्दके ग्रहण) से यह अर्थ होता है कि नीचले ग्रैवेयक त्रिकमें
प्रथमे । त्रयोविंशतिः ।। द्वितीये । चतुर्विंशतिः ।।	=पहिलेमें तेईस(सागरप्रमाणउत्कृष्टस्थिति)है । दूसरेमें चौवीस(सागरप्रमाणउत्कृष्टआयु)है।
तृतीये । पञ्चविंशतिः ।। मध्यम-ग्रैवेयकेषु ।	=तीसरेमे पचीस (सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति) है । मध्यग्रैवेयकत्रिकमें
प्रथमे । षड्-विंशतिः ।। द्वितीये ।	=प्रथममें छव्वीस (सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु) है । दूसरेमें
सप्तविंशतिः ।। तृतीये । अष्टाविंशतिः ।।	=सत्ताईस (सागरप्रमाणउत्कृष्ट आयु)है। तीसरेमें अट्ठाईस (सागरप्रमाणउत्कृष्टस्थिति)है।
उपरिम*ग्रैवेयकेषु । प्रथमे । एकोनत्रिंशत् ।	=ऊपरके ग्रैवेयक त्रिकमें प्रथममें उनतीस (सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु) है ।
द्वितीये । त्रिंशत् । तृतीये ।	=दूसरेमें तीस (सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु) है । तीसरेमें
एकत्रिंशत् । अनुदिश-विमानेषु ।	=इकतीस (सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति) है । अनुदिश विमानोंमें
द्वा-त्रिंशत् । विजय-आदिषु ।	=वत्तीस (सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु) है । विजय-वैजयन्त-जयन्त-अपराजितमें
त्रयस्त्रिंशत् । सागरोपमाणि ।। उत्कृष्टा ।। स्थितिः ।।	=तेतीस सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु है ।
सर्वार्थसिद्धे ।। त्रयस्त्रिंशत् । एव*इति*	=सर्वार्थसिद्धिमे तेतीस ही (सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति) है (जघन्यस्थिति नहीहोती है)
निर्दिष्ट-उत्कृष्ट स्थितिकेषु । देवेषु ।	=वर्णित उत्कर्ष स्थिति वाले देवोंमें
जघन्य-स्थिति-प्रतिपादन-अर्थम् ।। आह ।	=जघन्य आयुके कहने के लिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

(१) यहां शंकाकारका कहना है कि सूत्रमें नवसु ग्रैवेयकेषु विजयादिषु इस रूपसे पृथक् पृथक् उल्लेख क्यों किया है नवग्रैवेयक विजयादिषु ऐसा समासांतपद कहना चाहिये था । ऐसा मानने में दो अक्षरों का लाघव भी होता । (उत्तर) ग्रैवेयकोंसे विजयादि विमानोंका जो पृथक् रूपसे ग्रहण कियागया है वह नौ अनुदिश विमानोंके संग्रहके लिये है यदि 'नवग्रैवेयक विजयादिषु' ऐसा उल्लेख करते तो नव अनुदिशी विमानोंका ग्रहण नहीं होता वे कथन करनेसे रहजाते हैं ॥

॥ अपरा पल्योपममधिकम् ॥ ३३ ॥

पल्योपमं व्याख्यातम् । अपरा जघन्यस्थितिः ॥ पल्योपमं साधिकम् ॥ केषां ? सौधर्मैशानीयानाम् ॥ कथं गम्यते परतः परत इत्युत्तरत्र वक्ष्यमाणत्वात् ॥

तत ऊर्ध्वं जघन्यस्थितिप्रतिपादनार्थमाह—

(१)सूत्रम्—अपरापल्योपममधिकम्॥३३॥ = (सौधर्मैशानयोः २९वां सूत्रसे) अपरा (स्थितिः २८वां सूत्रसे) पल्योपमम् अधिकम् भवति ॥ ३३ ॥

सूत्रार्थः—सौधर्म-ऐशानयोः॥अपरा॥स्थितिः॥ पल्योपमम्॥अधिकम्॥भवति। =सौधर्म-ऐशान प्रत्येक स्वर्गमें जघन्य आयु =कुछ अधिक पल्य प्रमाण है

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इसतेतीसवां सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशःहिंदी अनुवाद

पल्य-उपमम्॥व्याख्यातम्॥ =पल्यका प्रमाण (तीसरे अध्याय के ३८ वां सूत्रमें) कहा जा चुका है

अपरा॥जघन्य-स्थितिः॥पल्योपमम्॥स-अधिकम्॥ =अपरा है सो निकृष्ट स्थिति है (सो) कुछ अधिक पल्य प्रमाण है

केषाम्॥? =(प्रश्न) किनकी (जघन्य आयु कुछ अधिक पल्य प्रमाण) है

सौधर्म-ऐशानीयानाम्॥ =(उत्तर) सौधर्म-ऐशानके देवोंकी निकृष्ट स्थिति कुछ अधिक पल्य प्रमाण है

कथम्*गम्यते। परतः*परतः*इति*उत्तरत्र* वक्ष्यमाणत्वात्॥ =(प्रश्न)कैसे जाना जाय है ॥ [उत्तर] अगले अगलेमें ऐसा यहांसे अग्रिम [सूत्रमें] =कहेजानेसे सौधर्मऐशान स्वर्गोंमें जघन्य स्थितिकुछअधिक पल्य प्रमाणजानीजाती है

ततः*ऊर्ध्वम्॥जघन्य-स्थिति-प्रतिपादन-अर्थम्॥आह। =वहां [सौधर्म ऐशान युगल] से ऊपर निकृष्ट आयुके कहनेके लिये कहतेहैं कि

(१) श्वेताम्बर आम्नायमें 'अपरा पल्योपममधिकम् च' पाठ है अर्थात् हमारे यहांसे च अधिक है और सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रके पृष्ठ ११७ पर यह भाष्य है कि तत्र सौधर्मेऽपरा स्थितिः पल्योपममैशाने पल्योपममधिक च "=तहां सौधर्म (स्वर्ग) में जघन्य आयु पल्यप्रमाण है (और) ऐशान (स्वर्ग) में पल्य प्रमाण तथा कुछ अधिक है। हमारे यहां सौधर्म ऐशान प्रत्येकमें एक पल्यसे कुछअधिक निकृष्ट आयुहै यही अर्थभेद दोनोंआम्नायोंमेंहै

परतः परतः पूर्वा पूर्वा ऽनन्तरा ॥ ३४ ॥

=पूर्वा पूर्वा ऽनन्तरा परतः परतः ॥३४॥

सूत्रम्—परतः परतः पूर्वा पूर्वा ऽनन्तरा ॥३४॥ परतः[3] परतः(अपरा ३३वां सूत्रसे)(स्थितिः २८वां सूत्रसे)भवति =पूर्वा पूर्वा[2] ऽनन्तरा(साधिका ३३वां सूत्रसे)([1]परास्थितिः २८वां सूत्रसे)[4]

(१)अट्ठाईसवां सूत्रमें भवनवासी देवोंकी उत्कृष्ट स्थिति वा आयुका वर्णन है उनतीसवां सूत्रसे बत्तीसवां तक चार सूत्रोंमें समस्त कल्पवासी और कल्पातीत अहमिंद्रोंकी उत्कृष्ट आयुका उल्लेख है। तेतीसवां सूत्रसे अडतीसवां सूत्र तक और ४१वां सूत्रमें भी कल्पवासी देव कल्पातीत अहमिन्द्र (सर्वार्थसिद्धि को छोडकर जहां उत्कृष्ट जघन्य तेतीस सागरकी एकही स्थिति है) नारकियों, भवनवासी, और व्यतर देवोंकी जघन्य आयु का प्रकरण है॥ इस सूत्रमें कुछ अधिक=अधिका=साधिकाकी अनुवृत्ति३३वां सूत्रसे आतीहै जैसाकि ३४वां सूत्रकी वृत्तिमें अधिक ग्रहणमनुवर्तते और तीन स्थानोंमें साधिका वाक्योंके प्रयोगसे प्रगट है नकि उक्त अनुवर्तन उनतीसवां सूत्रसे है क्योंकि वहां उनतीसवां सूत्रमें उत्कृष्ट आयुका कथन है।

(२) पूर्वा पूर्वा और अनन्तरा शब्द प्रथमा विभक्ति एक वचन स्त्रीलिंग हैं और स्थितिः शब्द जो प्रथमा विभक्ति एक वचन स्त्रीलिंग में है उसके विशेषण हैं नकि स्वर्ग, कल्प वा युगल इत्यादि के (३)पर अर्थात् अगले देशमें जो रहे उसको 'परतः कहते हैं 'परतः परतः' यहां पर वीप्सा वा अनेकता अर्थमें द्वित्व(=दोवार)है 'पूर्वा पूर्वा'यहां पर भी वीप्साअर्थमें द्वित्व है॥(४)श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें हमारे यहांके ३३वां और ३४वां सूत्रके मध्यमें उनके यहांका ४०वां सूत्र सागरोपमे=सानत्कुमार कल्पमें जघन्य स्थिति दो सागर प्रमाण है और ४१वां सूत्र अधिकेच=माहेन्द्र स्वर्गमें जघन्य स्थिति कुछ अधिक दो सागर प्रमाण बढती वा अधिक है। इन ४०वां, वा ४१वां सूत्रोंके पश्चात् उनके यहां का ४२वां सूत्र 'परत. परतः पूर्वा पूर्वाऽनन्तरा हमारे यहांके उपर्युक्त ३४वां सूत्रके पाठसे अक्षरश मिलता है परन्तु तात्पर्यमें अन्तर यह है कि सभाष्य-तत्त्वार्थाधिगम सूत्रके अनुसार इस सूत्रसे ब्रह्मलोककी जघन्य स्थिति का आरम्भ होता है और सर्वार्थ सिद्धिकी स्थिति तकका वर्णन है हमारे यहांके अनुकूल इस सूत्रसे सानत्कुमार माहेन्द्र युगल की जघन्य स्थिति का प्रारम्भ होता है और विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित विमानोंतककी जघन्य आयुका कथन है। दोनों अम्नायोंके अनुकूल सर्वार्थ सिद्धिमें एक तेतीस सागरकी अजघन्योत्कृष्टा स्थिति है यहां पर परा अपरा स्थितिका भेद नहीं है(सभाष्य० पृष्ठ ११७,११८)इसलिये हमारे यहां सौधर्म ऐशान दोनो स्वर्गोंकी जघन्य स्थिति दो पल्य प्रमाणसे प्रत्येकमें कुछ अधिक है। श्वेताम्बर आम्नायके अनुसार सौधर्म स्वर्गमें जहां पर स्थिति एक पल्य प्रमाण है ऐशान स्वर्ग में एक पल्यसे निकृष्ट स्थिति कुछ अधिक है (सभाष्य सूत्र ३६)वैसेही हमारे यहां सानत्कुमार माहेन्द्र प्रत्येक स्वर्गमें जघन्यस्थिति दोसागर प्रमाणसे कुछ अधिक है उनके यहां सानत्कुमार स्वर्गमें दोसागर प्रमाण जघन्य स्थिति है और माहेन्द्र कल्पमें अपरा स्थिति दो सागरसे कुछ अधिक है। जो टिप्पणी हमने पृष्ठ १०१, १०४, १०५, में उत्कृष्ट स्थितिके सम्बन्धमें दी हैं उनसे यद्यपि जघन्य स्थिति का भेद निकल आता है तो भी सरलताके लिए निम्न टिप्पणी भी देते हैं॥

दिगम्बर आम्नायकी सौधर्मस्वर्गसे सर्वार्थसिद्धि तक जघन्य आयु	श्वेताम्बर आम्नायकी सौधर्मस्वर्गसे सर्वार्थसिद्धि तक जघन्य स्थिति
() सौधर्म और ऐशान स्वर्गो की देवों की जघन्य स्थिति एक पल्य से कुछ अधिक है(देखो सूत्र३३)	() सौधर्मस्वर्गमें जघन्य आयु एक पल्य है और ऐशानस्वर्गमें एक पल्यसे कुछ अधिक है (देखो सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रमें सूत्र ३६)

() सानत्कुमार माहेन्द्र स्वर्गोंके (प्रत्येकके)देवों की जघन्य आयु दो सागर से कुछ अधिक है (देखो सूत्र २९,३४)

() ब्रह्म ब्रह्मोत्तर(प्रत्येक)स्वर्गके देवोंकी अपरा स्थिति सात सागरसे कुछ अधिक है (देखो सूत्र ३०, ३४)

() लांतव—कापिष्ठ (प्रत्येक) स्वर्गके देवों की निकृष्ट आयु दश सागरसे कुछ अधिक है (देखो सूत्र ३१, ३४)

() शुक्र—महाशुक्र (प्रत्येक)स्वर्गके देवोंकी जघन्य स्थिति चौदह सागरसे कुछ अधिक है (देखो सूत्र ३१, ३४)

() शतार-सहस्रार (प्रत्येक) कल्पके देवोंकी अपरा आयु सोलह सागर से कुछ अधिक है (देखो सूत्र ३१, ३४)

() आनत—प्राणत(प्रत्येक) स्वर्गके देवोंकी निकृष्ट स्थिति पूरे अठारह सागर है (देखो सूत्र ३१,३४)

() आरण—अच्युत (प्रत्येक) कल्पके देवोंकी जघन्य आयु पूरे बीस सागर प्रमाण है (देखो सूत्र ३१, ३४)

() प्रत्येक नव ग्रैवेयकमें क्रमसे एक एक वृद्धिको प्राप्त बाईस सागर से ३० सागर तक जघन्य स्थिति है (देखो सूत्र ३२,३४)

() नव अनुदिश जिनका एक पटल है जघन्य स्थिति ३१ सागर है (देखो सूत्र ३२, ३४)

() विजय—वैजयन्त—जयन्त—अपराजितमें (प्रत्येकमें) जघन्य आयु ३२ सागर है (देखो सूत्र ३२,३४)

() सर्वार्थसिद्धिमें जघन्योत्कृष्ट एकही स्थिति तेतीससागर प्रमाणहै

() सानत्कुमार में जघन्य स्थिति दो सागर है (सभाष्य० सूत्र ४०)माहेन्द्रमें दो सागर से अधिक है (देखो सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें सूत्र४१)

() ब्रह्मलोक (ब्रह्मोत्तर स्वर्ग सभाष्य० सूत्रमें नहीं है) में सात सागर से कुछ अधिक है (देखो सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें सूत्र ४२)

() लांतक (कापिष्ठ सभाष्य०सूत्रमें नहीं माना है)में जघन्य स्थिति दश सागर है (देखो सभाष्य तत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें सूत्र४२)

() महाशुक्र कल्प (शुक्र कल्प सभाष्य०सूत्र में नहीं है)में जघन्य स्थिति चौदह सागर है (देखो सभाष्य तत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें सूत्र४२)

() सहस्रार स्वर्ग (शतार सभाष्य०में नहीं माना है)में जघन्य आयु सोलहसागर है (देखो सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें सूत्र४२)

() आनत प्राणत स्वर्गोंमें वही जघन्य स्थितिहै जो हमारे यहां है (सभाष्य०सूत्र ३७, ४२)

() आरण अच्युत स्वर्गोंमें वही स्थितिहै जो हमारे यहां है(सभाष्य०सूत्र३७ ४२)

[] सभाष्य० के सूत्र ३८, ४२, से वही जघन्य स्थिति श्वेताम्बर आम्नाय में है

[] नव अनुदिश नहीं माने है इस लिये जघन्य और पृकृष्ट कोई स्थिति नहीं हो सकती है।

[] विजय—वैजयन्त—जयन्त-अपराजित में सभाष्य० के आरणाच्युत इत्यादि ३८वां सूत्र को परत परत पूर्वा पूर्वाऽनन्तरा' ४२वां सूत्रके साथ पढने से यह बात निकलती है कि प्रत्येक उक्त चार विमानों में जघन्य आयु ३१ सागर है क्योंकि अनुदिश नहीं माने हैं परन्तु ४२ सूत्रके कोष्ठकका पाठ कि विजयादि चार विमानोंमें परास्थिति तेतीस सागर है इस बात का ज्ञापक है कि जघन्य आयु ३२ सागर है क्योंकि विजयादिक की उत्कृष्ट स्थिति ३८,४२ सूत्रमें बतीस सागर है ४२वां सूत्रके कोष्ठकमें ३३ सागर है

[] सर्वार्थसिद्धिमें जघन्योत्कृष्ठ एक ही आयु तेतीस सागर है।

परस्मिन्देशे परतः । वीप्सायां द्वित्वम् । पूर्वशब्दस्याप्यधिकग्रहणमनुवर्तते ॥ तेनैवमभिसम्बन्धः क्रियते-सौधर्मैशानयोर्द्वे सागरोपमे साधिके उक्ते, ते साधिके सानत्कुमारमाहेन्द्रयोर्जघन्यस्थितिः ॥ सानत्कुमारमाहेन्द्रयोः

सूत्रार्थः-पूर्वा॰ पूर्वा॰ अनन्तरा॰ साधिका॰ परा॰ स्थितिः॰ =पहिली पहिली अत्यन्त निकट (=अनन्तरा)कुछ अधिक सहित, उत्कृष्ट स्थिति

परतः* परतः* अपरा॰ स्थितिः॰ भवतिT =अगले अगलेमें वा ऊपर ऊपरमें (=परतःपरतः) जघन्य स्थिति होती है अर्थात् सर्वार्थसिद्धिको छोड़कर जहां जघन्य और उत्कृष्ट एक स्थिति तेतीस सागरकी ही है । वैमानिकदेवोंमें नीचे नीचे युगलोंमें जो उत्कृष्ट आयु है वही ऊपर ऊपर क्रमसे निकृष्ट स्थिति है जैसे सौधर्म ऐशान प्रत्येक स्वर्गमें कुछ अधिक दोसागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु है वही सानत्कुमार माहेन्द्र युगलमें जघन्य है॥

वृत्त्यनुवादः—परस्मिन्॰ देशे॰ 'परतः'* =उत्तर ऊपर वा अगले स्थानमें जो रहै (वा हो) सो 'परतः' है

वीप्सायाम्॰ द्वित्वम्॰॥ =अनेकता वा वार वारके (अर्थ)में दोवार (=द्वित्व) (इस सूत्रमें परतः और पूर्वा प्रत्येक शब्द लाये)हैं अर्थात् इस सूत्रमें'परतः परतः'दोवार लानेसे और 'पूर्वा पूर्वा'भी दोवार लानेसे बहुतवार अनेकवारके अर्थमें दोनोंही शब्दोंका प्रयोग सूत्रमें जानना चाहिये ।

पूर्वशब्दस्य॰ अपि*अधिक-ग्रहणम्॰॥ अनुवर्ततेT =(इस सूत्रमें) 'पूर्व' शब्दके भी (=अपि) (तेतीसवां सूत्रसे) 'अधिक' शब्दका आदान आता है अर्थात् नीचले नीचले कल्प युगलोंमें जो उत्कृष्ट स्थिति सागर प्रमाणोंसे कुछ अधिक है वह ऊपर ऊपरके शतारसहस्रार युगलों तक जघन्य स्थिति उतने सागर प्रमाण है और कुछ अधिक भी है परन्तु आनत प्राणत सातवां युगलमें पूरे वीस सागरकी आयु है और आरण अच्युत आठवां युगलमें वाईस सागरकी पूरी स्थिति है ।

तेन॰॥ एवम्*अभिसम्बन्धः॰ क्रियतेT =तिस (अधिक ग्रहण) करि इसप्रकार सम्बन्ध किया जाता है कि

सौधर्म-ऐशानयोः॰द्वे॰॥सागरोपमे॰॥स-अधिके॰॥ उक्ते॰॥ =सौधर्म ऐशान स्वर्गोंमें दो सागर प्रमाण कुछ अधिक (स्थिति) कही

ते॰॥स-अधिके॰॥सानत्कुतार-माहेन्द्रयोः॰ =वे(दो सागर प्रमाण स्थिति)किंचित् अधिक (स्थिति)सानत्कुमारमाहेंद्रमें

जघन्यस्थितिः॰॥सानत्कुमार-माहेंद्रयोः॰ =निकृष्ट आयु है । सानत्कुमार माहेन्द्र (युगल) मे

परा स्थितिः सप्तसागरोपमाणि साधिकानि, तानि ब्रह्मब्रह्मोत्तरयोर्जघन्या स्थितिरित्यादि ॥

नारकाणामुत्कृष्टा स्थितिरुक्ता । जघन्यां सूत्रेऽनुपात्तामप्रकृतामपि लघुनोपायेन प्रतिपादयितुमिच्छन्नाह

नारकाणां च द्वितीयादिषु॥३५॥

परा॥ स्थितिः॥ स-अधिकानि॥	=उत्कृष्ट आयु कुछ अधिक
सप्त-सागरोपमाणि॥ तानि॥ ब्रह्म-ब्रह्मोत्तरयोः॥	=सात सागर प्रमाण हैं वे (सात सागर और कुछ अधिक) ब्रह्म-ब्रह्मोत्तरमें
जघन्या॥ स्थितिः॥ । इति-आदि॥	=निकृष्ट स्थिति है । ऐसेही आगे आगे है अर्थात सागरोंसे कुछ अधिक है यह अधिकता बारहवा सहस्रार स्वर्गतक है । आनत प्राणत स्वर्गोंसे आगे पूरेपूरे सागरोंकी आयुहै नीचली नीचली उत्कृष्ट स्थिति ऊपर ऊपर विजयादिक तक जघन्य जघन्य है ॥
नारकाणाम्॥ उत्कृष्टा॥ स्थितिः॥ उक्ता॥ सूत्रे॥	=नारकियोंकी प्रकृष्ट आयु(तीसरे अध्यायके छठवां सूत्रमें)कही । (इस) सूत्रमें
अनुपात्ताम्॥ अप्रकृताम्॥ अपि॥ जघन्याम्॥	=अप्राप्त(=अनुपात्ताम्) और अनधिकृत (नारकियोंकी) जघन्य (स्थिति) भी
लघुना॥ उपायेन॥ प्रतिपादयितुम्० इच्छन्॥ आह॥	=लघु साधन द्वारा अर्थात् थोड़े अक्षरों द्वारा कहनेको इच्छुक (आगे दो सूत्रमें) कहतेहैं अर्थात् नारकियोंकी उत्कृष्ट स्थिति तो तीसरे अध्यायके छठवां सूत्रमें कहदी और यहां वैमानिकोंकी स्थितिका उल्लेख किया है इसलिये नारकियोंकी जघन्यस्थितिकहने का कोई अवसर प्राप्त नहीं है और न नारकियोंका कथनका कोई प्रकरण वा विषयही है तौ भी आचार्यकी इच्छा नारकियोंकी जघन्य स्थिति वर्णन करनेकी इस हेतुसे है कि अल्प शब्दोंमेंही इस सूत्रकी अनुवृत्ति लेनेमें अभीष्ट स्थिति कही जासकती है ॥

(२)सूत्रम्—नारकाणां च द्वितीयादिषु = नारकाणाम् च द्वितीयादिषु (भूमिषु(१) अध्याय३ सूत्र १ से) पूर्वा पूर्वाऽनन्तरा परा स्थितिः परतः परतः अपरा स्थितिः भवति

(१)'भूमिषु' इस शब्दकी अनुवृत्ति तीसरे अध्यायके पहिले सूत्रसे लीगई है क्योंकि इस स्थितिका यहां विषय न था वरन तीसरे अध्यायके छठवां सूत्रके पश्चात् था,वहां लघु अक्षरोंमें यह स्थिति नहीं कही जासकती थी इस हेतुसे यहां कहीगई है तीसरा अध्याय सूत्र १से यह 'भूमिषु' शब्द अनुवर्तता है। चकारसे सबका सब सूत्र ३४वां कोअनुवृत्ति आती है।(२) श्वेताम्बर और दिगंबर आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है॥

चशब्दः किमर्थः ? । प्रकृतसमुच्चयार्थः ॥ किं च प्रकृतं ? । परतः परतः पूर्वा पूर्वाऽनन्तरा अपरा स्थितिरिति ॥ तेनायमर्थो लभ्यते—रत्नप्रभायां नारकाणां परास्थितिरेकं सागरोपमम् । सा शर्कराप्रभायां जघन्या । शर्कराप्रभायामुत्कृष्टा स्थितिस्त्रीणि सागरोपमाणि । सा वालुकाप्रभायां जघन्येत्यादि ॥ एवं द्वितीयादिषु जघन्या स्थितिरुक्ता ॥ प्रथमायां का जघन्येति तत्प्रदर्शनार्थमाह—

सूत्रार्थः—पूर्वा पूर्वा अनन्तरा परा स्थितिः	=पहिली पहिली व्यवधान रहित वा लगताही उत्कृष्ट स्थिति
नारकाणाम् च*परतः*परतः*द्वितीयादिषु	=नारकियों के भी [=च। उत्तर उत्तर में दूसरी आदि
भूमिषु अपरा स्थितिः भवतिT	=भूमियोंमें जघन्य आयु है (जैसे प्रथम भूमिमें एक सागर उत्कृष्ट स्थिति है वही दूसरी पृथिवीमें जघन्य है दूसरीमें तीन सागर परा है वही तीसरीमें अपराहै) ॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस पैंतीसवां सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिंदी अनुवाद ॥

च-शब्दः किमर्थः प्रकृत-समुच्चय-अर्थः	=(इस सूत्रमें) च शब्द किसलिये है ? (उत्तर) प्रकरणके समुच्चय वा जोड़नेको है
किम् च*प्रकृतम् अनन्तरा	=(प्रश्न) वहुरि (=च) क्या प्रकरण वा विषय है (उत्तर) अत्यन्तानिकट वर्ती है
पूर्वा पूर्वा (परास्थितिः)परतःपरतःअपरा स्थितिः	=पूर्व पूर्व की (उत्कृष्ठ आयु) उत्तर उत्तरमें जघन्य आयु होती है ऐसा प्रकरण है
इति* । तेन अयम् अर्थः लभ्यतेT रत्न-प्रभायाम्	=तिस (च शब्द) से यह अर्थ लियाजाता है कि रत्नप्रभा पृथिवीमें
नारकाणाम् परास्थितिः एकम् सागरोपमम्	=नारकी जीवोंकी उत्कृष्ट स्थिति एक सागर प्रमाण है ॥
सा शर्करा-प्रभायाम् जघन्या ;शर्कराप्रभायाम्	=वही (स्थिति) शर्करा प्रभा (दूसरी पृथिवी) में निकृष्ट स्थिति है । शर्कराप्रभामें
उत्कृष्टा स्थितिः त्रीणि सागरोपमाणि सा	=प्रकृष्ट आयु तीन सागर प्रमाण है । वही (तीन सागर प्रमाण स्थिति)
वालुकाप्रभायाम् जघन्या इति*आदि एवम्*	=वालुकाप्रभामें जघन्य (आयु) है । ऐसे और भी (सातवीं भूमि पर्यंत) है ॥ ऐसे
द्वितीय-आदिषु जघन्या स्थितिः उक्ता प्रथमायाम्	=दूसरी आदिक (भूमि) मे जघन्य आयु कही गई । पहली भूमिमें
का जघन्या इति*तत्-प्रदर्शन-अर्थम् आहT	=क्या निकृष्ट (आयु) है । उस(प्रथम भूमिकी जघन्य आयु)केदिखानेको कहतेहैंकि

॥ दशवर्षसहस्राणि प्रथमायाम् ॥ ३६ ॥

अपरा स्थितिरित्यनुवर्तते । रत्नप्रभायां दशवर्षसहस्राणि अपरा स्थितिर्वेदितव्या ॥
अथ भवनवासिनां का जघन्या स्थितिरित्यत आह—

॥ भवनेषु च ॥ ३७ ॥

चशब्दः किमर्थः ? प्रकृतसमुच्चयार्थः ॥ तेन भवनवासिनामपरास्थितिः

---

(१) सूत्रम्—दशवर्षसहस्राणि प्रथमायाम् ॥ ३६ ॥

= दशवर्षसहस्राणि प्रथमायाम् (भूमौ अध्याय ३ सूत्र १ से) अपरा (३३वां सूत्रसे) स्थितिः (२८ वां सूत्रसे) नारकाणाम् (३५ वां सूत्रसे) भवति ॥ ३६ ॥

सूत्रार्थः—दशवर्षसहस्राणि॥प्रथमायाम्॥भूमौ॥ =दश हजार वर्ष प्रथम भूमिमें (अर्थात् नीमिनरक नाम पहिले पाथड़ेमें)
अपरा॥स्थितिः॥नारकाणाम्॥ =जघन्य आयु नारकी जीवोंकी है
वृत्त्यनुवादः—अपरा॥स्थितिः॥इति*अनुवर्तते। रत्नप्रभायाम्॥ =इस सूत्रमें 'अपरा' और 'स्थितिः' की अनुवृत्ति है। रत्नप्रभा(पहिली भूमि)में
दशवर्षसहस्राणि॥अपरा॥स्थितिः॥वेदितव्या॥ =दश हजार वर्ष निकृष्ट आयु जानना चाहिये
अथ*भवनवासिनाम्॥का॥जघन्या॥स्थितिः॥इति* =अब (=अथ) भवनवासी देवनिकी क्या जघन्य आयु है। इसलिये कहते हैं कि

(२) सूत्रम्—भवनेषु च ॥ ३७ ॥

= भवनेषु च दशवर्षसहस्राणि (सूत्र ३६ से) अपरा (सूत्र ३३ से) स्थितिः (सूत्र २८वां से) भवति

भवनेषु॥च*दशवर्षसहस्राणि॥अपरा॥स्थितिः॥भवति। =भवनवासी देवनिमें भी (=च) दश हजार वर्ष जघन्य वा निकृष्ट आयु होती है
वृत्त्यनुवादः—चशब्दः॥किमर्थः॥प्रकृत-समुच्चय-अर्थः॥ =इस सूत्रमें च शब्द किसलिये है। स्थितिके प्रकरणके समुच्चयके लिये है ॥
तेन॥भवनवासिनाम्॥अपरा॥स्थितिः॥ =तिस (च शब्द) करि भवनवासी देवोंकी जघन्य आयु

---

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ श्वेताम्बर और दिगम्बर आम्नायोंमें एकसा है। सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें इसकी संख्या ३५ वीं है ॥
(२) इस सूत्रका पाठ और अर्थ श्वेताम्बर तथा दिगम्बर दोनों आम्नायोंमें एकसा है 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें इसकी संख्या ३५ वीं है ॥

दशवर्षसहस्राणीत्यभिसम्बध्यते ॥ व्यन्तराणां तर्हि का जघन्या स्थितिरित्यत आह—

व्यन्तराणां च ॥ ३८ ॥

चशब्दः प्रकृतसमुच्चयार्थः ॥ तेन व्यन्तराणामपरा स्थितिर्दशवर्षसहस्राणीत्यवगम्यते ॥
अथैषां परा स्थितिः का इत्यत्रोच्यते ॥

॥ परा पल्योपममधिकम् ॥ ३९ ॥

दशवर्षसहस्राणि।।इति*अभिसम्बध्यते।व्यन्तराणाम्।तर्हि* =दश हजार वर्ष ऐसा (वाक्य इस सूत्रमे) जोड़ा जाता है। तौ व्यन्तरोकी

का।।जघन्या।।स्थितिः।।इति*अतः*आह =क्या जघन्य आयु है। ऐसे प्रश्न पर इसलिये कहते हैं कि

[1]सूत्रम्—व्यन्तराणाम् च ॥ ३८ ॥ = व्यन्तराणाम् च दशवर्षसहस्राणि(३६ वां सूत्रसे) अपरा(३३वां सूत्रसे) स्थितिः(२८वांसूत्र से)भवति

व्यन्तराणाम्।च*दशवर्षसहस्राणि।।अपरा।।स्थितिः।।भवति=व्यन्तर देवोंकी भी (=च) दशहजार वर्ष जघन्य आयु है (यहां अनुवृत्तिलेने के लियेकि सूत्रछोटाहो व्यन्तरोंकी उत्कृष्ट स्थितिनकहकरपहिले जघन्य कही)

वृत्त्यनुवादः—च-शब्दः।प्रकृत-समुच्चय-अर्थः। =(इस सूत्रमें) च शब्द (स्थितिरूप) प्रकरण के समुच्चके लिये है ॥

तेन।व्यन्तराणाम्।अपरा।।स्थितिः।। =तिस (च शब्द) करि व्यन्तर देवनिकी जघन्य आयु

दशवर्षसहस्राणि।।इति*अवगम्यते।अथ*एषाम्। =दश हजार बरस ऐसे जानी जाती है। अब इन व्यन्तर देवोंकी

परा।।स्थितिः।।का।।इति*अत्र*उच्यते =उत्कृष्ट आयु क्या है ऐसे प्रश्न पर यहां कहाजाता है कि

[2]सूत्रम्—परा पल्योपममधिकम् ॥३९॥ = व्यन्तराणाम् (३८वां सूत्र से) परा स्थितिः(२८वां सूत्र से) पल्योपमम् अधिकम् भवति

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थदोनों आम्नायोंमें एकसाहै श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें इसकी सख्या ४६ वीं मानी है ॥
(२) श्वेताम्बर आम्नायमें इस सूत्रका पाठ "परापल्योपमम् ॥४७॥ " ऐसा है हमारे यहां स्थिति पल्यसे अधिक है उनके यहां एकही पल्य है ॥

पराउत्कृष्टा स्थितिर्व्यन्तराणां पल्योपममधिकम् ॥ इदानीं ज्योतिष्काणां परा स्थितिर्वक्तव्येत्यत आह

॥ ज्योतिष्काणां च ॥ ४० ॥

चशब्दः प्रकृतसमुच्चयार्थः ॥

सूत्रार्थः-व्यन्तराणाम्[६]।परा[१]।स्थितिः[१]।पल्योपमम्[१]।अधिकम्[१]।भवति।=व्यन्तरोंकी उत्कृष्ट आयु कुछ अधिक पल्य प्रमाण है

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस उनतालीसवां सूत्र पर शब्दशः हिंदी अनुवाद

परा[१]।उत्कृष्टा[१]।स्थितिः[१]। =उत्कृष्ट वा प्रकर्ष आयु

व्यन्तराणाम्[६]।पल्योपमम्[१]।अधिकम्[१]।इदानीम्* =व्यन्तरोंकी कुछ अधिक पल्य प्रमाण है। अब

ज्योतिष्काणाम्[६]।परा[१]।स्थितिः[१]।वक्तव्या[१]।इति*अतःआह=ज्योतिषियोंकी उत्कृष्ट आयु कहना चाहिये। ऐसे प्रश्न पर इसलिये कहते हैं कि

(१)सूत्रम्—ज्योतिष्काणां च ॥ ४० ॥ = ज्योतिष्काणाम् च स्थितिः (२८वां सूत्रसे) परा पल्योपममधिकम् (३९ वां सूत्रसे) भवति ॥ ४० ॥

सूत्रार्थः-ज्योतिष्काणाम्[६]।च*परा[१]।स्थितिः[१]। =ज्योतिषी देवनिकी उत्कृष्ट स्थिति

पल्योपमम्[१]।अधिकम्[१]।भवति। =कुछ अधिक पल्य प्रमाण है अर्थात् चंद्रमाकी आयु एक पल्यसे एक लाखवरस अधिक है। सूर्य की आयु एक पल्यसे एक सहस्रवरस अधिक है शुक्रकी एकपल्यसे सौ वरस अधिक है

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस चालीसवां सूत्र पर सर्वार्थसिद्धिका शब्दशः हिंदी अनुवाद

चशब्दः[१]।प्रकृत-समुच्चय-अर्थः[१]। =(इस सूत्रमें) च शब्द प्रकरणके संग्रहके लिये है अर्थात् यहां स्थितिका विषय चलरहा है सो चकार से ३९ वां सूत्रमें वर्णित आयुको यहां जोड़ागया है

---

(१) श्वेताम्बरआम्नायमे पाठ "ज्योतिष्काणामधिकम्" ॥ ४८ वां सूत्रहै। हमारे यहां अधिकम् की अनुवृत्ति ३९ वां सूत्रसे आती है अर्थ एकहै ॥

त्रम्—लौकान्तिकानामष्टौ सागरोपमाणि सर्वेषाम् ॥ ४२ ॥

...नाम् परा (३९वां सूत्रसे) अपरा (३३वां सूत्रसे) स्थितिः (२८वां सूत्रसे) भवति॥

...रकाणांतु जघन्या स्थितिः ...। जघन्य स्थिति पल्य के

...म(सूत्र५३) =तारकाभ्यः शेषाणांज्योतिष्काणां चतुर्भागः पल्योपमस्यापरास्थिति

...से बचे हुए (सत्ताईस नक्षत्र, सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुद्ध, बृहस्पति, शुक्र, शनिश्चर, राहु और केतु ये नौ ग्रह) ज्योतिषीदेवोंकी जघन्य आयु पल्यके चौथाई भाग प्रमाण है ॥

() तदष्टभागो जघन्योभयेषाम् (वार्तिक ८) =तस्य पल्योपमस्याष्टभागः जघन्या स्थिति उभयेषां तारकाणां नक्षत्राणां च भवति (राजवार्तिकपृष्ठ१७४) =तिस पल्यके आठवां भाग प्रमाण जघन्य आयु दोनों ताराओं और नक्षत्रों की होती है (दोनों आम्नायोंमें ताराओंकी निकृष्ट स्थिति एक है परन्तु नक्षत्रोंकी जघन्यस्थिति श्वेताम्बरसमाजकेसभाष्यतत्वार्थाधिगमसूत्रके५३वां सूत्रके अनुकूल चौथाई पल्य है हमारे यहांसे दूनी हुई)

() शेषाणां चतुर्भाग (वार्तिक ९) शेषाणां सूर्यादीनां पल्योपम चतुर्भागो जघन्य स्थितिर्वेदव्या (राजवार्तिक पृष्ठ १७४)

=बचेहुए सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुद्ध बृहस्पति, शुक्र, शनिश्चर, राहु, केतु ये नवग्रहोंकी जघन्य स्थिति पल्यके चौथाई भाग प्रमाण जानो ॥ इस सूत्रका पाठ दोनों आम्नायोंमें एक है परन्तु हमारे यहां नक्षत्रोंकी जघन्य आयु पल्य के आठवां भाग है श्वेताम्बर समाज में पल्य का चौथाई भाग है

(१) इसके सम्बन्धमें पं० पन्नालाल वाकलीवालजीने यह लिखा है कि यह श्री पूज्यपाद स्वामीकृत सवार्थसिद्धिका वार्तिक है । क्योंकि श्री भट्टाकलंकदेवने 'अष्टसागरोपमा सर्वेलौकांतिका' कहा है । मेरी समझमें यह नहीं आया कि 'अष्टसागरोपमा सर्वेलौकांतिका' यह वाक्य कहांसे लिया है पं० पन्नालालजी दूनीं, प० पन्नालालजी न्यायदिवाकर प०गजाधरलालजी अनुवादित राजवार्तिकका पाठ कई हस्तलिखित राजवार्तिकप्रतियोंके पाठ और वाकली वालजीकी स्वय मुद्रित कीहुई राजवार्तिककेभी पाठ देखेगये परन्तु हमको यह सूत्ररूपमें राजवार्तिकमें, अर्थप्रकाशिकामें, सवार्थसिद्धि वचनिकामें, श्रुतसागरी टीकामें मिला है । कई प्रतियें श्लोकवार्तिक, प० सदासुखजी कृत सूत्रपर लघुटीका स० १९१० और श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्वार्थाधिगम सूत्र श्री सिद्धसेनसूरिरचित भाष्यानुसारिणी तत्वार्थटीका जिसमें २२ सहस्र श्लोकसे अधिक हैं उपर्युक्त वाक्य न तो यह सूत्र रूपमेंही मिला और न वार्तिकरूपमेंही मिला ॥ कोई भी प्रमाण नहीं है कि यह सूत्रपूज्यपाद स्वामी कृत वार्तिक है ॥ बहुधा भाष्यकारो और टीकाकारोंकी उत्थानिकाओ से कि 'सूत्रमाहुः' (देखो श्रुतसागरी टीका) 'इत्यत्रोच्यते' (देखो तत्वार्थ राजवार्तिक, सर्वार्थसिद्धि) स्पष्ट है कि यह सूत्र है ॥

६ ग्रह, २७ (अभिजित सहित) २८ नक्षत्रों और तारकाओंकी पृथक् पृथक् विशेष रूपसे जघन्य स्थिति वार्तिकोंमें दीगई है उसकी तुलनात्मक सूची श्वेताम्बरसमाजके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रके सूत्र४९ से ५३ तक नीचे दीजाती है कि विषय स्पष्ट होजावे॥श्वेताम्बर आम्नायमें'चतुर्भागः शेषाणाम् ५३' सूत्रमें यह चौथा अध्याय पूर्ण होता है। उनके यहां 'लौकांतिकानामष्टौ सागरोपमाणि सर्वेषाम्' सूत्र या वार्तिक नहीं है ॥

श्वेताम्बर आम्नायके 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रसे उद्धृत	दिगम्बर आम्नायके तत्त्वार्थराजवार्तिकअलंकारसे उद्धृत
() ग्रहाणांमेकम् (सूत्र४९) =ग्रहाणामेकं पल्योपम परा स्थितिःभवति =सूर्य, चन्द्र, मगल, बुद्ध, ब्रहस्पति, शुक्र, शनिश्चर, राहु और केतु इन नव ग्रहोंकी (उत्कृष्ट स्थिति) एक पल्य प्रमाण होती है	(क) चंद्राणां वर्ष शतसहस्राधिकम् (वार्तिक १) =चद्राणां वर्षशतसहस्राधिकं पल्योपम परा स्थिति =चद्रमाओंकी उत्कृष्ट स्थिति एक पल्यसे एक लाख बरस अधिक होती है (तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ १७८)
	() सूर्याणां वर्ष सहस्राधिकम् (वार्तिक २) =वर्षसहस्राधिकं पल्योपम सूर्याणां परा स्थितिः =सूर्योंकी उत्कृष्ट स्थिति एक पल्यसे एक हजार बरस अधिक है (तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ १७८)
	() शुक्राणां शताधिकम् (वार्तिक३) =शुक्राणां वर्षशताधिकं पल्योपम परास्थितिः =शुक्रोंकी उत्कृष्ट आयु एक पल्यसे एकसौ बरस अधिकहै (राज०पृष्ठ१७८)
	() वृहस्पतीनां पूर्णम् (वार्तिक ४) वृहस्पतीनाम् पूर्णपल्योपमम् परा स्थिति =वृहस्पतियोंकी उत्कृष्ट आयु पूरी एक पल्य प्रमाण है (राज० पृष्ठ १७८)
	() शेषाणामर्धम्(वार्तिक ५) शेषाणां ग्रहाणांबुद्धादीनां पल्योपमस्यार्धपरास्थिति =बचे हुए अर्थात् चन्द्रमा, सूर्य, शुक्र वृहस्पतियोंके अतिरिक्त बुध, मगल शनिश्चर, राहु और केतु ग्रहोंकी उत्कृष्ट आयु आधे पल्य प्रमाण होती है। तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ १७८)
() नक्षत्राणामर्धम् (सभाष्य० सूत्र ५०) =नक्षत्राणां देवानां पल्योपमार्धं परा स्थितिर्भवति =(२७ या २८) नक्षत्रदेवोंकी उत्कृष्ट आयु आधे पल्यकी होती है	() नक्षत्राणां च (वार्तिक ६) =नक्षत्राणाम् अर्धपल्योपमं परा स्थितिः भवति (राज० पृष्ठ १७८) =(सत्ताईस वा अट्ठाईस) नक्षत्रोंकी उत्कृष्ट आयु आधेपल्य होती है (तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ १७८)
() ताराकाणां चतुर्भागः (सूत्र ५१) =ताराकाणां च पल्योपम चतुर्भागः परा स्थितिः =ताराओंकी उत्कृष्ट आयु पल्यका चौथाई भाग प्रमाण हैं ॥	() तारकाणां चतुर्भागः (वार्तिक७) =पल्योपमस्यचतुर्भाग तारकाणांपरास्थितिः =ताराओंकी उत्कृष्ट स्थिति पल्यके चौथाईभाग प्रमाणहै (राजवार्तिक पृष्ठ १७८)

॥ लौकान्तिकानामष्टौ सागरोपमाणि सर्वेषाम् ॥ ४२ ॥

(१)सूत्रम्—लौकान्तिकानामष्टौ सागरोपमाणि सर्वेषाम् ॥ ४२ ॥

= सर्वेषाम् लौकान्तिकानाम् परा(३९वां सूत्रसे) अपरा (३३वां सूत्रसे) स्थितिः(२८वां सूत्रसे) भवति॥

() जघन्या त्वष्टभाग. (सूत्र ५२) = तारकाणांतु जघन्या स्थितिः पल्योपमाष्टभागः = और ताराओंकी जघन्य स्थिति पल्य के आठवां भाग प्रमाण है

() चतुर्भाग शेषाणाम्(सूत्र५३) = तारकाभ्यः शेषाणांज्योतिष्काणां चतुर्भागः पल्योपमस्यापरास्थिति

= ताराओंसे बचे हुए (सत्ताईस नक्षत्र, सूर्य, चन्द्र,मंगल, बुद्ध, बृहस्पति, शुक्र, शनिश्चर, राहु और केतु ये नौ ग्रह) ज्योतिषीदेवोंकी जघन्य आयु पल्यके चौथाई भाग प्रमाण है ॥

() तदष्टभागो जघन्योभयेषाम् (वार्तिक ८) = तस्य पल्योपमस्याष्टभागः जघन्या स्थिति उभयेषां तारकाणां नक्षत्राणां च भवति(राजवार्तिकपृष्ठ१७९)

= तिस पल्यके आठवां भाग प्रमाण जघन्य आयु दोनों ताराओं और नक्षत्रों की होती है (दोनों आम्नायोंमें ताराओंकी निकृष्ट स्थिति एक है परन्तु नक्षत्रोंकी जघन्यस्थिति श्वेताम्बरसमाजकेसभाष्यतत्वार्थाधिगमसूत्रके५३वां सूत्रके अनुकूल चौथाई पल्य है हमारे यहांसे दूनी हुई)

() शेषाणां चतुर्भाग (वार्तिक ९) शेषाणां सूर्यादीनां पल्योपम चतुर्भागो जघन्य स्थितिर्वेदत्या (राजवार्तिक पृष्ठ १७४)

= बचेहुए सूर्य, चन्द्र, मगल, बुद्ध बृहस्पति, शुक्र, शनिश्चर, राहु, केतु ये नवग्रहोंकी जघन्य स्थिति पल्यके चौथाई भाग प्रमाण जानो ॥ इस सूत्रका पाठ दोनों आम्नायोंमें एक है परन्तु हमारे यहां नक्षत्रोंकी जघन्य आयु पल्य के आठवां भाग है श्वेताम्बर समाज में पल्य का चौथाई भाग है

(१) इसके सम्बन्धमें पं० पन्नालाल वाकलीवालजीने यह लिखा है कि यह श्री पूज्यपाद स्वामीकृत सर्वार्थसिद्धिका वार्तिक है । क्योंकि श्री महाकलंकदेवने 'अष्टसागरोपमा सर्वेलौकांतिका ' कहा है । मेरी समझमें यह नहीं आया कि 'अष्टसागरोपमा सर्वेलौकांतिकाः' यह वाक्य कहांसे लिया है पं० पन्नालालजी दूनीं, प० पन्नालालजी न्यायदिवाकर प०गजाधरलालजी अनुवादित राजवार्तिकका पाठ कई हस्तलिखित राजवार्तिकप्रतियोंके पाठ और वाकली वालजीकी स्वय मुद्रित कीहुई राजवार्तिककेभी पाठ देखेगये परन्तु हमको यह सूत्ररूपमें राजवार्तिकमें,अर्थप्रकाशिकामें,सर्वार्थसिद्धि वचनिकामें, श्रुतसागरी टीकामें मिला है । कई प्रतियें श्लोकवार्तिक, प० सदासुखजी कृत सूत्रपर लघुटीका स० १९१० और श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्वार्थाधिगम सूत्र श्री सिद्धसेनसूरिरचित भाष्यानुसारिणी तत्वार्थटीका जिसमें २२ सहस्र श्लोकसे अधिक है उपर्युक्त वाक्य न तो यह सूत्र रूपमेंही मिला और न वार्तिकरूपमेंही मिला ॥ कोई भी प्रमाण नहीं है कि यह सूत्रपूज्यपाद स्वामी कृत वार्तिक है ॥ बहुधा भाष्यकारों और टीका-कारोंकी उत्थानिकाओं से कि 'सूत्रमाहुः' (देखो श्रुतसागरी टीका) 'इत्यत्रोच्यते' (देखो तत्त्वार्थ राजवार्तिक, सर्वार्थसिद्धि) स्पष्ट है कि यह सूत्र है ॥

अविशिष्टाः सर्वे ते शुक्ललेश्याः पञ्चहस्तोत्सेधशरीराः

॥ चतुर्णिकायदेवानां । स्थानं भेदाः सुखादिकम् ॥ परापरस्थितिर्लेश्या। तुर्याध्याये निरूपितम्॥ १॥

॥ इति तत्त्वार्थवृत्तौ सर्वार्थसिद्धिसञ्ज्ञिकायां चतुर्थोऽध्याय ॥

सूत्रार्थः-सर्वेषाम् लौकान्तिकानाम् परा अपरा॥	=सब लौकान्तिक (देव) निकी (देखो सूत्र २४, २५) उत्कृष्ट और जघन्य
स्थितिः अष्टौ॥ सागरोपमाणि॥	=आयु आठ सागर प्रमाण है
वृत्त्यनुवादः-अवशिष्टाः॥	=अवशेष वा वचेहुये अर्थात् सर्व प्रकारके देवोंसे जिनकी स्थिति उत्कृष्ट और जघन्य कही जो शेषरहे ऐसे लौकान्तिकदेव
सर्वे॥ ते॥ शुक्ल लेश्याः॥ पञ्च-हस्त-उत्सेध-शरीराः॥	=ते समस्त शुक्ललेश्याके धारक, पांच हाथकी ऊचाईके शरीर सहित हैं अर्थात् सब लौकान्तिक देवोंकें शुक्ललेश्या है और पांच पांच हाथ ऊंचा शरीर है ॥
चतुर्णिकाय-देवानाम्॥ स्थानम्॥	=चार समुदायके देवोंके निवासस्थान (सूत्र १३, १४, १५, १८, १६, २३, २४)
भेदाः॥	=तथा भेद (सूत्र १, ३, ४, ५, ६, १०, ११, १२, १६, १७, २४, शेषार्ध २५, २६)
सुखादिकम्॥	=और सुखादिक (सूत्र ७, ८, ६, २०, २१, २७)
पर-अपरा-स्थितिः॥	=उत्कृष्ट और जघन्य आयु (देखो सूत्र ३४, ३५, ४२,)
(परा॥ स्थितिः॥)	=बहुरि परास्थिति (सूत्र २८ से ३२ तक ३६, ४०)
(अपरा॥ स्थितिः॥) लेश्या॥	=और अपरा स्थिति (सूत्र ३३, ३६, ३७, ३८, ४१) तथा लेश्या (सूत्र२, २२)
तुर्याध्याये॥ निरूपितम्॥	=चौथे अध्यायमें वर्णित है ।
इति॥ तत्त्वार्थ-वृत्तौ॥	**=इसप्रकार तत्त्वार्थके विवरणमें (=वृत्तौ)**
सर्वार्थसिद्धि-सञ्ज्ञिकायाम्॥	**=सर्वार्थसिद्धि नामक ग्रन्थमें**
चतुर्थः॥ अध्यायः॥ ॥	**=चौथा अध्याय (समाप्त) हुआ ॥**

॥ अथ पंचमोऽध्यायः ॥

इदानीं, सम्यग्दर्शनस्य विषयभावेनोपक्षिप्तेषु जीवादिषु जीवपदार्थो व्याख्यातार्थः। अथाजीवपदार्थो विचारप्राप्तस्तस्य सञ्ज्ञाभेदसंकीर्तनार्थमिदमुच्यते।

॥ (१) अजीवकाया धर्माधर्माकाशपुद्गलाः ॥ १ ॥

कायशब्दः शरीरे व्युत्पादितः। इहोपचारादध्यारोप्यते। कुत उपचारः ? । यथा शरीरं पुद्गलद्रव्य-

अथ*पञ्चमः ¹₁, अध्यायः ¹₁। इदानीं *सम्यग्दर्शनस्य ⁶₁॥ = पांचवा अध्याय आरम्भ (= अथ) है। अब सम्यग्दर्शनके

विषय-भावेन ³₁। उपक्षिप्तेषु ⁷₃। जीवादिषु ⁷₃। जीव-पदार्थः ¹₁। = विषयभावकरि गर्भित (= उपक्षिप्तेषु) जीवादिकोंमें जीव पदार्थ है

व्याख्यात-अर्थः ¹₁। = (सो) कहा हुआ विषय (= अर्थ) है (अर्थात् जीवका वर्णन कर चुके हैं)

भावार्थ—सम्यक्त्वके विषय निबन्धमें जीवादिक सात तत्त्व (अ० १सूत्र २, ४) गर्भित हैं उनमेंसे जीव द्रव्यका व्याख्यान कर चुके हैं।

अथ*अजीव-पदार्थः ¹₁। विचार-प्राप्तः ¹₁। तस्य ⁶₁। संज्ञा- = अब (= अथ) अजीवपदार्थ विचारमें प्राप्त हुआ तिस (अजीवपदार्थ) के नाम

भेद-संकीर्तन-अर्थम् ¹₁॥। इदम् ¹₁॥। उच्यते T = और भेद कहनेके लिये यह कहा जाता है कि—

अजीवकाया धर्माधर्माकाशपुद्गलाः ॥ १ ॥

धर्म-अधर्म-आकाश-पुद्गलाः ¹₃। अजीव-कायाः ¹₃। = धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य और पुद्गलद्रव्य चेतना रहित और बहुप्रदेशी (काय) है अर्थात् इन प्रत्येक प्रत्येक द्रव्यमें अचेतनपना और बहुप्रदेश वा बहुत अवयवोंका होना पाया जाता है।

वृत्त्यनुवादः—कायशब्दः ¹₁। शरीरे ⁷॥। व्युत्पादितः ¹₁। = (इस सूत्र में) काय शब्द शरीर (अर्थ) में व्याकरण की रीतिसे उत्पन्न हुआ है

इह*उपचारात् ⁵₁। अध्यारोप्यते T यहां व्यवहारसे अध्यारोपण कियागया है अथवा संस्थापन वा नियत किया गया है

कुतः* उपचारः ¹₁। यथा*शरीरं ¹₁॥। पुद्गलद्रव्य- = (प्रश्न) कहांसे उपचार किया गया है। (उत्तर) जैसे शरीर पुद्गलद्रव्यके

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों आम्नायोंमें एकसा है। धर्म्माधर्म्मा भी अचोरहाभ्याम् द्वे वा' ८।४।४६अष्टाध्यायी सूत्रसे ठीक है।

प्रचयात्मकं तथा धर्मादिष्वपि प्रदेशप्रचयापेक्षया काया इव काया इति । अजीवाश्च ते कायाश्च अजीवकायाः ॥ विशेषणं विशेष्येणेति वृत्तिः ॥

प्रचय-आत्मकं १।१। तथा*धर्मादिषु ७।३। अपि*	=समूहरूप (=प्रचयात्मक) हैं तैसे धर्मादिकद्रव्योंमें भी
प्रदेश-प्रचय-अपेक्षया ३।१। कायाः १।३। इव*इति*	=प्रदेशोके समूहरूप विवक्षासे कायासरीखा (व्यवहार) है इसप्रकार
कायाः १।३। च* अजीवाः १।३।	=(वे धर्म, अधर्म, आकाश, पुद्गल) काया हैं । और (=च) अजीव
च*कायाः १।३। ते १।३। अजीवकायाः १।३।	= और (=च)काय हैं ते अजीव काया हैं अर्थात् ये चार धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य, पुद्गलद्रव्य चेतना रहित और बहुत प्रदेशी हैं इसलिये ये अजीवकाय (अचेतन और बहुप्रदेशी)हैं । ये बहु प्रदेशी हैं इससे ये द्रव्य काय कहलाते हैं और चेतना रहित हैं इससे अजीव कहलाते हैं
विशेषणं १।१। विशेष्येण ३।१। इति* वृत्तिः १।१।	=गुणवाचक(अजीव शब्द)विशेष्य(कायशब्द)से मिलकर ऐसें (कर्मधारय) समास हुआ

* परार्थाभिधानं वृत्तिः—एकरूपसे अर्थ प्रकाश करनेकी शक्तिको वृत्ति कहते है । उस वृत्तिके पाच भेद है जैसे कृत्, 'तद्धित', समास, एकशेष, और सनाद्यन्त धातु हैं । यहा पर वृत्ति शब्दका अर्थ केवल समास है । अनेक पदोंको एकमें मिला देनेको समास कहते हैं । वह पांच प्रकार का है (I) जिसका कोई विशेष नाम नही है वह केवल समास कहाता है (II) बहुधा जिसमें पूर्व पदका अर्थ प्रधान होता है वह अव्ययी भाव समास है (III) प्रायः जिसके उत्तर पदका अर्थ प्रधान हो वह तत्पुरुष समास है । तत्पुरुष समास का एक भेद कर्मधारय समास है । इसमें दोनों विभक्ति समान होती हैं और विशेषण विशेष्य भाव होता है । जैसे यहां "अजीवाश्च ते कायाश्च अजीवकायाः" इसमें अजीवाः और कायाःदोनों समान विभक्ति (प्रथमाविभक्ति बहु वचन पुल्लिंग) हैं ॥ (प्रश्न) यहां पर वे काया कैसे गुण वा विशेषण सहित है । (उत्तर) चेतना रहित उन कायाओंका गुण है ॥ ऐसे "अजीवाः" विशेषण हुआ और काया विशेष्य हुआ इसलिये विशेषण और विशेष्य भाव हुआ ॥ कर्मधारय का एक भेद द्विगु है । इसका प्रथम संख्या वाचक शब्द होता है । (IV) जिसमें समासके पदोंको छोडकर और ही पदका अर्थ प्रधान हो वह बहुव्रीहि समास है । (V) जिसमें दोनों पद का अर्थ प्रधान हो वह द्वन्द्व नामक पाचवां समास है ।

ननु च नीलोत्पलादिषु व्यभिचारे सति विशेषणविशेष्ययोगः। इहापि व्यभिचारयोगोऽस्ति । अजीव-शब्दोऽकाये कालेऽपि वर्तते, कायोऽपि जीवे । किमर्थः कायशब्दः ? । प्रदेशबहुत्वज्ञापनार्थः । धर्मादीनां प्रदेशा बहव इति ।। ननु च असंख्येयाः प्रदेशा धर्माधर्मैकजीवानामित्यनेनैव प्रदेशबहुत्वं ज्ञापितम्। सत्य-मिदम्। परं किन्त्वस्मिन्विधौ सति तदवधारणं विज्ञायते. असंख्येयाः प्रदेशा न संख्येया नाप्यनन्ता इति ।।

ननु * च * नील–उत्पल–आदिषु $^{7}_{3}$।	= पुनि प्रश्न । नील-कमल आदिक (कर्मधारयसमास) निमें
व्यभिचारे $^{7}_{1}$। सति $^{7}_{1}$। विशेषण–विशेष्य–योगः $^{1}_{1}$।	= वही गुण दूसरी वस्तुमें होनेपर (= सति) विशेषण और विशेष्यका मेल होता है

अर्थात् प्रश्न यह है कि विशेष्य में जो गुण होता है वह दूसरी वस्तुओं मे भी पाया जाता है तो विशेषण विशेष्य मिलकर कर्मधारय समास होता है जैसे नीलकमलमें और रक्तकमलमें नीलापन और रक्तता यथासंख्य पाई जाती है इनके अतिरिक्त और भी अनेक वस्तुएं हैं जिनमें नीलता और रक्तता पाई जाती है तो यहां अजीव काय विषैं क्या व्यभिचार है ।

इह * अपि * व्यभिचार–योगः $^{1}_{1}$। अस्ति T	= (उत्तर) यहां भी(इस 'अजीवकाय' कर्मधारय समास मे) व्यभिचारका मेल वा जोड है
अजीव–शब्दः $^{1}_{1}$। अकाये $^{7}_{1}$। काले $^{7}_{1}$। अपि*वर्तते T	= (क्योंकि) अजीवशब्द काय रहित वा अप्रदेशी कालद्रव्यमें भी वर्तता है
कायः $^{1}_{1}$। अपि * जीवे $^{7}_{1}$। किम् * अर्थः $^{1}_{1}$।	= (और) बहुत प्रदेशोंका होना भी (अजीवत्व रहित) जीवद्रव्यमें वर्ते है। कौन अर्थ है
कायशब्दः $^{1}_{1}$। ? प्रदेश–बहुत्व–ज्ञापन–अर्थः $^{1}_{1}$	= काय शब्द (उत्तर) प्रदेशोंका प्रचयपना जनावनेके लिये है कि
धर्म–आदीनां ^{6}। प्रदेशाः $^{1}_{3}$ बहवः $^{1}_{3}$। इति *	= धर्म–अधर्म–आकाश–पुद्गल के प्रदेश बहुत हैं
ननु*च*असंख्येयाः $^{1}_{3}$। प्रदेशाः $^{1}_{3}$। धर्म–अधर्म–	= पुनि प्रश्न असंख्यातअसंख्यात प्रदेश धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य और
एक–जीवानाम् $^{6}_{3}$। इति*अनेन $^{3}_{1}$।। एव* प्रदेश—	= एक जीव के हैं इस (अगले आठवां सूत्र) करि ही प्रदेशोंकी
बहुत्वं $^{1}_{1}$।। ज्ञापितम् $^{1}_{1}$ ।। सत्यम् $^{1}_{1}$।। इदम् $^{1}_{1}$।।	= प्रचुरता जताई जाती है (उत्तर) यह सत्य है
परं किन्तु-अस्मिन् $^{7}_{1}$।। विधौ $^{7}_{1}$।। सति $^{7}_{1}$। तद्-अवधारणं $^{1}_{1}$।।।	= किन्तु केवल (= पर) इस विधि (आठवां सूत्र) के होनेपर उस (प्रदेश बहुत्व) का नियम
विज्ञायते T असंख्येयाः $^{1}_{3}$। प्रदेशाः $^{1}_{3}$। न*संख्येयाः $^{1}_{3}$।	= जतलाया गया है कि असंख्यात प्रदेश हैं, सख्यात नहीं हैं
न*अपि*अनन्ताः $^{1}_{3}$। इति* ।।	= अनन्त भी नहीं है अर्थात् केवल असंख्यात ही हैं—भावार्थ इस सूत्र में कायशब्दसे

कालस्य प्रदेशप्रचयाभावज्ञापनार्थं च इह कायग्रहणम् । कालो वक्ष्यते । तस्य प्रदेशप्रतिषेधार्थमिह कायग्रहणम् ॥ यथाऽणोः प्रदेशमात्रत्वाद्द्वितीयादयोऽस्य न सन्तीत्यप्रदेशोऽणुः । तथा कालपरमाणुरप्येक-प्रदेशत्वादप्रदेश इति ॥ तेषांधर्मादीनामजीव इति सामान्यसञ्ज्ञा जीवलक्षणाभावमुखेन प्रवृत्ता ॥ धर्मा-धर्माकाशपुद्गला इति विशेषसञ्ज्ञाः सामयिक्यः ॥

अत्राह सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्येत्येवमादिषु द्रव्याण्युक्तानि, कानि तानीत्युच्यते—

	वहुत्व सामान्य जतायाहै और आठवां सूत्रमें प्रदेशोंकी संख्या जताई है
कालस्य ६। प्रदेश–प्रचय–अभाव–ज्ञापन–अर्थं ३।। च*	=कालके प्रदेशसमूहका अभाव जतावनेके लिये भी (=च)
इह*कायग्रहणम् १।।कालः १। वक्ष्यते T तस्य ६। प्रदेश–	=यहां सूत्रमें कायका ग्रहण है काल द्रव्य (३९, ४०वां सूत्रों में) कहेंगे तिसके प्रदेशोंके
प्रतिषेध–अर्थम् १।।। इह*काय–ग्रहणम् १।।यथा*अणोः ६।	=निषेधके लिये यहां कायका आदान है जैसे पुद्गलकेअणुके
प्रदेश-मात्रत्वात् ५।।। द्वितीय–आदयः ३। अस्य ६।	=केवल एक प्रदेशहोनेसे वा एक प्रदेशपनासे दूसरा (प्रदेश) आदिकजिस(पुद्गलअणु)के
न*सन्ति इति * अप्रदेशः १। अणुः १। तथा * काल–	=नहीं है ऐसा अप्रदेश अर्थात् दूसरा प्रदेश रहित अणु है तैसे कालका
परमाणुः १।अपि*एक–प्रदेशत्वात् ५।।। अप्रदेशः १। इति*	=परमाणु भी एकप्रदेशभावसे अथवा एक प्रदेश होनेसे अप्रदेश है
तेषां ३। धर्म–आदीनां ३। अजीवः १। इति*सामान्यसञ्ज्ञा १।।	=उन धर्म अधर्म–आकाश–पुद्गल की अजीव ऐसी सामान्य संज्ञा है अर्थात् ऐसा नाम है कि अचेतनपना इन चारोंमें साधारण वा एकसा धर्म अथवा स्वभाव है
जीव–लक्षण–अभाव–मुखेन ३।।। प्रवृत्ता १।।	=सो (यह सामान्य संज्ञा) चैतन्य स्वभावके अभावद्वाराकरि प्रवर्ते है अर्थात् सामान्यसंज्ञा के अस्तित्व को इन चारोंमें जो अचेतनपना है सो जतावे हैं
धर्म–अधर्म–आकाश–पुद्गलाः ३। इति*विशेषसंज्ञाः ३।।	=धर्म अधर्म आकाश और पुद्गल ऐसी भेद रूप संज्ञायें हैं
सामायिक्यः ३।।	=और शास्त्र सम्बन्धी है (=सामायिक्यः) अर्थात् सिद्धान्त और आगम पठित हैं भावार्थ सर्वज्ञ भाषित आगम (शास्त्र) में ये संज्ञायें रूढ़ि हैं और प्रत्येक २ धर्म अधर्म आकाश और पुद्गल अपने २ संकेत से प्रवर्तती हैं
अत्र*आह T सर्व–द्रव्य–पर्यायेषु ७। केवलस्य ६।।।	=यहां शिष्य पूछता है कि समस्त द्रव्यों की समस्त पर्यायों में केवल ज्ञान के
इत्येवं आदिषु ७। द्रव्याणि उक्तानि कानि तानि इति उच्यते	=इत्यादिक(सूत्रों)में(देखो १ अ० सूत २६, २९)द्रव्य कहेवे क्या हैं ऐसेंकहा जाताहैकि

॥ द्रव्याणि ॥ २ ॥

यथास्वं पर्यायैर्द्रूयन्ते द्रवन्ति वा तानि द्रव्याणि॥ द्रव्यत्वयोगाद्द्रव्यमिति चेन्न। उभयासिद्धेः॥ यथा दण्डदण्डिनोर्योगो भवति पृथक्सिद्धयोः न च तथाद्रव्यद्रव्यत्वे पृथक्सिद्धेस्तः॥ यद्यपृथक्सिद्धयोरपियोगः स्यात्

सूत्रार्थः—धर्म—अधर्म-आकाश—पुद्गलाः ³₃। द्रव्याणि ¹॥। = धर्म, अधर्म, आकाश, पुद्गल, द्रव्यहैं। जीव, काल, (सूत्र २, ३९ में) कहेंगे ऐसे छै(१) द्रव्य हैं

वृत्त्यनुवादः (२) यथास्वं ¹₃॥। (३) पर्यायैः₃। द्रूयन्ते T = स्वरूप(स्वं) के अनुसार अथवा जैसा स्वरूप हो तिसकी पर्यायोंसे प्राप्त किये जाते हैं

द्रवन्ति T वा तानि¹₃॥। द्रव्याणि ¹₃॥। द्रव्यत्वयोगात्¹₅। = अथवा (पर्यायोंको) प्राप्त होते हैं वे द्रव्य हैं। द्रव्यपनाके सम्बन्धसे

द्रव्यम् ¹₃॥इति*चेत्* = द्रव्य है ऐसी शंका वा प्रश्न (= चेत्) है ॥

न* उभय—असिद्धेः ⁵₁॥ = (उत्तर) (द्रव्यत्व के योग से द्रव्य) नहीं है (क्योंकि) (द्रव्यत्व तथा द्रव्य) दोनों असिद्धहैं।

यथा*पृथक्सिद्धयोः ⁶₂॥। दंडदण्डिनोः⁶₂॥योगः ¹₁भवतिT = जैसे (दंड और पुरुष) न्यारे सिद्ध होनेपर दंड और दंडी (पुरुष) में सम्बन्ध होता है

न*च*तथा*द्रव्य—द्रव्यत्वे¹₂॥। पृथक्* सिद्धे ¹₂॥। स्तः T = वहुरि (च) नहीं हैं तैसे द्रव्य और द्रव्यत्व न्यारे सिद्ध। तात्पर्य्य यह है कि शिष्य के प्रश्न करने पर कि द्रव्यपना के संयोगसे द्रव्य होता है। यदि उसमें द्रव्यत्वकी विद्यमानता न हो तो द्रव्यका अस्तित्व सम्भव नहीं है तिसके उत्तरमें आचार्य कहते हैं कि जैसे दंड और पुरुष न्यारे न्यारे सिद्ध हैं और जब पुरुष दंड को धारण करे तब दंडी कहलावे, विना दंडके सम्बन्धके उसको दंडी नहीं कह सक्ते। वैसे द्रव्य और द्रव्यत्व न्यारे न्यारे नहीं दीखते हैं और न सिद्ध हैं तिस कारणसे द्रव्यपनाके योगसे द्रव्य हो सक्ती है यह तुम्हारी शंका ठीक नहीं है (फेरिआचार्य कहते हैं-—

यदि*अप्रथक् * सिद्धयोः ⁶₂॥। अपि* योगः ¹₁। स्यात्T = जो (द्रव्यत्व और द्रव्यमें) भिन्न भिन्न सिद्ध न होनेपर भी सम्बन्ध हो तो

---

(१) हमारे यहां इस सूत्रका सर्वत्र एक अर्थ और एक ही पाठ है॥ श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रमें "द्रव्याणि जीवाश्च" ऐसा दूसरा सूत्र है अर्थात् सभाष्य० मे 'धर्म, अधर्म, आकश, पुद्गल, और संपूर्ण जीव ये पांच द्रव्य हैं "ऐसा अर्थ है कालको द्रव्य नहीं माना है॥

(२) यथास्वं शब्द अव्ययीभावसमास है और अव्ययीभावसमास नपुंसक लिङ्ग ही होता हैं।

(३) इस वाक्यके गुप्त शब्दोंको प्रकट करनेसे ऐसे वाक्य स्पष्ट होजाता है कि-पर्यायैः द्रूयन्ते तानि द्रव्याणि वा = पर्यायोंसे प्राप्त किये जाय वे द्रव्य हैं अथवा (= वा) पर्यायान् ²₃। द्रवन्ति तानि ¹₃॥। द्रव्याणि¹॥। = पर्यायों को (जो) प्राप्त हों वे द्रव्य हैं।

आकाशकुसुमस्य प्रकृतिपुरुषस्य द्वितीयशिरसश्च योगः स्यादिति ॥ अथ पृथक्सिद्धिरभ्युपगम्यते, द्रव्यत्वकल्पना निरर्थिका । गुणसमुदायो द्रव्यमिति चेत्तत्रापि गुणानां समुदायस्य च भेदाभावे तद्द्रव्यव्यपदेशो नोपपद्यते । भेदाभ्युपगमे च पूर्वोक्त एव दोषः ॥ ननु गुणान्द्रवन्ति गुणैर्वा द्रूयन्त इति ।

आकाश—कुसुमस्य ।। (योगःस्यात्) प्रकृतिपुरुषस्य ।च* =(आकाशऔर) आकाश पुष्पके सम्बन्ध हो जाय और (=च) स्वाभाविक पुरुषके अर्थात् स्वभावसे एक मस्तकवाले पुरुषके

द्वितीय—शिरसः । योगः । स्यात् T इति * = दूसरे मस्तकका सम्बन्ध हो जाय (इसी प्रकार द्रव्यतो द्रव्यत्वरूप है ही तिसके फिर दूसरे द्रव्यत्वका योग ठहरै)

अथ * पृथक् * सिद्धिः ।। अभ्युपगम्यते T — पक्षान्तरमें अथवा जब (द्रव्य और द्रव्यत्व) न्यारे सिद्ध मानेजाते हैं तो

द्रव्यत्व—कल्पना ।। निरर्थिका ।। =द्रव्यपनाकी कल्पना निष्प्रयोजन है अर्थात् हमको द्रव्य सिद्ध करना है और जब द्रव्यका अस्तित्व हमने भिन्न मान लिया पुनः यह कहना कि द्रव्य के द्रव्यत्व का योगहै तिसहेतुसे द्रव्यहै निरर्थक है क्योंकि द्रव्यकी विद्यमानता तो हम मान ही बैठे हैं

गुण—समुदायः । द्रव्यम् ।। इति* चेत्*तत्र* अपि* = गुणोंका समूह है सो द्रव्य है ऐसा प्रश्न अथवा शंका है (उत्तर) वहां भी

गुणानां । समुदायस्य । च*भेद—अभावे । तत्द्रव्य- = गुणोंके और समुदायके (सर्वथा) भेद न माननेमें उस द्रव्यका (पृथक्)

व्यपदेशः । न* उपपद्यते T = नाम प्राप्त नहीं होता है (क्योंकि गुणोंका समुदाय कहा तब द्रव्य कहां)

भेद—अभ्युपगमे । च* पूर्व—उक्तः । एव* दोषः । = और (च) गुणनिके और समुदायके भेद माननेमें पहिले कहा हुआ ही दूषण आताहै अर्थात् उस द्रव्य नामकी अप्राप्ति आती है (क्योंकि जब समुदाय गुणोंसे भिन्न ठहरा तब गुणोंका समुदाय क्यों कहना चाहिए उसको तो गुणोंसे पृथक ही मान लिया है

ननु*गुणान् । द्रवन्ति T गुणैः । वा द्रूयन्ते T इति* =(इसी सम्बन्धमें पुनि) प्रश्न गुणोंको प्राप्त होता है अथवा गुणोंकरि प्राप्त किया जाता है (सो तुम्हारे कथनानुसार द्रव्य है) ऐसे

विग्रहेऽपि स एव दोष इति चेन्न । कथञ्चिद्भेदाभेदोपपत्तेस्तद्व्यपदेशसिद्धिः व्यतिरेकेणानुपलब्धेरभेदः सञ्ज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदाद्भेद इति ॥ प्रकृता धर्मादयो बहवस्तत्सामानाधिकरण्याद्बहुत्वनिर्देशः ॥

विग्रहे ७। * अपि*सः१। एव * दोषः१। इति*चेत्*	=द्रव्य शब्दके अर्थ प्रकाश करनेवाले वाक्यमें भी वही दोष आता है। ऐसी शंका है अर्थात् द्रव्य व्यपदेशकी अप्राप्ति आती है ऐसाप्रश्न है।
न *	=(उत्तर)(द्रव्य व्यपदेशकी अप्राप्ति का दूषण)नहीं आता है
कथञ्चित् * भेद-अभेद-उपपत्तेः ५॥	=(क्योंकि गुणोकेऔर समुदायके वा द्रव्यके) कथंचित भेद और कथंचित् उनमें अभेद माननेसेहै
तद्-व्यपदेश-सिद्धिः १॥ व्यतिरेकेण ३।	=उस (द्रव्य) के नाम (=व्यपदेश) की सिद्धि होय है (गुण और द्रव्य में) भिन्नता सहित
अनुपलब्धेः ५॥ अभेदः १।सञ्ज्ञा-लक्षण-प्रयोजनादि-	=न दीखने (के हेतु) से अभेद है (और) संज्ञा (संख्या) लक्षण और प्रयोजनादिक
भेदात् ५। भेदः१। इति* प्रकृताः १। धर्मादयः १। बहवः१।	=भेद करि भेद है । प्रकरणरूप धर्मादिक (द्रव्य) बहुत हैं
तत्-समान-अधिकरण्यात् ५॥ बहुत्व-निर्देशः १।	=सो समान आधार के योग से (इस सूत्र में) बहु वचनता का निरूपण है अर्थात् धर्म-अधर्म-आकाश-पुद्गल पूर्व सूत्रमें ये चार द्रव्य हैं और बहुवचन हैं इसलिये इस सूत्रमें ('द्रव्याणि' ऐसा शब्द बहुवचन में लाये हैं ?)

(१) कृत्, तद्धित, समास, एकशेष, सनाद्यन्तधातु इन पाच प्रकारकी वृत्तियोंमेंसे किसी भेदके अर्थको बोधन करनेवाले वाक्यको विग्रह कहते हैं। विग्रह लौकिक और अलौकिक दो प्रकारका है जैसे राजपुरुषः का लौकिक विग्रह राज्ञः पुरुषः होगा और अलोकिक विग्रह राजन्-अस्-पुरुष*सु होगा॥ इसलिये "गुणान् द्रवन्ति गुणैर्वा द्रूयन्ते" यह लौकिक विग्रह द्रव्य शब्दका (जो वृत्तिके पहिले भेदमें द्रुधातु से बना है॥ इस हेतु से विग्रह वाक्य का अनुवाद स्पष्ट रूप से ये हुआ कि "द्रव्य शब्दके अर्थ प्रकाश करने वाले वाक्यमे भी" अर्थात् गुणान्द्रवन्ति गुणैर्वा द्रूयन्ते मे भा इत्यादि ॥

स्यादेतत्संख्यानुवृत्तिवत्पुलिङ्गानुवृत्तिरपि प्राप्नोति। नैष दोषः। आविष्टलिंगाः शब्दा न कदाचिल्लिंगं व्यभिचरन्ति। अतो धर्मादयो द्रव्याणि भवन्तीति॥

अनन्तरत्वाच्चतुर्णामेव द्रव्यव्यपदेशप्रसंगेऽध्यारोपणार्थमिदमुच्यते—

॥ जीवाश्च ॥ ३ ॥

जीवशब्दो व्याख्यातार्थः।

स्यात्T-एतत् $^{1}_{1}$॥ संख्या-अनुवृत्ति-वत्* = यह हो अर्थात् यह मानलो (परन्तु) (प्रश्न) संख्याके अनुवर्तनके सदृश

पुल्लिंग–अनुवृत्तिः$^{1}_{1}$॥ अपि * प्राप्नोति T = पुलिंगकी अनुवृत्ति भी (इस सूत्रमें) प्राप्त होती है अर्थात् प्रश्न यह है कि धर्म-अधर्म-आकाश-पुद्गल द्रव्योंको प्रथम सूत्रमे बहुवचनमें लाये हैं

इसलिये "द्रव्याणि" शब्द भी यहां बहुवचनमें कहा तो धर्म-अधर्म-आकाश-पुद्गल पूर्व सूत्रमें जब पुल्लिंगमें है फिर इस सूत्रमें द्रव्य शब्दको पुल्लिंगमें द्रव्याः ऐसा क्यों नहीं रक्खा नपुंसकलिंगमें "द्रव्याणि" ऐसा क्यों लाये हैं

न * एषः $^{1}_{1}$। दोषः $^{1}_{1}$। आविष्ट-लिंगाः $^{1}_{3}$। शब्दाः$^{1}_{3}$। = (उत्तर) यह दूषण नहीं है (क्योंकि) निवेशित लिंगी शब्द अर्थात् जिन २ शब्दों को जो जो लिंग प्राप्त है

न*कदाचित्*लिंगं $^{2}_{1}$॥ व्यभिचरन्ति T = कभी अपना लिंग नहीं छोड़ते हैं (इसलिये क्योंकि द्रव्य शब्द नपुंसक लिंगी है इस सूत्रमें भी "द्रव्याणि" ऐसा द्रव्य शब्द नपुंसकलिंगमें लाये हैं)

अतः*धर्म–आदयः ^{1}। द्रव्याणि $^{1}_{3}$॥ भवन्ति T इति* = इसलिये धर्म-अधर्म-आकाश-पुद्गल द्रव्य हैं ऐसा (सूत्र) है

चतुर्णाम् $^{6}_{3}$। एव * अनन्तरत्वात् $^{5}_{1}$॥ = चारो (धर्म-अधर्म-आकाश-पुद्गल) के ही अत्यन्त समीपतासे अथवा लगावसे

द्रव्य-व्यपदेश-प्रसंगे $^{7}_{1}$। अध्यारोपण–अर्थम् $^{1}_{1}$॥ = द्रव्योंके कथनके प्रकरणमें (अन्य द्रव्य के) संस्थापन वा नियत करनेके लिये

इदम् $^{1}_{1}$॥ उच्यते T = यह (अग्रिम सूत्र मे) कहा जाता है कि

सूत्रम्- जीवाश्च॥३॥ = **जीवाश्च (द्रव्याणि भवन्ति) = जीवाःच द्रव्याणि भवन्ति** T

सूत्रार्थः– जीवाः $^{1}_{3}$। च * द्रव्याणि $^{1}_{3}$॥ भवन्ति T = जीव भी द्रव्य हैं

वृत्त्यनुवादः–जीव-शब्दः $^{1}_{1}$। व्याख्यात–अर्थः $^{1}_{1}$। = जीव शब्द है सो कहा हुआ विषय है

बहुत्वनिर्देशो व्याख्यातभेदप्रतिपत्त्यर्थः । चशब्दः सञ्ज्ञानुकर्षणार्थः जीवाश्च द्रव्याणीति ॥ एवमेतानि वक्ष्यमाणेन कालेन सह षड्द्रव्याणि भवन्ति॥ ननु द्रव्यस्य लक्षणं वक्ष्यते 'गुणपर्ययवद्द्रव्यमिति' तल्लक्षणयोगाद्धर्मादीनां द्रव्यत्वव्यपदेशो भवति, नार्थःपरिगणनेन? ॥ परिगणनमवधारणार्थं, तेनान्यवादिपरिकल्पितानां पृथिव्यादीनां निवृत्तिःकृता भवति ॥ कथं? पृथिव्यप्तेजोवायुमनांसि पुद्गलद्रव्येऽन्तर्भवन्ति

बहुत्व-निर्देशः॥ व्याख्यात-भेद-प्रतिपत्ति-अर्थः॥ =(इस सूत्रमें 'जीवाः' ऐसा) बहुवचनका निरूपण वा कथन वर्णित (जीवके) भेदोंकेजनानेकोहै
च-शब्दः॥ संज्ञा-अनुकर्षण-अर्थः॥ =(सूत्रमें) च शब्द (द्रव्य) संज्ञाके ग्रहण करनेके लिये वा अनुवृत्तिके लिये है
जीवाः॥ च*द्रव्याणि॥ इति* एवम्* एतानि॥ =जीव भी द्रव्यें हैं ऐसा (अर्थ होता) है इसप्रकार ये
वक्ष्यमाणेन॥ कालेन॥ सह षड्द्रव्याणि॥ भवन्ति। =आगेकहेजानेवाले काल सहित छह द्रव्यें होती हैं
ननु*गुण-पर्यय-वत्*द्रव्यम्॥ इति*द्रव्यस्य॥ =प्रश्न, गुण पर्याय वाला द्रव्य होता है ऐसा द्रव्यका
लक्षणम्॥ वक्ष्यते। तत्-लक्षणयोगात्॥ धर्मादीनाम्॥ =लक्षण (सूत्र ३८ वां में) कहेंगे तिस लक्षणके सम्बन्धसे धर्मादिकोंके
द्रव्यत्व-व्यपदेशः॥ भवति, न*अर्थः॥ परि-गणनेन॥ =द्रव्यत्वनाम होताहैगणना(करने)सेप्रयोजननहीं(तौ आपने छह द्रव्यहैंऐसी गणना क्यों की)
परिगणनम्॥ अवधारण-अर्थम्॥ तेन॥ अन्यवादिन्-=(उत्तर) गिनती है सो नियम के लिये है तिस (गिनती) से [१] भिन्नवादीसे
परिकल्पितानाम्॥ पृथिवी-आदीनाम्॥ =मानेगये पृथिवी-जल-तेज वायु आकाश-काल-दिशा-आत्मा, मन की अर्थात् पृथिवी आदिक इन नौ द्रव्योंकी (देखो 'तर्कसंग्रह' दूसरा सूत्र)
निवृत्तिः॥ कृता॥ भवति। कथम्? पृथिवी-अप् =निवृत्ति वा रोक पूरी- (=कृता) होती है (प्रश्न) कैसे पृथिवी, जल,
तेजो-वायु-मनांसि॥ पुद्गलद्रव्ये॥ अन्तर्भवन्ति। =अग्नि, वायु, मन, पुद्गल द्रव्यविषैं गर्भित हैं ।

(१) इस प्रश्नकी योग्यता इसप्रकार है कि अन्यवादियाने तर्क सग्रहआदि न्यायके ग्रंथोंमें आत्मा, काल, आकाश, दिशा, पृथिवी, जल, तेज, वायु और मन नौ द्रव्य माने हैं हमारे यहां आत्मा, काल, आकाश, पुद्गल, धर्म और अधर्म ये छह द्रव्य माने हैं धर्म और अधर्म अन्यवादियों ने द्रव्य नहीं माने हैं ऊपर की गणनासे स्पष्ट है कि आत्मा, काल और आकाश जिसमें दिशा भी गर्भित है (दिशा का आकाश मे गर्भित होना इससूत्रकी वृत्ति के अन्तभागमे सिद्ध किया है) हमारे यहां और उनके यहां एक से हैं। अब अन्यवादियोंकीशेष पांच द्रव्यें पृथिवी, जल, तेज, वायु, और मन रह गये सो हमारे यहां के पुद्गल द्रव्यमें सब के सब आजातेहैं इसलिये प्रश्नकर्ताने उपर्युक्त तर्क सग्रह ग्रन्थमें वर्णित नौ द्रव्योंके कथन वा गणना को चित्त में धारण करके यह प्रश्न किया है कि पुद्गल द्रव्यमें ये पांचों कैसे गर्भित है ॥

रूपरसगन्धस्पर्शवत्त्वाच्चक्षुरिन्द्रियवत् ।

रूप-रस-गन्ध-स्पर्शवत्त्वात्-५।।।चक्षुःइन्द्रिय-वत्*=(उत्तर)रूप-रस-गंध-और स्पर्शवान् होनेसे नेत्र इन्द्रियके सदृश(पुद्गलद्रव्यमें गर्भित)है

(१) यहांसे आगे इस वृत्तिके अर्थको भले प्रकार समझने के लिये इस टिप्पणी को चित्त लगाकर समझलेना चाहिये अन्य वादियोंके माने हुये चार गुणों में कौन कौन किस किस मेंहै? जैनियों ने स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण-वाले पुद्गल माने हैं

(तत्त्वार्थ सूत्र अध्याय ५ सूत्र २३, द्रव्यसंग्रह ग्रंथकी गाथा १५)

(१)रूप—पृथिवी,जल,और तेजमें रहताहै (तर्कसंग्रह १-१६) (१) रूप अर्थात् कृष्ण, नील,रक्त, पीत, श्वेत.ये पांच रूप वा वर्ण वा रंग हैं ।

(२) रस—पृथिवी और जल में रहता है (तर्कसंग्रह १-२०) (२) रस अर्थात् खट्टा, मीठा,कडुआ (कटुक), कषायला, चिरपरा (तिक्त) ये पांच हैं

(३)गंध—पृथिवी मात्रमें ही रहताहै (तर्कसंग्रह १-२१) (३) गन्ध अर्थात् सुगन्ध (सुरभि), दुर्गन्ध (असुरभि) , भेदरूप हैं

(४)स्पर्श-पृथिवी,जल,तेज,और वायुमेंरहताहै(तर्कसंग्रह१-२२)(४)स्पर्श-कोमल(मृदु),कठोर हलका,भारी शीत,उष्ण,सचिक्कन(स्निग्ध),(रूक्ष) रूखा), -ये आठभेद स्पर्शकेहैंऐसेसामान्यतासेचारगुणओरविशेषरूपसे२०गुणवालेपुद्गलहैं

(५)नित्य औरपरमाणुरूपमनहैअर्थात्पौद्गलिकवापुद्गलीकमनहै (देखोतर्कसंग्रह१।१८) (५) मन अर्थात् द्रव्यमन जो पुद्गलद्रव्यका विकारहै, भावमन जो ज्ञानहै आत्मामेंगर्भितहै

इन दोनों बीजको के पढने से यह अन्तर निकलता है कि अन्य वादियोंने वायुको रूपवान् नहीं माना है जैनियों ने रूपवान् माना है, रस गुणको अग्नि और वायु में नहीं माना है हमने माना है,गन्ध को जल अग्नि वायु में नहीं माना है जैनियों ने माना है। स्पर्श अन्यवादियोंने पृथिवी, जल, तेज और वायु सब में माना है सो हम जैनियों ने भी माना है ॥ पूज्यपाद स्वामीने"कथं व्यवहारोपपत्तेः."तक वृत्तिके पृष्ठ२०३और२०४की १५ पंक्तियोंमें,तीन बातें सिद्ध की हैं (१) जो प्रतिवादी नौ द्रव्यें मानते हे वे सर्व द्रव्य आत्मा-काल-आकाश और पुद्गलद्रव्य में अन्तर्भाव है इसलिये नौ द्रव्योंके माननेकी आवश्यकता नहीं, है वरन् धर्मद्रव्य, अधर्म द्रव्य, को मिलाकर केवल छह द्रव्य मानना चाहिये-(२)रूप-रस-गन्ध-स्पर्श, ये पृथिवी,जल,अग्नि और वायु, और द्रव्यमन में भी(जो पुद्गल द्रव्यका विकार है)विद्यमान हैं और पुद्गलके गुण हैं और उनमें पाये जाते हैं,अर्थात् भिन्नवादियों ने वायु में रूप(वर्ण)नहीं मानाहै उसका खण्डन होताहै। अग्नि और वायु में रस गुण नहीं माना हैउसका भी खण्डन होता है और इसी प्रकार जल अग्नि-वायुमें गन्ध नहीं माना है उसकाभी खडन होता है। मनमें स्पर्शमाना है रस-रूप-गंध नहीं माने हैं इसलिये पूज्यपाद स्वामीने

वायुमनसो रूपादियोगाभाव इति चेन्न । वायुस्तावद्रूपादिमान्स्पर्शवत्त्वाद्घटादिवत् ॥

अर्थात् पृथिवी,जल,अग्नि, वायु और द्रव्यमन रूप वा वर्ण,रस,गंध,और स्पर्श सहितहैं और पुद्गल भी रूप,रस,गन्ध,और स्पर्शवान् हैं तिससे ये पांचो पुद्गल द्रव्यमें गर्भित हैं

वायु-मनसोः[6][2]॥रूप-आदि-योग-अभावः[1][1]इति*चेत्*=वायु और मनके रूपादिकका सम्बन्ध नहीं हैं ऐसा प्रश्न वा शंका (=चेत्) है

अर्थात् अन्यवादियोंकी तर्कसंग्रहके सूत्र १८ के अनुसार मन परमाणु रूप है (अतःस्पर्शवान् तो हुआ) उसके रस,गन्ध,और वर्ण नहीं माने हैं और सूत्र २२ के अनुसार वायु में केवल स्पर्श माना है और वर्ण-रस-गन्ध नहीं माने हैं (देखो तर्कसग्रह सूत्र १९,२०, २१)

न*वायुः[1][1]तावत्*स्पर्शवत्त्वात्[5][1]॥घटादिवत्*रूप-=(उत्तर) (सो) नहीं है ॥ वायु है सो प्रथम तो स्पर्शवान् होनेसे घटादिके समान रूप

(१)आदिमान्[1][1] =रस गन्ध वाला है अर्थात् जहां स्पर्श है वहां रूप रस गंध होंय ही हों यह नियम है

जलमें गधसिद्ध किया है अग्निमें रस और गधसिद्ध किये हैं।और वायु में रूप-रस-गध-सिद्ध किये है और द्रव्यमनविषैं रस-रूप-गध सिद्ध किये हैं जिनको अन्यवादियों ने नहीमाना है (३) समस्त पुद्गल परमाणुओंके एक जातिसे दूसरी जातिमें सदैव पलटन होती रहती है । जैसे पृथिवी से जल होता है जलसे पृथिवी होती है अग्नि से पृथिवी होय है और पृथिवी आदिक से अग्निहोतीहै इसप्रकार पृथिवी आदि से उपजे हुए और वायु तथा द्रव्यमनके न्यारे परमाणु नहीं है, ये समस्त ही पुद्गल के विकार हैं ॥

(१)सज्ञावाचक पुल्लिङ्ग शब्द जिनके अन्त मे'वत्'और'मत्'हों प्रथमा विभक्ति एक वचन,द्विवचन, बहुवचन, और द्वितीया विभक्ति एक वचन और द्विवचन मे अन्त के तकार के पहिले न् जोडते हैं फिर प्रत्यय लगाते है, जैसे-आदिमत्-और सबसे पहिले प्रथमा विभक्ति एक वचनमें 'त्' के पहिलेस्वर को दीर्घ करदेते है जैसे-आदिमत् से आदि-मात् हुआ पश्चात् न्-त् से प्रथम जोड़ा तो आदिमान् त् हुआ फिर स् प्रथमा विभक्ति एक वचनका प्रत्यय जोड़ा तब आदिमान् त् स् ऐसा रूप बना जब पद के अन्त मे एक व्यंजन से अधिक हों तो प्रथम रहजाता है शेषसब गिर जाते है(देखो-सयोगान्तस्यलोपःअष्टाध्यायी सूत्र ८-२-२३) ॥ शेषरूप आदिमन्तौ,आदिमन्तःऔर आदिमन्तम् और आदिमन्तौ(द्वितीया विभक्तिमे) होगे ॥ इसलिये 'आदिमान्' यह रूप प्रथमा विभक्ति एक वचन पुल्लिंग में बना ॥

'सयोगान्तस्य लोप.=सयोगान्तस्य[6][1]। लोपः[1][1]। =संयोगान्त यत्पद तदन्तस्य लोपः स्यात् ॥

सयोग-अन्तम्[1][1]॥यत्पदम्[1][1]॥ =जिस पदके अन्तमें सयोग (व्यजन)हो और

तद्-अन्तस्य[6][1]। लोपः[1][1] स्यात् । =वह सयोग जिस समुदायके अन्तमे होय तिसका लोप होजावे अर्थात् जब पदके अन्तमें एक व्यजनसे अधिक हो तो पहिला रहजाता है शेष सब गिरजाते हैं

चक्षुरादिकरणग्राह्यत्वाभावाद्रूपाद्यभाव इति चेत्परमाण्वादिष्वतिप्रसङ्गः स्यात्॥आपो गन्धवत्यः स्पर्शवत्त्वात्पृथिवीवत् ॥ तेजोऽपि रसगन्धवत् रूपवत्त्वात्॥ तद्वदेव मनोऽपि द्विविधं द्रव्यमनो भावमनश्चेति । तत्र भावमनो ज्ञानम्, तस्य जीवगुणत्वादात्मन्यन्तर्भावः । द्रव्यमनश्च रूपादियोगात्पुद्गलद्रव्यविकारः ॥

चक्षुर्–आदि–करण–ग्राह्यत्व–अभावात्[५।१] =नेत्रादिक इन्द्रियोंसे ग्रहणयोग्य न होनेसे वा न आकर्षित कियेजासकनेसे
रूप–आदि–अभावः[१।१] इति* चेत्* =(वायुके) रूप,रस गंधआदिका अस्तित्व नहीं है। ऐसी शका वा प्रश्न है
परमाणु–आदिषु[७।३] =(उत्तर)तो परमाणु आदिक लक्ष्यमें (जो नेत्रोंकरि नहीं दीखते हैं)
अतिप्रसंगः[१।१]स्यात् ।,आपः[१।३]।स्पर्शवत्त्वात्[५।१]।पृथिवीवत्=(स्पर्शादिक)लक्षणकोभी अतिप्रसंग होगा॥ जल स्पर्शवान् होनेसे पृथिवीके समान
गन्धवत्यः[१।३], =गंधवान्है (अन्यवादियोंनेजलमेंरूपरसस्पर्शहीमानेहैंइसलियेयहांगंधत्वसिद्धकिया है)
तेजः[१।१]। अपि*रूपवत्त्वात्[५।१]। रस-गन्धवत्* =अग्नि भी रूपवान् होनेसे रस और गन्धवानहै(क्योंकि अन्यवादियोंने अग्निमें रूप और स्पर्शमाने हैं इसलिये यहांपर रसत्व और गंधत्व सिद्ध किये हैं)।
तद्-वत्*एव*मनः[१।१]। अपि*द्विविधम्[१।१]। =उस (जल)के सदृश ही है॥ मन भी दो प्रकार है।
द्रव्यमनः[१।१]। भावमनः[१।१]।च*इति,तत्र*भावमनः[१।१]।=द्रव्यमन और भावमन । तहां भावमन है
ज्ञानम्[१।१]।तस्य[६।१]।जीवगुणत्वात्[५।१]।आत्मनि[७।१] =सो ज्ञान है। तिस (भावमन) के चेतनका गुणहोनेसे,आत्मा (द्रव्य) में
अन्तर्भावः[१।१], द्रव्यमनः[१।१]। च*रूप– =गर्भित है। वहुरि द्रव्यमन अर्थात् सूक्ष्म पुद्गलका सचय रूप अष्ट पांखुरी के फूले कमलके आकार हृदय स्थानमें तिष्ठा हुआ है सो रूप
आदि–योगात्[५।१]पुद्गलद्रव्य-विकारः[१।१], =रस गंध-स्पर्शके संयोगसे पुद्गलद्रव्य का परिणाम है १

अति प्रसङ्ग=अति प्रसक्ति, प्रसग को छोडने वाला,लक्ष्यमें जो लक्षणका सम्बन्ध होताहे उसको प्रसग कहते हैं जो इसके विपरीत हो वह अति प्रसंग हैं अर्थात् लक्ष्यमें लक्षण के सम्बन्धकाअभाव (१) वायु और मन इन दोके सबध में रूपादिक के अभाव होने का प्रश्न किया गया था सो वायु को रुपादिक का होनासिद्ध करदिया,वायु के लगता ही जलमें गंध और अग्नि में रस और गंध सिद्धि करनेके पश्चात् शेष रहे हुए मनके दो भेद करते हुये द्रव्यमनमें रूप रस-गंध-स्पर्शकी सिद्ध आगे करेंगे॥

रूपादिवन्मनः ज्ञानोपयोगकारणत्वाच्चक्षुरिन्द्रियवत् ॥ ननु अमूर्तेऽपि शब्दे ज्ञानोपयोगकारणत्वदर्शनाद्व्यभिचारी हेतुरिति चेन्न। तस्य पौद्गलिकत्वान्मूर्तिमत्त्वोपपत्तेः॥ ननु यथा परमाणूनां रूपादिमत्कार्यत्वदर्शनाद्रूपादिमत्त्वम्, न तथा वायुमनसो रूपादिमत्कार्यं दृश्यते इति चेन्न। तेषामपि तदुत्पत्तेः। सर्वेषां परमाणूनां सर्वरूपादिमत्कार्यत्वप्राप्तियोग्यत्वाभ्युपगमात् ॥ न च केचित्पार्थिवादिजातिविशेषयुक्ताः परमाणवः सन्ति, जातिसङ्करेणारम्भदर्शनात् ॥

ज्ञानोपयोग-कारणत्वात्॥चक्षुःइन्द्रियवत्* =ज्ञानोपयोग को निमित्तहोनेसे नेत्र इन्द्रियके समान

रूप-आदिवत्*मनः॥;ननु*अमूर्ते अपि* =मन रूपरस-गंध-स्पर्शवान् (=रूपादि) है। प्रश्न। मूर्तिशून्यहोनेपर भी

शब्दे ज्ञानोपयोग-कारणत्व-दर्शनात्व्यभिचारी हेतुः=शब्दविषैं ज्ञानोपयोग कारणभावदीखनेसे व्यभिचारीहेतुहैअर्थात्शब्दअमूर्तिकहोनेपर भीज्ञानोपयोगकीप्राप्तिकाकारणदेखेजानेसेहेतुपक्ष,सपक्ष,विपक्षमेंरहनेवालाव्यभिचारी

इति*चेत्* =हुआ ऐसी शंका है(भावार्थ):द्रव्यमन रूपादि सहित हैसो ज्ञानके प्राप्तिविषैं कारण कहा है और अमूर्तिक शब्द भी ज्ञान करानेमें कारण है तो ऐसे ज्ञानकी उपलब्धिमें मूर्तिक द्रव्यमन और अमूर्तिक शब्द दोनों ही कारण हुये इसलिये यह नियम नहीं होसकता किजो ज्ञान करानेमें कारण है वह रूप–रस–गन्ध–स्पर्शवाला (=मूर्तिक) ही होता है ॥

न*;तस्य॥पौद्गलिकत्वात्॥मूर्तिमत्व– =(उत्तर) नहीं; क्योंकि तिस (शब्द)कें पुद्गल जन्य होनेसे मूर्तिपना

उपपत्तेः॥;ननु*यथा*परमाणूनाम्॥रूपादिमत्– =सिद्धि (=उपपत्ति) है। प्रश्न। जैसे परमाणुओं के रूपादिवाला

कार्यत्व-दर्शनात्॥रूपादि-मत्त्वम्॥;नतथावायु- =कार्यपना दीखनेसे रूपादिकवान् पना है,नहीं तैसे वायु

मनसोः॥रूप-आदिमत्-कार्यम्॥दृश्यते । =और मनके रूपादिकमान् कार्य देखा जाता है

इति*चेत्*न*;तेषाम्॥ अपि*तद्॥ =ऐसी शका है (उत्तर) नहीं, क्योंकि तिन (वायु और मनके) भी वह

उत्पत्तेः॥सर्वेषाम्॥परमाणूनाम्॥सर्व-रूप-आदिमत्-=(रूपादिवान्कार्य)उत्पन्न होताहैक्योंकि सब परमाणुओंके समस्त रूपादिक

कार्यत्व-प्राप्ति-योग्यत्व-अभ्युपगमात्॥; =कार्यपनाकी प्राप्ति होनेकी शक्ति, सामर्थ्य वा योग्यता मानी गई है

न*च*केचित्*पार्थिव-आदि-जाति-विशेष-युक्ताः॥ =वहुरि नहीं कोई पृथिवी आदिक जन्य जाति विभेद सहित

परमाणवः॥सन्ति।जाति-सङ्करेण॥आरम्भ-दर्शनात्॥=परमाणु हैंक्योंकि(समस्त पुद्गल परमाणुओं के)जातिके पलटन करि आरम्भदीखेहै

दिशोऽप्याकाशेऽन्तर्भावः । आदित्योदयाद्यपेक्षया आकाशप्रदेश-पंक्तिषु इत इदमिति व्यवहारोपपत्तेः ॥ उक्तानां द्रव्याणां विशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ नित्यावस्थितान्यरूपाणि ॥४॥

अर्थात् समस्त पुद्गल परमाणुओं के एक जातिसे दूसरी जातिमें सदैव पलटन होती रहतीहै जैसे पृथिवी परमाणुओं से जल होताहै जल परमाणुओंसे पृथिवी होय है, अग्निसे पृथिवी होती है, और पृथिवी काष्ठादिकसे अग्नि होय है इस प्रकार पृथिवी आदिकसे उत्पन्न हुए वायु मनके न्यारे न्यारे परमाणु नही हैं ये समस्त ही पुद्गलके विकार हैं १

दिशः[६/१]॥अपि॥आकाशे[७/१]॥अन्तर्भावः[१/१];आदित्य-उदय-आदि-=दिशाका भी आकाश (द्रव्य) में समावेश है। सूर्यके उदय आदिके अपेक्षया[३/१]आकाश-प्रदेश-पंक्तिषु[७/३]॥ इतः॥इदम्[१/१]॥ =अपेक्षासे आकाशके प्रदेशोंकी पंक्तियोंमें यहांसे यह (इधर) है

इति॥व्यवहार-उपपत्तेः[५/१]॥ =इस प्रकार (पूर्वादिक दिशाओंके)व्यवहारकी सिद्धि है अर्थात् जहां सूर्य उगता है उसओरके आकाशके प्रदेशोंकी पंक्तियोंको पूर्वदिशा कहते है जहां सूर्य अस्त होता हैउस ओरके आकाशके प्रदेशकी पंक्तियोंको पश्चिम दिशा कहते हैं इस प्रकार शेष दिशाओ को जानना

उक्तानाम्[६/३]॥द्रव्याणाम्[६/३]॥ विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थम्[२/१]॥आह[१]=वर्णित द्रव्योंके विशेषज्ञानके लिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते है कि

(१)नित्यावस्थितान्यरूपाणि ॥ ४ ॥

=((२)धर्मादीनि, (३)कालः, (४)जीवाश्च, (५)द्रव्याणि)नित्यावस्थितान्यरूपाणि ॥ ४ ॥

सूत्रार्थः—धर्म-आदीनि[१/३]॥कालः[१/१]जीवाः[१/३]च॥द्रव्याणि[१/३]॥ =धर्म-अधर्म-आकाश-पुद्गल-काल-और जीव द्रव्ये

नित्य— ध्रुव वा नित्य हैअर्थात् द्रव्यविषैं अनेक धर्म है वे(धर्म)द्रव्यपनाकी अपेक्षा (न कि पर्यायकी अपेक्षा) अविनाशी हैं अथवा सदा विद्यमान हैं ।

(१)'दोनों आम्नायोंमे इस सूत्रका पाठ,अर्थएक है?(२)'धर्म-अधर्म-आकाश-पुद्गल'यह प्रथम सूत्र से लिया है(३) 'काल'इस अध्यायके उनतालीसवां सूत्रसे अध्याहार किया है(४) 'जीवाश्च'इस अध्यायके तीसरे सूत्रसेयह अनुवृत्ति लीगई है(५)'द्रव्याणि'इस अध्यायके दूसरे सूत्र से अनुवर्तताहै॥

नित्यं ध्रुवमित्यर्थः । नेः ध्रुवे त्यः इति निष्पादितत्वात् ॥ धर्मादीनि द्रव्याणि गति-हेतुत्वादिविशेषलक्षणाद्रव्यार्थादेशादस्तित्वादिसामान्यलक्षणाद्रव्यार्थादेशाच्च

अवस्थित— =अवस्थित है अथवा ज्योंके त्यों रहते है अर्थात् द्रव्योंमें अपने अपने जो जो विशेष(२)लक्षण है उनको नहीं छोड़ते है जैसे जो द्रव्य चेतन है वह अचेतन नहीं हो सक्ती जो द्रव्य मूर्तिक है वह अमूर्तिक नहीं हो सक्ती और जो अमूर्तिकहै वह मूर्तिक नहीं हो सक्ती इत्यादि तिससे द्रव्योंकी संख्याकी व्यवस्थाहै और छह द्रव्योंकीसंख्या १,२,३,४,५,वा ७,इत्यादि नहीं होसक्ती है

अरूपाणि १।३।। =(पुद्गल द्रव्यके अतिरिक्त) अरूपी हैं अर्थात् अमूर्तिक है

वृत्त्यनुवादः-नित्यम् १।१।। ध्रुवम् १।१।। इति* अर्थः १।१ नेः ६।१ ध्रुवे ७।१ =नित्य है सो ध्रुव अथवा अविनाशी ऐसा अर्थ है(नि)धातु से स्थिर अर्थमें

त्यः १।१ इति* =त्यप् अर्थात् (त्य) प्रत्ययलगाकर (नित्य) ऐसा(शब्द)

निष्पादितत्वात् ५।१।।;धर्म—आदीनि १।३।। =सिद्ध वा निष्पन्न होता है ॥ धर्म—अधर्म—आकाश-पुद्गल—जीव-काल

द्रव्याणि १।३।। गति—हेतुत्व—आदि-विशेषलक्षण- =द्रव्यहैं गति-हेतुत्व-आदिकसबद्रव्योंमें न व्यापने वाले गुणोंसे(=विशेष लक्षण)

द्रव्यार्थ(१)—आदेशात् ५।१ च*अस्तित्व—आदि— =द्रव्यस्वरूपके आदेशकरि और (=च) अस्तित्वादिक (=सामान्य लक्षण)

सामान्य-लक्षण-द्रव्य-अर्थ—आदेशात् ५।१ च* =सब द्रव्योंमें व्यापनेवाले गुणोंसे द्रव्यार्थिक नयके नियमसे

(१) सर्वार्थसिद्धि वृत्तिके प्रथम संस्करण में' द्रव्यत्व—आदेशात् ' पाठ है हमने 'द्वितीयावृत्ति' का पाठ 'द्रव्यार्थादेशात्' लिया है क्योंकि यह पिछला पाठ तीन हस्त लिखित प्रतियोमे भी मिलता है॥ दोनों पाठों का अर्थ लग भग एक है । (२) गुण अथवा लक्षण के दो भेद हैं (।)सामान्य और (।।) विशेष (।)जो सब द्रव्योंमें व्यापैं वे सामान्य अथवा साधारण हैं वे गुण अनेक हैं परन्तु उनमे अस्तित्व—वस्तुत्व—द्रव्यत्व-प्रमेयत्व—अगुरुलघुत्व-प्रदेशवत्व-ये मुख्यहैं(देखो अध्याय २ पृष्ठ २६)।।।जो सब द्रव्योंमे न व्यापै उसको विशेष गुण कहतेहैं जैसे जीवका विशेषगुण ज्ञान ॥ नित्य और अवस्थित शब्दोंमे क्या भेद अथवा अन्तर है । देखो प० जयचंद्रायजी वचनिका पृष्ठ ४११) द्रव्यार्थिक नयके आदेशकरि द्रव्योंको अपने गति हेतुत्व स्थितिहेतुत्व आदि विशेष गुण तथा अस्तित्व आदि सामान्य लक्षणका किसी समयमे न छोडना सो नित्य है । धर्मादिक षड् द्रव्योंकी कही गई संख्या तथा उनके प्रदेशोंकी कथित इयत्ता (संख्या) कभी भी न्यून वा वढती नही होना उसे अवस्थित कहते हैं । भावार्थ अवस्थित विशेषणसे द्रव्यो तथा उनके प्रदेशोंकी संख्याका क्रम कभी घटैगा वढैगा नहीं ज्योंका त्यों अथवा वैसाही क्रम रहैगा ॥

कदाचिदपि न व्ययन्तीति नित्यानि। वक्ष्यते हि तद्भावाव्ययं नित्यमिति। इयत्ताऽव्यभिचारादवस्थितानि धर्मादीनि षडपि द्रव्याणि कदाचिदपि षडिति इयत्त्वं नातिवर्तन्ते। ततोऽवस्थितानीत्युच्यन्ते॥ न विद्यते रूपमेषामित्यरूपाणि, रूपप्रतिषेधेन तत्सहचारिणां रसादीनामपि प्रतिषेधः। तेन अरूपाण्यमूर्तानीत्यर्थः॥

यथा सर्वेषां द्रव्याणां नित्यावस्थितानीत्येतत्साधारणं लक्षणं तथा अरूपित्वं पुद्गलानामपि प्राप्तम्।

कदाचित्*अपि*न*व्ययन्ति T इति*नित्यानि;	=कभी भी नाश वा नष्ट नहीं होती हैं इसप्रकार नित्य हैं वा अविनाशी हैं
वक्ष्यते T हि*तद्भाव–अव्ययम्	=क्योंकि(=हि) (इस अध्यायके इकतीसवें सूत्रमें) कहेंगे कि "तद्भावाव्ययं नित्यम्" अर्थात् जो (तद्भाव) रूपसे वा सत्स्वभावसे(=तद्भाव)अविनाशी (=अव्यय) है
नित्यम् इति*;इयत्ता-अव्यभिचारात् अवस्थितानि	=सोनित्यहै; इतनेका होना परिमाण वा गिनतीके न छोड़ने(के हेतु)सेअवस्थित हैं
धर्म-आदीनि षड् अपि*द्रव्याणि कदाचित्*अपि*षड्	=धर्मादिक छह ही(=अपि) द्रव्य हैं किसीकाल में भी(=अपि)छह हैं
इति*इयत्त्वम् न*अतिवर्तन्ते T;	=इस प्रकार परिमाण को वा संख्याको नहीं उलंघे हैं, नहीं त्यागे हैं
ततः*अवस्थितानि इति*उच्यन्ते; न*विद्यते T	=तिसलिये(ये छहो द्रव्य) अवस्थित कही जाती हैं। नहीं है
रूपम् एषाम् इति*अरूपाणि रूप-प्रतिषेधेन	=रूप वा वर्ण जिनके इस प्रकार(येद्रव्यें)अरूपी हैं। रूपके निषेधसे
तत्-सहचारिणाम् रसादीनाम् अपि*	=उस(रूप=वर्ण=रंग)केसहचारी अर्थात्एकैसाथरहनेवालेरस-स्पर्श गंधकीभी(=अपि)
प्रतिषेधः; तेन अरूपाणि अमूर्तानि	=निवृत्ति है। तिस(रूपके प्रतिषेध) से अरूपी हैं अमूर्ती हैं
इति*अर्थः यथा*सर्वेषाम् द्रव्याणाम् नित्य-	=ऐसा अभिप्राय है। जैसे समस्त द्रव्योंके नित्य
अवस्थितानि इति*एतत् साधारणम्	=अवस्थित ऐसा यह(=एतत्)सामान्य
लक्षणम् तथा*अरूपित्वं पुद्गलानाम् अपि*प्राप्तम्	=लक्षण है। तैसे अरूपीपना पुद्गलोंके भी सिद्ध है।

(१)'विद्यते'–यह रूप विद् धातुसे बनाहै।'विद्'संज्ञा और धातु दोनों अर्थोंमें आताहै जब संज्ञा होताहै तब ज्ञान,पंडित,और बुधग्रह ये तीन अर्थ देताहै। (') विद् अदादि द्वितीय गणका धातु परस्मैपद,सकर्मक, जानना अर्थमें गुण संज्ञाहोकर 'वेद्' रूपहुआ, अन्यपुरुष,एक वचन,परस्मैपद,वर्तमान कालकी क्रिया का ति लगानेसे वेद्+ति=वेत्ति हुआ ( ) विद्=होना, दिवादि चतुर्थगण' आत्मनेपद अकर्मक धातु यहांपर है। चतुर्थगणका विकरण 'य और वर्तमान काल अन्यपुरुष, एक वचन आत्मने पदका'ते'जोडनेसे विद्+य+ते=विद्यते हुआ ( ) विद्=पाना तुदादि उभय पदी, सकर्मक धातुहै विकरण'अ'लगानेसे प्रथम'न्'लगाया जाताहै विन्द्+अ हुआ,ति प्रत्यय लगानेसे विन्दति=पाताहै विन्दते=अपने लिये पाताहै, दो रूप बने॥

अतस्तदपवादार्थमाह—

॥ रूपिणः पुद्गलाः ॥५॥

रूपं मूर्तिरित्यर्थः ॥ का मूर्तिः? रूपादिसंस्थानपरिणामो मूर्तिः ॥ रूपमेषामस्तीति रूपिणः । मूर्तिमन्त इत्यर्थः ॥ अथवा रूपमिति गुणविशेषवचनशब्दस्तदेषामस्तीति रूपिणः ॥ रसाद्यग्रहणमिति चेत्

अतः॥तद–अपवाद–अर्थम् ॥आह ।	=इसलिये उस (अरूपित्व) के विरोध वा भिन्नताके लिये (अगले सूत्रमें) कहते है कि
(१)रूपिणः पुद्गलाः ॥ ५ ॥	=रूपिणः पुद्गलाः भवन्ति ॥ ५ ॥
सूत्रार्थः—रूपिणः पुद्गलाः भवन्ति ।	=(सूत्रार्थ) (उक्तछहो द्रव्योंमेंसे केवल) पुद्गल रूपी है, पुद्गल मूर्तिमान है अर्थात् पुद्गलोंके रूप अथवा मूर्ति है और नेत्रोंसे देखेजासकते हैं और स्पर्श जासकते है
वृत्त्यनुवादः रूपम्॥मूर्तिः॥इति–अर्थः॥का॥मूर्तिः॥	=रूप है सो मूर्ति है ऐसा अर्थ है(प्रश्न) मूर्ति क्या है ? ।
रूप–आदि–संस्थान–	=(उत्तर)रूप–रस-गन्ध–स्पर्शका गोल, तिकोना, चौकोना लंबा आकार(=संस्थान) का
परिणामः॥मूर्तिः॥;रूपम्॥एषाम्॥अस्ति।इति॥	=परिणमन है सो मूर्ति है । रूप जिनके है ऐसे
रूपिणः॥; मूर्तिमन्तः॥इतिअर्थः॥अथवारूपम्॥इति	=रूपी हैं आकृतिवान् ऐसा अर्थ है अथवा रूप ऐसा
गुण-विशेष-वचन-शब्दः॥तद्॥एषांअस्तिइतिरूपिणः	=गुणका जाति(=रस-गंध-स्पर्श का भी)वाची शब्दहै। वह(रूपगुण)जिनकेहै ऐसे रूपी है
रस–आदि–अग्रहणम् ॥ इति॥चेत्॥	=(इससूत्रविषै रूपमें) रस-गंध-स्पर्शका ग्रहण नहीं होता है ऐसी शंका है ?

( ) विद्=विचारकरना,रुधादि सातवागणका आत्मनेपदी सकर्मक धातुहै । इसका विकरण'न' को धातुके स्वर और अन्तके व्यजनके मध्य लगाते है अत विद्=विनद् । यदि क्रियाका ङित् प्रत्यय लगाना हो तो इस विकरण का 'अ' गिरजाता है इसलिये विन्द्+ते,'ते'के कारण'द्' त् में वदलगया, (देखो, प्रथम अध्याय पृष्ठ ११ मे 'खरि श्चला चर' स्यु': सूत्रका अर्थ) इसलिये अव 'वित्ते'=वह विचार (अपने लिये) करता है रूप वनगया ॥
( ) विद् चुरादिदशवेंगणका आत्मनेपदी, अकर्मक और सकर्मक कहना प्रसिद्धकरना, अनुभव करना, रहना चार अर्थोंमे आता है ॥ इसके विकरण 'अय'के पहिले धातुके उपान्तिक ह्रस्व स्वरकी प्रायःगुण सज्ञा होजातीहै जैसे विद्=वेद्+अय)उक्त तेके जोडनेसे वेदयते रूप,कहताहै,प्रसिद्ध करताहै अनुभवकरता है,रहता है,अर्थोंमे वनता है ॥ सहेतुक सकर्मक रूप वेदयति-वेदयते है ॥ (१) दोनों सम्प्रदायामें इस सूत्रका अर्थ और पाठ एकसा है ? रूपमेषामस्त्येषु वास्तीतिरूपिणः=रूपम् एषाम् अस्ति वा एषु(रूपम्, अस्ति इति रूपिणः=जिनके रूपहै वा जिनमेरूप हैऐसा' रूपिणः'शब्दका विग्रह है

न। तदविनाभावात्तदन्तर्भावः ॥ पुद्गला इति बहुवचनं भेदप्रतिपादनार्थम् ॥ भिन्ना हि पुद्गलाः। स्कन्धपरमाणुभेदात्तद्विकल्प उपरिष्टाद्वक्ष्यते॥ यदि प्रधानवदरूपत्वमेकत्वं चेष्टं स्यात् विश्वरूपकार्यदर्शनविरोधः स्यात्॥ आह किं पुद्गलवद्धर्मादीन्यपि द्रव्याणि प्रत्येकं भिन्नानीत्यत्रोच्यते-

न*	=(उत्तर) सो नहीं हैं अर्थात् रूपमें रस–गन्ध–स्पर्शका ग्रहण है
तद्–अविनाभावात् ५/१	=उस (रूप) के अविनाभावकरि अथवा उस (रूप) से व्याप्त होने (केकारण)से वा उस (रूप) के विना उनकी स्थिति न रहने से
तद्–अन्तर्भावः १/१ ;पुद्गलाः १/३ इति*बहुवचनम् १/१॥	=उस (रूप) में (रस-गंध-स्पर्श) गर्भितहै । (सूत्रमें) पुद्गलाः ऐसा बहुवचन है
भेद-प्रतिपादन-अर्थम् १/१॥;भिन्नाः १/३ हि*पुद्गलाः १/३;	=सो (पुद्गलोंके) भेदोंके जनावनेके लिये है । क्योंकि(=हि) पुद्गल भिन्न भिन्न हैं
स्कन्ध-परमाणु-भेदात् ५/१ तद्–विकल्पः १/१	=स्कन्ध परमाणु के भेदसे उन (पुद्गलों) के भेद
उपरिष्टात्*वक्ष्यते । यदि*प्रधानवत् *	=आगे कहेंगे ।जो सांख्य मतकी सत्वरजस्तमोरूप तीनों गुणोंवाली प्रकृतिके सदृश
अरूपित्वम् १/१॥एकत्वम् १/१॥च*इष्टम् १/१॥ स्यात् T	=अरूपता और (=च) एकता (पुद्गलोंके) मानीजाय (=इष्ट स्यात्) तो
विश्व-रूप-कार्य-दर्शन-विरोधः १/१ स्यात् T	=संसार में मूर्तिक कार्य के देखनेमें विरोध होजाय अर्थात् यदि सांख्य मतके अनुसार प्रकृतिको अरूपी और एक माने तो जगतमें बहुतसे कार्य,मूर्तिक दीखते हैंसो न दीखें भावार्थ प्रकृतिरूपीहै,मूर्तिकहै,उसके बहुत भेदहैं,और विशेष अवस्थाओंमें दीखतेभी हैं?
आह [किम्*पुद्गलवत्*धर्म–आदीनि १/३॥	= (शिष्य) पूछता है कि क्या पुद्गल द्रव्यके समान धर्म-अधर्म आकाश
अपि*द्रव्याणि १/३॥प्रत्येकम्*भिन्नानि १/३॥इति*अत्र*उच्यते	=भी प्रत्येक द्रव्य भिन्न भिन्न(=भिन्नानि) है यहां (अग्रिमसूत्रमें)कहा जाता है कि

"रूप शब्दके अनेक अर्थ होते हैं जैसे गोरूपाणि–गोद्रव्याणि अर्थात् गौ द्रव्य है। यहा रूप शब्दका अर्थ द्रव्य है। 'चैतन्य पुरुषस्य स्वरूप स्वभाव इत्यर्थः' अर्थात् चैतन्य पुरुषका स्वभाव है। यहां रूप शब्दका अर्थ स्वभाव है। दशरूपमध्ययन कार्य–दशवारानभ्यासः कार्यः अर्थात् दश वार अभ्यास करना चाहिये। यहा रूप शब्दका अर्थ अभ्यास है। स्वरूप शब्दस्य स्वा श्रुतिरित्यर्थ' शब्दका स्वरूप अर्थात् शब्दका अपना श्रवण है। यहां रूप शब्दका अर्थ श्रवण है। 'रूप-चत्वारि महाभूतानि उपादाय रूप चेति' रूप अर्थात् चार महाभूतोको ग्रहण कर, यहां रूप शब्दका अर्थ चार महाभूत है। 'चक्षुर्ग्रहणयोग्यो योऽर्थस्तद्रूपमिति' अर्थात् नेत्र इंद्रियके ग्रहण करने योग्य जो पदार्थ हो वह रूप है, यहां रूप शब्दका अर्थ गुणविशेष है। कहीं कहीं पर रूप शब्दका मूर्ति भी अर्थ है जिस प्रकार 'रूपिद्रव्यं मूर्तिमद् द्रव्य' अर्थात् यह द्रव्य मूर्तिमान है यहां रूप शब्द का अर्थ मूर्ति है। परतु उपर्युक्त अनेक अर्थोंके रहते भी शास्त्रकी सामर्थ्यसे यहां पर रूप शब्दका अर्थ मूर्ति ही लिया गया है।" प० गजाधर लाल

॥ आ आकाशादेकद्रव्याणि ॥६॥

आङ् अयमभिविध्यर्थः । सौत्रीमानुपूर्वीमनुसृत्यैतदुक्तं, तेन धर्माऽधर्माकाशानि गृह्यन्ते । एकशब्दः संख्यावचनस्तेन द्रव्यं विशिष्यते,

---

(१)आ आकाशादेक(२)द्रव्याणि ॥६॥ = आ आकाशात्--एकद्रव्याणि भवन्ति ॥६॥

सूत्रार्थः—(३)आ आकाशात् एकद्रव्याणि भवन्ति = (प्रथम सूत्रके धर्म द्रव्यसे लेकर) आकाश पर्यंत एक एक द्रव्य है अर्थात् धर्मद्रव्य–अधर्मद्रव्य और आकाशद्रव्य अखंड रूप है बहुत वा अनेक नहीं हैं

वृत्त्यनुवादः—आङ् अयम् अभिविधि–अर्थः = आङ् उपसर्ग अर्थात् आ शब्द है सो यह अभिविधि, अभिव्याप्ति वा पर्यंत के अर्थ है

सौत्रीम् आनुपूर्वीम् = (इसअध्याय के प्रथम) सूत्र द्वारा पठित (=सौत्रीम्) क्रमके (=आनुपूर्वीम्)

अनुसृत्य — एतद् उक्तम्, तेन = अनुसार (=अनुसृत्य) यह कथन हुआ कि तिस (आङ् वा पर्यंत) करि

धर्म–अधर्म–आकाशानि गृह्यन्ते = धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य लिये जाते हैं अथवा ग्रहण किये जाते हैं अर्थात् इस अध्याय का प्रथम सूत्र ऐसा है कि "धर्म–अधर्म–आकाश–पुद्गलाः अजीव–कायाः" आकाश द्रव्य पर्यंत सूत्रके आरम्भिक क्रमानुसारमें धर्म–अधर्म आकाश तक गर्भित होगयेहैं शेष द्रव्य छूटगये)

एक-शब्दः संख्या-वचनः तेन द्रव्यम् विशिष्यते = (इस सूत्र में) एक शब्द है सो संख्यावाची है तिस (एकशब्द) से द्रव्य विशेषित है —अर्थात् एक शब्द द्रव्यका विशेषण अथवा द्रव्यके गुणका वाचक है

---

(१) हमारे यहां इस सूत्रका पाठ सवत्र एक है ॥ श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य०में "आ आकाशादेकद्रव्याणि" और "आकाशादेक द्रव्याणि" ऐसे दोपाठ हैं, पिछले पाठमें आङ्" की (=अर्थात् आ की) आकाश शब्द के साथ सधि करदीगई है ऐसा सभाष्य० की चरण टिप्पणीमें लिखा है

(२) जव ये तीनों एक एक द्रव्य हैं तो जीव पुद्गल, और काल इन तीनों द्रव्योंमे विना कहे भी अनेकता सिद्ध होजाती है सो आगमानुसार जीव द्रव्य अनन्तानन्त हैं, पुद्गल परमाणु जीवों से अनन्त गुण हैं और काल द्रव्य के अणु असख्यात हैं ॥

(३) आकाशादेकद्रव्याणि (=आ आकाशात्-एक-द्रव्याणि) श्वेताम्बर सम्प्रदायके "सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र" में उपर्युक्त पाठ है यहां प्रथम 'आ' शब्द अभिव्याप्ति (पर्यंत) रूप अर्थका वोधक है, पूर्वोक्त पाठमें भी आकाश शब्दके पूर्व "आ" पद है परन्तु दीर्घ रूप सधि होगई है ॥

एषां बहुत्वमित्येतदनेन ख्याप्यते ॥ अधिकृतानामेव एकद्रव्याणां विशेषप्रतिपत्त्यर्थमिदमुच्यते

॥ निष्क्रियाणि च ॥ ७ ॥

एषाम्॥बहुत्वम्॥इति*;एतद्॥ =इन (धर्म-अधर्म-आकाश) के (द्रव्यकी अपेक्षासे) बहुतपन है ॥ यह (=एतद्)

अनेन॥ख्याप्यते I ;अधिकृतानाम्॥एव* =इस (सूत्र) करि प्रसिद्ध है ॥ प्रकरणरूप कियेगये ही

एक-द्रव्याणाम्॥विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थम्॥इदम्॥उच्यते=अभेदरूप(धर्म-अधर्म-आकाश)द्रव्योंके विशेष जाननेके लिये यह कहाजाताहैकि

सूत्रम्- (१)निष्क्रियाणि च ॥ ७ ॥ =(आ आकाशात्) निष्क्रियाणि च (भवन्ति) ॥७॥

सूत्रार्थः-आ*आकाशात्॥निष्क्रियाणि॥च*भवन्ति I =और(=च)आकाश पर्यंत(द्रव्यें)हलनचलनरूप क्रियासे रहित है। अथवा आकाश पर्यंत(द्रव्यें)हलन चलन रूप क्रियासे भी(=च)रहित है अर्थात् धर्मद्रव्य,अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य नित्य-अवस्थित-अरूपी-एकएक द्रव्य होनेके अतिरिक्त(=च)अपने अपने स्थानसे कदाचित् चलायमान नहीं होते हैं

(१) श्वेताम्बर आम्नायके 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्र' का तथा हमारे यहां का शुद्ध पाठ 'निष्क्रियाणि च' एक है उनके यहां की भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थ टीकाके पृष्ठ ३५९ में "नि क्रियाणि च अथवा" यह पाठ है। हमारे यहां भी कितनीही पुस्तकोंमें जैसे तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ १९९ पर और ज्ञानचन्द्रजी लाहोर के मुद्रित "तत्त्वार्थ सूत्राणि" के पृष्ट १५ पर 'निः क्रियाणि च' पाठ है सो अशुद्ध है क्योंकि दुस्-दुर् दो अव्यय दुःख, कठिनता अर्थोंमें एकार्थ वाची हैं और निस्, निर् ये दो अव्यय निषेध, नहि, निश्चय, रहित, अर्थोंमें समानार्थक शब्द हैं जिसके स्' को "ससजुषो रु. (८-२-६६ सूत्रसे) =पदान्त सकार और सजुष् शब्दके षकार को रु हो, रु हुआ, 'रु' में उ इत्संज्ञक है इस 'उ' का लोप होगया फिर केवल निर् रहगया अब निस् और निर् दोनोंका 'निर्' रूप रहा। "खरवसानयोर्विसर्जनीयः" (८-३-१५ सूत्र से) खर् परे हो वा अवसानमें पदान्तरेफको विसर्जनीय आदेशहो, 'निर्' का 'निः' हुआ। निः+क्रिया+जस् (=अस् प्रथमा बहुबचनका चिन्ह है) ॥

कुप्वोः ≍क ≍पौ च (८-३ ३७ सूत्रसे) कवर्ग पवर्ग परे हों तो विसर्जनीयको यथासंख्य जिह्वामूलीय और उपध्मानीय आदेश हों और विसर्जनीय भी(=च)हो।इस सूत्रने विसर्जनीय को स् नहीं होने दिया क्योंकि यह सूत्र'विसर्जनीयस्य'सः ८।३।३४(=खर् परे हो तो विसर्जनीयको सकार आदेश हो) सूत्र के प्रयोग को रोकता है ॥ हमने विसर्जनीय का विसर्जनीयही नियत रक्खा ॥ अब 'इदुदुपधस्य चाऽप्रत्ययस्य ८।३।४१ सूत्र (कवर्ग पवर्ग परे हों तो इकार और उकार है उपधामें जिसके ऐसे प्रत्ययभिन्न के विसर्जनीयको षकारादेश हो ॥ इसलिये निष्+क्रिया+अस् रूप हुआ ॥ यदि यहांपर कोई तर्क करै कि हम संधि नहीं करते हैं निर्+क्रियाणि अथवा निः क्रियाणि ही रक्खाजाय तो क्या हानि है ॥ (उत्तर) एकपदमें अर्थात् अखंड पदमें जैसे राम+नाम्=रामाणाम्; धातुके साथ उपसर्गमें जैसे प्र+नदति=प्रणदति=अधिक नाद करता है और समासमें जैसे यहां निः+क्रिया+अस्=निष्क्रियाणि नित्य,वा आवश्यकतासे संधि होती है। यहां पर यदि संधि न की जाती तो 'क्रिया' शब्द जो स्त्रीलिंग है नपुंसकलिंग नहीं होसक्ताथा।यहांपर निष्क्रियाणि प्रथमा विभक्ति बहुवचन नपुंसकलिंगीहै परन्तु अन्य प्रकारके वाक्योंमें वक्ताकी इच्छा है संधि करै वा न करै इसलिये 'निःक्रियाणि' शब्द अशुद्ध है और विना 'समास' के क्रिया शब्द का कदापि क्रियाणि नहीं बनसकता है ॥

एकं द्रव्यं एकद्रव्यमिति ॥ यद्येवं बहुवचनमयुक्तं, धर्माद्यपेक्षया बहुत्वसिद्धिर्भवति ॥ ननु एकस्यानेकार्थप्रत्यायनशक्तियोगादेकैकमित्यस्तु लघुत्वाद् द्रव्यग्रहणमनर्थकं, तत्क्रियते द्रव्यापेक्षया एकत्वख्यापनार्थं द्रव्यग्रहणम्॥ क्षेत्रभावापेक्षया असंख्येयत्वानन्तत्वविकल्पस्येष्टत्वात् न जीवपुद्गलवत्

एकम्॥द्रव्यम्॥एकद्रव्यम्॥इति*	='एकं द्रव्यं' समासरूपमें "एकद्रव्यं" ऐसा होता है अर्थात् टुकड़े रूप नहीं है न दो, तीन, चार पांच इत्यादि संख्या रूप हैं एक ही द्रव्य है बहुत नहीं हैं ऐसी-धर्म-अधर्म-आकाश तीन ही द्रव्य है
यदि*एवम्*	=(प्रश्न)जो ऐसाहै अर्थात् धर्म-अधर्म-आकाश एकएक द्रव्यहैं वा अभेदरूप द्रव्य हैं
बहुवचनम्॥अयुक्तम्॥	=तौ (सूत्रमें द्रव्याणि ऐसा) बहुवचन (का प्रयोग) ठीक नही है
धर्म-आदि-अपेक्षया॥बहुत्वसिद्धिः॥भवति।	=(उत्तर) धर्म-अधर्म-आकाशकी अपेक्षासे बहुतपनाकी प्राप्ति होती है अर्थात् धर्म-अधर्म-आकाश ये तीन द्रव्यें पृथक् पृथक् है परन्तु एक एक है टुकड़े रूपमें नहीं है तीन होनेके हेतुसे "द्रव्याणि" इस बहुवचन शब्दकी प्राप्ति है यदि एक द्रव्य होती तौ सूत्रमें एक वचन "द्रव्यं" ऐसालाते और दो द्रव्यें अभेद रुप वा एकएक होती तो "द्रव्ये" ऐसा द्विवचनसूत्रमे लाते क्यों कि तीनद्रव्यें धर्म-अधर्म और आकाश पृथक् पृथक् टुकड़े रहित हैं इसलियें सूत्रमें "द्रव्याणि" ऐसा बहुवचन लाये है
ननु*एकस्य॥अनेक-अर्थ-प्रत्यायन-शक्ति–योगात्॥	=प्रश्न एक (शब्द) के अनेक अर्थोंके उपजावनेकी सामर्थ्यके प्रसंगसे
एक-एकम्॥इति*अस्तु।	=(यदि सूत्रमें"एक द्रव्याणि"इस वाक्यके स्थानमें)एक एक(=एकैक)ऐसा होता
लघुत्वात्॥द्रव्य-ग्रहणम्॥अनर्थकम्॥	=तो(सूत्र)छोटा होजाकरि द्रव्य शब्दके ग्रहण की आवश्यकता (इससूत्रमें) न होती
तत्-क्रियते। द्रव्य-अपेक्षया॥	=(उत्तर अतः)ऐसा किया गयाहै कि द्रव्यकी अपेक्षासे(न कि क्षेत्र,भावकीअपेक्षासे)
एकत्वख्यापन-अर्थम्॥द्रव्य-ग्रहणम्॥;	=एकपन (धर्म-अधर्म-आकाश के) कहनेके लिये द्रव्य(शब्द)का(सूत्रमें) आदान है
क्षेत्र-भाव-अपेक्षया॥असंख्येयत्व-अनन्तत्व-विकल्पस्य॥इष्टत्वात्॥न*जीव-पुद्गलवत्*	=क्योंकि क्षेत्र,भावकी अपेक्षासे(धर्म-अधर्म-आकाशके)असख्यातपना अनन्तपनाके भेद माने है। न जीव और पुद्गल के समान

(१ सर्वार्थसिद्धिकी प्रथमावृत्तिमे 'तत्क्रियते' के स्थान मे 'तथापि' पाठ है, किसी किसी हस्तलिखित प्रतिमें 'तज्ज्ञायते' ऐसा पाठ है परन्तु बहुधा हस्तलिखित प्रतियोंमें 'तत्क्रियते' पाठ है इसलिये यह पाठ लिया गया है ॥

उभयनिमित्तवशादुत्पद्यमानः पर्यायो द्रव्यस्य देशान्तरप्राप्तिहेतुः क्रिया, तस्या निष्क्रान्तानि निष्क्रियाणि॥ अत्र चोद्यते--धर्मादीनि द्रव्याणि यदि निष्क्रियाणि ततस्तेषामुत्पादो न भवेत्। क्रियापूर्वको हि घटादीनामुत्पादो दृष्टः। उत्पादाभावाच्च व्ययाभाव इति॥ अतः सर्वद्रव्याणामुत्पादादित्रयकल्पनाव्याघात इति॥ तन्न॥ किं कारणम्?

(१)उभय-निमित्त-(१)वशात् ५॥द्रव्यस्य ६॥देशान्तरप्राप्ति-हेतुः १॥उत्पद्यमानः १॥पर्यायः १॥क्रिया १॥	=दोनो (वाह्य,अभ्यन्तर)निमित्तके वशसे द्रव्यके(एकक्षेत्र से)अन्य क्षेत्रमें गमन करनेका कारणरूप उपजी जो पर्याय अथवा विशेष अवस्था सो क्रिया है अर्थात् पदार्थोंका क्षेत्रांतरमें गमन तथा प्रदेशोंका सकंपपनारूप क्रिया होती है
तस्याः ५॥निष्क्रान्तानि ३॥निष्क्रियाणि ३॥अत्र*चोद्यते	=तिस (क्रिया) से पृथक् होनेसे वे क्रिया रहित हैं। यहां तर्क की जाती है कि
धर्म-(३)आदीनि ३॥द्रव्याणि ३॥यदि*निष्क्रियाणि १॥	=धर्म-अधर्म-आकाश द्रव्यें यदि हलनचलनरूप क्रियासे रहित हैं
ततस्*तेषाम् ६॥उत्पादः १॥न*भवेत्।	=तो (=ततः) तिनकें उत्पाद न होना चाहिये
क्रिया-पूर्वकः १॥हि*घटादीनाम् ६॥उत्पादः १॥दृष्टः १॥	=क्योंकि (=हि) क्रिया है कारण जिसको ऐसी उत्पत्ति घटादिकोंकी देखीजाती है
उत्पाद अभावात् ५॥च*व्यय-अभावः १॥इति*	=और (=च) उत्पत्तिके न होनेसे नाशका अभाव है
अतस्*सर्व-द्रव्याणाम् ६॥उत्पाद-आदि-त्रय-कल्पना-व्याघातः १॥इति*तत् १॥न*;किं*कारणम् १॥ ?	=इसलिये समस्त द्रव्योंके उत्पत्ति, विनाश, ध्रौव्य वा स्थिरपना तीनों कल्पनाओंमें बाधा अथवा विघ्न आता है। (उत्तर)सो (व्याघात)नहीं है।(प्रश्न)क्या कारण है

(१) 'वश' शब्द पुल्लिंग और नपुंसकलिंग दोनों है (२) क्रियापरिणामशक्तियुक्त द्रव्यमभ्यन्तरनिमित्त, प्रेरणादिक वाह्यनिमित्त तद्वशादित्यर्थः॥

क्रिया-परिणाम-शक्ति युक्त १॥ द्रव्यम् १॥अभ्यन्तर-निमित्तम् १॥	=क्रियारूप परिणमन शक्ति सहित द्रव्य है सो अभ्यन्तर निमित्त है अर्थात् द्रव्यमे क्रियारूप परिणमनकी सामर्थ्य है सो अभ्यन्तर निमित्त है।
प्रेरण-आदिकम् १॥वाह्यनिमित्तम् १॥	=(और पर द्रव्यकी) प्रेरणा, प्रेषण, वा सचोदन आदिक है सो वाह्य कारण है
तद्-वशात् ५॥इति*अर्थः १॥	=तिन (दोनों निमित्त) के आश्रयसे (द्रव्यके क्रियाउत्पन्न होती है) ऐसा तात्पर्य है

(३) आदीनि—अभीतक उमास्वामीने कालका उपदेश नहीं कियाहै इससे अनुवादकरनेमे आदि शब्दमें कालको नहींलियाहै यद्यपिकालभी निष्क्रियहै

अन्यथोपपत्तेः॥ क्रियानिमित्तोत्पादाभावेऽप्येषां धर्मादीनामन्यथोत्पादः कल्प्यते॥ तद्यथा-द्विविध उत्पादः स्वनिमित्तः परप्रत्ययश्च ॥ स्वनिमित्तस्तावदनन्तानामगुरुलघुगुणानामागमप्रामाण्या-दभ्युपगम्यमानानां षट्स्थानपतितया वृध्या हान्या च प्रवर्तमानानां स्वभावादेतेषामुत्पादो व्ययश्च ॥ परप्रत्ययोऽपि अश्वादिगतिस्थित्यवगाहनहेतुत्वात्क्षणे क्षणे तेषां भेदात्तद्धेतुत्वमपि भिन्नमिति परप्रत्ययापेक्ष उत्पादो विनाशश्च व्यवह्रियते ॥ ननु यदि निष्क्रियाणि

अन्यथा*उपपत्तेः;क्रियानिमित्त–उत्पाद–अभावे =क्योंकि दूसरे प्रकारसे भी सिद्ध होती है। क्रियानिमित्तक उत्पादके न होनेपर

अपिएषां धर्म–आदीनाम् अन्यथा*उत्पादःकल्प्यते =भी इन धर्म–अधर्म–आकाशके औरप्रकार उत्पाद मानाजाता है

तद् यथा*द्वि–विधः उत्पादः; स्वनिमित्तः च* =वह ऐसे है–उत्पाद दो प्रकार हे स्वनिमित्त और (=च)

परप्रत्ययः;स्वनिमित्तः तावत् *अनन्तानाम् अगुरुलघु =परनिमित्त। स्वनिमित्त तो (=तावत्) अनन्त अगुरुलघु

गुणानाम् आगम–प्रामाण्यात् अभ्युपगम्यमानानाम् =गुणोंके जो शास्त्र प्रमाणकरि माने हुये हैं

षट्–स्थानपतितया वृध्या हान्या च* =छह स्थानोंमें रहने वाली वृद्धि और हानिकरि

प्रवर्तमानानाम् स्वभावात् एतेषाम् =प्रवर्तनेवाले (अगुरुलघुगुणोंके)स्वभावसेअर्थात्परिणमनसेइन(धर्म-अधर्म-आकाश)के

उत्पादः व्ययः च*; =उत्पाद होता है। और (=च) (इसी प्रकार) व्यय होता है

पर–प्रत्ययः अपि*अश्वादि–गति–स्थिति- =और (=अपि) पर निमित्त (उत्पाद व्यय) हैं सो अश्वादिकका गमन स्थिति

अवगाहन-हेतुत्वात् क्षणे क्षणे =अवगाहनका कारण (धर्म-अधर्म-आकाशके यथासंख्य) होनेसे क्षण क्षणमें

तेषाम् भेदात् तद्-हेतुत्वम् अपि*भिन्नम् इति* =तिन(गति-स्थिति-अवगाहन)के भेद होनेसे उन(गति आदिके) हेतुताभी भिन्न है

अर्थात् मनुष्य,गाय, अश्वादिकको गमनका निमित्त धर्म द्रव्य है। स्थितिका कारण अधर्मद्रव्य है और अवकाशदान अथवा स्थान दानकाहेतु आकाश द्रव्य है और क्षण क्षणमें उन गति स्थिति अवगाहनके भेद हैं इसलिये उन गति–स्थिति-स्थान दानके कारणभी पृथक् पृथक् हैं

परप्रत्यय-अपेक्षः उत्पादः विनाशः च* =परनिमित्त अपेक्षा उत्पाद, द्रव्य भी (=च)

व्यवह्रियते ।।ननु* । यदि*निष्क्रियाणि =माना जाता है। प्रश्न। यदि हलन चलन रूप क्रियासे रहित

धर्मादीनि, जीवपुद्गलानां गत्यादिहेतुत्वं नोपपद्यते । जलादीनि हि क्रियावन्ति मत्स्यादीनां गत्यादिनिमित्तानि दृष्टानीति ॥ नैष दोषः ॥ बलाधाननिमित्तत्वाच्चक्षुर्वत् । यथा रूपोपलब्धौ चक्षुर्निमित्तमपि न व्याक्षिप्तमनस्कस्यापि भवति॥ अधिकृतानां धर्माधर्माकाशानां-

धर्म-आदीनि ३।१ जीव-पुद्गलानाम् ६।३ गति-आदि- =धर्म अधर्म आकाश द्रव्य हैं तो जीव और पुद्गलोंके गति स्थिति अवगाहनाका

हेतुत्वम् १।१ न ॐ उपपद्यते [जलादीनि १।३ हि ॐ क्रियावन्ति १।३ =निमित्तपना प्राप्त नहीं होता है । क्योंकि (हि) क्रियावान् जलादिक

मत्स्य-आदीनाम् ६।३ गत्यादि-निमित्तानि १।३ दृष्टानि १।३ इति ॐ; =मीन आदिकोंके गमनादिकके कारण इसप्रकार देखे जाते हैं

न ॐ एषः १।१ दोषः १।१; (१) बलाधान-निमित्तत्वात् ५।१ चक्षुवत् ॐ =(उत्तर) यह दूषण नहीं है । क्योंकि नेत्रेन्द्रियके समान अप्रेरक निमित्त हैं अर्थात् धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य जीव तथा पुद्गलोंकी यथासंख्य गति, स्थिति, अवगाहनके लिये प्रेरणा नहीं करते हैं किन्तु यदि जीव और पुद्गल गमन करें तो धर्मद्रव्य गमन में अप्रेरक निमित्त होती है । अधर्मद्रव्य स्थितिमें उदासीनतासे कारण होती है और इसी प्रकार आकाश द्रव्य अवगाहनमें बलाधान वा उदासीनतासे निमित्त होती है ॥

यथा ॐ रूप-उपलब्धौ ७।१ चक्षुः १।१ निमित्तम् १।१ अपि ॐ =जैसे-रूपके देखनेमें (=उपलब्धौ) नेत्र निमित्त है तोभी (=अपि)

व्याक्षिप्त-मनस्कस्य ६।१ अपि ॐ =न लगे हुये (मनुष्यके) मनके भी वा मनुष्यके अनाकर्षित चित्तकेभी

न ॐ भवति । =(रूपकी उपलब्धि) नहीं होती है अर्थात् यदि पुरुषका चित्त अन्य पदार्थमें लगा हो तब रूपको नहीं देख सकता है । जब नेत्र और पुरुषका चित्त दोनों एकही कालमें किसी पदार्थको ओर होवें तब पुरुषके नेत्र रूपके देखनेमें निमित्त है नहीं तो निमित्त नहीं है

अधिकृतानाम् ६।३ धर्म-अधर्म-आकाशानाम् ६।३ =प्रकरण प्राप्त जे धर्मद्रव्यके, अधर्मद्रव्यके, और आकाशद्रव्यके

(१) गत्यादि परिणतस्य बलाधानं कुर्वन्ति न तु स्वयं प्रेरयन्तीति भावः ॥

गत्यादि-परिणतस्य ६।१ बलाधानम् २।१ कुर्वन्ति । =(धर्मादिक द्रव्य) गमनादिक अवस्थाके अप्रेरक निमित्तको करती है

न ॐ तु ॐ स्वयम् ॐ प्रेरयन्ति । इति ॐ भावः १।१ =किन्तु स्वयं (गति-स्थिति-अवगाहनकी) प्रेरक नहीं है ऐसा तात्पर्य है

इसके पश्चात् जयचन्द्रायजीकी वचनिकामें निम्न लिखित भाषाका वाक्य है "बहुरि सूत्रमें चशब्द है सो पहले सूत्रमें कहे तिन तीनिही द्रव्यके समुच्चयके अर्थि है । जीव पुद्गल क्रियामान है" ॥ देखो पंडित जयचन्दजी कृता वचनिका मुद्रित पृष्ठ ४२५ ॥

निष्क्रियत्वेऽभ्युपगते जीवपुद्गलानां सक्रियत्वमर्थादापन्नम् ॥ कालस्यापि सक्रियत्वमितिचेन्न । अनधिकारात् अत एवासावेतैः सह नाधिक्रियते ॥ अजीवकाया इत्यत्र कायग्रहणेन प्रदेशास्तित्वमात्रं निर्ज्ञातं नत्वियत्तावधारिता प्रदेशानामतस्तन्निर्धारणार्थमिदमुच्यते—

॥ असङ्ख्येय : प्रदेशा धर्माधर्मैकजीवानाम् ॥८॥

निष्क्रियत्वे७।१।। अभ्युपगते७।१।। जीव-पुद्गलानाम्६।३।। सक्रियत्वम्१।१।। अर्थात्५।१।। आपन्नम्१।१।। =निष्क्रियपना माननेमें जीव और =पुद्गलोंके सक्रियपन अथवा क्रियावान्पन अर्थसे वा विषयसे प्राप्त होता है

कालस्य६।१।। अपि*सक्रियत्वम्१।१।। इति*चेत्*न*; =कालद्रव्यकें भी क्रियावान्पन (आता) है ऐसी शंका (=चेत्) है(उत्तर) सो नहीं है

अन्–अधिकारात्५।१।। अतः*एव*असौ१।१।। =क्योंकि कालद्रव्यका (यहां) विषय वा प्रकरण नहीं है। इसलिये ही वह (कालद्रव्य)

एतैः३।३।। सह*न*, अधिक्रियते I =इन (जीव, पुद्गल) के साथ (=एतैःसह) प्रकरणरूप नहीं कियागया है

"अजीव कायाः"१।३।। इति*अत्र*कायग्रहणेन३।१।। ='अजीव काया' ऐसे यहां (प्रथम सूत्रमें) कायके ग्रहण करनेसे

प्रदेश–अस्तित्वमात्रम्१।१।। निर्ज्ञातम्१।१।। न*तु*प्रदेशानाम्=प्रदेशोंकी केवल (=मात्रं) विद्यमानता जानीजाती है। परन्तु प्रदेशोंका

इयत्ता१।१।। अवधारिता१।१।। अतः* =परिमाण वा संख्या (=इयत्ता) निश्चित नहीं की गईहै(=अवधारिता)। इसलिये

तद्-निर्धारण-अर्थम्१।१।। इदम्१।१।। उच्यते I =उन(प्रदेशोंकी गिनती)का निश्चय करने केलिये यह(अग्रिम सूत्रमें)कहाजाताहै कि

असंख्येयाः प्रदेशा धर्माधर्मैकजीवानाम्=धर्म-अधर्म-एक जीवानाम् असंख्येयाः प्रदेशा भवन्ति।८।

सूत्रार्थः–धर्म-अधर्म-एक-जीवनाम्६।३।। =धर्मद्रव्यके, अधर्मद्रव्यके और एक जीवके

(१) 'निष्क्रियाणिच' सूत्रमें 'च' शब्दका अर्थ यहां पर और अथवा भी दोनों होसकतेहैं जैसाकि भिन्नभिन्न उपर्युक्त अनुवादसे प्रगटहै॥ यदि च शब्द "और" के अर्थमें लेवें तो तीन ही द्रव्यें जो सूत्रमें कहीं हैं उनके सम्बन्धके अर्थ है अर्थात् धर्म-अधर्म-आकाश तीनको आकर्षण करता है, प्रगट करता है, वा ग्रहण करता है क्योंकि "कालद्रव्य का" अभी तक आचार्य ने उपदेश नहीं किया है। कालद्रव्य भी निष्क्रिय है। यदि "च" शब्दका 'भी' अर्थ लेवें तो उसका सम्बन्ध द्रव्यों के गुणोंसे होजाता है नकि उनकी सख्यासे अर्थात् ये तीन द्रव्यें एक एक हैं दूसरा गुण उनमें यह है कि क्रिया रहित हैं तब दोनों सूत्रोंको अर्थ अत्यन्त सत्क्षेपतासे यह होता है कि धर्म-अधर्म आकाश एक एक द्रव्य हैं और क्रिया रहित भी हैं ॥

(२) इयत्ता (स्त्री०) = 'इतनेका होना। सीमा। परिमाण। माप। सख्या। गिनती" पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ ६७॥ अतः "इयत्ता" का अनुवाद 'सख्या' किया गया है। श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रमें इस सूत्रके स्थानमें नीचे लिखे हुये दो सूत्र हैं जिनसे विदित है कि दोनों आम्नायोंमें इस सूत्रका एकसा तात्पर्य है। 'असख्येयप्रदेशाधर्माधर्मयोः ॥७॥ जीवस्य च ॥८॥ देखो उक्त सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्र पृष्ठ १२२

संख्यामतीता असंख्येयाः ॥ असंख्येयस्त्रिविधः । जघन्य उत्कृष्टोऽजघन्योत्कृष्टश्चेति ॥ तत्रेहाजघन्योत्कृष्टासंख्येयः परिगृह्यते॥ प्रदिश्यन्त इति प्रदेशाः॥वक्ष्यमाणलक्षणः परमाणुः स यावति क्षेत्रे व्यवतिष्ठते स प्रदेश इतिव्यवह्रियते॥ धर्माधर्मैकजीवास्तुल्यासंख्येयप्रदेशाः तत्र धर्माधर्मौ निष्क्रियौ लोकाकाशं व्याप्य स्थितौ ।

असंख्येयाः३। प्रदेशाः३। =(क्रमसे) असंख्यात, असंख्यात, और असंख्यात(प्रत्येकके)प्रदेश हैं अर्थात धर्म द्रव्यके असंख्यात प्रदेश हैं,अधर्मद्रव्यके असंख्यात प्रदेश हैं और एक जीवके भी असंख्यातप्रदेश हैं

वृत्त्यनुवादः—संख्याम्२॥अतीताः३। असंख्येयाः३। =संख्याको उलंघगये हैं वे असंख्येया हैं अर्थात् जो गणनामें न आसकें वे असंख्यात हैं

असंख्येयः१।त्रिविधः१।जघन्यः१।उत्कृष्टः१।च* =असंख्येय तीन प्रकार हैं, जघन्य वा निकृष्ट, उत्कृष्ट वा प्रकर्ष और (=च)

अजघन्य-उत्कृष्टः१।इति,तत्र इह*अजघन्योत्कृष्ट-=मध्यम ॥ तहां यह(=इह) मध्यम वा बीचका

असंख्येयः१।परिगृह्यते। प्रदिश्यन्ते। इति* =असंख्यात लियागया है ॥ (जिनकरि आकाशके) विभाग किये गये हैं ऐसे

प्रदेशाः३। =(आकाशके विभाग) प्रदेश हैं । अर्थात परमाणुओंद्वारा पर्यायनयकी अपेक्षासे आकाशके विभाग किये जाते हैं उन विभागों को अथवा आकाशके प्रदेशोंको प्रदेश कहते हैं भावार्थ यह है कि यद्यपि आकाश अखंड, निरंश,सर्वगत और एक द्रव्य है तौभी परमाणुओंकरि मापिये तौ अनंत परमाणु होते हैं और इसप्रकार आकाशके अनंत अंश मानेजाते हैं, इसीलिये एक ही आकाशको अनन्तप्रदेशी पर्यायनयकरि कहते हैं परन्तु द्रव्यार्थिकनय अथवा द्रव्य अपेक्षासे अखंड, निरंश,सर्वगत, एक, और भिन्नता रहित आकाश है

वक्ष्यमाणलक्षणः१। परमाणुः१। =आगे कथन किये जाने लक्षण रूप वा अग्रिम कहेजाने लक्षणवाला परमाणु है

सः१।यावति७।क्षेत्रे७।व्यवतिष्ठते। सः१।प्रदेश १। =वह (परमाणु)जितने क्षेत्रमें निश्चल ठहरती है वा समाजाती है सो प्रदेश है

इति*व्यवह्रियते। धर्म-अधर्म एकजीवाः३।तुल्य- =ऐसा माना गया है ॥ धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य और एकजीव समान

असंख्येय-प्रदेशाः३, तत्र* धर्म-अधर्मौ२।निष्क्रियौ२। =असंख्यात (असंख्यात) प्रदेशी हैं। तहां धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य क्रिया रहित

लोक—आकाशम्२।व्याप्य—स्थितौ२। =लोकाकाशको व्याप्त कर स्थित है अर्थात् समस्त लोकाकाशमें ऊपर तले मध्यमें और

जीवस्तावत्प्रदेशोऽपि सन् संहरणविसर्पण स्वभावत्वात्कर्मनिर्वर्तितं शरीरमणुमहद्वाऽधितिष्ठं स्तावदवगाह्य वर्तते यदा तु लोकपूरणं भवति मन्दरस्याधश्चित्र वज्रपटलमध्ये जीवस्याष्टौ मध्य प्रदेशा व्यवतिष्ठन्ते । इतरे प्रदेशा ऊर्ध्वमधस्तिर्यक् कृत्स्नं लोकाकाशं व्यश्नुवते ॥

अथाकाशस्य कति प्रदेशा इत्यत आह—

इधर उधर सर्वत्र पूर्णरूपसे धर्म और अधर्म द्रव्य जो हलन चलन रूप क्रियासे वर्जित हैं भरी हुई हैं

जीवः[१/१] तावत्* प्रदेशः[१/१] अपि* सन्[१/१] =जीव इतने(=तावत्) अर्थात् असंख्यात प्रदेशी होते हुयेभी (=अपि सन्)

संहरण–विसर्पण-स्वभावत्वात्[५/१]।। कर्मनिर्वर्तितम्[२/१]।। =संकोच और फैलावरूप स्वभावके होनेसे कर्मरचित (अथवा कर्मजनित)

शरीरम्[२/१]।। अणु-महत्-वा* (१) अधितिष्ठन्[१/१] तावत्* =छोटा अथवा बड़ा शरीर पाते हुए(=अधितिष्ठन्) तिसप्रमाण (=तावत्)

(२) अवगाह्य—वर्तते T, *यदा* तु (२) लोकपूरणम्[१/१]।। भवति T =विस्तरित होकर प्रवर्तता है परन्तु जब(केवलि समुद्धात करि)लोक पूरण होताहै

मन्दरस्य[६/१] अधस्* चित्र–वज्र–पटल–मध्ये[७/१] =तो सुमेरु पर्वतके नीचे चित्रा प्रथिवीके वज्रमयी पटलके मध्यमें

जीवस्य[६/१] अष्टौ[१/३] मध्यप्रदेशाः[१/३] व्यवतिष्ठन्ते T =जीवके आठ मध्यके प्रदेश निश्चल तिष्ठते हैं अर्थात् जिस अवसरमें केवली हो लोकपूरण समुद्घात करते हैं तब सुमेरु की जड़ जो चित्रापृथिवीकी मोटाईके बराबर एक सहस्रयोजन मोटी है। चित्रा और वज्रा प्रथिवीके पटलोंके वीच केवली भगवान् केआत्माके आठमध्यके प्रदेश निश्चल ठहरते हैं

इतरे[१/३] प्रदेशाः[१/३] ऊर्ध्वम्* अधस्* तिर्यक्* =(और केवली भगवानके)अन्य प्रदेश ऊपर नीचे इधर उधर (=दायें बायें)

कृत्स्नम्[२/१] लोकाकाशम्[२/१] व्यश्नुवते T =समस्त लोककाशको व्याप्त करलेते हैं। केवलिसमुद्घातका विस्तारसे कथन जाननेके लिये देखो अध्याय प्रथम पृष्ठ ११९से १२१ तक

अथ* आकाशस्य[६/१]।।। (४) कति[१/३] प्रदेशाः[१/३] इति* अतः* आह =अब आकाशके कितने प्रदेश हैं इसलिये (उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

(१) अधितिष्ठन् वर्तमान कृदन्त है ॥ (२) अवगाह्य सम्बन्धसूचक भूतकृदन्त है (३) कषाय वेदनादिक सातकारणोंसे जो जीवके प्रदेश मूल शरीर को न छोड़कर शरीरसे वाहर होते हैं उसको समुद्घात कहते है। वे समुद्घात सातप्रकारके हैं ॥ मूल देह छूटे नाहि इत्यादि कवित्तके लिये जिसमें सातप्रकारका समुद्घात वर्णितहै देखो अध्याय प्रथम पृष्ठ ११५ से १२१ तक ॥ (४) कति सर्वनाम है केवल बहुवचनमें आता है ॥

आकाशस्यानन्ताः ॥९॥

लोकेऽलोके चाकाशं वर्तते ॥ अविद्यमानोऽन्तो येषां ते अनन्ताः ॥ के? प्रदेशाः। कस्य? आकाशस्य॥ पूर्ववदस्यापि प्रदेशकल्पनाऽवसेया ॥ उक्तममूर्तानां प्रदेशपरिमाणम् इदानीं मूर्तानां पुद्गलानां प्रदेशपरिमाणं निर्ज्ञातव्यमित्यत आह—

॥ संख्येयाऽसंख्येयाश्च पुद्गलानाम् ॥१०॥

[1]सूत्रम्—आकाशस्यानन्ताः॥९॥ = आकाशस्यानन्ताः (प्रदेशाः) सन्ति ॥ ९ ॥

सूत्रार्थः-आकाशस्य अनन्ताः प्रदेशाः सन्ति । =आकाश द्रव्यके अर्थात् लोकाकाशके और अलोकाकाशके अनन्त प्रदेश हैं

भाष्यानुवादः। लोके अलोके च*आकाशम् वर्तते =लोक और (=च)अलोक(दोनों)विषैं आकाश विद्यमान है (वर्तते)

अविद्यमानः अन्तः येषाम् ते अनन्ताः, के =नहीं है विद्यमान अन्त जिनका ते अनन्त हैं । क्या (अनन्त) है

प्रदेशाः, कस्य; आकाशस्य; =प्रदेश । किसके (प्रदेश अनन्त) है, (लोक अलोक) आकाशके (प्रदेश अनन्त) है

पूर्ववत्*अस्य अपि*प्रदेश-कल्पना-अवसेया, =पहिलेके सदृश इस (आकाश) के भी प्रदेशोंकी कल्पना जानना चाहिये

अमूर्तानाम् प्रदेश-परिमाणम् =अमूर्तीक (धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य, एक जीव, आकाश द्रव्य) निके प्रदेशोंकी संख्या

उक्तम्;इदानीम्*मूर्तानाम् पुद्गलानाम् प्रदेश- =कही गई है । अब मूर्तीक पुद्गलों के प्रदेशों की

परिमाणम् निर्ज्ञातव्यम् इति*अतः*, आह । =गणना जानना चाहिये । इसलिये (अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

[2]सूत्रम्-- संख्येयाऽसंख्येयाश्च पुद्गलानाम् ॥१०॥

=संख्येयाः असंख्येयाः च (अनन्ताः अनन्तानन्ताः) पुद्गलानाम् प्रदेशाः भवन्ति ॥१०॥

सूत्रार्थः-संख्येयाः असंख्येयाः च अनन्ताः अनन्तानन्ताः=संख्यात,असंख्यात, अनन्त और अनन्तानन्त भी (=च)

पुद्गलानाम् प्रदेशाः भवन्ति । =पुद्गलोंके प्रदेश हैं अर्थात् यद्यपि शुद्ध पुद्गल तो अविभागी एक परमाणु

(१) दोनों सम्प्रदायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एक है ॥ हमारे यहां कहीं कहीं पर 'आकाशस्यानता' पाठ है सो भी ठीक है ॥ आकाश शब्द पुल्लिंग और नपुंसकलिंग दोनोंहैं (२)दोनों आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है ॥ हमारे यहां कहीं कहीं पर सङ्ख्येयाऽसङ्ख्येयाश्च भी

चशब्देनानन्ताश्चेत्यनुकृष्यन्ते कस्यचित्पुद्गलद्रव्यस्य द्व्यणुकादेः संख्येयाः प्रदेशाः कस्यचिद्-संख्येया अनन्ताश्च अनन्तानन्तोपसंख्यानमिति चेन्न । अनन्तसामान्यात् अनन्तप्रमाणं त्रिविधमुक्तं परीतानन्तं युक्तानन्तमनन्तानन्तं चेति। तत्सर्वमनन्तसामान्येन गृह्यते स्यादेतद्-संख्यातप्रदेशो लोकः अनन्त प्रदेशस्यानन्तानन्तप्रदेशस्य च स्कन्धस्याधिकरणमिति विरोधस्ततो

एकही प्रदेश वाला है परन्तु पुद्गल परमाणुओंमे मिलन विछुरन शक्ति है इस कारण अनेक स्कन्ध दो दो परमाणुके और अनेक तीन तीन, चार चार आदिक संख्यात परमाणुओंके है केई केई असंख्यात और केई केई अनन्त केई केई अनन्तानन्त परमाणुके स्कन्ध है

वृत्त्यनुवादः—च-शब्दे-॥ अनन्ताः॥ च*इति*	=(सूत्रमें) च शब्दकरिअनन्त भी (=च, है ऐसे पूर्व सूत्र नवमामे
अनुकृष्यन्ते। कस्यचित्*पुद्गलद्रव्यस्य॥ द्वि-अणुक-	=अनुवृत्तियें ली गई हैं। केई पुद्गल द्रव्यके दो अणुक
आदेः॥ संख्येयाः॥ प्रदेशाः॥ कस्यचित्*असंख्येयाः॥	=आदिक (स्कन्धके)सख्यात प्रदेश है। केई(पुद्गलद्रव्य)के(स्कन्धके)असंख्यात है
अनन्ता॥ च*अनन्तानन्त-	=(केई पुद्गल द्रव्यके स्कन्धके)अनन्त (प्रदेश)भी है अनन्तानन्तकी (गणनाका)
उपसंख्यानम्॥ इति*चेत्*,	=समावेश होना चाहिये (=उपसंख्यानम्)ऐसी शंका (=चेत्) है
न*अनन्त-	=(उत्तर-अनन्तानन्तकी गणनाकी शंका)नहीं(होनाचाहिये)क्योंकिअनन्त(शब्दसूत्रमें)
सामान्यात्॥ अनन्त-प्रमाणम्॥ त्रिविधम्॥ उक्तम्॥	=सामान्य है। अनन्तकी मर्यादा तीन प्रकार कही गई है
परीतानन्तम्॥ युक्तानन्तं॥ चअनन्तानन्तम्॥	=परीतानन्त,युक्तानन्त, और (=च)अनन्तानन्त देखो (अध्याय१पृष्ठ२६९से२७६तक
इति*;तत्॥ सर्वम्॥ अनन्त-	=ऐसे है। वह समस्त (परीतानन्त-युक्तानन्त और अनन्तानन्त) अनन्त शब्दमें
सामान्येन॥ गृह्यते, स्यात् एतत्॥	=सामान्यकरि ग्रहण किया गया है। यह शंका है कि
असंख्यात-प्रदेशः॥ लोकः॥, अनन्त-प्रदेशस्य॥	=असंख्यात प्रदेशी लोक है तो अनन्त प्रदेश वाले
च*अनन्तानन्त-प्रदेशस्य॥ स्कन्धस्य॥	=और अनन्तानन्त प्रदेश वाले(पुद्गल)निके स्कन्ध का
अधिकरणम्॥ इति*विरोधः॥ ततः*	=आश्रय वा आधार कैसे है ऐसा विरोध(आता)है क्योंकिवहां (=ततः)अर्थात्लोकमें

पाठहै दोनों पाठ ठीकहै ॥ सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें 'सङ्ख्येया सङ्ख्येयाश्च पुद्गलानाम्' ऐसा पाठहै ॥ जहां कहीं पुद्गलानाम्'के स्थानमें 'पुद्गलानां' है वह कातन्त्ररूपमालाव्याकरणके अतिरिक्त अशुद्ध है। प्रदेश शब्दकी अनुवृति आठवां सुत्रसे ली है ॥

नानन्त्यमिति ॥ नैष दोषः । सूक्ष्मपरिणामावगाहनशक्तियोगात्परमाण्वादयो हि सूक्ष्मभावेन परिणता एकैकस्मिन्नप्याकाशप्रदेशेऽनन्तानन्ता अवतिष्ठन्ते, अवगाहनशक्तिश्चैषामव्याहताऽस्ति तस्मादेकस्मिन्नपि प्रदेशे अनन्तानन्तानामवस्थानं न विरुध्यते ॥ पुद्गलानामित्यविशेषवचनात्परमाणोरपि प्रदेशत्वप्रसंगे तत्प्रतिषेधार्थमाह—

न-अनन्त्यम्॥इति*	=अन्त्यम रहित अर्थात् असख्यात प्रदेश है प्रश्नका भावार्थ यह है कि लोक तो असंख्यात प्रदेशी है उसमें पुद्गलके अनन्त प्रदेशी स्कन्ध, और अनन्तानन्त प्रदेशी स्कन्ध किस प्रकार समासकते हैं
न*एषः॥दोषः॥सूक्ष्म-परिणाम-	=(उत्तर) यह दूषण नहीं है क्योंकि (पुद्गल परमाणुओंका) सूक्ष्म वा लघु परिणमन
अवगाहन-शक्ति-योगात्॥परमाणु-आदयः॥हि*=	(और आकाशके प्रदेशों का) स्थानदानदेनेकी सामर्थ्यके योगसे परमाणु आदि ही
सूक्ष्म-भावेन॥परिणताः॥ एक-एकस्मिन्॥अपि*	=लघुरूपहोकर परिणत हो रहे हैं (और) एक एक भी
आकाश-प्रदेशे॥अनन्तानन्ताः॥अवतिष्ठन्ते।च*	=आकाशके प्रदेशमें अनन्तानन्त(परमाणु) तिष्ठते हैं और (=च)
एषाम्॥अवगाहन-शक्तिः॥अव्याहता॥अस्ति।	=इन (आकाशके प्रदेशों) के स्थानदानदेनेकी सामर्थ्य अरोक है (=अव्याहता अस्ति)
तस्मात्॥एकस्मिन्॥अपि*प्रदेशे॥	=तिससे एक भी (आकाशके) प्रदेशमें
अनन्तानन्तानाम्॥अवस्थानम्॥।नविरुध्यते।	=अनन्तानन्त (परमाणुओं) का ठहराव नहीं विरोधा जाता है
पुद्गलानाम्॥इति*अविशेष-वचनात्॥।	= (सूत्रमें) पुद्गलोंके (संख्यात-असंख्यात-अनन्त और अनन्तानन्त प्रदेश हैं) ऐसे सामान्य वाक्यसे
परमाणोः॥अपि*प्रदेशत्व-प्रसंगे॥।	=(पुद्गल) परमाणुओंके भी प्रदेशपनाका प्रसंग आने पर
तत-प्रतिषेध-अर्थम्॥।आह।	=उस (परिमाणु) के (बहुप्रदेशपनाके) निषेधके लिये (उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

(१) जैसे एक चपाकी कली विषैं तिष्ठै हुये सुगन्ध पुद्गल परमाणु सूक्ष्म रूप परिणमनसे सकोच रूप तिष्ठत हैं बहुरि वही सुगन्ध परमाणु जब फलै तब सर्व दिशाओंमें व्यापक हो जाते हैं तैसे सूक्ष्म परिणमनसे लोकाकाशके एक प्रदेशमें तिष्ठते हुए परमाणु बादर वा स्थूलरूप परिणमैं तब बहुत प्रदेशोंमें तिष्ठते हैं ॥ इसी प्रकार दूसरा उदाहरण है कि कडे वा गीले काष्ठमें प्रचय विशेषसे इतने पुद्गल स्कन्ध हैं यदि अग्निसे जलायं जावें तो धूम रूपमें होकर सब दशाओंमें भरजाते हैं तैसे अल्पहू लोकाकाशमें अनन्तानन्त जीव अनन्तानन्त पुद्गल का अवस्थान विरुद्ध रहित पाया जाता है॥

॥ नाणोः ॥ ११ ॥

अणोः प्रदेशा न सन्तीति वाक्यशेषः ॥ कुतो न सन्तीति चेत् प्रदेशमात्रत्वात्। यथा आकाशप्रदेशस्यैकस्य प्रदेशभेदाभावादप्रदेशत्वमेवमणोरपि प्रदेशमात्रत्वात्प्रदेशभेदाभावः॥ किंच ततोऽल्पपरिमाणाभावान्न ह्यणोरल्पीयानन्योऽस्ति। यतोऽस्य प्रदेशा भिद्येरन् ॥एषामवधृत

सूत्रम्—नाणोः॥११॥ = नाणोः (प्रदेशाः भवन्ति)॥११॥

सूत्रार्थः—न*अणोः[6/1] प्रदेशाः[1/3] भवन्ति[I] = अणुके प्रदेश नहीं होते है, शुद्ध पुद्गल एक परमाणुके बहुत प्रदेशोंका अभावहै एक प्रदेशमात्रता ही कही है क्योंकि परमाणुके खंडका अभाव है

वृत्त्यनुवादः—अणोः[6/1] प्रदेशाः[1/3] न*सन्ति[I] इति* = अणुके प्रदेश नहीं है ऐसा

(१)वाक्यशेषः[1/1] = वाक्य शेष है अर्थात् 'न-अणो':वाक्यअपूर्ण है। उसका शेषवाक्य प्रदेशाः सन्ति है

कुतः* न* सन्ति[I] इति* चेत्* = क्योंकर (अणुके प्रदेश) नहीं है। ऐसी शंका है।

प्रदेश—मात्रत्वात्[5/1]॥ = (उत्तर) केवल (= मात्र) एक प्रदेश होनेसे (अणुके बहुत प्रदेश नहीं है)

यथा*आकाश—प्रदेशस्य[6/1] एकस्य[6/1]प्रदेश—भेद— = जैसे आकाशके एक प्रदेशके प्रदेश भेद

अभावात्[5/1] अप्रदेशत्वम्[1/1]॥ एवम्*अणोः[6/1]अपि* = न होनेसे अप्रदेशपना है। ऐसे अणुके भी

प्रदेशमात्रत्वात्[5/1]॥ प्रदेश—भेद—अभावः[1/1] = प्रदेशमात्रपनासे प्रदेशके भेदका अभाव है ॥

किम्*च* ततः* अल्प—परिमाण—अभावात्[5/1] = और क्योंकि (किस लियेकि) तिस (परमाणु) से लघु परिणमन न होने (के हेतु) से

नहि* अणोः[5/1](३)अल्पीयान्[1/1]अन्यः[1/1]अस्ति[I];यतः* = अणुसे अन्य (वस्तु) लघुतर नहीं (= न हि) है। जिससे

अस्य[6/1] प्रदेशाः[1/3](२)भिद्येरन्[I] एषाम्[6/3] अवधृत— = इस (परिमाणु) के प्रदेश भेदे जावै ॥ इन निश्चय किये हुये वा निर्णीत किये हुये

(१)वाक्यशेष=वाक्य वा वचनका छूटा हुआ वा अवशेष भाग।(१)पद आकांक्षा,वाक्य आकांक्षा,समर्थपदलोप (२)भिद्येरन् यह आत्मनेपदी विधि लिंग क्रियाहै (३)अल्पीयान् विशेषणों की जो अपने विशेष्योंके गुणों को प्रगट करते हैंतीन श्रेणीं होती हैं(क)साधारण अवस्था अर्थात् अपने विशेष्य के साधारण गुण कोप्रगट करे जैसे अच्छा मनुष्य बुरा मनुष्य(ख)आधिक्य बोधक अवस्था वह है जा दो विशेष्योंमें से एकके गुण वा दूषण कोदूसरे पर लघुता श्रेष्ठता प्रगट करे जैसे देवदत्तसे यज्ञदत्त बुरा है।मोहनसे सोहन अच्छा है।(ग)अतिशय्य बोधक अवस्था वह है जिससे केवलएक विशेष्यका

प्रदेशानां धर्मादीनामाधारप्रतिपत्त्यर्थमिदमुच्यते—

॥ लोकाकाशेऽवगाहः ॥१२॥

उक्तानां धर्मादीनां द्रव्याणां लोकाकाशेऽवगाहो न बहिरित्यर्थः॥ यदि धर्मादीनां लोकाकाशमाधारः। आकाशस्य क आधार इति ? ॥ आकाशस्य नास्त्यन्य आधारः। स्वप्रतिष्ठमाकाशम् ॥

प्रदेशानां[६] धर्मादीनां[६] आधार-प्रतिपत्ति- अर्थम्[१] इदम् उच्यते =प्रदेशवाले धर्मादिक(द्रव्यों)के अधिकरण जाननेकेलिये यह कहाजाता है कि

(१)सूत्रम्—लोकाकाशेऽवगाहः ॥१२॥ =(धर्मादीनाम् द्रव्याणाम्(३))लोकाकाशेअवगाहः॥१२॥

सूत्रार्थः(२) धर्मआदीनां[६]॥द्रव्याणां[६]॥लोकाकाशे[७]॥अवगाहः[१]=धर्म, अधर्म, जीव और पुद्गल द्रव्योंकी लोकाकाशमें स्थिति है

वृत्त्यनुवादः-उक्तानाम्[६]॥धर्मादीनाम्[६]॥द्रव्याणाम्[६]॥ ='कथित धर्मादिक' द्रव्योंकी

लोकाकाशे[७]॥अवगाहः[१]न*बहिस्*इति*अर्थः[१] =लोकाकाश मे स्थिति हैन कि(लोकाकाशके)बाहिर ऐसा तात्पर्य है

यदि*धर्म-आदीनाम्[६]॥लोकाकाशम्[१]॥आधारः[१] =(प्रश्न) जो धर्मादिकद्रव्योंका लोकाकाश आधार है तो

आकाशस्य[६]॥कः[१]आधारः[१]इति*आकाशस्य[६]॥ =आकाशका क्या आधार है ॥ आकाशका

न*अस्ति अन्यः[१]आधारः[१]स्व-प्रतिष्ठम्[१]॥आकाशम्[१]॥ =और वा भिन्न (=अन्य) अधिकरण नही है। आकाश अपने आधार है

गुण अथवा अवगुण लघुता अथवा गुरुता दोसे अधिक पर प्राप्य करें जैसे माहन सर्व छात्रों मे दयालु है ॥

ईयस् प्रत्यय 'आधिक्यबोधक अवस्था' के विशेषणका चिन्ह है और'इष्ठ' प्रत्यय आतिशय्य बोधक अवस्थाके विशेषणका चिन्ह है। इन प्रत्ययोंके लगाने के प्रथम, शब्द अर्थात् प्रातिपदकके अन्तिम स्वर और यदि शब्दके अन्तमे व्यजन होतो अन्तिम व्यजन उसके समीपके स्वरसहित को गिरादेते हैं जैसे अल्प=अल्प+ईयस्=अल्पीयस्)महत्=मह्+अत्, अत् गिराकर(अर्थात् महत्के उक्त स्वर और व्यजन दोनों गिराकर) और ईयस् जोडकर महीयस् वनलिया ॥

सज्ञायें जिनके अन्तमें वस् और ईयस् अथवा यस् हो तो पुल्लिगमें शब्दके अन्तिम स् के पूर्व न् प्रथम कारकके एक वचन, द्विवचन वहुवचन और कर्म कारकके एक वचन और दो वचनमे जोडदेते है उन सज्ञायोका उपांतिक अकार दीर्घ होजाता है। प्रथमा एक वचनके अन्तमें 'वान् वा यान्' आते हे ॥ जैसे विद्वस्=विद्वन् स्+स्=विद्वान् स् स् (जब शब्दके अन्तमे दो अथवा दोसे अधिक व्यजन हों तो केवल एक रहजाता है शेष गिरजाते हें) अतः विद्वान्[१]। बनगया शेषरूप विद्वांसौ[१]विद्वांस[१], विद्वांसम्[२], विद्वांसौ[२]। ()अल्पीयस्=अल्पीयन् स्+स्= अल्पीयान् स् स्=अल्पीयान् ।

(१) इसमें सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों आम्नायों में एकसा है ॥ (२) 'धर्मादीनां द्रव्याणां' इस वाक्यका अध्याहार किया गया है (३)काल द्रव्यका आचार्य ने अभी कथन नहीं किया है क्योंकि उसका कथन उनतालीसवांसूत्रमें है इससे अनुवादमें काल द्रव्यको गर्भित नहीं किया है यद्यपि काल द्रव्यकी भी स्थिति लोकाकाश में ही है ॥

यद्याकाशं स्वप्रतिष्ठं, धर्मादीन्यपि स्वप्रतिष्ठान्येव । अथ धर्मादीनामन्य आधारः कल्प्यते, आकाशस्याप्यन्य आधारः कल्प्यः । तथा सत्यनवस्थाप्रसङ्ग इति चेन्नैष दोषः ॥ नाकाशादन्यदधिकपरिमाणं द्रव्यमस्ति । यत्राकाशं स्थितमित्युच्यते । सर्वतोऽनन्तं हि तत् । ततो धर्मादीनां पुनरधिकरणमाकाशमित्युच्यते व्यवहारनयवशात् । एवम्भूतनयापेक्षया तु सर्वाणि द्रव्याणि स्वप्रतिष्ठान्येव ॥ तथा चोक्तं

यदि * आकाशम् ।।स्वप्रतिष्ठम् ।।धर्मादीनि ।।अपि *	=(प्रश्न)जो आकाश अपने आधार है तो धर्मादिक(द्रव्यें)भी
स्वप्रतिष्ठानि ।।एव * ;अथ * धर्मादीनाम् ।।अन्यः।	=अपने आश्रय ही हैं । जो(=अथ)धर्मादिक(द्रव्यों)का और (=अन्य)
आधारः।कल्प्यते,आकाशस्य ।।अपि * अन्यः।आधारः।	=आधार मानाजाता है । तौ आकाशका भी अन्य आधार
कल्प्यः।;तथा * सति ।।	=मानना चाहिये। वैसा(=तथा,होने पर अर्थात् आकाश का अन्य आधार माननेमें
अनवस्था प्रसङ्गः।इति * चेत् * न * एषः।दोषः। ॥	=व्यवस्थाके अभावका प्रसंग होता है, ऐसी शंका है । (उत्तर) यह दूषण नहीं है
न आकाशात् ।।अन्य अधिक-परिमाणम् ।।	=क्योंकि आकाशसे अन्य विशेष परिमाण वाली
द्रव्यम् ।।अस्ति ।	=द्रव्य नहीं है अर्थात् आकाश से कोई दूसरी द्रव्य महान् वड़ी नही है ।
यत्र * आकाशम् ।।स्थितम् ।।इति * उच्यते ।	=जिसमें(=यत्र)आकाश स्थित हो ऐसा कहा गया है ।
सर्वतः * अनन्तम् ।।हि * तत् ।;ततः * धर्मादीनाम् ।।पुनः*	=सो(=तत्,सबओर(आकाश)ही अनन्त है । वहुरि तिससे धर्मादिकों का
अधिकरणम् ।।आकाशम् ।।व्यवहारनय-वशात्।	=आधार(आकाश)है । व्यवहारनयके आश्रयसे
इति * उच्यते । एवम्भूतनय-अपेक्षया ।।तु १) *	=ऐसा कहा जाता है, और(=च)एवम्भूतनयकी अपेक्षासे अर्थात् जिस स्वरूपकरिके पदार्थ हो,तिस स्वरूपकरिकेही निश्चयकरनेवाली नयकी अपेक्षासे
सर्वाणि ।।द्रव्याणि ।।स्वप्रतिष्ठानि ।।एव* ।।तथाच*उक्तम्	=सब द्रव्यें अपने (अपने)आधार ही हैं और (=च)वैसेही(तथा=)कहा जाता है

(१) 'तु' सर्वार्थसिद्धिवृत्तिकी प्रथमावृत्ति में 'तु' के स्थान में 'च' है कई हस्तलिखित प्रतियोंमें और द्वितीय संस्करणमें 'तु' शब्द है इसलिये हमने भी 'तु' पाठ लिया है ॥

क भावानास्ते ? आत्मनीति ॥ धर्मादीनि लोकाकाशान्न बहिः सन्तीति एतावत् अत्राधाराधेयकल्पनासाध्यं फलम् ॥ ननु च लोके पूर्वोत्तरकालभाविनामाधाराधेयभावो दृष्टः यथा कुण्डे बदरादीनां न तथाऽऽकाशं पूर्वम् । धर्मादीन्युत्तरकालभावीनि

क*भवान्[१/१](१)आस्ते[T]आत्मनि[७/१]इति*;धर्मादीनि[१/३]।।
लोकाकाशात्[५/१]।।न*वहिस्*सन्ति[T]इति*एतावत्*
अत्र*(२)आधार-आधेय-कल्पना-साध्यम्[१/१]।। फलम्[१/१]।।
(३)ननु*च*लोके[७/१]।। पूर्व-उत्तर-काल-भाविनाम्[६/३]।।
आधार-आधेयभावः[१/१] दृष्टः[१/१]
यथा*कुण्डे[७/१] वदर-आदीनाम्[६/३]
न*तथा*आकाशम्[१/१]।।पूर्वम्[१/१]।।;धर्मादीनि[१/३]।। उत्तर-काल-भावीनि[१/३]।।

=कि आप कहां वैठे हैं (उत्तर)आत्माविषैं (वैठा हूं) धर्मादिक (द्रव्यें)
=लोकाकाशसे वाहिर नहीं हैं इतनाही
;=यहां आधार आधेयके माननेका साधनीय अथवा सिद्ध करने योग्य फल है
=वहुरि प्रश्न, लोकमें पहिले पिछले(पश्चात्)कालमें होनेवाली वस्तुओंके
=आधार आधेयभाव देखाजाता है अर्थात् आधार पहिले पश्चात् आधेय देखाजाताहै
=जैसे गढ़हा(आधार)में वेरके वृक्ष आदिकें वा कपासके पौदा आदिकें(आधेयभाव) हैं
=तैसे आकाश पहिले नहीं है और धर्मादिक (द्रव्यें) पश्चात्
=कालवाली (नहीं) है अर्थात् प्रश्न यह है कि गढ़हा पहिले होता है उसमें वेर वा कपासादिका वृक्ष पीछे होता है । तब आधार आधेयभाव होता है तैसे आकाश पहिले हो पीछे तिसमें धर्मादिक द्रव्य धरे होंय, तब आधार आधेयभाव होना चाहिये सो इस प्रकार हैं नही । क्योंकि आकाश और धर्मादिक द्रव्योंके अनादि परिणामिक यौगपद्यकी सिद्धि है । पूर्वमें होना वा पीछेहोना ऐसा भेद नही है ॥

(१) अस् =वैठना अदादि (दूसरे)गणका धातु है । आत्मनेपदी सकर्मक है इसलिये आस् + ते = आस्ते = वह वैठा हैं ॥

(२) जिसके आश्रय वा आसरेसे कोई वस्तु तिष्ठी हो उसे आधार कहते हैं । वह वस्तु जो किसीके आश्रित तिष्ठी हो उस वस्तुको आधेय कहतेहैं जैसे चौकी पर पुस्तक है यहां चौकी आधार है और पुस्तक आधेय है ।

(३) पाठकोंको ध्यान रहे कि "ननु च लोके पूर्वोत्तरकालभाविनामाधाराधेयभावोदृष्ट । यथा कुण्डे बदरादीनां न तथाऽऽकाशं पूर्वम् । धर्मादीन्युत्तरकालभावीनि । अतो व्यवहारनयापेक्षयाऽपि आधाराधेयकल्पनानुपपत्तिरिति ॥ ऐसा और इतना प्रश्न कियागया है ॥

अतो व्यवहारनयापेक्षयाऽपि आधाराधेयकल्पनानुपपत्तिरिति ॥ नैष दोषः ॥ युगपद्भाविनामपि आधाराधेयभावो दृश्यते । घटे रूपादयः शरीरे हस्तादय इति ॥ लोक इत्युच्यते । को लोकः ? । धर्माधर्मादीनि द्रव्याणि यत्र लोक्यन्ते स लोक इति ॥ अधिकरणसाधने घञ् ॥ आकाशं द्विधा विभक्तं । लोकाकाशमलोकाकाशं चेति ॥ लोक उक्तः । स यत्र तल्लोकाकाशम् । ततो बहिः सर्वतोऽनन्तमलोकाकाशम् ॥ लोकालोकविभागश्च धर्माधर्मास्तिकायसद्भावात्,

अतः * व्यवहारनय-अपेक्षया । अपि * आधार-आधेय-कल्पना अनुपपत्तिः । इति * ॥	=इसलिये व्यवहारनयकी अपेक्षासे भी आधार आधेयके मानने की सिद्धि नही(होती)है(क्योंकि पूर्व में कथन कर चुके हैं कि एवम्भूतनय की अपेक्षासे सर्व द्रव्य अपने अपने आधार हैं और व्यवहारनयसे आश्रय आश्रयी (=आधेय)भाव है
न*एषः।दोषः।;युगपद्*भाविनाम्।।अपि* आधार-आधेय-भावः।दृश्यते।घटे।रूपादयः। शरीरे।।हस्त-आदयः।इति*।लोकः।इति*उच्यते।	=(उत्तर)यह दूषण नही है(क्योंकि)एक कालमें होनेवालोंके भी आधार आधेय भाव देखा जाता है ।(जैसे)घड़ा में रुपादिक हैं शरीर में हस्तादिक हैं ॥ 'लोक' ऐसा कहा जाता है ॥
कः।लोकः।?।धर्म-अधर्म-आदीनि।।द्रव्याणि।।यत्र* लोक्यन्ते।सः।लोकः।इति*अधिकरणसाधने।। (१)घञ्।।आकाशम्।।द्विधा*विभक्तम्।।।	=(प्रश्न)लोक क्या है ? (उत्तर)धर्म, अधर्म आदिक द्रव्यें जहां देखी जाती हैं सो लोक है।ऐसे(लोक शब्द के)अधिकरण वा आधार सिद्ध करनेमें =घञ् (=अ) प्रत्यय लगाया है, जोड़ा है । आकाश दो प्रकारसे बटा हुआ है
लोकाकाशम्।।अलोकाकाशम्।।च * इति।लोकः।उक्तः।,	=लोकाकाश और अलोकाकाश है । लोक (जहां धर्मादिक द्रव्यें देखी जाती हैं ऐसा) कहा गया है
सः।यत्र*तत्।।लोकाकाशम्।।;ततः*बहिस्* सर्वतः*अनन्तम्।।अलोकाकाशम्।।;च*लोक-अलोक-विभागः।धर्म-अधर्म-अस्तिकाय-सद्भावात्।	=वह (लोक) जहां (=यत्र) है सो (=तत्) लोकाकाश है, तिस (लोक) से बाहिर =चारोंओर अन्तरहित अलोकाकाश है और लोक =अलोक का विभाग धर्मास्तिकायकी, अधर्मास्तिकाय की विद्यमानता से

(१) लोक् धातु का अर्थ देखना है घञ् प्रत्ययमें घ् ञ् इत् होनेसे लोप होगये अ शेष रहा, तब लोक् + अ ऐसा रूप हुआ, अर्थात् 'लोक' शब्द बनगया ॥

विज्ञेयः ॥ असति हि तस्मिन्धर्मास्तिकाये जीवपुद्गलानां गतिनियमहेत्वभावाद्विभागो न स्यात् । असति चाधर्मास्तिकाये स्थितेराश्रयनिमित्ताभावात् स्थितेरभावः । तस्या अभावे लोकालोकविभागाभावो वा स्यात् । तस्मादुभयसद्भावाल्लोकालोकविभागसिद्धिः ॥

तत्रावध्रियमाणानामवस्थानभेदसम्भवाद्विशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ धर्माधर्मयोः कृत्स्ने ॥ १३ ॥

विज्ञेयः ॥	=जाननायोग्य है (जहांतक, जहांपर धर्म, अधर्म द्रव्योंका अस्तित्व है वहांतक लोकाकाश है)
असति हि * तस्मिन् धर्मास्तिकाये	=क्योंकि (=हि) तिस धर्मास्तिकायके न होनेपर
जीव-पुद्गलानाम् गति-नियम-हेतु-अभावात् विभागः	=जीव पुद्गलोंके गमनके नियमके कारणके अभावसे लोक और लोकका) विभाग
न * स्यात्; च * असति अधर्मास्तिकाये स्थितेः ॥	=नहीं होसकता है और (=च) अधर्मास्तिकाय न होनेपर स्थितिके
आश्रय-निमित्त-अभावात् स्थितेः । अभावः; तस्याः ॥	=आश्रयके हेतुके अभावसे स्थितिका अभाव होता है । तिस (स्थिति)के
अभावे लोक-अलोक-विभाग-अभावः वा * स्यात् ।	=न होनेपर लोक अलोकका विभाग निश्चयसे (=वा) नहीं होगा (अभावः स्यात्)
तस्मात् * उभय-सद्भावात् लोक-अलोक-विभाग-सिद्धिः ॥	=तिससे दोनों (धर्म, अधर्म द्रव्यों)के अस्तित्वसे लोक अलोकके विभागकी सिद्धि है
तत्र * अवध्रियमाणानाम् अवस्थान-	=तहां निर्णयकियेगये अथवा अवधारणकियेगयेके अवस्थानके
भेद-सम्भवात् विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थम् ॥ आह ।	=भेद सम्भव होनेसे विशेष ज्ञानके लिये (अग्रिम सूत्रमें) कहते है कि
(१) **सूत्रम्-धर्माधर्मयोः कृत्स्ने ॥ १३ ॥**	**= धर्माधर्मयोः कृत्स्ने (लोकाकाशे अवगाहः भवति)।१३।**
सूत्रार्थः—धर्म-अधर्मयोः कृत्स्ने ॥ लोकाकाशे ॥	=धर्म द्रव्य तथा अधर्म द्रव्यकी समस्त लोकाकाशमें
अवगाहः भवति ।	=स्थिति है अर्थात् जैसे तिलोंमें सर्वत्र तेल व्याप्त है उसी प्रकार लोकाकाशके समस्त प्रदेशों में धर्म अधर्म द्रव्योंके प्रदेश पूर्णरूपसे व्याप्त है ।

(१) दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायोंमें इस सूत्र का पाठ और अर्थ एकसा है ॥ कहींपर "धर्म्माधर्म्मयो कृत्स्ने" पाठ है दोनों पाठ "अचो रहाभ्यां द्वे (वा)" अष्टाध्यायी ८-४-४६ सूत्रसे ठीक है ।

कृत्स्नवचनमशेषव्याप्तिप्रदर्शनार्थम् । अगारेऽवस्थितो घट इति यथा, तथा धर्माधर्मयोर्लोकाकाशेऽवगाहो न भवति किं तर्हि ?। कृत्स्ने, तिलेषु तैलवदिति ॥ अन्योऽन्यप्रदेशप्रवेशव्याघाताभावोऽवगाहनशक्तियोगाद्वेदितव्यः ॥

अतो विपरीतानां मूर्तिमतामेकप्रदेशसंख्येयासंख्येयानन्तप्रदेशानां पुद्गलानामवगाहविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

वृत्त्यनुवादः-कृत्स्न-वचनम्।।अशेष-व्याप्ति-प्रदर्शन-अर्थं	=(इस सूत्रमें)कृत्स्न शब्द सर्व(लोकमें)व्याप्ति अथवा फैलावटके दिखानेके लिये है,
अगारे।।अवस्थितः।घटः।इति*यथा*,तथा*	=जैसे घरमें घड़ा अवस्थित वा रक्खा हुआ है तैसे
धर्म-अधर्मयोः।लोकाकाशे।।अवगाहः।न*भवति	=धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य दोनोंका लोकाकाशमें अवगाह नहीं होता है
किं* तर्हि* ।	=(प्रश्न) तो कैसे हैं ? प्रश्नका भावार्थ ऐसा है कि आचार्यकी यह बात सुनकर कि घरमें रक्खे हुये घटके समान धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य लोकाकशमें रक्खेहुये नहीं हैं शिष्यने अचम्भित,उत्सक और अधीर होकर तत्कालही प्रश्न करदियाकि तो कैसे हैं
कृत्स्ने।। तिलेषु। तैलवत्*इति* ॥	(=उत्तर)सम्पूर्णमें अर्थात् तिलोंमें तेलके सदृश भावार्थ जैसे तिलोंमें सर्वत्र तेल व्याप्त है तैसे लोकाकाशके समस्त प्रदेशोंमे सर्वत्र धर्म अधर्मद्रव्योंकेप्रदेश पूर्णतया व्याप्त हैं
अन्योऽन्य-प्रदेश-प्रवेश-व्याघात-अभावः।	=(धर्म-अधर्मद्रव्योंके) परस्पर प्रदेशोंके प्रवेशमें व्याघात वा रुकावट नहीं है
अवगाहन-शक्ति-योगात्।	=(सो रुकावटका अभाव धर्म-अधर्मद्रव्योंकी)अवगाहनकी सामर्थ्यके योगसे
वेदितव्यः।	=जानना चाहिये अर्थात् धर्मद्रव्यका एकएकप्रदेश अधर्मद्रव्यके एक२ प्रदेशमें व्याघात रहित प्रवेश है और अधर्मद्रव्यका एकएकप्रदेश धर्मद्रव्यके पृथक् पृथक् प्रदेशमें विना रोकटोक प्रवेशहै सो यह परस्पर प्रवेशता धर्म-अधर्मके अवगाहनशक्तिके निमित्तसेहै
अतः* विपरीतानाम्।मूर्तिमताम्।एकप्रदेश-संख्येय-	=इसलिये(इन अमूर्तोंक धर्म-अधर्मद्रव्योंके)विरुद्ध मूर्तिमान् एकप्रदेशी, संख्यातप्रदेशी
असंख्येय-अनन्त-प्रदेशानाम्। पुद्गलानाम्।	=असंख्यात प्रदेशी अनन्त प्रदेशी (अनन्तानन्त प्रदेशी) पुद्गलोंकी
अवगाह-विशेष-प्रतिपत्ति- अर्थम्।।आह।	=अवगाहको विशेष जाननेके लिये (अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

॥ एकप्रदेशादिषु भाज्यः पुद्गलानाम् ॥ १४ ॥

(१)सूत्रम्—एकप्रदेशादिषु (५)भाज्यः पुद्गलानाम् ॥ १४ ॥

=(२लोकाकाशे)एकप्रदेशादिषु(४)भाज्यः(एकप्रदेशसंख्येयासंख्येयानन्त-अनन्तानन्तप्रदेशानां) पुद्गलानां (३)अवगाहः)

सूत्रार्थः—लोकाकाशे॥एकप्रदेशः-आदिषु = लोकाकाशके एक प्रदेशादिकनिमें

एकप्रदेश-संख्येय-असंख्येय-अनन्त-अनन्तानन्तप्रदेशानां पुद्गलानां = एक प्रदेशी, दो प्रदेशी, तीन प्रदेशी आदि संख्यात प्रदेशी असंख्यात प्रदेशी और अनन्तप्रदेशी, अनन्तानन्तप्रदेशी पुद्गलोंका

अवगाहः भवति = अवगाह-स्थिति-अवस्थान-ठहराव-टिकाव

भाज्यः = विभाग करने योग्य है, विकल्पनीय है वा बांटेजाने योग्य है अर्थात् लोकाकाशके एक-दो-तीन-चार-पांच इत्यादि संख्यात प्रदेशोंसे असंख्यात प्रदेशों तकमें पुद्गलद्रव्य के एकपरमाणु, दोपरमाणुं, तीनपरमाणुं, चारपरमाणुं, पांचपरमाणुं, छहपरमाणुं इत्यादिक संख्यात परमाणुं, असंख्यात परमाणुं अनन्त परमाणुं, और अनन्तानन्त परमाणुओंका अवगाह विभाग करने योग्य है, बांटेजाने योग्य है भावार्थ कि लोका-काशके एकप्रदेशमें पुद्गलद्रव्यके एकपरमाणु, दोपरमाणुके(जो सूक्ष्मपरिणये)स्कंधका

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों सम्प्रदायोंमें एकसा है ॥ 'पुद्गलानाम्'के स्थानमें जहां कहीं 'पुद्गलाना' ऐसा पाठ है वह कालस्वरूपमाला व्याकरणको छोडकर अशुद्ध है ॥ (२) 'लोकाकाशे' और 'अवगाह' की बारहवां सूत्रसे अनुवृत्ति है॥ 'एकप्रदेशसंख्येयासंख्येयानन्त-अनन्तानन्त प्रदेशानां पुद्गलानाम्' यह समस्त यदि सूक्ष्म दृष्टिसे देखाजावै तो दशवां सूत्रकी अनुवृत्ति है क्योंकि उक्त सूत्रमें प्रदेशशब्दकी अनुवृत्ति आठवां सूत्रसे लीगई है अतः यहांभी प्रदेश शब्द आठवां सूत्रसे अनुवर्तना है ॥ दशवां सूत्रके 'संख्येय' शब्दमें एक प्रदेश और संख्यात प्रदेशआजाते है ॥ दशवां सूत्रके अनन्त शब्दमें 'अनन्तानन्त'भी गर्भित है जैसाकि उक्त सूत्रकी वृत्तिके निम्न वाक्योंसे प्रगट है अनन्त सामान्यात् ॥ अनन्त प्रमाणं त्रिविधमुक्त परीतानन्त युक्तानन्तमनन्तानन्त चेति । तत्सर्वमनन्तसामान्येन गृह्यते ॥ इन वाक्योंके अर्थके लिये देखो पृष्ठ २६ ॥ (३) यह अनुवाद दशवां सूत्रके आधारपर है । (४) "भाज्य" विभजनीय, विभाग करने योग्य, विभाज्य, विकल्प करने योग्य, विकल्पनीय, बांटने योग्य अंशनीय ये सर्व एकार्थवाची हैं ॥(५) पुद्गल द्रव्यको अवगाह लोकाकाशके एक प्रदेश तैं लगाय असंख्यात प्रदेश तांई अनेक प्रकार हैं ॥ प० सदासुखजीकृता अर्थप्रकाशिका ॥

तीन परमाणुंके(जो सूच्मरूपमें पलटगये हैं)स्कंधका चार परमाणुंके(जो सूच्मरूपमें परिवर्तित हैं) स्कंधका इत्यादि संख्यात परमाणुंके (जो सूच्मरूपमें परिणमे हैं) स्कंधका और सूच्मरूप परिवर्तित असंख्यात परमाणुंओंके स्कंध का, तथा सूच्मरूप परिणमें अनन्त पुद्गल परमाणुओंके स्कंधका और सूच्मरूप परिणत अनन्तानन्त पुद्गल परमाणुके स्कंधका भी अवगाह वा अवस्थान (लोकाकाशके एक प्रदेशमें) है ;

लोकाकाशके दो प्रदेशोंमें पुद्गलद्रव्यके दोपरमाणुं खुलेहुओंका अथवा दो परमाणुं वन्धे हुओंका जो सूच्मरूप नही परिणये हैं स्थिति है, तीन परमाणुंओंके (जो सूच्मरूप विकारको प्राप्ति हुई है) स्कंधका, चार परमाणुंओं के (जो सूच्मरूपमें परिवर्तित है) स्कंधका और ऐसाही परिवर्तित पांच परमाणुंके स्कंधका तथा ऐसेही परिणत छह परमाणुओंके स्कंधका, इत्यादिक ऐसेही सूच्मरूप परिवर्तित संख्यात पुद्गल परमाणुंके स्कंधका, ऐसाही स्कंध असंख्यात परमाणुंओंकेका, ऐसाही स्कंध अनन्त परमाणुंओंकेका और पुद्गलके अनन्तानंत परमाणुंओंके (जो सूच्मरूपमें परिणये है) स्कंधकाभी अवगाह वा ठहराव वा स्थिति (लोकाकाशके दो प्रदेशोंमें) है ;

लोकाकाशके तीन प्रदेशोंमें पुद्गलद्रव्यके तीन परमाणुं खुले हुओंका अथवा तीन परमाणुं वंधे हुओंका जो सूच्मरूप नहीं परिणये हैं, चार परमाणुंओंके (जो सूच्मरूप परिणमें हैं) स्कंधका, ऐसाही सूच्मरूप परिणत पांच परमाणुंके स्कंधका, ऐसाही सूच्मरूप परिवर्तित छह परमाणुओंके स्कंधका अवगाह, इत्यादिक सात, आठ, नौ, दश ·········· संख्यात सूच्मरूप परिणत परमाणुओंके स्कंधकी स्थिति, ऐसेही सूच्मरूप परिवर्तित असंख्यात परमाणुओंके स्कंधका अवस्थान, अनन्त परमाणुके ऐसेही स्कंधकी स्थिति, और ऐसेही सूच्म परिणत अनन्तानंत परमाणुओंकी स्थिति तीन प्रदेशोंमें है ।

इसही प्रकार लोकाकाशके चार-पांच-छह-सात-आठ-नौ-दश इत्यादि संख्यात प्रदेशोंसे असंख्यात प्रदेश पर्यंतोंमें चार-पांच-छह-सात-आठ नौ-दश-इत्यादिक संख्यात और असंख्यात पुद्गल परमाणुओंके स्कंध का जो लोकाकाशके प्रदेशोंकी यथायोग्य गणनानुसार खुले हुये होसकते हैं वा वंधे हुये (सूच्मरूपमें नहीं) अथवा उक्त नियमकी गणनानुसार सूच्मरूपमे परिणतभी होसकते है, अवस्थान भाज्यरूप जानो, परन्तु अनन्त और अनन्तानन्त पुद्गल परमाणुओंके स्कंधका लोकाकाशके एक,दो,तीन, चारसे असंख्यात प्रदेशों तकमें उसी समय, अवस्थान वा अवगाह होसक्ता है जब वे अनन्त परमाणु वा अनन्तानन्त परमाणु सूच्मरूपमें परिवर्तित हैं क्योंकि लोकाकाशके तो असंख्यात ही प्रदेश हैं । स्मरण रहे कि जितनी खुली हुई परमाणु है

एक एव प्रदेशः एकप्रदेशः । एकप्रदेश आदिर्येषां त इमे एकप्रदेशादयः । तेषु पुद्गलानामवगाहो भाज्यो विकल्प्यः ॥ अवयवेन विग्रहः

उतने लोकाकाशके प्रदेशोंसे अधिकमें अवगाहनीय नहीं होसकती हैं । अधिकसे अधिक उतने ही आकाशके प्रदेशोंमें उनका अवगाह वा टिकाव होसकता है जितनी उनकी खुले रूपमें संख्या है ॥

वृत्त्यनुवादः—एकः एव प्रदेशः एकप्रदेशः ।	=एकही प्रदेश है सो (द्विगु समासरूपमें) एकप्रदेश है
एकप्रदेशः आदिः येषाम् ते इमे एकप्रदेशादयः ।	=एक प्रदेश है आदिमें अर्थात् प्रथममें जिनके वे इतने "एक प्रदेशादयः" हैं
तेषु	=तिन (एक प्रदेशादिक अर्थात् लोकाकाशके एक-दो-तीन-चार-पांच-छह-इत्यादि संख्यात प्रदेशोंसे असंख्यात प्रदेशोंतक)में
पुद्गलानाम्	=पुद्गलों (की एकपरमाणु,दो परमाणु,तीन परमाणु, चार परमाणु, पांच परमाणु, छह परमाणु, सात परमाणु, आठ परमाणु इत्यादि संख्यात, असंख्यात, अनन्त और अनन्तानन्त परमाणुओं)की
अवगाहः भाज्यः विकल्प्यः	=स्थिति विभाग करनेयोग्य(=भाज्य)है । विकल्पनीय है-अंशनीय है ॥
अवयवेन	=(एकप्रदेशादिषु इस बहुवचनांतसमासका) टुकड़ेटुकड़ेरूपसे वा अंशअंशकरि
विग्रहः	=व्याकरणानुसार व्यवच्छेद(=विग्रह अनुसार (विग्रह)वा विस्तार कियागया है सो

(१) "एकप्रदेशादिषु"समासके अवयव इसप्रकार होसकतहै कि= लोकाकाशे,एकप्रदेशे (पुद्गलानां अवगाहः भाज्यः)ऐसे एकप्रदेशभी लियागया है॥ () लोकाकाशे द्विप्रदेशयो पुद्गलानाम् अवगाह भाज्य. । () लोकाकाशे त्रिप्रदेशेषु पुद्गलानाम् अवगाह भाज्यः । () लोकाकाशे चतुःप्रदेशेषु पुद्गलानाम् अवगाहः भाज्य । () लोकाकाशे पंचप्रदेशेषु पुद्गलानाम् अवगाह भाज्यः। () लोकाकाशे षट् प्रदेशेषु पुद्गलानाम् अवगाहः भाज्यः । () () लोकाकाशे सप्तप्रदेशेषु पुद्गलानां अवगाहः भाज्यः । () लोकाकाशेषु अष्टप्रदेशेषु पुद्गलानाम् अवगाहः भाज्यः । () लोकाकाशे नवप्रदेशेषु पुद्गलानां अवगाहः भाज्य । () लोकाकाशे दशप्रदेशेषु पुद्गलानां अवगाह भाज्य । () इत्येवम् लोकाकाशे संख्यातप्रदेशेषु पुद्गलानां अवगाह भाज्य । () लोकाकाशे असंख्यातप्रदेशेषु अपि पुद्गलानां अवगाहः भाज्यश्च ॥

(२) दोनों बारकी छपीहुई संस्कृत सर्वार्थसिद्धिमें'विग्रहसमुदायः समासार्थं ऐसा पाठ है अर्थात् विग्रह और समुदाय शब्दोंको मिलादिया है सो बहुत गहरी खोजके पश्चात्

समुदायः समासार्थ इति एकप्रदेशोऽपिगृह्यते ॥

समास-अर्थः१	=सो (उक्त 'एकप्रदेशादिषु') समासका भाव, अभिप्राय, वा तात्पर्य (=अर्थः)
समुदायः१	=संचयरूपमें ग्रहण करनेका है (=समुदाय),अथवा इकट्ठेरूपमें लियेजानेका है(=समुदाय) कि
इति*एक-प्रदेशः१ अपि*गृह्यते T	=इस प्रकारसे(=इति)एकप्रदेश भी लेलियागया है भावार्थ ऐसा है कि 'एकप्रदेशादिषु'

निम्नलिखित हेतुओंसे ज्ञात होताहै कि उक्त पाठ अशुद्ध है (क) सर्वार्थसिद्धिकी तीन हस्तलिखित प्रतियोंके पर्ण १११, ६२, ५१ परक्रमसे 'अवयवेन विग्रहस्समुदाय. समासार्थ इति' पाठ है ॥ यदि विसर्गके पश्चात् श्-ष्-स् आवे तो विसर्गका विसर्ग बना रहनेदो चाहे क्रमसे श्-ष्-स् में पलटदो इसलिये विग्रहस्समुदाय·=विग्रह समुदाय (वाक्य)के ॥

(ख)तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ २०७ पर कलकत्तेकी संस्था द्वारा प्रकाशित राजवार्तिकका मुद्रित अनुवादके अध्याय ५ पृष्ठ १४६ पर और पं० पन्नालालजी दूनी अनुवादित राजवार्तिक हस्तलिखितके अध्याय ५ पृ० ३७ पर और प० पन्नालालजी न्यायदिवाकर अनुवादित तत्त्वार्थराजवार्तिक हस्तलिखितके अध्याय ५ पृ०५४ पर प्रथमवार्तिक यह है"एकप्रदशादिष्वित्यवयवेन विग्रहः समुदायो वृत्त्यर्थः"॥१॥यहांपर'वृत्ति'शब्दकाअर्थ समास है।

तत्त्वार्थराजवार्तिकके सूत्र"असख्येयभागादिषु जीवानाम्" ॥ १५ ॥ पर प्रथमवार्तिक यह है कि "अवयवेन विग्रह समुदायो वृत्त्यर्थ इति"

(ग) श्रुतसागरि सूरि कृता 'श्रुतसागरीटीका' हस्तलिखितप्रतिके पर्ण १५३ पर 'यथा व्याकरणेऽवयवेन विग्रहो भवति समुदायः समासार्थो भवति तथा एकप्रदेशोपि गृह्यते बहवःश्च प्रदेशा गृह्यते=जब व्याकरणमें अवयव सहित विग्रह होता है समासका अर्थ समुदाय होता है तब एक प्रदेश भी ग्रहण कियागया है और बहुत प्रदेश भी लियेगये है अथवा ग्रहण किये गये हैं ॥ इस सम्बन्धमें हमको तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक तथा श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें तथा उनकी भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकामें कुछभी नहीं प्राप्त हुआ है ॥

(घ) प० जयचन्द्रायजीने इसी सूत्रकेनीचे ऐसा अनुवाद किया है कि 'यहां एकप्रदेशादिषु समास अवयवकरि कियाहै, तातैं समुदाय जानना" ॥

(ङ)प० पन्नालालजी दूनीका अनुवाद इस प्रकार है 'तिन एकप्रदेशादिकनिविषै अैसो समास जोहै सो समुदायरूपवृत्तिके अर्थ सर्वादिकके समानहैं उक्त दूनीजीने राजवार्तिक १५वां सूत्रकी प्रथमावार्तिक 'अवयवेन विगृह सनुदायो वृत्त्यर्थ इति' का यह अनुवाद किया है कि'अवयवकरिविग्रहहोयहै अरवृत्तिका अर्थ समुदाय है' यहांपरभी वृत्तिका अर्थ समास है ॥

(च) प० पन्नालालजी न्यायदिवाकर अनुवाद करते है 'एक प्रदेशादिकके विषै समुदायवृत्तिरूप जो अर्थ है सो सर्वादिगणके समान है। ताकरि एकप्रदेशभी ग्रहण होय है ऐसा जानना" ॥ यह अनुवाद 'एकप्रदेशादिषु इति विग्रहः समुदायो वृत्त्यर्थः सर्वादिवत् । तैनेकप्रदेशोऽपि अंतर्भवति' वृत्तिका है ॥ प्रथम वार्तिक 'एकप्रदेशादिष्वित्यवयवेन विग्रहः समुदायो वृत्त्यर्थः' का अनुवाद ऐसे किया है कि 'यहां एकप्रदेशादिषु या बहुवचनांत वाक्यका विग्रह अवयवकरि है तातैं समुदाय वृत्ति जानना' ॥ 'असख्येयभागादिषु जीवानाम्'॥ १५वां सूत्रकी प्रथम वार्तिक 'अवयवेन विग्रहः समुदायो वृत्त्यर्थ इति' का अनुवाद ऐसा किया है कि "अवयवकरि विगृह है सो समासमें समुदायरूप अर्थकूं कहै है"

यदि हम छपीहुई सर्वार्थसिद्धिवृत्तियोंका पाठ मानलेंतो अवयवेन विग्रहसमुदाय समासार्थइति एकप्रदेशोऽपिगृह्यते वाक्यका अनुवाद इसप्रकार होगा

अवयवेन३। विग्रह-समुदाय १।	=टुकड़े २ रूपसे वा अंश २ रूपसे विग्रह (अर्थात् समासार्थबोधक वाक्यों)का(यहां) संग्रह व समुदय है
समास-अर्थः१। इति*एकप्रदेशः१।अपि*	=सो (एकप्रदेशादिषु) समासके अर्थके (स्पष्ट करनेके लिये) है ऐसे (आकाशका) एक प्रदेशभी
गृह्यतेT	=ग्रहण किया गया है भावार्थ यह है कि (एकप्रदेशादिषु)यह समास है इस समासके अंश या अवयववा भाग 'एकप्रदेशे और एक प्रदेशादिषु हैं ये अवयवरूपसे

यह बहुवचनांत समास है, इस समासके भाग अथवा अवयव 'एकप्रदेशे' एकप्रदेश-आदिषु हैं अर्थात् एकप्रदेशमें, दोप्रदेशोंमें, तीन प्रदेशोंमें, चारप्रदेशोंमें इत्यादिक, संख्यात प्रदेशोंमें और असंख्यात प्रदेशोंमें इसप्रकार उक्त समासका अवयव सहित अथवा टुकड़े२ रूपमें, अंश २ रूपमें विग्रह वा व्याकरणानुसार व्यवच्छेद, प्रसार, वा विस्तार हुआ सो यह विग्रह इस बातका द्योतक है कि उक्त (एकप्रदेशादिषु) समासका अर्थ तात्पर्य वा भाव समुदाय है। यदि इस समासका अर्थ यहांपर समुदाय न माना जाता तो यहांपर अन्य पदार्थकी प्रधानता रहनेसे एकप्रदेशसे भिन्नही प्रदेशोंमें पुद्गलद्रव्यका अवगाहन सिद्ध होता और एकप्रदेश छूट जाता, समासका समुदाय अर्थ माननेमें ग्रहण करनेमें लोकाकाशका एक प्रदेशभी पुद्गलके अवगाहके लिये ग्रहणमें आगया है

विग्रहका समूह है सो (यह अवयवरूपसे विग्रका समुदाय) 'एक प्रदेशादिषु समासके (स्पष्ट करनेके) अर्थ है ऐसे लोकाकाशका एकप्रदेशभी (पुद्गलके) अवगाहके लिये लिया है॥ पं० गजाधरलालजीने तत्त्वार्थराजवार्तिककी 'एकप्रदेशादिष्वित्यवयवेन विग्रह समुदायो वृत्त्यर्थ:' का भावार्थ ऐसा दिया हैकि

'एकश्चासौ प्रदेशश्चैकप्रदेश एकप्रदेशआदिर्येषां त इमे एकप्रदेशाय: तेषु एकप्रदेशादिषु' यह यहांपर अवयवके साथ समासहै। 'एकप्रदेश आदि लेकर जितने प्रदेश हैं उनमें' यह यहांपर 'एकप्रदेशादिषु' पदका अर्थ है। 'एकप्रदेशादिषु' यहांपरबहुव्रीहिसमासरहनेसेअन्य पदार्थ प्रदेश लिया गया है और वह विशेष्य और एक प्रदेशादि पदार्थको विशेषण माना गया है। यदि यहांपर यह तर्क किया जाय कि अन्यपदार्थ प्रदेश ही क्यों लिया गया और कोई पदार्थ क्यों नहीं लिया गया ? तो इसका समाधान यह है कि जहांपर उपलक्ष्य और उपलक्षणभाव रहता है वहांपर समान जातीयपदार्थका ही ग्रहण होता है जिसतरह ब्राह्मणोंको निमत्रण आदिके समय कहा जाता है—सोमशर्मा आदिका निमत्रण है। वहांपर आदिशब्दसे सोमशर्माके समानजातीय अन्य ब्राह्मणोंका ही ग्रहण होता है। यहांपर सोमशर्मा उपलक्षण है क्योंकि जो अपना और अपने समानजातीयका ग्राहक होता है वह उपलक्षण माना जाता है। यहांपर सोमशर्मा अपना और अपने सजातीय ब्राह्मणोंका ग्रहण करनेवाला है इसलिये वह उपलक्षण है और जो ग्रहण किये जांय वे उपलक्ष्य कहे जाते हैं यहांपर सोमशर्मासे भिन्न अन्य ब्राह्मण उपलक्ष्य हैं इसलिये उपलक्ष्य उपलक्षण भावके होनेसे जिसप्रकार यहांपर समानजातीय अन्य ब्राह्मणोंका ग्रहणहै उसीप्रकार 'एकप्रदेशादिषु' यहांपर भी उपलक्ष्य उपलक्षण भाव है क्योंकि बहुव्रीहि समासांत एकप्रदेशादि शब्द अन्य पदार्थका ग्राहक है इसलिये यहांपर भी समानजातीय पदार्थका ही ग्रहण होसकता है विजातीय पदार्थका नहीं। प्रदेशका समानजातीय पदार्थ प्रदेशही है इस लिये यहांपर अन्य पदार्थ प्रदेशही ग्रहण किया जासकता है अन्य नहीं। इस रीतिसे 'एक प्रदेशको आदि लेकर जितने प्रदेश हैं उनमें' यही 'एकप्रदेशादिषु' शब्दका अर्थ ठीक है। अथवा ऊपर से प्रदेश शब्दकी अनुवृत्ति आ रही है इसलिये भी 'एकप्रदेशको आदि लेकर जितने प्रदेश हैं उनमें' यही 'एकप्रदेशादिषु' शब्दका अर्थ न्याय्य है।

'एकप्रदेशादिषु' यहांपर जो समास मानागया है उसका अर्थ समुदाय है इसलिये 'एकप्रदेशादिषु' यहांपर यद्यपि एकप्रदेश शब्द उपलक्षणस्वरूप है तो भी उसका ग्रहण है। यदि समासका अर्थ यहांपर समुदाय न माना जाता, तो यहांपर अन्य पदार्थकी प्रधानता रहनेसे एकप्रदेशसे भिन्नही प्रदेशोंमें द्रव्यका अवगाहन सिद्ध होता, गौण होनेसे एक प्रदेशमें अवगाहन न सिद्ध होता। खुलासा तात्पर्य यह है—

बहुव्रीहि समास तद्गुणसविज्ञानबहुव्रीहि और अतद्गुणसविज्ञानबहुव्रीहिके भेदसे दो प्रकारका मानागया है। जहांपर विशेषणविशिष्ट पदार्थका ग्रहण हो वह तद्गुणसविज्ञान बहुव्रीहि है जिस प्रकार, "लंबकर्णमानय" अर्थात् जिसके लबे कान हों उस पुरुषको लेआओ, यहांपर लबे कान सहित पुरुषके आनेसे विशेषणविशिष्ट पदार्थका ग्रहण है तथा जहांपर विशेषणयुक्त पदार्थका ग्रहण न हो वह अतद्गुणसविज्ञान बहुव्रीहि है जिस प्रकार 'सागरदृष्टमानय' अर्थात् जिस पुरुषने सागरको देख लिया है उसे लेआओ, यहांपर सागरसहित पुरुषका आना न होनेसे विशेषणविशिष्ट पदार्थका

तद्यथा—एकस्मिन्नाकाशप्रदेशे परमाणोरवगाहः द्वयोरेकत्रोभयत्र च बद्धयोरबद्धयोश्च त्रयाणामेकत्र द्वयोस्त्रिषु च बद्धानामबद्धानां च ॥ एवं संख्येयासंख्येयानन्तप्रदेशानां स्कन्धानामेकसंख्येया-संख्येयप्रदेशेषु लोकाकाशेऽवस्थानं प्रत्येतव्यम् ॥

तद्यथा*एकस्मिन् आकाशप्रदेशे परमाणोः अवगाहः द्वयोः एकत्र*उभयत्र*च* बध्दयोः अबध्दयोः च* =जैसे एक आकाशके प्रदेशमें (एक) परमाणुका =अवस्थान है। दो(परमाणु)का एकप्रदेशमें (=एकत्र) तथा दो प्रदेशोंमें (=उभयत्र) =बंधी हुई का तथा (=च) खुलीहुई का (अवगाह) है अर्थात् दो परमाणु बंधीहुईकी जो सूक्ष्मरूपमें परिणामी हैं लोकाकाशके एकप्रदेशमें अवगाह है और दो परमाणु खुली हुईका जो सूक्ष्मरूपमें नहीं परिणामी हैं तथा दो परमाणु बंधीका भी जो सूक्ष्मरूपमें नही परिणामी हैं लोकाकाशके दो प्रदेशमें अवगाह है।

च*त्रयाणाम् एकत्र*बद्धानाम् =और (=च) तीन(परमाणुओं)का एकप्रदेशमें(=एकत्र) बंधेहुओंका(सूक्ष्मरूपपरवर्तितका)

(त्रयाणाम्) द्वयोः बद्धानाम् च*अबद्धानाम् =(तीन परमाणुओंका) दो प्रदेशोंमें (=द्वयोः) बंधेहुए और(=च) खुलेहुओंका अर्थात् दो परमाणुं(सूक्ष्मरूप परिणत)और एक खुलीहुईका वा तीनों सूक्ष्मरूप परिणतका(अवगाह)है।

(त्रयाणाम्) त्रिषु अबद्धानाम् =(तीन परमाणुका) तीन प्रदेशोंमें खुले हुओंका (अवस्थान वा अवगाह) है

एवं*संख्येय-असंख्येय-अनन्तप्रदेशानाम् स्कन्धानाम् =इस प्रकार संख्यात-असंख्यात अनन्त और अनंतानन्त प्रदेशोके स्कन्धोंका (क्योंकियहां अनन्तमें अनन्त और अनन्तानन्त दोनो जैसा प्रथम कहाहै आजातेहैं)

एक-संख्येय-असंख्येय-प्रदेशेशु लोकाकाशे =एक,दो,तीन,चार,पांच,छह इत्यादि संख्यात और असंख्यात लोकाकाशप्रदेशोंमें

अवस्थानम् प्रत्येतव्यम् =अवगाह अथवा स्थिति प्रतीति करनी चाहिये अर्थात् पुद्गलकी दो तीन चार पांच आदिक संख्यात,असंख्यात,अनन्त तथा अनन्तानन्त परमाणुओंके जो (सूक्ष्मरूपमें परणमीहैं)स्कन्धका अवगाह लोकाकाशके एकप्रदेशमेंभी है। संख्यात-असंख्यात अनन्त तथा अनन्तानन्तपरमाणुओंके स्कन्धोंका अवगाह लोकाकाशके संख्यात प्रदेशोंमेंभी है और असंख्यात अनन्त तथाअनन्तानन्तपरमाणुओंके स्कन्धोंका अवगाह लोकाकाशके असंख्यात प्रदेशोंमें भी है। यहांपर स्मरण रहै कि जितनी खुलीहुई परमाणुहै उतनेआकाशके

ग्रहण नहीं। 'एकप्रदेशादिषु' यहांपर भी जो बहुव्रीहि समास माना है वह तद्गुणसंविज्ञानबहुव्रीहि है इसलिये यहांपर एकप्रदेशसहित अन्य प्रदेशोंमें पुद्गलद्रव्यका अवगाहन माना है। यदि यहांपर अतद्गुणसंविज्ञान बहुव्रीहि यह समास माना जाता तो एकप्रदेशका ग्रहण नहीं होता फिर एकप्रदेशमें भी किन्हीं किन्हीं पुद्गलोंका अवगाह है यह अर्थ नहीं होसकता।

ननु युक्तं तावदमूर्त्तयोर्धर्माधर्मयोरेकत्राविरोधनावरोध इति।मूर्त्तिमतां पुद्गलानां कथमित्यत्रोच्यते— अवगाहनस्वभावत्वात्सूक्ष्मपरिणामाच्च मूर्तिमतामप्यवगाहो न विरुध्यते ।एकापवरके अनेकदीप-प्रकाशावस्थानवत् ॥ आगमप्रामाण्याच्च तथाऽध्यवसेयम् ॥तदुक्तम्—ओगाढगाढणि चिओ

प्रदेशोंसे अधिक प्रदेशोंमें अवगाहनीय नहीं हो सकती हैं। अधिकसे अधिक उतनेही आकाशके प्रदेशोंमें उनका अवगाह वा स्थिति हो सकती है जितनी उनकी खुलेरूपमें संख्या है। जैसे पचास खुलीहुई परमाणु है तो ये परमाणु पचास ही आकाशके प्रदेशोंको अवगाहवेंगी नकि अधिक प्रदेशोंको

ननु*युक्तम् [१]।।तावत्*अमूर्त्तयोः[२]धर्म-अधर्मयोः[३] =प्रश्न इतना (=तावत्) ठीक (=युक्त) है कि अमूर्तीक धर्मद्रव्यका और अधर्मद्रव्यका

एकत्र*अविरोधेन[३]अवरोधः[१]इति*मूर्तिमताम्[३] =एकक्षेत्रमें विरोधकरि रहित अवगाह वा अवस्थान(=अवरोध) है। रूपी अथवा मूर्तीक

पुद्गलानाम्[३]कथम्*इति*अत्र*उच्यतेT =पुद्गलोंके कैसे इस प्रकार (परस्पर अविरोधरूप एकक्षेत्रमें अवगाह) यहां कहागया है

अवगाहन-स्वभावत्वात्[५]।।च*सूक्ष्मपरिणामात्[५] =(उत्तर) अवगाहनके स्वभावपणासे तथा(=च)सूक्ष्म परिणमनसे

मूर्तिमताम्[३]अपि*अवगाहः[१]न*विरुध्यतेT = रूपी(पुद्गल)निकेंभी अवगाह नहीं विरोधाजाताहै अर्थात् मूर्तीकपदार्थोंकी अवगाहन स्वभाव वा शक्तिकरि(=अवकाशदान अथवा स्थानदान देनेकी शक्तिसे)और सूक्ष्म रूप विकारकोप्राप्त होनेसे एक क्षेत्रविषैं अवस्थान वा स्थिति अविरोधरूप है ॥ भावार्थ द्रव्योंके स्वभाव प्रति नियत है और वे भिन्नभिन्न हैं इसलिये उनके स्वभावके विषयमें यह आक्षेपही नही होसकता कि ऐसा होना चाहिये वा ऐसा न होना चाहिये जैसे अग्नि आदि पदार्थोंका स्वभाव जलानेआदिकाहै वहां पर यह आक्षेप नही किया जा सकता है कि इनका स्वभाव जलाने आदिका क्यों है जलने आदिका क्यों नही तथा तृण काष्ठादि पदार्थोंका स्वभाव जलनेआदिका क्यों हैं जलानेआदिका क्यों नहीं? क्योंकि जैसा जिसका स्वभाव होगा उसका वैसा ही स्वभाव रहगा वह पलट नहीं जासकता वैसेही यद्यपि पुद्गलमूर्तिमान पदार्थ में तथापि अपनेसमानजातीय पदार्थोंको अवगाहन दान देना उनका स्वभाव है अतः एक आकाशके प्रदेशमेंभी अनन्त रह सकते है ॥

एकअपवरके[७]।।अनेकदीपप्रकाश-अवस्थान-वत्* = एक घरविषैं (=अपवरके) अनेक दीपकोंके उजालोंकी स्थितिके = समान(मूर्तीक द्रव्योंके भी एकक्षेत्रविषैं परस्पर अवगाह अविरोधरूपसे होता है)

च*आगम प्रामाण्यात्[५]।। तथा अध्यवसेयम्[१]।।तदुक्तं[१]।। = बहुरि(=च)आगमके प्रमाणपनेसे उसी प्रकार जानना चाहिये। कहाभीहै कि

ओगाढ-गाढ-णिचिओ[१] (अवगाढ-गाढ-निचयः[१]) =गाढागाढ भरा हुआ है ॥ ('णिचिदो' भी पाठ है) ॥

पुग्गलकाएहि सव्वदो लोगो । सुहुमेहि बादरेहि अणंताणंतेहि विविहेहिं ॥ १ ॥

अथ जीवानां कथमवगाहनमित्यत्रोच्यते—

असंख्येयभागादिषु जीवानाम् ॥ १५ ॥

लोकाकाशे इत्यनुवर्तते। तस्यासंख्येयभागीकृतस्यैको भागोऽसंख्येयभाग इत्युच्यते।स आदिर्येषां ते

पुग्गलकाएहि सव्वदो लोगो (पुद्गलकायैः सर्वतः लोकः) =चारोंओर यह लोक पुद्गलकायोंसे

सुहुमेहि बादरेहि (सूक्ष्मैः बादरैः) = जो (पुद्गलकाय) सूक्ष्मबादर (बादरेहि बादरेहि प्राकृतमें तृतीयाके दोनोंरूप हैं

अणंताणंतेहि विविहेहि (अनन्तानन्तैः विविधैः) = अनन्तान्त नानाप्रकारसेहै अर्थात् सबओर यहलोक सूक्ष्म और बादरअनंतानंत नाना प्रकार पुद्गलकायोंकरि गाढागाढ ठसाठस, वा खचाखच भराहुआहै

अथ*जीवानाम् कथम् *अवगाहनम् इति*अत्र*उच्यते=आगें जीवोंका कैसे अवस्थान वा अवगाह है ऐसे यहां(अग्रिमसूत्रमें)कहाजाताहैकि

सूत्रम्—(१)असंख्येयभागादिषु जीवानाम् ॥ १५ ॥

=(लोकाकाशे) असंख्येयभागादिषु जीवानाम् (अवगाहः) भवति ॥ १५ ॥

सूत्रार्थः—लोकाकाशे असंख्येयभागादिषु =लोकाकाशके असंख्येयभागादिकोंमें

जीवानाम् अवगाहः भवति ॥ १५ ॥ =जीवोंका अवस्थान है। अर्थात् लोकाकाशके असंख्यातवांभाग और असंख्यातवेंभागोंको आदिलेकर लोकपर्यन्त जीवों की स्थिति है । भावार्थ यह है कि लोकाकाशके एक असंख्यातवां भागमें एक जीव तिष्ठता है,दो असंख्यातवें भागोंमें भी एक जीवका अवस्थान है,तीन असंख्यातवें भागोंमें भी एक जीवका अवस्थान है चार असंख्यातवें भागोंमें भी एक जीवकी स्थिति वा अवगाह है औरऐसेही एक जीव का अवगाह पांच आदि संख्यातभागोंमे और असंख्यात भागोंमें समस्त लोकपर्यन्त है ; जब केवली समुद्घात करते हैं तब लोकपूर्ण समुद्घातमें सबलोक एक जीवका अवगाह होता है । नाना जीवका अवगाह तो सर्वलोकमें है ही । कोई प्रदेश लोकाकाशकाजीवविना नहीहै। दोनोंआम्नायोंमें इससूत्रकापाठ और अर्थ एकसाहै।

वृत्त्यनुवादः—लोकाकाशे इति * अनुवर्तते। तस्य =(इस सूत्रमें) लोकाकाशमें ऐसी अनुवृत्ति (बारहमें सूत्रसे) है । तिस(लोकाकाश)के असंख्येयभागीकृतस्य एकः भागः असंख्येयभागः=असंख्यातभाग करके एक भाग है सो असंख्यातवांभाग है ।

इति*उच्यते। सः आदिः येषाम् ते =ऐसा कहाजाता है ।सो(असंख्यातवां भाग आदिमें वा प्रथममेंजिनकेहै ते

ऽसंख्येयभागादयः। तेषु जीवानामवगाहो वेदितव्यः॥ तद्यथा-एकस्मिन्नसंख्येयभागे एको जीवोऽवतिष्ठते। एवंद्वित्रिचतुरादिष्वपि असंख्येयभागेषु आ सर्वलोकादवगाहः प्रत्येतव्यः॥ नानाजीवानां तु सर्वलोक एव॥ यद्येकस्मिन्नसंख्येयभागे एको जीवोऽवतिष्ठते, कथं द्रव्यप्रमाणेनानन्तानन्तो जीवराशिः सशरीरोऽवतिष्ठते ?। लोकाकाशे सूक्ष्मबादरभेदादवस्थानं प्रत्येतव्यम्। बादरास्तावत्सप्रतिघातशरीराः। सूक्ष्मास्तु सशरीरा अपि सूक्ष्मभावादेवैकनिगोदजीवावगाह्येऽपि प्रदेशे साधारणशरीराः

असंख्येय-भाग-आदयः	=असंख्येयभागआदयः (तद्गुणसंविज्ञानरूप बहुव्रीहिसमासरूपमें) हैं अर्थात् असंख्यातवां भाग सेलेकर लोकपर्यन्त समस्त भाग हैं वे असंख्येयभागआदि हैं॥
तेषु। जीवानाम्। अवगाहः।	=तिन(असंख्येय भाग आदि लोक पर्यन्त) में जीवोंका अवस्थान
वेदितव्यः। तद्यथा* एकस्मिन्। असंख्येयभागे। एकः।	=जानना चाहिये। जैसे एक असंख्यातवें भागमें एक
जीवः। अवतिष्ठते। एवम्* द्वि-त्रि-चतुर्-आदिषु।	=जीव तिष्ठता है। इस प्रकार दो-तीन-चार आदिक
असंख्येयभागेषु। अपि * आ* सर्वलोकात्। अवगाहः।	=असंख्यात भागोंमें भी समस्त लोक पर्यंतन (एक जीव)का अवगाह
प्रत्येतव्यः। ॥	=प्रतीति करना चाहिये अथवा जानना चाहिये। (असंख्यात के असंख्यात भेद हैं) तिससे लोकाकाशके असंख्यातवां भागके भी प्रदेश असंख्यातही जानना।
नानाजीवानाम्। तु* सर्वलोके। एव * यदि* एकस्मिन्।	=नानाजीवों का तो(अवगाह) सर्वलोकमें ही है (प्रश्न) जो एक
असंख्येयभागे। एकः। जीवः। अवतिष्ठते।	=असंख्यातवांभाग में एक जीव तिष्ठता है तो
कथम् * द्रव्यप्रमाणे-। अनन्तानन्त। जीवराशिः।	=कैसे द्रव्यमर्यादासे अनन्तानन्त जीवराशि है
सशरीरः। अवतिष्ठते। लोकाकाशे।॥ सूक्ष्मबादर-	=सो शरीर सहित (लोकमें) तिष्ठती है (उत्तर) लोकाकाशमें सूक्ष्मबादरके
भेदात्। अवस्थानम्।॥ प्रत्येतव्यम्।॥ बादराः। तावत्*	=भेदसे (जीवोंका अवस्थान वा अवगाह) जानना चाहिये। बादर(जीव)तो(=तावत्)
सप्रतिघात-सशरीराः।	=सप्रतिघात शरीर है अर्थात् बादर शरीर परस्पर एक दूसरेसे रुके है और रोकें भी है
तु* सूक्ष्माः। सशरीराः। अपि* सूक्ष्मभावात्। एव*	=परन्तु सूक्ष्मजीव शरीर सहित है तौ भी सूक्ष्मपना से ही (=एव)
एक-निगोदजीव-अवगाह्ये। अपि* प्रदेशे।	=एक निगोद जीवकरि अवगाहने योग्य क्षेत्रमें (नकि परमाणु से रोके हुये प्रदेशमें)
साधारणशरीराः।	=साधारण शरीर अर्थात् वे जीव जिनके आहार श्वासोच्छ्वास आयु और काय ये साधारण समान वा एक हों जैसेकंद मूलादिक

अनन्तानन्ता वसन्ति ॥ न ते परस्परेण बादरैश्च व्याहन्यन्त इति नास्त्यवगाहविरोधः ॥

अत्राह लोकाकाशतुल्यप्रदेशो एकजीव इत्युक्तं, तस्य कथं लोकस्यासंख्येयभागादिषु वृत्तिः । ननु सर्वलोकव्याप्त्यैव भवितव्यमित्यत्रोच्यते—

॥ प्रदेशसंहारविसर्पाभ्यां प्रदीपवत् ॥ १६ ॥

अनन्तानन्ताः[३] वसन्ति ; न * ते[३] परस्परेण[३]	=अनन्तानन्त रहते हैं । न वे (सूक्ष्म सशरीर जीव) परस्परकरि
च * बादरैः[३] व्याहन्यन्ते । इति * न * अस्ति अवगाह-	=तथा बादर(जीवों)से व्याघातेजाते है । ऐसे नहीं है अवगाहनामें
विरोधः[१]	=विरोध अर्थात्एकही स्थानमेंबहुत जीवोंका अवगाह,विना परस्पर रोकटोककेहोताहै
अत्र * आह लोकाकाश-तुल्यप्रदेशे[१] एकजीवे[१]	=यहां पूछता है कि लोकाकाशके बराबर प्रदेश एक जीवमें हैं
इति * उक्तम्[१] ॥ तस्य[६] कथम् * लोकस्य[६] असंख्येय-	=ऐसा कहाजाता है । तिस (जीव)का कैसे लोकके असंख्यातवां
भागादिषु[७] वृत्तिः[१] ॥ ; ननु * सर्वलोक-	=भागादिकोंमें स्थिति है (=वृत्ति) ॥ सचमुच (=ननु) (वह तो) सब लोक
व्याप्त्या[३] एव * भवितव्यम्[१] ॥ इति * अत्र * उच्यते	=व्याप्तिकरि ही होना चाहिये । ऐसे यहां (अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्-प्रदेशसंहारविसर्पाभ्यां प्रदीपवत् = प्रदेशसंहारविसर्पाभ्यां प्रदीपवत् (लोकाकाशे असंख्येयभागादिषु जीवानाम् अवगाहः भवति) ॥ १६

सूत्रार्थः-प्रदेश-संहारविसर्पाभ्याम्[३] प्रदीपवत् *	=प्रदेशोंके संकोच और विस्तार होनेसे दीपकके प्रकाशके सदृश
लोकाकाशे[७] ॥ असंख्येयभागादिषु[७] जीवानां[६] अवगाहः	=लोकाकाशके असंख्यातवां भागादिकमें जीवोंका अवगाह वा स्थिति है अर्थात्

(१) परस्पर—यह शब्द त्रिलिंगी है। (२) लोक—यह शब्द पुल्लिंग और नपुंसकलिंग है। (३) आकाश—यह शब्द पुल्लिंग और नपुंसकलिंगमें आता है। (४) श्वेताम्बर आम्नायके "सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र"में 'विसर्पाभ्यां' शब्दके स्थानमें 'विसर्गाभ्यां' पाठ है और विसर्ग शब्दका अर्थ विस्तार किया है (देखो पृष्ठ १०३) शेष पाठ दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायोंमें एकसा है अर्थ भी एक है ॥ हमारे यहां किसी किसी पुस्तकमें 'विसर्पाभ्या' वाक्यके स्थानमें 'विसर्पाभ्यां' पाठ है ॥ दोनोंही पाठ "अचोरहाभ्यां द्वे (वा)" ८-४-४६वां सूत्रसे शुद्ध हैं ॥ पन्द्रहवां सूत्र अनुवृत्तियों सहित न्यत्र का सब इस (सूत्र)में अध्याहार कियागया है ॥

अमूर्तस्वभावस्यात्मनोऽनादिबन्धंप्रत्येकत्वात् कथञ्चिन्मूर्ततां बिभ्रतः कार्मणशरीरवशान्महदणु च शरीरमधितिष्ठतस्तद्वशात्प्रदेशसंहरणविसर्पणस्वभावस्य तावत्प्रमाणतायां सत्यां असंख्येय-भागादिषु वृत्तिरुपपद्यते, प्रदीपवत् ॥ यथा निरावरणव्योमप्रदेशे

यद्यपि एकजीवके प्रदेश लोकाकाशके समान हैं सो वह जीव सर्व लोकाकाशमें व्याप्त होना चाहिये तथापि वे प्रदेश दीपकके प्रकाश के समान संकोच विस्ताररूप होजाते है और जैसा आधार(आश्रय-शरीर) जीव पाता हैं वैसाही उस (जीव)के प्रदेश संकोच विस्ताररूप होकर लोकाकाशके असंख्यात भागादिकमें उस जीव)का अवगाह होताहै। परन्तु केवलि समुद्घातकी अवस्थामें आत्माके मध्यके आठप्रदेश मेरु मंदिरके नीचे चित्रा पृथ्वीका वज्रमयी पटलके मध्यके आठप्रदेशोंमें निश्चल तिष्ठते हैं और केवलि भगवान्के अन्यप्रदेश ऊर्ध्व अधः तिर्यक्(दायें वायें-इधर-उधर)सर्वत्र सर्वलोकमें पूर्णतया व्याप्तहोजाते हैं॥

वृत्त्यनुवादः-अमूर्त-स्वभावस्य॥आत्मनः॥अनादिबन्धम्॥ प्रति*एकत्वात्॥कथञ्चित्*मूर्तताम्॥ = मूर्ति शून्य स्वभाववाले आत्माके(कर्मके) अनादिबंध =प्रति एकता रूप होनेसे वा एक क्षेत्ररूप अवगाह होनेसे कथञ्चित् मूर्तिपनाको

बिभ्रतः॥कार्मणशरीर वशात्॥महत्॥च*अणु॥ =धारण करनेवाले(=बिभ्रतः)कार्मण शरीरके वशसे बड़ा और छोटा

शरीरं॥अधितिष्ठतः॥तद्-वशात्॥ प्रदेश- =शरीरको ग्रहण करनेवाले और उस(महत् वा अणु शरीर)के वशसे प्रदेशोंके

संहरण-विसर्पण-स्वभावस्य॥ तावत्* =संकोचन और फैलाव स्वरूपवाले (ऐसी आत्माके)उतने(देहके)

प्रमाणतायाम्॥सत्याम्॥असंख्येयभागादिषु॥ =प्रमाण होते(=प्रमाणतायां)संते(=सत्यां)(लोकाकाशके)असंख्यातवां भागादिकमें

प्रदीपवत्*वृत्तिः॥उपपद्यते। =दीपकके प्रकाश सदृश अवगाह (=वृत्ति) होता है अर्थात् यद्यपि स्वभावसे आत्मा अमूर्तीक है तौभी कर्मके अनादि सम्बन्धसे एक क्षेत्ररूप अवगाह होने से कथंचित् मूर्तिमान होजाताहै और कार्माण शरीरके वशसे छोटा अथवा बड़ा शरीर पाता हैं उस प्राप्त कियेहुये शरीरके अनुसार प्रदेशोंको संकोच अथवा विस्ताररूपमें दीपकके प्रकाशवत् लोकाकाशके असंख्यातवां भागादिकमें उस जीवका अवगाह होता है ॥

यथा*निरावरण-व्योम-प्रदेशे॥ =जैसे खुले हुये आकाश क्षेत्रमें

अनवधृतप्रकाशपरिमाणस्य प्रदीपस्य शरावमानिकापवरकाद्यावरणवशात्तत्परिमाणतेति ॥ अत्राह धर्मादीनामन्योन्यप्रदेशानुप्रवेशात्सङ्करे सति, एकत्वं प्राप्नोतीति ॥ तन्न । परस्परमत्यन्तसँश्लेषे सत्यपि स्वभावं न जहति ॥ उक्तं च । अण्णोण्णं पविसंता दिंता ओगासमण्णमण्णस्स ॥

अनवधृत-प्रकाश-परिमाणस्य॰ प्रदीपस्य॰ शराव-मानिका-	=अमर्यादित प्रकाश परिमाणवाले दीपकका सकोरा(=शराव)माणिका वा पतीली
अपवरक-आदि-आवरण-वशात्॰ तत्-	=धरादिकमें (=अपवरक)आवरणके वशसे उन(शराव-मानिका-अपवरकादि)के
परिमाणता॰ इति *	=बरोबरि(=परिमाण)होता है अर्थात् दीपक जब खुले स्थानमें रक्खा जाता है तब उसका प्रकाश मर्यादारहित फैलता है और वही दीपक किसी भाजन वा घर आदिकमें धराजाता है तब उसका प्रकाशभी उस भाजनादिकके बराबरही परिमित वा सीमामें होजाता है
अत्र * आह। धर्मादीनाम्॰ अन्योन्य-प्रदेश-	=यहां पूछता है कि धर्मादि द्रव्योंके परस्पर प्रदेशोंके
अनुप्रवेशात्॰ संकरे॰ सति॰, एकत्वम्॰ प्राप्नोति। इति *	=मिलरहनेसे एकमेक (=संकरे) होजानेपर (दोनोंकी)एकता प्राप्त होती है
तत्॰ न *। परस्परम्॰ अत्यन्तसंश्लेषे॰ सति॰	=(उत्तर)वह(एकता)नहीं(होती) है । परस्पर अत्यन्त मिलाव होनेपर
अपि * स्वभावम्॰ न *। (१)जहति। उक्तम्॰ च *	=भी (द्रव्यें अपने अपने)स्वभावको नहीं छोड़ती हैं । कहागया भी है कि
अण्णोण्णं॰ पविसंता॰(अन्योन्यम्॰ प्रविशन्तः॰)	=(ये छह द्रव्य) परस्पर प्रवेश करते हुये
(२ दिंता॰ ओगासं॰ अण्णमण्णस्स॰ ददन्ति॰(वा ददति॰)अवकाशम्॰ अन्यमन्यस्य॰	=आपसका (=आपसमें)अवकाश देते हैं

(१) हा—तीसरे जुहोत्यादिगणका धातु है जिसका अर्थ परस्मैपदमें त्यागना वा छोडना है और आत्मनेपदमें जानेके अर्थमें आता है। यहांपर छोडनेके अर्थ परस्मैपदमें लाये हैं। तीसरे गणका धातु जिसमें एक स्वर हो तो उसको दुहरादेते हैं अर्थात् यदि स्वर आदिमें हो तो स्वरको दुहरादेते हैं जैसे इख् धातुसे इइख् होगया यदि आदिमें व्यजन हो (जैसाकि यहां है) तो आदिके व्यजनको उसके पश्चात्के स्वरके साथ दुहराते हैं जैसे हा धातुको 'हाहा' रूप होगया, दुहरे रूप कियेहुये स्वरको लघु करदेते हैं(देखो अष्टाध्यायी ७ ४-५६)और 'ह'को 'ज'से पलटदेते हैं (देखोअष्टाध्यायी ७ ४ ६२सूत्र। तब 'जहा' ऐसा रूप हुआ ॥ इस 'जहा' के दीर्घ 'आ' को वर्तमानकाल (लट्)के अनद्यतन भूतकाल (=लङ्)के, लोट कालके और विधिलिङ् कालके उन ङित् संज्ञक प्रत्ययोंके साथ गिरा देते हैं जिनके आदिमें स्वर होता है 'जहा' से 'जह्' रूप बना और अति (बहुवचनका प्रत्यय जोडकर 'जहति' रूप बना जिसका अर्थ 'छोडते हैं' त्यागते हैं' हुआ। और पित् संज्ञक प्रत्यय जैसे मि-सि-ति इत्यादिके साथ 'जहा' रूप रहता है जैसे जहामि-मैं छोडता हूं जहासि तू छोडता है जहाति=वह छोडता है ॥ (२) 'ददत्' नपुंसकलिंग, प्रथमा और द्वितीया विभक्ति बहुवचनके 'ददन्ति' और ददति दो रूप हैं और पुल्लिंगमें दोनों विभक्तियोंका 'ददतः' है यहां प्रथमा विभक्ति नपुंसकलिंगमें मेरी समझमें प्रयोग किया गया है ॥

मेलंता विय णिच्चं सग सम्भावं ण जहंति ॥ १ ॥ यद्येवं धर्मादीनां स्वभावभेद उच्यतामित्यत आह—

गतिस्थित्युपग्रहौ धर्माधर्मयोरुपकारः ॥ १७ ॥

मेलंता॥ वि * य * णिच्चं *(मिलन्तः॥ अपि * च * नित्यम् *)	=और(=य)नित्य(=णिच्चं=सदा)मिलते हुये होनेपर भी(=वि=अपि)
सग * सम्भावं॥ ण * जहंति(स्व * स्वभावं॥ न * जहति।)॥१॥	=अपने (अपने) स्वभावको नहीं छोड़ते हैं(=जहति–देखो टिप्पणी(१) पृष्ठ ४६)
यदि * एवम् *	=जो ऐसे हैं अर्थात् यदि ये छहों द्रव्यें अपने अपने स्वभावको नहीं छोड़ते हैं तो
धर्मादीनाम्॥ स्वभावभेदः॥ उच्यताम्। इति * अतः * आह।	=धर्मादिक (द्रव्यों)के स्वभावका भेद कहाजाना चाहिये इसलिये(उत्तर सूत्रमें)कहते हैं कि

[1]सूत्रम्—गतिस्थित्युपग्रहौ धर्माधर्मयोरुपकारः ॥ १७ ॥

= ([2]जीवानाम् पुद्गलानाम् च)[3]गतिस्थित्युपग्रहौ धर्माधर्मयोरुपकारः भवति ॥ १७ ॥

सूत्रार्थः—जीवानाम्॥ पुद्गलानाम्॥ च * गति-स्थिति-उपग्रहौ॥	=जीवोंके और पुद्गलोंके गमन और स्थितिका कारण अथवा कार्य(=उपग्रह) (बाह्य)प्रेरक बलाधीन वा उदासीनरूपसे परन्तु अविनाभावी अर्थात् जिस विना गमन और स्थिति न होसके ऐसा
धर्म-अधर्मयोः॥ उपकारः॥ भवति।	=(क्रमसे)धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्यकी सहायता सहकारता वा उपकार होता है अर्थात् गमनमें परिणमन होनेवाले जीव और पुद्गलोंको

(१) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें "उपग्रहो" के स्थानमें "उपग्रहो" ऐसा पाठ है और 'उपग्रहो' तीन स्थानमें आनेसे प्रगट है कि उनके यहांका पाठ यही है छापेकी अशुद्धि नहीं है अर्थ और शेषपाठ दोनोंसम्प्रदायोंमें एक है "धर्म्माधर्म्मयोः" भी "अचोरहाभ्यां द्वेवा" सूत्रसे शुद्ध है॥

(२) 'जीवानाम्' शब्दकी अनुवृत्ति पन्द्रहवां सूत्रसे और पुद्गलानां शब्द की चौदहवां सूत्रसे (अनुवृत्ति) लीगई है ॥

(३) उपग्रह और उपकार दोनों शब्द कर्मसाधन, कर्मप्रधान अथवा कर्मणि प्रयोग में हैं (देखो तत्त्वार्थराजवार्तिकमें, वार्तिक १०, ११, १२, १३, पं० जयचन्दजी की वचनिका पृष्ठ५२८)। कर्मसाधन वह है जिसकी क्रियाका कर्ता जान नहीं पड़ता हो, तात्पर्य यह है कि अपनी अवस्थामें विद्यमान नहीं है और जो होभी तो करणकी अवस्थामें हो और जिसमें कर्मके जानलियेजानेकी आवश्यकता प्रधानहो और यही कर्मकर्ताकाप्रतिनिधि गिनाजावे जैसे फल खाया जाता है यहा कर्ता अपनी स्थितिमें विद्यमान नहीं है और जैसे लड़केसे रोटी खाईजाती है, रोटी कर्मकर्ताके स्थानमें है और लड़का कर्ता की अवस्थामें न होकर करणकी अवस्थामें है, इसीप्रकार गमन (करने)का उपकार कियाजाता है धर्मद्रव्यसे और स्थितिका उपकार किया जाता है अधर्मद्रव्यसे ॥ अपकारका अर्थ उपकारसे विरुद्ध है अपकार शब्दमें 'अप' उपसर्गका अर्थ बुराईका है और उपकार तथा उपग्रह शब्दोंमें 'उप' उपसर्गका

उसी प्रकारसे धर्मद्रव्य वाह्य और अप्रेरकनिमित्त है जैसे जलवाह्यरूप और उदासीनतासे मछलीके गमनकरनेमें सहकारी वा सहायक है और स्थितिमें परिवर्तन होनेवाले जीव और पुद्गलोंको अधर्मद्रव्य उसी प्रकार वाह्य और वलाधान(अविनाभावी) कारण है जैसे छाया पथिक जनोंके ठहरानेमें सहायक वा सहकारी है,न तो जल मछलीको प्रेरणा करता है कि वह गमन करै और न छाया पथिक जनको स्वयम् ठहरनेकी प्रेरणा करती है यदि वे गमनस्थिति करैं तो उनको उदासीनतासे सहायता प्रदान करती है,परन्तु स्मरण रहै कि उक्त वाह्य और अप्रेरक कारण गमन और स्थितिके लिये अविनाभावी है कि जिसके विना गमन और स्थिति नहीं होसकते है ॥

अर्थ भलाई वा सहायताका है जैसे उपकुर्वन्ति=उपकार अथवा सहायता करते हैं (देखो सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ १२७) इसलिये उपकार शब्दका अर्थ यहां भलाई सहायता कीजाय ऐसा है। इस अर्थका समर्थन सर्वार्थसिद्धिवृत्ति पृष्ठ २७७के 'उपक्रियत इत्युपकारः'=उपक्रियते इति उपकार.=उपकार किया जाता है वा सहायता कीजाती है, इस वाक्यसे होता है ॥ उपग्रह शब्दका अर्थ भलाई अथवा सहायता ग्रही(ग्रहण की)जाती है ऐसा है जैसे "उपगृह्यत इत्युपग्रह"=उपगृह्यते इति उपग्रह अर्थात् भलाई वा सहायता ग्रहण कीजाती है (देखो सर्वार्थसिद्धिवृत्ति पृष्ठ २७७) ॥ दोनों उपग्रह और उपकार शब्दोंके ये व्युत्पत्त्यर्थ हैं, अर्थात् ये अर्थ व्याकरणकी रीतिसे निकलते हैं ॥

उपकार =फैलाये हुये पुष्पादि()नौकरी, सेवा()साजसंभाल()अलकार, भूषण, (देखो पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ ७६ और वैद्य संस्कृत आङ्गलकोष पृष्ठ १३५)

उपग्रह =राहु, धूम, केतु आदि ग्रह()कारावन्धन()कारावन्धनमेंडालना()बंधुआ-कारागारस्थ()जोडना-लगाना-सयोग(उक्तकोषोंकपृ०७६,१३६में क्रमसे है)इत्यादि और भी अर्थोंमें आते हैं उन समस्तको छोड़कर अब शास्त्रानुकूल तीन वात सिद्ध करनी हैं(क)यह कि उपकार तो सामान्यवचन है अर उपग्रह विशेष वचन है"अर्थात् उपग्रहोंका समुदाय उपकार है जैसे कोई व्यक्ति किसीको पढ़ावै, पोषण करै,उसका विवाह करै-उसे व्यापारके लिये धन दे तो अवसर आने पर कहसकता है कि मैंने तुम्हारे साथ पाठन उपग्रह, पोषणकरणउपगृह, विवाहकरणउपगृह, धान्यउपगृह, धनउपगृह, इतना उपकार किया तिसपर भी तुम मेरे प्रति कृतघ्नता प्रगट करते हो। उपगृहका अर्थ अनुगृहभी है। (ख)यह कि उपगृह और उपकार शब्द()सहायता सहारा()अनुगृह-अनुकूलता भलाई()कारण निमित हेतु प्रत्यय अर्थों में लाये जाते हैं ॥ (ग) यह कि जब एकही बातके सम्बन्धमें उपगृह किया जाय तब और अन्य अवसरोंपर भी उपकार और उपगृह शब्द अभेदरूपसे एक दूसरेके अर्थमें जहां जैसी आवश्यकता हो काममें लायेजाते हैं ॥

(क) (१) जो इस प्रकार है अर्थात् गतिका उपगृह है और स्थितिका भी उपगृह है तो दो(वचन)का निरूपण वा कथन उपकार शब्दकें प्राप्त होता है अर्थात् इस सूत्रमें उपकार शब्द दो वचनमें लाना योग्य था तब सूत्रका अन्तिम भाग ऐसा होता "धर्माधर्मयोरुपकारौ" (उत्तर) यह दूषण नहीं है क्योंकि सामान्यकरि कहा हुआ गृहीत सख्यावाला (उपकार शब्द)अन्य शब्द (उपगृहों)के साथ सवन्ध होनेपर भी प्रथम गृहण कीहुई सख्याको नहीं छोडता है (देखो संस्कृतसर्वार्थसिद्धिवृत्ति पृ० २७७) ॥(२) "न चैवमुपकारशब्दस्य द्विवचनप्रसंगः सामान्योपक्रमादेकवचनोपपत्ते =च एवम् उपकार-शब्दस्य द्विवचनप्रसंगः नसामान्यउपक्रमात् एक वचन उपपत्तेः 'और इस प्रकार उपकार शब्दभी दो वचनमें स्थिति होवे (स्थित होना चाहिये) ॥ (उत्तर)नहीं(होना चाहिये) क्योंकि सामान्यमें आरम्भ करनेसे वा सामान्य वशसे एक वचन की प्राप्ति है ॥(३)"तत्किमिदानीमुपगृहवचन? न कर्तव्यं। कर्तव्यमेवोपकारशब्देन कार्यसामान्यस्याभिधानात् गतिस्थित्युपगृहाविति कार्यविशेषकथनात्। श्लोकवार्तिकपृ०४१०=तो अब(=इदानीं)उपगृहवचन (सूत्रमें) क्यों है, नहीं लाना चाहिये (उत्तर) (उपगृह शब्द सूत्रमें)लानाही चाहिये क्योंकि उपकार शब्दकरि सामान्य कार्यनिरूपण कियागया है(और) गति उपगृह,स्थिति उपग्रहसे, विशेष कार्यका कथन होता है अर्थात् उपकार सामान्यवचन है और उपगृह विशेष वचन है ॥(४) (श्लोक) "सुखाद्युपगृहाश्चोप-कारो जीवविपाकिनाम्'=सुखादि उपगृहाः च उपकारः जीवविपाकिनाम् ॥ श्लोकवार्तिक पृ० ४१२ और सुखदु.ख,जीवित, मरण उपगृह हैं

सो जीव विपाकी प्रकृतियोंका उपकार है" अर्थात् सुख उपगूह, दुःख उपगूह, जीवित उपगूह, मरण उपगूह यहां उपगूह विशेष वचन है) पुद्गलोंका जीवोंको उपकार है (यहां उपकार सामान्य वचन है)॥ (५) कालस्यापग्रहा. प्रोक्ता येपुनर्वर्तनादय । स्यात्त एवोपकारो तस् तस्यानुमितिरिष्यते ॥

=पुनि ये वर्तनादय कालस्य उपग्रहाः प्रोक्ता स्यात् ते एव उपकार अतः तस्य अनुमिति इष्यते (२८वां श्लोकतत्त्वार्थश्लाकवार्तिक पृष्ठ४१४)

=पुनि जे वर्तना-परिणाम क्रिया-परत्व-अपरत्व कालद्रव्यकेउपग्रह कहेगयेहैं । वेही उपकारहैं इसलियेउस(कालद्रव्य)के अस्तित्व)कानिर्णय होजाताहै

(ख)(१) सहायता-सहाराके अर्थमें -जैसे आकाशस्य उपकारःअवगाह =आकाशद्रव्यकी सहायता वा सहारा स्थानदान देनाहै सर्वार्थसिद्धिवृत्तिपृ०२०६

भृत्यानाम् उपकारे वर्तते =सेवकोंकी(धनादिसे स्वामी)सहायता(करने)में वा सहारा देनेमें प्रवर्तताहै पृ०२८६

बाह्य उपग्रहात् विना =बाहिरकी सहायता अथवा सहारा विना ॥ सर्वार्थसिद्धिवृत्ति पृष्ठ २८७

स्व उपग्रह-प्रदर्शनअर्थम् इदम्-पुद्गलानाम् पुद्गलकृत उपकार इति=अपने लिये सहायता दिखावनेकेलियेकि पुद्गलोंकापुद्गलकृत उपकारहैउपगृहलायेहैं

परस्परस्य-उपग्रह. =आपसकी सहायता वा आपसमें एकदूसरेका सहारा [(२१वां सूत्रमें)कहतेहैं

(२) अनुग्रह-अनुकूलता भलाईकेअर्थमें.-जैसे जीवकृत-उपकारप्रदर्शनअर्थम्आह=जीवकाकियाहुआ(परस्पर)अनुगूह भलाईवाअनुकूलता दिखानेकेलिये

किम् एतावान् एव पुद्गलकृत उपकारः=क्या इतनाही पुद्गलका कियाहुआ अनुगूह है(सर्वार्थ० पृ० २८४)

परस्परस्य-उपग्रह =आपसकीभलाई वा अनुग्रह (सर्वार्थ० पृ० २८६)

उपग्रहः =अनुग्रहहै(देखो तत्त्वार्थराजवार्तिकपृ०२१०,वार्तिक३,श्लो०वा०पृ०४१०)

(३) कारण निमित्त हेतु प्रत्ययके अर्थमें-जैसे जीवानां सुख दु ख जीवित-मरण-उपगृहाःच पुद्गलानां उपकार. (सूत्र २०)

=जीवोंके (ऊपर)सुखका कारण दुखका निमित्त जीवनका हेतु-मरणका प्रत्ययभी पुद्गलकृत सहायता है (संस्कृतसर्वार्थसिद्धिवृत्ति पृ० २८४)

(ग) उपगूह और उपकार एकही अर्थमें जैसे शिष्याणाम् अनुगूहे वर्तते=शिष्योंके उपकारमें(=अनुग्रहे, आचार्य) प्रवर्तता है(सर्वार्थ सिद्धि पृ०२८६)

आचार्याणाम् उपकारे वर्तते=(शिष्य)आचार्योंके उपकारमें प्रवर्तते हैं (सर्वार्थ सिद्धि पृ० २८६)

() "उपगूह कहिये उपकार वर्ते हैं" जय०वच०पृ०४३६ ()"शरीर,वाक्,मन,तथा प्राण,अपान ये पुद्गलोंकाजीवोंके ऊपर उपगूह है

"()विष शस्त्रं अग्नि आदानि मरणस्य अपवर्तन चायुष्कस्य" उपकार =तथा विष,शस्त्र,और अग्निआदि मरणके अर्थात्आयुके अपवर्तन होनेके उपगूह है'यहां उपकार शब्दका अनुवाद उपग्रह किया है। देखो सभाष्य०पृ०१२६)

()उपगूहो निमित्त अपेक्षा कारण-हेतुरित्यनर्थान्तरम्'' =उपगूह निमित्ति,अपेक्षा,कारण,ये सब समानार्थकहैं (देखो सभाष्य० पृ०१२५)

और उपकारका अर्थ भी निमित्त, कारण, वचनिका और अर्थ प्रकाशिकामें लिखा है—"कि छूकार्यकू निमित्त होय ताकू उपकार कहिये है" वचनिका पृष्ठ ४३४ (अर्थप्रकाशिका पृष्ठ ३०६ सूत्र १६)

()हमारे पास एक कोष बहुत प्राचीन और जीर्ण है जिसके ऊपरकेपृष्ठ और अन्य सरनामा भी नहीं है जिसके पृष्ठ२६में पद्रहवा शब्द उपकारका अर्थ कृपा,सहायता लिखा है और इक्कीसवें शब्द उपगूहका अर्थ दया सहायता (वधुआ भी लिखा है जिसको छोडदेते है) लिखा है।

() तेन शरीरादि परिणामैरात्मना पुद्गला उपग्रहीतार इत्युक्त भवति=तेन शरीरादि परिणामैः आत्मना पुद्गला उपगृहीतार इति उक्त भवति (अर्थ)ताकारणकरि शरीरादि परिणामकरि आत्माका उपकार करने वारे पुद्गल हैं ऐसें कहनों होयहै" उपगृहीतृ शब्द है जिसको प्रथमा विभक्ति बहुवचन उपगृहीतारः बनता है जिसका अर्थ उपगूह करनेवाले होता है प०पन्नालालजी दुनीवालोंने इस तत्त्वार्थ राजवार्तिककी इकतालीसवावार्तिकमें आयेहुए इस शब्दका अनुवाद "उपकार करनेवाले" ऐसा किया है अर्थात् उपगृहीतृ=उपकर्तृ

देशान्तरप्राप्तिहेतुर्गतिः । तद्विपरीता स्थितिः । उपगृह्यत इत्युपग्रहः । गतिश्च स्थितिश्च गति-स्थिती । गतिस्थिती एव उपग्रहौ गतिस्थित्युपग्रहौ ॥ (१)धर्माधर्मयोरिति कर्तृनिर्देशः ॥

वृत्त्यनुवादः—देशान्तर-प्राप्ति-हेतुः गतिः॥	=(द्रव्यका एक क्षेत्रसे)दूसरे स्थानमें प्राप्तिका कारण है सो गति अथवा गमन है
तद्-विपरीता॥ स्थिति॥	=उस(गति)से उलटा (अर्थात् गमन क्रियासे रुकना वा थंबना)सो स्थिति है
उपगृह्यते इति*उपग्रह ; गति॥च* स्थितिः॥च*	=सहायता ग्रहण कीजाती है ऐसा उपग्रह है और(=च)गति तथा(=च)स्थिति है
गति-स्थिती॥ ; गति-स्थिती एव*उपग्रहौ॥	=सो गतिस्थिती(इस द्वंद्वसमासरूपमें)है। गति ही उपग्रह और ठहराव ही उपग्रह
गतिस्थिति-उपग्रहौ ॥	=वे गति-स्थिति-उपग्रहौ(इस द्वंद्वसमासरूपमें)है अर्थात् गति और स्थितिही उपग्रह हैं।
(१)धर्म-अधर्मयो इति*कर्तृ-निर्देश	=(इस सूत्रमें)धर्म-अधर्मयोः ऐसा (वाक्य)कर्ताके अर्थ है अर्थात् धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य उपकारके करनेवाले है भावार्थ इन धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्यके ऊपर उपकार नही है वरन् जीव पुद्गलोंका गमनका उपकार करनेवाली अप्रेरकरूपसे धर्मद्रव्य है और जीव पुद्गलोंको स्थितिमें उदासीनरूपसे उपकार करनेवाली अधर्मद्रव्य है।

() यस्य अर्थस्य लिंग उक्ताः वर्तनादयः उपकारा. सः कालः इति अनुमीयते(राजवार्तिक २२७) =जिस द्रव्यका (अर्थस्य) लक्षण (=लिंग) कहेहुये वर्तना, परिणाम, क्रिया, परत्व, अपरत्व =उपकार है सो काल है ऐसा अनुमान कियाजाता है ॥ यहांपर सूत्रमें 'कालस्य' शब्दके पश्चात् 'उपकार.' अनुवर्तता है और उस कालका जीव पुद्गलोंके साथ वर्त्तना उपग्रह, परिणाम उपग्रह, क्रिया उपग्रह, परत्वउपग्रह, अपरत्व उपग्रह इतना उपकार है वार्तिककार इन पांचों उपग्रहोंके लिये "उपकारा."ऐसा शब्द बहुवचनमें लाये हैं ॥

() जीवपुद्गलानां गतिउपग्रहे कर्तव्ये साधारण- आश्रय धर्मास्तिकाय =“गमन करते जे जीव पुद्गलद्रव्य तिनके गमनका उपकार विषे साधारण =आश्रय धर्मद्रव्य है” जय० वच० ४२६ 'उपग्रहे'का अनुवाद 'उपकार विषैं' ऐसा किया है

(१) इस सूत्रमें 'धर्माधर्मयो.' वाक्यसे धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्यको कर्ता माना है। (प्रश्न) धर्म अधर्मको कर्ता माननेमें यहां प्रथमा विभक्ति होना चाहिये (उत्तर) कर्ता कारकमें षष्ठी विभक्तिका भी विधान मानागया है अत:'धर्माधर्मयो.' षष्ठी विभक्ति द्विवचन पक्षके रहते भी धर्म अधर्मका कर्ता होना निर्बाध है (प्रश्न) किसी न किसी क्रियाके सम्बन्धसे कर्ताका व्यवहार होता है, धर्म अधर्मके साथ कौनसी क्रिया है जो इन (धर्म अधर्म)को कर्ता मान लिया जावै ॥ (उत्तर) सूत्रमें उपकार शब्दका ग्रहण है इसलिये 'उपकरोति'अर्थात् उपकार स्वरूप क्रियाके सबन्धसे धर्म और अधर्मको कर्ता माना गया है ॥ सूत्रमें'उपकार'शब्द भाव साधन है 'उपकरण' उपकारः यह भावसाधन उपकार शब्दका विग्रह(=समासके अर्थको प्रगट रनेवाला वाक्य) अथवा व्युत्पत्ति(=व्याकरणकी रीतिसे शब्दकीसिद्धि) है (प्रश्न)यदि'उपकरण उपकार.'ऐसे उपकारशब्दको भावसाधन माना जायगा तो गति और स्थिति स्वरूप उपग्रह धर्म और अधर्म द्रव्योंका उपकार है। इस रूपसे जो 'गतिस्थित्युपग्रहौ' इसके साथ उपकार शब्दका सामानाधिकरण्य है वह न बन सकेगा क्योंकि क्रिया ता कर्ता में रहती है इसलिये यहां उपकाररूप क्रिया ता धर्म और अधर्मरूप कर्ताओंमें रहैगी तथा उपगृह्यमाण अर्थात्

धर्म और अधर्मके द्वारा जिनका उपकार कियाजाता है ऐसी गति और स्थिति जीव और पुद्गलोंमें रहैगी अर्थात् उपकारशब्दको भावसाधन माननेपर उसका आधार तो धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य पडेगा और कर्म साधन उपगृहका आधार जीव और पुद्गल पडेंगे इसलिये उपकार और उपग्रह दोनोंकी भिन्न भिन्न पदार्थोंमें वृत्तिरहनेसे उन दोनोंका सामानाधिकरण्य नहीं होसकता, इसलिये उपकार शब्दकी भावसाधन व्युत्पत्ति तो बन नहीं सकती। यदि कहा जायगा कि 'उपक्रियते इत्युपकार' इस प्रकार उपकार शब्द कर्म साधन है इसलिये उपर्युक्त दोष नहीं होसकता? सो भी ठीक नहीं क्योंकि उपकार शब्द और उपगृह शब्द दोनोंकी कर्म साधन व्युत्पत्तिके मानने पर दोनोंका सामानाधिकरण्य अर्थात् एक अधिकरण तो हो सकता है परन्तु यह नियम है कि जिनका सामानाधिकरण्य सम्बन्ध रहता है उनके एकवचन द्विवचन आदि वचन भी सामान रहते हैं। यदि उपगृह उपकार दोनोंका सामानाधिकरण्य सम्बन्ध मानाजायगा तो जिस प्रकार द्विवचनांत उपगृह पदका उल्लेख कियागया है उसी प्रकार द्विवचनांत उपकार शब्दका भी उल्लेख करना चाहिये परन्तु सूत्रमें एकवचनांत उपकार शब्दकाही उल्लेख कियागया है इसलिये उपकार शब्दको कर्मसाधनभी नहीं मानाजासक्ता इस रीतिसे उपकार शब्दकी भावसाधन और कर्म साधन दोनों प्रकारकी व्युत्पत्तियें बाधित हैं? (उत्तर) यहांपर उपकार शब्दका सामान्यरूपसे गृहण कियागया है इसलिये उसके एकवचनात गृहण करनेपर भी कोई दोष नहीं आता है अर्थात् 'साधो कार्यं तपःश्रुते वाक्यमें तप करना शास्त्र अध्ययन करना ये दो कार्य साधुके हैं। यहां तप और श्रुतहीको कार्य माना है इसलिये आपसमें उनका सामानाधिकरण्य सबन्ध है क्योंकि तपश्रुतरूप कार्य का आधार एक है परन्तु कार्य शब्दका एकवचनमें उल्लेख किया गया है और 'तप श्रुते' शब्दका द्विवचनमें गृहण है इसलिये यहांपर भी यह शका उठती है कि जब आपसमें यहांपर सामानाधिकरण्य सबन्ध है तब जिस प्रकार 'तप श्रुते' शब्द द्विवचनांत रूपसे कहागया है उसी प्रकार कार्य शब्दभी द्विवचनांतरूपसेही कहना चाहिये, एक वचनांत कार्यका उल्लेख यहां प्रसगरहित है। उसका समाधान यहां यह दियागया है कि कार्य शब्दका प्रयोग उपर्युक्त वाक्यमें सामान्यरूपसे किया गया है और यह नियम है कि जिस पदका प्रयोग सामान्यरूपसे किया जाता है और उसका उस समय जो एक वचन, द्विवचन आदि रहता है वही तदवस्थ रहता है, पश्चात् यदि उस पदके विशेषण स्वरूपही तीन आदि पद हों और उनके सम्बन्धसे सामान्य-रूपसे कहेगये पदके वचनके पलटनेकी आवश्यकता पडे तौ भी वहांपर विशेषणके अनुसार वचनका परिवर्तन नहीं होता 'कार्यं तप श्रुते' यहांपर एक वचनान्त कार्य शब्दका सामान्यरूपसे उपादान कियागया है यद्यपि पीछेसे तप श्रुत शब्द उसका विशेषणहोनेसे विशेषणके अनुसार कार्य शब्दमें वचनका परिवर्तन होना चाहिये अर्थात् एकवचनके स्थानमें द्विवचन होना चाहिये परन्तु सामान्यरूपसे उल्लेख होनेके कारण वहां पर एकवचनके स्थानमें द्विवचनका परिवर्तन नहींहोता उसीप्रकार उपकार शब्दकाभीसामान्यरूपसे एकचनमें उल्लेखकियागयाहै इसलिये पीछेसेउसकाउपगृहविशेषण होनेपर भी उसके अनुसार उपकार शब्दके एकवचनके स्थानमें द्विवचनका परिवर्तन नहीं होसकता अत.सूत्रमें जो एकवचनरूपमें उपकारशब्द लाया गयाहैवह ठीकहै।अथवा जिस प्रकार 'उपकरण उपकार.' इस प्रकार उपकारशब्द भाव साधन मानागया है उसी.प्रकार 'उपगृहण, उपगृहः' इस प्रकार उपगृहशब्द भी भाव साधन है इसलिये गतिस्थित्योरुपगृहौ गतिस्थित्युपगृहाविति' जो ऊपर षष्ठी तत्पुरुष समास कह आये हैं उसके माननेमें भी कोई दोषनहीं तथा उपगृह और उपकार शब्दका भावसाधन मानने पर गतिका उपगृह धर्मद्रव्यका उपकार है और स्थितिका उपगृहअधर्मद्रव्यकाउपकार है यह शास्त्रानुकूल अर्थ भी निरापद होजाता है इसलिये उपगृह और उपकार शब्दको कर्मसाधन मानने पर कर्मधारय समास और भावसाधन माननेपर षष्ठी तत्पुरुष समास दोनों ही समासोंका मानना निर्दोष है॥ (प्रश्न पर प्रश्न) यदि 'उपगृह' शब्द भावसाधन है तो चूंकि भाव पदार्थ एक माना है इसलिये उपगृहौ के स्थानमें उपग्रह एकवचन होना चाहिये (उत्तर) धर्म और अधर्म द्रव्यें भिन्न भिन्न हैं गतिमें उपग्रह करना और स्थितिमें उपग्रह करना भी भिन्नभिन्न हैं। गमनमें उपग्रह करना धर्मद्रव्यका उपकारहै और स्थितिमेंउपग्रहकरना अधर्मद्रव्यका उपकारहैइसकेजतानेकोउपग्रहौद्विवचन हैनहींतो जैसे पृथिवी, अश्व बैलआदिके गमनस्थितिमें सहकारी है वैसेही धर्मवा अधर्मद्रव्य दोमेंसे कोईएक गमन और स्थितिमें उपकारी ठहरती॥

उपक्रियत इत्युपकारः । कः पुनरसौ? गत्युपग्रहः स्थित्युपग्रहश्च ॥ यद्येवं द्वित्वनिर्देशः प्राप्नोति? नैष दोषः । सामान्येन व्युत्पादित उपात्तसंख्यः शब्दान्तरसम्बंधे सत्यपि न पूर्वोपात्तां संख्यां जहाति ॥ यथा-साधोः कार्यं तपःश्रुते इति ॥

उपक्रियते।इति*उपकारः।पुनः*असौ।कः। =उपकार कियाजाता है वा सहायताकी जाती है ऐसा उपकार है। और यह(उपकार)क्याहै

गति-उपग्रहः।च*स्थिति-उपग्रहः।;यदि*एवम्* =गमनका उपग्रह तथा स्थितिका उपग्रह है। (प्रश्न)जो ऐसे है अर्थात् गतिकाभी उपग्रह है और स्थितिकाभी उपग्रह है तो (इस सूत्रमें)

द्वित्व-निर्देशः। प्राप्नोति। ? =दो वचनका निरूपण वा कथन(उपकार शब्दके)प्राप्त होता है अर्थात् इस सूत्रमें उपकार शब्द दो वचनमें लाना था तव'धर्माधर्मयोरुपकारौ' सूत्रके अन्तमें होता ॥

न*एषः।दोषः।;सामान्येन।।व्युत्पादितः। =(उत्तर)यह दूषण नही है। (क्योंकि) सामान्यकरि कहाहुआ

उपात्तसंख्यः।शब्दान्तर-सम्बन्धे।सति।अपि* =गृहीत संख्यावाला(उपकार शब्द)अन्य शब्द उपग्रहौ के साथ सम्वन्ध होनेपर भी

न*पूर्व-उपात्ताम्।संख्याम्।जहाति। =पहिले ग्रहण कीहुई संख्याको नही छोड़ता है अर्थात् इस सूत्रमें उपकार शब्दको सामान्यरूपसे ग्रहणकरि एकवचनमें निर्देश कियाहै यद्यपि इस उपकार शब्दका उपग्रह' शब्दसे ऐसे सम्बंध है कि गतिका उपग्रह धर्मद्रव्यका उपकार और स्थितिका उपग्रह अधर्म द्रव्यका उपकार है तौ भी प्रथम ग्रहण कियेहुये एकवचन संख्याको उपकार शब्द नहीं त्यागता है और उपग्रहौ शब्द दोवचनान्तके साथ उपकारौ (दोवचनान्त)ऐसा नहीं होजाता है वरन् उपकार ऐसाही रहता है॥ ('हा' धातु पर देखो टिपणी पृष्ठ ४९)

यथा*साधोः।कार्यम्।।तपःश्रुते।।इति* =जैसे साधु पुरुषका काम तप करना और शास्त्र पढना ऐसा है अर्थात् वाक्यमें तपःश्रुते द्विवचन है और इसके अनुसार'कार्यम्'शब्दके स्थानपर कार्ये द्विवचन होनाचाहियेपरन्तु यहांपर कार्य शब्द सामान्य है और'तपो'कार्यम् श्रुतेकार्यम् ऐसे दो स्थानोंके लिये आयाहै। जैसे सामान्य होनेके हेतुसे (कार्य शब्द) द्विवचन नही हुआ तैसेही सूत्रमें 'उपकार' शब्द सामान्य है और वह गतिउपकार और स्थितिउपकार इन दो वातोंका द्योतक है इसलिये सूत्रमेंभी'उपकार'शब्दको सामान्यवचन होनेसे एकवचनमें लाये हैं द्विवचन नहीं किया है॥

एतदुक्तं भवति—गतिपरिणामिनां जीवपुद्गलानां गत्युपग्रहे कर्तव्ये धर्मास्तिकायः साधारणाश्रयो जलवन्मत्स्यगमने ॥ तथा स्थितिपरिणामिनां जीवपुद्गलानां स्थित्युपग्रहे कर्तव्ये अधर्मास्तिकायः साधारणाश्रयः पृथिवीधातुरिवाश्वादिस्थिताविति ॥ ननु च उपग्रहवचनमनर्थकमुपकार इत्येवं सिद्धत्वात् । गतिस्थिती धर्माधर्मयोरुपकार इति ॥ नैष दोषः याथासंख्य-

---

एतत् । उक्तम् । भवति । गतिपरिणामिनाम् ।	=यह कथन वा अर्थ होता है कि गमनमें परिणमन होनेवाले, गमनकरनेवाले
जीवपुद्गलानाम् । गति-उपग्रहे । कर्तव्ये । धर्म-	=जीव पुद्गलोंके गमनके उपकार करनेमें धर्म (जो जीव-पुद्गल-धर्म-अधर्म-आकाश-पांच अस्तिकायोंमेंसे एक है)
अस्तिकायः । साधारण-आश्रयः ।	=बहुत प्रदेशवाली वा बहु प्रदेशीद्रव्य(=अस्तिकाय)है साधारण आधार है
जलवत् * मत्स्य-गमने ; तथा * स्थिति-परिणामिनाम् ।	=जैसे जल मछलीके चलनेमें है वैसेही =तथा)ठहरनेमें परिणमन होनेवाले
जीव-पुद्गलानाम् । स्थिति-उपग्रहे । कर्तव्ये । (१ अधर्म-	=जीव पुद्गलोंके स्थितिके कारण कर्तव्यमें अधर्मद्रव्य (जो जीव-पुद्गल-धर्म-अधर्म-आकाश पांच अस्तिकायोंमें से एक है)
अस्तिकायः । साधारण-आश्रयः ।	=अस्तिकाय अर्थात् बहुप्रदेशी द्रव्य है साधारण वा सामान्य आश्रय है
पृथिवी २)धातुः । इव * अश्वादिस्थितौ । इति * ॥	=जैसे(=इव)भूमिका आधार घोड़ा आदिकके ठहरनेमें है ॥
ननु * च * उपग्रह-वचनम् । अनर्थकम् ।	=पुनि प्रश्न (इस सूत्रमें)उपग्रह शब्द)का कहना(=वचन)निष्प्रयोजन है
उपकारः । इत्येवम् * सिद्धत्वात् ।	=क्योंकि (धर्म-अधर्मका) उपकार वा सहायता सूत्रकी रचनासे सिद्ध होजाती है कि
गतिस्थिती । धर्म अधर्मयोः । उपकारः । इति * ;	=गति-स्थिति धर्म-अधर्मका उपकार है। ऐसा(अर्थ) हुआ ॥
न * एषः । दोषः । याथासंख्य-(३	=(उत्तर)यह दोष नहीं है(क्योंकि)यथासंख्यपनाके (=पहिलेको पहला दूसरेको दूसरा)

---

(१) (अश्वादि स्थितौ ।भूमि आधारवत् इति अर्थ = घोड़ा आदिकके ठहरनेमें पृथिवीके आधारके सदृश है ऐसा तात्पर्य्य है (२)दधाति इतिधातु । = जो (अपने ऊपर) रखता है वा धारण करता है ऐसा धातु है आधार ऐसा अभिप्राय (धातु शब्दका) है। अर्थात् जो धारण करता है वा धारण करने वाला यह अर्थ "पृथिवीधातुरिवाश्वादि" वाक्यमें जो 'धातु' शब्द आया है उसका है। (३) 'याथासंख्य'का वही अर्थ है जो 'यथासंख्य' शब्दका है॥

निवृत्त्यर्थमुपग्रहवचनम् । धर्माधर्मयोर्गतिस्थित्योश्च यथासंख्यं भवति, एवं जीवपुद्गलानां यथासंख्यं प्राप्नोति धर्मस्योपकारो जीवानां गतिः अधर्मस्योपकारः पुद्गलानां स्थितिरिति । तन्निवृत्त्यर्थमुपग्रहवचनं क्रियते ॥ आह धर्माधर्मयोर्य उपकारःस आकाशस्य युक्तः सर्वगतत्वादिति चेत्—तदयुक्तं, तस्यान्योपकारसद्भावात् सर्वेषां धर्मादीनां द्रव्याणामवगाहनं यत्प्रयोजनम् । एकस्यानेकप्रयोजनकल्पनायां लोकालोकविभागाभावः ॥

निवृत्ति-अर्थम्। उपग्रह-वचनम्। धर्म-	=निषेधके लिये उपग्रहका कथन (इस सूत्रमें) है धर्मद्रव्य
अधर्मयोः। गति-स्थित्योः। च*यथासंख्यम्*भवति	=अधर्मद्रव्यमें और गतिस्थितिमें यथासंख्य सम्बन्ध होजाता है अर्थात् धर्मद्रव्य का गमनसे सम्बन्ध होजाता है और अधर्मद्रव्यका स्थितिसे सम्बन्ध होजाता है
एवम्*जीव-पुद्गलानाम्।यथासंख्यम्*प्राप्नोति	=इस प्रकार जीवों और पुद्गलोंका(भी) यथासंख्य(क्रम)प्राप्त होता है
धर्मस्य-उपकारः। जीवानाम्। गतिः। अधर्मस्य।	=(तब)धर्मद्रव्यका उपकार जीवोंका गमन अधर्मद्रव्यका
उपकारः।पुद्गलानां।स्थितिः।इति*।तत्-निवृत्ति-अर्थम्।	=उपकार पुद्गलोंकी स्थिति ऐसा अर्थ होजाता है, उसके निषेधके लिये (इस सूत्रमें)
उपग्रह-वचनम्।क्रियते; आह।धर्म-अधर्मयोः। यः।	=उपग्रह वचन किया है (शिष्य) कहता है कि धर्म अधर्म द्रव्योंका जो
उपकारः।सः।आकाशस्य।युक्तः। सर्व गतत्वात्।	=उपकार है सो(उपकार)आकाशके युक्त है क्योंकि(आकाश) सर्वत्र व्यापी है
इति*चेत्*तद्। अयुक्तम्। तस्य। अन्य-उपकार-	ऐसी शंका है(उत्तर)सो ठीक नहीं है क्योंकि तिस (आकाशके) दूसरे उपकारकी
सद्भावात्; सर्वेषाम्। धर्मादीनाम्। द्रव्याणाम्।	=विद्यमानता है (अर्थात्) समस्त धर्मादिक द्रव्योंको
अवगाहनम्। तत्-प्रयोजनम्।	=स्थान दान देना वा अवकाश दान देना उस(आकाश)का प्रयोजन है
एकस्य। अनेक-प्रयोजन-कल्पनायाम्।	=एक (आकाश)के अनेक प्रयोजन माननेमें
लोक-अलोक विभाग-अभावः।	=लोक अलोकके विभागका अभाव होता है । भावार्थ—यह है कि इस प्रश्नके होनेपर कि गमन और ठहरावका उपकार धर्म अधर्म द्रव्योंका न होना चाहिये

किन्तु आकाश जो सर्वत्र व्यापक है गतिस्थितिका उपकारी है उत्तर में आचार्य्य कहते हैं कि आकाशका असाधारण गुण द्रव्योंको स्थान दान देनेका है यदि उसका कोई दूसरा उपकार कल्पना करते हैं तो लोक अलोक का विभाग

भूमिजलादीन्येव तत्प्रयोजनसमर्थानि नार्थो धर्माधर्माभ्यामिति चेन्न—साधारणाश्रय इति विशिष्योक्तत्वात् । अनेककारणसाध्यत्वाच्चैकस्य कार्यस्य ॥ तुल्यबलवत्त्वात्तयोर्गतिस्थितिप्रतिबन्ध इति चेन्न—अप्रेरकत्वात् ॥

नहीं होसकता है क्योंकि ठहराने और गमन करने में सहायक होना यदि ये कार्य आकाशके माने जावेंगे तो आकाश तौ अलोकाकाशमें भी हैं तो वहांपरभी जीवपुद्गल गति और स्थिति करसकेंगे अतः लोक अलोकके विभागका लोप होजावैगा ॥

भूमि-जलादीनि॥ एव*तत्-प्रयोजन समर्थानि॥ = भूमि जलादिक ही उस (गति स्थति) के प्रयोजनके लिये समर्थ हैं तो

न-अर्थः॥ धर्म-अधर्मभ्याम्॥ इति*चेत्*न* = धर्म, अधर्म द्रव्योंसे प्रयोजन नही ऐसी शंका है। यह शंका नही होनी चाहिये

साधारण- = (धर्म अधर्म द्रव्यें सब जीव पुद्गलोंको एक कालमें गतिस्थितिका) साधारण

आश्रयः॥ इति* = आश्रय है (क्योंकि किसी किसी द्रव्यके एक एक प्रयोजनके सम्बन्धमें जल पृथिवी आदि गमन स्थिति आदि उपकार करनेमे)

विशिष्य-उक्तत्वात्॥;च*एकस्य॥ कार्यस्य॥ अनेक- = विशेष आश्रयरूप कहे जाते है। और (=च) एक कार्यको अनेक

कारण-साध्यत्वात्॥, = कारण सिद्धि करने योग्य वा साधनीय हैं अर्थात् एक कार्यको अनेक कारण साधते हैं सो यहां स्थितिमे पृथिवी भी कारण हैं और अधर्मद्रव्य भी कारण है

तुल्य-बलवत्वात्॥ तयोः॥ गति-स्थिति-प्रतिबन्धः॥ = (धर्म अधर्मद्रव्ये) समान बलवान होनेसे तिन दोनोमे गतिस्थितिका विरोध होगा

इति* चेत्* = ऐसी शंका है अर्थात् जब धमद्रव्य अधर्मद्रव्य दोनों समान बलवाले है सो जिस काल धर्मद्रव्य जीव पुद्गलोंको गमन कराती होगी उसीसमय अधर्मद्रव्य स्थिति कराती होगी तब गमन स्थिति दोनोकी रोक होती होगी ॥

न* = सो नही ।(धर्मद्रव्य जीव पद्गलोके गतिके निमित्तहै अधर्मद्रव्य उनकी स्थितिकेहैसो)

अप्रेरकत्वात्॥ = अप्रेरक वा बलाधान भावसे हैं अर्थात् यदि जीव पुद्गल चले तो धर्मद्रव्य उदासीनतासे चलनेमे निमित्त होती है और यदि ठहरै तो ऐसेही अधर्म द्रव्य स्थितिमें ऐसी प्रेरणा न करें कि अमुक जीव पुद्गल चले अमुक ठहरे रहै ॥

अनुपलब्धेर्न तौ स्तः खरविषाणवदिति चेन्न—सर्वप्रवाद्यविप्रतिपत्तेः। सर्वे हि प्रवादिनः प्रत्यक्षाप्रत्यक्षानर्थानभिवाञ्छन्ति ॥ अस्मान्प्रतिहेतोरसिद्धेश्च ।

अनुपलब्धेः[५/१]। तौ[१/२] [(१)]खरविषाणवत्*न*स्तः[१/३] इति*चेत्*	=क्या आंखकरि न दीखनेसे(धर्म-अधर्म)वे दोनों(द्रव्यें)गधाके सींगके सदृश नहीं है =ऐसी शंका है अर्थात् जैसे संसारमें गधा(वा शश खरहा)के सींगोंकी कल्पना है विद्यमानता नहीं है क्योंकि किसीने अपनी आंखोंसे नही देखे है वैसेही धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य केवल कल्पनामात्रहै वास्तविक वा यथार्थमें उनका कोई अस्तित्व नही है ऐसी शंका है ॥
न*	=(उत्तर) (ऐसा संदेह कि धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य नेत्रोंसे न दीखनेसे गधाके सींगके तुल्य कल्पित द्रव्य है) नही (होना चाहिये)
सर्व- [(२)] प्रवादि-अविप्रतिपत्तेः[५/१]॥	=क्योंकि(ऐसे अस्तित्वमें)सब प्रतिवादियोंको (हमारे साथ) अविरोध (=विवाद नहीं) है
सर्वे[१/३]। हि* [(२)]प्रवादिनः[१/३]।प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्षान्[२/३]।	=समस्त ही (=हि) अन्य मतावलम्बी प्रत्यक्ष और परोक्ष
अर्थान्[२/३]। अभिवाञ्छन्ति। अस्मान्[२/३]।प्रति*	=पदार्थोंको मानते हैं हम प्रति अर्थात् हमारे ऊपर
हेतोः[६/१]। असिद्धेः[५/१]॥ च*	=(तुम्हारे इस) साधनकी (कि धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य अनुपलब्ध हैं) सिद्ध भी नहीं है ॥

भावार्थ यह है कि हम स्याद्वादीनके ऊपर तुम्हारा यह साधन कि धर्म,अधर्मद्रव्यें अनुपलब्ध हैं उनका अस्तित्व गधेके सींग सदृश है निम्नलिखित कारणसे लागू नही है

(१) संसारमें चार वस्तुयें (क) खर अथवा शशविषाण (ख) बांझ स्त्रीका पुत्र (ग) मृगतृष्णा (४) आकाशका फूल ये विद्यमान नहीं हैं। जब किसी वस्तुके अभावको प्रगट करना होता है तब इन चार पदार्थोंसे प्राय एक वा दोका नाम लेते हैं। ये चारों वस्तुयें निम्नलिखित श्लोकसे स्पष्ट हैं

"एष वन्ध्यासुतो याति खपुष्पकृतशेखरः। मृगतृष्णाम्भासि स्नातः शशशृङ्गधनुर्धरः ॥ १ ॥

एष [१/१]। वन्ध्यासुतः[१/१]। याति। (एषः)) ख-पुष्प-कृत शेखरः[१/१]। =यह बांझ स्त्रीका पुत्र जाता है। यह आकाशके फूलोंकी बनाई हुई शिखा वा चोटी है (एष) मृगतृष्णा-अम्भासि[७/१]॥स्नातः[१/१]।(एषः)शशशृङ्ग धनुर्धरः[१/१]। =यह मृगतृष्णाके नीर(धूपमेंजलभ्रान्ति)मेंन्हायाहुआहै यह खरके सींगकेधनुषकाधारीहै

(२) प्रथम वारकी छपी हुई सर्वार्थसिद्धिमें 'प्रतिवादिन्' शब्द, इन दो स्थानोंपर है परन्तु द्वितीय संस्करणमें और तीन हस्तलिखित प्रतियों में 'प्रवादिन्' शब्दका दोनों स्थानोंमें प्रयोग किया गया है। दोनों शब्दोंका लगभग एकही अर्थ है हमने 'प्रवादिन्का' प्रयोग किया है क्योंकि ये पाठ बहुतसी प्रतियोंमें पाये जाते हैं ॥

सर्वज्ञेन निरतिशयप्रत्यक्षज्ञानचक्षुषा धर्मादयः सर्वे उपलभ्यन्ते। तदुपदेशाच्च श्रुतज्ञानिभिरपि॥
अत्राह यद्यतीन्द्रिययोर्धर्माधर्मयोरुपकारसम्बन्धेनास्तित्वमवध्रियते, तदनन्तरमुद्दिष्टस्य नभसोऽतीन्द्रियस्याधिगमे क उपकार इत्युच्यते—

॥ आकाशस्यवगाह ॥ १८ ॥

सर्वज्ञेन निरतिशय-प्रत्यक्षज्ञान-चक्षुषा	=सर्वज्ञके परमोत्कृष्ट (=निरतिशय) प्रत्यक्ष(केवल)ज्ञानरूपी नेत्रेन्द्रियकरि
धर्म-आदयः सर्वे उपलभ्यन्ते। च तद्-	=धर्मादिक समस्त (द्रव्य) जानी गई हैं और उस (सर्वज्ञ) के
उपदेशात् श्रुतज्ञानिभिः अपि; अत्र आह।	=उपदेशसे श्रुतज्ञानियोंकरिभी (जानी गई) हैं। यहां पूछना है कि
यदि अतीन्द्रिययोः धर्म-अधर्मयोः उपकार-	=यदि धर्म-अधर्मद्रव्योंकी (जो इन्द्रियोंसे नहीं जानेजासकते हैं) उपकारके
सम्बन्धेन अस्तित्वम् अवध्रियते। तदनन्तरम्	=संयोगसे विद्यमानता निश्चय कीजाती है तो उन(धर्म-अधर्म)के अत्यन्त समीप
उद्दिष्टस्य नभसः अतीन्द्रियस्य अधिगमे	=कथित इन्द्रिय अगोचर आकाशके जानने में
कः उपकारः इति उच्यते।	=क्या उपकार वा सहायता है इस हेतुसे(=इति)(उत्तर सूत्रमें) कहा जाता है कि

सूत्रम्—[3] आकाशस्यावगाहः ॥१८॥ = (जीवानाम्-अजीवानाम् च) आकाशस्य (उपकारः) अवगाहः

सूत्रार्थः—जीवानाम् च अजीवानाम् आकाशस्य	=जीवोंको और अजीवोंको आकाश द्रव्यका
उपकारः अवगाहः	=उपकार, सहाय, अथवा सहायता, अवकाशदान देना वा स्थानदान देना है अर्थात् समस्त जीव और अचेतन द्रव्योंको स्थानदान देना आकाशका उपकार है

(१) "अजीवकाया धर्माधर्माकाशपुद्गला." इस प्रथम सूत्रमें धर्मअधर्मके समीपही आकाश द्रव्यका कथन है इसलिये अग्रिम सूत्रमें आकाशका उपकार कहते हैं।

(२) "इति हेतु-प्रकरण प्रकाशादि-समाप्तिषु" अमरकोश नानार्थ वर्ग श्लोक २४६ 'इति', यह एक नाम हेतु प्रकरण प्रकाश निदर्श समाप्ति इन्होंका है यहां पर हेतु अथवा कारणके अर्थमें लिया है इससे 'इति'का अनुवाद 'इस हेतुसे' ऐसा किया गया है॥

(३) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों सम्प्रदायोंमें एकसा है। "अजीवानाम्" शब्दका अध्याहार कियागया है। 'जीवानाम्' शब्दकी अनुवृत्ति इस अध्यायके पन्द्रहवां सूत्रसे लीगई है और 'च' शब्दकी दशवां सूत्रसे लीगई है। उपकार सत्रहवां सूत्रसे अनुवर्तता है॥

उपकार इत्यनुवर्तते ॥ जीवपुद्गलादीनामवगाहिनामवकाशदानमवगाह आकाशस्योपकारो वेदितव्यः ॥ आह जीवपुद्गलानां क्रियावतामवगाहिनामवकाशदानं युक्तम् । धर्मास्तिकायादयः पुनर्निष्क्रिया नित्यसम्बन्धास्तेषां कथमवगाह इति चेन्न—उपचारतस्तत्सिद्धेः । यथा गमनाभावेऽपि सर्वगतमाकाशमित्युच्यते सर्वत्र सद्भावात् एवं धर्माधर्मावपि अवगाहक्रियाभावेऽपि सर्वत्र व्याप्तिदर्शनादवगाहिनावित्युपचर्येते ॥ आह यद्यवकाशदानमस्य स्वभावः वज्रादिभिर्लोष्टादीनां-

उपकारः। इति*अनुवर्तते।अवगाहिनाम्। =(इस सूत्रमें) उपकार (शब्द सत्रहवां सूत्रसे) आता है रहनेवाले वा अवगाही

जीव-पुद्गलादीनाम्। अवकाशदानम्।।। अवगाहः। =जीव पुद्गलों, धर्मद्रव्य,अधर्मद्रव्य कालद्रव्यको स्थानदान देना है सो अवगाह

आकाशस्य।।।उपकारः।वेदितव्यः।आह।जीव-पुद्गलानां=आकाशद्रव्यका उपकार जानना चाहिये । पूछताहै कि जीव पुद्गल

क्रियावतां।अवगाहिनां। अवकाशदानम्।।।युक्तम्।।। =क्रियावाले और अवगाह करनेवालोंके अवकाशदान देना (तो) ठीक है

पुनःधर्मास्तिकाय-आदयः। निष्क्रियाः।नित्यसम्बन्धाः। =किन्तु(=पुनः)धर्मास्तिकायआदिक अर्थात् धर्म अधर्म और आकाश जो क्रियारहित और आपसमें नित्य सम्बन्धवाले हैं अथवा जो क्रियारहित तथा नित्य सम्बन्धरूप हैं

तेषाम्। कथम्* अवगाहः। इति*चेत्* न* =तिनको कैसे आकाशका स्थानदान है ऐसी शंका है । यह शंका नहीं होनी चाहिये

उपचारतः*तत्-सिद्धेः।।यथा*गमन-अभावे। अपि* =क्योंकि उपचारसेवाकल्पनासे(अवकाशदानकी)सिद्धि है जैसे गतिके अभावहोनेपरभी

सर्वगतम्।।।आकाशम्।।।इति-उच्यते।सर्वत्र* सद्भावात्।=सर्वगत आकाश है ऐसा कहागया है क्योंकि आकाशका सर्व स्थानमें अस्तित्व है अर्थात् आकाश है सो सदा गमनरहित है और कहींभी उसका हलनचलन आना जाना नहीं होसकता है निष्क्रिय है तौभी उसको सर्वगत कल्पनासे कहते हैं ।

एवम्*धर्म-अधर्मौ।अपि*अवगाह-क्रिया-अभावे। =इसी प्रकार धर्म अधर्म दोनोंभी अवगाहरूप क्रियाके न होनेपर

अपि*सर्वत्र-व्याप्ति-दर्शनात्। अवगाहिनौ। इति* =भी(लोकाकाशके) सर्वस्थानमें प्रवेशताके उपलब्धसे अवगाह करनेवाली

उपचर्येते।आह।यदि*अवकाशदानम्।।। =कल्पी जाती हैं वा मानी जाती हैं । पूछता है कि जो स्थान दान देना

अस्य।।। स्वभावः। वज्रादिभिः। लोष्ट-आदीनाम्। =इस(आकाश)का गुण और लक्षण होता तो वज्रादिसे ढेला वा गोलादिका

(१) उपचर्येते=उपचर्य+इते=चर धातुपे उप उपसर्ग लगाकर कर्मणिप्रधान,अन्यपुरुष द्विवचन वर्तमान क्रियाका 'इते' प्रत्यय लगाकर बनाया है

(२) 'आदय 'यह शब्द दोसे अधिक सख्याका बोधक है और छह द्रव्योंमें इस अध्यायके सातवां सूत्रके अनुकूल धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य और आकाश द्रव्यह। क्रियारहित हैं शेषदो द्रव्यजीव,औरपुद्गलक्रियासहितहैंअतःअनुवादम हमने धर्मअधर्मआकाशद्रव्योंकाही ग्रहणकियाहैक्योंकि कालअस्तिकायनहीहै॥

भित्यादिभिर्गवादीनां च व्याघातो न प्राप्नोति । दृश्यते च व्याघातः । तस्मादस्यावकाशदानं हीयते इति ॥ नैष दोषः । वज्रलोष्टादीनां स्थूलानां परस्परव्याघात इति नास्यावकाशदानसामर्थ्यं हीयते- तत्रावगाहिनामेव व्याघातात् । वज्रादयः पुनः स्थूलत्वात्परस्परं प्रत्यवकाशदानं न कुर्वन्तीति नासावाकाशदोषः । ये खलु पुद्गलाः सूक्ष्मास्ते परस्परं प्रत्यवकाशदानं कुर्वन्ति ॥ यद्येवं नेदमाकाशस्यासाधारणं लक्षणमितरेषामपि तत्सद्भावादिति ॥ तन्न । सर्वपदार्थानां साधारणावगाहनहेतुत्वमस्यासाधारणं लक्षणमिति नास्ति दोषः ॥

भिति-आदिभिः गो-आदीनां च व्याघातः न प्राप्नोति	=और(=च)भीत आदिकरि गऊ आदिका रुकाव नहीं प्राप्त होता है
दृश्यते । च* व्याघातः; तस्मात् अस्य॥	=और(ढेलादिकतथागऊआदिका)रोकाजानादेखाजाताहैतिसकारणसेइसआकाशक
अवकाशदानं॥ हीयते। न* एषः दोषः	=स्थानदान देना चलाजाता है अथवा बाधा जाता है । यह दूषण नहीं है
वज्र-लोष्ट-आदीनाम् स्थूलानां परस्पर-व्याघातः	=वज्र ढेलादिक स्थूल अथवा मोटे (पदार्थ) निका आपसमें रुकाव है
इति* न* अस्य॥ अवकाशदान-सामर्थ्यम्॥ हीयते	=इस (आकाश)की अवकाशदानकी शक्ति नहीं बांधी जाती है
तत्र* अवगाहिनाम् एव* व्याघातात्; पुनः* वज्र-	=क्योंकितहां(आकाशमें,अवगाह करनेवालोंकेही(परस्पर,व्याघात है और वज्र
आदयः स्थूलत्वात्॥ परस्परं॥ प्रति* अवकाश-	=आदिक स्थूल होनेसे एक दूसरेको (=प्रति) स्थान
दानम्॥ न* कुर्वन्ति। इति* न* असौ	=दान नहीं करते हैं । न यह(अर्थात् स्थूल पदार्थोका एक दूसरेसे रुकना)
आकाश दोषः। ये खलु* पुद्गलाः सूक्ष्माः ते	=आकाशका दूषण है । निश्चयसे जे सूक्ष्म पुद्गल हैं । ते
परस्परं प्रति* अवकाशदानं॥ कुर्वन्ति, यदि* एवम्*	=एक दूसरेको (=प्रति) अवकाशदान करते हैं । (प्रश्न) जो इस प्रकार है (अर्थात् जो सूक्ष्म पुद्गल आपसमें अवकाशदान करते हैं । तो)
न* इदम्॥ आकाशस्य॥ असाधारणम्॥ लक्षणं॥	=यह (अवकाशदान) आकाशका असाधारण स्वभाव नहीं है
इतरेषाम् अपि* तत्-सद्भावात्। इति*	=क्योंकि दूसरोंकेभी उस(अवकाशदानकी) विद्यमानता अथवा अस्तित्व है
तत्॥ न* सर्वपदार्थानाम् साधारण-अवगाहन-	=(उत्तर)सो(=तत्) नहीं है क्योंकि सब पदार्थोंके साधारण युगपत्)अवकाशदानका
हेतुत्वम्॥ अस्य॥ असाधारणम्॥ लक्षणम्॥	=कारण होना इस आकाशका अनूठा वा अपूर्व स्वभाव है
इति* न* अस्ति। दोषः	=(सो ऐसा) उपर्युक्त दूषण नहीं है भावार्थ यह है कि शिष्यके इसप्रश्न पर कि

अलोकाकाशे तदभावादभाव इति चेन्न-स्वभावापरित्यागात् ॥

उक्त आकाशस्योपकारः । अथ तदन्तरोद्दिष्टानां पुद्गलानां क उपकार इत्यत्रोच्यते—

॥ शरीरवाङ्मनः प्राणापानाः पुद्गलानाम् ॥ १९ ॥

जो सूक्ष्म पदार्थ आपसमें अवकाशदान देतेहैं तौ आकाशका अवकाशदान देना कोई असाधारण लक्षण(वह स्वभाव वा गुण जो किसी दूसरेमें न हो) न ठहरा इसके उत्तरमे आचार्य कहते है कि आकाश सर्व पदार्थोंको एकही कालमें अवकाशदान देता है कोई पदार्थ ऐसा नही है जिसको आकाश स्थान दान न देता हो इससे आकाशका यह अवकाशदान देना असाधारण लक्षण है और सूक्ष्म पदार्थमे अवकाशदान देनेका अपूर्व अथवा असाधारण लक्षण इस हेतुसे नही है कि वे(सूक्ष्म पदार्थ)आपसमे एक दूसरेको अवकाशदान देते हैं सर्व पदार्थोंको एकही कालमे स्थानदान नही देसकते है

अलोकाकाशे[7] तद्-अभावात्[5] = अलोकाकाशमें उन (अवगाह करनेवालो)के विद्यमान न होनेसे

अभावः[1] इति*चेत्* ; न* = (अवकाशदानका) अभाव है ऐसी शंका है । (उत्तर) (ऐसी शंका) नही होनी चाहिये

स्वभाव-अपरित्यागात्[5] ; = क्योंकि (कोईभी पदार्थ) स्वभाव नही छोड़ता है अर्थात् आकाशमे अवगाहन (=अवकाश दान देनेका) की शक्ति और स्वभाव है सो चाहे अवगाह करने वाले उसमे हों वा न हों (जैसे अलोकाकाशमे अवगाह करनेवाले नही है)तौभी वह पदार्थ(अलोकाकाश) अपना स्वभाव नही त्यागता है

उक्तः[1] आकाशस्य[6]। उपकारः[1] अथ*तदन्तर- = आकाशका उपकार कहागया अब उस (आकाश)के अत्यन्त समीप वा लगताही

उद्दिष्टानाम्[6] पुद्गलानाम्[6] = वर्णित पुद्गलोंका (देखो प्रथम सूत्रमे आकाश शब्दके पश्चात् 'पुद्गलानां' शब्द)

कः[1] उपकारः[1] इति*अत्र*उच्यते । = क्या उपकार है इस कारण (=इति) यहा (उत्तर सूत्रमें) कहा जाता है कि

(१)सूत्रम्— शरीरवाङ्मनः प्राणापानाः पुद्गलानाम् ॥ १९ ॥

= शरीर-वाङ्-मनस्-प्राण-अपानाः (जीवानाम्)पुद्गलानाम् (उपकारः)

(१)दोनों सम्प्रदायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है। हमारे यहां कहीं२ पर 'पुद्गलानाम'के स्थानमें 'पुद्गलाना' पाठहै वह बहुमतमें अशुद्ध है इस सूत्रमें 'जीवानाम्' शब्दकी अनुवृत्ति पन्द्रहवा सूत्रसे लीगई है ॥ अथवा यों समझलो कि "जीवानाम्" शब्दका अध्याहार किया गया है ॥

इदमयुक्तं वर्तते । किमत्रायुक्तम् ? पुद्गलानां क उपकार इति परिप्रश्ने पुद्गलानां लक्षणमुच्यते भवता शरीरादीनि पुद्गलमयानीति ॥ नैतदयुक्तम् । पुद्गलानां लक्षणमुत्तरत्र "स्पर्शरसगन्धवर्णवन्तः पुद्गला इत्यत्र' वक्ष्यते । इदं तु जीवान् प्रति पुद्गलानामुपकारप्रतिपादनार्थमेवेति उपकारप्रकरणे उच्यते ॥ शरीराण्युक्तानि औदारिकादीनि, सौक्ष्म्यादप्रत्यक्षाणि, तदुदयापादित (१)(तदुभयोपपादित ?) ।

सूत्रार्थः—शरीर-वाग्-मनस्-प्राण-अपानाः। जीवानाम्।	=शरीर वचन मन उच्छ्वास (प्राण) अपान (=निःश्वास) जीवोंके
पुद्गलानाम्। उपकारः। भवति।	=पुद्गल द्रव्यके वा पुद्गल कृत उपग्रह अर्थात् उपकार है
वृत्त्यनुवादः—इदम्। अयुक्तं। वर्तते। किं*अत्र*अयुक्तम्।	=(प्रश्न) यह ठीक नहीं (अयुक्त) है (वर्तते) यहां क्या ठीक नहीं है ?
पुद्गलानाम्। कः। उपकारः। इति*परिप्रश्ने।	=पुद्गलोंका क्या उपकार है ऐसा पूछने पर
पुद्गलानाम्। लक्षणम्। उच्यते। भवता।	= पुद्गलोंका लक्षण आपसे कहा गया है
शरीर-आदीनि। पुद्गल मयानि। इति*एतत्।	=क्योंकि शरीर आदिक पुद्गलमयी है (उत्तर) यह
न अयुक्तम्। पुद्गलानाम्। लक्षणम्। उत्तरत्र*	= अयुक्त नही है (क्योंकि) पुद्गलोंका लक्षण यहांसेआगे (=उत्तरत्र)
स्पर्श-रस-गन्ध वर्ण-वन्त पुद्गलाः। इति*अत्र*	=(स्पर्श-रस गन्ध-वर्णवाले) पुद्गल है इस प्रकार इसठौर (=अत्र)
वक्ष्यते।	=(अर्थात् इस अध्यायके तेईसवां सूत्रमें) कहेंगे ॥
इदम्। तु*जीवान्। प्रति*पुद्गलानाम्। उपकार-	= यह (सूत्र) तो जीवोंकी ओर (=प्रति) पुद्गलोंका उपकार
प्रतिपादन-अर्थम्। एव*इति*उपकार-प्रकरणे। उच्यते।	= कहनेके लियेही (=एव) ऐसा उपकारके प्रकरण ना प्रसंगमें कहागया है
शरीराणि। उक्तानि। औदारिक आदीनि। सौक्ष्म्यात्।	= शरीर औदारिक आदिक (नामकर्मकी प्रकृतिरूप) कहे ॥ वे सूक्ष्म होनेसे
अप्रत्यक्षाणि। तद्-	=इन्द्रियगोचर (प्रत्यक्ष) नही हैं; उन (औदारिक आदिकर्मप्रकृतिरूप सूक्ष्म शरीरोंके)
उदय-आपादित (तद्-उभय-उपपादित ?)	=उदयकरि उत्पन्न हुई (=आपादित) (उन दोनो सूक्ष्म और अप्रत्यक्षरूप औदारिक आदि कर्म प्रकृतिरूप शरीरो द्वारा जन्य, शरीरों द्वारा उत्पन्नहुई

(१) दोनों बार की छपी 'सर्वार्थसिद्धिवृत्तिमें तदुदयापादित (तदुभयोपपादित ?) ऐसे पाठ हैं तीन हस्तलिखित सर्वार्थसिद्धिवृत्तिकी प्रतियोंमें तदुदयोपपादित पाठ है। सूत्रके नीचे राजवार्तिक मुद्रितमें, दो हस्तलिखित प्रतियोंमें 'तदुदयापादित' पाठहै॥ हमने मुद्रित सर्वार्थसिद्धिवृत्तिके पाठ लिये हैं ॥

उपकाराधिकारादुपग्रहवचनमनर्थकम्[१]। नानर्थकम् । स्वोपग्रहप्रदर्शनार्थमिदम् । पुद्गलानां पुद्गलकृत उपकार इति ॥ तद्यथा—कांस्यादीनां भस्मादिभिर्जलादीनां कतकादिभिरयःप्रभृतीनामुदकादिभिरुपकारः क्रियते ॥ चशब्दः किमर्थः ? । समुच्चयार्थः । अन्योऽपि पुद्गलकृत उपकारोऽस्तीति समुच्चीयते । यथा शरीराणि एवं चक्षुरादीनीन्द्रियाण्यपीति ॥

एवमाद्यमजीवकृतमुपकारं प्रदर्श्य जीवकृतोपकारप्रदर्शनार्थमाह—

उपकार-अधिकारात् (१)उपग्रह-वचनम् ।। =उपकारका प्रकरण होने(के कारण)से(सूत्रमें) उपग्रहशब्द
अनर्थकम् ।।; न-अनर्थकम् ।।; स्व-उपग्रह- =निष्प्रयोजन है(उत्तर)(सूत्रमें उपग्रहशब्द)निष्प्रयोजन नहीं है । अपने लिये सहायता
प्रदर्शन-अर्थम् ।।पुद्गलानाम् पुद्गलकृतः =दिखावनेके लिये कि पुद्गलोंका पुद्गलकृत
उपकारः इदं ।।इति*तद्यथाकांस्यादीनां ।।भस्मादिभिः =उपकार है यह(उपग्रहवचन इस सूत्रमें)है । जैसे कांसादिकोंका भस्मादिकरि
जलादीनाम् ।।कतकादिभिः ।।अयस्-प्रभृतीनाम् ।। =जलादिकोंका निर्मली आदिकरि (और उष्ण) लोहादिकोंका
उदकादिभिः ।। उपकारः क्रियते ।।। =जलादिकोंसे उपकार वा अनुग्रह कियाजाता है । अर्थात् कांसादिक धातु भस्मकरि उज्ज्वल होजाते है तथा जलादिक निर्मली आदिके संयोगसे मैलरहित होजाते है और तप्त लोहादि पानीके डालनेसे शीतल होजाते हैं इत्यादिक पुद्गलद्रव्योंके पुद्गलकृत उपकार हैं
चशब्दः किम्*अर्थः समुच्चय-अर्थः ।अन्यः अपि* =(इस सूत्रमें)चशब्द किसलिये है ? । समुच्चय अथवा समुदायके लिये है और भी
पुद्गलकृतः उपकारः अस्तिTइति*समुचीयतेT =पुद्गलका किया हुआ उपकार है ऐसा समुचय कियागया है
यथा*शरीराणि ।।एवम्*चक्षुर्-आदीनि ।। =जैसे(पूर्वोक्त)शरीरादिक(पुद्गलजन्यजीवको उपकारी)है ऐसे नेत्रादिक
इन्द्रियाणि ।।अपि*इति*एवम्*आद्यम् अजीवकृतम् =इन्द्रियांभी(पुद्गलकृत जीवोंको अन्य उपकार)हैं इसप्रकार प्रथम अजीवका किया हुआ
उपकारम् प्रदर्श्य – जीवकृत-उपकार- =उपकार(जीवोंप्रति)दिखाकर जीवका कियाहुआ(परस्पर)अनुग्रह वा भलाई(उपकार)
प्रदर्शन-अर्थम् ।। आहT =दिखानेके लिये(आचार्य्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

(१) क्योंकि 'उपग्रहा' शब्द इस सूत्रमें बहुवचन है इससे सुख-उपग्रह, दुःख-उपग्रह, जीवित-उपग्रह, मरण-उपग्रहके पश्चात्भी 'पुद्गलानं' पुद्गलानाम् उपग्रह है(अर्थात् पुद्गलोंको पुद्गलकृत सहायता है) ऐसाभी अनुवर्तन है । (२) खड्गधाराश्रित तोय भिनत्ति गजमस्तकम् ॥

॥ परस्परोपग्रहो जीवानाम् ॥ २१ ॥

परस्परशब्दः कर्मव्यतिहारे वर्तते । कर्मव्यतिहारश्च क्रियाव्यतिहारः । परस्परस्योपग्रहः परस्परोपग्रहः । जीवानामुपकारः ॥ कः पुनरसौ ? । स्वामी भृत्यः, आचार्यः शिष्यः, इत्येवमादि भावेन वृत्तिः परस्परोपग्रहः ॥

(१)सूत्रम्—परस्परोपग्रहो जीवनाम्(२१) = परस्परोपग्रहो(जीवानाम्)जीवानाम्(उपकारः)भवति॥ २१॥

सूत्रार्थः—परस्पर-उपग्रह-(२)जीवानाम्	=परस्पर उपकार जीवोंको
जीवानाम्। (३ उपकारः। भवति।	=जीवोंका उपकार है अर्थात् जीवकारणवशात् एक दूसरेका सुख दुःख जीवन मरण तथा सेवा शुश्रूसा आदिसे उपकार करते हैं भावार्थ एक जीव दूसरेको आपसमें सुख का निमित्त, दुःखका निमित्त, जीवनका हेतु मरणका निमित्त और सेवा शुश्रूसा आदिका हेतुभी होते हैं
वृत्त्यनुवादः—परस्परशब्दः। कर्म-व्यतिहारे। वर्तते।	=(इस सूत्रमें)परस्परशब्द क्रिया(=कर्म)के अलटन पलटन(=व्यतिहार)केअर्थविषैं वर्तता है
कर्मव्यतिहारः। च*क्रियाव्यतिहारः।	=और(=च) कर्मव्यतिहार है सो क्रिया व्यतिहार है अर्थात् उसका उपग्रह वह करता है और उसको उपग्रह वह करता है
परस्परस्य। उपग्रहः। परस्पर-उपग्रहः।	=आपसका उपग्रह वा अनुग्रह है सो परस्पर उपग्रह है
जीवानाम्। उपकारः।	=(वह परस्परउपग्रह) जीवोंका उपकार है अर्थात् आपसमें जीवोंकें एक दूसरेकेलिये उपकार प्रवर्तता है
कः। पुनः*असौ। स्वामी। भृत्यः।	=(प्रश्न)वहुरि(=पुनः)वह(=असौ)(परस्पर उपग्रह) क्या है (उत्तर) स्वामी, चाकर
आचार्यः। शिष्यः। इत्येवम्*आदि।।।भावेन।	=आचार्य शिष्य इत्यादिककी हृदयकी अवस्थासे(=भावेन)
वृत्तिः।। परस्पर-उपग्रहः।	=जो चेष्टा-उद्योग-उपाय व्यवसायय =वृत्ति, है सो परस्पर उपग्रह है

(१) दोनो सम्प्रदायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है ॥ हमारे यहां किसी २ पुस्तकमें 'जीवानाम्' के स्थान पर 'जीवाना' पाठ है वह कातन्त्ररूप माला व्याकरणके अतिरिक्त अशुद्ध है (देखो अध्याय प्रथम टिप्पणी पृष्ठ ५, ६, और पृष्ठ ५३६, ५४०)
(२) 'जीवानाम्' शब्दकी अनुवृत्ति १५वें सूत्रसे लीगई है। (३) 'उपकार' इस शब्दकी अनुवृत्ति सत्रहवां सूत्रसे लीगई है।

स्वामी तावद्वित्तत्यागादिना भृत्यानामुपकारे वर्तते । भृत्याश्च हितप्रतिपादनेनाहितप्रतिषेधेन च ॥ आचार्य उभयलोकफलप्रदोपदेशदर्शनेन तदुपदेशविहितक्रियानुष्ठापनेन च शिष्याणामनुग्रहे वर्तते । शिष्या अपि तदानुकूल्यवृत्या आचार्याणामुपकाराधिकारे ॥ पुनरुपग्रहवचनं किमर्थम् ? पूर्वोक्तसुखादिचतुष्टयप्रदर्शनार्थं पुनरुपग्रहवचनं क्रियते ॥सुखादीन्यपि जीवानां जीवकृत उपकार इति ॥ आह यद्यवश्यं सतोपकारिणा भवितव्यं संश्च कालोऽभिमतस्तस्य क उपकार

स्वामी तावत् * वित्तत्याग-आदिना भृत्यानाम् उपकारे वर्तते भृत्याः च * हितप्रतिपादनेन च अहित-प्रतिषेधेन ; आचार्यः उभय-लोक-फल प्रद-उपदेश-दर्शनेन च * तद्-उपदेश-विहित-क्रिया-अनुष्ठापनेन शिष्याणाम् अनुग्रहे वर्तते । शिष्याः अपि * तद्-आनुकूल्यवृत्या आचार्याणाम् उपकार-अधिकारे, पुनर् * उपग्रह-वचनम् किम् अर्थम् ? पूर्व-उक्त-सुख आदि-चतुष्टय-प्रदर्शन-अर्थम् पुनर् * उपग्रहवचनम् क्रियते ; सुख-आदीनि अपि * जीवानाम् जीवकृतः उपकारः इति * आह । यदि * अवश्यम् * सता-उपकारिणा भवितव्यम् ; सन् च * कालम् अभिमतः तस्य कः उपकारः

=स्वामी तौ(=तावत्)धन(=वित्त)देने आदिसे(=त्यागादिना) सेवकोंकी
=सहायता करने)में प्रवर्तता है और(=च)चाकर हितकी वार्ता कहिकरि और अहितका
=निषेधकरि स्वामियोंकेउपकारमेंप्रवर्तता है) आचार्य दोनों लोकका फलदेनेवाला(प्रद)
=उपदेशको दिखावनेकरि और(=च)उस उपदेशके अनुकूल उचित अथवा योग्य
=क्रियाका आचरण करावनेकरि शिष्योंके उपकार (=अनुग्रह) में
=प्रवर्तता है । चेलेभी उस(आचार्य)के अनुकूलपना(=आनुकूल्य)में प्रवृत्ति होकर
=आचार्योंके उपकार विषयमें अधिकारमें)(प्रवर्तते है)(प्रश्न)बहुरि
=उपग्रह शब्द(इस सूत्रमें)किसलिये है । पहिले(सूत्र अर्थात् इस अध्यायके२०वां सूत्रमें)
=कहे हुए सुखदुःख-जीवित-मरण-चारअवयवोंके दिखावनेके लिये फिर (=पुनः)
=उपग्रहवाक्य(=इससूत्रमें)कियागया है सुख-दुःख-जीवित-मरणभी
=जीवोंके जीवकृत उपकार है कोई पूछता है कि जो (=यदि)
=सत्तारूपवस्तु(=सत्)अवश्य उपकार सहित होनेयोग्य (=भवितव्यम्) है
=और काल सत्तारूप वा सत्स्वरूप (=सन)मानागयाहै तोतिस(काल)काक्या उपकार है

(१) सत यहांपर प्रथमा विभक्ति एकवचन पुलिंग 'सत शब्दका है । इसका अर्थ सतरूप अथवा सत्स्वरूपहै।()तत्त्वार्थराजवार्तिकमें 'आहसे इत्यत्रोच्यते' तक यह वाक्य वैसा ही है जैसाकि सर्वार्थसिद्धिवृत्तिमें है 'तस्य क उपकारः' के स्थानमें 'सत्किमुपकार.' राजवार्तिकमें है उससे अर्थ भेद नहीं होताहै। इस वाक्यका अनुवाद पंडित पन्नालालजी दूनीवाले और पंडित पन्नालालजी न्यायदिवाकर ने क्रमसे ऐसे किया है 'कोऊ शिष्य कहै है जो अवश्य

इत्यत्रोच्यते—

वर्तनापरिणामक्रियाः परत्वापरत्वेचकालस्य ॥ २२ ॥

भावार्थ ऐसा है कि जब यह बात सुनिश्चितरूपसे मानी जाचुकी है कि जो सत्स्वरूप होगा वह अवश्य उपकारी होगा जैसे धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य इत्यादि पदार्थ सत्स्वरूप हैं इसलिये वे उपकारी मानेगये हैं तब काल द्रव्यभी सत्स्वरूप पदार्थ है उसका उपकार है। कालद्रव्यका लक्षण विशदरूपसे आगे सूत्र ३९मैं कहाजायगा और वह अमूर्तीक स्वरूप और निष्कर्म है सब द्रव्योका यहां उपकार प्रकरण है इसलिये

इति*अत्र*उच्यतेT

=इस प्रकार यहां (अग्रिमसूत्रमें) कहाजाता है कि—

[1]सूत्रम्—वर्तनापरिणामक्रियाः परत्वापरत्वे च कालस्य ॥ २२ ॥

उपकारीकू सत् होनों योग्य है सो सतरूप काल अभिमत है सो कहा उपकारवान है"। तत्त्वार्थराजवार्त्तिक अध्याय५ पृष्ठ ६६ आगैं जो सत्तारूप वस्तु
है सोई उपकारकरि परिणमन रूप होय है। काल द्रव्य भी सत्ता स्वरूपहै" सो कालद्रव्य कहीं उपकाररूप है" तत्त्वार्थरत्नमाला अध्याय ५ पृष्ठ ६२ ॥
(१) इस सूत्रके कई पाठ है। मुद्रितसस्कृत सर्वार्थसिद्धि की और पन्नालालजी वाकलीवाल मुद्रित मोक्षशास्त्रकी दोनों दोनो आवृत्तियोंमें उपर्युक्त पाठ
हैक्योंकि अनुवाद सस्कृत सर्वार्थसिद्धिसे किया है। अत पूर्वोक्त पाठ लिया है (२) सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ १२७में वर्तना परिणाम क्रिया
परत्वापरत्वेचकालस्य" ऐसा पाठ है। वहांपर उक्तभाष्यमें यह टिप्पणी भी है कि "यहां पर वर्तना, परिणाम और क्रिया इन तीनों पदोंका विरोध न
होनेसे समास करके पढना चाहिये कोई असमस्त ही पढते है। सापेक्ष होनेसे परत्वापरत्वका तो समास है ही"। और तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक(मुद्रित)
पृष्ठ ४१२में पूर्णतया सभाष्यका ही पाठ है अर्थात् दोनों आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ एकप्रकारसे एकसा "वर्तना परिणामः क्रिया परत्वापरत्वेच काल-
स्य"हुआ॥२२॥ और दोनों आम्नायोंमे अर्थभी एकसा है॥ (३) पडित सदासुखजी कृता "अर्थप्रकाशिका" के पृष्ठ ३०८ और पंडित सदासुखजीकृता
लघु सूत्रटीका के पृष्ठ २१ में, पडित जयचन्द्ररायजी कृता सर्वार्थसिद्धि वचनिकाके पृष्ठ १४० में, निर्णयसागर मुद्रित बम्बई के जैन नित्यपाठसग्रहके
१२६ दोनों आवृत्तियोंमें (जहां तत्त्वार्थसूत्र मुद्रित है) और श्रीयुत् ज्ञानचन्द्रजी मुद्रित तत्त्वार्थसूत्राणि के पृष्ठ १६में और सनातन जैनग्रन्थमालाके पृष्ठ
९० में तथा तत्त्वार्थराजवार्तिक के पृष्ठ २२३ में निम्नलिखित पाठ है। "वर्तना परिणाम क्रिया. परत्वापरत्वेच कालस्य" इस पाठमें दो शकायें उत्पन्न
होती है। चकार इस स्थान पर क्यों लाये, दूसरी शका यह कि जब वर्तना शब्दसे परत्वे शब्दपर्यन्त एकसमासहै जोकि तौद्विवचनमेंसमासान्त क्यों
किया? बहुवचन करके ऐसा सूत्र क्यों न किया कि "वर्तनापरिणामक्रियापरत्वापरत्वानि च कालस्य" (क) चकारके सम्बन्ध में पूज्यपाद स्वामीने
वृत्तिमें भी कुछ नहीं लिखा कि क्यों लाए और जहांतक खोज कियागया हैं किसी भाषाके अनुवादक महाशय ने भी नहीं लिखा कि "च"शब्द सूत्रमें
इस कारणसे लाये हैं, हां पन्नालाल वाकलीवालकृत मोक्षशास्त्र बालबोधनी भाषाटीका सहित द्वितीयावृत्ति के पृष्ठ ३६ में ऐसा अर्थ किया है
"(च)और (कालस्य) कालके (वर्तना-परिणामक्रिया) वर्तना, परिणाम क्रिया तथा(परत्वा परत्वे)परत्व और अपरत्व ये पांच उपकार हैं" इस अनुवादमें

= वर्तना-परिणाम-क्रियाः-[१]परत्वापरत्वेच(जीवानाम् पुद्गलानाम्) कालस्य(उपकारः)भवति॥ २२॥

"और तथा और येतीनों चके अर्थवाची होसकते हैं परन्तु चकार को कोष्ठकमें लानेके पश्चात् "और" शब्द लायेहैं। इससे जानपडता है कि उपकार का प्रकरण समाप्ति होनेके कारणसे इस सूत्रसे पिछले सूत्रसे मिलादिया है अर्थात् जीवोंके परस्पर उपकार है (सूत्र २१) और (=च) कालके वर्तना, परिणाम, क्रिया,परत्व,अपरत्व ये पांच उपकार हैं॥ सूत्र२२॥ ऐसें दोनों सूत्रोंको मिलासकते है। 'तथा'शब्द अधिक जान पडताहै अतिम'और' शब्द 'परत्वापरत्वे' समासको तोडनेसे "परत्व अपरत्वच' ऐसा होजाता है सो इस चकारका भाषानुवाद है। पडित सदासुखजीकृता अर्थप्रकाशिका और पडित जयचदजीकृता सर्वार्थसिद्धि वचनिका में चकारका भाषानुवाद नहीं है अर्थात् दोनोंमें यथाक्रम ऐसा अर्थ किया है कि "वर्तना परिणाम क्रिया परत्व अपरत्व ए कालकृत उपकार हैं"। वर्तना परिणाम क्रिया परत्वा परत्व ए कालके उपकार हैं॥

(॥) द्विवचनान्त क्यों है (उत्तर) संस्कृत सर्वार्थसिद्धि पृष्ठ २८८ का पाठ है कि 'ननु वर्तनाग्रहणमेवास्तु'=इस सूत्रमें वर्तनाका ग्रहणही होना चाहिये 'तद्भेदा. परिणामादयस्तेषां पृथग्ग्रहणमनर्थकम्' ॥उस वर्तनाके भेद परिणाम, क्रिया,परत्व अपरत्व है तिन भेदोंका भिन्न ग्रहण निष्प्रयोजन है नानर्थकम्=निष्प्रयोजन परिणामदयका ग्रहण नहीं है॥ कालद्वय सूचनार्थत्वात्प्रपञ्चस्य=क्योंकि कालके दो भेद प्रगट करनेके लिये विस्ताररूप कथन है। कालोहि द्विविधः परमार्थकालो व्यवहारकालश्च=काल दो प्रकार है परमार्थकाल और व्यवहारकाल

परमार्थकालो वर्तना लक्षण:=वर्तना है लक्षण जिसका सो परमार्थकाल है॥ परिणामादि लक्षणो व्यवहारकालः=परिणाम, क्रिया, परत्व अपरत्व हैं लक्षण जिसके सो व्यवहारकाल है॥ जब वर्तना निश्चयकालका लक्षण है और परिणाम क्रिया परत्व अपरत्व व्यवहारकालके लक्षण हैं तब वर्तना शब्दको एक वचन मानकर और परिणाम क्रिया परत्व अपरत्व इन सबको एक मानकर दोनोंको मिलाकर वर्तना परिणाम क्रिया परत्वापरत्वे ऐसा द्विवचन किया है। दोनों शकाओंका समाधान ऐसा होसकता है कि यदि चकारको समुच्चयके अर्थमें लेलें अर्थात् उपकारका प्रकरण समाप्ति होनेके कारणसे इस सूत्रको पूर्व२१वांसूत्रसे मिलादिया जावे,'वर्तना'को निश्चयकालका लक्षण मानकर और परिणाम-क्रिया-परत्वअपरत्वको व्यवहारकालका लक्षण मानकर, दोनोंप्रकारके लक्षणोंको एक एक मानकर मिला देवें, समास करदेवें तो'च वर्तनापरिणामक्रियापरत्वापरत्वेकालस्य'ऐसासूत्रहोजाताहै

(१) सर्वार्थसिद्धि वृत्तिमें "वर्तनापरिणामक्रियाः परत्वापरत्वेच कालस्य" ऐसे सूत्रका यह हेतु दिया है कि 'परत्वापरत्वे' (=परत्व अपरत्व च) सापेक्ष होनेसे 'परत्व-अपरत्व' को दो शब्द पृथक् पृथक् समझकर नपुसकलिंगमें द्विवचनमें लाये औरवर्तना-परिणाम क्रिया इतनेका एकसमास करके "वर्तना परिणाम क्रियाः" ऐसा स्त्रीलिंग बहुवचनमें लाये क्योंकि क्रियाशब्द स्त्रीलिंग है॥ परत्व अपरत्व दोनों नपुसकलिंगी हैं और "च" 'वर्तना-परिणाम क्रियाः' और 'परत्वा परत्वे' दोनों समासोंको मिलाता है। अब अर्थ ऐसा हुआ कि 'वर्तना-परिणाम क्रिया और परत्वापरत्वकालके उपकार हैं॥ यहांपर स्मरण रहै कि इस सूत्रमें 'कालस्य' शब्दका प्रयोग सामान्यरूपमें किया है 'कालशब्द' निश्चयकाल और व्यवहारकाल अर्थात् समय आवली, मुहूर्त, पहर, दिन इत्यादि दोनों का द्योतक है इसलिये यह अर्थ हुआ कि "वर्तना निश्चय वा परमार्थकालका लक्षण है और परिणाम, क्रिया परत्व और अपरत्व व्यवहारकालके लक्षण हैं॥

=(१)वर्तना-परिणाम-क्रियाः—च परत्वम् अपरत्वम् च(=परत्वापरत्वे)जीवानाम् पुद्गलानाम् कालस्य उपकारः भवति॥२२॥

सूत्रार्थः—वर्तना-	=वर्त्तना (=पदार्थोंकी पर्यायोंके पूरणकरनेमें बाह्य सहकारता)
परिणाम-	=परिणाम(=द्रव्यका अपने स्वभावको न छोड़कर पहिली अवस्थाको छोड़कर दूसरी अवस्थारूप होना)
क्रियाः	=क्रिया (=हलनचलनादिरूप होना अथवा एक क्षेत्रसे दूसरे क्षेत्र तक जाना)
च*परत्वम्	=और परत्व (=एकसे दूसरेका काल रचित अवस्थामें बड़ापन अथवा पहिले होना वा पूर्वता)
अपरत्वम् च*	=तथा अपरत्व (एक दूसरेका काल रचित अवस्थामें छोटा होना अथवा पिछलापन वा छोटापन)
जीवानाम् पुद्गलानाम्	=(ये पांच) जीवोंको और पुद्गलोंको
कालस्य उपकारः	=काल(द्रव्य कृत उपकार है अर्थात् वर्तना लक्षण निश्चय वा परमार्थ कालका है और परिणाम, क्रिया, परत्व और अपरत्व व्यवहार कालके लक्षण हैं भावार्थ यह है कि कालद्रव्य दो प्रकारका है (१) निश्चयकाल वा परमार्थकाल (२) व्यवहारकाल (१) जो आदि तथा अन्तसे रहित है अमूर्त्त है, नित्य है समय घंटा आदिका उपादानकारण भूत हैं तो भी समय आदि भेदोंसे रहित है और कालाणुद्रव्यरूप हैं वह तो निश्चयकाल है वृहद्द्रव्यसंग्रह (पृष्ठ ५४) (२)जो आदि तथा अन्तसे सहित है समय घटिका तथा प्रहर आदि विवक्षित व्यवहारके विकल्पोंसे युक्त है वह उसी द्रव्यकालका पर्यायभूत व्यवहारकाल है (वृहद्द्रव्य संग्रह पृष्ठ ५४) अथवा यों कहिये कि जीव तथा पुद्गलका परिवर्तन जो नूतन तथा जीर्ण

---

(१)धर्मादिक द्रव्यें अपनी अपनी पर्यायोंके पूर्णार्थ (=पूरणार्थ)अपने अपने उपादान-कारणकरि स्वभावसेही वर्तें हैं तौभी(=तथापि)जैसे कुम्हारके चाकके भ्रमणमें उसके नीचेकी शिलाकीली सहकारिणी है तैसे जो उस अन्तरंग परिणतिमें अथवा वर्तनेमें बाह्य कारण है जो सब पदार्थोंकी परिणतिमें सहकारी है उसीको "वर्तना" कहते हैं॥

(२) वर्तें तो सर्वद्रव्योंके पर्याय हैं उन द्रव्योंका प्रवर्तानेवाला अथवा हेतुकर्ता कालद्रव्य है तिस समय स्वरूप वर्तनाको कालका वर्तना कहिये (सर्वार्थसिद्धि वचनिका पृष्ठ ४४२) यहां भावार्थ ऐसा है जो धर्मादि द्रव्योंके पर्याय समय समय पलटने हैं सो इस पलटाने कूं समय है सोही निमित्त मात्र है। तिस समय ही कूं कालकी वर्तना कहिये है। यह वर्तना ही कालाणु, द्रव्यका अस्तित्व जनावे है। बहुरि इस वर्तनाकूं जेती बार लगी ताका नाम काल कहिये। सो यह व्यवहारकालसंज्ञा है। सो तिस निश्चयकालकी अपेक्षा ही तें कहिये है ऐसे यह वर्तना द्रव्यनिकूं कालका उपकार है। सर्वार्थसिद्धिवचनिका पृष्ठ ४४२

वृतेर्णिजन्तात्कर्मणि भावे वा [१]युट् स्त्रीलिङ्गे वर्तते । तेनेति भवति ।

पर्याय है उस पर्यायकी जो समय घटिका आदिरूप स्थिति है वहही जिसका स्वरूपहै वह द्रव्यपर्यायरूप व्यवहारकाल है सोही संस्कृत प्राभृतमे कहाभी है कि "स्थिति जो है सो कालसंज्ञक है" तात्पर्य यह है कि उस द्रव्यके पर्यायसे संबन्ध रखनेवाली जो समय घटिका आदिरूप स्थिति है वह स्थितिही 'व्यवहारकाल' इस संज्ञाकी धारक होतीहै ॥ निश्चयकालका वर्तनालक्षण है और व्यवहारकालके परिणाम, क्रिया, परत्व,अपरत्व लक्षणहैं ये पांचो निश्चयकालके निमित्तसे होते है और अन्य द्रव्योको यह (निश्चय)कालद्रव्यका उपकार है और उसी परमार्थकालका अस्तित्व जतावे है । क्योंकि व्यवहारकाल गौण निश्चय मुख्यकाल के विना नही होसकता है ॥ व्यवहारकाल अन्यपदार्थों करि जाना जाता है जैसे दिनरात आदिक व्यवहारकाल सूर्यादिकके उदय अस्तसे जाने जाते है और व्यवहारकाल ही अन्य पदार्थों के जतलानेका कारण है जैसे यह पुल शतवर्षका है ॥ यातैं (व्यवहारकालसे)निश्चयकाल जाना जाता है । (सर्वार्थसिद्धि वचनिका पृष्ठ४४३देखो) 'जीवपुद्गलोंकेपरिणमनकरि व्यवहारकाल प्रगट होय है सो यह व्यवहारकाल तीनप्रकार है' (अर्थप्रकाशिका पृष्ठ३०९) अतीत(=भूत) वर्तमान अनागत(=भविष्यत्) ॥ निश्चयकालविषैं एक एक लोकाकाशके प्रदेशविषैं आपसमें परस्पर भिन्न २ रत्नकी राशिके सदृश तिष्ठते असंख्यातकालाणु तिनकों काल कहना सो तो मुख्य है और भूत वर्तमान भविष्यत् नाम कहना गौणहै और व्यवहारकालविषैं अतीत वर्तमान अन्तगतनाम है सो तो मुख्य है और काल कहना गौण है ।

वृत्त्यनुवादः—(२)वृतेः[५] णिच्-अन्तात्[५] =वृत्(=होना)(धातु)से(परैं)णिच्(प्रत्यय)के अन्तमें आनेसे (वृत् धातुका) प्रेरक(प्रयोजक हेतुकर्ता वा काममें लगानेहारा)अर्थ होजाता है अर्थात् वृत् धातु)अकर्मकसे सहेतुक सकर्मक क्रिया होजातीहै

कर्मणि[७]॥ भावे[७] वा*युट्[१] =(सो वृत् धातु)कर्मविषैं(कर्मणि प्रयोगमें)वर्तता है अथवा भावमें युट्(=अन) प्रत्यय सहित

स्त्रीलिंगे[७] वर्तते[T] तेन[३] इति*भवति[T] =स्त्रीलिंगमें वर्तता है । तिस (कर्मणि वा भावे) करि ऐसा होता है

(१) पूज्यपाद स्वामीके 'युट्' श्रीपाणिनिके "ल्युट्" और श्रीतत्त्वार्थश्लोकवार्तिकके रचयिताके युक् प्रत्ययोंके स्थानमें 'अन' होजाता है सूत्रमें 'काल'शब्द सामान्यतासे निश्चय और व्यवहार कालका द्योतक है । (२)(क) वृतेर्णिजन्तात्कर्मणि भावे वा युट् स्त्रीलिंगे वर्तते । तेनेति भवति । वर्त्यते वर्तनमात्र वा वर्तना इति ॥ ऐसा पाठ सर्वार्थसिद्धिकी वृत्तिकी प्रथमा वृत्तिमें है । (ख) वृतेर्णिजन्तात्कर्मणि भावे वा युट् स्त्रीलिंगे वर्तनेति भवति । वर्त्यते वर्तने वर्तनमात्र वा वर्तना इति ॥ यह पाठ सर्वार्थसिद्धिकी द्वितीया वृत्तिमें है । द्वितीयावृत्तिके पाठमें 'वर्त्यते'के पश्चात 'वर्तने' शब्द नहीं होना चाहिये शेष पाठमें यद्यपि दोनों सस्करणों में कुछ अन्तर है परन्तु अर्थ दोनों पाठोंका एकसा बनजाता है जैसे प्रथमके अर्थके लिये देखो इस पृष्ठको और पृष्ठ८० को । दूसरेके स्त्रीलिंगे वर्तनेति भवति वाक्यका अर्थ है कि'स्त्रीलिंगमें वर्तना शब्द ऐसा होता है' ॥ दूसरे भागमें 'वर्तते' शब्द इस हेतुसे ठीक नहीं है कि वह 'कर्तरि' प्रधान "वृत्" धातुका है और यहां पर केवल 'कर्मणि प्रयोग' और 'भावे प्रयोगमें' 'वृत्'में णिच् प्रत्यय लगाया है ॥ तीन

वर्त्यते वर्तनमात्रं वा वर्तना इति ॥ धर्मादीनां द्रव्याणां स्वपर्यायनिर्वृत्तिं प्रति

वर्त्यते ।' =वर्ताया जाता है (यह वाक्य कर्मणिप्रयोगमें या कर्मप्रधानमें न कि कर्तरिप्रयोग वा कर्तृप्रधानमें है)

वर्तनमात्रं[१]वा॰वर्तना[२]॥ इति॰ =प्रवर्तावनेमात्र या वर्तनमात्र है सो वर्तना ऐसा भावेप्रयोग=भावमें काम लायागया) है । सो वर्तनाशब्द ऐसे बना है कि वृत् - णिच् + युट् - आ (=स्त्रीलिंगका चिन्ह)=वर्त + अन + आ=वर्तना णिच्केलगानेसे ऋको गुणसंज्ञा होकर वर्त् होगया और सहेतुक सकर्मक क्रिया होगई ॥ वर्तना=दूसरोंको प्रवर्तावना अर्थात् पदार्थोंमें परिणमन में सहकारिता । भावार्थ यह है कि वृत् धातुके अन्तमें णिच्प्रत्यय लगाया जिस णिच् प्रत्ययका यह फल होताहै कि वृत् धातुके ऋको गुणसंज्ञाहोकर वर्त् शब्द बनजाताहै और वृत् अकर्मक धातुको (णिच्प्रत्यय) सहेतुक सकर्मक करदेता है अर्थात् वृत् धातुका अर्थ (दूसरोंको) वर्तावना ऐसा होजाता है फिर युट् प्रत्यय जिसके स्थानमें अन होजाता है जोड़ा जाता है तब वर्त + अन=वर्तन शब्द बना पश्चात् 'आ' स्त्रीलिंगका चिन्ह जोड़नेसे वर्त् + अन + आ होजाता है इसलिये वर्तना शब्द स्त्रीलिंग भावप्रयोगमें बना और उपर्युक्त कथित 'वर्त्' धातुमें यक्कर्मप्रधानका चिन्ह जोड़कर फिर अन्यपुरुष एकवचन आत्मनेपद वर्तमान क्रियाकाचिन्ह'ते'लगाते हैं तब वर्त + य + ते=वर्त्यते कर्मप्रधानमें)बनगया इस'वर्त्यते'काअर्थ वर्तायाजाताहै इसलिये 'वर्तना' भावप्रयोगमें स्त्रीलिंगमें बना और'वर्त्यते' कर्मप्रधान,एकवचन,अन्यपुरुष वर्तमानक्रियाका रूप बना॥

धर्मादीनां द्रव्याणां स्वपर्याय निर्वृत्ति[३]॥ प्रति॰ =धर्मादिक द्रव्यें अपने अपने पर्यायोंके निर्वृत्तिके लिये (=निवृत्ति प्रति)

प्रति हस्तलिखित सर्वार्थसिद्धि 'र्थाय स्यार्जत वर्ततेति मवति । वर्तते वर्तमानमात्र वा वर्तनेति' ऐसा पाठ है ॥ तत्त्वार्थराजवार्तिकका पाठ कि स्वार्निगे (कर्मणिभावे वा णिचन्तात्) युचि सति वर्तनेति भवति । वर्त्यते वर्तनमात्र वा वर्तनेति' ऐसा है ॥ इसलिये हमने प्रथमावृत्तिका पाठ लिया है ॥

(१) प॰ जयचन्द्रायजाने वचनिका (पृष्ठ ४४२) म उत्पत्ति लिखा है, सम्भव है कि जिस पाठके उन्होने वचनिका की हो उस पाठमें 'निर्वृत्ति'के स्थानमें उत्पत्ति, वृत्ति वा निर्वृत्तिमेंसे कोई शब्द हो क्योंकि इन तीन शब्दोंमेंसे कोईभी उत्पत्तिके अर्थमें आसकता है परन्तु 'निवृत्ति' का अर्थ उत्पत्ति नहीं हासकता है राजवार्तिक और श्लोकवार्तिकभी अवलोकन कियेगये परन्तु कुछ सफलता प्राप्त नहीं हुई ॥ "निर्वृत्ति"शब्द सर्वार्थसिद्धि वृत्तिकी हस्तलिखितके तीन प्रतियोंमें पायाजाता है परन्तु सर्वार्थसिद्धिकी दोनों आवृत्तियोंमें 'निवृत्ति' छपा हुआ है ॥ इससे मैंने उस शब्दको लेकर अनुवाद किया है और मेरी समझमें एक प्रकारसे दोनोंही शब्दोंसे एकही भाव प्रगट होसकता है क्योंकि किसी द्रव्यकी एक पर्यायकी जिस समय निवृत्ति होती है उसी समयमें दूसरी पर्यायकी उत्पत्ति या निर्वृत्ति होती है अथवा यों कहसकते है किसी द्रव्यकी जिस समय एक पर्यायकी उत्पत्ति होता है उसी समय उस द्रव्यकी दूसरा पर्यायकी निर्वृत्ति होती है जैसे जिस समयमें आंगुलिरूप द्रव्यके वक्र (बांके) पर्यायकी उत्पत्ति होती है उसी समयमें उसके सरल पर्यायकी निवृत्ति होती है और अंगुलीरूपमें उस अंगुलीमें ओहर है अथवा यों दृष्टान्त लीजिये कि जिससमयमें अंगुलिरूप द्रव्यके सरल पर्यायकी निवृत्ति होती है उसी समयमें उसकी वक्री पर्यायकी उत्पत्ति होती है ॥ वृत्त = उत्पन्न (पद्मचन्द्रकोशपृष्ठ १६४ अत 'वृत्ति' स्त्रीलिंगमें उत्पत्ति के अर्थमें आसकता है ॥

स्वात्मनैव वर्तमानानां बाह्योपग्रहाद्विना तद्वृत्त्यभावात्तत्प्रवर्तनोपलक्षितः कालः

स्व-आत्मना³। एव*(१) वर्तमानानाम्³।। बाह्य-	=आपसे स्व-आत्मना³।)ही वर्तमानरूप हैं वा वर्तनेवाली हैं (तौभी) बाह्य
उपग्रहात्⁵। विना*तद्-	=निमित्त विना (सहायता विना वा सहारा विना) उन (धर्मादिक द्रव्यों) की
(२) वृत्ति-अभावात्⁵।	=अन्तरंग परणति (=वृत्ति) वा वर्तना (=वृत्ति) का अभाव होता है। इससे
तत्-प्रवर्तना-उपलक्षितः¹। कालः¹।	=उन (धर्मादिक द्रव्यों)को वर्तनारूपकरनेसे वा प्रवर्तावनेमें काल जाना जाता है-निश्चय कियाजाताहै वा पहचाना जाताहै(=उपलक्षितः)अर्थात् धर्मादिक द्रव्य हैं वे स्वयं उपादान कारणकरि अपनी अपनी पर्यायोंके उत्पत्तिरूप वर्तती हैं तौभी उनकी उक्त पर्यायोंके

लिये बाह्य कारणकी आवश्यकता है, बाह्यनिमित्त विना अन्तरंग परणति नहीं होसकती है, सो तिस अन्तरंग परणति अथवा प्रवर्तनेका समय है सो परमार्थकालका चिन्ह है ॥ जैसे एक मनुष्य जिसकी पदार्थों के देखनेकी शक्ति विद्यमान है परन्तु उस को यदि बहुत अंधेरेमे लेजाकर पदार्थ दिखाये जावैं तो वह किसी प्रकार किसीभी पदार्थको नहीं देख सकता है क्योंकि बाह्य सहकारी कारण अर्थात् उजेला नहीं है इसी प्रकार धर्मादिक द्रव्योंमें अन्तरंग शक्ति वर्तनेकी विद्यमान है तौभी द्रव्यकाल वा निश्चयकालकी सहायता विना वे द्रव्य वर्तनेमें असमर्थ है । इनद्रव्योंको(३)वर्तनारूप करनेमेही निश्चयकालका अस्तित्व ज्ञात होता है ॥

---

(१) 'धर्मादीना' और 'वर्तमानानां' येदोनो शब्द 'द्रव्याणां' शब्दसे सम्बन्ध रखतेहैं और 'द्रव्याणां' शब्दके विशेषणहैं, अत नपुंसकलिंगमें रक्खेगये हैं।

(२) पद्मचन्द्र कोश पृष्ठ ३६४ में 'वृत्ति' शब्दका अर्थ 'अन्तःकरणका परिणामविशेष' और 'वर्तन' लिखाहै॥ इसलिये अन्तरग परणति(प०सदासुखजी के अनुसार) और वर्तना (प० जयचन्द्रायजीके अनुकूल) यहां पर "वृत्ति" शब्दका अनुवाद कियागया है ॥

(३) व्याकरण शास्त्रमें करण और अधिकरण अर्थ में धातुओंसे युट् प्रत्ययका विधान माना है । यदि यहां पर 'वृतोङ् वर्तने' धातुसे करण और अधिकरण अर्थ में युट् प्रत्यय कर पद 'वर्तते अनया अस्यांचेति वर्तना' अर्थात् जिसके द्वारा वा जिसमें वर्तन किया जाय वह वर्तना है ऐसा विग्रह कर वर्तना शब्द सिद्ध किया जायगा तो यह नियम है जिन प्रत्ययोंका ट् इत्सज्ञक चलाजाता है उनसे ङी प्रत्यय होता है । यहांपरभी युट्में ट् इत्सज्ञक जानेसे ङी प्रत्यय होगा अत. 'वर्तनी' ऐसारूप सिद्ध होगा वर्तना' नहीं फिर सूत्रमें 'वर्तना' शब्दका उल्लेख अशुद्ध है? (उत्तर) यहांपर णिच्प्रत्ययांत 'वृतौङ्' धातुसे स्त्रीलिंगमें कर्म और भावरूप अर्थ के विवक्षित रहनेपर युच् प्रत्यय कर वर्तना शब्दकी सिद्धि कीगई है इसलिये यहांपर ङी प्रत्ययकी कोई सभावना नहीं ॥ 'वर्त्यते वर्तनमात्र वा वर्तना' अर्थात् जो वर्तन स्वरूप हो वह 'वर्तना' है ऐसा वर्तना शब्दका विग्रह हुआ ॥ अथवा "अनुदात्तेत्वात्ता च्छीलिको वा" जिसका अनुदात्त इत जाता है उससे ताच्छीलिक अर्थ में अर्थात् 'वह उसका स्वभाव ही हो' इस अर्थ में व्याकरणशास्त्रकेभीतर 'युच्' प्रत्ययका विधान माना है 'वृतौङ्' धातुका अनुदात्त इत्सज्ञक है इसलिये ताच्छीलिक अर्थ में युच् प्रत्ययकर वर्तना शब्दकी सिद्धि हुईहै ॥ वर्तनशीला वर्तना अर्थात् वर्तन-परिवर्तन करना ही जिसका स्वभाव हो वह वर्तना है । यह वर्तना शब्दका विग्रह है ॥

इति कृत्वा वर्तना कालस्योपकारः ॥ को णिजर्थः ? । वर्तते द्रव्यपर्यायस्तस्य वर्तयिता कालः॥ यद्येवं कालस्य क्रियावत्त्वं प्राप्नोति । यथा शिष्योऽधीते, उपाध्यायोऽध्यापयतीति ॥ नैष दोषः। निमित्तमात्रेऽपि हेतुकर्तृव्यपदेशो दृष्टः । यथा कारीषोऽग्निरध्यापयति। एवं कालस्य हेतुकर्तृता ॥

इति*कृत्वा*वर्तना१।१ कालस्य६।१ उपकारः१।१ ; =इस प्रकार करके (समयरूप) वर्तना कालका उपकार है ।
कः१।१ णिच्१।१ अर्थः१।१ ? वर्तते१ द्रव्य- = वृत्धातुमें)णिच् प्रत्यय जो लगाया है किसलिये है(उत्तर)वर्तती हैं द्रव्यकी
पर्यायः१।१ तस्य६।१ (१ वर्तयिता१।१ कालः१।१ ॥ =पर्याय, तिस(द्रव्यकी पर्याय)का वर्तावनेवाला काल है अर्थात् 'णिच्' प्रत्यय प्रयोजनके हेतुकर्ता विषैं (जो कुछ हमारा प्रयोजन है उसके प्रेरकके प्रेरणा करनेवालेके अर्थ विषैं यहां द्रव्यके वर्तावनेका प्रयोजन है) अथवा प्रयोजनके प्रेरक विषैं आया है भावार्थ ऐसा है कि धर्मादिक द्रव्योंके पर्याय समय समय पलटते है सो इस पलटनेका समय जो काल सोही (इम पलटनेकों) निमित्त है अतः इस प्रकार कहते है कि द्रव्योंकी पर्यायें वर्तती है तिन पर्यायोंका वर्तावनेवाला द्रव्यकाल अथवा निश्चयकाल है ॥

यदि*एवम्*कालस्य६।१ क्रियावत्त्वम्२।१ प्राप्नोतिT । =जो ऐसे है(कि काल वर्तावनेवाला है)तो कालके क्रियावान्पना प्राप्त होता है
यथा*शिष्यः१।१ अधीतेT, उपाध्यायः१।१ अध्यापयतिइति=जैसे शिष्य पढ़ता है गुरु पढ़ाता हैऐसा (होता है
न*एषः१।१ दोषः१।१ ; निमित्तमात्रे७।१ अपि* =(उत्तर)यह दूषण नहीं है । निमित्त कारणमात्रमेंभी(नकि उपादान कारणमात्रमें)
हेतुकर्तृ-व्यपदेशः१।१ दृष्टः१।१ ; यथा*कारीषः१।१ =हेतु कर्ताका कथन वा नाम देखाजाता है जैसे कारीष अथवा कंडेकी
अग्निः१।१ अध्यापयतिT । =आग (शीतकालमें) पढ़ाती है अर्थात् शीतकालमें शिष्य कंडेकी आगके सहारेसे स्वयं पढ़ते हैं परन्तु संसार में ऐसेभी कहते हैं कि जाडेकी ऋतुमें अथवा जड़कालमें कंडेकी आग शिष्यको पढ़ाती है ।
एवम्*कालस्य६।१ हेतुकर्तृता१।१ =ऐसे कालके (पदार्थों के वर्तावनेमें) हेतुकर्तापना वा प्रेरकपना है ॥

(१) जैसे पितृ शब्दकी प्रथमा विभक्ति एक वचन पुल्लिंग पिता' शब्द है तैसे 'वर्तयितृ' पुल्लिंग शब्दका वर्तयिता' एकवचन प्रथमाविभक्तिपुल्लिंग बनता है ।

स कथं काल इत्यवसीयते ? समयादीनां क्रियाविशेषाणां समयादिभिर्निर्वर्त्यमानानां च पाकादीनां समयः पाक इत्येवमादिस्वसंज्ञारूढिसद्भावेऽपि समयः कालः, ओदनपाककालः इति अध्यारोप्यमाणः कालव्यपदेशः ।

सः कथम् कालः इति अवसीयते ? =(प्रश्न)सो(करीपाके आगके दृष्टान्तवत्)कैसे काल जाना जाता है? वा निश्चयकियाजाताहै?

समय-आदीनाम् (१) क्रियाविशेषाणाम् =समय आदिक क्रियाकेविशेषोंके (किसी विशेष क्रिया वा अमुक क्रिया करनेमें जो समयादिक व्यतीत होते हैं सो)

समय-आदिभिः निर्वर्त्यमानानाम् च पाक-आदीनाम् =तथा (=च,समय आदिकरि कियेहुए पाकआदिकोंका

समयः;पाकः इत्येवम् आदि (२) स्वसंज्ञारूढि- =समय पाक इत्यादिमें स्वसंज्ञारूढि

सद्भावे अपि =होनेपर भी अर्थात् अपनी अपनी समय और पाककी संज्ञा प्रसिद्ध होनेपर भी

समयः कालः ओदनपाककालः इति अध्यारोप्यमाणः=समयकाल तथा भातका पाककाल(अनुक्रमसे)ऐसा आरोपणकरि

काल-व्यपदेशः। =(व्यवहार)कालका कथन होता है भावार्थ यह है कि किसी क्रिया करनेमें जो समय आवली, घंटा, वा दिन आदि लगता है तथा किसी कार्य जैसे भात ओषधि रसोई आदि करनेमेंजो समय,आवली,घंटा वा दिन आदि व्यतीत होताहै उसको(क्रमसे)समयकाल-आवलीकाल-घंटाकाल-दिवसकाल कहते है तथा ओदन(भात)पाककाल, औषधि पाककाल, रसोई पाककाल कहते है सो यह समय, आवली तथा घंटा आदि व्यवहारकालका कथन है अर्थात् समय, आवली, घंटा तथा दिन आदि व्यवहारकाल है ।

---

(२) 'असंज्ञारूढि'-सर्वार्थसिद्धिके दोनों संस्करणोंमें'स्वसंज्ञारूढि' के स्थानमें'असंज्ञारूढि अशुद्ध छपगयाहै । असंज्ञारूढि शब्दकाकुछभी यौगिकअर्थ नहीं होताहै असंज्ञारूढि होनेपर असंज्ञा कैसे रूढि वा प्रसिद्ध होसकती है अत. पाठ शुद्ध करदियागयाहै ॥ सर्वार्थसिद्धि तीन हस्तलिखितप्रतियोंमें भी तथा तत्त्वार्थराजवार्तिकके "समयपाक इत्येवमादिस्वसंज्ञारूढि सद्भावेकालः"वाक्यमें जो शब्द श. सर्वार्थसिद्धिके पाठसे मिलता है 'स्वसंज्ञारूढि' शब्द पाया जाता है ॥

(१) पुद्गल परमाणुका कालकी एक अणुने दूसरी अणुतक मंदगति जानेमें अथवा लोकाकाशके एक प्रदेशसे दूसरे प्रदेशतक मंदगति जानेमेंजोकाल व्यतीत होता है उसको समय कहते है । ऐसा करनेमें पुद्गल परमाणुकी जाने रूपक्रियाको विशेष क्रिया कहसकते है ॥ 'एक काल अनूसेती दूजी काल अनूजाय पुद्गलकी परवानू तहा समय होन है । जलको कटोरी घरी सूरजसों दिन होय, मास,रितु, वर्ष, ऐन आदिक उदोत है । नई वस्तु वोधी करै परावर्त चाल धरै, सोई व्यवहारकाल विनासीक गोत है । अतीत अनागत वरतमान परजाय, कालानू दर्व लखै जाकेउर जोत है॥द्यानतविलास ॥

तद्व्यपदेशनिमित्तस्य मुख्यस्य कालस्यास्तित्वं गमयति। कुतः? गौणस्य मुख्यापेक्षत्वात्॥ द्रव्यस्य पर्यायो धर्मान्तरनिवृत्तिधर्मान्तरोपजननरूपः अपरिस्पन्दात्मकः परिणामो, जीवस्य क्रोधादिः। पुद्गलस्य वर्णादिः। धर्माधर्माकाशानामगुरुलघुगुण-

---

तद्-व्यपदेश-निमित्तस्य६।१ =उस(व्यवहारकाल)का(उपर्युक्त)कथन(अपने)निमित्तक अथवा हेतुकर्ता

मुख्यस्य६।१ कालस्य६।१ अस्तित्वम्२।१॥ गमयति। =निश्चय(=मुख्य)वा परमार्थ (=मुख्य)कालकी विद्यमानताको जताता है भावार्थ समय आवली घटिका इत्यादिरूप जो व्यवहारकाल है तिस(समय आवली-घटिकादिरूप व्यवहारकाल) नामको निमित्त ऐसा जो निश्चयकाल (=असंख्यातरूपकालाणुं) तिन असंख्यात कालाणुंओंका अस्तित्व वा विद्यमानता इस(समय-आवली-घटिकादिरूप,व्यवहारकालसे जानी जाती है

कुतः? गौणस्य६।१ =(प्रश्न)(व्यवहारकालसे निश्चयकालका ज्ञान)क्योंकर होता है। गौणकी(विद्यमानता)

मुख्य-अपेक्षत्वात्५।१॥ =मुख्यकी अपेक्षासे होती है अर्थात् क्योंकि गौण मुख्यके विना कभीभी नहीं होसक्ता है भावार्थ व्यवहारकाल गौण है, निश्चयकाल मुख्य है, ओदनपाकादि जो प्रसिद्ध व्यवहारकाल है वह निश्चयकालसे उत्पन्न होने वाले समय आदिका समूह है विना निश्चयकालके व्यवहारकाल उत्पन्न नहीं होसकता इसलिये व्यवहारकालसे निश्चयकाल जाना जाता है॥

द्रव्यस्य६।१॥पर्यायः१।१धर्मान्तर-निवृत्ति-(१ धर्मान्तर-उपजननरूपः१।१ अपरिस्पन्दात्मकः१।१ परिणामः१।१ =द्रव्यकी पर्याय(अर्थात्)अन्य अवस्थाको(=धर्मान्तर)छोड़कर दूसरी अवस्था =रूप होना तथा क्षेत्रसे अन्य क्षेत्रमें चलनरूप न होना सो परिणाम वा परणति है

जीवस्य६।१क्रोधादिः१।१;पुद्गलस्य६।१वर्ण-आदिः१।१; =जीवके क्रोधादिक (परिणाम) है पुद्गल के वर्णादिक(परिणाम) है।

धर्माधर्म-आकाशानाम्६।३॥ (२,अगुरुलघुगुण- =धर्माधर्म आकाशके अगुरुलघुगुण अथवा द्रव्यकीद्रव्यतारखनेवाले गुणकी

---

(१) एक हस्तलिखित प्रतिके पृष्ठ ५४ पर 'निवृत्ति' शब्द है वह अशुद्ध है क्योंकि निवृत्तिका अर्थ छोड़ना,निश्चिन्त होजाना है निर्वृतिका अर्थ रचना, उत्पन्न करना है। यहां पर पहिले अर्थमें है॥

(२) जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यकी द्रव्यता स्थिर रहै अर्थात् एक द्रव्य दूसरे द्रव्यरूप न परिणमे और एक गुण दूसरे गुणरूप न परिणमें तथा एक द्रव्यके अनेक वा अनन्तगुण विखरकर जुदे २ न होजावें उसको अगुरुलघुगुण कहते हैं॥

(३) कहीं २ पर क्रिया तीन प्रकारकी मानी है प्रथम प्रायोगगति, द्वितीय विस्रसागति और तृतीय मिश्रकागति,उनमें प्रायोगगति पुरुषप्रयत्नजन्यहै॥ विस्रसागति=स्वय परिपाकसेजन्यहैऔर मिश्रिका(=मिश्रका)उभयजन्यहैअर्थात् पुरुषप्रयत्नऔर स्वयपरिपाकसेउत्पन्नहोनेवालीक्रियाकोमिश्रिकाकहतेहैं

वृद्धिहानिकृतः ॥ क्रिया परिस्पन्दात्मिका । सा द्विविधा । प्रायोगिकवैस्रसिकभेदात् । तत्र प्रयोगिकी शकटादीनां, वैस्रसिकी मेघादीनाम् ॥ परत्वापरत्वे क्षेत्रकृते कालकृते स्तः । तेऽत्र कालोपकरणात्कालकृते गृह्यते ॥ त एते वर्तनादय उपकाराः कालस्यास्तित्वं गमयन्ति ॥ ननु वर्तनाग्रहणमेवास्तु, तद्भेदाः परिणामादयस्तेषां पृथग्ग्रहणमनर्थकम् । नानर्थकम् । कालद्वयसूचनार्थत्वात्

वृद्धि-हानि-कृतः[१] ;क्रिया[१] परिस्पन्द-आत्मिका[१] प्रायोगिक=वृद्धिहानिरूप होना(परिणाम)है । हिलनेचलनेरूप है सो क्रिया है ॥ प्रायोगिक

वैस्रसिक-भेदात्[५] ;सा[१] द्विविधा[१], तत्रप्रयोगिकी[१] =तथा वैस्रसिक भेदसे वह(क्रिया) दो प्रकार है । तहां प्रायोगकी क्रिया अर्थात्

शकटादीनाम्[६] =(अन्यके प्रयोगसे होनेवाली क्रिया) जैसे गाडी आदिकका(बैलों द्वारा चलना)

वैस्रसिकी[१] =वैस्रसिकी अर्थात् स्वयं वा निजस्वभावसे विना किसी अन्यके निमित्तसे होनेवाली

मेघादीनाम्[६] ;परत्व-अपरत्वे[१] क्षेत्रकृते[१] =(जैसे)बादलादिका (=मेघादीनाम्) ॥ परत्व और अपरत्व क्षेत्रकृत

कालकृते[१] स्तःT। ते[१] अत्र*कालउपकरणात्[५] =(और)कालकृत(दोदो प्रकारके) हैं, वे यहां कालका प्रधान साधन होनेसे

काल-कृते[१] गृह्यतेT ॥ =कालकृत वा कालसंबंधीय (दो परत्व अपरत्व विषयभूत होनेसे)लियेगये हैं

ते[१] एते[१] वर्तना-आदयः[१] उपकाराः[१] कालस्य[६] =वे एते वर्तनादिक उपकार(निश्चय-मुख्य-वा परमार्थ)कालकी

अस्तित्वम्[२] गमयन्तिT ॥ =विद्यमानताको जताते हैं अर्थात् वर्तना, परिणाम, क्रिया, परत्व,अपरत्व ये सब कालके निमित्त (=उपकार)से होते है और इन्हींसे निश्चयकाल, परमार्थकाल, मुख्यकाल वा असंख्यातकालाणुरूप द्रव्यका अस्तित्व सिद्ध होता हैं ॥

ननु*वर्तना-ग्रहणम्[१] एव*अस्तुT, तद्-भेदाः[१] =प्रश्न (इस सूत्रमें)वर्तनाका ग्रहणही होना चाहिये, उस (वर्तना के भेद

परिणाम-आदयः[१] तेषां[६] पृथग्-ग्रहणम्[१] अनर्थकं[१] =परिणाम-क्रिया-परत्व-अपरत्व हैं । उन भेदोंका पृथक् ग्रहण व्यर्थ है

न*अनर्थकम्[१] ; =(उत्तर)(परिणाम-क्रिया-परत्व-अपरत्व वर्तनाके भेदोंकासूत्रमेंग्रहणकरना)निष्प्रयोजन नहींहै

कालद्वय-सूचन-अर्थत्वात्[५] =क्योंकि कालके दो भेद प्रगट करनेके अर्थ अर्थात् कालके दो भेद जतलानेके लिये

(१) परत्व अपरत्व तीन प्रकारभी है (क) प्रशंसाकृत जैसे धर्म 'पर' है ज्ञान 'पर' है तथा अधर्म 'अपर' है अज्ञान 'अपर' है (ख) क्षेत्र(देश)कृत जैसे एकदेश वा कालमें स्थितहुयेदो पदार्थोंके विषय जो दूरहै वहतो पर है और जो समीप है वह अपर है (ग) कालकृत जैसे सोलह वर्ष वालेकी अपेक्षासे

प्रपञ्चस्य ॥ कालो हि द्विविधः परमार्थकालो व्यवहारकालश्च । परमार्थकालो वर्तनालक्षणः । परिणामादिलक्षणो व्यवहारकालः ॥ अन्येन परिच्छिन्नः अन्यस्य परिच्छेदहेतुः क्रियाविशेषः काल इति व्यवह्रियते । स त्रिधा व्यवतिष्ठते भूतो वर्तमानो भविष्यन्निति ॥ तत्र परमार्थकाले कालव्यपदेशो मुख्यः । भूतादिव्यपदेशो गौणः ॥ व्यवहारकाले भूतादिव्यपदेशो मुख्यः । कालव्यपदेशो गौणः ।

प्रपञ्चस्य; कालः हि द्विविधः परमार्थकालः	=विस्तारका (पूर्वोक्त कथन है। जैसे) =हि काल दो प्रकार है, परमार्थकाल
च व्यवहारकालः; वर्तनालक्षणः परमार्थ-	=और =व्यवहारकालः वर्तना है लक्षण जिसका सो परमार्थ [illegible], निश्चय
कालः; परिणामादि-लक्षणः	=काल है। परिणाम क्रिया परत्व-अपरत्व है लक्षण जिसके सो
व्यवहारकालः; अन्येन परिच्छिन्नः	=व्यवहारकाल है। (यह व्यवहारकाल [illegible]) जाना जाता है
	(जैसे सूर्य चन्द्र आदिके उदय अस्तसे दिन राति आदि जाने जाते हैं सो व्यवहार काल है
	तथा और पुद्गलके परिणमनसे भी व्यवहार काल जाना जाता है)
अन्यस्य परिच्छेद-हेतुः	=(व्यवहार काल) दूसरी वस्तु के ज्ञान करानेमें निमित्त है जैसे (यह) इस कालमें निश्चय-
	काल जाना जाता है [illegible]
क्रिया-विशेषः कालः इति व्यवह्रियते ।	=क्रिया विशेष है सो काल है ऐसा व्यवहार किया जाता है (क्रिया का विशेष [illegible])
सः त्रिधा भूतः वर्तमानः भविष्यन् इति	=वह (व्यवहारकाल) तीन प्रकार भूत वर्तमान अनागत ऐसे
व्यवतिष्ठते । तत्र परमार्थकाले कालव्यपदेशः	=व्यवस्थित है। (वहां परमार्थकाल की अपेक्षा) विषैं कालका नाम या कथन
	(अर्थात लोकाकाशके [illegible])
मुख्यः; भूतादि-व्यपदेशः	=मुख्य या प्रधान है, भूत, वर्तमान, भविष्यतका कथन (निश्चयकालकी अपेक्षासे)
गौणः; व्यवहारकाले भूत-आदि-व्यपदेशः	=गौण या अप्रधान है। व्यवहार काल विषैं अतीत वर्तमान अनागतका कथन
मुख्यः काल व्यपदेशः गौणः	=प्रधान है और काल कहना गौण या अप्रधान है अर्थात निश्चयकाल या परमार्थकाल

गत(सो) वर्तनाका पर है और [illegible] अपेक्षा [illegible] है ॥ [illegible] परमार्थकालको [illegible] वर्तनादि सब कालकृत है अर्थात् वर्तना, परिणाम, क्रिया, कालिक परत्व, कालिक अपरत्व ये कालके उपकार हैं ॥

क्रियावद्द्रव्यापेक्षत्वात्कालकृतत्वाच्च ॥

अत्राह धर्माधर्माकाशपुद्गलजीवकालानामुपकारा उक्ताः । लक्षणं चोक्तम् "उपयोगो लक्षण-मित्येवमादि" पुद्गलानां तु सामान्यलक्षणमुक्तं "अजीवकाया इति" विशेषलक्षणं नोक्तम् । तत्किमित्यत्रोच्यते—

॥ स्पर्शरसगन्धवर्णवन्तः पुद्गलाः ॥ २३ ॥

कहना गौण है नकि समय, आवली, घटिका, प्रहर, दिन, राति पक्ष मास, ऋतु, अयन, वरस इत्यादिको कहना गौण है क्योंकि कथन करते समय ये सब (समय, आवली, घटिका इत्यादि) यातो भूतकालमें वा वर्तमान कालमें वा भविष्यत्कालमें आजावेंगे, गर्भित हो जावेंगे और सम्बन्ध रक्खेंगे । फिर भूतादिको मुख्य कहना, समय घटिकादिको गौण कहना एकही वस्तुको मुख्य गौण कहदेना है सो ठीक नहीं ॥

(१)क्रियावत्* द्रव्य-अपेक्षत्वात्५/१॥ च*	=क्रियावान् (अन्य) द्रव्योंकी अपेक्षाभावसे(व्यवहारकालनाम पायाहै)और(=च)
काल-कृतत्वात्५/१॥	=निश्चयकाल(=काल)द्वारा कियेजानेसे(उत्पन्न होनेसे)(व्यवहारकाल नाम पाया है)
अत्र*आह।धर्म-अधर्म-आकाश-पुद्गल-जीव-कालानाम्६/३	=यहां पूछता है कि धर्म, अधर्म, आकाश, पुद्गल, जीव और काल द्रव्योंके
उपकाराः१/३ उक्ताः१/३; लक्षणम्१/१॥ च*उक्तम्१/१॥ "उपयोगः१/१	=उपकार कहेगये(और लक्षणभी=च)(इनके)कहेगये। उपयोग(अध्याय२सूत्र८)
लक्षणम्१/१॥ इत्येवम् आदि१/१॥" पुद्गलानाम्६/३ तु*	=(जीवका लक्षण है इत्येवमादिक (कहेगये) और (=तु) पुद्गलोंका
"अजीव-कायाः१/३ इति" सामान्य लक्षणम्१/१॥ उक्तम्१/१॥	="अजीवकाया" ऐसा(इस अध्यायके प्रथम सूत्रमें) साधारण लक्षण कहागया
विशेष-लक्षणम्१/१॥ न* उक्तम्१/१॥ तत्१/१॥ किम्१/१॥	=(किन्तु)(पुद्गलोंका)विशेष लक्षणनहीं कहागया है। वह विशेष लक्षण क्या है
इति*अत्र*उच्यते।	=इस हेतुसे(=इति)(पुद्गलोंका विशेष लक्षण अग्रिम सूत्रमें कहाजाता है कि

सूत्रम् (२)स्पर्शरसगन्धवर्णवन्तः पुद्गलाः२३ = स्पर्श-रस-गंध-वर्णवन्तःपुद्गलाः (भवन्ति)॥ २३॥

(१) (प्रश्न) समय, आवली, घटिका प्रहर दिन इत्यादि ने व्यवहार काल नाम कैसे पाया है। (उत्तर) क्रियावान् जु अन्य द्रव्य तिनकी अपेक्षासे व्यवहारकाल नाम पाया है तथा निश्चय कालकरि कियेगये हैं जे समय, आवली, घटिका, प्रहर, दिन, रातादि तिनसे (व्यवहार)काल नाम पाया है ॥

(२) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर सम्प्रदायोंमें एकसा है।

स्पृश्यते स्पर्शनमात्रं वा स्पर्शः । सोऽष्टविधः । मृदुकठिनगुरुलघुशीतोष्णस्निग्धरूक्षभेदात् ॥ रस्यते रसनमात्रं वा रसः । स पञ्चविधः । तिक्ताम्लकटुमधुरकषायभेदात् ॥ गन्ध्यते गन्धनमात्रं वा गन्धः । स द्वेधा । सुरभिरसुरभिरिति ॥ वर्ण्यते वर्णनमात्रं वा वर्णः । स पंचविधः । कृष्णनीलपीतशुक्ललोहितभेदात् ॥ त एते मूलभेदाः प्रत्येकं संख्येयासंख्येयानन्तभेदाश्च भवन्ति॥ स्पर्शश्च रसश्च गन्धश्च वर्णश्च स्पर्शरसगन्धवर्णास्त एतेषां सन्तीति स्पर्शरसगन्धवर्णवन्तः

मूलार्थः—स्पर्श-रस-गन्ध-वर्णवन्तः पुद्गलाः।

वृत्त्यनुवादः—स्पृश्यते वा स्पर्शनमात्रम् स्पर्शः, सः अष्टविधः, मृदु-कठिन-गुरु-लघु-शीत-उष्ण-स्निग्ध-रूक्ष-भेदात्; रस्यते, रसनमात्रम् वा रसः; सः पञ्चविधः, तिक्त-अम्ल-कटु-मधुर-कषाय-भेदात्; गन्ध्यते वा गन्धनमात्रम् गन्धः, सः द्वेधा सुरभिः असुरभिः इति। वर्ण्यते वा वर्णमात्रम् वर्णः, सः पञ्चविधः, कृष्ण-नील-पीत-शुक्ल-लोहित-भेदात्; ते एते मूलभेदाः प्रत्येकम् संख्येय-असंख्येय-अनन्तभेदाः च भवन्ति।

स्पर्शः च रसः च गन्धः च वर्णः च स्पर्शरसगन्धवर्णाः, ते एतेषाम् सन्ति। इति स्पर्श-रस-गन्ध-वर्णवन्तः।

=स्पर्श, रस, गन्ध, वर्णवाले पुद्गल होते हैं अर्थात् स्पर्श रस गन्ध वर्ण ये चार गुणोंकरि सहित अथवा लक्षणोंकरि युक्त पुद्गल होते हैं ॥

=वृत्तिका अनुवाद जो स्पर्श या छुआ जाता है अथवा छूनेमात्र जो स्पर्श है वह स्पर्श आठ प्रकार, कोमल मुलायम(मृदु) कठोर कड़ा भारी, हलका, ठंडा, =गरम, चिकना=चिकना रूखा भेदसे है । स्वाद लिया जाता है या स्वादमात्र =रस है सो पांच प्रकार तिक्त(चरपरा) खट्टा, कडुवा, मीठा, =कषायला(कसैला) भेदसे है । जो सूंघा जाय है अथवा गन्धमात्र है सो गन्ध है =वह दो प्रकार सुगन्ध दुर्गन्ध होती है । जो वर्ण [illegible] देखा जाता है =या रूपमात्र सो वर्ण है । सो पांच प्रकार काला, नीला, पीला =सफेद, लाल, रक्त-भेदसे है ये इनके मूलभेद हैं । इन पांच भेदोंमेंसे प्रत्येकके =संख्यात, असंख्यात और अनन्त भेद होते हैं अर्थात् इन पांच (= स्पर्श वर्ण रस वो गन्ध के) भेदोंमेंसे प्रत्येक भेदके स्थानकोंकी अपेक्षासे एक दो तीन चार इत्यादि संख्यातभेद, असंख्यातभेद हैं, अविभाग प्रतिच्छेदोंकी अपेक्षासे अनंतभेद हैं =और(=च) स्पर्श और(=च) रस और(=च) गन्ध और(=च) वर्ण हैं =सो द्वन्द्वसमासमें, स्पर्शरसगन्धवर्णाः ऐसा वाक्य होता है । ते स्पर्शरसगन्धवर्ण =जिनके होते हैं ऐसे स्पर्श-रस-गन्ध-वर्णवाले हैं अर्थात् ये पुद्गल हैं भावार्थ समस्त पुद्गलोंमें ये उक्त चार (स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण) निश्चय करने चाहिये॥

इति । नित्ययोगे [(१)]मन्निर्देशः ॥ यथा क्षीरिणो न्यग्रोधा इति ॥ ननु च "रूपिणः पुद्गला" इत्यत्र पुद्गलानां रूपवत्त्वमुक्तं तदविनाभाविनश्च रसादयस्तत्रैव परिगृहीता इति व्याख्यातं तस्मात्तेनैव पुद्गलानां रूपादिमत्त्वसिद्धेः सूत्रमिदमनर्थकमिति ॥ नैष दोषः । नित्यावस्थितान्यरूपाणीत्यत्र धर्मादीनां नित्यत्वादिनिरूपणेन

इति*नित्य-योगे[७/१] मत्-निर्देशः[१/१] ॥	=इस प्रकार सदैव संयोगमें मतुप् (=मत्) प्रत्ययका निरूपण है भावार्थ "स्पर्श-रस-गंध-वर्णवन्तः" इस वाक्यको जब पृथक् पृथक् करदेते हैं तब स्पर्शवान् रसवान्-गंधवान्-वर्णवान्-ऐसे चार शब्द होते हैं स्पर्शका नित्य है संयोग जिसमें अथवा स्पर्शगुण सदैव जिसमें रहता है वह स्पर्शवान् (पुद्गल) है इसप्रकार मतुप् (=मत्) प्रत्यय स्पर्शगुणके सदैव विद्यमान रहनेकेअर्थमेंलगाया गया है ऐसेही रसवान्-गंधवान्-वर्णवान् जानना ॥ स्मरण रहे कि इस सूत्रके दो प्रकारसे विभाग होसकते हैं (क) स्पर्शवन्तः पुद्गलाः; रसवन्तः पुद्गलाः, गंधवन्तः पुद्गलाः, वर्णवन्तः पुद्गलाः, अथवा (ख) स्पर्शवान् पुद्गलः, रसवान् पुद्गलः, गंधवान् पुद्गलः वर्णवान् पुद्गलः ॥
यथा*क्षीरिणः[१/३] न्यग्रोधाः[१/३] इति*ननु*च*रुपिणः[१/३]	=जैसे दूधवाले अथवा दूधयुक्त वड़वृक्ष(=वटवृक्ष)। पुनि प्रश्न, रूपी वा मूर्तीक
पुद्गलाः[१/३] इति*अत्र*पुद्गलानाम्[६/३] रूपवत्त्वम्[१/१]॥ उक्तम्[१/१]॥	=पुद्गल हैं ऐसे यहां(अध्याय ५ सूत्र ५ मे) पुद्गलोंके रूपपना कहागया है
तद्-अविनाभाविनः[१/३] च*रस-आदयः[१/३] तत्र*	=और(=च)उस (रुप)का अविनाभावी तथा भिन्न न रहनेवाले रस-स्पर्श गंध तहां
एव*परिगृहीताः[१/३] इति* व्याख्यातम्[१/१]॥	=(उस पांचवां सूत्रसे)ही ग्रहण कियेगये ऐसा वर्णन कियागया है
तस्मात्[५/१] तेन[३/१] एव*पुद्गलानाम्[६/३]	=तिस कारणसे(=तस्मात्)उस(इस अध्यायके पांचवां सूत्र)करिही पुद्गलोंके
रूप-आदिमत्त्वसिद्धेः[५/१]॥सूत्रम्[१/१]॥इदम्[१/१]॥अनर्थकम्[१/१]॥इति*॥	=रूपपना, स्पर्शपना, रसपना, गंधपना सिद्ध होनेसे यह सूत्र निष्प्रयोजन है ॥
न*एषः[१/१] दोषः[१/१]; नित्य-अवस्थानि[१/३]॥ अरूपाणि[१/३]॥	=(उत्तर) यह दूषण नहीं है नित्य, अवस्थानि और अरूपाणि,
इति*अत्र*धर्मादीनाम्[६/३] नित्यत्वादि-निरूपणेन[३/१]॥	=ऐसे यहां धर्मादिकोंका ध्रुवपनादिकका कथन करनेसे

(१) प्रथमावृत्ति सर्वार्थसिद्धिवृत्तिमें 'मन्निर्देश' पाठ है, द्वितीयावृत्तिमें और एकहस्तलिखतमें 'वन्निर्देश.' पाठहै दोअन्यहस्तलिखितप्रतियोंमें 'वत्निर्देश' पाठहै 'वन्निर्देश' और 'वत्निर्देश' एकही है क्योंकि प्रथम वाक्य सन्धिरूपमें है दूसरेमें सन्धि नहीं कीगई है ॥ यहांपर समास करना है संधि अवश्य होनी चाहिये, इसलिये 'वत्निर्देश' पाठ 'वन्निर्देश' की अपेक्षा अशुद्ध है ॥ द्वितीया वृत्तिमें और जहां कहीं भी 'वत्निर्देश' और 'वन्निर्देशः' पाठहै वे अशुद्ध है।

पुद्गलानामरूपत्वप्रसंगे तदपाकरणार्थं तदुक्तम्॥ इदं तु तेषां स्वरूपविशेषप्रतिपत्त्यर्थमुच्यते॥ अवशिष्टपुद्गलविकारप्रतिपत्त्यथमिदमुच्यते—

॥ शब्दबन्धसौक्ष्म्यस्थौल्यसंस्थानभेदतमश्छायाऽऽतपोद्योतवन्तश्च ॥

पुद्गलानाम् । अरूपत्व-प्रसंगे तद्-	=पुद्गलोंके अमूर्तीकपनेका अवसर आनेपर उस (अरूपत्व)के
अपाकरण-अर्थम् ।। तद् ।। उक्तम् ।।; इदम् ।। तु*	=निराकरणके लिये वह (रूपिणः पुद्गला) कहागया है ॥ यह(सूत्र) तो
तेषाम् । स्वरूपविशेष-प्रतिपत्ति-अर्थम् ।। उच्यते	=तिन(पुद्गलों)के विशेष स्वरूप जाननेके लिये कहागया है ॥
अवशिष्ट-पुद्गल-विकार-प्रतिपत्ति-अर्थम् ।।	=शेष पुद्गलके परिणाम (=विकार = पर्याय) जाननेके लिये
इदम् ।। उच्यते	=यह (उत्तर सूत्र)कहाजाता है कि

सूत्रम्—शब्दबन्धसौक्ष्म्यस्थौल्यसंस्थानभेदतमश्छायाऽऽतपोद्योतवन्तश्च ॥ २४ ॥

=शब्द-बन्ध-सौक्ष्म्य-स्थौल्य-संस्थान-भेद तमः—छाया-आतपः—उद्योतवन्तः—च पुद्गलाः भवन्ति ॥२४॥

पदच्छेदः—शब्दवन्तः पुद्गलाः; वा शब्दवान् पुद्गलः। बन्धवन्तःपुद्गलाःवा बन्धवान्पुद्गलः सौक्ष्म्यवन्तः पुद्गलाः वा सौक्ष्म्यवान् पुद्गलः। स्थौल्यवन्तः पुद्गलाः वा स्थौल्यवान् पुद्गलः। संस्थानवन्तः पुद्गलाः वा संस्थानवान् पुद्गलः। भेदवन्तः पुद्गलाः वा भेदवान् पुद्गलः। तमोवन्तः पुद्गलाः वा तमोवान् पुद्गलः। छायावन्तः पुद्गलाः वा छायावान् पुद्गलः। आतपवन्तः पुद्गलाः वा आतापवान् पुद्गलः। च उद्योतवन्तः पुद्गलाः वा च उद्योतवान् पुद्गलः।

सूत्रार्थः—शब्दवन्तः। पुद्गलाः। वा शब्दवान्। पुद्गलः।	=शब्दयुक्त पुद्गल है अथवा शब्द सहित पुद्गल है
बन्धवन्तः। पुद्गलाः। वा बन्धवान्। पुद्गलः।	=बंधसहित पुद्गल है वा बंधयुक्त पुद्गल है।
सौक्ष्म्यवन्तः। पुद्गलाः। वा सौक्ष्म्यवान्। पुद्गलः।	=सूक्ष्मतावान् पुद्गल है अथवा सूक्ष्मतासहित पुद्गल है
स्थौल्यवन्तः। पुद्गलाः। वा स्थौल्यवान्। पुद्गलः।	=स्थूलतासहित पुद्गल है अथवा स्थूलतावान् पुद्गल है
संस्थानवन्तः। पुद्गलाः। वा संस्थानवान्। पुद्गलः।	=आकारसहित पुद्गल है अथवा आकारसंयुक्त पुद्गल है।
भेदवन्तः। पुद्गलाः। भेदवान्। पुद्गलः।	=खंडवाले पुद्गल हैं अथवा खंडसहित पुद्गल है

क्योंकि 'वत्' प्रत्यय सदृश अथवा तुल्य अर्थमें आताहै और मतुप् (मत्) प्रत्यय 'नित्ययोग' 'सन्ति' अर्थमें आताहै यहांपर अर्थ ऐसा है कि 'ते' (स्पर्श-रस गन्ध वर्ण) जिनके होतेहैं (वे) स्पर्श-रस-गंध वर्णवाले हैं" ॥यहां नित्ययोगमें मतुप(मत्)प्रत्यय होनाचाहिये अतः प्रथमार्थिका [illegible]

शब्दो द्विविधो भाषालक्षणो विपरीतश्चेति ॥ भाषालक्षणो द्विविधः। साक्षरोऽनक्षरश्चेति ॥ अक्षरीकृतः शास्त्राभिव्यञ्जकः संस्कृतविपरीतभेदादार्यम्लेच्छव्यवहारहेतुः॥ अनक्षरात्मको द्वीन्द्रियादीनामतिशयज्ञानस्वरूपप्रतिपादनहेतुः स एषः सर्वप्रायोगिकः। अभाषात्मको द्विविधः। प्रायोगिको वैस्रसिकश्चेति॥

तमोवन्तः पुद्गलाः वा तमोवान् पुद्गलः;	=अंधकारवाले पुद्गल हैं अथवा अंधकारसंयुक्त पुद्गल है
छायावन्तः पुद्गलाः वा छायावान् पुद्गलः,	=छाहसहित पुद्गल है अथवा छाहवान् पुद्गल है
आतपवन्तः पुद्गलाः वा आतपवान् पुद्गलः;	=तप्तप्रकाशसंयुक्त पुद्गल हैं अथवा उष्णरूपउजालासहित पुद्गल है
च* उद्योतवन्तः पुद्गलाः	=और शीतल प्रकाश जैसेचांदनी(=चंद्रमाकी पटबीजनाकीचमक) वाले पुद्गल हैं
वा उद्योतवान् पुद्गलः	=वा ठंडे उजाले वान् जैसे चांदनीवान् पुद्गलहै अर्थात् येदशपुदगल द्रव्यके पर्याय, परिणाम, विकार वा अवस्थाविशेष हैं ॥
वृत्त्यनुवादः-शब्दः द्विविधः भाषालक्षणः च*	=शब्द दोप्रकार है भाषास्वरूप वा भाषात्मक और (=च)
विपरीतः इति*॥ भाषालक्षणः द्विविधः ।	=प्रतिकूल अर्थात् अभाषास्वरूप वा अभाषात्मक; भाषात्मकशब्द दो प्रकारहै
स-अक्षरः च* अन्-अक्षरः इति*॥	=अक्षररूप(अक्षरसहित,अक्षरीकृत)और (=च अनक्षररूप(अक्षररहित)
अक्षरीकृतः शास्त्र-अभिव्यञ्जकः संस्कृत-	=अक्षररूपभाषा (भाषात्मक शब्द) शास्त्रके प्रगटकरनेवाली संस्कृत और
विपरीत-	=(संस्कृतसे)प्रतिकूल वा विरोधीभाषा अर्थात् देशभाषा, प्राकृत, पैशाचीआदि
भेदात् आर्य-म्लेच्छ व्यवहारहेतुः; अनक्षरात्मकः	=भेदसे आर्य और म्लेच्छ(मनुष्यों)के व्यवहारका कारणहै । अनक्षररूप भाषा
द्विइन्द्रिय-आदीनाम्; अतिशय-ज्ञान-स्वरूप-प्रतिपादनहेतुः	=दोइन्द्रियादिजीवोंके है, औरसर्वोत्तमज्ञानकास्वरूपकहनेकाकारणहैअर्थात्अक्षररहित भाषा है सो दोइन्द्रियवाले जीवोंमें, तीन इन्द्रियवाले जीवोंमें, चारइन्द्रिय वाले जीवोंमें, औरकितनेई पांचइन्द्रियवालेजीवोंमेंभीपाईजातीहैऔर(अक्षररहितभाषाही) अतिशयरूप अथवा महान्ज्ञानके प्रकाशनेके कारण सर्वज्ञके दिव्यधुनिमेंभी है॥
सः एषः सर्व-प्रायोगिकः	=सो यह (भाषास्वरूपशब्द) समस्त प्रायोगिक है अर्थात् पुरुषके प्रयत्नसे होताहै॥
अभाषा-आत्मकः द्वि-विधः; प्रायोगिकः	=अभाषास्वरूप (शब्द) दोप्रकारहै,प्रायोगिकअर्थात्पुरुषकेनिमित्तसे उपजाऊ
च* वैस्रसिकः इति*॥	=और वैस्रसिक (वैश्रसिक) पुरुषके प्रयत्नकी अपेक्षारहित स्वभावसे उपजनेवाला॥

वास्रसिको बलाहकादिप्रभवः। प्रायोगिकश्चतुर्धा, ततविततघनसौषिरभेदात् ॥ तत्र चर्मतननानिमित्तः पुष्करभेरीदर्दुरादिप्रभवस्ततः। तन्त्रीकृतवीणासुघोषादिसमुद्भवो विततः। तालघण्टालालनाद्यभिघातजो घनः। वंशशंखादिनिमित्तःसौषिरः॥बन्धो द्विविधो वैस्रसिकः प्रायोगिकश्च ॥ पुरुषप्रयोगानपेक्षो वैस्रसिकः। तद्यथा—स्निग्धरूक्षत्वगुणनिमित्तो विद्युदुल्काजलधाराग्नीन्द्रधनुरादिविषयः॥ पुरुषप्रयोगनिमित्तः प्रायोगिकः,अजीवविषयो जीवाजीव विषयश्चेति द्विधाभिन्नः। तत्राजीवविषयो जतुकाष्ठादिलक्षणः। जीवाजीवविषयः कर्मनोकर्मबन्धः॥ सौक्ष्म्यं द्विविधं, अन्त्यमापेक्षिकं च ॥

वैस्रसिकः बलाहक-आदि-प्रभवः; =वैस्रसिक (अभाषास्वरूपशब्द) जैसे मेघ (=बलाहक) आदिसे उपजनेवाला ॥
प्रायोगिकः चतुर्धा*तत-वितत-घन-सौषिर-भेदात्; =प्रायोगिक (अभाषास्वरूपशब्द, चारप्रकार, तत-वितत-घन-सौषिर भेदसे है
तत्र*चर्मतनन-निमित्तः पुष्कर-भेरी (=भेरि) =तहां चमड़ेके तननेके कारण वा हेतुसे खंजरी (=पुष्कर) दुंदुभि-ढोल नगारा
दर्दुर आदि-प्रभवः ततः; =दर्दुर (एकप्रकारका) बाजा आदिसे उत्पन्न होनेवाला शब्द तत है।
तन्त्रीकृत-वीणा-सुघोष- =तांत अथवा तारगचित वीन (=वीणा) सुघोष अर्थात् एकप्रकारका सितार
आदि समुद्भवः विततः; ताल-घण्टा-लालन-आदि- =आदिसे उपजाऊ (शब्द) वितत है ॥ ताल-घंटाका हिलावना (=लालन, आदिके
अभिघातजः घनः। वंश-शंख आदि-निमित्तः =चोटसे उपजाल (=अभिघातज) शब्द घन है। वंसुरी शंख आदि हैं कारण जिसको
सौषिरः; बन्धः द्विविधः वैस्रसिकः प्रायोगिकः च*॥ =(ऐसा शब्द) सौषिर है। बन्ध दो प्रकार है। वैस्रसिक और प्रायोगिक
पुरुष-प्रयोग-अनपेक्षः वैस्रसिकः, तद्यथा* =पुरुषके प्रयोग वा प्रयत्नकी अपेक्षारहित वैस्रसिक है ॥ जैसे
स्निग्ध-रूक्षत्व गुण-निमित्तः विद्युत्-उल्का-जलधार- =सचिक्कन, रूखापन गुणकेकारणसे विजली, उल्कापात, बादल
अग्नि-इन्द्रधनुष्-आदि-विषयः, पुरुषप्रयोगनिमित्तः =आग, इन्द्र धनुषादि सम्बन्धी है ॥ पुरुषके प्रयत्न हेतुक वा कारणक है सो
प्रायोगिकः अजीवविषयः च*जीवाजीवविषयः इति*=प्रायोगिक है। (प्रायोगिकबन्ध) अजीव सम्बंधी और (=च) जड़चेतनसंबंधी
द्विधा*भिन्नः, तत्र*अजीवविषयः जतु-काष्ठादि- =दोप्रकारमें (द्विधा) विभाजित है। तहां अचेतनसंबंधी लाख (जतु) और काठ आदिका
लक्षणः; जीव-अजीव-विषयः कर्म-नोकर्म बन्धः; =सम्बंध होता है। चेतनअचेतनसम्बंधी कर्म-नोकर्मका (जीवके साथ) बंधहै;
सौक्ष्म्यम् द्विविधम्; अन्त्यम् आपेक्षिकं च॥ =सूक्ष्मता दो प्रकार है अन्त्य और (=च) आपेक्षिक

तत्रान्त्यं परमाणूनाम् । आपेक्षिकं बिल्वामलकबदरादीनाम् ॥स्थौल्यमपिद्विविधं, अन्त्यमापेक्षिकं चेति ॥ तत्रान्त्यं जगद्व्यापिनि महास्कन्धे । आपेक्षिकं बदरामलकबिल्वतालादिषु ॥संस्थानमाकृतिः । तद्द्विविधं, इत्थंलक्षणमनित्थंलक्षणं चेति ॥ वृत्तत्र्यस्रचतुरस्रायत-

तत्र*अन्त्यम्१।।परमाणूनाम्३;आपेक्षिकम्३।।बिल्व-आमलक-बदर आदीनाम्३ ॥ =तहां परमाणुओंकी (सूक्ष्मता) अन्त्य है । आपेक्षिक सूक्ष्मता बेल =बिल्व) =आमलेके, फलकी(=आमलक)और बेरआदिककीसूक्ष्मताहै अर्थात् बेलकेफलसे आमलेकाफल सूक्ष्म है औरआमलेकेफलसे झरबेरीके बेरआदि छोटे होतेहैं

स्थौल्यम्१।।अपि द्वि-विधम्१।।अन्त्यम्१।।आपेक्षिकम्१।।चइति=स्थूलताभी दोमकारहै अन्त्य और(=च)आपेक्षिकअर्थात् किसीकीअपेक्षासे।

तत्र*अन्त्यम्१।।जगद्व्यापिनि७महास्कंधे७; =तहां अन्तिम (स्थूलता,जगतमें व्याप्त होनेवाला वा सर्वलोकव्यापीमहास्कंधमेंहै

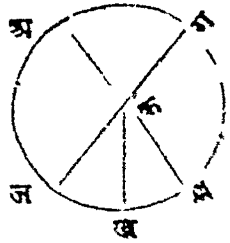
आपेक्षिकम्१।।वदर-आमलक-बिल्व-ताल-आदिषु७ ; =आपेक्षिक(स्थूलता)बेर, आमकेफल,बेलफल और तालफलादिकमें है अर्थात् झरबेरीकेबेरकी अपेक्षा आमला स्थूल होताहै आमलेसे बेल बड़ा होताहै और बेलकी अपेक्षा तालफलादिक बड़े होते हैं ॥

संस्थानम्१।।आकृतिः१।; =संस्थान है सो आकृति अथवा आकारहै अर्थात् अवयव रचनाविशेष है।

तत्१।।द्विविधम्१।।इत्थम्१।।लक्षणम्१।। =वह(आकार,दोमकारहै इत्थंलक्षण अर्थात् आकार जिसकालक्षणकथनयोग्यहै

अनित्थम्१।।लक्षणम्१।।च*इति*।। =और(=च) अनित्थं लक्षणअर्थात् वहआकारजिसकालक्षण कथनयोग्य नहींहै

वृत्त-त्र्यस्र चतुरस्र-आयत- =गोलवा वर्तुल(=वृत्त) तिकोना(=त्र्यस्र) चतुष्कोण(चतुरस्र) आयत, जात्यायत अर्थात् समानान्तर चतुर्भुज जिसके सबकोन समकोन हों किंतु सबभुज बराबर नहीं परंतु आमनेसामनेके भुज बराबर हों ॥



'वृत्त' वह सम धरातल क्षेत्र है जो एक रेखासे जिसको परिधि कहते है घिरा हो और ऐसा हो कि उसके अन्दर एक विशेष बिन्दुसे परिधि तक जितनी रेखा खींची जांय वह सब आपसमें बराबर हों और इस बिन्दुको उसवृत्तका केन्द्रकहतेहै॥ वृत्त यह गोल क्षेत्र है जिसकी अ च ज रेखा परिधि है 'क' केन्द्र है और जिसकी कज, कख, कघ, क ग और कअ सब रेखायें आपसमें बराबर हैं ॥

परिमण्डलादीनामित्थंलक्षणम् । ततोऽन्यन्मेघादीनां संस्थानमनेकविधमित्थमिदमिति निरूपणाभावादनित्थंलक्षणम् ॥ भेदाः षोढा, उत्करचूर्णखण्डचूर्णिकाप्रतराणुचटनविकल्पात् ॥ तत्रोत्करः काष्ठादीनां करपत्रादिभिरुत्करणम् । चूर्णो यवगोधूमादीनां सक्तुकणिकादिः । खण्डो घटादीनां कपालशर्करादिः । चूर्णिका माषमुद्गादीनां । प्रतरोऽभ्रपटलादीनाम् । अणुचटनं सन्तप्तायःपिण्डादिषु अयोघनादिभिरभिहन्यमानेषु स्फुलिङ्गनिर्गमः॥ तमो दृष्टिप्रतिबंधकारणं प्रकाशविरोधि॥ छाया प्रकाशावरणनिमित्ता । सा द्वेधा, वर्णादिविकारपरिणता

परिमण्डल-आदीनाम् इत्थलक्षणम् । इत्थम् इदम् इति*=चारोओर गोलआदिकके इत्थंलक्षण(संस्थान) है ऐसे यह इत्थम् है

ततः*अन्यत्*मेघ-आदीनाम् संस्थानम् अनेकविधम् । =तिस (इत्थंलक्षणसंस्थान)से अन्यवादलआदिकका आकार बहुतप्रकारहै।

निरूपण-अभावात् =सो परिभाषण अथवा कथनकियेजानेके अभावसे

अनित्थंलक्षणम् ; भेदाः षोढा*उत्कर-चूर्ण-खण्ड-चूर्णिका-प्रतर-अणुचटन-विकल्पात् ॥ =अनित्थं लक्षण(संस्थान)है॥भेद छ प्रकार (=षोढा)अर्थात् उत्कर-चूर्ण-खण्ड-चूर्णिका-प्रतर-अणुचटन विकल्पसे है

तत्र उत्करः काष्ठ-आदीनाम् करपत्र-आदिभिः उत्करणम् ; =तहां उत्कर भेद काठादिका आरा (=करपत्र-क्रकच) आदिकसे विदारण है ।

चूर्णः यव गोधूम-आदीनाम् सक्तु-कणिकादिः । =चूर्ण जौ गेहूं(=गोधूम) आदिकोंका सतुआ आटा वा चून आदिक है ।

खण्डः घटादीनां कपाल-शर्करादिः ॥ =खंड घड़ादिकोंके टुकड़ा रोड़ादिक हैं।

चूर्णिका माष मुद्ग-आदीनाम् । =चूर्णिका उरद (माष) मूंग (=मुद्ग) आदिकी दाल है ।

प्रतरः अभ्र-पटल आदीनाम् । =प्रतर अभ्रकके पत्रादिकोंका (उपाटना) है ।

अणुचटनम् सन्तप्त-अयस्-पिण्डादिषु अयस्-घन-आदिभिः अभिहन्यमानेषु स्फुलिङ्ग-निर्गमः । =अनुचटन वा अनुतर अतिगरमलोहेके पिंडादिक विषैं लोहेके घनादिककरि चोटदेनेपर वा पीटनेपर फुलिंगोका निर्गमन, उछलनावानिकलनाहै।

तमः दृष्टि-प्रतिबन्धकारणम् प्रकाश-विरोधि । =तमअन्धकार दृष्टिकारोकनेवाला उजालेका विलोम वा प्रतिकूल है ।

छाया प्रकाश आवरणनिमित्ता । =छाया उजालेके ढकनेकाकारण है ।

सा द्वेधा*वर्णआदिविकार-परिणता ॥ =वह छाया दो प्रकार है वर्णादि विकार परिणत अथवा तद्वर्ण परिणत (अर्थात् कांचविषैं मुखके) वर्णादिकका परिणमन दीखना

प्रतिविम्बमात्रात्मिका चेति ॥ आतपः आदित्यादिनिमित्तः उष्णप्रकाशलक्षणः ॥ उद्योतश्चन्द्रमणि-खद्योतादिप्रभवः प्रकाशः॥ त एते शब्दादयः पुद्गलद्रव्यविकारास्त एषां सन्तीति शब्दबन्धसौक्ष्म्य स्थौल्यसंस्थानभेदतमश्छायाऽऽतपोद्योतवन्तः पुद्गला इत्यभिसम्बध्यते॥ च शब्देन नोदनाभिघाता-दयः पुद्गलपरिणामा आगमे प्रसिद्धाः समुच्चीयन्ते ॥ उक्तानां पुद्गलानां भेदप्रदर्शनार्थमाह—

प्रतिविम्बमात्र-आत्मिका[१/१]।च*इति* ।	=और (=च)प्रतिविम्बस्वरूप ही(=मात्र)
उष्ण-प्रकाश-लक्षणः[१/१]। आतपः[१/१]।	=तप्त(=उष्ण-संतप्त)रूप है स्वभाव(=लक्षण)जिसका ऐसा प्रकाश वा उजाला है सो आतप है
आदित्य-आदि-निमित्तः[१/१]।	=उक्त आतप सूर्य,अग्नि,इत्यादिके निमित्तसे उत्पन्न होता है जैसे धूप, घाम, लौ सहित अग्नि का प्रकाश
उद्योतः[१/१]। चन्द्रमणि-	=ठंडा(शीतल)प्रकाश वा उजाला सो उद्योत है वह चन्द्रकान्ति
खद्योत-आदि-प्रभवः[१/१]।प्रकाशः[१/१]। । ते[१/३]।एते[१/३]।शब्दादयः[१/३]।	=जुगनू(पटबीजना)आदिकसे उपजनेवाला प्रकाश है । वे इतने शब्दादिक
पुद्गलद्रव्य-विकाराः[१/३]। ते[१/३]।	=पुद्गलद्रव्यके विकार,पर्याय,परिणाम वा परिणत हैं । ते (शब्दादिक)
एषाम्[६/३]।सन्तिT।इति* शब्द-बन्ध-सौक्ष्म्य-स्थौल्य-	=जिनके (विद्यमान)है ऐसे शब्द-बन्धान-सूक्ष्मता-स्थूलतावाले
संस्थान-भेद-तमस्-छाया-आतप-उद्योतवन्तः[१/३]।	=आकार, भेद, अन्धकार, छाया, तप्तउजाला, शीतल प्रकाश
पुद्गलाः[१/३]।इति*अभिसम्बध्यते ॥ च-शब्देन[३/१]।	=पुद्गल हैं ऐसा सम्बन्ध कियाजाता है (इस सूत्रमें) चशब्दकरि
नोदन-अभिघात-आदयः[१/३]। पुद्गल परिणामाः[१/३]।	=प्रेरणा (नोदन) अभिघात(=मारना)आदिक पुद्गलद्रव्यके विकार वा पर्याय
आगमे[७/१]। प्रसिद्धाः[१/३]। समुच्चीयन्तेT ॥	=(जोपरिणाम)शास्त्रमें विख्यात वा व्यक्त है इकट्ठे लाये गये है अर्थात् ग्रहण कियेगये हैं ॥
उक्तानाम्[६/३]।पुद्गलानाम्[६/३]।भेद-प्रदर्शन-अर्थम्[२/१]।।।आहT	=कथित पुद्गलोंके भेद दिखावने के लिये(उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

नुद् छठवां तुदादिगणका धातु है जो प्रेरण अर्थमें (= प्रेरणे) आता है। (प्रश्न) यदि स्पर्श-रसादि तथा शब्दबन्धादि पुद्गलोंहीमें होते हैं तो स्पर्शादिक तथा शब्दादिकके लिये पृथक २ दो सूत्र क्यों किये ! अर्थात् स्पर्श रस गन्ध इत्यादि (२३) तथा शब्द-बन्ध इत्यादि (२४) दो सूत्र क्यों किये एकही सूत्रसे कार्य चलजाता (उत्तर) स्पर्श रस आदि जो हैं वे परमाणुओंमें तथा स्कन्धोंमें स्वभावसेही होते हैं और शब्द बन्ध-आदि तो स्कन्धोंहीमें होते है और अनेक निमित्तोंसे होते हैं न कि केवल परिणाम जन्य इसलिये पृथक् पृथक् सूत्र किये गये हैं ॥

॥ अणवः स्कन्धाश्च ॥ २५ ॥

प्रदेशमात्रभाविस्पर्शादिपर्यायप्रसवसामर्थ्येनाण्यन्ते शब्द्यन्त इत्यणवः ॥ सौक्ष्म्यादात्मादय आत्ममध्या आत्मान्ताश्च ॥ उक्तं च—अत्तादिअत्तमज्झं अत्तत्तं णेव इंदिये गेज्झम् । जद्दव्वं अविभागी तं परमाणुं विआणेहि ॥ १ ॥ स्थूलभावेन ग्रहणनिक्षेपणादिव्यापारस्कन्धनात्स्कन्धा इति सञ्ज्ञायन्ते ॥ रूढौ क्रिया क्वचित्सती उपलक्षणत्वेनाश्रीयते इति ग्रहणादिव्यापार-

सूत्रम्—अणवः स्कन्धाश्च ॥ २५ ॥	= अणवः स्कन्धाः च (पुद्गलाः भवन्ति)
सूत्रार्थः—अणवः स्कन्धाः च*पुद्गलाः भवन्ति।	=अणुऔर स्कन्ध पुद्गलद्रव्यहैंअर्थात् पुद्गलद्रव्यकेअणुऔरस्कन्ध येदोभेदहै
वृत्त्यनुवादः—प्रदेश-मात्र-भावि-स्पर्श-आदि-पर्याय-	=(एक)प्रदेशमात्र होकर भी जो होनेवाले(=भाविन्) स्पर्शादि पर्यायोंके
प्रसव-सामर्थ्येन।।अण्यन्ते। शब्द्यन्ते।	=उपजावनेकी(=प्रसव)शक्ति होनेसे जो कहेजाते हैं(अण्यन्ते=शब्द्यन्ते)
इति*अणवः; सौक्ष्म्यात् आत्म-आदयः	=ऐसे अणु है। सूक्ष्मपणासे(अणु,आपही आदि हैं
आत्म-मध्याः आत्म-अन्ताः च*। उक्तम्।। च*	=आपही मध्य हैं और आपही अन्त हैं (और) कहाभया भी है कि
अत्त-आदि।।अत्त-मज्झं।।(आत्म-आदि।।आत्म-मध्यम्।।)	=(परमाणु) आपही आदि आपही मध्य
अत्त-अत्तं।।(आत्म-अन्तम्।।)ण*एव*इंदिए।। गेज्झम्।।। (न*एव*इन्द्रियैः।।ग्राह्यम्।।)	=आपही अन्त है(और) निश्चयसे(=एव)इन्द्रियोंकरि ग्रहण करनेयोग्य नहीं है
जद्।।दव्वं।।अविभागी।(यत्।।द्रव्यम्।। अविभागी।)	=जो अविभागी द्रव्यहै जिसका दूसरा विभाग नहीं हो सकता
तं। परमाणुं। विआणेहि।(तम्।परमाणुम्।विजानीहि।)	=उसको परमाणु जानो
स्थूल-भावेन। ग्रहण-निक्षेपण-आदि-	=असूक्ष्मपणाकरि अथवा मोटापन करि जुड़ने बिछुड़नेआदिरूप
व्यापार-स्कन्धनात्। स्कंधाः। इति*संज्ञायन्ते।	=व्यापारका स्कन्धोंसे वा संयोग (समूह)से स्कन्ध ऐसी संज्ञायें कीजातीहैं
रूढौ।। क्रिया।। क्वचित्*सती।।उपलक्षणत्वेन।।।	=रुढिविषैं क्रिया कहीं कहीं होती हैं तौ भी उपचारताकरि
आश्रीयते।इति*ग्रहण-आदि-व्यापार-	=(उसरुढिका)आश्रय कियाजाता है(इसीन्यायसे)मिलन आदिके व्यापारकी

(१) दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है ॥ "पुद्गलाः" शब्दकी अनुवृत्ति तेईसवा सूत्रसे लीगई है ॥

अयोग्येष्वपि द्व्यणुकादिषु स्कन्धाख्या प्रवर्तते॥ अनन्तभेदा अपि पुद्गला अणुजात्या स्कन्धजात्या च द्वैविध्यमापद्यमानाः सर्वे गृह्यन्त इति तज्जात्याधारानन्तभेदसंसूचनार्थं बहुवचनं क्रियते॥ अणवः स्कन्धा इति भेदाभिधानं पूर्वोक्तसूत्रद्वयभेदसम्बन्धनार्थम्॥ स्पर्शरसगन्धवर्णवन्तोऽणवः।स्कन्धाः पुनः

अयोग्येषु। अपि॰ द्वि-अणुक-आदिषु। स्कन्ध-आख्या।	=योग्यता न होनेपरभी दो अणु आदिमे स्कन्ध-संज्ञा
प्रवर्तते।	=प्रवर्तती है अर्थात् दो अणु आदिके स्कन्धके मिलने विछुड़नेकी योग्यता नहीं है तौभी रुढिके वशसे(दो अणु आदिके स्कन्धभी) स्कन्ध नाम पाते हैं
अणुजात्या। स्कंधजात्या। च॰ द्वैविध्यम्।	=अणु जातिसे और(=च) स्कंध जातिसे दो प्रकारता को
आपद्यमानाः। अनन्त-भेदाः। अपि॰ पुद्गलाः। सर्वे।	=प्राप्त होनेवाले अनन्त भेदवाले भी पुद्गल सर्व (अणु और स्कन्ध जातियोंमें)
गृह्यन्ते। इति॰	=ग्रहण कियेजाते है अर्थात् पुद्गलोंके अनन्त भेद है वे समस्त भेद अणु और स्कन्ध इन दो जातियों में गर्भित होजाते हैं भावार्थ यह है कि यद्यपि द्व्यणुकादिक तथा स्पर्श-रस-गंध-वर्णादिककरि पुद्गलोंके अनन्तभेद है तथापि वे समस्त भेद अणु और स्कन्ध इन दो जातियोंमे ही समावेश होजाते है ।
तद्-जाति-आधार-अनन्त-	=तिन (अणु और स्कन्ध)की जातियोंके आश्रय रहनेवाले(पुद्गलों)के अनन्त
भेद-संसूचन-अर्थम्।	=भेदोंके ज्ञापन वा जतलानेके लिये (सूत्रमें अणवः ऐसा अणु शब्दका बहुवचन और स्कन्धाः ऐसा स्कन्ध शब्दका
बहुवचनम्। क्रियते।	=बहुवचन किया है अर्थात् यद्यपि पुद्गलके अनन्त भेद हैं तो भी वे भेद अणु जाति और स्कन्ध जाति द्वारा दोही भेदोंमें सत्र ग्रहण कर लिये जाते हैं

इस प्रकार एक एक जाति(अणु और स्कन्धजातिके आधार अर्थात् एक एक जातिमेंभी अनन्त अनन्त भेद होते हैं इसी बातको जतलानेके लिये सूत्रमें बहुवचन दिये हैं ॥

अणवः। स्कन्धाः। इति॰ भेद-अभिधानम्। पूर्व-उक्त-	=अणवः स्कंधाः इस प्रकार(पुद्गलोंके)भेदोंका कथन प्रथम कहेहुये
सूत्रद्वय-भेद-सम्बंधन-अर्थम्।	=दो(तेईसवां और चौवीसवां) सूत्रके अन्तर(भेद) सम्बंधके लिये है
स्पर्श-रस-गंध-वर्णवन्तः। अणवः। । स्कंधाः। पुनः॰	=स्पर्श,रस,गंध वर्णवाले(वा संयुक्त)अणु हैं बहुरि स्कंध (है वे)

शब्दबन्धसौक्ष्म्यस्थौल्यसंस्थानभेदतमश्छायातपो द्योतवन्तश्च स्पर्शादिमन्तश्चेति ॥ आह किमेषां पुद्गलानामणुस्कन्धलक्षणः परिणामोऽनादिरुत आदिमानित्युच्यते। स खलूत्पत्तिमत्त्वादादिमान्प्रतिज्ञायते ॥ यद्येवं तस्मादभिधीयतां कस्मान्निमित्तादुत्पद्यन्त इति॥ तत्र स्कन्धानां तावदुत्पत्तिहेतुप्रतिपादनार्थमुच्यते—

॥ भेदसङ्घातेभ्य उत्पद्यन्ते ॥ २६ ॥

शब्द-बन्ध-सौक्ष्म्य-स्थौल्य-संस्थान-भेद-तमस्-छाया-आतप-उद्योतवन्तः च * स्पर्श-आदिमन्तः च * इति *	=शब्द, बन्ध, सूक्ष्मता, स्थूलता, आकार, खंड, अन्धकार, छांह, तप्त प्रकाश =और (=च) शीतल प्रकाश संयुक्त है। (और) स्पर्श-रस गंध-वर्णवान् भी (च) है
आह। किम् * एषाम् पुद्गलानाम् अणुस्कन्धलक्षणः परिणामः अनादिः उत * आदिमान् इति * उच्यते।	=शिष्य पूछता है कि क्या इन पुद्गलोंके अणुस्कन्ध लक्षणरूप =विकार अनादि है अथवा (=उत) आदिमान् है (उत्तरमें) ऐसा कहाजाता है कि
सः खलु * उत्पत्तिमत्त्वात् ।। आदिमान् प्रतिज्ञायते।	=वह (परिणाम) निश्चयसे उत्पत्तिमान होनेसे आदिमान् कहागया है
यदि * एवम् * तस्मात् अभिधीयताम्। कस्मात् निमित्तात् उत्पद्यन्ते। इति *;	=जो ऐसा है अर्थात् आदिमान् है तौ (=तस्मात्) कहाजाना चाहिये कि किस =निमित्तसे वा किस कारणसे उत्पन्न होते है।
तत्र * स्कंधानाम् तावत् * उत्पत्ति-हेतु-प्रतिपादन-अर्थम् ।। उच्यते।	तहां प्रथम (=तावत्) स्कंधोंकी =उत्पत्तिका कारण कहनेके लिये (उत्तर सूत्रमें) कहाजाता है कि

॥ [1]भेदसंघातेभ्य उत्पद्यन्ते ॥ २६ ॥ = (पुद्गलानां स्कंधाः) भेदसंघातेभ्यः उत्पद्यन्ते ॥ २६ ॥

= पुद्गलानां स्कंधाः भेदात्-संघातात्-भेदसंघाताभ्याम् च * उत्पद्यन्ते ॥ २६ ॥

सूत्रार्थः—पुद्गलानाम् स्कंधाः भेदात् संघातात्	=पुद्गलोंकेस्कंध भेदसे और संघातसे
भेद-संघाताभ्याम् च * उत्पद्यन्ते।	=और (एकही कालमें) भेद संघात (दोनोंसे) उत्पन्न होते हैं अर्थात् (१) बाह्य वा अभ्यन्तरिक निमित्तसे स्कंधोंके टूट जानेसे दो परमाणुओं तकके अनेक स्कंध उत्पन्न होते हैं (२) और बाह्य वा अभ्यन्तरिक कारणसे अन्य अन्य स्कंधोंके संघातसेभी स्कंध होते हैं

(१) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें "संघातभेदेभ्य उत्पद्यन्ते" ऐसा पाठ उपर्युक्त सूत्रका है, परन्तु अर्थ दोनोंसम्प्रदायोंमें एकसा है॥

संघातानां द्वितयनिमित्तवशाद्विदारणं भेदः । पृथग्भूतानामेकत्वापत्तिः संघातः ॥ ननु च द्वित्वाद्-द्विवचनेन भवितव्यम् ॥ बहुवचननिर्देशस्तृतीयसंग्रहार्थः । भेदात्संघाताद्भेदसंघाताभ्यां च उत्पद्यन्त इति ॥ तद्यथा—द्वयोः परमाण्वोः संघाताद्द्विप्रदेशः स्कन्ध उत्पद्यते । द्विप्रदेशस्याणोश्च त्रयाणां वा अणूनां संघातात्त्रिप्रदेशः । द्वयोर्द्विप्रदेशयोस्त्रिप्रदेशस्याणोश्चतुर्णां वा अणूनां संघाताच्चतुःप्रदेशः

तथा ऐसेही किसी स्कन्धके भेद होनेसे अथवा विदारे जानेसे और उसी समयमें अन्य स्कन्धोंके संघातके जुड़नेसे स्कन्धोंकी उत्पत्ति होती है

वृत्त्यनुवादः—संघातानाम्[६/३] द्वितयनिमित्त-वशात्[५/१]	=संघातोंके दोनों (बाह्य और अभ्यन्तर)निमित्तोंके बलसे
विदारणम्[१/१] । भेदः[१/१]; पृथक्*भूतानाम्[६/३] एकत्व-	=टूटना(न्यारा न्यारा वा भिन्न २ होना)है सो भेद है। न्यारीन्यारी द्रव्योंके एकपनाकी
आपत्तिः[१/१] संघातः[१/१] ननु*च*द्वित्वात्[५/१] ।	=प्राप्ति है सो संघात है । पुनि प्रश्न द्वित्वसे अर्थात् भेदपना और संघातपना के निमित्तोंसे (इस सूत्रमें)
द्विवचनेन[३/१] ।	=दो वचन युक्त(भेदसंघाताभ्याम् ऐसा न कि बहुवचन भेद संघातेभ्यः ऐसा)
भवितव्यम्[१/१] । बहुवचन-निर्देशः[१/१]	=होना चाहिये। (उत्तर इससूत्रमें) बहुवचनका निरूपण वा वर्णन
तृतीय-संग्रह-अर्थः[१/१]; भेदात्[५/१]	=तीसरे(भेदसंघाताभ्याम्)के समुच्चय के लिये है ।(पुद्गलोंके स्कन्ध) विछुड़नेसे
संघातात्[५/१] भेद-संघाताभ्याम्[५/२] च*	=मिलने(जुड़ने)से और(=च) मिलने विछुड़ने (दोनोंसे)
उत्पद्यन्ते इति*तद्यथा*द्वयोः[६/२] परमाण्वोः[६/२]	=उत्पन्न होते है(अतःभेदसंघातेभ्यःऐसा बहुवचन है) । जैसेकि दो परमाणुओंके
संघातात्[५/१] द्विप्रदेशः[१/१] स्कंधः[१/१] उत्पद्यते । द्विप्रदेशस्य[६/१] च*	=जुड़नेसे दो प्रदेशवाला स्कन्ध उपजता है । दो प्रदेशवाले (स्कन्ध)के और(=च)
अणोः[६/१] त्रयाणाम्[६/३] वा*अणूनाम्[६/३] संघातात्[५/१]	=अणुके (=अणोः)(संघातसे) अथवा तीन(खुलीहुई)परमाणुके मिलनेसे(=संघातात्)
त्रिप्रदेशः[१/१]; द्वयोः[६/२] द्वि-प्रदेशयोः[६/२]	=तीन प्रदेशवाला(स्कंध उपजता)है । दो दो प्रदेशवाले दो (स्कन्धों)के (संघातसे),
त्रि प्रदेशस्य[६/१] अणोः[६/१] चतुर्णाम्[६/३] वा*	=तीन प्रदेशवाले(स्कन्ध) के और अणुके संघातसे, अथवा चार (खुलीहुई)
अणूनाम्[६/३] संघातात्[५/१] चतुः प्रदेशः[१/१]	=परमाणुओंके संघात्से चार प्रदेशी(स्कंध उत्पन्न) होता है

सिद्धे विधिरारभ्यमाणो नियमार्थो भवति। अणोरुत्पत्तिर्भेदादेव, न संघातान्नापि भेदसंघाताभ्यामिति॥ आह संघातादेव स्कन्धानामात्मलाभे सिद्धे भेदग्रहणमनर्थकमिति ॥ तद्ग्रहणप्रयोजनप्रतिपादनार्थमिदमुच्यते—

सूत्रार्थः—भेदात् अणुः उत्पद्यते T =भेद से अणु उत्पन्न होता है अर्थात् अणु किसी वस्तुके खण्ड से उपजता है न कि किसी वस्तु के जुड़ने अथवा मिलने से ॥

वृत्त्यनुवादः—सिद्धे विधिः आरभ्यमाणः नियम-अर्थः भवतिT =सिद्ध होनेपर अर्थात् सिद्ध होनेके पश्चात् विधि सूत्रका प्रारम्भ नियमके लिये =होता है अर्थात् जो पहले विधि सूत्रसे अर्थ सिद्ध होनेपर फिर विधि सूत्र कहा जाता है वह नियमके लिये होता है और उसको नियम सूत्र(सीमाबंधक सूत्र) कहते हैं जैसे पच्चीसवां सूत्रमें कहा है कि पुद्गलके अणु और स्कंध दो भेद होते है और छव्वीसवां सूत्रमें कहते है कि (१)भेदसे (२) संघातसे और (३) भेद संघात दोनोंसे स्कंध उत्पन्न होते हैं यह विधि सूत्र अथवा एक बातको साधारण वर्णन करनेवाला सूत्र है, पच्चीसवां सूत्रसे इस २६वां सूत्रमें अणवः स्कंधाः दोनोंकी अनुवृत्तियां यदि लीजावें तो यह अर्थ होगा कि अणु और स्कंध (१) भेदसे (२) संघातसे और (३) एकही समयमें भेद संघात दोनोंसेही उत्पन्न होते है, यथार्थमें यह अर्थ है नहीं इसलिये ऊपरके अर्थको नियमित वा रोकनेके लिये पूर्वोक्त विधि सूत्र २६वां के पश्चात्ही दूसरा विधि सूत्र अर्थात् २७वां सूत्र कि अणु भेदसेही उपजते है (नकि संघातसे और भेद संघात दोनोंसे उपजते हैं) दिया है ॥

अणोः उत्पत्तिः। भेदात् एव*, न* संघातात् अपि* =अणुकी उत्पत्ति भेदसेही है नकि संघातसे भी ॥

भेद-संघाताभ्याम् इति*। आह। संघातात् एव* =(और नकि एकसमयमें)भेदसंघात दोनोसे(होतीहै)(शिष्य)तर्क करताहैकि संघातसेही

स्कंधानाम् आत्म-लाभे सिद्धे भेदग्रहणम्॥ =स्कंधोंके स्वरूप लाभ सिद्ध होने पर(संघातके साथ) भेदको ग्रहण करना

अनर्थकम्॥ इति* =निष्प्रयोजन है अर्थात् संघातसे स्कंध उत्पन्न होते है फिर भेद संघातसे उत्पत्ति कहना निरर्थक है

तद्-ग्रहण-प्रयोजन-प्रतिपादन-अर्थम्॥ =उस संघातके साथ भेद(शब्द)के लानेके प्रयोजन कहनेके लिये

इदम्॥ उच्यते £ =यह(अग्रिम सूत्र)कहाजाता है कि

॥ भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषः ॥ २८ ॥

अनन्तानन्तपरमाणुसमुदयनिष्पाद्योऽपि कश्चिच्चाक्षुषः कश्चिदचाक्षुषः ॥ तत्र योऽचाक्षुषः

सूत्रम्—भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषः[1]॥ २८ ॥ = भेदसंघाताभ्याम्चाक्षुषः (स्कंधः उत्पद्यते)॥ २८॥

सूत्रार्थः—भेदसंघाताभ्याम्।³ चाक्षुषः।¹ स्कंधः।¹ उत्पद्यते।² =भेद संघात(दोनों)सेही नेत्र इन्द्रियगोचर स्कंध उत्पन्न होता है(भेदसे नहीं होता) अर्थात् जो सूक्ष्म परिणामनरूप स्कंध है उसका भेद अथवा खंड होनेपर तौ सूक्ष्म परिणामको नहीं छोड़ता हैं इससे वह नेत्र इन्द्रियसे अगोचर है परन्तु जब वह सूक्ष्म परिणाम(=भेद)रूप किया हुआ स्कंध अन्य स्कंधमें संघातरूप होकर मिले तब सूक्ष्मपणाके परिणामको छोड़कर स्थूलपनाको प्राप्त होकर नेत्र इंद्रिय ग्राह्य होता है इसलिये कहते है कि भेद संघात दोनोंसे नकि केवल भेदसे नेत्रइन्द्रियगोचर स्कंध पैदा होता है

वृत्त्यनुवादः—अनन्तानन्त-परमाणु-समुदय-निष्पाद्यः।¹ अपि*=अनन्तानन्त परमाणुके समूहकरि उत्पन्न होने योग्य(स्कंधों)में भी

कश्चित्*चाक्षुषः।¹ कश्चित्*अचाक्षुषः।¹ =कोई एक(स्कंध,नेत्र इन्द्रियकरि ग्राह्य है,कोई एक नेत्रइन्द्रियकरि ग्रहण योग्य नहीं है

तत्र*यः।¹ अचाक्षुषः।¹ =तहां जो स्कंध नेत्र इन्द्रियके ग्रहण योग्य नहीं (अचाक्षुषः) है

(१) नेत्र इन्द्रियगोचर=नेत्र इन्द्रियसे प्रत्यक्षहोनेवाला, नेत्रइन्द्रियकर ग्राह्य, नेत्र इन्द्रियके ग्रहण योग्य (२) दिगम्बर आम्नायकी बहुतसी मुद्रणयन्त्रकी पुस्तकें तथा हस्तलिखित कई प्रतियोंमें यह सूत्र पूर्वोक्त लेखअनुसार है परन्तु श्वेताम्बर सम्प्रदायके "सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें तथाश्रीसिद्धसेनसूरि रचित भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकाके पृष्ठ ४०६ पर यह सूत्र इस प्रकार है कि "भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषाः" ॥ अर्थात् चाक्षुषाः बहुवचन चाक्षुष'(नेत्र इन्द्रियगोचर)का है चाक्षुषाः शब्दमें योग्यता और सुगमता यह जान पड़ती है कि'स्कन्धाः'शब्दकी अनुवृत्ति पच्चीसवां सूत्रसे और उत्पद्यते शब्दकी अनुवृत्ति छब्बीसवां सूत्रसे लेकर इधरउधरसे खैंचातानी बिना कियेहुये "भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषाः स्कन्धाः उत्पद्यन्ते" मय अनुवृत्तियोंकेसूत्र होजाता है। इसमें संदेह नहीं कि एक प्रकारके तुल्यसूत्र दीर्घ होजाताहै अर्थात् "भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषाः" होजाता है अनुवृत्ति स्कन्धाके स्थानमें'स्कन्ध'की माननी पड़ती है और इसी प्रकार उत्पद्यन्तेके स्थानमें उत्पद्यतेकी। अर्थ इसप्रकार सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें किया है कि

भेद-संघाताभ्यां।³ चाक्षुषाः।¹ स्कन्धाः।¹ =भेद-संघात (दोनों)से ही नेत्र इन्द्रियसे प्रत्यक्ष होसकनेवाले स्कन्ध

उत्पद्यन्ते अचाक्षुषाः।¹ तु*यथा*उक्तात्।⁵॥ =उत्पन्न होते हैं और (=तु)जोनेत्र इन्द्रियगोचर नहीं है वे जैसाकि (छब्बीसवांसूत्रमें कहागया है कि)

संघातात्।⁵ भेदात्।⁵ संघातभेदात्।⁵ च*इति* =संघातसे,भेदसे तथा(=च) संघातभेद(दोनों)से(ही)(उत्पन्न होतेहैं)। अर्थ दोनोंसम्प्रदायोंमें एकसाहै॥

स कथं चाक्षुषो भवतीति चेदुच्यते । भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषः । न भेदादिति ॥ का तत्रोपपत्तिरिति चेत्-ब्रूमः । सूक्ष्मपरिणामस्य स्कन्धस्य भेदे सौक्ष्म्यापरित्यागादचाक्षुषत्वमेव । सौक्ष्म्यपरिणतः पुनरपरः सत्यपि तद्भेदेऽन्यसंघातान्तरसंयोगात्सौक्ष्म्यपरिणामोपरमे स्थौल्योत्पत्तौ चाक्षुषो भवति॥ आह धर्मादीनां द्रव्याणां विशेषलक्षणान्युक्तानि, सामान्यलक्षणं नोक्तं, तद्वक्तव्यम्॥ उच्यते—

॥ सद्द्रव्यलक्षणम् ॥ २९ ॥

सः[1/1] कथम्*चाक्षुषः[1/1] भवतिT इति*चेत्*उच्यतेT ।	=सो कैसे नेत्र इन्द्रियगोचर होता है । ऐसी शंका होनेपर कहाजाता है कि
भेदसंघाताभ्याम्[5/2] चाक्षुषः[1/1] न*भेदात्[5/1] इति*	=भेदसंघात(दोनों)से नेत्र इन्द्रियगोचर(स्कन्ध)होता है न भेद वा खंडसे केवल ।
का[1/1] ॥तत्र*उपपत्तिः[1/1] ॥इति*चेत्*ब्रूमःT ।	=क्योंकर तहां(चाक्षुषस्कन्धकी)उत्पत्ति है ऐसा संदेह है(उत्तरमें) हम कहते हैं कि
सूक्ष्म-परिणामस्य[6/1] स्कन्धस्य[6/1] भेदे[7/1] सौक्ष्म्य-	=सूक्ष्म परिणमनरूप स्कन्धके भेद वा खंड होनेपर सूक्ष्मताके
अपरित्यागात्[5/1] अचाक्षुषत्वम्[1/1] ॥एव* ।	=न छोड़ने(के कारण)से नेत्र इन्द्रियके अगोचरही रहता है ।
सौक्ष्म्य-परिणतः[1/1] पुनः*अपरः[1/1] सति[7/1] अपि*तद्-भेदे[7/1]	=वहुरि कोई एक(=अपर)सूक्ष्मतारूप परिणमा(स्कन्ध)हो उस(स्कन्ध)के भेद होनेपर
अन्य-संघात-अन्तर-संयोगात्[5/1] सौक्ष्म्य-	=अन्य(स्कन्ध)का संघात विशेषके(अन्तर)मिलनेसे सूक्ष्मपनाके
परिणाम-उपरमे[7/1] स्थौल्य-उत्पत्तौ[7/1] ॥चाक्षुषः[1/1] भवतिT ॥	=परिणमनको छोड़नेपर और(=च)स्थूलताके उत्पन्न होनेपर नेत्र इन्द्रियगोचर होताहै
आहT धर्मादीनां[6/3] द्रव्याणाम्-विशेष-लक्षणानि[1/3] ॥उक्तानि[1/3] ॥	=शिष्य पूछता है कि धर्मादिक द्रव्योंके विशेष लक्षण कहेगये
सामान्य-लक्षणम्[1/1] ॥न*उक्तम्[1/1] ॥तद्-वक्तव्यम्[1/1] ॥उच्यते ।	=सामान्यलक्षण नहीं कहागया, उस सामान्यलक्षणको कहना चाहिये-कहाजाताहैकि

सद्द्रव्यलक्षणम् ॥२९॥ = **सत्-द्रव्य-लक्षणम् (भवति) ॥२९॥**

सूत्रार्थः—सत्[1/1] ॥ द्रव्य-लक्षणम्[1/1] ॥ भवतिT	=द्रव्यका लक्षण सत् है वही द्रव्य है अथवा जो सत्‌रूप हैं वही द्रव्य है

श्वेताम्बरआम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें तथा भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थ टीकामें यह सूत्र नहीं है अर्थात इसको सूत्र नहीं माना है वार्तिक और वृत्तिरूपमें दिया है ॥

यत्सत्तद्द्रव्यमित्यर्थः ॥ यद्येवं तदेव तावद्वक्तव्यं किं सत्? इत्यत आह—

॥ उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् ॥ ३० ॥

चेतनस्याचेतनस्य वा द्रव्यस्य स्वां जातिमजहत उभयनिमित्तवशाद्भावान्तरावाप्तिरुत्पादनमुत्पादः । मृत्पिण्डस्य घटपर्यायवत् ॥

वृत्त्यनुवादः—यद् । सत् । तद् । द्रव्यम् । इति * अर्थः =जो सत् है वह द्रव्य है ऐसा तात्पर्य है

यदि । एवम् * तावत् * तद् । एव * =जो ऐसे है अर्थात् जो सत् है सो द्रव्य है तो(=तावत्) सोही (तद्एव)

वक्तव्यम् । किम् । सत् । इति * अतः आह =कहना चाहिये सत् क्या है इसलिये(आचार्य अग्रिमसूत्रमें) कहते हैं कि

(१ उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं २ सत् ॥३०॥ = भवति सत् उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तम् ॥ ३०

सूत्रार्थः—उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्तम् । सत् । भवति । =उत्पत्ति-नाश-स्थिरता स्वरूप (=युक्त) सत् है वा उत्पादव्ययध्रौव्य लक्षणवाला (=युक्त) सत् है अर्थात् (३ उत्तर पर्यायका उपजना सोही पूर्व पर्यायका नाश होना है और जो पूर्व पर्यायाका नाशहोना सोही उत्तर पर्यायका उत्पाद है और द्रव्य है सो उत्पादमेंभी वही द्रव्य है और व्यय में भी वही द्रव्य है अन्य द्रव्य नहीं होगई है और उत्पाद-व्ययद्रव्यमें समय समय होता है इससे सर्वद्रव्य परिणामी है परिणमन विना किसी समयमेंभी कोई द्रव्य नहीं रहती है । ये(उत्पाद-व्यय ध्रौव्य) तीनों गुण द्रव्यमें एक साथ निरन्तर रहते हैं।

वृत्त्यनुवादः—स्वाम् । जातिम् । अजहतः । चेतनस्य । =जिसने अपनी जातिको नहीं छोड़ा है चेतन

अचेतनस्य । वा * द्रव्यस्य । उभय-निमित्त-वशात् । =अथवा अचेतन द्रव्यके (बाह्य, अभ्यन्तर) दोनों कारणोंके वलसे

भावान्तर-अवाप्तिः । उत्पादनम् । उत्पादः । =(एक अवस्थासे)अन्य अवस्था वा परणतिको प्राप्त होना सो उत्पाद है

मृद् । पिण्डस्य । घट-पर्यायवत् * =माटीके पिंडकें घट पर्याय होने सदृश है अर्थात् मृतिका द्रव्य विषैं पिंड पर्यायका

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों सम्प्रदायोंमें एकसा है ॥ श्वेताम्बर आम्नायमें कई पाठ हैं उनमेंसे एक पाठ मिलता है (देखो पृष्ठ १०५) ॥

(२) (प्रश्न) जब उनतीसवा सूत्रमें 'सत्' शब्द है तो यहां तीसवा सूत्रमें 'सत्' शब्द क्यों लाये हैं, उनतीसवा सूत्रसे अनुवृत्ति लेकर ऐसा सूत्र क्यों नहीं किया कि "उत्पाद व्यय ध्रौव्ययुक्त" ॥ (उत्तर) यह सदेह रहता कि 'सत्' शब्दकी अनुवृत्ति है अथवा 'द्रव्यलक्षणम्'का क्योंकि उत्पाद व्यय ध्रौव्ययुक्त सत् अथवा उत्पाद-व्यय ध्रौव्य युक्तम् द्रव्यलक्षणम् इन दोनोंका अर्थ एकही है (३) जैसे सोनेके कुण्डलोंका कड़ेरूप होना सोतो उत्पाद है और

तथा पूर्वभावविगमनं व्ययः । यथा घटोत्पत्तौ पिण्डाकृतेः॥ अनादिपारिणामिकस्वभावेन व्ययोदयाभावात् ध्रुवति स्थिरीभवतीति ध्रुवः ।

नाश होना और घट पर्यायका उपजना इस प्रकार उत्पाद जानना

तथा*पूर्वभावविगमनम्॰॥व्ययः॰ । =वैसेही (=तथा) पहिली अवस्थाका विनाश होना (=विगमनं) समुच्छेद होना अथवा अभाव होना सो व्यय है

यथा*घट-उत्पत्तौ॰॥पिण्ड-आकृतेः॰॥; अनादि-पारिणामिक-स्वभावेन॰ (१)व्यय-उदय-अभावात्॰ (२)ध्रुवतिT स्थिरीभवतिT इति*ध्रुवः॰ =जैसे घटके उपजनेमें पिंडके आकारका (विनाश होना) अनादिकालसे =परिणमन होनेवाले स्वभाव द्वारा (पर्यायोंके) विनाश उत्पादनके वशसे रहित =स्थिर रहता है या अवतिष्ठमान रहता हैं (=स्थिरी भवति) ऐसा ध्रुव है अर्थात् जो पूर्वभावका नाश और उत्तरभावका उत्पाद होतेभी अपनी जातिको नही छोड़ता है सो ध्रुव है, पर्याय नवीन उपजतीहैं और विनशती हैं, द्रव्यस्वभावकरि उत्पाद विनाशरूप नही है ध्रुव हैं ही ॥

कुण्डलरूप अवस्थाका नष्ट होना सो विनाश वा व्यय है और पीतरग, भारीपन आदि अपनी सोनेकी जातिको लिये हुए दोनों अवस्थाओंमें विद्यमान रहना सो ध्रौव्य है। और भी जैसे मिट्टीके पिंडका घट करना सो उत्पाद है ॥और पिंडपर्यायका अभाव सो व्ययहै और पिंडपर्यायमें तथा घटपर्यायमें मिट्टीका अभाव न होना तथा सर्व मिट्टीके गुणोंको धारण किये हुये दोनों पिंड तथा घट अवस्थाओंमें रहना है सो ध्रौव्य है ॥

(१) श्वेताम्बरआम्नायमें इस सूत्रके भिन्नभिन्नभाष्य और पाठ ऐसे हैं कि (क)उत्पादव्ययाभ्यां ध्रौव्येण च युक्तंसत्" (ख)उत्पादव्ययाभ्यां ध्रौव्येणच युक्तसतोलक्षणम् (उत्पादसे, व्ययसे, तथा ध्रौव्यसे, युक्त होना यह सतका लक्षण है) (ग) उत्पादव्ययौ ध्रौव्यं चैतत् त्रितययुक्तं सत् (घ) उत्पादव्ययौ ध्रौव्य च सतो लक्षणम् (ङ)उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् अर्थात् उत्पाद व्यय ध्रौव्य ये तीनों एकही पदमें पडे हैं ॥ सर्वथा सूत्रका यह अर्थहै कि उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य सहित सत् है ॥

(२)अनेकान्तस्वरूप वस्तुके अन्वयी जोडरूप तो गुण है और व्यतिरेकी पर्याय हैं जैसे मृत्तिकाविषैं स्पर्श रस गन्ध रूप ये तो गुणहैं और पिंड,घट कपाल, खंड, शर्करादिक पर्याय है ॥ स्पर्श रस गन्ध वर्ण गुण हैं ते तो मृत्तिका के साथही घट कपाल खंडादिक सर्वपर्यायोंमें पाये जाते हैं तिससे स्पर्शादि गुण अन्वयी हैं। और घट कपालादिक पर्याय भिन्नभिन्न कालमें पायेजाते हैं। जिस कालमें पिंड पर्याय है तिस कालमें घटादिक अन्य पर्याय नही हैं और घट पर्याय है तिसमें पिण्डादिक पर्याय नहीं है, तिससे पर्याय व्यतिरेकी है और द्रव्यसे गुण पर्याय भिन्न नहीं है गुण पर्यायात्मकही द्रव्य है ॥ गुण हैं वे तो द्रव्यमें युगपत् प्रवर्तते हैं और पर्याय हैं ते क्रमकरि प्रवर्तती हैं, तिससे गुणपर्यायहैं ते द्रव्यका स्वभाव भूत हैं तिससे द्रव्यलक्षणपना को धारण करती है ॥ इस प्रकार द्रव्यके तीन लक्षण (उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य) कहेगये हैं।

ध्रुवस्य भावः कर्म वा ध्रौव्यम् । यथामृत्पिण्डघटाद्यवस्थासु मृदाद्यन्वयः ॥ तैरुत्पादव्ययध्रौव्यैर्युक्तं सदिति ॥ आह भेदे सति युक्तशब्दो दृष्टः। यथा दण्डेन युक्तो देवदत्त इति ॥ तथा सति तेषां त्रयाणां

ध्रुवस्य॥भाव॥कर्म॥वा*ध्रौव्यम्॥ ।	ध्रुवका भाव अथवा कर्म है सो ध्रौव्य है अर्थात् स्थिरता अथवा स्थिर रहना ध्रौव्य है
यथा*(१)मृद्-पिण्ड-घटादि-अवस्थासु॥मृद्-आदि-अन्वय॥ ॥	=जैसे मिट्टीका ढेला घट (कपाल) आदिक अवस्थाओं में मिट्टी आदि है =सो जोड़ रूप वा सर्व दशाओंमें सम्बन्धरूप है अर्थात् वही मिट्टी पिंडमें थी वही घटमें
तैः॥उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यैः॥युक्तम्॥सत्॥इति*॥	=तिन उत्पत्ति-विनाश-स्थिरता (तीनों) करि सहित (=युक्त) सत् है ॥
आह॥भेदे॥सति॥युक्तशब्दः॥दृष्टः॥ ।	=प्रश्न करता है कि भेद होनेमें युक्त शब्द देखा जाता है अर्थात् जहां एक वस्तु से दूसरी वस्तु भिन्न दिखानी होती है वहां युक्त शब्द लाते हैं
यथा*दण्डेन॥युक्तः॥ देवदत्तः॥इति* ॥	=जैसे दंडकरि युक्त देवदत्त अर्थात् देवदत्त मनुष्य है सो और वस्तु है दंड अन्य वस्तु है । देवदत्त और दंड एक ही नहीं है
तथा*सति॥ तेषाम्॥ त्रयाणाम्॥	=इस भांति (=तथा) होनें में (=सति) तिन तीन (उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य) कें

(१) "यथा मृत्पिण्ड घटाद्यवस्थासु मृदाद्यन्वय" ऐसा पाठ हो अर्थात् 'मृदन्वयः'के स्थानमें 'मृदाद्यन्वय' हो तो पिण्डका अर्थ लोहा (देखो पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ २३८) होगा और वाक्यका अर्थ इसप्रकार होगाकि जैसे मिट्टी और लोहा(=पिण्ड)घट आदिक लोटा, करहा अवस्थाओंमें मिट्टीऔर लोहेके जोडरूप वा अन्वय रूप है (२) द्रव्यका एक लक्षण सत् कहा, एक उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्तपणा कहा। एक गुण पर्यायवान्" (देखो सूत्र३८) कहा, इन तीन लक्षणोंके मध्य एकके कहने पर अन्य दो लक्षण अर्थसेही आजाते है ॥ सत् लक्षणके कहनमें उत्पाद व्यय ध्रौव्यवान् पना और गुण पर्यायवान् पणा स्वयमेव आजाते हैं ॥ और उत्पाद व्यय ध्रौव्यवान् कहने पर सत्पना और गुणपर्यायवान् पणा स्वयमेव गर्भित होजाता है और गुण पर्यायवान् पणा कहनेमें सत्पना और उत्पाद व्यय ध्रौव्यपना स्वयमेव आजाते हैं ॥

तैर्युक्तस्य द्रव्यस्य चाभावः प्राप्नोति ॥ नैष दोषः । भेदेऽपि कथञ्चिदभेदनयापेक्षया युक्त-शब्दो दृष्टः । यथा सारयुक्तः स्तम्भ इति ॥ तथा सति तेषामविनाभावात्सद्व्यपदेशो युक्तः ॥ समाधिवचनो वा युक्तशब्दः । युक्तः समाहितः तदात्मक इत्यर्थः । उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्

च*तैः युक्तस्य द्रव्यस्य अभावः प्राप्नोति ॥ =और(=च)तिन(उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य)करि युक्त द्रव्यकै अभाव प्राप्त होता है अर्थात् जो ऐसे तीन भाव पृथक् पृथक्करि युक्त है तो द्रव्यका अभाव आता है

न*एषः दोषः; (१ भेदे अपि*कथञ्चित्* =(उत्तर) यह दूषण नहीं हैं, भेद होनेपरभी कभी कभी

अभेद-नय-अपेक्षया युक्तशब्दः दृष्टः। =अभेदनयकी अपेक्षासे युक्त शब्द देखागया है अर्थात् जहां एकवस्तुसे दूसरीवस्तुको पृथक् दिखाना होता हैं वहां तो युक्त शब्द लाते ही हैं परन्तु कभी कभी अभेदपनाके अर्थमेंभी युक्त शब्द आता है।

यथा*सारयुक्तः स्तम्भः इति * ॥ तथा*सति तेषाम् =जैसे सारयुक्त स्तम्भ है, तैसे होनेमें तिन (उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य)के

अविनाभावात् सत्-व्यपदेशः युक्तः। =अविनाभाव होनेसे(=एकबिना दूसरेका अस्तित्व न रहसकनेकेहेतुसे)सत्का कथन है

समाधिवचनः वा*युक्तशब्दः। युक्तः समाहितः =अथवा युक्त शब्दएकमेकतारूप वचन (=समाधिवचन) है। युक्त है सो समाहित

तदात्मकः इति*अर्थः;उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य-युक्तं सत् =तदात्मक या तत्स्वरूप ऐसा अर्थ है। उत्पत्ति,नाश, स्थिरता,मिलित(=युक्त)सत् है,

(१) सर्वार्थसिद्धका प्रथमावृत्तिमें "भेदेऽपि कथञ्चिदभेदनयापेक्षया" इत्यादि पाठ है इस पर चरणटिप्पणी ऐसे है कि 'अभेदेऽपिकथञ्चिद्भेदापेक्षया इत्यपि पाठान्तरम्' द्वितीयावृत्तिमेंभी यही चरणटिप्पणी है परन्तु "अभेदेऽपि कथञ्चिदभेदनयापेक्षया" इत्यादि पाठ है यह छापेकी अशुद्धि है अथवा सम्भव है कि अन्य प्रकारकी अशुद्धि हो क्योंकि कोईभी पाठ हम लें, यदि आरभमें 'अभेद' शब्द है तो मध्यमें भेद शब्द होना चाहिये यदि प्रारम्भमें 'भेद' शब्द हो तो दूसरा शब्द अभेद होना चाहिये ॥ दो हस्तलिखित प्रतियोंमें "अभेदेऽपिकथंचिदभेदनयापेक्षया" पाठ है एक अन्य हस्त लिखित पुस्तकमें "अभेदेन कथंचिद्भेदनयापेक्षया" ऐसा पाठ है। इन समस्त पाठोंको छोडकर हमने प्रथमावृत्तिका पाठ लिया है क्योंकि शिष्यके प्रश्नके शब्दोंके क्रमानुकूल उत्तर प्राप्त होजाता है जैसाकि नीचेके हिंन्दी अनुवादसे प्रगट है। प्रश्न करता है कि "भेद होनेमें युक्तशब्द देखा जाता है अर्थात् जहां एकवस्तुसे दूसरीवस्तु भिन्न दिखानी होतीहै वहां युक्त शब्द लातेहै जैसे दंडकरि युक्त देवदत्त अर्थात् देवदत्त मनुष्य है सो चेतन है और दंड अचेतन अन्य वस्तु है देवदत्त और दंड एकही नहीं है इस भांति होनेपर तिन तीन(उत्पाद व्यय ध्रौव्य)के और उन(उत्पाद व्यय-ध्रौव्य)करि युक्त द्रव्यके अभाव प्राप्त होताहै अर्थात् जो ऐसे तीनभाव भिन्नकरि युक्त है तो द्रव्यका अभाव आताहै।(उत्तर)यह दूषण नहींहै। भेद होनेपरभी कभीकभी अभेदनयकी अपेक्षासे युक्त शब्द देखाजाता है अर्थात् जहां एक वस्तुसे दूसरी वस्तुको पृथक् दिखाना होता है वहां तो युक्त शब्द लातेही हैं परन्तु कभीकभी अभेदपनाके अर्थमें भी युक्तशब्द आता है। जैसे सार युक्त स्तम्भ है ऐसे होनेपर तिन(उत्पाद-व्यय ध्रौव्य)केअविनाभावसे सत् का कथनहै॥

उत्पादव्ययध्रौव्यात्मकमिति यावत् । एतदुक्तं भवति—उत्पादादीनि त्रीणि द्रव्यस्य लक्षणानि । द्रव्यं लक्ष्यम् । तत्पर्यायार्थिकनयापेक्षया परस्परतो द्रव्याच्चार्थान्तरभावः ॥ द्रव्यार्थिकनयापेक्षया व्यतिरेकेणानुपलब्धेरनर्थान्तरभाव इति लक्ष्यलक्षणभावसिद्धिः ॥

आह नित्यावस्थितान्यरूपाणीत्युक्तं तत्र न ज्ञायते किं नित्यमित्यत आह—

॥ तद्भावाव्ययं नित्यम् ॥ ३१ ॥

उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य-आत्मकम् इति यावत् * एतद् उक्तं भवति ।	=उत्पत्ति-विनाश-स्थिरता स्वरूप होना इतना(=यावत्) अर्थ है अर्थात् यह सिद्ध होता है कि
उत्पाद-आदीनि ।। त्रीणि ।। द्रव्यस्य ।। लक्षणानि ।।	=उत्पादादिक तीनों द्रव्यके लक्षण हैं
द्रव्यम् ।। लक्ष्यम् ।।; तत्-पर्यायार्थिक-नय-	=द्रव्य लक्ष्य है वे(=तद्=उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य)पर्यायार्थिकनयकी
अपेक्षया ।। परस्परतः * द्रव्यात् ।। च * अर्थ-अन्तर-भावः ।;	=अपेक्षासे आपसमें तथा (=च)द्रव्यसे अन्य अन्य पदार्थ है अर्थात् विशेषकी अपेक्षा समस्त पर्याय क्रमवर्ती भिन्नभिन्न हैं, परस्पर मिलैं नहीं तिसकरि भिन्न है
द्रव्यार्थिक-नय-अपेक्षया ।। व्यतिरेकेण ।।	=द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षासे(उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य)पृथक् पृथक् (=व्यतिरेकेण)
अनुपलब्धेः ।। अनर्थ-अन्तर-भावः ।। इति *	=न प्राप्ति होनेसे अन्य अन्य पदार्थ नहीं है अर्थात् ये उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सामान्य तो अभिन्न हैं वोही एक द्रव्य है द्रव्यसे भिन्न नहीं हैं (अर्थ प्रकाशिका पृ० ३२२) (इस प्रकार भेद अभेदनयकी अथवा (पर्यायार्थिक द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षासे)
लक्ष्य-लक्षणभाव-सिद्धिः ।।; आह । नित्य-अवस्थितानि ।।।	=लक्ष्य लक्षणभावकी सिद्धि है । (शिष्य) पूछता है कि "नित्यावस्थितान्य-
अरूपाणि ।।। इति * उक्तम् ।।।	=रूपाणि" (इस प्रकार इस अध्यायका चौथा सूत्र) कहागया है
तत्र * न * ज्ञायते । किम् * नित्यम् ।।। इति * अतः * आह ।	=तहां नहीं जतायागया है कि नित्य क्या है, इसलिये (उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

(१)तद्भावाऽव्ययं नित्यम् ॥ ३१ ॥

अर्थः—तद्-भाव-अव्ययम् ।।। नित्यम् ।।।	=वह(सत्)जो स्वभावसे विनाशरहित वा अविनाशी(=अव्यय)है सो नित्य है

(१) दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायोंसे इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है हमारे यहां 'नित्यम्' शब्दके स्थानमें किसी किसी पुस्तकमें 'नित्य' पाठ है वह कातन्त्ररूपमालाव्याकरणके अतिरिक्त अशुद्ध है (देखो अध्याय प्रथम पृष्ठ ५,६,५४०,५४१,)

तद्भाव इत्युच्यते । कस्तद्भावः ? । प्रत्यभिज्ञानहेतुता । तदेवेदमिति स्मरणं प्रत्यभिज्ञानम् । तदकस्मान्न भवतीति योऽस्य हेतुः स तद्भावः । तस्य भावस्तद्भावः ॥ येनात्मना प्राग्दृष्टं वस्तु तेनैवात्मना पुनरपि भाव.त्तदेवेदमिति प्रत्यभिज्ञायते ॥ यद्यत्यन्तविरोधोऽभिनवप्रादुर्भावमात्रमेव वा स्तात्ततः

अर्थात्-तद्-भाव जो पहिले समयमें था सोही दूसरे समयमें था उसका नाश न होना सोही नित्य है भावार्थ यह है कि पहिले कहा हुआ (तद्)अथवा २६वां सूत्रमें कथित सत् जो स्वभावसे अविनाशी वा विनाशरहित है सोही नित्य है अर्थात् जिस स्वरूपकरि वस्तु पूर्वमें देखाथा उसी स्वरूपकरि वर्तमानमें देखिये है ऐसा जोड़रूप वस्तु में भाव वही तद्भाव है, उस जोड़रूप भाव द्वारा विनाश रहित (=अव्यय)हो उसीको नित्य कहतेहै। सर्वथा नित्य अर्थात् कूटस्थ कोई वस्तु नहीं है कूटस्थके पर्याय पलटनेका अभाव है तब संसार तथा संसारके अभावके कारण विधानमें विरोध आता है ।

वृत्त्यनुवादः-तद्भावः१।१ इति*उच्यतेT कः१।१ तद्भावः१।१ ?प्रत्यभिज्ञान-	=(सूत्रमें) तद्भाव ऐसा कहागया है । तद्भाव क्या है । प्रत्यभिज्ञानका
हेतुता१।१ ;तद्१।१।।एव*इदम्१।१।। इति*	=हेतुपन वा कारणपना है । यह (=इदम्)वहही है(=तद्-एव) ऐसी
स्मरणम्१।१।।प्रत्यभिज्ञानम्१।१।।;तद्१।१।।अकस्मात्*	=स्मृति प्रत्यभिज्ञान है; वह(प्रत्यभिज्ञान)अकस्मात्(विना हेतु वस्तुमें)
न*भवतिTइति*यः१।१ अस्य६।१।।हेतुः१।१ सः१।१ तद्भावः१।१ तस्य६।१।।	=नहीं होता है, जो इस प्रत्यभिज्ञान)का कारण सो तद्भाव है तिस (सत्)का
भावः१।१ तद्भावः१।१ ;येन३।१ आत्मना३।१ प्राग्दृष्टम्१।१।।वस्तु१।१।।	=भाव अथवा होना सो तद्भावहै । जिस स्वरूपकरि पहिले देखा हुआ पदार्थ है
तेन३।१ एव*आत्मना३।१ पुनः*अपि*भावात्५।१	=तिसही स्वरूपकरि फिरभी विद्यमान होनेसे (स्वभावात्)
तद्१।१।।एव*इदम्१।१।।इति*प्रत्यभिज्ञायतेT ॥	=कि यह वहही है इस प्रकार प्रत्यभिज्ञान कियाजाता है
यदि-अत्यन्त-विरोधः१।१	=जो(पूर्वोक्त प्रत्यभिज्ञानके अस्तित्वके)अतिशय विपरीत हो अर्थात् प्रत्यभिज्ञान का अभाव हो
अभिनव-प्रादुर्भावमात्रम्१।१।।एव *वा*स्यात्Tततः*	=अथवा नवीन आविर्भावमात्रही हो, तहां

स्मरणानुपपत्तिः । तदधीनो लोकसंव्यवहारो विरुध्यते । ततस्तद्भावेनाव्ययं नित्यमिति निश्चीयते तत्तु कथञ्चिद्वेदितव्यम् । सर्वथानित्यत्वे अन्यथाभावाभावात्संसारतन्निवृत्तिकारणप्रक्रियाविरोधः स्यात् ननु इदमेव विरुद्धं तदेव नित्यं तदेवानित्यमिति । यदि नित्यं व्ययोदयाभावादनित्यताव्याघातः । अथानित्यत्वमेव स्थित्यभावान्नित्यताव्याघात इति ॥ नैतद्विरुद्धम् ॥ कुतः ?—

स्मरण-अनुपपत्तिः; तद्-अधीनः लोक- =स्मृतिका अभाव(=अनुपपत्ति) होताहै । इस (स्मरण)के आधीनलोक
संव्यवहारः विरुध्यते । ततः * तद्भावेन अव्ययम् =व्यवहार विरोध्या जाता है । इसकारणसे (=ततः) तद्भावकरि अविनाशी है
नित्यम् इति*निश्चीयते । ॥ तद् तु* =सो नित्य है ऐसा अवधारण वा निश्चय कियाजाता है । परंतु वह अर्थात् तद्भावकरि अव्ययरूप होना
कथञ्चित्*वेदितव्यम्;सर्वथा * नित्यत्वे =कथञ्चित् जानो । (=वस्तुके,सर्वथा नित्यपना (माननेमें) अर्थात् कूटस्थ होनेमें
अन्यथाभाव-अभावात् संसार-तत्-निवृत्तिकारण- =पर्याय पलटनेके अभावसे संसार और (संसार)के निवृत्ति वा छूटनेके कारणके
(१)प्रक्रिया-विरोधः स्यात् ननु*इदम् एव*विरुद्धम्॥ =विधानमें विरोध होताहै । प्रश्न—यह (=इदम्) ही(एव)विपरीत है
तद् एव*नित्यम् तद् एव अनित्यम् इति* =(क्योंकर) वहही (वस्तु) नित्य हुई (और) वह ही (वस्तु) अनित्य हुई
यदि*नित्यम् व्यय-उदय-अभावात् =जो नित्य है तो विनाश-उत्पादके अभावसे
अनित्यता-व्याघातः; अथ*अनित्यत्वम् एव * =अनित्यत्वका व्याघात है । पक्षान्तरमें (=अथ) अनित्यता ही है तो
स्थिति-अभावात् नित्यता-व्याघातः इति * ॥ =स्थिरताके अभावसे नित्यपनाका विरोध है अर्थात् नित्यतामें अन्तराय वा रुकावट है
न * एतद् विरुद्धम् कुतः* =(उत्तर) यह विरुद्ध नहीं है अर्थात् हमारा यह कथन कि सोई वस्तु कथंचित् नित्यहै कथंचित् अनित्य है यह विपरीत कथन नहीं है क्योंकर कि

(१) आत्मनःसर्वथा नित्यत्वे नरनारकादिरूपेण संसारस्तद्विनिवृत्तिरूपमोक्षश्च न घटते। ततः संसारस्वरूपकथनं मोक्षोपायकथनं च विरुध्यत इतिभावः॥

आत्मनः सर्वथा*नित्यत्वे ॥ नरनरकादि =आत्माके सर्वथा नित्यपना (मानने)में मनुष्य और नरकादिक
रूपेण॥संसार तद्विनिवृत्तिरूप मोक्ष च*न*घटते =रूपसे संसार तथा(=च) उस(संसार)के अत्यन्त छूटने रूप मोक्ष नहीं बनतीहै
ततः *संसारस्वरूप कथनम् ॥मोक्षकथनम्॥ विरुध्यतेइति*भावः॥ =तिससे संसारस्वरूपका वर्णन और मोक्षके उपायका कथन विरोध्या जाय है ऐसा तात्पर्य है ॥

॥ अर्पितानर्पितासिद्धेः ॥ ३२ ॥

अनेकान्तात्मकस्य वस्तुनः प्रयोजनवशाद्यस्यकस्यचिद्धर्मस्य विवक्षया प्रापितं प्राधान्यमर्पितमुपनीतमिति यावत्। तद्विपरीतमनर्पितम्। प्रयोजनाभावात् ॥

सूत्रम्—अर्पितानर्पितसिद्धेः ॥३२॥ = अर्पित-अनर्पित सिद्धेः(तदेव द्रव्यं कथञ्चिन्नित्यं कथंचिद् नित्यं च भवति ॥ ३२ ॥

सूत्रार्थः—अर्पित-अनर्पित-सिद्धेः[५/१] तद्[१/१] एव * द्रव्यम्[१/१] कथञ्चित्*नित्यम्[१/१] कथञ्चित्*अनित्यम्[१/१] च*भवति ॥३२॥ =मुख्यता प्रधानताकरि गौणता करि (पदार्थोंकी) सिद्धि होनेसे वहही वस्तु =कथंचित् नित्य है और कथंचित् अनित्य है अर्थात् वही वस्तु सामान्य अर्पणासे वा सामान्यकी मुख्यतासे नित्य है और विशेष अर्पणासे अथवा विशेषकी मुख्यतासे अनित्य है भावार्थ यह है कि वस्तु में अनेक धर्म हैं सो वक्ता जिस धर्मको प्रयोजनके वशसे प्रधान करके कहै सो तो अर्पित है। और प्रयोजन के विना वस्तुके जिस धर्मको कहनेकी इच्छा न करै वह अनर्पित है। इससे यह न समझ लेना चाहिये कि जो धर्म नहीं कहा गया वह धर्म वस्तु में है ही नही क्योंकि वस्तु अनेक धर्मात्मक है

अनेकान्त- आत्मकस्य [६/१] वस्तुनः [६/१] =अनेकान्त धर्म स्वरूपवाली वस्तुका (वस्तुनः[६/१])

प्रयोजन-वशात् [५/१] यस्य [६/१] कस्यचित्*धर्मस्य [६/१] =प्रयोजनके वशसे जिस (=यस्य) कोईएक (=कस्यचित्) धर्मकी

विवक्षया [३/१] प्राधान्यम् [१/१] प्रापितम् [१/१] =विवक्षासे प्रधानपना अथवा मुख्यपना (=प्राधान्यम्)प्राप्तहुआ

अर्पितम् [१/१] उपनीतम् [१/१] =(वह मुख्यता) अर्पित है उपनीत है

इति*यावत्*तद्द-विपरीतम् [१/१] अनर्पितम् [१/१] =इसप्रकारइतना(अर्थ)है।उस (मुख्यता)केविरुद्धअर्थात् गौणताहै सोअनर्पितहै

प्रयोजन- अभावात् [५/१] ॥ =क्योंकि (अनर्पितमें)प्रयोजन का आभाव है (नकि वस्तुमें धर्मका अभाव)

(१) इस सूत्र का पाठ और अर्थ दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर सम्प्रदायों में एकसा है ॥ हमारे यहां की किसी किसी पुस्तकमें 'अर्पितानर्पित सिद्धेः ऐसा पाठ है सो भी' अचोरहाभ्यां द्वे वा' सूत्र से ठीक है।

(२) अर्पित = मुख्य किया गया प्रधान किया गया, उपनीत, अभ्युपगत, योजित, व्यावहारिक(= जो व्यवहार में आवे) अनुपसर्जनीभूत ये शब्द एकार्थवाची है ॥ (३) अनर्पित = मुख्य नहीं किया गया गौण किया गया, अप्रधान किया गया, अनुपनीत, अनभ्युपगत, अव्यावहारिक, उपसर्जनीभूत ये शब्द एकार्थ वाची हैं ॥

सतोऽप्यविवक्षा भवतीत्युपसर्जनीभूतमनर्पितमित्युच्यते । अर्पितं चानर्पितं चार्पितानर्पिते । ताभ्यां सिद्धेरर्पितानर्पितसिद्धेर्नास्ति विरोधः ॥ तद्यथा—एकस्य देवदत्तस्य पिता पुत्रो भ्राता भागिनेय इत्येवमादयः सम्बन्धा जनकत्वजन्यत्वादिनिमित्ता न विरुध्यन्ते । अर्पणाभेदात् ॥ पुत्रापेक्षया पिता पित्रपेक्षया पुत्र इत्येवमादिः । तथा द्रव्यमपि सामान्यार्पणया नित्यं

भावार्थ—वस्तु में अनेक धर्म हैं सो वक्ता जिस धर्मको प्रयोजनके वशसे प्रधान करि कहै सो तो अर्पित है और प्रयोजन के विना वस्तुके जिस धर्मके कहनेकी इच्छा न करै वह अनर्पित है। इससे यह न समझना चाहिये कि जो धर्म नहीं कहागया है वह वस्तुमें है ही नहीं क्योंकि वस्तु अनेकधर्मात्मक है

सतः॥ अपि॥ अविवक्षा॥ भवति। इति॥	=सत् की अविवक्षा भी होती है अर्थात् सत् की विवक्षा तथा अविवक्षा दोनों होती हैं तिस से सत् रूप होय तिसकूं प्रयोजन के वशसे अविवक्षा करये सो गौण है इस लिये विरोध रहित दोनों (विवक्षा तथा अविवक्षा) मे वस्तु की सिद्धि है
उपसर्जनीभूतम्॥ अनर्पितम्॥ इति॥ उच्यते।	=अप्रधानभूत अनर्पित ऐसे कहा जाता है
अर्पितम्॥ च॥ अनर्पितम्॥ च॥ अर्पितानर्पिते॥	=और (=च) अर्पित और (च=) अनर्पित अर्पितानर्पिते (द्वन्द्व समास रूपमें है)
ताभ्याम्॥ सिद्धेः॥ अर्पित-अनर्पित-सिद्धेः॥	=तिन (अर्पित-अनर्पित) दोनोंसे सिद्धि होनेसे "अर्पित-अनर्पित सिद्धेः" (ऐसा सूत्र)
न॥ अस्ति॥ विरोधः॥ तद्यथा॥ एकस्य॥ देवदत्तस्य॥	=विरोध रहित है। जैसे कि एक देवदत्तका
पिता॥ पुत्रः॥ भ्राता॥ भागिनेयः॥ इत्येवम्॥ आदयः॥	=पिता-पुत्र-भाई-भानजा-इत्यादिक
सम्बन्धाः॥ जनकत्व-जन्यत्व-आदि-निमित्ताः॥	=सम्बन्ध जनकपना (तथा) जन्यपना आदिके निमित्त
अर्पणा-भेदात्॥ न॥ विरुध्यन्ते॥ पुत्र-अपेक्षया॥	=अर्पणा वा मुख्यताके भेदसे नहीं विरोध्या जाता है। बेटेकी अपेक्षाकरि (वह पुरुष)
पिता॥ पितृ-अपेक्षया॥ पुत्रः॥ इत्येवम्॥ आदिः॥	=बाप है बापकी अपेक्षासे वही पुरुष बेटा इत्यादिक है ॥
तथा॥ द्रव्यम्॥ अपि॥ सामान्यअर्पणया॥ नित्यम्	=वैसेही (=तथा) द्रव्य भी सामान्य अर्पणासे नित्य है अर्थात् जब द्रव्यरूपसे अर्पित किया

(१) सर्वार्थसिद्धिवृत्तिकी प्रथमावृत्तिमें माताशब्द नहीं है ॥ तीन हस्त लिखित प्रतियोंमें भी यह शब्द नहीं है प०जयचन्दकृत दो वचनिकामें भी नहीं है, केवल द्वितीय संस्करण संस्कृत सर्वार्थसिद्धिवृत्तिमें है, इससे हमने 'माता' शब्द नहीं रक्खा है यह 'माता' शब्द भ्राता शब्दके पश्चात् द्वितीयावृत्तिमें है॥
(२) यहां पर ऋके स्थानमें र् होगया है अपेक्षयाका अ परें अर्थात् पितृ=पितर् (ऋके स्थानमें र् लानेसे) + अपेक्षया = पित्रपेक्षया बनाया ॥

विशेषार्पणयाऽनित्यमिति नास्ति विरोधः॥ तौ च सामान्यविशेषौ कथञ्चित् भेदाभेदाभ्यां व्यवहारहेतू भवतः॥ अत्राह सतोऽनेकनयव्यवहारतन्त्रत्वात् उपपन्ना भेदसंघातेभ्यः सतां स्कंधात्मनोत्पत्तिरिदं तु सन्दिग्धं, किं संघातः संयोगादेव द्व्यणुकादिलक्षणो भवति, उत कश्चिद्विशेषोऽवध्रियत इति?। उच्यते—सति संयोगे बन्धादेकत्वपरिणामात्मकात्संघातो निष्पद्यते॥ यद्येवमिदमुच्यतां, कुतो नु खलु पुद्गलजात्यपरित्यागे

=और पर्यायरूपसे अनर्पित किया तब नित्यत्व सिद्ध है ॥

विशेष-अर्पणया[३/१]॥ अनित्यम्[१/१]॥ =विशेषअर्पणासे अनित्य है अर्थात् जब द्रव्यरूपसे अनर्पित कियाजाय और पर्यायरूपसे अर्पित(योजित) किया जाय तब अनित्यत्व सिद्ध है ॥

इति*न*अस्तिT विरोधः[१/१]; तौ[१/२] च*सामान्यविशेषौ[१/२] =इस प्रकार विरोध नहीं है। वहुरि(=च)ते(दोनों)सामान्य-विशेष

कथञ्चित्*भेद-अभेदाभ्याम्[३/२] व्यवहार-हेतू[१/२] भवतः T =कथंचित्-भेद अभेदसे व्यवहारके कारण होते हैं।

अत्र*आहT सतः[६/१] अनेक-नय-व्यवहार-तन्त्रत्वात्[५/१]॥ =यहां(कोई) पूछता है कि सत्के अनेकनयके व्यवहारके आधीनपनासे

उपपन्ना[१/३] भेद-संघातेभ्यः[५/३] सताम्[६/३] स्कंध-आत्मन-उत्पत्तिः[१/१]॥ =भेद तथा संघात औरभेदसंघातकरि ये सत् जेहैं तिनकें(=सताम्)स्कंधस्वरूप करि उत्पत्ति युक्तिमान(=उपपन्नाः)है सारांश सत् है ताकैं अनेक व्यवहारके आधीनपणा है यातैं सत्रूप पुद्गलस्कंधनिकी जो उत्पत्ति सो भेद और संघात तथा भेदसंघातसे है

इदम्[१/१]॥ तु*सन्दिग्धम्[१/१]॥ किम्[१/१]॥ द्वि-अणुक-आदि-लक्षणः[१/१] संघातः[१/१] =परन्तु यह संदेह है कि क्या दो अणुकादि लक्षणवाला संघात

संयोगात्[५/१] एव*भवति। उत*कश्चित्*विशेषः[१/१] अवध्रियतेT इति। =संयोगमात्रसेही होताहैवा(=उत)कोईऔर(=कश्चित्)विशेषनिर्णय कियागया है अर्थात् दो परमाणु आदिका संघात परमाणुओंके केवल संयोगमात्रसे ही होताहै वा कुछ और बात है॥

उच्यतेT बन्धात्[५/१] एकत्वपरिणाम-आत्मकात्[५/१] सति[७/१] संयोगे[७/१] =(उत्तरमें) कहाजाता है कि एकत्व परिणमन स्वरूप बन्धानसे संयोगहोनेपर

संघातः[१/१] निष्पद्यतेT ॥ यदि*एवम्*उच्यताम्T =संघात उपजता है जो इस प्रकार कहाजाय तो (अर्थात् जो आप कहतेहैकि संयोग होते संते एकत्व परिणमनस्वरूप बंधसे संघातकी निप्पत्ति होती है

कुतः* (१)नु, खलु *पुद्गलजाति-अपरित्यागे[७/१] =तौ(=नु)कहांसे(ऐसाहोता,है क्योंकिपुद्गल(अपनी)जातिको निश्चयसे नछोड़तेसंते

---

(१) नु = वितर्क = विशेष तर्क अर्थात् तर्कके पश्चात् तर्कमेंसे तर्क निकालना (देखो पद्मचन्द्रकोष पृ० २२१) इसका अनुवाद 'तो' किया गया है

संयोगे च सति भवति केषांचिद्बन्धोऽन्येषां च नेति । उच्यते यस्मात्तेषां पुद्गलात्माविशेषेऽप्यनन्त-पर्यायाणां परस्परविलक्षणपरिणामादाहितसामर्थ्याद्भवन्प्रतीतः

॥ स्निग्धरूक्षत्वाद्बन्धः ॥ ३३ ॥

(१)संयोगे च सति भवति ।	=और संयोग होते संते यह होगा कि
केषांचित् बन्धः अन्येषाम् च न इति	=कितने परमाणुओंको बन्ध और(=च)दूसरी परमाणुओंका(बन्ध)नहीं (होता) है
उच्यते-यस्मात् तेषाम् पुद्गल-आत्म-अविशेषे अपि	=इससेकहाजाता हैकि तिन(परमाणुओं)केपुद्गलस्वरूपकरि विशेषता न होने पर भी
अनन्त पर्यायाणाम् परस्पर-विलक्षण-परिणामात् आहित	=अनन्त पर्यायोंके परस्पर विलक्षण परिणमनकरिग्रहणकरीभई(=आहित)
सामर्थ्यात् ॥ भवन् प्रतीतः	=सामर्थ्यसे बन्धका होना प्रतीत है ।(भवन् वर्तमानकृदन्त प्रथमा एकवचन पुल्लिंगहै)

(२)**सूत्रम्—**(३)**स्निग्धरूक्षत्वाद्बन्धः॥ ३३॥ = (पुद्गलानां)स्निग्धरूक्षत्वात् बन्धः (भवति)॥ ३३॥**

(१)दोनोंवारकी छपीहुई सर्वार्थसिद्धिवृत्तिमें"संयोगेच सतिभवति"वाक्य छपनेसे रहगयाहैक्योंकि यहवाक्य तीनहस्तलिखितसर्वार्थसिद्धिवृत्तिकी प्रतियोंमें विद्यमान है और तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृ० २४०पर तथा हस्तलिखित राजवार्तिकोंमेंभी उक्त वाक्य'सति'शब्दके अतिरिक्त पाया जाता है विना उक्त वाक्य अनुवाद नहीं होसकता है न वाक्योंका परस्पर सम्बन्ध मिल सकता है ।

(२) दोनोंआम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है । कहींरपर'बन्ध 'पाठहै कहींरपर'बध'पाठ है, दोनों पाठ ठीक है (१अध्याय ५४०.५४१)

(३) इन पांचों सूत्रोंका अर्थ और तात्पर्य क्लिष्ट है अपने अपने ढगसे हमारे यहां भाष्यकारों तथा हिंदी टीकाकारोंने उक्त सूत्रोंका तात्पर्य लिखाहै अर्थमें हमारे यहां मत भेद नहीं है ॥ श्वेताम्बर आम्नायके 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र'में प्रथम चार सूत्रोंका पाठ हमारे यहांके पाठसे अक्षरश मिलता है। "बन्धे समाधिकौ परिणामकौ"के स्थानमें हमारे यहां 'बन्धेऽधिकौ पारिणामिकौ च' सूत्र है अर्थात् हमारे यहां 'च'है उनके यहां 'सम' शब्द है ॥ दोनों आम्नायोंके पाठमें इतनी समानता होनेपर भी पिछले तीन सूत्रोंके अर्थों में भेद पाया जाता है जिसका उल्लेख हम प्रसगानुसार आगेकरेंगे । उक्त पांचों सूत्रोंके समझानेमें भरकस प्रयत्न किया गया है प्रथम इसके कि हम पृथक् पृथक् सूत्रका अर्थ करैं यह उचित है कि दोनों आम्नायोंमें जो अर्थ भेद है उसका सक्षेपसे कुछ उल्लेख किया जावै ॥ स्निग्धका स्निग्धद्वारा दोगुण(=अविभागपरिच्छेद) अधिककरि बन्ध होताहै और रूक्षका रूक्षद्वारा दोगुण अधिककरि बध होता है और रूक्षका स्निग्धद्वारा दोगुण अधिककरि बन्ध होता है और स्निग्धका रूक्षद्वारा दोगुण अधिककरि बन्ध होता है जघन्यगुणको छोडकर उक्त दो अधिकगुण सम(अर्थात् ४,६,८,१०,१२ इत्यादि) हों अथवा विषम(अर्थात् ५,७,९,११,१३ इत्यादि)हों दोगुणअधिककरिही बध है अन्यकरि नहीं है । श्वेताम्बर आम्नायके 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र'में)'गुणसाम्ये सदृशानाम्' सूत्रका शब्दश यह अर्थ करके कि' गुणसाम्येसति सदृशानां बधो न भवति"गुणकी समता होनेपर सदृश पुद्गलोंका बन्ध नहीं होता हमारे यहांके प्रथम भागको मानाहै और दूसरे भागको नहीं मानाहै अर्थात् स्निग्धका स्निग्धद्वारा दोगुण अधिककरि बन्ध होता है और रूक्षका रूक्षद्वारा दोगुण अधिककरि बन्ध होताहै और इससे सहमत है और कहते हैं कि रूक्षका स्निग्धद्वारा बन्ध होनेमें और स्निग्धका रूक्षद्वारा बन्ध होनेमें दोगुणोंकी अधिकताकी आवश्यकता नहीं है ॥ऐसोंकाबधसमानगुणोंमेंभीहै॥

सूत्रार्थः—(१)पुद्गलानाम् स्निग्धत्वात् ॥ =पुद्गलोंके(परस्पर छूजानेपर स्पृष्ट वा स्पर्श होनेपर) स्निग्धपनासे वा चिकनाईसे
रूक्षत्वात् ॥बन्धः भवति ॥ =(और)रूक्षपनासे रूखेपनसे, वा खरखरेपनसे बन्ध होता है अर्थात्
दो पृथक्पृथक् परमाणुओंका बन्ध परस्पर स्कंधरूपमें और दो आदि पृथक्पृथक् स्कन्धोंका

इसी हेतुसे उन्होंने "द्वि-अधिकादिगुणानांतु सदृशानां बन्धो भवति" इस सूत्रमें केवल'सदृशानां'की अनुवृत्ति लीहै और यह अर्थ कियाहै कि सदृशोंके बन्धके लिये दोगुण अधिक होनेकी आवश्यकता है, असदृशोंके बन्धके लिये अधिक गुणोंकी कोई आवश्यकता नहीं है। इस अर्थको पुष्ट करनेकेलिये कि असदृशोंका बन्ध बिना गुणोंकी अधिकताके होजाताहै हमारे यहांके "बन्धेऽधिकौ पारिणामिकौच"के स्थानमें 'बन्धे समाधिकौ परिणामकौ' सूत्र दिया है और यह अर्थ किया है कि 'बन्धे सति समगुणस्य समगुणः परिणामको भवति अधिकगुणो हीनस्येति' बन्ध होनेपर यदि समगुण है तब तो समगुण का समगुणवालाही परिणाम होगा और हीन गुणका अधिक गुणवान् परिणाम होगा' भावार्थ असदृशोंके बन्धमें जहां गुणोंकी समता है वहां समगुणवाला परिणाम होगा और सदृशोंके बन्धमें जहां दोगुण अधिकहैं वहां अधिक गुणवान् परिणाम होगा॥ "जघन्यगुणवालोंका बन्ध नहीं होता" इस अन्तिम सिद्धान्तमें दोनों आम्नाय सहमत हैं।

(१) यहां यह शंका होसकती है कि 'पुद्गलानां' शब्दका अथवा 'अणुनां' शब्दका अध्याहार करना चाहिये अर्थात् यहसूत्र केवल अणुओंसे सबध रखताहै अथवा अणुओं और स्कन्धों दोनोंसे सम्बन्ध रखताहै॥२६वां सूत्रमें यह निर्देश है कि स्कध भेदसे,सघातसे, और भेदसघातसे उत्पन्न होतेहैं। यहांपर संघात शब्द और बन्ध शब्दका एकही अर्थ जान पडता है जैसाकि आगे बन्ध सघात एकत्वऔर सयोगके अनन्तर दिखानेमें सिद्ध करेंगे। बन्ध, सघात, एकत्वरूप,सयोगके भेदकेलिये इस अध्यायका पृष्ठ १४०,१४१ देखो।(उत्तर)यह सूत्र अणु और स्कन्ध दोनोंसे सम्बन्ध रखताहै क्योंकि

(क) दो पृथक् २ परमाणुओ के बन्ध वा सघातसे स्कन्ध होता है। एक परमाणु और स्कन्धके संघातसे स्कन्ध उत्पन्न होता है, दो तीन आदिक स्कन्धोंके बन्धसे स्कन्ध होता है और बन्धका कारण स्निग्धत्व रूक्षत्वही कहा है। परमाणुओंके स्निग्धत्व और रूक्षत्वसेही बन्ध होता है। जब स्कन्धोंके भी आपस के बन्धके लिये सचिक्कनता और रूक्षता हेतु है और पुद्गलके "अणव स्कन्धाः" ये दोही भेद हैं तो प्रगट है कि तेतीसवां सूत्रमें "पुद्गलानां" शब्दका अध्याहार होना चाहिये (नकि केवल अणुनां शब्दका) जैसा कि निम्न लिखित उदाहरण सूत्र२६(देखो इसअध्यायका ९९,१००)में दियाहै,जैसेकि दो परमाणुओंके जुडनेसे दोप्रदेशवाला स्कन्ध उपजताहै,दोप्रदेशवाले स्कन्धके और एकअणुके संघातसे वा तीन खुलीहुई परमाणुओंके मिलनेसे तीनप्रदेशवाला स्कन्ध उपजता है। दो दो प्रदेशवाले दो स्कन्धोंके सघातसे, तीन प्रदेशवाले स्कन्धके और अणुके संघातसे अथवा चार खुली हुई परमाणुके सघातसे चार प्रदेशी स्कन्ध उपजता हैं। इस प्रकार सख्यात,असंख्यात,अनन्त अनन्तानन्तके संघातसे उतने प्रदेशवाले स्कन्ध उपजतेहैं इससे प्रगट हैकि एक स्कन्धका दूसरे स्कन्धके साथ परस्पर सघातसे स्निग्ध रूक्षताके हेतुसे बन्ध होताहै और परमाणुका परमाणुकरि बन्धहोताहै। अत यह सूत्र परमाणुओं और स्कन्ध दोनोंसे सम्बन्धरखता है नकि केवल परमाणुओंसेही॥

(ख) "ऐसे स्निग्धरूक्षपणातैं पुद्गलनिकै परस्पर बन्ध जानना"प०सदासुखजीकृताअर्थप्रकाशिकाके तेतीसवांसूत्रका उपांत्य(उपांतिक)वाक्यदेखो॥

(ग) "ये रूक्षपणाके तथा सचिक्कणताके अविभागपरिच्छेदके निमित्ततैं,एक परमाणु तथा द्वि-अणुकादि स्कन्धकै परस्पर बन्ध होयहै"सदासुखजी कृता तत्वार्थ सूत्रकी लघु टीका पृष्ठ २३॥ उपर्युक्त वाक्यका,यह अर्थ है कि स्निग्धता और रूक्षताके हेतुसे एक परमाणु तथा दोपरमाणुका स्कंधकै परस्पर बन्ध होता है। एक परमाणु तथा तीन परमाणु वाले स्कन्धकै परस्पर बन्ध होता है एक परमाणु तथा चार अणुका स्कन्धकै परस्पर बन्ध होता है इसी प्रकार एक परमाणु तथा चार आदिक अणुवाले स्कन्धकै परस्पर बन्ध जानना॥

बाह्याभ्यन्तरकारणवशात् स्नेहपर्यायाविर्भावात् स्निह्यतेऽस्मिन्निति स्निग्धः। तथा रूक्षणाद्रूक्षः। स्निग्धश्च रूक्षश्च स्निग्धरूक्षौ तयोर्भावः स्निग्धरूक्षत्वं। स्निग्धत्वं चिक्कणगुणलक्षणः पर्यायः। तद्विपरीतपरिणामो रूक्षत्वं ॥

आपसमें बन्ध अन्य स्कन्धरूपमें स्निग्धता और रूक्षताके हेतुसे होता है ॥

वृत्त्यर्थः—बाह्य-अभ्यन्तर-कारणवशात् स्नेह-पर्याय- =बहिरंग और अभ्यन्तर कारणके वशसे सचिक्कण पर्यायके
अविर्भावात् स्निह्यते। अस्मिन् इति * स्निग्धः; तथा =प्रगट होनेसे जिसमें चिकनाई है (=स्निह्यते) ऐसा स्निग्ध है। वैसेही
रूक्षणात् ॥ रूक्षः =रुखेपनसे रूक्ष है अर्थात् बाह्याभ्यन्तरकारणसे रूक्षपर्यायके होनेसेजिसमेंरूक्षताहै सो रूक्षहै
स्निग्धः च * रूक्षः च * स्निग्ध-रूक्षौ =और स्निग्धऔररूक्षहैं उनकारूप सो(द्वन्द्वसमासमें)स्निग्धरूक्षौ ऐसा वाक्य बनताहै।
तयोः भावः स्निग्ध-रूक्षत्वम् =उनदोनों(स्निग्धरूक्ष)का भाव सो स्निग्धरूक्षत्व है अर्थात् चिकनापन और रुखापन है ॥
चिक्कणगुणलक्षणः पर्यायः स्निग्धत्वम् ॥ =चिकनागुणलक्षणवाला पर्याय है सो स्निग्धता है
तद्-विपरीत-परिणामः रूक्षत्वम् ॥ =उस चिकनेपनसे विरुद्ध परिणाम वा पर्याय सो रुखापन है

(घ) 'स्नेहगुणयोगात्स्निग्धा रूक्षगुणयोगाद्रूक्षास्तद्भावात् पुद्गलानां बन्धः स्यात्' = स्नेहगुणयोगात्स्निग्धा रूक्षगुणयोगात् रूक्षा, तद्भावात् पुद्गलानांबन्ध स्यात् = चिक्कणगुणके संयोगसे स्निग्ध हैं रूक्षगुणके संयोगसे रूक्ष हैं उनके भावसे(=होनेकरि) पुद्गलोंका बन्ध होता है ॥ तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक पृ० ४३५ देखो॥
श्लोक—स्कन्धो बन्धात्स चास्त्येषां स्निग्धरूक्षत्वयोगतः। पुद्गलानामिति व्यस्ता सूत्रेऽस्मिंस्तदभावता ॥ १ ॥ तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक पृ० ४३५ देखो
=स्कन्ध बन्धात् सः च अस्ति एषां स्निग्ध रूक्षत्वयोगतः। पुद्गलानां इति व्यस्ता सूत्रे अस्मिन् तद्-अभावता ॥ =बन्धसे स्कन्ध होता है और(च) अर स्कन्धइनपुद्गलोंकीचिकनाईरूखेपनकेसंयोगसेहोताहै,(पुद्गलोंका)नाशहोजाताहैइससूत्रमेंउससिद्धान्तका कि पुद्गलनाशकोप्राप्तहोजाताहै,अभावहै॥
(श्लोक) स्निग्धास्निग्धैस्तथा रूक्षारूक्षैः स्निग्धाश्च पुद्गलाः। बन्धं यथासते स्कन्धसिद्धेर्बाधकहानितः ॥ २ ॥
=स्निग्धाः स्निग्धैः तथा रूक्षा रूक्षैः स्निग्धा च पुद्गलाः। बन्धं यथा आसते स्कन्धसिद्धेः बाधकहानितः ॥
=स्निग्ध(पुद्गल स्निग्धकरि,तथारूक्ष(पुद्गल)रूक्षकरिऔर(च)स्निग्ध पुद्गल(रूक्षकरि)यथायोग्य(यथा)बन्धको प्राप्त होतेहैं स्कन्धकीसिद्धिबाधारहितहै
(छ) "स्निग्धरूक्षयोः पुद्गलयोः परस्परयोः स्पृष्टयोः बन्धो भवतीति" =स्निग्धरूक्ष (दो प्रकारके)पुद्गलोंका आपसमें छूजाने पर बन्ध होता है।
सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृ० १३७। पुद्गलयोः' शब्दके लानेसे स्पष्ट है अणु और स्कन्ध दोनोंका बन्ध इस सूत्र द्वारा होता है ॥
(च) 'अणूनां बन्धः' में स्कन्धोंके बन्धका अभाव आताहै और यह नियमसा होजाताहैकि सत्रामें केवल अणुओंकाही बन्ध होताहै स्कन्धोंका नहीं और यह बात यथार्थता और सत्यताके विरुद्ध है कि केवल अणुओंकाही बन्ध होताहो॥अतः उपर्युक्त हेतुओंसे यह बात स्पष्टतया सिद्ध होगई कि यह सूत्र अणु औरस्कन्ध दोनोंके बन्धसे सम्बन्ध रखताहै अत हमने 'पुद्गलानां' शब्दको अध्याहार करके इस सूत्रका भावार्थ ऊपर यह लिखाहै कि दो पृथक्२ परमाणुओंका बन्ध परस्पर स्कन्धरूपमें और दो आदि पृथक्२ स्कन्धोंका आपसमें बन्ध अन्य स्कन्धरूपमें स्निग्धता और रूक्षतासे होताहै ॥

स्निग्धरूक्षत्वादिति हेतुनिर्देशः । तत्कृतो बन्धो द्व्यणुकादि परिणामः ।

स्निग्ध-रूक्षत्वात्॥ इति*हेतु-निर्देशः॥ =चिकनापन रूखापनसे ऐसे हेतुका कथनहै अर्थात् बंधकाकारणजो पुद्गलोंमें है वहचिकनाई रुखापनहै

तद्-कृतः॥ बन्धः॥ द्वि-अणुक-आदि-परिणामः॥=उन(स्निग्धपन-रूक्षपन)का किया हुआ वन्ध दो अणुकादि परिणमनसे होता है ॥

(१) 'स्निग्ध-रूक्षत्वात्' इस वाक्यसे दो प्रश्न उत्पन्न होत हैं प्रथम यह कि सूत्रमें 'स्निग्ध रूक्षत्वात्' क्यों लाये केवल'पुद्गलाबन्ध.' इतना सूत्र होता तो सूत्र लघु होजाता और 'पुद्गलानां'शब्दकेभी अध्याहार करनेकी आवश्यकता नहीं होती और न यह शंका उत्पन्न होती कि सूत्रमें 'अणुना' शब्दका अध्याहार किया जावे अथवा'पुद्गलानां' शब्दका । दूसरा प्रश्न यह हैकि बन्धका निमित्त वा हेतु सूत्रके शब्दानुकूल(नकि सिद्धान्तके अनुकूल)'स्निग्धत्व-रूक्षत्व' मिले हुये है अथवा (स्निग्धत्वरूक्षत्व) मिले हुये और पृथक् पृथक् दोनों है अर्थात् सूत्रके शब्दोंके अर्थ के अनुसार स्निग्धपन और रूक्षपन अथवा यों कहिये कि रूक्षपन स्निग्धपन (संयोग अवस्थामें) बन्धका हेतु हैं वा स्निग्धत्व स्निग्धत्व पृथक् और रूक्षत्वरूक्षत्वपृथक् भी बंधके कारणहै

(पहिले प्रश्नका उत्तर) पुद्गलके शुद्ध अशुद्ध दो भेद है । अशुद्धरूप स्कन्ध है और उसके निम्नलिखित वीस गुण हैं । वर्ण पांच (श्वेत, पीत, नील, अरुण, कृष्ण) । रस पाच (तिक्त, कटुज, कषायला, खट्टा, मीठा) । गध दो (सुगंध, दुर्गन्ध) और स्पर्शके गुण आठ (शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष, मृदु, कठोर हलका भारी) ॥ अणु शुद्ध है और उसमें पांचगुण होते हैं अर्थात् पांच रसोंमेंसे एक, पांच वर्णमेंसे एक, दो गन्धमेंसे एक, स्पर्शके आठगुणोंमें से दो शीत होगा अथवा उष्ण होगा, रूक्ष होगा अथवा स्निग्ध, कविवर पं०द्यानतिरायजीने "द्रव्यसग्रह"की भाषामें कहाभी है कि"पच अजीव शुद्धहैं चारों (=धर्म,अधर्म,आकाश,काल) जिनके कभी विभाव न होय । पुद्गल सुद्ध असुद्ध विराजे सुद्ध अनू गुन पांचो जोय ॥ सीत, ताप,रूख,चिकने(में)से दो, रस, गन्ध, वरन इकलोय । खंध असुद्धवीस गुन परगट देखेजाने चेतन सोय ॥ कवित्त ३५।भाषा द्रव्यसंग्रहसे उद्धृत ॥ इन पुद्गलोंके गुणोंमेंसे बन्धका कारण स्निग्धत्वऔररूक्षत्वही है इसलिये इस तेतीसवां सूत्रमें स्निग्धत्व रूक्षत्व लाये हैं कि पाठकगण यह न समझलें कि वर्ण, रस, गधमें से कोई गुण और स्पर्शके आठ गुणोंमें से स्निग्धत्वरूक्षत्वके अतिरिक्त कोई अन्य गुणभी बन्धका कारण है।

(दूसरे प्रश्नका उत्तर) सिद्धान्त तो यह है कि स्निग्धत्व रूक्षत्व, रूक्षत्व स्निग्धत्व, स्निग्धत्व स्निग्धत्व, रूक्षत्व रूक्षत्व, बन्धके हेतु हैं परन्तु निम्न लिखित हेतुओंसे सूत्रका शब्दार्थ यही है कि स्निग्धत्व रूक्षत्व, रूक्षत्व स्निग्धत्व, बन्धके कारण हैं अर्थात् स्निग्धका बन्ध रूक्षके साथ होता है अथवा यों कहिये कि रूक्षका बन्ध स्निग्धके साथ होता है न कि स्निग्धका स्निग्धके साथभी बन्ध होता है और रूक्षका रूक्षके साथभी बन्ध होता है क्योंकि यदि उमास्वामीका(सिद्धान्तके अनुकूल)यह अभिप्राय कि स्निग्धत्व स्निग्धत्व,रूक्षत्वरूक्षत्व,रूक्षत्व स्निग्धत्व, और स्निग्धत्वरूक्षत्वका परस्परबन्ध होता हैतोसूत्रकी रचना ऐसे होती कि "स्निग्धरूक्षत्वेभ्योबन्ध."अर्थात् स्निग्धपनसे और रूक्षपनसे और स्निग्धपन रूक्षपनसे बन्ध होता है जैसाकि उक्त स्वामीजीने 'भेदसघातेभ्य उत्पद्यन्ते' सूत्र रचा है कि (पुद्गलोंका स्कन्ध)भेदसे उपजता है सघातसे उपजता है और भेदसघातसेभी उपजताहै॥ दूसरे यह कि"गुणसाम्येसदृशानां" सूत्रमें इस सूत्रकी अनुवृत्ति ग्रहण कीजावे कि गुणोंकी समानता होनेपर सदृशोंका और असदृशों (स्निग्धरूक्षत्व)का भी बन्ध नहीं होताहै और गुणोंकी विषमता होनेपर स्निग्धत्व स्निग्धत्व, रूक्षत्व रूक्षत्व,स्निग्धत्व रूक्षत्व (सजातीय और विजातीय) दोनोंमें बन्ध होता है जैसाकि आगे इस पिछले कहे हुए सूत्रका अर्थ करेंगे॥()तीसरे यहकि जहांतक हमने टटोल कीहै सस्कृतके भाष्यकार जैसे पूज्यपाद स्वामी, अकलंक स्वामी, श्रीश्रुतसागर सूरिने,सभाष्य०के रचयिता इत्यादिने और भाषाके टीकाकारों ने इस सूत्रका अर्थ यही किया है कि स्निग्धरूक्षत्वसे बन्ध होता है किसीने इस सूत्रकेअर्थमेंयह नहीं लिखा कि 'स्निग्धत्व स्निग्धत्व, रूक्षत्व रूक्षत्वसे' बन्ध होता है । श्लोकवार्तिकके रचयिता श्रीविद्यानन्द स्वामीने सूत्रके अर्थकरनेमें तो यही उल्लेख कियाहै कि 'स्निग्धरूक्षत्व'से बन्ध होताहैपरन्तु इसीसूत्रके भाष्यमें दूसरे श्लोकमें यथार्थसिद्धान्त देदियाहै'स्निग्धा

द्वयोः स्निग्धरूक्षयोरण्वोः परस्परश्लेषलक्षणे बन्धे सति द्व्यणुकस्कन्धो भवति ॥ एवं संख्येयासंख्येयानन्तप्रदेशः स्कन्धो योज्यः । तत्र स्नेहगुणः एकद्वित्रिचतुः संख्येयासंख्येयानन्तविकल्पः ॥

द्वयोः(२) स्निग्ध-रूक्षयोः(३) अण्वोः(४) परस्पर-श्लेष-लक्षणे(५) = दो चिकनी रूखी अणुओंमें आपसके एकमेक(=श्लेष) स्वरूपविषै(=लक्षणे) बन्धे(६) सति(७) द्वि-अणुक-स्कन्धः(८) भवति(१)॥ =बन्ध होनेपर(=सति) दो अणुवाला स्कंध होता है अर्थात् दो परमाणु स्निग्ध और रूक्षगुणोंसहित हों उनके परस्पर सर्वात्मभावकरि प्रदेशानुप्रवेशात्मक बन्ध होनेपर दो अणुवाला स्कन्ध उत्पन्न होता है

एवम्(२) संख्येय-असंख्येय अनन्तप्रदेशः(३) स्कन्धः(१) योज्यः(४) =इस प्रकार संख्यात असंख्यात और अनन्त प्रदेशवाला स्कन्ध जुड़जाता है

तत्र*स्नेहगुणः(२) एक-द्वि-त्रि-चतुर्-संख्येय-असंख्येय-अनन्तविकल्पः(३) =तहां स्निग्धगुण एक, दो, तीन, चार संख्यात =असंख्यात और अनन्तभेदरूप है अर्थात् एकगुण स्निग्ध, दोगुण स्निग्ध, तीन गुण स्निग्ध, चारगुण स्निग्ध, पांचगुण स्निग्ध, छहगुण स्निग्ध इत्यादि ऐसे संख्यातगुण स्निग्ध, असंख्यातगुणस्निग्ध और अनन्तगुण स्निग्ध तक एक परमाणुमें होसकते हैं ॥

स्निग्धैस्तथारूक्षारूक्षै स्निग्धाश्च पुद्गला 'पश्चात उक्त स्वामीजीके'गुणसाम्ये सदृशानां'सूत्रके भाष्यसे यह बात झलकतीहै कि'स्निग्धरूक्षत्वात्बन्धः' सूत्र केवल स्निग्धरूक्षत्वसे सम्बंध (जहांतक उसका शब्दार्थ है) रखता है न कि स्निग्धका स्निग्धके साथ बन्ध" और रूक्षका रूक्षके साथ बन्ध' से ॥ () चौथे यह कि उपर्युक्त अर्थसे रचनाका और क्रमका महत्व प्रगट होता है, सो कैसे? इस प्रकार कि ३३वां सूत्र बन्धका केवल हेतु प्रगट करता है और चौंतीसवां सूत्र सामान्यरूपसे ततीसवां सूत्रका अपवाद है पैंतीसवांसूत्र गुणोंकी समानतामें तेतीसवांसूत्रका अपवाद होतेहुयेभी विषमगुणोंकी अवस्थामें उस(तेतीसवां) सूत्रका विधान करता है छतीसवां सूत्र इस विधानकी त्रुटिको पूरा करता हैकि दो अधिक आदिगुणोंके होनेपरही सदृश और असदृशोंका बन्ध होता है सेतीसवां सूत्रमें बन्धके होनेपर द्रव्यकी एकतीसरी अवस्था वा तीसरा स्वरूप होजाता है न प्रथम रूप रहै न दूसरा, दोनों बंधहोनेपर एकतीसरारूप धारण करतीहैं॥जैसे कालापीला रंग घोलकरमिलानेपर कीरके पंखसदृश हराहोजाताहै॥नकृष्णवर्णरहै न पीतवर्णरहै॥

(१) "इहां सचिक्कणपणाका वा रूक्षपणाका अविभागपरिच्छेद है तिनहीकू गुण कहैं हैं ॥ परमाणुमें सचिक्कणपणाका एकअविभागपरिच्छेदसे लेय अनन्त पर्यन्त बढै है ॥ अर एक परमाणुमें अनंत अविभाग परिच्छेद से घटै तो असख्यात वा सख्यात होइ तथा एक अशपर्यन्त रहै॥तथा सचिक्कण परमाणु रूक्ष होजाय हैं रूक्ष परमाणु सचिक्कण होय हैं ॥ समय समय परिणमन है अर बाह्य द्रव्य क्षेत्र काल भावादिकनिके निमित्ततें परिणमै है॥ऐसे 'स्निग्धरूक्षपणा परमाणुमें तथा स्कन्धमें जानना ॥ प० सदासुखजी कृत अर्थ प्रकाशिका पृ० ३३४ सूत्र तेतीसकी भाषा से उद्धृत)

(२) यह संख्यात प्रदेशी स्कन्ध इस प्रकार उत्पन्न होता है कि रूक्षपना तथा चिकनापनाके अविभाग परिच्छेदके निमित्तसे दोपरमाणुके जुडनेसे दो प्रदेशवाला स्कन्ध उपजता हे। दोप्रदेशवाले स्कन्धके और अणुके संघातसे अथवा तीन खुली हुई परमाणुके मिलनेसे तीन प्रदेशवाला स्कन्ध उपजता है॥ दो दो प्रदेशवाले दो स्कन्धो के संघातसे, तीन प्रदेशवाले स्कन्धके और अणुके संघातसे, अथवा चार खुली हुई परमाणुओंके संघातसे चारप्रदेशी स्कन्ध उपजता है इसी प्रकार अन्य संख्यात प्रदेशी स्कन्धपूर्वोक्त क्रमानुसार बन्धी हुई और खुली हुई परमाणुसे उपजता है ऐसाही क्रम असंख्यात प्रदेशी स्कन्धकी अनन्त प्रदेशी स्कन्धकी और अनन्तानन्त प्रदेशी स्कन्धकी उत्पत्ति जानों ॥

तथा रूक्षगुणोऽपि॥ तद्गुणाः परमाणवः सन्ति। यथा तोयाजागोमहिष्युष्ट्रीक्षीरघृतेषु स्नेहगुणः प्रकर्षाप्रकर्षेण प्रवर्तते। पांशुकणिकाशर्करादिषु च रूक्षगुणो दृष्टः। तथा परमाणुष्वपि स्निग्धरूक्षगुणयोर्वृत्तिः प्रकर्षाप्रकर्षेण अनुमीयते॥ स्निग्धरूक्षत्वगुणनिमित्ते बन्धे अविशेषेण प्रसक्ते अनिष्टगुणनिवृत्त्यर्थमाहः-

॥ न जघन्यगुणानाम् ॥ ३४ ॥

तथा* रूक्षगुणः अपि* ॥	=वैसेही(=तथा)रूक्षगुण भी है अर्थात् एक परमाणुमें एक, दो, तीन, चार, पांच छह इत्यादि संख्यात, असंख्यात और अनन्त रूक्षगुण तक होसकते है
तद्-गुणाः परमाणवः सन्ति। यथा* तोय-अजा-	=पूर्वकथित(=तद्)चिकणे रूखेगुणवाली परमाणुहै। जैसे जल(=तोय)बकरी(अजा)
गो-महिषि-उष्ट्री-क्षीर-घृतेषु स्नेहगुणः	=गऊ(=गो)भैंस(=महिषि)उटनी(=उष्ट्री)के दूध घी विषैं सचिक्कणगुण
प्रकर्ष-अप्रकर्षेण प्रवर्तते। च* पांशु-कणिका-	=प्रकर्षकरि और घटतीकरि प्रवर्तता है। और (=च)धूलि(=पांशु)वालु(=कणिका)
शर्करादिषु रूक्षगुणः दृष्टः। तथा *	=कंकरादिकमें रूक्षगुण(वढता घटता क्रमसे) देखा जाता है। तैसे
परमाणुषु अपि * स्निग्ध-रूक्षगुणयोः वृत्तिः	=परमाणुओंमेंभी चिकने रुखे दोनों गुणोंकी स्थिति (=वृत्तिः)
प्रकर्ष-अप्रकर्षेण अनुमीयते ॥ स्निग्धरूक्षत्व-	=वढताई घटताईसे अनुमान कीजाती है। सचिक्कनता और रुखापन
गुणनिमित्ते बन्धे अविशेषेण प्रसक्ते	=गुणनिमित्तक बन्धमें अविशेषताकरि प्रसंग आनेपर
अनिष्ट-गुण-निवृत्ति-अर्थम् आह	=अनिष्ट फलके निवारण के लिये कहते हैं अर्थात् पुद्गलके गुणोंमेंसे चिकनाई रूखापनके हेतुसे बन्ध होता है इससे यह प्रसंग आता है कि यदि सचिक्कणता और रुखापन परमाणुओंमें वर्तमान वा विद्यमान है तो बन्ध सर्व प्रकार अभेदरूपसे विशेषता रहित होही जाताहोगा इस अनच्छित अनुमानके दूर करने के लिये अग्रिम सूत्रमें कहतेहैं कि

(१)सूत्रम्—न जघन्यगुणानाम् ॥ ३४॥ = न जघन्यगुणानाम्(परमाणूनां बन्धः भवति) ॥ ३४॥

स्निग्धरूक्षत्वात् 'न जघन्य-गुणानां परमाणूनां बंधः भवति=स्निग्धरूक्षतासे निकृष्टगुणोंके परमाणुका बंधनहीं होताहैअर्थात् जिस परमाणुमें

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ भी दोनों आम्नायोंमें एकसा है। हमारे यहां कहीं कहींपर 'नजघन्यगुणाना' पाठ है वह कातन्त्ररूपमाला व्याकरणके अतिरिक्त अशुद्ध है(अ०१ पृ० ५४०,५४१) इस सूत्रमें 'परमाणूनां' और 'भवति' शब्दोंका अध्याहार कियागयाहै और बन्धशब्दकी अनुवृत्ति ३३वांसूत्रसेहै।

जघन्यो निकृष्टः गुणो भागः। जघन्यो गुणो येषां ते जघन्यगुणाः। तेषां जघन्यगुणानां नास्ति बन्धः। तद्यथा-एकगुणस्निग्धस्यैकगुणस्निग्धेन द्व्यादिसंख्येयासंख्येयानन्तगुणस्निग्धेन च नास्ति बन्धः तस्यैवैकगुणस्निग्धस्य एकगुणरूक्षेण द्व्यादिसंख्येयासंख्येयानन्तगुणरूक्षेण वा नास्ति बन्धः। तथा एकगुणरूक्षस्यापि योज्यमिति॥ एतौ जघन्यगुणस्निग्धरूक्षौ वर्जयित्वा अन्येषां स्निग्धानां रूक्षाणां च परस्परेण बन्धो भवतीत्यविशेषेण प्रसङ्गे तत्रापि प्रतिषेध-

रूक्षत्वका वा सचिक्कणता का एक अविभाग परिच्छेद(=जघन्यगुण) रहजाय सो बंधको प्राप्त नहीं होता है

वृत्त्यनुवादः–जघन्यः निकृष्टः गुणः भागः। =जघन्य वा घटिसे घटि है सो निकृष्ट है। गुण है सो गुणका अविभाग परिच्छेद है

जघन्यः गुणः येषाम् ते जघन्यगुणाः। =घटिसे घटि है अविभाग परिच्छेद जिनके वे जघन्यगुण हैं

तेषां जघन्यगुणानाम् न*अस्ति। बन्धः। तद्यथा*- =तिन निकृष्टगुणों(वाली परमाणुओं)के बंध नहीं हैं। जैसे

एकगुणस्निग्धस्य एकगुणस्निग्धेन च द्वि-आदि-संख्येय- =एकगुण स्निग्धका एकगुण स्निग्धकरि और(=च)दो आदिक संख्यात

असंख्येय-अनंतगुण स्निग्धेन न*अस्ति बंधः; तस्य। =असंख्यात अनंतगुण स्निग्धकरि बंध नहीं है। तिस

एव*एकगुण स्निग्धस्य एकगुणरूक्षेण वा*द्वि-आदि =ही एकगुण स्निग्धका एकगुण रूक्षकरि अथवा दो आदिक

संख्येय-असंख्येय-अनन्तगुण रूक्षेण बन्धः न*अस्ति। =संख्यात असंख्यात अनंतगुणरूक्षकरि बंध नहीं है

तथा*एकगुणरूक्षस्य अपि*योज्यम् इति* =तैसेही(=तथा)एकगुण रूक्षके भी लगाना चाहिये अर्थात् एकगुणरूक्षका एकगुण रूक्षकरि और दो तीन चार पांच आदिक संख्यात, असंख्यात, और अनंतगुणरूक्षकरि बन्ध नहीं होता है तैसेही एकगुणरूक्षका एकगुण स्निग्धकरि अथवा दो, तीन, चार, पांच आदि संख्यात असंख्यात अनन्तगुण स्निग्धकरि बंध नहीं होता है

एतौ जघन्यगुण-स्निग्ध-रूक्षौ वर्जयित्वा-अन्येषाम् =ये(=एतौ)निकृष्ट गुणवाली स्निग्ध रूक्षोंको छोड़कर अन्य

स्निग्धानाम् रूक्षानाम् च परस्परेण बंधः-भवति-इति=स्निग्ध और(=च)रूक्ष(गुणवाली परमाणु)निकें परस्पर बन्ध होता है। ऐसे

अविशेषेण प्रसंगे तत्र*अपि*प्रतिषेध- =विशेषरहित प्रसंग आनेपर तहां औरभी(=अपि) बन्धके निषेधके

और यह सूत्र केवल परमाणुओंसे सम्बन्ध रखता है क्योंकि जघन्यगुण परमाणुमेंही पायाजाता है नाकि स्कधमें और जबकिसीप्रकारकी जघन्यगुणधारक

विषयख्यापनार्थमाह— ॥ गुणसाम्ये सदृशानाम् ॥ ३५ ॥

विषय-ख्यापन-अर्थम्[1] आह । =प्रकरणके कहनेके लिये (अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं अर्थात् ऊपरके उपान्तिक या उपधा वाक्यसे ऐसा अनुमान निकलता है कि जघन्यगुणोंको छोड़कर अन्य सब गुणवाली परमाणुओंका स्निग्धरूक्षतासे बन्ध होजाता होगा सोइस प्रसंगको दूर करनेके लिये आचार्य बन्धके निषेधका निम्नलिखित अन्यसूत्रमें कहते हैं कि

(१) सूत्रम्—गुणसाम्ये सदृशानाम्॥३५॥ = (न)गुणसाम्ये(स्निग्धरूक्षत्वानाम्) सदृशानाम् (परमाणूनाम् बन्धः भवति) ॥ ३५ ॥

=गुणसाम्ये असदृशानाम् सदृशानाम् परमाणूनाम् बन्धः न भवति ॥ ३५ ॥

परमाणुमें बन्ध नहीं होसका है तब वह परमाणु विना बन्धके पृथक्ही रहैगी कभीभी स्कन्धरूपमें नहीं होसकी(जबतक जघन्य गुण उसमें विद्यमान है)॥ श्लोकवार्तिक पृ० ४३६,राजवार्तिक तथा जयचंद्रायजीकी वचनिकापृ०४६२,४६३सेप्रगटहैकि यहसूत्र केवल परमाणुओंसेही सम्बन्ध रखताहैनकिस्कन्धोंसे।

(१) यह सूत्र जो पूर्व चौतीसवां सूत्रका अपवाद विशेष समर्थनके लिये है परमाणुओंसे सम्बन्ध रखता है स्कन्धोंसे नहीं क्योंकि चौतीसवां सूत्र से 'परमाणनाम्' शब्दकी भी अनुवृत्ति इस सूत्रमें आती है। समस्त तेतीसवां सूत्रभी यहां अनुवर्तता है। 'स्निग्धरूक्षत्वानाम्'और 'असदृशानाम्' यहां पर समानार्थकवाची हैं अत "स्निग्धरूक्षत्वानाम्"के स्थानमें"असदृशानां"वाक्यका आदेश करदिया है। यहकि स्निग्धरूक्षत्वानाम्"की अनुवृत्ति आती है इसके समर्थनमें श्लोकवार्तिकसे निम्न वाक्य देते हैं। नन्वेव विसदृशानां गुणसाम्ये बन्धप्रतिषेधो न स्यादिति न मतव्य सदृशग्रहणस्य विसदृशव्यवच्छेदार्थत्वाभावात् सदृशानामेवेत्यवधारणानाश्रयणात् ॥, गुणसाम्येवेति सत्रोपदेशेहि सदृशानां गुणवैषम्येऽपि बधप्रतिषेधप्रसक्तौ तन्निवृत्तिसिद्धये सदृशग्रहणकृत, तेन स्निग्धरूक्षजात्या साम्येपि गुणवैषम्येबन्धसिद्धिः॥ तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक सूत्र३५ पृ० ४३७॥

ननु एवं*विसदृशानां गुणसाम्ये बधप्रतिषेध. न स्यात् इति=प्रश्न ऐसे गुणोंकी समानता होनेपर विसदृशोंके बन्धका निषेध नहीं होता होगा

न मतव्य, सदृशग्रहणस्य विसदृश- =(उत्तर—ऐसा) मानना ठीक नहीं है। क्योंकि सदृशके ग्रहणके (से) विसदृशके

व्यवच्छेदार्थत्वाभावात् =रुकावटका(=व्यच्छेदार्थत्व)अभाव है अर्थात् 'विसदृश'शब्दकी अनुवृत्ति बराबर आरही है उस (अनुवृत्ति)में कहींपर रुकावट नहीं हुई है

सदृशानाम् एव इति अवधारण-अनाश्रयणात्। =(और)सदृशो काही(=एव) ऐसा निश्चयात्मकपद (सूत्रमें) दिया नहीं है अर्थात् 'गुणसाम्ये सदृशानामेव"ऐसा सूत्र नही है नहीं तो मानलेते कि असदृशोंकी अनुवृत्ति नहीं आरही है और गुणोंकी गणनामें समानता होनेपर केवल सदृशोंकाही बन्ध नहीं होता है असदृशोंका गुणोंकी समानता होने पर होजाता है ऐसा मानलेते॥ स्मरण रहैकि ऐसी अवस्थामें श्वेताम्बरतथा दिगम्बरआम्नायोंमें इनपांचोंसूत्रोंका पाठऔरअर्थ एकहोजाता॥

सूत्रार्थः —गुणसाम्ये॥ असदृशानाम् सदृशानाम् परमाणूनाम् बन्धः न भवति = गुणोंकी संख्यामें समानता होनेपर विजातीय और सजातीय (=रूक्षरूक्ष, स्निग्धस्निग्ध) परमाणुओंके बन्ध नहीं होता है अर्थात् एक परमाणुके अविभाग परिच्छेदरूप अंशों (=गुणों) की गणना दूसरी परमाणुके अविभागपरिच्छेदरूप अंशोंकी संख्याके यदि बराबर हो तो उन दोनों परमाणुओंका आपसमें चाहै रूक्षस्निग्ध (विजातीय) (क्रमसे) हों चाहै स्निग्धरूक्ष= (विजातीय)(क्रमसे) हों चाहै स्निग्धस्निग्ध=(सजातीय)(क्रमसे) हों चाहै रूक्षरूक्ष=(सजातीय) क्रमसे हों बंध नहीं होता है जैसे रूक्षपरमाणुके दो अविभागपरिच्छेदरूप अंशका बन्ध स्निग्धपरमाणुके दो गुणोंके साथ नहीं होगा और दो स्निग्धगुणवाली परमाणुओंका बन्ध दो रूक्षगुणवाली परमाणुओंके साथ नहीं होसकता है इसी प्रकार तीन चार-पांच-छह-सात आदि-संख्यात असंख्यात-अनंतगुणवाली रूक्षपरमाणुओंका बन्ध तीन-चार-पांच-छह-सात आदि संख्यात-असंख्यात-अनंतगुणवाली स्निग्धपरमाणुओंके साथ नहीं होगा और तीन-चार पांच-छह-सात-

गुणसाम्ये वा इति सूत्र उपदेशे हि सदृशानां गुणवैषम्येऽपि	='गुणसाम्ये वा' यदि ऐसा सूत्र करते तो गुणोंकी विषमता होनेपर भी सदृशोंके
बन्धप्रतिषेध प्रसक्तौ	=अबन्धका प्रसंग आजाता अर्थात् सदृशोंका भी बन्ध न होता। (इसलिये)
तद् वत् तद्-सिद्धये सदृश-	=विसदृशोंके समान (=तद्वत्) सदृशोंका बध (=तद्) सिद्ध करनेके लिये सदृशका
ग्रहणम् कृतम्, तेन स्निग्धरूक्षजात्या	=ग्रहण (इससूत्रमें) किया है। तिसकरि अर्थात् स्निग्ध, रूक्ष जातीयसे
साम्येऽपि	=समान होने पर भी भावार्थ रूक्ष रूक्ष या स्निग्ध स्निग्ध होनेपर भी
गुण वैषम्ये बंधसिद्धि।	=गुणोंकी विषमता होने पर बन्धकी सिद्धि है। बन्ध होजाता है॥

इस सूत्रका पाठ दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायोंमें अक्षरशः मिलने पर भी अर्थमें भेद है॥ श्वेताम्बर आम्नायके आचार्यों ने "स्निग्ध रूक्षत्वात्" तेतीसवां सूत्रसे अनुवृत्ति नहीं ली है वे कहते हैं कि तेतीसवां सूत्रसे उपर्युक्त अनुवृत्ति नहीं लेना चाहिये नहीं तो सूत्र अशुद्ध होजावैगा यही कारण है कि सूत्रके अर्थमें भेद पडगया है उनके अनुकूल "गुणसाम्येसदृशानाम्" = "गुणसाम्ये सति सदृशानां बन्धो न भवति" =गुणकी समता होने पर सदृशोंका बन्ध नहीं होता" पर असदृशोंका बध अर्थात् रूक्षस्निग्धका बध गुणोंकी बराबरी होनेपर भी होजाता है उनका भावार्थ यह है कि गुणोंकी विषमता होने पर सदृशोंका (रूक्षका रूक्षके साथ और स्निग्ध का स्निग्धके साथ) बध होजाता है और यह गुणोंकी विषमता उनके "द्वि-अधिकादिगुणानांतु" (=द्विअधिकादिगुणानां तु सदृशानां बन्धो भवति" सूत्रके अनुसार केवल दो गुण एकसदृशमें दूसरे सदृशमें अधिक होना चाहिये बस बन्ध होजावैगा परन्तु उनके मतानुसार इससे यह फल निकला कि असदृशोंके परस्पर (रूक्षका स्निग्धके साथ अथवा यों कहिये कि स्निग्धका रूक्षके साथ) बन्ध होनेके लिये गुणोंकी अधिकताकी कोई आवश्यकता नहीं है दो असदृशोंके गुणोंकी संख्या समान होने पर भी बध होजाता है। (इस टिप्पणी को हमने श्वेताम्बर आम्नायके कईभाष्योंको मिलाकर सावधानी से लिखी है)॥

सदृशग्रहणं तुल्यजातीयसंप्रत्यायार्थं । गुणसाम्यग्रहणं तुल्यभागसंप्रत्ययार्थम् ॥ एतदुक्तं भवति–द्विगुणस्निग्धानां द्विगुणरूक्षैः त्रिगुणस्निग्धानां त्रिगुणरूक्षैःद्विगुणस्निग्धानां द्विगुणस्निग्धैः द्विगुणरूक्षाणां द्विगुणरूक्षैश्चेत्येवमादिषु नास्ति बन्ध इति ॥ यद्येवं

आदि संख्यात-असंख्यात अनंत गुणवाली स्निग्धपरमाणुओंका बन्ध तीन-चार-पांच-छह-सात आदि संख्यात असंख्यात अनंतगुणवाली रूक्षपरमाणुओंके साथ न होगा ॥ उपर्युक्त उदाहरण विजातीय(असदृश वा विसदृश) परमाणुओंके, जो अविभाग परिच्छेदरूप अंशोंमें समान है । निम्नलिखित दृष्टान्त सजातीय वा सदृश परमाणुओंके हैं जो सबकी सब गुणोंमें एक दूसरेके बराबर वा समान हैं ।

जैसे दो गुणवा तीन गुणवाली स्निग्धपरमाणुका बन्ध दो गुणवाली वा तीन गुणवाली स्निग्ध परमाणुसे यथासंख्य न होगा और दो गुणवाली अथवा तीन गुणवाली रूक्षपरमाणुका बन्ध दो गुणवाली वा तीनगुणवाली रूक्षपरमाणुओंके साथ क्रमसे न होगा, इसीप्रकार चार-पांच-छह-सात-आठआदिकसंख्यात-असंख्यात-अनंत स्निग्ध गुणवाली परमाणुओंकाबन्ध चार-पांच-छह-सात आठआदिसंख्यात-असंख्यात अनंतगुणवालीस्निग्ध परमाणुओंके साथ क्रमसे न होगा और चार-पांच-छह-सात आठ-आदि संख्यात-असंख्यात अनंतरूक्षगुणवाली परमाणुओंका बंध क्रमसे चार-पांच छह-सात-आठ आदि संख्यात-असंख्यात-अनंतगुणसे युक्त रूक्षपरमाणुओंके साथ न होगा ॥

वृत्त्यनुवादः–सदृश-ग्रहणम् तुल्य-जातीय-संप्रत्यय-अर्थम् =(इस सूत्रमें)सदृश(शब्द)का ग्रहण समानजातिको प्रगट करनेके लिये है
गुणसाम्य-ग्रहणम् तुल्य- =(इससूत्रमें)गुणसाम्य वाक्यका लाना(स्निग्धता वा रूक्षताकेगणनामें) बराबर
भाग-संप्रत्यय-अर्थम् ; एतद् उक्तम् भवति =अविभागपरिच्छेदरूप अंशोंके जतावनेकेलिये है। यह कथन वाअर्थ होताहैकि
द्विगुण(१ स्निग्धानाम् द्विगुण(२ रूक्षैः त्रिगुण(३ स्निग्धानाम् =दोगुण स्निग्धोंके दोगुण रूक्षोंकरि, तीनगुण स्निग्धोंके
त्रिगुणरूक्षैः द्विगुणस्निग्धानाम् द्विगुणस्निग्धैः =तीनगुणरूक्षोंकरि, दोगुणस्निग्धोंके दोगुण स्निग्धोंकरि,
च*द्विगुणरूक्षाणाम् द्विगुणरूक्षैः इत्येवम्*आदिषु =और दोगुण रूक्षोंके दोगुण रूक्षोंकरि इत्यादि में
न*अस्ति, बन्धः इति*॥यदि*एवम्* =इस प्रकार बन्ध नहीं है । (प्रश्न) जो ऐसे है तो अर्थात् गुणोंकी संख्यामें बराबरी होनेपर न तो सदृश परमाणुओंका बंध होता है और न असदृश

(१)(२)(३)तीन स्थानोंपर इस पृष्ठमें और पांच स्थानोंमें १२४ पृष्ठमें 'बहुवचनमें' ये शब्द इसलिये लाये गयहैं कि लोकमें ऐसी परमाणु अनन्तानन्त हैं

सदृशग्रहणं किमर्थं ? गुणवैषम्ये(सदृशानामपि)बंधप्रतिपत्त्यर्थं सदृशग्रहणं क्रियते॥

सदृश-ग्रहणम्॥ किम्॥ अर्थम्॥ १

गुण-वैषम्ये॥ (सदृशानाम्॥ अपि*) बंध-प्रतिपत्ति-अर्थम्॥ सदृश-ग्रहणम्-क्रियते।

परमाणुओंकाही वंध होताहै जब सदृश विसदृश दोनोंहीका बन्ध नहीं होता तब सूत्रमें =सदृश(शब्द)का ग्रहण किसलिये है अर्थात् सूत्र ऐसा होता 'गुणसाम्ये' और 'न' की अनुवृत्ति 'नजघन्यगुणानाम्' सूत्रसे आकर 'गुणसाम्येन' सूत्र होकर ऐसा अर्थ होजाता कि '(परमाणुओंमें)गुणोंकी संख्या एक दूसरोंसे बराबर होनेपर बन्ध नहीं होता' =(उत्तर)गुणोंकी विषमता होनेपर { सजातीय(परमाणु)निकें भी(=अपि) } बन्ध =जतलानेके लिये (सूत्रमें) सदृश(शब्द) ग्रहण किया गया है वा लायागया है॥ शिष्यके प्रश्न और आचार्यके उत्तरका सारांश यह है कि शिष्यने 'न जघन्यगुणानाम्' सूत्रका अर्थ समझकर कि जघन्यगुणोंकी परमाणुओंका चाहै सदृश हों वा विसदृश हों बन्ध नहीं होता है अजघन्यगुणोंवाली परमाणुओंका वंध होताहै पश्चात् 'गुणसाम्ये सदृशानां' सूत्रका भाव समझकरकि गुणोंकी संख्यामें समानता होनेपर नसदृशोंका बंध होता है और न असदृशोंका बन्ध होता है, असमान गुणोंके परमाणुओंमें चाहैं सदृश हों चाहैं विसदृश हों बंध होजाता है प्रश्न करदिया कि जब "न जघन्यगुणानाम्" सूत्रमें सदृश विसदृशका वंध नहीं है और न इस सूत्रमें सदृश विसदृशका बन्धहै तब सूत्रभी उसी ढांचेपर बनाना था अर्थात् 'गुणसाम्येन' गुणोंकी गणनामें समानता होनेपर बन्ध नहीं होता(न सदृशोंका न असदृशोंका फिर इस सूत्रमें 'सदृशानां' लाना व्यर्थ है आचार्यके उत्तरका भावार्थ यहहैकि सदृशोंका बन्ध विषमगुणोंके होनेपरभी

(१) सर्वार्थसिद्धिकी प्रथमावृत्तिमें "गुणवैषम्ये बन्ध प्रतिपत्त्यर्थं" पाठ है द्वितीयावृत्तिमें "गुणवैषम्ये सदृशानामपि बन्ध प्रतिपत्त्यर्थं पाठ है। तीन हस्तलिखित सर्वार्थसिद्धिकीप्रतियोंका पाठभी प्रथमावृत्तिसे मिलता है॥ यही पाठ श्लोकवार्तिक मुद्रित तथा हस्तलिखितमें और तीन चार प्रतियों राजवार्तिकका वार्तिक पांचका है, तत्वार्थराजवार्तिकमें इस वार्तिककी वृत्ति ऐसे है कि "गुणवैषम्ये सदृशानां बन्धो भवतीत्येतस्यार्थस्य प्रतिपत्त्यर्थं" इत्यादि अर्थात् यह वृत्ति सर्वार्थसिद्धिकी द्वितीयावृत्तिसे मेल रखती है॥ "गुणवैषम्ये बन्धो भवति इति परिज्ञानार्थं' सर्वार्थसिद्धिकी प्रथमावृत्तिसे मिलता जुलता हुआ पाठ श्रुतसागरी टीकामें है॥ श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य०में दो स्थानोंपर देखा(पृष्ठ १३८)तथा भाष्यानुसारिणीतत्त्वार्थटीका जिसमें बाईस सहस्र श्लोकोंसे भी अधिक हैं उसके पर्ण ४६६ पर दो स्थानोंपर 'गुणवैषम्ये सदृशानां बन्धो भवति" पाठहै जो सर्वार्थसिद्धिकी द्वितीया वृत्तिसे मिलता जुलता हुआ है॥ "गुणकी विषमता हो तो बन्ध होय है ऐसे जनावनेके अर्थ हैं" प० जयचन्द्रजीने ऐसाअर्थ कियाहै॥ 'गुणकी विषमता होते सन्तेभी बन्ध होय हैं' न्यायदिवाकरजी अनुवादित राजवार्तिक अध्याय५ पर्ण १४३में है॥ प०पन्नालाल दूनीजी अनुवादित राजवार्तिक अध्याय ५ पर्ण १०० पर "गुणनिकी विषमतामें सदृशनिकैं बन्ध है" ऐसा अर्थ प्राप्त है सूक्ष्म दृष्टिसे देखनेपर इन सबका परिणाम यहहै कि यथार्थमें सर्वार्थसिद्धि का पाठ तो गुणवैषम्ये बन्धप्रतिपत्त्यर्थं' है॥ "सदृशानां" वाक्य प्रक्षेप है अर्थात् यह शब्द छिपा हुआ है हमने द्वितीयावृत्तिके पाठको लेते हुए "सदृशानांमपि" को कोष्टकमें करदिया है क्योंकि "सदृशानां" सहित अनुवाद करनेमें तथा अर्थ और व्याख्या समझने समझानेमें सरलता होजाती है॥

अतो विषमगुणानां तुल्यजातीयानामतुल्यजातीयानां च अनियमेन बन्धप्रसक्तौ विशिष्टार्थसंप्रत्ययार्थमिदमुच्यते—

॥ द्व्यधिकादिगुणानां तु॥ ३६ ॥

नहीं होता यदि सूत्रमें 'सदृशानां' न लाते तो वह इस प्रकार छूटजाता कि तेतीसवां सूत्रसे 'स्निग्धरूक्षत्वानाम्' कीअनुवृत्ति तो इस सूत्रमें आजाती और अर्थ यह होता कि गुणोंकी समानता होनेपर स्निग्धरूक्षसोंका बन्ध नही होताहै इसअनुवृत्तिसे इस बातकी प्राप्ति हुई कि गुणोंकी विषमता होनेपर असदृशोंका बन्ध होगा अब सूत्रमें 'सदृशानां' शब्द तो होताही नहीं अतएव सदृशानां का कथनहीविषमगुणोंकी अवस्थामें नहीं करसकतेथे इसी हेतुसे वृत्तिमें 'सदृशानां'केसाथ 'अपि'(=भी) शब्द लाये हैं कि गुणोंकी विषमतामें सदृशोंका भी बन्ध प्रगट होजाय ; अपि शब्दसे यह भास होता है कि ३३वां सूत्रकी अनुवृत्ति इस सूत्रमें आनेसे असदृशोंका बन्धतो विषमगुणोके होनेपर होहीजाताहै।सूत्रमें'सदृशानां'लानेसे विषमगुणोंमेंसदृशोंके बन्धकीभी प्राप्ति होगई अतः सूत्रमें सदृशानां' शब्द व्यर्थ नहीं है।।स्मरण रहे कि 'गुणसाम्ये सदृशानां' सूत्रका अर्थ करनेमें हमारे यहां'साम्ये'शब्द पर बल देकर यह अर्थ किया है कि सदृशों(सजातीय परमाणुओं)का बन्ध गुणोंकी समानता होनेपर नहीं होता गुणोंकी विषमता होने पर सदृशोका भी बन्ध होता है इसलिये सूत्रमें सदृशानां' शब्दका ग्रहण है कि गुणकी विषमता होनेपर सजातियोंकाभी बंध होता है।।श्वेताम्बर आम्नायमें 'सदृशानां' शब्दपर बलदेकर यह अर्थ कियाहै कि सदृशोंका बन्ध गुणोंकीसमानता होनेपर नहीं होता है विसदृशों' का बन्ध गुणोंकी समानता होनेपर भी होजाता है जैसे चार गुणवाली स्निग्ध परमाणुका बन्ध चार गुणवाली रूक्ष परमाणु के साथ होजावेगा इसीलिये श्वेताम्बर तथा दिगम्बरआम्नायोंमें इस सूत्रके अर्थमें भेद पड़गया है।

अतः॥विषमगुणानाम्[3]।तुल्यजातीयनाम्[3]।च॥	=इसलिये विषमगुणवाले सदृशोंका और (=च)
अतुल्यजातीयनाम्[3]।अनियमेन[3]।बन्ध-	=विसदृशों(=असदृशों)का नियमरहित वा अविशेषरूपसे बन्धका
प्रसक्तौ[7]।।विशिष्ट-अर्थ-संप्रत्यय-अर्थम्[2]।।	=प्रसंग आनेपर विशेष तात्पर्य वा अभिप्राय जतावनेके लिये
इदम्[1]।।उच्यते।'	=यह(अग्रिम सूत्रमें) कहाजाता है कि

(१)**सूत्रम्—द्व्यधिकादिगुणानां तु।३६। = द्वि-अधिक-आदिगुणानाम् (सदृशानाम् विसदृशानाम् परमाणूनां परस्परेण बन्धः) तु (भवति) ॥ ३६ ॥**

सूत्रार्थः-द्वि-अधिक-गुणानाम्[3]।	=किन्तु (पर-परंतु) दोगुण आदिसे(=आदिकरि)अधिकगुणवाले

(१) यह सूत्रभी परम गुणास सम्बन्ध रखता है क्योंकि 'न जघन्यगुणानाम्' 'गुणसाम्ये सदृशानाम्' इन सूत्रोंसे अनुवृत्तिया इस सूत्रमें ग्रहण कीगईहैं

गई है ॥ अर्थात् 'सदृशाना विसदृशाना' पैतोसवां सूत्रसे 'परमाणूनां' चौतीसवां सूत्रसे, 'बन्ध' ततोसवां सूत्रसे अनुवर्तते हैं 'परस्परेण' और भवति' शब्दोंका अध्याहार इस सूत्रमें कियागया है । तत्त्वार्थराजवार्तिकमें इस सूत्रकी प्रथमवार्तिककी वृत्तिमें कितनेही उदाहरण दिये हैं वे समस्त परमाणुओंसे सम्बन्ध रखते हैं, राज०२४१ । यह बात प्रत्यक्ष है कि बन्ध होनेके पश्चात् स्कन्ध होजावे गा जैसाकि प्रथमवार्तिककी वृत्तिके अन्तके वाक्यमें प्रगटहै प्रतान् 'परमुक्त विधिना बन्धे सत्यणू ॥ द्वि अणुकाद्यनन्तानन्त प्रदेशावसानस्कन्धोत्पत्तिर्वेदितव्या, इसप्रकार कथित विधिद्वारा बन्ध होनेपर अणुओंके द्वि अणुआदि अनन्तानन्त प्रदेश पर्यन्त स्कन्धोंकी उत्पत्ति जानना चाहिये, समर्थनमें देखो इसकापृ०१२६ जिसमें श्वेता०आम्नायकेसम्बन्धमें कुछउल्लेखहै

(२) इस सूत्रका पाठ श्वेताम्बर और दिगम्बर आम्नायोंमें एक है तो भी अर्थमें यह भेद है कि उन्होंने केवल 'सदृशानाम्' की अनुवृत्ति "गुणसाम्ये सदृशानाम्' सूत्रसे लेकर इस प्रकार सूत्र किया है कि द्वि-अधिकादिगुणाना तु सदृशाना बन्धो भवतीति॥भाष्यम् - द्वाभ्या गुणविशेषाभ्यामन्यस्माद-धिकाय परमाणु स आदिर्येषां गुणानां द्वि अधिकादिगुणा. गुण शब्दाश्रगुणिवचन गुणवतागुणा परमाणव इत्यर्थ तषां द्वि अधिकादि गुणानामणूनां सदृशानां बन्धो भवति ॥ सदृशानामितिस्नेहसामान्यरूक्षसामान्यचाश्रित्य सादृश्य व्याख्येय ॥ श्रीसिद्धसेनसूरि विरचिता भाष्यानुसारिणी वृत्तौ वा भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीका पर्ण ४६६-श्वेताम्बर आम्नायमें यह ग्रन्थ तत्त्वार्थ सूत्रपर महत्त्वका है इसमें बाईस सहस्र दासौ श्लोकमें अधिक कुछहैं॥

द्वि-अधिक आदि गुणानां तु सदृशानाम् बन्ध भवति इति = परन्तु द्विगुण आदिसे अधिक गुणवाले सदृश (परमाणु)निका बन्ध होताहै, ऐसाहै

भाष्यम् – अन्यस्मात् द्वाभ्याम् गुणविशेषाभ्याम् अधिक = व्याख्या(भाष्य)है कि अन्य(परमाणु से(= अन्यस्मात्) दो विशेषगुणकरि अधिक अर्थात् स्निग्धहोतो दोगुणअधिकस्निग्धकरि और रूक्षहोतो दोगुण अधिकरूक्षकरि

य परमाणु स आदि येषाम् गुणानाम् ते द्वि-अधिकादिगुणाः = जोपरमाणु है सो'दोआदिगुण(= आदिगुणाना)जिनके हैं वे(= ते द्वि-अधिकादि गुणाहैं

गुणशब्द' अत्र गुणिवचन = यहां (= अत्र अर्थात् इससूत्रमें) गुण शब्दहै सो गुणीका वाचक(= गुणिन वचन)है ।

गुणवन्त गुणाः परमाणव इत्यर्थ. = गुण सहित हैं वे गुणा परमाणु हैं ऐसा तात्पर्य है अर्थात् सूत्रमें 'गुणाना शब्द है सो जिनके गुण विद्यमान है उनमें प्रयोजन है ऐसी गुणवालीपरमाणु है

तेषाम् द्वि-अधिकआदिगुणानाम् अणूनाम्सदृशानाम् बन्ध भवति = तिन'दोगुण अधिक आदिसे सदृश परमाणुओंका बन्ध होताहै

सदृशानां इति स्नेहसामान्य रूक्षसामान्य च आश्रित्य सदृशव्याख्येयम् ॥नीचेका भाष्य,सभाष्य०के पृ०१३६से लिया है = सदृशानां ऐसा वाक्य सामान्य स्निग्धका और सामान्यरूक्षको आश्रयकरि = (सामान्य स्निग्ध और सामान्यरूक्षकी विवक्षासे)समानता वर्णित है

'भाष्यम्–द्वि-अधिकादिगुणानां तु सदृशानां बन्धो भवति = द्विगुण आदिसे अधिक गुणवाले सदृश पदार्थोंकाभी बन्ध होता है ॥

विशेषव्याख्या– अब इस विषयको कहते हैं कि रूक्षका रूक्षके साथ औरस्निग्धका स्निग्धके साथ भी बन्ध होता है किन्तु रूक्ष तथा स्निग्धगुणा को इस प्रकारसे विषमता होनी चाहियेकि

तद्यथा स्निग्धस्य द्विगुणाद्यधिक स्निग्धेन(द्विगुण आदिअधिक)। = जैसे स्निग्धकाअर्थात्सामान्य स्निग्धका द्विगुणआदि अधिक स्निग्धके साथबन्धहोताहै

द्विगुणाद्यधिक स्निग्धस्य स्निग्धेन द्विगुण आदि अधिक)। = (तथा)द्विगुण आदि अधिक स्निग्धका सामान्यस्निग्धके साथ बन्ध होता है

रूक्षस्यापि द्विगुणाद्यधिकरूक्षेण(द्वि-गुण आदि अधिक) = (ऐसेही सामान्य)रूक्षका द्विगुण आदि अधिक रूक्षके साथ बन्ध होता है

द्विगुणाद्यधिकरूक्षस्य रूक्षेण' = द्वि गुण-आदि अधिक) = तथा द्विगुण आदि अधिक रूक्षका सामान्य रूक्षके साथ भी बन्ध होता है (तात्पर्य यह कि सामान्य स्निग्ध पदार्थका उससे द्विगुण अधिक स्निग्धके साथ बन्ध होता है और सामान्यरूक्ष पदार्थका उससे द्विगुण अधिक रूक्षके साथबन्ध होता है परन्तु यह वैषम्यद्विगुण आदिसे अधिक होना चाहिये)

एकादिगुणाधिकयोस्तु सदृशयोर्बन्धो न भवति . = और एकादिगुण अधिक सदृशोंका बन्ध नहीं होता है ॥ देखो सभाष्य०पृ० १३६॥

सदृशानाम् विसदृशनाम् परमाणूनाम् =सजातीय अथवा विजातीय परमाणुओंका
परस्परेण बन्ध भवति =आपसमें बन्ध होता है ॥ द्वि-अधिक आदिगुण वाक्यमें आदि शब्द प्रकार वा जातिवाची है। दोगुणकरि अधिक सो द्व्यधिकगुण है अर्थात् वंध होनेयोग्य जो परमाणु दोगुण करि अधिकहै सो द्व्यधिकगुण(परमाणु है, जघन्यगुणको छोड़कर बन्ध होने योग्य दो अधिक गुणवाली परमाणु है। अतः द्व्यधिक गुण परमाणु का अभिप्राय चार गुण संयुक्त परमाणु हुई ॥ "द्व्यधिकादिबन्धःभवति" अर्थात् द्व्यधिक प्रकारसे बन्ध होता है भावार्थ दोगुण परमाणुंसे जिस में चारगुण हैं सो दो अधिक गुणवाली परमाणु है, आदि शब्दके हेतुसे तीन गुण वाली परमाणुसे पांच गुण वाली परमाणु दो गुण अधिक है, चार गुण वाली से छह गुण वाली दो गुण अधिक है, पांच गुण वाली से सात गुण वाली दो गुण अधिक है, छह गुण वालीसे आठ गुण वाली दोगुण अधिक है इत्यादि इसी रीति से (आदि शब्द में) पूर्वोक्त से उत्तरोक्त दो गुणअधिकवाली क्रमसे सर्व (संख्यात असंख्यात-अनंतगुणवाली परमाणुयें गर्भित हैं और इन्हीं प्रकार की परमाणुओंके वंध होता है ॥

(क) सजातीय परमाणुओं के आपस में वंध के उदाहरणः—दो गुणवाली स्निग्ध परमाणु चार गुणवाली स्निग्ध परमाणु के साथ वंधको प्राप्त होती है तीन गुणवाली स्निग्ध पांच गुणवाली स्निग्ध के साथ, चार गुणवाली स्निग्ध छह गुणवाली स्निग्ध के साथ पांच गुणवाली स्निग्ध सात गुणवाली के साथ छह गुणवाली स्निग्ध आठ गुणवाली स्निग्ध के साथ बंधको प्राप्त होती हैं इसी प्रकार सात, आठ, नौ, दश, आदि संख्यात गुणवाली स्निग्ध परमाणुयें, असंख्यात गुण संयुक्त स्निग्ध परमाणुयें और अनंत गुण संयुक्त स्निग्ध परमाणुयें क्रमसे नौ दश ग्यारह बारह आदि, संख्यात गुणवाली

जब श्वेताम्बर आम्नायके आचार्योंने "गुणसाम्ये सदृशानां" सूत्रका यह अर्थ किया है कि गुणोंकी समान संख्या होनेपर सदृशोंका बन्ध नहीं होगा परन्तु विसदृशोंका बन्ध गुणोंकी संख्याके तुल्य होनेपर भी होजावेगा तब यह परिणाम निकला कि सदृश परमाणुओंके ही बन्धके लिये एकसे दूसरेमें दोगुणोंके अधिक होनेकी आवश्यकता हुई क्योंकि उक्त आम्नायके सिद्धान्तके अनुकूल विसदृश परमाणुओंके आपसमें बन्ध होनेके लिये एकसे दूसरेमें अधिकगुणोंके होनेकी कोई आवश्यकता नहीं है परन्तु हमारे यहां 'गुणसाम्ये सदृशानां' में 'स्निग्धरूक्षत्वाणाम्' कीभी अनुवृत्तिग्रहणकीहै इसलिये ऐसा अर्थ होता है कि परमाणुओंमें गुणोंकी संख्या यदि बराबर हो तो चाहे वे परमाणु सजातीय हों अथवा विजातीय हों बन्ध नहीं होता है और पश्चात् 'सदृशाना विसदृशानां' दोनोंकी अनुवृत्ति द्वि-अधिकादि गुणानांतु' सूत्रमें ग्रहण करके ऐसा तात्पर्य निकाला है कि द्विगुण आदिसे अधिक गुण वाले सदृश परमाणुओंका परस्पर अथवा विसदृश परमाणुओं का आपसमें बन्ध होता है अन्य प्रकारसे नहीं जघन्यगुणवाली परमाणुओंको दोनोंही सम्प्रदायवालोंने बन्धसे वर्जित रक्खा है ॥

```
    ६५५३६                ६५५३६
    ६५५३६                ६५५३६
   ------               ------
   ३९३२१६               ३९३२१६
  १९६६०८               १९६६०८
 ३२७६८०               ३२७६८०
३२७६८०               ३२७६८०
३९३२१६               ३९३२१६
-----------          -----------
४२९४९६७२९६           ४२९४९६७२९६
```

अब ४२९४९६७२९६ को मा ग्म मे गुणा करने पर जो लब्ध राशि आवे उसमें से एक घटाने पर शेष इष्ट राशि है

अर्थात्

```
            ४२९४९६७२९६
            ४२९४९६७२९६
          -------------
           २५७६९८०३७७६
          ३८६५४७०५६६४
         ८५८९९३४५९२
        ३००६४७७१०७२
       २५७६९८०३७७६
      ३८६५४७०५६६४
     १७१७९८६९१८४
    ३८६५४७०५६६४
   ८५८९९३४५९२
  १७१७९८६९१८४
  ----------------------
  १८४४६७४४०७३७०९५५१६१६
                      १
  ----------------------
  १८४४६७४४०७३७०९५५१६१५
```

१८४४६७४४०७३७०९५५१६१५ ये एकआदि एक ही प्रमाण द्रव्यश्रुतज्ञानके अपुनरुक्त अक्षर हैं इस भेद को इस रूप [२६४ – १] में भी रख सकते हैं अर्थात् दो को चौंसठ स्थानों मे गुणा करके एक घटादो॥

( ) इसी भेद को तीसरे प्रकार से ऐसे भी प्रकार कहनेके हैं कि द्विरूपवर्गधाराका (अथवा दोके वर्ग धारा में) छठवां वर्गस्थान जिसको गणना एकट्ठी संख्याके बराबर है। इस एकट्ठी प्रमाण संख्यामें से एक घटानेसे जो अवशेष संख्या रहे उतने ही अपुनरुक्त अक्षर द्रव्य श्रुतज्ञानके हैं अर्थात् दोके ऊपरे २ वर्ग रखकर जब छठवां वर्गका स्थान आवे($2^{2^{2^{2^{2^{2}}}}}$) तब गुणनफलमें से एक घटादो येही द्रव्यश्रुतके अपुनरुक्त अक्षर हैं

जैसे दो का एक वर्गस्थान २² = ४ दोका दूसरा वर्गस्थान $(2^2)^2 = 4^2 = १६$

दोका तीसरा वर्ग स्थान $((2^2)^2)^2 = (4^2)^2 = १६^2 = २५६$ दोका चौथा वर्गस्थान $= (((2^2)^2)^2)^2 = ((4^2)^2)^2 = (१६^2)^2 = २५६^2 = ६५५३६$

दोका पांचवां वर्गस्थान $((((2^2)^2)^2)^2)^2 = (((4^2)^2)^2)^2 = ((१६^2)^2)^2 = (२५६^2)^2 = ६५५३६^2 = ४२९४९६७२९६$

दोका छटा वर्गस्थान $(((((2^2)^2)^2)^2)^2)^2 = ((((4^2)^2)^2)^2)^2 = (((१६^2)^2)^2)^2 = ((२५६^2)^2)^2 = (६५५३६^2)^2 = ४२९४९६७२९६^2$

= ४२९४९६७२९६ × ४२९४९६७२९६

= १८४४६७४४०७३७०९५५१६१६ इससे एक

घटाने पर १८४४६७४४०७३७०९५५१६१५ शेष रहे येही अपुनरुक्त अक्षर द्रव्य श्रुतज्ञान के हैं

अब अंगप्रविष्ट और अंगबाह्य की उत्पत्ति लिखते हैं। एक अक्षर से उत्पन्न हुआ जो ज्ञान तिसके ऊपर क्रमसे एक एक अक्षर की वृद्धि होते होते जब संख्यात अक्षरों की वृद्धि होजाय तब पदनामक श्रुतज्ञान होता है। अक्षरज्ञान के ऊपर और पदज्ञान के पूर्व तक जितने ज्ञान के भेद हैं (वे ज्ञान के भेद संख्या में पद के अक्षरों से दो न्यून होते हैं)वे सब अक्षर समासज्ञान के भेद हैं। (जी० कां० गो० ३३५ गाथा) स्मरण रहे कि यहां पर पद से अभिप्राय मध्यमपद से है क्योंकि पद तीन प्रकार के हैं (प) अर्थपद (फ) प्रमाण पद (ब) मध्यम पद। तहां जितने अक्षरों के समूहद्वारा वांछित अर्थ जाना जाता है उसको 'अर्थपद' कहते हैं अर्थात् विवक्षित अर्थ के अर्थी, एक दो आदि अक्षरनिका समूह ताको अर्थपद कहिये" जैसे 'गामभ्याज शुक्लां दंडेन' वाक्य में गाम अभ्याज शुक्लां दंडेन (= श्वेत गाय को दंडे के बल) से बन्द करदो। गाम्-अभ्याज शुक्लां-दंडेन चार अर्थ पद हुये। ऐसे ही 'अग्निमानय, वाक्यमे अग्निम्- आनय (= आग को ला) दो अर्थ पद हुये। और दंडन शालिभ्यो गां निवारय' वाक्य में दंडेन - शालिभ्य : -गां - निवारय(= दंडेसे गाय का धानों म से निकाल दो) ये चार अर्थ पद हुये। इन उदाहरणों से प्रकट है कि अर्थ पद में प्रत्येक पद के अक्षर बराबर नहीं होते न्यून हों अधिक हों कभी कभी बराबर भी हों प्रमाणेन अष्टोक्षरादि सँख्या निष्पन्नः अक्षरसमूहः प्रमाण पद ॥ तद्यथा नमः श्री वर्द्धमानाय। नियमित संख्या को लिये हुये आठ अक्षर आदि गणना करि उत्पन्न हुआ अक्षरोंका समूह सो प्रमाण पद है जैसे श्री वर्द्धमान (भगवान्) कोनमस्कार हो अन्य उदाहरण प्रमाणपदके भक्तामरप्रणतमौलि मणि प्रभाणाम् त्रैकाल्यं द्रव्य षट्क नव पद सहित जीव षट्कायलेश्याः। इत्यादि इन तीन प्रमाणपद के उदाहरणों से प्रगट है इनके अक्षरों की संख्या हीन अधिक है परन्तु प्रत्येक छन्द अवशेष तीन प्रमाण पदों के अक्षरों का प्रमाण बराबर होगा। उक्त सब उदाहरणों के मिलाने से यह फल निकलता है कि अर्थपद और प्रमाणपद के अक्षरों की कोई गणना नियत नहीं है ॥

अब और सोलासै चोतीस कोडि तियासी लाख सात हजार आठसै अठ्यासी (१६३४८३०७८८८) गाथा विषै (= परमागम) कहै अपुनरुक्त अक्षर तिनिका समूह सो मध्यमपद कहिये। इनि विषै अर्थपद अर प्रमाणपद तौ हीन अधिक अक्षरनिका प्रमाणकों लिए लोकव्यवहार करि ग्रहण प्रमाणपद का कोर्य हैं तातें लोकोत्तर परमागमविषै गाथाविषै कह्यो जो संख्या तीहां विषै वर्तमान जो मध्यम पद ताही का ग्रहण जानना" सारांश, अर्थपद और में अक्षरों न्यूनाधिकप्रमाण होने से लोकव्यवहार में ग्रहण है तिससे लोकोत्तर गाथा विषै [= परमागम में] कहे हुये पदके अक्षरों का प्रमाण १६३४८३०७८८८ सर्वदा के लिये निश्चित है। इस ही को मध्यम पद कहते हैं ॥

अंगप्रविष्टं द्वादशविधम् ॥ तद्यथा—

अङ्गप्रविष्टं १।।। द्वादशविधं १।।। तद्यथा ※ = अंगप्रविष्ट बारह प्रकार है जैसे (सो = तद्, ज्यों है = यथा ऐसा शब्दार्थ है)

हमको ज्ञात है कि समस्त जिनवाणी (अर्थात् द्रव्यश्रुतज्ञान) बारह १८४४६७४४०७३७०९५५१६१५ अपुनरुक्त अक्षर प्रमाण है इन वीस अंको में १६३४८३०७८८८ अंको का भाग देने से द्रव्यश्रुतज्ञान के मध्यम पदों की संख्या इसभांति निकलती है कि

१६३४८३०७८८८) १८४४६७४४०७३७०९५५१६१५ (११२८३५८००५ ।
१६३४८३०७८८८
२०९८४३६१८५७
१६३४८३०७८८८
४६३६०५३९६९०
३२६९६६१५७७६
१३६६३९२३९१४९
१३०७८६४६३१०४
५८५२७७६०४५५
४९०४४९२३६६४
९४८२८३६७८९१५
८१७४१५३९४४०
१३०८६८२८४४७५१
१३०७८६४६३१०४
८१८२१३७११६१५
८१७४१५३९४४०
८०१०८१७५

इतने अंगप्रविष्ट श्रुतज्ञान के मध्यम पद हुये इतने पदों का तो द्वादशांग रूप द्रव्यश्रुत है और शेष अक्षर आठ करोड़ एक लाख आठ सहस्र एकसौ पचहत्तर (८०१०८१७५) रहे इनका पूराएक मध्यम पद नहीं होसका है इनसे अंगवाह्यको उत्पत्ति है अर्थात् इन अक्षरों से चौदह पूर्वोक्त प्रकीर्णको की उत्पत्ति हुई है।

आचारः । सूत्रकृतम् । स्थानम् । समवायः । व्याख्याप्रज्ञप्तिः । ज्ञातृधर्मकथा । उपासकाध्ययनम्

आचारः ;। = आचारांग अर्थात् वह है जिसमें साधुओं के समस्त आचरणका वर्णन हो । अठारह सहस्र जिसके पद हैं ।

सूत्रकृतम् ;।। = सूत्रकृतांग अर्थात् वह है । जिसमें ज्ञानका विनयादिक तथा धर्मक्रियामें स्वमत परमतकी क्रियाका और निर्विघ्न अध्ययन क्रियाका विशेष निरूपण हो इस में छतीस सहस्र ३६००० पद हैं ।

स्थानम् ;।। = स्थानाङ्ग अर्थात् जिसमें सम्पूर्ण द्रव्योंके एकसे लेकर कितने विकल्प होसकते है और उन विकल्पों का वर्णन किया है जैसे समान्यकी अपेक्षासे जीवद्रव्यका एक ही विकल्प वा भेद है, संसारी और मुक्त की अपेक्षा से दो भेद हैं, उत्पाद, व्यय धौव्यकी अपेक्षा से तीन भेद हैं । चार गतियों की अपेक्षा से चार भेद हैं, इत्यादि । इसी प्रकार पुद्गल आदिक द्रव्यों के भी भेद समझना । इस में वियालीस सहस्र ४२००० पद हैं ।

समवायः ;। = समवायाङ्ग अर्थात् वह अङ्ग है जिसमें द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव की अपेक्षासे सामान्यताका वर्णन है । सारांश सम्पूर्ण द्रव्यों में परस्पर किस किस धर्म की अपेक्षा से सादृश्य है यह बताया है । जैसे द्रव्यकारि धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकाय समान है । क्षेत्रकरि मनुष्यक्षेत्र और प्रथम नरकका प्रथम इन्द्रकबिल, अर प्रथम स्वर्गका प्रथम इन्द्रक विमान समान है । कालकरि उत्सर्पिणी अवसर्पिणी समान हैं । भावकारि केवल ज्ञान केवल दर्शन समान हैं । इसके एक लाख चौसठ सहस्र १६४००० पद हैं ।

व्याख्याप्रज्ञप्तिः ;।। = व्याख्याप्रज्ञप्ति अङ्ग वह है जिसमें जीव के अस्तिनास्ति, वक्तव्य अवक्तव्य, नित्य अनित्य एक अनेक इत्यादि साठ सहस्र प्रश्न गणधर देवने तीर्थंकर भगवान के निकट किये ता कथन है । दोलाखअट्ठाईस सहस्र पद हैं ।

ज्ञातृधर्मकथ;।। = ज्ञातृ धर्म कथांग वह है जिसमें जीवादि वस्तुओं का स्वभाव, तीर्थंकरोंका महात्मय, तीर्थंकरोंकी दिव्यध्वनिका समय तथा महात्म्य, उत्तम क्षमा आदि दशधर्म सम्यकदर्शनादि रत्नत्रयका स्वरूप तथा गणधर इन्द्र चक्रवर्ती आदिकी कथा उपकथाओं का वर्णन है पांचलाख छप्पनसहस्र पद हैं ।

उपासकाध्ययनम् ;।।। = उपासकाध्ययनाङ्ग वह है जिसमें उपासकोंकी (श्रावकोंकी) सम्यकदर्शनादि ग्यारह प्रतिमा संबंधी व्रत गुण शील आचार तथा दूसरे क्रिया कांड और उनके मंत्रादिकों का विस्तार वर्णन है । ग्यारहलाख सत्तर सहस्र पद हैं,

अन्तकृद्दशम् । अनुत्तरोपपादिकदशम् । प्रश्नव्याकरणम् । विपाकसूत्रम् । दृष्टिवाद इति ॥ दृष्टिवादः पञ्चविधः—

अन्तकृद्दशम् ;।।। = अन्तकृद्दशांग जिसमें प्रत्येक तीर्थंकरके तीर्थमें (= एक तीर्थके पीछे जबतक दूसरा तीर्थंकर हो वो काल) जो दश दश मुनि घार प्रकार का तीव्र उपसर्ग सहन करके संसारके अन्त को प्राप्त हुए उनका वर्णन है इसके तेईस लाख अट्ठाईस सहस्र २३२८००० पद हैं

अनुत्तरोपपादिकदशम् ;।।। = अनुत्तरोपपादिक दशांग वह है जिसमें एक एक तीर्थ करके तीर्थमें दश दश महामुनि घोर उपसर्ग सहकर अन्तमें समाधि के द्वारा अपने प्राणों को त्याग करके विजय आदिक पांच प्रकारके अनुत्तर विमानोंमें उत्पन्न हुए। इसमें बानवै लाख चवालीस सहस्र ९२४४००० पद हैं ।

प्रश्न व्याकरणम् ;।।। = प्रश्न व्याकरणांग वो है जिसमें अतीत अनागत काल सम्बन्धी लाभ अलाभ सुख दुःख जीवित मरणादि शुभाशुभका कोई प्रश्न करै तिसके उत्तर यथार्थ कहनेका उपाय वर्णन है और आक्षेपिणी, विक्षेपिणी संवेजिनी निर्वेजनी इन घार प्रकारकी कथाओं का वर्णन है इसमें तिरानवै लाख सोलह सहस्र ९३१६००० पद हैं ।

विपाकसूत्रम् ; ॥ = विपाकसूत्राङ्ग वह अङ्ग है जिसमें द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावके अनुसार शुभाशुभ कर्मों की तीव्र मन्द मध्यम आदि अनेक प्रकारकी अनुभाग-शक्तिके फल देने रूप विपाकका वर्णन है इसमें एककरोड़ चौरासीलाख पद हैं

दृष्टिवादः ;। = दृष्टिवादाङ्ग वह अङ्ग है जिसमें तीनसौ तिरेसठ मिथ्या मतों का वर्णन और उनका निराकरण है इसमें एकसौ आठ करोड अडसठलाख छप्पन सहस्र पांच १०८६८५६००५ पद हैं

दृष्टिवादः;। पञ्चविधः ;। = दृष्टिवादः (बारहवां अङ्ग) पांच प्रकार का है (इसी पुस्तक का पृष्ट ४२० देखो)

परिकर्म । सूत्रम् । प्रथमानुयोगः ।

(१) परिकर्म ।।।	= (प्रथम भेद दृष्टिवाद अंग का) परिकर्म१ वह है जिसमें गणित के करण सूत्रों का वर्णन है
सूत्रम् ।।।	= (द्वितीय भेद दृष्टिवाद अंगका) सूत्र वह है जिसमें तीनसौत्रेसठ मिथ्यादृष्टियों का पूर्वपक्षपूर्वक निराकरण है अर्थात् जिसमें मिथ्यादर्शन सम्बन्धी तीनसौत्रेसठ कुवाद हैं तिनका पूर्वपक्ष लेकर जीवादिक पदार्थों ऊपर लगावनेका वर्णन है। तिन मिथ्यादृष्टियों के ग्रन्थों में जीव अबंधकही है, अकर्त्ता ही है निर्गुण ही है। अभोक्ता ही है। स्वप्रकाशक ही है। पर प्रकाशक ही है। अस्तिरूप ही है। नास्तिरूप ही है इत्यादि एकांत पक्षपात को दूर कर यथार्थस्वरूप का वर्णन है। इसमें अठासीलाख पद हैं।
प्रथमानुयोगः ।।	(तृतीय भेद दृष्टिवाद अंगका) प्रथमानुयोग वह है जिसमें चतुर्विंशति तीर्थंकर, द्वादश चक्रवर्ती नव नारायण नव प्रतिनारायण और नव बलभद्र इन त्रेसठ शलाका (= उत्तम) पुरुषोंका वर्णन है। इसमें पांच सहस्र पद हैं।

१) इस (परिकर्म) के पांच भेद (क) चन्द्र प्रज्ञप्ति (ख) सूर्य प्रज्ञप्ति (ग) जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति (घ) द्वीपसागर प्रज्ञप्ति (ङ) व्याख्या प्रज्ञप्ति

(क) चन्द्रप्रज्ञप्ति में चन्द्रमा सम्बन्धी विमान आयु परिवार ऋद्धि गमन हानि वृद्धि पूर्ण ग्रहण अर्धग्रहण चतुर्थांशग्रहण आदिका वर्णन है इसमें छत्तीसलाख पांच सहस्र (३६०५०००) पद हैं

(ख) सूर्यप्रज्ञप्ति में सूर्य सम्बन्धी आयु परिवार गमन ग्रहण ऋद्धि विमानका वर्णन है इसमें पांचलाख तीन सहस्र पद हैं। (५०३०००)

(ग) जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति में जम्बूद्वीप सम्बन्धी मेरू कुलाचल हृद (सरोवर) क्षेत्र कुंड वेदिका व व्यन्तरों के आवास महानदी आदिका वर्णन है इसमें तीन लाख पचीस सहस्र ३२५००० पद हैं

(घ) द्वीपसागर प्रज्ञप्ति में असंख्यात द्वीप और समुद्रों का स्वरूप तथा वहां तिष्ठनेवाले भवन व सो व्यन्तर ज्योतिष्कनि के आवासका वर्णन और वहां पर होने वाले अकृत्रिम चैत्यालयों का वर्णन है इनमें बावन लाख छत्तीस सहस्र (५२३६००० पद) हैं

(ङ) व्याख्याप्रज्ञप्ति में जीव अजीव–भेद प्रमाण लक्षण रूपी अरूपी, जीव अजीव द्रव्यों का और अनन्तरसिद्ध परंपरा सिद्धोंका तथा दूसरा वस्तुओं का भी वर्णन है। इसमें चोरासी लाख छतीस सहस्र (८४३६०००) पद हैं

पूर्वगतम्। चूलिका चेति ॥ तत्र पूर्वगतं चतुर्दशविधम्—उत्पादपूर्वम्। अग्रायणीयम्।

पूर्वगतम् १।।। = [चतुर्थ भेद दृष्टिवाद अङ्ग का] वह है जिसके चौदह प्रभेद हैं। जिसमें पचानवे करोड़ उनंचास लाख निन्यानवे सहस्र नौ सौ निन्यानवे [९५४९९९९९] पद हैं। (इनके विशेष के लिये देखो पृष्ठ ४२१, ४२२)

च* चूलिका[(१)] १।। इति ७ = और ' = च) चूलिका (पञ्चम भेद दृष्टिवाद अंग का) है। (जिसके पांच प्रभेद हैं जिनका वर्णन निम्न टिप्पणी में है)

तत्र * पूर्वगतम् १।।। = तहां (= तत्र) पूर्वगत (दृष्टिवाद अंग का चौथा भेद) में निम्नलिखित चौदह पूर्वगर्भित है

चतुर्दशविधम् १।।। = चौदह प्रकार है अर्थात् दृष्टिवाद अङ्ग के चौथे भेद पूर्वगत में

उत्पादपूर्वम् १।।। = वह है जिसमें प्रत्येक द्रव्य के उत्पाद व्यय ध्रौव्य और उनके संयोगी धर्मों का वर्णन है। इसके एक करोड़ पद हैं

अग्रायणीयम् १।।। = वह पूर्व है जिसमें द्वादशांग के प्रधानभूत सातसौ सुनय और दुर्नय पञ्चास्तिकाय षड्द्रव्य सप्ततत्त्व नव पदार्थ आदिका वर्णन है इसमें छियानवें लाख ९६००००० पद हैं

(१) [क] जलगता चूलिका [ख] स्थलगता चूलिका [ग] मायागता चूलिका [घ] रूपगता चूलिका [ङ] आकाशगता चूलिका ये पञ्च भेद हैं

[क] जलगता चूलिका वह है जिसमें जलगमन के, जलस्तम्भन के, अग्नि के आसन के, अग्नि के भक्षण के, अग्नि के प्रवेश के, अग्नि के स्तम्भन आदि के मन्त्र तन्त्र तपश्चरणादिक का कथन है। इन प्रत्येक के दो करोड़ नौ लाख नवासी सहस्र दो सौ पद हैं।

[ख] स्थलगता चूलिका वह है जिसमें मेरूकुलाचल भूमि पर्वत आदि में प्रवेश करना शीघ्र गमन करना इत्यादिक क्रिया के कारणभूत मन्त्र तंत्रादिक का प्ररूपण है। इसके भी दो करोड नौ लाख नवासी सहस्र दो सौ पद हैं।

[ग] मायागता चूलिका वह है जिसमें मायामयी इन्द्रजालादि विक्रिया के कारण मन्त्र तन्त्र आचरणादि का कथन है २०९८९२०० पद हैं।

[घ] रूपगता चूलिका वह है जिसमें सिंह हाथी घोड़ा बैल हिरण इत्यादिक रूपके पलटने के कारण मन्त्र तन्त्र तपश्चरणादिक का प्ररूपण है तथा चित्राय काष्ठलेपादिक का वर्णन है। तथा धातु रस रसायन का निरूपण है २०९८९२०० पद हैं

[ङ] आकाशगता चूलिका वह है जिसमें आकाश में गमनादिक के कारणभूत मन्त्र तन्त्र तपश्चरणादिक का वर्णन है। इसके भी दो करोड़ नव लक्ष नवासी सहस्र दो शत (२०९८९२००) पद हैं।

वीर्यानुप्रवादम्। अस्तिनास्तिप्रवादम् ॥ ज्ञानप्रवादम् । सत्यप्रवादम् । आत्मप्रवादम् । कर्मप्रवादम् प्रत्याख्याननामधेयम् ।

वीर्यानुवादम् ।।।। =(३) वीर्यानुवाद पूर्व वह है जिसमें आत्मवीर्य परवीर्य उभयवीर्य कालवीर्य गुणवीर्य तपोवीर्य द्रव्यवीर्य पर्यायवीर्य क्षेत्रवीर्य भाववीर्य आदि अनेक प्रकार के वीर्य (सामर्थ्य) का वर्णन है। इसमें सत्तरलाख ७०००००० पद हैं।

अस्तिनास्तिप्रवादम् ।।।। =(४) अस्तिनास्तिप्रवाद पूर्व वो है जिसमें जीवादिक वस्तुओंके स्व पर द्रव्य क्षेत्र काल भाव की अपेक्षाकरि स्यादस्ति स्यान्नास्ति आदि अनेक धर्मों में विधि निषेधकरि सप्तभंगकरि मुख्य गौणकरि वर्णन है। इसमें साठ लाख (६००००००) पद हैं।

ज्ञानप्रवादम् ।।।। =(५) ज्ञानप्रवाद पूर्व वह है जिसमें मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान मनः पर्ययज्ञान केवलज्ञान और कुमतिज्ञान कुश्रुतज्ञान कुअवधिज्ञान इन विभंगज्ञानों का स्वरूप संख्या विषय फलादिको का वर्णन है इसमें एक घाटि करोड़ (९९९९९९९) पद हैं।

सत्यप्रवादम् ।।।। =(६) सत्यप्रवाद वह पूर्व है जिसमें आठ प्रकारके शब्दोच्चारण के स्थान, पांच प्रयत्न, वाक्यसंस्कारके कारण, शिष्ट दुष्ट शब्दों के प्रयोग, लक्षण, वचनके भेद बारह प्रकारकी भाषा अनेक प्रकार के असत्य वचन वाग्गुप्ति मौन आदि का वर्णन है। इसमें एक करोड़ छह (१००००००६) पद हैं।

आत्मप्रवादम् ।।।। =(७) आत्मप्रवाद पूर्व वह है जिसमें आत्मा के कर्त्ता भोक्ता आदि अनेक धर्मों का निश्चयनय और व्यवहार नयकी अपेक्षा से विशेषरूपमें वर्णन है। इसमें छव्वीस करोड़ (२६०००००००० पद हैं।

कर्मप्रवादम् ।।।। =(८) कर्मप्रवाद पूर्व वह है जिसमें ज्ञानावर्णादि कर्मों की मूल प्रकृति उत्तरप्रकृति उत्तरोत्तर प्रकृतियों के भेदलिये बंध सत्ता उदय उदीरणा उत्कर्षण अपकर्षण संक्रमण उपशम निधत्ति निःकांचित आदि अवस्थाओं का वर्णन है। इसमें एक करोड़ अस्सीलाख (१८०००००० पद हैं।

प्रत्याख्याननामधेयम् ।।।। =(९) प्रत्याख्याननामधेय पूर्व वह है जिसमें नाम स्थापना द्रव्य क्षेत्रकाल भावको आश्रयकरि पुरुषों के

विद्यानुप्रवादम् । कल्याणनामधेयम् । प्राणावायम् । क्रियाविशालम् । लोकविन्दुसारमिति ॥

संहनन बलादिक के अनुसारकरि प्रमाणीक काल पर्यन्त वा अप्रमाणीक कालकरि त्यागकरना तथा सावद्य वस्तुओं का त्याग और उपवास विधि और इनकी भावना और पञ्चसमिति और तीनि गुप्ति आदिका वर्णन है। इसमें चौरासी लाख (८४०००००) पद हैं।

विद्यानुप्रवादम् ।।।। =(१०) विद्यानुप्रवाद पूर्व वह है जिसमें अंगुष्टप्रसेना आदि सातसौ अल्पविद्या तथा रोहिणी आदि पांचसौ महा विद्याओंका स्वरूप सामर्थ्य मंत्र तंत्र पूजा-विधानआदिका तथा सिद्ध भई विद्याओं का फल और अन्तरिक्ष भौम अङ्ग स्वर स्वप्न लक्षण व्यञ्जन छिन्न इन अष्टांग निमित्तों के ज्ञान का वर्णन है ॥ ११०००००० पद हैं।

कल्याणनामधेयम् ।।।। =(११) कल्याणनामधेय पूर्व वह है जिसमें तीर्थंकर चक्रधर बलदेव वासुदेवादिकों के गर्भावतारण आदि कल्याणकोंके महोत्सव तथा उनके कारण (तीर्थंकरत्वादि पुन्य विशेषका हेतु) षोडशकारण भावनादि तपश्चरणादिकों का तथा चन्द्र सूर्यादि ग्रह नक्षत्रादिकों के गमन ग्रहण शकुनादिकों के फल वर्णन हैं इसके छव्वीस करोड २६०००००००० पद हैं।

प्रणावायम् ।।।। =(१२) प्राणावाद पूर्व वह है जिसमें काय चिकित्सा आदि आठ प्रकार के आयुर्वेद का, इडा (=पृथिवी) पिङ्गला (=अग्नि) आदिका दशप्राणोंके उपकारक अपकारक द्रव्योंका गतियों के अनुसार वर्णन है। इस में तेरह करोड़ १३०००००००० पद हैं।

क्रियाविशालम् ।।।। =(१३) क्रियाविशाल वह पूर्व है जिसमें संगीत छन्द अलङ्कार पुरुषोंकी बहत्तर कला स्त्रीके चौंसठ गुण तथा गर्भाधानादिकचौरासी क्रिया, शिल्पादि विज्ञान सम्यग्दर्शनादि एकसौ आठ क्रिया, देववन्दनादिक पच्चीस क्रिया और निमित्त नैमित्तिक क्रियाओं का वर्णन है। इसमें नौ करोड़ पद हैं।

लोकविन्दुसारम्-इति ❀ =(१४)लोकविन्दुसार पूर्व वहहै जिसमें तीन लोकका स्वरूप छत्तीस परिकर्म आठ व्यवहार, चार बीजगणितादिक मोक्ष का स्वरूप ,उसके गमन का कारण, क्रिया ,मोक्षसुख के स्वरूप का वर्णन है। इसमें साढ़े बारह करोड़ पद हैं।

तदेतत् श्रुतं द्विभेदमनेकभेदं द्वादशभेदमिति ॥

तद् १॥ एतद् १॥ श्रुतम् १॥ द्वि-भेदम् १॥	=पूर्वोक्त (=तद्) यह (=एतद्) (श्रुतज्ञान अङ्गवाह्य और अङ्गप्रविष्ट) दो भेदरूप
अनेक भेदम् १॥ द्वादशभेदम् १॥ इति*	=(इनमें से अङ्गवाह्य) अनेक भेदरूप (अङ्गप्रविष्ट) बारह भेदरूप ऐसे हुआ

(१ मतिज्ञान-श्रुतज्ञानयोः ६। कः १। प्रतिविशेषः १। इति*	=मतिज्ञान और श्रुतज्ञान में क्या भेद(=प्रति विशेष)है ऐसा (प्रश्न होने पर)
अत्र-उच्यते उत्पन्न -अविनष्ट – अर्थ-	=यहां कहा जाता है कि उत्पन्न होकर जो नष्ट नही हुवा है ऐसे पदार्थ (=अर्थ) के
साम्प्रतकाल – विषय ६॥ ग्राहक ६॥ मतिज्ञानम् १॥	=वर्तमान (=साम्प्रतम्) काल के विषय को ग्रहण करने वाला मतिज्ञान है
श्रुतज्ञान १॥ तु ❀ त्रिकाल – विषयं १॥ उत्पन्न-	=और (=तु) त्रिकाल विषयक श्रुतज्ञान है (अर्थात्) उत्पन्न पदार्थ का (और)
विनिष्ट – अनुत्पन्न-	=(उत्पन्न होकर) नष्ट भये पदार्थ का (और) अनुत्पन्न (जो भविष्यमें उत्पन्न होगा उस)
अर्थ-ग्राहकम् १॥	=पदार्थ का (श्रुतज्ञान) ग्रहण करने वाला है (देखो सभाष्यतत्वार्थाधिगम सूत्र पृष्ट २०)
च * विशुद्धतरं १॥ इति *	=और(=च) अधिक विशुद्ध (मतिज्ञान से श्रुतज्ञान) है
किं १॥ च * अन्यत् * मतिज्ञानम् १॥ इन्द्रिय-	=कुछ और भी (मतिज्ञान से श्रुतज्ञान में विशेष) है। मतिज्ञान है सो इन्द्रिय और
अनिन्द्रिय-निमित्तम् १॥ आत्मनः ६। ज्ञ-स्वभावात् ५।	=अनिन्द्रय जो मन (तिस) निमित्तक आत्माके ज्ञस्वभाव (=जाननेके स्वभाव)से होताहै
पारिणामिकम् १॥ श्रुतज्ञानं १॥ तु* तत् –	=(अनन्य,पारिणामिक है। परन्तु (=तु) श्रुतज्ञान उस (मतिज्ञान)
पूर्वकम् १। आप्त-उपदेशात् ५। भवति T इति *	=जन्य(=पूर्वक) आप्तके उपदेशसे (उत्पन्न) होता है। ऐसा (प्रतिविशेष भी)है सभाष्य०२०

(२) श्रुतज्ञान और केवल ज्ञान में अंतर या भेद यह है कि श्रुतज्ञान परोक्ष है केवल ज्ञान प्रत्यक्ष है यद्यपि ज्ञान की अपेक्षा से श्रुतज्ञान तथा केवल ज्ञान दोनों ही सदृश हैं।भावार्थ- जिस प्रकार श्रुतज्ञान सम्पूर्ण द्रव्य और उनकी पर्यायों को जानता है उस ही प्रकार केवल ज्ञान भी सम्पूर्ण द्रव्य और पर्यायों को जानता है। विशेषता इतनी ही है कि श्रुतज्ञान इन्द्रिय और मनकी सहायता से होता है इसलिये इसकी अमूर्त पदार्थों में और उनकी अर्थ पर्याय तथा दूसरे सूक्ष्म अंशों में स्पष्टरूप से प्रवृत्ति नहीं होती। किन्तु केवल ज्ञान निरावरण होने के कारण समस्त पदार्थोंको स्पष्ट रूप से विषय करता है ॥

टिप्पणी —अंगप्रविष्ट श्रुतज्ञानके पदों की संख्या—

(१) आचारांग	अठारहसहस्र	१८०००
(२) सूत्रकृतांग	छत्तीससहस्र	३६०००
(३) स्थानांग	बियालीससहस्र	४२०००
(४) समवायांग		१६४०००
(५) व्याख्या प्रज्ञप्तिअंग		२२८०००
(६) ज्ञातृधर्मकथांग		५५६०००
(७) उपासकाध्ययनांग		११७००००
(८) अन्तकृद्दशांग		२३२८०००
(९) अनुत्तरोपपादिकदशांग		९२४४०००
(१०) प्रश्नव्याकरणांग		९३१६०००
(११) विपाक सूत्रांग		१८४०००००
(१२) दृष्टिवादांग		१०८६८५६००५
द्वादशांग के सर्वपदोंका योग		११२८३५८००५

दृष्टिवाद अंग के पांच भेद हैं उनमें से प्रथम भेद परिकर्म के पांच प्रभेद हैं और चतुर्थभेद पूर्वगत के चौदह प्रभेद हैं और पांचवां भेद चूलिकाके भी पांच प्रभेद हैं "सूत्र" दूसरे भेद और 'प्रथमानुयोग' तीसरे भेद का कोई प्रभेद नहीं हैं इन सबके १०८६८५६००५ मध्यम पद हैं। इन प्रभेदों की पृथक २ संख्या और प्रत्येक प्रभेद के पदों की भी संख्या इस पृष्ठ के तीसरे स्तम्भ वा धारा में लिखते हैं।

१-चन्द्रप्रज्ञप्ति (परिकर्म)	३६०५०००
२-सूर्यप्रज्ञप्ति ,,	५०३०००
३-जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति ,,	३२५०००
४-द्वीपसागरप्रज्ञप्ति ,,	५२३६०००
५-व्याख्याप्रज्ञप्ति ,,	८४३६०००
६-सूत्र (दूसरा भेद)	८८०००००
() प्रथमानुयोग (तीसरा भेद)	५०००
(क) उत्पादपूर्व (चौथाभेद)	१००००००००
(ख) अग्रायणीयपूर्व	९६०००००
(ग) वीर्यानुवादपूर्व	७००००००
(घ) आस्तिनास्तिप्रवादपू.	६००००००
(ङ) ज्ञानप्रवादपूर्व	९९९९९९९
(च) सत्यप्रवादपूर्व	१००००००६
(छ) आत्मप्रवादपूर्व	२६००००००००
(ज) कर्मप्रवादपूर्व	१८००००००
(झ) प्रत्याख्यान नामधेय पूर्व	८४०००००
(ञ) विद्यानुप्रवादपूर्व	११००००००
(ट) कल्याणनामधेय पूर्व	२६००००००००
(ठ) प्राणावाद पूर्व	१३०००००००
(ड) क्रियाविशालपूर्व	९०००००००
(ढ) लोकबिंदुसारपूर्व	१२५००००००
(१) जलगताचूलिका	२०९८९२००
(२) स्थलगताचूलिका	२०९८९२००
(३) रूपगताचूलिका	२०९८९२००
(४) मायागताचूलिका	२०९८९२००
(५) आकाशगता ,,	२०९८९२००
	१०८६८५६००५

दृष्टि वाद अंग के छब्बीस स्थानों के एक सौ आठ करोड़ अडसठ लाख छप्पन सहस्र पांच पद हुये ॥

टिप्पणी :—

द्रव्य श्रुतज्ञानका मानचित्र

- अंगप्रविष्ट
  - (१) आचारांग
  - (२) सूत्रकृतांग
  - (३) स्थानांग
  - (४) समवायांग
  - (५) व्याख्याप्रज्ञप्ति अंग
  - (६) ज्ञातृधर्मकथांग
  - (७) उपासकाध्ययनांग
  - (८) अन्तकृद्दशांग
  - (९) अनुत्तरोपपादिकदशांग
  - (१०) प्रश्नव्याकरणांग
  - (११) विपाकसूत्रांग
  - (१२) दृष्टिवादांग
    - परिकर्म (क)
      - १—चन्द्रप्रज्ञप्ति
      - २—सूर्यप्रज्ञप्ति
      - ३—जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति
      - ४—द्वीपसागर प्रज्ञप्ति
      - ५—व्याख्याप्रज्ञप्ति
    - सूत्र (ख)
    - प्रथमानुयोग (ग)
    - पूर्वगत (घ)
      - १—उत्पादपूर्व
      - २—अग्रायणीपूर्व
      - ३—वीर्यानुवादपूर्व
      - ४—अस्तिनास्तिप्रवादपूर्व
      - ५—ज्ञानप्रवादपूर्व
      - ६—सत्यप्रवादपूर्व
      - ७—आत्मप्रवादपूर्व
      - ८—कर्मप्रवादपूर्व
      - ९—प्रत्याख्याननामधेयपूर्व
      - १०—विद्यानुवादपूर्व
      - ११—कल्याणनामधेयपूर्व
      - १२—प्राणावाय वा प्राणावादपूर्व
      - १३—क्रियाविशालपूर्व
      - १४—लोकबिन्दुसारपूर्व
    - चूलिका (ङ)
      - १—जलगता चूलिका
      - २—स्थलगता चूलिका
      - ३—मायागता चूलिका
      - ४—आकाशगता चूलिका
      - ५—रूपगता चूलिका
- अंगबाह्य (ये चौदह प्रकीर्णक हैं)
  - (१) सामायिक प्रकीर्णक
  - (२) चतुर्विंशतिस्तवप्रकीर्णक
  - (३) वंदनाप्रकीर्णक
  - (४) प्रतिक्रमण प्रकीर्णक
  - (५) वैनयिक प्रकीर्णक
  - (६) कृतिकर्म प्रकीर्णक
  - (७) दशवैकालिक प्रकीर्णक
  - (८) उत्तराध्ययन प्रकीर्णक
  - (९) कल्पव्यवहार प्रकीर्णक
  - (१०) कल्पाकल्प प्रकीर्णक
  - (११) महाकल्प प्रकीर्णक
  - (१२) पुण्डरीक प्रकीर्णक
  - (१३) महापुण्डरीक प्रकीर्णक
  - (१४) निषिधिका प्रकीर्णक

किंकृतोऽयं विशेषः ? । वक्तृविशेषकृतः ॥ त्रयो वक्तारः । सर्वज्ञतीर्थंकरः । इतरो वा श्रुतकेवली ॥

किम्* कृतः $\frac{9}{9}$। अयम् $\frac{9}{9}$। विशेषः $\frac{9}{9}$। ?	= यह पृभेद (= विशेष) क्योंकर किया गया है ? अर्थात् यह श्रुत ज्ञान दो भेदरूप, अनेक भेदरूप और बारह भेदरूप हैं सो क्योंकर हैं।
वक्तृविशेष-कृतः $\frac{9}{9}$।	= (यह विशेष) वक्ता के विशेष वा भेद [होने के कारण] से किया गया है।
त्रयः $\frac{9}{3}$। वक्तार $\frac{9}{3}$।	= तीन [प्रकार के] वक्ता हैं अर्थात् शास्त्र वा आगम के कहने वालों के तीन भेद हैं।
सर्वज्ञ-तीर्थंकरः $\frac{9}{9}$।	= सर्वज्ञतीर्थंकर अर्थात् तीर्थंकर होकर पश्चात् सर्वज्ञता को प्राप्त करनेवाला
इतरः $\frac{9}{9}$। वा*	= अथवा (= वा) दूसरे [प्रकारके सर्वज्ञ] अर्थात् तीर्थंकर केवलीके अतिरिक्त भिन्न
	= श्रेष्ठ मनुष्य जिसने तपश्चरणके द्वारा सर्वज्ञता प्राप्त की है
श्रुतकेवली $\frac{9}{9}$।	= श्रुतकेवली अर्थात् वह श्रेष्ठ पुरुष जो द्वादशांग और चौदह प्रकीर्णकों के ज्ञाता हैं)

१—(क) ग्यारह अङ्ग चौदह पूर्व के पाठी (ख) "द्वादशांगके पाठी" (ग) श्रुत केवली (घ) "पूर्वविदः" इन चारों वाक्यों के भावार्थ लिखते हैं

(क) मानचित्र पृष्ठ ४२६ से ज्ञात है कि दृष्टिवाद बारहवां अङ्ग का चौथा भेद 'पूर्वगत' है और जिस क्रम से हमने मान चित्रमें दृष्टिवाद अङ्ग के भेद दिये हैं उसही क्रमसे जीवकांड गोम्मटसारगाथा ३६१, अर्थप्रकाशिका पृष्ठ ५४, सर्वार्थसिद्धि वचनिका पृष्ठ १६० में इसी दृष्टिवाद अंग के भेद दिये गये हैं इससे यह बात झलकती है वह जो ग्यारह अंग और पूर्वगत के भेद तक का पाठी हो अर्थात् ग्यारह अङ्ग पांचपरिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग और चौदह पूर्वोंका ज्ञाता हो उसको ग्यारहअंग चौदह पूर्वका पाठी कहेंगे नकि उसको जो केवल ग्यारहअङ्ग और चौदह पूर्वका पाठी परिकर्म-सूत्र प्रथमानुयोग को छोडकर हो। बारह अङ्गोंके पठनमें से केवल चूलिका पांच रहजाती हैं।

(ख) "द्वादशांग के पाठी" उनको कहेंगे जो बारह अङ्ग के पाठी हों अर्थात् चौदह प्रकीर्णको को छोडकर शेष सब श्रुतज्ञान के पाठी हों॥

(ग) श्रुतकेवली वो है जो द्वादशांग और चौदह प्रकीर्णको के ज्ञाता हों। अर्थात् समस्त द्रव्य श्रुत ज्ञान को जानते हों॥

(घ) "पूर्वविदः" यह वाक्य नवमें अध्याय के सैंतीसवां सूत्र "शुक्लेचाद्ये पूर्वविदः" में आया है और इसका अर्थ सर्वार्थसिद्धि संस्कृतवृत्ति (पृष्ठ ४५२) तत्त्वार्थराजवार्तिक (पृष्ठ ३५४) और तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक (पृष्ठ ५८४) और जहांतक हमने अवलोकन किया है सब भाषा टीकाकारों ने जैसे पं० जयचन्द्रजी, सदासुखजी, पन्नालालजी, नाथूरामजी इत्यादिकों ने "श्रुतकेवली" किया है अब प्रश्न यह है कि "पूर्वविदः" वाक्य का अर्थ श्रुतकेवली कैसे हुआ क्योंकि प्रत्यक्ष में "पूर्वविदः" का अर्थ पूर्व के जानने वाले ऐसा ही होता है अर्थात् पूर्व तक जानने वाले भावार्थ उक्त "ग्यारहअङ्ग चौदह पूर्व तक के पाठी हों॥

भारातीयश्चेति ॥ तत्र सर्वज्ञेनपरमर्षिणा परमाचिन्त्यकेवलज्ञानविभूतिविशेषेण अर्थत आगम उद्दिष्टः ॥ तस्य

च* आरातीयः १/१ इति*	= इस दूसरी गणना में गणधर जो चार ज्ञान के धारक होते हैं सम्मिलित हैं और (= च) आरातीय अर्थात् केवलज्ञानियों, गणधरों और श्रुतकेवलियों को छोड़कर अन्य आचार्य, सूत्रकार टीकाकार और भाष्यकार ऐसे हैं।
तत्र* सर्वज्ञेन ३/१ परमर्षिणा ३/१ परम-अचिन्त्य-	= तहाँ सर्वज्ञकरि (जो) उत्कृष्ट ऋषि है (और) जो उत्कर्ष वा प्रधान अचिन्त्य
केवलज्ञान-विभूति-विशेषेण ३/१।	= केवलज्ञान ऐश्वर्य के विशेष सहित है।
अर्थतः ° आगमः १/१ उद्दिष्टः १/१	= अर्थतैं, आगम वा शास्त्र उपदेशागया है अर्थात् अर्थको आश्रयकरि अभिप्राय को प्रगट करते हुए वा तात्पर्य को लिये हुये उक्तसर्वज्ञने आगम को कहा है
तस्य ६/१ प्रामाण्यम् १/१	= तिस (आगम) का प्रमाणपना वा विश्वसनीयता (= प्रामाण्यम्) विश्वास्यता

(उत्तर) टिप्पणी पृष्ठ ४०६ से विदित है कि अक्षरात्मक श्रुतज्ञानके अठारह भेद अर्थाक्षर, पद, संघात, प्रतिपत्तिक, अनुयोग, प्राभृतप्राभृत प्राभृत, वस्तु, पूर्व ये नव भेद और क्रम से एक एक अक्षर की वृद्धि के द्वारा उत्पन्न होनेवाले अक्षर समास आदि नव ऐसे सब मिलि अठारह भेद हुए अर्थात् सत्रहवाँ भेद "पूर्व" है और अठारहवाँ भेद "पूर्वसमास" है॥ "पूर्व" अन्तका भेद नौ भेदों में से उत्कृष्ट हैं। मेरी समझ में "पूर्वविदः" वाक्यसे "पूर्वसमासविदः" प्रयोजन है अर्थात् श्रुतज्ञान का यह सब से उत्कृष्ट भेद है कि जिसके ऊपर अब किसी अक्षर की क्रम से वृद्धि नहीं हो सकती है॥ द्रव्य श्रुतज्ञान के सबसे उत्कृष्ट भेद तक के जानने वाले को पूर्वसमासविदः है बोलते बोलते व्यवहार में समास शब्दको छोड़ दिया और पूर्व समासविदः के स्थान में पूर्व विदः कहने लगे। जब श्रुतज्ञानके सबसे उत्कृष्ट भेद के ज्ञाता हुये और श्रुत ज्ञान का इस भेद से ऊपर कोई भेद है ही नहीं पूर्वसमास श्रुतज्ञान के ऊपर कोई अक्षर श्रुतज्ञान का अवशेष रहता ही नहीं कि कोई अन्य भेद किया जाय और श्रुतकेवली वही है जो समस्त द्रव्य श्रुतज्ञान को जानता है— इसलिये पूर्वविदः (= पूर्वसमासविदः) का अर्थ सर्व द्रव्य श्रुतज्ञानयुक्त बीस अक्षर के प्रमाण ज्ञाता हुआ अर्थात श्रुतकेवली हुआ। यह अर्थ समझ के अनुकूल लिखा, विशेष अर्थ पाठकगण विचार लें॥

(१) प्रामाण्य शब्द के दो अर्थ एक प्रमाणपना दूसरा विश्वसनीयता वा विश्वस्यता है (देखो जैन कोश पृष्ठ ४१० और आप्टेकोश पृष्ठ ७६)

प्रत्यक्षदर्शित्वात्प्रक्षीणदोषत्वाच्च प्रमाणम् । तस्य साक्षाच्छिष्यैर्बुद्ध्यतिशयर्द्धियुक्तैर्गणधरैः श्रुतकेवलिभिरनुस्मृतग्रन्थरचनमङ्गपूर्वलक्षणं तत्प्रमाणं, तत्प्रामाण्यात् ॥ आरातीयैः पुनराचार्यैः कालदोषात्संक्षिप्तायुर्मतिबलशिष्यानुग्रहार्थं दशवैकालिकाद्युपनिबद्धं, तत्प्रमाणमर्थतस्तदेवेदमिति क्षीरार्णवजलं घटगृहीतमिव ।

प्रत्यक्षदर्शित्वात् ५ ॥। प्रक्षीण—दोषत्वात् ५ ॥। च*	=(सर्वज्ञ के) प्रत्यक्ष देखने से और =च) उत्कृष्ट निर्दोषपना से है
तस्य ६। साक्षात् * शिष्यैः ३। बुद्धि—अतिशय—	= तिस (सर्वज्ञ) के निकटवर्ती (= साक्षात्) शिष्य बुद्धि के अतिशय आर
ऋद्धियुक्तैः ३। गणधरैः ३। श्रुतकेवलिभिः ३।	= ऋद्धि करि सहित जे गणधरद्वारा और श्रुतकेवलियों करि
अनुस्मृत—ग्रन्थरचनम् १ ॥।	= (उन गणधरों और श्रुतकेवलियों के) स्मरण के अनुसार ग्रन्थ रचना है
अङ्ग — पूर्व लक्षणम् १॥।	=जो अंगों और पूर्वों का हेतु वा अवसर (=लक्षण—देखो वैद्यजी रचित कोष पृष्ठ ३१७)
तत्प्रमाणं १ ॥। तत्—प्रामाण्यात् ५॥।	=उन [गणधर के वचन] का प्रमाण उन (सर्वज्ञ के वचन) के प्रमाण होने से है,
आरातीयैः ३। पुनर् * आचार्यैः ३ ।	= और आरातियों करि [अर्थात्] पिछले आचार्यों करि भावार्थ केवल ज्ञानियों, गणधरों और श्रुतकेवलियों के अतिरिक्त जे पिछले आचार्यों करि
कालदोषात् ५। संक्षिप्त-आयुस्-मति-बल-शिष्यअनुग्रह-	=कालके दोष से थोडी अथवा अल्प आयु बुद्धि सामर्थ्य के(धारक) शिष्यों के उपकारके
अर्थम् १॥। दशवैकालिक—आदि - उपनिबद्धम् १ ॥।	=लिये दशवैकालिक आदिक (प्रकीर्णक) रचे गये हैं
तत् प्रमाणम्—१ ॥। अर्थतः *	=उन (दशवैकालिक आदि प्रकीर्णकों) का प्रमाण अर्थ से, तात्पर्य से अथवा अभिप्राय से (जो सर्वज्ञ और गणधरों ने कहा) है।
तत् १॥। [तद् १॥।] एवं * इदम् १॥। इति *	=सो (तद्) ही (एव) यह (=इदम्, ऐसे है (इति)
घट-ग्रहीतम् १॥। क्षीर-अर्णव-जलम् १ ॥। इव *	=मानो (=इव) घड़ामें ग्रहण किया गया वा भरा गया क्षीर समुद्र का जल है अर्थात् जैसे क्षीर समुद्र का थोडा सा जल घट में भरा हुआ यह प्रकट करता है कि वह का जल क्षीर समुद्र का जल ही है अन्य नहीं है तैसे ही ये दशवैकालिक सर्वज्ञ का परम्परासे उसी अर्थ को लेकर आचार्यों ने अपनी अपनी बुद्धि अनुकूल कहे हैं वो ही हैं वास्तव में सर्वज्ञकथितपदार्थ ही इनमें कहा गया है अतः यह प्रमाणभूत है।

व्याख्यातं परोक्षम् । प्रत्यक्षमिदानीं वक्तव्यम् । तत् द्वेधा-देशप्रत्यक्षं सकलप्रत्यक्षं च ॥ देशप्रत्यक्षमवधिमनःपर्ययज्ञाने। सर्वप्रत्यक्षं केवलम् ॥ यद्येवमिदमेव तावदवधिज्ञानं त्रिप्रकारस्य प्रत्यक्षस्याद्यं व्याक्रियतामित्यत्रोच्यते ॥ द्विविधोऽवधिः । भवप्रत्ययः क्षयोपशमनिमित्तश्चेति ॥ तत्र भवप्रत्यय उच्यते-

परोक्षम् ॥ व्याख्यातम् ॥ प्रत्यक्षम् ॥	= परोक्ष (प्रमाण मति-श्रुत) कहेगये हैं प्रत्यक्ष (प्रमाण अवधि, मनः पर्यय केवल ज्ञान
इदानीम् ॥ वक्तव्यम् ॥ तत् ॥ द्वेधा ॥ देश-प्रत्यक्षम् ॥	= अब (= इदानीम्) कहने योग्य हैं । वह (प्रत्यक्ष ज्ञान) दो प्रकार हैं । देश प्रत्यक्ष
च ॥ सकल-प्रत्यक्षम् ॥ देश-प्रत्यक्षम् ॥	= और (= च) सकल प्रत्यक्ष । देश प्रत्यक्ष
अवधि-मनः पर्ययज्ञाने ॥ सर्व-प्रत्यक्षम् ॥ केवलम् ॥	= अवधि मनः पर्यय ज्ञान हैं । सकल प्रत्यक्ष केवल ज्ञान है
यदि ॥ एवम् ; तावत् ॥ इदम् ॥ एव ॥	= जो (= यदि) इस प्रकार (= एवम्) है तो (= तावत्) यहही
अवधिज्ञानम् ॥ त्रिप्रकारस्य ॥ प्रत्यक्षस्य ॥ आद्यम् ॥	= अवधि ज्ञान जो तीन प्रकार के प्रत्यक्ष (ज्ञानों) के पहिले है
व्याक्रियताम् । इति ॥ अत्र ॥ उच्यते ।	= (वह अवधि ज्ञान) वर्णन किया जाय । ऐसा (पूंछने पर) यहां कहा जाय है
द्वि-विधः ॥ अवधिः ॥ भवप्रत्ययः ॥	= अवधि (ज्ञान) दो प्रकार है । भवप्रत्यय (जो पर्यायरूप कारण से उत्पन्न हो)
च ॥ क्षयोपशम निमित्तः ॥ इति ॥	= और (= च) क्षयोपशम निमित्तक वा क्षयोपशम जन्य वो गुण प्रत्यय अर्थात् अवधिज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से उत्पन्न होने वाला
तत्र ॥ भवप्रत्ययः ॥ उच्यते ।	= वहां भवप्रत्यय (अवधि ज्ञान निम्न लिखित इक्कीसवां सूत्र में) कहा जाता है

(१) "त्रि-प्रकारस्य" इस वाक्य में त्रि और प्रकारस्य शब्द के मध्य में विसर्ग (:) भूल से मुद्रित होगये हैं क्योंकि त्रि शब्द के प्रथमा विभक्ति एक वचन पुल्लिंग-स्त्रीलिंग-नपुंसकलिंग यथाक्रम त्रयः तिस्रः त्रीणि हैं और क्योंकि त्रिः का अर्थ तीनबार का है जैसे त्रिःसप्तकृत्वः परशुरामः पृथिवीम् अक्षत्रियाम् अकरोत् = तीनबार (= त्रिः) गुणित सातवार (अर्थात् इक्कीसवार) परशुराम ने पृथिवी को क्षत्रियरहित किया यहां पर तीन बार का अर्थ लगता नहीं है (२) व्याक्रियताम् :- यह वाक्य "कृ" (= करना वर्णन करना अर्थ में) धातुमें वि और आ उपसर्गों के लगाने से कर्मणि प्रधान में लोट् वा आज्ञार्थ क्रिया का प्रथम पुरुष ताम् प्रत्यय लगाने से निम्नलिखित नियमों से बना है। (क) धातु में 'य' लगा कर आत्मनेपद प्रत्यय जोड़ने से कर्मणि प्रधान प्रयोग बनजाता है। (ख) यदि धातुके अन्त में ऋ हो और उसके पूर्व कोई संयोग अक्षर न हो तो कर्मणि प्रयोगके य के पहिले ऋ के स्थानमें रि कर देते हैं जैसे कृ का क्रि होगया। (ग) कर्मणि प्रयोगों में धातुओं के गणों के भेदों का विचार नहीं किया जाता है सर्व प्रकार के धातुओं से ये एक ही प्रकार से बनाये जाते हैं ॥ धातुओं के रूप में कहीं कहीं परिवर्तन होजाता है। यहांपर वि + आ + क्रि + य = व्याक्रिय हुआ ताम् प्रत्यय लगाने से व्याक्रियताम् होगया।

॥ भवप्रत्ययोऽवधिर्देवनारकाणाम् ॥ २१ ॥

भव इत्युच्यते । को भवः ? । आयुर्नामकर्मोदयनिमित्त आत्मनः पर्यायो भवः । प्रत्ययः कारणं निमित्तमित्यनर्थांतरम् ॥ भवःप्रत्ययोऽस्य भवप्रत्ययोऽवधिः। देवनारकाणां वेदितव्यः ॥ यद्येवं

सूत्रम् [1]भवप्रत्ययोऽवधिर्देवनारकाणाम् ॥ २१ ॥

सूत्रार्थः—भव प्रत्ययः १।१। अवधिः १।१। देवनारकाणाम् ६।३। = देव और नारकी (जीव) नि के अवधिज्ञान जन्म निमित्तक है

अर्थात् नारकी जीव और देवों के अवधि ज्ञान होने में नरक योनि तथा देव योनि में उत्पत्ति होना एक मुख्य कारण है । भावार्थ जैसे पक्षियों में जन्म होना ही आकाश में गमन करने का निमित्त है न कि शिक्षा, जप, तप, आदिक वैसे ही नारकी और देवों की पर्यायों में उत्पत्ति मात्र से ही अवधिज्ञान प्राप्त होता है ॥

तीर्थंकरों के भी भवप्रत्ययः अवधिज्ञान होता है ॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस इक्कीसवां सूत्र पर संस्कृत सर्वार्थसिद्ध वृत्ति का शब्दशः हिन्दी अनुवाद

भवः १।१। इति॰ उच्यते । कः १।१। भवः १।१। आयुर्नाम- = भव ऐसा (इस सूत्र में) कहा गया है (सो) भव क्या है ? आयुष्नामा

कर्म-उदय-निमित्तः १।१। आत्मनः ६।१। पर्यायः १।१। भवः १।१। = कर्म का उदय है कारण जिसको ऐसा आत्मा का पर्याय सो भव है ।

प्रत्ययः १।१। कारणम् १।१।। निमित्तम् १।१।।इति अनर्थान्तरम् १।१।। = प्रत्यय कारण निमित्त ऐसे (ये तीन शब्द) सामान्य अर्थ वाचक है

भवः १।१। प्रत्ययः १।१। अस्य ६।१। भवप्रत्ययः १।१। अवधिः १।१। = भव पर्याय वा जन्म है कारण जिसका (सो) भवप्रत्ययअवधिज्ञान

देवनारकाणाम् ६।३। वेदितव्यः १।१। यदि॰एवम् ॰ = देव और नारकी जीवों के जानना योग्य है । (प्रश्न) जो इस प्रकार है (तो)

(१) इस सूत्र का पाठ दिगम्बर आम्नायमें एक है। श्वेताम्बर आम्नाय के इस ग्रन्थ के प्रथम २१ वां सूत्र "द्विविधोऽवधि." = दो प्रकार (भवप्रत्यय और क्षयोपशम निमित्त) अवधि (ज्ञान) है । द्विविधो ऽवधि "के पीछे "भवप्रत्ययो,नारक देवानाम्" वाईसवां सूत्र है जिसमे अवधि शब्द को अनुवृत्ति " द्विविधोऽवधि." से ली है तब वाईसवां सूत्र 'भवप्रत्ययोऽवधि नारक देवानाम्' ऐसा बन जाता है । अब हमारे यहांके इक.सवांसूत्र का पाठ यदि श्वे०आम्ना०के वाईसवांसूत्र की अनुवृत्ति सहित मिलाया जायतो दोनो एक होजाते । के [illegible] किहमारेयहां केपाठमें देवशब्द प्रथम है उनके यहां नारकशब्द प्रथमहै, अर्थपैप्रभाव नहीं पडता

तत्र क्षयोपशम निमित्तत्वं न प्राप्नोति। नैष दोषः। तदाश्रयात्तत्सिद्धेः॥ भवं प्रतीत्य क्षयोपशमः सञ्जायत इति कृत्वा भवः प्रधानकारणमित्युपदिश्यते॥

तत्र क्षयोपशम-निमित्तत्वं॥ (१)प्राप्नोति, न एष दोषः	= वहां क्षयोपशम का निमित्तपना नहीं प्राप्त होता है (उत्तर) यह दूषण नहीं है
तद्—आश्रयात्॥	= क्योंकि उस(देव-नारकियों के भव)के आश्रय से उस (क्षयोपशम निमित्त पना) की
तत्—सिद्धेः॥; भवम् प्रतीत्य —	= सिद्धि होती है। भव का समर्थन करि वा प्रतिपादनकरि वा निर्णीतकरि (= प्रतीत्य)
क्षयोपशमः। सञ्जायते(२) : इति कृत्वा	= क्षयोपशम साथ साथ अवधिज्ञान के उत्पन्न होता है। ऐसा करके
भवः। प्रधान-कारणम्॥	= (देव नारकियों का) (भव) उक्त अवधिज्ञान का मुख्य निमित्त है (और अवधि ज्ञानावरणकर्म का क्षयोपशम तो भव के हेतु से होता ही है)
इति उपदिश्यते।	= ऐसा उपदेश किया गया है। इस प्रश्न और उत्तर का स्पष्ट सारांश यह है कि सिद्धान्त के अनुकूल किसी प्रकार का अवधिज्ञान कहीं और कभी भी अवधिज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम के बिना नहीं होता है इसी आगम के सिद्धान्त को शिष्य ने चित्त में रखकर प्रश्न कर दिया कि यदि देव और नारकियों की पर्यायवा भव ही अवधि ज्ञान को उत्पन्न करता है तो यह अवधिज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम की कुछ भी अपेक्षा न ठहरी (उत्तर) अवधिज्ञानावरण क्षयोपशम तो अतरंग कारण है ही। सो दोऊ प्रकार की अवधि में पाईये है या बिना तो अवधिज्ञान उपजै नाहीं। तातैं यहां बाह्य निमित्त की अपेक्षासे कथन है। तब भव प्रत्ययाअवधि कू तौ प्रधान कारण भव ही है॥

(१) "प्राप्नोति" के लिये देखो पृष्ठ ४३१ (२) प्रतीत्य और [illegible] ल्यबन्तकमृत अव्यय है।
(३) सम् + जायते = सञ् + जायते। किसी शब्द अथवा प्रत्यय के अन्त में 'म्' हो, और उसके पश्चात् कोई व्यंजन आवै तो म् प्राय के स्थान को इच्छानुसार अनुस्वार में परवर्तित कर जाता है और उसके [illegible] अनुस्वार में पलट जाता है। यदि म् के पीछे श्-ष्-स्-ह् अथवा ह् आवे। यदि हम पहिले [illegible] में अनुस्वार में म् को न पलटें तो वह म् उसवर्ग के पांचवें अक्षर में परवर्तित हो जाता है जिस वर्ग का अक्षर उस म् के पीछे [illegible] होकर सञ्जायते होगया॥

यथा पतत्त्रिणो गमनमाकाशे भवनिमित्तं न शिक्षागुणविशेषः, तथा देवनारकाणां व्रतनियमाद्यभावेऽपि जायत इति भवप्रत्यय इत्युच्यते । इतरथा हि भवः साधारण इति कृत्वा सर्वेषामविशेषः स्यात् इष्यते च तत्रावधेः प्रकर्षाप्रकर्षवृत्तिः ।

यथा* पतत्त्रिणः[6]। गमनम्[1]।। आकाशे[7]। भव-निमित्तम्[1]।। न* शिक्षागुणविशेषः[1]। तथा*	= जैसे पक्षी का आकाश में गमन [करने को] भव वा पर्याय = कारण है न कि शिक्षा का गुण विशेष तैसे
देव-नारकाणाम्[6]। व्रत-नियमादि-अभावे[7]। अपि*	= देव और नारकियों के व्रत नियम आदि के न होने पर भी
जायते[2] इति* भव-प्रत्ययः[1] इति* उच्यते	= (अवधिज्ञान) उत्पन्न होता है इस प्रकार भव निमित्तक है ऐसे कहा गया है
इतरथा* हि*	= अन्यथा (= इतरथा) तो (= हि) अर्थात् यदि भवप्रत्यय अवधिज्ञान के होनेका कारण देव और नारकियोंका केवल भवही होतो
भवः[1]। साधारणः[1]। इति* कृत्वा* सर्वेषाम्[6]	= भव (सब देवनारकियों को) समान है ऐसा मानकर समस्त (देवनारकियों) के
अविशेषः[1] स्यात्	= (भव प्रत्यय अवधिज्ञान) विशेष रहित वा एकसा होना चाहिये
च* तत्र* अवधेः[6] प्रकर्ष-अप्रकर्ष-वृत्तिः[1]।।	= और वहां (देवनारकियोंमें) अवधि कीप्रवृत्ति वा स्थिति (= वृत्तिः) हीनाधिक
इष्यते	= मानी गई है अंगीकार कीगई है वहां क्षयोपशम का विशेष है। यहां सार यह है कि सर्व प्रकार के अवधिज्ञानों में अवधिज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम तो अन्तरङ्गकारण जीवके अवश्य ही है विना इस अंतरङ्ग कारण के अवधिज्ञान कभी किसी भी जीव के नहीं होसकता है। देवनारकियोंमें भी अवधिज्ञान घाटि वाढ़ि है सो हीनाधिक क्षयोपशमके हेतुसे है परन्तु क्षयोपशमका अस्तित्व सबके है।

(१) आकाश शब्द पुल्लिंग और नपुंसकलिंग दोनों है (२) जन् (= उत्पन्नहोना) दिवादि चतुर्थगण का आत्मनेपदी अकर्मक धातु है। प्रयोग अथवा व्यवहार में जन् का जा आदेश होजाता है। य चतुर्थगण का विकरण है। ते अन्यपुरुष (= प्रथमपुरुष) एक वचन वर्तमान कालका आत्मनेपद प्रत्ययहै ॥ अतः जन् + य + ते = जा + य + ते = जायते, उत्पन्न होता है ॥

देवनारकाणामित्यविशेषाभिधानेऽपि सम्यग्दृष्टीनामेव ग्रहणं कुतः ? अवधि ग्रहणात् मिथ्यादृष्टीनां च विभंग इत्युच्यते ॥ प्रकर्षाप्रकर्षवृत्तिश्च आगमतो विज्ञेया

देवनारकाणाम् ॥ इति ❀	=(भव प्रत्यय अवधिज्ञान का होना) " देवनारकाणाम् " ऐसा (इस सूत्र में)
अविशेष-अभिधाने ॥ अपि ❀	= विशेष रहित वा भेद रहित (=अविशेष) कहने पर भी (=अभिधाने अपि)
[सम्यग्दृष्टीनाम ॥ एव ❀ ग्रहणम् ॥ कुतः ? *	= केवल (=एव)सम्यग्दर्शनधारकनि(देव नारकियों) का ग्रहण कैसे(कुतः) हुआ ? प्रश्न का तात्पर्य यह है कि अवधिज्ञान सदैव सम्यग्दृष्टियों के होता है और चौथे गुणस्थान से बारह गुणस्थान तक इसका अस्तित्व है आपने 'देवनारकियों के' अभेदरूप से सूत्र में भवप्रत्ययअवधिज्ञान का होना कैसे कह दिया क्योंकि सब देवनारकी सम्योग्दृष्टी नहीं हैं इस सूत्र से अवधिज्ञान का होना केवल सम्याग्दृष्टी देवनारकियों के कैसे निकलता है सो कहिये
अवधि-ग्रहणात् ॥	=(उत्तर) (सूत्र में) अवधि(शब्द)के लाने से (स्पष्ट है कि सम्याग्दृष्टी देवनारकियों से प्रयोजन है)
च ❀ मिथ्यादृष्टीनाम् ॥ विभङ्गः ॥	= और(=च) मिथ्यादृष्टी (देव-नारकी-मनुष्य-तिर्यंच) निकें विभंग अवधिज्ञान है
इति ❀ उच्यते T	= ऐसा(इस अध्याय का इकतीसवां सूत्र) कहा गया है मतिश्रुतावधयो विपर्ययश्च =[मतिश्रुतअवधि- येतीन ज्ञान-विपर्य भी होते है अर्थात् मिथ्याज्ञान भी हैं]
च ❀ प्रकर्ष-अप्रकर्ष-वृत्तिः ॥	= और (देव नारकियोंके) हीनाधिक अवधिकी स्थिति (वृत्तिः)वा विद्यमानता (= वृत्तिः)
आगमतः ❀ विज्ञेया ॥	= (अन्य) शास्त्रसे जानो वा जाननायोग्य है । [इस पृष्ठ, की पृष्ठ ४३९की टिप्पणी देखो]

(१) द्रव्य क्षेत्र काल भावकी अपेक्षा व जिसके विषय की सीमा हो उसको अवधिज्ञान अथवा सीमाज्ञान कहते हैं । देवके नारक के, और नारकके भवों की अपेक्षा से अवधिज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम होकर जो अवधिज्ञान हो उसको भवप्रत्यय अवधि कहते हैं ।

यदि भवप्रत्ययोऽवधिर्देवनारकाणाम् ।

यदि॰ भव-प्रत्ययः[1]। अवधिः[1]। देवनारकाणाम्[3]। = जो भवनिमित्तक अवधिज्ञान देव और नारकियों के होता है तो

भवप्रत्यय अवधिज्ञान देव नारको तथा तीर्थंकरो के होता है और यह (भवप्रत्यय अवधिज्ञान) सपूर्ण अग से उत्पन्न होता है अर्थात् समस्त आत्मप्रदेशों से उत्पन्न होता है। और गुणप्रत्यय वा क्षयोपशम निमित्तक अवधिज्ञान नाभि के ऊपर शंख पद्म वज्र स्वस्तिक कलश सांथिया, मछला आदिक शुभ चिन्हों से होता है। उक्त जगह के आत्म प्रदेशों मे होने वाले, अवधिज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से उक्त क्षयोपशम ज्ञान होता है।

भवप्रत्यय अवधिज्ञान नियम से देशावधि ह। होता है। (गोम्मट॰गाथा ३७०,३७१ ३७३ निरकगति में अवधिके विषय भूत क्षेत्र का प्रमाण यह है कि सातवीं भूमि मे अवधिज्ञान के विषयभूत क्षेत्रका प्रमाण एक कोस है। छठवीं भूमि में डेढ़कोस, पाँचवीं में दो कोस, चौथी में अढाई कोस, तीसरी मे तीन कोस, दूसरी में साढ़े तीन कोस, प्रथम पृथिवी में चार कोस (अवधि के विषय भूत क्षेत्र का प्रमाण) है॥

भवनवासी और व्यन्तरों को अवधि के क्षेत्र का जघन्य प्रमाण पच्चीस योजन और जघन्य काल कुछ हीन एक दिन है। और ज्योतिषी देवों को अवधि का (जघन्य) क्षेत्र इस (पच्चीस योजन) से सख्यात गुणा है और (जघन्य) काल इस (कुछ हीन एक दिन) से बहुत अधिक है

असुरकुमारोंको अवधिका उत्कृष्ट विषयक्षेत्र असंख्यात कोटि योजन है (= असुराणामसखेज्जा कोडीओ = असुराणाम् असख्येयाः कोट्यः) गोम्मटसार जीवकांड गाथा ४२७ मुद्रित पृष्ठ ८५०॥ इसी पर जीवतत्व प्रदीपिका टीका "असुराणां उत्कृष्ट विषय क्षेत्र असख्यात कोटि योजन मात्र = असुरों का उत्कृष्ट (अवधिज्ञानका) विषय भूतक्षेत्र असंख्यात करोड योजन मात्र है परतु तत्त्वार्थराजवार्तिक के कर्ता के मतानुसार अवधि "उत्कृष्ट अधोभागमे तो असुरकुमार निमे असख्यात योजन कोटा कोटि पर्यंत है"(= "उत्कृष्टोऽसुराणामसख्याता योजन कोटि कोट्योधः" पन्नालाल जी दूनी अनुवादित राजवार्तिक सूत्र २१ और सस्कृत तत्त्वार्थ राजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ २५॥ शेष नौ प्रकारके भवनवासी देव तथा व्यतर और ज्योतिषी देवोंको अवधिका उत्कृष्ट विषय क्षेत्र 'असख्यात सहस्र योजन है॥ देखो जी॰कां गोम्मट॰गाथा४२७॥ ज्योतिषियों देवों को अवधि "ऊर्ध्वभाग मे अपने विमान के उपरि भाग पर्यंत है अर तिर्यग् असख्यात कोटा कोटीयोजन प्रमाण है' पन्नालाल जी दूनी का अनुवाद सूत्र२१ "ज्योतिषां . . ऊर्ध्वम् आत्मीय विमानस्य उपरि पर्यंतः-तिर्यग्-असख्यता योजन कोटी कोट्यः")

असुरकुमारों की अवधि के उत्कृष्ट काल का प्रमाण असख्यात वर्ष है और शेष नौ प्रकार के भवनवासी व्यतर ज्योतिषीयों की अवधिके उत्कृष्ट काल का प्रमाण असुरों की अवधि के उत्कृष्ट काल के प्रमाण से नियम से सख्यात में भागमात्र है॥

अथ क्षयोपशमहेतुः केषाम्

अथ ७ क्षयोपशम-हेतुः१। केषाम्३।	=अब (अथ—अवधि ज्ञान के उत्पत्ति का) क्षयोपशमनिमित्त किनके हैं

भवनवासी व्यन्तर ज्योतिषी इनको अवधि का क्षेत्र नीचे नीचे न्यून होता है और तिर्यग्रूप से (अर्थात् इधर उधर तिरछे रूप से) अधिक होता है तथा भवनवासी देव अपने अवस्थित (वा नियत) स्थान से सुरगिर के (मेरु के) शिखर पर्यंत अवधि द्वारा देखते हैं

वैमानिक देवों में सौधर्म और ईशान स्वर्ग के देवों के जघन्य अवधिज्ञान ज्योतिषी देवों के उत्कृष्ट है सो है अर्थात् असंख्यात महस्र योजन है। और उत्कृष्ट रत्नप्रभा का वा प्रथम भूमि का अन्त पर्यंत है जो नीचे को सौधर्म ईशान स्वर्ग से डेढ़ राजू है। 'सनत्कुमार और माहेन्द्र स्वर्गों के देवों के अधोभाग में जघन्य अवधिज्ञान तो रत्नप्रभा (प्रथम भूमि) का अन्त तक है और उत्कृष्ट अधोभाग में शर्कराप्रभा (दूसरी पृथिवी) पर्यंत जो सनत्कुमार महेन्द्र स्वर्गों से नीचे को चार राजू है होता है ॥ ब्रह्म ब्रह्मोत्तर लांतव कापिष्ट स्वर्गों के देवों के अधोभाग में जघन्य अवधिज्ञान शर्कराप्रभा (दूसरी पृथिवी) के अन्त लग है। ब्रह्म ब्रह्मोत्तर स्वर्गों से शर्करा प्रभा नीचे को साढ़े चार राजू है और लांतव कापिष्ट स्वर्गों से शर्करा प्रभा [दूसरी पृथिवी] पांच राजू है ॥ और उक्त चार स्वर्ग निवासियों का उत्कृष्ट अवधिज्ञान अधोभाग में वालुकाप्रभा (तीसरी पृथिवी) के अंत पर्यंत है। ब्रह्म ब्रह्मोत्तर स्वर्गों से वालुका प्रभा अधोभाग में साढ़े पांच राजू है और लांतव कापिष्ट स्वर्गों से अधोभाग में उक्त तीसरी पृथिवी छह राजू है ॥

शुक्र महाशुक्र शतार सहस्रार स्वर्ग निवासी देवों के अधोभाग में जघन्य अवधिज्ञान वालुका प्रभा (तीसरी पृथिवी) के अंत लग है शुक्र महाशुक्र स्वर्गों से वालुका प्रभा साढ़े छह राजू नीचे को है और शतार सहस्रार स्वर्गों से उक्त तीसरी पृथिवी नीचे को सात राजू है उत्कृष्ट अवधिज्ञान शुक्र महाशुक्र शतार सहस्रार स्वर्गों के देवों के अधोभाग में पंकप्रभा (चौथी पृथिवी) का अंत पर्यंत है ॥ शुक्र महाशुक्र स्वर्गों से नीचे को पंकप्रभा साढ़े सात राजू है और शतार सहस्रार से उक्त चौथी पृथिवी अधोभाग में आठ राजू है ॥ आनत प्राणत आरण अच्युत स्वर्गों के देवों का जघन्य अवधिज्ञान अधोभाग में पंकप्रभा (चौथी भूमि) के अन्त पर्यंत है आनत प्राणत स्वर्गों से पंकप्रभा (चौथी पृथिवी) नीचे को साढ़े आठ राजू है और आरण अच्युत स्वर्गों से पंकप्रभा नौ राजू अधोभाग में है। और उत्कृष्ट अवधिज्ञान अधोभाग में आनत प्राणत आरण अच्युत स्वर्गों के देवों का धूमप्रभा (पांचवी पृथिवी) के अन्त तक है आनत प्राणत स्वर्गों से धूमप्रभा साढ़े नौ राजू नीचे को है और आरण अच्युत से धूमप्रभा पृथिवी दश राजू अधोभाग में है ॥

इत्थत आह ॥

= ऐसा (प्रश्न होने पर) इसलिये (आचार्यअग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

इति अतः आह T

नव ग्रैवेयिक निवासी देवों के अधोभाग मे जघन्य अवधिज्ञान धूम प्रभा (पांचवीं पृथिवी)के अन्त पर्यंत है। जो दश राजू से अधोभाग मे अधिक है और ग्यारह राजू से न्यून है। और इन ही देवों का उत्कृष्ट अवधिज्ञान अधोभाग मे तमप्रभा (छठवीं पृथिवी) के अन्त तक है सो माप मे अधोभाग की ओर ग्यारह राजू है॥ सौधर्मादिदेवा, उपरि स्वस्वस्वर्गविमानध्वजदण्ड शिखर पर्यन्त पश्यन्ति गोम्मटसार पृष्ठ ८५३

= सौधर्मादिवासी (देवों से नवग्रैवेयिक तक) ऊपरि अपने अपने स्वर्गका विमान का ध्वजा दण्डका शिखर पर्यन्त देखे हैं।

"नव अनुदिशविमान अर पांच अनुत्तर विमान के वासी सर्वलोकनाली जो त्रसनाली ताकों देखे हैं ... बहुरि नव अनुदिश पंच अनुत्तर विमान के वासी देव ऊपरि अपने विमान का शिखर पर्यन्त अर नीचें को बाह्य तनुवात पर्यन्त सर्व त्रसनाली कौं देखे हैं सो अनुदिश विमानवाले तौ कछू एकअधिक तेरह राजू प्रमाण लम्बा अर अनुत्तर विमानवाले चारसै पचीस धनुष घाटि इकवीस योजन करि हीन चौदह राजू प्रमाण लम्बा अर एक राजू चौडा अवधि का विषय भूत क्षेत्र कौं देखै है" ॥ चौदह राजू क्षेत्र में से इकवीस योजन और चारसौ पचीस धनुष घटाइये जो क्षेत्र शेष रहै सो अनुत्तर विमान वाले लम्बाई मे अर एक राजू चौडाई म अवधि द्वारा देखते हैं ऐसा अर्थ "पंचविंशति उत्तर चतुः शतधनुः ऊनएकविंशति योजनैः न्यून चतुर्दश रज्ज्वायता च रज्जु विस्तारां सर्वलोकनालि पश्यन्ति" इस संस्कृत वाक्य का ज्ञात होता है ॥अनुदिश विमान वाले कुछ अधिक तेरह राजू प्रमाण लम्बा और एक राजू चौडा अवधिज्ञान द्वारा देखते हैं।

उपर्युक्त जो क्षेत्रो का "परिमाण कीया है सो स्थानकका नियमरूप जानना। क्षेत्रका परिमाण लोए नियम रूप न जानना। जातें अच्युत स्वर्ग पर्यंत के वासी विहार करि अन्य क्षेत्र को जांइ अर तहां अवधि होइ तौ पूर्वोक्त स्थानक पर्यन्त ही होइ ऐसा नाही जो प्रथम स्वर्गवाला पहिले नरक जाइ अर तहां सेती डेढ राजू नीचें और जाने। सौधर्म द्विक के प्रथम नरक पर्यंत अवधि क्षेत्र है सो तहां भी तिष्ठता तहां पर्यंत क्षेत्र ही को जानै ऐसे सर्वत्र जानना' ॥ जी० कां० गोम्मट मुद्रित पृ० ८५३, ८५४ ॥

भवनवासी व्यन्तर ज्योतिषी देवो की अवधिका क्षेत्र बराबर घनरूप नही है। कल्पवासी देवों को अवधिका क्षेत्र आयत चतुरस्र (चौकोर) किन्तु लम्बाई मे अधिक और चौडाई मे थोडा) है। शेष मनुष्य तिर्यंच नारकी इनकी अवधि का विषयभूत क्षेत्र बराबर घनरूप है।

सौधर्म - ईशान स्वर्गों के देवो की अवधि का काल असंख्यात कोटि वर्ष है। इसके ऊपर सनत्कुमार माहेन्द्र ब्रह्म ब्रह्मोत्तर कल्पवाले देवो की अवधि का काल यथायोग्य पल्य का असंख्यातवां भाग है। इसके ऊपर लातव स्वर्ग से लेकर सर्वार्थसिद्धि पर्यंतवाले देवो को अवधिकाकाल कुछ घाटि पल्य प्रमाण है॥

॥ क्षयोपशमनिमित्तः षड्विकल्पः शेषाणाम् ॥२२॥

क्षयोपशमनिमित्तः षड्विकल्पः शेषाणाम्[2] ॥२२॥

= क्षयोपशमनिमित्तः (अवधिः) षड्विकल्पः शेषाणाम् (जीवानाम् भवति)

सूत्रार्थः—क्षयोपशमनिमित्तः[1] = [अवधिज्ञानावरणीय कर्म के] क्षयोपशम निमित्त [से उत्पन्न होने] वाला

अवधिः[1] = अवधि जिसके [अनुगामी, अननुगामी, वर्द्धमान, हीयमान, अवस्थित अनवस्थित]

षड्विकल्पः[1] शेषाणाम्[6] जीवानाम्[6] भवति[T] = छह भेद हैं सो शेष जीव [जे पर्याप्त सैनी सम्यग्दृष्टी मनुष्य तिर्यंच] निकें होता है सम्यग्दर्शनादि गुणोंसे क्षयोपशम होता है इससे इसको गुणप्रत्यय अवधिभी कहते हैं॥

(१) श्वेताम्बर आम्नाय में इस सूत्र की संख्या तेईसवी है "यथोक्त निमित्तः षड्विकल्पः शेषाणाम् ॥२३॥ ऐसा पाठ है सभाष्यतत्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ २२ मे "यथोक्त निमित्तः क्षयोपशमनिमित्तः इत्यर्थ " अतः दोनों आम्नायों मे इस सूत्र का अर्थ एकसा होजाता है ॥

(२) शेषाणाम् ।—निम्नलिखित ग्यारह सूत्रों के पाठ इस अध्याय मे इस प्रकार हैं कि तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् —तत्त्वार्थ श्रद्धान सम्यग्दर्शनं ॥२॥ जीवाजीवास्रवबन्धसंवर निर्जरा मोक्षास्तत्वम् ॥ सूत्र ४॥ जीवाजीवा स्रवबन्धसंवर निर्जरामोक्षास्तत्व ॥सूत्र ४॥ मतिश्रुतावधिमनःपर्यय केवलानि ज्ञानम् ॥ सूत्र ९ ॥ मतिश्रुतावधि मनः पर्यय केवलानि ज्ञानम् ॥ सूत्र ९ ॥ आद्ये परोक्षम् ॥ ११ ॥ आद्ये परोक्ष ॥ ११ ॥ मतिः स्मृतिः संज्ञा चिन्ताभिनिबोधः इत्यनर्थान्तरम् ॥ १३ ॥ मतिः स्मृतिः संज्ञा चिन्ताभिनिबोधइत्यनर्थान्तर अध्याय १ सूत्र १३ ॥ तदिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तम् ॥ १४ ॥ तदिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्त ॥ अध्याय १ सूत्र १४ ॥ बहुबहुविधक्षिप्रानिःसृतानुक्तध्रुवाणां सेतराणाम् ॥ सूत्र १६॥ बहुबहुविधक्षिप्रानिःसृतानुक्तध्रुवाणांसेतराणाम् ॥ १६ ॥ न चक्षुरनिन्द्रियाभ्याम् ॥ १९ ॥ न चक्षुरनिन्द्रियाभ्यां ॥ १९ ॥ श्रुतमतिपूर्वं द्व्यनेकद्वादशभेदम् ॥ २० ॥ श्रुतमतिपूर्वं द्व्यनेकद्वादश भेद ॥ भवप्रत्ययोऽवधिर्देवनारकाणाम् ॥ सूत्र २१ ॥ भवप्रत्ययोऽवधिर्देवनारकाणां ॥ अध्याय १ सूत्र २१ ॥ क्षयोपशम निमित्तः षड्विकल्पः शेषाणाम् ॥ सूत्र २२ । क्षयोपशम निमित्त षड्विकल्प शेषाणाम् ॥ सूत्र २२ ॥ इन प्रत्येक सूत्र के प्रथम पाठ के अन्त में 'म्' है और प्रत्येक सूत्र के द्वितीय पाठमें अनुस्वार है ॥ 'म्' के स्थान में जो म् पद के अंतका हो अनुस्वार हो जाता है यदि उसम् के पीछे कोई व्यञ्जन आवे किसी भी पाठ के पश्चात् कोई व्यञ्जन नहीं आया इसलिये म्' के स्थान में अनुस्वार नहीं हो सकता है - अर्थात्

एटानिवासी जगरूपसहाय वकीलकृत पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित सर्वार्थसिद्धि का शब्दशः हिंदी, अनुवाद। अध्याय १ सूत्र २१

अवधिज्ञानावरणस्य देशघातिस्पर्द्धकानामुदये सति सर्वघातिस्पर्द्धकानमुदयाभावः क्षयः। तेषामेवानुदयप्राप्तानां सदवस्था उपशमः। तौ निमित्तमस्येति क्षायोपशमनिमित्तः। सः शेषाणां वेदितव्यः॥ के पुनः शेषाः ?। मनुष्यास्तिर्यञ्चश्च। तेष्वपि यत्र सामर्थ्यमस्ति तत्रैव वेदितव्यः। नह्यसंज्ञिनामपर्याप्तकानां च तत्सामर्थ्यमस्ति॥ संज्ञिनां पर्याप्तकानां च न सर्वेषाम्॥ केषांतर्हि

अवधिज्ञान –आवरणस्य ६।॥देशघाति -स्पर्द्धकानाम् ६ ३।	= अवधिज्ञानावरणीय कर्मके देश घाति स्पर्द्धकोंके (स्पर्द्धक पुलिंगन पुंसक दोनों है)
उदये ७। सति ७। सर्वघातिस्पर्द्धकानाम् ६ ३। उदय—	= उदयहोने पर (= सति) और सर्वघाति स्पर्द्धकों के उदय में (आकर फल न दें)
अभावः १। क्षयः १। तेषाम् ६ ३। एव *	= अभाव रूप (सो)क्षय है (और) तिन (सर्वघाति स्पर्द्धकों) के ही
	जो आगे उदयमें आवेंगे वर्तमान में
अन्–उदयप्राप्तानाम् ६ ३। सत्–अवस्था १॥ उपशमः १।	= उदय रहित प्राप्त जो सत्ता रूप अवस्था सो उपशम है
तौ १ २। निमित्तम् १॥ अस्य ६ १। इति * क्षयोपशमनिमित्तः १।	ते दोनों (उपर्युक्त क्षय और उपशम) हैं कारण जिसके ऐसा क्षयोपशमहेतु है
सः १। शेषाणाम् ६ ३। वेदितव्यः १।के १ ३। पुनर् शेषाः १ ३। ?	= वह [क्षयोपशम निमित्त] शेष [जीव] तिनिकें जानौं। पुनि कौनअवशेष हैं ?
मनुष्याः १ ३। तिर्यञ्च १ ३। च *	= [उत्तर] मनुष्यऔरतिर्यंच हैं अर्थात् देव और नारकी पूर्व इक्कीसवें सूत्र में कहे
	अतः मनुष्य और तिर्यंच शेष रह गये सो इस सूत्र में कह दिये
तेषु ७ ३। अपि * यत्र * सामर्थ्यम् १॥ अस्ति T तत्र *	= तिन [मनुष्य और तिर्यंचों] में भी जहां योग्यता [= सामर्थ्य] है तहां
एव *वेदितव्यः १। नहि * अस्ति असंज्ञिनाम् ६ ३। च *	= ही जानना योग्यहै॥ नहीं हैं असंज्ञियों के और [= च]
अपर्याप्तकानाम् ६ ३। तत्सामर्थ्यम् १॥	= अर्पयाप्तकों के उस क्षयोपशम निमित्तक अवधिज्ञान होने की योग्यता
संज्ञिनाम् ६। पर्याप्तकानाम् ६ ३। च * न* सर्वेषाम् ६ ३।	= सैना पर्याप्तकों कें भी [= च] सर्वकें [अवधिज्ञान] नहीं होता है॥ [प्रश्न]
केषाम् ६ ३। तर्हि*	= तौ [= तर्हि] किन [मनुष्य और तिर्यंचों] कें (अवधिज्ञान) होता है ?

प्रत्येक सूत्र का द्वितीय पाठ जिनमे अनुस्वार म् के स्थान मे पाया गया है जैनेन्द्र व्याकरण, जैनेन्द्रप्रक्रिया, शब्दार्णव चन्द्रिका, पाणिनि मुनि कृत अष्टाध्यायी, शाकटायन व्याकरण के अनुसार अशुद्ध हैं परन्तु कातन्त्र रूप माला के "विरामे वा" (= वामकारस्य पदान्तस्य अनुस्वार भवति विरामे) म् जो पदान्त हो उसको विकल्प करि (हमारी इच्छानुसार) अनुस्वार होजाता है यदि म् केपश्चात् मे विराम हो जो म् के पीछे कोई व्यञ्जन न आवे तौं भी इस बानवे सूत्र के अनुकूल शुद्ध हैं (अवश्य देखो टिप्पणी पृष्ठ ५, ६, ५४०, ५४१॥) सर्वार्थसिद्धि-श्लोक वार्तिक मुद्रित-इत्यादि मे म् है परन्तु राजवार्तिक मुद्रित में और किसी किसी अन्य पुस्तक के पाठ मे अनुस्वार भी है॥

यथोक्तसम्यग्दर्शनादिनिमित्तसन्निधाने सति शान्तक्षीणकर्मणां तस्योपलब्धिर्भवति । सर्वस्य क्षायोपशमनिमित्तत्वे क्षायोपशमग्रहणं नियमार्थं क्षायोपशम एव निमित्तं न भव इति ॥

यथोक्त सम्यग्दर्शनादि-निमित्त सन्निधाने ।।।	= जैसाकि ऊपर कहा गया है(= यथा उक्त)कि सम्यग्दर्शनादिक कारणों के निकट
सति ।।। शान्तक्षीणकर्मणाम् ।।	= होने पर (= सति) कर्मों का उपशम(= शान्त) और अभाव(= क्षीण = क्षय) होनेवालेकेंअर्थात् अवधिज्ञाना वरणीय कर्मका क्षयोपशम हुआहै जिसके उस(जीव)के
तस्य ।।। उपलब्धिः ।।भवति ।।	= तिस (गुण प्रत्यय अवधिज्ञान) की प्राप्ति होती है
	(जब सर्व प्रकार के अवधिज्ञान के उत्पन्न होने का हेतु किसी भी जीव के कोई भी अवधिज्ञान हो (अवधिज्ञानावरणीय कर्म का) क्षयोपशम निमित्त है तो इस सूत्र में 'क्षयोपशम निमित्तः" वाक्य का व्यर्थ क्यों प्रयोग किया ?)
सर्वस्य।।क्षयोपशम-निमित्तत्वे ।।।	= (उत्तर) सब (जीवों) के अवधिज्ञानावरणीय कर्मका क्षयोपशमकारण होनेपर
क्षयोपशम-ग्रहण-।।। नियम-अर्थम् ।।।	(अवधिज्ञान होता है तो भी सूत्र में) 'क्षयोपशम' का प्रयोग मर्यादाके लिये है
क्षयोपशमः ।। एव निमित्तम् ।।। न भवः ।। इति	= (क्योंकि) क्षयोपशम ही (मनुष्य तिर्यंचों के अवधि ज्ञान होने का) कारण होता है न कि भव

(१) तीर्थंकराणां भवप्रत्ययोऽपि अवधिर्भवति = तीर्थंकरों के (तीर्थंकराणां ।।) भव प्रत्यय भी (= भवप्रत्ययः ।। अपि) अवधि होती है ।

(२) नारक देव तीर्थंकरों के भवों की अपेक्षा अवधिज्ञानावरणीय कर्मका क्षयोपशम होकर जो अवधि हो उसको भवप्रत्यय अवधि कहते हैं गुण जो सम्यग्दर्शनादि कारणों की अपेक्षा से अवधिज्ञानावरणीय कर्मका क्षयोपशम होकर अवधिज्ञान होता है उसको गुण प्रत्यय अवधिज्ञान अथवा क्षयोपशम निमित्त अवधिज्ञान कहते हैं ॥ "भव प्रत्यय अवधिज्ञान में भी सम्यग्दर्शनादि गुणों का सद्भाव है तथापि उन गुणों की अपेक्षा न करते हुये भव प्रत्यय कहा" । भव प्रत्यय अवधिज्ञान देव नारकी और तीर्थंकर की पर्याय पाते ही उत्पन्न होता है और उक्त भवों के साथ ही साथ अवधिज्ञानावरणीय कर्मका क्षयोपशम भी हो ही जाता है अर्थात् जैसे दीपक की ज्योति, प्रकाश और अंधकार का नाश एक साथ ही होते हैं तैसे ही देव नारकी वा तीर्थंकर का भव, भव प्रत्यय अवधि, अवधिज्ञानावरणीय

स एषोऽवधिः षड्विकल्पः । कुतः ? अनुगाम्यननुगामिवर्द्धमानहीयमानावस्थितानवस्थितभेदात् ॥ कश्चिदवधिर्भास्करप्रकाशवद्गच्छन्तमनुगच्छति ॥ कश्चिन्नानुगच्छति तत्रैवातिपतति उन्मुग्धप्रश्नादेशिपुरुषवचनवत् ॥

सः। एषः। अवधिः।	= सो यह (क्षयोपशमनिमित्तक, वा गुणनिमित्तक, गुणप्रत्ययक, गुणहेतुक) अवधिज्ञान
षड्विकल्पः। कुतः ?* अनुगामिभेदात्।	= छह भेदरूप (छह भेदवाला) है। (प्रश्न) कैसे? (उत्तर) अनुगामि (आनुगामिक) भेदसे
अननुगामिभेदात्। वर्द्धमानभेदात्। हीयमानभेदात्।	= अननुगामि (अनानुगामिक) भेद से वर्द्धमान भेद से हीयमान भेद से
अवस्थितभेदात्। अनवस्थितभेदात्।	= अवस्थित भेद से अनवस्थित भेद से (क्षयोपशमप्रत्यय-अवधिज्ञान) है
कश्चित्* अवधिः। भास्करप्रकाशवत्* गच्छन्तम्।	= जो कोई अवधिज्ञान सूर्यके उजाले सदृश गमन करनेवाले (जीव) को (गच्छन्तम्)
अनुगच्छति [1]	= नहीं छोड़ता है अर्थात् जीवके साथ२ जाता है। (सो [1]अनुगामि वा अनुगामिक है)
कश्चित्* न* अनुगच्छति [1] तत्र* एव*	= जो कोई (अवधि गमन करने वाले जीव को) छोड़ देता है (न-अनुगच्छति) तहांही
उन्मुग्धप्रश्न-आदेशिपुरुषवचनवत्* अतिपतति [1]	= मूर्ख प्रश्न करनेवाले मनुष्य के वचन सदृश गिर जाता है (= रह जाता है)

कर्मका क्षयोपशम ये तीनो साथ साथही तत्क्षण ही उत्पन्न होते हैं ॥ और गुण प्रत्यय अवधि ज्ञानमें भी मनुष्य तिर्यंच भवोका सद्भाव वा अस्तित्व है तथापि उन पर्यायो को अपेक्षा नही करने से गुण प्रत्यय कहा है ॥ 'जीव० गोम्मट वृत्ति पृष्ठ ७६८, ७६६ ॥

भवप्रत्यय अवधिज्ञान सम्पूर्ण अङ्ग से उत्पन्न होता है (= सम्पूर्ण आत्मप्रदेशों से होता है) ॥ नाभि के ऊपर शंख पद्म वज्र स्वस्तिककलश मीन यथा मच्छ आदि जो शुभ चिह्न होते हैं उन स्थानके आत्म प्रदेशोंमें होनेवाले अवधि ज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशम से गुणप्रत्यय अवधिज्ञान होता है

(१) अनुगामी अवधिज्ञान के तीन क्षेत्रानुगामी, भवानुगामी उभयानुगामी भेद हैं। जो दूसरे क्षेत्रमे अपने स्वामी के साथ जावे सो क्षेत्रानुगामी है दूसरे भव मे अपने स्वामी के साथ जाय सो भवानुगामी अवधिज्ञान है। जो दूसरे क्षेत्र और भव दोनों मे अपने स्वामी के साथ जाय सो उभयानुगामी अवधिज्ञान है।

अननुगामी अवधिज्ञानके भी तीन क्षेत्राननुगामी, भवाननुगामी, उभयाननुगामी भेद हैं। जो अपने स्वामीके साथ दूसरे क्षेत्र मे न जावे सो क्षेत्राननुगामी अवधिज्ञान है। जो अपने स्वामी के साथ दूसरे भवमें न जाय सो भवाननुगामी अवधिज्ञान है। जो दूसरे भव और क्षेत्र दोनों मे साथ न जाय सो उभयाननुगामी अवधिज्ञान है ॥

अपरोऽवधिः अरणिनिमर्थनोत्पन्नशुष्कपत्रोपचीयमानेन्धननिचयसमिद्धपावकवत्सम्यग्दर्शनादिगुणविशुद्धिपरिणामसन्निधानाद्यत्परिमाण उत्पन्नस्ततो वर्द्धते असंख्येयलोकेभ्यः ॥ अपरोऽवधिः अन्तरितपरिच्छिन्नोपादानसन्तत्यग्निशिखावत्सम्यग्दर्शनादिगुणहानिसंक्लेशपरिणामविवृद्धियोगाद्यत्परिमाण उत्पन्नस्ततो हीयते । आ अंगुलस्यासंख्येयभागात् ॥ इतरोऽवधिः सम्यग्दर्शनादिगुणावस्थानाद्यत्परिमाण उत्पन्नस्तत्परिमाण एवावतिष्ठते न हीयते नापि वर्द्धते लिंगवत् । आ भवक्षयादा केवलज्ञानोत्पत्तेर्वा ॥

अपरः । अवधिः । अरणि-निर्मथन-उत्पन्न- = अन्य अवधि (अर्थात् वर्द्धमान अवधिज्ञान) वो है जो अरणि के मथन से उपजी
शुष्क पत्र-उपचीयमान-इन्धन निचय- समिद्ध- = तथा सूखे पत्तों के संचय हुये ईंधन के समूह पर (फैंकी हुई) वर्द्धमान = (समिद्ध)
पावकवत् सम्यग्दर्शन-आदिगुणविशुद्धपरिणाम- = अग्नि के सदृश सम्यग्दर्शनादि गुणों से निर्मल परिमाणों की
सन्निधानात् । यत्परिमाणः । उत्पन्नः । ततः = सामोपता से जो परिमाण व माप प्रमाण उत्पन्न हुआ था तिससे
वर्द्धते आ असंख्यातलोकेभ्यः । = असंख्यात लोक पर्यंत (=आ) बढ़ता जाय है
अपरः । अवधिः । अन्तरित- = दूसरा अवधि (अर्थात् हीयमान अवधिज्ञान) वह है जो तिरस्कृत (=अन्तरित) और
परिच्छिन्न-उपादान-सन्तति- = परिमित (परिच्छिन्न) उपादान कारण वाले) (=उपादान सन्तति) अर्थात् इन्धनवाले
अग्निशिखावत् सम्यग्दर्शनादि-गुणाहानि-संक्लेश- = अग्नि शिखा के समान सम्यग्दर्शनादि गुणों की हानि रूप संक्लेश
परिणाम- विवृद्धि-योगात् । यत्परिमाणः । उत्पन्नः । = परिणामों के, बहुत बढ़े योग से जो परिमाण उत्पन्न हुआ था
ततः आ अंगुलस्य । असंख्येय-भागात् । हीयते । = तिस (परिमाण) से अंगुल के असंख्यातवां अंश तक (=आ) घटता जाय है
इतरः । अवधिः । सम्यग्दर्शन-आदि-गुण— = दूसरा अवधि (अर्थात् अवस्थित अवधिज्ञान) वह है जो सम्यग्दर्शनादि गुणों की
अवस्थानात् । यत्-परिमाणः । उत्पन्नः । = स्थिति से जो परिमाण (प्रमाण) उत्पन्न हुआ था
तत्-परिमाणः । एव अवतिष्ठते लिङ्गवत् न हीयते = वह परिमाण ही स्थिर रहता है (शरीर के तिल मस्सा आदि) चिह्न के सदृश न घटता है
न अपि वर्द्धते आ भवक्षयात् वा आ केवलज्ञान उत्पत्तेः ॥ = बढ़ताभी पर्यायकेक्षय वा भवकेक्षय (तक) वा केवल ज्ञान की प्राप्ति पर्यंत नहीं है

(१) अरणिः—काष्ठ रचित पात्र विशेष। जिसमें आग निकालने को अथवा अग्नि को बढ़ाने को दो लकड़ी (जिसको मसने से आग निकालते थे)

अन्योऽवधिः सम्यग्दर्शनादिगुणहानिवृद्धियोगाद्यत्परिमाण उत्पन्नस्ततो वर्द्धते यावदनेन वर्धितव्यं, हीयते च यावदनेन हातव्यं वायुवेगप्रेरितजलोर्मिवत् ॥ एवं षड्विकल्पोऽवधिर्भवति ॥

एवं व्याख्यातमवधिज्ञानं तदनन्तरमिदानीं मनःपर्ययज्ञानं वक्तव्यं, तस्य भेदपुरःसरं लक्षणं व्याचिख्यासुरित्याह—

अन्यः १। अवधिः १। सम्यग्दर्शन-आदि—	= इतर अवधि अर्थात् अनवस्थित अवधिज्ञान वह है जो सम्यग्दर्शनादि
गुण-हानि- वृद्धि-योगात् ५। यत्-परिमाणः १। उत्पन्नः १।	= गुणों के घटने बढ़ने के संयोगसे जो परिमाण उत्पन्न हुआ था
ततः ५ वर्द्धते T यावत् ७ अनेन ३। वर्धितव्यम् १॥।	= तिससे जहां तक (= यावत्) इसे बढ़ना चाहिये बढ़ता है
च ❀ हीयते T यावत् ❀ अनेन ३। हातव्यम् १॥।	= और (= च) जहां तक इसे घटना चाहिये घटता है
वायुवेगप्रेरित जल-उर्मिवत् ❀	= जैसे पवन बल से पेरा हुआ जलकी लहर (घटती भी है और बढ़ती भी है)
एवम् ❀ षड्[१]विकल्पः १। अवधिः १। भवति T एवम् ❀	= इस प्रकार [१]छह भेद रूप अवधिज्ञान होता है। इस प्रकार
अवधिज्ञानम् १॥। व्याख्यातम् १॥। तद्-अनन्तरम् १॥।	= अवधिज्ञान वर्णन किया गया है। उस 'अवधिज्ञान) के लगता ही
इदानीम् ❀ मनः पर्यय ज्ञानम् १॥। वक्तव्यम् १॥। तस्य	= अब मनः पर्यय ज्ञान कहना योग्य है ॥ उस (मनः पर्यय ज्ञान) के
भेदपुरः सरं ३॥।	= भेदों को (उसके लक्षणके कथनकी अपेक्षा) अग्रसर वा अग्रगामी कर (= पुरःसरं)
लक्षणं ३॥। व्याचिख्यासुः १। इति ❀ आह T	= (और पीछे उसके) लक्षण को (भी) कहने का इच्छक (आचार्य) ऐसे कहता है अर्थात् मनः पर्ययज्ञानके भेद पूर्वक लक्षण को कहने के इच्छक (आचार्य) ऐसे कहते हैं भावार्थ मनःपर्यय ज्ञानके भेद" प्रथम (= अग्रसर) और पीछे उसके लक्षण को कहने के इच्छक (आचार्य) ऋजुमति और विपुलमति भेद तेईसवां सूत्र में और इन उक्त भेदों के लक्षण चौवीसवां सूत्र में ऐसे कहते हैं कि

(१) षड्विकल्पः—"आगम विषैं सप्रतिपात अप्रतिपात तथा देशावधि परमावधि सर्वावधि ए सर्वानुगामी आदि छह भेद कहे तिन ॥ अन्तर्भूत जानने" जयचंदजी स० वचनिका मुद्रित पृष्ठ १७४ १७५ ॥ उक्त पण्डितजीने श्लोक वार्तिककी साक्षी दई है जिसके पृष्ठ२४५में लेख है कि

"अनुगाम्यननुगामी वर्द्धमानो हीयमानोऽवस्थितो	= अनुगामी अननुगामी वर्द्धमान हीयमान अवस्थित
ऽनवस्थित इति षड्विकल्पोऽवधिः सप्रतिपाता-	= अनवस्थित इस प्रकार छह भेदरूप अवधि (ज्ञान) है (क्योंकि) सप्रतिपात
प्रतिपातयोरत्रैवान्तर्भावात् ।	= और अप्रतिपात दोनों का यहाँ (या इस स्थानमें, अन्तर्भाव वा समावेश है
देशावधिः परमावधिः सर्वावधिरिति च परमागम	= और (= च) क्योंकि देशावधि परमावधि सर्वावधि ऐसे शास्त्र में
प्रसिद्धानां पूर्वोक्तयुक्त्या सम्भावितानामत्रोपसंग्रहात्"	= प्रसिद्ध वा सम्भावित (= प्रसिद्ध भये) (ज्ञान) पूर्वोक्त तर्कद्वारा यहाँ (इन्हीं छह ज्ञानों में) संग्रह हैं

परन्तु तत्वार्थ राजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ ५६ और गोम्मटसार जीवकांड गाथा ३७२ निम्नलिखित से प्रगट है कि

पुनरपरेऽवधेस्त्रयोभेदाः देशावधिः परमावधिः सर्वावधिश्चेति	= और अन्य अवधि के तीन भेद देशावधि परमावधि और सर्वावधि ऐसे हैं
गुणपच्चगो छद्धा अणुगामवट्ठिदपवड्ढमाणिदरा । अणुगामणवट्ठियहीयमाणेतरे ।।	= गुणप्रत्यय (= क्षयोपशमनिमित्तक) अवधिज्ञान छह (भेदरूप) हैं अनुगामी अवस्थित प्रवर्द्धमान इतरथा (= इतर) अननुगामी अनवस्थित, हीयमान हैं
देसोही परमोही सव्वोहित्ति य तिधा ओही । देशावधिः परमावधिः सर्वावधिः इति च त्रिधा अवधिः	= देशावधि परमावधि सर्वावधि ऐसें भी (= च) तीन प्रकार अवधि है

इसके विषय को परिमित होने से इस ज्ञान को अवधिज्ञान अथवा सीमाज्ञान कहते हैं। यद्यपि दूसरे मतिज्ञानादिक के विषय की भी सामान्य से सीमा है, इसलिये दूसरे ज्ञानों को भी अवधिज्ञान कहना चाहिये, तथापि समभिरूढनयकी अपेक्षा से (अर्थात् वह नय जो नाना अर्थों को छोड़ [illegible] एक ही अर्थ में रूढ (= प्रसिद्ध) हो उनको जाने वा कहे) ज्ञानविशेष को ही अवधिज्ञान कहते हैं।

भवप्रत्यय अवधि नियम से देशावधि ही होता है। और दर्शन विशुद्धि आदि गुणों के निमित्त से होनेवाला गुणप्रत्यय अवधिज्ञान देशावधि परमावधि सर्वावधि (ऐसे) तीनों प्रकार का होता है॥

देशावधि और परमावधि अवधिज्ञान के जघन्य मध्यम उत्कृष्ट तीन तीन भेद होते हैं। सर्वावधि अवधिज्ञान निर्विकल्पता से एक रूप ही है। सर्वावधि में जघन्य उत्कृष्ट आदि भेद नहीं हैं। सर्वावधि सब भांति निर्विकल्प (= भेदरहित) है॥

जघन्य देशावधि जो है सो उत्सेधांगुल का असंख्यातवां भाग मात्र क्षेत्र पर्यन्त है और उत्कृष्ट देशावधि सर्वलोक पर्यन्त है और इन दोनों क्षेत्रों के मध्य मे प्रवर्तनेवाला अनेक विकल्परूप मध्यम देशावधि है ॥

जघन्य परमावधि एक प्रदेश अधिक लोकक्षेत्र प्रमाण है और उत्कृष्ट असंख्यात लोकक्षेत्र प्रमाण है और मध्यम का मध्यम क्षेत्र है न जघन्य है न उत्कृष्ट है ॥ सर्वावधि उत्कृष्ट परमावधि के क्षेत्र से बाह्य असंख्यात क्षेत्र प्रमाण है ॥

जैसा कि ऊपर कह चुके हैं कि प्रतिपाती और अप्रतिपाती दोनों अनुगामी, अननुगामी वर्द्धमान, हीयमान, अवस्थित अनवस्थित इन छहोंमे अन्तर्भूत है देशावधि इन आठ रूप होता है । परमावधि अनुगामी, अननुगामी, वर्धमान, अवस्थित अनवस्थित और अप्रतिपाती छह भेदरूप होता है । सर्वावधि अनुगामी, वर्धमान, अवस्थित और अप्रतिपाती होता है ॥ विजली के प्रकाश के समान विनाशीक प्रतिपाती है और इससे विपरीत अविनाशी अप्रतिपाती है ।

जघन्य देशावधि ज्ञान संयत तथा असंयत मनुष्य तिर्यंचों में ही होता है देव नारकियों मे नही होता है । उत्कृष्ट देशावधि ज्ञान संयमी महाव्रती मनुष्यो में ही होता है क्योंकि अवशेष तीनि गतियों मे महाव्रत का होना सम्भव नहीं है। परमावधि और सर्वावधि चर्मशरीरी उसी भव से मोक्षगामी) महाव्रती के ही होता है "अन्य तीर्थंकरादिक गृहस्थ मनुष्य तिर्यंच देव नारकीनि के नहीं होई ॥ इनिकै देशावधि ही की योग्यता है" अर्थ प्रकाशिका पृष्ठ ६७ देखो। परमावधि और सर्वावधि वाले जीव नियम से मिथ्यात्व और अव्रत अवस्था को प्राप्त नही होते । सम्यक्त्व और चारित्र से च्युत होकर मिथ्यात्व असंयमको प्राप्ति को प्रतिपात कहते हैं। यह प्रतिपात देशावधि वालेका ही होता है, परमावधि सर्वावधि वाले का नही होता है ॥

अवधिज्ञान के जघन्य भेद से लेकर उत्कृष्ट भेद पर्यंत असंख्यात लोक प्रमाण भेद है सो सर्व द्रव्य क्षेत्रकाल भाव की अपेक्षा से रूपी (पुद्गल) द्रव्य को ही तथा उस (पुद्गल) के संबंध से संसारी जीव द्रव्य को भी प्रत्यक्ष जानते हैं। बहुरि सर्वावधि ज्ञान है सो जघन्य मध्यम उत्कृष्ट भेद रहित अवस्थित सर्वोत्कृष्टता को प्राप्त है जातैं अवधिज्ञानावरण का उत्कृष्ट क्षयोपशम तहां ही संभवै है तातैं देशावधि परमावधि के जघन्य मध्यम उत्कृष्ट भेद संभवै हैं ॥

ऋजुविपुलमती मनःपर्ययः ॥ २३ ॥

सूत्रम्—ऋजुविपुलमती मनःपर्ययः ॥ २३ ॥

= ऋजुविपुलमती मनः पर्ययः (द्विविकल्पः सन्तः) ॥ विकल्प शब्द की अनुवृत्ति २२वां सूत्रमें ली है

ऋजुविपुलमती: [illegible] मनः पर्ययः [illegible] द्विविकल्पः [illegible] सन्त. = मनः पर्यय ज्ञान ऋजुमति और विपुलमति दो भेद रूप है अर्थात्

मन वचन कायकी सरलता रूप पर के मन में तिष्ठे हुये रूपी पदार्थों को जाने वह ऋजुमति मनः पर्ययज्ञान है और जो मन वचन कायकी सरलता रूप और मन वचन कायकी वक्रता रूप वा कुटिलता रूप पर के मन में अवस्थित रूपी पदार्थों को जाने सो विपुलमति मनः पर्यय ज्ञान है ॥

(१) दिगम्बर आम्नायमें कहीं कहीं "मनः पर्यय" पाठ है। और कहीं कहीं "मनःपर्य्यय" पाठ है। "अचोरहाभ्यां द्वे '(= अच. रहाभ्यां द्वे) [illegible] सूत्र से दोनों ही पाठ ठीक हैं' (देखो टिप्पणी पृष्ठ ३२१ पे) ॥ मनः पर्यय ही लिखना चाहिये क्योंकि यह सूत्र है और सूत्र [illegible] है कि "[illegible] सार वद्विश्वतो मुखं अस्तोभ मनवद्यं च सूत्रं सूत्रविदो विदुः" [illegible] मुखम् = थोड़े अक्षर हों जिनका अर्थ सन्देह रहित हो सार वा सत गर्भित हो सर्वतः श्रेष्ठ हो [illegible] विदुः ? सूत्रम् = निरर्थक शब्द (= स्तोभ) से रहित (= अ) और दूषण वर्जित हो सूत्रज्ञाता उसको सूत्र समझते हैं [illegible] में मनः पर्यय के स्थान में "मनःपर्याय" है और पाठ एक है। अर्थ भी एक है, हमारा समझ में लघु पाठ ही लेना [illegible] है। इस सूत्र की संख्या [illegible] में २४ है क्योंकि द्विविधोऽवधि. सूत्र बढ़ गया है

(२) [illegible] काल में चिंतवन किया हो अथवा जिसका अनागत (भविष्यत्) काल में चिंतवन किया जायगा अथवा [illegible] है इत्यादि अनेक भेद लिये दूसरे के मनमें स्थित पदार्थ जिसके द्वारा जाना जाय उस ज्ञानको मनः पर्यय [illegible] "[illegible] मनः तत् पर्येति गच्छति जानातीति मनः पर्ययः" पर के मन में तिष्ठता जो पदार्थ सो मनः कहिये [illegible] (पदार्थ) को ग्रहण करता है (= पर्येति, जिसमें प्रवेश होता है (= गच्छति) जिसको जानता है (= जानाति) ऐसा मन पर्यय है। जी० गो० [illegible] ४३८

ऋज्वी निर्वर्तिता प्रगुणा च । कस्मान्निर्वर्तिता ? वाक्कायमनस्कृतार्थस्य परमनोगतस्य विज्ञानात् । ऋज्वी मतिर्यस्य सोऽयं ऋजुमतिः ॥

वृत्त्यनुवादः- निर्वर्तिता १॥	= उत्पन्न हुई है (= निर्वर्तिता) अथवा निष्पन्न भई है (= निर्वर्तिता)
ऋज्वी १॥ च ॐ प्रगुणा १॥	= सरल [= ऋज्वी = ऋजु) और (= च) सीधो (= प्रगुणा) (मति)
कस्मात् ५। निर्वर्तिता १॥	= किस हेतु से (= कस्मात्) उत्पन्न हुई वा निष्पन्न हुई है (= निर्वर्तिता) ?
वाक्-काय-मनस्-कृत परमनोगतस्य ६।	= (उत्तर) वचन-काय-मनकरि किये हुये अन्य (जीव) के मन में प्राप्त भये
अर्थस्य ६। विज्ञानात् ५॥, ऋज्वी १॥	= रूपी पदार्थ के (= अर्थस्य) जानने से (= विज्ञानात्)॥ —सरल (= ऋज्वी) है
मतिः १॥ यस्य ६। सः १। अयम् १। ऋजुमतिः १।	= मति (= ज्ञान वा बुद्धि) जिसकी सो यह ऋजुमति है ॥ भावार्थ सरल मनसे, सरल वचन से सरल काय से किये हुये अन्य जीव के मन में प्राप्त हुये जो रूपी पदार्थ तिसके जानने से (= विज्ञानात्) उत्पन्न हुई (= निर्वर्तिता) जो सरल मति सो ऋजुमति[२] है

१) इस व्युत्पत्ति से प्रगट है कि ऋजुमति शब्द पुलिङ्ग है सामान्य की अपेक्षा से मनः पर्यय ज्ञान एक प्रकार का है और विशेष को विवक्षा से ऋजुमति मनः पर्ययज्ञान और विपुलमति मनः पर्ययज्ञान ऐसे दो भेद हैं ॥ ऋजुमति मनः पर्यय ज्ञान के तीन भेद हैं अर्थात्
(क) ऋजुमनोगतार्थ विषयक (= ऋजुमनविषे प्राप्त भया अर्थ का जाननहारा) वा ऋजुमनस्कृतार्थज्ञ (= ऋजुमनकृत अर्थ का जाननेवाला)
(ख) ऋजुवचनगतार्थ विषयक (= ऋजुवचन विषे प्राप्त भया अर्थ का जाननहारा) वा ऋजुवाक्कृतार्थज्ञ (= ऋजुवचनकृत अर्थ को जाननेवाला)
(ग) ऋजुकायगतार्थ विषयक (= ऋजुकाय विषे प्राप्त भया अर्थ का जाननहारा) वा ऋजुकाय कृतार्थज्ञ (= ऋजुकाय कृत अर्थ को जाननेवारो)

(२) जैसे किसी मनुष्य ने मन से व्यक्त सरल वा प्रगटरूप पदार्थ का चिन्तन किया । धार्मिक वा लौकिक वचनों को भी भिन्न भिन्न रूप से उच्चारण किया और दोनों लोक के फल को प्राप्ति के लिये अंग और उपांगो का पटकना सकोडना और फैलाना रूप कार्य की चेष्टा भी की किंतु उनके कुछ दिवस के पश्चात् अथवा बहुत काल पीछे उस मन से विचारे हुये वा वचन से कहे हुये अथवा शरीर से किये गये कार्य को भूलजाने के कारण कि मैंने मन वचन काय से क्या किया था इस बात के विचारने के लिये वह समर्थ न रहा उसके उस प्रकार के मन वचन द्वारा किये गये कार्य को चाहे ऋजुमतिमनः पर्यय ज्ञान वाले से पूछो चाहे मत पूछो वह अपने ऋजुमतिमनः पर्यय ज्ञान से स्पष्ट जान लेता है कि उक्त मनुष्य ने मन से वह पदार्थ इस रूप से विचारा था, वचन से इस प्रकार कहा था और शरीर से इस प्रकार किया था ॥

अनिर्वर्तिता कुटिला च विपुला च । कस्मादनिर्वर्तिता ? वाक्कायमनस्कृतार्थस्य परकीयमनोगतस्य विज्ञानात् । विपुला मतिर्यस्य सोऽयं विपुलमतिः ॥

च । अनिर्वर्तिता ॥ कुटिला ॥ च	= और (= च) नहीं निष्पन्न हुई अथवा नहीं उत्पन्न हुई वक्र (= कुटिला) और (= च,
विपुला ॥	= विस्तार्ण (= विपुला), विशाल (= विपुला) वा नानार्थक (= विपुला)
कस्मात् ॥ अनिर्वर्तिता ॥	= किस कारण से नहीं निपजाई वा नहीं निष्पन्न भई (= अनिर्वर्तिता)
वाक्-काय मनः कृत-परकीय-मनः-गतस्य ॥	= (उत्तर) वचन कायमन करि किये हुये अन्य (जीव) के मन में प्राप्त भये
अर्थस्य ॥ विज्ञानात् ॥ विपुला ॥	= रूपी पदार्थ के (= अर्थस्य) जानने से ॥ विस्तीर्ण-विशाल-नानार्थक है
मतिः ॥ यस्य ॥ सः ॥ अयम् ॥ विपुलमतिः ॥	= मति (अर्थात् ज्ञान वा बुद्धि) जिसकी सो यह विपुलमति है ॥ भावार्थ

फिर किस हेतु से उत्पन्न हुई है? (उत्तर) "स्वयमेवही भई है" (जय० वचनिका मुद्रित पृष्ठ १७५)। कैसे ? भविष्यत काल में कोई जीव रूपी पदार्थ को चिन्तवेगा अब तक उसके मनद्वारा वह रूपी पदार्थ विचारा नहीं गया है उसके मन में वहरूपी पदार्थ अब तक नहीं तिष्ठा है आने वाले काल में चिंतवन करेगा इसको भी विपुलमति मनः पर्यय ज्ञानी जानता है। इसलिये जो पदार्थ अब तक परमनोगत नहीं हुआ है और उसको विपुल मतिमनः पर्यय ज्ञानी ने जान लिया ही है तो ऐसी अवस्था में कह सकते हैं कि नहीं निष्पन्न हुई है परमनोगत पदार्थद्वारा मति जिसकी वरन स्वयमेव ही भई' क्योंकि उस समय दूसरेके मन में उस रूपी पदार्थ का अस्तित्व नहीं हुआ ॥ यथार्थ में विपुल शब्द का अर्थ विस्तीर्ण, विशाल, गंभीर है जिसमें कुटिल, असरल नानार्थक, विषम सरल इत्यादि गर्भित हैं।

और जिससे यह भाव झलकता है 'कि विपुलमति मनः पर्यय ज्ञान से पर के मन में रहने वाले ऋजु-वक्र सरल टेढ़े सर्वप्रकार के रूपी पदार्थों का

[illegible] आत्मा को जान कर आना और परका चिंतवन जीवित मरण सुख दुःख लाभ और अलाभ आदिको भी ऋजुमतिमनःपर्यय [illegible] है। किंतु यह नियम है कि जो मनुष्य व्यक्तमना है - भले प्रकार चिन्तवन कर जिन्होंने प्रगट रूप से मन से पदार्थों का निश्चय कर [illegible] उन्हीं के द्वारा विचारे गये पदार्थों को ऋजुमतिमनः पर्यय ज्ञानी जानता है। परन्तु जो अव्यक्त मना है भले प्रकार चिन्तवन कर जिन्होंने व्यक्त रूप से पदार्थों का निश्चय नहीं किया है उनके द्वारा मन से विचारे हुये रूपी पदार्थों को ऋजुमति मनः पर्यय ज्ञानी नहीं जानता है। [illegible] द्रव्य और भव की अपेक्षा से ऋजुमति मनः पर्यय ज्ञान का विषय है। (देखो० राज० सूत्र २३ वार्तिक ६) ॥

ऋजुमतिश्च विपुलमतिश्च ऋजुविपुलमती॥ एकस्य मतिशब्दस्य गतार्थत्वादप्रयोगः। अथवा ऋजुश्च विपुला च ऋजुविपुले। ऋजुविपुले मती ययोस्तौ ऋजुविपुलमती। स एष मनः पर्ययो-

ज्ञान होता है। अपने और परके जीवित मरण सुख दुःख लाभ और अलाभका भी ज्ञान होता है तथा जिस पदार्थका व्यक्तमनकरि चितवन किया गया है वा अव्यक्तमनकरि चितवन कियागया है अथवा नहीं चिंतवन कियागया है आगे जाकर चिंतवन होगा उन सब प्रकारके पदार्थोंका विपुल मति मनः पर्यय ज्ञानी जानता है॥ (राज० वा० वार्तिक १०) यह द्रव्य और भावकी अपेक्षासे विपुलमति मनः पर्यय ज्ञानके विषयका निरूपण है।

ऋजुमतिः [1]। च* (१) विपुलमतिः [1]। च* (१) ऋजुविपुलमती [1]। =तथा (=च) ऋजुमति और (=च) विपुलमति (मिलानेसे) ऋजुविपुलमतीहुआ अर्थात् ऋजुमतिका मतिशब्द लेकर और विपुलमतिका मतिशब्दलेकर दोनों मति शब्दोंको मिलानेसे "मती" ऐसा द्विवचन हुआ और ऋजुशब्दको विपुलशब्दके साथ मिलानेसे ऋजुविपुल हुआ अतः "ऋजुविपुलमती" द्वंद्व समास हुआ

एकस्य [1]। मतिशब्दस्य [1]। गतार्थत्वात् [1]॥ =एक मतिशब्दके अर्थकी प्राप्ति होनेसे (=गतार्थत्वात्) वा तात्पर्यकी लब्धि होनेसे

अ-प्रयोगः [1]। =(सूत्रमें-दूसरे मतिशब्दका) प्रयोग अथवा व्यवहार नहींहै अर्थात् एकही मतिशब्दको दोनों ऋजु और विपुलके साथ लगानेसे अर्थ वा अभिप्रायकीप्राप्ति होजातीहै अतः इस सूत्रमें दूसरा मतिशब्द नहीं लाये है।

अथवा * ऋजुः [1]॥ च* (२) विपुला [1]॥ च* =अथवा (ऐसा भी समास होसक्ता है कि) ऋजु और (=च) विपुला (मिलकर)

ऋजुविपुले [1]॥; ऋजुविपुले [1]॥ मती [1]॥ ययोः [1]॥ =ऋजुविपुले(वाक्य) हुआ। ऋजु और विपुलहै बुद्धी (=मती) जिनकी (=ययोः)

तौ [1]। ऋजुविपुलमती [1]। सः [1]। एषः [1]। मनःपर्ययः [1]। =ते ऋजुविपुलमती है॥ सो यह मनः पर्यय ज्ञान

(१) सरल वा ऋजु हैमति जिसकी सो ऋजुमतिहै इसलिये मतिशब्द स्त्री लिंग होने पर भी "ऋजुमति" शब्द पुलिङ्गहै इसलिये ऊपर पुलिङ्गही लिखाहै

(२) यह चकार वाक्य भूषण के लियेहै अर्थात् संस्कृतकी बोलचालमें लाया जाताहै परन्तु इसका अनुवाद हिंदीभाषाकी बोलचालमें नहीं होसकता है॥

द्विविधः ऋजु मतिर्विपुलमतिरिति ॥

(१) (२)
द्वि-विधः १। ऋजुमतिः १। विपुलमतिः १। इति* =दो प्रकार ऋजुमति और विपुलमति इस भांति (=इति) हैं ॥

(१) ऋजुमतिमनः पर्यय ज्ञानके तीन भेद ऋजुमनस्कृतार्थज्ञ, ऋजुवाक्कृतार्थज्ञ, ऋजुकायकृतार्थज्ञ (इनके लक्षण के लिये देखो पृष्ठ ४४७)

(२) विपुलमतिमनः पर्ययज्ञान छह प्रकार है। (क) ऋजुमनोगतार्थविषय, ऋजुमनस्कृतार्थज्ञ अर्थात् ऋजुमनकों प्राप्त हुये अर्थ का जानने-वाला (ख) ऋजुवचनगतार्थ विषय, वा ऋजुवाक्कृतार्थज्ञ अर्थात् ऋजुवचन कों प्राप्त भया अर्थ का जाननहारा (ग) ऋजुकायगतार्थ विषय, ऋजुकायकृतार्थज्ञ अर्थात् ऋजुकाय कों प्राप्त हुये अर्थका (=रूपी पदार्थ का) जाननहारा (घ) अनृजुमनोगतार्थ विषय, वक्रमनस्कृतार्थज्ञ, अर्थात् वक्रमनको प्राप्त भया अर्था का जाननहारा (ङ) अनृजवचनगतार्थ विषय, वक्रवाक्कृतार्थज्ञ अर्थात् वक्रवचनको प्राप्त हुआ रूपी पदार्थका जानने वाला (च) अनृजुकाय गतार्थ विषय, वक्रकायकृतार्थज्ञ, अर्थात् वक्रकाय कों प्राप्तभया रूपी पदार्थ का जाननेवाला ॥

ऋजुमति तथा विपुलमति मनः पर्यय ज्ञान के विषय शब्दगत और अर्थगत दोनों ही प्रकार के होते हैं॥ कैसे ? सो कहते हैं "कोई भी सरल मन करि निष्पन्न होत संता त्रिकाल संबंधी पदार्थनिको चितवत भया वा सरल वचन करि निष्पन्न होत संता तिनकों कहत भया वा सरल काय करि निष्पन्न होत संता तिनको करत भया पीछें भूलि करि कालांतरविषैं स्मरण करनेको समर्थ न हुवा अर आयकरि ऋजुमतिमनः पर्यय-ज्ञानीको पूछत भया वा स्मरण करने का अभिप्राय को धारि मौन होत खड़ा रहा तहां ऋजुमतिमनः पर्ययज्ञान स्वयमेव सर्वकों जानै है। तैसे ही सरल वा वक्र मन वचन काय करि निष्पन्न होत संतो त्रिकाल सम्बन्धी पदार्थनिको चितवत भया वा कहत भया वा करत भया बहुरि भूलि करि केतेक काल पीछे स्मरण करने को समर्थ न हुवा आय करि विपुलमति मनः पर्ययज्ञानी के निकट पूछत भया वा मौन से खड़ा रहा तहां विपुल-मतिमनः पर्ययज्ञान सर्वकों जानै" ऐसे इनका स्वरूप जानना ॥

त्रिकाल सम्बन्धी पुद्गल द्रव्य कों वर्तमान काल विषै कोई जीव चितवन करै है तिस पुद्गल द्रव्य कों ऋजुमति मनः पर्ययज्ञान जानता है और त्रिकाल संबंधी पुद्गल द्रव्य कों भूतकाल में चिंतवन किया हो अथवा जिसका भविष्यत् में चितवन किया जायगा यद्वा वर्तमानमें जिसका चितवन हो रहा है ऐसे तीनों ही प्रकार के पदार्थ को विपुलमति मनः पर्ययज्ञान जानता है ॥

आह उक्तो भेदः, लक्षणमिदानीं वक्तव्यमित्यत्रोच्यते । वीर्यान्तरायमनः पर्ययज्ञानावरण-क्षयोपशमांगोपांगनामलाभावष्टम्भादात्मनः परकीयमनः सम्बधेनलब्ध वृत्तिरुपयोगो मनः पर्ययः॥ मतिज्ञानप्रसंग इति चेदुक्तोत्तरं पुरस्तात् । अपेक्षाकारणं मन इति

आह	=(शिष्य वा अन्यवादी आचार्यसे) प्रश्न करताहै (=आह)वा पूछताहै (=आह) कि (मनः पर्यय ज्ञान के ऋजुमति मनः पर्ययज्ञान और विपुलमति मनःपर्ययज्ञान)
उक्त भेदः ।१। इदानीम्* लक्षणम् ।१।। वक्तव्यम् ।१।।	=भेद कहे गये अब (इनके) लक्षण वा स्वरूप कहनी चाहिये ।
इति* अत्र* उच्यते । वीर्यान्तराय-मनः पर्यय—	=ऐसे (प्रश्न करने पर) यहां कहाजाता है कि वीर्यान्तराय कर्मका और मनःपर्यय
ज्ञानावरण-क्षयोपशम-अङ्गोपाङ्गनाम-	=ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशमसे और अगोपांगनामा नामकर्म के (उदयके)
लाभ-अवष्टम्भात् ।५। आत्मनः।६। परकीय-	=लाभके अवलम्बनसे वा प्राप्त होनेसे (=अवष्टम्भात्) आत्माके परके (=पराये)
मनःसम्बन्धेन ।३। लब्धवृत्तिः ।१।। उपयोगः ।१।	=मनके संयोग करि प्राप्ति हुई है (=लब्ध) जो प्रवृत्ति (ऐसा) ज्ञानोपयोग
मनः–पर्ययः ।१।	=मनः पर्यय ज्ञान है अर्थात् उक्त कर्मों के क्षयोपशम से और उदय के लाभ की प्राप्ति होने से आत्मा ने द्रव्य-क्षेत्र-कालभावकी मर्यादा लिये हुये जो दूसरेके मनमें तिष्ठते हुये रूपी पदार्थ को स्पष्टरूप से जान लिया है सो मनःपर्यय ज्ञान है ॥
मतिज्ञान–प्रसङ्गः ।१।	=(यदि मनः पर्ययज्ञान मन के सम्बन्ध से है तो) मतिज्ञान का प्रसंग हुआ ।
इति* चेत्* पुरस्तात्*	=ऐसा संदेह (करने) पर (उत्तर में कहते है) कि पहिले (=पुरस्तात्)
उक्त-उत्तरम् ।१।।	=कहा हुआ उत्तरहै (जिसकेलिये देखो पृष्ठ ३२५, ३२६ जिसका संक्षेप नीचे भी है
अपेक्षाकारणम् ।१।। मनः ।१।। इति*	=(अर्थात् मनः पर्यय ज्ञानमें) मन अपेक्षामात्र कारणहै (न कि उत्पत्तिका कारण है)

(१) इसका सारांश वा तत्व यह है कि इन्द्रियों और मन द्वारा मतिज्ञान उत्पन्न होता है । यह मतिज्ञान श्रुतज्ञानके होने के लिये कारण है विना मतिज्ञान के श्रुतज्ञान कभी भी नहीं होता, मतिज्ञान कारणरूप है और श्रुतज्ञान कार्यरूप है अत मतिज्ञान और श्रुतज्ञान का परस्पर कार्यकारण भाव है ॥ क्योंकि मतिज्ञान (इन्द्रियों और) मन के सबध विना नही होता है इसलिये शिष्यको यह प्रश्न करनेका अवसर मिला कि

परकीयमनसि व्यवस्थितोऽर्थः अनेन ज्ञायते इत्येतावदत्रापेक्ष्यते।

परकीय—मनसि १।।। व्यवस्थितः १। अर्थः १। अनेन ३।।।	=दूसरे के मन में तिष्ठता हुआ रूपी पदार्थ इस (मनः पर्यय ज्ञान) से
ज्ञायते T इति* एतावत्* अत्र अपेक्ष्यते T	=जाना जाता है इस प्रकार इतनी ही (=एतावत्) यहां विवक्षा की गईहै।

जब मनः पर्यय ज्ञान में भी मन का सम्बन्ध है और मतिज्ञान में मन का सबध है तो मन पर्ययज्ञान में भी मतिज्ञान का प्रसग आया जैसे मन और स्पर्शन, रसन घ्राण, चक्षु, श्रोत्र इन्द्रियों के सबध से स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु श्रोत्ररूप ज्ञान प्रगट होते हैं सो मतिज्ञान है तैसे ही मनः पर्यय ज्ञान भी मन सबध से पाई है वृत्ति (प्रवृत्ति) जिसने ऐसा (मन: पर्यय ज्ञान) है इस लिये (मनः पर्यय ज्ञान भी) मतिज्ञान नाम को पाता है अर्थात् मन पर्ययज्ञान मन के निमित्तपने से मतिज्ञान को प्राप्त होता है। (=मन: पर्यय ज्ञान मनो निमित्तत्वात् मतिज्ञान प्राप्तम्) भावार्थ मन:पर्यय ज्ञान भी मन द्वारा उत्पन्न होता है और मतिज्ञान भी मन द्वारा (और पांच इन्द्रियों द्वारा) उत्पन्न होता है इसलिये मनः पर्यय ज्ञानको मतिज्ञान कह सकते हैं क्योंकि ऐसी ही आर्ष वचनकी परिपाटी है (=एवम् हि आर्षी प्रक्रिया) कि अपने मनकरि पराया मनमें ठहरे हुये पदार्थ का चितवन करके इत्यादि (=मनसा मन: सपरिचिन्त्य+इति)॥

(उतर) अपेक्षामात्रपना से (=अपेक्षामात्रत्वात्) तहां (=तत्र) मन पर्यय ज्ञान में अपना और पर के मन की अपेक्षा मात्र करिये है (मनः पर्यय ज्ञाने—तत्र स्वपरमनोपेक्षा मात्र क्रियते)॥ जैसे (कोई कहे) बादल में (=अभ्रे) अथवा आकाश में (=अभ्रे) चंद्रमा को देखो (=यथा अभ्रे चन्द्रमसं पश्य+इति) यहां देखने रूप कार्य चन्द्रमा है और बादल वा आकाश शब्द अपेक्षा मात्र है। तैसे ही मन: पर्यय ज्ञान में तिष्ठे हुये वा अवस्थित रूपी पदार्थोंका जानना ही कार्य है और स्वपर मन अपेक्षा मात्र है और जैसे मनका कार्य मतिज्ञान है तैसे मन का कार्य मन: पर्यय ज्ञान नहीं है (न तत्कार्यं मतिज्ञानवत्) ॥

क्योंकि इस (मन:पर्यय ज्ञान) के आत्म शुद्धि का निमित्तपना है (=एतस्य आत्मशुद्धिनिमित्तत्वात् इति) देखो राजवार्तिक में वार्तिक ५ सूत्र ९ यह मन पर्यय ज्ञान तो वीर्यान्तराय कर्म और मन पर्ययज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम की शक्ति मात्र से और अंगोपांगनामा नामकर्म के उदय के लाभ से आत्मा के विकसित वा प्रकाशित हुआ है॥ (देखो पृष्ठ ३२। और ३२६) ॥ जीवकांड गोम्मटसार में इस सबध में लिखा है कि "जैसे पूर्व कहा था भवप्रत्यय अवधिज्ञान सर्व अंगतै उपजै है और गुणप्रत्यय शंखादिक चिन्हनितै उपजै है तैसे मन: पर्यय ज्ञान द्रव्य मनतै उपजै है नियमत, और अंगनिके प्रदेशनिविषै नाहीं उपजै है" गोम्मटसार गाथा ४४२ ॥

"सो द्रव्य मन हृदय स्थानविषै प्रफुल्लित आठ पांखुडी का कमल के आकार अंगोपांगनामक नामकर्म के उदय तै तेईस जाति की पुद्गल वर्गणानि विषै मनोवर्गणा है तिनि [illegible]

तत्र ऋजुमतिर्मनः पर्ययः कालतो

तत्र॥ ऋजुमतिः।१। मनः पर्ययः।१। कालतः॥ = तहाँ ऋजुमति मनः पर्यय ज्ञान काल (की अपेक्षा) से

"तिस मनका नोइन्द्रिय ऐसा नाम है नो कहिये ईषत् किंचिन्मात्र इन्द्रिय है जैसे स्पर्शनादिक इन्द्रिय प्रकट हैं तैसे मनके प्रकटपना नाही तातैं मनका नोइन्द्रिय ऐसा नाम है सो तिस द्रव्य मनविषैं मतिज्ञानरूप भावमन भी उपजै है अर मनः पर्यय ज्ञान भी उपजै है ॥गाथा ४४४॥ "ऋजुमति मनः पर्यय ज्ञान है सो अपने वा अन्य जीवके स्पर्शनादिक इन्द्री अर मन अर मन वचन काय योग तिनको सापेक्षतै उपजै है। बहुरि विपुलमतिमनः पर्यय है सो अवधि ज्ञानकी सी नाईं तिनकी अपेक्षा विनाही निगमकरि जानै है" ॥ गाथा ४४६ ॥ "पर जीवके मनविषै सरलपनै चितवनरूप तिष्ठता जो पदार्थ ताकों पहलै तौ ईहा नाम मतिज्ञानकरि प्राप्त होइ ऐसा विचारै कि याका मनविषै कहा है। पीछे रिजुमति मनः पर्ययज्ञानकरि तिस अर्थको प्रत्यक्ष पने करि रिजुमति मनः पर्यय ज्ञानी जानै है यह नियम है ॥ गाथा ४४८ ॥" द्रव्य प्रति वा क्षेत्र प्रति वा काल प्रति वा भाव प्रति जीवकरि लक्षित कहिए चितवन कीया हुवा जो रूपी पुद्गल द्रव्य वा पुद्गलके संबंध धरै संसारी जीव द्रव्य ताकौं जघन मध्यम उत्कृष्ट भेदकरि ऋजुमति वा विपुलमति मनः पर्यय ज्ञान जानै है ॥ गाथा ४५० ॥

ऋजुमति मनः पर्यय ज्ञान जघन्यपने करि औदारिक शरीर का निर्जरारूप समय प्रबद्ध कौं जानै है। औदारिक शरीरविषैं समय समय निर्जरा हो है सो एक समय विषै औदारिक शरीर के जितने परमाणू निर्जरै तितने परमाणूनिका स्कधकों जघन्य रिजुमति मनः पर्यय ज्ञान जानैं है। बहुरि उत्कृष्टपनैं नेत्र इंद्रिय की निर्जरामात्र द्रव्य को जानै है। सो कितना है। औदारिक शरीर की अवगाहना संख्यात घनांगुल प्रमाण है तिस विषै विस्रसोपचयसहित औदारिक शरीर का समय प्रबद्ध प्रमाण परमाणू निर्जरा रूप भये तौ नेत्र इन्द्रिय का अभ्यंतर निर्वृति अंगुल के असंख्यातवे भाग प्रमाण है तिस विषै कितने परमाणू निर्जरा रूपभये ऐसा त्रैराशिक करि जितना परमाणू आया तितने परमाणू निका स्कधकौं उत्कृष्ट ऋजुमति मनः पर्यय ज्ञान जानै है ॥ ४५१ ॥

मेरी समझ में मनः पर्यय ज्ञान में मन का संबंध केवल अपेक्षा मात्र है। न कि शक्ति अपेक्षा से मतिज्ञान में शक्ति अपेक्षा से है॥ स्मरण रहै कि मतिज्ञान तो मन और इन्द्रिय दोनो की सहायता से ही होता है। और चतुर्थ गुणस्थान से बारह तक होता है। सञ्ज्ञी (=समनस्क) पंचेन्द्रिय सम्यग्दृष्टी जीव के होता है परन्तु कुमति ज्ञान, सर्वगतियो में सर्व इन्द्रिय वाले जीवो के होता है सञ्ज्ञी (=समनस्क) असञ्ज्ञी अमनस्क) जीवो के भी होता है इसलिये केवल इन्द्रियो द्वारा मन की विना सहायता के भी हो सक्ता है और इन्द्रियो और मनकरि भी हो सक्ता है ॥ ४५१ ॥

जघन्येन जीवानात्मनश्च द्वित्रीणि भवग्रहणानि, उत्कर्षेण सप्ताष्टौ गत्यागत्यादिभिः प्ररूपयति ॥ क्षेत्रतो जघन्येन गव्यूतिपृथक्त्वं(१), उत्कर्षेण योजनपृथक्त्वस्याभ्यन्तरं न बहिः ॥ द्वितीयकालतो जघन्येन सप्ताष्टौ भवग्रहणानि, उत्कर्षेणासंख्येयानि गत्यागत्यादिभिः प्ररूपयति ॥ क्षेत्रतो जघन्येन योजन पृथक्त्वं, उत्कर्षेण

(१) जघन्येन। जीवानाम्। आत्मनः। च। द्वि-त्रीणि॥	= जघन्य करि (अन्य) जीवों के और (= च) अपने आत्मा के दो तीन
भवग्रहणानि॥ उत्कर्षेण।	= भवका ग्रहण करनेवाला है ॥ उत्कृष्ट करि (अन्य के तथा अपने)
गति-आगति-आदिभिः। (२)सप्त-अष्टौ। प्ररूपयति	= पहले अगले आदि से सात आठ (भवों) को जानता है प्ररूपयति अर्थात् काल करि ऋजुमति मनः पर्यय ज्ञान का विषय जघन्यपनें अतीत अनागत रूप दोय तीन भव हैं उत्कृष्टपनें सात आठ भव हैं
क्षेत्रतः जघन्येन। (३)गव्यूति-पृथक्त्वं॥	= क्षेत्र (की अपेक्षा) से जघन्य करि तीन से ऊपर नौं से नोचे (= पृथक्त्व) कोश है
उत्कर्षेण। योजन-पृथक्त्वस्य। अभ्यन्तरम्॥	= उत्कृष्ट करि तीन से ऊपर नौ से नीचे (= पृथक्त्व) योजन के भीतर है
न वहिः द्वितीय-कालतः	= न कि वाहिर । दूसरा (विपुलमति मनः पर्यय ज्ञान) काल (की अपेक्षा) से
जघन्येन। सप्त-अष्टौ॥ भवग्रहणानि॥ उत्कर्षेण।	= जघन्य करि सात आठ भव का ग्रहण करनेवाला है । उत्कृष्टकरि
असंख्येयानि॥ गति-आगति-आदिभिः। प्ररूपयति	= असंख्याते (भव) पहले अगले आदिकरि कथन करता है
क्षेत्रतः जघन्येन।	= (विपुलमति मनः पर्यय ज्ञान का विषय) क्षेत्र (की अपेक्षा) से जघन्य करि
योजन-पृथक्त्वम्॥ उत्कर्षेण।	= तीन से ऊपर नव से न्यून (= पृथक्त्व) योजन (प्रमाण) है । उत्कृष्टकरि

(१) "जघन्येन" वाक्य पुल्लिग और नपुंसकलिग है। हमने इन लिगों का कोई संकेत नियत नहीं किया है। अतः कहीं पुल्लिंग कहीं नपुंसकलिंग लिखा है।

(२) अष्टौ शब्द पुल्लिंग बहु वचन है क्योंकि इसके आगेके शब्द "भव" का अध्याहार किया गया है ॥

(३) गव्यूति-गव्यूत-गव्यू एकार्थवाची है। इसके अर्थ (i) दो मीलकी लम्बाई वा एक कोसके हैं (ii) दो कोसकी दूर। (iii) वह भूमि जहां हरी हरी घास होती है। (देखो आप्टे संस्कृत कोश पृष्ठ ४५६, वैद्यकृत कोश पृष्ठ २३६ ॥ गोम्मटसार (जी० की गाथा ४५५) जयचन्दजी कृत वचनिका मुद्रित पृष्ठ १७६,, पन्नोलालजी दूनी इत्यादिने एक कोसके अर्थमें लिया है इससे हमने भी अनुवादमें एक कोस ही लिखा है ॥

मानुषोत्तरशैलास्याभ्यन्तरं न बहिः ॥ उक्तयोरनयोः पुनरपि विशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

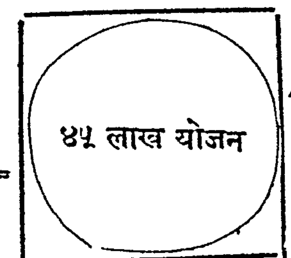
॥ विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्यां तद्विशेषः ॥ २४ ॥

मानुषोत्तरशैलस्य६/१।	=(विपुलमतिमनः पर्ययज्ञान का विषय क्षेत्र की अपेक्षा से) मानषोत्तर पर्वत के
अभ्यन्तरम्१/१॥ न ※(१)बहिः ※उक्तयोः६/२। अनयोः६/२।	=भीतर (भीतर) है न कि बाहिर ॥ कहे हुये दोनों (भेद मनःपर्यय ज्ञान) में
पुनः ※अपि ※विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थम्१/१॥ आह I	=फिर भी विशेष की प्राप्ति के लिये (आचार्य अग्रिम सूत्र) कहते हैं कि

विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्यां तद्विशेषः ॥ २४ ॥

विशुद्धि-अप्रतिपाताभ्याम्३/२।	=(भावों वा परिणामों की) विशुद्धि और अप्रतिपात (चारित्ररूपी पर्वत से नहीं गिरने) हेतुओं से
तद्-विशेषः१/१।	=उन (ऋजुमति और विपुलमतिमनःपर्ययज्ञान) में भेद है अर्थात् ऋजुमतिमनःपर्यय ज्ञान से विपुलमतिमनःपर्ययज्ञान विशुद्धतर है वा अधिक विशुद्ध है और ऋजुमति मनः पर्ययज्ञान बीचमें छूट जाता है परन्तु (३)विपुलमतिमनः पर्ययज्ञान केवल ज्ञानहोने तक रहता है यही परस्पर दोनों में अन्तर वा भेद है ॥

(१) यह बात प्र सद्ध है कि मानुषोत्तर पर्वतके बाहिर मनुष्य नहीं हैं इसलिये नरलाक अर्थात् वह स्थान जहां मनुष्य वास करते हैं उक्त मानुषोत्तर पर्वतके भीतर है। भीतर है ॥ गोम्मटसार जीवकांड गाथा ४५६ में क्षेत्रको अपेक्षा इस प्रकार कहा है "नरलोक ऐसा वचन ,कह्या है सो इहां मनुष्य लोकका विष्कम्भका जेता परिमाण है सो लैना अर मनुष्य लोक तो गोल है अर यह विपुलमतिका विषयभूत क्षेत्र समचतुरस्र घन प्रतर कहिए। समान चौकोर घन रूप प्रतर क्षेत्र कह्या है सो पैंतालीस लाख योजन लम्बा तितना ही चौडा ऐसा परिमाण जानना। इहां ऊँचाई थोडी है तातैं घन प्रतर कह्या है जातैं मानुषोत्तर पर्वतके बाह्य च्यारो कोणनिविषै तिष्ठते देव तिर्यंच चितए हुए तिनकौ भी उत्कृष्ट विपुलमतिमनः पर्ययज्ञान जाने है "पृष्ठ ८७०"



४५ लाख योजन

४५ लाख योजन

(२) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दिगम्बर और श्वेतांबर दोनो आम्नायोंमें एकसा है। हमारे यहां भी जहां जहां शुद्ध लिपि है एकहीसा पाठ मिलता है। श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य तत्वार्थाधिगम सूत्र (इस ग्रन्थ) में यह २५वां सूत्र है क्योंकि वहां "द्विविधोऽवधि" सूत्र अधिक है ॥

(३) विशुद्धिश्च अप्रतिपातश्च विशुद्ध्यप्रतिपातौ ताभ्यां विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्यां तयोर्विशेषस्तद्विशेषः । सूत्रमें रहनेवाले सब पदोंकी यह व्युत्पत्ति है ॥

एटा निवासी जगरूपसहाय वकीलकृत पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित सर्वार्थसिद्धिका शब्दशः हिंदी अनुवाद। अध्याय १ सूत्र २४

तदावरण क्षयोपशमे सति आत्मनः प्रसादो विशुद्धिः। प्रतिपतनं प्रतिपातः न प्रतिपातः अप्रतिपातः। उपशान्तकषायस्य चारित्रमोहोद्रेकात्प्रच्युतसँयमशिखरस्य प्रतिपातो भवति। क्षीणकषायस्य प्रतिपातकारणाभावादप्रतिपातः ॥

(१)पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित इस सूत्र पर संस्कृत सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिंदी अनुवाद।

तद्-आवरण-क्षयोपशमे७। सति७।	=उस (मनः पर्ययज्ञानावरणीयकर्म) के आवरण के क्षयोपशम होनेपर (=सति)
आत्मनः६। प्रसादः१। विशुद्धिः१॥ प्रतिपतनम्१॥	=आत्माकी उज्वलता (=प्रसाद) सो विशुद्धि है॥ (संयमसे) गिरना वा च्युत होना
प्रतिपातः१। उपशान्तकषायस्य६।	=सो प्रतिपात है। उपशान्त मोहवाले (जीव) का अर्थात् ग्यारहवाँ गुणस्थानवर्तीका
चारित्रमोह-उद्रेकात्५। प्रच्युतसंयमशिखरस्य६।	=चारित्रमोहनीय कर्म की उत्कटतासे संयमरूपी शिखरका (से) प्रच्युत होना
(२)	गिर पड़ना, उलटा आय पड़ना, उलटा आना, भावार्थ संयमपरिणामकी घटवारी
प्रतिपातः१। भवति। क्षीणकषायस्य६।	=सो प्रतिपात है॥ क्षीणकषायवाले के अर्थात् बारहवाँ गुणस्थानवर्तीके
प्रतिपात-कारण-अभावात्५। अप्रतिपातः१।	=(संयम से) गिर पड़ने के निमित्त के अभाव से अप्रतिपात है

(१) स्मरण रहे कि यहा पर भी (जैसा कि पृष्ठ ४४१ में है) वीर्यान्तराय कर्मका और मनः पर्यय ज्ञानावरणीय कर्मका क्षयोपशमसे और अंगोपांग-नामानामकर्मके (उदयके) लाभकी प्राप्त होनेसे आत्माके परिणामोंकी उज्वलता सो विशुद्ध वा विशुद्धता है॥ यहां संक्षेपार्थ एक कर्मका नाम वृत्तिमें लिया है॥

(२) पहला ऋजुमति मनः पर्यय ज्ञान है सो प्रतिपाती है क्योंकि ऋजुमतिवाला उपशम तथा क्षपक दोनों श्रेणियों पर चढता है उसमें यद्यपि क्षपककी अपेक्षासे ऋजुमतिवालेका पतन नहीं होता तथापि उपशमश्रेणीकी अपेक्षासे पतन होता है और दूसरा विपुलमति मनः पर्ययज्ञानी केवल क्षपकश्रेणी ही माढता है और चढता है उसका पतन कदापि नही होता निश्चयसे केवल ज्ञान प्राप्ति करता है॥ दूसरा विपुलमति मनः पर्ययज्ञान है सो अप्रतिपाती है॥ जिसके विशुद्ध परिणामोंकी घटवारी वा न्यूनता हो सो प्रतिपाती कहलाता है जिसके विशुद्ध भावोंकी न्यूनता न हो उसको अप्रतिपाती कहते है। ऋजुमति मनः पर्यय ज्ञान तो विशुद्ध है क्यों कि प्रतिपक्षी कर्मके क्षयोपशमसे निर्मल भया है॥ बहुरि विपुलमति मनःपर्यय ज्ञान विशुद्धतर है। क्योंकि मनः पर्यय ज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशमसे अतिशयकरि निर्मल हुआ है॥

विशुद्धिश्च अप्रतिपातश्च विशुध्द्यप्रतिपातौ ताभ्याम् । तयोर्विशेपस्तद्विशेपः ॥

विशुद्धिः ११। च* अप्रतिपातः ११। च विशुद्धि-अप्रतिपातौ १२।	=वहुरि विशुद्धि और अप्रतिपात (मिलकर) विशुद्धयप्रतिपातौ (ऐसा वाक्य) हुआ
ताभ्याम् ३२। (विशुद्धयप्रतिपाताभ्याम् ३२)	=ताभ्याम् (जोड़कर) विशुद्धयप्रतिपाताभ्यां (यह वाक्य) हुआ
तयोः ६२। विशेपः ११। तद्विशेपः ११।	=तयोः (तिनमें) विशेप सो तद्विशेप है । यह व्युत्पत्ति इस " विशुद्धयप्रतिपाताभ्यां तद्विशेप " सत्र सूत्रकी हुई ॥ जिसका अर्थ ऐसे है कि उज्वलता तथा न च्युत होना तिन दो हेतुओंसे तिन (ऋजुमतिमनः पर्ययज्ञान, विपुल मतिमनः पर्ययज्ञान)में विशेप अथवा भेद है ।

(१) प्रश्न "ऋजुविपुलमती मनः पर्यय" इस सूत्रसे ही ऋजुमतिमनः पर्ययज्ञान तथा विपुलमतिमन पर्ययज्ञानमें अतर वा भेद हे सो स्पष्ट है फिर 'विशुद्धयप्रतिपाताभ्यांतद्विशेपः' इस सूत्रका क्यो आरंभ किया गया है (उत्तर) तेईसवां सूत्रमे जो ऋजुमतिमनः पर्ययज्ञान और विपुलमतिमनः पर्ययज्ञानका आपसमे विशेष वतलाया गया है वह साधारण है ॥ सर्वमनुष्योका उससे संतोष नहीं हो सक्ता है इसलिये विशेप रूपसे इन दोनो ज्ञानोमे भेद-अंतर वतलाने के लिये यह २४वां सूत्र कहा है ।

(२) प्रश्नः— जिस प्रकार मनः पर्ययज्ञानके ऋजुमति और विपुलमति भेद है उसही भांति उसके ही विशुद्धि और अप्रतिपात भी भेद हैं। यदि यही अभिप्राय है तव तो इस सूत्रमे च शब्दका प्रयोग करना चाहिये ॥ (उत्तर) च शब्दका उल्लेख नहीं करना चाहिये क्योंकि जिस प्रकार मनः पर्ययज्ञानके ऋजुमति और विपुलमति भेद हैं उसी प्रकार यदि विशुद्धि और अप्रतिपात भी मनः पर्ययज्ञानके भेद होते तव तो सूत्रमें च शब्द कहना युक्त होता । सो तो है नहीं किंतु वे (विशुद्धि और अप्रतिपात) ऋजुमति और विपुलमतिके समान भेद नहीं हैं वरन विशुद्धि और अप्रतिपात ये दोऊ ऋजुमति विपुल मतिका स्वरूप विशेप है । तिससे च शब्दका अप्रयोग है ॥ सारांश इन दोनो ऋजुमति और विपुलमति मनः पर्ययज्ञानोंमे ऋजुमति विशुद्ध है और विपुलमतिमनः पर्ययज्ञान ऋजुमतिकी अपेक्षासे द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव के विशेप जाननेकरि विशुद्धतर है अथवा अधिक विशुद्ध है । ऋजुमति प्रतिपाती है विपुलमति अप्रतिपाती है इसलिये स्वरूप विशेप होने से च शब्द सूत्रमे नहीं लाये है ॥

तत्र विशुध्द्या तावत्--ऋजुमतेर्विपुलमतिर्द्रव्यक्षेत्रकालभावैर्विशुद्धतरः । कथमिह ? यः कार्मणद्रव्यानन्तभागोऽन्त्यः सर्वावधिना ज्ञातस्तस्य पुनरनन्तभागीकृतस्यान्त्यो भागः ऋजुमतेर्विषयः । तस्य ऋजुमतिविषयस्यानन्तभागीकृतस्यान्त्यो भागो विपुलमतेर्विषयः । अनन्तस्यानन्तभेदत्वात् ॥ द्रव्यक्षेत्रकालतो विशुद्धिरुक्ता ।

तत्र* विशुद्ध्या ;॥ तावत* ऋजुमतेः ५। =तहां विशुद्धताकरि तौ (=तावत) ऋजुमति मनः पर्यय ज्ञानसे

विपुलमतिः ;। द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावैः ;। =विपुलमतिमनः पर्यय ज्ञान द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव (के विशेष जानने) करि

विशुद्धतरः ;। कथम् ? * इह* =अधिक वा अतिशय विशुद्ध है (=विशुद्धतरः) यह (=इह) कैसे (=कथम्) ?

यः ;। कार्मणद्रव्य-अनन्तभागः ;। अन्त्यः ;। =जो कार्माण द्रव्य के अन्तिम (=अन्त्य) अनंतवां भाग

सर्वावधिना ; ज्ञातः ;। तस्य ;। पुनः* =सर्वावधिज्ञान द्वारा जाना गया है तिस (अंतिम अनंतवा भाग) के फिर (=पुनः)

अनन्तभागीकृतस्य ;। अन्त्यः ;। भागः ;। =अनंत भाग किये जायँ (तौ यह) अंतिम भाग वा अन्त का अंश (=अन्त्यः भागः)

ऋजुमतेः ;। विषयः ;। =ऋजुमतिमनः पर्यय ज्ञान का विषय है अर्थात् कार्माण द्रव्य के अनन्तवें भागके अनन्तवे भाग रूपी द्रव्य को ऋजुमति मनः पर्यय ज्ञान वाला जानता है

तस्य;। ऋजुमतिविषयस्य ;। अनन्तभागीकृतस्य ;। =तिस ऋजुमतिमनः पर्यय ज्ञान के विषय के अनन्त भाग किये जायँ (तौ यह)

अन्त्यः ;। भागः ;। विपुलमतेः ;। विषयः ;। =अंत का वा अंतिम भाग विपुलमति मनः पर्यय ज्ञानका विषय है अर्थात् जिस अनंतवें भागको ऋजुमति मनः पर्यय ज्ञानने विषय किया है उसका भी अनंतवां भाग जो कि दूर व्यवहित (=किया हुआ) और सूक्ष्म है विपुलमतिमनः पर्यय ज्ञानका विषय है

अनन्तस्य ;। अनन्त-भेदत्वात् ५॥ =क्योंकि अनन्त की (गिनती वा गणना के) अनंत भेद होते हैं (अतः अनन्त में और अनन्त के अनन्तावे भाग में अनन्त का भाग फिर फिर कहा है)

द्रव्य-क्षेत्र-कालतः* विशुद्धि-उक्ता ;॥ =द्रव्य, क्षेत्र, काल (की अपेक्षा) से विशुद्धता वा उज्ज्वलता कही गई अर्थात् द्रव्यकी अपेक्षासे तो विशुद्धता यहां कही; क्षेत्र और कालकी अपेक्षाके लिये देखो पृष्ठ४५३,४५४,४५५

भावतो विशुद्धिः सूक्ष्मतरद्रव्यविषयत्वादेव वेदितव्या, प्रकृष्टक्षयोपशमविशुद्धियोगात् ॥ अप्रतिपातेनापि विपुलमतिर्विशिष्टः। स्वामिना प्रवर्द्धमानचारित्रोदयत्वात् ॥ ऋजुमतिः पुनः प्रतिपाती, स्वामिनां कषायोद्रेकाद्धीयमानचारित्रोदयत्वात् ॥

यद्यस्य मनः पर्ययस्य प्रत्यात्ममयं विशेषः, अथानयोरवधिमनःपर्यययोः कुतो विशेष इत्यत आह---

भावतः *	=भाव (की अपेक्षा) से (ऋजुमतिमनः पर्ययज्ञानसे विपुलमति मनः पर्ययज्ञानमें)
विशुद्धिः ;॥ सूक्ष्मतर-	=(परिणामों की) उज्ज्वलता वा विशुद्धता अधिक सूक्ष्म (सूक्ष्मतरः)
द्रव्य-विषयत्वात ;॥ एव* वेदितव्या ;॥	=द्रव्यके जानपनेसे ही जानना योग्य है
प्रकृष्ट-	=क्योंकि (ऋजुमतिमनः पर्ययज्ञान से विपुलमति मनः पर्ययज्ञान में) उत्कर्ष
क्षयोपशम-विशुद्धि-योगात ;।	=(मनः पर्ययज्ञानावरणीय कर्मके) क्षयोपशमकी उज्ज्वलताका प्रसग है अर्थात विपुलमति मनः पर्यय ज्ञान अत्यन्त सूक्ष्म द्रव्यको विषय करता है इसलिये उसका अत्यन्त सूक्ष्म रूपी पदार्थोंका विषय करनाही भावकी अपेक्षा विशुद्धि है॥
अप्रतिपातेन ; अपि *	=(संयमकी) घट वारी न होने की अपेक्षा से भी (ऋजुमति मनः पर्यय ज्ञानसे)
विपुलमतिः ;। विशिष्टः ;। स्वामिनाम् ;।	=विपुलमतिमनः पर्ययज्ञान विशेषयुक्त वा श्रेष्ठ है क्योंकि (इसके) स्वामियों के अर्थात् विपुलमतिमनः पर्ययज्ञानियोंके वा विपुल मतिज्ञान धारकोंके
प्रवर्द्धमान-चारित्र-उदयत्वात ;॥	=बढ़ेहुये चारित्र का उदय होताहै (संयम बढ़ताई जाता है जबतक केवली न हो)
पुनः * ऋजुमतिः ;। प्रतिपाती ;।	=और (=पुनः) ऋजुमतिमनः पर्ययज्ञान प्रतिपाती है अर्थात् चारित्र छूटभी जाताहै
स्वामिनाम ;।	=क्योंकि (=इसके) अधिपतियों के अर्थात् ऋजुमतिमनः पर्ययज्ञानियोंके
कषाय-उद्रेकात् ;। हीयमानचारित्र उदयत्वात ;॥	=कषायकी उत्कटतासे हीयमान (घटते हुए) चारित्रका उदय होता है
यदि * अस्य ;। मनः पर्ययस्य ;। प्रत्यात्मम् ;। अयम्	=जो इस मनः पर्यय ज्ञानका अपना स्वरूप प्रति (प्रति-आत्मम्) यह
विशेष ;। अथ * अनयोः ;। अवधिमनः पर्ययोः ;।	=विशेष है तो अब (अथ) इनदोनों अवधिज्ञान और मनः पर्ययज्ञानों में
कुतः * विशेषः ;। इति* अतः * आह T	=क्योंकर भेदहै ऐसा (प्रश्न होने पर) इसलिये (आचार्य कहते हैं कि

विशुद्धिक्षेत्रस्वामिविषयेभ्योऽवधिमनः पर्यययोः ॥ सूत्र २५ ॥

विशुद्धिक्षेत्रस्वामिविषयेभ्योऽवधिमनःपर्यययोः २५

=विशुद्धिक्षेत्रस्वामिविषयेभ्योऽवधिमनः पर्यययोः (विशेषः भवति)

विशुद्धि-क्षेत्र- =विशुद्धता उज्ज्वलता वा निर्मलता, जहां तकके विद्यमान पदार्थोंके ज्ञानका होना

स्वामिन्-विषयेभ्यः ५।३ =स्वामी वा ज्ञानोंका प्रयोग करने वाला और ज्ञेय वस्तुओंके हेतुसे अर्थात् इन चारोंकी अपेक्षासे वा विलक्षणतासे

अवधिमनपर्यययोः ७।२ =अवधिज्ञान और मनः पर्यय ज्ञानोंमें

विशेषः १।१ भवति T =विशेष, भेद वा अंतर होता है भावार्थ अवधिज्ञानकी अपेक्षासे मनः पर्यय ज्ञान अधिकतर विशुद्ध है (जितने रूपी पदार्थोंको अवधिज्ञान वाला जानता है उनको मनः पर्ययज्ञानी मनोगत होने पर भी अधिकतर शुद्धता से जान लेता है अवधिज्ञानीसे मनः पर्ययज्ञानीके परिणामोमें अधिकतर विशुद्धता है) ॥

( ) अवधिज्ञानसे मनः पर्ययज्ञान थोडे क्षेत्रवाला है। अवधिज्ञानके उत्पत्तिका क्षेत्र त्रसनाली पर्यंत है और विषयका क्षेत्र सर्व लोक है। मनः पर्ययज्ञान मनुष्य लोकमेंही उत्पन्न होता है और मनुष्य लोकका विष्कम्भ पैतालीस लाख योजन चौडा और पैतालीस लाख योजन लंबा समान चौकोर घनरूप प्रतर क्षेत्र (यहां ऊंचाई थोडी है इससे घन प्रतर कहा है) इसका विषय है क्योकि मानपोत्तर पर्वतके बाहिर चारो कोनों में तिष्ठते देव और तिर्यंच द्वारा चिंतित और स्थित पदार्थोंको भी विपुल मति मनः पर्यय ज्ञान जानता है ॥

( ) अवधिज्ञानसे मनः पर्ययज्ञानके स्वामी वा ज्ञानोंके प्रयोग करने वाले थोडे हैं संख्यामें न्यून हैं क्योंकि अवधिज्ञान चारो गतिके सैनी पंचेंद्रिय जीवोंके होता है और मनः पर्ययज्ञान गर्भज मनुष्य कर्मभूमिके पर्याप्तनिकेही प्रमत्त छठवें गुणस्थानसे क्षीणकषाय बारहवां गुणस्थान तक उपजे है इत्यादि देखो पृष्ठ ४६४ से ४६६ तक ॥

(१) इस सूत्रका हमारे यहां सर्वत्र एक पाठ है ॥ श्वेताम्बर आम्नायमे 'मन. पर्यय' शब्दके स्थानमे 'मनःपर्याय' है शेष पाठ दोनो संप्रदायोमे एक है। मन पर्यय और मनःपर्याय दोनो एकार्थवाची हें। हमारी समझमे मन पर्यय लिखना ठीक है क्योंकि सूत्रका पाठ लघु होजाता है ॥ दोनों सम्प्रदायमें इस सूत्रका अर्थ भी एकसा है ॥ श्वेताम्बर आम्नायमे "द्विविधोऽवधिः" २१ सूत्रके अधिक होनेस इस सूत्रकी गणना २६वी है हमारे यहा पच्चीसवीं है ॥

विशुद्धिः प्रसादः । क्षेत्रं यत्रस्थान्भावान्प्रतिपद्यते । स्वामी प्रयोक्ता । विषयो ज्ञेयः ॥ तत्रावधेः

(१) अवधिज्ञानसे मनः पर्यय ज्ञानका विषय सूक्ष्म है। कार्माण द्रव्य के जिस अंतिम अनंतवें भागको सर्वावधि ज्ञानने विषय कर रक्खा है उस अनतवें भागका भी अनंतवां भाग ऋजुमतिमनः पर्यय ज्ञानका विषय है और जिस अनंतवें भागको ऋजुमतिमनः पर्ययज्ञानने विषय किया है उसका भी अनंतवां भाग जोकि दूर व्यवहित और सूक्ष्म है वह विपुलमतिमनः पर्ययज्ञानका विषय है (देखो सूत्र२७,२८) क्योंकि अनंतके अनंतभेद माने हैं॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित पच्चीसवां सूत्रपर संस्कृत सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दशः अनुवाद

विशुद्धिः ₁॥ प्रसादः ₁। क्षेत्रम् ₁॥ यत्र * =उज्ज्वलता, निर्मलता है वह विशुद्धि वा प्रसाद है॥ क्षेत्र वह है जहां तकके
स्थान् ₂। भावान् ₂। प्रतिपद्यते T =तिष्ठेहुये भावनिकों वा रूपी पदार्थों को प्राप्त होता है अथवा जानता है
प्रयोक्ता ₁। स्वामी ₁। विषयः ₁। ज्ञेयः ₁। तत्र अवधेः ₆=(ज्ञानोंके) प्रयोग करनेवाला स्वामी है॥ ज्ञेयवस्तु सो विषय है। तहां अवधि ज्ञानसे

[१] प्रश्नः—शास्त्रों में मनः पर्यय ज्ञान की अपेक्षा अवधिज्ञान का विषय अधिक द्रव्य वतलाया गया है और मनः पर्यय ज्ञानका विषय अल्प द्रव्य कहाहै क्योंकि सर्वावधिके विषयभूत रूपीद्रव्य का अनतवां भाग मनः पर्यय ज्ञानका द्रव्य वा विषय है (सूत्र२८) और यह वात प्रसिद्ध है कि जिसका विषय अधिक द्रव्य होता है वह अधिक विशुद्ध और जिसका विषय न्यून वा अल्प द्रव्य होता है वह अल्प विशुद्ध कहा जाता है अतः अधिक द्रव्यको विषय करने के हेतु मनः पर्ययज्ञान की अपेक्षासे अवधिज्ञान अधिक विशुद्ध है और अल्प द्रव्यको विषय करनेके कारण मनः पर्यय ज्ञान अल्प विशुद्ध है॥ (उत्तर) संसारमें एक मनुष्य तो ऐसा है जो समस्त शास्त्रोंका व्याख्यान तो कररहा है परन्तु उनका एक देश रूपसेही व्याख्यान करता है, कहां क्या लिखा है, किस रूपसे लिखा है इस प्रकार समस्त रूपसे उनके अर्थका व्याख्यान नहीं करसकता-वैसा करनेमें असमर्थ है। दूसरा मनुष्य ऐसा है कि केवल एकही शास्त्रका व्याख्यान कररहा है परन्तु प्रत्येक अर्थ को भिन्न भिन्न दर्शा कर समस्त रूपसे अर्थ के कहनेमें समर्थ है। इन दोनों प्रकारके मनुष्योंमें पीछे का मनुष्य विशेष विशुद्ध ज्ञान का धारक समझा जाता है उसी प्रकार यद्यपि मनः पर्यय ज्ञानकी अपेक्षा अवधिज्ञान का विषय अधिक द्रव्य है परन्तु वह उसे एक देश स्थूल रूपसे जानता है और मनः पर्यय ज्ञानका विषय अवधिज्ञान के विषय का अनतवां भाग है तो भी वह वहुत से रूप आदि पर्यायों के साथ समस्त रूपसे जानता है इसलिये अवधिज्ञान की अपेक्षा मनः पर्ययज्ञान ही अधिक विशुद्ध है॥

मनःपर्ययो विशुद्धतरः । कुतः । सूक्ष्मविषयत्वात् ॥ क्षेत्रमुक्तं विशेषो वक्ष्यते ॥ स्वामित्वं प्रत्युच्यते ।

मनः पर्ययः ॥ विशुद्धतरः ॥ कुतः = मनः पर्ययज्ञान अतिशय या अधिकतर विशुद्ध है । क्योंकि (विशुद्धतर है)

सूक्ष्म-विषयत्वात् ॥ = क्योंकि (मनः पर्ययज्ञानका अवधिज्ञानसे) विषय या जानपना सूक्ष्म है

क्षेत्रम्-॥ उक्तम् ॥ = क्षेत्र (अवधिज्ञान और मनः पर्ययज्ञानका) (पहिले) कहा गया है अर्थात् ऋजुमतिमनः पर्ययज्ञानका विषय क्षेत्रकी अपेक्षासे जघन्यकरि तीनसे ऊपर नौ से नीचे कोश है । उत्कृष्टकरि तीनसे ऊपर नौसे नीचे (=पृथक्त्व) योजनके भीतर है न कि बाहिर । (विपुलमतिमनः पर्यय ज्ञानका विषय) क्षेत्र (की अपेक्षासे जघन्यकरि तीनसे ऊपर नौसे न्यून (=पृथक्त्व) योजन प्रमाण है । उत्कृष्टकरि (विपुलमति मनः पर्यय ज्ञानका विषय क्षेत्रकी अपेक्षासे) मानुषोत्तर पर्वतके भीतर भीतर है न कि बाहिर (देखो पृष्ठ ४५४–४५५–टिप्पणी (१) पृष्ठ ४५५की अवश्य देखो) बहुरि "अवधिज्ञानके उत्पत्तिका क्षेत्र त्रसनाली पर्यंत है अर विषयका क्षेत्र सर्वलोक है" अर्थप्रकाशिका सूत्र २५ चारों गतियोंकी अपेक्षासे अवधिज्ञानके क्षेत्रके संबन्धमें (पृष्ठ ४३५, ४३६, ४३७ अवश्य देखो)

विषयः ॥ = विषय (अर्थात् अवधि मनः पर्ययज्ञानके जानपने का भेद सूत्र २७, २८)में

वक्ष्यते = कहा जायगा आगामी अवधिज्ञान और मनः पर्ययज्ञान रूपी पदार्थों को विषय करते हैं सर्वावधि ज्ञानके विषयसे अनन्तवां भाग सूक्ष्म मनःपर्यय ज्ञानका विषय होता है (तदनन्तभागे मनःपर्ययस्य सूत्र २८) ॥

स्वामित्वम् ॥ = (अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञानमें) स्वामीपन या अधिपतिपन (का भेद)

प्रत्युच्यते = कहा जाता है ।

प्रकृष्टचारित्रगुणोपेतेषु वर्तते ऽप्रमत्तादिक्षीणकषायान्तेषु। तत्र चोत्पद्यमानः प्रवर्द्धमानचारित्रेषु न हीयमानचारित्रेषु।

प्रकृष्ट-चारित्रगुण-उपेतेषु ७। प्रमत्त-आदि-	=उत्तम चारित्र गुणको प्राप्त होने पर प्रमत्त (छठे गुणस्थान) से
क्षीणकषाय-अन्तेषु ७। वर्तते T	=क्षीणकषाय (बारहवां गुणस्थान) पर्यन्तमें (मनः पर्ययज्ञान) होता है अर्थात् प्रमत्तसंयमी मुनिसे लेकर क्षीणकषाय संयमी मुनियों तकके उक्त ज्ञान होता है
तत्र* च* उत्पद्यमानः १।	=तहां (छठे गुणस्थान से बारहवें तक) भी (=च) उपजने वाला वा उपजाऊ (मनः पर्यय)
प्रवर्द्धमान-चारित्रेषु७। न* हीयमान-चारित्रेषु७।	=बढते हुये वा वृद्धिशील चारित्रों वालोंमें है न कि घटते हुये चारित्रों वालोंमें भावार्थ छठे गुणस्थान वर्तीनि से बारहवां गुणस्थान वर्तीनि में भी सब कें मनः पर्ययज्ञान नहीं होता है वरन कषायोंकी दिनोंदिन मंदतासे बढते हुये चारित्र के ही धारक मुनियोंकेही होता है और कषायोंकी उत्कटतासे घटते हुये चारित्रवाले मुनियोंकें कदापि उक्तज्ञान नहीं होता है

(१) अवधिज्ञान और मनः पर्ययज्ञानके स्वामित्वके अंतर दिखानेमें यह भेद लिख देना भी उचित है कि अवधिज्ञानका स्वामी अपर्याप्त अवस्था वाला जीव होसक्ता है परंतु अपर्याप्त अवस्था वाला जीव मनः पर्ययज्ञानका स्वामी नहीं होसक्ता अर्थात् जीवके अवधिज्ञान अपर्याप्त अवस्थामे हो सक्ता है मनःपर्ययज्ञान नहीं होसक्ता है (सामान्यसे अवधिज्ञानके देशावधि, परमावधि, सर्वावधि तीन भेद होते हैं। भवप्रत्ययअवधि नियमसे देशावधि ही होता है। और दर्शनविशुद्धि आदि गुणोके निमित्तसे होने वाला गुणप्रत्यय अवधिज्ञान देशावधि परमावधि सर्वावधि ऐसें तीनो प्रकारका होता है। जघन्य देशावधिज्ञान संयत तथा असंयत दोनोंही प्रकारके मनुष्य तथा तिर्यंचोके होता है। उत्कृष्ट देशावधिज्ञान संयत जीवोंके ही होताहै किन्तु परमावधि और सर्वावधि चरमशरीरी और महाव्रतीकेही होता है। देशावधिज्ञान प्रतिपाती होता है (=सम्यक्त्व और चारित्रसे च्युत होकर मिथ्यात्व और असंयमकी प्राप्ति) और परमावधि तथा सर्वावधि अप्रतिपाती होते हैं। देशावधि परमावधिके जघन्य मध्यम उत्कृष्ट भेद संभवे हैं किन्तु सर्वावधिज्ञानमें जघन्य मध्यम उत्कृष्ट भेद नहीं हैं – वह निर्विकल्प है ॥

"भवानुगामी अवधिज्ञान अपर्याप्त अवस्थामे व्यक्तिरूपसे रहता है जैसेकि तीर्थंकरोके पूर्ण श्रुतज्ञान जन्म समयमें भी होता है। किन्तु द्रव्य क्षेत्रकी सामग्रीके न मिलनेसे अपर्याप्त अवस्थामे स्फूर्ति अल्प होती है अविभाग प्रतिच्छेद भी श्रुतकेवलीके श्रुतज्ञानसे कम होते हैं तद्वत् सम्यग्दृष्टि देव नारकियों के अपर्याप्त अवस्थामें भी अवधिज्ञान होता है और वह व्यक्त है" विद्वद्वर्य पं० माणिकचंद मोरेना से प्राप्त ॥

प्रवर्द्धमानचारित्रेषु चोत्पद्यमानः सप्तविधान्यतमर्द्धिप्राप्तेषूपजायते नेतरेषु। ऋद्धिप्राप्तेषु केषुचिन्न सर्वेष्विति॥

प्रवर्द्धमानचारित्रेषु ७। च* उत्पद्यमानः १।	=बढ़ते हुये चारित्र (वाले) निमें भी उपजने वाला वा उपजाऊ (मनः पर्ययज्ञान)
सप्तविध-अन्यतम-ऋद्धि-	=सात प्रकारकी (=विध) ऋद्धियोंमे से कोई एक (=अन्यतम ऋद्धि)
प्राप्तेषु ७। उपजायते। न* इतरेषु ७।	=प्राप्त होने (वालों) में उपजता है नकि अन्योंमें (=विना ऋद्धि प्राप्त वालोंमें)
ऋद्धि-प्राप्तेषु ७। केषुचित* न* सर्वेषु ७। इति*	=ऋद्धप्राप्त वालोंमें केईकनि में (मनः पर्ययज्ञान) होय नकि सबमें॥

(२) अन्यतमर्द्धि=अन्यतम + ऋद्धि [देखो टिप्पणी (१) पृष्ठ ७४] (३) उपजायते·— इस शब्दमें 'जन्' चतर्थ दिवादि गणका अकर्मक आत्मने पदी धातुहै चतर्थगणका 'य' विकरण (अर्थात वह अक्षर है जो रूप वनाने से प्रथम धातुमें जोडा जाता) है। 'जन्' का विना किसी नियमके रूपोंके वनानेमें 'जा' होजाता है इस जा में य लगानेसे 'जाय' होजाता है। पश्चात एक वचन अन्यपुरुष आत्मनेपदी वर्तमान कालका द्योतक 'ते' प्रत्यय लगानेसे जायते वनजाता है अर्थ "होता है" ऐसाहै (वेद्य संस्कृत कोश पृष्ठ २८३) 'उप' उपसर्गके जोडने से 'उपजायते' (=उपजताहै) वनता है॥ स्मरण रहे कि 'जन' धातुके जन्यते, जायते दो रूप कर्मणि प्रयोगमें वनते हैं॥ ऐसेकि जन्-जा में कर्मणि प्रयोगका 'य' जोडने से और पश्चात् उक्त, 'ते' आत्मनेपदी एक वचन वर्तमानकाल अन्य पुरुषका प्रत्यय लगाकर 'जा+य+ते' जायते जन्+य+ते=जन्यते वनजाते हैं॥ अर्थ उत्पन्न किया जाता है ऐसा है॥

(१) जहां पर विशिष्ट वा प्रवर्द्धमान संयम होगा वहीं मनःपर्ययज्ञान होगा अन्यत्र नहीं। इसकी विशेष व्याख्या इस प्रकार है कि मनः पर्यय ज्ञानकी उत्पत्ति मनुष्योंके ही होती है देव नारकी और तिर्यंचोंमें नहीं होती। मनुष्योंमें भी गर्भज मनुष्योंमें ही होती है संमूर्छनज मनुष्यों में नहीं होती। (राजवार्तिक पृष्ठ ५९)

गर्भज मनुष्योंमें भी कर्म भूमिके मनुष्योंके ही होती है भोगभूमिके मनुष्योंमें नहीं हो सकती। कर्म भूमिके मनुष्योंमें भी छहौ पर्याप्ति पूर्ण होने से जो पर्याप्तक हैं उन्हींके होती है अपर्याप्तकों के नहीं। पर्याप्तकोंमें भी सम्यग्दृष्टियोंके ही वह उत्पन्न-होताहै, मिथ्यादृष्टि सासादनसम्यग्दृष्टि सम्यङ्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानवर्तियों के नहीं। सम्यग्दृष्टियों में भी जो मनुष्य संयमी है उन्हीं के होता है असंयत सम्यग्दृष्टि चतुर्थ गुणस्थानवर्तियो और संयतासंयत पांचवें गुणस्थानवर्तियोके नहीं। संयमियों में भी छठे गुणस्थान प्रमत्तसे वारहवें क्षीणकषाय गुणस्थान पर्यंत संयमियोंके ही होता है। वारहवें गुणस्थानके आगेके गुणस्थानोंमें रहने वाले संयमियों के नहीं। छठे गुणस्थान से वारहवें गुणस्थानतक होनेपरभी जिनका चारित्र कषायोंकी दिनों दिन मंदतासे दिनोंदिन वर्धमान है उन्हींके होता है किन्तु कषायोंकी उत्कटतासे जिनका चारित्र हीयमान है मद होता चला जाता है।

अस्य स्वामिविशेषविशिष्टसंयमग्रहणं वाक्ये कृतम् ॥

अस्य ६।१। स्वामिविशेष-विशिष्टसंयम-	=इस (मनः पर्यय) के (अवधि से) स्वामीके भेदमें विशिष्ट संयम (=विलक्षण चारित्र) का
ग्रहणं १।१। वाक्ये ७।१। कृतम् १।१।	=ग्रहण वाक्य ('प्रकृष्टचारित्रगुणोपेतेषु वर्तते' इस वाक्य) में किया है (नकि सूत्रमें)
	भावार्थ मनः पर्ययज्ञान की उत्पत्तिमें विशिष्ट संयमका ग्रहण प्रधान हेतु है

उनके नहीं होता। प्रवर्धमान चारित्रवालोंमे भी सात प्रकारकी (बुद्धि-तप-वैक्रियिक-औषध-रस-बल-अक्षीण) की ऋद्धियोंमें जिनके कोई एक ऋद्धि होगी उन्हींके होता है किंतु जिनके कोई प्रकारकी ऋद्धि नहीं है उनके नहीं होता है। तथा ऋद्धि धारक पुरुषोंमें भी किन्हीं किन्हींके होता है सबोंके नहीं होता। इस प्रकार मनः पर्यय ज्ञानकी उत्पत्तिमें विशिष्ट संयमका ग्रहण प्रधान कारण बतलाया है। परंतु अवधिज्ञान देव मनुष्य तिर्यंच और नारकी चारों गतियोंके जीवोंके होता है इस रूपसे अवधि और मनः पर्ययके स्वामियोंका भेद होनेसे भी दोनों ज्ञानोंमें भेद है ॥

(१) अस्यायं स्वामिविशेषः विशिष्टं संयमग्रहणं वा प्राक्कृतम् ॥ इत्येकः पाठः ॥ अस्यायं स्वामिविशेषः विशिष्ट संयतग्रहणं वा कृतं न सूत्रे ॥ इत्यप्यन्यः पाठः पुस्तकान्तरे विद्यते ॥

अस्य ६।१। अयम् १।१। स्वामी विशेषः १। विशिष्टं १।१। वा संयम	=इस (मनः पर्ययज्ञान) के यह स्वामीका विशेष अथवा विशिष्ट-संयमका
ग्रहणं १।१। प्राक्-कृतम् १।१।	=ग्रहण पहिले (अर्थात् सर्वार्थ सिद्धिकी वृत्ति"प्रकृष्ट चारित्र गुणोपेतेषु"में) किया है
इति* एकः १। पाठः १। अस्य ६।१। अयम् १। स्वामिविशेषः १।	=ऐसा एक पाठ है। इस मनः पर्ययज्ञानके यह स्वामीका विशेष वा भेद
वा* विशिष्ट-संयतग्रहणं १।१। कृतम् १।१। न* सूत्रे ७।१।	=वा विशिष्ट संयमका ग्रहण(तत्त्वार्थ)सूत्रमें नहीं किया है (वाक्य वा वृत्तिमे किया है)
इति* अपि* अन्यः १ पाठः १। पुस्तक-अन्तरे विद्यते।	=ऐसे भी दूसरा पाठ अन्य पुस्तक (सर्वार्थसिद्धिकी दूसरी प्रति) में विद्यमान है

इन तीनों वाक्योके हिंदी अनुवादसे प्रगट है कि सस्कृतके ऊपरके वाक्य और टिप्पणीके दो वाक्योंका आशय एकसा है॥ तत्त्वार्थराजवार्तिकमें इस २५वां सू०की "विशिष्टसंयमगुणैकार्थसमवायी मन पर्ययः दूसरी वार्तिक है॥ अर्थ—विशेष रूप संयम गुणकरि एकार्थ समवायी मनः पर्यय ज्ञान है अर्थात् मनःपर्ययज्ञानका अविनाभाव विशिष्ट संयम गुणके साथ है। इसकी वृत्ति 'विशिष्टः संयम गुणो यत्रविद्यते तत्रैव वर्तते मनः पर्ययः' है जहां विशुद्ध संयम हो तहां ही मनः पर्ययज्ञान प्रवर्ते है (अन्यत्र नहीं)॥ इसी वृत्तिमे 'विशिष्टसंयमग्रहणं वाक्ये कृतम्' का अर्थ पन्नालाल दूनी जीने "यातै विशिष्ट संयम पदका ग्रहण वाक्यमें है" यहां वाक्यका अर्थ 'वार्तिकमें है' अथवा 'वृत्तिमें है' होगा क्योंकि विशिष्टसंयम पद वृत्ति वार्तिक दोनोमे आया है विशिष्टसंयम, प्रकृष्ट चारित्र, विशुद्धसंयम वा विशुद्ध चारित्र एकार्थवाची है॥ हमारी समझमें जैसा अर्थ आया वही लिखा

अवधिः पुनश्चातुर्गतिकेष्विति स्वामिभेदादप्यनयोर्विशेषः ॥ इदानीं केवलज्ञानलक्षणाभिधानं प्राप्तकालं तदुल्लंघ्य ज्ञानानां विषयनिबन्धः परीक्ष्यते ॥ कुतः? । तस्य मोहक्षयात ज्ञानदर्शनावरणान्तरायक्षयाच्च केवलमित्यत्र वक्ष्यमाणत्वात् ॥ यद्येवमाद्ययोरेव तावन्मतिश्रुतयोर्विषयनिबन्ध उच्यतामित्यत आह-

---

पुनः॰ अवधिः १। चातुर्गतिकेषु ७। इति॰	=परंतु (=पुनः) अवधिज्ञान चारों गतिवालोंमें है इस प्रकार
स्वामिभेदात् ५। अपि॰ अनयोः ६॥ विशेषः १।	=स्वामी विशेषसे भी दोनो (अवधिज्ञान तथा मनः पर्ययज्ञान) में भेद है अर्थात् मनः पर्ययज्ञान तो केवल विशिष्ट संयम धारक मुनियों के ही होता है परंतु अवधिज्ञान देव मनुष्य तिर्यंच और नारकी चारों गतियों के जीवों के होता है इस प्रकार अवधि और मनः पर्ययके स्वामियोंका भेद होनेसे भी दोनों ज्ञानोंमें भेद है
इदानीं॰ केवलज्ञान-लक्षण-अभिधानं१॥ प्राप्तकालं१॥	=अत्र (=इदानीम्) केवलज्ञानके स्वरूपके कथनका अवसर प्राप्त है
तद्-उल्लंघ्य — ज्ञानानां६॥ विषयनिबन्धः१। परीक्ष्यते T	=उसको छोड़कर (=उल्लंघ्य) ज्ञानोके विषयोंकी सीमा वा नियम परखा जाय है
कुतः ॰	=(केवल ज्ञानके स्वरूपके कथनको छोडकर ज्ञानोंके विषय नियम) क्यों (कहते हैं)
तस्य ६॥ मोह-	=(उत्तर) क्योकि तिस (केवलज्ञान) के (लक्षण अभिधानको) मोहनीय कर्मके
क्षयात् ५। च॰ ज्ञानदर्शन-आवरण-	=नाश होने (के हेतु) से और (=च) उसके पश्चात् ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय
अन्तराय-क्षयात् ५। केवलम् १॥ इति॰	=अन्तराय कर्मोके क्षय होने (के निमित्त) से केवलज्ञान होता है इस प्रकार
अत्र॰ वक्ष्यमाणत्वात् ५॥	=यहां (अर्थात् दशवां अध्यायके प्रथम सूत्रमें) कहा जायगा
यदि॰ एवम्॰ आद्ययोः ६॥ एव॰ तावत्॰	=जो ऐसे है तो (=तावत्) आदिके दोही (=एव)
मतिश्रुतयोः ६॥ विषय-निबन्धः १। उच्यताम् T इति	=मतिज्ञान, श्रुतज्ञानके विषयका नियम (=निबन्ध) कहा जाना चाहिये
अतः॰ आह T	=इस लिये (आचार्य) कहते हैं कि

---

(१) पुनः = परंतु – किंतु (" पुनरप्रथमे भेदे तथा पक्षांतरेऽपिच " इत्यमरः सार. ॥ पुनर् अप्रथमे भेदे पक्षांतरे अपि च ॥

मतिश्रुतयोर्निबन्धो द्रव्येष्वसर्वपर्यायेषु ॥ २६ ॥

सूत्रम्— मतिश्रुतयोर्निबन्धो द्रव्येष्वसर्वपर्यायेषु	=मतिश्रुतयोः विषयस्यनिबन्धः द्रव्येषु असर्व-पर्यायेषु भवति
सूत्रार्थः मतिश्रुतयोः६॥ विषयस्य६। निबन्धः१।	=मतिज्ञान और श्रुतज्ञानके विषयका सम्बन्ध वा नियम (=निबन्ध)
द्रव्येषु ७॥	=द्रव्य (जीव-अजीव-धर्म-अधर्म-आकाश-काल) निकेविषैं
असर्व-पर्यायेषु ७॥ भवति T	=कुछ एक, कतिपय, कितनेक, (न कि सब) पर्यायोंमें होता है अर्थात् मतिज्ञान और श्रुत ज्ञानके जानने (=विषय) का संबन्ध सब (छहो) द्रव्योंके कुछ पर्यायों में होता है—छहो द्रव्यों को तो जानते हैं परंतु उनकी थोडी सी पर्यायोंको ही जान सकते हैं ॥

(१) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य तत्वार्थाधिगमसूत्रम्में 'द्रव्येष्व' के स्थानमें 'सर्वद्रव्येष्व' है । शेष पाठ एक है अर्थ भी एकसा है क्योंकि हमारे यहां 'द्रव्येषु' का अर्थ सर्वद्रव्येषु लिया है ॥ उक्त सभाष्य०में इस सूत्रकी संख्या सत्ताईसवीं है क्योंकि हमारे यहांके इक्कीसवां सूत्रके सभाष्य०में दो सूत्र कर दिये हैं ॥

(२) हमारे यहांकी बहुधा पुस्तकोंमें 'निबन्ध' शब्दका उल्लेख है किसी किसी प्रतिमें 'निबंध' है । अष्टाध्यायीके निम्न सूत्रोंसे निबध भी ठीक है ॥ पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ२१४में "निबन्ध, (पु०) नि+बन्ध्+घञ्" ऐसा उल्लेख है अब प्रश्न यह है कि इस अपदान्त 'न्'का अनुस्वारमें कैसे परिवर्तन हुआ ॥ अपदान्त म्-न् ॥ "नश्चापदान्तस्य झलि" यह अष्टाध्यायीके आठवां अध्यायका तीसरे पादका चौवीसवां सूत्र है । इस सूत्रसे पहिलेका सूत्र "मोऽनुस्वारः" तेईसवां है । इससे अनुस्वारकी अनुवृत्ति चौवीसवां सूत्रमें आती है । तब चौवीसवां सूत्रका रूप इसप्रकार होजाता है कि "नः च अपादन्तस्य झलि (अनुस्वार)। च से तेईसवां सूत्रके मो (=मः) का आकर्षण होता है । इसलिये ऐसा रूप हुआ कि "नः१ मः१ अपादन्तस्य६ झलि७ अनुस्वारः) झलि प्रत्याहार है और उसमें झल्के मध्यके अक्षर झ सहित सर्व आजाते हैं । अर्थात् क् ख् ग् घ् । च् छ् ज् झ् । ट् ठ् ड् ढ् । त् थ् द् ध् । प् फ् ब् भ् । श् ष् स् ह्—झलिका अर्थ है इन चौवीस अक्षरोंके पहिले आने वाला । अपादन्त=विभक्ति वा कारक जिसके अंतमें नहो । सूत्रका अर्थ यह हुआ कि अपदान्त न् अथवा अपदान्त म् के स्थानमें अनुस्वार होवे यदि म् अथवा न् पूर्वोक्त चौवीस अक्षरोंमेंसे किसी अक्षरके पहिले हो । इसलिये निबन्धके न् का अनुस्वार होकर 'निबंध' होगया क्योंकि न् के पीछे ध् है ॥ अन्य उदाहरण, जैसे यशानस्+इ यशांसि, यह यशांसि, यश नपुंसक लिंगीका बहुवचन है यहां अपदान्त न् का अनुस्वार होगया, यशांसि का अर्थ है बहुत यश ॥ आ+क्रम्+स्यते, क्रम धातुके म् का अनुस्वार होकर आक्रंस्यते (=वह पकडैगा विजय, करेगा, जीतैगा) होगया ॥ देखो टिप्पणी पृष्ठ ५ और ६, पृष्ठ ५४०, ५४१)

निवन्धनं निवन्धः। कस्य विपयस्य। तद्विपयग्रहणं कर्तव्यम्। न कर्तव्यम्॥ प्रकृतं विपयग्रहणं। क प्रकृतं? विशुद्धिक्षेत्रस्वामिविपयेभ्य इत्यतस्तस्यार्थवशाद्विभक्तिपरिणामो भवतीति विपयस्येत्यभिसम्बध्यते॥ द्रव्येष्विति बहुवचननिर्देशः सर्वेषां जीवधर्माधर्माकाशपुद्गलानां संग्रहार्थः। तद्विशेपणार्थमसर्वपर्याय—

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित छव्वीसवा सूत्रपर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दशः अनुवाद

निवन्धनम् १।१। निवन्धः १।	=लगाव (=निवन्धन, जो) है सो निवन्ध है अर्थात् विपयभूत सम्बन्ध है भावार्थ सूत्रमें निवन्ध शब्द है उसका अर्थ संवन्ध है और 'निवन्धनं निवन्ध' उस निवन्ध शब्दकी व्युतपत्ति वा व्याकरण की रीति से उत्पत्ति है वा निकास है।
कस्य ६। विपयस्य ६।	=(प्रश्न) किसका (निवन्ध) (उत्तर) विपयका (निवन्ध)॥ (प्रश्न) उस
विपय-ग्रहणं १।१॥ कर्तव्यम् १।१॥ तद्- न॰ कर्तव्यम् १।१॥	=विपय (शब्द) का ग्रहण (इस सूत्रमें) करना योग्य था। (उत्तर) नहीं करना योग्य था
विपय-ग्रहणं १।१। प्रकृतं १।१॥	=विपय (शब्द) का ग्रहण (इस सूत्रमें) प्रकरण प्राप्त (=प्रकृतं) है
प्रकृतं १।१॥ क ? विशुद्धिक्षेत्रस्वामिविपयेभ्यः ५।	=(प्रश्न) प्रकरण प्राप्त कहां है। (उत्तर) 'विशुद्धिक्षेत्रस्वामिविपयेभ्यः'
इति॰ अतः॰ तस्य ६।	=ऐसा (वाक्य पचीसवां सूत्रमें) है। इस लिये तिस (विपय शब्द) के
अर्थ-वशात् ५।	=आशय वा तात्पर्य के आश्रय से (अर्थात् जहां जैसा अर्थ लिया जाता है वहां वैसाही)
विभक्तिपरिणामः १। भवति T इति॰	=विभक्तिका परिवर्तन वा विपरिणाम वा परिणमन होजाता है। ऐसे
विपयस्य ६।	=(इस सूत्रके मतिश्रुतयोः और निवन्ध शब्दोके वीचमें) विपयस्य
इति॰ अभिसम्बध्यते T द्रव्येषु ७।३॥ इति॰	=ऐसा (पद) लगाया गया है वा जोड़ा गया है। द्रव्येषु (=द्रव्योंके विषैं) ऐसा
बहुवचन-निर्देशः १। सर्वेपाम् ६।	=बहुवचनका जतलाने वाला वा बहुवचनका निर्देशक (वाक्य) सव
जीव-धर्म-अधर्म-आकाश-काल-पुद्गलानाम् ६। संग्रह-	=जीवद्रव्य, धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य, कालद्रव्य पुद्गलोंके समुचयके
अर्थः १। तद्-विशेपण-अर्थम् १।१॥ असर्वपर्याय—	=अर्थ है। उन (द्रव्यो) के विशेपणके लिये असर्वपर्याय (वाक्य) का

ग्रहणम् ॥ तानि द्रव्याणि मतिश्रुतयोर्विषयभावमापद्यमानानि कतिपयैरेव पर्यायैर्विषयभावमास्कन्दन्ति न सर्वपर्यायैरनन्तैरपीति ॥ अत्राह–धर्मास्तिकायादीन्यतीन्द्रियाणि तेषु मतिज्ञानं न प्रवर्तते। अतः सर्वद्रव्येषु मतिज्ञानं वर्तत इत्युक्तम् ॥ नैष दोषः। अनिन्द्रियाख्यं करणमस्ति तदालम्बनो नोइन्द्रियावरणक्षयोपशमलब्धिपूर्वक उपयोगोऽवग्रहादिरूपः प्रागेव–

ग्रहणम् १।।	=ग्रहण है अर्थात् द्रव्येषु शब्द विशेष्य है और असर्वपर्यायेषु विशेषण है
तानि१।।। द्रव्याणि१।।। मतिश्रुतयोः६।। विषयभावम्२।	=ते द्रव्य मति श्रुतज्ञानके विषय भावको
आपद्यमानानि १।।। कतिपयैः ३। एव* पर्यायैः ३।	=प्राप्त हुये (अपने अपने) कितनेंकही पर्यायोंकरि
विषयभावम् २। आस्कन्दन्ति T न*	=विषयभावकों प्राप्त होते हैं न कि
सर्वपर्यायैः ३। अनन्तैः ३। अपि* इति*	=अनन्त सब पर्यायों सहित ही (=अपि) (मतिश्रुतज्ञानके विषय भावको प्राप्त होते हैं)
	सारांश–मतिज्ञान श्रुतज्ञान सब द्रव्यों की कुछ ही पर्यायोंको विषय करते हैं सर्व वा अनंत पर्यायोंको विषय नहीं करते हैं ॥
अत्र* आह T धर्मास्तिकायादीनि १।।।	=यहां प्रश्न करता है (=आह) कि धर्मास्तिकाय आदिक (अधर्म आकाश काल मोक्षजीव)
अतीन्द्रियाणि १।।।	=अतीन्द्रिय (पदार्थ) हैं अर्थात् इन पदार्थोंको इन्द्रियें ग्रहण नहीं कर सकती हैं
तेषु ७।।। मतिज्ञानम् १।। न* प्रवर्तते T	=तिन (धर्मास्तिकायादिक) में मतिज्ञान (जो इन्द्रियों द्वारा होता है) नहीं प्रवर्तता है
अतः* सर्वद्रव्येषु ७।।। मतिज्ञानम् १।। वर्तते T	=इसलिये सब (छहो) द्रव्योंमें मतिज्ञान प्रवर्तता है
इति* अयुक्तम् १।। न* एषः १। दोषः १। अनिन्द्रिय-	=ऐसा (कथन) ठीक नहीं है। (उत्तर) यह दूषण नहीं है। (क्योंकि) मन (अनिन्द्रिय)
आख्यम् १।। करणम् १।। अस्ति T तद्-	=नामा (=आख्यं) (अंतरंग) करण वा इन्द्रिय है (द्रव्यमन है) उस (मन) के
आलम्बनः १।	=निमित्तक वा कारणक (तद्-आलम्बन अर्थात् मन है निमित्त वा हेतु जिसको ऐसा)
नो-इन्द्रिय-आवरण-क्षयोपशम-लब्धि-पूर्वकः १।	=श्रुत(नोइन्द्रिय)ज्ञानावरणकर्मके क्षयोपशमकी प्राप्तिपूर्वक(लब्धिहै निमित्त जिसको ऐसा)
उपयोगः १। अवग्रह-आदिरूपः १। प्राक्* एव*	=उपयोग (है सो) अवग्रह-ईहा-आवाय-धारणा (चतुष्टय) स्वरूप पहिले ही

उपजायते ततस्तत्पूर्वं श्रुतज्ञानं तद्विषयेषु स्वयोग्येषु व्याप्रियते ॥ अथ मतिश्रुतयोरनन्तरनिर्देशार्हस्यावधेः को विषयनिबन्ध इत्यत आह--

उपजायते T ततस॰ तत्- =उपजता है। पश्चात् (ततःदेखो वैद्य कोश पृष्ठ ३००) उस (अवग्रह आदिरूप उपयोग) के
पूर्वम् ।।। =निमित्तक (अर्थात् अवग्रह-ईहा-अवाय-धारणारूप उपयोग है कारण जिसको ऐसा)
श्रुतज्ञानम् ।।। स्वयोग्येषु । तद्- =श्रुतज्ञान अपने योग्य उन धर्मास्तिकाय अतीन्द्रिय पदार्थों) के
विषयेषु । व्याप्रियते T =विषयोंमें (अर्थात् ग्रहण करनेमें) प्रवर्तता है ॥ सारांश यहहै :— प्रश्न करनेपर कि धर्मास्तिकाय पदार्थ इन्द्रिय गोचर नहीं है इन्द्रयोंकी अपेक्षा रखने वाले मतिज्ञानकी, उनके जानने में प्रवृत्ति नहीं हो सकती इसलिये सब द्रव्यों को मतिज्ञान जानता है, यह कहना ठीक नहीं है उत्तरमें कहतेहैं कि. धर्मास्तिकाय आदि पदार्थोंके ज्ञानमें मन कारण है श्रुतज्ञानावरण (=नोइन्द्रियज्ञानावरण) कर्मकी क्षयोपशम लब्धिरूप विशुद्धिके रहनेपर उससे धर्मास्तिकाय आदि अतीन्द्रिय पदार्थों का अवग्रह ईहा अवाय धारणा स्वरूप उपयोग प्रथम ही होलेता हैं उसके पीछे श्रुतज्ञान की अपने योग्य धर्मास्तिकाय अतीन्द्रिय विषयोंमें प्रवृत्ति होती है इसलिये धर्मास्तिकाय आदि अतीन्द्रिय पदार्थोंका ज्ञान जब मनसे होता है तब यह मतिज्ञान नहीं है क्योंकि मनसे भी मतिज्ञान होता है ॥
अथ॰ मतिश्रुतयोः ।।। अनन्तर- =अब मतिज्ञान और श्रुतज्ञानके निकट अथवा लगताही
निर्देश-अर्हस्य । अवधेः । कः । =निरूपण वा कथन करने (=निर्देश) योग्य (=अर्हस्य) अवधिज्ञानके क्या-
विषयनिबन्धः । इति॰ अतः॰ आह T =विषयका नियम है ऐसा (प्रश्न) है ॥ इसलिये कहते हैं कि

(१) "तत्पूर्व" वाक्यमें 'पूर्व' शब्दका प्रयोग उसही भांति है जैसेकि 'श्रुतमति पूर्व द्व्यनेक द्वादश भेदम्' सूत्रमें अर्थात् पूर्वम् =पूर्वकम्
(२) व्याप्रियते– पृ तुदादि छठे गणका यहां पर अकर्मक आत्मने पदी धातु है इसके साथ बहुधा वि, आ (अर्थात् व्या) उपसर्ग आते हैं पृ का प्रिय हो जाता है व्या और छठे गणका 'अ' विकरण जोडनेसे 'व्याप्रिय' होजाता है पश्चात् एकवचन अन्य पुरुष आत्मने पदी वर्तमान कालका 'ते' प्रत्यय लगाकर कर्तरिप्रयोगमें "व्याप्रियते" बनता है। कर्मणिप्रयोग मे 'पृ' का 'प्रि' होजाता है 'य' कर्मणिप्रयोगका प्रत्यय जोड़ो, व्या+प्रिय, पीछे उक्त 'ते' जोड़ो, व्याप्रियते हो जाता है ॥ यहां वृत्ति में कर्तरि प्रयोग मे इस शब्द को लाये हैं।

रूपिष्ववधेः ॥ २७ ॥

विषयनिबन्ध इत्यनुवर्तते ।

रूपिष्ववधेः	=रूपिषु (असर्व-पर्यायेषु) अवधेः (विषय-निबन्ध भवति)
रूपिषु ७। असर्व-पर्यायेषु ७।	=मूर्तीक (पदार्थ) निके (विषै) कितनेक वा थोड़े (नकि सब) पर्यायों में
अवधेः ६। विषय-निबन्धः १। भवति T	=अवधि ज्ञानके विषयका सम्बन्ध होता है - सारांश यहहै कि पुद्गल द्रव्यके अनंते पर्याय अवधिज्ञानके विषयभूत नहींहैं किन्तु उसके कतिपय पर्यायोंको और जीवके औदयिक औपशमिक क्षायोपशमिक परिणामोंको ही (अवधिज्ञान) विषय करताहै क्योंकि रूप रस गंध स्पर्श विशिष्टही पदार्थ अवधिज्ञानके विषय होते हैं अतः जीवके क्षायिक और पारिणामिक भाव तथा धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य, आकाशद्रव्य, कालद्रव्य अरूपीपदार्थ होनेके निमित्त अवधिज्ञान के विषयभूत नहीं होसकते

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित सत्ताईसवां सूत्र पर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दशः हिन्दी अनुवाद

विषयनिबन्धः १। इति* अनुवर्तते T	=विषयका निबन्ध ऐसी अनुवृत्ति (इस सूत्रमें) पच्चीसवां और छवीसवा सूत्रसे यथासंख्य आतीहै तबसूत्र "रूपिष्ववधेः विषयनिबन्धः" ऐसा हुआ

(१) रूपमे रूप रस गंध स्पर्शका ग्रहण समझना चारोंही अविनाभावी हैं। अतः एकके ग्रहणसे चारोंका ग्रहण होता है। तत-वितत छै भांति शब्दहैं।
(२) इस सूत्रका का पाठ हमारे यहां सर्वत्र और श्वेताम्बर अम्नायके सभाष्य तत्त्वार्थअधिगमसूत्रमें एकहै और अर्थभी दोनों सम्प्रदायमे एकसा है।
(३) "रूपिष्ववधे": सूत्रमें रूपशब्द उपलक्षण है। इसलिये रूप शब्दके कहनेसे उसके अविनाभावी (=जुदे न रह सकने वाले) रस गंध स्पर्शका भी ग्रहण है॥ "अजहत्स्वार्थलक्षणयाऽन्यग्राहकम्", उपलक्षणम्। अजहत्स्वार्थलक्षणया (=अपने अर्थको न छोडकर) जो दूसरे पदार्थों का ग्रहण करनाहै उसका नाम उपलक्षणहै जिस प्रकार 'काकेभ्यो दधि रक्ष्यतां' कौओंसे दहीकी रक्षा करो। यहां पर काक शब्द उपलक्षण है इसलिये जितने भी जीव दहीके विघातक है उन सबका काक शब्दसे ग्रहण है उसी प्रकार प्रकृतमें रूप शब्दको उपलक्षण माननेसे जितने उस रूपके अविनाभावी रस गंध स्पर्श गुणहैं उन सबका रूप शब्दसे ग्रहण है॥

रूपिष्वित्यनेन पुद्गलाः पुद्गलद्रव्यसम्बन्धाश्च जीवाः परिगृह्यन्ते। रूपिष्वेवावधेर्विषयनिबन्धो नारूपेष्विति नियमः क्रियते। रूपिष्वपि भवन्न सर्वपर्यायेषु स्वयोग्येष्वेवेत्यवधारणार्थमसर्वपर्यायेष्वित्याभिसम्बध्यते॥ अथ तदनन्तरनिर्देशभाजो मनःपर्ययस्य को विषयनिबन्ध इत्यत आह—

रूपिषु ३। इति* अनेन ३। पुद्गलाः १। च* पुद्गलद्रव्य-सम्बन्धाः १। जीवाः १। परिगृह्यन्ते T रूपिषु ७। एव* अवधेः ६। विषयनिबन्धः १। न* अरूपिषु ७।	=रूपी (पदार्थ) निमें ऐसे इस (शब्द) करि पुद्गल और पुद्गल द्रव्यके संयोगी जीव लिये गये हैं वा ग्रहण किये गये हैं। रूपी (पदार्थ) निमें ही अवधिज्ञानके विषयका (सम्बन्ध) है न कि अमूर्तियों में
इति* नियमः १। क्रियते T रूपिषु ७। अपि* भवत्[1] १। न* सर्वपर्यायेषु ७। स्वयोग्येषु ७। एव*	=ऐसा नियम कियागया है। रूपी (पदार्थ) निमेंभी (अवधिज्ञानका विषय) होता हुआ =असमस्त (कितनेक) पर्यायोंमें अपने योग्यही है अर्थात् पुद्गल द्रव्यके कतेकपर्यायों में और पुद्गल संयोगी जीवके औदयिक औपशमिक क्षायोपशमिक परिणामों को ही अवधिज्ञान को विषय करनेकी योग्यता है (देखो सूत्रार्थ पृष्ठ ४७१)
इति* अवधारण-अर्थम् १।।। असर्वपर्यायेषु ७।	=ऐसा निश्चय करने के लिये (=अवधारण-अर्थम्) असर्वपर्यायेषु
इति* अभिसम्बध्यते T	=ऐसा (वाक्य सूत्रमें) लगाया गया है अर्थात् विषय शब्दकी अनुवृत्ति पचीसवां और 'निबन्ध' शब्दकी और 'असर्वपर्यायेषु' वाक्यकी अनुवृत्ति छब्बीसवां सूत्रसे लीगई तब सूत्र ऐसा हुआ कि 'असर्वपर्यायेषुरूपिष्ववधेः विषयस्सनिबन्धः'
अथ* तद्-अनन्तर निर्देशभाजः ६।	=अब उस (अवधिज्ञान) के लगता ही (=अनन्तर) कहने योग्य (=निर्देशभाजः)
मनः पर्ययस्य ६। विषयनिबन्धः १। कः १। इति अतः आह	=मनः पर्यय (ज्ञान) के विषयका नियम क्या है इसलिये कहते हैं कि

(१) 'भवत्'-'भू' धातुका वर्तमान कृदन्त है। बहुधा वर्तमान कृदन्त ऐस बनाये जाते हैं कि धातुका वह रूप लेलो जो अन्यपुरुष बहुवचन वर्तमान कालके प्रत्यय लगाने से पहिले बन जाता है। इसके पश्चात् वर्तमान कृदन्तका अत् यदि धातु परस्मैपदमें हो और (वर्तमान कृदन्तका) मान प्रत्यय यदि धातु आत्मने पदमें हो, जोड़ा जाय। अब भू को गुणसंज्ञा भो हुआ, भव्…हुआ प्रथम गणका अ विकरण लगाने से भव हुआ, अत् जोड़ने से भव+अत् हुआ, यदि प्रत्यय के आरम्भमें अ हो तो उससे पहला 'अ' गिरा देते हैं अतः भवत् हुआ॥

तदनन्तभागे मनः पर्ययस्य[1] ॥ २८ ॥

※ यदेतद्रूपिद्रव्यं सर्वावधिज्ञानविषयत्वेन समर्थितं तस्याऽनन्तभागीकृतस्यैकस्मिन्भागे मनः पर्ययः प्रवर्तते ॥ ※

अथान्ते यन्निर्दिष्टं केवलज्ञानं तस्य को विषयनिबन्ध इत्यत आह—

सूत्रम्—तदनन्तभागे मनः पर्ययस्य =तदनन्तभागे मनः पर्ययस्य (विषयस्य निबन्धः भवति)

तद्-अनन्तभागे ७।१ मनःपर्ययस्य ६।१ =उस (सर्वावधिज्ञेय) के अनंतवां अंश (सूक्ष्मतर) में मनः पर्यय ज्ञानके
विषयस्य ६।१ निबन्धः १।१ भवति T =विषयका सम्बन्ध है भावार्थ जो परमावधि ज्ञानके विषयभूत पुद्गल स्कन्धमें अनन्तका भाग दीजिये तो एक परमाणु मात्र सर्वावधिका विषय होय है बहुरि तिसमें अनन्तका भाग दीजिये तब ऋजुमति मनः पर्ययज्ञानका विषय होताहै तिसमेंभी अनन्तका भाग दें तब विपुलमतिमनःपर्ययज्ञानका विषय होता है (पं० जयचंद जी)

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित अट्ठाईसवा सूत्र पर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः अनुवाद

(२)यद् १।१॥ एतद् १।१॥ रूपि द्रव्यम् सर्वावधिज्ञानविषयत्वेन ३।१॥ =जो यह रूपी पदार्थ सर्वावधिज्ञानका विषय होने से
समर्थितम् १।१॥ तस्य ६।१॥ =समर्थन किया है वा सिद्ध किया है। तिस (सर्वावधिके विषयभूतरूपी पदार्थ) के
अनन्तभागीकृतस्य ६।१॥ एकस्मिन् ७।१ भागे ७।१ =अनन्त भाग किये जायं तो उसके एक अंश में
मनः पर्ययः १।१ प्रवर्तते T ॥ अथ※ अन्ते ७।१ =मनः पर्यय (ज्ञान) प्रवर्तता है। अब अन्त में
यत् १।१॥ निर्दिष्टम् १।१॥ केवलज्ञानम् १।१॥ तस्य ६।१॥ =कथित (=निर्दिष्ट) जो (=यत्) केवलज्ञान है तिस (केवलज्ञान) के
विषय-निबन्धः १।१ कः १।१ इति※ अतः※ आह T =विषयका नियम क्या है। इस लिये (आचार्य) कहते हैं कि

(१) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य०मे 'मनःपर्ययस्य'के स्थानमे 'मन पर्यायस्य' है। शेष पाठ और अर्थभी दोनों आम्नायोंमे एकसा है ॥ मनःपर्ययस्य६।१

(२) अवधेर्मनः पर्ययस्य सूक्ष्मविषयत्वदर्शनार्थं सूत्रमिदं न तु विषयनिबन्धनार्थम्। यतो मनः पर्ययस्यावधिविषयानन्तभागेऽन्यत्रापि दर्शितावृत्तिः प्रवर्तते इति पाठान्तरम् ॥ सर्वार्थसिद्धिकी द्वितीयावृत्तिमें "इति पाठान्तरम्" के स्थानमें "इत्यप्यधिकः पाठः" ऐसा वाक्य है ॥ ऐसा अधिक पाठ भी है ॥

अवधेः ५।१ मनः पर्ययस्य ६।१ सूक्ष्मविषयत्व दर्शन- = अवधि (ज्ञान) से मनः पर्यय (ज्ञान) का सूक्ष्म विषयताके समझानेके वा बताने के
अर्थम् १।१॥ सूत्रम् १।१॥ इदम् १।१॥ न※ तु※ विषयनिबन्ध-अर्थम् १।१॥ = लिये (अर्थम्) यह सूत्र है किन्तु (=तु) विषयकी इयत्ता वा सीमाके लिये नहीं है

सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य॥ २९॥

द्रव्याणि च पर्यायाश्च द्रव्यपर्याया इति इतरेतरयोगलक्षणो द्वन्द्वः॥ तद्विशेषणं सर्वग्रहणं प्रत्येकमभिसम्बध्यते

सूत्रम्–सर्वद्रव्यपर्यायेषुकेवलस्य	=सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य (विषयस्य निबन्धः भवति)
सर्वद्रव्यपर्यायेषु ७। केवलस्य ६।।। विषयस्य ६। निबन्धः १। भवति T	=सम्पूर्ण द्रव्योंकी सम्पूर्ण पर्यायोंमें केवलज्ञानके विषयका =नियम है भावार्थ एक एक द्रव्यकी त्रिकालवर्ती अनन्तानंत पर्यायें हैं सो छहों द्रव्योंकी समस्त अवस्थाओंको केवलज्ञान युगपत् एक साथ जानता है

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित उनतीसवां सूत्र पर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः अनुवाद

द्रव्याणि१।।। च* पर्यायाः१। च* द्रव्यपर्यायाः१। इति*	=द्रव्यें और पर्यायें (मिलकर) 'द्रव्य पर्यायाः' ऐसा वाक्य
इतरेतरयोगलक्षणः१। द्वन्द्वः १।	=परस्पर (इतरेतर) योगलक्षणवाला वा अन्योन्ययोग नामका द्वन्द्व समास है
तद्-विशेषणम् १।।। सर्वग्रहणम् १।।।	=उस (द्रव्यपर्याया द्वन्द्व समास) का विशेषण "सर्व" (ऐसे शब्द) का ग्रहण
प्रत्येकम्* अभिसम्बध्यते T	=प्रत्येक (द्रव्य शब्द और पर्याय शब्द) पर लगाया गया है (=अभिसम्बध्यते)

यतः* मनः पर्ययस्य६। अवधि-विषय-अनन्त-भागे७। अन्यत्र* अपि* दर्शिता१।। वृत्तिः१।। प्रवर्ततेT इति* पाठ-अन्तरम्१।।।इत्यप्यधिकः पाठः	=क्योंकि (=यत) मनः पर्यय ज्ञानका (विषय) अवधिके विषयसे अनन्तवां =भागमे है। दूसरे स्थानमें भी (इस संस्कृत सर्वार्थसिद्धिकी) प्रकाशित वृत्ति में =प्रवर्तता है वा विद्यमान है (देखो पृष्ठ४५८मे वृत्तिसूत्र२४की) ऐसा अन्य पाठ है॥ (अन्य अर्थ) क्योंकि मनः पर्ययज्ञानकी प्रवृत्ति (=वृत्ति) अवधिज्ञानके ज्ञेयके अनंतवां भागमें तथा (=अपि) अवधिज्ञानके ज्ञेयसे भिन्न वस्तुओंमे भी (अन्यत्र) (आगम में) बताई गई है (=दर्शिता)। ऐसा अन्य पाठ है। ऐसा अधिक पाठ भी है

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों सम्प्रदायोमे एक है॥ (२) द्रव्यके अवस्था विशेष धर्मोंका नाम पर्याय है द्रव्यकी व्यवस्था विशेष जो हैं सो पर्याय है। स्वपर्यायान् द्रवति द्रूयते वा तैः इति द्रव्यम्=(जो) अपनी पर्यायोंको प्राप्त हो वा तिन (पर्यायों)करि (=तैः) प्राप्ति की जाय ऐसा द्रव्य है॥ द्रु धातुसे यत् प्रत्यय करनेपर (द्रु=द्रो=द्रव्) द्रव्य शब्दकी सिद्धि हुई है। (३) दो तीन आदि पद अपनी अपनी विभक्ति त्यागकर जो शब्द बनावें उस शब्दको समास कहते हैं। "और" से जो पहले हो वह समुच्चित तथा पीछेका शब्द समुच्चय कहाता है जो समुच्चित तथा समुच्चेय मिलकर बना हो उसको द्वन्द्व समास कहते है॥

सर्वेषु द्रव्येषु सर्वेषु पर्यायेष्विति ॥ जीवद्रव्याणि तावदनन्तानन्तानि, पुद्गलद्रव्याणि च ततोऽप्यनन्तानन्तानि अणुस्कन्धभेदेन भिन्नानि, धर्माधर्माकाशानि त्रीणि, कालश्चासंख्येयः

इति* सर्वेषु ७॥। द्रव्येषु७॥। सर्वेषु ७। पर्यायेषु ७॥ =इस प्रकार समस्त द्रव्यों की ।।. पर्यायोंमें (केवलज्ञानके विषयका नियम) है
तावत्* जीव द्रव्याणि १॥। अनन्तानन्तानि १॥ च* =प्रथम (=तावत्) जीवद्रव्य ।. तानन्त हैं और (=च)
पुद्गलद्रव्याणि १॥। ततः * अपि * अनन्तानन्तानि१॥=पुद्गलद्रव्य उन (जीवों) से भी (=ततः अपि) अनन्तानन्तगुणे
अणुस्कन्धभेदेन ३। भिन्नानि १॥; धर्म-अधर्म- =अणु स्कन्धके भेदकरि जुदे जुदे वा पृथक् पृथक् हैं। धर्म द्रव्य, अधर्मद्रव्य
आकाशानि१॥। त्रीणि१॥। च* कालः१। असंख्येयः१। =और आकाशद्रव्य तीन हैं अर्थात् ये तीन एक एक द्रव्य हैं और काल असंख्यात हैं अर्थात् "कालद्रव्यके कालाणु असंख्यात द्रव्य हैं" वे गिने जाने योग्य नहीं हैं

(१) लोगागासपदेसे एक्केक्के जे ठ्ठिया हु एक्केक्का ॥ रयणाणं रासी इव ते कालाणू मुणेयव्वा ॥१॥ इति गाथोक्त प्रकारेण कालद्रव्यस्याणुरूपत्वान्नानात्व धर्माधर्माकाशानामनेकप्रदेशत्वेऽपिखण्डात्मकत्वाभावादेकैकत्वमवबोद्धव्यम्

लोगागास-पदेसे ७। एक्केक्के ७। जे १। (=लोकाकाश-प्रदेशे७। एकैकस्मिन्७। ये१।) =लोकाकाशके एक एक प्रदेशमें जे
ठ्ठिया १। हु* एक्केक्का १। रयणाण ६॥। (स्थिताः १। हि* एकैकाः १। रत्नानाम् ६॥।) =एक एक ही (हु=खलु) स्थित हैं। रत्नोंकी
रासी १। इव* (राशिः १। इव*) =राशि वा समूहके सदृश (परस्पर भिन्न भिन्न)
ते कालाणू मुणेयव्वा (ते १। काल-अणवः १। मन्तव्याः १।) =वे कालके अणू समझना चाहिये ॥ वे असंख्यद्रव्य है
इति* गाथा—उक्त-प्रकारेण ३। कालद्रव्यस्य ६॥। अणुरूपत्वात् ५॥। =ऐसे गाथा में कहे हुये भेद करि कालद्रव्य के अणुरूप होने से
नानात्वम् १॥। धर्म-अधर्म-आकाशानाम् ६। अनेक-प्रदेशत्वे ७॥। =अनेकता है। (परन्तु धर्म अधर्म आकाशद्रव्यों के बहुत प्रदेश होने पर
अपि खण्डात्मक-अभावात् ५। एकैकत्वम् १॥। अवबोद्धव्यम् १॥ =भी खडरूप नहोने (के हेतु) से पृथक् पृथक् पना जानना चाहिये।

भावार्थः—जिस प्रकार रत्नोंका ढेर एकत्र होनेपर भी उसमें प्रत्येक रत्न जुदाहै वेसेही कालके अणु जुदे जुदे एकके पश्चात् एक लोकाकाशके के प्रत्येक प्रदेश पर एक एक कर क्रमसे तिष्ठे हुये परन्तु धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य और आकाशद्रव्य के असंख्यात असख्यात प्रदेशहैं ये प्रदेश ऐसें मिले हुये है कि कभी जुदे जुदे नहीं होसकते है इससे ये तीनों एक एक द्रव्य ही है। धर्म द्रव्य अधर्म द्रव्य सम्पूर्ण लोकमें तिलमें तेल की भांति व्याप्तहैं और आकाशके जिन प्रदेशोंमें स्थित है उनहीं प्रदेशोंमें स्थितरहते है इनके प्रदेश अकम्प है॥ देखो सर्वार्थसिद्धि वृत्तिः अध्याय ५ सूत्र ३९ पर

तेषां पर्यायाश्च त्रिकालभुवः प्रत्येकमनन्तानन्तास्तेषु द्रव्यं पर्यायजातं वा न किञ्चित्केवलज्ञानस्य विषयभावमतिक्रान्तमस्ति ॥ अपरिमितमहात्म्यं हि तदिति ज्ञापनार्थं सर्वद्रव्यपर्यायेष्वित्युच्यते ॥

आह विषयनिबन्धोऽवधृतो मत्यादीनां, इदं तु न निर्ज्ञातमेकस्मिन्नात्मनि स्वनिमित्तसन्निधानोपजनित वृत्तीनि ज्ञानानि यौगपद्येन कति भवन्तीत्यत उच्यते—

च* तेषाम् ६॥। त्रिकालभुवः १।	=और तिन (सर्वद्रव्यनि) के (अतीत अनागत वर्तमान) तीन कालमें होने वाले
प्रत्येकम्[1]* अनन्तानन्ताः १। पर्यायाः १। तेषु ७॥।	=प्रत्येकके अनन्तानन्त पर्याय हैं। उन (द्रव्यों) में
वा द्रव्यं पर्यायजातं१॥। केवल ज्ञानस्य६॥। विषय-भावम्२।	=वा द्रव्य पर्यायो का समूह केवल ज्ञान के विषय भाव को
अतिक्रान्तम् २। न* किञ्चित्* अस्तिT हि* तद् १॥।	=उल्लंघन करनेको किंचित भी समर्थ नहीं है क्योंकि (=हि) पूर्वोक्त (=तद्) केवलज्ञान
अपरिमित-माहात्म्यं १॥। इति* ज्ञापन-अर्थम् १॥।	=अपरिच्छिन्न वा असीम महत्वरूप है। ऐसा (=इति) जनावने के लिये
सर्वद्रव्यपर्यायेषु ७। इति* उच्यते T	=समस्तद्रव्योकी समस्तपर्यायो में (केवल ज्ञानके विषयका नियम) है ऐसा कहागया है
आह T विषयनिबंधः१। अवधृतः[2]१। मतिआदीनाम्[3] ६॥	=(शिष्य-अब) पूछता है कि मति (ज्ञान) आदिकनिके विषयोंके नियम कहेगये
इदम् १॥। तु* न* निर्ज्ञातम् १॥। एकस्मिन् ७।	=परंतु यह (=इदम्) ज्ञात नहीं हुआ (कि) एक
आत्मनि ७। स्व-निमित्तसन्निधान-उपजनितवृत्तीनि १॥।	=जीवमें अपने अपने कारणो क निकट होते (=उपजनित) प्रवर्तनेवाले
ज्ञानानि १॥। यौगपद्येन[4] ३॥। कति[5] १। भवन्ति T इति*	=ज्ञान एक काल अथवा एक वार करि कितने होते हैं ऐसे (प्रश्न पर)
अतः* उच्यते T	=इसलिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहतेहैं कि

१ प्रत्येकम् - यह वैद्य सस्कृत-अङ्गलभाषा कोष पृष्ठ ४६२ में अव्यय लिखा है। इसलिये हमने भी इसको अव्यय लिखा है॥

२ अवधृतः :— विवृतः १। इति* अपि* पाठान्तरम् १॥। = विवृतः (=व्याख्यात) ऐसा भी अन्य पाठ है

३ मति + आदीनाम् = मत्यादीनाम्-आदि समासोंके अंतिम अवयववत् 'इस सदृश' 'और अन्य' 'और अन्य वैसे ही' इन अर्थोंमें आता है। भ्वादयः धातव. यहां पर आदयः शब्द बहुवचन पुल्लिंगमें है ऐसे ही मत्यादीनाम् को षष्ठी विभक्ति बहुवचन पुल्लिंगमे लिखा है (देखो उक्तकोश पृष्ठ ९९)

४ यौगपद्य वा यौगपद-नपुसक लिंग हैं (वैद्य कोश पृष्ठ ६०१) दोनों समकालता, एककालता अर्थमें हैं अतः हमने नपुंसक लिखा है।

५ कति-सर्वनाम सदा बहुवचनमे आता हैं और पुल्लिंगमें इसका यहां प्रयोग हुआ है॥

एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः ॥३०॥

एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः =एकादीनि (ज्ञानानि) भाज्यानि युगपदेकस्मिन् (जीवे) आ चतुर्भ्य (ज्ञानेभ्यः) सम्भवन्ति

एकादीनि ;॥ ज्ञानानि ;॥ भाज्यानि ;॥ =एक ज्ञानकों आदि लेकर (=एकादीनि)भाज्यरूप वा विभाग किये (=भाज्यानि)
युगपद्* एकस्मिन् ;। जीवे ;। आ* चतुर्भ्यः ;॥ ज्ञानेभ्यः=एक साथ (=युगपद्) एक जीवमें चारज्ञान तक (=आ)
सम्भवन्ति T =सम्भवहैं, अर्थात् यदि एक ज्ञान होगा तो केवलज्ञान, दो होंगे तो मतिज्ञान श्रुतज्ञान, तीन होंगे तो मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान वा मतिज्ञान श्रुतज्ञान मनः पर्ययज्ञान होगे यदि चार होंगे तो मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान होंगे

१ इस सूत्रका पाठ दोनों सम्प्रदायों में एक है और अर्थ भी दोनों आम्नायोमें एक है जैसाकि अगली टिप्पणियोंसे प्रगट होगा।
२ वार्तिकः–संख्या वचनोवैकशब्दः =(वृत्ति) अथवा संख्या वचनोऽयमेकशब्दः= अथवा(सूत्रमें)यह एक शब्द संख्यावाचीहै॥ एक =एकत्वसंख्या।

एकम् आदिः एषाम् तानि इमानि एकादीनि कथम् ?* =एक है आदि जिनके ते ये एकादि हैं। (प्रश्न) कैसे ?
एकस्मिन् ;। आत्मनि ;। मतिज्ञानम् ;॥ एकम् ;॥ =(उत्तर) एक आत्मामे एक (ज्ञान) मतिज्ञान होय है
(श्रुतज्ञान दो प्रकार है एक अक्षरात्मक श्रुतज्ञान दूसरा अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान)
यद् अक्षर श्रुतम् ;॥ द्वि+अनेक+द्वादशभेदम् ;॥ =जो अक्षरात्मक श्रुतज्ञान है सो दो अनेक द्वादश भेदरूप है
उपदेशपूर्वकम् ;॥ =(वह अक्षरात्मक श्रुतज्ञान) उपदेश द्वारा होता है (जैसाकि इस अध्यायका वीसवां सूत्र है)
तद् भजनीयम् ;॥ स्यात् T वा =वह (अक्षरात्मक श्रुतज्ञान) भजनीय है वा भाज्य रूप है किन्हीं जीवोके होता है
न * वा * इति * =किन्हींके नहीं(अक्षरात्मक श्रुतज्ञानकी अपेक्षा एक आत्मामें अकेला मतिज्ञान भी हो सका है)
इतरत् ;॥ पूर्ववत् * =अन्य पूर्व (पहिले) सदृश होय है अर्थात् दो ज्ञान हो तो मतिज्ञान श्रुतज्ञान हों तीन ज्ञान हों तो मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान हो अथवा मतिज्ञान, श्रुतज्ञान मनः पर्ययज्ञान हो, चार हो तो मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनः पर्ययज्ञान हों

परः ¹।आह T असंख्यासहाय- =दूसरा कहता है (अर्थात् अन्य अन्य आचार्योंका मत है) कि असख्या असहाय

प्राधान्यवचने।एकशब्दे। सति। एकादीनि।॥ =प्रधान अर्थका वाचक (इस सूत्रमें आये हुये) एक' शब्दके होते 'एकादीनि' है

केवलादीनि॥ इति॥अर्थःएकस्मिन्आत्मनिक्षायिकत्वात् =सो केवल (ज्ञान) आदीनि ऐसे अर्थमें है कि एक आत्मामें क्षायिकपनासे

एकम्॥ केवलज्ञानम्॥ मतिश्रुते॥ =एक केवल ज्ञान होता है। (दो होय हैं तहां) मतिज्ञान श्रुतज्ञान होते हैं

इत्यादिपूर्ववत् ❀ =इत्यादि पहिले (कथित) सदृश है भावार्थ ऐसा है कि और और आचार्य कहते हैं कि इस सूत्रमे 'एक' शब्दका असंख्या असहाय और प्रधान अर्थमें प्रयोग कियागया है अतः इस (एक शब्द) का अर्थ केवल ज्ञान है क्योंकि अन्य चार ज्ञान असहाय और प्रधान नहीं होसकते है ये चारो क्षायोपशमिक ज्ञान हैं इस रीतिसे एक जीवकें एक साथ केवलज्ञानको आदि लेकर चार ज्ञान तक होना संभवहै यदि एक ज्ञान होगा तौ केवलज्ञान होगा (अथवा अक्षरात्मक श्रुतज्ञानकी अपेक्षासे एक आत्मामें अकेला मतिज्ञान भी हो सकता है)। यदि दो एक साथ होगे तो मतिज्ञान और श्रुतज्ञान होगे, यदि तीन एक कालमे होंगे तो मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान वा मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, मनः पर्ययज्ञान होंगे, यदि चार ज्ञान होगे तो मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनः पर्ययज्ञान होंगे ॥ (देखो तत्त्वार्थ-राजवार्तिक पृष्ठ ६३) ॥ श्वेताम्बर आम्नायमे भी यही है कि मतिज्ञान भी अकेला होसक्ता है और केवलज्ञान भी अकेला होसक्ता है जैसा कि निम्न लिखितसे प्रगट हे (देखो सभाष्य तत्वार्थाधिगम सूत्र पृष्ठ २८)

श्रुतज्ञानस्य॥ तु❀ मतिज्ञानेन॥ नियतः। सहभावः। =किन्तु (यह अवश्य जानना उचित है) श्रुतज्ञानका मतिज्ञानसे सहभाव अवश्य है (अर्थात् जहां जहां श्रुतज्ञान है वहां वहां मतिज्ञानका अस्तित्व अवश्य ही है)

तद् पूर्वकत्वात्॥ =क्योंकि उस (मतिज्ञान) द्वारा (श्रुतज्ञान) होता है श्रुतज्ञानके होनेको मतिज्ञान कारण है॥

यस्य। तु मतिज्ञानं तस्य श्रुतज्ञानं स्यात् T वा न वा इति =परतु जिसके मतिज्ञान है तिसके अक्षरात्मक श्रुतज्ञान हो अथवा (=वा) न हो ऐसा है

अत❀ आहT केवलज्ञानस्य॥ पूर्वैः॥ मतिज्ञानादिभिः =यहां प्रश्न करता है कि केवलज्ञानके पहिले होने वाले मतिज्ञान आदिकसे

किम्॥ सहभावः। भवति T न इति❀ उच्यतेT =क्या सहभाव होता है ? (उत्तर) नहीं ऐसा कहागया है अर्थात् जहां केवलज्ञान है वहां पर मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनः पर्ययज्ञानका अस्तित्व नहीं है

एकशब्दः संख्यावाची, आदिशब्दोऽवयववचनः

पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित तीसवां सूत्र पर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दशः हिंदी अनुवाद

एकशब्दः१/१। संख्यावाची१/१। आदिशब्दः१/१। अवयववचनः१/१। =(सूत्रमें) 'एक' शब्द गणनाका वाचक है आदि शब्द टुकड़ा (=टूंक) के अर्थमें है

[१] पृष्ठ ४७७ की दूसरी टिप्पणीमें हम दिखाचुके हैं कि तत्वार्थराजवार्तिक के कर्ता के मतानुसार एक शब्द संख्यावाचक भी है और अन्य आचार्योंके मतमें यहीं 'एक' शब्दअसंख्या असहाय प्रधान अर्थ का वाचक है अब तत्त्वार्थ राजवार्तिकके अनुकूल अनेक अर्थ संभव होने पर (भी) वक्ताकी इच्छासे (=विवक्षात) प्रथमकावाची 'एक' शब्दहै (=अनेकार्थ सम्भवे विवक्षातः प्राथम्यवचनः एकशब्दः) अनेकार्थ ये हैं कि कहीं संख्या (अर्थ) मे प्रवर्तता है जैसे 'एको द्वौ बहव.' एक दो बहुत ॥ कहीं अन्य (अर्थ) में जेसे 'एके आचार्याः = अन्ये आचार्याः = दूसरे आचार्याः कहीं असहाय (अर्थ) मे जैसे 'एकाकिनस्ते विचरन्ति वीराः' ते शूरवीर अकेले विचरतेहैं। कहीं प्रधान अर्थ में जैसे एकहर्ता सेनां करोमि = प्रधानहर्ता सेनां करोमि इति अर्थः =प्रधान द्वारा सैनाको नष्ट करता हूं ऐसा अर्थ है और कहीं पर प्रथम अर्थ में जैसेः-एकमागमन = प्रथमागमनम् इति = पहिला आना हुआ ॥ सूत्रमें 'प्रथम वा पहिले' के अर्थमे 'एक' शब्द लाये हैं और नवमां सूत्र 'मतिश्रुतावधिमन. पर्ययकेवलानिज्ञानम् " है तव एकादीनि" वाक्य का अर्थ 'प्रथम वा पहिले ज्ञानकों आदि लेकर" हुआ अर्थात् मतिज्ञान आदि लेकर विकल्परूपसे वा भाज्यरूप से एक आत्मा में एक साथ चार ज्ञान तक विवक्षित हैं ॥

[२] तत्त्वार्थराजवार्तिक के रचयिताने "आदि" शब्दके अनेक अर्थ होने पर भी'अवयव' और सामीप अर्थ में लियाहै "आदि शब्दश्चावयववचनः" "सामीप्यवचनो वा" = आदि शब्द (इस सूत्रमें) टुकडे का वाची है अथवा निकटता का वाचक है ॥ कहीं पर व्यवस्था (अर्थ) में (आदि शब्द) वर्तता है जैसे ब्राह्मणादयश्चत्वारो वर्णाः (=ब्राह्मणादिक चार वर्ण हैं) ब्राह्मणव्यवस्थाः (=कि ब्राह्मणतें व्यवस्था है) ब्राह्मणक्षत्रियविटशूद्राः इत्यर्थः (कि ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र है ऐसा अर्थ है) अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र इन चारो वर्णोंकी ब्राह्मण वर्णके आधीन व्यवस्था वा रचना है। कहीं पर (आदि शब्द) प्रकार (अर्थ) में प्रवर्तता है जैसे भुजंगादयः परिहर्तव्या (भुजंगादिक परिहार करने योग्य हैं) भुजगप्रकाराः विषवंत इत्यर्थः (=भुजंगका प्रकार कहिये भुजंग सदृश विषवान ,सर्वजीव त्यागने योग्य हैं) ऐसा अर्थ है भावार्थ सर्पआदि विषवाले (सर्व) जीवोंको दूरसे ही छोड़ देना चाहिये ॥ कहींपर (आदि शब्द) अवयव, टुकडा, टूक, वा भाग अर्थ में वर्तताहै जैसेकि ऋगादिमधीते ऋगवयवमधीते इति अर्थ =ऋग्वेदके (=ऋग्) कुछ भाग को (=अवयवम्) पढ़ता है (=अधीते) ऐसा अर्थ है ॥

एकआदिर्येषां तानि इमान्येकादीनि भाज्यानि विभक्तव्यानि यौगपद्येनैकस्मिन्नात्मनि ॥ आ कुतः १ आ चतुर्भ्यः ॥ तद्यथाएकं तावत्केवलज्ञानं न तेन सहान्यानि क्षायोपशमिकानि

एकः१।१। आदिः१।१। येषाम्६।३। तानि१।३। इमानि१।३। एकादीनि	=एक है आदि जिनकें (=येषाम्) ते (=तानि) इतने (=इमानि) एकादीनि हैं
भाज्यानि १।३। विभक्तव्यानि १।३।	=सो भाज्यानि (कहिये) है भेदरूप करने पर वा विकल्परूप करने पर(=विभक्तव्यानि) अर्थात् एक ज्ञानको आदिलेकर(=एकादीनि)भाज्यरूप वा विकल्परूप(=विभक्तव्यानि)
यौगपद्येन३।१। एकस्मिन्७।१। आत्मनि७।१। आ* चतुर्भ्यः५।३।	=एक कालविषैं एक (=एकस्मिन्) आत्मामें चार (ज्ञान) तक हो (सक) ते हैं
आ* कुतः १ *	=(प्रश्न) (सूत्रमें) आ (अव्यय) क्योकर (=कुतः) है (उत्तर-सीमा वा अभिविधिके लिये है कि एक साथ एक आत्मामें चार पर्यंत ही ज्ञान होसक्ते हैं सब पांचो नहीं होवे)
तद्यथा* एकं १।१। तावत्* केवलज्ञानं १।१। न तेन ३।१।	=जैसे (=तद्यथा) एक हो तो (=तावत्) केवलज्ञान हो । नहीं तिस (केवलज्ञान) करि
सह* अन्यानि १।३। क्षायोपशमिकानि १।३।	=सहित (=सह) अन्य (चार) क्षायोपशमिकज्ञान

अब 'एक' शब्दका प्रथम अर्थ और 'आदि' शब्दका अवयव अर्थ लेकर "प्रथमका अवयव" यह अर्थ "एकादि" वाक्यका हुआ ॥ (प्रश्न) किस (प्रथम) का (अवयव वा भाग) । (उत्तर) परोक्षज्ञानका (प्रथम अवयव) अर्थात् मतिज्ञान ॥ अतः एकादिका अर्थ मतिज्ञान हुआ यहां पर स्मरण रहै कि सूत्रमें 'एकादीनि' वाक्य है सो "एकादिरादीनि" (=एकादिको आदि लेकर जो ज्ञान हैं वे एकादीनि कहेजाते हैं) इस अर्थमें है क्योंकि – वार्तिक–"ततोन्यपदार्थे वृत्तावेकस्यादिशब्दस्य निवृत्तिरुष्ट्रमुखवत्=ततः अन्यपदार्थे वृत्तौ एकस्यादिशब्दस्य निवृत्तिःउष्ट्रमुखवत्"=अन्यपदार्थ वृत्तिमें (=समासमें) एक "आदि" शब्दकी निवृत्ति वा निषेध "उष्ट्रमुख" (बहुव्रीहि समासरूप वाक्यके) सदृश है अर्थात् जैसे जिसका मुख ऊंट सरीखा हो वह उष्ट्रमुख (पुरुष) कहा जाता है और जिसका मुख ऊटके मुख सदृश पुरुष सरीखा हो वहभी उष्ट्रमुखही कहा जाता है यहांपर जैसे उष्ट्रमुख शब्दका बहुव्रीहि समास करते समय दो मुखशब्दोंका उल्लेख रहताहै और समासमें एकही मुखशब्द रह जाताहै एक मुखशब्दकी निवृत्ति होजातीहै अर्थात् एक मुखशब्द न्यून हो जाता है वैसेही एकादीनि यहां परभी दो "आदि" शब्दोंमें एकही "आदि" शब्द रह जाता है एक 'आदि' शब्दका लोप होजाता है ॥ आदि शब्दका अर्थ समीप भी है मतिज्ञानके समीप श्रुतज्ञान है अतः 'एक' शब्द जो सूत्रमें है उससे मतिज्ञान और आदि शब्दके उल्लेखसे श्रुतज्ञानका ग्रहण हुआ ॥ मतिज्ञान श्रुतज्ञानको आदि लेकर ऐसा अर्थ "एकादीनि" वाक्यका हुआ ॥ एक+आदि+आदि=एकादि+आदीनि=एकादीनि

चत्वारि युगपदवतिष्ठन्ते । द्वे मतिश्रुते । त्रीणि मतिश्रुतावधिज्ञानानि, मतिश्रुतमनःपर्ययज्ञानानि वा । चत्वारि मतिश्रुतावधिमनःपर्ययज्ञानानि । न पञ्च सन्ति केवलस्यासहायत्वात् ॥

युगपद्* अवतिष्ठन्ते T द्वे ३।।। मतिश्रुते १।।। =एक काल में तिष्ठते हैं । दो हो तो मतिज्ञान श्रुतज्ञान हो ।
त्रीणि १।।। मतिश्रुत-अवधिज्ञानानि १।।। =तीन हों तो मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान हों ।
वा* मति-श्रुत-मनःपर्ययज्ञानानि १।।। =अथवा (=वा) मतिज्ञान श्रुतज्ञान =मनःपर्ययज्ञान हो ।
चत्वारि १।।। मति-श्रुत-अवधि-मनःपर्ययज्ञानानि १।।। =चार हों तो मतिज्ञान-श्रुतज्ञान-अवधिज्ञान =मनःपर्ययज्ञान हो ॥
न* पञ्च १।।। सन्ति T =नहीं होते हैं (एक काल में) पांच ज्ञान
केवलस्य ६।।। असहायत्वात् ५।।। =क्योंकि केवल ज्ञान असहाय रूप है अर्थात् अन्य चार ज्ञान तो ज्ञानावरणीयकर्मके क्षयोपशम से होते हैं केवल ज्ञान उक्त कर्म के क्षय से ही होता है

(१) मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान क्षायोपशमिक ज्ञान है अर्थात् ये चारों ज्ञान ज्ञानावरणीय कर्मकी प्रकृतियों के क्षयोपशम से होते हैं । (प्रश्न) ये "क्षायोपशमिकज्ञान तौ एक काल एकही प्रवर्तता कहा है । इहाँ च्यारी कैसें कहे ? ताका उत्तर जा ज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम होतें च्यारी ज्ञानकी जानन शक्तिरूप लब्धि एक काल होय है । बहुरि उपयोग इनिका एक काल एकही होय है । ताकी एक ज्ञेयतें उपयुक्त होनेकी अपेक्षा स्थितिभी अन्तर्मुहूर्त्तकी कही है । पीछे ज्ञेयांतर उपयुक्त होयजाय है क्षयोपशम जिनिका होयहै ते लब्धिरूप एककालही है । इहां कोई कहे उपयोग अपेक्षाभी सांकलीके (=वड़ीपुरी) भक्षण करतें रूपादिक पाचका ज्ञान एककालही दीखै है वर्णसांकलीका दीखे है स्वाद लेही है । गंध वाका आवै ही है ॥ स्पर्श भी सचाकणा आदि जानै ही है । भक्षण करतै शब्द होय है ऐसें पांचका ज्ञान एक काल भी देखिये है । ताकूं कहिये, जो इहां उपयोगका फिरण की शीघ्रता होतें काल भेद न जान्या जाय है । जैसे कमलका पत्र दोय च्यारि मे सुईका प्रवेश होते काल भेद जान्या न जाय अरु काल भेद है ही । तैसे इहां भी जानना ॥ पं० जयचदजी की वचनिका मुद्रित पृष्ठ १८५, १८६ ॥

(२) उक्त पांचौ ज्ञानोमेसे केवलज्ञान असहायज्ञान है वह कर्मोंके क्षयोपशमकी अपेक्षा नहीं रखता है मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान और मनःपर्यय ज्ञानों को कर्मोंके क्षयोपशमकी अपेक्षा रहती है इस लिये ये चार ज्ञान असहाय नहीं हैं ॥ इस भांति उक्त चार ज्ञानोमे और केवलज्ञान मे विरोध रहनेके हेतुसे पांचों ज्ञानोका एक साथ होना असम्भव है ॥ (प्रश्न) जैसे जिस काल सूर्यका प्रकाश पृथ्वी मंडल पर पडता है उस समय नक्षत्रो का प्रकाश दब जाताहै । वहांपर यह नहीं कहा जासक्ता कि नक्षत्रोकी विद्यमानताही नहींहै वैसेही जिस समय आत्मामे अत्यन्त जाज्वल्यमान केवलज्ञानका प्रकाश होगा उस समय मति-श्रुत-अवधि-मनःपर्ययज्ञानका प्रभाव दब जायगा नकि उक्त चार ज्ञानोका अस्तित्वही नष्ट होजावेगा फिर यह कहना कि

और इसको कर्मोंके क्षयोपशमकी सहायताकी अपेक्षा नहीं रहती है अतः केवल ज्ञानीकें मति-श्रुत-अवधि-मनःपर्यय ज्ञान नहीं होते हैं

केवलज्ञान क्षायिकज्ञान है और असहायज्ञान है इससे पांचो ज्ञान नहीं होते हैं ठीक नहीं है ? ॥(उत्तर)जैसे जब कोई स्थान सर्वथा और सर्व प्रकारसे शुद्ध होचुका है कोई भागभी उस स्थानका अशुद्ध नहीं कहा जासकता है वैसेही जब सर्व ज्ञानावरणीयकर्मकी प्रकृतियोका सर्व प्रकार नाश होचुका है तब उन कर्मकी प्रकृतियोका क्षयोपशम कहना और अत्यन्त नाश होनाभी कहना ये एक दूसरेके विरुद्ध हैं और नहीं कहे जासकते हैं इसलिये एक साथ आत्मामे मतिज्ञानको आदि लेकर चार तक ज्ञानोका जो नियम है वह निर्बाध और निर्दोष है ॥

इस विषयमे अब हम श्वेताम्बर आम्नायका मत लिखते हैं ॥ (प्रश्न) केवलज्ञानका मतिज्ञान श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञानके साथ सहभाव है कि नहीं है ? (उत्तर) "केवलज्ञानके साथ मतिज्ञानादिका सद्भाव नहीं है । परंतु कोई कोई आचार्य कहते हैं कि केवलज्ञानकी सत्ता दशामें मतिज्ञानादि ज्ञानोका अभाव नहीं है किन्तु केवलज्ञानसे वे मत्यादिज्ञान अभिभूत (पराजित) होनेसे ऐसे अकिंचित्कर हैं जैसेकि नेत्रादि इन्द्रियां। केवलज्ञानकी दशामे मतिश्रुतादि अन्यज्ञान अभिभूत होकर ऐसे अकिंचित्कर हैं जैसे मेघरहित आकाशमें सूर्यके उदित होनेपर अधिक तेजके कारण सूर्यसे अभिभूत अग्नि मणि चन्द्रमा तथा नक्षत्रादिके तेज, प्रकाश करनेमे अकिंचित्कर हैं । और कोई ऐसा कहते हैं कि अपाय सद्द्रव्यता अर्थात् श्रोत्रादि इन्द्रियोसे उपलब्ध पदार्थके निश्चयार्थ मतिज्ञानकी प्रवृत्ति होती है ।, श्रुतज्ञान मतिज्ञान पूर्वक है । अवधिज्ञान तथा मनःपर्ययज्ञान भी रूपी द्रव्यके विषयमे अपाय सद्द्रव्यतासेही प्रवृत्त होता है अतः उनकी सत्ता में मतिज्ञान रह सकता है और केवलज्ञानी को इन्द्री द्वारा पदार्थोपलब्धि नहीं होती, इस कारणसे केवलज्ञानीको मतिज्ञानादि ज्ञान नहीं है ॥ किं चान्यत् । औरभी यह वात है कि मतिज्ञानादि चारो ज्ञानोमे पर्याय वा क्रमसे उपयोग होता है न कि एक ही कालमे और मिलित है ज्ञानदर्शन जिसका ऐसें भगवान केवली को तो एकही कालमे सर्वभावके ज्ञापक वा ग्राहक और अन्य ज्ञाननिरपेक्ष केवलज्ञान तथा केवलदर्शन होते है और प्रतिक्षण वा प्रति समय ज्ञानोपयोग तथा दर्शनोपयोग होता है । और यहभी है कि पूर्व मतिज्ञानादि चार ज्ञान तो ज्ञानावरणके क्षयोपशमसे उत्पन्न होते है । और केवलज्ञान क्षयसेही उत्पन्न होता है । इसलियेभी केवलज्ञानीको मतिज्ञानादि शेष चार ज्ञान नहीं होते ॥" सभाष्य० पृष्ठ २८, २९ ॥ हमारा हृदय भी इस वातको स्वीकार नहीं करता कि केवलज्ञान की विद्यमानतामें

यथोक्तानि मत्यादीनि ज्ञानव्यपदेशमेव लभन्ते, उतान्यथापीत्यत आह—

यथोक्तानि॥। मत्यादीनि॥। ज्ञानव्यपदेशम्॥। एव* =कथनानुसार (=यथोक्त) मति आदिक ज्ञान ज्ञान नामही
लभन्ते T उत* अन्यथा* अपि* =पाते हैं। अथवा (=उत) अन्यथा भी हैं अर्थात् मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनः पर्ययज्ञान ये ज्ञान संज्ञा से ही जाने जाते हैं कि ये किसी और
इति* अतः* आह T =नाम से भी कहे जाते हैं॥ ऐसा (प्रश्न होने पर) इस लिये कहते हैं कि

अन्य चार ज्ञानका अकिंचित्कर रूपमें भी अस्तित्व रहता है क्योंकि यदि हम ऐसा मानें तो इस सूत्रका "आचतुर्भ्यः" वाक्य व्यर्थ हुआ जाता है। और पांचो ज्ञानका अस्तित्व युगपद् हुआ जाता है॥

(प्रश्न) असंज्ञी पंचेद्रियसे लेकर अयोगकेवली पर्यंत सब जीव पंचेन्द्रिय हैं। जिनके केवलज्ञान है वे भी जीव जन पंचेन्द्रिय हैं और पांचों इन्द्रियें उनके विद्यमान हैं तब इन्द्रियोंके कार्य मतिज्ञान आदि क्षायोपशमिकज्ञान होने चाहिये क्योकि समर्थकारण इन्द्रियोंके रहते कार्य ज्ञान अवश्य भावी है। अतः यह कहना कि केवलज्ञानके अस्तित्व समयमे मतिज्ञान आदि नहीं होसकते यह कथन निर्मूल है (उत्तर) सयोगकेवली और अयोगकेवली को जो पंचेन्द्रिय बतलाया है वह द्रव्येन्द्रियकी अपेक्षासे है भावेंद्रियकी अपेक्षासे नहीं है क्योकि भावेन्द्रियकी विद्यमानता में समस्त ज्ञानावरणीय-कर्मका क्षय नहीं होसक्ता है और ज्ञानावरणकर्मके निर्मूल क्षयके विना सर्वज्ञपना भी नहीं होसक्ता है यदि सयोगकेवली और अयोगकेवलीके भावेंद्रियकी सत्ता मानी जायगी तो उनके ज्ञानावरणकर्मका क्षय निर्मूल न होसकैगा अतः वे सर्वज्ञ नहीं कहे जासकेंगे॥ जहां पर भावेन्द्रिय है वहीं पर मतिज्ञानादिक क्षायोपशमिकज्ञानोंका आविर्भाव होता है केवल द्रव्येन्द्रियके अस्तित्व कालमें नहीं क्योंकि द्रव्येन्द्रियकी सत्ताको नि:शक्तिक माना है वह ज्ञानोंकी उत्पत्तिमें कारण नहीं है। इस लिये जब केवलज्ञानके उदय रहने पर भावेन्द्रियका अस्तित्व नहीं रहता तब केवलज्ञानके साथ, कारण भावेन्द्रियके अभावमें कार्य मतिज्ञानादि नहीं हो सकते। अतः एक आत्मामे भाज्य रूप मतिज्ञान से लेकर चार ज्ञान तक एक साथ हो सकते हैं यह बात निर्बाध है किन्तु पांचो ज्ञान एक साथ नहीं हो सकते हैं॥

॥ मतिश्रुतावधयो विपर्ययश्च ॥३१॥

विपर्ययो मिथ्येत्यर्थः । कुतः ? । सम्यगधिकारात् ॥ चशब्दः समुच्चयार्थः । विपर्ययश्च सम्यक्चेति ॥

सूत्रम्--मतिश्रुतावधयो विपर्ययश्च	=मतिश्रुतावधयो विपर्ययश्च (भवति ज्ञानम्)
मति-श्रुत-अवधयः १। विपर्ययः १। च भवतिT ज्ञानम्	=मति-श्रुत-अवधि विपर्यय, उलटे वा मिथ्याज्ञान भी (=च) होते हैं ॥ अर्थात् मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान ये तीन ज्ञान विपरीत भी होते हैं मति आदि पांचों ज्ञानोको जिनको सम्यग् ज्ञान कह आये हैं उनमें आदि के तीन ज्ञान मिथ्या, वा विपरीत ज्ञान भी होते हैं और सम्यग् ज्ञान भी होते हैं ।

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इकतीसवां सूत्र पर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिंदी अनुवाद

विपर्ययः १। मिथ्या* इति* अर्थः १।	=(इस सूत्रमें) विपर्यय (शब्द) अयथार्थ अन्यथा वा मिथ्या ऐसा अर्थ (मे) है
कुतः ?* सम्यग्-अधिकारात् ५।	=(प्रश्न) क्योंकर (विपर्यय शब्द मिथ्या अर्थ में है) (उत्तर) सम्यक् अधिकारसे अर्थात् इस सूत्र में सम्यक् शब्दकी अनुवृत्ति "सम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्राणिसे आरही है"
चशब्दः १। समुच्चय-अर्थः १।	=(सूत्र में) चशद वा अव्यय समुच्चय के लिये अथवा समुदाय के लिये है
विपर्ययः १। च* सम्यक्* च* इति*	=अयथार्थ अन्यथा (विपर्यय) भी (=च) है यथार्थ (=सम्यक्) भी (=च) है

(१) इस सूत्रका श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों आम्नायोंमे पाठ और अर्थ एक है । ज्ञान शब्दकी अनुवृत्ति नवम सूत्रसे आतीहै ॥ (२)च अव्ययके बहुतसे अर्थ हैं उनमे से यह समुच्चयके लिये ग्रहण किया है इसलिये मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान सम्यग् ज्ञान भी होते हैं और मिथ्याज्ञान भी होते हैं ऐसा अर्थ है। तत्वार्थ श्लोक वार्तिकमें 'चशब्द समुच्चयार्थ 'से यह अभिप्राय लिया है कि उससे सूत्रमे मुख्य और व्यवहार दोनों प्रकार के सम्यक्त्वोंका ग्रहण है यदि सूत्रमे च अव्यय न होता तो मतिश्रुतावधयो विपर्ययः' ऐसा सूत्र होता और उसका अर्थ यह होता कि मति-श्रुत-अवधि मिथ्या (ज्ञान) होते हैं ॥ (प्रश्न) 'मतिश्रुत अवधि मिथ्या ज्ञान होते हैं' इससे यह बात नहीं निकलती कि 'मतिश्रुतावधि' सम्यग्ज्ञान नहीं हो सकते हैं फिर चशब्द सूत्रमे व्यर्थ है । (उत्तर) श्लोक वार्तिक के रचयिता कहते हैं कि यदि सूत्रका अर्थ विना च अव्ययके यह मानलें कि उससे मिथ्याज्ञान और सम्यग्ज्ञान दोनों प्रगट होते हैं तब सूत्रमे विपर्ययका अर्थ मिथ्याज्ञान है चशब्दसे संशय और अनध्यवसायका ग्रहण है अर्थात्

कुतः पुनरेषांविपर्ययः ?

	अर्थात् मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान मिथ्याज्ञान भी हैं और सम्यग्ज्ञान भी हैं
कुतः * पुनः * एषाम् ॥॥ विपर्ययः ॥ ?	=(प्रश्न) बहुरि इन (ज्ञानों) के विपरीतता (=विपर्यय) क्योंकर है ?

मतिज्ञानादि संशय अनध्यवसाय स्वरूप भी हैं इस अर्थके करनेमें 'च शब्द' का सूत्रमें लाना व्यर्थ नहीं है ॥ श्लोक वा० पृष्ठ २५५ श्लोक ९, १०, ११ देखो ॥ यहां पर स्मरण रहे कि मतिज्ञान इन्द्रिय और मनसे होता है अतः उसके विपरिणाम संशय विपर्यय और अनध्यवसाय तीनों मिथ्याज्ञान हैं और श्रुतज्ञान मनकी सहायतासे होता हैं इसलिये उस के भी विपरिणाम संशय विपर्यय और अनध्यवसाय तीनो मिथ्याज्ञान हैं किन्तु अवधिज्ञानके विपरिणाम विपर्यय और अनध्यवसाय ही है संशय नहीं क्योकि यह 'स्थाणु है वा पुरुष है ?' ऐसे अनेक कोटियोंको स्पर्श करनेवाले ज्ञान का नाम संशय है और जहां पर अंधकार रहनेसे दूरमें स्थित पदार्थ स्थाणु है वा पुरुष हैं ऐसा स्पष्ट ज्ञान न होनेसे उन दोनोंमें रहने वाले ऊर्ध्वता सामान्यका प्रत्यक्ष है वक्र कोटर आदि स्थाणुके विशेष एव शिर हाथ आदि पुरुषके विशेषो का प्रत्यक्ष नहीं किन्तु पहले उनका ज्ञान हो चुका है इसलिये मनके द्वारा उनका स्मरण है इस रीतिसे सामान्यप्रत्यक्ष विशेषाप्रत्यक्ष और विशेष स्मरण है वहीं पर संशयज्ञान होनेके कारण इन्द्रियों के आधीन इसकी उत्पत्ति मानी है परतु अवधिज्ञानमे इन्द्रियोके व्यापारकी कोई अपेक्षा नहीं न मनके व्यापारकी कोई अपेक्षा है क्योंकि अवधिज्ञानको इन्द्रिय और मनसे अजन्य माना है किन्तु अवधिज्ञानावरणके क्षयोपशमको विशुद्धता रहने पर वह सामान्य विशेष स्वरूप अपने विषयभूत पदार्थोंको जानता है इसलिये अवधिज्ञानका विपरिणमन संशय स्वरूप नहीं होसकता लेकिन हां ! मिथ्यात्व नाम कर्मके विपरीत श्रद्धान स्वरूप मिथ्यादर्शनके साथ अवधिज्ञान रहता है इसलिये वह विपरीत स्वरूप है तथा जिस पदार्थकी ओर अवधिज्ञानका उपयोग लगा हुआ है कारण वश उसका पूरा ज्ञान नहोनेके पहिले ही दूसरे किसी ज्ञानके विषयभूत दूसरेही पदार्थकी ओर उपयोग लग जाय उस समय मार्गमे जाते हुये पुरुष को तृण स्पर्शके ज्ञानके समान अनिश्चयात्मक अवधिज्ञान होजाता है इसलिये अवधिज्ञानका विपरिणमन अनध्यवसाय स्वरूप भी है किंतु जिस समय जिस पदार्थ को अवधिज्ञान विषय कर रहा है उस समय यदि वह उपयोग दृढ़ होगा तो अवधि ज्ञानका अनध्यवसाय स्वरूप विपरिणमन नहीं हो सकता ॥ (देखो श्लोक वार्तिक श्लोक १२, और १३ पृष्ठ २५६)

(१) सामान्यरूपसे विपर्ययका अर्थ मिथ्याज्ञान है तो भी संशय विपर्यय और अनध्यवसाय इन तीनों प्रकारकेज्ञानोका यहां ग्रहण है परंतु स्मरण रहे कि मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, और अवधिज्ञान येही तीनों ज्ञान विपरीत वा मिथ्याज्ञान होसक्ते है न कि मनःपर्यय और केवलज्ञान (प्रश्न) क्यों ?

मिथ्यादर्शनेन सहैकार्थसमवायात् सरजस्ककटुकालाबुगतदुग्धवत् ॥

मिथ्यादर्शनेन ३।। सह॥ =(उत्तर) मिथ्यात्व (के उदयकरि) सहित (=सह) (आत्मा और मतिज्ञानादिक का)

एकार्थ-समवायात् ५। =एकमेकतारूप (=एकार्थ) संबंध, सम्मेलन, वा संश्लेष (के हेतु) से (=समवायात्) (मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान के विपरीतता होजाती है)

सरजस्क-कटुक-आलाबु-गत-दुग्धवत्॥ =जैसेकि गिरी वा रज सहित कडुवी (=कटुक) तुम्बीमें (=अलाबु) क्षेपा हुआ (=गत) दूध

अर्थात् जैसे गिरी सहित वा रज सहित (=सरजस्क) कडुवी तुम्बीमें दूध रखनेसे कडवा होजाता है तैसेही दर्शन मोहनीय कर्म के उदयसे आत्माका जो मिथ्यादर्शन परिणाम होता है उसके साथ मति आदि ज्ञान भी एक स्थानमें रहते हैं — दोनों (मिथ्यादर्शन परिणाम और मति आदि ज्ञान) एक साथ आत्मामें रहते हैं इस लिये मिथ्यात्व के संबंधसे मति आदि ज्ञान मिथ्या ज्ञान कहे जाते हैं ॥

(उत्तर) क्योंकि दर्शन मोहनीय कर्मके उदयसे जो आत्माका मिथ्यादर्शन परिणाम होता है उसके साथ मतिज्ञान , श्रुतज्ञान , अवधिज्ञान भी एक स्थानमें रहते हैं। उक्त मतादिज्ञान और आत्माका मिथ्यादर्शन परिणाम दोनों एकसाथ आत्मामें रहते हैं इसलिये मिथ्यात्वके संबंधसे मतिज्ञान आदि मिथ्याज्ञान कहे जाते हैं। परंतु मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञानका आत्मामें मिथ्यादर्शनके कारणोंके सर्वथा नष्ट होजाने पर सम्यक्त्व गुणकी प्रगटता से जिस समय आत्मा विशुद्ध होजाता है उस समय उदय होता है। विना सम्यक्त्वगुणके उदय नहीं होसकता इस लिये मिथ्यात्वके संबंधसे सर्वथा दूर रहनेके कारण मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान कभी मिथ्या नहीं होसकते। उन दोनों ज्ञानोंमें जिस समय दर्शन मोहनीय कर्मका सर्वथा क्षय हो जाता है और चारित्र मोहनीय कर्मका उपशम (अर्थात् मन पर्ययज्ञान छठे गुणस्थानमें भी होजाता है अतः यह प्रत्याख्यानादिके उपशमकी अपेक्षा कथनहै होजाता है उस समय आत्मामें मनःपर्ययज्ञानका उदय होता है इसलिये मिथ्यात्वके साथ संबध न रहनेके कारण वह मिथ्याज्ञान नहीं होसक्ता तथा ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय मोहनीय और अन्तराय इन चार घातिया कर्मों के सर्वथा नष्ट होजाने पर आत्मामें केवलज्ञान का उदय होता है। उस समय परिपूर्ण विशुद्धता केवलज्ञानमें प्रगट होजाती है इसलिये वह भी मिथ्याज्ञान नहीं कहा जा सकता ॥

ननु च तत्राधारदोषात् दुग्धस्य रसविपर्ययो भवति; न च तथा मत्यज्ञानादीनां विषयग्रहणे विपर्ययः ॥ तथाहि, सम्यग्दृष्टिर्यथा चक्षुरादिभिः रूपादीनुपलभते, तथा मिथ्यादृष्टिरपि मत्यज्ञानेन ॥ यथा च सम्यग्दृष्टिः श्रुतेन रूपादीनि जानाति निरूपयति च तथा मिथ्यादृष्टिरपि श्रुताज्ञानेन ॥ यथा चावधिज्ञानेन सम्यग्दृष्टिः रूपिणोऽर्थानवगच्छति तथा मिथ्यादृष्टिर्विभङ्गज्ञानेनेति ॥ अत्रोच्यते—

ननु* च* तत्र* आधार-दोषात् ५। दुग्धस्य ६।१।	=फिर (=च) प्रश्न (=ननु) वहां (तुंबीमें) आधारके दूषणसे दूधका
रस-विपर्ययः १। भवति T न* च* तथा*	=स्वाद उलटा हो जाता है (अर्थात् कडुआ होजाता है) परंतु (=च) नहीं है तैसे
मति-अज्ञान-आदीनां ६।३। विषय-ग्रहणे ७।१। विपर्ययः १।	=मतिअज्ञानादिकोंके विषय ग्रहण (करने) में विपरीतता अर्थात् जानमें तो विषय का ग्रहण सम्यक्त्वमें और मिथ्यात्वमें समान होता है
तथाहि* सम्यग्दृष्टिः १। यथा* चक्षुरादिभिः ३।३।	=उदाहरण (=तथाहि) सम्यग्दर्शनवाला जैसे नेत्र आदिक इन्द्रियोंसे
रूपादीन् २। उपलभते T तथा* मिथ्यादृष्टिः १। अपि*	=रूपादिकों को जानता है (=उपलभते) तैसे मिथ्यादर्शनवाला भी
मति-अज्ञानेन ३।१। ; यथा* च* सम्यग्दृष्टिः १। श्रुतेन ३।१।	=कुमतिज्ञानकरि (जानता है) और (=च) जैसे सम्यग्दर्शनवाला श्रुतज्ञानकरि
रूपादीनि २।३। जानाति T निरूपयति T च* तथा*	=रूपादिकों को जानता है तथा (=च) कथन करता है तैसे
मिथ्यादृष्टिः १। अपि* श्रुत-अज्ञानेन ३।१। यथा* च*	=मिथ्यादृष्टि भी कुश्रुतज्ञान द्वारा (जानता है और व्याख्यान करता है) और जैसे
अवधिज्ञानेन ३।१। सम्यग्दृष्टिः १। रूपिणः २। अर्थान् २।	=अवधिज्ञानकरि सम्यग्दर्शनवाला रूपी वा मूर्तीक वस्तुओं को
अवगच्छति T तथा* मिथ्यादृष्टिः १। विभंगज्ञानेन ३।१।	=जानता है (=अवगच्छति) तैसे मिथ्यादर्शनवाला कुअवधिज्ञानकरि (जानता है)
इति* अत्र* उच्यते T	=ऐसा (प्रश्न होने पर) यहां कहते हैं कि

(१) जानाति T निरूपयति T इति* अपि* पाठान्तरम् १।१। =जानता है कथन करता। ऐसा भी अन्य पाठ है

सदसतोरविशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत् ॥ ३२ ॥

सद्विद्यमानमसदविद्यमानमित्यर्थः । तयोरविशेषेण यदृच्छया उपलब्धेर्विपर्ययो भवति ॥

सदसतोराविशेपाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत् =सदसतोराविशेपाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत् (विपर्ययो भवति ज्ञानम्)

सत्-असतोः ६। =विद्यमान और अविद्यमान (पदार्थों) का वा प्रशस्त (भले) अप्रशस्त (बुरे) का

अविशेपात् ५। =विशेपरूप वा प्रभेदरूप ज्ञान वा ज्योका त्यो विवेक न होने (के हेतु) से

यदृच्छ-उपलब्धेः ५।। उन्मत्तवत्* =अपनी यद्वातद्वाइच्छा द्वारा ग्रहण करने से उन्मत्त (पुरुष) के समान

विपर्ययः १। भवतिT ज्ञानम् १।।। =विपरीत वा मिथ्याज्ञान होता है भावार्थ जिस प्रकार मदमाता वा उन्मत्त पुरुष भार्याको माता और माता को भार्या समझता है यह उसका ज्ञान मिथ्याज्ञान है परंतु किसी समय वह भार्याको भार्या और माताको माता कहता है तौ भी उसका यह जानना सम्यग्ज्ञान नहीं कहलाता क्योंकि उसको भार्या और माताके भेदका यथार्थ विवेक वा ज्योका त्यो ज्ञान और विचार नहीं उसी प्रकार मिथ्यात्वके उदयसे सत् और असत् पदार्थोंका यथार्थ ज्ञान न होनेके हेतु से कुमतिज्ञान कुश्रुतज्ञान कुअवधिज्ञान (विभङ्ग अवधिज्ञान) भी मिथ्या ज्ञान है ॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित बत्तीसवां सूत्र पर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिन्दी अनुवाद ॥

सत् १।।। विद्यमानम् १।।। असत् १।।। अविद्यमानम् १।।। =सत् विद्यमान वा वर्तमान (वस्तु) है असत् अविद्यमान वा अनछती (वस्तु) है

इति* अर्थः १। तयोः[२] ६।।। अविशेपेण ३। =ऐसा तात्पर्य है इन दोनों (सत् असत्) का यथार्थ विवेक न होने से

यदृच्छया ३।। उपलब्धेः ५।। विपर्ययः १। भवति T =अपनी मनमानी इच्छाकरि (=यदृच्छया) ग्रहण करनेसे विपरीत वा मिथ्या (ज्ञान) है

---

(१) इस सूत्रका दोनो श्वेताम्बर और दिगम्बर सम्प्रदायोंमे पाठ और अर्थ एक है ॥ ज्ञान शब्दकी नौवां और विपर्ययकी ३१वां सूत्रसे अनुवृत्ति लीग. है

(२) तयोः शब्द सत् और असत् शब्दके लिये है और सत् असत् विद्यमान अविद्यमानके कारण नपुसकलिंगी हैं अतः तयोः नपुसकलिंगी है ॥

(३) सत्=प्रसशा=प्रशस्त तत्वज्ञान (ख) विद्यमान । असत्=अप्रशस्त अर्थात् अप्रशस्त तत्वज्ञान (ख) अविद्यमान (देखो तत्त्वार्थ राज वार्तिक पृष्ठ ६४)

कदाचिद्रूपादि सदप्यसदिति प्रतिपद्यते, असदपि सदिति, कदाचित्सत्सदेव, असदप्यसदेवेति मिथ्यादर्शनोदयादध्यवस्यति ॥ यथा पित्तोदयाकुलितबुद्धिर्मातरं भार्येति, भार्यामपि मातेति मन्यते । यदृच्छया मातरं मातैवेति भार्यामपि भार्यैवेति च ॥ तदपि न तत्सम्यग्ज्ञानम् ॥ एवं मत्यादीनामपि रूपादिषु विपर्ययो वेदितव्यः ॥ तथा हि कश्चिन्मिथ्यादर्शनपरिणाम आत्मन्यवस्थितः रूपाद्युपलब्धौ सत्यामपि कारणविपर्यासं भेदाभेदविपर्यासं स्वरूपविपर्यासं च जनयति ।

कदाचित्* रूपादि ;॥ सत् ;॥ अपि* असत् ;॥	=क ो (=कदाचित्) रूपादिक छती वा विद्यमान (वस्तु) को भी अविद्यमान है
इति* प्रतिपद्यते T असत् ;॥	=ऐसा कहता है(=प्रतिपद्यते)वा अंगीकार करता है(=प्रतिपद्यते)अविद्यमान(वस्तु) को
अपि* सत्;॥ इति* कदाचित्* सत्;॥ सत्;॥ एव*	=भी विद्यमान है ऐसा (कहता है) कभी विद्यमान को विद्यमानही
असत्;॥ अपि* असत्;॥ एव* इति* मिथ्या-	=अविद्यमान को भी अविद्यमान ही ऐसा मिथ्या-
दर्शन-उदयात् ;। अध्यवस्यति T यथा* पित्त-उदय-	=दर्शनके उद्रेकसे वा उदयसे निश्चय करता है (=अध्यवस्यति) जैसे पित्तके उदयसे
आकुलितबुद्धिः[1] ;। मातरम्;॥ भार्या;॥ इति* भार्याम्;॥	=घवराई हुई है बुद्धि जिसकी (ऐसा पुरुष) जननीको भार्या वा पत्नी ऐसा पत्नीको
अपि* माता ;॥ इति* मन्यते T यदृच्छया ;॥	=भी जननी ऐसा मानता वा जानता है अपनी मनमानी इच्छा से
मातरम् ;॥ माता ;॥ एव* इति च भार्याम् ;॥ अपि*	=माताको माता ही ऐसा और (=च) भार्या को भी
भार्या;॥ एव*इति*तदपि*न* तत्सम्यग्ज्ञानं;॥ एवं*	=भार्याही (मानता है) वहभी (=तदपि) उसका (=तद्) सम्यग्ज्ञान नहीं है इस प्रकार
मति-आदीनां;॥अपि*रूपादिषु;॥विपर्ययः;।वेदितव्यः;।	=मतिज्ञान आदिकोंका भी रूपादिकमें विपरीतता जानना योग्य है(सो ही कहते है कि)
तथा हि* कश्चित्* मिथ्यादर्शन-परिणामः;।आत्मनि;।अवस्थितः	=जैसे (=तथा हि) किसी आत्मामें ठहरा हुआ मिथ्यात्वपरिणाम
रूपादि-उपलब्धौ ;॥	=(नेत्रादि करि) रूपादिकों के जानने में (सम्यग्दृष्टि मिथ्यादृष्टि के)
सत्याम् ;॥ अपि*	=जैसाका तैसा(=सत्याम्)यथार्थ वा समान(=सत्याम्)(ज्ञान)होने परभी(=अपि)
कारणविपर्यासम् ;। भेदाभेदविपर्यासम् ;।	=कारण विपर्यास को भेदाभेद विपर्यासको
च* स्वरूप-विपर्यासम् ;। जनयति T	=और (=च) स्वरूप विपर्यास को उपजाता है ।

(१) आकुलितबुद्धि (=घवराई हुई है बुद्धि जिस की) बहुव्रीहि समास होने के कारण पुल्लिंग में यह वाक्य लिखा गया है ॥

कारणविपर्यासस्तावत्- रूपादीनामेकं कारणममूर्त्तं नित्यमिति केचित्कल्पयन्ति ॥ अपरे पृथिव्यादिजातिभिन्नाः परमाणवश्चतुस्त्रिद्व्येकगुणास्तुल्यजातीयानां कार्याणामारम्भका इति ॥

तावत् कारणविपर्यासः ;। रूपादीनाम् ;। एकम् ;॥ =प्रथम कारण विपर्यास (कहा जाता) है । रूपादिकों का एक (ही)

कारणम्;॥अमूर्त्तम्;॥नित्यम्;॥इति केचित् कल्पयन्ति =कारण अमूर्तीक नित्य है ऐसा कितनेक (वादी) कल्पना करते हैं अर्थात् ब्रह्माद्वैतवादी मानते हैं कि रूपादिकोंका कारण एक अमूर्तीक नित्य ब्रह्मही है ब्रह्महीसे हुये हैं । सांख्यमती कहते हैं कि रूपादिकों का कारण अमूर्तीक नित्य प्रकृति है प्रकृतिसे ही ये रूपादिक उपजे हैं ॥ (यद्यपि नेत्रोंको ये जैसे हैं तैसे ही दीखे हैं)

अपरे ;। पृथिवी-आदि- =दूसरे अर्थात नैयायिक और वैशेषिक मानते हैं कि पृथिवी जल अग्नि वायुकी (=आदि)

जातिभिन्नाः ;। परमाणवः ;। चतुर्- =जातिरूप जुदी जुदी (=भिन्नाः) परमाणुं (यथाक्रम वा क्रमसे) गंधरसरूपस्पर्श चार

त्रि-द्वि-एक-गुणाः;। =रस रूप स्पर्श तीन (गुणवाली) रूप स्पर्श (दो गुणवाली) स्पर्श एक गुणवाली हैं

तुल्य-जातीयानां;। कार्याणाम ;॥ आरम्भकाः;। इति =(सो अपने अपने)समान जातियोंके (स्कंधरूप) कार्योंको आरम्भ करनेवाली है अर्थात पृथवी आदि चारो अपनी अपनी जातिके भिन्न भिन्न स्कंधरूप कार्योंको उपजाते हैं

---

(१) पार्थिवपरमाणुषु गन्धरसरूपस्पर्शाः । आप्येषु रसरूपस्पर्शाः । तैजसेषु रूपस्पर्शौ । वायवीयेषु स्पर्शः ॥

पार्थिवपरमाणुषु ;। गन्धरसरूपस्पर्शाः ;। =पृथिवी से होने वाले परमाणुओं में गन्ध-रस-वर्ण-स्पर्श (ये चार गुण) हैं

आप्येषु ;। रस-रूप स्पर्शाः ;। =जल से होने वाले (परमाणुं) नि में रस, वर्ण और स्पर्श (ये तीन गुण) होते हैं ॥

तैजसेषु ;॥ रूप-स्पर्शाः ;। =अग्नि से होने वाले (परमाणु) नि में रूप और स्पर्श (ये दो गुण) होते हैं (॥)

वायुवीयेषु ;। स्पर्शः ;। =पवन से होने वाले (परमाणुं) नि में स्पर्श (एक गुण) होता है ॥

आप्येषु और वायुवीयेषु पुल्लिंगी नपुंसकलिंगी दोनों हैं ॥

अन्ये वर्णयन्ति--पृथिव्यादीनि चत्वारि भूतानि, भौतिकधर्मा वर्णगन्धरसस्पर्शाः, एतेषां समुदायो रूपपरमाणुरष्टक इत्यादि॥ इतरे वर्णयन्ति--पृथिव्यप्तेजोवायवः काठिन्यादिद्रवत्वाद्युष्णत्वादीरणत्वादिगुणा जातिभिन्नाः परमाणवः कार्यस्यारंभकाः॥ भेदाभेदविपर्यासः कारणात्कार्यमर्थान्तरभूतमेवेति

अन्ये १। वर्णयन्ति T पृथिवी-आदीनि २।।। =दूसरे (अर्थात् बौद्धमती) वर्णन करते हैं कि पृथिवी जल-तेज-वायु (=आदि)
चत्वारि २।। भूतानि १।।। भौतिकधर्माः १। =चार विशेष गुणवाले द्रव्य हैं (=भूतानि) इन विशेष द्रव्योंके स्वभाव और धर्म
वर्णगन्धरसस्पर्शाः १। एतेषाम् ६। =रूप, गंध, रस, स्पर्श हैं इन (पृथिवी, जल, तेज, वायु, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श) का
समुदायः १। रूपपरमाणुः १। अष्टकः १। इत्यादि १।।। =समूह रूप परमाणु अष्टक है एसें और (वार्तें भी मानते) हैं
इतरे १। वर्णयन्तिT पृथिवी-अप्-तेजस्-वायवः १। =अन्य (अर्थात् चार्वाक मती) कहते हैं कि भूमि, जल, अग्नि, पवन, (क्रमसे)
काठिन्यादि-द्रवत्वादि-उष्णत्वादि-ईरणत्वादि- =कठोरतादि, वहनापनादि, तप्तादि, प्रेरणत्वादि (=ईरणत्वादि)
गुणाः १। जातिभिन्नाः १। परमाणवः १। =गुण वाले भिन्न भिन्न जातिवाले परमाणुं हैं।
कार्यस्य ६।।। आरम्भकाः १। =(ते भिन्न भिन्न जाति वाले परमाणु पृथिवी आदिक स्कंध रूप) कार्य के
=आरम्भ करने वाले हैं। (इस सबका भावार्थ यह है कि) भूमि के परमाणुं के काठिन्यादिगुण और जलके परमाणुओंके द्रवत्वादिगुण और अग्निके परमाणुओंके ऊष्णत्वादिगुण और पवनके परमाणुओं के ईरणत्वादिगुण हैं ते भिन्न भिन्न परमाणुं पृथिवी आदिक भिन्न भिन्न स्कन्ध अपनी अपनी जातिरूप उत्पन्न करते हैं। (इस प्रकार तो पृथिवी आदिक पदार्थों के कारण में विपर्यय मानते हैं)
भेदाभेदविपर्यासः १। कारणात् ५।।। कार्यम् १।।। =भेदाभेद विपर्यासः जैसे कारणसे कार्य
अर्थान्तरभूतम् १।।। एव* इति* =भिन्न पदार्थ (=अर्थान्तर) ही होता है अर्थात् पृथिवी आदिक परमाणूं नित्य हैं तिन से स्कन्धरूप जो कार्य उत्पन्न होते हैं वे उन परमाणुंओंसे भिन्न हैं वा गुणसे गुणी भिन्न ही है वा द्रव्यसे गुण पृथक् ही है

अनर्थान्तरभूतमेवेति च परिकल्पना ॥ स्वरूपविपर्यासः रूपादयो निर्विकल्पाः सन्ति न सन्त्येव वा । तदाकारपरिणतं विज्ञानमेव । न तदालम्बनं वस्तु बाह्यमिति ॥ एवमन्यानपि परिकल्पनाभेदान् दृष्टेष्टविरुद्धान्मिथ्यादर्शनोदयात्कल्पयन्ति तत्र च श्रद्धानमुत्पादयन्ति । ततस्तन्मत्यज्ञानं श्रुताज्ञानं अवध्यज्ञानं च भवति ॥ सम्यग्दर्शनं पुनस्तत्त्वार्थाधिगमे श्रद्धानमुत्पादयति । ततस्तन्मतिज्ञानं श्रुतज्ञानमवधिज्ञानं भवति आह प्रमाणं

अनर्थान्तरम् ।॥ भूतम् ।॥ एव इति च परिकल्पना ॥	=और (=च) (कारणसे कार्य) अभिन्न पदार्थ ही होता है इस प्रकार (किसी किसी की) कल्पना या मानना है। जैसे घट पटादिक और ग्राम नगर पर्वतादिक सत्रसे उत्पन्न होते हैं या नवहीं हैं हुये नहीं हैं॥ (उत्पादि भेदाभेद विपर्यास है जहां भेद होय तहां अभेदकी कल्पना जहां अभेद होय तहां भेदकी कल्पना, ऐसे विपर्यय योगियोंकी है)
स्वरूपविपर्यासः। रूपादयः। निर्विकल्पाः। सन्ति।	=स्वरूप विपर्यास जैसे रूपादिक निर्विकल्प हैं अर्थात् इनकी कल्पना नहीं होसक्ती है (ऐसी वैभाषिक मतवालों की कल्पना है)
न सन्ति एव वा	=अथवा रूपादिक कोई पदार्थ नहीं हैं
तद्-आकार-परिणतम् ।॥ विज्ञानम् ।॥ एव	=उन (रूपादिक) के आकाररूप परिणया विज्ञान ही है
न तद्-आलम्बनम् ।॥ वस्तु ।॥ बाह्यम् ।॥ इति	=तिस (विज्ञान) के आश्रयभूत या आलम्बनरूप बाह्यद्रव्य (रूपादिक) नहीं हैं (विज्ञान अद्वैतवादियोंका जो बौद्धमतका एक भेद है ऐसी ऊपर कही हुई कल्पना है)
एवम् अन्यान् । अपि परिकल्पनाभेदान् ।	=इस प्रकार भिन्न भिन्न बहुत (=परि) कल्पना के भेदों को भी
दृष्टेष्टविरुद्धान् । मिथ्यादर्शनउदयात् ।	=जो प्रत्यक्ष अनुमान प्रमाण से विरुद्ध हैं मिथ्यात्व के उदय से
कल्पयन्ति तत्र च श्रद्धानम् ।॥ उत्पादयन्ति	=मानते हैं। और (=च) तहां प्रतीति या रुचि (=श्रद्धान) को उत्पन्न करते हैं
ततः तत् ।॥ मतिअज्ञानम् ।॥ श्रुत-अज्ञानम् ।॥	=जिससे यह (=तत्) कुमतिज्ञान (तथा) कुश्रुतज्ञान
च अवधिअज्ञानम् ।॥ भवति पुनः सम्यग्दर्शनम् ।॥	=और (तथा) कुअवधिज्ञान या विभंग अवधिज्ञान होता है ॥ और सम्यक्त्व
तत्त्व-अर्थ-अधिगमे । श्रद्धानम् ।॥ उत्पादयति	=यथार्थ या यथावस्थित (=तत्त्व) वस्तु या पदार्थके (=अर्थ) जाननेपर प्रतीति उपजाता है
ततः तद् ।॥ मतिज्ञानम् ।॥ श्रुतज्ञानम् ।॥	=जिससे जो मतिज्ञान (तथा) श्रुतज्ञान
अवधिज्ञानम् ।॥ भवति आह प्रमाणम् ।॥	=(तथा) अवधिज्ञान होता है। पूंछता है कि प्रमाण (प्रत्यक्ष और परोक्ष)

द्विप्रकार वर्णितम् । प्रमाणैकदेशाश्च नयास्तदनन्तरोद्देशभाजो निर्देष्टव्या इत्यतआह ॥

नैगमसंग्रहव्यवहारर्जुसूत्र शब्दसमभिरूढैवम्भूतां नयाः ॥३३॥

द्विप्रकारम्₂॥।वर्णितम्₂॥।प्रमाण-एक-देशाः₃।च नयाः₃। =दो प्रकार वर्णन किया गया है और (=च) प्रमाणके एकदेश (जे) नय (ते)
तद्-अनन्तर- =(प्रमाणनयैरधिगमः इस सूत्र मे) उस (प्रमाण) के अत्यन्तसमीप (=अनन्तर)
उद्देश-भाजः ₃। निर्देष्टव्याः ₃। इति※ अतः※ आह T =नाममात्र कहे (=उद्देशभाज) (अब) कथन किये जाने योग्यहैं। इसलिये कहतेहैं कि

नैगमसंग्रहव्यवहारर्जुसूत्रशब्द समभिरूढैवम्भूता नयाः ॥३३॥

=नैगमसंग्रहव्यवहारर्जुसूत्रशब्दसमभिरूढैवम्भूता (:सप्त) नया) : (भवन्ति) ॥३३॥

नैगम-सग्रह-व्यवहार-ऋजुसूत्र-शब्द- =नैगम संग्रह (=सङ्ग्रह), 'यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द,
समभिरूढ-एवम्भूताः ₃। सप्त ₃। नयाः ₃। भवन्ति T =समभिरूढ, और एवम्भूत सात नय विद्यमान हैं (=भवन्ति) अर्थात्

---

(१) व्यवहारर्जुसूत्र =व्यवहार+ऋजुसूत्र (दोनों वाक्य ठीक हैं देखो टिप्पणी पृष्ठ ७४)॥ (२) एवम्भूत = एवभूत (देखो टिप्पणी पृष्ठ ५ और नीचे की टि०)। म् पदान्त हो वा किसी प्रत्यय के अंतमें हो और इस म् के पश्चात् कोई व्यंजन आवे तौ म् का विकल्पकरि अनुस्वारमें परिवर्तन होजाता है यदि इस म् के पश्चात् श्-ष्-स्-र्-ह् आवे तो म् अवश्य ही अनुस्वार में पलट जावेगा। यदि हम इस म् को अनुस्वार में न पलटें तो उस अनुनासिक 'ङ्-ञ्-ण् न्-म् में परिवर्तन होगा जिस वर्ग का व्यंजन इस म् के पीछे आवे और यदि इस म् के पश्चात य्-व्-ल् मे से कोई आवे तो म् अनुनासिक य्-व् ल् में क्रमानुसार वा यथायोग्य पलट जवेगा। अतः एवम्+भूतानयाः शब्द का म अनुस्वार में पलटकर एवं भूतानयाः ऐसा शब्द बना। इसलिये एवम्भूतानया और एवभूतानया दोनों वाक्य ठीक हैं॥ (भाण्डारकर मार्गोपदेशिका पृष्ठ १३) (३) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य में हमारे यहां के तेतीसवां सूत्रके स्थान में "नैगमसंग्रहव्यवहारर्जुसूत्रशब्दा नयाः" चौंतीसवां सूत्र है। इस चौंतीसवां सूत्रके लगता ही "आद्यशब्दौ द्वित्रिभेदौ" (=आदिकी नैगमनय) के दो (भेद। शब्द (नय) के तीन भेद हैं) ऐसा सभाष्य० में पेंतीसवां सूत्र है॥ (देखो पृष्ठ ४९४)॥

नय (देखो प० जयचद की वचनिका मुद्रित पृष्ठ १९५) दोनों अम्नायों की ये वशावली मिलतीसी हैं।

- नय
  - अर्थ नय
    - नैगम
    - संग्रह
    - व्यवहार
    - ऋजुसूत्र
  - शब्द नय
    - शब्द
    - समभिरूढ
    - एवभूत

नय (देखो सभाष्यतत्वार्थाधिगमसूत्रम् पृष्ट ३१)

- नय
  - नैगम
    - देश परिक्षेपी
    - सकल परिक्षेपी
  - संग्रह
  - व्यवहार
  - ऋजुसूत्र
  - शब्द
    - साम्प्रत
    - समभिरूढ
    - एवभूत

वस्तुमें अनेक धर्म (=स्वभाव) होते हैं उनमेंसे किसी एक धर्मकी मुख्यता लेकर

नय (इन नयोंकी परिभाषा और व्याख्याके लिये देखो टिप्पणी पृष्ठ ४९५-४९८

- निश्चय नय
  - अशुद्ध निश्चयनय
    - द्रव्यार्थिक नय
      - नैगम
        - द्रव्य नैगम
          - शुद्धद्रव्य नैगम
          - अशुद्धद्रव्य नैगम
        - पर्याय नैगम
          - अर्थपर्याय नैगम
          - व्यंजनपर्याय नैगम
          - अर्थव्यंजन प० नैगम
        - द्रव्यपर्याय नैगम
          - शुद्ध द्रव्यार्थ पर्याय नैगम
          - अशुद्ध द्रव्यार्थ पर्याय नैगम
          - शुद्धद्रव्य व्यंजन पर्याय नैगम
          - अशुद्धद्रव्य व्यं० पर्याय नैगम
      - संग्रह
      - व्यवहार
    - पर्यायार्थिक नय
      - ऋजुसूत्र
      - शब्द
      - समभिरूढ़
      - एवंभूत
  - शुद्ध निश्चयनय
- व्यवहार नय, उपनय, उपचार नय (जय०वच० पृ० २१३-२१५)
  - सद्भूत व्यवहारनय
    - शुद्धसद्भूत व्यवहारनय
    - अशुद्ध सद्भूत व्यवहारनय
  - असद्भूत व्यवहारनय
    - समानजातीय असद्भूत व्यवहारनय
    - असमानजातीय सद्भूत व्यवहारनय
    - मिश्र असद्भूत व्यवहारनय
  - उपचरित व्यवहारनय
    - समानजातीय उपचारका उपचार
    - विजातीय उपचारका उपचार
    - मिश्र उपचारका उपचार

पदार्थका व्यवहार भेद और उपचार दोनोंका ग्रहण करने वाली उपनय वा उपचारनय है अर्थात् वह व्यवहार नय है जहां नयके 'निश्चय नय और व्यवहार नय' दो भेद किये हैं सूत्र (३३)मे वर्णित व्यवहारनय यह है जो संग्रह नयके द्वारा ग्रहणकिये हुये पदार्थके भेद प्रभेद करती है ॥

अविरोधरूप साध्य पदार्थ को जानै सो नय है । उसके उपर्युक्त सातभेद हैं ॥

(१) नय = वस्तुके एक देश को जानने वाले ज्ञान को नय कहते हैं ॥ (२) वस्तु के किसी सत्य या यथार्थ अंशके ग्रहण करने वाले ज्ञानको निश्चय नय कहते हैं । जैसे मिट्टीके घटको मिट्टीका घट कहना ॥ (३) किसी निमित्तके वशसे एक पदार्थको दूसरे पदार्थरूप जाननेवाले ज्ञानको व्यवहारनय कहते हैं । जैसे मिट्टी के घड़े को घीके रहने के निमित्तसे घी का घड़ा कहना ॥ (४) "भाव क्रोध आदिक रागादिक नय अशुद्ध निश्चै परवान" द्यानतरायजी अनुवादित द्रव्य संग्रह ॥ "तहां जीवकूं मतिज्ञानादिक का कर्त्ता कहिए सो अशुद्ध निश्चयनय है" अर्थ प्रकाशिका ॥ जीवको क्षयोपशमरूप मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान मनः पर्ययज्ञान चार ज्ञानों का कर्त्ता कहना सो तो अशुद्धनिश्चय नय है और (५) शुद्ध दर्शन ज्ञानका अर्थात् केवल दर्शन और केवलज्ञानका कर्ता कहना सो शुद्ध निश्चयनय है ॥ "निहचै (नयसे) शुद्ध बुद्ध निजगुनमे केवल दर्शन ज्ञान सरूप" ॥ द्रव्य संग्रह ॥ (६) जो द्रव्य अर्थात् सामान्य को ग्रहण करै सो द्रव्यार्थिक नयहै (७) जो विशेष अथात् गुण अथवा पर्याय का विषय करै सो पर्यायार्थिक नयहै(८) नैगम, संग्रह, व्यवहार, द्रव्यार्थिक नयहैं और ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ, एवंभूत य पर्यायार्थिक नयहै इनका परिभाषा हमने सूत्रार्थ में दी हैं यहां पर केवल इतना दिखाना है कि व्यवहार शब्द जो इनसात नयके प्रसंगमे है उसका अर्थ "संग्रहनयसे ग्रहण किये हुये पदार्थोंको विधि पूर्वक भेद प्रभेद जहांतक करै" "फिर किसी प्रकारका विभाग न हो सकै" "सो जहां ऋजुसूत्रका विषयहै ताके पहले तांई संग्रह व्यवहार दोऊ नय चले जाय है" ऐसा है जय० पृष्ठ २०१ परन्तु नयवंशावलीमे (पृष्ठ ४९४) निश्चयनयके निकट जो व्यवहार नय दीहै जिसको उपनय और उपचार नय भी कहतेहै और जिसके आठ भेद कहे है वह "किसी निमित्तके वशसे एक पदार्थको दूसरे पदार्थ रूप जाननेवाले ज्ञानका नामहै" जैसाकि इस पृष्ठकी संख्या (३)मे कहाहै इसका विशेष ऐसेहै कि "जहां अन्य पदार्थके भावको अन्य पदार्थविषै आरोपण करै तथा परनिमित्ततें भए जे नैमित्तिक भाव ताकूं ही वस्तु का निजभाव कहै । तथा आधार आधेयभाव आदि प्रयोजनके वशतै आरोपण कीजिए तथा एक देशमे सर्वदेश का उपचार करै तथा कारणविषैं कार्यका उपचार करै इत्यादि सर्वही व्यवहार (नय) कहावै है, अर्थ प्रकाशिका पृष्ठ ८६ । हमारी समझमे व्यवहारनय जो सातनयोंमे गर्भित है और उपचारनय, उपनय या व्यवहारनय जो निश्चय नयके निकट वंशावलीमे दी है इन दोनोमे यही उपर्युक्त दिया हुआ अंतर है यदि हम विचारलै कि संग्रहनयसे ग्रहण किये हुये पदार्थ का भेद प्रभेद व्यवहारनयसे न करै तो व्यवहार नहीं चल सकताहै और उपचार नय उपनय (या निश्चयनयके निकटस्थ वाली व्यवहारनय) से भी व्यवहार चलता है तो इस अवस्था मे दोनों नय व्यवहार को चलाने वाली सामान्यरूप से एकभी कही जा सकती हैं॥

(१) जितने द्रव्य हैं—वे अपनी भूत, भविष्यत, वर्त्तमान काल की समस्त पर्यायों से

( ) एक अखण्डद्रव्यको भेदरूप विषय करनेवाले ज्ञानको सद्भूत व्यवहार नय कहतेहैं। जैसे–जीवके केवलज्ञानादिक वा मतिज्ञानादिक गुण हैं॥ (जैन सिद्धान्त प्रवेशिका पृष्ठ २३) उक्तनयके शुद्धसद्भूत व्यवहार और अशुद्धसद्भूत व्यवहार ये दो भेद हैं॥

( ) शुद्धगुण और शुद्धगुणीका भेद कहना जिस प्रकार जीवके केवलज्ञानादि गुण हैं अथवा शुद्ध पर्याय और शुद्ध पर्यायीका भेद कहना जिस प्रकार सिद्ध जीवकी सिद्ध पर्याय है यह शुद्ध सद्भूत व्यवहार है॥ () अशुद्धगुण और अशुद्ध गुणीका भेद कहना जैसे जीवके मतिज्ञानादिक गुण हैं अथवा अशुद्ध पर्याय और अशुद्ध पर्यायीका भेद कहना जैसे संसारी जीवकी देव आदि पर्याय है यह अशुद्ध सद्भूत व्यवहारनय है॥

( ) "अन्य स्वतुका गुण अन्यके कहै सो असद्भूत व्यवहार है" जय० पृष्ठ २१४ जिसके द्वारा स्वजाति संबधी असत् व्यवहार होता हो वह स्वजात्य सद्भूतव्यवहारनय है जैसे परमाणु बहु प्रदेशी हैं। यहां पर बहुप्रदेशी पुद्गल द्रव्य परमाणुका सजातीय है परंतु परमाणु बहु प्रदेशी नहीं वह एक प्रदेशीही है इसलिये एक प्रदेशीके स्थानमें बहु प्रदेशी कहनेसे 'परमाणुको बहु प्रदेशी कहना" समान जातीय असद्भूत व्यवहारनयका विषय है। ( ) जिस नयके द्वारा विजाति संबंधी असत् व्यवहार होता हो वह विजात्यसद्भूत व्यवहार है जैसे जहां एकेन्द्रियादिक देह सो पुद्गल स्कंध हैं तिनको जीव कहना सो असमान जातीय असद्भूत व्यवहारनयका विषय है॥

( ) जिस नयके द्वारा स्वजाति विजाति संबधी असद् व्यवहार हो वह स्वजाति विजात्यसद्भूत व्यवहारनय हैं जैसे जहां मतिज्ञानको मूर्तीक कहना क्योंकि मूर्तीकसे उपजे है तथा रुके है। तहां मतिज्ञान तो अमूर्तीक जीवका धर्म हैं और मूर्तीकपना पुद्गलका धर्म है यह मिश्र असद्भूत व्यवहार हुआ॥ (अन्य उदाहरण) जैसे ज्ञान ज्ञेयमें रहता है यहां पर ज्ञेयसे जीव अजीव दोनों प्रकारके ज्ञेय पदार्थोंका ग्रहण है उनमें जीव पदार्थ ज्ञानका सजातीय है और अजीव पदार्थ ज्ञानका विजातीय है दोनोंको ज्ञानका आधार कहना स्वजातिविजात्यसद्भूत व्यवहारनयका विषय है॥

( ) अत्यन्त भिन्न पदार्थोंको जो अभेदरूप ग्रहण करै उसको उपचरित व्यवहारनय अथवा उपचरित असद्भूत व्यवहारनय कहते हैं। जैसे हाथी घोड़ा, ग्रह मेरे हैं इत्यादि। इसके भी तीन भेद (१) स्वजात्युपचरितासद्भूत व्यवहार वा समान जातीय उपचारका उपचार (२) विजात्युपचरितासद्भूत व्यवहार वा विजातीय उपचारका उपचार (३) स्वजाति विजात्युपचरितासद्भूत व्यवहार वा मिश्र उपचारका उपचार है॥ जिस नयके द्वारा स्वजाति संबंधी आरोपित असत् व्यवहार हैं जैसे स्त्री, पुत्र, पुत्री, माता, पिता आदि मेरे हैं यहां पर स्त्री पुत्र, पुत्री, माता, पिता आत्मा की

अन्वयरूप (=जोड़रूप) हैं अपनी किसी भी पर्याय से कोई द्रव्य भिन्न नहीं है । सो

अपेक्षा से स्वजातीय हैं । उनको मेरा कहना स्वजातीय आरोपित असत् है इसलिये वह स्वजात्युपचरितासद्‍भूत व्यवहार नयका विषय है अथवा समान जातीय उपचारका उपचारहै ॥ ( ) जिसके द्वारा विजाति संबंधी आरोपित असत् व्यवहार हो वह विजात्युपचरितासद्‍भूत व्यवहार नयहै । जैसे वस्त्र आभरण आदि मेरेहै । यहांपर वस्त्र आभरण आदि अचेतन पदार्थ आत्माके विजातीयहैं । उनको मेरा कहना विजातीय आरोपित असत् है इसलिये वह विजात्युपचरितासद्‍भूत् व्यवहार नय का विषय है अथवा विजातीय उपचारका उपचार है ( ) जिस नयके द्वारा स्वजाति विजाति दोनो संबंधीआरोपति असत् व्यवहार हो वह स्वजाति विजात्युपचरितासद्‍भूत व्यवहार नयहै जैसे देश, राज्य, गढ आदि मेरे हैं यहां पर देश आदिके कहनेसे उनमें रहने वाले मनुष्य तिर्यंच आदि जीव और ग्रह, कूप आदि अजीव दोनों प्रकारके पदार्थों का ग्रहण है । उनमें मनुष्य आदि आत्माके स्वजातीय, और ग्रह, कूप आदि विजातीय हैं अतः राज्य, पुर, देश, गढ़ आदि मेरे हैं इस स्थान पर स्वजातीय विजातीय दोनों प्रकार के पदार्थो को मेरा कहना स्वजाति विजात्युपचरितासद्‍भूत व्यवहारनय का विषय है अथवा मिश्र उपचार का उपचार है । ऐसे व्यवहार नय अनेक प्रकार प्रवर्ते है ॥

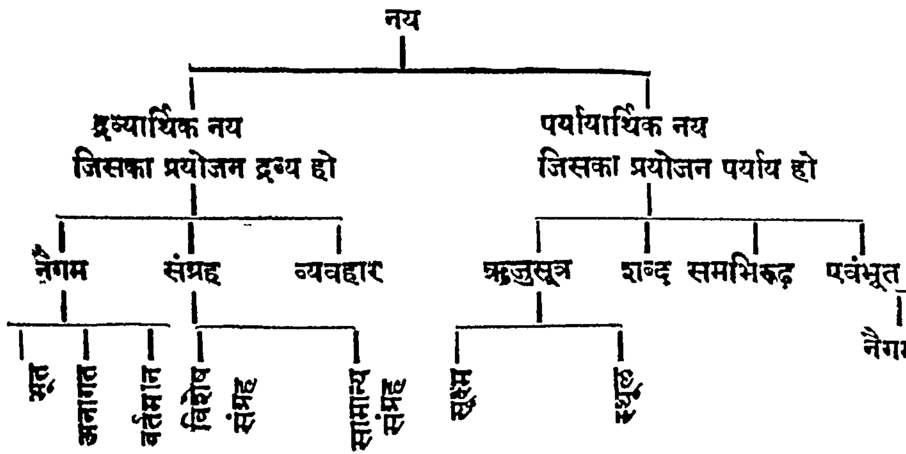
"या नेगमके भेद तीन हैं । द्रव्यनैगम, पर्यायनैगम, द्रव्यपर्यायनैगम । तहां द्रव्य नेगमके दोय भेद है । शुद्धद्रव्यनैगम, अशुद्धद्रव्यनैगम । वहुरि पर्यायनेगमके तीन भेद अर्थपर्यायनैगम, व्यंजनपर्यायनैगम, अर्थव्यंजनपर्यायनैगम । वहुरि द्रव्यपर्यायनेगमके च्यारि भेद शुद्धद्रव्यार्थपर्याय नैगम, अशुद्धद्रव्यार्थपर्यायनेगम, शुद्धद्रव्यव्यंजनपर्यायनैगम, अशुद्धद्रव्यव्यंजनपर्यायनैगम ऐसे नेगमनयके नवभेद भये । तहां उदाहरण- जो, संग्रह नय का विषय सन्मात्र (= सत् मात्र) शुद्धद्रव्य है ताका यहु नेगमनय संकल्प करे है जो सन्मात्र द्रव्य समस्तवस्तु है, ऐसे कहै तहां सत् तौ विशेषण भया तातै गौणहै । वहुरि द्रव्य विशेष्य भया तातै मुख्य है यहु शुद्धद्रव्यनैगम है । वहुरि जो पर्यायवान् है सो द्रव्य है, तथा गुणवान् है सो द्रव्य है ऐसा व्यवहारनय भेद करि कहे है । ताका यहु नेगमनय संकल्प करे है । तहां पर्यायवान् तथा गुणवान् यहतौ विशेषण भया तातै गौण है वहुरि द्रव्य विशेष्य भया तातै मुख्य है । ऐसे अशुद्ध द्रव्य नेगमनय भया" ॥

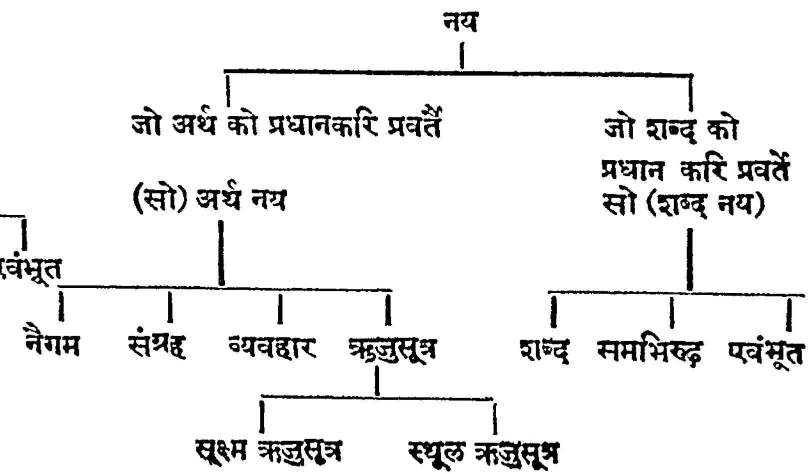
( ) वहुरि प्राणीके सुखसंवेदन है सो क्षण ध्वंसी है ऐसे क्षणध्वंसी ऐसा तौ सत्ताका अर्थ पर्याय है सो विशेषण है वहुरि सुख है सो संवेदनका अर्थपर्यायहै सो विशेष्य भया तातै मुख्य है । तातै यहु अर्थपर्याय नैगम भया ॥

अतीत पर्यायोंकों को, भविष्यत पर्यायोको तथा वर्तमान पर्यायों को वर्तमानकालमें संकल्प करै ऐसे ज्ञानको तथा वचनको नैगमनय कहते हैं । उसके तीनभेद हैं (१) भूत नैगमनय (२) भावी वा भविष्यत नैगमनय (३) वर्तमान नैगमनय । जहांपर अतीतकालमें वर्तमानका आरोपण किया जाता है उसको भूत नैगमनय कहते हैं । जैसे "अद्य दीपोत्सव दिने श्री वर्द्धमान स्वामी मोक्षं गतः"

( ) बहुरि पुरुषविषै चैतन्य है सो सत् है इहां सत् नामा व्यजन पर्याय है सो विशेषणहै बहुरि चैतन्य नामा व्यंजन पयाय है सो विशेष्यहै तातैं मुख्य है । यहु व्यंजन पर्याय नैगमहै ॥ ( ) बहुरि धर्मात्माविषै सुख जीवीपणां है । इहां सुख तौ अर्थपर्याय है सो विशेषणहै । बहुरि जीवित व्यंजन पर्याय है सा विशेष्य है तातै मुख्य है । यहु अर्थव्यंजनपर्याय नैगम है ॥

( ) बहुरि ससार विषै सत् विद्यमान सुख है सो क्षणमात्रहै । इहां सत् शुद्ध द्रव्य है सो विशेषण है । सुखहै सो अर्थ पर्याय हैं सो विशेष्य है, तातैं मुख्य है । यह शुद्धद्रव्य अर्थ पर्याय नैगम भया ॥ ( ) बहुरि विषयी जीव है सो एक क्षण सुखीहै इहां जीव है सो अशुद्ध द्रव्य है सो विशेष्य है । सुख है सो अर्थ पर्याय है सो विशेषण है तातैं गौण है यहु अशुद्धद्रव्य अर्थपर्यायनैगम भया ॥ ( ) बहुरि चित् सामान्य है सो सत् है इहां सत् ऐसा शुद्धद्रव्य है सोतो विशेषण है तातैं गौण है । चित् है सो व्यंजन पर्याय है सो विशेष्य है तातै मुख्य है । ताका यहु शुद्धद्रव्य व्यंजन पर्याय नैगम भया ( ) बहुरि जीव है सो गुणी है इहां जीव है सो अशुद्धद्रव्य है, सो विशेष्य है सो मुख्य है । बहुरि गुण हैं सो व्यंजन पर्याय है सो विशेषण तातैं गौण है । यह अशुद्धद्रव्य व्यंजन पर्याय नैगम भया ॥ " उक्त सात नयोंके निम्न मान चित्र भी है





आज दिवालीके दिन श्री वर्द्धमान भगवान् मोक्षको गये। यहां पर यद्यपि भगवान् को मोक्ष गये सहस्रों वर्ष बीत गये परंतु संसारमें वैसा व्यवहार होता है अर्थात् उस सहस्रों वर्ष पहलेके दिनका संकल्प आजके दिनमें किया जाता है। भूत नैगम नयकी अपेक्षासे ही ऊपरका वाक्य ठीक समझा जाता है (२) जहां पर होने वाले पदार्थमें होचुकनेके समान संकल्प किया जाता है वा कथन किया जाता है उसको 'भावी वा भविष्यत् नैगम कहते हैं। जैसे अर्हन् सिद्ध एव अर्थात् अरहंत भगवान सिद्धही हैं। यद्यपि अरहंत आगे सिद्ध होंगे अभी सिद्ध हुये नहीं हैं होने वाले हैं तथापि होचुकनेके समान कथन किया गया है इसलिये इसको भावि नैगम कहते हैं॥ (३) जहांपर कोई काम करना आरंभ कर दिया हो चाहै वह थोडा बना हो चाहै थोडा भी न बना हो तथापि उसको बने हुयेके समान कहना यह वर्तमान नैगमनय है। जैसे कोई पुरुष रोटी बनानेकी सामग्री इकठी कर रहा है और उसे किसीने पूछा क्या करते हो? वह उत्तर देता है कि रोटी बनाता हूं किन्तु यहां रोटी बनानेरूप पर्याय अभीतक प्रगट नही हुई केवलमात्र लकडियें जल और अन्य सामान रख रहा है तथापि वर्तमान नैगम नयस ऐसा वचन कह सकता है कि 'रोटी बना रहा हूं।

(२) जो एक वस्तुकी समस्त जातिकी और उसकी सब पर्यायोको संग्रहरूप करके एक स्वरूप कहै, उसको संग्रहनय कहते हैं जैसे 'घट' कहनेसे सब घटोंको समझना अथवा द्रव्य कहनेसे जीव अजीवादि तथा उनक भेद प्रभेदादि सबका समझना सो है॥

(३) जो संग्रहनयसे ग्रहण किये पदार्थोंका विधि पूर्वक (व्यवहारके अनुकूल) व्यवहरण अर्थात् भेद प्रभेद कर सो व्यवहारनय है। जैसे संग्रहनयसे 'द्रव्य' कहनेसे समस्त भेद प्रभेदरूप द्रव्योका सामान्यतासे ग्रहण होता ह। परन्तु द्रव्य दो प्रकारके हैं जीव और अजीव। जीव देव नारकी मनुष्य तिर्यंच चार प्रकारके हैं। अजीव पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल, आकाश ये पांच प्रकारक हैं। इस प्रकार व्यवहारके साधक जितने भेद प्रभेद होसकैं उनको जाने सो व्यवहारनय हैं। सारांश—संग्रहनयसे ग्रहण किये हुये पदार्थोंको लोकव्यवहारके अनुसार वा विधिसे भेद प्रभेद जहांतक करेकि फिर किसी प्रकारका विभाग न होसकै। सो जहां ऋजु सूत्रका विषय है तिसके पहलेतक संग्रह और व्यवहार दोनो नय चले जाय हैं॥

(४) अतीत अनागत दोनों पर्यायोको छोड़कर वर्तमान पर्याय मात्रको ग्रहण करे सो ऋजुसूत्रनय है॥ अर्थात् द्रव्यकी पर्याय समय समय (=कालका सबसे छोटे भाग) में परिणमती (पलटती) रहती है। सो एक समयवर्ती पर्याय को अर्थ पर्याय कहते है। अर्थ पर्याय ही ऋजुसूत्रनयका विषय है। ऋजुसूत्रनय वर्तमान एक समय मात्रकी पर्यायको कहता वा ग्रहण करता है। अतीत अनागत समयकी पर्यायको ग्रहण नहीं करता। जैसे कोई पुरुष कहींसे आकर बैठा है किसी दूसरे ने पूछा कहो भाई कहांसे आरहे हो? उस समय उसका यह कहना कि कहींसे नहीं आरहा हूं क्योंकि उस समय गमन क्रियाका सर्वथा अभाव है अतः शुद्ध वर्तमानकी अपेक्षा 'इस समय कहींसे नही आरहा हूं' यह ऋजुसूत्रनय का विषय है और ठीक है।

(५) जो व्याकरण संबंधी लिंग, संख्या (वचन), साधन (पुरुप), काल, पुरुप, उपसर्ग, उपग्रह (=परस्मैपद, आत्मनेपद) आदिक के व्यभिचारोंको (=दोषोंको) दूर करके जाने वा कहै उसे शब्दनय कहते हैं (इसके उदाहरण वृत्तिके अनुवादमें बहुत दिये हैं)

(६) अनेक अर्थोंको छोडकर प्रधानतासे जो एकही अर्थमें रूढ (=प्रसिद्ध) हो उसी अर्थको विपय करने वाला हो अर्थात् उसी अर्थको जानै वा कहै सो समभिरूढनय है । जैसे—गो शब्दके वाणी पृथिवी गमन आदि अनेक अर्थ होते है तथापि मुख्यता से गो नाम गाय नामा पशुका ही ग्रहण किया जाता है । यहां पर यह अवश्य समझ लेना चाहिये कि सोती, उठती, बैठती, चलती, फिरती, किसी भी अवस्था में वह क्यों न हो सब लोग उसको गायही कहते है । सो यह समभिरूढनय है ।

(७) जिस कालमें जो क्रिया करता हो उसको उस कालमें उसही नामसे जाने वा कहै उसको एवं भूत नय कहते हैं ॥ जैसे देवों के पतिको परम ऐश्वर्य सहित हो, उसी अवस्थामें इंद्र कहना पूजन, अभिपेकादि करते हुये इन्द्र नहीं कहना तथा जिस कालमें वह शक्तिरूप क्रियाको करे उसी समय 'शक्र' कहना अन्य समयमें शक्र नहीं कहना ॥ यहां पर "एवभूयत"=ऐसा होना इस एवंभूत नय के अर्थ की प्रतीति (=निश्चय) शब्द से होती है इस लिये शब्द ही एवभूत नय माना है कारणमें कार्य का उपचार है अर्थात् एवंभूत नय के अर्थकी प्रतीति में कारण शब्द है और कार्य एवंभूतनय है ॥

---

(१) समभिरूढ और एवंभूत नयोंमें यह भेद वा अंतर है कि व्युत्पत्ति सिद्ध अर्थ क्या है (अर्थात् व्याकरणकी रीतिसे शब्दके साधनमें क्या अर्थ होता है) इस वातका कुछ भी विचार नकर प्रसिद्ध अर्थका ज्ञान लेना समभिरूढनयका विपय है 'गो' शब्दका व्युत्पत्तिसिद्ध अर्थ 'जो गमन करे सो गाय है यह है इसका तो विचार न करना किंतु उसके स्वर्ग, किरण,वज्र, जल,मयूक,वायु, सूर्य्य,दृष्टि, वाणी, दिशा,माता, वाणी, भूमि इत्यादि अनेक अर्थोंमें प्रसिद्ध अर्थ 'गाय' लेना और सव अर्थोंको छोड कर उस गायको सोती उठती, वैठती, चलती सव अवस्थाओमें गाय कहना यह समभिरूढ नयका विपय है । ऐसेही इन्द्र शब्दका व्युत्पत्तिसिद्ध अर्थ परमैश्वर्यका भोगना है इसका तो विचार न करना किंतु शक्तिमान होना पुरोंका विदारण करना इत्यादि अनेक अर्थोंको छोडकर प्रसिद्ध अर्थ परमैश्वर्यका भोगनाही लेना, पर उस इन्द्रको परमैश्वर्यका भोग कर रहा हो, वा न कर रहा हो पूजा करते समय, अभिपेक करते समय इत्यादि सव अवस्थाओमें इन्द्र कहना यह समभिरूढनयका विपय है । परंतु जहांपर केवल व्युत्पत्ति सिद्ध ही अर्थ विपय हो वा ग्रहण हो वह एवंभूत नय है जैसे गमन करने वालीको ही गाय कहना खडी रहने वाली वा सोने वालीको गाय न कहना वा जिस समय इन्द्र परमैश्वर्यका भोग कर रहा हो उसी समय इन्द्र कहना अन्य समय इन्द्र न कहना यह एवंभूत नयका विपय है ॥

एतेषां सामान्यविशेषलक्षणं वक्तव्यम् । सामान्यलक्षणं तावद्वस्तुन्यनेकान्तात्मन्यविरोधेन हेत्वर्पणात्साध्य-विशेषस्य याथात्म्यप्रापणप्रवणप्रयोगो नयः । स द्वेधा द्रव्यार्थिकः पर्यायार्थिकश्चेति

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित तेतीसवां सूत्र पर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिंदी अनुवाद ॥

एतेषाम् ६। सामान्य-विशेष-लक्षणम् १।। वक्तव्यम् १।। =इन (नयों) का संक्षेपस्वरूप और व्यौरा वार (=विशेष) स्वरूप कहने योग्य है

तावत्* सामान्य-लक्षणम् १।। अनेकान्त-आत्मनि ७। =प्रथम (=तावत्) सामान्य स्वरूप (यह है कि) अनेक धर्म स्वरूप वा स्वभाव वाला

वस्तुनि ७। अविरोधेन ३। हेतु-अर्पणात् ५।। =वस्तुमें अविरोधकरि (=निर्दोषतासे) अविरुद्धतासे हेतुरूप समर्पण करनेसे

साध्य- =साध्य (पदार्थ) के (जिस पदार्थ को सिद्ध करना चाहते हैं उसका वा साधनीय वस्तुके)

विशेषस्य ६। याथात्म्य-प्रापण- =विशेषका वा व्यौरेवारका यथार्थ स्वरूप (=याथात्म्य) प्राप्त करने को

प्रवण-प्रयोगः १। नयः १। =व्यापाररूप प्रयोग सो नय है भावार्थ वस्तुमें अनेक धर्म वा स्वभाव होते हैं उनमेंसे किसी एक धर्मकी मुख्यताकरि अविरोधरूप (=विना किसी दोषके) जिसकरि साध्य (साधनीय वा सिद्ध किये जाने योग्य पदार्थ) जाना जाय सो नय है

सः १। द्वेधा* द्रव्यार्थिकः १। च पर्यायार्थिकः १। इति* =वह (नय) दो प्रकार द्रव्यार्थिक और (=च) पर्यायार्थिक ऐसे हैं

---

(१) नयकी परिभाषा भले प्रकार समझ मे आवें अतः तत्त्वार्थ राज वार्तिक मे लेते हैं "प्रमाण प्रकाशितार्थ विशेष प्ररूपको नयः" प्रमाणकरि प्रकाश रूप किये पदार्थका विशेष प्ररूपण करने वाला (=निर्दोष व्यौरावार कथन करने वाला) जो ज्ञान है सो नय है भावार्थ प्रमाण के द्वारा प्रकाशित अस्तित्व, नास्तित्व, नित्यत्व, अनित्यत्व आदि अनंत धर्म स्वरूप वा अनंत स्वभाव वाले जीव अजीव आदि पदार्थों को एक देश रूप से निरूपण करने वाला है उसको नय कहते हैं ॥ व्याख्या ॥ प्रकृष्टमान वा प्रकृष्ट ज्ञानको प्रमाण कहते हैं । वह एक धर्म द्वारा पदार्थके सब धर्मोको जान लेता है इसलिये सकलको जाननेके हेतुसे उसका अर्थ सकलादेश है ॥ "प्रमाण प्रकाशितार्थेत्यादि" नयके लक्षणमें जो 'प्रमाण प्रकाशित' पदका उल्लेख है उसका यह तात्पर्य है कि जो पदार्थ प्रमाण के द्वारा प्रकाशित है उसीके एकदेश को भेद प्रभेद रूपसे निर्दोष कथन करने वाला नय है किन्तु जिन पदार्थों का प्रकाश प्रमाणाभास से है (=सदोष ज्ञान द्वारा है) उनका प्रकाशक नय नहीं हैं मिथ्यानय (प्रकाशक) है तथा उक्त नयके लक्षण मे रूपक शब्दके स्थान में जो प्ररूपक शब्दका उल्लेख किया है उसका तात्पर्य यह है कि प्रमाण प्रकाशित अनंत धर्मस्वरूप

द्रव्यं सामान्यमुत्सर्गः अनुवृत्तिरित्यर्थः। तद्विषयो द्रव्यार्थिकः॥ पर्यायो विशेषोऽपवादो व्यावृत्तिरित्यर्थः। तद्विषयः पर्यायार्थिकः।

द्रव्यम् ।१।१। सामान्यम् ।१।१। उत्सर्गः ।१।१। अनुवृत्तिः ।१।१। इति* अर्थः ।१।१। =द्रव्य, सामान्य, उत्सर्ग, और अनुवृत्ति ये एकार्थ हैं (=अर्थ)

तद्विषयः ।१।१। द्रव्यार्थिकः ।१।१। =द्रव्य है विषय जिसका सो द्रव्यार्थिक है अर्थात् यह द्रव्यार्थिकनय केवल द्रव्यका ही विषय करती है। पदार्थोंके विकार (=पर्याय) और अभाव को विषय नहीं करती क्योंकि द्रव्य से अन्य पर्याय और अभाव कोई पदार्थ नहीं

पर्यायः ।१।१। विशेषः ।१।१। अपवादः ।१।१। व्यावृत्तिः ।१।१। इति* अर्थः ।१।१। =पर्याय, विशेष, अपवाद और व्यावृत्ति ये एकार्थ हैं

तद्विषयः ।१।१। पर्यायार्थिकः ।१।१। =पर्याय है विषय जिसका सो पर्यायार्थिक है अर्थात् यह नय केवल जन्म मरण आदि पर्यायो को ही विषय करती है द्रव्यको विषय नहीं करती है क्योंकि पर्यायों से भिन्न कोई द्रव्य पदार्थ नहीं॥

पदार्थोंके एक देश का भेद प्रभेदरूप कथन है वह संशय आदि सब प्रकार के दोषों से रहित है॥ इसरूप से नयका यह सामान्य लक्षण निर्दोष है॥

(१) यह नयका प्रकरण बहुत महत्वका और कार्यकारी है, अतः उचित है कि तत्त्वार्थ राजवार्तिक से इनकी निरुक्ति भाषा अनुवाद सहित दी जावै॥

द्रव्यम् अस्ति इति मतिः अस्य सः द्रव्यास्तिकः 'द्रव्य-भवनम्=द्रव्यहै ऐसी है बुद्धि(=मति) जाकी सो द्रव्यास्तिक है (अर्थात्) द्रव्यका होना एव* न* अतः * अन्ये।१।३। भावविकाराः।१।३। अपि* अभावः।१।१। =ही है इस (द्रव्य) से अन्य पदार्थके विकार (=भावविकार) कहिये पर्याय नहीं है और अभाव भी (कोई पदार्थ)

न* तद् व्यतिरेकेण ।३।१। अनुपलब्धेः ।५।१। इति* द्रव्यास्तिकः ।१।१। =नहीं है क्योंकि द्रव्य विना (=तद्-व्यतिरेकेण) पर्यायकी प्राप्ति नहीं है ऐसे द्रव्यास्तिकहै

पर्यायः एव अस्ति इति मतिः।१।१। अस्य सः पर्यास्तिकः।१।१। जन्मादि-=पर्याय ही है ऐसी है मति जिसकी सो पर्यास्तिक है। जन्म मरण आदि भावविकारमात्रम् ।१।१। एव भवनं।१।१। न ततः अन्य द्रव्यम्।१।१। =पर्यायमात्र (=भावविकारमात्र) ही होना (भवनं) है तिस (पर्यायमात्र) से अन्यद्रव्य नहीं अस्ति। तद्-व्यतिरेकेण।३।१। अनुपलब्धेः।५।१। इति पर्यायास्तिकः।१।१। =है। क्योंकि उस (पर्याय) विना (=व्यतिरेकेण)(द्रव्यकी) अनुपलब्धिहै ऐसें पर्यास्तिकहै

तयोर्भेदा नैगमादयः ।

तयोः । भेदाः । नैगम-
आदयः ।

=उन दोनों (द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नयो) के भेद नैगम
=संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ, एवंभूत हैं अर्थात्

अथवा* द्रव्यम् ।। एव* अर्थः । अस्य । न गुणकर्मणी ।।
तद् अवस्थारूपात् ।। इति* द्रव्यार्थिकः ।
पर्यायः । एव* अर्थः । अस्य । (सः पर्यायार्थिकः) रूपादि-
उत्क्षेपण-आदि-लक्षणः ।
न* ततः* अन्यत्* द्रव्यम् ।। इति* पर्यायार्थिकः ।
अथवा* अर्यते T गम्यते T निष्पद्यते T
इति* अर्थः ।, कार्यं ।। द्रवति T गच्छंति T
इति द्रव्यम् कारणम् ।। द्रव्यम् एव अर्थः अस्य । कारणम् एव
कार्यम् न अर्थान्तरम् न च कार्य कारणयो ।। कश्चित् रूप भेदः

तद्-उभयम् ।। एकाकारम् ।। एव*पर्वांगुलि-
द्रव्यवत्* इति* द्रव्यार्थिकः । परि-
समंतात्* आयः । पर्यायः, पर्यायः । एव*
अर्थः । कार्यम् ।। अस्य । न * द्रव्यम् ।।
अतीतानागतयोः । विनिष्टानुत्पन्नत्वेन ।।
व्यवहार-अभावात् । सः । एव* एकः ।
कार्यकारणव्यपदेशभाग् ।

=वा द्रव्यही है प्रयोजन जिसका गुण कर्म जे हैं ते (प्रयोजन रूप) नहीं है
=क्योंकि वे (=तद् =गुण और कर्म) (द्रव्य की) अवस्थारूप हैं ऐसा द्रव्यार्थिक है
=पर्याय ही है प्रयोजन (=अर्थ) जिसका सो पर्यायार्थिक है क्योंकि रूपादिगुण
=और उत्क्षेपण वा ऊपर को फैंकना आदि कर्मरूप (पर्याय ही हैं)
=तिन (पर्यायों) से (भिन्न) अन्य द्रव्य (कोई पदार्थ) नहीं है ऐसा पर्यायार्थिक है
=अथवा प्राप्त किया जाय (=अर्यते) जाना जाय (=गम्यते) वनाया जाय (निष्पद्यते)
=ऐसा अर्थ है ॥ कार्य को प्राप्त करै (=द्रवति), कार्यरूप परिणमै (=गच्छंति)
=एसा द्रव्यहै वही कारण है । द्रव्य ही है अर्थ जिसका (अर्थात्) कारण ही
=कार्यहै । कोइ दूसरी वस्तु नहीं है । और कार्य कारणमे कुछ स्वरूपभेद नहीं है
अर्थात् कार्य और कारण दोनो एक ही स्वरूप हैं भिन्न नहीं हैं
=वे दोनो (कार्य और कारण)एक आकार हीहैं जैसे अंगुली और उसकी गांठें(=पर्व)
=एकद्रव्य (=द्रव्य) है। ऐसा द्रव्यार्थिक (नय) है॥(जिसकी)चारो ओर से (=परि)
=सब ओर से (=समतात् =परि) उत्पत्ति हो सो पर्याय है ॥ पर्याय ही है
=प्रयोजन (=अर्थ) कहिये कार्य जिसका न कि द्रव्य है (अर्थात् द्रव्य प्रयोजन नहीं है)
=क्योंकि अतीतकालका द्रव्यांशनष्ट हो चुका आगामी कालका द्रव्यांश अभी उत्पन्न नहीं
=(अतः) उसका व्यवहार नहीं होसकता ॥ सो ही एक (वर्तमानकाल [illegible] पर्याय)
=कार्यकारण (दोनो नामको) धारण करने वाली है अर्थात् कारण और कार्य दोनो
नामोंको धारण करने वाली उस वर्तमान कालीन पर्याय हीको पर्यायार्थिकनय
विषय करसकता है द्रव्यको नहीं ॥

तेषां विशेषलक्षणमुच्यते

नैगम, संग्रह, व्यवहार ये द्रव्यार्थिक नयके भेद हैं और ऋजुसूत्र शब्द समभिरूढ, एवंभूत ये पर्यायार्थिक नयके भेद हैं ॥ नीचे की टिप्पणी देखो ॥

तेषाम् ६। विशेष-लक्षणम् १।१। उच्यते T =उन (नैगमादि सातों नयों) का विस्तारसे (=विशेषण) लक्षण कहा जाता है

इति॰ पर्यायार्थिकः १।, अथवा॰ अर्थनं १ १।१ अर्थः १। = ऐसा पर्यायार्थिक है। अथवा अर्थ शब्दका (=अर्थनम्) अभिप्राय (=अर्थ)

प्रयोजनम् १।१ द्रव्यम् १।१ एव॰ अर्थः १ अस्य ६ इति॰ द्रव्यार्थिकः १। = प्रयोजन है। द्रव्य ही है प्रयोजन जिस (नय) का यह द्रव्यार्थिक है

प्रत्यय अभिधान- = क्योंकि (द्रव्यकी) प्रतीति (=प्रत्यय=विश्वास, निश्चय ज्ञान,) नाम (=अभिधान)

अनुप्रवृत्ति-लिंग-दर्शनस्य- =(द्रव्य के अनुकूल) प्रवर्तन रूप (इन) चिन्होंसे (=लिंग) देखे जाने वाले (द्रव्य) के

निह्नोतुम्-अशक्यत्वात् ५।१। = छिपाने का असमर्थ है अर्थात् संसार में जो द्रव्यकी प्रतीति होती है, जो संज्ञा है। एव द्रव्यके अनुकूल प्रवृत्ति रूप चिन्ह हैं उनका लोप नहीं हो सकता—सारांश-द्रव्यका ज्ञान, द्रव्यका नाम, और द्रव्योंमें प्रवृत्ति इन चिन्होंसे देखे जाने वाले द्रव्य का अपलाप वा अभाव नहीं कहा जा सक्ता है॥

पर्यायः १। अर्थ १। प्रयोजनम् १।१। अस्य ६। इति॰पर्यायार्थिकः १। = पर्याय है अर्थ कहिये प्रयोजन जिस (नय) का ऐसी पर्यायार्थिक है

वाक् + = क्योंकि (यह नय केवल पर्याय को विषय करती है इस कारण से) शब्द (=वाक्)

विज्ञान-व्यावृत्ति- = और जानन भाव (=विज्ञान) वा ज्ञानकी निवृत्ति और प्रवृत्ति (=व्यावृत्ति) के

निबन्धव्यवहारप्रसिद्धेः ५।१। = आधीन (=निबन्ध) वा कारणभूत (=निबन्ध) जो व्यवहार हैं उसकी प्रसिद्धि हैं अर्थात् मृद् पिंडसे घट पर्यायकी उत्पत्ति होती हैं तहां मृद् शब्दकी और मृद्ज्ञान की निवृत्ति है और घट शब्दके और उसके ज्ञानकी प्रवृत्तिरूप जो व्यवहार है वह होता है। यदि पर्यायको विषय करने वाला पर्यायार्थिक नय न होता तो संसारसे घट, पट, मठ, पुत्र पिता आदि व्यवहारों का लोप ही होजाय ॥

(१) अथवा अर्थनय और शब्दनय ऐसे भी दो भेद होते हैं अर्थात् नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र ये चार अर्थ वा प्रयोजनकों प्रधानकरि प्रवर्तती हैं इससे इनका अर्थनय कहते हैं और शब्द, समभिरूढ, एवंभूत शब्दको प्रधान करि प्रवर्तती हैं अतः इनको शब्दनय कहते हैं ॥

अनभिनिवृत्तार्थसङ्कल्पमात्रग्राही नैगमः ॥

अनू-अभिनिर्वृत्त-अर्थ-संकल्पमात्र ग्राही ₁। =अनिष्पन्न वा अपूर्ण (=अनू-अभिनिर्वृत्त) पदार्थ को संकल्पमात्र ग्रहण करने वाली
नैगमः ₁। =नैगमनय है अर्थात् संसार में जितने द्रव्यहैं वे अपनी भूतभविष्यत्

(१) गम् (भ्वादि प्रथमगणके) धातुमें 'नि' उपसर्ग और अच् (=अ) प्रत्यय लगाने पर निगम (शब्द) बनजाता है। यहां निगम (शब्द) का अर्थ संकल्प है जैसे–" संकल्पो निगमस्तत्र भवोऽयं तत्प्रयोजन" श्लोक वार्तिक श्लोक १८ पृष्ठ २६९, तत्र संकल्प मात्रस्य ग्राहको नैगमो नयः (=तहां पदार्थ का संकल्पमात्र का ग्रहण करने वाला नैगम नय है) तत्त्वार्थ श्लोक वार्तिक श्लोक १७ ॥ निगम शब्दसे कुशल अर्थमें अण् प्रत्यय करने पर अथवा निगम शब्द से भवअर्थ में अण् प्रत्यय करने पर नैगम शब्द की सिद्धि हुई है। "निगच्छन्त्यस्मिन्निति निगमनमात्रं वा निगमः" =निगच्छन्ति अस्मिन् इति वा निगमन मात्रं निगमः=(पदार्थ) जिसमें प्राप्त हों सो निगम है अथवा जो प्राप्त होना मात्र है सो निगम है ॥ "निगमे कुशलो भवा वा नैगमः" (राज० वा०) निगमे कुशलो नैगम वा निगमे भवो नैगमः =निगम (संकल्प) में (जो) कुशल हो सो नैगम है वा निगम मे होय सो नैगम है अतः संकल्पमें जो कुशल हो अथवा जो संकल्प में होने वाला हो वह नैगम है ॥ ऐसा नैगम शब्द का अर्थ है ॥

"अर्थ संकल्प मात्रग्राही नैगमः" (=पदार्थ को संकल्पमात्र ग्रहण करने वाला वा विषय करने वाला है सो नैगम नय है) तत्त्वार्थ राज वार्तिकपृष्ठ ६५। " नैकं गच्छतीति निगमो विकल्पस्तत्र भवो नैगमः " =अनेक (=नैकं=न-एकं) (पदार्थ जिसमे) प्राप्त हों सो निगम अर्थात् विकल्प है तहां (विकल्प वा निगम में) प्राप्ति (=भव) सो नैगम है॥ (नयचक्र संग्रह में गर्भित आलाप पद्धति पृष्ठ १४६)। विकल्प =संकल्प के अर्थ में भी यहां हो सक्ता है। विकल्प =विविधकल्पना॥ देखो वैद्य कोष पृष्ठ ६६८, ७४५॥ उपर्युक्त नैगम की परिभाषायें जो राज वार्तिक श्लोक वार्तिक, आलापपद्धतिसे दी हैं वे एकार्थ वाचीहैं। पुज्यपाद स्वामीकी परिभाषामे "अनभिनिर्वृत्त" शब्द अधिक है शेष भाग, उक्त तीनों परिभाषाओं से लगभग मिलता हुआ है अब प्रश्न यह है कि 'अनभिनिर्वृत्त' का परिभाषा पर क्या प्रभाव है ॥ (उत्तर) सीमा वद्ध होने से नैगमनयके वर्तमानकालनैगम और भविष्यत्कालनैगम दो भेदो को गर्भित करती है भूतकालनैगम का भेद छूटजाता है क्योंकि अर्थ प्रकाशिका और हिंदीअनुवाद तत्त्वार्थ राजवार्तिक और आलापपद्धति इत्यादि ग्रन्थोंमें नैगमनयके भूतकाल नैगम, वर्तमानकाल नैगम और भावीकाल नैगम तीन भेद कहे है अब इन तीनों भेदोंकी परिभाषा और उदाहरण देकर हमको यह दिखलाना है कि सर्वार्थसिद्धि में दीहुई परिभाषा नैगमनयकी ओरों की अपेक्षा सीमाबद्ध है।

वर्तमान काल की समस्त पर्यायों से अन्वय रूप (=जोड़रूप) है अपनी किसी भी

( ) जो अतीत पर्यायोंमे वर्तमानवत् आरोपण करै वा संकल्प करै सो भूतनैगमनय है जैसे "अद्य दीपोत्सवदिने श्रीवर्द्धमानस्वामी मोक्षं गतः" आज दिवालीके दिन पर श्री महावीर स्वामी मोक्ष पधारे हैं यहां पर यद्यपि भगवानको मोक्ष गये हुये सहस्रों वर्ष व्यतीत होगये अर्थात् २४५२ साल वीत गये परंतु संसारमें एसा व्यवहार होता है अतः नैगमनय की अपेक्षा ऐसा वचन वाधित नहीं वरन ठीकही समझा जाता है॥ ( ) जो आगामी पर्यायों को वर्तमानवत् संकल्प करै सो भविष्यत् नैगमनय है जैसे एक मनुष्य काठसे इन्द्रकी प्रतिमा वनाना चाहता है अभी वह केवल इन्द्रकी प्रतिमा वनानेकी योजना कर रहा है यदि उससे पूछा जाता है भाई क्या कर रहे हो ? तो उत्तर मिलता है कि मै इन्द्र वना रहा हूं यद्यपि अभी इन्द्रकी प्रतिमा उपस्थित नहीं है किंतु इन्द्रकी मूर्ति वनानेका संकल्पहै तौभी मैं इन्द्र वनारहा हूं यह वचन नैगमनयकी अपेक्षा ठीकहै॥

( ) "कर्तुमाराब्धमीषन्निष्पन्नमनिष्पन्नं वा वस्तु निष्पन्नवत् कथ्यते" = कर्तुम् आराब्धम् ईषत् निष्पन्नं वा अनिष्पन्नं वस्तु निष्पन्नवत् कथ्यते = (वर्तमानमें पर्याय वा) वस्तु आरम्भ करने पर कुछ पूर्ण भया कुछ पूर्ण नहीं हुआ (लगभग परिपूर्ण होने परही है) उसको परिपूर्ण कहा जाय सो वर्तमान नैगमनय है ("जैसे ओदनः पच्यते" =भात पक गया है) देखो आलाप पद्धति॥ अर्थात् वर्तमान मे जो कार्य करने के लिये हाथमें लिया है सो पूर्ण भया तथा परिपूर्ण नहीं हुआ अत्यन्त निकट समयमें परिसमाप्त होगा उसको परिपूर्ण रूप संकल्प कर लेना वर्तमान नैगमनय का विषय है अथवा यों भी कह सकते हैं कि जो कार्य वर्तमान कालमे हाथमे लेलिया है वह होते होते ऐसी अवस्था में पहुच गया है कि उसको व्यवहारमें कहते हैं कि वह पूर्ण है यद्यपि उसकी परिपूर्णतामें अत्यन्त न्यूनता अवशेष है जैसे एक समाज यात्राको गई हुई है सबकी संमिलित रसोई में दाल भात हो रहा है दाल भात ऐसे पक्क हैं कि केवल एक दो पलमें वह अग्निसे नीचे उतारे जाने को ही हैं रसोईया पुकारता है कि चलो भाइयो खालो दाल भात निष्पन्न हैं अब कुछ भी देरी वा विलम्ब नहीं है (वास्तविकमे केवल सड़सी वा कपड़ा द्वारा आग से पृथिवी पर उतारने की देरी है योंहीं कि रसोईया ने सड़सी लगा कर दाल वा भातको अग्निसे उचका दिया) वस इतनेही में दाल भात पूर्णतया परिपक्क होगये और नैगमनयका विषय जाता रहा॥ हमारी समझमें वर्तमान नैगमनय भी सूक्ष्म दृष्टिसे भविष्यत नैगमनय में ही गर्भित हो जाती है यह दोनों भेद उक्त वृत्ति की परिभाषा में अन्तर्गत होजाते हैं केवल भूतनैगमनय अन्तर्गत नहीं होती अतः वृत्तिकार की परिभाषा सीमाबद्ध है जैसा हमारी समझ में आया है सो लिखा।

कञ्चित्पुरुषं परिगृहीतपरशुं गच्छन्तमवलोक्य कश्चित्पृच्छति किमर्थं भवान्गच्छतीति। स आह प्रस्थमानेतुमिति। नासौ तदा प्रस्थपर्यायः सन्निहितः। तदभिनिर्वृत्तये संकल्पमात्रे प्रस्थव्यवहारः ॥ तथा एधोदकाद्याहरणे व्याप्रियमाणं कञ्चित्पृच्छति किं करोति भवानिति। स आह ओदनं पचामीति। न तदौदनपर्यायः सन्निहितः। तदर्थे व्यापारे स प्रयुज्यते ॥ एवम्प्रकारो लोकसंव्यवहारः अनभिनिर्वृत्तार्थ

पर्याय से कोई द्रव्य भिन्न नहीं है सो भविष्यत् पर्यायोंका, उन पर्यायों का जो अभी परिपूर्ण नहीं हुई हैं वर्तमानकालमें संकल्प करै ऐसा ज्ञान तथा वचन नैगमनयहै ॥ इसमें भूतनैगम अन्तर्गत नहीं हुई। देखो टिप्पणी ५०६, ४९९। पृष्ठ

कञ्चित् ※ पुरुषम् ३। परिगृहीत परशुम् ३।	=किसी मनुष्य को कुल्हाड़ा लिये हुये
गच्छन्तम् ३। अवलोक्य ÷ कश्चित्※ पृच्छतिT किम् ३॥।	=जाते हुए देख कर कोई पूछता है किस-
अर्थम् ३॥। भवान् ३। गच्छतिT इति※सः आह प्रस्थम् ३।	=लिये आप जाते हो। वह कहताहै धान्यमापनेका लकड़ीका परिमाण (=प्रस्थ)
आनेतुम्२ इति ※ ; असौ १। तदा ※ प्रस्थपर्यायः १।	=लेनेको (जाताहूं)। उस समय वह (=तदा) प्रस्थ पर्याय
सन्निहितः १। न ※ ; तद्-अभि-	=निकटस्थ नहीं है। उस (प्रस्थ) को आगे वा भविष्यत् में (=अभि)
निर्वृत्तये ४॥ सङ्कल्पमात्रे ७॥।	=निष्पन्न करनेके लिये अर्थात् लकड़ी काटकर बनानेके लिये केवलमनकी इच्छामें
प्रस्थव्यवहारः १। तथा एधस्-उदक-आदि-	=प्रस्थका उद्योग वा व्यवहार है। वैसे ही (=तथा) लकड़ी जल आदिक
आहरणे ७॥। व्याप्रियमाणम् २॥। कञ्चित्※पृच्छति T	=लाने में (=आहरण) लगेहुयेको कोई पूछता है
किम्२॥। करोतिT भवान्१। इति※ सः१। आहT ओदनम्२॥=आप	क्या करते हो। वह कहताहै भातको
पचामि T इति तदा※ ओदन पर्यायः१। सन्निहितः१। न※	=पकाताहूं। उस समय भातका पर्याय निकटस्थ नहीं है
तद्-अर्थे ७। व्यापारे ७। सः १। प्रयुज्यते T एवम् ※	=उस (भात) के लिये व्यवहार वा उद्योगमें वह (पुरुष) लगा हुआहै इसी (=एवम्)
प्रकारः १। लोक संव्यवहारः १। अभिनिवृत्त-अर्थे-	=प्रकार संसारका व्यवहार है। अनुपस्थित (=अनभिनिर्वृत्त) पदार्थ को

(१) अवलोक्य। सम्बन्ध सूचक भूतकृदन्त है (देखो पृष्ठ १६) (२) 'आनेतुम्' हेत्वर्थ भूतकृदन्त है।
(३) प्रयुज्यते-युज् यहां दिवादि चौथे गणका अकर्मक आत्मनेपदी धातु है। इसमें य विकरण और प्र उपसर्ग लगाने से प्रयुज्य हुआ, ते जोड़कर प्रयुज्यते बना लिया।

संकल्पमात्रविषयो नैगमस्य गोचरः ॥१॥ स्वजात्यविरोधेनैकध्यमुपनीय पर्यायानाक्रान्तभेदानविशेषेण समस्तग्रहणात्संग्रहः ॥

संकल्पमात्रविषयः १।१। नैगमस्य ६।१। गोचरः १।१।	=संकल्पमात्र ग्रहण करने वाला नैगम (नय) का विषय है
स्वजाति-अविरोधेन ३।१। एकध्यम् २।१॥ उपनीय-	=अपनी जातिके वस्तुओं को अविरोधकरि एक प्रकारपनाको प्राप्तकर
पर्यायान् २।३। आक्रान्तभेदान् २।३। अविशेषेण ३।१।	=पर्यायोंको वा प्राप्त होने वाले भेदोंको सामान्य रूपसे (=अविशेषेण)
समस्तग्रहणात् ५।१॥	=समस्तको ग्रहण करनेके हेतुसे वा समस्तको विषय करनेके कारणसे
संग्रहः १।१।	=संग्रह (नय कही जाती) है अर्थात् अपनी जातिके सब पदार्थोंको बिना किसी विरोधताके (एक जातिके कितने ही पदार्थोंमें भी विरोध नहीं होता परंतु उसका भिन्न जातिके पदार्थों से विरोध होता है)

(१) बुद्धि, नाम,अनुकूल प्रवृत्ति इन चिन्होंकी समानता रखने वाला जो सादृश्य है वही जाति है अर्थात् जिन पदार्थोंकी प्रतीति समान होगी, नाम भी समान होगा, अनुकूल प्रवृत्ति भी समान होगी ऐसे पदार्थोंके समूहका नाम जाति है अथवा जहां स्वरूपका अनुगम है (=ग्रहण) है जिस प्रकार गोत्व स्वरूप समस्त संसारकी गौओंमें रहता है इस लिये वह जाति है वह जाति चेतन अचेतन आदि पदार्थ स्वरूप है चेतन आदि पदार्थों से भिन्न नहीं। तथा उसकी प्रवृत्तिमें कारण गोत्व, घटत्व, द्रव्यत्व,सत्व आदि अनेक शब्द हैं इस लिये जहां जो शब्द होगा उसीके अनुसार उसका नाम भी भिन्न होगा तथा प्रवृत्ति भी उसी नियत शब्द के अनुसार होगी।

(२) उक्त संस्कृत वृत्तिमें जो अविरोध शब्दहै उसका अर्थ स्वरूपसे नचिगना है वा स्वरूपसे न प्रच्यवन होना है॥ अपनी जाति है सो स्वजाति है। नहीं चिगना है वा नहीं डिगना है सो अविरोध है, अपनी जातिसे नही चिगना (जो) है सो स्वजात्यविरोध है। अपनी जातिसे नहीं चिगने द्वारा एक प्रकारपनाको प्राप्त होना है सो "स्वजात्यविरोधेनैकध्यमुपनीय" है। ऐसे सर्वार्थसिद्धिवृत्तिमें आये हुये "स्वजात्यविरोधेनैकध्यमुपनीय" वाक्यकी निरुक्ति है। (=प्रकृति धातु प्रत्यय आदि अवयवोंके अर्थ को कह कर समास के अर्थ को जतलाना) सो निरुक्ति है।

(३) तत्वार्थ राजवार्तिकमें संग्रहनयका लक्षण ऐसें कहा है "स्वजात्यविरोधेनैकत्वोपनयात्समस्त ग्रहण संग्रहः" उपर्युक्त वृत्तिमे दी हुई संग्रह नयकी परिभाषा से जब इस परिभाषा की तुलना करते हैं तो "पर्यायान् आक्रान्तभेदान् अविशेषेण" वाक्य राजवार्तिक से अधिक पाते हैं शेष पाठ दोनोंका लगभग एकसा है परंतु तात्पर्य दोनों परिभाषाओं का एकसा है क्योंकि अधिक वाक्यका अर्थ "पर्यायोंको अविशेषकरि" ऐसा है॥

सत् द्रव्यं घट इत्यादि। सदित्युक्ते सदिति वाग्विज्ञानानुप्रवृत्तिलिङ्गानुमितसत्ताधारभूतानामविशेषेण सर्वेषां संग्रहः। द्रव्यमित्युक्तेऽपि द्रवति गच्छति तांस्तान्पर्यायानित्युपलक्षितानां जीवाजीवतद्भेदप्रभेदानां संग्रहः। तथा घट इत्युक्तेऽपि घटबुध्य-

---

एक रूपसे पर्यायोंके भेदोंको व्यक्तनकर समस्त भेदोंका ग्रहण करने वाला ऐसा संग्रहनय है। सारांश यह है कि अपनी जाति को प्रगट करके पर्यायका भेद न करके समस्तका समुदाय रूप ग्रहण करने वाला संग्रहनय है॥

सत्। द्रव्यम्। घटः। इत्यादि।	=सत्, द्रव्य, घट इत्यादिक (संग्रहनयके उदाहरण) हैं॥
सत्। इति* उक्ते। सत्। इति* वाग्-विज्ञान-	=सत् ऐसा कहने में सत् ऐसा वचनकरि तथा ज्ञानकरि
अनुप्रवृत्तिलिङ्ग-	=अन्वयरूप चिन्हसे (=अनुप्रवृत्तिलिंग) वा जोड़रूप चिन्हसे (=अनुप्रवृत्तिलिंग)
अनुमित-सत्ता-आधारभूतानाम्। सर्वेषाम्।	=अनुमान किये हुये (=अनुमित) सत्ताको आश्रयभूत सब (वस्तु) निका
अविशेषेण। संग्रहः।	=सामान्य रूपसे (=अविशेषेण) संग्रह है अर्थात् ऐसे सब वस्तुयें सत्ता रूप हैं तात्पर्यः—सत् ऐसा उच्चारण करने पर द्रव्य, पर्याय और उसके भेद प्रभेद सब सत्तासे अभिन्न हैं अतः एक सत्व धर्मसे उन सबका ग्रहण होजाता है
द्रव्यम्। इति उक्ते। अपि तान्। तान् पर्यायान्। द्रवति T	=द्रव्य ऐसा कहनेमें भी (जो) जिन जिन पर्यायोंको प्राप्त होता है (=द्रवति)
गच्छति T इति उपलक्षितानां। जीव-अजीव-	=अथवा (जिन जिन पर्यायोंको) पावा है ऐसे उपलक्षित जीव और जड़
तद्-भेद-प्रभेदानाम्। संग्रहः।	=तथा उन (जीव अजीव) के भेद और प्रभेदोंका संग्रह है अर्थात् द्रव्य कहने में गुण पर्यायों सहित जीव अजीव उनके भेद प्रभेद सबको समझ लैना चाहिये
तथा* घटः। इति* उक्ते। अपि* घटबुद्धि-	=वैसेही (=तथा) घट (=घड़ा) ऐसा उच्चारण करने में भी घड़ाका ज्ञान तथा

---

(१) द्रव्य ऐसा उच्चारण करने पर जीव अजीव और उनके भेद प्रभेद जितने भी द्रव्य कहे जाने वाले हैं उन सबमे द्रव्यत्व अभेदरूपसे रहता है—जीव आदि कोई भी द्रव्यत्वसे भिन्न नहीं अतः एक द्रव्यत्व धर्मसे सबका ग्रहण होजाता है॥

भिधानानुगमलिंगानुमितसकलार्थसंग्रहः । एवम्प्रकारोऽन्योऽपि संग्रहनयः ॥२॥ संग्रहनयाक्षिप्तानामर्थानां विधिपूर्वकमवहरणं व्यवहारः ॥ को विधिः ? । यः संग्रहगृहीतोऽर्थस्तदानुपूर्व्येणैव व्यवहारः प्रवर्तत इत्ययं विधिः ।

अभिधान-अनुगमलिंग-	=नामके अन्वयरूपचिन्हकरि (=अनुगमलिंग) वा जोड़रूप चिन्ह करि (=अनुप्रवृत्तिलिंग)
अनुमित-सकल-अर्थ-संग्रहः ३।	=अनुमान कियेहुये (=अनुमित) सब घटरूप पदार्थका (=अर्थ) संग्रह होता है
एवम्* प्रकारः १। अन्यः १। अपि *	=इसप्रकार अन्य भी (अर्थात् उपर्युक्त कहे हुये उदाहरणोंके अतिरिक्त) और भी (जैसे मठ, पट, गृह, इत्यादि एक जातिकी सब वस्तुओं का कथन करने वाला)
संग्रहनयः १।	=संग्रह नय है ॥ (संग्रह नयके सामान्यसंग्रह-विशेषसंग्रह दो भेद हैं (देखो निम्नटिप्पणी)
(२) संग्रहनय-आक्षिप्तानाम् ३। अर्थानाम् ३।	=संग्रहनय से विषय कियेगये वा ग्रहण किये गये (=आक्षिप्तानाम्) पदार्थों का
विधिपूर्वकम् ३॥ अवहरणम् १॥ व्यवहारः १।	=क्रमानुसार वा अनुक्रमसे वा विधिपूर्वक भेद करना सो व्यवहार (नय) है
कः १। विधिः १। यः १। संग्रह-गृहीतः १। अर्थः १। तद्-	=विधि क्या है ? जो संग्रह (नय) द्वारा ग्रहण किया हुआ पदार्थ है उसका (=तद्)
आनुपूर्व्येण ३॥ एव * व्यवहारः १। प्रवर्तते T	=मूलसे लेकर क्रम पूर्वक (=आनुपूर्व्येण) ही व्यवहरण होता है वा भेद किया जाता है
इति* अयम् १। विधिः १।	=ऐसी यह विधि (=संग्रहनयसे ग्रहे पदार्थको आदिसे लेकर भेद करै सो) है ॥

(१) संग्रहो द्विविधः १। सामान्य संग्रहो यथा सर्वाणि ३॥ द्रव्याणि =संग्रह (नय) दो प्रकार है। सामान्यसंग्रह जैसे सब द्रव्यें परस्परमविरोधीनि । विशेष संग्रहो यथा =आपसमे (स्वरूपसे) चिगने वाली नहींहैं (=अविरोधीनि)। (और) विशेष संग्रह जैसे सर्वेजीवाः परस्परमविरोधिनः" आलाप पद्धतिसे लिया हैं। =समस्त जीव परस्पर अविरोधीहैं अर्थात् (अपने स्वरूपसे) प्रच्यवन होनेवाले नहींहैं

(२) "अतो विधिपूर्वकमवहरणं व्यवहार:" इस (संग्रहनय) से (ग्रहण किये हुये पदार्थका) अनुक्रमसे (=विधिपूर्वक) भेद करना (=अवहरण) सो व्यवहार है यह परिभाषा व्यवहारनयका तत्त्वार्थ राजवार्तिकमे से लियाहै और "उपर्युक्त संग्रहनयाक्षिप्तानामर्थानां" का यही तात्पर्यहै जो इसकाहै

(३) विधिपूर्वक=आनुपूर्वीकरि, आनुपूर्व्यकरि, आनुपूर्वकरि अर्थात् क्रमानुसार, क्रमानुकूल, अनुक्रमसे क्रमपूर्वक ॥ मूलसे लेकर क्रमपूर्वक =आनुपूर्व्येण) देखो पद्मचन्द्र कोश पृष्ठ५७) (४) अवहरण =व्यवहरण=भेद किया जाना, देखो पं०जयचंदजी कृतासर्वार्थसिद्धि वचनिका पृष्ठ१०१

तद्यथा—सर्वसंग्रहेण यत्संगृहीतं तच्चानपेक्षितविशेषं नालं संव्यवहारायेति व्यवहारनय आश्रीयते । यत्सत्तत् द्रव्यं गुणो वेति । द्रव्येणापि संग्रहाक्षिप्तेन जीवाजीवविशेषानपेक्षेण न शक्यः संव्यवहार इति जीवद्रव्यमजीवद्रव्यमिति वा व्यवहार आश्रीयते ।

तद्यथा* सर्वसंग्रहेण ३। सत्संगृहीतम् १।।।	=सो (=तद्) ऐसें हैं (=यथा) कि सर्वका संग्रहकरि सत् ग्रहण किया गया है
च* तत् १।।। अन्-अपेक्षितविशेषम् १।।।	=और (=च) वह (=तद्) अर्थात् सत् विशेषकी विवक्षा रहित है
संव्यवहाराय ४। न* अलम्*	=सो योग्य व्यवहार (प्रवर्तावने)के लिये समर्थ (=अलं) वा योग्य (=अलं) नहीं है
इति* व्यवहारनयः १। आश्रीयते T	=ऐसें व्यवहारनय अवलंबन कीगई है वा आश्रय कीजाती है (तब कहैं हैं कि)
यत् १।।। सत् १।।। तत् १।।। द्रव्यम् १।।। वा* गुणः १। इति*	=जो सार (=सत्) है सो द्रव्य है और गुण है भावार्थ यह है कि जैसे (=तद्यथा) संग्रहनयका विषय सत् पदार्थ है किंतु सत् शब्दसे संसारका व्यवहार हो नहीं सकता अतः जो सत् है वह द्रव्य और गुण है यह व्यवहार नयसे मानना पड़ता है ऐसे सत् विषैं भेद करैं तब संसार का व्यवहार चलता है ॥
द्रव्येण ३।।। अपि* संग्रह-आक्षिप्तेन ३।।। जीव-अजीव-विशेष-अन्-अपेक्षेण ३।।। संव्यवहारः १। न* शक्यः १।	=(और यहां) द्रव्य (शब्द) करि भी संग्रहनयसे ग्रहण किये हुये जीव अजीव के भेदकी (=विशेष) अपेक्षा न होने से योग्य व्यवहार नहीं होसकता है
इति* जीवद्रव्यम् १।।। वा* अजीवद्रव्यम् १।।। इति*	=ऐसें जीव द्रव्य है और (=वा) अजीव द्रव्य है ऐसे
व्यवहारः १। आश्रीयते T	=व्यवहारनय आश्रय कीगई है अर्थात् जब हमने सत्के दो भेद किये तो यहां पर भी संग्रहनयका विषय द्रव्य हुआ उसके जीव और अजीव भेद माने विना संसारका व्यवहार नहीं होसकता है इसलिये वह द्रव्य जीव और अजीव है यह व्यवहारसे कहना पडता है

(१) सर्वार्थसिद्धि की दोनो आवृत्तियोमें 'यत्संग्रहीतम्' है अर्थ यह होगा कि सर्वका संग्रहकरि जो (सत्) ग्रहण किया गया है परंतु सत् तत्त्वार्थ राजवार्तिक में है तथा जयचंद रायजीने और अन्य भाषा अनुवादकों ने 'यत्' के स्थानमें सत् मानकरि अनुवाद किया है इस लिये हमने 'सत्संग्रहीतम्' पाठ दिया है यद्यपि 'यत्' से भी वही अर्थ निकल सकता है जो सत् से परंतु हमने वृत्तिमें 'यत्संगृहीतं' ही पाठ रक्खा है ॥

जीवाजीवावपि संग्रहाक्षिप्तौ नालं संव्यवहारायेति प्रत्येकं देवनारकादिर्घटादिश्च व्यवहारेणाश्रीयते । एवमयं नयस्तावद्वर्तते यावत्पुनर्नास्ति विभागः

जीव-अजीवौ ॥ अपि* =(और इस अवस्था में) जीव और अजीव भी
संग्रह-आक्षिप्तौ ॥ =जो संग्रहनयके विषयभूत हैं संग्रहनय गोचर हैं वा ग्रहण संग्रहनयसे कियेगये हैं
संव्यवहाराय ॥ अलम्* न* इति* प्रत्येकम् ॥॥ =व्यवहार (प्रवर्तावने) के लिये समर्थ नहीं है । प्रत्येक (जीव और अजीव)
देवनारकादिः ॥ च* घटादिः ॥ व्यवहारेण ॥ =(यथा संख्य वा क्रमसे) देवनारकादिक तथा घट आदिक व्यवहारनय करि
आश्रीयते T =आश्रय किये गये है अर्थात् यहां संग्रहनय का विषय जीव और अजीव माने गयेहैं परंतु जीवके देव, नारक, मनुष्य, तिर्यंच, सिद्ध भेद माने विना संसारका व्यवहार नहीं चल सकता इसलिये लोक व्यवहारकी सिद्धि के लिये जीव द्रव्यके देव नारक आदि भेद व्यवहार से मानने पड़ते हैं । और अजीव के घट, पट, मठ, गृह इत्यादि भेद मानैं विनाभी संसार का व्यवहार नहीं हो सक्ता है इसलिये अजीव के घट, पट, मठ, गृह आदि भेद व्यवहार नय से मानते हैं
एवम्* अयम् ॥ नयः ॥ तावत् * वर्तते T =इसप्रकार यह व्यवहार नय तबतक चला जाता है
यावत् * पुनः * न * अस्ति T विभागः ॥ ॥३॥ =जबतक फिर विभाग नहीं हो (सक) ता है अर्थात् ऋजुसूत्र नय के विषयके

(१) "व्यवहारोऽपि द्वेधा । सामान्यसंग्रह भेदको व्यवहारो =व्यवहारनय भी दो प्रकार है - सामान्य संग्रहभेदक व्यवहार अर्थात् सामान्य संग्रह नय की भेद करने वाली व्यवहारनय
यथा-द्रव्याणि जीवाजीवाः । विशेषसंग्रह भेदको व्यवहारो =जैसे द्रव्यहैं सो जीवरूप और अजीवरूप हैं । विशेषसंग्रहभेदकव्यवहार अर्थात् विशेषरूप संग्रहनयके भेद करने वाली व्यवहारनय
यथा-जीवः संसारिणो मुक्ताश्च " =जैसे जीव है सो संसारी और मुक्तरूप हैं ॥ (आलापपद्धति से उद्धृत)

(२) नाम स्थापना द्रव्य ये तीन निक्षेप सग्रहात्मकहैं उनसे संग्रहआत्मक वस्तुका ग्रहण होताहै उनसे भिन्न भिन्न व्यवहार नहीं होसका क्योंकि वे तीनोंही जाति वाचक हैं व्यक्तिवाचक नहीं है । इसलिये व्यवहारके लिये वर्तमान पर्याय भाव निक्षेप ही समर्थ है उसीका यहां ग्रहण है। इस रीतिसे इस व्यवहार नयका वहींतक विषय समझना जहांतक फिर किसी प्रकार का भी विभाग नहोसके ॥

॥३॥ ऋजुं प्रगुणं सूत्रयति तन्त्रयत इति ऋजुसूत्रः । पूर्वान्परांस्त्रिकालविषयानतिशय्य वर्तमानकाल-विषयानादत्ते अतीतानागतयोर्विनष्टानुत्पन्नत्वेन व्यवहाराभावात् । तच्च वर्तमानं समयमात्रं तद्विषयपर्यायमात्र-ग्राह्योऽयमृजुसूत्रः ॥

पहिले पहिले संग्रहनय और व्यवहारनय दोनों चले जाते हैं

ऋजुम् १ प्रगुणम् १ सूत्रयति T	=सीधे (=ऋजु) और सरल (=प्रगुण) (विषय वा वस्तु) को सूचित करता है (सूत्रयति)
तन्त्रयते T इति* ऋजुसूत्रः १।	=फैलाता है (तन्त्रयते) ऐसा ऋजुसूत्रनयहै (तंत्रयति भी आता है. देखो राजवा० पृ० ६६)
त्रिकालविषयान् २। पूर्वान् २। परान् २।	=तीन कालके विषय (अर्थात् पर्याय वा भाव) निर्मे से अतीत—अनागत (विषयों) को
अतिशय्य ÷ वर्तमान-काल-विषयान् २।आदत्ते T	=उल्लंघकरि वा छोड़कर विद्यमानकालके विषयोंको (ऋजुसूत्रनय) ग्रहण करता है
अतीत-अनागतयोः ६। विनिष्ट—	=क्योंकि भूत और भविष्यत् (विषयों) को (यथासंख्य) विनाश होनेसे और
अनुत्पन्नत्वेन ३॥। व्यवहार-अभावात् ५। तच्च*	=न उत्पन्न होनेसे व्यवहार नहीं होता है । तात्कालिक (=तच्च-वैद्यकोश पृ० २०१)
वर्तमानम् १॥। समयमात्रम् १॥। तद्-विषय-	=विद्यमान केवल एक समयवर्ती उस (ऋजुसूत्रनय) का विषय
पर्यायमात्र-ग्राह्यः १। अयम् १। ऋजुसूत्रः १।	=पर्यायमात्रका ग्रहण करनेवाला है सो यह ऋजुसूत्रनय है अर्थात् द्रव्यकी पर्याय समय समय में परिणमती (पलटती) रहती है

सो एक समयवर्ती पर्यायको अर्थपर्याय कहते हैं । अर्थपर्याय ही ऋजुसूत्रनयका विषय है । ऋजुसूत्रनय वर्तमान एक समयमात्र की पर्याय को कहता है वा ग्रहण करता हे अतीत अनागत समयकी पर्यायको ग्रहण नहीं करता है ॥

(१) ऋजुम् १ —यह ऋजुशब्द त्रिलिंगी है (ऋज् + कु) स्त्री लिंग मे विकल्प से ङीप् होता है जेसे ऋज्वी १॥ ऋजुः १॥ ॥ द्वितिया, पुल्लिंग नपुंसक लिंग मे यहां आया है

(२) प्रगुणम्–यह त्रिलिंगी है ॥ प्रगुणा१॥ रूपस्त्रीलिंगमे है ॥ यहांपर द्वितीया एकवचन पुल्लिंग अथवा नपुंसकलिंगमें ऋजु शब्दवत् जानना चाहिये

नन्तु संव्यवहारलोपप्रसंग इति चेन्नास्य नयस्य विषयमात्रप्रदर्शनं क्रियते । सर्वनयसमूहसाध्यो हि लोकसंव्यवहारः सर्वनयसमूहसाध्यः

ननु॥ संव्यवहारलोप-प्रसंगः ;।	=प्रश्न (=ननु) लोकव्यवहार के अभावका प्रसंग आता है अर्थात् लोकमें अतीत अनागत का व्योपार भी प्रवर्तता है सो किस प्रकार चलैगा जो ऋजु सूत्रनय केवल वर्तमान पर्याय मात्र को ही ग्रहण करैगी
इति॥ चेत॥ न॥	=ऐसी शका (=चेत-होने पर उत्तर में कहते हैं कि) (यह बात) नही है
अस्य;।नयस्य;।विषयमात्र-प्रदर्शनम्;।।।क्रियते	=इस (ऋजुसूत्रनय) का केवल विषय (=विषयमात्र) दिखागा गया है
हि॥ लोकसंव्यवहारः ;। सर्वनयसमूहसाध्यः ;।	=क्योकि (=हि) लोकका व्यवहार वा कार्य मवनयोंके समूह द्वारा साधने योग्य है अर्थात् लोक व्यवहार मे जिस नयका जो कार्य है उसी नयको काममें लाना चाहिये

(१) ऋजुसूत्रो द्विविधः सूक्ष्मर्जुसूत्रो यथा एक समय-अवस्थायी पर्यायः स्थूलर्जुसूत्रो यथा मनुष्यादि पर्यायास्तदायुः प्रमाणकालं तिष्ठन्ति	=ऋजुसूत्र (नय) दो प्रकार है सूक्ष्म ऋजुसूत्रनय जैसे एक समय तक-ठहरने वाली पर्याय और स्थूलऋजुसूत्रनय जैसे =मनुष्य आदि पर्याय है वे (=तद्) आयुपरिमाणकाल तक रहती हैं ॥

आलाप पद्धतिसे उद्धृत

( ) जिस प्रकार सूतका गिरना सरल होता है उसी प्रकार जो सरल विषयको सूचित करता है उसका नाम ऋजुसूत्रनय है ॥ यह नय त्रिकाल संबधी विषयोंमे से वर्तमान कालीन विषयोको ग्रहण करता है क्योकि जो पर्याय वीत चुकी अथवा जो पर्याय अभी उपस्थित नहीं हुई आगे जाकर उपस्थित होगी उन दोनो पर्यायोंसे व्यवहार नहीं चल सकता है इसलिये शुद्ध एक समय मात्र ही ऋजुसूत्र नयका विषय माना गया है ॥ ऋजुसूत्र नयके कुछ अच्छे अच्छे उदाहरण ऐसे हैं कि (क) 'कषायो भैषज्य' काढा औषध है यहां पर जिन पदार्थोंका काढा है उन पदार्थोंका रस निकाल कर जिस समय साक्षात् औषध स्वरूप काढा बन जाता है वही शुद्ध वर्तमान कालीन एक समयवर्ती ऋजुसूत्रनयका विषय है किन्तु पहिले ही पहिले जिसका रस अभी तक प्रगट नहीं हुआ आगे जाकर प्रगट होने वाला है अतः जो साक्षात् औषध नहीं है वह ऋजुसूत्रनयका विषय नहीं है क्योंकि वह।वर्तमान एक।समयवर्ती।नहीं-भविष्यत् कालकी।अपेक्षा रखता है ॥

(ख) ऋजुसूत्र नय का विषय प्रस्थ भी है परंतु जिस समय अन्न आदि पदार्थ सेर माप द्वारा तुल रहा है उसी समय प्रस्थ ऋजुसूत्र नय का विषय हो सकता है परन्तु जिस से धान्य तुलचुका अथवा आगे जाकर तुलेगा वह ऋजुसूत्र नय का विषय नहीं हो सकता क्योंकि जो तुल चुका वह भूतकाल का विषय है जो आगे तुलेगा वह भविष्यत् कालका विषय है भूतकाल की पर्याय और भविष्यत् कालकी पर्याय ऋजुसूत्र नयका विषय है नहीं किन्तु वर्तमानकाल की एक समय वर्ती पर्याय ही उसका विषय है इसलिये भूतकाल वा भविष्यत् काल की अपेक्षा होनेवाला प्रस्थरूप ऋजुसूत्र नयका विषय होना असंभव है॥

(ग) कुंभकारका अभाव ऋजुसूत्र नयका विषय है क्योंकि कुंभको करने वाला कुंभकार कहा जाता है जिस समय कुंभकार पुरुष कुंभ-घडा न बनाकर उसकी शिविक छत्रक आदि पर्याय बना रहा है उस समय वह ऋजुसूत्र नयकी अपेक्षा घड़ेका बनाने वाला नहीं कहा जा सक्ता क्योंकि शिविक छत्रक आदि पर्यायोके आगे जाकर घट पर्याय बनने वाली है इसीलिये भविष्यत् कालका विषय है वर्तमान काल का नहीं एवं जिस समय वह घडा बना रहा है उस समय घट की उत्पत्ति उसके विशेष अवयवोसे हो रही है और वही शुद्ध वर्तमान काल ऋजुसूत्र नयका विषय है किन्तु उस समय कुभकार कुछ नहीं कर रहा है इसलिये ऋजुसूत्र नयका विषय कुभकार नहीं हो सक्ता किन्तु कुभकार का अभाव उसका विषय है। तथा —

(घ) कोइ पुरुष कहीं से आकर बेठा है किसी दूसरे ने पूछा — कहो भाई कहां से आ रहे हो ? उस समय उसका यह कहना कि कहींसे नहीं आरहा हूं क्योंकि उस समय सर्वथा गमन क्रिया का अभाव है इसलिये शुद्धवर्तमान की अपेक्षा 'इस समय कहींसे नहीं आ रहाहूं' यह ऋजुसूत्र नयका विषय है॥

(ङ) किसी वैठे आदमी को देखकर यह पूछना कि भाई! इस समय तुम किस स्थान पर हो ? उस समय वर्तमान में वह जितने जितने आकाशके प्रदेशो में विद्यमान है उतने ही प्रदेशोका नाम लेकर कहै कि मै यहां पर हूं, किसी पुरी, ग्राम, घर आदिका नाम नहीं ले, वह शुद्ध वर्तमान कालकी अपेक्षा कथन होनेसे ऋजुसूत्रनय का विषय है। अथवा उस समय जितने आत्मदेशोके आकारमें उसका रहना हो उतने ही प्रमाण आत्म प्रदेशो का उल्लेख कर वह यह कहे कि मैं यहा पर हू वह ऋजुसूत्र नयका विषय है क्योंकि उसकी स्थिति का शुद्ध वर्तमान समयमें वही आकार है, अन्य नहीं॥

(च) पच्यमान— जो रंध रहा है और पक्व— जो रंधचुका है यह ऋजुसूत्र नय का विषयहै । यहां पच्यमान और पक्वका अर्थ कथंचित् पच्यमान और कथंचित् पक्व यह समझ लेना चाहिये । (प्रश्न) पच्यमान यह वर्तमान पर्याय और पक्व यह अतीत पर्याय है, इन दोनों का एक स्थान में कैसे समावेश होगा ? (उत्तर) पहिले ही पहिले जब समयका कोई विभाग नहीं है उस समय भातका कुछ अंश रंधाहै सीझा है, वा नहीं रधा है नहीं सीझा है यदि नहीं सीझा है तब द्वितीयादि समयोमे भी वह नहीं सीझ सकता इसलिये पाकका अभाव ही रहना होगा । परन्तु प्रति क्षण वह सीझता अवश्य है इसलिये बटलोई मे रक्खे हुये चांवलोमे सीझे और वे सीझे की अपेक्षा ऋजुसूत्र नयका कथंचित् पच्यमान और कथंचित् पक्व यह विषय बाधित नहीं यदि यहांपर यह अपेक्षा न मानी जायगी और पच्यमान अवस्था और पक्व अवस्था का सर्वथा विरोध माना जायगा तो पच्यमान (मिश्रित) कथंचित् पच्यमान और पक्व इस प्रकारसे विषयोंके तीन भेद होजानेसे समय भी तीन प्रकार का मानना होगा परन्तु तीन भेदों को सर्वथा विरुद्ध मानने से एक समय मे वे तीनो भेद नहीं रहसके हैं इसलिये कथंचित् पच्यमान और कथंचित् पक्वमे सर्वथा विरोध नहीं माना जासक्ता। इसलिये यहां यह बात समझलेनी चाहिये किसी रसोईयाका यह अभिप्राय हो कि जो चांवल भली प्रकार से सीझ गये हैं कोई भी कच्चा शेष नहीं रहा है उस (रसोईया) की अपेक्षा तो भलेप्रकार रंधे हुये चांवल ही पक्व हैं । और जिस रांधने वाले का यह अभिप्राय हो कि वह कुछ सीझे और कुछ वे सीझे कथंचित् पच्यमान और कथंचित् पक्व ऐसे पच्यमान चावलों को ही पक्व कहना चाहता है उसकी अपेक्षा पच्यमान ही पक्व है । क्योंकि वह पच्यमानो को ही पक्व मानना सुखप्रद समझता है इसलिये यह बात निश्चित हो चुकी कि ऋजुसूत्र नयका पच्यमान अर्थात् कथंचित् पच्यमान कथंचित् पक्व उदाहरण निर्दोष है तथा पक्व रंध चुकने के पश्चात् एक समय वर्ती पदार्थ भी ऋजुसूत्र नयका विषय है । ऐसेही क्रियमाण कृत (कथंचित् क्रियमाण कथंचित् कृत), भुज्यमान भुक्त (कथंचित् भुज्यमान कथंचित् भुक्त) बध्यमान बद्ध (कथंचित् बध्यमान कथंचित् बद्ध) और सिध्यत् सिद्ध (कथंचित् सिध्यत् कथंचित् सिद्ध) आदि भी ऋजुसूत्र नयके उदाहरण समझलेने चाहियें । अर्थात् जो किया जारहा है और जो किया जा चुका है और जो भोगा जारहा है और जो भोगा जाचुका है जो सिद्ध किया जारहा है और जो सिद्ध किया जाचुका है ये सब ही ऋजुसूत्र नयके विषय पड़ते हैं, क्योंकि इन सबों में भी कुछ अशोंमें वर्तमान पर्यायका ग्रहण होता है, जितने अशों मे वर्तमान पर्यायका ग्रहण है उतने ही अंशों मे ऋजुसूत्र नयकी विषयताहै इसलिये कथंचित पदसे कहागया है । यहां पर विरोधादि बातो का विस्तार और समानधाव पच्यमान पक्वके समान है तत्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ ६७ से अनुवादित ॥

॥ ४ ॥ लिङ्गसंख्यासाधनादिव्यभिचारनिवृत्तिपरः शब्दनयः ॥ तत्र लिङ्गव्यभिचारः — पुष्यस्तारका नक्षत्रमिति ॥ संख्याव्यभिचारः — जलमापो वर्षा ऋतु

लिङ्ग-संख्या-साधन-आदि-व्यभिचार-निवृत्ति- परः १। शब्दनयः १। =लिङ्ग, वचन (=संख्या) साधनादि अन्याय वा दोषोके (=व्यभिचार) दूर करनेमें (=निवृत्ति) =लगा हुआ (=परः) वा तत्पर (=परः) है सो शब्दनय है अर्थात् लिग, वचन, साधन, कारक काल, उपग्रह 'आदि व्यवहारनयसे माना हुआ दोष है उसके दूर करनेको यह शब्दनय है' । पुल्लिग स्त्रीलिंग और नपुंसक लिंगके भेदसे लिंग तीन प्रकार है ।एकवचन, द्विवचन और बहुवचनसे संख्या तीन प्रकार है ॥ साधनका अर्थ (पद्म चन्द्र कोश पृष्ठ ४१९ और वैद्य संस्कृतांगल कोष पृष्ठ ७७१ के अनुसार) करण तृतीया विभक्ति का है परंतु यहां पर (तत्त्वार्थ राजवार्तिक पृष्ठ ६७ और श्लोक वार्तिक पृष्ठ २७३ और सर्वार्थसिद्धि वृत्तिके अनुसार) प्रथम पुरुष, मध्यम पुरुष और उत्तम पुरुष अथवा युष्मद् और अस्मद् शब्द साधन माने गये हैं । साधन व्यभिचार को पुरुष व्यभिचार भी कहते हैं वा मानते है जैसा कि आगे जाकर (टिप्पणी संख्या दो पृष्ठ ५१८ से ५२१ तक में) सिद्ध करेंगे कारक संस्कृतमें कर्त्ता, कर्म, करण, संप्रदान, अपादान, अधिकरण माने हैं संबधको कारक नहीं माना है क्योकि संज्ञा और क्रियामे परस्पर यह किसी प्रकारके संबंधका प्रादुर्भाव नहीं करता है । भूतकाल, भविष्यतकाल, वर्तमानकाल ये तीन काल हैं "उपग्रह का अर्थ परस्मैपद वा आत्मनेपद है परस्मैपदके स्थानमें आत्मनेपद कह देना और आत्मनेपदके स्थानमें परस्मैपद कह देना उपग्रह व्यभिचार है "उपग्रह" व्यभिचार "कहिये उपसर्ग व्यभिचार है" पं० पन्नालालजी दूनी० अनुवादित तत्त्वार्थ राजवार्तिक पृष्ठ २६४ और पं० गजाधर लालजी अनुवादित तत्त्वार्थ राजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ ४८० की टिप्पणी देखो ।

तत्र* लिग व्यभिचारः १। पुष्यः १। तारका १॥ नक्षत्रम् १॥ इति*; संख्याव्यभिचारः १। जलम् १॥ आपस्[३] १॥ वर्षाः[२] १॥ ऋतुः १। =तहां लिंगदूषणः—(जैसे) पुष्य पुल्लिग है उसको तारका स्त्रीलिंग =(वा) नक्षत्र नपुंसकलिंग ऐसा कहना । वचन दूषणः—(जैसे) =जलम् एकवचन को आप् बहुवचन वर्षा बहुवचन को ऋतु एकवचन

(१) "स च लिंगसंख्यासाधनादि व्यभिचार निवृत्त परः" तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ ६७ ॥ सः=शब्दनय । सर्वार्थसिद्धि की परिभाषा से यह परिभाषा शब्दशः मिलती है (२) वर्षाः' स्त्रीलिंग, नित्य बहुवचन है (३) आपस्—'आपस्' शब्द प्रथमा बहुवचन स्त्रीलिंग अप् शब्दका है । 'अप्' शब्द भी सदा बहुवचन और स्त्रीलिंग होता है (वैद्य संस्कृताङ्गल कोष पृष्ठ ३५, पद्मचन्द्रकोश पृ० २०) ॥ 'आपः स्त्री' इत्यमरः ॥ 'तत्र आप.'

आम्रा वनं वरणा नगरमिति॥ कारकव्यभिचारः सेना पर्वतमधिवसति॥ साधनव्यभिचारः पुरुषव्यभिचारः

आम्राः ;। वनम् ;॥	=आम्रा (=आमके वृक्ष) बहुवचनको वनम् एकवचन (कहना और)
वरणाः ;। नगरम् ;॥ इति*	=वरणा (प्राकार वा कोट) बहुवचनको नगर एकवचन ऐसे (कहना)
कारकव्यभिचारः;। सेना;॥ पर्वतम्;। अधिवसतिT	=कारक व्यभिचारः—जैसे सेना पर्वतको (=पर्वतमें वा पर्वत पर) वसे है
साधनव्यभिचारः ;। पुरुषव्यभिचारः ;।	="साधनव्यभिचार ताकूं पुरुषव्यभिचार भी कहिये" पं० जय० वचनिका पृष्ठ २०३

(=आपस) "स्त्रियाम् बहुत्वे च नित्यम्" तहां 'आपस' शब्द स्त्रीलिंगमें और बहुवचन में सदैव आता है॥ इस अप् शब्द का एकवचन और द्विवचन नहीं होते हैं इसकी सब विभक्तियां बहुवचन में ऐसे हैं कि आपः (=आपस् प्रथमा विभक्ति); अपः (द्वितिया विभक्ति); अद्भिः (तृ०वि०); अद्भ्यः (च०वि०), अद्भ्यः (पं०वि०); अपाम् (ष०वि०); अप्सु (स०वि०)॥

(१) कारक व्यभिचारका अन्य उदाहरण तत्त्वार्थ श्लोक वार्तिक पृष्ठ २७३ में इस प्रकार दिया है "तथा करोति क्रियते इति कारकयोः कर्तृकर्मणोर्भेदेऽप्यभिन्नमर्थत एवाद्रियते। स एव करोति किंचित् स एव क्रियते केनचिदिति प्रतीतेरिति तदपि न श्रेयः परीक्षायां। देवदत्तः कटं करोतीत्यत्रापि कर्तृकर्मणोर्देवदत्त कटयोरभेद प्रसंगात्॥"

तथा* करोतिT क्रियतेT इति* कारकयोः॥ कर्तृकर्मणोः॥ भेदे*। अपि* अभिन्नम् ;॥ अर्थतः* एव* आद्रियतेT	=और करोति (=करता है) क्रियते (=किया जाता है) ऐसे कर्ता और कर्म कारकोंमें भेद होनेपर भी अभिन्न अर्थसे ही (वैयाकरणों द्वारा) आदर किये जाते हैं अर्थात् करोति कर्तामें प्रत्यय है और क्रियते यह कर्ममें प्रत्यय है इन कर्ता और कर्म कारकोंमें भेद है तो भी व्याकरण वाले उनको एक मानकर कहते हैं कि
सः;॥ एव* करोतिT किंचित्* सः एव* क्रियतेT केनचित्* इति	=जो ही कुछ करता है और वो ही किसीसे (=केनचित्) किया जाता है ऐसी॥
प्रतीतेः ;॥ इति*	=क्योंकि (संसारमें) ऐसी प्रतीति है॥ (इसलिये कर्ता कर्म दोनों एक ही हैं। परस्पर एक दूसरेकी पर्याय हो सकते हैं ऐसे कारक दोष जाता रहता है)
तद् ;॥ अपि* न* श्रेयस् ;॥ परीक्षायाम् ;॥	=तो भी परीक्षा करने पर (यह) श्रेष्ठ नहीं है। (यदि कर्ता कर्मका अभेद माने तो)
देवदत्तः ;। कटं ;। करोतिT इति* अत्र* अपि*	='देवदत्त कटं करोति' देवदत्त चटाई बनाता है ऐसे यहां पर भी
कर्तृ-कर्मणोः ;॥ देवदत्त कटयोः ;॥ अभेद-प्रसंगात् ;।	=कर्ता देवदत्त और कर्म चटाई में अभेदता वा एकताका सयोग आता है (अतः कर्ता कर्मको एक मानकर कारक दोषको दूर करना बाधित और अयुक्त है)

(२) इस टिप्पणीसे हमको यह बात सिद्ध करनी है कि साधन व्यभिचारको और पुरुष व्यभिचारको एक ही माना है और तत्त्वार्थ राजवार्तिक

अर्थात पुरुष दूषण यह कि उत्तम पुरुष के स्थानमें मध्यम पुरुष लाना,

तथा तत्त्वार्थ श्लोक वार्तिक के कर्त्ताओं का मत पूज्यपाद स्वामीसे मिलता है न कि साधन व्यभिचार को कारक व्यभिचार माना है जैसाकि औरोंका भ्रम है॥ इस सर्वार्थसिद्धिवृत्तिके दो संस्करण मुद्रित हुये हैं प्रथम आवृत्तिमें छापे की इतनी अशुद्धियां हैं कि दो बार शुद्धयशुद्धि पत्र देने पर भी बहुतसी अशुद्धियां रह गई हैं जिनको हमने शुद्ध करके अनुवाद शब्दशः किया है और स्थान स्थान पर उनका उल्लेख भी किया है॥ दोनों आवृत्तियों का क्रमसे पाठ ऐसे हैं कि "सख्याव्यभिचारः—जलमापो वर्षा ऋतुराम्रा वनमिति॥ वरणा नगरं साधन व्यभिचारः॥ कारक व्यभिचारः—सेना पर्वतमधिवसति॥ पुरुष व्यभिचारः—एहि······" इत्यादि पृष्ठ १३८॥ "संख्याव्यभिचारः—जलमापो वर्षा ऋतुराम्रा वन वरणा नगरमिति॥ साधन व्यभिचारः— (कारक व्यभिचारः) सेना पर्वतमधिवसति॥ पुरुष व्यभिचारः–एहि मन्ये रथेन यास्यसि, न हि यास्यसि, यातस्ते पितेति"॥ उपर्युक्त दोनों पाठों की तुलना करने से ज्ञात होताहै कि प्रथम संस्करणमें "वनमिति॥ वरणा नगर" अशुद्ध था उसको द्वितीय संस्करणमें "वनं वरणा नगरमिति" करके इतना पाठ शुद्ध कर दिया। परन्तु पश्चात् 'साधन व्यभिचार' वाक्य लिख कर "(कारक व्यभिचारः)" उसके निकट कोष्टकमें कर दिया, यह ठीक नहीं किया, "सेना पर्वतमधिवसति" वचनके पश्चात् और "पुरुष व्यभिचारः" के प्रथम "साधन व्यभिचारः" लिखना ठीक होता जैसा कि हमने वृत्तिका पाठ पृष्ठ ५१८में लिखा है। क्योंकि ( ) पं० जयचंदजीने वचनिका पृष्ठ २०३ में यह उल्लेख किया है "बहुरि साधन व्यभिचार ताकूं पुरुष व्यभिचार भी कहिये—एहि मन्ये रथेन यास्यसि। नहि यास्यसि न यातस्ते पिता" ऐसा ही लेख हस्त लिखित वचनिका में है॥ दूसरा हेतु यहहै कि 'साधन'का अर्थ तत्त्वार्थ राजवार्तिकके तथा तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक के कर्ताओंने अस्मद्–युष्मद्, प्रथम पुरुष, मध्यम पुरुष और उत्तम पुरुष ऐसा लिया है और 'अन्य' वैयाकरणों ने "साधन" का अर्थ करण कारक वा तृतीया विभक्ति लिया है (देखो वैद्यकोश पृष्ठ ७७१ पद्म० कोश पृष्ठ ४१९) और कारक छह (कर्ता-कर्म-करण-संप्रदान-अपादान-अधिकरण) हैं इसलिए साधन कारक व्यभिचार, करण कारक व्यभिचार हो सकते हैं। परंतु "सेना पर्वतमधिवसति" (=सेना पर्वत को वसती है) इस उदाहरण में साधन कारक व्यभिचार नहीं है वरन अधिकरण कारक के स्थानमें कर्म कारक है ऐसा व्यभिचार है अर्थात् जहां छठा कारक (अधिकरण कारक) का प्रयोग होना था वहां द्वितीय कारक वा कर्मकारक का प्रयोग किया है भावार्थ ऐसा है कि "सेना पर्वतेऽधिवसति" (=सेना पर्वतमें वसती है के स्थान में "सेना पर्वतमधिवसति" ऐसा है॥ यदि करण कारक व्यभिचार वा साधन कारक व्यभिचार का उपर्युक्त उदाहरण होता तो हम एक प्रकार से इस बात को मान लेते कि "साधन व्यभिचारः—(कारक व्यभिचारः)" एक है क्योंकि साधन व्यभिचार कारक व्यभिचारोंमें से एक है इस अवस्था में

और मध्यम पुरुष के स्थान में उत्तम पुरुष लाना, असमद् (=मे) के स्थान में युष्मद् लाना और युष्मद् (=तू) के स्थानमें अस्मद् लाना (जैसा कि नीचे के दृष्टान्तसे ज्ञात हैं)

साधनकारकव्यभिचारः—(साधनकारकव्यभिचार) ये दोनो वाक्य, वाक्यशेष पूरा कर देने से अर्थात् 'साधन व्यभिचारमे कारक शब्द जोडने से और कारक व्यभिचारमे साधन शब्द लगानेसे एक होजाते हैं ॥ परंतु उक्त उदाहरण (सेनापर्वत मधिवसति)मे तो साधनकारक व्यभिचारका कुछ भी अश नहीं है ॥ हमारी समझमे साधनकारक व्यभिचारके दो अर्थ है ( ) साधन (तृतीया करण) कारक द्वारा जो दोष उत्पन्न हो सो साधन व्यभिचार है अर्थात अन्य कारकका प्रयोग होना ठीक होता उसके स्थानमे करण कारक (=तृतीया विभक्तिका) प्रयोग पाया जाना । ( ) साधन कारकमे (का) दोष अर्थात् करण कारक (=तृतीया विभक्ति) के स्थानमें अन्य कारकका प्रयोग पाया जाना सो साधनकारक व्यभिचार वा करण कारक व्यभिचार हो सकता है ॥ इसलिए हमारी समझमे सस्था द्वारा प्रकाशित तत्त्वार्थराजवार्तिकके अनुवाद पृष्ठ ४७८ के नीचे जो निम्न टिप्पणी दी है वह असावधानीसे लिखी है "१ सर्वार्थसिद्धिमे साधनव्यभिचार. (कारकव्यभिचारः) सेनापर्वतमधिवसति । पुरुषव्यभिचारः एहि मन्ये रथेन यास्यसि नहि यास्यसि यातस्ते पिता, अर्थात् साधनका अर्थ कारक माना है और साधन व्यभिचार सेना पर्वत मे रहती है यह उदाहरण दिया है । पुरुषव्यभिचार एक भिन्न व्यभिचार माना है और उसका एहि 'मन्ये रथेनत्यादि उदाहरण दिया है" ॥

सर्वार्थसिद्धिवृत्ति, तत्त्वार्थ राजवार्तिक, तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक, जयचदजी कृत वचनिका और अर्थ प्रकाशिका मे जिस क्रमसे उक्त व्यभिचारोके नाम दिये है उसी क्रमसे उनकी भिन्न भिन्न व्याख्या की है और क्रमानुसार ही उदाहरण दिये है इससे यह बात झलकती है कि "कारकव्यभिचारः सेनापर्वतमधिवसति ॥" इस वाक्यका स्थान "एहि मन्ये रथेन यास्यसि न हि यास्यसि यातस्ते पितेति" के पश्चात् होना चाहिये और "काल-व्यभिचारः" इत्यादि वाक्यके पहिले होना चाहिये अर्थात् "कारक व्यभिचारः- सेना पर्वतमधिवसति ॥ साधनव्यभिचारः, पुरुषव्यभिचारः—एहि मन्ये रथेन यास्यसि न हि यास्यसि यातस्ते पितेति ॥ कालव्यभिचारः" इतने लेखके स्थानमे 'कारकव्यभिचारः- सेना पर्वतमधिवसति" इस इतने लेखके स्थानको परिवर्तन करते हुये ऐसा पाठ होना चाहिये "साधन व्यभिचारः पुरुषव्यभिचार—एहि मन्ये रथेन यास्यसि न हि यास्यसि यातस्ते पितेति ॥ कारकव्यभिचारः- सेना पर्वतमधिवसति ॥ कालव्यभिचारः इत्यादि" क्योंकि सर्वार्थसिद्धिमे "लिङ्गसंख्यासाधनादिव्यभिचार निवृत्तिपरः" ऐसी परिभाषा 'शब्दनय' की दी है । इसके 'आदि' शब्दमें कारकव्यभिचार कालव्यभिचार और उपग्रह व्यभिचार गर्भित हैं ॥

उक्त शब्दनय की परिभाषा के क्रमानुकूल प्रथम लिंगव्यभिचार को उदाहरण सहित कहा, पश्चात् संख्याव्यभिचार को दृष्टान्त सहित कहा तत्पश्चात् साधनव्यभिचार क्रमानुकूल अवश्य ही कहना चाहिये। यह बात कितनी क्रम विरुद्ध है कि लिंगव्यभिचार और संख्याव्यभिचार को कहकर और साधनव्यभिचार को छोड कर "आदि" शब्द में अन्तर्गत व्यभिचारोंमेंसे कारकव्यभिचार को ग्रहण करना, पश्चात् "आदि" शब्द में अन्तर्गत कालव्यभिचार और उपग्रहव्यभिचार को भी छोड कर फिर साधनव्यभिचार का कथन आरम्भ कर देना। "आदि" शब्द में अन्तर्गत व्यभिचारों को स्पष्ट कहे हुये व्यभिचारों से पीछे ही कहना पडता है क्योंकि संभव है कि आदि शब्द में कारक व्यभिचार कालव्यभिचार और उपग्रहव्यभिचार के अतिरिक्त अन्य अन्य व्यभिचार भी सम्मिलित हों जैसा कि तत्त्वार्थ राजवार्तिक पृष्ठ ६७, ६८ में "आदि" शब्द करि कालव्यभिचार और उपग्रहव्यभिचार को लेते हुए "एवमादयो. व्यभिचारा अयुक्ताः" (=ऐसे काल उपग्रह आदिक व्यभिचार अयुक्त है) कथन किया है। ( ) उपर्युक्त वार्तिक के पृष्ठ ६७, ६८ में लिंगसंख्या साधनादि" वाक्य के पीछे क्रमसे लिंगव्यभिचार, संख्याव्यभिचार, साधनव्यभिचार का कथन दृष्टान्तों सहित किया है और "आदि" शब्द में कालव्यभिचार और उपग्रहव्यभिचार को उदाहरणों सहित निर्देश कर प्रकट किया है कि ऐसे 'आदि' शब्द में और और व्यभिचार भी है वे सर्व अयुक्त हे। तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक पृष्ठ २७२, २७३ में "कालकारक लिंगसंख्यासाधनोपग्रहभेदाद्भिन्नमर्थं शपतीति शब्दो नय" यह वाक्य देकर इसही क्रम से शब्द नय की अपेक्षा से इन सबका कथन उदाहरणों और तर्क वितर्क सहित दिया है। यही क्रम तत्त्वार्थराजवार्तिक के दोनों अनुवादकों ने ग्रहण किया है॥ पं० गजाधरजी ने २७२, २७३ उक्त पृष्ठों का अनुवाद दिया है उसमें भी यही क्रम रक्खा है (देखो पृष्ठ ४८३ से ४८८ तक) ॥ पं० जयचन्द जी ने वचनिका पृष्ठ २०२ से २०५ तक में लिंगव्यभिचार, संख्याव्यभिचार, "साधनव्यभिचार ताकू पुरुष व्यभिचार भी कहिये "कालव्यभिचार, उपग्रहव्यभिचार कारक व्यभिचार इस क्रम से उक्त व्यभिचार देकर उनकी व्याख्या उदाहरणों सहित अनुक्रम से की है॥ पं० सदासुख जी ने अर्थ प्रकाशिका पृष्ठ ८४, ८५ में पं० जयचन्द जी के सदृश उक्त व्यभिचारों का उदाहरण सहित उल्लेख किया है परन्तु उनने कारकव्यभिचारका कथन छोडदिया है। पृष्ठ ४८० से पं० पन्नालाल न्यायदिवाकर लिंग संख्या के व्यभिचारों के पीछे 'साधनव्यभिचार याकूं पुरुषव्यभिचार भी कहिये इसका कथन करते है फिर कालव्यभिचार इत्यादिका। हमने पाठ तौ सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शुद्ध कर दिया है परन्तु कारकव्यभिचार को संख्याव्यभिचार और साधनव्यभिचार के (=पुरुष व्यभिचार के) मध्य में ही रक्खा है क्योंकि हमारे निकट कोई ऐसी प्राचीन प्रति नहीं है जिसके आधार पर हम 'कारकव्यभिचार' को 'साधन व्यभिचार (=पुरुष व्यभिचार) के पश्चात् रक्खें॥ विचार में आया वही लिखा आगे पाठक महोदय भूल चूक सम्हार लेवैं॥

(२)एहि मन्ये रथेन यास्यसि, न हि यास्यसि, यातस्ते पितेति(१) ॥

एहि T मन्ये T रथेन ३। यास्यसि T = (तू) आउ, (मैं) मानता हूं वा समझता हूं, (तू) रथ (चढ़) करि जायगा, (सो)

न*हि * यास्यसि T यातः १। ते ६। पिता १। इति = (तू) नहीं जायगा, इस प्रकार (= इति) तेरा पिता (चला) गया ॥

(सभ्य शब्दों में उक्त वाक्य का अनुवाद ऐसे होगा कि) तुम आओ मैं मानता हूं वा समझता हूं तुम रथ चढ़ करि जावोगे सो नहीं जावोगे, इस प्रकार (तो) तुम्हारे पिता चले गये ॥ उपर्युक्त संस्कृतवाक्य में और तदानुसार शब्दार्थ हिंदी अनुवाद में भी 'एमि' उत्तम पुरुष एक वचन के स्थान में "एहि" मध्यम पुरुष एकवचन लाया गया है। "मन्यसे" मध्यम पुरुष एक वचन के स्थान में "मन्ये" उत्तम पुरुष एकवचन लाया गया है और "यास्यामि" उत्तम पुरुष एकवचन के स्थान में "यास्यसि" मध्यम पुरुष एकवचन लाया गया है ॥ (मैं) के स्थान में "तू" और "तू" के स्थान में "मैं" फिर 'मैं' के स्थान में 'तू' लाया गया है हिन्दी अनुवाद में इन तीनों को मिलाके ऐसे साधन वा पुरुष व्यभिचार हुआ।

(१) इस वाक्य का पाठ सर्वार्थसिद्धि की दोनों आवृत्तियों में, तत्वार्थराजवार्तिक तथा राजवार्तिक दोनों अनुवादों में एकसा है ॥ श्लोकवार्तिक मे एक 'स' अधिक है और 'पितेति' वाक्य की संधि नहीं की 'पिता इति' ऐसे रूप में है अर्थात् "एहि मन्ये रथेन यास्यसि न हि यास्यसि स यातस्ते पिता इति" ऐसा पाठ है ॥ प० जयचन्द जी की वचनिकामें "न" अधिक है और 'इति' नहीं है, अर्थात् "एहि मन्ये रथेन यास्यसि, नहि यास्यसि, न यातस्ते पिता" है ॥

(२) "एहि" अदादि द्वितीय गण के इ वा ई गमन अर्थवाली धातु से लोट लकार वा आज्ञाद्योतक क्रिया के मध्यम पुरुषका एकवचन रूप है इसका अर्थ "एहि कहिये तू आइ" (= तू आउ) पञ्चा० दूनीवाले पृष्ठ २६४ "एहि त्वमागच्छ" (= तू आउ) सर्वार्थ प्र० संस्करण पृ० १३८ टिप्पणी, द्वितीय आवृत्ति पृ० ८० टिप्पणी ॥ "एहि मन्ये रथेन यास्यसि न हि यास्यसि यातस्ते पिता। अर्थात् जाओ में ऐसा समझता हु कि तुम रथसे जाओगे परन्तु अब न जाओगे तुम्हारा पिता चलागया। इस वाक्य के शब्दोंका अर्थ तो यह होता है। प०गजाधरलालजी अनुवादित तत्वार्थराजवार्तिक पृ० ४७८ ॥अब हमको यह बात निश्चय करनाहै कि "एहि"वाक्य का अर्थ कौनसा ठीक है अर्थात् 'तू आउ' अथवा तू 'जाओ ॥

( ) इ भ्वादि प्रथम गण परस्मैपद और आत्मने पद का धातु 'जाना' अर्थ में आता है ॥ इ को गुणसंज्ञा ए है अ विकरण जोड़कर = अय् + अ बनता है पश्चात् ति-ते अन्य पुरुष, एकवचन, वर्तमान कालके परस्मैपद वा आत्मनेपदका प्रत्यय क्रमसे लगाकर अयति, अयते = जाताहै बने।

( ) इ और ई भ्वादि प्रथम, अदादि द्वितीय, दिवादि चतुर्थ गणों में भिन्न भिन्न अर्थ लिये हुये आते हैं उन सर्व को छोड़ कर यहां पर इ-ई अदादिगण के जाना वा गमन अर्थ में आये हैं (वैद्यकोश १५,१७ पृ०)अङ्ग के अन्त का स्वर और अङ्ग के उपातक हस्व स्वरके चितसंज्ञक्

हिंदी अनुवाद मे यदि उक्त पुरुप दूपण हम दूर करदें तो भी हंसीका प्रसंग बना रहैगा जैसे मैं जाताहूं तू समझता है "मैंरथ चढ़ करि जाऊंगा" तू रथ चढ़ करि नही जावेगा, तेरा बाप (दादा भी कभी) ऐसे गया है ? भावार्थ जो महत्व का कार्य तेरे बाप दादा से नही हुआ है तुझ से कैसे हो सकता है कदापि नही हो सक्ता है ॥ परन्तु संस्कृत में यदि हम शब्द नयके अनुकूल पुरुप दूपण दूर कर के "एमि मन्यसे रथेन यास्यामि नहि यास्यसि यातस्ते पितेति" करदें तो प्रहास जाता रहेगा और सीधा साधारण संस्कृत वाक्य का यह अर्थ हो जावेगा ॥ जैसे किसी बहुत बूढ़े मनुष्य को कोई बच्चा मिला और दोनों को किसी बरात में जाना है तो उक्त वृद्ध पुरुप कहता है। (बच्चे तू मेरे साथ चलता है तो चल) 'मैं (तो) जाता हूं तू समझता है 'मैं रथ चढ़ करि जाऊंगा' (सो अब) तू (रथ चढ़ करि) नही जावेगा। (क्योंकि तू तो अभी ग्राम से आया है, घर भी नही पहुंचा है इससे तुझको जानकारी नही है कि जो रथ वस्तुतः तेरे घरमें था उस पर तो) तेरा पिता (चढ़ कर बरात को)

(मि-सि ति। अम्-स्-त्। आनि-आव-आम-तु परस्मैपदी और ऐ-आवहै-आम है। आत्मनेपदी) प्रत्यय के पहिले गुण संज्ञक आदेश हो जाता है परन्तु शेष ङित् संज्ञक प्रत्यय वस्-थस्-तस् हि-तम्-ताम्-त-अन्तु इत्यादि के पहिले गुण संज्ञा नहीं होती (धातुचन्द्रिका पृष्ठ७२)इसलिये इ—ई धातुओं का मि,पित् संज्ञक प्रत्यय के पहिले गुण संज्ञा होकर ए—ए ऐसा रूप बना। अदादि द्वितीय गण के धातु के साथ कोई विकरण नहीं लगता है इसलिये पुरुषगत प्रत्यय धातुओं के साथ तत्क्षण लगाये जाते है॥ एमि—इ धातु का और एमि (ही) ई धातु का उत्तम पुरुप एक वचन, परस्मैपद, वर्तमान काल को क्रिया का रूप हुआ, जिस 'एमि' का अर्थ है (मैं) जाता हूं जोकि जब हम एहि के स्थान में. एमि करेंगे तब यह अर्थ काम देगा ॥ हि प्रत्यय ङित् संज्ञक है और वह मध्यम पुरुप एक वचन परस्मैपद, लोट वा आज्ञा द्योतक क्रिया का है इसके पहिले अङ्ग के अंत के स्वर और अङ्ग के उपान्तक ह्रस्व स्वर का गुण संज्ञक आदेश नहीं होता है इसलिये इ + हि, ई + हि = इहि = तू आउ, ई + हि = तू आउ रूप बने और अर्थ हुआ ॥ (देखो धातु चन्द्रिका पृष्ठ ७६) ॥ अब प्रश्न यह है कि इन इहि-ईहि रूपों का एहि कैसे बना और क्या अर्थ होगा ॥ आङ् उपसर्ग के कई अर्थ होते हुये जब आङ् (= आ) उन क्रियाओं के पहिले आता है जो हलन-चलन-ग्रहण करने इत्यादि अर्थों की द्योतक होती है तो उनका अर्थ विपरीत हो जाता है जैसे गम् = जाना, आगम् = आना ॥ इसी प्रकार आ + इ, आ + ई का आद्गुण. सू० (६-१-८७) से ए-ए रूप बने क्योंकि इ-ई की गुण संज्ञा ए है इसमें उपर्युक्त ही प्रत्यय लगाने से एहि-एहि रूप बने। इसलिये 'तू आउ' यह अर्थ हुआ। इससे हमने अनुवाद में तू जाओ अर्थ न लिखकर एहि का अर्थ तू आउ अथवा तुम आओ ऐसा किया है ॥

चला गया है ॥ श्रीयुत श्रीश्चन्द्र अनुवादित अष्टाध्यायी पृष्ठ २११ देखो ॥ "एहि मन्ये (१) रथेन यास्यसि, न हि यास्यसि, यातस्ते पितेति" ॥ यह संस्कृत वाक्य हंसी में कहा गया है ॥ वह व्याकरण और व्यवहार नय दोनों के अनुकूल शुद्ध है और लोक व्यवहार में ऐसा प्रयोग होता है और वह ठीक समझा जाता है परन्तु शब्द नय की प्रधानता से उक्त संस्कृत वाक्य का प्रयोग ठीक नहीं है, अयुक्त है दूषित है व्यवहारनय और व्याकरण से वह भले ही ठीक हो। यहां पर तो शब्द नय का प्रकरण है इस से हम उसको दूषित मानते हैं।

---

(१) हमको इस टिप्पणी में इस बात को सिद्ध करना है कि पाणिनीयकृत अष्टाध्यायी और जैनेन्द्र व्याकरण के भी अनुसार और व्यवहार नय से भी "एहि मन्ये रथेन यास्यसि, न हि यास्यसि, यातस्ते पितेति" यह वाक्य ठीक है और यदि शब्द नय के अनुकूल "मन्ये" उत्तम पुरुष के स्थान में 'मन्यसे' मध्यम पुरुष कर दिया जावे और 'यास्यसि' मध्यम पुरुष के स्थान में 'यास्यामि' उत्तम पुरुष करदिया जावे तो उक्त वाक्य का सीधा सादा साधारण अर्थ होजावेगा और उपहास वा परिहास का प्रसग जाता रहैगा, परन्तु शब्द नय से जिसको हम यहां पर प्रधान मानते हैं उक्त वाक्य ठीक नहीं है व्याकरण और व्यवहार नय कुछ भी सिद्ध क्यों न करता हो॥ प्रथम हम अष्टाध्यायी के सूत्र का उल्लेख करते हैं। "प्रहासे च मन्योपपदे मन्यते रुत्तमः एकवच्च" १।४।१०६ ॥ = प्रहासे $\frac{७}{१}$। च*मन्य--उपपदे $\frac{७}{१}$॥ धातोः $\frac{५}{१}$। (सूत्र ८० से लिया है) मध्यमः $\frac{१}{१}$। (१०५ वां सूत्र से लिया है) (मन्यति की) मन्यतेः $\frac{५}{१}$ उत्तमः $\frac{१}{१}$। एकवत्* च* ॥

प्रहासे $\frac{७}{१}$। च * = और (=च) प्रहास वा हसी (अर्थ) में अर्थात् जब किसी क्रिया के सम्बन्ध में किसी से प्रहास्य करने का अभिप्राय हो।

मन्योपपदे $\frac{७}{१}$। धातो $\frac{५}{१}$। मध्यम $\frac{१}{१}$। = मन्य--उपपद (मन्य धातु जिसके साथ हो ऐसे) धातु से (= धातोः = ऐसी धातु के पीछे) मध्यम पुरुष हो अर्थात् जिस धातु के साथ में मन्य (धातु) उपपद रूप में आई हो तो वह प्रकृतिभूत वा विषयभूत धातु अथवा वह क्रियाद्योतक धातु मध्यम पुरुष में लाई जाती है।

मन्यते· $\frac{५}{१}$ उत्तम· $\frac{१}{१}$ = और मन्य धातु से (=मन्यतेः--यह मन्यति की पचमी अपादान विभक्ति एकवचन है) उत्तम पुरुष हो।

एकवत्* च* = वह एकवचन भी (=च) हो ॥ सारांश यह है कि जब किसी प्राणी से किसी क्रिया जैसे खाना जाना चले जानाइत्यादि के सम्बन्धमें हसी करना हो और मन्य धातु उक्त विषयभूत क्रियाके पास आवै, वा पहिले आवै अथवा प्रथम बोला जाय तो इस क्रिया के पीछे मध्यम पुरुष का प्रत्यय लाया जायगा, और उक्तमन्य

धातु के पश्चात् प्रथम पुरुष का प्रत्यय लाया जायगा, वह प्रत्यय एक वचन भी (=च) होगा ॥ जैसेः— "एवं मन्ये ओदनं भोक्ष्यसे इति,
नहि भोक्ष्यसे; भुक्तः सोऽतिथिभिः" इस वाक्यमें 'भुज्' धातु है जिसका अर्थ 'भक्षण करना' है इस 'खाना' क्रिया के संबन्ध में किसी प्राणीसे
परिहास वा हंसी करना है और उक्त वाक्य में मन्य (मन्=समझना, दिवादिगणका य विकरण है) धातु विषयभूत वा प्रकरणमें लाई गई
'भुज्' धातुसे पहिले आई है, प्रथम बोली गई है, इसलिये इस 'भुज्' धातु के पश्चात् स्यसे (=भुज्+स्यसे=भोक्+स्यसे=भोक्+ष्यसे=भोक्ष्यसे)
मध्यम पुरुषका प्रत्यय लाया गया है और 'मन्य' धातु जो वाक्यका उपपद (=अप्रधान, गौण, अनुगामी) है उसके पीछे इ (=मन्+
य, विकरण+इ=मन्ये) उत्तम पुरुष एक वचन प्रत्यय लाया गया है। बस यही इस सूत्रका ज्योंका त्यों अर्थ और आशय है ॥ अब इसमें प्रहास
यह हुआ मान लीजिये कि एक वृद्ध पुरुष के यहां भात अल्प भी नहीं बना है और एक न्यून व्यस्क की भात खाने की बहुतही इच्छा है परस्पर
उनमें उपहास भी होता रहता है तो वह बुड्ढा पुरुष हंसी में कहता है तू ऐसा समझता है "मैं भात खाऊंगा" तू नहीं खायगा, वह भात तो
महमानों द्वारा खा लिया गया" यहां भात खीर इत्यादि कुछ भी विद्यमान नहीं है न था केवल प्रहास और उपहास ही है ॥ ध्यान रहे कि यह
हंसीरूप अर्थ जब तक ही संस्कृत वाक्य का रहैगा तब तक हम शब्दनयके प्रतिकूल 'मन्ये' धातुमे मध्यम पुरु के स्थानमें जो उत्तम पुरुष है
और भोक्ष्यसे उत्तम पुरुषके स्थान में मध्यम पुरुष है बना रहने दें यदि शब्दनयके अनुसार हम उक्त उदाहरण को ऐसा करदे एवं मन्यसे ओदनं
भोक्ष्ये इति, नाहं भोक्ष्यसे, भुक्तः सोऽतिथिभिः अर्थात् मन्ये उत्तम पुरुषके स्थान में मन्यसे मध्यम पुरुष करदें और भोक्ष्यसे मध्यम पुरुष के
स्थान में भोक्ष्ये उत्तम पुरुष करदें तो हंसीका विषय जाता रहैगा और उक्त वाक्यका साधा साधा साधारण अर्थ होजावेगा वह अर्थ यह होजावेगा
कि उक्त उदाहरणमें जब उस पुरुषके यहां भात यथार्थमें हुआ था और महमान उस भातको सबका सब वास्तविकमें खागये तो यह सच्ची बात
विना किसी हंसीके कह सक्ता है कि ऐसा तू मानता है 'मैं भात खाऊंगा; नहीं खायगा, वह (भात तो) महमान खागये ॥ उक्त सूत्र अन्य प्रकारसे
ऐसे भी है "प्रहास मन्य वाचि युष्मन्मन्यतेरस्मदेकवच्च" अर्थात् प्रहास (अर्थ) में मन्यवाच (मन्य धातु जिसके वाचन वा पठनमें हो ऐसे)
धातुसे युष्मद् (मध्यम पुरुष) हो और मन्य धातुसे अस्मद् (उत्तम पुरुष) हो और वह (अस्मद्) एक वचन भी हो ॥

कालव्यभिचारः-विश्वदृश्वाऽस्य पुत्रो जनिता । भावि कृत्यमासीदिति ॥

कालव्यभिचारः ।। विश्वदृश्वा ।। =कालव्यभिचार (जैसे) समस्त लोक को जिसने देखलिया है वा जान लिया है ऐसा

पुत्रः ।। अस्य ।। जनिता =पुत्र इसके उत्पन्न होगा (=जनिता) अर्थात् यहां समस्त ब्रह्मांडका देख लेना भविष्यत् कालका कार्य है उसका भूतकालमें होना मान लिया गया है अतः यहां भविष्यत्काल में होनेवाले कार्यके स्थानमें भूतकालमें हुआ कार्य कहदैना कालव्यभिचार है ॥

भावि-कृत्यम् ।।। आसीत् इति॥ =होनहार (=भाविन्) कार्य (कृत्यम्) हुआ ऐसें यहां होनहार कार्य इतनावाक्य आगामी कालका वाचक है और आसीत् (=हुआ) यह वाक्य अतीतकालका वाचक है इसलिये यहां अनागत कालमें वा आगे होनेवाले कालमें भूतकालकी (प्रकाशक) विभक्ति वा क्रियाका प्रत्यय लगाया है (=भविष्यत्कालेऽतीतकालविभक्तिः) ॥

क्योंकि संसारमें हम उक्त प्रहासका वाक्यों द्वारा प्रचार वा व्यवहार देखते हैं इसलिये व्यवहारनयसे भी 'एहि मन्ये रथेन' इत्यादि वाक्य ठीक है। अब हम शब्दनयकी प्रधानता मानकर और व्यवहारको गौण करके यह दिखाना चाहते हैं कि यदि युष्मद् मध्यम पुरुषके स्थानमें अस्मद् उत्तम पुरुष करदिया जावे और अस्मद् उत्तम पुरुषके स्थानमें युष्मद् मध्यम पुरुष करदिया जावे तो वह शब्दनयसे ठीक न होगा क्योंकि साधनका भेद रहते भी पदार्थोंको एक माना जावेगा तो 'अहं पचामि त्वं पचसि' (मैं रांधता हू, तू रांधता है) यहांपर भी युष्मद् अस्मद् रूप साधनोंका भेद है इसलिये यहांपर भी एक मानना पड़ैगा फिर भिन्न भिन्न रूपसे जो दो प्रयोग होते हैं वे न हो सकेंगे अतः साधन व्यभिचारके दूर करनेके लिये जो वैयाकरणोंने समाधान दिया है वह अयुक्त है ॥ (देखो तत्त्वार्थ श्लोक वार्तिक पृष्ठ २७३)

(१) इस वाक्यमें विश्वदृश्वा जो पुत्रका विशेषण है इसके द्वारा भूतकाल प्रगट किया है और द्वितीय वाक्यमें आसीत्, अनद्यतनभूत क्रिया द्वारा अतीतकाल प्रगट किया है ॥ दृश्वा शब्द दृश्वन्का प्रथमा विभक्ति एक वचन पुल्लिंग है ॥

(२)जनिता—जन्=उत्पन्न होना, दिवादिगण, आत्मनेपदी, अकर्मक, सेट् धातु है, जन+इ और ता लुट् भविष्यत् काल प्रथम पुरुष, एक वचन आत्मनेपदी क्रियाका प्रत्यय लगानेसे 'जनिता' (=उत्पन्न होगा) यह बना ॥ (३) आसीत्—अस् अदादि द्वितीयगण, अकर्मक, परस्मैपदी, सेट् धातु 'होना' अर्थ में यहां आया है अनद्यतनभूत कालकी क्रियामें 'अ' जोड़ा 'ई' आगम आया, फिर 'त्' प्रथम पुरुष, एक वचन, उक्त भूतकालका परस्मैपद प्रत्यय लगाने से (अ+अस्+ई+त्)=आसीत् (=हुआ) बना ॥

काल व्यभिचारके दोनों उदाहरण व्याकरण और व्यवहारनय से ठीकहैं परंतु शब्दनयमे दूषित हैं जसाकि तत्त्वार्थ श्लोक

ये । हि* वैयाकरणाः व्यवहारनय-अनुरोधेन ।॥ = ये व्याकरणवाले व्यवहारनयके अनुसरणसे '(पाणिनीय अष्टाध्यायी ३ ४-१)

'धातुसबन्धे । प्रत्ययाः ।" इति सूत्रम् ।॥ आरभ्य– = ऐसे सूत्रको कि "धात्वर्थ सबन्ध में अयथाकालोक्त भी प्रत्यय हों" आरम्भकरि अर्थात् धात्वर्थ सबन्धी प्रत्यय जिस कालमें कहे गये हैं उनसे भिन्न कालमें भी होते हैं ऐसे अर्थवाले सूत्रका निर्माण कर

विश्वदृश्वाअस्य।पुत्रः। जनिता भाविकृत्यम्।॥आसीत् = विश्वको जिसने देख लिया है ऐसा इसकें पुत्र उत्पन्न होगा; होनहार कार्य हुआ

इति अत्र कालभेदे।अपि एकपदार्थम् ।आदृताः।॥यो।विश्वं।॥ = इस प्रकार यहां काल भेद (होने) पर भी एक पदार्थ को मानतेहैं। जो विश्व को

द्रक्ष्यति। सः। अपि पुत्रः। जनिता इति भविष्यत्कालेन = देखेगा सो ही (=अपि) पुत्र उत्पन्न होगा ऐसा अनागत कालकरि

अतीतकालस्य। अभेदः। अभिमतः। तथा* = अतीत कालका अभेद माना गया है और (=तथा)

व्यवहार-दर्शनात् ।॥ इति* = लोक व्यवहारमे ऐसा देखना होता है अर्थात् संसारमे ऐसा देखा जाता है भावार्थ धात्वार्थ संबन्धी प्रत्यय जिस कालमें कहे गये हैं उनसे भिन्न कालमे भी होते हैं

ऐसे अर्थवाले सूत्रका निर्माण कर 'विश्वदृश्वास्य पुत्रो जनिता, भाविकृत्यमासीत' यहां पर जो भविष्यत् कालके कार्य को भूतकालमें मानने से कालका भेद रहने पर भी भविष्यत् और अतीतकाल को वैयाकरण एक मानते हैं और दोनो कालोंके अभेद मानने में यह हेतु देते हैं कि संसार में वैसा व्यवहार होता है। (परंतु)

तत् ।॥ न* श्रेयम् ।॥ (तत्र श्रेयः) = वह (व्यवहाराधीन भविष्यत् और अतीतकालोका अभेदरूप सिद्धांत) अच्छा नहीं है

(पाठान्तरम्-तत्र* यः ।) = [अन्य पाठ-तहां जो (व्यवहाराधीन भविष्यत और अतीतकालोंका अभेदरूप सिद्धांतहै सो,]

परीक्षायां ।॥ मूलक्षतेः ।॥ कालभेदे । अपि अर्थस्य । = परीक्षा (करने)मे जडमे जाता रहता है। क्योंकि कालभेद रहने पर भी (भिन्न २) पदार्थका

अभेदे । अति प्रसंगात् । = एक माननेमे नियमके अतिविरुद्ध होजाता है (=अतिप्रसंगात्-(देखो वैद्यकोश पृ० १०) कि

रावणशंखचक्रवर्तिनोः। अपि* = रावण और शंखचक्रवर्तीके भी (जो यथा संख्य और अनुक्रम से)

अतीत-अनागतकालयोः। एकत्व-आपत्तेः ।॥ = अतीत और भविष्यत् कालमें (हुआ और होने वाला है दोनोमे) एकता आपड़ती है अर्थात् दोनोंमें एकता हुई जाती है अथवा दोनों एक हुए जाते हैं

वार्तिक के पृष्ठ २७२, २७३ से सिद्ध है जिसका शब्दशः अनुवाद हम टिप्पणी में देते हैं

आसीत T रावण: ; । राजा ; । शंखचक्रवर्ती ; । भविष्यति T इति*	=(प्रश्न) रावण राजा हो चुका शंखचक्रवर्ती भविष्यत् कालमें होगा ऐसे
शब्दयोः ;। भिन्नविषयत्वात् ;।। एकार्थता ;।।	=दोनों (रावण और शंख) शब्दोंके भिन्न भिन्न विषय होने से एक पदार्थपनासे
न* इति* चेत्*	=रहित (=न) है ऐसा ही (=इति) यदि (=चेत्) माने तो अर्थात् रावण और शंखको भिन्न २ मानना चाहिये एक मानना बाधित है ॥
तत् ;।। एव*	=(उत्तर) तैसेही (=तत् एव)
विश्वदृश्वा ;। जनिता T इति*	=विश्वदृश्वा (जो होचुका) और जनिता (जो आगे होगा) ऐसे
अनयोः ;।	=दोनो (शब्द जो एक दूसरे से भिन्न भिन्न हैं एकार्थतारूप - एक अभिप्राय वाले)
अपि* मा* भूत् T	=भी (=अपि) नहीं (=मा) हो (सक) ते (=भूत्)
विश्वं ;। दृष्टवान् ;।	=(विश्वदृश्वा वाक्यका अर्थ) विश्वको आगामी कालमे देखने वाला (=विश्वं दृष्टवान्)
इति* नहि*	=ऐसा (अर्थ) कदापि नहीं होसक्ता है(=नहि)वा किसी प्रकारसे नहीं होसक्ता है(=नहि)॥
विश्वदृशित्व ;-इति*शब्दस्य ;। यः ;। अर्थः ;। अतीतकालस्य ;।	=विश्वदृशित्व ऐसे शब्दका जो अर्थ है सो अतीतकालका वाचक है
जनिता ;।। इति* शब्दस्य ;। अनागतकालः ;।	=जनिता ऐसे शब्दका (अर्थ) अनागतकाल है (दोनों शब्दोंका भिन्न भिन्न अर्थ है)
पुत्रस्य ;। भाविनः ;। अतीतत्व-विरोधात् ;।	=अतः भविष्यत्कालका होनेवाला (=भाविनः) पुत्र अतीतकालमें हुआ (यह) विरोध है
अतीतकालस्य ;। अपि* अनागतत्व आध्यरोपात् ;।	=(प्रश्न) भूतकालके भी भविष्यत्कालपना आरोप करनेसे (भविष्यत्कालमें होने वाला पुत्ररूप कार्य अतीतकालमें हुआ दोनोंके)
एकार्थता ;।। अभिप्रेता ;।। इति* चेत्*	=एक पदार्थपना है यदि (=चेत्) ऐसा मान लिया जाय (=अभिप्रेता) तो । (उत्तर)
तर्हि* न* परमार्थतः* कालभेदे ;। अपि*	=उस (उपचार की) अवस्था में (=तर्हि) कालभेद रहने पर भी यथार्थतः (=परमार्थतः)
अभिन्न-अर्थ-व्यवस्था ;।।	=एक पदार्थरूप (=अभिन्नार्थ) वा अभेदरूप व्यवस्था नहीं (मानी जा सकती) अर्थात् उपचारसे कालका अभेद मान कर भविष्यत् कालके कार्य को भूत कालका कार्य मान भी लिया जाय तब भी,वह पदार्थ रूपसे एक नहीं माना जासका औपचारिक ही रहेगा॥

उपग्रहव्यभिचारः--सन्तिष्ठते प्रतिष्ठते

उपग्रह व्यभिचारः [1]	= उपग्रह दूषण अथवा उपसर्ग व्यभिचारः—(जैसे)
संन्तिष्ठते T	= संतिष्ठते (= वह अपनी प्रतिज्ञानुसार चलता है वा प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहता है)
प्रतिष्ठते T	= प्रतिष्ठते (= वह चल देता है अथवा वह गमन कर्ता है अर्थात् 'स्था'

(१) हमको इस टिप्पणी में यह दिखलाना है कि यहाँ पर 'उपग्रह' शब्द का अर्थ 'उपसर्ग' कैसे हुआ। उपग्रह शब्द के [illegible]त अर्थ हैं (क) कारागार, कारागृह, बन्धनागार, बन्दीगृह, बन्धनालय, (ख) बन्दीगृह में डालना (ग) बन्दीगृह में रहने वाला, बन्धुआ (घ) दया (ङ) धूमकेतुग्रह, राहुकेतुग्रह, (देखो पद्मचन्द्रकोश ७६, वैद्यकोश १३६ पृ०) (च) सहायता (छ) किसी वस्तु को किसी वस्तुके साथ जोडना वा लगाना (वैद्यकोश १३६ पृ०)उपग्रह शब्द इस अन्तके अर्थमें मेरी समझमें लिया गया है अर्थात् यहाँ एक वस्तु जो उपसर्ग है उसको दूसरी वस्तु जो 'स्था' धातु है उसके साथ जोडना अथवा लगाना। क्योंकि निपातोंमेंसे प्र—परा—अप—सम्—अव—अनु—निस्—निर्—दुस्—दुर्—वि—आङ् नि—अधि—अपि—अति—सु—उत्—अभि—प्रति—परि—उप बाईस निपात उपसर्ग जब ही कहलाते हैं जब किसी क्रिया के साथ आवें नहीं तो इन निपातों को उपसर्ग कदापि नहीं कह सकते इसलिये इस समानता के हेतु से "उपग्रह" का अर्थ 'उपसर्ग' मान लिया है वा ले लिया है, यही अर्थ निम्न उल्लेखित वाक्यों से निकला है, "सो उपग्रह कहिये उपसर्ग (व्यभिचार) है "पं० पन्नालाल दूनी वाले राजवार्तिक पृ० २६४ ॥ ऐसे उपसर्ग के बलते आत्मनेपदी धातु का परस्मैपद वचन भया। बहुरि परस्मैपदीका आत्मनेपदी भया। ऐसे उपग्रह व्यभिचार है' 'प० जय०वचनि० पृष्ठ २०४ "बहुरि आत्मनेपदीकूं परस्मैपद भया ऐसे ही उपसर्ग व्यभिचारकूं व्यवहारनय न्याय मानै हैं तथापि शब्द नय का यही विषय है" अर्थ प्रकाशिका पृ० ८५ (भावार्थ दूसरे तीसरे वाक्य का यह है कि व्यवहार नय उपसर्ग व्यभिचार को न्याय मानती है परंतु शब्द नय उसको अन्याय ठहराता है परन्तु हमारी समझ में यह नहीं आया कि सस्थानुवादित राजवार्तिक पृष्ठ ४७६ में " उपग्रह का अर्थ परस्मैपद वा आत्मने पद है "ऐसा अर्थ उपग्रह शब्द का कहां से लिया है और कैसे हो गया ॥

(२) स्थः (ष्ठा) गति निवृत्तौ इति अत्र परस्मैपदोपग्रहः। समवप्रविभ्यः स्थः अष्टाध्यायी १-३-२२। इति व्यभिचार सूत्रम्॥ संव्यवप्रात् स्थः। जैनेन्द्र व्याकरणम् १ अध्यायः २ पादः २१तम सूत्रम्॥ इति व्यभिचार सूत्रम्॥

स्थः [1] गतिनिवृत्तौ इति अत्र परस्मैपद-उपग्रहः = स्था धातु से गमन निवृत्ति(= ठहरना) अर्थ में परस्मैपदका लगाना होता है।

सम्--अव—प्र—विभ्यः [5] स्थः [5] (आत्मने पदम्)	= (परन्तु)—सम्—अव—प्र—वि पूर्वक 'स्था' धातु से आत्मनेपद।

धातुभ्वादि प्रथमगण (यहां पर) परस्मैपदका है। इस धातुका रूप बहुधा प्रयोगोंमें प्रथमपुरुष, एकवचन, परस्मैपद, वर्तमानकालकी क्रिया का 'ति' प्रत्यय जोड़कर 'तिष्ठति' बन जाता है ॥

अष्टाध्यायी॥ १-३-२२ इति	=अष्टाध्यायी के अध्याय प्रथम, पादतीन, सूत्र बाईसवें से हो ऐसे (यह)
व्यभिचार-सूत्रम्॥।	=व्यभिचाररूप सूत्र है अर्थात् एक नियत नियम को उलटने वाला सूत्र है भावार्थ 'स्था' धातु से नियमकरि परस्मैपदका प्रयोग होता है उस नियम को इस सूत्र ने उक्त धातु के प्रथम सम्—अव—प्र—वि उपसर्ग लाकर पलट दिया और आत्मने पद का प्रयोग नियुक्त किया ॥ (इसही प्रकार)
सम्—वि—अव—प्रात् स्थः (आत्मने पदम्)	=सम—वि—अव प्र पूर्वक 'स्था' धातुके परे आत्मने पद
जैनेन्द्र व्याकरणम् १—२—२१	=जैनेन्द्र व्याकरण के प्रथम अध्याय, द्वितीय पाद, इक्कीसवाँ सूत्र से हो
इति व्यभिचार-सूत्रम्॥	=ऐसे यह (भी) नियत नियम को पलटने वाला (=व्यभिचाररूप) सूत्र है

(१) "संतिष्ठते प्रतिष्ठते, विरमत्युपरमत्युपग्रह व्यभिचारः" (राजवार्तिक पृष्ठ ६८)=उपग्रह व्यभिचारः संतिष्ठते प्रतिष्ठते विरमति उपरमति बस यही पाठ सर्वार्थसिद्धिमें हैं केवल अन्तमें 'इति' अधिक है सो पाद पूरण के लिये है इसका कोई अर्थ विशेष रूप से नहीं है इसका अर्थ (प० पन्नालाल दुनी के अनुवाद पृष्ठ २६४ में ऐसे हैं कि 'अर संतिष्ठते की स्थान में प्रतिष्ठते कहै तथा विरमति के स्थान में उपरमति कहै सो उपग्रह कहिये उपसर्ग व्यभिचार है॥ इस अनुवाद से उनका यह अभिप्राय जान पड़ता है कि उपसर्ग जो क्रिया के साथ बोलने में कोई मनुष्य जोडता है वा लगाता है वो ठीक नहीं लगाता है अशुद्ध उपसर्ग लाता है अर्थात् जहां सम् उपसर्ग लाना चाहिये वहां प्र उपसर्ग लगाता है और रम् धातु के साथ भी जहाँ वि उपसर्ग लाना चाहिये वहा उप उपसर्ग लाता है ऐसे एक उपसर्ग के स्थान में दूसरा भिन्नार्थक उपसर्ग लाने के कारण उपसर्ग व्यभिचार हुआ वा उपसर्ग सम्बन्धीय दूषण हुआ, कोई किसी प्रकार का उल्लेख उक्त अनुवादक ने परस्मैपद और आत्मनेपद के सम्बन्ध में नहीं किया। आगे पाठकगण विचारलें॥

इसी प्रकार 'संतिष्ठते अवतिष्ठते इति' (तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक पृष्ठ २७३) वाक्य का अनुवाद पं० गजाधर जी ने पृष्ठ ४८७ में यह किया है कि "संतिष्ठते की जगह पर अवतिष्ठते कहना उपग्रह व्यभिचार है॥ 'संतिष्ठेतावतिष्ठेतेत्याद्युपग्रहभेदने' तत्त्वार्थश्लोक वार्तिक २७२

एटा निवासी जगरूपसहाय वकील कृत पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित सर्वार्थसिद्धिका शब्दशः हिंदी अनुवाद अध्याय १ सूत्र १ से ८तक

शुद्धाशुद्ध विवरण (स्वाध्याय से पहिले इन अशुद्धियों को शुद्ध कर लीजिये)

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५	१	ॐ	ॐम्
११	१३	५	४
१३	९	अशुद्ध	भी शुद्ध
१८	१३	० १०८ के पश्चात्	'मुनिपरिषण्णमध्ये सन्निषण्ण'
१८	१४	निर्ग्रन्थाचार्य्य वरम् ये पाँच	ये पांच
२०	६	विशेषण	विशेष लक्षण
२५	२०	तावै	बतावै
२७	८	श्रद्धान	श्रद्धान मात्र
२७	९	अनेन ३/९।।	अनेन ३/९।।।
२७	१२	चयते अनेन ७/९।।।	चर्यते अनेन ३/९।।।
२७	१५	तत्	तत् च
२८	७	विवक्षायां	भेद विवक्षायां
२८	१४	अपि	अपि अर्थे ७/९।
२८	१५	अग्नौ ७/९।।	अग्नौ ७/९।
२९	४,८	व्यक्तिवत, वा	व्यक्तिवत्, —
३०	६	पूर्वकत्वात् ५/९।	पूर्वकत्वात् ५/९।।।
३१	८	अर्थाः ९/९।।।,अवस्थित,	अर्थाः ९/९।; अवस्थितरूप
३३	१७	पहिले	पश्चात्
३४	१४	=एकपना,	=वा एकपना
३४	१४	अर्थम् ९/९।	अर्थम् ९/९।।।
३५	१२	सम्यग्दर्शनम् ९/९।।	सम्यग्दर्शनम् ९/९।।।
३८	१३	अयं ९/९।।	अयम् ९/९।
४४	५,२०	अयं ९/९।।।,क्रिया	अयम् ९/९।,क्रिया
५१	६	नो कर्म द्रव्य जीव है	नो कर्म नो आगम द्रव्य जीव है
५२	२१	स्तिर	स्तिर,

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५४	७	के(विस्तारकाइत्यादि)	(सम्यग्दर्शनादि और सात तत्त्वों) के विस्तारों का,
५४	२०	अपेक्षा से	अपेक्षा से श्वे० दिग० सम्प्रदायों में
५५	१०,११,	श्रु तवर्ज्य ,स्वाथ	श्रु तवर्ज्य, स्वार्थ
५७	६,१५	],इतरेषां ६/३।।।	] परिणाम के, इतरेषां ६/३।।।
६१	२, १९	औपशमिकं, उच	पशमिकं, उच्
७२	७, १७	अलेश्यानां ३/३।आहारकनके	अलेश्यानां ६/३।, आहारकों के
७७	२०	प्रभतिभिः	प्रभृतिभिः
८३	१७,१९	।, नयविपयाः १/१।	। इति *, नयविषयाः ९/३
९१	१३	आदीनि ३/३।।	आदीनि ९/३।।।
९३	५,	विशेषेण ३/१,	विशेषेण ३/९।
९३	७	मिथ्यादृष्टि जीवाः ९/९।	जीवाः ९/३। मिथ्यादृष्टय ९/३।
९३	१७,१८	(जीव) (जीव)	(मनुष्य) (मनुष्य)
९८	२१	जीवों की	मनुष्यों की
९९	६	जीव हैं	मनुष्य है
१०१	२,१३	वग्-(जीव)	वाग्-(मनुष्य)
१०२	१४	भावार्थ—नहीं होसकी	इसको मत पढो क्योंकि भ्रमरूप है
१०३	१०	अर्थात्—कालमें न रहै	इसको न पढ़िये -क्योंकि भ्रमरूपहै
१०४	१५	बावन...तेरह करोड़है	[और दूसरेसे पांचवां तक प्रत्येक
१०५	६से ८	बावन...तेरह करोड़	[मेंपल्यका असंख्यातवां भाग है
१०५	२१	बावन करोड़ हैं	पल्य का असंख्यातवां भाग है
१०६	८	बावन करोड हैं	इसको न पढिये
१०६	११,१६,	सात अरवहैं,तेरहकरोड़	प्रत्येकपल्यके असंख्यातवाँ भागहैं
१०८	६	तेरह करोड़ हैं	पल्यके असंख्या तवाँ भाग हैं
१०८	१५	बावनकरोड़,एकसौचार करोड़, बातसौ करोड़	और प्रत्येक गुणस्थान में पल्य का असंख्यातवां भाग है

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१०६	११	वावन करोड	पल्यके असंख्या तवा भाग हैं
१०४	१२	एकसौ चार करोड	पल्यके असख्यातवाँ भाग हैं
१०४	१२	सातअरब हैं	पल्यके असख्यातवां भाग हैं
११०	११	यथा संख्य वावन,करोड एकसौ चार करोड़, सात सौ करोड, तेरह करोड़	इन प्रत्येकगुणस्थानोंकी जीवों की संख्या पल्यके असख्यावाँ भाग है
११२	१६	सातअरब, तेरहकरोड	प्रत्येक में पल्यके असंख्यातवेंभाग
११३	११	वावन करोड,	पल्यके असंख्यातवां भाग
११३	११	एक सौ चार करोड़	पल्यके असख्यातवा भाग.
११४	१०	वावन करोड़	पल्यके असंख्यातवां भाग
११४	११	सातसै। करोड	पल्यके असख्यातवा भाग
१३३	२१	अपेक्षया $\frac{3}{9}$॥।	अपेक्षया $\frac{3}{9}$॥
१३७	२०	असयत	असयत करि,
१५८	११	अभावात् $\frac{6}{9}$।	अभ वात् $\frac{5}{9}$।
१५६	३	काथनम् $\frac{3}{9}$॥।	कथनम् $\frac{1}{9}$॥।
१६०	१५,१६	तिष्ठाणे,षट्चतुर्दशहीनः	तिष्ठाणे पढमो, षट् चतुर्दशहीनाः
१६२	६,१२	[कथनात् $\frac{1}{9}$॥।	] इति, कथनात् $\frac{5}{9}$॥।
१६४	२१	देवाना $\frac{6}{3}$।	देवानां $\frac{6}{3}$। विहारवत्
१७५	६	परिणतै स्तावत्	परिणतैस्तैस्तावत्
१७६	१६	मिथ्यात्वकाल $\frac{1}{9}$।	मिथ्यात्वकालः $\frac{1}{9}$। अभव्येषु $\frac{7}{3}$।
१८१	११	उत्कृष्टस्य $\frac{2}{1}$।	उत्कृष्टस्य $\frac{2}{1}$।
१८२	२१	त्रीणि, अधिक सप्तति	त्रीणि, त्र्यधिकसप्तति,
१८३	५,१६,	वेदगसम्यक्, अथम $\frac{1}{2}$।	वेदगसमक्त, अयम् $\frac{1}{3}$।
१८६	६,२०,	मिथ्यात्वं, मिथ्यात्वं,	मिथ्यात्वे, मिथ्यात्वे
१८७	१२,१४,	गुगु,सम्भवति,तद्अतः	गुण, सम्भवति इति*, अतः
१८८	५	एकजीवम् $\frac{1}{9}$।प्रति	एकजीवम् $\frac{2}{3}$। प्रति*
१८८	६	एक जीवम् $\frac{1}{9}$। प्रति	एकजीवम् $\frac{2}{3}$। प्रति*
१९१	५	तियग्गतौ $\frac{7}{9}$।	तिर्यग्गतौ $\frac{7}{1}$॥
१९४	१४,१५,	देवगतै $\frac{7}{9}$,सर्वाः $\frac{1}{3}$॥।	देवगतौ $\frac{7}{1}$॥ (सर्वाः $\frac{1}{3}$।
१९६	४	परिणामानि $\frac{1}{3}$॥।सः	परिणामानि $\frac{1}{3}$॥।
१९७	१४	पयक्खे $\frac{1}{9}$ एकाद्रे $\frac{1}{9}$	पयक्खे $\frac{2}{1}$। एकाद्रे $\frac{1}{2}$।
२०१	५	पल्योपमपृथक्त्वम्	पल्योपमशतपृथक्त्वम्
२०१	२०	पल्य + उपम पृथक्त्वम्	पल्य + उपमशतपृथक्त्वम्
२०१	२०	पल्य के वरावर है	सौ पल्य के वरावर है
२०३,	७,२२,	वेदोत्पद, वाद	वेदोत्पाद, पीछे
२०६	१६	मातिज्ञानी	मतिअज्ञानी
२११	१६	से, कुज	स, कुछ
२१२	१६	अपेक्षया $\frac{1}{3}$॥	अपेक्षया $\frac{3}{1}$॥
२१६	२	नोजीवापेक्षया	नानाजीवापेक्षया
२२०	३	असंख्येयाः संख्येया	असंख्येयासंख्येया
२२१	४	शेषाणां $\frac{6}{9}$।	शेषाणा $\frac{6}{3}$।
२२२	६	समयाः $\frac{1}{3}$।	समयः $\frac{3}{1}$।
२२३	१०,१६	अपेक्षया $\frac{3}{9}$॥। जाती हैं	अपेक्षया $\frac{3}{1}$॥जातीहैंकिसीलिंगकीहो
२२३	१७	विसति ब्राह्मणा $\frac{1}{3}$।	विसर्तिब्राह्मणाः $\frac{3}{1}$।
२२४	६,१५,	पल्योपमका.अन्ताना $\frac{6}{9}$।	पल्यो पम, अन्तानां $\frac{6}{3}$।
२२४	१६,	अपक्षया $\frac{3}{9}$।	अपेक्षया $\frac{3}{1}$॥
२२५	१७	असंयतसम्यद्दृष्टयो $\frac{6}{2}$॥	असंयत सम्यग्दृष्ट्योः $\frac{6}{2}$।
२२६	१७,२०,	तिर × चां, अन्तो	तिरश्चाँ, अतो
२२७	११,१२	प्रायुक्तः $\frac{1}{9}$, (=व)	आयुष्कः $\frac{1}{9}$, (=च)
२२६	२,१०	मानुषाणां, मिथ्यादृष्टेः $\frac{6}{3}$।	मनुष्याणा, मिथ्या दृष्टेः $\frac{6}{3}$।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२३०	६	त्रीणि ३/१॥, पल्योपमानि ३/१॥	त्रीणि ३/१॥, पल्योपमानि ३/१॥
२३०	९	कोटि	कोटी
२३१	१६	मिथ्यादृष्टयोः ३/२। नानाजीव	मिथ्यादृष्टयोः ६/३ । नानाजीव·अपेक्षया ३/१॥ सामान्य वत् *
२३१	१७	अपेक्षया ३/१॥सामान्यवत् *	
२३४	१४	सागरोपमसहस्र,	सागरोपमसहस्र ३/१॥
२३४	१५	पूर्वकोटि	पूर्वकोटी
२३६	९,१५	नहीं, कायिकाना ६/३	ही, कायिकानां ६/३
२३८	२	मानसयागिना,	मानसयोगिनो,
२३८	१४	नानाजीव ३/१॥	नानाजीव—
२५०	९	नानाजीव ३/१॥	नानाजीव
२५१	७	जघन्यम् १/१॥।	जघन्यम् १/१॥।च
२६४	२१	जघन्यम् १/१॥।	जघन्यम् १/१॥।च *
२७५	१६	४१३४५२६३०३०८०	४१३४५२६३०३०८२०
२७६	२३	भावाका, दिया जाता है	भावका, किया जाता है
२७८	२,	केवलिना, आदइओ	केवलिनां, ओदइओ
२८०	१९,२०	गुणस्थान,मोहनीयकर्म	गुणस्थान में, मोहनीय कर्मका
२८३	११,१३	औदयिक-भावः १/१, वत	औदयिकः १/१ भावः १/१, वत्
२९२	२३	द्रष्टव्यम् १/१॥।	अयम् १/१॥।अनुवादस्य ६/१ द्रष्टव्यम् १/१॥।
२९५	१४,२०	॥ चार, मिस्साविर ।	॥, मिस्साविरदा
२९६	१९	असंख्यातगुणे	संख्यातगुणे
२९९	२०	संख्यातगुणे	असंख्यातगुणे
२९९	९, १०	,, नवर्ता	गुणस्थानवर्ती, से प्रमत्तसयमी
३०८	८,९,२०	। अयोग,केवलिनः,हैंकहते	।, योगके वलिनः, कहते है
३१५	१७	वत्, क्षयक, उपशम	बत्, क्षपक, उपशम,

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३१५	१८	क्षयक	क्षपक
३१५	२०	अमत, सयप्रेमियो,	अप्रमत्त, संयमियों,
३१६	४	औपदायिक सम्यग्दृष्टिनाँ	औपशमिक सम्यग्दृष्टीनां
३१६	१३	सम्पादृष्टयः	सम्यग्दृष्टय
३२२	४,११	श्रत, जानता (है=मनुते)	श्रुत, जानता है(=मनुते)
३२३	२,५	श्रुयते, श्रुयते	श्रूयते, श्रूयते
३३०	८	अथ (=अथ)	अत्र (=अथ)
३३१	११	फलम् ३/१॥ इष्ट ३/१॥	फलम् ३/१॥ इष्ट ३/१॥
३३१	११	प्रमाणकाफलहै	(प्रमाणका) फल इष्ट है
३३२	७,	वस्तुकाज्ञान	वस्तुक, ज्ञान (=अधिगम),
३३७	२,४	उपमानार्थापत्या, अर्थापति	उपमानार्थापत्त्या, अर्थापत्ति
३३७	६,१२	अन्तरभावात् ५/१,प्रत्यक्षम् ३/१॥	अन्तर्भावात् ५/१। प्रत्यक्षम् ३/१॥
३३८	१८	द्वयोः ६/२॥	द्वयोः ६/२॥
३४१	६,२०	प्रत्यत्तम् ३/१॥, उत्पन्न ही	प्रत्यक्षम् ३/१॥, उत्पन्न हो
३४२	११,१४	प ६/१, प्राप्नोत्ति T	पथः ६/१ प्राप्नोति T
३४३	५	पूर्वकपेवज्ञानं कल्पते,	पूर्वक मेवज्ञानं कल्प्यते
३४३	८	उदयात	उदयात्
३४५	११,२३	दिव्यम १/१॥, स्यात?	दिव्यम् १/१॥ स्यात् ?
३५३	४,१८	भावार्थ, सहति	भावार्थ, स्मृति
३५८	१६,२०	तत, स्पर्शन—आदि ३/१॥	तत्–स्पर्शन-,आदि ३/१॥
३५९	६,२१	(=अत्), तथा,	(=अन्) न तथा
३५९	२१	लिङ्गम् ३/१, तैसे,	लिंगम् ३/१॥ अपि*सन् ३/१॥, नहींहैतैसे
३६०	६,१७	न*, नहीं है, अतिषेध ३/१।	(न), (नहीं है) प्रतिषेधः ३/१। वाइति
३६०	११	अन्तः करणम् ३/१॥	(अन्तकरणम् ३/१॥)
३६०	११	वा अंतःकरण वा मन,	(वा अन्तः करण वा मन)
३६१	५,१४,२०	अर्थम, तद, तो	अर्थम्, तद्, जो
३६२	१६	आपाय,	अपाय

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३६४	२,१५	अवगृहीते, ग्रामाण्य	अवगृहगृहीते, प्रामाण्य
३६५	१६	वचनम् ३/१॥	वचनम् २॥ तु*
३६८	२,३	विक्षपादि, सैवेय,	विक्षेपादि, सैवेयं
३७८	२,	(जो छूट गई है,वहएसे है)	अवग्रहादयः क्रिया विशेषाः प्रकृताः तदपेक्षोऽयं कर्म निर्देशः। ग्रहादीनां सेतराणामिति।
३८०	४,१४	बहुनाम, ग्रहेण	बहूनाम्, ग्रहणेन
३८१	३,१४	ध्रवस्य, इहा	ध्रुवस्य, ईहा
३८२	१०	आदौ ६/१।	आदौ ७/१।
३८६	१३-१५	सत्यम् ३/१। विशिष्टस्य यहां॥	सत्यम् ३/१, विशिष्टस्य ॥ यहां
३९१	१५,१८,१६	विशेयः, त्रिशत्रिशत	विशेषः,त्रिशत्त्रिशत, त्रिशत्त्रिशत
३९२	२०	ईहा-आदय ३/१, इहा,	ईहा-आदयः ३/१, ईहा
३९४	१०,१३,१७	ईहा, नम्न, व्यंजन,	ईहारूप, निम्न, व्यञ्जनका
३९६	४,१६,	कथमप्य, त्व + पन	कथमध्य, त्व = पन,
३९६	१६	(स्त्रीलिंग) + क्रिया,	(स्त्रीलिंग) = क्रिया,
३९७	१३,१६,	'पश्य' जनोती	'पश्य' जनोर्जा
३९८	२,३,	बसेयम्,वजयित्वा,निादष्ट	वसेयम्, वर्जयित्वा, निर्दिष्ट,
३९८	८,१६	मनावत्, वक्तव्यः ३/१।	मनोवत्, वक्तव्यः ३/१।
३९८	१६	श्रतज्ञान	श्रुतज्ञान
३९८	१७,१८,	वार्य, व्याधि, वृष्टि,	वयि, व्याधि, वष्टि,
३९८	१८	विरति	विचति
३९८	२१	गृह् + ना यात, गृहणायात्,	गृह + नी = यात्, गृहणीयात्
३९९	५,६,१०	श्रतम्, श्रतज्ञान,अंगवाह्य	श्रुतम्, श्रुतज्ञान, वे अङ्गबाह्य,
३९९	१४,२१,	रूडि, कार्यं,	रूढ़ि, कार्य
३९९	२३	त्याख्यान, दशव,	प्रत्याख्यान दशवै
४००	२,४	कस्मि ५, तात्ति.	कस्मिन् श्चि, तीति,

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४००	७	कुश-लवन, द्राम,काश	कुशल-वन, द्राम, कांश
४०१	६,८	मतिपूर्वम्, आत्मकम् ३/१॥	मतिः ३/१॥ पूर्वम्, आत्मकम् ३/१॥
४०२	२०	अप्रामाण्यम ३/१॥	रूपकृतत्वात् ५/१॥,अप्रामाण्यम् १/१॥
४०३	३,१२	मति, अपेक्षया ३/१॥	मिति, स्वपेक्षया ३/१॥
४०३	१७,२२	करतेवाला, अर्णणति	करनेवाला, अर्पणात्
४०४	४,८	श्रतमिष्यते,सम्यक्त्वस्य	श्रुतमिष्यते, सम्यक्त्वस्य ६/१॥
४०५	११	सम्बन्ध अन्तरम्	सम्बन्धि-अन्तरम्
४०५	६	पुदगल्प,	पुद्गल
४०५	७	वाक्यादि* भावात् ५/१।	वाक्यादि-भावात् ५/१।
४०५	११	अन्यसंयोग	अन्यसंयोग,
४०८	२,२,४	समम्नाय, त्र,प्लत,	समाम्नाय, सूत्र, प्लुत,
४०९	७,८,१३,	अदि,पयोयवरण,आभृत,	यदि, पर्यायावरण, प्राभृत,
४११	१२,१६	त्रिसंतोगी, पद्ध	त्रिसंयोगी, एक
४१४	२५,२६	पकहो, २^६४	एकट्ठी २^६४
४१६	८,१०	दन्डन शालभ्यां, संख्या	दण्डेन शालिभ्योगाम, संख्यया
४१६	१८	प्रमाण पद्काकोर्पे हैं,	कीपे हैं,
४१६	१६	और में, अक्षरों,	ओर प्रमाणपद में, अक्षरों का,
४१७	८	२०६४३६१८५७,	२०६८४३६१८५७
४१७	१२	१२६६३६४२३६१४६	१३६६३६२३६१४६
४१८	६,१७	पुद्गल,ज्ञातृधर्मकथा ३/१॥	पुद्गल, ज्ञातृधर्म कथा ३/१॥
४२०	१३,१६	(क) चन्द्र प्रज्ञप्ति, ज्म्बूद्वीप	(क) चन्द्रप्रज्ञप्ति, जम्बूद्वीप
४२१	४	पृष्ठ ४२१,४२२	पृष्ठ ४२१, ४२२, ४२३,
४२६		चुलिका (३)	चूलिका (उ)
४२७	६	= श्रेष्ठ	श्रेष्ठ,
४२८	३	च*आरातीयः ३/१। इति* =	(इतनेको) चौथी पंक्तिके बाईमें लिखो,
४२८	७	विशेपेण ३/१।	विशेषण ३/१।

एटानिवासी जगरूपसहाय वकीलकृत पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित सर्वार्थसिद्धिका शब्दशः हिंदी अनुवाद । अध्याय १

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४३०	२०, २१	धातु मेंर,अन्त	धातुमें, अन्तर
४३२	२,४	निमित्तत्वं, निमितत्वम्	निमित्तत्व न, निमित्तत्वम् न
४३५	८,१५	निरक गति, कराड़	नरकगति, करोड
४३८	१३,१८	ज्ञानम् , शेषाणाम्	ज्ञानं, शेषाणां
४३६	१३,१८	तिर्यञ्च, त, सैना,	तिर्यञ्चः, न, सैनी,
४४२	३,१६	असख्येय,असख्येयभणात्	आसख्येय, , असख्येयभागात्
४५०	६,११	अनुजकाय, हातसता	अनुजुकाय, होतसता,
४५१	३,७	लब्ध वृत्ति, उक्तभेद	लब्धवृत्ति, उक्त ३/१। भेद
४५३	१२,१८	शरीर वा, शक्तिअपेक्षा	शरीरका मनका सम्बन्ध
४५४	८,१५	आदिभिः, ३/१। आदिभिः ३/१।	आदिभि ३/१। , आदिभिः ३/१।
४५५	४,७	मानपात्तर, विशुद्ध,	मानपोत्तर, विशुद्धय,
४५८	५,	विशुद्ध्या ३/१॥, तावत	विशुद्धया ३/१।, तावत्
४५६	३,८	स्वामिना, विषयत्वान	स्वामिनां, विषयत्वात्
४५६	१०	प्रसग, अर्थात	प्रसग, अर्थात्
४५६	१३,	अप्रतिपातेन ३/१, स्वामिनाम	अप्रतिपातेन ३/१। स्वामिनाम्
४६१	६,२२	भावान् , विशुद्ध हैः ॥	भावान् , विशुद्ध है,
४६२	२,४	विशेपो, विपयत्वात,	विपयो, विपयत्वात ,
४६४	४,६,२२	अन्यतम् , केषुचित,लचा	अन्यतम, केषुचित् चला,
४६५	१३,	स्वामी विशेप, सयम ग्रहण	स्वामी-विशेप, सयम-ग्रहण,
४६५	१४,	"प्रकृष्ट चारित्र गुणोपेतेपु'	"प्रकृष्टचारित्रगुणोपेतेपु 'वाक्य
४६७	३,१४	निवन्धो,भाल,]	निर्वन्धो, भलि,
४६७	२०	यशानस्+इ, यशासि	यशानस्+इ, यशांसि,

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४६६	२०,२१	श्रुत (नो इन्द्रिय), आवाय	(श्रुत) नो इन्द्रिय, अवाय
४७०	४,१३	ततस, नहीं है	ततस् , ही है
४७०	१७	श्रुनमति पूर्वं द्वयनेकद्वादशभेद	श्रुतं मतिपूर्वं द्वयनेक द्वादशभेदम्
४७१	४,१७	अवध. "रूपिष्ववधे":	अवधेः 'रूपिष्ववधे.'
४७३	६, ०	विपुल, विभक्त्यर्थ	विपुल, विभक्त्यर्थ,
४७४	१६	(अन्यअर्थ)	(अन्यअर्थ)
४७५	४,५	सव, ननतजन्त,	सव, अनन्तानन्त,
४७५	१०,१३	ट्टियाहु, ट्टिया	ठ्ठिया हु, ठ्ठिया
४७५	१७,१८	(परन्तु, खण्डात्मक	(परन्तु), खण्डात्मकत्व
४७६	६,१४	भी, केवल ज्ञान, क	(भी) , (केवल ज्ञान) , के
४७८	६,	(अथवा,	(अथवा यदि सूत्र में 'एक' शब्द को असंख्या असहाय प्रधानअर्थों में न लें तो
४७६	६,७,,४	यहीं,अनेकार्थ ये हैं, अर्थमें	यही।अनेकार्थ नीचे लिखतेहैं,अर्थोंमे,
४८०	१३,१४,	यहां पर. अर्थ में है	यहां पर, अर्थ में भी हो सक्ता है
४८१,		१७,२१,१८५,१८१, वह	१८५, १८६, यह
३८३	३, १७,	ज्ञानव्यपदेशम् १ ॥ ,य	१ज्ञानव्यपदेशम् ३/१॥, यह
४८४	१३,१६	च शद, अव्य, अव्य के	च शब्द, अव्यय, अव्ययके
४८६	६,	सवध में, कथन है	सबन्ध से, कथन है
४८८	१८	ावपर्ययकी, लीग है,	विपर्यय की, ली गई है
४८६	७,११	क ी, अध्यवसति	कभी, अध्यवस्यति
४८६	१३,१५	जनना एसा, स, उसक	जननी. ऐसा, से, उसके

(च)

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४६०	१७, १८	(तोर) पुल्लिंगी,	(और) पुल्लिंगी,
४६१	१२, १३	कार्यस्य ?॥ आरम्भका ?।०	कार्यस्य ?॥ आरम्भका ?।'
४६३	३, ८	ढैवम्भूतां, (मम)नया)	ढैरम्भूता, (मत) नया
४६३	१५, २२	एव भूतानया, परिज्ञेर्या,	एवभूता नया, परिज्ञेर्या,
४६४		असमानजातीय सद्भूत,	असमानजातीय असद्भूत,
४६४		समीभरूढ	समभिरूढ
४६५	१०, १६	पारभाषा, आधेकभाव	परिभाषा, आधेयभाव,
४६६	८, १०	स्वतुका, बहप्रदेशी.	वस्तुका, बहुप्रदेशी.
४६६	४, ४	होचुकनक, भावा,	होचुकनेके, भावी,
४६६	१६, २०	पयाय, अतात, पयायका,	पयाय, अतीत, पर्यायका,
५००	१५, २१	वाणी, परमैश्वर्यका,	वाण, परमैश्वर्यका
५०१	५,८,६	न (र्यो), पदा, यथर्थ	इन (नयों), पदार्थ, यथार्थ
५०३	१०, १७	अर्थते, पार,	अर्यते, परि
५०४	६, ७	अर्थनत, द्रव्यर्थिक,	अर्थनम् द्रव्यार्थिक
५०५	१०	कुशलो	कुशलो,
५०६	६, १८	आराब्धम्, भविष्यत	आरब्धम्, भविष्यत्,
५०७	८, २१	भूतनेगम, भूतर्ऋदन्त,	भूतनैगमनय, भूतऋदन्त,
५१०	२०	=आनुपूर्व्येण) देखो	=आनुपूर्व्येण (देखो
५१२	२१	नाम स्थापना	नाम, स्थापना
५१३	३, १३	रिंनष्टान् ऋजुसूत्र	र्निनष्टान्, ऋजुसूत्र
५१४	३,	सव्यवहार· सर्वनयसमूह साध्य, चेत,	सव्यवहार, चेत्
५१६	२, १०	आर, कथचित समानधार,	और कथंचित्, समाधान,
५१७	३, १७	ऋतु, लिग व्यभिचार	ऋतु, लिंग व्यभिचार
५१८	१२, २२	कल्पोरभेद, कर्तृ-कर्मणो	कर्तृयोरभेद, कर्तृ-कर्मणो
५१६	१८, १६	वन. प्रथम जमती है	वन प्रथम, जमती है।
५२३	१२	धातुओंका ऐसा रूप बना	धातुओंके, ऐसे रूप बने
५२४	१८	मत्य-उपपद ?॥	मत्योपपदे ?।
५२५	६,१३,१७	व्यापक, मानदे,मोदम,प्रहास	व्यापक, मानदे मोदये, प्रहासे
५२५	१७	मन्यवाचयुत्तमन्यतरस्मदेकवत	मन्यवाचि युत्तमस्तदेतरस्मदेकवत
५३१	१४, २१	कहा, आत-परिचय	कहीं आत्-परिचय.
५३२	५,१७,१८	अभन उपरमनि,	अयेन, उपरमयनि,
५३४	६,१६,२१	तो = यथार्थ, लाक, लाक	तो यथार्थ, लोक, लोक
५३५	३, ४	अनुवादि, व्यवहारनय,	अनुवादिन, व्यवहारनय,
५३६	५, ६	(पृ०) ३, ६, ठ	(पृ०), ३२६, हुआ
५३७	७	शब्दक, अनक, अर्थोमेंस	शब्दके अनेक अर्थोंमेंसे
५३७	१०, १४	पशुक, चलत, गतार्थत्वात्	पशुके, चलते, गतार्थत्वात्
५३६	३, १६	नृत्यभावात्, यत्	नृत्यभावात्, पिन्
५४२	२, ८	परगतिदृणो, परिग मे ।	परगतिऋण, परिगमें
५४३	८,१७,२०	पहिले, रूप, परिणाम्या	पहिल पृष्ठ५३६में। रूप,परिणामत्वात्
५४४	६, १०	धारणा, चलित	स्थापना, चलितके
५४६	१६, १७	ग्रामे, गति, इत्यर्थ	(गत्वा) ग्रामे, रौति, इत्यर्थ ।
५४८	२०, २१	तन्त, देवागम १०८)	तन्तु, (देवागम १०८)
५४६	२२	अत द्वितीया नृत्ति में अशुद्ध लग गया है	लिखित प्रतिमे मिला, पुनः दोनों पाठ लिये गये है
५५०	३, १८	कार्य, अपि	कार्ये, नयेषु ? अपि
५५१	१०,१३,१५	सकते ह दार्ष्टांत, अत	सकते है, दार्ष्टान्त, अत
५५१	१८,१६,२१	पर्यायगिक, अतीत, भृजु	पर्यायार्थिक, अतीत, ऋजु

विरमत्युपरमतीति ॥

'स्था धातु के ग्यारह अर्थों में से यहां हम 'तिष्ठति' के अर्थ वह ठहरता है वा वह रहता है केवल दो लेते हैं। सम् और प्र उपसर्गोंके बलसे उस 'तिष्ठति' परस्मैपदका (अष्टाध्यायी १-३-२२ वां सूत्र से) आत्मने पद होकर सम्—तिष्ठते और प्र—तिष्ठते, सन्तिष्ठते और प्रतिष्ठते दोनों रूप क्रम से बन गये। ऐसे सम् और प्र दो उपसर्गों द्वारा परस्मैपद 'स्था' धातु का आत्मने पदी होकर उक्त धातु व्यभिचरित (= नियत नियमसे भ्रष्ट) हो गया। अतः इस को उपसर्ग व्यभिचार कहते हैं। ऐसे ही

विरमति T उपरमति T इति * = वह ठहरता है (वा विश्राम करता है) ॥ वह (इंद्रियों के विषयों से) हटाता है अर्थात् रम् प्रथम गण का आत्मने पदी धातु है उसमें अ विकरण और ते आत्मनेपदी वर्तमान काल का प्रत्यय लगाने से रमते (= वह रमता है) बनता है परन्तु वि और उप लगाने से परस्मैपद हो जाता है।

संतिष्ठेत अवतिष्ठेत इत्यादि = संतिष्ठेत (= वचन के अनुसार चले) अवतिष्ठेत (= वह दृढ़ रहे) इत्यादिक

उपग्रह भेदाः ॥ = उपग्रह (व्यभिचार) के भेद हैं। अतः एक उपसर्ग के स्थान में दूसरा भिन्नार्थक उपसर्ग लाना भी उपसर्ग व्यभिचार है ऐसे दो अर्थ उपग्रह व्यभिचार के हुए।

(१) विरमति उपरमति के अनुवाद के सम्बन्ध में और अन्य अन्य बातो के सम्बन्ध में भी हमारी वही समालोचना है जिसको कि हमने संतिष्ठते प्रतिष्ठते के सम्बन्ध में पृष्ठ ५२६, ५३० में दी है ॥ विरमति उपरमति वाक्य श्लोक वार्तिक में हमको कहा पर नहीं मिले अतः "श्लोक वार्तिक कार भी 'प्रतिष्ठते स्थान पर 'अवतिष्ठते कहना और विरमति जगह पर उपरमति, कहना उपग्रह व्यभिचार मानते हैं" वंस्था के राज० पृष्ठ ४८० की यह टिप्पणी ठीक नहीं है (देखो श्लोक वा० पृष्ठ २७३) जहां 'तथा संतिष्ठते अवतिष्ठते इति" यह उल्लेख है जिसका अनुवाद अनुवादक महाशय ने स्वयं पृष्ठ ४८७ पर "तथा सतिष्ठते की जगह पर अवतिष्ठते कहना उपग्रह व्यभिचार है" ऐसा किया है ॥

(२) रमुक्रीडायामित्यत्रात्मनेपदोपग्रहः ॥ व्याङ्परिभ्यो रम । उपाच्च ॥ अष्टाध्यायी प्रथमाध्याये तृतीयःपादे ८३।८४ सूत्रे इति व्याभिचारसूत्रे ॥ व्याङ्श्च रमः ।१।२।१५॥ उपात् ।१।२।१६ जैनेन्द्र व्याकरणम् इति व्यभिचारसूत्रेऽपि ॥ देवदत्तमुपरमति ॥

रमु-क्रीडायाम् इति अत्र आत्मनेपद-उपग्रहः = रम् (भ्वादि प्रथमगण के) धातु से क्रीड़ा (अर्थ) में यहां आत्मनेपद का जोड़ना होता है

वि—आङ—परिभ्यः च उपात् रमः = (परन्तु) वि—आङ्—परि और (= च) उप (उपसर्गों) के आगे रम् धातु रहने पर

एवम्प्रकारं व्यवहारनयमन्याय्यं मन्यते । अन्यार्थस्यार्थेन सम्बन्धाभावात् ।

एवम्‌प्रकारम् $\frac{3}{7}^1$	= इसप्रकार (शब्द नय वा शब्द नय का अनुयायी वा शब्द नयका मानने वाला,)
व्यवहार नयम् $\frac{2}{7}^1$ अन्यायम् $\frac{2}{7}^1$ मन्यते T	= व्यवहारनयको अन्याय वा अनुचित वा न्यायवहिर्भुत मानता है
अन्य-अर्थस्य $\frac{6}{7}^1$ अन्य-अर्थन $\frac{3}{7}^1$सम्बध-अभावात् $\frac{5}{7}^1$	= क्योंकि भिन्न पदार्थ का भिन्न पदार्थ से संयोग वा मेल नहीं हो सकता है

[यह सिद्धांत सिद्धि बात है] ॥ भावार्थ उक्त छहो व्यभिचार और इस प्रकार के और भी व्यभिचारों को व्यवहारनयतो ठीक समझता है उस नय की अपेक्षा से वैसे प्रयोग किये जा सकते हैं व्याकरण भी उन्हीं प्रयोगों के अनुसार सिद्धि करता है परंतु शब्द नय की प्रधानता से वे प्रयोग ठीक नहीं है शब्द नय उनको अन्याय वा अयुक्तरूप मानना है ॥ क्योंकि यदि अन्य पदार्थ का अन्य पदार्थ के साथ सम्बंध हो जाय तो घट का पट हो जाय पट का गृह हो जाय वा मठ हो जाय इत्यादि ।

[परस्मैपदम्]	= परस्मैपद हो [८३, ८४ सूत्रों में ७८ वां सूत्र से परस्मैपदम् अनुवर्तता है]
अष्टाध्यायी प्रथम—अध्याये तृतीय पादे ८३।८४	= अष्टाध्यायी के पहिले अध्याय में तीसरे पाद में ८३ वां ८४ वां सूत्र है
इति व्यभिचार सूत्रे	= ऐसे दोनों सूत्र [= सूत्रे] व्यभिचार रूप हैं [= नियत नियम के विरोधक हैं]
वि-आङः च रम. । उपात् (रमः परस्मैपदम्)	= वि—आङ्—परि (= च) उप (उपसर्गों) पूर्वक रम् धातु से परस्मैपद हो
जैनेन्द्र व्याकरण प्रथमाध्याये तृतीय पादे । ९५	= जैनेन्द्रव्याकरण के पहिले अध्यायके तीसरे पाद में ९५ वां
९६ । इति व्यभिचार सूत्रेऽपि	= ९६ वां (सूत्र) हैं । ऐसे दोनों सूत्र भी (= सूत्रेऽपि) व्यभिचार रूप हैं ॥
देवदत्तम् उपरमति	= देवदत्त को हटाता है अर्थात् देवदत्त को (विषयों से वा किसी ऐसी ही वस्तु से) रोकता है ॥ यहां परस्मैपद क्रिया हेतु अर्थ में है । उपरमति के सदृश अर्थ देती है। यह एक प्रकार का क्रिया का उदाहरण है जिसमें हेतुद्योतक प्रत्ययणिच् (इ का प्रभाव सम्मिलित हो ॥

(१) इस "एवम्प्रकारं व्यवहारनयम् अन्याय्यं मन्यते" वाक्य का अर्थ स्पष्ट है परन्तु हमको यह टिप्पणी इस लिये लिखनी पड़ती है कि सर्वार्थसिद्धि के द्वितीय संस्करण के एवम्प्रकारं व्यवहारनयं न्यायं मन्यते' पाठ पर समालोचना करें, यद्यपि प्रथमावृत्ति में 'एवम्प्रकारं व्यवहार नयमन्याय्यं मन्यते' ऐसा पाठ वर्तमान है ॥ प० जयचन्दजी ने पृष्ठ २०५ में इस वाक्य की यह वचनिका की है कि "या प्रकार व्यवहार नय है ताहि अन्याय माने हैं" = या प्रकार व्यवहारनय है (तिस (व्यवहारनय) को = ताहि) अन्याय माने है (प्रश्न) कौन अन्याय माने है ? (उत्तर) शब्दनय वा शब्दनय का अनुयायी प्राणी ।

अतः समान लिंग समान वचन समान साधनादि शब्दों का ही आपस में संबंध होता है। इस बातका ज्ञापक शब्दनय है

इस संबंधमे पं० जयचंद जी की वचनिका मुद्रित पृष्ठ २०५, हस्तलिखित पृष्ठ ८५ का पूर्ण लेख शब्दशः ऐसे हैं "बहुरि कारकव्यभिचार 'सेनापर्वतमधिवसति' इहां सैना पर्वतके समीप वसै है ऐसा आधार है, सो सप्तमी विभक्ति चाहिये, तहां द्वितीया कही। तातैं कारकव्यभिचार भया। या प्रकार व्यवहारनय है ताहि अन्याय माने है। जातैं अन्य अर्थ का अन्य अर्थकरि संबंध होय नाहीं। जो अन्य अर्थका अन्यतै संबंध होय, तौ घटका पट होय जाय पटका महल होय जाय। तातैं जैसा लिंग आदि होय तैसाही न्याय है। इहां कोई कहै। लोक विषै तथा शास्त्र विषैं विरोध आवैगा। ताकूं कहिये, विरोध आवै तौ आवौ, इहां तो यथार्थस्वरूप विचारिये है। औषधी रोगीके इच्छा के अनुसार तौ है नां ही॥

ऊपर के लेख मे वाह्यरूपसे 'ताहि' शब्द कारकव्यभिचार की ओर संकेत करने वाला मानकर कह सक्ते हैं कि ताहि अर्थात् तिस कारक व्यभिचार को तब अर्थ हुआ कि या प्रकार व्यवहारनय है तिस (कारकव्यभिचार) को अन्याय मानै है" इस अर्थके समर्थनमें हमारे एक मित्र अर्थप्रकाशिका पृष्ठ ८५ के इस वाक्य को कि "ऐसेही उपसर्ग व्यभिचारकूं व्यवहारनय अन्याय माने हैं" हमारे समक्ष रखते हैं; और कहते हैं कि पं० जयचंदजीने कारकव्यभिचार अंतमें कहा है और पं० सदासुखजीने 'उपसर्गव्यभिचारका वर्णन अंतमें किया है इसलिये पं० जयचंद जी ने ताहि (=तिसको) का अर्थ कारकव्यभिचार लिया है और अर्थप्रकाशिका में उपसर्गव्यभिचार लिया है इससे कोई अंतर नहीं पड़ता है॥ और यह भी कहते हैं कि भाव भी ठीक है इस हेतु से कि 'कारक व्यभिचार को और उपसर्ग व्यभिचार को' अर्थात् "सेना पर्वतमधिवसति' 'सन्तिष्टते प्रतिष्टते' विरमति उपरमति इन वाक्यो को दोषरूप कहना, व्यभिचार इनका नाम रखना व्यवहारनयके अनुकूल वा अपेक्षासे अन्याय है अयुक्त है और ऐसे प्रयोग व्यवहार मे तो आते ही हैं॥

(उत्तर) अर्थप्रकाशिकाके पृष्ठ ८५ में न्याय शब्दके स्थानमें अन्याय शब्द अशुद्ध मुद्रित होगया है। सदासुखजी का शुद्ध पाठ ऐसे है कि "बहुरि आत्मने पदीकूं परस्मेपद भया ऐसेही उपसर्गव्यभिचारकूं व्यवहार नय न्याय माने है तथापि शब्दनयका यही विषय है।" इसका तात्पर्य यह है कि आत्मने पद धातु में उपसर्ग लग जाने से प्रयोगमें परस्मैपद धातु होजाती है और परस्मैपद धातुमे उपसर्ग लग जाने से आत्मने पदी (धातु) हो जाती है इसको व्याकरण, लोक प्रयोग, व्यवहारनय न्याय मानते हैं तौ भी शब्दनयका यही विषय है कि इन सब प्रयोगोको जो व्यवहार मे प्रचलित हैं व्यभिचरित वा दूषित माने॥ अतः आपका कथन ठीक नहीं है॥ उपर्युक्त कारकव्यभिचार और उपसर्गव्यभिचार व्यवहारनय की अपेक्षासे अयुक्त है अन्याय रूप है, आपकी यह धारणा ठीक नहीं है वरन ये व्यभिचार व्याकरणके अनुकूल और व्यवहार नयके अनुकूल हैं इनसे व्यवहार चलता है परन्तु शब्दनय इनको दूषित मानती है॥"

लोकसमयविरोध इति चेत। विरुध्यताम्। तत्वमिह मीमांस्यते न भैषज्यमातुरेच्छानुवर्ति।

लोक-समय-विरोधः ;।। इति* चेत्*	=जगत् वा संसार और शास्त्रमें यदि (=चेत) ऐसा है तौ विरोध आवैगा ? अर्थात् जो प्रयोग व्यवहारनय और व्याकरणके अनुकूल हैं परंतु शब्दनयसे वे दूषित हैं उनको यदि दोषरूप मानोगे तो ऐसा मानना संसार और शास्त्रके विरुद्ध होगा। उत्तरमें कहतेहैं किः—
विरुध्यताम्T तत्वम् ;।।। इह* मीमांस्यतेT	=विरोध किया जाउ। इहां तौ=यथार्थस्वरूप (तत्त्वम्) विचारा गयाहै परीक्षा किया गयाहै
न* भैषज्यम् ;।।। आतुर-इच्छा-अनुवर्ति ;।।।	=क्योंकि औषधि रोगी की इच्छा के अनुसार नहीं होती है

कई कोशोमे हमको 'प्रकार' 'व्यवहारनय' 'न्याय' (नकि न्याय्य जो त्रिलिंगी है) पुल्लिंग ही मिले बहुत सी टटोल की परतु नपुंसक लिंगी नहीं मिले (देखो—प्रकारः अमर कोष वर्ग २३ श्लोक १६२: आप्ते आङ्गल संस्कृत कोष पृष्ठ २२८, पद्मचन्द्र कोष पृष्ठ २४८, वैद्यसंस्कृताङ्गल कोष ४५६; नीति=(नाय) नयः अमरकोष वर्ग २२ श्लोक ९, इसी सूत्रमे सात आठ स्थानो पर नय शब्द आया, पद्म० पृष्ठ २०८: वैद्य० पृष्ठ ३७०) उक्त वाक्यमें 'प्रकारम' व्यवहारनयम (=व्यवहारनयको) दोनो शब्द द्वितीया विभक्ति वा कर्मकारकमें है ॥ मन् दिवादि चतुर्थ गणका धातु आत्मने पदी है य् इस गणका विकरण है 'ते' अन्य पुरुष एक वचन आत्मने पदी वर्तमान क्रियाका द्योतक प्रत्यय है अत मन्यते बना अर्थ मानता है यहां पर कर्तरि प्रयोग है। बस यही तीन विशेष शब्द हैं जिससे वाक्यका अर्थ निकलता है अत शब्दशः अर्थ हुआ कि "इस प्रकार (वह) व्यवहारनयको अन्याय मानती है ॥ प्रथम इसके कि हम द्वितीय आवृत्ति के पाठ पर कुछ समालोचना करें इस वातको दिखाना चाहते हैं कि सर्वार्थसिद्धि वृत्तिके नीचेके चार वाक्योके अर्थका कैसा घनिष्ट सवन्ध वा प्रसंग मिलता है "इस प्रकार (शब्दनय) व्यवहारनयको अन्याय मानता है" इसके लगता ही वाक्यमें इस प्रथम वाक्यका हेतु दिया है कि अन्य पदार्थका अन्य पदार्थकरि सवन्ध नहीं होसका है ॥ तीसरे वाक्य मे इस हेतु पर प्रश्न करदिया कि यदि शब्दनय व्यवहारनयको अन्याय मानैगो तौ लोक (व्यवहार)के विरोध और शास्त्र (=समय अर्थात् व्याकरण) के विरोध होगा क्योकि उक्तलिंग, सख्या, साधन, कारक, काल और उपसर्गके संवन्धमे जो उदाहरण दिये है और उनको शब्दनयकी अपेक्षासे व्यभिचार माना है वे समस्त ही लोक व्यवहारकी अपेक्षास ठीक हैं उन सबका लोकमें व्यवहार होता है प्रयोग होता है वोलचालमें आते हैं और व्याकरणके नियमोके अनुकूल है ॥ इसके उत्तरमे चौथा वाक्य दिया कि "विरुध्यताम" लोक और शास्त्रके विरुद्ध होने दो कुछ चिंता नहीं। फिर इस कहनेका भी हेतु दिया कि इस स्थानमे तत्व (पदार्थके यथार्थ स्वरूप) का निर्णय है लोक विरुद्ध और व्याकरणशास्त्र वा अन्य शास्त्रके विरुद्ध हुआ करो क्योंकि औपधि चाहै खट्टी हो-मीठी हो-कडवी हो-कषेली इत्यादि हो रोग को दूर करने वाली गुण की

दी जावैगी न कि रोगीकी इच्छाके अनुकूल इसके समर्थनमे देखो प०जयचंदजीका लेख पिछला पृष्ठ५३३, राजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ६८, सस्था द्वारा
प्रकाशित राजवार्तिक पृष्ठ ४८०,४८१, प०पन्नालालदूनी वाले अनुवादि राजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ २६४, अन यह समझमे नहीं आता कि "एवम्प्रकारं
व्यवहारनय न्याय्य मन्यते" इस वाक्यका ऐसा किस प्रकारका अनुवाद करें कि जो शब्दार्थ हो और विभक्त्यर्थ सहित हो और वृत्तिके
उपर्युक्त चार वाक्योसे सबंध भी कर जाय और साथ ही साथ द्वितीयावृत्तिके सपादक की "जलं पततीति वक्तव्ये आपः पतन्तीति
व्यवहारो जायते·· इत्यादि" टिप्पणीके भी अनुकूल होजाय यद्यपि यह टिप्पणी सर्वार्थसिद्धिके प्रथम सस्करण मे नहीं है और वृत्ति पाठमे भी
"न्याय्य" के स्थानमे प्रथम आवृत्तिमे "अन्याय्य" है ॥

उपर्युक्त वाक्यका शब्दार्थ और विभक्त्यर्थ अनुवाद यह है कि 'इस प्रकार (वह) व्यवहारनयको न्याय वा उचित मानता है" कौन और किस
प्रकार व्यवहारनयको न्याय मानता है । वैयाकरण 'सन्तिष्ठते, प्रतिष्ठते, विरमति उपरमति, ऐसे प्रयोगो को जो लोक व्यवहार मे भी आते हैं
व्याकरण और व्यवहारनयकी अपेक्षा न्याय मानता है यदि यह अर्थ लिया जावे तो सर्वार्थसिद्धि वृत्तिके नीचेके दो से पांच संख्या तकके
वाक्योका संबंध उपर्युक्त अनुवादसे मेल नहीं खाता है ॥ इस लिये हमारी समझ मे प्रथमावृत्तिका पाठ ठीक और शुद्ध है द्वितीय संस्करणमें
व्यर्थ 'अन्याय्यम्' शब्दके स्थानमे 'न्याय्यम्' कर दिया है ॥ उपर्युक्त पूर्ण टिप्पणी का अनुवाद यह है कि·—

() जल पततीति वक्तव्ये आपः पतन्तीति व्यवहारो जायते अत्राप्शब्दोत्तरं बहुत्वाभिधायक प्रत्ययोपनिबन्धनं वस्तुतो निरर्थकमेव, बहुत्वस्य
जले अन्वयायोगात् । तथापि शब्दानुशासनं शास्त्रमहिम्ना बहुत्ववाचकप्रत्ययसमभिव्याहारः कर्तव्यएवभवति,

जलम् १॥ पततिT इति७ वक्तव्ये ७॥ आप. १॥ पतन्तिT इति७	=पानी गिरता है इस प्रकार कहने पर आपः (बहुत से जल) गिरते है ऐसा
व्यवहारः १। जायतेT अत्र७ अप् शब्दोत्तरं बहुत्वाभिधायक-	=व्यवहार होता है । यहां अप् शब्द के आगे बहुतत्तावाचक
प्रत्यय-उपनिबन्धन १॥ वस्तुतः७ निरर्थकम् १॥ एव७ जले ७॥	=प्रत्यय का लगाना यथार्थतः वा यथार्थरूपसे अर्थरहित ही है क्योंकि जलविषै
बहुत्वस्य ६॥ अन्वय-अयोगात् ५। तथापि७ शब्दानुशासनं-	=बहुत्वका सबन्ध वा जोड अयुक्त है । तौ भी व्याकरण (=शब्द अनुशासन)
शास्त्रमहिम्ना ३। बहुत्ववाचक-प्रत्ययसमभिव्यवहारः १।	=शास्त्र के प्रभावसे बहुवचन वाची प्रत्ययका संबन्ध (अर्थात् प्रयोग)
कर्तव्यः १। एव७ भवति T	=करना ही होता है

नानार्थसमभिरोहणात् समभिरूढः ।

नाना-अर्थ-समभिरोहणात् ५।१।। समभिरूढः १।१	=बहुत अर्थोंमेंसे एक अर्थको प्राप्त होनेसे (=समभिरोहणात्) समभिरूढ है

(१) समभिरूढनयकी उपर्युक्त परिभाषा तथा तत्त्वार्थ राजवार्तिकमें दी हुई परिभाषा दोनोंका पाठ शब्दशः एक है ॥
सम-अभि-रोहणात्-रोहण (पु०एक पर्वत-पहाड़ (न०) चढ़ना, उगना (पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ३२९, वैद्यकोश पृष्ठ६१६)में है,यहांपर नपुंसक लिंगमें आया है ॥

(२) अर्थसमभिरोहणात्— "नानार्थसमभिरोहणात्" इस वाक्य का अनुवाद "नानाअर्थान्समतीत्यैकमर्थम् रूढः" ऐसा वाक्य है। (प्रश्न) 'समतीत्य=छोड़कार, उल्लंघकारि' ऐसा अनुवाद समभिरोहणात् वाक्यका कैसे हुआ ? (उत्तर) पाणिनीय अष्टाध्यायीके प्रथम अध्याय चतुर्थपादके इकतीसवां सूत्र "भुवः प्रभवः" =भुवः कर्तुः प्रभवः अपादानम्-अपादानकी अनुवृत्ति चोवीसवां और कर्तुः की तीसवांसूत्रसे ली है
=भू=होना, धातुके कर्ताका जो प्रभव (=उत्पत्तिस्थान) वह कारक अपादान संज्ञक हो। जैसे हिमवतः गङ्गा प्रभवति=हिमालय (पर्वत)से गंगाजी निकलती है। के नीचे निम्न उल्लेखित वार्तिक दी हुई है उसके निमित्तसे 'उल्लंघकारि' ऐसा अनुवाद हुआ ॥ "ल्यब्लोपे कर्मण्यधिकरणे च" =ल्यब्लोपे कर्मणि अधिकरणे च पञ्चमी विभक्तिर्भवति=पांचवीं विभक्ति (का प्रत्यय) कर्म (कारक) और (=च) अधिकरण कारकके सूचित करनेमें वा निर्देश करनेमें आता है जबकि ल्यपन्त (ल्यप्=य, अन्त) संबन्धक सूचक भूतकृदन्त का (देखो पृष्ठ १६) अर्थात् वह संबन्धसूचक भूतकृदन्त का जिसके अन्तमें य हो (जैसे अनुभूय) लोप किया जावे जैसे प्रासादम् आरुह्य प्रेक्षते (राजभवनको (पै) चढ़कर देखता है)=प्रासादात् प्रेक्षते=राजभवनसे देखता है ॥ अधिकरणका उदाहरण, आसने उपविश्य प्रेक्षते (आसनपर प्रवेश होकर देखता है)=आसनात् प्रेक्षते=आसनसे देखता है ॥

(प्रश्न) ऊपरके प्रथम उदाहरणमें 'प्रासादम्' कर्मकारकके सूचित करनेमें उसी शब्द प्रासाद को अपादान कारकमें लाये हैं तैसे "नानार्थान्समतीत्यैकमर्थमाभिमुख्येन रूढः समभिरूढः" विग्रह वाक्यमें समभिरोहण शब्दको कर्मकारकमें नहीं लाये इसलिये अष्टाध्यायीका वार्तिक लागू नहीं है ॥ (उत्तर) पूज्यपाद स्वामीने 'नानार्थसमभिरोहणात्'का इसके लगता ही वाक्यमें तात्पर्य दे दिया है। उपर्युक्त वार्तिकके अनुकूल विग्रह इस प्रकार हो सक्ता है 'नानार्थसमभिरोहणम् समतीत्य समभिरूढः'=नानार्थसमभिरोहणात् समभिरूढः" अर्थात् नाना अर्थकी प्राप्तिको (=समभिरोहणम्) वा ग्रहणको (=समभिरोहणम्) उल्लंघनकर (=समतीत्य) वा छोड़कर (=समतीत्य) एक ही अर्थमें रूढ हो (=समभिरूढ) एक ही अर्थमें प्रसिद्ध हो (=समभिरूढ) सो नानार्थसमभिरोहणात् समभिरूढ है ॥ इसलिये 'प्रासादम् आरुह्य प्रेक्षते=प्रासादात् प्रेक्षते' है अर्थात् प्रासादम् आरुह्यके स्थानमें 'प्रासादात्' पंचमी विभक्ति हो गई इसी प्रकार 'नानार्थसमभिरोहणम् समतीत्य समभिरूढः' वाक्यके 'नानार्थसमभिरोहणम् समतीत्य' के स्थानमें 'नानार्थसमभिरोहणात्' पंचमी विभक्ति होगई अतः उक्तवार्तिक और उसका कर्मकारक का उदाहरण सर्व प्रकारसे लागू होगया ॥

एटानिवासी जगरूपसहाय वकीलकृत पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित सर्वार्थसिद्धिका शब्दशः हिंदी अनुवाद । अध्याय १ सूत्र ३३

यतो नानार्थान्समतीत्यैकमर्थमाभिमुख्येन रूढः समभिरूढः ॥ गौरित्ययं शब्दो वागादिषु अर्थेषु वर्तमानः पशावभिरूढः । अथवा अर्थगत्यर्थः शब्दप्रयोगः । तत्रैकस्यार्थस्यैकेन गतार्थत्वात्पर्यायशब्दप्रयोगोऽनर्थकः॥ शब्द-भेदश्चेदस्ति अर्थभेदेनाप्यवश्यं भवितव्यम्

यतः* नानार्थान् २/३। सम्-अतीत्य-एकम् २/१। अर्थम् २/१।	=(अर्थात्) जहां (=यतः) अनेक अर्थों को उल्लंघन करि एक अर्थ को (अर्थ में)
अभिमुख्येन ३/१। रूढः १/१। समभिरूढः १/१।	=प्रधानता से (=अभिमुख्येन) रूढ हो - प्रसिद्ध हो सो समभिरूढ है ॥
	(इसलिये शब्दक अनेक अर्थोमेंस एकही अर्थको जो जाने वा कहे सो समभिरूढनय है)
गौः १/१। इति* अयम् १/१। शब्दः १/१। वाग्-आदिषु ७/३।	=गो ऐसा यह शब्द वचन (पृथिवी, वाणी, गमन, तारे, आकाश, हीरा, किरण) आदि
अर्थेषु ७/३। वर्तमानः १/१। पशौ ७/१। अभिरूढः १/१।	=अर्थोमे विद्यमान हे (तोभी) चोपाये (अर्थ) में अति प्रसिद्ध (=अभि-रूढ) है अर्थात् गो बैलनामा पशुके अर्थ में चलते फिरते सोवते बैठते उठते खाते पीते, अकडते, जगते इत्यादि सब अवस्थाओंमें ग्रहण किया जाता है ॥
अथवा* शब्दप्रयोगः १/१। अर्थगति-	=वा शब्दोका प्रयोग (किया जाता) है सो अर्थज्ञान (=अर्थगति)के वा अर्थप्राप्ति (=अर्थगति)के
अर्थः १/१। तत्र* एकस्य ६/१। अर्थस्य ६/१। एकेन ३/१।	=लिये (=अर्थ) है । तहां एक अर्थका एक (शब्दके प्रयोग) से
गतार्थत्वात् ५/१। पर्याय-	=अभिप्राय सिद्ध होजानेसे (=गतार्थत्वात्-गतार्थपणासे) (दूसरे) समानार्थ बोधक
शब्दप्रयोगः १/१। अनर्थकः १/१।	=शब्दका अनुष्ठान, वा काममे लाना निष्प्रयोजन है भावार्थ शब्दोका जो प्रयोग किया जाता है वह अर्थज्ञानके लिये किया जाता है यदि वह अर्थज्ञान एकही शब्दके प्रयोगसे सिद्ध हो जाय तो फिर दूसरे पर्याय शब्दका कहना व्यर्थ है
शब्दभेदः १/१। चेत्* अस्ति अर्थभेदेन ३/१। अपि*	=(प्रश्न) जो (=चेत्) शब्द भेद है तो ? (उत्तर) अर्थभेद (सहित) भी
अवश्यम् १/१। भवितव्यम् १/१।	=अवश्य होना चाहिये । उपर्युक्त प्रश्नोत्तरका तात्पर्य यह है कि यदि यह

(१) समतीत्यः-यह संबंधसूचक भूतकृदन्त है (२) अभिमुख्येन.-यह पुल्लिंग और नपुंसकलिंग दोनो मे होसकता है ॥

इति नानार्थसमभिरोहणात्समभिरूढः ॥ इन्दनादिन्द्रः शकनाच्छक्रः पूर्दारणात्पुरन्दर इत्येवं सर्वत्र ॥

कहा जाय कि एक अर्थ के प्रतिपादन करने वाले अनेक शब्द भी होते हैं इसलिये अर्थ एक ही रहता है परंतु शब्द भेद वहां रहता है उसका उत्तर यह है कि यदि शब्द भेद होगा तौ अर्थ भेद भी नियम से होगा क्योंकि जितने शब्द भेद हैं उतने ही उनके अर्थ हैं यह नियम है। उक्तंच:—"जित्तिय मित्ता सद्दा तित्तिय मित्ताणि होंति परमत्था" यावन्मात्राः शब्दाः तावन्मात्राः परमार्था भवन्ति जितने शब्द होते हैं उतने ही उनके उचित (=परम) अर्थ होते हैं ॥

इति नाना-अर्थ-समभिरोहणात् ५।१ समभिरूढः १।१ =ऐसै नाना अर्थोंमें से एक अर्थ को प्राप्त होने से (=समभिरोहणात्) समभिरूढ़ है (और अनेक अर्थोंमें से एक विशेष गृहीत अर्थ को कहने वाला अथवा जानने वाला है सो समभिरूढ़नय है ॥ जैसे

इन्दनात् ५।१॥ इन्द्रः १।१ =परम ऐश्वर्यरूप क्रिया करने (के हेतु) से इन्द्र है अर्थात् जब परमैश्वर्यरूप क्रिया करै तब इन्द्र है।

शकनात् ५।१॥ शक्रः १।१ पूर्-दारणात् ५।१॥ =समर्थरूप प्रवर्तने से शक्र है, पुर (नगरादि) के भेदन करने से

पुरन्दरः १।१ इत्येवम्* सर्वत्र* =पुरन्दर है ॥ इस प्रकार ही सब स्थानोमें (जाना जाता) है (ऐसे समभिरूढनय इन अर्थोंमेंसे एक ही अर्थ को ग्रहण करि प्रवर्तती है)

भावार्थः— यद्यपि इन्द्र शक्र पुरंदर आदि शब्द एक ही शचीपति-इन्द्र अर्थके कहने वाले हैं तथापि परमैश्वर्यका भोक्ता होनेसे इन्द्र सामर्थ्यवान् होनेसे शक्र और पुर नगरादिका विदारण करनेसे पुरंदर इस प्रकार इन भिन्न भिन्न शब्दोंके भिन्न भिन्न अर्थ हैं। इस रीतिसे पर्यायोंके अनुसार इन्द्र शब्दके अनेक अर्थ रहते भी वह रूढ इन्द्र (शचीपति) अर्थ में ही है और इस रूढ़ अर्थ को ही समभिरूढ नय विषय करता है यहां पर यह बात समझलेनी चाहिये कि चाहै इन्द्र परमैश्वर्यका भोग करै वा न करै किसी भी अवस्थामें हो तब भी वह समभिरूढ नयका विषय है।

(१) दारण शब्द वैद्यकोश पृष्ठ ३३० में नपुंसकलिंगमें दिया है इससे इन्दन, शकन भी भाव द्योतक होने से नपुंसक लिंगमें हैं।

अथवा यो यत्राभिरूढः स तत्र समेत्याभिमुख्येनारोहणात्समभिरूढः । यथा क्व भवानास्ते । आत्मनीति । कुतः । वस्त्वन्तरे वृत्यभावात् ॥ यद्यन्यस्यान्यत्र वृत्ति स्यात्, ज्ञानादीनां रूपादीनां चाकाशे वृत्तिःस्यात्॥६॥ येनात्मना भूतस्तेनैवाध्यवसाययतीति एवम्भूतः ॥

अथवा॥ यः॥ यत्र अभिरूढः॥ सः॥ तत्र अभिमुख्येन॥	=अथवा जो जहां (=यत्र) अभिरूढ है वा प्राप्त है सो तहां प्रधानतासे
आरोहणात् ॥ समेति । (सम-एति)	=प्राप्तहोकरि (=आरोहणात्) वसता है (=समेति) वर्तता है (=समेति) रहता है
समभिरूढः॥ यथा॥ क्व॥ भवान्॥ आस्ते॥ आत्मनि॥	=(तिससे) समभिरूढ है ॥ जैसे कहां आप तिष्ठते हैं ? आत्मामें (तिष्ठता हूं)
इति॥ कुतस् ?॥	=ऐसे (समभिरूढ) है । (प्रश्न) क्योंकर (आत्मामें वा निजरूपमें तिष्ठते हो)
वस्तु-अन्तरे॥ वृत्ति-अभावात् ॥	=(उत्तर) अन्य वस्तुमें प्रवृत्तिका वा स्थितिका अभावसे अर्थात् भिन्न वस्तुका भिन्न वस्तुमें ठहरना नहीं होसकता है । प्रधानतासे आत्माका रहना आत्मामें ही है दूसरे पदार्थोंमें उसका रहना नहीं हो सकता है (और)
यदि॥ अन्यस्य ॥ अन्यत्र॥ वृत्तिः॥ स्यात्T	=जो (=यदि) अन्य (पदार्थ) का अन्य स्थानविषैं स्थिति वा प्रवृत्ति वा रहना हो
ज्ञानादीनाम् ॥ रूपादीनाम् ॥ च॥	=तो ज्ञानादिकोंका (जो आत्मगुण हैं) और रूपादिकोंका (जो पुद्गलके गुण हैं)
आकाशे ॥ वृत्तिः ॥ स्यात् T	=आकाशमें प्रवृत्ति वा स्थिति वा प्रवर्तना वा रहना होजाय(सो आकाशमें है नहीं)
( ) येन ॥ आत्मना ॥ भूतः ॥	=जिस स्वरूपकरि (अर्थात् अर्थ क्रियासे कोई पदार्थ परिणत) हो
तेन ॥ एव॥ अध्यवसाययतिT	=उस ही (स्वरूप अर्थ क्रिया परिणाम) से निश्चय कराता है वा प्रतीति कराता है
इति॥ एवम्भूतः ॥	=ऐसा एवम्भूत (नय) है ॥ (एवंभूतः भी ठीक है देखो टिप्पणी पृष्ठ ५४०,५४१)

(इसी एवंभूत की परिभाषाका भाव इसके लगता ही वाक्यमें दिया है (देखो पृष्ठ ५४२)

(१) समेति=सम्+एति 'इ' अदादि दूसरेगण परस्मैपदका धातु यहां जाना अर्थमें आया है । 'ति' पत् संज्ञक प्रत्ययके (देखो पृष्ठ ५२२, ५२३) पहिले 'इ' धातुकी गुणसंज्ञा होकर 'ए' हो जाताहै । 'ए'में'ति' प्रथम पुरुष एक वचन परस्मैपद वर्तमान कालका प्रत्यय जोडनेसे एति = बन जाताहै उसमें 'सम्' उपसर्ग लगाने से (सम्+एति) समेति बन जाताहै ॥ समेति=वह साथ साथ रहताहै अर्थात् आत्मा आत्मामें रहता है वसताहै तिष्ठताहै

(२) पूज्यपाद स्वामी की इसी एवंभूतनयकी परिभाषाको शब्दशः तत्वार्थ राजवार्तिकके रचयिताने ग्रहण कीहै (देखो त०राज० मुद्रित पृष्ठ ६८)

इस बात पर हम एक पूर्ण टिप्पणी लिखते हैं कि पदान्त म्-न् और अपदान्त म् न् की अवस्था मे क्या क्या परिवर्तन होते हैं और दोनों प्रकार के अनुस्वार पदान्त और अपदान्त मे क्या क्या परिवर्तन होते हैं

(१) पदान्त म्—मोऽनुस्वारः (अष्टाध्यायी ८ । ३ । २३) इस सूत्रमें 'पदस्य' की अनुवृत्ति अष्टाध्यायी अध्याय ८ पाद १ सूत्र १६ वें (पदस्य) से है और हलि शब्दकी अनुवृत्ति 'हलि सर्वेषाम्' ८ । ३ । २२सूत्रसे लीगई है इसलिये 'मोऽनुस्वारः' (=पदस्य ; मः ; अनुस्वार ; हलि ;) का अर्थ मकारान्त पदको अनुस्वार हो यदि कोई हल् (अर्थात् व्यजन) पश्चात् मे हो तो (ऐसा होता है)॥ जैसे हरिम् वन्दे मे म् पदान्त है और व्यंजन पश्चात् मे है इसलिये हरिं वन्दे हुआ ऐसेही एवम्भूतः मे म् पदान्त है म् उसके पीछे व्यजन है अतः एवंभूतः होगया इसलिये एवम्भूत और एवंभूत दोनों रूप ठीक हैं (इस सूत्रकी विशेष व्याख्या के लिये देखो पृष्ट ५, ६)॥ 'गम्यते' (=वह गया है) यहां म् अपदान्त है इस से अनुस्वार न हुआ ॥

(२) पदान्त न्—अन्तका न् जब उसके पश्चात् च्-छ्-त्-थ्-ट्-ठ् आवे तो (यह न्) अनुस्वार और विसर्ग में पलट जाता है जैसे विडालान् ताडयति पुरुषः (=वह मनुष्य बिल्लियों को मारता है) =विडालां॰ ताडयति पुरुषः अब यह विसर्ग निम्न उल्लेखित नियमसे स् में परिवर्तित होजाता है अतः विडालांस्ताडयति पुरुषः ऐसा हुआ (नियमः—विसर्ग के पश्चात् यदि च्-छ् हो तो श् मे यदि त्-थ् हो तो स् में यदि ट्-ठ् हो तो ष् में यह विसर्ग पलट जाता है)

(३) अपदान्त म्-न्॥ "नश्चापदान्तस्य झलि" यह अष्टाध्यायी के आठवां अध्याय का तीसरे पादका चौवीसवां सूत्र है ८–३–२४। इस सूत्रसे पहिले का सूत्र 'मोऽनुस्वार" उपर्युक्त तेईसवां है इससे अनुस्वार की अनुवृत्ति चौवीसवां सूत्र मे आती है तब चौवीसवां सूत्रका रूप इस प्रकार होजाता है कि " नः च अपदान्तस्य झलि (अनुसारः:)' च से तेईसवां सूत्र के मो (=मः) का आकर्षण होता है इसलिये ऐसा रूप हुआ कि "नः मः अपदान्तस्य झलि अनुस्वारः" झलि प्रत्याहारहै और उसमें झल्के मध्यके अक्षर झ सहित सर्व आजातेहैं अर्थात् क्-ख्-ग्-घ् च्-छ्-ज्-झ्। ट्-ठ्-ड्-ढ् । त्-थ्-द्-ध् । प्-फ्-ब्-भ् । ष्-श् स् ह् । 'झलि' का अर्थ है इन चौवीस अक्षरोंके पहिले आने वाला । अपदान्त = विभक्ति वा कारक जिसके अतमें न हो । सूत्र का अर्थ यह हुआ अपदान्त न् अथवा अपदान्त म् के स्थान मे अनुस्वार होवै' यदि म् अथवा न् पुर्वोक्त चौवीस अक्षरों में से किसी अक्षर के पहिले हो इसलिये 'अन्तराय' के न् का अनुस्वार होकर अंतराय होगया और 'वन्दे' का 'वंदे' होगया क्योंकि दोनों के न् के पश्चात् क्रमसे त्-द् है ॥

जैसे यशान्स्+इ = यशांसि, यह यशांसि यश् नपुंसकलिंगीका बहुवचन है यहां पर अपदान्त न्‌का अनुस्वार होगया ॥ बहुत यश = यशांसि
आक्रंस्यते = आ+क्रम्+स्यते, क्रम् धातुके म्‌का अनुस्वार होगया ॥ आक्रंस्यते = वह पकडेगा, (वह) विजयकरैगा, जीतैगा ॥

(४) अपदान्त अनुस्वार.—अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः ।८।४।५८ = अनुस्वारस्य परसवर्णः. ययि=अनुस्वार के स्थान में परसवर्ण हो यदि (उक्त अनुस्वार के) परे में यय् प्रत्याहार के अक्षरों में से कोई भी आवे अर्थात् अनुस्वार के पश्चात् में क्-ख्-ग्-घ्-ङ् । च-छ-ज-झ-ञ । ट्-ठ्-ड्-ढ्-ण् । त्-थ्-द्-ध्-न् । प् फ् ब्-भ् म् । य्-र्-ल् व् अक्षरों में से कोई भी एक अक्षर आवे तो उक्त अनुस्वार के स्थान में परसवर्ण (= ङ्-ञ्-ण्-न्-म् य-व-ल) हो जावे जैसे शाम्त. यहां " नश्चापदान्तस्य झलि " उपर्युक्त सूत्र से म्‌का अनुस्वार होकर शांत ऐसा हुआ फिर इस सूत्र से परअक्षर त उस तकार का सवर्णीय न् होकर शान्त रूप बना ॥ ऐसैही अङ्कितः = चुभगया, गड़गया, ॥ अञ्चितः = पूजाकिया गया आदर किया गया, सिकोड लिया गया । कुण्ठितः = प्रतिघात किया गया, गुम्फितः = गूथागया, रचागया, गांठागया, रूपवनगये ॥ शान्तः का अर्थ शामयुक्त वा शान्त वाला है कुर्वन्ति = वे करते हैं । तृपन्ति – वे उत्पन्न करने के योग्य हैं, वे सोचते हैं ॥ इन दोनों शब्दों के न् पहिले नश्चापदान्तस्यझलि उक्त सूत्र से अनुस्वार में परिवर्तित हो जाते हैं पश्चात् इस सूत्र से उन के पश्चात् त् होने के कारण न् परसवर्ण त्‌के में पलट जाते हैं ॥

(५) पदान्त अनुस्वारः— 'वा पदान्तस्य" ८।४।५९ = (पदान्तस्य अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः) वा इस सूत्र में अट्ठावनवां सूत्रकी अनुवृत्ति आती है ॥ पदान्तस्य अनुस्वारस्य परसवर्णः वा ययि = पदान्त अनुस्वारका परसवर्ण विकल्पसे हो (चाहे परसवर्ण करो मनन चाहे मतकरो) यदि (उक्त पदान्त अनुस्वारके) पश्चात् ऊपर कहे हुये २९ व्यजनों में से कोई एक व्यजन आवे तो ॥जैसे त्वम् करोषि, यहां "मोऽनुस्वार" सूत्र से म् को अनुस्वार किया तो त्वं करोषि बना, फिर जब सवर्ण हुआ तो त्वङ्करोषि, तू करता है । ऐसा रूप बना नहीं तो त्वं करोषि रूपही बना ॥ ऐसेही त्वम् चिनोषि से त्वंचिनोषि रूप हुआ, फिर त्वञ्चिनोषि रूप बना, नहीं त्वं चिनोषि रहा तू चुनता है ॥ ( ) त्वम् डीयसे = तू उडताहै, = त्वं डीयसे, फिर वा पदान्तस्य से त्वण्डीयसे रुप बना । डी चौथेगणका आत्मनेपदी, अकर्मक धातु है॥त्वम् पण्डितः (तू पडित है) त्वं पडितः 'मोऽनुस्वार से हुआ, फिर "वा पदान्तस्य" से त्वम्पण्डितः रुप बना, नहीं तो त्वं पण्डितः ही, रुप रहा ॥ ( ) त्वम् धनाढ्यः (तू धनवान् है) 'मोऽनुस्वारः सूत्र से त्वं धनाढ्यः रूप हुआ, अब "वा पदान्तस्य" द्वारा त्वन्धनाढ्यः रुप बना, नहीं त्वं धनाढ्यः ॥ ( ) तं कथं चित्रपक्षं डयमानं नभः स्थं पुरुषोऽवधीत् = तङ्कथञ्चित्रपक्षण्डयमानन्नभः स्थम्पुरुषोऽवधीत् । आकाश में (= नभः स्थ) उड़ते हुये (= डयमान) उस (= त) चित्र विचित्र पर वाले पखेरु को (चित्र पक्ष) पुरुष ने कैसे मारा (= अवधीत्) ८॥

स्वाभिधेयक्रियापरिणतिक्षणे एव स शब्दो युक्तो नान्यदेति । यदैवेन्दति तदैवेन्द्रो नाभिषेचको न पूजक इति । यदैव गच्छति तदैव गौः ।

स्व–अभिधेय–क्रिया परणतिक्षणः एव * =(जो शब्द) अपने अर्थ (=अभिधेय) क्रियासे जिस समय ही (=एव) परिणत हो
सः शब्दः युक्तः न * अन्यदा * इति * =वह शब्द (प्रयोग उस ही समय) उचित है न कि और समय (=अन्यदा)
भावार्थ जिस वस्तुको जिस नामकरि कहै उसही अर्थ की क्रियारूप वह वस्तु परिणमती हो तो तिसही काल उस वस्तुको उस नाम से कहै अन्य काल वही वस्तु अन्य परिणतिरूप परिण में तौ पूर्व उक्त नाम से उस वस्तुको न कहै
यदा एव * इन्दति T तदा एव * इन्द्रः। =जैसे जब ही परमैश्वर्यरूप क्रिया करता है तब ही इन्द्र है।
न*अभिषेचकः। न * पूजकः इति *। =न कि (वह ही प्राणी) अभिषेक करने वाला न पूजा करने वाला ऐसा (इन्द्र) है
अर्थात् इन्द्र शब्द का अर्थ परमेश्वर है जिस समय वह परमैश्वर्य का भोग कर रहा हो उसी समय उसको इन्द्र कहना यह एवं भूतनयका विषय है किंतु जिसका केवल नाम मात्र इन्द्र है (नाम निक्षेप) वा जहां पर किसी पदार्थमें इन्द्रको स्थापना है (स्थापना निक्षेप) वा जो इस समय इन्द्र नहीं आगे जाकर इन्द्र होने वालाहै(=द्रव्य निक्षेप)वह एवं भूतनयका विषय नहीं क्योंकि उपर्युक्ततीनों अवस्थाओंमेंपरमैश्वर्यका भोग नहीं हो रहा है। इसी प्रकार गो इत्यादि अन्य शब्दों में भी जिस जिस क्षणमें उनकी जिस जिस अर्थ क्रियाका परिणमन हो रहा है उस उस क्षणके उस उस परिणमनकी अपेक्षा से एवं भूतनयकी योजना कर लेनी चाहिये यदि अर्थ क्रियाकी परणतिका दूसरा दूसरा काल होगा तौ वे एवंभूतनयके विषय नहीं हो सक्ते(देखोनीचे गोकादृष्टान्त)
यदा एव * गच्छति तदा एव * गौः =जब(=यदा) ही (=एव) गमन करता है तब ही गो है (बैल है)

(१) गो–इस शब्द के बीस अर्थ से भी अधिक हैं यह पुल्लिग और स्त्रीलिंग में आता है (वैद्यकोश पृष्ठ २५० देखो) गो पुल्लिग मे बैल–वृषभ (पशु) के अर्थमें यहां लिया गयाहै और उस की प्रथमा विभक्ति एक वचन पुलिंग गौः है और गो जब गऊ–गाय के अर्थ में स्त्रीलिंग है तब भी उसका प्रथमा विभक्ति एक वचन स्त्रीलिंगकारूपपुरुष लिंगकेसदृश गौः' (ही) होताहै इस लिये प्रश्न यह उठताहै कि वृत्ति मे दियेहुयेगौः

न स्थितो न शयित इति ॥ अथवा येनात्मनायेन ज्ञानेन भूतः परिणतस्तेनैवाध्यवसाययति । यथेन्द्राग्निज्ञानपरिणत आत्मैवेन्द्रोऽग्निश्चेति ॥

न * स्थितः न * शयितः इति *	=न बैठा हुआ वा न ठहरा हुआ गो (बैल) है (और) न शयन करता हुआ गो (बैल) है
अथवा *	=अथवा (एवम्भूतनयकी उक्त परिभाषा में आये हुये शब्द)
येन आत्मना येन ज्ञानेन भूतः।	="येनात्मना भूतः" (कहिये किसी पदार्थके) ज्ञानयुक्त (=ज्ञानेन) हुआ
परिणतः तेन एव * अध्यवसाययति T	=परिणया (आत्माको) तिस (ज्ञान) युक्त ही निश्चय कराता है वा प्रतीतिकराता है (=ऐसा एवम्भूत–नयहै) अर्थात् उक्त परिभाषा में 'आत्मन्' शब्दका अर्थ पहिले 'अभिधेय क्रिया लिया' अब 'ज्ञान' अर्थ लिया (आत्मना =ज्ञानेन) इसलिये आत्मा जिस क्षण में जिस पदार्थ के ज्ञान से युक्त हो उसे वही कहना एवम्भूतनयका विषय है ॥
यथा*इन्द्रज्ञानपरिणतः अग्निज्ञानपरिणतः	=जैसे इन्द्र(का आकाररूप) ज्ञान और अग्नि(का आकाररूप) ज्ञान परिणया
आत्मा एव * इन्द्रः च * अग्निः इति *	=आत्माही इन्द्र और अग्नि एसे (क्रमसे)है अर्थात् जैसे जिस क्षणमें आत्मा इन्द्र पदार्थके ज्ञान से परिणत हो रहा है उसे इन्द्र कहदेना वा जिस समय अग्नि पदार्थ के ज्ञान से परिणत हो रहा है उसे अग्नि कह देना एवं भूत नयका विषय है ॥

ऐसे व्याकरणके रूपका अनुवाद बैल होना चाहिये वा गऊ होना चाहिये 'न स्थितो न शयित' इस वाक्य में स्थितः शब्द और शयितः शब्द पुलिंग मे लाये है इस से स्पष्ट है कि बैल से तात्पर्य है अतः "गौः" का अनुवाद गौ (बैल) किया है यदि स्थितः के स्थान मे 'स्थिता' होता जो स्त्रीलिंग है और शयितः के स्थान में 'शयिता' स्त्री लिंग होता तो अनुवाद गौः रुप का गाय (गऊ) होता।

(१) इन्द्र ज्ञान परिणत आत्मा इन्द्र उच्यते। अग्नि ज्ञान परिणत स्यादात्मा अग्नि श्चेति एवम्भूतनयलक्षणम् ॥

इन्द्र ज्ञान परिणत· आत्मा इन्द्रः उच्यते T	= इन्द्रका (आकार रुप) ज्ञान परिणया आत्मा इन्द्र कहा जाता है
च*अग्निज्ञान परिणत त्वात आत्मा अग्निः	=और अग्निके ज्ञान परिणमन से आत्मा अग्नि (कहलाता) है
इति * एवम्भूतनयलक्षणम्	=ऐसा एवम्भूतनयका विषय (=लक्षण) है ॥ अब शका यह है कि

उक्ता नैगमादयो नयाः । उत्तरोत्तरसूक्ष्मविषयत्वात्

नैगम – आदयः नयाः ।	=नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजु सूत्र, शब्द, समभिरूढ़, (१) एवंभूत (ये सात) नय
उक्ताः । उत्तरोत्तर–सूक्ष्मविषयत्वात् ।	=कहेगये है ॥ आगे आगेकी (नय एक दूसरेसे) अल्प विषय (वाली) होने से

टिप्पणी–यदि अग्नि ज्ञानसे परिणत आत्माको एवंभूतनयकी अपेक्षासे अग्नि कहा जायगा तो जलाना, रान्धना, पकाना आदि जितने धर्म अग्नि में हैं वे सब आत्मा,में भी मानने पड़ेगे इस लिये आत्मा अग्नि नहीं कहा जा सकता १ (उत्तर) नाम या स्पना आदि जिस स्वरूप से कहे जाते है वे उस से अभिन्न रहते है और जिस पदार्थ के जो जो धर्म होते हैं वे नियमित रूप से उसी में रहते है। आत्मा का जो,अग्नि नाम है उसका आत्मा के साथ अभेद है परंतु अग्निके जो जलाना पकाना आदि धर्म हैं वे अग्निमें ही रहतेहैं आत्मा में नहीं हो सकते इस लिये नो आगम भाव अर्थात् साक्षात् अग्नि में रहने वाला दाहकपना आगमभाव अर्थात् औपचारिक अग्नि में नहीं हो सकता। इस रीतिसे यदि आतमा का नाम अग्नि माना जायगा तो अग्नि दाहकत्व आदि धर्म आत्मा में मानने पड़ेंगे यह जो ऊपर शंका की गई थी वह निर्मूल सिद्ध हो चुकी।

(१) यहां पर 'एवंभूयत इति' 'ऐसा होना' इस एवभूतनय के अर्थकी प्रतीति या निश्चय शब्द से होती है इसलिये शब्द ही एवभूतनय माना है कारणमें कार्यका उपचार है अर्थात् एवंभूतनयके अर्थकी प्रतीति में कारण शब्दहै और कार्य एवं भूतनय है

(I नैगमात्संग्रहोऽल्पविषयः तन्मात्रग्राहित्वात् । नैगमस्तु भावाभावविषयाद्बहुविषयः । यथैव हि भावे सङ्कल्पस्तथाऽभावे नैगमस्य सङ्कल्पः । एवमुत्तरत्रापि योज्यम् ॥

नैगमात् संग्रहः अल्पविषयः ।	=नैगम नयसे संग्रहनय थोड़ी विषय वाली है
तन्मात्र (= तद – मात्र) ग्राहित्वात् ।	=क्योंकि केवल उतने विषयकी अर्थात् केवल स्वल्पविषयकी (= तन्मात्र) ग्राही है
नैगमः तु * भाव - अभाव विषयात् ।	=और (=तु) नैगमनय सत् (रूप) और असत् (रूप) ग्रहण करने (केहेतु) से
वहु विषयः	=महाविषय वाली वा बहुत विषयक है। (बहुविषय=बहुत है विषय जिसका)
यथा * एव * हि * भावे सङ्कल्पः ।	=क्योंकि (=हि) जैसा ही सत् (रुप) में सङ्कल्प है अर्थात् सत् रूप में मानना है
तथा * अभावे नैगमस्य सङ्कल्पः ।	=वैसा असत् (रूप) में नैगमनयका सङ्कल्प वा मानना है भावार्थ ।

नैगमनयके पीछे संग्रहनय कही गई है सो इसका विषय सद् द्रव्यत्व आदिही है इसके परस्पर निषेधरूपअसत्आदि यह विषय नहीहै इसलिये नैगमनयसे संग्रहनय अल्प विषयक वा थोड़ी विषय वाली है

एवम्*उत्तरत्र*अपि*योज्यम्

=इस प्रकार यहां से आगे (=उत्तरत्र) भी लगाओ वा लगाने योग्य है अर्थात् संग्रहनयके पश्चात् व्यवहार नय है सो इसका विषय संग्रहनयके विषयका भेद है तहाँ अभेद विषय रहगये अत. संग्रहनयसे व्यवहारनय अल्प विषय वाली है व्यवहारनय के पश्चात् ऋजुसूत्रहै सो इसका विषय वस्तुका वर्तमान पर्याय मात्रहै अतीत अनागत पर्यायें रहगई अतः व्यवहारनयसे ऋजुसूत्रनयका थोड़ा विषय है॥

ऋजुसूत्रनय लिंग संख्या साधन कारक उपग्रह आदिका भेद नकरके केवल वर्तमान पर्यायको विषय करता है परन्तु शब्दनय उस एक पर्यायमे भी लिंग संख्या साधन कारक उपग्रह काल आदिके भेदसे अर्थका भेद प्रकाशन करता है इसलिये ऋजुसूत्रनयकी अपेक्षासे शब्दनयका अल्प विषय है अर्थात् ऋजुसूत्रनय अर्थ पर्याय और शब्दपर्याय सबको ही विषय करता है परन्तु शब्दनय केवल शब्द पर्याय को ही विषय करता है इसलिये ऋजुसूत्रनयका विषय शब्दनयसे अधिकतर है॥

इसके पश्चात् समभिरूढ नय कहागया है सो एक वस्तु के अनेक नाम है तिनको पर्यायशब्द कहते है जिन पर्याय शब्दोका एकही अर्थ मानने वाली तो शब्द नय है परन्तु समभिरूढनय जिस शब्दको ग्रहण करता है तिसही अर्थरूपको कहता है क्योंकि उन पर्याय शब्दोंके जुदे जुदे अर्थ भी हैं॥ जैसे इन्द्र, शक्र, पुरन्दर आदि ये तीन शब्द एक ही शचीपति अर्थके कहने वाले है तथापि परमैश्वर्यता का भोग होने से इन्द्र सामर्थ्यवान् होनेसे शक्र और पुर-नगर विदारण करने से पुरंदर इस प्रकार इन भिन्न भिन्न शब्दों के भिन्न भिन्नअर्थ है इस रीतिसे पर्यायों के अनुसार इन्द्र शब्दके अनेक अर्थ रहते भी वह रूढ इन्द्र (शचीपति) अर्थ में ही है और इस रूढ अर्थको ही

एषा क्रमः पूर्व पूर्वा हेतुकत्वाच्च ।

च॰पूर्व पूर्वहेतुकत्वात्	=और (=च) पहिली पहिली (नय अगली अगली नयका) कारणरूप होने से
एषाम् क्रमः	=इन (सातों नयनि) कें (पठनका नैगम संग्रहादि सूत्रमें) अनुक्रम है अर्थात्

समभिरूढनय विषय करता है। समभिरूढनय किसी नियत अर्थको ही द्योतन करता है। अतः शब्दनयसे समभिरूढ अल्प विषयी है एकही पदार्थ अनेक क्रियारूप जुदे जुदे कालमें प्रवर्तता है सो जो वस्तु जिसनामकरि कही गई है तिस ही अर्थकी क्रियारूप परिणमती होय तो उसही काल उस वस्तुको उसनामकरि ग्रहण करनेवाला एवम्भूतनय है अन्यकाल में अन्य परिणतरूप परिणमें तौ तिसको उसनामकरि न कहै जैसे गो को समभिरूढनयकी अपेक्षासे बैठते, उठते, सोवते, चलते, फिरते, अकड़ते इत्यादि सबही अवस्था में गऊ-गाय कहते हैं परन्तु एवम्भूतनयकी अपेक्षासे उक्त गो जिस समय गमन करती हो उसी समय गो-गऊ गाय कहै यदि वह बैठो हो सोती हो लेटी हो पडी हो तो उसको गो न कहे। अतः समभिरूढनयसे एवम्भूतनय अल्प विषयी है यहां प०जयचद जी की वचनिकासे एक उदाहरण उद्धृत करते हैं जिससे पूर्वपूर्व नयका विषय उत्तरोत्तर नय से अल्प है स्पष्ट हो जाता है (१) एक मनुष्य ने कहा नगरमें पक्षी बोल रहा है नैगम (२) दूसरे ने कहा कि इस नगरमें एक वृक्ष है उसपै पक्षी बोल रहा है-संग्रह (३) तीसरे ने कहा इस वृक्ष की एक बडी डाली पै पक्षी बोल रहा है-व्यवहार (४) चौथेने कहा इस डालीमें एक छोटी डाली है तापै बोल रहा है-ऋजुसूत्र (५) पांचवें ने कहा छोटी डाली के एक भागपर बोल रहा है-शब्द नय (६) छठेने कहा पक्षी अपने शरीरमें बोल रहा है-समभिरूढ (७) सातवे ने कहा कि पक्षी के शरीर में कठ है सो कठमें पक्षी बोल रहा है-एवम्भूतनय-ऐसे उत्तरोत्तर विषय छूटता गया। ग्रामे वृक्षे विटपे शाखायां तत्प्रदेशेके काये कठे च रोति शकुनिः यथा तथा नैगमादीनाम्। अन्य दृष्टान्त -नैगमनयने वस्तुके सत्-असत् दोनों ग्रहण किये, सग्रह ने सत् ही लिया, व्यवहारनयने सत्का एक भेद लिया, ऋजुसूत्र ने वर्तमान सत् ही को लिया शब्दनयने वर्तमान सत्में भी भेदकरि एक कार्य पकड़ा, समभिरूढनेउस कार्यके अनेक नामथे उनमेंसे एक नामको ग्रहण किया, एवम्भूत-नयने उपर्युक्त एक नामको भी जिस क्रियारुप जिसकालमें परिणमें तिसको ग्रहण किया। ऐसे ही जिस पदार्थ को साधनाहै उस पदार्थ पै इन सातों नयोंको लगालैना योग्य है॥

(१) नैगम् सग्रहस्य हेतुः ।सग्रहो व्यवहारस्य हेतु । व्यवहार. ऋजुसूत्रस्य हेतुः । ऋजुसूत्रः शब्दस्यः हेतुः ।

एवमेते नयाः पूर्वपूर्वविरुद्धमहाविषया उत्तरोत्तरानुकूलाल्पविषयाः । द्रव्यस्यानन्तशक्तेः प्रतिशक्तिभिद्यमाना बहुविकल्पा जायन्ते ॥

	यथाक्रम एक नय दूसरी नयसे अल्प विषय वाली है और पहिली पहिली नय कारण रूप है अगली अगली नय कार्यरूप है सो सूत्रमें इन सातों नयों का इसही क्रमसे पाठ है वा उल्लेख है
एवम् एते नयाः पूर्वपूर्वविरुद्ध-महाविषयाः	=ऐसे ये (सात) नय पहिले पहिले विरुद्धरूप महाविषय वाले है
उत्तर-उत्तर-अनुकूल-अल्पविषयाः	=(और) आगे आगेकी (नय) अनुकूल रूप अल्प विषय वाली है; अर्थात् पहिले नयने जितने पदार्थको विषयकररक्खा है उसको आगेका नय विषय नहीं करता इसलिये पहिला नय विरुद्ध महाविषयवाला है तथा आगेके नयका जो विषय है वह पहिलेके नयमें गर्भित है इसलिये आगेका नय पहिले नयके अनुकूल अल्पविषयवालाहै। (ऐसे नयके भेद क्यों होतेहैं सो कहतेहैं)
द्रव्यस्य अनन्तशक्तेः प्रतिशक्ति भिद्यमानाः	—क्योंकि द्रव्यकी अनन्त शक्ति है,(इससे)शक्ति शक्तिप्रति भेदको प्राप्त भये(नय)
बहु विकल्पाः जायन्ते	=बहु विकल्परूपउत्पन्न होते हैं अर्थात् उक्त नय अनन्त शक्तिरूप द्रव्यकी प्रतिशक्तिकी अपेक्षा भिन्न भिन्न होते जाते हैं अतः नयोंके बहुसे भेद है

शब्द समभिरूढस्य हेतुः । समभिरूढः एवम्भूतस्य हेतु । ईत्यर्थ

संग्रहस्य हेतुः नैगमः । व्यवहारस्य हेतुः संग्रहः ।	=संग्रहनयका हेतुः नैगमनय है व्यवहारनय का हेतु संग्रहनय है
ऋजुसूत्रस्य हेतु व्यवहारः । शब्दस्य हेतुः ऋजुसूत्रः ।	=ऋजुसूत्रनयका हेतु व्यवहारनय है । शब्दनयका हेतु ऋजुसूत्रनय है
समभिरुढस्य हेतुः शब्दः । एवम्भूतस्यहेतुः समभिरुढ-	=समभिरुढनयका हेतु शब्दनय है । एवम्भूतनयका हेतु समभिरुढ है
इति अर्थः	=ऐसा अर्थ "उत्तरोत्तर सूक्ष्म विषयत्वादेषां क्रमः पूर्वपूर्व हेतुकत्वाच्च" का है

(१) जन् दिवादि चौथेगण आत्मनेपदी अकर्मकधातु उत्पन्न होना अर्थ मे है सार्वधातुक प्रत्यय इ,से,ते इत्यादिकेपहिले इसका रुप जा हो जाता है य विकरणहै अन्ते प्रथमपुरुष बहुवचन आत्मनेपदी वर्तमान काल क्रिया का प्रत्यय है जा+य+न्ते हुआ प्रथम अ उस प्रत्यय के पहिले गिरजाता है जिस प्रत्यय के अ आरम्भमें हो इसलिये जा+अन्ते=जायन्ते ॥ जन्यते कर्मणि रुप है ॥ जायते प्रथमपुरुष एकवचन वर्तमानकाल आत्मनेपदी है ॥

न एते गुणप्रधानतया परस्परतन्त्राः सम्यग्दर्शनहेतवः पुरुषार्थक्रियासाधनसामर्थ्यात्तन्त्वादय इव यथोपायं विनिवेश्यमानाः पटादिसंज्ञाः स्वतन्त्राश्चासमर्थाः ॥

पुरुषार्थ क्रिया-साधनसामर्थ्यात् इव ※	=पुरुषार्थरूप क्रियाके साधनरूप शक्तिसे जैसे
तन्तु आदयः यथा-उपायम्※विनिवेश्यमानाः	=सूतके तारआदिक यथायोग्य उपायद्वारा नियन्त्रित हुये वा पोयेहुये
पटादि संज्ञाः च※	=वस्त्रादिक नाम पानेवाले होते हैं और (=च)
स्वतन्त्राः	=(सूतके) स्वतन्त्रतार अर्थात् परस्पर अपेक्षारहित न्यारे न्यारे तार
असमर्थाः न एते	=(वस्त्रादि नाम पानेवाले) नहीं होसक्ते हैं। (तैसे) न इतने (नय)
गुण प्रधानतया	=गौण मुख्यपनाकरि वा प्रधान अप्रधानरूपसे
परस्परतन्त्राः	=आपसमें सापेक्षरूप हुये वा परस्पर एकदूसरेके आधीन न हुये (आश्रय)
सम्यग्दर्शन-हेतवः	=सम्यग्दर्शन [के उत्पन्न होने] का कारण होते हैं
	[और यदि ये उक्त नय परस्पर अपेक्षारहित हों तो सम्यक्त्वके उत्पत्तिका कारण कदापि नहीं होसक्ते भिन्नभिन्नसूतके तारोंके सदृश कार्यकारी नहीं होते]

भावार्थ जिसप्रकार आपसमें एक दूसरेकी अपेक्षा रखनेवाले सूतकेतार जिस समय बुनजाते हैं उस समय उनकी पटादि संज्ञा हो जाती है और प्राणियोंके शीत निवारण उष्णनिवारण आदि प्रयोजनीय कार्योंके सिद्ध करने में समर्थ होजाते हैं किन्तु वेही तार जब भिन्न भिन्न रहते हैं तब किसी भी प्रयोजनीय कार्यको सिद्ध नहीं करसक्ते उसी प्रकार परस्पर सापेक्ष-आपसमें एक दूसरेकी अपेक्षा रखनेवाले और कहीं गौण तो कहीं प्रधानरूपसे विवक्षित हो नय सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके कारण हैं। यदि वे [नय] परस्पर सापेक्ष न होंगे तो भिन्न भिन्न वा न्यारे न्यारे सूतके तारोंके समान कभी भी कार्यकारी न होंगे और सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके कारण भी नहीं होंगे ॥

(१ गुण.- ज्ञान विनय आदि गुण तन्तु आदि न [illegible] (पदार्थ) में अधिक [illegible] ज्ञानादि [illegible] [illegible] ३३)
(२ निरपेक्षा नया मिथ्या सापेक्षा वस्तु तेऽर्थकृत् देवागम १०८) परस्पर निरपेक्षनय मिथ्या हैं परस्पर सापेक्ष नय कार्यकारी हैं ॥

"तन्त्वादय इवेति विषम उपन्यासः। तन्त्वादयो निरपेक्षा अपि काञ्चिदर्थमात्रां जनयन्ति। भवति हि कश्चित्प्रत्येकं तन्तुस्त्वक्त्राणे समर्थः। एकश्च वल्वजो बन्धने समर्थः। इमे पुनर्नया निरपेक्षाः सन्तो न काञ्चिदपि सम्यग्दर्शनमात्रां प्रादुर्भावयन्तीति॥" नैष दोषः। अभिहितानवबोधात्। अभिहितमर्थमनवबुध्य परेणेदमुपालभ्यते।

"तन्त्वादय इव ··" इति* विषमः १। उपन्यासः १।	=(प्रश्न) "तन्त्वादय इव ··" ऐसा (उपर्युक्त) उदाहरण अनमेल है
तन्त्वादयः १। निरपेक्षाः १। अपि *	=(क्योंकि) तारादिक (एक दूसरेकी) अपेक्षारहित भी (एक तार दूसरे से भिन्न
काञ्चित्* (=कान्+चित्) अर्थ-मात्राम् २॥	=भिन्न रहने परभी) केई एक (= काञ्चित्) प्रयोजनमात्राओंका (=अर्थमात्राम्)
जनयन्ति T कश्चित्* प्रत्येकम्* तन्तुः १।	=उत्पन्नकरतेहै। कोई एक (= कश्चित्) पृथक् पृथक् (=प्रत्येकम्) तार
त्वच् - त्राणे ७॥ समर्थः १। भवति T हि*	=त्वचाके रक्षा करने में (अर्थात् सीवनें इत्यादि में) समर्थ होता ही (=हि) है
एकः १। च * वल्वजः १।	=और (=च) कोई एक (तार) जो वकलसे उपजाहै वा जन्माहै अर्थात् वकलका तार
बन्धने ७॥ समर्थः १।	=(भार-मनुष्य आदिक के) बांधने में समर्थ है
पुनः * इमे १। नयाः १। निरपेक्षाः १। सन्तः १।	=वहुरि (=पुनः) ये (=इमे-परस्पर) अपेक्षारहित विद्यमान (=सन्तः) नय
काञ्चित् * अपि * सम्यग्दर्शनमात्राम् २॥	=किन्हीं भी (=अपि) सम्यक्त्वकी मात्राओंको वा सम्यग्दर्शन के अंशोंको
न*प्रादुर्भावयन्ति। इति*। न * एषः १। दोषः १।	=प्रकाश वा प्रगट नहीं करती है ऐसी (शंकापर कहतेहै कि) यह दूषण नहीं है।
अभिहित-अनवबोधात् ५। अभिहितम् २।	=कथितका बोध न होने (के हेतु) से (अर्थात्) कहे हुये के (=अभिहितम्)
अर्थम् २। अनवबुध्य-परेण ३। इदम्* उपालभ्यते T	=तात्पर्य को न समझ करि प्रत्यर्थीसे (=परेण) यह उलहना दिया गया है

(१) भवति हि कश्चित्प्रत्येक तन्तुस्त्वक्त्राणे समर्थः=होता ही है कोई एक भिन्न भिन्न तन्तु त्वचाके रक्षाकरने (सीवने आदि) में समर्थ॥ प्रश्नकर्ता अपने प्रश्नकी दृढ़ता में पूर्णतया विश्वास करके शब्दों पर अत्यन्त बल देकर उपर्युक्त वाक्यको कहता है और इस गौरव उच्चारण में 'भवति हि' को प्रथम लाकर 'समर्थः' अन्त में लाता है अतः इस वाक्य का शब्दशः अनुवाद जो टिप्पणी में दिया है वही होगा।

(२) वल्क, वल्कल (पु०न०)वल्कुट (न०)=छाल,वल्कज,वल्कलज,वल्कुटज=छाल से उपजा, छालका,वल्व वा वल्वजकोशमें नहीं मिला अतः द्वितीया वृत्तिमें अशुद्ध छपगयाहै॥ (३) अन्-अवबुध्य, सवन्ध सूचक भूतकृदन्तहै। पर (पु०) शत्रुके अर्थमें है परतु यहां 'वादी'के अर्थमे आयाहै॥

एतदुक्तं निरपेक्षेषु तन्त्वादिषु पटादिकार्यं नास्तीति ॥ यत्तु तेनोपदर्शितं न तत्पटादिकार्यं, किं तर्हि केवलं तन्त्वादिकार्यं; तन्त्वादिकार्यमपि तन्त्वाद्यवयवेषु निरपेक्षेषु नास्त्येवेत्यस्मत्पक्षसिद्धिरेव ॥ अथ तन्त्वादिषु पटादिकार्यशक्त्यपेक्षया अस्तीत्युच्यते। नयेष्वपि निरपेक्षेषु बुद्ध्यभिधानरूपेषु कारणवशात्सम्यग्दर्शन-

एतद् १॥। उक्तम् १॥। निरपेक्षेषु ७।३ तन्त्वादिषु ७।३ =यह कहा है (कि) परस्पर अपेक्षा रहित तारादिकों में
पट-आदिकार्यम् १॥। न* अस्ति I इति * =वस्त्रादिक कारज (अर्थात् वस्त्र-निवाड़-इत्यादि बुनने रूप कार्य) नहीं होता है
यत् १॥। (=यद् १॥।) तु* तेन ३।१। उपदर्शितम् १॥। =और (=तु) जो (कार्य) तिस (तार) करि (वादीद्वारा) बतलाया गया है
न* तत् १॥। पटादिकार्यम् १॥। किंतर्हि* =वह वस्त्रादि कार्य नहीं है परन्तु (=किं तर्हि) वा किन्तु (=किं तर्हि)
केवलम् १॥। तन्त्वादिकार्यम् १॥।; तन्त्वादिकार्यम् १॥। =केवल तारा दिकोंका (न्याराही) कार्य है। तारादिकोंका (वादीद्वारा उपदर्शित) कार्य
अपि तन्त्वादि-अवयवेषु ७।३। निरपेक्षेषु न अस्ति एव =भी तारादिकोंके अंशोंमें परस्पर अपेक्षारहित ही (=एव) नहीं है
अर्थात् तारादिकोंका (वस्त्रादिक बुननेके कार्यसे न्यारा वादीद्वारा वर्णित) कार्य भी कितने ही धागे वा तार परस्पर यथा योग्य मिलतेहैं तभी होताहै अन्यथा नहीं ॥
इति* असद्-पक्ष (=अस्मत्पक्ष)-सिद्धिः १॥ एव* =इस प्रकार हमारा (=अस्मद्) पक्ष (कि सापेक्ष ही कार्य उत्पन्न करते हैं परस्पर निरपेक्ष रहने पर कोई भी कार्य नहीं हो सक्ता) सिद्धि ही (=एव) है
अथ* तन्त्वादिषु ७।३। पटादि- =प्रश्न (=अथ) (निरपेक्ष) तन्तु आदिक (के अवयवनि)में वस्त्रादिक (बुनेजाने) का
कार्यम् १॥। शक्ति-अपेक्षया ३॥ अस्ति I इति उच्यते I =कार्य शक्तिकी विवक्षा से है ऐसें कहिये है
निरपेक्षेषु ७।३। अपि* बुद्धि- =(उत्तर) परस्पर अपेक्षारहित नयों में भी (उनके भिन्न भिन्न) ज्ञान और
अभिधान रूपेषु ७।३। कारणवशात् ५।१। सम्यग्दर्शन- =(उन के न्यारे न्यारे) नाम के कारण वशसे सम्यगदर्शन के

हेतुत्वपरिणतिसद्भावात् शक्त्याऽऽत्मनाऽस्तित्वमिति साम्यमेवोपन्यासस्य ॥

हेतत्व–परिणति–सद्भावात् ५। =कारण त्वका विशेष रूप परिण मनके सद्भाव से
शक्त्या ३ ॥ आत्मना ३। अस्तित्वम् १ ॥। =शक्ति(=शक्त्या) रूप (=आत्मना) करि अस्तित्वहै-सर्वांश-निरपेक्ष नयों में भी उन के नाम और ज्ञान के कारण से सम्यक्त्व के कारण पनेको शक्तिरूप से अस्तित्व है
इति* उपन्यासस्य ६। =ऐसे दृष्टान्तकी (कि जैसे पुरुषके उद्योगसे तन्तु आदि परस्पर मिलने पर पटादि वस्तुओंको उपजाते है वैसे ही उक्त सात नय परस्पर सापेक्ष होकर
साम्यम् १ ॥ एव * =सम्यक्त्व को उपजातीहै। समानताही है (विषमता वा अनमेलता नहीं है) ॥

"अथ तन्त्वादिषु " न्यासस्य" वाक्य का तात्पर्यः—वादीकी इस शंकापर कि निरपेक्ष तंतुओं मे शक्तिकी अपेक्षा पटादि कार्य करनेकी सामर्थ्य है,इस लिये निरपेक्षतंतु वस्त्रादि कार्य स्वरूप कहे जा सकतेह (तैसे नयों की निरपेक्ष रूप में शक्ति नहीं है) इस के समाधानमें कहते हैं कि निरपेक्ष नयोंका भिन्न भिन्न नाम और उन का न्यारा न्यारा ज्ञान भी सम्यग्दर्शकी प्राप्ति में कारण रूप शक्ति रखता ही है॥ इस लिये निरपेक्ष नय भी सम्यक्त्वके कारण बन सकते है इस रीति से दृष्टांत और दार्ष्टांत दोनों में समानता रहने से तंतुओंके उक्त उदाहरणको विषम वा अनमेल उदाहरण बतलाना असंगत है ॥

ध्यान रहे कि यथार्थ में किसी अभिप्राय विशेपको नय कहते है जितने अभिप्राय हो सकतेहैं उतने ही नय कहे जा सक्ते है अंतः अभिप्रायो के भेद अनंत होने से नयवाद भी अनंत हैं। वे स्थूल रूपसे परिगणत किये जाते हैं इसलिये संख्याते नय है ॥

(१) जिस पदार्थको जाना जाताहै वह विषयहै और जिसके द्वारा जाना जाताहै वह विषयीहै। निक्षेप विषय है नय विषयी है। नाम स्थापना–द्रव्य निक्षेप द्रव्यार्थिक नयके विषय भूतहैं अर्थात् ग्रहण किये जातेहैं और भाव निक्षेप पर्यायार्थिक नयका विषय भूत है॥ समभिरूढ नय और एव भूतके अन्तर वा भेदकेलिये देखो पृष्ठ५००॥अतीत अनागत दोनो पर्यायोको छोड़कर वर्तमान पर्यायोंको ग्रहणकरै सो ऋजु सूत्रनयहै।,वह सूक्ष्म ऋजुसूत्र-और स्थूलऋजु सूत्रसे दो भेद रूपहै॥ एक समय वर्ती पर्याय जो अवाच्यहै और जिसको अर्थ पर्याय कहतेहै (क्योंकि वस्तु समय समय परिणमेहै)सूक्ष्म ऋजुसूत्र नयका विषयहै॥और एक पर्यायके आरम्भसेअंत तक ग्रहण करै सो स्थूल ऋजुसूत्र है जैसे मनुष्यादि पर्यायहैसो अपने अपने आयु परिमाण रहती है॥ ऋजुसूत्र नय और समभिरूढनय मे भेद यह है कि ऋजुसूत्रनय वर्तमान उक्त पर्यायोको ही ग्रहण करता है॥

ज्ञानदर्शनयोस्तत्त्वं । नयानां चैव लक्षणम् ॥ ज्ञानस्य च प्रमाणत्व- । मध्यायेऽस्मिन्निरूपितम् ॥ १ ॥ ॥ इति तत्त्वार्थवृत्तौ सर्वार्थसिद्धिसञ्ज्ञायां प्रथमोऽध्यायः ॥

ज्ञानदर्शनयोः ६॥। तत्त्वम् १॥। नयानाम् ६। च ॐ	=ज्ञान और दर्शनका यथार्थ स्वरूप वा ज्योंकात्यों स्वरूप और(=च) नयोंका
एव ॐ लक्षणम् १॥। ज्ञानस्य ६॥। च ॐ प्रमाणत्वम् १॥।	=ही (=एव) लक्षण, और (=च) (पांच) ज्ञानके प्रमाणता (ज्ञान को ही प्रमाणता सिद्ध करना)
अध्याये ७। अस्मिन् ७। निरूपितम् १॥। ॥१॥	=इस (प्रथम) अध्याय में वर्णन कियेगये है ॥ दोहा, "दर्शन बोध यथार्थता नयलक्षण वरणाय ॥ ज्ञान पंचके मानता। कही आदि अध्याय" जय०२२१
इति ॐ सर्वार्थसिद्धिसञ्ज्ञायाम् ७॥	=इस प्रकार सर्वार्थ सिद्धिनाम (ग्रन्थ) में
तत्त्वार्थ-वृत्तौ ७॥ प्रथमः १। अध्यायः १।	=तत्त्वार्थके विवरण में पहिला अध्याय (समाप्त वा पूर्ण) हुआ

परन्तु समभिरूढनय उस शब्द से प्रगट होने वाले अर्थको ही ग्रहण करताहै जैसे ऋजुसूत्रनय उत्पन्न होने से मरण पर्यन्त इन्द्र पद धारण करने वाले शची पतीको इन्द्र कहताहै परन्तु समभिरूढनय इन्दन शील ऐश्वर्यवान होनेहुये कोही इन्द्र कहताहै इन्द्र जिस समय पूजा करता है उस समय ऋजुसूत्रनय से इन्द्र है परन्तु समभिरूढ नय से इन्द्र नहीं है ॥

ऋजु सूत्र और एवम्भूतनयो में यह अन्तरहै कि ऋजु सूत्र नय वस्तुकी वर्तमान कालकी पर्याय को ग्रहण करताहै परन्तु एवम्भूतनय जिस कालमें जो क्रिया करता हो वा क्रिया कर रहा हो उसको उस काल में उसी नाम से प्रगट करताहै वा कहताहै जैसे ऋजु सूत्र नय उत्पन्न होने से मरण पर्यंत इन्द्र पद धारण करने वाले शची पतिको इन्द्र कहताहै चाहे वह किसी समय कोई भी कार्य कर रहा हो परन्तु एवम्भूतनय देवों के पतिको परम ऐश्वर्य सहित हो उसी अवस्था में इन्द्र कहताहै पूजन, अभिषेकादि करते हुये को इन्द्र नहीं कहेगा इसी प्रकार जिस समय वह शक्तिरूप क्रिया को करे उसी समय शक्र कहेगा अन्य समय में शक्र नहीं कहेगा। न इन्द्र कहेगा जब कि वह शक्ति रूप क्रिया कर रहा हो ॥

( ) ऋजसूत्र–समभिरूढ और एवम्भूत नयों में यह अन्तरहै कि ऋजुसूत्रनय वस्तुकी एक समय मात्र पर्यायको अथवा आरम्भसे अन्त तक एक पर्यायका ग्राही है, सम्भिरूढनय नाना अर्थको उल्लंघन करके जो एक ही अर्थ में रूढ (प्रसिद्ध) हो उसका ग्राही है परन्तु एवम्भूतनय जो जिस समय जो क्रिया कर रहा हो उसको उस कालमें उस क्रिया ही के सबंध वा संयोग से प्रगट करता है जैसे गाय पर्याय लीजिये तो ऋजुसूत्रनय जन्म से लेकर मरण पर्यंत उसको गाय समझताहै। सम्भिरूढनय गाय शब्दके पृथिवी माता वचन इत्यादि अनेक अर्थोंको छोडकर जिसमें चलने को शक्ति हो ऐसे गाय (पशु) को लेताहै वह चलती हो वैठी हो सोती हो खारही हो सब अवस्था में सम्भिरूढनयकी अपेक्षा से वह गाय (पशु)ही है परन्तु एवम्भूतनय जिस समय वह चले फिरै उस समय गाय कहैगी सोते वैठी हुई को गाय न कहैगी चाहे उसमें चलने फिरनेकी शक्ति हो परन्तु उस समय चलती फिरती नहो तो एवम्भूत उसका गाय नहीं कहैगा ॥

श्री मत्पूज्यपादाचार्य विरचिता

सर्वार्थसिद्धिवृत्तिः

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित शब्दशः हिन्दीअनुवाद समेत

द्वितीय अध्याय से पंचम अध्याय पर्यंत

अनुवादक और संपादक— जगरूप सहाय एल० एल० बी० वकील हाईकोर्ट

भूतपूर्व मुंसिफ (यू० पी०) डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट एन्ड सबोर्डीनेट जज (सी० पी०)

प्रकाशक—लाला महेशचन्द्र जैन, श्री उमास्वामी आफिस, मैनगंज, एटा (संयुक्त प्रांत)

प्रथमवार १०००   मिती मगसिरशुक्ला अष्टमी, वीर संवत् २४५४, विक्रम संवत् १९८४   न्योछावर रुपये ८)



जगरूपसहाय जैन एल एल. बी.
अनुवादक और संपादक,
सर्वार्थसिद्धिवृत्तिः॥ वीर संवत् २४५४

इस ग्रन्थको

स्वर्गीया पूज्य माताजी,

श्रीमती डालकुंवर बाई

—अवतरण १९०२ उत्तरण विक्रम सम्वत् १९३३—

की,

आत्मशान्त्यर्थ स्मारकरूपमें

नतमस्तक जगरूपसहायने

समर्पण किया ॥ वीर सम्वत् २४५४ ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः॥ आह सम्यग्दर्शनस्य विषयभावेनोपदिष्टेषु जीवादिष्वादावुपन्यस्तस्य जीवस्य किं स्वतत्त्वमित्युच्यते—

॥ औपशमिकक्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्त्वमौदयिकपारिणामिकौ च ॥ १ ॥

अथ * द्वितीयः१ अध्यायः१ आह I सम्यग् दर्शनस्य६	=दूसरा अध्याय प्रारम्भ (अथ) है। (शिष्य) पूछता है कि सम्यग् दर्शनका
विषयभावेन ३ उपदिष्टेषु ७ जीवादिषु ७	=विषयभावकरि उपदेश किये गए जीवादिक तत्त्वों के
आदौ ७ उपन्यस्तस्य ६ जीवस्य ६ स्वतत्त्वम् १	=आदि में कहेगये (उपन्यस्तस्य)जीवका निजभाव (स्वतत्व)
किम् * इति * उच्यते T	=क्या है ऐसा (अग्रिमसूत्रमें) कहा जाता है कि,

औपशमिकक्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्त्वमौदयिकपारिणामिकौ च ॥ १ ॥

औपशमिकक्षायिकौ १ भावौ १ मिश्रः १ च *	=औपशमिकभाव, और क्षायिक भाव और क्षायोपशमिक (भाव)
जीवस्य६ स्वतत्वम्१ औदयिक पारिणामिकौ१ च *	=जीव के निज भाव वा निज स्वभाव हैं औदयिक तथा पारिणामिक भी है

अर्थात् जीव के औपशमिक और क्षायिक और मिश्र तथा औदयिक और पारिणामिक ये पांच भाव है। और ये पांचों ही भाव जीव के निजतत्व निजभाव है क्यों कि ये जीव में ही होते है? जैसे मलिन जल में निर्मली वा फिटकड़ी डालने से कीचड़ नीचे बैठ जाती है और ऊपर से जल निर्मल हो जाता है उसी प्रकार कर्मों के उपशम होने से (उदय न होने से) जीव के परिणाम जो शुद्ध हो जाते हैं उनको औपशमिक भाव कहते है। कर्मोंके सर्वथा नाश होने से जो आत्मा के शुद्धभाव होते हैं। उनको क्षायिक भाव कहते है। सर्वघाती कर्मों के उदयाभावीक्षय और उन्ही सर्वघातीस्पर्द्धकोंका सत्तामें उपशम होने तथा देशघाती कर्मोंके उदय होने से जो भाव होते हैं उनको मिश्र भाव अथवा क्षायोपशमिक भाव कहते हैं। द्रव्यक्षेत्र काल भावरूप निमित्तसे कर्म जो अपना रस (फल) देता है उसको उदय कहते हैं। उन कर्मों के उदय से जो आत्माकेभाव होते हैं उनको औदयिक भाव कहते हैं। और जिन भावो में कर्मों की उदय उपशम क्षयोपशम कुछ भी अपेक्षा नहीं है उन भावोंको पारिणामिक भाव कहते हैं

आत्मनि कर्मणः स्वशक्तेः कारणवशादनुद्भूतिरुपशमः। यथा कतकादिद्रव्यसम्बन्धादम्भसि पङ्कस्य उपशमः ॥ क्षयः आत्यन्तिकी निवृत्तिः ॥ यथातस्मिन्नेवाम्भसि शुचिभाजनान्तरसंक्रान्ते पङ्कस्यात्यन्ताभावः ॥ उभयात्मको मिश्रः। यथा तस्मिन्नेवाम्भसि कतकादिद्रव्यसम्बधात्पङ्कस्य क्षीणाक्षीणवृत्तिः ॥ द्रव्यादिनिमित्तवशात्कर्मणां फलप्राप्तिरुदयः॥ द्रव्यात्मलाभमात्रहेतुकःपरिणामः॥

पदच्छेद और विभकत्यर्थ सहित प्रथम सूत्रपर संस्कृत सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिंदी अनुवाद ॥

आत्मनि ७। कर्मणः ६।।। स्वशक्तेः ६॥ कारणवशात् ५। =आत्मा में कर्म की निज सामर्थ्य के निमित्त के वश से वा आश्रय से

अनुद्भूतिः १॥ उपशमः १। यथा * कतकादिद्रव्यसम्बन्धात् ५। =उदय न होना(सो)उपशम है। जैसे निर्मली आदिक वस्तु के संयोग से

अम्भसि ७।।। पङ्कस्य ६। उपशमः १। =जलमें कीचका शान्ति वा समता होना अर्थात् कीचड़ का नीचे बैठ जाना ऊपर से जल का निर्मल होना सो उपशम है

क्षयः १। आत्यन्तिकी १॥ निवृत्तिः १॥ =कर्मोंका अत्यंत नाश सो क्षय है (कर्मका सत्ता से उठजाना सो क्षय है)

यथा*तस्मिन् ७।।। एव*अम्भसि ७।।। शुचिभाजनान्तरसंक्रान्ते ७।।। =जैसे उसी जल को निर्मल अन्य पात्र में लेनेपर

पङ्कस्य ६। अत्यन्तअभावः १। उभयआत्मकः १। मिश्रः १। =कीचड़ का अत्यन्त अभावहोजाताहै। उपशम क्षयका मिलाहुआस्वरूप मिश्रहै

यथा* तस्मिन् ७।।। अम्भसि ७।।। कतकादिद्रव्यसंबन्धात् ५। =जैसे उसी जल में निर्मली आदि वस्तु के सयोग से

पङ्कस्य ६। क्षीण–अक्षीण वृत्तिः १॥ =कर्दम की क्षीण अक्षीण स्थिति हो जाती है अर्थात् कुछ कीचड़ पैंदे में बैठ जातीहै कुछ गदली रह जाती है। कुछ बाहर निकल जाती है

(तैसे क्षयोपशम है) भावार्थ कोदों एक जाति का धान्य विशेष है वह मादक पदार्थ है। जिस समय उसे जल से धो दिया जाता है उस समय धोने से कुछ मादकशक्तिके क्षीण हो जाने पर और कुछ के तदवस्थ रहने पर जिस प्रकार कोदो पदार्थ मिश्र मादक शक्ति का धारक कहा जाता है। उसी प्रकार कर्मो के क्षय करने वाले कारणों के उपस्थित होने पर कर्म की कुछ शक्ति के नष्ट हो जाने पर और कुछ के सत्ता में मौजूद रहने पर एव कुछ के उदय रहने पर जो आत्मा की (दही गुड़ के समान) मिली हुई भावों की अवस्था होती है उस अवस्था का नाम मिश्र है ॥

द्रव्यआदिनिमित्तवशात् ५। कर्मणाम् ६।।। फल प्राप्तिः १। =द्रव्य क्षेत्र काल भाव के कारण वश से कर्मो के रसका लाभ

उदयः१। द्रव्यात्म लाभमात्र-हेतुकः १। परिणामः १। =सोउदय है वस्तुकेनिजस्वरूप(आत्म)की प्राप्तिमात्रमेंनिमित्तकसोपरिणामहै

उपशमः प्रयोजनमस्येत्यौपशमिकः । एवं क्षायिकः, क्षायोपशमिकः, औदयिकः, पारिणामिकश्च ॥ त एते पञ्च भावा असाधारणा जीवस्य स्वतत्त्वमित्युच्यन्ते ॥ सम्यग्दर्शनस्य प्रकृतत्वात्तस्य त्रिषु विकल्पेषु औपशमिकमादौ लभ्यत इति तस्यादौ ग्रहणं क्रियते । तदनन्तरं क्षायिकग्रहणं तस्य प्रतियोगित्वात्

अर्थात् जिससे द्रव्य के निज का पावना होय सो पारिणामिक है।

उपशमः१ प्रयोजनम् १॥ अस्य६। इति*औपशमिकः१।=उपशम-है प्रयोजन जिसका ऐसा औपशमिक है।

एवम्*क्षायिकः१। क्षायोपशमिकः१। औदयिकः१। =उसी प्रकार क्षायिक, क्षायोपशमिक औदयिक

परिणामिकः१।च* =और पारिणामिक है अर्थात् इन सब में प्रयोजन अर्थ में इक् प्रत्यय है।

ते १। एते १। पञ्च १। भावाः१। असाधारणाः१।जीवस्य६। =ये पांचों भावअसाधारण जीवके अर्थात् जीव हीमें होतेहैं अन्यकिसीमेंनहींहोतेहैं

स्वतत्त्वम् १॥ इति * उच्यन्ते T =निज भाव है ऐसे कहेगये हैं।

सम्यग्दर्शनस्य ६॥ प्रकृतत्वात् ५॥ तस्य ६॥ त्रिषु ७। =सम्यग्दर्शन का प्रकरण वा अधिकार होने से तिससम्यग्दर्शन के तीन

विकल्पेषु ७। औपशमिकम् १॥ आदौ ७। लभ्यते T =भेदोंमें औपशमिक आदि में वा पहिले प्राप्त किया जाता है

इति तस्य ६॥ आदौ ७। ग्रहणम् १॥ क्रियते T =इस प्रकार तिस (औपशमिक) का सूत्र में प्रथम आदान(ग्रहण) किया गया है

अर्थात् अनादि मिथ्यादृष्टि जीव के प्रथम ही उपशम सम्यक्त्व होता है इस लिए सूत्र में पहिले वही कहा गया है

तदनन्तरम् १॥ क्षायिक ग्रहणम् १॥ तस्य ६॥ =तिस(औपशमिक)के अत्यन्त समीप क्षायिकका ग्रहणहै क्योंकि तिसऔपशमिककी

प्रतियोगित्वात् ५॥ =(निर्मल ताई में)प्रतियोगी है बराबरी होड़ वा स्पर्द्धा करने वाला क्षायिक है

भावार्थ मिथ्यात्व,सम्यङ् मिथ्यात्व और सम्यक प्रकृति मिथ्यात्व ये सम्यग्दर्शन की विरोधी प्रकृतियें हैं इन तीनों के सर्वथा नाश होने पर क्षायिक सम्यक्त्व होता है अतः क्षायिक सम्यक्त्व की विशुद्धता उपशम सम्यक्त्व की विशुद्धता से अधिक है इस लिए सूत्र में औपशमिक के पश्चात् क्षायिक का ग्रहण किया है।

(१) लभ् –डुलभ् भ्वादि प्रथम गण का सकर्मक आत्मने पदी धातु है कर्मणि प्रधान प्रयोग में यक् (=य) प्रत्यय जोड़ कर ते अन्य पुरुष एक वचन आत्म० वर्तमान काल के प्रत्यय ने से लभ्यतेबना है।

संसार्यपेक्षया द्रव्यतस्ततोऽसंख्येयगुणत्वाच्च । तत उत्तरं मिश्रग्रहणं तदुभयात्मकत्वात्ततोऽसंख्येय गुणत्वाच्च । तेषां सर्वेषामनन्तगुणत्वादौदयिकपारिणामिकग्रहणमन्तेक्रियते ।

संसार्यपेक्षया ३ द्रव्यतः * ततः* असंख्येय गुणत्वात् ३ च	=और संसारी जीव की विवक्षाकरि द्रव्य अपेक्षासे तिस औपशमिक-वाले जीव से (क्षायिक वालेजीव) असंख्यात गुणेभी हैं
ततः* उत्तरम् १ मिश्र ग्रहणम् १ तदुभयात्मकत्वात् १	=तिस(क्षायिक)सेपीछे (=उत्तरम्)मिश्रका ग्रहणहैवोक्षायोपशमिकाग्रहणहै क्योंकि उस (मिश्र) के दोनों (क्षायिक और उपशम) स्वरूप हैं
ततः * असंख्येयगुणत्वात् १ च *	=और उस(क्षायिक) से असंख्यात गुणें जीव भी हैं।
तेषां १ सर्वेषाम् १ अनन्तगुणत्वात् १	=तिन सब(औपशमिक क्षायिक, मिश्र) के अनन्त गुण (जीव) होने से
औदयिक-पारिणामिक-ग्रहणम् १ अन्ते१ क्रियते ।	=औदयिक पारिणामिक का ग्रहण अन्त में किया गया है

(१) उपशम सम्यक्त्व का काल अन्तर मुहूर्त मात्र है तिस मे जीव अल्प ही इकट्ठे होने पाते है और क्षायिक सम्यक्त्व का काल तेतीस सागर से कुछ अधिक है अर्थात् उपशम से क्षायिक काल असंख्यात गुणा है। तिस से उस मे जीवों की संख्या भी असंख्यात गुणी हुई। क्षायोपशमिक का काल छयासठ सागर है तिस से क्षायिक सम्यग् दृष्टियों से द्रव्य अपेक्षा से क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि असंख्यात गुणे हैं। स्मरण रहे कि क्षायिक सम्यग्दृष्टियों से क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि द्रव्य की अपेक्षा असंख्येय गुणे है भाव की अपेक्षा नहीं क्योंकि विशुद्धी की अधिकता से क्षायोपशमिक सम्यक्त्व की अपेक्षा क्षायिक सम्यक्त्व अनन्त गुणा माना है इस लिए भाव की अपेक्षा क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि क्षायिक सम्यग्दृष्टियों से असंख्यात गुणे नहीं माने जा सके। तथा क्षायोपशमिक सम्यक्त्व का सचय काल छयासठि सागर प्रमाण है और उस मे प्रथम समय से आदि लेकर समय समय काल की समाप्ति पर्यंत इकट्ठे होने वाले बहुत से क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि होते रहते है इस लिए यहां पर भी आवली के असंख्यातवें भाग प्रमाण गुणा कार मानने से क्षायिक सम्यग्दृष्टियों की अपेक्षा क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि उस गुणकार प्रमाण हैं। इस प्रकार क्षायिक की अपेक्षा क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टियों के अधिक होने से सूत्रमे क्षायिक के पीछे मिश्र शब्द का उल्लेख है। (प० जयचन्द वचनिका२२४)

अत द्वन्द्वनिर्देशः कर्तव्यः । औपशमिकक्षायिकमिश्रौदयिकपारिणामिका इति। तथा सति द्विश्चशब्दो न कर्तव्यो भवति ॥ नैवं शंक्यम् । अन्यगुणापेक्षया मिश्र इति प्रतीयेत । वाक्ये पुनः सति चशब्देन प्रकृतोभयानुकर्षः कृतो भवति ॥

अतः * द्वन्द्व निर्देशः १। कर्तव्यः १। औपशमिक-	=(प्रश्न) अतः द्वन्द्व समासका उच्चारण(=निर्देश)करना चाहिये। औपशमिक
क्षायिकमिश्रऔदयिकपारिणामिकाः १॥ इति *	=क्षायिकमिश्रऔदयिकपारिणामिका ऐसा (सूत्र) होता
तथा * सति १। द्विः १। च शब्दः १। न कर्तव्यः १। भवति T	=ऐसा होने पर दो 'च' शब्द न करने होते अर्थात् सूत्र में दो चकार न्यूनहोजाते
न एवं शंक्यम् १॥ — अन्य गुण-	=(उत्तर) एसी शंका न करो (औपशमिक और क्षायिकसे)अन्य (दो)भावोंकी
अपेक्षया ३॥ मिश्रः१। इति प्रतीयेत I	=अपेक्षासे मिश्र ऐसा निर्णय वा प्रतीति कियाजाय
	(यदि मिश्र शब्द के पश्चात् सूत्र में च शब्द न होता तो)
वाक्ये ७॥ पुन * सति ७॥ च * शब्देन ३।	=और "चशब्द" सहित सूत्र (=वाक्ये) होने पर (=सति)
प्रकृतः१। उभयानुकर्षः १। कृतः १। भवति T	=अधिकार किये गये वा विषयभूत दोनों(औपशमिक क्षायिक)का ग्रहणकियाहै

इस समस्तप्रश्नोत्तरकाभाव यहहै(प्रश्न)सूत्रकारने'औपशमिक क्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वातत्वमौदयिक पारिणामिकौ च' ऐसा पढा है परन्तु उतने लम्बे चोड़े सूत्रके स्थान पर 'औपशमिक क्षायिक मिश्रौदयिक पारिणामिकाः' ऐसा सूत्र वनाना ठीक था । ऐसे सूत्र के वनाने में दो जगह दो च शब्द कहने पड़े हैं वे भी न कहने पड़ते वड़ा भारी लाघव होता जोकि सूत्र कारो के मत में महान लाभ माना गया है इसलिए वैसा लम्बा चौड़ा सूत्र नही वनाना चाहिए (उत्तर) औपशमिक क्षायिकौ भावौ मिश्रश्चेत्यादि जैसा सूत्र कार ने सूत्र पढ़ा है उस में च शब्द से पहिले कहे गये औपशमिक और क्षायिक भावों का अनुकर्षण होता है और उस से औपशमिक और क्षायिक भावों की मिली हुई अवस्था मिश्रभाव लिया जाता है किंतु अब वैसा सूत्र न कह कर यदि औपशमिक क्षायिक मिश्रेत्यादि द्वंद्वगर्भित सूत्र किया जायगा तो च शब्द के अभाव में औपशमिक और क्षायिक का अनुकर्षण न होने पर औपशमिक और क्षायिक की मिली हुई अवस्था तो मिश्र भाव कही नहीं जायगी ॥

प्रतीयेत । प्रति उपसर्ग है । इ=अदादिगणका धातु जाना अर्थ में है प्रति+इ=प्रती, कर्मणि प्रधानका य जोड़ कर और विधिलिङ्ग अन्य पुरुष एक वचन आत्मने पदी ईत प्रत्यय जोड़ कर प्रती+य+ईत=प्रतीयेत रूप वना जिस का अर्थ " जानाजाय " है

नहि क्षायोपशमिकग्रहणमेव कर्तव्यमिति चेन्न। गौरवात्॥ मिश्रग्रहणं मध्ये क्रियते उभयापेक्षार्थम्। भव्यस्य औपशमिकक्षायिकौ भावौ। मिश्रः पुनरभव्यस्यापि भवति औदयिकपारिणामिकाभ्यां सह भव्यस्यापीति॥

किंतु उनसे भिन्न अन्य ही दो भावों की मिली हुई अवस्था मिश्र कही जायगी जोकि विरुद्ध है इसलिए द्वंद्वगर्भित सूत्र न कहकर जैसा सूत्रकार ने सूत्र बनाया है वही ठीक है और उसमें च शब्दसे औपशमिक और क्षायिक भावों की मिली हुई अवस्था ही से मिश्रभाव का अर्थ लिया जासकता है अन्य का नहीं।

तर्हि क्षायोपशमिकग्रहणम् १॥ एव कर्तव्यम् १॥ इति चेत् =(प्रश्न) तो (सूत्र में) क्षयोपशमिक (शब्द) का ग्रहण ही करना चाहिए ऐसी शंका है

न * =(उत्तर)(मिश्र शब्द के स्थान में क्षायोपशमिक शब्द का ग्रहण)(नहीं करना चाहिए)

गौरवात् ५॥ मिश्रग्रहणम् १॥ मध्ये ७। =क्योंकि (सूत्र) गौरव होजाता या बढ़जाता। मिश्र (शब्द) का आदान बीचमें

उभयापेक्षार्थम् १॥ क्रियते भव्यस्य ६। =दोनों (पहिले पिछले) की विवक्षाके लिए कियागया है। भव्य (जीव) के

औपशमिकक्षायिकौ १। भावौ १। =औपशमिक क्षायिक (दोनों) भाव हैं

मिश्रः १। पुनः * अभव्यस्य ६। अपि भवति T =बहुरि मिश्र (भाव) अभव्य के भी होता है

औदयिकपारिणामिकाभ्याम् ३। सह * भव्यस्य ६। =औदयिक पारिणामिक (भावों) सहित भव्य (जीव)

अपि इति =भी है (अभव्य भी है) तीनों वाक्यों की व्याख्या ऐसे हैं कि औपशमिक और क्षायिक

यह युग्म और औदयिक एवं पारिणामिक यह युगल, इन दोनों युगलोंके बीचमें मिश्र भाव पाठ रक्खा है ऐसा करनेसे इतना ही प्रयोजन समझ लेना चाहिए कि भव्यके औपशमिक आदि पांचों भाव होते हैं अर्थात् (१) औपशमिक सम्यक्त्व औपशमिक चारित्र (२) क्षायिक सम्यक्त्व और क्षायिक चारित्र (३) क्षायोपशमिक सम्यक्त्व और ज्ञान एवं क्षायोपशमिक चारित्र (४) औदयिक और (५) पारिणामिक ये पांचों भाव भव्यकेही होते हैं और अभव्यों के क्षायोपशमिक औदयिक और पारिणामिक ये तीन ही भाव होते हैं। औपशमिक और क्षायिक ये दो भाव अभव्यके नहीं होते हैं

भावापेक्षया तल्लिङ्गसंख्याप्रसङ्गः स्वतत्त्वस्येति चेन्न । उपात्तलिङ्गसंख्यात्वात् ॥ तद्भावस्तत्त्वम् । स्वं तत्त्वं स्वतत्त्वमिति ॥ अत्राह तस्यैकस्यात्मनो ये भावा औपशमिकादयस्ते किं भेदवन्त उताभेदा इति । अत्रोच्यते भेदवन्तः । यद्येवं, भेदा उच्यन्तामित्यत आह—

क्षायोपशमिक भावों में भी ज्ञान और दर्शन दो ही भाव होसकते हैं ज्ञान दर्शन से मिथ्या ज्ञान और मिथ्या दर्शन समझना चाहिये क्योंकि सम्यग्दर्शन के बिना सम्यगज्ञान आदि नहीं होते ॥

भावापेक्षया।॥ तत् ॥। लिङ्ग संख्या–प्रसङ्गः । =(प्रश्न)भाव(शब्द)की अपेक्षासे उस(भावशब्दके लिङ्ग और संख्या का संयोग

स्वतत्वस्य ॥। इति चेत्* =स्वतत्व (शब्द) के होता है ऐसी शंका है (=चेत्)

प्रश्न का भावार्थ यह है कि भावशब्द पुल्लिङ्ग है इसलिए स्वतत्व शब्द भी पुलिङ्ग चाहिए और भावों की गणना बहुत है इसलिए स्वतत्व शब्द के भी बहु वचन चाहिए, स्वतत्व शब्द नपुंसकलिङ्ग और एक वचन है सो न चाहिए

न*उपात्तलिङ्ग संख्यात्वात् ॥। =(उत्तर)नहीं होता॥क्योंकि (स्वतत्व शब्द के) गृहीतलिङ्ग संख्या है अर्थात् स्वतत्व शब्द की लिङ्ग और संख्या पलटती नहींहै यह भाववाची होनेसे एक वचन और नपुंसकलिङ्ग होता है ॥

तद्भावः।तत्वम् ॥। स्वम् ॥। तत्वम्॥।स्वतत्त्वम् ॥।इति=जिसका भाव सोतत्वहै । निजभाव(सो)स्वतत्व ऐसे (स्वतत्व शब्दकी व्युत्पत्तिहै)

अत्र*आहTतस्य। एकस्य। आत्मनः। =यहां (शिष्य)पूछता है (कि)उस एक चेतन के

ये । भावाः।औपशमिक आदयः।ते किम् भेदवन्तः=ये (पांच)भाव औपशमिक आदिक हैं ते भेद सहित हैं

उता*अभेदाः।इति*अत्र*उच्यतेTभेदवन्तः। =अथवा (=उता) भेद रहित हैं(उत्तर) यहां कहा जाता है कि भेद सहित हैं

यदि*एवम् भेदाः।उच्यताम्Tइति।अतः* आह T =(प्रश्न) जो ऐसे हैं (तो उनके) भेद कहा जाना चाहिये। अतः कहते हैं कि

॥ द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदा यथाक्रमम्[1] ॥२॥

द्वयादीनां संख्याशब्दानां कृतद्वन्द्वानां भेदशब्देन सह स्वपदार्थेऽन्यपदार्थे वा वृत्तिर्वेदितव्या ॥

द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदा यथाक्रमम् ॥२॥

=औपशमिकादीनां भावानां द्विनवाष्टादशैक विंशति त्रिभेदा यथाक्रमम् भवन्ति ॥२॥

पदच्छेद =औपशमिकादीनां भावानां द्वि–नव–अष्टादश–एकविंशति – त्रिभेदाः यथाक्रमम् भवन्ति

सूत्रार्थ =औपशमिकादीनाम् ६।१ भावानाम् ६।१ =औपशमिक क्षायिक मिश्र औदयिक पारिणामिक भावों के

द्विनव–अष्टादश–एकविंशति–त्रिभेदाः १।१ =दो, नव, अठारह इक्कीस और तीन भेद

यथाक्रमम् * भवन्ति T =अनुक्रम से होते हैं अर्थात् औपशमिक भाव दो प्रकार का है क्षायिक भाव नव प्रकार का है मिश्र भाव अठारह प्रकार का है औदयिक भाव इक्कीस प्रकार का है और पारिणामिक भाव तीन प्रकार का है

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित द्वितीय सूत्र पर संस्कृत सर्वार्थसिद्धिवृत्ति का शब्दशः हिन्दी अनुवाद

द्वयादीनाम् ६।३ संख्याशब्दानाम् ६।३ कृतद्वन्द्वानाम् ६।३ =दो आदिक गिनती शब्दों का बनाहुआ द्वन्द्व समास (कृतद्वन्द्वानांवृत्ति)

भेदशब्देन ३।१ सह * स्वपदार्थे ७।१ अन्यपदार्थे ७।१ वा * =और भेद शब्द के सहित(=सह) स्वपदार्थ में अथवा अन्य पदार्थ में

वृत्तिः १।१ वेदितव्या १।१ =वृत्ति जानना योग्य है भावार्थ दो नव अठारह आदि संख्याओं का द्वन्द्व समास और सूत्रमेंभेदशब्दके स्वपदार्थ वृत्ति वा अन्यपदार्थवृत्ति जानना

[1] इस सूत्र का दोनो श्वेताम्बर आम्नाय और दिगम्बर आम्नाय में पाठ और अर्थ एकसा है।

द्वौ च नव च अष्टादश च एकविंशतिश्च त्रयश्च द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रयस्त एव भेदा येषामिति वा वृत्तिर्द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदा इति ॥ यदा स्वपदार्थे वृत्तिस्तदा औपशमिकादीनां द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रयो भेदा इत्यभिसम्बन्धः क्रियते अर्थवशाद्विभक्तिपरिणाम इति ॥ यदाऽन्यपदार्थे वृत्तिस्तदा निर्दिष्टविभक्त्यन्ता एवाभिसम्बध्यन्ते। औपशमिकादयो भावा द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदा इति ॥ यथाक्रमवचनं यथासंख्यप्रतिपत्त्यर्थम् ॥ औपशमिको द्विभेदः। क्षायिको नवभेदः मिश्रोऽष्टादशभेदः। औदयिक एकविंशतिभेदः। पारिणामिकस्त्रिभेदः

द्वौ। च*नव। च*अष्टादश। च*एकविंशतिः॥ च	=बहुरि दो और नव तथा अठारह और इक्कीस
त्रयः।च*द्विनवअष्टादशैकविंशतित्रयः।	=और तीन दो–नव–अठारह इक्कीस और तीन(ये द्वन्द्ववृत्तिवाद्वन्द्वसमासहुआ)
ते। एवभेदाः। येषाम्। इति*वा*वृत्तिः॥	=तेही हैं भेद जिनके ऐसी (अन्यपदार्थवृत्ति हुई) अथवा
द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदाः। इति*	=दो–नव–अठारह-इकीस तीन भेद ऐसे हैं (येस्वपदार्थवृत्ति हुई)
यदा*स्वपदार्थे।वृत्तिः॥तदा*औपशमिकआदीनाम्।	=जब स्वपदार्थमें वृत्ति है तब औपशमिक आदिकों के
द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रयः।भेदाः।	=दो–नव–अठारह इकीस–तीन भेद हैं
इति अभिसम्बन्धः। क्रियते T	=ऐसा सम्बन्ध किया गया है (अर्थात् भेद शब्द संख्याही का सम्बन्धी हुआ और पांचों भावों का बहुवचन षष्ठीविभक्तिकरि कहना जो ये भेद पांच भावों के हैं
अर्थवशात्। विभक्ति परिणामः। इति*	=अर्थ के आधारसे वा प्रयोजन के आश्रय से विभक्ति का भिन्नपनावा परिणमन है
यदा*अन्यपदार्थे। वृत्तिः॥ तदा*निर्दिष्ट	=जब अन्यपदार्थ में वृत्ति है(जैसे ते ही हैं भेद जिनके)तब(सूत्रमें) कही हुई
विभक्त्यन्ताः। एवाभिसम्बध्यन्ते T	=अन्तवाली विभक्तिसमझीजाय है अर्थात् भावोंके वही विभक्तिरहीजोसूत्रमेंकही
औपशमिकादयः। भावाः। द्विनवाष्टादश–	=औपशमिक आदि भाव हैं दो–नव–अठारह
एकविंशतित्रिभेदाः। इति*यथाक्रमवचनम्॥	=इक्कीस तीन ऐसे(=इति)भेद हैं॥ (सूत्रमें)यथाक्रम वाक्य
यथासंख्यप्रतिपत्त्यर्थम्॥ औपशमिकः।	=संख्यानुसारकी प्राप्ति (=प्रतिपत्ति) के लिए है अर्थात् औपशमिक
द्विभेदः।क्षायिकः। नवभेदः।मिश्रः। अष्टादशभेदः।	=दो भेद रूप है क्षायिक नो भेद रूप है क्षायोपशमिक अठारह भेद रूप है
औदयिकः। एकविंशतिभेदः। पारिणामिकः। त्रिभेदः।	=औदयिक इक्कीस भेद रूप है पारिणामिक तीन भेद रूप है

इति ॥ यद्येवमौपशमिकस्य कौ द्वौ भेदावित्यत आह—

॥ सम्यक्त्वचारित्रे ॥३॥

व्याख्यातलक्षणे सम्यक्त्वचारित्रे ॥ औपशमिकत्वं कथमिति चेदुच्यते। चारित्रमोहो द्विविधः कषायवेदनीयो नोकषायवेदनीयश्चेति ॥ तत्र कषायवेदनीयस्य भेदा अनन्तानुबन्धिनः क्रोधमान-मायालोभाश्चत्वारः,

इति *	=ऐसे (यथासंख्य वा क्रमसे दो नव अठारह आदिक संख्यायें औपशमिक क्षायिक मिश्र आदिकों पर लगाये जाते हैं)
यदि * एवम् * औपशमिकस्य ६। कौ १। द्वौ १। भेदौ १।	=(प्रश्न) जो इस प्रकार है (तो) औपशमिकके कौनसे दो भेद हैं
इति * अतः * आह T	=इसलिये कहते हैं कि

(१) सम्यक्त्वचारित्रे ॥ ३ ॥

=सम्यक्त्व चारित्रे द्वावौपशमिकौ भावौ भवतः ॥३॥

सम्यक्त्वचारित्रे १॥।द्वौ औपशमिकौ१। भावौ १। भवतः T =सम्यक्त्व तथा चारित्र दो औपशमिक भावहैं-औपशमिक सम्यक्त्व औपशमिकचारित्रहैं

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित तृतीय सूत्रपर संस्कृत सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिन्दी अनुवाद

व्याख्यातलक्षणे १॥। सम्यक्त्वचारित्रे १॥।	=पूर्व जिन के स्वरूपकहे हैं वे सम्यक्त्व और चारित्र हैं
औपशमिकत्वम् १॥। कथम् * इति * चेत् * उच्यते T	=औपशमिकपना कैसे है ऐसा(=इति) संदेह(=चेत्)होनेपर कहागयाहै(=उच्यते) कि
चारित्रमोहः १। द्विविधः १। कषायवेदनीयः १।	=चारित्रमोह दो प्रकारका है कषायवेदनीय
नोकषायवेदनीयः १। च * इति *	=और नोकषायवेदनीय इस प्रकार है। (किंचित् कषाय=ईषत्कषाय)
तत्रकषायवेदनीयस्य ६। भेदाः१। अनन्तानुबन्धिनः १।	=तहां कषायवेदनीयके भेद अनन्तानुबन्धी
क्रोध मान-माया-लोभाः १। चत्वारः १।	=क्रोध-मान-माया-लोभ चार हैं ॥

(१) इस सूत्र का दोनो दिगम्बर और श्वताम्बर आम्नाया में पाठ और अर्थ एकसा है (२) आत्माको कषे वा क्लेशितरूप करे उसे कषाय कहते हैं (३) आत्मामें पहिले सम्यक्त्व पर्याय की प्रकटता होती है पीछे चारित्र पर्याय का उदय होता है इस लिए सम्यक्त्वकी प्रकटता चारित्र से पहिले होने के कारण सम्यक्त्व चारित्रे इस सूत्र में सम्यक्त्व शब्द का पहिले प्रयोग किया गया है ॥

दर्शनमोहस्य त्रयो भेदाः सम्यक्त्वं, मिथ्यात्वं, सम्यग्मिथ्यात्वमिति, आसां सप्तानां प्रकृतीनामुपशमा-दौपशमिकं सम्यक्त्वम् ॥ अनादिमिथ्यादृष्टेर्भव्यस्य कर्मोदयापादितकालुष्ये सति कुतस्तदुपशमः। काललब्ध्यादिनिमित्तत्वात् ॥ तत्र काललब्धिस्तावत् कर्माविष्ट आत्मा भव्यकालेऽर्द्धपुद्गलपरिवर्त्तना-ख्येऽवशिष्टे प्रथमसम्यक्त्वग्रहणस्य योग्यो भवति,

दर्शनमोहस्य ६। त्रयः १। भेदाः १। सम्यक्त्वम् १॥।	=दर्शनमोहनीयके तीन भेद सम्यग्दर्शन
मिथ्यात्वम् १॥। सम्यक् मिथ्यात्वम् (१) १॥। इति *	=मिथ्यादर्शन और सम्यङ्मिथ्यादर्शन ऐसे
आसाम् ६॥। सप्तानाम् ६॥। प्रकृतीनाम् ६॥। उपशमात् ५।	=इन सातप्रकृतियों के उपशम से
औपशमिकम् १॥। सम्यक्त्वम् १॥। अनादि मिथ्यादृष्टेः ६।	=औपशमिक सम्यग्दर्शन होता है (प्रश्न) अनादिमिथ्यादृष्टि
भव्यस्य ६। कर्म + उदय + आपादित + कालुष्ये ७॥। सति ७॥।	=भव्यजीवके कर्मके उद्रेककरि कलुषताहोतेसंते
कुतः * तद् + उपशमः १।	=क्यों कर (पूर्वोक्त सात प्रकृतियोंका) उसके उपशम होता है
काललब्धि–आदि निमित्तत्वात् ५॥।	=(उत्तर) काललब्धि आदिके कारण से
तत्र काललब्धिः १॥ तावत् *	=तहां प्रथम (=तावत्) काललब्धि
कर्म + आविष्टः १। आत्मा १। भव्यः १।	=कर्मकरि दवायागया भव्यजीव (=आत्मा) अर्थात् कर्मसहित भव्यजीव
काले ७। अर्द्धपुद्गलपरिवर्तनाख्ये ७। अवशिष्टे ७।	=संसारकालमें अर्द्धपुद्गल परिवर्तननाम (काल) अवशेष रहने पर
प्रथमसम्यक्त्वग्रहणस्य ६॥। योग्यः १। भवति T	=पहिले उपशम सम्यग्दर्शन के ग्रहणकरने योग्य होता है

(१) जिस कर्मके उदय से सम्यक्त्वगुणका मूल घात तो हो नहीं परन्तु चल मल अगाढ़ ये दोष उत्पन्न हो जाय वह सम्यक्प्रकृति है। जिस कर्मके उदयसे सम्यग्दर्शनका सर्वथा घात स्वरूप जीव के अतत्त्वश्रद्धान हो वह मिथ्यात्व प्रकृति है। और जिस कर्म के उदय से सम्यग्दर्शन के सर्वथा घात स्वरूप मिले हुए परिणाम हों जिनको कि न सम्यक्त्वरूप कहसके और न मिथ्यात्वरूप कहसकें वह सम्यक्मिथ्यात्व प्रकृति है यह मिश्र परिणाम भी वैभाविक भाव ही है ॥

नाधिके इति इयमेका काललब्धिः॥ अपरा कर्मस्थितिकाललब्धिः। उत्कृष्टस्थितिकेषु कर्मसु जघन्यस्थितिकेषु च प्रथमसम्यक्त्वलाभो न भवति॥क्व तर्हि भवति ?। अन्तः कोटीकोटी सागरोपमस्थितिकेषु कर्मसु बन्धमापद्यमानेषु विशुद्धपरिणामवशात्सत्कर्मसु च ततः संख्येयसागरोपमसहस्रोनायामन्तः कोटीकोटीसागरोपमस्थितौ स्थापितेषु प्रथमसम्यक्त्वयोग्यो भवति ॥

न*अधिके ७। इति* इयम् १।। एका १।। काललब्धिः१।। =न कि अधिक (संसार काल के अवशेष रहने) पर इस प्रकार एक काल लब्धि है

अपरा १।।कर्मस्थितिकाललब्धिः १।। =दूसरी कर्मस्थिति काललब्धि अर्थात् वह काल लब्धि जिसका लाभ कर्मोंकी विशेपस्थिति पर निर्भर है वह कर्म स्थिति आगे कहते हैं

उत्कृष्टस्थितिकेषु७।।। कर्मसु७।।। जघन्यस्थितिकेषु७।।।च* =उत्कर्षस्थितिवाले कर्मों में तथा (=च) जघन्यस्थिति वाले कर्मो में

प्रथमसम्यक्त्वलाभः १। न* भवति T =प्रथम उपशम सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नहीं होती है अर्थात् उत्कृष्ट स्थितिवाले वा जघन्य स्थितिवाले कर्मोंके विद्यमान रहते प्रथम सम्यक्त्वके ग्रहण की योग्यता नहीं होती।

क*तर्हि*भवति T अन्तःकोटीकोटीसागरोपमस्थितिकेषु७।।।=(प्रश्न) तो (प्रथम सम्यक्त्व की लब्धि, कहां होती है (एक) कोड़ी कोड़ी सागरोपमके भीतर २ (=अन्त) स्थितिलिये

कर्मसु ७।।। बन्धम् २। आपद्यमानेषु ७।।। =कर्मोंके बन्धभाव को प्राप्त होने पर (आपद्यमानेषु)

विशुद्धपरिणामवशात् ५। सत्कर्मसु ७।।।च*ततः * =और (वहां) निर्मल परिणाम के आश्रय से सत्तामें संचित कर्मोंकी स्थिति

संख्येयसागरोपमसहस्र+ऊनायाम् ७।। =संख्यातेहजारसागरोपमहीन

अन्तः कोटीकोटीसागरोपमस्थितौ ७।। स्थापितेषु ७।।। =अन्तः कोड़ाकोड़ी सागरोपमस्थितिमेंसे) रह जानेपर (स्थापितेषु)

प्रथमसम्यक्त्वयोग्यः १। भवति T =प्रथम सम्यक्त्व के (ग्रहण) योग्य (जीव) होता है

(भावार्थ) आयुकर्मके विना घुणाक्षरन्यायसे अंतः कोटिकोटिसागरप्रमाणकर्म

पूर्वोक्तानां सप्तानां प्रकृतीनामत्यन्तक्षयात्क्षायिकं सम्यक्त्वम् ॥ चारित्रमपि तथा ॥ यदि क्षायिकदानादिभावकृतमभयदानादि, सिद्धेष्वपि तत्प्रसङ्गः । नैष दोषः । शरीरनामतीर्थकरनामकर्मोदयाद्यपेक्षत्वात्तेषां तदभावे तदप्रसङ्गः ॥ कथं तर्हि तेषां सिद्धेषु वृत्तिः? । परमानन्तवीर्याव्याबाधसुखरूपेणैव तेषां तत्र वृत्तिः । केवलज्ञानरूपेणानन्तवीर्यवृत्तिवत् ॥

य उक्तः क्षायोपशमिको भावोऽष्टादशविकल्पस्तद्भेदनिरूपणार्थमाह—

पूर्वोक्तानाम् ६।। सप्तानाम् ६।।प्रकृतीनाम् ६।। अत्यन्तक्षयात्५।= पहिले कही हुई(मोहनीयकर्म की) सातप्रकृतियोंका अशेष नाशसे

क्षायिकम् १।। सम्यक्त्वम् १।।। चारित्रम् १।।। अपि*तथा* =क्षायिकसम्यग्दर्शनहोताहै तैसेही(चारित्रमोहकेअभावसे)क्षायिकचारित्रभीहै

यदि*क्षायिकदानादिभावकृतम् १।।। अभयदानादि १।।। =(प्रश्न)जो क्षायिक दानादिकभावकरि कियेहुए अभयदानादिक हैं।,

सिद्धेषु ७। अपि-तत्-प्रसङ्गः१। न एषः१। दोषः१। =तो सिद्धोंमें भी उन(अभयदानादिक)का संयोग है (उत्तर)यह दूषण नही है

शरीरनामतीर्थंकरनामकर्म उदयादिअपेक्षत्वात् ५। =(अरहतनिके)शरीरनामानामकर्म तीर्थकरनामकर्म के उद्रेकविवक्षा से है

तेषाम् ६। तद्*अभावे ७। तत्-अप्रसङ्गः १। =तिन(सिद्धनि)के उन(कर्मो)के अभावहोनेपर उन(अभयदानादिक)काप्रसङ्गनहीं

कथम्*तर्हि*तेषाम् ६। सिद्धेषु ७। वृत्तिः १।। =(प्रश्न)तो(=तर्हि)कैसे तिन(अभयदानादिक भावों की)सिद्धोंमें प्रवृत्तिवास्थितिहै

परम*अनन्तवीर्य-अव्याबाध-सुखरूपेण ३।।। =(उत्तर)उत्कृष्ट अनन्तवीर्य्य अव्याबाध आनंदस्वरूपसे

एव*तेषाम् ६। तत्र*वृत्तिः १।। =तिन(अभयदानादिक भावों की)तहां(सिद्धो में) प्रवृत्ति है ।

केवलज्ञानरूपेण ३।।। अनन्तवीर्य्य वृत्तिवत्* =केवलज्ञानरूपकरि अनन्तवीर्य्य प्रवृतिके सदृश(सिद्धनिके अभयदानादिकभावहैं

२।१।उक्तः१।क्षायोपशमिकः१। भावः१।अष्टादशविकल्पः१। =जो कहा क्षायोपशमिक भाव अठारह प्रकार

तद्*भेद-निरूपणार्थम् १। आहT =तिसके भेद कहने के लिए(आचार्य अग्रिमसूत्रमें)कहते है कि

कवलाहारक्रियाणां केवलिनां यतःशरीरबलाधानहेतवोऽन्यमनुजासाधारणाः परमशुभाःसूक्ष्मा अनन्ताः प्रतिसमयं पुद्गलाः सम्बन्धमुपयान्ति स क्षायिको लाभः॥ कृत्स्नस्य भोगान्तरायस्यात्यन्ताभावादाविर्भूतोऽतिशयवाननन्तो भोगः क्षायिकः। यतः कुसुमवृष्ट्यादयो विशेषाःप्रादुर्भवन्ति॥ निरवशेषस्योपभोगान्तरायस्य प्रलयात्प्रादुर्भूतोऽनन्त उपभोगः क्षायिकः। यतः सिंहासनचामरच्छत्रत्रयादयः विभूतयः॥ वीर्यान्तरायस्य कर्मणोऽत्यन्तक्षयादाविर्भूतमनन्तवीर्यं क्षायिकम्॥

कवल+आहारक्रियाणाम् ६। केवलिनाम् ६।	=कवलाहार की क्रिया जिनके ऐसे केवली भगवानके (=केवलिनाम्)
यतः शरीरबलाधानहेतवः १। अन्य मनुज+असाधारणाः१।	=जिससे (यतः) शरीर केवलाधानके कारण अन्य मनुष्योंमें न रहने वाली
परमशुभाः १। सूक्ष्माः १। अनन्ताः १। प्रतिसमय *	=अत्यन्त शुभ सूक्ष्म समय समय प्रति अनन्ते
पुद्गलाः १। सम्बन्धम् २। उपयान्ति T	=पुद्गल के परमाणु (पुद्गलाः) सम्बन्ध को प्राप्त होते हैं
सः१।क्षायिकः१। लाभः१।कृत्स्नस्य ६। भोगान्तरास्य ६।	=सो क्षायिक लाभ है। समस्त भोगान्तराय नामा कर्म के
अत्यन्त–अभावात् ५।आविर्भूतः१।अतिशयवान्१। अनन्त–	=अशेषक्षय से प्रगटरूप अतिशयवान अनन्त
भोगः १। क्षायिकः १। यतः–कुसुमवृष्टि–आदयः १।	=क्षायिक भोग है अर्थात् जिससे (=यतः)पुष्प वृष्टि आदिक
विशेषाः१।प्रादुर्भवन्ति T निरवशेषस्य ६। उपभोग–	=विशेष प्रगट होते हैं वेसमस्त उपभोग
अन्तरायस्य६।प्रलयात् ५। प्रादुर्भूतः१। अनन्तः१।	=अन्तराय नामा कर्म के नाशसे प्रकाशरूप अनन्त
उपभोगः१। क्षायिकः१।यतः* सिंहासन–चामर–	=क्षायिक उपभोग है अर्थात् जिससे सिंहासन चामर
छत्रत्रय–आदयः१।विभूतयः१।वीर्यान्तरायस्य६।कर्मणः६।	=छत्रत्रय आदिक विभूतियें (प्रगट)होती हैं। (और)वीर्यान्तराय नामा कर्म के
अत्यन्त क्षयात्५।आविर्भूतम्१।अनन्तवीर्यम्१।क्षायिकम्१।	=अत्यन्त नाशसे क्षायिक अनन्त वीर्य प्रगट हुआ है।

॥ ज्ञानदर्शनदानलाभभोगोपभोगवीर्याणि च ॥ ४ ॥ [१]

चशब्दः सम्यक्त्वचारित्रानुकर्षणार्थः॥ ज्ञानावरणस्यात्यन्तक्षयात्केवलज्ञानंक्षायिकं तथा केवलदर्शनम् दानान्तरायस्यात्यन्तक्षयादनन्तप्राणिगणानुग्रहकरं क्षायिकमभयदानम्॥लाभान्तरायस्याशेषस्य निरासात्परित्यक्त—

ज्ञानदर्शनदानलाभभोगोपभोगवीर्याणि च ॥ ४॥

=ज्ञानदर्शनदानलाभभोगोपभोगवीर्याणि सम्यक्त्वचारित्रे च

=ज्ञान-दर्शन-दान-लाभ-भोग-उपभोग-वीर्याणि, सम्यक्त्व-चारित्रे च ते एते क्षायिकभावस्य नव भेदाः भवन्ति

ज्ञान-दर्शन- =क्षायिक ज्ञान अर्थात् केवलज्ञान, क्षायिकदर्शन अर्थात् केवलदर्शन,

दान-लाभ-भोग-उपभोग-वीर्याणि १॥ च =क्षायिकदान, क्षायिकलाभ, क्षायिकभोग, क्षायिकउपभोग, क्षायिकवीर्य और

सम्यक्त्व-चारित्रे१॥ ते१,एते१,क्षायिकभावस्य ६। =क्षायिक सम्यक्त्व, क्षायिक चारित्र, ये क्षायिकभावके

नव भेदाः१। भवन्ति । =नव भेद होते हैं। ये ही नव जीवके निज क्षायिक भाव हैं।

चशब्दः१। सम्यक्त्वचारित्र-अनुकर्षण-अर्थः१। =(सूत्रमें) चशब्द सम्यग्दर्शन तथा (सम्यक्) चारित्र के ग्रहणके लिये है॥

ज्ञान-आवरणस्य६॥अत्यन्त-क्षयात्५। केवलज्ञानम् १॥=ज्ञानावरणीयकर्म के अतिशय नाशसे केवलज्ञान

क्षायिकम् १॥ तथा , केवलदर्शनम् १॥ =क्षायिक होता है दर्शनावरणीयकर्मके (अत्यन्तनाशसे)केवलदर्शन(क्षायिक होताहै)

दान+अंतरायस्य६।अत्यन्त-क्षयात्५।अनन्तप्राणिगण=दान अन्तराय के अतिशय नाश (होने) से अनन्तजीवोंका

अनुग्रहकरम् १॥क्षायिकम्१॥ अभयदानम् १॥ =उपकार करनेवाला क्षायिक अभयदान होता है।

लाभ+अन्तरायस्य६।अवशेषस्य६।निरासात्५।परित्यक्त=लाभ अंतराय नामा कर्मके सम्पूर्ण अभावसे किसी प्रकार से नहीहै(परित्यक्त)

(१) श्वेताम्बर और दिगम्बर दानों सम्प्रदायों में इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है॥

पूर्वोक्तानां सप्तानां प्रकृतीनामत्यन्तक्षयात्क्षायिकं सम्यक्त्वम् ॥ चारित्रमपि तथा ॥ यदि क्षायिकदानादिभावकृतमभयदानादि, सिद्धेष्वपि तत्प्रसङ्गः । नैष दोषः । शरीरनामतीर्थकरनामकर्मोदयाद्यपेक्षत्वात्तेषां तदभावे तदप्रसङ्गः ॥ कथं तर्हि तेषां सिद्धेषु वृत्तिः? । परमानन्तवीर्याव्याबाधसुखरूपेणैव तेषां तत्र वृत्तिः । केवलज्ञानरूपेणानन्तवीर्यवृत्तिवत् ॥

य उक्तः क्षायोपशमिको भावोऽष्टादशविकल्पस्तद्भेदनिरूपणार्थमाह—

पूर्वोक्तानाम् ३॥ सप्तानाम् ६॥ प्रकृतीनाम् ६॥ अत्यन्तक्षयात् ५॥	= पहिले कही हुई(मोहनीयकर्म की) सातप्रकृतियोंका अशेष नाशसे
क्षायिकम् १॥ सम्यक्त्वम् १॥ चारित्रम् १॥ अपि*तथा*	=क्षायिकसम्यग्दर्शन होता है तैसेही(चारित्रमोहकेअभावसे)क्षायिकचारित्रभीहै
यदि*क्षायिकदानादिभावकृतम् १॥ अभयदानादि १॥	=(प्रश्न)जो क्षायिक दानादिकभावकरि कियेहुए अभयदानादिक है।,
सिद्धेषु ७॥ अपि-तत्-प्रसङ्गः १॥ न एषः १॥ दोषः १॥	=तो सिद्धोंमें भी उन(अभयदानादिक)का संयोग है (उत्तर)यह दूषण नहीं है
शरीरनामतीर्थकरनामकर्म उदयादिअपेक्षत्वात् ५॥	=(अरहंतनिके)शरीरनामानामकर्म तीर्थकरनामकर्म के उद्रेकविवक्षा से है
तेषाम् ६॥ तद्*अभावे ७॥ तत्-अप्रसङ्गः १॥	=तिन(सिद्धनि)के उन(कर्मों)के अभावहोनेपर उन(अभयदानादिक)काप्रसङ्ग नहीं
कथम्*तर्हि*तेषाम् ६॥ सिद्धेषु ७॥ वृत्तिः १॥	=(प्रश्न)तो(=तर्हि)कैसे तिन(अभयदानादिक भावोंकी)सिद्धोंमें प्रवृत्तिवास्थितिहै
परम*अनन्तवीर्य-अव्याबाध-सुखरूपेण ३॥	=(उत्तर)उत्कृष्ट अनन्तवीर्य्य अव्याबाध आनंदस्वरूपसे
एव*तेषाम् ६॥ तत्र*वृत्तिः १॥	=तिन(अभयदानादिक भावों की)तहां (सिद्धो में) प्रवृत्ति है।
केवलज्ञानरूपेण ३॥ अनन्तवीर्य्य वृत्तिवत्*	=केवलज्ञानरूपकरि अनन्तवीर्य्य प्रवृत्तिके सदृश(सिद्धनिके अभयदानादिकभावहै
य:१॥उक्तः१॥क्षायोपशमिकः१॥ भावः१॥अष्टादशविकल्पः१॥	=जो कहा क्षायोपशमिक भाव अठारह प्रकार
तद्*भेद-निरूपणार्थम् १॥ आह	=तिसके भेद कहने के लिए(आचार्य अग्रिमसूत्रमें)कहते हैं कि

ज्ञानाज्ञानदर्शनलब्धयश्चतुस्त्रित्रिपञ्चभेदाः सम्यक्त्वचारित्रसँयमासँयमाश्च ॥ ५ ॥

ज्ञानाज्ञानदर्शनलब्धयश्चतुस्त्रित्रिपंचभेदाःसम्यक्त्वचारित्रसंयमासंयमाश्च ॥५॥

ज्ञानाज्ञानदर्शनलब्धयश्चतुस्त्रित्रिपंचभेदाःयथाक्रमम् सम्यक्त्वचारित्र संयमासंयमाः(इत्येतेऽष्टादश क्षायोपशमिक भावाःचभवन्ति)॥५॥

=ज्ञा० अज्ञा० दर्श० लब्धयश्चतुस्त्रित्रिपंचभेदाःयथाक्रमम् सम्यक्त्वचारित्र संयमासंयमाः(इत्येतेऽष्टादश क्षायोपशमिक भावाःचभवन्ति)॥५॥

पदच्छेदः—ज्ञान—अज्ञान—दर्शन—लब्धयःचतुःत्रि—त्रि—पच भेदाः(यथाक्रमम्- इसअध्यायकेदूसरेसूत्रसे लियागयाहै)सम्यक्त्व—चारित्र-संयमा-

संयमाः इति एते अष्टादश क्षायोपशमिकाः भावाः भवन्ति च ॥५॥

ज्ञान—अज्ञान—दर्शन—लब्धयः॥चतुर्-त्रि—त्रि—पञ्च—भेदाः॥ =ज्ञान, कुज्ञान, दर्शन, लब्धि, चार,तीन,तीन और पांच प्रकार

यथाक्रमम्॥सम्यक्त्व,—चारित्र— =अनुक्रमसे हैं क्षायोपशमिक सम्यक्त्व, क्षायोपशमिक चारित्र (सराग चारित्र)

संयमासंयमाः॥इति॥एते॥अष्टादश॥च॥ =संयमासंयम (देशव्रत) ऐसे ये अठारह भी (=च—जीवके)

क्षायोपशमिकाः ॥भावाः॥भवन्ति । =क्षायोपशमिक भाव हैं अर्थात् मतिज्ञान,श्रुतज्ञान,अवधिज्ञान,

मनः पर्यय ज्ञान ये चार ज्ञान कुमति कुश्रुत,कुअवधि ये तीन कुज्ञान,चक्षुः दर्शन,अचक्षुः दर्शन, अवधिदर्शन ये तीन दर्शन, और क्षायोपशमिकदान,क्षायोपशमिकलाभ,क्षायोपशमिकभोग,क्षायोपशमिकउपभोग,क्षायोपशमिक—वीर्य ये पांचप्रकार लब्धि, क्षायोपशमिक सम्यक्त्व, क्षायोपशमिकचारित्र, क्षायोपशमिक संयमासंयम ये सर्व अठारह भाव भी आत्मा में कर्मों के क्षयोपशम से होते हैं ॥ स्मरण रहै कि सूत्रमें च शब्द समुचयके लिये है इस लिये जितने क्षायोपशमिक भावों का सूत्र में उल्लेखनहीं किया गया है इस च शब्दसे उनका समुचय करलेना चाहिये ॥ अतः हमने च शब्द का अनुवाद'भी' ऐसा किया है ॥

(१) श्वेताम्बर सम्प्रदायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें क्षायोपशमिक भावोंके विषयमें जो यह पांचवा सूत्र है उसमें हमारे यहां के पांचवां सूत्रसे 'ज्ञानाज्ञान दर्शन' वाक्य के लगता ही "दानादि" वाक्य अधिक है शेष पाठ सूत्रका दोनों आम्नायोंमें एक है। 'दानादि' शब्द के अधिक होने पर भी अर्थ भेद दोनों सम्प्रदायो में नहीं है क्योंकि हमारे यहां "लब्धयः" शब्दका अर्थ क्षायोपशमिकदानलब्धि, क्षायोपशमिक लाभलब्धि क्षायोपशमिक भोगलब्धि, क्षायोपशमिक उपभोगलब्धि, क्षायोपशमिक वीर्यलब्धि किया है और श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य० में दानादि लब्धयः वाक्यका यही तात्पर्य लिया है जो हमारे यहां लब्धयः शब्दका। अतः दोनों में अर्थ भेद कुछ भी नहीं रहा। दानादि शब्द के न होने से सूत्र लघु हो जाता है ॥

चत्वारश्च त्रयश्च त्रयश्च पञ्च च चतुस्त्रित्रिपञ्चभेदा यासां ताश्चतुस्त्रित्रिपञ्चभेदाः ॥ यथाक्रममित्यनुवर्तते । तेनाभिसम्बन्धाच्चतुरादिभिर्ज्ञानादीन्यभिसम्बन्ध्यन्ते । चत्वारि ज्ञानानि, त्रीण्यज्ञानानि, त्रीणि दर्शनानि, पञ्च लब्धय इति ॥ सर्वघातिस्पर्द्धकानामुदयक्षयात्तेषामेव सदुपशमाद्देशघातिस्पर्द्धकानामुदये क्षायोपशमिको भावो भवति ॥ तत्र ज्ञानादीनां वृत्तिःस्वावरणान्तरायक्षयोपशमाद्व्याख्यातव्या ॥ सम्यक्त्वग्रहणेन वेदकसम्यक्त्वं गृह्यते । अनन्तानुबन्धिकषायचतुष्टयस्य

चत्वारः १।३ च त्रयः १।३ च त्रयः १।३ च पञ्च १।३ च चतुः-त्रि =चार तथा तीन और तीन बहुरि पांचका द्वन्द्व समास चार तीन
त्रि-पञ्चभेदाः १।३ यासाम् ६।३ ताः १।३ चतुः त्रि-त्रि-पञ्चभेदाः=तीन पांच हुआ । ये हैं भेद जिनके ते चार तीन तीन पांच भेद हुये ॥
यथाक्रमम्*इति* अनुवर्तते । तेन ३। =यथाक्रमम् ऐसी अनुवृत्ति (दूसरे सूत्रसे)निकलती है तिस(यथाक्रमअनुवृत्ति)के
अभिसम्बन्धात् ५। चतुरादिभिः ३।३ =संयोग से चार तीन तीन पाँच(ये सख्याओं के साथ)
ज्ञानादीनि १।३ अभिसम्बन्ध्यन्ते । =ज्ञान अज्ञान दर्शन लब्धि यथासंख्य लगाई जाती हैं
चत्वारि १।३ ज्ञानानि १।३ =अर्थात् चार ज्ञान हैं(मति-श्रुत-अवधि-मनःपर्यय)
त्रीणि १।३ अज्ञानानि १।३ त्रीणि १।३ दर्शनानि १।३ =तीन अज्ञान(कुमति,कुश्रुति,कुअवधि) हैं तीन (चक्षुः,अचक्षुः, अवधि) दर्शन हैं,
पञ्च १।३ लब्धयः १।३ इति* =पाँच (दान, लाभ, भोग, उपभोग वीर्य)लब्धि (ऐसे सब पन्द्रह हैं)
सर्वघाति स्पर्द्धकानाम् ६।३ उदयक्षयात् ५।१ तेषाम् ६।३ एव* =सर्वघाति स्पर्द्धकनि के उदयाभावी क्षयसे(=विना रसदीये खिरजाना)औरतिनकेही
सत्*उपशमात् ५।१ देशघाति-स्पर्द्धकानाम् ६।३ उदये ७।१ =सत्तारूप उपशमसे और देशघाति स्पर्द्धकनि के उदय होने पर
क्षायोपशमिकः १।१ भावः १।१ भवति । तत्र* =क्षायोपशमिक भाव होता है तहां
ज्ञानादीनाम् ६।३ वृत्तिः १।१ स्व-आवरण-अन्तराय- =ज्ञानादिक की प्रवृत्ति अपने अपने आवरण तथा अन्तराय-
क्षयोपशमात् ५।१ व्याख्यातव्या १।१ ॥सम्यक्त्व ग्रहणेन ३।१ =क्षयोपशमसे वर्णन की गई है वा कही गई है(सूत्रमें) सम्यक्त्व लानेसे
वेदकसम्यक्त्वम् १।१ गृह्यते । =वेदकसम्यक्त्व(=क्षायोपशमिकसम्यक्त्व)ग्रहण किया गया है
अनन्तानुबन्धिकषायचतुष्टयस्य ६।१ =अनन्तानुबन्धी कषायके चतुष्क (क्रोध-मान-माया-लोभ) का

मिथ्यात्वसम्यङ्मिथ्यात्वयोश्चोदयक्षयात्सदुपशमाच्च सम्यक्त्वस्य देशघातिस्पर्द्धकस्योदये तत्त्वार्थश्रद्धानं क्षायोपशमिकं सम्यक्त्वम् ॥ अनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानद्वादशकषायोदयक्षयात्सदुपशमाच्च सञ्ज्वलनकषायचतुष्टयान्यतमदेशघातिस्पर्द्धकोदये नोकषायनवकस्य यथासम्भवोदये च निवृत्तिपरिणामः आत्मनः क्षायोपशमिकं चारित्रम् ॥ अनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यानकषायाष्टकोदयक्षयात्सदुपशमाच्च प्रत्याख्यानकषायोदये सञ्ज्वलनकषायदेशघातिस्पर्द्धकोदयेनोकषायनवकस्य यथासम्भवोदये च विरताविरतपरिणामः क्षायोपशमिकः संयमासंयम इत्याख्यायते ॥

मिथ्यात्वसम्यङ्मिथ्यात्वयोः ६॥॥च* उदयक्षयात् ५। =और मिथ्यात्व सम्यग्मिथ्यात्वोंके उदयक्षयसे
सत्*उपशमात् ५। च* सम्यक्त्वस्य ६॥॥ =तथा सत्तारूप उपशमसे और सम्यक्त्व प्रकृतिके
देशघातिस्पर्द्धकस्य ६। उदये ७। तत्त्वार्थश्रद्धानम् १॥॥ =देशघाति स्पर्द्धकका उदय होनेपर (जो)तत्वार्थ श्रद्धान (होता है)
क्षायोपशमिकं १॥॥सम्यक्त्वम् १॥॥अनन्तानुबन्धि—अप्रत्याख्यान=(वो)क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन है॥ बहुरिअनन्तानुबन्धी अप्रत्याख्यान
प्रत्याख्यानद्वादशकषाय—उदयक्षयात् ५। =प्रत्याख्यान बारह कषायोंका उदयाभावी क्षयसे और इनही बारह कषायोंका
सत्*उपशमात् ५। च*संज्वलन कषायचतुष्टयअन्यतम— =सत्तारूप उपशमसे और संज्वलन कषायके चतुष्क में से किसी एक कषायके
देशघाति-स्पर्द्धक उदये ७। च*नो कषाय नवकस्य ६॥॥ =देशघाति स्पर्द्धनिका उदय होने पर बहुरि नवईषत्कषायोंके
यथासम्भव—उदये ७। च* निवृत्तिपरिणामः १। आत्मनः ६। =यथासम्भव उदय होनेपर(जो)आत्मा का त्यागरूप परिणाम(है सो)
क्षायोपशमिकं १॥॥ चारित्रम् १॥॥ अनन्तानुबन्धि- =क्षायोपशमिक चारित्र है (और) अनन्तानुबंधी
अप्रत्याख्यानकषाय—अष्टक—उदयक्षयात् ५। =अप्रत्याख्यान कषायोंके अष्टकके उदयाभावीक्षयसे(=विना रस दिये खिरना)
सत्*उपशमात् ५। च*प्रत्याख्यानकषाय—उदये ७। =सत्तारूप उपशमसे और प्रत्याख्यान कषायके उदय होने पर
संज्वलनकषाय देशघातिस्पर्द्धक उदये ७।नोकषायनवकस्य ६।=(और)संज्वलन कषायके देशघातिस्पर्द्धकके उदय होनेपर व नोकषायकेनवकको
यथा सम्भव उदये ७। च*विरत—अविरत—परिणामः १। =यथासम्भव उदय होने पर (आत्मा के) विरता विरत परिणाम (होय है सो)
क्षायोपशमिकः १। संयमासयमः १। इति*आख्यायते I =क्षायोपशमिक संयमासंयम है ऐसा वर्णन किया गया है

य एकविंशतिविकल्प औदयिको भाव उद्दिष्टस्तस्य भेदसंज्ञासङ्कीर्तनार्थमिदमुच्यते ॥
गतिकषायलिङ्गमिथ्यादर्शनाज्ञानासंयतासिद्धलेश्याश्चतुश्चतुस्त्र्येकैकैकैकषड्भेदाः ॥ ६ ॥

यः ॥ एकविंशतिविकल्पः ॥ औदयिकः ॥ भावः ॥ उद्दिष्टः ॥ =जो इक्कीस भेदरूप औदयिक भाव कहा है
तस्य ॥ भेदसंज्ञासङ्कीर्तन–अर्थम् ॥ इदम् ॥ उच्यते ॥ =तिसके भेद और नाम कहनेके लिए यह कहा जाता है कि

गतिकषायलिङ्गमिथ्यादर्शनाज्ञानासंयतासिद्धलेश्याश्चतुश्चतुस्त्र्येकैकैकैकषड्भेदाः ॥ ६ ॥

=गति कषायलिङ्गमिथ्यादर्शनाज्ञानासंयतासिद्धलेश्याश्चतुश्चतुस्त्र्येकैकैकैकषड् भेदाः यथाक्रमम् इत्येते एकविंशतिः औदयिक भावाः भवन्ति ॥

सूत्रार्थः–गति–कषाय–लिङ्ग–मिथ्यादर्शन–अज्ञान– =गति, कषाय, [illegible], मिथ्या दर्शन, अज्ञान,
असंयत–असिद्ध–लेश्याः ॥ चतुः–चतुः–त्रि–एक– =असंयम असिद्धत्व तथा लेश्या चार, चार, तीन तथा एक
एक–एक–एक–षड्–भेदाः ॥ यथाक्रमम् इति एताः ॥ =एक, एक, एक और छः प्रकार (–भेदाः) क्रमसे इस प्रकार ये
एकविंशतिः ॥ औदयिक भावाः ॥ भवन्ति =इक्कीस औदयिक भाव होते हैं अर्थात् मनुष्यगति, देवगति
नरकगति, और तिर्यंचगति ये चार गति, क्रोध, मान, माया, लोभ,

ये चार कषाय, स्त्रीवेद पुंवेद, नपुंसक वेद, ये तीन लिङ्ग, मिथ्यादर्शन, अज्ञान, असंयम, असिद्धत्व, कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म, शुक्ल ये छः लेश्या। असिद्धत्व ये भाव समस्त आठों कर्मों के उदय से होते हैं ॥

(१) श्वेताम्बर आम्नाय के तत्त्वार्थसूत्र [illegible] है हमारे यहां पाठ में असिद्ध है शेष पाठ एक है। हमारे यहां असिद्धका अर्थ असिद्धत्व लिया है अतः अर्थ एक है (२) आत्मा को कर्म [illegible] करता है ॥ (३) कषायोदयसे अनुरञ्जित योगों की प्रवृत्तिका नाम लेश्या है ॥ (४) स्त्री आदि वेदों के उदयसे स्त्रीको पुरुषके साथ पुरुषको स्त्रीके साथ और नपुंसक को स्त्री और पुरुष दोनों के साथ रमण करनेकी जो इच्छा हो उसका नाम लिंग है। यह लिंग दो प्रकारका है एक द्रव्यलिंग दूसरा भाव लिंग। नाम कर्म के उदयसे होनेवाले शरीर रचना विशेषका नाम द्रव्य लिंग है यह पुद्गलका परिणाम है और यहां पर आत्माके परिणामों का प्रकरण चल रहा है इसलिये यहां सूत्रमें लिंग शब्दका उल्लेख किया गया है उसका अर्थ द्रव्य लिंग नहीं लिया जा सकता किन्तु आत्मा का परिणाम स्वरूप भावलिंग है। यह भाव लिंग स्त्री पुरुष और नपुंसक तीनों का आपसमें रमणकरनेकी इच्छा रूप है और जो कषायरूप चारित्र मोह [illegible] उदयसे एवं स्त्रीवेद पुरुषवेद और नपुंसक वेदके उदयसे उसकी प्रकटता होती है इसलिए भावलिंग औदयिक भाव है

यथाक्रममित्यनुवर्तते, तेनाभिसम्बन्धात् । गतिश्चतुर्भेदा नरकगतिस्तिर्यग्गतिर्मनुष्यगतिर्देवगतिरिति ॥ तत्र नरकगतिनामकर्मोदयान्नारको भावो भवतीति नरकगतिरौदयिकी । एवमितरत्रापि ॥ कषायश्चतुर्भेदः, क्रोधो मानो माया लोभइति ॥ तत्र क्रोधनिर्वर्तनस्य कर्मण उदयात्क्रोध औदयिकः । एवमितरत्रापि ॥ लिङ्गं त्रिभेदं, स्त्रीवेदः पुंवेदो नपुंसकवेद इति ॥ स्त्रीवेदकर्मण उदयात्स्त्रीवेद औदयिकः । एवमितरत्रापि ॥ मिथ्यादर्शनमेकभेदं,

वृत्त्यनुवादः—यथाक्रमम् १॥इति* अनुवर्तते १ =(यथाक्रमम्)ऐसी अनुवृत्ति(इस अध्यायके दूसरे सूत्रसे)आती है ॥
तेन३। अभिसम्बन्धात् ५। गतिः१॥ चतुर्*भेदाः१। =तिस(अनुवृत्ति)द्वारा संयोगसे गति चार प्रकार है ॥
नरकगतिः१॥तिर्यग्गतिः१॥मनुष्यगतिः१॥देवगतिः१॥=नरकगति–तिर्यंचगति–नरगति–देवगति
इति*तत्र नरकगतिनामकर्म उदयात् ५नारकः१। =ऐसे है तहां नरकगतिनामा नामकर्मके उदयसे नरकका
भावः१।भवति Iइति नरकगति–औदयिकी १॥एवम्*= भाव होता है ऐसे नरकगति नाम औदयिक भाव है
इतरत्र*अपि*कषायः१।चतुर्–भेदः१। =ऐसे अन्यत्रभी हैं (तिर्यंचगति इत्यादि)। कषाय चार भेद रूप है
क्रोधः१। मानः१। मायाः१। लोभः१। इति* =क्रोध–मान–माया–लोभ–इस प्रकार हैं
तत्र*क्रोधनिर्वर्तनस्य ६॥कर्मणः६॥ उदयात्५। =तहां क्रोध सम्पादन कर्मके उदयसे
क्रोधः१। औदयिकः१।एवम्*इतरत्र*अपि* =क्रोध औदयिक भाव है इस प्रकार अन्यत्र भी है(अर्थात् मान माया लोभ)
लिङ्गम्त्रिभेदम्१॥स्त्रीवेदः१।पुंवेदः१।नपुंसकवेदः१इति=लिङ्ग तीनभेद स्त्रीवेद पुंवेद नपुंसकवेद इस प्रकार हैं
स्त्रीवेदकर्मणः६॥ उदयात् ५।स्त्रीवेदः१। औदयिकः१=स्त्रीवेद कर्मके उद्रेक से नारीवेद औदयिक भाव है
एवम्*इतरत्र*अपि* =ऐसे अन्यत्र भी हैं (अर्थात् पुरुषवेद और नपुंसक वेद कर्मों के उदयसे क्रमानुसार पुरुष वेद और नपुंसक वेद औदयिक भाव हैं)
मिथ्यादर्शनम् १॥एकभेदम् १॥ =मिथ्यादर्शन एक प्रकार है ॥

मिथ्यादर्शनकर्मण उदयात्तत्त्वार्थाश्रद्धानपरिणामो मिथ्यादर्शनमौदयिकम् ॥ ज्ञानावरणकर्मण-उदयात्पदार्थानवबोधो भवति तदज्ञानमौदयिकम् ॥ चारित्रमोहस्य सर्वघातिस्पर्द्धकस्योदयादसँयत औदयिकः ॥ कर्मोदयसामान्यापेक्षोऽसिद्ध औदयिकः ॥ लेश्या द्विविधा, द्रव्यलेश्या भावलेश्या चेति ॥ जीवभावाधिकाराद्द्रव्यलेश्या नाधिकृता। भावलेश्या कषायोदयरञ्जिता योगप्रवृत्तिरिति कृत्वा औदयिकीत्युच्यते॥ सा षड्विधा कृष्णलेश्या, नीललेश्या कापोतलेश्या, तेजोलेश्या पद्मलेश्या,शुक्ललेश्या चेति ॥ ननुच उपशान्तकषाये क्षीणकषाये

मिथ्यादर्शनकर्मणः॥ उदयात् । =मिथ्यादर्शन कर्मके उदयसे (अर्थात् मिथ्यात्वनामा मोहनीयकी प्रकृति उदयसे
तत्त्वार्थ–अश्रद्धान–परिणामः॥मिथ्यादर्शनम् ॥ =तत्त्वोंके स्वरूपका श्रद्धानरूप परिणाम न होना सो मिथ्यादर्शन
औदयिकम्॥ ज्ञानावरणकर्मणः उदयात्॥पदार्थानाम्॥=औदयिक भाव है। ज्ञानावरणनामा कर्मके उद्रेकसे पदार्थका
अनवबोधः॥ भवति। तद्॥अज्ञानम्॥औदयिकः॥=ज्ञान नहीं होने पाता है वह अज्ञाननामा औदयिक भाव है
चारित्रमोहस्य। सर्वघाति–स्पर्द्धकस्य। उदयात् । =चारित्रमोहके सर्वघातिक स्पर्द्धकनिके उद्रेकसे
असंयतः। औदयिकः॥कर्म–उदय–सामान्य– =असंयम(होय है वह)औदयिक भाव है(बहुरि) सामान्य कर्मनिके उदयकी
अपेक्षः॥असिद्धः। औदयिकः॥ =अपेक्षारूप असिद्धत्व औदयिक भाव है
लेश्या॥द्विविधा॥द्रव्यलेश्या॥भावलेश्या॥चइति॥=लेश्या दो प्रकार है द्रव्यलेश्या और भाव लेश्या
जीवभाव॥अधिकारात्,।द्रव्यलेश्या॥न॥अधिकृता॥=जीवके भावके प्रकरण(होने)से द्रव्यलेश्या अधिकृत नहीं है वा विषयभूत नहीं है
अर्थात् द्रव्यलेश्याका अधिकार वा प्रकरण नहीं है इसकारण भाव लेश्याग्रहणकी
भावलेश्या॥कषायउदयरञ्जिता॥योगप्रवृत्तिः॥इतिकृत्वा=भावलेश्या कषायकेउदयकरिरञ्जितयोगनिकीप्रवृत्ति है इसप्रकार(प्रवृत्ति) करके
औदयिकी॥इति॥उच्यते। सा षड्विधा॥ कृष्णलेश्या॥=औदयिकी कहलाती है सो छःप्रकार की है(अर्थात्)कृष्णलेश्या
नीललेश्या॥कापोतलेश्या॥तेजोलेश्या॥पद्मलेश्या,॥=नीललेश्या–कापोतलेश्या–पीतलेश्या–पद्मलेश्या
शुक्ललेश्या॥चइतिननुचउपशान्तकषाये। क्षीणकषाये॥ =औरशुक्ललेश्या॥(प्रश्न)॥उपशान्तकषायऔर क्षीणकषाय गुणस्थानोंमें

सयोगकेवलिनि च शुक्ललेश्याऽस्तीत्यागमः(१) तत्र कषायानुरञ्जनाभावादौदयिकत्वं नोपपद्यते॥ नैषदोषः। पूर्वभावप्रज्ञापननयापेक्षया याऽसौ योगप्रवृत्तिः कषायानुरञ्जिता सैवेत्युपचारादौदयिकीत्युच्यते ।

सयोग केवलिनि ३। च*शुक्ललेश्या १।। अस्ति T इति* =और सयोग केवली (तेरहवां गुणस्थानवर्ती) मे शुक्ललेश्याहै । ऐसा

(२) आगमः १। तत्र* कषाय–अनुरजन—अभावात् ५। =शास्त्रका वचन है। (उपरोक्त गुणस्थान मे) कषायमें लिप्तपनाके न होनेसे

औदयिकत्वम् १।। न*उपपद्यते T न*एषः १। दोषः १। =औदयिकपना नही पाया जाता है (=उत्तर) यह दूषण नहीं है

(३) पूर्वभावप्रज्ञापननयापेक्षया ३।। या असौ १।। योगप्रवृत्तिः १।।=(यहां) पहिले भाव जतावने की विवक्षाकरि जो यह योगप्रवृत्ति

कषाय अनुरञ्जिता १।। सा १।। एव* इति* =कषायों करि अनुरञ्जित (पहिले वा पूर्वे) थी वो(=सा) ही(=एव)इसप्रकार(इति)

उपचारात् ५। औदयिकी १।। इति उच्यते T =उपचार से औदयिक (लेश्या) कही जाती है यहां ऐसा भावार्थ जानना

कि उपरोक्त गुणस्थानोमे कषायनिका अभाव होते भी शुक्ल लेश्या कही है वह पूर्व भावों की अपेक्षा से कही है पहिले कषायनकरि संयुक्त योग थे तहां समस्त कषायनिकातो इन तीनो गुणस्थानों में अभाव हुआ परन्तु योग ग्यारहवां और बारहवां गुण स्थान में वही रहे और तेरवें मे ७ योग रहे इसलिए उपचार करि औदयिक लेश्या कही है जैसे कसूम करि रंगा हुआ वस्त्र धोने पर भी कसम्मल कहलाता है तैसे ही कषायों के दूर होने पर भी लेश्या कहलाती है ॥

---

(१) जोगपउत्ती लेस्सा कसाय उदयाणु रंजिया होइ =योगप्रवृत्तिलेश्या कषायोदयानुरंजिता भवति

कसाय–उदयाणु–रंजिया १।। जोग पउत्ती १।। लेस्सा १।। होइ =कषायके उदयसे अनुरक्त जो योग प्रवृत्ति सो लेश्या है ।

(२) अयदोत्ति छ लेस्साओ सुहतियलेस्साहु देसविरदतिये । तत्तो सुक्का लेस्सा अजोगिठाण अलेस्स तु ॥

असयत * इति पड् १।। लेश्याः १।। शुभत्रयलेश्या १।। हि* देशविरत त्रये ३। । तत शुक्ला १।। लेश्या १।। अयोगिस्थानम् १।।। अलेश्य १।।। तु* ॥

=असयत चौथे गुण स्थान तक छहले श्या है। पीत–पद्म–शुक्ल ये शुभ लेश्या देशविरत, प्रमत्तविरत,अप्रमत्त विरत, तीन गुण स्थानोंमे हैं अप्रमत्त से तेरह सयोगी तक शुक्ला है अयोगी लेश्या रहितहै (३) नैगमनयका एक पूर्वभाव प्रज्ञापन भेद माना है और जो बात पहिले थी किंतु वर्तमान मे नहीं है उस का वर्तमान मे होना मान लेना यह उस नयका विषय है। यद्यपि उपर्युक्त तीनो गुण स्थानोंमें योगो की प्रवृति कषायोंसे अनुरजित नही है तथापि पूर्व भाव प्रज्ञापननयकीअपेक्षा जो पहिले योगो की प्रवृत्ति कषायों से अनुरजित थी वह अब भी है ऐसा उपचार से मान लिया जाताहै इस रीति से उपशान्त कषाय,क्षीण कषाय, और सयोग केवली गुण स्थानों में होने वाली शुक्ल लेश्यामे भी जब लेश्या का लक्षण घटजाता है तब कोई दोष नही । चौदहवे अयोग केवली गुण स्थान में लेश्या का अभाव है क्योंकि वहां पर योगो की प्रवृत्ति नही है ॥

तदभावादयोगकेवल्यलेश्य इति निश्रीयते॥ यः पारिणामिको भावस्त्रिभेद उक्तस्तद्भेदस्वरूपप्रतिपादनार्थमाह—

॥ जीवभव्याभव्यत्वानि च ॥ ७ ॥

जीवत्वं भव्यत्वमभव्यत्वमिति त्रयो भावाः परिणामिका

तद्-अभावात्‡। अयोगकेवली ‡।	=(और)उस (योग)के न होने से अयोग केवली (चौदहवां गुणस्थानवर्त्ती)
अलेश्यः‡इति*निश्रीयते यः‡।पारिणामिकःभावः	=लेश्या रहित है निश्चयकीजिए है जो पारिणामिक भाव
त्रिभेदः‡।उक्त ‡ तद-भेदस्वरूपप्रतिपादनअर्थम्‡।।आह T	=तीन प्रकार कहा है उसके भेद और स्वरूप के लाभके अर्थ कहते है कि

॥ जीवभव्याभव्यत्वानि च ॥ ७ ॥

सूत्रार्थः—जीवभव्याभव्यत्वानि ‡।।। च*	=जीवत्व भव्यत्व अभव्यत्व भी(च) पारिणामिक भाव जीवके हैं अर्थात्,ये तीन भाव भी अन्य द्रव्यसे असाधारण जीवके पारिणामिक भावहैं जहा कर्म की अपेक्षा नहीं द्रव्य का आत्म स्वरूप ही, आत्म परिणाम ही जिसको निमित्त हो सो पारिणामिक भाव है
जीवत्वम् ‡।।। भव्यत्वम् ‡।।। अभव्यत्वम् ‡।।।	=जीवपना वा चेतनपना भव्यपना अभव्यपना
इति*त्रयः ‡। भावाः‡। पारिणामिकाः‡।	=इस प्रकार तीन भाव पारिणामिक है

जीवभव्याभव्यत्वादीनिच (सभाष्य० अध्याय २ सूत्र, ७) दोनो पाठाके मिलानेसे जान पडता है कि इस सातवा सूत्रमें हमारे यहांके सूत्रसे "आदि" शब्द अधिक है परंतु इस पर भी दोनों आम्नायों में अर्थ भेद नहीं है क्योंकि सभाष्य० के पाठ में आदि शब्दकरि जीवके सामान्य वा साधारण पारिणामिक भावोंका जसे अस्तित्व-वस्तुत्व-द्रव्यत्व-प्रमेयत्व आदि (देखो टिपणी अध्याय १० सूत्र ३) का ग्रहण किया है हमारे यहां जीवके साधारण पारिणामिक भावोंका ग्रहण च शब्द करि किया है ॥ असाधारण पारिणामिक भाव वा असामान्य पारिणामिक भाव अथवा विशेष पारिणामिक भाव जीव के वे हैं जो केवल जीव में हीं पाए जावें अन्य किसी द्रव्य में न पाये जावें और वे केवल तीन ही जीवत्व, भव्यत्व, अभव्यत्व है अधिक नहीं हैं। ये तीनों भाव अनादिकाल सिद्ध हैं और साधारण पारिणामिकभाव वा सामान्य पारिणामिक भाव अथवा विशेष रहित पारिणामिक भाव वो हैं जो जीव में होते है और अचेतन अन्यद्रव्य जैसे धर्म द्रव्य अधर्म द्रव्य इत्यादिक में भी होते हैं ये समस्त पारिणामिक गुण अनेक हैं और अनादिकाल सिद्ध हैं ॥

अन्यद्रव्यासाधारणा आत्मनो वेदितव्याः ॥ कुतः पुनरेषां पारिणामिकत्वम्। कर्मोदयोपशमक्षयक्षयोपशमानपेक्षित्वात् ॥ जीवत्वं चैतन्यमित्यर्थः । सम्यग्दर्शनादिभावेन भविष्यतीति भव्यः । तद्विपरीतोऽभव्यः । त एते त्रयो भावा जीवस्य पारिणामिकाः ॥ ननु चास्तित्वनित्यत्वप्रदेशत्वादयोऽपि भावाः पारिणामिकाः सन्ति तेषामिह ग्रहणं कर्तव्यम्। न कर्तव्यम्। कृतमेव । कथं चेच्चशब्देन समुच्चितत्वात् ॥ यद्येवं, त्रय इति संख्या विरुध्यते। न विरुध्यते।

अन्यद्रव्य–असाधारणा।आत्मनः।वेदितव्याः। =अन्यद्रव्यसे असाधारण वा भिन्नद्रव्यसे असमान आत्माको जानना चाहिए
कुतः पुनः एषाम्। पारिणामिकत्वम् ॥ =बहुरि इन(तीनों भावों)के कहांसे पारिणामिकपना है(इन तीनों भावोंमें)
कर्मोदय–उपशम–क्षय–क्षयोपशम–अपेक्षितत्वात् ॥ =कर्मका उदय उपशम क्षय क्षयोपशम की विवक्षा नहीं है
जीवत्वं॥चैतन्य॥इति अर्थः सम्यग्दर्शनादि–भावेन। =(तहां)जीवत्व चैतन्य है ऐसा आशय है। सम्यग्दर्शनादिक भावकरि
भविष्यति। इति भव्यः।तद–विपरीतः।अभव्यः। =होयगा अर्थात् परिणमेंगा ऐसा भव्य है उसके विरुद्ध अभव्य है
अर्थात् सम्यग्दर्शनादिक जिसके न होवेंगे वो अभव्य है
ते। एते।त्रयः।भावाः।जीवस्य।पारिणामिकाः। =ते इतने तीन भाव जीवके पारिणामिक हैं
ननु च अस्तित्वनित्यत्वप्रदेशत्वादयः। अपि * =(प्रश्न)अस्तित्व नित्यत्व प्रदेशत्व आदिक भी
भावाः।पारिणामिकाः।सन्ति। तेषाम्। इह =भाव पारिणामिक हैं तिनका इस जगह में(=इह) अर्थात् इस सूत्रमें
ग्रहणम्॥कर्तव्यम्॥ न * कर्तव्यम्॥ =ग्रहण करना योग्य है। (तिन दशभावोंका इससूत्रमें) ग्रहण करना योग्य नहीं
कृतम्॥ एव * =(इससूत्रमें अस्तित्व नित्यत्व आदिक दशभावोंका ग्रहण) किया भी=(एव) है
कथम् चेत् *च*शब्देन। =सो(चेत्)कैसे वा किसप्रकार(=कथम्) किया है। (सूत्रमे) चशब्दके
समुच्चितत्वात्॥यदि*एवम्*त्रयः।इति*संख्या॥ =समुच्चितहोनेसे (लानेसे) ।(प्रश्न) यदि ऐसा है तो तीन ऐसी गिन्ती
विरुद्धयते। न * विरुद्धयते। =विरोधी जाय है (उत्तर) (उपरोक्त तीनकी संख्या) नहीं विरोधी जाय है

(१) अत्रासाधारणवचनं–वक्ष्यमाणास्तित्वादि साधारणपारिणामिकभावापेक्षम्
अत्र * असाधारण–वचनम्॥ वक्ष्यमाण– =यहां (संस्कृत सर्वार्थसिद्धि वृत्तिमें) असाधारण वाक्य (=शब्द) कहेजानेवाले
अस्तित्व–आदि–साधारण–पारिणामिक–भाव–अपेक्षम् =अस्तित्व आदिक (दश) साधारण वा समान पारिणामिक भावों की अपेक्षा है ॥

असाधारणा जीवस्य भावाः पारिणामिकास्त्रय एव ॥ अस्तित्वादयः पुनर्जीवाजीवविषयत्वात्साधारणा इति चशब्देन पृथग्गृह्यन्ते ॥ आह औपशमिकादिभावानुपपत्तिरमूर्तत्वादात्मनः । कर्मबन्धापेक्षा हि ते भावाः । न चामूर्तेः कर्मणां बन्धो युज्यत इति ॥ तन्न, अनेकान्तात् ॥

असाधारणाः ३।जीवस्य६। भावाः १।	=(क्योंकि) असमान, वा जो औरमेंनपाएजावें सो जीवके भाव
पारिणामिकाः १। त्रय १।एव*अस्तित्वादयः १।पुनर्*	=पारिणामिक तीन ही हैं। बहुरि (=पुनर्) अस्तित्व, आदिक (दशभाव)
जीव—अजीव-विषयत्वात् ५।। साधारणाः १।	=चेतन और जड़ विषैं होनेसे साधारण हैं (अर्थात्जीवमेंऔर अजीवमेंभीपाएजाते हैं)
इति*चशब्देन३।पृथक्*गृह्यन्ते।आह।	=इसप्रकार चशब्दकरि न्यारे ग्रहणकियेगये हैं (शिष्य)प्रश्नकरता है कि
औपशमिकआदिभावअनुपपत्तिः१।।अमूर्तत्वात्आत्मनः	=औपशमिक आदिभावोंकी चेतनके अमूर्तीक होने(के कारण)सेसिद्धिनहींहोतीहै
कर्मबन्ध—अपेक्षा १।। हि*	=क्योंकि(=हि) कर्मबन्धकी अपेक्षारूप
ते१।भावाः१। न*च*अमूर्तेः६।।	=ते(औपशमिक आदि)भाव हैं। बहुरि(=च) नहीं है अमूर्तीकके
कर्मणाम् ६।।बन्धः१।युज्यते। इति*तद्	=कर्मोंका बन्धन युक्त वा उचित (उत्तर) वह(आत्मा)
न*अनेकान्तात् ५।	=अनेकान्त(नयकी अपेक्षा) से(प्रत्येक अवस्थामें)अमूर्तीक नहीं है

अस्तित्व वस्तुत्व द्रव्यत्व प्रमेयत्वमगुरुलघुत्व नित्यप्रदेशत्व मूर्तत्वममूर्तत्व चेतनत्वमचेतनत्व चैते दशभावाः ॥

(१) जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यका कभी नाश न हो, उसको अस्तित्व गुण कहते हैं ॥२॥ जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यमें अर्थक्रिया हो उस को वस्तुत्व गुण कहते हैं जैसे—घडेकी अर्थक्रिया जल धारण है ॥३॥ जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्य सर्वदा एकसा न रहे और जिसकी पर्यायें (अवस्थाएं) सदा पलटती रहें सो द्रव्यत्व है ॥४॥ जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्य किसी न किसी के ज्ञानका विषय हो उसको–प्रमेयत्व गुण कहते हैं ॥५॥ जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यकी द्रव्यता थिर रहे अर्थात् एक द्रव्य दूसरे द्रव्यरूप न परिणमें और एक गुण दूसरे गुणरूप न परिणमें तथा एक द्रव्यके अनेक वा अनन्त गुण बिखर कर जुदे २ न हो जावें उसको अगुरुलघु गुण कहते हैं। ॥६॥ जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यका कुछ न कुछ आकार अवश्य हो उस को प्रदेशत्व गुण कहते हैं ॥

(७) मूर्तत्व=आकारता (८) अमूर्तत्व=निराकारता वा अमूर्तपना—(९) चेतनत्वम्=चेतनता=(१०) अचेतनत्वम्=अचेतनता अथवा जडता ॥

नायमेकान्तःअमूर्तिरेवात्मेति। कर्मबन्धपर्यायापेक्षया तदावेशात्स्यान्मूर्तः। शुद्धस्वरूपापेक्षया स्यादमूर्तः॥ यद्येवं कर्मबन्धावेशादस्यैकत्वे सत्यविवेकःप्राप्नोति। नैष दोषः। बन्धं प्रत्येकत्वे(ऽविवेके) सत्यपि लक्षणभेदादस्य नानात्वमवसीयते॥ उक्तं च-बन्धपडि एयत्तं लक्खणदो हवइ तस्स णाणत्तं। तह्मा अमुत्तिभावोऽणेयंतो होइ जीवस्स॥ १॥ इति॥ यद्येवं तदेव लक्षणमुच्यतां, येन नानात्वमवसीयत। इत्यत आह—

न*अयम् ३।एकान्तः३।अमूर्तिः३।एव*आत्मा३।इति* =यह(=अयम्)एकान्त नहीं है कि चेतन अमूर्तीक ही (=एव) है
कर्म-बन्धपर्याय-अपेक्षया३।तद्-आवेशात्५। =कर्म बन्धनरूप पर्यायकी विवक्षाकरि उस (कर्म बन्धन) के प्रवेशहोनेसे
स्यात् मूर्तः३।शुद्ध स्वरूप-अपेक्षया३।स्यात्। अमूर्तः३। =कथंचित् मूर्तीक है (और) शुद्ध स्वरुपकी विवक्षाकरि कथंचित् (स्यात्)अमूर्तीक है
यदि*एवम्*कर्म बन्ध-आवेशात्५।अस्य६। =(प्रश्न)जो इस प्रकार है तो कर्म वन्धनके बन्धनसे उस (आतमा)के
एकत्वे७।सति७।अविवेकः३।प्राप्नोति I नएषः३।दोषः३। =एकपना होनेपर अज्ञानपना प्राप्ति होता है (उत्तर) यह दूषण नहीं है
बन्धम् २।प्रति*एकत्वे७। (अविवेके७।)सति७।अपि* =कर्म बन्धन पर्यायज्ञान अपेक्षासे एकपना(=एकत्वे)अर्थात् अविवेकपना होनेपर भी
लक्षण-भेदात्५।अस्य६।नानात्वम्१।अवसीयते I =लक्षण भेदसे उस(चेतन)के अनेकपना निश्चय किया जाता है
उक्तम्१।च*बन्धं२।पडि*(-बन्ध२।प्रति*) =और कहा भी है। बन्धकी अपेक्षासे
एयत्तं१।लक्खणदो ५। (एकत्वम्१।लक्षणतः*) =(जीव और कर्मके) एकत्व वा एकता है और लक्षण (भेद) से
हवइ I तस्स ६।णाणत्तम् १।(भवति तस्य नानात्वम्) =तिस(जीव)के अनेकपना है
तह्मा*अमुत्तिभावो १।(तस्मात्*अमूर्तिभावः१।) =तिस कारणसे (तस्यात्-तह्मा)अमूर्तीकभाव
अणेयंतो१।होइ I जीवस्स६।(अनेकान्तः भवति जीवस्य)=अनेकान्त (नय)से जीवके होय है अर्थात् जीवके अमूर्तीक भाव सिद्ध होता है
इति* =इस प्रकारसे सात सूत्रोंकरि जीवके पांच भाव वर्णन किये।
यदि*एवम्* =(प्रश्न)जो इसप्रकार है अर्थात् बन्धप्रति (जीव और कर्मके)एकत्वपना है तो
तद्१।एव*लक्षणम्१।उच्यताम् I येन३।नानात्वम्१।=वही(-तद्एव) लक्षण कहेजाने योग्य है कि जिस(लक्षण)द्वारा अनेकपना
अवसीयते I इति*अतः*आह I =निश्चय किया जाता है इसलिए(आचार्यनिम्न सूत्रमें) कहते हैं कि

॥ उपयोगो लक्षणम् ॥ ८ ॥

उभयनिमित्तवशादुत्पद्यमानश्चैतन्यानुविधायी परिणाम उपयोगः ॥ तेन बन्धं प्रत्येकत्वे सत्यप्यात्मा लक्ष्यते । सुवर्णरजतयोर्बन्धं प्रत्येकत्वे सत्यपि वर्णादिभेदवत् ॥ तद्भेददर्शनार्थमाह

(४) (४) (१) (२)

सूत्रम्-उपयोगो लक्षणम् ॥ ८ ॥ =उपयोगः (जीवस्य) लक्षणम् (भवति)

सूत्रार्थः— उपयोगः१। =चैतन्यकेसाथ रहने वाले आत्माके परिणाम का नाम उपयोग है। (वहउपयोग)

जीवस्य१।लक्षणम् १।।।भवति । =जीवका लक्षण है अर्थात् बाह्य अभ्यंतर दोनों प्रकारके कारणोंका यथासंभव सन्निधान रहनेपर चैतन्यगुणके साथरहनेवाला जोकोई आत्माका परिणाम है उसका नाम उपयोग है

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस आठवे सूत्रपर संस्कृत सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिन्दी अनुवाद

उभय-निमित्तवशात् ५। उत्पद्यमानः१। =दोनों(बाह्य आभ्यन्तर) कारणोंके आश्रयसे (चैतन्यके) उपजा

चैतन्य-अनुविधायी१।परिणामः१। उपयोगः१। =जुड़ाहुआ चैतन्य(ही)का परिणाम(सो) उपयोग है

तेन३।बन्धम्२।प्रति*एकत्वे७।।। सति७।।।अपि*आत्मा१। =तिस(लक्षण)करि बन्ध अपेक्षा(जीवऔर कर्म में) एकताहोनेपर भी चैतन्य

लक्ष्यते। सुवर्णरजतयोः६।बन्धम्२।प्रति एकत्वे७।।।सति७।।। =जुदालखाजाता है॥ जैसे सोना चांदीके पिंड(बन्ध)से(=प्रति)एकपन होनेपर

अपि*वर्णादिभेदवत्*तद्भेददर्शन-अर्थम्२।।।आह। =भी(पीत-शुक्ल)रूपादिक भेदवत् है॥ उसके भेद दिखानेके लिये कहते हैं कि

(१) इस सूत्रमें इस दूसरे अध्यायके प्रथम सूत्रसे जीवस्य शब्दकी अनुवृत्ति आती है। (२) व्यतिकीर्णवस्तुव्यावृत्तिहेतुर्लक्षणमुच्यते व्यतिकीर्णवस्तु-व्यावृत्तिहेतु १। =परस्पर मिलेहुये पदार्थोंमें जो उनके भेद-ज्ञान करानेमें हेतु है वा पहचान करानेवाला कारण है लक्षणम् १।।।उच्यते। =सोलक्षण कहा जाताहै भावार्थ परस्पर मिली हुई वस्तुओंमेंसे किसीएकवस्तुको भिन्न करनेमें जो कारण हो उसका नाम लक्षण है। जिस प्रकार अग्नि उष्ण है यहां पर पदार्थ समूहसे अग्निको जुदा करनेवाला उष्णत्वहै अतः वह लक्षण है (३) इस सूत्रका पाठ और अर्थ श्वेताम्बर और दिगम्बर आम्नायोंमें एकसा है

(४) उपयोग=आत्माका चैतन्यस्वभाव, आत्माका परिणाम, आत्माकी परिणति, आत्माका परिणमन॥

॥ स द्विविधोऽष्टचतुर्भेदः ॥ ९ ॥

स उपयोगो द्विविधः । ज्ञानोपयोगो दर्शनोपयोगश्चेति ॥ ज्ञानोपयोगोऽष्टभेदः । मतिज्ञानं, श्रुतज्ञानं, अवधिज्ञानं, मनःपर्ययज्ञानं, केवलज्ञानं, मत्यज्ञानं, श्रुताज्ञानं, विभङ्गज्ञानं चेति ॥ दर्शनोपयोगश्चतुर्विधः । चक्षुर्दर्शनं, अचक्षुर्दर्शनं, अवधिदर्शनं, केवलदर्शनं चेति ॥ तयोः कथं भेदः ? । साकारानाकारभेदात् । साकारं ज्ञानमनाकारं दर्शनमिति ॥ तच्छद्मस्थेषु क्रमेण वर्तते ।

॥ स द्विविधोऽष्टचतुर्भेदः ॥ ९ ॥

सूत्रार्थः—सः।१।द्विविधः।१।अष्टचतुर्भेदः।१। =वह (उपयोग) दो प्रकार है(उनमेंसे) एक आठप्रकारहै दूसरा चारप्रकार है

वृत्त्यनुवादः—सः।१।उपयोगः।१।द्विविधः।१।ज्ञान—उपयोगः।१। =वह चैतन्यस्वभाव दो प्रकार है ज्ञान उपयोग

दर्शन—उपयोगः।१। च*इति*ज्ञान—उपयोगः।१। =और (=च) दर्शन उपयोग इस प्रकार हैं ज्ञान उपयोग

अष्टभेदः।१। मतिज्ञानम्।१।।श्रुतज्ञानम्।१।। =आठ प्रकार है (अर्थात्) मतिज्ञान, श्रुतज्ञान,

अवधिज्ञानम्।१।।मनःपर्ययज्ञानम्।१।। केवलज्ञानम्।१।। =अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, केवलज्ञान, (तथा)

मतिअज्ञानम्।१।।श्रुतअज्ञानम्।१।।विभङ्गज्ञानं।१।। च*इति*=मतिअज्ञान वा कुमति, श्रुतअज्ञान वा कुश्रुतऔर विभंगज्ञान वाकुअवधि इसप्रकारहैं

दर्शन—उपयोगः।१।चतुर्विधः।१।चक्षुर्दर्शनम्।१।। =दर्शन उपयोग चार है (अर्थात्) चक्षुर्दर्शन

अचक्षुर्दर्शनम्।१।।अवधिदर्शनं।१।।केवलदर्शनम्।१। च* =अचक्षुर्दर्शन, अवधिदर्शन, और केवलदर्शन

इति तयोः।६।। कथम्*भेदः।१। ? =इस प्रकार हैं इन दोनों (ज्ञान तथा दर्शनउपयोग) में कैसे भेद है

साकार—अनाकार भेदात्।५।साकारम्।१।। ज्ञानम्।१।। =(उत्तर) साकार और निराकार के भेदसे(अर्थात्)आकार सहित ज्ञान है

अनाकारम्।१।।दर्शनम्।१।। इति* =निराकारदर्शन है इसप्रकारहैं(अर्थात्) दर्शनसत्तामात्रआकाररहितका ग्रहणहै

तद्।१।।छद्मस्थेषु।७।।क्रमेण।३। वर्तते T =वे(ज्ञान दर्शन)छद्मस्थ असर्वज्ञजीवोंमें क्रम(प्रथमदर्शनपीछे ज्ञान) से वर्तते हैं

निरावरणेषु युगपत्। पूर्वकालभाविनोऽपि दर्शनात्॥ ज्ञानस्य प्रागुपन्यासोऽभ्यर्हितत्वात्॥ सम्यग्ज्ञानप्रकरणात्पूर्वं पंचविधो ज्ञानोपयोगो व्याख्यातः॥ इह पुनरुपयोगग्रहणाद्विपर्ययोऽपि गृह्यते इत्यष्टविध उच्यते॥ यथोक्तेनानेनाभिहितपरिणामेन सर्वात्मसाधारणेनोपयोगेन ये उपलक्षिता योगिनस्ते द्विविधाः— ॥ संसारिणो मुक्ताश्च ॥ १० ॥

निरावरणेषु ७।	=कर्मरूपआवरण रहित सर्वज्ञजीवोंमें अर्थात् केवलज्ञानियोंमें
युगपत्*पूर्वकालभाविनः१।अपि*दर्शनात्५॥	=(ज्ञान–दर्शन)एककालमें होते हैं ॥ प्रथम होनेवाले दर्शनोपयोगसे भी
ज्ञानस्य६॥प्राक्*उपन्यासः१।अभ्यर्हितत्वात्५॥	=(सूत्रमें) ज्ञानका पहिले कहना प्रधानपना अथवा श्रेष्ठताके कारणसे है अर्थात् ज्ञान प्रधान है इससे इस सूत्रमें दर्शनसे पहिले ज्ञानको कहा है
सम्यग्ज्ञान-प्रकरणात् ५॥	=सम्यग्ज्ञानकेविषय में वा सम्यग्ज्ञानकेप्रकरणमें
पूर्वम् १॥ पचविधः१। ज्ञानउपयोगः१। व्याख्यातः१।	=पहिले(प्रथम अध्याय सूत्र ९में) पाच प्रकार ज्ञान उपयोग कहागया है
इह*पुनः*उपयोगग्रहणात् ५॥ विपर्ययः१। अपि*	=बहुरि यहां(=इह)उपयोग शब्द लानेसे विपर्ययज्ञान भी
गृह्यते।इति*अष्टविधः१। उच्यते।	=ग्रहणकियागया है इस प्रकार (ज्ञानोपयोग) आठ प्रकार कहागया है।
अनेन३। अभिहित–परिणामेन ३।	=(अब दशवांसूत्रकी उत्थानिका कहते हैं कि)ग्रहणकिया है परिणाम इसने
सर्वात्मसाधारणेन३।यथोक्तेन३।उपयोगेन३।	=(और) सर्वआत्मामें साधारण (समान) यथोक्त जो उपयोग है ताकरि
ये १। उपलक्षिताः१। योगिनः१।ते १। द्विविधाः१।	=उपलक्षित ये योगी(=उपयोगी जो आत्मा है)ते दो प्रकार हैं अर्थात् आठवां नवमां दो सूत्रोंमें कथित यह परिणाम वा उपयोग जो समस्तजीवोंमें साधारणतः दिखाया गया है ते जीव निम्नकथित सूत्रानुसार दो प्रकार हैं

॥ [1]संसारिणो मुक्ताश्च[2] ॥ १०॥=ते जीवाःससारिणो मुक्ताश्च द्विविधाः भवन्ति

ते १।जीवाः१।संसारिणः१।मुक्ताः१।च द्विविधाःभवन्ति=तेजीवसंसारीऔर(=च)मुक्त दोप्रकारहोते हैं। अर्थात्जोजीवकर्मसहितहै

(१) श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों सम्प्रदायों में इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है ॥ (२)चशब्द –(प्रश्न) 'संसारिणो मुक्ताश्च' यहांपर

संसरणं संसारः परिवर्तनमित्यर्थः।

कर्मों की पराधीनताके कारण अनेक जन्म मरणोंको करते हुए संसारमें भ्रमण करते रहते हैं वे संसारी कहे जाते हैं और जो समस्त कर्मोंको काटकर मुक्त होगये हैं उनको मुक्त जीव वा सिद्धजीव कहते हैं

संस्कृत सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिन्दीअनुवाद पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस आठवे सूत्रपर

वृत्त्यर्थः—संसरणम् १॥संसारः१।परिवर्तनम् १॥ इति*अर्थः१। =परिभ्रमणरूप संसार है वही परिवर्तन है ऐसा अर्थ है अर्थात् अपने भावकरि बांधे

...कहना न पड़ैगा ऐसा द्वन्द्व समास मानना चाहिये लाभ यह है कि चशब्द कहना न पड़ैगा वाक्यरूपसे सूत्रका उल्लेख न कर ससारिणश्च मुक्ताश्च 'ससारिमुक्ता.' ऐसा द्वन्द्व समास मानना चाहिये लाभ यह है कि चशब्द कहना न पड़ैगा इसलिये लाघव होगा तथा सूत्रका जो अर्थ है उसअर्थमें किसो प्रकारकी वाधा भी न होगी (उत्तर) ससारी और मुक्त दोनों शब्दोंमें मुक्त शब्द पूज्य और अल्पाक्षर है इसलिए द्वन्द्वसमास करने पर मुक्तशब्दका ही पूर्व निपात होनेसे मुक्तससारिणःऐसा सूत्रकरना पड़ेगा तथा "मुक्तः ससारो येन भावेन स मुक्तससार तद्वतो मुक्तससारिणः" अर्थात् जिस स्वरूपसे ससारकाछूट जाना हो वह मुक्तससार और उससे विशिष्ट वा सहित मुक्त ससारी है यह मुक्तससारी शब्दका अर्थ होगा एव उससे ज्ञानदर्शनस्वरूप उपयोगवान मुक्तससारी अर्थात् सिद्धजीव ही कहे जांयगे ससारी जीव न कहे जांयगे उस रीतिसे द्वन्द्व समास मानने पर इस दूसरे अर्थकी प्रतीतिसे विपरीत अर्थ होगा अतः द्वन्द्वसमास न मानकर "ससारिणो मुक्ताश्च" यह वाक्यार्थ ही उपयुक्त है॥ यदि यहां पर फिर ये शकाकी जाय कि ससारिणो मुक्ताश्च यहां पर च शब्द का अर्थ समुच्चय माना है तथा "आपस में विशेषणविशेष्य रूपकी अपेक्षा न कर अनेक शब्दोंका वाक्य में भिन्न भिन्न रूपसे रहना" यह समुच्चय शब्दका अर्थ है यहां पर भी ससारी और मुक्त दोनों शब्द भिन्न भिन्न हैं यह वात वतलाने के लिये सूत्रमें 'च' शब्दका उल्लेख किया है परन्तु जिस प्रकार 'पृथिव्यप्तेजोवायुः' इस वाक्यमें पृथिवी आदि शब्दों में आपसमें विशेषणविशेष्य भाव नहीं है तथा अर्थ भी भिन्न भिन्न है इस लिये वे भिन्न भिन्न माने जाते है उसी प्रकार 'ससारिणोमुक्ता' यहां पर भी आपस में विशेषण विशेष्य भाव नहीं तथा अर्थ भी भिन्न है इसलिये ससारी और मुक्त दोनों शब्द भिन्न भिन्न है अतः उनमें भेद प्रकट करनेके लिये समुच्चयार्थक चशब्द का उल्लेख करना व्यर्थ है (उत्तर) च शब्दके समुच्चय और अन्वाचय ये दोनों अर्थ हैं तथा एकको प्रधान और दूसरों को गौण वतलाना यह अन्वाचय शब्द का अर्थ है सूत्रमें जो चशब्द है उसका अर्थ यहा अन्वाचय है और एकस्थान में उपयोग गौणरूप से रहता है और दूसरे स्थान में मुख्यरूपसे रहता है यह वहांपर चशब्द द्योतन करता है इसरीतिसे "भैक्ष्य चर देवदत्त चानय" अर्थात् भिक्षा का आचरण करो और देवदत्त को लेआओ इस अन्वाचय के प्रसिद्ध उदाहरण में जिस प्रकार भिक्षाका आचरण करना प्रधान है और देवदत्तका लाना गौण है उसी प्रकार ससारी और मुक्तजीवों में ससारीजीव प्रधानतासे उपयोगवान हैं और मुक्तजीव गौणरूप से उपयोगवान है यह चशब्दसे प्रदर्शित अर्थ है। इस लिये सूत्रमें 'चशब्द' व्यर्थ नहीं है॥

स एषामस्ति ते संसारिणः॥ तत्परिवर्तनं पञ्चविधं द्रव्यपरिवर्तनं, क्षेत्रपरिवर्तनं,कालपरिवर्तनं,भवपरिवर्तनं,भावपरिवर्तनं चेति ॥ तत्र द्रव्यपरिवर्तनं द्विविध नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनं कर्मद्रव्यपरिवर्तनं चेति ॥ तत्र नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनं नाम,त्रयाणां शरीराणां षण्णां पर्याप्तीनां योग्या ये पुद्गला एकेन जीवेन एकस्मिन्समये गृहीताः स्निग्धरूक्षवर्णगन्धादिभिस्तीव्रमन्दमध्यमभावेन च यथावस्थिता द्वितीयादिषु समयेषु निर्जीर्णा अगृहीताननन्तवारानतीत्य मिश्रकांश्चानन्तवारानतीत्य मध्ये गृहीतांश्च

	जे कर्म तिनके वशहोकरि भवसे भवांतरकी प्राप्तिको संसार कहते हैं
सः। एषाम्। अस्ति। ते। संसारिणः। तत् परिवर्तनम्॥	=वह(संसार)जिनकेहै,ते संसारी हैं। वह परिवर्तन संसरण वा परिभ्रमण
पंचविधं॥ द्रव्यपरिवर्तनं॥ क्षेत्रपरिवर्तनं॥	=पॉच प्रकार है द्रव्यसंसरण, क्षेत्रसंसरण
कालपरिवर्तनम्॥ भवपरिवर्तनम्॥ च *	=कालसंसरण, भवसंसरण और
भावपरिवर्तनम्॥ इति* तत्र*द्रव्यपरिवर्तनम्॥	=भावसंसरण इस प्रकार हैं तहॉ द्रव्यपरिभ्रमण
द्विविध॥ नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनं॥ कर्मद्रव्यपरिवर्तनं च इति	=दो प्रकार(द्विविधम्) है नोकर्मद्रव्यसंसरण और कर्मद्रव्यसंसरण इसप्रकार हैं
तत्र नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनम्॥ नाम॥	=तहॉ नोकर्मद्रव्यपरिवर्तन नाम(इसप्रकार है कि) [श्वासोश्वास—भाषा—मन
त्रयाणाम्॥ शरीराणाम्॥ षण्णाम्॥	=तीन(औदारिकवैक्रियकआहारक)शरीर और छह (आहार-शरीर-इन्द्रिय-
पर्याप्तीनाम्॥ योग्याः। ये। पुद्गला। एकेन। जीवेन।	=पर्याप्तिके योग्य जे पुद्गल परमाणुके स्कंध एक चेतन करि
एकस्मिन्। समये। गृहीताः। स्निग्धरूक्षवर्णगन्धादिभिः।	=एक समयमें ग्रहणकिये (ते) स्निग्धरूक्षवर्णगंध आदिकरि
तीव्रमन्दमध्यमभावेन। च यथावस्थिताः। द्वितीयादिषु।	=और तीव्र मन्द मध्यम भावकरि जैसे तिष्ठते द्वितीयादिक
समयेषु। निर्जीर्णाः। अगृहीतान्।	=समय में खिरे (बहुरिद्वितीयादिक समयमें) विनाग्रहे (परमाणु)
अनन्तवारान्। अतीत्य—मिश्रकान्। च*	=अनन्तवार ग्रहणकियेका उलंघकरि और मिश्रपरमाणुओंको
	अर्थात् पहिले ग्रहेथे तिनमेंके ग्रहीत भी बहुरि नये ग्रहणकिये तेभी
अनन्तवारान्। अतीत्य—मध्ये। गृहीतान्। च*	=अनन्तवार(ग्रहणमेंआएहुओंको)उल्लंघ करि और बीचमेंग्रहीतपरमाणु

अनन्तवारानतीत्य त एव तेनैव प्रकारेण तस्यैव जीवस्य नोकर्मभावमापद्यन्ते यावत्तावत्समुदितं नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनम्॥ कर्मद्रव्यपरिवर्तनमुच्यते--एकस्मिन्समये एकेन जीवेनाष्टविधकर्मभावेन पुद्गला ये गृहीताः समयाधिकामावलिकामतीत्य द्वितीयादिषु समयेषु निर्जीर्णाः पूर्वोक्तेनैव क्रमेण त एव तेनैव प्रकारेण तस्य जीवस्य कर्मभावमापद्यन्ते यावत्तावत्कर्मद्रव्यपरिवर्तनम्॥ उक्तं च

अनन्तवारान् ३। अतीत्य—ते ३। एव*तेन ३। एव* =अनन्तबार ग्रहणमें आयेहुओंको उलंघिकरि (जब) तेही तिसही

प्रकारेण ३। तस्य ६। एव*जीवस्य ६। नोकर्मभावम् २। आपद्यन्ते I =प्रकारकरि तिसही जीवकैं नोकर्मभावको प्राप्त होते है अर्थात् वही जीव जिसने पहिले समयमें परमाणु ग्रहे थे तेही तैसे स्पर्शादिकके अविभागप्रतिच्छेदनिकी संख्या लिये तथा तितने ही परमाणुको लिये समयप्रबद्ध ग्रहण करै।

यावत्*तावत्*समुदितम् १।। नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनम् १।। =सारा(=यावत्) इतना(=तावत्)(काल)इकट्ठा होय है(तब)नोकर्मद्रव्यपरिवर्तन होता है।

कर्मद्रव्यपरिवर्तनम् १।। उच्यते I =(अब) कर्मद्रव्यपरिवर्तन कहा जाता है

एकस्मिन् ७।समये ७। एकेन ३। जीवेन ३। अष्टविधकर्म— =(तहां) एक समयमें एकजीवकरि आठप्रकार कर्म—

भावेन ३। पुद्गलाः १। ये १। ग्रहीताः १। =स्वभावकरि जे पुद्गल ग्रहणकिये (ते)

समय—अधिकाम् २। आवलिकाम् २। अतीत्य— =समय अधिक आवलीकालको उल्लंघकर

द्वितीयादिषु ७। समयेषु ७। निर्जीर्णाः १। पूर्वोक्तेन ३। =द्वितीयादिक समयोंमें निर्जीर्ण भये (फिर) पहिले कथित

एव *क्रमेण ३। =(नोकर्मद्रव्यपरिवर्तकीज्यों)हीक्रमकरि(अर्थात् अगृहीतऔरमिश्रगृहीत और मध्यगृहीतपरमाणुओंका ग्रहण करते करते जब कोई समय ऐसाहोय जिसमें)

ते १। एव*तेन ३। एव*प्रकारेण ३। तस्य ६। जीवस्य ६। =तेही(कर्मयोग्य पुद्गल) तिस ही प्रकारकरि तिस जीवके (जब)

कर्मभावम् २। आपद्यन्ते I यावत्*तावत्* =कर्मभावको प्राप्त होते हैं(तब)सारा(यावत्)इतना(=तावत्)

कर्मपरिवर्तनम् १।। उक्तम् १।। च* =(काल)कर्मपरिवर्तन है॥ कहा गया भी (च) है

(२) नोकर्मद्रव्य परिवर्तनका और कर्म द्रव्यपरिवर्तनका समान ही काल है और कर्मद्रव्यपरिवर्तन मे समस्त विधि नोकर्मद्रव्य परिवतन कीभांति है॥ केवल अ तर इतना है कि नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनमे नोकर्मवर्गणाओंका ग्रहण है और कर्मद्रव्यपरिवर्तनमे कर्म वर्गणाओंका ग्रहण है॥

सव्वेऽवि पुग्गला खलु कमसो भुत्तुज्झिया य जीवेण । असइ अणंतखुत्तो पुग्गलपरियट्टसंसारे ॥१॥
क्षेत्रपरिवर्तनमुच्यते-- सूक्ष्मनिगोदजीवोऽपर्याप्तकः सर्वजघन्यप्रदेशशरीरो लोकस्याष्टमध्यप्रदेशान्स्वशरीर-मध्यप्रदेशान् कृत्वोत्पन्नः क्षुद्रभवग्रहणं जीवित्वा मृतः स एव पुनस्तेनैवावगाहेन द्विरुत्पन्नस्तथा त्रिस्तथा चतुरित्येवं यावद्घनांगुलस्यासंख्येयभागप्रमिताकाशप्रदेशास्तावत्कृत्वस्तत्रैव ॥

सव्वेऽवि पुग्गला खलु कमसो भुत्तुज्झिया य जीवेण । असइ अणंतखुत्तो पुग्गलपरियट्टसंसारे ॥ १ ॥
=पुग्गलपरियट्टसंसारे असइ अणंतखुत्तो सव्वेऽवि पुग्गला खलु कमसो भुत्तुज्झिया य जीवेण ॥ १ ॥

पुग्गलपरियट्टसंसारे ७।(पुद्गलपरिवर्तनसंसारे ७।)असइ ७। =इस (=असइ=अस्मिन्) पुद्गलपरिवर्तनरूप संसारमें
अणंतखुत्तो * (अनंतकृत्वः*) =अनंत (=अणंत) कृत्वः (=बार)
सव्वे १। अवि* पुग्गला १। (सर्वे १। अपि* पुद्गलाः १।) =सबही पुद्गल
खलु* कमसो* (खलु* क्रमशः*) =निश्चयकरि अनुक्रमसे
भुत्तुज्झिया १।।य*जीवेण ३। (भुक्तोज्झिता १।।च जीवेन ३।) =जीवद्वारा ग्रहण किये जाकर छोड़ दिये गये हैं अर्थात् "इस पुद्गलपरिवर्तन रूप संसार विषै इस जीवनैं सर्व ही पुद्गल निश्चयकरि अनंतवार अनुक्रमसे ग्रहण करि करि छोड़े है' जयचंद वचनिका पृष्ठ २४६

क्षेत्रपरिवर्तनम् १।।। उच्यते T सूक्ष्मनिगोदजीवः १। =क्षेत्र परिवर्तन कहा जाता है (जब) कोईजीव सूक्ष्मनिगोदिया
अपर्याप्तकः १। सर्वजघन्यप्रदेशशरीरः १। लोकस्य ६। =अपर्याप्तक समस्त जघन्य (अवगाहनारूप) शरीरवाला लोकके
अष्टमध्यप्रदेशान् २।स्वशरीरमध्यप्रदेशान् २।कृत्वा—उत्पन्नः १। =आठ मध्यके प्रदेशोंको अपने शरीरके मध्य प्रदेश करि उपजा अर्थात् लोकके अष्टमध्यप्रदेशोको अपनेशरीरका अष्टमध्यप्रदेशबनाकरउत्पन्नहुआ और
क्षुद्रभवग्रहणम् २। जीवित्वा—मृतः १। =क्षुद्रभव (स्वासके अठारह्वां भागस्थिति रहने वाला) पाय जीकर मरा
सः १। एव*पुनर्*तेन ३।एव*अवगाहेन ३। द्विः =बहुरि वो(जीव)ही तिस ही अवगाहनकरि दूसरी बार
उत्पन्नः १।तथा*त्रिः तथा*चतुर् इति* =तथा तीसरीबार तथा चौथीवार जन्मा (और मरा इस प्रकार)
एव*यावत्*घनांगुलस्य ६।।। असंख्येयभागप्रमिता— =ही जितना घनांगुलके असंख्यातवां भाग प्रमाणित(=प्रमिता)
आकाश–प्रदेशाः १। तावत्*कृत्वः* तत्र*एव* =आकाश प्रदेश हैं तितने वार (=कृत्वः) तहांही वा उस स्थानमें ही

(३) क्रिया विशेषण वार वार के अर्थ प्रकाशक द्वि, त्रि, और चतुर् अंको में स् लगादेनेसे और शेषमें कृत्वस् लगादेनेसे बनते हैं और कृत्वस्

जनित्वा पुनरेकैकप्रदेशाधिकभावेन सर्वो लोक आत्मनो जन्मक्षेत्रभावमुपनीतो भवति याव-त्तावत्क्षेत्रपरिवर्तनम् ॥ उक्तं च– सव्वं हि लोयखेत्ते कमसो तं णत्थि जं ण उप्पण्णं । ओगाहणेण बहुसो परिभमिदो खेत्तसंसारे ॥ १ ॥

अर्थात् बीच में अनंतवार अन्य अवगाहना तथा अन्य क्षेत्र में उपजा वह इस परिवर्तन के प्रमाण रहित

जनित्वा – पुनः* एक-एक प्रदेश-अधिकभावेन =उपजकर बहुरि (पश्चात् उसक्षेत्रसे लोकके) एक एक प्रदेश अधिकमें (क्रमसे जन्मलेकर)

सर्वः लोकः आत्मनः =समस्त लोक (तीनसेतैंतालीस घनराजू प्रमाण) आत्मा वा अपने (=आत्मनः)

जन्मक्षेत्रभावम् उपनीतः भवति =जन्म क्षेत्रपनको वा जन्मक्षेत्ररूप को प्राप्त किया हुआ (=उपनीतः) होता है

अर्थात् वही जीव उस क्षेत्रसे पश्चात् लोकके एक एक प्रदेश अधिकमें जन्म लेकर समस्त लोकके सब प्रदेशोंको क्रमानुसार ही (अनुक्रम विना जन्मले वहन गिनियें) स्पर्शकरि अपना जन्म क्षेत्र करता है वा बना लेता है ॥

यावत्* तावत्* क्षेत्रपरिवर्तनम् उक्तं च* =(तब) सारा (=यावत्) इतना (=तावत्) क्षेत्रपरिवर्तन है । बहुरि कहा गया हैकि,

सव्वंहि लोयखेत्ते कमसो तं णत्थि जं ण उप्पण्णं। ओगाहणेण बहुसो परिभमिदो खेत्तसंसारे ॥१॥

सव्वंहि लोयखेत्ते कमसो तं णत्थि जं ण उप्पण्णं =ओगाहणेण बहुसो परिभमिदो खेत्तसंसारे । सव्वंहि लोयखेत्ते कमसो तं णत्थि जं ण उप्पण्णं

ओगाहणेण बहुसो* (अवगाहनेन बहुशः*) =अनेक (=बहुश) अवगाहना (रूपशरीर को प्राप्तकरि

परिभमिदो खेत्तसंसारे (परिभ्रमतः क्षेत्रसंसारे) =चारों ओरसे (=परि) भ्रमताहुआ (इस) क्षेत्र संसारमें

सव्वम्हि लोयखेत्ते (=सर्वस्मिन् लोकक्षेत्रे) =सर्वलोक क्षेत्रमें

कमसो* तं णत्थि (क्रमशः* तत् न* अस्ति) =अनुक्रमसे वहां ऐसा स्थान नहीं है

जं ण* उप्पण्णं (यत् न* उत्पन्नम्) =जहां (यहजीव) नहीं जन्मा है अर्थात् इसक्षेत्र संसार विषै भ्रमता यहजीव सोअनेक अवगाहनरूपशरीरकूंपायइस सर्वलोकका क्षेत्रविषै अनुक्रमतेउपजा तहांऐसाक्षेत्र न रहा जहां न उपजा ।

लगाने पर अ तका न् गिर जाता है जैसे द्विः, त्रि. चतुः और पञ्चन् से पचकृत्वः तावत् से तावत्कृत्व अर्थात् तितनी वार ॥

कालपरिवर्तनमुच्यते–उत्सर्पिण्याः प्रथम समये जातः कश्चिज्जीवः स्वायुषः परिसमाप्तौ मृतः स एव पुनर्द्वितीयाया उत्सर्पिण्या द्वितीयसमये जातः स्वायुषः क्षयान्मृतः स एव पुनस्तृतीयाया उत्सर्पिण्यास्तृतीयसमये जात एवमनेन क्रमेणोत्सर्पिणी परिसमाप्ता, तथा अवसर्पिणी च। एवं जन्मनैरन्तर्यमुक्तं मरणस्यापि नैरन्तर्यं तथैव ग्राह्यम्

कालपरिवर्तनं॥ उच्यते। उत्सर्पिण्याः॥ प्रथमसमये॥ जातः॥ =कालपरिवर्तन कहा जाता है उत्सर्पिणीकालके पहिले समयमें उपजा
कश्चित्* जीवः॥ स्व–आयुषः॥ परिसमाप्तौ॥ मृतः॥ =कोई जीव अपनी आयुके परिपूर्णहोनेपर मरा।
सः॥ एव पुनः द्वितीयायाः॥ उत्सर्पिण्याः॥ द्वितीयसमये॥ जातः॥ =बहुरि वोही (जीव) दूसरे उत्सर्पिणीकालके दूसरेसमयमें उत्पन्न हुआ (और)
स्व–आयुषः॥ क्षयात्॥ मृतः॥ सः॥ एव* पुनः* तृतीयायाः॥ =अपनी आयु पूर्ण करि (=क्षयात्) मरा। बहुरि वोही (जीव) तीसरे
उत्सर्पिण्याः॥ तृतीयसमये॥ जातः॥ एवम्* अनेन॥ =उत्सर्पिणी (काल)के तीसरे समयमें उत्पन्न हुआ इसप्रकार इस
क्रमेण॥ उत्सर्पिणी॥ परिसमाप्ताः॥ =क्रमसे (दसकोड़ाकोड़ी सागरका) उत्सर्पिणी काल परिपूर्ण किया

अर्थात् उत्सर्पिणी कालके दश कोड़ा कोड़ी सागर के जितने समय हैं उन समस्त समयोंमें क्रमानुसार उसी जीवने जन्म लिया क्रमको छोड़कर और समयोंमें जन्म लिया सो गिनतीमें नहीं आवे हैं॥

तथा* अवसर्पिणी॥ च* एवम्* =बहुरि (तथा) अवसर्पिणी (काल) भी (=च) इसीप्रकार (एवम्)
जन्म–नैरन्तर्यम्॥ उक्तम्॥ =लगातार वा अविच्छेद (=नैरन्तर्यम्) जनमलेनेमें कहागया है

अर्थात् अवसर्पिणी काल के दश कोड़ा कोड़ी सागरके जितनेसमय हैं उन समस्तसमयोंमें क्रमानुसार उसी जीव ने जन्म लिया क्रमको छोड़कर और समयोंमेंजन्म लिया सोगणनामेंनहींआवैहै

मरणस्य॥ अपि* नैरन्तर्यं॥ तथा* एव* ग्राह्यम्॥ =तैसेही (उसीजीवका) मरणभी अविच्छेद वा लगातार ग्रहणयोग्यहै अर्थात् बीस कोड़ा कोड़ी सागरके उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी कालके जितने समय हैं उन समस्त समयोंमें वही जीव जिसने अनुक्रमसे बीसकोड़ाकोड़ी सागरके उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी कालके सर्वसमयोंमें जन्म लिया है क्रमनुसार ही मरण करता है क्रमको छोड़कर और और समयोंका मरण गणनामें नहीं लिया जाता है।

ततःप्रच्युत्य तिर्यग्गतावन्तर्मुहूर्तायुःसमुत्पन्नः पूर्वोक्तेनैव क्रमेण त्रीणि पल्योपमानि तेन परिसमापितानि,एवं मनुष्यगतौ च तिर्यग्वत्, देवगतौ नारकवत्,अयं तु विशेषः—एकत्रिंशत्सागरोपमाणि परिसमापितानि यावत्तावद्भवपरिवर्तनम् ॥ उक्तं च—

अन्यगत्यादि विषैं भ्रमण करते करते फिर कोई काल विषैं तिस ही आयु को पाय तिस पाथड़े में उपजा ऐसे ही दशसहस्र वरस के जितने समय होय तितनीवार तो तिस ही आयुसहित तहां ही उत्पन्न होतारहा बीचमें अन्य स्थानमें उत्पन्न हुआ सो गणना मे नहीं आता है ॥ पीछे एक समय अधिक दशसहस्र वर्षकी आयु पाय उपजा ॥ पश्चात् दश हजार वरस दो समय अधिककी आयु पाय उपजा इसही अनुक्रमसे जितने तेतीस सागरके समय हैं तितने जन्मसे तथा मरणसे पूर्ण करता है क्रम रहित बीच बीच अन्यगति तथा अन्य आयुकरि उपजै सोतिस गिनती में नहीं आते हैं॥

ततः✱प्रच्युत्य—तिर्यग्गतौ७॥अन्तर्मुहूर्तआयुः१॥। =वहाँ (नरक) से निकलकरि तिर्यचगतिमें अन्तर्मुहूर्तआयुवाला।

समुत्पन्नः १। पूर्वोक्तेन ३। एव ✱ क्रमेण ३। =उत्पन्न होता है पहिले कहे हुए ही क्रमकरि

त्रीणि १॥। पल्योपमानि १॥। तेन ३। परिसमापितानि १॥। =तीन पल्य प्रमाण तिस(जीव) करि परिपूर्ण होते हैं अर्थात् वही जीव तिर्यचगतिमें जघन्य आयुअन्तर्मुहूर्तकी पाय फिर समाप्तकरि अतर्मुहूर्तके जितने समय होय तितनीवार जघन्य आयुधारि पीछे एक एक समय अधिक अनुक्रमकरि तीन पल्य पर्यंत समस्त स्थितिविषै जन्मधारिपरिपूर्ण करै है

एवम्✱मनुष्यगतौ ७।च✱तिर्यग्वत्✱ =इस प्रकार नरगति में भी(=च)तिर्यच सदृश है

देवगतौ ७। नारकवत्✱अयम् १। तु✱विशेषः१। =देवगतिविषै नरकके सदृश है परतु(=तु) भेद यह है (कि)

एकत्रिंशत्सागरोपमाणि१॥। परिसमापितानि १॥।(करोति)=इकतीस सागर प्रमाण(पूर्वोक्तक्रमसे) परिपूर्ण करता है(अर्थात्) इकतीस सागरसे अधिक आयुके धारक नौ अनुदिश पांच अनुत्तर ऐसे चौदह विमानों मे उपजे देवोंके परिवर्तन नहीं होता है क्योंकि वे सम्यग्दृष्टी है

यावत्✱तावत्✱भवपरिवर्तनम् १। उक्तम् १॥। च ✱ =सारा (=यावत्) इतना(=तावत्) भवपरिवर्तन है । कहा भी है

णिरयादिजहण्णादिसु जावदु उवरिल्लिया दु गेवेज्जा । मिच्छत्तसंसिदेण हु बहुसो वि भवठिदी भमिदो ॥ १ ॥ भावपरिवर्तनमुच्यते—पञ्चेन्द्रियः सञ्ज्ञी पर्याप्तको मिथ्यादृष्टिः कश्चिज्जीवः सर्वजघन्यां स्वयोग्यां ज्ञानावरणप्रकृतेः स्थितिमन्तःकोटीकोटीसंज्ञिकामापद्यते, तस्य कषायाध्यवसायस्थानान्यसंख्येयलोकप्रमितानि षट्स्थानपतितानि तत्स्थितियोग्यानि भवन्ति,

---

णिरयादिजहण्णादिसु ३। (नरकादिजघन्यादिषु ३) =नरककी जघन्यसे लगाय
उवरिल्लिया * दु* (उपरिम् * तु *) =उपरिम् वा उत्कृष्ट तो (=दु=तु)
जावदु * गेवेज्जा १।३ (यावत् * ग्रैवेयकाः १।३) =ग्रैवेयक तक
मिच्छत्तसंसिदेण ३।१ हु * (मिथ्यात्वसंसर्गेण ३।१ तु*) =मिथ्यात्वके संसर्ग सहित (यह जीव)
बहुसो वि भवठिदी भमिदो (बहुशः अपि भवस्थिति भ्रमितः १।१)=भवों की स्थिति वा आयु पाय पायकर अनेकवार भ्रम्या है
भावपरिवर्तनम् १।१ ॥ उच्यते । पञ्चेन्द्रियः १।१ सञ्ज्ञी १।१ =भवपरिवर्तन कहा जाता है। पंचेन्द्रिय संज्ञक
पर्याप्तकः १।१ मिथ्यादृष्टिः १।१ कश्चित्* जीवः १।१ =पर्याप्तक मिथ्यादृष्टि कोई जीव
सर्वजघन्याम् २।१ स्वयोग्याम् २।१ ज्ञानावरणप्रकृतेः ६।१ =अपने उचित सबसे जघन्य ज्ञानावरण कर्मकी प्रकृतिकी
स्थितिम् २।१ ॥ अन्तःकोटीकोटीसञ्ज्ञिकाम् २।१ । आपद्यते । =कोड़ा कोड़ी सागरके नीचे और कोड़िके ऊपर संज्ञावाली स्थितिको प्राप्त होय है
तस्य ६।१ कषाय-अध्यवसायस्थानानि १।३ ॥ =तिस (जीव) के कषायभावस्थान
असंख्येयलोकप्रमितानि १।३ ॥ षट्स्थानपतितानि १।३ ॥ =असंख्यात लोक प्रमाण छहस्थान प्रति (अर्थात् हानिवृद्धिरूप) सहित
तत्स्थितियोग्यानि १।३ ॥ भवन्ति । =उस स्थितिके योग्य होते हैं अर्थात् उस अन्तःकोड़ा कोड़ी सागर की जघन्य

स्थिति बंधनेका कारण कषाय भावके स्थान हैं और वे गणनामें असंख्यात लोकके जितने प्रदेश होते हैं तितने हैं ॥ तिस एक एक स्थान विषै अनंतानंत अविभाग प्रतिच्छेद हैं जिनमें अनन्तभागहानि असंख्यातभागहानि संख्यातभागहानि संख्यातगुणहानि असंख्यातगुणहानि अनंतगुणहानि औरअनंतभागवृद्धि असंख्यातभागवृद्धि संख्यातभागवृद्धि संख्यातगुणवृद्धि असंख्यातगुणवृद्धि अनंतगुणवृद्धि इसप्रकार छह स्थान प्रति हानि वृद्धि संभवे है ॥

तत्र सर्वजघन्यकषायाध्यवसायस्थाननिमित्तान्यनुभागाध्यवसायस्थानान्यसंख्येयलोकप्रमितानि भवन्ति, एवं सर्वजघन्यां स्थितिं सर्वजघन्यं च कषायाध्यवसायस्थानं सर्वजघन्यमेवानुभागबन्धस्थानमास्कन्दतस्तद्योग्यं(एकं)सर्वजघन्यं योगस्थानं भवति, तेषामेव स्थितिकषायानुभागस्थानानां द्वितीयमसंख्येयभागवृद्धिसंयुक्तं योगस्थानं भवति, एवं च तृतीयादिषु योगस्थानेषु

तत्र*सर्वजघन्यकषाय-अध्यवसायस्थाननिमित्तानि ३।। =तहां समस्त जघन्यकषायभावस्थान है कारण जिनको ऐसे
अनुभागअध्यवसायस्थानानि ३।।असंख्येयलोक- =अनुभागबंध अध्यवसाय स्थान असंख्यात लोक
प्रमितानि ३।। भवन्ति। =परिमाण हैं अर्थात् इनसर्वजघन्यकषाय अध्यवसाय स्थानके एक एक विषै अनुभाग बंधको कारण जे परिणाम(=अनुभागबंधअध्यवसायस्थान) ते असंख्यात लोकके जितने प्रदेश हैं तितने गणनामें है
एवम्*सर्वजघन्याम् २।। स्थितिम् २।। सर्वजघन्यम् २।। च =इस प्रकार सर्वजघन्यस्थितिको और सर्वजघन्य
कषायअध्यवसायस्थानम् २।।सर्वजघन्यम् २।। एव* =कषायभावस्थानको सर्वजघन्य ही
अनुभागबंधस्थानम् २।।आस्कन्दतः ६। =अनुभागस्थानकोप्राप्तहोनेवाले
तद्*योग्यम् १।।(एकम् १।।)सर्वजघन्यं १।।योगस्थानम् १।।=तिसके योग्य एक सर्वजघन्य योगस्थान
भवति। तेषाम् ६।।एव*स्थिति-कषाय- =होता है तिनही(अर्थात् विनापलटे हुए सर्वजघन्य ही)स्थिति कषाय
अनुभागस्थानानाम् ६।। द्वितीयम् १।। =अध्यवसाय और अनुभाग बंध अध्यवसाय स्थानों के दूसरा
असंख्येयभागवृद्धिसंयुक्तम् १।।योगस्थानम् १।।भवति। =असंख्यातभागवृद्धिसहित योगस्थान होता है अर्थात् अनुभाग कषाय स्थिति ये तीनों तो जघन्यही बंधे परन्तु योगस्थान पलटि दूसरा होय है और ये जघन्य योगस्थान जो श्रेणीके असंख्यातवांभाग परिमाण है गणना में असंख्यात हैं और ये योगस्थान अविभाग प्रतिच्छेदनि करि असंख्यातभागवृद्धि संख्यातभागवृद्धि संख्यातगुणवृद्धि असंख्यातगुणवृद्धि सहित चतुस्थान रूप ही हैं ॥
एवम्*च*तृतीयादिषु ३।।योगस्थानेषु ३।। =बहुरि इस प्रकार तीन आदिक योगस्थानोंमें

चतुःस्थानपतितानि श्रेण्यसंख्येयभागप्रमितानि योगस्थानानि भवन्ति । तथा तामेवस्थितिं तदेव कषायाध्यवसायस्थानं च प्रतिपद्यमानस्य द्वितीयमनुभवाध्यवसायस्थानं भवति, तस्य च योगस्थानानि पूर्ववद्वेदितव्यानि । एवं तृतीयादिष्वपि अनुभवाध्यवसायस्थानेषु आ असंख्येय-लोकपरिसमाप्तेः । एवं तामेव स्थितिमापद्यमानस्य द्वितीयं कषायाध्यवसायस्थानं भवति, तस्यापि

चतुःस्थानपतितानि॥श्रेण्यसंख्येयभागप्रमितानि॥ =चार स्थानपति हानि सहित श्रेणीका असंख्यातवांभागप्रमाण

योगस्थानानि॥ भवन्ति । =योगस्थान(अनुक्रमसे होते हैं)अर्थात् दूसरे जघन्य योगस्थान के पश्चात् तीसरा योगस्थान होय परन्तु अनुभागस्थान, कषायस्थान, स्थितिस्थान, येतीनों जघन्य ही वंधते हैं ॥ पीछे चौथा पांचवां छठवां सातवां आठवॉ इत्यादिक योगस्थान होते हैं ते श्रेणीके असंख्यातवांभागतक असंख्यात प्रमाणगणनामें अनुक्रमसे पलटिजाय परन्तु अनुभाग कषाय स्थिति ये तीनों जघन्य ही रहें और कोई दो जघन्य योगस्थानके बीचमें अन्य कषायस्थान अन्य अनुभागस्थान अन्ययोग स्थान होते जांय ते गणना में न आवें हैं

तथा॥ताम्॥एव॥स्थितिम्॥तद्॥एव॥ च॥ =तथा वो ही स्थिति और(=च) वोही

कषायाध्यवसायस्थानम्॥प्रतिपद्यमानस्य॥ =कषायभावस्थानको प्राप्तकरनेवाले (जीव) में

द्वितीयम्॥अनुभव-अध्यवसायस्थानम्॥भवति । =दूसरा अनुभाग अध्यवसाय स्थान होता है

तस्य॥च॥योगस्थानानि॥ पूर्ववत्॥ =और तिस(दूसरे अनुभागभावस्थान)के योगस्थान पहिलेकी भांति (श्रेणीके असंख्यातवांभाग प्रमाण-असंख्यात प्रमाणगणनामें अनुक्रमसेहोना)

वेदितव्यानि॥एवम्॥तृतीयादिषु॥अपि॥ =जानना चाहिए इस प्रकार तीन आदिक भी

अनुभवअध्यवसायस्थानेषु॥ आ॥ =अनुभागवंध अध्यवसाय स्थान(अनुक्रमसे) होते होते

असंख्येयलोक-परिसमाप्तेः॥ एवम्॥ताम्॥ एव॥ =असंख्यात लोक परिपूर्ण तक होते हैं (तब) वास्तविक (=एवम्) वोही

स्थितिम्॥ आपद्यमानस्य॥द्वितीयम्॥ =स्थितिस्थान को प्राप्तकरनेवाले जीव के (=आपद्यमान) दूसरा

कषाय-अध्यवसायस्थानम्॥भवति तस्य॥अपि॥ =कषाय अध्यवसाय स्थान होताहै तिस(द्वितीय कषायाध्यवसाय भावस्थानके) भी

अनुभवाध्यवसायस्थानानि योगस्थानानि च पूर्ववद्वेदितव्यानि । एवं तृतीयादिष्वपि कषायाध्यवसायस्थानेषु आ असंख्येयलोकपरिसमाप्तेर्वृद्धिक्रमो वेदितव्यः। उक्ताया जघन्यायाः स्थितेः समयाधिकायाःकषायादिस्थानानि पूर्ववदेकसमयाधिकक्रमेण आ उत्कृष्टस्थितेस्त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोटीपरिमितायाःकषायादिस्थानानि (पूर्ववत्) वेदितव्यानि ॥

अनुभव–अध्यवसायस्थानानि॥ योगस्थानानि॥ च॥ =अनुभाग अध्यवसाय स्थान और योग स्थान
पूर्ववत् वेदितव्यानि॥ =पहिलेकी भांति जानना योग्य है।

भावार्थ ऐसे असंख्यात लोक प्रमाण अनुभाग स्थाननिविषें एक एकविषें योगस्थान श्रेणीके असंख्यातवां–भाग असंख्यातप्रमाण गणनामें अनुक्रमसे होते जांय और अनुभागस्थान असंख्यात लोकप्रमाण अनुक्रमसे होयचुकें तब एक कषाय स्थान पलटना है (दूसरा कषाय स्थान होना है)

एवम् तृतीयादिषु॥ अपि कषायअध्यवसायस्थानेषु॥ =इस भांति तीन आदिक भी कषायअध्यवसायस्थान होते होते
आ असंख्येयलोकपरिसमाप्तेः॥ वृद्धिक्रमः॥ वेदितव्यः॥ =असंख्यात लोकपरिपूर्णतक (=पा) क्रमानुसार वृद्धि जानना योग्य है

अर्थात् तीसरे कषायस्थानविषें असंख्यात लोक प्रमाण अनुभाग स्थान अनुक्रमसे होय और अनुभाग स्थाननि एक एक विषें श्रेणीके असंख्यातवां भाग प्रमाण अनुक्रमसे योग स्थान होते जांय है इसी प्रकार चौथा कषाय स्थान पलटे और पांच आदिक कषाय स्थान क्रमानुसार होते होते असंख्यात लोक प्रमाण होजाय तवपूर्वकथितअतःकोड़ा कोड़ी सागर स्थितिमें एक समय अधिक ज्ञानावरणीयकर्मकी स्थिति बंधे है ॥

उक्तायाः॥ जघन्यायाः॥ स्थितेः॥ समयअधिकायाः॥ =कही हुई जघन्य स्थितिमें समय अधिकके
कषाय–आदिस्थानानि॥ पूर्ववत्॥ =कषायभावस्थान, अनुभाग अध्यवसायस्थान, योगस्थान, क्रमानुसारपहिलेकी भांति होते
एकसमयअधिकक्रमेण॥ आ उत्कृष्टस्थितेः॥ =(होते) एक(एक)समय अधिक क्रमसे उत्कृष्ट स्थिति पर्यन्त
त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोटीपरिमितायाः॥ =तीस कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण (=प्रमितायाः) तक (अनुक्रमसे)
कषायआदिस्थानानि॥ (पूर्ववत्) वेदितव्यानि॥ =कषायभावस्थान, अनुभागअध्यवसायस्थान, योगस्थान पहिले की भांति जानो

अनन्तभागवृद्धिःअसंख्येयभागवृद्धिः संख्येयभागवृद्धिः संख्येयगुणवृद्धिःअसंख्येयगुणवृद्धिःअनन्तगुणवृद्धिः इमानि षट्स्थानानि, वृद्धिर्हानिरपि तथैव। अनन्तभागवृद्धिःअनन्तगुणवृद्धिरहितानि चत्वारि स्थानानि ज्ञातव्यानि। एवं सर्वेषां कर्मणां मूलप्रकृतीनामुत्तरप्रकृतीनां च परिवर्तनक्रमो वेदितव्यः। तदेतत्सर्वं समुदितं भावपरिवर्तनम् ॥ उक्तं च—

अर्थात् श्रेणीके असख्यातवांभाग प्रमाण असंख्यातगणनामे जब योगस्थान क्रमसे पलटि जांय तब एकअनुभाग स्थानपलटे और असंख्यात लोकप्रमाण जब अनुभागस्थान एक एक करि क्रमानुसार पलटि जाय तब ऐक कपायस्थानपलटे और जब असंख्यात लोक प्रमाण (कपायस्थानों विषैं एक एक विषैं असंख्यातलोक प्रमाणअनुभागस्थान क्रमानुसार होवे होते ये समस्त असंख्यातलोक प्रमाण) कपायस्थान क्रमानुसार पलटि जांय तब एक समय अधिक होकरि स्थिति पलटै ॥

अनन्तभागवृद्धिः॥ असख्येयभागवृद्धि ः॥ =(यद्यपि) अनन्त भागवृद्धि असख्येयभागवृद्धि

संख्येयभागवृद्धिः॥ संख्येयगुणवृद्धि ः॥ =संख्येयभागवृद्धि संख्येयगुणवृद्धि

असंख्येयगुणवृद्धिः॥अनन्तगुणवृद्धिः॥इमानि॥पट्स्थानानि वृद्धिः=असंख्येयगुणवृद्धिअनन्तगुणवृद्धि ये छहस्थानप्रतिवृद्धि (औरअनन्तभाग असंख्येयभाग, सख्येयभाग,संख्येयगुण असंख्येयगुण,अनन्तगुण)

हानिः॥अपि*तथा*एव*अनन्तभागवृद्धिः ॥ =हानिभी हैं तो भी अनन्तभागवृद्धि

अनन्तगुणवृद्धि ः॥ =अनन्तगुणवृद्धि (और,अनन्तभागहानि अनन्तगुणहानि)[प्रतिच्छेदोंमें

रहितानि॥चत्वारि॥स्थानानि॥ =वर्जित शेषचारस्थानप्रति(वृद्धिहानिइनजघन्ययोगस्थानोंकेअविभाग

ज्ञातव्यानि॥एवम्*सर्वेषाम् ॥ कर्मणाम्॥ =जानना चाहिये इस प्रकार समस्त कर्मों की

मूलप्रकृतीनाम्॥उत्तरप्रकृतीनाम् ॥परिवर्तनक्रमः॥ =मूलप्रकृतियोंका बहुरि उत्तरप्रकृतियोंकी पलटनक्रम

वेदितव्यः॥तद्॥एतद्॥सर्वम्॥समुदितम्॥ =जानना चाहिये(=तद्)यह(=एतद्)समस्त इकट्ठा होय तब

भावपरिवर्तनम् ॥ उक्तं ॥ च* =भावपरिवर्तन होता है। कहा भी है

सव्वा पयडिट्ठिदिओ अणुभागपदेसबंधठाणाणि। मिच्छत्तसंसिदेण य भमिदा पुण भावसंसारे ॥ १ ॥ उक्तात्पञ्चविधात्संसारान्निवृत्ता ये ते मुक्ताः। संसारिणां प्रागुपादानं तत्पूर्वकत्वान्मुक्तव्यपदेशस्य ॥ य एते संसारिणस्ते द्विविधाः—

सव्वा [१।३] पयडि–ट्ठिदिओ [१।३] (सर्वाः [१।३] प्रकृति–स्थितयः [१।३]) =समस्त प्रकृति वंध(और) स्थितिवंध
अणुभाग–पदेस–वंध-(=अनुभाग–प्रदेशवन्ध-) =अनुभाग वन्ध(और) प्रदेश वन्धके
ठाणाणि [१।३] मिच्छत्तसंसिदेण [३।१] (स्थानानि मिथ्यात्वसंसर्गेण) =स्थान मिथ्यात्वके संसर्गकरि
य *भमिदा [१।३] पुण*भावसंसारे [७।१] (च भ्रमिताः [१।३] पुनःभावसंसारे [७।१])=ही(=य=च)निश्चय(=पुनः)भाव संसार में
=भ्रमेजाते है भावार्थ इस जीवने भाव संसार विषै भ्रमण करि करि प्रकृति–वंध,स्थितिवन्ध,अनुभागवन्ध और प्रदेश वंधके समस्त स्थानोंको निश्चय करके प्राप्त किया है ॥

उक्तात् [५।१] पञ्चविधात् [५।१] संसारात् [५।१] निवृत्ताः [१।३] =कथित (वा उपर्युक्त) पांच प्रकारके संसारसे रहितहुये
ये [१।३] ते [१।३] मुक्ताः [१।३] संसारिणाम् [६।३] प्राक् [(१)] *उपादानम् [१।१] =जे (जीव) ते मुक्त (=सिद्ध है)संसारियोंका (इस सूत्र में) पहिले ग्रहणहै
तत्पूर्वकत्वात् [५।१] मुक्तव्यपदेशस्य [६।१] =क्योंकि मोक्षका कथन वा उपदेश उस (संसार)पूर्वक वा संसार निमित्तक है अर्थात् मोक्षके व्यपदेशका संसार कारण है ॥

यदि संसार न होता तो मोक्षभी न होती क्योंकि मोक्ष संसारी जीवोंकी होती है जव वेही नहीं तो मोक्ष किसकी होती और जव मोक्ष गमन न होता अथवा मोक्षका अस्तित्व न होता तो फिर व्यपदेश मोक्षका कैसे संम्भव होता)

ये [१।३] एते [१।३] संसारिणः [१।३] ते [१।३] द्विविधाः [१।३] =जो ये संसारी (जीव) हैं वे दो प्रकार(निम्नलिखित सूत्रानुसार)हैं

संसारियोंके भेद वहुत है और मोक्ष जीवोंके कोई भेद नहीं है तथा संसारी जीव अनुभव गोचर हैं और मोक्ष जीव अत्यन्त परोक्ष है इन दो कारणोंसे भी संसारियोंका प्रथम ग्रहण है ॥ पश्चात् मोक्ष जीवोंका ग्रहण है ॥

॥ समनस्कामनस्काः ॥ ११ ॥

मनो द्विविधं, द्रव्यमनो भावमनश्चेति ॥ तत्र पुद्गलविपाकिकर्मोदयापेक्षं द्रव्यमनः ॥ वीर्यान्तरायनोइन्द्रियावरणक्षयोपशमापेक्षया आत्मनो विशुद्धिर्भावमनः ॥ तेन मनसा सह वर्तन्त इति समनस्काः। न विद्यते मनो येषां त इमे अमनस्काः॥

समनस्का(1)ऽमनस्काः(2) ॥ ११ ॥

संसारिणः[३] समनस्काः[३] अमनस्काः[३] च * =संसारी(जीव)संज्ञीवासैनी(=समनस्क) और(=च) असंज्ञीवाअसैनीअमनस्कहैं अर्थात् जो मनसहित हैं वे समनस्क संज्ञी वा सैनी हैं और जो मनरहित हैं वे अमनस्क असंज्ञी असैनी हैं भावार्थ जो हितमें प्रवर्तने और अहितसे दूर रहनेकी शिक्षाग्रहण करता है वहसंज्ञी है और जो शिक्षा क्रिया उपदेश इत्यादिकाग्रहण नहीं करता है वह असंज्ञी है ॥

मनस्[१] द्विविधम्[१] द्रव्यमनः[१] भावमनः[१] च * इति * =मन दो प्रकार है द्रव्यमन और भावमन

तत्र * पुद्गल—विपाकिकर्म उदय—अपेक्षम्[१] द्रव्यमनः[१] =तहां पुद्गल विपाकीकर्मप्रकृतिके उदयकी अपेक्षा जिसको सो द्रव्यमन है अर्थात् जो हृदयस्थानविषैं अष्ट पांखुड़ीका फूलकमलके आकार सूक्ष्मपुद्गलका प्रचयरूप तिष्ठता है सो द्रव्यमन है

वीर्यान्तरायनोइन्द्रिय—आवरणक्षयोपशम— =वीर्यांतराय तथा नोइन्द्रियावरणनामा (ज्ञानावरणीयकर्मके)क्षयोपशमके

अपेक्षया[३] आत्मनः[६] विशुद्धिः[१] भावमनः[१] तेन[३] =कारणसे आत्माकी विशुद्धि सो भावमन है। उस

मनसा[३] सह * वर्तन्त I(=वर्तन्ते I) इति * समनस्काः[१] =मनकर सहित है(=वर्तन्ते) इस प्रकार (=इति)समनस्क है

न * विद्यते I मनः[१] येषाम्[६] त[१](=ते) इमे[१] अमनस्काः[१] =नहीं है विद्यमान वा वर्तमान(=विद्यते)मन जिनके ते इतने अमनस्का हैं

(१) समनस्काऽमनस्काः यह वाक्य द्वन्द्व समास है इसमें समुच्चाई उपसर्ग 'और' दूर कर दियाजाता है समासको खोलदेनेसे ऐसा वाक्य हो जाताहै (समनस्काः च अमनस्काः च)इसी कारणसे भाषा अनुवादमें 'और' शब्द लाये हैं (२) इस सूत्रका पाठ तथा अर्थ दोनों सम्प्रदायोंमें एकहै।

एवं मनसो भावाभावाभ्यां संसारिणो द्विविधा विभज्यन्ते । समनस्काश्चामनस्काश्च समनस्काम-नस्का इति ॥ अभ्यर्हितत्वात्समनस्कशब्दस्य पूर्वनिपातः॥ कथमभ्यर्हितत्वं ? । गुणदोषविचा-रकत्वात् ॥ पुनरपि संसारिणां भेदप्रतिपत्त्यर्थमाह—

संसारिणस्त्रसस्थावराः ॥१२॥

एवम्*मनसः॥भाव–अभावाभ्याम्॥	=इस प्रकार मनकी विद्यमानता अविद्यमानता करि वा सद्भाव अभाव करि
संसारिणः॥द्विविधाः॥ विभज्यन्ते। समनस्काः॥च*	=संसारी(जीव) दो प्रकारमें विभाजित है वा विकल्पनीय हैं और (च)समनस्का
अमनस्काः॥ च* समनस्कामनस्काः॥ इति*	=और (=च) अमनस्का पदोंका द्वंद्वसमासमें समनस्कामनस्का ऐसा(वाक्य)हुआ
अभ्यर्हितत्वात्॥	=पूज्यपनासे वा श्रेष्ठपनासे वा प्रधानपन (केहेतु) से (अभ्यर्हित्वात्)(सूत्र मे)
समनस्कशब्दस्य॥पूर्वनिपातः॥कथम्*अभ्यर्हितत्वम्॥	=समनस्क शब्दका पहिले ग्रहणहै (प्रश्न)कैसे,श्रेष्ठपना वा पूज्यपना (समनस्कशब्दके)है
गुणदोषविचारकत्वात्॥	=(उत्तर) समनस्क गुण दोष का विचारवाला होनेसे अमनस्कसे श्रेष्ठ वा पूज्य है
पुनः*अपि*संसारिणाम्॥ भेदप्रतित्त्यर्थम्॥आह।	=फिर भी संसारी जीवोंके भेद जाननेके लिये कहते हैं कि

संसारिणस्त्रसस्थावराः ॥१२॥[२]

संसारिणः॥ त्रसस्थावराः॥ भवन्ति ।	=संसारी (जीव) त्रस और स्थावर हैं अर्थात् द्वीन्द्रिय (स्पर्शन और रसना सहित) त्रीन्द्रिय (स्पर्शन, रसना और नासिका सहित) चतुरिन्द्रिय (स्पर्शन,रसना,नासिका, चक्षुःसहित)और पंचेन्द्रिय(स्पर्शन,रसना,नासिका, चक्षु,और कान सहित),जीवोंको त्रस कहते हैं और एकेन्द्रिय (त्वक्मात्र सहित) जीवोंको स्थावर कहते है ॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस बारहवां सूत्रपर सर्वार्थ सिद्धि वृत्तिकाः शब्दशः हिन्दीअनुवाद

(१) इस सूत्रका पाठ दोनों श्वेताम्बर और दिगम्बर सम्प्रदायोंमें एक है और अर्थ भी एक है(२)संसारिणस्त्रसस्थावरा अर्थात् संसारी जीव त्रस तथास्थावर हैं ऐसा कहने से यह फलित हुआ कि मुक्त जीव नतो त्रस हैं और न स्थावर है देखो 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ४२ ॥

संसारिग्रहणमनर्थकं,प्रकृतत्वात् ॥ क प्रकृतं?। संसारिणो मुक्ताश्चेति । नानर्थकम् । पूर्वापेक्षार्थं,ये उक्ताः समनस्कामनस्काश्चेति संसारिण इति ॥ यदि हि पूर्वस्य विशेषणं न स्यात् समनस्कामनस्कग्रहणं संसारिणो मुक्ताश्चेत्यनेन यथासंख्यमभिसंबंध्येत । एवं च कृत्वा संसारिग्रहणमादौ क्रियमाणमुपपन्नं भवति। तत्पूर्वापेक्षं सदुत्तरार्थमपि भवति ॥

प्रकृतत्वात् [५।१] =(आचार्यसे शिष्यका प्रश्न) प्रकरण वा प्रसंग वा प्रबंधके कारण से (इस सूत्र में)

संसारिग्रहणम् [१।१] अनर्थकम् [१।१] क ? प्रकृतम् [१।१] =संसारीका उपादान (=ग्रहण) निरर्थक है (शिष्यके प्रश्नपर आचार्य) कहां प्रकरण है ?

संसारिणः [१।३] मुक्ताः [१।३] च* इति* =(शिष्यका उत्तर) संसारिणो मुक्ताश्च ऐसा दशवें सूत्रमें प्रकरण है (आचार्यकाऊत्तर)

न*अनर्थकम् [१।१] पूर्व–अपेक्षा–अर्थम् [१।१] =(इस सूत्रमें संसारीका ग्रहण) निरर्थक नहीं है (इससे) पहिले (सूत्रके) सम्बन्धकेलियेग्रहणहै

ये[१।३]उक्ताः[१।३]समनस्कामनस्काः[१।३]च*इतिसंसारिण[१।३]इति*= कि ये कथित समनस्क और अमनस्क संसारी (जीव) है

यदि*हि*पूर्वस्य[६।१] विशेषणम्[१।१] न स्यात् । समनस्क=क्योंकि (=हि) जो (यदि) पहिले ११ वें सूत्रका विशेषण न होता तो समनस्क

अमनस्कग्रहणम्[१।१]संसारिणः[१।३]मुक्ताः[१।३]चइतिअनेन[३।१]=अमनस्का (इससूत्र) के ग्रहणको संसारिणो मुक्ताश्च इस (सूत्र) से (=अनेन)

यथासंख्यम् [१।१] अभिसम्बन्ध्येत । =यथासंख्य सम्बन्ध होजाता (भावार्थ) यदि इसबारहवां सूत्रसे ग्यारहवां सूत्रकाविशेषण संसारी शब्द लाकर नकिया जाता तो दशमें सूत्रके संसारी शब्दका ग्यारहवां सूत्रके समनस्का शब्द से और मुक्त शब्दका अमनस्का शब्द से सम्बन्ध होकर ऐसा अनिष्ट अर्थ होजाता है कि संसारी जीव है वे मनस्का वा मन सहित हैं और मुक्त जीव हैं ते अमनस्का व मन रहित हैं ॥

एवम्*च*कृत्वा संसारिग्रहणम्[१।१]आदौक्रियमाणम्[१।१]=ऐसे करके(इससूत्रमें)संसारीका उपादान वा ग्रहण आदिविषैकरना (क्रियमाणं)

उपपन्नम् [१।१] भवति । =युक्ति युक्त वा प्रमाणसे भरा हुआ (=उत्पन्न) होता है

तत्-पूर्व–अपेक्षम् [१।१] सत् । =उस(संसारी शब्द) का (ग्रहण) प्रथम (ग्यारहवां सूत्रके) अपेक्षा होकर

उत्तर–अर्थम् [१।१] अपि* भवति । =अगले (बारहवां सूत्र) के लिये भी होता है कि

संसारिणो द्विविधाः(१)। त्रसाःस्थावराःइति ॥ त्रसनामकर्मोदयवशीकृतास्त्रसाः। स्थावरनामकर्मोदयवशवर्तिनःस्थावराः॥ त्रस्यन्तीति त्रसाःस्थानशीलाःस्थावरा इति चेन्न। आगमविरोधात्॥ आगमे हि कायानुवादेन त्रसा द्वीन्द्रियादारभ्य आ अयोगकेवलिन इति। तस्मान्न चलनाचलनापेक्षं त्रसस्थावरत्वम्। कर्मोदयापेक्षमेव॥ त्रसग्रहणमादौ क्रियते। अल्पाच्तरत्वादभ्यर्हितत्वाच्च। सर्वोपयोगसम्भवादभ्यर्हितत्वम्॥ एकेन्द्रियाणामपिबहुवक्तव्याभावात्

संसारिणः द्विविधाः त्रसाः स्थावराः इति०	=संसारी जीव दो प्रकार हैं त्रस हैं स्थावर हैं
त्रसनामकर्मोदय–वशीकृताः त्रसाः स्थावरनामकर्म–	=त्रसनामकर्मकी प्रकृतिकेउदयकेवशसे हुए त्रसहैंस्थावरनामानामकर्मकीप्रकृतिके
उदयवशवर्तिनः स्थावराः त्रस्य–अन्ति(त्रस्यान्ति)इति०	=उदयकेवशसे हुए स्थावर हैं(पवन)डरते हैं वा भयभीत होते हैं ऐसे(=इति)
त्रसाः स्थानशीलाः स्थावराः इति०चेत् *	=त्रस(और) तिष्ठनेका है स्वभावजिनका (ऐसे)स्थावर हैं ऐसी शंका(=चेत्)है
न०आगमविरोधात् आगमे हि०काय–अनुवादेन	=(उत्तर)शास्त्रकेविपरीतहोनेसे ऐसानहींहैक्योंकि(=हि)शास्त्रमें कायकीअपेक्षासे
त्रसाः द्वि–इन्द्रियात् आरभ्य – आ०अयोगकेवलिनः इति	=त्रस जीव दो इन्द्रियसे प्रारम्भकर अयोगकेवलीपर्यंत (=आ) हैं
तस्मात् न*चलनाचलन–अपेक्षं त्रसस्थावरत्वम्॥	=तिससे चलने न चलनेकी अपेक्षासे त्रस स्थावरपना नहीं है
कर्मउदय–अपेक्षम् एव० त्रसग्रहणम्	=कर्मउदयकी अपेक्षासे ही(त्रसस्थावरपना)है(इससूत्रमें)त्रसकाउपादान
आदौ क्रियते। अल्पाच्तरत्वात् अभ्यर्हितत्वात् च*	=पूर्वमें कियाहै क्योंकि(त्रसशब्दके स्थावरशब्दसे) स्वर थोड़े हैंऔरप्रधानपनाहै
सर्व–उपयोगसम्भवात् अभ्यर्हितत्वम्॥	=क्योंकि(त्रसके)समस्त उपयोग सम्भवहोनेसे पूज्यपनाहैअर्थात्त्रसकेप्रधानपना
	सर्व उपयोग संभव हैं उस उपयोगकी अपेक्षासे है
एकइन्द्रियाणाम् अपि बहुवक्तव्य–अभावात्	=एकेइन्द्रियोंके भी बहुतकथन या भेद(वक्तव्य)नहोनेके कारणसे

(१) द्विशब्दके साथ विधा स्त्रीलिंग बहुवचन इस कारण लाए हैं कि स्थावरों का भी बहुत जाति हैं और त्रस भी अनेक प्रकार के हैं

(२) त्रस् दिवादि चतुर्थ गणका धातु है य विकरण वर्तमानकालके चिन्हके प्रथम आता है इस प्रकार'त्रस्'का'त्रस्य'हुआ इसके पहिले 'अन्ति'प्रत्यय लगानेसे त्रस्य–अन्ति होता है परन्तु अन्ति के'अ'के पहिले'अ'का लोप होजाता है अर्थात् गिरजाता है इसलिये त्रस्यन्ति वर्तमान काल परस्मैपद बहुवचन इस सूत्रमें है अर्थ डरते हैं वा भयभीत होते हैं। आरभ्य समस्तगत्यन्तक भूतकृदन्त है॥

उल्लंघ्यानुपूर्वीं स्थावरभेदप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः स्थावराः ॥१३॥

स्थावरनामकर्मभेदाः पृथिवीकायिकादयः सन्ति,

उल्लंघ्य—आनुपूर्वीं[१] स्थावर–भेद–प्रतिपत्ति–अर्थम्[१] आह=(कथनकरनेका) क्रम(=आनुपूर्वी) छोड़कर स्थावरके भेद कहनेके लिये कहते हैं कि

पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः स्थावराः ॥ १३ ॥

पृथिवी–अप्–तेजस्–वायु–वनस्पतयः[१] स्थावराः[१]=पृथिवी कायिक, अप्कायिक, तेजःकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक स्थावर(जीव) हैं

वृत्त्यनुवादः–स्थावरनामकर्मभेदाः[१] पृथिवीकायिक—=स्थावरनामा नामकर्मकी प्रकृतिके भेद पृथिवीकायिक

आदयः[१] सन्ति T =अप्कायिक, तेजः कायिक, वायुकायिक, वनस्पति कायिक (=आदयः) हैं

(१) दोनो आम्नायोंके १३, १४ सूत्रका पाठ भेद और अर्थ भेद एकसाथ लिखनेसे सुगम होगा। इसलिये नीचे दोनो आम्नायोंके चारो सूत्र लिखते हैं पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयःस्थावराः ॥१३॥ अर्थ ऊपर देखो ॥ द्वीन्द्रियादयस्त्रसाः ॥१४॥ दोइन्द्रिय, तीनइन्द्रिय चारइन्द्रिय पांचइन्द्रियवाले त्रस हैं पृथिव्यव्वनस्पतयः स्थावराः ॥१३॥ सभाष्यतत्त्वार्थ, धिगमसूत्र पृष्ठ ॥ ४१ ॥ तेजोवायू द्वीन्द्रियादयाश्च त्रसाः सभाष्य० में १४ वां सूत्र पृष्ठ ४२ पृथिवीकायिक, अप्कायिक, वनस्पतिकायिक (ये)स्थावर जीव हैं ॥ तेजः कायिक, वायुकायिक और, =च, दो इन्द्रियवाले, तीन इन्द्रियवाले चारइन्द्रियवाले पांच इन्द्रियवाले त्रस जीव हैं ॥ दोनो आम्नायोंके १३ वा और १४वां सूत्रोंके मिलानसे प्रगट है कि तेजस्–वायु दो शब्द हमारे यहांके १३ वां सूत्रके श्वेताम्बर आम्नाय के १४वां सूत्र में अन्तर्गत हैं यह तो दोनोके१३वां सूत्रमें पाठभेद हुआ। सभाष्य० के १४ वां सूत्रमें हमारे यहा के १४ सूत्रसे 'तेजो–वायु' 'च' अधिक है शेष पाठ एकसा है। हमारे यहां तेजकायिक और वायुकायिक दोनों को स्थावर जीव माना है परन्तु श्वेताम्बर आम्नायमे इनको त्रस जीव माना है जैसा कि सभाष्य० के १४ वां सूत्र और हमारे यहाँ के १३ वां सूत्र से प्रकट है। अवशेष तात्पर्य दोनो आम्नायके दोनो दोनो सूत्रों का एक है अर्थात् पृथिवी कायिक, अप् (जल)कायिक, वनस्पति कायिक को स्थावर दोनोंमें माना है और दो इन्द्रियवालेजीव, तीन इन्द्रियवाले जीव, चार इन्द्रियवाले जीव पांच इन्द्रियवाले जीवोको दोनोमें त्रस माना है।

(२) 'कायादय.' सर्वार्थसिद्धिकी एकप्रति हस्त लिखितमें, दोनो मुद्रित आवृत्तियोमें, तथा राजवार्तिकमें पाते हैं। जिसका 'जीव' निकलगयाहो वो काय है। जीव सहित हो सो कायिकहै। यहां पर जीव सहित से अभिप्रायहै। तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक पृष्ठ ३२५ के निम्न वाक्यमें 'कायिक' शब्द लाये हैं। "पृथिवी कायिकादि नामकर्मोदयवशात्पृथिव्यादयो जीवाःपृथिवी कायिकादय. स्थावराः प्रत्येतव्या न पुनर जीवास्तेषामप्रस्तुतत्वात् "॥

तदुदय निमित्ता अमी इति जीवेषु पृथिव्यादयः संज्ञा वेदितव्याः ॥ प्रथनादिप्रकृति निष्पन्ना अपि रूढिवशात्प्रथनाद्यनपेक्षा वर्तन्ते ॥ एषां पृथिव्यादीनामार्षे चातुर्विध्यमुक्तम् । प्रत्येकं तत्कथमिति चेदुच्यते ॥ पृथिवी । पृथिवीकायः। पृथिवीकायिकः । पृथिवीजीव इत्यादि ॥ तत्र अचेतनावैश्रसिकपरिणामनिर्वृत्ता काठिन्यगुणात्मिका पृथिवी । अचेतनत्वादसत्यपि पृथिवीकाय-नामकर्मोदये प्रथनक्रियोपलक्षितैवेयम् । अथवा पृथिवी सामान्यम्—

तद्–उदय–निमित्ताः अमी इति जीवेषु	=उस (स्थावरनामा नामप्रकृति) के उदयके कारण इनजीवोंमें
पृथिवी–आदयः	=पृथिवीकायिक,अप्कायिक,तेजःकायिक,वायुकायिक,वनस्पतिकायिक (=आदयः)
सञ्ज्ञाः वेदितव्याः प्रथन–	=सञ्ज्ञा वा नाम जानो(पृथिवी,अप्,तेजः,वायु,वनस्पति ये पांचौ शब्द) प्रथन
आदि–प्रकृति–निष्पन्नाः अपि रूढिवशात्	=आदिक(भिन्नभिन्न)धातुओंसे(=प्रकृति)निकले हैं। फिरभी(=अपि)रूढिके आश्रयसे
प्रथन–आदि–अनपेक्षाः वर्तन्ते ।	=(इनपांचौ शब्दोंकी)प्रथनादिक अर्थात् विस्तारादिक (अर्थ)की विवक्षा नहीं है
एषाम् पृथिवी–आदीनाम् आर्षे चातुर्विध्यम्	=इन पृथिवी आदिकोंके ऋषियों रचित धर्मशास्त्रमें (=आर्षे) चार चार भेद
उक्तम् प्रत्येकम् तत् कथं इति चेत् उच्यते ।	=कहेगये हैं वह(=तत्)प्रत्येक कैसे हैं? ऐसी शंका होने पर कहाजाता है कि
पृथिवी पृथिवीकायः पृथिवीकायिकः पृथिवीजीवः इति	=पृथिवी, पृथिवीकाय, पृथिवीकायिक, पृथिवीजीव ऐसें
आदि ॥	=और भी है अर्थात् अप्–अप्काय, अप्कायिक, अप्जीव; तेजः,तेजःकाय, तेजःकायिक,तेजोजीव; वायु–वायुकाय–वायुकायिक–वायुजीव; वनस्पति–वनस्पतिकाय-वनस्पतिकायिक-वनस्पतिजीव हैं
तत्र अचेतना–वैश्रसिक–परिणाम–निर्वृत्ता	=तहां अचेतन स्वभावसिद्ध (=वैश्रसिक) परिणामसे रचित
काठिन्यगुण–आत्मिका पृथिवी अचेतनत्वात्	=अपने(=आत्मिक) कठिनतागुणकरि सहित पृथिवी है। जड़पनासे
असति अपि,पृथिवीकायनामकर्मउदये प्रथन–क्रिया–	=पृथिवीकायनामा नामकर्मकी प्रकृतिके उदय न होनेपरभी प्रथन वा फैलावक्रिया
उपलक्षिता–एव इयम् अथवा पृथिवी सामान्यम्	=आदिसे युक्त (=उपलक्षित)यह(पृथिवी)है ही ॥ वा पृथिवी सामान्य(शब्द) है

उत्तरत्रयेऽपि सद्भावात्। कायः शरीरं पृथिवीकायिकजीवपरित्यक्तः पृथिवीकायः। मृतमनुष्यादिकायवत्। पृथिवीकायः अस्यास्तीति पृथिवीकायिकः। तत्कायसम्बन्धवशीकृत आत्मा समवाप्तपृथिवीकायनामकर्मोदयः कार्मणकाययोगस्थो यो न तावत्पृथिवीं कायत्वेन गृह्णाति स पृथिवीजीवः

उत्तरत्रये ७। अपि * =क्योंकि अगले तीनों भेद (पृथिवीकाय, पृथिवीकायिक, पृथिवीजीव)मे भी (यहशब्द)

सद्भावात्५। कायः१। शरीरम्१।।।पृथिवीकायिकजीव- =विद्यमान है। काय वा शरीर जो पृथिवी कायिक जीवकरि

परित्यक्तः १। =त्यागित होगया है अर्थात् जिसमेसे पृथिवी कायिक जीव मरकर निकल गया है

पृथिवीकायः १। मृत–मनुष्यादिकायवत् * =सो पृथिवीकाय है। मरेहुये मनुष्यादिकके शरीर सदृश (पृथिवी काय) है

पृथिवीकायः१।अस्य६। अस्ति इति पृथिवीकायिकः१। =पृथिवीकाय जिस (जीव)के है ऐसा (जीव) पृथिवी कायिक है ।। "सो यहु" जीव "पृथिवी शरीरके संवध सहित है" जय०वचनिका पृष्ठ २५६. अर्थात् जिस जीवका उस पृथिवी कायसे संवध है वह पृथिवी कायिक है ।।

तत्काय–सम्बन्धवशीकृतः१।आत्मा १। =उस (पृथिवी) शरीरके संबंध वशीभूत आत्मा (अन्य कायके शरीरसे छूटकर)

समवाप्त(सम्-अव-आप्त) पृथिवीकायनामकर्मोदयः१। =पृथिवीकाय नामा नामकर्मकी प्रकृतिका उदय प्राप्त हुआ जिसको

कार्मणकाययोगस्थः १। यः १। =(जितने अंतरालमें) कार्माण काययोगमें तिष्ठा हुआ जो (जीव जब तक)

नतावत्पृथिवीम्२।।कायत्वेन३।।।गृह्णातिसःपृथिवीजीवः=पृथिवीको कायपनाकरि ग्रहण नहीं करता तब तक (=तावत्) वह पृथिवी जीव है अर्थात् जिस जीवकें पृथिवी कायिक नामकर्मका उदय है परंतु पृथिवीको काय–स्वरूपसे ग्रहण न कर वह कार्माणकाययोगमें ही विद्यमानहै वह पृथिवी जीव है

भावार्थ कोई जीव किसी शरीर मे था उसने अपनी आयु पूर्ण करने पर उस शरीर को त्यागकर पृथवी काय नामा नामकर्मकी प्रकृतिके उदयसे पृथिवी कायिक होने वाला है तौ उस जीवको विग्रहगति (=नया शरीर धारण करने के लिये गमन अवस्था)में कार्माण योगहै जितने काल तक विग्रहगति है तब तक वह जीव पृथिवी काय वा शरीरको ग्रहणकरनेमे असमर्थ है उस काल तक उसको पृथिवी जीव कहैगे। उक्त विग्रह काल किसी जीवका एक समय,किसीजीवका दो समय,किसी जीवका तीन समय तक होता है तीन समय से अधिक नहीं हो सक्ता है ।। और विग्रह गति में (जीवकें) कार्मण योग रहता है ।।

उक्तं च—पुढवी पुढवीकायो पुढवीकाइय पुढविजीवो य । साहारणोपमुक्को सरीरगहिदो भवंतरिदो ॥ १ ॥ एवमबादिष्वपि योज्यम् ॥ एते पञ्चविधाः प्राणिनःस्थावराः । कति पुनरेषां प्राणाः? । चत्वारः। स्पर्शनेन्द्रियप्राणःकायबलप्राणःउच्छ्वासनिःश्वासप्राणःआयुःप्राणश्चेति ॥ अथ त्रसाः के ते?इत्यत्रोच्यते ॥

उक्तं च । पुढवी पुढवीकायो (पृथिवी पृथिवीकायः) =बहुरि कहागया है कि पृथिवी, पृथिवीकाय,

पुढवीकाइय पुढविजीवो य(पृथिवीकायिकः पृथिवीजीवःच) =पृथिवीकायिक और (=य=च) पृथिवीजीव है [पृथिवी काय है

साहारणोपमुक्को(साधारण—उपमुक्त :) =(सो यह पृथिवी)साधारण है । जिससे जीव अभी निकला है (सो

सरीरगहिदो (शरीरगृहीतः) =शरीरग्रसित वा शरीर सहित जीव है (सो पृथिवी कायिक है)

भवंतरिदो (भवान्तरितः) =भवान्तर अवस्थावाला वा विग्रहगतिसहितजीवहै(सो पृथिवी जीव है)

भावार्थ पृथिवी,पृथिवीकाय, पृथिवीकायिक और पृथिवीजीव ये चार भेद पृथिवीके है। उनमेंसे अचेतन स्वभावसिद्ध परिणामसे रचित और कठिनता आदिगुण स्वरूप पृथिवी कहीजाती है इसलिये पृथिवी यह एक साधारण और सामान्यनाम ही है ॥ (२) कायका अर्थ शरीर है पृथिवीकायिक जीवने जिस शरीर को छोड दिया है वह पृथिवीकाय कहाजाता है यह मरे हुये मनुष्यादिक कीकाय(काया)के समान है, (३) शरीर गृहीत वा शरीर ग्रसित जीव अर्थात् वह पृथिवी जिसमें इस समय जीव विद्यमान है वह पृथिवीकायिक है ॥ (४) जिस जीवके पृथिवीकायिक नामकर्मकाउदय है परतु पृथिवीको काय स्वरूपसे ग्रहण न कर वह कार्माणकाय योगमेंही विद्यमान है अर्थात् विग्रहगति अवस्था में है वहपृथिवीजीव है ॥

एवम्*अप्—आदिषु अपि*योज्यम् ॥ =ऐसे अप् आदिकमेंभी(चार चार भेद) लगाना योग्य है

एते पञ्चविधाः प्राणिनः स्थावराः कति पुनः एषां प्राणाः?=ये पांच प्रकार प्राणवाले स्थावर हैं । पुनि इनके कितने प्राण हैं ?

चत्वारः स्पर्शनेन्द्रियप्राणः कायबलप्राणः =(उत्तर)चार प्राण हैं(अर्थात्)स्पर्शन इन्द्रियप्राण, कायबलप्राण,

उच्छ्वासनिःश्वासप्राणः आयुःप्राणः च*इति* =उच्छ्वासनिःश्वासप्राण, और आयुप्राण

अथ*त्रसाः के ते ? इति*अत्र*उच्यते T =अब त्रसजीव है ते कोन हैं ऐसा प्रश्न होनेपर यहां कहाजाता है कि

॥ द्वीन्द्रियादयस्त्रसाः ॥ १४ ॥

द्वे इन्द्रिये यस्य सोऽयं द्वीन्द्रियः, द्वीन्द्रियः आदिर्येषां ते द्वीन्द्रियादयः ॥ आदिशब्दो व्यवस्थावाची। क्व व्यवस्थिताः। आगमे। कथम्। द्वीन्द्रियस्त्रीन्द्रियश्चतुरिन्द्रियःपञ्चेन्द्रियश्चेति॥ तद्गुणसंविज्ञानवृत्तिग्रहणात् द्वीन्द्रियस्याप्यन्तर्भावः ॥

सूत्रम्[1]— द्वीन्द्रियादयस्त्रसाः[2][3] ॥ १४ ॥

सूत्रार्थः—द्वि-इन्द्रिय-आदयः त्रसाः =दो इन्द्रियोंको आदिलेकर(पंचेन्द्रियतक)त्रस (जीव) हैं अर्थात् दोइन्द्रिय तीनइन्द्रिय,चारइन्द्रिय,पंचेइन्द्रिय जीव आगममें त्रसनामसे व्यवस्थित हैं॥

वृत्त्यनुवादः—द्वे इन्द्रिये यस्य सः अयम् द्वीन्द्रियः =दो है इन्द्रिय जिसके सो यह दो इन्द्रिय है (और)

द्वीन्द्रियः आदिः येषां ते द्वीन्द्रिय-आदयः =दो इन्द्रिय हैं आदिमें जिनके ते द्वीन्द्रिय आदि हैं

आदिशब्दः व्यवस्थावाची =(सूत्रमें)आदिशब्द मर्यादावाची है अर्थात् इन्द्रियोंकी गणनाको परमितकरताहै।

क्व* व्यवस्थिताः आगमे कथम्* =(प्रश्न)कहां व्यवस्था वा मर्यादा है। (उत्तर)शास्त्रोंमें है (प्रश्न) कैसे है

द्वीन्द्रियः त्रीन्द्रियः चतुरिन्द्रियः च* पंचेन्द्रियः इति* =(उत्तर)दो इन्द्रिय,तीन इन्द्रिय,चार इन्द्रिय,और पांच इन्द्रिय,वाले जीव हैं

तद्गुणसंविज्ञानवृत्तिग्रहणात् =तद्गुणसंविज्ञानबहुव्रीहिसमासके उपादानके निमित्तसे है

द्वीन्द्रियस्य अपि* अन्तर्भावः =दो इन्द्रियवालेका भी(आदिशब्दविषैं)ग्रहण(=अन्तर्भाव)हैअर्थात् इस समास में जिस पदार्थके पीछे आदिशब्द आता है तो वह अपने पहलेके पदार्थको ग्रहण करते हुये दूसरी शेष वस्तुओंको भी गिना देता है जैसे इस सूत्रमें आदि शब्दने अपने पहिलेकी संख्या द्विइन्द्रियकी गणना करतेहुये

(१) दोनों आम्नायोंमे इस सूत्रके पाठ और अर्थमें जो भेद है वह इस अनुवादके तेरहवां सूत्रमे दियागया है॥ (२) मर्यादावाची,तेन पञ्चेन्द्रियादूर्ध्वं षडिन्द्रियादिजीवो न भवतीत्यभिप्रायः॥ (३) तद्गुणसंविज्ञानबहुव्रीहिसमासे उदाहरणं लम्बकर्णः। अतद्गुणसंविज्ञाने बहुधनः॥

कति पुनरेषां प्राणाः?। द्वीन्द्रियस्य तावत् षट् प्राणा पूर्वोक्ता एव रसनवाक्प्राणाधिकाः। त्रीन्द्रियस्य सप्त त एव घ्राणप्राणाधिकाः। चतुरिन्द्रियस्याष्टौ त एव चक्षुःप्राणाधिकाः। पंचेन्द्रियस्य तिरश्चोऽसंज्ञिनो नव त एव श्रोत्रप्राणाधिकाः। सञ्ज्ञिनो दश त एव मनोबलप्राणाधिकाः॥ आदिशब्देन निर्दिष्टानामनिर्ज्ञातसंख्यानामियत्तावधारणं कर्तव्यमित्यत आह

त्रिइन्द्रिय, चतुः इन्द्रिय पंचेन्द्रिय, को भी त्रस जीवोंके भेदोंमें गिना दिया॥

कति[1] पुनः*एषाम्[6] प्राणाः[1]?	=(प्रश्न)पुनि कितने इन(प्रत्येक द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-पंचेन्द्रिय)के प्राणहैं
द्वि-इन्द्रियस्य[6] तावत्*षट्[1]प्राणाः[1]पूर्वोक्ताः[1]एव*	=प्रथम(=तावत्)द्वीन्द्रियजीवकें छैप्राण हैं। प्रथम कथित ही(चार स्पर्शनेन्द्रियप्राण, कायबलप्राण,उच्छ्वासनिःश्वासप्राण,औरआयुप्राणजोएकेन्द्रियजीव कैहोते हैं) हैं
रसन-वाक्प्राण-अधिकाः[1]	=रसनाइन्द्रिय,वचनबल प्राण, अधिक हैं
त्रीन्द्रियस्य[6]सप्त[1]ते[1]एव*घ्राणप्राण-अधिकाः[1]	=तीनेन्द्रियजीवके सात(प्राण)हैं। वे ही(छहऔर) नासिका इन्द्रियजिनकें अधिकहैं
चतुरिन्द्रियस्य[6]अष्टौ[1]ते[1] एव*चक्षुर्प्राण-	=चतुरिन्द्रियजीवके,आठ (प्राण) हैं वे(=ते)ही(=एव-सात) (और)चक्षुर्प्राणजिनकें
अधिकाः[1]पञ्चेन्द्रियस्य[6]तिरश्चः[6]असञ्ज्ञिनः[6]नव[1]	=अधिक हैं। पंचेंद्रिय तिर्यंच असैनीकें नो (प्राण) हैं
ते[1]एव*श्रोत्रप्राण-अधिकाः[1]सञ्ज्ञिनः[6]दश[1]	=वेही(आठ)(और)कर्ण इन्द्रियप्राण जिनकें अधिक हैं।(पंचेंद्रिय)सैनीके दस(प्राण)हैं
ते[1]एव*मनोबलप्राण-अधिकाः[1]आदिशब्देन[3]	=वेही(नौऔर)मनबलप्राण जिनकें अधिक है।(इससूत्रमें) आदि शब्दकरि
निर्दिष्टानाम्[6]निर्ज्ञातसंख्यानाम्[6]इयत्ता—	=उपदेशकीहुई(=निर्दिष्टानाम्) (परतु) विनाजानी हुई गणनाओंकी मर्यादा
अवधारणम्[1]कर्तव्यम्[1]इति* अतः*आह	=निश्चय करना(=अवधारणम्)कर्तव्य है वा निश्चकरना चाहिये अतः कहते हैं कि

(२) मर्यादावाची [1]। तेन [3]। पञ्चेन्द्रियात् [5]। ऊर्ध्वम्* षष्ठइन्द्रियादिजीवः [1]। न*भवति Iइति*अभिप्रायः [1]। = मर्यादावाचक(=व्यवस्थावाची)है तिस(आदि शब्द)करि पञ्चइन्द्रियसेऊपर =छेइन्द्रियादिजीव नहीं होतेहैं। ऐसाआशयसूत्रमेंआदिशब्दकाजोव्यवस्थावाचीहै, है

(३) तद्गुणसंविज्ञानबहुव्रीहिसमासे[7]।उदाहरणम्[1]।।लम्बकर्णः[1]। = वहीगुणज्ञापकबहुव्रीहि समासमें दृष्टान्त, लम्बकर्ण है वा लम्बेकानवाला है अतद्गुणसंविज्ञाने [7]॥ बहुधन [1]। = (और)अतद्गुणसंविज्ञान(बहुव्रीहिसमासमें)बहुतहैधनजिसकेंऐसा(उदाहरण) है।

[illegible] ले पचेन्द्रियस्य तक एकएकवचनमें है अतःअनुवाद एकवचनमेंहैऔरपांचस्थानोंमें 'अधिकाः' शब्दबहुवचनमें है इससेअनुवादबहुवचनमेंहै॥

॥ पंचेन्द्रियाणि ॥ १५ ॥

इन्द्रियशब्दो व्याख्यातार्थः। पञ्चग्रहणमवधारणार्थं, पञ्चैव नाधिकसंख्यानीति ॥ कर्मेन्द्रियाणां वागादीनामिह ग्रहणं कर्तव्यम्। न कर्तव्यम्। उपयोगप्रकरणात् ॥ उपयोगसाधनानामिह ग्रहणं कृतं, न क्रियासाधनानामनवस्थानाच्च ॥ क्रियासाधनानामङ्गोपाङ्गनामकर्मनिर्वर्तितानां सर्वेषामपि क्रियासाधनत्वमस्तीति न पंचैव कर्मेन्द्रियाणि ॥

सूत्रम्— पंचेन्द्रियाणि=पंचेन्द्रियाणि (नाधिकानि) भवन्ति

सूत्रार्थः—पंचेन्द्रियाणि॥न-अधिकानि॥भवन्ति॥=इन्द्रियें(सब)पांच हैं अधिक नहीं होती हैं अर्थात् इससूत्रका आरम्भनियमकेलियेहै, और छह आदिकी संख्याकेनिषेधके लिये है। जो"इन्द्रकहिये आत्मा(=संसारीजीव)ताकाचिंगकहिये जनावनेका चिन्हतथा इन्द्रजोनामकर्म ताकरि रचे जेआकार ते इन्द्रिय है"पं०जय०वचनिकापृष्ठ२५८।

वृत्त्यर्थः—इन्द्रियशब्दः॥व्याख्यातअर्थः॥पञ्चग्रहणम्॥=इन्द्रिय शब्दका अर्थ पहिले विवरण कियागया है। पंचशब्दका उपादान

अवधारणअर्थं॥पञ्च॥एव न-अधिक-संख्यानि॥इति=निश्चयके लिये है। पांचही(इन्द्रियां) हैं अधिक संख्या वा गणना नहीं है

कर्म-इन्द्रियाणाम्॥वाग्-आदीनाम्॥इह*ग्रहणम्॥ =कर्मइन्द्रियें वचन,हाथ-पांव-गुदा-लिंग(=आदीनाम्)का यहां ग्रहण

कर्तव्यम्॥न*कर्तव्यम्॥उपयोग-प्रकरणात्॥ =करनाचाहिये। (कर्मइन्द्रियोंकाग्रहण)नहींचाहिये। क्योंकि(यहां)उपयोगकाविषयहै

उपयोग-साधनानाम्॥इह*ग्रहणं॥कृतम्॥ =(अतः) उपयोगके कारणोंका यहां ग्रहण किया गया है [वस्याप्रसंग आताहै

च*न*क्रियासाधनानाम्॥अनवस्थानात्॥ =औरनकिक्रियाकेसाधनोंका क्योंकि(यदि क्रियाकेसाधनोंको इन्द्रियकहैं तो)अन-

क्रियासाधनानाम्॥अङ्गोपाङ्गनामकर्मनिर्वर्तितानाम्॥ =क्योंकि क्रियाकेसाधन अंगोपांगनामा नामकर्म कररिचित हैं

सर्वेषाम्॥अपि*क्रियासाधनत्वम्॥अस्ति।इति* =इसलिये(=अपि-देखो वैद्यकोशपृष्ठ४१)समस्तके क्रियाका साधनपना है

न*पञ्च॥एव*कर्मइन्द्रियाणि॥ =नकि पांचोंही कर्मइन्द्रियोंके (क्रिया साधनपना है) भावार्थ ऐसा है कि

(१) दोनों आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है ॥(२)सांख्यमती चक्षु-श्रोत्र-घ्राण-रसना-त्वक् ये पांच बुद्धीन्द्रियां;वचन,हाथ,पांव, गुदा,लिंग येपांच कर्मेन्द्रियां,और मन ऐसे ग्यारह इन्द्रियां मानतेहैं। कोईछै इन्द्रियांमानते हैं उनकेखंडनार्थ औरसंख्याकी इयत्ता के लिये ह सूत्र है

तेषामन्तर्भेदप्रदर्शनार्थमाह

द्विविधानि ॥ १६ ॥

विधशब्दः प्रकारवाची, द्वौ विधौ येषां तानि द्विविधानि, द्विप्रकाराणीत्यर्थः ॥ कौ पुनस्तौ द्वौ प्रकारौ? । द्रव्येन्द्रियं भावेन्द्रियमिति ॥

जो पदार्थ ज्ञान और दर्शन स्वरूप उपयोगमें कारणहों उसीकानाम इन्द्रिय मानाहै । स्पर्शनआदि पांच इन्द्रियां उपयोगमें कारण है इसलिये उन्हे इन्द्रिय मानना युक्त है । वाक् पाणि पांव गुदा और लिंग उपयोगमें कारणनहीं,इसलिये उन्हें इन्द्रिय नहीं कहाजासकता यदि यहांपर जो क्रियाके साधनहों वे भी इन्द्रिय हैं यह इन्द्रिय सामान्यका लक्षण किया जायगा तो यद्यपि बोलना आदि क्रियाओंके कारणहोनेसे वाक् आदिइन्द्रियां कहींजावेंगीं परंतु क्रियाके साधन तो मस्तक आदि सबही अंग उपांग हैं । सबोंको इन्द्रिय कहना पड़ेगाफिर किसको इन्द्रिय कहना किसको न कहना अथवा वाक् पाणि आदिपांचको कर्मेन्द्रिय कहना औरोंको न कहना यह अवस्थाही न बन सकैगी इस लिये जो क्रियाके साधन हों वे इन्द्रियहै यह इन्द्रिय सामान्यका लक्षण न मानकर'जो उपयोगमें कारण हों वे इन्द्रियहै'यही इन्द्रियका लक्षण मानना चाहिये॥अतःजो सूत्रमें कहीहै वे उपयोगमें कारण हैं और वे हीइन्द्रियें हैं॥

तेषाम् अन्तर्भेद–प्रदर्शन–अर्थम् आह =उन(इन्द्रियों) के प्रभेद दिखानेके लिये (निम्नलिखित सूत्रमें आचार्य)कहते हैं कि

सूत्रम्—द्विविधानि=द्विविधानीन्द्रियाणिभवन्ति॥१६॥('इन्द्रिय'शब्दकीअनुवृत्तिपंद्रहवांसूत्रसेली)

सूत्रार्थः–इन्द्रियाणि द्विविधानि भवन्ति =इन्द्रियेंदोभेदरूपहैंअर्थात्पांचोंइन्द्रियोंमेंसेप्रत्येकइन्द्रियकेदोद्रव्येन्द्रियऔरभावेन्द्रियभेदहैं

वृत्त्यर्थः–विधशब्दः प्रकारवाची द्वौ विधौ येषाम् (=इससूत्रमें)'विध'शब्द प्रकारअर्थ में है । दो है भेदजिनके तानि द्विविधानि द्विप्रकाराणि इति अर्थः =ते द्विविधानि हैं अर्थात् दोदो प्रकार सब इन्द्रियें हैं । ऐसाआशय है

कौ पुनः द्वौ प्रकारौ द्रव्येन्द्रियं भावेन्द्रियम् इति =फिर कौन दो प्रकार हैं द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय ऐसे है

तत्र द्रव्येन्द्रियस्वरूपप्रतिपत्त्यर्थ (निर्ज्ञापनार्थ) माह—

॥ निर्वृत्त्युपकरणे द्रव्येन्द्रियम् ॥ १७ ॥

निर्वर्त्यते निष्पाद्यते इति निर्वृतिः ॥ केन निर्वर्त्यते? कर्मणा ॥ सा द्विविधा वाह्याभ्यन्तर-भेदात् । उत्सेधांगुलां(१)संख्येयभाग प्रमितानां

तत्र द्रव्येन्द्रियस्वरूपप्रतिपत्तिअर्थ (निर्ज्ञापन–अर्थ)म् [१]॥आह=तहां द्रव्येन्द्रियकेस्वरूपके निर्णय वा जाननेके लिये कहते हैं कि

सूत्रम्— [१]निर्वृत्त्युपकरणे द्रव्येन्द्रियम् ॥ १७ ॥

=निर्वृत्त्युपकरणे (इन्द्रिये–द्विविधे)द्रव्येन्द्रियम्	=निर्वृत्ति–इन्द्रियम्–उपकरणेन्द्रियम् च द्विविधं द्रव्येन्द्रियम् भवति ॥ १७ ॥
सूत्रार्थः—निर्वृत्ति–इन्द्रियम्[१]॥च*उपकरणेन्द्रियम्[१]॥	=निर्वृत्ति–इन्द्रिय और उपकरणेन्द्रिय
द्विविधम्[१]॥द्रव्येन्द्रियम्[१]॥भवति।	=दोप्रकार द्रव्येन्द्रिय है अर्थात् निर्वृत्तिऔरउपकरणके भेदसे द्रव्येन्द्रिय दो प्रकार है॥
वृत्त्यनुवादः–निर्वर्त्यते। निष्पाद्यते। इति*निर्वृत्तिः[१]॥	=रचागया है बनायागया है यह निर्वृत्ति है
केन[३]॥निर्वर्त्यते। कर्मणा[३]॥	=(प्रश्न)किससे रचगया है। (उत्तर) कर्म करि [विशेपहो सो निर्वृत्ति है)
सा[१]॥द्वि–विधा[१]॥वाह्य–अभ्यन्तर–भेदात्[५]।	=वह(निर्वृत्ति)वाह्यअभ्यन्तर भेदसे दो प्रकार है(नामकर्मके उदयसे जोरचना–
उत्सेध–अंगुल–असंख्येयभागप्रमितानाम्[६]।	=उत्सेध अगुलके असंख्यातवांभागप्रमाण

---

(१) सूत्र १६,१७ का पाठ और अर्थ दोनो आम्नायोंमे एक है ॥'इन्द्रिय'और 'विधि'शब्दोंकी अनुवृत्ति क्रमसे १५,१६ सूत्रोंसे इस सूत्रमेंलीगई है ॥
(२)उत्सेधांगुलमिति व्यवहारांगुल घनरूप तदेवात्र गृह्यते। परमागमे देहगेहग्रामनरकादिप्रमाणमुत्सेधांगुलेनैवेति नियमितत्वात् ॥

उत्सेध–अगुलम्[१]॥इति व्यवहार–अगुलम्[१]॥घनरूप	=उत्सेधअ गुल(=आठआडेजोप्रमाण)हैसोव्यवहारअगुलहै। घनरूप(लवाई–चौडाईउचाईमेंसम)
तद्*एव*अत्र*गृह्यते। परमागमे[७]।देह–गेह–ग्राम–	=वही (उत्सेधअ गुल)यहां लियागया है। शास्त्रमें शरीर,गृह ग्राम,
नरक–आदि–प्रमाणम्[१]॥उत्सेध-अगुलेन[३]॥ एव*	=नरकादिकका प्रमाण उत्सेध अ गुलसे ही है॥
इति*नियमितत्वात्[५]॥	=क्योंकि ऐसा नियमित वा विधित है॥ इस उत्सेधअ गुलसे पांच सौ गुणा प्रमाणांगुलहै इससे महापर्वत,नदी,समुद्रादिकका परिमाण कहाजाता है। भरत ऐरावत क्षेत्रके मनुष्योंका अपने २ कालमे जो अ गुल है उसे आत्मांगुल कहते हैं इससे झारी कलश,धनुपादिका प्रमाण होता है॥

शुद्धानामात्मप्रदेशानां प्रतिनियतचक्षुरादीन्द्रियसंस्थानेनावस्थितानां वृत्तिरभ्यन्तरा निर्वृत्तिः। तेष्वात्मप्रदेशेष्विन्द्रियव्यपदेशभाक्षु यः प्रतिनियतसंस्थानो नामकर्मोदयापादितावस्थाविशेषः पुद्गलप्रचयः सा बाह्या निर्वृतिः। येन निर्वृते रूपकारःक्रियते तदुपकरणम्॥ पूर्ववत्तदपि द्विविधम् तत्राभ्यन्तरं कृष्णशुक्लमण्डलम् बाह्यमक्षिपत्रपक्ष्मद्वयादि ॥ एवं शेषेष्विन्द्रियेषुज्ञेयम्॥

शुद्धानाम् आत्मप्रदेशानाम् प्रति- =शुद्धचेतना वा आत्माके प्रदेशोंकी(=केवल आत्माके प्रदेशोंकी)न्यारे न्यारे(=प्रति)
नियतचक्षुःआदिइन्द्रियसंस्थानेन अवस्थितानां वृत्तिः=निश्चितनेत्रआदिकइन्द्रियोंके आकारकरिअवस्थितवृत्ति(अर्थात्तिष्ठनेकीदशा)
अभ्यन्तरा निर्वृत्तिः =सो अभ्यन्तर निर्वृत्ति है । अर्थात्उत्सेधअंगुलके असंख्यातवांभागप्रमाण

विशुद्धआत्मप्रदेशोंका जो भिन्न भिन्न रूपसे नेत्र इन्द्रियकेमसूरकेआकार,कर्ण इन्द्रियके जवकी मध्यनालीके आकार सदृश, नासिका इन्द्रियके तिल पुष्प आकार समान,रसना इन्द्रियके अर्द्ध चन्द्रके आकारसम, स्पर्शन इन्द्रियके अनेक प्रकारके भिन्न भिन्न आकारके समान,और इन सबका प्रमाण स्वरूप परिणत होना है वह अंतरंग निर्वृत्ति है॥

तेषु आत्मप्रदेशेषु इन्द्रियव्यपदेशभाक्षु =तिन आत्माके(विशुद्ध) प्रदेशनिमें इन्द्रियनामके दियेजानेपर वा धारनेपर
यः प्रतिनियत-संस्थानः नामकर्म-उदय-आपादित- =जो प्रतिनियत(=न्यारे न्यारे वा विधित)आकार सहित नामकर्मकेउदयजनित
अवस्थाविशेषः पुद्गलप्रचयः सा बाह्या निर्वृत्तिः =विशेष दशा वा अवस्थासहित पुद्गलके समूह सो वहिरंग निर्वृत्ति है। अर्थात्

उन्हीं आत्माके विशुद्ध प्रदेशोंमें इन्द्रियोंके नामसे कहेजानेवाले भिन्नभिन्न आकारोंके धारक संस्थान नामकर्मकेउदयसे होनेवाले अवस्था विशेषसे युक्त जो पुद्गलपिंड है वह वाह्य-निर्वृत्ति है॥

येन निर्वृतेः उपकारः क्रियते । तद् =जिससे निर्वृत्तिका उपकार कियाजाता है वा सहायता कीजाती है वह
उपकरणम् पूर्ववत् तद् अपि द्विविधम् =उपकरण है। पहलेकी भांति(अर्थात्जैसे निर्वृत्ति दो प्रकारहै)वहभीदोप्रकार है
तत्र अभ्यन्तरम् कृष्ण-शुक्ल-मण्डलम् बाह्यम् =तहां(नेत्रविषैं)अतरंग(उपकरण)काला शुक्ल(वर्ण)मंडल है। वाह्य (उपकरण)
अक्षिपत्र-पक्ष्म- =वाफनी(=भावणी)वा विन्नी(=अक्षिपत्र)और आंखके पलक (=अक्षि-पक्ष्मना)
द्वय-आदि एवम् शेषेषु इन्द्रियेषु ज्ञेयम् =दो आदिक हैं। ऐसे शेष(स्पर्शन-घ्राण-रसना-श्रोत्र)इन्द्रियोंमें जानना चाहिये॥

भावेन्द्रियमुच्यते—

॥ लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियम् ॥ १८ ॥

लम्भनं लब्धिः। का पुनरसौ?। ज्ञानावरणक्षयोपशमविशेषः ॥ यत्सन्निधानादात्मा द्रव्येन्द्रि-
निर्वृतिप्रति व्याप्रियते तन्निमित्त आत्मनः परिणाम उपयोगस्तदुभयं भावेन्द्रियमिन्द्रियफलम्

भावेन्द्रियम् १।। उच्यते T = भावइन्द्रिय कहीजाती है कि

लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियम् ॥ १८ ॥

सूत्रार्थः—लब्धि–उपयोगौ१।।भाव–इन्द्रियम् १।। =लब्धि और उपयोग (ये दो) भाव इन्द्रिय हैं

वृत्त्यनुवादः—लम्भनम्१।।लब्धिः१।।का१।।पुनः॥असौ१।।=लाभ है(वही) लब्धि है।(प्रश्न)फिर वह(लब्धि) क्या (=का) है

ज्ञानावरण–क्षयोपशम–विशेषः१। =(उत्तर)ज्ञानावरणीय कर्मका क्षयोपशमरूप व्यक्ति वा प्रकाश है (सोलब्धि)है।
अर्थात्ज्ञानावरणीयकर्मकेविशेषक्षयोपशमसेआत्माकेजोविशुद्धतारूपीशक्तिहैसोलब्धिहै

यत्सन्निधानात्५।।आत्मा१।द्रव्येन्द्रियनिर्वृत्तिम्२।।प्रति॥=जिस(लब्धि)केनिकटहोकरिआत्माद्रव्येन्द्रियरूप निर्वृत्ति प्रति

व्याप्रियते तत्–निमित्तः१।आत्मनः६।परिणामःउपयोगः=व्यापारकरताहै,प्रवर्तेहै उस लब्धिनिमित्तकआत्माका(विषयप्रति)परिणमन उपयोगहै
अर्थात् जो ज्ञेयके आकार परिणमनरूप ज्ञानहो सो उपयोग है

तद्१।।उभयम्१।।भावेन्द्रियम्१।।इन्द्रिय–फलम्१।। =वह दोनों भाव इन्द्रिय हैं। इन्द्रियका फल वा कार्य जो

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों सम्प्रदायोंमें एक है। इस १८ वां सूत्र और स्पर्शन–रसन–घ्राण–चक्षु–श्रोत्राणि उन्नीसवां सूत्रके मध्यमें
श्वेताम्बरआम्नायके 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र 'पृष्ठ ४४ में "उपयोगः स्पर्शादिषु" ऐसा सूत्र अधिक है॥ स्पर्शादिषु मतिज्ञानोपयोग. इत्यर्थः।
स्पर्श–रस–गन्ध–वर्ण–शब्द(इन्द्रियोंके विषयमें)मतिज्ञानका उपयोग होताहै। ऐसा अर्थ इस सूत्रका है। हमारे यहां इसको मूलसूत्र नहीं माना है।
सभाष्य०के अनुवादकने यह टिप्पणी इस सूत्रमें दी है कि किसी किसीके मतमें यह मूलसूत्र नहीं है कोई कोई कहते हैं,यह मूल सूत्र हा हैभाष्यनहीं॥
(२)जैसे किसी जीवकी सुननेकी शक्ति है परतु उपयोग जो चैतन्यका परिणमन है सो अन्यत्रहो,अन्य वस्तुओंमें लगरहा हो तोसुनतानहीं। और कोई
जानना चाहताहै और क्षयोपशम शक्ति नहीं है तो जान नहीं सकता इसलिये लब्धि और उपयोग जब दोनों हीं मिलें तब ज्ञानकीसिद्धि होती है॥

उपयोगः तस्य कथमिन्द्रियत्वम्? कारणधर्मस्य कार्ये दर्शनात्। यथा घटाकारपरिणतं विज्ञानं घट इति ॥ स्वार्थस्य तत्र मुख्यत्वाच्च। इन्द्रस्य लिङ्गमिन्द्रियमिति यः स्वार्थः स उपयोगो मुख्यः। उपयोगलक्षणो जीव इति वचनात्। अत उपयोगस्येन्द्रियत्वं न्याय्यम् ॥

उक्तानामिन्द्रियाणां संज्ञानुपूर्वीप्रतिपादनार्थमाहः—

उपयोगः[1।१] तस्य[६।१] कथम्* इन्द्रियत्वम्[१।१] =उपयोग है। तिस (उपयोग)के इन्द्रियपना कैसे है

कारणधर्मस्य[६।१] कार्ये[७।१] दर्शनात्[५।१] =(उपयोगको इन्द्रियका कार्य होतेसंते) कार्यमें कारणधर्मके देखनेसे वा व्यवहारसे (उपयोगके इन्द्रियपनेका उपचार किया गया) है अर्थात् जो कारणका धर्म हो तिसको कार्य विषैं भी देखिये है

यथा* घटाकारपरिणत[१।१] विज्ञान[१।१] घट[१।१] इति* =जैसे घड़ाके आकार परिणम्याज्ञान घट ऐसा (कहा जाता) है

स्व-अर्थस्य[६।१] तत्र* मुख्यत्वात्[५।१] च* =और क्योंकि तहां स्वअर्थके प्रधानपना है अर्थात् कार्यभी लोकमें कारण मानागया है जिस प्रकार घटाकार परिणत ज्ञान घटसे जो समान होनेसे घटका कार्य है तथापि उस विज्ञानको घठ कहदिया जाता है उसी प्रकार उपयोग यद्यपि इंद्रियोसे जायमान होनेसे उनका फल है तथापि वह(उपयोग)इन्द्रिय कहाजासकता है इसलिये उपयोगको भावेन्द्रिय मानने में कोई आपत्ति नहीं

इन्द्रस्य[६।१] लिङ्गम्[१।१] इन्द्रियम्[१।१] इति* यः[१।१] स्वार्थः[१।१] =आत्मा(=इन्द्र)का लिंग इन्द्रिय है। ऐसा जो स्व-अर्थ है

सः[१।१] उपयोगः[१।१] मुख्यः[१।१] उपयोगलक्षणः[१।१] जीवः =सो उपयोग मुख्य है। उपयोग है लक्षण जिसका वह जीव है

इति* वचनात्[५।१] अतः* उपयोगस्य[६।१] इन्द्रियत्वम् =क्योंकि ऐसा वचन है॥ इसलिये उपयोगके इन्द्रियपना

न्याय्यम्[१।१] उक्तानाम्[६।३] इन्द्रियाणाम्[६।३] सञ्ज्ञा- =यथार्थ वा ठीक है। कथित इन्द्रियोंके नाम (और उनका)

आनुपूर्वी(-अनुपूर्वी-)प्रतिपादनअर्थम्[१।१] आह =क्रम(अनुपूर्वी वा आनुपूर्वी)कहने के लिये कहते हैं कि

॥ स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राणि ॥१६॥

लोके इन्द्रियाणां पारतन्त्र्याविवक्षा दृश्यते । अनेनाक्ष्णा सुष्ठु पश्यामि, अनेन कर्णेन सुष्ठु श्रृणोमीति। ततः पारतन्त्र्यात्स्पर्शनादीनां करणत्वं। वीर्यान्तरायमतिज्ञानावरणक्षयोपशमा-

स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुः श्रोत्राणि ॥ १९ ॥

=स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राणि (एतानि पञ्चेन्द्रियाणि भवन्ति) । (पंद्रहवां सूत्र अनुवृत्ति रूपमें इस सूत्र मे आताहै)

सूत्रार्थः—स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षुःश्रोत्राणि३॥एतानि३॥ =त्वचा(त्वक्) जीभ, नाक(नासिका), नेत्र और कान ये

पञ्चेन्द्रियाणि३॥ भवन्ति T =पांच इन्द्रियां है अर्थात् ज्ञानकरानेमें सहायक होनेसे इनको इन्द्रिय कहतेहैं

वृत्त्यनुवादः—लोके७॥इन्द्रियाणाम्६॥"पारतन्त्र्या-विवक्षा१॥ =लोक वा संसारमें इन्द्रियोंके पराधीन विवक्षा वा अपेक्षा

दृश्यते T अनेन३॥अक्ष्णा३॥सुष्ठु*पश्यामि T =देखीजाती है।इसनेत्रसे भलेप्रकार देखताहूं॥(अक्ष्णा३॥'अक्षि'शब्दका है)

अनेन३॥कर्णेन३॥सुष्ठु*श्रृणोमि T इति* ततः*पारतन्त्र्यात्५॥ =इस कानसे नीके सुनताहूं । तहां पराधीनतासे

स्पर्शनादीनां६॥ करणत्वम् १॥ =त्वचा(इन्द्रिय)आदिकै करणपना है अर्थात् लोकमें

इन्द्रियोंके स्वकार्य करनेमें परतंत्रता अनुभवमें आती है इसलिये स्पर्शन आदि करणसाधन हैं क्योंकि जिस समय इन्द्रियोंकी परतंत्ररूपसे विवक्षाकी जाती है और आत्माको स्वातंत्र्य मानाजाता है उस समय 'मैं इस आंखद्वारा भले प्रकार देखता हूं'।'मैं इस कान द्वारा भले प्रकार सुनताहूं'। 'मैं इस नासिका द्वारा भले प्रकार सूंघताहूं'।'मै इस जीभ द्वारा भले प्रकार चखताहूं'। मैं'इस हाथ द्वारा वा शरीर के किसी अन्य अवयव द्वारा भले प्रकार स्पर्शनकरताहूं'ऐसा व्यवहार होता है । यदि इन्द्रियोंको करणसाधन न माना जावै तौ संसारमें व्यवहार नहीं होसकता ॥ (आचार्य करण साधनको नीचे विशेषरूपसे समझाते हैं)

वीर्यान्तरायमतिज्ञानावरणक्षयोपशम- =वीर्यान्तरायनामा मतिज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम और

(१) श्वेताम्बर आम्नायके'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र'मे यह सूत्र शब्दशः वही है जो हमारे यहां है अर्थभी एक है परंतु सभाष्य०मे इस सूत्रकी संख्या वीसवीहै क्योंकि अठारहवा सूत्रकेपीछे सभाष्य०मे "उपयोग. स्पर्शादिषु" ऐसा उन्नीसवां सूत्रहै । और हमारे यहां ऐसा उन्नीसवां सूत्र नहीं है ॥

(अ)ङ्गोपाङ्गनामलाभावष्टम्भात् आत्मना स्पृश्यतेऽनेनेति स्पर्शनम् ।रस्यतेऽनेनेति रसनम् । घ्रायतेऽनेनेति घ्राणम्। चक्षेऽनेकार्थत्वाद्दर्शनार्थविवक्षायां चष्टे अर्थान्पश्यत्यनेनेति चक्षुः । श्रूयतेऽनेनेति श्रोत्रम् ॥ स्वातन्त्र्यविवक्षायां च दृश्यते।इदं मे अक्षि सुष्ठु पश्यति । अयं मे कर्णः सुष्ठु शृणोति । ततःस्पर्शनादीनां कर्तरि निष्पत्तिः । स्पृशतीति स्पर्शनम् । रसतीति रसनम् । जिघ्रतीति घ्राणम् । चष्टे इति चक्षुः ।

अङ्गोपाङ्गनामलाभअवष्टम्भात्[५] आत्मना [३]	=अंगोपांग नामा नामकर्मके (उदयके) लाभके आलम्बनकरि आत्मासे
स्पृश्यते I अनेन [३]इति*स्पर्शनम् [१]॥	=जिस (इन्द्रिय)करि स्पर्शाजाय है ऐसी स्पर्शन (इन्द्रिय) है ।
रस्यते I अनेन[३]"इति -रसनम्[१]॥घ्रायते I अनेन[३]॥	=जिसद्वारा रसलिया जायहै ऐसी रसना(इन्द्रिय)है । जिससे सूंघाजाय है
इति*घ्राणम्[१]॥चष्टे I	=ऐसी घ्राण(इन्द्रिय)है । चक्ष्(धातु)के(कहना-छोड़ना-समझाना-देखनाइत्यादि)
अनेक-अर्थत्वात्[५]॥दर्शन-अर्थ-विवक्षायाम् [७]॥	=बहुत अर्थहोनेसे(इससूत्रमें) अवलोकन अर्थकी अपेक्षामें (=आया है) कि
चष्टे I अर्थान् [२]पश्यति I अनेन[३]॥इति*चक्षुः[१]॥	=पदार्थोंको देखता है (=चष्टे) । जिसकरि(=आत्मा)देखता है ऐसा चक्षुः है
श्रूयते I अनेन[३]॥ इति*श्रोतम् [१]॥	=जिसकरि(आत्मा)सुनता है ऐसा श्रोत्र है॥ (इन्द्रियोंकीकरणसाधनव्युतपत्तिहुई)
च*स्वातन्त्र्यविवक्षायाम्[७]॥दृश्यते I इदं[१]॥मे[६] अक्षि[१]॥	=और(=च)(इन्द्रियोंकी)स्वतन्त्र्यतारूप अपेक्षामें देखा जाताहै कि यह मेरी आंख
सुष्ठु ,पश्यति I अयं[१]॥मे[६]कर्णः[१]॥सुष्ठु*शृणोति ।	=भले प्रकार देखती है । यह मेरा कान भले प्रकार सुनता है।
ततः*स्पर्शनादीनां[६]कर्तरि[७]निष्पत्तिः[१]॥	=तहा त्वचा आदिक(इन्द्रियों)कीकर्ताप्रयोगमें सिद्धिहै।(इन्द्रिय कर्तृ साधनभीहैजैसे)
स्पृशति I इति*स्पर्शनम्[१]॥रसति I इति*रसनम्[१]॥	=छूता है-स्पर्शन करता है ऐसा स्पर्शन है, चखता है ऐसा रसन है ।
जिघ्रति I इति*घ्राणम्[१]॥;चष्टे I इति 'चक्षुः[१]॥	=सूंघता है एसी घ्राण वा नासिका है देखता है ऐसा नेत्र है

(१) 'चक्ष्' अदादि द्वितीयगणका आत्मने पदी (यहा) सकर्मक धातु है । इसमें क्रियाके प्रत्यय विना किसी विकरणके लगाये जाते है ॥ 'चक्ष्'=चक्ष्'क्'"स्कोः संयोगाद्योरन्ते च(झलि)' अष्टाध्यायी ८-२-२९ वां सूत्र मे गिरजाता है और'चष्'में'त' अन्य पुरुष एकवचन आत्मनेपदी वर्तमान कालकी क्रियाका प्रत्यय लगानेसे =चष्+ते हुआ । 'ते'का'(स्तो) ष्टुना ष्टु ८।४।४१ वां सूत्र से टे में परिवर्तनहोकर 'चष्टे'बनगया ॥

शृणोतीति श्रोत्रम्। एषां निर्देशक्रमःएकैकवृद्धिक्रमप्रज्ञापनार्थः। तेषामिन्द्रियाणांविषयप्रदर्शनार्थमाह

शृणोति I इति॥ श्रोत्रम् ॥ =सुनता है ऐसा कान है,कर्ण है। 'श्रणोति' अशुद्ध है (देखोटिप्पणी अध्याय१पृष्ठ२२३)

भावार्थ संसारमें इद्रियोंकी स्वकार्यके प्रति स्वतत्रता रूपसेभी विवत्ता है अतःवे कर्तृ साधन भी है क्योंकि यह नाक मेरी भलेप्रकार पदार्थोंको सूंधतीहै,यह जीभ मेरी भलेप्रकार चखतीहै इत्यादि ऐसेही अन्य इन्द्रियों के संबंध में व्यवहार होता है। इन्द्रियावर्णक्रम के त्तयोपशमसे एवं अंगोपाग नामक नामकर्मके बलसे जो स्वयं पदार्थोंको स्पर्श करै वह स्पर्शन है, स्वयं रसोंको चखै वह रसना,स्वयं पदार्थोको सूंधे वह घ्राण, स्वयं पदार्थोंको देखे वह चक्षु और स्वयं शब्दोंको सुने वह श्रोत्र है।ऐसे पांचों इन्द्रियोंकी यह कर्तृ साधन व्युत्पत्तिहै

एषाम्॥ निर्देशक्रमः॥ =इन(इन्द्रियों)का(इस सूत्रमें)कथन वा उपदेशका क्रम (एक इन्द्रियादिक जीवोंके)

एक–एक–वृद्धिक्रम–प्रज्ञापन– अर्थः॥ =एक एक(इन्द्रियके)बढ़नेके अनुक्रम वा आनुपूर्वी जनावने के लिये है।

भावार्थः–एक इन्द्रिय जीवकें एक स्पर्शन इन्द्रिय होती है इससे सूत्रमें स्पर्शन प्रथम कही क्योंकि इसी अध्यायके बाईसवां सूत्रमें कहा है कि 'वनस्पत्यंतानामेकम्' अर्थात् पृथिवीको लेकर वनस्पतिपर्यंत समस्त जीवोंकें एकही स्पर्शन इन्द्रिय होती है। समस्त ससारी जीवों कें स्पर्शन इन्द्रिय होती है इससे सूत्रमे स्पर्शन पहिले कहा गया, दो इन्द्रिय जीवकें केवल रसना और होती है इससे सूत्रमें स्पर्शनके लगताई रसना कही। इसी प्रकार तीन इन्द्रियवाले जीवकें स्पर्शन,रसन,घ्राण इसी क्रमसे होयं अन्य एर फेर नहीं होता है इसकारण सूत्रमें रसनके अनन्तर घ्राण कही, चौ इन्द्रिय जीवके स्पर्शन–रसन–घ्राण-चक्षुः इन चारही इन्द्रियोंका ग्रहण होय अन्य नहीं होय इस हेतुसे सूत्रमें घ्राण के निकटही चक्षुः कही। श्रोत्र इन्द्रिय पंचेन्द्रिय जीवकें होती है अन्य किसी जीवकें नहीं होती और श्रोत्र इन्द्रिय उसी जीवकें होगी जिसकें स्पर्शन रसन घ्राण और चक्षु ये चारो इन्द्रिय पहिलेसे ही विद्यमानहै इससे सत्रमें चक्षुके लगताही श्रोत्र इन्द्रिय कही इस वृत्तिक्रमको जनावनेके लिये सूत्रमें स्पर्शन–रसन–घ्राण-चक्षुः-श्रोत्र ऐसा क्रम है॥

तेषाम्॥ इन्द्रियाणां॥ विषय–प्रदर्शन-अर्थम्॥ आह=उन(स्पर्शन–रसन–घ्राण-चक्षुः–श्रोत्र)इन्द्रियोंके विषय दिखानेकेलियेकहतेहै कि

स्पर्शरसगन्धवर्णशब्दास्तदर्थाः ॥ २० ॥

द्रव्यपर्याययोःप्राधान्यविवक्षायां कर्मभावसाधनत्वं स्पर्शादिशब्दानां वेदितव्यम् ॥ द्रव्य-प्राधान्यविवक्षायां कर्मनिर्देशः। स्पृश्यत इति स्पर्शः। रस्यत इति रसः। गन्ध्यत इति गन्धः। वर्ण्यत इति वर्णः। शब्द्यत इति शब्द॥ पर्यायप्राधान्यविवक्षायां

सूत्रम्— स्पर्शरसगन्धवर्णशब्दास्तदर्थाः[1]॥ २० ॥

=स्पर्शरसगन्धवर्णशब्दाःतद्-अर्थाः(यथाक्रमम्)[2] ॥२०॥

सूत्रार्थः—स्पर्श–रस–गन्ध–वर्ण–शब्दाः।१।३। यथाक्रमम्*=स्पर्श,रस,गंध,वर्ण,और शब्द (ये पांच) क्रमसे

तद्–अर्थाः।१।३। =उन(पाचो इन्द्रियों)के विषय है अर्थात् इनमे स्पर्शन इन्द्रियका विषय स्पर्श वा छूना है,रसना इन्द्रियका विषय स्वाद लेना है,घ्राणइन्द्रियका विषय सुगंध और दुर्गंध सूंघना है। नेत्र इन्द्रियका विषय वर्ण अर्थात् रंग है और श्रोत्र इन्द्रियका विषय शब्दोंका सुनना है॥

टीकानुवादः–द्रव्यपर्याययोः।६।२।प्राधान्यविवक्षायाम्।७।१।कर्म– =द्रव्य और पर्यायकी मुख्य अपेक्षामे कर्म (साधनपना और)

भाव–साधनत्वम्।१।१।स्पर्शादिशब्दानाम्।६।३।वेदितव्यम्।१।१। =भाव साधनपना(यथासख्य)स्पर्शादिक शब्दोंकें जानना चाहिये।

द्रव्य–प्राधान्यविवक्षायाम्।७।१।कर्म–निर्देशः।१।१। स्पृश्यते। =द्रव्यप्रधान विवक्षाविषै कर्मणि प्रयोग है। जो स्पर्श्या जाता है

इति*स्पर्शः।१।१। रस्यते। इति*रसः।१।१। =ऐसा स्पर्श है। जो आस्वादा जाता है ऐसा रस है

गन्ध्यते। इति*गन्धः।१।१।वर्ण्यते। इति*वर्णः।१।१। =जो सूंघाजाता है ऐसागंध है। जो देखा जाता है ऐसा वर्ण है

शब्द्यते। इति*शब्दः।१।१।पर्याय-प्राधान्यविवक्षायाम्।७।१। =जो सुनाजाता है ऐसा शब्द है। पर्यायकी मुख्य अपेक्षासे

(१)"तदर्था "वाक्यके स्थानमे श्वेताम्बरआम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र'में'तेपामर्था."वाक्य आया है। इससे अर्थमे कुछ भेद नहीं पडता क्योंकि'तदर्था 'का तात्पर्य'तिनकेविपय' है, ऐसा है। यही अर्थ "तेषाम् अर्था" वाक्यका है। अर्थात् क्रमसे तिन पाच इन्द्रियोंके विषय हैं॥

(२) इस सूत्रमें'यथाक्रमम्' शब्दकी अनुवृत्ति इसी अध्यायके द्वितीय अथवा दूसरे सूत्रसे लीगई है॥

भावनिर्देशः स्पर्शनं स्पर्शः रसनं रसः। गन्धनं गन्धः। वर्णनं वर्णः शब्दनं शब्दः एषां क्रम इन्द्रियक्रमेणैव व्याख्यातः अत्राह यत्तावन्मनोऽनवस्थानादिन्द्रियं न भवतीति प्रत्याख्यातं तत्किमुपयोगस्योपकारी उत नेति? तदप्युपकार्येव तेन विनेन्द्रियाणां विषयेषु स्वप्रयोजनवृत्त्यभावात् किमस्यैषां सहकारित्वमात्रमेव प्रयोजनमुतान्यदपीत्यत आह—

भावनिर्देशः =भावे प्रयोगहै अर्थात् व्याकरणमें कर्मवाच्यं, कर्तृवाच्यं और भाववाच्यं तीनप्रकारके धातुओंके प्रयोग है। सूत्र उन्नीसवांमें बहुत विशेषरूपसे कर्मवचनका अनुवाद पृष्ठ६१ के पंक्ति ९से १८ तक और पृष्ठ ६२ के पंक्ति ७ से १३ तक और कर्तृवचनका पृष्ठ६२ के पंक्ति १४से १८तक और पृष्ठ६३ के पंक्ति ३ से ८ तक उल्लेख किया है॥ भावसाधन, भाववचन, अथवा भावप्रयोग अर्थात् क्रियाको इसप्रकारसे वाक्यमें लाना कि जिससे उसकी भावरूपी अवस्था वा दशा प्रगट होजावै, इस पृष्ठ ६५ की पंक्ति ११,१२ नीचे में कहते हैं कि

स्पर्शनं स्पर्शः रसनं रसः =स्पर्शना वा छूना सो स्पर्श है। रसना सो रस है

गन्धनं गन्धः वर्णनं वर्णः शब्दनम् शब्दः =सूंघना सो गंध है। देखना सो वर्ण है। शब्दहोना सो शब्द है

एषाम् क्रमः इन्द्रियक्रमेण एव * व्याख्यातः =इन(विषयों)का अनुक्रम इन्द्रियोंके क्रमकरिही कहा गया है

अत्र * आह । यत् तावत् * मनोऽवस्थानात् इन्द्रियं =यहां पूंछता है कि जो मन तो (=तावत्) अनवस्थित होनेसे इन्द्रिय

न * भवति । =नहीं है अर्थात् मनके अवस्थान वा स्थिति नहीं है इससे इन्द्रिय नहीं है

इतिप्रत्याख्यातं तत् किम् उपयोगस्य उपकारी =ऐसे(मनके इन्द्रियपना) निषेध्या है। क्या (वह मन) उपयोगका उपकारी है

उत * न * इति * तद् अपि * उपकारी एव * तेन विना * =वानहीं।(जोकहोकि)तबभी(=तद्अपि)(वहमन)उपकारीहीहैक्योंकितिस(मन)विना

इन्द्रियाणां विषयेषु स्वप्रयोजनवृत्ति—अभावात् =इन्द्रियोंके विषयोंमें अपने अपने प्रयोजनरूप प्रवृत्तिका अभाव है

किम् * अस्य एषाम् सहकारित्वमात्रम् =क्या इन(इन्द्रियों)के इस(मन)का सहकारिपन मात्र

एव * प्रयोजनम् उत * अन्यत् * अपि * अतः * आह । =ही प्रयोजन है, अथवा और भी (कुछ प्रयोजन) है॥ इसलिये कहते हैं भावार्थ स्पर्शन आदि इन्द्रियोंके समान मनका कोई निश्चित स्थाननहीं इसलियेवह इंद्रिय नहीं कहा जासकता इसरूपसे ऊपरके लेखमें मनके इन्द्रियपनेका निषेध किया गया है

६५

॥ श्रुतमानिन्द्रियस्य ॥ २१ ॥

श्रुतज्ञानविषयोऽर्थः श्रुतम्। स विषयोऽनिन्द्रियस्य। परिप्राप्तश्रुतज्ञानावरणक्षयोपशमस्यात्मनः श्रुतस्यार्थे

वहां पर यह शंका उठती है कि वह अनिन्द्रिय स्वरूप मन ज्ञान दर्शन स्वरूप उपयोगका उपकारक है अथवा नहीं ? यदि यह कहा जायगा कि मनका सहारा विना लिये इन्द्रियोंकी अपने २ विषयमें प्रयोजनीय प्रवृत्ति नहीं हो सक्ती इसलिये मन उपयोगमें अवश्यही उपकारी है तब वहां यह कहना है कि अपने २ विषयोंमें इन्द्रियोंकी सहायता मात्र करना ही मनका कार्य है वा और कुछभी उसका कार्य है? उत्तरमें(इन्द्रियोंके उपकारके अतिरिक्त अन्य भी मनका कार्य है) मनके अन्य कार्य को कहते है कि—

सूत्रम्[1]—श्रुतमनिन्द्रियस्य ॥ २१ ॥ =श्रुतमनिन्द्रियस्य (अर्थ[2]:भवति)

सूत्रार्थः—श्रुतम्[1]॥ अनिन्द्रियस्य[6]॥ अर्थः[1]। भवति । =श्रुतज्ञान (=श्रुतम्) मनका विषय है अर्थात् श्रुतज्ञानका विषय पदार्थ हैं वा श्रुतज्ञान गोचर पदार्थ हैं सो मनका (=अनिन्द्रियस्य) विषय (अर्थ) हैं ॥

वृत्त्यनुवादः—श्रुतज्ञानविषयः[1]। अर्थः[1]। श्रुतम्[1]॥ =श्रुतज्ञानका विषयभूत जो पदार्थ (=अर्थ) सो श्रुत है अर्थात् श्रुतज्ञानगोचर पदार्थ है वह श्रुत है । (यहां श्रुत, अनिन्द्रिय, नोइन्द्रिय एकार्थ वाची हैं)

सः[1]। विषयः[1]। अनिन्द्रियस्य[6]॥ परिप्राप्तश्रुतज्ञान- =सो श्रुत अनिंद्रिय वा मनका विषय है(क्योंकि) प्राप्तहुआ है श्रुतज्ञान
आवरण—क्षयोपशमस्य[6]। आत्मनः[6]। श्रुतस्य[6]॥ अर्थे[7]। =आवरण कर्मका क्षयोपशम जिसके ऐसा आत्माके श्रवनकिये पदार्थ(केविचारने)में

(१) श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों सम्प्रदायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है॥ हमारे यहां कहीं पर 'मनिन्द्रियस्य' है कहीं पर मनिद्रियस्य पाठ है दोनों पाठ ठीकहै। सूत्रमें जो श्रुत शब्द है उससे श्रुत ज्ञानके विषय भूत पदार्थकाज्ञानहै। उसको मन विषय करता है क्योंकि जिसने श्रुत ज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम प्राप्त कर लिया है ऐसे आत्माके मनके आश्रयसे जायमान ज्ञानकी श्रुतज्ञानके विषयभूत पदार्थमे प्रवृत्ति होती है अथवा श्रुतशब्दका अर्थ श्रुतज्ञान है वह मनसे होता है इसलिये मनपूर्वक होनेसे वह श्रुत ज्ञानही मनका कार्य है ऐसे इन्द्रियोंके व्यापारकी अपेक्षा नकर श्रुतज्ञानका उत्पन्न करना मनका स्वतन्त्र प्रयोजन वा कार्य है अर्थात् श्रुतज्ञानमन पूर्वकही होता है॥

(२)इस सूत्रमें 'अर्थ' शब्दको अनुवृत्ति इस अध्यायके २०वीसवां सूत्र से आती है॥ श्रुत, अनिद्रय, नोइन्द्रिय एकार्थ वाची शब्द हैं॥

ऽनिन्द्रियालम्बनज्ञानप्रवृत्तेः॥ अथवा श्रुतज्ञानं श्रुतं तदनिन्द्रियस्यार्थः प्रयोजनमिति यावत्। स्वातन्त्र्यसाध्यमिदं प्रयोजनमनिन्द्रियस्य ॥ उक्तानामिन्द्रियाणां प्रतिनियतविषयाणां स्वामित्व-निर्देशे कर्तव्ये यत्प्रथमं गृहीतं स्पर्शनं तस्य तावत्स्वामित्वावधारणार्थमाह—

॥ वनस्पत्यन्तानामेकम् ॥ २२ ॥

अनिन्द्रिय-आलम्बन-ज्ञान-प्रवृत्तेः॥ =मनके आलम्बन स्वरूप ज्ञानकी प्रवृत्ति है भावार्थ ऐसा है कि कर्ण इन्द्रियसे श्रवणमात्र किया सो तो मतिज्ञान है परंतु तिस पूर्वक पदार्थका विचार सो श्रुतज्ञान है

अथवा श्रुतज्ञानम्॥ श्रुतम्॥ तद्॥ यावत्* =अथवा श्रुतज्ञान श्रुत है वह(श्रुतज्ञान) निश्चय(=यावत्) मनका अर्थ

अनिन्द्रियस्य॥ अर्थः॥ प्रयोजनम्॥ इति* इदम्॥ =वा प्रयोजन है यह मनका (=अनिन्द्रियस्य) प्रयोजन स्वाधीन ही साध्यरूप है

अनिन्द्रियस्य॥ प्रयोजनम्॥ स्वातन्त्र्यसाध्यम्॥ =अर्थात् यह मनका प्रयोजन किसीभी अन्य इन्द्रियके आधीन नहीं है स्वतंत्र है।

उक्तानाम्॥ इन्द्रियाणाम्॥ प्रतिनियतविषयाणाम्॥ =कथित इन्द्रियोंके नियमित (अर्थात् न्यारे न्यारे) विषयोंका

स्वामित्व-निर्देशे॥ कर्तव्ये॥ यत्॥ प्रथमम्॥ =स्वामीपना वा अधिपतिपना निर्देशकरनेमें जो पहिले

गृहीतम्॥ स्पर्शनम्॥ तस्य॥ तावत्* =ग्रहणक्रिया स्पर्शन इन्द्रिय तिस (स्पर्शन इन्द्रिय) का प्रथम (=तावत्)

स्वामित्व-अवधारण-अर्थम्॥ आह I =स्वामीपना-अधिपतिपनाके नियमके अर्थ कहते हैं कि

वनस्पत्यन्तानामेकम् ॥ २२ ॥ =वनस्पत्यन्तानामेकम् (इन्द्रिय भवति)

सूत्रार्थः-वनस्पति- अन्तानाम्॥ =(तेरहवां सूत्रमें) वनस्पति है अन्त में जिन (जीवों)के उनके, अर्थात् =पृथिवी कायिक,जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, और वनस्पतिकायिको के

एकम्॥ इन्द्रियम्॥ भवति I =पहिली(स्पर्शन)इन्द्रिय है। ये पांच स्थावर जीव हैं एकमात्र स्पर्शन इन्द्रियके धारक

श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य०में इस सूत्रका पाठ 'वाय्वन्तानामेकम्' = वायु अन्तानाम्-एकम् ॥ २३ ॥ सभाष्य०का १३ वां १४ वां सूत्र
'पृथिव्यब्वनस्पतयः स्थावराः ॥ १३ ॥ तेजो वायु द्वीन्द्रियादयश्च त्रसाः' ॥ १४ ॥ तेरहवें चौदहवें सूत्रको २३ वां सूत्रके साथ मिलाने से २३ वां
सूत्रका अर्थ यह होता है कि वायु है अन्तमें जिनके (अर्थात् पृथिवीकायिक-अप् वा जलकायिक-वनस्पतिकायिक-तेजोकायिक वा अग्निकायिक-
वायुकायिकके) प्रथम स्पर्शन इन्द्रिय है। ऊपरके अर्थसे प्रगट है कि दोनों आम्नायामें इस सूत्रके पाठ भेद होनेपर भी अर्थ एक है ॥ सूक्ष्मदृष्टिसे
देखनेपर ज्ञातहोता है कि श्वेताम्बर आम्नायमें 'पृथिवीकायिक-अप्कायिक-वनस्पतिकायिक इनतीनको थावर मानकर और अग्निकायिक
(=तेजोकायिक) वायुकायिक इन दोको त्रस मानकर पांचोंके स्पर्शन इन्द्रिय मानी है। हमारे यहां पांचोंको थावर मानकर स्पर्शन इन्द्रिय मानी है ॥

एकैकमिति वीप्सायां द्वित्वम्। एकैकेन वृद्धानि एकैकवृद्धानि ॥ कृमिमादिं कृत्वा, स्पर्शनाधिकारात् स्पर्शनमादिं कृत्वा एकैकवृद्धानीत्यभिसम्बन्धः क्रियते ॥ आदिशब्दः प्रत्येकं परिसमाप्यते। कृम्यादीनां स्पर्शनं रसनाधिकम्। पिपीलिकादीनां स्पर्शनरसने घ्राणाधिके।

एक-एकम् [1/1]॥ वृद्धानि [1/3]॥ =(स्पर्शन इन्द्रिय पश्चात्) एक एक(इन्द्रिय)बढ़ती है अर्थात् लट इत्यादिकोंके स्पर्शन और रसना दो इन्द्रिय है। चिउटी इत्यादिकोंके स्पर्शन,रसन, घ्राण ये तीन इन्द्रियें है भौंरा,मक्खिका,टीडी,इत्यादिकोंके स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षुः ये चार इन्द्रिये है और, मनुष्य,मत्स्य गौ, सर्प इत्यादिकोंके स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षुः श्रोत्र ये पांचों ही इन्द्रियां है

वृत्त्यनुवादः—एकैकम्[1/1]॥ इति॰वीप्सायां[7/1]॥द्वित्वम्[1/1]॥=एक-एक ऐसा वारवारकेअर्थमें (=वीप्सायाम्) दो वार (सूत्रमें) है

एक-एकेन[3/1]॥वृद्धानि[1/3]॥ =एकएक(क्रमानुसार दो इन्द्रियसे पांच इन्द्रियतक)बढ़तीहै वा अधिक होती जातीहै

एकैकवृद्धानि[1/3]॥ स्पर्शन-अधिकारात्[5/1] =सो"एकैकवृद्धानि"है।(वाईसवांसूत्रमें) स्पर्शनइन्द्रियका प्रकरणहोनेसे वा विषयहोनेसे

कृमिम्[2/1]आदिम्[2/1] कृत्वा – स्पर्शनम्[2/1]॥आदिम्[2/1]॥कृत्वा=(इससूत्रमें) कृमिको आदिकर और (इन्द्रियनिमें)स्पर्शन को आदिकर (क्रमसे)

एक-एक-वृद्धानि[1/3]॥इति॰अभिसम्बन्धः[1/1]क्रियते। =एक एक (इन्द्रिय) बढ़ती है। इसप्रकार सम्बन्ध (इस सूत्रमें) किया है

आदिशब्दः[1/1] प्रत्येकम्॰परिसमाप्यते। =आदिशब्द(कृमि-पिपीलिका-भ्रमर-मनुष्य)प्रत्येकको लगाया गया है वा जोड़ागयाहै

इस समस्त उपर्युक्तका सरांश यह है'कि वनस्पत्यन्तानामेकम्'सूत्रमे स्पर्शन(=एकम्)कीअनुवृत्ति इस सूत्रमें लेकर इन्द्रियोंकी अपेक्षासे स्पर्शन इन्द्रियको प्रथम ग्रहणकरि पश्चात्'स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षुः-श्रोत्राणि' इस सूत्रसे क्रमानुसार एक एक इन्द्रियकी वृद्धि रसना से श्रोत्र पर्यंत प्रत्येक कृमिआदिकके, प्रत्येक पिपिलिका आदिकके, प्रत्येक भ्रमर आदिकके और प्रत्येक मनुष्य आदिकके यथासंख्य होतीजाती है जैसाकि वृत्तिमें निम्न लिखित उदाहरणों से प्रगट है ॥

कृमिआदीनाम्[6/3]स्पर्शनम्[1/1]॥रसना(रसन)अधिकम्[1/1]॥=कृमि आदिकें रसनाकरि अधिक स्पर्शन इन्द्रियहै।अर्थात्कृमिआदिकें स्पर्शन-रसन है

पिपीलिका-आदीनाम् घ्राण अधिके[1/2]॥स्पर्शन-रसने[1/2]॥=चिउटीआदिकोंकेनासिकाकरि,अधिकत्वचा,रसनाहै।अर्थात्त्वचा,रसन,औरघ्राणहैं

इन्द्रियभेदात्पंचविधेषु ये पञ्चेन्द्रियास्तद्भेदस्यानुक्तस्य प्रतिपादनार्थमाह—

॥ सञ्ज्ञिनः समनस्काः ॥ २४ ॥

मनो व्याख्यातम् । सह तेन ये वर्तन्ते ते समनस्काः । सञ्ज्ञिन इत्युच्यन्ते । पारिशेष्यादितरे संसारिणः प्राणिनोऽसञ्ज्ञिन इति सिद्धम् ॥ ननु च सञ्ज्ञिन इत्यनेनैव गतार्थत्वात्समनस्का इति विशेषणमनर्थकम् । यतो मनोव्यापारो हिताहितप्राप्तिपरिहारपरीक्षा । सञ्ज्ञाऽपि सैवेति ॥ नैतद्युक्तम् । सञ्ज्ञाशब्दार्थव्यभिचारात् ।

इन्द्रिय–भेदात् पंचविधेषु ये पञ्चेन्द्रियाः =(और) इन्द्रिय भेदसे पांच भेदों (२२, २३ सूत्र) में है ॥ ये पंचेन्द्रियजीव

तद्–भेदस्य अनुक्तस्य प्रतिपादन–अर्थम् आह =तिनके (=तद्) अकथित भेद के कहने के लिये उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्— संज्ञिनः समनस्काः ॥२४॥ (दोनों आम्नायों में इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है)

सूत्रार्थः–संज्ञिनः समनस्काः =जो जीव मनकरि सहित हैं(=समनस्काः)वेसंज्ञी है,सैनी हैं अर्थात् जिन्हें अपने हित अहितका वा गुण दोषादिका विचार हो तथा शिक्षा क्रिया आलापके ग्रहण करनेरूप संज्ञा हो उनको संज्ञी पंचेन्द्रिय कहते हैं ॥

वृत्त्यनुवादः–मनः व्याख्यातम् सह*तेन ये =मन (इसीअध्यायके११वांसूत्रमें) वर्णन किया गया है । तिस(मन) सहित, जो

वर्तन्ते ते समनस्काः सञ्ज्ञिनः इति*उच्यन्ते =प्रवर्तते हैं वे समनस्क हैं । सैनी इसप्रकार कहेगये हैं

पारिशेष्यात् इतरे =इन(मनसहित सैनी जीवों) से अवशेष अर्थात् संज्ञी समनस्कको छोड़कर अन्यशेष

संसारिणः प्राणिनः असंज्ञिनः इति*सिद्धम् =संसारीजीव असैनी है ऐसा सिद्धहुआ

ननु*च*सञ्ज्ञिनः इति*अनेन एव*गत-अर्थत्वात् =बहुरि प्रश्न संज्ञी (सैनी) इस (शब्द) द्वाराही (सूत्रमें) अर्थ प्राप्तहोने (केहेतु) से

समनस्काः इति*विशेषणम् अनर्थकम् ='समनस्काः'(संज्ञीका) ऐसा विशेषण निष्प्रयोजन है

यतः*मनस्‌व्यापारः हितप्राप्तिपरीक्षा =क्योंकि(यतः) मनका व्यापार हितके प्राप्तिकी परीक्षा और

अहितपरिहार-परीक्षा संज्ञा अपि*सः एव*इति =अहितकेपरिहारकी परीक्षा(करना)हैसंज्ञीभी सोहीहैअर्थात्संगीकेमनःऔरबुद्धिअर्थ है

न*एतद् युक्तम् संज्ञाशब्द-अर्थ-व्यभिचारात् =(उत्तर)यह ठीक नहीं है क्योंकि संज्ञा शब्दके अनेक अर्थ होनेसे दोष आता है।

संज्ञा नामेत्युच्यते । तद्वन्तः सञ्ज्ञिन इति सर्वेषामतिप्रसङ्गः ॥ सञ्ज्ञानं सञ्ज्ञा ज्ञानमिति चेत् सर्वेषां प्राणिनां ज्ञानात्मकत्वादतिप्रसङ्गः ॥ आहारादिविषयाभिलाषः सञ्ज्ञेति चेत्तुल्यम् तस्मात्समनस्का इत्युच्यते ॥ एवं च कृत्वा गर्भाण्डजमूर्च्छितसुषुप्त्याद्यवस्थासु

सञ्ज्ञा[1/1] नाम[1/1] इति* उच्यते । तद्वन्तः[1/3] सञ्ज्ञिनः[1/3] =(जैसे) संज्ञा नाम है ऐसा कहागया है । उस (नाम) वाले संज्ञी हैं

इति* सर्वेषाम्[6/3] अतिप्रसगः[1/1] =ऐसे समस्त(जीवों)कें अति प्रसंगहुआ अर्थात् सज्ञाका अर्थ नाम है किसीका। नामरूप संज्ञा जिसकें हो सो संज्ञी ऐसे कहनेसे सबही प्राणी नाम सहित हैं अतःमनसहित प्राणी भी संज्ञीहुये और मनरहितभी संज्ञीहुये अतःअतिप्रसंगहुआ

संज्ञानम्[1/1] संज्ञा[1/1] ज्ञानम्[1/1] इति* चेत्* =यदि(=चेत्)संज्ञान(=भलाज्ञान)संज्ञा ज्ञान हो तो

सर्वेषाम्[6/3] प्राणिनाम्[6/3] ज्ञान–आत्मकत्वात्[5/1] अतिप्रसङ्गः[1/1] =समस्तजीवोंकें ज्ञानस्वरूप होनेसे अतिप्रसंग (आता) है

आहार–आदि–विषय–अभिलाषः[1/1] सज्ञा[1/1] इति* चेत्* =यदि(=चेत्)आहार आदिक भोगोंकी(=विषय) कामना (=अभिलाष) सज्ञा है

तुल्यम्[1/1] =(तौभी)तुल्यहै वा समान है अर्थात् तौभी वहीवात है भावार्थ तौभी अतिप्रसंग आता है क्योंकि भोगोंकी अभिलाषा तौ सैनी असैनी सबही जीवोंकें होती है।तीनोंकाभावार्थ ऐसाहै कि(१)यदि सज्ञा शब्दका अर्थ रूढि'नाम'माना जायगा तौ वह सैनी असैनी समस्त प्राणियोंमें पाया जाता है क्योंकि नाम विना कोई भी प्राणी नहींहै । तौ असैनी जीवोंको भी संज्ञी कहना पड़ेगा(२) 'सज्ञानं संज्ञा' भलाज्ञानही संज्ञाहै तौ वह ज्ञानभी सैनी असैनी सब प्रकारके जीवोंमें विद्यमान है इसलिये असैनी जीवोंकोभी सज्ञी मानना पड़ैगा (३) यदि आहार, भय, मैथुन और परिग्रह संज्ञी शब्दका अर्थ माना जाय तो ये चारो आहार–भय–मैथुन-परिग्रह संज्ञाये भी समस्त संसारी जीवोंकें विद्यमान हैं इसलिये संज्ञा शब्दका आहार आदि अर्थ माननें परभी असैनी जीवोंकी व्यावृत्ति नहीं होसक्ती इसलिये असैनी जीवोंकी व्यावृत्तिके लिये सूत्रमें'समनस्का'पदका उल्लेख सार्थक है

तस्मात्* समनस्काः[1/3] इति* उच्यते । एवम्* च* =तिससे (सूत्रमें) समनस्काःऐसा(पद) कहा गया है । और (=च) इस प्रकार

कृत्वा—गर्भ–अण्डज-मूर्च्छित-सुषुप्ति-आदि-अवस्थासु[7/3] =(सूत्रमेंसमनस्काःविशेषणकाग्रहण)करकेगर्भ,अंडज,मूर्च्छित,शयन,आदिकदशाओंमें

(१)अतिप्रसग=प्रसंगको छोडकर जिसका सवन्ध दूसरेकेसाथ रहै।लक्ष्यमेंजोलक्षणका सवन्धहोताहै उसे प्रसगकहतेहैंजोइसके विपरीत वहअतिप्रसगहै॥

हिताहितपरीक्षाभावेऽपि मनः सन्निधानात्सञ्ज्ञित्वमुपपन्नं भवति ॥ यदि हिताहितादिवि-षयपरिस्पन्दः प्राणिनां मनःप्रणिधानपूर्वकः अथाभिनवशरीरग्रहणं प्रत्यागूर्णस्य विशीर्ण-पूर्वमूर्तेर्निर्मनस्कस्य यत्कर्म, तत्कुत इत्युच्यते—

॥ विग्रहगतौ कर्मयोगः ॥ २५ ॥

हित–अहित–परीक्षा–अभावे७ अपि* =(जीवोंकी) हित अहितकी परीक्षाके अभाव होनेपर भी

मनः–सन्निधानात्५॥ सञ्ज्ञित्वम्१॥उपपन्नम्१॥भवति ।=मनके सद्भावसे सैनीपन सिद्ध (=उपपन्न)होता है अर्थात् सूत्रमे यदि समनस्क शब्द न लाया जाता केवल संज्ञी शब्दका ही उल्लेख होता और संज्ञी शब्दका अर्थ हित-अहितकी परीक्षा करनेवाला माना जायगा तो जो जीव गर्भ वा अंडेके भीतर हैं वा मूर्च्छित वा सोये हुये हैं वेभी यद्यपि मन उनके विद्यमान हैं हित अहित की परीक्षासे शून्य हैं इसलिये वेभी संज्ञी न कहेजावेंगे इसलिये सूत्रमें समनस्क शब्दका उल्लेख सार्थक है ॥

यदि*हित–अहित–आदि–विषय–परिस्पन्दः१ =(प्रश्न) जो हित अहित आदिक विषयोंकी रचना वा हिलन (=परिस्पन्दः)

प्राणिनाम्६॥मनः–प्रणिधान–पूर्वकः१॥अथ* =जीवोंके मनके प्रयत्न (=प्रणिधान) निमित्तक है तौ अब (=अथ)

अभिनव–शरीर–ग्रहणम्२॥प्रति*आगूर्णस्य६ =नया शरीर ग्रहण(करने)को (=प्रति) उद्यमी

विशीर्णपूर्व मूर्तेः६॥निर्मनस्कस्य६ =और प्रथम शरीरके छूटजानेसे वा अभावहोजाने से(=विशीर्ण)मनरहित(आत्माके)

यत्१॥ कर्म१॥ तत्१॥ कुतः*इति*उच्यते । =जोकर्म(कायास्रव)हैवह कहांसे(=कुतः)वा क्योंकर(=कुतः)हैऐसेप्रश्नपरकहागयाहैकि

विग्रहगतौ[1] कर्मयोगः[2] ॥ २५ ॥

सूत्रार्थः–विग्रह–गतौ७॥ =नवीन शरीर (ग्रहण वा धारण करने) के लिये गमन करनेमें (=गतौ)

कर्मयोगः१ =कार्मण(शरीर ही)योग है अर्थात् कार्मण शरीर द्वारा आत्माके प्रदेश सकंप होतेहैं।यहकार्मण शरीर समस्तकर्म ग्रहणकरनेका बीजहैऔर विग्रहगतिसेअन्यत्रतौकाय,वाग्औरमनोयोगहोताहै॥

(१) श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों आम्नायोंमे इस सूत्रका पाठ और अर्थ एक साहै ॥ (२)कर्मयोग=कार्मणि शरीरयोग

विग्रहो देहः । विग्रहार्था गतिर्विग्रहगतिः ॥ अथवा विरुद्धो ग्रहो विग्रहः व्याघातः कर्मादानेऽपि नोकर्मपुद्गलादाननिरोध इत्यर्थः । विग्रहेण गतिः विग्रहगतिः ॥ सर्वशरीरप्ररोहणबीजभूतं कार्मणं शरीरं कर्मेत्युच्यते । योगो वाङ्मानसकायवर्गणानिमित्त आत्मप्रदेशपरिस्पन्दः। कर्मणा कृतो योगःकर्मयोगः। विग्रहगतौ भवतीत्यर्थः ॥ तेन कर्मादानं देशान्तरसंक्रमश्च भवति ॥ आह जीवपुद्गलानां गतिमास्कन्दतां

वृत्त्यनुवादः—विग्रहः[1/1] देहः[1/1] विग्रह–अर्था[1/1] गतिः[1/1] =विग्रहका अर्थ शरीर है । नवीन शरीरके लिये गमन(वह)
विग्रहगतिः[1/1] अथवा* विरुद्धः[1/1] ग्रहः [1/1] विग्रहः[1/1] =विग्रहगति है अथवा विरुद्ध ग्रहण है सो विग्रह है अर्थात्
व्याघातः[1/1] कर्म-आदाने[7/1] अपि* नोकर्म–पुद्गल– =व्याघात वा रोकना है । कर्मका आस्रव होनेपरभी नोकर्म पुद्गलके
आदान-निरोधः[1/1] इति* अर्थः[1/1] विग्रहेण[3/1] गतिः[1/1] =आस्रव वा ग्रहणकी रोक ऐसा आशय वा अभिप्राय है । विग्रहकरि गमन
विग्रहगतिः[1/1] सर्वशरीरप्ररोहणबीजभूतम्[1/1] =सो विग्रहगति है । समस्त शरीरोंका उत्पन्नकरने वाला बीजभूत
कार्मणम्[1/1] शरीरम्[1/1] कर्म[1/1] इति *उच्यते I योगः[1/1] =कार्मण शरीर है सो (सूत्रमें) कर्म ऐसा कहागया है ॥ योग (वह है कि)
वाङ्मानसकायवर्गणानिमित्तः[1/1] =वचन मन कायके पुद्गल वर्गणा है निमित्त जिसको (इनवर्गणाओंके द्वारा)
आत्म–प्रदेश-परिस्पन्दः[1/1] =ऐसै आत्माके प्रदेशोंका चलाचलहोना है अर्थात् कायवर्गणा भाषाऔरमनो वर्गणा आदिके निमित्तसे आत्माके प्रदेशोंके अंदर जो हलनचलन होना सो योग है ॥
कर्मणा[3/1] कृतः[1/1] योगः[1/1] कर्मयोगः[1/1] विग्रहगतौ[7/1] =कार्मण शरीरसे कियायोग कर्मयोग है । नवीन शरीरके लिये गमनकरनेमें
भवति । इति* अर्थः[1/1] तेन[3/1] कर्म –आदानम्[1/1] =(कार्मण शरीर होयोग)होता है ऐसा अभिप्राय है । तिस (योग) से कर्मका ग्रहण
देशान्तर–सक्रमः[1/1] च* भवति I =और देशांतरका जाना वा संक्रमण होता है अर्थात् आत्माके प्रदेशोंके भीतर हलनचलनरूप योग विग्रहगतिमें कार्मण शरीरके द्वारा होता है उसीयोगके द्वारा विग्रहगतिमें आत्माके कर्मोका आदान तथा मनसे रहितभी उस आत्माकी नवीन शरीर धारण करनेके लिये गति ये दोनों कार्य होते है ॥
आह I जीव-पुद्गलानाम्[6/3] गतिम्[2/1] आस्कन्दताम्[6/3] =(शिष्य) पूंछता है कि जीव पुद्गल गतिको प्राप्त–होनेवालोंके

देशान्तरसंक्रमः किमाकाशप्रदेशक्रमवृत्त्या भवति, उताविशेषेणेत्यत आह—

॥ अनुश्रेणिगतिः ॥ २६ ॥

लोकमध्यादारभ्य ऊर्ध्वमधस्तिर्यक् च आकाशप्रदेशानां क्रमसन्निविष्टानां पंक्तिः श्रेणिरि-
त्युच्यते । अनुशब्दस्यानुपूर्व्येण वृत्तिः ।

देशान्तरसंक्रमः[१] किम्[१] आकाश-प्रदेश-क्रम- =देशान्तर–गमन (गति) क्या आकाशके प्रदेशोंकेक्रम–
वृत्त्या[३] भवति =वर्तनकरि होता है अर्थात् अकाशके प्रदेशोंके अनुसार श्रेणीवद्ध होता है
उत* अविशेषेण[३] इति* अतः* आह =अथवा अविशेषकरि होता है इसलिये कहते हैं कि

[१]अनुश्रेणिगति =(आकाशप्रदेशानाम्)अनुश्रेणिः (जीवानाम् पुद्गलानाम् च)गतिः(भवति)

सूत्रार्थः–आकाशप्रदेश-अनुश्रेणि[१] =आकाशके प्रदेशोंके श्रेणीरूप वा सीधी पंक्तिमें
जीवानाम्[६] च* =(मृत्युहोनेपर नवीन शरीर धारण करनेके लिये) जीवोंका तथा
पुद्गलानाम्[६] =(जब चौदहराजू शुद्ध परमाणू एक समयमें गमन करै तब ऐसे) पुद्गलोंका
गतिः[१] भवति =गमन होता है ॥ (आकाशप्रदेशानुश्रेणि जीवानां पुद्गलानां च गतिर्भवति)
वृत्त्यनुवादः–लोकमध्यात्[५] आरभ्य – ऊर्ध्वम्* अधः* तिर्यक्* च* =लोकके बीचसे लगाय ऊपर नीचे और तिर्यक् (इधर उधर)
आकाशप्रदेशानाम्[६] क्रमसन्निविष्टानाम्[६] पंक्तिः[१] =आकाशके प्रदेशोंका अनुक्रमसे पंक्तिरूप अवस्थान
श्रेणिः[१] इति* उच्यते [अनुशब्दस्य[६] अनुपूर्वेण[३] वृत्तिः[१] =ऐसी श्रेणी कहीगई है । अनुशब्दका अर्थ (=वृत्ति) यथा क्रमकरि है

(१) विग्रहका अर्थ शरीरहै । उस शरीरके लिये जो गमन कियाजाताहै वह विग्रहगति कही जाती है । जीव जिस समय दूसरा नवीन शरीर धारण करनेके लिये प्रवृत्त होता है उस समय पहिले शरीरका परित्याग करिही प्रवृत्तहोता है॥ तत्त्वार्थसार श्लोक९८। योगोंकी चचलता हुयेविना शरीर सवधी कुछभी हीनाधिकता नही होनेपाती इसलिये विग्रहगतिमेंभी कोई योग होना चाहिये।विग्रहगतिमें कर्मादान अर्थात्कर्मबंधकाकार्य और नवीन शरीर धारणकरनेकाकार्य ये दोकार्य होतेहैंजोकि किसीयोगकीअपेक्षा रखतेहैं।दूसरा कोईयोग वहांहो नही सकता इसलिये उक्त दोनों कार्योंका साधक कार्मण योगहीहै ऐसा भगवान जिनेस्वरने कहा है कर्मोंकेपिंडकानाम कार्मण शरीहै उसका अवलवनलेकर आत्मा वहां उक्त दोनों कार्य करता है श्लोक ९७ ॥ (२) दोनों आम्नायोंमें इससूत्रका पाठ और अर्थ एकसा हे ॥ यहांश्रेणि से आकाशके प्रदेशोंकी पक्ति लीगई है इससे इससूत्रमे "आकाशप्रदेशा" वाक्यका अध्याहार किया है ॥ जीवानाम् की अनुवृत्ति प्रथम सूत्रसे है । गतिः शब्द सूत्रमे आया है इससे पुद्गलानाम् का अध्याहार किया है जीवानाम् और पुद्गलानाम् को मिलानेके लिये च समुच्चायी उपसर्गका अध्याहार किया है ॥

श्रेणेरानुपूर्व्येणानुश्रेणीति जीवानां पुद्गलानां च गतिर्भवतीत्यर्थः ॥ अनधिकृतानां पुद्गलानां कथं ग्रहणमिति चेत्गतिग्रहणात्। यदि जीवानामेव गतिरिष्टा स्यात् गतिग्रहणमनर्थकमधिकारात्तत्सिद्धेः। उत्तरत्र जीवग्रहणाच्च पुद्गलसम्प्रत्ययः ॥

श्रेणेः॥आनुपूर्व्येण॥अनुश्रेणिः॥इति*जीवानाम्॥ =श्रेणीके अनुकूल सो अनुश्रेणि है। ऐसे जीवोंका

च*पुद्गलानाम्॥गतिः॥भवति।इति*अर्थः॥ =और पुद्गलोंका गमन(श्रेणिके अनुकूल) होता है ऐसा आशय है अर्थात् जीवोंकीमृत्युहोनेपर नवीनशरीर धारणकरनेकेलिये गमन,मुक्तजीवोंकाऊर्ध्वगमन, जीवोंका ऊर्ध्वलोकसे अधोलोकजाना, अधोलोकसे ऊर्ध्वलोकजाना, तिर्यग्लोकसे अधोलोकगमन वा ऊर्ध्वलोक गमन श्रेणीके अनुकूल होगा, पुद्गलके शुद्ध परमाणुका एक समयमें चौदह राजूगमन आकाशके श्रेणिके अनुकूलही होगा अन्य अवस्थाओंमें जीव और पुद्गलोंका गमन भजनीय है श्रेणिके अनुकूल भी गमन करसक्ते हैं। प्रतिकूल भी, कोई नियम नहीं है ॥

अनधिकृतानाम्॥पुद्गलानाम्॥कथम्*ग्रहणम्॥ =प्रकरण रहित पुद्गलोंका(यहां) कैसे ग्रहण है ॥

इति*चेत्*गतिग्रहणात्॥यदि*जीवानाम्॥एव* =ऐसी शंकाहोनेपर (उत्तरमें कहते हैं किसूत्रमें) गतिके आदानसेजो प्राणियोंकाही

गतिः॥इष्टा॥स्यात्।गतिग्रहणम्॥अनर्थकम्॥ =गमन इच्छितहोता तो(इससूत्रमें)'गतिः'शब्दका लाना निष्प्रयोजन होजाता

अधिकारात्॥ तत्॥ सिद्धेः॥ =क्योंकि (विग्रहगतौकर्मयोगःसूत्रमें गमनकरनेके) प्रकरणसेउस('गतिः') कीसिद्धिहै (फिरइससूत्र'अनुश्रेणिःगतिः'मेंगतिशब्दनहीलाते यदिपुद्गलगमनकाआशयनहोतातो)

च*उत्तरत्र*जीवग्रहणात्॥ और(=च)क्योंकिइससूत्रसे(=अत्र) अगलेसूत्र'अविग्रहा जीवस्य'मेंजीवकेग्रहणकरनेसे

पुद्गलसम्प्रत्ययः॥ =(इससूत्रमें)पुद्गलका ग्रहण(भी) प्रतीति वा प्रत्यय होताहै इससबका भावार्थयहहैकि किसीकेतर्क करनेपर कि यहां तो जीवका प्रकरण वा विषय है पुद्गलका गमन 'अनुश्रेणिः गतिः' सूत्रमें कैसे आसकता है उनके उत्तरमें कहते है कि 'विग्रहगतौ कर्मयोगः" सूत्रसे प्रगटहैकि यहांपर गतिका अधिकार है क्योंकि गतिका विषयहै और गति जीव तथा पुद्गल दोनोंके होती है इसी कारण इस"अनुश्रेणिःगतिः"में गतिःशब्द लाये है यदि केवल जीवकी गति सेही सूत्रका अभिप्राय होता हैतो यहसूत्र"अनुश्रेणिः"इतनाहीहोता क्योंकि गति शब्द'विग्रहगतौ कर्मयोगः' सूत्रमें विद्यमान है उसकी अनुवृत्ति इस सूत्रमें आजाती ॥

ननु चन्द्रादीनां ज्योतिष्काणां मेरुप्रदक्षिणाकाले विद्याधरादीनां च विश्रेणिगतिरपि दृश्यते तत्र किमुच्यते अनुश्रेणिगतिरिति? कालदेशनियमोऽत्र वेदितव्यः ॥ तत्रकालनियमस्तावज्जीवानां मरणकाले भावान्तरसंक्रमे मुक्तानां चोर्ध्वगमनकाले अनुश्रेण्येव गतिः॥देशनियमोऽपि ऊर्ध्वलोकादधोगतिः॥अधोलोकादूर्ध्वगतिः। तिर्यग्लोकादधोगतिः ।ऊर्ध्वा वा । तत्रानुश्रेण्येव ॥ पुद्गलानां च या लोकान्तप्रापिणी सा नियमादनुश्रेण्येव ।

और "अविग्रहा जीवस्य" सूत्रभी यदि इस छव्वीसवां सूत्रमें केवल जीवकी गतिसे अभिप्राय होतातो 'अविग्रहाः' ऐसे होता जीवस्य शब्द न होता अतःइनतीनों सूत्रोंको मिलाकर पढ़ने और विचार करनेसे यह फल हुआकि 'विग्रहगतौ कर्मयोगः' में केवल जीवकीगतिहै 'अनुश्रेणिःगतिः' में गति शब्दलायागयाहैइससे जीव और पुद्गल दोनोंकीगतिलीगईहै पश्चात् 'जीवस्य' वाक्यका प्रयोग २७वां सूत्रमें होनेसे केवल शुद्ध अर्थात् मुक्तजीवकी ही गति वा गमनसे अभिप्राय है ॥

ननु॥चन्द्रादीनाम्॥ज्योतिष्काणाम्॥मेरु–प्रदक्षिणा- =प्रश्न(=ननु)शशि आदिक ज्योतिषी (देव) निका मेरुपर्वतकी प्रदक्षिणाके
काले॥विद्याधरादीनाम्॥च॥विश्रेणि– =समयमें और (=च) विद्याधर आदिकोंका आकाशके प्रदेशोंकी पक्तिके विरुद्ध
गतिः॥अपि॥दृश्यते।तत्र॥किम्॥अनुश्रेणि– =गमन भी देखागया है वहां(अर्थात्२६वां सूत्रमें) क्योंकर श्रेणीके क्रमानुसार
गतिः।इति॥उच्यते।कालदेशनियमः॥अत्र॥वेदितव्यः॥=गमन ऐसा कहागया है॥(उत्तर)यहां(इससूत्रमें)कालनियम तथा देशनियम जानो ॥
तत्र॥कालनियमः॥तावत्॥जीवानाम्॥मरणकाले॥ =तहां कालनियम है कि समस्त (=तावत्) संसारी प्राणियोंका मृत्युसमयमें
भवान्तर-संक्रमे॥च॥मुक्तानाम्॥ऊर्ध्वगमनकाले॥ =अन्यभवको जानेपर और मुक्तजीवोंका ऊर्ध्वगतिकालमें
अनुश्रेणी॥एव॥गतिः॥।देशनियमः॥ अपि॥ =(आकाशके प्रदेशोंकी) पंक्तिरूपही गमन है । क्षेत्र नियम भी है कि
ऊर्ध्वलोकात्॥अधोगतिः॥अधोलोकात्॥ऊर्ध्व– =ऊर्ध्वलोकसे अधोलोक गमन,अधोलोकसे ऊर्ध्वलोक
गतिः॥तिर्यग्लोकात्॥ अधोगतिः॥ऊर्ध्वा॥ वा॥ =गमन(और)तिर्यग्लोकसे अधोलोक गमन अथवा ऊर्ध्व (गमन)
तत्र॥अनुश्रेणी॥एव॥च॥पुद्गलानाम्॥या॥ =तहां श्रेणीके अनुसारही है तथा(=च) पुद्गलोंकी जो
लोकअन्त-प्रापिणी॥सा॥नियमात्॥अनुश्रेणी॥एव॥=लोकका अन्त प्राप्तकरनेवाली (शुद्धपरमाणु) है सो नियमसे श्रेणीके अनुकूल है अर्थात् जब पुद्गलकी शुद्ध परमाणु एक समयमें चौदह राजू गमन करती है तब वह आकाशके प्रदेशोंके पक्तिरूपही सीधी गमन करती है अन्यथा श्रेणीरूप गमनका नियम नहीं है ॥

इतरा गतिर्भजनीया ॥ पुनरपि गतिविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ अविग्रहा जीवस्य ॥ २७ ॥

विग्रहो व्याघातः कौटिल्यमित्यर्थः। स यस्यां न विद्यतेऽसावविग्रहा गतिः ॥ कस्य?। जीवस्य ॥ कीदृशस्य?। मुक्तस्य ॥ कथं गम्यते मुक्तस्येति?। उत्तरसूत्रे संसारिग्रहणादिह मुक्तस्येति विज्ञायते ॥ ननु च अनुश्रेणि गतिरित्यनेनैव श्रेण्यन्तरसंक्रमाभावो व्याख्यातः। नार्थोऽनेन।

इतरा १/१ ।गतिः १/१ ।भजनीया १/१ । =अन्य गमन नियम रहित है अर्थात् सीधागमन भी होता है वक्र भी होता है

पुनः*अपि*गति–विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थम् २/१ ।आह I=फिरभी गमनके प्रभेद कथनके लिये कहते हैं कि

सूत्रम्--अविग्रहा जीवस्य ॥२७॥ =अविग्रहा(गतिः) मुक्तजीवस्य (भवति)

सूत्रार्थः–अविग्रहा १/१ ।गतिः १/१ ।मुक्तजीवस्य ६/१ ।भवति I=वक्रतारहित,मोड़ारहित गमन मुक्त आत्माकाहोताहैअर्थात् मुक्त जीव एक समयमें सीधासात राजू गमन करता हुआ सिद्ध क्षेत्रमें चला जाता है इधर उधर मुड़ता नहीं है

वृत्त्यनुवादः-विग्रहः १/१ ।व्याघातः १/१ ।कौटिल्यम् १/१ ।इति*=विग्रह है सो व्याघात, वक्रता वा कुटिलता ऐसा

अर्थः १/१ ।सः १/१ ।यस्यां ७/१ ।न*विद्यते I असौ १/१ ।अविग्रहा १/१ =अर्थमें है । वह (विग्रह वा वक्रता)जिसमें विद्यमान नहीं है सो अविग्रह

गतिः १/१ ।कस्य ६/१ । ? जीवस्य ६/१ । =गमन है । (वह मोड़ारहित गति) किसकी है? ।(वह वक्रतारहित गति) चेतनकी है

कीदृशस्य ६/१ ।मुक्तस्य ६/१ । कथं*गम्यते I मुक्तस्य ६/१ ।इति* =किस प्रकारके(जीव)की है । मोक्षजीवकी है। मुक्तजीवका नाम कैसे जानाजाय?

उत्तरसूत्रे ७/१ ।संसारिन् ग्रहणात् ५/१ । इह* =अग्रिम(२८वां)सूत्रमें संसारी शब्दके ग्रहणकरनेसे यहां (इस सूत्रमें)

मुक्तस्य ६/१ ।इति*विज्ञायते I ननु*च*अनुश्रेणिः १/१ ।गतिः=मोक्षजीवका (ग्रहण) ऐसा जानाजाता है ॥ अन्य प्रश्न'अनुश्रेणिगतिः'

इति*अनेन ३/१ ।एव*श्रेणि–अन्तर-संक्रम-अभावः १/१ =इस (सूत्र)करिही श्रेणीसे विरुद्धगमनका अभाव

व्याख्यातः १/१ ।न*अर्थः १/१ । अनेन ३/१ ।। =वर्णित है(इसलिये) इस (सूत्र) से(=अनेन) प्रयोजन नहीं है अर्थात् इस सत्ताईसवां सूत्रका बनाना निष्फल वा अभिप्राय रहित है क्योंकि 'अनुश्रेणिगतिः' इस छव्वीसवां सूत्रमेंही श्रेणीके अनुकूल मुक्तजीवका गमनसिद्ध है।

पूर्वसूत्रे विश्रेणिगतिरपि क्वचिदस्तीति ज्ञापनार्थमिदं वचनम् ॥ ननु तत्रैव देशकालनियम उक्त किं न? अतस्तत्सिद्धेः ॥ यद्यसङ्गस्यात्मनोऽप्रतिबन्धेन गतिरालोकान्तादवधृतकाला प्रतिज्ञायते, सदेहस्य पुनर्गतिः किं प्रतिबन्धिनी, उत मुक्तात्मवदित्यत आह—

पूर्व-सूत्रे७॥ क्वचित्* विश्रेणि- =(उत्तर) पहिले(छव्वीसवां)सूत्रमें(अनुश्रेणिगतिः) है परंतु कहीं श्रेणीके विरुद्ध

गतिः१॥अपि अस्ति इति ज्ञापनअर्थइदम्१॥वचनं=(जीवऔर पुद्गलोंका)गमन भी है। ऐसा सूचितकरनेके लिये यह सूत्र है

ननु*तत्र*एव*देशकालनियमः१॥उक्तः१॥ =प्रश्न वहां (अनुश्रेणिगतिःसूत्रमें) ही क्षेत्र तथा कालका नियम कहा गया है अर्थात्'अनुश्रेणिगतिः'सूत्रमें काल और देशके नियमको ग्रहण कियाहै और उसकाल नियममें मुक्तजीवोंकें ऊर्ध्व गमन करतेसमय श्रेणिके अनुकूल गति वतलाई है इसलिये मुक्तजीवोंकी मोड़ारहित गति'अनुश्रेणिगतिः'सूत्रसे सिद्ध होनेपर पुनः'अविग्रहाजीवस्य' इस सूत्रका निर्माण वा प्रतिपादन निरर्थक ही है ॥

किम् १॥ न* ? =(उत्तर)क्या ? (पिछले सूत्रमें देश,कालका नियम कहां कहागयाअर्थात्) नहीं (कहागया)

अतः*तत्-सिद्धेः५॥ =इसलिये उस(देश,कालके नियम)की सिद्धिका (यहसूत्र)है अर्थात् आचार्य उत्तरमें कहते हैं कि काल और देशका नियम'अनुश्रेणिगतिः''सूत्रमें तो कहा नहीं गया किंतु'अविग्रहा जीवस्य' इसी सूत्रके द्वारा वहांपर काल,देशके नियमकी सिद्धिहै॥, "किम्" निंदा वा तिरस्कारके अर्थमें आया जान पड़ता है

यदि*असङ्गस्य६॥आत्मनः६॥अप्रतिबन्धेन३॥गतिः१॥=यदिकर्म रहित(=असंगस्य)आत्माका वन्धकरि रहित गमन

आ-लोकान्तात्५॥ अवधृतकाला१॥प्रतिज्ञायते। =लोकके अंत तक(=आ) एकसमयमात्र कालवान्गति प्रतिज्ञारूप करिये है वा लोकके अंततक एकसमय मात्र कालकेनियम रूप विदित (=प्रतिज्ञायते) है तो

पुनः*सदेहस्य६॥गतिः१॥किम्१॥ प्रतिबन्धिनी१॥=फिर(=पुनः) शरीरसहित (आत्मा)का गमन क्या अटकाव सहित वा मोड़ासहित है

उत*मुक्त-आत्मवत्*इति*अतः*आह। =वा (=उत) मुक्तआत्मा सदृश है इसलिये (अग्रिमसूत्रमें) कहते हैं कि

॥ विग्रहवती च संसारिणः प्राक्चतुर्भ्यः ॥ २८॥

विग्रह(१)वती(२) च(३) संसारिणः प्राक्चतुर्भ्यः ॥ २८ ॥

=विग्रहवती(गतिः) अविग्रहा गतिः(=च) संसारिणः प्राक्-चतुर्भ्यः ॥ २८ ॥

सूत्रार्थः-विग्रहवती॥गतिः॥अविग्रहा॥गतिः॥च* =मोड़ेरूपगति वा विग्रहसहित गमन और विग्रहरहित गमन भी (=च) संसारिणः॥ प्राक्*चतुर्भ्यः॥ =संसारी जीवका चार समयसे पहिले २ होता है भावार्थ विग्रहगतिमें सीधीगति, एक मोड़ावालीगति दो मोड़ावालीगति, तीन मोड़ावालीगति ऐसे ये चारगतियां होती हैं। आगममें क्रमसे इन गतियोंकी इषुगति, पाणिमुक्तागति, लांगलिकागति, और गोमूत्रिका गति इसप्रकार चार संज्ञामानी हैं। चारोंगतियोंमें इषुगति मोड़ारहित है और शेष गतियां मोड़ासहित है॥ इन चारो गतियोंका स्पष्ट अर्थ ऐसे है कि जिस प्रकार अपने लक्ष्य स्थानतक वाणकी गति सीधी होती है उसी प्रकार संसारी और सिद्ध जीवोंकी जो मोड़ारहित सीधीगति होती है उसको इषुगति कहते है। इस इषुगति विषैं एक समय लगता है अर्थात् एकही समयमें शरीर छोड़ना और दूसरा शरीर ग्रहण करना ये सव कार्य होजाते हैं॥ इसलिये इषुगतिमें ससारी जीव अनाहारक नहीं होताहै।जिस प्रकार हाथसे तिरछी ओर फेंके हुये पदार्थकीगति एक मोड़ालेकर होती है। उसी प्रकार संसारी जीवकी जो गति एक मोड़ालेकर हो वह पाणिमुक्तागति कहलाती है और उसगतिमें दो समय लगते हैं। ( )जिस प्रकार लांगल हलमें दो जगह मोड़रहती है उसी प्रकार जिस गतिमें दो मोड़ेलेनेपड़े उसे लांगलिकागति कहते है। और उसके होनेमें तीन समय लगते है॥ ( ) तथा जिस प्रकार गौके मूत्रमें वहुत मोड़रहते है

(१)विग्रहवती=मोडेरूप, मोडेवाली, मोडेसहित,वक्रतासहित. विग्रहसहित कुटिलगति (२) दोनों आम्नायोंमें इससूत्रका पाठ औरअर्थएकसाहै
(३) सूत्रमे जो'च'शब्द है वह उपपादक्षेत्रमें जानेके लिये ससारी जीवों की सीधी भी गति होती है और मोडेवाली कुटिलगति भी होती है इस प्रकार दोनो भांतिकी गतियाके समुच्चयके लिये है अर्थात् ससारी जीवकी अविग्रहगति भी होती हैऔर विग्रहगति भी होतीहैपरतु मुक्तजीवकी केवल अविग्रहगति होती है और 'एक समयाविग्रहा' सूत्रके अनुकूल इस अविग्रहगतिका काल एक समय है मुक्तजीवका भी और ससारी जीवकाभी। ससारी जीवअविग्रह गति में (ऋजुगति,सीधीगति, इषुगतिमें)एकही समयमें शरीर त्याग कर जन्म लेलेताहैऔर ऐसी अवस्था में अनाहारक नहीं होता आहारक वना रहता है॥ वहुतसे महाशयोंकी जैसा कि हमको अनुभव है यह धारणा है कि ससारीजीव जन्म लेनेमें अवश्यही एक वा दो वा तीनसमय तक अनाहारक'एक द्वौ त्रीन्वाऽनाहारक' सूत्रके अनुकूल रहता ही है कोई ससारी जीव उनकी धारणाके अनुसार ऐसा नहीहैजो अनाहारक न होताहो विग्रहगतिमें आहारकही वना रहताहो,उनके इस भ्रमको दूरकरनेके लिये यह टिप्पणी विशेष रुप सेपृष्ठ८१मेंलिखतेहैं॥

उसी प्रकार जिसगतिमें तीन मोड़ेलेनेपड़े वह गो मूत्रिकागति है, और उसके होनेमें चार समय लगते है। चारोंगतियोंमें पहिली

और सिद्धकरते हैं कि ऋजुगतिमे ससारी जीव आहारक बना रह सकता है॥ टोड़लमलजीकृत गोम्मटसार गाथा ६७० के नीचे निम्न लेख है॥ "आहारका काल उत्कृष्ट सूच्यगुलके असख्यातवे भाग प्रमाण है। सूच्यगुलका असख्यातवां भागके जेते प्रदेश होंहि तितने समय प्रमाण आहारकका काल है। इहां प्रश्न जो मरण तो आयु पूरी भए पीछें होइ ही होइ तहां अनाहार होइ इहां आहारका काल इतना कैसे कह्या? ताका समाधान-जो मरण भए जिस जीवके वक्ररुप विग्रहगति न होइ सूधी एक समयरूप गति होइ ताके अनाहारकपणा न होहै आहारकपणा ही रहैहै तातै आहारकका पूर्वोक्त काल उत्कृष्टपनैकरि कह्या है। बहुरि आहारकका जघन्यकाल तीन समय घाटि सांसका अठारहवां भाग जानना जातैं चुद्रभव विषै विग्रहगतिके समय घटाय इतना काल हो है बहुरि अनाहारकका काल कार्मण शरीर विषै उत्कृष्ट तीन समय जघन्य एक समय जानना जातैं विग्रहगति विषै इतने काल पर्यंतही नो कर्म वर्गणानिका ग्रहण न हो है॥टोड़लमलजी अनुवादित गोम्मटसार गाथा ६७०॥"

( )इस अट्ठाईसवांसूत्रमे "च शब्दःसमुच्चयार्थः। विग्रहवती चाविग्रहवती चेति" (सर्वार्थसिद्धिवृत्ति इसी सूत्रके नीचे देखो) = चशब्द समुदय वा समूहके लिये है।(ससारी जीवकीगति क्योकि यह अट्ठाईसवां सूत्रकेवल ससारी जीवोसे सबन्ध रखताहै)विग्रहसहित भी(=च)और विग्रहरहितभी(=च है॥

( )' तहा इषुगति तौ विग्रहरहितहै। ताकादृष्टांत जैसे इषु कहिये तीर चालै सो सूधा ठिकाणे पहुचै तैसे इषुगतिहै॥ याका काल एक समय ही है सोससारीनिकै भी होहै बहुरि मुक्तजीवकै भी हो है। बहुरि पाणिमुक्ताविषै एक मोड़ा होहै।याका काल दोय समयहै, . जयचदजीकृता वचनिकापृष्ठ२७२

( )"चशब्दःसमुच्चयार्थः-॥ २ ॥ चशब्द उपपाद क्षेत्रं प्रति ऋज्वी गतिरविग्रहा, कुटिला विग्रहवती" तत्त्वार्थ राजवार्तिक पृष्ठ ९७ ॥ इस अट्ठाईसवां सूत्रमे चशब्द समुदयके लिये है अर्थात् चकार उपपाद क्षेत्र प्रति ऋज्वीगति कहिये अविग्रहागति और कुटिलागति कहिये विग्रहवतीगति जे हैं तिनके समुच्चयके लियेहै भावार्थ इस अट्ठाईसवा सूत्रमे जो केवल ससारी जीवोंके कथनमेहैसर्वगति(विग्रहागति औरअविग्रहगति)काग्रहणके अर्थ "च"है॥

( )"आसां चतसृणां गतीनामार्षोक्ताःसज्ञाः इषुगतिःपाणिमुक्ता = ये आर्षोक्त चारगतियोंके नाम हैं कि इषुगति, पाणिमुक्तागति,
लांगलिका,गोमूत्रिका,च इति। तत्राविग्रहा प्राथमिकी, = लांगलिकागति,और गोमूत्रिकागति ऐसेहैं।तहांप्रथमकीइषुगति जोहैसोतौअविग्रहागतिहै अर्थात् मोड़ारहितगति इषु जो बाण तिसके समान सरलहैसीधीगति है ऋजुगतिहैऔर
शेषा विग्रहवत्यः = अवशेष तीन(पाणिमुक्तागति,लांगलिकागति,गोमूत्रिकागति)विग्रहवानहैमोड़ासहितहैं
इषुगतिरिवेषुगतिः (=इषुगतिःइव इषुगतिः) क उपमार्थः? = तिनमें इषुगतिके समान जो है सो इषुगतिहै। यहां उपमाअर्थ क्या है॥
यथेषोर्गतिरालक्ष्यदेशादृज्वी,तथाससारिणांसिध्यतांचजीवानां = जैसे बाणकीगति लक्ष्यस्थानपर्यंत सरल है तैसे संसारिनिके तथा सिद्धहुये जीवनिकें ऋज्वीगतिरेकसमयिकी" तत्त्वार्थराजवार्तिकम् पृष्ठम् ९७ = सरलगतिहै सो एक समयकीहै भावार्थ जिस प्रकार अपने लक्ष्यस्थानतक बाणकीगति

कालावधारणार्थं प्राक्चतुर्भ्य इत्युच्यते। प्रागितिवचनं मर्यादार्थं, चतुर्थात्समयात्प्राग्विग्रहवती गतिर्भवति न चतुर्थे इति॥ कुत इति चेत्--सर्वोत्कृष्टविग्रहनिमित्तनिष्कुटक्षेत्रे उत्पित्सुः प्राणी निष्कुटक्षेत्रानुपूर्व्यनुश्रेण्यभावादिषुगत्यभावे निष्कुटक्षेत्रप्रापणनिमित्तां त्रिविग्रहां गतिमारभते नोर्ध्वाम्। तथाविधोपपादक्षेत्राभावात्॥

इषुगति संसारी और मुक्त दोनों प्रकारके जीवोंके होती है परंतु शेष गतियां केवल संसारी जीवोंके होती हैं॥

वृत्त्यनुवादः–काल–अवधारण–अर्थं॥ प्राक्–चतुर्भ्यः॥ इति*=	कालके निश्चय करने के लिये चार (समय) से पहिले ऐसा (वाक्य सूत्रमें)
उच्यते। प्राक्* इति* वचनम्॥ मर्यादा–अर्थम्॥	=कहा गया है। प्राक् ऐसा वाक्य सीमा के लिये है
चतुर्थात्॥ समयात्॥ प्राक्* विग्रहवती॥ गतिः॥ भवति।	=चौथे समयसे पहिले विग्रह गति होती है
न* चतुर्थे॥ इति*। कुतः* इति* चेत्*	=चौथे (समय) विषें (विग्रह कहिये मोड़ा) नहीं है। ऐसा क्योंकर होता है?
सर्वोत्कृष्ट–विग्रह–निमित्त–निष्कुट-क्षेत्रे॥ उत्पित्सुः॥	=(उत्तर) सर्वोत्कृष्ट विग्रह है कारण जिसको ऐसे निष्कुट क्षेत्रमें उपजनेवाला
प्राणी॥ निष्कुट–क्षेत्र–आनुपूर्वी–अनुश्रेणि–अभावात्॥	=जीव निष्कुट क्षेत्र (=लोकका अग्रकोण) आनुपूर्वी सहित अनुश्रेणीके नहोनेसे
इषुगति–अभावे॥ निष्कुटक्षेत्र-प्रापण–निमित्ताम्॥	=बाणगति वा सीधीगतिके अभाव होने पर निष्कुट क्षेत्र में पहुंचनेके लिये
त्रि–विग्रहाम्॥ गतिम्॥ आरभते। न* ऊर्ध्वाम्*	=तीन मोड़ेवाली गतिको प्रारम्भेहै न कि अधिक (मोड़ेवाली गति) को (आरम्भेहै)
तथाविध—उपपादक्षेत्र—अभावात्॥	=क्योंकि इसप्रकारसे (=तथाविध) उपजनेका अन्यक्षेत्र विद्यमान नहीं है अर्थात् निष्कुट क्षेत्रके उपरांत कोई ऐसा क्षेत्र नहीं है जिसमें जीव तीन मोड़ेसे अधिकलेके उपजे

सो जैसे होती है उसी प्रकार संसारी और सिद्ध जीवोंकी जो मोडा रहित सीधी गति है होती है उसे इषुगति वा बाणगति कहते हैं इस इषुगतिमें एक समय लगता है अर्थात् एक ही समय में शरीर छोडना और दूसरा शरीर ग्रहण करना ये सब कार्य हो जाते हैं। इसीलिये इषु गतिमें संसारी जीव अनाहारक नहीं है आहारक ही रहता है उक्त चारों गतियों में पहिली इषुगति संसारी और मुक्त दोनों प्रकारके जीवोंके होती है परंतु अवशेष तीन गतियां केवल संसारी जीवोंके होती हैं॥

( ) यही बात कि संसारी जीव और मुक्त जीव दोनों के अविग्रह गति होती है और अविग्रह गतिका एक समय है। अविग्रह गतिमें संसारी जीव अनाहारक नहीं रहता है श्लोकवार्तिकके पृष्ठ ३३३,३३४से,और सर्वार्थसिद्धिवृत्तिके ३०वां सूत्रके इनवाक्योंसे ['कर्मादानहि निरन्तर,कार्मणशरीर सद्भावे उपपाद क्षेत्रं प्रति ऋज्व्यां गतौ आहारकः। इतरेषु त्रिषु समयेषु अनाहारक" = कर्म वर्गणाओंका ग्रहण लगातार ही है,कार्मण शरीरकी विद्यमानतामें उपजनेके क्षेत्रकी ओर मोडारहितगमन (=ऋजुगति) में जीव आहारक है अन्य तीन समयोंमें (जिनमें एक मोड़ा, दो मोडा वा तीन मोड़े लिये जाते हैं) जीव अनाहारक है] स्पष्ट है कि ऋजुगति वाला संसारी जीव विग्रहगति में भी आहारक है॥

चशब्दः समुच्चयार्थः । विगृहवती चाविगृहवती चेति ॥ विगृहवत्या गतेः कालोऽवधृतः । अविगृहायाः कियान् काल इत्युच्यते—

॥ एकसमयाऽविग्रहा ॥ २९ ॥

एकः समयो यस्याः सा एकसमया । न विद्यते विगृहो यस्याः सा अविगृहा ॥ गतिमतां हि जीवपुद्गलानामव्याघतेनैकसमयिकी गतिरालोकान्तादपीति ॥

च*शब्दः १।१ समुच्चय-अर्थः १।१	=(इस सूत्रमें) चकार समुदय (=समुच्चय) के लिये है अर्थात् संसारी जीवकी(गति)
विग्रहवती १।१ च*अविग्रहवती १।१ च* इति*	=विग्रह सहित भी (=च) है विग्रह रहित भी इस प्रकार है
विग्रहवत्याः ६।१ गतेः ६।१ कालः १।१ अवधृतः १।१	=विग्रहवाले (जीव) निका गमनका काल निश्चय वा निर्णीत किया
अविग्रहायाः ६।१	=विग्रहराहित(जीव) निका(अर्थात् उन संसारी जीवोंका जो विग्रहगतिमें ऋजुगति धारण करते हैंएक ही समयमें शरीर छोड़कर उसी समय में जन्म धारण करलेते हैंऔरविग्रहगतिमें भी अनाहारक नहीं होते आहारक ही वने रहतेहैंऔर मुक्तजीवोंकाजो सीधेमोक्षकोपधारतेह
कियान् १।१ कालः १।१ इति * उच्यते ॥	=क्या काल है इस प्रकार(प्रश्न होने पर)कहा जाता है कि

एक(१)समयाऽविगृहा(२) ॥ २९ ॥ =एक समयाऽविगृहा (गतिः भवति) ॥ २९ ॥

सूत्रार्थः—एकसमया१।१ अविग्रहा१।१ गतिः१।१ भवति	=एक समय है काल जिसका एसी मोड़ारहित गति,ऋजुगति वा इषुगति है अर्थात् मोड़ा रहित गति एक समय मात्र ही होती है। गतिवान जीव और पुद्गल की मोड़ा रहित गति लोक के अग्रभाग पर्यंत भी एक ही समय मे निष्पन्न हो जाती है।
वृ.यर्थः—एकः१।१समयः१।१यस्याः६।१सा१।१एकसमया१।१न	=एक है समय जिसका सो एक समया है। नहीं है
विद्यते विग्रहः १।१ यस्याः६।१ सा १।१ अविग्रहा १।१	=विद्यामान वा वर्तमान विग्रह जिसके सो अविग्रह है
गतिमताम् ६।३ हि*जीव–पुद्गलानाम्६।३ अव्याघातेन ३।१	=गतिवान (=गतिसहित) ही जीव और पुद्गलोंको विग्रह शून्य वा अविग्रहकरि
एकसमयिकी१।१गतिः१।१आ-लोकअन्तात्५।१अपि*इति	=एक समय मात्र गमन क्षेत्रकी अपेक्षा से लोक पर्यंत भी हैं

१ श्वेताम्बरआम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्र में "एक समयोऽविग्रहः" = विगृह रहित गति एक ही समयमें होती है। दोनो आम्नायोंमें एकअर्थहै

अनादिकर्मबन्धसन्ततौ मिथ्यादर्शनादिप्रत्ययवशात्कर्माण्यादानो विग्रहगतावप्याहारकः प्रसक्तस्ततो नियमार्थमिदमुच्यते—

॥एकं द्वौ त्रीन्वाऽनाहारकः॥ ३० ॥

अनादिकर्मबन्धसन्ततौ मिथ्यादर्शनादि-प्रत्यय-	=अनादिकर्मबन्धकी संतानविषैं मिथ्यादर्शनादिकके कारण (=प्रत्यय)
वशात् कर्माणि आदानः विग्रहगतौ अपि	=वशसे (यह जीव) कर्मोंको ग्रहण करता है। विग्रहगतिमें भी
आहारकः प्रसक्तः ततः निमयार्थं इदम् उच्यते ।	=आहारक(का)प्रसंग आता है तिस(हेतु)से नियमके अर्थ यह कहा जाता है कि
एकं[1] द्वौ त्रीन्वाऽनाहारकः[2]	=जीवो विग्रहगतौ एकं द्वौ त्रीन् वा समयाननाहारकःभवति
सूत्रार्थः—जीवः विग्रहगतौ एकम्	=जीव नवीन शरीर धारण करनेके लिये गमन करनेमें एक समय
द्वौ त्रीन् वा समयान् अनाहारकः भवति ।	=दो समय अथवा तीन समयतक अनाहारक(=नोकर्मवर्गणाके ग्रहणरहित)है ।

भावार्थ जो जीव सीधा जाय उपजै है आहारक है। यह जीव उसी समय शरीर त्याग करताहैऔर उसी समयमें ऋजुगति द्वारा जन्म लेलेताहैअनाहारक नहीं होता है आहारकही बना रहता है और जो एक मोड़ालेकर उपजता है सो एक समय अनाहारक है दूजेसमय आहारक है जो दोय मोड़ालेकर उपजता है सो दोय समय अनाहारक है तीजे समय आहार ग्रहण करता है और जो तीन मोड़ालेकर उत्पन्न होता है सो तीन समय तक अनाहारक है चौथे समय आहारक है अर्थात् चौथे समयमें शरीर प्राप्तिको ग्रहण करके आहारक होजाता है ॥

(१) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य० में" एक द्वौ वानाहारकः" ऐसा पाठ इस सूत्रका है। हमारे यहां के पाठसे"त्रीन्" शब्द न्यून है। इस पाठके ही अनुकूल उनके यहां –एक वा दो समय तक जीव अनाहारक रहता है" ऐसा अर्थ किया है हमारे यहांके अनुसार 'एकसमय दोसमय वा तीनसमयतक जीव विग्रहगति में अनाहारक रहता है यही अर्थभेद है। जब दोनों सम्प्रदाय।का ' विग्रहवती च संसारिणः प्राक् चतुर्भ्यः" इस सूत्रका पाठ और अर्थ एक है तब श्वेताम्बरोंके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें इससूत्रके पाठमें त्रीन् शब्द होना चाहिये नहीं तो'विग्रहवती च संसारिणः प्राक् चतुर्भ्यः 'और इससूत्रका अर्थ आपसमें मेल नहीं खाता संभव है कि त्रीन् शब्द रहगया हो ॥

(२) 'प्रश्न–एक दो तीन समय तक जीव अनाहारक रहता है' यहां पर आहार क्रियाका अधिकरण काल है। जहां अधिकरण अर्थ होता है वहा पर सप्तमी विभक्ति होती है इसलिये 'एक द्वौ त्रीन्' यहांपर 'एकस्मिन् द्वयोः त्रिषु ' यह सप्तमी विभक्ति होनी चाहिये ? (देखो सप्तम्यधिकरणेच २।३।३६ अष्टाध्यायी=अधिकरण अर्थमें सप्तमी विभक्ति होतीहै। आधारो अधिकरणम् ।१। ४। ४५ । अधिकरणका अर्थ आधारहै॥(उत्तर)यहांपरकालकृत

अधिकारात्समयाभिसम्बन्धः। वाशब्दो विकल्पार्थः। विकल्पश्च यथेच्छातिसर्गः॥ एकं वा द्वौ वा त्रीन्वा समयाननाहारको भवतीत्यर्थः॥ त्रयाणां शरीराणां षण्णां पर्याप्तीनां योग्यपुद्गलग्रहणमाहारः। तदभावादनाहारकः॥ कर्मादानं हि निरन्तरं, कार्मणशरीरसद्भावे॥ उपपादक्षेत्रं प्रति ऋज्व्यां गतौ आहारकः। इतरेषु त्रिषु समयेषु अनाहारकः॥ एवं गच्छतो

वृत्त्यनुवादः-अधिकारात्[५।१] समय-अभिसम्बन्धः[१।१] वाशब्दः[१।१]	=प्रकरण(वश)से (इससूत्रमें) समयका संबन्ध है। (सूत्रमें) वा शब्द
विकल्प-अर्थः[१।१] विकल्पः[१।१] च*यथा-इच्छा-	=विकल्पके लिये है। और(=च) विकल्प है सो इच्छानुकूल (चलना) है
अतिसर्गः[१।१]	=(उक्त विकल्प है सोही) अतिसर्ग है (=जो चाहो सो करो)
एकम्[२।१] वा*द्वौ[२।२] वा त्रीन्[२।३] वा समयान्[२।३]	=एकको अथवा दोको अथवा तीन समयको (जीव)
अनाहारकः[१।१] भवति। इति*अर्थः[१।१] त्रयाणाम्[६।३]	=अनाहारक होता है ऐसा आशय है। तीन (औदारिक-वैक्रियिक-आहारक)
शरीराणाम्[६।३] षण्णाम्[६।३] पर्याप्तीनाम्[६।३]	=शरीर,छह(आहार-शरीर-इन्द्रियश्वासोच्छ्वास-भाषा-मन)पर्याप्तोंके
योग्य-पुद्गल-ग्रहणम्[१।१] आहारः[१।१] तद्-अभावात्[५।१]	=योग्य पुद्गल(वर्गणाओं) का आदान सो आहार है उसके विद्यमान न होनेसे
अनाहारकः[१।१] कर्म- आदानम्[१।१] हि*निरन्तरम्[१।१]।	=अनाहारक है। कर्मवर्गणाओंका ग्रहण लगातार ही है।
कार्मणशरीरसद्भावे[७।१] उपपादक्षेत्रम्[२।१] प्रति*	=कार्मणशरीरके रहनेपर उपजनेके क्षेत्रकी ओर
ऋज्व्याम्[७।१] गतौ[७।१] आहारकः[१।१] इतरेषु[७।३] त्रिषु[७।३]	=मोड़ारहितगमन(=ऋजुगति)में(जीव)आहारक है। अन्य तीन
समयेषु[७।३]	=समयोंमें(जीव) अर्थात् एक विग्रहागतिमें, दो विग्रहागतिमें,तीन विग्रहागतिमें
अनाहारकः[१।१]। एवम्* गच्छतः[६।१]	=(नोकर्मकी अपेक्षा) अनाहारक है। ऐसे (भवान्तरप्रति) गमन करतेहुये जीवको

अत्यन्त सयोगकी विवक्षा है अर्थात् एक समय दो समय तीन समयोंमे अखण्डरूपसे अनाहारक रहता है किसी एक खण्डमें नहीं यह यहां पर विवक्षा है तथा तह नियम है कि जहांपर कालकृत अत्यन्त सयोग रहता है वहांपर अधिकरण अर्थके विद्यमान होते सतेभी सप्तमी विभक्तिकी बाधक द्वितीया विभक्तिही होती है इसलिये सूत्रमें 'एक द्वौ त्रीन्' द्वितीया विभक्तियोंका प्रयोग ही ठीक है॥ द्वितीया विभक्तिका प्रमाण यह है कि अष्टाध्यायी२-३-५ कालाध्वनोरत्यन्त सयोगे(द्वितीया,अत्यन्त सयोग गम्यमानहो तो काल और अध्ववाची(मार्गवाची) शब्दोंमे द्वितीया विभक्ति हो॥ मासमधीते(=मासम् अधीते)=अखण्डरूपसे मासभर पढ़ता है। यहां मासेके स्थानमें मासम् द्वितीया विभक्ति लाये हैं। मासस्य द्विरधीते=मासमें दोबार पढता है क्रोशस्यैकदेशे पर्वत.=कोशके एक भागमे पर्वत है यहां दोनोउदाहरणोंमे अत्यन्त सयोग नहीं है अतः द्वितीया विभक्ति नहीं है॥

ऽभिनवमूर्त्यन्तरनिर्वृत्तिजन्मप्रकारप्रतिपादनार्थमाह—

॥ सम्मूर्च्छनगर्भोपपादाज्जन्म ॥ ३१ ॥

त्रिषु लोकषूर्ध्वमधस्तिर्यक् च देहस्य समन्ततो मूर्च्छनं सम्मूर्च्छनमवयवप्रकल्पनम्। स्त्रिया उदरे शुक्रशोणितयोर्गरणं

अभिनवमूर्ति-अन्तर-निर्वृत्ति-जन्म- =नवीन अन्य शरीरकी रचना(=निर्वृत्ति) को और जन्मके
प्रकार-प्रतिपादन-अर्थम्[४/१]।।आह T =भेद जनावनेके लिये वा कहनेके लिये कहते हैं कि

[१] सम्मूर्च्छनगर्भोपपादाज्जन्म॥३१॥=सम्मूर्च्छनात्-गर्भात्-उपपादात्[२]-जन्म ॥ ३१ ॥

सूत्रार्थः-सम्मूर्च्छनात्[५/१]।। =सम्मूर्च्छन(अर्थात् तीनलोकमें जहां तहां अवयव सहित शरीरके बनने) से
गर्भात्[५/१] =गर्भ (अर्थात् माताकेरज और पिताके वीर्यके संयोग वा संबन्ध) से
उपपादात्[५/१]। =उपपाद (अर्थात् जिस स्थानमें आकार उत्पन्नहों वहां) से-उपपादशय्यासे अथवा उपपाद स्थानसे। (उपपाद=देवऔरनारिकियोंके उत्पन्न होनेके स्थान)
जन्म[१/१]।। =(जीवके) नवीन शरीरका धारण(=जन्म) है ॥ इस सूत्रका सारांश यह है कि सम्मूर्छनजन्म,गर्भजन्म,उपपादजन्म ये ही तीन भेद जन्मके हैं ॥

सूत्रकाअन्यपाठः--सम्मूर्च्छनगर्भोपपादा जन्म ॥ ३१ ॥

सूत्रार्थः-सम्मूर्च्छन-गर्भ-उपपादाः[१/३]जन्म[१/१]।। =सम्मूर्च्छन,गर्भ और उपपादशय्यारुप (जीवकेये) तीन जन्म हैं
वृत्त्यनुवादः-त्रिषु[७/३]लोकेषु[७/३]ऊर्ध्वम्*अधस्*तिर्यक्*च=तीनलोकमें ऊपर नीचे और (=च) तिर्यक्
देहस्य[६/१]।। समन्ततः*मूर्च्छनम्[१/१]।।सम्मूर्च्छनम्[१/१]।।=चारों ओर वा जहां तहां (=समन्ततः) शरीरका बनजाना (=मूर्च्छनं)सो सम्मूर्च्छन है
अवयव-प्रकल्पनम्[१/१]।। =(अर्थात् देहके)अवयवकी (सर्वत्र) रचना वा उत्पत्ति(प्रकल्प) है सो सम्मूर्च्छन है ॥
स्त्रियाः[६/१]।।उदरे[७/१]।।शुक्र-शोणितयोः[६/२]।।गरणम्[१/१]।।=नारीके उदरमें वीर्य (=शुक्र) और लोहू (=शोणित) मिलना (=गरणं)

१ श्वेताम्बरस०के सभाष्य०में ''उपपादा'' वाक्यके स्थानमें 'उपपाता' लाये हैं अर्थात् 'सम्मूर्च्छनगर्भोपपाता जन्म'' ऐसा पाठ है अर्थ दोनोंकाएकहै॥
(२) यहापर जैसेकि' उपपादा ' बहुवचनमें है'उपपाद+प' पचमी बहुवचनमें यह शब्द क्योंनहीं है॥हमारे यहां पूर्वोक्त दोनों पाठ विद्यमान हैं ॥

मिश्रणं गर्भः । मातोपभुक्ताहारगरणाद्वा गर्भः । उपैत्युपपद्यतेऽस्मिन्निति उपपादः । देवनारकोत्पत्तिस्थानविशेषसञ्ज्ञा ॥ एते त्रयः संसारिणां जीवानां जन्मप्रकाराः शुभाशुभपरिणामनिमित्तकर्मभेदविपाककृताः ॥

अथाधिकृतस्यसंसारिविषयोपभोगोपलब्ध्याधिष्ठानप्रवणस्यजन्मनोयोनिविकल्पावक्तव्याइत्यतआह

मिश्रणम् गर्भः वा*मातृ-उपभुक्त-आहार-	=मिश्रित होना(=मिश्रणं) सोगर्भ है । अथवा मातासे खायेहुये (उपभुक्त) आहारके
गरणात् गर्भः	=निगलनेसे होना सोगर्भहै अर्थात् माताके आहारको अपना आहार बनाया जाय
उपैति । उपपद्यते । अस्मिन् इति*उपपादः	=जिसमें पहुंचता है (=उपैति)वा जिसमें उपजता है (=उपपद्यते) ऐसा उपपाद है अर्थात् जिसमें पहुंचकरि वा जिसको प्राप्तहोकर उपजता है सो उपपाद है
देव-नारक-उत्पत्ति-स्थान विशेष-सञ्ज्ञा	=देव और नारकियोंके उपजनेके स्थानका(उपपाद यह) विशेष नाम है
एते त्रयः संसारिणां जीवानां जन्म-प्रकाराः	=ये तीन भेद संसारी प्राणियोंके जन्मके हैं वा भवधारण करनेके हैं ।
शुभ-अशुभ-परिणाम-निमित्त-कर्मभेद-विपाककृताः	=(येतीनों जन्म)अच्छे बुरे भावोंके कारणसे कर्मोंके भेदोंके उदयसे किये जाते हैं अर्थात् परिणामोंके कार्य कर्म बन्धके भेद हैं और कर्म बन्धोंके फल जन्म भेद हैं क्योंकि कारणके अनुकूलही लोकमें कार्य दीख पड़ताहै । शुभअशुभ जिसप्रकारका कर्म होता है उसीके अनुकूल जन्मोंकी उत्पन्ति होती है ।
अथ*अधिकृतस्य	=अब जिस(जन्मका)ऊपरसे अधिकार वा प्रकरण चलाआरहाहै और
संसारि-विषय—उपभोग—उपलब्धि—	=जो संसारीजीवोंको विषयभोगोंकी (संसारि-विषयोपभोग) प्राप्ति(=उपलब्धि) के
अधिष्ठान—प्रवणस्य जन्मनः	=अधारभूत शरीरकी उत्पत्तिमें(=अधिष्ठान)कारण है वा प्रवीणहै (=प्रवणस्य) उसजन्मके
योनिविकल्पाः वक्तव्याः इति*अतः*आह ।	=योनियोंके भेद(=विकल्पाः)कहना चाहिये । इस लिये कहते हैं कि

(१)उपैति – उप उपसर्ग समीपके अर्थमें है एति में ए गुण ईका है । ई अदादि द्वितीय गणका धातु परस्मैपद "जाना" के अर्थमेंहै अध्याय१पृष्ठ ५६ के अनुसार ई का गुण ए हो कर ति अन्य पुरुष एक वचन,परस्मैपद, वर्तमान कालको जोड़ो एति बना उप*एति = उपैति = समीप (= उप) जाता है = एति,शब्दार्थ समीप जाताहै अर्थात् पहुचता है ॥(२)उपपद्यते = उप-पद्-य-ते ॥ उप = आरम्भ(पद्मचन्द्र०कोशपृष्ठ७५) पद् दिवादि चतुर्थ गणका आत्मने पदी धातु जिसका अर्थ प्राप्ति होना—है । य विकरण है जो चतुर्थ गणकी धातुओं के पीछे और ए-से-ते इत्यादि प्रत्ययों के पहिले जोड़ा जाताहै और ते आत्मनेपद एक वचन अन्य पुरुष वर्तमान कालका प्रत्ययहै ॥ उपपदका शब्दार्थ आरम्भता को (संसारमें) [illegible]

॥ सचित्तशीतसंवृताःसेतरा मिश्राश्चैकशस्तद्योनयः ॥३२॥

(१)सचित्तशीतसंवृताः सेतरा मिश्राश्चैकशस्तद्योनयः ॥ ३२ ॥

सूत्रार्थः--सचित्त-शीत--संवृताः॥ =सचित्त,शीत,संवृत(और सचित्त-शीत-संवृत्त इन एक एकके)
सा--इतराः॥ =प्रतिपत्ती,विपत्ती वा उलटे(जो अचित्त-उष्ण-विवृत) सहित (=सा)
च*एकशः*मिश्राः॥ =और(सचित्त-शीत-संवृत)एकएकके मिश्र (जैसेसचित्ताचित्त,शीतोष्ण,संवृतविवृत)सहित
तद्--योनयः॥ =उन(सम्मूर्च्छनादि जन्मों)की योनियें वा उत्पत्तिस्थान हैं(=योनयः) अर्थात्

(१) सचित्तयोनि जीवका वह उत्पत्तिस्थान है जो चेतना सहित हो जैसे असाधारण शरीर वाले जीवोंके एकही शरीरमें बहुत जीव हैं तिससे परस्पर आश्रयसे सचित्त हैं

(२) अचित्त योनि-जीवका वह उत्पत्तिस्थानहैजहांपुद्गलस्कन्धवापुद्गलप्रचय अचित्त हों जैसेदेवनारिकीयोंके उपजनेकेस्थानअचित्त हैं

(३) सचित्ताचित्त--जीवका वह उत्पत्तिस्थान है जहां चेतना और अचेतन पुद्गलके स्कंन्धहों जैसे जो जीव गर्भसे जायमान हैं गर्भज हैं वे सचित्ताचित्तस्वरूप मिश्रयोनिके धारक हैं क्योंकि उनके उत्पत्तिके स्थानस्वरूप माताके उदरमें वीर्य, और रज(लोहू) अचित्त पदार्थ है उनका संबन्ध सचेतन माताके आत्माके साथ है ॥

(४) शीतयोनि-जीवका वह उत्पत्तिस्थान है जहां शीत स्पर्शरूप पुद्गलहों जैसे किसी किसी देव और नारिकियोंके शीतरूप पुद्गलकेस्कन्धही उत्पत्तिकास्थान है (किसी किसी देव नारकियोंके उष्णरूपही पुद्गलके स्कन्ध उत्पत्तिका स्थान है) देवनारकियोंकेवहुतोंकेउपपादस्थान उष्णहोते हैंवहुतोंकेशीतरहते हैंअतःवेशीतयोनिवालेभीहोते हैंऔरउष्ण योनिवालेभीहोते हैं

(५) उष्णयोनि-जीवकावहउत्पत्तिस्थानहैजहांउष्णस्पर्शरूपपुद्गलहोंजैसेअग्निकायिकवात्रतैजसकायिकोंकेउत्पत्तिस्थानउष्णरूप ही है

(६) शीतोष्णयोनि--जीवका वह उत्पत्तिस्थान है जहां शीतोष्णके मिश्ररूप पुद्गलहों अर्थात् देव और नारकी और अग्निकाय जीवोंसे भिन्न जो जीव हैं उनमें बहुतसे शीत योनिवाले होते हैं बहुतसे उष्णयोनिवाले होते हैंऔर बहुतसे शीतोष्णस्वरूप मिश्रयोनिवाले होते है इसप्रकार उनमें शीत,उष्ण,और शीतोष्णतीनों प्रकारकी योनियोंका होना संभव है ॥

(१) हमारे यहां की बहुधा पुस्तकोंमें 'सवृता' पाठ है कहीं कहीं पर (सवृत्ता) पाठ है जहां हमारे यहां (सवृत्ता) पाठ है उसके अनुकूल दोनों आम्नायोंका पाठ एक है अर्थ भी एक है सवृत=ढका हुआ छिपाहुआ, । सवृता और सवृत्ता दोनों पाठ ठीक हैं ॥

आत्मनश्चैतन्यविशेषपरिणामश्चित्तम्। सह चित्तेन वर्तत इति सचित्तः॥शीत इति स्पर्शविशेषः। शुक्लादिवदुभयवचनत्वात्तद्युक्तं द्रव्यमप्याह॥ सम्यग्वृतः संवृतः। संवृत इति दुरुपलक्ष्यःप्रदेश उच्यते॥ सह इतरैर्वर्तन्त इति सेतराः। सप्रतिपक्षा इत्यर्थः॥के पुनरितरे?। अचित्तोष्णविवृताः॥

(७) संवृतयोनि–जीवका वह उत्पत्ति स्थान है जिसके पुद्गल आच्छादित वा ढके हों जैसे देव, नारकी और एकेन्द्रियजीव संवृत योनि वाले है–जिस स्थान पर इनकी उत्पत्ति होती है वह स्थान ढका हुआ रहताहै उघड़ा हुआ नहीं रहता है।

(८) विवृत वा निवृतियोनि } जीवका वह उत्पत्तिस्थान है जिसके पुद्गलरूप स्कन्ध प्रगट दीखें—जैसे जो जीव दो इन्द्रिय तीन इन्द्रिय और चौ इन्द्रिय है वे विवृत योनि वाले हैं—उनकी उत्पत्ति का स्थान उघड़ाहुआ वा खुलाहुआ रहता है॥

(९) संवृतविवृतयोनि—जीवका वह उत्पत्ति स्थानहै जिसके पुद्गलके स्कंध कितने ही गूढ़ हो कितने ही उघड़े रूप हों जैसे जो जीव गर्भजहैंवे सवृतविवृतरूप मिश्रयोनि वालेहैं।उनकी उत्पत्तिका स्थान कुछ ढकाहुआ तो कुछ उघड़ा हुआ रहताहै॥

वृत्त्यनुवादः आत्मनः[६/१] चैतन्य-विशेष–परिणामः[१/१] चित्त[१/१]	=आत्माका चैतन्यका विशेषरूप परिणाम सो चित्तहै
सह*चित्तेन [३/१] वर्तते I इति*सचित्तः[१/१]	=चित्तकरि सहित(=सह)होता है ऐसा सचित्त है
शीतः[१/१]इति*स्पर्शविशेषः[१/१]शुक्लादिवत्*उभय–वचनत्वात्[५/१] तद्–युक्तम्[२/१] द्रव्यम्[२/१]	=शीत ऐसा स्पर्शका भेदहै। श्वेतादिक(वर्णकेभेद)सदृश दोनों(द्रव्यऔरगुण)का वाचक होनेसे उस(शीत)मिलित(=युक्त)द्रव्य (अर्थात् शीतलद्रव्य) को
अपि*आह I	=भी(शीत)कहते हैं अर्थात् शीतगुणवचन और द्रव्यवचन दोनों हैं इसलिये शीत शीतलद्रव्यको भी कहते है॥
सम्यग्वृतः[१/१]संवृतः[१/१]	=भले प्रकार घिराहुआ आच्छादित वा आवृत है सो संवृत है
दुर्–उपलक्ष्यः[१/१]प्रदेशः[१/१]इति*संवृतः[१/१]उच्यते I	=नहींदेख्याऔरनहींलख्यागयाहै जिसका(=दुरुपलक्ष्यः)प्रदेशऐसासंवृतकहाजाताहै
सह* इतरैः[३/३] वर्तन्ते Iइति* सेतराः [१/३]	=उलटा करि सहित प्रवर्तता है ऐसा सेतरा(शब्दका अर्थ) है
स–प्रतिपक्षाः[१/३] इति*अर्थः[१/१] के[१/३] पुनः*इतरे[१/३] ?	=विपक्षी वा विरोधवालीपक्षि का है ऐसा अभिप्राय है। और इतर कोन हैं
अचित्त–उष्ण–विवृताः [१/३]	(=उत्तर)अचित्त और उष्ण और विवृत(यथासंख्य सचित्त-शीत-संवृत से उलटे)हैं

उभयात्मको मिश्रः। सचित्ताचित्तः शीतोष्णःसंवृतविवृत इति ॥ चशब्दः समुच्चयार्थ । मिश्राश्च योनयो भवन्तीति॥ इतरथा हि पूर्वोक्तानामेव विशेषणं स्यात् ॥ एकश इति वीप्सार्थः॥ तस्य ग्रहणं क्रममिश्रप्रतिपत्त्यर्थम्॥यथैवं विज्ञायेत। सचित्तश्च अचित्तश्च शीतश्च उष्णश्च संवृतश्च विवृतश्चेति।मैवं विज्ञायि सचितश्च शीतश्चेत्यादि। तद्ग्रहणं जन्मप्रकारप्रतिनिर्देशार्थम्।तेषां सम्मूर्च्छनादीनां जन्मनां योनय इति त एते नव योनयो वेदितव्याः॥योनिजन्मनोरविशेष इति चेत्

	(सचित्त–शीत–संवृत को यथासंख्य अचित्त–उष्ण–विवृतसे मिलाओ तौ)
उभय-आत्मकः [1/1] मिश्रः [1/1] सचित्ताचित्तः [1/1] शीतोष्णः[1/1]	=दोनों रूप मिश्र हैं ॥ (वे) सचित्ताचित्त, शीतोष्ण, और
संवृतविवृतः[1/1] इति*चशब्दः [1/1] समुच्चय-अर्थः [1/1]	=संवृतविवृत इस प्रकार(मिश्र)हैं । चकार समुच्चय केलिये है
मिश्राः [1/3] च* योनयः [1/3] भवन्ति T इति*इतरथा * हि*	=(अर्थात्) मिश्र भी (=च) योनिये होती है क्योंकि (=हि)अन्यथा होतो अर्थात् (यदि च शब्द समुच्चय वा समाहारके लिये न हो तोऔर मिश्रयोनियेंनहोंतो)
पूर्व- उक्तानाम् [6/3] एव*विशेषणम् [1/1]॥ स्यात् T	=पहिले कहे हुये (सचित्त–शीत-संवृत) का ही (मिश्रशब्द) विशेषण हो जाय॥
एकशः*इति*वीप्सा –अर्थः [1/1]तस्य [6/1] ग्रहणम् [1/1]॥	=एकएक(=एकशः)ऐसा(शब्द)वारवारकेलियेहै। तिस(एकशःशब्द)काआदान
क्रम–मिश्र – प्रतिपत्ति-अर्थम्[1/1]॥यथा*एवम्*विज्ञायेत T	=क्रमसे(सचित्त-शीत-संवृतका यथासंख्य अचित्त-उष्ण-विवृतके साथ) मिश्रकी =प्राप्ति वा प्रवृत्तिके लिये है । जैसे इसप्रकार जानो कि
सचित्तः[1/1] च*अचित्त.[1/1] च*शीतः[1/1] च*उष्णः[1/1] च*	=सचित्त और अचित्त और (=च) शीत और (=च)उष्ण
संवृतः[1/1] च*विवृत [1/1] च*इति*मा*एवम्* विज्ञायि T	=और(=च)संवृत और(=च)विवृत ऐसे(इनकामिश्र)है। ऐसे मतिजानो कि
सचितः[1/1] च*शीतः[1/1] च*इत्यादि[1/1]॥तद्-ग्रहणम्[1/1]॥	=सचित्त और शीत इत्यादिका(मिश्र) है । (इससूत्रमें)तद्(शब्द) का आदान
जन्म-प्रकार-प्रति-निर्देश-अर्थम्[1/1]॥ तेषाम् [6/3]	=जन्मके भेदोंके जनावनेके लिये है । तिन
सम्मूर्च्छनादीनाम् [6/3] जन्मनाम् [6/3]॥ योनयः[1/3] इति*	=सम्मूर्च्छन आदिक जन्मकी(येनव)योनियें वा उत्पत्तिस्थान हैं
ते [1/3] एते[1/3] नव [1/3] योनयः[1/3] वेदितव्याः[1/3]	=ते इतनी नव योनियें जानना चाहिये
योनि-जन्मनोः[6/2]॥ अविशेषः[1/1]इति*चेत्*	=योनि और जन्ममें भेदनही(=अविशेष) ऐसी शंकाहोनेपर (उत्तरमें कहते है कि)

न आधाराधेयभेदात्तद्भेदः ॥ त एते सचित्तादयो योनयः आधारा । आधेया जन्मप्रकाराः ॥ यतः सचित्तादियोन्यधिष्ठाने आत्मा सम्मूर्च्छनादिना जन्मना शरीराहारेन्द्रियादियोग्यान्पुद्गलानुपादत्ते ॥ देवनारका अचित्तयोनयः । तेषां हि योनिरुपपाददेशपुद्गलप्रचयोऽचित्तः ॥ गर्भजा मिश्रयोनयः । तेषां हि मातुरुदरे । शुक्रशोणितमचित्तं,तदात्मना चितवता मिश्रणान्मिश्रयोनिः॥सम्मूर्च्छनजास्त्रिविकल्पयोनयः । केचित्सचित्तयोनयः ।अन्ये अचित्तयोनयः।अपरे मिश्रयोनयः ॥ सचित्तयोनयःसाधारणशरीराः । कुतः । परस्पराश्रयत्वात् ॥इतरे अचित्तयोनयो-

न*आधार-आधेय-भेदात्‌ =नहीं, (योनि और जन्ममें भेदहै)। आधार और आधेय के भेद से
तद्-भेदः ते एते सचित्त-आदयः योनयः =उन(योनि और जन्म)में भेद है । वे इतनी(=एते)सचित्त आदिक (योनियें)
अधाराः । आधेयाः जन्म-प्रकाराः यतः सचित्त- =आधार वा आश्रय हैं । जन्मके भेद हैं वे आधेय वा आश्रितहैं। क्योंकि सचित्त
आदि-योनि-अधिष्ठाने आत्मा सम्मूर्च्छनआदिना =आदिक योनियोंके आधारविषैं चैतन्य (आत्मा) सम्मूर्च्छन आदिक
जन्मना शरीर-आहार-इन्द्रिय-आदि योग्यान् =जन्मकरि शरीर आहार इन्द्रिय आदिक योग्य
पुद्गलान् उपादत्ते देव-नारकाः अचित्त-योनयः =पुद्गलोंको ग्रहण करता है । देव और नारकी अचित्त योनिवाले हैं
तेषाम् हि*योनि-उपपाददेश-पुद्गल-प्रचयः =क्योंकि तिन(देव-नारकियों)कीयोनि उपजनेकास्थान(=उपपाददेश)पुद्गलकास्कंध
अचित्तः गर्भजाः मिश्रयोनयः तेषाम् हि*मातुः =अचित्तहै।गर्भसेउत्पन्नहुयेजीवमिश्र(अचित्ताचित्त)योनिवालेहैंक्योंकितिनकीमाताके
उदरे शुक्र-शोणितम् अचित्तम् तद्-चितवता =उदरमें वीर्य और लोहू(रज)अचित्त है । उस(माता)का चितवान्
आत्मना मिश्रणात् मिश्रयोनिः सम्मूर्च्छनजाः =आत्मासे(शुक्र-शोणितअचित्तके) मिलापसे मिश्रयोनिहै । सम्मूर्च्छनजन्मवाले
त्रि-विकल्पयोनयः केचित्*सचित्त-योनयः अन्ये =तीन प्रकारके योनिवाले हैं । कितने सचित्त योनिवाले हैं । दूसरे
अचित्त-योनयः अपरे मिश्र-योनयः =अचित्तयोनिज है।(इनतें)भिन्न मिश्रयोनिवाले अर्थात् सचित्ताचित्त योनिवाले हैं
सचित्त-योनयः साधारणशरीराः =सचित्तयोनिज साधारणशरीरवाले हैंअर्थात् जिनकेंएकहीशरीरमेंवहुतजीवहोतेहैं
कुतः*परस्पर- =क्योंकर(साधारणशरीरवाले सचित्तयोनिज हैं)क्योंकि आपसमें(एकजीवदूसरेके)
आश्रयत्वात् इतरे अचित्त- =आश्रयसे वा आधारसे है।(साधारण शरीरसे) भिन्न(सम्मूर्च्छनजीव)अचित्त
योनयः =योनिवाले हैं अर्थात् उनके उपजनेका स्थान अचेतनं पुद्गलके स्कन्धही हैं ॥

मिश्रयोनयश्च ॥ शीतोष्णयोनयो देवनारकाः तेषां हि उपपादस्थानानि कानिचिच्छीतानि, कानिचिदुष्णानीति ॥ उष्णयोनयस्तेजस्कायिकाः ॥ इतरे त्रिविकल्पयोनयः केचिच्छीतयोनयः केचिदुष्णयोनयः अपरे मिश्रयोनय इति ॥ देवनारकैकेन्द्रियाः संवृतयोनयः॥ विकलेन्द्रिया विवृतयोनयः ॥ गर्भजा मिश्रयोनयः ॥ तद्भेदाश्चतुरशीतिशतसहस्रसंख्या आगमतो वेदितव्या ॥ उक्तं च ।

णिचिदरधादु सत्तय तरुदस वियलिंदिएसु छच्चेव। सुरणिरयतिरिय चउरो चोद्दस मणुए सदसहस्सा।

मिश्रयोनयः च*शीत–उष्ण–योनयः देवनारकाः =और(=च) सचित्ताचित्त योनिज हैं। देव और नारकी शीतोष्ण योनिज है
तेषाम् हि*उपपादस्थानानि कानिचित्* =क्योंकि(=हि) तिन (देव–नारकिन) के उपजनेके ठिकाने कितन
शीतानि कानिचित्*उष्णानि इतितैजः कायिकाः =शीत हैं कितने उष्ण हैं। तैजसकायके जीव
उष्ण-योनयः इतरे त्रिविकल्प-योनयः केचित्* =उष्णयोनिवाले है। भिन्न प्राणी तीन प्रकारके योनिवाले हैं। केई
शीतयोनयः केचित्*उष्णयोनयः अपरे =शीत योनिज हैं। केई उष्ण योनिज है। अन्य
मिश्रयोनयः इति*देव–नारकएकेन्द्रियाः =मिश्र(शीतोष्ण) योनिवाले है। देव और नारकी और एकेन्द्रिय जीव
संवृतयोनयः विकल–इन्द्रियाः =संवृतयोनिवाले हैं। विकलइन्द्रिय जीव अर्थात् द्विइन्द्रियसे चौइन्द्रियतक
विवृतयोनयः गर्भजाः मिश्रयोनयः =विवृत वा निवृत योनिज है। गर्भज मिश्रयोनिज हैं अर्थात् गर्भसे उत्पन्न हुये जीवोंकी संवृत विवृत योनि है भावार्थ योनिके केते प्रदेशगूढ़ है केतेप्रदेश उघड़े है
तद्भेदाः चतुरशीतिशतसहस्रसंख्या =तिन(नवयोनियों)के भेद चौरासीसो सहस्र गणना अर्थात् चौरासीलाख गिनती
आगमतः*वेदितव्या उक्तम् च* =शास्त्रसे जानना चाहिये। कहाभी है
णिचिदरधादु(=नित्य–इतर–धातु) =नित्यनिगोद, इतरनिगोद, धातु(पृथिवीकायिक, अप्कायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक)की
सत्त य*तरुदस च(=सप्त च तरुदश च) =सात सात और (=य=च) वनस्पतिकायिककी, दश और (=च)
वियलिंदिएसु छच्चे एव(विकलेन्द्रियेषु षट् एव)=विकलेन्द्रिय जीवविषैं छह ही अर्थात् द्वीन्द्रियमें दो, त्रीन्द्रियमें दो, चतुरिन्द्रियमें दो
सुर-णिरिय-तिरिय-चउरो(सुर-निरय-तिर्यक्-चतस्रः)=सुर–नारक और तिर्यंचोंकी चार चार(और)
चोद्दसमणुए सदसहस्सा(चतुर्दश मनुष्ये शतसहस्राणि)=चोदहलाख मनुष्यविषैं है(अर्थात्४२+१०+६+१२+१४ सब चौरासीलाख हैं)

एवमेतस्मिन्नवयोनिभेदसङ्कटे त्रिविधजन्मनि सर्वप्राणभृतामनियमेन प्रसक्ते तदवधारणार्थमाह—

॥ जरायुजाण्डजपोताना गर्भः ॥३३॥

भावार्थः—नित्यनिगोद,इतरनिगोद, पृथिवीकायिक,जलकायिक, अग्निकायिक, और वायुकायिक, इन छहकी सात सात लाख योनियें[1]ऐसे४२लाखहुई;वनस्पतिकायिकी दशलाख योनियें,दोइन्द्रियवाले जीवोंकी दोलाख, तीनइन्द्रियवाले जीवोंकी दोलाख,चारइन्द्रियवाले जीवोंकी दोलाख ऐसे इनविकलेन्द्रियोंकी छहलाख योनियें हुई। देवोंकी चारलाख नारकियोंकी चारलाख पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंकी चारलाख ऐसे ये बारहलाखयोनियें हुई मनुष्योंकी चोदहलाख योनियें मिलकर ऐसर्व (४२+१०+६+१२+१४) चौरासीलाख हुई

एवम्-एतस्मिन्[2] नवयोनि-भेदसङ्कटे[3] =ऐसें तिस नवभेदरूपयोनि संकट विषैं

त्रिविधजन्मनि[4]॥सर्वप्राणभृताम्[5] अनियमेन[6]=तीन प्रकार जन्म समस्त संसारी जीवोंके नियमकरिरहित

प्रसक्ते[7]॥तद्—अवधारण-अर्थम्[8]॥ आह[9] =प्राप्तहोनेपर उस(नियम)के निश्चय करणके लिये अर्थात् निश्चये करनेके लिये कहते हैं कि

[2]सूत्रम्-जरायुजाण्डजपोतानां गर्भः=जरायुजाण्डजपोतानां गर्भः (जन्म) ॥ ३३ ॥

सूत्रार्थः-जरायुज—अण्डज =जरायुमें उत्पन्नहोनेवाले(जीव)निका,और अंडेमें उपजनेवाले (जीव) निका, और

पोतानाम्[3] गर्भः[1] जन्मः[2]॥ =पोत(जीव) निकागर्भजन्महै अर्थात् जोजीव जालके समान मांस और रुधिर से व्याप्त एक प्रकारकी थैलियोंसे लिपटेहुए पैदा होते हैं उनको जरायुज कहते हैं जैसे मनुष्य

(क) माताकेरुधिर पिताकेवीर्यसे नखकी त्वचाकेसमान कठिनसेगोल २ आवरणको अंडा कहते हैं और जो अंडेसे जो उत्पन्नहोंउन्हें अंडजकहते हैं जैसे कुक्कट (ख)जिसकेऊपरजरा वा अंडा कुछभी आवरण नहीं होता, माताके उदरसे निकलतेही चलने फिरने लगताहै वह पोतज है जैसे हाथी, बिल्ली,सिंह,बंदर इत्यादि

(१) आकार योनि और गुण योनिके भेदसे योनि दो प्रकारकी है यहापर ये भेद गुण योनिकी अपेक्षासे कहे हैं आकार योनिके तीन भेद हैं शखावर्त कूर्मोन्नत और वशपत्र। शखावर्त योनिमें गर्भ नही ठहरता। कूर्मोन्नत योनिमें तीर्थकर,चक्रवर्ती, बलभद्र और उनके भाईयोके अतिरिक्त कोई उत्पन्न नही होता और वशपत्र योनिमे शेषगर्भ जन्मवाले सर्व जीव उत्पन्न होते हैं।

(२)हमारे यहां कही कही पर जरायुजाण्डज और कहीं कहीं पर जरायुजांडज पाठ है दोनों पाठ ठीकहै॥ देखो अध्याय१ पृष्ठ ५४०,५४१की टिप्पणी ॥ इस सूत्रमें 'जन्म'शब्दकी अनुवृत्ति सूत्र ३१ वांसे आती है ॥ श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य०का पाठ"जराय्वण्ड पोतजानां गर्भः"ऐसा है।हमारे यहांके पाठमे जकार जरायु और अड के साथ है सभाष्य तत्त्वार्थाधिगमसूत्र के पाठमें 'पोत' के साथ है जो तीनों जरायु–अड–पोत पर लागू है अर्थात् जरायुजस्यगर्भः जन्म, अ डजस्य गर्भः जन्म, पोतजस्य गर्भः जन्म, ऐसे रूप होजाते है जिससे प्रगट है कि दोनों आम्नायोंमें अर्थ एकसा है॥

यज्जालवत्प्राणिपरिवरणं विततमांसशोणितं तज्जरायुः । यन्नखत्वक्सदृशमुपात्तकाठिन्यं शुक्रशोणितपरिवरणं परिमण्डलं तदण्डम् । किञ्चित्परिवरणमन्तरेण परिपूर्णावयवो योनिनिर्गतमात्र एव परिस्पन्दादि सामर्थ्योपपेतः पोतः ॥ जरायौ जाता जरायुजाः । अण्डे जाता अण्डजाः । जारायुजाश्च अण्डजाश्च पोताश्च जरायुजाण्डजपोताः गर्भयोनयः ॥ यद्यमीषां जरायुजाण्डजपोतानां गर्भोऽवध्रियते, अथोपपादः केषां भवतीत्यत आह—

वृत्त्यनुवादः—यद् १।१ जालवत् * प्राणि-परिवरणं १।१	=जो जालके सदृश जीवका आच्छादन (=परिवरण)
वितत-मांस-शोणितम् १।१ तद्- जरायुः १।१ यद् १।१ नख-	=जो मांस और रुधिर(=शोणित)करि व्याप्तहो सो जरायु है । जो नौं (=नख) के
त्वक्-सदृशम् १।१ उपात्त-काठिन्यम् १।१	=त्वचा वा छिलकेकेसमान कठोरता वा कड़ापन गृहीत (=उपात्त) हो
शुक्र-शोणित-परिवरणम् १।१ परिमण्डलम् १।१	=जिस (त्वचा)में वीर्य लोहू वेष्टित हो गोलाकारसा हो
तद् १।१ अण्डम् १।१	=सो अंड है अर्थात् जो नखकी छालके समान कठिनहो, वीर्य और रजसे आच्छादितहो और गोलाकारहो उसको अंडकहते हैं
किञ्चित्-परिवरणम् १।१ अन्तरेण * परिपूर्ण-अवयवः १।१	=कोई वस्तु (=किञ्चित्) आवरण विना (=अन्तरेण) संपूर्ण अवयव सहित
योनि-निर्गतमात्रः १।१ एव * परिस्पन्द-आदि-सामर्थ्य-	=योनिसे निकलने परही हलन चलन आदि सामर्थ्य
उपपेतः १।१ पोतः १।१	=सहितहो सो पोत है अर्थात् जिसके ऊपर जरा वा अंड कुछभी आवरण नही होता है माताके उदरसे निकलतेही चलने फिरने लगताहै उसे पोत कहते है
जरायौ ७।१ जाताः १।३ जरायुजाः १।३ अण्डे ७।१ जाताः अण्डजाः १।३	=जरायुमें उत्पन्नहुये जरायुज हैं । अंडेविषैं उपजैं सो अंडज है
जरायुजाः १।३ च * अण्डजाः १।३ च * पोताः १।३ च *	=और जरायुसे उपजनेवाले और अंडेसे उत्पन्न होनेवाले और पोत
जरायुज-अण्डज-पोताः १।३ गर्भ-योनयः १।३	=(यथासंख्य) जरायुज-अंडज-पोत है (और ये सव) गर्भयोनिवाले हैं
यदि * अमीषाम् ६।३ जरायुज-अंडज-पोतानाम् ६।३	=जो इन (=अमीषाम्) जरायुज-अंडज-पोतोंका (उपजनेका स्थान)
गर्भः १।१ अवध्रियते । अथ * उपपादः १।१ केषाम् ६।३	=गर्भ निश्चयकियागया है तो अब उपपाद (जन्म) किन(जीवों) के
भवति । इति * अतः * आह ।	=होताहै इसलिये (आचार्य अगले सूत्रमें) कहते है कि

॥ देवनारकाणामुपपादः ॥ ३४ ॥

देवानां नारकाणां च उपपादो जन्म वेदितव्यम् ॥ अथान्येषां किं जन्मेत्यत आह--

॥ शेषाणां सम्मूर्च्छनम् ॥ ३५ ॥

गर्भजेभ्यःऔपपादिकेभ्यश्चान्ये शेषाः। तेषां सम्मूर्छनंजन्मेति॥एते त्रयोऽपि योगा नियमार्थाः।

सूत्रम्— [१]**देवनारकाणामुपपादः**	**=देवनारकाणामुपपादः (जन्म भवति) ॥३४॥**
सूत्रार्थः—देव–नारकाणाम्[६/३]	=(भवनवासी आदि चारों प्रकारके)देव और नारकियोंके
उपपादः[१/१] जन्मः[१/१] भवति T	=उपपाद जन्म होता है। (जन्म शब्दकी अनुवृत्ति इकतीसवां सूत्रसे इसमें आती है)
वृत्त्यनुवादः-देवानाम्[६/३] नारकाणाम्[६/३] च	=देव और (=च) नारकियोंके
उपपादः[१/१] जन्म[१/१] वेदितव्यम्[१/१] अथ* अन्येषाम्[६/३]	=उपपाद जन्म जानना चाहिये। अब दूसरे(जीव)निके अर्थात् जरायुज अंडज और पोतोंको और देवनारिकियोंको छोड़कर अवशेष जीवोंका
किम्* जन्म[१/१] इति* अतः* आह T	=कौन जन्म है इस लिये(अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि
सूत्रम्— [२]**शेषाणां सम्मूर्च्छनम्**	**=शेषाणां सम्मूर्च्छनम् (जन्म भवति) ॥ ३५ ॥**
सूत्रार्थः—शेषाणाम्[६/३]	अवशेष(जीव)निकें अर्थात् गर्भज और उपपाद जन्मोंके अतिरिक्त
सम्मूर्च्छनम्[१/१] जन्म[१/१] भवति T	=सम्मूर्च्छन जन्म होताहै।(जन्म शब्दकी अनुवृत्ति इकतीसवां सूत्रसे इससूत्रमें आतीहै)
वृत्त्यर्थःगर्भजेभ्यः[५/३] औपपादिकेभ्यः[५/३] च अन्ये[१/३] शेषाः[१/३]	=गर्भजजीवोंसे उपपाद जन्मवाले(देव नारकियों) से भिन्न शेष (जीव रहते) हैं
तेषाम्[६/३] सम्मूर्च्छनम्[१/१] जन्म[१/१] इति*	=तिन (गर्भज और औपपादिकों से अतिरिक्तजीवोंकें) सम्मूर्च्छन जन्म होता है
एते[१/३] त्रयः[१/३] अपि* योगाः[१/३] नियमार्थाः[१/३]	=ये तीनो ही युक्तियें अर्थात् तेतीसवां,चौतीसवां,पैंतीसवां सूत्र) नियमके लिये हैं

(१) हमारे यहां इस सूत्र का शुद्ध पाठ सर्वत्र एक है।"नारकदेवानामुपपात."ऐसा पाठ सभाष्य० का है दोनों आम्नायो में अर्थ एक सा है॥

(२) दोनों आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसाहै। तत्त्वार्थसूत्रकी प्रतियोंमें सम्मूर्च्छन, समूर्च्छन, सम्मूर्छन, समूर्छन, ये चार पाठ प्राप्त हैं चारो ठीक हैं (अध्याय १ पृष्ठ ५४०, ५४१,७०,) सूत्रके अतमे जहां"समूर्च्छन"हैवह पाणिनि और शाकटायनकेमतमे अशुद्ध है॥सम्मूर्च्छनम् चाहिये॥

उभयतो नियमश्चद्रष्टव्यः॥जरायुजाण्डजपोतानामेव गर्भः । गर्भ एव च जरायुजाण्डजपोतानाम्॥ देवनारकाणामेवोपपादः । उपपाद एव देवनारकाणाम् ॥ शेषाणामेव सम्मूर्च्छनम् । सम्मूर्च्छनमेव शेषाणामिति ॥ तेषां पुनः संसारिणां त्रिविधजन्मनामाहितबहुविकल्पनवयोनिभेदानां शुभाशुभनामकर्मविपाकनिर्वर्तितानि बन्धफलानुभवनाधिष्ठानानि शरीराणिकानीत्यत आह—

च * उभयतः * नियमः १।१ द्रष्टव्यः १।१	=और (=च) (इन गर्भज, औपपादिक और सम्मूर्च्छनोंके) दोनों ओर नियम जानो
जरायुज–अण्डज–पोतानाम् ६।३ एव* गर्भः १।१	=(सो उपर्युक्त नियम दोनों लग ऐसे है कि) जरायुज, अंडज, पोतनिकें ही गर्भ है
च* गर्भः१।१ एव* जरायुज–अण्डज–पोतानाम्६।३	=और (च) गर्भ ही है (जन्म) जरायुज, अंडज, पोतनिके भावार्थ दोनों वाक्योंका यहहै कि जरायुज, अडज और पोतनिकें ही गर्भ जन्म है दूसरे प्रकारके जीवोंकें गर्भ जन्म नहीं है वा गर्भ जन्म ही न कि और कोई जन्म है जिनकें ऐसे जरायुज-अंडज पोतज हैं।
देव–नारकाणाम् ६।३ एव* उपपादः १।१	=देव और नारकियोंके ही उपपाद (जन्म) है (नकि किसी और जीवोंकें)
उपपादः १।१ एव* देवनारकाणाम् ६।३	=उपपाद ही है (जन्म न कि कोई और जन्म) जिनके ऐसे देव नारकी हैं
शेषाणाम् ६।३ एव* सम्मूर्च्छनम् १।१	=बचे हुये (जीव) निकें ही सम्मूर्च्छन (जन्म) है (न कि किसी और जीवोंकें)
सम्मूर्च्छनम् १।१ एव* शेषाणाम् ६।३ इति*	=सम्मूर्च्छन जन्म (नकि कोई अन्य जन्म) है बचे हुये जीवोंकें ॥
पुनः त्रिविध-जन्मनाम्६।३ तेषाम्६।३ आहित-बहु-विकल्प-नवयोनिभेदानाम्६।३ संसारिणाम्६।३ शुभ-अशुभ-नामकर्म-विपाक-निर्वर्तितानि१।३ बन्ध-फल-अनुभव अधिष्ठानानि१।३ शरीराणि१।३ कानि१।३ इतिअतः*आह	=और तीन प्रकारके हैं जन्म जिनकें और ग्रहण किये हैं (=आहित) बहुत विकल्प रूप =नव योनिके भेद जिनने ऐसे संसारी जे हैं तिनकें शुभ, अशुभ =नाम कर्म करिरचे और बंधको जो फल है तिसके अनुभव करने के =स्थान वा आधार शरीर (ते) कितने हैं। इस लिये कहते हैं कि अर्थात् गर्भ आदि तीन प्रकारके जन्म और अनेक भेदोंसे युक्त नौ प्रकारकी योनियोंके धारक संसारीजीवोंकेशुभ-अशुभ नाम कर्मों से रचित और कर्म बन्धके फलके अनुभव के स्थान शरीर कितने है सूत्रकार उन्हें गिनाते है कि

॥ औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्मणानिशरीराणि ॥३६॥

औदारिकादिप्रकृतिविशेषोदयप्राप्तविशिष्टनामकर्मोदयापादितवृत्तीनि शीर्यन्त इति शरीराणि ॥ औदारिकादिप्रकृतिविशेषोदयप्राप्तवृत्तीनि औदारिकादीनि ॥ उदारं स्थूलम् । उदारे भवमौदारम् । औदारं प्रयोजनमस्येति औदारिकम् ॥ अष्टगुणैश्वर्ययोगादेकानेकाणु- [योग्यताहो;

सूत्रम्— [(१)] औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्मणानिशरीराणि ॥ ३६ ॥

सूत्रार्थः-औदारिक- वैक्रियिक- =इन्द्रियोंसेदेखनेयोग्यस्थूलशरीर, जिसमेएकअनेकस्थूलसूक्ष्महलकाभारीइत्यादिविकारहोनेकी-

आहारक- =जोसूक्ष्मपदार्थकेनिर्णयकेलिये वा ऋद्धिविशेषका सद्भाव जाननेकेलिये वा असंयमके [वा उन कर्मोंका समूहहो

दूरकरनेके लिये प्रमत्त ही गुणस्थानवर्ती मुनियोंके प्रगटहो

तैजस–कार्मणानि[१]॥। =जो तेजका कारणहो वा जिसमें तेज रहता हो,ज्ञानावरणादि आठकर्मोंका जो कार्य हो

शरीराणि [१]॥। =(संसारी जीवोंके ये औदारिक, वैक्रियिक, आहारक,तैजस,कार्मणि,क्रमसे पांच)शरीर हैं॥

वृत्त्यर्थः-विशिष्ट-नामकर्म-उदय-आपादित-वृत्तीनि[१]॥।=शरीर नामा नामकर्मके (=विशिष्टनामकर्म) उदयसेजो प्राप्त हुये (=वृत्तीनि)

शीर्यन्ते । इति*शरीराणि[१]॥औदारिक- =सो गलते हैं-सड़ते हैं वा झड़ते हैं (शीर्यन्ते) ऐसे शरीर हैं जो औदारिक

आदि–प्रकृति– =वैक्रियिक, आहारक, तैजस, कार्मण, (शरीरनामा नामकर्मकी) प्रकृतियोंके

विशेष–उदय–प्राप्त–वृत्तीनि[१]॥। =विशेषरूप उदयकरि(=उदय प्राप्त)प्रवर्तते हैं (=वृत्तीनि) ते(क्रमानुसार)

औदारिक-आदीनि[१]॥उदारम् [१]॥स्थूलम्[१]॥। =औदारिक,वैक्रियिक,आहारक,तैजस,कार्मण हैं (=आदीनि)। उदार है सो स्थूल है

उदारे[१]॥भवम्[१]॥औदारम्[१]॥ औदारम्[१]॥ =स्थूलविषैं हो सो औदार है। स्थूलहोना व स्थूलपना है

प्रयोजनम्[१]॥अस्य[१]॥ इति*औदारिकम् [१]॥ =प्रयोजनजिसका ऐसा औदारिक है

अष्टगुण-ऐश्वर्य-योगात्[१] एक–अनेक–अणु- =[(१)]आठगुण वा विभूतियोंके ईश्वरपनेके संयोगसे वा सम्बन्धसे एक अनेक छोटा

(१) हमारेयहां जहां शुद्ध लेख है वहा सर्वत्र इस सूत्रका एक ही पाठ है। सभाष्य० मे"वैक्रियिक"शब्दके स्थान मे"वैक्रिय"शब्द है। दोनो आम्नायोंमे शेष पाठ और अर्थ एक है।(२)आठ प्रकारकी सिद्धियां और विभूतियोंके नाम अमरकोश स्वर्गवर्ग श्लोक४०मे ऐसे है कि"अणिमा महिमा चैव गरिमा लघिमा तथा। प्राप्तिःप्राकाम्यमीशित्वं। वशीत्वं चाष्टसिद्धयः (य) अणिमन् (पु०) छोटापन अर्थात् जिससे जीव छोटासा रूपधर सब स्थानोंमे

महच्छरीरविविधकरणं विक्रिया, सा प्रयोजनमस्येति वैक्रियिकम् ॥ सूक्ष्मपदार्थनिर्ज्ञानार्थमसँयमपरिजिहीर्षया वा प्रमत्तसँयतेनाह्रियते निर्वर्त्यतेतदित्याहारकम् ॥ यत्तेजोनिमित्तं तेजसि वा भवं तत्तैजसम् ॥ कर्मणां कार्यं कार्मणम् ॥ सर्वेषां कर्मनिमित्तत्वेऽपि

महत्–शरीर–विविधकरणम्१।१ विक्रिया१।१	=बड़ा शरीर अनेक प्रकार(=विविध) करना सो विक्रया है
सा१।१प्रयोजनम्१।१ अस्य६।१ इति*वैक्रियिकम् १।१	=विक्रिया (=सा) है प्रयोजन जिसका ऐसा वैक्रियिक है
सूक्ष्म–पदार्थ–निर्ज्ञान–अर्थम्१।१ वा असंयम–	=सूक्ष्म पदार्थोंके निर्णयके लिये अथवा असंयमके
परिजिहीर्षया ३।१ प्रमत्तसंयतेन ३।१	=दूरकरनेकी इच्छासे प्रमत्तविरत छठवां गुणस्थानवर्ती मुनिकरि
आह्रियते T निर्वर्त्यते T	=रचाजाता वा प्रगट किया जाता है परिपूर्ण किया जाता है वा सिद्धि किया जाताहै
तद्१।१ इति * आहारकम् १।१	=सो ऐसा आहारक(शरीर)है।सारांशयहहैकि छठवें गुणस्थानवर्ती ही मुनिकेतत्त्वोंमेंकोई शंका होनेपर केवली वा श्रुतकेवलीके निकट जानेके लियेमुनिके मस्तकमेंसे जो एक हाथका पुतला निकलता है उसको आहारक शरीर कहते हैं ॥
यद्१।१तेजस्–निमित्तम्१।१वातेजसि७।१भवम्१।१	=जो तेजका कारण अर्थात् देहको दीप्ति रूप करनेको निमित्तअथवा तेजकेविषैंभया
तद्१।१तैजसम्१।१कर्मणाम् ६।३कार्यम्१।१कार्मणम्१।१	=सो तैजस है । कर्मोका कार्य सो कार्मण है
सर्वेषाम् ६।३कर्मनिमित्तत्वे ७।१अपि*	=सर्व (शरीरों) का कर्म कारण होनेपर भी अर्थात् कर्मके कारण सर्व शरीर हैं तौभी

जासकै वा गमन करसकै (र) महिमन् (पुल्लिंग) महत्व, बडापन, जिससे जीव बड़ी मूर्तिवन स्थानोंमे जासकै (ल) गरिमन् (पुल्लिंग) भारीपन (व)लघिमन=लघुत्व,हलकापन(श) प्राप्ति. (स्त्री०)=जिससे मन मांगी वस्तु मिलती है (व) प्राकाम्य (न०) प्राकाम, इच्छानभिघात रूप ऐश्वर्य, ॥ (स) ईशित्वं (न०) ईशिता, अणु मादि आठ ऐश्वर्यों मेसे सबपर मालिक पना (ह) वशित्व (न०) = वशिता, स्वाधीनता अर्थात् जितेन्द्रिय स्वातन्त्र्य,जिसनें इन्द्रियजीतली है दूसरा श्लोक पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ ९ में यह है"अणिमा लघिमा प्राप्तिः । प्राकाम्य महिमा तथा । ईशित्वच वशित्वच तथा कामा वसायिता ॥ दोनों श्लोकोंके मिलानेसे प्रगट होता है कि इस श्लोकमे गरिमन् के स्थानमें "कामवाशा (सा) यता"है ॥ कामावशा-यिता = (स्त्री०) अणमादि आठ प्रकारके ऐश्वर्यमें सत्य सत्पता (जो इच्छा करै सो पूरी हो जाय) रूप ऐश्वर्य ॥ पद्मचन्द्र कोश पृष्ठ १०५ ॥ (१) धातुमें य जोडकर आत्मनेपद प्रत्यय" लगाने से कर्मणि प्रयोग और भावे प्रयोग बनाये जाते हैं" यदि धातुके अतका अक्षर ऐसा ऋ हो जिसके पहिले सयोग व्यजन नहीं हो तो ऋके स्थानमें "रि होताहै जैसे=हृ=हि अत आ+हि+य+ते=आह्रियते॥निर्+वर्त्+य+ते=निर्वर्त्यते॥

रूढिवशाद्विशिष्टविषये वृत्तिरवसेया ॥ यथौदारिकस्येन्द्रियैरुपलब्धिस्तथेतरेषां कस्मान्न भवतीत्यत आह—

॥ परम्परं सूक्ष्मम्॥३७॥

परशब्दस्यानेकार्थवृत्तित्वेऽपि विवक्षातो व्यवस्थार्थगतिः ॥

रूढिवशात्[५/१] विशिष्ट-विषये[७/१] =रूढिके वशसे विशेषपनामें((१)कार्मणशरीर ही को कर्मका कार्यरूप)
वृत्तिः[१/१] अवसेया[१/१] यथा*औदारिकस्य[६/१] इन्द्रियैः[३/३] =निरुक्ति बतलाई गई है। जैसे औदारिक (शरीर) का इन्द्रियोंकरि
उपलब्धिः[१/१] तथा*इतरेषाम्[६/३] =ग्रहण है (=उपलब्धिः) तैसेअन्य(वैक्रियिक-आहारक-तैजस-कार्मण शरीर) निका
कस्मात्[५/१] न*भवति T इति*अतः*आह T =क्योंकर वा किसलिये(इन्द्रियोंद्वारा ग्रहण)नहीं होता है। इसलिये कहते हैं कि

सूत्रम्-परम्परंसूक्ष्मम्(२) =(तेषाम् औदारिकादिशरीराणाम् परंपरंसूक्ष्मम्(भवन्ति)।३७

सूत्रार्थः—(३)तेषाम्[६/३] परम्[१/१] परम्[१/१] =उन(औदारिक,वैक्रियिक,आहारक,तैजस,कार्मण)मेंसे अगले अगले
सूक्ष्मम्[१/१] भवन्ति T =(पूर्वपूर्वकी अपेक्षासे)सूक्ष्म वा अस्थूलहैं अर्थात् औदारिककीअपेक्षासेवैक्रियिकसूक्ष्महै, वैक्रियिककीअपेक्षासेआहारकसूक्ष्महै,आहारकसेतैजससूक्ष्महै, तैजससेकार्मणसूक्ष्महै,॥

वृत्त्यनुवादः-परशब्दस्य[६/१] अनेक-अर्थ-वृत्तित्वे[७/१] अपि=परशब्दके बहुतसे अर्थ होनेपर (=वृत्तित्वे) भी
विवक्षातः*व्यवस्था(४)—अर्थ-गतिः[१/१] =विवक्षासे(यहां पर) व्यवस्था (अर्थात् विशेष अवस्था)के अर्थमें प्राप्तिहै वा प्रवर्ते है ॥

(१)अन्य शरीरको कार्मण निमित्त है तौ कार्मणको क्या निमित्त है?कार्मणको कार्मणही निमित्तहै वा जीवके परिणाम मिथ्यादर्शनादिकनिमित्तहैं॥
(२)श्वेताम्वर सम्प्रदायके सभाष्य०मे तेषाम्'शब्द हमारे यहांके पाठसे अधिकहै॥ शेषपाठ एकहै और अर्थभी एकहै॥हमारे यहां बहुतसी पुस्तकोंमे पर पर सूक्ष्मम् ऐसा पाठ है कही कहीं पर' पर पर सूक्ष्म' पाठ है ॥ कातन्त्ररूपमालाव्याकरणके अनूकूल यह पाठ भी शुद्ध है परतु पाणिनिमुनि तथा शाकटायनमुनि इत्यादिके मतमेंअशुद्धहै॥(देखोटिप्पणीअध्याय१ पृष्ठ६)(३)यहांषष्ठीविभक्ति सप्तमीकेअर्थमेआईहै(देखोटिप्पणीअध्याय१ पृष्ठ१३८)
(४)पूर्वापेक्षया परत्वमिति परशब्दो व्यवस्थार्थः ॥
पूर्व-अपेक्षया[३/१]॥ परत्वम्[१/१]॥ =पहिले (शरीर) की विवक्षाकरि अगले (शरीर) का (सूक्ष्म) होना (=परत्वम्)
इति*परशब्दः[१/१]व्यवस्था-अर्थः[१/१]। =ऐसे(सूत्रमें) पर शब्द विशेष अवस्थाके अर्थ है (व्यवस्थाके अर्थमें आया है)

पृथग्भूतानां शरीराणां सूक्ष्मगुणेन वीप्सानिर्देशःक्रियते परम्परमिति ॥ औदारिकं स्थूलं, ततः सूक्ष्मं वैक्रियिकं, ततःसूक्ष्ममाहारकं, ततः सूक्ष्मं तैजसं, तैजसात्कार्मणं सूक्ष्ममिति ॥ यदि परम्परं सूक्ष्मं, प्रदेशतोऽपि नूनं परम्परं हीनमितिविपरीतप्रतिपत्तिनिवृत्त्यर्थमाह—

॥ प्रदेशतोऽसंख्येयगुणं प्राक्तैजसात् ॥ ३८ ॥

पृथक्* भूतानाम् ६॥ = { संज्ञा(नाम)लक्षण(स्वरूप) प्रयोजन आदिके भेदसे } प्रथग् भूत

शरीराणाम् ६॥ सूक्ष्मगुणेन३। वीप्सानिर्देशः१। =(औदारिक आदिक) शरीरजे है तिनको सूक्ष्मगुणकरि वीप्सारूपनिर्देश

क्रियते । परम्परम्१॥ =कियागया है कि परै परै सूक्ष्म हैं अर्थात् नाम स्वरूप प्रयोजन आदिके भेदसे भिन्न जो औदारिकआदिक शरीर हैं उनका यहां सूक्ष्मगुणके साथ वीप्साका निर्देश है कि आगे आगे के शरीर सूक्ष्म सूक्ष्म है

इति*औदारिकं१॥स्थूलं१॥ततःसूक्ष्मं१॥वैक्रियिकम्१॥ =इसप्रकारकि औदारिक शरीर स्थूल है। तिस (औदारिक)से सूक्ष्म वैक्रियिक है

ततःसूक्ष्मम्१॥ आहारकम्१॥ ततः*सूक्ष्मम्१॥ =तिस (वैक्रियिक शरीर)से सूक्ष्म आहारक (शरीर)है। तिस(आहारक)से सूक्ष्म

तैजसम्१॥ तैजसात्५॥ कार्मणं१॥ सूक्ष्मम्१॥ इति* =तैजसशरीर है। तिस तैजस(शरीर) से सूक्ष्म कार्मण (शरीर) है

यदि*परम्परं१। सूक्ष्मम्१॥ प्रदेशतः* =जो अगले अगले(शरीरपूर्वपूर्वकी अपेक्षासे) सूक्ष्म है तौ परमाणुओंकी अपेक्षासे

अपि*नूनम्*परम्परम्१॥ हीनम् १॥ =भी निस्सदेहकरि (=नूनं)उत्तर उत्तर शरीर हीनहोंगे अर्थात् प्रत्येक अग्रिमअग्रिम शरीरमें पहिले पहिले शरीर से थोड़े थोड़े प्रदेश होंगे

इति*विपरीत–प्रतिपत्ति–निवृत्ति अर्थम्१॥ आह । =ऐसी विरुद्ध प्रवृत्तिके दूर करनेके लिये कहते है कि

(१) **प्रदेशतोऽसंख्येयगुणं प्राक्तैजसात्=परंपरं प्रदेशतः असंख्येयगुणं प्राक्तैजसात्॥३८॥**

सूत्रार्थः–परं१॥ परं१॥प्रदेशतः*प्राक्*तैजसात्५॥ =अग्रिम अग्रिम (शरीर) प्रदेशोंकी अपेक्षासे, तैजससे पहिलेके (शरीर)

असंख्येयगुणम्१॥ =असंख्यात गुणेहै अर्थात् औदारिक शरीरमें जितने परमाणु हैं उनसे सख्यातगुणे

(१)दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायोंमे इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसाहै ॥ 'पर पर' वाक्य की अनुवृत्ति सैतीसवा सूत्रसे इससूत्रमे आतीहै ॥

(२)पाठक यह न समझो कि यहापर न्यूनम् शब्दहै क्योंकि न्यूनके अर्थमे हीनम् शब्द आगे है नूनम् का अर्थ निसदेह है देखो वैद्यकोश पृष्ठ३६७

प्रदिश्यन्त इति प्रदेशाः परमाणवः । संख्यामतीतोऽसंख्येयः । असंख्येयो गुणोऽस्य तदिदमसंख्येयगुणम्॥ कुतः?प्रदेशतः। नावगाहतः । परम्परमित्यनुवृत्तेराकार्मणात्प्रसङ्गे तन्निवृत्त्यर्थमाह प्राक्तैजसादिति ।

परमाणू वैक्रियिक शरीरमें है और वैक्रियिक शरीरसे असंख्यात गुणे परमाणु आहारकशरीरमें है

वृत्त्यनुवादः-प्रदिश्यन्ते I इति*प्रदेशाः परमाणवः =जो अविभाज्यहोकर प्ररूपण कियेगये हैं ऐसे प्रदेश है वा परमाणु हैं ॥ वा जिनकरि प्रमाणकरिये है ऐसे प्रदेश है अर्थात् जिनके द्वारा भिन्न भिन्न अंशकिये जायं सो प्रदेश हैं ॥

संख्याम्॥अतीतः।असंख्येयः।असंख्येयः।गुणः। =जो गणनासे बाहिरहों वे असंख्यात हैं असंख्यात हैं गुणाकार(१)वा(१) गुणक है

अस्य। तद्॥ इदम्॥असंख्येयगुणम्॥ कुतः*?=जिसका सो यह असंख्येयगुणा है क्योंकर वा कहांसे (असंख्येयगुणा) है

प्रदेशतः * अवगाहतः * =परमाणुओं (की अपेक्षा)से (असंख्येयगुणा) है अवगाहना (की विवक्षा) से

न* =(असंख्येयगुणा) नहीं है अर्थात् औदारिकसे वैक्रियिक शरीर असंख्यातगुण है और वैक्रियिकसे आहारक असंख्यातगुण है सो औदारिकसे गणनामें वैक्रियिककी परमाणुओंकी गणना असंख्यातगुणा) है नकि उसकी अवगाहना असंख्यातगुणी अधिक है

इसी प्रकार वैक्रियिकसे आहारकके परमाणुओंकी गिनती वा संख्या असंख्यातगुणी है नकि आहारक शरीरकी अवगाहना वैक्रियिक शरीरसे असंख्यातगुणी अधिक है

परम्॥परम्॥इति*अनुवृत्तेः॥ =(पूर्व सैंतीसवां सूत्रसे इससूत्रमें)"परं परं" ऐसी अनुवृत्ति(के कारण) से संबंधहोनेपर

आ*कार्मणात्॥ प्रसङ्गे॥ =कार्मण (शरीर) पर्यन्त(=आ) (इस परं परं की अनुवृत्तिका) संबंधहोनेपर

तद्-निवृत्ति-अर्थम्॥ =तिस (प्रसंग) के निषेधके लिये वा निवारणके लिये (इससूत्रमें)

प्राक्*तैजसात्॥ इति*आह । =तैजस शरीरसे पहिले पहिले (=प्राक् तैजसात्) ऐसा वाक्य कहा है

(१) गुण्य=जिसअंकको गुणिये जैसे यदि १६ को ९ से गुणाकरना होतो १६ गुण्य है ॥ गुणक वा गुणाकार जिसअंकसे गुणाकरो यहां ९ गुणक वा गुणाकार है १६×९=१४४ को गुणनफल कहते है । गुणाकरनेकी क्रियाको गुणन कहते हैं ॥

औदारिकादसंख्येयगुणप्रदेशं वैक्रियिकम् ॥ वैक्रियिकादसंख्येयगुणप्रदेशमाहारकमिति ॥ कोगुणाकारः? पल्योपमासंख्येयभागः ॥ यद्येवं, परम्परं महापरिमाणं प्राप्नोति । नैवम् । बन्धविशेषात्परिमाणभेदाभावः। तूलनिचयायःपिण्डवत्॥ अथोत्तरयोःकिं समप्रदेशत्वमुतास्ति कश्चिद्विशेष इत्यत आह—

औदारिकात्[५।१]॥असंख्येयगुण-प्रदेशं[१।१]॥वैक्रियिकं[१।१]॥	=(इसलिये) औदारिकशरीरसे असंख्यातगुणे प्रदेशवाला वैक्रियिक शरीर है
वैक्रियिकात्[५।१]॥ असंख्येयगुणप्रदेशम्[१।१]॥ इति*	=वैक्रियिक शरीरसे असंख्यातगुणे हैं परमाणुं जिसके ऐसा
आहारकम्[१।१]॥ कः[१।१] गुणाकारः[१।१] ?	=आहारक शरीर है । (प्रश्न) क्या गुणक है अर्थात् जब असंख्यातके असंख्याते भेद है फिर किस प्रकारके असंख्यातको गुणाकार वा गुणक यहां पर मानें
पल्योपम-असंख्येय--भागः[१।१] यदि*एवम्*	=पल्योपमके असंख्यातवां भागजो है (सो गुणक यहां लेना) यदि ऐसा है अर्थात् एकएक अग्रिम अग्रिम शरीरके परमाणु उसके पूर्व पूर्व शरीरसे असंख्यात गुणे हैंतो
परम्[१।१]॥परम्[१।१]॥महान्-(१)परिमाणम्[१।१]॥ प्राप्नोति T	=अग्रिम अग्रिम(=परंपरं)शरीर महान् आकार वा स्थूलताको प्राप्तहोता है
न* एवम्*	=(उत्तर) ऐसा नहीं है (कि अगले अगले शरीरके परमाणुं असंख्यात गुणे पूर्व पूर्व शरीरसे होनेसे उन अग्रिम अग्रिम शरीरमें स्थूलपनाका प्रसंग आवैं)
वन्ध-विशेषात्[५।१] परिमाण-भेद--अभावः[१।१]	=क्योंकि वन्धके विशेपतासे वा वन्धकेढंगसे डीलडौलके भेदका अभाव होजाता है
तूल-निचय-अयस्--पिण्डवत्*	=रुईका समूह और लोहेके पिंडके सदृश अर्थात् रुईके समूहमें परमाणुं थोड़े हैं परंतु परिमाणमें बड़ा है उसलोहेके पिंडसे जिसमें परमाणुं उस रुईके गट्ठेसे वहुत अधिक हैं परंतु डीलडौलमें छोटा है
अथ* उत्तरयोः[६।२]॥किम्[१।१]॥समप्रदेशत्वम्[१।१]॥ अस्ति T	=अब(=अथ)अगले दो (तैजसशरीरऔर कार्मणशरीर) में क्या समान प्रदेशता है?
उत* कश्चित्*विशेषः[१।१] इति*अतः*आह T	=अथवा(=उत)कुछ(=कश्चित्)भेद है । इसलिये (अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

(१) सस्कृतसर्वार्थसिद्धिकी प्रथमावृत्तिमें 'महागुणाकार' शब्द है, परन्तु उसके द्वितीयसस्करणमे, और हस्तलिखित सर्वार्थसिद्धिवृत्तिमें 'महापरिमाण' शब्द है । तत्त्वार्थ राजवार्तिकमें कईस्थानोमे 'परिमाण' शब्द आया है इसलिये 'परिमाण' शब्द हमनेभी पाठमें लिया है।

॥ अनन्तगुणे परे ॥ ३९ ॥

प्रदेशत इत्यनुवर्तते, तेनैवमभिसम्बन्धः क्रियते-आहारकात्तैजसं प्रदेशतोऽनन्तगुणं, तैजसात्कार्मणं प्रदेशतोऽनन्तगुणमिति ॥ को गुणाकारः? अभव्यानामनन्तगुणः । सिद्धानामनन्तोभागः॥ तत्रैतत्स्याच्छल्यकवत् । मूर्तिमद्द्रव्योपचितत्वात्संसारिणोजीवस्याभिप्रेतगति-

सूत्रम्— [1]"अनन्तगुणे परे	=(प्रदेशतः परं परं) अनन्तगुणे परे (भवतः) ॥ ३९ ॥
सूत्रार्थ :- परम् [1] परम् [1] परे [1]	=अग्रिम अग्रिम (=परं परं) अवशेष वा अन्य दो (तैजस और कार्मण शरीर)
प्रदेशतः * अनन्तगुणे [1] भवतः ।	=प्रदेशोंकी अपेक्षासे (पूर्व पूर्व शरीरोंसे) अनन्तगुणे हैं अर्थात् आहारक शरीरसे तैजसशरीरमें अनन्तगुणे प्रदेश अधिक हैं और तैजस शरीरसे कार्मण शरीरमें अनन्त गुणे प्रदेश अधिक हैं ॥
वृत्त्यनुवादः—प्रदेशतः * इति *	=(अड़तीसवां सूत्रसे इससूत्रमें) प्रदेशतः (=प्रदेशोंकी अपेक्षासे) ऐसा (वाक्य)
अनुवर्तते । तेन [3] एवम् *	=अनुवर्तताहै वा आकर्षित होता है । तिस (प्रदेशतः वाक्य) करि इस प्रकार
अभिसम्बन्धः [1] क्रियते । आहारकात् [5] तैजसम् [1]	=संयोग कियागया है कि आहारकशरीरसे तैजसशरीर
प्रदेशतः* अनन्तगुणम् [1] तैजसात् [5] कार्मणम् [1]	=परमाणुओंकी अपेक्षासे अनन्तगुण है तैजसशरीरसे कार्मणशरीर
प्रदेशतः * अनन्तगुणम् [1] इति *	=प्रदेशोंकी विवक्षासे अनन्तगुण है ॥
कः [1] गुणाकारः [1]	=गुणाकार वा गुणक कौन अनन्त है (क्योंकि अनन्तके अनन्त भेद हैं)
अभव्यानाम् [6] अनन्तगुणः [1] सिद्धानाम् [6] अनन्तः [1]	=(उत्तर) अभव्य राशिका अनन्तगुणा है सिद्धराशिका अनतवां-
भागः [1] शल्यकवत् *	=भाग है (सो अनन्त गुणक है) (प्रश्न) भाल वा तीरके फाल (=शल्यक) के सदृश
तत्र*एतत् [1] स्यात् ।॥ मूर्तिवत्*द्रव्यउपचितत्वात् [5]	=तहां यह होता होगा कि मूर्तिमान् वस्तुके संचय होनेसे
संसारिणः [6] जीवस्य [6] अभिमेत-गति-	=(तैजस और कार्मण शरीर सहित) संसारी जीवके जानेयोग्य (=अभिप्रेत) गमनमें

(१) श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसाहे ॥ हमारे यहा कहीं कहीं पर "अनन्तगुणे परे" पाठ है और कहीं कहीं पर "अनतगुणे परे" पाठ है दोनों पाठ ठीकहें(अध्याय १ टिप्पणी पृष्ठ ५४०, ५४१,)॥ पर पर की अनुवृत्ति ३७ वां सूत्र से और प्रदेशत.की ३८ वांसे आती है

निरोधप्रसङ्ग इति । तन्न । किं कारणम् । यस्मादुभेऽप्येते—

अप्रतीघाते ॥ ४० ॥

निरोध–प्रसङ्गः [१/१] इति * =रुकावटका प्रसंग होता होगा ॥ अर्थात् वाण मूर्तिमान द्रव्योंका पिंडस्वरूपहै इसलिये जिस प्रकार पर्वत आदि से उसकी गतिका निरोध हो जाताहै–वह आगे नहीं जा सकता है उसी प्रकार तैजस शरीर और कार्मण शरीर भी अनते अनते मूर्तिमान परमाणुओंके पिंड हैं और संसारी जीवके सदाकाल उनका संबंध रहता है (यह संवध आगे सूत्र ४१ मे कहा जायगा) इसलिये उनके संवंधसे संसारी जीवोंकें भी जाने योग्य गतिका निरोध होगा ॥

तद्–न* =उस (अभिप्रेत गति) मे (रुकावट) नहीं होती है।(प्रश्न)क्या कारणहै (किरुकावट नहीं होती)

किम्*कारणम्[१/१]॥यस्मात्[५/१]॥उभे[१/२]॥अपि*एते[१/२]॥=(उत्तर) इस कारणसे कि (तैजस और कार्मण शरीर) ये दोनो ही (अप्रतीघात हैं) .

सूत्रम्-[(१)]अप्रतीघाते ॥४० ॥=अप्रतीघाते (परे) भवतः

सूत्रार्थः– परे [१/२]॥ अप्रतीघाते [१/२]॥ भवतः T=(तैजस शरीर और कार्मण शरीरये)शेषदो वा अंतिम दो अप्रतिघात हैं अरोक हैं अर्थात्‌बलवान भी मूर्तिमान पदार्थोंसे इनका रुकना नहीं होता भावार्थ मूर्तीक पदार्थसे मूर्तीक पदार्थका रुकजाना प्रतीघात है । अग्निका परिणमन सूक्ष्म है इसलिये कठिन भी लोहेके पिंडमें सूक्ष्म परिणमनके कारण जिस प्रकार अग्निका प्रवेश नहीं रुकता उसी प्रकार तैजस और कार्मण शरीरका परिणमन भी सूक्ष्म है इसलिये वज्र पटल आदि कैसे भी कठिन पदार्थ क्योंन पड़े दोनों शरीरोंका रुकना नहीं होता वे निरवच्छिन्न रूपसे प्रवेशकरजाते हैं इसलिये वे तैजस और कार्मण दोनों शरीर अप्रतिघात कहेजाते है ॥

(१) दोनो आम्नायोंमे इस सूत्र का पाठ एक है॥ 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र'मे अप्रतिघात शब्दका अर्थ न रोकना और नरुकना ऐसा कियाहै जैसाकि निम्न वाक्यसे प्रगट है॥ तैजस और कार्मण ''ये अन्तिम दो शरीर अप्रतिघात अर्थात् प्रतिघात शून्य हैं। तात्पर्य्य यह है कि ये दो तैजस और कार्मण कही किसीसे नही रुकते, और न ये किसीको रोकतेहैं पृष्ठ ५२॥' प्रतिघात (दूसरेसे रुकनेवाला वा दूसरोंको रोकनेवाला) होकर अप्रतिघाति हो, तथा अप्रतिघाति होकर प्रतिघाति हो॥ यह वैक्रियक शरीरके सवन्धमे लेखहै॥ सभाष्य० पृष्ठ ५७ उक्त शरीर न किसीको रोकतेहैं ऐसा अर्थ इससूत्रका इस सर्वार्थसिद्धि वृत्तिमें, तत्त्वार्थ राजवार्तिक, जयचदजी कृतावचनिका अर्थ प्रकाशिका, सदासुखजीकृत तत्त्वार्थलघु टीका मे नही कियाहै और न तत्त्वार्थ राजवार्तिकके दो अनुवादा मे से किसी मे ऐसा अर्थहै॥ प० पन्नालाल जी अनुवादित मोक्षशास्त्र का अर्थ सभाष्य०केअर्थसे मिलताहै जैसे उक्त मोक्षशास्त्रके पृष्ठ३८ में तैजस और कार्मण शरीर भी वज्रमय पटलोंसे नही रुकतेहैं और न किसी अन्य पदार्थको रोक सकते हैं'' संस्कृत कोशोसे भी यह आशय निकलताहै, हमारी समझमे ठीक है क्योंकि दूसरेके रोकनेके समय भर वह स्वयम् भी रुका रहैगा नही तो रोकैगा कैसे ॥

मूर्तिमतो मूर्त्यन्तरेण व्याघातः प्रतीघातः। स नास्त्यनयोरित्यप्रतीघाते ॥ सूक्ष्मपरिणामा-दयःपिण्डे तेजोऽनुप्रवेशवत्तैजसकार्मणयोर्नास्ति वज्रपटलादिषु व्याघातः॥ ननु च वैक्रियि-काहारकयोरपि नास्ति प्रतीघातः। सर्वत्राप्रतीघातोऽत्र विवक्षितः। यथा तैजसकार्मणयोरा-लोकान्तात् सर्वत्र नास्ति प्रतीघातः। न तथा वैक्रियिकाहारकयोः॥

वृत्त्यनुवादः–मूर्तिमतः[६/१] मूर्ति–अन्तरेण[३/१]।।व्याघातः[१/१] =मूर्तिमानका (=मूर्तिमतः) अन्य मूर्तिमानकरि रुकावट (=व्यावात) है सो

प्रतीघातः[१/१]। सः[१/१] न॰ अस्ति T अनयोः[६/२]।। =प्रतिघात है। सो (प्रतिघात=प्रतीघात) दोनों (तैजस और कार्मण शरीरोंके नहीं) हैं

इतिअप्रतीघाते[१/२]।।सूक्ष्मपरिणामात्[५/१]अयस्-पिण्डे[७/१] तेजस्-=ऐसें दोनों प्रतिघात रहित हैं। सूक्ष्मपरिणमन(केकारण) से लोहेके पिंडमें अग्निका

अनुप्रवेशवत्॰ तैजस-कार्मणयोः[६/२]।। =क्रमसेप्रवेश(=अनुप्रवेश) के समान तैजस और कार्मण(शरीरों)का (प्रवेश)है ॥

न॰अस्ति T वज्रपटलादिषु[७/३]व्याघातः[१/१] =नहीं है (इन दोनों शरीरोंका)प्रतिघात वा रुकावट वज्रपटलादिकोंमें अर्थात् अग्निका परिणमन सूक्ष्म है॥ इसलिये कठिन भी लोहेके पिंडमें सूक्ष्म परिणमनके कारण जिसप्रकार अग्निका प्रवेश नहीं रुकता उसी प्रकार तैजस और कार्मण शरीरोंका परिणमन भी सूक्ष्महै इसलिये वज्रपटल आदि कैसेभी कठिन पदार्थ क्यों न बीचमें आपड़ें दोनोंशरीरोंका रुकना नहीं होता वे निरवच्छिन्नरूपसे प्रवेश करजाते हैं

ननु॰च वैक्रियिकआहारकयोः[६/२]।।अपिनअस्तिप्रतीघातः[१/१]=बहुरि प्रश्न वैक्रियिक और आहारक(शरीर) निकें भी व्याघात वा रुकावट नहीं है

सर्वत्र॰अप्रतीघातः[१/१]अत्र॰विवक्षतः[१/१] =(उत्तर) सब स्थानोंका अव्याघात यहां (इससूत्रमें) अपेक्षित है अर्थात् इससूत्रमें इस अप्रतिघातका कथन है जो सब स्थानोंमें संबंध रखताहो

यथा-तैजस-कार्मणयोः[६/२]।।आ॰लोकान्तात्[५/१]सर्वत्र॰ =जैसे तैजस और कार्मण(शरीरों)का लोकके अन्ततक(=आ-लोकान्तात्)सब स्थानोंमें

न॰अस्तिप्रतीघातः[१/१]न॰तथावैक्रियिक-आहारकयोः[६/२]।।=व्याघात नहीं है।। तैसे नहीं है वैक्रियिक और आहारक (शरीरों) का (व्याघात) अर्थात् लोकके अन्त पर्यंत तैजस और कार्मणशरीरोंका कहीं भी प्रतिघात नहीं होता वैक्रियिक और आहारक शरीरोंका वैसा अप्रतिघात नहीं किंतु उनका प्रतिघात ऐसे होजाता है कि केवली और श्रुत केवलीके विना जिसका समाधान न हो सकै ऐसी तत्त्वविषयक गूढ शंका हो जानेपर उसकी निवृत्तिके लिये प्रमत्त गुणस्थान वर्ती संयमी

आह किमेतावानेव विशेष उत कश्चिदन्योऽप्यस्तीत्याह—

॥ अनादिसम्बन्धे च ॥ ४१ ॥

चशब्दो विकल्पार्थः । अनादिसम्बन्धे सादिसम्बन्धे चेति ॥

मुनिके आहारक शरीरकी प्रकटता होती है और जहां केवली वा श्रुतकेवली विराजते है वहांतक जाकर फिर आहारक शरीर लौट आता है। केवलियोंकी स्थिति ढाई द्वीपसे बाहिर नहीं होती इसलिये आहारक शरीरका गमन अधिकसे अधिक ढाई द्वीप पर्यंत ही है। मनुष्योंका वैक्रियिक शरीर मनुष्यलोक(=ढाईद्वीप) पर्यंत ही गमन करता है तथा देवोंका वैक्रियिक शरीर त्रसनाली पर्यंत गमन करता है अधिक नहीं इसलिये ये दोनो शरीर तैजस और कार्मण शरीरोंके समान सर्वत्र अप्रतिघात नहीं हैं॥ अतः इस सर्वत्र गमनकी विशेष अपेक्षासे तैजस और कार्मण शरीरोंको इससूत्रमें अप्रतिघात कहा है॥

आह T किम्*एतावान्[1/1] एव*विशेषः[1/1] =पूछता है कि क्या(इन तैजस और कार्मण शरीरोंके विषयमें)इतना ही विशेष है

उत*कश्चित्*अन्यः[1/1] अपि*अस्ति T इति*आह T=अथवा(=उत) कुछ और (=अन्य) भी है। (निम्नसूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्— [1]अनादिसम्बन्धे च॥४१॥=(परे जीवस्य) अनादि सम्बन्धे च भवतः ॥ ४१ ॥

सूत्रार्थः—परे[1/2]॥ जीवस्य [6/1] =अन्य दो (=परे=तैजस और कार्मण शरीर) जीवके

अनादि–सम्बन्धे [1/2]॥ च*भवतः T =अनादिकालसे भी(और मोक्ष होनेतक)संबंध रखनेवाले हैं अर्थात् तैजस औरकार्मण ये दो शरीर जीवकेसाथ अनादिकालसे भी संबंधवाले हैं सादिकालसे भी संबन्धवाले है

वृत्त्यनुवादः-चशब्दः[1/1] विकल्प अर्थः[1/1] अनादिसंबंधे[1/2]॥=(इससूत्रमें) चशब्द विविध कल्पनकेलिये है (अर्थात्) अनादि संबन्धवाले

च*सादिसम्बन्धे[1/2]॥ इति* =भी(=च)हैं और सादिसम्बन्ध वालेहै भावार्थ सूत्रमें चशब्द है उसका अर्थ विकल्प है और तैजस और कार्मण इनदोनों शरीरोंका आत्माके साथ अनादिऔर

(१) श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनो आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है॥ हमारे यहां कहीं कहीं पर 'सबन्धे'पाठ है और कहीं कहीं पर 'सम्बन्धे' पाठ है दोनों पाठ ठीक है(देखो अध्याय प्रथम टिप्पणी पृष्ठ ५४०,५४१ और टिप्पणी पृष्ठ ५, ६,)॥

कार्यकारणभावसन्तत्या अनादिसम्बन्धे, विशेषापेक्षया सादिसम्बन्धेऽपि च वीजवृक्षवत् ॥ यथौदारिकवैक्रियिकाहारकाणि जीवस्य कादाचित्कानि, न तथा तैजसकार्मणे ।

सादिकालसे दोनो प्रकारका संबन्धहै यह उस चशब्दका प्रयोजनहै । चशब्दका ऐसा अर्थ प्रश्नोत्तर रूपमें उसका शब्दशःअनुवादलेनेमें यों निकल आताहै कि अनादिसम्बन्धवाले भी(=च)है तौ प्रश्नउठता है कि कोई और प्रकारका संबंधवालेभी तैजसऔर कार्मण शरीरहैंवह संबंधक्याहै?वोसादि संबंधहै।चशब्दकायह प्रभावहै॥

कार्य-कारणभाव-सन्तत्याः[३]॥अनादि-सम्बन्धे[३]॥ =कार्यकारणके होनेरूप(=भाव)संतान (कीअपेक्षा) से अनादि सम्बन्धवाले हैं

च*विशेष-अपेक्षया[३]॥सादिसम्बन्धे[३]॥ अपि* =और(=च) विशेष विवक्षासे सादि संबंधवाले भी

वीजवृक्षवत् =वीज और वृक्षके सदृश हैं अर्थात् जिस समय वीजसे वृक्ष,वृक्षसेवीज,वीजसेवृक्ष,वृक्षसे वीज, इस प्रकार सामान्यरूपसे कार्यकारणरूप संबंधकी विवक्षाकी जाती है उस समय वीज और वृक्षका कार्यकारणरूप अनादि संबंध माना जाताहै और जिस समय अमुक वीजसे अमुकवृक्ष,अमुकवृक्षसे,अमुकवीज इसप्रकार विशेषरूपसे कार्यकारणकी विवक्षा मानी जाती है उस समय वीज और वृक्षका यह सम्बन्ध सादि माना जाता है उसी प्रकार जिस समय आत्माके साथ तैजस कार्मण शरीरके निमित्त नैमित्तक सम्बन्धकी समान्यरूपसे विवक्षा कीजाती है उस समय आत्मा और तैजस,कार्मण शरीरोंका अनादि संबन्धहै क्योंकि अनादिकालसे ऐसा कोई भी समय नहीं वीता जिसमे तैजस कार्मणकी आत्मासे पृथक्ता हुई हो और जिस समय अमुक तैजस कार्मणका अमुक अवस्थापन्न आत्माके साथ संबन्ध है पुरातन अनंत परमाणु दोनों शरीरोंकी समय समय निर्जरै हैऔर नवीन नवीन अनत परमाणु संचयरूप होतीहैइस विशेषकी अपेक्षासे ये तैजस और कार्मण दोनों शरीर सादि संबन्धवाले हैं । इसप्रकार विशेष विवक्षा है उस समय उनकी आपसमे निमित्तनैमित्तक सम्बन्ध सादि है । इस प्रकार सामान्य और विशेषकी अपेक्षा आत्मा और तैजस कार्मणका अनादि सादि दोनों प्रकारका संबंध सिद्ध है ॥

यथा*औदारिकवैक्रियिकआहारकाणि[३]॥जीवस्य[६]=जैसे औदारिक,वैक्रियिक और आहारक शरीर जीवकें

कादाचित्कानि[३]॥न*तथा*तैजस-कार्मणे[३]॥ =कभी कभी होनेवाले होते हैं नही है तैसे(कभी कभी होनेवाले) तैजस कार्मण शरीर

(१) कादाचित्क पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ १०३ में त्रिलिंगी है इसका अन्यपुरुष (=प्रथम पुरुष,) वहुवचन,नपुसकलिंग'कादाचित्कानि' है ।

नित्यसम्बन्धिनी हि तेआसंसारक्षयात्।नए तेतैजसकार्मणे किंकस्यचिदेवभवतउताविशेषेणेत्यतआह

॥ सर्वस्य ॥ ४२ ॥

सर्वशब्दो निरवशेषवाची। निरवशेषस्य संसारिणोजीवस्य ते द्वे अपि शरीरे भवत इत्यर्थः॥ अविशेषाभिधानात्तैरौदारिकादिभिः सर्वस्य संसारिणो यौगपद्येन सम्बन्धप्रसङ्गे

[1] नित्यसम्बन्धिनी॥ हि॥ ते॥ आ॥ संसारक्षयात्॥	=क्योंकि(=हि)वेदोनों(=ते)नित्य संबंधवाले(जीवके)संसारकेनाश होनेतक(=आ) है॥
ते॥ एते॥ तैजस-कार्मणे॥ किम्॥ कस्यचित्॥	=वे (ये) तैजस और कार्मण शरीर क्या किसी (जीव) के
एव॥ भवतः[2] उत॥ अविशेषेण॥ इति॥ अतः॥ आह	=ही होते हैं(=भवतः)अथवा(=उत)विशेषरहित(सबजीवोंके) । इसलिये कहते हैं कि
सूत्रम्- सर्वस्य[3]	**=सर्वस्य(संसारिणो जीवस्य)(परे-तैजसकार्मणेशरीरेभवतः)**
सूत्रार्थः-सर्वस्य॥ संसारिणः॥ जीवस्य॥ परे॥	=समस्त संसारी जीवके परेके दो
तैजस-कार्मणे॥ शरीरे॥ भवतः	=तैजस और कार्मण शरीर होते हैं अर्थात् तैजस और कार्मण ये दोनों शरीर सामान्यरूपसे सब संसारी जीवोंके होते है यदि किसीके वे दोनों शरीर न होंगे तो वह जीव संसारीही नहीं कहा जा सकता ॥
सर्व-शब्दः॥ निर्-अवशेष-वाची॥ निरवशेषस्य॥	=(इमसूत्रमें)सर्वशब्द निर्विशेष वा निःशेषका वाचक है । निखिल वा समस्त
संसारिणः॥ जीवस्य॥ ते॥ द्वे॥ अपि शरीरे॥ भवतः	=संसारी जीवके(=अपि)ही वे दो(तैजस और कार्मण)शरीर होते हैं
इति॥ अर्थ॥ अविशेष-अभिधानात्॥	=ऐसा आशय वा अभिप्राय है । सामान्यरूप (=अविशेष) कहनेसे (=अभिधानात्)
तैः॥ औदारिक-आदिभिः॥ सर्वस्य॥	=उन औदारिक वैक्रियिक आहारक तैजस कार्मण शरीरोंके साथ, सब
संसारिणः॥ [4] यौगपद्येनसम्बन्ध-प्रसङ्गे॥	=संसारी(जीव)के एककालमें (समकालमें=यौगपद्येन) संबंधका प्रसंग आनेपर

(१)सम्बन्धिन् शब्द त्रिलिंगीहै पुल्लिङ्ग में प्रथमा विभक्ति एक वचन सम्बन्धिनीहै यहां ते शब्द नपुंसकलिंग द्विवचन तद् शब्दकाहै और तैजस कार्मण दोनों शरीरोंके लियेआयाहैअत:यहांपर सम्बन्धिनी प्रथमाद्विवचन नपुंसक लिंगहै क्योंकि सम्बन्धिन्का प्रथमाविभक्ति द्विवचननपुंसक सम्बन्धिनीहै (२)भवतः(भू=होना) धातुका अन्यपुरुष द्विवचन वर्तमान कालकी क्रिया है॥भवतः=दोनों होतेहैं॥(३) इससूत्रका पाठ और अर्थ दोनों आम्नायोंमेंएकहै (४)यौगपद्येन,युगपत् क्रियाविशेषण है। एककालमें,ऐसा अर्थहै॥ यौगपद्य,यौगपद्=समकालता,एककालता ॥ योगपद्यिक=एककालिक,(यहां विशेषणहै)

सम्भविशरीरप्रदर्शनार्थमिदमुच्यते—

तदादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः ॥४३॥

तच्छब्दः प्रकृततैजसकार्मणप्रतिनिर्देशार्थः। ते तैजसकार्मणे आदिर्येषां

सम्भवि शरीर-प्रदर्शन-अर्थम् इदम् उच्यते ।=(एक जीवमें) एकसाथहोनेवाले (=सम्भविन्) शरीरोंके दिखावनेकेलिये यह कहा जाताहै कि

तदादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः=[1]तद्-आदीनि भाज्यानि युगपद् एकस्मिन्ना-चतुर्भ्यः

सूत्रार्थः—तद्-आदीनि भाज्यानि =इन (तैजस, कार्मण) को आदिलेकर विभाजितकिये हुये वा विकल्परूप कियेहुये

युगपद् (युगपत्) एकस्मिन् आ-चतुर्भ्यः भवन्ति । =एककालमें एक (जीवों) मे चार (शरीर) तक होते हैं अर्थात् दो शरीर होंतो तैजस और कार्मण होते है। तीन हों तो औदारिक तैजस और कार्मण होते हैं वा वैक्रियिक, तैजस और कार्मण ये तीन भी होते है परन्तु ये देव तथा नरक गतियोंमें हीहोते हैं। यदि किसीके एक साथ चार शरीर हों तो औदारिक, आहारिक, तैजस, और कार्मण अथवा औदारिक, वैक्रियिक, तैजस और कार्मण होते है। यह नियम है कि जिसके वैक्रियिक होता है उसके आहारक नहीं होता और जिसके आहारक होता है उसके वैक्रियिक नहीं होता है॥ एक शरीर वाला कोई भी जीव संसारमे नहीं है॥

वृत्त्यनुवादः-तद्-शब्दः प्रकृत-तैजस-कार्मण-प्रति निर्देश-अर्थः । ते तैजस-कार्मणे आदिः येषाम् =(इससूत्रमें) तद् शब्दहै सो प्रकरण कियेहुये वा विषयभूत तैजस और कार्मणको प्रगट करनेके लिये है। वे तैजस और कार्मण शरीर है आदि जिनके

(१) हमारे यहां बहुधा पुस्तको में उपर्युक्त पाठ है किसी किसी पुस्तक मे (जैसे पं० पन्नालालजी बाकलीवाल अनुवादित मोक्ष शास्त्र पृष्ठ १९ में) एकस्मिन् शब्दके स्थानमे "एकस्य" शब्द है परतु इस पाठ से अर्थ भेद नहीं हुआ। क्योंकि एकस्मिन्+आ-चतुर्भ्यः=एक (जीव) मे चार तक होते है वही तात्पर्य रखता है जो एकस्य-आ-चतुर्भ्यः=एक (जीव) के चार तक होते है रखता है॥ श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य तत्त्वार्थाधिगम सूत्र मे "एकस्याऽऽचतुर्भ्यः" पाठहै सो हमारे यहा के एक पाठ से मिलताहै। अर्थ भी जब उनके यहां तैजसको अनादि मानाहै तब एक है। परतु सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ ५३मे यह भी लेखहै कि "तैजसके अनादि सम्बन्धताके खडन पक्षमे, एक ही शरीर का जब अनादि सबध है तब केवल कार्मण ही एक हो सकता है। दो की सत्तामें कार्मण और औदारिक होसकते हैं अथवा कार्मण और वैक्रियिक हो सकते हैं। तथा तीनकी योग्यता मे कार्मण औदारिक और वैक्रियिक हो सकते हैं वा कार्मण, औदारिक और आहारक हो सकते हैं और चारकी योग्यता में कार्मण तैजसऔदारिक और वैक्रियिक होसकतेहैं वा कार्मण, तैजस, औदारिक और आहारक होसकतेहैं। परतु कदाचित् भी एक कालमेएकके पांचोनहीहोते।

तानि तदादीनि। भाज्यानि विकल्पानि आ कुतः। आ चतुर्भ्यः। युगपदेकस्यात्मनः॥ कस्यचित् द्वे तैजसकार्मणे। अपरस्य त्रीणि औदारिकतैजसकार्मणानि, वैक्रियिकतैजसकार्मणानि वा। अन्यस्य चत्वारि औदारिकाहारकतैजसकार्मणानीति विभागः क्रियते॥ पुनरपि तेषां विशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ निरुपभोगमन्त्यम् ॥४४॥

तानि[१।३]॥ तदादीनि[१।३]॥ =ते (=तानि) तदादीनि अर्थात् तिन (तैजस–कार्मण शरीरों) को आदिमें लेकर है

भाज्यानि[१।३]॥ विकल्पानि[१।३]॥ आ*कुतः* =भाज्य है सो विकल्पतारूप वा विभागरूप करना है। (विभागरूप) कहां तक (=आ) है

[२] आ-चतुर्भ्यः[५।३]॥ युगपत्*एकस्य[६।१] आत्मनः[६।१] =चार पर्यन्त एककालमें एक जीवके हैं।

कस्यचित्*द्वे[१।२]॥ तैजस–कार्मणे[१।२]॥ अपरस्य[६।१] =किसी (जीव) के दो तैजस और कार्मण (जो विग्रहगतिमें होते) हैं। दूसरे (जीव) के

त्रीणि[१।३]॥ औदारिक–तैजस–कार्मणानि[१।३]॥ =तीन (अर्थात् प्रायः मनुष्य–तिर्यचोंके) औदारिक, तैजस और कार्मण शरीर हैं

वा*वैक्रियिक–तैजस–कार्मणानि[१।३]॥ =अथवा (देव–नारकियोंके) वैक्रियिक, तैजस, कार्मण (ये तीन शरीर) होते हैं

अन्यस्य[६।१] चत्वारि[१।३]॥ =अन्य (जीव–अर्थात् प्रमत्त सयमी छठवां गुणस्थानवर्ती किसीकिसीमुनि) के चार

औदारिक–आहारक–तैजसकार्मणानि[१।३]॥ इतिविभागः =औदारिक, आहारक, तैजस, कार्मण हैं इसप्रकार विभाग वा वांट

क्रियते। पुनः*अपि*तेषाम्[६।३]॥ =कियाजाता है। फिरभी उन (औदारिक–वैक्रियक–आहारक–तैजस–कार्मण शरीरों) के

विशेष-प्रतिपत्ति–अर्थम्[१।१]॥ आह। =विशेष जाननेकेलिये (अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्[१]-निरुपभोगमन्त्यम् ॥४४॥ =अन्त्यम् कार्मणम् निरुपभोगम् भवति॥४४॥

सूत्रार्थः– (औदारिक-वैक्रियिक-आहारक-तैजस, कार्मण छत्तीसवांसूत्रमें कहेहुये शरीरों में)

अन्त्यम्[१।१]॥ निर्–उपभोगम्[१।१]॥ =अन्तिम कार्मण शरीर (मन और इन्द्रियो द्वारा शब्दादिके) उपभोगसे रहित है। अर्थात् जैसे औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, शरीर आत्माको मन और पांच इन्द्रियोद्वारा उपभोगकाकारण होते हैं तैसे कार्मण शरीर पांच इन्द्रियऔर मनकीसहायता से जीवको उपभोगकाकारण नहीं है

जीवके पांचो शरीर नहीं होते है॥ और वैक्रियिक तथा आहारक भी एककालमे नही होते क्योंकि वैक्रियिक तथा आहारकके स्वामीमे विशेषभेदहै
(१) दोनोंआम्नायोंमें इससूत्रकापाठ, अर्थ एकहै॥ हमारे यहांकही कहीपर 'मन्त्यम्' केस्थानमे मन्त्य' है सोकातन्त्ररुपमाला व्याकरणकेमतकेअतिरिक्तअशुद्ध हैं
(२) यहांआङ्(=आ) काअर्थअभिविधिहैअत चारतक शरीर होसकने है। यदिमर्यादा अर्थ मानाजातातो चारसेभीतरकेशरीरअर्थात्तीनतकहोते जोअनिष्टहै॥

अन्ते भवमन्त्यम् । किं तत्? कार्मणम् ॥ इन्द्रियप्रणालिकया शब्दादीनामुपलब्धिरुपभोगः। तदभावान्निरुपभोगम् ॥ विग्रहगतौ सत्यामपि इन्द्रियलब्धौ द्रव्येन्द्रियनिर्वृत्त्यभावाच्छब्दाद्युपभोगाभाव इति ॥ ननु तैजसमपि निरुपभोगम् । तत्र किमुच्यते निरुपभोगमन्त्यमिति ॥

वृत्त्यनुवादः—अन्ते[७] भवम्[१] =(छत्तीसवां सूत्रमें औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस, के)अन्तमें जो है

अन्त्यम्[१] किम्[१] तत्[१] कार्मणम्[१] =सो अंतिम वा अंतका(=अन्त्यम्) है। वह क्या है? (वह) कार्मण (शरीर) है।

इन्द्रिय-प्रणालिकया[३] शब्द-आदीनाम्[६] उपलब्धिः[१] =इन्द्रियोंके द्वारकरि(=प्रणालिकया)शब्द, स्पर्श, रस, गन्ध, वर्णोंका(=आदीनाम्)ग्रहण है

उपभोगः[१] तत्-अभावात्[५] निर्-उपभोगम्[१] =सो उपभोग है। उस(उपभोग)की अविद्यमानतासे 'निरुपभोग' है ॥

विग्रह-गतौ[७] इन्द्रिय- =नवीन शरीर(ग्रहण वा धारणकरने)के लिये गमनमें(जीवकें)इन्द्रियोंकी

लब्धौ[७] सत्याम्[७] अपि* =(क्षयोपशमरूप)लब्धि होनेपर भी अर्थात् क्षयोपशमरूप लब्धिके निमित्तसे भावस्वरूप इन्द्रियोंकी रचना और उनके विद्यमान रहनेपर भी

द्रव्य-इन्द्रिय-निर्वृत्ति-अभावात्[५] शब्द आदि-उपभोग- =द्रव्यइन्द्रियोंकी रचनाके(=निर्वृत्ति) न होने (केहेतु) से शब्दादिक उपभोगका

अभावः[१] इति* =अभाव है अर्थात् विग्रहगतिमें भावस्वरूप इन्द्रियोंके रहतेभी(देखो सूत्र १८) द्रव्यस्वरूप इन्द्रियोंकी रचना (देखो सूत्र १७) का अभाव है इसलिये शब्दादिका अनुभव न होनेसे कार्मणशरीर निरुपभोग ही है(सोपभोग नहीं है=स-उपभोगनहींहै)

ननु* तैजसम्[१] अपि* निर्-उपभोगम्[१] तत्र* =प्रश्नः-तैजस(शरीर)भी उपभोगसे रहित है। तहां (विग्रहगतिमें भावस्वरूप इन्द्रियोंके रहनेपर और द्रव्यस्वरुप इन्द्रियोंके रचनाके अभावमें)

किम्[१] उच्यते I निर् उपभोगम्[१] अन्त्यम्[१] इति* =अन्तका(कार्मण शरीर)उपभोगरहित ऐसा क्यों कहागयाहै?प्रश्नका आशय यह है कि विग्रहगतिमें जैसे इन्द्रियोंद्वारा शब्दादिके ग्रहणरूप उपभोगसे कार्मण शरीर भावइन्द्रियों के रहनेपर भी निरुपभोग है वैसेही तैजस शरीर भी विग्रहगतिमें भावइन्द्रियोंके होनेपर भी इन्द्रियोंद्वारा शब्दादिके ग्रहणरूप उपभोगसे रहित है। जब दोनोंकी अवस्था एकसी है फिर कार्मण शरीर ही निरुपभोग क्यों कहागया, तैजसभी उसके साथ साथ क्योंन निरुभोग कहागया ॥

तैजसं शरीरं योगनिमित्तमपि न भवति, ततोऽस्योपभोगविचारेऽनधिकारः ॥
एवं तत्रोक्तलक्षणेषु जन्मसु अमूनि शरीराणि प्रादुर्भावमापद्यमानानि किमविशेषेण भवन्ति, उत कश्चिदस्ति प्रतिविशेष इत्यत आह—

तैजसं॥ शरीरं॥ योगनिमित्तम्॥ अपि*न*भवति = (उत्तर)[1] तैजस शरीर (मनःवचन कायके) योगका कारण भी नहीं होता है
ततः*अस्य॥ उपभोग-विचारे॥ अनधिकारः॥ तिससे,(ततः) इस(तैजस)का उपभोगके निर्णयमें प्रकरण वा अधिकार नहीं है

भावार्थ योगके पन्द्रह भेद हैं उनमें औदारिक,औदारिकमिश्र,वैक्रियिक,वैक्रियिकमिश्र आहारक,आहारकमिश्र और कार्मण ये सात भेद काययोगके मानेगये हैं इनमें तैजस योग नामका कोई भी भेद नहीं है इसलिये तैजस शरीर योगका कारण नहीं मानागया है और यहां पर उपभोगके विचारमें केवल वे शरीर प्रकरणमें लियेगये है वा वे शरीर विषयभूत हैं जो योगका कारण हैं अतः तैजस शरीर उपभोगके विचारमें अधिकृत वा प्रकरणभूत नहीं है। इसीहेतुसे औदारिक वैक्रियिक आहारक और कार्मण योगनिमित्त शरीरोंमें से अन्तमें रहनेवाला कार्मण शरीरको निरुपभोग कहा है। ऐसाअर्थ यहांविवक्षित है॥

एवम्*तत्र*उक्त-लक्षणेषु॥ जन्मसु॥ अमूनि॥ =इसप्रकार तहां कहेगये है लक्षण जिनके ऐसे जन्मजे है तिनमें ये (=अमूनि)
शरीराणि॥ किम्॥ अविशेषेण॥ प्रादुर्भावम्॥ =शरीर क्या विशेषकरिरहित प्रगटपना को
आपद्यमानानि॥ भवन्ति*उत*कश्चित्*अस्ति प्रतिविशेषः॥ =प्राप्त होते है (अर्थात् उत्पन्न होते है) अथवा (=उत) कुछ विशेष है ॥ उत्तर
इति*अतः*आह =(तीनों प्रकारके जन्मोंमें इन पाचों शरीरोंकी उत्पत्तिमेंविशेषहै)अतःऐसे कहतेहैकि

(1) निरुपभोगमिति वचनात् अर्थादापन्नमेतदितराणि सोपभोगानीति = निरुपभोगम् इति वचनात्, अर्थादापन्नम् एतद् इतराणि स-उपभोगानि इति ॥ तत्त्वार्थ राज वार्तिक पृष्ठ १०६ = निरुपभोगम् ऐसे वचनसे अर्थापत्ति प्रमाणसे यह सिद्ध होता है कि और शरीर उपभोग सहित है ॥ सामर्थ्यादन्यत्सोपभोग गम्यते = सामर्थ्यात् अन्यत् स-उपभोग गम्यते = सगतअर्थतासे अन्य शरीर उपभोग सहित जानेजाते हैं तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक पृष्ठ ३४० में और अन्य अनुवादकोंने भी यही लिखा है कि अन्य शरीर उपभोग सहित है ॥ मेरी समझमें इन सबका यह अभिप्राय है कि योगोके कारणकी विवक्षासे तीन औदारिक, वैक्रियिक आहारक शरीर उपभोग सहित है (= सोपभोग है)और कार्मण शरीर उपभोगरहित है अब रहा तैजस सो योगका कारण नहीं है इससे सूत्रमें उसको विषय प्रकरण वा अधिकारसे बाहर समझकर उसका विशेषरूपसे कथन नहीं किया है॥ सदासुखजीकृत 'अर्थप्रकाशिकामें' तैजस शरीर के सम्बन्धमें लिखा है ''तैजस शरीर योगका निमित्त भी नाहीं है याते तैजस शरीर निरुपभोग ही है याते याकूं सूत्रमें नहीं कह्या यातें विना कह्याही निरुपभोग है॥ तैजस कार्मण शरीरकें अंगोपांग भी नाहीं है याते वचनका बोलना सुनना इत्यादिक नहीं ॥ तातें ए दोऊही शरीर निरुपभोग है। परन्तु सभाष्यपृष्ठ५४० में चत्वारि ''शेषाणि तु सोउपभोगानि'' ऐसालेख है

॥ गर्भसम्मूर्च्छनजमाद्यम् ॥४५॥

सूत्रक्रमापेक्षया आदौ भवमाद्यम् । औदारिकमित्यर्थः ॥ यद्गर्भजं यच्च सम्मूर्च्छनजं तत्सर्वमौदारिकं द्रष्टव्यम् ॥ तदनन्तरं यन्निर्दिष्टं, तत्कस्मिन् जन्मनीत्यत आह—

॥ औपपादिकं वैक्रियिकम् ॥४६॥

उपपादे भवमौपपादिकम् । तद्-

सूत्रम्—[1]गर्भसम्मूर्च्छनजमाद्यम् =गर्भजम् सम्मूर्च्छंजम् च आद्यम् भवति ॥ ४५॥

सूत्रार्थः—गर्भजम् सम्मूर्च्छंजम् =जो गर्भसे उत्पन्न होता है और सम्मूर्च्छनसे उत्पन्न होता है

आद्यम् भवति । =सो(छत्तीसवां सूत्रमें वर्णित)आदिका वा पहिला(औदारिक शरीर)है अर्थात् वह आदिका औदारिक शरीर गर्भरूप और सम्मूर्च्छनरूप जन्ममें उत्पन्न होता है अथवा जिसकी उत्पत्ति गर्भ और सम्मूर्च्छन जन्मसे है वह औदारिक शरीर है

वृत्त्यनुवादः—सूत्र-क्रम-अपेक्षया आदौ भवम् आद्यम् =(औदारिक,वैक्रियिक आदि छत्तीसवां)सूत्रकीक्रम विवक्षासे आदिमें हो सो आद्य है

औदारिकम् इति अर्थः यद् गर्भजम् =औदारिक(शरीर)है ऐसा अभिप्राय है । जो गर्भ से उत्पन्न होता है

यद् च सम्मूर्च्छनजम् तत्-सर्वम् औदारिकं द्रष्टव्यम् =और जो सम्मूर्च्छनसे उपजता है सो सब औदारिक (शरीर) समझना चाहिये

तद्-अनन्तरम् यद् निर्दिष्टम् =(उस औदारिक शरीर)के अत्यन्त समीप जो वर्णन कियागया(वैक्रियिक शरीर)

तद् कस्मिन् जन्मनि इति अतः आह । =सो किस जन्म में है । इस लिये (अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्—औप[2]पादिकं वैक्रियकम्॥४६॥=औपपादिकं वैक्रियिकम् भवति ॥ ४६ ॥

सूत्रार्थः—औपपादिकम् वैक्रियिकम् भवति । =उपपाद जन्ममें हो सो वैक्रियिक (शरीर) होता है ॥

वृत्त्यनुवादः-उपपादे भवम् औपपादिकम् तद् =उपपाद (जन्म) विषै हो सो औपपादिक है । सो (उपपाद जन्म में)

(१) इस सूत्रका दोनों सम्प्रदायोंमें पाठ और अर्थ एक है । आद्यम् के स्थानमें जहां'आद्य'है वह कातन्त्र रूपमाला व्याकरणमतके अतिरिक्त अशुद्ध है (अध्याय १ टिप्पणी पृष्ठ ५ देखो)(२)श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यमें''वैक्रिय मौपपातिकम्''पाठ है॥पाठ भिन्न होने पर भी दोनो का अर्थ एकसा है ॥

सर्वं वैक्रियिकं वेदितव्यम् ॥ यद्यौपपादिकं वैक्रियिकं, अनौपपादिकस्य वैक्रियिकत्वाभाव इत्यत आह-

॥ लब्धिप्रत्ययं च ॥४७॥

चशब्देन वैक्रियिकमभिसम्बध्यते। तपोविशेषादृद्धिप्राप्तिर्लब्धिः। लब्धिः प्रत्ययः कारणमस्य लब्धिप्रत्ययम्। वैक्रियिकं लब्धिप्रत्ययं च भवतीत्यभिसम्बध्यते ॥ किमेतदेव लब्ध्यपेक्षमुतान्यदप्यस्तीत्यत आह-

॥ तैजसमपि ॥ ४८ ॥

सर्वम्॥ वैक्रियिकम्॥ वेदितव्यम्॥; यदि* =समस्त वैक्रियिक(शरीर) ज्ञात कियेजाना चाहिये । जो

औपपादिकं॥ वैक्रियिकम्॥ अन्-औपपादिकस्य॥ =उपपादजन्म वैक्रियिक (शरीर) होता है तौ उपपादजन्म न होनेवालेकें

वैक्रियिकत्व-अभावः॥ इति* अतः* आह T =वैक्रियिकपना का अभाव होगा । इसलिये (अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्-(1) लब्धिप्रत्ययं च ॥ ४७॥ =लब्धिप्रत्ययं च (वैक्रियिकं भवति)॥ ४७ ॥

सूत्रार्थः—लब्धि-प्रत्ययम्॥ च* वैक्रियिकम्॥ भवति T =तपोविशेषरूपऋद्धिकी प्राप्ति(=लब्धि) है कारण जिसको ऐसा भी वैक्रियिक(शरीर) होता है

अर्थात् तपकेद्वारा उत्पन्नहुई ऋद्धिके निमित्तसेभी वैक्रियिक शरीर मनुष्य, तिर्यंचकें होता है

वृत्त्यनुवादः-च-शब्देन॥ वैक्रियिकम्॥ अभिसंबध्यते T =(इससूत्रमें) च शब्दकरि वैक्रियिक शरीर संबंधित है वा लियागया है

तपस्-विशेषात्॥ ऋद्धिप्राप्तिः॥ लब्धिः॥ ॥ लब्धिः॥ =तपके विशेषसे ऋद्धिकी प्राप्ति सो लब्धि है । लब्धि है

प्रत्ययः॥ कारणम्॥ अस्य॥ लब्धि-प्रत्ययम्॥ =निमित्त कारण जिसका सो लब्धिप्रत्यय है

वैक्रियिकम्॥ लब्धिप्रत्ययम्॥ च* भवति T इति* =वैक्रियिक (शरीर) लब्धि निमित्तक भी (=च) होता है ऐसा

अभिसम्बध्यते T किं॥ एतद्॥ एव* लब्धि-अपेक्षम् =सम्बंध कियागया है । क्या वह(वैक्रियिक शरीर) ही लब्धिके निमित्तसे है

उत* अन्यत्* अपि* अस्ति T इति* अतः* आह T =वा और भी(कोई शरीर लब्धिप्रत्यय) है इसलिये(अग्रिम सूत्रमें) कहते है कि

सूत्रम्-तैजसमपि(2) ॥ ४८ ॥ =तैजसमपि (शरीरं लब्धिप्रत्ययं भवति) ॥ ४८ ॥

(1) इस सूत्रका श्वेताम्बर और दिगम्बर दोना आम्नायोंमें पाठ और अर्थ एकसा है। इससूत्रमें 'वैक्रियिक' शब्दकी अनुवृत्ति छयालीसवांसूत्रसे लीगई है।

(2) सभाष्यमें यहसूत्र, सूत्ररूपमें नहीं दियाहै। शुभविशुद्धम् इत्यादि सूत्रकी व्याख्यामें "तैजसमपि शरीर लब्धिप्रत्यय भवति" ऐसावाक्य पायाजाताहै

अपिशब्देन लब्धिप्रत्ययमभिसम्बध्यते । तैजसमपि लब्धिप्रत्ययं भवतीति ॥

वैक्रियिकानन्तर यदुपदिष्टं तस्य स्वरुपनिर्द्धारणार्थं स्वामिनिर्देशार्थं चाह—

॥ शुभं विशुद्धमव्याघाति चाहारकं प्रमत्तसंयतस्यैव ॥ ४९ ॥

सूत्रार्थः-(१)तैजसं१।१।अपिशरीरं१।१।लब्धिप्रत्ययम्१।१।=तैजस शरीर भी (=अपि) तपोविशेषरूपऋद्धि प्राप्तिके निमित्तसे भवति T =होताहै अर्थात् तैजस शरीर भी ऋद्धिहोनेसे प्राप्तहोताहैअतः वहभी(२)लब्धिकारणक है

वृत्त्यनुवादः-अपिशब्देन३।१।लब्धिप्रत्ययं१।१।अभिसंबध्यते=(इससूत्रमें)अपि शब्दकरि "लब्धिप्रत्यय" वाक्य (इसीसूत्रमें) लगाया जाता है तैजसं१।१। अपि+लब्धिप्रत्ययं१।१। भवति T इति* =तैजस(शरीर)भी ऋद्धिकेप्राप्ति—निमित्तक—(वा ऋद्धिकी प्राप्तिके कारणसे) होताहै वैक्रियिक—अनन्तरम्१।१।यद्१।१।उपदिष्टम्१।१।तस्य६।१।=वैक्रियिक (शरीर)के अत्यन्त समीप निर्देश कियागया (आहारकशरीर) तिसके स्वरूप—निर्धारणार्थं१।१।चस्वामिन्—निर्देशार्थं१।१।आह=स्वभाव निर्णय वा निश्चयकेलिये और(तिसके)अधिपति के निरूपणके लिये कहते हैं कि

सूत्रम्— शुभं विशुद्धमव्याघाति चाहारकं प्रमत्तसंयतस्यैव ॥ ४९ ॥

=शुभं विशुद्धमव्याघाति चाहारकं प्रमत्तसंयतस्यैव(३)मुनेर्भवति

सूत्रार्थः-आहारकम्१।१।शुभम्१।१। =आहारक शुभहै—शुभकर्मका कारण है—इसकेहोते शुभ प्रकृतिहीका बन्ध होता है

(१) "तैजसके दोय भेद हैं। एक निः सरण स्वरूप। दूसरा अनिः सरण स्वरूप॥ तहां निःसरण तैजस शुभाशुभ भेदकरि दोय प्रकार है। तिनमें जो तपश्चरणके धारक मुनिके कोऊ क्षेत्रमे रोग मारी दुर्भिक्षादिकरि लोकनिके दुःखी देखि जो करुणा अत्यन्त उपजिआवै तदि दक्षिणस्कंधमे तैं तैजसपिंड निकलिकरि द्वादश योजन प्रमाण क्षेत्रके जीवनिका दुःख मेटि आत्मा मे प्रवेश करै सो शुभ तैजस है॥ अर कोऊ क्षेत्रके लोकनि ऊपर अत्यत क्रोधित होय तदि ऋद्धिके प्रभावतैं वामस्कन्धतै सिंदूर समान रक्तवर्ण अग्निरूप आत्माके प्रदेश निकलैं सो आदि मे तौ सूच्यंगुलके असंख्यातवांभाग प्रमाण अर अत पर्यंत क्रमतें वधता काहलके (=विलावके) आकार निकसि द्वादश योजन प्रमाण समस्त जीव पुद्गलनिकूं भस्मकरि उलटा शरीरमें प्रवेश करि मुनिकूं दग्ध करै है सो मुनि तो नरककूं प्राप्त होय है" ॥ ऐसा शुभ अशुभ निः सरण स्वरूप तैजस शरीर है॥ अर अनि सरण स्वरूप तैजस समस्त ससारी जीवनिकें देहकी दीप्तिका कारण है सो लब्धि प्रत्यय नहीं है॥"देखो अर्थप्रकाशिकामें सूत्र४९॥
(२) छत्तीसवां सूत्रके क्रमसे तैजसके कथन से पहिले आहारकका कथन होना चाहिये,परतु लब्धिप्रत्ययकी अनुवृत्ति लेनेके लिये "तैजसमपि" प्रथम कहा पीछे आहारक (३) हमारे पाठ सर्वत्र एक है॥ सभाष्य० में "प्रमत्त सयतस्यैव" के स्थान में "चतुर्दशपूर्वधरस्यैव" वाक्य है। शेष पाठ एक है।

शुभकारणत्वाच्छुभव्यपदेशः । शुभकर्मणः आहारककाययोगस्य कारणत्वाच्छुभमित्युच्यते । अन्नस्य प्राणव्यपदेशवत् ॥ विशुद्धकार्यत्वाद्विशुद्धव्यपदेशः । विशुद्धस्य पुण्यस्य कर्मणः अशबलस्य निरवद्यस्य कार्यत्वाद्विशुद्धमित्युच्यते ।

च॰ विशुद्धम् १॥ =विशुद्ध है अर्थात् विशुद्ध वा निर्दोष कर्मका कार्य है और (=च)

अव्याघाति १॥ =किसीदूसरेद्वारा रुकनेवाला नहींहैअन्यकिसी दूसरेको रोकनेवाला भी नहींहै (और)

प्रमत्तसंयतस्य६॥ मुनेः६॥ एव॰भवति T =प्रमत्तसंयमी छठवां गुणस्थानवर्ती मुनिकेंही (=एव) होता है। अन्य किसी दूसरे गुणस्थानवर्ती मुनिकें नहीं होता है। उक्तमुनिकें औदारिक, तैजस और कार्मण शरीर तौ होते ही हैं। परतु सब प्रमत्तसंयमी मुनियोंके आहारक नहीं होता है

वृत्त्यनुवादः—शुभ–कारणत्वात्५॥शुभ-व्यपदेशः१=शुभका कारण होनेसे (आहारक-शरीर इससूत्रमें) शुभ-ऐसा नाम है (अर्थात्)

शुभ-कर्मणः६॥आहारककाययोगस्य६ कारणत्वात्५॥=आहारककाययोगकें शुभकर्मका निमित्त होनेसे

शुभम्१॥इति॰उच्यते T =(इसके होते) शुभ प्रकृतिहीका बन्ध होता है (तिससे) शुभ ऐसा कहागया है

अन्नस्य६॥ प्राण–व्यपदेशवत्॰ =अन्नको प्राण कहनेके समान है अर्थात् जैसे अन्न है सो प्राण यथार्थमें नहीं है वरन प्राणके रखनेका कारण है तैसेही आहारक शरीर वास्तविकमें शुभ नहीं है शुभका कारण है अन्नको प्राण कहना और आहारक को शुभ कहना दोनों स्थानोंमें कारणमें कार्यका उपचार वा व्यवहार किया है

विशुद्ध-कार्यत्वात्५॥ विशुद्ध–व्यपदेशः १॥ =निर्दोष(=विशुद्ध)कार्यहोनेसे (इससूत्रमें) विशुद्धऐसा नाम (आहारक शरीर का) है।

विशुद्धस्य६॥ अशबलस्य६॥ निरवद्यस्य६॥ =विशुद्ध, विशदवा निर्मल (=अशबलस्य) दोष रहित (निरवद्यस्य)

पुण्यस्य६॥कर्मणः६॥कार्यत्वात्५॥विशुद्धम्इतिउच्यते=पुन्यकर्मका (आहारक काययोगकें)कार्यहोनेसे विशुद्ध ऐसा कहा जाता है

उक्त सभाष्य तत्त्वार्थाधिगम सूत्र में जहां आहारक शरीर के स्वामी का कथन किया है वहा "आहारक के स्वामी चौदह पूर्वके धारक सयत मनुष्य है" ऐसा वाक्य पृष्ठ ५८ में लाये ह इस से प्रगट हे कि श्वेताम्बर समाज में प्रमत्त सयमी और अप्रमत सयमी दोनों गुण स्थान वर्तियों मुनियोंकें आहारक शरीर होता है हमारे यहा केवल प्रमत्त सयमी छठवें गुण स्थानवर्ती मुनिकें ही मस्तक से उत्पन्न होता है ॥

तन्तूनां कार्पासव्यपदेशवत् ॥ उभयतो व्याघाताभावादव्याघाति ॥ न ह्याहारकशरीरेणान्यस्य व्याघातः। नाप्यन्येनाहारकस्येति । तस्य प्रयोजनसमुच्चयार्थःचशब्दःक्रियते ॥ तद्यथा कदाचिल्लब्धिविशेषसद्भावज्ञापनार्थं,कदाचित्सूक्ष्मपदार्थ,निर्द्धारणार्थं संयमपरिपालनार्थं च ।

तन्तूनाम्६।३ कार्पास–व्यपदेशवत्* =(कपासके) धागे वा डोरोंको कपास कहनेके सदृशहै भावार्थ जैसे तंतु कपासके कार्य हैं और कपास कारण है तथापि उपचारसे कार्यको कारणमानकर तंतुओंको कपास कहदिया जाता है और'कार्पासाःतांतवः'तंतु कपासहैं ऐसा संसारमें व्यवहार होनाहै वैसेही आहारक शरीर भी विशुद्ध निर्मल वा स्वच्छ(=अशवलस्य)निर्दोष(=निरवद्यस्य)पुन्यकर्मका कार्य है इसलिये वह आहारक शरीरभी उपचारसे विशुद्ध कहदिया गया है ॥

उभयतः*व्याघात-अभावात्५।१ अव्याघाति १।१॥ =दोनों रीतिसे रुकनेके अभावसे (आहारक शरीर) अव्याघाति है

न*हि*आहारक–शरीरेण३।१॥अन्यस्य६।१व्याघातः१।१ =क्योंकि (=हि) नहीं है आहारक शरीरसे दूसरेका रुकाव

न*अपि*अन्येन३।१आहारकस्य६।१॥ इति* =(और)न दूसरेकरि आहारक शरीरकाभी (रुकावट वा प्रतिघात)होता है

तस्य६।१॥प्रयोजन-समुच्चय-अर्थः१।१चशब्दः१।१क्रियते। =तिस (आहारक)के प्रयोजनोंके समुदायके लिये (सूत्रमें) चकार लायागया है

तद्यथा*कदाचित्*लब्धि-विशेष–सद्भाव-ज्ञापन–अर्थम्१।१॥कदाचित्*सूक्ष्म–पदार्थ-निर्द्धारण-अर्थम्१।१॥ =जैसे कभी ऋद्धि(=लब्धि) विशेषकी विद्यमानता (=सद्भाव) जाननेके लिये । कभी सूक्ष्म वस्तुके निर्णय वा निश्चयकरनेके लिये

च*संयम-परिपालन-अर्थम् १।१॥ =और(=च) (कभी) समयकी रक्षाकेलिये अर्थात् किसी समय कोई विशेष लब्धि प्राप्त होजाय उस समय उसकी सत्ता जाननेके लिये आहारक शरीर प्रयोजनीय होताहै।किसी समय सूक्ष्म-पदार्थके निर्धारणके लिये आहारक शरीरका प्रयोजन पड़ताहै, असंयम दूर करनेके लिये अथवा संयमको पालनेके लियेभी उसका प्रयोजनहै ॥ संयमकी रक्षाके लिये आहारक शरीर इस भांति प्रयोजनीय होता है कि जिस समय भरत और ऐरावत क्षेत्रोंमें तीर्थंकरोंकी विद्यमानता न हो और प्रमत्त संयमी मुनिको ऐसी तत्त्व विषयक शंकाहो जाय कि जिसका समाधान केवली वा श्रुतकेवलीके विना न होसके इसलिये महाविदेह क्षेत्रोंमें जहांकि केवली विराजमान हों

आहारकमिति प्रागुक्तस्य प्रत्याम्नायः॥ यदाऽऽहारकशरीरं निर्वर्तयितुमारभते, तदा प्रमत्तोभवतीति प्रमत्तसंयतस्येत्युच्यते ॥इष्टतोऽवधारणार्थमेवकारोपादानम्। यथैवं विज्ञायेत प्रमत्तसंयतस्यैवाहारकं नान्यस्येति। मैवं विज्ञायि, प्रमत्तसंयतस्याहारकमेवेति। माभूदौदारिकादिनिवृत्तिरिति॥ एवं विभक्तानि शरीराणि बिभ्रतां संसारिणां प्रतिगति किं त्रिलिङ्ग-

वहां उनके जानेकी इच्छा होजाय और यदि मैं औदारिक शरीरसे जाऊंगा तो जीवोंका विघातरूप महा-असंयम होगा ऐसा विचारकर वह मुनि औदारिक शरीरसे जाना उचित न समझें उस समय वह संयमकी रक्षाके लिये आहारक शरीरका निर्माण करते हैं, इसलिये संयमकी रक्षाभी आहारक शरीरका प्रयोजन है ॥

प्राग्-उक्तस्य[६]॥ आहारकम्[१]॥ इतिप्रत्याम्नायः[१] =पहिले वा उपर्युक्त कहेहुये(शुभ-विशुद्ध-अव्याघाति)को(केलिये सूत्रमें)आहारकऐसापाठहै अर्थात् आहारकशरीर शुभ, विशुद्ध, अव्याघाति है यह बतानेको सूत्रमें 'आहारक'काग्रहण है

यदा*आहारकशरीरम्[२]॥ निर्वर्तयितुम्[२]॥ =जिस समय (मुनि) आहारक शरीर रचनेको (=निर्वर्तयितुम्–हेत्वर्थकृदन्त है)

आरभते। तदा*प्रमत्तः[१]भवति। इति* =आरम्भ करता है। तब (वह मुनि) प्रमादसहित वा प्रमादयुक्त होता है ॥

(क्रियारूप प्रवर्तनेको यहां प्रमादकहा है नकि अविरतकीज्यों प्रमादहोता है तिसकोकहा)

प्रमत्तसंयतस्य[६]इति*उच्यते। =(इसलिये) प्रमत्तसंयमीमुनिके (=प्रमत्तसंयतस्य) ऐसा (वाक्य सूत्रमें) कहा गया है

इष्टतः*अवधारण-अर्थम्[१]॥ एवकारःउपादानम्[१]॥ =वाञ्छित नियमकेलिये (सूत्रमें) 'एव'शब्दका ग्रहण है

यथा*एवम्*विज्ञायेत। प्रमत्तसंयतस्य[६]। =क्योंकि (=यथा) ऐसा जानो (विज्ञायेत) कि प्रमत्तसंयमी(मुनि) के

एव*आहारकम्[१]॥ न*अन्यस्य[६]इति* =ही आहारक शरीर होता है नकि और किसी (गुणस्थानवर्ती) मुनिके

मा*एवम्*विज्ञायि। प्रमत्तसंयतस्य[६]। =इस प्रकार न जानो कि प्रमत्तसंयमी(छठवांगुणस्थानवर्ती) मुनिके

आहारकम्[१]॥ एव*इति*(१)माभूत्। =केवलएक(=एव) आहारक शरीर है। (क्योंकि उक्तमुनिके) नहीं होगया है (माभूत्)

औदारिक-आदि-निवृत्तिः[१]॥ इति* =औदारिक शरीर, तैजस कार्मण शरीरोंका (=आदि) निषेध ॥

एवम्*विभक्तानि[२]॥ शरीराणि[२]॥ बिभ्रताम्[६]। =इसप्रकार भिन्न भिन्न वा पृथक् पृथक् शरीर धारणकरनेवाले(=बिभ्रताम्)

संसारिणाम्[६]। प्रतिगति*(२)किम्*त्रिलिङ्ग- =संसारी (जीव) निकी प्रत्येकगतिमें क्या तीनोंवेद (स्त्री–पुरुष-नपुंसक) के

(१)'मा' निषेध वाची अव्ययहै, लुट् (अद्यतनीभूत क्रिया) केसाथ आनेपर लुट् के 'अट्' (अ, कोलोप होताहै 'भू'का लुङ् एकवचन अभूत् है। उसका 'अ' जातारहा।
(२)'प्रतिगति' अव्ययीभाव समास है। अकारांत शब्दोंमें अम् (=म्)का आदेश होताहै। इकारान्त, उकारान्त हलन्त शब्दोंकी विभक्तियोंका लोप होजाताहै

सन्निधानं, उत लिङ्गनियमःकश्चिदस्तीत्यत आह—

॥ नारकसम्मूर्च्छिनो नपुंसकानि ॥ ५० ॥

नरकाणि वक्ष्यन्ते, नरकेषु भवा नारकाः। सम्मूर्च्छनं सम्मूर्च्छः स येषामस्तीति सम्मूर्च्छिनः। नारकाश्च सम्मूर्च्छिनश्च नारकसम्मूर्च्छिनः ॥ चारित्रमोहविकल्पनोकषायभेदस्य नपुंसकवेदस्याशुभनाम्नश्चोदयान्न स्त्रियो न पुमाँस इति नपुंसकानि भवन्ति ॥

सन्निधानम् [1]॥	=संन्निकर्षण वा निकट है अर्थात् प्रत्येक गतिमें तीनों तीनों लिंग होते है
उत*लिङ्गनियमः[1]कश्चित्*अस्तिइति*अतः आह T	=अथवा कोई और लिङ्गोंका नियम है इसलिये (अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि
सूत्रम्-नारक[1]सम्मूर्च्छिनो नपुंसकानि	**=नारकाश्च सम्मूर्च्छिनश्च नपुंसकानि भवन्ति ॥ ५० ॥**
सूत्रार्थः-नारकाः[1]।च*सम्मूर्च्छिनः[1] च*	=नारकी जीव और सम्मूर्च्छन जीव भी
नपुंसकानि[1]॥भवन्ति T	=नपुंसक होते है। (उनमें कोईभीजीव स्त्रीलिंग और पुल्लिंग नहीं होता है)
वृत्त्यनुवादः-नरकाणि[1]॥वक्ष्यन्ते T नरकेषु[1]॥	=नरक(तीसरे अध्यायके प्रथमसूत्रमें)कहेजावेंगे। नरकविषैं
भवाः[1] नारकाः[1]	=जन्में वा उपजें वा होवें(=भवाः)वे नारक हैं॥
सम्मूर्च्छनम्[1]॥ सम्मूर्च्छः[1]	=अवयवसहितशरीरका जहांतहां वा सर्वत्र बनजाना (=संमूर्च्छन) सम्मूर्च्छ है
सः[1]येषाम्[1]अस्ति Iइति*सम्मूर्च्छिनः[1]	=सो(सम्मूर्च्छ=अवयवसहित सर्वत्र रचाहुआ शरीर) जिनकेंहो ऐसे सम्मूर्च्छिन हैं
नारकाः[1]च*सम्मूर्च्छिनः[1]च*नारकसम्मूर्च्छिनः[1]	=तथा नारकी और सम्मूर्च्छिन हैं सो नारकसम्मूर्च्छिनः (द्वंद्वसमास पद सूत्रमें) है
चारित्रमोह-विकल्प-(२)नोकषाय-भेदस्य[1]	=चारित्र मोहनीय कर्मकाभेद (=विकल्प) जो नो कषाय तिस (नोकषाय) का भेद
नपुंसकवेदस्य[1]च*अशुभनाम्नः[1]॥उदयात्[1]	=नपुंसकवेद जो है तिसके और (=च) अशुभनामक नामकर्मके उदयसे
न*स्त्रियः[1]॥न*(४)पुमांसः[1]इतिनपुंसकानि[1]॥भवन्ति	=न स्त्रियां हैं नपुरुष हैं ऐसे नपुंसक होते हैं भावार्थ मोहनीयकर्म

(१) दोनो सम्प्रदायों में इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है ॥ (२)नोकषाय वेदनीय=ईषत्कषाय वेदनीय=अकषाय वेदनीय एकार्थवाची वाक्यहैं
(३) स्त्री शब्दका बहुवचन, स्त्रीलिंग स्त्रिय है ॥ (४) पुस् (मनुष्य) शब्दका पुल्लिंग बहुवचन पुमासः है ॥

नारकसम्मूर्च्छिनो नपुंसकान्येवेति नियमः ॥ तत्र हि स्त्रीपुंसविषयमनोज्ञशब्दगन्धरूपरसस्पर्शसम्बन्धनिमित्ता स्वल्पाऽपिसुखमात्रा नास्ति ॥ यद्येवमवध्रियते, अर्थादापन्नमेतदुक्तेभ्योऽन्ये संसारिणस्त्रिलिङ्गा इति॥ यत्रात्यन्तं नपुंसकलिङ्गस्याभावस्तत्प्रतिपादनार्थमाह-

दो प्रकारका है एक दर्शन मोहनीय दूसरा चारित्रमोहनीय । दर्शन मोहनीयके मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृतिमिथ्यात्व तीन भेद हैं और चारित्र मोहनीयके भी कषाय वेदनीय और नो कषायवेदनीय दो भेद हैं । नोकषाय वेदनीयके हास्य रति अरति शोक भय जुगुप्सा स्त्रीवेद पुंवेद और नपुंसक वेद ये नौभेद हैं उन में नपुंसक वेद और अशुभनामा नामकर्म (इन दोनों) के उदय से जो जीव न स्त्री हों और नपुरुष हों वे नपुंसक होते हैं

नारक–सम्मूर्च्छिनः।१।३ नपुंसकानि।१।३ ॥एव*इति*नियमः।१।१ =नारकजीव और सम्मूर्च्छिन जीव नपुंसकही हैं ऐसा नियम (स्वरूप कथन) है
तत्र * हि *स्त्री–पुंसविषय– =क्योंकि(=हि)उस अवसर में(=तत्र)अर्थात् नपुंसक भवमें,स्त्रीपुरुषसंबंधी(=विषय)
मनोज्ञ–शब्द–गन्ध–रूप– =मनोज्ञशब्द(कासुनना)मनोज्ञगन्ध(कासूंघना)मनोहर(=मनोज्ञ) रूप (कादेखना)
रस–स्पर्श–सम्बन्ध– =इष्ट (=मनोज्ञ) रस(काचाखना) और इष्ट(=मनोज्ञ)स्पर्श(कास्पर्शनकरना)रूप(संबंध)
निमित्ता।१।३ स्वल्प*अपि*सुखमात्रा।१।१ न*अस्ति* =कारणोंसे होनेवाला थोड़ा भीसुख(नारकी और सम्मूर्च्छिन जीवोंको) नहीं है
यदि*एवम्* अवध्रियते T =जो इसप्रकार निश्चय कियागया है(किनारक और सम्मूर्च्छिन नपुंसक हैं तो)
अर्थात्।५।१ आपन्नम् ।१।१ एतद्।१।१ =अर्थसे यह(=एतद्)प्राप्तहोता है(=आपन्नं)कि भावार्थ अर्थापत्तिप्रमाणसे (नकहेगये अभिप्रायको समझनेवाले ज्ञानसे)यह निकलता है कि
उक्तेभ्यो।५।३ अन्ये।१।३ =कहेहुये(नारक और सम्मूर्च्छिन जीवों)निसे अवशेष वा बचेहुये (=अन्य)
संसारिणः।१।३ त्रि–लिङ्गा।१।३ इति*;यत्र*अत्यन्तं।१।१ =संसारीजीव तीन लिंगवाले हैं । जहां (जिसजन्ममें) अत्यन्त वा अतिशय
नपुंसकलिंङ्गस्य।६।१ अभावः।१।१ तत्– =नपुंसकलिंगका अस्तित्व नहीं है । तिस (अत्यन्त नपुंसक लिंगके अभाव)के
प्रतिपादन–अर्थम्।१।१ आह T =समर्थनके लिये वा स्पष्टीकरनेके लिये(अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

॥ न देवाः ॥ ५१ ॥

स्त्रैणं पौंस्नं च यन्निरतिशय सुखं सुर(शुभ)गतिनामोदयापेक्षं,तद्देवा अनुभवन्तीति न तेषु नपुंसकलिङ्गानि सन्ति ॥ अथेतरे कियल्लिङ्गा इत्यत आह—

॥ शेषास्त्रिवेदाः ॥ ५२ ॥

सूत्रम्—[1]नदेवाः ॥ ५१ ॥ =न देवाः (नपुंसकानि भवन्ति) ॥५१॥

सूत्रार्थः-न*देवाः[1/3] नपुंसकानि[1/3] भवन्ति T =(भवनवासी, व्यन्तर,ज्योतिषी,और कल्पवासी) देव नपुंसक लिंगी नहीं होते हैं अर्थात् सब प्रकारके देवोंमें स्त्रीवेद और पुरुषवेद केवल दोही वेद होते हैं

वृत्त्यनुवादः-स्त्रैणं[1/1] पौस्नं[1/1] च यत् निरतिशयं[1/1] सुखम्[1/1] =स्त्री संबंधी तथा पुरुष संबंधी जो परमोत्कृष्ट(=निरतिशय पञ्चकोश२१५)सुख है और

सुर(शुभ)[2]गतिनाम-उदय-अपेक्षम्[1/1] =जो(भली वा अच्छी)सुरगति नामक (नामकर्मकी प्रकृतिके) उदयकी विवक्षासे है

तद्[2/1] देवाः[1/3] अनुभवन्ति T इति*तेषु[7/3] =तिस (सुख)को देव भोगते है वा अनुभव करते हैं। उन (देवों) में

नपुंसकलिङ्गानि[1/3] न*सन्ति T =नपुंसकलिङ्ग नही है (केवल स्त्रीवेद और पुरुषवेद दोही वेद होते हैं)

अथ*इतरे[1/3] [3] कियत्-लिङ्गाः[1/3] इति*अतः*आह T =अव अन्य(नारक,सम्मूर्च्छिन,देवोंके अतिरिक्त)कितने लिङ्गवाले है।इसलिये कहतेहैंकि

सूत्रम्-शेषास्त्रिवेदाः[4] ॥ ५२ ॥ =शेषाः जीवाः त्रिवेदाः भवन्ति ॥ ५२ ॥

सूत्रार्थः-शेषाः[1/3] जीवाः[1/3] =वचेहुये जीव (अर्थात् नारक, सम्मूर्च्छिन और चारों प्रकारके देवोंके अतिरिक्त जे कर्मभूमिके गर्भज मनुष्य,गर्भज तिर्यंच ते स्त्री-पुरुष-नपुंसक)

---

(१) दोनों अम्नायोंमे इस सूत्रका पाठ और अर्थ एक है (२) तत्त्वार्थराजवार्तिकमें तथा हस्त लिखित सर्वार्थसिद्धिमे "शुभगतिनामोदयापेक्ष" इत्यादि पाठ है'सुर'शब्द नही है प० पन्नालाल दूनीवालोंने 'शुभगतिका अर शुभनामकर्मका उदयकी है अपेक्षा जाविषै"इत्यादि अनुवाद किया है अर्थात् शुभगति और शुभनाम कर्म दोके उदय की अपेक्षा मानीहै॥'सुर'शब्द होनेसे हमने केवल सुरगति जो शुभ होती है उसके उदयकी अपेक्षा मानी है मुद्रित वृत्तिके द्वितीय सस्करणमे"गति नामोदयपेक्ष"पाठ है॥ (३) कियत् त्रिलिगी शब्द है कियान् प्रथमाविभक्ति पुल्लिग एक वचन है कियती प्रथमा एक वचन स्त्रीलिग है और कियत् प्रथमा एक वचन नपुसक लिग है यहां पर बहुवचन में प्रयोग है अर्थात् "कियल्लिङ्गाः"कितने लिङ्गवान हैं इसलिये हमने इस'कियल्लिङ्गा'को समास मानकर अनुवाद किया है॥ (४) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य०में यह सूत्र नहीं है॥ भाष्यकारने भाषा में इस सूत्रका आशय देदिया है॥ 'शेषस्त्रिवेदः'ऐसासूत्र प० सदासुखजी कृत सूत्रभाषा में अशुद्ध है॥

त्रयो वेदा येषां ते त्रिवेदाः॥ के पुनस्ते वेदाः। स्त्रीत्वं, पुंस्त्वं नपुंसकत्वमिति॥ कथं तेषां सिद्धिः! वेद्यत इति वेदः। लिङ्गमित्यर्थः॥ तद् द्विविधं द्रव्यलिङ्गं भावलिङ्गंचेति॥ द्रव्यलिङ्गं योनिमेहनादिनामकर्मोदयनिर्वर्तितम्॥ नोकषायोदयापादितवृत्ति भावलिंगम्॥ स्त्रीवेदोदयात् स्त्यायत्यस्यां गर्भ इति स्त्री। पुंवेदोदयात् सूते

त्रि-वेदाः [१/३] भवन्ति T	=तीनों लिंगवाले वा तीनों लिंगवान होते है
	(परन्तु भोगभूमिके उपजे मनुष्य और तिर्यंचोंके और मलेच्छखंडके
	स्त्रीपुरुषोंके पुरुषलिंग और स्त्रीलिंग ये दो वेदही होते हैं। देखो अर्थप्रकाशिकासूत्र५१)
वृत्त्यनुवादः-त्रयः[१/३]वेदाः[१/३]येषाम्[६/३] ते[१/३]त्रिवेदाः[१/३]	=तीनहैंलिंग वा वेद जिनके वे त्रिवेदा है।(यह त्रिवेदापदकाविग्रह वा समासकेअर्थकाद्योतकवाक्यहै)
के[१/३]पुनः*ते[१/३]वेदाः[१/३]स्त्रीत्वम्[१/१]॥ पुंस्त्वम्[१/१]॥	=पुनि वे लिंग कोन हैं, स्त्रीपन अर्थात् स्त्रीलिंग, पुरुषपन अर्थात् पुल्लिग
नपुंसकत्वम्[१/१]॥इति*कथम्*तेषाम्[६/३]सिद्धिः[१/१]॥	=नपुंसकपन वा क्लीबत्व ऐसे हैं। उन (वेदों) की कैसे निष्पत्ति वा व्युतपत्ति है
वेद्यते T इति" वेदः[१/१]	=जो"वेदिये"ऐसा वेद है अथवा "जो अनुभवकियाजाय"(=वेद्यते) ऐसा वेद है
लिङ्गम्[१/१]॥इति*अर्थः[१/१]तत्[१/१]॥द्विविधम्[१/१]॥	=लिङ्ग ऐसा अर्थ वा अभिप्राय है। वह लिंग दो प्रकार है
द्रव्यलिङ्गं[१/१]॥भावलिङ्गं[१/१]॥चइति*द्रव्यलिंगम्[१/१]॥	=द्रव्यलिंग और(=च)भावलिंग ऐसा है। द्रव्यलिंग वह है
योनि-	=जो(तिर्यचनी वा स्त्रीके) भग और [रचित हैं
मेहन-आदि-नामकर्म-उदय-निर्वर्तितम्[१/१]॥	=(मनुष्य वा तिर्यचके)लिंग(=मेहन)आदि (शरीरके आकार) नामकर्मके उदयसे निष्पादित वा
	अर्थात् नामकर्मके उदयसे योनि, लिंग रज, वीर्य, आदिका रचना द्रव्यलिंग है
नोकषाय-उदय-आपादित-	=(स्त्रीवेद-पुरुषवेद-नपुंसकवेद)नो कषाय(चारित्र मोहनीयकर्म)के उदयसे प्राप्तहुआ(=आपादित)
वृत्तिः[१/१]॥ भावलिंगम्[१/१]॥	=आत्माके अंतःकरण परिणामकी प्रवृत्ति (=वृत्तिः) सो भावलिंग है अर्थात्
	नोकषाय कर्मके उदयसे स्त्री आदि लिंगोंके अनुकूल इच्छाका होना सो भावलिंग है
स्त्रीवेद-उदयात्[५/१]स्त्यायति T यस्याम्[७/१]गर्भः[१/१]	=स्त्रीवेदके उदयसे इकट्ठाहोता है तिष्ठता है वा ठहरता है (=स्त्यायति)गर्भ जिसमें
इति*स्त्री[१/१];पुंवेद-उदयात्[५/१]सूते[१]	=ऐसी स्त्री है। पुरुषवेदके उदयसे उदरमें (=सूते)

जनयत्यपत्यमिति पुमान् । नपुंसकवेदोदयात्तदुभयशक्तिविकलं नपुंसकम् ॥ रूढिशब्दाश्चैते । रूढिषु च क्रिया व्युत्पत्त्यर्थैव। यथा गच्छतीति गौरिति ॥ इतरथा हि गर्भधारणादिक्रियाप्राधान्ये, बालवृद्धानां तिर्यङ्मनुष्याणां देवानां कार्मणकाययोगस्थानां च

जनयति I अपत्यम्१॥ इति*पुमान्१। । नपुंसक-वेद-उदयात्५। तद्-उभय-शक्ति-विकलम्१॥ नपुंसकम्१॥	=संतानको (=अपत्यम्) उत्पन्न करता है (=जनयति) ऐसा पुरुष है । नपुंसक =वेदके उदयसे जो दोनों (उदरमें गर्भकीस्थिति और संतान उत्पन्नकरनेकी)
रूढि-शब्दाः३।च एते३।	=शक्तिसे रहित,वा शक्तिसे विहीन नपुंसक है और ये (स्त्री–पुंस्–नपुंसक) रूढि शब्द हैं
(१)रूढिषु३।च*क्रिया१।व्युत्पत्ति–अर्थ–एव*	=और(=च)रूढि(शब्दों)में क्रिया (अर्थात् धातुका अर्थ) है सो निरुक्तिमात्र (-एव)के लिये है
यथा*गच्छति I इति*गौः१॥ इति*	=जैसे गमन करतीहै ऐसी गायहै भावार्थ यदि'गो' शब्दकी निरुक्ति पूर्णतासे ग्रहणकी जावै तो गाय(पशु)जिससमय चलै फिरै उसकाल ही गौ कहना चाहिये और वही(पशु) जिस काल सोता हो, खड़ाहो, लेटाहो, वैठाहो, उस समय वुत्पत्तिके अनुसार गौ नही कहना चाहिये परन्तु ऐसा लोक व्यवहारमें नही होता सर्वकालमें रूढ़ि वा प्रसिद्धके वशसे उस पशुको गौ कहते है अतः क्रियाका अर्थ शब्दोंमें केवल व्युतपत्ति मात्र ही है ॥
इतरथा*हि*	=क्योंकि अन्यथा अर्थात् यदि नामोंमें रूढिकी प्रधानता न मानी जावें तो
गर्भ-धारण-आदि–क्रिया-प्रधान्ये ७॥	=गर्भधारणक्रियाको तथा सन्तान उत्पादन क्रियाको (=आदि) मुख्यमाननेमें (अर्थात् यही वातमानें कि जव गर्भधारणकी सामर्थ्य है तव स्त्री है चलते-फिरते-वैठते-उठते-रसोई वनाने इत्यादि क्रियामें स्त्री नहीं हैं और जव संतान उत्पादनकी सामर्थ्य है तवहीपुंस् वेदीहै अन्य अवस्थाओंमें वा अन्यक्रिया जैसे व्यौपार इत्यादिकमें पुरुषवेदी नहींहैतो
वालवृद्धानाम्६।२तिर्यङ्मनुष्याणाम् देवानाम्६।च*	=वाल-वृद्ध तिर्यंचोंके और वालवृद्ध मनुष्योंके और देवोके और (=च)
कार्मणकाययोगस्थानाम् ६।	=कार्मणकाययोगमें स्थिति जीवोंकें अर्थात् विग्रहगतिमें विद्यमान जीवोंकें

(१) रूढि शब्द स्त्रीलिग है परतु यहां पर ''शब्दो'' ऐसा इसके आगे छिपा हुआ है ॥ अर्थ है'रूढि शब्दों' मे इसलिये हमने पुलिग में रक्खा है ॥
(२)'तिर्यङ्मनुष्याणां देवानां'ये शब्द हमारी समझमेयहां पर उपलक्षणरूपमे प्रयोग किये गयेहै ॥ उपलक्षण = पास रहनेहारे और अपनेसे सम्वन्ध-

तदभावात्स्त्रीत्वादिव्यपदेशो नस्यात्

तद्-अभावात् ५।१ =उस (गर्भधारण और सन्तान उपपादन क्रिया) के अभावसे वा सामर्थ्य न होनेसे
स्त्रीत्व-आदि-व्यपदेशः १।१ =स्त्रीपणा और पुंसपनाका नाम वा कथन (स्त्री-पुंसकी व्युत्पत्ति पृष्ट १२२, १२३ में देखो)
न॰ स्यात् T =नहोसकैगा भावार्थ इसका यह है स्त्यायति यस्यां गर्भःइति स्त्री=स्थितिहोता है गर्भ जिसमें वह स्त्री है और सूते जनयति अपत्यम् इति पुमान् = उदरमें संतानको उपजावै सो पुमान् है (पुंस् का प्रथमा विभक्ति एकवचन पुल्लिग पुमान् है (=पुरुष, मनुष्य) उक्त अर्थ केवल व्युत्पत्तिके लिये है प्रधानतासे नहीं है, यदि उन्हें मुख्यतासे माना जायगा तो जिस समय गर्भधारण क्रिया और संतान-उत्पादन क्रिया आदि होंगी उसी समय स्त्री पुस् आदि उनको कह सकते हैं किन्तु बालक, बालिकायें, वृद्ध पुरुष, वृद्ध तिर्यंच, वृद्ध तिर्यंचनी, तिर्यंच तिर्यंचनियोंके बच्चे और देवी देवताओंको और विग्रहगतिमें विद्यमान जीवोंको जिनमें कि गर्भधारण संतान उत्पादन आदिकी सामर्थ्य नहीं स्त्रीवेदी वा पुरुषवेदी आदि नहीं कहसकते इसलिये स्त्री, पुरुष, गौआदिक शब्द रूढि हैं '१' यौगिक(=व्युत्पन्न व्युत्पत्तिसहित सामासिक) शब्द नहीं हैं ॥ और इन तीनो स्त्री पुरुष और नपुंसक वेदोंमें स्त्रीवेदको अगर समान माना है। पुरुषवेदको फूंसकी अग्नि सदृश माना है और

रखने वालेका ज्ञान जिससे हो। जैसे "कौओंसे दहीं वचाया जाय" यहां कौआ पद अपने और अपने से भिन्न कुत्ते, बिल्ली आदिका भी बोधक है ॥ "कौओं से दही वचाया जाये" इसका यह सारांश है कि दही की रक्षा केवल कौओं से ही न कीजाय वरन् जितने भी कुत्ते-बिल्ली-बंदर और इतर जीव जो दही को विना किसी स्वत्वके खाजाय सब से उसको वचाया जाय ॥ इसी प्रकार उक्त वाक्य में तिर्यंच, तिर्यंचनी उनके वच्चे, मनुष्य, मनुष्यणी, उनके वच्चे, देवी, देव, इत्यादि और अन्य जितने शब्द व्युत्पत्ति को ध्यानमें न रखकर रूढि में वोले जाते हैं और उक्त सूत्रसे सवधित हैं सर्व आजाते हैं ॥ जयचंदराय जीने "रूढि शब्दाश्चैते" से व्यपदेशो न स्यात्" तक की (इस अनुवाद के देखो पृष्ट १२३ १२४) वचनिका में मनुष्य और तिर्यंच और देव शब्दोंको ध्यान मे न रखकर उनकी स्त्रियों पर वाक्यों को ऐसें सवध किया है कि स्त्री, पुरुष, नपुसक "इनिकी सज्ञा है सो रूढि शब्द रूप है। रूढि शब्द की व्युत्पत्ति कीजिये है सो तिस व्युत्पत्तिमात्र प्रयोजनके अर्थि ही है। जैसे गऊ शब्द की निरुक्ति करिये, जो चालै ताकू गऊ कहिये। सो यहां निरुक्ति रूढिहीतें जाननी। जातें वैठा सोवता गऊको भी गऊही कहिये। ऐसै रूढि जाननी। जो ऐसे न मानिये तो गर्भ धारण क्रियाहीकू प्रधान मानिये तो वाल स्त्री तथा वृद्धस्त्री तिर्यंचनी मनुष्यणी तथा देवांगना तथा कार्मण काययोग विषै अतरालमें तिष्ठती स्त्रीनिकै गर्भ धारण नाही, तव स्त्री पणाका नाम न ठहरै। तथा पुत्रादिक उपजाये विना इनिका पुरुष पणाका नाम न ठहरै। तातै उहां नाम विषै रूढी ही प्रधान है ॥ वचनिका पृष्ठ ३६४ (१) यौगिक-धातु और प्रत्यय से समझ पडने योग्य अर्थको वतलाने हारा शब्द अर्थात् जो दो वा अधिक शब्दों से मिलकर बना हो जैसे शिवालय, जीवधारी, जलचारी, दयासागर, उसके तद्धित, कृदन्त, समास तीन भेद है

त एते त्रयो वेदाः शेषाणां गर्भजानां भवन्ति ॥ य इमे जन्मयोनिशरीरलिंगसम्वन्धाहित-विशेषाः प्राणिनो निर्दिश्यन्ते देवादयो विचित्रधर्माधर्मवशीकृताश्चतसृषु गतिषु शरीराणि धारयन्तस्ते किं यथाकालमुपभुक्तायुषो मूर्त्यन्तराण्यास्कन्दन्ति, उतायथाकालमपीत्यत आह-

नपुंसक वेदको ईंटकी अग्निके अर्थात् अवेकी अग्निके समान मानाहै सारांश यहहैकि पुरुषकी कामाग्नि फूंसकी अग्निके समान जल्दी शांत होजाती है। अंगारकी अग्नि गुप्त और कुछ ठहरनेवाली होती है। इसलिये स्त्रीकी कामाग्नि कुछ कालतक ठहरनेवाली होती है। जहां पर ईंट पकाई जाती है उस भट्टेकी आग बहुत कालतक रहती है और सर्वदा धधकती रहती है इसलिये नपुंसककी कामाग्नि अधिक कालतक रहती है।

ते१।३ एते१।३ त्रयः१।३ वेदाः१।३ शेषाणाम्६।३ गर्भजानाम्६।३ =सो ये तीन (स्त्री–पुरुष-नपुंसक) लिंग अवशेष जे गर्भज उनके

भवन्ति T ये१।३ इमे१।३ जन्म–योनि–शरीर–लिंग-सम्वन्ध- =होते हैं ॥ जो ये जन्म, उत्पत्तिस्थान (=योनि), शरीर और वेदोंका सम्वन्धकरि

आहित-विशेषाः १।३ प्राणिनः १।३ देव-आदयः१।३ =ग्रहणकिये है (=आहित)भेद प्रभेद (=विशेष) जिननें ऐसे प्राणी देवादिक

निर्दिश्यन्ते T विचित्र-धर्म–अधर्म–वशीकृताः१।३ =दिखाये गये है वा उल्लेख किये गये हैं ते नानाप्रकारके पुन्य और पापोंके वशीभूत

चतसृषु७।३ गतिषु७।३ शरीराणि२।३ धारयन्तः१।३ =चारोगतिमें शरीर धारणकरनेवाले

ते१।३ किम्१।१ उपभुक्त–आयुषः१।३ यथाकालम्* =क्या वे पूर्ण भुज्यमान आयुवाले होते है और ठीक समयपर (=यथाकालम्)

मूर्त्यन्तराणि२।३ आस्कन्दन्ति T =अन्य वा दूसरे शरीरोंको धारणकरते है अथवा ग्रहणकरते हैं अर्थात् वे देव, मनुष्य, तिर्यंच नारकी,आदि जितनी आयु बांध चुके हैं उतनी आयुके पूर्णहोजानेपर वर्तमान शरीरको छोड़कर-मृत्युपानेपर दूसरे शरीरोंको धारण करते हैं

उत*अयथाकालम्*अपि*इति*अतः*आह T =वा विना आयु पूर्णकिये भी(अन्य शरीरोंको धारण करते हैं) इसलिये[1]कहते हैं कि

(१) स्मरण रहै कि त्रेपनवां सूत्र का अर्थ कठिन है बड़े ही परिश्रम और अन्वेषण से लिखा गया है उस को बहुत ध्यान पूर्वक पाठकों को पढ़ना चाहिये नही तो कुछ इच्छित परिणाम न होगा॥ कोई पाठक यदि इसपर भिन्न प्रकाश डाले तो वे मुझको कृपया सूचितकरें ॥

औपपादिकचरमोत्तमदेहाऽसंख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः॥५३॥

सूत्रम्—औपपादिकचरमोत्तमदेहाऽसंख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः ॥ ५३ ॥

(द्वितीयपाठ[१])औपपादिकचरमदेहाऽसंख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः ॥ ५३ ॥

(१) सर्वार्थ सिद्धिवृत्ति प्रथम संस्करण पृष्ठ १६३, १६४ और द्वितीय आवृत्ति पृष्ठ११३ में " चरमदेहा इति वा पाठः" अर्थात् "चरमोत्तम देहाः" के स्थानमें विकल्पकरिके " चरमदेहाः" ऐसा पाठ है। शेषपाठ एक है। तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ १११ में " चरमदेहा इति केषांचित् पाठः" अर्थात् "चरमदेहाः" ऐसा पाठ कितनोंका है। 'चरमोत्तमदेहेति अस्मिन् स्थाने चरमदेहेति केचित् पठतीति' = 'चरमोत्तमदेहा 'ऐसे इस स्थानमें चरमदेहा ऐसा कोईएक पाठ मानते हैं। श्रुतसागरीटीका ॥ भावार्थ "चरमोत्तमदेहाः" के स्थानमें "चरमदेहा" उपर्युक्त सूत्रमें पढा जावेगा इसलिये शेषपाठ एक ही रहा ॥ द्वितीय पाठ वही हुआ जो हमने ऊपर लिखा है।

(२) सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें ' औपपातिकचरमदेहोत्तमपुरुषासंख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुष " ॥ ५३ ॥ ऐसा पाठ है। सूत्र संख्या ५२ वीं है॥ औपपादिक' के स्थानमें 'औपपातिक' है। चरमोत्तमदेहा' वा 'चरमदेहा.' के स्थानमें 'चरमदेहोत्तमपुरुषाः' है। शेषपाठ एकसा है॥ इससूत्रके तीन पाठ होनेपर भी अर्थ अन्तमें सबका एकसा है पाठ भेद होनेसे अर्थ भेद नहीं हुआ क्योंकि उपर्युक्त दो पाठोंमें "चरमदेहा." और ' चरमोत्तमदेहा " मेंसे "चरमदेहा " का अर्थ, चरमशरीरी, अन्तिमशरीरवाले, उसीदेहसे मोक्षजानेवाले, तद्भवमोक्षगामी. जो वर्तमान शरीर है वह संसारमें रहनेका चरम (= अन्तिम) शरीर है अर्थात् इसी देह वा शरीरसे मोक्षकोजावेंगे, इसी शरीरसे सिद्ध होजावेंगे ऐसा है ॥ तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक पृष्ठ३४३ में "उत्तमग्रहण चरमस्यानुत्तमत्वव्युदासार्थं,, = सूत्रमें उत्तम (शब्द) का ग्रहण है सो चरमी की अश्रेष्ठताके निवृत्तिके लिये है अर्थात् जो चरमी होगा वह उत्तम शरीरका धारी अवश्यहोगा भावार्थ चरमीके वा तद्भवमोक्षगामीके सदैव उत्तम (वज्रवृषभनाराचसंहनन और समचतुरस्र संस्थानयुक्त) शरीर अवश्यहोगा इससे यह परिणाम निकला कि चरमदेहधारी (= चरमदेहाः) सदैव उत्तम शरीरका धारक होगा। पं०गजाधरलालजी पृष्ठ ७६५ तत्त्वार्थराजवार्तिक संस्थाद्वारा प्रकाशितमें लिखते हैं कि "वास्तवमें चरम शरीरका अर्थ यही है कि अब दूसरा शरीर धारण नहीं करना होगा उसी शरीरसे मोक्ष प्राप्तहोजायगी इसीलिये जो शरीर मोक्षका साक्षात कारण है वह स्वयं उत्तम है उसकी उत्तमता प्रगट करनेके लिये किसी भी शब्दकी आवश्यकता नहीं इसलिये वार्तिककारने चरमदेहा. इति केषांचित् पाठ ऐसाभी कहा है ॥ इसलिये सूत्रमें जो 'उत्तम' शब्दका उल्लेख कियागया है वह केवल चरम शरीरके स्वरूप प्रगट करनेके लिये है" ॥ 'चरमोत्तमदेहा' वाक्यमें उत्तम शब्द उसी प्रकारसे अधिक है जैसे कि प्रकाश्यमान' शब्द 'प्रकाश्यमान सूर्य' में व्यर्थ है क्योंकि सूर्य तो स्वयम् ही सप्रकाशहै उसी प्रकार चरमदेह तो स्वयम् ही उत्तमहै ऐसा कोई चरम देह है ही नहीं जो अनुत्तम होता हो॥ इसलिये हमने अनेकतर विद्वानोंके मतानुकूल 'उत्तम' शब्दको अनावश्यकीय माना है ॥

"एभ्य औपपातिकचरमदेहासंख्येयवर्षायुर्भ्य शेषा मनुष्यास्तिर्यग्योनिजाः सोपक्रमा निरुपक्रमाश्चापवर्त्यायुषोऽनपवर्त्यायुषश्च भवन्ति" = इनऔपपातिक, चरमदेह, और असंख्येयवर्ष आयुष्वालोंसे शेष मनुष्य तथा तिर्यग्योनिज जो उपक्रमसहित तथा उपक्रमरहितहैं वे अपवर्त्य आयुष्वाले और अनपवर्त्य आयुष्वाले भी होते ह ॥ सभाष्य०पृष्ठ ६१ ॥ इससे ये फलनिकला कि जैसे हमारे यहां देवनारकी, चरमशरीरी, भोगभूमिके मनुष्य तिर्यंच और कुभोगभूमियां ये अकाल मृत्युवाले नहीं होते आयुको परिपूर्णकरके ही वर्तमान शरीरका त्यागन करतेहैं उसीप्रकार श्वेताम्बर आम्नायके

सूत्रार्थः—औपपादिक— =उपपाद जन्मसे उत्पन्न होनेवाले अर्थात् चारों प्रकारके देव और समस्त नारकी

चरम-उत्तम १-देहाः३।१— =अन्तिम उत्कृष्ट शरीर वाले,अन्तिम श्रेष्ठशरीरकेधारक,अंतकी पर्यायवाला उत्तम शरीर वा देह अर्थात् चरमोत्तम शरीरी,तद्भवमोक्षगामी,पूर्ण होगा संसार जन्म जिनका उसी उत्तम देहसे उसी जन्ममें,चरमोत्तम शरीरी,

असंख्येय—वर्ष—आयुपः३।१=असख्यात वर्षकी आयुवाले, अर्थात् उत्तम,मध्यम,और जघन्य भोग भूमिके मनुष्य तिर्यंच और कुभोग भूमियां

अन्—अपवर्ति—आयुपः३।१=परिपूर्ण आयुवाले होते हैं अर्थात् देवनारकी,चरमोत्तम शरीरी, भोगभूमियां कुभोगभूमियां इन सबकी आयु विष,शस्त्र, कंटक,अग्नि,जल,सर्प,अजीर्ण भोजन,वज्रपात,शूली,हिंसक जीव और वज्रादिके अभिघात आदिसे तथा द्वन्द्वसे (=उपद्रवसे) आरम्भहोनेवाले क्षुत् पिपासा और शीतोष्णसे भी न्यून नहीं होती है अकाल मृत्यु इनकी नहीं होती है ॥

द्वितीयपाठः—औपपादिक- =उपपाद संज्ञक जन्ममें उत्पन्न होनेवाले अर्थात् समस्त देव और समस्त नारकी

चरमदेहाः३।१ (इत्यादि) =अन्तिम शरीर वाले,उसीभवसे मोक्ष जानेवाले (जिस देहसे सिद्ध होते हैं वह चरम देह वा शरीर कहलाताहै) (उपर्युक्त अर्थोसे प्रगट है कि "चरमदेहा" का वही अर्थ है जो "चरमोत्तमदेहा" का है क्योंकि उत्तम शरीर वाले ही तद्भव मोक्षगामी हो सक्ते हैं अन्य नहा और चरमदेहवाले कर्मभूमिके मनुष्य ही होते हैं अन्य देवादिक नहीं हो सक्ते हैं । शेप दोनों पाठ एक हैं अतः उनका अर्थ भी एक है ॥ चरम=अंतकी पर्याय, चरमदेह=अंतिम पर्याय वाला शरीर वा देह ।

सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रके अनुकूल येही अनपवर्त्य आयुष्वाले होते हैं॥ इसमें सदेहनहीं कि इसी भाष्यमें 'औपपातिक, चरमदेह अर्थात् अन्तिम शरीरवाले उत्तमपुरुप और असख्येयवर्प आयुष्वाले ये चारों अनपवर्त्य (अपवर्तन न करने योग्य) आयुष्वाले होते हैं ॥ ऐसा उल्लेख है परन्तु इस वाक्यके नीचे उपर्युक्तभाष्य दिया है उससे इसका निपेध होता है क्योंकि जो पश्चात् कहा जाता है वही ठीक समझाजाता है और यह भी है कि सुभौमचक्रवर्ति और अंतिम ब्रह्मदत्त-चक्रवर्ति और वासुदेव अंतिम अर्द्धचक्री तीनोंकी आयु अपवर्त्यहोकर अर्थात् घटकर न्यूनहोकर अकाल मृत्यु हुई थी और ये तीनों उत्तमपुरुप थे ॥

(१) हम अभी लिखचुके हैं कि 'उत्तम' शब्द सूत्रमें लानेसे वही अर्थ होता है जो न लानेसे इसलिये 'उत्ताम' शब्दकी सूत्रमें आवश्यकता नहीं हैं इस'उत्ताम' शब्दके कारण भाष्यकारोंको, अनुवादकोंको तथा टीकाकारोंको बहुतकुछ अपने अपने भाष्य टीका और अनुवादोंमें इस 'उत्ताम' शब्दके सबधमें लिखना पडा है। प्रथम इसके कि हम इसपर अपने स्वतन्त्र विचार तथा शास्त्रानुकूल कुछ उल्लेख कर इसबातको लिखदें कि किन किन महानुभावों ने इसको किस किस शब्दका विशेपण और विशेष्यमाना है ॥

(क) चरम-उत्ताम विशेपण हैं देह शब्द विशेष्य है (ख) में उत्ताम शब्द विशेपण है चरमदेह विशेष्य है ॥ (ग) मे चरम शब्द विशेपणहै उत्ताम शब्द विशेष्य है (घ) मे उत्ताम शब्द विशेपण है चरम शब्द विशेष्य है ॥

(क) "चरम उत्तमो देहो येषां ते चरमोत्तमदेहाः" सर्वार्थसिद्धिः पृष्ठ १९३, तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक पृष्ठ ३४३, तत्त्वार्थराजवार्तिकम् पृष्ठ १११ वार्तिक ७	"ऐसा चरम उत्तम देह जिनकै होय ते चरमोत्तम देह कहिये" जयचदजी वचनिका पृष्ठ २९४ चरमोत्तम है शरीर जिनका वे चरमोत्तम देह वाले हैं। (चरमोत्तम ये देहके विशेषण हैं अकेला उत्तम शब्द देह का विशेषण नहीं है क्योंकि यदि उत्तम शरीर वाले अनपवर्त्य आयुवाले होते तो ब्रह्मदत्त चक्रवर्ति और वासदेव अर्द्धचक्रीकी अकाल मृत्यु न होती
(ख) चरमस्य देहस्योत्कृष्टत्वप्रदर्शनार्थमुत्तम-ग्रहण नार्थान्तरविशेषोऽस्ति ॥ सर्वार्थसिद्धि पृष्ठ१९३ तस्य (=चरमस्य-देहस्य) उत्तमत्वप्रतिपादनर्थत्वात् (उत्तमग्रहणम्। राजवार्तिकम्पृष्ठ०१११वार्तिक ६ देखो)	"इहां चरमदेहका उत्तम विशेषणहै सो उत्कृष्टपनाके अर्थि है,अन्य अर्थ नाही है" जय०वच०२९५ अन्तके शरीरकी श्रेष्ठताके प्रतिपादनके लिये उत्तम (शब्दकासूत्रमें)ग्रहण है अन्यअर्थविशेषके लिये नहीहै, "उस चरमदेहके उत्तम पणांको प्रतिपादनार्थ पनाहैयातें", सूत्रमेंउत्तमशब्दकाग्रहणहै अर्थात् वो चरम देह ही सबमें उत्तिम है सो अर्थ कहिये है ॥ भावार्थ चरम देह समस्त देहोंमें उत्तम देह है इस तात्पर्यके प्रगट करनेके लिये सूत्रमें उत्तम शब्दका ग्रहणकियागयाहै ॥
उत्तमग्रहण चरमस्य-अनुत्तमत्व-व्युदासार्थम् (तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकम् पृष्ठ ३४३)	=(सूत्रमें)उत्तम(शब्द)का ग्रहण है सो चरमीके अश्रेष्टताके निवृत्तिके लिये है अर्थात् जो चरम-शरीरीहोगा वह उत्तम शरीरका धारी अवश्यहोगा, चरमीके वा तद्भव मोक्ष गामीके उत्तम शरीर अवश्य होगा भावार्थ चरम देहधारीके अनुत्तमपना होताही नहीं इसलिये उत्तम शब्द सूत्रमें लाये हैं। इसलिये यहा 'उत्तम' शब्द विशेषणहै चरमदेह' विशेष्यहै।
(ग) चरमविशेषणमुत्तमस्याचरमस्य निवृत्त्यर्थ चरमविशेषणम्-उत्तमस्य-अचरमस्य-निवृत्ति-अर्थम्। तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिकम् पृष्ठ ३४३	चरम विशेषण उत्तम शब्दका है सो अचरम के निवारण के लिये है अर्थात् उत्तम देहधारी हो =और चरम देहधारी न हो तो वह अनपवर्त्य आयुवाला न होगा जैसे सुभोमचक्रवर्ति और अन्तका ब्रह्मदत्त चक्रवर्ति और अन्तके अर्द्धचक्री वासदेव (कृष्णजी) तथा इनके समान और भी जिनका उत्तम शरीर तो था परतु चरम शरीर नथा उनकी बाह्य कारणोंसे अकाल मृत्यु हुई आयुका अपवर्तन होगया ॥ यहा 'चरम' शब्द विशेषणहै उत्तम' शब्द विशेष्य है
(घ)अन्त्यचक्रधरवासुदेवादीनामायुषेऽपवर्तदर्शनादव्याप्ति (तत्त्वार्थराजवार्तिकम् सूत्र५३ वार्तिक , ६ पृष्ठ १११)	('उत्तम देहधारी अनपवर्त्य आयुवाले होते हैं' इसपर प्रश्न करताहै कि यह ब्रह्मदत्त अंतिम चक्रवर्ति और कृष्ण अर्द्धचक्रवर्ति सुभोमचक्रवर्तिइत्यादिमें नहीं घटताहै नहीं लागूहोताहै क्योंकि तीनों उत्तम देहके धारी होने पर भी अकाल मृत्युको प्राप्तहुये उत्तरमें कहते हैं कि
नवा चरमशब्दस्योत्तमविशेषणत्वात् ॥७॥ (देखो तत्त्वार्थराजवार्तिकम् सूत्र ५३, वार्तिक ७ पृष्ठ१११)	=यह दोष नहीं क्योंकि चरम शब्दका उत्तम शब्द विशेषण है। इसलिये जो चरम और उत्तम देहका धारक होगा वही अनपवर्त्य आयुवाला हो सकताहै किन्तु जो केवल उत्तम देहका धारक होगा वह अनपवर्त्य आयुवाला नहीं हो सकता सुभौमचक्रवर्ति, ब्रह्मदत्त-चक्रवर्ति कृष्णजी आदि उत्तम देहके धारी थे चरम शरीरी नहीं थे इससे तीनोकी अकालमृत्यु हुई ॥

प्रथम इसके कि हम इस वातपर विचार करें कि सूत्रका यथार्थ पाठ क्या है विद्वद्वर्य प० भूदरदासजीने इससूत्रका अर्थ अपने रचित 'चर्चा
समाधान में 'कियाहैउसपर कुछ समालोचना करेंगे। शब्दश उनका लेख इसप्रकार है कि"औपपादिक चरमोत्तमदेहा असंख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुष.'
अर्थ-एते अनपवर्त्यायुषा भवन्ति । इतने अनपवर्त्यायुवाले जानना । जिनकी आयुका अपवर्तन कहिये फेरफार न होय समय समयजो पूरी होइ ।
विष शस्त्रादिके योगकरि उपक्रमसौं पूरी न होइ ते अनपवर्त्यायुवाले जानना । ते कौन हैं? औपपादिक चरमोत्तमदेहा असंख्येय वर्षायुषः-औपपादिक
कहिये देव नारकी चरमोत्तमदेह कहिये तीर्थंकर असंख्येयवर्षायुष कहिये भोग भूमिके तथा कुभोगभूमिके जीव। भावार्थ चरमोत्तमदेहवाले तीर्थंकर
यातें कहे कि चरमदेहवाले गुरुदत्त पाडवादिक उपसर्गकरि मुक्त हुये। उत्तमदेहवाले सुभौमचक्री तथा ब्रह्मदत्तचक्रीकी अकाल मृत्यु हुई। जरत्कुमारके
बाणसू कृष्णजी की अपमृत्यु हुई । इत्यादि सकल चक्री अर्धचक्रीनिके भी अनपवर्त्यायुका नियम नाहीं। यह कथन न्याय कुमुद चन्द्रोदय नाम शास्त्रहै
तथा राजवार्तिकालंकार शास्त्र है तहां कहा है। यातें चरमोत्तमदेह तीर्थंकरकी ही है । इस सूत्रविषे यह सिद्धान्त हुआ – देव नारकी तीर्थंकर
भोगभूमिके जीव इनके विष शस्त्रादिक योग से आत्रफलके पाकवत् आयुकी उदीरणा न होइ । इन विना कर्मभूमिके मनुष्य तिर्यचनिविषे
होइ । जैसे प्रदीप तेलसे भरा होइ पवनके जोगसे वुझ जाय तैसे पूर्ण आयुकी स्थितिका च्छेद निमित्तान्तरसे होइ जाय" ॥ राजवार्तिकमें
'चरमोत्तमदेह' से तीर्थंकर लिये गये हैं यह लेख हमको नहीं मिला है ॥
उपर्युक्त लेखसे तथा हमसे अन्य अन्य विद्वानोंसे जो वार्तालाप हुआ उससे यह परिणाम अथवा फल निकलताहै कि'चरमदेह'के अर्थके सबंधमें
विद्वानोंके दो मत हैंकुछ कहते हैं कि चरमदेह वाले तद्भव मोक्ष गामी तो होते हैं परंतु उनकी अकाल मृत्यु हो जाती है जैसे अर्जुन,भीम,युधिष्ठर,
इससे इस सूत्रमें'उत्तम'विशेषण'चरम'का है कि'चरमोत्तम'देह वालोंकी अकाल मृत्यु नहीं होतीहै,परंतु'चरमदेह' वालों की अकाल मृत्यु हो जाती
है ॥ अन्य विद्वज्जनों का मत है कि जब सर्वार्थसिद्धि पृष्ठ १६४ और तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ १११ 'चरमदेहा इति वा पाठ.' 'चरमदेहा इति
केषाचित्पाठः' इस सूत्रके अन्य पाठ क्रमसे दिये हैं तब यदि हम 'चरमदेह' वालोंकी अकाल मृत्यु मानलें तो उपर्युक्त पाठ व्यर्थ हुये जाते हैं
और कहते हैं कि यदि चरमदेहवालोंकी अकाल मृत्यु मानें तो समुद्घात तो वह कर नहीं सकते, हैं क्योंकि एक साथ वा तत्कालही उपसर्ग
उपद्रव इत्यादिसे अकाल मृत्यु हो जाती है और यह नियम है कि 'आयुके छह मास शेष पीछे केवल ज्ञान उपजे तेते मुनी नियमथकी समुद्घात
करैं हैं और जिनके छह मास पूर्व केवल ज्ञान उपजा हो ते समुद्घात करै भी और नहीं भी करै करनेको सर्वथा नियम नाहीं" और वलदेकर
कहते हैं कि जब समुद्घातनकरेंगे तो क्या विना वेदनीय, गोत्र और नामकर्मके खिपायेहुये मोक्षपदको प्राप्त होंगे (उत्तर में कहते हैं कि) उपसर्गमें
केवल ज्ञानके पश्चात् केवलि समुद्घातके लिये कोई वात बाधक नहीं जान पड़ती है ॥ उक्त समुद्घातमें आठ ही समय लगतेहैं जो बहुत थोड़ा,
काल है क्योंकि "असख्यात समय एक आवली वखानी ज्ञानी सख्य आवली मिलें तें होत एक स्वांस है" ॥ यदि 'चरमदेहा इति वा पाठः
(='चरमोत्तमदेहा.'के स्थानमें चरमदेहा ऐसा पाठ विकल्पसेहै) भाष्यकारोंके मतमें न होता तो"प०भूदरदासजीका समाधान हृदयको बहुत चुवता
हुआ होता क्योंकि 'चरमदेहवालोंमें उक्ततीन पांडवोंकी उपसर्गसहनकर मोक्षहुई अकाल मृत्युहुई यद्यपि वे चरम शरीरीथे और उत्तमदेहधारीयोंमें
श्रीकृष्ण ब्रह्मदत्तचक्रवर्ति सुभोमचक्रवर्ति इत्यादिकी अकाल मृत्युहुई इससे न तो केवल चरमदेहवाले और न केवल उत्तमदेहधारी अनपवर्त्य आयु
वाले होसके है केवल वेही अनपवर्त्य आयुवाले होसकते है जिनमें दोनों गुणका (चरमदेहत्व और उत्तमदेहत्वका) समावेश हो ऐसे तीर्थंकर
और अन्य भी जीव तीर्थंकरोंके अतिरिक्त होसके है क्योंकर यदि तीर्थंकरोंसेही उमास्वामीका अभिप्राय होता तो सूत्र ऐसाहोता और साथही
लघु और स्पष्टता लिये हुये भी होजाता कि" औपपादिक तीर्थंकराऽसख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः" ॥ इसलिये यहांपर अब प्रश्नयह है कि तीनो

(चरमदेहाः, चरमोत्तमदेहाः, चरमदेहोत्तमपुरुषा)पाठों में से कौनसा पाठ उमास्वामी कृत है। वास्तवमें हम इस प्रश्नका उत्तर देनेमें असमर्थ हैं क्योंकि इसके ढूढनेके लिये हमारे पास न तो साधन ही है और न समय ही है परतु निम्न लिखित हेतुओंसे यह जान पड़ताहै कि दोनों आम्नायोंमें "चरमदेहाः"सव पाठोंसे उत्तम और सूत्रके वनानेकी विधिके अनुकूल है और यही पाठ उमास्वामी कृत होना चाहिये—क्योंकर
(च)'चरमदेहा'इस पाठ का हमारे यहां सर्वार्थसिद्धिवृत्ति, तत्त्वार्थराजवार्तिक, श्रुतसागरीटीका तथा जयचद्रजीकृता वचनिकामें भी उल्लेख है और हम सिद्ध करचुके हैं कि"चरमदेहाः' का वही अर्थ है जो"चरमोत्तमदेहा"का श्वेताम्वर आम्नायकी नीनेकी टिप्पणीसे प्रतिभास होताहै कि उनके यहां भी यथार्थमें'चरमदेहाः' पाठ था नकि 'चरमदेहोत्तमपुरुषा " जव'चरमदेहाः का वही अर्थ है जो 'चरमोत्तमदेहा ' का तव आचार्य 'उत्तम'शब्दका प्रयोग निष्कारण क्यों करते ॥इस औपपातिक इत्यादि सूत्रमें(श्वेताम्वरीय टिप्पणी यहहैकि)"उत्तम पुरुषसे यहां तीर्थंकर चक्रवर्ती वलदेव, तथा वासुदेव आदिकका ग्रहण है। कोई कहते हैं कि सूत्रमें उत्तमपुरुषका ग्रहण नहीं है तो तीर्थंकरादिकका ग्रहण कैसे होगा ? इसपर कहते हैं कि चरमदेह ग्रहणसे तीर्थंकरादिकका ग्रहण होगा। क्योंकि चरमशरीरी उत्तमपुरुष अवश्य होते हैं और उत्तम पुरुषोंको चरमदेह प्राप्य है। इस हेतुसे उत्तम पुरुष ग्रहण अनार्ष है। दोनों प्रकारके भाष्य है। अनिन्दित होनेसे प्रथम उत्तम पुरुष ग्रहण किया और तीर्थंकरादि उसका विवर्णकिया और पुन उत्तर कालमें उत्तम पुरुषका ग्रहण किया, परन्तु निरुपक्रम सोपक्रम कथनसे यह सदेह भाष्यसे होता है, अतएव उसी भाष्यकारके श्रावक प्रज्ञप्तिमें उत्तम पुरुष ग्रहण किया है। यहा भी यही समझना चाहिये "
(छ)श्वेताम्वर और दिगम्बर सम्प्रदायोंका चरमदेहा'पाठ मिलता है,और"चरमोत्तमदेहाः"और"चरमदेहोत्तमपुरुषाः" पाठ मिलान नहीं करते ॥
(ज) 'उत्तम' शब्दके लानेसे अर्थमें वहुत कठिनता होजाती हे और अभिप्राय वा परिणाम कुछ भी नहीं निकलता क्योंकि कोई ( )'चरम उत्तम' शब्दोंको देहका विशेषण करते हैं, ( ) कोई उत्तम शब्दको 'चरम देह'शब्दोंका विशेषण कहते हैं ( ) कोई चरम शब्दको उत्तम शब्दका विशेषण वतलाते हैं ( ) कोई उत्तम शब्दको चरम शब्दका विशेषण कहते हैं (देखो पृष्ठ १२८)इतनी कठिनाईयां उमास्वामी'उत्तम' शब्दलाकर क्योंउपजाते
(झ) असख्येयसमायुष्काश्चरमोत्तममूर्त्तयः। देवाश्च नारकाश्चैषामपमृत्युर्न विद्यते॥ श्री अमृतचन्द्रसूरिकृत तत्त्वार्थसारकाश्लोक ॥ १३५ वां ॥
प० वशीधर शास्त्रीजीने उपर्युक्त श्लोकका अनुवाद करनेमें हमारी समतिके अनुकूलकि 'चरमदेह वाले' सव अनपवर्त्यआयुवाले होते हैं इस प्रकार अनुवाद किया है कि 'असख्यात वर्षके आयुवाले भोगभूमिज मनुष्य व तिर्यंच, कर्म भूमिके उसी जन्मसे मुक्त होनेवाले मनुष्य तथा, देव,नारकी,–इतने जीवोंकाजो आयु नियत हुआ हो उसका शस्त्रादि निमित्तों से अपघात नहीं हो सकता है। यद्यपि अन्तकृत केवली आदि कुछ ऐसे हुए हैं कि जिनका शरीर उपसर्गों से विदीर्ण किया गया था परन्तु उन्हें हम अनपवर्त्यायुवाले ही मानतेहे। सूत्रकारने तथा इस ग्रंथके कर्ताने भी उन चरमशरीरी जीवों के आयुको अनपवर्त्य लिखा है कि जो उत्तम हों। परन्तु उत्तमका अर्थ चरमशरीरी की केवल प्रशसा है। अधिक कुछ भी नियम नहीं समझना चाहिये मोक्षगामी जीव सव ही अनपवर्त्यायुवाले मानने चाहिये ॥ शेषजीवों का घात हो सकता है ॥ जो लोग उत्तमका अर्थ मोक्षगामियोंमेंसे त्रिषष्ठिशलाकावाले अथवा कामदेवादि पदवी युक्त ऐसा करते हैं वह ठीक नहीहै क्योंकि "चरमांगधरावेतो नानयोः काचन क्षति "यह वचन श्री जिनसेनाचार्यके महापुराण पर्व ३६ में लिखाहै। इसका अर्थ यह है कि भरत और वाहुवली ये दोनो मोक्षगामी जीव हैं। इनका कुछ नहीं विगड सकता है। केवल चरमशरीरी होनेका कारण दिखाकर अक्षय वतानेसे भी यही वात सिद्ध होती है कि यावत् चरमशरीरी जीव कीअनपवर्त्यायुही होनी चाहिये। विष,वेदना, रक्तक्षय,भय,शस्त्रघात,श्वासावरोध,तथा आहार निषेध ये असमय मरनेके कारण हैं (प०)वशीधर अनुवादित तत्त्वार्थसार मुद्रित पृष्ठ ३२ ६३ ॥'उत्तम' शब्द के सवन्ध में विद्वज्जन विशेष खोज करके कृपया मुझे सुचित करें। औरभी

औपपादिका व्याख्याताः देवनारका इति ॥ चरमशब्दोऽन्त्यवाची । उत्तम उत्कृष्टः । चरम उत्तमो देहो येषां ते चरमोत्तमदेहाः। विपरीतसंसारास्तज्जन्मनिर्वाणार्हा इत्यर्थः॥ असंख्येयमतीतसंख्यानमुपमाप्रमाणेन पल्यादिना गम्यम्

वृत्त्यनुवादः-औपपादिकाः[1/3] व्याख्याताः[1/3] देव-नारकाः[1/3] इति*=उपपाद जन्मसे उत्पन्नहोनेवाले(४६वांसूत्रमें)कहेगये हैं (वे) देव नारकी हैं
चरमशब्दः[1/1] अन्त्यवाची[1/1], उत्तमः[1/1] उत्कृष्टः[1/1] =(सूत्रमें)चरम शब्द अन्तका(=अन्त्य) बोधकहै उत्तम है सो उत्कृष्टहै, श्रेष्ठ है
चरमः[1/1] उत्तमः[1/1] देहः[1/1] येषाम्[6/3] ते चरमोत्तम-देहाः[1/3] =अन्तिम श्रेष्ठ है शरीर जिनका वे चरमोत्तम देहवाले हैं अर्थात् चरमोत्तम है शरीर जिनका वे चरमोत्तम देहके धारी हैं।देहके विशेषण'चरमउत्तम'शब्दहैं॥
विपरीत-संसाराः[1/3] तत्-जन्म-निर्वाण-अर्हाः[1/3] =छूटनेवाला हैसंसार जिनका उसीजन्ममेंवाभवमें मोक्षहोने योग्यहैं(=अर्हाः[1/3])जे
इति*अर्थः[1/1];अतीत-संख्यानम्[1/1]॥असंख्येयम्[1/1]॥ =ऐसा अभिप्राय है । गणनासे रहित है सो असंख्यात है
उपमा-प्रमाणेन[3/1]॥ पल्यादिना[3/1]॥ गम्यम्[1/1]॥ =उपमाप्रमाण(=उत्कृष्टप्रमाणित)पल्यआदिसेअर्थात्अद्धापल्यादिकसेजानीजायहै

(ञ)जिसमे थोड़े अक्षर हो जो संदेहरहित अर्थवाला हो सारगर्भित और वृथा शब्दसे रहित हो उसको सूत्र कहतेहैंजैसाकि निम्न लिखित श्लोकसे विदित है और वैयाकरणको यदि सूत्रके रचनेमें आधा वा एक मात्राका भी लाभ होजावै तौ उसको पुत्रके जन्म सदृश हर्ष होता है अब जैसाकि निम्न सूत्र उल्लेख करता है जितने उपर्युक्त गुण सूत्रमे होना चाहिये वे समस्त सूक्ष्मदृष्टिसे देखनेपर "चरमदेहा" पाठमे गर्भित हैं क्योंकि 'उत्तम' शब्दके नलानेसे सूत्रका प्रथम गुण"थोड़े अक्षर" की निष्पत्ति होजाती है ॥ इसी शब्दको पाठमे न लानेसे सूत्रका अर्थ सर्वथा संदेहरहित, सीधा साधा,स्पष्ट और सरल होजाता हैअर्थ करनेमे दूसरोंको समझानेमें कुछ भी संदेह नहीं रहता । एसैं 'चरमदेहाः'पाठ सूत्रका द्वितीय गुण कि संदेहरहित अर्थ वाला हो पूर्ण करता है । उत्तम शब्दके निकालदेनेसे सार-सत गर्भित सूत्ररहजाता है इसप्रकार सूत्रका तीसरा गुण पूर्ण हुआ जब उत्तमशब्द पाठसे पृथक् करदिया तब व्यर्थ और निष्प्रयोजनीय भाग निकल जाताहै और सूत्रके चौथेगुणकी कि सूत्रव्यर्थ शब्दोंसे रहितहो पूर्णता हो जाती है ॥

श्लोक ॥ १ ॥ अल्पाक्षरमसंदिग्ध (=अल्पअक्षरम्[1/1]॥ असंदिग्धम्[1/1]॥)=थोड़े अक्षरहों- संदेहरहित (अर्थयुक्त) हों
सारवद्विश्वतो मुख (=सारवान्[1/1] विश्वतः*मुखम्[1/1]॥)=सत वा सार गर्भितहो सर्वतः(=विश्वतः)श्रेष्ठ (=मुख्य) हो
अस्तोभमनवद्य च (=अ-स्तोभ[1/1]॥ अनवद्यम्[1/1]॥ च*)=निरर्थक शब्द(=स्तोभ)रहित [=अ] और[=च]दूषण वर्जितहो
सूत्रं सूत्रविदो विदुः [=सूत्रं[2/1]॥ सूत्रविदः[1/3]। विदुःT]=सूत्रज्ञाता [उसको] सूत्रकहते हैं ॥ १ ॥

श्लोक ॥ २ ॥ एको वाऽर्द्धमात्रायाः[=एकः[1/1]वा अर्द्धमात्रायाः[6/1]॥]=एक अथवा आधी मात्राका
सूत्रस्य कृतिलाघवे [=सूत्रस्य[6/1]॥कृति[7/1]॥लाघवे[7/1]॥]=सूत्रकी रचनामें लाभहोनेपर वा न्यूनहोनेपर
पुत्रजन्मोत्समस्तुल्यो[=पुत्र-जन्म-उत्सव[1/1]। तुल्यः[1/1]।]=पुत्रके जन्मके हर्षसमान वा पुत्रके जन्ममें हर्षहोनेके सदृश
वैयाकरणो मन्यते [=वैयाकरणः[1/1]। मन्यते T]=व्याकरणज्ञाता वा व्याकरण को जाननेवाला मानता है ॥ २ ॥

आयुर्येषां त इमे असंख्येयवर्षायुषस्तिर्यङ्मनुष्या उत्तरकुर्वादिषु प्रसूताः ॥ औपपादिकाश्च चरमोत्तमदेहाश्च असंख्येयवर्षायुषश्च औपपादिकचरमोत्तमदेहासंख्येयवर्षायुषः॥ बाह्यस्योपघातनिमित्तस्य विषशस्त्रादेः सति सन्निधाने ह्रस्वं भवतीत्यपवर्त्यम्। अपवर्त्यमायुर्येषां ते इमे अपवर्त्यायुषः । न अपवर्त्यायुषःअनपवर्त्यायुषः॥ न ह्येषामौपपादिकादीनां बाह्यनिमित्तवशादायुरपवर्त्यते इत्यय नियमः। इतरेषामनियमः॥ चरमस्य देहस्योत्कृष्टत्वप्रदर्शनार्थमुत्तमग्रहणं नार्थान्तरविशेषोऽस्ति ॥

आयुष् येषाम् ते इमे असंख्येय–वर्ष–आयुषः =आयु जिनकी ते ये असंख्यात वर्षकी आयुवाले
तिर्यङ्–मनुष्याः उत्तर–कुरु–आदिषु प्रसूताः =तिर्यंच और मनुष्य उत्तर कुरु आदि (भोगभूमि)विषैं उत्पन्न होते हैं (=प्रसूताः)
च औपपादिकाः च*चरमोत्तमदेहाः च* असंख्येय- =और औपपादिक और चरमोत्तमदेहाः और असंख्येय
वर्षायुषः औपपादिकचरमोत्तमदेहा– =वर्षायुष हैं । सो (सूत्रमें) औपपादिकचरमोत्तमदेह–
असंख्येयवर्षायुषः बाह्यस्य उपघात- =असंख्येयवर्षायुषः(इनका ऐसा द्वन्द्वसमास) हुआ । बाहिरके अभिघात (घातक)
निमित्तस्य विषशस्त्रादेः सति सन्निधाने ह्रस्वम् =निमित्तजे माहुर और शस्त्रादिकके वशमेंहोनेपर घटजाती
भवति । इति*अपवर्त्यम् अपवर्त्यम् आयुः– =है । ऐसा अपवर्त्य है । न्यून होजाती है आयु
येषां ते इमे अपवर्त्य–आयुषः =जिनकी ते इतने अपवर्त्य आयुवाले हैं
न*अपवर्ति-आयुषः अन्-अपवर्तिआयुषः =न्यून आयुके धारी नहीं हैं सो अनपवर्त्य आयुवाले हैं
न हि येषाम् औपपादिक-आदीनाम् =निश्चयसे(=हि)नहीं इन औपपादिक,चरमोत्तमदेहधारी,भोगभूमियोंकी,कुभोगभूमियोंकी
बाह्य-निमित्त-वशात् आयुः अपवर्त्यते । इति* =बहिरंग कारणोंके वशसे आयु न्यून होती है ऐसा
अयम् नियमः इतरेषाम् अनियमः =यह नियमहै।अन्य(जीवोंकी आयु)का नियम नहींहैअर्थात् देवनारकी,चरमोत्तमदेहधारी भोगभूमियोंके,कुभोगभूमियोंके अतिरिक्त अन्य जीवोंकीसमयपर मृत्युहो वा अकालमृत्युहोजावै कोई नियम नहींहै॥
चरमस्य देहस्य उत्कृष्टत्व–प्रदर्शन–अर्थम् =अन्तके शरीरकी श्रेष्ठताके प्रतिपादनके लिये
उत्तम-ग्रहणम् न*अर्थान्तर-विशेषः अस्ति । =उत्तम(शब्द)का(इससूत्रमें)उपादान है,अन्य(किसी) विशेष प्रयोजनके लिये नहीं है

चरमदेहा इति वा पाठः ॥ २ ॥

जीव[2]स्वभावलक्षणसाधनाविषयस्वरू[2]पभेदाश्च

=अथवा('चरमोत्तमदेहाः'केस्थानमें)'चरमदेहाः'ऐसा(भीसूत्रका अन्य प्रकारका)पाठ है

चरम-देहाः।इति॥वा॥पाठः। =चेतनके निजभाव वा स्वतत्वभाव (सूत्र१) चेतनके निजभावकेभेद (दूसरे से सातवां सूत्र तक)

जीवस्वभावः। जीवस्वभावभेदाः। =जीवका लक्षण अर्थात् वह चिन्ह जो जीवका भेदज्ञान अन्य पदार्थोंसे करासके(देखो आठवां सूत्र)

जीवलक्षणम्। =जीवका उपयोगरूप लक्षणके प्रभेद अर्थात् ज्ञानके आठ भेद और दर्शनके चार भेद(देखो सूत्र ९)

जीवलक्षणभेदाः। =जीवोंकी मर्यादा अथवा प्रमाण अर्थात् जीवोंकी संसाररूप और मोक्षरूप मर्यादा करना(देखोसूत्र१०)

जीवसाधनम्। =जीवके साधन वा उपकरणकेभेद अर्थात् दो मर्यादा जो ऊपर कहीगई हैं तिनके भेद

जीवसाधनभेदाः। (देखो सूत्र ११, २४, १२, १३, १४, १५, १६, १७, १८, १९, २२, २३)

=जीव (की इन्द्रियों) के विषय (देखो सूत्र २० और २१)

जीवविषयः। =जीव(की इन्द्रियों)के विषयभेद अर्थात्(i) शीत,उष्ण;रूक्ष, सचिक्कन; कठोर, कोमल; हलका, भारी;

जीव-विषय-भेदाः। ये स्पर्शविषयके आठ भेद है। (ii)तिक्त,कडु,कषायला, खट्टा और मीठा ये पांच रस विषयकेभेद हैं (iii)सुगंध,दुर्गंध दो गंधविषयके भेद है(iv)स्वेत,पीत,नील,अरुण,और कृष्ण वर्णविषयके पांच भेद हैं (v)अच्छी-बुरी-प्रिय-अप्रिय इत्यादिध्वनिऔरनादादिकयेशब्दविषयकेभेद हैं येसवसूत्र२०,२१मेंगर्भित हैं

जीवस्वरूप[2]।।च॥जीवस्वरूपभेदाः। =चेतनके निजभाव वा स्वतत्वभाव(सूत्र१)और(=च)चेतनके निजभावके भेद (दूसरेसे सातवां सूत्र तक)

---

(१) "जीवस्वभावलक्षणसाधनविषयस्वरूपभेदाश्च गतिजन्मयोनिदेहलिङ्गानपवर्तितायुष्कभेदाश्चाध्यायेऽस्मिन्निरूपिता भवन्ति इति सम्बन्धः" ये दोनो वाक्य कठिन और गभीररूपमे है इससे इनके पृथक् पृथक् पदच्छेद करके अर्थ किये गये है॥ (२) हमारी समझमें स्वरूप'शब्द इस वाक्यमें व्यर्थ और अधिक भूलसे छपगयाहै क्योंकि "स्वरूप च स्वभावश्च निसर्गश्चाथ वेपथु" अमरकोश वर्ग ८ श्लोक ३८ वां के प्रथमपादसे प्रगट है कि स्वभाव, स्वरूप और निसर्ग तीनों शब्द समानार्थक है और वेपथु' का अर्थ थरथराना वा कापनेका है। हस्त लिखित प्रतिमें भी यही पाठहै, उक्त 'जीवस्वरूप,जीवस्वरूपभेद'के वेही अर्थहैं जो इस जीवस्वभाव और जीवस्वभावभेद'के अर्थहैं जैसाकिअनुवादसे प्रगट है।यदि पूज्यपादस्वामी ने ही ऐसी रचना की है तो जब'स्वभाव'शब्द आरम्भमेंही ग्रहण कियाहै तो फिर स्वरूप शब्द क्यों लाये और किस अर्थ में लाये?॥पाठक निर्णयकरें

गतिजन्मयोनिदेहलिङ्गानपवर्तितायुष्कभेदाश्चाध्यायेऽस्मिन्निरूपिता भवन्तीति सम्बन्धः॥इति तत्त्वार्थवृत्तौ सर्वार्थसिद्धि-सञ्ज्ञिकायां द्वितीयोऽध्यायः॥

च॰गतिभेदाः १।३।	=(=च) और (जीव पुद्गलके) गमनके भेद (२५ से ३० सूत्र पर्यंत)
जन्मभेदाः १।३।	=(जीवके) नया शरीर धारण करनेके भेद (३१, ३३, ३४, ३५ सूत्र)
योनिभेदाः १।३। देहभेदाः १।३।	=(जीवके) उत्पत्तिके स्थान(नौभेद)बत्तीसवांसूत्र । शरीरोंकेभेद (३६से ४९सूत्र पर्यंत)
लिङ्गभेदाः १।३।	=लिङ्ग वा वेदोंके भेद (५०, ५१, ५२, सूत्र)
अनपवर्तित–आयुष्कभेदाः १।३।	=नहीं घटनेयोग्य वा न्यून होनेयोग्य आयुवालोंके भेद(देखो सूत्र५३)
अध्याये७।अस्मिन्७।निरूपिताः१।३।	=इस (=अस्मिन्) (दूसरे) अध्यायमें वर्णित वा कहेगये
भवन्ति T इति॰सम्बन्धः १।१।	=हैं (=भवन्ति) ऐसा संबंध अथवा संयोग है अर्थात् इस दूसरे अध्यायमें उपर्युक्त वस्तुओं वा विषयोंका कथन है ॥

इतितत्त्वार्थ-वृत्तौ७।१ =इसप्रकारतत्त्वोंकेस्वरूप(=अर्थ)विवरणमें[=वृत्तौ]

सर्वार्थसिद्धि- =सर्वार्थसिद्धि

संज्ञिकायाम्७।१ =नामक(ग्रन्थ)में

द्वितीयः१।१ अध्यायः१।१ =दूसरा अध्याय(समाप्त)हुआ॥ * मंगलहो *

॥ अथ तृतीयोऽध्यायः ॥

भवप्रत्ययोऽवधिर्देवनारकाणामित्येवमादिषु नारकाः श्रुतास्ततः पृच्छति के ते नारका इति । तत्प्रतिपादनार्थं तदधिकरणनिर्देशः क्रियते ॥

॥ रत्नशर्करावालुकापङ्कधूमतमोमहातमः प्रभा भूमयो घनाम्बुवाताकाशप्रतिष्ठाः सप्ताधोऽधः ॥ १ ॥

अथ * तृतीयः अध्यायः	=(मोक्ष शास्त्र वा तत्वार्थ सूत्र का) तीसरा अध्याय प्रारम्भ(=अथ) है
भवप्रत्ययः अवधिः देवनारकाणां इति एवम्	=जन्मनिमित्तक अवधिज्ञान देव और नारकियों के होता है ऐसेही (=एवम्)
आदिषु नारकाः श्रुताः,	=प्रथम (अध्याय १ सूत्र २१, अध्याय २ सूत्र ३१,३४,४६,५०,५३) में नारकी सुनेगये हैं
ततः * पृच्छति के ते नारका इति * तत्-	=उस कारण से (=ततः) पूछता है कि वे नारकी कौन हैं। उन (नारकियों) के
प्रतिपादन-अर्थं तत्-अधिकरण-निर्देशः क्रियते	=जनावने वा बतला देने के लिये, उनके आधार(=निवासस्थान) का कथन किया जाता है

सूत्रम्—रत्नशर्करावालुकापङ्कधूमतमोमहातमः प्रभा भूमयो घनाम्बुवाताकाश प्रतिष्ठाः सप्ताधोऽधः ।

पदच्छेदः—रत्नप्रभा—शर्करा प्रभा—वालुकाप्रभा—पङ्कप्रभा—धूमप्रभा—तमःप्रभा—महातमःप्रभा—भूमयः घनवात—अम्बुवात—(तनु)वात—आकाश—प्रतिष्ठाः(भवन्ति) सप्त अधस् अधस् ॥१॥

सूत्रार्थः—रत्नप्रभा-शर्कराप्रभा-वालुकाप्रभा	=रत्न के समान दीप्ति, शर्करा के सदृश चमक, वालू के सम झलक,
पङ्कप्रभा धूमप्रभा-तमः प्रभा-	=कीचड़ के सदृश झलक, धूमवत् प्रभा, अंधकार के समान आकृति,
महातम-प्रभाः॥ भूमयः ॥	=महा अंधकार के समान झलक (यथा गुण तथा नाम की) भूमियें (नारकस्थान)
	(जिनके रूढिनाम धम्मा, वंशा, मेघा, अंजना, अरिष्टा, मघवी और माघवी हैं)

(१) सर्वार्थसिद्धि में 'पृथुतरा' अन्त में अधिक है जिसका अर्थ हुआ अतिच्छत्रवत् अधिक २ विशाल होती गई हैं अर्थात् ऊपर ऊपर छोटी छोटी तनी

रत्नं च शर्करा च वालुका च पङ्कश्च धूमश्च तमश्च महातमश्च रत्नशर्करावालुकापङ्कधूमतमोमहातमांसि। प्रभाशब्दः प्रत्येकं परिसमाप्यते।

घनाम्बुवात-(१) = घन (= स्थूल) उदधि (= अम्बु, जल) वात (= पवन) अर्थात् घनोदधि वातवलय।

घनवात— = घन (सघन, स्थूल) वात (= पवन, बयार) अर्थात् घनवतवलय।

(तनु) वात—आकाश—प्रतिष्ठाः १। भवन्ति T = तनुपवन वा सूक्ष्मवायु अर्थात् सूक्ष्मवातवलय, और आकाश के आधार वा आश्रय हैं।

भावार्थ ये भूमियें घनोदधिवातवलय जो सघन पवन और जलमिश्रित है, आधार है, घनोदधिवातवलय घनवातवलय के जो स्थूल-सघन वायुका है आश्रय है, घनवातवलय तनुवातवलय के जो सूक्ष्मवायुका है आधार है और तनुवातवलय आकाश के आधार है और आकाश अपने आधार है और स्वयं आधेय है उसका कोई अन्य आधार नहीं इसलिये वह अपने आप आधार है।

सप्त १।। अधः * अधः * = (ये भूमियें सब) सात (ही) हैं (और क्रम से एक दूसरे के) नीचे नीचे ही है।

वृत्त्यनुवादः—रत्नं १।।। च शर्करा १।। च वालुका १।। च = और रत्न और शर्करा (कंकरीली) तथा वालुका

पङ्कः १। च धूमः १। च तमः १।।। च महातमः १।।। च = बहुरि पंक अर धूम और तम तथा महातम (शब्द आपस में)

रत्न—शर्करा—वालुका—पङ्क—धूम—तमः—महातमांसि १।।। ; = रत्नशर्करावालुकापंकधूमतमोमहातमांसि रूप में इतरेइतर योगद्वंद समास हैं।

प्रभाशब्दः १। प्रत्येकं १॥। परिसमाप्यते T = प्रभा शब्द पृथक् पृथक् रत्न, शर्करा, वालुका इत्यादि पर जोड़ा जाता है।

हुई छतरी उसके नीचे की विशाल विशाल छतरी के सम है। तत्त्वार्थ राजवार्तिक पृष्ठ ११३ वार्तिक ११ के अनुकूल हमारे यहां भी किसी किसी आचार्य के मत में "पृथुतरा." पाठ भी है अत दोनों आम्नायों में पाठ और अर्थ एकसा हुआ॥ परन्तु वार्तिकार का मत है कि रत्नप्रभा भूमिमें तरप् प्रत्यय का अर्थ लागू नहीं होसकता उसका पृथुतर नाम नहीं बन सकता क्योंकि उससे अन्य कोई नरक भूमि विस्तार वेदना वा आयु की अपेक्षा न्यून हो तब तो रत्न प्रभा से पृथुतर कहा जासकता है किन्तु सो तो है नहीं इसलिये "पृथुतरा" शब्द के उल्लेख की कोई आवश्यकता नहीं।

(१) वातश्च वातश्च वातौ यह यहां पर एकशेष समास माना है। एकशेष समास का यह नियम है कि समान अनेक शब्दों में एक ही शब्द अवशिष्ट रह जाता है अन्य का लोप हो जाता है इसलिये यहां पर एक वात शब्द का लोप होगया है इसलिये घनाम्बुवात शब्द से यहां पर घनोदधि वात और घनवात समझना चाहिये तथा घन शब्द सामान्य है वह तनुरूप विशेष की आकांक्षा रखता है इसलिये वात शब्द से यहां तनुवात का भी ग्रहण है इसप्रकार घनाम्बुवात शब्द घनोदधिवात, घनवात और तनुवात इन तीन वातवलयों का द्योतक है।

साहचर्यात्ताच्छब्द्यम् ॥ चित्रादिरत्नप्रभासहचरिता भूमिः रत्नप्रभा, शर्कराप्रभासहचरिता भूमिः शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभासहचरिता भूमिः वालुकाप्रभा, पङ्कप्रभासहचरिता भूमिःपंकप्रभा,धूमप्रभासहचरिता भूमिः धूमप्रभा, तमःप्रभासहचरिता भूमिः तमःप्रभा, महातमः प्रभासहचरिता भूमिः महातमःप्रभा इति ॥ एताः सञ्ज्ञा अनेनोपायेन व्युत्पाद्यन्ते॥ भूमिग्रहणमधिकरणविशेषप्रतिपत्त्यर्थम् ॥ यथा स्वर्गपटलानि भूमिमनाश्रित्य व्यवस्थितानि, न तथानारकावासाः। किं तर्हि, भूमिमाश्रिता इति॥

साहचर्यात् [५] [१]॥ =(रत्न–शर्करा–वालुका आदिकी प्रभा के) सदृश होनेसे वा सहचारी होने से

तात्–शब्द्यम् [१]॥ ; = उन (भूमियों) के (रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा आदि) नाम धरेगये हैं

चित्र–आदि–रत्नप्रभा–सहचरिता [१]॥ भूमिः [१]॥ रत्नप्रभा[१]॥ = चित्रादिक रत्नों की दीप्ति सदृश पृथिवी सो रत्नप्रभा है ।

शर्करा–प्रभा–सहचरिता [१]॥ भूमिः [१]॥ शर्कराप्रभा [१]॥ = कंकरकी दीप्ति सदृश पृथिवी सो शर्कराप्रभा है ।

वालुकाप्रभा–सहचरिता [१]॥ भूमिः [१]॥ वालुकाप्रभा [१]॥ = वालुका की चमक सम पृथिवी सो वालुका प्रभा है ।

पङ्कप्रभा [१]॥ सहचरिता [१]॥ भूमिः [१]॥ पङ्कप्रभा[१]॥ = कीचड़ अथवा कर्दम की झलक सम पृथिवी सो पंकप्रभा है ।

धूमप्रभा [१]॥ सहचरिता [१]॥ भूमिः [१]॥ धूमप्रभा[१]॥ = धूंवां की दीप्ति तुल्य पृथिवी सो धूमप्रभा है ।

तमःप्रभा [१]॥ सहचरिता [१]॥ भूमिः [१]। तमःप्रभा [१]॥ = अन्धकार की झलक सम पृथिवी सो तमःप्रभा है ।

महातमःप्रभा [१]॥ सहचरिता [१]। भूमिः [१]॥ = अत्यन्त अन्धकार की प्रभा तुल्य पृथिवी

महातमः प्रभा [१]॥ इति T एताः [१]॥ संज्ञाः [१]॥ अनेन [३]। = सो महातमः प्रभा है। (ये रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा आदि) नाम। इस (= अनेन)

उपायेन [३]। व्युत्पाद्यन्ते T = साधनकरि निरुक्ति कियेगयेहैं अर्थात् व्याकरणकी रीतिसे सिद्ध कियेगयेहैं।

भूमि–ग्रहणं [१]॥ अधिकरण–विशेष–प्रतिपत्ति–अर्थम् [१]॥ = (इस सूत्र में) भूमि (शब्द) का आदान आधार विशेषके जतलाने के लिये है ।

यथा स्वर्ग पटलानि [१]॥ भूमिम्[२]॥ अनाश्रित्य व्यवस्थितानि [१]॥ = जैसे स्वर्गपटल भूमि को आधार न कर के पृथक्२ अवस्थित ठाहरे हुएहैं

न* तथा * नारक–आवासाः [१]। = तैसें नारकियोंके वासस्थान नहीं हैं अर्थात् उनके वासस्थान भूमिके आधार हैं

किम् * तर्हि * भूमिम् [२]॥ आश्रिताः [१]॥ इति * = तो (= तर्हि) भूमिको क्या आधार–अधिकरण है अर्थात् किसपर तिष्ठी है

तासां भूमीनामालम्बननिर्ज्ञानार्थं घनाम्बुवातादिग्रहणं क्रियते ॥ घनाम्बु च वातश्च आकाशं च घनाम्बुवाताकाशानि । तानि प्रतिष्ठा आश्रयो यासां ता घनाम्बुवाताकाशप्रतिष्ठाः ॥ *घनं च घनो मन्दो महान् आयतः इत्यर्थः । अम्बु च जलं उदकमित्यर्थः । वातशब्दोऽन्त्यदीपकः । ततः एवं सम्बन्धनीयः । घनो घनवातः ।

तासां ६।। भूमीनां ६।। आलम्बन-निर्ज्ञान-अर्थम् २।।।	= तिन भूमियों के अवलम्बन के निर्णय के लिये अर्थात् जो भूमि नरकोंका अवलम्बन बतलाई गई हैं उन का अवलम्बन क्या है। यह प्रगट करने के लिये
घन-अम्बु-वात आदि ग्रहणं १।।। क्रियते T	= (सूत्र में) घन-अम्बु-वातादि (वाक्य) का आदान किया गया है।
घन- अम्बु १।।। च * वातः १। च * आकाशं १ च *	= वहुरि घन-अम्बु(= महान् उदक,और वात और आकाश शब्दोंका द्वंद समास
घनअम्बुवातआकाशानि १।।। ; तानि १।।।	= घनाम्बु-वात-आकाशानि है। ते (घनाम्बुवात-आकाश)
प्रतिष्ठाः १।। आश्रयः १। यासां ६।। ताः १।। घनाम्बु-वाताकाशप्रतिष्ठाः १।।	= आधार वा आश्रय जिन (भूमियों) को है ते घनाम्बुवाताकाश = प्रतिष्ठा(कहलाती)हैं अर्थात् सात नरकोंकी भूमियें महान्जलपवनआकाशकेआश्रयहैं
घनं* १।।। च * घनः १। मन्दः १। महान् १। आयतः १।	= वहुरि घन है सो गाढ़ा. = घन) मोटा(= मन्द) वड़ा (महान्) लम्बाचौडा आयत है
इति-अर्थः १। ;	= ऐसा आशय है, अर्थात् घन, मन्द, महान् और आयत समानार्थकवाची शब्द हैं ।।
अम्बु १।।। च * जलं १।। उदकम् १।।। इति* अर्थः १।	= और अम्बु है सो पानी, नीर ऐसा अभिप्राय है(अम्बु-जल-उदक एकार्थी है)
वात-शब्दः १। अन्त्य-दीपकः १।	= (सूत्र में) वात शब्द (घन-अम्बु के) अन्त का प्रकाशक है अर्थात् घन और अम्बु प्रत्येक शब्दके अन्तमे रहनेवाला है उसको प्रत्येकके साथजोड़दो ।
ततः* एव* सम्बन्धनीयः १। घनः १। घनवातः १।	= तिस से ऐसे सम्बन्ध होना चाहिये, कि (घनाम्बुवात वाक्यमें) घन है सो घन वातहै अर्थात् घनवात(वलय) है सो गाढ़ेवा स्थूलवा सघन पवनका है।

---

* चतुष्कोणकसस्थ. पाठ. तालपत्र पुस्तके एव वर्तते = चौकोन रूप में स्थित वा निविष्ट ऐसा पाठ ताडपत्र पर लिखित पुस्तकमें विद्यमान है।

अम्बु अम्बुवातः[१]। वातस्तनुवातः। इति महदपेक्षया तनुरिति सामर्थ्यगम्यः। अन्य पाठः ॥ सिद्धान्तपाठस्तु घनाम्बु च वातं चेति वातशब्दः सोपस्क्रियते। वातस्तनुवात इति वा ॥]

अम्बु१।। अम्बुवातः१।

= अम्बु है सो अम्बुवात है अर्थात् सूत्र मे "घनाम्बुवात" वाक्य में जो अम्बु शब्द है उसको अम्बुवातके समान वातशब्द के अन्त्यदीपक होनेसे समझना चाहिये यह वायुमंडल जल मिश्रित है अतः इसको घनोदधि वातवलय कहते है ॥

वातः१। तनुवातः१। इति ※ महत्–अपेक्षया३।।
तनुः१।। इति ※ सामर्थ्यगम्यः१।

= वात है सो तनुवात है ऐसे (सूत्र मे घन–सघन की (= महत्) अपेक्षा से
= सूक्ष्म (= तनु) संगत अर्थता से प्राप्य है अर्थात् 'तनु' शब्दकी प्राप्ति यहां आशय के प्रसंग से हुई है क्योंकि जब सूत्र मे घन (सघन) वर्तता है तो घन तो जबही विद्यमान होसकता है और उसी समय सूत्र मे लासकते है जब उसका विरोधक सूक्ष्म वा तनु हो ॥ तनुवात सूक्ष्म वा पतले वायुमंडल को कहते है ॥

अन्यः१। पाठः१।;
सिद्धान्त–पाठः१। तु ※ घन–अम्बु१।।। च वातं१।।। च इति
वातशब्दः१। सोपक्रियतेT
वा ※ वातः१। तनुवातः१। इति ※ ॥]

= (घनं च घनो इत्यादि सामर्थ्यगम्यः पर्यन्त) दूसरा वा भिन्न पाठ हुआ
= परन्तु (= तु) सिद्धान्त का पाठ घनाम्बु और (= च) वात ऐसा है
= (घनाम्बुमे) वात शब्द ऊपर से जोड़ागया है (तब) घनाम्बुवात, घनवात हुए
= और (= वा) वात है सो तनु (सूक्ष्म) वात है ये सब मिलकर घनाम्बुवात घनवात तनुवात हुये। 'घनाम्बुवात' वाक्यका यही विग्रह है जो सिद्धान्तके पाठ के अनुकूल लेकर सूत्र का अर्थ किया गया है (देखो ३ अध्याय पृष्ठ २)

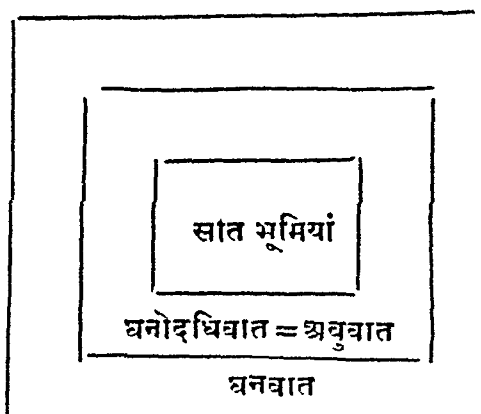
सर्वा एता भूमयो घनोदधिवलयप्रतिष्ठाः । घनोदधिवलयं घनवातवलयप्रतिष्ठम् । घनवातवलयं तनुवातवलयप्रतिष्ठम् । तनुवातवलयमाकाशप्रतिष्ठम् । आकाशमात्मप्रतिष्ठं, तस्यैवाधाराधेयत्वात् ॥ त्रीण्यप्येतानि वलयानि प्रत्येकं विंशतियोजनसहस्रबाहुल्यानि ॥ सप्तग्रहणं संख्यान्तरनिवृत्त्यर्थम् । सप्त भूमयो नाष्टौ न नव चेति ॥ अधोऽधोवचनं

सर्वाः ॥ एताः ॥ भूमयः ॥ घनोदधिवलय- = समस्त ये पृथिवी घनोदधिवलय के (जो जल और पवन मिश्रित है) अर्थात् घनोदधिवात जिसको गीली वा आर्द्रवायु है।
प्रतिष्ठाः ॥ घनोदधिवलयम् ॥ घनवातवलय- = आधार है (= प्रतिष्ठा) घनोदधिवलय घनवातवलयके (जो सघन पवनका है)
प्रतिष्ठम् ॥ घनवातवलयं ॥ तनुवातवलय- = आश्रय है ॥ घनवातवलय तनुवातवलयके (जो सूक्ष्म, पतली वायुका है)
प्रतिष्ठं ॥ ; तनुवातवलयं ॥ आकाश-प्रतिष्ठं ॥ = आधार है ॥ तनुवातवलय आकाशके आधार है
आकाशं ॥ आत्म-प्रतिष्ठं ॥ तस्य ॥ एव * आधार- = आकाश अपने (= आत्मन्) आधार है क्योंकि तिस (आकाश) के ही आधार
आधेयत्वात् ॥ = और आधेयभाव है अर्थात् वह स्वयं ही आधार और स्वयं ही आधेय है
त्रीणि ॥ अपि*एतानि ॥ वलयानि ॥ प्रत्येकम् ॥ = ये तीनों ही वातवलय पृथक् पृथक्
विंशति-योजन सहस्र-बाहुल्यानि ॥ सप्तग्रहणम् ॥ = बीस हजार योजन मोटे है। सूत्र में 'सप्त' शब्द का उपादान
संख्या-अंतर-निवृत्ति-अर्थम् ॥ सप्त ॥ भूमयः ॥ = अन्य संख्या के निराकरण के लिए है ॥ सात ही पृथिवी है
न-अष्टौ ॥ न नव ॥ च*इति-अधः * अधः*वचनं ॥ = न आठ और न नौ। सूत्र में अधो अधो (नीचे नीचे) वाक्य है सो

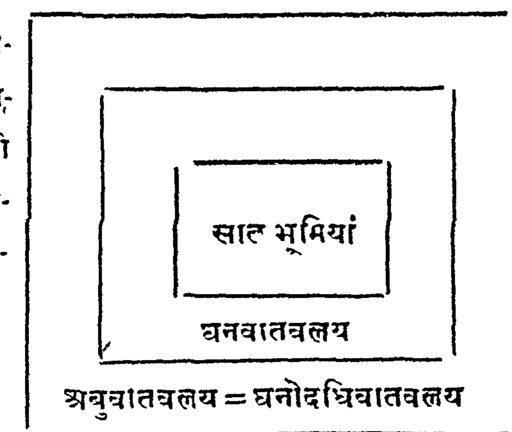
"भूमय घनोदधिवलय प्रतिष्ठा" तत्त्वार्थश्लोक वार्तिकके रचयिता और श्रुतसागर सूरिके मतमें 'ये भूमियां घनवातवलयके आधार हैं और घनवातवलय अम्बुवातवलय (अर्थात् घनोदधिवातवलय) के आधार है और अम्बुवातवलय तनुवातवलय के आधार है भावार्थ तत्त्वार्थराजवार्तिककारके, सर्वार्थसिद्धिकेकर्त्ताके, श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रके अनुसार तथा प० जयचन्द्राय जी, सदासुख जी इत्यादिके अनुसार तो ये समस्त पृथिवी घनोदधिवातवलय के आधार है और घनोदधिवातवलय घनवातवलय के आधार है, और घनवातवलय तनुवातवलयके आधार है तनुवातवलय आकाशके आधार है परन्तु श्लो० वा० और श्रुतसागरीटीकाके अनुसार भूमियां घनवातवलयके आधार है और घनवातवलय घनोदधिवातवलयके आधार है जैसा निम्नलिखित वाक्यों से प्रगट है ॥ (क) "स च तनुवात प्रतिष्ठोम्बुवातो घनवातस्य स्थितिहेतु सोपि भूमेर्नकूर्मादि"

अर्थः—अम्बुवातवलय (=घनोदधिवातवलय) वह तनुवातवलय के आधार है (कैसा है अम्बुवातवलय कि) घनवातवलय की स्थिति का कारण है और वह घनवात (वलय) भूमिकी स्थिति का हेतु है। भूमि की स्थिति का हेतु कछुवा इत्यादि नहीं हैं ॥ तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक पृष्ठ ३४५ ॥

(ख) सर्वा. सप्त भूमयः घनवात प्रतिष्ठा वर्तन्ते स च घनवात अम्बुवातप्रतिष्ठाऽस्ति। स च अम्बुवात तनुवातप्रतिष्ठो वर्तत। सच तनुवात आकाशप्रतिष्ठो वर्तते इत्यादि इसी सूत्र के नीचे श्रुतिसागरि टीका पृष्ठ ८९ से उद्धृत॥ सर्वार्थ सिद्धिवृत्तिकारका मत पृष्ठ ६ में उल्लेख करदियाहै॥



सर्वाएता भूमयः घनोदधिवलयप्रतिष्ठाः, घनोदधिवलय घनवातवलयप्रतिष्ठ, 'घनवातवलय तनुवातवलयप्रतिष्ठ, तनुवातवलयमाकाशप्रतिष्टम्" राजवार्तिकपृष्ठ १८२ ॥ " तदेव खरपृथिवी पङ्कप्रतिष्ठा पङ्को घनोदधिवलयप्रतिष्ठो, घनोदधिवलय घनवातवलयप्रतिष्ठ ॥ तता महातमो भूतमाकाशम् ॥ सभाष्यतत्त्वार्थाधिमसूत्र पृष्ठ ६४ ॥



"तीनसौ तेताल राजु घनाकार सब लोक घनोदधि, घन(वात) तनुवात के आधार है। कविवर द्यानतरायके चरचाशतकसे उद्धृत। कैसा है? सर्वलोक घनोदधिवातवलय (जो जल और पवन मिश्रित है) ताके आधार है और घनोदधिवातवलय घनवातवलयके आधार है और घनवातवलय तनुवातवलयके आधारहै" ॥

"ए भूमि तो घनोदधिवातवलय के आधार है। बहुरि घनोदधिवातवलय घनवातवलय के आधार है बहुरि घनवातवलय तनुवातवलयके आधार है। तनुवातवलय आकाशके आधारहै ॥ प० जयचन्द्रायजी कृता वचनिका पृष्ठ मुद्रित २९६ ॥

"तहां ते समस्त पृथिवी तो घनोदधिवातवलयके आधार है। और घनोदधिवातवलय है सो घनवातवलयके आधारहै। अर घनवातवलय है सो तनुवातवलय के आधारहै' सदासुखजी कृता अर्थप्रकाशिका पृष्ठ १४३ ॥

तिर्यक्प्रचयनिवृत्त्यर्थम् ॥

किं ता भूमयो नारकाणां सर्वत्रावासा आहोस्वित्क्वचित्क्वचिदिति तन्निर्धारणार्थमाह—

॥ तासु त्रिंशत्पञ्चविंशतिपंचदशदशत्रिपंचोनैकनरकशतसहस्राणि पंच चैव यथाक्रमम् ॥ २ ॥

तिर्यक् * प्रचय-निवृत्ति-अर्थम् ¹।। = चौरस (तिर्यक्) वा तिरछा (तिर्यक्) फैलाव (= प्रचय) के निषेध के लिये अर्थात् ये पृथिवी एक दूसरेके नीचे २ अवस्थित है तिरछे, चौरस, फैलाव वा ऊर्ध्व में नहीं है

किम् * ताः¹।। भूमयः¹।। नारकाणाम्⁶। सर्वत्र * आवासाः¹। = (प्रश्न) क्या ते भूमियें नारकियोंके सर्वत्र वासस्थान है

आहोस्वित् * क्वचित् * क्वचित् * इति * तद्- = अथवा (= आहोस्वित्) कहीं कहीं पर है। इस (बात) के

निर्धारण-अर्थम् ¹।। आह। = निर्णयके लिये (अग्रिम सूत्र में) कहते हैं कि—

तासु त्रिंशत्पंचविंशतिपंचदशदशत्रिपंचोनैकनरकशतसहस्राणि पंच चैव यथाक्रमम् ॥ २ ॥

= तासु त्रिंशत्नरकशतसहस्राणि पंचविंशतिनरकशतसहस्राणि, पंचदशनरकशतसहस्राणि, दशनरकशतसहस्राणि, त्रिनरकशतसहस्राणि, पंचोनएकनरकशतसहस्राणि, च, पंच एव यथाक्रमम् ॥ २ ॥

सूत्रार्थः—तासु¹।। त्रिंशत्नरकशतसहस्राणि¹।।। = उन (भूमियों) में तीस लाख बिल (= नरक)

पञ्चविंशतिनरकशतसहस्राणि¹।।। पंचदश- = पच्चीस लाख बिले, पंद्रह

नरकशतसहस्राणि¹।।। दशनरकशतसहस्राणि¹।।। = लाख बिले (= आवास) दश लाख बिले (= निवासस्थान)

श्वेताम्बर आम्नायके 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र' में इस सूत्रके स्थानमें " तासु नारका " केवल इतना सूत्र है इसका अर्थ है कि उन (रत्नप्रभादि भूमियों) में नरक हैं और उक्त सभाष्य०के भाष्यकारने इस कथनका कि प्रथम भूमिमें तीसलाख बिले हैं दूसरीमें पच्चीसलाख तीसरीमें पंद्रह लाख चौथीमें दशलाख, पांचवीमें तीनलाख छठीमें पांचकमती एकलाख और सातवीं भूमिमें केवल पांच नरक बिले वा निवासस्थान हैं भाष्यमें अन्तर्गत करदिया है और इसी सूत्रके भाष्यमें यह कथन कि पहिले नरकभूमिमें तरह, दूजीमें ग्यारह, तीसरीमें नव चौथीमें सात, पांचवींमें पांच, छठवींमें तीन, सातवींमें एकही प्रतर हैं गर्भित है। पूज्यपाद स्वामीने प्रतरकी गणनाका कथन इसी सूत्रकी वृत्तिमें करदिया है यथार्थमें हमारे

तासु रत्नप्रभादिषु भूमिषु नरकाण्यनेन संख्यायन्ते यथाक्रमम् ॥ रत्नप्रभायां त्रिंशन्नरकशत-सहस्राणि, शर्कराप्रभायां पञ्चविंशतिर्नरकशतसहस्राणि, वालुकाप्रभायां पञ्चदश नरकशतसहस्राणि, पङ्कप्रभायां दश नरकशतसहस्राणि, धूमप्रभायां त्रीणि नरकशतसहस्राणि, तमःप्रभायां पञ्चोनमेकं नरकशतसहस्रं, महातमःप्रभायां पञ्च नरकाणि ॥ रत्नप्रभायां नरकप्रस्तारास्त्रयोदश ।

त्रि-नरकशतसहस्राणि॥ पंचोनं-एकनरक-शतसहस्रं॥ पंच॥ च॥एव॥यथाक्रमम्॥	= तीन लाख (विले), पांच घाटि एक लाख और (= च) पांच ही (= एव) क्रमानुसार (नारकियोंके आवास-निवासस्थान हैं) अर्थात् प्रथम पृथिवीके अब्बहुल भागविषैं तीसलाख, दूसरीमें पच्चीस लाख, तीसरीमें पंद्रह लाख, चौथीमें दश लाख, पांचवींमें तीन लाख, छठवींमें ९९९९५ विले है सातवीं भूमिमें केवल पांच विले है ॥
वृत्त्यर्थः— तासु॥ रत्न-प्रभादिषु॥ भूमिषु॥	= उन रत्नप्रभादिक भूमियोंमें
नरकाणि॥ अनेन॥ संख्यायन्ते॥ यथाक्रमम्॥	= विले वा नारकियोंके निवासस्थान इस अनुक्रमसे गणना किये जाते हैं कि
रत्नप्रभायाम्॥ त्रिंशत्॥ नरकशतसहस्राणि॥	= रत्नप्रभा (प्रथमभूमि) विषैं (अर्थात् उसके अब्बहुल भागमें) तीसलाख विले हैं
शर्कराप्रभायां॥ पञ्चविंशति॥ नरकशतसहस्राणि॥	= शर्कराप्रभा (दूसरी पृथिवी) में पच्चीस लाख विले हैं
वालुकाप्रभायां॥ पञ्चदश॥ नरकशतसहस्राणि॥	= वालुकाप्रभा (तीसरी भूमि) में पन्द्रह लाख नरक विले हैं
पङ्कप्रभायां॥ दशनरकशतसहस्राणि॥	= पंकप्रभा (चौथी पृथिवी) में दश लाख विले हैं
धूमप्रभायां॥त्रीणि॥ नरकशतसहस्राणि॥	= धूमप्रभा (पांचवीं भूमि) में तीन लाख नरक विले हैं
तमःप्रभायां-पञ्च-ऊनं॥ एकं-नरक-शतसहस्रं॥	= तमःप्रभा (छठवीं पृथिवी) में पांच घाटि एक लाख विले हैं
महातमःप्रभायां॥ पञ्च॥ नरकाणि॥	= महातमः प्रभा (सातवीं भूमि) मे पांच नरक विले हैं
रत्नप्रभायां॥ नरकप्रस्ताराः॥ त्रयोदश॥	= रत्नप्रभा (भूमि) में नरक पटल तेरह हैं (पटल = पाथड़ा)

यहांका सूत्र और वृत्तिका कथन सभाष्य० के सूत्र और उसके भाष्यसे मिलजाता है इसलिये कह सकते हैं कि दोनों आम्नायका तात्पर्य जहांतक इन सूत्रोंसे सबंध रखता है एक है ।

ततोऽधः आसप्तम्या द्वौ द्वौ नरकप्रस्तारौ हीनौ ॥ इतरो विशेषो लोकानुयोगतो वेदितव्यः ॥

अथ तासु भूमिषु नारकाणां कः प्रतिविशेष इत्यत आह—

॥ नारका नित्याशुभतरलेश्यापरिणामदेहवेदनाविक्रियाः ॥ ३ ॥

ततः * अधः * आसप्तम्याः ५।१ द्वौ १।२ द्वौ १।२ नरक-प्रस्तारौ १।२ हीनौ १।२ = तिस (प्रथम भूमि) से नीचे सातवीं (भूमि) तक दो दो नरक पटल

= न्यून हैं अर्थात् सातवीं भूमि में एक, छठी में तीन, पांचवीं में पांच, चौथी में सात, तीसरी में नौ, दूसरी में ग्यारह, पहली में तेरह पटल वा पाथड़े हैं

इतरः १।१ विशेषः १।१ लोक-अनुयोगतः * वेदितव्यः १।१ = (सात नरकोंके) अन्य भेद (विशेष) लोक नियुक्त वा नियोजित शास्त्रसे जानना चाहिये

अथ * तासु ७।३ भूमिषु ७।३ नारकाणां ६।३ कः १।१ = आगै (= अथ) उन भूमियों में नारकियोंके क्या

प्रति-विशेषः १।१ इति * अतः * आह [1] = अन्य भेद प्रभेद (= प्रतिविशेष) है। इसलिए (अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्—नारका नित्याशुभतरलेश्यापरिणामदेहवेदनाविक्रियाः ॥ ३ ॥

= नारकाः नित्य अशुभतरलेश्याः, नारकाः नित्य अशुभतर परिणामाः; नारकाः नित्य अशुभतर देहाः; नारकाः नित्य अशुभतरवेदनाः, नारकाः नित्य अशुभतर विक्रियाः ॥

(१) हमारे पास तत्त्वार्थ सूत्रकी बहुतसी प्रतियाके अतिरिक्त एक प्रति तत्त्वार्थ सूत्रकी ज्ञानचन्द्रजी वैद्य द्वारा मुद्रित तथा प्रकाशित है इस पुस्तक में दूसरे सूत्रके पीछे "प्रथमायाम्प्रतरास्त्रयोदशाधाधो द्विहीना" ऐसा सूत्र अधिक है इसके पश्चात् 'नारका नित्या इत्यादि' सूत्र है इसका अर्थ यह है कि पहली भूमि में तेरह प्रतर है और नीचे २ की भूमियोंमें दो दो घाटि है अर्थात् प्रथम नरक भूमि में तेरह प्रतर हैं दूसरी में ग्यारह, तीसरी में नौ, चौथी में सात, पांचवीं में पांच, छठीमें तीन, और सातवीमें एक प्रतर है। अन्य ग्रंथोंमें इसे सूत्र नहीं माना है परन्तु सर्वार्थसिद्धि वृत्ति, तत्वार्थराजवार्तिक, प० जयचन्द्रजीकी वचनिका तथा अर्थप्रकाशिका इत्यादि ग्रंथो में इसी सूत्रकी वृत्तिमें अथवा टीकामें उक्त सूत्रका आशय गर्भित कर दिया है देखो सर्वार्थसिद्धि पृष्ठ १६८, राजवार्तिक पृष्ठ ११४, सभाष्यतत्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ ६५, ६६, वचनिका पृष्ठ ३०२, ३०३, अर्थप्रकाशिका पृष्ठ १८७, इन सबमें उक्त तेरह पटलोंका कथन है ॥

हमारे यहां इस सूत्र का पाठ और अर्थ एक है ॥ श्वेताम्बर आम्नाय के सभाष्य० में नारका शब्द नहीं है शेष पाठ दोनों आम्नायोंमें एकसा है ॥ उक्त सभाष्य० के 'तासु नरका' इस दूसरे सूत्रसे तीसरे सूत्रमें अनुवृत्ति आती है तब नरका' शब्द जोड़ने से पाठ लगभग एकसा होजाता है, तात्पर्य दोनोंका एक है ॥

सूत्रार्थः——नारकाः।¹ नित्य-अशुभतर-लेश्याः।¹ = नारकी जीव है वे निरन्तर अशुभतर लेश्याओं सहित अर्थात् अशुभतर कापोत नील और कृष्ण लेश्याओं सहित

नित्य-अशुभतर-परिणामा।¹ नित्य-अशुभतर देहाः।¹ = निरन्तर अशुभतर परणतियुक्त, सदा अशुभतर शरीरवाले

नित्य-अशुभतर-वेदना।¹ नित्य-अशुभतर विक्रियाः।¹ = सदैव अशुभतर पीड़ा सहित, सदा अशुभतर विक्रिया करने वाले होते है क्योंकि उनके सदा अशुभ कर्मका उदय है इस कारण निरन्तर उनके लेश्या परिणाम, देह और वेदना और विक्रिया अशुभ ही होते है ॥

इस सूत्र का भावार्थ यह है कि तिर्यंच गतिसे अशुभतर लेश्याओंकी अपेक्षासे रत्नप्रभा प्रथम भूमिमें अशुभतर लेश्या है। रत्नप्रभासे शर्कराप्रभा में अशुभतर लेश्या, परिणाम, देहवेदना, विक्रिया है, शर्कराप्रभा से वालुकाप्रभा मे अशुभतर लेश्या, परिणाम, देह, वेदना विक्रिया है वालुकाप्रभासे पङ्कप्रभामें अशुभतर लेश्या, परिणाम, देह, वेदना, विक्रिया है; पंकप्रभामे धूमप्रभा में अशुभतरलेश्या, परिणाम, देहवेदना,

---

(१) "अशुभतर" तर = कुछ अधिक, तम = बहुत अधिक। यदि दो वस्तुओंमेंसे एकके शुभ गुण अथवा अशुभ गुणकी अधिकता प्रगट करनी हो तो उस शब्द के अन्त में 'तर' प्रत्यय लाते है जैसे इस सूत्र मे "अशुभतर लेश्या"। और यदि बहुतसी (दो से अधिक) वस्तुओंमेंसे एकके शुभ गुण अथवा अशुभ गुणकी अधिकता उन सबके ऊपर प्रगट करनी हो तो 'तम' प्रत्यय लाते हैं "जैसे अशुभतम लेश्या" इत्यादिसे जानना।

(२) लेश्या शब्दका एकवचन स्त्रीलिंग 'लेश्या' शब्द है, उसका बहुवचन स्त्रीलिंग 'लेश्या.' ऐसा है। परन्तु समासमें "नित्याशुभतर लेश्या" आया है जिसका अर्थ यह है कि निरन्तर अशुभतर है लेश्या जिनके (ऐसे नारकी है) अर्थात् 'नारका' शब्द का विशेषण है, अतः पुलिङ्ग बहुवचनमें रक्खा है।

(३) वेदना और विक्रिया शब्दों का क्रम से एक वचन स्त्रीलिङ्ग वेदना और विक्रिया है उनके बहुवचन स्त्रीलिङ्ग क्रमसे 'वेदनाः, विक्रियाः' होते हैं परन्तु समास में 'नित्यअशुभतरवेदना' 'नित्यअशुभतरविक्रिया' आये हैं जिनके क्रम से अर्थ हैं 'निरन्तर अशुभतर है वेदना जिनके,' और 'निरन्तर अशुभतर है विक्रिया जिनके' 'अर्थात, नारका' शब्दका गुणवाचक है अत. 'वेदना' 'विक्रिया' शब्दों को बहुवचन पुलिङ्ग में रक्खा है ॥

लेश्यादयो व्याख्यातार्थाः ॥ अशुभतरा इति प्रकर्षनिर्देशः । तिर्यग्गतिविषयाशुभलेश्याद्यपेक्षया, अधोऽधः स्वगत्यपेक्षया च वेदितव्यः ॥ नित्यशब्द आभीक्ष्ण्यवचनः ॥ नित्यमशुभतरा लेश्यादयो येषां ते नित्याशुभतरलेश्यापरिणामदेहवेदनाविक्रिया नारकाः ॥

विक्रिया है; धूमप्रभा से तमः प्रभामे अशुभतर लेश्या, परिणाम, देह, वेदना, विक्रिया हैं; और तमःप्रभासे महातमः प्रभामे (सातवी भूमिमें) अशुभतरलेश्या, परिणाम, देह, वेदना, विक्रिया है ॥

वृत्त्यर्थः—लेश्या-आदयः[1/3]। = लेश्या, परिणाम-देह-वेदना-विक्रियां (आदयः) हैं

व्याख्यात-अर्थाः[1/3]। = उनके अर्थ (दूसरे अध्याय के ६, ८, ३६ सूत्रों की वृत्तिमें क्रमसे) कहेगये हैं

अशुभतराः[1/3]। इति *प्रकर्ष-निर्देशः[1/1]।; तिर्यच- = (इस सूत्र में) अशुभतर ऐसा (विशेषण) अधिकपनाके अर्थ है । तिर्यंच-

गतिविषय-अशुभलेश्या-आदि-अपेक्षया[3/1]।। चअधः*अधः = गतिविषय, अशुभलेश्यादिकोंकी अपेक्षासे तथा (= च) नीचे २ (नरकों में)

स्वगति-अपेक्षया[3/1]।। = अपनी गति (अर्थात् नरकगति) की अपेक्षासे (अशुभतर लेश्याओं की प्रधानता)

वेदितव्यः[1/1]। = जाननी चाहिये भावार्थ जैसे तिर्यंचोंके अशुभलेश्यादि है उनकी अपेक्षासे नरकगति में अशुभतर लेश्या हैं और नारकियों के परस्पर की अपेक्षासे ऊपर के नारकियोंसे नीचे नीचेके नारकियोंकें अशुभतरलेश्या, अशुभतरपरिणाम, अशुभतरदेह, अशुभतरवेदना, अशुभतर विक्रियां है

नित्य-शब्दः[1/1]। आभीक्ष्ण्य-वचनः[1/1]। नित्यम्[1/1]।।। = (इस सूत्र में) नित्य शब्द वारवार अथवा निरन्तर होनेका वाचक है निरन्तर

अशुभतराः[1/3]। लेश्या-आदयः[1/3]। येषाम्[6/3]। = अशुभतर है लेश्या, परणति, शरीर, पीडा, और विक्रिया (= आदयः) जिनके

ते[1/3]। नित्य-अशुभतर-लेश्या-परिणाम- = ते नित्य अशुभतर लेश्या वाले तथा निरन्तर अशुभतर परणतियुक्त और

देह-वेदना- = सदा अशुभतर शरीर सहित तथा निरतर अशुभतर वेदना वा पीड़ा सहित

विक्रियाः[1/3]। नारकाः[1/3]। = और सर्वकाल अशुभतर विक्रियासहित नारकी जीव है ॥

प्रथमाद्वितीययोः कापोती लेश्या, तृतीयायामुपरिष्टात्कापोती अधो नीला, चतुर्थ्यां नीला, पञ्चम्यामुपरि नीला अधः कृष्णा, षष्ठ्यां कृष्णा, सप्तम्यां परमकृष्णा । स्वायुषः प्रमाणावधृता द्रव्यलेश्या उक्ताः ॥ भावलेश्यास्तु अन्तर्मुहूर्तपरिवर्तिन्यः ॥ परिणामाः स्पर्शरसगन्धवर्णशब्दाः क्षेत्रविशेषनिमित्तवशादतिदुःखहेतवोऽशुभतराः ॥ देहाश्च तेषामशुभनामकर्मोदयादत्यन्ताशुभतरा विकृताकृतयो हुण्डसंस्थाना दुर्दर्शनाः ॥ तेषामुत्सेधः ॥ प्रथमायां सप्त धनूंषि, त्रयो हस्ताः षडंगुलयः ।

प्रथमा-द्वितीययोः ॥ कापोती ॥ लेश्या ॥ तृतीयां ॥	= पहिली (रत्नप्रभा) तथा दूसरी (शर्कराप्रभा) मे कापोतलेश्या है । तीसरी (वालुकाप्रभा) में
उपरिष्टात् * कापोती ॥	= ऊपर (के बिलोंके रहनेवाले नारकियोंके) कापोत लेश्या है ।
अधः * नीला ॥ चतुर्थ्याम् ॥	= (इस तीसरी वालुकाप्रभा भूमिके) नीचे नील लेश्या है । चौथी (पंकप्रभा भूमि) में
नीला ॥; पञ्चम्याम् ॥ उपरि *	= नील लेश्या है । पांचवी (धूमप्रभा भूमि) में ऊपर (बिलोंमें रहनेवाले नारकियोंके)
नीला ॥ ; अधः * कृष्णा ॥	= नीललेश्या है । (इसके) नीचे (के बिलोंमें रहनेवाले नारकियोंके) कृष्णलेश्या है
षष्ठ्याम् ॥ कृष्णा ॥ सप्तम्याम् ॥ परम कृष्णा ॥	= छठी (तमःप्रभाभूमि) में कृष्ण लेश्या है; सातवी (महातमःभूमि) में उत्कर्ष कृष्णलेश्या है
स्व-आयुषः । प्रमाण-अवधृता ॥ द्रव्य लेश्या ॥ उक्ताः ॥	= अपनी २ आयुके परिमाण द्वारा निश्चित कीगई द्रव्य लेश्यायें कही गई है अर्थात् नारकियोंके उपर्युक्त क्रमसे कही गई द्रव्य लेश्यायें आयुतक एकसी रहतीहैं।
भावलेश्याः ॥ तु * अन्तमुहूर्त-परिवर्तिन्यः ॥	= परन्तु भावलेश्या अन्तर्मुहूर्त में पलटती रहती है ।
परिणामाः । स्पर्श रस-गन्ध-वर्ण-शब्दाः ।; क्षेत्र-विशेष	= परिणाम-स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण-और शब्द है । स्थानभेदके
निमित्त-वशात् । अतिदुःखहेतवः । अशुभतराः ।	= निमित्तके वशसे (ते परिणाम) अति दुःखके कारण अशुभतर है ।
देहाः । च * तेषां । अशुभ-नामकर्म-उदयात् ।	= और (= च) उन (नारकी जीवों) के शरीर अशुभ नामकर्मके उदयसे
अत्यन्त-अशुभतराः । विकृत-आकृतयः । हुंड—	= अतिशय अशुभतर है (और) बुरी आकृतिवाले, हुंडक—
संस्थानाः । दुर्दर्शनाः ।; तेषां । उत्सेधः । प्रथमायां ॥	= संस्थानरूप कुदर्शनीय (= देखनेमें बुरे) है उन (नारकियों) की उंचाई प्रथम भूमिमें
सप्त ॥ धनूंषि ॥ त्रयः । हस्ताः । षड् । अंगुलयः ।	= सात चाप तीन हाथ छै अंगुल है । अर्थात् सवा इकतीस हाथ है

अधोऽधोद्विगुणाद्विगुणा उत्सेधः ॥ अभ्यन्तरासद्वेद्योदये सति अनादिपारिणामिकशीतोष्णबाह्यनिमित्त-जनिताः सुतीव्रा वेदना भवन्ति नारकाणाम् ॥ प्रथमाद्वितीयातृतीयाचतुर्थीषु उष्णवेदनान्येव नरकाणि पंचम्यामुपरि उष्णवेदने द्वे नरकशतसहस्रे । अधः शीतवेदनमेकं शतसहस्रम् । षष्ठीसप्तम्योःशीत-वेदनान्येव ॥ शुभं करिष्याम इति अशुभतरमेव विकुर्वन्ति, सुखहेतूनुत्पादयाम इति दुःखहेतूनेवो-त्पादयन्ति । त एते भावा अधोऽधोऽशुभतरा वेदितव्याः ॥

किमेतेषां नारकाणां शीतोष्णजनितमेव दुःखमुतान्यथापि भवतीत्यत आह—

अधस् अधः* द्विगुण-द्विगुणाः१। उत्सेधः१। अभ्यन्तर-	= नीचे २ (ऊपरके नरकसे प्रत्येक नरकमें) दूनी २ ऊंचाई है । अन्तरंग
असत्-वेद्य-उदये१।सति१।अनादि-पारिणामिक-	= असाता वेदनीय कर्मके उदय होनेपर अनादिकाल परिणमनरूप (भूमिका)
शीत-उष्ण-बाह्य-निमित्त-जनिताः१॥सुतीव्राः१॥वेदनाः१॥	= बाह्यनिमित्तरूप-शीत-उष्णकरि (नारकियोंके) तीव्र पीड़ा
भवन्ति T नारकाणां६। प्रथमा-द्वितीया-तृतीया-	= होती है । नारकियोंके पहिली (भूमि)में दूसरी (शर्कराप्रभा)में तीसरी (वालुकाप्रभा)में
चतुर्थीषु७॥उष्णवेदनानि१॥एव*नरकाणि१॥	= चौथी (पङ्कप्रभा पृथिवी)में उष्ण वेदना रूप ही बिल है
पंचम्याम् ७॥उपरि*उष्णवेदने१॥द्वे १॥	= पांचवी (धूमप्रभाभूमि)में ऊपरके उष्णवेदनारूप दो
नरकशत-सहस्रे१॥अधः* शीतवेदनम्१॥	= लाख बिले है । (पांचवीं भूमिके शेष) नीचेके शीतवेदनारूप
एकम्१॥ शत-सहस्रम्१॥ षष्ठी-सप्तम्योः७॥	= एक लाख (बिले) है । छठी (तमःप्रभा भूमि) में और सातवीं (महातमःप्रभा भूमि)में
शीत-वेदनानि१॥ एव*;शुभम्२॥ करिष्यामः T इति*	= शीतवेदना ही है । अच्छी (विक्रिया) हम करेंगे ऐसे (नारकी विचारे हैं)
अशुभतरम्२॥ विकुर्वन्ति T सुखहेतून्२। उत्पादयामः T	= परन्तु अशुभतर ही करते है । सुख के कारण हम पैदा करेंगे ।
इति* दुःखहेतून्२। उत्पादयन्ति T	= इस प्रकार (नारकी जीव विचार करते है परन्तु) दुःखके कारणही उपजाते है
ते१। एते१। भावाः१। अधः* अधः* अशुभतराः१।	= ते ये परिणाम (एक नरककी अपेक्षासे दूसरेमे) नीचे नीचे अशुभतर
वेदितव्याः१। किम्*एतेषाम्६। नारकाणाम्६।	= जानना चाहिये ॥ (प्रश्न) क्या इन नारकियोंके
शीत-उष्ण-जनितम्१॥ एव* दुःखम्१॥ उत*	= शीत और उष्णसे उत्पन्न हुआ ही दुःख है अथवा
अन्यथा * अपि * भवति T इति * आह T	= अन्य प्रकार भी (नारकी जीवोंको दुःख) होता है अतः (अग्रिम सूत्रमे) कहते है कि

॥ परस्परोदीरितदुःखाः[1] ॥ ४ ॥

कथं परस्परोदीरितदुःखत्वं नारकाणाम् । भवप्रत्ययेनावधिना मिथ्यादर्शनोदयाद्विभङ्गव्यपदेशभाजा च दूरादेव दुःखहेतूनवगम्योत्पन्नदुःखाः प्रत्यासत्तौ परस्परालोकनाच्च प्रज्वलितकोपाग्नयः पूर्वभवानुस्मरणाच्चातितीव्रानुबद्धवैराश्च श्रृगालादिवत्स्वाभिघाते प्रवर्तमानाः

सूत्रम्—परस्परोदीरितदुःखाः ॥ ४ ॥ = (नारकाः) परस्पर-उदीरित-दुःखाः (भवन्ति) ॥ ४ ॥

सूत्रार्थ—नारकाः[१/३]। परस्पर-उदीरित-दुःखाः[१/३]। भवन्ति = नारकीजीव परस्पर उत्पन्नकियाहुआ दुःख (एक दूसरेको) देनेवाले होते हैं। अर्थात् कुत्तोंकी भांति निरन्तर एक दूसरेके साथ लड़ते झगड़ते रहते हैं।

वृत्त्यनुवादः—कथं* परस्पर-उदीरित— = (प्रश्न) कैसे आपसमें (एक दूसरे को) कियाहुआ अथवा उपजायाहुआ

दुःखत्वं[१]। नारकाणाम्[६/३]। मिथ्या-दर्शन-उदयात्[५]। = नारकीजीवोंके दुख होता (= दुखत्व) है। मिथ्या दर्शनके उदय होनेसे

विभंग-व्यपदेश-भाजा[३]। भवप्रत्ययेन[३]। अवधिना[३]। च*(४) = विभगनामक वा विभंग नामकाधारक भवनिमित्तक अवधिज्ञानकरि

दूरात्[५]। एव* दुःखहेतून्[२/३]। अवगम्य— = दूरसे ही (नारकी जीव) दुःखके कारणोंको जानकर

उत्पन्न-दुःखाः[१/३]। च* प्रति-आसत्तौ[७]। परस्पर- = पीड़ा उपजावे हैं और (= च) अति निकट होनेपर आपसमें (एक दूसरे को)

आलोकनात्[५]। प्रज्वलित-कोप-अग्नयः[१/३]। च* = देखनेसे कोपरूपी अग्नि प्रज्वले है जिनके अर्थात् तीव्र क्रोधयुक्त होजाते हैं ॥ तथा

पूर्व-भव-अनुस्मरणात्[५]॥ अतितीव्र- = पहिले जन्मके बुरे वा निकृष्ट (= अनु) स्मरणसे अतितीव्र और

अनुबद्धवैराः[१/३]। च* शृगाल-आदिवत्* = दृढ़ (= अनुबद्ध) वैररूप होय है और (= च) सियार अथवा गीदड़ आदिके सदृश

स्व-अभिघाते[७]। प्रवर्तमानाः[१/३]। = अपने घात (करने) में प्रवर्तते हैं अर्थात् जैसे गीदड कुत्ते आदि अन्य गीदड़-कुत्ते आदिको देख कर निर्दयता पूर्वक क्रोध करते हैं तथा परस्पर दांतोंका प्रहार करते हैं तैसेही नारकी-जीव एक दूसरेके और अपने घात करनेमे प्रवर्तते हैं।

---

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों सम्प्रदायोंमें एक है। (२) दूरात् शब्द त्रिलिंगी है। (३) अवगम्य शब्द सम्बन्धक भूत कृदन्त है। (४) च वाक्य भूषणके लिये है। (५) अनु शब्दका अर्थ पद्मचन्द्रकोशमें निकृष्ट दिया है 'निकृष्ट स्मरणसे' अभिप्राय है कि नारकी जीवोंको कुअवधिसे पूर्व भवकी बुरी बातोंको सुधि आती है भली बातों की नहीं।

स्वविक्रियाकृतासिवासिपरशुभिण्डिमालशक्तितोमरकुन्तायोघनादिभिरायुधैः स्वकरचरणदशनैश्च छेदनभेदनतक्षणदंशनादिभिः परस्परस्यातितीव्रं दुःखमुत्पादयन्ति ॥

किमेतावानेव दुःखोत्पत्तिकारणप्रकारः उतान्योपि कश्चिदस्तीत्यत आह—

॥ संक्लिष्टासुरोदीरितदुःखाश्च प्राक्चतुर्थ्याः ॥ ५ ॥

स्व-विक्रिया-कृत-असि-वासि-परशु- भिण्डि-माल-शक्ति-तोमर-कुन्त- अयस्घन-आदिभि-[३]॥आयुधैः[३]॥च*स्व-कर- चरण-दशनैः[३]। छेदन-भेदन-तक्षण-दशन- आदिभिः[३]। परस्परस्य[६]। अतितीव्रं[२]॥दुःखम्[२]॥ उत्पादयन्ति[T] किम्* एतावान्[१]। एव दुःख-उत्पत्ति- कारण-प्रकारः[१]। उत*अन्य[१]। अपि*कश्चित्* अस्ति इति* अतः आह[T]

= अपनी कीहुई विक्रियासे तरवार(= असि), कुल्हाड़ा(= वासि) फरसा (परशु) = बन्दूक(= भिण्डि) चक्र(= माल) शक्ति बर्छी लोहेके डंडे(तोमर) भाला सेल(= कुन्त) = लोहेके घन आदिक अस्त्र शस्त्र द्वारा(= आयुधैः) और (= च) अपने हाथ = पग दांतोंकरि छेदना भेदना छीलना(= तक्षण) काटना (दंशन) = आदिक (क्रिया) से आपसकी अतितीव्र पीड़ाको = उत्पन्न करते हैं। क्या इतने ही दुःख उत्पन्नहोनेके = हेतु अन्य भेद हैं अथवा कुछ दूसरा (= अन्य)भी है = इस लिये (अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि—

सूत्रम्-संक्लिष्टासुरोदीरितदुःखाश्चप्राक्चतुर्थ्याः = नारकाःसंक्लिष्टा-असुर-उदीरित-दुःखाश्चप्राक्-चतुर्थ्याः

सूत्रार्थः- नारकाः[३]। प्राक्*चतुर्थ्याः[५]॥ संक्लिष्ट—असुर- उदीरित—दुःखाः[१]। च*

= नारकीजीव चौथी (पंकप्रभा भूमिमे पहिले) तीसरी भूमि पर्यंत = क्लेश (परिणामोंकरि) युक्त असुरोंद्वारा वा क्लेश भावोंके धारक असुरोंकरि = उत्पादित (= उदीरित) दुःख भी सहते है

(१) दोनों सम्प्रदायोंमें इस सूत्रका अर्थ और पाठ एकसा है।(२) अनुवादक के पास इस समय मूल सूत्रों की बहुत सी प्रतियें हैं। उनमेंसे सदासुखजीकी दो प्रतियोंमें और ज्ञानचन्द्रजी लाहोरकी एक प्रतिमें "प्राक् चतुर्भ्य" ऐसा पाठ है और शेष प्रतियोंमें "प्राक् चतुर्थ्याः" ऐसा पाठ है। इन तीन प्रतियोंका पाठ अनुचित जान पडता है क्योंकि एक, द्वि, त्रि, चतुर् से नवन् दशन् इत्यादि उन्नीस पर्यन्त ए संख्यायें जिस संख्यासे सम्बन्ध रखती हैं उस संज्ञा का विशेषण कहलाती हैं। एक द्वि, त्रि, चतुर् तक संख्याओंका वही विभक्ति वही वचन और वही लिङ्ग संस्कृतभाषाके

व्याकरणोंके सूत्रोंके अनुसार होता है जो सम्बन्धित संख्याका होता है जैसे त्रीणि वलयानि इस वाक्य में वलयानि शब्द प्रथमा विभक्ति बहुवचन नपुंसक लिङ्गमें है। त्रीणि शब्द भी जो वलियानि शब्द का विशेषण है प्रथमा विभक्ति बहुवचन नपुंसक लिंगमें है परन्तु पञ्चन् से नवदशन् (उन्नीस) तक की विभक्ति और वचन वही होता है जो संज्ञा का, लिङ्ग वही होने की आवश्यकता नहीं है जैसे "सप्त भूमयो न अष्टौ न नव चेति" (संस्कृत पृष्ठ १६०) यहां पर सप्त अष्टौ नव तीनों शब्दों का बहुवचन प्रथमा विभक्ति (कारक) ही है जो भूमि शब्दका है परन्तु भूमि शब्द का बहुवचन स्त्रीलिङ्ग भूमय है, लिंग सप्त-अष्टौ नव-शब्दों का कोई भी समझलो क्योंकि ये तीनों शब्द बहुवचन ही होते हैं और तीनों लिंगों में एकसे ही रूप धरते हैं चतुर्थ शब्द भूमि के लिये सूत्र में आया है न कि नरक शब्द के लिये। अब प्राक् शब्द के साथ पञ्चमी विभक्ति है सो चतुर्थ्याः पञ्चमी विभक्ति एकवचन स्त्रीलिंग चतुर्थी शब्द का है परन्तु चतुर्भ्यः पञ्चमी विभक्ति बहुवचन और पुल्लिंग अथवा नपुंसक लिंग है। नरक शब्द पुल्लिंग है इस अध्यायके किसी सूत्रमें दूसरे सूत्रको छोड़कर नरक शब्द नहीं लाये हैं नरक शब्द दूसरे सूत्रमें बिलोंके अर्थमें है रत्नप्रभा शर्कराप्रभा वालुकाप्रभा पंक-प्रभा धूमप्रभा तम प्रभा महातमःप्रभाके अर्थ में नहीं है। नारका शब्द तीसरे सूत्र में लाये हैं उसका अर्थ नरकके दुःख सहन करनेवाले नारकी जीवोंके है। इससे नरक शब्दकी अनुवृत्ति इस सूत्रमें लेना अयुक्त है पहिले सूत्रमें भूमि शब्द लाये हैं इससे भूमि शब्द की अनुवृत्ति पांचवां सूत्रमें आती है न कि नरक शब्दकी।

यदि हम चतुर्भ्यः ऐसा पाठ पढ़ें तो अर्थमें भिन्नता होगी अर्थात् भूमिके स्थानमें नरक(=नारकियोंके रहनेकाबिल) ऐसा अर्थ होजावेगा जो आगम विरुद्ध है, सूत्र व्याकरणके अनुसार अशुद्ध भी होजायगा। प्राक् चतुर्थ्याः =चौथी पंकप्रभा भूमिसे पहिले अर्थात् तीसरी दूसरी और पहिली भूमि तक

प्राक् चतुर्भ्यः =चार(नरकों)से पहिले अर्थात् तीन चार बिलोंके पहले पहले॥

चतुर्भ्यः यह वाक्य पहिले अध्याय के तीसवां सूत्र में "एकस्मिन् आ चतुर्भ्यः" दूसरे अध्याय के अट्ठाईसवां सूत्रमें "संसारिणः प्राक् चतुर्भ्यः" और ४३वां सूत्रमें "आ चतुर्भ्यः" लाये हैं आङ् (=आ)का अर्थ तक या पर्यन्त है और प्राक् का अर्थ पहिले पहिले है आ चतुर्भ्यः, पहिला "ज्ञान शब्द का विशेषण है जो नपुंसकलिंग है। दूसरा 'आ चतुर्भ्यः' शरीरोंका विशेषण है जो नपुंसकलिंग है। तीसरा 'प्राक चतुर्भ्यः' समय शब्दका गुणवाचक है समय शब्द पुल्लिंगहै। स्मरण रहे कि चतुर्भ्यः चतुर् शब्दकी पञ्चमी विभक्ति बहुवचन नपुंसकलिंग और पुल्लिंग है अर्थात् चतुर् शब्दकी पञ्चमीविभक्ति नपुंसक और पुल्लिंगमें एकही रूप "चतुर्भ्यः"धारण करती है॥अत "प्राक्चतुर्भ्यः" स्त्रीलिंग नहीं होसकता है इसलिये यह अशुद्धहै।

देवगतिनामकर्मविकल्पस्यासुरत्वसंवर्तनस्य कर्मण उदयादस्यन्ति परानित्यसुराः । पूर्वजन्मनि सम्भावितेनातितीव्रेण संक्लेशपरिणामेन यदुपार्जितं पापकर्म तस्योदयात्सततं क्लिष्टाः संक्लिष्टाः । संक्लिष्टा असुराः संक्लिष्टासुराः । संक्लिष्टा इति विशेषणान्न सर्वे असुरा नारकाणां दुःखमुत्पादयन्ति । किं तर्हि, अम्बावरीषादय एव केचनेति ॥

देवगति-नामकर्म-विकल्पस्य[६।१]। असुरत्व-संवर्तनस्य[६।१]।	= देवगति नामक नामकर्मका भेद जो असुरत्वसंवर्तन तिस
कर्मणः[६।१]। उदयात्[५।१]। अस्यन्ति परान्[२।३]। इति असुराः[१।३]।	= कर्मके उदयसे दूसरोंको फैंकते हैं अर्थात् दुख देते है ऐसे असुर हैं
पूर्व-जन्मनि[७।१]। सम्भावितेन[३।१]। अतितीव्रेण[३।१]।	= पहिले भवमें होसकने योग्य बहुत तीव्र
संक्लेशपरिणामेन[३।१]। यद्[१।१]। उपार्जितं[१।१]। पापकर्म[१।१]।	= संक्लेश भावकरि जो पापकर्म उपार्जन किया है
तस्य[६।१]। उदयात्[५।१]। सततं[१।१]। क्लिष्टाः[१।३]। संक्लिष्टाः[१।३]।	= तिसके उदय से निरन्तर क्लेशयुक्त वा क्लिशित (= क्लिष्ट) ते संक्लिष्टा हैं
संक्लिष्टाः[१।३]। असुराः[१।३]। संक्लिष्टा-असुराः[१।३]।	= निरन्तर क्लेशयुक्त परिणामवाले (= संक्लिष्टाः) असुर (है वे) संक्लिष्टा असुर हैं
संक्लिष्टा इति * विशेषणात्[५।१]।	= संक्लिष्टा ऐसे विशेषण से अर्थात् असुरा शब्दके पहिले जो 'संक्लिष्टा' विशेषण है उससे (अभिप्राय है कि)
सर्वे[१।३]। असुराः[१।३]। नारकाणां[६।३]। दुखम्[२।१]। न * उत्पादयन्ति	= सब असुरकुमार नारकियोंकी पीड़ा नहीं उत्पन्न करते है
किम् * तर्हि *	= तो (नारकियोंको) कौन (असुर कुमार पीड़ा देते) है
अम्ब-अवरीप-आदयः[१।३]। एव * केचन * इति *	= अम्ब, अवरीप (= अम्बरीप) आदि (जातिके असुर) ही कोई ऐसें पीड़ा देतेहैं

(१) "अम्बावरीषादय" के स्थान में सभाष्यतत्वार्थाधिगमसूत्रमें अम्बाबरीषादय है।

अम्ब अम्बरीप श्याम शवल रुद्र-उपरुद्र काल-महाकालस्य असिपत्रवन	= अम्ब, अम्बरीप, श्याम, शवल, रुद्र, उपरुद्र, काल, महाकालस्य, असिपत्रवन,
कुम्भी वालुका-वैतरणी खर-स्वर महाघोषा	= कुम्भी, वालुका, वैतरणी, खर, स्वर और महाघोष
पञ्चदश[१]। एते संक्लिष्टा[१]। असुरा[१]।	= ये पन्द्रह जाति के क्लेश परिणाम के धारक असुर.
नारकीणाम्[६]। वेदना[२]। समुदीरयन्ति	= नारकियोंको वेदना (पीडा) उत्पन्न करतेहैं (सभाष्यतत्वार्थाधिगमसूत्रपृ०७१,७२)

अवधिप्रदर्शनार्थं प्राक्चतुर्थ्या इति विशेषणम् ॥ उपरि तिसृषु पृथ्वीषु संक्लिष्टासुरा बाधाहेतवो नातःपरमिति प्रदर्शनार्थम् ॥ चशब्दः पूर्वोक्तदुःखहेतुसमुच्चयार्थः ॥ सुतप्तायोरसपायननिष्टप्ताय-स्तम्भालिङ्गनकूटशाल्मल्यारोहाणावतरणायोधनाभिघातवासीक्षुरतक्षणक्षारतप्ततैल-

अवधि-प्रदर्शन-अर्थम्-[१]।। प्राक्चतुर्थ्याः[७]।। = मर्यादा दिखावनेके लिये (इस सूत्रमें) प्राक् चतुर्थ्याः (अर्थात्-चौथी पंकप्रभाभूमिसे पहिले पहिले तीसरी वालुकाप्रभा पृथिवी पर्यंत)

इति*विशेषणम्[१]।।। उपरि*तिसृषु[७]।। = ऐसा गुणवाचक (वाक्य) है । ऊपरकी तीन (रत्नप्रभा,शर्कराप्रभा,वालुकाप्रभा)

पृथ्वीषु[७]।। संक्लिष्टा-असुराः[१]। बाधा-हेतवः[१]। = भूमियोंमे संक्लिष्ट परिणामवाले असुर (नारकियोंको) पीड़ा (उपजाने) के कारण हैं

न*अतः* परम्* = नहीं है इस (तीसरी वालुकाप्रभाभूमि)से आगेके(पंकप्रभा,धूमप्रभा, तमःप्रभा महातमः प्रभा भूमियोंमें इन असुरों द्वारा पीड़ा उपजावनेका हेतु)

इति*प्रदर्शन-अर्थम्[१]।।। = ऐसा दिखावने के लिये (प्राक्-चतुर्थ्याः वाक्य सूत्रमें) है ।

च-शब्दः[१]। पूर्व-उक्त- = (इस सूत्रमें) चशब्द पहिले कहेगये (= तीसरे और चौथे सूत्रोंमें कि अशुभतर—लेश्या परिणामादिसे उत्पन्न तथा परस्पर कारणसे उत्पन्न)

दुःख-हेतु-समुच्चय-अर्थः[१]। = दुखोंके कारणोंके संचयके लिये है तात्पर्य यह है कि अशुभतर लेश्या परिणामादिकसे उत्पन्न वेदना तथा परस्पर कारणसे उत्पन्न पीड़ा और असुरोंके द्वारा (तीसरे नरक तक) उत्पन्न बाधा इसप्रकार नारकी जीवोंको तीन प्रकारके दुःख होते है ।

सुतप्त-अयस्-रस-पायन-निष्टप्त-अयस्- = अति संतप्त लोहे (अयस्)के रसके पिलानेसे, अति संतप्त लोहेके

स्तम्भ-आलिंगन-कूट- = खम्भसे आलिंगन करानेसे, माया रचित अथवा मिथ्याभूत

शाल्मलि (शाल्मली)-आरोहण-अवतरण- = संभलके वृक्ष अर्थात् शूलीपर चढ़ानेसे, और उतारनेसे,

अयस्-घन-अभिघात-वासी- = लोहेके (अयस्)घनसे ताड़नादि करि(अभिघात),कुल्हाड़ा(वासी) वसूला(वासी) तथा

क्षुर-तक्षण-क्षार-तप्ततैल- = छुराद्वारा काटने(= तक्षण)छीलना(तक्षण)से, खारेपानी(= क्षार)तथा अतिउष्णतेलसे

ऽवसेचनायःकुम्भीपाकाम्बरीषभर्जनवैतरणीमज्जनयन्त्रनिष्पीडनादिभिर्नारकाणां दुःखमुत्पादयन्ति ॥ एवं छेदनभेदनादिभिः शकलीकृतमूर्तीनामपि तेषां न मरणमकाले भवति । कुतः? अनपवर्त्यायुष्कत्वात् ॥ यद्येवं, तदेव तावदुच्यतां नारकाणामायुःपरिमाणमित्यत आह—

तेष्वेकत्रिसप्तदशसप्तदशद्वाविंशतित्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा सत्त्वानां परा स्थितिः ॥ ६ ॥

अवसेचन-अयस्-कुम्भी-पाक-अम्बरीष-भर्जन-	= सींचनेकरि लोहेके घडोंमें पकानेसे भूभलमें भूजनेसे
वैतरणी-मज्जन-यन्त्र-निष्पीडन-आदिभिः३।	= वैतरणीनदीमें डुबानेसे, (कोल्हू आदि) कलों (यन्त्र)में पेलनादि करि
नारकाणाम् दुःखं१।।।उत्पादयन्ति;एवंछेदन-भेदनादिभिः	= नारकीनके वेदना उपजाते है। इस प्रकार छेदन भेदनादिक करि
शकलीकृत-मूर्तीनाम्६।।अपि*तेषाम्६।	= शरीरके खंडखंड कियेजानेपर (= कृत)भी तिन(नारकियों)की (विना आयु पूर्णकिये)
न*मरणम्१।।। अकाले७। भवति।कुतः*?	= अकालमें वा अपवर्गमें मृत्यु नही होतीहै। (प्रश्न) क्योंकर(नारकियोंकीअकाल मृत्यु नही) (उत्तर। क्योंकि (दूसरे अध्यायके त्रेपनवां सूत्रके अनुसार नारकीजीव)
अनअपवर्त्य-आयुष्कत्वात्५।।।	= परिपूर्ण आयुवाले होतेहैं अर्थात् नारकीजीव अपनी आयु परिपूर्ण किये विना मृत्युको प्राप्त नहीं होते है
यदि*एवम्*तद्-एव-तावत्-नारकाणाम्६।आयुष्—	= जो ऐसे है(नारकी पूर्णआयुवालेहैं) तो(= तावत्)वो(तद्)ही(एव)नारकियोंकी आयुकी
परिमाणं१।।। उच्यताम् ! इति अतः*आह	= मर्यादा कहीजाय (= उच्यताम्) इसलिये (आचार्य उत्तरसूत्रमें) कहते है कि .

सूत्रम्—तेष्वेकत्रिसप्तदशसप्तदशद्वाविंशतित्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा सत्त्वानां परा स्थितिः ॥ ६ ॥

= तेषु-एकसागरोपमा-त्रिसागरोपमा-सप्तसागरोपमा-दशसागरोपमा-सप्तदशसागरोपमा-द्वाविंशतिसागरोपमा-त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा-सत्त्वानां परा स्थितिः (यथाक्रमम्) ॥ ६ ॥

(१) दोनों आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एक है। 'यथाक्रमम्'की अनुवृत्ति इस अध्यायके दूसरे सूत्रसे लीगई है देखो टिप्पणी पृष्ठ २१

इस सूत्रमें नरक शब्दकी अनुवृत्ति सप्तमी विभक्ति बहुवचन पुलिंगमें ली है और सत्त्वानां शब्द षष्ठी विभक्ति बहुवचन पुलिंग वा नपुसकलिंगमें लाये हैं जिसका अर्थ जीवोंकी है और पूज्यपादस्वामीकृत संस्कृतवृत्तिमें सत्त्वानां शब्दको सूत्रमें लानेका यह कारण बताया है कि "एक तीन सप्त इत्यादिक" सागरोंकी स्थिति "भूमयः" शब्दसे सम्बन्ध न करजाय अर्थात् ऐसा अर्थ रोकनेके लिए लाये हैं कि एक तीन सप्त इत्यादिक सागरोंकी स्थिति भूमियों वा पृथ्वीयोंकीहै । इसका यह आशय निकला कि एक-तीन सप्त इत्यादि सागरोंकी स्थिती जीवोंकी है 'पृथिवी अथवा भूमि'की नहींहै । (क) स्थितिका सम्बन्ध भूमि शब्दके साथ न होजावे (ख) तेषु (ग) सत्त्वानां इनके संबधमें जो विचार और भाव मेरे हृदयमें उत्पन्न हुए हैं उनका उल्लेख पाठकोंकी सेवामें नम्रतापूर्वक इस प्रकार है कि—

(क) 'व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिर्नहि सन्देहादलक्षणम्'=(वाक्यका) यथार्थ आशय(=विशेषप्रतिपत्तिः) व्याख्यानसे (अर्थात् परस्पर शब्दोंका सबंध वा अन्वय करनेसे) निकलता है क्योंकि (वाक्योंमें) संदेहरूप वा संदिग्धार्थ शब्दसे (=सन्देहात्) अलक्षणता अर्थात् अनिश्चितभाव वा अर्थ (=अलक्षणम्) नहीं (नहि) होती है इस परिभाषाके अनुसार नारकियोंसे स्थिति शब्दका सबध होजाता है नकि भूमि शब्दसे ।

(ख) तेषु (=तिनमें, उनमें)=नरकेषु (=नरकोंमें) ॥ पूज्यपाद स्वामीने 'तेषु'का यही अर्थ लिया है । नरक शब्द उमास्वामी दूसरे सूत्रमें 'बिलों'के अर्थमें अर्थात् नरक (=निवासस्थान) के अर्थमें लाये हैं प्रथम रत्नप्रभा भूमिमें ऐसे तीसलाख बिलें वा निवासस्थान है । और इस अध्यायके किसी सूत्रमें नरक शब्द नहीं आया है पश्चात् पूज्यपाद स्वामीने 'भूमि'का अर्थ लेलियाहै जैसाकि "तेषु नरकेषु भूमिक्रमेण यथासंख्यमेकादयःस्थितयो ऽभिसम्बन्ध्यन्ते॥ रत्नप्रभायामुत्कृष्टा स्थितिरेक सागरोपमा" इत्यादि सात वाक्योंसे संस्कृतवृत्तिमे प्रगट है ॥ स्मरण रहे कि प्रथम भूमिमें तीसलाख, दूसरीमें पचीसलाख इत्यादि नरक हैं । तब अर्थ यह हुआ कि तीसलाख नरकोंमें एकसागरकी उत्कृष्ट स्थिति नारकजीवोंकी है । पचीसलाख नरकोंमें नारकीजीवोंकी उत्कृष्ट स्थिति तीनसागरकी है इत्यादि । 'तास्वेक' (=तासुएक=तिन भूमियोंमें एकसागर इत्यादि) पाठसे सब क्लिष्टता जाती रहती है और पूज्यपाद स्वामीके अनुकूल सीधासाधा अर्थ निकल आता है कि तिन भूमियोंमें क्रमसे उत्कृष्ट स्थिति एक तीन इत्यादि सागरों की है ॥ तासु=तासु भूमिषु ॥ तासु शब्द दूसरे सूत्रमें भी आया है । 'तासु' शब्दको अनुवृत्तिभी इस सूत्रमे लेसकते हैं परन्तु तेषु(=तासु) स्पष्टताके लिये है ।

(ग) सत्त्वाना=जीवोंकी, तीसरे नरकतक असुरकुमारदेव, स्वर्गके देव इत्यादि भी जाते हैं।। इसलिये 'सत्त्वानां'से आशय 'नारकाणांसत्त्वानां' वाक्यसे है अर्थात् नारकी जीवोंकी भावार्थ 'नारकाः' शब्द इस अध्यायके तीसरे सूत्रमें आया है और उसकी अनुवृत्ति चौथे और पांचवें सूत्रमें लीहै। इस सूत्रमें भी षष्ठी विभक्ति बहुवचनके रूपमें ('नारकाः' शब्दकी अनुवृत्ति) आती है । 'नारकाणां' की अनुवृत्तिसे भी विना 'सत्त्वाना' शब्दके लायेहुये काम चल सकता था परन्तु उमा स्वामीने 'सत्त्वानां' शब्दका प्रयोग इसकारणसे किया है कि सूत्र स्पष्ट होजावे और सत्त्वानां शब्दको देखकर पाठक सरलतासे समझलें कि इसमें 'नारकाणां' की अनुवृत्ति अवश्य आती है 'सत्त्वानां' से केवल काम नहीं चल सकता क्योंकि भ्रम उत्पन्न होता है कि 'जीवोंकी' उत्कृष्ट स्थिति है कि नारकी जीवोंकी(उत्कृष्ट स्थिति है)॥ हमारे कई मित्रोंका विचार है कि यदि 'सत्त्वानां' शब्द न लाते तौभी ज्ञापकरूपसे और उपर्युक्त परिभाषासे पाठक समझ लेते कि नारकियोंकी स्थितिसे प्रयोजन है ।

यथाक्रममित्यनुवर्तते । तेषु नरकेषु भूमिक्रमेण यथासंख्यमेकादयः स्थितयोऽभिसम्बन्ध्यन्ते ॥ रत्नप्रभायामुत्कृष्टा स्थितिरेकसागरोपमा । शर्कराप्रभायां त्रिसागरोपमा । वालुकाप्रभायां सप्तसागरोपमा । पङ्कप्रभायां दशसागरोपमा । धूमप्रभायां सप्तदशसागरोपमा ।

सूत्रार्थः—तेषु३॥ एकसागरोपमा१॥ त्रिसागरोपमा१॥ = तिन (नरकों) में एकसागर प्रमाण तीनसागर प्रमाण

सप्तसागरोपमा१॥ दशसागरोपमा१॥ सप्तदशसागरोपमा१॥ = सात सागर प्रमाण, दश सागर प्रमाण, सत्रह सागर प्रमाण

द्वाविंशतिसागरोपमा१॥ त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा१॥ = बाईस सागर प्रमाण और तेतीस सागर प्रमाण

नारकाणां३॥सत्त्वानां३॥ परा१॥ स्थितिः१॥ यथाक्रमम्* = नारकी जीवोंकी उत्कृष्ट आयु यथासंख्य अथवा क्रमानुसार है अर्थात् पहिली रत्नप्रभा भूमिमें एकसागरकी उत्कृष्ट (नारकीजीवों)की आयु है ।

दूसरी शर्कराप्रभा पृथिवीमें तीन सागरकी उत्कृष्ट स्थिति है तीसरी वालुकाप्रभा भूमिमें सातसागरकी उत्कृष्ट स्थिति है । चौथी पङ्कप्रभा भूमिमें दश सागरकी उत्कृष्ट स्थिति है, पांचवी धूमप्रभा पृथिवीमें सत्रह सागरकी उत्कृष्ट आयु है, छठवीं तमःप्रभा भूमिमें बाईस सागरकी उत्कृष्ट स्थिति है और सातवीं महातमः पृथिवी विषै तेतीस सागरकी उत्कृष्ट स्थिति है ॥

वृत्त्यानुवादः—यथाक्रमम्*इति-अनुवर्तते = (इस सूत्रमें दूसरे सूत्रसे) 'यथाक्रमं' ऐसा अनुकर्षण है अथवा अनुवृत्ति आती है अर्थात् दूसरे सूत्रसे इस सूत्रमें यथाक्रम शब्द लियागया है

तेषु३॥ नरकेषु३॥ भूमि-क्रमेण३॥ = तिन नरकोंमें (रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, इत्यादिक) पृथिवीयोंके क्रमसे

यथासंख्यम्*एकादयः१॥ स्थितयः१॥ = एक आदिक (सागरोपमा) स्थिति यथासंख्य अर्थात् संख्याके अनुसार

अभिसम्बन्ध्यन्ते रत्नप्रभायाम्७॥ उत्कृष्टा१॥ = लगाईजाती है जोडीजाती है (इसलिये) रत्नप्रभा पहिली पृथिवीमें उत्कर्ष

स्थितिः१॥ एकसागरोपमा१॥ शर्कराप्रभायाम्७॥ = आयु एक सागरोपमा है । शर्कराप्रभा (दूसरी भूमि) में (उत्कृष्ट स्थिति)

त्रिसागरोपमा१॥ वालुकाप्रभायाम्७॥ = तीन सागरोपमा है । वालुकाप्रभा (तीसरी पृथिवी) में (उत्कृष्ट स्थिति)

सप्तसागरोपमा१॥ पङ्कप्रभायाम्७॥ दशसागरोपमा१॥ = सातसागरोपमा है। पंकप्रभा (चौथी भूमि)में (उत्कर्ष आयु) दशसागरोपमा है

धूमप्रभायाम्७॥ सप्तदश-सागरोपमा१॥ = धूमप्रभा (पांचवी भूमि) मे (उत्कृष्ट आयु) सत्रह सागरोपम है ।

तमःप्रभायां द्वाविंशतिसागरोपमा। महातमःप्रभायां त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा इति॥ परा उत्कृष्टेत्यर्थः॥ सत्त्वानामिति वचनं भूमिनिवृत्त्यर्थम्॥ भूमिषु सत्त्वानामियं स्थितिः। न भूमीनामिति॥

उक्तः सप्तभूमिविस्तीर्णोऽधोलोकः॥ इदानीं तिर्यग्लोको वक्तव्यः। कथं पुनस्तिर्यग्लोकः। यतोऽसंख्येयाः स्वयम्भूरमणपर्यन्तास्तिर्यक्प्रचयविशेषेणावस्थिता द्वीपसमुद्रास्ततस्तिर्यग्लोक इति॥ के पुनस्तिर्यग्व्यवस्थिता इत्यत आह—

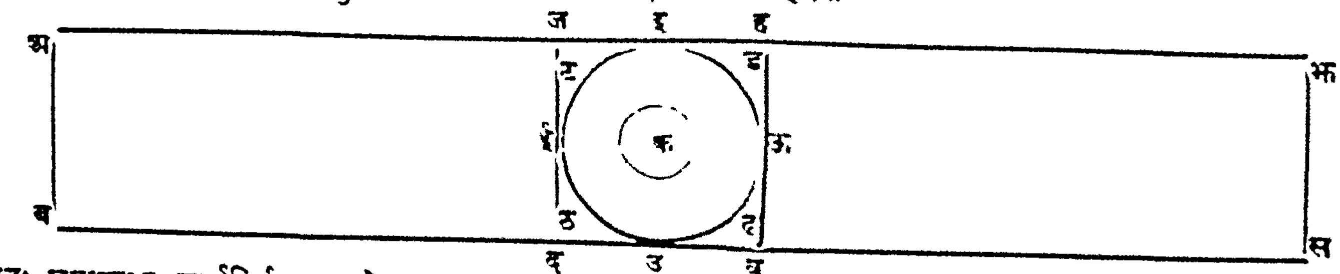
तमःप्रभायां॥ द्वाविंशति-सागरोपमा॥	= तमःप्रभा (छठवीं पृथिवी) में उत्कृष्ट स्थिति वाईस सागर प्रमाण है॥
महातमःप्रभायां॥ त्रयस्त्रिंशत्-सागरोपमा॥ इति*	= महातमःप्रभा (सातवीं भूमि) में उत्कृष्ट आयुः तेतीस सागरप्रमाण है
परा॥ उत्कृष्टा॥ इति*अर्थः॥ सत्त्वानां॥ इति*वचनं॥	= (इस सूत्रमें) परा (शब्द) उत्कृष्ट ऐसे अर्थमें है। सत्त्वानां ऐसा वाक्य
भूमि-निवृत्ति-अर्थम्॥	= भूमिका (स्थितिके साथ सम्बन्ध हो इस) निषेधके लिये है
भूमिषु॥ सत्त्वानां॥ इयम्॥ स्थितिः॥ न भूमीनां॥ इति*	= भूमियों विषे जीवोंकी यह आयु है नकि (रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा इत्यादि) भूमियोंकी एक तीन इत्यादिक सागरोंकी स्थिति है
सप्त-भूमि-विस्तीर्णः॥ अधस्*	= सात (रत्नप्रभा शर्कराप्रभा इत्यादिक) भूमिरूप है विस्तार जिसका ऐसा अधो-
लोकः॥ उक्तः॥ इदानीं*तिर्यग्लोकः वक्तव्यः॥ कथं*पुनः*	= लोक कहागया है अब तिर्यग्लोक कहना चाहिये। बहुरि कैसा
तिर्यग्लोकः॥ यतः * स्वयम्भूरमणपर्यन्ताः॥	= तिर्यग्लोक है अर्थात् तिर्यग्लोक ऐसा नाम कैसे हुआ। क्योंकि स्वयम्भूरमणसमुद्र तक
असंख्येयाः॥ तिर्यक्-प्रचय-विशेषेण॥ अवस्थिताः॥	= असंख्याते तिर्यक् प्रचयरूप विशेषकरि (गोल वृत्ताकारमें फैलेहुए) स्थापित
द्वीप-समुद्राः॥ ततः॥* तिर्यग्लोकः॥ इति*के॥ पुनः *	= द्वीप और समुद्र हैं तिससे तिर्यग्लोक ऐसा (नाम) है। बहुरि कौन
तिर्यग्व्यवस्थिताः॥ इति * अतः * आह	= तिर्यग् रूप अवस्थित (द्वीप तथा समुद्र) हैं। इसलिये (आगेसूत्रमें) कहते हैं कि

तिर्यक्लोक, मध्यलोक, तिर्यग्लोक मनुष्यलोक किसको कहते हैं? तिर्यग्लोक और मध्यलोकमें क्या अन्तर है? प्रथम परिभाषा दीगई है पश्चात् शास्त्र द्वारा प्रमाण दिया गया है।

(उत्तर) तीनसौतेतीस घनाकर राजू क्षेत्र को अर्थात् एक राजु लम्बे एक राजू चौड़े एक राजू ऊंचे ऐसे तीनसौतेतालीस भागवाले क्षेत्रको

जिसको घनोदधिवातवलय घनवातवलय और तनुवातवलय घेरे हुए हैं लोक कहते हैं। इसही क्षेत्रको तिर्यंचलोक कहते हैं क्योंकि तिर्यंचलोक वह है जिसमें तिर्यंच रहते हों। अब लोककी त्रसनाडीमें जो एकराजू लम्बी है और एकही राजू चौडी है और चौदहराजू ऊंची है त्रस और स्थावरोंके रहने का स्थान है और शेष भाग लोकमें तीनसौउनतीस घनाकार राजुओंमें स्थावर रहते हैं स्थावर भी तिर्यंच संज्ञामें अन्तर्गत हैं अतः लोक, सामान्यलोक और तिर्यंचलोक (क्योंकि लोकमें लगभग सब स्थानोंमें तिर्यंच रहते हैं) ये तीनों समानार्थ वाचक कहे जासकते हैं। त्रसनाडीमें स्थावर भी हैं तो भी क्योंकि प्रधानता से इसमें त्रस पायेजाते हैं इससे त्रसनाडी कहते हैं। "सर्वलोकव्यापित्वात्तेषां क्षेत्रविभागोनोक्त" सर्वार्थसिद्धि पृष्ठ २५२, राजवार्तिक सूत्र २७, वार्तिक ४, ५, और श्लोकवार्तिक सूत्र २७ देखो ॥ सर्व लोकमें फैले हुए होनेसे तिर्यंचोंका क्षेत्र विभाग नहीं कहागया है।

पूरब पश्चिम एक राजू चौडा और उत्तर दक्षिण ७ राजू लम्बे और मेरुकी जडसे एक लाख चालीस योजन (चूलिका तक) ऊंचे क्षेत्रको मध्यलोक कहते हैं ॥ जम्बूद्वीपसे लेकर स्वयम्भूरमण समुद्रतक तिर्यक् प्रचयरूपकरि अर्थात् गोल वृत्ताकार रूपमें फैले हुए असंख्याते द्वीप समुद्रोंको अन्तर्गत करनेवाला क्षेत्र एकराजू है व्यास जिसका सो तिर्यग्लोक (सर्वार्थसिद्धिवृत्ति पृष्ठ २०२ के अनुसार द्वितीय सस्करण पृष्ठ ११७के अनुसार) है॥ ढाई द्वीपके क्षेत्रको मनुष्यलोक कहते है ॥ उपर्युक्त परिभाषाओं का प्रमाण इस प्रकार है कि



पुनः समान्याध ऊर्ध्वतिर्यग्मनुष्यलोकान् पञ्चसंस्थाप्यालाप क्रियते—=पुनः सामान्य अध ऊर्ध्व तिर्यग्-मनुष्यलोकान् पंचसंस्थाप्य-आलापः क्रियते (गोम्मटसार जीव काण्ड सद्वाण समुद्घारे इत्यादि ५४३ गाथा पृष्ठ ६४०) =पुनि सामान्यलोकको, अधोलोकको, ऊर्ध्वलोकको, तिर्यग्लोकको, मनुष्यलोकको, (ये) पांच स्थापनकर सम्भाषण वा कथन कियागया है ॥ "समस्त जो लोक सामान्य लोक है। मध्यलोक तैं नीचे सो अधोलोक है। मध्यलोकके उपरि ऊर्ध्वलोक है। मध्यलोक विषैं एकराजू चौडा लाख योजन ऊचा तिर्यक्लोक है। पैंतालीस लाख योजन चौडा लाख योजन ऊचा मनुष्यलोक हैं" गोम्मटसार जीवकाण्ड पृष्ठ ६२५ ॥ प० टोडरमलजीके ये शब्द कि "मध्यलोकविषैं"(मध्यलोकमें)तिर्यक्लोक है प्रगट करते हैं कि तिर्यग्लोक छोटीवस्तु है जो मध्यलाकमें है। बस यह वही तिर्यक्लोक है जिसका व्यास एकराजू है। चौडा एकराजू परिधिके किसी बिन्दुसे सामनेके ठीक दूसरे बिन्दु तक है और एक लाख योजन मेरुकी जडसे मेरु की ऊंचाई तक है। शिष्यके प्रश्न करनेपर (सर्वार्थसिद्धि पृष्ठ २०२ द्वितीयसंस्करण पृष्ठ ११७) कि "कथ पुनस्तिर्यग्लोक" उत्तरमें पूज्यपादस्वामी कहते हैं कि "यतोऽसंख्ययाः स्वयम्भूरमणपर्यन्तास्तिर्यक्प्रचय विशेषेणावस्थिता द्वीप-

समुद्रास्ततः स्तिर्यग्लोक इति ॥ अर्थात् (जम्बूद्वीपसे) स्वयम्भूरमण समुद्र पर्यंत गोल वृत्ताकारमें फैले हुए स्थापित असंख्याते द्वीप तथा समुद्र हैं तिससे तिर्यग्लोक ऐसा है ॥ तिर्यंचइस शब्दका अर्थ देव-नारकी-मनुष्योंको छोडकर अवशेष जीवोंका है और 'तिर्यग्लोक' इस शब्दका अर्थ गोल-वलयाकार-वृत्ताकार ऐसा लिया गया है ॥ पृष्ठ २५ के चित्रमें भसको पूरबमें एकराजू माना है अब को पश्चिममें एकराजू माना है। अभ को उत्तरमें सात राजू माना है दक्खिनमें सात राजू बसको माना है तो "अबसभ" समस्त चित्र मध्यलोक होगा जिसमें जदवह क्षेत्रभी सम्मिलित है। और उसके कोन ट-ठ-ड-ढ (देखो पृष्ठ २४) जो स्वयम्भूरमण समुद्रके बाहर हैं सम्मिलित हैं ("अंतिम स्वयम्भूरमण द्वीपके उत्तरार्द्धमें तथा समस्त स्वयम्भूरमण समुद्रमें और चारों कोनोंकी पृथिवियोंमें कर्मभूमिकी सी रचना है देखो श्रीमाघनंदिकृत श्रावकाचार तथा जैनसिद्धान्तप्रवेशिका पृष्ठ१३४) परन्तु तिर्यग्लोकमें केवल इईउऊ वृत्त ही सम्मिलित होगा जिसमें "क" जम्बूद्वीप और उसको वलयाकार घेरे हुए लवनोदधि-धातुकीखंड, कालोदधि और पुष्करार्द्ध आदि असख्यात द्वीप समुद्र स्वयम्भूरमण समुद्र तक (घेरे हुए) सम्मिलित हैं ॥

कितने ही महाशयोंने मध्यलोक और तिर्यक्लोकको उचाई मेरुकी जडसे एक लाख योजनकी लिखी है कितने ही महाशयों ने एक लाख चालीस सहस्रका उल्लेख किया है। जिन्होंने मेरुपर्वतकी चूलिकाकी उचाई ग्रहण की है उनकी अपेक्षासे एकलाख मय जडके सुमेरुपर्वतकी उचाई होती है और चालीस सहस्र चूलिकाकी उचाई होजाती है। इसमें कोई बात सन्देह वा शंकाकी नहीं उत्पन्न होतीहै ॥ समस्तलोककी उचाई चौदह राजू है ॥ सुम्मेरुकी जडसे ऊपर सात राजू है मध्यलोककी उचाई निकालनेसे चूलिकासे लोक अत पर्यंत सात राजूसे कुछ न्यून हो जाता है परन्तु एक राजूकी लम्बाई इतनी अधिक है कि एक लाख चालीस योजन उसके समीप कुछ भी नहीं होते इसलिए सामान्यरूपसे स्वर्गके प्रथम पटलसे उचाई लोक पर्यंत सातराजू ही कही है। मेरुकी जडसे नीचे सातराजू अधोलोक है जिसका क्षेत्रफल १९६ घनरूप राजू है अर्थात् एकराजू लंबे एकराजू चौडे एकराजू ऊंचे ऐसे १९६राजुओंके टुकडे है॥ मेरुकी जडसे सिद्धालय पर्यंत १४७घनाकार राजू है अर्थात् मेरुकी जड़से ब्रह्मब्रह्मोत्तर स्वर्गतक७३½ घनाकारराजू है और ब्रह्मब्रह्मोत्तरसे ऊपर सिद्धालय पर्यंत ७३½ घनाकारराजू और हैं १९६ + ७३½ + ७३½ सर्वयोग ३४३ राजूका हुआ॥ बहुतसे साधारण भोले भाले महाशय "तिर्यंच लोक" क्या है। कहते है मध्यलोक है इसका कारण यह है कि यथार्थमें "तिर्यग्लोक" का अपभ्रंश करते करते तिर्यंच-लोक कहने लगे और तिर्यग्लोकको मध्यलोकके अर्थमें समझने लगे। 'तिर्यग्लोक' जैसा कि हम सिद्ध कर चुके है मध्यलोकका भाग है ॥ वास्तविक तिर्यंचलोक वही है जिसका उल्लेख कर चुके है ॥

पुष्करवरः समुद्रः । ४ वारुणीवरो द्वीपः । वारुणीवरः समुद्रः । ५ क्षीरवरो द्वीपः । क्षीरवरः समुद्रः । ६ घृतवरो द्वीपः । घृतवरः समुद्रः । ७ इक्षुवरो द्वीपः । इक्षुवरः समुद्रः । ८ नन्दीश्वरो द्वीपः । नन्दीश्वरवरः समुद्रः । ९ अरुणवरो द्वीपः । अरुणवरः समुद्रः । इत्येवमसंख्येया द्वीपसमुद्राः स्वयम्भूरमणपर्यंता वेदितव्याः । अमीषां विष्कम्भसन्निवेशसंस्थानविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ द्विर्द्विर्विष्कम्भाः पूर्वपूर्वपरिक्षेपिणो वलयाकृतयः ॥ ८ ॥

पुष्करवरः १/१। समुद्रः १/१। वारुणीवरः१/१ द्वीपः १/१।	= पुष्कर वर समुद्र है। वारुणीवर द्वीप है
वारुणीवरः १/१। समुद्रः १/१। क्षीरवरः १/१। द्वीपः १/१।	= वारुणीवर समुद्र है। क्षीरवर द्वीप है
क्षीरवरः १/१। समुद्रः १/१। घृतवरः १/१। द्वीपः १/१।	= क्षीरवर समुद्र है। घृतवर द्वीप है
घृतवरः १/१। समुद्रः १/१। इक्षुवरः १/१। द्वीपः १/१।	= घृतवर समुद्र है। इक्षुवर द्वीप है
इक्षुवरः १/१। समुद्रः १/१। नन्दीश्वरः १/१। द्वीपः १/१।	= इक्षुवर समुद्र है। नन्दीश्वर द्वीप है
नन्दीश्वरवरः१/१। समुद्रः १/१। अरुणवरः १/१। द्वीपः १/१।	= नन्दीश्वर समुद्र है। अरुणवरद्वीप है
अरुणवरः १/१। समुद्रः१/१। इति*एवम्*	= अरुणवर समुद्र है। इसप्रकार निश्चयसे (= एवम्)
असंख्येयाः १/३। द्वीपसमुद्राः १/३। स्वयम्भूरमण-	= असंख्यात द्वीप तथा समुद्र स्वयम्भूरमण (समुद्र)
पर्यंताः १/३। वेदितव्याः १/३। अमीषां ६/३। विष्कम्भ-	= तक जानना चाहिये। इन (द्वीप तथा समुद्रों) की चौड़ाई
सन्निवेश-संस्थान-विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थं १/१॥। आह	= अवस्थान (=सन्निवेश) और आकार(=संस्थान)के विशेष जाननेकेलिये कहतेहै कि

द्विर्द्विर्विष्कम्भाःपूर्वपूर्वपरिक्षेपिणोवलयाकृतयः=(जम्बूद्वीप लवणोदादयः)द्विःद्विःविष्कम्भाःपूर्वपूर्वपरिक्षेपिणः वलय-आकृतयः१/३।

सूत्रार्थः—जम्बूद्वीप-आदयः१/३। लवणोद-आदयः१/३।च	= जम्बूद्वीप, आदिक और लवण समुद्र आदिक (प्रत्येक समुद्र तथा द्वीप एक दूसरेसे)
द्विः द्विः विष्कम्भाः १/३। पूर्वपूर्व-	= दूगने दूगने विष्कुम्भ वाले है और पहिले पहिले (द्वीप और समुद्र अग्रिमअग्रिमसे)
परिक्षेपिणः १/३।	= चारों ओरसे घिरे हुए वा लिपटे हुए है (वहुरि सबही द्वीप तथा समुद्र)

(१) इस सूत्रका पाठ औरअर्थ दोनों सम्प्रदायोंमें एक है (२)वलयाकृति=वलयाकार=वृत्ताकार=वलयरूप=वृत्तरूप (लपेटे हुए) य सब एकार्थकहै।

द्विर्द्विरिति वीप्सायां वृत्तिवचनं विष्कम्भद्विगुणत्वव्याप्त्यर्थम् ॥ आद्यस्य द्वीपस्य यो विष्कम्भः तद्द्विगुणविष्कम्भो लवणजलधिः । तद्द्विगुणविष्कम्भो द्वितीयो द्वीपः ।

वलय-आकृतयः$^{1}_{3}$ =वलयाकार अथवा वृत्ताकार हैं अर्थात् लवण समुद्रके एक ओरके व्यासखंड जम्बूद्वीपके व्याससे दुगणे है और जम्बूद्वीपको चारों ओरसे वेढेहुए है ऐसेही धातुकीखंडके एक ओरके व्यासखंडका प्रमाण लवणसमुद्रके व्याससे दुगना है और सर्वतः लवणसमुद्रको लपेटेहुए हैं ऐसेही कालोदधि पुष्करवर इत्यादि असंख्यातद्वीपसमुद्रोंको स्वयम्भूरमण समुद्रपर्यंत जानना

(१)द्विः*द्विः*इति*वीप्सायां$^{7}_{1}$ वृत्ति- वचनम्$^{1}_{1}$ =द्विः द्विः (दुगुण दुगुण) ऐसा वार वारके अर्थमे समासरूपमे द्विः द्विः वाक्य है

विष्कम्भ-द्विगुणत्व-व्याप्ति-अर्थम्$^{1}_{1}$ =सो विस्तार अर्थात् व्यास एक ओरके खंडके प्रमाणका (=विष्कम्भ) दूनापनाके फैलानेके

आद्यस्य$^{6}_{1}$ द्वीपस्य$^{6}_{1}$ यो विष्कम्भः(२ =लिये है प्रथम द्वीपका जो व्यास प्रमाण है

तद्-द्विगुण-विष्कम्भः$^{1}_{1}$ लवणजलधिः$^{1}_{1}$ =उससे दुगुण व्यासभागप्रमाण वाला लवण समुद्र है अर्थात् जम्बूद्वीपकी परिधि पर एक विन्दु लेकर उसीकी सीधमे दूसरा विन्दु लवण समुद्र की परिधि पर लेकर यदि दोनों विन्दुओंको मिलाकर सीधी रेखा खींच दे तो इस रेखाकी लम्बाई दो लाख योजनकी होगी

तद्-द्विगुण-विष्कम्भः$^{1}_{1}$ द्वितीयः$^{1}_{1}$ द्वीपः$^{1}_{1}$ =उस (लवनोदधि) से दूने व्यास भागवाला (=विष्कम्भ)दूसरा (धातुकी खंड) द्वीप है

(१) यह बहुव्रीहि समास है। बहुव्रीहिसमास तीन प्रकारका है (क) उत्तर पदार्थ प्रधान (ख) उभय पदार्थ प्रधान (ग) अन्यपदार्थ प्रधान यहाँ पर प्रथमभेद उत्तर पदार्थ प्रधान है। जैसे द्विदशा.। द्वौवारौ दश इति विग्रह्य दो वार दश जिसमें हो ऐसा विग्रह है जिसका अर्थ बीस है। उभय पदार्थ प्रधान वह है जिसमें दोनों ही पद प्रधान हों जैसे द्वित्रा द्वौ वा त्रयो वा इति विग्रह्य भावार्थ दो वा तीन। अन्य पदार्थ प्रधान वह है जिसमें अन्य अर्थात् अन्तिम पद प्रधान हो जैसे उपविंशा· उपसमीपम् गता विंशतिर्येषामिति विग्रह्य=समीपको प्राप्त होगयेहैं बीस जिन्होंके लगभग बीस अर्थ है।

(२) विष्कम्भ –इसका अर्थ पद्मचन्द्र कोषके पृष्ठ ३६१ में "विस्तार फैलाव"का है विस्तार वा फैलावका अर्थ क्षेत्रफल भी समझा जासके है परन्तु यहाँपर यह आशय नहीं है क्योंकि जम्बूद्वीपसे लवणोदधि का क्षेत्रफल लगभग चौबीस गुणा अधिक होता है यहां पर विष्कम्भ का आशय वह एक ओरका व्यासखड है जो जम्बूद्वीपकी परिधिपर एक विन्दु लेकर उसकी सीधमें दूसरा विन्दु लवणोदधिकी परिधि परसे लेकर दोनों विन्दुओंको मिलानेसे बनता है ॥ जम्बूद्वीपसे लवणोदधि लगभग चौबीस गुणा है और धातुकी खड जम्बूद्वीपसे लगभग एकसौ चवालीस गुणा है जैसा कि

तद्द्विगुणविष्कम्भो द्वितीयो जलधिरिति॥ द्विर्द्विर्विष्कम्भो येषां ते द्विर्द्विर्विष्कम्भाः॥ पूर्वपूर्वपरिक्षेपि-वचनं ग्रामनगरादिवद्विनिवेशो मा विज्ञायीति॥ वलयाकृतिवचनं चतुरस्रादिसंस्थानान्तरनिवृत्त्यर्थम्॥

तद्-द्विगुण-विष्कम्भः[1/1] द्वितीयः[1/1] जलधिः[1/1] इति*	=तिस (धातु की खंड द्वीप) से दुगना व्यास खंडका धारक दूसरा समुद्र (कालोदधि) है
द्विः द्विः विष्कम्भः[1/1] येषां[6/3] ते द्विः द्विः विष्कम्भाः[1/3]	=दूना दूना विष्कम्भ है जिनका ते दूने दूने विष्कम्भ वाले हैं
पूर्व-पूर्व—	=(इस सूत्रमें) पहिले पहिले (द्वीप तथा समुद्र एक दूसरे को)
परिक्षेपिन्-वचनम्[1/1]॥	=चारों ओर से अथवा सर्वतः वेढे हुए इस वाक्य(=वचन) से प्रगट है कि
ग्राम-नगर-आदिवत्*विनिवेशः[1/1]मा*विज्ञायि[T]इति*	=ग्राम तथा नगरादिकके सदृश अवस्थान (इन द्वीप तथा समुद्रोंको) मत जानो
वलय-आकृति-वचनं[1/1]॥ चतुरस्र-आदि-संस्थान-	=वृत्ताकार वा वलयाकार वाक्य चौकोर आदिक आकार (=संस्थान) की
अन्तर-निवृत्ति-अर्थम्[1/1]॥	=अवधिके निपेधके लिये है

द्यानतराय आगरा निवासीके जिन्होंने धर्मविलासग्रन्थ सवत् १७८०में पूर्ण किया उसके प्रकरण "द्रव्यादि पचीसी"के निम्नलिखित सवैया इकतीसासे प्रगट है। जम्बू एक लाख दो दो दोनों ओर लौनोदधि, सब पाच सूची गुनी पचीस फलाइये। द्वीप एक लौनिकार चौबीस समुद्रधार, जम्बू सौं चौबीस गुणो उदधि बताइये ॥ धात खड चार चार सब सूची तेरह की, गुनौ सौ उनहत्तरि पच्चीस घटाइये। जम्बू सेती एकसौ चवाल गुनौ धात खड आगैं दधि दीप यों ही जिनवानी गाइये ॥ १० ॥ एक समुद्र वा द्वीपके सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक की रेखाके प्रमाणको जो कि केन्द्रमें होकर जाती है सूची कहते हैं। इस प्रकार १ लाख जम्बूद्वीप दोनों ओर दो दो लाख लवण समुद्र सब मिलकर पांच लाख इसको इसीसे गुणनेसे पच्चीस हुए इसमें जम्बूद्वीप एक लाख को घटाने पर जम्बूद्वीप से लवण समुद्र चौबीस गुणा भया। इसी प्रकार लवण समुद्र क दोनों ओर चार चार धात,की खड हैं सब मिल कर १३ हुए। इसको इसीसे गुणनेसे १६९ हुए इसमें से पच्चीस घटाने से १४४ गुना जम्बूद्वीप से धातकी खड भया इसी प्रकार सर्वत्र जानना ॥

द्विर्द्विर्विष्कम्भा — पूर्वोक्त वर्णित "एक ओर का व्यास खंड" की लम्बाई दूनी दूनी एक द्वीप से उसके निकटके समुद्र की है उसके पश्चात्के द्वीप की वैसा ही व्यास खड उस समुद्रके व्यास खड से दूना है जैसे जम्बूद्वीप पटल रूप अथवा प्रस्तर रूप वृत्त है और उसका पूर्ण व्यास एक लाख योजन का है लवण समुद्रका एक ओरका व्यासखड दो लाख योजन लम्बा है ॥ इसी प्रकार धातुकी खड द्वीपका एकओरका व्यास-खड जो लवणोदधि और धातुकी खड की परिधियों पर एक सीधमें दो बिन्दुओं के मिलने से बनता है, चार लाख योजन है और कालोदधिका एक ओरका व्यासखड जो धातुकी खड और कालोदधिकी परिधियों पर एक दूसरे के सीधमें दो बिन्दु लेकर मिलानेसे बनता है आठलाख योजन का है इसी प्रकार अन्तके स्वयम्भूरमणसमुद्र पर्यंत जानना ॥ ऐसा अभिप्राय द्विर्द्विर्विष्कम्भा वाक्य का है ॥

अत्राह, जम्बूद्वीपस्य प्रदेशसंस्थानविष्कम्भा वक्तव्यास्तन्मूलत्वादितरविष्कम्भादिविज्ञानस्येत्युच्यते

तन्मध्ये मेरुनाभिर्वृत्तो योजनशतसहस्रविष्कम्भो जम्बूद्वीपः ॥९॥

अत्र*आह,जम्बूद्वीपस्य,प्रदेशसंस्थान-विष्कम्भाः वक्तव्याः=यहाँ प्रश्न है कि जम्बूद्वीपका ठिकाना(=प्रदेश) आकार,व्यासप्रमाण कहना चाहिए

तद्मूलत्वात् =उस (जम्बूद्वीप के) स्थित आदिक होने से अर्थात् निर्णय आदिक होने से

इतर-विष्कम्भादि-विज्ञानस्य इति*उच्यते =दूसरे(द्वीप तथा समुद्र)के विस्तारादिक जाननेको इसप्रकार(अग्रिमसूत्रमें)कहाजाताहै कि

[१]सूत्रम्–तन्मध्ये[२] मेरुनाभिर्वृत्तो योजनशतसहस्रविष्कम्भो जम्बूद्वीपः ॥ ९ ॥

सूत्रार्थः–तद्मध्ये मेरुनाभिः =उन (सर्वद्वीप समुद्रों)के बीचाबीचमें मेरुपर्वत है नाभि जिसकी अथवा मेरु पर्वत जिसकी नाभि (=मध्य) में है ऐसा

[३]वृत्तः =वलयाकार (सूर्य के मंडल सदृश वा कुलाल के चक्र सदृश आकारवान्)

[४]योजन-शतसहस्र-विष्कम्भः[५] जम्बूद्वीपः =एकलक्ष योजन व्यासधारक जम्बूद्वीप है अर्थात् जम्बूद्वीप प्रतर पटल वृत्त है शेष समुद्र और द्वीप स्वयम्भूरमण समुद्र तक वलयाकार चूड़ी, चक्र, अथवा कड़े के आकारवत् है सो इस जम्बूद्वीपके प्रत्येक व्यासकी लम्बाई एक लाख योजन है और उस जम्बूद्वीप की परिधि तीन लाख सोलह हजार दोसौ सत्ताइस योजन तीन कोश एक सौ अट्ठाइस चाप साढ़े तेरह अंगुल से कुछ अधिक है (योजन २००० कोशका है)

(१) श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों आम्नायों में इस सूत्र का पाठ और अर्थ एकसा है ॥ कहीं कहीं पर हमारे यहां जम्बूद्वीप भी पाठ ठीक है ॥

(२) मेरुनाभिः-इस वाक्य के दो प्रकार के समास हैं (१) मेरुपर्वत है नाभि जिसकी (२) मेरु पर्वत जिसकी नाभिमें है दोनों रीतिके समासों का यह आशय है कि मेरु जिस (जम्बूद्वीप) के बीच में है ॥

(३) वृत्त = कुलालके चक्र सदृश वृत्त होता है, उसके बीचाबीच में एक विन्दु कल्पित करे तो उस विन्दुको केन्द्र कहेंगे ॥ इस वृत्तकी किनारेका चौगिरदा गोल रेखाको परिधि कहतेहैं इस परिधि पर दो विंदु एकदूसरेके सामने लेकर केन्द्रमें होकर जो रेखा जाती है उसको व्यास वा सूची कहते है ॥ (४)यहां योजन दो सहस्र कोशका जानना चाहिये (५) व्यासका अर्थ (क) विस्तार (ख) फैलाव (ग) सूचीके है इसलिए यह शब्द विष्कम्भ शब्दके अनुवाद के लिए बहुत योग्य है ॥

ऽकृत्रिमः सपरिवारस्तदुपलक्षितोऽयं द्वीपः ॥

तत्र जम्बूद्वीपे षड्भिः कुलपर्वतैर्विभक्तानि सप्त क्षेत्राणि कानि तानीत्यत आह ॥

॥ भरतहैमवतहरिविदेहरम्यकहैरण्यवतैरावतवर्षाः क्षेत्राणि ॥१०॥

भरतादयः सञ्ज्ञा अनादिकालप्रवृत्ता अनिमित्ताः॥ तत्र१ भरतवर्षः क्वसन्निविष्टः? । दक्षिणदिग्भागे

अकृत्रिमः१ स-परिवारः१ =अकृत्रिम परिवार (अर्थात् अपने चारों ओर आधे आधे प्रमाण लिये एक सौ आठ छोटे जम्बूवृक्षों सहित

तद्-उपलक्षितः*अयं१ द्वीपः१ =उस (प्रधान वृक्ष)के योगसे (=उपलक्षितः) यह द्वीप है

तत्र*जम्बूद्वीपे७ षड्भिः३ कुलपर्वतैः३ विभक्तानि१ =तहां जम्बूद्वीप विषै छह कुलाचलनिकरि (=कुल पर्वतैः) विभाग कियेगये

सप्त१ क्षेत्राणि१ कानि१ तानि१ इति*अतः*आह=सात क्षेत्र हैं ते कौन हैं इसलिये (उत्तर सूत्र मे) कहते हैं कि

(१)सूत्रम्—भरतहैमवतहरिविदेहरम्यकहैरण्यवतैरावतवर्षाः क्षेत्राणि ॥ १० ॥

=(जम्बूद्वीपे)भरतवर्षः, हैमवतवर्षः, हरिवर्षः, विदेहवर्षः, रम्यकवर्षः, हैरण्यवतवर्षः, ऐरावतवर्षः, क्षेत्राणि भवन्ति॥ १० ॥

सूत्रार्थः—(जम्बूद्वीपे७)भरतवर्षः१ हैमवतवर्षः१ =(जम्बूद्वीप विषैं) भारतवर्ष, हैमवतवर्ष,

हरिवर्षः१ विदेहवर्षः१ रम्यकवर्षः१ =हरिवर्ष, विदेहवर्ष, रम्यकवर्ष,

हैरण्यवतवर्षः१ ऐरावतवर्षः१ क्षेत्राणि१ भवन्ति =हैरण्यवतवर्ष, ऐरावतवर्ष(ये सात) क्षेत्र हैं

वृत्त्यनुवादः-भरत-आदयः१ सञ्ज्ञा१ अनादिकालप्रवृत्ताः१=भरतादिक नाम अनादिकालसे प्रवर्तते हैं

अनिमित्ताः१ तत्र*भरतवर्षः१ =निमित्तरहित अर्थात् स्वयम् (प्रश्न) तहाँ (जम्बूद्वीपमें) पहिला भारतवर्ष (=भरतवर्ष)

क्व सन्निविष्टः१? दक्षिण-दिग्भागे७ =कहां स्थिति है (उत्तर)जम्बूद्वीपके दक्षिण दिशाके विभागमे

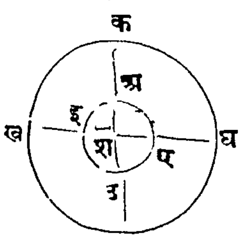
---

(१) हमारे यहां इस सूत्रका पाठ और अर्थ सर्वत्र एक है ॥ श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रमें भरत, हैमवत, इत्यादि के पहिले 'तत्र' शब्द अधिक है जिस 'तत्र' शब्द का अर्थ है "तहाँ" अर्थात् जम्बूद्वीपलवणोदादय इत्यादि" इस सातवां सूत्र से "जम्बूद्वीप" ऐसी अनुवृत्ति इस सूत्रमें लीगई है। दोनों सम्प्रदायों में इस सूत्रका अर्थ एक है ॥

हिमवतोऽद्रेस्त्रयाणां च समुद्राणां मध्ये आरोपितचापाकारो भरतवर्षः। विजयार्द्धेन गङ्गासिन्धुभ्यांच विभक्तः षट्खण्डः ॥ क्षुद्रहिमवन्तमुत्तरेण दक्षिणेन, महाहिमवन्तं पूर्वापरसमुद्रयोर्मध्ये २ हैमवत-वर्षः ॥ निषधस्य दक्षिणतो महाहिमवत उत्तरतः पूर्वापरसमुद्रयोरन्तराले ३ हरिवर्षः ॥ निषधस्यो-त्तरान्नीलतो दक्षिणतः

हिमवतः।अद्रेः।त्रयाणाम्।च*समुद्राणाम्।	=हिमवान्-पर्वतके (अद्रेः) और (=च) तीन और (लवण) समुद्रके
मध्ये।आरोपित-चाप-आकारः।भरतवर्षः।	=मध्यमें चढ़ायेहुये धनुषके आकार भारतवर्ष है
विजयार्द्धेन।गङ्गासिन्धुभ्याम्।च*विभक्तः।	=वैताड्यपर्वतसे तथा गंगा और सिंधु नदियों से पृथक् किये हुये (=विभक्तः)
षट्खण्डः।क्षुद्रहिमवन्तं।उत्तरेण।	=छह खंड है छोटे हिमवान् कुलाचलकी उत्तर दिशासे (और)
दक्षिणेन।महाहिमवन्तं।पूर्व-अपर-	=महाहिमवान् कुलाचलकी दक्षिण दिशासे पूर्व पश्चिमके दोनो ओर
समुद्रयोः।मध्ये।२ हैमवत वर्षः।	=लवण समुद्रके बीचमें दूसरा हेमवत वर्षधर क्षेत्र है
निषधस्य।दक्षिणतः*महाहिमवतः।उत्तरतः*	=निषध कुलाचलकी दक्षिण दिशासे और महाहिमवान् कुलाचलकी उत्तर दिशासे
पूर्व-अपर-समुद्रयोः।अन्तराले। ३ हरिवर्षः।	=पूर्व पश्चिम दोनों ओरके लवण समुद्रके बीचमें (अन्तराले) तीसरा हरि वर्ष है ॥
निषधस्य।उत्तरात्।नीलतः*दक्षिणतः*	=निषध कुलाचलकी उत्तर दिशासे (और) नील कुलाचलकी दक्षिण दिशासे

जम्बूद्वीप तथा लवण समुद्र आदि द्वीप और समुद्रोंका क्षेत्रफल निम्न लिखित गणितके नियमानुसार निकल आता है ॥



अइउए एक वृत्त है जिसके बीचोबीच श एक बिंदु है इस बिंदुको उक्त वृत्तका केन्द्र कहते हैं अउ रेखा और इए रेखाको व्यास कहते हैं। शअ,शउ,शइ,शए इन प्रत्येक बराबरकी रेखाको त्रिज्या, जीवा, वा व्यासार्ध कहते है अइउए गोल रेखाकोवृत्तकी परिधि कहते हैं। इस अइउए क्षेत्रको हमने जम्बूद्वीप माना है जिसका व्यास एक लाख योजन लम्बाईमें है और अइउए और कखगघके बीचके क्षेत्रको लवण समुद्र माना है। व्यासार्ध वा जीवाके वर्गको $\frac{22}{7}$ से गुणा करनेसे जो गुणनफल हो वही क्षेत्र होता है। जैसे जम्बूद्वीपकी जीवा पचास सहस्र योजन लम्बी है $(५००००)^2 \times \frac{22}{7} = २५००००००००\times\frac{22}{7} = \frac{५५००००००००००}{७} =$ ७८५७१४२८५७$\frac{1}{7}$ अर्थात् जम्बूद्वीपका क्षेत्रफल सातअरब पचासीकरोड इकहत्तरलाख ब्यालीससहस्र आठसौसत्तावन एकबटाहुये सात वर्गयोजन हुआ ऐसेही कखगघ वृत्तका क्षेत्र फल निकाल कर उसमेंसे जम्बूद्वीपका क्षेत्र घटानेसे लवण समुद्रका क्षेत्रफल निकल आवैगा ॥

पूर्वापरसमुद्रयोरन्तरे ४ विदेहस्य सन्निवेशो द्रष्टव्यः ॥ नीलत उत्तरो रुक्मिणो दक्षिणः पूर्वापरसमुद्रयोर्मध्ये ५ रम्यकवर्षः ॥ रुक्मिण उत्तराच्छिखरिणो दक्षिणात्पूर्वापरसमुद्रयोर्मध्ये सन्निवेशे ६ हैरण्यवतवर्षः॥शिखरिण उत्तरतस्त्रयाणां समुद्राणां मध्ये ७ ऐरावतवर्षः । स विजयार्द्धेन रक्तारक्तोदाभ्यां च विभक्तः षट्खण्डः॥षट्कुलपर्वता इत्युक्तं, के पुनस्ते, कथं वा व्यवस्थिता इत्यत आह—

पूर्व-(१)अपर-समुद्रयोः[६/२] अन्तरे[७/१] ४ विदेहस्य[६/१]	=पूर्व पश्चिम (लवण) समुद्रके भागोंके मध्यमें चौथा विदेह क्षेत्रकी
सन्निवेशः[१/१] द्रष्टव्यः[१/१], नीलतः *उत्तरः[१/१]	=सम्यक् स्थिति जानना योग्य है अथवा देखने योग्य है ॥ नील कुलाचलसे उत्तर
रुक्मिणः(२)[५/१] दक्षिणः[१/१] पूर्व-अपर-समुद्रयोः[६/२]	=रुक्मी वा रूपीकुलाचलसे दक्षिण (और) पूर्व और पश्चिम दोनो ओरके लवण समुद्रके
मध्ये[७/१] ५ रम्यक-वर्षः[१/१], रुक्मिणः[६/१] उत्तरात्[५/१]	=बीचमें पांचवां रम्यक वर्ष है ॥ रुक्मि कुलाचलके उत्तर दिशासे और
शिखरिणः[६/१] दक्षिणात्[५/१] पूर्व-अपर-समुद्रयोः[६/२]	=शिखरी कुलाचलके दक्षिण दिशासे पूर्व और पश्चिम दोनो ओरके लवण समुद्रके
मध्ये[७/१] सन्निवेशे[७/१] ६ हैरण्यवतवर्षः[१/१] ।	=अन्तराल स्थितिमें छठवां हैरण्यवत वर्षः है ॥
शिखरिणः[६/१] उत्तरतः *त्रयाणाम्[६/३] समुद्राणां[६/३]	=शिखिरी कुलाचलकी उत्तर दिशासे (और) तीन ओर लवण समुद्रके
मध्ये[७/१] ७ ऐरावतवर्षः[१/१], सः[१/१] विजयार्द्धेन[३/१]	=बीचमें सातवां ऐरावत वर्ष है ॥ वह (ऐरावत क्षेत्र) वैताड्य पर्वतकरि
रक्तारक्तोदाभ्याम्[३/२] च *विभक्तः[१/१] षट्खण्ड[१/१]	=तथा (च) रक्ता रक्तोदा दोनो नदियोंकरि छह खंडरूपमें बटा हुआ है ॥
षट्-कुलपर्वताः[१/३] इति *उक्तं[१/१] ।। के[१/३] पुनः *ते[१/३]	=छह कुलाचल पर्वत ऐसा कहा गया है अथवा वर्णित है । बहुरि(=पुनः)ते कोन हैं ॥
कथं *वा *व्यवस्थिताः[१/३] इति *अतः *आह	=अथवा किस प्रकार व्यवस्थित हैं । इसलिये (आचार्य अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

(१) लवण समुद्र वलयाकार सर्वत. जम्बूद्वीपको घेरे हुए एक ही है "समुद्राणाम्" बहुवचन और "समुद्रयो." द्विवचन इस कारणसे लाये हैं कि "समुद्राणाम्" शब्दसे लवण समुद्रके तीन ओरके भागोंसे आशय है और समुद्रयो शब्दसे लवणोदधिके पूर्व और पश्चिमकी सीमाओंके भागोंसे अभिप्राय है इसीलिए अनुवादमें भाग शब्द लाए हैं ॥ (२) रुक्मिणः[५/१] अथवा [६/१] दोनों हो सकते हैं पंचमी विभक्तिमें अर्थ रुक्मी कुलाचलसे दक्षिण ऐसा होगा और षष्ठी विभक्तिमें (रुक्मी कुलाचलके) दक्षिण ऐसा अर्थ है ॥

॥ तद्विभाजिनः पूर्वापरायता हिमवन्महाहिमवन्निषधनीलरुक्मिशिखरिणो वर्षधरपर्वताः ॥ ११ ॥

तानि क्षेत्राणि विभजन्त इत्येवंशीलास्तद्विभाजिनः ॥ पूर्वापरायता इति पूर्वापरकोटिभ्यां लवणजलधिस्पर्शिन इत्यर्थः ॥ हिमवदादयोऽनादिकालप्रवृत्ता अनिमित्तसञ्ज्ञाः वर्षविभागहेतुत्वाद्वर्षधरपर्वता इत्युच्यन्ते ॥ तत्र क्व हिमवान् ? । भरतस्य हैमवतस्य च सीमनि व्यवस्थितः॥ क्षुद्रहिमवान् योजनशतोच्छ्रायः॥हैमवतस्य हरिवर्षस्य च विभागकरो महाहिमवान् द्वियोजनशतोच्छ्रायः ॥

सूत्रम्—तद्विभाजिनः पूर्वापरायता हिमवन्महाहिमवन्निषधनीलरुक्मिशिखरिणो वर्षधरपर्वताः ११

सूत्रार्थः—तद्-विभाजिनः$^{1}_{3}$ पूर्व-	=तिन (भरत, हैमवत, इत्यादिक सात क्षेत्रों) को पृथक् करनेवाले पूर्व
अपर-आयताः$^{1}_{3}$ हिमवत्-महाहिमवत्-निषध-	=पश्चिम लवणोदधितक लम्बे हिमवान्-, महाहिमवान्, निषिध,
नील-रुक्मि-शिखरिणः$^{1}_{3}$ वर्षधरपर्वताः$^{1}_{3}$	=नील, रुक्मि (रुक्मी वा रूपी) शिखिरी (छह)वर्षधर पर्वत, कुलपर्वतवा कुलाचल हैं
वृत्त्यर्थः-तानि$^{2}_{3}$ क्षेत्राणि$^{2}_{3}$ विभजन्ते इति एवं शीलाः$^{1}_{3}$	=तिन (भरत हैमवत इत्यादि) क्षेत्रोंको पृथक् करते हैं ऐसे स्वभाव वा प्रकृति वाले है॥
तद्विभाजिनः$^{1}_{3}$ पूर्व-अपर-आयताः$^{1}_{3}$ इति *	=ते तद्विभाजन है (वा विभाग करने वाले है) (सूत्रमें) पूर्व पश्चिम लम्बे है ऐसे
पूर्व-अपर-कोटिभ्याम्$^{3}_{2}$ लवण-जलधि-स्पर्शिनः$^{1}_{3}$	=पूर्व पश्चिमकी अटनीयों करि (=कोटिभ्यां) लवणोदधिको छूने वाले छै कुलाचल हैं॥
इति * अर्थः$^{1}_{1}$ । हिमवत्-आदयः$^{1}_{3}$ अनादिकालप्रवृत्ताः$^{1}_{3}$	=ऐसा अभिप्राय है ॥ हिमवान आदिक (षट्कुलाचल) अनादिकालसे प्रवर्ती
अनिमित्तसञ्ज्ञाः$^{1}_{3}$ वर्षविभागहेतुत्वात्$^{5}_{1}$	=निमित्तरहित नाम वाले वा स्वयं नाम धारक क्षेत्रोंको पृथक् २ करनेके कारणसे
वर्षधर-पर्वताः$^{1}_{3}$ इतिउच्यन्ते,तत्र * क्व * हिमवान्$^{1}_{1}$?	=वर्षधर पर्वत ऐसे कहे जाय हैं । (प्रश्न) तहां हिमवान् (पर्वत) कहां है ।
भरतस्य$^{6}_{1}$ हैमवतस्य$^{6}_{1}$ च—सीमनि$^{7}_{1}$ व्यवस्थितः$^{1}_{1}$	=(उत्तर) भरत क्षेत्रकी वहुरि हेमवत वर्षकी सीमामें अवस्थित हैं
क्षुद्र-हिमवान्$^{1}_{1}$ योजन-शत-उच्छ्रायः$^{1}_{1}$,	=क्षुद्र हिमवान् है (क्षुद्र=छोटा) जिसकी योजन सौ उचाई (=उच्छ्राय) है ॥
हैमवतस्य$^{6}_{1}$ हरिवर्षस्य$^{6}_{1}$ च * विभागकरः$^{1}_{1}$	=हैमवत क्षेत्रका तथा हरिवर्षका विभाग करने वाला
महाहिमवान्$^{1}_{1}$ द्वि-योजन-शत-उच्छ्रायः$^{1}_{1}$	=महाहिमवान् है जिसकी योजन दो सौ की ऊंचाई है ॥

विदेहस्य दक्षिणतो हरिवर्षस्योत्तरतो निषधो नाम पर्वतश्चतुर्योजनशतोच्छ्रायः ॥ उत्तरे त्रयोऽपि पर्वताः स्ववर्षविभाजिनो व्याख्याताः ॥ उच्छ्रायश्च तेषां चत्वारि द्वे एकं च योजनशतं वेदितव्यम् ॥ सर्वेषां पर्वतानामुच्छ्रायस्य चतुर्भागोऽवगाहः॥ तेषां वर्णविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ हेमार्जुनतपनीयवैडूर्यरजतहेममयाः ॥ १२ ॥

विदेहस्य दक्षिणतः*हरिवर्षस्य उत्तरतः* =विदेह क्षेत्रकी दक्षिणदिशासे हरिवर्षक्षेत्रके उत्तरदिशासे

निषधः।नाम।।।पर्वतः।चतुर्योजन-शत-उच्छ्रायः। =निषधनाम पर्वत है जिसकी चारसौ योजन ऊंचाई है ॥

उत्तरे।त्रयः।अपि*पर्वताः।स्व-वर्ष — =उत्तरदिशामे तीनोंही (नील, रुक्मि, शिखरी) पर्वत अपने(अपने) क्षेत्रोंके

विभाजिनः।व्याख्याताः।उच्छ्रायः।च*तेषां।चत्वारि।।।=विभाग करने वाले कहे गये है बहुरि तिनकी ऊंचाई चार

द्वे।।।एकं।।।च*योजन-शतं।।।वेदितव्यम्।।। =दो तथा एक सौ, योजन (क्रमसे) जानना चाहिए अर्थात् नील पर्वतकी चारसौ योजन ऊंचाई है रुक्मि पर्वतकी दोसौ योजन है व शिखरी पर्वतकी सौ योजनहै

सर्वेषां।पर्वतानाम्।उच्छ्रायस्य।चतुर्भागः। =समस्त पर्वतोंकी ऊंचाईका चौथाई भाग (क्रमानुसार) पृथिवीमे

अवगाहः। प्रविष्ट है वा भूमिमें अवगाह है। (तातपर्य यह है कि हिमवान् पर्वतकी नीवपचीस योजनकी है और सौ योजन भूमिके ऊपर है। महाहिमवान् ५० योजन पृथिवीमे प्रविष्ट है २०० योजन धरासे ऊंचाहै। निषध पर्वतकी १०० योजन नीव है। और ४०० योजन धरातलके ऊपर है। इसीप्रकार नील पर्वतकी पृथिवीमे १०० योजन नीव है। ४०० योजन भूमिके ऊपर है रुक्मी पर्वत ५० योजन पृथिवीमे अवगाढ है २०० योजन पृथिवीके है ऊपर और शिखरी पर्वत २५ योजन पृथिवीमे है १०० योजन भूमिसे ऊंचाई है ॥

तेषां।वर्ण-विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थम्।।।आह =तिन (षट् कुलाचलों) के, रंगोंके प्रभेद कहनेके लिए (उत्तर सूत्रमे) कहते है कि

(१)**सूत्रम्—हेमार्जुनतपनीयवैडूर्यरजतहेममयाः। १२।**हेमार्ज्जुन वैडूर्य्य पाठ भी "अचोरहाभ्याम् द्वे वा" सूत्रसे शुद्ध है

=(वर्षधर पर्वताः) हेममयः, अर्जुनमयः, तपनीयमयः, वैडूर्यमयः, रजतमयः हेममयः, च (यथाक्रमम्) ॥ १२ ॥

(१)इस बारहवा १२ सूत्रसे 'भरतस्य आदि" ३२ वां सूत्रतक २१ सूत्र श्वेताम्बर आम्नायक सभाष्यतत्वार्थाधिगम सूत्रमें नहीं है ॥ सभाष्य०क पृष्ट८ ३में

॥पद्ममहापद्मतिगिंछकेसरिमहापुण्डरीकपुण्डरीका ह्रदास्तेषामुपरि॥१४

पद्मः महापद्मः तिगिञ्छः केसरी महापुण्डरीकः पुण्डरीक इति तेषां हिमवदादीनामुपरि यथाक्रममेते ह्रदा वेदितव्याः ॥ तत्राद्यस्य संस्थानविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ प्रथमो योजनसहस्रायामस्तदर्द्धविष्कम्भो ह्रदः ॥ १५ ॥

सूत्रम्—(१)पद्ममहापद्मतिगिंछकेसरिमहापुण्डरीकपुण्डरीका ह्रदास्तेषामुपरि ॥ १४ ॥

सूत्रार्थः—पद्म-महापद्म-तिगिंछ-केसरि-महापुण्डरीक- =पद्म, महापद्म, तिगिंछ, केसरी, महापुण्डरीक, और
पुण्डरीकाः¹।३। ह्रदाः¹।३। तेषाम्⁶।३। उपरि*यथाक्रमम्* =पुण्डरीक (ये छह) द्रह उन(छह कुलाचलों)के ऊपर अनुक्रमसे हैं

वृत्त्यानुवादः—पद्मः¹।१।महापद्मः¹।१।तिगिञ्छः¹।१।केसरी¹।१। =पद्म, महापद्म, तिगिंछ, केसरी,
महापुण्डरीकः¹।१।पुण्डरीकः¹।१।इति*तेषां⁶।३।हिमवत्- =महापुण्डरीक, पुण्डरीक इसप्रकार तिन हिमवान्
आदीनां⁶।३।उपरि* यथाक्रमं*एते¹।३।ह्रदाः¹।३।वेदितव्याः¹।३।=आदिक (छह कुलाचलो) के ऊपर क्रमानुसार ये द्रह जानना चाहिये ॥

अर्थात् हिमवान पर्वतपर पद्मसरोवर है महाहिमवान् पर्वतपर महापद्म सरोवर है निषधपर्वतपर तिगिंछ ह्रद है नीलपर्वतपर केसरी द्रह है रुक्मिपर्वतपर महापुण्डरीक सरोवर है और शिखिरी पर्वतपरपुण्डरीकद्रह है

तत्र*आद्यस्य⁶।१।संस्थान-विशेष प्रतिपत्ति-अर्थं²।१।आह=तहाँ प्रथम (सरोवर पद्म) के आकार विशेषके कहनेके लिये कहते है कि

सूत्रम्—(१)प्रथमो योजनसहस्रायामस्तदर्द्ध[२]विष्कम्भो ह्रदः ॥१५॥

सूत्रार्थः—प्रथमः¹।१।योजन-सहस्र-आयामः¹।१। =पहिला (पूर्व पश्चिम एक)हजार योजन लम्बा (और)
तद्-अर्द्ध-विष्कम्भः¹।१।ह्रदः¹।१। =उससे आधा (अर्थात् पांचसो योजन उत्तर दक्षिण) चौड़ा सरोवर है

(१) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें ये दोनों सूत्र नहीं हैं (२) हमारे यहां कहीं कहीं पर अर्ध पाठ है कही २ पर अर्द्ध पाठ है दोनों पाठ ठीक है अर्ध का धकार "अचोरहाभ्याम् द्वे वा" पूर्वोक्त सूत्रसे दोहरा होगया तब अ र् ध् ध ऐसा रूप बना, यह प्रथम ध् 'झलांजशझशि'

प्राक्प्रत्यक् योजनसहस्रायामः उदगवाक् पञ्चयोजनशतविस्तारो वज्रमयतलोविविधमणिकनक-विचित्रततटः पद्मनामा ह्रदः ॥ तस्यावगाहप्रकृत्यर्थमिदमुच्यते—

॥ दशयोजनावगाहः ॥ १६ ॥

अवगाहोऽधःप्रवेशो निम्नता । दशयोजनान्यवगाहोऽस्य दशयोजनावगाहः ॥ तन्मध्ये किम् ?

वृत्त्यर्थः प्राक्।१।प्रत्यक्।१।योजन-सहस्र-आयामः।१।उदक्।१।=पूर्वदिशा(=प्राक् और)पश्चिम दिशा(=प्रत्यक्)हजार योजन लम्बा उत्तरदिशा(=उदक्)
अवाक्।१।पञ्चयोजनशत-विस्तारः।१।वज्र-मय-तलः।१।=(तथा) दक्षिण दिशा (=अवाक्)पांचसौ योजन चौड़ा वज्र सम जिसका तल
विविध-मणि-कनक-विचित्रत-तटः।१। = नाना प्रकार के (=विविध)मणियों और सुवर्णकरि जिसका किनारा विचित्रित ऐसा
पद्मनामा।१। ह्रदः।१। तस्य।६। अवगाह-प्रकृति- = पद्मनामा सरोवर है। तिस(पद्मनामाद्रह)की गहराई के स्वरूप(=प्रकृति)के
अर्थम्।१।। इदम्।१।। उच्यते T = लिये यह(उत्तर सूत्र में)कहा जाता है कि

(१)**सूत्रम्-दशयोजनावगाहः॥ १६॥** = (प्रथमो ह्रदः)दश-योजन-अवगाहः ॥१६॥

सूत्रार्थः—प्रथमः।१।ह्रदः।१। दश-योजन-अवगाहः।१। = पहिला(पद्मनामा)द्रह है जिसकी गहराई दश योजन है॥
वृत्त्यनुवादः—अवगाहः।१।अधः*प्रवेशः।१।निम्नता।१।= अवगाह है सो नीचेको गमन अर्थात् गहराई वा गहरापनहै(=निम्नता)
दश-योजनानि।३।। अवगाहः।१। अस्य।६। = दशयोजन है गहराई जिसकी सो
दश-योजन-अवगाहः।१। तद्-मध्ये।७। किम्* = दशयोजन अवगाह है तिस(पहिले पद्मद्रह)के बीच में क्या है?

सूत्र द्वारा द् में पलट गया है॥यहसूत्र पाणिनिकृत अष्टाध्यायीके अध्याय ८ पाद ४ का ५३वां(सूत्र)है॥ अष्टाध्यायीके प्रारम्भमें १४ सूत्र दिये हैं (देखो प्रथम अध्याय पृष्ठ २)पूर्वोक्त सूत्र झलां।६ जश्।१ झशि।७ से बना है झल्(अक्षरों)के स्थान में जश् अक्षर आते है यदि झश् अक्षर(परिवर्तनीय अक्षरके) पश्चात् आवें॥ क्योंकि झल्=झ्-भ्- घ्-ढ्- ध्-ज्-न्-ग-ड्-द्-ख्-फ्-छ्-ठ्-थ्-च्-ट्-त-क्-प्-श्-ष्-स्-ह इन चौबीस अक्षरोंमें से जा कोई अक्षर हो उसके स्थान मेंजश् (=ज्-ब्-ग्-ड्-द्)अक्षरों में से अपने अपने वर्ग के अनुसार हो जाते है यदि झश्=झ्-भ्-घ्-ढ्-ध्-ज्-ब्-ग्-ड्-द्)में से कोई अक्षर उसके पश्चात् आवे यहां पर अर्ध्ध अथवा अर्ध (अचोरहाभ्यां द्वेवा) सूत्र से दोनों शुद्ध हैं प्रथम ध् अर्ध्ध का झल् प्रत्याहार के चौबीस अक्षरोंमेंसे एक अक्षर है और उसके पश्चात् झश् प्रत्याहार के दश अक्षरों में से एक ध् अक्षर आया है इसलिये प्रथम ध् (अर्ध्धका)ज् श् प्रत्याहार के ज्-ब्-ग्-ड्-द् अक्षरों में से द् में जा उसके वर्ग में से है पलट जाता है अर्द्ध । अर्द्ध॥

(१) यह सूत्र श्वेताम्बर आम्नाय के सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें नहीं है । हमारे यहां इस सूत्र का पाठ और अर्थ एक है ॥

॥ तन्मध्ये योजनं पुष्करम् ॥ १७ ॥

योजनप्रमाणं योजनं, क्रोशायामपत्रत्वात्क्रोशद्वयविष्कम्भकर्णिकत्वाच्च योजनायामविष्कम्भम् ॥ जलतलात्क्रोशद्वयोच्छ्रायनालं तावद्बहुलपत्रप्रचयं पुष्करमवगन्तव्यम् ॥

इतरेषां ह्रदानां पुष्कराणां चायामादिनिर्ज्ञानार्थमाह—

सूत्रम्—तन्मध्ये योजनं पुष्करम् ॥१७॥

सूत्रार्थः—तद्-मध्ये[७] योजनं[१] पुष्करं[१]॥ = उस(पद्मनामाद्रह)के बीच में एक योजन(लंबा चौडा रत्नमयी)कमल है

वृत्त्यनुवादः—योजन-प्रमाणं-[१]॥ योजनं[१]॥क्रोश- = योजन भर माप है सो योजन है। (एक एक)क्रोशकी(दोनों ओर आमने सामनेके)

आयाम-पत्रत्वात्-क्रोश-द्वय-विष्कम्भ-कर्णिकत्वात् च = लम्बाई पत्तोंकी होनेसे और दो कोशकी चौडाईकी कर्णिका अर्थात् (कमलके बीचका) कुंडल होने से

योजन-आयाम-विष्कम्भम्[१]॥ = ऐसे एक योजन लंबाई(=आयाम) चौड़ाई(=विष्कम्भ)है अर्थात् कमलके एकओर के कमल के पत्ते की लम्बाई एक कोश और उसके सामने के पत्ते की लंबाई एक कोश और इन दोनो पातोंके बीच के कुंडल(कमल की कर्णिका) की लंबाई चौडाई दो कोश ऐसे चार कोश अथवा एक योजन का व्यास होगा इस प्रकार सर्व आमने सामने के पत्ते और बीच की कर्णिका को मिलाकर एक वृत्ताकार बनता है जिसका प्रत्येक व्यास चार कोश वा एक योजन का होगा। एकयोजन लम्बा, एक ही योजन चौड़ा सूर्यके मंडलके सदृश वलयाकार प्रतर वृत्तरूप पद्मद्रहके मध्यमें कमल है

जल-तलात्[५]॥ क्रोश-द्वय-उच्छ्रायनालं[१]॥ = नीरके तल दो कोशकी ऊंचाईकी(उच्छ्रास) (कमल की)नाल अथवा नली है

तावत्*बहुल-पत्र-प्रचयं[१]॥ = इतनी(अर्थात् दो कोश की) मोटाई (के बहुल,बहुल)पत्तोंका समूह(=प्रचय) वाला

पुष्करम्[१]॥ अवगन्तव्यम्[१]॥ इतरेषां[६] ह्रदानां[६] = कमल जानना चाहिये अन्य(शेष बचे हुये पांच)सरोवरों की

पुष्कराणां[६]॥च*आयाम-आदि-निर्ज्ञान-अर्थं[१]॥आह = तथा(=च)कमलों की लंबाई आदिक निर्णयके लिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते है कि

श्वेताम्बर आम्नायकसभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें यह सूत्र नहीं है॥ (देखो इस अध्यायकी टिप्पणी पृष्ठ ३७, ३८ पर)

तद्द्विगुणद्विगुणा ह्रदाः पुष्कराणि च ॥ १८ ॥

स च तच्च ते, तयोर्द्विगुणा द्विगुणास्तद्द्विगुणद्विगुणा इति द्वित्वं व्याप्तिज्ञानार्थम्॥केन द्विगुणाः? आयामादिना॥ पद्मह्रदस्य द्विगुणायामविष्कम्भावगाहो महापद्मह्रदः। तस्य द्विगुणायामविष्कम्भावगाहस्तिगिञ्छह्रदः। पुष्कराणि च किं? द्विगुणानि द्विगुणानीत्यभिसम्बन्ध्यन्ते ॥

(१)सूत्रम्—तद्द्विगुणद्विगुणाह्रदाः पुष्कराणि च ॥ १८ ॥

सूत्रार्थः—तद्द-द्विगुण-द्विगुणाः[1/3] = उन (प्रथमपद्मद्रह और कमल)से दुगने दुगने(लम्बाई, चौड़ाई तथा गहराई में अगले दो महापद्म और तिगिंछ)

ह्रदाः[1/3] पुष्कराणि[1/3]॥ च* = सरोवर है और (दुगने दुगने अग्रिम दो)कमल हैं भावार्थ पद्मनामाद्रहसे दुगुण-महापद्मद्रह है ॥ और महापद्म से दूना तिगिंछ सरोवर हैं इन तीनो द्रहों के बराबर ही उत्तरओरके तीनों पर्वतों के तीनो द्रह है तथा ह्रदों के कमलों के बराबर कमल हैं

वृत्त्यनुवादः—सः[1/1]च*तद्द[1/1]॥च*ते[1/3]॥ = बहुरि वह(पद्मद्रह)तथा(=च)वुह(=तद्द)(पुष्कर)वे दोनों(=ते)(सूत्रमें तद्द शब्दकरिगृहणकिये है)

तयोः[6/2] द्विगुणाः द्विगुणाःतद्द द्विगुणद्विगुणाः[1/3] = उन(पद्मद्रह और पुष्कर)का दुगुना दुगुना है सो तद्दद्विगुणद्विगुणा(सूत्रमें)

इति*द्वित्वम्[1/1]॥ व्याप्ति-ज्ञान-अर्थम्[1/1]॥ = ऐसा द्वित्व अथवा दूना २ पना व्याप्ति बोधक के है अर्थात् सूत्र में दो वार द्विगुण द्विगुण ह्रदों और कमलों का विस्तार जनावने के लिये ग्रहण किया है

केन[3/1]द्विगुणाः[1/3]आयामआदिना[3/1] पद्मह्रदस्य[6/1] = किस से दो गुना है। लम्बाई आदिक से पद्मद्रह की

द्विगुण-आयाम-विष्कम्भ-अवगाहः[1/1]महापद्मह्रदः[1/1] = दुगुणी लम्बाई(=आयाम)चौडाई(=विष्कम्भ)गहराई (=अवगाह)का महापद्म सरोवर है

तस्य[6/1]द्विगुण-आयाम-विष्कम्भ-अवगाहः[1/1] = तिस(महापद्मद्रह)की दूनी लम्बाई चौड़ाई गहराई का

तिगिंछह्रदः[1/1]पुष्कराणि[1/3]॥च*किम्*द्विगुणानि = तिगिंछ द्रह है (प्रश्न)"पुष्कराणि च" ऐसा वाक्य सूत्र मे क्यों दुगुने

द्विगुणानि[1/3]॥ इति* अभिसम्बन्ध्यन्ते [1] = दुगुने ऐसा(पुष्करों के साथ) लगाया जाय अथवा जोड़ा जाय है अर्थात्

(१) इस सूत्रका हमारे यहां एकसा पाठ है ॥ श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्वार्थाधिगमसूत्रमें यह सूत्र नहीं है(इस अध्यायकी टिप्पणी पृष्ठ ३७,३८)

तन्निवासिनीनां देवीनां सञ्ज्ञाजीवितपरिवारप्रतिपादनार्थमाह—

॥तन्निवासिन्यो देव्यः श्रीह्रीधृतिकीर्तिबुद्धिलक्ष्म्यः पल्योपमस्थितयः ससामानिकपारिषत्काः ॥ १९ ॥

तेषु पुष्करेषु कर्णिकामध्यदेशनिवेशिनः शरद्विमलपूर्णचन्द्रद्युतिहराः क्रोशायामा क्रोशार्द्धविष्कम्भा देशोनक्रोशोत्सेधाः प्रासादास्तेषु निवसन्तीत्येवंशीलास्तन्निवासिन्यो देव्यः श्रीह्रीधृतिकीर्तिबुद्धिलक्ष्मी-

---

पद्मद्रहके कमलसे दूनी लम्बाई चौड़ाई और मोटाई आदिका महापद्म द्रहका कमल है और महा पद्मद्रहके पुष्करसे दूनी लम्बाई चौड़ाई मोटाई आदिका तिगिञ्छद्रहका कमल है ॥ इन तीनो ह्रदोंके बराबर ही उत्तर ओरके तीनों पर्वतोंके तीनों ह्रद है और तीनो ह्रदोंके कमलोंके बराबर कमलहै ॥

तद्-निवासिनीनां[६]॥देवीनां[६]॥संज्ञा-जीवित-परिवार- =तिन (कमलोंमे)निवासकरनेवाली देवियोंके नाम आयु और परिवार

प्रति-पादन-अर्थम्[२]॥आह॥ =कहनेके लिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते है कि

सूत्रम्—तन्निवासिन्योदेव्यः श्रीह्रीधृतिकीर्तिबुद्धिलक्ष्म्यः पल्योपमस्थितयः ससामानिकपरिषत्काः १९

सूत्रार्थः-तद्-निवासिन्यः[१]॥देव्यः[१]॥ =तिन(पद्‌रत्नमयी पुष्करोंके प्रसादों)मे(क्रमसे) निवास करनेवाली(छह)देवियां

श्री-ह्री-धृति-कीर्ति-बुद्धि-लक्ष्म्यः[१]॥पल्योपम-स्थितयः[१]॥ =श्री,ह्री,धृति,कीर्ति,बुद्धि,लक्ष्मी,(प्रत्येक)पल्योपम आयुकी धारक है (और)

स-सामानिक-परिषत्काः[१]॥ =सामानिक जातिके देव और पारिषद जातिके देवों सहित वर्तें हैं अर्थात् रहती हैं

वृत्त्यनुवादः—तेषु[७]॥पुष्करेषु[७]॥ कर्णिका-मध्यदेश निवेशिनः[१]॥ =तिन कमलोंमे कर्णिकाके मध्य भागमे (=देश)स्थिति(निवेशिनः)

शरत् विमल-पूर्ण-चन्द्र द्युति-हरा[१]॥ =शरत् ऋतुके अथवा कुंवार कार्तिकके निर्मल पूर्ण शशिकी कान्ति जीतनेवाले

क्रोश आयामाः[१]॥क्रोशअर्द्ध-विष्कम्भाः[१]॥देश-ऊन-क्रोश- =(एक) कोशकी लम्बाईके आधे कोशकी चौड़ाईके कुछ हीन कोशकी

उत्सेधाः[१]॥प्रसादाः[१]॥तेषु[७]॥निवसन्ति॥इति॥एवम् =ऊंचाईके श्रेष्टगृह तिनमें रहती है ॥ इस प्रकार

शीलाः[१]॥तद्-निवासिन्यः[१]॥श्री-ह्री-धृति-कीर्ति-बुद्धि-लक्ष्मी— =अच्छे स्वभाववाली तिनमे निवास करनेवाली श्री ह्री धृति कीर्ति बुद्धि लक्ष्मीहै

श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य तत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें यह सूत्र नहीं है अर्थात् इसको सूत्र नहीं माना है। (देखो टिप्पणी पृष्ठ ३७, ३८ पर)

संज्ञिकास्तेषु पद्मादिषु यथाक्रमं वेदितव्याः॥ पल्योपमस्थितय इत्यनेनायुषः प्रमाणमुक्तम् ॥ समाने स्थाने भवाः सामानिकाः। सामानिकाश्च परिषदश्च सामानिकपरिषदः। सह सामानिकपरिषद्भिर्वर्तन्त इति ससामानिकपरिषत्काः ॥ तस्य पद्मस्य परिवारपद्मेषु प्रासादानामुपरि सामानिकाः परिषदश्च वसन्ति ॥ यकाभिः सरिद्भिस्तानि क्षेत्राणि प्रविभक्तानि, ता उच्यन्ते—

संज्ञिकाः तेषु पद्मादिषु यथाक्रमं※वेदितव्याः	=नाम है जिनके तिन पद्मादिक(द्रहों)में क्रमानुसार जानना चाहिये(अर्थात् पद्मद्रह कमलके श्रेष्ठ गृहमें श्री देवी महापद्महृद पुष्करके उत्तम गेह (प्रासाद)में ह्री देवी, तिगिंछ सरोवर कमलके प्रासादमें धृति देवी और केसरि द्रह कमलके उत्तम घरमें कीर्ति देवी महापुंडरीक हृद पुष्करके भवनमें बुद्धि देवी और पुंडरीकद्रह कमलके प्रासादमें लक्ष्मी देवी रहती है ॥
पल्योपम-स्थितयः इति※अनेन आयुषः	= पल्योपम स्थितिवाली इस(वाक्य) करि(=अनेन) आयुकी
प्रमाणम् उक्तम् समाने स्थाने भवाः	= मर्यादा वा परिमाण कहा गया है समान स्थानमें होनेवाले अर्थात् ऐश्वर्य में बराबर हो
सामानिकाः सामानिकाः च परिषदः च	= सो सामानिक है और सामानिका बहुरि परिषदका द्वंद्व समास
सामानिक-परिषदः सह※ सामानिक-	= सामानिक परिषद् है सामानिक जाति के देव(अथवा समान ऐश्वर्य वाले देव) तथा
परिषद्भिः वर्तन्ते	= पारिषद जाति के देवों(अर्थात् सभा में प्रधान वा सभासद) करि सहित वर्ते है
इति※ससामानिक- परिषत्काः तस्य पद्मस्य	= ऐसे(सूत्र में) ससामानिक परिषत्का(देवियां) है ॥ तिस कमल के
परिवार-पद्मेषु प्रसादानाम् उपरि-सामानिकाः	= परिवार कमलों विषैं भवनों के ऊपर सामानिक
परिषदः च वसन्ति यकाभिः सरिद्भिः	= जाति के देव तथा परिषद जाति के देव वसते हैं जिन नदियों करि
तानि क्षेत्राणि प्रविभक्तानि ता उच्यन्ते	= ते(सात) क्षेत्र विभाजित है ते(नदियां आगे के सूत्र मे)कही जाती हैं कि

(१) या स्त्रीलिंग यद् शब्द में क न् (=क) प्रत्यय उसी अर्थ में लगाया है अर्थात् क न् (=क) लगभी जाता है अर्थ भी शब्द का नहीं पलटता है ॥

॥ गङ्गासिन्धुरोहिद्रोहितास्याहरिद्धरिकान्तासीतासीतोदानारीनरका-
न्तासुवर्णरूप्यकूलारक्तारक्तोदा सरितस्तन्मध्यगा ॥ २० ॥

सरितो न वाप्यः । ताः किमन्तरा उत समीपाः ? इत्यत आह तन्मध्यगाः । तेषां क्षेत्राणां मध्यं, तन्मध्यं तन्मध्येन वा गच्छन्तीति तन्मध्यगाः॥ एकत्र सर्वासां प्रसङ्गनिवृत्त्यर्थं दिग्विशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह-

॥ द्वयोर्द्वयोः पूर्वाः पूर्वगाः ॥ २१ ॥

सूत्रम्—[1]गंगासिन्धुरोहिद्रोहितास्याहरिद्धरिकांतासीतासीतोदानारीनरकान्तासुवर्णरूप्यकूलारक्ता-
रक्तोदाः सरितस्तन्मध्यगाः ॥ २० ॥

सूत्रार्थः—गंगा-सिन्धु-रोहित्-रोहितास्या-हरित्-हरिकान्ता-सीता-- =गंगा, सिंधु, रोहित्-रोहितास्या, हरित्, हरिकान्ता, सीता
सीतोदा--नारी-नरकान्ता-सुवर्णकूला-रूप्यकूला-रक्ता-- =सीतोदा, नारी, नरकान्ता, सुवर्णकूला, रूप्यकूला, रक्ता
रक्तोदाः$^{१}_{३}$।सरितः$^{१}_{३}$।तद्-मध्यगाः$^{१}_{३}$। =और रक्तोदा नदियें उन सातों क्षेत्रों)के बीचमें गमनकरनेवालीवा वहनेवाली हैं
वृत्त्यनुवादः—सरितः$^{१}_{३}$।न*वाप्यः$^{१}_{३}$। =(सूत्रमें, सरितःशब्द लानेसे यह अभिप्राय है कि चौदह नदियें हैं नकि बावड़ियें
ताः$^{१}_{३}$।किम्*अन्तरा*उत*समीपाः$^{१}_{३}$।इति*अतः* =ते(नदियें)क्या अन्तराल-दूर दूर है(अन्तरा) वा पास २(इनक्षेत्रोंके) है इसीलिए
आहT तेषां$^{६}_{३}$।क्षेत्राणां$^{६}_{३}$।मध्यं$^{१}_{१}$।तन्मध्यं$^{१}_{१}$।तन्मध्येन$^{३}_{१}$। =कहते हैं कि तिन क्षेत्रोके बीच सो तन्मध्य है ॥ (तिन क्षेत्रो)के मध्यमेंसे है
वा*गच्छन्तिT इति* तन्मध्यगाः$^{१}_{३}$।एकत्र*सर्वासां$^{६}_{३}$। =अथवा गमन करती है ऐसी तन्मध्यगा है। एक ठौर सब (नदियों) के
प्रसंग-निवृत्ति-अर्थम्$^{१}_{१}$।, दिग्विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थम्$^{१}_{१}$।आहT =संयोगके निषेधके लिये और दिशाके भेद कहनेके लिये(अग्रिमसूत्रमें, कहतेहैं कि

सूत्रम्—द्वयोर्द्वयो पूर्वाः पूर्वगाः ॥ २१ ॥ =द्वयोः द्वयोः सरितोः पूर्वाः कथिताः (सूत्रे) पूर्वगाः गच्छन्ति

सूत्रार्थः—द्वयोः$^{६}_{२}$।द्वयोः$^{६}_{२}$।सरितोः$^{६}_{२}$।सूत्रे =(नदियोंके प्रत्येक युगल युगलमेंसे वा युग्म-युग्म-मेंसे [बीसवां] सूत्रमें
पूर्वाः$^{१}_{३}$।कथिताः$^{१}_{३}$।पूर्वगाः$^{१}_{३}$।गच्छन्ति =पहिली पहिली वर्णित नदी) पूर्व समुद्रको जातीहैं अर्थात् गंगा, रोहित,
हरित्-सीता नारी-सुवर्णकूला और रक्ता ये सातनदियें पूर्वकी ओर बहकर लवण समुद्रमे मिलती है॥

(१) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें यह सूत्र नहीं है ॥ कहीं कहीं पर "सिन्धू" शब्द भी सूत्रमें लाये है दोनों ठीक हैं ॥

द्वयोर्द्वयोः सरितोरेकैकं क्षेत्रं विषय इति वाक्यविशेषाभिसम्बन्धादेकत्र सर्वासां प्रसंगनिवृत्तिः कृता॥ पूर्वाः पूर्वगा इति वचनं दिग्विशेषप्रतिपत्त्यर्थम्॥ तत्र पूर्वा याः सरितस्ताः पूर्वगाः। पूर्वं जलधिं गच्छन्तीति पूर्वगाः॥ किमपेक्षं पूर्वत्वं ? सूत्रनिर्देशापेक्षम्॥ यद्येवं गंगासिन्ध्वादयः सप्त पूर्वगा इति प्राप्तम्। नैष दोषः। द्वयोर्द्वयोरित्यभिसम्बन्धात्॥ द्वयोर्द्वयोः पूर्वाः पूर्वगा इति वेदितव्याः॥

इतरासां दिग्विभागप्रतिपत्त्यर्थमाह—

द्वयोः६।२॥द्वयोः६।२॥सरितोः६।२॥एक-एकं१।१॥क्षेत्रं१।१॥विषये७।१ = (सात युगल) नदियोंमें से दोदो एकएक क्षेत्र विषैं (क्रमसे) है

इति*वाक्यविशेष-अभिसम्बन्धात्५।१॥एकत्र*सर्वासां६।३॥ = ऐसा वचन विशेष जोड़नेसे एक स्थानमें सबके

प्रसंग-निवृत्तिः१।१॥कृता१।१॥पूर्वाः१।३॥पूर्वगाः१।३॥ = संयोगका निराकरण किया जाय है(सूत्रमें) पहिली पहिली गमन करनेवाली

इति*वचनं१।१॥दिक्-विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थम्१।१॥ = ऐसा वाक्य दिशाके विशेषके कहनेके लिये है॥

तत्र*पूर्वाः१।३॥याः१।३॥सरितः१।३॥ताः१।३॥पूर्वगाः१।३॥ = तहां(सूत्रमें) पहिलीपहिली जो नदियां है ते पूर्व दिशाको जानेवाली है

पूर्व-जलधिं२।१॥गच्छन्ति इति* पूर्वगाः१।३॥पूर्वत्वं१।१॥ = पूर्व समुद्रको गमन करती है ऐसी पूर्वगा(नदिये)है(प्रश्न) पूर्वपन

किम्*अपेक्षं१।१॥पूर्वत्वम्१।१॥सूत्र-निर्देश- = क्या अपेक्षा है अर्थात् किसकी अपेक्षानुसार पहिली है(इस) सूत्रके कथनकी

अपेक्षम्१।१॥ = विवक्षा है अर्थात् सूत्रके पाठमें जो पहिले कही तिसकी विवक्षा से पहिली है॥

यदि* एवम्* = जो ऐसे है (अर्थात् जो नदियां सूत्रपाठ में पहिले कथित है सो पहिली हैं) तो

गंगा-सिन्धु-आदयः१।३॥सप्त१।३॥पूर्वगाः१।३॥इति*प्राप्तम्१।१॥ = गंगासिन्धु रोहित-रोहितास्या आदि सातपूर्वदिशाको वहनेवाली ऐसा अर्थ प्राप्त हुआ

न*एषः१।१॥ दोषः१।१॥ = यह पदूण नहीं है अर्थात् सूत्रमे पूर्वा शब्द लानेसे गंगा-सिन्धु-रोहित्-रोहितास्या हरित्-हरिकान्ता-सीता-ये समझी जा सकती हैं॥

द्वयोः६।२॥द्वयोः६।२॥इति*सम्बन्धात्५।१॥ = क्योंकि युगल-युगलमेंसे ऐसा(पूर्व शब्दके साथ) जोड़नेसे वा सम्बन्धकरनेसे

द्वयोः६।२॥द्वयोः६।२॥पूर्वाः१।३॥पूर्वगाः१।३॥इति*वेदितव्याः१।३॥ = युग्म-युग्ममेंसे पहिली पहिली पूर्व समुद्रको जानेवाली है इसप्रकार जानना चाहिये

इतरेसां६।३॥दिक्-विभाग-प्रतिपत्ति-अर्थम्१।१॥आह = अन्य(नदियों)के दिशा विभक्तिके कहनेके लिये(आचार्य अगले सूत्र में) कहते है कि

किमर्थं गङ्गासिन्ध्वादिग्रहणं क्रियते ? नदीग्रहणार्थम् । प्रकृतास्ता अभिसम्बन्ध्यन्ते, नैवं शङ्क्यम् । अनन्तरस्य विधिर्वा भवति प्रतिषेधो वेति अपरगाणामेव ग्रहणं स्यात् ।। गङ्गादिग्रहणमेवास्तीति चेत्पूर्वगाणामेव ग्रहणं स्यात् । अतः

भिन्न भिन्न एक एक लाख वारह वारह सहस्र हैं इनसे उत्तरकी तीन नदियोंकी क्रमसे दक्षिणके तीन क्षेत्रोंके समान परिवारकी नदिये हैं अर्थात् नारीनरकान्ताकी छप्पन छप्पन सहस्र नदियें, सुवर्णकूला और रूप्यकूलाकी अट्ठाईस २ सहस्र तथा रक्ता रक्तोदा की चौदह चौदह सहस्र परिवारि की नदियें है ।।

वृत्त्यर्थः—किम्*अर्थम्॥गङ्गा-सिन्धु-आदि-ग्रहणं॥क्रियते। = प्रश्न (इससूत्रमें) किसलिये गङ्गासिन्धु आदिकका आदान(ग्रहण) कियागयाहै

नदी-ग्रहण-अर्थम्॥प्रकृताः॥ =(उत्तर) नदियो के ग्रहण के लिये (प्रश्न) अधिकृत अथवा प्रकरणकीहुई

ताः॥अभि-सम्बन्ध्यन्ते। =ते (नदियें) (अत्यन्तसमीप अर्थात् २२वां सूत्र से) अध्याहारितवाअनुकर्षितहैं

न*एवम्*शंक्यम्॥ =(अर्थात् २२वां सूत्र से लेकर समभी जासकी हैं)(उत्तर)ऐसीशंकानकरनीचाहिये

अनन्तरस्य॥ =(क्योंकि व्याकरणकी परिभाषानुसार) अत्यंत समीपकी

विधिः॥वा*भवति। प्रतिषेधः॥वा*इति* =विधि होती है अथवा निषेध (होता है) इस प्रकार (यदि पहिले सूत्रमें कथित नदियों के साथ सम्बन्ध इस सूत्र में करलेते तो)

अपरगाणाम्॥एव*ग्रहणं॥स्यात्। =पश्चिमको बहने वाली नदियोंका ही ग्रहण होता भावार्थ-२२वां सूत्रमें नदियोंका कथन है वहां से नदियों का इस सूत्रके लिये सम्बन्ध करलेतेगंगा सिन्ध्वादि क्यों लाये (उत्तर) यदि पूर्वोक्त सम्बन्ध करलेते तो केवल पश्चिम की वहने वाली नदियें समझी जाती पूर्वकी ओर जाने वाली नदियें छुट जाती इसलिये गंगासिन्धु आदिक से पूर्वगा और अपरगा समस्त दोनों ओरकीनदियें ग्रहणहोगई

गंगादि-ग्रहणं॥एव*अस्ति।इति*चेत्* =(प्रश्न)"गंगादिक"का आदानही यदि =चेत्)ऐसा (है=इति)(अस्ति)तो(उत्तर)

पूर्वगाणां॥एव*ग्रहणम्॥स्यात्।अतः* =पूर्व दिशामें जानेवाली नदियोंका ही ग्रहण होगा ।। इसलिये

उभयीनां ग्रहणार्थं गङ्गासिन्ध्वादिग्रहणं क्रियते ॥ नदीग्रहणं द्विगुणा द्विगुणा इत्यभिसम्बन्धा-
र्थम् ॥ गंगा चतुर्दशनदीसहस्रपरिवृता । सिन्धुरपि ॥ एवमुत्तरा अपि नद्यः(१) प्रतिक्षेत्रं द्विगुणा
द्विगुणा भवन्ति, आविदेहात्॥तत उत्तरा अर्द्धार्द्धहीनाः ॥ उक्तानांक्षेत्राणांविष्कम्भप्रतिपत्त्यर्थमाह—

भरतःषड्विंशपञ्चयोजनशतविस्तारः षट्चैकोनविंशतिभागा योजनस्य

उभयीनां।।।ग्रहण-अर्थम्।।।(-उभयस्यस्त्रीलिंगम्'उभयी') =दोनों(पूर्व तथा पश्चिम को वहने वाली नदियों)केउपलब्धिके लिये (सूत्रमें)
गंगा-सिंध्वादि-ग्रहणं।।।क्रियतेT नदी-ग्रहणं।।। =गंगा सिन्ध्वादिका उपादान किया गया है (सूत्रमें)नदी शब्दका ग्रहण
द्विगुणाः।।द्विगुणाः।।इति*अभिसम्बन्ध-अर्थम्।।। =दुगुना दुगुना ऐसे सम्बन्धके लिये है ॥
गङ्गा।।चतुर्दश-नदी-सहस्र-परिवृता।।। =गंगा चौदह सहस्र नदियोंकरि परिवारित है
सिन्धुः।।अपि*एवं*उत्तराः।।अपि* =सिन्धु भी (चौदह सहस्र नदियोंकरि परिवारित) है ऐसे अगली भी (परिवारिक)
नद्यः।।प्रति-क्षेत्रं।।द्विगुणाः।।द्विगुणाः।।आ-विदेहात्।।=नदिये प्रत्येक क्षेत्रको दूनी दूनी विदेह पर्यंत (=आ)
भवन्तिT =होती है अर्थात् रोहित् रोहितास्याकी परिवारकी नदियें अट्ठाईस अट्ठाईस सहस्र है॥
हरित् तथा हरिकान्ताकी छप्पन छप्पन सहस्र परिवारकी नदियेंहै सीताकी एकलाख वारहसहस्रहै ऐसे सीतोदाकीभी इतनीहीहै
ततः*उत्तराः।।अर्द्ध-अर्द्ध-हीनाः।।। =उस(विदेह)से अग्रिम आधी आधी घटती है(अर्थात् नारी तथा नरकान्ताकी छप्पन२
हजार परिवारकी नदिये है सुवर्णकूला और रूप्यकूलाकी अट्ठाईस २ सहस्र छोटी २
नदिये है और रक्ता व रक्तोदाकी चौदह २ सहस्र पारिवारिक नदिये है)
उक्तानां।।।क्षेत्राणां।।।विष्कम्भ-प्रतिपत्ति-अर्थम्।।।आहT=कथित क्षेत्रोंकी चौड़ाई जाननेके लिये(आचार्य अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्—(१)भरतःषड्विंशपञ्चयोजनशतविस्तारःषट्चैकोनविंशतिभागायोजनस्य ॥ २४ ॥

(१) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें यह सूत्र नहीं है ॥ हमारे यहां इस सूत्रके प्रथम भागके तीन पाठ पाये जाते हैं और द्वितीयके
दो "भरत षड्विंशतिःपञ्चयोजनशत विस्तार "(देखो ज्ञानचन्द्रजी मुद्रित तत्त्वार्थसूत्र पृष्ट ११)इसमें "षड्विंशतिः" "पञ्चयोजनशतविस्तार" दो समास
है पाठ ठीक नहीं है॥"बहुधा पुस्तकोंमें भरत षड्विंशतिपञ्चयोजनशतविस्तार " है यह पाठ ठीक है क्योंकि संस्कृतकी बोलचालमें ऐसा वाक्य लाते हैं।

षडधिका विंशतिः षड्विंशतिः । षड्विंशतिरधिकानि येषु तानि षड्विंशानि । षड्विंशानिपञ्चयोजनशतानि विस्तारो यस्य षड्विंशपञ्चयोजनशतविस्तारः ॥ भरतः किमेतावानेव, नेत्याह । षट्चैकोनविंशतिभागा योजनस्यविस्ता रोऽस्येत्यभिसम्बध्यते ॥

सूत्रार्थः—भरतः पड्विशपञ्चयोजनशतविस्तारः	=भारतवर्ष (दक्षिण उत्तर मे) पांचसौ छव्वीस योजन विस्तारवाला वाचौड़ाईरूप
पट् च एक-ऊन विशति-भागाः योजनस्य	=और छहभाग योजनके उन्नीस भागों में से औरहैं अर्थात् भारत क्षेत्रकी दक्षिण उत्तरकी चौड़ाई ५२६$\frac{6}{19}$ है
वृत्त्यनुवादः—षड्-अधिका विंशतिः पड्विंशतिः	=छह ऊपर वीस सो छव्वीस (=षड्विंशतिः) हैं ॥
पड्विंशतिः अधिकानि येषु तानि पड्विशानि	=छव्वीस वढती वा अधिक है जिनमे ते षड्विंश (=पड्विंशानि) हैं
षड्विंशानि पञ्चयोजनशतानि विस्तारः यस्य	=छव्वीस और पांचसो योजन है विस्तार वा चौड़ाई जिसकी
पडविंशपञ्चयोजनशतविस्तारः भरतः	=सो पांचसौं छव्वीस योजन चौड़ाईवाला वा विष्कम्भरूप है (प्रश्न) भरतक्षेत्र
किम् एतावान् एव न इति आह पट् च	=क्या इतनाही है ॥ (उत्तर) ऐसा नहीं है कहते हैं कि और छह भाग
एक-ऊन-विशतिभागाः योजनस्य अभिसम्वध्यते	=योजनके उन्नीसभागोंमेंसे मिलायेजाय है अथवा जोड़े जाय हैं ॥

"भरतः षड्विशपञ्चयोजनशतविस्तार" यह पाठ सर्वार्थसिद्धिकी दोनों आवृत्तियों में है और मुद्रित तत्त्वार्थराजवार्तिकमें है । 'ति' अधिक छपगया है क्योंकि जो 'वृत्ति' इसके नीचे दी हुई है वह 'विंश' शब्द की है और शब्दश वही है जो सर्वार्थसिद्धिमें दीहै'षड्विशानि'एक शब्द घाटि है और 'यस्य' के स्थान में 'अस्य' है उससे विग्रह में और अर्थ में कोई भेद नहीं होता । हमारी समझ में यही पाठ उमा स्वामी कृत होना चाहिये क्योंकि (१) इस पाठमें "त्" एक अक्षर और इकार का लाभ है । और पूज्यपाद स्वामीकी कृति अनुपलब्ध'गन्धहस्त महाभाष्य'के अतिरिक्त सबसे प्राचीन है उनका जन्म सवत् ३०८ में हुआ था जैसा उल्लेख कर चुके हैं उनने जिस प्रति से पाठ लिया होगा वह बहुत ही प्राचीन प्रति होगी ॥

बहुधा पुस्तकों में "षट्चैकोनविंशतिभागा योजनस्य" यह पाठ है तत्त्वार्थवार्तिक में "षट्चैकान्नविंशतिभागा योजनस्य" भी पाठ है अर्थात् दोनों पाठ हैं ॥ ये दोनों ही पाठ ठीक हैं क्योंकि "एकान्नविंशति (स्त्री०) एकेन न विंशति एक न्-आदुक् दस्य वा न उन्नीस की संख्या" एक न्यूनवीस (पद्मचन्द्रकोश प्रष्ठ ८५) में 'एकान्नविंशति' का ऐसा विग्रह और व्युत्पत्ति की है परन्तु स्मरण रहे कि "एकान्न" का अर्थ (जो त्रिलिंगी है) एककालमेवान्न भक्ष्य यत्र जहां एकबारही भोजन कियाजाता है । इकट्ठा खानेवाला एकभक्तव्रत । एकबार खाने का व्रत ऐसा अर्थ है इस सूत्रके होते हुवे बत्तीसवें सूत्रकि जम्बूद्वीपका १९० हिस्सा भरतहै आवश्यकता नहीं $५२६\frac{१००००}{१९} = \frac{१०००००}{१९०}$ अथवा इस २४ वां सूत्रको निकाल कर ३२ वां सूत्र इसके स्थानमें करदेतेतो वह बहुतबड़ा सूत्र बचजाता और $५२६\frac{६}{१९}$ यों निकलआनेकि $१००००० \div १९० = \frac{१००००}{१९} = ५२६\frac{६}{१९}$

विस्तारोऽस्येति इतरेषां विष्कम्भविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ तद्द्विगुणद्विगुणविस्तारा वर्षधरवर्षा विदेहान्ताः ॥ २५ ॥

ततो भरतात् द्विगुणो द्विगुणो विस्तारो येषां त इमे तद्द्विगुणद्विगुणविस्ताराः ॥ के ते ? वर्षधर-वर्षाः ॥ किं सर्वे ?

विस्तारः[१।१] अस्य[६।१] इति* =ऐसा इस(भरतक्षेत्र) का विस्तार है अर्थात् भरतक्षेत्रका दक्षिण उत्तर विस्तार ५२६$\frac{६}{१९}$ योजन है

इतरेषाम्[६।३] विष्कम्भ-विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थं[१।१] आह=अन्य (क्षेत्रों तथा कुलाचलों) के विस्तारके भेद जनावनेके लिये (अग्रिम सूत्रमें) कहतेहैंकि

सूत्रम्—तद्द्विगुणद्विगुणविस्तारा वर्षधरवर्षा विदेहान्ताः ॥ २५ ॥

तद्-द्विगुण-द्विगुण-विस्ताराः[१।३] =उस (भरत क्षेत्र) से दुगुनी दुगुनी (दक्षिणमें) चौड़ाई वाले

वर्षधर-वर्षाः[१।३] विदेह-अन्ताः[१।३] =क्षेत्र तथा पर्वत विदेह क्षेत्र पर्यंत है अर्थात् भरतक्षेत्र ५२६$\frac{६}{१९}$ योजन चौड़ा है ॥ हिमवत् कुलाचल एक सहस्र बावन योजन बारहकला ($\frac{१२}{१९}$) है। हैमवत क्षेत्र दो सहस्र एकसौ पांच योजन और पांचकला है। महा हिमवान कुलाचल चार सहस्र दोसोदश योजन दशकला है। हरिक्षेत्र आठ सहस्र चारसौ इक्कीस योजन एक कला है ८४२१$\frac{१}{१९}$ योजन है। निषध कुलाचल सोलह सहस्र आठसौ बयालीस योजन दो कला है १६८४२$\frac{२}{१९}$ है, विदेहक्षेत्र तेतीस सहस्र छसौ चौरासी योजन चारकला है (३३६८४$\frac{४}{१९}$ योजन)

ततः*भरतात्[५।१] द्विगुणः[१।१] द्विगुणः[१।१] =तिस भरतक्षेत्र से दुगुनी दुगुनी है (दक्षिण उत्तर में)

विस्तारः[१।१] येषां[६।३] ते[१।३] इमे[१।३] तद्द्विगुण-द्विगुण-विस्ताराः[१।३] =चौड़ाई जिनकी ते ये (सूत्रमें) तद्द्विगुण-द्विगुण विस्तार वाले हैं (अर्थात् भरत क्षेत्र से दूने २ चौड़ाई वाले हैं (प्रश्न) ते कौन है ?

के[१।३] ते[१।३]

वर्षधर-पर्वताः[१।३] किं*सर्वे[१।३] =(उत्तर)पर्वत और क्षेत्र है। क्या सब(शेषके पर्वत और क्षेत्र भारतवर्षसे दूने२ चौड़ाईमें)हैं ॥

नेत्याह, विदेहान्ता इति ॥ अथोत्तरेषां कथमित्यत आह—

॥ उत्तरा दक्षिणतुल्याः ॥ २६ ॥

न*इति*आह।विदेह-अन्ताः।इति* =ऐसा नहीं है-कहते है कि (आठ) विदेह क्षेत्रतक (भारतवर्षसे पर्वत और क्षेत्र एक दूसरे से उत्तरोत्तर दुगने दुगने) हैं अर्थात् भरत क्षेत्र ५२६ ६/१९ योजन चौड़ा है (१) हिमवान् कुलाचल=१०५२ १२/१९ योजन चौड़ा है ॥ (२) हैमवत् क्षेत्र=२१०५ ५/१९ योजन चौड़ा है ॥ (३) महाहिमवान् कुलाचल=४२१० १०/१९ योजन चौड़ा है ॥ (४) हरिक्षेत्र=८४२१ १/१९ योजन चौड़ा है ॥ (५) निषध-कुलाचल=१६८४२ २/१९ योजन चौड़ा है ॥ (६) विदेहक्षेत्र=३३६८४ ४/१९ योजन चौड़ा है ॥

अथ*उतरेषां।कथं*इति*अतः*आह। =अब (विदेहक्षेत्र से) उत्तर दिशाओं का (विस्तार) कैसे है इसलिये (अगला सूत्र में)कहतेहैं कि

(१)सूत्रम्—

उत्तरा दक्षिणतुल्याः ॥ २६ ॥

इस सूत्र में यदि २५वां सूत्रसे "वर्षधर वर्षा" और "विदेह" वाक्योंका अनुकर्षण करें तो पाठ और अर्थ निम्नलिखित (१)के अनुकूल होता है और यदि केवल "विदेह" शब्दकी अनुवृत्ति लें तो पाठ और अर्थ (२) के अनुसार होता है पिछला अर्थ पूज्यपाद स्वामीकी सर्वार्थसिद्धिवृत्ति के अनुसार है और पहिला अर्थ बहुत विस्तृत भी है जैसा कि दोनों भांति के अर्थ जो नीचे लिखे जाते हैं उनसे प्रगट है ॥

(१) वर्षधरवर्षा विदेहोत्तरा दक्षिणतुल्याः ।

वर्षधरवर्षाः।विदेह-उत्तरा*दक्षिण- =पर्वत और क्षेत्र विदेह से उत्तर दिशा के दक्षिण दिशाके (पर्वत और क्षेत्रों के)

तुल्याः। =समान हैं अर्थात् विदेह क्षेत्रसे उत्तरदिशाके तीन नील रुक्मी और शिखरी पर्वत और तीन रम्यक, हैरण्य और ऐरावत क्षेत्र विदेहसे दक्षिणदिशाके तीन निषिध, महा-हेमवत् हेमवत् पर्वत और तीन हरिहैमवत् भरतक्षेत्रोंके बराबर विस्तारवाले है ।

(१) हमारे यहां इस सूत्र का पाठ एक है । उत्तरा दक्षिणतुल्यः कहींकहीं पर पाठ है वह अशुद्ध है । श्वेताम्बर आम्नायमें इसको सूत्र नहीं माना है ।

उत्तरा ऐरावतादयो नीलान्ता भरतादिभिर्दक्षिणैस्तुल्या द्रष्टव्याः। अतीतस्य सर्वस्यायं विशेषो वेदितव्यः।

पहले पच्चीसवां सूत्रमें दक्षिणके पर्वत तथा क्षेत्रोंका पृथक् पृथक् विस्तार कहा है सो ही उत्तरके पर्वत तथा क्षेत्रोंका समझना चाहिये ॥

(२) विदेह--उत्तरा दक्षिण--तुल्याः ॥

विदेह--उत्तरा*	=विदेहक्षेत्रसे उत्तरदिशाके (३ पर्वत, ३ क्षेत्र ३ द्रह ३कमल छह नदियें और पारिवारिक नदियें आदि)
दक्षिण–	=दक्षिण दिशाके (३ पर्वत ३ क्षेत्र ३ द्रह ३ पुष्कर छः नदियें और पारिवारिक नदियें आदिके)
तुल्याः[१/३]	=समान है अर्थात् बराबर विस्तारवाले और बराबर गणना वाले है ॥

चतुर्दश नदियोंमेंसे सीतानदी केसरी द्रहसे निकलकर पूर्वी विदेहोंके विभाग करती हुई लवणसमुद्रमें पूर्वकी ओर जाकर मिलतीहै और सीतोदा नदी तिगिंछद्रहसे निकलकर पश्चिमी विदेहोंके विभाग करती हुई लवणोदधिमें पश्चिमकी ओर जाकर मिलती है ॥ पर्वत, क्षेत्र, ह्रदों, पुष्करों आदिका विस्तार और गणना प्रथम कह चुके है वही जानना ॥

वृत्त्यनुवादः--उत्तरा*ऐरावत–आदयः[१/३]	=(विदेह क्षेत्रसे) उत्तरदिशाके ऐरावत आदि (३पर्वत,३क्षेत्र,३द्रह, ३ पुष्कर, छः नदियें और इनकी परिवारकी नदियें आदि)
नील–अन्ताः[१/३]भरतादिभिः[३/३]	=नीलकुलाचल तक भरतादिक(तीन क्षेत्र, तीन कुलाचल, तीन द्रह, तीन कमल, छः नदियों और इन नदियोंकी परिवारकी नदियें आदि)
दक्षिणैः[३/३]तुल्याः[१/३]द्रष्टव्याः[१/३]अतीतस्य[६/१]	=दक्षिण दिशासे समान जानना चाहिये ॥ अतीत अर्थात् प्रथम वर्णित
सर्वस्य[६/१]अयम्[१/१]विशेषः[१/१]वेदितव्यः[१/१]	=सब(वस्तुओं)केयह विशेष(कि उत्तर दिशाके पर्वतादिक दक्षिण दिशाके तुल्यहै) जानना चाहिये

(१) पद्मचन्द्र कोश पृष्ठ ७१में 'उत्तरा' शब्दका अर्थ अक्षरश ऐसे है"(स्त्री०)प्रेतकी पितृत्वप्राप्ति होनेपर सपिण्डीकरणके अनन्तर जो पितृसम्बन्धी क्रिया की जाती है, सपिण्डीकरणके पीछेकी श्राद्धक्रियायें। उत्तर दिशा, काल, दश(अव्य०)"इसलिये अनुवादमें उत्तर दिशाके अर्थमें अव्यय माना है ॥

तेन ह्रदपुष्करादीनां तुल्यता योज्या ॥ अत्राह, उक्तेषु भरतादिषु क्षेत्रेषु मनुष्याणां किं तुल्योऽनुभवादिः। आहोस्वित्कश्चिदस्ति प्रतिविशेष इत्यत्रोच्यते—

भरतैरावतयोर्वृद्धिह्रासौ षट्समयाभ्यामुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्याम्॥२७॥

वृद्धिश्च ह्रासश्च वृद्धिह्रासौ । काभ्यां ? षट्समयाभ्याम् । कयोः ? भरतैरावतयोः ।

तेन = तिस (विशेष अर्थात् उत्तरा दक्षिण तुल्या) करि
ह्रद-पुष्कर- = द्रह, कमल (पर्वत, क्षेत्र, नदियें, परिवारकी नदियें)
आदीनाम् तुल्यता योज्या । अत्र आह = आदिकोंकी समानता लगाई जाय है । यहाँ (शिष्य) पूछता है कि
उक्तेषु भरतादिषु क्षेत्रेषु मनुष्याणां किं = कथित भरतादिक क्षेत्रोंमें मनुष्योंका क्या
तुल्य-अनुभव-आदिः आहोस्वित् कश्चित् = तुल्य अनुभव आदिक है अथवा कुछ
अस्ति प्रतिविशेषः इति अत्र उच्यते = भिन्नता (=प्रतिविशेष है) इसलिये (=इति) यहां (अग्रिमसूत्रमें) कहा जाय है कि ॥

सूत्रम्–(१)भरतैरावतयोर्वृद्धिह्रासौ षट्समयाभ्यामुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्याम्(२)॥ २७ ॥

सूत्रार्थः—भरत-ऐरावतयोः = भारतवर्ष और ऐरावतवर्षमें
(निवास करनेवाले मनुष्य और तिर्यंचोंकी आयु, काय, अनुभव, संपदा, वीर्य, बुद्ध्यादिका)
वृद्धि–ह्रासौ उत्सर्पिणी-अवसर्पिणीभ्याम् ॥ = बढ़ना घटना उत्सर्पिणीरूप अवसर्पिणीरूप
षट्–समयाभ्याम् ॥ = छै छै कालोंके हेतुसे (यथासंख्य) होता है ॥
वृत्त्यनुवादः। वृद्धिः। च ह्रासः। च वृद्धि-ह्रासौ। काभ्यां। = और बढ़ना तथा घटना है सो वृद्धि ह्रासौ है (प्रश्न) किन दो हेतुसे बढ़ना घटना है ।
षट्–समयाभ्याम् । = (उत्तर–उत्सर्पिणी तथा अवसर्पिणीके) युगल छः कालोंसे (बढ़ना तथा घटना) है ॥
कयोः भरत-ऐरावतयोः । = (प्रश्न) किन दोका [बढ़ना घटना है] (उत्तर) भारत ऐरावतका ॥

---

(१) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें यह सूत्र नहीं है ॥ इस अध्यायके पृष्ठ ३७, ३८की टिप्पणी देखो ॥
(२) सर्पिणीभ्याम्के स्थानमें जहां (सर्पिणीभ्यां) वाक्य है वह एक प्रकारसे अशुद्ध है (देखो टिप्पणी अध्याय प्रथम पृष्ठ ५,६) शेष पाठ हमारे यहां एक है॥

न तयोः क्षेत्रयोर्वृद्धिह्रासौ स्तः । असम्भवात् । तत्स्थानां मनुष्याणां वृद्धिह्रासौ भवतः ॥ अथवा अधिकरणनिर्देशः भरते ऐरावते च मनुष्याणां वृद्धिह्रासाविति ॥ किंकृतौ वृद्धिह्रासौ ? अनुभवायुःप्रमाणादिकृतौ ॥ अनुभवः उपभोगः, आयुः

न*तयोः६।।।क्षेत्रयोः६।।।वृद्धिहृासौ१।।स्तः। =न उन (भरत, ऐरावत) के क्षेत्रफल अथवा विस्तार की बढ़ती घटती है ॥
असम्भवात्५।तत्- =क्योंकि (विस्तारका बढना घटना) असम्भव है। तिन (भरत ऐरावत) मे
स्थानाम्६।।मनुष्याणां६।।वृद्धि-हृासौ१।।भवतः।अथवा =ठहरनेवाले मनुष्योंकी बढ़ती घटती होती है ॥ अथवा (षष्ठी निर्देश छोड़कर)
अधिकरणनिर्देशः१।भरते७।ऐरावते७।च* =सप्तमी विभक्तिके निरूपनमें भरतमें तथा ऐरावतमें (रहने वाले)
मनुष्याणां६।।वृद्धि-हृासौ१।।इति* =मनुष्योंकी बढती घटती है ऐसा है "भावार्थ ऐसा है कि" सूत्र में "भरतैरावतयोः" यह वाक्य षष्ठी वा सप्तमी विभक्ति में एक ही रूप धारण करता है इस वाक्य के साथ वृद्धिहृासौ वाक्य के जोड़देने से षष्ठी मे यह अर्थ होता है कि भरत तथा ऐरावत की वृद्धि और हृास अर्थात् एक प्रकारसे ऐसा आशय समझा जासका है कि भरत और ऐरावत के विस्तारकी बढ़ती तथा घटती उत्सर्पिणीकाल तथा अवसर्पिणीकालमें होती है इस पूर्वोक्त संदेहको दूर करनेके लिये आचार्य "भरतैरावतयोः" वाक्यको सप्तमीमें लेकर ऐसा कथन करते हैं कि भरत तथा ऐरावतमें (निवास करने वाले मनुष्यों की) बढ़ती और घटती होती है न कि भारतवर्ष तथा ऐरावतवर्षके विस्तार अथवा क्षेत्रफलकी बढती तथा घटती होती है ॥
किम्*कृतौ१।।वृद्धि-हृासौ१।। =(प्रश्न) वृद्धि-हृास कौन कृत वा जनित हैं। अर्थात् बढना घटना किसके किये हुये हैं
अनुभव-आयुस-प्रमाण-आदि-कृतौ१।। =(उत्तर) अनुभव जीवनकालका परिमाण आदिकी की हुई (बढ़ती घटती) हैं
अनुभवः१।उपभोगः१।आयुः१।।। =अनुभव अर्थात् उपभोग वा विषयों का सुखास्वादन आयु अर्थात्

(१) यह 'आयु' शब्द अमरकोश वर्ग १८ श्लोक १२० में "आयुस्' इस रूपमें नपुसक लिंगमें पाया जाता है इसकी प्रथमा विभक्ति एक वचन "आयु" नपुसक लिंगमें पयस् शब्द के सदृश बनेगी ॥

जीवितपरिमाणं, शरीरोत्सेध इत्येवमादिभिर्वृद्धिह्रासौ मनुष्याणां भवतः ॥ किंहेतुकौ पुनस्तौ ? कालहेतुकौ ॥ स च कालो द्विविधः । उत्सर्पिणी अवसर्पिणी चेति ॥ तद्भेदाः षट् ॥ अन्वर्थसञ्ज्ञे चैते ॥ अनुभवादिभिरुत्सर्पणशीला उत्सर्पिणी । तैरेवावसर्पणशीला अवसर्पिणी ॥ तत्रावसर्पिणी षड्विधा—सुषमसुषमा । सुषमा । सुषमदुष्षमा । दुष्षमसुषमा । दुष्षमा । अतिदुष्षमा । उत्सर्पिण्यपि अतिदुष्षमाद्या सुषमसुषमान्ता

जीवितपरिमाणं[1/2]।।शरीर-उत्सेधः[1/2] =जीवनकालका परिमाण (और) शरीरकी ऊंचाई

इत्येवम्*आदिभिः[3/3]वृद्धिह्रासौ[1/2]मनुष्याणां[6/3]भवतः[T] =इत्यादिक करिही (=इत्येवमादिभिः) उन्नती और घटती मनुष्योंकी होती है ॥

पुनः*तौ[1/2]किम्*हेतुकौ[1/2] ? =(प्रश्न) पहुरि वे (वृद्धिह्रास) कौन निमित्तक अथवा जनित हैं ।

काल-हेतुकौ[1/2]सः[1/1]च*कालः[1/1] =(उत्तर) समयकारणक हैं अर्थात् समृद्धि और क्षतिका हेतुकाल है । वह और [=च] काल

द्विविधः[1/1]उत्सर्पिणी[1/1]'अवसर्पिणी[1/1]।।च*इति*। =दो प्रकार है । उत्सर्पिणी और (=च) अवसर्पिणी ऐसे हैं ।

तद्-भेदाः[1/3]प्रत्येकं[1/1]।।षट्[1/3] =उन (उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी) के भेद पृथक् पृथक् (प्रत्येक) छह हैं

अन्वर्थ-सञ्ज्ञे[1/2]'च*एते[1/2]।। । =वहुरि (=च) ये (उत्सर्पिणी तथा अवसर्पिणी) जैसा अर्थ वैसा (=अन्वर्थ) नामधारक हैं

अनुभव-आदिभिः[3/3]उत्सर्पण-शीला[1/1] =(पूर्वोक्त) अनुभव आदिक सहित आगेवढनेका (=उत्सर्पण) है स्वभाव जिसका अर्थात् वृद्धि करनेकी है प्रकृति जिसकी सो

उत्सर्पिणी[1/1]।।तैः[3/3]एव*अवसर्पण-शीला[1/1] =उत्सर्पिणी है तिन (अनुभव, आदि) से ही (=एव) पीछेहटनेका (=अवसर्पण) है स्वभाव जिसका अर्थात् ह्रास करने की है प्रकृति जिसकी सो

अवसर्पिणी[1/1]''तत्रअवसर्पिणी[1/1]।।षड्विधा[1/1]।।सुषमसुषमा[1/1]।। =अवसर्पिणी है तहां अवसर्पिणी छह प्रकार है सुखमसुखमा

सुषमा[1/1]।।सुषमदुष्षमा[1/1]।।दुष्षमसुषमा[1/1]।। =सुखमा, सुखमदुःखमा, दुःखमसुखमा

दुष्षमा[1/1]।।अतिदुष्षमा[1/1]।। । उत्सर्पिणी[1/1]।।अपि* =दुःखमा अतिदुःखमा उत्सर्पिणी [काल] भी है

अतिदुष्षमा[1/1]।।आद्या[1/1]।।सुषमसुषमा[1/1]।।अन्ता[1/1]।। =जिसका अति दुःखमा (काल) पहिला है और सुखमसुखमा (काल) सबसे पिछला (अन्ता) है

षड्विधैव भवति ॥ अवसर्पिण्याः परिमाणं दशसागरकोटीकोट्यः । उत्सर्पिण्या अपि तावतेव ॥ याऽसौ उभयी (सोभयी) कल्प इत्याख्यायते ॥ तत्र सुषमसुषमा चतस्रः सागरोपमकोटीकोट्यः । तदादौ मनुष्या उत्तरकुरुमनुष्यतुल्याः ॥ ततः क्रमेण हानौ सत्यां सुषमा भवति तिस्रः सागरोपम-कोटीकोट्यः । तदादौ मनुष्या हरिवर्षमनुष्यसमाः

षड्विधा॥एव*भवति। =छह प्रकारकी ही होती है अर्थात् अतिदुःखमा, दुःखमा, दुःखमासुखमा, सुखमा दुःखमा, सुखमा, सुखमासुखमा ऐसे छह काल हैं ॥

अवसर्पिण्याः॥परिमाणं॥दशसागरकोटीकोट्यः॥ =अवसर्पिणीकालकी मर्यादा दश कोड़ाकोड़ी सागर अथवा १०००००००० गुणित १०००००००=१००००००००००००००० है अर्थात् एक पद्म सागर है ॥

उत्सर्पिण्याः॥अपि*तावत्*एव* =उत्सर्पिणी (काल) का भी तितना ही (एक पद्मसागर मर्यादा) है ॥

या॥असौ॥उभयी॥(सा॥-उभयी॥) कल्पः॥ =जो (=या) वह (=असौ) दोनों (उभयी॥) कल्प काल है ॥

इति*आख्यायते।तत्र*सुषमसुषमा॥चतस्रः॥ =ऐसा कहा गया है । तहां सुखमसुखमा चार

सागरोपमकोटीकोट्यः॥ =कोड़ा कोड़ीसागर प्रमाण अर्थात् ४००००००० × १००००००० = ४००००००००००००००० चालीस लाख नील सागर का है ॥

तद्-आदौ॥मनुष्याः॥उत्तरकुरु-मनुष्य-तुल्याः॥ =तिस (काल) की आदिमें मनुष्य उत्तरकुरुभोगभूमिके मनुष्योंके समान हैं ॥ अर्थात् इस (काल) की आदिमें मनुष्योंकी आयु तीन पल्यकी होती है । अनुक्रम से घटती है अन्त में दो पल्य की रहती है (२) शरीर की ऊंचाई आदि में तीन कोस अनुक्रम से अन्त में २ कोस(३)तीन दिन पश्चात् चौथे दिन बदरीफल सम आहार इत्यादि घटता घटता जाता है

ततः*क्रमेण॥हानौ॥सत्याम्॥सुषमा॥ =तहांसे अनुक्रमसे हानि होनेपर सुखमा काल

भवति तिस्रः॥सागरोपम-कोटीकोट्यः॥तद्-आदौमनुष्याः =तीन कोड़ा कोड़ी सागर प्रमाण होताहै । तिस (सुखमाकाल) की आदि विषैं मनुष्य

हरिवर्ष-मनुष्य-समाः॥ =हरिवर्ष मध्यम भोगभूमिके मनुष्योंके तुल्य हैं (२ कोश शरीर २ पल्य आयु इत्यादि)

ततः क्रमेण हानौ सत्यां सुषमदुष्षमा भवति द्वे सागरोपमकोटीकोट्यौ । तदादौ मनुष्या हैमवतकमनुष्यसमाः ॥ ततः क्रमेण हानौ सत्यां दुष्षमसुषमा भवति एकसागरोपमकोटीकोटीद्विचत्वारिंशद्वर्षसहस्रोना । तदादौ मनुष्या विदेहजनतुल्या भवन्ति ॥ ततः क्रमेण हानौ सत्यां दुष्षमा भवति एकविंशतिवर्षसहस्राणि ॥ ततः क्रमेण हानौ सत्यां अतिदुष्षमा भवति एकविंशतिवर्षसहस्राणि ॥ एवमुत्सर्पिण्यपि विपरीतक्रमा वेदितव्या ॥ अथेतरासु भूमिषु काऽवस्थेत्यत आह—

ततः॥क्रमेण॥हानौ॥सत्याम्॥सुषमदुष्षमा॥ =तहां से क्रमसे हानि होनेपर सुखमदुःखमाकाल
भवति॥द्वे॥सागरोपमकोटीकोट्यौ॥तद्-(१)आदौ॥ =दो कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण होता है। तिस (सुखम दुःखम) की आदिमें
मनुष्याः॥हैमवतक-मनुष्य-समाः॥ =मनुष्य हैमवतक जघन्य भोगभूमिके मनुष्योंके सारिखे है (अर्थात् एककोश शरीर, एकपल्य आयु, एकदिन पीछे आहार इत्यादि)
ततः॥क्रमेण॥हानौ॥सत्याम्॥ =तहांसे क्रमकरि हानि होनेपर
दुष्षमसुषमा॥एकसागरोपमकोटी-कोटी- =दुःखमसुखमा एक कोडा कोडी सागर प्रमाण से
द्विचत्वारिंशद्वर्षसहस्रोना॥भवति =वियालीस सहस्रवर्ष न्यून वा हीन होता है
तद्-आदौ॥मनुष्याः॥विदेह-जन-तुल्याः॥भवन्ति =तिस (दुःखमसुखमा) की आदि में मनुष्य विदेहक्षेत्र के मनुष्योंके समान होते है ॥
ततः॥क्रमेण॥हानौ॥सत्याम्॥दुष्षमा॥ =तहांसे यथाक्रम हानि होने पर दुःखमाकाल
भवति॥एकविंशति-वर्षसहस्राणि॥ततः॥क्रमेण॥ =इकीसो सहस्र वर्षका होता है। तहांसे क्रमानुसार
हानौ॥सत्याम्॥अतिदुष्षमा॥एकविंशति- =हानि होनेपर अति दुःखमकाल इकीस
वर्ष-सहस्राणि॥भवति॥एवम्॥उत्सर्पिणी॥अपि =सहस्र वर्षका होता है। इस प्रकार उत्सर्पिणीकाल भी
विपरीतक्रमा॥वेदितव्या॥ =उलटा अनुक्रमरूप जानना चाहिये
अथ॥इतरासु॥भूमिषु॥का॥अवस्था॥इति॥अतः॥आह=आगै (=अथ) अन्य (भूमियों) विषैं क्या दशा (=अवस्था) है इसलिये कहते हैं कि

(१) 'आदि' त्रिलिंगी है, यहां "सुषमदुष्षमा" वाक्य के लिये आया है अत स्त्रीलिंगमें रक्खा है यदि काल के लिये लेवें तो पुल्लिंग में होसक्ता है ॥

॥ ताभ्यामपरा भूमयोऽवस्थिताः ॥ २८ ॥

ताभ्यां भरतैरावताभ्यामपरा भूमयोऽवस्थिता भवन्ति, न हि तत्रोत्सर्पिण्यवसर्पिण्यौ स्तः ॥

किं तासु भूमिषु मनुष्यास्तुल्यायुष आहोस्वित्कश्चिदस्ति प्रतिविशेष इत्यत आह—

॥ एकद्वित्रिपल्योपमस्थितयो हैमवतकहारिवर्षकदैवकुरवकाः ॥२९॥

सूत्रम्–(१)ताभ्यामपरा भूमयोऽवस्थिताः ॥ २८ ॥

सूत्रार्थः–ताभ्याम्।५।३।अपरा।१।३।	=तिन(भरत तथा ऐरावतवर्षो)से अन्य (हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत)
भूमयः।१।३।अवस्थिताः।१।३।	=पृथिवीयें ज्योंकीत्योंनित्य है अर्थात् इनके क्षेत्रोंमें वृद्धि ह्रास नहीं होता है ॥
वृत्त्यनुवादः–ताभ्याम्।५।३।भरत-ऐरावताभ्याम्।५।३।अपरा।१।३।	=उन भरत तथा ऐरावत वर्षोंसे अन्य (हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत)
भूमयः।१।३।अवस्थिताः।१।३।भवन्तिT	=पृथिवीयें ज्योंकीत्योंनित्यविद्यमान (=अवस्थिताः) हैं (=भवन्ति)
न*हि*तत्र*स्तःT	=क्योंकि (=हि) नहीं है तहां (पूर्वोक्त पांच क्षेत्रोंमें)
उत्सर्पिणी-अवसर्पिण्यौ।१।२। किम्।१।१।तासु।७।३।भूमिषु।७।३।	=उत्सर्पिणी तथा अवसर्पिणीकाल (प्रश्न) क्या तिन (पांच) भूमियोंविषैं
तुल्य-आयुषः।१।३।मनुष्याः।१।३।आहोस्वित्*कश्चित्*	=समान अवस्था वाले मनुष्य हैं ॥ अथवा (=आहोस्वित्) कुछ
अस्तिTप्रतिविशेषः।१।१।इति*अतः*आहT	=भिन्नता वा पृथक्ता (=प्रतिविशेष) है इसलिये (अग्रिम सूत्रमें) कहते है कि

सूत्रम्–(१)एकद्वित्रिपल्योपमस्थितयो हैमवतकहारिवर्षकदैवकुरवकाः ॥ २९ ॥

सूत्रार्थः–एक-द्वि-त्रि-पल्योपम-स्थितयः।१।३।हैमवतकाः।१।३।	=एक दो और तीन पल्य प्रमाण आयुवाले (क्रमसे) हैमवत क्षेत्रके रहनेवाले
हारिवर्षकाः।१।३।दैवकुरवकाः।१।३। ॥२९॥	=हरिवर्षके निवासकरनेवाले मनुष्य और दैवकुरु(भोगभूमि)के वसनेवाले मनुष्यहै
	अर्थात् हैमवत क्षेत्र जो जघन्य भोग भूमि का क्षेत्र है यहांके उपजे मनुष्योंकी

(१) हमारे यहा इन सूत्रोंका पाठ एकसा है श्वेताम्बर आम्नायके 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र'में इन सूत्रोंका सूत्र नहीं मानेहैं (टिप्पणी पृष्ठ३७, ३८ देखो)

हैमवते भवा हैमवतका इत्येवं वुञि सति मनुष्यसम्प्रत्ययो भवति । एवमुत्तरयोरपि ॥ हैमवतकादयस्त्रयः । एकादयस्त्रयः । तत्र यथासंख्यमभिसम्बन्धः क्रियते । एकपल्योपमस्थितयो हैमवतकाः । द्विपल्योपमस्थितयो हारिवर्षकाः । त्रिपल्योपमस्थितयो दैवकुरवका इति ॥ तत्र पञ्चसु हैमवतेषु सुषमदुष्षमा सदाऽवस्थिता ।

एक पल्यकी अवस्था होती है। हरिवर्ष जहां मध्यमभोग भूमिहै यहांके निवासी मनुष्योंकी आयु दो पल्य की होती है। और देवकुरु उत्तम भोगभूमिके निवासकरनेवाले नरोंका तीन पल्योपम जीवन काल है।

(१)हैमवते भवाः हैमवतकाः इत्येवं*	=हैमवतवर्पमें होनेवाले अर्थात् उपजने वाले वे हैमवतका हैं इस प्रकार
वुञि सति	=वुञ् प्रत्यय (हैमवत शब्द के साथ) होनेमें (=सति) (उसक्षेत्रमे होनेवाले)
मनुष्य-सम्प्रत्ययः भवति। एवं* उत्तरयोः अपि*	=मनुष्योका ज्ञान वा बोध होता है ऐसे अग्रिम दोमे (=उत्तरयोः) भी है ॥ अर्थात् हारिवर्प और दैवकुरु शब्दों के साथ वुञ् प्रत्यय लाने पर उन दोनों क्षेत्रों में उत्पन्न होनेवाले नरोंका बोध होताहै और हारिवर्षक, दैवकुरुवकरूप होजाते हैं॥
हैमवतक-आदयः त्रयः एक-आदयः त्रयः	=(इस सूत्र में) हैमवतक आदिक तीन है ॥ एक आदिक तीन (संख्या) हैं ॥
तत्र*	=तहां (हैमवतक-हारिवर्षक और दैवकुरुवक का एक दो तीन गणनाओंके साथ)
यथासंख्यम्॥	=संख्याके अनुसार वा अनुसरण (=यथासंख्यम् अर्थात् पहिले को पहिली दूसरे को दूसरी तीसरे को तीसरी इस क्रमसे)
अभिसम्बन्धः क्रियते। एक-पल्योपम-स्थितयः	=सम्बन्ध वा संयोग किया जाय है (जैसे) एक पल्योपमकी आयुधारक
हैमवतकाः	=हैमवत क्षेत्र (जघन्य भोगभूमि) के उपजे मनुष्य हैं ॥
द्वि-पल्योपम-स्थितयः हारिवर्पकाः	=दो पल्योपम के जीवनकालवाले हरिवर्प(जघन्य भोग भूमि)के निवासी मनुष्य हैं
त्रि-पल्योपम-स्थितयः दैवकुरुवकाः इति*	=तीन पल्योपमकी अवस्थावाले देवकुरु (उत्तम भोगभूमि के) रहने वाले नर है
तत्र* पञ्चसु हैमवतेषु सुपमदुःष्पमा। सदा* अवस्थिता॥	=तहां पांच हैमवत देशोंमें सुखमदुःखम (काल) सर्वदाविद्यमान है।

(१) 'हिमवत' शब्दमें 'अण' (=अ)प्रत्यय जोडनेसे, हिमवत् की 'इ'की वृद्धि होकर हैमवत्+अण बना=हैमवत, इसमें 'वुञ्' प्रत्यय जोडो, वुञ् का उ, ञ् इत् सञ्ज्ञिक होने से लोप हुआ और व् के स्थान में 'अक' का आदेश हुआ अत हैमवत+अक, तके अकार का लोप होकर हैमवतक बना

तत्र मनुष्या एकपल्योपमायुषो द्विधनुःसहस्रोछ्रिताः चतुर्थभक्ताहारा नीलोत्पलवर्णाः ॥ पञ्चसु हरिवर्षेषु सुखमा सदाऽवस्थिता । तत्र मनुष्या द्विपल्योपमायुषश्चतुश्चापसहस्रोत्सेधाः षष्ठभक्ताहाराः शंखवर्णाः ॥ पञ्चसु देवकुरुषु सुषमसुषमा सदाऽवस्थिता । तत्र मनुष्यास्त्रिपल्योपमायुषः

तत्र*एकपल्योपमआयुषः।१।३।मनुष्याः।१।३।	=तहां मनुष्य एक पल्योपम आयुवाले
द्वि-धनुष्-सहस्र-उच्छ्रिताः।१।३।	=दो सहस्र चाप ऊंचे (=उच्छ्रित)
चतुर्थ-भक्त-आहाराः।१।३।	=चौथा(=चतुर्थ)भोजन वा अन्नके(=भक्त) खानेवाले (=आहार) अर्थात् तीनवारके भोजन(के समय)को त्यागकर चोथीवारका भोजन करनेवाले तात्पर्य्य एकदिनको वीचमें छोड़कर भोजनकरनेवाले
नील-उत्पल-वर्णाः।१।३। पञ्चसु।७।३।हरिवर्षेषु।७।३।	=और नीले कमल सम रूपकेधारक हैं । पांच हरि क्षेत्रोंमें
सुखमा।१।१।सदा*अवस्थिता।१।१।। तत्र*मनुष्याः।१।३। दो-पल्योपम	=सुखमाकाल सर्वकालमे वर्तमान है । तहां मनुष्य दोपल्यप्रमाण
आयुषः।१।३। चतुर्-चाप-सहस्र-उत्सेधाः।१।३।	=अवस्थाके धारक चार सहस्र धनुष ऊंचे, लम्बे अथवा ऊंचाईवाले
षष्ठ-भक्त-आहाराः।१।३।	=छठवां भोजन ग्रहण करनेहारे अर्थात् दो दिनका वीचमें अवकाश देकर तीसरे दिन उसी समय भोजन करनेवाले है
शंख-वर्णाः।१।३।पञ्चसु।७।३।देवकुरुषु।७।३।सुषमसुषमा।१।१।।	=धवल अथवा श्वेत शरीर धारक है । पांच देवकुरु क्षेत्रोंविषैं सुखमसुखमा
सदा*अवस्थिता।१।१।।तत्रमनुष्याः।१।३।त्रिपल्योपमआयुषः।१।३।	=सर्व कालमे अवस्थित है ॥ तहां मनुष्य तीन पल्य प्रमाण स्थिति वाले हैं

चौथे दुखमसुखमाकालमें एक वार भोजन साधारणत प्रत्येक दिन मनुष्य करता था और पचमकालमें वहुआ दो वार भोजन प्रत्येक पुरुष करता है । क्योंकि सर्वार्थसिद्धिकी सस्कृतवृत्ति पूज्यपाद स्वामीने जिनका जन्म विक्रम सवत् ३०८ ज्येष्ट सुदी दशमीको हुआ था पचमकालमें रची है । इसकारण चतुर्थ भोजन करनेवालेका तात्पर्य्य यह है कि 'एक दिनका अन्तर देकर भोजन करनेवाला' 'एक दिनके अवकाश से भोजन करने वाला' 'एकदिन वीचमें भोजन न करके भोजन करनेवाला' जैसे मानलो कि पचमकालके एक मनुष्यने और जघन्य भोग भूमिके एक मनुष्यने साथसाथ रविवार को भोजन सायकाल किया तो पचमकालका पुरुष सोमवारकी प्रात कालमें एक भोजन और दूसरा उसी दिवसको सायकालको करैगा और वही मनुष्य एक भोजन मंगलवारके प्रात कालमें करैगा तवलग जघन्य भोग भूमिका मनुष्य कोई भोजन न करैगा जब पचमकालका मनुष्य मंगलकी सायकालको चौथा भोजन करैगा तव भोग भूमिका पूर्वोक्त मनुष्य फिर भोजन करैगा इसलिये कहा है कि चौथा भोजन करनेवाले अर्थात् तीनवार का भोजन त्यागकर वा एक दिवसका अन्तर देकर दूसरे दिन भोजन करनेवाला ॥

षड्धनुःसहस्रोच्छ्राया अष्टमभक्ताहाराः कनकवर्णाः ॥ अथोत्तरेषु काऽवस्थेत्यत आह—

॥ तथोत्तराः ॥ ३० ॥

यथा दक्षिणा व्याख्यातास्तथैवोत्तरा वेदितव्याः। हैरण्यवतका हैमवतकैस्तुल्याः। राम्यका हारिवर्षकैस्तुल्याः

षड्-धनुष्-सहस्र-उच्छ्रायाः १।३। अष्टमभक्त-आहाराः १।३। =छह सहस्र चाप ऊंचाईवाले आठवां भोजन ग्रहण करने वाले हैं अर्थात् तीन दिन का बीच में अन्तर देकर चौथे दिन उसी समय भोजन ग्रहण करनेवाले

कनकवर्णाः १।३। अथ* उत्तरेषु ७।३। =स्वर्ण वा कंचनरूप हैं (प्रश्न) अब उत्तर दिशाओंविषैं

का १।१। अवस्था १।१। इति* अत* आह =क्या अवस्था है इसलिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्— (१)तथोत्तरा ॥ ३० ॥ =(यथा दक्षिणाः व्याख्याताः) तथा (एव) उत्तराः (वेदितव्याः)

सूत्रार्थः—यथा* दक्षिणाः १।३। व्याख्याताः १।३। तथा* (एव*) =जैसे दक्षिण वाले वर्णन किये गये है तैसे (ही)

उत्तराः १।३। वेदितव्याः १।३। =उत्तरदिशाके (तीन क्षेत्र हैरण्यवत रम्यक और उत्तरकुरु के) निवासकरनेवाले (मनुष्योंको) समझना चाहिये अर्थात् हैरण्यवतक्षेत्र जो जघन्य भोगभूमिका क्षेत्र है यहांके उपजे मनुष्योंकी एक पल्य की आयु होती है । रम्यक क्षेत्र जहां मध्यम भोग भूमि है यहां के निवासी मनुष्योंकी आयु दोपल्यकी होती है ॥ और उत्तरकुरु जो उत्तम भोग भूमिका क्षेत्र है यहाके निवासकरने वाले नरोंका तीन पल्योपमाका जीवनकाल है इसप्रकार पांचमेरु सम्बन्धी दक्षिण और उत्तरदिशाओंकी सर्व तीसभोगभूमि हैं

वृत्त्यनुवादः-यथा* दक्षिणाः १।३। व्याख्याताः १।३। तथा* एव* उत्तराः =जैसे दक्षिणदिशाके(क्षेत्रों)वाले वर्णन कियेगयेहै तैसेही उत्तरदिशाके(क्षेत्रों)वालोंको

वेदितव्याः १।३। -हैरण्यवतकाः १।३। =जानना चाहिये अर्थात् हैरण्यवत क्षेत्रकेनिवासीमनुष्य

(२)हैमवतकैः ३।३। तुल्याः १।३। राम्यकाः १।३। =हैमवत क्षेत्रके रहनेवाले मनुष्योंसे समान है। रम्यक क्षेत्रकेनिवासकरनेवाले मनुष्य

हारिवर्षकैः ३।३। तुल्याः १।३। =हरिवर्षके रहनेवाले मनुष्योंसे तुल्य हैं

(१) हमारे यहा इस सूत्रका पाठ सर्वत्र एक है ॥ श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें इसको सूत्र नहीं माना है (पृष्ठ ३७, ३८की टिप्पणी)

(२) क्योंकि यहांपर संस्कृत वृत्तिमें त्रितीया कारक है इस हेतु से अनुवादमें 'मनुष्योंसे' ऐसा लाये हैं जिसका वही अभिप्राय है जो मनुष्योंके वाक्यके लानेपर होता है अर्थात् हैमवत क्षेत्रके रहनेवाले मनुष्योंके समान हैं ॥

दैवकुरवकैरौत्तरकुरवकाः समाख्याताः ॥ अथ विदेहेष्ववस्थितेषु का स्थितिरित्यत्रोच्यते—

॥ विदेहेषु संख्येयकालाः ॥ ३१ ॥

सर्वेषु पञ्चसु महाविदेहेषु

दैवकुरवकैः। औत्तरकुरवकाः।	=देवकुरु क्षेत्रके उपजे मनुष्योंसे उत्तर कुरुक्षेत्रके उत्पन्न हुये मनुष्य
सम-आख्याताः। । अथ*विदेहेषु।	=समान (=सम) वर्णित कियेगये हैं ॥ (प्रश्न) अब विदेहक्षेत्रोंमें
अवस्थितेषु। का। स्थितिः। इति*अत्र*उच्यते।	=रहनेवाले, वा निवासकरनेवालोंकी क्या आयु है ऐसे (प्रश्नपर) यहां कहा जाता कि

(१)सूत्रम्— विदेहेषु संख्येयकालाः ॥ ३१ ॥

सूत्रार्थ—विदेहेषु। संख्येय-कालाः।	=विदेहक्षेत्रोंकेविषैं संख्यातवर्षकी अवस्था वा आयुवाले होते हैं अर्थात् पांच मेरु सम्बन्धी पांचों विदेह क्षेत्रोंमें मनुष्य संख्यात वरसकी आयुवाले होते हैं
वृत्त्यनुवादः—सर्वेषु। पञ्चसु। (२)महाविदेहेषु।	=(पांच मेरु सम्बन्धी) समस्त पांच महाविदेहोंमें

---

(१) हमारेयहां कहीं सख्येय, कहीं सङ्खेय पाठ है दोनों पाठ ठीक हैं (अ०१पृष्ठ५४०,५४१) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य०में इसको सूत्र नहींमाना है

(२) विगतो विनष्टो देहः शरीर मुनीनां येषु ते विदेहा । प्रायेण मुक्तिपदप्राप्तिहेतुत्वात् । तेषु विदेहेषु पञ्चानां मेरूणां सम्बन्धिन पञ्चपूर्वविदेहाः पञ्च अपरविदेहा उभये मिलित्वा पञ्चमहाविदेहा कथ्यन्ते ॥

विगत। विनष्टः। देह। शरीर।।। मुनीनां।	=विनशन हुआ है (=विगत:) ध्वस हुआ है (=विनिष्टः) गात्र (देह) काय (शरीर) ऋषियोंका
येषु। ते। विदेहा। प्रायेण*मुक्ति-पद-प्राप्ति-	=जिन (देशोंमें) वे विदेह हैं । प्रायश वा बहुधा (=प्रायेण) मोक्षपदकी लब्धिके
हेतुत्वात्।॥ तेषु। विदेहेषु। पञ्चानां। मेरूणां।	=कारणपनासे (इन देशोंके नाम विदेह) हैं । तिन विदेहोंमें पांच मेरु
सम्बन्धिनः। पञ्च। पूर्व विदेहा। पञ्च। अपर विदेहा।	=सम्बन्धी पाच पूर्व दिशाके विदेह, पाच पश्चिम दिशाके विदेह
उभये।॥ मिलित्वा – पञ्चमहाविदेहाः। कथ्यन्ते।	=दोनों मिलकर पाच महाविदेह (ऊपरकी वृत्तिमें) कहेगये हैं वा वर्णन कियेगये हैं ॥

संख्येयकाला मनुष्याः ॥ तत्र कालः सुषमदुःषमान्तोपमः सदाऽवस्थितः । मनुष्याश्च पञ्चधनुः शतोत्सेधाः । नित्याहाराः । उत्कर्षेणैकपूर्वकोटीस्थितिकाः ।

(१)संख्येय-कालाः[1/3] मनुष्याः[1/3] तत्र*कालः[1/1]	=संख्यात काल आयुके धारक मनुष्य होते है। तहां (विदेह क्षेत्रों में) काल
(२)सुषम-दुःषम-अन्त-उपमः[1/1] सदा*अवस्थितः[1/1]	=सुखमदुःखमा (तीसरे काल के) अन्तके सरीखा (=उपम) सर्वदा विद्यमान (अवस्थित) है
मनुष्याः[1/3] च*पञ्च-धनुःशत-उत्सेधाः[1/3]	=बहुरि मनुष्य पांचसौ धनुष ऊंचे वा लम्बे हैं अर्थात् पांचसौ धनुष उचाईमें होते हैं
नित्य-आहाराः[1/3]	=प्रति दिन (=नित्य-पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ २१३) आहार वा भोजन करने वाले हैं ॥
उत्कर्षेण[3/1] एक-पूर्व(३)-कोटी-स्थितिकाः[1/3]	=उत्कृष्टकरि एक करोड़ पूर्वकी आयुके धारक हैं

(१) सङ्ख्यायते गणयितु शक्यते इति संख्येय । सङ्ख्येय कालो जीवित येषां ते सङ्ख्येयकालः ॥

सङ्ख्यायते T गणयितुम् [1/1] ॥ शक्यते T इति*संख्येय [1/1]	=गणना के योग्य है (=सङ्ख्यायते) गिनाजासक्ता है ऐसा संख्येय है ॥
सङ्ख्येय [1/1] काल [1/1] जीवित [1/1] ॥ येषां [6/3] ते [1/3] संख्येय-काला [1/3]	=गिनेके योग्य है जीवन काल जिनका वे संख्येयकाल (आयु) वाले हैं ॥

(२) सुषमदुःषमाकालान्तकालसदृशइत्यर्थ ॥ अत्र "दुःषमसुषमादि" इति पाठभेदस्तालपत्रपुस्तके वर्तते ॥

सुषम दुःषमा-काल-अन्त-काल-सदृश इति-अर्थः [1/1]	=सुखमदुःखमा (तीसरे) कालके अन्त समयके समान ऐसा अर्थ वा आशय है ॥
अत्र*दुःषम सुषम-आदिः[1/1] इति*पाठ-भेदः[1/1]	=यहां दुःखमसुखम (चौथे) काल की आदि वा प्रारम्भ (सदृश) ऐसा पठन विशेष
ताल-पत्र-पुस्तके [7/1] ॥ वर्तते T	=ताडवृक्ष (=ताल) के पत्तों पर लिखित पुस्तकमें है (पुरातन वा प्राचीन समय में जब कागज़ के परत न थे तब ताडवृक्षके पत्तोंपर वा भोजपत्र इत्यादि पर लिखाई होती थी)

(३) पूर्वाङ्ग वर्षलक्षाणामशीतिश्चतुरुत्तरा । ८४०००० ॥ तद्वर्गित भवेत्पूर्वं ७०५६०००००००००० तत्कोटी पूर्वकोट्यसौ ॥ ७०५६००००००००००००००००॥

पूर्व अङ्गं [1/1] ॥ वर्ष-लक्षाणां [6/3] ॥ अशीति [1/1] ॥ चतुर् उत्तरा [1/1] ॥	=पूर्वांग है (वह) बरस लाख अस्सी ऊपर (=उत्तर) चार है-अर्थात् चौरासीलाख वर्षका है ॥
८४०००० ॥ तद्	=चौरासीलाख संख्या है। उन (चौरासीलाख बरसों) को
वर्गितं [1/1] ॥ भवेत् T पूर्वं [1/1] ॥ ७०५६००००००००००	=आपस में गुणित (=वर्गित) हो (भवेत्) सो पूर्व है अर्थात् चौरासी लाख को चोरासी लाखसे गुणा करनेसे जो गुणनफलहो उतने वर्षोंका एकपर्व होताहै=८४०००० × ८४०००० ७०५६००००००००००भावार्थ सातनील, पांच खर्व साठ अरब बरसोंका एक पूर्वहोता है ॥

जघन्येनान्तर्मुहूर्तायुषः ॥ तस्याश्च सम्बन्धे गाथां पठन्ति ॥ [१]पुव्वस्स दु परिमाणं सदरिं खलु कोडिसदसहस्साइम् । छप्पण्णं च सहस्सा बोद्धव्वा वा सकोडीणम् ॥ १ ॥ ७०५६०००००००००० उक्तो भरतस्य विष्कम्भः । पुनः प्रकारान्तरेण तत्प्रतिपत्त्यर्थमाह—

जघन्येन॥अन्तर्मुहूर्त-आयुषः॥	=जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त आयुवाले है ॥
तस्याः॥च*सम्बन्धे॥गाथां॥पठन्ति	=बहुरि तिस (स्थिति)के संयोगमें गाथा वांचते वा पठन करते है ॥
[१]पुव्वस्स॥दु*परिमाणं॥(पूर्वस्य॥तु*परिमाणं॥)	=और (=दु=तु) पूर्वका प्रमाण
सदरिं॥खलु*कोडि-सद-सहस्साइम्॥ (खलु*सप्तति-[२]कोटि-शत-सहस्राणि॥)	=निश्चयसे (=खलु) सत्तर लाख करोड़
छप्पण्णं॥च सहस्सा॥(च षट्-पञ्चाशत्-सहस्राणि॥)	=और (=च) छप्पन सहस्र
बोद्धव्वा॥वा*स-कोडीणम्॥ (१) बोद्धव्याः॥वा*स-कोटयः॥ (=स-कोट्यः) (१)	=करोड़ [३](बरस) सहित जानना चाहिये (सातनील पांचखर्व साठसहस्र अर्व)
७०५६००००००००००	=(एक पूर्वके) सातनील पांचखर्व साठ सहस्र अर्व हुये
उक्तः॥भरतस्य॥विष्कम्भः॥ पुनः*प्रकार-अन्तरेण*	=भरतक्षेत्र की कही हुई (दक्षिण-उत्तर) चौड़ाई है सो पुनि अन्य प्रकारकरि
तत्-प्रतिपत्ति-अर्थम्॥आह	=उस (चौड़ाई)के जतलानेकेलिये (अग्रिमसूत्रमें) कहते हैं कि

तत् कोटी॥पूर्व-कोटि (कोटी) असौ॥	=वे करोड़ (पूर्व है) सो पूर्वकोटी है (जिसके)
७०५६००००००००००००००००	='७०५६०००००००००००००००० अर्थात् सातसहस्र छप्पन शंख बरस होते हैं

(१) अस्यायमर्थः—सप्ततिलक्षकोटिवर्षाणि षट्पञ्चाशत्सहस्रकोटिवर्षाणि यदा भवन्ति तदैकं पूर्वमुच्यते

अस्य॥ अयम्॥ अर्थ॥ सप्ततिलक्षकोटि वर्षाणि॥	=इसका यह अभिप्राय है कि सत्तर लाख करोड़ बरस (और)
षट्-पञ्चाशत्सहस्रकोटि॥ वर्षाणि॥ यदा* भवन्ति	=छप्पन सहस्र करोड बरस जब होते हैं
तदा* एकं॥ पूर्वम्॥ उच्यते	=तब एक पूर्व कहा जाता है (संख्यामें ७०५६०००००००००० ऐसे रखते है)

(२) कोटि कोटी । दोनों शब्द करोड़के बोधक है ।'कोटि'शब्दका बहुवचन मति शब्दके सदृश'कोटयः' है और'कोटी'शब्दका 'दासी' शब्द के समान 'कोट्य 'प्रथमाविभक्ति बहुवचन स्त्रीलिंग है ॥ (३) बरस—ऐसा जान पडता है कि जहां से यह आर्या छंद लिया गया है, उस छंद से 'वर्ष' शब्द की अनुवृत्ति इसमें वर्तती है अतः इसमें 'वर्ष' शब्द नहीं लाये । अनुवादमें 'वर्ष' शब्द लाना अति आवश्यक है ॥

॥ भरतस्य विष्कम्भो जम्बूद्वीपस्य नवतिशतभागः ॥ ३२ ॥

जम्बूद्वीपविष्कम्भस्य योजनशतसहस्रस्य नवतिशतभागीकृतस्यैको भागो भरतस्य विष्कम्भः स पूर्वोक्त एव॥ उक्तं जम्बूद्वीपं परिवृत्य वेदिका स्थिता, ततः परो लवणोदः समुद्रो द्वियोजनशतसहस्रवलयविष्कम्भः।

(१)सूत्रम—भरतस्य विष्कम्भो जम्बूदीपस्य नवतिशतभागः ॥ ३२ ॥

सूत्रार्थः—भरतस्य $^{6/1}$ विष्कम्भः $^{1/1}$ जम्बूद्वीपस्य $^{6/1}$	=भारतवर्षकी (दक्षिण-उत्तर) चौड़ाई जम्बूद्वीपके (जिसका व्यास एकलक्षयोजन है)
नवतिशत-भागः $^{1/1}$	=एकसौ नव्वै भागोंमें से (एक भाग) है अर्थात् ($\frac{100000}{190}=526\frac{6}{19}$ योजन है)
वृत्त्यनुवादः—जम्बूद्वीप-विष्कम्भस्य $^{6/1}$ योजन-शतसहस्रस्य $^{6/1}$	=जम्बूद्वीपके विस्तारके लाख योजनके
नवतिशत-भागीकृतस्य $^{6/1}$ एकः $^{1/1}$ भागः $^{1/1}$ भरतस्य $^{6/1}$	=एकसौ नव्वे भाग किये हुओंमें से, एकभाग भरतक्षेत्रकी (दक्षिण-उत्तर)
विष्कम्भः $^{1/1}$ सः $^{1/1}$ पूर्व-उक्तः $^{1/1}$ एव, उक्तं $^{2/1}$ जम्बूद्वीपं $^{2/1}$	=चौड़ाई है सो पहिले वर्णितही है। वर्णित जम्बूद्वीपको
परिवृत्य(२) वेदिका $^{1/1}$ ॥ स्थिता $^{1/1}$ ॥	=वेढ़कर वेदी तिष्ठी है अर्थात् जम्बूद्वीपके चारो ओर वेदिका है उसकेपीछे लवणोदधि है
ततः* परः $^{1/1}$ लवणोदः $^{1/1}$ समुद्रः $^{1/1}$ द्वियोजनशतसहस्र—	=तिस (वेदिका) से आगे लवणोदधि समुद्र दोलाख योजन
वलय-विष्कम्भः $^{1/1}$	=वलयाकार कड़के आकार विस्ताररूप है अर्थात् लवणोदधि की परिधिपर

एकविंदु लेकर उसकी सीधमें जंबूद्वीपकी परिधिपर दूसरा विंदुलेकर दोनोंविंदुओंके मिलानेवाली रेखा दोलाखयोजन लम्बी होगी।

(१) हमारे यहां इस सूत्रका पाठ एक है। श्वेताम्बर आम्नायके 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र'में इसको सूत्र नहीं माना है (इस अध्यायके पृष्ठ ३७, ३८ की टिप्पणी देखो)। (२) सवधसूचक भूतकृदन्त है ॥ (३) एक भागमें भरतक्षेत्र, दो भागोंमें हिमवान् पर्वत चार भागोंमें हैमवतक्षेत्र, आठ भागोंमें महाहिमवान् पर्वत, सोलह भागोंमें हरिक्षेत्र, वत्तीस भागोंमें निषिध पर्वत, और चोसठि भागोंमें विदेह क्षेत्रका विस्तार है। ऐसे जम्बूद्वीपके एकसौ सत्ताइस (१२७) भाग तो दक्षिण सम्बन्धी हैं और नील पर्वत वत्तीस भागोंमें, रम्यकक्षेत्र सोलह भागोंमें, रुक्मी पर्वत आठ भागोंमें, हैरण्यवत् क्षेत्र चार भागोंमें, शिखरी पर्वत दो भागोंमें तथा ऐरावत क्षेत्र एक भागमें विभक्त हैं। ऐसे उत्तर सम्बन्धो ये त्रेसठ भाग, दोनों मिलानेसे (१२७+६३)=१९० भाग जवूद्वीप के हैं। २४ वां सूत्र के होते हुये कि भरतक्षेत्र $526\frac{6}{19}$ है इसकी आवश्यकता नहीं क्योंकि एक साधारण पाठक $526\frac{6}{19}=\frac{10000}{19}=\frac{100000}{190}$ निकालसक्ता है कि १९० वां भाग भरत है ॥ अथवा इस सूत्रको २४ वां सूत्र करदेते तो विद्यमान चौवीसवां सूत्र जो इससे वड़ा सूत्र है न बनाना होता और $\frac{100000}{190}=\frac{10000}{19}=526\frac{6}{19}$ भरतक्षेत्रकी उत्तर दक्षिण की सूची भी निकल आती ॥

ततः परो धातकीखण्डो द्वीपश्चतुर्योजनशतसहस्रवलयविष्कम्भः ॥

तत्र वर्षादीनां संख्याविधिप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ द्विर्धातकीखण्डे ॥ ३३ ॥

भरतादीनां द्रव्याणामिहाभ्यावृत्तिर्विवक्षिता । तत्र कथं सुच् ?। अध्याह्रियमाणक्रियाभ्यावृत्तिद्योतनार्थः

ततः*परः धातकीखण्डः द्वीपः चतुर्-	=उस (लवण समुद्र) से आगे धातकीखंड द्वीप चार
योजन-शतसहस्र-वलय-विष्कम्भः तत्र*	=लाख योजन वलयाकार वा कड़ेकेआकार विस्तारवाला है । तहां
वर्षादीनाम् संख्या-विधि-प्रतिपत्ति-अर्थम् आह	=क्षेत्रादिकोंकी गणनाके क्रम (=विधि) के ज्ञानके लिये (अग्रिमसूत्रमे) कहते हैं कि
[1]सूत्रम्—द्विर्धातकीखण्डे ॥ ३३ ॥	=धातकीखण्डे द्वीपे भरतादयो द्विः*संख्यायन्ते ॥३३॥
सूत्रार्थः-धातकीखण्डे द्वीपे भरत-आदयः	=धातकीखंड द्वीपमें भारतवर्ष, कुलाचल, पर्वत, द्रह कमल आदि (जम्बूद्वीपसे)
द्विः*संख्यायन्ते	=दूने दूने गिनेजाते है ।
वृत्त्यनुवादः-भरत-आदीनां [2]द्रव्याणाम् इह अभ्यावृत्तिः	=भारतवर्ष(कुलाचल,द्रह,कमल)आदि द्रव्यवाची शब्दोंका यह(=इह)दुवाराकथन
विवक्षिता	=(धातकीखंडद्वीपादिककी)विवक्षासे कियागयाहै अर्थात् सूत्रग्रन्थोंमे वा सूत्रशास्त्रोंमें

सूत्रकार दुवारा कभी किसी वस्तुका कथन नही करते, जब एकबार भरत,कुलाचल,आदिका कथन आचार्यकरचुके तब दुवारा कथन नही करना चाहियेथा, उसके उत्तरमें कहतेहै कि धातकीखण्ड और पुष्कार्ध आदिका कथनअवश्यही करनाथा उनका कथन भरतादिकके विवरण किये विना होनहीं सकता है अगर ऐसा न करते तो धातकी खण्ड और पुष्करार्द्ध आदिका कथनरहजाता, तत्त्वार्थसूत्र अधूरा होजाता सो ठीक नहीथा इसअपेक्षाको लियेहुये दुवाराभरतादिकका कथन करना पड़ा ॥

तत्र*कथम्*सुच् ?	=तहां(सूत्रमें द्वि शब्दको)कैसे सुच्प्रत्यय(जो रूपान्तर होकरसुच्=सु=स्=ः)होताहै
अध्याह्रियमाण-क्रिया-अभ्यावृत्ति-द्योतन-अर्थः	=(इससूत्रमें) क्रियाके कल्पना द्वारा विवरणकी स्पष्टताके जनावनेके लिये

(१) इस सूत्रका दानो आम्नायों में पाठ और अर्थ एकसा है ॥ (२)यहा पर भरतआदि द्रव्य हैं । व्याकरणमें प्रकृति प्रत्यय लिंग सख्या विशिष्टको द्रव्य कहा जाता है भरतादि शब्द लिंग संख्या विशिष्ट होनेसे द्रव्यवाचक शब्द है ॥(व्याकरणमें)वह पदार्थ कि जिसका लिङ्ग और सख्या से अन्वय हो द्रव्यहै । पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ१८६ ॥ अतएव द्रव्य शब्दका अर्थयहापर जीव,अजीव,धर्म, अधर्म, आकाश, काल द्रव्योंमेंसे काईभी अपेक्षित नहीं है ॥

सुच् ॥ यथा द्विस्तावानयं प्रासादो मीयत इति ॥ एवं द्विर्धातकीखण्डे भरतादयो मीयन्ते इति ॥ तद्यथा—द्वाभ्यामिष्वाकारपर्वताभ्यां दक्षिणोत्तरायताभ्यां लवणोदकालोदवेदिकास्पृष्टकोटिभ्यां विभक्तो धातकीखण्डः पूर्वापर इति ॥ तत्र पूर्वस्य चापरस्य मध्ये द्वौ मन्दरौ । तयोरुभयतो भरतादीनि क्षेत्राणि हिमवदादयश्च

सुच्$^{1}_{1}$	=(द्विशब्द पर) सुच् है अर्थात् स् (कर्ताका चिन्ह जो सूत्रमें 'र्' में पलट जाता है लगाया) है भावार्थ इस सूत्रके 'द्वि' शब्द पर स् (=र्) कर्ता कारकका प्रत्यय (मापना) क्रिया के [1]अध्याहार वा सूत्रके अन्तमें(मापना) क्रिया की विद्यमानताकी कल्पनाके लिये लाये हैं ॥
यथा*द्विः*तावान्$^{1}_{1}$।अयं$^{1}_{1}$।प्रासादः$^{1}_{1}$।मीयते।इति*	=जैसे दोगुणा(=द्विः)माप (=तावान्) यह राजभवन नापाजाय है वा परिमाण कियाजाय है
एवम्*द्विः*धातकीखण्डे$^{1}_{7}$।भरत-आदयः$^{1}_{3}$।	=इस प्रकार (जम्बूद्वीपसे) द्विगुने (=द्विः) धातकीखंड द्वीपमें भरतक्षेत्रादिक
मीयन्ते।इति*	=नापे जाते है अथवा गणना किये जाते है भावार्थ-इस सूत्र के द्विशब्द पर स्(=र्)कर्त्ता का प्रत्यय लानेसे और सूत्रके अंतमें मापना क्रियाका अध्याहार करके यह फलनिकाला हैकि जम्बूद्वीपमेंजो भरतक्षेत्र,कुलाचल,द्रह पुष्करादिकहै उनकी अपेक्षा धातकीखंडमें दुगुणे है
तद्यथा*द्वाभ्याम्$^{3}_{2}$।इष्वाकारपर्वताभ्याम्$^{3}_{2}$।	=जैसे दो इष्वाकार पर्वतोंकरि (जो चारसौ योजन ऊंचे और सौ योजन पृथिवीमें प्रविष्ट है)
लवणोद-कालोद-वेदिका-स्पृष्टकोटिभ्याम्$^{3}_{2}$।	=लवण समुद्र और कालोदधिकी वेदियों को छूनेवाले दोनों अटनियों वा सिरों तक
दक्षिण-उत्तर-आयताभ्याम्$^{3}_{2}$।विभक्तः$^{1}_{1}$।धातकीखंडः$^{1}_{1}$।	=दक्षिण-उत्तर दिशामें (चार लाख योजन) लम्बे है । धातकी खंड
पूर्व-अपरः$^{1}_{1}$।इति।तत्र*पूर्वस्य$^{6}_{1}$।च*अपरस्य$^{6}_{1}$।मध्ये$^{7}_{1}$।	=पूर्व पश्चिम (दो भागों में) बटा हुआ है तहा पूर्व और पश्चिमके (भागों के) बीच में
द्वौ$^{1}_{2}$।मन्दरौ$^{1}_{2}$।तयोः$^{6}_{2}$।उभयतः*भरत-	=दो मेरु पर्वत है । तिन (दोनों मेरु पर्वतों) के दोनोंओर भरत-
आदीनि$^{1}_{3}$।।क्षेत्राणि$^{1}_{3}$।।च*हिमवत्-आदयः$^{1}_{3}$।	=आदिक क्षेत्र है और (=च) हिमवान् आदिक

'अध्याहार'–वह वाक्य जो स्पष्टता से समझमें नहीं आसका उसे किसी दूसरे शब्दकी कल्पना करि स्पष्ट करदेना। अनुवृत्ति और अध्याहार में यह भेद है कि अनुवृत्ति में जो शब्द वा वाक्य किसी पहिले सूत्र वा वाक्य में आया है उसे उत्तर सूत्र वा वाक्य में खोच लेना, अनुकर्षण करना और आशय अभिप्राय को समझलेना है परन्तु अध्याहार में जो शब्द वा वाक्य पहिले सूत्र में तो आया नहीं है परन्तु किसी भी वाक्यको स्पष्ट करनेकी आवश्यकता है तो उस वाक्यको स्पष्ट करनेके लिये किसी शब्द वा वचनकी कल्पना करलेते हैं जिससे कि सूत्र इत्यादिकका अर्थ समझमें आजावे ॥

वर्षधरपर्वताः । एवं द्वौ भरतौ द्वौ हिमवन्तौ इत्यवमादिसंख्यानं द्विगुणं वेदितव्यम् ॥ जम्बूद्वीप हिमवदादीनां वर्षधराणां यो विष्कम्भस्तद्द्विगुणो धातकीखण्डे हिमवदादीनां वर्षधराणाम् ॥ वर्षधराश्चक्रारवदवस्थिताः ॥ अरविवरसंस्थानानि क्षेत्राणि ॥ जम्बूद्वीपे यत्र जम्बूवृक्षः स्थितः । तत्र धातकीखण्डे धातकीवृक्षः सपरिवारः । तद्योगाद्धातकीखण्ड इति द्वीपस्य नाम प्रतीतम् ॥ तत्परिक्षेपी कालोदः समुद्रः टङ्कच्छिन्नतीर्थः अष्टयोजनशतसहस्र—

वर्षधरपर्वताः एवम्*द्वौ भरतौ द्वौ =कुलाचल है इस प्रकार दो भारतवर्ष दो
हिमवन्तौ इत्येवम्*आदि-संख्यानम् द्विगुणम् =हिमवान्पर्वत इत्येवं आदिक गणना (जम्बूद्वीपसे धातुकीखंडमें) दूनी
वेदितव्यम् जम्बूद्वीप-हिमवत्-आदीनाम् =जाननी चाहिये । जम्बूद्वीपके हिमवान् आदिक
वर्षधराणाम् यः विष्कम्भः तद्द्वि-गुणः =पर्वतोंका जो विस्तार है तिससे दुगुणा
धातकीखंडे हिमवत्-आदीनां वर्षधराणाम् =धातकीखंडमे, हिमवान् आदिक कुलाचलोंका है
वर्षधराः चक्र [१]-अरवत्*अवस्थिताः अर- =कुलाचल पहियेकी आरक आर वा अरा (=अरा)के सदृश तिष्ठे हुए हैं । अरोंके
विवर-संस्थानानि क्षेत्राणि =छिद्रोंके आकार (=संस्थान) (वत्) (भरतादिक) क्षेत्र है । अर्थात् पहियेको पृथ्वीपर इसप्रकार धरिये कि उसका समस्त घेरा पृथ्वीको छूजाय तो उस पहियेकी नाभि (धुरी)और घेरेके वीचमेंडंडारूप लकड़ियें है तैसे पर्वत तिष्ठे है और पूर्वोक्त लकड़ियोके मध्यका शून्य (खाली) स्थान रहता है तैसे क्षेत्र तिष्ठे हैं
जम्बूद्वीपे यत्र*जम्बू वृक्षः स्थितः तत्र* =जम्बूद्वीपमे जहां जम्बूवृक्ष अवस्थित है वहां
धातकीखंडे धातकीवृक्षः सपरिवारः तद्- =धातकीखंडमें धातकीवृक्ष छोटे छोटे परिवार (के वृक्षो) सहित (स्थित) है तिसके
योगात् धातकीखंडः इति*द्वीपस्य नाम =संयोगसे वा उपलक्षणसे धातकीखंड ऐसी द्वीपकी संज्ञा
प्रतीतम् तद्-परिक्षेपी कालोदः =प्रसिद्ध वा ज्ञात है । तिस (धातकीखंड द्वीप) को समस्त ओरसे घेरे हुए कालोदः
समुद्रः टङ्कच्छिन्न-तीर्थः अष्टयोजन-शतसहस्र- =समुद्र टांकीसे छेदे काटे वा उकेले हुए जलकेस्थान समान(=तीर्थ)आठलाख योजन

(१) पहियेका नाभि अथवा धुरी वा वीचके गोलेके छेदोंमसे जो लकडिया पहियेके घेरके छेदोमें लगाई जाती हैं उनमेंसे प्रत्येक लकड़ी डंडेरूपको आरक, आर, अरा अथवा अर कहते है ॥

वलयविष्कम्भः ॥ कालोदपरिक्षेपी पुष्करद्वीपः षोडशयोजनशतसहस्रवलयविष्कम्भः ॥

तत्र द्वीपाम्भोनिधिविष्कम्भद्विगुणपरिक्लृप्तिवद्धातकीखण्डवर्षादिद्विगुणवृद्धिप्रसङ्गे विशेषावधारणार्थमाह

॥ पुष्करार्द्धे च ॥ ३४ ॥

(किं)द्विरित्यनुवर्तते।किमपेक्षा द्विरावृत्तिः?जम्बूद्वीपेभरतहिमवदाद्यपेक्षयैव।जम्बूद्वीपात्पुष्करार्धे द्वौ भरतौ द्वौ

वलय-विष्कम्भः॥कालोदपरिक्षेपी॥पुष्करद्वीपः॥ =वलयाकार (अर्थात् कड़ेके आकार) विस्ताररूप है। कालोदधि को वेढ़ेहुए पुष्करद्वीप
षोडशयोजन-शतसहस्र-वलय विष्कम्भः॥ =सोलहलाखयोजन वलयाकार(अर्थात् कड़ेके आकार)चौड़ाईका धारक है।
तत्रद्वीप-अम्भोनिधि विष्कम्भ-द्विगुण-परिक्लृप्तिवत् =तहां (पुष्करद्वीपसेपूर्व)द्वीप और समुद्रों की द्विगुणी द्विगुणी रचनाके सदृश (परिक्लृप्तिवत्)
धातकीखण्ड-वर्ष-आदि द्विगुण- =धातकी खंडके क्षेत्र (तथा पर्वतों) आदिक से दुगुन (दुगुन आगेके क्षेत्र तथा पर्वतोंकी)
वृद्धि-प्रसंगे॥ विशेष-अवधारण-अर्थम्॥॥ =बढ़तीके अवसर (आजाने) पर पृथक् अथवा भिन्न =विशेष) नियमके लिये
आह T ='आचार्य्य,अग्रिम सूत्रमे) कहते है। भावार्थ-जम्बूद्वीपसे अगलेके समुद्र तथा द्वीपोंका विष्कम्भ दूना है और जम्बूद्वीपसे धातकी खंडकी रचना दूनी है तो इस प्रसंगके निषेधके लिये अर्थात् ऐसा न समझ लियाजावै कि धा की खंड़से पुष्करद्वीपकी रचना दूनीहै। उत्तर सूत्र कहते है कि "पुष्करार्द्धे च"॥

सूत्रम्—[१]**पुष्करार्द्धे च ॥ ३४ ॥** (= भरतादय. द्विः संख्यायन्ते) पुष्करार्द्धे च

सूत्रार्थ—च॥भरत-आदयः॥द्विः॥ =और =च) भारतवर्ष (कुलाचल-द्रह-कमल) आदिक (जम्बूद्वीपसे) दूने दूने
पुष्कर-अर्द्धे॥॥संख्यायन्ते T =पुष्करद्वीपके आधेभागमें गिनाये गये है
वृत्त्यनुवादः-(किम्॥॥)द्विः॥इति॥अनुवर्तते T =प्रश्न (क्या द्वि(शब्द) ऐसा (पहिले सूत्रसे इससूत्रमें अनुवर्तता है वा लाया गया है)
किम्॥॥अपेक्षा॥॥द्विः आवृत्तिः॥॥ जंबूद्वीपे॥भरत- =किस विवक्षा द्विगुणना (=आवृत्ति) है (उत्तर) जम्बूद्वीपमें भरतक्षेत्र तथा
हिमवत्-आदि-अपेक्षया॥॥एव॥ =हिमवान्पर्वत आदिककी अपेक्षा ने ही(पुष्करार्द्धमे दूनेक्षेत्र तथा दूने कुलाचल)हैं
जंबूद्वीपात्॥पुष्करार्द्धे॥॥द्वौ॥भरतौ॥द्वौ॥ =(प्रश्न)जंबूद्वीपसे पुष्करार्द्धविषैं दो भरतक्षेत्र दो

(१) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें "पुष्करार्धे च" ऐसा पाठ है हमारे यहां भी जैसे तत्त्वार्थ राज-पृ०१३८,श्लोक वार्तिकमेंभी यही पाठ "पुष्करार्धे च" है इसलिये दोनों आम्नाओंमें पाठभेद नहीं है। अर्थ भी दोनों सम्प्रदाओंमें एक है ॥ अर्ध और अर्द्ध दोनों शब्द ठीक है ॥

हिमवन्तौ इत्यादि। कुतः ?। व्याख्यानतः ॥ यथा धातकीखण्डे हिमवदादीनां विष्कम्भस्तथा पुष्करार्धे हिमवदादीनां विष्कम्भो द्विगुण इति व्याख्यायते ॥ नामानि तान्येव, इष्वाकारौ मन्दरौ च पूर्ववत्। यत्र जम्बूद्वीपे जम्बूवृक्षस्तत्र पुष्करं सपरिवारम्। तत एव तस्य द्वीपस्यानुरूढं पुष्करद्वीप इति नाम ॥ अथ कथं पुष्करार्द्धसञ्ज्ञा? मानुषोत्तरशैलेन विभक्तार्धत्वात्पुष्करार्धसञ्ज्ञा॥ अत्राह किमर्थं जम्बूद्वीप-हिमवदादिसंख्या द्विरावृत्ता पुष्करार्धे कथ्यते? न पुनः कृत्स्न एव पुष्करद्वीपे? इत्यत्रोच्यते—

हिमवन्तौ।इत्यादि।।।कुतः*व्याख्यानतः* =हिपवान् कुलाचल इत्यादिक क्योंकर है (इससूत्रके) व्याख्यानसे (जंबूद्वीपसे पुष्करार्द्ध विषैं दोदोभरत दोदोहिमवान् कुलाचल इत्यादिक) है

यथा*धातकीखण्डे।हिमवत्-आदीनाम्।विष्कम्भः।=जैसे धातकीखंडमें हिमवान् आदिक (कुलाचलों)का विस्तार है

तथा*पुष्करार्धे।।।हिमवत्-आदीनाम्। =तैसे पुष्करार्धविषैं हिमवान् आदिक (कुलाचल) निका

विष्कम्भः।द्विगुणः।इति*व्याख्यायते।नामानि।।। =(विस्तार) दुगुना है इसप्रकार विवरण कियागया है। नाम

तानि।।।एव*इष्वाकारौ।मन्दिरौ। च* =तेही है दो इष्वाकारपर्वत और दो (पूर्वमें मन्दिर नामा और पश्चिममें विद्युन्माली)मेरु

पूर्ववत्* यत्र*जम्बूद्वीपे।जम्बूवृक्षः। तत्र* =पहिले (धातकीखंडद्वीप) के समान है। यहां जम्बूद्वीपमे जंबूवृक्ष है। वहां(पुष्करद्वीपमें)

पुष्करम्।।।सपरिवारम्।।। ततः*एव*तस्य। =पुष्करवृक्ष (चारोओर अपने छोटे२) परिवार(के वृक्षों) सहित है। वहांसे ही तिस

द्वीपस्य।अनुरूढम्।।।पुष्करद्वीपः।इति*नाम।।। =द्वीपकी सार्थकसंज्ञा (=अनुरूढ)पुष्करद्वीप ऐसानाम वा संज्ञा है

अथ*कथम्*पुष्कर-अर्द्ध-संज्ञा।।?मानुषोत्तर- =आगे (=अथ)किसप्रकार (इसद्वीपका) पुष्करार्द्ध नाम है (उत्तर) मानुषोत्तर-

शैलेन।विभक्त-अर्द्धत्वात्।।।पुष्करार्द्ध- =पर्वतकरि विभाग आधे आधे होनेसे पुष्करार्द्ध

संज्ञा।। =नाम है अर्थात् मानुषोत्तरपर्वत ने इसद्वीपके मध्यमे पतनकरि अथवा अवस्थित होकर दोभाग करदिये है इससे पुष्करार्द्ध ऐसा नाम है

अत्र*आह किम्-अर्थम्।।।जम्बूद्वीप-हिमवत्- =(प्रश्न) यहां पूछता है कि किसलिये जंबूद्वीपके हिमवान्

आदिसंख्या।।द्विः*आवृत्ता।।पुष्करार्द्धे।।।कथ्यते =आदिककी गणना दुगुणीवार (=द्विःआवृत्ता) पुष्करार्द्धद्वीपविषैंवर्णित है

न*पुनः*कृत्स्ने।।।एव*पुष्करद्वीपे।।। =बहुरि समस्त (=कृत्स्ने)ही पुष्करद्वीपमे (भरतादिकक्षेत्र) क्यो नही कहेगये हैं। आधेमें क्यो कहेगये हैं ? (कृत्स्ने और द्वीपे पुलिंग नपुंसकलिंग दोनों लिंगोमें आते है)

इति*अत्र*उच्यते =ऐसा (प्रश्न होने पर) यहां (इसअवसर पर) (उत्तर सूत्रमें) कहाजाता है कि

॥ प्राङ्मानुषोत्तरान्मनुष्याः ॥ ३५ ॥

पुष्करद्वीपबहुमध्यदेशभागी वलयवृत्तो मानुषोत्तरो नामशैलः।तस्मात्प्रागेव मनुष्या न बहिरिति। ततो न बहिः पूर्वोक्तक्षेत्रविभागोऽस्ति। नास्मादुत्तरं कदाचिदपि विद्याधरा ऋद्धिप्राप्ता अपि मनुष्या गच्छन्ति अन्यत्रोपपादसमुद्घाताभ्यां।ततोऽस्यान्वर्थसञ्ज्ञा॥ एवंजम्बूद्वीपादिष्वर्धतृतीयेषुद्वयोश्चसमुद्रयोर्मनुष्या-

(१)सूत्रम्—प्राङ्मानुषोत्तरान्मनुष्याः। (अन्यपाठ) प्राग्मानुषोत्तरान्मनुष्याः ॥ ३५ ॥

सूत्रार्थः—प्राग्-मानुषोत्तरात्[५]।मनुष्याः[१]। =मानुषोत्तर पर्वतसे पहिले पहिले देश वा स्थानमें मनुष्य है अर्थात् जम्बूद्वीप, धातकीखंड और पुष्करद्वीपके उरेके आधेभागमें ऐसे अढ़ाई द्वीपमें मनुष्य है

वृत्त्यनुवादः—पुष्करद्वीप-बहु-मध्य-देश-भागी[१]। =पुष्करद्वीपके बहुतबीच (=बीचाबीचही) का स्थान(=देश) भागमें

वलय-वृत्तः[१]।मानुषोत्तरः[१]।नामशैलः[१]। =वलयाकार वृत्तरूप मानुषोत्तर नामक पर्वत है

तस्मात्[५]।प्राक्*एव*मनुष्याः[१]।न*(२)बहिस्*इति* =तिस (मानुषोत्तर पर्वत) से पहिलेही मनुष्य है बाहिर नहीं है

ततः*न*बहिस्*पूर्वोक्त-क्षेत्र-विभागः[१]। अस्तिT =तिस(मानुषोत्तर पर्वत) से बाहिर (बहिस्) प्रथमवर्णित क्षेत्रों का विभाग नहीं है।

न*अस्मात्[५]।उत्तरम्[१]।।कदाचित्*अपि*विद्याधराः[१]। =न इस (मानुषोत्तर) से आगे कभी भी विद्याधर (और)

ऋद्धिप्राप्ताः[१]।अपि*(३)मनुष्याः[१]।गच्छन्तिT अन्यत्र❀ उपपाद-समुद्घाताभ्याम्[५]। =ऋद्धिधारी भी मनुष्य, उपपाद और समुद्घातोंसे अतिरिक्त, गमन करते हैं (भावार्थ-मूलदेहको न छोड़कर उपपादसे और समुद्घातसे आत्माके प्रदेश अढ़ाई द्वीपसे बाहिर जाते है बिना उपपाद और समुद्घातके आत्माके प्रदेश बाहिर नही जाते है)

ततः*अस्य[६]।अन्वर्थ-संज्ञा[१]।।एवम्❀जंबूद्वीपादिषु[७]। =तिससे इस (मानुषोत्तर पर्वत) का सार्थक नाम है। इसप्रकार जम्बूद्वीप आदिक

अर्द्धतृतीयेषु[७]। द्वयोः[७]। च समुद्रयोः[७]। २ मनुष्याः[१]। =अढ़ाई (द्वीपों) और दो (लवणोद और कालोद) समुद्रोंमें मनुष्य

(१) दोनों आम्नाओंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है॥ समुद्घात सात प्रकार है, इसके विशेषके लिये देखो अध्याय प्रथम पृष्ठ ११६ से १२१ तक॥ (२) बहिस् अथवा बहिस् (पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ ३४१) दोनों ठीक हैं॥ बहिस् केलिये देखो अमरकोश २४ अव्ययवर्ग श्लो०१७' सनानित्ये-बहिर्वा॥' (३) "बहुरि जलचर जीव तथा विकलत्रयत्रस भी नहीं जाय हैं। तहां उपजे भी नहीं है" देखो इससूत्रपर जयचन्द्ररायकृत वचनिका

वेदितव्याः ॥ ते द्विविधाः ॥

॥ आर्या म्लेच्छाश्च ॥ ३६ ॥

गुणैर्गुणवद्भिर्वा अर्यन्त इत्यार्याः । ते द्विविधाः । ऋद्धिप्राप्तार्या अनृद्धिप्राप्तार्याश्चेति ॥ अनृद्धिप्राप्तार्याः पञ्चविधाः । क्षेत्रार्या जात्यार्याः कर्मार्याश्चरित्रार्या दर्शनार्याश्चेति ॥ ऋद्धिप्राप्तार्याः सप्तविधाः । बुद्धिविक्रियातपोबलौषधरसाक्षीणभेदात् ॥ म्लेच्छा द्विविधाः । अन्तर्द्वीपजाः कर्मभूमिजाश्चेति ॥ तत्रान्तर्द्वीपा लवणोदधेरभ्यन्तरेऽष्टासु दिक्ष्वष्टौ । तदन्तरेषु चाष्टौ, हिमवच्छिखरिणो-

---

वेदितव्याः[1/3] ते[1/3] द्विविधाः[1/3] =जानना चाहिये ते (मनुष्य) दो प्रकार हैं ॥

सूत्रम्—'आर्या म्लेच्छाश्च ॥३६॥=(मनुष्याः) आर्या म्लेच्छाश्च भवन्ति ॥३६॥

सूत्रार्थः—मनुष्याः[1/3] आर्याः[1/3] म्लेच्छाः[1/3] च*भवन्ति =मनुष्य आर्य और (=च) म्लेच्छ होते हैं

वृत्त्यर्थः—गुणैः[3/3] गुणवद्भिः[3/3] वा*अर्यन्ते इति*आर्याः[1/3]=गुणों करि अथवा गुणवान पुरुषोंकरि सेवेजाय हैं ऐसे आर्या हैं

ते[1/3] द्विविधाः[1/3] ऋद्धिप्राप्त-आर्याः[1/3] च*अन्-ऋद्धिप्राप्त- =ते (आर्या) दो प्रकार हैं । ऋद्धि प्राप्त आर्या और अनऋद्धिप्राप्त

आर्याः[1/3] इति*अनृद्धिप्राप्तार्याः[1/3] पञ्चविधाः[1/3] =आर्या । अनृद्धिप्राप्त आर्य पांच प्रकार हैं ।

क्षेत्र-आर्याः[1/3] जाति-आर्याः[1/3] कर्म-आर्याः[1/3] चारित्रआर्याः[1/3]=क्षेत्र-आर्य, जाति आर्य, कर्म आर्य, चारित्र आर्य,

दर्शन-आर्याः[1/3] च*इति* । ऋद्धि-प्राप्त-आर्याः[1/3] =और (=च) दर्शन आर्य ऐसे हैं । ऋद्धि प्राप्त आर्य

सप्त-विधाः[1/3] बुद्धि-विक्रिया-तपस्-बल-औषध-रस- =सात प्रकार, बुद्धिऋद्धि, विक्रियाऋद्धि, तपोऋद्धि, बलऋद्धि, औषधऋद्धि, रसऋद्धि

अक्षीण-भेदात्[5/1] =अक्षीणऋद्धि भेदोंकरि, हैं(इनके भेद, प्रभेदके वास्तेदेखो प०जय०वच० ३३१से३४०)

म्लेच्छाः[1/3] द्वि-विधाः[1/3] अन्तर्द्वीपजाः[1/3] कर्मभूमिजाः[1/3] चइति=म्लेच्छ (म्लेंच्छ, म्लिश) दो प्रकार हैं अन्तर्द्वीपमें उत्पन्नहुये, और कर्मभूमिमें उत्पन्नहुये

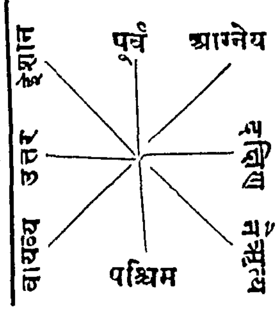
तत्र*अन्तर्द्वीपजाः[1/3] लवणोदधेः[6/1] =तहां अंतर्द्वीपज लवणसमुद्र के

अभ्यन्तरे[7/1] अष्टासु[7/3] दिक्षु[7/3] अष्टौ[1/3] =भीतर (=अभ्यन्तरे) आठ (पूर्व, ईशान्य वा ईशान, उत्तर, वायव्य, पश्चिम, नैऋत्य वा नैऋत, दक्षिण, आग्नेय वा अग्नि) दिशामें (दिक्षु) आठ (अन्तर्द्वीप)

तद्-अन्तरेषु[7/3] च*अष्टौ[1/3] हिमवत्-शिखरिणोः[6/2] =तथा तिन(दिशाओं,के अंतराल वा मध्यमें आठ (अंतर्द्वीप)और हिमवत् शिखिरीपर्वत

रुभयोश्च विजयार्द्धयोरन्तेष्वष्टौ । तत्र दिक्षु द्वीपा वेदिकायास्तिर्यक्पञ्चयोजनशतानि प्रविश्य भवन्ति । विदिक्ष्वन्तरेषु च द्वीपाः पञ्चाशत्पञ्चयोजनशतेषु गतेषु भवन्ति । शैलान्तेषु द्वीपाः षट्सु योजनशतेषु गतेषु भवन्ति । दिक्षु द्वीपाः शतयोजनविस्ताराः । विदिक्ष्वन्तरेषु च द्वीपास्तदर्धविष्कम्भाः ।

उभयोः च विजयार्द्धयोः अन्तेषु	=दोनोंके (पूर्व और पश्चिम) और दोनों वैताढ्यों के(पूर्व और पश्चिम के)अन्तविषैं
अष्टौ	=आठ है (अर्थात् सब मिलकर चौवीस अंतर्द्वीपहैं)
तत्र दिक्षु द्वीपा वेदिकायाः तिर्यक्	=तहां (आठ) दिशाविषैं अन्तर्द्वीप (=जम्बूदीपकी) वेदिकाके तिर्यक्
पञ्चयोजनशतानि प्रविश्य - भवन्ति विदिक्षु च	=पांचसौ योजन (समुद्र में) प्रवेश होते हैं और (=च)विदिशा
अन्तरेषु द्वीपाः पञ्चाशत्पञ्चयोजनशतेषु	=अन्तराल मे (आठ) अन्तर्द्वीप (जम्बूद्वीप की वेदिका से) पांचसो पचास योजन
गतेषु भवन्ति । शैल-अन्तेषु द्वीपाः	=परे (समुद्रमें) है । पर्वतों के अन्त में (आठ) अन्तर्द्वीप (जम्बूद्वीपकी वेदीसे)
षट्सु योजनशतेषु गतेषु भवन्ति । दिक्षु	=छहसौ योजन परै (=गतेषु) (समुद्र में) है । (आठ) दिशाओंमें
द्वीपाः शतयोजन-विस्ताराः; विदिक्षु अन्तरेषु च	=अन्तरर्द्वीप सौ सौ योजन विस्तार वाले है । वहुरि (=च)(आठ)विदिशाअंतरालमें
द्वीपाः तद्-अर्ध-विष्कम्भाः	=अन्तर्द्वीप उन (आठ आठ दिशा वाले अन्तर्द्वीपों से) आधे आधे अर्थात् पचास पचास योजन विस्तार वाले है



(१) ज्योतिष विषयमें आठ दिशा मानी गई है और यहा पर पूज्यपाद स्वामी ने अन्तर्द्वीपोंके विस्तारके सबन्धमें सामान्य कथन किया है इसलिये आठ दिशाके अन्तर्द्वीपोंका जो जम्बूद्वीपकी वेदिकासे पांचसौ योजन समुद्र में परे है सौ सौ योजन विस्तार कहा है परन्तु वहुधा करि ससारमें चारदिशा पूर्व, उत्तर, पश्चिम और दक्षिण प्रसिद्ध हैं और चारही विदिशा ईशान, वायव्य, नैऋत्य, आग्नेय प्रसिद्ध हैं इसलिये प० जयचन्द्ररायजी ने सर्वार्थसिद्धिकी वचनिकामें पूर्व, उत्तर, पश्चिम, दक्षिण, चार ही दिशा मान कर और ईशान वायव्य, नैऋत, आग्नेयको विदिशा मानकर विशेषत यह कथन किया है कि "तहां दिशानि के (चार) द्वीप तौ जम्बूद्वीप की वेदी तें पांचसौ योजन परें समुद्र में हैं तिनका सौ सौ योजन विस्तार है। वहुरि विदिशानि कें (चार) द्वीप वेदीनितैं पांचसो योजन परे है तिनका विस्तार पचावन पचावन (५५) योजन का है बहुरि दिशा विदिशानिके अन्तरालके(आठ)द्वीप वेदी तें पांच से पचास योजन परें है। तिनिका विस्तार पचास पचासयोजनका है" ॥

शैलान्तेषु पञ्चविंशतियोजनविस्ताराः। तत्र पूर्वस्यां दिश्येकोरुकाः। अपरस्यां दिशि लांगूलिनः उत्तरस्यां दिश्यभाषकाः। दक्षिणस्यां दिशि विषाणिनः। विदिक्षु शशकर्णशष्कुलीकर्ण कर्णप्रावरण लम्बकर्णाः

	=(हिमवान्-शिखरी औरदो विजयार्द्ध) पर्वतोंके (आठ) छोरोंमें वा आठ प्रान्तोंमें (आठद्वीप)
शैल—अन्तेषु ७।३	=पचीस पचीस योजन विष्कम्भ के धारक है
पञ्चविंशतियोजन-विस्ताराः १।३	=वहां पूर्वदिशामें (जो अन्तर्द्वीप है उसमें रहने वाले) एक जांघ के (ऊरुका) धारक है
तत्र* पूर्वस्याम् ७।१ दिशि ७।१ एक-ऊरुकाः १।३	अर्थात् एक टांगवाले मनुष्य पूर्वी अन्तर्द्वीपमे निवास करते है
	=पश्चिम दिशा में (जो अन्तर्द्वीप है उसमें रहने वाले मनुष्य) पूंछ वाले हैं
अपरस्याम् ७।१ दिशि ७।१ लांगूलिनः १।३	=उत्तर दिशा में (जो अन्तर्द्वीप है उसमें रहने वाले मनुष्य) वचन रहित गूंगे हैं
उत्तरस्याम् ७।१ दिशि ७।१ अभाषकाः १।३	=दक्षिण दिशा में (जो अतर्द्वीप है उसमें रहने वाले मनुष्य) सींग वाले हैं
दक्षिणास्याम् ७।१ दिशि ७।१ विषाणिनः १।३	=(चार) विदिशाओं (ईशान-वायव्य-नैर्ऋत्यु-आग्नेय) मे (जो अंतर्द्वीप हैं उनके मनुष्य)
(१)विदिक्षु ७।३ ॥	=खरहा के सदृश कानवाले (=शशकर्ण) मनुष्य है (शशक-खरहा-ससा एकार्थी है)
शशकर्ण—	=साकल वा शाकली कहिये यवकी नालीके समानहै कान जिनके ऐसे मनुष्य अर्थात्
शष्कुलीकर्ण —	एक प्रकार के मच्छ सदृश है कान जिनके ऐसे मनुष्य होते है
(२)कर्ण-प्रावरण—	=कान ही है ओढने और ढकने का दुपट्टा वा उपकरण जिनके अर्थात् अंतर्द्वीप के रहने वाले वे मनुष्य जिनके चादरा वा उससे और बड़े बड़े कान है जिनमेंसे एक कान वह बिछा सकते है दूसरे को ओढ सकते है
लम्बकर्णाः १।३	=(भिन्न भिन्न) लम्बाई के कानों सहित अन्तर्द्वीप वासी मनुष्य हैं ॥

(१) विदिक्षु —इस शब्द को मुद्रणयंत्र वालों ने तथा लेखकोंने असावधानीसे किसी किसी हस्त लिखित लिपिमें उत्तर वाक्य 'अश्व-सिंहश्वमहिश इत्यादि में मिलाकर" "विदिक्ष्वश्वसिंहश्वमहिश इत्यादि" लिखदिया है तथा छापदिया है। किसी किसी प्रतिमें इस शब्दके आगे पीछे एक एक विराम का चिह्न देकर "।विदिक्षु।" ऐसा लिखा है। कहीं पर दोनों वाक्यों को एक कर दिया है जिससे यह नहीं जान पड़ता है कि यह शब्द विदिशाओं से सबन्ध रखता है अथवा विदिशाओं के बीच २ में जो दिशायें है उनसे सम्बन्ध रखता है हमने इसको सबसे प्रथममें लिखा है इससे स्पष्ट होजाय कि यह प्रथम वाक्य से सम्बन्ध रखता है। और ईशान-वायव्य नैर्ऋत्य-आग्नेय विदिशाओं का द्योतक है

(२) 'कर्ण-प्रावरण' के स्थान में 'प्रावरण' ऐसा सर्वार्थसिद्धिकी दोनों आवृत्तियोंमें अशुद्ध छप गया है। क्योंकि हमने हस्तलिखित तीन प्रतियोंसे मिलाया तो सबमें 'कर्ण-प्रावरण' निकला दूसरे यह कि मुद्रित राजवार्तिक, तथा पं० पन्नालालजी न्यायदिवाकर अनुवादित राजवार्तिक

अन्तरेषु अश्वसिंहश्वमहिषवराहव्याघ्रकाककपिमुखाः ॥ मेघविद्युन्मुखाःशिखरिण उभयोरन्तयोः

	पूर्व-उत्तर-पश्चिम-दक्षिण चार दिशाओं तथा ईशान-वायव्य-नैऋत्य-आग्नेय चार विदिशाओंके
(१)अन्तरेषु॥(दिक्षु॥)	=अंतरालोंमें-अन्तर्दिशाओंमें अर्थात् चारदिशा चार विदिशाओंके बीच बीच की(आठ)दिशाओंमें जो अंतर्द्वीप हैं उनमें रहनेवाले मनुष्य
अश्व-मुखाः।सिंह-मुखाः,श्व-मुखाः।	=घोड़ा के सदृश मुखवाले, सिंह सरीखे मुखवाले, कुत्ता सम मुखवाले,
महिष-मुखाः।वराह-मुखाः,व्याघ्र-मुखाः।	=भैंसा समान मुखवाले, सूकर सम मुखधारक, बघेराके सदृश मुखधारक
(२)काक-मुखाः।कपि-मुखाः। ॥	=काक समान मुखवाले वा कऊआ सदृश मुखके धारक, वंदरके समान मुखवाले, होते हैं ॥
मेघ-मुखाः।विद्युन्मुखाः।शिखिरिणः।	=मेघ मुखवाले और विजलीके सदृश मुखवाले (मनुष्य) शिखिरी पर्वतके
उभयोः।अन्तयोः।	=दोनों (पूर्व-पश्चिमके) अंतोंमें-छोरोंमें (दो अंतर्द्वीपों में वसने वाले) हैं

तथा दो हस्त लिखित अन्य प्रतियें जो हमको इन्द्रप्रस्थके मन्दिरोंसे प्राप्त हुई हैं सबमें ही 'कर्णप्रावरण' पाठ है। इसके उल्लेखकी आवश्यकता नहीं है कि 'म्लेच्छा द्विविधा वेदितव्या इत्यादि से सर्वे ते पल्योपमायुष. पर्यन्त सर्वार्थसिद्धिवृत्ति और राजवार्तिकका लेख लगभग एकही है ॥ तीसरे यह कि 'प्रावरण' का अर्थ दुपट्टा है केवल'प्रावरण'का विना कर्ण शब्द लाये हुये कुछभी अर्थ नहीं होसकता है अत पाठ शुद्ध करके लिखा है ॥

(१) 'अन्तरेषु' शब्द के सम्बन्ध में हमारी वही टिप्पणी है जो हमने पृष्ठ ७७ में 'विदिक्षु' शब्द के सम्बन्ध में दी है।

(२) 'काक' शब्दके पश्चात् 'घूक' शब्द दो हस्तलिखित सर्वार्थसिद्धि वृत्तियोंसे मिलाया गया उनमें किसीमें नहीं है। 'घूक' का अर्थ घुग्घू वा उल्लू है। प० जयचन्द्रायजीने 'श्वान के सदृश मुखवाले' वा श्वानमुखा अपनी वचनिकामें नहीं लिखा है परन्तु 'उलूकमुखा' 'काक मुखा' लिखा है सम्भव है कि जिस प्रतिसे उनने वचनिका की हो उसमें "श्वमुखा" नहो और'काकघूकमुखा'हो जैसा कि सर्वार्थसिद्धि की दोनों मुद्रित आवृत्तियों से प्रगट है ॥ राजवार्तिककी मुद्रित तथा हस्तलिखित दोनों प्रकारकी प्रतियों में "अश्व सिंह-श्व-महिष-वराह-व्याघ्र उलूक-कपिमुखा " ऐसा पाठ है अर्थात् "काकघूकमुखा." के स्थान में 'उलूकमुखाः' शब्द है यदि हम यह मानलें कि शुद्धपाठ वाली सर्वार्थसिद्धिमें 'घूक' शब्द नहीं है तो 'काकमुखाः' के स्थान में'उलूक मुखाः'रहजाता है ॥ हमने एक बहुत प्राचीन हस्त लिखित सर्वार्थसिद्धिसे ऊपर का पाठ उद्धृत किया है उसमें 'घूक' शब्द नहीं है अत. घूक शब्द छोडदिया है हमारे विचारमें उपर्युक्त आठ अन्तर्दिशाओंमें नो प्रकारके मुखवाले नहीं होसक्तेहैं। भूल होतो पाठक कृपया सूचित करें ॥

मत्स्यमुखकालमुखाः हिमवत उभयोरन्तयोः । हस्तिमुखा आदर्शमुखाः उत्तरविजयार्द्धस्योभयोरन्तयोः । गोमुखमेषमुखाः दक्षिणदिग्विजयार्धस्योभयोरन्तयोः । एकोरुका मृदाहारा गुहावासिनः शेषाः पुष्पफलाहारा वृक्षवासिनः सर्वे ते पल्योपमायुषः ॥ ते चतुर्विंशतिरपि द्वीपा जलतलादेकयोजनोत्सेधाः ॥ लवणोदधेर्बाह्यपार्श्वेऽप्येवं चतुर्विंशतिर्द्वीपा विज्ञातव्याः ॥ तथा कालोदेऽपि वेदितव्याः॥

मत्स्य-मुखाः१/३ काल-मुखाः१/३ (१) =मच्छ वा मच्छलीके समान मुखवाले और काले वा कालेनीले (=काल) मुखवाले

हिमवतः६/१ उभयोः७/२ अन्तयोः७/२ =हिमवान् कुलाचलके दोनों (पूर्व-पश्चिम) छोरोंमें (दो अन्तर्द्वीपोंके रहनेवाले) है

हस्ति-मुखाः१/३ आदर्श-मुखाः१/३ =हस्ती समान मुखवाले (मनुष्य) और दर्पन समान मुखवाले (मनुष्य)

उत्तरविजयार्द्धस्य६/१ उभयोः७/२ अन्तयोः७/२ =उत्तर वैताड्य पर्वतके दोनों (पूर्व-पश्चिम) छोरोंमें (अन्तर्द्वीपोंमें) है

गो-मुखाः१/३ मेष-मुखाः१/३ =गो सदृश मुख धारक (मनुष्य) और मेडा वा भेड़ समान मुखवाले (मनुष्य)

दक्षिणदिग्विजयार्धस्य६/१ उभयोः७/२ अन्तयोः७/२ =दक्षिण दिशिके वैताड्य पर्वतके दोनों (पूर्व-पश्चिम) अन्तोंमें (अन्तर्द्वीपोंमें) है

एक-(२)ऊरुकाः१/३ मृद्-आहाराः१/३ गुह-आवासिनः१/३ =एक जांघवाले मनुष्य मिट्टीका आहार करनेवाले है (और) गुफाओंमें रहनेवाले है

शेषाः१/३ पुष्प-फल-आहाराः१/३ वृक्ष-वासिनः१/३ =अवशेष मनुष्य (जो अंतर्द्वीपों में रहते है) फूल फलके आहारी है पेड़ोंके वासी है

सर्वे१/३ ते१/३ पल्योपम-आयुषः१/३ । ते चतुर्विंशतिः१/१ =वे समस्त पल्य प्रमाण आयुके वा स्थितिके धारक है । वे चौवीसों

अपि*द्वीपाः१/३ जल-तलात्५/१ एक-योजन-उत्सेधाः१/३ =ही (अन्तर) द्वीप जलके तलसे एक योजन ऊंचे है वा जोजनके उंचाई वाले है

लवण-उदधेः६/१ बाह्य-पार्श्वे७/१ अपि*एवम्* =लवण समुद्रके बाहिरी चक्र वा बाहिरी परिधिमें (=बाह्य-पार्श्वे) भी ऐसे

चतुर्विंशतिः१/१ द्वीपाः१/३ विज्ञातव्याः१/३ =चौवीस (अन्तर) द्वीप जानना चाहिये अर्थात् चौवीस अन्तरद्वीप जो ऊपर कहे और जो लवण समुद्रकी भीतरी परिधिमें है वे और चौवीस ये बाहिरी परिधिके सब ४८ भये ॥

तथा*कालोदे७/१ अपि*वेदितव्याः१/३ =वैसे ही (जैसा कि ऊपर कहचुके है) कालोदधि समुद्रमें भी (४८ अन्तर्द्वीप) हैं अर्थात् चौवीस अन्तर्द्वीप कालोदधिकी भीतरी परिधि सम्बन्धी और चौवीस ही

(१) काल = काला, कालानीलामिश्रित (देखो पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ १०६ वैद्यमहाशयका कोशपृष्ठ १८५) ॥ (२) ऊरु = जांघ, ऊरुक = जांघवाला, जांघधारक

बाहिरीपरिधि सम्बन्धी ऐसे सब कालोदधि सम्बन्धी अड़तालीस अन्तर्द्वीप हूये । अतः लवणोदधि और कालोदधिके सब द्वीपानके अन्तर्द्वीप हूये॥

(?) हमारे यहां आचार्योंमें पूज्यपाद स्वामीके मतमें तथा श्रीमद्विद्यानन्दिके मतमें छियानवै (अड़तालीस लवणोदधि-सम्बन्धी और अड़तालीस कालोदधि सम्बन्धी) अन्तर्द्वीप हैं राजवार्तिकके रचयिता श्रीमदभट्ट अकलंकदेवके मतमें अड़तालीस (चौबीस लवणोदधि सम्बन्धी और चौबीस कालोदधि सम्बन्धी) ऐसे केवल अड़तालीस अन्तर्द्वीप हैं । "जयचन्द्रराय जी ने अड़तालीसका स्वीकार किया है । पं० सदासुखजीने, पं० गोपालदासजी इत्यादि ने छियानवे का ॥ श्वेताम्बर आम्नाय के 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र'ने हिमवान् पर्वतके सम्बन्धी छप्पन अन्तर्द्वीप माने हैं और "इसी प्रकार छप्पन अन्तरद्वीप शिखरी पर्वत सम्बंधी भी' माने हैं ॥ 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र' के पृष्ठ ८७ को देखो ॥

"ते चतुर्विंशतिरपि द्वीपा जलतलादेक योजनोत्सेधाः ॥ लवणोदस्याभ्यन्तरपार्श्वेऽप्येवं चतुर्विंशतिर्द्वीपा विज्ञातव्याः ॥ तथा कालोदेऽपि" वेदितव्या. ? सर्वार्थसिद्धि वृत्ति प्रथम सस्करण पृष्ठ २२४ और तिलोयपण्णत्ति. पृष्ठ १३१ ॥ इसके अनुवाद के वास्ते देखो पृष्ठ ७६ ॥ हस्त लिखित सर्वार्थसिद्धि का आशय यही है परन्तु पाठ तनिक भिन्न है ॥ वह इस प्रकार है कि "ते चतुर्विंशति द्वीपाः पर्वते अपि अभ्यन्तरपार्श्वेऽप्येवं द्वीपा जलतलादेक योजनो त्सेधा ॥ तथा कालोदेऽपि वेदितव्या." = वे चौबीस अन्तर्द्वीप पक्षान्तरमें (अर्थात् दूसरी कल्पनामें और दूसरे मतमें) भी लवणोदधिके दोनों भीतरी बाहिरी तटोंमें चौबीस चौबीस अन्तर्द्वीप जलके तलसे एक योजन ऊंचे हैं । कालोदधिकेभी इतनेही जानना चाहिये ।

"तत्रान्तरद्वीपा लवणोदस्योभयोरष्टचत्वारिंशत् तथा कालोदस्य इति वक्तव्यमिति" = वहां प्रथम कहे हुये जो लवण समुद्रके दोनों तटोंके अड़तालीस (अन्तरद्वीप) हैं । और कालोदधिके इसप्रकार छियानवे हैं ॥ श्लोकवार्तिक मुद्रित पृष्ठ ३१७ ॥ जैसे लवण समुद्रमें अन्तरद्वीप अड़तालीस हैं दोऊ तट सम्बन्धी, तैसेही कालोदधि समुद्रमें अड़तालीस जानना ऐसे समस्त छियानवै अन्तरद्वीपनिमें कुभोग भूमिया मनुष्य हैं ॥ अर्थ प्रकाशिका पृष्ठ २०८ ॥ लवण समुद्र और कालोदधि समुद्रमें ९६ अन्तरद्वीप हैं जिनमें कुभोग भूमिकी रचना है । यहां मनुष्यही रहते हैं उनमें मनुष्योंकी आकृति नाना प्रकारकी कुत्सित है ॥ सिद्धान्तप्रवेशिका पृष्ठ १३४ ॥ ते चतुर्विंशतिरपि द्वीपाः जलतलादेकयोजनोत्सेधाः. तथा कालोदेऽपि वेदितव्या. ॥ मुद्रित तत्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ १४५ ॥ यही पाठ हस्तलिखितमें है = 'बहुरि ये चौबीसहू अन्तरद्वीप हैं ते जलके तलतें एक एक योजन ऊंचे हैं ॥ जैसे लवणोदधिके विषे अन्तरद्वीपनिका कथन है तैसेही कालोदधिके विषैभी जानना" ॥ पं० पन्नालाल दूनीवाल भाषा पृष्ठ ८८६ ॥

"बहुरि ए चौबीसही द्वीपजलके तलतें एकएक योजन ऊंचे हैं । ऐसेही कालोद समुद्र विषै जानना" पं० जयचन्द्रजीकृत वचनिका मुद्रित पृष्ठ ३७३ हिमवान् पर्वत सबन्धी छप्पन अन्तर्द्वीप सभाष्य० (पृष्ठ ८६ ८७) में कहने के पश्चात् उल्लेख किया है कि 'इसी प्रकार छप्पन अन्तर्द्वीप शिखरी पर्वत सम्बन्धी भी जानना चाहिये" 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र' पृष्ठ ८७ ॥ इसके पश्चात् चरणटिप्पणी ऐसे दी है । श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य०की चरणटिप्पणी:- "यह अन्तरद्वीपका भाष्य प्रायः नष्ट होगया है, कई दुर्विदग्ध लोगोंने अन्तरद्वीप भाष्यमें लिखदिये किन्तु यह अनार्ष है, क्योंकि आगे जीवाभिगमादि में दही मिलता है । वाचक परंपरामें यह भेद नहीं है क्योंकि सूत्रका उल्लंघन नहीं होता । इसलिये इसे सिद्धान्त भाष्यको नष्ट किया है" ॥

त एतेऽन्तर्द्वीपजा म्लेच्छाः कर्मभूमिजाश्चशकयवनशबरपुलिन्दादयः॥ काःपुनः कर्मभूमय इत्यत आह—

॥ भरतैरावतविदेहाः कर्मभूमयोऽन्यत्र देवकुरूत्तरकुरुभ्यः ॥३७॥

ते एते अन्तर्द्वीपजाः म्लेच्छाः कर्म-भूमिजाः च	=ते इतने अन्तरद्वीपोंमें उत्पन्नहुये म्लेच्छ हैं। और (=च) कर्मभूमिमें उत्पन्नहुये
शक-यवन-शबर-पुलिन्द-आदयः पुनः कर्म-	=शक-यवन-शबर-पुलिन्द आदि (म्लेच्छ) हैं। (प्रश्न) पुनि कर्म-
भूमयः काः इति अतः आह	=भूमियें क्या हैं। ऐसा (प्रश्न होने पर) इसलिये (अग्रिम सूत्रमें) कहते है कि
(१)सूत्रम्—	=भरतैरावतविदेहाः कर्मभूमयोऽन्यत्र देवकुरूत्तरकुरुभ्यः(२)।
	=भरतैरावत विदेहाः(पञ्च, पञ्च, पञ्च, एताः) कर्मभूमयः भवन्ति,अन्यत्र(पञ्च)देवकुरुभ्यः,(पञ्च)उत्तरकुरुभ्यः।३७।
सूत्रार्थः—पञ्चदेवकुरुभ्यः	=(पांच मेरु सम्बन्धी)पांच देवकुरु(३ (जहां उत्तम भोग भूमि प्रवर्तती है और)
पञ्चउत्तरकुरुभ्यः अन्यत्र	=(पांचमेरु सम्बन्धी पांच उत्तर कुरु(३)(जहांभी उत्तम भोग भूमि वर्ते है)कोछोड़कर
पञ्च भरताः पञ्च ऐरावताः	=(पांच मेरु सम्बन्धी) पांच भरत क्षेत्र (पांच मेरु सम्बन्धी) पांच ऐरावत क्षेत्र
पञ्च विदेहाः	=(पांच मेरु सम्बन्धी सामान्यरूपसे) पांच (महा(४)) विदेह क्षेत्र (विशेपतासे प्रत्येक मेरुसम्बंधी बत्तीस बत्तीस विदेह ऐसे एकसौ साठ विदेह)
एताः कर्मभूमयः भवन्ति।	=ये कर्म भूमिये(४) हैं॥ (इसकी विशेप टिप्पणी संख्या चारमें नीचे देखो)

(१) दोनों सम्प्रदायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है॥ (२) पांच देवकुरु और पांच उत्तरकुरुक्षेत्र ऐसे दश क्षेत्र हुये इसलिये सूत्रमें "देवकुरूत्तरकुरुभ्य" पञ्चमी बहुवचन लाये हैं यदि एक एक क्षेत्र होता तो पञ्चमी द्विवचन 'देवकुरूत्तरकुरुभ्याम्' ऐसा वाक्य लाते।

(३) पांच मेरुसम्बन्धी पांच हरिवर्ष और पांच रम्यक क्षेत्र ये दश मध्यम भोगभूमियें, और पांच मेरुसम्बन्धी पांच हैमवत और पांच हैरण्यवत ये दश जघन्य भोगभूमियें, अडतालीस अन्तर्द्वीप लवण समुद्र सम्बन्धी और अडतालीस कालोदधि सम्बन्धी ये छियानवे जघन्य भोगभूमियें हुईं इस प्रकार देवकुरू उत्तरकुरु दश उत्कृष्ट, दश मध्यम और दश जघन्य भोग भूमिये सर्व मिलकर एकसौ छब्बीस हुई

(४) पांच विदेह पांच मेरु सम्बन्धी कहे हैं वास्तविक में पांच विदेह विशेपरूपसे एकसो साठ हैं। और प्रत्येक विदेहमें पांच म्लेच्छ खड हैं, और एक आर्य खण्ड है। और पांच मेरुसम्बन्धी पांच भरतक्षेत्र हैं। और पांच ही ऐरावत क्षेत्र हैं। और प्रत्येक भरत क्षेत्र और ऐरावत क्षेत्रमें पांच पांच म्लेच्छ खड हैं और एक एक आर्य खड है। इस प्रकार विदेह और भरत और ऐरावत समस्त क्षेत्रों में १७० आर्य खण्ड हैं। और ८५० म्लेच्छ खण्ड हैं विशेपरूपसे १७० कर्मभूमियें हैं। सामान्यरूप से १५ हैं अर्थात् १६० विदेहों को पांच महाविदेह पांच मेरु सम्बन्धी कहते है॥

भरतैरावतविदेहाश्च पञ्च पञ्च, एताः कर्मभूमय इति व्यपदिश्यन्ते ॥ तत्र विदेहग्रहणाद्देवकुरूत्तरकुरुग्रहणे प्रसक्ते तत्प्रतिषेधार्थमाह "अन्यत्र देवकुरूत्तरकुरुभ्यः" इति ॥ अन्यत्र शब्दो वर्जनार्थः । देवकुरव उत्तरकुरवो हैमवतो हरिवर्षो रम्यको हैरण्यवतोऽन्तर्द्वीपाश्च भोगभूमय इति व्यपदिश्यन्ते ॥ अथ कथं कर्मभूमित्वं ? शुभाशुभलक्षणस्य कर्मणोऽधिष्ठानत्वात् ॥ ननु सर्वं लोकत्रितयं कर्मणोऽधिष्ठानमेव,

---

वृत्त्यनुवादः—भरत-ऐरावत-विदेहाः१/३ च❀पञ्च१/३ ।।
पञ्च१/३ एताः१/३ ।।कर्मभूमयः१/३ ।।इति❀व्यपदिश्यन्ते T
तत्र❀विदेह-ग्रहणात्५/१ ।।देवकुरु-उत्तरकुरु-
ग्रहणे७/१ ।।प्रसक्ते७/१ ।।तत्-प्रतिषेध-
अर्थम्१/१ ।।आह T अन्यत्र❀देवकुरु-उत्तरकुरुभ्यः५/३ ।इति❀
अन्यत्र❀शब्दः१/१ ।वर्जन-अर्थः१/१ देवकुरवः१/३ ।
उत्तरकुरवः१/३ ।हैमवतः१/१ ।हरिवर्षः१/१ ।रम्यकः१/१ ।हैरण्यवतः१/१ ।
अन्तर्द्वीपाः१/३ ।भोगभूमयः१/३ ।।इति❀व्यपदिश्यन्ते T

=भरत, ऐरावत और विदेहक्षेत्र पांच,
=पांच हैं । इतनी कर्म भूमियें इसप्रकार विवरण कीगई हैं ।
=तहां(सूत्रमें)विदेहके ग्रहणसे देवकुरु और उत्तर कुरुके(जोजम्बूद्वीपकेविदेहवालेभागमेंहैं)
=आदान अथवा उपलब्धिका प्रसंग होनेपर तिस(ग्रहण) के निराकरणके
=लिये कहते हैं कि देवकुरु और उत्तरकुरु को छोड़कर (पंद्रह कर्म भूमियें हैं)
=(सूत्रमें) अन्यत्र शब्द निषेध के लिये है ।। देवकुरुयें,
=उत्तरकुरुयें, हैमवत, हरिवर्ष, रम्यक, हैरण्यवत, और
=अन्तर्द्वीप, भोग भूमियें इस प्रकार व्याख्यानकीगई हैं ।। भावार्थ यह है कि पांच विदेह सम्बन्धी पांच देवकुरु (उत्तम भोग भूमियें) और पांच उत्तरकुरु (उत्तम भोग भूमियें) पांच मेरु सम्बन्धी पांच हरिवर्ष और पांच रम्यक ये दश मध्यम भोग भूमियें, और पांच मेरु सम्बन्धी पांच हैमवत और पांच हैरण्यवत ये दश जघन्य भोग भूमियें और अड़तालीस अन्तर्द्वीप लवणोदधि समुद्र सम्बन्धी और अड़तालीस ही कालोद समुद्र सम्बन्धी ऐसे छयानवे ये जघन्य कुभोग भूमियें, सर्व मिलकर एकसौ छब्बीस है । तिन सबको सर्वार्थसिद्धि वृत्तिमें भोगभूमियें कही है ।।

अथ❀कथं❀कर्म-भूमित्वं१/१ ।। ?
=आगे (=अथ) (पूर्वोक्त पंद्रह क्षेत्रोंके) कर्मभूमिपना कैसे है ।।

शुभ-अशुभ-लक्षणस्य६/१ ।।कर्मणः६/१ ।।अधिष्ठानत्वात्५/१ ।।
=(उत्तर)शुभ औरअशुभ लक्षणरूप कर्मके आश्रयतासे(पूर्वोक्तपंद्रहक्षेत्रोंमेंकर्मभूमिपनाहै)

ननु❀सर्वम्१/१ ।।लोक-त्रितयम्१/१ ।।कर्मणः६/१ ।।अधिष्ठानम्१/१ ।।एव
=प्रश्न (=ननु) सबतीनों (=त्रितय) लोक (क्या) कर्मके आधारही है ।।

तत एवं प्रकर्षगतिर्विज्ञास्यते प्रकर्षेण यत्कर्मणोऽधिष्ठानमिति ॥ तत्राशुभकर्मणस्तावत्सप्तमनरक-प्रापणस्य भरतादिष्वेवार्जनं, शुभस्य सर्वार्थसिध्यादिस्थानविशेषप्रापणस्य पुण्यकर्मण उपार्जनं, तत्रैव कृष्यादिलक्षणस्य षड्विधस्य कर्मणः

ततः❀एवम्❀प्रकर्ष-गतिः१/१।। विज्ञायते। (१)प्रकर्षेण❀यत् १/१।।कर्मणः६/१।। अधिष्ठनम्१/१।। इति❀

=वहां (कर्मभूमिमें कर्मका आधारपना) वास्तविक (=एवं) उत्कर्ष
=दशा (=गति) में जाना जाता है (अर्थात्) उत्कृष्टपनासे जो कर्मका
=आश्रय है ऐसा भावार्थ है कि आचार्यके इस उत्तर पर कि कर्मके आश्रयपनासे इन पन्द्रह क्षेत्रोंकें कर्म भूमिपना है शिष्यने फिर तर्क की कि कर्मके आधार तौ तीन लोकही हैं तौ तीनों लोक कर्मभूमि क्यों न कहेगये इसपर कहते है कि कर्मका आधार तौ तीनोंलोकमें अवश्य है। परन्तु जिन स्थानोंमे कर्मका आश्रय अतिशयकरि अथवा उत्कृष्टपनासे पायाजाता है । उन पन्द्रह भूमियोंको कर्मभूमि कहा है।
(आगे इस उत्कृष्ट कर्मपनाके दो दृष्टान्त देते हैं)

तत्र❀अशुभ-कर्मणः६/१।।तावत्❀सप्तम-नरक-प्रापणस्य६/१।। भरतादिषु७/३ एव❀अर्जनम्१/१।। शुभस्य६/१।। सर्वार्थसिद्धि-स्थान-विशेष-प्रापणस्य६/१।। पुन्य-कर्मणः६/१।। उपार्जनम्१/१।।,तत्र❀एव❀ (२)कृषि-आदि-लक्षणस्य६/१।।षड्-विधस्य६/१ कर्मणः६/१।।

=तहां अशुभरुपकर्मसे सातवां नर्क तक (=तावत्)
=पानेकी(=प्रापणस्य)भरतादिक(पन्द्रहकर्मभूमियों)में ही सिद्धिवा प्राप्ति(=अर्जन)होती है।
=(और) शुभरूप (कर्मसे) सर्वार्थसिद्धि(आदिक) विशेष स्थानोके पानेके
=पुण्यकर्मका उपार्जन है। तहां (कर्मभूमियोमे) ही
=खेती करना आदिक लक्षणरूप छः प्रकारके कर्मका

(१) 'प्रकर्ष' शब्द पुल्लिंग है। जब 'प्रकर्षेण' और 'प्रकर्षात्' करण कारक और अपादान कारकोंके एकवचन उत्कृष्टता वा प्रधानताके अर्थमें आते है तब उनका प्रयोग अव्ययकी भांति होता है। इसलिये 'उत्कर्षेण' शब्दको पदच्छेदमें अव्यय लिखा है। देखो वैद्यकोश पृष्ठ ४५६ ॥

(२) (क) असिर्मषिः कृषिर्विद्या वाणिज्यं शिल्पमित्यपि। कर्माणि षड्विधानिस्यु प्रजाजीवनहेतवः ॥ १ ॥ (ख) अत्रासिकर्म सेवायां मषिर्लिपि-विधौ स्मृता। कृषिर्भू कर्षणे प्रोक्ता विद्या शास्त्रोपजीवने॥ग॥ वाणिज्य वणिजां कर्म शिल्प स्यात्करकौशलम्। तच्च चित्रकलापत्रच्छेदादिबहुधा स्मृतम् ॥३

पात्रदानादिसहितस्य तत्रैवारम्भात्कर्मभूमिव्यपदेशो वेदितव्यः ॥ इतरासु दशविधकल्पवृक्षकल्पितभोगानुभवनविषयत्वाद्भोगभूमय इति व्यपदिश्यन्ते॥ उक्तासु भूमिषु स्थितिपरिच्छेदार्थमाह—

पात्र-दान-आदि-सहितस्य६/१।। तत्र-एव॰आरम्भात्५/१।	=प्रशस्त दानादिक (छहकर्मों) सहित तहांही प्रारम्भ होने (के निमित्त) से
कर्म-भूमि-व्यपदेशः१/१।वेदितव्यः१/१। इतरासु७/३।।	=(तिन पन्द्रहक्षेत्रोंका) कर्मभूमि नाम जानना चाहिये। अन्य वा दूसरो (क्षेत्र अर्थात् उपर्युक्त छयानवैं कुभोगभूमियोमें और पूर्वोक्त तीस उत्तम,मध्यम जघन्यभोगभूमियों)में
दश-विध-कल्प-वृक्ष-कल्पित-भोग-अनुभवन-	=दश भांतिके कल्पवृक्षोंसे इच्छित वा वांछित भोगोंका अनुभवन
विषयत्वात्५/१।।भोगभूमयः१/३।।इति॰व्यपदिश्यन्तेT	=विषय होनेसे भोगभूमियें ऐसे नाम कहेजाते हैं (=व्यपदिश्यन्ते)
उक्तासु७/३।।भूमिषु७/३।।स्थिति-परिच्छेद-अर्थम्२/१।।आहT	=कथित (समस्त) भूमियोंमे आयुके अवधिके (=परिच्छेद) लिये कहते है कि

असि १/१।मषि १/१।।कृषि १/१।।विद्या१/१।।वाणिज्य१/१।।शिल्प१/१ ।।इति॰ अपि॰	=असि, मशि, खेती, विद्या, वाणिज्य और शिल्प ऐसे भी
कर्माणि१/३।। षड्विधानि१/३।। स्युःT प्रजा जीवनहेतवः१/३ ॥ १ ॥	=छह प्रकार कर्म प्रजाके जीविका (=जीवन) के कारण होते हैं॥ १ ॥
अत्र॰असि कर्म १/१।। सेवायाम्७/१।। मषि १/१।।लिपि-विधौ७/१।।	=यहां (कर्मभूमिमें) असिकर्म सेनाविषै (और) मसी (कर्म) लेखनकार्यमें
स्मृता१/१।। । कृषि १/१।।	=स्मरण किया जाता है। (खेती)कृषि
भू-कर्षणे७/१।।प्रोक्ता१/१।।विद्या१/१।। शास्त्र उपजीवने७/१।। ॥२॥	=भूमिके जोतनेमें विवर्णितहै (और)विद्या(कर्म) शास्त्रकी जीवकामें वा धधेमें है
वाणिज्य१/१।। वणिजां६/३। कर्म१/१।। शिल्प१/१।।स्यात्Tकर-	=वाणिज्यकर्म वनियों अथवा व्यापारियों का काम है। शिल्प (कर्म) हाथकी
कौशलम्१/१।।	=निपुणता, चतुरता वा प्रवीणताहै अर्थात् हस्तसे नानाप्रकारके काममेंचतुराईहै
तत्१/१।। च॰चित्र-	=और(=च)वह(शिल्पकर्म)चित्र विचित्र अर्थात् बहुरङ्गी मूर्तियांबनाना(चित्र)
कला-पत्र-	=चौसठ प्रकारका गाना बजाना आदि (=कला)पर्ण अथवा कागदका
च्छेद-आदि१/१।। बहुधा॰स्मृतम्१/१।।	=छेदना, काटना, बनाना, इत्यादि बहुप्रकार(की निपुणता) स्मरण कीजातीहै(२)

(१) देवपूजा गुरुपास्ति स्वाध्याय संयमस्तपः। दान चेति गृहस्थाना षट्कर्माणि दिने दिने ॥ १ ॥

देवपूजा१/१।। गुरु-उपास्ति १/१।।स्वाध्याय १/१। संयमः१/१। तप १/१।।	=देवकी पूजा, गुरुकी उपासना,अर्थात् सेवा(उपास्ति) शास्त्रकाअध्ययन,संयम, तप,
दान१/१।। च॰इति॰गृहस्थानाम्६/३। षट्-कर्माणि१/३।।दिने७/१। दिने७/१।	=बहुरि दान इस प्रकार गृहस्थोंके छह कर्म प्रत्येक दिनमें(दिनेदिने) होते है।

॥ नृस्थिती परापरे त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते ॥ ३८ ॥

त्रीणि पल्योपमानि यस्याः सा त्रिपल्योपमा। अन्तर्गतो मुहूर्तो यस्याः सा अन्तर्मुहूर्ता ॥ यथासंख्येन सम्बन्धः ॥ मनुष्याणां परा उत्कृष्टा स्थितिः त्रिपल्योपमा ॥ अपरा जघन्या अन्तर्मुहूर्ता। मध्ये अनेकविकल्पा ॥ तत्र पल्यं त्रिविधं व्यवहारपल्यमुद्धारपल्यमद्धापल्यमिति।

सूत्रम्—नृस्थिती परापरे[१]त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते=नृ-स्थिती-परापरे-त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते-(यथासंख्यम्)

सूत्रार्थ—नृ-स्थिती१/२॥परा-अपरे१/२॥त्रि-पल्योपम-अन्तर्मुहूर्ते१/२॥	=मनुष्योंकी आयु उत्कृष्ट और जघन्य तीन पल्यप्रमाण और अन्तर्मुहूर्त
यथासंख्यम्१/१॥	=अनुक्रमसे है अर्थात् मनुष्योंकी आयु उत्कृष्ट (=परा) तीन पल्य प्रमाण और जघन्य (=अपरा) अन्तर्मुहूर्त है। और मध्य आयुके अनेक भेद है।
वृत्त्यनुवादः—त्रीणि१/३॥पल्योपमानि१/३॥यस्याः६/१॥सा१/१॥	=तीन पल्य प्रमाण है जिसकी सो
त्रि-पल्योपमा१/१॥अन्तर्गतः१/१॥मुहूर्तः१/१॥यस्याः६/१॥	=त्रिपल्योपमा है। भीतर वा अभ्यन्तर मुहूर्त जिसकी अर्थात् मुहूर्त वा दो घड़ी के भीतर भीतर जिसकी
सा१/१॥अन्तर्मुहूर्ता१/१॥यथासंख्येन३/१॥	=सो अन्तर्मुहूर्ता है। यथासंख्यकरि अथवा संख्याके क्रमसे (इन-परा-अपरा-त्रिपल्योपमा अन्तर्मुहूर्ता शब्दोंका परस्पर)
सम्बन्धः१/१॥	=सम्बन्धहै(अर्थात् परा शब्दके साथ त्रिपल्योपमा का सम्बन्ध किया जाताहै और अपराके साथ अंतर्मुहूर्ताका तब निम्नलिखित इसप्रकार अर्थ होगा कि)
मनुष्याणाम्६/३॥परा१/१॥उत्कृष्टा१/१॥स्थितिः१/१॥त्रि-पल्योपमा१/१॥	=मनुष्योंका सबसे अधिक जीवनकाल तीनपल्य प्रमाण है ॥
अपरा१/१॥जघन्या१/१॥अन्तर्मुहूर्ता१/१॥मध्ये७/१॥अनेक-विकल्पा१/१॥	=सबसेघाटि(आयुवा)जघन्य(आयु)अन्तर्मुहूर्त है। और मध्यविषैं अनेक भेद हैं
तत्र❀पल्यम्१/१॥त्रिविधम्१/१॥व्यवहारपल्यम्१/१॥	=तहां पल्य तीन प्रकार है। व्यवहारपल्य,
उद्धारपल्यम्१/१॥अद्धापल्यम्१/१॥इति❀	=उद्धारपल्य और अद्धापल्य ऐसें

(१) परापरे, परावरे, पराऽपरे, अथवा पराऽवरे सब वाक्य ठीक है ॥ कोई भी वाक्य नृस्थिती वाक्य के पश्चात् लिखा जासक्ता है ॥

अन्वर्थसञ्ज्ञा एताः ॥ आद्यं व्यवहारपल्यमित्युच्यते उत्तरपल्यद्वयस्य व्यवहारबीजत्वात् नानेन किञ्चित्परिच्छेद्यमस्तीति। द्वितीयमुद्धारपल्यं। तत उध्दृतैर्लोमकच्छेदैर्द्वीपसमुद्राः संख्यायन्त इति। तृतीयमद्धापल्यमद्धाकालस्थितिरित्यर्थः ॥ तत्राद्यस्य प्रमाणं कथ्यते। तद्यथा—प्रमाणांगुल

अन्वर्थ-संज्ञाः ।।एताः ।।	=ये (तीनों पल्य) सार्थक नामवाले हैं अर्थात् जैसाजैसा जिसजिस पल्यका नाम है वैसा वैसा उस पल्य का अर्थ है।
आद्यम् ।।। व्यवहारपल्यम् ।।। इति❀उच्यते। उत्तर-पल्य-द्वयस्य। व्यवहार-बीजत्वात् ।।।	=प्रथम व्यवहार पल्य (नाम) कहाजाता है क्योंकि (वह व्यवहारपल्य) अग्रिम =दो पल्य (उद्धार तथा अद्धा)के व्यवहार अथवा वर्तनेका कारण (=बीजत्वात्) है अर्थात् उद्धार और अद्धापल्यकी उत्पत्ति जाननेके लिये व्यवहारपल्य है।
न❀अनेन।।। किञ्चित्❀परिच्छेद्यम् ।।।अस्ति इति❀	=न इस (व्यवहार पल्य) करि कोई वस्तु (किञ्चत्) प्रमाण कियेजाने योग्य वा विचारनीय है अर्थात् व्यवहार पल्य किसी वस्तुके नापनेके काममें नहीं आती है। केवल उसमें रोमोंकी गणना ४५ अंक प्रमाण होती है "प्रथम रोम गिनिदेय"
द्वितीयम् ।।उद्धारपल्यम् ।।ततः❀उध्दृतैः।लोमकच्छेदैः।	=दूसरी उद्धारपल्य है वहांसे लोमकखंड निकालकरि वा उद्धारकरि (उध्दृतैः)
द्वीप-समुद्राः।संख्यायन्ते।इति❀तृतीयम् ।।।अद्धापल्यम् ।।।	=द्वीप और समुद्र गिने जाते है "दूसरि द्वीप समुद्र गिनै"। तीसरी अद्धापल्य
अद्धा-काल-स्थितिः।। इति❀अर्थः।	=बहुत वा उत्कृष्ट (=अद्धा) कालकी स्थितिवाली है ऐसा आशय है।
तत्र❀आद्यस्य ।।। प्रमाणम् ।।। कथ्यते। तद्यथा❀	=तहां प्रथम (पल्य) का प्रमाण कहाजाता है। जैसे-
प्रमाण-अंगुल	=प्रमाण अंगुल अर्थात् वह अंगुल जो उत्सेधअंगुल व्यवहारअंगुल, प्रचलित-अंगुल अथवा आठ जोंके मध्यभागोंके प्रमाणसे पांचसौगुणा है तिसके

(१) तहां आदि मध्य अन्तकरि रहित जिसका दूसरा विभाग न हो ऐसा अविभागी पुद्गल का परमाणु है। सो इन्द्रियकरि ग्रह्या नहीं जाता है। जिसमें एक रस, एक वर्ण, एक गन्ध, दो स्पर्श यह पांच गुण हैं। ऐसा अनन्तानन्त परमाणुओंके समूहोंको अवसन्नासन्न कहते हैं। अवसन्नासन्न आठ मिले तब एक सन्नासन्न(वा सन्नासन्न)होताहै॥ आठ सन्नासन्न मिले तब एक तृटरेणु होता है। आठ तृटरेणुका एक त्रसरेणु (त्रसरैन) और आठ त्रसरैन का एक रथरैन (रथरेणु) होय, आठ रथरेणुका एक उत्तम भोग भूमिके मनुष्यके बालका अग्रभाग है। आठ उत्तमभोग भूमिके मनुष्यके बालके अग्रभाग मिलें तब एक मध्यमभोग भूमिके मनुष्यके बालका अग्रभाग होय। आठ मध्यमभोग भूमिके मनुष्य के बालके अग्र भाग मिलें

परिमितयोजनविष्कम्भायामावगाहानि त्रीणि पल्यानि कुसूला इत्यर्थः । एकादिसप्तान्ताहोरात्रजाताविवालाग्राणि तावच्छिन्नानि यावद्द्वितीयं कर्तरिच्छेदं नाप्नुवन्ति,

	=प्रमाण करि अथवा नापे हुये योजन(योजन) भर चौड़ाई (=विष्कम्भ)लम्बाई(=आयाम)और
परिमित-योजन-विष्कम्भ-आयाम	=गहराईवाले (गोल ढोलके आकार) तीनि खाडे वा गढ़े (=पल्यानि)
अवगाहानि॥ त्रीणि॥ पल्यानि॥	=भड़ोले वा खत्ते (कुसूला=कुशूला) है ऐसा अभिप्राय अथवा आशय है।
कुसूलाः। इति॰अर्थः।	=एक से सात तक दिन रातके जन्मे हुये (उत्तम भोगभूमिके) मेढ़ा वा भेड़ (=अवि)के
एक-आदि-सप्त-अन्त-अहोरात्र-जात-अवि-	=केशका(वाल=वाल) अग्रभाग तव तक छेदकर काटकर जब तक (यावत्)
वाल-अग्राणि॥तावत्॰छिन्नानि॥यावत्॰	=दूसरे (लघु) खंड कतर्नी (=कर्तरि,कर्तरी)से प्राप्ति नहीं होसकते हैं (पूर्वोक्त गडाहा)
द्वितीयं॥ कर्तरि-च्छेदं॥ न-आप्नुवन्ति	

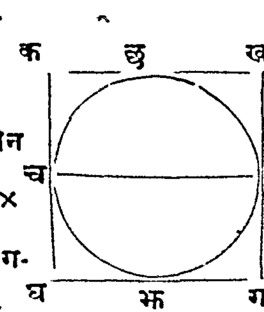
तब एक जघन्य भोग भूमिके मनुष्यके बालका अग्रभाग होता है। जघन्य भोगभूमिके मनुष्यके बालके अग्रभाग आठ मिलें तब एक कर्म भूमि के
मनुष्यके वालका अग्रभाग होता है ॥ आठ कर्म भूमिके नरके बालके अग्रभाग मिलें तब एक लीष(=लीख)हो, आठ लीख मिलें तब एक यूका (=जूं)
अथवा तिलहो। आठ तिल मिलें तब एक यवमध्य अथवा जौ का मध्यभाग के प्रमाण हो। आठ यवमध्य को एक उत्सेध अंगुल होता है। इस अंगुल-
करि नारकी तिर्यंच मनुष्य देवोंका शरीर तथा अकृत्रिम प्रतिमाका देह मापिये है। बहुरि पांचसे पूर्वोक्त उत्सेध अगुलका एक प्रमाण अगुल होताहै ॥
सो यह प्रमाण अगुल अवसर्पिणी कालके पहिले चक्रवर्तीके हाथके अगुलके बराबर होता है। तिस समय तिस अगुलकरि गांव नगरादिकका प्रमाण
होता है।' अन्य काल में मनुष्यों का अपना अपना अगुल का प्रमाण होता है। अर्थात् जिस काल में जैसा मनुष्य हो उसका अगुल, इसको आत्म
अगुल कहते हैं। इससे भिन्न भिन्न समय के अनुसार गांव, नगर, भवन, घट, रथ, छत्र, आसन, धुजा, आदि का प्रमाण होता है ॥ प्रमाण अंगुलसे
द्वीप समुद्र तथा उनकी वेदी, नदी, पर्वत, विमान, नरकके प्रस्तार, जैनधाम, आदि अकृत्रिम वस्तुका विस्तार-आयाम-आदि नापे जाते हैं। छह अंगुल
का एक पाद, बारह अगुल का एक वितस्ति (विलाद, विलस्ति) दो विलांद का एक हाथ, दो हाथ का एक इषु अथवा गज, दो गजका एक धनुष
दो सहस्र चापका एक कोश, चार कोशका एक योजन इस लिये पांचसौ व्यवहार योजनका एक प्रमाण योजन होय है। अर्थात् उत्सेध अंगुल के
कोश दो सहस्र हों तब एक प्रमाण योजन होता है ॥

तादृशैर्लोमच्छेदैः परिपूर्णं घनीभूतं व्यवहारपल्यमित्युच्यते ॥

तादृशैः३।३ लोमच्छेदैः३।३ परिपूर्णम् १।१ =वैसे ही (=तादृशैः) रोमखंडकरि सम्पूर्ण (=परिपूर्ण)

घनीभूतम् १।१ व्यवहार-पल्यम् १।१ इति॰उच्यते =ठोसरूप भराजाता है (=घनीभूतं) सो व्यवहारपल्य इस प्रकार वर्णित की गई है ॥

(१) प्रथम एक महा योजन अथवा प्रमाण योजन लम्बे चौड़े और गहरे इस प्रकार घनाकार रूप महा योजनके गड्ढाके लोमच्छेदोंकी संख्या सुगम और विस्तार रूपसे कहते हैं॥ उतनाही लम्बा उतनाही चौडा उतनाही गहरा अथवा ऊचेको घनाकार कहतेहैं। इस टिप्पणीको प्रमाणअंगुलकी टिप्पणी पढकर और समझ कर पढना चाहिये॥ एक घनाकार प्रमाण योजन का गढा एक व्यवहार योजन के घनाकार गढ़ेसे पांचसौ गुना लम्बा पांचसौ गुना चौडा और पांचसौ गुणा गहरा होता है। और एक व्यवहार योजन चारकोश का होना है। इसलिये प्रमाण योजनका गढ़हा दो सहस्र योजन लम्बा दो सहस्र योजन चौडा और दो सहस्र योजन गहरा हुआ। यह प्रकरण कुछ क्लिष्ट है इसलिये निम्नक्षेत्र पाठकोंकी सुगमनाके लिये है॥



कखगघ क्षेत्रकी प्रत्येक भुजा कख, खग, गघ, घक। दो दो सहस्र कोस की मानी गई है। एक कोसके २००० चाप ८००० हाथ, ८००० × २४ = १९२००० उत्सेध अगुल हुये, इसलिये एक महायोजन अथवा दोसहस्रकोसके १९२००० × २००० = ३८४०००००० उत्सेध अगुल हुये = कख = खग = गघ = घक = चज व्यासके ३८४०००००० × ८ = ३०७२००००००आड़े जौकेसमान हुये ३०७२००० ००० × ८ = २४५७६०००००० तिल हुये २४५७६००० ००० × ८ = १९६६०८००० ००० लीख, १९६६०८००० ००० × ८ = १५७२८६४००००००० कर्मभूमिके मनुष्यके वालके अग्रभाग हुये। १५७२८६४००००००० × ८ = १२५८२९१२००००००० जघन्यभोगभूमि के मनुष्य के वाल के अग्रभाग १२५८२९१२००० ००० × ८ = १००६६३२९६००० ००० मध्यम भोगभूमिके मनुष्यके वालके अग्रभाग। १००६६३२९६००० ००० × ८ = ८०५३०६३६८००० ००० उत्तम भोगभूमिके मनुष्यके वालके अग्रभाग इस (८०५३०६३६८००००००) संख्यासे एक प्रमाण योजन अथवा एक महायोजनकी लम्बाई, कख रेखाके लोमच्छेद हुये इस सख्या को इसी सख्यासे गुणा करनेसे (क्योंकि कख रेखा खग रेखा के बराबर है) सर्व कखगघ क्षेत्रके, क्षेत्रफलके, रोम छेद आते हैं। अर्थात् वर्ग प्रमाण योजनके लोमच्छेद निकलते है ॥

ततः❀वर्ष-शतेद्द॥। =वहां (उस कूप से) सौ (सौ) वरसमें

८०५३०६३६८००००००
८०५३०६३६८००००००

०००००००००००००००
०००००००००००००००
०००००००००००००००
०००००००००००००००
०००००००००००००००
०००००००००००००००
६४४२४५०६४४००००००
४८३१८३८२०८००००००
२४१५६१६१०४००००००
४८३१८३८२०८००००००
०००००००००००००००
२४१५६१६१०४००००००
४०२६५३१८४००००००
०००००००००००००००
६४४२४५०६४४००००००

६४८५१८३४६३४१३५१४२४०००००००००००००

इन वर्ग प्रमाण योजन क्षेत्रके लोमच्छेदोंको गहराई(के लोमच्छेदों)से गुणा करदिया जावे तो घनाकार महा योजन वा घनाकार प्रमाण योजनके रोमच्छेद पैतालीस अक प्रमाण निम्न लिखित विधि से आते हैं ॥ क्योंकि पूर्वोक्त गढ़ा अथवा खंडर की गहराई दो सहस्र कोश है और हम जानते हैं कि दो सहस्र कोशके लोमच्छेद ८०५३०६३६८०००००० हैं ॥ गुणन का एक नियम यह भी है कि गुण्य और गुणक अथवा दोनोंमेंसे किसीके अंतमें

जो शून्य हों उनको शेष अकोंके साथ गुणा करनेके पश्चात् गुणनफलके अतमें उतनेही शून्य लगादो तो ठीक गुणनफल वैसाहो निकलआता है जैसा ऊपर की क्रिया से निकला है ॥ जैसे ५० गुण्य है और ३० गुणक है तो ५ और ३ के गुणनफल १५ के अन्त में दो शून्य रखने से भी १५०० हो जाते हैं और ५०/३०/००/१५०/१५०० इस रीति से भी १५०० आते है सुगमता के लिये हमने नीचे यही विधि ग्रहण की है ॥

६ ४ ८ ५ १ ८ ३ ४ ६ ३ ४ १ ३ ५ १ ४ २ ४ ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० को

८ ० ५ ३ ० ६ ३ ६ ८ ० ० ० ० ० ० ० से गुणा करना है ॥

तो निम्न लिखित अकोंको गुणाकरके गुणनफलके अन्तमें १८ शून्य रखदो ।

```
                   ६ ४ ८ ५ १ ८ ३ ४ ६ ३ ४ १ ३ ५ १ ४ २ ४
                                   ८ ० ५ ३ ० ६ ३ ६ ८
              ~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~
                 ५ १ ८ ८ १ ४ ६ ७ ७ ० ७ ३ ० ८ १ १ ३ ९ २
               ३ ८ ९ १ १ १ ० ० ७ ८ ० ४ ८ १ ० ८ ५ ४ ४
             १ ९ ४ ५ ५ ५ ५ ० ३ ९ ० २ ४ ० ५ ४ २ ७ २
           ३ ८ ९ १ १ १ ० ० ७ ८ ० ४ ८ १ ० ८ ५ ४ ४
           ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ०
       १ ९ ४ ५ ५ ५ ५ ० ३ ९ ० २ ४ ० ५ ४ २ ७ २
     ३ २ ४ २ ५ ९ १ ७ ३ १ ७ ० ६ ७ ५ ७ १ २ ०
     ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ०
   ५ १ ८ ८ १ ४ ६ ७ ७ ० ७ ३ ० ८ १ १ ३ ९ २
~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~
   ५ २ २ २ ५ ५ ९ ५ ४ ० ७ ३ ५ १ ९ ८ ० ३ ४ ७ ३ ० ६ ८ ० ३ २०००००००००००००००००
```

हमारा गढा व्यवहार पल्यका गोलकूपके आकार है । जैसाकि वृत्ताकार जो वर्गाकार क्षेत्रके भीतर पृष्ठ ८८में है उससे प्रगट है॥चू कि चौडाई क्षेत्रकी एक(योजन)मानी है। तिसका वर्ग १ हुआ तिसको दशसे गुणाकरि वर्गमूल निकालनेसे कूपकी परिधि आतीहै अर्थात् १×१×१० = १० = १०(वर्गमूल) बहुरि विष्कम्भके चौथाईसे गुणा करनेसे अर्थात् $\frac{१}{४}$ से वृत्तका क्षेत्रफल $\frac{१९}{६} \times \frac{१}{४} = \frac{१९}{२४}$ भया । आजकल पाठशालाओंमें मापप्रकाशक पुस्तकें जो पढ़ाई

जाती हैं उनमें वृत्तका क्षेत्रफल मोटे रूपसे गणितके इस नियमसे सिखाया जाता है कि विवक्षित वृत्तके आधे व्यासके वर्गको $\frac{२२}{७}$ से गुणा करदो गुणनफल ही उस वृत्तके क्षेत्रका प्रमाण होगा। वस्तुत लगभग एक ही प्रमाण होगा क्योंकि यहांपर एक व्यास माना है आधेका वर्ग $\frac{१}{४}$ हुआ और $\frac{१९}{६}$ मोटे रूपमें १०क वर्गमूलका परिणामहै। और $\frac{२२}{७}$ कुछ सूक्ष्म रूपमें परिणाम है इसमें ३$\frac{१}{७}$से आधे व्यासको गुणा करना पडताहै उसमें ३$\frac{१}{६}$से गुणा करना पडता है $\frac{२२}{७}$सेभी अधिक सूक्ष्मरूपमें १०को मापके उच्चकोटाके ग्रन्थोंमें समझायाहै(इसी अध्यायकी टिप्पणी पृष्ठ३४ पर देखो)गहराई एकयोजन प्रमाण है इसलिये इस घनरूपक्षेत्र अथवा एक योजन कूपका घनरूप क्षेत्रफल गहराईसे गुणा करनेसे निकलता है अर्थात् $\frac{१९}{२४} \times १ = \frac{१९}{२४}$ घन रूप है॥ अब ऊपरके पैतालीस अक्षरकी संख्याको सुगमताकेलिये घनसंख्या मानो और वाञ्छित निकलनेवाली संख्याको फल मानो तो इसप्रकार त्रैराशिक हुई कि १ को $\frac{१९}{२४}$ से वही सम्बन्ध है जो घनसंख्याको फलसंख्यासे है अर्थात् १:$\frac{१९}{२४}$::घनसंख्या फलसंख्या. इसलिये फलसंख्या = फलसंख्या $\times$ १ = $\frac{१९}{२४}\times$ घनसंख्या = $\frac{१९}{२४}\times$ घन संख्या॥ प्रथम १९ से गुणाकरके पश्चात् भाग २४ का घन संख्यामें दंगे अर्थात् = $\frac{१९}{२४}\times$ घन संख्या॥

५२२२५५६५४०७३५१६८०.४७३०६८०३२००००००००००००००००००० मानी हुई घन संख्या। इसको उन्नीस से गुणा किया तो गुणनफल

= ९९२२८६३१२७३८६८७६२६५९८८२९२६०८०००००००००००००००००००

भाग

२४)९९२२८६३१२७३८६८७६२६५९८८२९२६०८०००००००००००००००००००(४१३४५२६३०३०८२०३१७७७४९५,२१९२००००००००००००००००००

९६	७३	१७८	२२०
३२	७२	१६८	२१६
२४	१९६	११८	४८
८२	१९२	९६	४८
७२	४८	२२८	
१०८	४८	२१६	
९६	७६	१२२	
१२६	७२	१२०	
१२०	४२	२६	
६३	२४	२४	
४८	१८६	५२	
१५१	१६८	४८	
१४४	१८५	४६	
७२	१६८	२४	
७२			

इस प्रकार व्यवहार पल्यके समस्त रोम छेदोंकी संख्या निम्न ४५ अक्षर प्रमाण हुई

४१३४५२६३०३०८२०३१७७७४९५१२१९२००००००००००००००००००००

अंकनाम, अडिल्ल	अडिल्लका अभिप्राय। इस छंदके सब अंक और शून्य क्रमसे एक दूसरेके ऊपर होंगे
चौ इक तिय चउ पांच दोय षट् तीन है	= चार(ऊपर)एक(ऐसेही)तीन,चार,पाच,दो,छह,तीन
नभ तिय नभ वसु दो नभ तिय इक कीन है	= शून्य(= नभ) तीन, बिंदु, आठ, दो, बिंदु, तीन, एक
सत सत सत चौ नौ पन इक दो इक कहे	= सात, सात, सात, चार, नौ, पांच, एक, दो, एक
नौ दौ आगे ठारै सुन्न सरब लहे (कवि द्यानतराय)	= नव,दोय,(फिर एकदूसरेके ऊपर)सब अठारह शून्य देदो तो पल्यके पैतालीस अक निकल आते हैं॥

एकैकलोमापकर्षणविधिना यावता कालेन तद्रिक्तं भवेत्तावान्कालो व्यवहारपल्योपमाख्यः ॥ तैरेव लोमच्छेदैः प्रत्येकमसंख्येयवर्षकोटीसमयमात्रच्छिन्नैस्ततपूर्णमुद्धारपल्यम् ॥ ततः समये समये एकैकस्मिन्रोमच्छेदेऽपकृष्यमाणे यावता कालेन तद्रिक्तं भवति तावान्काल उद्धारपल्योपमाख्यः॥ तेषामुद्धारपल्यानां दशकोटीकोटय एकमुद्धारसागरोपमम् ॥ अर्धतृतीयोद्धारसागरोपमानां यावन्तो रोमच्छेदास्तावन्तो द्वीपसमुद्राः ॥ पुनरुद्धारपल्यरोमच्छेदैर्वर्षशतसमयमात्रच्छिन्नैः

एक-एक-लोम अपकर्पण-विधिना। यावता। =एक एक रोम निकालकरि (=अपकर्पणविधिना) जिस

कालेन। तद्-रिक्तम्। भवेत्। तावान्। कालः। =कालकरि वह (कूप) खाली होवे उतना काल

व्यवहार-पल्योपम-आख्यः। तैः। एव॰लोमच्छेदैः। =व्यवहार पल्य (के नामसे) प्रसिद्ध है। तिनही लोमच्छेदोंसे

प्रत्येकम्॰असंख्येय-वर्प-कोटी-समय- =एक एकके असंख्यात करोड़ वरसोंके समयके

मात्र-च्छिन्नैः। तत्। पूर्णम्। उद्धार-पल्यम्। ॥ =समान अथवा बराबर (=मात्र) खंडोंसे वह पूर्ण उद्धारपल्य होती है। अर्थात् पूर्वोक्त पैंतालीस अंक प्रमाण व्यवहारपल्यके पृथक् पृथक् रोमके इतने इतने खंड किये जांय कि जितने जितने असंख्यात करोड़ वरसके समय होते हैं तब उद्धारपल्यके रोमोंका प्रमाण होता है और

ततः॰समये। समये। एक-एकस्मिन्। रोमच्छेदे। =वहांसे समय समयमें अर्थात् प्रत्येक प्रत्येक समयमें एक एक(पूर्वविभाजित)लोमछेद

अपकृष्यमाणे। यावता। कालेन। तद्-रिक्तम्। भवति =निकालनेमें जिस कालकरि वह रीता होजाता है ॥

तावान्। कालः। उद्धार-पल्योपम-आख्यः। =वह काल उद्धारपल्योपम(केनाम)से प्रसिद्ध है। उतना समस्तकाल उद्धारपल्यका है।

तेषाम्। उद्धार-पल्यानाम्। दश-कोटीकोटयः। एकम्। =दश कोड़ाकोड़ी तिन उद्धारपल्योंका एक

उद्धारसागरोपमम्। अर्धतृतीया- =उद्धारसागरोपम है। अढाई उद्धार

उद्धारसागरोपमानाम्। यावन्तः। रोमच्छेदाः। =सागर प्रमाणके जितने लोमच्छेद हैं

तावन्तः। द्वीप-समुद्राः। पुनर्॰उद्धार- =तितने द्वीप तथा समुद्र (इस एक राजूवाले तिर्यग्लोकमें) हैं बहुरि उद्धार-

पल्य-रोमच्छेदैः। वर्ष-शत-समय-मात्र-च्छिन्नैः। =पल्यके रोमच्छेदोंसे (एक एकके) सौवरसके समयोंके बराबर (मात्र)खंडोसे

(१) अर्धतृतीया = शब्दश वह संख्या है जिसमें अर्धभाग तीसरी संख्या हो अर्थात् दो और तीसरी संख्याका आधा अतः अढाई ऐसा अर्थ हुआ ॥

पूर्णमद्धापल्यम् ॥ ततः समये समये एकैकस्मिन्रोमच्छेदेऽपकृष्यमाणे यावता कालेन तद्रिक्तं भवति तावान्कालोऽद्धापल्योपमाख्यः ॥ एषामद्धापल्यानां दशकोटीकोट्य एकमद्धासागरोपमम् ॥ दशाद्धासागरोपमकोटीकोट्य एकावसर्पिणी ॥ तावत्यैवोत्सर्पिणी ॥ अनेनाद्धापल्येन नारकतैर्यग्योनीनां देवमनुष्याणां च कर्मस्थितिर्भवस्थितिरायुः स्थितिः कायस्थितिश्च परिच्छेत्तव्या ॥

पूर्णम्[1/1]॥अद्धापल्यम्[1/1]॥ =पूर्ण अद्धापल्य होती है अर्थात् उपर्युक्त उद्धारपल्यके एक एक रोम के इतने इतने खंड किये जांय कि जितने जितने सौ वरसके समय होते है तब अद्धापल्यके रोमोंका प्रमाण होता है ॥

ततः*समये[7/1] समये[7/1] एक-एकस्मिन्[7/1] =वहांसे समय समयमें अर्थात् प्रत्येक समयमें एक एक (पूर्वोक्त खंड किये हुये)

रोमच्छेदे[7/1] अपकृष्यमाणे[7/1] यावता[3/1] कालेन[3/1] =लोमच्छेद निकालनेमे जिस कालकरि

तद्-रिक्तं[1/1]॥भवतिTतावान्[1/1] कालः[1/1] अद्धा-पल्योपम- =वह खाली होजाता है। उतना काल अद्धापल्योपम (के नाम) से

आख्यः[1/1] दशकोटीकोट्यः[1/3]॥एषां[6/3]॥अद्धा-पल्यानां[6/3]॥ =प्रसिद्ध है। दश कोड़ा कोड़ी इन अद्धापल्योका

एकं अद्धासागरोपमम्[1/1]॥दश-अद्धासागरोपम-कोटी-कोट्यः[1/3]॥=एक अद्धासागरोपम है। दश कोड़ा कोड़ी अद्धा-सागरोपमका

एक-अव-सर्पिणी[1/1]॥ तावत्*एव* =एक अवसर्पिणीकाल है ॥ तितनाही (दश कोड़ा कोड़ी अद्धापल्योपमका)

उत्सर्पिणी[1/1]॥ अनेन[3/1]॥अद्धा-पल्येन[3/1]॥ =उत्सर्पिणी काल है। इस अद्धापल्यकरि

नारक-तैर्यग्योनीनाम्[6/3] देव-मनुष्याणाम्[6/3] च* =नारकियों और तिर्यचोंकी और (=च) देव मनुष्योंकी

कर्मस्थितिः[1/1]॥ भवस्थितिः[1/1]॥ =कर्मस्थितिः[1/1]॥ भवस्थितिः[1/1]॥ अर्थात् एक भवकी स्थिति

आयुःस्थितिः[1/1]॥ कायस्थितिः[1/1]॥च*परिच्छेत्तव्या[1/1]॥ =आयु स्थिति और (=च) कायस्थिति जानना चाहिये।

(१) एक कायमें अनेक भव धारण करै तिसको कायस्थिति कहते हैं। जैसे पृथिवी अप् तेज वायुकायिक जीवोंके कायस्थिति असख्यात लोक प्रमाण है। तिनहींमें उपजवे करैं तो एताकालताईं उपजवौ करे। वहुरि वनस्पतिकायका अनन्तकाल है सो असख्यात पुद्गल परिवर्तनमात्र है। वहुरि विकलत्रयका असख्यात सहस्र वरस है। पंचेंद्रिनिकी, तिर्यंच मनुष्यनिकी पृथक्त्व कोटि पूर्व अधिक तीनि पल्य है। वहुरि जघन्य कायस्थिति इन सर्वोंकी अन्तर्मुहूर्तमात्र है। वहुरि देवनारकीनिकी भवस्थिति है सोही काय स्थित है। देवस देव नहीं होतो नारकीसे नारकी नहीं होता यह नियमहै॥

उक्तं च संग्रहगाथा—ववहारुद्धारद्धापल्ला तिण्णेव होंति बोद्धव्वा। संखादीव सम्मुदा कम्मट्ठिदि वण्णिदा तदिये ॥ १॥ यथैवेते उत्कृष्टजघन्ये स्थिती नृणां तथैव—

॥ तिर्यग्योनिजानां च ॥ ३९ ॥

उक्ता[1/1]। च❀संग्रह-गाथा[1/1]। =बहुरि (पल्यकी कथनकी) संचयकी हुई।

अथवा एकत्र कीहुई आर्या छंदोंमेंसे एक (गाथा) कहीजाती है

ववहारु-द्धार-द्धा-पल्ला[1/3]।(व्यवहार-उद्धार-अद्धा-पल्यानि[1/3]।) =व्यवहार उद्धार अद्धा पल्यें

तिण्ण-एव❀होंति-बोद्धव्वा[1/1]।(=त्रीणि[1/3]।एव❀भवन्तिTबोद्धव्याः[1/3]।) =तीनही है सो जानना

संखा-दीव-समुद्दा[1/3]। (=संख्या द्वीप-समुद्राः[1/3]।) =संख्या द्वीप समुद्र

कम्म-ट्ठिदि-वण्णिदा-तदिये (=कर्म्म-स्थिति वर्णिता[1/1]। तदिके) =(और)कर्म्मस्थिति तिन (पल्यों) करि वर्णित है। भावार्थ

पहिली व्यवहारपल्यसे रोमोंकी संख्या वर्णन कीगई है अर्थात् वह संख्याकी उत्पत्ति जाननेके लिये है। उद्धारपल्यकरि द्वीप और समुद्र गिने जाते हैं और अद्धापल्य द्वारा कर्मस्थिति (भवस्थिति, आयुस्थिति, कायस्थिति) का कथन होता है।

यथा❀एव❀एते[1/3]। उत्कृष्टजघन्ये[1/2]। स्थिती[1/2]। नृणां[6/3]। तथा❀एव❀ =जैसे ही ये उत्कृष्ट और जघन्य आयु मनुष्योंकी है तैसेही

(१)**सूत्रम्—तिर्यग्योनिजानां च ॥ ३९ ॥ =तिर्यग्योनिजानां च स्थिति परापरे त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते भवतः**

सूत्रार्थः—तिर्यक्-योनिजानाम्[6/3]। च❀ =तिर्यंच योनिसे उत्पन्न होनेवालोंकी भी अर्थात् तिर्यंचोंकी भी (=च)

परा[1/1]। स्थितिः[1/1]। त्रि-पल्योपमा[1/1]।भवतिT =उत्कृष्ट (=परा) आयु तीन पल्य प्रमाण

अपरा[1/1]। स्थितिः[1/1]। अन्तर्मुहूर्ता[1/1]।भवतिT =(और) जघन्य आयु अन्तर्मुहूर्त है।

(१) सभाष्य०में 'तिर्यग्योनीना च' ऐसा पाठ है। उसमें "तिर्यग्योनिजानां चेत्यपि पाठ" (=तिर्यग्योनिजानां च ऐसा भी पाठ है) यह चरण-टिप्पणी पृष्ठ ८८ में दी है "तिर्यग्योनिज" शब्दकी षष्ठी बहुवचन नपुसकलिंग 'तिर्यग्योनिजाना" वाक्य है और तिर्यग्योनि (=तिर्यंचयोनीवाले) की षष्ठी बहुवचन स्त्रीलिंग "तिर्यग्योनीना" है ॥

तिरश्चां योनिस्तिर्यग्योनिः । तिर्यग्गतिनामकर्मोदयापादितं जन्मेत्यर्थः । तिर्यग्योनौ जातास्तिर्यग्योनिजाः । तेषां तिर्यग्योनिजानामुत्कृष्टा भवस्थितिस्त्रिपल्योपमा ॥ जघन्या अन्तर्मुहूर्ता ॥ मध्येऽनेकविकल्पा ॥ ॐ ॥ भूबिललेश्याद्यायुर्द्वीपोदधिवास्यगिरि-

---

वृत्त्यनुवादः—तिरश्चाम्[६/३] योनिः[१/१] तिर्यग्योनिः[१/१]	=तिर्यंचों का उत्पत्ति स्थान सो तिर्यग्योनि है
तिर्यग-गति-नामकर्म-उदय-आपादितम्[१/१]	=तिर्यंचगतिनामा नामकर्मके उदयकरि गृहीत अथवा प्राप्त (आपादित)
जन्म[१/१] इति❀अर्थः[१/१] तिर्यग्योनौ[७/१] जाताः[१/३]	=जन्म (=नवीन शरीर धरना) ऐसा अर्थ है । तिर्यंच योनि में उत्पन्न हुये
तिर्यग्योनिजाः[१/३] तेषाम्[६/३] तिर्यग्योनिजानाम्[६/३]	=वे तिर्यंच योनिज हैं । तिन तिर्यंच योनिमें उत्पन्न हुओंकी
उत्कृष्टा[१/१] भवस्थितिः[१/१] त्रिपल्योपमा[१/१] जघन्या[१/१]	=उत्कर्ष भवकी आयु तीन पल्य प्रमाण है जघन्य
अन्तर्मुहूर्ता[१/१] मध्ये[७/१] अनेक-विकल्पा[१/१]	=अंतर्मुहूर्त है मध्यविषैं नानाभेद हैं ।

भूबिललेश्याद्यायुर्द्वीपोदधिवास्यगिरिसरः सरिताम्॥ मानंनृणांचभेदःस्थितिस्तिरश्चामपितृतीयाध्याये

भू-बिल-	=(सात) भूमियें (इन सात भूमियों में चौरासी लाख) बिले (देखो सूत्र १, २)
लेश्या-आदि-	=(कापोत, नील-कृष्ण) लेश्यादिक अर्थात् (अशुभतरलेश्यावाले, अशुभतरपरिणामवाले अशुभतरदेहके धारक, अशुभतर वेदना वाले, अशुभतर विक्रिया करनेवाले, परस्पर दुःख उत्पन्न करनेवाले नारकी जीव) (देखो सूत्र ३, ४, ५)
आयुस्-	=(नारियों की उत्कृष्ट तथा जघन्य) आयु (देखो सूत्र ६)
द्वीप-उदधि-	=द्वीप तथा समुद्र अर्थात् जम्बूद्वीपसे स्वयम्भूरमणद्वीपतक असंख्याते द्वीप और लवणोदधिसे स्वयम्भूरमण समुद्र पर्यंत असंख्याते समुद्र, उनके विस्तार और आकार (देखो सूत्र ७, ८, ९)
वास्य-	=(जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रसे ऐरावतक्षेत्र लग सात) क्षेत्र (देखो सूत्र १०)
गिरि-	=(हिमवान् से शिखिरी लग छह) पर्वत(वर्ण विस्तार सहित)(देखो सूत्र ११, १२, १३,)

सरःसरिताम् ॥ मानं नृणां च भेदः स्थितिस्तिरश्चामपि तृतीयाध्याये ॥ १ ॥

॥ इति तत्त्वार्थवृत्तौ सर्वार्थसिद्धिसञ्ज्ञिकायां तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

सरस्-	=(पद्ममें पुंडरीकलों उन ब्रहपर्वतोंकेब्रह) सरोवर, उन सरोवरोंके पुष्कर, माप, परिवारसहित देवियां) (सूत्र १४, १५, १६, १७, १८, १९
सरिताम्६।३।	=चौदह नदियें (उनके बहनेकी दिशायें, और उनकी परिवारकी नदियें छोटीछोटी) (देखो सूत्र २०, २१, २२, २३)
मानं	=(क्षेत्र तथा पर्वतोंके) माप, वा नाप (देखो सूत्र २४, २५, २६, ३२)
मानं	=समयकी क्रिया(पद्मचन्द्रकोष पृष्ठ २६५) अर्थात् उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी रूप छह समय अथवा कालोंकी वृद्धि ह्रासरूप क्रिया (देखो सूत्र २७, २८)
मानं	=परिमाण अर्थात् भरतक्षेत्र,कुलाचल,पर्वत,द्रह,आदि(देखो सूत्र३३, ३४,३५)कोंका जम्बूद्वीपमें धातुकीखंड और पुष्करार्धमें दूना दूना परिमाण है। और मनुष्योंका परिमाणकि वे पुष्करद्वीपके आधे भागके इधर हैं(देखो सूत्र ३५)
नृणाम्६।३।च(अ)भेदः१।१।	=बहुरि (=च) मनुष्योंका भेद (देखो सूत्र ३६)
(नृणाम्) स्थितिः१।१।	=मनुष्यों की स्थिति अर्थात् जीवन काल (देखो सूत्र २९, ३०, ३१, ३८)
तिरश्चाम्-अपि-(स्थितिः१।१।)	=तिर्यचोंकी स्थिति वा आयु (देखो सूत्र ३९) (ये सब हैं)
तृतीय-अध्याये७।१।	=तीसरे अध्याय में (वर्णन किये गये) हैं

इतितत्त्वार्थ-वृत्तौसर्वार्थसिद्धि-=ऐसे तत्त्वार्थकी व्याख्यामें सर्वार्थसिद्धि संज्ञिकायां तृतीयःअध्यायः१।१ =नामाग्रंथमें तीसरा अध्याय(पूर्ण)हुआ॥

॥ अथ चतुर्थोऽध्यायः ॥

भवप्रत्ययोऽवधिर्देवनारकाणामित्येवमादिष्वसकृद्देवशब्द उक्तस्तत्र न ज्ञायते के देवाः कतिविधा इति वा तन्निर्णयार्थमाह—

॥ देवाश्चतुर्णिकायाः ॥१॥

देवगतिनामकर्मोदये सत्यभ्यन्तरे हेतौ बाह्यविभूति—

अथ* चतुर्थः। अध्यायः।	=चौथा अध्याय प्रारम्भ (=अथ) है।
भव-प्रत्ययः। अवधिः। देव-नारकाणाम्।	=भव अथवा जन्म निमित्तक अवधिज्ञान देव तथा नारकियों के होता है।
इति* एवम्* आदिषु। असकृत्-	=इस प्रकार (=एवं) इत्यादि (सूत्रों) में अनेक बार अथवा बार बार (असकृत)
देव-शब्दः। उक्तः। तत्र* न ज्ञायते।	=देव शब्द कहा गया है। वहां (ऐसा) नहीं बताया गया है कि
के। देवाः। कति। विधाः। इति वा तद्-	=देव कौन हैं अथवा (=वा) कितने प्रकार हैं। तिन (देवों) के
निर्णय-अर्थम्॥ आह।	=निश्चय के लिये (आचार्य उत्तर सूत्र में) कहते हैं कि
सूत्रम्—	**देवाश्चतुर्णिकायाः ॥ १ ॥**
सूत्रार्थः—देवाः। चतुर्-निकायाः।	=देवता चार समूह (=निकाय) संयुक्त हैं अथवा देव चार समूह वा संघवाले हैं। अर्थात् देवों के चार, भवनवासी, व्यंतर, जोतिष्क, वैमानिक समूह हैं।
वृत्त्यनुवादः—देवगति-नामकर्मउदये।	=देव गति नामक नामकर्मका उदय
सति। अभ्यन्तरे। हेतौ। बाह्य-विभूति-	=अंतरंगकारण होने पर (=सति) (और) बहिरंग ऐश्वर्य अथवा विभवके

(१) आदि शब्देन, देवनारकाणामुपपादः। न देवाः। इति सूत्रद्वयं ग्राह्यम्॥
आदि-शब्देन। । देव-नारकाणां। उपपादः। =(उपर्युक्त वृत्ति में) आदि शब्द से 'देवनारकाणां-उपपाद' अध्याय २ सूत्र ३४
न* देवाः। । इति सूत्र द्वयं॥ ग्राह्यम्॥ =(और) न देवाः (अध्याय २ सूत्र ५१) ऐसे दो सूत्र लिये गये हैं

(२) यह शब्द सकृत् अव्यय है जिसका अर्थ 'एक बार' है इसलिये अ सकृत =अन्-एक बार अर्थात् अनेक बार बारबार

(३) 'इति वा' ऐसा जान पड़ता है कि मुद्रणयंत्र की अशुद्धतासे, 'वा इति' अथवा (संधि करने से) वेति (वा-इति) के स्थान में 'इति वा' छप गया है। इसी सूत्र के संबन्धमें 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्र' में 'तत्र के देवाः। कति विधा वेति' ऐसा पाठ है॥

विशेषैर्द्वीपादिसमुद्रादिषु प्रदेशेषु यथेष्टं दीव्यन्ति क्रीडन्ति ते देवाः ॥ इहैकवचननिर्देशो युक्तः "देवश्चतुर्णिकायः" इति, जात्यभिधानाद्बहूनां प्रतिपादको भवति ॥ बहुत्वनिर्देशस्तदन्तर्गतभेदप्रतिपत्त्यर्थः । इन्द्रसामानिकादयो बहवो भेदाः सन्ति स्थित्यादिकृताश्च तत्सूचनार्थः ॥ देवगतिनामकर्मोदयस्य स्वधर्म–

विशेषैः $\frac{3}{3}$। द्वीपादि–समुद्रादिषु $\frac{7}{3}$। प्रदेशेषु $\frac{7}{3}$।	=विशेषकरि द्वीपादिक समुद्रादिक स्थानो में (=प्रदेशेषु)
यथा-इष्टम्* दीव्यन्ति-क्रीडन्ति ते $\frac{1}{3}$। देवाः $\frac{1}{3}$।	=इच्छानुसार खेलतेहैं (=दिव्यन्ति) क्रीड़ा करते हैं वे देवता हैं
इह एक-वचन-निर्देशः $\frac{1}{1}$। युक्तः $\frac{1}{1}$।	=(प्रश्न) यह (सूत्र) एक वचनमें निरूपण वा वर्णन होना उचित (युक्त) था
देवः $\frac{1}{1}$। चतुर-निकायः $\frac{1}{1}$। इति* जाति-अभिधानात् $\frac{5}{1}$।	=देवः चतुर्णिकायाः इस प्रकार क्योंकि समान जाति के कहने से
बहूनां $\frac{6}{3}$। प्रतिपादकः $\frac{1}{1}$। भवति	=बहुतकी प्रतिपत्ति वा ज्ञान होता है अर्थात इस सूत्र का प्रत्येक पद देवाः और चतुर्णिकायाः बहुवचन में हैं सो शिष्य प्रश्न करता है कि समान जाति के कथन करने में यदि ये पद "देवः चतुर्णिकायः" इस प्रकार एक वचन में होते तो भी बहुत के वाचक होते, तो ये दोनों पद बहुवचनान्त क्यों हैं। एक वचन में ही इन का निर्देश क्यों नहीं किया है।
बहुत्व-निर्देशः $\frac{1}{1}$। तद्-	=(उत्तर) बहुतता अर्थात बहुवचन का कथन (=निर्देश) उन (चार प्रकारके देवों) के
अन्तर्गत-भेद-प्रतिपत्ति-अर्थः $\frac{1}{1}$। इन्द्र-सामानिक-	=अन्तर्भेद जानने के लिये (=प्रतिपत्ति) है (जैसे) इन्द्र-सामानिक (सूत्र ४)
आदयः $\frac{1}{3}$। बहवः $\frac{1}{3}$। भेदाः $\frac{1}{3}$। स्थिति-आदि-कृताः $\frac{1}{3}$। च* सन्ति	=आदिक बहुत भेद हैं और आयु आदिक
तद्-सूचन-अर्थः $\frac{1}{1}$।	=तिन (इन्द्र सामानिक, आदि, तथा स्थिति, आदिक) के ज्ञापन वा जतलाने के लिये (देवाः चतुर्णिकायाः दोनों वाक्य बहुवचन में इस सूत्र में लाये) हैं
देवगति-नामकर्म-उदयस्य $\frac{6}{1}$। स्वधर्म-	=देवगति नामा नामकर्म के उदय (और) अपने धर्म वा स्वभाव (=स्वधर्म) की अर्थात् देवगति में गमन करने वाले जीवों की।

विशेषापादितभेदस्य सामर्थ्यान्निचीयन्त इति निकायाः संघाता इत्यर्थः। चत्वारो निकाया येषां ते चतुर्णिकायाः॥ के पुनस्ते ? भवनवासिनो, व्यन्तरा, ज्योतिष्का, वैमानिकाश्चेति॥ तेषां लेश्यावधारणार्थमुच्यते—

॥ आदितस्त्रिषु पीतान्तलेश्याः ॥२॥

आदित इत्युच्यते अन्ते मध्ये वा ग्रहणं मा विज्ञायीति।

विशेष–आपादित–भेदस्य ६। सामर्थ्यात् ५॥। निचीयन्ते T	=विशेष प्राप्त भेदकी सामर्थ्य वा शक्तिसे भेदरूप समूह है।
इति* निकायाः १। संघाताः १। इति * अर्थ १।	=ऐसे निकाय हैं समुदाय अथवा समूह इस प्रकार अर्थ है।
चत्वारः १। निकायाः १। येषां ६। ते १। चतुर–निकायाः १।	=चार समुदाय जिनके हैं। वे चतुर्णिकायाः हैं॥
के १। पुनः * ते १।, भवन–वासिनः १। व्यन्तराः १।	=बहुरि ते (चतुर्णिकाय) कोन हैं। (उत्तर) भवनवासी, व्यन्तर,
ज्योतिष्काः १। वैमानिकाः १। च इति तेषां ६। लेश्या–	=ज्योतिष्क बहुरि (=च) वैमानिक ऐसे हैं। उन (चार समुदाय)की लेश्याके–
अवधारण- अर्थम् १॥। उच्यते T	=नियम (=अवधारण) के लिये (अग्रिम सूत्रमें) कहा जाय है कि

सूत्रम् आदितस्त्रिषु पीतान्तलेश्याः ॥ २ ॥

सूत्रार्थः—आदितः * त्रिषु ७।	=आरम्भसे (लेकर) तीन (समुदायके भवनवासी,व्यन्तर,ज्योतिष्क देवों) में
पीत-अन्त–लेश्याः १।	=पीत पर्यन्त (अर्थात् कृष्ण, नील, कापोत पीत. ये चार ही) लेश्या हैं॥
वृत्त्यनुवाद—आदितः * इति * उच्यते T अन्ते ७।	=(इस सूत्रमें) आरम्भ से ऐसा वर्णित है। सो अन्त में
मध्ये ७। वा * ग्रहणं १॥ मा * विज्ञायि–इति *	=अथवा बीचमें ग्रहण मति (=मा) जानो अर्थात् आदिसे भवनवासी देवों के

(१) कहीं पर 'पीतान्त' पाठ है कहीं पर पीतांत है दोनों ठीक हैं (देखो टिप्पणी पृष्ठ ५४०, ५४१)। श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य-तत्त्वार्थाधिगमसूत्र में "तृतीयः पीत लेश्याः २॥=तीसरा (निकाय वा समुदाय ज्योतिष्क देवों का) पीत लेश्या वाला है ऐसा दूसरा सूत्र है। 'पीतान्त लेश्या' ॥ ७॥ इस सूत्र में भाष्यकार ने सभाष्य ० के छठवां सूत्र "पूर्वयोर्द्वीन्द्राः" से 'पूर्वयोः' शब्दकी अनुवृत्ति लेकर ऐसा अर्थ किया है (पूर्वयोर्निकाययोर्देवानां पीतान्ताश्चतस्रो लेश्या भवन्ति) =पहिले दो (भवनवासी और व्यन्तर) देवों के समुदाय के (आरंभ से लेकर) पीत पर्यंत चार (कृष्णा-नीला-कापोता पीता) लेश्या होती हैं॥ दिगंबरों का दूसरा, श्वेताम्बरोंका दूसरा और सातवां सूत्रोंको पढ़नेसे अर्थ भेद ऐसा हुआ कि दोनों के अनुकूल भवनवासी और व्यंतरों में उक्त चार लेश्या होती है। ज्योतिष्कोंमें हमारे यहां चार लेश्या मानी हैं उनके यहां पीत मानी है॥

आदौ आदितः ॥ द्वयोरेकस्य च निवृत्यर्थं त्रिग्रहणं क्रियते ॥ अथ चतुर्णां निवृत्यर्थं कस्मान्न भवति ? । आदित इति वचनात् ॥ षड्लेश्या उक्तास्तत्र चतसृणां लेश्यानां ग्रहणार्थं पीतान्तग्रहणं क्रियते ॥ पीतं तेज इत्यर्थः । पीता अन्ते यासां ताः पीतान्ताः लेश्या येषा ते पीतान्तलेश्याः ॥ एतदुक्तं भवति— आदितस्त्रिपु निकायेषु भवनवासिव्यन्तर—

समुदायसे पहिले तीन ग्रहण करना चाहिये न कि मध्यसे व्यन्तर ज्योतिष्कके समुदायोंसे अथवा अन्तसे वैमानिक समुदायसे (ग्रहण करो)

आदौ ७। आदितः * द्वयोः ६। एकस्य ६। च * =जो आदि विषें हो वा आदि पर हो सो आरम्भसे है (=आदित) दोयके और (=च)एकके

निवृत्ति— अर्थं ३॥ त्रि- ग्रहणं १॥ क्रियते T =निषेधके लिये (इस सूत्रमें) तीन (शब्द)का ग्रहण किया गया है ॥

अथ * चतुर्णां ६। निवृत्ति–अर्थं ३॥ कस्मात् ५। =(प्रश्न)आगे(=अथ)चारके निराकरणका अभिप्राय अथवा प्रयोजन किसी(शब्द)से

न * भवति T आदितः * इति * वचनात् ५॥ =(सूत्रमें)नहीं होता है (उत्तर) "आदितः" ऐसे वाक्यसे (देवोंके चौथे समुदायके ग्रहण का निषेध) होता है (क्योंकि "आदितः त्रिषु" अर्थात् आरम्भ से लेकर तीन भवनवासी व्यन्तर और ज्योतिष्क देवोंके समूह तो इससे ग्रहण होवे हैं और चोथा वैमानिकोंका निकायका प्रतिषेध वा निषेध हो जाता है ॥

षड् १॥ लेश्या १॥ उक्ताः १॥ तत्र* चतसृणां ६॥ लेश्याना ६॥ =छह लेश्यायें वर्णित हैं वहां चार लेश्याओं के

ग्रहण-अर्थं ३॥ पीत-अन्त-ग्रहणं १॥ क्रियते T =उपलब्धि वा ग्रहणके लिये(सूत्रमें)पीत तक(ऐसा वचन)ग्रहण किया गया है

पीतं १॥ तेजः १॥ इति अर्थः १। पीता १॥ अन्ते ७। यासां ६॥ =पीत है सो ही तेज है ऐसा अर्थ है। पीत (लेश्या) है अन्तमें जिन(लेश्याओं,के

ताः १॥ पीत-अन्त-लेश्याः १॥ =वे पीत पर्यन्त, लेश्या हैं

(पीतान्तलेश्याः १॥) येषां ६। ते १। पीतान्तलेश्याः १। =(पीतान्त लेश्या है) जिन्होंके वे पीतान्तलेश्या वाले देव हैं

एतद् १॥ (वा एतत् १॥) उक्तं १॥ भवति— T =(तब इस समस्त सूत्रका)यह(=एतद्)कथन अर्थात् अर्थ होता है कि

आदितः * त्रिषु ७। निकायेषु ७। भवनवासिन्—व्यन्तर— =आरम्भसे तीन समुदाय भवनवासी—व्यन्तर—

ज्योतिष्कनामसु देवानां कृष्णा नीला कापोता पीतेति चतस्रो लेश्या भवन्ति ॥ तेषां निकायानामन्तर्विकल्प-प्रतिपादनार्थमाह—

॥ दशाष्टपञ्चद्वादशविकल्पाः कल्पोपपन्नपर्यन्ताः ॥३॥

ज्योतिष्क—नामसु ॥ देवानां ॥ कृष्णा ॥ नीला ॥ =ज्योतिष्क नामवालेदेवताओ के कृष्ण नील कापोता ॥ पीता ॥ इति * चतस्रः ॥ लेश्याः ॥ भवन्ति T =कापोत पीत ऐसे चार लेश्यायें होती हैं।

तेषां ॥ निकायानां ॥ अन्तर्विकल्प— प्रतिपादन— अर्थम् ॥, आह =तिन समुदायोके अन्तर्भेद कहनेके लिये वा ज्ञान कराने के लिये =कहते हैं कि

सूत्रम्— दशाष्टपञ्चद्वादशविकल्पाः कल्पोपपन्नपर्यन्ताः ॥३॥

=(देवाश्चतुर्णिकायाः) दशाष्टपञ्चद्वादश विकल्पाः कल्पोपपन्नपर्यन्ताः ॥३॥

सूत्रार्थः—देवा ॥ चतुः-निकायाः ॥ दश-अष्ट-पञ्च =चार समुदाय वाले देव (यथासंख्य) दश, आठ, पांच, द्वादश-विकल्पाः ॥ कल्प- उपपन्न- पर्यन्ताः ॥ =और बारह भेदों के धारक स्वर्ग में उत्पन्न होने वालों तक अर्थात् स्वर्ग-वासी देवों पर्यन्त (=कल्पोपपन्न पर्यंत) हैं। भावार्थ यह है कि दशप्रकार के भवन वासी देव हैं, आठ भेद व्यन्तर देवोंके हैं, पांच विकल्प ज्योतिषी देवोंके हैं। और बारह प्रकार के सोलह स्वर्ग पर्यन्त कल्पवासी देव हैं।

(.) दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नाओमें इस सूत्र का पाठ और अर्थ एकसा है। (२) ऊर्ध्व लोक के दो भेद हैं कल्प और कल्पातीत। और जिन में वैमानिक देव निवास करते हैं वे भी स्थान भेद से दो प्रकार हैं। एक कल्पोपपन्न अर्थात् प्रथम स्वर्ग से सोलह स्वर्ग तक उत्पन्न हो कर उन स्वर्गों मे निवास करने वाले। इन देवों के ही बारह भेद इस सूत्र मे कहे हैं। दूसरे कल्पातीतोपपन्न अर्थात् सोलहवां स्वर्ग से ऊपर नव ग्रैवेयक, नव अनुदिश और पंचानुत्तर इन तेईस स्थानो मे उपजकर सोलहवां स्वर्ग से ऊपर बसते हैं। यह इन बारह भेदो में अन्तर्गत नहीं है।

चतुर्णां देवनिकायानां दशादिभिः संख्याशब्दैर्यथासंख्यमभिसम्बन्धो वेदितव्यः ॥ दशविकल्पा भवनवासिनः । अष्टविकल्पा व्यन्तराः । पञ्चविकल्पा ज्योतिष्काः । द्वादशविकल्पा वैमानिका इति ॥ सर्ववैमानिकानां द्वादशविकल्पान्तःपातित्वे प्रसक्ते ग्रैवेयकादिनिवृत्त्यर्थं विशेषणमुपादीयते कल्पोपपन्नपर्यन्ता इति ॥ अथ कथं कल्पसञ्ज्ञा? इन्द्रादयः प्रकारा दश एतेषु कल्प्यन्त इति कल्पाः ॥ भवनवासिषु तत्कल्पना

वृत्त्यनुवाद—चतुर्णाम् ;। देव-निकायानाम् ;।	=चार (भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक) देवों के समूह या समुदायोंका
दश- आदिभिः ;। संख्या-शब्दैः ;। यथासंख्यम् *	=दश, आठ, पांच और बारह गणना शब्दों में संख्या के क्रम से
अभिसम्बन्धः ;। वेदितव्यः ;।	=सम्बन्ध जानना चाहिये (इस प्रकार यथासंख्य सम्बन्ध करने से)
दश-विकल्पाः ;। भवनवासिनः ;। अष्ट-विकल्पाः ;।	=दश भेदरूप भवनवासी (देव) हैं। आठ भेदों के धारक
व्यन्तराः ;। पञ्च-विकल्पाः ;। ज्योतिष्काः ;। द्वादशविकल्पा ;।	=व्यन्तर हैं। पांच भेद वाले ज्योतिषी देव हैं। बारह भेदरूप
वैमानिकाः ;। इति *	=वैमानिक हैं अर्थात् प्रथम स्वर्ग से सोलह स्वर्ग पर्यंत उत्पन्न होने वाले देव हैं
सर्व-वैमानिकानाम् ;। द्वादश-विकल्प-अन्तः	=सब वैमानिक देवों का बारह भेदों के भीतर (=अन्तः)
पातित्वे ;।। प्रसक्ते ;।। ग्रैवैयक-आदि-निवृति-अर्थम् ;।।	=आजाने के (=पातित्वे) प्रसंग होने पर ग्रैवेयक आदि के निषेध के लिये
कल्पोपपन्न-पर्यन्ताः ;। इति * विशेषणम् ;।।	=कल्पोपपन्न पर्यन्ता ऐसा (इस सूत्र में) विशेषण
उपादीयते T, अथ * कथं * कल्प-संज्ञा ;।।	=लाया गया है (=उपादीयते)। प्रश्न (अथ) (इन वैमानिक देवों की) कल्पसंज्ञा कैसे है
इन्द्रादयः ;। प्रकाराः ;। दश ;। एतेषु ;।	=(उत्तर) इन्द्रादिक (देखिये सूत्र चौथा) दश भेद इन (वैमानिक देवों) में
कल्प्यन्ते T इति कल्पाः ;।	=कल्पना किये हैं या माने गये हैं इस प्रकार कल्पा है। अर्थात् कल्पसंज्ञा इन देवों की इस हेतु से है कि इन के दश भेदों की कल्पना की गई है।
भवनवासिषु T, ;। तत्कल्पना	=(प्रश्न) भवनवासि देवों में वही कल्पना है (उत्तर) (ऐसी कल्पना)

सम्भवेऽपि रूढिवशाद्वैमानिकेष्वेव वर्तते कल्पशब्दः ॥ कल्पषूपपन्नाः कल्पोपपन्नाः । कल्पोपपन्नाः पर्यन्ता येषां ते कल्पोपपन्नपर्यन्ताः ॥ पुनरपि तद्विशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

इन्द्रसामानिकत्रायस्त्रिंशपारिषदात्मरक्षलोकपालानीकप्रकीर्णकाभियोग्यकिल्विषिकाश्चैकशः ॥४॥

सम्भवे॰ अपि* रूढि-वशात्॰ वैमानिकेषु॰ एव* = सम्भव होने पर भी प्रसिद्धता के वशसे वैमानिक देवो में ही

वर्तते॰ कल्प-शब्दः॰। कल्पेषु॰ उपपन्नाः॰। = कल्पशब्द प्रवर्तता है। कल्पो अथवा स्वर्गों में उत्पन्न होने वाले हैं

कल्प-उपपन्नाः॰; कल्प-उपपन्नाः॰। = वे कल्पोपन्न हैं अर्थात् स्वर्गवासी देव है। कल्पोमें उत्पन्न होनेवाले

पर्यन्ताः॰। येषाम्॰। ते॰। कल्पोपन्न-पर्यन्ताः॰। = तक जिनके (बारह भेद) हैं वे कल्पोपन्न पर्यन्त हैं।

पुनः-अपि* तद्-विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थम्॰॥ आह॰ = फिर भी उन (देवो) का विशेष जाननेके लिगे (आचार्य अग्रिम सूत्रमें) कहतेहैं कि

सूत्रम्— इन्द्रसामानिकत्रायस्त्रिंशपारिषदात्मरक्षलोकपालानीकप्रकीर्णकाभियोग्य किल्विषिकाश्चैकशः ॥ ४ ॥

पदच्छेदः— इन्द्र-सामानिक-त्रायस्त्रिंश-पारिषद-आत्मरक्ष-लोकपाल-अनीक-प्रकीर्णक-आभियोग्य-किल्विषिकाः॰। च* एकशः* (देवनिकायेषु देवाः दशविधा भवन्ति)

---

(१) इस सूत्र का पाठ हमारे यहां एक सा है किसी २ प्रति में 'किल्विषिका' है किसी २ मे 'किल्विषिका' है कोषो मे 'किल्विष' शब्द पाप और अपराध के अर्थ मे मिलता है॥ श्वेताम्बर आम्नाय के संभाष्यतत्वार्थधिगमसूत्र में 'पारिषद' शब्दके स्थान मे 'परिषद्य' है शेष पाठ दोनों आम्नायो में एक सा है अर्थ भी एक है। भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थ टीका (श्री सिद्धसेन सूरे रचित) में 'किल्विषिका' पाठ है। शेष पाठ उनके यहां भी एक है॥

(२) त्रयस्त्रिंशत्=तेतीस; त्रयस्त्रिंश वा त्रयस्त्रिंशत्तम (=त्रयस्त्रिंशत्तम) =तेतीसवां; त्रायस्त्रिंशताः वा त्रायस्त्रिंशाः=एक प्रकार के नियमित तेतीस देवो का समूह अर्थात् इन्द्रके मंत्री, पुरोहित के समान वा उनके स्थापन्न है वे त्रायस्त्रिंश हैं और इस जातिके ये तेतीस ही देव होते हैं॥ त्रायस्त्रिंशः=उन(३३) देवों मे से एक। उक्त छहो शब्द ठीक है परन्तु हमको चौथे और पांचवे सूत्र के पाठ मे 'त्रायस्त्रिंशत्' शब्द पांच स्थानों में

अर्थ प्रकाशिकामें और पांच स्थानों में पं० सदासुखजी कृत लघुटीकामें, पांचवें सूत्रमें सर्वार्थसिद्धि की दोनों आवृत्तियोमे और निर्णयसागर मुद्रणयंत्र के सोलह पाठ के गुटका में भी एक स्थान मे और चौथा पांचवां सूत्र हस्त लिखित बहुत सी प्रतियोमे देखे गये उनमें भी किसी २ स्थान में त्रायस्त्रिशत् मिलता है। साधारण पाठक प्रायः भ्रम में पड जाते हैं कि यह क्या बात है इससे हम इस लिखने को बाध्य हुये कि व्याकरण के अनुसार 'त्रायस्त्रिशशत्' चौथे सूत्र में तथा 'त्रायस्त्रिशल्लोक' पांचवां सूत्र में सर्वथा अशुद्ध हैं।

पं० जयचन्द जी की वचनिका मुद्रित मे, तत्त्वार्थ राजवार्तिक मुद्रित में, तत्त्वार्थ श्लोक वार्तिक मुद्रित में, सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र मुद्रितमें, पं पन्नालाल जी मोक्षशास्त्र मुद्रित मे, जैनी जी अङ्गल भाषा में अनुवादित तत्त्वार्थाधिम सूत्र मे 'चौथे सूत्र' तथा 'त्रायस्त्रिशलोकपाल'... पांचवां सूत्र मे त्रायस्त्रिंश शुद्ध हैं बहुत से अन्य भाष्य और भाषा की टीकाएं देखी गई उनमे किसी किसी मे शुद्ध पाठ है अधिकतर में अशुद्ध पाठ हैं परन्तु श्वेताम्बरआम्नाय की भाषानुसारिणी तत्त्वार्थटीका (श्री सिद्धसेन सूरिरचित) हस्त लिखितमे उक्त पाठ दोनों सूत्रो का पृष्ठ ३१८ और ३१९ पर शुद्ध पाया गया है यह प्रति हस्तलिखित बहुकालीन है। और इसमें बाईस सहस्रश्लोक से अधिक हैं॥ परंतु स्मरण रहे कि त्रायस्त्रिंशाँल्लोकपालांश्च' (=त्रायस्त्रिशान् लोकपालान् च) यह वाक्य ठीक है क्योंकि 'त्रायस्त्रिंश' शब्द की द्वितीया विभक्ति बहुवचन पुलिङ्गरूप 'रामान्' शब्द के सदृश बनता है॥ उक्त छहों शब्द 'त्रयास्त्रिशत्', 'त्रयस्त्रिंश' त्रयस्त्रिंशत्तम' त्रायस्त्रिशत, 'त्रायस्त्रिंशाः' 'त्रायस्त्रिंश' क्यों शुद्ध और ठीक हैं तथा 'त्रायस्त्रिंशत' क्यों अशुद्ध है इन सबो के लिये निम्न लिखित हेतु क्रम से देते है॥ विंशति, त्रिंशत्, बीस, तीस हैं इनको प्रायः सबही जानते हैं। विंशति और त्रिंशत् शब्दो के पहले एक-द्वि-त्रि-चतुर्-पञ्चन्-षष्-सप्तन्-अष्टन्-नवन् जोडकर उनतीस और उनतालीस तकको संख्यायें बना लेते हैं परन्तु इनके बनाने में न् गिर जाता है, द्वि का द्वा, त्रि का त्रयः और अष्टन् का अष्टा हो जाता है हम केवल इकत्तीस से उनतालीस तक की संख्या लेते हैं एकत्रिंशत्=इकतीस, द्वात्रिंशत्=बत्तीस, त्रयस्त्रिंशत्=तेतीस, चतुस्त्रिंशत्=चोंतोस, पञ्चत्रिंशत्=पैंतोस, षट्त्रिंशत्=छत्तीस, सप्तत्रिंशत्=सैंतीस, अष्टात्रिंशत्=अड़तीस, नवत्रिंशत्=उनतालीस, (=एकोन चत्वारिंशत्)॥ त्रि+त्रिंशत्=त्रयः+त्रिंशत्=त्रयस्त्रिंशत् (तकारके हेतु से विसर्गका परिवर्तन स् में हो गया) इसलिये तीन+तीस=तेतीस त्रयस्त्रिंशत् शब्द बन गया ( ) विंशति और त्रिंशत् इत्यादि संख्याओं से क्रमिक संख्या के बनाने में, विंशति का ति और एकत्रिंशत्, द्वात्रिंशत्, त्रयस्त्रिंशत् आदिको व्यंजन गिरा देनेसे बन जाती है जैसे विंशति=बीस से विंश (=बीसवां) और त्रिंशत् (=तीस) से त्रिंश (=तीसवां) बन गया इस प्रकार एकत्रिंश=इकतीसवां, द्वात्रिंश=बतीसवां त्रयस्त्रिंश=तेतीसवां बनगया॥ ( ) क्रमिक संख्याके बनानेका दूसरा नियम यह है कि सख्याके अन्तमे 'तम' प्रत्यय लगादेते है जैसे विंशति=बीस विंशतितम=बीसवां एक विंशति=इक्कीस, एकविंशतितम=इक्कीसवां, इत्यादि। त्रिंशत्=तीस, त्रिंशत्तम (=त्रिंशत्तमः) तीसवां॥ एकत्रिंशत्=इकतीस, एकत्रिंशत्तमः (=एकत्रिंशत्तमः)=इकतीसवां, द्वात्रिंशत्=बत्तीस, द्वात्रिंशत्तम (=द्वात्रिंशत्तमः) =बत्तीसवा,॥ त्रयस्त्रिंशत्=तेतीस, त्रयस्त्रिंशत्तमः (=त्रयस्त्रिंशत्तमः) तेतीसवां॥ ( ) 'त्रायस्त्रिंशाः' यह नाम इन देवो का सार्थक है क्योंकि ये तेतीसही होते हैं जैसा कि 'त्रयस्त्रिंशत्एव त्रायस्त्रिंशाः' (=तेतीस ही त्रायस्त्रिंश हैं—सर्वार्थसिद्धि वृत्ति पृष्ठ २३२ प्रथम संस्करण, और 'त्रयस्त्रिंशत् देवाः ते एव त्रायस्त्रिंशाः (=तेतीस देव हैं ते ही त्रायस्त्रिंश हैं—

तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक मुद्रित पृष्ठ ३७२, हस्तलिखित पृष्ठ २९६, वाक्योंसे प्रगट है। यह शब्द ऐसे बना है कि

(क) 'त्रयस्त्रिंशति जाताः त्रायस्त्रिंशाः'=त्रयस्त्रिंशति ७।। जाताः १।। त्रायस्त्रिंशाः १।। =तेतीसमें (जो) उत्पन्न हों (वे) त्रायस्त्रिंश (देव) हैं ॥

" त्रयस्त्रिंशति कहिये तेतीस संख्याके आधाररूप जे होंय ते त्रायस्त्रिंशाः तेतीस देव है " श्रीमान् विद्वद्वर्य स्वर्गीय पं० पन्नोलाल जी न्यायदिवाकर अनुवादित तत्त्वार्थराजवार्तिक अर्थात् तत्त्वार्थरत्नमालानामाग्रन्थ के हस्तलिखित पृष्ठ ९०८ से उद्धृत ॥ आधाररूप=आश्रयरूप, अधिकरणरूप ॥

तत्र जातः । अष्टाध्यायी,अध्याय चौथा पाद तीन सूत्र पचीसवां और जैनेन्द्र व्याकरण ३-३-१ दोनों व्याकरणोंमेंशब्दशः एक पाठ है ॥

=तत्र॥जातः १। (समर्थात् ५। अण्-आदयः १। घ-आदयः१। प्रत्ययाः १।)॥समर्थात्की अनुवृत्ति इसीअध्यायके पादप्रथम सूत्र ८२ वां(समर्थानांप्रथमाद्वा) से लीगई है। 'अण्-आदय'और'घ-आदय'की अनुवृत्तियें,इसी अध्यायके पाद प्रथम सूत्र ८३ वां (पाद दो सूत्र २९ वां इत्यादि) (क्रमसे प्राग्दिव्यतोऽण्, महेन्द्राद् घणौ च इत्यादि) से अवसर आवश्यकता, और अर्थके अनुकूल ली गई है ॥ प्रत्ययाःकी अनुवृत्ति अष्टाध्यायी, अध्याय तीसरा पाद प्रथम सूत्र पहले से ली गई है ॥ तत्र= वहांपर, तहांपर अर्थात् एक शब्द जो सप्तमी विभक्तिमें हो, और जो तात्पर्य वा अर्थमें वाक्यके अवशेष शब्द वा पदोंसे सम्बन्ध रखता हो।

'समर्थ' का यहां पर यह आशय है कि ' वाक्यमें वह शब्द वा पद जो वाक्यके अन्य पदों के साथ मिलकर तात्पर्य वा अर्थ से सम्बन्ध रखता हो ' अर्थात् वाक्यके विग्रह करने पर उस (वाक्य) के तात्पर्य को प्रगट कर सके ॥

इस लिये "तत्र जातः" सूत्रका संस्कृत अर्थ ऐसा हुआ कि "सप्तमी समर्थाज्जात इत्यर्थेऽणादयो घादयश्च प्रत्ययाः स्युः" भावार्थ ऐसा है कि

तत्र॥ जातः १। इति ॥ अर्थे ७। सप्तमी (विभक्ति अन्त) १।। =तहां उत्पन्न हुवा ऐसे अर्थमें सप्तमी है विभक्ति अन्त में (जिसके ऐसे)

समर्थात् ५। =समर्थपद (=वाक्यमें अन्य पद वा पदोंके साथ मिलकर तात्पर्य प्रकाशक शब्द वा पद) से अर्थात् ऐसे समर्थ पदके पश्चात्

अण्-आदयः १। च ॥ घ-आदयः १। प्रत्ययाः १। स्युः T =अण् आदिक और घ आदिक प्रत्यय हों (अन्य प्रत्ययों को छोड कर केवल अण् को लेते हैं। अण् प्रत्यका ण् इत्संज्ञक है इस लिये अण्=अ 'त्रयस्त्रिंशति' में अण् जोडने से त्रयस्त्रिंशति+अ ऐसा रूप बना

त्रयस्त्रिंशति ७।। जातः=त्रयस्त्रिंशत्+अ

अष्टाध्यायी ७-२-११७ (तद्धितेष्वचामादेः=तद्धितेषु, अचाम्, आदेः('ञ्णिति णिति' सूत्र ११५से और 'वृद्धिः' सूत्र ११४ से अनुवर्तता है)

=ञ्णिति. णिति तद्धतेषु अचाम् आदेः वृद्धिः=ञिति तद्धित (संज्ञक)प्रत्यय हो तो (अङ्ग शब्द के स्वरोंमे से प्रथम स्वरको वृद्धि हो)

।इसलिये ' त्रयस्त्रिंशत्+अ ' =त्रायस्त्रिंशत्+अ ॥ अब यहाँ पर अष्टाध्यायी , अध्याय चार पाद दूसरा सूत्र सातवां दृष्टं सामके नीचे यह वार्तिक है

कि "जाते चार्थेयोऽन्येन बाधितः पुनरण् विधीयते स वा डित्वदिति वक्तव्यम्'

च जाते अर्थे यः अण् अन्येन बाधितः पुनः विधीयते =और(च) जात अर्थमें जो अण् अन्य (सूत्र) से बाधित होकर फिर विहित हो या लगाया जावे
सः डित्वत् वा =वह (अण्) डित्वत् (ङ् हो इत् संज्ञक जिसका ऐसे प्रत्ययके सदृश) विकल्पसे
भवति इति वक्तव्यम् =हो (अर्थात् जो चाहे अण्को डित्वत् मानो या न मानो यह कहना चाहिये

भावार्थ चौथे अध्यायके प्रथम पादके तिरानवेवां सूत्रके वचनसे ,"अण्" प्रत्ययका अधिकार या प्रकरण 'तेन दीव्यति' इस (चौथे पाद के) सूत्रके पहिले पहिले है परन्तु 'अण्' इसी अध्यायके तीसरे पादके ग्यारहवां सूत्रमें बाधित हुआ है पश्चात् इसी पादके सोलहवां सूत्रसे विहित हुआ है या फिर लगाया गया है, फिर लागू किया गया है इस लिये इस अण को डित्वत् विकल्पसे मान सकते हैं।

अब प्रश्न यह है कि 'डित्वत् विकल्पसे मानने में क्या लाभ है (उत्तर) अष्टाध्यायीके छठे अध्यायके चौथे पादके एकसौ तेतालीसवां सूत्र (टेः डिति लोप') से यदि किसी शब्द के पश्चात् डित् प्रत्यय आवे तो उस शब्द के टि (भाग) का अर्थात् उस शब्द के अंत के स्वरका मय उसके पश्चात् के व्यंजन का (यदि कोई हो तो) लोप हो जाता है। जैनेन्द्र व्याकरणकी शब्दार्णव चन्द्रिका नामक लघुवृत्तिके चौथे अध्यायके चौथे पादके १४०वां सूत्र, डिति टे'(=टे डिति खः)=(टि संज्ञकस्य (=लोप)भवतिडिति (र =टि संज्ञाका डित् परे लोप हो जाता है अंमे शतभिषज्(जहां सें कड़ा तारा वैसों के समान है अश्विनी से चोवीसवां नक्षत्र जिसके सौ तारे हैं और त्रयस्त्रिंशत् =तैंतीस इन दोनों शब्दों के उपर्युक्त नियम से दो दो रूप तब 'जात'अर्थ में इस प्रकार बन जाते हैं कि शतभिषजि जात (जो वहां शतभिषज में उत्पन्न हो) सो शतभिषज+अण् =शातभिषज (यदि अण को डित्वत् न मानें तो रूप होगा) और (यदि अण् को डित्वत् मानें तो अज् का लोप हो कर शातभिष, जिनके प्रथमाविभक्ति एक वचन पुल्लिंग रूप 'शातभिषजः और शातभिष होंगे (देखो सिद्धान्त कौमुदीपर तत्वबोधिनी व्याख्या के तद्धित के रक्ताद्यर्थका प्रकरणका जहां शातभिषः और शातभिषज दोनों शब्द सिद्ध किये हैं त्रयस्त्रिंशति जातः =जो तेंतीस में उत्पन्न हो सो त्रयस्त्रिंशत्+अण् =त्रायस्त्रिंशत (यदि अण् को डित्वत् न मानें तो) और त्रायस्त्रिंश (यदि अण् को डित्वत् माने तो अत् का लोप होने पर) रूप होंगे जिनके प्रथमाविभक्ति एक वचन और प्रथमाविभक्ति बहुवचन क्रम से त्रायस्त्रिंशतः त्रायस्त्रिंशताः त्रायस्त्रिंशः 'त्रायस्त्रिंशाः' होंगे इस लिये त्रायस्त्रिंशत. और त्रायस्त्रिंशः दो शुद्ध हैं। और त्रायस्त्रिंशत् सर्वथा अशुद्ध है। पं० पन्ना-लाल जी न्यायदिवाकार अनुवादित तत्वार्थ राजवार्तिक लिखित पृष्ठ ९०८ में 'त्रायस्त्रिंशत शब्द तैसेही राजामें इन्द्रनिके मंत्री और पुरोहित के स्थानीय 'त्रायस्त्रिंशत' कहिये तेतीस देव होय हैं। इस वाक्य में आया है।

इत. ३।१।८२ यहां पर 'इत्' ऐसा एक वचनांत शब्द का ही उदेश्यउपर्युक्त था अथवा तद्धिता. अष्टाध्यायी अध्याय चार पादएक सूत्र ७६ के तद्धित

शब्द का ही प्रयोग उचित था फिर हृतः (वा तद्धिताः) इस बहुवचनांत शब्द का जो उल्लेख किया गया है उसकी सामर्थ्य से स्वार्थ मे भी अण् आदि प्रत्ययोंका विधान माना गया है। हमारे यहां के व्याकरणों मे 'स्वार्थके ऽण्' वचन प्रसिद्ध है और अन्य व्याकरणों में 'स्वार्थेऽण्' ऐसा वाक्य प्रसिद्ध है त्रायस्त्रिंश तेतीस देवता (जो देव शब्द के विना अर्थ के परिवर्तनके निकला है स्त्रीलिंग है) ओंमे से एक देवता ऐसा अर्थ है। और यह देवता शब्द प्रज्ञादि गण का है इसीलिये यहां पर 'प्रज्ञादिभ्योऽण्' = प्रज्ञादिक छत्तीस शब्दों के पश्चात् अपने अर्थ में अण् प्रत्यय हो। शाकटायन शब्दानुशासन ३।४।१३२ सूत्र लगा है अथवा प्रज्ञादिभ्य (जैनेन्द्र व्याकरण ४-२-५२ सूत्र) = प्रज्ञादिभ्यः (अण्), इस अण् की अनुवृत्ति पचासवां सूत्र 'कर्मणो अण्" से आती है। पभ्योऽण स्याद्वा स्वार्थे = स्वार्थ में इन प्रज्ञादि शब्दों से परे विकल्पकरि अण् प्रत्यय हो। अथवा "प्रज्ञादिभ्यश्च" (प्रज्ञ इत्येवमादिभ्यः प्रातिपादिकेभ्यः स्वार्थेण् प्रत्ययोभवति = प्रज्ञ इत्यादिक प्रातिपदकों से परेस्वार्थ में अण् प्रत्यय हो। अष्टाध्यायी ५।४।३८ सूत्र लगता है। प्रज्ञ-आदिभ्यः च (अण्),इस सूत्रमें "अण् की अनुवृत्ति तद्युक्तात्कर्मणोऽण्" छतीसवां सूत्र से आती है। स्वार्थ की अनुवृत्ति तीसरे सूत्र "स्थूलादिभ्य प्रकार वचनेकन्" से ज्ञापकरूपमें निकलती है। यह अण् किसी दूसरे प्रत्यय से बाधित नहीं हुआ है। क्योंकि इस छत्तीवें सूत्र के "अण्" की अनुवृत्ति सैतीसवां और अड़तीसवां दोनों सूत्रों में है इसलिये यह अण् विकल्पकरि 'डित्वत्' हमारी समझ में है और डित्वत् होने मे पूर्वोक्त कथनानुसार त्रायस्त्रिंशः और त्रायास्त्रशतः दो रूप बनेगे और त्रायस्त्रित् अर्थात् हलन्तत काररूप वाला शब्द कदापि नहीं बनेगा। वह अशुद्ध सर्वप्रकार से है। इसका विग्रह तत्वार्थ राजवार्तिक पृष्ठ १५१ और सर्वार्थसिद्धि वृत्ति पृष्ठ २३२ (द्वितीय संस्करण पृष्ट १३६) में जहां स्वार्थमें "अण्" प्रत्यय किया है ऐसा है त्रयस्त्रिंशदेव त्रायस्त्रिंशाः = त्रयस्त्रिंशत् एव त्रायस्त्रिंशाः = तेतीस ही त्रायस्त्रिंश है अर्थात् "त्रयस्त्रिंशत् एव कहिय तेतीसही त्रायस्त्रिंश हैं,, पं० पन्नालाल न्यायदिवाकर और श्लोकवार्तिक मुद्रित पृष्ठ ३७२ मे इसका विग्रह ऐसा है कि "त्रयस्त्रिंशद्देवा एव त्रायस्त्रिंशा" 'स्वार्थिकोऽपिहृत्' इति बहुत्व निर्देशात् त्रयस्त्रिंशत् देवा एव कहिये तेतीस देव ही त्रायस्त्रिंश है। ऐसे हृत. बहुवचनांत निर्देश वा उपदेशसे स्वार्थ में भी (अण् तद्धित प्रत्यय आता) है इस समस्त उपर्युक्त व्याख्या का सारांश यह निकला कि त्रयस्त्रिंशत् (-तेतीस) (२) त्रयस्त्रिंश = तेतीसवां (३) त्रयस्त्रिंशत्तम = तेतीसवां (४) त्रायस्त्रिंशः तेतीस नियत देवों में से एक (५) त्रायस्त्रिंशाः तेतीस नियमित देव (६) त्रायस्त्रिंशतः तेतीस नियत देवों में से एक (७) त्रायास्त्रशता. तेतीस नियमित देव ये सातों शब्द ठीक और शुद्ध है परन्तु त्रायस्त्रिंशत् शब्द सर्वथा अशुद्ध है।

(१) त्रयस्त्रिंशदेव त्रायस्त्रिंशाः (= त्रयस्त्रिंशत् एव त्रायस्त्रिंशाः)॥ तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ १५१ में इस वाक्य के संबंध में ऐसा उल्लेख है कि "स्वार्थ के ऽण्, त्रयस्त्रिंशदेव त्रायस्त्रिंशा इति हृत इति बहुत्व निर्देशादंतमाद्वित्" अपने अर्थ को द्योतक करते हुये (शब्दमें) अण् (= अ) प्रत्यय आता है और तेतीस ही त्रायस्त्रिंश हैं ऐसा बना अर्थात् त्रयस्त्रिंशत् शब्द में अपने अर्थ मे अण् लगाने से 'त्रायस्त्रिंश' बना॥ (शंका) त्रयस्त्रिंशत् + अण् = त्रायस्त्रिंशत बनना चाहिये क्योंकि अण् डित् वत् हुआ नहीं फिर 'अत्' का लोप न हुआ॥ अत् को 'टि' कहते है (६-४-१४३, १-१-६४) (देखो उपर्युक्त टिप्पणी पृष्ठ ८-११ तक)

अन्यदेवासाधारणाणिमादिगुणयोगादिन्दन्तीति १ इन्द्राः ॥ आज्ञाश्वैर्यवर्जितं यत्समानायुर्वीर्यपरिवार-भोगोपभोग तत्समानं, तस्मिन्समाने भवाः २ सामानिकाः । महत्तराः पितृगुरूपाध्यायतुल्याः ॥ मन्त्रिपुरोहित-स्थानीयाः ३ त्रायस्त्रिंशाः त्रयस्त्रिंशदेवत्रायस्त्रिंशाः

सूत्रार्थ—इन्द्र-सामानिक-त्रायस्त्रिंश-पारिषद्- =इन्द्र, सामानिक, त्रायस्त्रिंश, पारिषद,
आत्मरक्ष-लोकपाल-अनीक-प्रकीर्णक-आभियोग्य =आत्मरक्ष, लोकपाल, अनीक, प्रकीर्णक, आभियोग
किल्विषिकाः,। च* एकशः* देवनिकायेषु,। =और किल्विषिक एक एक देवों के समूह में
(देवाःदशविधा* भवन्तिT) =दश दश प्रकार के देव होते हैं अर्थात् (१) देवों का राजा (२) आज्ञा और ऐश्वर्य रहित अन्य बातों में इन्द्र के समान हों (३) मंत्री और पुरोहित के समान तेतीस देव (४) सभासद (५) शरीर रक्षक (६) कोटपाल वा गढ़पाल (७) पियादे आदिक सात प्रकार की सैना (८) प्रजाके सदृश देव (९) सेवकों के स्थानापन्न वा ठौर (१०) नीच अधम चांडालों के सदृश देव ये एक एक देवों के समूह में दश दश प्रकार के देव होते हैं।

वृत्त्यनुवादः—अन्य-देव-असाधारण-अणिमादि-गुण- =अन्य देवों से असमान्य वा विशेष अणिमादिक ऋद्धिरूप गुणों के
योगात्,। इन्दन्तिT =संयोग से जो ऐश्वर्य करिवर्ते हैं तथा ऐश्वर्य को प्राप्त हुये हैं
इति(१) इन्द्राः,। आज्ञा-ऐश्वर्य-वर्जितं,॥ यत्,॥ समान- =ऐसे (१) इन्द्र हैं ॥ आज्ञा और ऐश्वर्य रहित जो तुल्य वा बराबर
आयुर्-वीर्य- परिवार-भोग-उपभोगादि- =जीवनकाल, बल, परिवारभोग और उपभोगादिक हैं।
तत्,॥ समानं,॥ तस्मिन्,॥ =वह समान हैं, तिस (आयु, बल, परिवार, भोग, उपभोगादिक) में
समाने,॥ भवाः (२) सामानिकाः,। महत्तराः,। =समान (इन्द्रके) हैं (२) वे सामानिक हैं(वे सामानिक) बड़े वा महत्वमहिमावाले हैं
पितृ-गुरु-उपाध्याय-तुल्याः,। ॥ मन्त्रि-पुरोहित- =(और इन्द्र के) पिता, गुरु, उपाध्याय के सदृश हैं॥ (इन्द्रके) मन्त्री पुरोहित के
स्थानीयाः,। (३)त्रायस्त्रिंशाः,। त्रयस्त्रिंशत्,। एव त्रायस्त्रिंशाः =स्थानापन्न है। वे त्रायस्त्रिंश है, तेतीस ही त्रायस्त्रिंश हैं॥

वयस्यपीठमर्दसदृशाः परिषदि भवाः ४ पारिषदाः ॥ ५ आत्मरक्षाः शिरोरक्षोपमानाः ॥ अर्थचरारक्षकसमानाः ६ लोकपालाः। लोकं पालयन्तीति लोकपालाः ॥ पदात्यादीनि सप्त ७ अनीकानि दण्डस्थानीयानि ॥ ८ प्रकीर्णकाः पौरजानपदकल्पाः ॥

वयस्य-पीठमर्द- =मित्र (=वयस्य) और संधानकारी अथवा पिछाड़ी दाव बैठने वालोंके

सदृशाः३। परिषदि१॥ भवाः३। (४) पारिषदाः३। ॥ =सरीखे सभा में हो (४) वे पारिषद हैं ॥

(५) शिरस्-रक्षा-उपमानाः३। आत्मरक्षाः ३। ॥ =शिरकी रक्षा करने वालो के समान वा सदृश (५) आत्मरक्षक हैं। अर्थात् इन्द्र के शुभ शस्त्र धारी अंग की रक्षा करने वालों के सदृश हैं ॥

अर्थ-चर- =(किसी) वस्तु-बात-विषय अथवा प्रयोजनके सन्धानी, खोजिया वा खोजी (=चर)

आ-रक्षक-समानाः३। (६) लोकपालाः३। =और सर्वतः रक्षा करने वालो के (आ-रक्षक) सदृश (६) लोकपाल हैं

लोकं २। पालयन्तिT इति लोकपालाः३। ॥ पदाति- =लोक को पालते हैं अथवा रक्षा करते हैं ऐसे लोकपाल हैं ॥ पियादे (=पदाति)

आदीनि३॥ सप्त३॥ दण्ड-स्थानीयानि३॥ ॥ ७ अनीकानि३॥ =आदिक सात (प्रकार की) सैना (=दण्ड) के स्थानापन्न (७) अनीक हैं। अर्थात् पियादे, अश्व, वृषभ, रथ, हस्ती, गंधर्व और नर्त्तगी इन सात प्रकार की सैनाओं के रूप धारण करने वाले देव हैं वे अनीक वा सैना के ठौर हैं ॥

(८) प्रकीर्णकाः३। पौर-जानपद- =(८) प्रकीर्णक नगरवासी (=और) तथा देश से आये हुओं के (=जानपद)

कल्पाः३। ॥ =समान हैं अर्थात् प्रकीर्णक देव, इन्द्रके पुरवासी तथा राज्यकी प्रजाके सदृश हैं ॥

(१) परिषद् स्त्रीलिंग है अर्थ सभा वा धर्म सभा है परन्तु पारिषद और परिषद और परिषद्य का अर्थ सभासद के हैं।

(२) अङ्ग-रक्षा-उपमाना ३। =शरीर की रक्षा करने वालों के समान हैं। यद्यपि देवोंमें घातादिक नहीं है तथापि ऋद्धि विभवकी महिमा के लिये इस प्रकार के भेद हैं॥

अर्थ-उत्पादक-कोट-पाल-सदृशाः३। =प्रयोजन के निकालने वाले और गढ़ की रक्षा करनेवालो के समान हैं

सादृश्य अर्थ में यहां "कल्पप्" प्रत्यय है जैसे "पितृ कल्प" पिता के समान "गुरु कल्प" गुरु के समान इसी प्रकार "पौर जानपदकल्पाः" नगरवासी और देशसे आये हुओं के समान ॥ "कल्प" शब्द के अर्थ नीचे लिखते हैं ॥

(१) "संवर्त्तः प्रलयः कल्पः क्षयः कल्पान्त इत्यपि" अमर कोश काल वर्ग श्लोक २२ संवर्त्त, प्रलय, कल्प, क्षय, कल्पांत, ये पांच (पु०) नाम प्रलयके हैं ॥

(२) "कल्पे विधि क्रमौ" कल्पं, विधि क्रम ये तीन (पु०)नाम नियोग शास्त्र के हैं अमरकोशब्रह्मवर्ग ३९ श्लोक का अंत भाग ॥

(३) अभ्रेष न्याय कल्पास्तु देशरूप समञ्जसम्" अभ्रेष (पु०) न्याय (पु०) कल्प (पु०) देशरूप (न०) समंजस (न०) ये नाम नीतिके हैं क्षत्रिय वर्ग २४ ॥

अन्यदेवासाधारणाणिमादिगुणयोगादिन्दन्तीति १ इन्द्राः ॥ आज्ञाश्चैर्यवर्जितं यत्समानायुर्वीर्यपरिवार-भोगोपभोग तत्समानं, तस्मिन्समाने भवाः २ सामानिकाः । महत्तराः पितृगुरूपाध्यायतुल्या ॥ मन्त्रिपुरोहित-स्थानीयाः ३ त्रायस्त्रिंशाः त्रयस्त्रिंशदेवत्रायस्त्रिंशाः

सूत्रार्थ—इन्द्र-सामानिक-त्रायस्त्रिंश-पारिषद्- =इन्द्र, सामानिक, त्रायस्त्रिंश, पारिषद,
आत्मरक्ष-लोकपाल-अनीक-प्रकीर्णक-आभियोग्य =आत्मरक्ष, लोकपाल, अनीक, प्रकीर्णक, आभियोग
किल्विषिकाः₁। च* ऐकशः* देवनिकायेषु₂। =और किल्विषिक एक एक देवों के समूह में
(देवाःदशविधा* भवन्तिT) =दश दश प्रकार के देव होते हैं अर्थात् (१) देवों का राजा (२) आज्ञा और ऐश्वर्य रहित अन्य बातों में इन्द्र के समान हों (३) मंत्री और पिरोहित के समान तेतीस देव (४) सभासद (५) शरीर रक्षक (६) कोटपाल वा गढ़पाल (७) पियादे आदिक सात प्रकार की सैना (८) प्रजाके सदृश देव (९) सेवकों के स्थानापन्न वा ठौर (१०) नीच अधम चांडालों के सदृश देव ये एक एक देवों के समूह में दश दश प्रकार के देव होते हैं।

वृत्त्यनुवादः—अन्य-देव-असाधारण-अणिमादि-गुण- =अन्य देवों से असमान्य वा विशेष अणिमादिक ऋद्धिरूप गुणों के
योगात्₅। इन्दन्तिT =संयोग से जो ऐश्वर्य करिवर्ते हैं तथा ऐश्वर्य को प्राप्त हुये हैं
इति(१) इन्द्राः₁। आज्ञा-ऐश्वर्य-वर्जितं₁॥। यत्₁॥। समान- =ऐसे (१) इन्द्र हैं ॥ आज्ञा और ऐश्वर्य रहित जो तुल्य वा बराबर
आयुर्-वीर्य- परिवार-भोग-उपभोगादि- =जीवनकाल, वल, परिवारभोग और उपभोगादिक हैं।
तत्₁॥। समानं₁॥। तस्मिन्₇॥। =वह समान हैं, तिस (आयु, वल, परिवार, भोग, उपभोगादिक) में
समाने₇॥। भवाः (२) सामानिकाः₁। महत्तराः₁। =समान (इन्द्रके) हैं (२) वे सामानिक हैं(वे सामानिक) वड़े वा महत्वमहिमावाले हैं
पितृ-गुरू-उपाध्याय-तुल्याः₁। ॥ मन्त्रि-पुरोहित- =(और इन्द्र के) पिता, गुरु, उपाध्याय के सदृश हैं॥ (इन्द्रके) मन्त्री पुरोहित के
स्थानीयाः₁। (३)त्रायस्त्रिंशाः₁। त्रयस्त्रिंशत्₁। एव त्रायस्त्रिंशाः =स्थानापन्न हैं। वे त्रायस्त्रिंश हैं, तेतीस ही त्रायस्त्रिंश हैं॥

वयस्यपीठमर्दसदृशाः परिषदि भवाः ४ पारिषदाः ॥ ५ आत्मरक्षाः शिरोरक्षोपमानाः ॥ अर्थचरा-रक्षकसमानाः ६ लोकपालाः । लोकं पालयन्तीति लोकपालाः ॥ पदात्यादीनि सप्त ७ अनीकानि दण्डस्थानीयानि ॥ ८ प्रकीर्णकाः पौरजानपदकल्पाः ॥

वयस्य-पीठमर्द-	=मित्र (=वयस्य) और संधानकारी अथवा पिछाड़ी दाव बैठने वालोके
सदृशाः। परिषदि॥ भवाः। (४) पारिषदाः। ॥	=सरीखे सभा में हो (४) वे पारिषद हैं ॥
(५) शिरस्-रक्षा-उपमानाः। आत्मरक्षाः । ॥	=शिरकी रक्षा करने वालों के समान वा सदृश (५) आत्मरक्षक हैं । अर्थात् इन्द्र के शुभ शस्त्र धारी अंग की रक्षा करने वालो के सदृश हैं ॥
अर्थ-चर-	=(किसी) वस्तु-बात-विषय अथवा प्रयोजनके सन्धानी, खोजिया वा खोजी (=चर)
आ-रक्षक-समानाः। (६) लोकपालाः।	=और सर्वतः रक्षा करने वालों के (आ-रक्षक) सदृश (६) लोकपाल हैं
लोकं। पालयन्तिT इति लोकपालाः। ॥ पदाति-	=लोक को पालते हैं अथवा रक्षा करते हैं ऐसे लोकपाल हैं ॥ पियादे (=पदाति)
आदीनि॥ सप्त॥ दण्ड-स्थानीयानि॥ ॥ ७ अनीकानि॥	=आदिक सात (प्रकार की) सैना (=दण्ड) के स्थानापन्न (७) अनीक हैं। अर्थात् पियादे, अश्व, वृषभ, रथ, हस्ती, गंधर्व और नर्त्तगी इन सात प्रकार की सैनाओ के रूप धारण करने वाले देव हैं वे अनीक वा सैना के ठौर हैं ॥
(८) प्रकीर्णकाः। पौर-जानपद-	=(८) प्रकीर्णक नगरवासी (=और) तथा देश से आये हुओं के (=जानपद)
कल्पाः। ॥	=समान हैं अर्थात् प्रकीर्णक देव, इन्द्रके पुरवासी तथा राज्यकी प्रजाके सदृश हैं ॥

(१) परिषद् स्त्रीलिंग है अर्थ सभा वा धर्म सभा है परन्तु पारिषद और परिषद और परिषद्य का अर्थ सभासद के है।

(२) अङ्ग-रक्षा-उपमाना।	=शरीर की रक्षा करने वालों के समान है। यद्यपि देवोंमें घातादिक नही है तथापि ऋद्धि विभवकी महिमा के लिये इस प्रकार क भेद हैं ॥
अर्थ-उत्पादक-कोट्ट-पाल-सदृशाः।	=प्रयोजन के निकालने वाले और गढ़ की रक्षा करनेवालो के समान है

सादृश्य अर्थ मे यहां "कल्पप्" प्रत्यय है जैसे "पितृ कल्प" पिता के समान "गुरु कल्प" गुरु के समान इसी प्रकार "पौर जानपदकल्पाः" नगरवासी और देशसे आये हुओं के समान ॥ "कल्प" शब्द के अर्थ नीचे लिखते हैं ॥

(१) "संवर्त्तः प्रलयः कल्पः क्षयः कल्पान्त इत्यपि" अमर कोश काल वर्ग श्लोक २२ संवर्त्त, प्रलय, कल्प, क्षय, कल्पांत, ये पांच (पु०) नाम प्रलयके हैं ॥

(२) "कल्पे विधि क्रमौ" कल्पं, विधि क्रम ये तीन (पु०)नाम नियोग शास्त्र के हैं अमरकोशब्रह्मवर्ग ३९का श्लोक का अंत भाग ॥

(३) अभ्रेष न्याय कल्पास्तु देशरूप समञ्जसम्" अभ्रेष (पु०) न्याय (पु०) कल्प (पु०) देशरूप (न०) समंजस (न०) ये नाम नीतिके हैं क्षत्रिय वर्ग २४ ॥

६ आभियोग्या दाससमाना वाहनादिकर्माणि प्रवृत्ता अन्तेवासिस्थानीयाः ॥ किल्बिषं पापं येषामस्ति ते १० किल्बिषिकाः ॥ एकैकस्य निकायस्य एकश एते इन्द्रादयो दश विकल्पाश्चतुर्षु निकायेषूत्सर्गेण प्रसक्तास्ततोऽपवादार्थमाह—

॥ त्रायस्त्रिंशलोकपालवर्ज्या व्यन्तरज्योतिष्काः ॥५॥

(९) आभियोग्याः ३। दास-समानाः ३।	=(९) आभियोग्य (वे देव हैं जो) सेवकों और किंकरों के तुल्य
वाहन-आदि कर्मणि ७॥ प्रवृत्ताः १। अन्ते-	=(हस्ति घोड़े इत्यादि) वाहनादिक कार्य में प्रवर्तनेवाले हैं।(नगरके) अन्तमें
वासि-स्थानीयाः १॥ किल्बिषं १॥ पापं १॥	=रहनेवालों को स्थानापन्न (और) अपराध (=किल्बिष) पातक (=पापं)
येषाम् ६। अस्ति ते १। १० किल्बिषिकाः १।	=जिनके (उदय) है ते १० किल्बिष हैं अर्थात् पापकर्म के उदय सहित नीच जाति के देव चंडालों के समान नगर से बाहर रहने वाले और दूर ही खड़े होने वाले ऐसे किल्बिष्क देव हैं ॥ और जिनकी गणना क्रममें दशवीं है
एक-एकस्य ६। निकायस्य ६। एकशः ❀	=एक एक समुदाय के क्रम से (=एकशः)
एते १। इन्द्रादयः १। दश १ विकल्पा १। चतुर्षु ७।	= ये इन्द्रादिक दश भेद चारों
निकायेषु ७। उत्सर्गेण ३। प्रसक्ताः १।	=समूहों में सामान्यपने से (इस सूत्र के अनुसार) प्राप्त हैं (प्रसक्ता)
ततः ❀ अपवाद-अर्थं २॥ आह T	=इस कारण (=ततस्)अपवाद के लिये (आचार्य अगला सूत्रमें)कहते हैं कि

(१) सूत्रम्— त्रायस्त्रिंशलोकपालवर्ज्या व्यन्तरज्योतिष्काः ॥५॥

=त्रायस्त्रिंशलोकपालवर्ज्या व्यन्तरज्योतिष्काः (इतरे अष्टौ विकल्पा भवन्ति) ॥८॥

सूत्रार्थः—त्रायस्त्रिंश-लोकपाल-वर्ज्याः १। व्यन्तर-	=त्रायस्त्रिंशनामक तेतीस देव और लोकपाल को छोड़ कर व्यन्तर देवों के
ज्योतिष्काः १। इतरे १। अष्टौ १। विकल्पा १। भवन्ति T	=तथा ज्योतिष्क देवों के अन्य आठ भेद होते हैं अर्थात् चार निकायोंमेंसे व्यन्तर तथा ज्योतिष्क इन दो निकायों में इंद्र, सामानिक पारिषद, आत्मरक्ष, अनीक प्रकीर्णक, आभियोग्य और किल्बिषिक ये आठ ही भेद होते हैं।

(१) इस सूत्र का श्वेताम्बर आम्नाय के सभाष्य में तथा भाष्यानुसारिणितत्वार्थटीका (सिद्धसेन सूरि रचित) में और हमारे यहाँ पाठ अर्थ एक है।

॥ अथ तेषु निकायेषु व्यन्तरेषु ज्योतिष्केषु च त्रायस्त्रिंशलोकपालांश्च वर्जयित्वा इतरेअष्टौ विकल्पा द्रष्टव्या ः॥ अथ तेषु निकायेषु किमेकैक इन्द्र उतान्यः प्रतिनियमः कश्चिदस्तीत्यत आह—

॥ पूर्वयोर्द्वीन्द्राः ।६।

वृत्त्यनुवाद— व्यन्तरेषु ७। ज्योतिष्केषु ७। च ॐ =व्यंन्तरों और (=च) ज्योतिष्कविषै

आयस्त्रिंशान् २। लोक-पालान् २। च ॐ वर्जयित्वा÷इतरे १। =त्रायत्रिंशों को और लोकपालों को छोड़कर अन्य

अष्टौ १। =आठ(इन्द्र-सामानिक-पारिषद, आत्मरक्ष-अनीक-प्रकीर्णक-आभियोग्य, किल्विषिक,

विकल्पाः १। द्रष्टव्याः १। अथ ॐ तेषु ७। निकायेषु ७। किम् ॐ =भेद जानना चाहिये। आगे (=अथ) तिन समूहों में क्या

एक-एकः १। इन्द्रः १। उत ॐ अन्य १। एक एक इन्द्र है ।अथवा(=उत)दूसरा

प्रतिनियमः १। कश्चित् ॐ अस्ति T इति ॐ अतः ॐ आह T=कोई नियम है इसलिये (आचार्य अगले सूत्रमें) कहते है कि

सूत्रम्— पूर्वयोर्द्वीन्द्रा ॥६॥ पूर्वयोनिकायाद्वीन्द्रा ॥६॥

सूत्रार्थः— पूर्वयोः ७। निकायोः ७। द्वी-इन्द्राः १। =पहिले दो समुदाय (भवनवासी और व्यन्तरों) मेंप्रत्येक भेद के दो दो इन्द्र हैं अर्थात् पूर्वोक्त देवों के चार समुदायों में से पहिले दो भवनवासी देवों के प्रत्येक भेद में (देखो सूत्र १०) दो २ इन्द्र हैं और व्यन्तर देवों के प्रत्येक भेद में

---

(२) जब तवर्ग से ल पश्चात् आवे तो तवर्ग को ल् ही हो जैसे तत्+लय = तल्+लय = तल्लय परन्तु नकार को अनुनासिक ही लकार हो जैसे त्रायस्त्रिंशान्+लोकपालान्=त्रायस्त्रिंशांल्लोकपालान्। (२) जब अंतिम न् के उत्तर में च् छ् ' त-थ्। और ट् ठ् में से कोई आवे तो वह न् अनुस्वार और विसर्ग में पलट जाता है। जैसे लोकपालन् च = लोकपालाः च यदि विसर्ग के पश्चात् च् अथवा छ् आवे तो वह विसर्ग श् में पलट जाता है इस कारण लोकपालान् = लोकपालांश्च हुआ जैसे कि वृत्ति में है।

(३) श्वेताम्बर आम्नाय के सभाष्यतत्वार्थाधिगमसूत्र ' का तथा श्री सिद्धसेन रचित भाष्यानुसारिणितत्वार्थटीका का और अधिकतम हमारे यहाँ की पुस्तको का पाठ इस सूत्र का एक है अर्थ सर्वत्र एक है। ज्ञानचन्द्र जी मुद्रित तत्वार्थ सूत्र में "पूर्वयोर्द्वीन्द्राः" ऐसा पाठ है यह भी पाठ "अचोरहाभ्याम् द्वेवा" सूत्र से ठीक है। (४) पूर्वयोः निकायोः प्रत्येक शब्द षष्ठी दो वचन में भी हो सका है उस समय अर्थ ऐसा होगा कि पहिले दो समुदाय (भवनवासी और व्यन्तरों) के इत्यादि। (५) द्वी-इन्द्रा = प्रत्येक भेद के दो दो इन्द्र हैं (यह अर्थ कैसे हुआ देखो वृत्ति में यह वाक्य अन्तर्नीत वीप्सा है।)

पूर्वयोर्निकाययोर्भवनवासिव्यन्तरनिकाययोः ॥ कथं द्वितीयस्य पूर्वत्वम् ? सामीप्यात्पूर्वत्वमुपचर्योक्तम् ॥ द्वीन्द्रा इति अन्तर्नीतवीप्सार्थः । द्वौ द्वौ इन्द्रौ येषां ते द्वीन्द्रा इति । यथा सप्तपर्णोऽष्टापद इति ॥ तद्यथा—भवनवासिषु तावदसुरकुमाराणां द्वाविन्द्रौ चमरो

(देखो सूत्र ११) दो दो इन्द्र हैं इस प्रकार भवनवासी देवोंमें बीस इन्द्र हैं और व्यन्तर देवोंके आठ भेदोंमें सोलह इन्द्र हैं सर्व छत्तीस इन्द्र हैं ॥

वृत्त्यनुवाद— पूर्वयोः १। निकाययोः ३। भवनवासि- =पहिले दो निकायोंमें भवनवासी
व्यन्तर-निकाययोः ३। =और व्यन्तरोंके निकायों विषैं (प्रत्येक भेदके दो दो इन्द्र) हैं
कथं * द्वितीयस्य ३। पूर्वत्वम् १॥ =(प्रश्न) दूसरे (व्यन्तरनिकाय) के कैसे प्रथमपना अथवा पूर्वपना है ॥
सामीप्यात् ५॥ पूर्वत्वम् १॥ उपचर्य-उक्तम् १॥ =निकटता (के कारण)से पूर्वपना उपचारकरि अथवा कल्पनाकरि कहा गया है ॥
द्वि-इन्द्राः १। इति * अन्तर्नीत-वीप्सा- =''द्वि-इन्द्रा''ऐसा(वाक्य)अन्तर्प्राप्त वा अन्तरगर्भित क्रमसे प्रत्येक(=वीप्सा) भेदके
अर्थः १। =लिये(=अर्थ)है अर्थात् दश भेद(देखो सूत्र १०)भवनवासी निकायके हैं सो क्रमसे प्रत्येक भेदके दो दो इन्द्र हैं और व्यन्तरनिकायके आठ भेद (देखो सूत्र ११) हैं सो प्रत्येक भेदके दो दो इन्द्र हैं इस प्रकार अभ्यन्तरगत वीप्सा के अर्थ सूत्रमें ''द्वि-इन्द्रा'' लाये हैं ॥
द्वौ १। द्वौ १। इन्द्रौ १। येषां ६। ते १। द्वि-इन्द्रा १। इति * =दो दो इन्द्र जिन (असुरों) के हैं ते ''द्वि इन्द्रा'' है
यथा सप्तपर्णः १। =जैसे सतौनेका वृक्ष अर्थात् जिस (वृक्ष) के प्रति पत्ते के साथ सात सात पत्ते हो।
अष्टापदः १। इति * तद्यथा-भवनवासिषु ७। =और अष्टापद अर्थात् प्रयेक के आठ आठ पद हो है ॥ जैसे भवनवासियो मे
तावत् * असुरकुमाराणां ६। दौ १। इन्द्रौ १। चमरः १। =तो (=तावत्) असुर कुमारो के दो इन्द्र चमर

१—वीप्सा शब्द स्त्रीलिंग है अमरकोश का संक्षेप गोले महाशय ने श्लोक बद्ध किया है जो अमरसार के नाम से प्रसिद्ध है जिसकी आवृत्ति १८८८ के पृष्ठ ३७१ मे वीप्सा=क्रमसे प्रत्येक,ऐसा अर्थ लिखा है ॥ वीप्सा=वार बार उसी अर्थ में शब्दोंका दुहराना ॥ देखो वैद्य कोश पृष्ठ ६८४ ॥

वैरोचनश्च । नागकुमाराणां धरणो भूतानन्दश्च । विद्युत्कुमाराणां हरिसिंहो हरिकान्तश्च । सुपर्णकुमाराणां वेणुदेवो वेणुधारी च । अग्निकुमाराणां अग्निशिखोऽग्निमाणवश्च । वातकुमाराणां वैलम्बः प्रभञ्जनश्च । स्तनितकुमाराणां सुघोषो महाघोषश्च । उदधिकुमाराणां जलकान्तो जलप्रभश्च । द्वीपकुमाराणां पूर्णो विशिष्टश्च । दिक्कुमाराणां अमितगतिरमितवाहनश्चेति ॥ व्यन्तरेष्वपि किन्नराणां द्वाविन्द्रौ किन्नरः किम्पुरुषश्च । किम्पुरुषाणां सत्पुरुषो महापुरुषश्चेति । महोरगाणां अतिकायो महाकायश्च ।

वैरोचनः १/१। च *। नागकुमाराणां ६/३। धरणः १/१।	=और (च) वैरोचन हैं नागकुमारोंके धरण
भूतानन्दः १/१। च *। विद्युतकुमाराणां ६/३। हरिसिंहः १/१।	=और भूतानन्द (दो इन्द्र) हैं। विद्युतकुमारोंके हरिसिंह
हरिकान्तः १/१। च *। सुपर्णकुमाराणां ६/३। वेणुदेवः १/१।	=और हरिकान्त (दो इन्द्र) हैं। सुपर्णकुमारोंके वेणुदेव
वेणुधारी १/१। च *। अग्निकुमाराणां ६/३। अग्निशिखः १/१।	=और वेणुधारी (दो इन्द्र) हैं। अग्निकुमारोंके अग्निशिख
अग्निमाणवः १/१। च *। वातकुमाराणां ६/३। वैलम्बः १/१।	=और (=च) अग्निमाण (ये दो इन्द्र) हैं। वातकुमारोंके वैलम्ब
प्रभञ्जनः १/१। च *। स्तनित-कुमाराणां ६/३। सुघोषः १/१।	=और (=च) प्रभञ्जन (ये दो इन्द्र) हैं। स्तनित कुमारोंके सुघोष
महाघोषः १/१। च *। उदधिकुमाराणां ६/३। जलकान्तः १/१।	=और (=च) महाघोष (ये दो इन्द्र) हैं। उदधि कुमारोंके जलकान्त
जलप्रभः १/१। च *। द्वीपकुमाराणां ६/३। पूर्णः १/१।	=और (=च) जलप्रभः (ये दो इन्द्र) हैं। द्वीपकुमारोंके पूर्ण
वशिष्ठः १/१। च *। दिक्कुमाराणां ६/३। अमितगतिः १/१।	=और (=च) वशिष्ठ (ये दो इन्द्र) हैं। दिक्कुमारोंके अमितगति
अमितवाहनः १/१। च * इति *। व्यन्तरेषु ७/३। अपि *	=और (=च) अमितवाहन (ये दो इन्द्र) हैं। व्यन्तरोंमें भी
किन्नराणां ६/३। दौ १/२। इन्द्रौ १/२। किन्नरः १/१। किम्पुरुषः १/१। च *।	=किन्नरोंके दो इन्द्र किन्नर और (=च) किम्पुरुष हैं ॥
किम्पुरुषाणां ६/३। सत्पुरुषः १/१। महापुरुषः १/१। च * इति *।	=किम्पुरुषों के सत्पुरुष और महापुरुष (ये दो इन्द्र) हैं।
महोरगाणां ६/३। अतिकायः १/१। महाकायः १/१। च *।	=महोरगों के अतिकाय और (=च) महाकाय (ये दो इन्द्र) हैं।

गन्धर्वाणां गीतरतिर्गीतयशाश्च । यक्षाणां पूर्णभद्रो माणिभद्रश्च । राक्षसानां भीमो महाभीमश्च । भूतानां प्रतिरूपोऽप्रतिरूपश्च पिशाचानां कालो महाकालश्च ॥ अथैषां देवानां सुखं कीदृशमित्युक्ते सुखावबोधनार्थमाह—

॥ कायप्रवीचारा आ ऐशानात् ॥७॥

गन्धर्वाणां₆। गीतरतिः₁। गीतयशाः₁। च* ।	=गन्धर्वोंके गीतरति और गीतयशाः (ये दो इन्द्र) हैं ।
यक्षाणां₆। पूर्णभद्रः₁। माणिभद्रः₁। च* । राक्षसानां₆।	=यक्षोंके पूर्णभद्र और माणिभद्र (ये दो इन्द्र) हैं राक्षसोंके
भीमः₁। महाभीमः₁। च* । भूतानां₆। प्रतिरूपः₁।	=भीम और महाभीम (ये दो इन्द्र) हैं । भूतोंके प्रतिरूप
अप्रतिरूपः₁। च* । पिशाचानां₆। कालः₁। महाकालः₁। च*	=और(=च) अप्रतिरूप (ये दो इन्द्र) हैं । पिशाचोंके काल और महाकाल (दो इन्द्र) हैं ।
अथ* एषां₆।	=आगे (=अथ) इन (भवनवासी, व्यन्तर ज्योतिषी तथा स्वर्गमें उत्पन्न होनेवाले)
देवानां₆। सुखं₁।। कीदृशम्₁।। इति* उक्ते₇।। सुख-	=देवोंके सुख किसप्रकार है, ऐसे पूंछने पर सुखके
अवबोधन-अर्थम्₁।। आह।	=जाननेके लिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्— कायप्रविचारा आ ऐशानात् ॥७॥ = भवनवास्यादयो देवा आ ऐशानात् कायप्रवीचारा भवन्ति

काय-प्रवीचाराः₁।	=शरीरसे मैथुन विषयका उपसेवनवाले वा कामसेवनहारे (भवनवासी देवोंसे)
आ ऐशानात्₅।।	=ऐशान (दूसरे) स्वर्ग पर्यन्त (=आ) हैं अर्थात् भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी और सौधर्म (पहिलास्वर्ग) तथा ऐशान (दूसरे) स्वर्ग तकके देव, मनुष्यो के समान अपनी अपनी देवांगनाओके साथ कामसेवन करते हैं ॥

(१) गीत यशाः शब्द के रूप विश्वपाके (=सूर्य-चन्द्र-अग्नि-विश्वम्भर) जो पुलिंग है सदृश हैं जैसे विश्वपा का पुलिंग एक वचन प्रथमा विभक्ति "विश्वपाः" है । वैसे ही गीतयशाः है कई महाशयोंने हिन्दीमे इस गीतयशाः" शब्दका अनुवाद 'गीतयश' ऐसा किया है चूंकि 'गीतयशा' एक इन्द्रका नाम है वह निश्चय से एक वचन मे हैं । हमको एक हस्त लिखित संस्कृत सर्वार्थसिद्धि मे "गन्धर्वाणां गतिरति. । गीतयशश्च ॥ ऐसा पाठ पृष्ठ ९४ पर प्राप्त हुआ है और पं० पन्नालाल जी दूनी ने "अर गंधर्वनि के विषै गीतरति अर गीतयशा नामा दोय इन्द्र हैं" ऐसा अनुवाद किया है ॥ हमने भी क्योकि एक इन्द्र का नाम है बिना परिवर्तनकिये हुए गीतयशा अनुवाद किया है ॥

(२) दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायों में इस सूत्रका पाठ और अर्थ एक सा है । कहीं प्रविचार, कहीं प्रवीचार शब्द है, दोनों ठीक हैं ॥

प्रविचारो मैथुनोपसेवनम् । कायेन प्रविचारो येषां ते कायप्रविचाराः ॥ आङ् अभिविध्यर्थः । असंहितया निर्देशः असंदेहार्थः ॥ एते भवनवास्याद्य ऐशानान्ताः संक्लिष्टकर्मत्वान्मनुष्यवत्स्त्रीविषयसुखमनुभवन्तीत्यर्थः ॥ अवधिग्रहणादितरेषां सुखविभागेऽनिर्ज्ञाते तत्प्रतिपादनार्थमाह—

शब्दानुवाद—प्रविचारः १। मैथुन-उपसेवनम् १॥ =प्रविचार है सो कामसेवन अथवा मैथुन विषयका उपभोग है।

कायेन ३। प्रविचारः १। येषां ६। ते १। कायप्रविचारः १। =शरीरसे कामसेवन जिनके हैं ते काय प्रविचारा हैं।

आङ् १। अभिविधः १। अर्थः १। =(सूत्रमें) आङ् उपसर्ग सीमाके लिये अर्थात् सूत्रमें आ शब्द लग, तक वा पर्यन्त अर्थमें है जो सीमा वतलाता है

असंहितया ३॥ निर्देशः १। =(उस आ का) संधिसे रहित वा विनासंधि उच्चारण वा कहना (निर्देश)

असन्देह -अर्थः १। =सन्देहके निवारणके लिये हैं अर्थात् 'आऐशानात्' ऐसा सूत्रमें वाक्य है इस आ तथा ऐशानात् की संधि करदेवें मिलादेवें तो व्याकरण की रीतिसे ऐशानात् होजावेगा फिर स्पष्ट रीतिसे यह न जान पडेगा कि ऐशानात् में आ उपसर्ग मिलाहुआ है अथवा नहीं इस सन्देह के दूर करने के लिये संधि न करके उमास्वामी ने आ ऐशानात् ऐसा उच्चारण किया है।

एते १। भवन-वासी-आदयः १। ऐशान-अन्ताः १। =ये सब भवनवासी व्यन्तर, ज्योतिषी सौधर्म (आदय) ऐशान तक

संक्लिष्ट-कर्मत्वात् ५॥ मनुष्यवत् * स्त्री-विषय-सुखम् २॥ =संक्लिष्ट कर्मके (उदय) होनेसे मनुष्यके समान स्त्रीके विषय सुखको

अनु-भवन्ति T इति * अर्थः १। =अनुभवन करते हैं अथवा भोगते हैं ऐसा अभिप्राय है।

अवधि-ग्रहणात् ५॥ इतरेषां६। सुख-विभागे७। =(इस सूत्रमें) मर्यादा ग्रहण करनेसे अन्य (देवो) के सुखका विभाग

अनिर्ज्ञाते७। तत्-प्रतिपादन-अर्थम्१॥ आहT =न जानने पर उस (विभाग) के ज्ञानके लिये (आचार्य अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

---

(१) यदि अ अथवा आ से परे ए ऐ ओ औ इन स्वरोंमेसे कोई स्वर आवे तो (अ+ए) (अ+ए) (अ+ए) (आ+ऐ) मिलकर ऐ होजायगा और (अ+ओ) (अ+औ) (आ+ओ) (आ+औ मिलकर औ हो जावेगा इस कारण ऊपर के वाक्य में काय प्रविचारा आ ऐशानात् मे- आ+ऐशानात् मिलकर 'ऐशानात्' होजायगा और फिर समस्त सूत्र 'कायप्रविचारा ऐशानात्' ही होजायगा। अव 'ऐशानात्' वाक्य से यह संदेह हो सका है कि "ऐशानात्" बिना आ के मिलाये हुये आचार्य ने उच्चारण किया है अथवा आ को मिलाकर "ऐशानात्" किया है। इस सन्देह के निराकरण करनेके लिये स्पष्टतया "कायप्रविचारा आ ऐशानात्" ऐसा सूत्र कथित है।

॥ शेषाः स्पर्शरूपशब्दमनःप्रवीचाराः ॥८॥

सूत्रम्— शेषाः स्पर्शरूपशब्दमनः प्रविचाराः ॥८॥

=(ऐशानादूर्ध्वं) शेषाः (कल्पोपपन्नाः देवाः) स्पर्शरूपशब्दमनः प्रवीचाराः (यथासंख्यम् भवन्ति)

(१) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य० में तथा श्री सिद्धसेन सूरि रचित 'भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थ टीकामे' हमारे यहांके पाठसे "द्वयोर्द्वयोः" वाक्य अधिक है। शेषपाठ हमारे यहांके सूत्र पाठसे मिलता है। सभाष्य० में इस सूत्रका अर्थ ऐसे लिखा है कि "ऐशानादूर्ध्वं शेषाः कल्पोपपन्ना देवा द्वयोर्द्वयोः कल्पयोः स्पर्शरूपशब्दमनः प्रवीचारा भवन्ति यथासङ्ख्यम्"=ऐशानात् ऊर्ध्व शेषा कल्पोपपन्नाः देवाः द्वयोर्द्वयोः कल्पयोः स्पर्श-रूप-शब्द-मनः-प्रवीचाराः भवन्ति यथासङ्ख्यम्="ऊपर कहे हुये ईशान स्वर्गसे ऊपर शेष जो कल्पोपन्न देव हैं। वे दो दो कल्पोंके क्रमसे स्पर्श, रूप, शब्द तथा मनसे मैथुन सेवन करने वाले हैं" "द्वयोर्द्वयोः"=द्वयोर्द्वयोः कल्पयोः अर्थात् दो दो कल्पोंमे। दोनों आम्नायके इन सूत्रोंके अर्थभेद समझनेमें स्मरण रहे कि श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य० मे दश कल्प माने हैं जैसा कि पृष्ठ ९३ के "शेष आठ कल्पोंके देवोंमे से दो दो कल्पोंके देव यथासंख्य करके क्रमसे स्पर्श रूप शब्द तथा मनसे प्रवीचार करने वाले हैं" सूत्रानुवाद से प्रगट है। परन्तु श्री सिद्धसेन सूरि रचित "भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीका" में बारह कल्प माने हैं। "कल्पः समुदाय सन्निवेशो विमानमात्रपृथिवीप्रस्तारसनिमित्तभेदा द्वादशधा" "सूत्र २० 'सौधर्मादि' पृष्ठ ३३५।"..... आरणाच्युतावित्येव द्वादश कल्पाः तद् उपरिग्रैवेयकानिनवोपर्युपरित पंच महा विमानानि इति" पृष्ठ ३३६॥ इस भाष्य मे बाईस सहस्र श्लोक से अधिक हैं श्वेताम्बरों मे सबसे महत्व का ग्रन्थ है। हमने इसके अनुसार बारह कल्प नीचे के लेखमे मानकर अन्तर दोनों सम्प्रदायों का प्रगट किया है॥ हमारे यहां सोलह कल्प माने हैं॥ बांयें ओर दिगम्बर आम्नाय का लेख है और दाहिने हाथ की ओर श्वेताम्बर आम्नायका—

सौधर्म कल्प	ईशान कल्प	यहां काय द्वारा काम सेवन है	—एक एक इन्द्र है	सौधर्म कल्प	ईशान कल्प	यहां काय द्वारा काम सेवन है
सनत्कुमारकल्प	माहेन्द्रकल्प	यहां स्पर्शन द्वारा काम सेवन है	—एक एक इन्द्र है	सनत्कुमारकल्प	माहेन्द्र कल्प	यहां स्पर्शन द्वारा कामसेवन है
ब्रह्मकल्प	ब्रह्मोत्तरकल्प	यहां रूपदर्शनद्वारा कामसेवन है	—एक ही इन्द्र है	ब्रह्मलोक कल्प		यहां रूपदर्शन द्वारा काम सेवन है
लांतवकल्प	कापिष्ठकल्प		—एक ही इन्द्र है	लान्तक कल्प		
शुक्रकल्प	महाशुक्र कल्प	" शब्दश्रवण द्वारा कामसेवन है	—एक ही इन्द्र है		महाशुक्र कल्प	यहां शब्दश्रवण द्वारा काम सेवन है
सतारकल्प	सहस्रार कल्प		—एक ही इन्द्र है		सहस्रार कल्प	
आनतकल्प	प्राणत कल्प	" मनोविकल्प से काम सेवन है	—एक एक इन्द्र है	आनतकल्प	प्राणत कल्प	यहां मनो विकल्प से काम सेवन है
आरणकल्प	अच्युत कल्प		—एक एक इन्द्र है	आरणकल्प	अच्युत कल्प	

उक्तावशिष्टग्रहणार्थं शेषग्रहणम् ॥ के पुनरुक्तावशिष्टाः ? कल्पवासिनः ॥ स्पर्शश्च रूपं च शब्दश्च मनश्च स्पर्शरूपशब्दमनांसि, तेषु प्रविचारो येषां ते स्पर्शरूपशब्दमनःप्रवीचाराः ॥

=(ऐशानादूर्ध्वं) शेषाः (कल्पोपपन्नाःदेवाः) स्पर्शरूपशब्दमनः प्रवीचाराः (यथासंख्यम् भवन्ति)

ऐशानात् ५।१ ऊर्ध्वम् ॐ शेषाः १।३ कल्पोपपन्नाः १।३ देवाः १।३	=ईशान स्वर्गसे ऊपर अवशेप वा बचे हुये कल्पोपपन्न देव हैं (अर्थात् तीसरे स्वर्गसे सोलहवां स्वर्ग तक के देव देवांगनाओं के)
स्पर्श-रूप-शब्द-मनस्—	=स्पर्श करनेमें, रूप देखनेमें, शब्द सुननेमें तथा मनके विचारनेमें
पूविचाराः १।३ यथासंख्यम् १।।। भवन्ति T	=काम सेवनेवाले अनुक्रमसे हैं ॥
वृत्यनुवाद—उक्त-अवशिष्ट—	=(तीसरे सूतमें) कहे हुये (देवों)मेंसे अवशेप अथवा बचे हुये (देवों) के
ग्रहण-अर्थं १।।। शेष-ग्रहणम् १।।। पुनर्-उक्त—	=आदानके लिये (इस सूत्रमें) शेप शब्दका ग्रहण है[प्रश्न] वहुरि कथित (देवों) मेंसे
अवशिष्टाः १।३ के १।३ कल्प-वासिनः १।३	=शेप कौन हैं [उत्तर, ऐशान स्वर्गसे ऊपर] स्वर्गवासी [देव शेप] हैं ॥
स्पर्शः १।१ च ॐ रूपं १।।। च शब्दः १।१ च मनः १।।।	=और स्पर्श वहुरि रूप तथा शब्द और मन [ये शब्द द्वन्द्वसमासमें]
स्पर्श-रूप-शब्द-मनांसि १।।। तेषु ७।।।	=स्पर्श-रूप-शब्द-मनांसि (रूपमें) हो जाते है । तिन [स्पर्श-रूप-शब्द-मन]विषैं
पूविचारः १।१ येषां ६।३ ते १।३ स्पर्श-रूप-शब्द-मनस्-पूविचाराः १।३	=काम सेवन हैं जिनके ते स्पर्श-रूप-शब्द-मनः पूविचारा हैं

इस सर्वके मिलाने से दोनो सम्प्रदायों के अर्थ भेदका सारांश यह निकलता है कि भवनवासी देवोसे लेकर माहेन्द्र कल्प तक दोनों मे एक है अर्थात् काय द्वारा और स्पर्शन द्वारा काम सेवन होता है ॥ आनत कल्प, प्राणत कल्प, आरण कल्प, अच्युत कल्प इनमें भी काम सेवन एकसा है परन्तु चार कल्प मानने में "द्वयोर्द्वयोः" वाक्य लागू नहीं होता है ॥ रहा ब्रह्मकल्पका, ब्रह्मोत्तरकल्पका लांतवकल्पका, कापिष्टकल्पका सो दोनों आम्नायों में काम सेवन रूप दर्शन से होता है परन्तु उन्होंने ब्रह्मोत्तर कल्प और कापिष्टकल्पको नही माना है। इसी प्रकार शुक्रकल्प, महाशुक्र कल्प, शतारकल्प, सहस्रारकल्प इनमे श्रवण द्वारा काम सेवन होता है परन्तु उनके यहां शुक्रकल्प और सतारकल्प को नहीं माना है ॥

(१)— इन शब्दों को तृतीया कारक अथवा करण कारकमें मानकरि इस प्रकार भी अनुवाद कर सकते हैं कि स्पर्शकरि, रूप के देखने से, शब्दके सुननेसे, मनके विचारनेसे, काम सेवने वाले हैं ॥

कथमभिसम्बन्धः ? आर्षाविरोधेन । कुतः पुनः प्रवीचारग्रहणं ? इष्टसम्प्रत्ययार्थमिति ॥ कः पुनरिष्टोऽभिसम्बन्ध आर्षाविरोधी ? । सानत्कुमारमाहेन्द्रयोर्देवा देवाङ्गनास्पर्शमात्रादेव परां प्रीतिमुपलभन्ते तथा देव्योऽपि । ब्रह्मब्रह्मोत्तरलान्तवकापिष्ठेषु देवा दिव्याङ्गनानां

अर्थात् स्पर्श करनेमें, रूप देखनेमें, शब्द सुननेमें और मनके विचारनेमें कामसेवनेवाले हैं

कथम् * अभिसम्बन्धः ॥ =(इन देव और मैथुनके भेदोंमें) कैसे अभिसम्बन्ध है अर्थात् प्रश्न यह है कि इन शेष चौदह स्वर्गोंके देवोंका स्पर्शप्रविचार, रूपप्रविचार, शब्दप्रविचार, मनःप्रविचारोंमें से किस किस प्रकार वा भांतिके प्रविचारसे सम्बन्ध है ॥

आर्ष-अविरोधेन ॥ =(उत्तर) आगम अथवा धर्मशास्त्रकी विरुद्धता (=विरोध) से रहित (अभिसम्बन्ध) है

कुतः * पुनः * प्रविचार— =(प्रश्न) क्यों फिर (जब पूर्व सूत्रमें प्रविचार शब्द विद्यमान है) प्रविचारका (इस सूत्रमें)

ग्रहणं ॥ इष्ट-सम्प्रत्यय-अर्थम् ॥ इति * ॥ =उपादान है । (उत्तर) अभिलषित अभिसम्बन्धके लिये है अर्थात् शिष्यके पूछने पर कि जब सातवां सूत्रमें प्रविचार शब्द विद्यमान है तब फिर इस सूत्रमें क्यों लाये हो उत्तरमें कहते हैं कि वांछित अभिसम्बन्धके (जो चौदह स्वर्गके देवोंको जिस जिस भांति के प्रविचार है) प्रगट करने के लिये लाये हैं ।

कः ॥ पुनः-इष्टः ॥ अभिसम्बन्धः ॥ =(प्रश्न) बहुरि क्या वांछित अभिसम्बन्ध (कथित देवों और उक्त प्रविचारोंमें) है

आर्ष-अविरोधी ॥ सानत्कुमार-माहेन्द्रयोः ॥ देवाः ॥=(उत्तर) आगमसे अविरोधरूप (सम्बन्ध) है । (अर्थात्) सनत्कुमार, महेन्द्र स्वर्गमें देव

देव-अङ्गना-स्पर्श-मात्रात् ॥ एव परां ॥ प्रीतिम् ॥ =देवियोंके स्पर्श करने मात्रसे ही परम प्रीतिको

उपलभन्ते ॥ तथा * देव्यः ॥ अपि * । =प्राप्त होते हैं । तैसे देवाङ्गना भी (परमप्रीति को प्राप्त होती हैं) ॥

ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर-लान्तव- =ब्रह्म [पांचवां स्वर्ग] ब्रह्मोत्तर [छठवां स्वर्ग] लान्तव [सातवां स्वर्ग]

कापिष्ठेषु ॥ देवाः ॥ दिव्य-अङ्गनानाम् ॥ =कापिष्ठ [आठवां स्वर्ग] में, देव स्वर्गकी [= दिव्य] स्त्रियोंके अर्थात् देवियोंके

शृङ्गाराकारविलासचतुरमनोज्ञवेषरूपावलोकनमात्रादेव परमसुखमाप्नुवन्ति । शुक्रमहाशुक्रशतारसहस्रारेषु देवा देववनितानां मधुरसङ्गीतमृदुहासितललितकथितभूषणरवश्रवणमात्रादेव परां प्रीतिमास्कन्दन्ति । आनतप्राणतारणाच्युतकल्पेषु देवाः स्वाङ्गनामनःसङ्कल्पमात्रादेव परं सुखमाप्नुवन्ति ॥

अथोत्तरेषां किंप्रकारं सुखमित्युक्ते तन्निश्चयार्थमाह—

शृङ्गार-आकार-विलास-चतुर-मनोज्ञ-वेष-रूप-	=शृङ्गार, आकार, हर्ष (=विलास) चतुर, सुंदर (=मनोज्ञ) वेष और रूपके
अवलोकन-मात्रात् ५॥ एव* परम्-सुखम् २॥ आप्नुवन्तिT ॥	=केवलमात्र देखनेसे ही उत्कृष्ट सुखको प्राप्त होते हैं ॥
शुक्र-महाशुक्र-शतार-	=शुक्र (नवमां स्वर्ग) महाशुक्र (दशवां स्वर्ग) शतार (ग्यारहवां स्वर्ग)
सहस्रारेषु७॥ देवाः १। देव-वनितानाम् ६॥ मधुर-	=सहस्रसार (बारहवां स्वर्ग) में देव और देवियोंके प्रिय (=मधुर)
सङ्गीत-मृदु-	=नाचना-गाना-बजाना (=संगीत) अथवा गान (=संगीत) कोमल (=मृदु)
हसित-ललित-कथित-भूषण-रव-	=हास्य, मनोहर (=ललित) बोलना (=कथित) और आभूषण के शब्द (=रव)के
श्रवण-मात्रात् ५॥ एव* परां २॥ प्रीतिं २॥ आस्कन्दन्तिT	=केवल (=मात्र) सुननेसे ही अतिशय प्रीतिको प्राप्त होते हैं ॥
आनत-प्राणत-आरण-अच्युत-	=आनत (तेरहवां) प्राणत (चौदहवां) आरण (पंद्रहवां) और अच्युत (सोलहवां)
कल्पेषु७। देवाः १। स्व-अङ्गना-	=स्वर्गोंमें (=कल्पेषु) देव अपनी २ (=स्व) सुंदरीयोंकी (=अङ्गना) अर्थात् देवियोंका
मनः-सङ्कल्प-मात्रात् ५॥ एव* परं २॥ सुखम् २॥	=मनमें विचार अथवा चिंतवन मात्रसे ही उत्कर्ष सुखको
आप्नुवन्तिT अथ-उत्तरेषाम् ६।	=पाते हैं । अब अग्रिम (अहमिन्द्र अथवा कल्पातीत देव) निके
किम्* प्रकारं २॥ सुखम् १॥ इति* उक्ते७। तत्-	=सुख कौन प्रकार है ऐसा पूंछने पर उस (सुख) के
निश्चय-अर्थम् २॥ आहT	=निर्धारणके लिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

(१) परम् (अव्य०)=केवल, अनन्तर ॥ परम (त्रि०)=उत्कृष्ट, प्रधान, बड़ा, पहिला ॥ परमम् (अव्य०)=हां, स्वीकार, अनुज्ञा ॥ पर=का अर्थ सबसे अच्छे का भी है । (देखो परां प्रीतिं आस्कन्दन्ति पृ० २३६ वृत्ति०)

(२) 'कल्प' यह शब्द "सभाष्यतत्वार्थाधिगमसूत्रम्" में निम्न वाक्योंमें पुल्लिंगमें आया है । सौधर्मस्य कल्पस्योपर्यैशानः कल्पः । सा (=सभा) तस्मिन्नस्तीति सौधर्मः कल्पः । सर्वेकल्पाः (देखो पृष्ठ १०६ चौथा अध्याय सूत्र २० का)

। परेऽप्रवीचाराः ॥९॥

परग्रहणमितराशेषसंग्रहार्थम् । अप्रवीचारग्रहणं परमसुखप्रतिपत्त्यर्थम् ॥ प्रवीचारो हि वेदनाप्रतिकारः । तदभावे तेषा परमसुखमनवरतं भवति ॥ उक्ता ये आदिनिकायदेवा—

सूत्रम्— परेऽप्रवीचारा;	=(कल्पोपपन्नेभ्यः)[तीसरे सूत्रासे लिया]परे देवाः अप्रवीचाराः भवन्ति
सूत्रार्थ—कल्प-उपपन्नेभ्यः ५। परे १। देवाः १।	=स्वर्ग में उत्पन्न होनेवाले देवोंसे परे वा अन्य अवशेष देव अर्थात् कल्पातीत देव वाअहमिन्द्र
अप्रविचाराः१।	=काम सेवन सेरहित हैं ।
वृत्त्यर्थ-पर-ग्रहणम् १॥ इतर-अशेषं—	=(इस सूत्र में) पर शब्दका ग्रहण अन्य समस्त (अशेष) (देवों) के
संग्रह-अर्थम् १॥ अप्रविचार-ग्रहणम् १॥ परम—	=संग्रह के लिये है । अप्रविचारका ग्रहण उत्कर्ष
सुख-पूतिपत्ति-अर्थम् १॥ पूविचारः १॥ हि वेदना—	=सुख के जनावने के लिये है काम सेवन ही (=हि) (मैथुन) वेदना वा पीड़ाका
पूतिकार १। तद्-अभावे ७।	= उपाय वा चिकित्सा (पूतिकार= पूतीकार) है तिस (मैथुनरूपी वेदना) के न होने पर
तेषाम्६। परम-सुखं १॥ अनवरतम् १॥ भवति T	=तिन (कल्पातीत देवों) के उत्कृष्ट (=परम) निरंतर वा लगातार (=अनवरत) सुख होता है
उक्ता १। ये १। आदि-निकाया-देवाः १।	=कहे जे पृथम समुदाय के देव (अर्थात् भवनवासी)

(१) इस सूत्रका पाठ दोनों सम्प्रदायों में एक है सामान्य रूप से अर्थ भी एक है क्योंकि श्वेताम्बर सम्प्रदाय में "नवअनुदिश" नहीं माने है तब भी विमानों की संख्या जो सोलहवा स्वर्ग से ऊपर हैं दोनों आम्नाओमें ३२३ (तीन सौ तेईस) ऐसे हैं कि 'और ग्रैवेयकोंके अधोभागमें एक सौ ग्यारह (१११) विमान हैं । मध्य भाग मे एकसौ सात (१०७) और ऊपर केवल शत (१००) विमान है । और अनुत्तरदेवोंके केवल पांच है सभाष्य० पृष्ठ१०९ । तीन अधोग्रैवेयक विषै एकसौ ग्यारह विमान हैं । और तीन मध्यम ग्रैवेयक विषै एकसो सात विमान हैं । और तीन ऊर्ध्व ग्रैवेयकनि विषैं इक्याणवे विमान है बहुरि 'नव अनुदिश विषै नव विमान है और अनुत्तर विषै पांच विमान है अर्थ प्रकाशिका सूत्र १९ पृष्ठ २६४ अतः ३२३ हुये
(२) पं० जयचन्द रायजीकी वचनिकामें इस वाक्यसे कि 'यहां पर शब्द का ग्रहण अवशेष रहे जे अहमिन्द्र तिन के ग्रहण के अर्थि है'। जान पड़ता है कि जिस संस्कृत वृत्ति से उन्हों ने वचनिका की है उसमें ऐसा पाठ होगा कि 'परग्रहणमितरावशेषसंग्रहार्थम्' अर्थात् अशेष शब्द के स्थान मे अवशेष शब्द होगा । परन्तु सदासुख जी की अर्थप्रकाशिकाके इस वाक्यसे कि यहां 'पर' शब्दके कहने करि कल्पातीत समस्त देवनिका संग्रह भया जान पड़ता है कि जिस प्रति से उन्हों ने भाव लिया है उसमें 'अशेष' शब्द था जैसा कि ऊपर पाठ है । दोनो पाठोंका एकही आशय है। हस्तलिखित एक प्रतिमें हमको 'अशेष' शब्द मिला है ।

दशविकल्पा इति तेषां सामान्यविशेषसञ्ज्ञाविज्ञापनार्थमिदमुच्यते–

भवनवासिनोऽसुरनागविद्युत्सुपर्णाग्निवातस्तनितोदधिद्वीपदिक्कुमाराः ।१०।

भवनेषु वसन्तीत्येवंशीला भवनवासिनः । आदिनिकायस्येयम्

दश-विकल्पाः १। इति * तेषां ६। सामान्य-विशेष–	=दश भेदरूप तिन (भवनवासी देवों) के सामान्य और विशेष
सञ्ज्ञा-विज्ञापन-अर्थम् १॥ इदम् १॥ उच्यते T	=संज्ञाओंके जतावनेके लिये यह (अग्रिमसूत्रमें) कहा जाय है कि

सूत्रम्– भवनवासिनोऽसुरनागविद्युत्सुपर्णाग्निवातस्तनितोदधिद्वीपदिक्कुमाराः ॥१०॥

= भवनवासिन ःअसुरकुमाराः नागकुमाराः विद्युत्कुमाराः सुपर्णकुमाराः अग्निकुमाराः वातकुमाराः स्तनितकुमाराः उदधिकुमाराः द्वीपकुमाराः दिक्कुमाराः च दशाविकल्पाः भवन्ति ॥

सूत्रार्थः– भवनवासिनः १। असुरकुमाराः १। नागकुमाराः १।	=भवनवासी देव, असुरकुमार, नागकुमार,
विद्युत्कुमाराः १। सुपर्णकुमाराः १। अग्निकुमाराः १।	=विद्युत्कुमार, सुपर्णकुमार, अग्निकुमार,
वातकुमाराः १। स्तनितकुमाराः १। उदधिकुमाराः १।	=वातकुमार, स्तनितकुमार, उदधिकुमार,
द्वीपकुमाराः १। दिक्कुमाराः, १। च * दश-विकल्पाः १। भवन्ति	=द्वीपकुमार, और (=च) दिक्कुमार, दशभेदरूप हैं
वृत्त्यनुवादः–भवनेषु ७। वसन्ति T इति * एवं शीलाः १।	=भवनोंमें वसते हैं ऐसे स्वभाव वाले (=शालाः)
भवनवासिनः १। आदिनिकायस्य ६। इयम् १॥	=भवनवासी देव है (चार समूहके देवोंमेंसे) प्रथमसमुदायकी यह

(१) दोनों सम्प्रदायो में इस सूत्र का अर्थ और पाठ एक है। हमारे यहां यह दशवां सूत्र है श्वेताम्बर आम्नाय में यह ग्यारहवां सूत्र है।

(२) द्वंद्व समासमें जितने शब्द जोड़े जावें उन प्रत्येकके अन्तका एक चकार गुप्त समझ लिया जावे अथवा प्रत्येक शब्द के साथ जितने शब्द जोड़े जावें उतने ही चकार समझ लिये जावें इसलिये ऊपरके दशदेवोके भेदोंमे इस प्रकार दश चकार होंगे कि असुरकुमाराः च, नागकुमाराः च, विद्युत्कुमाराः च, सुपर्णकुमाराः च, अग्निकुमाराः च, वातकुमाराः च, स्तनितकुमाराः च, उदधिकुमाराः च, द्वीपकुमाराः च, दिक्कुमाराः च, इस अवस्थामें अनुवादमे भी दशवार 'और' शब्द आवेगा परन्तु अनुवादक ने केवल एक चकार लेकर ऊपरका अनुवाद किया है।

सामान्यसञ्ज्ञा । असुरादयो विशेषसञ्ज्ञा विशिष्टनामकर्मोदयापादितवृत्तयः । सर्वेषां देवानामवस्थितवयः स्वभावत्वेऽपि वेषभूषायुधयानवाहनक्रीडनादिकुमारवदेषामाभासन्त इति भवनवासिषु कुमारव्यपदेशो रूढः । स प्रत्येकं परिसमाप्यते असुरकुमारा इत्येवमादि ॥ क तेषां भवनानीति चेदुच्यते— रत्नप्रभायाः पङ्कबहुलभागेऽसुर

सामान्य-सञ्ज्ञा १॥ असुर-आदयः १। =सामान्य सज्ञा है असुर, नाग, विद्युत्, सुपर्ण, अग्नि,वात, स्तनित, उदधि, द्वीप, दिक्

विशेष-संज्ञा १॥ विशिष्ट-नामकर्म-उदय-आपादित— =विशेषसंज्ञा है। विशेष नाम कर्मके उदयके प्राप्तसे (=आपादित)

वृत्तयः १॥ सर्वेषाम् ६। देवानाम् ६। =(ये दश विशेषसंज्ञा) प्रवर्तें हैं। समस्त (भवनवासी) देवों के

अवस्थितवयः १॥ =स्थिर अथवा एकरूप (=अवस्थिति) (बालपन योवनादिक) अवस्था

स्वभात्वे ७॥ अपि * वेष-भूषा-आयुध— =स्वभावसे होनेपर भी वेष सजावट (=भूषा) अस्त्र (=आयुध)

यान-वाहन— =लेजानेके साधन रथ, गाड़ी आदिक (=यान) सवारी (=वाहन)

क्रीडन-आदि-कुमार-वत् * ऐषाम् ६। आभासते T इति =परिहास वा कौतुक आदिक कुमारके सदृश इन (भवनवासी देवों)के शोभे हैं अर्थात् यद्यपि समस्त भवनवासी देवोंके जन्म समयसे मरण पर्यन्त एकसी दशा अथवा अवस्था रहती है। बाल, यौवन, जरा आदिक अवस्था पलटती नहीं है तो भी इनकी कुमार संज्ञा पूर्वोक्त निमित्तसे नहीं हैं वरण इस कारणसे है कि वे वेष, आभूषण, यान, वाहन, क्रीडनकरि कुमारके समान प्रवर्तें हैं।

भवनवासिषु ७। कुमार-व्यपदेशः १। रूढः १। =भवनवासी (देवों) विषै कुमारनाम प्रसिद्ध (=रूढ) है

सः १। प्रत्येकं * परिसमाप्यते T =वह कुमार व्यपदेश वा संज्ञा प्रत्येक (दश विशेष संज्ञाओं पर) जोड़ा जाता है।

असुर-कुमाराः १। इति * एवम् * आदि १॥ =(तत्र) असुरकुमार एवं आदिक (पूर्वोक्त दश संज्ञा) हैं।

क * तेषाम् ६। भवनानि १॥ इति * चेत् * उच्यते T =कहां तिनके निवासस्थान हैं ? इस प्रकार शंका होनेपर (=चेत्) कहा जाय है कि

रत्नप्रभायाः ६। पङ्कबहुल-भागे ७। असुर— =रत्नप्रभा (पृथिवी) के पङ्कबहुल भागमें अर्थात् दूसरे भागमें असुर

(१) यह शब्द भूष् धातु जिसका अर्थ सजाना है आ लगाने अर्थात् भूष्+आ =भूषा (स्त्रीलिंगमें) होता है जिसका अर्थ भूषण, आभूषण ,सजावट, मण्डनक्रिया ,अलंकार, आभरण है। देखो पद्मचन्द्रकोष पृष्ठ २७६

कुमाराणां भवनानि । खरपृथिवीभागे उपर्यधश्च एकैकयोजनसहस्रं वर्जयित्वा शेषनवानां कुमाराणामावासाः ॥

द्वितीयनिकायस्य सामान्यविशेषसञ्ज्ञावधारणार्थमाह—

कुमाराणाम् ६। भवनानि १।३। खर-पृथिवी-भागे ७।१। =कुमारोंके भवन हैं (रत्नप्रभाके तीन भागोंमेंसे ऊपरके) खर पृथिवी भागमें

उपरि※ अधस्※ च※ एक-एक-योजनसहस्रं २।१ वर्जयित्वा[1] =ऊपर और नीचे एक एक सहस्र योजन छोड़कर

शेष-नवानाम् ६। =अवशेष (भागमें) नो (नाग, विद्युत्, सुपर्ण, अग्नि, वात, स्तनित, उदधि, द्वीप, दिक्)

कुमाराणाम् ६। आवासाः १। =कुमारोंके निवास स्थान हैं अर्थात् रत्नप्रभा नामकी पृथिवी एक लाख अस्सी सहस्र योजनकी मोटी है। उसके तीन विभाग हैं, उन तीन भागोंमें से ऊपरका खरभाग १६००० योजन मोटा है। उसमें चित्रा, व्रजा, वैडूर्य इत्यादि एक एक सहस्र योजनकी मोटी १६ पृथिवी हैं ॥ इनमेंसे ऊपर और नीचे की एक एक सहस्र योजनकी दो पृथिवी छोड़कर बीचकी चौदह सहस्र योजन मोटी और एक राजू लम्बी चौड़ी पृथिवीमें नागकुमार, विद्युत्कुमार, सुपर्णकुमार, अग्निकुमार वातकुमार, स्तनितकुमार, उदधिकुमार, द्वीपकुमार, दिक्कुमार, इन नव प्रकारके भवनवासी देवोंके निवास स्थान हैं ॥ इस खर भागके नीचे दूसरा पङ्कबहुल भाग है जो चौरासी सहस्र योजन मोटा है। उसमें असुरकुमार रहते हैं और पङ्क भागके नीचे अस्सी सहस्र वा ८००००×२०००=१६००००००० सोलह करोड़ कोस मोटा अब्बहुल भाग है उसमें प्रथम नरक है।

द्वितीय-निकायस्य ६। सामन्य-विशेष सञ्ज्ञा- =दूसरे समुदायके सामान्य और विशेष संज्ञाओंके

अवधारण-अर्थम् २।१। आह T =निश्चय करने के लिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

(१) वर्जयित्वा संबंधकसूचक भूत कृदन्त है।

॥व्यन्तराः किन्नरकिम्पुरुषमहोरगगन्धर्वयक्षराक्षसभूतपिशाचाः ॥११॥

विविधदेशान्तराणि येषां निवासास्ते व्यन्तरा इत्यन्वर्था सामान्यसञ्ज्ञेयमष्टानामपि विकल्पानाम् ॥ तेषां व्यन्तराणामष्टौ विकल्पाः किन्नरादयो वेदितव्या नामकर्मोदयविशेषापादिताः ॥ क्व पुनस्तेषामावासा इति चेदुच्यते—अस्माज्जम्बूद्वीपादसंख्येयान्द्वीपसमुद्रानतीत्य उपरिष्टे खरपृथिवीभागे सप्तानां व्यन्तराणाम्

सूत्रम्— व्यन्तराः किन्नरकिम्पुरुषमहोरगगन्धर्वयक्षराक्षसभूतपिशाचाः ॥११॥

=व्यन्तराः किन्नर-किम्पुरुष-महोरग-गन्धर्व-यक्ष-राक्षस-भूत-पिशाचाः (अष्ट-विकल्पाः) भवन्ति

सूत्रार्थ—व्यन्तराः₁। किन्नर-किम्पुरुष-महोरग-	=व्यन्तर, किन्नर, किम्पुरुष, महोरग,
गन्धर्व-यक्ष-राक्षस-भूत-पिशाचाः₁। अष्ट₁। विकल्पाः₁। भवन्ति	=गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, भूत, पिशाच, आठ प्रकारके हैं।
टत्यनुवाद—विविध-देश-अन्तराणि₁॥। येषाम्₆।	=नाना प्रकारके अन्य देश हैं, जिनके
निवासाः₁। ते₁। व्यन्तराः₁। इति*	=वासस्थान वे व्यन्तर हैं इस प्रकार
अन्वार्थाः₁॥ सामान्य-सञ्ज्ञाः₁। इयम्₁॥ अष्टानाम्₆। अपि*	=सार्थक अथवा यथा नाम तथा गुणरूप सामान्य संज्ञा यह आठों ही
विकल्पानाम्₆। तेषां₆। व्यन्तराणां₆। अष्टौ₁।	=भेदों की है। तिन व्यन्तरोंके आठ
विकल्पाः₁। किन्नर-आदयः₁॥	=भेद किन्नर, किम्पुरुष, महोरग, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, भूत, पिशाच, आदिक
विशेष-सञ्ज्ञाः₁॥ वेदितव्याः₁॥ नाम-कर्म-	=विशेष संज्ञायें जानना चाहिये। (ये आठ विशेष संज्ञा) नाम कर्मके
उदय-विशेष-आपादिताः₁॥ क्व* पुनः* तेषां₆। आवासाः₁।	=उदयकी विशेषतासे प्राप्त(आपादित)हैं। बहुरि तिन (व्यन्तरों)के वासस्थान कहां हैं
इति* चेत्-उच्यते। अस्मात्₅। जम्बूद्वीपात्₅।	=इसप्रकार प्रश्न या शंका (=चेत्) होने पर कहाजाय है कि इस जम्बूद्वीपसे
असंख्येयान्₂। द्वीप-समुद्रान्₂। अतीत्य÷	=असंख्यात द्वीप और समुद्रोंको उलंघकरि (=अतीत्य) (इस रत्नप्रभाके)
उपरिष्टे* खर-पृथिवीभागे₇। सप्तानाम्₆। व्यन्तराणाम्₆।	=ऊपरले अर्थात् पहिले खर पृथिवी भागमें सात व्यन्तरोंके (अर्थात् किन्नर किम्पुरुष, महोरग, गन्धर्व, यक्ष, भूत, पिशाचोंके)

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायोंमें एकसा है॥ समाप्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें इस सूत्रको बारहवां लिखा है॥

आवासाः ॥ राक्षसानां पङ्कबहुलभागे ॥ तृतीयस्य निकायस्य सामान्यविशेषसञ्ज्ञासंकीर्तनार्थमाह—

॥ ज्योतिष्काःसूर्याचन्द्रमसौ ग्रहनक्षत्रप्रकीर्णकतारकाश्च ॥१२॥

आवासाः १। राक्षसानाम् ६। पङ्कबहुलभागे ७।	= निवासस्थान है। राक्षसोंके (निवासस्थान) पङ्कबहुलभागमें हैं।
तृतीयस्य ६। निकायस्य ६। सामान्य—	= तीसरे निकायके (देवोंकी) सामान्य और
विशेष-सञ्ज्ञा-संकीर्तन-अर्थम् १। आह T	= विशेष संज्ञाके कहनेके लिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्— ज्योतिष्काः सूर्याचन्द्रमसौ ग्रहनक्षत्रप्रकीर्णकतारकाश्च ॥१२॥

= ज्योतिष्काः सूर्या चन्द्रमसौ ग्रह-नक्षत्र-प्रकीर्णकतारकाः न (पंचविकल्पा भवन्ति

(१) सूर्य अथवा सूर्य्य यह शब्द दोनोंभांति शुद्ध हैं क्योंकि संस्कृतके व्याकरणसे यदि किसी शब्दमें पहिले स्वर आवै र् अथवा ह् पीछेसे आवै और पश्चात् कोई व्यंजन ह् को छोड़कर आवै तो वह व्यंजन इच्छानुसार द्वित्व होजाता है अर्थात् चाहो तो उस व्यंजनको दोहरा करदो चाहो न करो जैसे अर्क वा अर्क्क,मर्क वा मर्क्क, धर्म वा धर्म्म,कर्म वा कर्म्म,ब्रह्मा वा ब्रह्म्मा, अपह्नुते वा अपह्न्नुते इसी प्रकार सूर्य वा सूर्य्य दोनोंही ठीक हैं

(२) इससूत्र का पाठ हमारे यहां की बहुधा पुस्तकोंमें "सूर्याचन्द्रमसौ" है कहीं कहीं पर 'सूर्याचन्द्रमसौ' भी है ऊपरकी टिप्पणीसे यह प्रगट है कि दोनो पाठ ठीक हैं शेष पाठ हमारे यहां सर्वत्र एकसा है। अब प्रश्न यह है कि सूर्य और चन्द्रमा दोनों शब्दोंका समास "सूर्यचन्द्रमसौ" क्या नहीं हुआ 'सूर्याचन्द्रमसौ' कैसे हुआ। (उत्तर, यहांपर सूर्याचन्द्रमसौ वाक्य देवता द्वन्द्वसमास है अर्थात् देवताओंके नामोंके द्वन्द्वसमास बनाने मे पहिले अवयवके अन्तको 'आनङ् (= आ =) आदेश हो। जैसे इन्द्रावरुणौ, इन्द्रासोमौ, मित्रावरुणौ, इन्द्राबृहस्पती, अतः सूर्याचन्द्रमसौ हुआ, अष्टाध्यायी अध्याय ६ पाद ३ सूत्र २५,२६ देखो।

(३) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्वार्थाधिगमसूत्रमें हमारे यहांके "सूर्याचन्द्रमसौ" वाक्यके स्थानमें "सूर्याश्चन्द्रमसो" वाक्य है अर्थात् सूर्याः (बहुत दोसे अधिक सूर्य) चन्द्रमसः १। (बहुत वा दो से अधिक चन्द्रमा)हमारे यहां अर्थ सूर्याचन्द्रमसौ वाक्यका = एक सूर्य और एक चन्द्रमा किया है परन्तु सभाष्य०के 'सूर्याश्चन्द्रमसो' वाक्य का अर्थ = बहुत सूर्य बहुत चन्द्रमा किया है सभाष्य० में सूर्य-चन्द्रमाका समासमें न करने का हेतु ऐसाहै कि इस सूत्रमे समास न करनेका और आर्षप्रमाणसे सूर्य तथा चन्द्रमा का क्रमभेद करनेका कारण यह है कि जिससे यह सूचित होजाय कि इनकी यथा क्रम ऊर्ध्व स्थिति है अर्थात् आर्ष ग्रन्थोंमे चन्द्रमा पूर्व पठित है। और सूर्य पश्चात् वह यहां पर इष्ट नहीं है। यहां पर सूर्यका ही प्रथम कहना है क्योंकि पाठ के क्रमानुसार ऊपर इन सूर्योंकी स्थिति नहीं है। किन्तु इनकी एकके पश्चात् दूसरको ऊपर ऊपर स्थिति है। जैसे सबके नीचे प्रथम सूर्य है। चन्द्रमाओंके ऊपर ग्रह हैं, उनके ऊपर नक्षत्र है। और नक्षत्रोंके ऊपर प्रकीर्णक तारका है। और तारा, ग्रह तो अनियत चारी अर्थात्

ज्योतिस्स्वभावत्वादेषां पञ्चानामपि ज्योतिष्का इति सामान्यसञ्ज्ञा अन्वर्था ॥ सूर्यादयस्तद्विशेषसंज्ञा नामकर्मोदयप्रत्ययाः ॥ सूर्याचन्द्रमसाविति पृथग्ग्रहणं प्राधान्यख्यापनार्थम् ॥

सूत्रार्थ—ज्योतिष्काः१। सूर्य-चन्द्रमसौ१ ग्रह-नक्षत्र च*	=ज्योतिष्कदेव सूर्य चन्द्रमा और (=च) ग्रह, नक्षत्र
प्रकीर्णकतारकाः१। पञ्च१। विकल्पाः१। भवन्ति	=प्रकीर्णक तारे पांच प्रकार हैं
वृत्त्यर्थ— ज्योतिः-स्वभावत्वात्५॥ एषां६। पञ्चानाम्६।	=ज्योतरूप स्वभाव होनेसे इन पांचों (सूर्य-चन्द्र-ग्रह-नक्षत्र-प्रकीर्णक तारों) की
अपि* ज्योतिष्काः१। इति* सामान्य-सञ्ज्ञा१॥ अन्वर्था१॥	=भी ज्योतिष्का ऐसी सामान्य संज्ञा सार्थक अर्थात यथा नाम तथा गुणरूप है।
सूर्य-आदयः१।	=सूर्यादिक अर्थात सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र, प्रकीर्णक, तारका,
तद्-विशेष-संज्ञा१। नाम-कर्म-उदय-प्रत्ययाः१।	=उन (ज्योतिषी देवों)की विशेष संज्ञायें (विशेष) नाम कर्मके उदयके निमित्तसे हैं
सूर्या-चन्द्रमसौ१। इति* पृथक्* ग्रहणं१॥	=सूर्याचन्द्रमसौ ऐसे (इन दोनोंके योग मासमें) अलग (विभक्ति) ग्रहण
प्राधान्य-ख्यापन-अर्थम्१॥	=(उन दोनों सूर्य चन्द्रकी)मुख्यता वा श्रेष्ठता(ग्रह नक्षत्र तारकोंपर) जतानेके लिये है

अर्थात प्रश्न यह है कि जैसे दशवां नं०में भवनवासी देवोंके दश भेद मिलाकर कहे और अन्तमें प्रथमा विभक्ति बहुवचन दे दी और व्यन्तरोंके आठ भेद मिलाकर अन्तमें प्रथमा विभक्ति बहुवचन देदी।

जिनकी गति नियत नहीं ऐसे होनेसे सूर्य तथा चन्द्रमाके ऊपर तथा नीचे भी भ्रमण करते हैं और सूर्यसे दश योजन अन्तराल होवे है अर्थात सूर्यसे दश योजन दूर रहते हैं ॥ ( ) सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र० में हमारे यहांके 'प्रकीर्णक' शब्दके स्थानमें 'प्रकीर्ण' शब्द है। शेषपाठ एक है दोनों सम्प्रदायोंमेंअर्थ लगभग एक सा है।

( ) श्वेताम्बर आम्नायके 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्र'का पाठ ' ज्योतिष्काः सूर्याश्चन्द्रमसो ग्रहनक्षत्रप्रकीर्णतारकाश्च॥१३॥ "

श्वेताम्बर समाजके 'आगमानुसारिणी तत्त्वार्थटीका'-सिद्धसेनसूरि रचितका पाठ "ज्योतिष्काः सूर्याः चन्द्रमसो ग्रहा नक्षत्राणि प्रकीर्ण तारकाश्च"

(१) इस "पञ्चविकल्पा" वाक्यको तीसरे सूत्रसे इस सूत्रमें लिया है अथवा अनुवर्तन किया है ( ) (शङ्का) 'चन्द्रमस्' शब्द सूत्रमें क्यों लाये? जब पुल्लिङ्गमें ही 'चन्द्र'शब्द उसी अर्थमें छोटा शब्द है। अथवा इन्दु, विधु, अब्ज,सोम,शशी, इन छोटे शब्दोंमेंसे कोईशब्द लाते। अमरकोश ३ सर्ग १३ श्लोक (उत्तर)चन्द्र और शब्दोंसे प्रसिद्ध है परन्तु चन्द्रमा सब से प्रसिद्ध है बच्चे तक चन्द्रमा कहते हैं इससे सूत्रमें 'चन्द्रमस' शब्द लाये हैं॥

किं कृतं पुनः प्राधान्यं ? प्रभावादिकृतम् ॥ क्व पुनस्तेषामावासाः ? इत्यत्रोच्यते अस्मात्समानभूमि-भागादूर्ध्वं सप्तयोजनशतानि नवत्युत्तराणि ७९० उत्पत्य सर्वज्योतिषामधोभागविन्यस्तास्तारकाश्चरन्ति । ततो दशयोजनान्युत्पत्य सूर्याश्चरन्ति । ततोऽशीतियोजनान्युत्पत्य चन्द्रमसो भ्रमन्ति । ततश्चत्वारि योजनान्युत्पत्य नक्षत्राणि । ततश्चत्वारि योजनान्युत्पत्य बुधाः । ततस्त्रीणि

उसी प्रकार इन पांचों भेदोंको मिलाकर इसप्रकार सूत्र करदेते कि "सूर्य-चन्द्रमः-ग्रह-नक्षत्र-प्रकीर्ण- कतारकाश्च" सो ऐसा सूत्र न करके "सूर्यचन्द्रमसौ" इन दो शब्दोंकी प्रथमा विभक्ति दो वचन न्यारीकी और शेष सूत्र "ग्रह-नक्षत्र प्रकीर्णकतारकाश्च" इन तीन शब्दोंकी न्यारी विभक्तिकी सो ऐसा क्यों किया । उत्तरमें कहते हैं कि सूर्य और चन्द्रकी शेष तीन प्रकारके ज्योतिषी देवोंपर प्रधानता (=प्राधान्य)जतानेके लिये सूर्य-चन्द्रमाकी विभक्ति अथवा कारक न्यारा किया और शेष तीन ग्रह नक्षत्र प्रकीर्णक तारका का न्यारा कारक किया ॥

किं;।।। कृतम् ;।।। पुनः* प्राधान्यम् ;।।।	=(प्रश्न) बहुरि क्या प्रधानपना वा श्रेष्ठता (इन सूर्य चन्द्रकी अन्य ज्योतिषियोंपर) है
प्रभाव-आदि-कृतम् ;।।। । क्व* पुनः* तेषाम्;।	=(उत्तर) प्रताप आदिक करि (प्रधानपना) किया है । (प्रश्न) बहुरि तिनके कहां
आवासाः;। इति* । अत्र* उच्यते	=निवास स्थान हैं (उत्तर) यहां कहा जाय है कि
अस्मात्;। समान-भूमि-भागात्;। ऊर्ध्वम्*	=इस (मध्यलोकके) समान भूमिभागसे अर्थात् चित्राभूमिसे ऊपरकी ओर(=ऊर्ध्वम्)
सप्त-योजन-शतानि;।।। नवति-उत्तराणि;।।। उत्पत्य	=सात सौ योजन नव्वै अधिक ७९० ऊंचा (=उत्पत्य)
सर्व-ज्योतिषाम्;। अधस्* भाग-विन्यस्ताः;।	=समस्त ज्योतिषियोंके नीचे भागमें फैले हुये (=विन्यस्त)
तारकाः;। चरन्ति ततः* दशयोजनानि;।।।	=तारे विचरते हैं वहांसे अर्थात तिन तारकाओंसे दशयोजन
उत्पत्य* सूर्याः;। चरन्ति-ततः* अशीति-योजनानि;।।।	=ऊपर सूर्य भ्रमण करते हैं । वहांसे अस्सीयोजन
उत्पत्य* चन्द्रमसः;। भ्रमन्ति ततः* चत्वारि;।।।	=ऊपर चन्द्रमा विचरे हैं । वहांसे चार
योजनानि;।।। उत्पत्य* नक्षत्राणि;।।। ततः* चत्वारि;।।।	=योजन ऊपर नक्षत्र (२८) हैं । वहांसे चार
योजनानि;।।। उत्पत्य* बुधाः;। ततः* त्रीणि;।।।	=योजन ऊंचे बुद्ध हैं । वहांसे तीन

योजनान्युत्पत्य शुक्राः । ततस्त्रीणि योजनान्युत्पत्य बृहस्पतयः । ततस्त्रीणि योजनान्युत्पत्याङ्गारकाः । ततस्त्रीणि योजनान्युत्पत्य शनैश्चराश्चरन्ति । स एष ज्योतिर्गणगोचरो नभोऽवकाशो दशाधिकयोजनशतबहलस्तिर्यगसंख्यातद्वीपसमुद्रप्रमाणो घनोदधिपर्यन्तः ॥ उक्तं च-णउदुत्तरसत्तसया—

योजनानि ।॥ उत्पत्य * शुक्राः ।; ततः * त्रीणि ।॥ =योजन ऊंचे शुक्र हैं। वहां से तीन

योजनानि ।॥ उत्पत्य * बृहस्पतयः ।; ततः * त्रीणि ।॥ =योजन ऊंचे बृहस्पति हैं। वहां से तीन

योजनानि ।॥ उत्पत्य * अङ्गारकाः ।; ततः * त्रीणि ।॥ =योजन ऊपर मंगल हैं। वहां से तीन

योजनानि।॥ उत्पत्य * शनैश्चराः ।। चरन्ति T =योजन ऊपर शनैश्चर भ्रमण करते हैं।

सः ।। एषः।। ज्योतिर्गण-गोचरः ।। नभस्-अवकाशः ।। =सो यह जोतिष्क मंडल (=गण) को विषयरूप (=गोचर) आकाशका स्थानदेना (अवकाश)

दश-अधिक-योजन-शत-बहलः ।। =दश ऊपर सौ योजन मोटा (=बहलः) है अर्थात् इस समतल भूमिसे अर्थात् चित्रा पृथिवीमें सातसौनब्बे योजनके ऊपर नौसौ योजन पर्यन्त एकसौदश योजन मोटा ज्योतिषी देवोंका पटल है

तिर्यग् * =और तिर्यग् विस्तार अर्थात् तिरछा वा दायें बायें वा इधर उधर फैलाव

असंख्यात-द्वीप-समुद्र-प्रमाण ।। घनोदधिपर्यन्तः ।। =असंख्यात द्वीप समुद्र प्रमाण (लम्बा चौडा) घनोदधि वातवलय पर्यन्त है

अर्थात् घनोदधिवातवलय (जो घनवातवलयके आधार है और घनवातवलय जो तनुवातवलयके आधार है तनुवातवलय आकाश के आधार है और आकाश अपने ही आधार है) गीलो पवनका है उसके भीतर इनका तिर्यग् विस्तार नहीं है वरन जहां यह घनोदधिवातवलय आरम्भ हुआ है वहां इन ज्योतिष्क देवोंके विस्तारका अंत है (घनोदधि पर्यन्त वाक्य का आशय और भावार्थ मेरी समझमें ऐसाही आया है वह स्पष्ट करदिया, शेष पाठकगण निर्णय करें)

उक्तम् ।॥ च * णउदु-उत्तर-सत्तसया(नवति-उत्तर-सप्तशतानि ।॥) =कहा गया भी है कि नब्बे ऊपर सातसौ योजन अर्थात् सातसौ नब्बे योजन

* यह गाथा जिस स्थानसे लीगई है इसमें पहिलेकी आर्यामें 'योजन' शब्द का जो प्रकरण था इस गाथामें नहीं है अनुवर्तन यहां करना चाहिये।

दस सीदी चदुदुगातियचउक्कम् तारारविससिरिक्खा बुहभग्गवगुरुअंगिरारसणी ॥१॥

ज्योतिष्काणां गतिविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

दस;॥ सीदी;॥ चदुदुग-तियचउक्कं ;॥ (दश;॥ अशीति;॥ चतुर्द्विक-त्रयचतुष्कम्;॥)	=दशयोजन-अस्सीयोजन-चारयोजन दो वार अर्थात् चारयोजन चारयोजन तीनयोजन चारवार अर्थात् तीनयोजन, तीनयोजन, तीनयोजन, तीनयोजन,
तारा-रवि-ससि-रिक्खा;। (तारा-रवि-शशि-रिक्षाः;।)	=तारे, भान, चन्द्रमा, नक्षत्र (अठाईस)
बुह-भग्गव-गुरु-अंगिरा-रसणी;। बुद्ध-भार्गव-गुरु-अंगारका-शनयः;।	=बुद्ध-शुक्र-बृहस्पति-मंगल (और) शनैश्वर (यथासंख्य सम भूमिसे विचरें) हैं

भावार्थ सम भूमि चित्रा पृथिवीसे सातसौ नव्वै योजन ऊंचे तारे हैं। तिन तारों से दश योजन ऊपर सूर्य हैं। तिन से ८० योजन ऊपर चन्द्रमा हैं। तिनसे चारयोजन ऊपर नक्षत्र हैं। तिनसे चारयोजन ऊपर बुद्ध हैं। तिनसे तीनयोजन उर्ध्व शुक्र हैं। तिनसे तीनयोजन ऊपर बृहस्पति है। तिनसे तीनयोजन ऊंचे मंगल हैं और मंगलसे तीनयोजन ऊपर शनिश्चर हैं।

ज्योतिष्काणां;॥ विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थं;॥ आह-	=ज्योतिषी देवोके गमन विशेषके ज्ञानके लिये (उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

❀ पूज्यपाद स्वामीके मतमें चन्द्रमासे चारयोजन ऊपर नक्षत्र हैं और नक्षत्रोंसे चारयोजन ऊपर बुद्ध (देव) हैं परन्तु तत्त्वार्थराजवार्तिकके रचयिता श्री अकलंक स्वामी तथा श्लोकवार्तिकके रचयिता श्रीमद् विद्यानंदि स्वामीके मतमें चन्द्रमासे तीन योजन ऊपर नक्षत्र हैं और नक्षत्रोंसे तीन ही योजनपर बुद्ध हैं इन आचार्योंके मतानुसार बृहस्पति देवोसे चारयोजनकी उंचाईपर मंगल हैं और मंगलसे चार योजनकी उंचाईपर शनैश्चर नामके ज्योतिषीदेव भ्रमण करतेहैं अर्थात् सर्व आचार्य (।) ज्योतिष्क समस्तदेवोंके क्रमानुसार अवस्थित (॥) तथा क्रमानुसार एक दूसरेके ऊपर ऊपर होनेमें सहमत हैं (॥।) इस वातमें भी सहमत है कि ज्योतिष्क पटल एकसौ दशयोजन उंचाईमे गगनमें फैल रहा है। केवल मतभेद इतना है कि एकके-मतमें नक्षत्र और बुद्ध चार चार योजन ऊंचे हैं और मंगल शनिश्चर तीन तीन योजन ऊंचे हैं अन्य आचार्योंके मतमें मंगल-शनिश्चर प्रत्येक गण चार-चार योजन ऊंचे हैं और नक्षत्र, बुद्ध (देव) तीन तीन योजन ऊपर हैं॥ श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य० में तथा भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीका (श्री सिद्धसेनसूरि रचित) में ऐसा आशय दिया है कि 'समान भूमिभागसे आठसौ (८००) योजनपर सूर्य है, सूर्यसे अस्सी (८०) योजनपर चन्द्रमा है और चन्द्रमासे वीस (२०) योजनपर तारा है' श्वेताम्बर आम्नायके [illegible] तत्त्वार्थाधिगम सूत्रके पृष्ठ १०० "जहां सम तल-भूमि भागसे ऊपर सातसौ (७००) योजन अधिक नव्वे (९०) योजन, प्रथम ज्योतिष्क विमानोंका प्रस्तार है,

उसके दश योजन ऊपर भानु वा सूर्य विमानका प्रस्तार या पटल है। उसके ऊपर अस्सी योजन चन्द्रमाके विमानका प्रस्तार है। तिस (चन्द्र-विमान) के ऊपर वीस योजन तारा ग्रहोंके विमानका विस्तार है। इस प्रकार ज्योतिष्कलोक एकसौ दश योजन मोटा है। देखो भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीका इसी सूत्रपर पृष्ठ ३२४ जहांसे उपर्युक्त भाष्यका शब्दशः अनुवाद किया है। संस्कृतभाष्य विस्तारभयसे नहीं लिखा है। ऊपरसे प्रगट है कि उनके यहां उक्त दो भाष्योंमें विशेषरूपसे नहीं दर्शाया है कि जिससे हमको निर्णय करनेमें सहायता मिले। एक बातको आचार्योंके मतमें पढ़कर बहुत अचम्भित और विस्मय हुआ कि उसी एक गाथासे पूज्यपाद स्वामीने अपना मत पोषण किया है और उसी आर्या छन्दसे कुछ एक शब्दकी हेराफेरी सहित अकलंक स्वामीने अपना मत पोषण किया है। अब हम उक्त तीनों आचार्योंका मत शब्दशः लिखते हैं। पूज्यपाद स्वामीका मत शब्दशः हम पृष्ठ ३१, ३२, ३३ में लिख चुके हैं विस्तारभयसे दुहरानेकी आवश्यकता नहीं।

(१) अकलंक स्वामीका मत ऐसे है कि:—

अस्मात् समात् भूमिभागात् ऊर्ध्वं सप्तयोजनशतानि	=इस समतल (चित्रा पृथिवीके) भूमिभागसे ऊपर सातसौ योजन (और)
नवत्युत्तराणि उत्प्लुत्य	=नव्वे सहित ऊंचाईपर (=उत्प्लुत्य) अर्थात् सातसौ नव्वे योजनकी ऊंचाईपर
सर्व ज्योतिषां अधोभाविन्यः तारका चरन्ति	=समस्त ज्योतिषीदेवोंमें नीचे रहने वाले (=अधोभाविन्य) तारे भ्रमण करते हैं।
ततःदशयोजनानि उत्प्लुत्य सूर्याः चरन्ति	=उन (तारों) से दशयोजन ऊंचाई पर (=उत्प्लुत्य) सूर्य भ्रमण करते हैं।
ततः अशीति योजनानि उत्प्लुत्य चन्द्रमसः भ्रमंति	=उन (सूर्यों) से अस्सी योजन ऊंचाईपर वा उलंघनकर चन्द्रमा भ्रमण करते हैं।
ततः त्रीणि योजनानि उत्प्लुत्य नक्षत्राणि	=उन (चन्द्रमाओं) से तीन योजन ऊंचाईपर नक्षत्र (भ्रमण करते हैं)
ततः त्रीणि योजनानि उत्प्लुत्य बुधाः	=उन (नक्षत्रों) से तीन योजन ऊंचाईपर बुद्ध (देव भ्रमण करते) हैं
ततः त्रीणि योजनानि उत्प्लुत्य शुक्राः	=उन (बुद्धदेवों) से तीन योजन ऊपर शुक्र (देव भ्रमण करते) हैं
ततः त्रीणि योजनानि उत्प्लुत्य बृहस्पतयः	=उन शुक्र (देवोंसे) तीन योजन ऊपर बृहस्पति (देव) हैं
ततः चत्वारि योजनानि उत्प्लुत्य अंगारकाः	=उन बृहस्पति (देवों) से चार योजन ऊंचे मंगल (=अंगारका) भ्रमण करते) हैं
ततः चत्वारि योजनानि उत्क्रम्य शनैश्चराः चरन्ति	=उन (मंगल देवों)से चार योजन ऊंचे (=उत्क्रम्य) शनिश्चर (भ्रमण करते) हैं
सः एषः ज्योतिर्गणगोचरः नभ अवकाशः दशाधिक—योजनशतबहुलः	=सो यह ज्योतिषियोंका समूहके गोचर आकाशका अवकाश वा आकाशदेश दशऊपर =सौ योजन मोटा है (=बहुलः =बहु रः) अर्थात् एक सौ दश योजन गगनमे फैलि रह्यो परमाणिय

तिर्यग्-असंख्यात-द्वीप-समुद्रप्रमाणः घनोदधिपर्यंत	=(और) तिरछा विस्तार असंख्याते द्वीप समुद्र प्रमाण घनोदधि वातवलय तक है।
उक्तं च-णवदुत्तरसत्तसया (नवति-उत्तर-सप्तशतानि)	=कहा जाता भी है कि नव्वै ऊपर सातसौ (योजन) अर्थात् सातसौ नव्वै योजन
दस-सीदि-चदु तिगं च दुगचदुक्कं दश-अशीति-चतुःत्रिक-च द्विक चतुष्कम्	=दशयोजन, अस्सीयोजन, चारवार तीनयोजन, और (=च) दोवार चार योजन अर्थात् तीनयोजन, तीनयोजन, तीनयोजन, तीनयोजन और चारयोजन चारयोजन (चित्रा भूमिके समतलसे उंचाईपर-क्रमसे)
तारा-रवि-ससि-रिक्खा (तारा-रवि-शशि-रिक्षाः)	=तारे, सुर्य, चन्द्रमें, नक्षत्र
बुद्द-भग्गव-गुरु-अंगिरा-रसणी बुद्ध-भार्गव-गुरु-अंगारका-शनयः	=बुद्ध-शुक्र-वृहस्पति-मंगल-शनिश्चर (देव) (विद्यमान) हैं

यह आर्या छदके सर्वार्थसिद्धि वृत्तिमें (और एक हस्त लिखित प्रतिमें भी) और राजवार्तिक की दो मुद्रित प्रतियोंमें, पन्नालाल दुनीकी हस्तलिखित प्रतिमें तथा पन्नालाल न्यायदिवाकर हस्तलिखित और अनुवादित एक प्रतिमे भी, प्रथम, तृतीय और चतुर्थ पाद शब्दशः एक ही है केवल द्वितीय पादके अंत भागके पाठमे सर्वार्थसिद्धिका पाठ "चदुदुग तियचउक्कं" (चार दोवार, तीन चारवार) के स्थानमें तत्त्वार्थराजवार्तिक में "चदु तिगं" च "दुग चदुक्क" पाया जाता है इसीसे अर्थमें भेद है जिसको हम ऊपर लिख चुके हैं और दोनों पाठोंमे जो अन्तर है उस तृतीय पादका भी अर्थ दोनों मतानुसार ऊपर लिख चुके हैं विद्यानंदि स्वामीने 'मेरुप्रदिक्षणा नित्यगतयो नृलोके' ॥१३॥ इससूत्रके नीचे अकलंक स्वामी से सहमत होते हुये निम्न श्लोक दिये हैं :—

योजनानां शतान्यष्टौ (=शतानि अष्टौ) हीनानि दश योजनैः। उत्पत्य तारकास्तावच्चरंत्यध (तारकाः तावत् चरंति अधस्) इति श्रुतिः =आठसौ योजनमेंसे दशयोजन कम घाटि, सातसौ नव्वै योजन तो (चित्रा भूमिके समतलसे) ऊपर (=उत्पत्य) तारे (सब ज्योतिष्कोंमे) नीचे विचरते हैं ऐसा शास्त्र है॥ ततः सूर्या दशोत्पत्य (=दश-उत्पत्य) योजनानि महाप्रभाः। ततश्चंद्रमसो शीति (ततः चन्द्रमसोऽशीति) भानि त्रीणि ततस्त्रयः (ततः त्रय) ॥४॥ उन (ताराकाओं)से दशयोजन ऊपर महाप्रभावाले सूर्य भ्रमते हैं। उन (सूर्योंसे) अस्सीयोजन (ऊपर) चन्द्रमें हैं। इन तीनोसे (ऊपर) तीन (त्रीणि) योजन नक्षत्र हैं ॥४॥ त्रीणि त्रीणि बुधाः शुक्रा गुरवश्चोपरि (=गुरवः च उपरि) क्रमात। चत्वार्यंगारका स्तद्वच्चत्वारि (=चत्वारि अंगारकाः तद्वत् चत्वारि) च शनैश्चराः ॥३॥ तीन तीन (योजन) बुद्ध शुक्र वृहस्पति क्रमसे (एक दूसरेके) ऊपर हैं। वैसे ही (=तद्वत) चारयोजन ऊपर मंगल हैं और (=च) चारयोजन ऊपर शनीश्चर हैं ॥५॥ भाषाके टीकाकार पं० सदासुख जी और पं० जयचंद राय जी ने अकलंकदेव स्वामी और विद्यानन्दि स्वामीके मतानुसार अर्थ प्रकाशिका और सर्वार्थसिद्धि वचनिकामें उल्लेख किया है परन्तु कविवर द्यानतराय जीने चरचा शतकमें (संवत् १७८०) पूज्यपाद स्वामीके मतानुसार ऐसा छप्पयछंद बनाया है कि "सात सतक अरु नव्वै तासपर तारे राजैं। ता ऊपर दशभान असीपर चन्द्र विराजैं। चार नखत बुधचार तीनपर शुक्र बतायो। तीन गुरू कुज तीन तीन पर शनि (=शनिश्चर) ठहरायो

॥ मेरुप्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोके ॥१३॥

मेरोः प्रदक्षिणाः मेरुप्रदक्षिणाः। मेरुप्रदक्षिणा इति वचनं गतिविशेषप्रतिपत्त्यर्थं विपरीतगतिर्मा विज्ञायीति ॥ नित्यगतय इति विशेषणमनुपरतक्रियाप्रतिपादनार्थम्। नृलोकग्रहणं विषयार्थम्। अर्धतृतीयेषु द्वीपेषु द्वयोश्च समुद्रयोर्ज्योतिष्का नित्यगतयो नान्यत्रेति ॥

सूत्रम्— मेरुप्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोके ॥ =(ज्योतिष्काः) मेरु प्रदक्षिणाः नित्यगतयः नृलोके ॥१३

सूत्रार्थ— ज्योतिष्काः ₁।	=(ये पाच प्रकारके) ज्योतिषीदेव
मेरु-प्रदक्षिणाः ₂॥	=सुमेरुकी प्रदक्षिणा देते हुये अथवा मडलाकार फिरते हुये
नृ-लोके ₇। नित्य-गतयः ₁॥	=मनुष्य लोकमें अर्थात् अढाई द्वीप और दो समुद्रोमें निरन्तर गमन करनेवाले हैं
वृत्त्यनुवाद— मेरोः ₆। प्रदक्षिणा ₁॥ मेरु-प्रदक्षिणा ₁॥	=सुमेरुके मडलाकार फिरना सो मेरुप्रदक्षिणा है।
मेरु-प्रदक्षिणा ₁॥ इति * वचनं ₁॥। गति-विशेष—	=मेरुप्रदक्षिणा ऐसा वाक्य गमनविशेष
प्रतिपत्ति-अर्थम् ₁॥ विपरीतगतिः ₁॥ मा * विज्ञायि-इति	=जाननेके लिये है अन्य प्रकार गमन न जानो अर्थात् पूर्वोक्त ज्योतिषी देवोंका गमन सुमेरु पर्वतके मंडलाकार ही जानो भिन्न प्रकारसे न जानना
नित्य-गतयः ₁॥ इति * विशेषणं ₁॥। अनु-उपरत—	=(सूत्रमें) 'नित्यगतय' ऐसा गुणवाचक शब्द निरन्तर अथवा लगातार
क्रिया-प्रदिपादन-अर्थम् ₁॥। नृ-लोक—	=(गमनरूप) क्रियाके जनावनेके लिये है। मनुष्य लोकका
ग्रहणं ₁॥। विषय-अर्थम् ₁॥।	=ग्रहण देश (=विषय) के लिये है। अर्थात् ज्योतिषी देवोंके गमनकी मर्यादा अथवा सीमाके लिये है।
अर्ध-तृतीयेषु ₇। द्वीपेषु ₇। द्वयोः ₇। च समुद्रयोः ₇।	=अढाई (=अर्धतृतीयेषु) द्वीपमें और (=च) दो समुद्रोंमें
ज्योतिष्काः ₁। नित्यगतयः ₁॥ न-अन्यत्र * इति *	=ज्योतिषादेव नित्यगमन (करने) वाले हैं न दूसरे स्थानमें।

* श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रका पाठ और हमारे यहाँ का पाठ और अर्थ एक है परन्तु उनके यहांके 'भाष्यानुसारिणी-तत्त्वार्थटीका हस्तलिखितमे (श्री सिद्धसेनसूरि रचित) में 'मेरु प्रदक्षिणा नित्यगतयः' ऐसा पाठ है ॥

ज्योतिष्कविमानानां गतिहेत्वभावात्तद्वृत्त्यभाव इति चेन्न, असिद्धत्वात् ॥ गतिरताभियोग्यदेवप्रेरितगतिपरिणामात्कर्मविपाकस्य वैचित्र्यात्तेषां हि गतिमुखेनैव कर्म विपच्यत इति ॥ एकादशभिर्योजनशतैरेकविंशैर्मेरुमप्राप्य ज्योतिष्काः प्रदक्षिणाश्चरन्ति ॥ गतिमज्ज्योतिरसम्बन्धेन व्यवहारकालप्रतिपत्त्यर्थमाह

॥ तत्कृतः कालविभागः ॥ १४ ॥

ज्योतिष्क-विमानानाम् गति-हेतु अभावात्	=(प्रश्न) ज्योतिषी देवोंके विमानोंके गमनका कारण न होनेसे
तद्-वृत्ति-अभावः इति * चेत् * न *	=उस (गति)का प्रवर्तन नहीं (=अभाव) है। ऐसा संदेह होना चाहिये (उत्तर) (शंका) नहीं (क्योंकि यह कहना कि ज्योतिषीदेवोंके विमान स्थिर हैं इससे गमन नहीं करते हैं)
असिद्धत्वात् ॥ गति-रत-आभियोग्य-	=असिद्ध होता है। क्योंकि गमन विषैं लीन ऐसे आभियोग्य जातिके
देव-प्रेरित-गति-परिणामात्	=देवोंकरि किया (=प्रेरित) गमन परिणाम है। अर्थात् गतिरूप अवस्थामें परिवर्तन अथवा पलटाव है ॥
कर्म-विपाकस्य वैचित्र्यात् ॥ तेषाम् हि	=सो कर्मकी उदयकी विलक्षणतासे तिन (आभियोग्य जातिके देवों) के ही
गति मुखेन ॥ एव कर्म ॥ विपच्यते इति	=गमन रूप प्रधानतासे ही कर्म पकाया जाता है अर्थात् उदय होता है।
एकादशभिः ॥ योजन-शतैः ॥ एकविंशैः ॥ मेरुम् अप्राप्य	=ग्यारह सौ इक्कीस योजन मेरु को छोड़कर (उसे)
ज्योतिष्काः प्रदक्षिणाः ॥ चरन्ति । गतिमत्-ज्योतिस्-	=ज्योतिषी देव प्रदक्षिणा करते हैं। गमन करने वाले अथवा गतिमानज्योतिषीयोंके
सम्बन्धेन व्यवहार-काल-प्रतिपत्ति-अर्थम् ॥ आह ।	=सम्बन्धसे व्यवहार कालके जाननेके लिये (अग्रिम सूत्र में) कहते हैं कि

(१)सूत्रम्—

तत्कृतः कालविभागः ॥ १४ ॥

सूत्रार्थः—तत्कृतः (=तत्-कृतः) काल विभागः

तिन गतिमान ज्योतिषियों से (कृत) [illegible] काल का [illegible] विभाग है अर्थात् गमन करतेहुये सूर्य चन्द्रमादिक द्वारा व्यवहार कालके भाग जैसे समय, आवली, पल, घड़ी, पहर, दिन, रात, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, वर्ष, युग, इत्यादि [illegible] किये जाते हैं

(१) [illegible] ॥

तद्ग्रहणं गतिमज्ज्योतिःप्रतिनिर्देशार्थम् । न केवलया गत्या नापि केवलैर्ज्योतिर्भिः कालः परिच्छिद्यते, अनुपलब्धेरपरिवर्तनाच्च ॥

वृत्त्यनुवादः	
तद्-ग्रहणम्[1।1] गतिमत्-ज्योतिस्-प्रति*निर्देश-अर्थम्[1।1]	=(सूत्रमें) तत् शब्दका आदान गमन सहित ज्योतिषी देवों =के (=प्रति) कथनके लिये है
न*केवलया[3।1] गत्या[3।1]	न अकेले गमनसे (और)
न*अपि*केवलैः[3।3] ज्योतिर्भिः[3।3] कालः[1।1] परिच्छिद्यते	=न केवल ज्योतिषी देवों करि ही (=अपि) (यह व्यवहार) काल जानाजाता है (गमन करतेहुये ज्योतिषी देवोंकरि ही उक्त व्यवहारकाल समय आवलीआदि ज्ञात हैं)
अनुपलब्धेः[5।1] च*	=क्योंकि (व्यवहार काल) प्रत्यक्ष नेत्रों द्वारा नहीं देखाजासक्ता है और (=च)
अपरिवर्तनात्[5।1]	=न (उस व्यवहार काल का) पलटना (भी दीखे है)

(१) अनुपलब्धेः और अपरिवर्तनात् ये दो शब्द व्यवहार काल से सम्बन्ध रखते हैं अथवा ज्योतिष्क देवों से अर्थात् व्यवहार काल प्रत्यक्ष नेत्रों द्वारा और उस व्यवहारकालका परिवर्तन और पलटन नहीं दीखते हैं अथवा ज्योतिषी देवोंकी गति, गमन नहीं देखा जासक्ता है और वे परिवर्तन रहितहैं अर्थात् अवस्थित हैं ॥ इस 'तत्' शब्दके सम्बन्धमें हमको श्लोकवार्तिकमें, अर्थप्रकाशिकामें, प०सदासुखजीकी लघुटीकामें, श्वेताम्बरसम्प्रदायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें तथा उनकी भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकामें तथा दो चार अन्य भाषाओंकी टीका में कुछ भी नहीं मिलता है ॥ तत्त्वार्थ राजवार्तिकमें ठीक उसी आशय का लेख है जो सर्वार्थसिद्धि में है जैसे

संस्कृत सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका पाठ	तत्त्वार्थ राजवार्तिकालंकार का पाठ
तद् ग्रहणं गतिमज्ज्योतिः प्रतिनिर्देशार्थम्	तद्वचन गतिमज्ज्योति प्रति निर्देशार्थम् ॥१॥ गतिमतां ज्योतिषां प्रतिनिर्देशार्थं तदित्युच्यते
नकेवलया गत्यानापिकेवलैर्ज्योतिर्भिःकालःपरिच्छिद्यते,अनुपलब्धरेपरिवर्तनाच्च॥	नहि केवलगत्या नापि केवलैर्ज्योतिर्भिः काल परिच्छिद्यते,अनुपलब्धेर-परिवर्तनाच्च ज्योति परिवर्तनलभ्यो हि कालपरिच्छेदः।
"इहां तत्शब्दका ग्रहण गतिसहित ज्योतिष्क देवनिके कहनेके अर्थ है । सो यह व्यवहार काल केवल गतिही करि तथा केवल ज्योतिषीहीनिकरि नाहीं जान्या जायहै जातैं गमनतौ इनिका काहू कू दीषै नाहीं। बहुरि गमन न होयतौ ये थिरही रहैं। तातैं दोनों सम्बन्ध लैना" पं० जयचन्दजी कृता वचनिका मुद्रित पृष्ठ ३७४, हस्तलिखित पृष्ठ १४७ वा १४८	"सूत्रमें जो तत् शब्दका उल्लेख किया गया है वह गतिमान ज्योतिषियोंके ग्रहणार्थ हैं ॥१॥ केवल गति क्रियाके आधीन कालका निर्णय नहीं हो सकता क्योंकि गतिकी अनुपलब्धि है नेत्र से नहीं दीखपडती ॥ केवल ज्योतिषियों सेभी काल का निश्चय नहीं होसका क्योंकि

गति क्रिया रहित केवल ज्योतिषियोंको परिवर्तन रहित स्थिर माना जायगा।
स्थितिशील ज्योतिषियोंसे कालका निर्णय नहीं हो सकता। इसलिये कालके निश्चयमें गतिमान ज्योतिषी ही असाधारण कारण हैं। उन्हींसे कालका निर्णय होता है "राजवार्तिक अनुवादित पं० गजाधरलाल शास्त्री, पं० मक्खनलाल न्यायालंकारद्वारा ससोधित पृष्ठ१०३५॥
"अर्थ—सूत्रके विषै तत् शब्दका ग्रहण है सो गतिसहित ज्योतिष्क देवनिके कहनेके अर्थ है"
अर्थ टीकाका—गतिरूप परिणये जे ज्योतिषी ऐसे गति विशिष्ट ज्योतिषीनिके कहने के अर्थ सूत्र के विषै तत् शब्द कहा है॥
तहां यह व्यवहारकाल है सो केवल गतिही करि तथा ज्योतिषीनिकरि नाहीं जान्या जायहै॥ जातैं गमनतौ इनका काहू कूं दीखै नाहीं और गमन न होय तौ ज्योतिषीनिका परिवर्तनका अभाव होय तौ ये थिरही रहैं॥ ऐसे गमनकी अनुपलब्धितैं तथा ज्योतिषीनिके अपरिवर्तनतैं व्यवहार काल नहीं जाना जाय है॥
तातैं निश्चयकरि (=हि) ज्योतिषिनिके परिवर्तनतैं व्यवहारकाल जाना जाय है" पं० पन्ना-लाल न्याय दिवाकर अनुवादित तत्त्वार्थ राजवार्तिक अर्थात् तत्त्वार्थ रत्नमाला पृष्ठ ६३३
"गतिमान ज्योतिषीनिका किया काल विभागकूं जनावने के अर्थ तत् ऐसोशब्द कहिये है। अर निश्चयकरि केवल गति करि भी काल नहीं जानिये है अर केवल ज्योतिषीनिकरि भी काल नहीं जानिये है क्योंकि अनुपलब्धितैं कि प्रत्यक्ष नहीं दीखनेतें। अर अपरिवर्तनतैं कालकी सत्ता नहीं ज्ञात होय है अर्थात् काल प्रत्यक्ष भी नहीं दीखे है अर कालका पलटना भी नहीं दीखे है। यातैं ज्योतिषीनिका परिवर्तन करिही कालका जानपन है"॥ पं०पन्नालाल जी दूनीवाले अनुवादित राजवार्तिक पृष्ठ २१॥
मैंने पं० पन्नालालजी दूनीवाले के साथ सहमत होकर ऊपर अनुवाद किया है॥ मुझको लगभग दशवर्ष प्रथम भी सदेह हुआ था कि "अनुपलब्धेरप-रिवर्तनाच्च" वाक्यका अनुवाद ठीक नहीं है उस समय मैंने उसे छोड़ दिया था अब इन्द्रप्रस्थमें नाना प्रकार के साधन प्राप्त होने पर लिखा है॥ कारण यह है कि ज्योतिषियों का गमन अनुपलब्ध नहीं है क्योंकि हम सर्व उनका गमन प्रत्यक्ष आंखों से देखते हैं निस्संदेह काल प्रत्यक्ष नहींदीखता है और कालका पलटना भी नहीं दीखता है॥ स्मरण रहै कि कितने ही ज्योतिषीदेव थिर हैं उनका गमन नही होता अतः नहीं देखा जासकता है॥

कालो द्विविधो व्यावहारिको मुख्यश्च ॥ व्यावहारिकः कालविभागस्तत्कृतः समयावलिकादिः क्रियाविशेषपरिच्छिन्नोऽन्यस्यापरिच्छिन्नस्य परिच्छेदहेतुः ॥ मुख्योऽन्यो वक्ष्यमाणलक्षणः ॥ इतरत्र ज्योतिषामवस्थानप्रतिपादनार्थमाह—

॥ बहिरवस्थिताः ॥ १५ ॥

बहिरित्युच्यते, कुतो बहिः ? नृलोकात् ॥ कथमवगम्यते ?

कालः द्वि-विधः व्यावहारिकः मुख्यः च*	=काल दो प्रकार है व्यवहार और निश्चय (=परमार्थकाल) अर्थात् कालके अणु ॥
व्यावहारिकः काल-विभागः तत्-कृतः	=व्यवहार कालका विभाग तिन(गमन करते हुयेज्योतिषी देवो)से सूचितक्रियाहुआ
समय-आवलिक-आदिः क्रिया-विशेष-परिच्छिन्नः	=समय, आवली आदिक क्रिया विशेपकरि जाना गया है।
अन्यस्य अपरिच्छिन्नस्य परिच्छेद-हेतुः	=(सो) दूसरे विना जाने हुयेके जनावनेका कारण है। अर्थात् उसव्यवहारकालके विभाग समय आवली घटिका, दिन, मास, वर्प, इत्यादि दूसरे निश्चयकाल जो जाननेमे नहीं आसक्ता है। उसके सूचित करने वा जनावने का कारण है।
मुख्यः अन्यः वक्ष्यमाण लक्षणः ॥	=दूसरा परमार्थ काल वा निश्चयकालका स्वरूप (अ०पांच २२,३९,४०सूत्रोंमें है)
इतरत्र*ज्योतिपाम् अवस्थान-प्रतिपादन-अर्थम् आह।	=यहां (मनुप्यलोक)से भिन्न ज्योतिपी देवोके अवस्थितहोनेके कथनको कहते है कि
[1]सूत्रम्—बहिरवस्थिताः ॥ १५ ॥	=([2]ज्योतिष्काः [3]नृलोकात्)बहिर्-अवस्थिताः(भवन्ति)।१५।
सूत्रार्थ—ज्योतिष्काः नृ-लोकात्	=ज्योतिपी देव मनुष्य लोक से अर्थात् जम्बूद्वीप धातकी खंड, पुप्करार्ध और लवनोदधि और कालोदधि दो समुद्रोसे
वहिर्*अवस्थिताः भवन्ति।	=वाहिर गमन रहित हैं (जहां के तहां स्थिर रहते हैं)
वृत्त्यनुवादः—वहिर्*इति*उच्यते। कुतः*वहिः*	=वाहिर ऐसा (सूत्रमें) कहा गया है। (प्रश्न) कहां से वाहिर
नृ-लोकात् कथम्*अवगम्यते।	=(उत्तर) मनुष्यलोकसे (वाहिर) (प्रश्न) (मनुष्यलोकसे वाहिर यह) कैसे जानागया

(१) 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र'में तथा 'भाषानुसारिणी' तत्त्वार्थवोधिनी टीकामें और हमारे यहां सर्वत्र इस सूत्रका पाठ तथा अर्थ एक है ॥
(२) (३) 'ज्योतिष्का' बारहवां और 'नृलोकात्' तेरहवां सूत्रसेक्रमसे लियेगयेहैं। सवकीसन्धिकरनेसे 'ज्योतिष्का नृलोकाद्बहिरवस्थिता "ऐसासूत्रहोगा ॥

अर्थवशाद्विभक्तिपरिणामो भवति ॥ ननु च नृलोके नित्यगतिवचनादन्यत्रावस्थानं ज्योतिष्काणां सिद्धं । अतो बहिरवस्थिता इति वचनमनर्थकमिति । तन्न । किं कारणम् ? नृलोकादन्यत्र बहिर्ज्योतिषामस्तित्वमवस्थानं चासिद्धम् । अतस्तदुभयसिध्यर्थं बहिरवस्थिता इत्युच्यते ॥ विपरीतगतिनिवृत्त्यर्थं कादाचित्कगतिनिवृत्त्यर्थं च सूत्रमारब्धम् ॥

तुरीयस्य निकायस्य सामान्यसञ्ज्ञासङ्कीर्तनार्थमाह—

अर्थवशात् विभक्ति-परिणामः भवति । =(उत्तर)अभिप्रायकेवलसे वा सामर्थ्यसे विभक्तिका पलटाउ,वा परिणमनहोजाताहै अर्थात् १३ वां सूत्रमें कहा है कि "नित्यगतयो नृलोके"

(=नरलोकमे नित्यगमनकरनेवाले है) इस वाक्यसे स्वाभाविक प्रश्न आता है कि नरलोकमें तो नित्यगमनकरनेवाले है । फिर नरलोकके वाहिर क्या है यहां पर सप्तमी विभक्ति "नरलोकमे" अभिप्रायवश पंचमी विभक्ति "नरलोकसे" मे परिणमन होजाती है अथवा परिवर्तन करली जाती है

ननु*च*नृलोके नित्य-गति-वचनात् अन्यत्र* =वहुरिप्रश्न मनुष्यलोकमे नित्यगमन(ऐसे)वाक्यसेयहां(मनुष्यलोक)सेअन्यस्थानमें

अवस्थानम् ज्योतिष्काणाम् सिद्धम् =ज्योतिषी देवोंका अवस्थान सिद्ध वा निष्पन्न है ।

अतः*वहिर्*अवस्थिताः इति*वचनम् =इस लिये "वहिर् अवस्थिताः" ऐसा वचन अर्थात् यह पंद्रहवां समस्त सूत्रही

अन-अर्थकम् इति* । तद् न* =निष्प्रयोजन है (उत्तर) सो (=तद्) नहीं है

किम् कारणम् नृ लोकात् अन्यत्र* =क्या कारण कि मनुष्य लोकसे अन्यत्र

वहिर्*ज्योतिषाम् अस्तित्वम् अवस्थानम् चअसिद्धम् =वाहिर ज्योतिषी देवोंकी विद्यमानता औरगमनका अभाव(१५सूत्रसे सिद्ध है)

अतः*तद्-उभय-सिद्धि-अर्थम् =इसलिये उन(=तद) दोनो (अस्तित्व सत्ता और अवस्थान स्थिरता)प्राप्तिकेलिये

"वहिरवस्थिताः" इति*उच्यते । ॥ विपरीत गति- ="वहिरवस्थिता"ऐसा(सूत्र)कहागया है। उलटागमन अर्थात् अप्रदक्षिणारूपगतिके

निवृत्ति अर्थम् कादाचित्क-गति-निवृत्ति-अर्थम् च* =निषेधके लिये और (=च) कभी कभी होने वाले गमन के निराकरणकेलिये

सूत्रम् आरब्धम् ;तुरीयस्य निकायस्य =(यह पन्द्रहवां) सूत्र प्रारम्भ कियागया है ॥ (देवोंकी) चौथे समुदायकी

सामान्य-सञ्ज्ञा-सङ्कीर्तन-अर्थम् आह । =सामान्य संज्ञा कहनेके लिये (आचार्य अग्रिमसूत्रमें) कहते है कि

॥ वैमानिकाः ॥ १६ ॥

वैमानिकग्रहणमधिकारार्थम् । इत उत्तरं ये वक्ष्यन्ते तेषां वैमानिकसम्प्रत्ययो यथा स्यादिति अधिकारः क्रियते॥ विशेषेणात्मस्थान् सुकृतिनो मानयन्तीति विमानानि । विमानेषु भवा वैमानिकाः॥ तानि विमानानि त्रिविधानि । इन्द्रकश्रेणिपुष्पप्रकीर्णकभेदेन॥ तत्र इन्द्रकविमानानि इन्द्रवन्मध्ये व्यवस्थितानि ।

[1]सूत्रम्—वैमानिकाः ॥ १६ ॥	=([2]चतुर्थः[3]देवनिकायः)वैमानिकाः(सामान्यसञ्ज्ञा भवति)
सूत्रार्थः—चतुर्थः देवनिकायः वैमानिकाः सामान्यसंज्ञा भवति=चौथा देवोंका समुदाय वैमानिक ऐसी (उन देवों की) सामान्य सज्ञा है	
वृत्त्यनुवादः—वैमानिक-ग्रहणम् अधिकार-अर्थम्	=वैमानिक शब्दका ग्रहण अधिकार वा प्रकरण के लिये है
इतस् उत्तरम् वक्ष्यन्ते तेषाम्	=यहांसे आगे जो कहे जांयगे तिनकी
वैमानिक-सम्प्रत्ययः [4] यथा स्यात्	=यथायोग्य वैमानिक संज्ञा जानना चाहिये वा समझना चाहिये(=सम्प्रत्ययःस्यात्)
इति अधिकारः क्रियते ॥ विशेषेण आत्मस्थान्	=(यहां) ऐसा प्रकरण किया गया है॥ जिनमें रहनेवाले जीवोंको विशेषकरि
सुकृतिनः मानयन्ति इति विमानानि॥	=पुन्यवंत (अन्यजीव) मानते है । ऐसे विमान है ॥
विमानेषु भवाः वैमानिकाः । तानि विमानानि	=विमानोंमें (उत्पन्न) होनेवाले वैमानिक है । ते विमान
त्रिविधानि इन्द्रक-श्रेणि-पुष्पप्रकीर्णक-भेदेन	=तीन प्रकार इन्द्रक, श्रेणीवद्ध, और पुष्पप्रकीर्णक भेदसे है ।
तत्र इन्द्रक विमानानि इन्द्रवत् मध्ये व्यवस्थितानि	=तहां इन्द्रक विमान इन्द्रके समान बीचा बीचमें (=मध्ये) तिष्ठते हैं

(१) दोनों सम्प्रदायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एक है ॥ (२) इस वाक्यकी अनुवृत्ति इस अध्यायके पहिले सूत्रसे लोगई है ।

(३) क्योंकि इस अध्यायके प्रथम सूत्रमें देवोंके चार निकाय वा समुदाय कहे हैं और १०वां ११वां १२वांसूत्रामें भवनवासी व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंकी सामान्य और विशेषसज्ञायें यथासख्य कही हैं । तब केवल चौथासमुदाय अवशेष रहता है इसलिये चतुर्थशब्दका अध्याहार(=वह वाक्य जो स्पष्ट समझमें न आसके उसे किसी दूसरे शब्दकी कल्पना करि स्पष्ट करदेना) 'इस सोलवा सूत्र में किया है ॥

(४) यहां 'यथा' शब्द यथायोग्यके अर्थ मे लाया गया जान पड़ता है अर्थात् जिस जिस प्रकारके वैमानिक देव है जैसे कल्पोपपन्न उनमें भी लौकांतिक जातिके देव और कल्पातीत वैमानिका इत्यादि हों तैसे तैसे यथायोग्य जानों ॥ यथायोग्य, यथोचित, यथाविधि विधिपूर्वक ये चारों समान अर्थ वाचक हैं ॥ सस्कृत वृत्तिहस्तलिखित दो प्रतियोंसे मिलान किया तो यथा शब्द ही पाठ प्राप्त हुआ परन्तु राजवार्तिक मुद्रित तथा दो हस्त लिखित प्रतियों में "वैमानिक सप्रत्यय' कथ स्यादित्यधिकार क्रियते" अर्थात् 'यथा' शब्दके स्थान में कथम् शब्द है ॥ "पन्नालाल दूनीजीने "वैमानिकपणो की भले प्रकार प्रतीति कैसे होय यातै अधिकाररूप सूत्र करिये हैं ऐसा अनुवाद किया है ॥

तेषां चतसृषु दिक्षु आकाशप्रदेशश्रेणिवदवस्थानात् श्रेणिविमानानि । विदिक्षु प्रकीर्णपुष्पवदवस्थानात्पुष्पप्रकीर्णकानि ॥ तेषां वैमानिकानां भेदाववोधनार्थमाह—

॥ कल्पोपपन्नाः कल्पातीताश्च ॥ १७ ॥

कल्पेषूपपन्नाः कल्पोपपन्नाः कल्पानतीताः कल्पातीताश्चेति द्विविधा वैमानिकाः ॥

तेषामवस्थानविशेषनिर्ज्ञापनार्थमाह—

तेषाम् ॥ चतसृषु ॥ दिक्षु ॥	=तिन (इन्द्र विमानों) की चारों दिशाओंमें
आकाश-प्रदेश-श्रेणिवत् * अवस्थानात् ॥	=आकाशके प्रदेशकी श्रेणीके सदृश तिष्ठनेसे
श्रेणि-विमानानि ॥ विदिक्षु ॥ प्रकीर्ण-पुष्पवत् *	=श्रेणीबद्ध विमान हैं ॥ विदिशाओंमें विखरे फूलोंके समान
अवस्थानात् ॥ पुष्पप्रकीर्णकानि ॥	=स्थिति होनेसे वा तिष्ठनेसे पुष्प प्रकीर्णक है ।
तेषाम् ॥ वैमानिकानाम् ॥ भेद-अववोधन-अर्थम् ॥ आह	=तिन वैमानिकदेवोंके भेद जाननेके लिये (आचार्य अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि
[1]सूत्रम्—कल्पोपपन्नाःकल्पातीताश्च ॥ १७ ॥	=(वैमानिकाः)कल्पोपपन्नाः कल्पातीताःच (द्विविधाभवन्ति)
सूत्रार्थः—वैमानिकाः ॥ कल्प-उपपन्नाः ॥	=वैमानिक देव कल्प (अर्थात् स्वर्गों) मे उत्पन्नहोनेवाले
कल्प-अतीताः ॥ च *	=तथा(=च)कल्पातीत अर्थात् स्वर्गोंसे ऊपर उत्पन्नहोनेवाले भावार्थ स्वर्गों को उलंघकरि (ऊपर ऊपर) नवग्रैवेयक, नवअनुदिश, पांचअनुत्तरोंमेंउपजनेवालेऐसे
द्वि-विधा * भवन्ति	=दो प्रकार होते है
वृत्त्यनुवादः—कल्पेषु ॥ उपपन्नाः ॥	=स्वर्गोंमे (=कल्पेषु)उपजने वाले हैं
कल्पोपपनाः ॥ कल्पान् ॥ अतीताः ॥ च *	=(वे) कल्पोपपन्न है और (=च) स्वर्गोंको लांघने वाले (अर्थात् स्वर्गोंमें न उपज-करि उनके ऊपर नवग्रैवेयक नव अनुदिश, पांच अनुत्तर इन तेईस स्थानोंमें उत्पन्न होने वाले)
कल्प अतीताः ॥ इति * द्वि-विधा * वैमानिकाः ॥	=कल्पातीत है। ऐसे दो प्रकार वैमानिक देव है ।
तेषाम् ॥ अवस्थान-विशेष-निर्ज्ञापन-अर्थम् ॥ आह	=तिनके निवासस्थानका विशेष जाननेके(=निर्ज्ञापन) लिये कहते हैं कि

(१) दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एक है ॥

॥ उपर्युपरि ॥ १८ ॥

(१)सूत्रम्–उपर्युपरि (उपर्य्युपरि)	=(वैमानिकाः) उपर्युपरि (अवस्थितयः भवन्ति) ॥१८॥
सूत्रार्थः–वैमानिकाः१ उपरि*उपरि*	=वैमानिक देवोंके निवासस्थान (एक दूसरेसे) ऊपर ऊपर
अवस्थितयः१ भवन्ति	=अवस्थित है वा विद्यमान हैं अर्थात् कल्पोंके युगल तथा उनके पटल तथा नवग्रैवेयक नव अनुदिश और पांच अनुत्तर ये सव विमान क्रमसे ऊपर ऊपर अवस्थित है

(१) हमारे यहां 'उपर्युपरि' और कहीं कहीं 'उपर्य्युपरि' पाठ है 'अचोरहाभ्यां द्वे वा' व्याकरणके सूत्रसे दूसरा पाठ भी ठीकहै ॥ श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य०में'उपर्युपरि'पाठहै परन्तु भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीका श्रीसिद्धसेन सूरिरचितमें 'उपर्युपरि च' ऐसा पाठहै अर्थ सर्वत्र एक है ॥

(२) इससूत्रमें अनुवृत्ति किसकिस वाक्यकी है इसमें चार मतभेद हैं(क)पूज्यपाद स्वामीके मतमें "कल्पा"शब्द अनुवर्तताहै(सर्वार्थसिद्धिपृष्ठ२४३)

(ख) श्वेताम्बर आम्नायकी भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीका जिसमें बाईस सहस्र श्लोकों से अधिक हैं उसके अनुकूल 'कल्पा' शब्दअनुवर्तताहै। न तो 'देवा' न 'विमानानि' शब्द अनुवर्तन हैं। देखो भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थ टीका पृष्ठ ३३५

(ग) तत्त्वार्थराजवार्तिकके अनुसार 'कल्पा' शब्द की अनुवृत्ति सोलह स्वर्ग तकके लिये और 'विमाना' शब्दकी कल्पोंसे(स्वर्गोंसे)ऊपरके लियेहै अर्थात् 'कल्पा' और 'विमाना' दो शब्द अनुवर्तते हैं ॥ (घ)तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिकके अनुसार "वैमानिका." शब्दकी अनुवृत्ति इसहेतुसे होना चाहियेकि "वैमानिका." ऐसा अधिकार सूत्र सोलहवां जब कह चुके हैं तब उसके अनुकूल किसी अन्य शब्द वा वाक्य का अनुवर्तन नहीं होना चाहिये। श्लोकवार्तिक पृष्ठ ३८१ देखो ॥ रहा आशयके सम्बन्धमें सो "व्याख्यानतो विशेष प्रतिपत्ति नहि संदेहादलक्षणम्" (=संदेहात्मक वाक्यका यथार्थ तात्पर्य उसकी व्याख्यासे निर्णय किया जाता है क्योंकि नियम लक्षण रहित नहीं होता है) व्याकरण के इस सिद्धान्तसे स्पष्ट होसक्ता है ॥ सब आचार्यों के वाक्य अथवा वाक्योंके अनुवादका उल्लेख नीचे क्रमसे किया है ॥

() "उपर्युपरीत्युच्यन्ते"(सूत्रमें)ऊपर ऊपर ऐसे वर्णितहैं(प्रश्न)के ते ? ते(ऊपर ऊपर वर्णित)कौनहैं ॥ (उत्तर)कल्पा.= कल्पहैं (सर्वार्थ०पृष्ठ २४३

() 'कल्पा सम्बन्ध्यते। न देवा विमानानि वा यो य निर्देश. करिष्यते" भष्यानुसारिणीतत्वार्थ टीका पृष्ठ ३३५ देखो ॥

=इस उपर्युपरि सूत्रमें कल्पाः शब्द मिलायाजाता है न कि 'देवा' या 'विमानानि' शब्द जो यह कथन किया गया है ॥ (ऊपरके वाक्य का यह शब्दश. अनुवाद है)

() "इद विचार्यते-किमत्रादेयत्वेन कल्प्यमानाः देवा उत विमानानि आहोस्वित् कल्प इति किं वा कामचार" । तत्वार्थ राजवार्तिक पृष्ठ१५६

=यह विचार उत्पन्न होता है कि यहा (उपरि उपरि इस वचनसे) उपादेयपणांकरि (आदेयपनाकरि) अर्थात् ग्रहण करने योग्य कल्पना कियेगये (=कल्प्यमाना) देव (ऊपर ऊपर) हैं वा विमान (ऊपर ऊपर) है अथवा स्वर्ग (=कल्प)(ऊपर ऊपर) हैं अथवा वक्ताकी इच्छाका विषय स्वतन्त्र कोई पदार्थ है (=कामचार.) अर्थात् वक्ताकी इच्छानुसार कहीं देवोंका ग्रहणहै कहीं विमानोंका तो कहीं स्वर्गों का ग्रहण है ॥

भावार्थ प्रथम युगल पहले सौधर्म दूसरे ईशान स्वर्गके जो मध्य लोकसे

() देवा इतिचेन्नाऽनिष्टत्वात् ॥२॥ यदि देवा उपर्युपरीत्यनेनाभिसम्बन्ध्यन्ते । तन्न, किं कारण, अनिष्टत्वात् देवानां हि उपर्युपरि अवस्थानमनिष्टम् ॥
=जो 'देवा' उपरि उपरि के साथ सम्बन्ध कियेजाय सो हो नहीं सकते, किस कारण कि आगमके विरुद्ध होन से अनिष्ट है अतः देवोंका ऊपर
ऊपर अवस्थान नहीं माना जासक्ता हैं ॥ तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ १५६

() विमानानि इति चेन्न श्रेणि प्रकीर्णकानां तिर्यगवस्थानात् ॥३॥ संस्कृतअर्थ । अथ विमानान्युपर्युपरीति कल्प्यते तदपिनोपपद्यते । श्रेणिप्रकीर्ण-
कानां तिर्यगवस्थानात् । श्रेणिविमानानि पुष्प प्रकीर्णक विमानानि च प्रतीन्द्रक तिर्यगवस्थितानि इति इष्यते ॥ राजवार्तिक पृष्ठ १५६=विमान ऊपर
ऊपर है यदि (= अथ) ऐसो कल्पनाकी जाय सो अर्थ भी उत्पन्न नही होय है क्यो कि श्रेणीबद्ध विमानोका अर प्रकीर्णक विमानोंका तिर्यग्
तिरछा अवस्थान है । (अर्थात्) श्रेणीबद्ध विमान, पुष्पप्रकीर्ण विमान और प्रतीन्द्रक विमान (ये) तिर्यग् अवस्थित हैं ऐसा आगममें इष्ट करये है

() कल्पा इति चेद्दोष ॥४॥ संस्कृत अर्थ । यदि कल्पा न दोषो भवति 'यथा न दोष तथास्तु' कल्पाहि उपर्युपरि स्थिता इति॥ राजवार्तिक १५६
=जो (ऊपर ऊपर) कल्प (स्वर्ग) अवस्थित (हैं) तब (कुछ) दोष नहीं है। जैसे दोष न होय तैसे ही ठीक है। निश्चयकरि (=हि) कल्प ऊपर
ऊपर अवस्थित है भावार्थ यदि कहा जायगा कि कल्प ऊपर ऊपर अवस्थित है तब कुछ दोष नहो । तथा जिस बातके मानने में किसी प्रकारका दोष
नहीं वही बात मानना ठीक है। स्वर्गों का ऊपर ऊपर अवस्थान मानने में कोई दोष नहीं इसरीति से देव और विमानोंका ऊपर ऊपर अवस्थान
बाधित होनेसे स्वर्गोंका ही ऊपर ऊपर अवस्थान सुनिश्चित है।

() कल्पातीतेषु किमभिसम्बन्ध्यते ? विमानानि । तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ट १५६
(प्रश्न) कल्पातीतनिमें क्या सम्बन्ध किया जाय अर्थात् प्रश्न का सरांश यह है 'उपर्युपरि'में यदि हम केवल 'कल्पा' शब्दकी अनुवृति लेतेहैं तो
यह अर्थ होता है कि स्वर्ग वा कल्प ऊपर ऊपर है स्वर्ग से परे नवग्रैवेयक विमान, नव अनुदिश विमान, पांच अनुत्तर विमानों के अवस्थानके
सम्बन्धमें कुछ न जाना तो इनके अवस्थान जानने के लिये 'उपर्युपरि' वाक्य के साथ कौन शब्द अनुवर्तता है सो कहिदीजिये ।
(उत्तर) "उपर्युपरि के साथ' विमानानि (का सम्बन्ध करना चाहिये) इस सबका सारांश यहहै कि जहां हमें कल्पोपपन्न देवोंका'अवस्थान जाननाहै
वहां 'उपर्युपरि' के साथ 'कल्पा ' शब्द लगाना चाहिये कि स्वर्ग और उनके पटल ऊपर ऊपर है और जहां अहमिन्द्रों को अवस्थान विवक्षित हैं वहां
'उपयुपरि' के साथ 'विमानों" इस शब्द को जोडलो और कल्पातीत विमान ऊपर ऊपर है यह अर्थ समझलैना चाहिये ॥

दो राजू तक हैं इकतीस पटल, दूसरे युगल (तीसरे चौथे स्वर्ग सानत माहेंद्र जो मध्यलोकसे तीसरे राजूमें है) के सातपटल तीसरे युगल (ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर पांचवां छठवां स्वर्ग जो मध्यलोकसे साड़े तीसरे राजूमें है) के चार पटल, चौथा युगल (लांतव सातवां स्वर्ग कापिष्ट आठवां स्वर्ग जो तीसरे युगलसे आधे राजू ऊपर में है) के दो पटल, पांचवे युगल (शुक्र नवमां स्वर्ग महाशुक्र दशवां स्वर्ग जो मध्यलोक से साड़े चौथे राजू में है) का एक पटल, छठवां युगल(शतार ग्यारहवां स्वर्ग सहस्त्रार बारहवां स्वर्ग जो पांचवां युगलसे ऊपर आधे राजूमें है)का एक पटल, सातवां युगल(आनत तेरहवां स्वर्ग प्राणत चौदहवां स्वर्ग जो मध्यलोकसे साड़े पांचवां राजूमें है)के तीनपटल, आठवां युगल(आरण पंद्रहवां स्वर्ग अच्युत सोलहवां स्वर्ग जो सातवां युगलसे ऊपर आधे राजू में है) के तीन पटल इसप्रकार बावन पटलतो सोलह स्वर्गों के और तीन तिकड़ी ग्रैवेयक(अधोतिकड़ी, मध्यकी

() कल्पा इत्येके = कल्पाः इति एके (मुद्रित श्लोकवार्तिक पृष्ठ ३८१) =(उपर्युपरि के साथ अनुवृत्ति) 'कल्पाः' शब्दकी होना ऐसा कितनोंका मत हैं श्लोकवार्तिकका शब्दश संस्कृत पाठ विस्तारभयसे न लिखकर पं० गजाधरलाल शास्त्रीकी टिप्पणी जो पृष्ठ १०४५ (राजवार्तिकके अनुवाद) में दी है ऐसे है कि "उपर्युपरि" यहांपर कल्प शब्दका सम्बन्ध मानना सर्वसम्मत नहीं है क्योंकि 'वैमानिकाः' इस सूत्रको अधिकारसूत्र कहआये हैं। इसलिये इस सूत्रमें उसीका सम्बन्ध मानना ठीक होगा इस रीतिसे जिस प्रकार वैमानिकदेव कल्पोपपन्न और कल्पातीतहैं(इस प्रकार 'कल्पोपपन्ना 'कल्पातीनाश्च' इस सूत्रमें वैमानिकोंका सम्बन्ध है उसी प्रकार वैमानिकदेव ऊपरऊपर है, इस रूपसे 'उपर्युपरि' इस सूत्रमें भी वैमानिक देवोंका ही सवंध है। यदि यहांपर यह कहाजाय कि पहिले देवोंका ऊपरऊपर अवस्थान अनिष्ट कह आये हैं। यदि 'उपर्युपरि' यहांपर वैमानिकदेवोंका सम्बन्ध कर उनका ऊपर अवस्थान माना जायगा तो अनिष्ट होगा। सो ठीक नही। विशेषण रहित केवल देवोंका यदि ऊपर ऊपर अवस्थान मानाजाय तब अनिष्ट कहा जा सकता है किन्तु वहांनो मध्य में स्थित इन्द्रक विमान, तिर्यग् अवस्थित श्रेणीवद्ध और प्रकीर्णक विमानरूप कल्पोपन्नत्व विशेषण विशिष्ट देवों का तथा कल्पातीतत्व (नवग्रैवेयकत्व) आदि विशिष्ट देवोंका ग्रहण है। इस प्रकारके विशेषण विशिष्ट देवोंका ऊपर ऊपर रहना शास्त्र सम्मत है। अतएव इष्ट है। इसलिये कल्पोपपन्न और कल्पातीत दोनों की अपेक्षा 'उपर्युपरि' यहां पर 'वैमानिक' शब्द का ही सम्बन्ध ठीक है॥

() श्लोकवार्तिकका यह कथन यद्यपि स्थूल दृष्टि से विरुद्धसा मालूम होना है कि राजवार्तिक कारने विमानों को ऊपर ऊपर कहा है और श्लोक वार्तिक कारने देवों को ऊपर ऊपर कहा है, तथापि सूक्ष्म दृष्टिसे दोनों एक रूप ही में पडते है, श्लोक वार्तिक कारने केवल देवों को ऊपर २ नहीं कहा है किन्तु विमानोंसे विशिष्ट देवोंको कहा है, विमान सहित देव कहा जाय वा विमान कहाजाय दोनों का एक ही अर्थ है॥ "ते कल्प उपरि उपरि हैं" प० जयचन्द्रकृता वचनिका मुद्रित पृष्ठ ३७६॥

हम स्वामी विद्यानन्दिके सहमत हैं कि उक्त सूत्रमें 'वैमानिका' की अनुवृत्ति आती है क्योंकि यह अधिकार सूत्रहै। इसीलिये अधिकार सूत्र होताहै कि उसकी अनुवृत्ति बराबर अगले अगले सूत्रोंमें चलीजावै॥ रहा सूत्रोंका आशय सो प्रकरणके प्रसगवश द्वारा निकल आता है॥

किमर्थमिदमुच्यते? तिर्यगवस्थितिप्रतिषेधार्थमुच्यते॥ न ज्योतिष्कवत्तिर्यगवस्थिताः। न व्यन्तरवदसमावस्थितयः। उपर्युपरीत्युच्यन्ते॥ के ते? कल्पाः॥ यद्येवं, कियत्सु कल्पविमानेषु ते देवा भवन्तीत्यत आह—

॥ सौधर्मैशानसानत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मब्रह्मोत्तरलान्तवकापिष्ठशुक्रमहाशुक्रशतारसहस्रारेष्वानतप्राणतयोरारणाच्युतयोर्नवसु ग्रैवेयकेषु विजयवैजयन्तजयन्तापराजितेषु सर्वार्थसिद्धौ च ॥ १९ ॥

तिकड़ी ऊर्ध्व तिकड़ी) के नौ पटल जो मध्यलोकसे सांतवां राजूसे आरम्भ होकर चौड़ाई राजूके भीतर है । एक पटल नव अनुदिशका जो मध्यलोकसे साढ़े छठवां राजूसे आरम्भ होता है और उसही के भीतर है और एक पटल पांचअनुत्तरका जो मध्यलोकसे पोने सातवॉ राजूसे आरम्भ होता है और उसके भीतर ही है ये सब तेरह (=आठ युगलोंके, तीन तिकड़ी ग्रैवेयकोंके, एक अनुदिशका, एक पांच अनुत्तरका) स्थानों में त्रेसठ (६३) पटल एक दूसरेके ऊपर ऊपर अवस्थित है ॥

वृत्त्यनुवादः—किम्॥ अर्थम्॥ इदम्॥ उच्यते	=किसलिये यह (सूत्र) कहागया है ।
तिर्यग्-अवस्थिति-प्रतिषेध-अर्थम्॥ उच्यते	=(उत्तर) (वैमानिकदेवोंकी) तिर्यग् अवस्थानके निषेधकेलिये(यहसूत्र)कहागया है
न*ज्योतिष्कवत्*तिर्यग्-अवस्थिताः	=न (वे वैमानिक देव) ज्योतिषी देवोंके सदृश तिर्यग् अवस्थित है ।
न*व्यन्तरवत्*असम-अवस्थितयः	=न व्यन्तरों के समान विषम (अर्थात् जहां तहां) अवस्थित है ॥
उपरि*उपरि*इति*उच्यन्ते । के। ते। कल्पाः	=(इसलिये)ऊपरऊपर ऐसे वर्णित है । ते कल्प कौन है? अर्थात् वे स्वर्ग क्या हैं?
यदि*एवम्*कियत्सु॥ कल्पविमानेषु॥	=जो इस प्रकार है अर्थात् ऊपर उपर है तो कितने कल्प विमानोंमें
ते। देवाः। भवन्ति इति*अतः*आह	=वे देव है? इसलिये (आचार्य अग्रिमसूत्रमें) कहते है कि

सूत्रम्— सौधर्मैशानसानत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मब्रह्मोत्तरलान्तवकापिष्ठशुक्रमहाशुक्रशतारसहस्रारेष्वानतप्राणतयोरारणाच्युतयोर्नवसु ग्रैवेयकेषु विजय वैजयन्तजयन्ता पराजितेषु सर्वार्थसिद्धौच ॥ १९॥

पदच्छेदः (वैमानिकाः) सौधर्म-ऐशान, सानत्कुमार-माहेन्द्र, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर, लान्तव-कापिष्ठ,शुक्र-महाशुक्र,शतार-सहस्रारेषु, आनत-प्राणतयोः, आरण-अच्युतयोः, ग्रैवेयकेषु, नवसु, विजय-वैजयन्त-जयन्त-अपराजितेषु-सर्वार्थसिद्धौ च भवन्ति ॥ १९ ॥

सूत्रार्थः—वैमानिकाः[१] सौधर्म-ऐशान,	=वैमानिकदेव सौधर्म और ऐशानमें (प्रथमस्वर्ग और द्वितीयस्वर्गमें)
सानत्कुमार-माहेन्द्र, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर, लान्तव-कापिष्ठ,	=सानत्कुमार और माहेन्द्रमें, ब्रह्म और ब्रह्मोत्तरमें, लान्तव और कापिष्ठमें,

---

(१) हमारे यहांके सूत्रके 'ब्रह्म' शब्दके स्थानमें श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें 'ब्रह्मलोक' शब्द है और 'ग्रैवेयेकेषु' शब्दके स्थानमें उक्त सभाष्य में 'ग्रैवेयेषु' शब्द है परन्तु उनके यहांकी श्रीसिद्धसेनसूरि रचित भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकामें "ग्रैवेयेकेषु" ही है और "सर्वार्थसिद्धौ" शब्दके स्थानमें उक्त समाजके दोनों भाष्योंमें, 'सर्वार्थसिद्धे' शब्द है। इन चारों शब्दोंमें अर्थभेद नहीं है ॥ उनके दोनों ही भाष्योंमें ब्रह्मोत्तर-कापिष्ठ शुक्र शतार शब्द नहीं है अर्थात् उनके यहां केवल बारह ही स्वर्ग माने हैं, लान्तवके स्थाममें लांतक है शेष पाठ दोनों सम्प्रदायोंमें एक है ॥ इस सूत्रकी सख्याभी उनके यहां वीसवीं है ॥ हमारे यहां भी इन्द्रोंकी अपेक्षासे बारह कल्पही माने हैं ॥ देखो तत्वार्थराजवार्तिक वार्तिक४ ॥

दिगम्बर आम्नायके उन्नीसवां सूत्रका पाठ	श्वेताम्बर सम्प्रदायके सभाष्यतत्वार्थाधिगमसूत्रके वीसवां सूत्रका पाठ
सौधर्मेशानसानत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मब्रह्मोत्तरलान्तवकापिष्ठ-शुक्रमहाशुक्रशतारसहस्रारेष्वानतप्राणतयोरारणच्युतयो, नवसु ग्रैवेयकेषु विजयवैजयन्तजयन्तापराजितेषुसर्वार्थसिद्धौ च	सौधर्मैशानसानत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मलोक———लान्तक——— ———महाशुक्र——सहस्रारेष्वानतप्राणतयोरारणाच्युतयो- र्नवसु ग्रैवयेषु विजयवैजयन्तजयन्तापराजितेषु सर्वार्थसिद्धे च

(यदि ग्रैवेयेषुके स्थानमें 'ग्रैवेयकेषु' लिखदें तो भाष्यानुसारिणी का पाठ है)

अर्थभेद—सभाष्य० और भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थ टीकाके अनुकूल बारह स्वर्ग हैं हमारें यहां सोलह स्वर्ग हैं । ब्रह्मात्तर कापिष्ठ शुक्र-शतारको स्वर्ग नहींमानेहैं। उक्त आम्नायके दोनों भाष्योंमें 'नवसुग्रैवेयेषु' वा 'नवसुग्रैवेयकेषु' वाक्य केवल नौग्रैवेयकोंका द्योतक है नकि नव अनुदिशविमानोंका भी । हमारे यहां सर्वभाष्योंमें तथा हिन्दीअनुवाद और टीकाओंमें, उक्त वाक्यसे 'नौग्रैवेयक, और नौ ही अनुदिश ग्रहण किये हैं जिन अनुदिशोंका केवल एकही पटलहै। क्योंकि यदि उमास्वामी नो ग्रैवेयक ही ग्रहणकरते तो 'नव' शब्दको और ग्रैवेयक शब्दको भिन्नभिन्नसप्तमीविभक्तियोंमेंनहींलाते।

शुक्र-महाशुक्र- =शुक्र नवमे और महाशुक्र दशवें स्वर्गों में

एक विभक्ति 'नवग्रैवेयकेषु' ऐसी करते। सारांश हमारे यहां 'नवअनुदिश' सज्ञक विमानोंको माना है। श्वेताम्बर समाजने नहीं माना है। अर्थात् उनके यहां नव अनुदिशके नामसे कोई विमान नहीं स्वीकार किये हैं यद्यपि दोनो आम्नायोंमें प्रथम स्वर्ग सौधर्मसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तक विमानोंकी सख्या चौरासीलाख सतानवै सहस्र तेईस (८४९७०२३) एकसी मानी है जैसाकि निम्न लिखित लेखसे ज्ञात होता है

दिगम्बर तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ १०७, अर्थ प्रकाशिका पृष्ठ२६४	श्वेताम्बर आम्नायमें देखो सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ १०९
प्रथम सौधर्म स्वर्गमें वत्तीस लाख (३२०००००) विमान है	प्रथम सौधर्म कल्पमें वत्तीसलाख (३२०००००) विमान है
द्वितीय ईशान स्वर्गमें अट्ठाईस लाख (२८०००००) विमान है	द्वितीय ऐशान कल्पमें अट्ठाईस लाख (२८०००००) विमान हैं
तीसरे सनत्कुमार स्वर्गमें बारह लाख (१२०००००) विमान हैं	तीसरे सानत्कुमार कल्पमें बारहलाख (१२०००००) विमान हैं
चौथे माहेन्द्र स्वर्गमें आठलाख (८०००००) विमान हैं	चौथे माहेन्द्र कल्पमें आठलाख (८०००००) विमान है
पांचवां ब्रह्म ब्रह्मोत्तर युगलमें चारलाख (४०००००) विमान हैं	पांचवां ब्रह्मलोक कल्पमें चारलाख (४०००००) विमान हैं
छठवां लांतवकापिष्ठ युगलमें पचाससहस्र (५००००) विमान हैं	छठवां लान्तक कल्पमें पचाससहस्र (५००००) विमान हैं
सातवां शुक्र महाशुक्र युगलमें चालीससहस्र (४००००) विमान हैं	सातवां महाशुक्र कल्पमें चालीससहस्र (४००००) विमान हैं
आठवां शतार सहस्रार युगलमें छहसहस्र (६०००) विमान है	आठवें सहस्रार कल्पमें छहसहस्र (६०००) विमान है
आनत-प्राणत आरण-अच्युत स्वर्गोंमें सातसौ (७००) विमान हैं	आनत-प्राणत आरण अच्युत कल्पोंमें सातसौ (७००) विमान हैं
नवम तीनअधो ग्रैवेयकनि विषैं एकसौग्यारह (१११) विमान है	नवम तीन अधो ग्रैवेयकनिमें एकसौ ग्यारह (१११) विमान हैं
दशम तीन मध्यकी ग्रैवेयकनिमें एकसौसात (१०७) विमान है	दशम तीन बीचकी ग्रैवेयकनि में एकसौसात (१०७) विमान है
ग्यारहवें तीन ऊपरकी ग्रैवेयकनिमें इक्यानवै (९१) विमान है	ग्यारम तीन ऊपरकी ग्रैवेयकनि में एक शत (१००) विमान है
बारहवें नव अनुदिशके वा नवनवोत्तर के नौ (९) विमान है	(नवअनुदिश नाम न देतेहुये उन्होंने इसनौकी संख्याको ऊपर सौमें गर्भितकियाहै)
तेरहवें अनुत्तरक पांच (५) विमान हैं सर्वयोग(८४९७०२३) हुआ	अनुत्तर (बारहवीं सख्या पर) पांच विमान हैं॥ सर्वयोग (८४९७०२३) हुआ॥

¹शतार-सहस्रारेषु॥	=शतार और सहस्रार ग्यारहवें और बारहमें स्वर्गोंमें (इन छह युगलों में)
आनत-¹प्राणतयोः॥ आरण-¹अच्युतयोः॥	=आनत और प्राणत तेरहवां और चौदहवां स्वर्गोंमें, आरण और अच्युत स्वर्गोंमें

(१) यहां प्रश्न यह है कि कल्पोपन्नादेव और कल्पातीतदेव जब सब वैमानिक हैं और विमानोंके रहनेवाले है तो उमास्वामीने सूत्रके अंतमें ही एकबार सप्तमी विभक्ति बहुवचनमें क्यों नहीं की सातवार सप्तमी विभक्ति क्योंकी, एक विभक्ति करनेमें छह अक्षर और च और कईएक मात्राओंका लाभ होजाता अर्थात् जिसरूपमें सूत्रहै उस रूपमें न करके ऐसा सूत्र रचते 'सौधर्मैशानसानत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मब्रह्मोत्तरलान्तवकापिष्ठशुक्रमहाशुक्रशतार-सहस्रारानतप्राणतारणाच्युतनवग्रैवेयकविजयवैजयन्तजयन्तापराजितसर्वार्थसिद्धिषु' ॥ १९ ॥

(उत्तर) आनत प्राणतयो । आरण-अच्युतयो इन दो युगलोंकी जुदी जुदी विभक्तियां करनेसे यह जानना चाहिये कि सोलह स्वर्गोंके आठ युगल हैं सो प्रत्येक युगल एक दूसरेके ऊपर है न कि एक स्वर्ग दूसरेके ऊपर है जैसे सौधर्म स्वर्गके ऊपर ऐशान स्वर्ग नहीं है वरन सौधर्म ऐशान युगलके ऊपर सानत्कुमार-माहेन्द्र युगल है इसी प्रकार और भी शेष सात युगलोंको एकसे दूसरेको ऊपर ऊपर जानो जैसाकि हम भावार्थ पृष्ठ ४५, ४६, और ४७ में लिखचुके हैं ॥ प० जयचन्द्रायजी इस सम्बन्धमें लिखते हैं कि "इहां कल्पका युगलका उपरि उपरि दोयदोय कहना अतके दोय युगलनिके जुदी विभक्ती करी समास न किया, तातैं जाना जायहै ॥ इस सम्बन्धमें अपर वा अधिकतर प्रश्न यहहै कि श्री उमास्वामीने 'सौधर्मैशानयो' 'सानत्कुमार माहेन्द्रयो' 'ब्रह्मब्रह्मोत्तरयो.' 'लांतवकापिष्ठयोः' 'शुक्रमहाशुक्रयोः' 'शतारसहस्रारयो' 'आनतप्राणतयो' 'आरणच्युतयोः' ऐसेआठविभक्तियां क्योंन की, प्रथम बारह स्वर्गोंकी एक विभक्ति क्योंकी, फिर आनत प्राणतकी एक विभक्ति क्योंकी अन्तमें आरण-अच्युतकी एक विभक्ति क्यों की ? यदि आठ विभक्तियां करदेते तो स्पष्ट होजाताकि स्वर्गोंके आठ युगलहैं सो एकयुगलसे दूसरा युगल ऊपर है दूसरे से तीसरा ऐसेही सबसे ऊपर आठवां युगल 'कल्पोपन्ना' देवोंमेंहै ।

(उत्तर) आनतप्राणतद्वद्वमारणाच्युतयोरिति । सूचनादतश सा चकल्पेष्वेवैकशस्ततः" तत्वार्थश्लोकवार्तिक श्लोक ३ पृष्ठ ३८२

= आनतस्वर्गप्राणतस्वर्गका द्वन्द्व समास है,आरण अच्युतमें (द्वद्वसमास)है ऐसी सूचना है कि द्वन्द्ववृत्ति(=सा)का अत कल्पोंमें ही(कल्पोंतक ही) है यहां से(अर्थात् पन्द्रहवां सोलहवां आरण अच्युत कल्पों वा स्वर्गोंसे ऊपर) एकएककी(विभक्ति) है ॥ अर्थात् आनत प्राणत और आरणअच्युतमें पृथक् पृथक् द्वन्द्व समास और विभक्तियोंसे प्रगट है कि सोलह स्वर्गतकही एक युगल दूसरे युगलसे ऊपर ऊपर है उसके ऊपर फिर एक एक है ॥ आठ युगलोंकी आठ विभक्तियां जुदी जुदी इससे नहीं की कि सूत्र बहुत बढजाता । अथवा योंभी कहसकतेहैं कि आनत प्राणतकी विभक्तिसे यह भासहोताहै कि एक एक युगल दूसरे दूसरे से ऊपर ऊपर है और आरणअच्युतकी विभक्तिसे यह बातभी झलकती है कि युगलोंका अन्त सोलह स्वर्ग तक है और द्वन्द्व समास भी सोलह स्वर्ग तक ही है ॥

() बहुतसे विद्वानोंका मतहै कि उमास्वामीने बारहस्वर्गोंकी एक विभक्ति और आनत प्राणत की दूसरी विभक्ति और आरण अच्युत की तीसरी विभक्ति इसहेतुसे भी की है कि सौधर्म ऐशान युगलमें दो सागरसे कुछ अधिक उत्कृष्ट आयु है । सानत्कुमार माहेन्द्र युगलमें सात सागरसे कुछ अधिक उत्कृष्ट स्थिति है । ब्रह्म ब्रह्मोत्तर कल्पमें दशसागरसे कुछ अधिक उत्कृष्ट अवस्थाहै । लांतवकापिष्ठ युगलमें चौदह सागरसे कुछअधिक उत्कृष्ट जीवन काल है । शुक्र महाशुक्र युगलमें सोलह सागरसे कुछ अधिक उत्कृष्ट आयुहै । सतार सहस्रार युगलमें अठारह सागरसे कुछ अधिक उत्कृष्ट स्थिति है ॥ परन्तु आनत प्राणत युगलमें उत्कृष्ट स्थिति ठीक बीस सागरकी और आरण अच्युत युगलमें भी उत्कृष्ट स्थिति ठीक बाईस सागरकी क्रमसे है । छह युगलोंमें जहां पूरेसागरोंसे कुछ अधिक स्थिति थी वहां विभक्ति जुदी की और एकही द्वन्द्वसमासमें लेआये और जहां पूरी पूरी स्थिति थी वहां वहां प्रथम छह युगलोसे पृथक् पृथक् विभक्तिकी ॥ (इसी अध्याय के देखो सूत्र २९, ३०, ३१,)

तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ १६१ में छह युगलोंकी एक विभक्ति करना और आनतप्राणतकी भिन्न विभक्ति करना और आरणअच्युत को एक पृथक् विभक्तिमें लानेका यह हेतु दिया है कि बारह स्वर्गोंमें प्रत्येक में एक एक इन्द्र और आनतप्राणत दो स्वर्गों में एक इन्द्र और आरण अच्युत में एक इन्द्र ऐसे लोक अनुयोगके उपदेशसे इन्द्र चौदह भी कहेहैं ॥ इससे तीन विभक्ति जुदी जुदीदीहैं सम्भवहै कि उमास्वामी के मतानुसार चौदह इन्द्रहों । वार्तिक सात पृष्ठ१६१में और पृष्ठ १६६ में इन्द्र बारहभी कहे हैं । राजवार्तिकका लेख ऐसेहै कि "तथाचोत्तरयो पृथग्वचनमर्थवत्" ॥ वार्तिक८ ॥ सस्कृतअर्थ ॥ एवकृत्वा उत्तरयो पृथग्वचनमर्थवत् भवति, आनत प्राणत योरारणाऽच्युतयोरिति । इतरथाहि लघ्वर्थ ए एवद्वन्द्व क्रियते । तद्यथा ते एते लोकानुयोगोपदेशेन चतुर्दशेन्द्रा उक्ता. । इह द्वादश इष्यते ।

तथा*च*उत्तरयो॰२।पृथग्वचनम्१।।।अर्थवत्* =तौभी अगलेदो(युगलो) में जुदी जुदी विभक्ति है सो सार्थक है वा अर्थवत् है ॥ ८ ॥

एवम्*कृत्वा – =ऐसे करके अर्थात् सातवीं वार्तिक [प्रत्येकमुइन्द्रमम्बन्धः मध्ये प्रतिइय] में बारह इन्द्र (सौधर्म ऐशान दो स्वर्गोंमें दोइन्द्र,सानत्कुमार माहेन्द्र स्वर्गोंमें दोइन्द्र,ब्रह्मलोक,ब्रह्मोत्तरदोमें एक ब्रह्मनाम इन्द्र, लांतव कापिष्ठ दोमें एक लांतवनामक इद्र, शुक्रमहाशुक्र दोमें शुक्र नामक एक इद्र शतारसहस्रार दोमें एकइन्द्र आनत-प्राणत दोमें एक एक ऐसे दो इन्द्र आरण अच्युत में एक एक ऐसे दो इन्द्र) कहकर (तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ १६१

उत्तरयो २।आनत-प्राणतयो२।आरण अच्युतयोः७।इति* =(सौधर्म ऐशान से) अगले (=उत्तरयो॰) आनत प्राणतमें आरण अच्युतमें ऐसी

पृथग्*वचनम्१।।।अर्थवत्*भवतिT =भिन्न भिन्न विभक्ति है सो प्रयोजनको लिये हुये है (व्यर्थ नहीं है)

इतरथा*हि* =अन्यथाही अर्थात जो प्रयोजनीय भिन्न भिन्न विभक्ति न लाते तो निश्चयकरि (=हि)

लघ्वर्थः१।एकः१।एव*द्वन्द्व॰१।क्रियतेT =लघुताकेलिये एक(आनतप्राणतारणाच्युतयोःऐसा)ही द्वन्द्वसमास करते सोठीक वा इष्टनहींथा

प० पन्नालालजी न्यायदिवाकर ने "एवकृत्वा इत्यादि वाक्यका निम्न लिखित अर्थ पृष्ठ ९४२में किया है "ऐसे किये अगिले दोय युगल आनत प्राणत आरण अच्युत इनके विषै भिन्न भिन्न विभक्तिकरि निर्देश है सो सार्थिक होय है ॥ आनत प्राणतयो आरणअच्युतयोः ऐसे भिन्नविभक्तिरूप निर्देश करा है॥सो एकएक कल्पमें एकएक इन्द्रहै ॥ ऐसे चारिहैं" ॥ पिछला वाक्य मेरी समझमें ठीक नहीं है अशुद्ध है क्योंकि यहां कथन चौदह इन्द्रोंके सम्बन्धमें है (नकि बारह इन्द्रोंकी अपेक्षासे है जो उक्त वाक्य ठीक होता) यदि हम इन आनत प्राणत आरण अच्युन स्वर्गोंमें भी चार इन्द्र मानलें और बारह इंद्र सौधर्मसे सहस्रार स्वर्गतक मानलें तो इंद्र सोलह हुये जाते हैं ॥ पश्चात् पृष्ठ ९६३ में और पृष्ठ ९६४में स्वयम् न्यायदिवाकरजी लिखते हैं कि आनतप्राणत आरण अच्युत स्वर्गों में "आरणनामादेवराज है———अच्युननामा देवराजहै" इसी बातका समर्थन कि इन चारों स्वर्गोंमें आरण नामक और अच्युत नामक (चौदह इद्रोंकी अपेक्षासे) दोही इन्द्र हैं पं० पन्नालाल दूनीवालोंने अपनी तत्त्वकौमदीमें और प० गजाधर शास्त्रीने पृष्ठ १०७८ और १०७९ (सस्थाद्वारा अनुवादित और प्रकाशित तत्त्वार्थ राजवार्तिक) में किया है ॥

तद्यथा*·········· ·· ··

=जैसे सौधर्म इन्द्र, ऐशान इन्द्र, सानत्कुमारइन्द्र, माहेन्द्र इन्द्र, ब्रह्मनामक इन्द्र, ब्रह्मोत्तरनामकइन्द्र, लांतव नामक इद्र, कापिष्ठ नामक इद्र, शुक्र नामक इद्र, शतार नामक इन्द्र, सहस्रार नामक इन्द्र, आरण नामक इन्द्र, अच्युन नामक इन्द्र, (आनत प्राणन नामक कोई इद्र नहीं हैं) ते इतने लोक नियोगके उपदेशकरि चौदह इन्द्र कहेगये हैं (राजवार्तिक पृष्ठ १६१ से १६६ तक)

इह*द्वादश॥इष्यन्तेT

=यहां(=इह) (सूत्र सिद्धान्तकी अपेक्षासे) बारह(इन्द्र कहना) इष्ट है ॥ इसका देखो पृष्ठ ५१ ॥

इस समस्त टिप्पणीका आरम्भसे अततक सारांश यह है कि(क)प्रथम छहयुगलों बारह स्वर्गोंकी विभक्तियां इससे नहीं की कि सूत्र बहुत बढजाता (ख) 'आनत प्राणतयोः' 'आरणाच्युतयो.' की दो विभक्तियोंसे प्रगट है कि एकएक युगल एक दूसरेके ऊपर है नकि एक स्वर्ग एक दूसरेके ऊपर है (ग) आरणाच्युतयो विभक्तिसे यह भी झलकता है कि युगल युगल की विभक्ति केवल सोलह स्वर्गों तकही है (घ) उक्त तीन विभक्तियोंसे यहभी झलकताहै कि सागरोंसे कुछ अधिक देवोंकी उत्कृष्ट स्थिति है सो केवल प्रथम छह युगल बारह स्वर्ग तक ही है और आनत प्राणतकी उत्कृष्टस्थित बीस ही सागर की है अधिक नहीं है और आरण अच्युतकी भो बाईस सागर पूरे की उत्कृष्टस्थिति है अधिक कुछ भी नहीं है (च) ये तीन विभक्तियां इस बातकीभी द्योतक हैं कि प्रथम बारह स्वर्गमें एक एक इद्र है ऐसे बारह ये हुये और आनत प्राणत जहां दूसरी विभक्ति की है एक इन्द्र है और आरण अच्युत जहां दूसरी विभक्ति कीहै वहांभी एक इद्र है ऐसे तत्त्वार्थराजवार्तिकके अनुसार लोक अनुयोगउपदेशसे चौदह इन्द्रभी मानेहैं परन्तु प्रसिद्ध बारहही इद्र हैं ॥ श्वेताम्बरआम्नायमें १२ही मानेहैं।

ग्रैवेयकेषु नवसु विजय वैजयन्त-जयन्त-	=(नौ) ग्रैवेयकोंमें, नव अनुदिशोंमें, विजय वैजयन्त जयन्त-
अपराजितेषु च सर्वार्थसिद्धौ॥	=अपराजित विमानोंमें और (=च) सर्वार्थसिद्धिमें (रहते) हैं

(१) सौधर्म स्वर्गसे आदि लेकर अच्युत पर्यंत बारह कल्प हैं अर्थात् इन्द्रोंकी अपेक्षामें श्वेताम्बर आम्नायके सदृश यहां बारह ही कल्प माने हैं (क्योंकि इन्द्रआदिकी कल्पना केवल बारहही स्वर्गोंमें है ब्रह्मोत्तर कापिष्ठ महाशुक्र सहस्रार स्वर्गोंके तो इन्द्र ब्रह्म लांतव शुक्र शतार दक्षिण इन्द्रोंके आधीन क्रमसे हैं) अथवा सोलह स्वर्ग हैं उनके ऊपर कल्पातीत हैं इसबातके स्पष्ट करनेके लिये सौधर्म आदिसे ग्रैवेयकोंका भिन्न विभक्तिद्वारा पृथग् ग्रहण किया है।

(२) इस समस्त सूत्रको विचार पूर्वक पढ़नेसे जान पड़ता है कि जो जो विमान पहिले पहिले कहेगये हैं वे उत्तर उत्तर विमानोंसे नीचे नीचे हैं नवसु शब्दसे 'अनुदिश' दर्शाये गये हैं (=निर्दिष्ट हैं) मुद्रितसर्वार्थसिद्धि पृष्ठ २३५, द्वितीयावृत्ति पृष्ठ १४३ देखो। 'नवसु' शब्द यदि 'ग्रैवेयकेषु' के पहिले मानाजावे तो 'नवअनुदिश' ग्रैवेयकोंसे नीचे हुये जाते हैं। यदि कहाजावेकि 'नवसु' शब्द नवग्रैवेयकोंकी संख्या जतलानेके लिये है तो फिर 'नवअनुदिश' छूटेजाते हैं इसलिये मैंने 'नवसु' शब्दको 'ग्रैवेयकेषु' के पश्चात् रखकर 'नवअनुदिशोंमें' ऐसा अनुवाद किया है॥ यदि यह कहाजावे कि 'नवसु' को पश्चात् लानेसे ग्रैवेयकोंकी संख्या प्रगट नहीं होती है सो हो नहीं सकता क्योंकि 'नवसु' शब्द को उस पूर्वको आकर्षण करते हैं तब ग्रैवेयकोंकी संख्या प्रगट होजाती है जब ऊपर को ग्रहण करते हैं तब अनुदिशोंका द्योतक 'नवसु' शब्द होजाता है॥ यदि 'नवसु' शब्द से नव अनुदिशका अभिप्राय श्री उमास्वामीका न होता तो 'नवसु' शब्दकी जुदी विभक्ति नहीं करते, नवसु शब्दका 'ग्रैवेयक'के साथ समास ऐसे करदेते कि 'नवग्रैवेयकेषु' और एक अक्षरका लाभ होजाता। हमारे कथनका समर्थन श्लोकवार्तिकके श्लोक चार से (देखो मुद्रित पृष्ठ ३८२) ऐसे होता है कि "ग्रैवेयकेषु नवसु नवस्वनुदिशेष्विच" =ग्रैवेयकेषु नवसु, नवसु अनुदिशेषु इयम्=ग्रैवेयक नोंमें, नौ अनुदिशोंमें, यह (वृत्ति=विभक्ति भिन्नभिन्न) है

ग्रैव ग्रीव्य ग्रैवेय तथा ग्रैवेयक सब एकार्थवाचक हैं॥ अनुदिशका अर्थ यहां प्रतिदिश है अर्थात् जो प्रत्येक दिशामें हो वह अनुदिश कहाजाता है॥ 'दिशा' शब्द जिसके अन्तमें 'आ' है उसका समास 'अनु' अव्ययके साथ करने पर 'अनुदिश' शब्दकी सिद्धि होती है॥

(३) (प्रश्न) विजय,वैजयन्त,जयन्त,और अपराजितविमानोंसे सर्वार्थसिद्धिका विमान ऊंचा नहीं है फिर भिन्नविभक्तिद्वारा सूत्रमें क्यों निर्देश किया' (उत्तर)(क) उक्तचार विमानोंमें जघन्य स्थिति कुछ अधिक बत्तीस सागर है। उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागर प्रमाण है परन्तु सर्वार्थसिद्धिके रहनेवाले देवोंकी उत्कृष्ट और जघन्य दोनों प्रकारकी स्थिति तेतीस सागर प्रमाण हैं।

(ख) सर्वार्थसिद्धि वाला देव एक भव धारण कर मोक्ष को जाता है उक्त चार विमानोंके देव प्रायः दो भव धारण कर मोक्षको जाते हैं।

(ग) सर्वार्थसिद्धि वाले देवका जितना प्रभाव और प्रताप है उतना सर्व विजय आदि विमानके रहने वाले सब देवोंका भी नहीं है।

(घ) सर्वार्थसिद्धिवासीदेव निरंतर श्रुतभावनामें लीन रहतेहैं और उपशांतश्रेणीकेविषे अत्यन्त मंदकषायरूप विशुद्धपरिणामोंकी उत्कृष्टसीढीको प्राप्त होचुके हैं इत्यादि विशेषता प्रतिपादनके लिये वा जतलानेके लिये "सर्वार्थसिद्धौ" ऐसी भिन्न विभक्ति "विजय वैजयन्त जयन्तापराजितेषु"से की।

कथमेषां सौधर्मादिशब्दानां कल्पाभिधानं ? चातुरर्थिकेनाणा, स्वभावतो वा कल्पस्याभिधानं भवति ॥ अथ कथमिन्द्राभिधानं ? स्वभावतः साहचर्याद्वा ॥ तत्-

---

वृत्त्यनुवादः—कथम्॥एषाम्[६।३]सौधर्म-आदि-शब्दानाम्[६।३] =कैसे इन सौधर्म आदिक (सोलह) शब्दोंका (अर्थात् सोलह स्वर्गोंका)

कल्प-अभिधानम्[१।१]॥चातुरर्थिकेन[३।१]अणा[३।१] =कल्प नाम हुआ ? (उत्तर) चातुरर्थिक अण्(=अ-प्रत्यय)करि अर्थात् व्याकरणके तद्धितप्रकरणमें (=संज्ञामें प्रत्यय मिलाकर अर्थ बदलने रूप प्रकरणमें)

चातुरर्थिक प्रकरणके (=वह अधिकार जिसमें अण्-अञ्-ठक्-[१]वुञ्-छण् इत्यादि बहुतसे प्रत्ययोंमेसे प्रत्येक प्रत्यय चारचार (क) [२]वह जिसमें हो (ख) [३] बनायागया (ग) [४] उसका निवास (घ) [५]अदूर अर्थोंमे विधान कियाजाता है उन प्रत्ययोंमेसे इस) अण् (प्रत्यय) द्वारा (वह जिसमें हो-उसका निवास-इन अर्थोंमे लेकर वा ग्रहणकरि)

वा॥स्वभावतः॥कल्पस्य[६।१]अभिधानम्[१।१]॥भवति॥ =अथवा (=वा) स्वभावसे, कल्पकी संज्ञा वा नाम (अभिधान) होता है भावार्थ सौधर्म आदिकी कल्पसंज्ञा चाहै अण् प्रत्यय 'वह जिसमे हो' 'उसका निवास' अर्थोंमें लेकर सुधर्मा, ईशान, सनत्कुमार, महेन्द्र आदि शब्दोंमे यथायोग्य लगाकर करलेनी चाहिये अथवा सौधर्म, ऐशान, सानत्कुमार, माहेन्द्र आदि स्वभाविक नाम हैं यों समझलैना चाहिये

अथ॥कथम्॥इन्द्र-अभिधानम्[१।१]॥स्वभावतः॥ =प्रश्न (=अथ) इन्द्रका नाम कैसे है ? (उत्तर) स्वभावसे, प्रकृतिसे,

साहचर्यात्[५।१]॥वा॥ =अथवा संसर्गतासे, सहचरितासे, उसमें रहनसहनसे (अर्थात् जैसा अमुक कल्प वा स्वर्ग का नाम है वैसा उस स्वर्ग वा कल्प के इन्द्रका नाम है)

तत्[१।१]॥ =सो (अर्थात् कल्पका अभिधान, नाम अण् प्रत्यय करि अथवा स्वभावसे और इन्द्रकी संज्ञा वा नाम स्वभावसे अथवा साहचर्यसे)

---

[१] वुञ् छण्क इत्यादि ४-२-८०। [२] तदस्मिन्नस्तीति देशे तन्नाम्नि ॥ ४-२-६७ ॥ [३] तेन निर्वृत्तम् ॥ ४-२-६८ ॥ [४] तस्य निवास ॥ ४-२-६९ ॥ [५] अदूरभवश्च ॥ ४ २ ७० ॥ उक्त पांच सूत्रोंको अष्टाध्यायी पाणिनिमुनिकृतमें देखो ॥ इन्हीं सूत्रोंके समानअर्थक निम्नलिखित सूत्र जैनेन्द्रव्याकरण में देखना चाहिये ॥ वे सूत्र इस प्रकार हैं कि

[१] वुञछण्क इत्यादि । ३ २-६१। [२] तदस्मिन्नस्तीति देश खौ ॥ ३-२-५८ ॥ (३) तेन निर्वृत्त । ३।२।५९ (४) (५) तस्यनिवासादूरभवौ। ३-२-६०

कथमिति चेदुच्यते—सधर्मा नाम सभा, साऽस्मिन्नस्तीति सौधर्मः कल्पः। तदस्मिन्नस्तीत्यण् तत्कल्पसाहचर्यादिन्द्रोऽपि सौधर्मः॥ ईशानो नाम इन्द्रः स्वभावतः। ईशानस्य निवासः कल्प ऐशानस्तस्य निवास इत्यण्। तत्साहचर्यादिन्द्रोऽपि ऐशानः॥

कथम्*इति*चेत्*उच्यते सुधर्मा।।नाम।। =कैसे है? ऐसे प्रश्न (करने) पर कहा जाता है कि सुधर्मा नाम

सभा।।सा।।अस्मिन्।।अस्ति।इति*सौधर्मः।कल्पः। =सभा है। वह (सभा) जिसमें है ऐसा सौधर्म कल्प है

"तदस्मिन्नस्तीत्यण्"(=तत्।।अस्मिन्।अस्ति।इति*अण्।)='तदस्मिन्नस्ति' ऐसे (अष्टाध्यायीके चौथे अध्याय पाद दो सूत्र ६७ से और जैनेन्द्रव्याकरण के तीसरा अध्याय पाद दो सूत्र ५८ से)

अण् (प्रत्ययको 'वह जिसमें हो' इस अर्थमें प्रयोग करके सौधर्म शब्द सिद्धि किया) है। भावार्थ सुधर्मा शब्दमें अण् प्रत्ययका यह प्रभाव है कि सुधर्मा शब्दके 'उ' की वृद्धिसंज्ञा होजातीहै और अण्प्रत्ययका अ जोड़ाजाता है तब सौधर्मा+अ ऐसा रूप हुआ क्योंकि 'अण्' के 'ण्' का इत् संज्ञक होनेसे लोप होजाता है शेष 'अ' रहता है अण् प्रत्ययका यहभी प्रभाव है कि शब्दके स्वरोंमेंसे अंतिम स्वरवालेभाग वा खंडको मय उस भागके व्यंजनको यदि कोई व्यंजन उस भागमें होतो गिरादेताहै और अण् प्रत्ययका अ उस शब्दके शेषभागमें जुड़जाताहै इसलिये सौधर्मा शब्दका 'आ' गिरकर और अण्का अ मिलनेसे सौधर्म शब्द ऐसे सिद्ध हुआ कि सौधर्म् + अ = सौधर्म

तत्-कल्प-साहचर्यात्।।। =उस (सौधर्म) कल्पमें रहन सहन से अथवा सौधर्म कल्पकी सहचरितासे

इन्द्रः।अपि*सौधर्मः। =इन्द्र भी (=अपि) सौधर्म है ॥

ईशानः।नामः।।इन्द्रः।स्वभावतः*। ईशानस्य।निवासः। =ईशान नामा इन्द्र है सो स्वभावसे है। ईशान इन्द्रका निवास

कल्पः।ऐशानः।"तस्य निवासः" =सो स्वर्ग(=कल्प)ऐशान है॥ 'तस्य निवास' जैनेन्द्र-याकरण और अष्टाध्यायीके इसी सूत्रसे

इति*अण्। =ऐसे अण्(=अ)प्रत्यय(निवास अर्थमें)है कि ईशान + अण्=ऐशान् + अ=ऐशान बना

तत्-साहचर्यात्।।इन्द्रः।अपि*ऐशान। =उस (ऐशान कल्प, स्वर्ग) में रहनसहनसे अथवा सहचरितासे इन्द्र भी ऐशान है।

सनत्कुमारो नाम इन्द्रः स्वभावतः । तस्य निवास इत्यण् । सानत्कुमारः कल्पः । तत्साहचर्यादिन्द्रोऽपि सानत्कुमारः ॥ महेन्द्रो नामेन्द्रः स्वभावतस्तस्य निवासः कल्पो माहेन्द्रः । तत्साहचर्यादिन्द्रोऽपि माहेन्द्रः । एवमुत्तरत्रापि योज्यम् ॥ आगमापेक्षया व्यवस्था भवतीति, उपर्युपरीत्यनेन द्वयोर्द्वयोरभिसम्बन्धो वेदितव्यः ॥ प्रथमौ सौधर्मैशानकल्पौ, तयोरुपरि सानत्कुमारमाहेन्द्रौ तयोरुपरि ब्रह्मलोकब्रह्मोत्तरौ, तयोरुपरि लान्तवकापिष्ठौ, तयोरुपरि

सनत्कुमारः$^{1}_{1}$ नाम$^{1}_{1}$ ॥ इन्द्रः$^{1}_{1}$ स्वभावतः* । 'तस्यनिवासः'	=सनत्कुमार नाम इन्द्र (है सो) स्वभावसे है । 'तस्य निवासः' उक्तसूत्र द्वारा
इति*अण्$^{1}_{1}$	=ऐसे अण् (=अ) प्रत्यय (निवास अर्थमे) होकर (सनत्कुमार से, सानत्कुमारवनकर)
सानत्कुमारः$^{1}_{1}$ कल्पः$^{1}_{1}$; तत्साहचर्यात्$^{5}_{1}$ ॥	=सानत्कुमार स्वर्ग हुआ । उस (सानत्कुमार कल्प) में रहनेसे वा रहनसहनसे
इन्द्रः$^{1}_{1}$ अपि*सानत्कुमारः$^{1}_{1}$ । महेन्द्रः$^{1}_{1}$ नाम$^{1}_{1}$ ॥ इन्द्रः$^{1}_{1}$	=इन्द्रभी सानत्कुमार है । महेन्द्र नाम इन्द्र है
स्वभावतः*तस्य$^{6}_{1}$ निवासः$^{1}_{1}$ कल्पः$^{1}_{1}$ माहेन्द्रः$^{1}_{1}$	=सो स्वभावसे है उसका निवासस्थान स्वर्ग माहेन्द्र है (''तस्य निवासः'' इस सूत्र द्वारा ऐसे अण् प्रत्यय निवास अर्थमे होकर महेन्द्र से माहेन्द्र शब्द वनाया)
तत्-साहचर्यात्$^{5}_{1}$ ॥ इन्द्रः$^{1}_{1}$ अपि*माहेन्द्रः$^{1}_{1}$ ॥	=उस (माहेन्द्र कल्प) के साहचर्यासे इन्द्र भी माहेन्द्र है ।
एवम्*उत्तरत्र*अपि*	=इस प्रकार यहां (माहेन्द्र कल्प) से आगे (उत्तरत्र) भी
योज्यम्$^{1}_{1}$ ॥	=(ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर इत्यादि सोलह स्वर्ग पर्यंत इन्द्र तथा कल्पकानाम) जोड़नाचाहिये
आगम-अपेक्षया$^{3}_{1}$ ॥ व्यवस्था$^{1}_{1}$ ॥ भवति ॥ इति*	=शास्त्रकी अपेक्षासे ऐसे निर्णय (=व्यवस्था) होता है कि
उपरि*उपरि*इति*अनेन$^{3}_{1}$ ॥ द्वयोः$^{6}_{2}$ द्वयोः$^{6}_{2}$	=ऊपर ऊपर इस (वाक्य) करि दो दो (स्वर्गों) का
अभिसम्बन्धः$^{1}_{1}$ वेदितव्यः$^{1}_{1}$ । प्रथमौ$^{1}_{2}$ सौधर्म-ऐशानकल्पौ$^{1}_{2}$	=सम्बंध जानना योग्य है । पहिले दो सौधर्म और ऐशान कल्प हैं ।
तयोः$^{6}_{2}$ उपरि*सानत्कुमार-माहेन्द्रौ$^{1}_{2}$	=उनके ऊपर सानत्कुमार और माहेन्द्र हैं ।
तयोः$^{6}_{2}$ उपरि*ब्रह्मलोक-ब्रह्मोत्तरौ$^{1}_{2}$	=तिनके ऊपर ब्रह्मलोक और ब्रह्मोत्तर हैं ।
तयोः$^{6}_{2}$ उपरि*लान्तव-कापिष्ठौ$^{1}_{2}$ तयोः$^{6}_{2}$ उपरि*	=उनके ऊपर लान्तव और कापिष्ठ है । तिनके ऊपर

शुक्रमहाशुक्रौ, तयोरुपरि शतारसहस्रारौ, तयोरुपरि आनतप्राणतौ, तयोरुपरि आरणाच्युतौ ॥ अध उपरि च प्रत्येकमिन्द्रसम्बन्धो वेदितव्यः । मध्ये तु प्रतिद्वयमेकः ॥ सौधर्मैशानसानत्कुमार-माहेन्द्राणां चतुर्णां चत्वार इन्द्राः । ब्रह्मलोकब्रह्मोत्तरयोरेको ब्रह्मेन्द्रो नाम । लान्तवकापिष्ठयोरेको लान्तवाख्यः । शुक्रमहाशुक्रयोरेकः शुक्रसञ्ज्ञः । शतारसहस्रारयोरेकः शतारनामा । आनतप्राण-ताऽऽरणाच्युतानां चतुर्णां चत्वारः । एवं कल्पवासिनां द्वादश इन्द्रा भवन्ति ॥ जम्बूद्वीपे महामन्दरो

शुक्र-महाशुक्रौ[1/2] तयोः[6/2] उपरि*शतार-	=शुक्र और महाशुक्र हैं ॥ तिनके ऊपर शतार
सहस्रारौ[1/2] तयोः[6/2] उपरि*आनत-प्राणतौ[1/2]	=और सहस्रार हैं । उनके ऊपर आनत और प्राणत (कल्प) हैं
तयोः[6/2] उपरि*आरण-अच्युतौ[1/2] ॥ अधः*	=तिनके ऊपर आरण और अच्युत हैं । नीचे (चार स्वर्गों में)
उपरि*च*प्रत्येकम्[1/1] इन्द्रसम्बन्धः[1/1] वेदितव्यः[1/1]	=और ऊपर(चार स्वर्गोंमे) एकएक (=प्रत्येकम्) इन्द्रका सम्बन्ध जानना चाहिये अर्थात् सौधर्म, ऐशान, सानत्कुमार, माहेन्द्र, इन प्रत्येक प्रत्येकमें एकएक इन्द्र ऐसेचार और आनत,प्राणत,आरण,अच्युत प्रत्येकप्रत्येकमें एकएक ऐसे आठइन्द्रहैं
मध्ये[7/1] तु*प्रति-द्वयम्[1/1] एकः[1/1] ॥ सौधर्म-ऐशान-	=और (=तु) मध्य (आठ स्वर्गों) में प्रति युगल एक (एक) इन्द्र है सौधर्मऐशान
सानत्कुमार-माहेन्द्राणाम्[6/3] चतुर्णाम्[6/3] चत्वारः[1/3]	=सानत्कुमार और माहेन्द्र चार (स्वर्गों) के चार
इन्द्राः[1/3] (१)ब्रह्मलोकब्रह्मोत्तरयोः[6/2] एकः[1/1] ब्रह्म-	=इन्द्र है, ब्रह्मलोक और ब्रह्मोत्तर का एक ब्रह्म
इन्द्रः[1/1] (२)नाम*(१)लान्तवकापिष्ठयोः[6/2] एकः[1/1]	=नाम इन्द्र है, लान्तव कापिष्ठ (कल्प) का एक
लान्तव-आख्यः[1/1] (१)शुक्र-महाशुक्रयोः[6/2] एकः[1/1]	=लान्तव नाम (इन्द्र) है, शुक्र और महाशुक्र (स्वर्गों) का एक
शुक्र-सञ्ज्ञः[1/1] (१)शतार-सहस्रारयोः[6/2] एकः[1/1]	=शुक्र नामा (इन्द्र) है, शतार सहस्रार का एक
शतारनामा[1/1] आनत-प्राणत-आरण-अच्युतानाम्[6/3]	=शतार नामा (इन्द्र) है, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत
चतुर्णाम्[6/3] चत्वारः[1/3] एवम्*कल्प-वासिनाम्[6/3]	=चार (स्वर्गों) के चार (इन्द्र) है, इस प्रकार स्वर्गो मे निवास करनेवाले(देव)निके
द्वादश[1/3] इन्द्राः[1/3] भवन्ति[1] जम्बूद्वीपे[7/1] महामन्दरः[1/1]	=बारह इन्द्र होते हैं ॥ जम्बूद्वीपमे सुमेरुपर्वत

(१) इन चारो वाक्योका पृथक् पृथक् सप्तमी दो वचन मानकर 'का' के स्थानमें ''में'' ऐसा अनुवाद भी होसक्ता है जैसे ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर में एक ब्रह्म नाम इन्द्र है इत्यादि ॥ (२) 'नाम' यहां पर अव्यय है जैसे 'हिमालयो नाम, नगाधिराजः' कुमारसंभवसे (वैद्यकोश पृष्ठ ३७४ देखो)

योजनसहस्रावगाहो भवति नवनवतियोजनसहस्राच्छ्रायः । तस्याधस्तादधोलोकः । बाहुल्येन तत्प्रमाण–(मेरुप्रमाण) स्तिर्यक्प्रसृतस्तिर्यग्लोकः । तस्योपरिष्टादूर्ध्वलोकः । मेरुचूलिका चत्वारिंशद्योजनोच्छ्राया । तस्या उपरि केशान्तरमात्रे व्यवस्थितमृजुविमानमिन्द्रकं सौधर्मस्य ॥ सर्वमन्यल्लोकानुयोगाद्वेदितव्यम् ॥ नवसु ग्रैवेयकेष्विति नवशब्दस्य पृथग्वचनं किमर्थम् ? । अन्यान्यपि नवविमानानि अनुदिशसञ्ज्ञकानि सन्तीति ज्ञापनार्थम् ।

योजन-सहस्र अवगाहः१/१ भवति T नव-नवति-	=सहस्र योजन पृथिवीमे प्रविष्ट होता है (और) निन्यानवे
योजन-सहस्र-उच्छ्रायः१/१ तस्य६/१ अधस्तात् *	=सहस्र योजन की ऊचाई है । तिस (सुमेरु पर्वत की जड़) के नीचे
अधोलोकः१/१ बाहुल्येन३/१	=अधोलोक है बहुतायतसे अथवा प्रचुरतासे वा बहुलतासे
तत्प्रमाणः१/१ (मेरुप्रमाणः१/१) तिर्यक्-प्रसृतः१/१ तिर्यग्लोकः१/१	=उसके परिमाण (सुमेरुके बराबर मौटाई) तिर्यक् फैलवां तिर्यग्लोक है
तस्य६/१ (१)उपरिष्टात् *(२) ऊर्ध्व लोकः१/१ मेरु-चूलिका१/१ ॥	=उस (सुमेरु)के ऊपर उर्ध्व लोक है । मेरु पर्वतकी चूलिका
चत्वारिंशत् योजन-उच्छ्राया१/१ ॥ तस्याः६/१ ॥ उपरि *	=चालीस योजन ऊचाई वाली है तिस (चूलिका) के ऊपर
केशान्तरमात्रे७/१ ॥ व्यवस्थितं१/१ ॥ ऋजुविमानंइन्द्रकं१/१ ॥ सौधर्मस्य६/१	=बालके अन्तरमात्र तिष्ठा हुआ ऋजुनामा इन्द्रक विमान सौधर्म(स्वर्ग)का है
सर्वम्१/१ ॥ अन्यत् * लोक-अनुयोगात्५/१ वेदितव्यम्१/१ ॥	=अन्य(=अन्यत्)समस्त वर्णन लोकनियोग(=लोकमें प्रचलित)ग्रंथसे जाननाचाहिये
नवसु७/३ ग्रैवेयकेषु७/३ इति * । नव-शब्दस्य६/१	=(प्रश्न) "नवसु ग्रैवेयकेषु" इस प्रकार नव शब्दके (ग्रैवेयक शब्दसे)
पृथग् * वचनम्१/१ ॥ किम्१/१ ॥ अर्थम्१/१ ॥ ?	=न्यारी विभक्ति किस लिये है अर्थात् प्रश्न यह है कि जब नवग्रैवेयक हैं तौ "नवग्रैवेयकेषु" ऐसा मिलाकर एकही बहुवचन कारक वा विभक्ति क्यों न की

नवसु को सप्तमी बहुवचन में भिन्न कारक किया और 'ग्रैवेयकेषु' को सप्तमी बहुवचन न्यारा कारक किया यदि एकही में दोनों को मिलाकर एकही विभक्ति करदेते तो "सु" अक्षर न्यून होजाता ।

अन्यानि१/३ ॥ अपि * नव-विमानानि१/३ ॥	=(उत्तर) (इन नवग्रैवेयकोंसे ऊपर) इतर वा दूसरे भी नौ विमान
अनुदिशसञ्ज्ञकानि१/३ ॥ सन्ति T इति * ज्ञापन-अर्थम्१/१ ॥	=अनुदिशनामक है ऐसा जनावनेको(नवसु ग्रैवेयकेषुसे न्यारीन्यारी विभक्ति की)है॥

---

(१) उपरिष्टात् और उपरि दोनों अव्यय हैं इनके साथ (जैसे यहां) द्वितीया और षष्ठी विभक्तियां मिलती हैं ॥ (२) सुमेरु के ऊपर चालीस योजन की चूलिका है सो तिर्यग्लोक का भाग है ॥

तेनानुदिशानां ग्रहणं वेदितव्यम् ॥ एषामधिकृतानां वैमानिकानां परस्परतो विशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

स्थितिप्रभावसुखद्युतिलेश्याविशुद्धीन्द्रियावधिविषयतोऽधिकाः॥२०॥

स्वोपात्तस्यायुष उदयात्तस्मिन्भवे शरीरेण सहावस्थानं स्थितिः । शापानुग्रहशक्तिः प्रभावः । सुखमिन्द्रियार्थानुभवः ।

तेन[3/1] अनुदिशानाम्[6/3] ग्रहणम्[1/1] वेदितव्यम्[1/1]	=तिस ('नवसु'कारक) से अनुदिश विमानों का ग्रहण जानना चाहिए ॥
एषाम्[6/3] अधिकृतानाम्[6/3] वैमानिकानाम्[6/3]	=इन प्रकरणकियेहुये वैमानिकदेवोंके
परस्परतः* विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थम्[1/1] आह	=आपसमें विशेष जाननेकेलिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

(१)सूत्रम्— स्थितिप्रभावसुखद्युतिलेश्याविशुद्धीन्द्रियावधिविषयतोऽधिकाः ॥ २० ॥

(=वैमानिकाःउपर्युपरि) स्थिति-प्रभाव-सुख-द्युति-लेश्याविशुद्धि-इन्द्रियविषयतः-अवधिविषयतः अधिकाः

सूत्रार्थः—वैमानिकाः[1/3] उपरि* उपरि*	=वैमानिकदेव है वे ऊपर ऊपर अर्थात् स्वर्ग स्वर्ग प्रति तथा पटल पटल प्रति
स्थिति-प्रभाव-सुख-द्युति-	=आयु, प्रताप वा महिमा, सुख, दीप्ति (शरीरादि की कान्ति वा प्रकाश)
लेश्याविशुद्धि-इन्द्रियविषयतः*	=लेश्याकी विशुद्धता अथवा उज्ज्वलता, इन्द्रियोंके विषयकरि
अवधि-विषयतः* अधिकाः[1/3]	=और अवधि ज्ञानके विषयकरि (अर्थात् इन सातो बातोंमे) अधिक अधिक हैं
वृत्त्यनुवादः—स्व-उपात्तस्य[6/1] आयुषः[6/1] उदयात्[5/1]	=स्वप्राप्त आयुके उदयसे
तस्मिन्[7/1] भवे[7/1] शरीरेण[3/1] सह*	=तिस भवमें वा जन्ममें शरीर सहित
अवस्थानम्[1/1] स्थितिः[1/1] शाप-	=टिकाव वा ठहराव सो स्थिति है(परका)अपकार वा निग्रह(वशमेंलाकरदंडदेने)की
(शक्तिः)-अनुग्रहशक्तिः[1/1] प्रभावः[1/1]	=(सामर्थ्य और) उपकार करनेकी सामर्थ्य सो प्रभाव है
इन्द्रिय-अर्थ-अनुभवः[1/1] सुखम्[1/1]	=(सातावेदनीय के उदयसे) इन्द्रिय विषय (=अर्थ) का भोगना सो सुख हैं

(१) हमारे यहांकी पुस्तकोंमें कहीं पर "विशुद्धीन्द्रिया" पाठ है कहीं पर "विशुद्धोंद्रिया" पाठ है दोनोंपाठ ठीक है । शेषपाठ हमारे यहां सर्वत्र एक है ॥ श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रमें तथा 'भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकामें और दिगम्बरआम्नायके भाष्योंमें पाठ तथा अर्थ एकसा है ॥

शरीरवसनाभरणादिदीप्तिर्द्युतिः। लेश्या उक्ता। लेश्याया विशुद्धिर्लेश्याविशुद्धिः। इन्द्रियाणामवधेश्च विषय इंद्रियावधिविषयः। तेभ्यस्तैर्वाऽधिका इति॥ तस्मिन्नुपर्युपरि प्रतिकल्पं प्रतिप्रस्तारं च वैमानिकाः स्थित्यादिभिरधिका इत्यर्थः॥ यथा स्थित्यादिभिरुपर्युपर्यधिका एवं गत्यादिभिरपीत्यतिप्रसङ्गे तन्निवृत्त्यर्थमाह—

॥ गतिशरीरपरिग्रहाभिमानतो हीनाः ॥ २१ ॥

शरीर-वसन-आभरण-आदि-दीप्तिः॥द्युतिः॥,	=शरीर वस्त्र तथा भूषण अथवा गहना आदिक का प्रकाश सो द्युति है
लेश्या॥	=लेश्या अर्थात् कषायके उदयकरि रंजित योगों की प्रवृत्ति
उक्ता॥लेश्यायाः॥विशुद्धिः॥	=(दूसरे अध्यायके छठवां सूत्रमे) वर्णित है। लेश्याकी उज्ज्वलता वा विशुद्धता
लेश्या-विशुद्धिः॥इन्द्रियाणाम्॥अवधेः॥च*विषयः॥इन्द्रिय-	=सो लेश्या विशुद्धि है। इन्द्रियोंका और अवधिज्ञानका विषय हैं सो इन्द्रिय
अवधि-विषयः॥तेभ्यः॥	=अवधिविषयहै। तिन(स्थिति,प्रभाव,सुख,द्युति,लेश्याविशुद्धि,इन्द्रिय,अवधि विषय)से
वा*तैः॥	=अथवा तिन(स्थिति,प्रभाव,सुख,द्युति,लेश्याविशुद्धि,इन्द्रियविषय,अवधिविषय)करि
अधिकाः॥इति*तस्मिन्॥उपरि*उपरि*	=अधिक अधिक हैं ऐसें तिस (ऊर्ध्वलोक) में ऊपर ऊपर
प्रति*कल्पम्॥प्रति*प्रस्तारम्॥च*वैमानिकाः॥स्थिति-	=स्वर्गस्वर्ग प्रति और पटल प्रति वैमानिक देव स्थिति
आदिभिः॥अधिकाः॥इति*अर्थः॥यथा*स्थिति-	=आदि करि अधिक अधिक हैं ऐसा आशय है जैसे स्थिति
आदिभिः॥उपरि*उपरि*अधिकाः॥एवम्*गति-	=आदि करि ऊपर ऊपर अधिक अधिक हैं ऐसे गमन
आदिभिः॥अपि*इति*अतिप्रसंगे॥	=आदिकरि भी इस प्रकार अति प्रसक्ति अर्थात् विपरीत सम्बन्ध आने पर
तत्-निवृत्ति-अर्थम्॥आह	=उस (विपरीत प्रसक्ति) के निषेध के लिये (आचार्य अग्रिम सूत्रमें) कहतेहैंकि

सूत्रम्— गतिशरीरपरिग्रहाभिमानतो हीनाः ॥ २१ ॥

(वैमानिकाः उपर्युपरि) गति-शरीर-परिग्रह-अभिमानतः हीना भवन्ति ॥

सूत्रार्थः—वैमानिकाः॥उपरि*उपरि*	=वैमानिक देव हैं वे ऊपर ऊपर अर्थात् स्वर्ग स्वर्ग प्रति पटल पटल प्रति
गति-शरीर-परिग्रह अभिमानतः*हीनाः॥	=गमन, शरीर की उच्चता, परिग्रह और अहंकार करि घटते घटते है

देशाद्देशान्तरप्राप्तिहेतुर्गतिः । शरीरं वैक्रियिकमुक्तम् । लोभकषायोदयाद्विषयेषु सङ्गः परिग्रहः । मानकषायादुत्पन्नोऽहङ्कारोऽभिमानः । एतैर्गत्यादिभिरुपर्युपरि हीनाः ॥ देशान्तरविषयक्रीडारतिप्रकर्षाभावादुपर्युपरि गतिर्हीनाः ॥ शरीरं सौधर्मैशानयोर्देवानां सप्तारत्निप्रमाणम् ॥ सानत्कुमारमाहेन्द्रयोः षडरत्निप्रमाणम् ॥ ब्रह्मलोकब्रह्मोत्तरलान्तवकापिष्ठेषु पञ्चारत्निप्रमाणम् ॥ शुक्रमहाशुक्रशतारसहस्रारेषु चतुररत्निप्रमाणम् ॥ आनत प्राणतयोरर्द्धचतुर्थारत्निप्रमाणम् ॥ आरणाच्युतयोस्त्र्यरत्निप्रमाणम् ॥ अधोग्रैवेयकेषु

वृत्त्यनुवादः—देशात् ५/१ देश-अन्तर-प्राप्ति-हेतुः १/१ गतिः १/१ ॥ शरीरम् १/१ ॥ वैक्रियकम् १/१ ॥ उक्तम् १/१ ॥ लोभ-कषाय-उदयात् ५/१ विषयेषु ७/३ संगः १/१ परिग्रहः १/१ मान-कषायात् ५/१ उत्पन्नः १/१ अहङ्कारः १/१ अभिमानः १/१ एतैः ३/३ गति-आदिभिः ३/३ उपरि* उपरि* हीनाः १/३ देशान्तर-विषय-क्रीडा-रति-प्रकर्ष-अभावात् ५/१ उपरि* ऊपरि* गति-हीनाः १/३ शरीरम् १/१ ॥ सौधर्म-ऐशानयोः ७/२ देवानाम् ६/३ सप्त-अरत्नि-प्रमाणम् १/१ ॥ सानत्कुमार-माहेन्द्रयोः ७/२ षड्-अरत्नि-प्रमाणम् १/१ ॥ ब्रह्मलोक-ब्रह्मोत्तर-लान्तव-कापिष्ठेषु ७/३ पञ्च-अरत्नि-प्रमाणम् १/१ ॥ शुक्र-महाशुक्र-शतार-सहस्रारेषु ७/३ चतुर्-अरत्नि-प्रमाणम् १/१ ॥ आनत-प्राणतयोः ७/२ अर्द्ध चतुर्थ-अरत्नि प्रमाणम् १/१ ॥ आरण-अच्युतयोः ७/२ त्ररत्नि-प्रमाणम् १/१ ॥ अधः* ग्रैवेयकेषु ७/३

=एक क्षेत्रसे अन्य क्षेत्रके प्राप्तिका कारण
=सो गति अथवा गमन है ॥ (देवों का) शरीर वैक्रियक है
=जो (दूसरे अध्याय के ४६ वां सूत्रमें) कथित है । लोभ तथा कषायके उदयसे
=विषयोंमें सम्बन्ध सो परिग्रह है । मान और कषायके उदयसे
=उत्पन्न हुआ गर्व सो अभिमान है । इन गति
=शरीर, परिग्रह, अभिमानकरि, ऊपर ऊपर अर्थात् स्वर्ग स्वर्गप्रति पटल२ प्रति
=घटते घटते है । अन्य क्षेत्र-विषय-क्रीड़न-प्रीति की
=बहुलताके न होनेसे ऊपर ऊपर गमन हीन है ।
=शरीर सौधर्म ऐशान स्वर्गोंमें देवोंका सात हाथ
=प्रमाण है । सानत्कुमार माहेन्द्र स्वर्गोंमें छह हाथ प्रमाण (शरीर) है ।
=ब्रह्मलोक तथा ब्रह्मोत्तर, लान्तव तथा कापिष्ठ (स्वर्गों) में
=पांच हस्त परिमाण (शरीर) है । शुक्र तथा महाशुक्र शतार तथा
=सहस्रार स्वर्गोंमें चार हस्त प्रमाण (शरीर) है । आनत प्राणत स्वर्गोंमें
=साढ़े तीन हाथ परिमाण (शरीर) है । आरण-अच्युत स्वर्गोंमें
=तीन हाथ माप (शरीर) है । नीचली ग्रैवेयक (तिकड़ी) में

अर्द्धतृतीयारत्निप्रमाणम् ॥ मध्यग्रैवेयकेष्वरत्निद्वयप्रमाणम् ॥ उपरिमग्रैवेयकेषु अनुदिशविमानेषु च अध्यर्द्धारत्निप्रमाणम् ॥ अनुत्तरेष्वरत्निप्रमाणम्॥ परिग्रहश्च विमानपरिच्छदादिरुपर्युपरि हीनः॥ अभिमानश्चोपर्युपरि तनुकषायत्वाद्धीनः ॥ पुरस्तात्त्रिषु निकायेषु देवानां लेश्याविधिरुक्तः

अर्द्ध-तृतीया-(१)अरत्नि-प्रमाणम्।१।१।।मध्य-ग्रैवेयकेपु।३।३।	=अढ़ाई हाथ परिमाण (शरीर) है। मध्य ग्रैवेयक (तिकड़ी) में
अरत्निद्वय-प्रमाणम्।१।१।। उपरिम-ग्रैवेयकेपु।३।३।	=दो हाथ माप (शरीर) है। उपरिम ग्रैवेयक (तिकड़ी) में
अनुदिश-(३)विमानेपु।३।३। च*अध्यर्द्ध-अरत्नि-प्रमाणम्।१।१।। ॥	=और अनुदिश (नव) विमानोंविषैं डेढ़ हस्त प्रमाण(शरीर) है।
अनुत्तरेपु।३।३।	=अनुत्तर (विजय, वैजयन्त,जयन्त,अपराजित और सर्वार्थसिद्धि) विषैं
अरत्नि-प्रमाणम्।१।१।। । परिग्रहः।१।१। च*विमान-(२)परिच्छद-	=एक हाथ प्रमाण (शरीर) है। वहुरि परिग्रह विमान परिवार (=परिच्छद)
आदिः।१।१।ऊपरि*ऊपरि*हीनः।१।१।अभिमानः।१।१।चउपरि*उपरि*	=आदिक ऊपर ऊपर घाटि घाटि है। वहुरि अभिमान वा अहंकार ऊपर ऊपर
तनु-कषायत्वात्।५।१।।हीनः।१।१।पुरुस्तात्*त्रिपु।३।३।	=थोड़ी वा मंद कषाय होने से हीन है। पहिले तीन
निकायेपु।३।३।देवानाम्।६।३।लेश्या-विधिः।१।१।उक्तः।१।१।	=समुदायके देवोंके लेश्याका नियम कहा गया।

(१) अरत्नि—(पु०)(क)कुहनी(ख)मुट्ठी(ग)-पु०स्त्री कोहनीसे लेकर कनिष्टका पर्यंत हाथकी लबाई(वैद्यकोशपृष्ठ ६२) (कनिष्ठा छिमुनीको कहते है)

अरत्नि—(पु०) "चीची अगुलीको फैलाकर मुट्ठी वांधा हुआ हाथ" पद्मचन्द्रकोष पृष्ठ ४१ ॥ चीची अगुली, कनिष्ठा वा छिमुनीको कहते है॥

रत्नि—(पु०स्त्री) वधीहुई मुट्ठी वाले हाथ का माप (पद्मचन्द्र कोष पृष्ठ ३१६ ॥ अमरकोश, १६ वर्ग, श्लोक ८६ में वधीहुई मुट्ठी सहित हाथ ॥ उपर्युक्त लेखसे विदित है कि अरत्नि एक छमुनी (एक कनिष्ठा अगुली) के बराबर रत्नि से बडी है और एक इञ्छ हाथ से न्यून है जैसाकि हलायुध ग्रन्थकारके निम्न लिखित श्लोक से प्रगट है

मध्यांगुली कुर्पयोर्मध्ये प्रामाणिक करः। (मध्य-अगुली-कुर्परयो) =बीचकी अगुली और कुहनी(=कुर्पर)के बीचमें जो मापागया है वह हाथहै ॥

बद्धमुष्टि करो रत्निररत्नि सकनिष्टक ॥ (बद्धमुष्टिकर रत्निः अरत्नि) =वधी हुई मुट्ठी सहित हाथ है सो रत्नि है और वधीहुई मुट्ठी सहित हाथ मय फैली हुई छमुनी के अरत्नि है अर्थात् कोहनी से लेकर कनिष्ठका तक लबाई को अरत्नि कहते है जो हाथ भरसे एक इंछ हीन होती है ॥

(२) परिच्छेद—(पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ २३० में) विशेष रूप से इयत्ताकरण, सर्ग, अध्याय, सीमा, विचार अर्थों में है परन्तु परिच्छद का अर्थ(पृष्ठ २३०) में उपकरण, सामान, कपडा, गहना-परिवार के हैं यहांपर परिवार के अर्थ में है ॥ परिच्छद के स्थानमें परिच्छेद अशुद्ध छपगया है। हस्त लिखित प्रति पृष्ठ ६६ पर 'परिग्रहश्च विमान परिछदादि' ऐसा पाठ है ॥ (३) 'विमान' शब्द पुल्लिंग और नपुसक लिंग दोनोंमें आता है ॥

इदानीं वैमानिकेषु लेश्याविधिप्रतिपत्त्यर्थमाह—

पीतपद्मशुक्ललेश्या द्वित्रिशेषेषु ॥ २२ ॥

इदानीं॥वैमानिकेषु॥लेश्या-विधि-प्रतिपत्ति-अर्थम्॥।।आह =अब वैमानिक देवोंमें लेश्याके नियमके प्राप्तिके लिये (अग्रिमसूत्रमें) कहते है कि

(१)सूत्रम्— पीतपद्मशुक्ललेश्या द्वित्रिशेषेषु ॥ २२ ॥

(१) हमारे यहां इस सूत्रका पाठ सर्वत्र एक है। सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रका पाठ "पीतपद्मशुक्ललेश्याहि त्रिशेषेषु" ऐसा है श्वेताम्बर आम्नायकी भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीका और हमारे यहांका पाठ एकहै। हमारे यहां इस सूत्रका अर्थ सामान्यरूपसे और विशेषरूपसे ऐसे दो प्रकारसे किया है। एकसा पाठ होने पर भी अर्थ भेद है जिसको सविस्तार निम्नलेख में दिखलाते हैं॥

श्वेताम्बर आम्नायकी 'भाष्यानुसारिणीतत्त्वार्थटीका'सिद्धसेनसूरि रचितकापाठ "पीतपद्मशुक्ललेश्या द्वित्रिशेषेषु"

'पूर्वत्र बहुव्रीहिरुत्तरत्र द्वन्द्वः। यथासंख्यं चाभि सम्बन्धः कार्यः। उपर्युपरि वैमानिका इत्यादि भाष्यम् पृष्ठ ३४०=इस सूत्रके पहले पीतपद्मशुक्ललेश्या तक बहुव्रीहि समास है आगे 'द्वित्रिशेषेषु' तक द्वन्द्व समासहै। 'यथासंख्य' शब्द इस सूत्रमें लगाना चाहिये। उपर्युपरि वैमानिका इत्यादिक भाष्य वा व्याख्या है॥ स्मरण रहे कि सौधर्मैशान इत्यादि सूत्र २० में ब्रह्मोत्तर, कापिष्ठ, शुक्र, शतार ये चार स्वर्ग नहीं माने हैं इसलिये उनके यहां दोनों भाष्योंके अनुकूल बारहस्वर्गहैं "समानत्वेसत्यप्युपर्युपरिविशुद्धिप्रकर्ष सौधर्मैशानयोः कनकत्ववयसुराः" सानत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मलोकेषु पद्मदलत्विषगलांतकादिषु धवलरुचः" पृष्ठ ३४० =(लेश्याओंमें) समानता होनेपर भी(=सति अपि)ऊपर ऊपरके देवोंकी लेश्या अधिक विशुद्ध है। सौधर्म ऐशान स्वर्गोंमें पीतलेश्याके धारक देव है। सानत्कुमार-माहेन्द्र और ब्रह्मलोक (स्वर्गों)में पद्मलेश्या वाले देव हैं। लांतकसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तक शुक्ललेश्या के प्रेमी देव हैं।

श्वेताम्बरस० "सभाष्यतत्त्वार्थाधिमसूत्र" तथा भेदप्रदर्शककोष्टकका पाठ "पीतपद्मशुक्ललेश्या हि त्रिशेषेषु" ॥ २३ ॥

भाष्यम्—उपर्युपरि वैमानिका सौधर्मादिषु द्वयोस्त्रिषु शेषेषु च पीतपद्मशुक्ललेश्या, भवन्ति यथासंख्यम्॥ द्वयो पीतलेश्या सौधर्मैशानयोः। त्रिषु पद्मलेश्या सानत्कुमार माहेन्द्रब्रह्मलोकेषु। शेषेषु लान्तकादिष्वासर्वार्थसिद्धाच्छुक्ललेश्या।उपर्युपरितु विशुद्धतरेत्युक्तम् =ऊपरऊपर वैमानिकसौधर्मादिक दो(स्वर्ग वा कल्प)में,तीनस्वर्गोंमें और (=च) बचेहुये (लातस्वर्ग-नवग्रैवेयक पंचोत्तर,निमें पीत-पद्म-शुक्ललेश्या क्रम से हैं॥

दो सौधर्म ऐशान स्वर्गोंमें पीतलेश्या है। तीन सानत्कुमार माहेन्द्र-ब्रह्मलोकमें पद्मलेश्याहै।बचेहुये लांतकआदिमें अर्थात्महाशुक्रसहस्रार आनत प्राणत आरण अच्युत, नवग्रैवेयक, पांच विजय वैजयंत जयंत अपराजित (=आदिषु)निमें,सर्वार्थसिद्धि, पर्यंतमें(आ-सर्वार्थसिद्धौ) शुक्ललेश्या है (और समान लेश्याओं में भी) ऊपर ऊपर के देवों की लेश्या अधिक विशुद्ध है ऐसा कहचुके हैं (सभाष्य० पृष्ठ ११२)

श्वेताम्बर आम्नायके उक्त दोनों भाष्योंके अर्थ करने पर एक ही भाव वा अभिप्राय प्रगट होता है यद्यपि सूत्र पाठमें भेद है सम्भव है कि सभाष्य०के पाठमें 'हि त्रि' 'द्वि त्रि'के स्थानमें अशुद्ध छपगया हो वा अशुद्ध लिखगयाहो क्योंकि शब्दशः उक्त सूत्रका कोई अनुवाद समाधान योग्य नहीं होसक्ता है

(उपर्युपरि वैमानिकाः) पीत-पद्म-शुक्ललेश्याःद्वि-त्रि-शेषेषु (यथासंख्यम्) (भवन्ति)

उपरि*उपरि*वैमानिकाः।पीत-पद्म-शुक्ल-लेश्याः।	=ऊपर ऊपर रहनेवाले वैमानिक देव पीत पद्म और शुक्ललेश्याओं के धारक
यथासंख्यम्*द्वि-	=क्रमसे (सामान्यपनेसे) दो (युगल सौधर्मैशान और सानत्कुमार माहेन्द्र) में
त्रि-	=तथा तीन (युगल ब्रह्मलोक-ब्रह्मोत्तर और लांतव-कापिष्ठ और शुक्र महाशुक्र) में
शेषेषु।	=बचेहुये (शतार-सहस्रार और आनत-प्राणत और आरण अच्युत तथा नवग्रैवेयक और नव अनुदिशों और पांच अनुत्तर)निमें हैं परन्तु विशेष रीति से

केवल शब्दश यह अनुवाद होसकता है कि पीत पद्म और शुक्ल लेश्यायें ही प्रकार प्रकार (भिन्न भिन्न-स्वर्गों) में होती हैं यह तुष्टिप्रद नहीं है न किसी तात्पर्य को स्पष्ट रूपसे प्रगट करता है। पंडित ठाकुर प्रसादजी ने "सौधर्मादि कल्पोंमें प्रथक् दो कल्पोंमें तो पीत लेश्या है, और उसके आगे तीन कल्पोंके देवोंमें पद्मलेश्या है, और आगे शेष देवोंमें शुक्ललेश्या है" अर्थ किया है सो 'भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीका'के अनुकूल है इस सूत्रके पाठानुसार नहीं है॥ जो समझमें आया है वही लिखा है विशेष रूपसे पाठकगण अन्वेषण करलें॥

दोनों समाजोंमें सूत्रका अर्थ भेद उपर्युक्त टिप्पणीसे और हमारे यहां के सूत्र अर्थ से (जो विशेषरूप से किया है) इस प्रकार प्रगट होता है कि

() श्वेताम्बर आम्नायमें सौधर्म-ऐशान स्वर्गोंमें पीत लेश्या है वही पीतलेश्या दिगम्बर आम्नायके अनुकूल सौधर्म-ऐशान कल्पोंमें है

() श्वेताम्बरीय भाष्योंमें सानत्कुमार-माहेन्द्र कल्पोंमें पद्मलेश्या है। पीतलेश्या और पद्मलेश्या दिगम्बर समाजके अनुसार सानत्कुमार माहेन्द्रमें हैं

() श्वेताम्बर सम्प्रदायमें ब्रह्मलोक स्वर्गमें पद्मलेश्या है वही पद्मलेश्या दिगम्बर आचार्यों के अनुकूल ब्रह्मलोक स्वर्ग वा कल्पमें है

() श्वेताम्बर आचार्योंमें लान्तक कल्पमें शुक्ललेश्या है परन्तु पद्मलेश्या दिगम्बर आम्नायके अनुकूल लान्तव (=लान्तक) स्वर्गमें है

() श्वेताम्बर समाजमें महाशुक्र सहस्रार कल्पोंमें शुक्ललेश्या है परन्तु पद्म शुक्ललेश्यायें दिगम्बर सिद्धान्तके अनुसार महाशुक्र सहस्रारस्वर्गों में हैं

() श्वेताम्बर भाष्योंमें आनत-प्राणत-आरण अच्युत-नवग्रैवेयक-पांच अनुत्तरोंमें शुक्ललेश्या है वही शुक्ललेश्या दिगम्बरआचार्योंमें नवअनुदिश सहितमें है ब्रह्मोत्तर कापिष्ठ शुक्र-शतार स्वर्गोंको श्वेताम्बरोंने नहीं माना है इससे मिलान नहीं होसकता है हमारे यहां ब्रह्मोत्तर कापिष्ठमें पद्म, शुक्र-शतारमें पद्मशुक्ल लेश्यायें मानी हैं

(१) 'वैमानिका' सोलहवांसूत्रसे और(२)उपर्युपरि अठारहवां सूत्र से अनुवर्ततेहैं(३)'यथासंख्यम्' शब्दका अध्याहार सूत्रार्थ स्पष्टकेलिये कियागयाहै

(४) तेषाम्।इव*लेश्या ।।येषां।	=तिन पीत पद्म शुक्ल रगवाले पदार्थो के सदृश हैं लेश्यायें जिन (देवों) के
ते।पीत-पद्म-शुक्ललेश्या ।।	=ते पीत पद्म और शुक्ल लेश्यावाले (देव) हैं।

पीता च पद्मा च शुक्ला च ताः पीतपद्मशुक्लाः। पीतपद्मशुक्ला लेश्या येषां ते पीतपद्मशुक्ललेश्याः॥ कथं ह्रस्वत्वम्?।

सौधर्म ऐशानमें पीनलेश्यावाले देव और सानत्कुमार माहेन्द्रमें पीत पद्म दोनों लेश्यावाले देव और ब्रह्मलोक ब्रह्मोत्तर और लान्तव कापिष्ठमें पद्मलेश्यावाले देव, शुक्र महाशुक्र और शतार सहस्रारमें पद्म शुक्ल दोनोंलेश्यावाले देव आनत प्राणत और आरण अच्युत और नव ग्रैवेयकोंमें शुक्ललेश्यावाले देव और नव अनुदिशमें और पांच अनुत्तरोंमे देव परम शुक्ल लेश्या वाले है ॥

वृत्त्यनुवादः—पीता[१]।।च*पद्मा[१]।।च*शुक्ला[१]।।च* =और पीता और पद्मा तथा शुक्ला हैं

ताः[१]।।पीत-पद्म-शुक्ला:[३]।।पीत-पद्म-शुक्ला:[१]।।लेश्या:[१]।।येषाम्[३] =वे पीतपद्मशुक्लाः (द्वंद्व समास रूपमें)है। पीत पद्म और शुक्ल हैं लेश्यायें जिनके

ते[१]।पीत-पद्म-शुक्ल-लेश्या:[१] =वे पीत-पद्म-शुक्ल लेश्यावाले(देव)है (यह वाक्य द्वन्द्वगर्भित बहुव्रीहि समासमें है) अर्थात् 'पीतपद्मशुक्ला:[३]।।' यह वाक्य स्त्रीलिंग द्वन्द्व समासमें है और 'पीतपद्मशुक्ल-लेश्या:[३]' यह वाक्य पुरुषलिंग द्वंद्व समास गर्भित बहुव्रीहिसमासमें है। सारांश पीत, पद्म, शुक्ललेश्या जिनके है वे पीत-पद्म-शुक्ल लेश्या सहित देव है ॥

कथं*ह्रस्वत्वम्[१]।।? =(प्रश्न) ह्रस्वपना वा लघुपना (पीता, पद्मा और शुक्ला शब्दों के) कैसे हुआ?

इस प्रश्न का दोहरा तात्पर्य है प्रथम यह कि पीता-पद्मा-शुक्ला तीनों शब्दोंका द्वंद्वसमास किया है तो 'पीतापद्माशुक्ला:[३]।।' ऐसा रूप होना चाहिये क्योंकि द्वन्द्वसमासमें जो शब्द समुच्चय किये जाते है वे ह्रस्व हों तो ह्रस्व वने रहते है और दीर्घ हों तो दीर्घ वने रहते है द्वंद्वसमासमें पूर्व पदका कभी ह्रस्व नहीं होता है। जैसे हरिश्च हरश्च=हरिहरौ(विष्णु और महादेव)ईशश्च कृष्णश्च ईशकृष्णौ(शिव औरकृष्ण) माता च पितरा च=माता पितरौ (मा और वाप) इसलिये 'पीतापद्माशुक्ला:[३]।।' रूप होना चाहिये। दूसरा तात्पर्य है कि यदि हम 'पीनापद्माशुक्ला:[३]।।' द्वंद्व समासमें 'लेश्या' शब्द मिलाकर द्वन्द्व गर्भित बहुव्रीहि समास करदें तो 'पीतापद्माशुक्लालेश्या:[३]।' ऐसा रूप होना चाहिये 'शुक्ला' शब्दका 'शुक्ल' ह्रस्व कैसे हुआ ॥ (उत्तर)

६५

औत्तरपदिकम् ।

औत्तरपदिकम् =अग्रिम पद (दीर्घ) रहनेसे पूर्व पदको ह्रस्व हुआ है अर्थात् 'पीतापद्मा' द्वंद्वसमासमें 'पद्मा' अग्रिम पद स्त्रीलिंग दीर्घ होनेसे 'पीता' का तकार ह्रस्व होकर 'पीतपद्मा' हुआ पश्चात् 'पीतपद्माशुक्ला:१/३।।' वाक्य में 'शुक्ला' शब्द स्त्रीलिंग दीर्घ पद होने से 'पद्मा' का ह्रस्व हुआ, अतः 'पीतपद्मशुक्लाः' ऐसा वाक्य द्वन्द्वसमास स्त्रीलिंग प्रथमा विभक्ति बहुवचनमें बनगया । स्मरण रहै कि यहांपर 'पीतापद्मा' शब्दोंको पुंवद्भाव (=पुरुषलिंगी शब्दकेसदृश तात्पर्यको प्रगट करनेवाला) नहीं हुआ, केवल पीता पद्मा ह्रस्व होगये हैं ।। 'पीतपद्मशुक्ला:१/३।।' वाक्य का अर्थ 'पीत और पद्म और शुक्ल' हैं ऐसा है । ऐसा रूप बनजानेके लिये कोई व्याकरणका नियम और वार्तिक इस विषयपर नहीं है । श्री पतञ्जलिमुनिने जिनका अस्तित्व खृष्टीयशतकसे लगभग १५० वर्ष पहिले निर्णय कियागया है और जिनने पाणिनिमुनिकृता अष्टाध्यायी पर लगभग एकलाख श्लोकका महाभाष्य रचा है उनने अध्याय १ पाद १ सूत्र ७० 'तपरस्तत्कालस्य' पर 'द्रुतायां तपर करणे मध्यमविलम्बितयोरुपसंख्यानम्' यह वार्तिक उक्तमहाभाष्यमें दी है इसमें 'मध्यमविलम्बितयोः' ='मध्यमा च विलम्बिता च मध्यमविलम्बित तयोः' का प्रयोग किया है इस द्वंद्वसमास युक्त पदमें 'विलम्बिता' उत्तर पद दीर्घ रहनेसे 'मध्यमा' शब्दको ह्रस्वकर निर्देश किया है । जैसे इस द्वंद्वसमास युक्तपद में 'विलंबिता' उत्तर दीर्घ पद रहनेसे 'मध्यमा' शब्दको ह्रस्वकर निर्देश किया है उसी प्रकार यहांपर 'पद्मा' अग्रिम पद रहते 'पीता' को ह्रस्व किया और 'शुक्ला' को उत्तरपद रहते 'पद्मा' को ह्रस्व किया । यह एक बात प्रसिद्ध है कि यदि किसी रूपकी सिद्धिके लिये व्याकरणमें किसी सूत्र, वार्तिक वा अन्य नियमका अभाव हो और किसी शब्दको किसी रूपमें (चाहैं वह व्याकरणके विरुद्धही क्योंन हो) पाणिनि,कात्यायन,पतञ्जलि योगी और श्रीकुन्दकुन्द, उमास्वामी, भद्रबाहु स्वामी इत्यादि आचार्य प्रयोग करदें वह शुद्ध मानलिया जाताहै और उसको आर्ष प्रयोग भी कहतेहैं यही दशा हमारे 'पीतापद्मा'वाक्यकी है । उक्त वार्तिकके अनुवादमें हम इसकी पूरी व्याख्या देंगे ।।'ह्रस्व'के लिये उत्तरपद दीर्घ और स्त्रीलिंगमें होना चाहिये ।।

दूसरी शंका (कि 'पीतपद्मशुक्लालेश्याः' वाक्यमे शुक्ल शब्दका ह्रस्वहोकर 'पीतपद्मशुक्ललेश्या:१/३।' वाक्य कैसे होगया) का उत्तर पीत और पद्म और शुक्ल है लेश्या जिनके वे पीत और पद्म और शुक्ल लेश्यावाले (देव) है । ऐसा अर्थ 'पीतपद्मशुक्ललेश्या:१/३।' इस द्वंद्व गर्भित बहुव्रीहि समास वाले वाक्य का हुआ ।। 'शुक्ला' शब्दका

अष्टाध्यायी अध्याय छह पाद तीन सूत्र (१) चौतीसवें अथवा जैनेन्द्र व्याकरण अध्याय चार पाद तीन सूत्र एकसौ छयालीसवें से (देखो निम्नलिखित टिप्पणी) पुंवद्भाव होकर (अर्थात् शुक्ला के आकारका अकार होकर पुरुष लिंगी शब्दके सदृश तात्पर्यको प्रगट करते हुये) 'शुक्ल' शब्द होगया अतः 'पीतपद्मशुक्ललेश्याः' ऐसा वाक्य होगया भावार्थ 'पीतपद्मशुक्लाः[३]।।लेश्याः[३]।।येषाम्[६](=पीतपद्मशुक्ललेश्याः[३]।) यहांपर शुक्लाशब्द स्त्रीलिंग है उसके समान आकृति (=रूपवाला) और समान भावका (=आयाम) द्योतक पुल्लिंग शब्द 'शुक्ल' है। इस स्त्रीलिंग शब्द 'शुक्ला'के अन्तमें 'ऊङ्' प्रत्यय नहीं है वरन अंतमें 'आ' प्रत्यय है इस (शुक्ला शब्द)के पश्चात् वा उत्तरमें 'लेश्या' स्त्रीलिंग शब्द है यह 'लेश्या' शब्द शुक्ला शब्दके साथ समानाधिकरणमें है और यह लेश्या शब्द क्रमिक संख्या (जैसे पहला दूसरा-तीसरा-चौथा इत्यादि) नहीं है और न प्रियादि गणके शब्दोंमें से एक शब्द है इसलिये यह शब्द 'शुक्ला'जो स्त्रीलिंग है अपने अनुरूप वाले 'शुक्ल' पुलिंग शब्दमें पलट जाता है इसलिये 'पीतपद्मशुक्लालेश्याः' वाक्यके स्थानमें उक्त सूत्र द्वारा 'पीतपद्मशुक्ल-लेश्याः' ऐसा वाक्य बनगया। इस 'शुक्ला' शब्दका उसीप्रकार से पुंवद्भाव हुआ है जिस प्रकारसे 'दर्शनीया' शब्दका पुंवद्भाव होकर 'दर्शनीय' शब्द दर्शनीय भार्यः (=दर्शनीया भार्या यस्य) वाक्यमें बन जाता है ।। अर्थात् दर्शनीयाभार्या यस्य स दर्शनीयभार्यः हुआ।

पूज्यपाद स्वामीने 'द्रुतायां तपरकरणे मध्यमविलम्बितयोरुपसंख्यानम्' पतञ्जलि वार्तिकको प्रमाणरूपमें केवल इसीलिये दियाहै कि जैसे पतंजलिने मध्यमाका मध्यम विलंबिता अगलेपद होतेसंते करदिया उसीप्रकार उमास्वामीने 'पीता पद्मा' को शुक्ला परे होते संते क्रमसे पीत पद्म करदिया ।। उनको इस वार्तिक के वस्तुतः अर्थसे कुछ प्रयोजन नहीं और यथार्थ अर्थ इस वार्तिकका सूत्रके अर्थ वा भावसे कुछ सम्बन्ध नहीं रखता वार्तिकका अर्थ पृष्ठ६८–७४ तकहै।

---

(१)स्त्रियाः पुंवद्भाषित पुंस्कादनूङ्, समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणीप्रियादिषु ।।६।३।३४ ।। स्त्र्युक्तपुंस्कादनूरेकार्थेऽङ्ङ् प्रियादौ स्त्रियां पुवत् ।। ४।३।१४६
=स्त्रियाः[६]।। पुवत्*भाषितपुंसकात्[५]।अनूङ्[१]।समानाधिकरणे[७]।।।स्त्रियाम्[७]।।अपूरणीप्रियादिषु[७]। ।।(अपूरणी–अप्रियादिषु)

स्त्रियाः[६]।।पुंवत्*समानाधिकरणे[७]।।। =स्त्रीलिंग शब्दका पुवाचक समान रूप हो जब (समास में) समानाधिकरण में अथवा एकान्वय में

स्त्रियाम्[७]।।अपूरणी- =ऐसा स्त्रीलिंग(शब्द) उत्तरपद हो जो क्रमिक संख्या(प्रथम दूसरा-तीसरा-चौथा-पांचवा इत्यादि)न हो और

प्रियादिषु[७]। =न प्रियादिगण के शब्दोंमेंसे कोई शब्द हो। (और इस उत्तर पदवाले स्त्रीलिंग शब्दका)

भाषितपुंस्कात्[५]।अनूङ्[१]। =पूर्वपद भाषितपुंस्क स्त्रीलिंग ऐसा हो कि जिसके अन्तमें (स्त्रीलिंग) ऊङ् प्रत्यय न हो। जैसे दर्शनीय भार्य (=दर्शनीया भार्या यस्य)। यहां 'दर्शनीया' स्त्रीलिंग शब्द है जिसका अनुरूप पुलिंग शब्द उसी आकृति और उसी अर्थवाला दर्शनीय शब्द है। इस 'दर्शनीया' शब्द के अन्तमें ऊङ् प्रत्यय नहीं है वरन 'आ' है इस 'दर्शनीया' शब्द के पश्चात् स्त्रीलिंगी शब्द भार्या है जो दर्शनीया शब्द के साथ एकान्वयमें है ।।

यथाहुः द्रुतायां तपरकरणे

यथा※आहु1तपरकरणे2॥। =जैसा कि वे कहते है कि 'तपर' करनेपर अर्थात् तकार जिससे परे करना हो, जिसके पश्चात् तकार जोड़ना हो वा लगाना हो अथवा तकार से जिसको परे करना हो, तकार से जिसको पश्चात् लाना हो तो (ऐसे प्रयोग में)

द्रुतायाम्2। =द्रुता वृत्तिमें अर्थात् शीघ्र उच्चारण की चाल, ढव, क्रिया अथवा रीतिमें; शब्द के जल्दी बोलनेमें

वा सामानाधिकरणमें है और यह भार्या शब्द क्रमिक संख्या वाला नहीं है और न प्रियादिगणके शब्दोंमेंसे कोई शब्द है अत 'दर्शनीया' शब्द अपने अनुरूपक पुलिंगशब्द 'दर्शनीय'में पलट जाता है ॥ ऐसेही दीर्घजङ्घः =दीर्घा जङ्घा यस्य दीर्घजङ्घ जिसकी जांघ बडी है और रूपवती भार्या यस्य=रूपवद्भार्यः॥

स्त्री1॥पुवत्※एकार्थे2। =(जैनेन्द्र व्याकरणके अध्याय ४ पाद ३ सूत्र १४६ का अनुवाद) स्त्रीलिंग शब्द पुलिंग सदृश हो जब (समासमें) एक अर्थमें

स्त्रियाम्1॥यअडट्प्रियादौ1। =ऐसा स्त्रीलिंग (शब्द) उत्तर पद हो जो सख्या न हो (=अडट् अष्टाध्यायी १-१-२३) न प्रियादि गण में (से) हो

उक्त पुस्कात्5। =(और इस उत्तर पदवाले स्त्रीलिंग शब्द का) पूर्व पद भाषित पुस्क स्त्रीलिंग ऐसा हो कि

अन् ऊः1। =जिसके अन्त में ऊ प्रत्यय न (=अन्) हो ॥ ऊङ् प्रत्ययके ङ् का इत् सज्ञक होनेसे लोप होजाता है ऊ शेष रहजाता है प्रियादि शब्द ये हैं (१) प्रिया (२) मनोज्ञा (३) कल्याणी (४) सुभगा (५) दुर्भगा (६] भक्ति [७] सचिवा(८)स्वा (स्वसा) (९)कान्ता (१०) क्षान्ता (११) समा (१२) चपला (१३) दुहिता (१४)वामना (वामा) (१५)तनया [१६] अम्बा॥इन शब्दोंमें 'दृढभक्तिः' समास नियम विरुद्ध है ॥

(१) आहु-यह शब्द हस्त लिखित सर्वार्थसिद्धिवृत्ति पृष्ठ ६६ पर नहीं है न राजवार्तिकमें है जिसका लेख लगभग वही है जो सर्वार्थसिद्धिमें है हस्तलिखित प्रति में 'यथा द्रुतायां तपरकरणे मध्यमविलबितयोरुपसख्यानमिति द्रुतमध्यमविलबिता इति" ॥ ऐसा पाठ है अर्थात् 'आहु 'शब्द नहीं है और 'द्रुतमध्यमविलविता इति यह वाक्य अधिक है। हमने यह पाठ नहीं लियाहै क्योंकि श्रीपतन्जलिकी वार्तिक केवल 'उपसख्यानम्' तक है ॥

[२) द्रु-यह शब्द सकर्मक अकर्मक परस्मैपद भ्वादि प्रथम गणका धातु है यह () बहना, दौडना, उडना, दौडपडना, आक्रमणकरना ()गलजाना पतला होजाना इत्यादि अर्थोंमें आता है। जब 'द्रु' (पु०। न०) में सज्ञा होता है तो काठ, काठ का वनाहुआ लोखर, इन दो अर्थों में आता है केवल पुलिगमें आता है तो वृक्ष उसकी डाली इन दो अर्थो में आता है ॥ 'द्रु' में त जोडदें तो 'द्रुत' त्रिलिंगी होजाता है और ता जोडने पर द्रुता स्त्रीलिंग होजाता है जल्दी, पिघला हुआ, भागा हुआ अर्थोमें प्रयोग कियाजाताहै। द्रुत पुलिगमें वृक्ष,विल्ली,बीछूके अर्थोमें आता है ॥द्रुतम् अव्यय है॥ जल्दी, शीघ्र अर्थोंमें आता है ॥ द्रुता यहांपर स्त्रीलिंग एक वचन सप्तमी विभक्तिमें "द्रुतायाम्" ऐसे रूपमें शीघ्रता के अर्थमें आया है॥ श्लोकवार्तिक हस्त लिखित में "द्रुतायाम्" सप्तमी एक वचन स्त्रीलिंगमें है परन्तु मुद्रित श्लोक वार्तिक पृष्ठ २८४ पर द्रुतापात् पचमी विभक्ति एक वचन नपुंसक लिंग 'तपरकरणात्' शब्द से प्रथम आया है ॥ द्रुतापात्=यहां पर 'शीघ्रतासे' इस अर्थमें आया है ॥

मध्यमविलम्बितयोरुपसंख्यानमिति ॥

मध्यम-	=मध्यमा वृत्तिका अर्थात् मध्यमकालिक उच्चारणका और
विलम्बितयोः[६।२] उपसंख्यानम्[१।१] इति*	=विलम्बिता वृत्ति अर्थात् विलम्ब वा देरीकालिक उच्चारणका समावेश वा अन्तर्गतहोना चाहिये (इस वार्तिक सम्बन्धीय, इतिहास, व्याख्या, श्री पतञ्जलिका भाष्य अनुवाद सहित नीचे टिप्पणी में देते हैं)

खृष्टत शतकसे लगभग ६५० वर्ष पूर्व श्री पाणिनिजी ने जो दाक्षीके पुत्र शालातुरीय नामक ग्राममें उत्पन्न हुये थे अष्टाध्यायीरूप व्याकरण जिसमें ३९७५ सूत्र है बनाया तत्पश्चात् खृष्टीय शतकसे ३५० वर्ष पहिले कात्यायन मुनिने पाणिनि मुनिके सूत्रोंमें जो त्रुटि थी उसको दूर करनेके लिये लगभग एक सहस्र अस्सी वार्तिक रचे। तत्पश्चात् पतंजलि मुनिने खृष्टीय शतकसे १५०वर्ष पूर्व अष्टाध्यायीके सूत्रों पर महाभाष्य रचा जिसमें लगभग एक लाख श्लोक हैं इससे बडा कोई भाष्य वा वृत्ति उक्त व्याकरण पर नहीं है। खृष्टीय शतक ६२५में भर्तृरचित भागवृत्ति इसी अष्टाध्यायी पर रचीगई। इसके कुछ समय पश्चात् लगभग ६५० खृस्ताब्दीमें वामन जी और जयादित्यजीने 'काशिकावृत्ति' लगभग दशसहस्र श्लोक के रची। इसी अष्टाध्यायी की इसी काशिका वृत्तिके ऊपर जिनेन्द्रबुद्धि (द्वितीय पूज्यपाद स्वामी) ने खृष्टीय ७०० से ७५० तक 'काशिकाविवर्ण पञ्चिका' इस काशिका पर बनाई जिसकी श्लोक संख्या ३०००० सहस्र से अधिक है। इसका सम्पादन श्रीमान् शनीशचन्द्र चक्रवर्तिने कियाहै और वारिन्द्रअन्वेषण सभा,राजशाही प्रान्त से प्रकाशित हुई है। स्मरण रहै कि प्रथम पूज्यपाद स्वामी सर्वार्थसिद्धि वृत्ति के कर्ता ने विक्रम सम्वत् ५४० के लगभग जैनेन्द्र व्याकरण रचा॥ इसके पश्चात् अष्टाध्यायी पर भाषावृत्तिअर्थात् वैदिक सूत्रोंको छोडकर संस्कृतमें ही लघुभाष्य रचा इसके रचयिता पुरुषोत्तमदेव हुये। पश्चात् भट्टोजी दीक्षितने खृष्टीय बारहवी शतकमें 'सिद्धान्त कौमदी' रची॥ इसमें पाणिनि मुनिके समस्त सूत्र हैं परन्तु सूत्रोंका क्रम भट्टोजी दीक्षितने परिवर्तन करदियाहै॥ इसकेपीछे मध्यकौमुदी रचीगई, फिर श्रीयुत् वरदराजने लघुकौमदी रची जिसमें अष्टाध्यायीके १२००सूत्रसे अधिकहैं॥

इस महाभाष्यके रचनेके सम्बन्धमें एक मनोरन्जक दन्त कथा इस प्रकार है कि एक वार पतजलिकी माता सूर्य्यको अर्घ देरहीं थीं कि अर्घ देते समय लोटेमेंसे एक सांपका बच्चा भूमिपर गिरपडा श्रीमतीकी जिभ्यासे घबराहटमें 'को भवान्' (=आप कौन हैं) के स्थान में 'कोर्भवान्' निकलगया, तब ('सर्पोऽहम्' के स्थानमें) उत्तर मिला कि 'सपोऽहम्' (=मैं सांप हूं)। तब माताजीने सावधानीमें आकर प्रश्न किया कि 'रेफकुतः गतः' अर्थात् सांप के बच्चे से पूंछा कि तुमने अशुद्ध उच्चारण 'सर्पोऽहम्' के स्थानमें 'सपोऽहम्' क्यों किया फिर उत्तर मिलाकि 'त्वयाऽपहृत' अर्थात् रेफ तुमने हरलिया भावार्थ 'को भवान्' के स्थानमें तुम 'कोर्भवान्' वाक्यका उच्चारण करगईं फिर मैंने 'सपोऽहम्' कहदिया। 'कोर्भवान्' का रेफ यदि 'सपोऽहम्' वाक्य में मिलादियाजावे तो दोनों वाक्य 'को भवान्' (=आप कौन हैं) और 'सर्पोऽहम्' (मैं सांप हूं) ठीक होजावेंगे। पश्चात् ऐसा

प्रसिद्ध है कि विक्रिया ऋद्धिद्वारा सांपके बच्चेने ऋषिका रूप धारण करके इस 'महाभाष्य' को लिखा और महादेवजी इसको एक कोठरीमें से बोलते गये। पतंजलि ऋषि के लगभग एक सहस्र शिष्य थे। इस भाष्यके लेख को रोककर उक्त ऋषि कहीं आवश्यकीय कार्यको गये और शिष्योंको उपदेश करगये कि कोठरीका आवरणपट न उठाना,परन्तु आपको अनुभव होगाकि जिस कामकी लडकोंसे कहो कि मत करना, बस उसको अवश्यही करें आवरणपट खोलदिया तो ऐसा कहाजाता है कि उष्णताके कारण समस्त शिष्य भस्म होगये केवल दो चार शिष्य जो कार्यवश बाहर चलेगये थे जीवित रहे। अष्टाध्यायीके आठ भागहैं यह महाभाष्य भी आठ खडोंमें काशी,बबई इत्यादि देशोंमें मुद्रित हुआहै। कहतेहैंकि कुछेक भाग इस भाष्यको जहांकहीं प्रकरण ठीकठीक नहीं मिलता है नष्ट होगया है अर्थात् उपहासमें प्रसिद्ध है कि ऋषिके अनुपस्थितिमें बकरी कुछ पत्र महाभाष्यके चरगई॥

इस बातके लिखनेकी आवश्यकता नही है कि पूज्यपादस्वामीने जैनेन्द्र व्याकरण रचा और बड़े प्रकर्ष वैयाकरण थे उन्होंने कहीं पर भी इस समस्त सर्वार्थसिद्धिवृत्तिमें अन्य मतके किसी शास्त्रका प्रमाण नही दिया है जैनमतके ही शास्त्रोंका प्रमाण दिया है। इस वार्तिकका प्रमाण देनेके दो कारण सम्भव हैं प्रथम यह कि प्रश्न करनेवाला कोई अन्य मतका विद्वान् हो और वह जैनमतके शास्त्रोंके प्रमाणसे इस वैयाकरणीय प्रश्नके उत्तरसे सन्तुष्ट न हुआ हो तब उक्त स्वामीजीने उसको इस महाभाष्यकी पंक्तिसे सतुष्ट किया हो जो अन्यमतमें सबसे प्राचीन, महत्वका और प्रभाव शाली महाभाष्य है। दूसरे यहकि उनको श्री उमास्वामीसे पूर्वका कोई प्राचीन प्रमाण जैनमतके ग्रन्थोंसे प्राप्त न होसका हो और उमास्वामी जिन्होंने सम्वत् १०१ में तत्त्वार्थसूत्र की रचना कीथी उनके पश्चात् के ग्रथों द्वारा इस व्याकरणके प्रश्नका समाधान नहीं होसका है। इसीकारण से हमने उक्त इतिहास दिया है कि कोई अन्यमतका विद्वज्जन 'पीत पद्म शुक्ललेश्याः' वाक्यकी रचना पर सदेह और तर्क न कर सकै।

प्रथम इसके कि हम श्री पतजलिकी वार्तिक और उसकी संस्कृत व्याख्याका शब्दश अनुवाद और भावार्थ लिखें 'अ' स्वरके अठारहरूप और अष्टाध्यायीके 'अणुदित्सवर्णस्य चा प्रत्यय' सूत्र ६९॥ 'तपरस्तत्कालस्य' ॥ सूत्र७० । और विप्रतिषेधे पर कार्यम्। अध्यायप्रथम पादचौथा सूत्र दूसरे को समझादेवें कि उक्त वार्तिकका अनुवाद भले प्रकार और सरलता से पाठकोंकी समझ मे आजावे।

'अ' स्वर के अठारह रूप हैं। उदात्त 'अ' जिसका उच्चारण तालु आदि स्थानोंके ऊपरके भागसे होता है। अनुदात्त 'अ' जिसका उच्चारण तालु आदि स्थानों के निचले भाग से होता है और स्वरित 'अ' जिसके उच्चारणमें उदात्त और अनुदात्त दोनों वर्णधर्म समान हों अर्थात् दोनों उदात्त अनुदात्त वर्णधर्म मिले हों। इन प्रत्येक तीन के अनुनासिक उच्चारण और निरनुनासिक उच्चारण से दोदो भेद होकर छह भेद 'अ' स्वर के हुये, पश्चात् प्रत्येक छह भेद ह्रस्व (एक मात्रिक उच्चारण) दीर्घ (दो मात्रिक उच्चारण) प्लुत (तीन मात्रिक उच्चारण)से अठारह भेद इस प्रकार होजातेहैं अ-अ॒-अ॑ अँ-अँ॒-अँ॑। आ-आ॒-आ॑ आँ-आँ॒-आँ॑। अ३-अ॒३-अ३॑ अँ३-अँ॒३-अँ३॑। इनमें उदात्त पर कोई चिन्ह नहीं है, अनुदात्त 'अ' के नीचे ऐसी—लकीर है और स्वरित 'अ' के ऊपर ऐसी। खड़ी लकीर है॥

प्रथम 'उदात्त ह्रस्व निरनुनासिक' अ है। दूसरा 'अनुदात्त ह्रस्व निरनुनासिक' अ॒ है। तीसरा 'स्वरित ह्रस्व निरनुनासिक' अ॑ है। (विना नाक बोलो)
चौथा 'उदात्त ह्रस्व अनुनासिक' अँ है। पांचवां 'अनुदात्त ह्रस्व अनुनासिक' अँ॒ है। छठवां 'स्वरित ह्रस्व अनुनासिक' अँ॑ है। (नाकसे बोलो)
सातवां'उदात्तदीर्घ निरनुनासिक'आ है। आठवां'अनुदात्त दीर्घनिरनुनासिक' आ॒ है। नवमां 'स्वरित दीर्घ निरनुनासिक आ॑' है। (विना नाक बोलो)
दशवां 'उदात्तदीर्घ अनुनासिक' आँ है। ग्यारहवां 'अनुदात्त दीर्घअनुनासिक' आँ॒ है। बारहवां स्वरित दीर्घ अनुनासिक आँ॑ है। (नासिकासे बोलो)
तेरहवां'उदात्त प्लुत निरनुनासिक'अ३ है। चौदहवां'अनुदात्त प्लुत निरनुनासिक'अ॒३ है। पद्रहवां'स्वरित प्लुत निरनुनासिक'अ॑ ३ है। (विनानाक बोलो)
सोलहवां'उदात्त प्लुतअनुनासिक'अँ३ है। सत्रहवां 'अनुदात्त प्लुत अनुनासिक' अँ॒३। अठारहवां'स्वरित प्लुत अनुनासिक' अँ॑ ३ है। (नाकसे बोलो)

() अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः =अण्[1],उदित्[1],सवर्णस्य[6]॥, च*अप्रत्यय [1]। स्वम्[1]रूपम्[1]॥ ॥ अष्टाध्यायी प्रथम अध्याय प्रथमपादका ६९ वां सूत्र

अण्[1]। =प्रत्याहार अण् के अक्षर अर्थात् अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ, ह, य, व, र, ल, जिनमें अ,इ, उ प्रत्येक के अठारह 'ऋ' के अठारह और बारह 'लृ' के रूप मिलने से ऋकार के तीस रूप, ऐसे ही लृ के बारह रूप और ऋ से अठारह रूप मिलने से ऐसे लृ कारके भी तीस रूपहैं(क्योंकि ऋ, और लृ की आपस में सवर्ण संज्ञा मानी गई है) ए, ओ, ऐ, औ, में से प्रत्येक के बारह बारह रूप,हैं। अनुनासिक औरअननुनासिक भेदों से य, व, ल प्रत्येकके दोदो रूपहैं अर्थात् साधारण य, व, ल में अनुनासिक यँ वँ लँ का भी समावेश होजाता है। र, ह यद्यपि 'अण्' प्रत्याहारमें अन्तर्गत हैं तौभी अपने एक एक रूपको ही प्रगट करते हैं क्योंकि उनका कोई सवर्णीय अक्षर नहीं है

उदित्[1]। =कु चु टु तु पु ये उदित् हैं अर्थात् कु=कवर्ग (=क, ख, ग, घ, ङ) चु=चवर्ग (च, छ, ज, झ, ञ) टु=टवर्ग (= ट, ठ, ड, ढ, ण), तु=तवर्ग(=त, थ, द, ध, न) पु=पवर्ग (=प, फ, ब, भ, म,) [समावेशहैं]

स्वम्[1]रूपम्[1]॥च सवर्णस्य[6]॥रूपम्[1]॥=अपनेअर्थव रूपको तथासवर्णके अर्थवरूपको ग्रहणकरतेहैं(जैसे'अमें अठारा प्रकारके'अ'और'कु'मेंक-ख-ग घ ङ इस सूत्रमें 'स्वरूपम्' वाक्यकी अनुवृत्ति 'स्व रूपं शब्दस्या शब्द संज्ञा' इस ६८ वां सूत्रसे आती है। स्वम्का अर्थ अपनाहीहै अर्थात् अर्थको प्रगटकरताहै और 'रूपम्' शब्दके व्यक्तिगतआकारको प्रगट करताहै ॥ स्वम्रूपम्का अतः यह भाव है कि किसी शब्दके अर्थ और उसके आकार का द्योतक हो। जैसे कोई नियम जो अग्नि पर लागू होता है उस शब्द पर जो अ, ग्, न्, इ से बना हो लागू होगा नकि अग्नि शब्द के समानार्थक वाची शब्दों पर जैसे कि पावक, ज्वलन इत्यादि ॥ जैसे सूत्र आद्गुण (६-१-८७] का अर्थ है कि 'जब एक स्वर अ के पश्चात् आवे तो दोनों स्वरोंके स्थानमें गुण संज्ञाका आदेश हो, यहांपर सूत्र में केवल ह्रस्व अ का निर्देश है परन्तु इस सूत्रसे दीर्घ 'आ' भी आजाता है जैसे केवल नर+ईश =नरेश नहीं है परन्तु महा+ईश भी महेश है ॥ अन्य उदाहरणों के लियेदेखो ७४३२' ५४-५०, ६-४-१४८ सूत्र ॥

अप्रत्यय[1]। =यदि उक्त सर्व अक्षर प्रत्ययकी भांति वा प्रत्ययकी रीतिपर प्रयोगमें न लाये जावेंतो (अपने रूप और सवर्ण के रूपों

के ग्राही होतेहैं) जैसे 'सनाशसभिक्ष उः । ३ । २ । १६८ उन धातुओंके (जिनके अन्तमें सन् प्रत्ययहो) और 'आशस्' (=चाहना) और भिक्ष् (=मांगना) धातुओंके पश्चात् उनस्वभाववाले कर्ताओंके अर्थमें 'उ' प्रत्यहो जैसे भिक्ष् मांगनासे भिक्षु भीख मांगनेवाला बना । यहांपर केवलहस्व उका ग्रहणहै, दीर्घ ऊ और प्लुत 'उ३'का ग्रहणनहीं हुआ ॥

() तपरस्तत्कालस्य ॥ ७० ॥ =त-परः१। तत्कालस्य६। (स्वम्१रूपम्१)=तकार जिससे परे हो वा तकारसे जो परे हो वह उतनेकी संबन्धीय सवर्ण को अपने अर्थ और का ग्राहक हो ॥

तपर १।तत्कालस्य६। =(अर्थात्) तकार (=त्) जिस अक्षर से पीछे आवै अथवा तकार (=त) से कोई अक्षर परेमें होतो वह अक्षर

स्वम्१॥रूपम्१॥ =अपने अर्थ रूप और अपने उन सवर्णीय अक्षरोंका रूप वअर्थका ग्राहक है जिनके उच्चारणमें वही काल लगे, उतनाही समयलगे जितना कि पूर्वोक्त अक्षर के उच्चारणमें लगता है सूत्र ६९ में यह कथन कियागया है कि व्यक्तिगत स्वरमें उसके सर्व सवर्णीय अक्षर समावेश होजावेंगे इस प्रकारकि 'अ' में आ भी अन्तर्गत होगा और इ में ई इत्यादि । यहसूत्र निर्देश करता है कि अक्षर का वही रूप ग्रहण किया जावेगा न कि उसके जाति के सर्व अक्षर ग्रहण किये जावेंगे यह कार्य अक्षर के पश्चात् अथवा प्रथम त् लाने से होता है जैसे अत् का आशय केवल 'अ' अक्षर ग्रहण करना है न कि उसके सर्व सवर्णीय अक्षर । इसी प्रकार उत् का अभिप्राय केवल हस्व'उ' ग्रहण करने का है न कि दीर्घ और प्लुत उ । इस सूत्रमें तपरः और तत्कालस्य दोपद है । तपरःका अर्थ जो तकार के परे हो अथवा तकार जिसके पीछे हो, 'तत्काल' का अर्थ है उतनाही काल ॥ समय की अपेक्षासे स्वरोंकेहस्व दीर्घ, और प्लुत तीन भेद हैं 'हस्व' स्वर में एक मात्रा होती है, दीर्घ स्वर दो मात्रिक होते हैं और प्लुत स्वर तीन मात्रा वालेहोते हैं । व्यंजन के उच्चारण में हस्व स्वर से आधा समय लगता है इसलिये एक अक्षर त् जिसके पश्चात् हो औरजो त्'केपश्चात् हो अपने अर्थ वरूपका ग्राहक है और केवल उन सवर्णीय अक्षरोंके अर्थवरूपोंका ग्राहक है जिनके उच्चारणमें उतनाहीवासमान काल लगताहोजैसे अक्षर'अत्'में उदात्त,अनुदात्त,स्वरित अनुनासिकऔरअननुनासिक'अ'अर्थात्छह हस्वरूप'अ'केगर्भितहोंगे,दीर्घऔर प्लुत रूप अकारका एकभी समावेश न होगा ॥ यहसूत्र आज्ञा ज्ञापकहै । इस सूत्रमें 'अण्' शब्दकी अनुवृत्तिपूर्व सूत्रसे नहींआती है । अण् प्रत्याहार के चौदह अक्षरों के अतिरिक्त किसी भी अक्षर के पश्चात् तकार आवे, तब उसपर भी यह सूत्र लागू होगा । यह सूत्र पूर्व सूत्रको परिमित और समर्यादा करता है अतः इससे पूर्व सूत्रका अर्थ होगाकि 'अणप्रत्याहारके अक्षर यदि उनमेंसे किसी भी अक्षर के प्रथम वा पश्चात् में 'त्' न हो तो वे अपने अर्थ व रूपके और अपने सवर्णीय अक्षरों के अर्थ व रूपों के क्रमसे ग्राहक होंगे ॥ इसप्रकार कि सूत्र ७ १-९ 'अतोभिस ऐस्' शब्द जिनके अन्तमें अत् (अर्थात् हस्व अकार) हो, तो भिस्के स्थानमें ऐस् हो जैसे वृक्ष+भिस् के स्थानमें वृक्ष+ऐस् होकर वृक्षैः बना परन्तु खट्वा जिसके अन्तमें दीर्घ 'आ'है और जिसका उच्चारण काल अकारके उच्चारण कालसे भिन्नहै, उक्तसूत्र लागू न होगा और खट्वाभिः रूप बनैगा अर्थात् भिस् का ऐस् नहोगा ॥

() विप्रतिषेधे७। =(परस्पर) तुल्यबल विरोधमें (=विप्रतिषेधे) अर्थात् तुल्य वा समान बलवाले आपसमें विरोधी

परम्१॥ कार्यम्॥। =नियम वा सूत्र किसी स्थानमें (किसी कृतिमें)एक साथ लगते हों तो (अष्टाध्यायीके) पिछले दिये नियम वा सूत्रके अनुसार कार्य हो भावार्थ अष्टाध्यायीमें दिया हुआ पिछला सूत्र लागू हो इससे पूर्वका सूत्र न लगेगा ॥ श्री पतञ्जलिभाष्य ऐसे है कि

तपरस्तत्कालस्येत्येतद्भवति विप्रतिषेधेन। यद्येव द्रुतायां तपरकरणे मध्यमविलम्बितयोरुपसख्यान कालभेदात्। द्रुतायां तपर-करणे मध्यम–विलम्बितयोरुपसख्यान कर्तव्यम्। तथा मध्यमायां द्रुतविलम्बितयो। तथा विलम्बितयां द्रुतमध्यमयोः। किं पुनः कारण न सिद्ध्यतिकालभेदात। ये हिद्रुतायां वृत्तौ वर्णास्त्रिभागाधिकास्ते मध्यमायां ये च मध्यमायां वर्णास्त्रिभागाधिकास्ते तु विलम्बितायाम्॥ सिद्धं त्ववस्थितावर्णा। वक्तुश्चिराचिर वचनाद् वृत्तयो विशिष्यन्ते। सिद्धमेतत्। कथम्। अवस्थिता वर्णा द्रुतमध्यमविलम्बितासु किं कुतस्तर्हि वृत्ति विशेषः। वक्तुश्चिराचिर वचनाद् वृत्तयो विशिष्यन्ते। वक्ता कश्चिदाशवभिधायी भवति। आशु वर्णानभिधत्ते। कश्चिच्चिरेण, कश्चिच्चिरतरेण॥ कश्चिच्चिरतमेन॥ पतञ्जलि महाभाष्य, प्रथमपाद 'तपरस्तत्कालस्य' सूत्र की व्याख्यासे उद्धृत है॥

विप्रतिषेधेन[३/१]।तपरस्तत्कालस्य[६/१]।इति*=	='विप्रतिषेधेन पर कार्यम्' सूत्र द्वारा 'तपरस्तत्कालस्य' ऐसे (सूत्रकी)
एतद्*भवतिT	=इस समय (=एतद्-वैद्यकोश पृष्ठ १५३ में अव्यय माना है) प्राप्ति होतीहै अर्थात्'अणुदित्सवर्णस्यचाप्रत्ययः' सूत्रकी निवृत्ति और 'तपरस्तकालस्य' सूत्रकी प्रवृत्ति 'विप्रतिषेधेन परंकार्यम्' सूत्रसे होती है॥
यदि*एवम्*	=(प्रश्न) जो ऐसेहैं अर्थात् तत्काल(=उतनाकाल)कीप्रवृत्ति करताहै और भिन्नकालकी निवृत्ति
द्रुतायाम्[७/१]॥तपरकरणे[७/१]॥मध्यम-	=तो शीघ्र कालिक उच्चारणकी वृत्तिमें 'तपर' करनेमें मध्यमकालीन उच्चारणका
विलम्बितयो[६/२]॥उपसख्यानम्[१/१]॥कालभेदात्[५/१]।	=और विलम्बित वा देरी कालीन उच्चारणका समावेश है (उसमें) काल भेद पडजाता है (क्योंकि उतनेही कालमें शीघ्रतावृत्ति, मध्यमावृत्ति और विलम्बिता वृत्ति नहीं होसकी)
द्रुतायाम्[७/१]।।तपरकरणे[७/१]।।।	=(अर्थात् शिष्यके प्रश्न वा शंकाका आशय यहहै कि) शीघ्र कालिक उच्चारणमें तपरकरणमें
मध्यम-विलम्बितयो[६/२]।।उपसख्यानम्[१/१]।।।कर्तव्यम्[१/१]।।।	=मध्यमा कालीन उच्चारण और विलम्बिता कालीन उच्चारणका समावेश करनाचाहिये
तथा*मध्यमायाम्[७/१]।।(तपर करणे[७/१]।।।)द्रुत-	=और मध्यमा कालीन उच्चारणमें (तपर करणमें) द्रुताकालीन उच्चारणका
विलम्बितयोः[६/२]।।(उपसख्यानम्[१/१]।।।)	=और विलम्बिता कालीन उच्चारण का (समावेश करना चाहिये)
तथा*विलम्बितायाम्[७/१]।।(तपरकरणे) द्रुत-	=और विलम्बित कालीन उच्चारणमें (तपर करणमें) द्रुता कालीन उच्चारण का
मध्यमयो[६/२]।।(उपसख्यानम्[१/१]।।।)	=और मध्यमा कालीन उच्चारण का (समावेश करना चाहिये)
किम्[१/१]।।।पुन*कारणम्[१/१]।।।	=(शिष्य बल देकर कहता है कि गुरूजी समझें) फिर क्या कारण है कि
न*सिद्ध्यतिTकालभेदात्[५/१]।	=(ऊपर के तीनो उच्चारणोंकी) सिद्धि नहीं होती है। क्योंकि (उतनाहीकाल नहींलगता है) काल भेद पड़जाता है॥

ये[1/3]।हि*द्रुतायाम्[9/1]।वृत्तौ[9/1]।
वर्णाः[1/3]।त्रिभाग अधिकाः[1/3]।मध्यमायाम्[9/1]।

=(शिष्य कथन करता है कि कितना काल भेद पडता है) जो ही द्रुतावृत्तिमें
=बोलनेके क्रम (=वर्णाः--देखो पञ्चचन्द्रकोश पृष्ठ ३३७) है (समयका) तीन भाग अधिक मध्यमा वृत्तिमें

ते[1/3]।

=वे (बोलनेके क्रम=वर्णाः) हैं अर्थात् जो ही कालद्रुतावृत्तिमें वर्णोंके उच्चारणमें लगताहै उससे तीसराभाग अधिक(काल)मध्यमा वृत्तिके उच्चारणमें लगता है

ये[1/3]।च*मध्यमायाम्[9/1]।वर्णा[1/3]।त्रिभाग-
अधिका[1/3]।ते[1/3]।तु*विलम्बितायाम्[9/1]।

=और (=च) जे मध्यमा (वृत्ति) में बोलनेके क्रम (=वर्णाः) है । तीन भाग
=अधिक(मध्यमा वृत्तिसे)वे(बोलनेकेक्रम)बिलम्बिता वृत्तिमेंभी(=तु-पञ्च०कोश१७३)हैं
अर्थात् जो (काल) मध्यमा वृत्तिके उच्चारणमें लगता है उससे तीसरा भाग अधिक विलम्बिता वृत्तिके उच्चारणमें लगता है जैसे यदि नौ पल काल द्रुता उच्चारणमें लगै तो मध्यमामें बारह पल और विलम्बितामें सोलह पल लगेंगे ॥

सिद्धम्[1/9]।।तु*अवस्थिताः[1/3]।वर्णाः[1/3]।

=(उत्तर) वर्ण वा अक्षर तोअवस्थितहैं इससे(गुरुजी कहते हैं हमारा कथन)बनजाताहै
अर्थात् काल भेद होने पर भी तीनों वृत्तियोंमेंवर्ण ज्योंकेत्यों रहतेहैंइससेबनजातीहैं

वक्तु[1/9]।चिर-अचिर-वचनात्[5/1]।।वृत्तय[1/3]।।विशिष्यन्तेT
सिद्धम्[1/9]।।एतत्[1/9]।।कथम्* ?
अवस्थिता[1/3]।वर्णा[1/3]।
द्रुता-मध्यमा विलम्बितासु[9/3]।
किम्[1/9]।।कुतः*तर्हि*वृत्ति-विशेष[1/9]।
वक्तु[1/9]।चिर-अचिर-वचनात्[5/1]।।वृत्तय[1/3]।।विशिष्यन्तेT
वक्ता[1/9]।कश्चित्*आशु*अभिधायी[1/9]।भवतिT
आशु*वर्णान्[2/3]।अभिधत्तेTकश्चित्*चिरेण*
कश्चित्*चिरतरेण[3/1]।कश्चित्*चिरतमेन[3/1]।

=क्योंकि वक्ताके देर और शीघ्र उच्चारण सेही द्रुताआदि वृत्तियोंमें भेदपडता है
=(गुरुजी कहते हैं कि) यह सिद्ध होजाता है । [प्रश्न] कैसे सिद्ध होजाता है
=(उत्तर) क्योंकि वर्ण (प्रत्येक वृत्तिमें जैसे के तैसे] अवस्थित वा स्थिर
=द्रुता-मध्यमा विलम्बिता कालके उच्चारणों में (रहते) हैं
=(प्रश्न (यदि वर्ण अवस्थित हे)तो वृत्ति भेद कहांसे हुये(तीनों वृत्तियें कहांसे हुई)
=(उत्तर) वक्ताके देर और शीघ्र बोलने के कारण से वृत्तियोंमें भेद होगये ॥
=कोई वक्ता झट (=आशु) बोलता है (अर्थात्)
=शीघ्रता से वर्णोंका उच्चारण करता है । कोई वक्ता विलम्बसे बोलताहै
=कोई वक्ता और देरसे बोलता है कोई और भी देरसे बोलता है (जैसे रथिक से घोडा धीरे चलता है । घोडा से मनुष्य धीरे चलता है और मनुष्यसे बच्चाधीरे चलता है ॥ सारांश यह है कि इनतीनों शीघ्र उच्चारण रूप वृत्तिमें मध्यम कालीन उच्चारणमें और विलम्बित कालके उच्चारण में काल भेद रहने पर भी वर्णों के अवस्थित (ज्यों के त्यों) रहने से काल भेद नहीं माना जाता है क्योंकि काल भेदमें वक्ताका जल्दी और देरसे कहना अथवा बोलना ही कारण है क्योंकि शब्द का रूप प्रत्येक अवस्थामें एकसा रहता है ॥ किं कुत' के स्थानमें किसी किसी मुद्रित भाष्यमें'किं कृतः' पाठहै अर्थ दोनों पाठोंका एकसा है ॥ पृष्ठ ७५ में भिन्नभिन्न अनुवादकोंके अनुवाद शब्दश दिये हैं जिनसे पाठक कुछ लाभ उठासकें हमारी समझमें उनके अनुवाद नहीं आये हैं अगले एक पृष्ठ ७६ में भिन्न भिन्न पाठ इस वार्तिकके जो हमारे यहां के ग्रन्थोंमें पाये जाते हैं वे दियेगये हैं ॥ इस समस्तको पाठक बहुत ध्यानसे पढ़े ॥

प० जयचंद्ररायजी की वचनिकासे उद्धृत

"इहां प्रश्न,जो, इहां समास विषैं पीत पद्म शुक्ल इनके ह्रस्व अकार कैसे भया? शब्द तौ पीता पद्मा शुक्ला ऐसा चाहिये। तहां कहिये है,जो व्याकरण विषै उत्तर पदसे ह्रस्व होना भी कहा है। जैसे द्रुता (द्रुती ?) ऐसा शब्द क्रातपरकरणविषै है। तहां'मध्याविलबिता का उपसख्यान है ऐसे इहां भी जाननाजय०वचनिकामुद्रित पृष्ठ ३८२ (यह पाठ दोहस्तलिखित पाठोंसेभीमिलाकर लिखाहै जिनमें 'मध्याविलविका उपसख्यानहै। मुद्रित में 'मध्याविलबिता का उपसख्यान है ऐसा पाठ है ॥

पं० पन्नालाल दूनी के अनुवादसे उद्धृत

पीतापद्मामें इहांउत्तर पद संबंधी ह्रस्वपणो है। सो यथा कार्यका विपरिणामतैं सिद्धभयो है। अर द्रुतायां या सूत्रमें तपर करण है। तामें मध्यविलवितयोरुपसख्यानंश्रे सो व्याकरण का वार्तिक है। तहा मध्याविलविता शब्दमें उत्तर पद संबधी ह्रस्वपणो भयोहै. तैसेही इहां भी उत्तर पद सबधी ह्रस्वपणो जानने योग्य है ॥ प० पन्नालाल दूनी पृष्ठ५४ अध्याय चौथेसे उद्धृत

प० पन्नालालजी न्यायदिवाकरके अनुवादसे उद्धृत

(प्रश्न) 'पीतपद्मशुक्ल इन शब्दनिकें ह्रस्व अकार है यातैं पुरुषलिंग है ॥ तातैं लेश्या का विशेषणकरि पीतादिकशब्दनिका निर्देश करना युक्तनाहीं होय है। किंतु पीता पद्माशुक्ला ऐसाकहना चाहिये। यातैंलेश्या शब्द स्त्रीलिंग है ताके विशेषण भी ताही लिंग का होना चाहिये। ऐसा शब्द शास्त्र का न्यायहै॥समाधान। व्याकरणविषैउत्तर पदतैं ह्रस्व होना भी कह्या है। सो यथा कार्यके विपरणमनतैं सिद्ध है ॥ जैसे द्रुतायां या सूत्रमें तपर करण है ताके विषै मध्याविलंबित का उपसंख्यान है। यह व्याकरण सूत्र है। यहां उत्तर पदका ह्रस्व होने तें मध्यविलबित ऐसा सिद्ध होय है। तैसे यहां भी पीतादिकशब्दनिके ह्रस्वपना करि निर्देश जाननी"

पं० पन्नालाल न्यायदिवाकर अनुवादित तत्त्वार्थराजवार्तिक हस्तलिखित पृष्ठ ६७४

पं० गजाधरलाल शास्त्रीके अनुवादसे उद्धृत

"पीता च पद्मा च शुक्ला च पीतपद्मशुक्लाः पीतपद्मशुक्लालेश्या येषां ते पीतपद्मशुक्ललेश्याः। यह यहां पर द्वन्द्व गर्भित बहुव्रीहि समास है। यदि यहां पर कहाजाय कि-'पीतपद्मशुक्ललेश्याः' यहांपर द्वन्द्व समास किया जायगा तो द्वन्द्वमें पुंवद्भाव तो होगा नहीं इसलिए 'पीतपद्मशुक्ललेश्या' यह जो पुंवद्भावविशिष्ट निर्देश कियागया है अर्थात् आकार का अकार करदियागया है वह अयुक्तहै किन्तु यहां पर'पीतापद्माशुक्लालेश्या.'ऐसानिर्देश करनाचाहिए। सो ठीक नहीं। यहां पुंवद्भाव नहीं हुआ है किंतु उत्तर पद रहने से पूर्वपद को ह्रस्व हुआ है जैसे "द्रुतायां तपरकरणे मध्यमविलंबितयोरुपसंख्यानम्"इस व्याकरण शास्त्रकी वार्तिकमेंमध्यमा च विलंबिता च 'मध्यमविलंबितातयो' इसद्वंद्व समासयुक्त पदमें 'विलंबिता' उत्तर पद रहने से 'मध्यमा' शब्दको ह्रस्व करि निर्देश कियागयाहै उसी प्रकार 'पीतपद्माशुक्ला लेश्या' यहांपर भी 'शुक्ला' उत्तरपद के रहते पीता और पद्मा इन दोनों पदों में ह्रस्व निर्देश न्याय्य है" ॥

'द्रुतायाम्' ऐसा कोई सूत्र नहीं है ॥ 'द्रुतायाम् जहांतक हमने ८, १० व्याकरण देखे हमको नहीं मिला और अन्य विद्वानभी कहते हैं कि 'द्रुतायाम्' ऐसा कोई सूत्र नहीं है ॥ जो महोदय इसेपढ़ें उनको विद्यार्थियों के लाभार्थ उचित है कि यदि 'द्रुतायाम्' कोई सूत्र है तो कृपया मुझे सूचनादें कि अनुवादमें मुद्रित कियाजावै।

अथवा पीतश्च पद्मश्च शुक्लश्च पीतपद्मशुक्ला वर्णवन्तोऽर्थाः। तेषामिव लेश्या येषां ते पीतपद्म-शुक्ललेश्याः ॥

अथवा*	=वा (यदि उपर्युक्त उत्तरसे अधिकतम संशयशील प्रश्न कर्ताओंका समाधान न हो तो)
पीतः[1/1]च*पद्मः[1/1]च*शुक्लः[1/1]च*पीतपद्मशुक्लाः[1/3]	=पीत और पद्म और शुक्ल है वे पीत पद्म शुक्ल
वर्णवन्तः[1/3]अर्थाः[1/3]	=रूपवाले पदार्थ हैं अर्थात् पीत पद्म शुक्ल ये तीनों सूत्रित शब्द पीत पद्म शुक्ल रंगवाले वस्तुओंके शब्दार्थहैं औरउन्ही रंगवाले पदार्थोंके वाचकहैं और येतीनों शब्दपुरुषलिंगीहैं॥
तेषाम्[6/3]इव*लेश्याः[1/3]येषाम्[6/3]ते[1/3]	=तिन (पीत पद्म शुक्ल रंगवाले पदार्थों) के सदृश हैं लेश्यायें जिन (देवों) की ते
पीत-पद्म-शुक्ल-लेश्याः[1/3] ॥	=पीत पद्म शुक्ल लेश्या वालेहैं(यहां उक्त रंगीन वस्तुओंकी उपमा भी इन लेश्याओं को दी गईहै और उपमित समासमें ह्रस्व होता ही है अतः पीतपद्मशुक्ल उपमितसमास ह्रस्वरूपमें है ॥

() यथाहु (यथा-आहु.) द्रुतायां तपरकरणे मध्यमविलम्बितयोरुपसंख्यानमिति ॥ सर्वार्थसिद्धि प्रथम संस्करण पृष्ठ २४७, द्वितीयावृत्ति पृष्ठ१४५
"यथा द्रुतायां तपरकरणे मध्यमविलंबितयोरुपसंख्यानमिति द्रुतमध्यमविलंबिता इति" ॥ हस्तलिखित सर्वार्थसिद्धि पृष्ठ ६६

() "द्रुतायां तपरकरणे मध्यमविलंबितयोरुपसंख्यानमित्यत्रौत्तरपदिक ह्रस्वत्वमेवमिहापि वेदितव्य" तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ १७०

() "द्रुतायां तपरकरणे मध्यविलंबितयोरुपसंख्यानमित्यत्र औत्तरपदिकं ह्रस्वत्वमेवमिहापिवेदितव्यं" यह पाठ प० पन्नालालजी न्यायदिवाकर की हस्त लिखिततत्त्वार्थ राजवार्तिक पृष्ठ ९७४ परसे तथा प०पन्नालालदूनीजीकी हस्तलिखित राजवार्तिक पृष्ठ ५४ अध्याय ४ परसे लिया है इनदोनों प्रतियों के पाठमें 'मध्यम' शब्दके स्थानमें'मध्य'शब्द मिलता है। प०जय०वचनिकाकी एक मुद्रित दोहस्तलिखित प्रतियोंमें'मध्या मिलताहै॥ 'मध्यम'चाहिये

() पीतपद्मशुक्लानां द्वन्द्वे पीतपद्मयोरुत्तरपदिक ह्रस्वत्व 'द्रुतायान्तपरकरणान्मध्यमविडंबितयोरुपसंख्यानमित्याचार्यवचनदर्शनात मध्यमाशब्दस्य विडंबितोत्तरपदे द्वन्द्वेपि ह्रस्वत्वसिद्धेः.'। यह पाठ मुद्रित तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक पृष्ठ ३८४ और दो हस्त लिखित प्रतियोंके क्रमसे पृष्ठ ३०५ और३२१ पर है ॥ यहीपाठहै इसकोहमने बहुतसावधानीसे तीनोंप्रतियोंको मिलाकर लिखाहै इसमें'विलंबिता'के स्थानमें विद्यानंदिस्वामी'विडंबिता' लायेहैं और सप्तमी विभक्तियोंके स्थानमें पचमी विभक्तियां लाये है। हमारी ठीक ठीक समझमें यह नहीं आया है कि'इति आचार्य वचन दर्शनात्' वाक्य में 'आचार्य' से श्लोक वार्तिकके कर्ताका पूज्यपाद स्वामी, श्रीमदकलंक भट्ट जिन्होंने यह वार्तिक शब्दशः पतंजलि मुनिके महाभाष्यसे उद्धृत की है इनमेंसे किसी से अभिप्राय है अथवा श्रीमान् पतंजलिसे तात्पर्य है अथवा किसी अन्य आचार्य से प्रयोजन है। विद्वज्जन इसका अन्वेपण करके कृपया मुझको सूचित करें ॥

तत्र कस्य का लेश्येत्यत्रोच्यते—सौधर्मैशानयोः पीतलेश्या । सानत्कुमारमाहेन्द्रयोः पीतपद्मलेश्ये ब्रह्मलोकब्रह्मोत्तरलान्तवकापिष्ठेषु पद्मलेश्या । शुक्रमहाशुक्रशतारसहस्रारेषु पद्मशुक्ललेश्ये । आनतादिषु शुक्ललेश्या । तत्राप्यनुदिशानुत्तरेषु परमशुक्ललेश्या । सूत्रेऽनभिहितं कथं मिश्रग्रहणं? साहचर्याल्लोकवत्॥

तत्र*कस्य[6/1]।।का[1/1]।।लेश्या[1/1]।।इति*अत्र*उच्यते	=तहां किस (देव) के कौन लेश्या है (ऐसे) यहां (=अत्र) कहा जाता है कि
सौधर्म-ऐशानयोः[7/2]।।पीतलेश्या[1/1]।।सानत्कुमार-	=सौधर्म ऐशान में (देवनिके) पीत लेश्या है । सानत्कुमार
माहेन्द्रयोः[7/2]।।पीत-पद्म-लेश्ये[1/2]।।ब्रह्मलोक-ब्रह्मोत्तर-	=माहेन्द्र में (देवों के) पीतपद्मलेश्या हैं । ब्रह्मलोक और ब्रह्मोत्तर
लान्तव-कापिष्ठेषु[7/3]।।पद्म-लेश्या[1/1]।।शुक्र-महाशुक्र-	=लान्तव और कापिष्ठ में (देवों के) पद्मलेश्या है । शुक्र और महाशुक्र
शतार-सहस्रारेषु[7/3]।।पद्म-शुक्ल-लेश्ये[1/2]।।आनत-	=शतार और सहस्रार में (देवों के) पद्म-शुक्ल दो लेश्या हैं । आनत
आदिषु[7/3]।।	=और प्राणत, आरण और अच्युत इन दो युगलोंमें और नवग्रैवेयकोंमें और नव अनुदिशों में और पांच अनुत्तरोंमें (देवोंके)
शुक्ल-लेश्या[1/1]।।तत्र*अपि*अनुदिश-अनुत्तरेषु[7/3]।।	=शुक्ललेश्या है । तहां भी (नव) अनुदिशोंमें और (पांच)अन्तरोंमें (देवोंके)
परम-शुक्ल-लेश्या[1/1]।।सूत्रे[7/1]।।अन्-अभिहितम्[1/1]।।	=उत्कृष्ट शुक्ल लेश्या है (प्रश्न) सूत्रमें अकथित
कथम्*मिश्र-ग्रहणम्[1/1]।। ?	=मिश्र (लेश्या) का ग्रहण(यहां)कैसे है ? अर्थात् इस बाईसवां सूत्रमें तो किसी युगलके देवोंके दो लेश्या वर्णन नहीं की है इस सूत्रकी वृत्तिमें आपने कैसे

कहा कि सानत्कुमार माहेन्द्र युगलमें पीत-पद्म दो लेश्या है सूत्रमें तो इस युगलमें केवल पीतलेश्या कही है और शुक्र महाशुक्रके युगलमें सूत्रमें तो पद्मलेश्या कही वृत्तिमें आपने पद्मशुक्ल दोनों लेश्यायें कैसे कही और शतार सहस्रार युगलमें सूत्रानुसार केवल शुक्ल लेश्या है आपने वृत्तिमें पद्म शुक्ल दो लेश्यायें कैसे कहीं ।

साहचर्यात्[5/1]।।	=(उत्तर) एक ही आश्रय होनेसे अथवा साथ साथ रहनेसे
लोकवत्*	=लोक (व्यवस्था वा रीति) सदृश (मिश्र लेश्याओंका ग्रहण हैं अर्थात् मुख्यता करि जो जो लेश्या जिन जिन युगलोंमें है वहतो सूत्र विषैं कही उसके साथ लोक रीतिके समान गौण लेश्याका भी ग्रहण करना योग्य है ॥

तद्यथा–छत्रिणो गच्छन्ति इति अछत्रिषु छत्रिव्यवहारः । एवमिहापि मिश्रयोरन्यतरग्रहणंभवति॥ अयमर्थः सूत्रतः कथं गम्यते ? इति चेदुच्यते—एवमभिसम्बन्धः क्रियते, द्वयोः कल्पयुगलयोः पीतलेश्या । सानत्कुमारमाहेन्द्रयोः पद्मलेश्यायाः

तद्यथा*छत्रिणः[1]गच्छन्ति। इति*	=जैसे (लोक विदित वा प्रसिद्धमें राजादिक) छत्रधारी जाते हैं इस प्रकार
अछत्रिषु[7]छत्रिन्-व्यवहारः[1]	=विना छत्रवाले (साथियों) विषैं छत्रधारीका व्यवहार होता है अर्थात् राजादिक छत्रधारी और उनके साथीगण सब साथ साथ जाते हैं परन्तु पूंछनेपर लोक प्रसिद्धमें यह कहा जाता है कि अमुक छत्रधारी राजा जाते हैं भावार्थ मुख्य अथवा प्रधानका तो नाम लेते हैं उसमें गौणभी गर्भित होजाते है ॥
एवम्*इह*अपि*	=इस प्रकार यहां (लेश्याओंके कथनमें) भी
अन्यतर-ग्रहणम्[1]।।	=दोनों (पृथक् और मिश्र लेश्यायों)मे से एकके(सूत्रमें) ग्रहणसे
मिश्रयो[6]भवति।	=मिश्र (पीतपद्म, पद्मशुक्ल वा शुक्लपद्म लेश्याओं) का (ग्रहण) होजाताहै भावार्थ ऐसाहैकि पीत पद्म-शुक्ल-तीन लेश्यायें पृथक् पृथक्है और पीतपद्म तथा पद्मशुक्ल

(जोशतारसहस्रारमें भीहैं) ये दो मिश्र है। सूत्रमें पीत,पद्म,शुक्ल व्यक्तिगत लेश्याओं का ग्रहण है इन व्यक्तिगत लेश्याओंके ग्रहणसे पीतपद्म, पद्मशुक्ल इन दो मिश्र लेश्याओंका ग्रहण उसी प्रकारसे होजाताहै कि जिस प्रकार किसीसड़कपर छत्री और विनाछत्री वाले दोनों प्रकारके मनुष्य जातेहों। उनमें छत्रीवाले अधिक होंतो वहांपर 'छत्रिणोगच्छंति' अर्थात् छत्रीवाले जारहे हैं ऐसा व्यवहार होताहै और वहां पर 'छत्रीवाले' कहनेसे छत्री और विनाछत्रीवाले दोनों प्रकारके पुरुषोंका ग्रहण होजाताहै तैसेही इस सूत्रमें पीत,पद्म,शुक्ल लेश्याओंसे मिश्रका भी है

अयम्[1]अर्थः[1]सूत्रतः*कथम्*गम्यते।	=यहअर्थ सूत्रसे कैसे जानाजाताहै अर्थात् पीतपद्म पद्मशुक्लका ग्रहणसूत्रमेंकैसेहुआ
इति*चेत्*उच्यते।एवम्*अभि-सम्बन्धः[1] क्रियते।	=ऐसा संदेह होने पर कहाजाता है कि इस प्रकार सम्बन्ध किया जाता है कि
द्वयोः[7] कल्प-युगलयो[7]	=दो स्वर्ग-युगलों (सौधर्म और ऐशान सानत्कुमार और माहेन्द्र) में
पीतलेश्या[1]।सानत्कुमार-माहेन्द्रयोः[7]पद्मलेश्यायाः[6]।।	=पीत लेश्या है सानत्कुमार माहेंद्र में पद्मलेश्या का (अस्तित्व)

अविवक्षात: ॥ ब्रह्मलोकादिषु त्रिषु कल्पयुगलेषु पद्मलेश्या । शुक्रमहाशुक्रयोः शुक्ललेश्याया अविवक्षातः ॥ शेषेषु शतारादिषु शुक्ललेश्या । पद्मलेश्याया अविवक्षातइति नास्ति दोषः ॥ आह कल्पोपपन्ना इत्युक्तं तत्रेदं न ज्ञायते के कल्पा इत्यत्रोच्यते—

॥प्राग्ग्रैवेयकेभ्यः कल्पाः॥ २३॥

अविवक्षातः*	=अपेक्षा रहित है अर्थात् पद्मलेश्या इस सूत्रमें गौण है इसलिये सूत्रमें कहनेकी इच्छा नही है भावार्थ सूत्रमे गौण लेश्याका कथन कहनेका अभिप्राय, वांछा, वा प्रयोजन नही है। इससे पद्मलेश्याका निर्देश इस सूत्रमें नहीं किया गया है ॥
ब्रह्मलोक-आदिपु[3] त्रिपु[3] कल्पयुगलेपु[3]	=ब्रह्मलोक, ब्रह्मोत्तर, लान्तव कापिष्ठ, शुक्र महाशुक्र तीन कल्प युगलोमें
पद्मलेश्या [1]; शुक्र-महाशुक्रयोः[2] शुक्ललेश्यायाः[6]	=पद्मलेश्या है। शुक्र और महाशुक्रमें शुक्ललेश्याका (अस्तित्व)
अविवक्षातः*	=विवक्षा से रहित है अर्थात् इस युगलमे शुक्ललेश्या गौण है इससे कहने की सूत्र में इच्छा नही है
शेपेपु[3] शतार-आदिपु[3] शुक्ललेश्या[1]	=शेप शतार-सहस्रार, आनत प्राणत, आरण अच्युत मे शुक्ललेश्या है ।
पद्मलेश्यायाः[6] अविवक्षातः*	=(शतार सहस्रार विपैं) पद्मलेश्या का (अस्तित्व) विवक्षा से रहित है अर्थात् इस युगलके देवोंके पद्मलेश्या गौण है इससे सूत्र में कहने की इच्छा नहीं है
इति*	=इस प्रकार (कथनसे कि मुख्यताकरि दो युगलोमें पीतलेश्या, तीन युगलोंमें पद्मलेश्या शेप तीन युगलों मे शुक्ललेश्या है)
न*अस्ति T दोपः[1]	=दूषण नहीहै (क्योंकि मुख्य लेश्या तो सूत्रद्वारा कही गौण लोक रीतिसे जानना चाहिये)।
आह T 'कल्प-उपपन्नाः[3]' इति*उक्तम्[1]	=शिष्य प्रश्न करता है कि "कल्पोपपन्ना" ऐसा वाक्य सत्रहवां सूत्रमें कहा गया है।
तत्र *इदम्[1] न*ज्ञायते T	=तहां यह ज्ञान नही कराया गया है अथवा वहां यह नहीं जतलाया गया है कि
के[3] कल्पाः [3] इति*अत्र* उच्यते T	=कल्प कौन हैं यहां (उत्तर सूत्रमें) कहा जाता है कि

[1]सूत्रम्-प्राग्ग्रैवेयकेभ्यःकल्पाः॥ २३॥ = (सौधर्म-आदयः) प्राग्ग्रैवेयकेभ्यः कल्पाः भवन्ति ॥ २३॥

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों सम्प्रदायोंमें एकसा है। स्मरण रहे कि श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें तथा भाष्यानुसारिणी तत्वार्थ टीका (श्री सिद्धसैन सूरि रचित) में केवल बारह स्वर्ग माने हैं हमारे यहां सोलह स्वर्ग मानेहैं ॥ हमारे यहां किसी २ पुस्तक में

इदं न ज्ञायते इत आरम्भ कल्पा भवन्तीति सौधर्मादिग्रहणमनुवर्तते । तेनायमर्थो लभ्यते- सौधर्मादयः प्राग्ग्रैवेयकेभ्यः कल्पा इति पारिशेष्यादितरे कल्पातीता इति ॥

लौकान्तिका देवा वैमानिकाः सन्तः क्व गृह्यन्ते ? कल्पोपपन्नेषु । कथमिति चेदुच्यते—

॥ ब्रह्मलोकालया लौकान्तिकाः ॥ २४ ॥

सूत्रार्थः—सौधर्म-आदयः[१/३] प्राग्*ग्रैवेयकेभ्यः[५/३] कल्पाः[१/३]	=सौधर्मसे लगाय ग्रैवेयकोंसे पूर्व (पूर्व) कल्प हैं अर्थात् सौधर्म पहिले स्वर्गसे लेकर अच्युत सोलहवां स्वर्ग पर्यन्त 'कल्प' कहेजाते है
वृत्त्यनुवादः—इदम्[१/१] न* ज्ञायते	=(सूत्रमें) यह नहीं बोध करायागया है अथवा जतायागया है कि
इतः* आरम्भ-कल्पाः[१/३] भवन्ति इति* सौधर्म-आदि-ग्रहणम्[१/१] अनुवर्तते	=यहांसे (=इतः) कल्प आरम्भ होतेहैं (उन्नीसवां सूत्रसे) 'सौधर्म आदिका' =(इससूत्रमें)ग्रहण प्रवर्तता है अर्थात् उन्नीसवां सूत्रसे सौधर्म आदि शब्दलियेगये हैं
तेन[३/१] अयम्[१/१] अर्थः[१/१] लभ्यते	=तिस (सौधर्म आदिके ग्रहण)से यह अर्थ प्राप्त कियागया है कि
सौधर्म-आदयः[१/३] प्राग्*ग्रैवेयकेभ्यः[५/३] कल्पाः[१/३]	=सौधर्मसे लगाय ग्रैवेयकोंसे पूर्व २ वा पहिले २ कल्प हैं, स्वर्ग हैं ।
इति* पारिशेष्यात्[५/१] इतरे[१/३] कल्प-अतीताः[१/३] इति*	=ऐसे इन (कल्पों) से अवशेष (=पारिशेष्यात्) अन्य (=इतरे) कल्पातीत हैं, अर्थात् प्रथम सौधर्म स्वर्गसे अच्युत सोलह स्वर्ग तक कल्प कहलातेहैं। सोलह स्वर्गों से भिन्न जे नव ग्रैवेयक, नव अनुदिश और पांच अनुत्तर पर्यन्त कल्पातीत कहेजाते हैं॥
लौकान्तिकाः[१/३] देवाः[१/३] वैमानिकाः[१/३] सन्तः[१/३] क* गृह्यन्ते	=लौकान्तिकदेव वैमानिक है। कहां मानेगये है वा ग्रहण किये गये हैं ?
कल्प-उपपन्नेषु[७/३] कथम्* इति* चेत्* उच्यते	=(उत्तर) कल्प वासियोंमे (प्रश्न) कैसे ऐसा संदेह होनेपर कहाजाता है कि
(१)सूत्रम्—ब्रह्मलोकालयालौकान्तिकाः	= ब्रह्मलोकालयाः लौकान्तिकाः (भवन्ति) ॥२४॥

जैसे ज्ञानचन्द जी (लाहौर) मुद्रित तत्त्वार्थसूत्र में तथा प० सदा सुखजी कृत लघुटीकामें 'कल्पा.' शब्दके स्थानमें 'कल्प' शब्द है वह अशुद्ध है क्योंकि कल्प सोलह हैं और कल्प शब्द प्रथमा विभक्ति एक बचन पुल्लिंग है केवल एक स्वर्गका द्योतक है। अत 'कल्पाः' बहुवचन होना चाहिये ॥

(१) हमारे यहां कहीं कहीं पर 'लौकांतिका' पाठ भी है। सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रमें, भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीका (श्वेताम्बरीयभाष्य) में "लौकान्तिका" पाठ है दोनों पाठ शुद्ध हैं (देखो टिप्पणी अध्याय १ पृष्ठ ५,६, टिप्पणी पृष्ठ ५४०, ५४१)॥ दोनों सम्प्रदायोंमें पाठ और अर्थ एकसा है॥

एत्य तस्मिन् लीयन्त इति आलयः आवासः । ब्रह्मलोक आलयो येषां ते ब्रह्मलोकालया लौकान्तिका देवा वेदितव्याः । यद्येवं सर्वेषां ब्रह्मलोकालयानां देवानां लौकान्तिकत्वं प्रसक्तं? । अन्वर्थ सञ्ज्ञाग्रहणाददोषः ॥ ब्रह्मलोको लोकः तस्यान्तो लोकान्तः तस्मिन्भवा लौकान्तिका इति न सर्वेषां ग्रहणम् ।

सूत्रार्थः—ब्रह्मलोक-आलयाः$^{1}_{3}$ लौकान्तिकाः$^{1}_{3}$ भवन्तिT =ब्रह्मलोक पांचवां स्वर्ग है निवासस्थान जिनका ते लौकान्तिक देव है अर्थात् ब्रह्मलोकालय इस शब्दके साथ लौकान्तिक शब्दका सम्बंध है। ब्रह्मलोकके अंतका नाम लोकांत है और वहां पर रहनेवाले लौकान्तिक कहेजाते है॥ इस रीति से ब्रह्मलोकके अन्तमें रहनेवाले ही देव लौकान्तिक होसकते है सब ब्रह्मलोक निवासी नहीं अथवा जन्म जरा और मरण से व्याप्त स्थानका नाम लोक है ; उसका अन्त लोकान्त है जिन्हे उस लोकांतका प्रयोजन होवे, वे लौकांतिक कहेजाते हैं। ये लौकांतिक देव परीतसंसार है। ब्रह्मलोकसे च्युत होकर एक गर्भवास अर्थात् नर भव पाकर नियमसे मोक्ष प्राप्त करलेते है ऐसे दोनो प्रकारसे सार्थक नाम वाले लौकान्तिक देव हैं ॥

वृत्त्यनुवादः—एत्य* तस्मिन्$^{7}_{1}$ लीयन्तेT इति* आलयः$^{1}_{1}$ =आनकरि जिसमे मिलते है, छिपते हैं, वा रहते है ऐसा आलय

आवासः$^{1}_{1}$ ब्रह्मलोकः$^{1}_{1}$ आलयः$^{1}_{1}$ येषाम्$^{6}_{3}$ ते$^{1}_{3}$ =निवास स्थान है। ब्रह्मलोक (पांचवां स्वर्ग) है निवासस्थान जिनका ते

ब्रह्मलोक-आलयाः$^{1}_{3}$ लौकान्तिकाः$^{1}_{3}$ देवाः$^{1}_{3}$ वेदितव्याः$^{1}_{3}$ =ब्रह्मलोक आलयवाले(पांचवां स्वर्गमें रहनेवाले) लौकांतिक देव जानने चाहिये

यदि* एवम्* सर्वेषाम्$^{6}_{3}$ =(प्रश्न)जो ऐसे हैं अर्थात् पांचवां स्वर्गमें रहनेवाले लौकान्तिक देव हैं तो समस्त

ब्रह्मलोक-आलयानाम्$^{6}_{3}$ देवानां$^{6}_{3}$ लौकान्तिकत्वं$^{1}_{1}$॥ प्रसक्तं$^{1}_{1}$॥?=ब्रह्मलोकमें रहनेवाले देवोंके लौकान्तिक होना पाया जाता है

अन्वर्थ-सञ्ज्ञा- ग्रहणात्$^{5}_{1}$॥ अदोषः$^{1}_{1}$ =(उत्तर) (इन देवोंका) सार्थक नाम (अर्थात् जैसा नाम है वैसाही अर्थ ग्रहण करनेसे दूषण नहीं है।

ब्रह्मलोकः$^{1}_{1}$ लोकः$^{1}_{1}$ =ब्रह्मलोक (पांचवां स्वर्ग) सो लोक है

तस्य$^{6}_{1}$ अन्तः$^{1}_{1}$ लोक-अन्तः$^{1}_{1}$ तस्मिन्$^{7}_{1}$ भवाः$^{1}_{3}$ लौकान्तिकाः$^{1}_{3}$ =तिसका छोर सो लोकांत है तिस (पांचवां स्वर्गके अन्त)में (उत्पन्न)होनेवाले वे लौकांतिक हैं

इति* न* सर्वेषाम्$^{6}_{3}$ ग्रहणम्$^{1}_{1}$॥ =ऐसे समस्त (पांचवां स्वर्गके देवोंका) ग्रहण नहीं होता है ॥

तेषां हि विमानानि ब्रह्मलोकस्यान्तेषु स्थितानि ॥ अथवा जन्मजरामरणाकीर्णो लोकः संसारःतस्यान्तो लोकान्तः। लोकान्तेभवा लौकान्तिकाः ते सर्वे परीतसंसाराः । ततश्च्युता एकं गर्भावासं प्राप्य परिनिर्वास्यन्ति ॥ तेषां सामान्येनोपदिष्टानां भेदप्रदर्शनार्थमाह—

॥ सारस्वतादित्यवह्न्यरुणगर्दतोयतुषिताव्याबाधारिष्टाश्च ॥ २५॥

तेषाम्[६/३]। हि* विमानानि[१/३]। ब्रह्म-लोकस्य[६/१]। अन्तेषु[७/३]। =तिन (लौकान्तिक देवों)केही विमान ब्रह्मलोक (पांचवां स्वर्ग) के अन्तमें
स्थितानि[१/३]।॥ अथवा* जन्म-जरा-मरण-आकीर्णः[१/१]। लोकः[१/१]। =स्थित है अथवा जन्म जरा और मृत्युकरि व्याप्त =आकीर्ण)जो भुवन (=लोक)
संसारः[१/१]। तस्य[६/१]। अन्तः[१/१]। लोक-अन्तः[१/१]। =जो जगत (=संसार) तिस (संसार)का अन्त वा छोर सो लोकान्त है
लोक-अन्ते[७/१]। भवाः[१/३]। लौकान्तिकाः[१/३]। ते[१/३]। सर्वे[१/३]। =संसारके अन्तमें हों वे लौकान्तिक है । वे समस्त (लौकान्तिकदेव)
परीत-संसाराः[१/३]। ततस्* =संसारसे विरक वा उदासीन(=परीत)है वहां(ब्रह्मलोकके अंत अपने निवासस्थान)से
च्युताः[१/३]। एकम्[२/१]। गर्भ-आवासम्[२/१]। प्राप्य – परिनिर्वास्यन्ति(१)=पतित होकर एक गर्भवासस्थानको प्राप्त कर कर्मों के विरुद्ध अर्थात् कर्मोंकोजीतकर निर्वाण जाते हैं

तेषाम्[६/३]।सामान्येन[३/१]।॥उपदिष्टानाम्[६/३]।भेद-प्रदर्शनअर्थम्[२/१]।॥आह1 =सामान्यकरि कहेहुये तिन (लौकान्तिकदेवों)के भेद दिखावनेके लिये कहते है कि

(३)सूत्रम्—सारस्वतादित्यवह्न्यरुणगर्दतोयतुषिताव्याबाधारिष्टाश्च ॥ २५ ॥

= सारस्वतादित्यवह्न्यरुणगर्दतोयतुषिताव्याबाधारिष्टाश्च + (लौकान्तिका)(२) भवन्ति

सूत्रार्थः—सारस्वत आदित्य-वह्नि-अरुण-गर्दतोय- तुषित- =सारस्वत, आदित्य वह्नि, अरुण, गर्दतोय, तुषित
अव्याबाध-अरिष्टाः[१/३]। च* लौकान्तिकाः[१/३]। भवन्ति1 =अव्याबाध, अरिष्ट भी (= च)लौकान्तिकदेव है अर्थात् अन्य लौकान्तिकदेव

---

(१) 'परि' अव्यय जब क्रियाके साथ लाते हैं तब उसको उपसर्ग कहते हैं । इसके क्रियाके साथमें चारोंओर, अधिक,विरुद्ध प्रतिकूल,विपरीत, अतिशय अत्यन्त, इन चार अर्थोंमें आताहै यहां विरुद्ध' 'प्रतिकूल' अर्थमेंहै अतः कर्मोंके विरुद्ध प्रतिकूल ऐसाअनुवादकियाहै पृष्ठ ८६में'निर्वास्यन्ति'है।

(२) 'लौकान्तिकाः' वाक्यकी अनुवृत्ति चौबीसवां सूत्रसे है ॥ सूत्रमें 'च' शब्द अन्य सौलह प्रकारके लौकान्तिक देवोंके समुच्चय के लिये हैं ॥

(३) हमारे यहां सर्वत्र एक पाठ है ॥ श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रका और भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकाका पाठ और हमारे यहां का पाठ 'सारस्वादित्यवह्न्यरुणगर्दतोयतुषिताव्याबाध'तक एक है हमारे यहां अव्याबाधके पश्चात्"अरिष्टाश्च"पाठ औरहै । भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकामें 'अव्याबाध'के पीछे 'मरुतः' शब्द अधिक है । सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमे सूत्रमें 'अव्याबाध'के पश्चात् 'मरुतः' (अरिष्टाश्च)वाक्य अधिक है ॥

क्व इमे सारस्वतादयः। अष्टास्वपि पूर्वोत्तरादिषु दिक्षु यथाक्रममेते सारस्वतादयो देवगणा वेदितव्याः। तद्यथा-

है और सारस्वत भी आठ प्रकारके लौकान्तिक देव है भावार्थ अग्न्याभ, सूर्याभ, चन्द्राभ, सत्याभ, श्रेयस्कर, क्षेमंकर, वृषभेष्ट, कामचर, निर्माणरज, दिगन्तरक्षित, आत्मरक्षित, सर्वरक्षित, मरुत्, वसु, अश्व, विश्व, ये सोलह प्रकारके लौकान्तिक देव हैं और सारस्वत, आदित्य, वह्नि, अरुण, गर्दतोय, तुषित, अव्याबाध, अरिष्ट भी आठ प्रकारके लौकान्तिक देव ऐसे सर्व लौकान्तिक चोवीस प्रकारके है।

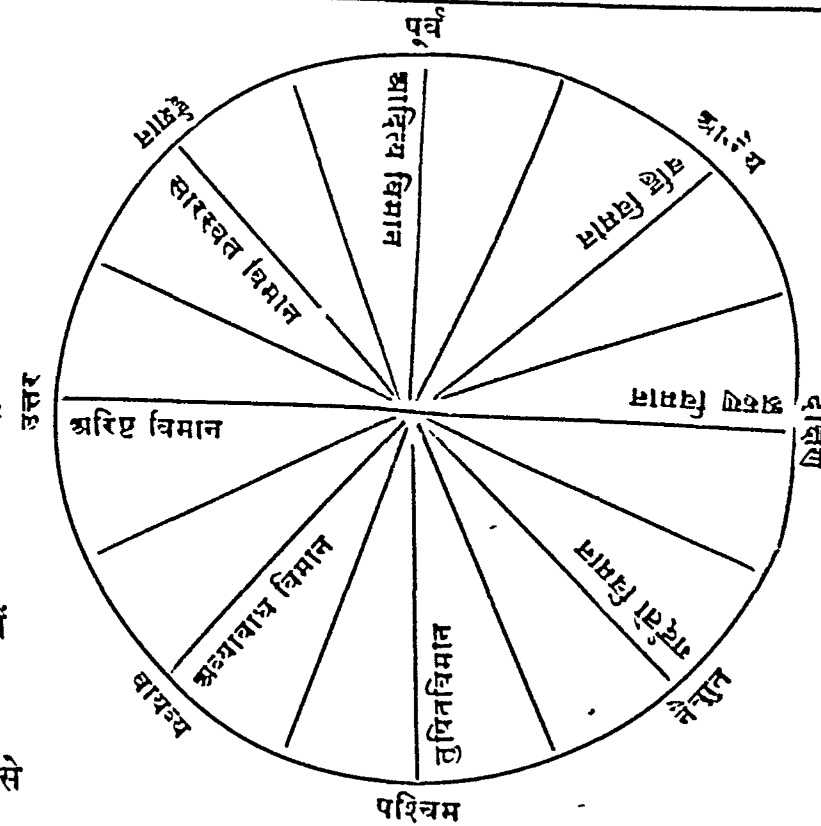
वृत्त्यनुवादः-क्व*इमे[1/3]।सारस्वत-आदयः[1/3],अष्टासु[7/3]	=(प्रश्न) कहां है ये सारस्वतादिक (लौकान्तिक देव), आठौ
अपि*पूर्व-उत्तर-आदिषु[7/3]।	=ही पूर्व ईशान-उत्तर,वायव्य-पश्चिम-नैऋत्य (नैऋत)-दक्षिण-आग्नेय (=आदिषु)
दिक्षु[7/3]।यथाक्रमम्*एते[1/3]।सारस्वत-आदयः[1/3]।	=दिशाओंमें अनुक्रमसे ये सारस्वत आदिक (निम्न लिखित चौवीस प्रकारके)
देवगणाः[1/3]।वेदितव्याः[1/3]।तद्यथा*	=देवोंके समूह जानने चाहिये-जैसे

और 'मरुत. (अरिष्टश्च)'का अनुवाद यह कियाहै कि 'उत्तरमें मरुत् अथवा अरिष्टदेव रहते हैं। सभाष्य०में केवल आठ प्रकारके लौकान्तिक देवोंका कथन है इससे प्रगट है कि 'मरुत्' और 'अरिष्ट' एक ही प्रकार है॥ आठ दिशाओंमें रहनेकी अपेक्षासे हमारे यहांके लेखसे श्वेताम्बरसमाजका लेख मिलता है केवल इतना भेद है कि उत्तर दिशा में हमारे यहां 'अरिष्ट' देवोंका निवास है उनके यहां मरुत् देवों का, यदि मरुत् और अरिष्ट देवोंको अभेद रूपसे मानलें तो कुछभी अन्तर दोनोंमें नहीं रहता है जैसाकि निम्न लेखसे जो सभाष्य० के पृष्ठ ११३ और ११४ से लिया है विदित है

"जैसे पूर्वोत्तर दिशामें सारस्वत देव रहते हैं, अर्थात् पूर्व और उत्तर दिशा के कोण (ऐशानकोण) में सारस्वत रहते हैं। पूर्व दिशामें आदित्य सज्ञक देव रहते हैं। इसी प्रकार अन्य देवोंके विषयमें भी जानलेना चाहिये अर्थात् पूर्व दक्षिण (आग्नेय कोण) में वह्नि, दक्षिणमें अरुण. दक्षिणपश्चिम (नैऋत्यकोण) में गर्दतोय, पश्चिम में तुषित, पश्चिमोत्तर(वायव्यकोण)में अव्याबाध और उत्तरमें मरुत् अथवा अरिष्टदेव" रहते हैं। सभाष्य०में 'च' शब्द का कोई अर्थ नहीं किया है हमारे यहां चकार से सोलह प्रकार के अन्य लौकान्तिक देव लिये हैं। आठ प्रकार के देवोंमें 'अरिष्ट देव' उत्तर दिशामें रहने वाले हैं और सोलहप्रकार के देवोंमेंसे मरुत् देव है जो 'वायव्य और उत्तर दिशाओं के' मध्यमें रहते हैं (देखो वृत्ताकार पृष्ठ ८५ में)।

श्वेताम्बर समाजके भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीका के निम्नलेखसे प्रगट है कि कोई आठप्रकारके लौकान्तिक देव मानते हैं कोई कोई नव प्रकारके "न त्वेवमनैव नवभेदा भवति। भाष्यकृतावाष्टविधा इति मुद्रिता उच्यते। लौकांत वर्तिन एतेऽष्टभेदा। सूरिणोपात्ता। अरिष्ट विमान प्रस्तार वर्त्तिर्भि नवधा भवतीत्यदोषः" पृष्ठ ३४२॥

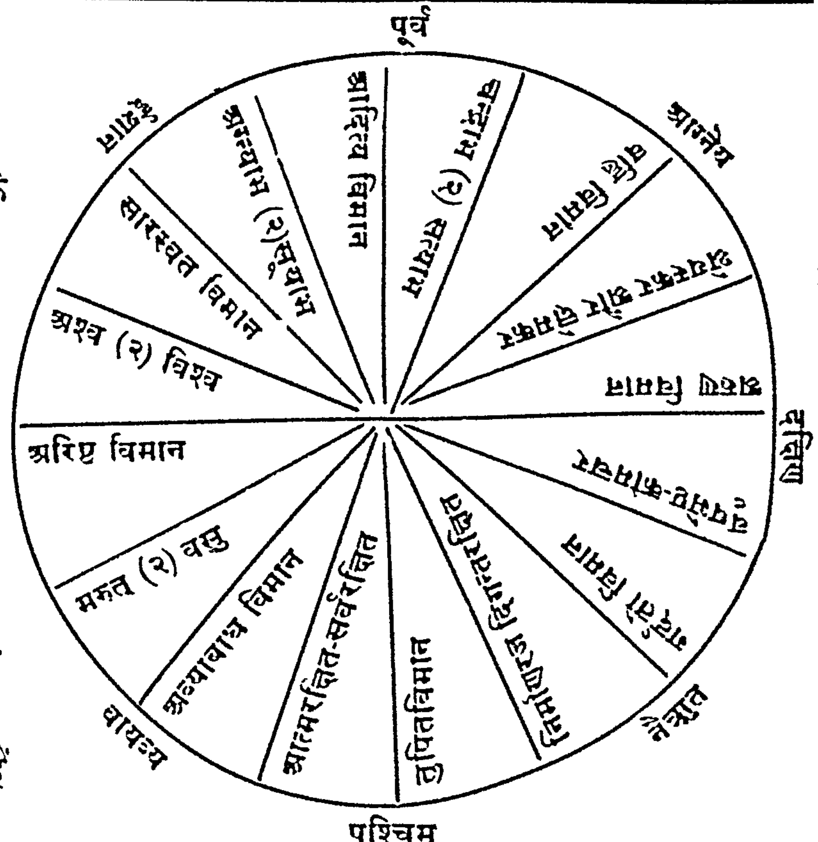
पूर्वोत्तरकोणे सारस्वतविमानं, पूर्वस्यां दिशि आदित्यविमानं, पूर्वदक्षिणस्यां दिशि वह्नि विमानं, दक्षिणस्यां दिशि अरुणविमानं, दक्षिणापरकोणे गर्दतोयविमानं, अपरस्यां दिशि तुषितविमानं, उत्तरापरस्यां दिशि अव्याबाधविमानं, उत्तरस्यां दिशि अरिष्टविमानम्॥ चशब्दसमुच्चिताःतेषामन्तरे द्वौ द्वौ देवगणौ॥



पूर्व-उत्तर-कोणे७।१ =पूर्व-उत्तरके कोनमे अर्थात् ईशान दिशामें
सारस्वत-विमानम्१।१ =सारस्वत (देवोंका) विमान है
पूर्वास्यां७।१ दिशि७।१ =पूर्व दिशामें
आदित्य-विमानम्१।१ =आदित्य (देवोंका) विमान है
पूर्व-दक्षिणस्याम्७।१ दिशि७।१ =पूर्व-दक्षिणदिशामें अर्थात् आग्नेय दिशामें
वह्नि-विमानम्१।१ =वह्नि (देवोंका) विमान है
दक्षिणस्याम्७।१ दिशि७।१ =दक्षिण दिशामें
अरुण-विमानम्१।१ =अरुण (देवोंका) विमान है
दक्षिण-अपर-कोणे७।१ =दक्षिण पश्चिम कोनमे अर्थात् नैरृत्य दिशामें
गर्दतोय-विमानम्१।१ =गर्दतोय (देवोंका) विमान है
अपरस्याम्७।१ दिशि७।१ =पश्चिम दिशामें
तुषित-विमानम्१।१ =तुषित (देवों का) विमान है
उत्तर-अपरस्याम् दिशि७।१ =उत्तर पश्चिम दिशा में अर्थात् वायव्यदिशा में
अव्याबाध-विमानम्१।१ =अव्याबाध (देवोंका) विमान है
उत्तरस्याम्७।१ दिशि७।१ =उत्तरदिशामें
अरिष्ट-विमानम्१।१ चशब्द- =अरिष्ट (देवोंका) विमान है (सूत्रमें) च शब्दसे
समुचिताः१।३ =अन्यलौकान्तिक मिलायेगये हैं
तेषाम्६।३ अन्तरे७।१ =तिन (सारस्वतादि आठ प्रकारके लौकान्तिक देवों) के मध्य में (क्रमसे)
द्वौ१।२ द्वौ१।२ देवगणौ१।२ =दो दो (प्रकार के) देवों के समुदाय हैं अर्थात् सोलह प्रकार के अन्य लौकान्तिक देवोंके समूहऔर है।

तद्यथा सारस्वतादित्यान्तरे अग्न्याभसूर्याभाः। आदित्यस्य च वह्नेश्चान्तरे चन्द्राभसत्याभाः। वह्न्यरुणान्तराले श्रेयस्करक्षेमकराः। अरुणगर्दतोयान्तराले वृषभेष्टकामचराः। गर्दतोयतुषितमध्ये निर्माणरजोदिगन्तरक्षिताः। तुषिताव्याबाधमध्ये आत्मरक्षितसर्वरक्षिताः। अव्याबाधारिष्टान्तराले मरुद्वसवः। अरिष्टसारस्वतान्तराले अश्वविश्वाः॥ सर्वे एते स्वतन्त्रा हीनाधिकत्वाभावात्॥

तद्यथा*सारस्वत-आदित्य- =जैसे सारस्वत आदित्य के
अन्तरे*अग्न्याभ-सूर्याभाः। =अन्तराल में अग्न्याभसूर्याभ हैं।
आदित्यस्य*च*वह्नेः*च*अन्तरे =वहुरिआदित्य के और वह्निके बीच में
चन्द्राभ-सत्याभाः। वह्नि-अरुण- =चन्द्राभ सत्याभ हैं। वह्नि और अरुण के
अन्तराले। श्रेयस्कर-क्षेमकराः। =मध्यमें श्रेयस्कर क्षेमकर हैं।
अरुण-गर्दतोय-अन्तराले। =अरुण गर्दतोय के अन्तर वा मध्य में
वृषभेष्ट-कामचराः। =वृषभेष्ट और कामचर हैं।
गर्दतोय-तुषित-मध्ये निर्माणरजो =गर्दतोय और तुषितके बीचमें निर्माणरज
दिगन्तरक्षिताः। तुषित- =और दिगन्तर रक्षित हैं। तुषित और
अव्याबाध-मध्ये। =अव्याबाधके बीचमें
आत्मरक्षित-सर्वरक्षिताः। =आत्मरक्षित और सर्वरक्षित हैं।
अव्याबाध-अरिष्ट-अन्तराले। =अव्याबाध और अरिष्ट के अन्तरालमें
मरुद्-वसवः। अरिष्ट-सारस्वत- =मरुत् और वसु हैं। अरिष्ट और सारस्वतके
अन्तराले। अश्व-विश्वाः। सर्वे =बीचमें अश्व और विश्व हैं। समस्त
एते। स्वतन्त्राः। =ये (चौवीस प्रकारके लौकान्तिक) स्वाधीन हैं
हीन-अधिकत्व-अभावात्। =क्योंकि (इनके) हीनता, अधिकताका एक



दूसरेसे अभाव है अर्थात् इन चौवीस प्रकारके देवोंमें कोई देव अन्य देवसे हीन अधिक नही है वरन् सब समान हैं।

(१) हस्तलिखित सर्वार्थसिद्धिके पृष्ट १०१में तथा तत्त्वार्थराजवार्तिकके मुद्रित पृष्ठ१७४में 'अरिष्टसारस्वतांतरे अश्व विश्वाः' ऐसा पाठ है दोनों पाठ ठीकहैं॥

विषयरतिविरहाद्देवर्षयः इतरेषां देवानामर्च्चनीयाः, चतुर्दशपूर्वधराः, तीर्थंकरनिष्क्रमणप्रतिबोधनपरा वेदितव्याः ॥ आह उक्ता लौकान्तिकास्ततश्च्युता एकं गर्भवासमवाप्य निर्वास्यन्तीत्युक्ताः। किमेवमन्येष्वपि निर्वाणप्राप्तिकालविभागो विद्यते? इत्यत आह—

विषयरतिविरहात्[5/1] (१)देव-ऋषयः[1/3]	=विषयोंमें रागसे रहित होने (के कारण)से देवऋषि अर्थात् देवोंमे ऋषि हैं
इतरेषाम्[6/3] देवानाम्[6/3] अर्चनीयाः[1/3] चतुर्दशपूर्वधराः[1/3]	=अन्य देवोंके पूजनीय अथवा पूज्य हैं ये समस्त देव चौदह पूर्वके धारक हैं अर्थात् अंग और दृष्टिवाद बारहवां अंगमें 'परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग और पूर्वगत (चौदह पूर्व) के ज्ञानी है देखो प्रथम अध्याय पृष्ठ ४२७ की टिप्पणी
(२)तीर्थंकरनिःक्रमण-प्रतिबोधनपराः[1/3] वेदितव्याः[1/3]	=तीर्थंकरके तप कल्याण विषें समझानेमें तत्पर (लवलीन वा निपुण) जानने चाहिये
आह[T] उक्ताः[1/3] लौकान्तिकाः[1/3] ततस्* (३)च्युताः[1/3]	=(शिष्य) पूछता है कि लौकांतिकदेव कहेगये। वहां (ब्रह्मलोक पांचवां स्वर्ग) से चयकर
एकम्[2/1] गर्भवासम्[2/1] अवाप्य - निर्वास्यन्ति T इति उक्ताः[1/3]	=एक गर्भवास अर्थात् मनुष्य भवको धारण करके मोक्ष जाते है ऐसे कहेगये हैं
किम्* एवम्* अन्येषु[7/3] अपि* निर्वाणप्राप्तिकालविभागः[1/1]	=क्या इसप्रकार अन्य देवोंमें भी मोक्षके पावनेके कालका विभाग अथवा पृथकता
(४)विद्यते T इति* अतः* आह T	=वर्तमान है(=विद्यते) इसलिये (आचार्य्य अग्रिम सूत्रमें) कहते है कि

(१) यदि कोई स्वर ए ऐ ओ औ को छोडकर आवे उसके पश्चात् ह्रस्व ऋकार हो तो ऐसा ऋ स्वरके साथ नहीं मिलता है और मिलता भी है अर्थात् चाहे उसको स्वरके साथ मिलादो चाहे न मिलादो जैसे देव ऋषि. =देवऋषि अथवा देव-ऋषि=देवर्षि। 'देवर्षयः' बहुवचन 'देवर्षि'का है। (२) तीर्थंकर-तीर्थ (हितशासन,-हितको करनेहारा, आगम-शास्त्रउपदेशक) करोति तीर्थंकर. तीर्थङ्कर, तीर्थ कर इसी अर्थमें होताहै (पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ१७३) (३) 'च्युता'—सर्वार्थसिद्धिके दोनों संस्करणोंमें 'च्युत्वा' पाठ है परन्तु उनके सूत्र २४, २६ में तीन स्थानोंमें और हस्तलिखित तीन प्रति में, इस सूत्रमें) तथा तीन स्थानोंमें सूत्र २४, २६ में और राजवार्तिकके सूत्र २४ में एक स्थानमें सूत्र २६ के पांच स्थानोंमें (च्युता) शब्द है हमने हस्तलिखित तथा तत्त्वार्थराजवार्तिक पाठके अनुकूल 'च्युता' शब्द लिया है॥ 'च्यु' प्रथम भ्वादि 'पतन होना' अर्थमें है 'च्युत्वा' शब्द भी ठीक है (देखो प्रथम अध्याय पृष्ठ १६की टिप्पणी दो)॥ तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकमें २४ सूत्रकी व्याख्यामें 'च्युत्वा' शब्दका प्रयोग है। (४) विद् यहांपर दिवादि चतुर्थगणका धातु है इस गणमें क्रियाका प्रत्यय जोड़नेके पहिले 'य' विकरण जोडाजाता है। अर्थ विद् धातुका होना' ऐसा है जैसे विद् य ते=विद्यते=वर्तमान है)

॥ विजयादिषु द्विचरमाः ॥ २६ ॥

आदिशब्दः प्रकारार्थे वर्तते, तेन विजयवैजयन्तजयन्तापराजितानुदिशविमानानामिष्टानां ग्रहणं सिद्धं भवति ॥ कः पुनरत्र प्रकारः ? अहमिन्द्रत्वे सति सम्यग्दृष्ट्युपपादः ।

(१)सूत्रम्—विजयादिषु द्विचरमाः ॥ २६ ॥ = (वैमानिकाः(२)) विजयादिषु(३) द्विचरमा भवन्ति ॥

विजय-आदिषु॥ वैमानिकाः॥	=विजय-वैजयन्त-जयन्त-अपराजित, नव अनुदिश विमानोंमें वैमानिक देव
द्विचरमाः॥ भवन्तिT	=दो अन्तिम देह धरनेवाले होते हैं वा इनके दो जन्म अन्तके रहजाते हैं ॥

अर्थात् येदेव मनुष्यके दोभव धारणकर मोक्षजातेहै वा इनके दो मनुष्यभव सिद्धावस्था प्राप्त होनेमें शेष रहजातेहै भावार्थ ऐसाहै कि नोअनुदिश और विजय-वैजयन्त-जयन्त-अराजित इन तेरह विमानोंसे चयकर मनुष्य होय बहुरि संयम आराध कर फिर विजयादिक विमानों उपजैं वहांसे चयकर मनुष्य जन्म पाकर मोक्ष पाते हैं ।

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित छब्बीसवां सूत्र पर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिन्दी अनुवाद

आदिशब्दः॥ प्रकार-अर्थे॥ वर्ततेT तेन॥	=सूत्रमें आदिशब्द सादृश्य (जनावने) के अर्थमें है । तिस (आदि शब्द)से
विजय-वैजयन्त-जयन्त-अपराजित-अनुदिश-विमानानाम्॥	=विजय-वैजयन्त-जयन्त-अपराजित और नव अनुदिश विमानोंका
इष्टानाम्॥ ग्रहणम्॥ सिद्धम्॥ भवतिT	=जो वांछित अथवा मानित हैं ग्रहण सिद्ध होता है
कः॥ पुनः अत्र प्रकारः॥ अहमिन्द्रत्वे॥ सति॥ सम्यग्दृष्टि-उत्पादः	=पुनि यहां क्या सदृशता हुई (उत्तर) अहमिन्द्र होनेमें सम्यग्दृष्टिका उत्पाद है

(१) इस सूत्रका पाठ श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायोंमें एकसा है ॥ परन्तु उनके यहां नवअनुदिशके नामसे कोई विमान नहींहै इसलिये हमारे यहां तेरह विमानोंके वासीदेव द्विचरमा हैं उनके यहां केवल विजय-वैजयन्त-जयन्त-अपराजितवासी द्विचरमा है देखो सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ ११४ ।
(२) सोलहवां सूत्रसे 'वैमानिकाः' शब्दकी अनुवृत्ति इससूत्रमें लीगई है (३) "अर विजयादिकनितें, आयजीव एक जन्मभी लेवें अरदो जन्मभी मनुष्यके लेवैंहैं तातें ऐसो अर्थ है जो विजयादिकनितें चयकर मनुष्य होय, बहुरि सयम आराधि फेर विजयादिकनिमें उपजे तहांते चय मनुष्य होय मोक्ष जायहैं ऐसे द्विचरम देहपना है । ऐसे अनुदिश अर चार अनुत्तरके देव तो दोय भवभी धारैं एक भी धारैं । स्वर्गके आठ युगल हैं तिनमें बारह इन्द्र हैं छह इंद्र दक्षिणके और छह इंद्र उत्तरके इनमें उत्तरके छ इंद्रोंको छोड़कर दक्षिणके जो छह इंद्र (१ सौधर्म २ सानत्कुमार ३ ब्रह्म ४शुक्र ५ आनत ६ आरण) और

सर्वार्थसिद्धिप्रसंग इति चेन्न तेषां परमोत्कृष्टत्वात्। अन्वर्थसञ्ज्ञातः एकचरमत्वसिद्धेः ॥

सर्वार्थसिद्धि-प्रसंगः१।१ इति* चेत्*	=सर्वार्थसिद्धि (विमानकाभी) ग्रहण हुआ ऐसा सन्देह (शिष्यकी ओरसे) है अर्थात् आचार्य्यके उत्तर देने पर कि विजय आदिक तेरह विमानोंमें सम्यग् दृष्टिके अतिरिक्त कोई जीव जन्म धारण नहीं करता है शिष्यने यह संदेह किया कि ऐसा करनेमें सर्वार्थसिद्धि का विमान भी ग्रहण होजाता है क्योंकि सर्वार्थसिद्धि विमानमें वसनेवाले देव भी तौ अहमिन्द्र ही है और सम्यग् दृष्टि ही हैं (उत्तर)
न*तेषाम्६।३परम-उत्कृष्टत्वात्५।१	=नहीं तिन)सर्वार्थसिद्धिवासी देवों,का(ग्रहण)परम उत्कृष्ट होने(के कारण)से (यहांपर) हुआ (क्योंकि सर्वार्थसिद्धि अर्थात् जहां सम्पूर्ण अभ्युदयके अर्थ सिद्धि होगये है ऐसी)
अन्वर्थ-सञ्ज्ञातः*	=सार्थक संज्ञा वा जैसा नाम है वैसा अर्थ वाली संज्ञा होनेसे
एकचरमत्वसिद्धेः५।१॥	=एक (मनुष्य)देहके अन्तपनेसे (चरमत्व) सिद्ध होवे है अर्थात् सर्वार्थसिद्धि से च्युत होकर

मनुष्यका एक शरीर धारणकर मोक्ष पावे है। इस समस्त प्रश्न और उत्तरका भावार्थ यह है कि शंका करनेपर कि अहमिन्द्र और सम्यग्दृष्टी तो सर्वार्थसिद्धि विमानवासी भी देव हैं। यदि यहाँ पर प्रकारका अर्थ यह कियाजायगा कि जो वैमानिकदेव अहमिद्र और सम्यग्दृष्टि हों वे द्विचरम (=दो भव धारणकर मोक्ष जाते)हैं तवतो सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देवोंको भी दो मनुष्य भव धारण करके पीछे मोक्ष माननी पड़ेगी क्योंकि अहमिद्र और सम्यग्दृष्टी वे भी हैं। परन्तु उ हे शास्त्रमें एक चरमी (=एक भव धारणकर मोक्ष जानेवाला माना) है इसलिये प्रकार शब्दका जो अहमिद्र और सम्यग्दृष्टि अर्थ माना है वह अयुक्त है)। उत्तरमें कहते है कि सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देव परमोत्कृष्ट है। जहां पर सर्व प्रयोजनोंकी सिद्धि हो वह सर्वार्थसिद्धि है। यह सर्वार्थसिद्धि शब्दका अन्वर्थरूपसे अभिप्राय है। सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देवोंके किसी प्रयोजनीय कार्य सम्पादन करनेवाला कर्म शेष नहीं रहता जिससे वे दो मनुष्य भव धारणकर मोक्ष जायं अतः मोक्षार्थ वे एकही मनुष्य भव धारण करते हं और वहांसे मोक्ष चले जाते हैं अतः उनकें एक चरमपनाही है द्विचरमपना नहीं है ॥

सौधर्म इन्द्रकी इन्द्राणी (जो तीर्थंकरको जन्म समय प्रसूत गृहमेंसे लाय इन्द्रको सौंपे सो सची) सौधर्म स्वर्गके चारो लोकपाल(१ सोम २ यम ३ वरुण ४ कुवेर) और सब लौकान्तिक देव अर सर्वार्थसिद्धिविमानके सब अहमिन्द्रदेव एक भव अवतारी हैं"॥

चरमत्वं देहस्य । मनुष्यभवापेक्षया द्वौ चरमौ देहौ येषां ते द्विचरमाः । विजयादिभ्यश्च्युता अप्रतिपतितसम्यक्त्वा मनुष्येषूत्पद्य सँयममाराध्य पुनर्विजयादिषूत्पद्य ततश्च्युताः पुनर्मनुष्यभवमवाप्य सिद्ध्यन्तीति द्विचरमदेहत्वम्॥ आह जीवस्यौदयिकेषु भावेषु तिर्यग्योनिगतिरौदयिकीत्युक्तं, पुनश्चस्थितौ

चरमत्वम्[1/1]॥ (१)देहस्य[6/1] =(यहां एक चरमत्वसिद्धेः इस वाक्यमें) चरमत्व शब्द है सो देहका चरमत्व है अर्थात् देहका अवसानपना वा अन्तपना ऐसा चरमत्व शब्दसे अभिप्राय है

मनुष्यभव-अपेक्षया[3/1]॥ द्वौ[1/2] चरमौ[1/2] देहौ[1/2] येषाम्[6/3] =मनुष्य जन्मकी विवक्षासे दो अन्तिम शरीर जिनके हैं

ते[1/3] द्विचरमाः[1/3] =वे द्विचरमा हैं अर्थात् मनुष्यभवमें संयमको आराधनकर पुनः विजयादि विमानोंमें उत्पन्न होता है। वहांसे च्युत होकर पुनः मनुष्य होता है और वहांसे फिर मोक्ष चला जाता है किन्तु भव सामान्यकी अपेक्षा यहां पर द्विचरमपना नहीं है अन्यथा दो मनुष्यभव और एक देवभव इस प्रकार तीन चरम देहपना सिद्ध होगा दो चरम देहपना सिद्ध न होसकेगा।

विजयादिभ्यः[5/3] च्युताः[1/3] (२)अप्रतिपतितसम्यक्त्वाः[1/3] =विजयादिक (तेरह) विमानोंसे चयकर (निकलकर) अप्रतिपतित सम्यग्दर्शनवाले अर्थात् क्षायिकसम्यग् दर्शन सहित

मनुष्येषु[7/3] उत्पद्य – संयमम्[2/1] आराध्य(३)—पुनः*विजय- =मनुष्योंमे उत्पन्न होकर संयमको धारणकर फिर विजय

आदिषु[7/3] उत्पद्य(३) – ततः*च्युताः[1/3] पुनः* मनुष्यभवम्[2/1] =आदिक (विमानोंमें) उत्पन्न होकर वहांसे च्युत होते हैं। फिर मनुष्यजन्मको

(३)अवाप्य – सिद्ध्यन्ति इति*द्विचरमदेहत्वम्[1/1]॥ =प्राप्त होकर मोक्ष जाते है। इस प्रकार दो चरम अर्थात् दो अन्तिम देहपना है

आह जीवस्य[6/1] औदयिकेषु[7/3] भावेषु[7/3] तिर्यग्योनिगतिः[1/1]॥ =(शिष्य) पूछता है कि जीवके औदयिक भावोंमें तिर्यञ्चगति

औदयिकी[1/1]॥ इति*उक्तम्[1/1]॥ पुनः*च*स्थितौ[7/1]॥ =औदयिकीऐसे(दूसराअध्याय सूत्र ६में)कथितवा वर्णित है वहुरि स्थितिमेंभी(=च)

(१) देहस्य षष्ठी विभक्तिका एक वचन पुल्लिंग वा नपुसकलिंग दोनों होसकते हैं। (२) सर्वार्थसिद्धि हस्तलिखित तथा द्वितीयावृत्तिमें, तत्त्वार्थराजवार्तिकमें 'अप्रतिपतित' शब्द है, प्रथमावृत्तिमें 'अप्रतिपातित' शब्दहै, ज्ञात होता है कि भूलसे छपगया है (३) उत्पद्य (=उत्पन्न होकर) आराध्य (=आराधनकर) और अवाप्य(=प्राप्त होकर) ये सम्बन्धसूचक भूत कृदन्त है। [४]'योनि'शब्द स्त्रीलिंग,पुल्लिंग दोनोंमें अमरकोश वर्ग १६में आया है।

तिर्यग्योनिजानां चेति। तत्र न ज्ञायते के [१]तिर्यग्योनयः ? इत्यत्रोच्यते—

औपपादिकमनुष्येभ्यः शेषास्तिर्यग्योनयः ॥ २७ ॥

औपपादिका उक्ता देवनारकाः। मनुष्याश्च निर्दिष्टाः। प्राङ्मानुषोत्तरान्मनुष्या इति। एभ्योऽन्ये संसारिणो जीवाः शेषास्तिर्यग्योनयो वेदितव्याः ॥

तिर्यग्योनिजानाम् ६।३। च*इति* तत्र*न* ज्ञायतेT ='तिर्यग्योनिजानां च' ऐसे (अध्याय ३ सूत्र ३९ वांहै)वहां नहीं बतलायागया है कि
के १।३। तिर्यग्योनयः१।३। इति* अत्र* उच्यतेT =तिर्यग्योनिवाले कौन है इसलिये यहां (अग्रिम सूत्रमें) कहाजाता है कि

सूत्रम्— (१)औपपादिकमनुष्येभ्यः शेषास्तिर्यग्योनयः ॥ २७ ॥

= औपपादिकमनुष्येभ्यः शेषास्तिर्यग्योनयः (भवन्ति) ॥२७॥

सूत्रार्थः—औपपादिकमनुष्येभ्यः५।३। शेषाः१।३। =उपपादरूप जन्मसे उत्पन्न होनेवाले अर्थात् अध्याय २ सूत्र ३४वां में उक्त देव तथा नारकीजीव और तीसराअध्यायके ३५वां सूत्रमें वर्णितमनुष्योंसेभिन्न अवशेष
तिर्यग्योनयः१।३। भवन्तिT =तिर्यञ्च योनिज होते है ॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इससत्ताईसवां सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिन्दी अनुवाद

औप-पादिकाः१।३। उक्ताः१।३। देवनारकाः१।३। =उत्पादरूप जन्मसे उत्पन्न होनेवाले देव, व नारकी अध्यायदो सूत्र ३४में कहेगये हैं
मनुष्याः१।३। च*निर्दिष्टाः१।३। प्राङ्-मानुपोत्तरात्५।१। मनुष्याः१।३। इति =और मनुष्य भी कहेगये है कि मानुपोत्तर पर्वतसे पहिले पहिले मनुष्य हैं (अध्याय तीसरेका सूत्र ३५ वां देखो)
एभ्यः५।३। अन्ये१।३। संसारिणः१।३। जीवाः१।३। शेषाः१।३। =इन (देव नारकी तथा मनुष्यो) से भिन्न संसारी जीव शेष
तिर्यग्योनयः१।३। वेदितव्याः१।३। =तिर्यञ्चयोनिवाले जानने चाहिये। (एभ्यः पंचमी बहु वचन पुल्लिंग इदम्का है)

---

[१] 'योनि' शब्द स्त्रीलिंग और पुल्लिंग दोनोंमें "अमरकोश" वर्ग १६ श्लोक ७८ में है परन्तु 'के' बहुवचन पुल्लिंग में है अतः "योनयः" भी बहुवचन पुल्लिंगमें है। [२]श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य०में "औपपादिक" शब्दके स्थानमें 'औपपातिक' है। शेषपाठ दोनों आम्नायोंमें एकहै अर्थभीएकसाहै।

तेषां तिरश्चां देवादीनामिव क्षेत्रविभागः पुनर्निर्देष्टव्यः। सर्वलोकव्यापित्वात्तेषां क्षेत्रविभागो नोक्तः॥ आह स्थितिरुक्ता नारकाणां, मनुष्याणां तिरश्चां च। देवानां नोक्ता। तस्यां वक्तव्यायामादावुद्दिष्टानां भवनवासिनां स्थितिप्रतिपादनार्थमाह—

स्थितिरसुरनागसुपर्णद्वीपशेषाणां सागरोपमत्रिपल्योपमार्द्धहीनमिता॥

पुनः*तेषाम्[६/३]तिरश्चाम्[६/३]देव-आदीनाम्[६/३]इव*	=और उन तिर्यञ्चोंका देवादिकों के समान (=इव)
क्षेत्रविभागः[१/१]निर्देष्टव्यः[१/१]	=क्षेत्रविभाग अर्थात् जिस क्षेत्रमें तिर्यञ्च पाये जावें सो कहना चाहिये
सर्वलोक-व्यापित्वात्[५/१]तेषाम्[६/३]क्षेत्रविभागः[१/१]न*उक्तः[१/१]	=(परन्तु) सर्वलोकमें पायेजानेसे उन (तिर्यञ्चों) का क्षेत्रविभागनहीं कहागया
आहTस्थितिः[१/१]उक्ता[१/१]नारकाणाम्[६/३]मनुष्याणाम्[६/३]	=(शिष्य) पूछता है कि आयु नारकोंकी कही गई, मनुष्योंकी
तिरश्चाम्[६/३]च*देवानाम्[६/३]न*उक्ता[१/१]तस्याम्[७/१]	=तिर्यञ्चोंकी भी (=च, कहीगई) देवोंकी नहीं कहीगई उसके
वक्तव्यायाम्[७/१]आदौ[७/१]उद्दिष्टानाम्[६/३]भवनवासिनाम्[६/३]	=कहनेकेआदिमें(इसअध्यायकासूत्र२,३,१०में)उपदेशकियेगयेभवनवासीदेवोंकी
स्थिति प्रतिपादन-अर्थम्[२/१]आहT	=आयुके कहनेके लिये (आचार्य उत्तर सूत्रमे) कहते हैं कि

सूत्रम्[(१)]—स्थितिरसुरनागसुपर्णद्वीपशेषाणां सागरोपमत्रिपल्योपमार्द्धहीनमिता ॥ २८ ॥

= (परा[२]) स्थितिः—असुर-नाग-सुपर्ण-द्वीप-शेषाणाम्-सागरोपम-त्रिपल्योपम-अर्द्धहीनं[३] इता भवति [३)]

परा[१/१]स्थितिः[१/१]असुर-नाग-सुपर्ण-द्वीप-	=उत्कृष्टआयु असुर कुमार, नाग कुमार, सुपर्ण कुमार, द्वीपकुमार, और
शेषाणाम्[६/३]	=बचे हुए (छह विद्युत कुमार-अग्नि कुमार-वातकुमार-स्तनितकुमार-उदधि-कुमार-दिक्कुमारो) की (यथासंख्य वा अनुक्रमसे)

(१) हमारे यहांके इससूत्रके स्थानमें श्वेताम्बर आम्नायके'सभाष्य में २९,३०,३१,३२ सूत्र दियेहैं। उनमें 'स्थितिः' यह २९ वां सूत्र अधिकारसूत्रहै

(२) तेतीसवां सूत्रके 'अपरा' शब्दको देखनेसे जिस सूत्रमे अडतीसवां सूत्रतक जघन्य स्थितिका कथनहै और विशेषत ३७वां सूत्रपर दृष्टिकरनेसे जिसमें भवनवासी देवोंकी जघन्य स्थिति दश सहस्र वर्षकी वर्णित है यह आशय झलकता है कि इस २८ वां सूत्रमें भवनवासी देवोंकी उत्कृष्ट स्थितिका वर्णन है अतः मैंने इस सूत्रमें 'परा' (=उत्कृष्ट) शब्दको जोडकर अर्थ किया है 'अपरा' का प्रतिकूल परा है॥

(३) हीनमिता-स्मरण रहै कि 'इता' शब्द का अर्थ प्राप्त ऐसा है और 'मिता' शब्दका अर्थ 'परिमित' मापा हुआ (पद्मचन्द्रकोश पृ ८६] है॥ यहां पर'हीनमिता'=हीनम्-इता ऐसा पदच्छेदहै नकि हीन-मिता क्योंकि इताजो प्रथमा विभक्ति एकवचन स्त्रीलिंगहै उसका अन्वय'स्थिति'शब्दके साथहै।

असुरादीनां सागरोपमादिभिर्यथाक्रममत्राभिसम्बन्धो वेदितव्यः ॥ इयं स्थितिरुत्कृष्टा । जघन्याऽप्युत्तरत्र वक्ष्यते ॥ तद्यथा-असुराणां सागरोपमा स्थितिः । नागानां त्रिपल्योपमा स्थितिः सुपर्णानामर्द्धतृतीयानि । द्वीपानां द्वे ।

सागरोपम-त्रिपल्योपम-अर्धहीनम्।।। =एक सागर प्रमाण-तीन पल्यप्रमाण उससे आधी आधी पल्य प्रमाण घाटि तीनस्थानमें
इता।। =प्राप्त है (हीनम्-इता।।भवति) अर्थात् उत्कृष्ट आयु असुर कुमारों की एक सागर है, नाग कुमारोंकी उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्यहै, सुपर्ण कुमारोंकी उत्कृष्ट आयु ढाई पल्य है, और द्वीप कुमारोंकीउत्कृष्ट आयु दो पल्यहै, शेष छह विद्युत्कुमारोंकी-अग्निकुमारोंकी-वात कुमारोंकी-स्तनित कुमारोंकी, उदधिकुमारोंकी, दिक्कुमारोंकी-उत्कृष्ट स्थिति डेढ़ डेढ़पल्य है॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित अट्ठाईसवां(१) सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिन्दी अनुवाद

असुरादीनाम्।सागरोपमादिभिः।यथाक्रमम्*अत्र* =असुरादिकोंका सागर प्रमाणादिक गणनाकरि क्रमसे यहां
अभिसम्बन्धः।वेदितव्यः।इयम्।।स्थितिः।।उत्कृष्टा।। =सम्बन्ध जानना चाहिये। यह आयु उत्कर्ष है
जघन्या।।अपि*उत्तरत्र*वक्ष्यते . तद्यथा*असुराणाम्। =जघन्य (स्थिति) भी यहांसे आगे (सेतीसवांसूत्रमें) कहेंगे। जैसे असुर कुमारोंकी
सागरोपमा।।स्थितिः।।नागानाम्।त्रिपल्योपमा।।स्थितिः।।=सागर प्रमाण आयु है। नाग कुमारोंकी तीन पल्य प्रमाण आयु है
सुपर्णानाम्।अर्द्धतृतीयानि।।।द्वीपानाम्।द्वे।।। =सुपर्ण कुमारोंकी ढाई (पल्यप्रमाण आयु)है द्वीप कुमारों की दो(पल्योपम) आयु है

(१)हमारे यहांके इस अट्ठाईस[२८]वां सूत्रमें स्थिति शब्द जो आदिमें आयाहै उसको श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें उन्तीसवांसूत्र माना है और उसका तात्पर्य यह है कि इस सूत्रसे अध्याय के अन्त तक देवोंकी स्थिति का कथन करेंगे अर्थात् उनके यहां यह अधिकार सूत्र है और प्रयोजन यह है कि अग्रिमके सर्व सूत्रोंमें अध्यायके अन्ततक 'स्थिति' शब्दको प्रत्येक सूत्रमें लगालो। मेरी समझमें यह विधान ठीक है क्योंकि ऐसा माननेमें कोई अक्षर और शब्द अधिक नहीं होता और दो बातें प्रगट होजाती हैं प्रथम यह कि यहांसे इस अध्यायके अन्ततक सब आयुका ही प्रकरण है और दूसरी बात यह कि इस 'स्थिति' शब्दकी अनुवृत्ति सर्व सूत्रोंमें इस सूत्रसे अध्याय पर्यंत लेलीजाती है॥ दिगम्बर आम्नायके इस अट्ठाईसवां सूत्रमें दश भवनवासी देवोंकी आयु वर्णित है, वेही स्थितियें कुछ भेदके साथ श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रके निम्न लिखित तीन सूत्रोंमें उन्हीं दश भवन वासी देवोंको आयुका कथन किया गया है॥

शेषाणां षण्णामध्यर्द्धपल्योपमम् ॥

आद्यदेवनिकायस्थित्यभिधानादनन्तरं व्यन्तरज्योतिष्कस्थितिवचने क्रमप्राप्ते सति तदुल्लंघ्य वैमानिकानां स्थितिरुच्यते। कुतः ?तयोरुत्तरत्र लघुनोपायेन स्थितिवचनात् ॥ तेषु चादावुद्दिष्टयोः कल्पयोः स्थितिविधानार्थमाह—

शेषाणाम्[६/३] षण्णाम्[६/३]	=बचे हुए छह (विद्युत कुमार-अग्नि कुमार-वात कुमार-स्तनितकुमार-उदधिकुमार दिक्कुमारों) की (स्थिति)
अध्यर्द्धपल्योपमम्[१/१]॥	=आधी अधिक सहित एक पल्य प्रमाण अर्थात् डेढ़ पल्य प्रमाण है
आद्य-देव-निकाय-स्थिति-अभिधानात्[५/१]॥ अनन्तरम्[१/१]॥	=प्रथम अर्थात् भवन वासी देवोके समुदायकी स्थितिके कहनेसे अत्यन्त समीप
व्यन्तर-ज्योतिष्क-स्थिति-वचने[७/१]॥ क्रमप्राप्ते[७/१]॥ सति[७/१]॥	=व्यन्तर तथा ज्योतिपी देवोकी आयुके कथन (वचन) विपैं क्रम प्राप्त होने पर
तत्*उल्लङ्घ्य - वैमानिकानाम्[६/३] स्थितिः[१/१]॥ उच्यते।	=उस (क्रम)को छोड़कर वा त्यागकर वैमानिक देवोकी आयु कही जाती है
कुतः ?*तयोः[६/२] उत्तरत्र*	=(प्रश्न)क्योंकरउन(व्यन्तर तथा ज्योतिपी देवों)की(स्थिति)यहांसेआगे(कहीजायगी)
लघुना[३/१]-उपायेन[३/१]	=(उत्तर) लघुकरणद्वारा वा लघुसाधनद्वारा (उन व्यन्तर तथा ज्योतिपी देवोंकी)
स्थिति-वचनात्[५/१]॥	=स्थितिका कथन होगा अर्थात् अग्रिमसूत्रोंमें वर्णन करेंगे जो सूत्र उनसे पहिले सूत्रोसे अनुवृत्ति लेनेके निमित्तसे लघुहोंगेदेखो ३८-३९-४०-४१सूत्र जो कितने लघु है और जिनसे स्पष्ट है कि यदि व्यन्तर ज्योतिपियोकी स्थिति २८वांसूत्र के अनन्तर कहते तो इन सूत्रोकी इतनी लघु रचना कदापि नहीं होसकती थी
तेषु[७/३] च*आदौ[७/१] उद्दिष्टयोः[७/२] कल्पयोः[७/२]	=और तिन (वैमानिक देवो) विपैं आदिमें कहे हुए (सौधर्म और ऐशान) स्वर्गोंमें
स्थिति-विधान-अर्थम्[१/१]॥ आह।	=आयुके नियम के लिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

भवनेषु दक्षिणाधिपतीनां पल्योपममध्यर्धम् ॥ ३० सूत्र ॥ (सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रके पृष्ट११५ से उद्धृत)

भवनेषु[७/३] दक्षिणार्धाधिपतीनाम्[६/३]।	=भवनवासी (देवों) में दक्षिणार्धाधिपति (देव) निका अर्थात् विद्युत अग्नि स्तनित और द्वीप कुमारों की
पल्योपमम्[१/१]॥ अध्यर्धम्[१/१]॥	=अर्ध अधिक (सार्द्ध) एक पल्य प्रमाण अर्थात् डेढ़पल्य प्रमाण[परा स्थिति-उत्कृष्ट स्थिति]है ॥३०सूत्र॥

सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रके ११ वां सूत्रमें (=हमारे यहांके दश १० वां सूत्रके) कथित दो दो भवनवासी इन्द्रोंमेंसे पूर्व पूर्वका इन्द्र दक्षिणार्धाधिपति कहालाताहै और दूसरा उत्तरार्धाधिपतिहै [सभाष्य० पृष्ठ११५ सेउद्धृत]॥ तात्पर्य ऐसा है कि दश भवनवासियोंमेंसे सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रके निम्न लिखित ३२ वां सूत्रमें वर्णित असुर कुमारेंद्र और नाग कुमारेंद्रको निकालकर जिनकी उत्कृष्टस्थिति अनुक्रमसे सागरोपम और कुछ अधिक सागरोपम है॥ सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रके तीसवां सूत्रके अनुकूल शेष चार विद्युत कुमार दक्षिणार्धाधिपति की डेढ पल्योपम परास्थिति है। अग्निकुमार दक्षिणार्धाधिपतिकी डेढ पल्योपम परास्थिति है, स्तनितकुमार दक्षिणार्धाधिपतिकी डेढ़ पल्योपम परास्थिति है, द्वीपकुमार दक्षिणार्धाधिपतिकी डेढ पल्योपम परास्थिति है॥

शेषाणां पादोने ॥ ३१ वां सूत्र ॥ (सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रके पृष्ठ ११५ से उद्धृत)

शेषाणां[६]।पाद-ऊने[३]॥। =(भवनवासियोंमेंसे) बचे हुए उत्तरार्धाधिपतिनिकी एक पाद से हीन दो अर्थात् पौने दो (पल्योपम परास्थिति है) भावार्थ ऐसा है कि चार सुपर्ण कुमार उत्तरार्धाधिपतिकी पौने दो पल्योपम उत्कृष्ट स्थिति है, वात कुमार उत्तरार्धाधिपतिकी पौने दो पल्यापम उत्कृष्ट आयु है, उदधिकुमार उत्तरार्धाधिपतिकी पौने दोपल्योपम उत्कृष्ट अवस्था है, दिक्कुमार उत्तरार्धाधिपतिकी पौनेदोपल्योपम अधिकसे अधिक स्थिति है॥

असुरेन्द्रयोः सागरोपममधिकं च ॥३२ वां सूत्र सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रके पृष्ठ११५सेउद्धृत

=असुरेन्द्रयोस्तु दक्षिणार्धाधिपत्युत्तरार्धाधिपत्योः सागरोपममधिकं च यथासंख्यं परास्थितिभवति

तु॰दक्षिणार्धाधिपति उत्तरार्धाधिपत्यो'[६]।असुरेन्द्रयोः[६]। =और दक्षिणार्धाधिपति उत्तरार्धाधिपति दोनों असुरेन्द्रों की

सागरोपमम्[१]॥अधिकं[१]॥च॰यथासख्यम्॰परा[१]॥स्थिति[१]॥ =एक सागर प्रमाण और [=च] कुछ अधिक सागर प्रमाण क्रम से उत्कृष्ट आयु

भवतिT =होती है अर्थात् असुर कुमार दक्षिणार्धाधिपतिकी उत्कृष्ट आयु एक सागर प्रमाण है औरनागकुमार उत्तरार्धाधिपतिकी अधिकसे अधिकस्थिति कुछअधिक एकसागर है॥

ये सब दशों "कुमारोंके समान रमणीय दर्शन, सुकुमार, मृदु, मधुर तथा ललित गतिवाले, श्रृंगार सहित सुन्दर रूप विक्रिया युक्त होते हैं॥ और कुमारोंके तुल्य उद्धृतरूप, वेष, भाषा, आभरण, अस्त्रशस्त्रादि प्रहरण, वस्त्र तथा यान वाहनादि युक्त होते हैं। और कुमारोंके ही समान इनका व्यक्त अर्थात् स्पष्टराग क्रीडामें तत्पर रहता है, अतएव इन्हें कुमार कहते हैं। इनमें असुर कुमार असुर कुमारके आवासमें रहते हैं और शेष भवनोंमें निवास करते हैं। महामन्दरके दक्षिण और उत्तर दिग्विभागोंमें अनेक लाख योजन कोटी कोटीयोंमें असुर कुमारोंके आवास हैं और भवनभा दक्षिणार्धाधिपतियोंके और उत्तरार्धाधिपतियोंके यथास्थ हैं। वहां रत्नप्रभामें वहल भागके अर्ध मध्यमें प्रवेश करके मध्यमें भवन है॥ भवनोंमें जो रहते हैं उन्हें भवनवासी कहते हैं॥ सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्र के पृष्ठ ८६ से उद्धृत॥

सौधर्मैशानयोः सागरोपमे [1]अधिके ॥ २९ ॥

सूत्रम्—सौधर्मैशानयोः सागरोपमे अधिके ॥ २९ ॥

= (परा-स्थितिः सूत्र २८वां से) सौधर्म-ऐशानयोः सागरोपमे अधिके (भवति)

श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रके २९-३० ३१-३२ और हमारे यहाके २८ वा सूत्रका मिलाकर विचार पूर्वक पढ़नेसे भवनवासी देवोंकी उत्कृष्ट स्थितिका भेद दोनों सम्प्रदायोंमें निम्न सूचीसे भले प्रकार विदित होता है ॥ जैसे

भवन वासी देवका नाम ॥	श्वेताम्बरआम्नायके अनुसार उत्कृष्टस्थिति	दिगम्बरआम्नायके अनुकूलउत्कृष्ट आयु		सूचना
(१) असुर कुमार	एक सागर प्रमाण } सभाष्य०	एक सागर प्रमाण	(सूत्र २८ देखो)	दोनों सम्प्रदायोंमें असुर-कुमारकी आयु एक सागर प्रमाण है और विद्युत्कुमार अग्निकुमार स्तनितकुमार की आयु डेढ़ डेढ पल्यकी है अवशेष छह कुमारोंकी उत्कृष्ट स्थितिमें दोनोंसम्प्र-दायोंमेंभेदहै जैसाकि सूची से प्रगट है ॥
(२) नाग कुमार	एकसागरप्रमाणसेकुछअधिक } सूत्र३२देखो	तीन पल्य प्रमाण	(सूत्र २८ देखो)	
(३) विद्युत्कुमार	डेढ पल्य प्रमाण सभाष्य० सूत्र ३० देखो	डेढ पल्य प्रमाण	(सूत्र २८ देखो)	
(४) सुपर्ण कुमार	पोने दोपल्य प्रमाण सभाष्य०सूत्र३१देखो	ढाई पल्य प्रमाण	(सूत्र २८ देखो)	
(५) अग्नि कुमार	डेढ़ पल्य प्रमाण सभाष्य० सूत्र ३० देखो	डेढ पल्य प्रमाण	(सूत्र २८ देखो)	
(६) वात कुमार	पोने दोपल्य प्रमाणसभाष्य० सूत्र३१देखो	डेढ पल्य प्रमाण	(सूत्र २८ देखो)	
(७) स्तनित कुमार	डेढ़ पल्य प्रमाण सभाष्य० सूत्र ३० देखो	डेढ़ पल्य प्रमाण	(सूत्र २८ देखो)	
(८) उदधि कुमार	पोने दोपल्य प्रमाण सभाष्य०सूत्र३१ देखो	डेढ पल्य प्रमाण	(सूत्र २८ देखो)	
(९) द्वीप कुमार	डेढ पल्य प्रमाण सभाष्य०, सूत्र ३० देखो	दो पल्य प्रमाण	(सूत्र २८ देखो)	
(१०) दिक्कुमार	पोने दोपल्य प्रमाण सभाष्य०सूत्र३१देखो	डेढ़ पल्य प्रमाण	(सूत्र २८ देखो)	

(१) दिगम्बर आम्नायमेंसर्वार्थसिद्धि वृत्तिके दोनों सस्करणोंमें 'अधिके' पाठ है, हस्त लिखित प्रतिमें 'ऽधिके' पाठ है अन्य अन्य पुस्तकोंमें कहीं कहीं पर अधिके' पाठ है और कहीं कही पर 'ऽधिके' पाठ भी है दोनों पाठ ठीक है देखो इस अनुवाद का अध्याय १ पृष्ट १० की टिप्पणी (२)तेतीसवां सूत्रमें सौधर्म ऐशान स्वर्गोंकी जघन्य स्थिति कही है और इस तेतीसवांसूत्रकी आदिमें 'अपरा' शब्द लाये है इससे स्पष्ट है कि इस सूत्र में उपर्युक्त दोनों स्वर्गोंकी ही उत्कृष्ट स्थिति कही है और परा शब्द का आवश्यकता से अध्याहार करना योग्य है ॥ अतः हमने 'परा' शब्द जोड़ा है ।

सागरोपमे इति द्विवचननिर्देशाद् द्वित्वगतिः । अधिके इत्ययमधिकारः । आ कुतः ? आ सहस्रारात्

[1]सूत्रार्थः–परा[1]।।स्थितिः[1]।।(सूत्र २८ वां से उद्धृत) =उत्कृष्ट स्थिति अथवा आयु
सौधर्म-ऐशानयोः[2]।।सागरोपमे[3]।।।अधिके[3]।।। ।।२९।। =सौधर्म ऐशान (स्वर्गो) में दो सागर प्रमाण और कुछ अधिक है ।।२९।।

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित उनतीसवां सूत्र पर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिन्दी अनुवाद

सागरोपमे[3]।।इति*द्वि-वचन-निर्देशात्[5]।द्वित्व-गतिः[1]।। =(इस २९ वां सूत्र में) 'सागरोपमे' ऐसे दो वचनके कथनसे दोकी प्राप्ति(=गति) है
अधिके[3]।।इति*अयम्[1]।अधिकारः[1]।आ*कुतः* ? =(सूत्रमें) 'अधिके' ऐसे यह प्रकरण है ।। कहां तक (=आ) ('अधिके' शब्दकाविषयहै)
आ*[(2)]सहस्रारात्[5]। =(उत्तर) सहस्रार (बारहवां स्वर्ग) तक (=आ) ('अधिके' शब्द का अधिकार है)

(१) श्वेताम्बर आम्नायके 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र' में इस सूत्रका लगभग तात्पर्य नीचे के तीन सूत्रमें ऐसे दिया है कि सौधर्मादिषु यथा-क्रमम् ।।३३।। अर्थात् सौधर्मादिक (कल्पोंमें) क्रमानुसार परा (उत्कृष्ट) स्थिति कहेंगे ।। सागरोपमे ।।३४।। अर्थात सौधर्म कल्पके देवोंकी उत्कृष्ट स्थिति दो सागर प्रमाण है ।। मधिके च ।।३५।। अर्थात् और (=च) कुछ अधिक दो सागर प्रमाण ऐशान कल्पके देवोंकी स्थिति है । हमारे यहांके इस सूत्रके अर्थमें और श्वेताम्बर आम्नायके उक्त तीन सूत्रोंके तात्पर्यमें यह भेद हुआकि हमारे यहां सौधर्म स्वर्गके देवोंकी आयु कुछ अधिक दो सागर प्रमाण मानी है परन्तु श्वेताम्बर आम्नायमें केवल दो सागर है ऐशान स्वर्गके देवोंकी स्थिति दोनों आम्नायों में एकसी है अर्थात् दो सागरसे कुछ अधिकहै

(२) आङ् (=आ) अव्यय जब 'प्रगृह्य' (=व्याकरणमें स्वरसन्धि न होने योग्य पद जैसे आ एव मन्यसे ओह तुम ऐसा मानते हो) नहो तब चार अर्थोंमें आता है (i) थोडा जैसे-आ+उष्णम् =ओष्णम् =थोडा तप्त (ii) जब क्रिया के प्रथम आता है तब निकटके अर्थमें और चलना, लैना, दैना इत्यादि क्रियापदोंके साथमें उक्त क्रियाओंके प्रतिकूल अर्थों का द्योतक होताहै जैसे गच्छति वह जाता है, आगच्छति वह =आता है दत्ते =वह देता है, आदत्ते वह लेता है ।। (iii) मर्यादा (जो सीमा कहीजाय उसके बाहर बाहर) (iv) अभिविध अर्थमें (जो सीमा कही जाय उसको मिलाकर देखो प्रथम अध्याय पृष्ठ ७३ की टिप्पणी चार) जहां तक मेरा ज्ञान है उमास्वामीने इस चौथे अर्थमें सर्वत्र प्रयोग किया है देखो अध्याय १, सूत्र ३०, अध्याय २ सूत्र ४३, अध्याय ४ सूत्र ७, अध्याय ५ सूत्र ६, अध्याय ९ सूत्र १७, अध्याय ९ सूत्र २७, अध्याय १० सूत्र ५, इसी अर्थमें यहा 'आ सहस्रारात्' वाक्यमें पूज्यपाद स्वामीने प्रयोग किया है अथात् सागरो से 'कुछ अधिक' आयुका सम्बन्ध 'सहस्रार स्वर्गको समावेश, वा अन्तर्गत करते हुये है ।।

घातायुष्कसम्यग्दृष्ट्यपेक्षया किञ्चिदूनार्द्धसागरोपममधिकभवति सौधर्मकल्पात्सहस्रारपर्यन्तम् ।। सम्मेघादेऊणसायरदलमहियमासहस्सारा इति वचनात् ।।

घात-आयुष्क सम्यग्दृष्टि-अपेक्षया[3]।। =सम्यग्दृष्टि जीवकी विवक्षासे घातायुष्क अर्थात् पूर्व भवमें विशुद्ध परिणामोंसे बंधीहुई आयुका पश्चात् संक्लेश परिणामोंसे घटिजाना अथवा न्यून हाजाना
किञ्चित् ऊन अर्द्ध सागरोपमम्[1]।।अधिकम्[1]।। =कुछन्यून (अर्थात् अन्तर्मुहूर्त वादि) आधे सागर प्रमाण अधिक
सौधर्म कल्पात्[5]।सहस्रारपर्यन्तम्[1]।।भवतिT =सौधर्मस्वर्गसे सहस्रार तक (की पृथक् पृथक् नियमित स्थितिसे) होय है—(क्योंकि)

। इदं तु कुतोज्ञायते ? उत्तरत्र तुशब्दग्रहणात् । तेन सौधर्मैशानयोर्देवानां द्वे सागरोपमे सातिरेके प्रत्येतव्ये ॥ उत्तरयोः स्थितिविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

(१)आ*इदम्१।१।। तु*	=(प्रश्न) तो (=तु) यह 'आ' अर्थात् 'आ' सहस्रारात् भावार्थ सहस्रार तक 'अधिके' का अधिकार है ॥
कुतः*ज्ञायते । उत्तरत्र*तुशब्दग्रहणात्५।१।।	=क्योंकर जानाजाता है(उत्तर)यहांसे आगे (इकतीसवां सूत्रमें) 'तु' शब्दकेलानेसे
तेन३।१सौधर्म-ऐशानयोः७।२देवानाम्६।३द्वे१।२।।सागरोपमे१।२।।	=तिससे सौधर्म ऐशान स्वर्गोमे देवोंके दो सागर प्रमाण
सातिरेके१।२।।प्रत्येतव्ये१।२।।	=अधिक सहित जानना चाहिये अर्थात् 'सौधर्मैशान'में दो सागरसे कुछअधिकहै
उत्तरयोः७।२स्थिति-विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थम्१।१।।आह	=(सौधर्म-ऐशानसे)अगले दो (स्वर्गों)मे आयुका विशेष जाननेके लिये कहतेहैंकि

सम्मे७।१।।घादे७।१।।ऊण१।१।।(=सम्यक्त्वे७।१।।घाते७।१।।ऊनम्१।१।।)	=सम्यक्त्व (अवस्था) में घातायुष्क विषे (अन्तर्मुहूर्त)न्यून
सायर-दलम्१।१।।अहियम्१।१।।(=सागर दलम्१।१।।अधिकम्१।१।।)	=आधे (=दल) सागर (आयु प्रथम युगल से) अधिक
आ*सहस्सारा५।१[आ*सहस्रारात्५।१)इति*वचनात्५।१।।	=सहस्रार तक(कीपृथक् पृथक् नियमित स्थितिसे) होतीहै। ऐसा(वाक्यउपर्युक्तआया)है

इस सबका भावार्थ यह है कि पूर्व भवमें किसी जीवने विशुद्ध परिणामोंसे आयु का बंध अधिक किया था, पश्चात् संक्लेश परिणामोंके वशसे आयु घटाय थोडी रक्खी तिस जीवको घातायुष्क कहिये। जैसे कोई मनुष्य ब्रह्म ब्रह्मोत्तर स्वर्गका आयु दश सागर प्रमाण बंध किया। फिर उसही मनुष्यभवमें सङ्क्लेश परिणामोंके वधनेसे आयुकी स्थितिका घात करके सौधर्म ऐशानमें जाय उपजा सो घातायुष्क है। सो अन्य देवोंकी अपेक्षा दो सागर प्रमाण आयुते अंतर्मुहूर्त न्यून आधा सागर अधिक आयु पावै है ॥ आयु का घात दो प्रकार है एक अपवर्तन घात दूजा कदली घात तहां वध्यमान आयु का घटावना सो अपवर्तन घात है अर भुज्यमान आयुका घटावना कदली घात है। देवोंमें कदली घात संभव नहीं है ॥

[१] सर्वार्थसिद्धि वृत्तिकीद्वितीयावृत्तिमें और हस्तलिखित पुस्तकमें'आ'नहीं है, प्रथमावृत्तिमें'आ'है दोनों ही पाठ ठीक हैं क्योंकि इदम् आ और इदम् का वोही अर्थ है ॥ कई सख्याओं (जैसे विंशति-त्रिंशत् चत्वारिंशत् इत्यादि) के अतिरिक्त विशेष्य और विशेषणके कारक, वचन, लिंग एकहीहोते हैं इसलिये 'इदम्' के साथ 'आ' की विभक्ति लिंग और वचन भी वही होना चाहिये। 'आ' अव्यय है और अव्यय वह शब्द है जो तीनों लिंग सातों विभक्ति और सब वचनोंमें विकार वा रूप की पलटन को प्राप्त न हो ॥ जैसा कि कहागया है कि 'सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु । वचनेषु च सर्वेषु यन्नव्येति तदव्ययम्'=जो[शब्द] समान तीन लिंगोंमें, और (=च) सब [सातों] विभक्तियोंमें और (=च] सब [तीनों) वचनोंमें विकारको प्राप्त नहीं होता है वह अव्यय है ॥

॥ सानत्कुमारमाहेन्द्रयोः सप्त ॥ ३० ॥

अनयोः कल्पयोर्देवानां सप्तसागरोपमाणि साधिकानि उत्कृष्टा स्थितिः ॥

ब्रह्मलोकादिष्वच्युतावसानेषु स्थितिविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ त्रिसप्तनवैकादशत्रयोदशपञ्चदशाभिरधिकानि तु ॥ ३१ ॥

सूत्रम्—सानत्कुमार माहेन्द्रयोः सप्त ॥३०॥ = सानत्कुमार-माहेन्द्रयोः सप्त-सागरोपमाणि (४ अध्याय-सूत्र २९ से)अधिकानि(४ अध्याय सूत्र-२९ से)परास्थितिः(४ अध्याय सूत्र२८से)भवति

(१)सानत्कुमार-माहेन्द्रयोः॥सप्त॥सागरोपमाणि॥अधिकानि॥ परा॥स्थितिः॥ =सानत्कुमार (तीसरे) और (माहेन्द्र (चौथे स्वर्गो) में सात सागर प्रमाण =और कुछ अधिक उत्कृष्ट आयु है ॥

वृत्त्यनुवादः—अनयोः॥कल्पयोः॥देवानाम्॥ =इन दो (सानत्कुमार और माहेन्द्र) स्वर्गों में देवों की

सप्त-सागरोपमाणि॥साधिकानि॥उत्कृष्टा॥स्थितिः॥ =सात सागर प्रमाण अधिक सहित उत्कृष्ट आयु है(=सातसागरसेअधिकहै)

ब्रह्म-लोकादिषु॥अच्युत-अवसानेषु॥स्थिति-विशेष- =ब्रह्मलोकादिकमे (और)अच्युत (सोलहवां स्वर्ग)पर्यन्तविषै आयुकाविशेष

प्रतिपत्ति-अर्थम्॥आह =जानने के लिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते है कि

(२)सूत्रम्—त्रिसप्तनवैकादशत्रयोदशपञ्चदशभिरधिकानि तु ॥ ३१ ॥

(यह सूत्र इतना सार गर्भित है कि बहुत सी अनुवृत्तियों अथवा अध्याहार द्वारा इसका अर्थ पूरा करनेके लिये पहिले पहिले इससूत्र के दो भाग करके अनुवाद शब्दशः करना पड़ा है, दूसरे यह कि भले प्रकार समझाने के लिये इस सूत्रकी (में) पूर्ण रूप से अनुवृत्तियों को लाकर और शब्दोंका अध्याहार करके छह सूत्रोंमे इस सूत्रको ढाल दिया है)

(२) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्र में "सप्तसानत्कुमारे" ॥३६॥ यह सूत्र है =सानत्कुमार कल्पके देवोंकी सात सागरप्रमाण उत्कृष्ट स्थिति है-हमारे यहां इस तीसवा सूत्रमें सानत्कुमार स्वर्गमें उत्कृष्ट आयु सात सागरसे कुछ अधिक है ॥ माहेन्द्र कल्पमें भी हमारे यहां उत्कृष्ट आयु सात सागर प्रमाणसे कुछ अधिक है। इतनी ही स्थिति माहेन्द्र स्वर्गमें श्वेताम्बरआम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रके ३७ वां

त्रि-सप्त-नव-एकादशभिः[3]।।।अधिकानि[3]।।। (३१ सूत्रसे[1])=तीन-सात-नौ-ग्यारह अधिक सहित (=अधिकानि इस ३१ वां सूत्र से)
सप्त[3]सागरोपमाणि[3](३०वांसूत्रसे)अधिकानि(२९वांसूत्रसे) =सात सागर प्रमाण और कुछ अधिक
परा[1]।।स्थितिः[1]'' (२८ वां सूत्रसे) [2]ब्रह्मब्रह्मोत्तर- =उत्कृष्ट स्थिति (यथासंख्य वा अनुक्रमसे) ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर
लान्तवकापिष्ठ-शुक्रमहाशुक्र-शतारसहस्रारेषु[3]। =लान्तव-कापिष्ठ, शुक्र महाशुक्र, शतार सहस्रार (स्वर्गों) मे है अर्थात्
ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर पांचवें और छठवां स्वर्गोमे उत्कृष्टआयु कुछ अधिक (सात+तीन) दश सागर प्रमाण (प्रत्येकमें) है। लान्तव सातवां स्वर्ग कापिष्ठ आठवां कल्पमे उत्कर्ष आयु कुछ अधिक (सात+सात) चोदह सागर (प्रत्येकमे) है। शुक्र नववां स्वर्ग, महाशुक्र दशवां स्वर्गमें उत्कृष्ट स्थिति कुछ अधिक (नव+सात) सोलह सागर (प्रत्येकमे) है। शतार ग्यारहवां स्वर्ग सहस्रार बारहवां स्वर्गमें उत्कर्ष स्थिति कुछ अधिक (ग्यारह+सात) अठारह सागर प्रमाण प्रत्येक मे है। स्मरण रहे कि श्वेताम्बर आम्नायमें ब्रह्मोत्तर-कापिष्ठ-शुक्र और शतार ये चार स्वर्ग नहीं है उनके यहां केवल १२ स्वर्ग माने है हमारे यहां सोलह कल्प माने है ॥
[3]तु*त्रयोदश-पञ्चदशभिः[3]अधिकानि[3]।।।(३१वांसूत्रसे) =परन्तु(=तु)अर्थात् कुछअधिक स्थितिको छोड़कर तेरह पंद्रहकरि अधिक सहित
सप्त-सागरोपमाणि(३०वांसूत्रसे)परा[1]।।स्थितिः[1]।।(२८वांसूत्रसे)=सात सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति (यथासंख्य वा अनुक्रमसे)

सूत्रसे विदित है ॥ माहेन्द्र कल्पमें दोनों आम्नायके अनुकूल एकसी स्थिति उत्कृष्ट है अर्थात् सात सागरसे उत्कृष्ट स्थिति कुछ अधिक है ॥

(१) श्वेताम्बर आम्नायके 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र' में इससूत्रके स्थानमें ऐसा सूत्रहै "विशेषत्रिसप्तदशैकादशत्रयोदशपञ्चदशभिरधिकानिच" ३७ हमारे यहांके इकतीसवा सूत्रसे इस सैंतीसवां सूत्रमे विशेष शब्द अधिक है नव के स्थान में दश है 'तु' के स्थानमें 'च' है। शेष पाठ दोनों सम्प्रदायों में एक है ॥ दोनों आम्नायोंके पूर्व सूत्रसे इस सूत्रमें 'सप्त' शब्द की अनुवृत्ति आती है। इसलिये 'विशेष' =विशेष+अधिकानि इसमें सप्त अनुवर्तमानाको जोड़कर विशेष+अधिक+सप्त इतनी आयु अर्थात् सात सागरसे कुछ अधिक माहेन्द्र स्वर्गके देवोंकी है सो हमारेयहांकी आयुसेमिलती है॥

(२) ब्रह्मब्रह्मोत्तर-लान्तव-कापिष्ट-शुक्रमहाशुक्र शतार सहस्रारेषु ये शब्द (यह देखकर कि २९ वा सूत्रमें सौधर्मैशानयोः तथा ३० वां सूत्रमें सानत्कुमार माहेन्द्रयो इन स्वर्गोके आचार्य ने नाम लिये हैं) अध्याहार किये गये हैं अथवा यों समझलाकि इस अध्यायके १९ वां सूत्र से 'ब्रह्म ब्रह्मोत्तर-लान्तव कापिष्ट-शुक्र महाशुक्र शतार सहस्रारेषु अनुवर्तत है ॥

(३) 'तु' शब्द अव्यय है, यहांपर परन्तु, किन्तु के अर्थात् भेद के अर्थमें प्रवर्तता है कभी वाक्यके पहिले नहीं आता है जिस अथवा जिन शब्दोंसे सम्बन्ध रखता है उसके अथवा उनके पश्चात् आता है जैसे यहा पर इस सूत्रके स्पष्टताके लिये मैंने 'तु' का उन शब्दोंसे (के) प्रथम रखदिया है जिनसे उसका सम्बन्ध है अर्थात् ऐसा अर्थ होता है कि सौधर्म स्वर्गसे सहस्रार तक उत्कृष्ट आयुसे कुछ अधिक आयु है आगे भेद (=तु) यह है कि पूरे पूरे सागरों की उत्कृष्ट स्थिति है 'स+अधिक' नहीं है ॥

आनत-प्राणत-आरण-अच्युतेषु३।

=आनत, प्राणत, आरण, अच्युत (स्वर्गों) में है अर्थात् आनत तेरहवांस्वर्ग, प्राणत चौदहवां स्वर्ग (प्रत्येक) में उत्कर्ष आयु(तेरह + सात)पूरे बीस सागरकी है और आरण पन्द्रहवां स्वर्ग अच्युत सोलहवां स्वर्ग (प्रत्येक) में उत्कृष्ट स्थिति (पंद्रह + सात) पूरे बाईस सागरकी है ॥ उपर्युक्तचारों स्वर्गोंमें पूरे पूरे सागरोंकी ही आयु है कुछ कुछ अधिक नहीं है इससे इस सूत्रमें 'तु' शब्द लाये है ॥

(अ) (11) इस सूत्रको छह सूत्रोंमें विभाग करके अनुवृत्तियों और अध्याहारों द्वारा निम्न लेखसे अर्थको स्पष्ट करदिया है ॥

(1)त्रिभिः३।।।अधिकानि१।।।(इसी सूत्रसे)(2)सप्त३सागरोपमाणि३।।।(२९और३०सूत्रोंसे)=तीनकरिअधिक सातसागर प्रमाणअर्थात्दशसागरप्रमाण

स-३अधिकानि१।।।(=सातिरेकानि सूत्र २९और वृत्ति सूत्र २९ से) परा१।।स्थितिः१।। =और कुछ अधिक (कुछ अतिरेक) उत्कृष्ट आयु

ब्रह्म-ब्रह्मोत्तरयोः२कल्पयोः२भवति।

=ब्रह्मलोक पांचवां स्वर्गमेंऔरब्रह्मोत्तर छठास्वर्गमेंहोतीहै

सारांश ब्रह्मलोक और ब्रह्मोत्तर स्वर्गोंमें कुछ अधिक दश सागर उत्कृष्ट स्थिति है

(इ) सप्तभिः३अधिकानि१।।।(इसी सूत्रसे) सप्त३सागरोपमाणि३।।।(३०,२९सूत्रोंसे) =सातकरि अधिक सात सागर प्रमाण अर्थात्१४सागर

स-अधिकानि३।।।(=सातिरेकानि-सूत्र२९ और वृत्ति सूत्र २९ से) परा१।।स्थितिः१।। =औरकुछअधिकअर्थात्१४सागरसेभीकुछअधिकउत्कृष्टआयु

लान्तव-कापिष्ठयोः२कल्पयोः२भवति।

=लान्तवस्वर्ग और कापिष्ठ (प्रत्येक) कल्पमें होती है

(उ) नवभिः३अधिकानि३।।।(इसीसूत्रसे) सप्त३सागरोपमाणि३।।।(२९और३०सूत्रोंसे) =नौ करि अधिक सात सागर प्रमाण अर्थात्सोलहसागर

स-अधिकानि३।।। (=सातिरेकानि सूत्र२९औरवृत्ति सूत्र२९से) परा१।।स्थितिः१।। =कुछ अधिक (=स-अधिकानि) उत्कर्ष स्थिति

शुक्र-महाशुक्रयोः२कल्पयोः२भवति।

=शुक्र नौवां में और महाशुक्र दशवां स्वर्गमे है भावार्थ नवमा स्वर्गमें और दशवां स्वर्ग प्रत्येक मे सोलह सागर से कुछ अधिक स्थिति हैं॥

(१) त्रिभि ३।।। = त्रि-सागरोपमै ३।।।क्योंकि सागरोपम शब्द नपुंसक लिंगी है और संख्याओंमें चारतक गणनाओंका लिंगभी वही होता है जो उसके सम्बन्धवाली संज्ञा का होता है अतः 'त्रिभिः' को नपुंसक लिंगमें रक्खा है (२) सप्तभिः इत्यादि का त्रिलिंगी इस हेतुसे रक्खा है कि पांचसे उन्नीस तक संख्यायें विशेषण मानी जासकती हैं इन संख्याओंका वचन और कारक वही होताहै जो संज्ञाका परन्तु येसंख्यायें केवल बहुवचनमेंआती हैं और तीनों लिंगों में वही अर्थात् एकही रूप होता है ॥

(३) सर्वार्थसिद्धि वृत्तिके पृष्ठ,२५४में 'अधिके' शब्दजो सूत्रमें आयाहै उसकी वृत्ति पूज्यपादस्वामीने 'स अतिरेके' की है अतिरेकका अर्थ अधिकहै इसलिये सूत्र में अधिके = स-अधिके ॥

(ऋ) एकादशभिः[३]अधिकानि[३]।।(इसीसूत्रसे)सप्त[३]सागरोपमाणि[३]।।(२९,३०सूत्रोंसे) =ग्यारहकरिअधिक सातसागर प्रमाणअर्थात्अठारहसागर

स-अधिकानि[१]।।(सातिरेकानि २९सूत्रऔर वृत्तिसूत्र २९से) परा[१]।।स्थितिः[१]।। =(और) कुछ अधिक (स-अधिकानि) उत्कृष्ट आयु

शतार-सहस्रारयोः[७]कल्पयोः[७]। =शतार स्वर्गमें और सहस्रार (प्रत्येक) स्वर्गमें है

(लृ) तु*त्रयोदशभिः[३]अधिकानि[३]।। (इसी सूत्रसे) =किन्तु(पर)अर्थात्कुछअधिकस्थितिकेविनातेरहकरिअधिक

सप्त[३]सागरोपमाणि[३]।। (२९ और३०सूत्रोंसे)परा[१]।।स्थितिः[१]।।(२८सूत्रदेखो) =सात सागर प्रमाण अर्थात् पूरे बीस सागर उत्कृष्ट आयु

आनत-प्राणतयोः[७]कल्पयोः[७]। =आनत स्वर्ग और प्राणत (प्रत्येक) स्वर्गमें है

(ए) तु*पञ्चदशभिः[३]।।अधिकानि[३]।।(इसी सूत्रसे) =परन्तु(=तु)अर्थात्कुछअधिकस्थितिकेविनापंद्रहकरिअधिक

सप्त[३]सागरोपमाणि[३]।। (३०और२९सूत्रोंसे)परा[१]।।स्थितिः[१]।।(टिप्पणीसूत्र२८) =सातसागर प्रमाण अर्थात् पूरे बाईस सागर,उत्कर्षस्थिति

आरण-अच्युतयोः[७]कल्पयोः[७]। =आरण स्वर्ग और अच्युत स्वर्ग (प्रत्येक) में है

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इकतीसवां सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिंदी अनुवाद

सौधर्म स्वर्गसे अच्युत स्वर्ग तक श्वेताम्बर और दिगम्बर आम्नायोंके देवोंकी समानता और अन्तरकी सूची निम्न प्रकार है॥ देखो सभाष्य०

दिगम्बर आम्नायके स्वर्गोंके नाम और उनकी उत्कृष्ट स्थिति सहित ॥	श्वेताम्बर आम्नायके स्वर्गोंके नाम उन स्वर्गों की उत्कृष्ट आयुसहित
() दो सागर प्रमाणसे कुछअधिक उत्कृष्टआयु सौधर्मस्वर्गके देवोंकी है (सूत्र२९)	() सौधर्म कल्पके देवोंकी उत्कृष्ट आयु दो सागर प्रमाण है (सूत्र३४)
() कुछ अधिकदो सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति ऐशान स्वर्गके देवोंकी है (सूत्र२९)	() ऐशानस्वर्गके देवोंकी उत्कर्षस्थिति कुछअधिक दोसागरहै(सूत्र३५)
() कुछ अधिकसातसागर प्रमाणउत्कर्षआयु सानत्कुमारकल्पकेदेवोंकी है (सूत्र३०)	() सानत्कुमार स्वर्गके देवोंकी उत्कर्षआयु सात सागर है (सूत्र३६)
() कुछ अधिक सातसागर प्रमाण उत्कर्षआयु माहेन्द्र कल्पके देवोंकी है (सूत्र३०)	() माहेन्द्र कल्पकेदेवोंकी परास्थितिकुछअधिक सातसागरहै(सूत्र३७)
() कुछअधिकदशसागरोपमउत्कृष्टस्थितिब्रह्मलोकब्रह्मोत्तरस्वर्गकेदेवोंकीहै(सूत्र३१	() ब्रह्मलोक स्वर्गके देवोंकीउत्कृष्ट स्थिति दशसागरप्रमाणहै(सूत्र३७)
() कुछ अधिकचौदहसागरप्रमाण उत्कृष्टस्थितिलान्तव कापिष्ठ स्वर्गोंके देवोंकीहै	() लान्तक स्वर्गके देवोंकी उत्कर्षआयु चौदह सागरप्रमाणहै(सूत्र३७)
() कुछ अधिक सोलहसागर प्रमाण उत्कर्षआयु शुक्र महाशुक्रस्वर्गके देवोंकीहै ,,	() महाशुक्र कल्पके देवोंकी उत्कर्षआयु सत्रहसागर प्रमाणहै (सूत्र३७)
() कुछ अधिक अठारहसागरोपम उत्कृष्टस्थिति सतारसहस्रार स्वर्गोंकेदेवोंकीहै,,	() सहस्रार स्वर्गकेदेवोंकी परास्थिति अठारह सागरप्रमाणहै(सूत्र३७)
() आनत प्राणत कल्पोंके देवोंकी उत्कृष्ट आयु पूरेबीस सागर प्रमाण है (सूत्र३१)	() आनतप्राणतस्वर्गोंकेदेवोंकीउत्कृष्टआयुबीससागरप्रमाणहै(सूत्र३७)
() आरण अच्युतस्वर्गोंके देवोंकी उत्कर्षआयु पूरेबाईस सागर प्रमाण है (सूत्र३१)	()आरणअच्युतस्वर्गोंकेदेवोंकीपरास्थितिबाईससागरप्रमाणहै(सूत्र३७)

सप्तग्रहणं प्रकृतम् ।तस्येह त्र्यादिभिर्निर्दिष्टैरभिसम्बन्धो वेदितव्यः॥ सप्त त्रिभिरधिकानि, सप्त सप्तभिरधिकानीत्यादिद्वयोर्द्वयोरभिसम्बन्धो वेदितव्यः॥ तुशब्दो विशेषणार्थः॥ किं विशिनष्टि? अधिकशब्दोऽनुवर्तमानश्चतुर्भिरभिसम्बध्यते नोत्तराभ्यामित्ययमर्थो विशिष्यते॥ तेनायमर्थो भवति—ब्रह्मलोकब्रह्मोत्तरयोर्दशसागरोपमाणि साधिकानि॥लान्तवकापिष्ठयोश्चतुर्दशसागरोपमाणि साधिकानि॥ शुक्रमहाशुक्रयोः षोडशसागरोपमाणि साधिकानि ॥ शतारसहस्रारयोरष्टादशसागरोपमाणि

सप्त-ग्रहणम्[1/1]।।।प्रकृतम्[1/1]।।।	=(इस सूत्रमें पूर्व सूत्रसे) सात शब्दका ग्रहण अधिकृत अथवा प्रकरण रूप है
तस्य[6/1]।इह*त्रि-आदिभि[3/3]।निर्दिष्टैः[3/3]।अभिसम्बन्धः[1/1]।	=तिस सप्तका यहां तीन आदिक कहीहुई संख्याओंसे सम्बन्ध
वेदितव्यः[1/1]।सप्त[1/3]।।।त्रिभिः[3/3]।।।अधिकानि[1/3]।।।	=जानना चाहिये । तीन करि अधिक सात अर्थात् दश,
सप्त[1/3]।।।सप्तभिः[3/3]।।।अधिकानि[1/3]।।।	=सातकरि-अधिक सात अर्थात् चौदह
इत्यादि[1/1]।।।द्वयोः[6/2]।द्वयोः[6/2]।अभिसम्बन्धः[1/1]।वेदितव्यः[1/1]।	=इत्यादिक, दो दो संख्याओं का मिलाव वा जोड़ जानना योग्य है
तुशब्दः[1/1]।विशेषण-अर्थः[1/1]।किम्[1/1]।।।विशिनष्टि[1/1]।।। ?	=(इस सूत्रमें) तु शब्द भेदके (जनावनेके) लिये है प्रश्न क्या विशेषण है
अधिकशब्दः[1/1]।अनुवर्तमानः[1/1]।	=अधिक शब्द (विशेषण) है जिसकी अनुवृत्ति (२९वांसूत्रसेइससूत्रमेंभी) विद्यमानहै
चतुर्भिः[3/3]।अभिसम्बध्यतेT	=(इस सूत्रकी) चार (संख्या त्रि-सप्त-नव-एकादश) से सम्बन्धकीजाती वा जोड़ीजातीहै
न-उत्तराभ्याम्[3/2]।इति*	=न अग्रिम दो (गणना वा संख्या त्रयोदश-पंचदश) से इस प्रकार
अयम्[1/1]।अर्थः[1/1]।विशिष्यतेT।तेन[3/1]।अयम्[1/1]।अर्थः[1/1]।भवतिT	=यह अभिप्राय व्यक्त वा प्रगटकियाजाता है । तिस(अधिक शब्द)से यह अर्थहोताहैकि
ब्रह्मलोक-ब्रह्मोत्तरयोः[7/2]।दशसागरोपमाणि[1/3]।।।	=ब्रह्मलोक (पांचवा) ब्रह्मोत्तर (छठवां) स्वर्गोंमें दश सागर प्रमाण
स-अधिकानि[1/3]।।।लान्तव-कापिष्ठयोः[7/2]।	=कुछ अधिक (उत्कृष्ट स्थिति) है-लान्तव (सातवां) कापिष्ठ (आठवां) स्वर्गोंमें
चतुर्दश[1/3]।।।सागरोपमाणि[1/3]।।।स-अधिकानि[1/3]।।।शुक्र-	=चौदह सागर प्रमाण कुछ अधिक (उत्कर्ष आयु है) शुक्र (नवमां)
महाशुक्रयोः[7/2]।षोडश-सागरोपमाणि[1/3]।।।स-अधिकानि[1/3]।।।	=महाशुक्र (दशवां स्वर्गों) में सोलह सागर प्रमाण कुछ अधिक(उत्कृष्ट आयु) है
शतार-सहस्रारयोः[7/2]।अष्टादश-सागरोपमाणि[1/3]।।।	=शतार (ग्यारहवां) सहस्रार (बारहवां स्वर्ग मे) अठारह सागर प्रमाण

साधिकानि ॥ आनतप्राणतयोर्विंशतिसागरोपमाणि ॥ आरणाच्युतयोर्द्वाविंशतिसागरोपमाणि ॥

तत उर्ध्वं स्थितिविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ आरणाच्युतादूर्ध्वमेकैकेन नवसु ग्रैवेयकेषु विजयादिषु सर्वार्थसिद्धौ च ॥

स-अधिकानि[1]॥आनत-प्राणतयोः[2]	=कुछ अधिक (उत्कृष्टआयु है) आनत (तेरहवां) प्राणत (चौदहवां स्वर्ग) में
विंशति-सागरोपमाणि[3]॥	=वीस सागर प्रमाण अर्थात् कुछ अधिक विना, पूरे वीस सागर ही की(उत्कृष्टआयु) है
आरण-अच्युतयोः[2]द्वा-विंशति-सागरोपमाणि[3]॥	=आरण (पन्द्रहवां) अच्युत (सोलहवां स्वर्ग) में वाईस सागर प्रमाण अर्थात् कुछ अधिक स्थितिके अतिरिक्त, पूरे वाईस सागर की उत्कृष्ट आयु है
ततः*ऊर्ध्वम्*स्थिति-विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थम्[1]॥आह	=तिस (आठवां युगल) से ऊपर स्थिति विशेष जाननेके लिये (अगलेसूत्रमें) कहतेहैं कि

सूत्रम्(१) आरणाच्युतादूर्ध्वमेकैकेन नवसु ग्रैवेयकेषु विजयादिषु सर्वार्थसिद्धौ(३) च ॥३२॥

= आरणाच्युतादूर्ध्वमेकैकेन सागरोपमाणि (२९ वां सूत्रसे) अधिकानि (३१वां सूत्रसे) परा स्थितिः(२८वांसूत्रसे)ग्रैवेयकेषु नवसु(२) अनुदिशेषु विजय-वैजयन्त-जयन्त-अपराजितेषुसर्वार्थसिद्धौच

(१) चूंकि तेतीसवा सूत्रमें 'अपरा' शब्द जघन्यके अर्थमें लाये हैं इसलिये यहां 'परा' शब्द का अध्याहार भी उत्कृष्ट अर्थमें होसकता है ॥

(२) हमने इस बात पर कि 'ग्रैवेयकेषु' शब्दके पश्चात् 'नवसु' शब्द को क्यों रक्खा है पृष्ठ ५३ में एक पूर्ण टिप्पणी देदी है क्योंकि उन्नीसवां सूत्रमें भी 'नवसु' शब्द इसी प्रकरणमें आया है यहां पर अधिक तर्क यह होसकता है कि इस सूत्रका रूप 'ग्रैवेयकेषु नवसु विजयादिषु' होजाता है और फिर बाह्य रूप से अर्थ यह होजाता है कि नव ग्रैवेयक है और नव विजयादिषु है इसका उत्तर यह है कि उन्नीसवां सूत्रमें 'विजयादिषु' शब्द न लाकर 'विजय वैजयन्त जयन्त अपरोजितेषु' वाक्य लाये हैं जिससे प्रगट होता है कि विजयादिषु नौ विमान नहीं हैं वरन् चार ही विजय-वैजयन्त जयन्त और अपराजित है ॥

(३) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र में 'सर्वार्थसिद्धौ' के स्थानमें 'सर्वार्थसिद्धे' ऐसा पाठ है शेष पाठ एकसा है। अर्थ नवसु 'ग्रैवेयकेषु'तकएकसाहै हमारे यहांनव अनुदिशोंमें बत्तीससागरकी उत्कृष्ट आयु और विजयवैजयन्त,जयन्त और अपराजित प्रत्येकमें उत्कृष्ट आयुतेतीस तेतीस सागरकी है श्वेताम्बर आम्नायमें नवअनुदिश नहीं माने हैं वरन् तीन ऊपर की ग्रैवेयकनि में इक्यानवै विमान हमारे माने हैं और नौ अनुदिश पृथक माने हैं उनके यहां ग्रैवेयकनिके ९१ विमान न मानकर सौ विमान माने है अर्थात् नव अनुदिशोंको भी इन्हीं विमानोंमें समावेश करदिया है इसलिये यहां विजय वैजयन्त जयन्त और अपराजित प्रत्येक विमानमें उत्कृष्ट आयु बत्तीस सागर मानी है और सर्वार्थसिद्धि में हमारे यहां और उनके यहां तेतीस सागर की आयु उत्कृष्ट मानी है सर्वार्थसिद्धमें दोनों आम्नायके अनुकूल जघन्य स्थिति नहीं है ॥ देखो सभाष्य० पृष्ठ ११८ सूत्र ४२)

सूत्रार्थः–आरण-अच्युतात्[५।१]।ऊर्ध्वम्*एकैकेन[३।१]।।	=आरण-अच्युत (युगल) से ऊपर एक एक करि
(सागरोपमाणि[१।३]।।) अधिकानि[१।३]।।परा[१।१]।।स्थितिः[१।१]।।	=(सागर प्रमाण) वढ़ती हुई उत्कृष्ट आयु
ग्रैवेयकेषु[७।३]।नवसु[७।३]।अनुदिशेषु[७।३]।	=(क्रमसे प्रत्येक) नौग्रैवेयकविषैं और नौ अनुदिशोंमें
विजय-वैजयन्त-जयन्त-अपराजितेषु[७।३]।सर्वार्थसिद्धौ[७।१]।।च*	=विजय-वैजयन्त-जयन्त-अपराजितमें है सर्वार्थसिद्धि में स्थिति उत्कृष्ट ही (=च) है जघन्य नहीं होती है अर्थात् नीचेके ग्रैवेयकत्रिकमें प्रथम ग्रैवेयकमें

सूत्रमें 'च' शब्द निश्चयके अर्थमें है अर्थात् च = ही ॥ आशय यह है कि जो नीचे नीचे में उत्कृष्ट स्थिति है वह ऊपर ऊपर में जघन्य जघन्य है जैसे नौ अनुदिशमें बत्तीस सागर की उत्कृष्ट स्थिति है वही विजयादिकमें जघन्य है परन्तु सर्वार्थसिद्धिमें एक उत्कृष्ट स्थिति ३३ सागरसे अधिक आयु नहीं होसकती जघन्यस्थिति दोनों आम्नायमें सर्वार्थसिद्धिमें नहीं हैं॥ विजय, वैजयन्त, जयत, अपराजित विमानोंमें भी उत्कृष्टआयु तेतीससागरहै

दिगम्बर आम्नायके कल्पातीतों के नाम स्थिति सहित	श्वेताम्बर आम्नायके कल्पातीतोंके नाम स्थिति सहित
() प्रत्येक नवग्रैवेयकमें क्रमसे अहमिंद्रोंकी उत्कृष्ट आयु २३, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ सागर प्रमाण है ॥आनत तेरहवां स्वर्गसे नवग्रैवेयक पर्यन्त दोनों आम्नायकी स्थितिमें भेदनहींहै	() प्रत्येक नवग्रैवेयकमें क्रमसे अहमिंद्रोंकी उत्कृष्ट आयु २३, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१, सागर प्रमाण है । आनत तेरहवां स्वर्गसे नवग्रैवेयक तक दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायोंकी उत्कृष्ट स्थिति वा जघन्य स्थितिमें अन्तर नहीं है
() नौ अनुदिशोंके प्रत्येक अहमिंद्रकी उत्कृष्ट स्थिति ३२ सागर है हमारे यहां ऊर्ध्वग्रैवेयकत्रिकमें ९१ विमान माने हैं और नौ अनुदिश ऐसे १०० विमान माने हैं	() श्वेताम्बर आम्नायमें नवअनुदिश नामसे विमान नहीं माने हैं पर तीन ऊपर की ग्रैवेयकत्रिकमें १०० विमानोंमें हमारे यहांके नौ अनुदिशोंको भी समावेश करलिया है (देखो अध्याय ४ पृष्ठ ४९)
() विजय वैजयन्त जयन्त-अपराजित चार विमानोंके अहमिंद्रोंमें से प्रत्येककी उत्कृष्ट आयु तेतीस सागर प्रमाण है	() विजय वैजयन्त जयन्त अपराजित चार विमानोंके अहमिंद्रोंमेंसे प्रत्येककी उत्कृष्ट आयु बत्तीस सागरोपम है (सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्र ३८ पृष्ट११७)
() सर्वार्थसिद्धिके अहमिंद्रोंमें से प्रत्येककी उत्कृष्ट तथा जघन्यआयु तेतीस ही सागर प्रमाण है ॥	() सर्वार्थसिद्धिके अहमिंद्रोंमेंसे प्रत्येककी उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागर प्रमाण है (देखो सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्र' ३८, ४२ पृष्ठ ११७, ११८)

इस टिप्पणी से प्रगट है कि श्वेताम्बर आम्नायमें नव अनुदिश नहीं माने है परन्तु 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र' में 'परत' परत' पूर्वापूर्वाऽनतरा जो ४२ वां सूत्रहै (हमारे यहां ३४वां है) वह इस बातका ज्ञापक है कि नवग्रैवेयकोंके और विजय वैजयन्त-जयन्त अपराजित विमानोंके मध्यमें कोई

तेईस सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति दूसरेमें चौवीस सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु, तीसरेमे पच्चीस सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु, वहुरि मध्य ग्रैवेयकत्रिकमे प्रथममें छब्बीस सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु, दूसरेमे सत्ताईस सागर प्रमाण परा स्थिति, तीसरेमे अट्ठाईस सागर प्रमाण परा स्थिति है और ऊपरके ग्रैवेयकत्रिकमें प्रथममें उनतीस सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति, दूसरेमे तीससागर प्रमाण परास्थिति, तीसरेमें इकतीस सागरप्रमाण परास्थितिहै

और विमानवासी है जिनकी उत्कृष्ट आयु वत्तीस सागर होसक्ती है। हम उसको यहांपर सस्कृत भाष्य, हिंदी अनुवाद और चरण टिप्पणी सहित सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र के पृष्ठ ११८ से शब्दशः उद्धृत करते है

॥ परत परतः पूर्वापूर्वाऽनन्तरा ॥ ४२ ॥

सूत्रार्थ —"माहेन्द्र कल्पके परे पूर्व अर्थात् पूर्व २ स्वर्गोंमें जो परास्थिति है वह पर २ में जघन्या अर्थात् अपरा स्थिति होती है ॥"

भाष्यम्—"माहेन्द्रात्परतः पूर्वा परानन्तरा जघन्यास्थितिर्भवति। तद्यथा-माहेन्द्रे परा स्थितिर्विशेषाधिकानि सप्त सागरोपमाणि सा ब्रह्मलोके जघन्या भवति। ब्रह्मलोके दश सागरोपमाणि परास्थिति. सा लान्तके जघन्या। एवमासर्वार्थसिद्धादिति। (विजयादिषु चतुर्षु परा स्थितिस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि सा त्वजघन्योत्कृष्टा सर्वार्थसिद्ध इति)"

विशेष व्याख्या—माहेन्द्र कल्पसे आगे पूर्व २ की जो परास्थिति है वह पर २ अर्थात् आगे २ के कल्पोंमें अपरा स्थिति होजाती है। जैसे माहेन्द्र कल्पमें परास्थिति विशेष अधिक सप्त सागरोपम है, वह ब्रह्मलोकमें अपरा अर्थात् जघन्या है। ऐसेही ब्रह्मलोकमे परा स्थिति दश सागरोपम है वह लान्तकमें जघन्या वा अपरा स्थिति है। इसी प्रकार पूर्व २ की परा स्थिति पर २ की जघन्या स्थिति सर्वार्थसिद्धि (१) पर्यन्त जाननी चाहिये। (२) (विजयआदि चार विमानों में परा स्थिति तेंतीस सागरोपम है, वह सर्वार्थसिद्धमें अजघन्योत्कृष्टा है।) ॥" चरणटिप्पणी (१) (२) सभाष्य०में ऐसेहैं कि "(१) यहां पर यह जानना उचित है कि विजय आदि चार विमानोंमें परास्थिति वत्तीस सागरोपम है और सर्वार्थसिद्धमें तेंतीस सागरोपम अजघन्योत्कृष्टा है, अर्थात् वहां एकही स्थिति है, परा अपरा भेद नहीं है। और भाष्यकार सर्वार्थसिद्धिमें भी जघन्या वत्तीस सागरोपम है ऐसा जो कहते हैं आसर्वार्थसिद्धात्-उसका अभिप्राय नहीं ज्ञात होता है। कदाचित् यहां आङ् (आ) मर्यादाबोधक हो अर्थात् सर्वार्थसिद्ध को छोडके "तेन विना मर्यादा तत्सहितोऽभिविधिः ॥"

"॥२॥ विजयादिककी परास्थिति तो वत्तीस की (३२) कही है यहां ३३ किस अभिप्राय से कहे यह नहीं जाना जाता। और कहीं २ कोष्ठका पाठ नहीं है क्योंकि अर्थ संगत नहीं है" आङ् मर्य्यादाभिविध्यो. अष्टाध्यायी २। १। १३ ॥ आङ् (=आ) जिसके प्रथम आवे तिसको छोड कर (तेनविना) मर्यादा अर्थमें आता है जैसे आपाटलिपुत्रात् वृष्टो: देव=पटना को छोड़कर मेह वरषा ॥ तिस सहित (=तत्सहित) अभिविध अर्थमें आता है=आ आकाशादेकद्रव्याणि=आकाशको लेते हुये वा आकाश को समावेश करते हुये एक एक द्रव्यें हैं ॥ अर्थात् धर्मद्रव्य,अधर्मद्रव्य औरआकाश ये एक२ हैं।

अधिकग्रहणमनुवर्तते। तेनेहाभिसम्बन्धो वेदितव्यः। एकैकेनाधिकानीति ॥ नवग्रहणं किमर्थम्? प्रत्येकमेकैकमधिकमिति ज्ञापनार्थम् ॥ इतरथा हि ग्रैवेयकेष्वेकमेवाधिकं स्यात् ॥ विजयादिष्विति आदिशब्दस्य प्रकारार्थत्वादनुदिशानामपि ग्रहणम्॥ सर्वार्थसिद्धेः पृथग्ग्रहणं जघन्याभावप्रतिपादनार्थम्

तथा अनुदिश विमानविषैं बत्तीस सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु है विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित प्रत्येक विमान में उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागर है सर्वार्थसिद्धि विषैं तेतीस सागर ही स्थितिहै (-यहांजघन्य स्थितिनहींहैएक हीआयु है)

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित बत्तीसवां सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिंदी अनुवाद

अधिक-ग्रहणम् [१।१] अनुवर्तते [ ]	=(इस सूत्रमें) अधिक शब्दका उपादान (पिछले ३१ वां सूत्रसे) प्रवर्तता है
तेन [३।१] इह * अभिसम्बन्धः [१।१] वेदितव्यः [१।१] एक-एकेन [३।१]	=तिस (अधिक शब्दके ग्रहण) से इह सम्बन्ध जानना चाहिये (कि) एक एक
अधिकानि [१।३] इति * नव-ग्रहणम् [१।१] किम् [१।१] अर्थम् [१।१]	=(सागर प्रमाण)करि अधिक है(प्रश्न)(इस सूत्रमें) नौ(शब्द)काग्रहणकिसलियेहै
प्रत्येकम् [१।१] एकैकम् [१।१] अधिकम् [१।१] इति ज्ञापन-अर्थम् [१।१]	=(उत्तर) पृथक् पृथक् (ग्रैवेयकमे) एकएक सागर बढ़ती(आयु)ऐसाजाननेकेलियेहै
इतरथा * हि * ग्रैवेयकेषु [७।३] एकम् [१।१] एव *	=क्योंकि (=हि) अन्यथा (सर्व) ग्रैवेयकोमें एक (सागर प्रमाण) ही (स्थिति)
अधिकम् [१।१] स्यात् [ ]	=अधिक होती अर्थात् सब नव ग्रैवेयकोंकी स्थिति तेईस सागर होती किसी की भी अधिक नहीं होती इसलिये इससूत्रमें नव शब्दका ग्रहण है
विजय-आदिषु [७।३] इति * आदिशब्दस्य [६।१] प्रकार-अर्थत्वात् [५।१]	=विजय-आदिकमें ऐसे आदि शब्दके प्रकारार्थ होनेसे
अनुदिशानाम् [६।३] अपि * ग्रहणम् [१।१] सर्वार्थसिद्धेः [६।१]	=अनुदिशोंका भी ग्रहण हुआ। सर्वार्थसिद्धिका (इस सूत्रमें)
पृथग्-गृहणम् [१।१] जघन्य-अभाव-प्रतिपादन-अर्थम् [१।१]	=भिन्न ग्रहण (वहां) जघन्य (स्थिति) का न होना जनावनेके लियेहै अर्थात् विजय-वैजयन्त-जयन्त-अपराजित-और सर्वार्थसिद्धि इन पांचो विमानों का

जब एकही पटल है और सर्वमें उत्कृष्ट आयु तेतीस सागर प्रमाण है तौसूत्रमें 'सर्वार्थसिद्धौ' ऐसा पृथक् वाक्य क्योंलाये औरभिन्न विभक्ति क्योंकी "विजयादिषु" इसमें गर्भित क्यों न रक्खा इसका कारण यह है कि अन्य चार विमानोंमें तो जघन्य स्थिति बत्तीस सागर प्रमाण है और उत्कृष्ट तेतीस सागर प्रमाण है परन्तु सर्वार्थसिद्धिमेकेवल उत्कृष्टही स्थितिहैजघन्य नहींइससे इसको पृथक् लायेऔरसप्तमीविभक्तिमें लायेहैं ॥

तेनायमर्थः, अधोग्रैवेयकेषु प्रथमे त्रयोविंशतिः । द्वितीये चतुर्विंशतिः ॥ तृतीये पञ्चविंशतिः ॥ मध्यमग्रैवेयकेषु प्रथमे षड्विंशतिः ॥ द्वितीये सप्तविंसतिः ॥ तृतीयेऽष्टाविंशतिः ॥ उपरिमग्रैवेयकेषु प्रथमे एकोनत्रिंशत् ॥ द्वितीये त्रिंशत् ॥ तृतीये एकत्रिंशत् ॥ अनुदिशविमानेषु द्वात्रिंशत् ॥ विजयादिषु त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाण्युत्कृष्टा स्थितिः । सर्वार्थसिद्धेस्त्रयस्त्रिंशदेवेति ॥ निर्दिष्टोत्कृष्ट-स्थितिकेषु देवेषु जघन्यस्थितिप्रतिपादनार्थमाह—

तेन ॥ अयम् ॥ अर्थः ॥ अध*(१) ग्रैवेयकेषु ॥	=तिस (नवशब्दके ग्रहण) से यह अर्थ होता है कि नीचले ग्रैवेयक त्रिकमें
प्रथमे ॥ त्रयोविंशतिः ॥ द्वितीये ॥ चतुर्विंशतिः ॥	=पहिलेमें तेईस(सागरप्रमाणउत्कृष्टस्थिति)है । दूसरेमें चौवीस(सागरप्रमाणउत्कृष्टआयु)है।
तृतीये ॥ पञ्चविंशतिः ॥ मध्यम-ग्रैवेयकेषु ॥	=तीसरेमे पचीस (सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति) है । मध्यग्रैवेयकत्रिकमें
प्रथमे ॥ षड्-विंशतिः ॥ द्वितीये ॥	=प्रथममें छव्वीस (सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु) है । दूसरेमें
सप्तविंशतिः ॥ तृतीये ॥ अष्टाविंशतिः ॥	=सत्ताईस (सागरप्रमाणउत्कृष्ट आयु)है। तीसरेमें अट्ठाईस (सागरप्रमाणउत्कृष्टस्थिति)है।
उपरिम*ग्रैवेयकेषु ॥ प्रथमे ॥ एकोनत्रिंशत् ॥	=ऊपरके ग्रैवेयक त्रिकमें प्रथममें उनतीस (सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु) है ।
द्वितीये ॥ त्रिंशत् ॥ तृतीये ॥	=दूसरेमें तीस (सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु) है । तीसरेमें
एकत्रिंशत् ॥ अनुदिश-विमानेषु ॥	=इकतीस (सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति) है । अनुदिश विमानोंमें
द्वा-त्रिंशत् ॥ विजय-आदिषु ॥	=वत्तीस (सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु) है । विजय-वैजयन्त-जयन्त-अपराजितमें
त्रयस्त्रिंशत् ॥ सागरोपमाणि ॥ उत्कृष्टा ॥ स्थितिः ॥	=तेतीस सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु है ।
सर्वार्थसिद्धे ॥ त्रयस्त्रिंशत् ॥ एव*इति*	=सर्वार्थसिद्धिमे तेतीस ही (सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति) है (जघन्यस्थिति नहीहोती है)
निर्दिष्ट-उत्कृष्ट स्थितिकेषु ॥ देवेषु ॥	=वर्णित उत्कर्ष स्थिति वाले देवोंमें
जघन्य-स्थिति-प्रतिपादन-अर्थम् ॥ आह ॥	=जघन्य आयुके कहने के लिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

(१) यहां कर्त्ताराना सूत्रमें नवसु ग्रैवेयकेषु विजयादिषु इस रूपसे पृथक् पृथक् उल्लेख क्यों किया है नवग्रैवेयक विजयादिषु ऐसा समासांतपद [illegible] मानना चाहिये था । ऐसा मानने में दो अक्षरों का लाघव भी होता । (उत्तर) ग्रैवेयकोंसे विजयादि विमानोंका जो पृथक् रूपसे ग्रहण कियागया है वह नौ अनुदिश विमानोंके संग्रहके लिये है यदि 'नवग्रैवेयक विजयादिषु' ऐसा उल्लेख करते तो नव अनुदिशी विमानोंका ग्रहण नहीं होता वे कथन करनेसे रहजाते हैं ॥

॥ अपरा पल्योपममधिकम् ॥ ३३ ॥

पल्योपमं व्याख्यातम् । अपरा जघन्यस्थितिः ॥ पल्योपमं साधिकम् ॥ केषां ? सौधर्मैशानीयानाम् ॥ कथं गम्यते परतः परत इत्युत्तरत्र वक्ष्यमाणत्वात् ॥

तत ऊर्ध्वं जघन्यस्थितिप्रतिपादनार्थमाह—

(१)सूत्रम्—अपरापल्योपममधिकम्॥३३॥ =(सौधर्मैशानयोः २९वां सूत्रसे) अपरा (स्थितिः २८वां सूत्रसे) पल्योपमम् अधिकम् भवति ॥ ३३ ॥

सूत्रार्थः—सौधर्म-ऐशानयोः॥अपरा॥स्थितिः॥ =सौधर्म-ऐशान प्रत्येक स्वर्गमें जघन्य आयु
पल्योपमम्॥अधिकम्॥भवति। =कुछ अधिक पल्य प्रमाण है

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इसतेतीसवां सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशःहिंदी अनुवाद

पल्य-उपमम्॥व्याख्यातम्॥ =पल्यका प्रमाण (तीसरे अध्याय के ३८ वां सूत्रमें) कहा जा चुका है
अपरा॥जघन्य-स्थितिः॥पल्योपमम्॥स-अधिकम्॥ =अपरा है सो निकृष्ट स्थिति है (सो) कुछ अधिक पल्य प्रमाण है
केषाम्॥? =(प्रश्न) किनकी (जघन्य आयु कुछ अधिक पल्य प्रमाण) है
सौधर्म-ऐशानीयानाम्॥ =(उत्तर) सौधर्म-ऐशानके देवोंकी निकृष्ट स्थिति कुछ अधिक पल्य प्रमाण है
कथम्*गम्यते। परतः*परतः*इति*उत्तरत्र* =(प्रश्न)कैसे जाना जाय है ॥ [उत्तर] अगले अगलेमें ऐसा यहांसे अग्रिम [सूत्रमें]
वक्ष्यमाणत्वात्॥ =कहेजानेसे सौधर्मऐशान स्वर्गोंमें जघन्य स्थितिकुछअधिक पल्य प्रमाणजानीजाती है
ततः*ऊर्ध्वम्॥जघन्य-स्थिति-प्रतिपादन-अर्थम्॥आह। =वहां [सौधर्म ऐशान युगल] से ऊपर निकृष्ट आयुके कहनेके लिये कहतेहैं कि

(१) श्वेताम्बर आम्नायमें 'अपरा पल्योपममधिकम् च' पाठ है अर्थात् हमारे यहांसे च अधिक है और सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रके पृष्ठ ११७ पर यह भाष्य है कि तत्र सौधर्मेऽपरा स्थितिः पल्योपममैशाने पल्योपममधिक च = तहां सौधर्म (स्वर्ग) में जघन्य आयु पल्यप्रमाण है (और) ऐशान (स्वर्ग) में पल्य प्रमाण तथा कुछ अधिक है। हमारे यहां सौधर्म ऐशान प्रत्येकमें एक पल्यसे कुछअधिक निकृष्ट आयुहै यही अर्थभेद दोनोंआम्नायोंमेंहै

परतः परतः पूर्वा पूर्वा ऽनन्तरा ॥ ३४ ॥

परतः परतः पूर्वा पूर्वा ऽनन्तरा ॥३४॥ = पूर्वा पूर्वा ऽनन्तरा परतः परतः ॥३४॥

सूत्रम्—परतः परतः पूर्वा पूर्वा ऽनन्तरा ॥३४॥ = पूर्वा पूर्वा ऽनन्तरा परतः परतः ॥३४॥

सूत्रम्—परतः परतः पूर्वा पूर्वा ऽनन्तरा ॥३४॥ (१)परास्थितिः २८वां सूत्रसे)(३)परतः (४)परतः(अपरा ३३वां सूत्रसे)(स्थितिः २८वां सूत्रसे)भवति =पूर्वा पूर्वा (२)ऽनन्तरा(साधिका ३३वां सूत्रसे)

(१)अट्ठाईसवां सूत्रमें भवनवासी देवोंकी उत्कृष्ट स्थिति वा आयुका वर्णन है उनतीसवां सूत्रसे बत्तीसवां तक चार सूत्रोंमें समस्त कल्पवासी और कल्पातीत अहमिन्द्रोंकी उत्कृष्ट आयुका उल्लेख है। तेतीसवां सूत्रसे अडतीसवां सूत्र तक और ४१वां सूत्रमें भी कल्पवासी देव कल्पातीत अहमिन्द्र (सर्वार्थसिद्धि को छोडकर जहां उत्कृष्ट जघन्य तेतीस सागरकी एकही स्थिति है) नारकियों, भवनवासी, और व्यतर देवोंकी जघन्य आयु का प्रकरण है॥ इस सूत्रमें कुछ अधिक = अधिका = साधिकाकी अनुवृत्ति३३वां सूत्रसे आतीहै जैसाकि ३४वां सूत्रकी वृत्तिमें अधिक ग्रहणमनुवर्तते और तीन स्थानोंमें साधिका वाक्योंके प्रयोगसे प्रगट है नकि उक्त अनुवर्तन उनतीसवां सूत्रसे है क्योंकि वहां उनतीसवां सूत्रमें उत्कृष्ट आयुका कथन है। और स्थितिः शब्द जो प्रथमा विभक्ति एक वचन स्त्रीलिंग में है

(२) पूर्वा पूर्वा और अनन्तरा शब्द प्रथमा विभक्ति एक वचन स्त्रीलिंग हैं और स्थितिः शब्द जो प्रथमा विभक्ति एक वचन स्त्रीलिंग में है उसके विशेषण हैं नकि स्वर्ग, कल्प वा युगल इत्यादि के (३)पर अर्थात् अगले देशमें जो रहे उसको 'परतः कहते हैं 'परतः परतः' यहां पर वीप्सा वा अनेकता अर्थमें द्वित्व(=दोवार)है 'पूर्वा पूर्वा'यहां पर भी वीप्साअर्थमें द्वित्व है॥(४)श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें हमारे यहांके ३३वां और ३४वां सूत्रके मध्यमें उनके यहांका ४०वां सूत्र सागरोपमे = सानत्कुमार कल्पमें जघन्य स्थिति दो सागर प्रमाण है और ४१वां सूत्र अधिकेच = माहेन्द्र स्वर्गमें जघन्य स्थिति कुछ अधिक दो सागर प्रमाण बढती वा अधिक है। इन ४०वां, वा ४१वां सूत्रोंके पश्चात् उनके यहां का ४२वां सूत्र 'परत. परतः पूर्वा पूर्वाऽनन्तरा हमारे यहांके उपर्युक्त ३४वां सूत्रके पाठसे अक्षरश मिलता है परन्तु तात्पर्यमें अन्तर यह है कि सभाष्य-तत्त्वार्थाधिगम सूत्रके अनुसार इस सूत्रसे ब्रह्मलोककी जघन्य स्थिति का आरम्भ होता है और सर्वार्थ सिद्धिकी स्थिति तकका वर्णन है हमारे यहांके अनुकूल इस सूत्रसे सानत्कुमार माहेन्द्र युगल की जघन्य स्थिति का प्रारम्भ होता है और विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित विमानोंतककी जघन्य आयुका कथन है। दोनों अम्नायोंके अनुकूल सर्वार्थ सिद्धिमें एक तेतीस सागरकी अजघन्योत्कृष्टा स्थिति है यहां पर परा अपरा स्थितिका भेद नहीं है(सभाष्य० पृष्ठ ११७,११८)इसलिये हमारे यहां सौधर्म ऐशान दोनो स्वर्गोंकी जघन्य स्थिति दो पल्य प्रमाणसे प्रत्येकमें कुछ अधिक है। श्वेताम्बर आम्नायके अनुसार सौधर्म स्वर्गमें जहां पर स्थिति एक पल्य प्रमाण है ऐशान स्वर्ग में एक पल्यसे निकृष्ट स्थिति कुछ अधिक है (सभाष्य सूत्र ३६)वैसेही हमारे यहां सानत्कुमार माहेन्द्र प्रत्येक स्वर्गमें जघन्यस्थिति दोसागर प्रमाणसे कुछ अधिक है उनके यहां सानत्कुमार स्वर्गमें दोसागर प्रमाण जघन्य स्थिति है और माहेन्द्र कल्पमें अपरा स्थिति दो सागरसे कुछ अधिक है। जो टिप्पणी हमने पृष्ठ १०१, १०४, १०५, में उत्कृष्ट स्थितिके सम्बन्धमें दी हैं उनसे यद्यपि जघन्य स्थिति का भेद निकल आता है तो भी सरलताके लिए निम्न टिप्पणी भी देते हैं॥

दिगम्बर आम्नायकी सौधर्मस्वर्गसे सर्वार्थसिद्धि तक जघन्यु आयु	श्वेताम्बर आम्नायकी सौधर्मस्वर्गसे सर्वार्थसिद्धि तक जघन्य स्थिति
() सौधर्म और ऐशान स्वर्गो की देवों की जघन्य स्थिति एक पल्य से कुछ अधिक है(देखो सूत्र३३)	() सौधर्मस्वर्गमें जघन्य आयु एक पल्य है और ऐशानस्वर्गमें एक पल्यसे कुछ अधिक है (देखो सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रमें सूत्र ३६)

() सानत्कुमार माहेन्द्र स्वर्गोंके (प्रत्येकके) देवों की जघन्य आयु दो सागर से कुछ अधिक है (देखो सूत्र २९,३४)

() ब्रह्म ब्रह्मोत्तर(प्रत्येक)स्वर्गके देवोंकी अपरा स्थिति सात सागरसे कुछ अधिक है (देखो सूत्र ३०, ३४)

() लांतव—कापिष्ठ (प्रत्येक) स्वर्गके देवों की निकृष्ट आयु दश सागरसे कुछ अधिक है (देखो सूत्र ३१, ३४)

() शुक्र—महाशुक्र (प्रत्येक)स्वर्गके देवोंकी जघन्य स्थिति चौदह सागरसे कुछ अधिक है (देखो सूत्र ३१, ३४)

() शतार-सहस्रार (प्रत्येक) कल्पके देवोंकी अपरा आयु सोलह सागर से कुछ अधिक है (देखो सूत्र ३१, ३४)

() आनत—प्राणत(प्रत्येक) स्वर्गके देवोंकी निकृष्ट स्थिति पूरे अठारह सागर है (देखो सूत्र ३१,३४)

() आरण—अच्युत (प्रत्येक) कल्पके देवोंकी जघन्य आयु पूरे बीस सागर प्रमाण है (देखो सूत्र ३१, ३४)

() प्रत्येक नव ग्रैवेयकमें क्रमसे एक एक वृद्धिको प्राप्त बाईस सागर से ३० सागर तक जघन्य स्थिति है (देखो सूत्र ३२,३४)

() नव अनुदिश जिनका एक पटल है जघन्य स्थिति ३१ सागर है (देखो सूत्र ३२, ३४)

() विजय—वैजयन्त—जयन्त—अपराजितमें (प्रत्येकमें) जघन्य आयु ३२ सागर है (देखो सूत्र ३२,३४)

() सर्वार्थसिद्धिमें जघन्योत्कृष्ट एकही स्थिति तेतीससागर प्रमाणहै

() सानत्कुमार में जघन्य स्थिति दो सागर है (सभाष्य० सूत्र ४०)माहेन्द्रमें दो सागर से अधिक है (देखो सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें सूत्र४१)

() ब्रह्मलोक (ब्रह्मोत्तर स्वर्ग सभाष्य० सूत्रमें नहीं है) में सात सागर से कुछ अधिक है (देखो सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसत्रमें सूत्र ४२)

() लांतक (कापिष्ठ सभाष्य०सूत्रमें नहीं माना है)में जघन्य स्थिति दस सागर है (देखो सभाष्य तत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें सूत्र४२)

() महाशुक्र कल्प (शुक्र कल्प सभाष्य०सूत्र में नहीं है)में जघन्य स्थिति चौदह सागर है (देखो सभाष्य तत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें सूत्र४२)

() सहस्रार स्वर्ग (शतार सभाष्य०में नहीं माना है)में जघन्य आयु सोलहसागर है (देखो सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें सूत्र४२)

() आनत प्राणत स्वर्गोंमें वही जघन्य स्थितिहै जो हमारे यहां है (सभाष्य०सूत्र ३७, ४२)

() आरण अच्युत स्वर्गोंमें वही स्थितिहै जो हमारे यहां है(सभाष्य०सूत्र३७ ४२)

[] सभाष्य० के सूत्र ३८, ४२, से वही जघन्य स्थिति श्वेताम्बर आम्नाय में है

[] नव अनुदिश नहीं माने है इस लिये जघन्य और प्रकृष्ट कोई स्थिति नहीं हो सकती है।

[] विजय—वैजयन्त—जयन्त-अपराजित में सभाष्य० के आरणाच्युत इत्यादि ३८वां सूत्र को परत परत पूर्वा पूर्वाऽनन्तरा' ४२वां सूत्रके साथ पढने से यह बात निकलती है कि प्रत्येक उक्त चार विमानों में जघन्य आयु ३१ सागर है क्योंकि अनुदिश नहीं माने हैं परन्तु ४२ सूत्रके कोष्ठकका पाठ कि विजयादि चार विमानोंमें परास्थिति तेतीस सागर है इस बात का ज्ञापक है कि जघन्य आयु ३२ सागर है क्योंकि विजयादिक की उत्कृष्ट स्थिति ३८,४२ सूत्रमें बतीस सागर है ४२वां सूत्रके कोष्ठकमें ३३ सागर है

[] सर्वार्थसिद्धिमें जघन्योत्कृष्ठ एक ही आयु तेतीस सागर है।

परस्मिन्देशे परतः । वीप्सायां द्वित्वम् । पूर्वशब्दस्याप्यधिकग्रहणमनुवर्तते ॥ तेनैवमभिसम्बन्धः क्रियते-सौधर्मैशानयोर्द्वे सागरोपमे साधिके उक्ते, ते साधिके सानत्कुमारमाहेन्द्रयोर्जघन्यस्थितिः ॥ सानत्कुमारमाहेन्द्रयोः

सूत्रार्थः-पूर्वा पूर्वा अनन्तरा साधिका परा स्थितिः =पहिली पहिली अत्यन्त निकट (=अनन्तरा) कुछ अधिक सहित, उत्कृष्ट स्थिति

परतः॰ परतः॰ अपरा स्थितिः भवतिT =अगले अगलेमें वा ऊपर ऊपरमें (=परतःपरतः) जघन्य स्थिति होती है अर्थात् सर्वार्थसिद्धिको छोड़कर जहां जघन्य और उत्कृष्ट एक स्थिति तेतीस सागरकी ही है । वैमानिकदेवोंमें नीचे नीचे पुगलोंमें जो उत्कृष्ट आयु है वही ऊपर ऊपर क्रमसे निकृष्ट स्थिति है जैसे सौधर्म ऐशान प्रत्येक स्वर्गमें कुछ अधिक दोसागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु है वही सानत्कुमार माहेन्द्र युगलमें जघन्य है॥

वृत्त्यनुवादः—परस्मिन् देशे 'परतः'॰ =उत्तर ऊपर वा अगले स्थानमें जो रहै (वा हो) सो 'परतः' है

वीप्सायाम् द्वित्वम् =अनेकता वा वार वारके (अर्थ)में दो वार (=द्वित्व) (इस सूत्रमें परतः और पूर्वा प्रत्येक शब्द लाये) हैं अर्थात् इस सूत्रमें 'परतः परतः' दोवार लानेसे और 'पूर्वा पूर्वा' भी दोवार लानेसे बहुतवार अनेकवारके अर्थमें दोनोंही शब्दोंका प्रयोग सूत्रमें जानना चाहिये ।

पूर्वशब्दस्य अपि॰अधिक-ग्रहणम् अनुवर्ततेT =(इस सूत्रमें) 'पूर्व' शब्दके भी (=अपि) (तेतीसवां सूत्रसे) 'अधिक' शब्दका आदान आता है अर्थात् नीचले नीचले कल्प युगलोंमें जो उत्कृष्ट स्थिति सागर प्रमाणोंसे कुछ अधिक है वह ऊपर ऊपरके शतारसहस्रार युगलों तक जघन्य स्थिति उतने सागर प्रमाण है और कुछ अधिक भी है परन्तु आनत प्राणत सातवां युगलमें पूरे वीस सागरकी आयु है और आरण अच्युत आठवां युगलमें बाईस सागरकी पूरी स्थिति है ।

तेन एवम्॰अभिसम्बन्धः क्रियतेT =तिस (अधिक ग्रहण) करि इसप्रकार सम्बन्ध किया जाता है कि

सौधर्म-ऐशानयोः द्वे सागरोपमे स-अधिके उक्ते =सौधर्म ऐशान स्वर्गोंमें दो सागर प्रमाण कुछ अधिक (स्थिति) कही

ते स-अधिके सानत्कुतार-माहेन्द्रयोः =वे (दो सागर प्रमाण स्थिति) किंचित् अधिक (स्थिति) सानत्कुमारमाहेंद्रमें

जघन्यस्थितिः सानत्कुमार-माहेंद्रयोः =निकृष्ट आयु है । सानत्कुमार माहेन्द्र (युगल) मे

परा स्थितिः सप्तसागरोपमाणि साधिकानि, तानि ब्रह्मब्रह्मोत्तरयोर्जघन्या स्थितिरित्यादि ॥

नारकाणामुत्कृष्टा स्थितिरुक्ता । जघन्यां सूत्रेऽनुपात्तामप्रकृतामपि लघुनोपायेन प्रतिपादयितुमिच्छन्नाह

नारकाणां च द्वितीयादिषु ॥३५॥

परा[१]॥ स्थितिः[१]॥ स-अधिकानि[३]॥	=उत्कृष्ट आयु कुछ अधिक
सप्त-सागरोपमाणि[३]॥ तानि[३]॥ ब्रह्म-ब्रह्मोत्तरयोः[७]॥	=सात सागर प्रमाण हैं वे (सात सागर और कुछ अधिक) ब्रह्म-ब्रह्मोत्तरमें
जघन्या[१]॥ स्थितिः[१]॥ । इति॥ आदि[१]॥	=निकृष्ट स्थिति है । ऐसेही आगे आगे है अर्थात् सागरोंसे कुछ अधिक है यह अधिकता बारहवां सहस्रार स्वर्गतक है । आनत प्राणत स्वर्गोंसे आगे पूरेपूरे सागरोंकी आयुहै नीचली नीचली उत्कृष्ट स्थिति ऊपर ऊपर विजयादिक तक जघन्य जघन्य है ॥
नारकाणाम्[६]॥ उत्कृष्टा[१]॥ स्थितिः[१]॥ उक्ता[१]॥ सूत्रे[७]॥	=नारकियोंकी प्रकृष्ट आयु (तीसरे अध्यायके छठवां सूत्रमें) कही । (इस) सूत्रमें
अनुपात्ताम्[२]॥ अप्रकृताम्[२]॥ अपि[१]॥ जघन्याम्[२]॥	=अप्राप्त (=अनुपात्ताम्) और अनधिकृत (नारकियोंकी) जघन्य (स्थिति) भी
लघुना[३]॥ उपायेन[३]॥ प्रतिपादयितुम्० इच्छन्[१]॥ आह ।'	=लघु साधन द्वारा अर्थात् थोड़े अक्षरों द्वारा कहनेको इच्छुक (आगे दो सूत्रमें) कहते है अर्थात् नारकियोंकी उत्कृष्ट स्थिति तो तीसरे अध्यायके छठवां सूत्रमें कहदी और यहां वैमानिकोंकी स्थितिका उल्लेख किया है इसलिये नारकियोंकी जघन्यस्थिति कहने का कोई अवसर प्राप्त नहीं है और न नारकियोंका कथनका कोई प्रकरण वा विषयही है तो भी आचार्यकी इच्छा नारकियोंकी जघन्य स्थिति वर्णन करनेकी इस हेतुसे है कि अल्प शब्दोंमेंही इस सूत्रकी अनुवृत्ति लेनेमें अभीष्ट स्थिति कही जासकती है ॥
[२]सूत्रम्—नारकाणां च द्वितीयादिषु	= नारकाणाम् च द्वितीयादिषु (भूमिषु[१] अध्याय३ सूत्र १ से) पूर्वा पूर्वाऽनन्तरा परा स्थितिः परतः परतः अपरा स्थितिः भवति

(१) 'भूमिषु' इस शब्दकी अनुवृत्ति तीसरे अध्यायके पहिले सूत्रसे लीगई है क्योंकि इस स्थिति का यहां विषय न था वरन तीसरे अध्यायके छठवां सूत्रके पश्चात् था, वहां लघु अक्षरोंमें यह स्थिति नहीं कही जासकती थी इस हेतुसे यहां कहीगई है तीसरा अध्याय सूत्र १से यह 'भूमिषु' शब्द अनुवर्तता है । चकारसे सबका सब सूत्र ३४वां कोअनुवृत्ति आती है ।(२) श्वेताम्बर और दिगंबर आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है॥

चशब्दः किमर्थः ? । प्रकृतसमुच्चयार्थः ॥ किं च प्रकृतं ? । परतः परतः पूर्वा पूर्वाऽनन्तरा अपरा स्थितिरिति ॥ तेनायमर्थो लभ्यते—रत्नप्रभायां नारकाणां परास्थितिरेकं सागरोपमम् । सा शर्कराप्रभायां जघन्या । शर्कराप्रभायामुत्कृष्टा स्थितिस्त्रीणि सागरोपमाणि । सा वालुकाप्रभायां जघन्येत्यादि ॥ एवं द्वितीयादिषु जघन्या स्थितिरुक्ता ॥ प्रथमायां का जघन्येति तत्प्रदर्शनार्थमाह—

सूत्रार्थः—पूर्वा। पूर्वा। अनन्तरा। परा। स्थितिः॥	=पहिली पहिली व्यवधान रहित वा लगताही उत्कृष्ट स्थिति
नारकाणाम्। च*परतः*परतः*द्वितीयादिषु॥	=नारकियों के भी [=च, उत्तर उत्तर में दूसरी आदि
भूमिषु। अपरा। स्थितिः। भवति।	=भूमियोंमें जघन्य आयु है (जैसे प्रथम भूमिमें एक सागर उत्कृष्ट स्थिति है वही दूसरी पृथिवीमें जघन्य है दूसरीमें तीन सागर परा है वही तीसरीमें अपराहै) ॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस पैतीसवां सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिंदी अनुवाद ॥

च-शब्दः। किमर्थः। प्रकृत-समुच्चय-अर्थः।	=(इस सूत्रमें) च शब्द किसलिये है ? (उत्तर) प्रकरणके समुच्चय वा जोड़नेको है
किम्। च*प्रकृतम्। अनन्तरा।	=(प्रश्न) बहुरि (=च) क्या प्रकरण वा विषय है (उत्तर) अत्यन्तानिकट वर्ती है
पूर्वा। पूर्वा। (परास्थितिः।)परतःपरतःअपरा। स्थितिः।	=पूर्व पूर्व की (उत्कृष्ट आयु) उत्तर उत्तरमें जघन्य आयु होती है ऐसा प्रकरण है
इति* । तेन। अयम्। अर्थः। लभ्यते। रत्न-प्रभायाम्।	=तिस (च शब्द) से यह अर्थ लियाजाता है कि रत्नप्रभा पृथिवीमें
नारकाणाम्। परास्थितिः। एकम्। सागरोपमम्।	=नारकी जीवोंकी उत्कृष्ट स्थिति एक सागर प्रमाण है ॥
सा। शर्करा-प्रभायाम्। जघन्या। ;शर्कराप्रभायाम्।	=वही (स्थिति) शर्करा प्रभा (दूसरी पृथिवी) में निकृष्ट स्थिति है । शर्कराप्रभामें
उत्कृष्टा। स्थितिः। त्रीणि। सागरोपमाणि। सा।	=प्रकृष्ट आयु तीन सागर प्रमाण है । वही (तीन सागर प्रमाण स्थिति)
वालुकाप्रभायाम्। जघन्या। इति*आदि। एवम्*	=वालुकाप्रभामें जघन्य (आयु) है । ऐसे और भी (सातवीं भूमि पर्यंत) है ॥ ऐसे
द्वितीय-आदिषु। जघन्या। स्थितिः। उक्ता। प्रथमायाम्।	=दूसरी आदिक (भूमि) में जघन्य आयु कही गई । पहली भूमिमें
का। जघन्या। इति*तत्-प्रदर्शन-अर्थम्। आह।	=क्या निकृष्ट (आयु) है । उस(प्रथम भूमिकी जघन्य आयु)केदिखानेको कहतेहैंकि

॥ दशवर्षसहस्राणि प्रथमायाम् ॥ ३६ ॥

अपरा स्थितिरित्यनुवर्तते । रत्नप्रभायां दशवर्षसहस्राणि अपरा स्थितिर्वेदितव्या ॥

अथ भवनवासिनां का जघन्या स्थितिरित्यत आह—

॥ भवनेषु च ॥ ३७ ॥

चशब्दः किमर्थः ? प्रकृतसमुच्चयार्थः ॥ तेन भवनवासिनामपरास्थितिः

(१) सूत्रम्—दशवर्षसहस्राणि प्रथमायाम् ॥ ३६ ॥

= दशवर्षसहस्राणि प्रथमायाम् (भूमौ अध्याय ३ सूत्र १ से) अपरा (३३वां सूत्रसे) स्थितिः (२८ वां सूत्रसे) नारकाणाम् (३५ वां सूत्रसे) भवति ॥ ३४ ॥

सूत्रार्थः—दशवर्षसहस्राणि॥प्रथमायाम्॥भूमौ॥ अपरा॥स्थितिः॥नारकाणाम्॥ =दश हजार वर्ष प्रथम भूमिमें (अर्थात् नीमिंनक नाम पहिले पाथड़ेमें) =जघन्य आयु नारकी जीवोंकी है

वृत्त्यनुवादः—अपरा॥स्थितिः॥इति*अनुवर्तते। रत्नप्रभायाम्॥=इस सूत्रमें 'अपरा' और 'स्थितिः' इनकी अनुवृत्ति है। रत्नप्रभा(पहिली भूमिमें

दशवर्षसहस्राणि॥अपरा॥स्थितिः॥वेदितव्या॥ =दश हजार वर्ष निकृष्ट आयु जानना चाहिये

अथ*भवनवासिनाम्॥का॥जघन्या॥स्थितिः॥इति* =अब (=अथ) भवनवासी देवनिकी क्या जघन्य आयु है। इसलिये कहते हैं कि

(२) सूत्रम्—भवनेषु च ॥३७॥

= भवनेषु च दशवर्षसहस्राणि (सूत्र ३६ से) अपरा (सूत्र ३३ से) स्थितिः (सूत्र २८वां से) भवति

भवनेषु॥च*दशवर्षसहस्राणि॥अपरा॥स्थितिः॥भवति। =भवनवासी देवनिमें भी (=च) दश हजार वर्ष जघन्य वा निकृष्ट आयु होती है

वृत्त्यनुवादः—चशब्दः॥किमर्थः॥प्रकृत-समुच्चय-अर्थः॥ =इस सूत्रमें च शब्द किसलिये है। स्थितिके प्रकरणके समुच्चयके लिये है ॥

तेन॥भवनवासिनाम्॥अपरा॥स्थितिः॥ =तिस (च शब्द) करि भवनवासी देवोंकी जघन्य आयु

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ श्वेताम्बर और दिगम्बर आम्नायोंमें एकसा है। सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें इसकी संख्या ४४ वीं है ॥

(२) इस सूत्रका पाठ और अर्थ श्वेताम्बर तथा दिगम्बर दोनों आम्नायोंमें एकसा है 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें इसकी संख्या ४५ वीं है ॥

दशवर्षसहस्राणीत्यभिसम्बध्यते ॥ व्यन्तराणां तर्हि का जघन्या स्थितिरित्यत आह—

व्यन्तराणां च ॥ ३८ ॥

चशब्दः प्रकृतसमुच्चयार्थः ॥ तेन व्यन्तराणामपरा स्थितिर्दशवर्षसहस्राणीत्यवगम्यते ॥
अथैषां परा स्थितिः का इत्यत्रोच्यते ॥

॥ परा पल्योपममधिकम् ॥ ३९ ॥

दशवर्षसहस्राणि॥इति*अभिसम्बध्यते।व्यन्तराणाम्।तर्हि* =दश हजार वर्ष ऐसा (वाक्य इस सूत्रमे) जोड़ा जाता है। तौ व्यन्तरोकी

का॥जघन्या॥स्थितिः॥इति*अतः*आह। =क्या जघन्य आयु है। ऐसे प्रश्न पर इसलिये कहते हैं कि

[1]**सूत्रम्—व्यन्तराणाम् च ॥ ३८ ॥** =व्यन्तराणाम् च दशवर्षसहस्राणि(३६ वां सूत्रसे) अपरा(३३वां सूत्रसे) स्थितिः(२८वांसूत्रसे)भवति

व्यन्तराणाम्।च*दशवर्षसहस्राणि॥अपरा॥स्थितिः॥भवति।=व्यन्तर देवोंकी भी (=च) दशहजार वर्ष जघन्य आयु है (यहां अनुवृत्तिलेने केलियेकि सूत्रछोटाहो व्यन्तरोंकी उत्कृष्ट स्थितिनकहकरपहिले जघन्य कही)

वृत्त्यनुवादः—च-शब्दः।प्रकृत-समुच्चय-अर्थः॥ =(इस सूत्रमें) च शब्द (स्थितिरूप) प्रकरण के समुच्चके लिये है ॥

तेन।व्यन्तराणाम्।अपरा॥स्थितिः॥ =तिस (च शब्द) करि व्यन्तर देवनिकी जघन्य आयु

दशवर्षसहस्राणि॥इति*अवगम्यते।अथ*एषाम्। =दश हजार बरस ऐसे जानी जाती है। अब इन व्यन्तर देवोंकी

परा॥स्थितिः॥का॥इति*अत्र*उच्यते। =उत्कृष्ट आयु क्या है ऐसे प्रश्न पर यहां कहाजाता है कि

[2]**सूत्रम्—परा पल्योपममधिकम् ॥३९॥** =व्यन्तराणाम् (३८वां सूत्र से) परा स्थितिः(२८वां सूत्र से) पल्योपमम् अधिकम् भवति

---

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थदोनों आम्नायोंमें एकसाहै श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्वार्थाधिगमसूत्रमें इसकी संख्या ४६ वीं मानी है ॥
(२) श्वेताम्बर आम्नायमें इस सूत्रका पाठ "परापल्योपमम् ॥४७॥" ऐसा है हमारे यहां स्थिति पल्यसे अधिक है उनके यहां एकही पल्य है ॥

परा उत्कृष्टा स्थितिर्व्यन्तराणां पल्योपममधिकम् ॥ इदानीं ज्योतिष्काणां परा स्थितिर्वक्तव्येत्यत आह

॥ ज्योतिष्काणां च ॥ ४० ॥

चशब्दः प्रकृतसमुच्चयार्थः ॥

सूत्रार्थः-व्यन्तराणाम् परा स्थितिः पल्योपमम् अधिकम् भवति ।=व्यन्तरोंकी उत्कृष्ट आयु कुछ अधिक पल्य प्रमाण है

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस उनतालीसवां सूत्र पर शब्दशः हिंदी अनुवाद

परा उत्कृष्टा स्थितिः =उत्कृष्ट वा प्रकर्ष आयु

व्यन्तराणाम् पल्योपमम् अधिकम् इदानीम् =व्यन्तरोंकी कुछ अधिक पल्य प्रमाण है । अब

ज्योतिष्काणाम् परा स्थितिः वक्तव्या इति अतः आह=ज्योतिषियोंकी उत्कृष्ट आयु कहना चाहिये । ऐसे प्रश्न पर इसलिये कहते हैं कि

(१)सूत्रम्—ज्योतिष्काणां च ॥ ४० ॥ =ज्योतिष्काणाम् च स्थितिः (२८वां सूत्रसे) परा पल्योपममधिकम् (३९ वां सूत्रसे) भवति ॥ ४० ॥

सूत्रार्थः-ज्योतिष्काणाम् च परा स्थितिः =ज्योतिषी देवनिकी उत्कृष्ट स्थिति

पल्योपमम् अधिकम् भवति =कुछ अधिक पल्य प्रमाण है अर्थात् चंद्रमाकी आयु एक पल्यसे एक लाखवरस अधिक है । सूर्य की आयु एक पल्यसे एक सहस्रवरस अधिक है शुक्रकी एकपल्यसे सौ वरस अधिक है

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस चालीसवां सूत्र पर सर्वार्थसिद्धिका शब्दशः हिंदी अनुवाद

चशब्दः प्रकृत-समुच्चय-अर्थः =(इस सूत्रमें) च शब्द प्रकरणके संग्रहके लिये है अर्थात् यहां स्थितिका विषय चलरहा है सो चकार से ३९ वां सूत्रमें वर्णित आयुको यहां जोड़ागया है

(१) श्वेताम्बरआम्नायमे पाठ "ज्योतिष्काणामधिकम्" ॥ ४८ वां सूत्रहै । हमारे यहां अधिकम् की अनुवृत्ति ३८ वां सूत्रसे आती है अर्थ एकहै ॥

...त्रम्—लौकान्तिकानामष्टौ सागरोपमाणि सर्वेषाम् ॥ ४२ ॥

...नाम् परा (३९वां सूत्रसे) अपरा (३३वां सूत्रसे) स्थितिः (२८वां सूत्रसे) भवति॥

...रकाणांतु जघन्या स्थितिः

...। जघन्य स्थिति पल्य के

...म (सूत्र५३) =तारकाभ्यः शेषाणांज्योतिष्काणां चतुर्भागः पल्योपमस्यापरास्थिति

...से बचे हुए (सत्ताईस नक्षत्र, सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुद्ध, बृहस्पति, शुक्र, शनिश्चर, राहु और केतु ये नौ ग्रह) ज्योतिषीदेवोंकी जघन्य आयु पल्यके चौथाई भाग प्रमाण है ॥

() तदष्टभागो जघन्योभयेषाम् (वार्तिक ८) =तस्य पल्योपमस्याष्टभागः जघन्या स्थिति उभयेषां तारकाणां नक्षत्राणां च भवति (राजवार्तिकपृष्ठ१७४)
=तिस पल्यके आठवां भाग प्रमाण जघन्य आयु दोनों ताराओं और नक्षत्रों की होती है (दोनो आम्नायोंमें ताराओंकी निकृष्ट स्थिति एक है परन्तु नक्षत्रोंकी जघन्यस्थिति श्वेताम्बरसमाजके सभाष्यतत्वार्थाधिगमसूत्रके५३वां सूत्रके अनुकूल चौथाई पल्य है हमारे यहासे दूनी हुई)

() शेषाणां चतुर्भाग (वार्तिक ९) शेषाणां सूर्यादीनां पल्योपम चतुर्भागो जघन्य स्थितिर्वेदव्या (राजवार्तिक पृष्ठ १७४)
=बचेहुए सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुद्ध बृहस्पति, शुक्र, शनिश्चर, राहु, केतु ये नवग्रहोंकी जघन्य स्थिति पल्यके चौथाई भाग प्रमाण जानो ॥ इस सूत्रका पाठ दोनों आम्नायोंमें एक है परन्तु हमारे यहां नक्षत्रोंकी जघन्य आयु पल्य के आठवां भाग है श्वेताम्बर समाज में पल्य का चौथाई भाग है

(१) इसके सम्बन्धमें पं० पन्नालाल वाकलीवालजीने यह लिखा है कि यह श्री पूज्यपाद स्वामीकृत सर्वार्थसिद्धिका वार्तिक है। क्योंकि श्री भट्टाकलंकदेवने 'अष्टसागरोपमा सर्वेलौकांतिका' कहा है। मेरी समझमें यह नहीं आया कि 'अष्टसागरोपमा सर्वेलौकांतिका' यह वाक्य कहांसे लिया है पं० पन्नालालजी दूनीं, प० पन्नालालजी न्यायदिवाकर प०गजाधरलालजी अनुवादित राजवार्तिकका पाठ कई हस्तलिखित राजवार्तिकप्रतियोंके पाठ और वाकली वालजीकी स्वय मुद्रित कीहुई राजवार्तिककेभी पाठ देखेगये परन्तु हमको यह सूत्ररूपमें राजवार्तिकमें, अर्थप्रकाशिकामें, सर्वार्थसिद्धि वचनिकामें, श्रुतसागरी टीकामें मिला है। कई प्रतियें श्लोकवार्तिक, प० सदासुखजी कृत सूत्रपर लघुटीका स० १९१० और श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्वार्थाधिगम सूत्र श्री सिद्धसेनसूरिरचित भाष्यानुसारिणी तत्वार्थटीका जिसमें २२ सहस्र श्लोकसे अधिक हैं उपर्युक्त वाक्य न तो यह सूत्र रूपमेंही मिला और न वार्तिकरूपमेंही मिला ॥ कोई भी प्रमाण नहीं है कि यह सूत्रपूज्यपाद स्वामी कृत वार्तिक है ॥ बहुधा भाष्यकारों और टीकाकारोंकी उत्थानिकाओं से कि 'सूत्रमाहुः' (देखो श्रुतसागरी टीका) 'इत्यत्रोच्यते' (देखो तत्वार्थ राजवार्तिक, सर्वार्थसिद्धि) स्पष्ट है कि यह सूत्र है ॥

६ ग्रह, २७ (अभिजित सहित) २८ नक्षत्रों और तारकाओंकी पृथक् पृथक् विशेष रूपसे जघन्य स्थिति वार्तिकोंमें दीगई है उसकी तुलनात्मक सूची श्वेताम्बरसमाजके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रके सूत्र४९ से ५३ तक नीचे दीजातीहै कि विषय स्पष्ट होजावे॥श्वेताम्बर आम्नायमें 'चतुर्भागः शेषाणाम् ५३' सूत्रमें यह चौथा अध्याय पूर्ण होता है। उनके यहां 'लौकांतिकानामष्टौ सागरोपमाणि सर्वेषाम्' सूत्र या वार्तिक नहीं है ॥

श्वेताम्बर आम्नायके 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रसे उद्धृत

() ग्रहाणांमेकम् (सूत्र४९) =ग्रहाणामेकं पल्योपम परा स्थितिःभवति =सूर्य, चन्द्र, मगल, बुद्ध, ब्रहस्पति, शुक्र, शनिश्चर, राहु और केतु इन नव ग्रहोंकी (उत्कृष्ट स्थिति) एक पल्य प्रमाण होती है

() नक्षत्राणामर्धम् (सभाष्य० सूत्र ५०) =नक्षत्राणां देवानां पल्योपमार्धं परा स्थितिर्भवति =(२७ या २८) नक्षत्रदेवोंकी उत्कृष्ट आयु आधे पल्यकी होती है

() ताराकाणां चतुर्भागः (सूत्र ५१) =ताराकाणां च पल्योपम चतुर्भागः परा स्थितिः =ताराकोंकी उत्कृष्ट आयु पल्यका चौथाई भाग प्रमाण है ॥

दिगम्बर आम्नायके तत्त्वार्थराजवार्तिकअलंकारसे उद्धृत

(क) चंद्राणां वर्ष शतसहस्राधिकम् (वार्तिक १) =चद्राणां वर्षशतसहस्राधिकं पल्योपम परा स्थिति =चद्रमाओंकी उत्कृष्ट स्थिति एक पल्यसे एक लाख बरस अधिक होती है (तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ १७८)

() सूर्याणां वर्ष सहस्राधिकम् (वार्तिक २) =वर्षसहस्राधिकं पल्योपम सूर्याणां परा स्थितिः =सूर्योंकी उत्कृष्ट स्थिति एक पल्यसे एक हजार बरस अधिक है (तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ १७८)

() शुक्राणां शताधिकम् (वार्तिक३) =शुक्राणां वर्षशताधिकं पल्योपम परास्थितिः =शुक्रोंकी प्रकृष्ट आयु एक पल्यसे एकसौ बरस अधिकहै (राज०पृष्ठ१७८)

() वृहस्पतीनां पूर्णम् (वार्तिक ४) वृहस्पतीनाम् पूर्णपल्योपमम् परा स्थिति =वृहस्पतियोंकी उत्कृष्ट आयु पूरी एक पल्य प्रमाण है (राज० पृष्ठ १७८)

() शेषाणामर्धम्(वार्तिक ५) शेषाणां ग्रहाणांबुद्धादीनां पल्योपमस्यार्धपरास्थिति =बचे हुए अर्थात् चन्द्रमा, सूर्य, शुक्र वृहस्पतियोंके अतिरिक्त बुध, मगल शनिश्चर, राहु और केतु ग्रहोंकी उत्कृष्ट आयु आधे पल्य प्रमाण होती है। तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ १७८)

() नक्षत्राणां च (वार्तिक ६) =नक्षत्राणाम् अर्धपल्योपमं परा स्थितिः भवति (राज० पृष्ठ १७८) =(सत्ताईस वा अट्ठाईस) नक्षत्रोंकी उत्कृष्ट आयु आधेपल्य होती है (तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ १७८)

() तारकाणां चतुर्भागः (वार्तिक७) =पल्योपमस्यचतुर्भाग तारकाणांपरास्थितिः =ताराओंकी उत्कृष्ट स्थिति पल्यके चौथाईभाग प्रमाणहै (राजवार्तिक पृष्ठ १७८)

॥ लौकान्तिकानामष्टौ सागरोपमाणि सर्वेषाम् ॥ ४२ ॥

(१ सूत्रम्—लौकान्तिकानामष्टौ सागरोपमाणि सर्वेषाम् ॥ ४२ ॥

= सर्वेषाम् लौकान्तिकानाम् परा(३९वां सूत्रसे)अपरा (३३वां सूत्रसे)स्थितिः(२८वां सूत्रसे) भवति॥

() जघन्या त्वष्टभाग. (सूत्र ५२) =तारकाणांतु जघन्या स्थितिः पल्योपमाष्टभागः =और ताराओंकी जघन्य स्थिति पल्य के आठवां भाग प्रमाण है

() चतुर्भाग शेषाणाम्(सूत्र५३) =तारकाभ्यः शेषाणांज्योतिष्काणां चतुर्भागः पल्योपमस्यापरास्थिति

=ताराओंसे बचे हुए (सत्ताईस नक्षत्र, सूर्य, चन्द्र,मंगल, बुद्ध, वृहस्पति, शुक्र, शनिश्चर, राहु और केतु ये नौ ग्रह) ज्योतिषीदेवोंकी जघन्य आयु पल्यके चौथाई भाग प्रमाण है ॥

() तदष्टभागो जघन्योभयेषाम् (वार्तिक ८) =तस्य पल्योपमस्याष्टभागः जघन्या स्थिति उभयेषां तारकाणां नक्षत्राणां च भवति(राजवार्तिकपृष्ठ१७९)

=तिस पल्यके आठवां भाग प्रमाण जघन्य आयु दोनों ताराओं और नक्षत्रों की होती है (दोनों आम्नायोंमें ताराओंकी निकृष्ट स्थिति एक है परन्तु नक्षत्रोंकी जघन्यस्थिति श्वेताम्बरसमाजकेसभाष्यतत्वार्थाधिगमसूत्रके५३वां सूत्रके अनुकूल चौथाई पल्य है हमारे यहासे दूनी हुई)

() शेषाणां चतुर्भाग (वार्तिक ९) शेषाणां सूर्यादीनां पल्योपम चतुर्भागो जघन्य स्थितिर्वेदव्या (राजवार्तिक पृष्ठ १७४)

=बचेहुए सूर्य, चन्द्र, मगल, बुद्ध वृहस्पति, शुक्र, शनिश्चर, राहु, केतु ये नवग्रहोंकी जघन्य स्थिति पल्यके चौथाई भाग प्रमाण जानो ॥ इस सूत्रका पाठ दोनों आम्नायोंमें एक है परन्तु हमारे यहां नक्षत्रोंकी जघन्य आयु पल्य के आठवां भाग है श्वेताम्बर समाज में पल्य का चौथाई भाग है

(१) इसके सम्बन्धमें पं० पन्नालाल वाकलीवालजीने यह लिखा है कि यह श्री पूज्यपाद स्वामीकृत सर्वार्थसिद्धिका वार्तिक है । क्योंकि श्री महाकलकदेवने 'अष्टसागरोपमा सर्वेलौकांतिका' कहा है । मेरी समझमें यह नहीं आया कि 'अष्टसागरोपमा सर्वेलौकांतिकाः' यह वाक्य कहांसे लिया है पं० पन्नालालजी दूनीं, प० पन्नालालजी न्यायदिवाकर प०गजाधरलालजी अनुवादित राजवार्तिकका पाठ कई हस्तलिखित राजवार्तिकप्रतियोंके पाठ और वाकली वालजीकी स्वय मुद्रित कीहुई राजवार्तिककेभी पाठ देखेगये परन्तु हमको यह सूत्ररूपमें राजवार्तिकमें,अर्थप्रकाशिकामें,सर्वार्थसिद्धि वचनिकामें, श्रुतसागरी टीकामें मिला है । कई प्रतियें श्लोकवार्तिक, प० सदासुखजी कृत सूत्र पर लघुटीका स० १९१० और श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्वार्थाधिगम सूत्र श्री सिद्धसेनसूरिरचित भाष्यानुसारिणी तत्वार्थटीका जिसमें २२ सहस्त्र श्लोकसे अधिक है उपर्युक्त वाक्य न तो यह सूत्र रूपमेंही मिला और न वार्तिकरूपमेंही मिला ॥ कोई भी प्रमाण नहीं है कि यह सूत्रपूज्यपाद स्वामी कृत वार्तिक है ॥ बहुधा भाष्यकारों और टीका-कारोंकी उत्थानिकाओं से कि 'सूत्रमाहुः' (देखो श्रुतसागरी टीका) 'इत्यत्रोच्यते' (देखो तत्त्वार्थ राजवार्तिक, सर्वार्थसिद्धि) स्पष्ट है कि यह सूत्र है ॥

अविशिष्टाः सर्वे ते शुक्ललेश्याः पञ्चहस्तोत्सेधशरीराः

॥ चतुर्णिकायदेवानां । स्थानं भेदाः सुखादिकम् ॥ परापरस्थितिर्लेश्या। तुर्याध्याये निरूपितम्॥ १॥

॥ इति तत्त्वार्थवृत्तौ सर्वार्थसिद्धिसञ्ज्ञिकायां चतुर्थोऽध्याय ॥

सूत्रार्थः-सर्वेषाम्[३] लौकान्तिकानाम्[३] परा[१] अपरा[१]॥	=सब लौकान्तिक (देव) निकी (देखो सूत्र २४, २५) उत्कृष्ट और जघन्य
स्थितिः[१] अष्टौ[१]॥ सागरोपमाणि[१]॥	=आयु आठ सागर प्रमाण है
वृत्त्यनुबन्धः-अवशिष्टाः[१]।	=अवशेष वा बचेहुये अर्थात् सर्व प्रकारके देवोंसे जिनकी स्थिति उत्कृष्ट और जघन्य कही जो शेषरहे ऐसे लौकान्तिकदेव
सर्वे[३] ते[३] शुक्ल लेश्याः[३] पञ्च-हस्त-उत्सेध-शरीराः[३]	=ते समस्त शुक्ललेश्याके धारक, पांच हाथकी ऊचाईके शरीर सहित हैं अर्थात् सब लौकान्तिक देवोंकें शुक्ललेश्या है और पांच पांच हाथ ऊंचा शरीर है ॥
चतुर्णिकाय-देवानाम्[३] स्थानम्[१]॥	=चार समुदायके देवोंके निवास स्थान (सूत्र १३, १४, १५, १८, १९, २३, २४)
भेदाः[३]	=तथा भेद (सूत्र १, ३, ४, ५, ६, १०, ११, १२, १६, १७, २४, शेषार्ध २५, २६)
सुखादिकम्[१]॥	=और सुखादिक (सूत्र ७, ८, ९, २०, २१, २७)
पर-अपरा-स्थितिः[१]॥	=उत्कृष्ट और जघन्य आयु (देखो सूत्र ३४, ३५, ४२,)
(परा[१] स्थितिः[१]॥)	=बहुरि परास्थिति (सूत्र २८ से ३२ तक ३९, ४०)
(अपरा[१] स्थितिः[१]॥) लेश्या[१]॥	=और अपरा स्थिति (सूत्र ३३, ३६, ३७, ३८, ४१) तथा लेश्या (सूत्र२, २२)
तुर्याध्याये[१] निरूपितम्[१]॥	=चौथे अध्यायमें वर्णित है।

इति तत्त्वार्थ-वृत्तौ[१]॥ =इसप्रकार तत्त्वार्थके विवरणमें (=वृत्तौ)

सर्वार्थसिद्धि-सञ्ज्ञिकायाम्[१]॥ =सर्वार्थसिद्धि नामक ग्रन्थमें

चतुर्थः[१] अध्यायः[१]॥ =चौथा अध्याय (समाप्त) हुआ ॥

॥ अथ पंचमोऽध्यायः ॥

इदानीं, सम्यग्दर्शनस्य विषयभावेनोपक्षिप्तेषु जीवादिषु जीवपदार्थो व्याख्यातार्थः । अथाजीवपदार्थो विचारप्राप्तस्तस्य सञ्ज्ञाभेदसंकीर्तनार्थमिदमुच्यते ।

॥ (१) अजीवकाया धर्माधर्माकाशपुद्गलाः ॥ १ ॥

कायशब्दः शरीरे व्युत्पादितः । इहोपचारादध्यारोप्यते । कुत उपचारः ? । यथा शरीरं पुद्गलद्रव्य-

अथ॥पञ्चमः १।, अध्यायः १। इदानीं ॥ सम्यग्दर्शनस्य ६।। = पांचवा अध्याय आरम्भ (= अथ) है। अब सम्यग्दर्शनके विषय-भावेन ३। उपक्षिप्तेषु ७। जीवादिषु ७। जीव-पदार्थः १। = विषयभावकरि गर्भित (= उपक्षिप्तेषु) जीवादिकोंमें जीव पदार्थ है व्याख्यात-अर्थः १। = (सो) कहा हुआ विषय (= अर्थ) है (अर्थात् जीवका वर्णन कर चुके हैं)

भावार्थ—सम्यक्त्वके विषय निबन्धमें जीवादिक सात तत्त्व (अ० १सूत्र २, ४) गर्भित हैं उनमेंसे जीव द्रव्यका व्याख्यान कर चुके हैं।

अथ॥अजीव-पदार्थः १। विचार-प्राप्तः १। तस्य ६। संज्ञा- = अब (= अथ) अजीवपदार्थ विचारमें प्राप्त हुआ तिस (अजीवपदार्थ) के नाम भेद-संकीर्तन-अर्थम् १।। इदम् १।। उच्यते T = और भेद कहनेके लिये यह कहा जाता है कि—

अजीवकाया धर्माधर्माकाशपुद्गलाः ॥ १ ॥

धर्म-अधर्म-आकाश-पुद्गलाः १। अजीव-कायाः १। = धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य और पुद्गलद्रव्य चेतना रहित और बहुप्रदेशी (काय) है अर्थात् इन प्रत्येक प्रत्येक द्रव्यमें अचेतनपना और बहुप्रदेश वा बहुत अवयवोंका होना पाया जाता है।

वृत्त्यनुवादः—कायशब्दः १। शरीरे ७।।। व्युत्पादितः १। = (इस सूत्र में) काय शब्द शरीर (अर्थ) में व्याकरण की रीतिसे उत्पन्न हुआ है इह॥उपचारात् ५। अध्यारोप्यते T यहां व्यवहारसे अध्यारोपण कियागया है अथवा संस्थापन वा नियत किया गया है कुतः॥ उपचारः १। यथा॥शरीरं १।। पुद्गलद्रव्य— = (प्रश्न) कहांसे उपचार किया गया है। (उत्तर) जैसे शरीर पुद्गलद्रव्यके

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों आम्नायोंमें एकसा है। धर्म्माधर्म्मा भी अचोरहाभ्याम्‌'द्वे वा' ८।४।४६अष्टाध्यायी सूत्रसे ठीक है।

प्रचयात्मकं तथा धर्मादिष्वपि प्रदेशप्रचयापेक्षया काया इव काया इति। अजीवाश्च ते कायाश्च अजीवकायाः ॥ विशेषणं विशेष्येणेति वृत्तिः ॥

प्रचय-आत्मकं ₁¹॥ तथा*धर्मादिषु ₃⁷। अपि*	= समूहरूप (= प्रचयात्मक) हैं तैसे धर्मादिकद्रव्योंमें भी
प्रदेश-प्रचय-अपेक्षया³॥ कायाः ₃॥ इव*इति*	= प्रदेशोके समूहरूप विवक्षासे कायासरीखा (व्यवहार) है इसप्रकार
कायाः₃। च* अजीवाः ₃¹।	= (वे धर्म, अधर्म, आकाश, पुद्गल) काया हैं। और (= च) अजीव
च*कायाः ₃। ते ₃¹। अजीवकायाः ₃¹।	= और (= च)काय हैं ते अजीव काया हैं अर्थात् ये चार धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य, पुद्गलद्रव्य चेतना रहित और बहुत प्रदेशी हैं इसलिये ये अजीवकाय (अचेतन और बहुप्रदेशी)हैं। ये बहु प्रदेशी हैं इससे ये द्रव्य काय कहलाते है और चेतना रहित हैं इससे अजीव कहलाते हैं
विशेषणं ₁¹॥ विशेष्येण ₁³। इति* वृत्तिः ₁¹॥	= गुणवाचक(अजीव शब्द)विशेष्य(कायशब्द)से मिलकर ऐसें (कर्मधारय) समास हुआ

* परार्थभिधानं वृत्तिः—एकरूपसे अर्थ प्रकाश करनेकी शक्तिको वृत्ति कहते है। उस वृत्तिके पाच भेद है जैसे कृत्, 'तद्धित', समास, एकशेष, और सनाद्यन्त धातु हैं। यहा पर वृत्ति शब्दका अर्थ केवल समास है। अनेक पदोंको एकमें मिला देनेको समास कहते हैं। वह पांच प्रकार का है (I) जिसका कोई विशेष नाम नही है वह केवल समास कहाता है (II) बहुधा जिसमें पूर्व पदका अर्थ प्रधान होता है वह अव्ययी भाव समास है (III) प्रायः जिसके उत्तर पदका अर्थ प्रधान हो वह तत्पुरुष समास है। तत्पुरुप समास का एक भेद कर्मधारय समास है। इसमें दोनों विभक्ति समान होती हैं और विशेषण विशेष्य भाव होता है। जैसे यहां "अजीवाश्च ते कायाश्च अजीवकायाः" इसमें अजीवाः और कायाःदोनों समान विभक्ति (प्रथमाविभक्ति बहु वचन पुल्लिंग) हैं॥ (प्रश्न) यहां पर वे काया कैसे गुण वा विशेषण सहित है। (उत्तर) चेतना रहित उन कायाओंका गुण है ॥ ऐसे "अजीवाः" विशेषण हुआ और काया विशेष्य हुआ इसलिये विशेषण और विशेष्य भाव हुआ ॥ कर्मधारय का एक भेद द्विगु है। इसका प्रथम सख्या वाचक शब्द होता है। (IV) जिसमें समासके पदोंको छोडकर और ही पदका अर्थ प्रधान हो वह बहुव्रीहि समास है। (V) जिसमें दोनों पद का अर्थ प्रधान हो वह द्वन्द्व नामक पाचवां समास है।

ननु च नीलोत्पलादिषु व्यभिचारे सति विशेषणविशेष्ययोगः। इहापि व्यभिचारयोगोऽस्ति । अजीव-शब्दोऽकाये कालेऽपि वर्तते, कायोऽपि जीवे । किमर्थः कायशब्दः ? । प्रदेशबहुत्वज्ञापनार्थः । धर्मादीनां प्रदेशा बहव इति !! ननु च असंख्येयाः प्रदेशा धर्माधर्मैकजीवानामित्यनेनैव प्रदेशबहुत्वं ज्ञापितम्। सत्य-मिदम्। परं किन्त्वस्मिन्विधौ सति तदवधारणं विज्ञायते. असंख्येयाः प्रदेशा न संख्येया नाप्यनन्ता इति ॥

ननु * च * नील—उत्पल—आदिषु [७/३]।	= पुनि प्रश्न । नील-कमल आदिक (कर्मधारयसमास) निमें
व्यभिचारे [७/१]। सति [७/१]। विशेषण—विशेष्य—योगः [१/१]।	= वही गुण दूसरी वस्तुमें होनेपर (= सति) विशेषण और विशेष्यका मेल होता है

अर्थात् प्रश्न यह है कि विशेष्य में जो गुण होता है वह दूसरी वस्तुओं मे भी पाया जाता है तो विशेषण विशेष्य मिलकर कर्मधारय समास होता है जैसे नीलकमलमें और रक्तकमलमें नीलापन और रक्तता यथासंख्य पाई जाती है इनके अतिरिक्त और भी अनेक वस्तुएं हैं जिनमें नीलता और रक्तता पाई जाती है तो यहां अजीव काय विषैं क्या व्यभिचार है ।

इह * अपि * व्यभिचार—योगः [१/१]। अस्ति T	= (उत्तर) यहां भी(इस 'अजीवकाय' कर्मधारय समास मे) व्यभिचारका मेल वा जोड है
अजीव—शब्दः [१/१]। अकाये [७/१]। काले [७/१]। अपि*वर्तते T	= (क्योंकि) अजीवशब्द काय रहित वा अप्रदेशी कालद्रव्यमें भी वर्तता है
कायः [१/१]। अपि * जीवे [७/१]। किम् * अर्थः [१/१]।	= (और) बहुत प्रदेशोंका होना भी (अजीवत्व रहित) जीवद्रव्यमें वर्ते है। कौन अर्थ है
कायशब्दः [१/१]। ? प्रदेश—बहुत्व—ज्ञापन—अर्थः [१/१]	= काय शब्द (उत्तर) प्रदेशोंका प्रचयपना जनावनेके लिये है कि
धर्म—आदीनां [६]। प्रदेशाः [१/३] बहवः [१/३]। इति *	= धर्म—अधर्म—आकाश—पुद्गल के प्रदेश बहुत हैं
ननु*च*असंख्येयाः [१/३]। प्रदेशाः [१/३]। धर्म—अधर्म—	= पुनि प्रश्न असंख्यातअसंख्यात प्रदेश धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य और
एक—जीवानाम् [६/३]। इति*अनेन [३/१]॥ एव* प्रदेश—	= एक जीव के हैं इस (अगले आठवां सूत्र) करि ही प्रदेशोंकी
बहुत्वं [१/१]॥ ज्ञापितम् [१/१]॥ सत्यम् [१/१]॥ इदम् [१/१]॥	= प्रचुरता जताई जाती है (उत्तर) यह सत्य है
परं किन्तु-अस्मिन् [७/१]॥ विधौ [७/१]॥ सति [७/१]। तद्-अवधारणं [१/१]॥	= किन्तु केवल (= पर) इस विधि (आठवां सूत्र) के होनेपर उस (प्रदेश बहुत्व) का नियम
विज्ञायते T असंख्येयाः [१/३]। प्रदेशाः [१/३]। न*संख्येयाः [१/३]।	= जतलाया गया है कि असंख्यात प्रदेश हैं, संख्यात नहीं हैं
न*अपि*अनन्ताः [१/३]। इति* ॥	= अनन्त भी नहीं है अर्थात् केवल असंख्यात ही हैं—भावार्थ इस सूत्र में कायशब्दसे

कालस्य प्रदेशप्रचयाभावज्ञापनार्थं च इह कायग्रहणम् । कालो वच्यते । तस्य प्रदेशप्रतिषेधार्थमिह कायग्रहणम् ॥ यथाऽणोः प्रदेशमात्रत्वाद्द्वितीयादयोऽस्य न सन्तीत्यप्रदेशोऽणुः । तथा कालपरमाणुरप्येकप्रदेशत्वादप्रदेश इति ॥ तेषांधर्मादीनामजीव इति सामान्यसञ्ज्ञा जीवलक्षणाभावमुखेन प्रवृत्ता ॥ धर्माधर्माकाशपुद्गला इति विशेषसञ्ज्ञाः सामयिक्यः ॥

अत्राह सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्येत्येवमादिषु द्रव्याण्युक्तानि, कानि तानीत्युच्यते—

	बहुतर सामान्य जताया है और आठवां सूत्रमें प्रदेशोंकी संख्या जताई है
कालस्य $^{6}_{1}$। प्रदेश–प्रचय–अभाव–ज्ञापन–अर्थं $^{7}_{1}$॥ च॰	=कालके प्रदेशसमूहका अभाव जतावनेके लिये भी (=च)
इह॰कायग्रहणम् $^{1}_{1}$॥कालः $^{1}_{1}$। वच्यते T तस्य $^{6}_{1}$। प्रदेश–	=यहां सूत्रमें कायका ग्रहण है काल द्रव्य (३९, ४०वां सूत्रों में) कहेंगे तिसके प्रदेशोंके
प्रतिषेध–अर्थम् $^{1}_{1}$॥ इह॰काय–ग्रहणम् $^{1}_{1}$॥यथा॰अणोः $^{6}_{1}$।	=निषेधके लिये यहां कायका आदान है जैसे पुद्गलके अणुके
प्रदेश-मात्रत्वात् $^{5}_{1}$॥ द्वितीय–आदयः $^{1}_{3}$। अस्य $^{6}_{1}$।	=केवल एक प्रदेशहोनेसे वा एक प्रदेशपनासे दूसरा (प्रदेश) आदिकजिस(पुद्गलअणु)के
न॰सन्ति इति ॰ अप्रदेशः $^{1}_{1}$। अणुः $^{1}_{1}$। तथा ॰ काल–	=नहीं है ऐसा अप्रदेश अर्थात् दूसरा प्रदेश रहित अणु है तैसे कालका
परमाणुः $^{1}_{1}$।अपि॰एक–प्रदेशत्वात् $^{5}_{1}$॥ अप्रदेशः $^{1}_{1}$। इति॰	=परमाणु भी एकप्रदेशभावसे अथवा एक प्रदेश होनेसे अप्रदेश है
तेषां $^{6}_{3}$। धर्म–आदीनां $^{6}_{3}$। अजीवः $^{1}_{1}$। इति॰सामान्यसज्ञा $^{1}_{1}$॥	=उन धर्म अधर्म–आकाश–पुद्गल की अजीव ऐसी सामान्य संज्ञा है प्रर्थात् ऐसा नाम है कि अचेतनपना इन चारोंमें साधारण वा एकसा धर्म अथवा स्वभाव है
जीव–लक्षण–अभाव–मुखेन $^{3}_{1}$॥ प्रवृत्ता $^{1}_{1}$॥	=सो (यह सामान्य संज्ञा) चैतन्य स्वभावके अभावद्वाराकरि प्रवर्ते है अर्थात् सामान्यसंज्ञा के अस्तित्व को इन चारोंमें जो अचेतनपना है सो जतावे हैं
धर्म–अधर्म–आकाश–पुद्गलाः $^{1}_{3}$। इति॰विशेषसंज्ञाः $^{1}_{3}$॥	=धर्म अधर्म आकाश और पुद्गल ऐसी भेद रूप संज्ञायें हैं
सामायिक्यः $^{1}_{3}$॥	=और शास्त्र सम्बन्धी है (=सामायिक्यः) अर्थात् सिद्धान्त और आगम पठित हैं भावार्थ सर्वज्ञ भाषित आगम (शास्त्र) में ये संज्ञायें रूढ़ि हैं और प्रत्येक २ धर्म अधर्म आकाश और पुद्गल अपने २ संकेत से प्रवर्तती हैं
अत्र॰आह T सर्व–द्रव्य–पर्यायेषु $^{7}_{3}$। केवलस्य $^{6}_{1}$॥	=यहां शिष्य पूछता है कि समस्त द्रव्यों की समरत पर्यायों में केवल ज्ञान के
इत्येवं आदिषु $^{7}_{3}$। द्रव्याणि उक्तानि कानि तानि इति उच्यते	=इत्यादिक(सूत्रों)में(देखो १ अ० सूत २६, २९)द्रव्य कहेवे क्या हैं ऐसेंकहा जाताहैकि

॥ द्रव्याणि ॥ २ ॥

यथास्वं पर्यायैर्द्रूयन्ते द्रवन्ति वा तानि द्रव्याणि॥ द्रव्यत्वयोगाद्द्रव्यमिति चेन्न। उभयासिद्धेः॥ यथा दण्डदण्डिनोर्योगो भवति पृथक्सिद्धयोः न च तथाद्रव्यद्रव्यत्वे पृथक्सिद्धेस्तः॥ यद्यपृथक्सिद्धयोरपियोगः स्यात्

सूत्रार्थः–धर्म–अधर्म-आकाश–पुद्गलाः ³₃। द्रव्याणि ¹॥। = धर्म,अधर्म,आकाश,पुद्गल,द्रव्यहैं। जीव,काल,(सूत्र२, ३९में)कहेंगे ऐसे छै(१)द्रव्य हैं

वृत्त्यनुवादः (२) यथास्वं ²₁॥। (३) पर्यायैः₃। द्रूयन्ते T = स्वरूप(स्वं)के अनुसार अथवा जैसा स्वरूप हो तिसकी पर्यायोंसे प्राप्त किये जाते हैं

द्रवन्ति T वा तानि³₃॥। द्रव्याणि ³₃॥। द्रव्यत्वयोगात्⁵₁। = अथवा (पर्यायोंको) प्राप्त होते हैं वे द्रव्य हैं। द्रव्यपनाके सम्बन्धसे

द्रव्यम् ³₁॥।इति*चेत्* = द्रव्य है ऐसी शंका वा प्रश्न (= चेत्) है॥

न* उभय–असिद्धेः ⁵₁॥ = (उत्तर) (द्रव्यत्व के योग से द्रव्य) नहीं है (क्योंकि) (द्रव्यत्व तथा द्रव्य) दोनों असिद्धहैं।

यथा*पृथक्सिद्धयोः ⁶₂॥। दंडदण्डिनोः⁶₂॥।योगः ¹₁भवतिT = जैसे (दंड और पुरुष) न्यारे सिद्ध होनेपर दंड और दंडी (पुरुष) में सम्बन्ध होता है

न*च*तथा*द्रव्य–द्रव्यत्वे¹₂॥। पृथक्* सिद्धे ¹₂॥। स्तः T = वहुरि (च) नहीं हैं तैसे द्रव्य और द्रव्यत्व न्यारे सिद्ध। तात्पर्य्य यह है कि शिष्य के प्रश्न करने पर कि द्रव्यपना के संयोगसे द्रव्य होता है। यदि उसमें द्रव्यत्वकी विद्यमानता न हो तो द्रव्यका अस्तित्व सम्भव नहीं है तिसके उत्तरमें आचार्य कहते हैं कि जैसे दंड और पुरुष न्यारे न्यारे सिद्ध हैं और जब पुरुष दंड को धारण करे तब दंडी कहलावे, विना दंडके सम्बन्धके उसको दंडी नहीं कह सक्ते। वैसे द्रव्य और द्रव्यत्व न्यारे न्यारे नहीं दीखते हैं और न सिद्ध हैं तिस कारणसे द्रव्यपनाके योगसे द्रव्य हो सक्ती है यह तुम्हारी शंका ठीक नहीं है (फेरिआचार्य कहते हैं-–

यदि*अप्रथक् * सिद्धयोः ⁶₂॥। अपि* योगः ¹₁। स्यात्T = जो (द्रव्यत्व और द्रव्यमें) भिन्न भिन्न सिद्ध न होनेपर भी सम्बन्ध हो तो

(१) हमारे यहां इस सूत्रका सर्वत्र एक अर्थ और एक ही पाठ है॥ श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रमें "द्रव्याणि जीवाश्च" ऐसा दूसरा सूत्र है अर्थात् सभाष्य० मे 'धर्म, अधर्म, आकश, पुद्गल, और संपूर्ण जीव ये पांच द्रव्य हैं "ऐसा अर्थ है कालको द्रव्य नहीं माना है॥

(२) यथास्वं शब्द अव्ययीभावसमास है और अव्ययीभावसमास नपुंसक लिङ्ग ही होता हैं।

(३) इस वाक्यके गुप्त शब्दोंको प्रकट करनेसे ऐसे वाक्य स्पष्ट होजाता है कि-पर्यायैः द्रूयन्ते तानि द्रव्याणि वा = पर्यायोंसे प्राप्त किये जाय वे द्रव्य हैं अथवा (= वा) पर्यायान् ²₃। द्रवन्ति तानि ³₃॥। द्रव्याणि¹॥। = पर्यायों को (जो) प्राप्त हों वे द्रव्य हैं।

आकाशकुसुमस्य प्रकृतिपुरुषस्य द्वितीयशिरसश्च योगः स्यादिति ॥ अथ पृथक्सिद्धिरभ्युपगम्यते, द्रव्यत्वकल्पना निरर्थिका । गुणसमुदायो द्रव्यमिति चेत्तत्रापि गुणानां समुदायस्य च भेदाभावे तद्द्रव्यव्यपदेशो नोपपद्यते । भेदाभ्युपगमे च पूर्वोक्त एव दोषः ॥ ननु गुणान्द्रवन्ति गुणैर्वा द्रयन्त इति ।

आकाश—कुसुमस्य ॥ (योगःस्यात्) प्रकृतिपुरुषस्य ।च* =(आकाशऔर) आकाश पुष्पके सम्बन्ध हो जाय और (=च) स्वाभाविक पुरुषके अर्थात् स्वभावसे एक मस्तकवाले पुरुषके

द्वितीय—शिरसः । योगः । स्यात् T इति * — दूसरे मस्तकका सम्बन्ध हो जाय (इसी प्रकार द्रव्यतो द्रव्यत्वरूप है ही तिसके फिर दूसरे द्रव्यत्वका योग ठहरै)

अथ * पृथक् * सिद्धिः ॥ अभ्युपगम्यते T — पक्षान्तरमें अथवा अब (द्रव्य और द्रव्यत्व) न्यारे सिद्ध मानेजाते हैं तो

द्रव्यत्व—कल्पना ॥ निरर्थिका ॥ = द्रव्यपनाकी कल्पना निष्प्रयोजन है अर्थात् हमको द्रव्य सिद्ध करना है और जब द्रव्यका अस्तित्व हमने भिन्न मान लिया पुनः यह कहना कि द्रव्य के द्रव्यत्व का योगहै तिस हेतुसे द्रव्यहै निरर्थक है क्योंकि द्रव्यकी विद्यमानता तो हम मान ही बैठे हैं

गुण—समुदायः । द्रव्यम् ॥ इति* चेत्*तत्र* अपि* = गुणोंका समूह है सो द्रव्य है ऐसा प्रश्न अथवा शंका है (उत्तर) वहां भी

गुणानां । समुदायस्य । च*भेद—अभावे । तत्द्रव्य- = गुणोंके और समुदायके (सर्वथा) भेद न माननेमें उस द्रव्यका (पृथक्)

व्यपदेशः । न* उपपद्यते T = नाम प्राप्त नहीं होता है (क्योंकि गुणोंका समुदाय कहा तब द्रव्य कहां)

भेद—अभ्युपगमे । च* पूर्व—उक्तः । एव* दोषः । = और (च) गुणनिके और समुदायके भेद माननेमें पहिले कहा हुआ ही दूषण आताहै अर्थात् उस द्रव्य नामकी अप्राप्ति आती है (क्योकि जब समुदाय गुणोंसे भिन्न ठहरा तब गुणोंका समुदाय क्यों कहना चाहिए उसको तो गुणोंसे पृथक ही मान लिया है

ननु*गुणान् । द्रवन्ति T गुणैः । वा द्रयन्ते T इति* = (इसी सम्बन्धमें पुनि) प्रश्न गुणोंको प्राप्त होता है अथवा गुणोंकरि प्राप्त किया जाता है (सो तुम्हारे कथनानुसार द्रव्य है) ऐसे

विग्रहेऽपि स एव दोष इति चेन्न । कथञ्चिद्भेदाभेदोपपत्तेस्तद्व्यपदेशसिद्धिः व्यतिरेकेणानुपलब्धेरभेदः सञ्ज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदाद्भेद इति ॥ प्रकृता धर्मादयो बहवस्तत्सामानाधिकरण्याद्बहुत्वनिर्देशः ॥

विग्रहे ७। * अपि*सः१। एव * दोषः१। इति*चेत्*	= द्रव्य शब्दके अर्थ प्रकाश करनेवाले वाक्यमें भी वही दोष आता है। ऐसी शंका है अर्थात् द्रव्य व्यपदेशकी अप्राप्ति आती है ऐसाप्रश्न है।
न *	= (उत्तर)(द्रव्य व्यपदेशकी अप्राप्ति का दूषण)नहीं आता है
कथञ्चित् * भेद-अभेद-उपपत्तेः ५॥	= (क्योंकि गुणोंकेऔर समुदायके वा द्रव्यके) कथंचित् भेद और कथंचित् उनमें अभेद माननेसेहै
तद्-व्यपदेश-सिद्धिः १॥ व्यतिरेकेण ३।	= उस (द्रव्य) के नाम (= व्यपदेश) की सिद्धि होय है (गुण और द्रव्य में) भिन्नता सहित
अनुपलब्धेः ५॥ अभेदः १।सञ्ज्ञा-लक्षण-प्रयोजनादि-	= न दीखने (के हेतु) से अभेद है (और) संज्ञा (संख्या) लक्षण और प्रयोजनादिक
भेदात् ५। भेदः१। इति* प्रकृताः ३। धर्मादयः ३। बहवः१।	= भेद करि भेद है । प्रकरणरूप धर्मादिक (द्रव्य) बहुत हैं
तत्-समान-अधिकरण्यात् ५॥ बहुत्व-निर्देशः १।	= सो समान आधार के योग से (इस सूत्र में) बहु वचनता का निरूपण है अर्थात् धर्म-अधर्म-आकाश-पुद्गल पूर्व सूत्रमें ये चार द्रव्य हैं और बहुवचन हैं इसलिये इस सूत्रमें ('द्रव्याणि' ऐसा शब्द बहुवचन में लाये हैं ?)

---

(१) कृत्, तद्धित, समास, एकशेष, सनाद्यन्तधातु इन पाच प्रकारकी वृत्तियोंमेंसे किसी भेदके अर्थको बोधन करनेवाले वाक्यको विग्रह कहते हैं। विग्रह लौकिक और अलौकिक दो प्रकारका है जैसे राजपुरुषः का लौकिक विग्रह राज्ञः पुरुष. होगा और अलोकिक विग्रह राजन्-अस्-पुरुष*सु होगा ॥ इसलिये "गुणान् द्रवन्ति गुणैर्वा द्रूयन्ते" यह लौकिक विग्रह द्रव्य शब्दका (जो वृत्तिके पहिले भेदमें द्रुधातु से बना है ॥ इस हेतु से विग्रह वाक्य का अनुवाद स्पष्ट रूप से ये हुआ कि "द्रव्य शब्दके अर्थ प्रकाश करने वाले वाक्यमे भी" अर्थात् गुणान्द्रवन्ति गुणैर्वा द्रूयन्ते मे भा इत्यादि ॥

स्यादेतत्संख्यानुवृत्तिवत्पुलिङ्गानुवृत्तिरपि प्राप्नोति । नैष दोषः । आविष्टलिंगाः शब्दा न कदाचिल्लिंगं व्यभिचरन्ति । अतो धर्मादयो द्रव्याणि भवन्तीति ॥

अनन्तरत्वाच्चतुर्णामेव द्रव्यव्यपदेशप्रसंगेऽध्यारोपणार्थमिदमुच्यते—

॥ जीवाश्च ॥ ३ ॥

जीवशब्दो व्याख्यातार्थः ।

स्यात् T-एतत् ¹₁।। संख्या-अनुवृत्ति-वत्* = यह हो अर्थात् यह मानलो (परन्तु) (प्रश्न) संख्याके अनुवर्तनके सदृश

पुल्लिग—अनुवृत्तिः¹₁।। अपि * प्राप्नोति T = पुलिंगकी अनुवृत्ति भी (इस सूत्रमे) प्राप्त होती है अर्थात् प्रश्न यह है कि धर्म-अधर्म-आकाश-पुद्गल द्रव्योको प्रथम सूत्रमे बहुवचनमें लाये है

इसलिये "द्रव्याणि" शब्द भी यहां बहुवचनमें कहा तो धर्म-अधर्म-आकाश-पुद्गल पूर्व सूत्रमें जब पुल्लिगमें है फिर इस सूत्रमें द्रव्य शब्दको पुल्लिगमें द्रव्याः ऐसा क्यों नहीं रक्खा नपुंसकलिंगमें "द्रव्याणि" ऐसा क्यों लाये हैं

न * एषः ¹₁। दोषः ¹₁। आविष्ट-लिंगाः ¹₃। शब्दाः¹₃। = (उत्तर) यह दूषण नहीं है (क्योकि) निवेशित लिंगी शब्द अर्थात् जिन २ शब्दों को जो जो लिंग प्राप्त है

न*कदाचित्*लिंगं ²₁।।। व्यभिचरन्ति T = कभी अपना लिंग नहीं छोड़ते हैं (इसलिये क्योंकि द्रव्य शब्द नपुंसक लिंगी है इस सूत्रमें भी "द्रव्याणि" ऐसाद्रव्य शब्द नपुंसकलिंगमें लाये हैं)

अतः*धर्म—आदयः ¹। द्रव्याणि ¹₃।।। भवन्ति T इति* = इसलिये धर्म-अधर्म-आकाश-पुद्गल द्रव्य हैं ऐसा (सूत्र) है

चतुर्णाम् ⁶₃। एव * अनन्तरत्वात् ⁵₁।।। = चारो (धर्म-अधर्म-आकाश-पुद्गल) के ही अत्यन्त समीपतासे अथवा लगावसे

द्रव्य-व्यपदेश-प्रसंगे ⁷₁। अध्यारोपण—अर्थम् ²₁।।। = द्रव्योके कथनके प्रकरणमें (अन्य द्रव्य के) संस्थापन वा नियत करनेके लिये

इदम् ¹₁।।। उच्यते T = यह (अग्रिम सूत्र मे) कहा जाता है कि

सूत्रम्- जीवाश्च ॥३॥ = **जीवाश्च (द्रव्याणि भवन्ति) = जीवाःच द्रव्याणि भवान्ति** T

सूत्रार्थः— जीवाः ¹₃। च * द्रव्याणि ¹₃।।। भवन्ति T = जीव भी द्रव्य हैं

वृत्त्यनुवादः—जीव-शब्दः ¹₁। व्याख्यात—अर्थः ¹₁। = जीव शब्द है सो कहा हुआ विषय है

बहुत्वनिर्देशो व्याख्यातभेदप्रतिपत्त्यर्थः । चशब्दः सञ्ज्ञानुकर्षणार्थः जीवाश्च द्रव्याणीति ॥ एवमेतानि वक्ष्यमाणेन कालेन सह षड्द्रव्याणि भवन्ति॥ ननु द्रव्यस्य लक्षणं वक्ष्यते 'गुणपर्ययवद्द्रव्यमिति' तल्लक्षणयोगाद्धर्मादीनां द्रव्यत्वव्यपदेशो भवति, नार्थःपरिगणनेन? ॥ परिगणनमवधारणार्थं, तेनान्यवादिपरिकल्पितानां पृथिव्यादीनां निवृत्तिःकृता भवति ॥ कथं? पृथिव्यप्तेजोवायुमनांसि पुद्गलद्रव्येऽन्तर्भवन्ति

बहुत्व-निर्देशः१। व्याख्यात-भेद-प्रतिपत्ति-अर्थः१=(इस सूत्रमें 'जीवाः' ऐसा)बहुवचनका निरूपण वा कथन वर्णित(जीवके)भेदोंकेजनानेकोहै
च-शब्दः१। संज्ञा-अनुकर्षण-अर्थः १। =(सूत्रमें) च शब्द (द्रव्य) संज्ञाके ग्रहण करनेके लिये वा अनुवृत्तिके लिये है
जीवाः३ च*द्रव्याणि३॥ इति* एवम्* एतानि३॥ =जीव भी द्रव्यें हैं ऐसा (अर्थ होता) है इसप्रकार ये
वक्ष्यमाणेन३ कालेन३ सह षड्द्रव्याणि३॥ भवन्ति I=आगेकहेजानेवाले काल सहित छह द्रव्यें होती हैं
ननु*गुण-पर्यय-वत्*द्रव्यम् १॥ इति*द्रव्यस्य६॥=प्रश्न, गुण पर्याय वाला द्रव्य होता है ऐसा द्रव्यका
लक्षणम्१॥ वक्ष्यते I तत्-लक्षणयोगात्५ धर्मादीनाम्६=लक्षण (सूत्र ३८ वां में) कहेंगे तिस लक्षणके सम्बन्धसे धर्मादिकोंके
द्रव्यत्व-व्यपदेशः१ भवति, न*अर्थः१ परि-गणनेन३॥=द्रव्यत्वनाम होताहैगणना(करने)सेप्रयोजननहीं(तौ आपने छह द्रव्यहैंऐसी गणना क्यों की)
परिगणनम्१॥ अवधारण-अर्थम्१॥ तेन३॥ अन्यवादिन्-=(उत्तर) गिनती है सो नियम के लिये है तिस (गिनती) से १ भिन्नवादीसे
परिकल्पितानाम्६॥ पृथिवी-आदीनाम् ६ =मानेगये पृथिवी-जल-तेज वायु आकाश-काल-दिशा-आत्मा, मन की अर्थात् पृथिवी आदिक इन नौ द्रव्योंकी (देखो 'तर्कसंग्रह' दूसरा सूत्र)
निवृत्तिः१ कृता१॥ भवति I कथम्? पृथिवी-अप् =निवृत्ति वा रोक पूरी- (=कृता) होती है (प्रश्न)कैसे पृथिवी, जल,
तेजो-वायु-मनांसि३॥ पुद्गलद्रव्ये७॥ अन्तर्भवन्ति I=अग्नि, वायु, मन, पुद्गल द्रव्यविषैं गर्भित हैं ।

(१) इस प्रश्नकी योग्यता इसप्रकार है कि अन्यवादियाने तर्क सग्रहआदि न्यायके ग्रंथोंमें आत्मा, काल, आकाश, दिशा, पृथिवी, जल,तेज, वायु और मन नौ द्रव्य माने हैं हमारे यहां आत्मा, काल,आकाश,पुद्गल,धर्म और अधर्म ये छह द्रव्य माने हैं धर्म और अधर्म अन्यवादियों ने द्रव्य नहीं माने हैं ऊपर की गणनासे स्पष्ट है कि आत्मा, काल और आकाश जिसमें दिशा भी गर्भित है (दिशा का आकाश मे गर्भित होना इससूत्रकी वृत्ति के अन्तभागमे सिद्ध किया है) हमारे यहां और उनके यहां एक से हैं। अब अन्यवादियोंकीशेष पांच द्रव्यें पृथिवी, जल, तेज,वायु, और मन रह गये सो हमारे यहां के पुद्गल द्रव्यमें सब के सब आजातेहैं इसलिये प्रश्नकर्ताने उपर्युक्त तर्क सग्रह ग्रन्थमें वर्णित नौ द्रव्योंके कथन वा गणना को चित्त में धारण करके यह प्रश्न किया है कि पुद्गल द्रव्यमें ये पांचों कैसे गर्भित है ॥

रूपरसगन्धस्पर्शवत्वाच्चक्षुरिन्द्रियवत् ।

रूप-रस-गन्ध-स्पर्शवत्त्वात्-५।।।चक्षुःइन्द्रिय-वत्*=(उत्तर)रूप-रस-गंध-और स्पर्शवान् होनेसे नेत्र इन्द्रियके सदृश(पुद्गलद्रव्यमें गर्भित)है

(१) यहांसे आगे इस वृत्तिके अर्थको भले प्रकार समझने के लिये इस टिप्पणी को चित्त लगाकर समझलेना चाहिये अन्य वादियोंके माने हुये चार गुणों में कौन कौन किस किस मेंहै?

जैनियों ने स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण-वाले पुद्गल माने हैं
(तत्त्वार्थ सूत्र अध्याय ५ सूत्र २३, द्रव्यसग्रह ग्रन्थकी गाथा १५)

(१)रूप—पृथिवी,जल,और तेजमें रहताहै (तर्कसग्रह १-१९) (१) रूप अर्थात् कृष्ण, नील,रक्त, पीत, श्वेत.ये पांच रूप वा वर्ण वा रग हैं।

(२) रस—पृथिवी और जल में रहता है (तर्कसग्रह १-२०) (२) रस अर्थात् खट्टा, मीठा,कडुआ (कटुक), कषायला, चिरपरा (तिक्त) ये पांच हैं

(३)गध—पृथिवी मात्रमें ही रहताहै (तर्कसग्रह १-२१) (३) गन्ध अर्थात् सुगन्ध (सुरभि), दुर्गन्ध (असुरभि), भेदरूप हैं

(४)स्पर्श-पृथिवी,जल,तेज,और वायुमेंरहताहै(तर्कसग्रह१-२२)(४)स्पर्श-कोमल(मृदु),कठोर हलका,भारी शीत,उष्ण,सचिक्कन(स्निग्ध),(रूक्ष) रूखा), -ये आठभेद स्पर्शकेहैंऐसेसामान्यतासेचारगुणऔरविशेषरूपसे२०गुणवालेपुद्गलहैं

(५)नित्य औरपरमाणूरूपमनहैअर्थात्पौद्गलिकवापुद्गलीकमनहै (देखोतर्कसग्रह१।१८) (५) मन अर्थात् द्रव्यमन जो पुद्गलद्रव्यका विकारहै, भावमन जो ज्ञानहै आत्मामेंगर्भितहै

इन दोनों बीजको के पढने से यह अन्तर निकलता है कि अन्य वादियोंने वायुको रूपवान् नहीं माना हे जैनियों ने रूपवान् माना है, रस गुणको अग्नि और वायु में नहीं माना है हमने माना है,गन्ध को जल अग्नि वायु में नहीं माना है जैनियों ने माना है। स्पर्श अन्यवादियोंने पृथिवी, जल, तेज और वायु सव में माना है सो हम जैनियों ने भी माना है ॥ पूज्यपाद स्वामीने "कथ व्यवहारोपपत्ते." तक वृत्तिके पृष्ठ२०३और२०४की १५ पक्तियोंमें,तीन वातें सिद्ध की हैं (१) जो प्रतिवादी नौ द्रव्यें मानने हे वे सर्व द्रव्य आत्मा-काल-आकाश और पुद्गलद्रव्य में अन्तर्भाव हैं इसलिये नौ द्रव्योंके माननेकी आवश्यकता नहीं, है वरन् धर्मद्रव्य, अधर्म द्रव्य, को मिलाकर केवल छह द्रव्य मानना चाहिये-(२)रूप-रस-गन्ध-स्पर्श, ये पृथिवी,जल,अग्नि और वायु, और द्रव्यमन में भी(जो पुद्गल द्रव्यका विकार है)विद्यमान हैं और पुद्गलके गुण हे और उनमें पाये जाते है,अर्थात् भिन्नवादियों ने वायु में रूप(वर्ण)नहीं मानाहै उसका खण्डन होताहै। अग्नि और वायु में रस गुण नहीं माना हैउसका भी खण्डन होता है और इसी प्रकार जल अग्नि-वायुमें गन्ध नहीं माना है उसकाभी खडन होता है। मनमें स्पर्शमाना है रस-रूप-गध नहीं माने हैं इसलिये पूज्पाद स्वामीने

वायुमनसो रूपादियोगाभाव इति चेन्न । वायुस्तावद्रूपादिमान्स्पर्शवत्वाद्घटादिवत् ॥

अर्थात् पृथिवी,जल,अग्नि, वायु और द्रव्यमन रूप वा वर्ण,रस,गंध,और स्पर्श सहित हैं और पुद्गल भी रूप,रस,गन्ध,और स्पर्शवान् हैं तिससे ये पांचो पुद्गल द्रव्यमें गर्भित हैं

वायु-मनसोः[६]॥रूप-आदि-योग-अभावः[१]इति*चेत्*=वायु और मनके रूपादिकका सम्बन्ध नहीं हैं ऐसा प्रश्न वा शंका (=चेत्) है

अर्थात् अन्यवादियोंकी तर्कसंग्रहके सूत्र १८ के अनुसार मन परमाणु रूप है (अतःस्पर्शवान् तो हुआ) उसके रस,गन्ध,और वर्ण नहीं माने हैं और सूत्र २२ के अनुसार वायु में केवल स्पर्श माना है और वर्ण-रस-गन्ध नहीं माने हैं (देखो तर्कसग्रह सूत्र १९,२०, २१)

न*वायुः[१]तावत्*स्पर्शवत्त्वात्[५]॥घटादिवत्*रूप-(१)आदिमान्[१]=(उत्तर) (सो) नहीं है ॥ वायु है सो प्रथम तो स्पर्शवान् होनेसे घटादिके समान रूप =रस गन्ध वाला है अर्थात् जहां स्पर्श है वहां रूप रस गंध होंय ही हों यह नियम है

जलमे गधसिद्ध किया है अग्निमे रस और गधसिद्ध किये हैं।और वायु में रूप-रस-गध-सिद्ध किये हैं और द्रव्यमनविषै रस-रूप-गध सिद्ध किये हैं जिनको अन्यवादियों ने नहीमाना है (३) समस्त पुद्गल परमाणुओंके एक जातिसे दूसरी जातिमें सदैव पलटन होती रहती है। जैसे पृथिवी से जल होता है जलसे पृथिवी होती है अग्नि से पृथिवी होय है और पृथिवी आदिक से अग्निहोतीहै इसप्रकार पृथिवी आदि से उपजे हुए और वायु तथा द्रव्यमनके न्यारे परमाणू नहीं है, ये समस्त ही पुद्गल के विकार हैं ॥

(१)सञ्ज्ञावाचक पुल्लिङ्ग शब्द जिनके अन्त मे'वत्'और'मत्'हों प्रथमा विभक्ति एक वचन,द्विवचन, बहुवचन, और द्वितीया विभक्ति एक वचन और द्विवचन मे अन्त के तकार के पहिले न् जोड़ते है फिर प्रत्यय लगाते है, जैसे-आदिमत्-और सबसे पहिले प्रथमा विभक्ति एक वचनमे 'त्' के पहिलेस्वर को दीर्घ करदेते है जैसे-आदिमत् से आदि-मात् हुआ पश्चात् न्-त् से प्रथम जोड़ा तो आदिमान् त् हुआ फिर स् प्रथमा विभक्ति एक वचनका प्रत्यय जोड़ा तब आदिमान् त् स् ऐसा रूप बना जब पद के अन्त मे एक व्यजन से अधिक हों तो प्रथम रहजाता है शेषसब गिर जाते है(देखो-सयोगान्तस्यलोपःअष्टाध्यायी सूत्र ८-२-२३) ॥ शेषरूप आदिमन्तौ,आदिमन्तःऔर आदिमन्तम् और आदिमन्तौ(द्वितीया विभक्तिमे) होगे ॥ इसलिये 'आदिमान्' यह रूप प्रथमा विभक्ति एक वचन पुल्लिग में बना ॥

'सयोगान्तस्य लोप.=सयोगान्तस्य[६]। लोपः[१]। =संयोगान्त यत्पद तदन्तस्य लोपः स्यात् ॥
सयोग-अन्तम्[१]॥यत्पदम्[१]॥ =जिस पदके अन्तमें सयोग (व्यजन)हो और
तद्-अन्तस्य[६]। लोपः[१] स्यात् । =वह सयोग जिस समुदायके अन्तमे होय तिसका लोप होजावे अर्थात् जब पदके अन्तमे एक व्यजनसे अधिक हो तो पहिला रहजाता है शेष सब गिरजाते हैं

चक्षुरादिकरणग्राह्यत्वाभावाद्रूपाद्यभाव इति चेत्परमाण्वादिष्वतिप्रसङ्गः स्यात्॥आपो गन्धवत्यः स्पर्शवत्त्वात्पृथिवीवत् ॥ तेजोऽपि रसगन्धवत् रूपवत्त्वात्॥तद्वदेव मनोऽपि द्विविधं द्रव्यमनो भावमनश्चेति । तत्र भावमनो ज्ञानम्, तस्य जीवगुणत्वादात्मन्यन्तर्भावः । द्रव्यमनश्च रूपादियोगात्पुद्गलद्रव्यविकारः ॥

चक्षुर्–आदि–करण–ग्राह्यत्व–अभावात् $\frac{5}{1}$	=नेत्रादिक इन्द्रियोंसे ग्रहणयोग्य न होनेसे वा न आकर्षित कियेजासकनेसे
रूप–आदि–अभावः $\frac{1}{1}$ इति* चेत्*	=(वायुके) रूप,रस गंधआदिका अस्तित्व नहीं है। ऐसी शका वा प्रश्न है
परमाणु–आदिषु $\frac{7}{3}$	=(उत्तर)तो परमाणु आदिक लक्ष्यमें (जो नेत्रोंकरि नहीं दीखते हैं)
अतिप्रसंगः $\frac{1}{1}$ स्यात् ।,आपः $\frac{1}{3}$ स्पर्शवत्त्वात् $\frac{5}{1}$ पृथिवीवत्	=(स्पर्शादिक)लक्षणकोभी अतिप्रसंग होगा॥ जल स्पर्शवान् होनेसे पृथिवीके समान
गन्धवत्यः $\frac{1}{3}$,	=गंधवान्है (अन्यवादियोंनेजलमेंरूपरसस्पर्शहीमानेहैंइसलियेयहांगंधत्वसिद्धकिया है)
तेजः $\frac{1}{1}$ अपि*रूपवत्त्वात् $\frac{5}{1}$ रस-गन्धवत्*	=अग्नि भी रूपवान् होनेसे रस और गन्धवानहै(क्योंकि अन्यवादियोंने अग्निमें रूप और स्पर्शमाने हैं इसलिये यहांपर रसत्व और गंधत्व सिद्ध किये हैं)।
तद्–वत्*एव*मनः $\frac{1}{1}$ अपि*द्विविधम् $\frac{1}{1}$	=उस (जल)के सदृश ही है॥ मन भी दो प्रकार है।
द्रव्यमनः $\frac{1}{1}$ भावमनः $\frac{1}{1}$ च*इति,तत्र*भावमनः $\frac{1}{1}$	=द्रव्यमन और भावमन। तहां भावमन है
ज्ञानम् $\frac{1}{1}$ तस्य $\frac{6}{1}$ जीवगुणत्वात् $\frac{5}{1}$ आत्मनि $\frac{7}{1}$	=सो ज्ञान है। तिस (भावमन) के चेतनका गुणहोनेसे,आत्मा (द्रव्य) में
अन्तर्भावः $\frac{1}{1}$, द्रव्यमनः $\frac{1}{1}$ च*रूप–	=गर्भित है। बहुरि द्रव्यमन अर्थात् सूक्ष्म पुद्गलका संचय रूप आठ पांखुरी के फूले कमलके आकार हृदय स्थानमें तिष्ठा हुआ है सो रूप
आदि–योगात् $\frac{5}{1}$ पुद्गलद्रव्य-विकारः $\frac{1}{1}$,	=रस गंध-स्पर्शके संयोगसे पुद्गलद्रव्य का परिणाम है १

अति प्रसङ्ग =अति प्रसक्ति, प्रसग को छोडने वाला,लक्ष्यमें जो लक्षणका सम्बन्ध होताहै उसको प्रसग कहते हैं जो इसके विपरीत हो वह अति प्रसंग हैं अर्थात लक्ष्यमें लक्षण के सम्बन्धकाअभाव (१) वायु और मन इन दोके सबध में रुपादिक के अभाव होने का प्रश्न किया गया था सो वायु को रुपादिक का होनासिद्ध करदिया,वायु के लगता ही जलमें गध और अग्नि में रस और गध सिद्धि करनेके पश्चात् शेष रहे हुए मनके दो भेद करते हुये द्रव्यमनमें रूप रस-गध-स्पर्शको सिद्ध आगे करेगें॥

रूपादिवन्मनः ज्ञानोपयोगकारणत्वाच्चक्षुरिन्द्रियवत् ॥ ननु अमूर्तेऽपि शब्दे ज्ञानोपयोगकारणत्वदर्शनाद्व्यभिचारी हेतुरिति चेन्न । तस्य पौद्गलिकत्वान्मूर्तिमत्त्वोपपत्तेः ॥ ननु यथा परमाणूनां रूपादिमत्कार्यत्वदर्शनाद्रूपादिमत्त्वम्, न तथा वायुमनसो रूपादिमत्कार्यं दृश्यते इति चेन्न । तेषामपि तदुत्पत्तेः । सर्वेषां परमाणूनां सर्वरूपादिमत्कार्यत्वप्राप्तियोग्यत्वाभ्युपगमात् ॥ न च केचित्पार्थिवादिजातिविशेषयुक्ताः परमाणवः सन्ति, जातिसङ्करेणारम्भदर्शनात् ॥

ज्ञानोपयोग-कारणत्वात् चक्षुःइन्द्रियवत्*	=ज्ञानोपयोग को निमित्तहोनेसे नेत्र इन्द्रियके समान
रूप-आदिवत् मनः ; ननु* अमूर्ते अपि*	=मन रूपरस-गंध-स्पर्शवान् (=रूपादि) है । प्रश्न । मूर्तिशून्यहोनेपर भी
शब्दे ज्ञानोपयोग-कारणत्व-दर्शनात् व्यभिचारी हेतुः	=शब्दविषैं ज्ञानोपयोग कारणभावदीखनेसे व्यभिचारीहेतुहैअर्थात्शब्दअमूर्तिकहोनेपर भीज्ञानोपयोगकीप्राप्तिकाकारणदेखेजानेसेहेतुपक्ष,सपक्ष,विपक्षमेंरहनेवालाव्यभिचारी
इति*चेत्*	=हुआ ऐसी शंका है(भावार्थ) द्रव्यमन रूपादि सहित हैसो ज्ञानके प्राप्तिविषैं कारण कहा है और अमूर्तिक शब्द भी ज्ञान करानेमें कारण है तो ऐसे ज्ञानकी उपलब्धिमें मूर्तिक द्रव्यमन और अमूर्तिक शब्द दोनों ही कारण हुये इसलिये यह नियम नहीं होसकता किजो ज्ञान करानेमें कारण है वह रूप—रस—गन्ध—स्पर्शवाला (=मूर्तिक) ही होता है ॥
न*;तस्य पौद्गलिकत्वात् मूर्तिमत्व—	=(उत्तर) नहीं; क्योंकि तिस (शब्द)कें पुद्गल जन्य होनेसे मूर्तिपना
उपपत्तेः ;ननु*यथा*परमाणूनाम् रूपादिमत्—	=सिद्धि (=उपपत्ति) है । प्रश्न । जैसे परमाणुओं के रूपादिवाला
कार्यत्व-दर्शनात् रूपादि-मत्त्वम् ;नतथावायु-	=कार्यपना दीखनेसे रूपादिकवान् पना है,नहीं तैसे वायु
मनसोः रूप-आदिमत्-कार्यम् दृश्यते ।	=और मनके रूपादिकमान् कार्य देखा जाता है
इति*चेत्*न*;तेषाम् अपि*तद्	=ऐसी शका है (उत्तर) नहीं, क्योंकि तिन (वायु और मनके) भी वह
उत्पत्तेः सर्वेषाम् परमाणूनाम् सर्व-रूप-आदिमत्-	=(रूपादिवान्कार्य) उत्पन्न होताहैक्योंकि सब परमाणुओंके समस्त रूपादिक
कार्यत्व-प्राप्ति-योग्यत्व-अभ्युपगमात्;	=कार्यपनाकी प्राप्ति होनेकी शक्ति, सामर्थ्य वा योग्यता मानी गई है
न च*केचित्*पार्थिव-आदि-जाति-विशेष-युक्ताः	=वहुरि नहीं कोई पृथिवी आदिक जन्य जाति विभेद सहित
परमाणवः सन्ति ।जाति-सङ्करेण आरम्भ-दर्शनात्	=परमाणु हैंक्योंकि(समस्त पुद्गल परमाणुओं के)जातिके पलटन करि आरम्भदीखेहै

दिशोऽप्याकाशेऽन्तर्भावः । आदित्योदयाद्यपेक्षया आकाशप्रदेश-पंक्तिषु इत इदमिति व्यवहारोपपत्तेः ॥ उक्तानां द्रव्याणां विशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ नित्यावस्थितान्यरूपाणि ॥४॥

अर्थात् समस्त पुद्गल परमाणुओं के एक जातिसे दूसरी जातिमें सदैव पलटन होती रहतीहै जैसे पृथिवी परमाणुओं से जल होताहै जल परमाणुओंसे पृथिवी होय है, अग्निसे पृथिवी होती है, और पृथिवी काष्ठादिकसे अग्नि होय है इस प्रकार पृथिवी आदिकसे उत्पन्न हुए वायु मनके न्यारे न्यारे परमाणु नहीं हैं ये समस्त ही पुद्गलके विकार हैं ?

दिशः॥ अपि* आकाशे॥ अन्तर्भावः॥; आदित्य-उदय-आदि-=दिशाका भी आकाश (द्रव्य) में समावेश है। सूर्य्यके उदय आदिके अपेक्षया॥ आकाश-प्रदेश-पंक्तिषु॥ इतः*इदम्॥ =अपेक्षासे आकाशके प्रदेशोंकी पंक्तियोंमें यहांसे यह (इधर) है इति*व्यवहार-उपपत्तेः॥ =इस प्रकार (पूर्वादिक दिशाओंके)व्यवहारकी सिद्धि है अर्थात् जहां सूर्य्य उगता है उसओरके आकाशके प्रदेशोंकी पंक्तियोंको पूर्वदिशा कहते है जहां सूर्य अस्त होता हैउस ओरके आकाशके प्रदेशकी पंक्तियोंको पश्चिम दिशा कहते हैं इस प्रकार शेष दिशाओ को जानना

उक्तानाम्॥ द्रव्याणाम्॥ विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थम्॥ आह॥ =वर्णित द्रव्योंके विशेषज्ञानके लिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते है कि

[१]नित्यावस्थितान्यरूपाणि ॥ ४ ॥

=([२]धर्मादीनि, [३]कालः, [४]जीवाश्च, [५]द्रव्याणि)नित्यावस्थितान्यरूपाणि ॥ ४ ॥

सूत्रार्थः—धर्म-आदीनि॥ कालः॥ जीवाः॥ च* द्रव्याणि॥ =धर्म-अधर्म-आकाश-पुद्गल-काल-और जीव द्रव्ये नित्य- ध्रुव वा नित्य हैअर्थात् द्रव्यविषैं अनेक धर्म है वे(धर्म)द्रव्यपनाकी अपेक्षा (न कि पर्यायकी अपेक्षा) अविनाशी हैं अथवा सदा विद्यमान हैं ।

(१)'दोनों आम्नायोंमे इस सूत्रका पाठ,अर्थएक है?(२)'धर्म-अधर्म-आकाश-पुद्गल'यह प्रथम सूत्र से लिया है(३) 'काल'इस अध्यायके उनतालीसवां सूत्रसे अध्याहार किया है(४) 'जीवाश्च'इस अध्यायके तीसरे सूत्रसेयह अनुवृत्ति लीगई है(५)'द्रव्याणि'इस अध्यायके दूसरे सूत्र से अनुवर्तताहै॥

नित्यं ध्रुवमित्यर्थः । नेः ध्रुवे त्यः इति निष्पादितत्वात् ॥ धर्मादीनि द्रव्याणि गति-हेतुत्वादिविशेषलक्षणाद्रव्यार्थादेशादस्तित्वादिसामान्यलक्षणाद्रव्यार्थादेशाच्च

अवस्थित— =अवस्थित है अथवा ज्योंके त्यों रहते है अर्थात् द्रव्योंमें अपने अपने जो जो विशेष(२)लक्षण है उनको नही छोड़ते है जैसे जो द्रव्य चेतन है वह अचेतन नही हो सक्ती जो द्रव्य मूर्तिक है वह अमूर्तिक नही हो सक्ती और जो अमूर्तिकहै वह मूर्तिक नही हो सक्ती इत्यादि तिससे द्रव्योंकी संख्याकी व्यवस्थाहै और छह द्रव्योंकीसंख्या १,२,३,४,५,वा ७,इत्यादि नहीं होसक्ती है

अरूपाणि १।३।। =(पुद्गल द्रव्यके अतिरिक्त) अरूपी हैं अर्थात् अमूर्तिक है

वृत्त्यनुवादः-नित्यम् १।१।।ध्रुवम् १।१।। इति* अर्थः १।१ नेः ५।१ ध्रुवे ७।१ =नित्य है सो ध्रुव अथवा अविनाशी ऐसा अर्थ है(नि)धातु से स्थिर अर्थमे

त्यः १।१ इति* =त्यप् अर्थात् (त्य) प्रत्ययलगाकर (नित्य) ऐसा(शब्द)

निष्पादितत्वात् ५।१।।;धर्म–आदीनि १।३।। =सिद्ध वा निष्पन्न होता है ॥ धर्म–अधर्म–आकाश-पुद्गल–जीव-काल

द्रव्याणि १।३।।गति–हेतुत्व–आदि-विशेषलक्षण- =द्रव्यहैंगति-हेतुत्व-आदिकसबद्रव्योंमें न व्यापने वाले गुणोंसे(=विशेष लक्षण)

द्रव्यार्थ(१)–आदेशात् ५।१ च*अस्तित्व–आदि– =द्रव्यस्वरूपके आदेशकरि और (=च) अस्तित्वादिक (=सामान्य लक्षण)

सामान्य-लक्षण-द्रव्य-अर्थ–आदेशात् ५।१ च* =सव द्रव्योमें व्यापनेवाले गुणोंसे द्रव्यार्थिक नयके नियमसे

(१) सर्वार्थसिद्धि वृत्तिके प्रथम सस्करण मे' द्रव्यत्व–आदेशात् ' पाठ है हमने 'द्वितीयावृत्ति' का पाठ 'द्रव्यार्थादेशात्' लिया है क्योंकि यह पिछला पाठ तीन हस्त लिखित प्रतियोमे भी मिलता है॥ दोनों पाठों का अर्थ लग भग एक है । (२) गुण अथवा लक्षण के दो भेद हैं (।)सामान्य और (।।) विशेष (।)जो सव द्रव्योंमें व्यापै वे सामान्य अथवा साधारण हैं वे गुण अनेक हैं परन्तु उनमे अस्तित्व–वस्तुत्व–द्रव्यत्व-प्रमेयत्व–अगुरुलघुत्व-प्रदेशवत्व-ये मुख्यहैं(देखो अध्याय २ पृष्ठ २६)।।।जो सव द्रव्यांमे न व्यापै उसको विशेष गुण कहतेहैं जैसे जीवका विशेषगुण ज्ञान ॥ नित्य और अवस्थित शब्दोमे क्या भेद अथवा अन्तर है । देखो प० जयचद्रायजी वचनिका पृष्ठ ४११) द्रव्यार्थिक नयके आदेशकरि द्रव्योंको अपने गति हेतुत्व स्थितिहेतुत्व आदि विशेष गुण तथा अस्तित्व आदि सामान्य लक्षणका किसी समयमे न छोडना सो नित्य है । धर्मादिक षड् द्रव्योंकी कही गई सख्या तथा उनके प्रदेशोकी कथित इयत्ता (सख्या) कभी भी न्यून वा वढती नही होना उसे अवस्थित कहते हैं । भावार्थ अवस्थित विशेषणसे द्रव्यो तथा उनके प्रदेशोकी सख्याका क्रम कभी घटैगा वढेगा नहीं' ज्योंका त्यों अथवा वेसाही क्रम रहैगा ॥

कदाचिदपि न व्ययन्तीति नित्यानि। वक्ष्यते हि तद्भावाव्ययं नित्यमिति। इयत्ताऽव्यभिचारादवस्थितानि धर्मादीनि षडपि द्रव्याणि कदाचिदपि षडिति इयत्वं नातिवर्तन्ते। ततोऽवस्थितानीत्युच्यन्ते॥ न विद्यते रूपमेषामित्यरूपाणि, रूपप्रतिषेधेन तत्सहचारिणां रसादीनामपि प्रतिषेधः। तेन अरूपाण्यमूर्तानीत्यर्थः॥

यथा सर्वेषां द्रव्याणां नित्यावस्थितानीत्येतत्साधारणं लक्षणं तथा अरूपित्वं पुद्गलानामपि प्राप्तम्।

कदाचित्*अपि*न*व्ययन्ति। इति*नित्यानि;	=कभी भी नाश वा नष्ट नहीं होती हैं इसप्रकार नित्य हैं वा अविनाशी हैं
वक्ष्यते। हि*तद्भाव–अव्ययम्॥	=क्योंकि(=हि) (इस अध्यायके इकतीसवें सूत्रमें) कहेंगे कि "तद्भावाव्ययं नित्यम्"
	अर्थात् जो (तद्भाव) रूपसे वा सत्स्वभावसे(=तद्भाव)अविनाशी (=अव्यय) है
नित्यम्॥इति*;इयत्ता-अव्यभिचारात् अवस्थितानि॥	=सोनित्यहै; इतनेका होना परिमाण वा गिनतीके न छोड़ने(के हेतु)सेअवस्थित हैं
धर्म-आदीनि॥षड्॥अपि*द्रव्याणि॥कदाचित्*अपि*षड्	=धर्मादिक छह ही(=अपि) द्रव्य हैं किसीकाल में भी(=अपि)छह हैं
इति*इयत्वम्॥ न*अतिवर्तन्ते। ;	=इस प्रकार परिमाण को वा संख्याको नही उलंघे हैं, नही त्यागे हैं
ततः*अवस्थितानि॥इति*उच्यन्ते; न*विद्यते।	=तिसलिये(ये छहो द्रव्य) अवस्थित कही जाती हैं। नहीं है
रूपम्॥एषाम्॥इति*अरूपाणि॥रूप-प्रतिषेधेन॥	=रूप वा वर्ण जिनके इस प्रकार(येद्रव्यें)अरूपी हैं। रूपके निषेधसे
तत्-सहचारिणाम्॥ रसादीनाम्॥ अपि*	=उस(रूप=वर्ण=रंग)केसहचारी अर्थात्एकँसाथरहनेवालेरस-स्पर्श गंधकीभी(=अपि)
प्रतिषेधः; तेन॥अरूपाणि॥ अमूर्तानि॥	=निवृत्ति है। तिस(रूपके प्रतिषेध) से अरूपी हैं अमूर्ती हैं
इति*अर्थः॥ यथा*सर्वेषाम्॥द्रव्याणाम्॥नित्य-	=ऐसा अभिप्राय है। जैसे समस्त द्रव्योंके नित्य
अवस्थितानि॥ इति*एतत्॥साधारणम्॥	=अवस्थित ऐसा यह(=एतत्)सामान्य
लक्षणम्॥तथा*अरूपित्वं॥पुद्गलानाम्॥अपि*प्राप्तम्॥	=लक्षण है। तैसे अरूपीपना पुद्गलोंके भी सिद्ध है।

(१)'विद्यते'–यह रूप विद् धातुसे बनाहै।'विद्'सज्ञा और धातु दोनों अर्थोंमें आताहै जब सज्ञा होताहै तब ज्ञान,पंडित,और बुधग्रह ये तीन अर्थ देताहै। (ʼ) विद् अदादि द्वितीय गणका धातु परस्मैपद,सकर्मक, जानना अर्थमें गुण सज्ञाहोकर'वेद्' रूपहुआ, अन्यपुरुष,एक वचन,परस्मैपद,वर्तमान कालकी क्रिया का ति लगानेसे वेद्+ति=वेत्ति हुआ ( ) विद्=होना, दिवादि चतुर्थगण' आत्मनेपद अकर्मक धातु यहांपर है। चतुर्थगणका विकरण 'य और वर्तमान काल अन्यपुरुष, एक वचन आत्मने पदका'ते'जोडनेसे विद्+य+ते=विद्यते हुआ ( ) विद्=पाना तुदादि उभय पदी, सकर्मक गतुहै विकरण'अ'लगानेसे प्रथम'न्'लगाया जाताहै विन्द्+अ हुआ,ति प्रत्यय लगानेसे विन्दति=पाताहै विन्दते=अपने लिये पाताहै, दो रूप बने॥

अतस्तदपवादार्थमाह—

॥ रूपिणः पुद्गलाः ॥५॥

रूपं मूर्तिरित्यर्थः ॥ का मूर्तिः? रूपादिसंस्थानपरिणामो मूर्तिः ॥ रूपमेषामस्तीति रूपिणः । मूर्तिमन्त इत्यर्थः ॥ अथवा रूपमिति गुणविशेषवचनशब्दस्तदेषामस्तीति रूपिणः ॥ रसाद्यग्रहणमिति चेत्

अतः॥तद–अपवाद–अर्थम् ॥आह ।	=इसलिये उस (अरूपित्व) के विरोध वा भिन्नताके लिये (अगले सूत्रमें) कहते है कि
(१)रूपिणः पुद्गलाः ॥ ५ ॥	=रूपिणः पुद्गलाः भवन्ति ॥ ५ ॥
सूत्रार्थः—रूपिणः पुद्गलाः भवन्ति ।	=(सूत्रार्थ) (उक्तछहो द्रव्योंमेंसे केवल) पुद्गल रूपी है, पुद्गल मूर्तिमान है अर्थात् पुद्गलोके रूप अथवा मूर्ति है और नेत्रोंसे देखेजासकते हैं और स्पर्श जासकते है
वृत्त्यनुवादः रूपम् ॥मूर्तिः॥इति अर्थः॥का॥मूर्तिः॥	=रूप है सो मूर्ति है ऐसा अर्थ है(प्रश्न) मूर्ति क्या है ? ।
रूप–आदि–संस्थान–	=(उत्तर)रूप–रस-गन्ध–स्पर्शका गोल, तिकोना, चौकोना लंबा आकार(=संस्थान) का
परिणामः॥मूर्तिः॥;रूपम्॥एषाम्॥अस्ति।इति॥	=परिणमन है सो मूर्ति है । रूप जिनके है ऐसे
रूपिणः॥; मूर्तिमन्तः॥इतिअर्थः॥अथवारूपम्॥इति	=रूपी हैंआकृतिवान् ऐसा अर्थ है अथवा रूप ऐसा
गुण-विशेष-वचन-शब्दः॥तद्॥एषांअस्तिइतिरूपिणः	=गुणका जाति(=रस-गंध-स्पर्श का भी)वाची शब्दहै। वह(रूपगुण)जिनकेहै ऐसे रूपीहै
रस–आदि–अग्रहणम् ॥ इति॥चेत्॥	=(इससूत्रविषे रूपमें) रस-गंध-स्पर्शका ग्रहण नहीं होता है ऐसी शंका है ?

( ) विद्=विचारकरना,रुधादि सातवागणका आत्मनेपदी सकर्मक धातुहै । इसका विकरण'न' को धातुके स्वर और अन्तके व्यजनके मध्य लगाते है अत विद्=विनद् । यदि क्रियाका ङित् प्रत्यय लगाना हो तो इस विकरण का 'अ' गिरजाता है इसलिये विन्द्+ते,'ते'के कारण'द्' त् मे वदलगया, (देखो, प्रथम अध्याय पृष्ठ ११ मे 'खरि रूला चर' स्यु': सूत्रका अर्थ) इसलिये अव 'वित्ते'=वह विचार (अपने लिये) करता है रूप वनगया ॥
( ) विद् चुरादिदशवेंगणका आत्मनेपदी, अकर्मक और सकर्मक कहना प्रसिद्धकरना, अनुभव करना, रहना चार अर्थोंमे आता है॥ इसके विकरण 'अय'के पहिले धातुके उपान्तिक ह्रस्व स्वरकी प्रायःगुण सज्ञा होजातीहै जैसे विद्=वेद्+अय)उक्त तेके जोडनेसे वेदयते रूप,कहताहै,प्रसिद्ध करताहै अनुभवकरता है,रहना है,अर्थोंमे वनता है ॥ सहेतुक सकर्मक रूप वेदयति-वेदयते है ॥ (१) दोनों सम्प्रदायामें इस सूत्रका अर्थ और पाठ एकसा है ?
रूपमेषामस्त्येषु वास्तीतिरूपिणः=रूपम् एषाम् अस्ति वा एषु(रूपम्, अस्ति इति रूपिणः=जिनके रूपहै वा जिनमेरूप हैऐसा' रूपिणः'शब्दका विग्रह है

न । तदविनाभावात्तदन्तर्भावः ॥ पुद्गला इति बहुवचनं भेदप्रतिपादनार्थम् ॥ भिन्ना हि पुद्गलाः। स्कन्धपरमाणुभेदात्तद्विकल्प उपरिष्टाद्वक्ष्यते॥ यदि प्रधानवदरूपत्वमेकत्वं चेष्टं स्यात् विश्वरूपकार्यदर्शनविरोधः स्यात्॥आह किं पुद्गलवद्धर्मादीन्यपि द्रव्याणि प्रत्येकं भिन्नानीत्यत्रोच्यते-

न*	=(उत्तर) सो नहीं हैं अर्थात् रूपमें रस-गन्ध-स्पर्शका ग्रहण है
तद्-अविनाभावात् ५/१	=उस (रूप) के अविनाभावकरि अथवा उस (रूप) से व्याप्त होने (केकारण)से वा उस (रूप) के विना उनकी स्थिति न रहने से
तद्-अन्तर्भावः १/१ ;पुद्गलाः १/३ इति*बहुवचनम् १/१॥	=उस (रूप) में (रस-गंध-स्पर्श) गर्भितहै । (सूत्रमें) पुद्गलाः ऐसा बहुवचन है
भेद-प्रतिपादन-अर्थम् १/१॥;भिन्नाः १/३ हि*पुद्गलाः १/३;	=सो (पुद्गलोंके) भेदोंके जनावनेके लिये है । क्योंकि(=हि) पुद्गल भिन्न भिन्न हैं
स्कन्ध-परमाणु-भेदात् ५/१ तद्-विकल्पः १/१	=स्कन्ध परमाणु के भेदसे उन (पुद्गलों) के भेद
उपरिष्टात्*वक्ष्यते । यदि*प्रधानवत् *	=आगे कहेंगे ।जो सांख्य मतकी सत्वरजस्तमोरूप तीनों गुणोंवाली प्रकृतिके सदृश
अरूपित्वम् १/१॥एकत्वम् १/१॥च*इष्टम् १/१॥ स्यात् T	=अरूपता और (=च) एकता (पुद्गलोंके) मानीजाय (=इष्ट स्यात्) तो
विश्व-रूप-कार्य-दर्शन-विरोधः १/१ स्यात् T	=संसार में मूर्तिक कार्य के देखनेमें विरोध होजाय अर्थात् यदि सांख्य मतके अनुसार प्रकृतिको अरूपी और एक माने तो जगतमें बहुतसे कार्य,मूर्तिक दीखते हैंसो न दीखें भावार्थ प्रकृतिरूपीहै,मूर्तिकहै,उसके बहुत भेदहैं,और विशेष अवस्थाओंमें दीखतेभी हैं।
आह [किम्*पुद्गलवत्*धर्म-आदीनि १/३॥	= (शिष्य) पूछता है कि क्या पुद्गल द्रव्यके समान धर्म-अधर्म आकाश
अपि*द्रव्याणि १/३॥प्रत्येकम्*भिन्नानि १/३॥इति*अत्र*उच्यते	=भी प्रत्येक द्रव्य भिन्न भिन्न(=भिन्नानि) है यहां (अग्रिमसूत्रमें)कहा जाता है कि-

"रूप शब्दके अनेक अर्थ होते हैं जैसे गोरूपाणि-गोद्रव्याणि अर्थात् गौ द्रव्य है। यहां रूप शब्दका अर्थ द्रव्य है। 'चैतन्य पुरुषस्य स्वरूप स्वभाव इत्यर्थः' अर्थात् चैतन्य पुरुषका स्वभाव है। यहां रूप शब्दका अर्थ स्वभाव है। दशरूपमध्ययन कार्यं-दशवारानभ्यासः कार्यं. अर्थात् दश वार अभ्यास करना चाहिये। यहां रूप शब्दका अर्थ अभ्यास है। स्वरूप शब्दस्य स्वा श्रुतिरित्यर्थ' शब्दका स्वरूप अर्थात् शब्दका अपना श्रवण है। यहां रूप शब्दका अर्थ श्रवण है। 'रूप-चत्वारि महाभूतानि उपादाय रूप चेति' रूप अर्थात् चार महाभूतोंको ग्रहण कर, यहां रूप शब्दका अर्थ चार महाभूत है। 'चक्षुर्ग्रहणयोग्यो योऽर्थस्तद्रूपमिति' अर्थात् नेत्र इंद्रियके ग्रहण करने योग्य जो पदार्थ हो वह रूप है, यहां रूप शब्दका अर्थ गुणविशेष है। कहीं कहीं पर रूप शब्दका मूर्ति भी अर्थ है जिस प्रकार 'रूपिद्रव्यं मूर्तिमद् द्रव्य' अर्थात् यह द्रव्य मूर्तिमान है यहां रूप शब्द का अर्थ मूर्ति है। परन्तु उपर्युक्त अनेक अर्थोंके रहते भी शास्त्रकी सामर्थ्यसे यहां पर रूप शब्दका अर्थ मूर्ति ही लिया गया है।" प० गजाधर लाल

॥ आ आकाशादेकद्रव्याणि ॥६॥

आङ् अयमभिविध्यर्थः । सौत्रीमानुपूर्वीमनुसृत्यैतदुक्तं, तेन धर्माऽधर्माकाशानि गृह्यन्ते ।
एकशब्दः संख्यावचनस्तेन द्रव्यं विशिष्यते,

---

[1]आ आकाशादेक[2]द्रव्याणि ॥६॥ = आ आकाशात्--एकद्रव्याणि भवन्ति ॥६॥

सूत्रार्थः–[3]आ आकाशात्[5] एकद्रव्याणि[1] भवन्ति T =(प्रथम सूत्रके धर्म द्रव्यसे लेकर) आकाश पर्यंत एक एक द्रव्य है अर्थात् धर्मद्रव्य–अधर्मद्रव्य और आकाशद्रव्य अखंड रूप है बहुत वा अनेक नहीं हैं

वृत्त्यनुवादः–आङ्[1] अयम्[1] अभिविधि–अर्थः[1] =आङ् उपसर्ग अर्थात् आ शब्द है सो यह अभिविधि, अभिव्याप्ति वा पर्यंत के अर्थ है

सौत्रीम्[2] आनुपूर्वीम्[2] =(इसअध्याय के प्रथम) सूत्र द्वारा पठित (=सौत्रीम्) क्रमके (=आनुपूर्वीम्)

अनुसृत्य – एतद्[1] उक्तम्[1], तेन[3] =अनुसार (=अनुसृत्य) यह कथन हुआ कि तिस (आङ् वा पर्यंत) करि

धर्म–अधर्म–आकाशानि[1] गृह्यन्ते T =धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य लिये जाते है अथवा ग्रहण किये जाते हैं अर्थात् इस अध्याय का प्रथम सूत्र ऐसा है कि "धर्म–अधर्म–आकाश–पुद्गलाः अजीव–कायाः" आकाश द्रव्य पर्यंत सूत्रके आरम्भिक क्रमानुसारमें धर्म–अधर्म आकाश तक गर्भित होगयेहै शेष द्रव्य छूटगये)

एक-शब्दः[1] संख्या-वचनः[1] तेन[3] द्रव्यम्[1] विशिष्यते T =(इस सूत्र में)एक शब्द है सो संख्यावाची है तिस(एकशब्द) से द्रव्य विशेषित है –अर्थात् एक शब्द द्रव्यका विशेषण अथवा द्रव्यके गुणका वाचक है

---

(१) हमारे यहां इस सूत्रका पाठ सवत्र एक है ॥ श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य०में "आ आकाशादेकद्रव्याणि" और "आकाशादेक द्रव्याणि" ऐसे दोपाठ हैं, पिछले पाठमें आङ्" की (=अर्थात् आ की) आकाश शब्द के साथ सधि करदीगई है ऐसा सभाष्य० की चरण टिप्पणीमें लिखा है

(२) जब ये तीनों एक एक द्रव्य हैं तो जीव पुद्गल, और काल इन तीनों द्रव्योंमे विना कहे भी अनेकता सिद्ध होजाती है सो आगमानुसार जीव द्रव्य अनन्तानन्त हैं, पुद्गल परमाणु जीवों से अनन्त गुण है और काल द्रव्य के अणु असख्यात है ॥

(३) आकाशादेकद्रव्याणि (=आ आकाशात्-एक-द्रव्याणि) श्वेताम्बर सम्प्रदायके "सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र" मे उपर्युक्त पाठ है यहां प्रथम 'आ' शब्द अभिव्याप्ति (पर्यंत) रूप अर्थका बोधक है, पूर्वोक्त पाठमे भी आकाश शब्दके पूर्व "आ" पद है परन्तु दीर्घ रूप सधि होगई है ॥

एषां बहुत्वमित्येतदनेन ख्याप्यते ॥ अधिकृतानामेव एकद्रव्याणां विशेषप्रतिपत्त्यर्थमिदमुच्यते

॥ निष्क्रियाणि च ॥ ७ ॥

एषाम्$^{3}_{3}$ बहुत्वम्$^{1}_{1}$ ॥ इति*; एतद्$^{1}_{1}$ ॥ =इन (धर्म-अधर्म-आकाश) के (द्रव्यकी अपेक्षासे) बहुतपन है ॥ यह (=एतद्)

अनेन$^{3}_{1}$ ख्याप्यते I; अधिकृतानाम्$^{6}_{3}$ ॥ एव* =इस (सूत्र) करि प्रसिद्ध है ॥ प्रकरणरूप कियेगये ही

एक-द्रव्याणाम्$^{6}_{3}$ ॥ विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थम्$^{1}_{1}$ ॥ इदम्$^{1}_{1}$ ॥ उच्यते=अभेदरूप(धर्म-अधर्म-आकाश)द्रव्योंके विशेष जाननेके लिये यह कहाजाताहैकि

सूत्रम्- [1]निष्क्रियाणि च ॥ ७ ॥ =(आ आकाशात्) निष्क्रियाणि च (भवन्ति) ॥७॥

सूत्रार्थः-आ* आकाशात्$^{5}_{1}$ निष्क्रियाणि$^{1}_{3}$ ॥ च* भवन्ति I =और(=च)आकाश पर्यंत(द्रव्ये)हलनचलनरूप क्रियासे रहित है। अथवा आकाश पर्यंत(द्रव्ये)हलन चलन रूप क्रियासे भी(=च)रहित है अर्थात् धर्मद्रव्य,अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य नित्य-अवस्थित-अरूपी-एकएक द्रव्य होनेके अतिरिक्त(=च)अपने अपने स्थानसे कदाचित् चलायमान नहीं होते हैं

(१) श्वेताम्बर आम्नायके 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्र' का तथा हमारे यहां का शुद्ध पाठ 'निष्क्रियाणि च' एक है उनके यहां की भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थ टीकाके पृष्ठ ३५६ में ''नि क्रियाणि च अथवा'' यह पाठ है। हमारे यहां भी कितनीही पुस्तकोंमें जैसे तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ १६६ पर और ज्ञानचन्द्रजी लाहोर के मुद्रित ''तत्त्वार्थ सूत्राणि'' के पृष्ठ १५ पर 'निः क्रियाणि च' पाठ है सो अशुद्ध है क्योंकि दुस्-दुर् दो अव्यय दुःख, कठिनता अर्थोंमें एकार्थ वाची हैं और निस्, निर् ये दो अव्यय निषेध, नहि, निश्चय, रहित, अर्थोंमें समानार्थक शब्द हैं जिसके स् को ''ससजुषो रुः (८-२-६६ सूत्रसे) =पदान्त सकार और सजुष् शब्दके षकार को रु हो, रु हुआ, 'रु' में उ इत्संज्ञक है इस 'उ' का लोप होगया फिर केवल निर् रहगया अब निस् और निर् दोनोंका 'निर्' रूप रहा। ''खरवसानयोर्विसर्जनीयः'' (८-३-१५ सूत्र से) खर् परे हो वा अवसानमें पदान्तरेफको विसर्जनीय आदेशहो, 'निर्' का 'निः' हुआ। निः+क्रिया+जस् (=अस् प्रथमा बहुवचनका चिन्ह है) ॥

कुप्वोः ≍क ≍पौ च (८-३ ३७ सूत्रसे) कवर्ग पवर्ग परे हों तो विसर्जनीयको यथासंख्य जिह्वामूलीय और उपध्मानीय आदेश हों और विसर्जनीय भी(=च)हो।इस सूत्रने विसर्जनीय को स् नहीं होने दिया क्योंकि यह सूत्र'विसर्जनीयस्य'सः ८।३।३४(=खर् परे हो तो विसर्जनीयको सकार आदेश हो) सूत्र के प्रयोग को रोकता है ॥ हमने विसर्जनीय का विसर्जनीयही नियत रक्खा ॥ अब 'इदुदुपधस्य चा ऽप्रत्ययस्य ८।३।४१ सूत्र (कवर्ग पवर्ग परे हों तो इकार और उकार है उपधामें जिसके ऐसे प्रत्ययभिन्न के विसर्जनीयको षकारादेश हो ॥ इसलिये निष्+क्रिया+अस् रूप हुआ ॥ यदि यहांपर कोई तर्क करै कि हम संधि नहीं करते हैं निर्+क्रियाणि अथवा निः क्रियाणि ही रक्खाजाय तो क्या हानि है ॥ (उत्तर) एकपदमें अर्थात् अखड पदमें जैसे राम+नाम्=रामाणाम्; धातुके साथ उपसर्गमें जैसे प्र+नदति=प्रणदति=अधिक नाद करता है और समासमें जैसे यहां निः+क्रिया+अस्=निष्क्रियाणि नित्य,वा आवश्यकतासे संधि होती है। यहां पर यदि संधि न की जाती तो 'क्रिया' शब्द जो स्त्रीलिंग है नपुसकलिंग नहीं होसक्ताथा।यहांपर निष्क्रियाणि प्रथमा विभक्ति बहुवचन नपुसकलिंगीहै परन्तु अन्य प्रकारके वाक्योंमें वक्ताकी इच्छा है संधि करै वा न करै इसलिये 'निःक्रियाणि' शब्द अशुद्ध है और विना 'समास' के क्रिया शब्द का कदापि क्रियाणि नहीं बनसकता है ॥

एकं द्रव्यं एकद्रव्यमिति ॥ यद्येवं बहुवचनमयुक्तं, धर्माद्यपेक्षया बहुत्वसिद्धिर्भवति ॥ ननु एकस्यानेकार्थप्रत्यायनशक्तियोगादेकैकमित्यस्तु लघुत्वाद् द्रव्यग्रहणमनर्थकं, तत्क्रियते द्रव्यापेक्षया एकत्वख्यापनार्थं द्रव्यग्रहणम्॥ क्षेत्रभावापेक्षया असंख्येयत्वानन्तत्वविकल्पस्येष्टत्वात् न जीवपुद्गलवत्

एकम्[२]॥द्रव्यम्[१]॥एकद्रव्यम्[१]॥इति* =‘एकं द्रव्यं’ समासरूपमें “एकद्रव्यं” ऐसा होता है अर्थात् टुकड़े रूप नहीं है न दो, तीन, चार पांच इत्यादि संख्या रूप हैं एक ही द्रव्य है बहुत नहीं हैं ऐसी-धर्म-अधर्म-आकाश तीन ही द्रव्य हैं

यदि*एवम्* =(प्रश्न)जो ऐसाहै अर्थात् धर्म-अधर्म-आकाश एकएक द्रव्यहैं वा अभेदरूप द्रव्य हैं

बहुवचनम्[१]॥अयुक्तम्[१]॥ =तौ (सूत्रमें द्रव्याणि ऐसा) बहुवचन (का प्रयोग) ठीक नहीं है

धर्म-आदि-अपेक्षया[३]॥बहुत्वसिद्धिः[१]॥भवति। =(उत्तर) धर्म-अधर्म-आकाशकी अपेक्षासे बहुतपनाकी प्राप्ति होती है अर्थात् धर्म-अधर्म-आकाश ये तीन द्रव्यें पृथक् पृथक् है परन्तु एक एक है टुकड़े रूपमें नहीं है तीन होनेके हेतुसे “द्रव्याणि” इस बहुवचन शब्दकी प्राप्ति है यदि एक द्रव्य होती तौ सूत्रमें एक वचन “द्रव्यं” ऐसालाते और दो द्रव्यें अभेद रुप वा एकएक होती तो “द्रव्ये” ऐसा द्विवचनसूत्रमे लाते क्यों कि तीनद्रव्यें धर्म-अधर्म और आकाश पृथक् पृथक् टुकड़े रहित हैं इसलिये सूत्रमें “द्रव्याणि” ऐसा बहुवचन लाये है

ननु*एकस्य[६]॥अनेक-अर्थ-प्रत्यायन-शक्ति-योगात्[५]॥ =प्रश्न एक (शब्द) के अनेक अर्थोंके उपजावनेकी सामर्थ्यके प्रसंगसे

एक-एकम्[१]॥इति*अस्तु। =(यदि सूत्रमें“एक द्रव्याणि”इस वाक्यके स्थानमें)एक एक(=एकैक)ऐसा होता

लघुत्वात्[५]॥द्रव्य-ग्रहणम्[१]॥अनर्थकम्[१]॥ =तो(सूत्र)छोटा होजाकरि द्रव्य शब्दके ग्रहण की आवश्यकता (इससूत्रमें) न होती

तत्-क्रियते। द्रव्य-अपेक्षया[३]॥ =(उत्तर अतः)ऐसा किया गयाहै कि द्रव्यकी अपेक्षासे(न कि क्षेत्र,भावकीअपेक्षासे)

एकत्वख्यापन-अर्थम्[१]॥द्रव्य-ग्रहणम्[१]॥; =एकपन (धर्म-अधर्म-आकाश के) कहनेके लिये द्रव्य(शब्द)का(सूत्रमें) आदान है

क्षेत्र-भाव-अपेक्षया[३]॥असंख्येयत्व-अनन्तत्व-विकल्पस्य[६]॥इष्टत्वात्[५]॥न*जीव-पुद्गलवत्* =क्योंकि क्षेत्र,भावकी अपेक्षासे(धर्म-अधर्म-आकाशके)असख्यातपना अनन्तपनाके भेद माने है। न जीव और पुद्गल के समान

(१ सर्वार्थसिद्धिकी प्रथमावृत्तिमे ‘तत्क्रियते’ के स्थान मे ‘तथापि’ पाठ है, किसी किसी हस्तलिखित प्रतिमें ‘तज्ज्ञायते’ ऐसा पाठ है परन्तु बहुधा हस्तलिखित प्रतियोंमें ‘तत्क्रियते’ पाठ है इसलिये यह पाठ लिया गया है ॥

उभयनिमित्तवशादुत्पद्यमानः पर्यायो द्रव्यस्य देशान्तरप्राप्तिहेतुः क्रिया, तस्या निष्क्रान्तानि निष्क्रियाणि॥ अत्र चोद्यते--धर्मादीनि द्रव्याणि यदि निष्क्रियाणि ततस्तेषामुत्पादो न भवेत्। क्रियापूर्वको हि घटादीनामुत्पादो दृष्टः। उत्पादाभावाच्च व्ययाभाव इति॥ अतः सर्वद्रव्याणामुत्पादादित्रयकल्पनाव्याघात इति॥ तन्न॥ किं कारणम्?

(१)उभय-निमित्त-(१)वशात् द्रव्यस्य देशान्तरप्राप्ति-हेतुः उत्पद्यमानः पर्यायः क्रिया॥ =दोनो (बाह्य, अभ्यन्तर)निमित्तके वशसे द्रव्यके(एकक्षेत्र से)अन्य क्षेत्रमें गमन करनेका =कारणरूप उपजी जो पर्याय अथवा विशेष अवस्था सो क्रिया है अर्थात् पदार्थोंका क्षेत्रांतरमें गमन तथा प्रदेशोंका सकंपपनारूप क्रिया होती है

तस्याः निष्क्रान्तानि निष्क्रियाणि अत्र*च् यते =तिस (क्रिया) से पृथक् होनेसे वे क्रिया रहित हैं। यहां तर्क की जाती है कि

धर्म-(३)आदीनि द्रव्याणि यदि*निष्क्रियाणि =धर्म-अधर्म-आकाश द्रव्यें यदि हलनचलनरूप क्रियासे रहित हैं

ततस्*तेषाम् उत्पादः न*भवेत्। =तो (=ततः) तिनकें उत्पाद न होना चाहिये

क्रिया-पूर्वकः हि*घटादीनाम् उत्पादः दृष्टः =क्योंकि (=हि) क्रिया है कारण जिसको ऐसी उत्पत्ति घटादिकोंकी देखीजाती है

उत्पाद अभावात् च*व्यय-अभावः इति* =और (=च) उत्पत्तिके न होनेसे नाशका अभाव है

अतस्*सर्व-द्रव्याणाम् उत्पाद-आदि-त्रय-कल्पना-व्याघातः इति*तत् न*;कि*कारणम्॥ ? =इसलिये समस्त द्रव्योंके उत्पत्ति, विनाश, ध्रौव्य वा स्थिरपना तीनों कल्पनाओंमें =बाधा अथवा विघ्न आता है। (उत्तर)सो (व्याघात)नहीं है।(प्रश्न)क्या कारण है

(१) 'वश' शब्द पुल्लिंग और नपुंसकलिंग दोनों है (२) क्रियापरिणामशक्तियुक्त द्रव्यमभ्यन्तरनिमित्त, प्रेरणादिक बाह्यनिमित्त तद्वशादित्यर्थः॥

क्रिया-परिणाम-शक्ति युक्तं द्रव्यम् अभ्यन्तर-निमित्तम्॥ =क्रियारूप परिणमन शक्ति सहित द्रव्य है सो अभ्यन्तर निमित्त है अर्थात् द्रव्यमें क्रियारूप परिणमनकी सामर्थ्य है सो अभ्यन्तर निमित्त है।

प्रेरण-आदिकम् बाह्यनिमित्तम्॥ =(और पर द्रव्यकी) प्रेरणा, प्रेषण, वा सचोदन आदिक है सो बाह्य कारण है

तद्-वशात् इति*अर्थः। =तिन (दोनों निमित्त) के आश्रयसे (द्रव्यके क्रियाउत्पन्न होती है) ऐसा तात्पर्य है

(३) आदीनि—श्रीमत् उमास्वामीने कालका उपदेश नहीं कियाहै इससे अनुवादकरनेमें आदि शब्दमें कालको नहींलियाहै यद्यपिकालभी निष्क्रियहै

अन्यथोपपत्तेः॥ क्रियानिमित्तोत्पादाभावेऽप्येषां धर्मादीनामन्यथोत्पादः कल्प्यते॥ तद्यथा-द्विविध उत्पादः स्वनिमित्तः परप्रत्ययश्च ॥ स्वनिमित्तस्तावदनन्तानामगुरुलघुगुणानामागमप्रामाण्यादभ्युपगम्यमानानां षट्स्थानपतितया वृध्द्या हान्या च प्रवर्तमानानां स्वभावादेतेषामुत्पादो व्ययश्च ॥ परप्रत्ययोऽपि अश्वादिगतिस्थित्यवगाहनहेतुत्वात्क्षणे क्षणे तेषां भेदात्तद्धेतुत्वमपि भिन्नमिति परप्रत्ययापेक्ष उत्पादो विनाशश्च व्यवह्रियते ॥ ननु यदि निष्क्रियाणि

अन्यथा*उपपत्तेः;क्रियानिमित्त–उत्पाद–अभावे =क्योंकि दूसरे प्रकारसे भी सिद्ध होती है। क्रियानिमित्तक उत्पादके न होनेपर

अपिएषां धर्म–आदीनाम् अन्यथा*उत्पादःकल्प्यते =भी इन धर्म–अधर्म–आकाशके औरप्रकार उत्पाद मानाजाता है

तद् यथा*द्वि–विधः उत्पादः; स्वनिमित्तः च* =वह ऐसे है–उत्पाद दो प्रकार है स्वनिमित्त और (=च)

परप्रत्ययः;स्वनिमित्तः तावत्*अनन्तानाम् अगुरुलघु =परनिमित्त। स्वनिमित्त तो (=तावत्) अनन्त अगुरुलघु

गुणानाम् आगम–प्रामाण्यात् अभ्युपगम्यमानानाम् =गुणोंके जो शास्त्र प्रमाणकरि माने हुये हैं

षट्–स्थानपतितया वृध्द्या हान्या च* =छह स्थानोंमें रहने वाली वृद्धि और हानिकरि

प्रवर्तमानानाम् स्वभावात् एतेषाम् =प्रवर्तनेवाले (अगुरुलघुगुणोंके)स्वभावसे अर्थात्परिणमनसे इन(धर्म-अधर्म-आकाश)के

उत्पादः व्ययः च*; =उत्पाद होता है। और (=च) (इसी प्रकार) व्यय होता है

पर–प्रत्ययः अपि*अश्वादि–गति–स्थिति- =और (=अपि) पर निमित्त (उत्पाद व्यय) हैं सो अश्वादिकका गमन स्थिति

अवगाहन-हेतुत्वात् क्षणे क्षणे =अवगाहनका कारण (धर्म-अधर्म-आकाशके यथासंख्य) होनेसे क्षण क्षणमें

तेषाम् भेदात् तद्-हेतुत्वम् अपि*भिन्नम् इति* =तिन(गति-स्थिति-अवगाहन)के भेद होनेसे उन(गति आदिके) हेतुताभी भिन्न है अर्थात् मनुष्य,गाय, अश्वादिकको गमनका निमित्त धर्म द्रव्य है। स्थितिका कारण अधर्मद्रव्य है और अवकाशदान अथवा स्थान दानकाहेतु आकाश द्रव्य है और क्षण क्षणमें उन गति स्थिति अवगाहनके भेद हैं इसलिये उन गति–स्थिति-स्थान दानके कारणभी पृथक् पृथक् हैं

परप्रत्यय-अपेक्षः उत्पादः विनाशः च* =परनिमित्त अपेक्षा उत्पाद, द्रव्य भी (=च)

व्यवह्रियते ॥ननु* । यदि*निष्क्रियाणि =माना जाता है। प्रश्न। यदि हलन चलन रूप क्रियासे रहित

धर्मादीनि, जीवपुद्गलानां गत्यादिहेतुत्वं नोपपद्यते। जलादीनि हि क्रियावन्ति मत्स्यादीनां गत्यादिनिमित्तानि दृष्टानीति ॥ नैष दोषः ॥ बलाधाननिमित्तत्वाच्चक्षुर्वत्। यथा रूपोपलब्धौ चक्षुर्निमित्तमपि न व्याक्षिप्तमनस्कस्यापि भवति॥ अधिकृतानां धर्माधर्माकाशानां-

धर्म-आदीनि ¹॥ जीव-पुद्गलानाम् ⁶। गति-आदि- =धर्म अधर्म आकाश द्रव्य हैं तो जीव और पुद्गलोंके गति स्थिति अवगाहनाका

हेतुत्वम् ¹। न* उपपद्यते। जलादीनि ¹॥ हि* क्रियावन्ति ¹॥ =निमित्तपना प्राप्त नहीं होता है। क्योंकि (हि) क्रियावान् जलादिक

मत्स्य-आदीनाम् ⁶। गत्यादि-निमित्तानि ¹॥ दृष्टानि ¹॥ इति*; =मीन आदिकोंके गमनादिकके कारण इसप्रकार देखे जाते हैं

न* एषः ¹। दोषः ¹; (१) बलाधान-निमित्तत्वात् ⁵। चक्षुवत्* =(उत्तर) यह दूषण नहीं है। क्योंकि नेत्रेन्द्रियके समान अप्रेरक निमित्त है अर्थात् धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य जीव तथा पुद्गलोंकी यथासंख्य गति, स्थिति, अवगाहनके लिये प्रेरणा नहीं करते हैं किन्तु यदि जीव और पुद्गल गमन करें तो धर्मद्रव्य गमन में अप्रेरक निमित्त होती है। अधर्मद्रव्य स्थितिमें उदासीनतासे कारण होती है और इसी प्रकार आकाश द्रव्य अवगाहनमें बलाधान वा उदासीनतासे निमित्त होती है ॥

यथा* रूप-उपलब्धौ ⁷। चक्षुः ¹। निमित्तम् ¹। अपि* =जैसे-रूपके देखनेमें (=उपलब्धौ) नेत्र निमित्त है तोभी (=अपि)

व्याक्षिप्त-मनस्कस्य ⁶। अपि* =न लगेहुये (मनुष्यके) मनके भी वा मनुष्यके अनाकर्षित चित्तकेभी

न* भवति T =(रूपकी उपलब्धि) नहीं होती है अर्थात् यदि पुरुषका चित्त अन्य पदार्थमें लगाहो तब रूपको नहीं देखसकता है। जब नेत्र और पुरुषका चित्त दोनों एकही कालमें किसी पदार्थको और होवें तब पुरुषके नेत्र रूपके देखनेमें निमित्त हैं नहीं तो निमित्त नहीं हैं

अधिकृतानाम् ⁶। धर्म-अधर्म-आकाशानाम् ⁶। =प्रकरण प्राप्त जे धर्मद्रव्यके, अधर्मद्रव्यके, और आकाशद्रव्यके

(१) गत्यादि परिणतस्य बलाधान कुर्वन्ति न तु स्वयं प्रेरयन्तीति भाव ॥

गत्यादि-परिणतस्य ⁶। बलाधानम् ²॥ कुर्वन्ति T =(धर्मादिक द्रव्य) गमनादिक अवस्थाके अप्रेरक निमित्तको करती हैं

न* तु* स्वयम्* प्रेरयन्ति । इति* भावः ¹। =किन्तु स्वयं (गति-स्थिति-अवगाहनकी) प्रेरक नहीं है ऐसा तात्पर्य है

इसके पश्चात् जयचन्द्रायजीकी वचनिकामें निम्न लिखित भाषाका वाक्य है "बहुरि सूत्रमें चशब्द है सो पहले सूत्रमें कहे तिन तीनिही द्रव्यके समुच्चयके अर्थि है। जीव पुद्गल क्रियामान् हैं" ॥ देखो पंडित जयचन्दजी कृत वचनिका मुद्रित पृष्ठ ४२५ ॥

निष्क्रियत्वेऽभ्युपगते जीवपुद्गलानां सक्रियत्वमर्थादापन्नम् ॥ कालस्यापि सक्रियत्वमितिचेन्न । अनधिकारात् अत एवासावेतैः सह नाधिक्रियते ॥ अजीवकाया इत्यत्र कायग्रहणेन प्रदेशा-स्तित्वमात्रं निर्ज्ञातं नत्वियत्तावधारिता प्रदेशानामतस्तन्निर्धारणार्थमिदमुच्यते—

॥ असङ्ख्येय : प्रदेशा धर्माधर्मैकजीवानाम् ॥८॥

	=निष्क्रियपना माननेमें जीव और
निष्क्रियत्वे॥ अभ्युपगते॥ जीव-	=पुद्गलोंके सक्रियपन अथवा क्रियावान्‌पन अर्थसे वा विषयसे प्राप्त होता है
पुद्गलानाम्॥ सक्रियत्वम्॥ अर्थात्॥ आपन्नम्॥	=कालद्रव्यके भी क्रियावान्‌पन (आता) है ऐसी शंका (=चेत्) है (उत्तर) सो नहीं है
कालस्य॥ अपि*सक्रियत्वम्॥ इति*चेत्*न*;	=क्योंकि कालद्रव्यका (यहां) विषय वा प्रकरण नहीं है। इसलिये ही वह (कालद्रव्य)
अन्–अधिकारात्॥ अतः*एव*असौ॥	=इन (जीव, पुद्गल) के साथ (=एतैःसह) प्रकरणरूप नहीं कियागया है
एतैः॥ सह*न*, अधिक्रियते ।	='अजीव काया' ऐसे यहां (प्रथम सूत्रमें) कायके ग्रहण करनेसे
"अजीव कायाः"॥ इति*अत्र*कायग्रहणेन॥	
प्रदेश–अस्तित्वमात्रम्॥ निर्ज्ञातम्॥ न*तु*प्रदेशानाम्	=प्रदेशोंकी केवल (=मात्रं) विद्यमानता जानीजाती है। परन्तु प्रदेशोंका
इयत्ता॥ अवधारिता॥ अतः*	=परिमाण वा संख्या (=इयत्ता) निश्चित नहीं की गईहै (=अवधारिता)। इसलिये
तद्-निर्धारण-अर्थम्॥ इदम्॥ उच्यते ।	=उन (प्रदेशोंकी गिनती) का निश्चय करने केलिये यह (अग्रिम सूत्रमें) कहाजाताहै कि

असंख्येयाः प्रदेशा धर्माधर्मैकजीवानाम्=धर्म-अधर्म-एक जीवानाम् असंख्येयाः प्रदेशा भवन्ति ।८।

सूत्रार्थः–धर्म-अधर्म-एक-जीवनाम्॥	=धर्मद्रव्यके, अधर्मद्रव्यके और एक जीवके

(१) 'निष्क्रियाणि च' सूत्रमें 'च' शब्दका अर्थ यहां पर और अथवा भी दोनों होसकते हैं जैसाकि भिन्नभिन्न उपर्युक्त अनुवादसे प्रगट है॥ यदि च शब्द "और" के अर्थमें लेवें तो तीन ही द्रव्यें जो सूत्रमें कहीं हैं उनके सम्बन्धके अर्थ है अर्थात् धर्म-अधर्म-आकाश तीनको आकर्षण करता है, प्रगट करता है, वा ग्रहण करता है क्योंकि "कालद्रव्य का" अभी तक आचार्य ने उपदेश नहीं किया है। कालद्रव्य भी निष्क्रिय है। यदि "च" शब्दका 'भी' अर्थ लेवें तो उसका सम्बन्ध द्रव्यों के गुणोंसे होजाता है नकि उनकी सख्यासे अर्थात् ये तीन द्रव्य एक एक हैं दूसरा गुण उनमें यह है कि क्रिया रहित हैं तब दोनों सूत्रोंको अर्थ अत्यन्त सक्षेपतासे यह होता है कि धर्म-अधर्म आकाश एक एक द्रव्य हैं और क्रिया रहित भी हैं॥

(२) इयत्ता (स्त्री०) = 'इतनेका होना। सीमा। परिमाण। माप। सख्या। गिनती" पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ ६७॥ अतः "इयत्ता" का अनुवाद 'सख्या' किया गया है। श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रमे इस सूत्रके स्थानमे नीचे लिखे हुये दो सूत्र है जिनसे विदित है कि दोनों आम्नायोंमें इस सूत्रका एकसा तात्पर्य है। 'असख्येयप्रदेशाधर्माधर्मयोः ॥७॥ जीवस्य च ॥८॥ देखो उक्त सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्र पृष्ठ १२२

संख्यामतीता असंख्येयाः ॥ असंख्येयस्त्रिविधः । जघन्य उत्कृष्टोऽजघन्योत्कृष्टश्चेति ॥ तत्रेहाजघन्योत्कृष्टासंख्येयः परिगृह्यते॥ प्रदिश्यन्त इति प्रदेशाः॥वक्ष्यमाणलक्षणः परमाणुः स यावति क्षेत्रे व्यवतिष्ठते स प्रदेश इतिव्यवह्रियते॥ धर्माधर्मैकजीवास्तुल्यासंख्येयप्रदेशाः तत्र धर्माधर्मौ निष्क्रियौ लोकाकाशं व्याप्य स्थितौ ।

असंख्येयाः ३ प्रदेशाः ३ =(क्रमसे) असंख्यात, असंख्यात, और असंख्यात(प्रत्येकके)प्रदेश हैं अर्थात धर्म द्रव्यके असंख्यात प्रदेश हैं,अधर्मद्रव्यके असंख्यात प्रदेश हैं और एक जीवके भी असंख्यातप्रदेश हैं

वृत्त्यनुवादः–संख्याम् २ अतीताः १ असंख्येयाः १ =संख्याको उलंघगये हैं वे असंख्येया हैं अर्थात् जो गणनामें न आसकें वे असंख्यात हैं

असंख्येयः १ त्रिविधः १ जघन्यः १ उत्कृष्टः १ च* =असंख्येय तीन प्रकार है, जघन्य वा निकृष्ट, उत्कृष्ट वा प्रकर्ष और (=च)

अजघन्य-उत्कृष्टः १ इति, तत्र इह* अजघन्योत्कृष्ट-=मध्यम ॥ तहां यह(=इह) मध्यम वा बीचका

असंख्येयः १ परिगृह्यते । प्रदिश्यन्ते । इति* =असंख्यात लियागया है ॥ (जिनकरि आकाशके) विभाग किये गये हैं ऐसे

प्रदेशाः १ =(आकाशके विभाग) प्रदेश हैं । अर्थात परमाणुओंद्वारा पर्यायनयकी अपेक्षासे आकाशके विभाग किये जाते हैं उन विभागों को अथवा आकाशके प्रदेशोंको प्रदेश कहते हैं भावार्थ यह है कि यद्यपि आकाश अखंड, निरंश,सर्वगत और एक द्रव्य है तौभी परमाणुओंकरि मापिये तौ अनंत परमाणु होते हैं और इसप्रकार आकाशके अनंत अंश मानेजाते हैं, इसीलिये एक ही आकाशको अनन्तप्रदेशी पर्यायनयकरि कहते हैं परन्तु द्रव्यार्थिकनय अथवा द्रव्य अपेक्षासे अखंड, निरंश,सर्वगत, एक, और भिन्नता रहित आकाश है

वक्ष्यमाणलक्षणः १ परमाणुः १ =आगे कथन किये जाने लक्षण रूप वा अग्रिम कहेजाने लक्षणवाला परमाणु है

सः १ यावति ७ क्षेत्रे ७ व्यवतिष्ठते । सः १ प्रदेश १ =वह (परमाणु)जितने क्षेत्रमें निश्चल ठहरती है वा समाजाती है सो प्रदेश है

इति* व्यवह्रियते । धर्म-अधर्म एकजीवाः ३ तुल्य- =ऐसा माना गया है ॥ धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य और एकजीव समान

असंख्येय-प्रदेशाः ३, तत्र* धर्म-अधर्मौ २ निष्क्रियौ २ =असंख्यात (असंख्यात) प्रदेशी हैं। तहां धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य क्रिया रहित

लोक–आकाशम् २ व्याप्य — स्थितौ २ =लोकाकाशको व्याप्त कर स्थित है अर्थात् समस्त लोकाकाशमें ऊपर तले मध्यमें और

जीवस्तावत्प्रदेशोऽपि सन् संहरणविसर्पण स्वभावत्वात्कर्मनिर्वर्तितं शरीरमणुमहद्वाऽधितिष्ठं स्तावदवगाह्य वर्तते यदा तु लोकपूरणं भवति मन्दरस्याधश्चित्र वज्रपटलमध्ये जीवस्याष्टौ मध्य प्रदेशा व्यवतिष्ठन्ते। इतरे प्रदेशा ऊर्ध्वमधस्तिर्यक् कृत्स्नं लोकाकाशं व्यश्नुवते ॥

अथाकाशस्य कति प्रदेशा इत्यत आह—

इधर उधर सर्वत्र पूर्णरूपसे धर्म और अधर्म द्रव्य जो हलन चलन रूप क्रियासे वर्जित हैं भरी हुई हैं

जीवः[1] तावत् * प्रदेशः[1] अपि * सन्[1] =जीव इतने(=तावत्) अर्थात् असंख्यात प्रदेशी होते हुयेभी (=अपि सन्)

संहरण–विसर्पण-स्वभावत्वात्[5] कर्मनिर्वर्तितम्[2] =संकोच और फैलावरूप स्वभावके होनेसे कर्मरचित (अथवा कर्मजनित)

शरीरम्[2] अणु-महत्-वा * [(1)] अधितिष्ठन्[1] तावत् * =छोटा अथवा बड़ा शरीर पाते हुए(=अधितिष्ठन्) तिसप्रमाण (=तावत्)

[(2)] अवगाह्य—वर्तते, * यदा * तु [(2)] लोकपूरणम्[1] भवति =विस्तरित होकर प्रवर्तता है परन्तु जब(केवलि समुद्घात करि)लोक पूरण होताहै

मन्दरस्य[6] अधस् * चित्र–वज्र–पटल–मध्ये[7] =तो सुमेरु पर्वतके नीचे चित्रा प्रथिवीके वज्रमयी पटलके मध्यमें

जीवस्य[6] अष्टौ[1] मध्यप्रदेशाः[1] व्यवतिष्ठन्ते =जीवके आठ मध्यके प्रदेश निश्चल तिष्ठते हैं अर्थात् जिस अवसरमें केवली हो लोकपूरण समुद्घात करते हैं तब सुमेरु की जड़ जो चित्रापृथिवीकी मोटाईके बराबर एक सहस्रयोजन मोटी है। चित्रा और वज्रा प्रथिवीके पटलोंके बीच केवली भगवान् केआत्माके आठमध्यके प्रदेश निश्चल ठहरते हैं

इतरे[1] प्रदेशाः[1] ऊर्ध्वम् * अधस् * तिर्यक् =(और केवली भगवानके)अन्य प्रदेश ऊपर नीचे इधर उधर (=दाये बायें)

कृत्स्नम्[2] लोकाकाशम्[2] व्यश्नुवते =समस्त लोककाशको व्याप्त करलेते हैं। केवलिसमुद्घातका विस्तारसे कथन जाननेके लिये देखो अध्याय प्रथम पृष्ठ ११९से १२१ तक

अथ * आकाशस्य[6] [(4)] कति[1] प्रदेशाः[1] इति * अतः * आह =अब आकाशके कितने प्रदेश हैं इसलिये (उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

(१) अधितिष्ठन् वर्तमान कृदन्त है ॥ (२) अवगाह्य सम्बन्धसूचक भूतकृदन्त है (३) कषाय वेदनादिक सातकारणोसे जो जीवके प्रदेश मूल शरीर को न छोड़कर शरीरसे बाहर होते हैं उसको समुद्घात कहते है। वे समुद्घात सातप्रकारके हैं ॥ मूल देह छूटे नाहि इत्यादि कवित्तके लिये जिसमें सातप्रकारका समुद्घात वर्णितहै देखो अध्याय प्रथम पृष्ठ ११५ से १२१ तक ॥ (४) कति सर्वनाम है केवल बहुवचनमें आता है ॥

आकाशस्यानन्ताः ॥९॥

लोकेऽलोके चाकाशं वर्तते ॥ अविद्यमानोऽन्तो येषां ते अनन्ताः॥ के? प्रदेशाः। कस्य? आकाशस्य॥ पूर्ववदस्यापि प्रदेशकल्पनाऽवसेया ॥ उक्तममूर्तानां प्रदेशपरिमाणम् इदानीं मूर्तानां पुद्गलानां प्रदेशपरिमाणं निर्ज्ञातव्यमित्यत आह—

॥ संख्येयाऽसंख्येयाश्च पुद्गलानाम् ॥१०॥

[1]सूत्रम्—आकाशस्यानन्ताः॥९॥ = आकाशस्यानन्ताः (प्रदेशाः) सन्ति ॥ ९ ॥

सूत्रार्थः-आकाशस्य[6]अनन्ताः[3]प्रदेशाः[3] सन्ति । =आकाश द्रव्यके अर्थात् लोकाकाशके और अलोकाकाशके अनन्त प्रदेश हैं

वृत्त्यनुवादः। लोके[7]अलोके[7]च*आकाशम्[1]॥वर्तते।=लोक और (=च)अलोक(दोनों)विषैं आकाश विद्यमान है (वर्तते)

अविद्यमानः[1]अन्तः[1]येषाम्[6]ते[1]अनन्ताः[1],के[1] =नहीं है विद्यमान अन्त जिनका ते अनन्त हैं । क्या (अनन्त) है

प्रदेशाः[1],कस्य[6];आकाशस्य[6]; =प्रदेश । किसके (प्रदेश अनन्त) है, (लोक अलोक) आकाशके (प्रदेश अनन्त) है

पूर्ववत्*अस्य[6]अपि*प्रदेश-कल्पना-अवसेया[1], =पहिलेके सदृश इस (आकाश) के भी प्रदेशोंकी कल्पना जानना चाहिये

अमूर्तानाम्[6]॥ प्रदेश-परिमाणम्[1]॥ =अमूर्तीक (धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य, एक जीव, आकाश द्रव्य) निके प्रदेशोंकी संख्या

उक्तम्[1]॥;इदानीम्*मूर्तानाम्[6]पुद्गलानाम्[6] प्रदेश- =कही गई है । अब मूर्तीक पुद्गलों के प्रदेशों की

परिमाणम्[1]॥निर्ज्ञातव्यम्[1]॥ इति*अतः*। आह । =गणना जानना चाहिये। इसलिये (अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

[2]सूत्रम्-- संख्येयाऽसंख्येयाश्च पुद्गलानाम् ॥१०॥

=संख्येयाः असंख्येयाः च (अनन्ताः अनन्तानन्ताः) पुद्गलानाम् प्रदेशाः भवन्ति ॥१०॥

सूत्रार्थः-संख्येयाः[1]असंख्येयाः[1]च अनन्ताः[1] अनन्तानन्ताः=संख्यात,असंख्यात, अनन्त और अनन्तानन्त भी (=च)

पुद्गलानाम्[6] प्रदेशाः[1] भवन्ति । =पुद्गलोंके प्रदेश हैं अर्थात् यद्यपि शुद्ध पुद्गल तो अविभागी एक परमाणु

(१) दोनों सम्प्रदायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एक है॥ हमारे यहां कहीं कहीं पर 'आकाशस्यानता' पाठ है सो भी ठीक है॥ आकाश शब्द पुल्लिंग और नपुंसकलिंग दोनोंहैं (२)दोनों आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है॥ हमारे यहा कहीं कहीं पर सङ्ख्येयाऽसङ्ख्येयाश्च भी

चशब्देनानन्ताश्चेत्यनुकृष्यन्ते कस्यचित्पुद्गलद्रव्यस्य द्व्यणुकादेः संख्येयाःप्रदेशाः कस्यचिद्-संख्येया अनन्ताश्च अनन्तानन्तोपसंख्यानमिति चेन्न। अनन्तसामान्यात् अनन्तप्रमाणं त्रिविधमुक्तं परीतानन्तं युक्तानन्तमनन्तानन्तं चेति। तत्सर्वमनन्तसामान्येन गृह्यते स्यादेतद्-संख्यातप्रदेशो लोकःअनन्त प्रदेशस्यानन्तानन्तप्रदेशस्य च स्कन्धस्याधिकरणमिति विरोधस्ततो

एकही प्रदेश वाला है परन्तु पुद्गल परमाणुओंमे मिलन विछुरन शक्ति है इस कारण अनेक स्कन्ध दो दो परमाणुके और अनेक तीन तीन, चार चार आदिक संख्यात परमाणुओंके है केई केई असंख्यात और केई केइ अनन्त केई केई अनन्तानन्त परमाणुके स्कन्ध है

वृत्त्यनुवादः—च-शब्दे-अनन्ताः च इति	=(सूत्रमें) च शब्दकरिअनन्त भी (=च, है ऐसे पूर्व सूत्र नवमामे
अनुकृष्यन्ते । कस्यचित् पुद्गलद्रव्यस्य द्वि-अणुक-	=अनुवृत्तियें ली गई हैं। केई पुद्गल द्रव्यके दो अणुक
आदेः संख्येयाः प्रदेशाः कस्यचित् असंख्येयाः	=आदिक (स्कन्धके)संख्यात प्रदेश है। केई(पुद्गलद्रव्य)के(स्कन्धके)असंख्यात है
अनन्ताः च अनन्तानन्त-	=(केई पुद्गल द्रव्यके स्कन्धके)अनन्त (प्रदेश)भी है अनन्तानन्तकी (गणनाका)
उपसंख्यानम् इति चेत्,	=समावेश होना चाहिये (=उपसंख्यानम्)ऐसी शंका (=चेत्) है
न अनन्त-	=(उत्तर-अनन्तानन्तकी गणनाकी शंका)नहीं(होनाचाहिये)क्योंकिअनन्त(शब्दसूत्रमें)
सामान्यात् अनन्त-प्रमाणम् त्रिविधम् उक्तम्	=सामान्य है। अनन्तकी मर्यादा तीन प्रकार कही गई है
परीतानन्तम् युक्तानन्तं च अनन्तानन्तम्	=परीतानन्त,युक्तानन्त, और (=च)अनन्तानन्त देखो (अध्याय१पृष्ठ२६९से२७६तक
इति; तत् सर्वम् अनन्त-	=ऐसे है। वह समस्त (परीतानन्त-युक्तानन्त और अनन्तानन्त) अनन्त शब्दमें
सामान्येन गृह्यते, स्यात् एतत्	=सामान्यकरि ग्रहण किया गया है। यह शंका है कि
असंख्यात-प्रदेशः लोकः, अनन्त-प्रदेशस्य	=असंख्यात प्रदेशी लोक है तो अनन्त प्रदेश वाले
च अनन्तानन्त-प्रदेशस्य स्कन्धस्य	=और अनन्तानन्त प्रदेश वाले(पुद्गल)निके स्कन्ध का
अधिकरणम् इति विरोधः ततः	=आश्रय वा आधार कैसे है ऐसा विरोध(आता)है क्योंकिवहां (=ततः)अर्थात्लोकमें

पाठहै दोनों पाठ ठीकहै ॥ सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें 'सङ्ख्येया सङ्ख्येयाश्च पुद्गलानाम्' ऐसा पाठहै ॥ जहां कहीं पुद्गलानाम्'के स्थानमें 'पुद्गलानां' है वह कातन्त्ररूपमालाव्याकरणके अतिरिक्त अशुद्ध है। प्रदेश शब्दकी अनुवृति आठवां सूत्रसे ली है ॥

नानन्त्यमिति ॥ नैष दोषः । सूक्ष्मपरिणामावगाहनशक्तियोगात्परमाण्वादयो हि सूक्ष्मभावेन परिणता एकैकस्मिन्नप्याकाशप्रदेशेऽनन्तानन्ता अवतिष्ठन्ते, अवगाहनशक्तिश्चैषामव्याहताऽस्ति तस्मादेकस्मिन्नपि प्रदेशे अनन्तानन्तानामवस्थानं न विरुध्यते ॥ पुद्गलानामित्यविशेषवचनात्परमाणोरपि प्रदेशत्वप्रसंगे तत्प्रतिषेधार्थमाह—

न-अनन्त्यम्॥इति॥	=अन्त्यम रहित अर्थात् असख्यात प्रदेश है प्रश्नका भावार्थ यह है कि लोक तो असंख्यात प्रदेशी है उसमें पुद्गलके अनन्त प्रदेशी स्कन्ध, और अनन्तानन्त प्रदेशी स्कन्ध किस प्रकार समासकते हैं
न॥एषः॥दोषः॥सूक्ष्म-परिणाम-	=(उत्तर) यह दूषण नहीं है क्योंकि (पुद्गल परमाणुओंका) सूक्ष्म वा लघु परिणमन
अवगाहन-शक्ति-योगात्॥परमाणु-आदयः॥हि॥	=(और आकाशके प्रदेशों का) स्थानदानदेनेकी सामर्थ्यके योगसे परमाणु आदि ही
सूक्ष्म-भावेन॥परिणताः॥ एक-एकस्मिन्॥अपि॥	=लघुरूपहोकर परिणत हो रहे हैं (और) एक एक भी
आकाश-प्रदेशे॥अनन्तानन्ताः॥अवतिष्ठन्ते॥च॥	=आकाशके प्रदेशमें अनन्तानन्त(परमाणु) तिष्ठते हैं और (=च)
एषाम्॥अवगाहन-शक्तिः॥अव्याहता॥अस्ति॥	=इन (आकाशके प्रदेशों) के स्थानदानदेनेकी सामर्थ्य अरोक है (=अव्याहता अस्ति)
तस्मात्॥एकस्मिन्॥अपि॥प्रदेशे॥	=तिससे एक भी (आकाशके) प्रदेशमें
अनन्तानन्तानाम्॥अवस्थानम्॥नविरुध्यते॥	=अनन्तानन्त (परमाणुओं) का ठहराव नहीं विरोधा जाता है
पुद्गलानाम्॥इति॥अविशेष-वचनात्॥	= (सूत्रमें) पुद्गलोंके (संख्यात-असंख्यात-अनन्त और अनन्तानन्त प्रदेश हैं) ऐसे सामान्य वाक्यसे
परमाणोः॥अपि॥प्रदेशत्व-प्रसंगे॥	=(पुद्गल) परमाणुओंके भी प्रदेशपनाका प्रसंग आने पर
तत-प्रतिषेध-अर्थम्॥आह॥	=उस (परिमाणु) के (बहुप्रदेशपनाके) निषेधके लिये (उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

(१) जैसे एक चपाकी कली विषें तिष्ठे हुये सुगन्ध पुद्गल परमाणु सूक्ष्म रूप परिणमनसे सकोच रूप तिष्ठत हैं बहुरि वही सुगन्ध परमाणु जब फलै तब सर्व दिशाओंमें व्यापक हो जाते हैं तैसे सूक्ष्म परिणमनसे लोकाकाशके एक प्रदेशमें तिष्ठते हुए परमाणु बादर वा स्थूलरूप परिणमैं तब बहुत प्रदेशोंमें तिष्ठते हैं ॥ इसी प्रकार दूसरा उदाहरण है कि कडे वा गीले काष्ठमें प्रचय विशेषसे इतने पुद्गल स्कन्ध हैं यदि अग्निसे जलायें जावें तो धूम रूपमें होकर सब दशाओंमें भरजाते हैं तैसे अल्पहू लोकाकाशमें अनन्तानन्त जीव अनन्तानन्त पुद्गल का अवस्थान विरुद्ध रहित पाया जाता है॥

॥ नाणोः ॥ ११ ॥

अणोः प्रदेशा न सन्तीति वाक्यशेषः ॥ कुतो न सन्तीति चेत् प्रदेशमात्रत्वात्। यथा आकाशप्रदेशस्यैकस्य प्रदेशभेदाभावादप्रदेशत्वमेवमणोरपि प्रदेशमात्रत्वात्प्रदेशभेदाभावः॥ किं च ततोऽल्पपरिमाणाभावान्न ह्यणोरल्पीयानन्योऽस्ति। यतोऽस्य प्रदेशा भिद्येरन् ॥एषामवधृत

सूत्रम्—नाणोः॥११॥ = नाणोः (प्रदेशाः भवन्ति)॥११॥

सूत्रार्थः—न*अणोः६।१ प्रदेशाः१।३ भवन्ति I	= अणुके प्रदेश नहीं होते है, शुद्ध पुद्गल एक परमाणुके बहुत प्रदेशोंका अभाव है एक प्रदेशमात्रता ही कही है क्योंकि परमाणुके खंडका अभाव है
वृत्त्यनुवादः-अणोः६।१ प्रदेशाः१।३ न*सन्ति I इति*	= अणुके प्रदेश नहीं है ऐसा
(१)वाक्यशेषः१।१	= वाक्य शेष है अर्थात् 'न-अणो':वाक्यअपूर्ण है। उसका शेषवाक्य प्रदेशाः सन्ति है
कुतः* न* सन्ति I इति* चेत्*	= क्योंकर (अणुके प्रदेश) नहीं है। ऐसी शका है।
प्रदेश-मात्रत्वात् ५।१॥	= (उत्तर) केवल (= मात्र) एक प्रदेश होनेसे (अणुके बहुत प्रदेश नहीं है)
यथा*आकाश-प्रदेशस्य ६।१ एकस्य६।१प्रदेश-भेद-	= जैसे आकाशके एक प्रदेशके प्रदेश भेद
अभावात् ५।१ अप्रदेशत्वम् १।१॥एवम्*अणोः६।१अपि*	= न होनेसे अप्रदेशपना है। ऐसे अणुके भी
प्रदेशमात्रत्वात्-५।१॥ प्रदेश-भेद-अभावः१।१	= प्रदेशमात्रपनासे प्रदेशके भेदका अभाव है ॥
किम्*च* ततः* अल्प-परिमाण-अभावात्५।१	= और क्योंकि(किस लियेकि)तिस (परमाणु) से लघु परिणमन न होने(के हेतु)से
नहि* अणोः५।१(३)अल्पीयान् १।१अन्यः१।१अस्ति I;यतः*	= अणुसे अन्य (वस्तु) लघुतर नहीं(=न हि) है। जिससे
अस्य६।१ प्रदेशाः१।३(२)भिद्येरन् । एषाम् ६।३ अवधृत-	= इस (परिमाणु)के प्रदेश भेदे जावै ॥ इन निश्चय किये हुये वा निर्णीत किये हुये

(१)वाक्यशेष=वाक्य वा वचनका छूटा हुआ वा अवशेष भाग(।।)पद आकांक्षा,वाक्य आकांक्षा,समर्थपदलोप (२)भिद्येरन् यह आत्मनेपदी विधि लिंग किया है (३)अल्पीयान् विशेषणों की जो अपने विशेष्योंके गुणों को प्रगट करते हैंतीन श्रेणीं होती हैं(क)साधारण अवस्था अर्थात् अपने विशेष्य के साधारण गुण कोप्रगट करे जैसे अच्छा मनुष्य बुरा मनुष्य(ख)आधिक्य बोधक अवस्था वह है जो दो विशेष्योंमे से एकके गुण वा दूषण कोदूसरे पर लघुता श्रेष्ठता प्रगट करे जैसे देवदत्तसे यज्ञदत्त बुरा है।मोहनसे सोहन अच्छा है।(ग)अतिशय्य बोधक अवस्था वह है जिससे केवलएक विशेष्यका

प्रदेशानां धर्मादीनामाधारप्रतिपत्त्यर्थमिदमुच्यते—

॥ लोकाकाशेऽवगाहः ॥१२॥

उक्तानां धर्मादीनां द्रव्याणां लोकाकाशेऽवगाहो न बहिरित्यर्थः॥ यदि धर्मादीनां लोकाकाशमाधारः। आकाशस्य क आधार इति ? ॥ आकाशस्य नास्त्यन्य आधारः। स्वप्रतिष्ठमाकाशम् ॥

प्रदेशानां[६]धर्मादीनां[६]आधार-प्रतिपत्ति- अर्थम्[१]इदम् उच्यते =प्रदेशवाले धर्मादिक(द्रव्यों)के अधिकरण जाननेकेलिये यह कहाजाता हैकि

[१]सूत्रम्—लोकाकाशेऽवगाहः ॥१२॥ = (धर्मादीनाम् द्रव्याणाम्[३])लोकाकाशेअवगाहः॥ १२॥

सूत्रार्थः[२]धर्मआदीनां[६]॥द्रव्याणां[६]॥लोकाकाशे[७]॥अवगाहः[१]=धर्म, अधर्म, जीव और पुद्गल द्रव्योंकी लोकाकाशमें स्थिति है

वृत्त्यनुवादः-उक्तानाम्[६]॥धर्मादीनाम्[६]॥द्रव्याणाम्[६]॥ ='कथित धर्मादिक' द्रव्योंकी

लोकाकाशे[७]॥अवगाहः[१]न*बहिस्*इति*अर्थः[१] =लोकाकाश मे स्थिति हैन कि(लोकाकाशके)बाहिर ऐसा तात्पर्य है

यदि*धर्म-आदीनाम्[६]॥लोकाकाशम्[१]॥आधारः[१] =(प्रश्न) जो धर्मादिकद्रव्योंका लोकाकाश आधार है तो

आकाशस्य[६]॥कः[१]आधारः[१]इति*आकाशस्य[६]॥ =आकाशका क्या आधार है ॥ आकाशका

न*अस्ति[।] अन्यः[१]आधारः[१]स्व-प्रतिष्ठम्[१]॥आकाशम्[१]॥ =और वा भिन्न (=अन्य) अधिकरण नहीं है । आकाश अपने आधार है

गुण अथवा अवगुण लघुता अथवा गुरुता दोसे अधिक पर प्राप्य करे जैसे मोहन सर्व छात्रों मे दयालु है ॥

ईयस् प्रत्यय 'आधिक्यबोधक अवस्था' के विशेषणका चिन्ह है और'इष्ठ' प्रत्यय आतिशय्य बोधक अवस्थाके विशेषणका चिन्ह है। इन प्रत्ययोंके लगाने के प्रथम, शब्द अर्थात् प्रातिपदकके अन्तिम स्वर और यदि शब्दके अन्तमे व्यजन होतो अन्तिम व्यजन उसके समीपके स्वरसहित को गिरादेते है जैसे अल्प = अल्प + ईयस् = अल्पीयस्)महत् = मह् + अत्, अत् गिराकर(अर्थात् महत्के उक्त स्वर और व्यजन दोनों गिराकर) और ईयस् जोडकर महीयस् बनलिया ॥

सज्ञायें जिनके अन्तमें वस् और ईयस् अथवा एयस् हो तो पुल्लिगमें शब्दके अन्तिम स् के पूर्व न् प्रथम कारकके एक वचन, द्विवचन बहुवचन और कर्म कारकके एक वचन और दो वचनमें जोडदेते है उन सज्ञायोका उपांतिक अकार दीर्घ होजाता है। प्रथमा एक वचनके अन्तमें 'वान् वा यान्' आते हे ॥ जैसे विद्वस् = विद्वन् स् + स् = विद्वान् स् स् (जब शब्दके अन्तमे दो अथवा दोसे अधिक व्यजन हों तो केवल एक रहजाता है शेष गिरजाते हें) अतः विद्वान्[१]। बनगया शेषरूप विद्वांसौ[१]।विद्वांस[१]।, विद्वांसम्[२]।, विद्वांसौ[२]। ()अल्पीयस् = अल्पीयन् स् + स् = अल्पीयान् स् स् = अल्पीयान् ।

(१) इसमें सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों आम्नायों में एकसा है ॥ (२) 'धर्मादीनां द्रव्याणां' इस वाक्यका अध्याहार किया गया है (३)काल द्रव्यका आचार्य ने अभी कथन न[ही] किया है क्योंकि उसका कथन उनतालीसवांसूत्रमें है इससे अनुवादमें काल द्रव्यको गर्भित नहीं किया है यद्यपि काल द्रव्यकी भी स्थिति लोकाकाश में ही है ॥

यद्याकाशं स्वप्रतिष्ठं, धर्मादीन्यपि स्वप्रतिष्ठान्येव । अथ धर्मादीनामन्य आधारः कल्प्यते, आकाशस्याप्यन्य आधारः कल्प्यः । तथा सत्यनवस्थाप्रसङ्ग इति चेन्नैष दोषः ॥ नाकाशादन्य-दधिकपरिमाणं द्रव्यमस्ति । यत्राकाशं स्थितमित्युच्यते । सर्वतोऽनन्तं हि तत् । ततो धर्मादीनां पुनरधिकरणमाकाशमित्युच्यते व्यवहारनयवशात् । एवम्भूतनयापेक्षया तु सर्वाणि द्रव्याणि स्वप्रतिष्ठान्येव ॥ तथा चोक्तं

यदि * आकाशम् ॥ स्वप्रतिष्ठम् ॥ धर्मादीनि ॥ अपि *	=(प्रश्न)जो आकाश अपने आधार है तो धर्मादिक(द्रव्यें)भी
स्वप्रतिष्ठानि ॥ एव * ;अथ * धर्मादीनाम् ॥ अन्यः ॥	=अपने आश्रय ही हैं । जो(=अथ)धर्मादिक(द्रव्यों)का और (=अन्य)
आधारः ॥ कल्प्यतेT, आकाशस्य ॥ अपि * अन्यः ॥ आधारः ॥	=आधार मानाजाता है । तौ आकाशका भी अन्य आधार
कल्प्यः ॥ ;तथा * सति ॥	=मानना चाहिये । वैसा(=तथा,)होने पर अर्थात् आकाश का अन्य आधार माननेमें
अनवस्था प्रसङ्गः ॥ इति * चेत् * न * एषः ॥ दोषः ॥ ॥	=व्यवस्थाके अभावका प्रसंग होता है, ऐसी शंका है । (उत्तर) यह दूषण नहीं है
न आकाशात् ॥ अन्य अधिक-परिमाणम् ॥	=क्योंकि आकाशसे अन्य विशेष परिमाण वाली
द्रव्यम् ॥ अस्तिT ।	=द्रव्य नहीं है अर्थात् आकाश से कोई दूसरी द्रव्य महान् वड़ी नही है ।
यत्र * आकाशम् ॥ स्थितम् ॥ इति * उच्यतेT ।	=जिसमें(=यत्र)आकाश स्थित हो ऐसा कहा गया है ।
सर्वतः * अनन्तम् ॥ हि * तत् ॥ ;ततः * धर्मादीनाम् ॥ पुनः *	=सो(=तत्,)सवओर(आकाश)ही अनन्त है । बहुरि तिससे धर्मादिकों का
अधिकरणम् ॥ आकाशम् ॥ व्यवहारनय-वशात् ॥	=आधार(आकाश)है । व्यवहारनयके आश्रयसे
इति * उच्यतेT । एवम्भूतनय-अपेक्षया ॥ तु (१) *	=ऐसा कहा जाता है, और(=च)एवम्भूतनयकी अपेक्षासे अर्थात् जिस स्वरूपकरिके पदार्थ हो, तिस स्वरूपकरिकेही निश्चयकरनेवाली नयकी अपेक्षासे
सर्वाणि ॥ द्रव्याणि ॥ स्वप्रतिष्ठानि ॥ एव * ॥ तथा च * उक्तम् ॥	=सब द्रव्यें अपने (अपने)आधार ही हैं और (=च)वैसेही(तथा=)कहा जाता है

(१) 'तु' सर्वार्थसिद्धिवृत्तिकी प्रथमावृत्ति में 'तु' के स्थान में 'च' है कई हस्तलिखित प्रतियोंमें और द्वितीय संस्करणमें 'तु' शब्द है इसलिये हमने भी 'तु' पाठ लिया है ॥

क भवानास्ते ? आत्मनीति ॥ धर्मादीनि लोकाकाशान्न बहिः सन्तीति एतावत् अत्राधाराधेयकल्पनासाध्यं फलम् ॥ ननु च लोके पूर्वोत्तरकालभाविनामाधाराधेयभावो दृष्टः यथा कुण्डे बदरादीनां न तथाऽऽकाशं पूर्वम् । धर्मादीन्युत्तरकालभावीनि

क*भवान्[१।१](१)आस्ते T आत्मनि[७।१]इति*;धर्मादीनि[१।३]॥	=कि आप कहां वैठे हैं (उत्तर)आत्माविषैं (वैठा हूं) धर्मादिक (द्रव्यें)
लोकाकाशात्[५।१]॥न*बहिस्*सन्ति T इति*एतावत्*	=लोकाकाशसे बाहिर नहीं हैं इतनाही
अत्र*(२)आधार-आधेय-कल्पना-साध्यम्[१।१]॥ फलम्[१।१]॥	;=यहां आधार आधेयके माननेका साधनीय अथवा सिद्ध करने योग्य फल हैं
(३)ननु*च*लोके[७।१]॥ पूर्व-उत्तर-काल-भाविनाम्[६।३]॥	=बहुरि प्रश्न, लोकमें पहिले पिछले(पश्चात्)कालमें होनेवाली वस्तुओंकें
आधार-आधेयभावः[१।१] दृष्टः[१।१]	=आधार आधेयभाव देखाजाता है अर्थात् आधार पहिले पश्चात् आधेय देखाजाताहै
यथा*कुण्डे[७।१] बदर-आदीनाम्[६।३]	=जैसे गढ़हा(आधार)में वेरके वृक्ष आदिकें वा कपासके पौदा आदिकें(आधेयभाव) हैं
न*तथा*आकाशम्[१।१]॥पूर्वम्[१।१]॥;धर्मादीनि[१।३]॥ उत्तर-काल-भावीनि[१।३]॥	=तैसे आकाश पहिले नहीं है और धर्मादिक (द्रव्यें) पश्चात् =कालवाली (नहीं) है अर्थात् प्रश्न यह है कि गढ़हा पहिले होता है उसमें वेर वा कपासादिका वृक्ष पीछे होता है । तब आधार आधेयभाव होता है तैसे आकाश पहिले हो पीछे तिसमें धर्मादिक द्रव्य धरे होंय, तब आधार आधेयभाव होना चाहिये सो इस प्रकार हैं नहीं । क्योंकि आकाश और धर्मादिक द्रव्योंके अनादि परिणामिक यौगपद्यकी सिद्धि है । पूर्वमें होना वा पीछेहोना ऐसा भेद नहीं है ॥

(१) अस् =वैठना अदादि (दूसरे)गणका धातु है । आत्मनेपदी सकर्मक है इसलिये आस् + ते = आस्ते = वह वैठा है ॥

(२) जिसके आश्रय वा आसरेसे कोई वस्तु तिष्ठी हो उसे आधार कहते हैं । वह वस्तु जो किसीके आश्रित तिष्ठी हो उस वस्तुको आधेय कहतेहैं जैसे चौकी पर पुस्तक है यहां चौकी आधार है और पुस्तक आधेय है ।

(३) पाठकोंको ध्यान रहे कि "ननु च लोके पूर्वोत्तरकालभाविनामाधाराधेयभावो दृष्टः । यथा कुण्डे बदरादीनां न तथाऽऽकाशं पूर्वम् । धर्मादीन्युत्तरकालभावीनि । अतो व्यवहारनयापेक्षयाऽपि आधाराधेयकल्पनानुपपत्तिरिति ॥ ऐसा और इतना प्रश्न कियागया है ॥

अतो व्यवहारनयापेक्षयाऽपि आधाराधेयकल्पनानुपपत्तिरिति ॥ नैष दोषः ॥ युगपद्भाविनामपि आधाराधेयभावो दृश्यते । घटे रूपादयः शरीरे हस्तादय इति ॥ लोक इत्युच्यते । को लोकः ? । धर्माधर्मादीनि द्रव्याणि यत्र लोक्यन्ते स लोक इति ॥ अधिकरणसाधने घञ् ॥ आकाशं द्विधा विभक्तं । लोकाकाशमलोकाकाशं चेति ॥ लोक उक्तः । स यत्र तल्लोकाकाशम् । ततो बहिः सर्वतोऽनन्तमलोकाकाशम् ॥ लोकालोकविभागश्च धर्माधर्मास्तिकायसद्भावात्,

अतः * व्यवहारनय-अपेक्षया[3/1] अपि * आधार-आधेय-कल्पना अनुपपत्तिः[1/1] इति * ॥	=इसलिये व्यवहारनयकी अपेक्षासे भी आधार आधेयके =माननेकी सिद्धि नहीं(होती)है(क्योंकि पूर्व में कथन कर चुके हैं कि एवम्भूतनय की अपेक्षासे सर्व द्रव्य अपने अपने आधार हैं और व्यवहारनयसे आश्रय आश्रयी (=आधेय)भाव है
न * एषः[1/1] दोषः[1/1]; युगपद् * भाविनाम्[6/3] अपि * आधार-आधेय-भावः[1/1] दृश्यते । घटे[7/1] रूपादयः[1/3] शरीरे[7/1] हस्त-आदयः[1/3] इति * ॥ लोकः[1/1] इति * उच्यते ।	=(उत्तर)यह दूषण नही है(क्योंकि)एक कालमें होनेवालोंके भी =आधार आधेय भाव देखा जाता है ।(जैसे)घड़ा में रुपादिक हैं =शरीर में हस्तादिक हैं ॥ 'लोक' ऐसा कहा जाता है ॥
कः[1/1] लोकः[1/1] ? । धर्म-अधर्म-आदीनि[1/3] द्रव्याणि[1/3] यत्र * लोक्यन्ते । सः[1/1] लोकः[1/1] इति * अधिकरणसाधने[7/1] (१)घञ्[1/1] ॥ आकाशम्[1/1] द्विधा * विभक्तम्[1/1] ॥ लोकाकाशम्[1/1] अलोकाकाशम्[1/1] च * इति लोकः[1/1] उक्तः[1/1],	=(प्रश्न)लोक क्या है ? (उत्तर)धर्म, अधर्म आदिक द्रव्यें जहां =देखी जाती हैं सो लोक है।ऐसे(लोक शब्द के)अधिकरण वा आधार सिद्ध करनेमें =घञ् (=अ) प्रत्यय लगाया है, जोड़ा है । आकाश दो प्रकारसे बटा हुआ है =लोकाकाश और अलोकाकाश है । लोक (जहां धर्मादिक द्रव्यें देखी जाती हैं ऐसा) कहा गया है
सः[1/1] यत्र * तत्[1/1] लोकाकाशम्[1/1]; ततः * बहिस् * सर्वतः * अनन्तम्[1/1] अलोकाकाशम्[1/1]; च * लोक-अलोक-विभागः[1/1] धर्म-अधर्म-अस्तिकाय-सद्भावात्[5/1]	=वह (लोक) जहां (=यत्र) है सो (=तत्) लोकाकाश है, तिस (लोक) से बाहिर =चारोंओर अन्तरहित अलोकाकाश है और लोक =अलोक का विभाग धर्मास्तिकायकी, अधर्मास्तिकाय की विद्यमानता से

(१) लोक् धातु का अर्थ देखना है घञ् प्रत्ययमें घ्, ञ् इत् होनेसे लोप होगये अ शेष रहा, तब लोक् + अ ऐसा रूप हुआ, अर्थात् 'लोक' शब्द बनगया ॥

विज्ञेयः ॥ असति हि तस्मिन्धर्मास्तिकाये जीवपुद्गलानां गतिनियमहेत्वभावाद्विभागो न स्यात् । असति चाधर्मास्तिकाये स्थितेराश्रयनिमित्ताभावात् स्थितेरभावः । तस्या अभावे लोकालोकविभागाभावो वा स्यात् । तस्मादुभयसद्भावाल्लोकालोकविभागसिद्धिः ॥

तत्रावध्रियमाणानामवस्थानभेदसम्भवाद्विशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ धर्माधर्मयोः कृत्स्ने ॥ १३ ॥

विज्ञेयः ॥	=जाननायोग्य है (जहांतक, जहांपर धर्म, अधर्म द्रव्योंका अस्तित्व है वहांतक लोकाकाश है)
असति हि * तस्मिन् धर्मास्तिकाये	=क्योंकि (=हि) तिस धर्मास्तिकायके न होनेपर
जीव-पुद्गलानाम् गति-नियम-हेतु-अभावात् विभागः	=जीव पुद्गलोंके गमनके नियमके कारणके अभावसे लोक और लोकका) विभाग
न * स्यात्; च * असति अधर्मास्तिकाये स्थितेः ॥	=नहीं होसकता है और (=च) अधर्मास्तिकाय न होनेपर स्थितिके
आश्रय-निमित्त-अभावात् स्थितेः । अभावः; तस्याः ॥	=आश्रयके हेतुके अभावसे स्थितिका अभाव होता है । तिस (स्थिति)के
अभावे लोक-अलोक-विभाग-अभावः वा * स्यात् ।	=न होनेपर लोक अलोकका विभाग निश्चयसे (=वा) नहीं होगा (अभावः स्यात्)
तस्मात् * उभय-सद्भावात् लोक-अलोक-विभाग-सिद्धिः ॥	=तिससे दोनों (धर्म, अधर्म द्रव्यों)के अस्तित्वसे लोक अलोकके विभागकी सिद्धि है
तत्र * अवध्रियमाणानाम् अवस्थान-	=तहां निर्णयकियेगये अथवा अवधारणकियेगयेके अवस्थानके
भेद-सम्भवात् विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थम् ॥ आह ।	=भेद सम्भव होनेसे विशेष ज्ञानके लिये (अग्रिम सूत्रमें) कहते है कि
[1]**सूत्रम्-धर्माधर्मयोः कृत्स्ने ॥ १३ ॥**	**= धर्माधर्मयोः कृत्स्ने (लोकाकाशे अवगाहःभवति)।१३।**
सूत्रार्थः—धर्म-अधर्मयोः कृत्स्ने ॥ लोकाकाशे ॥	=धर्म द्रव्य तथा अधर्म द्रव्यकी समस्त लोकाकाशमें
अवगाहः भवति ।	=स्थिति है अर्थात् जैसे तिलोंमें सर्वत्र तेल व्याप्त है उसी प्रकार लोकाकाशके समस्त प्रदेशों में धर्म अधर्म द्रव्योंके प्रदेश पूर्णरूपसे व्याप्त है ।

(१) दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायोंमें इस सूत्र का पाठ और अर्थ एकसा है ॥ कहींपर "धर्म्माधर्म्मयो कृत्स्ने" पाठ है दोनों पाठ "अचो रहाभ्यां द्वे(वा)" अष्टाध्यायी ८-४ ४६ सूत्रसे ठीक है ।

कृत्स्नवचनमशेषव्याप्तिप्रदर्शनार्थम् ।

अगारेऽवस्थितो घट इति यथा, तथा धर्माधर्मयोर्लोकाकाशेऽवगाहो न भवति किं तर्हि ?। कृत्स्ने, तिलेषु तैलवदिति ॥ अन्योऽन्यप्रदेशप्रवेशव्याघाताभावोऽवगाहनशक्तियोगाद्वेदितव्यः ॥

अतो विपरीतानां मूर्तिमतामेकप्रदेशसंख्येयासंख्येयानन्तप्रदेशानां पुद्गलानामवगाहविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

वृत्त्यनुवादः-कृत्स्न-वचनम्[१]।।।अशेष-व्याप्ति-प्रदर्शन-अर्थं =(इस सूत्रमें)कृत्स्न शब्द सर्व(लोकमें)व्याप्ति अथवा फैलावटके दिखानेके लिये है,

अगारे[१]।।।अवस्थितः[१]।घटः[१]।इति*यथा*,तथा* =जैसे घरमें घड़ा अवस्थित वा रक्खा हुआ है तैसे

धर्म-अधर्मयोः[६]।लोकाकाशे[१]।।।अवगाहः[१]।न*भवति =धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य दोनोंका लोकाकाशमें अवगाह नहीं होता है

किं* तर्हि* । =(प्रश्न) तो कैसे हैं ? प्रश्नका भावार्थ ऐसा है कि आचार्यकी यह बात सुनकर कि घरमें रक्खे हुये घटके समान धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य लोकाकशमें रक्खेहुये नहीं हैं शिष्यने अचम्भित,उत्सक और अधीर होकर तत्कालही प्रश्न करदियाकि तो कैसे हैं

कृत्स्ने[१]।।। तिलेषु[१]। तैलवत्*इति* ॥ (=उत्तर)सम्पूर्णमें अर्थात् तिलोंमें तेलके सदृश भावार्थ जैसे तिलोंमें सर्वत्र तेल व्याप्त है तैसे लोकाकाशके समस्त प्रदेशोंमे सर्वत्र धर्म अधर्मद्रव्योंकेप्रदेश पूर्णतया व्याप्त हैं

अन्योऽन्य-प्रदेश-प्रवेश-व्याघात-अभावः[१]। =(धर्म-अधर्मद्रव्योंके) परस्पर प्रदेशोंके प्रवेशमें व्याघात वा रुकावट नहीं है

अवगाहन-शक्ति-योगात्[५]। =(सो रुकावटका अभाव धर्म-अधर्मद्रव्योंकी)अवगाहनकी सामर्थ्यके योगसे

वेदितव्यः[१]। =जानना चाहिये अर्थात् धर्मद्रव्यका एकएकप्रदेश अधर्मद्रव्यके एक२ प्रदेशमें व्याघात रहित प्रवेश है और अधर्मद्रव्यका एकएकप्रदेश धर्मद्रव्यके पृथक् पृथक् प्रदेशमें विना रोकटोक प्रवेशहै सो यह परस्पर प्रवेशता धर्म-अधर्मके अवगाहनशक्तिके निमित्तसेहै

अतः* विपरीतानाम्[६]।मूर्तिमताम्[६]।एकप्रदेश-संख्येय- =इसलिये(इन अमूर्तीक धर्म-अधर्मद्रव्योंके)विरुद्ध मूर्तिमान् एकप्रदेशी, संख्यातप्रदेशी

असंख्येय-अनन्त-प्रदेशानाम्[६]। पुद्गलानाम्[६]। =असंख्यात प्रदेशी अनन्त प्रदेशी (अनन्तानन्त प्रदेशी) पुद्गलोंकी

अवगाह-विशेष-प्रतिपत्ति- अर्थम्[१]।।।आह । =अवगाहको विशेष जाननेके लिये (अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

॥ एकप्रदेशादिषु भाज्यः पुद्गलानाम् ॥ १४ ॥

(१)सूत्रम्—एकप्रदेशादिषु (५)भाज्यः पुद्गलानाम् ॥ १४ ॥

=(२ लोकाकाशे)एकप्रदेशादिषु(४)भाज्यः(एकप्रदेशसंख्येयासंख्येयानन्त-अनन्तानन्तप्रदेशानां) पुद्गलानां (२)अवगाहः)

सूत्रार्थः—लोकाकाशे[६]।।एकप्रदेशः-आदिषु[७]। =लोकाकाशके एक प्रदेशादिकनिमें

एकप्रदेश-संख्येय-असंख्येय- =एक प्रदेशी, दो प्रदेशी, तीन प्रदेशी आदि संख्यात प्रदेशी असंख्यात प्रदेशी और

अनन्त-अनन्तानन्तप्रदेशानां[६]।पुद्गलानां[६]।अवगाहः[१]।भवति=अनन्तप्रदेशी,अनन्तानन्तप्रदेशी पुद्गलोंका अवगाह-स्थिति-अवस्थान-ठहराव-टिकाव

भाज्यः[१]। =विभाग करने योग्य है, विकल्पनीय है वा बांटेजाने योग्य है अर्थात् लोकाकाशके एक-दो-तीन-चार-पांच इत्यादि संख्यात प्रदेशोंसे असंख्यात प्रदेशों तकमें पुद्गलद्रव्यके एकपरमाणु, दोपरमाणुं, तीनपरमाणुं, चारपरमाणुं, पांचपरमाणुं, छहपरमाणुं इत्यादिक संख्यात परमाणुं,असंख्यात परमाणुं अनन्त परमाणुं, और अनन्तानन्त 'परमाणुओंका अवगाह विभाग करने योग्य है,बांटेजाने योग्य है भावार्थ कि लोकाकाशके एकप्रदेशमें पुद्गलद्रव्यके एकपरमाणु,दोपरमाणुके(जो सूक्ष्मपरिणये)स्कंधका

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों सम्प्रदायोंमें एकसा है ॥ 'पुद्गलानाम्'के स्थानमें जहां कहीं 'पुद्गलाना' ऐसा पाठ है वह कालस्वरूपमाला व्याकरणको छोडकर अशुद्ध है ॥ (२) 'लोकाकाशे' और 'अवगाह' की बारहवां सूत्रसे अनुवृत्ति है॥ 'एकप्रदेशसंख्येयासंख्येयानन्त-अनन्तानन्त प्रदेशानां पुद्गलानाम्' यह समस्त यदि सूक्ष्म दृष्टिसे देखाजावै तो दशवां सूत्रकी अनुवृत्ति है क्योंकि उक्त सूत्रमें प्रदेशशब्दकी अनुवृत्ति आठवां सूत्रसे लीगई है अतः यहांभी प्रदेश शब्द आठवां सूत्रसे अनुवर्तना है ॥ दशवां सूत्रके 'संख्येय' शब्दमें एक प्रदेश और संख्यात प्रदेशआजाते हे ॥ दशवां सूत्रके अनन्त शब्दमें 'अनन्तानन्त'भी गर्भित है जैसाकि उक्त सूत्रकी वृत्तिके निम्न वाक्योंसे प्रगट है अनन्त सामान्यात् ॥ अनन्त प्रमाणं त्रिविधमुक्त परीतानन्त युक्तानन्तमनन्तानन्त चेति । तत्सर्वमनन्तसामान्येन गृह्यते ॥ इन वाक्योंके अर्थके लिये देखो पृष्ठ २६ ॥ (३) यह अनुवाद दशवां सूत्रके आधारपर है । (४) "भाज्य" विभजनीय, विभाग करने योग्य, विभाज्य, विकल्प करने योग्य, विकल्पनीय, बाटने योग्य अशनीय ये सर्व एकार्थवाची हैं ॥(५) पुद्गलद्रव्यको अवगाह लोकाकाशके एक प्रदेश तैं लगाय असंख्यात प्रदेश ताईं अनेक प्रकार हैं ॥ प० सदासुखजीकृता अर्थप्रकाशिका ॥

तीन परमाणुंके(जो सूक्ष्मरूपमें पलटगये हैं)स्कंधका चार परमाणुंके(जो सूक्ष्मरूपमें परिवर्तित हैं) स्कंधका इत्यादि संख्यात परमाणुके (जो सूक्ष्मरूपमें परिणमे हैं) स्कंधका और सूक्ष्मरूप परिवर्तित असंख्यात परमाणुओंके स्कंध का, तथा सूक्ष्मरूप परिणमें अनन्त पुद्गल परमाणुओंके स्कंधका और सूक्ष्मरूप परिणत अनन्तानन्त पुद्गल परमाणुके स्कंधका भी अवगाह वा अवस्थान (लोकाकाशके एक प्रदेशमें) है ;

लोकाकाशके दो प्रदेशोंमें पुद्गलद्रव्यके दोपरमाणुं खुलेहुओंका अथवा दो परमाणुं बन्धे हुओंका जो सूक्ष्मरूप नही परिणये हैं स्थिति है, तीन परमाणुंओंके (जो सूक्ष्मरूप विकारको प्राप्ति हुई है) स्कंधका, चार परमाणुंओं के (जो सूक्ष्मरूपमें परिवर्तित है) स्कंधका और ऐसाही परिवर्तित पांच परमाणुंके स्कंधका तथा ऐसेही परिणत छह परमाणुओंके स्कंधका, इत्यादिक ऐसेही सूक्ष्मरूप परिवर्तित संख्यात पुद्गल परमाणुंके स्कंधका, ऐसाही स्कंध असंख्यात परमाणुंओंकेका, ऐसाही स्कंध अनन्त परमाणुंओंकेका और पुद्गलके अनन्तानंत परमाणुंओंके (जो, सूक्ष्मरूपमें परिणये है) स्कंधकाभी अवगाह वा ठहराव वा स्थिति (लोकाकाशके दो प्रदेशोंमें) है ;

लोकाकाशके तीन प्रदेशोंमें पुद्गलद्रव्यके तीन परमाणुं खुले हुओंका अथवा तीन परमाणुं बंधे हुओंका जो सूक्ष्मरूप नहीं परिणये हैं, चार परमाणुंओंके (जो सूक्ष्मरूप परिणमें हैं) स्कंधका, ऐसाही सूक्ष्मरूप परिणत पांच परमाणुंके स्कंधका, ऐसाही सूक्ष्मरूप परिवर्तित छह परमाणुओंके स्कंधका अवगाह, इत्यादिक सात, आठ, नौ, दश ········ संख्यात सूक्ष्मरूप परिणत परमाणुओंके स्कंधकी स्थिति, ऐसेही सूक्ष्मरूप परिवर्तित असंख्यात परमाणुओंके स्कंधका अवस्थान, अनन्त परमाणुके ऐसेही स्कंधकी स्थिति, और ऐसेही सूक्ष्म परिणत अनन्तानंत परमाणुओंकी स्थिति तीन प्रदेशोंमें है ।

इसही प्रकार लोकाकाशके चार-पांच-छह-सात-आठ-नौ-दश इत्यादि संख्यात प्रदेशोंसे असंख्यात प्रदेश पर्यंतोंमें चार-पांच-छह-सात-आठ नौ-दश-इत्यादिक संख्यात और असंख्यात पुद्गल परमाणुओंके स्कंध का जो लोकाकाशके प्रदेशोंकी यथायोग्य गणनानुसार खुले हुये होसकते हैं वा बंधे हुये (सूक्ष्मरूपमें नहीं) अथवा उक्त नियमकी गणनानुसार सूक्ष्मरूपमे परिणतभी होसकते है, अवस्थान भाज्यरूप जानो, परन्तु अनन्त और अनन्तानन्त पुद्गल परमाणुओंके स्कंधका लोकाकाशके एक,दो,तीन, चारसे असंख्यात प्रदेशों तकमें उसी समय, अवस्थान वा अवगाह होसक्ता है जब वे अनन्त परमाणु वा अनन्तानन्त परमाणु सूक्ष्मरूपमें परिवर्तित हैं क्योंकि लोकाकाशके तो असंख्यात ही प्रदेश हैं । स्मरण रहे कि जितनी खुली हुई परमाणु है

एक एव प्रदेशः एकप्रदेशः । एकप्रदेश आदिर्येषां त इमे एकप्रदेशादयः । तेषु पुद्गलानामवगाहो भाज्यो विकल्प्यः ॥ अवयवेन विग्रहः

उतने लोकाकाशके प्रदेशोंसे अधिकमें अवगाहनीय नहीं होसकती हैं । अधिकसे अधिक उतने ही आकाशके प्रदेशोंमें उनका अवगाह वा टिकाव होसकता है जितनी उनकी खुले रूपमें संख्या है ॥

वृत्त्यनुवादः—एकः एव प्रदेशः एकप्रदेशः । =एकही प्रदेश है सो (द्विगु समासरूपमें) एकप्रदेश है

एकप्रदेशः आदिः येषाम् ते इमे एकप्रदेशादयः । =एक प्रदेश है आदिमें अर्थात् प्रथममें जिनके वे इतने "एक प्रदेशादयः" हैं

तेषु =तिन (एक प्रदेशादिक अर्थात् लोकाकाशके एक-दो-तीन-चार-पांच-छह-इत्यादि संख्यात प्रदेशोंसे असंख्यात प्रदेशोंतक)में

पुद्गलानाम् =पुद्गलों (की एकपरमाणु,दो परमाणु,तीन परमाणु, चार परमाणु, पांच परमाणु, छह परमाणु, सात परमाणु, आठ परमाणु इत्यादि संख्यात, असंख्यात, अनन्त और अनन्तानन्त परमाणुओं)की

अवगाहः भाज्यः विकल्प्यः =स्थिति विभाग करनेयोग्य(=भाज्य)है । विकल्पनीय है-अंशनीय है ॥

अवयवेन =(एकप्रदेशादिषु इस बहुवचनांतसमासका) टुकड़ेटुकड़ेरूपसे वा अंशअंशकरि

विग्रहः =व्याकरणानुसार व्यवच्छेद(=विग्रह अनुसार (विग्रह)वा विस्तार कियागया है सो

(१) "एकप्रदेशादिषु"समासके अवयव इसप्रकार होसकतहे कि= लोकाकाशे,एकप्रदेशे (पुद्गलानां अवगाहः भाज्यः)ऐसे एकप्रदेशभी लियागया है॥ () लोकाकाशे द्विप्रदेशयो पुद्गलानाम् अवगाह भाज्य. । () लोकाकाशे त्रिप्रदेशेषु पुद्गलानाम् अवगाह भाज्यः । () लोकाकाशे चतुःप्रदेशेषु पुद्गलानाम् अवगाहः भाज्य । () लोकाकाशे पंचप्रदेशेषु पुद्गलानाम् अवगाह भाज्यः। () लोकाकाशे षट् प्रदेशेषु पुद्गलानाम् अवगाह भाज्यः । () () लोकाकाशे सप्तप्रदेशेषु पुद्गलानां अवगाहः भाज्यः । () लोकाकाशेषु अष्टप्रदेशेषु पुद्गलानाम् अवगाह भाज्य । () लोकाकाशे नवप्रदेशेषु पुद्गलानां अवगाहः भाज्य । () लोकाकाशे दशप्रदेशेषु पुद्गलानां अवगाह भाज्य । () इत्येवम् लोकाकाशे संख्यातप्रदेशेषु पुद्गलानां अवगाह भाज्य । () लोकाकाशे असंख्यातप्रदेशेषु अपि पुद्गलानां अवगाहः भाज्यश्च ॥

(२) दोनों वारकी छपीहुई संस्कृत सर्वार्थसिद्धिमें'विग्रहसमुदायः समासार्थ' ऐसा पाठ है अर्थात् विग्रह और समुदाय शब्दोंको मिलादिया है सो बहुत गहरी खोजके पश्चात्

समुदायः समासार्थ इति एकप्रदेशोऽपिगृह्यते ॥

समास-अर्थः१।	=सो(उक्त 'एकप्रदेशादिषु') समासका भाव, अभिप्राय, वा तात्पर्य (=अर्थः)
समुदायः१।	=संचयरूपमें ग्रहण करनेका है (=समुदाय),अथवा इकट्ठेरूपमें लियेजानेका है(=समुदाय) कि
इति*एक-प्रदेशः१।अपि*गृह्यते T	=इस प्रकारसे(=इति)एकप्रदेश भी लेलियागया है भावार्थ ऐसा है कि 'एकप्रदेशादिषु'

निम्नलिखित हेतुओंसे ज्ञात होताहै कि उक्त पाठ अशुद्ध है (क) सर्वार्थसिद्धिकी तीन हस्तलिखित प्रतियोंके पर्ण १११, ६२, ५१ परक्रमसे 'अवयवेन विग्रहस्समुदाय. समासार्थ इति' पाठ है ॥ यदि विसर्गके पश्चात् श्-ष्-स् आवे तो विसर्गका विसर्ग बना रहनेदो चाहै क्रमसे श्-ष्-स् में पलटदो इसलिये विग्रहस्समुदाय· = विग्रह समुदाय (वाक्य)के ॥

(ख)तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ २०७ पर कलकत्तेकी संस्था द्वारा प्रकाशित राजवार्तिकका मुद्रित अनुवादके अध्याय ५ पृष्ठ १४६ पर और पं० पन्नालालजी दूनी अनुवादित राजवार्तिक हस्तलिखितके अध्याय ५ पृ० ३७ पर और प० पन्नालालजी न्यायदिवाकर अनुवादित तत्त्वार्थराजवार्तिक हस्तलिखितके अध्याय ५ पृ०५४ पर प्रथमवार्तिक यह है "एकप्रदेशादिष्वित्यवयवेन विग्रहः समुदायो वृत्त्यर्थः" ॥१॥ यहांपर 'वृत्ति' शब्दका अर्थ समास है।

तत्त्वार्थराजवार्तिकके सूत्र "असख्येयभागादिषु जीवानाम्" ॥ १५ ॥ पर प्रथमवार्तिक यह है कि "अवयवेन विग्रह समुदायो वृत्त्यर्थ इति"

(ग) श्रुतसागरि सूरि कृता 'श्रुतसागरीटीका' हस्तलिखितप्रतिके पर्ण १५३ पर 'यथा व्याकरणेऽवयवेन विग्रहो भवति समुदायः समासार्थो भवति तथा एकप्रदेशोपि गृह्यते बहवःश्च प्रदेशा गृह्यते = जब व्याकरणमें अवयव सहित विग्रह होता है समासका अर्थ समुदाय होता है तब एक प्रदेश भी ग्रहण कियागया है और बहुत प्रदेश भी लियेगये है अथवा ग्रहण किये गये हैं ॥ इस सम्बन्धमें हमको तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक तथा श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमे तथा उनकी भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकामें कुछभी नहीं प्राप्त हुआ है ॥

(घ) प० जयचन्द्ररायजीने इसी सूत्रकेनीचे ऐसा अनुवाद किया है कि 'यहां एकप्रदेशादिषु समास अवयवकरि कियाहै, तातैं समुदाय जानना" ॥

(ङ)प० पन्नालालजी दूनीका अनुवाद इस प्रकार है 'तिन एकप्रदेशादिकनिविषै ऐसो समास जोहै सो समुदायरूपवृत्तिके अर्थ सर्वादिकके समानहैं उक्त दूनीजीने राजवार्तिक १५वां सूत्रकी प्रथमावातिक 'अवयवेन विगृह समुदायो वृत्त्यर्थ इति' का यह अनुवाद किया है कि 'अवयवकरिविग्रहहोयहै अरवृत्तिका अर्थ समुदाय है' यहांपरभी वृत्तिका अर्थ समास है ॥

(च) प० पन्नालालजी न्यायदिवाकर अनुवाद करते है 'एक प्रदेशादिकके विषैं समुदायवृत्तिरूप जो अर्थ है सो सर्वादिगणके समान है। ताकरि एकप्रदेशभी ग्रहण होय है ऐसा जानना" ॥ यह अनुवाद 'एकप्रदेशादिषु इति विग्रहः समुदायो वृत्त्यर्थः सर्वादिवत् । तैनेकप्रदेशोऽपि अंतर्भवति' वृत्तिका है ॥ प्रथम वार्तिक 'एकप्रदेशादिष्वित्यवयवेन विग्रहः समुदायो वृत्त्यर्थः' का अनुवाद ऐसे किया है कि 'यहां एकप्रदेशादिषु या बहुवचनांत वाक्यका विग्रह अवयवकरि है तातैं समुदाय वृत्ति जानना' ॥ 'असख्येयभागादिषु जीवानाम्'॥ १५वां सूत्रकी प्रथम वार्तिक 'अवयवेन विग्रहः समुदायो वृत्त्यर्थ इति' का अनुवाद ऐसा किया है कि "अवयवकरि विगृह है सो समासमें समुदायरूप अर्थकूं कहै है"

यदि हम छपीहुई सर्वार्थसिद्धिवृत्तियोंका पाठ मानलेंतो अवयवेन विग्रहसमुदाय समासार्थइति एकप्रदेशोऽपिगृह्यते वाक्यका अनुवाद इसप्रकार होगा

अवयवेन३। विग्रह-समुदाय १।	= टुकड़े २ रूपसे वा अंश २ रूपसे विग्रह (अर्थात् समासार्थ बोधक वाक्यों)का(यहां) संग्रह व समुदय है
समास-अर्थः१। इति*एकप्रदेशः१।अपि*	= सो (एकप्रदेशादिषु) समासके अर्थके (स्पष्ट करनेके लिये) है ऐसे (आकाशका) एक प्रदेशभी
गृह्यतेT	= ग्रहण किया गया है भावार्थ यह है कि (एकप्रदेशादिषु)यह समास है इस समासके अंश या अवयववा भाग 'एकप्रदेशे और एक प्रदेशादिषु हैं ये अवयवरूपसे

यह बहुवचनांत समास है, इस समासके भाग अथवा अवयव 'एकप्रदेशे' एकप्रदेश-आदिषु हैं अर्थात् एकप्रदेशमें, दोप्रदेशोंमें, तीन प्रदेशोंमें, चारप्रदेशोंमें इत्यादिक, संख्यात प्रदेशोंमें और असंख्यात प्रदेशोंमें इसप्रकार उक्त समासका अवयव सहित अथवा टुकड़े२ रूपमें, अंश २ रूपमें विग्रह वा व्याकरणानुसार व्यवच्छेद, प्रसार, वा विस्तार हुआ सो यह विग्रह इस बातका द्योतक है कि उक्त (एकप्रदेशादिषु) समासका अर्थ तात्पर्य वा भाव समुदाय है। यदि इस समासका अर्थ यहांपर समुदाय न माना जाता तो यहांपर अन्य पदार्थकी प्रधानता रहनेसे एकप्रदेशसे भिन्नही प्रदेशोंमें पुद्गलद्रव्यका अवगाहन सिद्ध होता और एकप्रदेश छूट जाता, समासका समुदाय अर्थ माननेमें ग्रहण करनेमें लोकाकाशका एक प्रदेशभी पुद्गलके अवगाहके लिये ग्रहणमें आगया है

विग्रहका समूह है सो (यह अवयवरूपसे विग्रका समुदाय) 'एक प्रदेशादिषु समासके (स्पष्ट करनेके) अर्थ है ऐसे लोकाकाशका एकप्रदेशभी (पुद्गलके) अवगाहके लिये लिया है॥ पं० गजाधरलालजीने तत्त्वार्थराजवार्तिककी 'एकप्रदेशादिष्वित्यवयवेन विग्रह समुदायो वृत्त्यर्थः' का भावार्थ ऐसा दिया है कि 'एकश्चासौ प्रदेशश्चैकप्रदेश एकप्रदेशआदिर्येषां त इमे एकप्रदेशादयः तेषु एकप्रदेशादिषु' यह यहांपर अवयवके साथ समास है। 'एकप्रदेश आदि लेकर जितने प्रदेश हैं उनमें' यह यहांपर 'एकप्रदेशादिषु' पदका अर्थ है। 'एकप्रदेशादिषु' यहांपर बहुव्रीहिसमास रहनेसे अन्य पदार्थ प्रदेश लिया गया है और वह विशेष्य और एक प्रदेशादि पदार्थको विशेषण माना गया है। यदि यहांपर यह तर्क किया जाय कि अन्यपदार्थ प्रदेश ही क्यों लिया गया और कोई पदार्थ क्यों नहीं लिया गया? तो इसका समाधान यह है कि जहांपर उपलक्ष्य और उपलक्षणभाव रहता है वहांपर समान जातीयपदार्थका ही ग्रहण होता है जिसतरह ब्राह्मणोंको निमंत्रण आदिके समय कहा जाता है—सोमशर्मा आदिका निमंत्रण है। वहांपर आदिशब्दसे सोमशर्माके समानजातीय अन्य ब्राह्मणोंका ही ग्रहण होता है। यहांपर सोमशर्मा उपलक्षण है क्योंकि जो अपना और अपने समानजातीयका ग्राहक होता है वह उपलक्षण माना जाता है। यहांपर सोमशर्मा अपना और अपने सजातीय ब्राह्मणोंका ग्रहण करनेवाला है इसलिये वह उपलक्षण है और जो ग्रहण किये जांय वे उपलक्ष्य कहे जाते हैं यहांपर सोमशर्मासे भिन्न अन्य ब्राह्मण उपलक्ष्य हैं इसलिये उपलक्ष्य उपलक्षण भावके होनेसे जिसप्रकार यहांपर समानजातीय अन्य ब्राह्मणोंका ग्रहण है उसीप्रकार 'एकप्रदेशादिषु' यहांपर भी उपलक्ष्य उपलक्षण भाव है क्योंकि बहुव्रीहि समासांत एकप्रदेशादि शब्द अन्य पदार्थका ग्राहक है इसलिये यहांपर भी समानजातीय पदार्थका ही ग्रहण होसकता है विजातीय पदार्थका नहीं। प्रदेशका समानजातीय पदार्थ प्रदेशही है इस लिये यहांपर अन्य पदार्थ प्रदेशही ग्रहण किया जासकता है अन्य नहीं। इस रीतिसे 'एक प्रदेशको आदि लेकर जितने प्रदेश हैं उनमें' यही 'एकप्रदेशादिषु' शब्दका अर्थ ठीक है। अथवा ऊपर से प्रदेश शब्दकी अनुवृत्ति आ रही है इसलिये भी 'एकप्रदेशको आदि लेकर जितने प्रदेश हैं उनमें' यही 'एकप्रदेशादिषु' शब्दका अर्थ न्याय्य है।

'एकप्रदेशादिषु' यहांपर जो समास मानागया है उसका अर्थ समुदाय है इसलिये 'एकप्रदेशादिषु' यहांपर यद्यपि एकप्रदेश शब्द उपलक्षणस्वरूप है तो भी उसका ग्रहण है। यदि समासका अर्थ यहांपर समुदाय न माना जाता, तो यहांपर अन्य पदार्थकी प्रधानता रहनेसे एकप्रदेशसे भिन्नही प्रदेशोंमें द्रव्यका अवगाहन सिद्ध होता, गौण होनेसे एक प्रदेशमें अवगाहन न सिद्ध होता। खुलासा तात्पर्य यह है—

बहुव्रीहि समास तद्गुणसंविज्ञानबहुव्रीहि और अतद्गुणसंविज्ञानबहुव्रीहिके भेदसे दो प्रकारका मानागया है। जहांपर विशेषणविशिष्ट पदार्थका ग्रहण हो वह तद्गुणसंविज्ञान बहुव्रीहि है जिस प्रकार, "लंबकर्णमानय" अर्थात् जिसके लंबे कान हों उस पुरुषको लेआओ, यहांपर लंबे कान सहित पुरुषके आनेसे विशेषणविशिष्ट पदार्थका ग्रहण है तथा जहांपर विशेषणयुक्त पदार्थका ग्रहण न हो वह अतद्गुणसंविज्ञान बहुव्रीहि है जिस प्रकार 'सागरदृष्टमानय' अर्थात् जिस पुरुषने सागरको देख लिया है उसे लेआओ, यहांपर सागरसहित पुरुषका आना न होनेसे विशेषणविशिष्ट पदार्थका

तद्यथा—एकस्मिन्नाकाशप्रदेशे परमाणोरवगाहः द्वयोरेकत्रोभयत्र च बद्धयोरबद्धयोश्च त्रयाणामेकत्र द्वयोस्त्रिषु च बद्धानामबद्धानां च ॥ एवं संख्येयासंख्येयानन्तप्रदेशानां स्कन्धानामेकसंख्येयासंख्येयप्रदेशेषु लोकाकाशेऽवस्थानं प्रत्येतव्यम् ॥

तद्यथा*एकस्मिन् आकाशप्रदेशे परमाणोः	=जैसे एक आकाशके प्रदेशमें (एक) परमाणुका
अवगाहः द्वयोः एकत्र*उभयत्र*च*	=अवस्थान है। दो(परमाणु)का एकप्रदेशमें (=एकत्र) तथा दो प्रदेशोंमें (=उभयत्र)
बध्दयोः अबध्दयोः च*	=वंधी हुई का तथा (=च) खुलीहुई का (अवगाह) है अर्थात् दो परमाणु वंधीहुईकी जो सूक्ष्मरूपमें परिणामी हैं लोकाकाशके एकप्रदेशमें अवगाह है और दो परमाणु खुली हुईका जो सूक्ष्मरूपमें नहीं परिणामी हैं तथा दो परमाणु वंधीका भी जो सूक्ष्मरूपमें नहीं परिणामी हैं लोकाकाशके दो प्रदेशमें अवगाह है।
च*त्रयाणाम् एकत्र*बद्धानाम्	=और (=च) तीन(परमाणुओं)का एकप्रदेशमें(=एकत्र) वंधेहुओंका(सूक्ष्मरूपपरवर्तितका)
(त्रयाणाम्) द्वयोः बद्धानाम् च*अबद्धानाम्	=(तीन परमाणुओंका) दो प्रदेशोंमें (=द्वयोः) वंधेहुए और(=च) खुलेहुओंका अर्थात् दो परमाणु (सूक्ष्मरूप परिणत) और एक खुलीहुईका वा तीनों सूक्ष्मरूप परिणतका(अवगाह) है।
(त्रयाणाम्) त्रिषु अबद्धानाम्	=(तीन परमाणुका) तीन प्रदेशोंमें खुले हुओंका (अवस्थान वा अवगाह) है
एवं*संख्येय-असंख्येय-अनन्तप्रदेशानाम् स्कन्धानाम्	=इस प्रकार संख्यात-असंख्यात अनन्त और अनंतानन्त प्रदेशोके स्कन्धोंका (क्योंकियहां अनन्तमें अनन्त और अनन्तानन्त दोनो जैसा पृथम कहाहै आजातेहैं)
एक-संख्येय-असंख्येय-प्रदेशेषु लोकाकाशे	=एक, दो, तीन, चार, पांच, छह इत्यादि संख्यात और असंख्यात लोकाकाशप्रदेशोंमें
अवस्थानम् प्रत्येतव्यम्॥	=अवगाह अथवा स्थिति प्रतीति करनी चाहिये अर्थात् पुद्गलकी दो तीन चार पांच

आदिक संख्यात, असंख्यात, अनन्त तथा अनन्तानन्त परमाणुओंके जो (सूक्ष्मरूपमें परणमीहैं) स्कन्धका अवगाह लोकाकाशके एकप्रदेशमेंभी है। संख्यात-असंख्यात अनन्त तथा अनन्तानन्तपरमाणुओंके स्कन्धोंका अवगाह लोकाकाशके संख्यात प्रदेशोंमेंभी है और असंख्यात अनन्त तथाअनन्तानन्तपरमाणुओंके स्कन्धोंका अवगाह लोकाकाशके असंख्यात प्रदेशोंमें भी है। यहांपर स्मरण रहै कि जितनी खुलीहुई परमाणुहै उतनेआकाशके

ग्रहण नहीं। 'एकप्रदेशादिषु' यहांपर भी जो बहुव्रीहि समास माना है वह तद्गुणसंविज्ञानबहुव्रीहि है इसलिये यहांपर एकप्रदेशसहित अन्य प्रदेशोंमें पुद्गलद्रव्यका अवगाहन माना है। यदि यहांपर अतद्गुणसंविज्ञान बहुव्रीहि यह समास माना जाता तो एकप्रदेशका ग्रहण नहीं होता फिर एकप्रदेशमें भी किन्हीं किन्हीं पुद्गलोंका अवगाह है यह अर्थ नहीं होसकता।

ननु युक्तं तावदमूर्त्तयोर्धर्माधर्मयोरेकत्राविरोधनावरोध इति।मूर्त्तिमतां पुद्गलानां कथमित्यत्रोच्यते— अवगाहनस्वभावत्वात्सूक्ष्मपरिणामाच्च मूर्तिमतामप्यवगाहो न विरुध्यते ।एकापवरके अनेकदीप- प्रकाशावस्थानवत् ॥ आगमप्रामाण्याच्च तथाऽध्यवसेयम् ॥तदुक्तम्—ओगाढगाढणि चिओ

प्रदेशोंसे अधिक प्रदेशोंमें अवगाहनीय नहीं हो सकती हैं। अधिकसे अधिक उतनेही आकाशके प्रदेशोंमें उनका अवगाह वा स्थिति हो सकती है जितनी उनकी खुलेरूपमें संख्या है। जैसे पचास खुलीहुई परमाणु है तो ये परमाणु पचास ही आकाशके प्रदेशोंको अवगाहवेंगी नकि अधिक प्रदेशोंको

ननु*युक्तम्[१]।।तावत्*अमूर्त्तयोः[२]धर्म-अधर्मयोः[२]।	=प्रश्न इतना (=तावत्) ठीक (=युक्त) है कि अमूर्तीक धर्मद्रव्यका और अधर्मद्रव्यका
एकत्र*अविरोधेन[३]।अवरोधः[१]इति*मूर्तिमताम्[६]।	=एकक्षेत्रमें विरोधकरि रहित अवगाह वा अवस्थान(=अवरोध) है। रूपी अथवा मूर्तीक
पुद्गलानाम्[६]।कथम्*इति*अत्र*उच्यते।	=पुद्गलोंके कैसे इस प्रकार (परस्पर अविरोधरूप एकक्षेत्रमें अवगाह) यहां कहागया है
अवगाहन-स्वभावत्वात्[५]।।च*सूक्ष्मपरिणामात्[५]।	=(उत्तर) अवगाहनके स्वभावपणासे तथा(=च)सूक्ष्म परिणमनसे
मूर्तिमताम्[६]।अपि*अवगाहः[१]।न*विरुध्यते।	= रूपी(पुद्गल)निकेंभी अवगाह नहीं विरोधाजाता है अर्थात् मूर्तीकपदार्थोंकी अवगाहन

स्वभाव वा शक्तिकरि(=अवकाशदान अथवा स्थानदान देनेकी शक्तिसे)और सूक्ष्म रूप विकारकोप्राप्त होनेसे एक क्षेत्रविषैं अवस्थान वा स्थिति अविरोधरूप है ॥ भावार्थ द्रव्योंके स्वभाव प्रति नियत है और वे भिन्नभिन्न हैं इसलिये उनके स्वभावके विषयमें यह आक्षेपही नही होसकता कि ऐसा होना चाहिये वा ऐसा न होना चाहिये जैसे अग्नि आदि पदार्थोंका स्वभाव जलानेआदिकाहै वहां पर यह आक्षेप नही किया जा सकता है कि इनका स्वभाव जलाने आदिका क्यों है जलने आदिका क्यों नही तथा तृण काष्ठादि पदार्थोंका स्वभाव जलनेआदिका क्यों हैं जलानेआदिका क्यों नहीं? क्योंकि जैसा जिसका स्वभाव होगा उसका वैसा ही स्वभाव रहगा वह पलट नहीं जासकता वैसेही यद्यपि पुद्गलमूर्तिमान पदार्थ में तथापि अपनेसमानजातीय पदार्थोंको अवगाहन दान देना उनका स्वभाव है अतः एक आकाशके प्रदेशमेंभी अनन्त रह सकते है ॥

एकअपवरके[७]।।अनेकदीपप्रकाश-अवस्थान-	= एक घरविषैं (=अपवरके) अनेक दीपकोंके उजालोंकी स्थितिके
वत्*	= समान(मूर्तीक द्रव्योंके भी एकक्षेत्रविषैं परस्पर अवगाह अविरोधरूपसे होता है)
च*आगम प्रामाण्यात्[५]।। तथा अध्यवसेयम्[१]।।तदुक्तं[१]।।	= बहुरि(=च)आगमके प्रमाणपनेसे उसी प्रकार जानना चाहिये। कहाभीहै कि
ओगाढ-गाढ-णिचिओ[१]। (अवगाढ-गाढ-निचयः[१])	=गाढागाढ भरा हुआ है ॥ ('णिचिदो' भी पाठ है) ॥

पुग्गलकाएहि सव्वदो लोगो । सुहुमेहि बादरेहि अणंताणंतेहि विविहेहिं ॥ १ ॥

अथ जीवानां कथमवगाहनमित्यत्रोच्यते—

असंख्येयभागादिषु जीवानाम् ॥ १५ ॥

लोकाकाशे इत्यनुवर्तते। तस्यासंख्येयभागीकृतस्यैको भागोऽसंख्येयभाग इत्युच्यते। स आदिर्येषां ते

पुग्गलकाएहि सव्वदो लोगो (पुद्गलकायैः सर्वतः लोकः) =चारोंओर यह लोक पुद्गलकायोंसे

सुहुमेहि बादरेहि (सूक्ष्मैः बादरैः) = जो (पुद्गलकाय) सूक्ष्मबादर (बादरेहि बादरेहि प्राकृतमें तृतीयाके दोनोंरूप हैं

अणंताणंतेहि विवहेहि (अनन्तानन्तैः विविधैः) = अनन्तान्त नानाप्रकारसे है अर्थात् सबओर यहलोक सूक्ष्म और बादरअनंतानंत नाना प्रकार पुद्गलकायोंकरि गाढागाढ ठसाठस, वा खचाखच भराहुआहै

अथ जीवानाम् कथम् अवगाहनम् इति अत्र उच्यते=आगें जीवोंका कैसे अवस्थान वा अवगाह है ऐसे यहां (अग्रिमसूत्रमें) कहाजाताहैकि

सूत्रम्—(१)असंख्येयभागादिषु जीवानाम् ॥ १५ ॥

= (लोकाकाशे) असंख्येयभागादिषु जीवानाम् (अवगाहः) भवति ॥ १५ ॥

सूत्रार्थः—लोकाकाशे असंख्येयभागादिषु =लोकाकाशके असंख्येयभागादिकोंमें

जीवानाम् अवगाहः भवति ॥ १५ ॥ =जीवोंका अवस्थान है। अर्थात् लोकाकाशके असंख्यातवांभाग और असंख्यातवें भागोंको आदिलेकर लोकपर्यन्त जीवों की स्थिति है। भावार्थ यह है कि लोकाकाशके एक असंख्यातवां भागमें एक जीव तिष्ठता है, दो असंख्यातवें भागोंमें भी एक जीवका अवस्थान है, तीन असंख्यातवें भागोंमें भी एक जीवका अवस्थान है चार असंख्यातवें भागोंमें भी एक जीवकी स्थिति वा अवगाह है औरऐसेही एक जीव का अवगाह पांच आदि संख्यातभागोंमे और असंख्यात भागोंमें समस्त लोकपर्यन्त है; जब केवली समुद्घात करते हैं तब लोकपूर्ण समुद्घातमें सबलोक एक जीवका अवगाह होता है । नाना जीवका अवगाह तो सर्वलोकमें है ही । कोई प्रदेश लोकाकाशकाजीवविना नहीहै। दोनोंआम्नायोंमें इससूत्रकापाठ और अर्थ एकसाहै।

वृत्त्यनुवादः—लोकाकाशे इति अनुवर्तते तस्य =(इस सूत्रमें) लोकाकाशमें ऐसी अनुवृत्ति (बारहमें सूत्रसे) है । तिस(लोकाकाश)के असंख्येयभागीकृतस्य एकः भागः असंख्येयभागः=असंख्यातभाग करके एक भाग है सो असंख्यातवांभाग है ।

इति उच्यते सः आदिः येषाम् ते =ऐसा कहाजाता है । सो(असंख्यातवां भाग आदिमें वा प्रथममेंजिनकेहै ते

ऽसंख्येयभागादयः। तेषु जीवानामवगाहो वेदितव्यः॥ तद्यथा-एकस्मिन्नसंख्येयभागे एको जीवोऽवतिष्ठते। एवंद्वित्रिचतुरादिष्वपि असंख्येयभागेषु आ सर्वलोकादवगाहः प्रत्येतव्यः॥ नानाजीवानां तु सर्वलोक एव॥ यद्येकस्मिन्नसंख्येयभागे एको जीवोऽवतिष्ठते, कथं द्रव्यप्रमाणेनानन्तानन्तो जीवराशिः सशरीरोऽवतिष्ठते?। लोकाकाशे सूक्ष्मबादरभेदादवस्थानं प्रत्येतव्यम्। बादरास्तावत्सप्रतिघातशरीराः। सूक्ष्मास्तु सशरीरा अपि सूक्ष्मभावादेवैकनिगोदजीवावगाह्येऽपि प्रदेशे साधारणशरीराः

असख्येय-भाग आदयः।	=असंख्येयभागआदयः (तद्गुणसंविज्ञानरूप बहुव्रीहिसमासरूपमें) हैं अर्थात् असंख्यातवां भाग सेलेकर लोकपर्यन्त समस्त भाग हैं वे असंख्येयभागआदि हैं॥
तेषु। जीवानाम्। अवगाहः।	=तिन(असंख्येय भाग आदि लोक पर्यन्त) में जीवोंका अवस्थान
वेदितव्यः। तद्यथा * एकस्मिन्। असंख्येयभागे। एकः।	=जानना चाहिये। जैसे एक असंख्यातवेंभागमें एक
जीवः। अवतिष्ठते। एवम् * द्वि-त्रि-चतुर्-आदिषु।	=जीव तिष्ठता है। इस प्रकार दो-तीन-चार आदिक
असंख्येयभागेषु। अपि * आ * सर्वलोकात्। अवगाहः।	=असंख्यात भागोंमें भी समस्त लोक पर्यतन (एक जीव)का अवगाह
प्रत्येतव्यः। ॥	=प्रतीति करना चाहिये अथवा जानना चाहिये। (असंख्यात के असंख्यात भेद हैं) तिससे लोकाकाशके असंख्यातवां भागके भी प्रदेश असंख्यातही जानना।
नानाजीवानाम्। तु * सर्वलोके। एव * यदि * एकस्मिन्।	=नानाजीवों का तो(अवगाह) सर्वलोकमें ही है (प्रश्न) जो एक
असंख्येयभागे। एकः। जीवः। अवतिष्ठते।	=असंख्यातवांभाग में एक जीव तिष्ठता है तो
कथम् * द्रव्यप्रमाणे-। अनन्तानन्त। जीवराशिः।	=कैसे द्रव्यमर्यादासे अनन्तानन्त जीवराशि है
सशरीरः। अवतिष्ठते। लोकाकाशे। सूक्ष्मबादर-	=सो शरीर सहित (लोकमें) तिष्ठती है (उत्तर) लोकाकाशमें सूक्ष्मबादरके
भेदात्। अवस्थानम्। प्रत्येतव्यम्। बादराः। तावत् *	=भेदसे (जीवोंका अवस्थान वा अवगाह) जानना चाहिये। बादर(जीव)तो(=तावत्)
सप्रतिघात-सशरीराः।	=सप्रतिघात शरीर हैं अर्थात् बादर शरीर परस्पर एक दूसरेसे रुके हैं और रोकें भी हैं
तु * सूक्ष्माः। सशरीराः। अपि * सूक्ष्मभावात्। एव *	=परन्तु सूक्ष्मजीव शरीर सहित हैं तौ भी सूक्ष्मपना से ही (=एव)
एक-निगोदजीव-अवगाह्ये। अपि * प्रदेशे।	=एक निगोद जीवकरि अवगाहने योग्य क्षेत्रमें (नकि परमाणु से रोके हुये प्रदेशमें)
साधारणशरीराः।	=साधारण शरीर अर्थात् वे जीव जिनके आहार स्वासोच्छ्वास आयु और काय ये साधारण समान वा एक हों जैसेकंद मूलादिक

अनन्तानन्ता वसन्ति ॥ न ते परस्परेण बादरैश्च व्याहन्यन्त इति नास्त्यवगाहविरोधः ॥

अत्राह लोकाकाशतुल्यप्रदेशो एकजीव इत्युक्तं, तस्य कथं लोकस्यासंख्येयभागादिषु वृत्तिः । ननु सर्वलोकव्याप्त्यैव भवितव्यमित्यत्रोच्यते—

॥ प्रदेशसंहारविसर्पाभ्यां प्रदीपवत् ॥ १६ ॥

अनन्तानन्ताः वसन्ति ; न*ते परस्परेण =अनन्तानन्त रहते हैं । न वे (सूक्ष्म सशरीर जीव) परस्परकरि

च*बादरैः व्याहन्यन्ते । इति * न * अस्ति अवगाह- =तथा बादर(जीवों)से व्याघातेजाते है । ऐसे नहीं है अवगाहनामें

विरोधः =विरोध अर्थात्‌एकही स्थानमेंबहुत जीवोंका अवगाह,विना परस्पर रोकटोककेहोताहै

अत्र*आह लोकाकाश-तुल्यप्रदेशः एकजीवे =यहां पूछता है कि लोकाकाशके बराबर प्रदेश एक जीवमें हैं

इति*उक्तम् ॥ तस्य कथम्*लोकस्य असंख्येय- =ऐसा कहाजाता है । तिस (जीव)का कैसे लोकके असंख्यातवां

भागादिषु वृत्तिः ॥ ; ननु*सर्वलोक- =भागादिकोंमें स्थिति है (=वृत्ति) ॥ सचमुच (=ननु) (वह तो) सब लोक

व्याप्त्या एव*भवितव्यम् ॥ इति * अत्र*उच्यते =व्याप्तिकरि ही होना चाहिये । ऐसे यहां (अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्-प्रदेशसंहारविसर्पाभ्यां प्रदीपवत् = प्रदेशसंहारविसर्पाभ्यां प्रदीपवत् (लोकाकाशे असंख्येयभागादिषु जीवानाम् अवगाहः भवति) ॥ १६

सूत्रार्थः-प्रदेश-संहारविसर्पाभ्याम् प्रदीपवत्* =प्रदेशोंके संकोच और विस्तार होनेसे दीपकके प्रकाशके सदृश

लोकाकाशे ॥ असंख्येयभागादिषु जीवानां अवगाहः =लोकाकाशके असंख्यातवां भागादिकमें जीवोंका अवगाह वा स्थिति है अर्थात्

(१) परस्पर—यह शब्द त्रिलिंगी है। (२) लोक—यह शब्द पुल्लिंग और नपुंसकलिंग है। (३) आकाश—यह शब्द पुल्लिंग और नपुंसकलिंगमें आता है। (४) श्वेताम्बर आम्नायके "सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र"में'विसर्पभ्यां' शब्दके स्थानमें 'विसर्गाभ्यां' पाठ है और विसर्ग शब्दका अर्थ विस्तार किया है (देखो पृष्ठ १०३) शेष पाठ दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायोंमें एकसा है अर्थ भी एक है ॥ हमारे यहां किसी किसी पुस्तकमें 'विसर्पाभ्यां' वाक्यके स्थानमें 'विसर्पाभ्यां' पाठ है ॥ दोनोंही पाठ "अचोरहाभ्यां द्वे (वा)" ८-४-४६वां सूत्रसे शुद्ध हैं ॥ पद्रहवां सूत्र अनुवृत्तियों सहित नव का सब इस (सत्र)में अध्याहार कियागया है ॥

अमूर्तस्वभावस्यात्मनोऽनादिबन्धंप्रत्येकत्वात् कथञ्चिन्मूर्ततां बिभ्रतः कार्मणशरीरवशान्महदणु च शरीरमधितिष्ठतस्तद्वशात्प्रदेशसंहरणविसर्पणस्वभावस्य तावत्प्रमाणतायां सत्यां असंख्येयभागादिषु वृत्तिरुपपद्यते, प्रदीपवत् ॥ यथा निरावरणव्योमप्रदेशे

यद्यपि एकजीवके प्रदेश लोकाकाशके समान हैं सो वह जीव सर्व लोकाकाशमें व्याप्त होना चाहिये तथापि वे प्रदेश दीपकके प्रकाश के समान संकोच विस्ताररूप होजाते है और जैसा आधार(आश्रय-शरीर) जीव पाता हैं वैसाही उस (जीव)के प्रदेश संकोच विस्ताररूप होकर लोकाकाशके असंख्यात भागादिकमें उस जीव)का अवगाह होताहै। परन्तु केवलि समुद्घातकी अवस्थामें आत्माके मध्यके आठप्रदेश मेरु मंदिरके नीचे चित्रा पृथ्वीका वज्रमयी पटलके मध्यके आठप्रदेशोंमें निश्चल तिष्ठते हैं और केवलि भगवान्के अन्यप्रदेश ऊर्ध्व अधः तिर्यक्(दायें वायें-इधर-उधर)सर्वत्र सर्वलोकमें पूर्णतया व्याप्त होजाते हैं॥

वृत्त्यनुवादः—अमूर्त-स्वभावस्य आत्मनः अनादिबन्धम् प्रति*एकत्वात् कथञ्चित्*मूर्तताम् = मूर्ति शून्य स्वभाववाले आत्माके(कर्मके) अनादिबंध =प्रति एकता रूप होनेसे वा एक क्षेत्ररूप अवगाह होनेसे कथञ्चित् मूर्तिपनाको

बिभ्रतः कार्मणशरीर वशात् महत् च*अणु =धारण करनेवाले(=बिभ्रतः)कार्मण शरीरके वशसे बड़ा और छोटा

शरीरं अधितिष्ठतः तद्-वशात् प्रदेश- =शरीरको ग्रहण करनेवाले और उस(महत् वा अणु शरीर)के वशसे प्रदेशोंके

संहरण-विसर्पण-स्वभावस्य तावत्* =संकोचन और फैलाव स्वरूपवाले (ऐसी आत्माके)उतने(देहके)

प्रमाणतायाम् सत्याम् असंख्येयभागादिषु =प्रमाण होते(=प्रमाणतायां)संते(=सत्यां)(लोकाकाशके)असंख्यातवां भागादिकमें

प्रदीपवत्*वृत्तिः उपपद्यते। =दीपकके प्रकाश सदृश अवगाह (=वृत्ति) होता है अर्थात् यद्यपि स्वभावसे आत्मा अमूर्तीक है तौभी कर्मके अनादि सम्बन्धसे एक क्षेत्ररूप अवगाह होने से कथंचित् मूर्तिमान होजाताहै और कार्माण शरीरके वशसे छोटा अथवा बड़ा शरीर पाता है उस प्राप्त कियेहुये शरीरके अनुसार प्रदेशोंको संकोच अथवा विस्ताररूपमें दीपकके प्रकाशवत् लोकाकाशके असंख्यातवां भागादिकमें उस जीवका अवगाह होता है॥

यथा*निरावरण-व्योम-प्रदेशे =जैसे खुले हुये आकाश क्षेत्रमें

अनवधृतप्रकाशपरिमाणस्य प्रदीपस्य शरावमानिकापवरकाद्यावरणवशात्तत्परिमाणतेति ॥ अत्राह धर्मादीनामन्योन्यप्रदेशानुप्रवेशात्सङ्करे सति, एकत्वं प्राप्नोतीति ॥ तन्न । परस्परमत्यन्तसँश्लेषे सत्यपि स्वभावं न जहति ॥ उक्तं च । अण्णोण्णं पविसंता दिंता ओगासमण्णमण्णस्स ॥

अनवधृत-प्रकाश-परिमाणस्य प्रदीपस्य शराव-मानिका-	=अमर्यादित प्रकाश परिमाणवाले दीपकका सकोरा(=शराव)माणिका वा पतीली
अपवरक-आदि-आवरण-वशात् तत्-	=धरादिकमें (=अपवरक)आवरणके वशसे उन(शराव-मानिका-अपवरकादि)के
परिमाणता इति *	=बरोबरि(=परिमाण)होता है अर्थात् दीपक जब खुले स्थानमें रक्खा जाता है तब उसका प्रकाश मर्यादारहित फैलता है और वही दीपक किसी भाजन वा घर आदिकमें धराजाता है तब उसका प्रकाशभी उस भाजनादिकके बराबरही परिमित वा सीमामें होजाता है
अत्र * आह धर्मादीनाम् अन्योन्य-प्रदेश-	=यहां पूछता है कि धर्मादि द्रव्योंके परस्पर प्रदेशोंके
अनुप्रवेशात् संकरे सति, एकत्वम् प्राप्नोति इति *	=मिलरहनेसे एकमेक (=संकरे) होजानेपर (दोनोंकी)एकता प्राप्त होती है
तत् न * । परस्परम् अत्यन्तसँश्लेषे सति	=(उत्तर)वह(एकता)नहीं(होती) है । परस्पर अत्यन्त मिलाव होनेपर
अपि * स्वभावम् न * । (१)जहति; उक्तम् च *	=भी (द्रव्यें अपने अपने)स्वभावको नहीं छोड़ती हैं । कहागया भी है कि
अण्णोण्णं पविसंता (अन्योन्यम् प्रविशन्तः)	=(ये छह द्रव्य) परस्पर प्रवेश करते हुये
(२ दिंता ओगासं अण्णमण्णस्स दद्न्ति (वा ददति) अवकाशम् अन्यमन्यस्य	=आपसका (=आपसमें)अवकाश देते हैं

(१) हा—तीसरे जुहोत्यादिगणका धातु है जिसका अर्थ परस्मैपदमें त्यागना वा छोडना है और आत्मनेपदमें जानेके अर्थमें आता है । यहांपर छोडनेके अर्थ परस्मैपदमें लाये हैं । तीसरे गणका धातु जिसमें एक स्वर हो तो उसको दुहरादेते हैं अर्थात् यदि स्वर आदिमें हो तो स्वरको दुहरादेते हैं जैसे इख् धातुसे इइख् होगया यदि आदिमें व्यजन हो (जैसाकि यहां है) तो आदिके व्यजनको उसके पश्चात्के स्वरके साथ दुहराते हैं जैसे हा धातुको 'हाहा' रूप होगया, दुहरे रूप कियेहुये स्वरको लघु करदेते हैं(देखो अष्टाध्यायी ७ ४-५६)और 'ह'को 'ज'से पलटदेते हैं (देखोअष्टाध्यायी ७ ४ ६२सूत्र) तब 'जहा' ऐसा रूप हुआ ॥ इस 'जहा' के दीर्घ 'आ' को वर्तमानकाल (लट्)के अनद्यतन भूतकाल (=लङ्)के, लोट कालके और विधिलिङ् कालके उन ङित् संज्ञक प्रत्ययोंके साथ गिरा देते हैं जिनके आदिमें स्वर होता है 'जहा' से 'जह्' रूप बना और अति (बहुवचनका प्रत्यय जोडकर 'जहति' रूप बना जिसका अर्थ 'छोडते हैं' त्यागते हैं' हुआ । और पित् संज्ञक प्रत्यय जैसे मि-सि-ति इत्यादिके साथ 'जहा' रूप रहता है जैसे जहामि-मैं छोडता हूं जहासि तू छोडता है जहाति=वह छोडता है ॥ (२) 'ददत्' नपुंसकलिंग, प्रथमा और द्वितीया विभक्ति बहुवचनके 'ददन्ति' और ददति दो रूप हैं और पुल्लिंगमें दोनों विभक्तियोंका 'ददतः' है यहां प्रथमा विभक्ति नपुंसकलिंगमें मेरी समझमें प्रयोग किया गया है ॥

मेलंता विय णिच्चं सग सम्भावं ण जहंति ॥ १ ॥ यद्येवं धर्मादीनां स्वभावभेद उच्यतामित्यत आह–

गतिस्थित्युपग्रहौ धर्माधर्मयोरुपकारः ॥ १७ ॥

मेलंता[१]वि * य * णिच्चं *(मिलन्तः[१]अपि*च*नित्यम्*)	=और(=य)नित्य(=णिच्चं=सदा)मिलते हुये होनेपर भी(=वि=अपि)
सग*सम्भावं[२]ण * जहंति(स्व*स्वभावं[२]न*जहति।)॥१॥	=अपने (अपने) स्वभावको नहीं छोड़ते हैं(=जहति–देखो टिप्पणी(१) पृष्ठ ४६)
यदि*एवम्*	=जो ऐसे हैं अर्थात् यदि ये छहों द्रव्यें अपने अपने स्वभावको नहीं छोड़ते हैं तो
धर्मादीनाम्[३]॥स्वभावभेदः[४]उच्यताम्। इति* अतः * आह।	=धर्मादिक (द्रव्यों)के स्वभावका भेद कहाजाना चाहिये इसलिये(उत्तर सूत्रमें)कहते हैं कि

(१)सूत्रम्–गतिस्थित्युपग्रहौ धर्माधर्मयोरुपकारः ॥ १७ ॥

= ((२)जीवानाम् पुद्गलानाम् च)(३)गतिस्थित्युपग्रहौ धर्माधर्मयोरुपकारः भवति ॥ १७ ॥

सूत्रार्थः—जीवानाम्[१]पुद्गलानाम्[१]च*गति-स्थिति-उपग्रहौ[१]	=जीवोंके और पुद्गलोंके गमन और स्थितिका कारण अथवा कार्य(=उपग्रह) (बाह्य)प्रेरक बलाधीन वा उदासीनरूपसे परन्तु अविनाभावी अर्थात् जिस विना गमन और स्थिति न होसके ऐसा
धर्म-अधर्मयोः[३]॥उपकारः[४]भवति।	=(क्रमसे)धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्यकी सहायता सहकारता वा उपकार होता है अर्थात् गमनमें परिणमन होनेवाले जीव और पुद्गलोंको

(१) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें "उपग्रहो"के स्थानमें "उपग्रहो" ऐसा पाठ है और 'उपग्रहो' तीन स्थानमें आनेसे प्रगट है कि उनके यहांका पाठ यही है छापेकी अशुद्धि नहीं है अर्थ और शेषपाठ दोनोंसम्प्रदायोंमें एक है "धर्माधर्मयोः" भी "अचोरहाभ्यां द्वे" सूत्रसे शुद्ध है॥

(२) 'जीवानाम्' शब्दकी अनुवृत्ति पन्द्रहवां सूत्रसे और पुद्गलानां शब्द की चौदहवां सूत्रसे (अनुवृत्ति) लीगई है ॥

(३) उपग्रह और उपकार दोनों शब्द कर्मसाधन, कर्मप्रधान अथवा कर्मणि प्रयोग में हैं (देखो तत्त्वार्थराजवार्तिकमें, वार्तिक १०, ११, १२, १३, पं० जयचन्द्रजी की वचनिका पृष्ठ५२८) । कर्मसाधन वह है जिसकी क्रियाका कर्ता जान नहीं पड़ता हो, तात्पर्य यह है कि अपनी अवस्थामें विद्यमान नहीं है और जो होभी तो करणकी अवस्थामें हो और जिसमें कर्मके जानलियेजानेकी आवश्यकता प्रधानहो और वही कर्मकर्ताकाप्रतिनिधि गिनाजावे जैसे फल खाया जाता है यहा कर्ता अपनी स्थितिमें विद्यमान नहीं है और जैसे लड़केसे रोटी खाईजाती है, रोटी कर्मकर्ताके स्थानमें है और लड़का कर्ता की अवस्थामें न होकर करणकी अवस्थामें है, इसीप्रकार गमन (करने)का उपकार कियाजाता है धर्मद्रव्यसे और स्थितिका उपकार किया जाता है अधर्मद्रव्यसे ॥ अपकारका अर्थ उपकारसे विरुद्ध है अपकार शब्दमें 'अप' उपसर्गका अर्थ बुराईका है और उपकार तथा उपग्रह शब्दोंमें 'उप' उपसर्गका

उसी प्रकारसे धर्मद्रव्य वाह्य और अप्रेरकनिमित्त है जैसे जलवाह्यरूप और उदासीनतासे मछलीके गमनकरनेमें सहकारी वा सहायक है और स्थितिमें परिवर्तन होनेवाले जीव और पुद्गलोंको अधर्मद्रव्य उसी प्रकार वाह्य और बलाधान(अविनाभावी) कारण है जैसे छाया पथिक जनोंके ठहरानेमें सहायक वा सहकारी है,न तो जल मछलीको प्रेरणा करता है कि वह गमन करै और न छाया पथिक जनको स्वयम् ठहरनेकी प्रेरणा करती है यदि वे गमनस्थिति करैं तो उनको उदासीनतासे सहायता प्रदान करती है,परन्तु स्मरण रहै कि उक्त वाह्य और अप्रेरक कारण गमन और स्थितिके लिये अविनाभावी है कि जिसके विना गमन और स्थिति नहीं होसकते है ॥

अर्थ भलाई वा सहायताका है जैसे उपकुर्वन्ति=उपकार अथवा सहायता करते हैं (देखो सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ १२७) इसलिये उपकार शब्दका अर्थ यहां भलाई सहायता कीजाय ऐसा है। इस अर्थका समर्थन सर्वार्थसिद्धिवृत्ति पृष्ठ २७७के 'उपक्रियत इत्युपकारः'=उपक्रियते इति उपकारः=उपकार किया जाता है वा सहायता कीजाती है, इस वाक्यसे होता है ॥ उपग्रह शब्दका अर्थ भलाई अथवा सहायता ग्रही(ग्रहण की)जाती है ऐसा है जैसे "उपगृह्यत इत्युपग्रह"=उपगृह्यते इति उपग्रह अर्थात् भलाई वा सहायता ग्रहण कीजाती है (देखो सर्वार्थसिद्धिवृत्ति पृष्ठ २७७) ॥ दोनों उपग्रह और उपकार शब्दोंके ये व्युत्पत्त्यर्थ हैं, अर्थात् ये अर्थ व्याकरणकी रीतिसे निकलते हैं ॥

उपकार =फैलाये हुये पुष्पादि()नौकरी, सेवा()साजसंभाल()अलकार, भूषण, (देखो पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ ७६ और वैद्य संस्कृत आङ्ग्लकोष पृष्ठ १३५)

उपग्रह =राहु, धूम, केतु आदि ग्रह()कारावन्धन()कारावन्धनमेंडालना()बंधुआ-कारागारस्थ()जोडना-लगाना-संयोग(उक्तकोषोंकपृ०७८,१३६में क्रमसे है)इत्यादि और भी अर्थोंमें आते हैं उन समस्तको छोड़कर अब शास्त्रानुकूल तीन बात सिद्ध करनी हैं(क)यह कि उपकार तो सामान्यवचन है अर उपग्रह विशेष वचन है"अर्थात् उपग्रहोंका समुदाय उपकार है जैसे कोई व्यक्ति किसीको पढ़ावै, पोषण करै,उसका विवाह करै-उसे व्यापारके लिये धन दे तो अवसर आने पर कहसकता है कि मैंने तुम्हारे साथ पाठन उपग्रह, पोषणकरणउपग्रह, विवाहकरणउपग्रह, धान्यउपग्रह, धनउपग्रह, इतना उपकार किया तिसपर भी तुम मेरे प्रति कृतघ्नता प्रगट करते हो। उपग्रहका अर्थ अनुग्रहभी है। (ख)यह कि उपग्रह और उपकार शब्द()सहायता सहारा()अनुग्रह-अनुकूलता भलाई()कारण निमित हेतु प्रत्यय अर्थों में लाये जाते हैं ॥ (ग) यह कि जब एकही बातके सम्बन्धमें उपग्रह किया जाय तब और अन्य अवसरोंपर भी उपकार और उपग्रह शब्द अभेदरूपसे एक दूसरेके अर्थमें जहां जैसी आवश्यकता हो काममें लायेजाते हैं ॥

(क) (१) जो इस प्रकार है अर्थात् गतिका उपग्रह है और स्थितिका भी उपग्रह है तो दो(वचन)का निरूपण वा कथन उपकार शब्दके प्राप्त होता है अर्थात् इस सूत्रमें उपकार शब्द दो वचनमें लाना योग्य था तब सूत्रका अन्तिम भाग ऐसा होता "धर्माधर्मयोरुपकारौ" (उत्तर) यह दूषण नहीं है क्योंकि सामान्यकरि कहा हुआ गृहीत संख्यावाला (उपकार शब्द)अन्य शब्द (उपग्रहो)के साथ सबन्ध होनेपर भी प्रथम ग्रहण कीहुई संख्याको नहीं छोडता है (देखो संस्कृतसर्वार्थसिद्धिवृत्ति पृ० २७७) ॥(२) "न चैवमुपकारशब्दस्य द्विवचनप्रसंगः सामान्योपक्रमादेकवचनोपपत्तेः =च एवम् उपकारशब्दस्य द्विवचनप्रसंगः नसामान्यउपक्रमात् एक वचन उपपत्तेः 'और इस प्रकार उपकार शब्दभी दो वचनमें स्थिति होवे (स्थिति होना चाहिये) ॥ (उत्तर)नहीं(होना चाहिये) क्योंकि सामान्यमें आरम्भ करनेसे वा सामान्य वशसे एक वचन की प्राप्ति है ॥(३)"तत्किमिदानीमुपग्रहवचनं? न कर्तव्यं। कर्तव्यमेवोपकारशब्देन कार्यसामान्यस्याभिधानात् गतिस्थित्युपग्रहाविति कार्यविशेषकथनात्। श्लोकवार्तिकपृ०४१०=तो अब(=इदानीं)उपग्रहवचन (सूत्रमें) क्यों है, नहीं लाना चाहिये (उत्तर) (उपग्रह शब्द सूत्रमें)लानाही चाहिये क्योंकि उपकार शब्दकरि सामान्य कार्यनिरूपण कियागया है(और) गति उपग्रह,स्थिति उपग्रहसे, विशेष कार्यका कथन होता है अर्थात् उपकार सामान्यवचन है और उपग्रह विशेष वचन है ॥(४) (श्लोक) "सुखाद्युपग्रहाश्चोपकारो जीवविपाकिनाम्'=सुखादि उपग्रहाः च उपकारः जीवविपाकिनाम् ॥ श्लोकवार्तिक पृ० ४१२ और सुखदुःख,जीवित, मरण उपग्रह हैं

सो जीव विपाकी प्रकृतियोंका उपकार है" अर्थात् सुख उपगूह, दुःख उपगूह, जीवित उपगूह, मरण उपगूह यहां उपगूह विशेष वचन है) पुद्गलोंका जीवोंको उपकार है (यहां उपकार सामान्य वचन है)॥ (५) कालस्यापग्रहा. प्रोक्ता येपुनर्वर्तनादय । स्यात्त एवोपकारो तस् तस्यानुमितिरिष्यते ॥

=पुनि ये वर्तनादय कालस्य उपग्रहाः प्रोक्ता स्यात् ते एव उपकार अतः तस्य अनुमिति इष्यते (२८वां श्लोकतत्त्वार्थश्लाकवार्तिक पृष्ठ४१४)

=पुनि जे वर्तना-परिणाम क्रिया-परत्व-अपरत्व कालद्रव्यकेउपग्रह कहेगयेहैं । वेही उपकारहैं इसलियेउस(कालद्रव्य)के अस्तित्व)कानिर्णय होजाताहै

(ख)(१) सहायता-सहाराके अर्थमें -जैसे आकाशस्य उपकारःअवगाह =आकाशद्रव्यकी सहायता वा सहारा स्थानदान देनाहै सर्वार्थसिद्धिवृत्तिपृ०२०६

भृत्यानाम् उपकारे वर्तते =सेवकोंकी(धनादिसे स्वामी)सहायता(करने)में वा सहारा देनेमें प्रवर्तताहै पृ०२८६

बाह्य उपग्रहात् विना =बाहिरकी सहायता अथवा सहारा विना ॥ सर्वार्थसिद्धिवृत्ति पृष्ठ २८७

स्व उपग्रह-प्रदर्शनअर्थम् इदम्-पुद्गलानाम् पुद्गलकृत उपकार इति=अपने लिये सहायता दिखावनेकेलियेकि पुद्गलोंकापुद्गलकृत उपकारहैउपगूहलायेहैं

परस्परस्य-उपग्रह. =आपसकी सहायता वा आपसमें एकदूसरेका सहारा [(२१वां सूत्रमें)कहतेहैं

(२) अनुग्रह-अनुकूलता भलाईकेअर्थमें.-जैसे जीवकृत-उपकारप्रदर्शनअर्थम्आह=जीवकाकियाहुआ(परस्पर)अनुगूह भलाईवाअनुकूलता दिखानेकेलिये

किम् एतावान् एव पुद्गलकृत उपकारः=क्या इतनाही पुद्गलका कियाहुआ अनुगूह है(सर्वार्थ० पृ० २८४)

परस्परस्य-उपग्रह =आपसकीभलाई वा अनुग्रह (सर्वार्थ० पृ० २८६)

उपग्रहः =अनुग्रहहै(देखो तत्त्वार्थराजवार्तिकपृ०२१०,वार्तिक२,श्लो०वा०पृ०४१०)

(३) कारण निमित्त हेतु प्रत्ययके अर्थमें-जैसे जीवानां सुख दु ख जीविति-मरण-उपगूहाःच पुद्गलानां उपकार. (सूत्र २०)

=जीवोंके (ऊपर)सुखका कारण दुखका निमित्त जीवनका हेतु-मरणका प्रत्ययभी पुद्गलकृत सहायता है (संस्कृतसर्वार्थसिद्धिवृत्ति पृ० २८४)

(ग) उपगूह और उपकार एकही अर्थमें जैसे शिष्याणाम् अनुगूहे वर्तते=शिष्योंके उपकारमें(=अनुग्रहे, आचार्य) प्रवर्तता है(सर्वार्थ सिद्धि पृ०२८६)

आचार्याणाम् उपकारे वर्तते=(शिष्य)आचार्योंके उपकारमें प्रवर्तते हैं (सर्वार्थ सिद्धि पृ० २८६)

() "उपगूह कहिये उपकार वर्ते हैं" जय०घच०पृ०४३६ ()"शरीर,वाक्,मन,तथा प्राण,अपान ये पुद्गलोंकाजीवोंके ऊपर उपगूह है

"()विष शस्त्र अग्नि आदानि मरणस्य अपवर्तन चायुष्कस्य" उपकार =तथा विष,शस्त्र,और अग्निआदि मरणके अर्थात्आयुके अपवर्तन होनेके उपगूह है'यहां उपकार शब्दका अनुवाद उपग्रह किया है। देखो सभाष्य०पृ०१२६)

()उपगूहो निमित्त अपेक्षा कारण-हेतुरित्यनर्थान्तरम् ।' =उपगूह निमित्ति,अपेक्षा,कारण,ये सब समानार्थकहैं (देखो सभाष्य० पृ०१२५)

और उपकारका अर्थ भी निमित्त, कारण, वचनिका और अर्थ प्रकाशिकामें

लिखा है—"कि छूकार्यकू निमित्त होय ताकू उपकार कहिये है" वचनिका पृष्ठ ४३४ (अर्थप्रकाशिका पृष्ठ ३०६ सूत्र १६)

()हमारे पास एक कोष बहुत प्राचीन और जीर्ण है जिसके ऊपरकेपृष्ठ और अन्य सरनामा भी नहीं है जिसके पृष्ठ२६में पद्रहवा शब्द उपकारका अर्थ कृपा,सहायता लिखा है और इकीसवें शब्द उपगूहका अर्थ दया सहायता (वधुआ भी लिखा है जिसको छोडदेते है) लिखा है।

() तेन शरीरादि परिणामैरात्मना पुद्गला उपग्रहीतार इत्युक्त भवति=तेन शरीरादि परिणामैः आत्मना पुद्गला उपगूहीतार इति उक्त भवति (अर्थ)ताकारणकरि शरीरादि परिणामकरि आत्माका उपकार करने वारे पुद्गल हैं ऐसैं कहनौं होयहै" उपगूहीतृ शब्द है जिसको प्रथमा विभक्ति बहुवचन उपगूहीतारः बनता है जिसका अर्थ उपगूह करनेवाले होता है प०पन्नालालजी दूनीवालोंने इस तत्त्वार्थ राजवार्तिककी इकतालीसवावार्तिकमें आयेहुए इस शब्दका अनुवाद "उपकार करनेवाले" ऐसा किया है अर्थात् उपगूहीतृ=उपकर्तृ

देशान्तरप्राप्तिहेतुर्गतिः । तद्विपरीता स्थितिः । उपगृह्यत इत्युपग्रहः । गतिश्च स्थितिश्च गति- स्थिती । गतिस्थिती एव उपग्रहौ गतिस्थित्युपग्रहौ ॥ (१)धर्माधर्मयोरिति कर्तृनिर्देशः ॥

वृत्त्यनुवादः—देशान्तर-प्राप्ति-हेतुः गतिः ॥	=(द्रव्यका एक क्षेत्रसे)दूसरे स्थानमें प्राप्तिका कारण है सो गति अथवा गमन है
तद्-विपरीता॥ स्थितिः॥	=उस(गति)से उलटा (अर्थात् गमन क्रियासे रुकना वा थंबना)सो स्थिति है
उपगृह्यते इति*उपग्रहः ; गतिः॥च* स्थितिः॥च*	=सहायता ग्रहण कीजाती है ऐसा उपग्रह है और(=च)गति तथा(=च)स्थिति है
गति-स्थिती॥ ; गति-स्थिती एव*उपग्रहौ	=सो गतिस्थिती(इस द्वंद्वसमासरूपमें)है। गति ही उपग्रह और ठहराव ही उपग्रह
गतिस्थिति-उपग्रहौ ॥	=वे गति-स्थिति-उपग्रहौ(इस द्वंद्वसमासरूपमें)है अर्थात् गति और स्थितिही उपग्रह हैं।
(१)धर्म-अधर्मयोः इति*कर्तृ-निर्देशः	=(इस सूत्रमें)धर्म-अधर्मयोः ऐसा (वाक्य)कर्ताके अर्थ है अर्थात् धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य उपकारके करनेवाले है भावार्थ इन धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्यके ऊपर उपकार नहीं है वरन् जीव पुद्गलोंका गमनका उपकार करनेवाली अप्रेरकरूपसे धर्मद्रव्य है और जीव पुद्गलोंको स्थितिमें उदासीनरूपसे उपकार करनेवाली अधर्मद्रव्य है ।

() यस्य अर्थस्य लिंग उक्ताः वर्तनादयः उपकाराः सः कालः इति अनुमीयते(राजवार्तिक २२७) =जिस द्रव्यका (अर्थस्य) लक्षण (=लिंग) कहेहुये वर्तना, परिणाम, क्रिया, परत्व,अपरत्व =उपकार है सो काल है ऐसा अनुमान कियाजाता है ॥ यहांपर सूत्रमें 'कालस्य' शब्दके पश्चात् 'उपकार.' अनुवर्तता है और उस कालका जीव पुद्गलोंके साथ वर्त्तना उपग्रह, परिणाम उपग्रह, क्रिया उपग्रह, परत्वउपग्रह, अपरत्व उपग्रह इतना उपकार है वार्तिककार इन पांचों उपग्रहोंके लिये "उपकारा"ऐसा शब्द बहुवचनमें लाये हैं ॥

() जीवपुद्गलानां गतिउपग्रहे कर्तव्ये साधारण- आश्रय धर्मास्तिकाय ="गमन करते जे जीव पुद्गलद्रव्य तिनके गमनका उपकार विषै साधारण =आश्रय धर्मद्रव्य है" जय० वच० ४२६ 'उपग्रहे'का अनुवाद 'उपकार विषैं' ऐसा किया है

(१) इस सूत्रमें 'धर्माधर्मयो.' वाक्यसे धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्यको कर्ता माना है । (प्रश्न) धर्म अधर्मको कर्ता माननेमें यहां प्रथमा विभक्ति होना चाहिये (उत्तर) कर्ता कारकमें षष्ठी विभक्तिका भी विधान मानागया है अतः'धर्माधर्मयो' षष्ठी विभक्ति द्विवचन पक्षके रहते भी धर्म अधर्मका कर्ता होना निर्बाध है (प्रश्न) किसी न किसी क्रियाके सम्बन्धसे कर्ताका व्यवहार होना है, धर्म अधर्मके साथ कौनसी क्रिया है जो इन (धर्म अधर्म)को कर्ता मान लिया जावै ॥ (उत्तर) सूत्रमें उपकार शब्दका ग्रहण है इसलिये 'उपकरोति'अर्थात् उपकार स्वरूप क्रियाके सबन्धसे धर्म और अधर्मको कर्ता माना गया है ॥ सूत्रमें'उपकार'शब्द भाव साधन है 'उपकरण' उपकारः यह भावसाधन उपकार शब्दका विग्रह(=समासके अर्थको प्रगट करनेवाला वाक्य) अथवा व्युत्पत्ति(=व्याकरणकी रीतिसे शब्दकीसिद्धि) है (प्रश्न)यदि'उपकरण उपकार.'ऐसे उपकारशब्दको भावसाधन माना जायगा तो गति और स्थिति स्वरूप उपग्रह धर्म और अधर्म द्रव्योंका उपकार है । इस रूपसे जो 'गतिस्थित्युपग्रहौ' इसके साथ उपकार शब्दका सामानाधिकरण्य है वह न बन सकेगा क्योंकि क्रिया ता कर्ता में रहती है इसलिये यहां उपकाररूप क्रिया ता धर्म और अधर्मरूप कर्ताओंमें रहैगी तथा उपगृह्यमाण अर्थात्

धर्म और अधर्मके द्वारा जिनका उपकार कियाजाता है ऐसी गति और स्थिति जीव और पुद्गलोंमें रहैगी अर्थात् उपकारशब्दको भावसाधन माननेपर उसका आधार तो धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य पडेगा और कर्म साधन उपगूहका आधार जीव और पुद्गल पडेंगे इसलिये उपकार और उपगृह दोनोंकी भिन्न भिन्न पदार्थोंमें वृत्तिरहनेसे उन दोनोंका सामानाधिकरण्य नहीं होसकता, इसलिये उपकार शब्दकी भावसाधन व्युत्पत्ति तो बन नहीं सकती। यदि कहा जायगा कि 'उपक्रियते इत्युपकार' इस प्रकार उपकार शब्द कर्म साधन है इसलिये उपर्युक्त दोष नहीं होसकता ? सो भी ठीक नहीं क्योंकि उपकार शब्द और उपगूह शब्द दोनोंकी कर्म साधन व्युत्पत्तिके मानने पर दोनोंका सामानाधिकरण्य अर्थात् एक अधिकरण तो हो सकता है परन्तु यह नियम है कि जिनका सामानाधिकरण्य सम्बन्ध रहता है उनके एकवचन द्विवचन आदि वचन भी समान रहते हैं। यदि उपगूह उपकार दोनोंका सामानाधिकरण्य सम्बन्ध मानाजायगा तो जिस प्रकार द्विवचनांत उपगूह पदका उल्लेख कियागया है उसी प्रकार द्विवचनांत उपकार शब्दका भी उल्लेख करना चाहिये परन्तु सूत्रमें एकवचनांत उपकार शब्दकाही उल्लेख कियागया है इसलिये उपकार शब्दको कर्मसाधनभी नहीं मानाजासक्ता इस रीतिसे उपकार शब्दकी भावसाधन और कर्म साधन दोनों प्रकारकी व्युत्पत्तियें बाधित हैं ? (उत्तर) यहांपर उपकार शब्दका सामान्यरूपसे ग्रहण कियागया है इसलिये उसके एकवचनांत ग्रहण करनेपर भी कोई दोष नहीं आता है अर्थात् 'साधो कार्यं तपःश्रुते वाक्यमें तप करना शास्त्र अध्ययन करना ये दो कार्य साधुके हैं। यहां तप और श्रुतहीको कार्य माना है इसलिये आपसमें उनका सामानाधिकरण्य सम्बन्ध है क्योंकि तपश्रुतरूप कार्य का आधार एक है परन्तु कार्य शब्दका एकवचनमें उल्लेख किया गया है और'तप श्रुते'शब्दका द्विवचनमें ग्रहण है इसलिये यहांपर भी यह शंका उठती है कि जब आपसमें यहांपर सामानाधिकरण्य सबन्ध है तब जिस प्रकार 'तप श्रुते' शब्द द्विवचनांत रूपसे कहागया है उसी प्रकार कार्य शब्दभी द्विवचनांतरूपसेही कहना चाहिये, एक वचनांत कार्यका उल्लेख यहां प्रसंगरहित है। उसका समाधान यहां यह दियागया है कि कार्य शब्दका प्रयोग उपर्युक्त वाक्यमें सामान्यरूपसे किया गया है और यह नियम है कि जिस पदका प्रयोग सामान्यरूपसे किया जाता है और उसका उस समय जो एक वचन, द्विवचन आदि रहता है वही तदवस्थ रहता है, पश्चात् यदि उस पदके विशेषण स्वरूपही तीन आदि पद हों और उनके सम्बन्धसे सामान्य-रूपसे कहेगये पदके वचनके पलटनेकी आवश्यकता पडे तो भी वहांपर विशेषणके अनुसार वचनका परिवर्तन नहीं होता'कार्यं तप श्रुते' यहांपर एक वचनान्त कार्य शब्दका सामान्यरूपसे उपादान कियागया है यद्यपि पीछेसे तप श्रुत शब्द उसका विशेषणहोनेसे विशेषणके अनुसार कार्य शब्दमें वचनका परिवर्तन होना चाहिये अर्थात् एकवचनके स्थानमें द्विवचन होना चाहिये परन्तु सामान्यरूपसे उल्लेख होनेके कारण वहां पर एकवचनके स्थानमें द्विवचनका परिवर्तन नहींहोता उसीप्रकार उपकार शब्दकाभीसामान्यरूपसे एकवचनमें उल्लेखकियागयाहै इसलिये पीछेसेउसकाउपगूहविशेषण होनेपर भी उसके अनुसार उपकार शब्दके एकवचनके स्थानमें द्विवचनका परिवर्तन नहीं होसकता अत.सूत्रमें जो एकवचनरूपमें उपकारशब्द लाया गयाहैवह ठीकहै।अथवा जिस प्रकार 'उपकरण उपकार.' इस प्रकार उपकारशब्द भाव साधन मानागया है उसी प्रकार 'उपगूहण, उपगूहः' इस प्रकार उपगूहशब्द भी भाव साधन है इसलिये गतिस्थित्योरुपगूहौ गतिस्थित्युपगूहाविति' जो ऊपर षष्ठी तत्पुरुष समास कह आये हैं उसके माननेमें भी कोई दोषनहीं तथा उपगूह और उपकार शब्दका भावसाधन मानने पर गतिका उपगूह धर्मद्रव्यका उपकार है और स्थितिका उपगूहअधर्मद्रव्यकाउपकार है यह शास्त्रानुकूल अर्थ भी निरापद होजाता है इसलिये उपगूह और उपकार शब्दको कर्मसाधन मानने पर कर्मधारय समास और भावसाधन माननेपर षष्ठी तत्पुरुष समास दोनों ही समासोंका मानना निर्दोष है॥ (प्रश्न पर प्रश्न) यदि 'उपगूह' शब्द भावसाधन है तो चूंकि भाव पदार्थ एक माना है इसलिये उपगूहौ के स्थानमें उपग्रह एकवचन होना चाहिये (उत्तर) धर्म और अधर्म द्रव्यें भिन्न भिन्न हैं गतिमें उपग्रह करना और स्थितिमें उपग्रह करना भी भिन्नभिन्न हैं। गमनमें उपग्रह करना धर्मद्रव्यका उपकारहै और स्थितिमेंउपग्रहकरना अधर्मद्रव्यका उपकारहैइसकेजतानेकोउपग्रहौद्विवचन हैनहींतो जैसे पृथिवी, अश्व बैलआदिके गमनस्थितिमें सहकारी है वैसेही धर्मवा अधर्मद्रव्य दोमेंसे कोईएक गमन और स्थितिमें उपकारी ठहरती॥

उपक्रियत इत्युपकारः । कः पुनरसौ? गत्युपग्रहः स्थित्युपग्रहश्च ॥ यद्येवं द्वित्वनिर्देशः प्राप्नोति? नैष दोषः । सामान्येन व्युत्पादित उपात्तसंख्यः शब्दान्तरसम्बंधे सत्यपि न पूर्वोपात्तां संख्यां जहाति ॥ यथा-साधोः कार्यं तपःश्रुते इति ॥

उपक्रियते।इति*उपकारः।पुनः*असौ।कः। =उपकार कियाजाता है वा सहायताकी जाती है ऐसा उपकार है। और यह(उपकार)क्याहै

गति-उपग्रहः।च*स्थिति-उपग्रहः।;यदि*एवम्* =गमनका उपग्रह तथा स्थितिका उपग्रह है। (प्रश्न)जो ऐसे है अर्थात् गतिकाभी उपग्रह है और स्थितिकाभी उपग्रह है तो (इस सूत्रमें)

द्वित्व-निर्देशः। प्राप्नोति। ? =दो वचनका निरूपण वा कथन(उपकार शब्दके)प्राप्त होता है अर्थात् इस सूत्रमें उपकार शब्द दो वचनमें लाना था तब'धर्माधर्मयोरुपकारौ' सूत्रके अन्तमें होता ॥

न*एषः।दोषः।;सामान्येन।।।व्युतपादितः। =(उत्तर)यह दूषण नहीं है। (क्योंकि) सामान्यकरि कहाहुआ

उपात्तसंख्यः।शब्दान्तर-सम्बन्धे।सति।अपि* =गृहीत संख्यावाला(उपकार शब्द)अन्य शब्द उपग्रहौ के साथ सम्बन्ध होनेपर भी

न*पूर्व-उपात्ताम्।।संख्याम्।।जहाति। =पहिले ग्रहण कीहुई संख्याको नहीं छोड़ता है अर्थात् इस सूत्रमें उपकार शब्दको सामान्यरूपसे ग्रहणकरि एकवचनमें निर्देश कियाहै यद्यपि इस उपकार शब्दका उपग्रह' शब्दसे ऐसे सम्बंध है कि गतिका उपग्रह धर्मद्रव्यका उपकार और स्थितिका उपग्रह अधर्म द्रव्यका उपकार है तौ भी प्रथम ग्रहण कियेहुये एकवचन संख्याको उपकार शब्द नहीं त्यागता है और उपग्रहौ शब्द दोवचनान्तके साथ उपकारौ (दोवचनान्त)ऐसा नहीं होजाता है वरन् उपकार ऐसाही रहता है॥ ('हा' धातु पर देखो टिपणी पृष्ठ ४९)

यथा*साधोः।कार्यम्।।।तपःश्रुते।।।इति* =जैसे साधु पुरुषका काम तप करना और शास्त्र पढना ऐसा है अर्थात् वाक्यमें तपःश्रुते द्विवचन है और इसके अनुसार'कार्यम्'शब्दके स्थानपर कार्ये द्विवचन होनाचाहियेपरन्तु यहांपर कार्य शब्द सामान्य है और'तपो'कार्यम् श्रुतेकार्यम् ऐसे दो स्थानोंके लिये आयाहै। जैसे सामान्य होनेके हेतुसे (कार्य शब्द) द्विवचन नहीं हुआ तैसेही सूत्रमें 'उपकार' शब्द सामान्य है और वह गतिउपकार और स्थितिउपकार इन दो बातोंका द्योतक है इसलिये सूत्रमेंभी'उपकार'शब्दको सामान्यवचन होनेसे एकवचनमें लाये हैं द्विवचन नहीं किया है॥

एतदुक्तं भवति—गतिपरिणामिनां जीवपुद्गलानां गत्युपग्रहे कर्तव्ये धर्मास्तिकायः साधारणाश्रयो जलवन्मत्स्यगमने ॥ तथा स्थितिपरिणामिनां जीवपुद्गलानां स्थित्युपग्रहे कर्तव्ये अधर्मास्तिकायः साधारणाश्रयः पृथिवीधातुरिवाश्वादिस्थिताविति ॥ ननु च उपग्रहवचनमनर्थकमुपकार इत्येवं सिद्धत्वात् । गतिस्थिती धर्माधर्मयोरुपकार इति ॥ नैष दोषः याथासंख्य-

एतत्¹।।'उक्तम्¹।।'भवति।गतिपरिणामिनाम्⁶।	=यह कथन वा अर्थ होता है कि गमनमें परिणमन होनेवाले, गमनकरनेवाले
जीवपुद्गलानाम्⁶।गति-उपग्रहे⁷।कर्तव्ये⁷।धर्म-	=जीव पुद्गलोंके गमनके उपकार करनेमें धर्म (जो जीव-पुद्गल-धर्म-अधर्म-आकाश-पांच अस्तिकायोंमेंसे एक है)
अस्तिकायः¹।साधारण-आश्रयः¹।	=बहुत प्रदेशवाली वा बहु प्रदेशीद्रव्य(=अस्तिकाय)है साधारण आधार है
जलवत्*मत्स्य-गमने⁷;तथा*स्थिति-परिणामिनाम्⁶।	=जैसे जल मछलीके चलनेमें है वैसेही =तथा)ठहरनेमें परिणमन होनेवाले
जीव-पुद्गलानाम्⁶।स्थिति-उपग्रहे⁷।कर्तव्ये⁷।(१ अधर्म-	=जीव पुद्गलोंके स्थितिके कारण कर्तव्यमें अधर्मद्रव्य (जो जीव-पुद्गल-धर्म-अधर्म-आकाश पांच अस्तिकायोंमें से एक है)
अस्तिकायः¹। साधारण-आश्रयः¹।	=अस्तिकाय अर्थात् बहुप्रदेशी द्रव्य है साधारण वा सामान्य आश्रय है
पृथिवी ²)धातुः¹।इव*अश्वादिस्थितौ⁷।इति * ॥	=जैसे(=इव)भूमिका आधार घोड़ा आदिकके ठहरनेमें है ॥
ननु*च*उपग्रह-वचनम्¹।।'अनर्थकम्¹।।।	=पुनि प्रश्न (इस सूत्रमें)उपग्रह शब्द)का कहना(=वचन)निष्प्रयोजन है
उपकारः¹।इत्येवम्*सिद्धत्वात्⁵।।	=क्योंकि (धर्म-अधर्मका) उपकार वा सहायता सूत्रकी रचनासे सिद्ध होजाती है कि
गतिस्थिती¹।।धर्म अधर्मयोः⁶।उपकारः¹। इति*;	=गति-स्थिति धर्म-अधर्मका उपकार है। ऐसा(अर्थ) हुआ ॥
न*एषः¹।दोषः¹।याथासंख्य-(३	=(उत्तर)यह दोष नहीं है(क्योंकि)यथासंख्यपनाके (=पहिलेको पहला दूसरेको दूसरा)

(१) (अश्वादि स्थितौ⁷॥भूमि आधारवत् इति अर्थ =घोड़ा आदिकके ठहरनेमें पृथिवीके आधारके सदृश है ऐसा तात्पर्य्य है (२)दधाति'इतिधातु¹।= जो (अपने ऊपर) रखता है वा धारण करता है ऐसा धातु है आधार ऐसा अभिप्राय (धातु शब्दका) है। अर्थात् जो धारण करता है वा धारण करने वाला यह अर्थ "पृथिवीधातुरिवाश्वादि" वाक्यमें जो 'धातु' शब्द आया है उसका है। (३) 'याथासंख्य'का वही अर्थ है जो 'यथासंख्य' शब्दका है॥

निवृत्त्यर्थमुपग्रहवचनम् । धर्माधर्मयोर्गतिस्थित्योश्च यथासंख्यं भवति, एवं जीवपुद्गलानां यथासंख्यं प्राप्नोति धर्मस्योपकारो जीवानां गतिः अधर्मस्योपकारः पुद्गलानां स्थितिरिति । तन्निवृत्त्यर्थमुपग्रहवचनं क्रियते ॥ आह धर्माधर्मयोर्य उपकारःस आकाशस्य युक्तः सर्वगतत्वादिति चेत्—तदयुक्तं, तस्यान्योपकारसद्भावात् सर्वेषां धर्मादीनां द्रव्याणामवगाहनं यत्प्रयोजनम् । एकस्यानेकप्रयोजनकल्पनायां लोकालोकविभागाभावः ॥

निवृत्ति-अर्थम्।। उपग्रह-वचनम्।। धर्म- =निपेधके लिये उपग्रहका कथन (इस सूत्रमें) है धर्मद्रव्य

अधर्मयोः।। गति-स्थित्योः।। च*यथासंख्यम्*भवति =अधर्मद्रव्यमें और गतिस्थितिमें यथासंख्य सम्बन्ध होजाता है अर्थात् धर्मद्रव्य का गमनसे सम्बन्ध होजाता है और अधर्मद्रव्यका स्थितिसे सम्बन्ध होजाता है

एवम्*जीव-पुद्गलानाम्।यथासंख्यम्*प्राप्नोति =इस प्रकार जीवों और पुद्गलोंका(भी) यथासंख्य(क्रम)प्राप्त होता है

धर्मस्य-उपकारः। जीवानाम्। गतिः।।अधर्मस्य। =(तब)धर्मद्रव्यका उपकार जीवोंका गमन अधर्मद्रव्यका

उपकारः।पुद्गलानां।स्थितिः।।इति*।तत्-निवृत्ति-अर्थम्।।=उपकार पुद्गलोंकी स्थिति ऐसा अर्थ होजाता है, उसके निपेधके लिये (इस सूत्रमें)

उपग्रह-वचनम्।।क्रियते; आह।धर्म-अधर्मयोः। यः। =उपग्रह वचन किया है (शिष्य) कहता है कि धर्म अधर्म द्रव्योंका जो

उपकारः।सः।आकाशस्य।।युक्तः। सर्व गतत्वात्।। =उपकार है सो(उपकार)आकाशके युक्त है क्योंकि(आकाश) सर्वत्र व्यापी है

इति*चेत्*तद्।।अयुक्तम्।। तस्य।। अन्य-उपकार- ऐसी शंका है(उत्तर)सो ठीक नहीं है क्योंकि तिस (आकाशके) दूसरे उपकारकी

सद्भावात्; सर्वेषाम्। धर्मादीनाम्। द्रव्याणाम्। =विद्यमानता है (अर्थात्) समस्त धर्मादिक द्रव्योंको

अवगाहनम्।। तत्-प्रयोजनम्।। =स्थान दान देना वा अवकाश दान देना उस(आकाश)का प्रयोजन है

एकस्य।। अनेक-प्रयोजन-कल्पनायाम्।। =एक (आकाश)के अनेक प्रयोजन माननेमें

लोक-अलोक विभाग-अभावः। =लोक अलोकके विभागका अभाव होता है। भावार्थ—यह है कि इस प्रश्नके होनेपर कि गमन और ठहरावका उपकार धर्म अधर्म द्रव्योंका न होना चाहिये किन्तु आकाश जो सर्वत्र व्यापक है गतिस्थितिका उपकारी है उत्तर में आचार्य्य कहते हैं कि आकाशका असाधारण गुण द्रव्योंको स्थान दान देनेका है यदि उसका कोई दूसरा उपकार कल्पना करते है तो लोक अलोक का विभाग

भूमिजलादीन्येव तत्प्रयोजनसमर्थानि नार्थो धर्माधर्माभ्यामिति चेन्न—साधारणाश्रय इति विशिष्योक्तत्वात् । अनेककारणसाध्यत्वाच्चैकस्य कार्यस्य ॥ तुल्यबलवत्त्वात्तयोर्गतिस्थितिप्रतिबन्ध इति चेन्न—अप्रेरकत्वात् ॥

नहीं होसकता है क्योंकि ठहराने और गमन करने में सहायक होना यदि ये कार्य आकाशके माने जावेंगे तो आकाश तो अलोकाकाशमें भी हैं तो वहांपरभी जीवपुद्गल गति और स्थिति करसकेंगे अतः लोक अलोकके विभागका लोप होजावैगा ॥

भूमि-जलादीनि।। एव*तत्-प्रयोजन समर्थानि।।	= भूमि जलादिक ही उस (गति स्थति) के प्रयोजनके लिये समर्थ हैं तो
न-अर्थः।धर्म-अधर्मभ्याम्।। इति*चेत्*न*	= धर्म, अधर्म द्रव्योंसे प्रयोजन नही ऐसी शंका है । यह शंका नही होनी चाहिये
साधारण-	= (धम अधर्म द्रव्यें सब जीव पुद्गलोंको एक कालमें गतिस्थितिका) साधारण
आश्रयः। इति*	= आश्रय है (क्योंकि किसी किसी द्रव्यके एक एक प्रयोजनके सम्बन्धमें जल पृथिवी आदि गमन स्थिति आदि उपकार करनेमे)
विशिष्य-उक्तत्वात्।।;च*एकस्य।।कार्यस्य।।अनेक-	= विशेप आश्रयरूप कहे जाते है । और (=च) एक कार्यको अनेक
कारण-साध्यत्वात्।।,	= कारण सिद्धि करने योग्य वा साधनीय हैं अर्थात् एक कार्यको अनेक कारण साधते हैं सो यहां स्थितिमे पृथिवी भी कारण हैं और अधर्मद्रव्य भी कारण है
तुल्य-बलवत्वात्।। तयोः। गति-स्थिति-प्रतिबन्धः।	= (धर्म अधर्मद्रव्ये) समान बलवान होनेसे तिन दोनोमे गतिस्थितिका विरोध होगा
इति* चेत्*	= ऐसी शंका है अर्थात् जब धमद्रव्य अधर्मद्रव्य दोनों समान बलवाले है सो जिस काल धर्मद्रव्य जीव पुद्गलोंको गमन कराती होगी उसीसमय अधर्मद्रव्य स्थिति कराती होगी तब गमन स्थिति दोनोकी रोक होती होगी ॥
न*	= सो नही ।(धर्मद्रव्य जीव।पद्गलोके गतिके निमित्तहै अधर्मद्रव्य उनकी स्थितिकेहैसो)
अप्रेरकत्वात्।।।	= अप्रेरक वा बलाधान भावसे हैं अर्थात् यदि जीव पुद्गल चले तो धर्मद्रव्य उदासीनतासे चलनेमे निमित्त होती है और यदि ठहरै तो ऐसेही अधर्म-द्रव्य स्थितिमें ऐसी प्रेरणा न करें कि अमुक जीव पुद्गल चले अमुक ठहरे रहै ॥

अनुपलब्धेर्न तौ स्तः खरविषाणवदिति चेन्न—सर्वप्रवाद्यविप्रतिपत्तेः। सर्वे हि प्रवादिनः प्रत्यक्षा- प्रत्यक्षानर्थानभिवाञ्छन्ति ॥ अस्मान्प्रतिहेतोरसिद्धेश्च ।

अनुपलब्धेः५/१। तौ१/२। (१) खरविषाणवत्* न* स्तः१	=क्या आंखकरि न दीखनेसे (धर्म-अधर्म) वे दोनों (द्रव्यें) गधाके सींगके सदृश नहीं है
इति* चेत्*	=ऐसी शंका है अर्थात् जैसे संसारमें गधा (वा शश खरहा) के सींगोंकी कल्पना है विद्यमानता नहीं है क्योंकि किसीने अपनी आंखोंसे नही देखे है वैसेही धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य केवल कल्पनामात्रहै वास्तविक वा यथार्थमें उनका कोई अस्तित्व नही है ऐसी शंका है ॥
न*	=(उत्तर) (ऐसा संदेह कि धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य नेत्रोंसे न दीखनेसे गधाके सींगके तुल्य कल्पित द्रव्य है) नही (होना चाहिये)
सर्व- (२) प्रवादि-अविप्रतिपत्तेः५/१॥	=क्योंकि (ऐसे अस्तित्वमें) सब प्रतिवादियोंको (हमारे साथ) अविरोध (=विवाद नहीं) है
सर्वे१/३। हि* (२) प्रवादिनः१/३। प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्षान्२/३।	=समस्त ही (=हि) अन्य मातावलम्बी प्रत्यक्ष और परोक्ष
अर्थान्२/३। अभिवाञ्छन्ति। अस्मान्२/३। प्रति*	=पदार्थोंको मानते हैं हम प्रति अर्थात् हमारे ऊपर
हेतोः६/१। असिद्धेः५/१। च*	=(तुम्हारे इस) साधनकी (कि धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य अनुपलब्ध हैं) सिद्ध भी नहीं है ॥

भावार्थ यह है कि हम स्याद्वादीनके ऊपर तुम्हारा यह साधन कि धर्म, अधर्मद्रव्यें अनुपलब्ध हैं उनका अस्तित्व गधेके सींग सदृश है निम्नलिखित कारणसे लागू नही है

(१) ससारमें चार वस्तुयें (क) खर अथवा शशविषाण (ख) बांझ स्त्रीका पुत्र (ग) मृगतृष्णा (४) आकाशका फूल ये विद्यमान नहीं है। जब किसी वस्तुके अभावको प्रगट करना होता है तब इन चार पदार्थोंसे प्राय एक वा दोका नाम लेते हैं। ये चारों वस्तुयें निम्नलिखित श्लोकसे स्पष्ट हैं

"एष वन्ध्यासुतो याति खपुष्पकृतशेखर. । मृगतृष्णाम्भासि स्नातः शशशृङ्गधनुर्धरः ॥ १ ॥

एष १/१। वन्ध्यासुत १/१। याति, (एषः)) ख-पुष्प-कृत शेखर १/१। =यह बांझ स्त्रीका पुत्र जाता है। यह आकाशके फूलोंकी बनाई हुई शिखा वा चोटी है

(एष) मृगतृष्णा-अम्भासि ७/१॥ स्नातः १/१।(एषः) शशशृङ्ग धनुर्धरः १/१। = यह मृगतृष्णाके नीर (धूपमेंजलभ्रान्ति) मेंन्हायाहुआहै यह खरके सींगकेधनुषकाधारीहै

(२) प्रथम वारकी छपी हुई सर्वार्थसिद्धिमें 'प्रतिवादिन्' शब्द, इन दो स्थानोंपर है परन्तु द्वितीय सस्करणमें और तीन हस्तलिखित प्रतियों में 'प्रवादिन्' शब्दका दोनों स्थानोंमें प्रयोग किया गया है। दोनों शब्दोंका लगभग एकही अर्थ है हमने 'प्रवादिन्का' प्रयोग किया है क्योंकि ये पाठ बहुतसी प्रतियोंमें पाये जाते हैं ॥

सर्वज्ञेन निरतिशयप्रत्यक्षज्ञानचक्षुषा धर्मादयः सर्वे उपलभ्यन्ते। तदुपदेशाच्च श्रुतज्ञानिभिरपि॥

अत्राह यद्यतीन्द्रिययोर्धर्माधर्मयोरुपकारसम्बन्धेनास्तित्वमवध्रियते, तदनन्तरमुद्दिष्टस्य नभसोऽतीन्द्रियस्याधिगमे क उपकार इत्युच्यते—

॥ आकाशस्यवगाह ॥ १८ ॥

सर्वज्ञेन[३] निरतिशय-प्रत्यक्षज्ञान-चक्षुषा[३] =सर्वज्ञके परमोत्कृष्ट (=निरतिशय) प्रत्यक्ष(केवल)ज्ञानरूपी नेत्रेन्द्रियकरि

धर्म-आदयः[१] सर्वे[१] उपलभ्यन्ते।[१] च॰ तद्- =धर्मादिक समस्त (द्रव्यों) जानी गई हैं और उस (सर्वज्ञ) के

उपदेशात्[५] श्रुतज्ञानिभिः[३] अपि॰; अत्र॰आह।[१] =उपदेशसे श्रुतज्ञानियोंकरिभी (जानी गई) हैं। यहां पूछता है कि

यदि॰अतीन्द्रिययोः[६] धर्म-अधर्मयोः[६] उपकार- =यदि धर्म-अधर्मद्रव्योंकी (जो इन्द्रियोंसे नहीं जानेजासकते हैं) उपकारके

सम्बन्धेन[३]अस्तित्वम्[१]।। अवध्रियते।[१] तदनन्तरम्[१]।। =संयोगसे विद्यमानता निश्चय कीजाती है तो इन(धर्म-अधर्म)के अत्यन्त समीप

उद्दिष्टस्य[६]।।नभसः[६]।।अतीन्द्रियस्य[६]।।अधिगमे[७] =कथित इन्द्रिय अगोचर आकाशके जानने में

कः[१] उपकारः[१] (२ इति॰ उच्यते।[१] =क्या उपकार वा सहायता है इस हेतुसे(=इति)(उत्तर सूत्रमें) कहा जाता है कि

सूत्रम्—(३ **आकाशस्यावगाहः ॥१८॥ = (जीवानाम्-अजीवानाम् च)आकाशस्य(उपकारः)अवगाहः**

सूत्रार्थः—जीवानाम्[६]च अजीवानाम्[६] आकाशस्य[६]।। =जीवोंको और अजीवोंको आकाश द्रव्यका

उपकारः[१] अवगाहः[१] =उपकार, सहारा, अथवा सहायता, अवकाशदान देना वा स्थानदान देना है अर्थात् समस्त जीव और अचेतन द्रव्योंको स्थानदान देना आकाशका उपकार है

(१) "अजीवकाया धर्माधर्माकाशपुद्गलाः" इस प्रथम सूत्रमें धर्मअधर्मके समीपही आकाश द्रव्यका कथन है इसलिये अग्रिम सूत्रमें आकाशका उपकार कहते हैं।

(२) "इति हेतु-प्रकरण प्रकाशादि-समाप्तिषु" अमरकोश नानार्थ वर्ग श्लोक २४६ 'इति', यह एक नाम हेतु प्रकरण प्रकाश निदर्शन समाप्ति इन्हों का है यहां पर हेतु अथवा कारणके अर्थमें लिया है इससे 'इति'का अनुवाद 'इस हेतुसे' ऐसा किया गया है॥

(३)इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों सम्प्रदायोंमें एकसा है। "अजीवानाम्"शब्दका अध्याहार कियागया है। 'जीवानाम्' शब्दकी अनुवृत्ति इस अध्यायके पन्द्रहवां सूत्रसे लीगई है और 'च' शब्दकी दशवां सूत्रसे लीगई है। उपकार सत्रहवां सूत्रसे अनुवर्तता है॥

उपकार इत्यनुवर्तते ॥ जीवपुद्गलादीनामवगाहिनामवकाशदानमवगाह आकाशस्योपकारो वेदितव्यः ॥ आह जीवपुद्गलानां क्रियावतामवगाहिनामवकाशदानं युक्तम् । धर्मास्तिकायादयः पुनर्निष्क्रिया नित्यसम्बन्धास्तेषां कथमवगाह इति चेन्न—उपचारतस्तत्सिद्धेः । यथा गमनाभावेऽपि सर्वगतमाकाशमित्युच्यते सर्वत्र सद्भावात् एवं धर्माधर्मावपि अवगाहक्रियाभावेऽपि सर्वत्र व्याप्तिदर्शनादवगाहिनावित्युपचर्येते ॥ आह यद्यवकाशदानमस्य स्वभावः वज्रादिभिर्लोष्टादीनां-

उपकारः[१] इति*अनुवर्तते[।]अवगाहिनाम्[६]	=(इस सूत्रमें) उपकार (शब्द सत्रहवां सूत्रसे) आता है रहनेवाले वा अवगाही
जीव-पुद्गलादीनाम्[६] अवकाशदानम्[१]॥ अवगाहः[१]	=जीव पुद्गलों, धर्मद्रव्य,अधर्मद्रव्य कालद्रव्यको स्थानदान देना है सो अवगाह
आकाशस्य[६]॥उपकारः[१]वेदितव्यः[१]आह[।]जीव-पुद्गलानां	=आकाशद्रव्यका उपकार जानना चाहिये । पूछताहै कि जीव पुद्गल
क्रियावतां[६]अवगाहिनां[६] अवकाशदानम्[१]॥युक्तम्[१]॥	=क्रियावाले और अवगाह करनेवालोंके अवकाशदान देना (तो) ठीक है
पुनः धर्मास्तिकाय-आदयः[१] निष्क्रियाः[१]नित्यसम्बन्धाः[१]	=किन्तु(=पुनः)धर्मास्तिकायआदिक अर्थात् धर्म अधर्म और आकाश जो क्रियारहित और आपसमें नित्य सम्बन्धवाले हैं अथवा जो क्रियारहित तथा नित्य सम्बन्धरूप हैं
तेषाम्[६] कथम्* अवगाहः[१] इति*चेत्* न*	=तिनको कैसे आकाशका स्थानदान है ऐसी शंका है । यह शंका नहीं होनी चाहिये
उपचारतः*तत्-सिद्धेः[५]यथा*गमन-अभावे[७] अपि*	=क्योंकि उपचारसेवाकल्पनासे(अवकाशदानकी)सिद्धिहैजैसेगतिके अभावहोनेपरभी
सर्वगतम्[१]॥आकाशम्[१]॥इति-उच्यते[।]सर्वत्र* सद्भावात्[५]	=सर्वगत आकाश है ऐसा कहागया है क्योंकि आकाशका सर्व स्थानमें अस्तित्व है अर्थात् आकाश है सो सदा गमनरहित है और कहींभी उसका हलनचलन आना जाना नहीं होसकता है निष्क्रिय है तौभी उसको सर्वगत कल्पनासे कहते हैं ।
एवम्*धर्म-अधर्मो[१]अपि*अवगाह-क्रिया-अभावे[७]	=इसी प्रकार धर्म अधर्म दोनोंभी अवगाहरूप क्रियाके न होनेपर
अपि*सर्वत्र-व्याप्ति-दर्शनात्[५] अवगाहिनौ[१] इति*	=भी(लोकाकाशके) सर्वस्थानमें प्रवेशताके उपलब्धसे अवगाह करनेवाली
उपचर्येते[।]आह[।]यदि*अवकाशदानम्[१]॥	=कल्पी जाती हैं वा मानी जाती हैं । पूछता है कि जो स्थान दान देना
अस्य[६]॥ स्वभावः[१] वज्रादिभिः[३] लोष्ट-आदीनाम्[६]।	=इस(आकाश)का गुण और लक्षण होता तो वज्रादिसे ढेला वा गोलादिका

(१) उपचर्येते=उपचर्य+इते=चर धातुमें उप उपसर्ग लगाकर कर्मणिप्रधान,अन्यपुरुष द्विवचन वर्तमान क्रियाका 'इते' प्रत्यय लगाकर बनाया है

(२) 'आदय' यह शब्द दोसे अधिक संख्याका बोधक है और छह द्रव्योंमें इस अध्यायके सातवां सूत्रके अनुकूल धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य और आकाश द्रव्यही क्रियारहित हैं शेषदो द्रव्यजीव,औरपुद्गलक्रियासहितहैंअतःअनुवादमें हमने धर्मअधर्मआकाशद्रव्योंकाही ग्रहणकियाहैक्योंकि कालअस्तिकायनहींहै॥

भित्यादिभिर्गवादीनां च व्याघातो न प्राप्नोति । दृश्यते च व्याघातः । तस्मादस्याव*काशदानं हीयते इति ॥ नैष दोषः । वज्रलोष्टादीनां स्थूलानां परस्परव्याघात इति नास्यावकाशदानसामर्थ्यं हीयते- तत्रावगाहिनामेव व्याघातात् । वज्रादयः पुनः स्थूलत्वात्परस्परं प्रत्यवकाशदानं न कुर्वन्तीति नासावाकाशदोषः । ये खलु पुद्गलाः सूक्ष्मास्ते परस्परं प्रत्यवकाशदानं कुर्वन्ति ॥ यद्येवं नेदमाकाशस्यासाधारणं लक्षणमितरेषामपि तत्सद्भावादिति ॥ तन्न । सर्वपदार्थानां साधारणावगाहनहेतुत्वमस्यासाधारणं लक्षणमिति नास्ति दोषः ॥

भिति-आदिभिः गो-आदीनां च व्याघातः न प्राप्नोति	=और(=च) भीत आदिकरि गऊ आदिका रुकाव नही प्राप्त होता है
दृश्यते । च*व्याघातः; तस्मात् अस्य	=और(ढेलादिक तथा गऊ आदिका) रोका जाना देखा जाता है तिस कारणसे इस आकाशके
अवकाशदानं हीयते । न*एषः दोषः	=स्थानदान देना चला जाता है अथवा बाधा जाता है । यह दूषण नही है
वज्र-लोष्ट-आदीनाम् स्थूलानां परस्पर-व्याघातः	=वज्र ढेलादिक स्थूल अथवा मोटे (पदार्थ) निका आपसमें रुकाव है
इति*न*अस्य अवकाशदान-सामर्थ्यम् हीयते	=इस (आकाश)की अवकाशदानकी शक्ति नही बांधी जाती है
तत्र*अवगाहिनाम् एव*व्याघातात्; पुनः*वज्र-	=क्योंकि तहां(आकाशमें, अवगाह करनेवालोंकेही(परस्पर, व्याघात है और वज्र
आदयः स्थूलत्वात् परस्परं प्रति*अवकाश-	=आदिक स्थूल होनेसे एक दूसरेको (=प्रति) स्थान
दानम् न* कुर्वन्ति इति* न असौ	=दान नही करते है । न यह(अर्थात् स्थूल पदार्थोंका एक दूसरेसे रुकना)
आकाश दोषः ये खलु*पुद्गलाः सूक्ष्माः ते	=आकाशका दूषण है । निश्चयसे जे सूक्ष्म पुद्गल हैं । ते
परस्परं प्रति*अवकाशदानं कुर्वन्ति, यदि* एवम्*	=एक दूसरेको (=प्रति) अवकाशदान करते है । (प्रश्न) जो इस प्रकार है (अर्थात् जो सूक्ष्म पुद्गल आपसमें अवकाशदान करते हैं । तो)
न*इदम् आकाशस्य असाधारणम् लक्षणं	=यह (अवकाशदान) आकाशका असाधारण स्वभाव नही है
इतरेषाम् अपि* तत्-सद्भावात् इति*	=क्योंकि दूसरोंकेभी उस(अवकाशदानकी) विद्यमानता अथवा अस्तित्व है
तत् न* सर्वपदार्थानाम् साधारण-अवगाहन-	=(उत्तर)सो(=तत्) नही है क्योंकि सब पदार्थोंके साधारण युगपत्)अवकाशदानका
हेतुत्वम् अस्य असाधारणम् लक्षणम्	=कारण होना इस आकाशका अनूठा वा अपूर्व स्वभाव है
इति*न*अस्ति । दोषः	=(सो ऐसा) उपर्युक्त दूषण नही है भावार्थ यह है कि शिष्यके इसप्रश्न पर कि

अलोकाकाशे तदभावादभाव इति चेन्न-स्वभावापरित्यागात् ॥

उक्त आकाशस्योपकारः । अथ तदन्तरोद्दिष्टानां पुद्गलानां क उपकार इत्यत्रोच्यते—

॥ शरीरवाङ्मनः प्राणापानाः पुद्गलानाम् ॥ १९ ॥

जो सूक्ष्म पदार्थ आपसमें अवकाशदान देतेहैं तौ आकाशका अवकाशदान देना कोई असाधारण लक्षण(वह स्वभाव वा गुण जो किसी दूसरेमें न हो) न ठहरा इसके उत्तरमें आचार्य कहते है कि आकाश सर्व पदार्थोंको एकही कालमें अवकाशदान देता है कोई पदार्थ ऐसा नही है जिसको आकाश स्थान दान न देता हो इससे आकाशका यह अवकाशदान देना असाधारण लक्षण है और सूक्ष्म पदार्थमें अवकाशदान देनेका अपूर्व अथवा असाधारण लक्षण इस हेतुसे नही है कि वे(सूक्ष्म पदार्थ)आपसमें एक दूसरेको अवकाशदान देते हैं सर्व पदार्थोंको एकही कालमें स्थानदान नही देसकते है

अलोकाकाशे[७] तद्-अभावात्[५] = अलोकाकाशमें उन (अवगाह करनेवालो)के विद्यमान न होनेसे

अभावः[१] इति*चेत्* ; न* = (अवकाशदानका) अभाव है ऐसी शंका है। (उत्तर) (ऐसी शंका) नही होनी चाहिये

स्वभाव-अपरित्यागात्[५] ; = क्योंकि (कोईभी पदार्थ) स्वभाव नही छोड़ता है अर्थात् आकाशमें अवगाहन (=अवकाश दान देनेका) की शक्ति और स्वभाव है सो चाहे अवगाह करने वाले उसमें हों वा न हों (जैसे अलोकाकाशमें अवगाह करनेवाले नही हैं)तौभी वह पदार्थ(अलोकाकाश) अपना स्वभाव नही त्यागता है

उक्तः[१] आकाशस्य[६]। उपकारः[१] अथ*तदन्तर- उद्दिष्टानाम्[६]। पुद्गलानाम्[६]। = आकाशका उपकार कहागया अब उस (आकाश)के अत्यन्त समीप वा लगताही वर्णित पुद्गलोंका (देखो प्रथम सूत्रमें आकाश शब्दके पश्चात् 'पुद्गलानां' शब्द)

कः[१] उपकारः[१] इति*अत्र*उच्यते। = क्या उपकार है इस कारण (=इति) यहा (उत्तर सूत्रमें) कहा जाता है कि

(१)सूत्रम्— शरीरवाङ्मनः प्राणापानाः पुद्गलानाम् ॥ १९ ॥

= शरीर-वाङ्-मनस्-प्राण-अपानाः (जीवानाम्) पुद्गलानाम् (उपकारः)

(१) दोनों सम्प्रदायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है। हमारे यहां कहीं२ पर 'पुद्गलानाम'के स्थानमें 'पुद्गलाना' पाठहै वह बहुमतमें अशुद्ध है इस सूत्रमें 'जीवानाम्' शब्दकी अनुवृत्ति पन्द्रहवा सूत्रसे लीगई है॥ अथवा यों समझना कि "जीवानाम्" शब्दका अध्याहार किया गया है॥

इदमयुक्तं वर्तते । किमत्रायुक्तम् ? पुद्गलानां क उपकार इति परिप्रश्ने पुद्गलानां लक्षणमुच्यते भवता शरीरादीनि पुद्गलमयानीति ॥ नैतदयुक्तम् । पुद्गलानां लक्षणमुत्तरत्र "स्पर्शरसगन्धवर्णवन्तः पुद्गला इत्यत्र" वक्ष्यते । इदं तु जीवान् प्रति पुद्गलानामुपकारप्रतिपादनार्थमेवेति उपकारप्रकरणे उच्यते ॥ शरीराण्युक्तानि औदारिकादीनि, सौक्ष्म्यादप्रत्यक्षाणि, तदुदयापादित (१)(तदुभयोपपादित ?) ।

सूत्रार्थः—शरीर-वाग्-मनस्-प्राण-अपानाः। जीवानाम्।	= शरीर वचन मन उच्छ्वास (प्राण) अपान (=निःश्वास) जीवोंके
पुद्गलानाम्। उपकारः। भवति।	= पुद्गल द्रव्यके वा पुद्गल कृत उपग्रह अर्थात् उपकार है
वृत्त्यनुवादः—इदम्।।। अयुक्तं।।। वर्तते। किं*अत्र*अयुक्तम्।।।	= (प्रश्न) यह ठीक नही (अयुक्त) है (वर्तते) यहां क्या ठीक नहीं है ?
पुद्गलानाम्। कः। उपकारः। इति*परिप्रश्ने।	= पुद्गलोंका क्या उपकार है ऐसा पूछने पर
पुद्गलानाम्। लक्षणम्। उच्यते। भवता।	= पुद्गलोंका लक्षण आपसे कहा गया है
शरीर-आदीनि।।। पुद्गल मयानि।।। इति*एतत्।।।	= क्योंकि शरीर आदिक पुद्गलमयी है (उत्तर) यह
न अयुक्तम्।।। पुद्गलानाम्। लक्षणम्।।। उत्तरत्र*	= अयुक्त नही है (क्योंकि) पुद्गलोंका लक्षण यहांसेआगे (=उत्तरत्र)
स्पर्श-रस-गन्ध वर्ण-वन्त पुद्गलाः। इति*अत्र*	= (स्पर्श-रस गन्ध-वर्णवाले) पुद्गल है इस प्रकार इसठौर (=अत्र)
वक्ष्यते।	= (अर्थात् इस अध्यायके तेईसवां सूत्रमें) कहेंगे ॥
इदम्।।। तु*जीवान्। प्रति*पुद्गलानाम्। उपकार-	= यह (सूत्र) तो जीवोंकी ओर (=प्रति) पुद्गलोंका उपकार
प्रतिपादन-अर्थम्।।। एव*इति*उपकार-प्रकरणे।।। उच्यते।	= कहनेके लियेही (=एव) ऐसा उपकारके प्रकरण ना प्रसंगमें कहागया है
शरीराणि।।। उक्तानि।।। औदारिक आदीनि।।। सौक्ष्म्यात्।।।	= शरीर औदारिक आदिक (नामकर्मकी प्रकृतिरूप) कहे ॥ वे सूक्ष्म होनेसे
अप्रत्यक्षाणि।।। तद्-	= इन्द्रियगोचर (प्रत्यक्ष) नही हैं; उन (औदारिक आदिकर्मप्रकृतिरूप सूक्ष्म शरीरोंके)
उदय-आपादित (तद्-उभय-उपपादित ?)	= उदयकरि उत्पन्न हुई (=आपादित) (उन दोनो सूक्ष्म और अप्रत्यक्ष रूप औदारिक आदि कर्म प्रकृतिरूप शरीरो द्वारा जन्य, शरीरों द्वारा उत्पन्नहुई

(१) दोनों बार की छपी 'सर्वार्थसिद्धिवृत्तिमें तदुदयापादित (तदुभयोपपादित ?) ऐसे पाठ हैं तीन हस्तलिखित सर्वार्थसिद्धिवृत्तिकी प्रतियोंमें तदुदयोपपादित पाठ है । सूत्रके नीचे राजवार्तिक मुद्रितमें, दो हस्तलिखित प्रतियोंमें 'तदुदयापादित' पाठहै॥ हमने मुद्रित सर्वार्थसिद्धिवृत्तिके पाठ लिये हैं ॥

उपकाराधिकारादुपग्रहवचनमनर्थकम्[१]। नानर्थकम् । स्वोपग्रहप्रदर्शनार्थमिदम् । पुद्गलानां पुद्गलकृत उपकार इति ॥ तद्यथा—कांस्यादीनां भस्मादिभिर्जलादीनां कतकादिभिरयःप्रभृतीनामुदकादिभिरुपकारः क्रियते ॥ चशब्दः किमर्थः ? । समुच्चयार्थः । अन्योऽपि पुद्गलकृत उपकारोऽस्तीति समुच्चीयते । यथा शरीराणि एवं चक्षुरादीनीन्द्रियाण्यपीति ॥

एवमाद्यमजीवकृतमुपकारं प्रदर्श्य जीवकृतोपकारप्रदर्शनार्थमाह—

उपकार-अधिकारात्[५।१] (१)उपग्रह-वचनम्[१।१]॥	=उपकारका प्रकरण होने(के कारण)से(सूत्रमें) उपग्रहशब्द
अनर्थकम्[१।१]; न-अनर्थकम्[१।१]; स्व-उपग्रह-	=निष्प्रयोजन है(उत्तर)(सूत्रमें उपग्रहशब्द)निष्प्रयोजन नहीं है । अपने लिये सहायता
प्रदर्शन-अर्थम्[१।१]॥पुद्गलानाम्[६।३] पुद्गलकृतः[१।१]	=दिखावनेके लिये कि पुद्गलोंका पुद्गलकृत
उपकारः[१।१]इदं[१।१]॥इति*तद्यथाकांस्यादीनां[६।३]॥भस्मादिभिः[३।३]	=उपकार है यह(उपग्रहवचन इस सूत्रमें)है । जैसे कांसादिकोंका भस्मादिकरि
जलादीनाम्[६।३]॥कतकादिभिः[३।३]॥अयस्-प्रभृतीनाम्[६।३]॥	=जलादिकोंका निर्मली आदिकरि (और उष्ण) लोहादिकोंका
उदकादिभिः[३।३]॥ उपकारः[१।१] क्रियते।॥	=जलादिकोंसे उपकार वा अनुग्रह कियाजाता है । अर्थात् कांसादिक धातु भस्मकरि उज्ज्वल होजाते है तथा जलादिक निर्मली आदिके संयोगसे मैलरहित होजाते है और तप्तलोहादि पानीके डालनेसे शीतल होजाते हैं इत्यादिक पुद्गलद्रव्योंके पुद्गलकृत उपकार हैं
चशब्दः[१।१]किम्*अर्थः[१।१]समुच्चय-अर्थः[१।१]?अन्यः[१।१]अपि*	=(इस सूत्रमें)चशब्द किसलिये है ? । समुच्चय अथवा समुदायके लिये है और भी
पुद्गलकृतः[१।१]उपकारः[१।१]अस्तिTइति*समुच्चीयतेT	=पुद्गलका किया हुआ उपकार है ऐसा समुच्चय कियागया है
यथा*शरीराणि[१।३]॥एवम्*चक्षुर्-आदीनि[१।३]॥	=जैसे(पूर्वोक्त)शरीरादिक(पुद्गलजन्यजीवको उपकारी)है ऐसे नेत्रादिक
इन्द्रियाणि[१।३]॥अपि*इति*एवम्*आद्यम्[२।१]अजीवकृतम्[२।१]	=इन्द्रियांभी(पुद्गलकृत जीवोंको अन्य उपकार)हैं इसप्रकार प्रथम अजीवका किया हुआ
उपकारम्[२।१] प्रदर्श्य – जीवकृत-उपकार-	=उपकार(जीवोंप्रति)दिखाकर जीवका कियाहुआ(परस्पर)अनुग्रह वा भलाई(उपकार)
प्रदर्शन-अर्थम्[१।१]॥ आहT	=दिखानेके लिये(आचार्य्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

(१) क्योंकि 'उपग्रहा' शब्द इस सूत्रमें बहुवचन है इससे सुख-उपग्रह, दुःख-उपग्रह, जीवित-उपग्रह, मरण-उपग्रहके पश्चात्भी 'पुद्गलान्[२।३]। पुद्गलानाम्[६।३]। उपग्रह है(अर्थात् पुद्गलोंको पुद्गलकृत सहायता है) ऐसाभी अनुवर्तन है । (२) खड्गधाराश्रित तोय भिनत्ति गजमस्तकम् ॥

॥ परस्परोपग्रहो जीवानाम् ॥ २१ ॥

परस्परशब्दः कर्मव्यतिहारे वर्तते । कर्मव्यतिहारश्च क्रियाव्यतिहारः । परस्परस्योपग्रहः परस्परोपग्रहः । जीवानामुपकारः ॥ कः पुनरसौ ? । स्वामी भृत्यः, आचार्यः शिष्यः, इत्येवमादि भावेन वृत्तिः परस्परोपग्रहः ॥

(१)सूत्रम्—परस्परोपग्रहो जीवनाम्(२१) = परस्परोपग्रहो(जीवानाम्)जीवानाम्(उपकारः)भवति॥ २१॥

सूत्रार्थः—परस्पर-उपग्रह-(२)जीवानाम्[६।३]	=परस्पर उपकार जीवोंको
जीवानाम्[६।३] (३ उपकारः[१।१] भवति।	=जीवोंका उपकार है अर्थात् जीवकारणवशात् एक दूसरेका सुख दुःख जीवन मरण तथा सेवा शुश्रूसा आदिसे उपकार करते हैं भावार्थ एक जीव दूसरेको आपसमें सुख का निमित्त,दुःखका निमित्त, जीवनका हेतु मरणका निमित्त और सेवा शुश्रूसा आदिका हेतुभी होते हैं
वृत्त्यनुवादः—परस्परशब्दः[१।१] कर्म-व्यतिहारे[७।१] वर्तते।	=(इस सूत्रमें)परस्परशब्द क्रिया(=कर्म)के अलटन पलटन(=व्यतिहार)केअर्थविषैं वर्तता है
कर्मव्यतिहारः[१।१] च*क्रियाव्यतिहारः[१।१]	=और(=च) कर्मव्यतिहार है सो क्रिया व्यतिहार है अर्थात् उसका उपग्रह वह करता है और उसको उपग्रह वह करता है
परस्परस्य[६।१] उपग्रहः[१।१] परस्पर-उपग्रहः[१।१]	=आपसका उपग्रह वा अनुग्रह है सो परस्पर उपग्रह है
जीवानाम्[६।३] उपकारः[१।१]	=(वह परस्परउपग्रह) जीवोंका उपकार है अर्थात् आपसमें जीवोंके एक दूसरेकेलिये उपकार प्रवर्तता है
कः[१।१] पुनः*असौ[१।१] स्वामी[१।१] भृत्यः[१।१]	=(प्रश्न)वहुरि(=पुनः)वह(=असौ)(परस्पर उपग्रह) क्या है (उत्तर) स्वामी, चाकर
आचार्यः[१।१] शिष्यः[१।१] इत्येवम्*आदि[१।१]।।भावेन[३।१]	=आचार्य शिष्य इत्यादिककी हृदयकी अवस्थासे(=भावेन)
वृत्तिः[१।१]।। परस्पर-उपग्रहः[१।१]	=जो चेष्टा-उद्योग-उपाय व्यवसायय =वृत्ति, है सो परस्पर उपग्रह है

(१) दानो सम्प्रदायोंमे इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है ॥ हमारे यहां किसी २ पुस्तकमें 'जीवानाम्' के स्थान पर 'जीवाना' पाठ है वह कातन्त्ररूप माला व्याकरणके अतिरिक्त अशुद्ध है (देखो अध्याय प्रथम टिप्पणी पृष्ठ ५, ६, और पृष्ठ ५३६, ५४०)
(२) 'जीवानाम्' शब्दकी अनुवृत्ति १५वें सूत्रसे लीगई है। (३) 'उपकार' इस शब्दकी अनुवृत्ति सत्रहवां सूत्रसे लीगई है।

स्वामी तावद्वित्तत्यागादिना भृत्यानामुपकारे वर्तते । भृत्याश्च हितप्रतिपादनेनाहितप्रतिषेधेन च ॥ आचार्य उभयलोकफलप्रदोपदेशदर्शनेन तदुपदेशविहितक्रियानुष्ठापनेन च शिष्याणामनुग्रहे वर्तते । शिष्या अपि तदानुकूल्यवृत्या आचार्याणामुपकाराधिकारे ॥ पुनरुपग्रहवचनं किमर्थम् ? पूर्वोक्तसुखादिचतुष्टयप्रदर्शनार्थं पुनरुपग्रहवचनं क्रियते ॥सुखादीन्यपि जीवानां जीवकृत उपकार इति ॥ आह यद्यवश्यं सतोपकारिणा भवितव्यं संश्च कालोऽभिमतस्तस्य क उपकार

स्वामी। तावत्*वित्तत्याग-आदिना। भृत्यानाम्। उपकारे। वर्तते। भृत्याः। च*हितप्रतिपादनेन।।।च*अहित-प्रतिषेधेन।; आचार्यः। उभय-लोक-फल प्रद-उपदेश-दर्शनेन।।।च*तद्-उपदेश-विहित-क्रिया-अनुष्ठापनेन।।।शिष्याणाम्। अनुग्रहे। वर्तते। शिष्याः। अपि*तद्-आनुकूल्यवृत्या।। आचार्याणाम्। उपकार-अधिकारे।, पुनर्* उपग्रह-वचनम्।।।किम्।।।अर्थम्।।। ? पूर्व-उक्त-सुख आदि-चतुष्टय-प्रदर्शन-अर्थम्।।। पुनर्* उपग्रहवचनम्।।।क्रियते। ; सुख-आदीनि। ।।अपि* जीवानाम्। जीवकृतः। उपकारः। इति*आह। यदि* अवश्यम्*सता।-उपकारिणा। भवितव्यम्।।।; सन्। च*कालम्। अभिमतः। तस्य। कः। उपकारः।

=स्वामी तौ(=तावत्)धन(=वित्त)देने आदिसे(=त्यागादिना) सेवकोंकी सहायता करनेमें प्रवर्तता है और(=च)चाकर हितकी वार्ता कहिकरि और अहितका निषेधकरि स्वामियोंकेउपकारमेंप्रवर्तता है) आचार्य दोनों लोकका फलदेनेवाला(प्रद) उपदेशको दिखावनेकरि और(=च)उस उपदेशके अनुकूल उचित अथवा योग्य क्रियाका आचरण करावनेकरि शिष्योंके उपकार (=अनुग्रह)में प्रवर्तता है । चेलेभी उस(आचार्य)के अनुकूलपना(=आनुकूल्य)में प्रवृत्ति होकर आचार्योंके उपकार विषयमें अधिकारमें)(प्रवर्ततेहैं)(प्रश्न)बहुरि उपग्रह शब्द(इस सूत्रमें)किसलिये है । पहिले(सूत्र अर्थात् इस अध्यायके२०वां सूत्रमें) कहे हुए सुखदुःख-जीवित-मरण-चारअवयवोंके दिखावनेके लिये फिर (=पुनः) उपग्रहवाक्य(=इससूत्रमें)कियागया है सुख-दुःख-जीवित-मरणभी जीवोंके जीवकृत उपकार है कोई पूछता है कि जो (=यदि) सत्तारूपवस्तु(=सत्)अवश्य उपकार सहित होनेयोग्य (=भवितव्यम्) है और काल सत्तारूप वा सत्स्वरूप (=सन्)मानागयाहै तोतिस(काल)काक्या उपकार है

(१) सत यहांपर प्रथमा विभक्ति एकवचन पुलिंग 'सत शब्दका है । इसका अर्थ सतरूप अथवा सत्स्वरूपहै।()तत्त्वार्थराजवार्तिकमें 'आहसे इत्यत्रोच्यते' तक यह वाक्य वैसा ही है जैसाकि सर्वार्थसिद्धिवृत्तिमें है 'तस्य क उपकारः' के स्थानमें 'सत्किमुपकार.' राजवार्त्तिकमें है उससे अर्थभेद नहीं होताहै। इस वाक्यका अनुवाद पंडित पन्नालालजी दुनीवाले और पंडित पन्नालालजी न्यायदिवाकर ने क्रमसे ऐसे किया है 'कोऊ शिष्य कहै है जो अवश्य

इत्यत्रोच्यते—

वर्तनापरिणामक्रियाः परत्वापरत्वेचकालस्य ॥ २२ ॥

भावार्थ ऐसा है कि जब यह बात सुनिश्चितरूपसे मानी जाचुकी है कि जो सत्स्वरूप होगा वह अवश्य उपकारी होगा जैसे धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य इत्यादि पदार्थ सत्स्वरूप हैं इसलिये वे उपकारी मानेगये हैं तब काल द्रव्यभी सत्स्वरूप पदार्थ है उसका उपकार है। कालद्रव्यका लक्षण विशदरूपसे आगे सूत्र ३९मैं कहाजायगा और वह अमूर्तीक स्वरूप और निष्कर्म है सब द्रव्योका यहां उपकार प्रकरण है इसलिये

इति*अत्र*उच्यतेT

=इस प्रकार यहां (अग्रिमसूत्रमें) कहाजाता है कि—

[1]सूत्रम्—वर्तनापरिणामक्रियाः परत्वापरत्वे च कालस्य ॥ २२ ॥

उपकारीकू सत् होनों योग्य है सो सतरूप काल अभिमत है सो कहा उपकारवान है"। तत्त्वार्थराजवार्त्तिक अध्याय५ पृष्ठ ६६ आगैं जो सत्तारूप वस्तु
है सोई उपकारकरि परिणमन रूप होय है। काल द्रव्य भी सत्ता स्वरूपहै" सो कालद्रव्य कहीं उपकाररूप है" तत्त्वार्थरत्नमाला अध्याय ५ पृष्ठ ६२ ॥
(१) इस सूत्रके कई पाठ है। मुद्रितसस्कृत सर्वार्थसिद्धि की और पन्नालालजी वाकलीवाल मुद्रित मोक्षशास्त्रकी दोनों दोनो आवृत्तियोंमें उपर्युक्त पाठ
हैक्योंकि अनुवाद सस्कृत सर्वार्थसिद्धिसे किया है। अत पूर्वोक्त पाठ लिया है (२) सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ १२७में वर्तना परिणाम· क्रिया
परत्वापरत्वेचकालस्य" ऐसा पाठ है। वहांपर उक्तभाष्यमें यह टिप्पणी भीहै कि "यहां पर वर्तना, परिणाम और क्रिया इन तीनों पदोंका विरोध न
होनेसे समास करके पढना चाहिये कोई असमस्त ही पढते है। सापेक्ष होनेसे परत्वापरत्वका तो समास है ही" । और तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक(मुद्रित)
पृष्ठ ४१२में पूर्णतया सभाष्यका ही पाठ है अर्थात् दोनों आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ एकप्रकारसे एकसा"वर्तना परिणामः क्रिया परत्वापरत्वेच काल-
स्य"हुआ॥२२॥ और दोनों आम्नायोंमें अर्थभी एकसा है॥ (३) पडित सदासुखजी कृता "अर्थप्रकाशिका" के पृष्ठ ३०८ और पंडित सदासुखजीकृता
लघु सूत्रटीका के पृष्ठ २१ में, पडित जयचन्द्ररायजी कृता सर्वार्थसिद्धि वचनिकाके पृष्ठ १४० में, निर्णयसागर मुद्रित बम्बई के जैन नित्यपाठसग्रहके
१२६ दोनों आवृत्तियोंमें (जहां तत्त्वार्थसूत्र मुद्रित है) और श्रीयुत् ज्ञानचन्द्रजी मुद्रित तत्त्वार्थसूत्राणि के पृष्ठ १६में और सनातन जैनग्रन्थमालाके पृष्ठ
६० में तथा तत्त्वार्थराजवार्त्तिक के पृष्ठ २२३ में निम्नलिखित पाठ है। "वर्तना परिणाम क्रिया. परत्वापरत्वेच कालस्य" इस पाठमें दो शकायें उत्पन्न
होती हैं। चकार इस स्थान पर क्यों लाये, दूसरी शका यह कि जब वर्तना शब्दसे परत्वे शब्दपर्यन्त एकसमासहै जोकि तौद्विवचनमेंसमासान्त क्यों
किया ? बहुवचन करके ऐसा सूत्र क्यों न किया कि "वर्तनापरिणामक्रियापरत्वापरत्वानि च कालस्य" (क) चकारके सम्बन्ध में पूज्यपाद स्वामीने
वृत्तिमें भी कुछ नहीं लिखा कि क्यों लाए और जहातक खोज कियागया हैं किसी भाषाके अनुवादक महाशय ने भी नहीं लिखा कि "च"शब्द सूत्रमें
इस कारणसे लाये हैं, हां पन्नालाल वाकलीवालकृत मोक्षशास्त्र बालबोधनी भाषाटीका सहित द्वितीयावृत्ति के पृष्ठ ३६ में ऐसा अर्थ किया है
"(च)और (कालस्य) कालके (वर्तना-परिणामक्रिया) वर्तना, परिणाम क्रिया तथा(परत्वा परत्वे)परत्व और अपरत्व ये पांच उपकार है" इस अनुवादमें

= वर्तना-परिणाम-क्रियाः-(१)परत्वापरत्वेच(जीवानाम् पुद्गलानाम्) कालस्य(उपकारः)भवति॥ २२॥

"और तथा और येतीनों चके अर्थवाची होसकते हैं परन्तु चकार को कोष्ठकमें लानेके पश्चात् "और" शब्द लायेहैं। इससे जानपडता है कि उपकार का प्रकरण समाप्ति होनेके कारणसे इस सूत्रसे पिछले सूत्रसे मिलादिया है अर्थात् जीवोंके परस्पर उपकार हैं (सूत्र २१) और (=च) कालके वर्तना, परिणाम, क्रिया,परत्व,अपरत्व ये पांच उपकार हैं॥ सूत्र२२॥ ऐसे दोनों सूत्रोंको मिलासकते हैं। 'तथा'शब्द अधिक जान पडताहै अतिम'और' शब्द 'परत्वापरत्वे' समासको तोडनेसे "परत्व अपरत्वच' ऐसा होजाता है सो इस चकारका भाषानुवाद है। पडित सदासुखजीकृता अर्थप्रकाशिका और पडित जयचदजीकृता सर्वार्थसिद्धि वचनिका में चकारका भाषानुवाद नहीं है अर्थात् दोनोंमें यथाक्रम ऐसा अर्थ किया है कि "वर्तना परिणाम क्रिया परत्व अपरत्व ए कालकृत उपकार हैं"। वर्तना परिणाम क्रिया परत्वा परत्व ए कालके उपकार हैं॥

(॥) द्विवचनान्त क्यों है (उत्तर) सस्कृत सर्वार्थसिद्धि पृष्ठ २८८ का पाठ है कि 'ननु वर्तनाग्रहणमेवास्तु'=इस सूत्रमें वर्तनाका ग्रहणही होना चाहिये 'तद्भेदा. परिणामादयस्तेषां पृथग्ग्रहणमनर्थकम्' ॥उस वर्तनाके भेद परिणाम, क्रिया,परत्व अपरत्व है तिन भेदोंका भिन्न ग्रहण निष्प्रयोजन है नानर्थकम्=निष्प्रयोजन परिणामदयका ग्रहण नहीं है॥ कालद्वय सूचनार्थत्वात्प्रपञ्चस्य=क्योंकि कालके दो भेद प्रगट करनेके लिये विस्ताररूप कथन है। कालोहि द्विविधः परमार्थकालो व्यवहारकालश्च=काल दो प्रकार है परमार्थकाल और व्यवहारकाल

परमार्थकालो वर्तना लक्षण=वर्तना है लक्षण जिसका सो परमार्थकाल है॥ परिणामादि लक्षणो व्यवहारकालः=परिणाम, क्रिया, परत्व अपरत्व हैं लक्षण जिसके सो व्यवहारकाल है॥ जब वर्तना निश्चयकालका लक्षण है और परिणाम क्रिया परत्व अपरत्व व्यवहारकालके लक्षण हैं तब वर्तना शब्दको एक वचन मानकर और परिणाम क्रिया परत्व अपरत्व इन सबको एक मानकर दोनोंको मिलाकर वर्तना परिणाम क्रिया परत्वापरत्वे ऐसा द्विवचन किया है। दोनों शकाओंका समाधान ऐसा होसकता है कि यदि चकारको समुच्चयके अर्थमें लेलें अर्थात् उपकारका प्रकरण समाप्ति होनेके कारणसे इस सूत्रको पूर्व२१वांसूत्रसे मिलादिया जावे,'वर्तना'को निश्चयकालका लक्षण मानकर और परिणाम-क्रिया-परत्वअपरत्वको व्यवहारकालका लक्षण मानकर, दोनोंप्रकारके लक्षणोंको एक एक मानकर मिला देवें, समास करदेवें तो'च वर्तनापरिणामक्रियापरत्वापरत्वेकालस्य'ऐसासूत्रहोजाताहै

(१) सर्वार्थसिद्धि वृत्तिमें "वर्तनापरिणामक्रियाः परत्वापरत्वेच कालस्य" ऐसे सूत्रका यह हेतु दिया है कि 'परत्वापरत्वे' (=परत्व अपरत्व च) सापेक्ष होनेसे 'परत्व-अपरत्व' को दो शब्द पृथक् पृथक् समझकर नपुसकलिंगमें द्विवचनमें लाये औरवर्तना-परिणाम क्रिया इतनेका एकसमास करके "वर्तना परिणाम क्रियाः" ऐसा स्त्रीलिंग बहुवचनमें लाये क्योंकि क्रियाशब्द स्त्रीलिंग है॥ परत्व अपरत्व दोनों नपुसकलिंगी हैं और "च" 'वर्तना-परिणाम क्रियाः' और 'परत्वा परत्वे' दोनों समासोंको मिलाता है। अब अर्थ ऐसा हुआ कि 'वर्तना-परिणाम क्रिया और परत्वापरत्वकालके उपकार हैं॥ यहांपर स्मरण रहै कि इस सूत्रमें 'कालस्य' शब्दका प्रयोग सामान्यरूपमें किया है 'कालशब्द' निश्चयकाल और व्यवहारकाल अर्थात् समय आवली, मुहूर्त, पहर, दिन इत्यादि दोनों का द्योतक है इसलिये यह अर्थ हुआ कि "वर्तना निश्चय वा परमार्थकालका लक्षण है और परिणाम, क्रिया परत्व और अपरत्व व्यवहारकालके लक्षण हैं॥

=[१]वर्तना-परिणाम-क्रियाः—च परत्वम्अपरत्वम् च(=परत्वापरत्वे)जीवानाम् पुद्गलानाम् कालस्य उपकारः भवति॥ २२॥

सूत्रार्थः—वर्तना-	=वर्त्तना (=पदार्थोंकी पर्यायोंके पूरणकरनेमें बाह्य सहकारता)
परिणाम-	=परिणाम(=द्रव्यका अपने स्वभावको न छोड़कर पहिली अवस्थाको छोड़कर दूसरी अवस्थारूप होना)
क्रियाः३	=क्रिया (=हलनचलनादिरूप होना अथवा एक क्षेत्रसे दूसरे क्षेत्र तक जाना)
च*परत्वम्४	=और परत्व (=एकसे दूसरेका काल रचित अवस्थामें बड़ापन अथवा पहिले होना वा पूर्वता)
अपरत्वम्५ च*	=तथा अपरत्व (एक दूसरेका काल रचित अवस्थामें छोटा होना अथवा पिछलापन वा छोटापन)
जीवानाम्६ पुद्गलानाम्६	=(ये पांच) जीवोंको और पुद्गलोंको
कालस्य६ उपकारः१	=काल(द्रव्य कृत उपकार है अर्थात् वर्तना लक्षण निश्चय वा परमार्थ कालका है और परिणाम, क्रिया, परत्व और अपरत्व व्यवहार कालके लक्षण हैं भावार्थ यह है कि कालद्रव्य दो प्रकारका है (१) निश्चयकाल वा परमार्थकाल (२) व्यवहारकाल (१) जो आदि तथा अन्तसे रहित है अमूर्त्त है, नित्य है समय घंटा आदिका उपादानकारण भूत हैं तो भी समय आदि भेदोंसे रहित है और कालाणुद्रव्यरूप हैं वह तो निश्चयकाल है वृहद्द्रव्यसंग्रह (पृष्ठ ५४) (२)जो आदि तथा अन्तसे सहित है समय घटिका तथा महरआदि विवक्षित व्यवहारके विकल्पोंसे युक्त है वह उसी द्रव्यकालका पर्यायभूत व्यवहारकाल है (वृहद्द्रव्य संग्रह पृष्ठ ५४) अथवा यों कहिये कि जीव तथा पुद्गलका परिवर्तन जोनूतन तथा जीर्ण

---

(१)धर्मादिक द्रव्यें अपनी अपनी पर्यायोंके पूर्णार्थ (=पूरणार्थ)अपने अपने उपादान-कारणकरि स्वभावसेही वर्तें हैं तौभी(=तथापि)जैसे कुम्हारके चाकके भ्रमणमें उसके नीचेकी शिलाकीली सहकारिणी है तैसे जो उस अन्तरग परिणतिमें अथवा वर्तनेमें बाह्यकारण है जो सब पदार्थोंकी परिणतिमें सहकारी है उसीको "वर्तना" कहते हैं॥

(२) वर्तें तो सर्वद्रव्योंके पर्याय हैं उन द्रव्योंका प्रवर्तानेवाला अथवा हेतुकर्ता कालद्रव्य है तिस समय स्वरूप वर्तनाको कालका वर्तना कहिये (सर्वार्थसिद्धि वचनिका पृष्ठ ४४२) यहां भावार्थ ऐसा है जो धर्मादि द्रव्योंके पर्याय समय समय पलटने हैं सो इस पलटाने कूं समय है सोही निमित्त मात्र है। तिस समय ही कूं कालकी वर्तना कहिये है। यह वर्तना ही कालाणु, द्रव्यका अस्तित्व जनावे है। बहुरि इस वर्तताकूं जेती वार लगी ताका नाम काल कहिये। सो यह व्यवहारकालसंज्ञा है। सो तिस निश्चयकालकी अपेक्षा ही तें कहिये है ऐसे यह वर्तना द्रव्यनिकूं कालका उपकार है। सर्वार्थसिद्धिवचनिका पृष्ठ ४४२

वृतेर्णिजन्तात्कर्मणि भावे वा (१)युट् स्त्रीलिङ्गे वर्तते । तेनेति भवति ।

पर्याय है उस पर्यायकी जो समय घटिका आदिरूप स्थिति है वहही जिसका स्वरूपहै वह द्रव्यपर्यायरूप व्यवहारकाल है सोही संस्कृत प्राभृतमे कहाभी है कि "स्थिति जो है सो कालसंज्ञक है" तात्पर्य यह है कि उस द्रव्यके पर्यायसे संबन्ध रखनेवाली जो समय घटिका आदिरूप स्थिति है वह स्थितिही 'व्यवहारकाल' इस संज्ञाकी धारक होतीहै ॥ निश्चयकालका वर्तनालक्षण है और व्यवहारकालके परिणाम, क्रिया, परत्व, अपरत्व लक्षणहैं ये पांचो निश्चयकालके निमित्तसे होते है और अन्य द्रव्योको यह (निश्चय)कालद्रव्यका उपकार है और उसी परमार्थकालका अस्तित्व जतावे है । क्योंकि व्यवहारकाल गौण निश्चय मुख्यकाल के विना नही होसकता है ॥ व्यवहारकाल अन्यपदार्थों करि जाना जाता है जैसे दिनरात आदिक व्यवहारकाल सूर्यादिकके उदय अस्तसे जाने जाते है और व्यवहारकाल ही अन्य पदार्थों के जतलानेका कारण है जैसे यह पुल शतवर्षका है ॥ यातैं (व्यवहारकालसे)निश्चयकाल जाना जाता है । (सर्वार्थसिद्धि वचनिका पृष्ठ४४३देखो) 'जीवपुद्गलोंकेपरिणमनकरि व्यवहारकाल प्रगट होय है सो यह व्यवहारकाल तीनप्रकार है' (अर्थप्रकाशिका पृष्ठ३०९) अतीत(=भूत) वर्तमान अनागत(=भविष्यत्) ॥ निश्चयकालविषैं एक एक लोकाकाशके प्रदेशविषैं आपसमें परस्पर भिन्न २ रत्नकी राशिके सदृश तिष्ठते असंख्यातकालाणु तिनकों काल कहना सो तो मुख्य है और भूत वर्तमान भविष्यत् नाम कहना गौणहै और व्यवहारकालविषैं अतीत वर्तमान अनन्तगतनाम है सो तो मुख्य है और काल कहना गौण है ।

वृत्त्यनुवादः—(२)वृतेः५। णिच्-अन्तात्५। =वृत्(=होना)(धातु)से(परैं)णिच्(प्रत्यय)के अन्तमें आनेसे (वृत् धातुका) प्रेरक(प्रयोजक हेतुकर्ता वा काममें लगानेहारा)अर्थ होजाता है अर्थात् वृत् धातु)अकर्मकसे सहेतुक सकर्मक क्रिया होजातीहै

कर्मणि७।। भावे७। वा*युट्१। =(सो वृत् धातु)कर्मविषैं(कर्मणि प्रयोगमें)वर्तता है अथवा भावमें युट्(=अन) प्रत्यय सहित

स्त्रीलिंगे७। वर्तते। तेन३। इति*भवति। =स्त्रीलिंगमें वर्तता है । तिस (कर्मणि वा भावे) करि ऐसा होता है

(१) पूज्यपाद स्वामीके 'युट्' श्रीपाणिनिके "ल्युट्" और श्रीतत्त्वार्थश्लोकवार्तिकके रचयिताके युक् प्रत्ययोंके स्थानमें 'अन' होजाता है सूत्रमें 'काल'शब्द सामान्यतासे निश्चय और व्यवहार कालका द्योतक है । (२)(क) वृतेर्णिजन्तात्कर्मणि भावे वा युट् स्त्रीलिंगे वर्तते । तेनेति भवति । वर्त्यते वर्तनमात्र वा वर्तना इति ॥ ऐसा पाठ सर्वार्थसिद्धिकी वृत्तिकी प्रथमा वृत्तिमें है । (ख) वृतेर्णिजन्तात्कर्मणि भावे वा युट् स्त्रीलिंगे वर्तनेति भवति । वर्त्यते वर्तते वर्तनमात्र वा वर्तना इति ॥ यह पाठ सर्वार्थसिद्धिकी द्वितीया वृत्तिमें है । द्वितीयावृत्तिके पाठमें 'वर्त्यते'के पश्चात 'वर्तते' शब्द नहीं होना चाहिये शेष पाठमें यद्यपि दोनों सस्करणो में कुछ अन्तर है परन्तु अर्थ दोनों पाठोंका एकसा बनजाता है जैसे प्रथमके अर्थके लिये देखो इस पृष्ठको और पृष्ठ८० को । दूसरेके स्त्रीलिंगे वर्तनेति भवति वाक्यका अर्थ है कि 'स्त्रीलिंगमें वर्तना शब्द ऐसा होता है' ॥ दूसरे भागमें 'वर्तते' शब्द इस हेतुसे ठीक नहीं है कि वह 'कर्तरि' प्रधान "वृत" धातुका है और यहां पर केवल 'कर्मणि प्रयोग' और 'भावे प्रयोगमें' 'वृत्'में णिच् प्रत्यय लगाया है ॥ तीन

वर्त्यते वर्तनमात्रं वा वर्तना इति ॥ धर्मादीनां द्रव्याणां स्वपर्यायनिवृत्तिं प्रति

वर्त्यते।' =वर्ताया जाता है (यह वाक्य कर्मणिप्रयोगमें या कर्मप्रधानमें न कि कर्तरिप्रयोग या कर्तृप्रधानमें है)
वर्तनमात्रं²॥वा*वर्तना³॥ इति* =प्रवर्तावनेमात्र वा वर्तनमात्र है सो वर्तना ऐसा भावेप्रयोग=भावमें काम लायागया) है। सो वर्तनाशब्द ऐसे बनाहै कि वृत् + णिच् + युट् + आ (=स्त्रीलिंगका चिन्ह)=वर्त + अन + आ=वर्तना णिच्केलगानेसे ऋको गुणसंज्ञा होकर वर्त् होगया और सहेतुक सकर्मक क्रिया होगई॥ वर्तना=दूसरोंको प्रवर्तावना अर्थात् पदार्थोंमें परिणमनमें सहकारिता। भावार्थ यह है कि वृत् धातुके अन्तमें णिच्प्रत्यय लगाया जिस णिच् प्रत्ययका यह फल होताहै कि वृत् धातुके ऋको गुणसंज्ञाहोकर वर्त् शब्द बनजाताहै और वृत् अकर्मक धातुको (णिच् प्रत्यय) सहेतुक सकर्मक करदेता है अर्थात् वृत् धातुका अर्थ (दूसरोंको) वर्तावना ऐसा होजाता है फिर युट् प्रत्यय जिसके स्थानमें अन होजाता है जोड़ा जाता है तब वर्त + अन=वर्तन शब्द बना पश्चात् 'आ' स्त्रीलिंगका चिन्ह जोड़नेसे वर्त् + अन + आ होजाता है इसलिये वर्तना शब्द स्त्रीलिंग भावप्रयोगमें बना और उपर्युक्त कथित 'वर्त्' धातुमें यक्कर्मप्रधानका चिन्ह जोड़कर फिर अन्यपुरुष एकवचन आत्मनेपद वर्तमान क्रियाकाचिन्ह 'ते' लगाते हैं तब वर्त + य + ते=वर्त्यते कर्मप्रधानमें) बनगया इस 'वर्त्यते' काअर्थ वर्तायाजाताहै इसलिये 'वर्तना' भावप्रयोगस्त्रीलिंगमें बना और 'वर्त्यते' कर्मप्रधान, एकवचन, अन्यपुरुष वर्तमानक्रियाका रूप बना॥
धर्मादीनां द्रव्याणां स्वपर्याय निर्वृत्ति⁵॥ प्रति⁶ =धर्मादिक द्रव्यें अपने अपने पर्यायोंके निर्वृत्तिके लिये (=निवृत्ति प्रति)

प्रति हस्तलिखित सर्वार्थसिद्धिमें 'वर्त्यते स्वर्धाजन्ते वर्तनेति वर्तति। वर्तते वर्तमानमात्र वा वर्तनेति' ऐसा पाठ है॥ तत्त्वार्थराजवार्तिकका पाठ कि स्त्रीलिंगे (कर्मणिभावे वा णिचन्तात्) युचि सति वर्तनेति भवति। वर्त्यते वर्तनमात्र वा वर्तनेति' ऐसा है॥ इसलिये हमने प्रथमावृत्तिका पाठ लिया है॥

(१) प० जयचन्द्रायजीने वचनिका (पृष्ठ ४७२) में उत्पत्ति लिखा है, सम्भव है कि जिस पाठसे उन्होंने वचनिका की हो उस पाठमें 'निवृत्ति'के स्थानमें उत्पत्ति, वृत्ति वा निर्वृत्तिमेंसे कोई शब्द हो क्योंकि इन तीन शब्दोंमेंसे कोईभी उत्पत्तिके अर्थमें आसकता है परन्तु 'निवृत्ति' का अर्थ उत्पत्ति नहीं हासकता है राजवार्तिक और श्लोकवार्तिकभी अवलोकन कियेगये परन्तु कुछ सफलता प्राप्त नहीं हुई॥ "निर्वृत्ति" शब्द सर्वार्थसिद्धि वृत्तिकी हस्तलिखितके तीन प्रतियोंमें पायाजाता है परन्तु सर्वार्थसिद्धिकी दोनों आवृत्तियोंमें 'निवृत्ति' छपा हुआ है॥ इससे मैंने उस शब्दको लेकर अनुवाद किया है और मेरी समझमें एक प्रकारसे दोनोंही शब्दोंसे एकही भाव प्रगट होसकता है क्योंकि किसी द्रव्यकी एक पर्यायकी जिस समय निवृत्ति होती है उसी समयमें दूसरी पर्यायकी उत्पत्ति वा निर्वृत्ति होती है अथवा यों कहसकते हैं किसी द्रव्यकी जिस समय एक पर्यायकी उत्पत्ति होती है उसी समय उस द्रव्यकी दूसरी पर्यायकी निर्वृत्ति होती है जैसे जिस समयमें आगुलिरूप द्रव्यके वक्र (बांके) पर्यायकी उत्पत्ति होती है उसी समयमें उसके सरल पर्यायकी निवृत्ति होती है और अगुलीरूपसे उस अगुलीमें ध्रौव्य है अथवा यों दृष्टान्त लीजिये कि जिससमयमें अगुलिरूप द्रव्यके सरल पर्यायकी निवृत्ति होती है उसी समयमें उसकी वक्री पर्यायकी उत्पत्ति होती है॥ वृत्त = उत्पन्न (पद्मचन्द्रकोशपृष्ठ १६४ अत 'वृत्ति' स्त्रीलिंगमें उत्पत्ति के अर्थमें आसकता है॥

स्वात्मनैव वर्तमानानां बाह्योपग्रहाद्विना तद्वृत्त्यभावात्तत्प्रवर्तनोपलक्षितः कालः

स्व-आत्मना३। एव*(१) वर्तमानानाम् ६। बाह्य-	=आपसे स्व-आत्मना३।)ही वर्तमानरूप हैं वा वर्तनेवाली हैं (तौभी) बाह्य
उपग्रहात्५। विना*तद्-	=निमित्त विना (सहायता विना वा सहारा विना) उन (धर्मादिक द्रव्यों) की
(२) वृत्ति-अभावात्५।	=अन्तरंग परणति (=वृत्ति) वा वर्तना (=वृत्ति) का अभाव होता है। इससे
तत्-प्रवर्तना-उपलक्षितः१। कालः१।	=उन (धर्मादिक द्रव्यों)को वर्तनारूपकरनेमें वा प्रवर्तावनेमें काल जाना जाता है-निश्चय कियाजाताहै वा पहचाना जाताहै(=उपलक्षितः)अर्थात् धर्मादिक द्रव्य हैं वे स्वयं उपादान कारणकरि अपनी अपनी पर्यायोंके उत्पत्तिरूप वर्तती हैं तौभी उनकी उक्त पर्यायोंके

लिये वाह्य कारणकी आवश्यकता है, बाह्यनिमित्त विना अन्तरंग परणति नहीं होसकती है, सो तिस अन्तरंग परणति अथवा प्रवर्तनेका समय है सो परमार्थकालका चिन्ह है ॥ जैसे एक मनुष्य जिसकी पदार्थों के देखनेकी शक्ति विद्यमान है परन्तु उस को यदि बहुत अंधेरेमे लेजाकर पदार्थ दिखाये जावैं तो वह किसी प्रकार किसीभी पदार्थको नहीं देख सकता है क्योंकि वाह्य सहकारी कारण अर्थात् उजेला नहीं है इसी प्रकार धर्मादिक द्रव्योंमें अन्तरंग शक्ति वर्तनेकी विद्यमान है तौभी द्रव्यकाल वा निश्चयकालकी सहायता विना वे द्रव्य वर्तनेमें असमर्थ है। इनद्रव्योंको(३)वर्तनारूप करनेमेंही निश्चयकालका अस्तित्व ज्ञात होता है ॥

---

(१) 'धर्मादीना' और 'वर्तमानानां' येदोनों शब्द'द्रव्याणां' शब्दसे सम्बन्ध रखतेहैं और'द्रव्याणां'शब्दके विशेषणहैं,अत नपुंसकलिंगमें रक्खेगये हैं।

(२) पद्मचन्द्र कोश पृष्ठ ३६४ में 'वृत्ति'शब्दका अर्थ'अन्तःकरणका परिणामविशेष'और 'वर्तन' लिखाहै॥इसलिये अन्तरग परणति(प०सदासुखजी के अनुसार) और वर्तना (प० जयचन्द्रायजीके अनुकूल) यहां पर "वृत्ति" शब्दका अनुवाद कियागया है ॥

(३) व्याकरण शास्त्रमें करण और अधिकरण अर्थ में धातुओंसे युट् प्रत्ययका विधान माना है। यदि यहां पर 'वृतौङ् वर्तने' धातुसे करण और अधिकरण अर्थ में युट् प्रत्यय कर पद 'वर्तते अनया अस्यांचेति वर्तना' अर्थात् जिसके द्वारा वा जिसमें वर्तन किया जाय वह वर्तना है ऐसा विग्रह कर वर्तना शब्द सिद्ध किया जायगा तो यह नियम है जिन प्रत्ययोंका ट् इत्सज्ञक चलाजाता है उनसे ङी प्रत्यय होता है। यहापरभी युट्में ट् इत्सज्ञक जानेसे ङी प्रत्यय होगा अत. 'वर्तनी'ऐसारूप सिद्ध होगा वर्तना'नहीं फिर सूत्रमें 'वर्तना'शब्दका उल्लेख अशुद्धहै?(उत्तर)यहांपर णिच्प्रत्ययांत'वृतौङ्' धातुसे स्त्रीलिंगमें कर्म और भावरूप अर्थके विवक्षित रहनेपर युच् प्रत्यय कर वर्तना शब्दकी सिद्धि कीगई है इसलिये यहांपर ङी प्रत्ययकी कोई सभावना नहीं ॥ 'वर्त्यते वर्तनमात्र वा वर्तना' अर्थात् जो वर्तन स्वरूप हो वह 'वर्तना' है ऐसा वर्तना शब्दका विग्रह हुआ ॥ अथवा "अनुदात्तेत्वात्ता च्छीलिको वा" जिसका अनुदात्त इत् जाता है उससे ताच्छीलिक अर्थ में अर्थात् 'वह उसका स्वभाव ही हो' इस अर्थ में व्याकरणशास्त्रकेभीतर 'युच्' प्रत्ययका विधान माना है 'वृतौङ्' धातुका अनुदात्त इत्सज्ञक है इसलिये ताच्छीलिक अर्थ में युच् प्रत्ययकर वर्तना शब्दकी सिद्धि हुईहै ॥ वर्तनशीला वर्तना अर्थात् वर्तन-परिवर्तन करना ही जिसका स्वभाव हो वह वर्तना है। यह वर्तना शब्दका विग्रह है ॥

इति कृत्वा वर्तना कालस्योपकारः ॥ को णिजर्थः ? । वर्तते द्रव्यपर्यायस्तस्य वर्तयिता कालः॥ यद्येवं कालस्य क्रियावत्त्वं प्राप्नोति । यथा शिष्योऽधीते, उपाध्यायोऽध्यापयतीति ॥ नैष दोषः। निमित्तमात्रेऽपि हेतुकर्तृव्यपदेशो दृष्टः । यथा कारीषोऽग्निरध्यापयति। एवं कालस्य हेतुकर्तृता ॥

इति*कृत्वा*वर्तना॥कालस्य॥ उपकारः॥ ; =इस प्रकार करके (समयरूप) वर्तना कालका उपकार है ।

कः॥ णिच॥ अर्थः॥ ? वर्तते।द्रव्य- = वृत्धातुमें)णिच् प्रत्यय जो लगाया है किसलिये है(उत्तर)वर्तती हैं द्रव्यकी

पर्यायः॥ तस्य॥ (१ वर्तयिता॥ कालः॥ ॥ =पर्याय, तिस(द्रव्यकी पर्याय)का वर्तावनेवाला काल है अर्थात् 'णिच्' प्रत्यय प्रयोजनके हेतुकर्ता विषैं (जो कुछ हमारा प्रयोजन है उसके प्रेरकके प्रेरणा करनेवालेके अर्थ विषैं यहां द्रव्यके वर्तावनेका प्रयोजन है) अथवा प्रयोजनके प्रेरक विषैं आया है भावार्थ ऐसा है कि धर्मादिक द्रव्योंके पर्याय समय समय पलटते है सो इस पलटनेका समय जो काल सोही (इस पलटनेकों) निमित्त है अतः इस प्रकार कहते है कि द्रव्योंकी पर्यायें वर्तती है तिन पर्यायोंका वर्तावनेवाला द्रव्यकाल अथवा निश्चयकाल है ॥

यदि*एवम्*कालस्य॥क्रियावत्त्वम्॥।प्राप्नोतिT । =जो ऐसे है(कि काल वर्तावनेवाला है)तो कालके क्रियावान्पना प्राप्त होता है

यथा*शिष्यः॥अधीतेT,उपाध्यायः॥अध्यापयतिइति=जैसे शिष्य पढ़ता है गुरु पढ़ाता हैऐसा (होता है

न*एषः॥दोषः॥ ; निमित्तमात्रे॥। अपि* =(उत्तर)यह दूषण नहीं है । निमित्त कारणमात्रमेंभी(नकि उपादान कारणमात्रमें)

हेतुकर्तृ-व्यपदेशः॥ दृष्टः॥; यथा*कारीषः॥ =हेतु कर्ताका कथन वा नाम देखाजाता है जैसे कारीष अथवा कंडेकी

अग्निः॥ अध्यापयतिT । =आग (शीतकालमें) पढ़ाती है अर्थात् शीतकालमें शिष्य कंडेकी आगके सहारेसे स्वयं पढ़ते हैं परन्तु संसार में ऐसेभी कहते हैं कि जाडेकी ऋतुमें अथवा जड़कालमें कंडेकी आग शिष्यको पढ़ाती है ।

एवम्*कालस्य॥ हेतुकर्तृता॥। =ऐसे कालके (पदार्थों के वर्तावनेमें) हेतुकर्तापना वा प्रेरकपना है ॥

(१) जैसे पितृ शब्दकी प्रथमा विभक्ति एक वचन पुल्लिंग पिता' शब्द है तैसे 'वर्तयितृ'पुल्लिंग शब्दका वर्तयिता'एकवचन प्रथमाविभक्तिपुल्लिंग बनताहै ।

स कथं काल इत्यवसीयते ? समयादीनां क्रियाविशेषाणां समयादिभिर्निर्वर्त्यमानानां च पाकादीनां समयः पाक इत्येवमादिस्वसंज्ञारूढिसद्भावेऽपि समयः कालः, ओदनपाककालः इति अध्यारोप्यमाणः कालव्यपदेशः ।

सः१। कथम्*कालः१। इति*अवसीयते । ? =(प्रश्न)सो(करीपाके आगके दृष्टान्तवत्)कैसे काल जाना जाता है? वा निश्चयकियाजाताहै?
समय-आदीनाम्६।३। (१) क्रियाविशेषाणाम्६।३। =समय आदिक क्रियाकेविशेषोंके
(किसी विशेष क्रिया वा अमुक क्रिया करनेमें जो समयादिक व्यतीत होते हैं सो)
समय-आदिभिः३।३। निर्वर्त्यमानानाम्६।३। च पाक-आदीनाम्६।३।=तथा (=च,समय आदिकरि कियेहुए पाकआदिकोंका
समयः१।१।;पाकः१।१। इत्येवम्*आदि१।१। २) स्वसंज्ञारूढि- =समय पाक इत्यादिमें स्वसंज्ञारूढि
सद्भावे७।१। अपि* =होनेपर भी अर्थात् अपनी अपनी समय और पाककी संज्ञा प्रसिद्ध होनेपर भी
समयः१।१। कालः१।१। ओदनपाककालः१।१। इतिअध्यारोप्यमाणः=समयकाल तथा भातका पाककाल(अनक्रमसे)ऐसा आरोपणकरि
काल-व्यपदेशः१।१। =(व्यवहार)कालका कथन होता है भावार्थ यह है कि किसी क्रिया करनेमें जो समय आवली, घंटा, वा दिन आदि लगता है तथा किसी कार्य जैसे भात ओषधि रसोई आदि करनेमेंजो समय,आवली,घंटा वा दिन आदि व्यतीत होताहै उसको(क्रमसे)समयकाल-आवलीकाल-घंटाकाल-दिवसकाल कहते है तथा ओदन(भात)पाककाल, औषधि पाककाल, रसोई पाककाल कहते है सो यह समय, आवली तथा घंटा आदि व्यवहारकालका कथन है अर्थात् समय, आवली, घंटा तथा दिन आदि व्यवहारकाल है ।

(२) 'असज्ञारूढि'-सर्वार्थसिद्धिके दोनों सस्करणोंमें'स्वसज्ञारूढि' के स्थानमें'असज्ञारूढि अशुद्ध छपगयाहै । असज्ञारूढि शब्दकाकुछभी यौगिकअर्थ नहीं होताहै असज्ञारूढि होनेपर असज्ञा कैसे रूढि वा प्रसिद्ध होसकती है अत. पाठ शुद्ध करदियागयाहै ॥ सर्वार्थसिद्धि तीन हस्तलिखितप्रतियोंमे भी तथा तत्त्वार्थराजवार्तिकके "समयपाक इत्येवमादिस्वसज्ञारूढि सद्भावेकालः"वाक्यमें जो शब्द श. सर्वार्थसिद्धिके पाठसे मिलता है 'स्वसज्ञारूढि' शब्द पाया जाता है ॥

(१) पुद्गल परमाणुका कालकी एक अणुने दूसरी अणुतक मदगति जानेमें अथवा लोकाकाशके एक प्रदेशसे दूसरे प्रदेशतक मदगति जानेमेंजोकाल व्यतीत होता है उसको समय कहते है । ऐसा करनेमें पुद्गल परमाणुकी जाने रूपक्रियाको विशेष क्रिया कहसकते हैं ॥ 'एक काल अनूसेती दूजी काल अनूजाय पुद्गलकी परवानू तहा समय होत है । जलको कटोरी घरी सूरजसों दिन होय, मास,रितु, वर्ष, ऐन आदिक उदोत है । नई वस्तु वांधी करै परावर्त चाल धरै, सोई व्यवहारकाल विनासीक गोत है । अतीत अनागत वरतमान परजाय, कालानू दर्व लखै जाकेउर जोत है॥ द्यानतविलास ॥

तद्व्यपदेशनिमित्तस्य मुख्यस्य कालस्यास्तित्वं गमयति । कुतः ? गौणस्य मुख्यापेक्षत्वात् ॥ द्रव्यस्य पर्यायो धर्मान्तरनिवृत्तिधर्मान्तरोपजननरूपः अपरिस्पन्दात्मकः परिणामो, जीवस्य क्रोधादिः । पुद्गलस्य वर्णादिः । धर्माधर्माकाशानामगुरुलघुगुण-

तद्-व्यपदेश-निमित्तस्य६। =उस(व्यवहारकाल)का(उपर्युक्त)कथन(अपने)निमित्तक अथवा हेतुकर्ता

मुख्यस्य६। कालस्य६। अस्तित्वम्२।। गमयति । =निश्चय(=मुख्य)वा परमार्थ (=मुख्य)कालकी विद्यमानताको जताता है भावार्थ समय आवली घटिका इत्यादिरूप जो व्यवहारकाल है तिस(समय आवली-घटिकादिरूप व्यवहारकाल) नामको निमित्त ऐसा जो निश्चयकाल (=असंख्यातरूपकालाणुं) तिन असंख्यात कालाणुंओंका अस्तित्व वा विद्यमानता इस(समय-आवली-घटिकादिरूप,व्यवहारकालसे जानी जाती है

कुतः ? गौणस्य६। =प्रश्न)(व्यवहारकालसे निश्चयकालका ज्ञान)क्योंकर होता है । गौणकी(विद्यमानता)

मुख्य-अपेक्षत्वात्५।।। =मुख्यकी अपेक्षासे होती है अर्थात् क्योंकि गौण मुख्यके विना कभीभी नहीं होसक्ता है भावार्थ व्यवहारकाल गौण है, निश्चयकाल मुख्य है, ओदनपाकादि जो प्रसिद्ध व्यवहारकाल है वह निश्चयकालसे उत्पन्न होने वाले समय आदिका समूह है विना निश्चयकालके व्यवहारकाल उत्पन्न नहीं होसकता इसलिये व्यवहारकालसे निश्चयकाल जाना जाता है ॥

द्रव्यस्य६।।।पर्यायः१।धर्मान्तर-निवृत्ति-(१ धर्मान्तर-उपजननरूपः१। अपरिस्पन्दात्मकः१। परिणामः१। =द्रव्यकी पर्याय(अर्थात्)अन्य अवस्थाको(=धर्मान्तर)छोड़कर दूसरी अवस्था =रूप होना तथा क्षेत्रसे अन्य क्षेत्रमें चलनरूप न होना सो परिणाम वा परणति है

जीवस्य६।क्रोधादिः१।;पुद्गलस्य६।वर्ण-आदिः१।; =जीवके क्रोधादिक (परिणाम) है पुद्गल के वर्णादिक(परिणाम) है ।

धर्माधर्म-आकाशानाम्६।।। (२,अगुरुलघुगुण- =धर्माधर्म आकाशके अगुरुलघुगुण अथवा द्रव्यकीद्रव्यतारखनेवाले गुणकी

(१) एक हस्तलिखित प्रतिके पृष्ठ ५४ पर 'निवृत्ति' शब्द है वह अशुद्ध है क्योंकि निवृत्तिका अर्थ छोड़ना,निश्चिन्त होजाना है निर्वृतिका अर्थ रचना, उत्पन्न करना है । यहां पर पहिले अर्थमें है ॥

(२) जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यकी द्रव्यता स्थिर रहै अर्थात् एक द्रव्य दूसरे द्रव्यरूप न परिणमे और एक गुण दूसरे गुणरूप न परिणमें तथा एक द्रव्यके अनेक वा अनन्तगुण बिखरकर जुदे २ न होजावें उसको अगुरुलघुगुण कहते हैं ॥

(३) कहीं २ पर क्रिया तीन प्रकारकी मानी हैं प्रथम प्रायोगगति, द्वितीय विस्रसागति और तृतीय मिश्रकागति,उनमें प्रायोगगति पुरुषप्रयत्नजन्यहै॥ विस्रसागति=स्वय परिपाकसेजन्यहैऔर मिश्रिका(=मिश्रका)उभयजन्यहैअर्थात् पुरुषप्रयत्नऔर स्वयपरिपाकसेउत्पन्नहोनेवालीक्रियाकोमिश्रिकाकहतेहैं

वृद्धिहानिकृतः॥ क्रिया परिस्पन्दात्मिका। सा द्विविधा। प्रायोगिकवैस्रसिकभेदात्। तत्र प्रयोगिकी शकटादीनां, वैस्रसिकी मेघादीनाम् ॥ परत्वापरत्वे क्षेत्रकृते कालकृते स्तः। तेऽत्र कालोपकरणात्कालकृते गृह्यते ॥ त एते वर्तनादय उपकाराः कालस्यास्तित्वं गमयन्ति ॥ ननु वर्तनाग्रहणमेवास्तु, तद्भेदाः परिणामादयस्तेषां पृथग्ग्रहणमनर्थकम्। नानर्थकम्। कालद्वयसूचनार्थत्वात्

वृद्धि-हानि-कृतः[५/१]; क्रिया[१/१] परिस्पन्द-आत्मिका[१/१] =वृद्धिहानिरूप होना(परिणाम)है। हिलनेचलनेरूप है सो क्रिया है ॥ प्रायोगिक

वैस्रसिक-भेदात्[५/१]; सा[१/१] द्विविधा[१/१], तत्र प्रयोगिकी[१/१] =तथा वैस्रसिक भेदसे वह(क्रिया) दो प्रकार है। तहां प्रायोगकी क्रिया अर्थात्

शकटादीनाम्[६/३] =(अन्यके प्रयोगसे होनेवाली क्रिया) जैसे गाडी आदिकका(बैलों द्वारा चलना)

वैस्रसिकी[१/१] =वैस्रसिकी अर्थात् स्वयं वा निजस्वभावसे विना किसी अन्यके निमित्तसे होनेवाली

मेघादीनाम्[६/३]; परत्व-अपरत्वे[१/२] क्षेत्रकृते[१/२] =(जैसे)वादलादिका (=मेघादीनाम्) ॥ परत्व और अपरत्व क्षेत्रकृत

कालकृते[१/२] स्तः। ते[१/२] अत्र॰ काल-उपकरणात्[५/१] =(और)कालकृत(दोदो प्रकारके) है, वे यहां कालका प्रधान साधन होनेसे

काल-कृते[१/२] गृह्येते ॥ =कालकृत वा कालसंबंधीय (दो परत्व अपरत्व विषयभूत होनेसे)लियेगये हैं

ते[१/३] एते[१/३] वर्तना-आदयः[१/३] उपकाराः[१/३] कालस्य[६/१] =वे एते वर्तनादिक उपकार(निश्चय-मुख्य-वा परमार्थ)कालकी

अस्तित्वम्[२/१] गमयन्ति ॥ =विद्यमानताको जताते हैं अर्थात् वर्तना, परिणाम, क्रिया, परत्व, अपरत्व ये सब कालके निमित्त (=उपकार)से होते है और इन्हींसे निश्चयकाल, परमार्थकाल, मुख्यकाल वा असंख्यातकालाणुरूप द्रव्यका अस्तित्व सिद्ध होता हैं ॥

ननु॰ वर्तना-ग्रहणम्[१/१] एव॰ अस्तु, तद्-भेदाः[१/३] =प्रश्न (इस सूत्रमें)वर्तनाका ग्रहणही होना चाहिये, उस (वर्तना के भेद

परिणाम-आदयः[१/३] तेषां[६/३] पृथग्-ग्रहणम्[१/१] अनर्थकं[१/१] =परिणाम-क्रिया-परत्व-अपरत्व हैं। उन भेदोंका पृथक् ग्रहण व्यर्थ है

न॰ अनर्थकम्[१/१]; =(उत्तर)(परिणाम-क्रिया-परत्व-अपरत्व वर्तनाके भेदोंकासूत्रमेंग्रहणकरना)निष्प्रयोजन नहींहै

कालद्वय-सूचन-अर्थत्वात्[५/१] =क्योंकि कालके दो भेद प्रगट करनेके अर्थ अर्थात् कालके दो भेद जतलानेके लिये

---

(१) परत्व अपरत्व तीन प्रकारभी है (क) प्रशंसाकृत जैसे धर्म 'पर' है ज्ञान 'पर' है तथा अधर्म 'अपर' है अज्ञान 'अपर' है (ख) क्षेत्र(देश)कृत जैसे एकदेश वा कालमें स्थितहुयेदो पदार्थोके विषय जो दूरहै वहतो पर है और जो समीप है वह अपर है (ग) कालकृत जैसे सोलह वर्ष वालेकी अपेक्षासे

प्रपञ्चस्य ॥ कालो हि द्विविधः परमार्थकालो व्यवहारकालश्च । परमार्थकालो वर्तनालक्षणः । परिणामादिलक्षणो व्यवहारकालः ॥ अन्येन परिच्छिन्नः अन्यस्य परिच्छेदहेतुः क्रियाविशेषः काल इति व्यवह्रियते । स त्रिधा व्यवतिष्ठते भूतो वर्तमानो भविष्यन्निति ॥ तत्र परमार्थकाले कालव्यपदेशो मुख्यः । भूतादिव्यपदेशो गौणः ॥ व्यवहारकाले भूतादिव्यपदेशो मुख्यः । कालव्यपदेशो गौणः ।

प्रपञ्चस्य; कालः हि द्विविधः परमार्थकालः	=विस्तार रूप(पूर्वोक्त कथन है। जैसे=कि काल दो प्रकार है, परमार्थकाल
च व्यवहारकालः; वर्तनालक्षणः परमार्थ-	=और व्यवहारकालः वर्तना है लक्षण जिसका सो परमार्थ या निश्चय
कालः; परिणामादि-लक्षणः	=काल है। परिणाम क्रिया परत्व-अपरत्व हैं लक्षण जिसके सो
व्यवहारकालः; अन्येन परिच्छिन्नः	=व्यवहारकाल है। [illegible]
	(जैसे सूर्य चन्द्र आदिके उदय अस्तसे दिन रात्रि जाने जाते हैं सो व्यवहार काल है
	जीव और पुद्गलके परिणमनसे [illegible]
अन्यस्य परिच्छेद-हेतुः	=(व्यवहार काल) दूसरी वस्तुके ज्ञान करानेमें निमित्त है जैसे [illegible]
	[illegible]
क्रिया-विशेषः कालः इति व्यवह्रियते	=क्रिया विशेष है सो कालहै ऐसा व्यवहार किया जाताहै (क्रिया विशेष व्यवहारकाल है)
सः त्रिधा भूतः वर्तमानः भविष्यन् इति	=वह (व्यवहारकाल) तीन प्रकार अतीत वर्तमान अनागत ऐसे
व्यवतिष्ठते । तत्र परमार्थकाले कालव्यपदेशः	=व्यवस्थित है। (तहां परमार्थकाल की अपेक्षा) निश्चय कालका नाम या कथन
	(अर्थात [illegible])
मुख्यः; भूतादि-व्यपदेशः	=मुख्य या प्रधान है, भूत, वर्तमान, भविष्यत का कथन (निश्चयकालकी अपेक्षासे)
गौणः; व्यवहारकाले भूत-आदि-व्यपदेशः	=गौण या अप्रधान है। व्यवहारकाल विषैं अतीत वर्तमान अनागतका कथन
मुख्यः; काल व्यपदेशः गौणः	=प्रधान है और काल कहना गौण या अप्रधान है अर्थात् निश्चयकाल या परमार्थकाल

गत(सो) वर्तनालक्षण पर है और [illegible] ॥ [illegible] परमाणुकरको [illegible] वर्तनादि सब कालकृत हैं अर्थात् वर्तना, परिणाम, क्रिया, कालिक परत्व, कालिक अपरत्व ये कालके उपकार हैं ॥

क्रियावद्द्रव्यापेक्षत्वात्कालकृतत्वाच्च ॥

अत्राह धर्माधर्माकाशपुद्गलजीवकालानामुपकारा उक्ताः । लक्षणं चोक्तम् "उपयोगो लक्षण-मित्येवमादि" पुद्गलानां तु सामान्यलक्षणमुक्तं "अजीवकाया इति" विशेषलक्षणं नोक्तम् । तत्किमित्यत्रोच्यते—

॥ स्पर्शरसगन्धवर्णवन्तः पुद्गलाः ॥ २३ ॥

कहना गौण है नकि समय, आवली, घटिका, प्रहर, दिन, राति पक्ष मास, ऋतु, अयन, वरस इत्यादिको कहना गौण है क्योंकि कथन करते समय ये सब (समय, आवली, घटिका इत्यादि) याती भूतकालमें वा वर्तमान कालमें वा भविष्यत्कालमें आजावेंगे, गर्भित हो जावेंगे और सम्बन्ध रक्खेंगे । फिर भूतादिको मुख्य कहना, समय घटिकादिको गौण कहना एकही वस्तुको मुख्य गौण कहदेना है सो ठीक नहीं ॥

(१)क्रियावत्* द्रव्य-अपेक्षत्वात्[५१]॥ च*	=क्रियावान् (अन्य) द्रव्योंकी अपेक्षाभावसे(व्यवहारकालनाम पायाहै)और(=च)
काल-कृतत्वात्[५१]॥	=निश्चयकाल(=काल)द्वारा कियेजानेसे(उत्पन्न होनेसे)(व्यवहारकाल नाम पाया है)
अत्र*आह।धर्म-अधर्म-आकाश-पुद्गल-जीव-कालानाम्[६३]	=यहां पूछता है कि धर्म, अधर्म, आकाश, पुद्गल, जीव और काल द्रव्योंके
उपकाराः[१३]उक्ताः[१३];लक्षणम्[११]॥च*उक्तम्[११]॥ "उपयोगः[११]	=उपकार कहेगये(और लक्षणभी=च)(इनके)कहेगये। उपयोग(अध्याय२सूत्र८)
लक्षणम्[११]॥ इत्येवम् आदि[११]॥" पुद्गलानाम्[६३] तु*	=(जीवका लक्षण है इत्यादिक (कहेगये) और (=तु) पुद्गलोंका
"अजीव-कायाः[१३] इति" सामान्य लक्षणम्[११]॥ उक्तम्[११]॥	="अजीवकाया" ऐसा(इस अध्यायके प्रथम सूत्रमें) साधारण लक्षण कहागया
विशेष-लक्षणम्[११]॥ न* उक्तम्[११]॥ तत्[११]॥ किम्[११]॥	=(किन्तु)(पुद्गलोंका)विशेष लक्षणनहीं कहागया है। वह विशेष लक्षण क्या है
इति*अत्र*उच्यते।	=इस हेतुसे(=इति)(पुद्गलोंका विशेष लक्षण अग्रिम सूत्रमें)कहाजाता है कि

सूत्रम् [२]स्पर्शरसगन्धवर्णवन्तः पुद्गलाः२३ = स्पर्श-रस-गंध-वर्णवन्तःपुद्गलाः (भवन्ति)॥ २३॥

(१) (प्रश्न) समय, आवली, घटिका प्रहर दिन इत्यादि ने व्यवहार काल नाम कैसे पाया है। (उत्तर) क्रियावान् जु अन्य द्रव्य तिनकी अपेक्षासे व्यवहारकाल नाम पाया है तथा निश्चय कालकरि कियेगये हैं जे समय, आवली, घटिका, प्रहर, दिन, रातादि तिनसे (व्यवहार)काल नाम पाया है ॥

(२) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर सम्प्रदायोंमें एकसा है।

स्पृश्यते स्पर्शनमात्रं वा स्पर्शः । सोऽष्टविधः । मृदुकठिनगुरुलघुशीतोष्णस्निग्धरूक्षभेदात् ॥ रस्यते रसनमात्रं वा रसः । स पञ्चविधः । तिक्ताम्लकटुमधुरकषायभेदात् ॥ गन्ध्यते गन्धनमात्रं वा गन्धः । स द्वेधा । सुरभिरसुरभिरिति ॥ वर्ण्यते वर्णनमात्रं वा वर्णः । स पंचविधः । कृष्णनीलपीतशुक्ललोहितभेदात् ॥ त एते मूलभेदाः प्रत्येकं संख्येयासंख्येयानन्तभेदाश्च भवन्ति॥ स्पर्शश्च रसश्च गन्धश्च वर्णश्च स्पर्शरसगन्धवर्णास्त एतेषां सन्तीति स्पर्शरसगन्धवर्णवन्तः

सूत्रार्थः—स्पर्श-रस-गन्ध-वर्णवन्तः[1] पुद्गलाः[2]

वृत्त्यनुवादः—स्पृश्यते[1] वा स्पर्शनमात्रम्[2] स्पर्शः[3]
सः[4] अष्टविधः[5]: मृदु-कठिन-गुरु-लघु-शीत-
उष्ण-स्निग्ध-रूक्ष-भेदात्[6] ; रस्यते, रसनमात्रम्[7] वा*
रसः[8]; सः[9] पञ्चविधः[10], तिक्त-अम्ल-कटु-मधुर-
कषाय-भेदात्[11] ; गन्ध्यते वा गन्धनमात्रम्[12] गन्धः[13]
सः[14] द्वेधा*सुरभिः[15] असुरभिः[16] इति* वर्ण्यते
वा*वर्णमात्रम्[17] वर्णः[18]; सः[19] पञ्चविधः[20], कृष्ण-नील-पीत-
शुक्ल-लोहित-भेदात्[21]; ते[22] एते[23] मूलभेदाः[24] प्रत्येकम्[25]
संख्येय-असंख्येय-अनन्तभेदाः[26] च*भवन्ति।

स्पर्शः[1] च*रसः[2] च*गन्धः[3] च*वर्णः[4] च*
स्पर्शरसगन्धवर्णाः[5] ते[6]
एतेषाम्[7] सन्ति। इति*स्पर्श-रस-गन्ध-वर्णवन्तः[8]

=स्पर्श, रस, गन्ध, वर्णवाले पुद्गल होते हैं अर्थात् स्पर्श रस गन्ध वर्ण ये चार गुणोंकरि सहित अथवा तन्मयीकरि युक्त पुद्गल होते हैं ॥

=वृत्तिका अनुवाद जो स्पर्श्या जाय अथवा स्पर्शमात्र सो स्पर्श है वह स्पर्श आठ प्रकार, कोमल कठोर(मृदु-कठिन) भारी, हलका, ठंढा, =गरम, चिकना=चिकना [illegible] भेदसे है । स्वाद लिया जाना है या स्वादमात्र =रस है सो पांच प्रकार तिक्त(चरपरा), खट्टा, [illegible] कडुआ, मीठा, =कषायला(कसैला) भेदसे है । जो सूंघा जाय है अथवा गन्धमात्र है सो गन्ध है =वह (गन्ध) दो प्रकार सुगन्ध दुर्गन्ध होती है । जो वर्ण [illegible] है =या वर्णमात्र सो वर्ण है । सो पांच प्रकार काला, नीला, पीला =सफेद, लाल, रक्त-अरुण भेदसे हैं । ये इनके मूलभेद हैं । इन मूल भेदोंमेंसे) प्रत्येकके =संख्यात, असंख्यात और अनन्त भेद होते हैं अर्थात् इन स्पर्श, रस, गन्ध, वर्णके भेदोंमेंसे प्रत्येक भेदके [illegible] एक दो तीन चार इत्यादि संख्यातभेद, असंख्यातभेद हैं, अविभाग प्रतिच्छेदोंकी अपेक्षासे अनंतभेद हैं
=और(=च) स्पर्श और(=च) रस और(=च) गन्ध और(=च) वर्ण हैं
=सो द्वन्द्वसमासमें स्पर्शरसगन्धवर्णाः ऐसा वाक्य होता है । ते स्पर्शरसगन्धवर्ण
=जिनके होते हैं ऐसे स्पर्श-रस-गन्ध वर्णवाले हैं अर्थात् ये पुद्गल हैं
भावार्थ समस्त पुद्गलोंमें ये उक्त चार(स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण) निश्चय करने चाहिये॥

८८

इति । नित्ययोगे [१]मन्निर्देशः ॥ यथा क्षीरिणो न्यग्रोधा इति ॥ ननु च "रूपिणः पुद्गला" इत्यत्र पुद्गलानां रूपवत्त्वमुक्तं तदविनाभाविनश्च रसादयस्तत्रैव परिगृहीता इति व्याख्यातं तस्मात्तेनैव पुद्गलानां रूपादिमत्त्वसिद्धेः सूत्रमिदमनर्थकमिति ॥ नैष दोषः । नित्यावस्थितान्यरूपाणीत्यत्र धर्मादीनां नित्यत्वादिनिरूपणेन

इति*नित्य-योगे[७/१] मत्-निर्देशः[१/१] ॥	=इस प्रकार सदैव संयोगमें मतुप् (= मत्)प्रत्ययका निरूपण है भावार्थ "स्पर्श-रस-गंध-वर्णवन्तः" इस वाक्यको जब पृथक् पृथक् करदेते हैं तब स्पर्शवान् रसवान्-गंधवान्-वर्णवान्-ऐसे चार शब्द होते हैं स्पर्शका नित्य है संयोग जिसमें अथवा स्पर्शगुण सदैव जिसमें रहता है वह स्पर्शवान् (पुद्गल) है इसप्रकार मतुप् (=मत्)प्रत्यय स्पर्शगुणके सदैव विद्यमान रहनेकेअर्थमें लगाया गया है ऐसेही रसवान्-गंधवान्-वर्णवान् जानना ॥ स्मरण रहे कि इस सूत्रके दो प्रकारसे विभाग होसकते हैं (क) स्पर्शवन्तः पुद्गलाः ; रसवन्तः पुद्गलाः, गंधवन्तः पुद्गलाः, वर्णवन्तः पुद्गलाः, अथवा (ख) स्पर्शवान् पुद्गलः, रसवान् पुद्गलः, गंधवान् पुद्गलः वर्णवान् पुद्गलः ॥
यथा*क्षीरिणः[१/३] न्यग्रोधाः[१/३] इति*ननु*च*रूपिणः[१/३]	=जैसे दूधवाले अथवा दूधयुक्त वड़वृक्ष(=वटवृक्ष) । पुनि प्रश्न, रूपी वा मूर्तीक
पुद्गलाः[१/३] इति*अत्र*पुद्गलानाम्[६/३] रूपवत्त्वम्[१/१] ॥ उक्तम्[१/१] ॥	=पुद्गल हैं ऐसे यहां(अध्याय ५ सूत्र५में) पुद्गलोंके रूपपना कहागया है
तद्-अविनाभाविनः[१/३] च*रस-आदयः[१/३] तत्र*	=और(=च)उस (रूप)का अविनाभावी तथा भिन्न न रहनेवाले रस-स्पर्श गंध तहां
एव*परिगृहीताः[१/३] इति* व्याख्यातम्[१/१] ॥	=(उस पांचवां सूत्रसे)ही ग्रहण कियेगये ऐसा वर्णन कियागया है
तस्मात्[५/१] तेन[३/१] एव*पुद्गलानाम्[६/३]	=तिस कारणसे(=तस्मात्)उस(इस अध्यायके पांचवां सूत्र)करिही पुद्गलोंके
रूप-आदिमत्त्वसिद्धेः[५/१] ॥ सूत्रम्[१/१] ॥ इदम्[१/१] ॥ अनर्थकम्[१/१] ॥ इति* ॥	=रूपपना, स्पर्शपना, रसपना, गंधपना सिद्ध होनेसे यह सूत्र निष्प्रयोजन है ॥
न*एषः[१/१] दोषः[१/१]; नित्य-अवस्थानि[१/३] ॥ अरूपाणि[१/३] ॥	=(उत्तर) यह दूषण नहीं है नित्य, अवस्थानि और अरूपाणि,
इति*अत्र*धर्मादीनाम्[६/३] नित्यत्वादि-निरूपणेन[३/१] ॥	=ऐसे यहां धर्मादिकोंका ध्रुवपनादिकका कथन करनेसे

(१) प्रथमावृत्तिसर्वार्थसिद्धिवृत्तिमें 'मन्निर्देश' पाठ है, द्वितीयावृत्तिमें औरएकहस्तलिखितमें 'वन्निर्देश.' पाठहै दोअन्यहस्तलिखितप्रतियोंमें 'वत्निर्देश' पाठहै 'वन्निर्देश' और 'वत्निर्देश' एकही है क्योंकि प्रथम वाक्य सन्धिरूपमें है दूसरेमें सन्धि नहीं कीगई है ॥ यहांपर समास करना है संधि अवश्य होनी चाहिये, इसलिये 'वत्निर्देश' पाठ 'वन्निर्देश'की अपेक्षा अशुद्ध है ॥ द्वितीया वृत्तिमें और जहां कहीं भी 'वत्निर्देश' और 'वन्निर्देशः' पाठहै वे अशुद्ध है।

पुद्गलानामरूपत्वप्रसंगे तदपाकरणार्थं तदुक्तम् ॥ इदं तु तेषां स्वरूपविशेषप्रतिपत्त्यर्थमुच्यते॥
अवशिष्टपुद्गलविकारप्रतिपत्त्यथमिदमुच्यते—

॥ शब्दबन्धसौक्ष्म्यस्थौल्यसंस्थानभेदतमश्छायाऽऽतपोद्योतवन्तश्च ॥

पुद्गलानाम्। अरूपत्व-प्रसंगे। तद्-	=पुद्गलोंके अमूर्तीकपनेका अवसर आनेपर उस (अरूपत्व)के
अपाकरण-अर्थम्।। तद्।। उक्तम्।। इदम्।। तु*	=निराकरणके लिये वह (रूपिणः पुद्गलाः) कहागया है ॥ यह(सूत्र) तो
तेषाम्। स्वरूपविशेष-प्रतिपत्ति-अर्थम्।। उच्यते।	=तिन(पुद्गलों)के बिशेष स्वरूप जाननेके लिये कहागया है ॥
अवशिष्ट-पुद्गल-विकार-प्रतिपत्ति-अर्थम्।।	=शेष पुद्गलके परिणाम (=विकार = पर्याय) जाननेके लिये
इदम्।। उच्यते।	=यह (उत्तर सूत्र)कहाजाता है कि

सूत्रम्—शब्दबन्धसौक्ष्म्यस्थौल्यसंस्थानभेदतमश्छायाऽऽतपोद्योतवन्तश्च ॥ २४ ॥

=शब्द-बन्ध-सौक्ष्म्य-स्थौल्य-संस्थान-भेद तमः—छाया-आतपः—उद्योतवन्तः—च पुद्गलाः भवन्ति ॥२४॥

पदच्छेदः—शब्दवन्तः पुद्गलाः; वा शब्दवान् पुद्गलः। बन्धवन्तःपुद्गलाःवा बन्धवानपुद्गलः सौक्ष्म्यवन्तः पुद्गलाः वा सौक्ष्म्यवान् पुद्गलः। स्थौल्यवन्तः पुद्गलाः वा स्थौल्यवान् पुद्गलः। संस्थानवन्तः पुद्गलाः वा संस्थानवान् पुद्गलः। भेदवन्तः पुद्गलाः वा भेदवान् पुद्गलः। तमोवन्तः पुद्गलाः वा तमोवान् पुद्गलः। छायावन्तः पुद्गलाः वा छायावान् पुद्गलः। आतपवन्तः पुद्गलाः वा आतापवान् पुद्गलः। च उद्योतवन्तः पुद्गलाः वा च उद्योतवान् पुद्गलः।

सूत्रार्थः—शब्दवन्तः। पुद्गलाः। वा शब्दवान्। पुद्गलः।	=शब्दयुक्त पुद्गल है अथवा शब्द सहित पुद्गल है
बन्धवन्तः। पुद्गलाः। वा बन्धवान्। पुद्गलः।	=बंधसहित पुद्गल हैं वा बंधयुक्त पुद्गल है।
सौक्ष्म्यवन्तः। पुद्गलाः। वा सौक्ष्म्यवान्। पुद्गलः।	=सूक्ष्मतावान् पुद्गल है अथवा सूक्ष्मतासहित पुद्गल है
स्थौल्यवन्तः। पुद्गलाः। वा स्थौल्यवान्। पुद्गलः।	=स्थूलतासहित पुद्गल है अथवा स्थूलतावान् पुद्गल है
संस्थानवन्तः। पुद्गलाः। वा संस्थानवान्। पुद्गलः।	=आकारसहित पुद्गल है अथवा आकारसंयुक्त पुद्गल है।
भेदवन्तः। पुद्गलाः। भेदवान्। पुद्गलः।	=खंडवाले पुद्गल हैं अथवा खंडसहित पुद्गल है

क्योंकि 'वत्' प्रत्यय सदृश अथवा तुल्य अर्थमें आताहै और मतुप (मत्)प्रत्यय'नित्ययोग' 'सन्ति'अर्थमें आताहै यहांपर अर्थ ऐसा है कि 'ते' (स्पर्श-रस गन्ध वर्ण) जिनके होतेहैं (वे) स्पर्श-रस-गंध वर्णवाले हैं" ॥यहां नित्ययोगमें मतुप(मत्)प्रत्यय होनाचाहिये अतः प्रथमार्थत्रिका"[illegible]"

शब्दो द्विविधो भाषालक्षणो विपरीतश्चेति ॥ भाषालक्षणोद्विविधः। साक्षरोऽनक्षरश्चेति ॥ अक्षरीकृतः शास्त्राभिव्यञ्जकःसंस्कृतविपरीतभेदादार्यम्लेच्छव्यवहारहेतुः॥ अनक्षरात्मको द्वीन्द्रियादीनामतिशय-ज्ञानस्वरूपप्रतिपादनहेतुः स एषः सर्वप्रायोगिकः।अभाषात्मकोद्विविधः । प्रायोगिको वैस्रसिकश्चेति॥

तमोवन्तः पुद्गलाः वा तमोवान् पुद्गलः;	=अंधकारवाले पुद्गल हैं अथवा अंधकारसंयुक्त पुद्गल है
छायावन्तः पुद्गलाः वा छायावान् पुद्गलः,	=छाहसहित पुद्गल है अथवा छाहवान् पुद्गल है
आतपवन्तः पुद्गलाः वा आतपवान् पुद्गलः;	=तप्तप्रकाशसंयुक्त पुद्गल हैं अथवा उष्णरूपउजालासहित पुद्गल है
च* उद्योतवन्तः पुद्गलाः	=और शीतल प्रकाश जैसेचांदनी(=चंद्रमाकी पटबीजनाकीचमक) वाले पुद्गल हैं
वा उद्योतवान् पुद्गलः	=वा ठंडे उजालेवान् जैसे चांदनीवान् पुद्गलहै अर्थात् येदशपुद्गल द्रव्यके पर्याय, परिणाम, विकार वा अवस्थाविशेष हैं ॥
वृत्त्यनुवादः-शब्दः द्विविधः भाषालक्षणः च*	=शब्द दोप्रकार है भाषास्वरूप वा भाषात्मक और (=च)
विपरीतः इति*॥ भाषालक्षणः द्विविधः ।	=प्रतिकूल अर्थात् अभाषास्वरूप वा अभाषात्मक; भाषात्मकशब्द दो प्रकारहै
स-अक्षरः च*अन्-अक्षरः इति*॥	=अक्षररूप(अक्षरसहित,अक्षरीकृत)और(=च अनक्षररूप(अक्षररहित)
अक्षरीकृतः शास्त्र-अभिव्यञ्जकः संस्कृत-	=अक्षररूपभाषा (भाषात्मक शब्द) शास्त्रके प्रगटकरनेवाली संस्कृत और
विपरीत-	=(संस्कृतसे)प्रतिकूल वा विरोधीभाषा अर्थात् देशभाषा, प्राकृत, पैशाचीआदि
भेदात् आर्य-म्लेच्छ व्यवहारहेतुः;अनक्षरात्मकः	=भेदसे आर्य और म्लेच्छ(मनुष्यों)के व्यवहारका कारणहै । अनक्षररूप भाषा
द्विइन्द्रिय-आदीनाम्;अतिशय-ज्ञान-स्वरूप-प्रतिपादनहेतुः	=दोइन्द्रियादिजीवोंके है,औरसर्वोत्तमज्ञानकास्वरूपकहनेकाकारणहैअर्थात्अक्षररहित भाषा है सो दोइन्द्रियवाले जीवोंमें, तीन इन्द्रियवाले जीवोंमें, चारइन्द्रिय वाले जीवोंमें, औरकितनेई पांचइन्द्रियवालेजीवोंमेंभीपाईजातीहैऔर(अक्षररहितभाषाही) अतिशयरूप अथवा महान्ज्ञानके प्रकाशनेके कारण सर्वज्ञके दिव्यधुनिमेंभी है ॥
सः एषः सर्व-प्रायोगिक-	=सो यह (भाषास्वरूपशब्द) समस्त प्रायोगिक है अर्थात् पुरुषके प्रयत्नसे होताहै ॥
अभाषा-आत्मकः द्वि-विधः; प्रायोगिकः	=अभाषास्वरूप (शब्द) दोप्रकारहै,प्रायोगिकअर्थात्पुरुषकेनिमित्तसे उपजाऊ
च*वैस्रसिकः इति*॥	=और वैस्रसिक (वैश्रसिक) पुरुषके प्रयत्नकी अपेक्षारहित स्वभावसे उपजनेवाला ॥

वैस्रसिको बलाहकादिप्रभवः। प्रायोगिकश्चतुर्धा, ततविततघनसौषिरभेदात् ॥ तत्र चर्मतननानिमित्तः पुष्करभेरीदर्दुरादिप्रभवस्ततः। तन्त्रीकृतवीणासुघोषादिसमुद्भवो विततः। तालघण्टालालनाद्यभिघातजो घनः। वंशशंखादिनिमित्तःसौषिरः॥बन्धो द्विविधो वैस्रसिकः प्रायोगिकश्च ॥ पुरुषप्रयोगानपेक्षो वैस्रसिकः। तद्यथा—स्निग्धरूक्षत्वगुणनिमित्तो विद्युदुल्काजलधाराग्नीन्द्रधनुरादिविषयः॥ पुरुषप्रयोगनिमित्तः प्रायोगिकः,अजीवविषयो जीवाजीव विषयश्चेति द्विधाभिन्नः। तत्राजीवविषयो जतुकाष्ठादिलक्षणः। जीवाजीवविषयः कर्मनोकर्मबन्धः॥ सौक्ष्म्यं द्विविधं, अन्त्यमापेक्षिकं च ॥

वैस्रसिकः बलाहक-आदि-प्रभवः; =वैस्रसिक (अभाषास्वरूपशब्द) जैसे मेघ(=बलाहक) आदिसे उपजनेवाला ॥
प्रायोगिकः चतुर्धा *तत-वितत-घन-सौपिर-भेदात्; =प्रायोगिक (अभाषास्वरूपशब्द,चारप्रकार, तत-वितत-घन-सौपिर भेदसे है
तत्र *चर्मतनन-निमित्तः पुष्कर-भेरी (=भेरि) =तहां चमड़ेके तननेके कारण वा हेतुसे खंजरी (=पुष्कर) दुंदुभि-ढोल नगारा
दर्दुर आदि-प्रभवः ततः; =दर्दुर (एकप्रकारका) बाजा आदिसे उत्पन्न होनेवाला शब्द तत है।
तन्त्रीकृत-वीणा-सुघोष- =तांत अथवा तारग्चित बीन (=वीणा) सुघोष अर्थात् एकप्रकारका सितार
आदि समुद्भवः विततः; ताल-घण्टा-लालन-आदि- =आदिसे उपजाऊ (शब्द) वितत है ॥ ताल-घंटाका हिलावना (=लालन, आदिके
अभिघातजः घनः। वंश-शंख आदि-निमित्तः =चोटसे उपजाल (=अभिघातज) शब्द घन है। वंसुरी शंख आदिहैं कारण जिसको
सौपिरः; बन्धः द्विविधः वैस्रसिकः प्रायोगिकः च*॥ =(ऐसा शब्द) सौपिर है। बन्ध दो प्रकार है। वैस्रसिक और प्रायोगिक
पुरुष-प्रयोग-अनपेक्षः वैस्रसिकः,तद्यथा* =पुरुषके प्रयोग वा प्रयत्नकी अपेक्षारहित वैस्रसिक है ॥ जैसे
स्निग्ध-रूक्षत्व गुण-निमित्तः विद्युत्-उल्का-जलधार- =सचिक्कन, रूखापन गुणकेकारणसे बिजली, उल्कापात, बादल
अग्नि-इन्द्रधनुष्-आदि-विषयः,पुरुषप्रयोगनिमित्तः =आग,इन्द्र धनुषादि सम्बन्धी है ॥ पुरुषके प्रयत्न हेतुक वा कारणक है सो
प्रायोगिकः अजीवविषयः च *जीवाजीवविषयः इति* =प्रायोगिक है। (प्रायोगिकबन्ध) अजीव सम्बंधी और (=च) जड़चेतनसंबंधी
द्विधा*भिन्नः,तत्र*अजीवविषयः जतु-काष्ठादि- =दोप्रकारमें (द्विधा) विभाजित है। तहां अचेतनसंबंधी लाख(जतु)और काठआदिका
लक्षणः;जीव-अजीव-विषयः कर्म-नोकर्म बन्धः; =सम्बंध होता है। चेतनअचेतनसम्बंधी कर्म-नोकर्मका (जीवके साथ) बंधहै;
सौक्ष्म्यम् ॥ द्विविधम् ॥; अन्त्यम् ॥ आपेक्षिकं ॥ च॥ =सूक्ष्मता दो प्रकार है अन्त्य और (=च) आपेक्षिक

तत्रान्त्यं परमाणूनाम् । आपेक्षिकं बिल्वामलकबदरादीनाम् ॥ स्थौल्यमपिद्विविधं, अन्त्यमापेक्षिकं चेति ॥ तत्रान्त्यं जगद्व्यापिनि महास्कन्धे । आपेक्षिकं बदरामलकबिल्वतालादिषु ॥ संस्थानमाकृतिः । तद्द्विविधं, इत्थंलक्षणमनित्थंलक्षणं चेति ॥ वृत्तत्र्यस्रचतुरस्रायत-

तत्र*अन्त्यम्१ ।।।परमाणूनाम्३ ;आपेक्षिकम्१ ।।।बिल्व-आमलक-बदर आदीनाम्३ ॥

=तहां परमाणुओंकी (सूक्ष्मता) अन्त्य है । आपेक्षिक सूक्ष्मता वेल =बिल्व) =आमलेके„फलकी(=आमलक)और वेरआदिककीसूक्ष्मताहै अर्थात् वेलकेफलसे आमलेकाफल सूक्ष्म है औरआमलेकेफलसे झरवेरीके वेरआदि छोटे होतेहैं

स्थौल्यम्१ ।।।अपि द्वि-विधम्१ ।।।अन्त्यम्१ ।।।आपेक्षिकम्१ ।।।चइति

=स्थूलताभी दोप्रकारहै अन्त्य और(=च)आपेक्षिकअर्थात्किसीकीअपेक्षासे।

तत्र*अन्त्यम्१ ।।।जगद्व्यापिनि७ महास्कंधे७ ;

=तहां अन्तिम (स्थूलता,जगतमें व्याप्त होनेवाला वा सर्वलोकव्यापीमहास्कंधमेंहै

आपेक्षिकम्१ ।।।वदर-आमलक-बिल्व-ताल-आदिषु७ ;

=आपेक्षिक(स्थूलता)वेर, आमकेफल,वेलफल और तालफलादिकमें है अर्थात् झरवेरीकेवेरकी अपेक्षा आमला स्थूल होताहै आमलेसे वेल बड़ा होताहै और वेलकी अपेक्षा तालफलादिक बड़े होते हैं ॥

संस्थानम्१ ।।।आकृतिः१ ।।;

=संस्थान है सो आकृति अथवा आकारहै अर्थात् अवयव रचनाविशेष है।

तत्१ ।।।द्विविधम्१ ।।।इत्थम्१ ।।।लक्षणम्१ ।।।

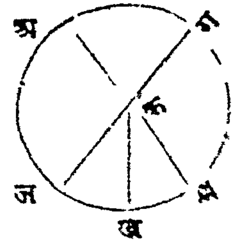
=वह(आकार,दोप्रकारहै इत्थंलक्षण अर्थात् आकार जिसकालक्षणकथनयोग्यहै

अनित्थम्१ ।।।लक्षणम्१ ।।।च*इति*॥

=और(=च) अनित्थं लक्षणअर्थात् वहआकारजिसकालक्षण कथनयोग्य नहींहै

वृत्त-त्र्यस्र चतुरस्र-आयत-

=गोलवा वर्तुल(=वृत्त) तिकोना(=त्र्यस्र) चतुष्कोण(चतुरस्र) आयत, जात्यायत अर्थात् समानान्तर चतुर्भुज जिसके सबकोन समकोन हों किंतु सबभुज बराबर नहीं परंतु आमनेसामनेके भुज बराबर हों ॥



'वृत्त' यह सम धरातल क्षेत्र है जो एक रेखासे जिसको परिधि कहते हैं घिरा हो और ऐसा हो कि उसके अन्दर एक विशेष बिन्दुसे परिधि तक जितनी रेखा खींची जांय वह सब आपसमें बराबर हों और इस बिन्दुको उसवृत्तका केन्द्रकहतेहैं॥ वृत्त यह गोल क्षेत्र है जिसकी अ च ज रेखा परिधि है 'क' केन्द्र है और जिसकी कज, कख, कच, क ग और कअ सब रेखायें आपसमें बराबर हैं ॥

परिमण्डलादीनामित्थंलक्षणम् । ततोऽन्यन्मेघादीनां संस्थानमनेकविधमित्थमिदमिति निरूपणाभावादनित्थंलक्षणम् ॥ भेदाः षोढा, उत्करचूर्णखण्डचूर्णिकाप्रतराणुचटनविकल्पात् ॥ तत्रोत्करः काष्ठादीनां करपत्रादिभिरुत्करणम् । चूर्णो यवगोधूमादीनां सक्तुकणिकादिः । खण्डो घटादीनां कपालशर्करादिः । चूर्णिका माषमुद्गादीनां । प्रतरोऽभ्रपटलादीनाम् । अणुचटनं सन्तप्तायःपिण्डादिषु अयोघनादिभिरभिहन्यमानेषु स्फुलिङ्गनिर्गमः॥ तमो दृष्टिप्रतिबंधकारणं प्रकाशविरोधि॥ छाया प्रकाशावरणनिमित्ता । सा द्वेधा, वर्णादिविकारपरिणता

परिमण्डल-आदीनाम् इत्थंलक्षणम् । इत्थम् इदम् इति*=चारोओर गोलआदिकके इत्थंलक्षण(संस्थान) है ऐसे यह इत्थम् है

ततः*अन्यत्*मेघ-आदीनाम् संस्थानम् अनेकविधम् । =तिस (इत्थंलक्षणसंस्थान)से अन्यवादलआदिकका आकार वहुतप्रकारहै।

निरूपण-अभावात् =सो परिभाषण अथवा कथनक्रियेजानेके अभावसे

अनित्थंलक्षणम् ; भेदाः षोढा*उत्कर-चूर्ण-खण्ड-चूर्णिका-प्रतर-अणुचटन-विकल्पात् ॥ =अनित्थं लक्षण(संस्थान)है॥भेद छ प्रकार (=षोढा)अर्थात् उत्कर-चूर्ण-खण्ड-चूर्णिका-प्रतर-अणुचटन विकल्पसे है

तत्र उत्करः काष्ठ-आदीनाम् करपत्र-आदिभिः उत्करणम् ; =तहां उत्कर भेद काठादिका आरा (=करपत्र–क्रकच) आदिकसे =विदारण है ।

चूर्णः यव गोधूम-आदीनाम् सक्तु-कणिकादिः । चूर्ण जौ गेहूं(=गोधूम) आदिकोंका =सतुआ आटा वा चून आदिक है ।

खण्डः घटादीनां कपाल-शर्करादिः ॥ खंड घड़ादिकोंके टुकड़ा रोड़ादिक हैं।

चूर्णिका माष मुद्ग-आदीनाम् । =चूर्णिका उरद (माष) मूंग (=मुद्ग) आदिकी दाल है ।

प्रतरः अभ्र-पटल आदीनाम् । प्रतर अभ्रकके =पत्रादिकोंका (उपाटना) है ।

अणुचटनम् सन्तप्त-अयस्-पिण्डादिपु अयस्-घन-आदिभिः अभिहन्यमानेपु स्फुलिङ्ग-निर्गमः । अनुचटन वा अनुतर अतिगरमलोहेके =पिंडादिक विषैं लोहेके घनादिककरि चोटदेनेपर वा पीटनेपर =फुलिंगोका निर्गमन, उछलनावानिकलनाहै।

तमः दृष्टि-प्रतिबन्धकारणम् प्रकाश-विरोधि । तमअन्धकार दृष्टिकारोकनेवाला =उजालेका विलोम वा प्रतिकूल है ।

छाया प्रकाश आवरणनिमित्ता । छाया उजालेके ढकनेकाकारण है ।

सा द्वेधा*वर्णआदिविकार-परिणता । =वह छाया दो प्रकार है वर्णादि विकार परिणत अथवा तद्वर्ण परिणत (अर्थात् कांचविषैं मुखके) वर्णादिकका परिणमन दीखना

प्रतिविम्बमात्रात्मिका चेति ॥ आतपः आदित्यादिनिमित्तः उष्णप्रकाशलक्षणः ॥ उद्योतश्चन्द्रमणिखद्योतादिप्रभवः प्रकाशः॥ त एते शब्दादयः पुद्गलद्रव्यविकारास्त एषां सन्तीति शब्दबन्धसौक्ष्म्यस्थौल्यसंस्थानभेदतमश्छायाऽऽतपोद्योतवन्तः पुद्गला इत्यभिसम्बध्यते॥ च शब्देन नोदनाभिघातादयः पुद्गलपरिणामा आगमे प्रसिद्धाः समुच्चीयन्ते ॥ उक्तानां पुद्गलानां भेदप्रदर्शनार्थमाह—

प्रतिविम्बमात्र-आत्मिका[1/1]॥च*इति* ।	=और (=च)प्रतिविम्बस्वरूप ही(=मात्र)
उष्ण-प्रकाश-लक्षणः[1/1]। आतपः[1/1]।	=तप्त(=उष्ण-संतप्त)रूप है स्वभाव(=लक्षण)जिसका ऐसा प्रकाश वा उजाला है सो आतप है
आदित्य-आदि-निमित्तः[1/1]।	=उक्त आतप सूर्य,अग्नि,इत्यादिके निमित्तसे उत्पन्न होता है जैसे धूप, घाम, लौ सहित अग्नि का प्रकाश
उद्योतः[1/1]। चन्द्रमणि-	=ठंडा(शीतल)प्रकाश वा उजाला सो उद्योत है वह चन्द्रकान्ति
खद्योत-आदि-प्रभवः[1/1]।प्रकाशः[1/1]। । ते[1/3]।एते[1/3]।शब्दादयः[1/3]।	=जुगनू(पटवीजना)आदिकसे उपजनेवाला प्रकाश है । वे इतने शब्दादिक
पुद्गलद्रव्य-विकाराः[1/3]। ते[1/3]।	=पुद्गलद्रव्यके विकार,पर्याय,परिणाम वा परिणत हैं । ते (शब्दादिक)
एषाम्[6/3]।सन्ति T इति* शब्द-बन्ध-सौक्ष्म्य-स्थौल्य-	=जिनके (विद्यमान)है ऐसे शब्द-बन्धान-सूक्ष्मता-स्थूलतावाले
संस्थान-भेद-तमस्-छाया-आताप-उद्योतवन्तः[1/3]।	=आकार, भेद, अन्धकार, छाया, तप्त उजाला, शीतल प्रकाश
पुद्गलाः[1/3]।इति*अभिसम्बध्यते ॥ च-शब्देन[3/1]।	=पुद्गल हैं ऐसा सम्बन्ध कियाजाता है (इस सूत्रमें) चशब्दकरि
नोदन-अभिघात-आदयः[1/3]। पुद्गल परिणामाः[1/3]।	=प्रेरणा (नोदन) अभिघात(=मारना)आदिक पुद्गलद्रव्यके विकार वा पर्याय
आगमे[7/1]। प्रसिद्धाः[1/3]। समुच्चीयन्ते T ॥	=(जोपरिणाम)शास्त्रमें विख्यात वा व्यक्त है इकट्ठे लाये गये है अर्थात् ग्रहण कियेगये हैं ॥
उक्तानाम्[6/3]।पुद्गलानाम्[6/3]।भेद-प्रदर्शन-अर्थम्[2/1]।।।आह T	=कथित पुद्गलोंके भेद दिखावने के लिये(उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

नुद् छठवां तुदादिगणका धातु है जो प्रेरण अर्थमें (= प्रेरणे) आता है । (प्रश्न) यदि स्पर्श-रसादि तथा शब्दबन्धादि पुद्गलोंहीमें होते हैं तो स्पर्शादिक तथा शब्दादिकके लिये पृथक २ दो सूत्र क्यों किये ! अर्थात् स्पर्श रस गन्ध इत्यादि (२३) तथा शब्द-बन्ध इत्यादि (२४) दो सूत्र क्यों किये एकही सूत्रसे कार्य चलजाता (उत्तर) स्पर्श रस आदि जो हैं वे परमाणुओंमें तथा स्कन्धोंमें स्वभावसेही होते हैं और शब्द बन्ध-आदि तो स्कन्धोंहीमें होते है और अनेक निमित्तोंसे होते हैं न कि केवल परिणाम जन्य इसलिये पृथक् पृथक् सूत्र किये गये हैं ॥

॥ अणवः स्कन्धाश्च ॥ २५ ॥

प्रदेशमात्रभाविस्पर्शादिपर्यायप्रसवसामर्थ्येनाण्यन्ते शब्द्यन्त इत्यणवः ॥ सौक्ष्म्यादात्मादय आत्ममध्या आत्मान्ताश्च ॥ उक्तं च—अत्तादिअत्तमज्झं अत्तंतं णेव इंदिये गेज्झम् । जद्दव्वं अविभागी तं परमाणुं विआणेहि ॥ १ ॥ स्थूलभावेन ग्रहणनिक्षेपणादिव्यापारस्कन्धनात्स्कन्धा इति सञ्ज्ञायन्ते ॥ रूढौ क्रिया क्वचित्सती उपलक्षणत्वेनाश्रीयते इति ग्रहणादिव्यापार-

सूत्रम्—अणवः स्कन्धाश्च ॥ २५ ॥	= अणवः स्कन्धाः च (पुद्गलाः भवन्ति)
सूत्रार्थः—अणवः स्कन्धाः च*पुद्गलाः भवन्ति।	=अणुऔर स्कन्ध पुद्गलद्रव्यहैंअर्थात् पुद्गलद्रव्यकेअणुऔरस्कन्ध येदोभेदहैं
वृत्त्यनुवादः—प्रदेश-मात्र-भावि-स्पर्श-आदि-पर्याय-	=(एक)प्रदेशमात्र होकर भी जो होनेवाले(=भाविन्) स्पर्शादि पर्यायोंके
प्रसव-सामर्थ्येन॥अण्यन्ते। शब्द्यन्ते।	=उपजावनेकी(=प्रसव)शक्ति होनेसे जो कहेजाते हैं(अण्यन्ते=शब्द्यन्ते)
इति*अणवः; सौक्ष्म्यात्॥आत्म-आदयः	=ऐसे अणु है। सूक्ष्मपणासे(अणु,आपही आदि हैं
आत्म-मध्याः॥आत्म-अन्ताः। च*। उक्तम्॥ च*	=आपही मध्य हैं और आपही अन्त हैं (और) कहाभया भी है कि
अत्त-आदि॥अत्त-मज्झं॥(आत्म-आदि॥आत्म-मध्यम्॥)	=(परमाणु) आपही आदि आपही मध्य
अत्त-अत्तं॥(आत्म-अन्तम्॥)ण*एव*इंदिए॥ गेज्झम्॥ (न*एव*इन्द्रियैः॥ग्राह्यम्॥)	=आपही अन्त है(और) निश्चयसे(=एव)इन्द्रियोंकरि ग्रहण करनेयोग्य नहीं है
जद्द॥दव्वं॥अविभागी॥(यत्॥द्रव्यम्॥ अविभागी॥)	=जो अविभागी द्रव्यहै जिसका दूसरा विभाग नहीं हो सकता
तं॥ परमाणुं॥ विआणेहि।(तम्॥परमाणुम्॥विजानीहि।)	=उसको परमाणु जानो
स्थूल-भावेन॥ ग्रहण-निक्षेपण-आदि-	=असूक्ष्मपणाकरि अथवा मोटापन करि जुड़ने बिछुड़नेआदिरूप
व्यापार-स्कन्धनात्॥ स्कंधाः॥ इति*संज्ञायन्ते।	=व्यापारका स्कन्धोंसे वा संयोग (समूह)से स्कन्ध ऐसी संज्ञायें कीजातीहैं
रूढौ॥ क्रिया॥ क्वचित्*सती॥उपलक्षणत्वेन॥	=रुढिविषैं क्रिया कहीं कहीं होती हैं तौ भी उपचारताकरि
आश्रीयते।इति*ग्रहण-आदि-व्यापार-	=(उसरुढिका)आश्रय कियाजाता है(इसीन्यायसे)मिलन आदिके व्यापारकी

(१) दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है ॥ "पुद्गलाः" शब्दकी अनुवृत्ति तेईसवा सूत्रसे लीगई है ॥

अयोग्येष्वपि व्द्यणुकादिषु स्कन्धाख्या प्रवर्तते॥ अनन्तभेदा अपि पुद्गला अणुजात्या स्कन्धजात्या च द्वैविध्यमापद्यमानाः सर्वे गृह्यन्त इति तज्जात्याधारानन्तभेदसंसूचनार्थं बहुवचनं क्रियते॥ अणवः स्कन्धा इति भेदाभिधानं पूर्वोक्तसूत्रद्वयभेदसम्बन्धनार्थम्॥ स्पर्शरसगन्धवर्णवन्तोऽणवः। स्कन्धाः पुनः

अयोग्येषु॥ अपि॥ द्वि-अणुक-आदिषु॥ स्कन्ध-आख्या॥ प्रवर्तते।	=योग्यता न होनेपरभी दो अणु आदिमे स्कन्ध-संज्ञा =प्रवर्तती है अर्थात् दो अणु आदिके स्कन्धकें मिलने विछुड़नेकी योग्यता नहीं है तौभी रुढिके वशसे(दो अणु आदिके स्कन्धभी) स्कन्ध नाम पाते हैं
अणुजात्या॥ स्कंधजात्या॥ च॥ द्वैविध्यम्॥	=अणु जातिसे और(=च) स्कंध जातिसे दो प्रकारता को
आपद्यमानाः॥ अनन्त-भेदाः॥ अपि॥ पुद्गलाः॥ सर्वे॥	=प्राप्त होनेवाले अनन्त भेदवाले भी पुद्गल सर्व (अणु और स्कन्ध जातियोंमें)
गृह्यन्ते। इति॥	=ग्रहण कियेजाते है अर्थात् पुद्गलोंके अनन्त भेद है वे समस्त भेद अणु और स्कन्ध इन दो जातियों में गर्भित होजाते हैं भावार्थ यह है कि यद्यपि द्व्यणुकादिक तथा स्पर्श-रस-गंध-वर्णादिककरि पुद्गलोंके अनन्तभेद है तथापि वे समस्त भेद अणु और स्कन्ध इन दो जातियोंमे ही समावेश होजाते है।
तद्-जाति-आधार-अनन्त-	=तिन (अणु और स्कन्ध)की जातियोंके आश्रय रहनेवाले(पुद्गलों)के अनन्त
भेद-संसूचन-अर्थम्॥	=भेदोंके ज्ञापन वा जतलानेके लिये (सूत्रमें अणवः ऐसा अणु शब्दका बहुवचन और स्कन्धाः ऐसा स्कन्ध शब्दका
बहुवचनम्॥ क्रियते।	=बहुवचन किया है अर्थात् यद्यपि पुद्गलके अनन्त भेद हैं तो भी वे भेद अणु जाति और स्कन्ध जाति द्वारा दोही भेदोंमें सब ग्रहण कर लिये जाते हैं

इस प्रकार एक एक जाति(अणु और स्कन्धजातिके आधार अर्थात् एक एक जातिमेंभी अनन्त अनन्त भेद होते हैं इसी वातको जतलानेके लिये सूत्रमें बहुवचन दिये है॥

अणवः॥ स्कन्धाः॥ इति॥ भेद-अभिधानम्॥ पूर्व-उक्त-	=अणवः स्कंधाः इस प्रकार(पुद्गलोंके)भेदोंका कथन प्रथम कहेहुये
सूत्रद्वय-भेद-सम्बंधन-अर्थम्॥	=दो(तेईसवां और चौवीसवां) सूत्रके अन्तर(भेद) सम्बंधके लिये है
स्पर्श-रस-गंध-वर्णवन्तः॥ अणवः॥ । स्कंधाः॥ पुनः॥	=स्पर्श,रस,गंध वर्णवाले(वा संयुक्त)अणु हैं वहुरि स्कंध (है वे)

शब्दबन्धसौक्ष्म्यस्थौल्यसंस्थानभेदतमश्छायातपोद्योतवन्तश्च स्पर्शादिमन्तश्चेति ॥आह किमेषां पुद्गलानामणुस्कन्धलक्षणः परिणामोऽनादिरुत आदिमानित्युच्यते।स खलूत्पत्तिमत्त्वादादिमान्प्रतिज्ञायते ॥ यद्येवं तस्मादभिधीयतां कस्मान्निमित्तादुत्पद्यन्त इति॥ तत्र स्कन्धानां तावदुत्पत्तिहेतु-प्रतिपादनार्थमुच्यते—

॥ भेदसङ्घातेभ्य उत्पद्यन्ते ॥ २६ ॥

शब्द-बन्ध-सौक्ष्म्य-स्थौल्य-संस्थान-भेद-तमस्-छाया-आतप-	=शब्द, बन्ध, सूक्ष्मता, स्थूलता, आकार, खंड, अन्धकार, छांह, तप्तप्रकाश
उद्योतवन्तः[1/3] च *स्पर्श-आदिमन्तः[1/3] च*इति*	=और(=च)शीतलप्रकाश संयुक्त है। (और) स्पर्श-रस गंध-वर्णवान् भी(च) है
आह[1] किम्*एषाम्[6/3] पुद्गलानाम्[6/3] अणुस्कन्धलक्षणः[1/1]	=शिष्य पूछता है कि क्या इन पुद्गलोंके अणुस्कन्ध लक्षणरूप
परिणामः[1/1] अनादिः[1/1] उत*आदिमान्[1/1] इति*उच्यतेT	=विकार अनादि है अथवा (=उत) आदिमान् है(उत्तरमें) ऐसा कहाजाता है कि
सः[1/1] खलु*उत्पत्तिमत्त्वात्[5/1]।।आदिमान्[1/1] प्रतिज्ञायतेT	=वह(परिणाम)निश्चयसे उत्पत्तिमान होनेसे आदिमान् कहागया है
यदि*एवम्*तस्मात्[5/1] अभिधीयताम्। कस्मात्[5/1]	=जो ऐसा है अर्थात् आदिमान् है तौ(=तस्मात्)कहाजाना चाहिये कि किस
निमित्तात्[5/1] उत्पद्यन्तेTइति*; तत्र *स्कंधानाम्[6/3] तावत्*	=निमित्तसे वा किस कारणसे उत्पन्न होते है। तहां प्रथम(=तावत्) स्कंधोंकी
उत्पत्ति-हेतु-प्रतिपादन-अर्थम्[1/1]।।उच्यतेT	=उत्पत्तिका कारण कहनेके लिये (उत्तर सूत्रमें) कहाजाता है कि

॥ [1]भेदसंघातेभ्य उत्पद्यन्ते ॥ २६ ॥ =(पुद्गलानां स्कंधाः) भेदसंघातेभ्यः उत्पद्यन्ते ॥२६॥

= पुद्गलानां स्कंधाः भेदात्-संघातात्-भेदसंघाताभ्याम् च* उत्पद्यन्ते॥२६॥

सूत्रार्थः—पुद्गलानाम्[6/3] स्कंधाः[1/3] भेदात्[5/1] संघातात्[5/1]	=पुद्गलोंकेस्कंध भेदसे और संघातसे
भेद-संघाताभ्याम्[5/2] च*उत्पद्यन्तेT	=और (एकही कालमें) भेद संघात(दोनोंसे) उत्पन्न होते हैं अर्थात् (१) बाह्य वा अभ्यन्तरिक निमित्तसे स्कंधोंके टूट जानेसे दो परमाणुओं तकके अनेक स्कंध

उत्पन्न होते हैं (२)और बाह्य वा अभ्यन्तरिक कारणसे अन्य अन्य स्कंधोंके संघातसेभी स्कंध होते हैं

(१) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें "संघातभेदेभ्य उत्पद्यन्ते" ऐसा पाठ उपर्युक्त सूत्रकाहै, परन्तु अर्थ दोनोंसम्प्रदायोंमें एकसा है॥

संघातानां द्वितयनिमित्तवशाद्विदारणं भेदः । पृथग्भूतानामेकत्वापत्तिः संघातः ॥ ननु च द्वित्वाद्-द्विवचनेन भवितव्यम् ॥ बहुवचननिर्देशस्तृतीयसंग्रहार्थः। भेदात्संघाताद्भेदसंघाताभ्यां च उत्पद्यन्त इति ॥ तद्यथा—द्वयोः परमाण्वोः संघाताद्द्विप्रदेशः स्कन्ध उत्पद्यते । द्विप्रदेशस्याणोश्च त्रयाणां वा अणूनां संघातात्त्रिप्रदेशः।द्वयोर्द्विप्रदेशयोस्त्रिप्रदेशस्याणोश्चतुर्णां वा अणूनां संघाताच्चतुःप्रदेशः

	तथा ऐसेही किसी स्कन्धके भेद होनेसे अथवा विदारे जानेसे और उसी समयमें अन्य स्कन्धोंके संघातके जुड़नेसे स्कन्धोंकी उत्पत्ति होती है
वृत्त्यनुवादः–संघातानाम्[६।३] द्वितयनिमित्त-वशात्[५।१]	=संघातोंके दोनों (बाह्य और अभ्यन्तर)निमित्तोंके बलसे
विदारणम्[१।१] भेदः[१।१]; पृथक्*भूतानाम्[६।३] एकत्व-	=टूटना(न्यारा न्यारा वा भिन्न २ होना)है सो भेद है। न्यारीन्यारी द्रव्योंके एकपनाकी
आपत्तिः[१।१] सङ्घातः[१।१] ननु*च*द्वित्वात्[५।१]	=प्राप्ति है सो संघात है । पुनि प्रश्न द्वित्वसे अर्थात् भेदपना और संघातपना के निमित्तोंसे (इस सूत्रमें)
द्विवचनेन[३।१]	=दो वचन युक्त(भेदसंघाताभ्याम् ऐसा न कि बहुवचन भेद संघातेभ्यः ऐसा)
भवितव्यम्[१।१] । बहुवचन-निर्देशः[१।१]	=होना चाहिये। (उत्तर इससूत्रमें) बहुवचनका निरूपण वा वर्णन
तृतीय-संग्रह-अर्थः[१।१]; भेदात्[५।१]	=तीसरे(भेदसंघाताभ्याम्)के समुच्चय के लिये है ।(पुद्गलोंके स्कन्ध) विछुड़नेसे
संघातात्[५।१] भेद-संघाताभ्याम्[५।२] च*	=मिलने(जुड़ने)से और(=च) मिलने विछुड़ने (दोनोंसे)
उत्पद्यन्ते इति*तद्यथा*द्वयोः[६।२] परमाण्वोः[६।२]	=उत्पन्न होते है(अतःभेदसंघातेभ्यःऐसा बहुवचन है) । जैसेकि दो परमाणुओंके
संघातात्[५।१] द्विप्रदेशः[१।१] स्कंधः[१।१] उत्पद्यते । द्विप्रदेशस्य[६।१] च*	=जुड़नेसे दो प्रदेशवाला स्कन्ध उपजता है । दो प्रदेशवाले (स्कन्ध)के और(=च)
अणोः[६।१] त्रयाणाम्[६।३] वा*अणूनाम्[६।३] संघातात्[५।१]	=अणुके (=अणोः)(संघातसे) अथवा तीन(खुलीहुई)परमाणुके मिलनेसे(=संघातात्)
त्रिप्रदेशः[१।१]; द्वयोः[६।२] द्वि-प्रदेशयोः[६।२]	=तीन प्रदेशवाला(स्कंध उपजता)है । दो दो प्रदेशवाले दो (स्कन्धों)के (संघातसे),
त्रि प्रदेशस्य[६।१] अणोः[६।१] चतुर्णाम्[६।३] वा*	=तीन प्रदेशवाले(स्कन्ध) के और अणुके संघातसे, अथवा चार (खुलीहुई)
अणूनाम्[६।३] संघातात्[५।१] चतुः प्रदेशः[१।१]	=परमाणुओंके संघातसे चार प्रदेशी(स्कंध उत्पन्न) होता है

सिद्धे विधिरारभ्यमाणो नियमार्थो भवति। अणोरुत्पत्तिर्भेदादेव, न संघातान्नापि भेदसंघाताभ्यामिति॥ आह संघातादेव स्कन्धानामात्मलाभे सिद्धे भेदग्रहणमनर्थकमिति ॥ तद्ग्रहणप्रयोजनप्रतिपादनार्थमिदमुच्यते—

सूत्रार्थः—भेदात् अणुः उत्पद्यते T =भेद से अणु उत्पन्न होता है अर्थात् अणु किसी वस्तुके खण्ड से उपजता है न कि किसी वस्तु के जुड़ने अथवा मिलने से ॥

वृत्त्यनुवादः–सिद्धे विधिः आरभ्यमाणः नियम-अर्थः भवतिT =सिद्ध होनेपर अर्थात् सिद्ध होनेके पश्चात् विधि सूत्रका प्रारम्भ नियमके लिये =होता है अर्थात् जो पहले विधि सूत्रसे अर्थ सिद्ध होनेपर फिर विधि सूत्र कहा जाता है वह नियमके लिये होता है और उसको नियम सूत्र(सीमाबंधक सूत्र) कहते हैं जैसे पचीसवां सूत्रमें कहा है कि पुद्गलके अणु और स्कंध दो भेद होते है और छब्बीसवां सूत्रमें कहते है कि (१)भेदसे (२) संघातसे और (३) भेद संघात दोनोंसे स्कंध उत्पन्न होते हैं यह विधि सूत्र अथवा एक बातको साधारण वर्णन करनेवाला सूत्र है, पचीसवां सूत्रसे इस २६वां सूत्रमें अणवः स्कंधाः दोनोंकी अनुवृत्तियां यदि लीजावैं तो यह अर्थ होगा कि अणु और स्कंध (१) भेदसे (२) संघातसे और (३) एकही समयमें भेद संघात दोनोंसेही उत्पन्न होते है, यथार्थमें यह अर्थ है नहीं इसलिये ऊपरके अर्थको नियमित वा रोकनेके लिये पूर्वोक्त विधि सूत्र २६वां के पश्चात्ही दूसरा विधि सूत्र अर्थात् २७वां सूत्र कि अणु भेदसेही उपजते है (नकि संघातसे और भेद संघात दोनोंसे उपजते हैं) दिया है ॥

अणोः उत्पत्तिः भेदात् एव*, न* संघातात् अपि* =अणुकी उत्पत्ति भेदसेही है नकि संघातसे भी ॥

भेद-संघाताभ्याम् इति*। आह। संघातात् एव* =(और नकि एकसमयमें)भेदसघात दोनोसे(होतीहै)(शिष्य)तर्क करताहैकि संघातसेही

स्कंधानाम् आत्म-लाभे सिद्धे भेदग्रहणम्॥ =स्कंधोंके स्वरूप लाभ सिद्ध होने पर(संघातके साथ) भेदको ग्रहण करना

अनर्थकम्॥ इति* =निष्प्रयोजन है अर्थात् संघातसे स्कंध उत्पन्न होते है फिर भेद संघातसे उत्पत्ति कहना निरर्थक है

तद्-ग्रहण-प्रयोजन-प्रतिपादन-अर्थम्॥ =उस संघातके साथ भेद(शब्द)के लानेके प्रयोजन कहनेके लिये

इदम्॥ उच्यते£ =यह(अग्रिम सूत्र)कहाजाता है कि

॥ भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषः ॥ २८ ॥

अनन्तानन्तपरमाणुसमुदयनिष्पाद्योऽपि कश्चिच्चाक्षुषः कश्चिदचाक्षुषः ॥ तत्र योऽचाक्षुषः

सूत्रम्—भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषः[1]॥ २८ ॥ = भेदसंघाताभ्याम्चाक्षुषः (स्कंधः उत्पद्यते)॥ २८॥

सूत्रार्थः—भेदसंघाताभ्याम् ३। चाक्षुषः १।स्कंधः १। उत्पद्यते १=भेद संघात(दोनों)सेही नेत्र इन्द्रियगोचर स्कंध उत्पन्न होता है(भेदसे नहीं होता) अर्थात् जो सूक्ष्म परिणामनरूप स्कंध है उसका भेद अथवा खंड होनेपर तौ सूक्ष्म परिणामको नहीं छोड़ता हैं इससे वह नेत्र इन्द्रियसे अगोचर है परन्तु जब वह सूक्ष्म परिणाम(=भेद)रूप किया हुआ स्कंध अन्य स्कंधमें संघातरूप होकर मिले तब सूक्ष्मपणाके परिणामको छोड़कर स्थूलपनाको प्राप्त होकर नेत्र इंद्रिय ग्राह्य होता है इसलिये कहते हैं कि भेद संघात दोनोंसे नकि केवल भेदसे नेत्रइन्द्रियगोचर स्कंध पैदा होता है

वृत्त्यनुवादः—अनन्तानन्त-परमाणु-समुदय-निष्पाद्यः १।अपि*=अनन्तानन्त परमाणुके समूहकरि उत्पन्न होने योग्य(स्कंधों)में भी

कश्चित्*चाक्षुषः १। कश्चित्*अचाक्षुषः १। =कोई एक (स्कंध,नेत्र इन्द्रियकरि ग्राह्य है,कोई एक नेत्रइन्द्रियकरि ग्रहण योग्य नहीं है

तत्र*यः १। अचाक्षुषः १। =तहां जो स्कंध नेत्र इन्द्रियके ग्रहण योग्य नहीं (अचाक्षुषः) है

(१) नेत्र इन्द्रियगोचर=नेत्र इन्द्रियसे प्रत्यक्षहोनेवाला, नेत्रइन्द्रियकर ग्राह्य, नेत्र इन्द्रियके ग्रहण योग्य (२) दिगम्बर आम्नायकी बहुतसी मुद्रणयन्त्रकी पुस्तकें तथा हस्तलिखित कई प्रतियोंमें यह सूत्र पूर्वोक्त लेखअनुसार है परन्तु श्वेताम्बर सम्प्रदायके"सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें तथाश्रीसिद्धसेनसूरि रचिता भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकाके पृष्ठ ४०६ पर यह सूत्र इस प्रकार है कि "भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषाः" ॥ अर्थात् चाक्षुषा बहुवचन चाक्षुष'(नेत्र इन्द्रियगोचर)का है चाक्षुषा' शब्दमें योग्यता और सुगमता यह जान पड़ती है कि'स्कन्धाः'शब्दकी अनुवृत्ति पच्चीसवां सूत्रसे और उत्पद्यते शब्दकी अनुवृत्ति छव्वीसवां सूत्रसे लेकर इधरउधरसे खैंचातानी बिना कियेहुये "भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषाः स्कन्धाः उत्पद्यन्ते" मय अनुवृत्तियोंकेसूत्र होजाता है। इसमें सदेह नहीं कि एक प्रकारके तुल्यसूत्र दीर्घ होजाताहै अर्थात् "भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषाः" होजाता है अनुवृत्ति स्कन्धाके स्थानमें'स्कन्ध'की माननी पड़ती है और इसी प्रकार उत्पद्यन्तेके स्थानमें उत्पद्यतेकी। अर्थ इसप्रकार सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें किया है कि

भेद-संघाताभ्यां ३। चाक्षुषाः ३।स्कन्धाः ३। =भेद-संघात (दोनों)से ही नेत्र इन्द्रियसे प्रत्यक्ष होसकनेवाले स्कन्ध

उत्पद्यन्ते अचाक्षुषाः ३।तु*यथा*उक्तात् ५॥ =उत्पन्न होते हैं और (=तु)जोनेत्र इन्द्रियगोचर नहीं है वे जैसाकि (छव्वीसवांसूत्रमें कहागया है कि)

संघातात् ५।भेदात् ५। संघातभेदात् ५।च*इति* =संघातसे,भेदसे तथा(=च) संघातभेद(दोनों)से(ही)(उत्पन्न होतेहैं)।अर्थ दोनोंसम्प्रदायोंमें एकसाहै॥

स कथं चाक्षुषो भवतीति चेदुच्यते । भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषः । न भेदादिति ॥ का तत्रोपपत्तिरिति चेत्-ब्रूमः । सूक्ष्मपरिणामस्य स्कन्धस्य भेदे सौक्ष्म्यापरित्यागादचाक्षुषत्वमेव । सौक्ष्म्यपरिणतः पुनरपरः सत्यपि तद्भेदेऽन्यसंघातान्तरसंयोगात्सौक्ष्म्यपरिणामोपरमे स्थौल्योत्पत्तौ चाक्षुषो भवति॥ आह धर्मादीनां द्रव्याणां विशेषलक्षणान्युक्तानि, सामान्यलक्षणं नोक्तं, तद्वक्तव्यम्॥ उच्यते—

॥ सद्द्रव्यलक्षणम् ॥ २९ ॥

स:[१/१] कथम्* चाक्षुष:[१/१] भवतिT इति* चेत्* उच्यतेT । =सो कैसे नेत्र इन्द्रियगोचर होता है। ऐसी शंका होनेपर कहाजाता है कि

भेदसंघाताभ्याम्[३/२] चाक्षुष:[१/१] न* भेदात्[५/१] इति* =भेदसंघात(दोनों)से नेत्र इन्द्रियगोचर(स्कन्ध)होता है न भेद वा खंडसे केवल ।

का[१/१]॥ तत्र* उपपत्ति:[१/१]॥ इति* चेत्* ब्रूम:T । =क्योंकर तहां(चाक्षुषस्कन्धकी)उत्पत्ति है ऐसा संदेह है(उत्तरमें) हम कहते हैं कि

सूक्ष्म-परिणामस्य[६/१] स्कन्धस्य[६/१] भेदे[७/१] सौक्ष्म्य- =सूक्ष्म परिणामनरूप स्कन्धके भेद वा खंड होनेपर सूक्ष्मताके

अपरित्यागात्[५/१] अचाक्षुषत्वम्[१/१]॥ एव* । =न छोड़ने(के कारण)से नेत्र इन्द्रियके अगोचरही रहता है।

सौक्ष्म्य-परिणत:[१/१] पुन:* अपर:[१/१] सति[७/१] अपि* तद्-भेदे[७/१] =वहुरि कोई एक(=अपर)सूक्ष्मतारूप परिणामा(स्कन्ध)हो उस(स्कन्ध)के भेद होनेपर

अन्य-संघात-अन्तर-संयोगात्[५/१] सौक्ष्म्य- =अन्य(स्कन्ध)का संघात विशेषके(अन्तर)मिलनेसे सूक्ष्मपनाके

परिणाम-उपरमे[७/१] स्थौल्य-उत्पत्तौ[७/१]॥ चाक्षुष:[१/१] भवतिT ॥ =परिणामनको छोड़नेपर और(=च)स्थूलताके उत्पन्न होनेपर नेत्र इन्द्रियगोचर होताहै

आहT धर्मादीनां[६/३] द्रव्याणाम्-विशेष-लक्षणानि[१/३]॥ उक्तानि[१/३]॥ =शिष्य पूछता है कि धर्मादिक द्रव्योंके विशेष लक्षण कहेगये

सामान्य-लक्षणम्[१/१]॥ न* उक्तम्[१/१]॥ तद्-वक्तव्यम्[१/१]॥ उच्यते । =सामान्यलक्षण नही कहागया, उस सामान्यलक्षणको कहना चाहिये-कहाजाताहैकि

सद्द्रव्यलक्षणम् ॥ २९ ॥ = सत्-द्रव्य-लक्षणम् (भवति) ॥ २९ ॥

सूत्रार्थः—सत्[१/१]॥ द्रव्य-लक्षणम्[१/१]॥ भवतिT =द्रव्यका लक्षण सत् है वही द्रव्य है अथवा जो सत्‌रूप हैं वही द्रव्य है

श्वेताम्बरआम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें तथा भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थ टीकामें यह सूत्र नहीं है अर्थात इसको सूत्र नहीं माना है वार्तिक और वृत्तिरूपमें दिया है ॥

यत्सत्तद्द्रव्यमित्यर्थः ॥ यद्येवं तदेव तावद्वक्तव्यं किं सत् ? इत्यत आह—

॥ उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् ॥ ३० ॥

चेतनस्याचेतनस्य वा द्रव्यस्य स्वां जातिमजहत उभयनिमित्तवशाद्भावान्तरावाप्तिरुत्पादनमुत्पादः । मृत्पिण्डस्य घटपर्यायवत् ॥

वृत्त्यनुवादः—यद् ।सत् ।तद् ।द्रव्यम् ।इति*अर्थः =जो सत् है वह द्रव्य है ऐसा तात्पर्य है

यदि ।एवम्*तावत्*तद् । एव* =जो ऐसे है अर्थात् जो सत् है सो द्रव्य है तो(=तावत्)सोही (तद्वएव)

वक्तव्यम् ।किम् ।सत् ।? इति*अतःआह। =कहना चाहिये सत् क्या है इसलिये(आचार्य अग्रिमसूत्रमें) कहते हैं कि

(१ उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं (२ सत् ॥३०॥ = भवति सत् उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तम् ॥ ३०

सूत्रार्थः—उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्तम् ।सत् ।भवति। =उत्पत्ति-नाश-स्थिरता स्वरूप (=युक्त) सत् है वा उत्पादव्ययध्रौव्य लक्षणवाला (=युक्त) सत् है अर्थात् (३ उत्तर पर्यायका उपजना सोही पूर्व पर्यायका नाश होना है और जो पूर्व पर्यायका नाशहोना सोही उत्तर पर्यायका उत्पाद है और द्रव्य है सो उत्पादमेंभी वही द्रव्य है और व्ययमें भी वही द्रव्य है अन्य द्रव्य नहीं होगई है और उत्पाद-व्ययद्रव्यमें समय समय होता है इससे सर्वद्रव्य परिणामी है परिणामन विना किसी समयमेंभी कोई द्रव्य नहीं रहती है । ये(उत्पाद-व्यय ध्रौव्य) तीनों गुण द्रव्यमें एक साथ निरन्तर रहते हैं ।

वृत्त्यनुवादः—स्वाम् ।जातिम् ।अजहतः ।चेतनस्य । =जिसने अपनी जातिको नहीं छोड़ा है चेतन

अचेतनस्य ।वा*द्रव्यस्य ।उभय-निमित्त-वशात् । =अथवा अचेतन द्रव्यके (बाह्य, अभ्यन्तर) दोनों कारणोंके वलसे

भावान्तर-अवाप्तिः ।उत्पादनम् ।उत्पादः । =(एक अवस्थासे)अन्य अवस्था वा परणतिको प्राप्त होना सो उत्पाद है

मृद् ।पिण्डस्य । घट-पर्यायवत्* =माटीके पिंडके घट पर्याय होने सदृश है अर्थात् मृतिका द्रव्य विषैं पिंड पर्यायका

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों सम्प्रदायोंमें एकसा है ॥ श्वेताम्बर आम्नायमें कई पाठ हैं उनमेंसे एक पाठ मिलता है (देखो पृष्ठ १०१) ॥

(२) (प्रश्न) जब उनतीसवा सूत्रमें 'सत्' शब्द है तो यहां तीसवा सूत्रमें 'सत्' शब्द क्यों लाये हैं, उनतीसवा सूत्रसे अनुवृत्ति लेकर ऐसा सूत्र क्यों नहीं किया कि "उत्पाद व्यय ध्रौव्ययुक्त" ॥(उत्तर) यह सदेह रहता कि 'सत्' शब्दकी अनुवृत्ति है अथवा 'द्रव्यलक्षणम्'का क्योंकि उत्पाद व्यय ध्रौव्ययुक्त सत् अथवा उत्पाद-व्यय ध्रौव्य युक्तम् द्रव्यलक्षणम् इन दोनोंका अर्थ एकही है (३) जैसे सोनेके कुण्डलोंका कड़ेरूप होना सोतो उत्पाद है और

तथा पूर्वभावविगमनं व्ययः । यथा घटोत्पत्तौ पिण्डाकृतेः॥ अनादिपारिणामिकस्वभावेन व्ययोदयाभावात् ध्रुवति स्थिरीभवतीति ध्रुवः ।

नाश होना और घट पर्यायका उपजना इस प्रकार उत्पाद जानना

तथा॥पूर्वभावविगमनम्॥।व्ययः। । =वैसेही (=तथा) पहिली अवस्थाका विनाश होना (=विगमनं) समुच्छेद होना अथवा अभाव होना सो व्यय है

यथा॥घट-उत्पत्तौ॥पिण्ड-आकृतेः॥; अनादि-पारिणामिक-स्वभावेन (१)व्यय-उदय-अभावात्। (२)ध्रुवति। स्थिरीभवति। इति॥ध्रुवः। =जैसे घटके उपजनेमें पिंडके आकारका (विनाश होना) अनादिकालसे =परिणमन होनेवाले स्वभाव द्वारा (पर्यायोंके) विनाश उत्पादनके वशसे रहित =स्थिर रहता है वा अवतिष्ठमान रहता है (=स्थिरी भवति) ऐसा ध्रुव है अर्थात् जो पूर्वभावका नाश और उत्तरभावका उत्पाद होतेभी अपनी जातिको नही छोड़ता है सो ध्रुव है, पर्याय नवीन उपजतीहैं और विनशती हैं, द्रव्यस्वभावकरि उत्पाद विनाशरूप नही है ध्रुव है ही ॥

कुण्डलरूप अवस्थाका नष्ट होना सो विनाश वा व्यय है और पीतरग, भारीपन आदि अपनी सोनेकी जातिको लिये हुए दोनों अवस्थाओंमें विद्यमान रहना सो ध्रौव्य है। और भी जैसे मिट्टीके पिंडका घट करना सो उत्पाद है ॥ और पिंडपर्यायका अभाव सो व्ययहै और पिंडपर्यायमें तथा घटपर्यायमें मिट्टीका अभाव न होना तथा सर्व मिट्टीके गुणोंको धारण किये हुये दोनों पिंड तथा घट अवस्थाओंमें रहना है सो ध्रौव्य है ॥

(१) श्वेताम्बरआम्नायमें इस सूत्रके भिन्नभिन्नभाष्य और पाठ ऐसे हैं कि (क)उत्पादव्ययाभ्यां ध्रौव्येण च युक्तंसत्" (ख)उत्पादव्ययाभ्यां ध्रौव्येणच युक्तसतोलक्षणम् (उत्पादसे, व्ययसे, तथा ध्रौव्यसे, युक्त होना यह सतका लक्षण है) (ग) उत्पादव्ययौ ध्रौव्यं चैतत् त्रितययुक्तं सत् (घ) उत्पादव्ययौ ध्रौव्य च सतो लक्षणम् (ङ)उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् अर्थात् उत्पाद व्यय ध्रौव्य ये तीनों एकही पदमें पढे हैं ॥ सर्वथा सूत्रका यह अर्थहै कि उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य सहित सत् है ॥

(२)अनेकान्तस्वरूप वस्तुके अन्वयी जोडरूप तो गुण है और व्यतिरेकी पर्याय हैं जैसे मृत्तिकाविषैं स्पर्श रस गन्ध रूप ये तो गुणहैं और पिंड, घट कपाल, खंड, शर्करादिक पर्याय है ॥ स्पर्श रस गन्ध वर्ण गुण हैं ते तो मृत्तिका के साथही घट कपाल खंडादिक सर्वपर्यायोंमें पाये जाते हैं तिससे स्पर्शादि गुण अन्वयी हैं। और घट कपालादिक पर्याय भिन्नभिन्न कालमें पायेजाते हैं। जिस कालमें पिंड पर्याय है तिस कालमें घटादिक अन्य पर्याय नही हैं और घट पर्याय है तिसमें पिण्डादिक पर्याय नहीं है, तिससे पर्याय व्यतिरेकी है और द्रव्यसे गुण पर्याय भिन्न नहीं है गुण पर्यायात्मक ही द्रव्य है ॥ गुण हैं वे तो द्रव्यमें युगपत् प्रवर्तते हैं और पर्याय हैं ते क्रमकरि प्रवर्तती हैं, तिससे गुणपर्यायहैं ते द्रव्यका स्वभाव भूत हैं तिससे द्रव्यलक्षणपना को धारण करती है ॥ इस प्रकार द्रव्यके तीन लक्षण (उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य) कहेगये हैं।

ध्रुवस्य भावः कर्म वा ध्रौव्यम् । यथामृत्पिण्डघटाद्यवस्थासु मृदाद्यन्वयः ॥ तैरुत्पादव्ययध्रौव्यैर्युक्तं सदिति ॥ आह भेदे सति युक्तशब्दो दृष्टः । यथा दण्डेन युक्तो देवदत्त इति ॥ तथा सति तेषां त्रयाणां

ध्रुवस्य[६।१] भावः[१।१] कर्म[१।१] वा* ध्रौव्यम्[१।१] ।	ध्रुवका भाव अथवा कर्म है सो ध्रौव्य है अर्थात् स्थिरता अथवा स्थिर रहना ध्रौव्य है
यथा* (१)मृद्-पिण्ड-घटादि-अवस्थासु[७।३] मृद्-आदि-अन्वयः[१।१] ॥	=जैसे मिट्टीका ढेला घट (कपाल) आदिक अवस्थाओं में मिट्टी आदि है =सो जोड़ रूप वा सर्व दशाओंमें सम्बन्धरूप है अर्थात् वही मिट्टी पिंडमें थी वही घटमें
तैः[३।३] उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यैः[३।३] युक्तम्[१।१] सत्[१।१] इति* ॥	=तिन उत्पत्ति-विनाश-स्थिरता (तीनों) करि सहित (=युक्त) सत् है ॥
आह T भेदे[७।१] सति[७।१] युक्तशब्दः[१।१] दृष्टः[१।१] ।	=प्रश्न करता है कि भेद होनेमें युक्त शब्द देखा जाता है अर्थात् जहां एक वस्तु से दूसरी वस्तु भिन्न दिखानी होती है वहां युक्त शब्द लाते हैं
यथा* दण्डेन[३।१] युक्तः[१।१] देवदत्तः[१।१] इति* ॥	=जैसे दंडकरि युक्त देवदत्त अर्थात् देवदत्त मनुष्य है सो और वस्तु है दंड अन्य वस्तु है । देवदत्त और दंड एक ही नहीं है
तथा* सति[७।१] तेषाम्[६।३] त्रयाणाम्[६।३]	=इस भांति (=तथा) होनें में (=सति) तिन तीन (उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य) कें

(१) "यथा मृत्पिण्ड घटाद्यवस्थासु मृदाद्यन्वय " ऐसा पाठ हो अर्थात् 'मृदन्वयः'के स्थानमें 'मृद्राद्यन्वय ' हो तो पिण्डका अर्थ लोहा (देखो पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ २३९) होगा और वाक्यका अर्थ इसप्रकार होगाकि जैसे मिट्टी और लोहा(=पिण्ड)घट आदिक लोटा, करहा अवस्थाओंमें मिट्टीऔर लोहेके जोडरूप वा अन्वय रूप है (२) द्रव्यका एक लक्षण सत् कहा, एक उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्तपणा कहा । एक गुण पर्यायवान् " (देखो सूत्र३८) कहा, इन तीन लक्षणोंके मध्य एकके कहने पर अन्य दो लक्षण अर्थसेही आजाते हैं ॥ सत् लक्षणके कहनमें उत्पाद व्यय ध्रौव्यवान् पना और गुण पर्यायवान् पणा स्वयमेव आजाते हैं ॥ और उत्पाद व्यय ध्रौव्यवान् कहने पर सत्पना और गुणपर्यायवान् पणा स्वयमेव गर्भित होजाता है और गुण पर्यायवान् पणा कहनेमें सत्पना और उत्पाद व्यय ध्रौव्यपना स्वयमेव आजाते हैं ॥

तैर्युक्तस्य द्रव्यस्य चाभावः प्राप्नोति ॥ नैष दोषः । भेदेऽपि कथञ्चिदभेदनयापेक्षया युक्तशब्दो दृष्टः । यथा सारयुक्तः स्तम्भ इति ॥ तथा सति तेषामविनाभावात्सद्व्यपदेशो युक्तः ॥ समाधिवचनो वा युक्तशब्दः । युक्तः समाहितः तदात्मक इत्यर्थः । उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्

च*तैः³।युक्तस्य६।।द्रव्यस्य६।।अभावः१।प्राप्नोति १ ॥	=और(=च)तिन(उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य)करि युक्त द्रव्यके अभाव प्राप्त होता है अर्थात् जो ऐसे तीन भाव पृथक् पृथक्करि युक्त है तो द्रव्यका अभाव आता है
न*एषः१।दोषः१।; (१ भेदे७।अपि*कथञ्चित्*	=(उत्तर) यह दूषण नहीं है, भेद होनेपरभी कभी कभी
अभेद-नय-अपेक्षया३।।युक्तशब्दः१। दृष्टः१।	=अभेदनयकी अपेक्षासे युक्त शब्द देखागयाहै अर्थात् जहां एकवस्तुसे दूसरीवस्तुको पृथक् दिखाना होता हैं वहां तो युक्त शब्द लाते ही हैं परन्तु कभी कभी अभेदपनाके अर्थमेंभी युक्त शब्द आता है ।
यथा*सारयुक्तः१।स्तम्भः१।इति * ॥ तथा*सति७।तेषाम्६३।	=जैसे सारयुक्त स्तम्भ है, तैसे होनेमें तिन (उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य)के
अविनाभावात्५।सत्-व्यपदेशः१।युक्तः१।	=अविनाभाव होनेसे(=एकबिना दूसरेका अस्तित्व न रहसकनेकेहेतुसे)सत्का कथन है
समाधिवचनः१।वा*युक्तशब्दः१। । युक्तः१।समाहितः१।	=अथवा युक्त शब्दएकमेकतारूप वचन (=समाधिवचन) है । युक्त है सो समाहित
तदात्मकः१।इति*अर्थः१।;उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य-युक्तं१।।सत्	=तदात्मक या तत्स्वरूप ऐसा अर्थ है । उत्पत्ति,नाश, स्थिरता,मिलित(=युक्त)सत् है,

(१) सर्वार्थसिद्धका प्रथमावृत्तिमें "भेदेऽपि कथञ्चिदभेदनयापेक्षया" इत्यादि पाठ है इस पर चरणटिप्पणी ऐसे है कि 'अभेदेऽपिकथञ्चिद्भेदापेक्षया इत्यपि पाठान्तरम्' द्वितीयावृत्तिमेंभी यही चरणटिप्पणी है परन्तु "अभेदेऽपि कथञ्चिदभेदनयापेक्षया" इत्यादि पाठ है यह छापेकी अशुद्धि है अथवा सम्भव है कि अन्य प्रकारकी अशुद्धि हो क्योंकि कोईभी पाठ हम लें, यदि आरभमें 'अभेद' शब्द है तो मध्यमें भेद शब्द होना चाहिये यदि प्रारम्भमें 'भेद' शब्द हो तो दूसरा शब्द अभेद होना चाहिये ॥ दो हस्तलिखित प्रतियोंमे "अभेदेऽपिकथंचिदभेदनयापेक्षया" पाठ है एक अन्य हस्त लिखित पुस्तकमें "अभेदेन कथंचिद्भेदनयापेक्षया" ऐसा पाठ है । इन समस्त पाठोंको छोडकर हमने प्रथमावृत्तिका पाठ लिया है क्योंकि शिष्यके प्रश्नके शब्दोंके क्रमानुकूल उत्तर प्राप्त होजाता है जैसाकि नीचेके हिन्दी अनुवादसे प्रगट है । प्रश्न करता है कि "भेद होनेमें युक्तशब्द देखा जाता है अर्थात् जहां एकवस्तुसे दूसरीवस्तु भिन्न दिखानी होतीहै वहां युक्त शब्द लातेहै जैसे दंडकरि युक्त देवदत्त अर्थात् देवदत्त मनुष्य है सो चेतन है और दंड अचेतन अन्य वस्तु है देवदत्त और दंड एकही नहीं है इस भांति होनेपर तिन तीन(उत्पाद व्यय ध्रौव्य)के और उन(उत्पाद व्यय-ध्रौव्य)करि युक्त द्रव्यके अभाव प्राप्त होताहै अर्थात् जो ऐसे तीनभाव भिन्नकरि युक्त है तो द्रव्यका अभाव आताहै ।(उत्तर)यह दूषण नहींहै । भेद होनेपरभी कभीकभी अभेदनयकी अपेक्षासे युक्त शब्द देखाजाता है अर्थात् जहां एक वस्तुसे दूसरी वस्तुको पृथक् दिखाना होता है वहां तो युक्त शब्द लातेही हैं परन्तु कभीकभी अभेदपनाके अर्थमें भी युक्तशब्द आता है । जैसे सार युक्त स्तम्भ है ऐसे होनेपर तिन(उत्पाद-व्यय ध्रौव्य)केअविनाभावसे सत्का कथनहै॥

उत्पादव्ययध्रौव्यात्मकमिति यावत् । एतदुक्तं भवति—उत्पादादीनि त्रीणि द्रव्यस्य लक्षणानि । द्रव्यं लक्ष्यम् । तत्पर्यायार्थिकनयापेक्षया परस्परतो द्रव्याच्चार्थान्तरभावः ॥ द्रव्यार्थिकनयापेक्षया व्यतिरेकेणानुपलब्धेरनर्थान्तरभाव इति लक्ष्यलक्षणभावसिद्धिः ॥

आह नित्यावस्थितान्यरूपाणीत्युक्तं तत्र न ज्ञायते किं नित्यमित्यत आह—

॥ तद्भावाव्ययं नित्यम् ॥ ३१ ॥

उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य-आत्मकम् इति यावत् * एतद् उक्तं भवति ।	=उत्पत्ति-विनाश-स्थिरता स्वरूप होना इतना(=यावत्) अर्थहै अर्थात् यह सिद्ध होता है कि
उत्पाद-आदीनि ॥ त्रीणि ॥ द्रव्यस्य ॥ लक्षणानि ॥	=उत्पादादिक तीनों द्रव्यके लक्षण हैं
द्रव्यम् ॥ लक्ष्यम् ॥; तत्-पर्यायार्थिक-नय-	=द्रव्य लक्ष्य है वे(=तद्=उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य)पर्यायार्थिकनयकी
अपेक्षया ॥ परस्परतः * द्रव्यात् ॥ च * अर्थ-अन्तर-भावः;	=अपेक्षासे आपसमें तथा (=च)द्रव्यसे अन्य अन्य पदार्थ है अर्थात् विशेषकी अपेक्षा समस्त पर्याय क्रमवर्ती भिन्नभिन्न हैं, परस्पर मिलैं नहीं तिसकरि भिन्न है
द्रव्यार्थिक-नय-अपेक्षया ॥ व्यतिरेकेण	=द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षासे(उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य)पृथक् पृथक् (=व्यतिरेकेण)
अनुपलब्धेः ॥ अनर्थ-अन्तर-भावः ॥ इति *	=न प्राप्ति होनेसे अन्य अन्य पदार्थ नहीं है अर्थात् ये उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सामान्य तो अभिन्न हैं वोही एक द्रव्य है द्रव्यसे भिन्न नहीं हैं (अर्थ प्रकाशिका पृ० ३२२) (इस प्रकार भेद अभेदनयकी अथवा (पर्यायार्थिक द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षासे)
लक्ष्य-लक्षणभाव-सिद्धिः ॥; आह । नित्य-अवस्थितानि ॥	=लक्ष्य लक्षणभावकी सिद्धि है । (शिष्य) पूछता है कि "नित्यावस्थितान्य-
अरूपाणि ॥ इति * उक्तम् ॥	=रूपाणि" (इस प्रकार इस अध्यायका चौथा सूत्र) कहागया है
तत्र * न * ज्ञायते । किम् * नित्यम् ॥ इति * अतः * आह ।	=तहां नहीं जतायागया है कि नित्य क्या है,इसलिये (उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

(१)तद्भावाऽव्ययं नित्यम् ॥ ३१ ॥

अर्थः—तद्-भाव-अव्ययम् ॥ नित्यम् ॥	=वह(सत्)जो स्वभावसे विनाशरहित वा अविनाशी(=अव्यय)है सो नित्य है

(१) दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायोंसे इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है हमारे यहां 'नित्यम्' शब्दके स्थानमें किसी किसी पुस्तकमें 'नित्य' पाठ है वह कातन्त्ररूपमालाव्याकरणके अतिरिक्त अशुद्ध है (देखो अध्याय प्रथम पृष्ठ ५,६,५४०,५४१,)

तद्भाव इत्युच्यते । कस्तद्भावः ? । प्रत्यभिज्ञानहेतुता । तदेवेदमिति स्मरणं प्रत्यभिज्ञानम् । तदकस्मान्न भवतीति योऽस्य हेतुः स तद्भावः । तस्य भावस्तद्भावः ॥ येनात्मना प्राग्दृष्टं वस्तु तेनैवात्मना पुनरपि भाव.त्तदेवेदमिति प्रत्यभिज्ञायते ॥ यद्यत्यन्तविरोधोऽभिनवप्रादुर्भावमात्रमेव वा स्तात्ततः

अर्थात्-तद्-भाव जो पहिले समयमें था सोही दूसरे समयमें था उसका नाश न होना सोही नित्य है भावार्थ यह है कि पहिले कहा हुआ (तद्)अथवा २९वां सूत्रमें कथित सत् जो स्वभावसे अविनाशी वा विनाशरहित है सोही नित्य है अर्थात् जिस स्वरुपकरि वस्तु पूर्वमें देखाथा उसी स्वरुपकरि वर्तमानमें देखिये हैं ऐसा जोड़रुप वस्तु में भाव वही तद्भाव है, उस जोड़रुप भाव द्वारा विनाश रहित (=अव्यय)हो उसीको नित्य कहतेहै। सर्वथा नित्य अर्थात् कूटस्थ कोई वस्तु नहीं है कूटस्थके पर्याय पलटनेका अभाव है तब संसार तथा संसारके अभावके कारण विधानमें विरोध आता है।

वृत्त्यनुवादः-तद्भावः इति*उच्यतेT कः तद्भावः ? प्रत्यभिज्ञान-हेतुता ; तद् एव*इदम् इति* स्मरणम् प्रत्यभिज्ञानम् ; तद् अकस्मात्* न*भवतिT इति*यः अस्य हेतुः सः तद्भावः तस्य भावः तद्भावः ; येन आत्मना प्राग्दृष्टम् वस्तु तेन एव*आत्मना पुनः*अपि*भावात् तद् एव*इदम् इति*प्रत्यभिज्ञायतेT ॥ यदि-अत्यन्त-विरोधः अभिनव-प्रादुर्भावमात्रम् एव*वा*स्यात्T ततः*

=(सूत्रमें) तद्भाव ऐसा कहागया है। तद्भाव क्या है। प्रत्यभिज्ञानका
=हेतुपन वा कारणपना है। यह (=इदम्)वहही है(=तद्-एव) ऐसी
=स्मृति प्रत्यभिज्ञान है; वह(प्रत्यभिज्ञान)अकस्मात्(विना हेतु वस्तुमें)
=नहीं होता है, जो इस प्रत्यभिज्ञान)का कारण सो तद्भाव है तिस (सत्)का
=भाव अथवा होना सो तद्भावहै। जिस स्वरुपकरि पहिले देखा हुआ पदार्थ है
=तिसही स्वरुपकरि फिरभी विद्यमान होनेसे (स्वभावात्)
=कि यह वहही है इस प्रकार प्रत्यभिज्ञान कियाजाता है
=जो(पूर्वोक्त प्रत्यभिज्ञानके अस्तित्वके)अतिशय विपरीत हो अर्थात् प्रत्यभिज्ञान का अभाव हो
=अथवा नवीन आविर्भावमात्रही हो, तहां

स्मरणानुपपत्तिः । तदधीनो लोकसंव्यवहारो विरुध्यते । ततस्तद्भावेनाव्ययं नित्यमिति निश्चीयते तत्तु कथञ्चिद्वेदितव्यम् । सर्वथानित्यत्वे अन्यथाभावाभावात्संसारतन्निवृत्तिकारणप्रक्रियाविरोधः स्यात् ननु इदमेव विरुद्धं तदेव नित्यं तदेवानित्यमिति । यदि नित्यं व्ययोदयाभावादनित्यताव्याघातः । अथानित्यत्वमेव स्थित्यभावान्नित्यताव्याघात इति ॥ नैतद्विरुद्धम् ॥ कुतः ?—

स्मरण-अनुपपत्तिः; तद्-अधीनः लोक-	=स्मृतिका अभाव(=अनुपपत्ति) होताहै । इस (स्मरण)के आधीनलोक
संव्यवहारः विरुध्यते । ततः * तद्भावेन अव्ययम् ॥	=व्यवहार विरोध्या जाता है । इसकारणसे (=ततः) तद्भावकरि अविनाशी है
नित्यम् ॥ इति * निश्चीयते । ॥ तद् ॥ तु *	=सो नित्य है ऐसा अवधारण वा निश्चय कियाजाता है । परंतु वह अर्थात् तद्भावकरि अव्ययरूप होना
कथञ्चित् * वेदितव्यम् ॥; सर्वथा * नित्यत्वे ।	=कथञ्चित् जानो । (=वस्तुके, सर्वथा नित्यपना (माननेमें) अर्थात् कूटस्थ होनेमें
अन्यथाभाव-अभावात् संसार-तत्-निवृत्तिकारण-	=पर्याय पलटनेके अभावसे संसार और (संसार)के निवृत्ति वा छूटनेके कारणके
(१) प्रक्रिया-विरोधः स्यात् ननु * इदम् ॥ एव * विरुद्धम् ॥	=विधानमें विरोध होताहै । प्रश्न—यह (=इदम्) ही(एव) विपरीत है
तद् ॥ एव * नित्यम् ॥ तद् ॥ एव अनित्यम् ॥ इति * ।	=(क्योंकर) वहही (वस्तु) नित्य हुई (और) वह ही (वस्तु) अनित्य हुई
यदि * नित्यम् ॥ व्यय-उदय-अभावात् ।	=जो नित्य है तौ विनाश-उत्पादके अभावसे
अनित्यता-व्याघातः; अथ * अनित्यत्वम् ॥ एव *	=अनित्यत्वका व्याघात है । पक्षान्तरमें (=अथ) अनित्यता ही है तौ
स्थिति-अभावात् नित्यता-व्याघातः इति * ॥	=स्थिरताके अभावसे नित्यपनाका विरोध है अर्थात् नित्यतामें अन्तराय वा रुकावट है
न * एतद् ॥ विरुद्धम् ॥ कुतः *	=(उत्तर) यह विरुद्ध नहीं है अर्थात् हमारा यह कथन कि सोई वस्तु कथंचित् नित्य है कथंचित् अनित्य है यह विपरीत कथन नहीं है क्योंकर कि

(१) आत्मनःसर्वथा नित्यत्वे नरनारकादिरूपेण संसारस्तद्विनिवृत्तिरूपमोक्षश्च न घटते। ततःसंसारस्वरूपकथनं मोक्षोपायकथनं च विरुध्यत इतिभावः॥

आत्मनः । सर्वथा * नित्यत्वे ॥ नरनरकादि	=आत्माके सर्वथा नित्यपना (मानने)में मनुष्य और नरकादिक
रूपेण ॥ संसार तद्विनिवृत्तिरूप मोक्ष ॥ च * न * घटते	=रूपसे संसार तथा(=च) उस(संसार)के अत्यन्त छूटने रूप मोक्ष नहीं बनती है
ततः * संसारस्वरूप कथनम् ॥ मोक्षकथनम् ॥ विरुध्यते इति * भावः ॥	=जिससे संसारस्वरूपका वर्णन और मोक्षके उपायका कथन विरोध्या जाय है ऐसा तात्पर्य है ॥

॥ अर्पितानर्पितसिद्धेः ॥ ३२ ॥

अनेकान्तात्मकस्य वस्तुनः प्रयोजनवशाद्यस्यकस्यचिद्धर्मस्य विवक्षया प्रापितं प्राधान्यमर्पितमुपनीतमिति यावत्। तद्विपरीतमनर्पितम्। प्रयोजनाभावात् ॥

सूत्रम्—अर्पितानर्पितसिद्धेः ॥३२॥ = अर्पित-अनर्पित सिद्धेः(तदेव द्रव्यं कथञ्चिन्नित्यं कथंचिद् नित्यं च भवति ॥ ३२ ॥

सूत्रार्थः—अर्पित-अनर्पित-सिद्धेः[५/१] तद्[१/१] एव * द्रव्यम्[१/१] कथञ्चित्*नित्यम्[१/१] कथञ्चित्*अनित्यम्[१/१] च*भवति ॥३२॥ =मुख्यता प्रधानताकरि गौणता करि (पदार्थोंकी) सिद्धि होनेसे वहही वस्तु =कथंचित् नित्य है और कथंचित् अनित्य है अर्थात् वही वस्तु सामान्य अर्पणासे वा सामान्यकी मुख्यतासे नित्य है और विशेष अर्पणासे अथवा विशेषकी मुख्यतासे अनित्य है भावार्थ यह है कि वस्तु में अनेक धर्म हैं सो वक्ता जिस धर्मको प्रयोजनके वशसे प्रधान करके कहै सो तो अर्पित है। और प्रयोजन के विना वस्तुके जिस धर्मको कहनेकी इच्छा न करै वह अनर्पित है। इससे यह न समझ लेना चाहिये कि जो धर्म नहीं कहा गया वह धर्म वस्तु में है ही नही क्योंकि वस्तु अनेक धर्मात्मक है

अनेकान्त- आत्मकस्य [६/१] वस्तुनः [६/१]	=अनेकान्त धर्म स्वरूपवाली वस्तुका (वस्तुनः[६/१])
प्रयोजन-वशात् [५/१] यस्य [६/१] कस्यचित्*धर्मस्य [६/१]	=प्रयोजनके वशसे जिस (=यस्य) कोईएक (=कस्यचित्) धर्मकी
विवक्षया [३/१] प्राधान्यम्[१/१] प्रापितम् [१/१]	=विवक्षासे प्रधानपना अथवा मुख्यपना (=प्राधान्यम्) प्राप्तहुआ
अर्पितम्[१/१] उपनीतम् [१/१]	=(वह मुख्यता) अर्पित है उपनीत है
इति*यावत्*तद्-विपरीतम्[१/१] अनर्पितम्[१/१]	=इसप्रकारइतना(अर्थ)है।उस (मुख्यता)केविरुद्धअर्थात् गौणताहै सोअनर्पितहै
प्रयोजन- अभावात्[५/१] ॥	=क्योंकि (अनर्पितमें) प्रयोजन का आभाव है (नकि वस्तुमें धर्मका अभाव)

(१) इस सूत्र का पाठ और अर्थ दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर सम्प्रदायों में एकसा है ॥ हमारे यहां की किसी किसी पुस्तकमें 'अर्पितानर्पित सिद्धेः ऐसा पाठ है सो भी' अचोरहाभ्यां द्वे वा' सूत्र से ठीक है।

(२) अर्पित = मुख्य किया गया प्रधान किया गया, उपनीत, अभ्युपगत, योजित, व्यावहारिक(=जो व्यवहार में आवै) अनुपसर्जनीभूत ये शब्द एकार्थवाची है ॥ (३) अनर्पित = मुख्य नहीं किया गया गौण किया गया, अप्रधान किया गया, अनुपनीत, अनभ्युपगत, अव्यावहारिक, उपसर्जनीभूत ये शब्द एकार्थ वाची हैं ॥

सतोऽप्यविवक्षा भवतीत्युपसर्जनीभूतमनर्पितमित्युच्यते । अर्पितं चानर्पितं चार्पितानर्पिते । ताभ्यां सिद्धेरर्पितानर्पितसिद्धेर्नास्ति विरोधः ॥ तद्यथा—एकस्य देवदत्तस्य पिता पुत्रो भ्राता भागिनेय इत्येवमादयः सम्बन्धा जनकत्वजन्यत्वादिनिमित्ता न विरुध्यन्ते । अर्पणाभेदात् ॥ पुत्रापेक्षया पिता पित्रपेक्षया पुत्र इत्येवमादिः । तथा द्रव्यमपि सामान्यार्पणया नित्यं

भावार्थ—वस्तु में अनेक धर्म हैं सो वक्ता जिस धर्मको प्रयोजनके वशसे प्रधान करि कहै सो तो अर्पित है और प्रयोजन के विना वस्तुके जिस धर्मके कहनेकी इच्छा न करै वह अनर्पित है। इससे यह न समझना चाहिये कि जो धर्म नहीं कहागया है वह वस्तुमें है ही नहीं क्योंकि वस्तु अनेकधर्मात्मक है

सतः॥ अपि*अविवक्षा॥ भवति। इति*	=सत् की अविवक्षा भी होती है अर्थात् सत् की विवक्षा तथा अविवक्षा दोनों होती हैं तिस से सत् रुप होय तिसकूं प्रयोजन के वशसे अविवक्षा करये सो गौण है इस लिये विरोध रहित।दोनों (विवक्षा तथा अविवक्षा) मे वस्तु की सिद्धि है
उपसर्जनीभूतम्॥ अनर्पितम्॥ इति*उच्यते।	=अप्रधानभूत अनर्पित ऐसे कहा जाता है
अर्पितम्॥ च*अनर्पितम्॥ च * अर्पितानर्पिते॥	=और (=च) अर्पित और (च=) अनर्पित अर्पितानर्पिते (द्वन्द्व समास रुपमें है)
ताभ्याम्॥ सिद्धेः॥ अर्पित-अनर्पित-सिद्धेः॥	=तिन (अर्पित-अनर्पित) दोनोंसे सिद्धि होनेसे "अर्पित-अनर्पित सिद्धेः" (ऐसा सूत्र)
न * अस्ति विरोधः॥ तद्यथा * एकस्य॥ देवदत्तस्य॥	=विरोध रहित है। जैसे कि एक देवदत्तका
पिता॥ पुत्रः॥ भ्राता॥ भागिनेयः॥ इत्येवम् * आदयः॥	=पिता-पुत्र-भाई-भानजा-इत्यादिक
सम्बन्धाः॥ जनकत्व-जन्यत्व-आदि-निमित्ताः॥	=सम्बन्ध जनकपना (तथा) जन्यपना आदिके निमित्त
अर्पणा-भेदात्॥ न*विरुध्यन्ते पुत्र-अपेक्षया॥	=अर्पणा वा मुख्यताके भेदसे नहीं विरोध्या जाता है। वेटेकी अपेक्षाकरि (वह पुरुष)
पिता॥ पितृ-अपेक्षया॥ पुत्रः॥ इत्येवम् * आदिः॥	=वाप है वापकी अपेक्षासे वही पुरुष वेटा इत्यादिक है ॥
तथा * द्रव्यम्॥ अपि*सामान्यअर्पणया॥ नित्यम्	=वैसेही(=तथा)द्रव्य भी सामान्य अर्पणासे नित्यहै अर्थात् जब द्रव्यरुपसे अर्पित किया

(१) सर्वार्थसिद्धिवृत्तिकी प्रथमावृत्तिमें माताशब्द नहीं है ॥ तीन हस्त लिखित प्रतियोंमें भी यह शब्द नहीहै प०जयचन्दकृता दो वचनिकामें भी नहीं है, केवलद्वितीय संस्करण संस्कृत सर्वार्थसिद्धिवृत्तिमें है, इससे हमने 'माता'शब्द नहीं रक्खा है यह माता'शब्द भ्राता शब्दके पश्चात् द्वितीयावृत्तिमें है॥
(२) यहां पर ऋके स्थानमें र् होगया है अपेक्षयाका अ परे अर्थात् पितृ = पितर् (ऋके स्थानमें र् लानेसे) + अपेक्षया = पित्रपेक्षया बनाया ॥

विशेषार्पणयाऽनित्यमिति नास्ति विरोधः॥ तौ च सामान्यविशेषौ कथञ्चित् भेदाभेदाभ्यां व्यवहारहेतू भवतः॥ अत्राह सतोऽनेकनयव्यवहारतन्त्रत्वात् उपपन्ना भेदसंघातेभ्यः सतां स्कंधात्मनोत्पत्तिरिदं तु सन्दिग्धं, किं संघातः संयोगादेव द्व्यणुकादिलक्षणो भवति, उत कश्चिद्विशेषोऽवध्रियत इति?। उच्यते—सति संयोगे बन्धादेकत्वपरिणामात्मकात्संघातो निष्पद्यते॥ यद्येवमिदमुच्यतां, कुतो नु खलु पुद्गलजात्यपरित्यागे

और पर्यायरूपसे अनर्पित किया तब नित्यत्व सिद्ध है ॥

विशेष-अर्पणया। अनित्यम्॥ =विशेषअर्पणासे अनित्य है अर्थात् जब द्रव्यरूपसे अनर्पित कियाजाय और पर्यायरूपसे अर्पित(योजित) किया जाय तब अनित्यत्व सिद्ध है ॥

इति*न*अस्ति विरोधः; तौ च*सामान्यविशेषौ =इस प्रकार विरोध नहीं है। बहुरि(=च)ते(दोनों)सामान्य-विशेष

कथञ्चित्*भेद-अभेदाभ्याम् व्यवहार-हेतू भवतः। =कथंचित्-भेद अभेदसे व्यवहारके कारण होते हैं।

अत्र*आह सतः अनेक-नय-व्यवहार-तन्त्रत्वात्॥ =यहां(कोई) पूछता है कि सत्के अनेकनयके व्यवहारके आधीनपनासे

उपपन्ना भेद-संघातेभ्य सतां स्कंध-आत्मन-उत्पत्तिः॥ =भेद तथा संघात औरभेदसंघातकरि ये सत् जेहैं तिनकैं(=सताम्)स्कंधस्वरूप करि उत्पत्ति युक्तिमान(=उपपन्ना:)है सारांश सत् है ताकैं अनेक व्यवहारके आधीनपणा है यातैं सत्रूप पुद्गल स्कंधनिकी जो उत्पत्ति सो भेद और संघात तथा भेदसंघातसे है

इदम्॥ तु*सन्दिग्धम्॥ किम्॥ द्वि-अणुक-आदि-लक्षणः संघातः =परन्तु यह संदेह है कि क्या दो अणुकादि लक्षणवाला संघात

संयोगात् एव*भवति। उत*कश्चित्*विशेषः अवध्रियते इति। =संयोगमात्रसेही होताहै वा(=उत)कोईऔर(=कश्चित्)विशेषनिर्णय कियागया है अर्थात् दो परमाणु आदिका संघात परमाणुओंके केवल संयोगमात्रसे ही होताहै वा कुछ और बात है॥

उच्यते बन्धात् एकत्वपरिणाम-आत्मकात् सति संयोगे =(उत्तरमें) कहाजाता है कि एकत्व परिणमन स्वरूप बन्धानसे संयोगहोनेपर

संघातः निष्पद्यते॥ यदि*एवम्*उच्यताम् =संघात उपजता है जो इस प्रकार कहाजाय तो (अर्थात् जो आप कहते हैं कि संयोग होते संते एकत्व परिणमनस्वरूप बंधसे संघातकी निप्पत्ति होती है

कुतः* (१)नु, खलु *पुद्गलजाति-अपरित्यागे =तौ(=नु)कहांसे(ऐसाहोता, है क्योंकिपुद्गल(अपनी)जातिको निश्चयसे नछोड़तसंते

---

(१) नु = वितर्क = विशेष तर्क अर्थात् तर्कके पश्चात् तर्कमेंसे तर्क निकालना (देखो पद्मचन्द्रकोष पृ० २२१) इसका अनुवाद 'तो' किया गया है

संयोगे च सति भवति केषांचिद्बन्धोऽन्येषां च नेति । उच्यते यस्मात्तेषां पुद्गलात्माविशेषेऽप्यनन्त-पर्यायाणां परस्परविलक्षणपरिणामादाहितसामर्थ्याद्भवन्प्रतीतः

॥ स्निग्धरूक्षत्वाद्बन्धः ॥ ३३ ॥

(१)संयोगे[७।१]च*सति[७।१]भवति I	=और संयोग होते संते यह होगा कि
केषांचित्*बन्धः[१।१]अन्येषाम्[६।३]च*न*इतिT	=कितने परमाणुओंको बन्ध और(=च)दूसरी परमाणुओंका(बन्ध)नहीं (होता) है
उच्यते-यस्मात्*तेषाम्[६।३]पुद्गल-आत्म-अविशेषे[७।१]अपि*	=इससेकहाजाता हैकि तिन(परमाणुओं)केपुद्गलस्वरूपकरि,विशेषता न होने पर भी
अनन्त पर्यायाणाम्,[६।३]परस्पर-विलक्षण-परिणामात्[५।१]आहित	=अनन्त पर्यायोंके परस्पर विलक्षण परिणमनकरिग्रहणकरीभई(=आहित)
सामर्थ्यात्[५।१]।।भवन्[१।१]प्रतीतः[१।१]	=सामर्थ्यसे बन्धका होना प्रतीत है ।(भवन् वर्तमानकृदन्त प्रथमा एकवचन पुल्लिंगहै)

(२)**सूत्रम्—**(३)**स्निग्धरूक्षत्वाद्बन्धः॥ ३३॥ = (पुद्गलानां)स्निग्धरूक्षत्वात् बन्धः (भवति)॥ ३३॥**

(१)दोनोंवारकी छपीहुई सर्वार्थसिद्धिवृत्तिमें"संयोगेच सतिभवति"वाक्य छपनेसे रहगयाहैक्योंकि यहवाक्य तीनहस्तलिखितसर्वार्थसिद्धिवृत्तिकी प्रतियोंमें विद्यमान है और तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृ० २४०पर तथा हस्तलिखित राजवार्तिकोंमेंभी उक्त वाक्य'सति'शब्दके अतिरिक्त पाया जाता है विना उक्त वाक्य अनुवाद नहीं होसकता है न वाक्योंका परस्पर सम्बन्ध मिल सकता है ।

(२) दोनोंआम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है । कहीं२पर'बन्ध 'पाठहै कहीं२पर'बध'पाठ है, दोनों पाठ ठीक है (१अध्याय ५४०.५४१)

(३) इन पांचों सूत्रोंका अर्थ और तात्पर्य क्लिष्ट है अपने अपने ढगसे हमारे यहां भाष्यकारों तथा हिंदी टीकाकारोंने उक्त सूत्रोंका तात्पर्य लिखाहै अर्थमें हमारे यहां मत भेद नहीं है ॥ श्वेताम्बर आम्नायके 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र'में प्रथम चार सूत्रोंका पाठ हमारे यहांके पाठसे अक्षरश मिलता है। "बन्धे समाधिकौ परिणामकौ"के स्थानमें हमारे यहां 'बन्धेऽधिकौ परिणामिकौ च' सूत्र है अर्थात् हमारे यहां 'च'है उनके यहां 'सम' शब्द है ॥ दोनों आम्नायोंके पाठमें इतनी समानता होनेपर भी पिछले तीन सूत्रोंके अर्थोंमें भेद पाया जाता है जिसका उल्लेख हम प्रसगानुसार आगेकरेंगे । उक्त पांचों सूत्रोंके समझानेमें भरकस प्रयत्न किया गया है प्रथम इसके कि हम पृथक् पृथक् सूत्रका अर्थ करें यह उचित है कि दोनों आम्नायोंमें जो अर्थ भेद है उसका सक्षेपसे कुछ उल्लेख किया जावै ॥ स्निग्धका स्निग्धद्वारा दोगुण(=अविभागपरिच्छेद) अधिककरि बन्ध होताहै और रूक्षका रूक्षद्वारा दोगुण अधिककरि बध होता है और रूक्षका स्निग्धद्वारा दोगुण अधिककरि बन्ध होता है और स्निग्धका रूक्षद्वारा दोगुण अधिककरि बन्ध होता है जघन्यगुणको छोडकर उक्त दो अधिकगुण सम(अर्थात् ४,६,८,१०,१२ इत्यादि) हों अथवा विषम(अर्थात् ५,७,९,११,१३ इत्यादि)हों दोगुणअधिककरिही बध है अन्यकरि नहीं है । श्वेताम्बर आम्नायके 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र'में)'गुणसाम्ये सदृशानाम्' सूत्रका शब्दश यह अर्थ करके कि' गुणसाम्येसति सदृशानां बधो न भवति"गुणकी समता होनेपर सदृश पुद्गलोंका बन्ध नहीं होता हमारे यहांके प्रथम भागको मानाहै और दूसरे भागको नहीं मानाहै अर्थात् स्निग्धका स्निग्धद्वारा दोगुण अधिककरि बन्ध होता है और रूक्षका रूक्षद्वारा दोगुण अधिककरि बन्ध होताहै और इससे सहमत हैं और कहते हैं कि रूक्षका स्निग्धद्वारा बन्ध होनेमें और स्निग्धका रूक्षद्वारा बन्ध होनेमें दोगुणोंकी अधिकताकी आवश्यकता नहीं है ॥ऐसोंकाबधसमानगुणोंमेंभीहै॥

सूत्रार्थः—(१)पुद्गलानाम् स्निग्धत्वात् ॥ =पुद्गलोंके(परस्पर छूजानेपर स्पृष्ट वा स्पर्श होनेपर) स्निग्धपनासे वा चिकनाईसे

रूक्षत्वात् ॥ बन्धः भवति = (और) रूक्षपनासे रूखेपनसे, वा खरखरेपनसे बन्ध होता है अर्थात्

दो पृथक्पृथक् परमाणुओंका बन्ध परस्पर स्कंधरूपमें और दो आदि पृथक्पृथक् स्कन्धोंका

इसी हेतुसे उन्होंने "द्वि-अधिकादिगुणानांतु सदृशानां बन्धो भवति" इस सूत्रमें केवल'सदृशानां'की अनुवृत्ति लीहै और यह अर्थ कियाहै कि सदृशोंके बन्धके लिये दोगुण अधिक होनेकी आवश्यकता है, असदृशोंके बन्धके लिये अधिक गुणोंकी कोई आवश्यकता नहीं है। इस अर्थको पुष्ट करनेकेलिये कि असदृशोंका बन्ध विना गुणोंकी अधिकताके होजाता है हमारे यहांके "बन्धेऽधिकौ पारिणामकौच"के स्थानमें 'बन्धे समाधिकौ परिणामकौ' सूत्र दिया है और यह अर्थ किया है कि 'बन्धे सति समगुणस्य समगुणः परिणामको भवति अधिकगुणो हीनस्येति' बन्ध होनेपर यदि समगुण है तब तो समगुण का समगुणवालाही परिणाम होगा और हीन गुणका अधिक गणवान् परिणाम होगा' भावार्थ असदृशोंके बन्धमें जहां गुणोंकी समता है वहां समगुणवाला परिणाम होगा और सदृशोंके बन्धमें जहां दोगुण अधिकहैं वहां अधिक गुणवान् परिणाम होगा ॥ "जघन्यगुणवालोंका बन्ध नहीं होता" इस अन्तिम सिद्धान्तमें दोनों आम्नाय सहमत हैं।

(१) यहां यह शका होसकती है कि 'पुद्गलानां' शब्दका अथवा 'अणुनां' शब्दका अध्याहार करना चाहिये अर्थात् यहसूत्र केवल अणुओंसे सबंध रखताहै अथवा अणुओं और स्कन्धों दोनोंसे सम्बन्ध रखताहै ॥२६वां सूत्रमें यह निर्देश है कि स्कंध भेदसे,सघातसे, और भेदसघातसे उत्पन्न होतेहैं। यहांपर संघात शब्द और बन्ध शब्दका एकही अर्थ जान पडता है जैसाकि आगे बन्ध सघात एकत्वऔर सयोगके अनन्तर दिखानेमें सिद्ध करेंगे। बन्ध, सघात, एकत्वरूप,सयोगके भेदकेलिये इस अध्यायका पृष्ठ १४०,१४१ देखो ।(उत्तर)यह सूत्र अणु और स्कन्ध दोनोंसे सम्बन्ध रखताहै क्योंकि

(क) दो पृथक् २ परमाणुओ के बन्ध वा सघातसे स्कन्ध होता है। एक परमाणु और स्कन्धके संघातसे स्कन्ध उत्पन्न होता है, दो तीन आदिक स्कन्धोंके बन्धसे स्कन्ध होता है और बन्धका कारण स्निग्धत्व रूक्षत्वही कहा है। परमाणुओंके स्निग्धत्व और रूक्षत्वसेही बन्ध होता है। जब स्कन्धोंके भी आपस के बन्धके लिये सचिक्कनता और रूक्षता हेतु है और पुद्गलके "अणव स्कन्धाः" ये दोही भेद हैं तो प्रगट है कि तेतीसवां सूत्रमें "पुद्गलानां" शब्दका अध्याहार होना चाहिये (नकि केवल अणुनां शब्दका) जैसा कि निम्न लिखित उदाहरण सूत्र२६(देखो इसअध्यायका ९९,१००)में दियाहै,जैसेकि दो परमाणुओंके जुडनेसे दोप्रदेशवाला स्कन्ध उपजताहै,दोप्रदेशवाले स्कन्धके और एकअणुके संघातसे वा तीन खुलीहुई परमाणुओंके मिलनेसे तीनप्रदेशवाला स्कन्ध उपजता है। दो दो प्रदेशवाले दो स्कन्धोंके सघातसे, तीन प्रदेशवाले स्कन्धके और अणुके संघातसे अथवा चार खुली हुई परमाणुके सघातसे चार प्रदेशी स्कन्ध उपजता हैं। इस प्रकार सख्यात,असंख्यात,अनन्त अनन्तानन्तके संघातसे उतने प्रदेशवाले स्कन्ध उपजतेहैं इससे प्रगट हैकि एक स्कन्धका दूसरे स्कन्धके साथ परस्पर सघातसे स्निग्ध रूक्षताके हेतुसे बन्ध होताहै और परमाणुका परमाणुकरि बन्धहोताहै। अत यह सूत्र परमाणुओं और स्कन्ध दोनोंसे सम्बन्धरखता है नकि केवल परमाणुओंसेही॥

(ख) "ऐसे स्निग्धरूक्षपणातैं पुद्गलनिकै परस्पर बन्ध जानना"प०सदासुखजीकृताअर्थप्रकाशिकाके तेतीसवांसूत्रका उपांत्य(उपांतिक)वाक्यदेखो ॥

(ग) "ये रूक्षपणाके तथा सचिक्कणताके अविभागपरिच्छेदके निमित्ततैं,एक परमाणु तथा द्वि-अणुकादि स्कन्धकै परस्पर बन्ध होयहै"सदासुखजी कृता तत्वार्थ सूत्रकी लघु टीका पृष्ठ २३ ॥ उपर्युक्त वाक्यका,यह अर्थ है कि स्निग्धता और रूक्षताके हेतुसे एक परमाणु तथा दोपरमाणुका स्कंधकै परस्पर बन्ध होता है। एक परमाणु तथा तीन परमाणु वाले स्कन्धकै परस्पर बन्ध होता है एक परमाणु तथा चार अणुका स्कन्धकै परस्पर बन्ध होता है इसी प्रकार एक परमाणु तथा चार आदिक अणुवाले स्कन्धकै परस्पर बन्ध जानना॥

बाह्याभ्यन्तरकारणवशात् स्नेहपर्यायाविर्भावात् स्निह्यतेऽस्मिन्निति स्निग्धः । तथा रूक्षणाद्रूक्षः । स्निग्धश्च रूक्षश्च स्निग्धरूक्षौ तयोर्भावः स्निग्धरूक्षत्वं । स्निग्धत्वं चिक्कणगुणलक्षणः पर्यायः । तद्विपरीतपरिणामो रूक्षत्वं ॥

आपसमें बन्ध अन्य स्कन्धरूपमें स्निग्धता और रूक्षताके हेतुसे होता है ॥

वृत्यर्थः—बाह्य-अभ्यन्तर-कारणवशात् स्नेह-पर्याय- =बहिरंग और अभ्यन्तर कारणके वशसे सचिक्कण पर्यायके

अविर्भावात् स्निह्यते अस्मिन् इति * स्निग्धः; तथा=प्रगट होनेसे जिसमें चिकनाई है (=स्निह्यते) ऐसा स्निग्ध है । वैसेही

रूक्षणात् ॥ रूक्षः =रुखेपनसे रूक्ष है अर्थात् बाह्याभ्यन्तरकारणसे रूक्षपर्यायके होनेसे जिसमें रूक्षता है सो रूक्ष है

स्निग्धः च * रूक्षः च * स्निग्ध-रूक्षौ =और स्निग्ध और रूक्ष हैं उनकारूप सो (द्वन्द्वसमासमें) स्निग्धरूक्षौ ऐसा वाक्य बनता है ।

तयोः भावः स्निग्ध-रूक्षत्वम् =उनदोनों (स्निग्धरूक्ष) का भाव सो स्निग्धरूक्षत्व है अर्थात् चिकनापन और रुखापन है ॥

चिक्कणगुणलक्षणः पर्यायः स्निग्धत्वम् ॥ =चिकनागुणलक्षणवाला पर्याय है सो स्निग्धता है

तद्-विपरीत-परिणामः रूक्षत्वम् ॥ =उस चिकनेपनसे विरुद्ध परिणाम वा पर्याय सो रुखापन है

(घ) 'स्नेहगुणयोगात्स्निग्धा रूक्षगुणयोगाद्रूक्षास्तद्भावान् पुद्गलाना बन्धःस्यात्' = स्नेहगुणयोगात्स्निग्धा रूक्षगुणयोगात्रूक्षा. तद्भावात् पुद्गलानांबन्ध स्यात् = चिक्कणगुणके संयोगसे स्निग्ध हैं रूक्षगुणके संयोगसे रूक्ष हैं उनके भावसे (=होनेकरि) पुद्गलोंका बन्ध होता है ॥ तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक पृ० ४३५ देखो॥ श्लोक—स्कन्धो बन्धात्स चास्त्येषां स्निग्धरूक्षत्वयोगत । पुद्गलानामिति व्यस्ता सूत्रेऽस्मिंस्तदभावता ॥ १ ॥ तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक पृ० ४३५ देखो =स्कन्ध बन्धात् सः च अस्ति एषां स्निग्ध रूक्षत्वयोगत । पुद्गलानां इति व्यस्ता सूत्रे अस्मिन् तद्-अभावता ॥ =बन्धसे स्कन्ध होता है और (च) वह स्कन्ध इनपुद्गलोंकी चिकनाई रूखेपनकेसंयोगसे होता है, (पुद्गलोंका) नाशहोजाताहै इससूत्रमें उससिद्धान्तका कि पुद्गलनाशकोप्राप्तहोजाताहै, अभावहै॥ (श्लोक) स्निग्धास्निग्धैस्तथा रूक्षारूक्षैः स्निग्धाश्च पुद्गला । बन्ध यथासते स्कन्धसिद्धे र्बाधकहानित ॥ २ ॥

=स्निग्धा. स्निग्धैः तथा रूक्षा रूक्षैः स्निग्धा च पुद्गलाः । बन्ध यथा आसत स्कन्धसिद्धे बाधकहानितः ॥

=स्निग्ध (पुद्गल स्निग्धकरि, तथारूक्ष (पुद्गल) रूक्षकरि और (च) स्निग्ध पुद्गल (रूक्षकरि) यथायोग्य (यथा) बन्धको प्राप्त होतेहैं स्कन्धकीसिद्धि बाधारहितहै

(ङ) "स्निग्धरूक्षयोः पुद्गलयो. परस्परयो स्पृष्टयो बन्धो भवतीति" = स्निग्धरूक्ष (दो प्रकारके) पुद्गलोंका आपसमें छुजाने पर बन्ध होता है । सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृ० १३७ । पुद्गलयोः' शब्दके लानेसे स्पष्ट है अणु और स्कन्ध दोनोंका बन्ध इस सूत्र द्वारा होता है ॥

(च) 'अणूनां बन्ध' में स्कन्धोंके बन्धका अभाव आताहै और यह नियमसा होजाताहैकि ससारमें केवल अणुओंकाही बन्ध होताहै स्कन्धोंका नहीं और यह बात यथार्थता और सत्यताके विरुद्ध है कि केवल अणुओंकाही बन्ध होताहो॥ अतः उपर्युक्त हेतुओंसे यह बात स्पष्टतया सिद्ध होगई कि यह सूत्र अणु औरस्कन्ध दोनोंके बन्धसे सम्बन्ध रखताहै अत हमने 'पुद्गलाना' शब्दको अध्याहार करके इस सूत्रका भावार्थ ऊपर यह लिखाहै कि दो पृथक्२ परमाणुओंका बन्ध परस्पर स्कन्धरूपमें और दो आदि पृथक्२ स्कन्धोंका आपसमें बन्ध अन्य स्कन्धरूपमें स्निग्धता और रूक्षतासे होताहै ॥

स्निग्धरूक्षत्वादिति हेतुनिर्देशः । तत्कृतो बन्धो द्व्यणुकादि परिणामः ।

स्निग्ध-रूक्षत्वात् ।। इति*हेतु-निर्देशः =चिकनापन रूखापनसे ऐसे हेतुका कथन है अर्थात् बंधका कारण जो पुद्गलोंमें है वह चिकनाई रूखापन है

तद्-कृतः बन्धः द्वि-अणुक-आदि-परिणामः=उन(स्निग्धपन-रूक्षपन)का किया हुआ बन्ध दो अणुकादि परिणमनसे होता है ॥

(१) 'स्निग्ध-रूक्षत्वात्' इस वाक्यसे दो प्रश्न उत्पन्न होते हैं प्रथम यह कि सूत्रमें 'स्निग्ध रूक्षत्वात्' क्यों लाये केवल 'पुद्गलाबन्ध.' इतना सूत्र होता तो सूत्र लघु होजाता और 'पुद्गलानां' शब्दकेभी अध्याहार करनेकी आवश्यकता नहीं होती और न यह शंका उत्पन्न होती कि सूत्रमें 'अणूना' शब्दका अध्याहार किया जावे अथवा 'पुद्गलानां' शब्दका । दूसरा प्रश्न यह है कि बन्धका निमित्त वा हेतु सूत्रके शब्दानुकूल (न कि सिद्धान्तके अनुकूल) 'स्निग्धत्व-रूक्षत्व' मिले हुये हैं अथवा (स्निग्धत्वरूक्षत्व) मिले हुये और पृथक् पृथक् दोनों हैं अर्थात् सूत्रके शब्दोंके अर्थके अनुसार स्निग्धपन और रूक्षपन अथवा यों कहिये कि रूक्षपन स्निग्धपन (सयोग अवस्थामें) बन्धका हेतु हैं वा स्निग्धत्व स्निग्धत्व पृथक् और रूक्षत्वरूक्षत्व पृथक् भी बंधके कारण हैं

(पहिले प्रश्नका उत्तर) पुद्गलके शुद्ध अशुद्ध दो भेद हैं । अशुद्धरूप स्कन्ध है और उसके निम्नलिखित वीस गुण हैं । वर्ण पांच (श्वेत, पीत, नील, अरुण, कृष्ण) । रस पाच (तिक्त, कटुज, कषायला, खट्टा, मीठा) । गध दो (सुगंध, दुर्गन्ध) और स्पर्शके गुण आठ (शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष, मृदु, कठोर हलका भारी) ॥ अणु शुद्ध है और उसमें पांचगुण होते हैं अर्थात् पांच रसोंमेंसे एक, पांच वर्णमेंसे एक, दो गन्धमेंसे एक, स्पर्शके आठगुणोंमें से दो शीत होगा अथवा उष्ण होगा, रूक्ष होगा अथवा स्निग्ध, कविवर पं० द्यानतिरायजीने "द्रव्यसग्रह" की भाषामें कहाभी है कि "पच अजीव शुद्ध हैं चारों (=धर्म, अधर्म, आकाश, काल) जिनके कभी विभाव न होय । पुद्गल सुद्ध असुद्ध विराजे सुद्ध अनू गुन पांचो जोय ॥ सीत, ताप, रूख, चिकने(में)से दो, रस, गन्ध, वरन इकलोय । खंध असुद्धवीस गुन परगट देखेजाने चेतन सोय ॥ कवित्त ३५। भाषा द्रव्यसंग्रहसे उद्धृत ॥ इन पुद्गलोंके गुणोंमेंसे बन्धका कारण स्निग्धत्वऔररूक्षत्वही है इसलिये इस तेतीसवां सूत्रमें स्निग्धत्व रूक्षत्व लाये हैं कि पाठकगण यह न समझलें कि वर्ण, रस, गधमें से कोई गुण और स्पर्शके आठ गुणोंमें से स्निग्धत्वरूक्षत्वके अतिरिक्त कोई अन्य गुणभी बन्धका कारण है ।

(दूसरे प्रश्नका उत्तर) सिद्धान्त तो यह है कि स्निग्धत्व रूक्षत्व, रूक्षत्व स्निग्धत्व, स्निग्धत्व स्निग्धत्व, रूक्षत्व रूक्षत्व, बन्धके हेतु हैं परन्तु निम्न लिखित हेतुओंसे सूत्रका शब्दार्थ यही है कि स्निग्धत्व रूक्षत्व, रूक्षत्व स्निग्धत्व, बन्धके कारण हैं अर्थात् स्निग्धका बन्ध रूक्षके साथ होता है अथवा यों कहिये कि रूक्षका बन्ध स्निग्धके साथ होता है न कि स्निग्धका स्निग्धके साथभी बन्ध होता है और रूक्षका रूक्षके साथभी बन्ध होता है क्योंकि यदि उमास्वामीका (सिद्धान्तके अनुकूल) यह अभिप्राय कि स्निग्धत्व स्निग्धत्व, रूक्षत्वरूक्षत्व, रूक्षत्व स्निग्धत्व, और स्निग्धत्वरूक्षत्वका परस्परबन्ध होता है तो सूत्रकी रचना ऐसे होती कि "स्निग्धरूक्षत्वेभ्योबन्ध." अर्थात् स्निग्धपनसे और रूक्षपनसे और स्निग्धपन रूक्षपनसे बन्ध होता है जैसाकि उक्त स्वामीजीने 'भेदसघातेभ्य उत्पद्यन्ते' सूत्र रचा है कि (पुद्गलोका स्कन्ध) भेदसे उपजता है सघातसे उपजता है और भेदसघातसेभी उपजता है॥ दूसरे यह कि "गुणसाम्येसदृशानां" सूत्रमें इस सूत्रकी अनुवृत्ति ग्रहण कीजावे कि गुणोंकी समानता होनेपर सदृशोंका और असदृशों (स्निग्धरूक्षत्व)का भी बन्ध नहीं होताहै और गुणोंकी विषमता होनेपर स्निग्धत्व स्निग्धत्व, रूक्षत्व रूक्षत्व, स्निग्धत्व रूक्षत्व (सजातीय और विजातीय) दोनोंमें बन्ध होता है जैसाकि आगे इस पिछले कहे हुए सूत्रका अर्थ करेंगे॥ () तीसरे यहकि जहांतक हमने टटोल कीहै सस्कृतके भाष्यकार जैसे पूज्यपाद स्वामी, अकलंक स्वामी, श्रीश्रुतसागर सूरिने, सभाष्य०के रचयिता इत्यादिने और भाषाके टीकाकारों ने इस सूत्रका अर्थ यही किया है कि स्निग्धरूक्षत्वसे बन्ध होता है किसीने इस सूत्रकेअर्थमें यह नहीं लिखा कि 'स्निग्धत्व स्निग्धत्व, रूक्षत्व रूक्षत्वसे' बन्ध होता है । हां श्लोकवार्तिकके रचयिता श्रीविद्यानन्द स्वामीने सूत्रके अर्थकरनेमें तो यही उल्लेख कियाहै कि 'स्निग्धरूक्षत्व' से बन्ध होताहै परन्तु इसीसूत्रके भाष्यमें दूसरे श्लोकमें यथार्थसिद्धान्त देदियाहै 'स्निग्धा

द्वयोः स्निग्धरूक्षयोरणवोः परस्परश्लेषलक्षणे बन्धे सति द्व्यणुकस्कन्धो भवति॥ एवं संख्येयासंख्येयानन्तप्रदेशः स्कन्धो योज्यः। तत्र स्नेहगुणः एकद्वित्रिचतुः संख्येयासंख्येयानन्तविकल्पः॥

द्वयो:२ (१, स्निग्ध-रूक्षयो:३ अणवो:१ परस्पर-श्लेष-लक्षणे४ बन्धे५ सति६ द्वि-अणुक-स्कन्धः७ भवति८॥ =दो चिकनी रूखी अणुओमें आपसके एकमेक(=श्लेष,स्वरूपविषैं(=लक्षणे) =बन्ध होनेपर(=सति)दो अणुवाला स्कंध होता है अर्थात् दो परमाणु स्निग्ध और रूक्षगुणोंसहित हों उनके परस्पर सर्वात्मभावकरि प्रदेशानुप्रवेशात्मक बन्ध होनेपर दो अणुवाला स्कन्ध उत्पन्न होता है

एवम् (२)संख्येय-असंख्येय अनन्तप्रदेशः१ स्कंधः१ योज्यः१ =इस प्रकार संख्यात असंख्यात और अनन्त प्रदेशवाला स्कन्ध जुड़जाता है

तत्र*स्नेहगुणः१ एक-द्वि-त्रि-चतुर्-संख्येय-असंख्येय-अनन्तविकल्पः१ =तहां स्निग्धगुण एक,दो,तीन,चार संख्यात =असंख्यात और अनन्तभेदरूप है अर्थात् एकगुण स्निग्ध, दोगुण स्निग्ध, तीन गुण स्निग्ध,चारगुण स्निग्ध,पांचगुण स्निग्ध,छहगुण स्निग्ध इत्यादि ऐसे संख्यातगुण स्निग्ध, असंख्यातगुणस्निग्ध और अनन्तगुण स्निग्ध तक एक परमाणुमें होसकते है॥

स्निग्धैस्तथारूक्षारूक्षै स्निग्धाश्च पुद्गला 'पश्चात् उक्त स्वामीजीके'गुणसाम्ये सदृशानां'सूत्रके भाष्यसे यह बात झलकतीहै कि'स्निग्धरूक्षत्वात्बन्धः' सूत्र केवल स्निग्धरूक्षत्वसे सबंध (जहांतक उसका शब्दार्थ है) रखता है न कि स्निग्धका स्निग्धके साथ बन्ध" और रूक्षका रूक्षके साथ बन्ध' से॥ () चौथे यह कि उपर्युक्त अर्थसे रचनाका और क्रमका महत्व प्रगट होता है, सो कैसे? इस प्रकार कि ३३वां सूत्र बन्धका केवल हेतु प्रगट करता है और चौतीसवां सूत्र सामान्यरूपसे ततीसवां सूत्रका अपवाद है पैतीसवांसूत्र गुणोंकी समानतामें तेतीसवांसूत्रका अपवाद होतेहुयेभी विषमगुणोंकी अवस्थामें उस(तेतीसवां) सूत्रका विधान करता है छतीसवां सूत्र इस विधानकी त्रुटिको पूरा करता हैकि दो अधिक आदिगुणोंके होनेपरही सदृश और असदृशोंका बन्ध होता है सेतीसवां सूत्रमें बन्धके होनेपर द्रव्यकी एकतीसरी अवस्था वा तीसरा स्वरूप होजाता है न प्रथम रूप रहै न दूसरा, दोनों बधहोनेपर एकतीसरारूप धारण करतीहैं॥जैसे कालापीला रग घोलकरमिलानेपर कीरके पंखसदृश हराहोजाताहै॥नकृष्णवर्णरहै न पीतवर्णरहै॥

(१) "इहां सचिक्कणपणाका वा रूक्षपणाका अविभागपरिच्छेद है तिनहीकू गुण कहैं हैं॥ परमाणुमें सचिक्कणपणाका एकअविभागपरिच्छदसे लेय अनन्त पर्यन्त बढै है॥ अर एक परमाणुमें अनंत अविभाग परिच्छेद से घटै तो असख्यात वा सख्यात दोइ तथा एक अशपर्यन्त रहै॥तथा सचिक्कण परमाणु रूक्ष होजाय हैं रूक्ष परमाणु सचिक्कण होय हैं॥ समय समय परिणमन है अर बाह्य द्रव्य क्षेत्र काल भावादिकनिके निमित्तैं परिणमै है॥ऐसे 'स्निग्धरूक्षपणा परमाणुमें तथा स्कन्धमें जानना॥ प० सदासुखजी कृता अर्थ प्रकाशिका पृ० ३३४ सूत्र तेतीसकी भाषा से उद्धृत)

(२) यह संख्यात प्रदेशी स्कन्ध इस प्रकार उत्पन्न होता है कि रूक्षपना तथा चिकनापनाके अविभाग परिच्छेदके निमित्तसे दोपरमाणुके जुडनेसे दो प्रदेशवाला स्कन्ध उपजता हे। दोप्रदेशवाले स्कन्धके और अणुके संघातसे अथवा तीन खुली हुई परमाणुक मिलनेसे तीन प्रदेशवाला स्कन्ध उपजता है॥ दो दो प्रदेशवाले दो स्कन्धो के सघातसे, तीन प्रदेशवाले स्कन्धके और अणुके सघातसे, अथवा चार खुली हुई परमाणुओंके सघातसे चारप्रदेशी स्कन्ध उपजता है इसी प्रकार अन्य संख्यात प्रदेशी स्कन्धपूर्वोक्त क्रमानुसार बन्धी हुई और खुली हुई परमाणुसे उपजता है ऐसाही क्रम असंख्यात प्रदेशी स्कन्धकी अनन्त प्रदेशी स्कन्धकी और अनन्तानन्त प्रदेशी स्कन्धकी उत्पत्ति जानो॥

तथा रूक्षगुणोऽपि॥ तद्गुणाः परमाणवः सन्ति। यथा तोयाजागोमहिष्युष्ट्रीक्षीरघृतेषु स्नेहगुणः प्रकर्षाप्रकर्षेण प्रवर्तते। पांशुकणिकाशर्करादिषु च रूक्षगुणो दृष्टः। तथा परमाणुष्वपि स्निग्धरूक्षगुणयोर्वृत्तिः प्रकर्षाप्रकर्षेण अनुमीयते॥ स्निग्धरूक्षत्वगुणनिमित्ते बन्धे अविशेषेण प्रसक्ते अनिष्टगुणनिवृत्त्यर्थमाहः-

॥ न जघन्यगुणानाम् ॥ ३४ ॥

तथा* रूक्षगुणः अपि* ॥	=वैसेही(=तथा)रूक्षगुण भी है अर्थात् एक परमाणुमें एक, दो, तीन, चार, पांच छह इत्यादि संख्यात, असंख्यात और अनन्त रूक्षगुण तक होसकते है
तद्-गुणाः परमाणवः सन्ति। यथा* तोय-अजा-	=पूर्वकथित(=तद्)चिकणे रूखेगुणवाली परमाणुहै। जैसे जल(=तोय)बकरी(अजा)
गो-महिषि-उष्ट्री-क्षीर-घृतेषु स्नेहगुणः	=गऊ(=गो)भैंस(=महिषि)उटनी(=उष्ट्री)के दूध घी विषैं सचिकणगुण
प्रकर्ष-अप्रकर्षेण प्रवर्तते। च* पांशु-कणिका-	=प्रकर्षकरि और घटतीकरि प्रवर्तता है। और (=च)धूलि(=पांशु)वालु(=कणिका)
शर्करादिषु रूक्षगुणः दृष्टः। तथा *	=कंकरादिकमें रूक्षगुण(वढता घटता क्रमसे) देखा जाता है। तैसे
परमाणुषु अपि * स्निग्ध-रूक्षगुणयोः वृत्तिः	=परमाणुओंमेंभी चिकने रुखे दोनों गुणोंकी स्थिति (=वृत्तिः)
प्रकर्ष-अप्रकर्षेण अनुमीयते॥ स्निग्धरूक्षत्व-	=वढताई घटताईसे अनुमान कीजाती है। सचिक्कनता और रुखापन
गुणनिमित्ते बन्धे अविशेषेण प्रसक्ते	=गुणनिमित्तक वन्धमें अविशेषताकरि प्रसंग आनेपर
अनिष्ट-गुण-निवृत्ति-अर्थम् आह	=अनिष्ट फलके निवारण के लिये कहते हैं अर्थात् पुद्गलके गुणोंमेंसे चिकनाई रूखापनके हेतुसे वन्ध होता है इससे यह प्रसंग आता है कि यदि सचिकणता और रुखापन परमाणुओंमें वर्तमान वा विद्यमान हैं तो बन्ध सर्व प्रकार अभेदरुपसे विशेपता रहित होही जाताहोगा इस अनच्छित अनुमानके दूर करने के लिये अग्रिम सूत्रमें कहतेहैं कि

(१)सूत्रम्—न जघन्यगुणानाम् ॥३४॥ = न जघन्यगुणानाम्(परमाणूनां बन्धः भवति) ॥३४॥

स्निग्धरूक्षत्वात् 'न जघन्य-गुणानां परमाणूनां बंधः भवति=स्निग्धरूक्षतासे निकृष्टगुणोंके परमाणुका बंधनहीं होताहैअर्थात् जिस परमाणुमें

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ भी दोनों आम्नायोंमें एकसा है। हमारे यहा कहीं कहींपर 'नजघन्यगुणाना' पाठ है वह कातन्त्ररूपमाला व्याकरणके अतिरिक्त अशुद्ध है(अ०१ पृ० ५४०,५४१) इस सूत्रमें 'परमाणूनां' और 'भवति' शब्दोंका अध्याहार कियागयाहै और बन्धशब्दकी अनुवृत्ति ३३वांसूत्रसेहै।

जघन्यो निकृष्टः गुणो भागः। जघन्यो गुणो येषां ते जघन्यगुणाः । तेषां जघन्यगुणानां नास्ति बन्धः। तद्यथा-एकगुणस्निग्धस्यैकगुणस्निग्धेन द्व्यादिसंख्येयासंख्येयानन्तगुणस्निग्धेन च नास्ति बन्धः तस्यैवैकगुणस्निग्धस्य एकगुणरूक्षेण द्व्यादिसंख्येयासंख्येयानन्तगुणरूक्षेण वा नास्ति बन्धः। तथा एकगुणरूक्षस्यापि योज्यमिति ॥ एतौ जघन्यगुणस्निग्धरूक्षौ वर्जयित्वा अन्येषां स्निग्धानां रूक्षाणां च परस्परेण बन्धो भवतीत्यविशेषेण प्रसङ्गे तत्रापि प्रतिषेध-

रूक्षत्वका वा स्निग्धता का एक अविभाग परिच्छेद(=जघन्यगुण) रहजाय सो बंधको प्राप्त नहीं होता है

वृत्त्यनुवादः—जघन्यः[1]।निकृष्टः[1]।गुणः[1]।भागः[1]। =जघन्य वा घटिसे घटि है सो निकृष्ट है। गुण है सो गुणका अविभाग परिच्छेद है

जघन्यः[1]।गुणः[1]।येषाम्[6]।ते[1]।जघन्यगुणाः[1]। =घटिसे घटि है अविभाग परिच्छेद जिनके वे जघन्यगुण हैं

तेषां[6]।जघन्यगुणानाम्[6]।न*अस्ति। बन्धः[1]। तद्यथा*- =तिन निकृष्टगुणों(वाली परमाणुओं)के बंध नहीं है। जैसे

एकगुणस्निग्धस्य[6]।एकगुणस्निग्धेन[3]।च।द्वि-आदि-संख्येय-=एकगुण स्निग्धका एकगुण स्निग्धकरि और(=च)दो आदिक संख्यात

असंख्येय-अनंतगुणस्निग्धेन[3]।न*अस्तिबंधः;तस्य[6]। =असंख्यात अनंतगुण स्निग्धकरि बंध नहीं है। तिस

एव*एकगुणस्निग्धस्य[6]।एकगुणरूक्षेण[3]।वा*द्वि-आदि =ही एकगुण स्निग्धका एकगुण रूक्षकरि अथवा दो आदिक

संख्येय-असंख्येय-अनन्तगुणरूक्षेण[3]।बन्धः[1]।न*अस्ति। =संख्यात असंख्यात अनंतगुणरूक्षकरि बंध नहीं है

तथा*एकगुणरूक्षस्य[6]।अपि*योज्यम्[1]।इति* =तैसेही(=तथा)एकगुण रूक्षके भी लगाना चाहिये अर्थात् एकगुणरूक्षका एकगुण रूक्षकरि और दो तीन चार पांच आदिक संख्यात,असंख्यात,और अनंतगुणरूक्षकरि बन्ध नहीं होता है तैसेही एकगुणरूक्षका एकगुण स्निग्धकरि अथवा दो, तीन, चार,पांच आदि संख्यात असंख्यात अनन्तगुण स्निग्धकरि बंध नहीं होता है

एतौ[2]।जघन्यगुण-स्निग्ध-रूक्षौ[2]।वर्जयित्वा-अन्येषाम्[6]। =ये(=एतौ)निकृष्ट गुणवाली स्निग्ध रूक्षोंको छोड़कर अन्य

स्निग्धानाम्[6]।रूक्षानाम्[6]।च परस्परेण[3]।बंधः-भवति-इति=स्निग्ध और(=च)रूक्ष(गुणवाली परमाणु)निकें परस्पर बन्ध होता है। ऐसे

अविशेषेण[3]।प्रसंगे[7]।तत्र*अपि*प्रतिषेध- =विशेषरहित प्रसंग आनेपर तहां औरभी(=अपि) बन्धके निषेधके

और यह सूत्र केवल परमाणुओंसे सम्बन्ध रखता है क्योंकि जघन्यगुण परमाणुमेंही पायाजाताहै नांक स्कधमें और जबकिसीप्रकारकी अजघन्यगुणधारक

विषयख्यापनार्थमाह— ॥ गुणसाम्ये सदृशानाम् ॥ ३५ ॥

विषय-ख्यापन-अर्थम्[१] आह।' =प्रकरणके कहनेके लिये (अग्रिम सूत्रमें) कहते है अर्थात् ऊपरके उपान्तिक या उपधा वाक्यसे ऐसा अनुमान निकलता है कि जघन्यगुणोंको छोड़कर अन्य सब गुणवाली परमाणुओंका स्निग्धरूक्षतासे वन्ध होजाता होगा सोइस प्रसंगको दूर करनेके लिये आचार्य वन्धके निषेधका निम्नलिखित अन्यसूत्रमें कहते है कि

(१) सूत्रम्—गुणसाम्ये सदृशानाम्॥ ३५॥ = (न)गुणसाम्ये(स्निग्धरूक्षत्वानाम्) सदृशानाम् (परमाणूनाम् वन्धः भवति) ॥ ३५ ॥

=गुणसाम्ये असदृशानाम् सदृशानाम् परमाणूनाम् वन्धः न भवति ॥ ३५ ॥

परमाणुमें बन्ध नहीं होसका है तब वह परमाणु विना बन्धके पृथक्ही रहैगी कभीभी स्कधरूपमें नहीं होसकी(जबतक जघन्य गुण उसमें विद्यमान है)॥ श्लोकवार्तिक पृ० ४३६,राजवार्तिक तथा जयचद्रायजीकी वचनिकापृ० ४६२,४६३सेप्रगटहैकि यहसूत्र केवल परमाणुओंसेही सम्बन्ध रखताहैनकिस्कधोंसे।

(१) यह सूत्र जो पूर्व चौतीसवां सूत्रका अपवाद विशेष समर्थनके लिये है परमाणुओंसे सम्बन्ध रखता है स्कन्धोंसे नहीं क्योंकि चौतीसवां सूत्र से 'परमाणनाम्' शब्दकी भी अनुवृत्ति इस सूत्रमें आती है। समस्त तेतीसवां सूत्रभी यहां अनुवर्तता है। 'स्निग्धरूक्षत्वानाम्'और 'असदृशानाम्' यहां पर समानार्थकवाची हैं अत "स्निग्धरूक्षत्वानाम्"के स्थानमें"असदृशानां"वाक्यका आदेश करदिया है। यहकि स्निग्धरूक्षत्वानाम्"की अनुवृत्ति आती है इसके समर्थनमें श्लोकवार्तिकसे निम्न वाक्य देते हैं। नन्वेव विसदृशानां गुणसाम्ये बन्धप्रतिषेधो न स्यादिति न मतव्य सदृशग्रहणस्य विसदृशव्यव-च्छेदार्थत्वाभावात् सदृशानामेवेत्यवधारणानाश्रयणात् ॥, गुणसाम्येवेति सूत्रोपदेशेहि सदृशानां गुणवैषम्येऽपि बधप्रतिषेधप्रसक्तौ तन्निवृत्तिसिद्धये सदृशग्रहणकृत, तेन स्निग्धरूक्षजात्या साम्येपि गुणवैषम्येबन्धसिद्धि॥ तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक सूत्र३५ पृ० ४३७॥

ननु एव*विसदृशानां गुणसाम्ये बधप्रतिषेध. न स्यात् इति =प्रश्न ऐसे गुणोंकी समानता होनेपर विसदृशोंके बन्धका निषेध नहीं होता होगा

न मतव्य, सदृशग्रहणस्य विसदृश- =(उत्तर—ऐसा) मानना ठीक नहीं है। क्योंकि सदृशके ग्रहणके (से) विसदृशके

व्यवच्छेदार्थत्वाभावात् =रुकावटका(=व्यच्छेदार्थत्व)अभाव है अर्थात् 'विसदृश'शब्दकी अनुवृत्ति बराबर आरही है उस (अनुवृत्ति)में कहींपर रुकावट नहीं हुई है

सदृशानाम् एव इति अवधारण-अनाश्रयणात्। =(और)सदृशो काही(=एव) ऐसा निश्चयात्मकपद (सूत्रमें) दिया नहीं है अर्थात् 'गुण-साम्ये सदृशानामेव"ऐसा सूत्र नही है नहीं तो मानलेते कि असदृशोंकी अनुवृत्ति नहीं आरही है और गुणोंकी गणनामें समानता होनेपर केवल सदृशोंकाही बन्ध नहीं होता है असदृशोंका गुणोंकी समानता होने पर होजाता है ऐसा मानलेते॥ स्मरण रहैकि ऐसी अवस्थामें श्वेताम्बरतथा दिगम्बरआम्नायोंमें इनपांचोंसूत्रोंका पाठऔरअर्थ एकहोजाता॥

सूत्रार्थः —गुणसाम्ये[१]।।असदृशानाम्[३]सदृशानाम्[३]=गुणोंकी संख्यामें समानता होनेपर विजातीय और सजातीय(=रूक्षरूक्ष,स्निग्धस्निग्ध) परमाणूनाम्[३]बन्धः[२]न*भवति। =परमाणुओंके बन्ध नहीं होता हैं अर्थात् एक परमाणुके अविभाग परिच्छेदरूप अंशों(=गुणों)की गणना दूसरी परमाणुके अविभागपरिच्छेदरूप अंशोंकी संख्याके यदि बराबर हो तो उन दोनों परमाणुओंका आपसमें चाहै रूक्षस्निग्ध(विजातीय) (क्रमसे) हों चाहै स्निग्धरूक्ष=(विजातीय)(क्रमसे)होंचाहै स्निग्धस्निग्ध=(सजातीय)(क्रमसे)होंचाहै रूक्षरूक्ष=(सजातीय)क्रमसे हों बंध नहींहोताहै जैसे रूक्षपरमाणुके दो अविभागपरिच्छेदरूप अंशका बन्ध स्निग्धपरमाणुके दो गुणोंके साथ नहीं होगा औरदो स्निग्धगुणवाली परमाणुओंका बन्ध दो रूक्षगुणवाली परमाणुओंके साथ नहीं होसकता है इसी प्रकार तीन चार-पांच-छह-सात आदि-संख्यात असंख्यात-अनंतगुणवाली रूक्षपरमाणुओंका बन्ध तीन-चार-पांच-छह-सात आदि संख्यात-असंख्यात-अनंतगुणवाली स्निग्धपरमाणुओंके साथ नहीं होगा और तीन-चार पांच-छह-सात-

---

गुणसाम्ये वा इति सूत्र उपदेशे हि सदृशानां गुणवैषम्येऽपि =‘गुणसाम्ये वा’ यदि ऐसा सूत्र करते तो गुणोंकी विषमता होनेपर भी सदृशोंके

बन्धप्रतिषेध प्रसक्तौ =अबन्धका प्रसंग आजाता अर्थात् सदृशोंका भी बन्ध न होता। (इसलिये)

तद् वत् तद्-सिद्धये स्वदृश- =विसदृशोंके समान (=तद्वत्) सदृशोंका बध (=तद्)सिद्ध करनेके लिये सदृशका

ग्रहणम् कृतम्, तेन स्निग्धरूक्षजात्या =ग्रहण (इससूत्रमें)किया है। तिसकरि अर्थात् स्निग्ध, रूक्ष जातीयसे

साम्येऽपि =समान होने पर भी भावार्थ रूक्ष रूक्ष या स्निग्ध स्निग्ध होनेपर भी

गुण वैषम्ये बंधसिद्धि। =गुणोंकी विषमता होने पर बन्धकी सिद्धि है। बन्ध होजाता है॥

इस सूत्रका पाठ दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायोंमें अक्षरशः मिलने पर भी अर्थमें भेद है॥ श्वेताम्बर आम्नायके आचार्यों ने "स्निग्ध रूक्षत्वात्" तेतीसवां सूत्रसे अनुवृत्ति नहीं ली है वे कहते हैं कि तेतीसवां सूत्रसे उपर्युक्त अनुवृत्ति नहीं लेना चाहिये नहीं तो सूत्र अशुद्ध होजावैगा यही कारण है कि सूत्रके अर्थमें भेद पड़गया है उनके अनकूल"गुणसाम्येसदृशानाम्"="गुणसाम्ये सति सदृशानां बन्धो न भवति"=गुणकी समता होने पर सदृशोंका बन्ध नहीं होता" पर असदृशोंका बध अर्थात् रूक्षस्निग्धका बध गुणोंकी बराबरी होनेपर भी होजाता है उनका भावार्थ यह है कि गुणोंकी विषमता होने पर सदृशोंका (रूक्षका रूक्षके साथ और स्निग्ध का स्निग्धके साथ) बध होजाता है और यह गुणोंकी विषमता उनके "द्वि-अधिकादिगुणानांतु"(=द्विअधिकादिगुणानां तु सदृशानां बन्धो भवति" सूत्रके अनुसार केवल दो गुण एकसदृशमें दूसरे सदृशमें अधिक होना चाहिये बस बन्ध होजावैगा परन्तु उनके मतानुसार इससे यह फल निकला कि असदृशोंके परस्पर (रूक्षका स्निग्धके साथ अथवा यों कहिये कि स्निग्धका रूक्षके साथ) बन्ध होनेके लिये गुणोंकी अधिकताकी कोई आवश्यकता नहीं है दो असदृशोंके गुणोंकी संख्या समान होने पर भी बध होजाताहै। (इस टिप्पणी को हमने श्वेताम्बर आम्नायके कईभाष्योंको मिलाकर सावधानी से लिखी है)॥

सदृशग्रहणं तल्यजातीयसंप्रत्यायर्थं । गुणसाम्यग्रहणं तुल्यभागसंप्रत्ययार्थम् ॥ एतदुक्तं भवति—द्विगुणस्निग्धानां द्विगुणरूक्षैः त्रिगुणस्निग्धानां त्रिगुणरूक्षैःद्विगुणस्निग्धानां द्विगुणस्निग्धैः द्विगुणरूक्षाणां द्विगुणरूक्षैश्चेत्येवमादिषु नास्तिबन्धइति ॥ यद्येवं

आदि संख्यात-असंख्यात अनंत गुणवाली स्निग्धपरमाणुओंका बन्ध तीन-चार-पांच-छह-सात आदि संख्यात असंख्यात अनंतगुणवाली रूक्षपरमाणुओंके साथ न होगा ॥ उपर्युक्त उदाहरण विजातीय(असदृश वा विसदृश) परमाणुओंके, जो अविभाग परिच्छेदरूप अंशोंमें समान है। निम्नलिखित दृष्टान्त सजातीय वा सदृश परमाणुओंके हैं जो सबकी सब गुणोंमें एक दूसरेके बराबर वा समान हैं।

जैसे दो गुणवा तीन गुणवाली स्निग्धपरमाणुका बन्ध दो गुणवाली वा तीन गुणवाली स्निग्ध परमाणुसे यथासंख्य न होगा और दो गुणवाली अथवा तीन गुणवाली रूक्षपरमाणुका बन्ध दो गुणवाली वा तीनगुणवाली रूक्षपरमाणुओंके साथ क्रमसे न होगा, इसीप्रकार चार-पांच-छह-सात-आठआदिकसंख्यात-असंख्यात-अनंत स्निग्ध गुणवाली परमाणुओंकाबन्ध चार-पांच-छह-सात आठआदिसंख्यात-असंख्यात अनंतगुणवालीस्निग्ध परमाणुओंके साथ क्रमसे न होगा और चार-पांच-छह-सात आठ-आदि संख्यात-असंख्यात अनंतरूक्षगुणवाली परमाणुओंका बंध क्रमसे चार-पांच छह-सात-आठ आदि संख्यात-असंख्यात-अनंतगुणसे युक्त रूक्षपरमाणुओंके साथ न होगा ॥

वृत्त्यनुवादः—सदृश-ग्रहणम्॥तुल्य-जातीय-संप्रत्यय-अर्थम्॥	=(इस सूत्रमें)सदृश(शब्द)का ग्रहण समानजातिको प्रगट करनेके लिये है
गुणसाम्य-ग्रहणम्॥तुल्य-भाग-संप्रत्यय-अर्थम्॥;एतद्॥उक्तम्॥भवति॥	=(इससूत्रमें)गुणसाम्य वाक्यका लाना(स्निग्धता वा रूक्षताकेगणनामें) बराबर =अविभागपरिच्छेदरूप अंशोंके जतावनेकेलिये है। यह कथन वाअर्थहोताहैकि
द्विगुण(१ स्निग्धानाम्॥द्विगुण(२ रूक्षैः॥त्रिगुण ३)स्निग्धानाम्॥	=दोगुण स्निग्धोंके दोगुण रूक्षोंकरि, तीनगुण स्निग्धोंके
त्रिगुणरूक्षैः॥द्विगुणस्निग्धानाम्॥द्विगुणस्निग्धैः॥	=तीनगुणरूक्षोंकरि, दोगुणस्निग्धोंके दोगुण स्निग्धोंकरि,
च*द्विगुणरूक्षाणाम्॥द्विगुणरूक्षैः॥इत्येवम्*आदिषु॥	=और दोगुण रूक्षोंके दोगुण रूक्षोंकरि इत्यादि में
न*अस्ति, बन्धः॥इति*॥यदि*एवम्*	=इस प्रकार बन्ध नहीं है। (प्रश्न) जो ऐसे है तो अर्थात् गुणोंकी संख्यामें बराबरी होनेपर न तो सदृश परमाणुओंका बंध होता है और न असदृश

(१)(२)(३)तीन स्थानोंपर इस पृष्ठमें और पांच स्थानोंमें १२४ पृष्ठमें 'बहुवचनमें' ये शब्द इसलिये लाये गयहैं कि लोकमें ऐसी परमाणु अनन्तानन्त हैं

सदृशग्रहणं किमर्थं ? गुणवैषम्ये(सदृशानामपि)बंधप्रतिपत्त्यर्थं सदृशग्रहणं क्रियते॥

सदृश-ग्रहणम्[१]॥किम्[१]॥अर्थम्[१]॥ ?

गुण-वैषम्ये[७]॥(सदृशानाम्[६]॥अपि*) बंध-प्रतिपत्ति-अर्थम्[१]॥सदृश-ग्रहणम्-क्रियते।

परमाणुओंकाही वंध होताहै जब सदृश विसदृश दोनोंहीका बन्ध नहीं होता तव सूत्रमें =सदृश(शब्द)का ग्रहण किसलिये है अर्थात् सूत्र ऐसा होता 'गुणसाम्ये' और 'न' की अनुवृत्ति'नजघन्यगुणानाम्'सूत्रसे आकर'गुणसाम्येन' सूत्र होकर ऐसा अर्थ होजाता कि'(परमाणुओंमें)गुणोंकी संख्या एक दूसरोंसे बराबर होनेपर बन्ध नहीं होता' =(उत्तर)गुणोंकी विषमता होनेपर { सजातीय(परमाणु)निकें भी(=अपि) } बन्ध =जतलानेके लिये (सूत्रमें) सदृश(शब्द) ग्रहण किया गया है वा लायागया है॥शिष्यके प्रश्न और आचार्यके उत्तरका सारांश यह है कि शिष्यने 'न जघन्यगुणानाम्'सूत्रका अर्थ समझकर कि जघन्यगुणोंकी परमाणुओंका चाहै सदृश हों वा विसदृश हों बन्ध नही होता है अजघन्यगुणोंवाली परमाणुओंका वंध होताहै पश्चात् 'गुणसाम्ये सदृशानां'सूत्रका भाव समझकरकि गुणोंकी संख्यामें समानता होनेपर नसदृशोंका बंध होता है और न असदृशोंका वन्ध होता है, असमान गुणोंके परमाणुओंमें चाहैं सदृश हों चाहैं विसदृश हों बंध होजाता है प्रश्न करदिया कि जब "न जघन्यगुणानाम्"सूत्रमें सदृश विसदृशका वंध नही है और न इस सूत्रमें सदृश विसदृशका वन्धहै तव सूत्रभी उसी ढांचेपर बनाना था अर्थात् 'गुणसाम्येन' गुणोंकी गणनामें समानता होनेपर वन्ध नहीं होता(न सदृशोंका न असदृशोंका फिर इस सूत्रमें'सदृशानां'लाना व्यर्थ है आचार्यके उत्तरका भावार्थ यहहैकि सदृशोंका वन्ध विषमगुणोंके होनेपरभी

(१) सर्वार्थसिद्धिकी प्रथमावृत्तिमें"गुणवैषम्ये बन्ध प्रतिपत्त्यर्थं"पाठ है द्वितीयावृत्तिमें "गुणवैषम्ये सदृशानामपि बन्ध प्रतिपत्त्यर्थं पाठ है । तीन हस्तलिखित सर्वार्थसिद्धिकीप्रतियोंका पाठभी प्रथमावृत्तिसे मिलता है ॥ यही पाठ श्लोकवार्तिक मुद्रित तथा हस्तलिखितमें और तीन चार प्रतियों राजवार्तिकका वार्तिक पांचका है, तत्वार्थराजवार्तिकमें इस वार्तिककी वृत्ति ऐसे है कि "गुणवैषम्ये सदृशानां बन्धो भवतीत्येतस्यार्थस्य प्रतिपत्त्यर्थं" इत्यादि अर्थात् यह वृत्ति सर्वार्थसिद्धिकी द्वितीयावृत्तिसे मेल रखती है ॥ "गुणवैषम्ये बन्धो भवति इति परिज्ञानार्थं' सर्वार्थसिद्धिकी प्रथमावृत्तिसे मिलता जुलता हुआ पाठ श्रुतसागरी टीकामें है ॥ श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य०में दो स्थानोंपर देखा(पृष्ठ १३८)तथा भाष्यानुसारिणीतत्वार्थटीका जिसमें बाईस सहस्र श्लोकोंसे भी अधिक हैं उसके पर्ण ४६६ पर दो स्थानोंपर'गुणवैषम्ये सदृशानां बन्धो भवति"पाठहै जो सर्वार्थसिद्धिकी द्वितीया वृत्तिसे मिलता जुलता हुआ है ॥ "गुणकी विषमता होते सन्तेभी बन्ध होय है ऐसे जनावनेके अर्थ हैं" प० जयचन्दजीने ऐसाअर्थ कियाहै॥'गुणकी विषमता होते सन्तेभी बन्ध होय हैं'न्यायदिवाकरजी अनुवादित राजवार्तिक अध्याय५ पर्ण १४३मेंहै॥ प०पन्नालाल दूनीजी अनुवादित राजवार्तिक अध्याय ५ पर्ण १०० पर "गुणनिकी विषमतामें सदृशनिकै बन्ध है" ऐसा अर्थ प्राप्त है सूक्ष्म दृष्टिसे देखनेपर इन सबका परिणाम यहहै कि यथार्थमें सर्वार्थसिद्धि का पाठ तो 'गुणवैषम्ये बन्धप्रतिपत्त्यर्थं' है ॥ "सदृशानां" वाक्य शेष है अर्थात् यह शब्द छिपा हुआ है हमने द्वितीयावृत्तिके पाठको लेते हुए "सदृशानामपि"को कोष्टकमें करदिया है क्योंकि "सदृशानां"सहित अनुवाद करनेमें तथा अर्थ और व्याख्या समझने समझानेमें सरलता होजाती है॥

अतो विषमगुणानां तुल्यजातीयानामतुल्यजातीयानां च अनियमेन बन्धप्रसक्तौ विशिष्टार्थसंप्रत्ययार्थमिदमुच्यते—

॥ द्व्यधिकादिगुणानां तु ॥ ३६ ॥

नहीं होता यदि सूत्रमें 'सदृशानां' न लाते तो वह इस प्रकार छूटजाता कि तेतीसवां सूत्रसे 'स्निग्धरूक्षत्वानाम्' की अनुवृत्ति तो इस सूत्रमें आजाती और अर्थ यह होता कि गुणोंकी समानता होनेपर स्निग्धरूक्षोंका बन्ध नहीं होताहै इसअनुवृत्तिसे इस बातकी प्राप्ति हुई कि गुणोंकी विषमता होनेपर असदृशोंका बन्ध होगा अब सूत्रमें 'सदृशानां' शब्द तो होताही नहीं अतएव सदृशानां का कथनहीविषमगुणोंकी अवस्थामें नहीं करसकतेथे इसी हेतुसे वृत्तिमें 'सदृशानां' के साथ 'अपि' (=भी) शब्द लाये हैं कि गुणोंकी विषमतामें सदृशोंका भी बन्ध प्रगट होजाय ; अपि शब्दसे यह भास होता है कि ३३वां सूत्रकी अनुवृत्ति इस सूत्रमें आनेसे असदृशोंका बन्धतो विषमगुणोंके होनेपर होहीजाता है।सूत्रमें 'सदृशानां' लानेसे विषमगुणोंमेंसदृशोंके बन्धकीभी प्राप्ति होगई अतः सूत्रमें सदृशानां' शब्द व्यर्थ नहीं है॥स्मरण रहे कि 'गुणसाम्ये सदृशानां' सूत्रका अर्थ करनेमें हमारे यहां 'साम्ये' शब्द पर बल देकर यह अर्थ किया है कि सदृशों(सजातीय परमाणुओं)का बन्ध गुणोंकी समानता होनेपर नहीं होता गुणोंकी विषमता होने पर सदृशोंका भी बन्ध होता है इसलिये सूत्रमें सदृशानां' शब्दका ग्रहण है कि गुणकी विषमता होनेपर सजातियोंकाभी बंध होता है॥श्वेताम्बर आम्नायमें 'सदृशानां' शब्दपर बलदेकर यह अर्थ कियाहै कि सदृशोंका बन्ध गुणोंकीसमानता होनेपर नहीं होता है विसदृशों का बन्ध गुणोंकी समानता होनेपर भी होजाता है जैसे चार गुणवाली स्निग्ध परमाणुका बन्ध चार गुणवाली रूक्ष परमाणु के साथ होजावेगा इसीलिये श्वेताम्बर तथा दिगम्बरआम्नायोंमें इस सूत्रके अर्थमें भेद पड़गया है।

अतः*विषमगुणानाम्[६/३] तुल्यजातीयनाम्[६/३] च*	=इसलिये विषमगुणवाले सदृशोंका और (=च)
अतुल्यजातीयनाम्[६/३] अनियमेन[३/१] बन्ध-	=विसदृशों(=असदृशों)का नियमरहित वा अविशेषरूपसे बन्धका
प्रसक्तौ[७/१]॥विशिष्ट-अर्थ-संप्रत्यय-अर्थम्[२/१]॥	=प्रसंग आनेपर विशेष तात्पर्य वा अभिप्राय जतावनेके लिये
इदम्[१/१]॥उच्यते।	=वह(अग्रिम सूत्रमें) कहाजाता है कि

(१)**सूत्रम्—द्व्यधिकादिगुणानां तु।३६। = द्वि-अधिक-आदिगुणानाम् (सदृशानाम् विसदृशानाम् परमाणूनां परस्परेण बन्धः) तु (भवति) ॥ ३६ ॥**

सूत्रार्थः-द्वि-अधिक-गुणानाम्[६/३]	=किन्तु (पर-परंतु) दोगुण आदिसे(=आदिकरि)अधिकगुणवाले

(१) यह सूत्रभी परम गुणोंसे सम्बन्ध रखता है क्योंकि 'न जघन्यगुणानाम्' 'गुणसाम्ये सदृशानाम्' इन सूत्रोंसे अनुवृत्तिया इस सूत्रमें ग्रहण कीगईहैं

गई है ॥ अर्थात् 'सदृशानां विसदृशानां' एतो नवा सूत्रसे 'परमाणूनां' चौतीसवां सूत्रसे, 'बन्ध' ततीसवां सूत्रसे अनुवर्तते हैं 'परम्परेण' और भवति' शब्दोंका अध्याहार इस सूत्रमें कियागया है। तत्त्वार्थ राजवार्तिकमें इस सूत्रकी प्रथमवार्तिककी वृत्तिमें कितनेही उदाहरण दिये हैं वे समस्त परमाणुओंसे सम्बन्ध रखते हैं, राज०२४२। यह बात प्रत्यक्ष है कि बन्ध होनेके पश्चात् स्कन्ध होजावे गा जैसाकि प्रथमवार्तिककी वृत्तिके अन्तके वाक्यमें प्रगटहै प्रयात् 'एवमुक्त विधिना बन्धे सत्यणू॥ द्वि अणुकाद्यनन्तानन्त प्रदेशावसानस्कन्धोत्पत्तिर्वेदितव्या, इसप्रकार कथित विधिद्वारा बन्ध होनेपर अणुओंके द्वि अणुआदि अनन्तानन्त प्रदेश पर्यन्त स्कन्धोंकी उत्पत्ति जानना चाहिये, समर्थनमें देखो इसका पृ०१२६ जिसमें श्वेता०आम्नायकेसबन्धमें कुछउल्लेखहै

(२) इस सूत्रका पाठ श्वेताम्बर और दिगम्बर आम्नायोंमें एक है तो भी अर्थमें यह भेद है कि उन्होंने केवल 'सदृशानाम्'की अनुवृत्ति "गुणसाम्ये सदृशानाम्' सूत्रसे लेकर इस प्रकार सूत्र किया है कि द्वि-अधिकादिगुणानां तु सदृशानां बन्धो भवतीति॥ भाष्यम् - द्वाभ्यां गुणविशेषाभ्यामन्यस्माद्-धिकाय परमाणुस आदिर्येषां गुणानां तेद्वि अधिकादिगुणा. गुण शब्दोऽत्र गुणिवचन गुणवतागुणा परमाणव इत्यर्थ तेषां द्वि अधिकादि गुणानामणूनां सदृशानां बन्धो भवति ॥ सदृशानामितिस्नेहसामान्यरूक्षसामान्यचाश्रित्य सादृश्य व्याख्येय ॥ श्रीसिद्धसेनसूरि विरचिता भाष्यानुसारिणी वृत्तौ वा भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीका पर्ण ३६६-श्वेताम्बर आम्नायमें यह ग्रन्थ तत्त्वार्थ सूत्रपर महत्त्वका है इसमें बाईस सहस्र दोसौ श्लोकमें अधिक कुछहैं॥

द्वि-अधिक आदि गुणानां तु सदृशानाम् बंध भवति इति = परन्तु द्विगुण आदिसे अधिक गुणवाले सदृश(परमाणु)निका बन्ध होताहै, ऐसाहै

भाष्यम् – अन्यस्मात् द्वाभ्याम् गुणविशेषाभ्याम् अधिक = व्याख्या(भाष्य)है कि अन्य(परमाणु से(= अन्यस्मात्) दो विशेषगुणकरि अधिक अर्थात् स्निग्धहोतो दोगुणअधिकस्निग्धकरि और रूक्षहोतो दोगुण अधिकरूक्षकरि

य परमाणु स आदि येषाम् गुणानाम् ते द्वि-अधिकादिगुणाः = जोपरमाणु है सो दोआदिगुण(= आदिगुणाना)जिनके हैं वे(= ते द्वि-अधिकादि गुणाहैं

गुणशब्द' अत्र गुणिवचन = यहां (= अत्र अर्थात् इससूत्रमें) गुण शब्दहै सो गुणीका वाचक(= गुणिन वचन)है।

गुणवन्त गुणाः परमाणुव इत्यर्थ. = गुण सहित हैं वे गुणा परमाणु हैं ऐसा तात्पर्य है अर्थात् सूत्रमें 'गुणाना शब्द है सो जिनके गुण विद्यमान है उनसे प्रयोजन है ऐसी गुणवालीपरमाणु है

तेषाम् द्वि-अधिकआदिगुणानाम् अणूनाम् सदृशानाम् बन्ध भवति = तिन दोगुण अधिक आदिसे सदृश परमाणुओंका बन्ध होताहै

सदृशानां इति स्नेहसामान्य रूक्षसामान्य च आश्रित्य = सदृशानां ऐसा वाक्य सामान्य स्निग्धका और सामान्यरूक्षको आश्रयकरि

सदृशव्याख्येयम् ॥ नीचेका भाष्य, सभाष्य०के पृ०१३६से लिया है = (सामान्य स्निग्ध और सामान्यरूक्षकी विवक्षासे)समानता वर्णित है

'भाष्यम्–द्वि-अधिकादिगुणानां तु सदृशानां बन्धो भवति = द्विगुण आदिसे अधिक गुणवाले सदृश पदार्थोंकाभी बन्ध होता है ॥

विशेषव्याख्या– अब इस विषयको कहते हैं कि रूक्षका रूक्षके साथ औरस्निग्धका स्निग्धके साथ भी बन्ध होता है किन्तु रूक्ष तथा स्निग्धगुणो की इस प्रकारसे विषमता होनी चाहियेकि

तद्यथा स्निग्धस्य द्विगुणाद्यधिक स्निग्धेन(द्विगुण आदिअधिक)। = जैसे स्निग्धकाअर्थात्सामान्य स्निग्धका द्विगुणआदि अधिक स्निग्धके साथबधहोताहै

द्विगुणाद्यधिक स्निग्धस्य स्निग्धेन द्विगुण आदि अधिक)। = (तथा)द्विगुण आदि अधिक स्निग्धका सामान्यस्निग्धके साथ बन्ध होता है

रूक्षस्यापि द्विगुणाद्यधिकरूक्षेण(द्वि-गुण आदि अधिक) = (ऐसेही सामान्य)रूक्षका द्विगुण आदि अधिक रूक्षके साथ बन्ध होता है

द्विगुणाद्यधिकरूक्षस्य रूक्षेण' = द्वि गुण-आदि अधिक) = तथा द्विगुण आदि अधिक रूक्षका सामान्य रूक्षके साथ भी बन्ध होता है (तात्पर्य यह कि सामान्य स्निग्ध पदार्थका उससे द्विगुण अधिक स्निग्धके साथ बन्ध होता है और सामान्यरूक्ष पदार्थका उससे द्विगुण अधिक रूक्षके साथबन्ध होता है परन्तु यह वैषम्यद्विगुण आदिसे अधिक होना चाहिये)

एकादिगुणाधिकयोस्तु सदृशयोर्बन्धो न भवति . = और एकादिगुण अधिक सदृशोंका बन्ध नहीं होता है ॥ देखो सभाष्य०पृ० १३६॥

सदृशानाम्[३] विसदृशनाम्[३] परमाणूनाम्[३] परस्परेण[*] बन्धः[१] भवति[।]

=सजातीय अथवा विजातीय परमाणुओंका =आपसमें वन्ध होता है ॥ द्वि-अधिक आदिगुण वाक्यमें आदि शब्द प्रकार वा जातिवाची है। दोगुणाकरि अधिक सो द्व्यधिकगुण है अर्थात् वंध होनेयोग्य जो परमाणु दोगुण करि अधिकहै सो द्व्यधिकगुण(परमाणु है, जघन्यगुणको छोड़कर वन्ध होने योग्य दो अधिक गुणवाली परमाणु है। अतः द्व्यधिक गुण परमाणु का अभिप्राय चार गुण संयुक्त परमाणु हुई ॥ "द्व्यधिकादिबन्धःभवति" अर्थात् द्व्यधिक प्रकारसे बन्ध होता है भावार्थ दोगुण परमाणुंसे जिस में चारगुण हैं सो दो अधिक गुणवाली परमाणु है, आदि शब्दके हेतुसे तीन गुण वाली परमाणुसे पांच गुण वाली परमाणु दो गुण अधिक है, चार गुण वाली से छह गुण वाली दो गुण अधिक है, पांच गुण वाली से सात गुण वाली दो गुण अधिक है, छह गुण वालीसे आठ गुण वाली दोगुण अधिक है इत्यादि इसी रीति से (आदि शब्द में) पूर्वोक्त से उत्तरोक्त दो गुणअधिकवाली क्रमसे सर्व (संख्यात असंख्यात-अनंतगुणवाली परमाणुयें गर्भित हैं और इन्हीं प्रकार की परमाणुंओके वंध होता है ॥

(क) सजातीय परमाणुंओं के आपस में वंध के उदाहरणः—दो गुणवाली स्निग्ध परमाणु चार गुणवाली स्निग्ध परमाणु के साथ वंधको प्राप्त होती है तीन गुणवाली स्निग्ध पांच गुणवाली स्निग्ध के साथ, चार गुणवाली स्निग्ध छह गुणवाली स्निग्ध के साथ पांच गुणवाली स्निग्ध सात गुणवाली के साथ छह गुणवाली स्निग्ध आठ गुणवाली स्निग्ध के साथ बंधको प्राप्त होती हैं इसी प्रकार सात, आठ, नौ, दश, आदि संख्यात गुणवाली स्निग्ध परमाणुयें, असंख्यात गुण संयुक्त स्निग्ध परमाणुयें और अनंत गुण संयुक्त स्निग्ध परमाणुयें क्रमसे नौ दश ग्यारह वारह आदि, संख्यात गुणवाली

जब श्वेताम्बर आम्नायके आचार्योंने "गुणसाम्ये सदृशानां" सूत्रका यह अर्थ किया है कि गुणोंकी समान संख्या होनेपर सदृशोंका बन्ध नहीं होगा परन्तु विसदृशोंका बन्ध गुणोंकी सख्याके तुल्य होनेपर भी होजावेगा तब यह परिणाम निकला कि सदृश परमाणुओंके ही बन्धके लिये एकसे दूसरेमें दोगुणोंके अधिक होनेकी आवश्यकता हुई क्योंकि उक्त आम्नायके सिद्धान्तके अनुकूल विसदृश परमाणुओंके आपसमें वन्ध होनेके लिये एकसे दूसरेमें अधिकगुणोंके होनेकी कोई आवश्यकता नहीं है परन्तु हमारे यहां 'गुणसाम्ये सदृशानां' में 'स्निग्धरूक्षत्वानाम्' कीभी अनुवृत्तिग्रहणकीहै इसलिये ऐसा अर्थ होता है कि परमाणुओंमें गुणोंकी संख्या यदि बराबर हो तो चाहे वे परमाणु, सजातीय हों अथवा विजातीय हों बन्ध नहीं होता है और पश्चात् 'सदृशाना विसदृशानां' दोनोंकी अनुवृत्ति द्वि-अधिकादि गुणानांतु' सूत्रमें ग्रहण करके ऐसा तात्पर्य निकाला है कि द्विगुण आदिसे अधिक गुण वाली सदृश परमाणुओंका परस्पर अथवा विसदृश परमाणुओं का आपसमें बन्ध होता है अन्य प्रकारसे नहीं जघन्यगुणवाली परमाणुओंको दोनोंही सम्प्रदायवालोंने बन्धसे वर्जित रक्खा है ॥